महाभारत

प्रथम खण्ड

र्ष १७]

(संक्षिप्त)

[अङ्क १

दुर्गतिनाशिनि दुर्गा जय जय, कालविनाशिनि काली जय जय ।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तमहर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

[प्रथम संस्करण ५०६००, सं० १९९९]

वार्षिक मूल्य
भारतमें ५≋)
विदेशमें ७॥=)
(११॥ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

संक्षिप्त
महाभारताङ्क
प्रथम खण्ड ५≋)
साधारण प्रति ।)
विदेशमें ।≋)

Edited by H. P. Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri.
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur, U.P. (India).

संख्या १

लोक-कल्याणके लिये नाम-जप कीजिये

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस समय संसारपर भयानक संकट आया हुआ है और वह आगकी तरह बड़े जोरसे सब ओर फैलता जा रहा है। चारों ओर भीषण मार-काट मची हुई है। कहते हैं पिछले तीन महीनोंमें अकेले रूस और जर्मनीके युद्धमें दोनों ओरके मिलाकर करीब दस लाख मनुष्योंका और विपुल सम्पत्तिका नाश हो चुका है। और यह आग अभी भड़कती ही जा रही है। इसके बुझनेकी जल्दी कोई सम्भावना नहीं है। यूरोपमें ही एक और युद्धक्षेत्र तैयार करनेकी बात सोची जा रही है। संसारके सभी भूभागोंमें युद्धके बादल मँडरा रहे हैं। सारे विश्वका वातावरण विक्षुब्ध है और प्रायः सभी लोग एक-दूसरेका पतन करनेके लिये राक्षसी प्रयत्नमें लगे हुए हैं। हमारे देशमें भी अशान्तिकी आग सुलग रही है और न जाने उसका कब क्या रूप हो जाय। विश्वके इस महान् संकटको टालनेके लिये वातावरणको शुद्ध और शान्त बनानेकी आवश्यकता है और इसका एकमात्र उपाय है—श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीभगवान्की आराधना। इसीलिये समय-समयपर 'कल्याण' ने अपने पाठकोंसे भगवन्नाम-कीर्तन, श्रीमद्भागवत, गीता तथा श्रीरामचरितमानसके पारायण एवं भगवन्नाम-जप आदिके लिये प्रार्थना की है और आनन्दकी बात है कि उसपर कुछ ध्यान भी दिया गया है। जगह-जगह भगवन्नाम-कीर्तनके आयोजन हुए और हो रहे हैं, श्रीमद्भागवतके सैकड़ों पारायण हुए हैं। गीताके भी सैकड़ों तथा श्रीरामचरितमानसके हजारों पारायण जगह-जगह हुए हैं। हमारी नम्र प्रार्थना है कि ये सब कार्य और भी अधिक उत्साह, लगन तथा व्यवस्थाके साथ करने-कराने चाहिये। इन्हींसे जगत्का यथार्थ कल्याण हो सकता है।

पिछले जून एवं जुलाईके अङ्कोंमें 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंकी सेवामें अबसे लेकर कार्तिक शुक्ल ११ तक उपर्युक्त सोलह नामके मन्त्रका एक अरब जप करने-करानेकी प्रार्थना की गयी थी। नियम पूर्ववत् ही हैं। सभी भाइयों और माता-

कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) महाभारताङ्क निश्चित तिथिसे एक महीने बाद निकल रहा है। इसका कारण यही है कि बीचमें जिन दिनों महाभारताङ्ककी छपाई हो रही थी, अकस्मात् स्थानीय बिजलीघरमें क्रूड आयलकी कमी हो जानेसे बिजली मिलनी बंद हो गयी, जिससे प्रेसका कार्य एक प्रकारसे बंद हो गया और लगभग एक महीनेतक बंद-सा रहा। पीछे स्टीम-एंजिन बिठाकर स्टीमके द्वारा प्रेस चलानेकी व्यवस्था की गयी। इसीलिये अङ्क समयपर नहीं निकल सका। आशा है, हमारी विवशताको देखकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करनेकी उदारता दिखलायेंगे। भारतवर्षके सभी प्रान्तोंके प्रमुख पत्रोंमें इस सम्बन्धकी एक विज्ञप्ति निकाल दी गयी थी, जो सम्भवतः 'कल्याण' के पाठकोंमेंसे बहुतोंको देखनेको मिली होगी। इस देरीके कारण अगले अङ्कोंके निकलनेमें भी देरी हो सकती है। आशा है, आगे चलकर कुछ महीनोंमें यह अव्यवस्था ठीक हो जायगी।

(२) इस अङ्कमें महाभारतके प्रथम सात पर्वोंका संक्षिप्त अनुवाद तथा कतिपय विद्वानोंके महाभारत-सम्बन्धी कुछ थोड़े-से लेख दिये जा रहे हैं। कागजकी अत्यन्त दुर्लभता तथा छपाईके अन्य साधनोंकी मँहगाई आदिके कारण महाभारताङ्कका कलेवर भागवताङ्कके बराबर नहीं हो सका। फिर भी इसका आकार मानसाङ्कसे बड़ा तो हो ही गया है। अवश्य ही रंगीन चित्र अबकी पिछले विशेषाङ्कोंकी अपेक्षा बहुत कम दिये गये हैं। इसका प्रधान कारण आर्टपेपरका न मिलना ही है। कुछ आर्टपेपर पहलेका बचा हुआ रक्खा था; उसमेंसे जितने चित्र दिये जा सकते थे, उतने दिये गये हैं। पहलेका बचा हुआ आर्टपेपर न होता तो सम्भवतः इससे भी कम दिये जाते अथवा बिल्कुल न दिये जाते। इस कमीकी पूर्ति लाइन-चित्रोंके द्वारा करनेकी चेष्टा की गयी है। लाइन-चित्र इसमें भागवताङ्ककी अपेक्षा भी करीब-करीब दुगुने——सात सौके करीब हैं। पठनीय सामग्रीकी दृष्टिसे यह अङ्क भागवताङ्ककी अपेक्षा कम रोचक नहीं होगा। इसमें पाठकोंको जानने और सीखनेकी बहुत बातें मिलेंगी। भगवद्गीता, विदुरनीति एवं सनत्सुजातीयका तो इसमें अविकल अनुवाद दिया गया है। प्रायः सभी मुख्य-मुख्य घटनाओंको लाइन-चित्रोंके द्वारा व्यक्त किया गया है।

(३) पहले तो यह विचार किया गया था कि पिछले वर्षोंकी भाँति इस बार भी अगले दो अङ्कोंमें महाभारताङ्कके ही परिशिष्टरूपमें महाभारत-सम्बन्धी और भी उत्तम-उत्तम लेख दिये जायँ और महाभारतके अवशिष्ट अंशका संक्षिप्त अनुवाद अगले सालके विशेषाङ्कमें दिया जाय। परन्तु युद्धकी विभीषिकाके फलस्वरूप देशकी परिस्थिति अनिश्चित हो जानेके कारण कतिपय ग्राहकोंकी सम्मतिके अनुसार अन्तमें यही निश्चय किया गया कि **साधारण अङ्कोंमें भी महाभारतका ही अनुवाद देकर इस ग्रन्थको यथासम्भव इसी वर्षमें पूरा कर दिया जाय।** क्योंकि संसारमें जिस तेजीके साथ उथल-पुथल हो रही है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि अगले

साल हमारे देशकी परिस्थिति कैसी रहेगी। इसलिये 'शुभस्य शीघ्रम्' इस सिद्धान्तके अनुसार जल्दी-से-जल्दी इस कार्यको समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर समझा गया। आशा है, हमारे ग्राहकोंको भी यह व्यवस्था पसंद आयेगी। सदाकी भाँति एक रंगीन चित्र तथा प्रसंगानुसार बीसियों लाइन-चित्र प्रत्येक साधारण अङ्कमें भी रहेंगे। यह सब सामग्री परिस्थिति अनुकूल रहनेपर 'कल्याण' के ग्राहकोंको केवल ५≈) में ही मिल जायगी। परिस्थिति बदलनेपर ग्राहकोंको जितने अङ्क मिल जायँ, उतनोंसे ही सन्तोष करना होगा। कागज़ आदिके बढ़े हुए भावको देखते हुए अकेले विशेषाङ्कसे ही उनका पूरा चंदा वसूल हो जायगा। परिस्थिति अनुकूल रहनेपर 'कल्याण' को बहुत बड़ा घाटा उठाना पड़ेगा, जिसे गीताप्रेस सहनेको तैयार है।

(४) कागजकी कमीके कारण महाभारताङ्क पहले ४०,५०० ही छापना शुरू किया था, जैसा कि गत वर्षके ग्यारहवें तथा बारहवें अङ्कमें सूचित किया गया था। किन्तु पीछे माँगें अधिक आने लगीं तथा गत वर्षोंकी भाँति ग्राहकोंका चंदा (लवाजम) भी पर्याप्त संख्यामें आने लगा। इससे उत्साहित होकर कागजकी कमी रहते हुए भी पिछले फर्मोंकी, जो केवल ४०,५०० छापे गये थे, दस-दस हजार प्रतियाँ और छापी गयीं और शेष फर्में भी ५०,५०० छापे गये। उस समय यह भी अनुमान था कि शायद ४०,५०० ग्राहकोंके रुपये तो मनीआर्डरसे ही आ जायँगे। उस हालतमें वी० पी० द्वारा अङ्क भेजनेकी सम्भावना प्रायः नहींके बराबर ही थी। इसीलिये पिछले जून एवं जुलाईके अङ्कोंमें यह बात दर्शायी गयी थी। परन्तु पीछे ५०,५०० प्रतियाँ छापी जाने लगीं, तथा देशके वर्तमान अशान्त वातावरणमें—जब कि कई स्थानोंसे रेल, तार और डाकका सम्बन्ध टूट गया है—कदाचित् पूरे रुपये मनीआर्डरसे नहीं आ पायँगे। ऐसी दशामें अग्रिम चंदा भेजनेवालोंसे जितने अङ्क बच रहेंगे, उन्हें वी० पी० द्वारा उन ग्राहकोंके पास भेजनेका विचार है, जिनकी मनाही नहीं आ जायगी। वर्तमान परिस्थितिमें इस अङ्कके दुबारा छपनेकी सम्भावना तो प्रायः नहींके बराबर ही है। ऐसी दशामें इस संस्करणके समाप्त हो जानेपर यह अङ्क दुष्प्राप्य हो जायगा। इसलिये 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंको अपना चंदा जल्दी भेजकर इस अङ्ककी प्रतियाँ हस्तगत कर लेनी चाहिये, जिससे उन्हें आगे चलकर निराश न होना पड़े।

(५) 'कागज, स्याही, आदिकी मँहगाईको ध्यानमें रखकर महाभारताङ्क प्रथम खण्डका मूल्य ५≈) रक्खा गया है। जो लोग पूरे वर्षके ग्राहक होंगे, उन्हें परिस्थिति ठीक रहनेपर—अर्थात् कागज आदि मिलते रहने, प्रेसका कार्य निर्विघ्नतापूर्वक चालू रहने तथा रेल-डाक आदिकी व्यवस्था ठीक रहनेपर—बाकी ग्यारह अङ्क भी उसी मूल्यमें मिल जायँगे, अर्थात् पूरे सालभरके अङ्क उन्हें ५≈) में ही मिल जायँगे। परिस्थिति बदल जानेपर जितने अङ्क उन्हें मिल जायँ, उनसे ही उन्हें पूरी कीमत वसूल हो गयी समझनी चाहिये। 'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकागण जैसे प्रतिवर्ष चेष्टा करके ग्राहक बनाते हैं, वैसे ही इस वर्ष भी विशेष उत्साहसे ग्राहक बनायें। प्रत्येक ग्राहक महोदय चेष्टा करें तो एक-दो नये ग्राहक अवश्य बना दे सकते हैं।

(६) अङ्कका कलेवर बड़ा होनेसे डाकखानेवाले प्रतिदिन लगभग १००० रजिस्ट्रियाँ ही लेते हैं; अतः सब लोगोंके पास अङ्क एक साथ नहीं पहुँचाये जा सकते। ग्राहकोंकी प्रायः शिकायत रहती है कि

हमें अङ्क देरीसे मिलते हैं। शिकायत ठीक है। परन्तु हम इसके लिये लाचार हैं। अपनी ओरसे बहुत जल्दी करनेपर भी सब अङ्कोंकी पूरी रवानगीमें लगभग डेढ़ महीना तो लग ही जायगा। ग्राहकगण हमारी इस विवशता-पर क्षमा करेंगे।

(७) जिन सज्जनोंके नाम वी० पी० जायगी, हो सकता है उनमेंसे कुछ सज्जन इधरसे वी० पी० जानेके समय ही उधरसे रुपये मनीआर्डरसे भेज दें। ऐसी हालतमें उन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे वी० पी० लौटायें नहीं, वहीं रोक रक्खें और हमें तुरंत कार्ड लिखकर सूचना दें। रुपये आ गये होंगे, तो हम उन्हें फ्री-डिलीवरी देनेके लिये वहाँके पोस्टमास्टरको लिख देंगे। यदि 'संक्षिप्त महाभारताङ्क' रजिस्ट्रीसे मिल गया हो और वी० पी० से भी अङ्क पहुँचे, तो भी कृपया वी० पी० लौटायें नहीं। चेष्टा करके दूसरा नया ग्राहक बनाकर वी० पी० छुड़ानेकी कृपा करें और नये ग्राहकका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। कई महानुभाव ऐसा ही करते हैं। हम हृदयसे उनके कृतज्ञ हैं।

(८) सजिल्द अङ्क भेजनेमें कई महीनोंकी देर होगी, ग्राहक महोदय क्षमा करें।

(९) जिनको ग्राहक न रहना हो वे सज्जन कृपा करके तुरंत तीन पैसेका कार्ड लिखकर डाल दें, जिसमें कल्याण-कार्यालयको वी० पी० भेजकर व्यर्थ करीब आठ आने डाक-खर्चका नुकसान न उठाना पड़े।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', गोरखपुर**

श्रीहरिः

लेखसहित संक्षिप्त महाभारतके भावानुवादकी विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१३–संक्षिप्त महाभारत

आदिपर्व

सभापर्व

वनपर्व

पृष्ठ-संख्या

विराटपर्व

पृष्ठ-संख्या

उद्योगपर्व

द्रोणपर्व समाप्त

संकलित

चित्र-सूची

पृष्ठ-संख्या

सभापर्व

पृष्ठ-संख्या

वनपर्व

पृष्ठ-संख्या

विराटपर्व

उद्योगपर्व

भीष्मपर्व

पृष्ठ-संख्या

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
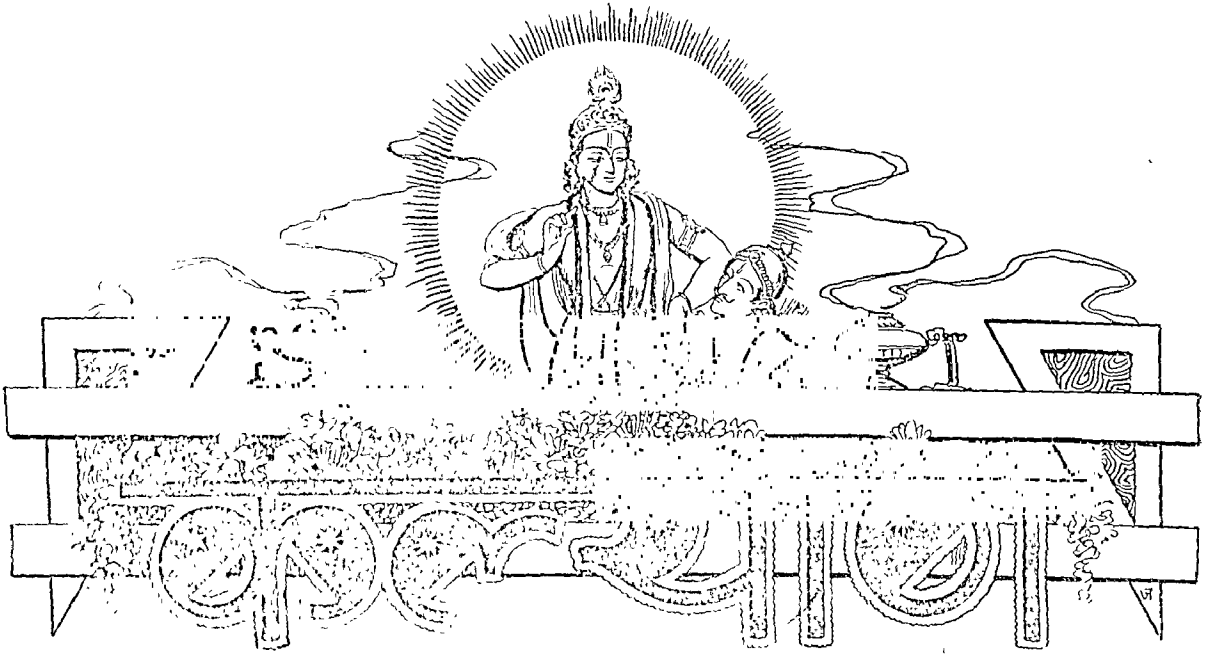
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष १७ | गोरखपुर, अगस्त १९४२, सौर श्रावण १९९९ | संख्या १
पूर्ण संख्या १९३

सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम् ।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं परं परेषां शरणं प्रपद्ये ॥

जिनके हजारों मस्तक हैं, जिनका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है, जिनकी कीर्ति अपार है, जो संसारके बीजरूप शुभाशुभ कर्मोंके फलदाता हैं तथा जो अजन्मा एवं अविनाशी हैं, उन परात्पर पुराणपुरुषकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

(महाभारत, उद्योगपर्व)

श्रीहरिः

—श्रीकृष्ण-महिमा—

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः। कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः। परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः॥
बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या। चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम्॥
आदित्यश्चन्द्रमाश्चैव नक्षत्राणि ग्रहाश्च ये। दिशश्च विदिशश्चैव सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम्॥
अग्निहोत्रमुखा वेदा गायत्री छन्दसां मुखम्। राजा मुखं मनुष्याणां नदीनां सागरो मुखम्॥
नक्षत्राणां मुखं चन्द्र आदित्यस्तेजसां मुखम्। पर्वतानां मुखं मेरुर्गरुडः पततां मुखम्॥
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव यावती जगतो गतिः। सदेवे त्रिषु लोकेषु भगवान् केशवो मुखम्॥

कृष्ण ही समस्त लोकोंके उपादान कारण हैं तथा अविनाशी हैं! यह सम्पूर्ण विश्व तथा चराचर प्राणी उन्हींके लिये (उन्हींके खेलकी सामग्री) हैं। वे ही अव्यक्त प्रकृति हैं और वे ही सनातन कर्त्ता हैं तथा समस्त भूतोंसे परे एवं अच्युत हैं। इसीलिये वे सबके पूज्य—पूज्यतम हैं। अहङ्कार, ग्यारहों इन्द्रिय, महत्तत्त्व, वायु, तेज, जल, आकाश, पृथ्वी तथा अण्डज, स्वेदज, जरायुज एवं उद्भिज—चारों प्रकारके प्राणी, सबकी स्थिति श्रीकृष्णमें ही है। सबके आधार वे ही हैं। सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र, दिशा-विदिशा—सब उन्हींके आधार स्थित हैं। अग्निहोत्र वेदोंका मुख (वेदविहित मुख्य कर्म) है, गायत्री छन्दोंमें शीर्षस्थानीय है, राजा मनुष्योंका मुख (मुखिया) है, समुद्र नदियोंका मुख (गिरनेका स्थान) है, नक्षत्रोंमें मुख्य स्थान चन्द्रमाका है, ज्योतिष्मान् पदार्थोंमें प्रधान सूर्य हैं, पर्वतोंमें अग्रगण्य सुमेरु है और पक्षियोंके सरदार गरुड हैं। इसी प्रकार संसारकी ऊर्ध्व, मध्य एवं निम्न—जितने प्रकारकी गतियाँ हैं, उन सबके तथा तीनों लोकोंके मुखस्थानीय—केन्द्रस्वरूप श्रीकृष्ण हैं।

(महाभारत, सभापर्व)

श्रीमन्महाभारततात्पर्य *

(लेखक—श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम साहित्यदर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न पं० श्रीदामोदरजी गोस्वामी)

शान्ति वेदाः समे यत्र रमणीयं च सर्वतः ।
तरणिः भ्रान्ततिमिरे ततो भारतमीर्यते ॥

यह कहना तो पुनरुक्ति ही होगी कि 'कल्याण' ने जगत्का कितना कल्याण किया है और विशेषाङ्कोंद्वारा तो जिज्ञासुओंका ज्ञानवृद्धिसे सीमातीत उपकार किया गया है।

अबकी महाभारतके सम्बन्धमें विशेषाङ्क प्रकाशित होना निर्वारित हुआ है।

भारतके सम्बन्धमें भारतकी ही एक उक्ति है—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।' अर्थात् जो भारतमें है, वही नाना रूपोंमें सर्वत्र है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। इस उक्तिमें मिथ्यांश अणुमात्र भी नहीं है; यह अक्षरशः सत्य है। क्योंकि परमार्थ अथवा व्यवहारमें जितने सदुपदेश हैं, उनका मूल महाभारतमें अवश्य है। इसीसे सभी विषयोंका ज्ञान इससे मिलता है, और इसीसे महाभारतको पञ्चम वेद शास्त्रोंमें कहा है। विशेषता यह है कि अन्य चार वेदोंसे शूद्रादिका साक्षात् उपकार नहीं होता, किन्तु महाभारतसे द्विजेतर भी लाभ उठा सकते हैं; इसीलिये तो भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने अनादिसिद्ध उपदेशनिधि 'भारत' को प्रकाशित किया है।

सब प्रकारके उपदेशोंका आकर होनेसे इसके सम्बन्धमें निज-निज रुचिके अनुसार लेखकगण लेख लिखेंगे।

मुझको तो अन्तर्यामीकी प्रेरणा भारत-तात्पर्यके विवेचनके लिये हुई है, सुतरां इस आदेशको शिरोधार्य कर प्रवृत्त होता हूँ।

शब्द-प्रयोगका मुख्य फल यह है कि अपने वाक्यसे अपने अभीष्ट अर्थको वक्ता श्रोताको भलीभाँति समझा दे; यदि वक्ताके अभीष्ट अर्थको श्रोता न समझेगा, तो श्रोता भ्रममें रहेगा एवं वक्ताका शब्द निष्फल होगा। इसलिये वक्ताके वाक्यका अक्षरार्थ मात्र समझनेसे काम नहीं चलेगा; किन्तु एक घोड़ा, दूसरा सेंधा नमक। अब यहाँ श्रोताका कर्त्तव्य होता है कि वक्ताकी इच्छा किस वस्तुके मँगानेकी है, इसका निश्चय करे। इसे ठीक-ठीक जाननेके लिये शास्त्रोंमें संयोगादि पंद्रह साधन बतलाये हैं, इनमें अन्यतम 'प्रकरण' भी है। सुतरां श्रोताको उचित है कि प्रकरणसे वक्ताकी इच्छाका अनुमान करे। अर्थात् भोजनका अवसर हो तो 'सैन्धव' का अर्थ 'नमक' समझे और यात्राका प्रसङ्ग हो तो 'घोड़ा' समझे। तभी स्वामीकी आज्ञाका निर्वाह होगा, अन्यथा नहीं। परन्तु यह रीति किसी वाक्यविशेषका तात्पर्य समझनेमें ही तो काम देगी; जहाँ अनेक वाक्यसमूहरूप ग्रन्थ है अथवा ग्रन्थोंका समूह शास्त्र है, वहाँ तात्पर्य निकालनेके लिये शास्त्रोंमें छः बातें कही गयी हैं। इन छहोंके मिलानसे ग्रन्थ अथवा शास्त्रका तात्पर्य निकलता है। वे छः इस प्रकार हैं—

१. **उपक्रमोपसंहार**—अर्थात् आरम्भ और समाप्ति। ये दोनों मिलकर तात्पर्य समझनेमें सहायता देते हैं।

२. **अभ्यास**—अर्थात् प्रधान लक्ष्यको बार-बार कहना।

३. **अपूर्वता**—अर्थात् नवीनता।

४. **फल**—अर्थात् मुख्य प्रयोजन।

५. **अर्थवाद**—अर्थात् प्रवृत्त करनेके लिये स्तुति अथवा निवृत्त करनेके लिये निन्दा।

६. **उपपत्ति**—अर्थात् कही हुई बातकी सिद्धिमें प्रमाण।

ये छहों जिस एक विषयमें साधक हों, वही वहाँका तात्पर्य समझा जायगा।

पूर्वोक्त पंद्रह और ये छः—इन सबको उदाहरणोंसे समझाया जा सकता है; किन्तु अति विस्तारसे सुकुमारमति वाचकोंका धैर्य छूट जानेकी सम्भावना है, इससे उस मार्गको छोड़ना ही समयोचित जान पड़ा।

अब एक दूसरी नीतिको भी जानना अत्यावश्यक है; वह यह कि किसी वाक्यमें अथवा महावाक्यरूप ग्रन्थमें तथा

अर्थलोभी असुरभावापन्न राजाओंका आश्रय पाकर ही जगत्में अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी ग्लानि हुआ करती है।

श्रीकृष्णके प्रेमधर्मकी वाणी, उनका ऐक्य और साम्यका आदर्श, उनकी अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाकी कल्पना, उनका आध्यात्मिक नींवपर राष्ट्र और समाजके प्रासाद-निर्माणका सङ्कल्प, इन आसुरीभावापन्न परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र-नियन्ताओंको अच्छा नहीं लगा। वे इसे आदरके साथ अपनानेको राजी नहीं हुए। श्रीकृष्णका आदर्श और समाजके समस्त स्तरोंमें उसका प्रचार उनकी स्वार्थदृष्टिमें नितान्त ही विप्लवात्मक था। उनकी धारणा हो गयी कि श्रीकृष्ण हमें हमारी शक्ति और कूटबुद्धिके द्वारा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्य, प्रभुत्व, मान-सम्मान और निग्रहानुग्रहके सामर्थ्यसे वञ्चित करके एक विराट् आदर्शके बहाने सारे देशमें अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते हैं। इसलिये वे पहलेसे ही श्रीकृष्णके प्रभावको घटाकर, श्रीकृष्णके आदर्शको देशसे निकाल फेंकनेके लिये कमर कसकर तैयार हो गये। उनकी इन कुचेष्टाओंसे श्रीकृष्णका प्रभाव घटा नहीं, वरं अधिकाधिक बढ़ता गया; और ज्यों-ज्यों वह बढ़ता गया और दल-के-दल लोग उनके अनुगत होकर उनके आदर्शको अपनाने लगे, त्यों-ही-त्यों असुरस्वभाव राजाओंमें भी उनकी शत्रु-संख्या बढ़ने लगी। कुछ वेदवादरत परन्तु वेदके मर्मसे अनभिज्ञ स्वार्थलोलुप ब्राह्मण भी असुरस्वभाव राजाओंके पक्षमें होकर श्रीकृष्णके सार्वभौम धर्मके आदर्शको, सुमहान् ऐक्यके आदर्शको, सर्वजीवोंके प्रति प्रेमके आदर्शको और भगवत्-सेवामय जीवनके आदर्शको वेदविरुद्ध और सनातनधर्मसे विपरीत बतलाने लगे। देशमें जो लोग सताये हुए, गिराये हुए, पददलित किये हुए और मान-मर्यादाको खोये हुए थे, वे श्रीकृष्णको परित्राण करनेवाला कहकर, पतितपावन मानकर उनकी पूजा करने लगे और जो सतानेवाले थे, ऊँचे पदोंपर स्थित—प्रभाव-प्रतिपत्तिवाले लोग थे, उनमेंसे बहुत-से श्रीकृष्णके द्वेषी होकर उनसे डरने और उनके विरुद्ध आचरण करने लगे।

मानवसमाजमें धर्म, प्रेम, शान्ति और एकताके झंडेको नित्य नूतन और ऊँचा बनाये रखनेके लिये ही क्षात्रशक्तिकी आवश्यकता है। क्षत्रिय राजाओंकी प्रधानता और संग्राम-शक्तिकी रक्षाके लिये ही धर्मके आदर्शको छोड़ देना, ऐक्य-स्थापनके सङ्कल्पको त्याग देना एवं प्रेम और साम्यके प्रचारसे अलग हो जाना तो महान् कापुरुषता है—मनुष्यत्वका अपमान है। वासुदेव श्रीकृष्ण प्रेमघनमूर्ति होनेपर भी इस कापुरुषता-को वरण करना पसंद नहीं करते थे। विरोधी प्रबल शक्तियोंके भयसे या उनके साथ सङ्घर्षकी आशङ्कासे वे आदर्शका त्याग करनेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने जब यह अनुभव किया कि उनके आदर्श-प्रतिष्ठाके पथमें बहुत-से काँटे देश और समाजके साधनक्षेत्रमें अपनी दृढ जड़ जमाये फैले हैं, जिनको जड़से उखाड़े बिना लक्ष्यकी सिद्धि नहीं होगी, धर्मराज्यकी स्थापना नहीं होगी, प्रेम और ऐक्यका सर्वत्र प्रचार नहीं किया जा सकेगा, तब उन्होंने सचमुच ही अपनी विप्लव-मूर्ति प्रकट कर दी और अवस्थाके अनुसार क्षात्रभाव तथा दण्डनीतिका अवलम्बन करके वे दुर्वृत्तोंके दमनमें प्रवृत्त हो गये।

मूर्तिमान् प्रेमको आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये योद्धाका स्वाँग धारण करना पड़ा। अहिंसा और सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये उन्हें हिंसा और असत्यके विरुद्ध प्रबल पराक्रमके साथ खड़ा होना पड़ा। न्याय और धर्मकी मर्यादा स्थापन करनेके लिये उनको अन्याय और अधर्मके नाशके हेतु तलवार चलानी पड़ी। दुर्बलों और निरीहोंको बलवानोंके पंजेसे छुड़ानेके लिये उन्हें प्रयोजनानुरूप क्षात्रबलका प्रयोग करना पड़ा। जाति और समाजमें जब अप्रेम और अधर्मका, हिंसा और कलहका, विभेद और विषमताका निर्बाध आधिपत्य फैल जाता है, तब प्रेम और धर्मके अवतारको, अहिंसा और शान्तिके मूर्त्त विग्रहको, अभेद और साम्यके स्वरूपको भी कहाँतक कठोरताका अवलम्बन करना पड़ता है—प्रेमघनमूर्त्ति सच्चिदानन्दविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका क्षात्रभावान्वित कर्ममय जीवन इसके लिये एक परम उत्कृष्ट दृष्टान्त है। महाभारत, हरिवंश और पुराणादिमें श्रीकृष्णके जीवनसे इस सम्बन्धकी अनेकों घटनाओंका वर्णन किया गया है। श्रीकृष्णकी सब जीवोंके प्रति प्रीति, करुणा, सहानुभूति और समदृष्टि थी। उनका महान् ऐक्यका आदर्श था और अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाका अटूट संकल्प था। इसीलिये उनको बहुत-से प्रबल पराक्रान्त असुर-दैत्य-दानवोंके साथ युद्ध करना पड़ा, अनेकों स्वार्थोद्धत मदोन्मत्त सम्राट उनके शत्रु बने और अनेकों धनी-मानी-पण्डितोंके लिये उन्हें भयका स्थान बनना पड़ा। भारतीय सभ्यताको महामानवताकी सुदृढ़ भूमिपर सुप्रतिष्ठित करनेके मार्गमें वे किसी भी विप्लवका सामना करनेके लिये बिना सङ्कोचके तैयार थे। उन्होंने स्वार्थसे अंधी और घमंडसे चूर सब प्रकारकी विद्रोही शक्तियोंको ध्वंस करनेका निश्चय कर लिया था; आवश्यकता होनेपर सब तरहके मित्र-

द्रोह, जातिद्रोह, लोकक्षय और करुणक्रन्दनके अंदरसे होकर भी जाति और समाजको आदर्शकी ओर ले जानेमें उनका हृदय नहीं काँपता था; उनके प्रेमार्द्र चित्तमें शोक, ताप, भय, चिन्ता और खेद कभी उत्पन्न ही नहीं होते थे। महामानवताके नित्य सत्य विराट् आदर्शकी सुस्थापनाके लिये अपने प्रिय-से-प्रिय असंख्य मनुष्योंके अनित्य क्षणभङ्गुर शरीरोंकी बलि देनेमें भी उनका विशाल हृदय जरा भी संकुचित नहीं होता था। आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये आवश्यक होनेपर वे 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' रूपमें अपनेको प्रकट करते थे।

बहुत-से भागोंमें बँटे हुए भारतको एक महाभारतके रूपमें परिणत करनेके लिये, आर्य और अनार्य, ब्राह्मण और म्लेच्छ, प्रबल और दुर्बल, ज्ञानी और अज्ञानी—सभीके हृदयोंमें एक अद्वितीय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वगुणसम्पन्न निखिलरसामृतसिन्धु अनन्तप्रेमाधार सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी भगवान्‌को प्रतिष्ठित करनेके लिये, सभी लोगोंके साधनजीवन और व्यावहारिक कर्मजीवनको एक विश्वजनीन विश्वमानवताके आदर्शके द्वारा अनुप्राणित करनेके लिये, एक भक्तिमूलक भागवत-योगधर्मके द्वारा सभी श्रेणियोंके, सभी सम्प्रदायोंके और सभी स्तरोंके नर-नारियोंके सब प्रकारके धर्ममत और साधनप्रणालियोंका समन्वय करनेके लिये महामानव श्रीकृष्णने अपनी अनन्यसाधारण संगठनी-शक्ति और अनन्यसाधारण क्षात्रवीर्यका समभावसे प्रयोग किया। उनके संगठन-कार्यमें पाराशर-कृष्ण व्यासदेवने जैसे अपनी असामान्य ज्ञानशक्तिके द्वारा सहायता की, वैसे ही उनके मार्गके काँटोंको उखाड़ फेंकनेके कार्यमें उनके एकान्त अनुगत महावीर पाण्डवोंने—विशेषतः पाण्डव-कृष्ण अर्जुनने—उनका बड़ा हाथ बँटाया। भारतके इतिहासमें ययातिपुत्र त्यागवीर पूरु और उनके वंशधरोंका एक प्रधान स्थान था। पूरुकी पितृभक्ति और आत्मबलिदानपर इस वंशकी मर्यादा प्रतिष्ठित थी। भारतमें आर्यसभ्यताके विस्तारकार्यमें अपने तेज-वीर्य और धर्मज्ञानका परिचय देकर उन्होंने क्षात्रसमाजके केन्द्र-स्थानपर अधिकार प्राप्त कर लिया था। असाधारण महापुरुषोंने इस वंशमें जन्म ले-लेकर आर्य-संस्कृतिकी उन्नति और धर्म-महिमा स्थापन करके भारतके प्राचीन इतिहासको

बना दिया था। व्यासके ज्ञान और अर्जुनकी शूरताने श्रीकृष्णके मस्तिष्क और भुजाका कार्य किया था।

प्रथितकीर्त्ति पूरुवंशकी एक शाखाके नेता थे प्रबल पराक्रमी आत्मगर्वित और दुरभिसन्धिसे प्रेरित दुर्योधन। इन दुर्योधनको केन्द्र बनाकर जब श्रीकृष्णके आदर्शस्थापनके विरोधी पक्षने अपना संगठन आरम्भ किया, तब इसी वंशकी दूसरी शाखाके धर्मवीर पाण्डवोंकी प्रभाववृद्धि और अधिकार-प्रतिष्ठा श्रीकृष्णके आदर्श-प्रचारके लिये अत्यन्त आवश्यक हो गयी। धर्मके लिये, मानवोचित जीवनादर्शके लिये, जाति और समाजके ऐक्य, शान्ति और सर्वाङ्गीण कल्याणके लिये सब प्रकारका क्लेश-सहन और त्याग करनेको पाण्डव सदा ही प्रस्तुत थे। उन्होंने श्रीकृष्णको अपने जीवनके सभी विभागोंमें नेतारूपसे वरण कर लिया था और वे श्रीकृष्णके जीवनव्रतको सफल बनानेके लिये अपने जीवनतकका उत्सर्ग करनेको उत्सुक थे। महाभारतके संगठनके लिये सूक्ष्मदर्शी श्रीकृष्णने केन्द्रीय राष्ट्रशक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा परिचालित न्यायदण्डधारी अमितपराक्रमी पाण्डवोंके हाथोंमें सौंपना आवश्यक समझा था।

न्याय और धर्मकी दृष्टिसे पाण्डव ही कौरव-राज्यके उत्तराधिकारी थे और अपने चरित्रमाधुर्य तथा क्षात्रोचित गुणगरिमासे भी उन्होंने सबके हृदयोंपर अधिकार कर लिया था। इतनेपर भी लड़कपनसे ही उनका दण्ड, यातना और क्लेशकी गोदमें ही लालन-पालन हुआ था। दुर्योधन और उनके कूटबुद्धि बन्धु-बान्धवोंके षड्यन्त्रके कारण वे शैशवसे ही नाना प्रकारके अत्याचारोंसे पीडित और दुःख-कष्टसे जर्जरित थे। जीवनके प्रत्येक विभागमें धर्म, प्रेम, क्षमा और सहिष्णुताके आदर्शको अक्षुण्ण बनाये रखना उनका व्रत था; इसीसे उन्होंने प्रतीकारकी शक्ति रखते हुए भी सब तरहके अत्याचार-अविचार और निर्यातनको प्रसन्न चित्तसे सहन किया था। इस प्रकारकी तपस्याके द्वारा ही उन्होंने लोकसमाजमें श्रीकृष्णके महान् आदर्शकी पताका फहरानेकी योग्यता प्राप्त की थी। स्वयं भाँति-भाँतिके निग्रह, निर्यातन और लाञ्छना सहकर जाति और समाजके सभी निगृहीत, पीड़ित, लाञ्छित और पददलित जनसाधारणके प्रतिनिधियों उन्होंने ...

पक्षपाती थे और श्रीकृष्णके महान् आदर्शके प्रेमी थे, वे प्रेम और सहानुभूतिके साथ अपनी सारी शक्तिको लेकर उनके साथ आ मिले।

भारतकी राष्ट्रशक्तियाँ कार्यतः दो भागोंमें विभक्त हो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी बनकर सुसज्जित हो गयीं। एक भाग था न्यायके पक्षमें और दूसरा था बुनियादी स्वार्थका पक्षपाती; एक भाग सताये हुए नर-नारियोंका पक्ष करता था, तो दूसरा सतानेवालोंके पक्षमें था; एक ऐक्य और मिलनका पक्षपाती था, तो दूसरा भेद और विरोधका; और एक भाग श्रीकृष्णके महाराष्ट्र, महासमाज, महाधर्म और महाभारत-संगठनका पक्ष करता था तो दूसरा उस नवीन आदर्शके पथमें बाधा खड़ी करनेके पक्षमें था। श्रीकृष्णने अपने वंशजोंमें वीर्य-शौर्य जगाकर और उन्हें वीरोचित शिक्षा-दीक्षा देकर दुर्धर्ष क्षात्रशक्तिका सृजन किया। देशके लब्धप्रतिष्ठ क्षत्रिय राजालोग जिनको जरा भी नहीं मानते थे, जिनको किसी प्रकारका उच्चाधिकार और उन्नत शिक्षा-दीक्षा नहीं देते थे, उन्हीं सब अनादृत—अवज्ञात लोगों-को अपने झंडेके नीचे इकट्ठा करके, उन्हें समुन्नत धर्मज्ञान और वीरोचित शिक्षा-दीक्षा प्रदान कर श्रीकृष्णने एक विराट् नारायणी सेनाका संगठन किया। इन सब शक्तियोंका उचित-रूपसे सञ्चालन करके महानायक श्रीकृष्ण अपने महाभारत-संगठनकी विरोधी शक्तियोंको प्रयोजनानुसार कठोरताके साथ कुचल डालनेको तैयार हो गये। अर्जुन और भीमकी सामरिक शक्तिसे सहायता लेकर भी उन्होंने कई काँटे उखाड़े। यह शत्रुदमन-कार्य—परिकल्पित धर्मराज्यकी स्थापनाके विघ्नों-के नाशका कार्य—वे ऐसे कौशलके साथ करते कि जिसमें निरीह प्रजाकी स्वच्छ जीवनधारामें जरा भी क्षोभ और अशान्तिका उदय नहीं होता।

आसुरी शक्तिके उत्पीड़नसे मानवात्माको छुटकारा दिलानेके लिये, आसुरी मनोवृत्तिके प्रभावसे मनुष्यकी चिन्ता-धारा और कर्मधाराको मुक्त करके उसे धर्मप्रेम और मोक्षके मार्गपर बहानेके लिये, भारतीय सभ्यताको आसुरी आदर्शके आधिपत्यसे छुड़ाकर विश्वमानवताका आदर्श प्रतिष्ठित करनेके लिये, भारतके प्राणपुरुष प्रेमघनविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका आदर्शप्रचार और कण्टकोद्धार तथा संगठनलीला और ध्वंसलीला—दोनों एक ही साथ चलने लगे। साधुओंके परित्राण और प्रभाववृद्धि, तथा दुष्टोंके पराभव और प्रभाव-नाशके लिये वे अपनी प्रेमशक्ति और संग्रामशक्ति दोनोंका ही समान व्यवहार करने लगे। ऐक्य और प्रेमकी वाणी, साम्य और सार्वजनीन स्वाधीनताकी वाणी, सत्य और अहिंसाकी वाणी, उदारता और विश्वमानवताकी वाणी असुरभावसे प्रभावित मानवसमाजमें सदा ही विप्लवकी वाणीके रूपमें प्रकट हुआ करती है। बुनियादी स्वार्थ, सुप्रतिष्ठित अन्यायमूलक प्रभुत्व, सङ्घबद्ध असत्य और हिंसा एवं मानप्राप्त दम्भ और परस्वापहरणके विरुद्ध विद्रोहकी घोषणा करके ही यथार्थ धर्मकी वाणी—विश्वमानवके महामिलनकी वाणी मानवजगत्में प्रकट हुआ करती है। अतएव श्रीकृष्ण भी महाविप्लवकी वाणी लेकर ही संसारके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीकृष्ण-की वाणीका जितना ही प्रचार होने लगा, उनका सङ्गठनकार्य जितना ही अग्रसर होने लगा, सङ्घर्षके कारण भी उतने ही बढ़ने लगे। आसुरी शक्तियाँ उनको और उनके आदर्शको मटियामेट करनेके लिये सङ्घबद्ध होने लगीं, विप्लवका दावानल अधिक-से-अधिक जल उठा। देहराज्यमें विप्लव हुए बिना प्राणोंकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं होती; असुर-राज्यमें विप्लवके बिना दैवादर्शकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं हो सकती; और काम, क्रोध, लोभके राज्यमें विप्लवके बिना भगवान् प्रकट नहीं होते। भारतके और विश्वमानवके प्राणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण इस देशव्यापी विप्लवके लिये प्रस्तुत थे। धर्मकी ग्लानि और अधर्मका प्रादुर्भाव कितना अधिक हो चुका था, इस विप्लव-की व्यापकता और बीभत्सता ही उसका निदर्शन है।

साम, दान, भेद और दण्ड—सभी नीतियोंको अपनाकर व्यासार्जुनकी सहायतासे श्रीकृष्णने अनेकों विरोधी शक्तियोंका दमन किया था, बहुत-से शत्रुओंको मित्र बना लिया था, अनेकों प्रतिकूलाचारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और अनार्य वीरोंको अपने आदर्शका प्रेमी बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। अनेकों परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राजशक्तियोंको विवाहसूत्रमें बाँधकर सामाजिक मैत्रीकी स्थापना की थी। उन्होंने स्वयं भी आर्य, अनार्य, मित्र और शत्रु अनेक वंशोंमें विवाह करके संग्रमें प्रेम-की प्रतिष्ठा की थी। परन्तु इससे उनके संग्रामकी आवश्यकता दूर नहीं हुई। वे ध्वंसलीलाको अपनी कर्मपद्धतिसे अलग नहीं कर पाये।

अन्तमें देशव्यापी विप्लव घनीभूत होकर महाभारतीय महासमरके रूपमें प्रकट हुआ। धार्तराष्ट्र और पाण्डवोंके साम्राज्याधिकारका विवाद तो एक निमित्तमात्र था। श्रीकृष्णके महान् आदर्शकी विरोधी शक्तियाँ, बुनियादी स्वार्थकी पक्ष-पातिनी राष्ट्रशक्तियाँ दुर्योधनको केन्द्र बनाकर आत्मरक्षाके

लिये इकट्ठी हो गयीं। इधर श्रीकृष्णके आदर्शकी अनुरागिणी शक्तियाँ श्रीकृष्णके द्वारा सञ्चालित पाण्डवोंके पक्षमें सम्मिलित हो गयीं। इस महासमरको अनिवार्य जानकर भी श्रीकृष्णने इसके निवारणके लिये लौकिक साम-उपायसे यथासाध्य चेष्टा की। श्रीकृष्णकी सलाहसे युद्धको बचानेके लिये धर्मराज युधिष्ठिरने दुर्योधनसे पाँचों भाइयोंके लिये केवल पाँच गाँव लेकर ही सन्तुष्ट होना स्वीकार किया। स्वयं श्रीकृष्ण दूत बनकर शान्तिस्थापनका प्रयत्न करने पधारे। बाल्यावस्थासे लेकर अबतक दुर्योधन और उनके पक्षवालोंने पाण्डवोंपर जो अत्याचार किये थे, उन सभीको क्षमा करनेके लिये तैयार होकर श्रीकृष्णाश्रित पाण्डवोंने महामानवताका आदर्श उपस्थित किया। भीमको विष देकर मार डालनेकी चेष्टा, कुन्तीसमेत पाँचों पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला डालनेके षड्यन्त्र, कपट-जूएमें धन-मान-राज्यसुखका अपहरण—यहाँतक कि राजदरबारमें असंख्य राजाओंके सामने राज-कुलवधू एकवस्त्रा वीराङ्गना द्रौपदीके केश खींचकर उसे नग्न करनेकी पापपूर्ण चेष्टा—इन सभी अत्याचारोंको देशमें एकता, शान्ति और प्रेमकी प्रतिष्ठाके लिये श्रीकृष्णानुगामी महावीर पाण्डव भुला देनेको राजी हो गये!

परन्तु सन्धिस्थापनके सभी प्रयास व्यर्थ हुए। देशकी नैतिक, राष्ट्रिक और सामाजिक परिस्थिति जब महासमरके उपयुक्त हो उठती है, तब उसे कोई भी निवारण नहीं कर सकता। जबतक यह स्वार्थपरायण दाम्भिक आसुरभावापन्न क्षात्रशक्ति ध्वंस नहीं हो जाती तबतक एकता, शान्ति और प्रेमका आदर्श, भगवद्भक्तिपूत विश्वमानवताका आदर्श मानवसमाजमें सुप्रतिष्ठित नहीं हो सकता—मानवात्माकी मुक्ति नहीं हो सकती। कालप्रभाव और भगवान्‌के विधानसे जब आसुरी प्रभावसे मानवात्माकी मुक्तिका समय आता है, तब आसुरी शक्तिका नाश करनेके लिये महासमर अनिवार्यरूपसे सम्पन्न होता है। लीलामय श्रीकृष्णने इसी नियमको मानकर मानो युद्धके लिये सम्मति प्रदान की थी। इस महासमरमें परस्पर प्रतिद्वन्द्वी किसी पक्षविशेषका जय-पराजय उनका लक्ष्य नहीं था। एक असुरसङ्घको पराजित और निगृहीत करके दूसरा एक असुरसङ्घ मर्यादा और प्रभुत्वके आसनपर आरूढ़ हो—यह उनकी इच्छा नहीं थी। वे चाहते हैं मानवात्माकी नैतिक और आध्यात्मिक मुक्ति; वे चाहते हैं मानव-समाजमें अधर्मका पराभव और धर्मका अभ्युदय; वे चाहते हैं मानवजातिमें सप्रेम ऐक्यप्रतिष्ठा—साम्य, मैत्री, पवित्रता और आनन्दकी प्रतिष्ठा; और वे चाहते हैं विश्व-जगत्‌में सत्य-शिव-सुन्दरकी सुस्थापना। मानव-प्राणकी यही चाह है। इस आदर्शकी विजय ही उनको अभिप्रेत है। इस आदर्शकी विजय ही मानव-प्राणोंमें स्वाराज्यकी प्रतिष्ठा—भारतप्राणोंमें आत्मप्रतिष्ठा होगी। इस सुमहान् सुमङ्गल आदर्शके विजय-ध्वजको गहरा गाड़नेके लिये ही श्रीकृष्ण विप्लव-तरङ्गमें कूदे थे और भारतकी क्षात्रशक्तिका ध्वंस करनेवाले महासमरका समर्थन करके उन्होंने उसमें योग-दान किया था।

दो दलोंमें बँटी हुई भारतीय राष्ट्रशक्तियाँ एक दूसरेका ध्वंस करनेके लिये नव प्रकारके मारणास्त्रोंसे सुसज्जित होकर तैयार हो गयीं। देशकी शान्तिप्रिय निरीह जनता महासमरकी विभीषिका और अशान्तिकी ज्वालासे बची रहे और आसुरभावापन्न राजालोग परस्पर अपना ध्वंस कर सकें, इसके लिये युद्धको एक स्थानविशेषमें मर्यादित करके सीमाबद्ध कर दिया गया। कुरुक्षेत्रकी विशाल भूमिमें वे एक दूसरेका मुकाबला करनेके लिये आ डटे। यथासम्भव कम-से-कम समयमें ही महासमरको समाप्त कर देनेकी श्रीकृष्णने बड़े कौशलसे व्यवस्था की। उन्होंने स्वयं इस महासमरके महानायक होनेपर भी किसी पक्षमें अस्त्र धारण न करके अपनी निरपेक्षता प्रकट की; परन्तु अर्जुनके सारथि बनकर उनके पक्षमें अपने नैतिक समर्थनकी घोषणा कर दी। दूसरी ओर, अर्जुनके विपक्षमें दुर्योधनको अपनी नारायणी सेना प्रदान करके वस्तुतः अर्जुनके अस्त्रोंसे अपनी सामरिक शक्तिका नाश करनेकी भी व्यवस्था कर दी।

अठारह दिनोंके युद्धमें भारतकी आत्मविस्मृत आसुरभावापन्न क्षात्रशक्ति प्रायः निर्मूल हो गयी। बचे श्रीकृष्णके विशेष अनुग्रहपात्र, उनकी पताकाका वहन करनेवाले पाँच पाण्डव। और बचे—स्त्री, बालक तथा वृद्ध, जो युद्धमें सम्मिलित ही नहीं हुए थे। प्रायः निःक्षत्रिय भारतवर्षमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको राजचक्रवर्ती-पदपर प्रतिष्ठित किया। क्षात्रशक्तिके या आसुरी शक्तिके श्मशानपर श्रीकृष्णके आदर्शकी प्रतिष्ठा हुई। अखण्ड महाभारतकी नींव पड़ी और नवयुगकी सूचना हुई। व्यासके शिष्यगण महाभारतके नैतिक और आध्यात्मिक सङ्गठनमें लगे रहे। महाभारतके महानायककी यह अनोखी लीला है।

महाभारतके मुख्य प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण

(लेखक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

प्रत्येक ग्रन्थका कोई-न-कोई प्रधान उद्देश्य रहता है, उसमें एक विशेष सन्देश निहित होता है। लेखकका सारा प्रयत्न उसी उद्देश्यकी ओर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करनेके लिये होता है। अन्य जितनी बातें कही जाती हैं, वे सब उसीकी पुष्टिके लिये होती हैं। साक्षात् या परम्परा-सम्बन्धसे सबका तात्पर्य उसीमें होता है। साधारण लेखक तो लोकरञ्जनके लिये भी लेखनी चला देते हैं; परन्तु लोककल्याणपरायण भगवत्प्राप्त ऋषि-महर्षियोंका कोई भी अनुष्ठान ऐसा नहीं होता, जिसमें विश्वके परम मङ्गलकी भावना न हो। महर्षि वेदव्यासके महाभारतका मुख्य प्रतिपाद्य क्या है—यही इस लेखका विचारणीय विषय है।

किसी भी ग्रन्थका तात्पर्य-निर्णय करनेके लिये विद्वानोंने छः साधन बताये हैं—उपक्रम-उपसंहारकी एकता, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति*। उपक्रमपर विचार करते समय सबसे पहले इस ग्रन्थके मंगलाचरण—'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥' पर दृष्टि जाती है। यह श्लोक केवल प्रारम्भिक मङ्गलाचरण ही नहीं, इस ग्रन्थका बीज-मन्त्र-सा देखनेमें आता है। प्रत्येक पर्वके आरम्भमें इसका पुनरावर्तन किया गया है। तनिक ध्यान देनेपर अनायास ही समझमें आ जाता है कि इस मन्त्रमें ही महाभारतका सारा रहस्य निहित है; इसीको हृदयङ्गम करानेके लिये इस विशाल ग्रन्थकी अवतारणा हुई है। महाभारतके प्रधान नायक हैं—अर्जुन और श्रीकृष्ण, जो नर-नारायणके अवतार हैं। इन्हींकी विजयगाथासे पूर्ण होनेके कारण यह ग्रन्थ 'जय' कहलाता है। नर-नारायण तो विश्ववन्द्य हैं ही; जिस वाणीमें इनकी विजयकथा अङ्कित हो, वह क्या कम वन्दनीय है? वही तो देवी सरस्वती है। इन सबको प्रणाम करके ही जयका स्वाध्याय करना चाहिये। यहाँ 'नर' जीवमात्रका प्रतीक है और 'नारायण' साक्षात् परमात्मा हैं; इनके तत्त्वका बोध करानेवाली ब्रह्मविद्या ही सरस्वती है। सरस्वती ब्रह्मशक्ति है—यह बात प्रसिद्ध है। 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती।' इस कोषके अनुसार सरस्वतीका एक नाम 'ब्राह्मी' भी है; इससे भी उसका ब्रह्मविद्या होना सूचित होता [है]। 'नर एव नारः'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'नर' शब्दसे स्वा[र्थमें] 'अण्' प्रत्यय करनेपर 'नार' बनता है। नार अर्थात् जीवो[ंके] अयन यानी आश्रयको नारायण कहते हैं। परमात्मा सबके परम आश्रय हैं, उनकी शरणमें जानेसे ही जीव[का] कल्याण होता है। अर्जुनकी भाँति प्रत्येक मनुष्य जब भगवा[न्] पर पूर्ण निर्भर हो जाय, अपने रथकी—शरीर एवं जीवन[की] बागडोर भगवान्‌के हाथमें दे दे, उन्हें ही अपना नियन्[ता] बनाकर स्वयं नियन्त्रणमें रहे, भगवदाज्ञाका यन्त्रकी भाँ[ति] पालन करता रहे, तभी उसकी इहलोकमें विजय होती [है] और अन्तमें वह परमात्मपदको प्राप्त करता है।

नारायण सदासे ही नरके सखा हैं। 'द्वा सुपर्णा सयुज सखाया' यह श्रुति इसी सनातन सख्य-सम्बन्धकी ओर संके[त] करती है। जो नर नारायणको अपना सखा मानता है, उनकी शरणमें रहता है, वही नरोत्तम है; जो उनसे विमुख है, वह नरोत्तम नहीं, नर भी नहीं, नराधम है—यही भाव उक्त मङ्गलश्लोकके द्वारा व्यञ्जित किया गया है। भीष्मपर्वमें स्वयं भगवान्‌ने ऐसे लोगोंको 'नराधम' कहा है—'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।' विद्वद्वर श्रीसदानन्दजीने इस श्लोकके 'नर', 'नारायण' और 'नरोत्तम' पदोंसे गीतोक्त क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम-तत्त्वको ग्रहण किया है। क्षरोपाधिक जीव नर है, अक्षरोपाधिक ईश्वर नारायण है और इन दोनोंसे उत्कृष्ट भगवान् पुरुषोत्तम ही 'नरोत्तम' शब्दसे कहे गये हैं*। इन्हींका पूजन, इन्हींके स्वरूपका ध्यान तथा इन्हींके तत्त्वका ज्ञान इस ग्रन्थके विषय हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ही महाभारतके मुख्य प्रतिपाद्य सिद्ध होते हैं।

एक बात और है। इसमें धर्मराज्यकी स्थापना तथा अधर्म-राज्यके उच्छेदका वर्णन देखा जाता है। धर्मकी जय और अधर्मकी पराजय दृष्टिगोचर करायी गयी है। यह सब

---

* उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये॥

* क्षरोपाधितया जीवो नर इत्यभिधीयते।
अक्षरोपाधिको ह्यीशो नारायणपदाभिधः॥
क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टो भगवान् पुरुषोत्तमः।
ज्ञेयो ध्येयः समर्च्योऽत्र नरोत्तमपदाभिधः॥
(महाभारत-तात्पर्य-प्रकाश)

अवतारके उद्देश्यकी सिद्धि है। धर्मसंस्थापन और दुष्कृतियोंका विनाश—यही तो भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन है; अतः यह धर्मकी विजय भगवान्‌की ही विजय है—'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।' इसके सिवा, धर्मके मूल हैं भगवान् श्रीकृष्ण—'मूलं कृष्णः'। अतः धर्मका आश्रय लेनेसे ही उसके मूलभूत श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो सकती है, इसलिये धर्माभ्युत्थान या धर्मविजयका पर्यवसान भी भगवान् श्रीकृष्णमें ही है।

ध्वन्यालोकके प्रणेता श्रीआनन्दवर्धनाचार्य महाभारतके तात्पर्यका निर्णय करते हुए लिखते हैं—"महाभारतमें शान्तरस और मोक्षरूप पुरुषार्थ मुख्य हैं। साथ ही अन्य रसों तथा दूसरे पुरुषार्थोंका भी समावेश है। किन्तु वे अङ्गी नहीं, अङ्गभूत हैं तथा अपने अङ्गीका अनुसरण करते हैं। अङ्गी तो शान्तरस और मोक्ष ही हैं। इन्हींका प्रतिपादन ग्रन्थकारको अभीष्ट है और इन्हींमें महाभारतका मुख्य तात्पर्य है—ऐसा स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है।*

"यदि कहें 'महाभारतमें जो कुछ बतलाना अभीष्ट है, उसकी तो अनुक्रमणिकाध्यायमें गणना कर दी गयी है; आप जिसे विवक्षित मानते हैं, उसका तो वहाँ दर्शन ही नहीं होता। वहाँके शब्दोंसे तो यही प्रतीत होता है कि महाभारत सभी पुरुषार्थोंका बोध करानेवाला है और उसके भीतर सभी रसोंका आस्वादन होता है।' † तो इसके उत्तरमें बतलाया जाता है—यह ठीक है कि अनुक्रमणिकाध्यायमें किसी वाचक शब्दके द्वारा वाच्यरूपसे यह बात नहीं कही गयी है कि महाभारतमें शान्तरस ही अङ्गी है और मोक्ष ही सब पुरुषार्थोंसे श्रेष्ठ है; तो भी व्यञ्जनाके द्वारा यह भाव सूचित अवश्य किया गया है। 'भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।' ‡ इस वाक्यमें व्यङ्ग्यरूपसे यही अर्थ बतलाना अभीष्ट है कि महाभारतमें जो पाण्डवों आदिका चरित्र है, उससे यह शिक्षा मिलती है—उन परमपुरुष परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें ही मन लगाओ, संसारकी इन सारहीन सम्पदाओंमें न फँसो, केवल नय-पराक्रम आदि गुणोंमें ही सारी बुद्धि न खर्च कर डालो। कहाँ गयी कौरवोंकी वह सम्पत्ति! कहाँ गये वे पराक्रमी वीर! इस प्रकार विचार करके संसारकी असारतापर दृष्टि डालो।'*

"आगे कहे जानेवाले 'स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च' आदि श्लोक भी इसी अभिप्रायको व्यक्त करते हैं। महाभारतके अन्तमें हरिवंशपर्वके द्वारा भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन करके ग्रन्थका उपसंहार करते हुए स्वयम्भू कवि महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनने उपर्युक्त गूढ अभिप्रायको ही स्पष्ट किया है।† महाभारतमें जो देवता, तीर्थ और तप आदिके अत्यन्त प्रभावका वर्णन किया गया है, वह इसलिये कि वे भगवान्‌की प्राप्तिके साधन हैं तथा अन्यान्य देवता भी भगवान्‌की ही विभूतियाँ हैं। पाण्डवादिके चरित्रका तात्पर्य संसारसे वैराग्य करानेमें है और वैराग्य परमात्माकी प्राप्तिका उपाय है।" ‡

इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धनके मतमें भी महाभारतका तात्पर्य मोक्ष या भगवत्प्राप्तिमें ही है। महाभारतमें मुख्यतः तीन बातें हैं—भगवान् वासुदेवकी महिमा, पाण्डवोंकी सत्यवादिता और कौरवोंका दुर्व्यवहार—

> **वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम्।**
> **दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवानृषिः॥**
>
> (महा० आदि० १। १००-१०१)

---

* शान्तो रसो रसान्तरैर्मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः पुरुषार्थान्तरैस्तदुपसर्जनत्वेनानुगम्यमानोऽङ्गित्वेन विवक्षाविषय इति महाभारततात्पर्यं सुव्यक्तमेवावभासते। (ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत)

† ननु महाभारते यावान् विवक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तो न चैतद् दृश्यते। प्रत्युत सर्वपुरुषार्थप्रबोधहेतुत्वं सर्वरसगर्भत्वं च महाभारतस्य तस्मिन्नुद्देशे स्वशब्दनिवेदितत्वेन प्रतीयते। (ध्व० च० उ०)

‡ इसमें सनातन भगवान् वासुदेवका भी कीर्तन किया गया है।

* अत्रोच्यते—सत्यम्, शान्तस्यैव रसस्याङ्गित्वं महाभारते मोक्षस्य च सर्वपुरुषार्थेभ्यः प्राधान्यमित्येतन्न स्वशब्दाभिधेयत्वेनानुक्रमण्यां दर्शितं दर्शितं तु व्यङ्ग्यत्वेन। 'भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः' इत्यस्मिन् वाक्ये ह्ययमर्थो व्यङ्ग्यत्वेन विवक्षितो यदत्र महाभारते पाण्डवादिचरितं यत् कीर्त्यते तस्मात्तस्मिन्नेव परमेश्वरे भगवति भवत भावितचेतसो मा भूत विभूतिषु निःसारासु रागिणो गुणेषु वा नयविनयपराक्रमादिष्वमीषु केवलेषु केषुचित् सर्वात्मना प्रतिनिविष्टधियः। तथा चाग्रे पश्यत निःसारतां संसारस्य। (ध्व० च० उ०)

† एवंविधमेव चार्थं गर्भीकृतं संदर्शयन्तोऽनन्तरश्लोका लक्ष्यन्ते—'स हि सत्यम्' इत्यादयः। अयं च निगूढरमणीयोऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः।

‡ देवतातीर्थतपःप्रभृतीनां च प्रभावातिशयवर्णनं तस्यैव परब्रह्मणः प्राप्त्युपायत्वेन तत्तद्विभूतित्वेनैव वा देवताविशेषाणामन्येषां पाण्डवादिचरितवर्णनस्यापि वैराग्यजननतात्पर्याद् वैराग्यस्य च ··· परब्रह्मप्राप्त्युपायत्वमेव।

इनमेंसे वासुदेवकी महिमा तो ग्रन्थका मुख्य विषय ही है। पाण्डवोंकी जो सत्यता है, वह भगवत्प्राप्तिका साधन है तथा कौरवोंका दुर्व्यवहार भगवान्से विमुख करके पतनके गर्तमें गिरानेवाला है। सारांश यह कि भगवत्प्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्यको पाण्डवोंकी भाँति सत्यधर्मको अपनाना चाहिये। भूलसे भी कौरवोंकी भाँति दुराचारको प्रश्रय नहीं देना चाहिये। यही इस ग्रन्थका मुख्य सन्देश है। आदिपर्वमें इस आशयकी पुष्टि करनेवाले बहुत-से वचन हैं, उनमेंसे कुछ यहाँ दिये जाते हैं—

भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च॥
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनः।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥
असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
यत्तद् यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्॥

(महा० आदि० १)

'इस महाभारतमें सनातन भगवान् वासुदेवकी महिमाका वर्णन हुआ है। वे ही सत्य और ऋत हैं, पावन और पवित्र हैं। उन्हींको सनातन परब्रह्म कहते हैं; वे नित्य, प्रकाशस्वरूप एवं सदा स्थित रहनेवाले हैं। मनीषी विद्वान् उन्हींकी दिव्य लीलाओंका वर्णन करते हैं। यह सत् और असत्रूप सम्पूर्ण विश्व उन्हींसे उत्पन्न होता है। ध्यानयोगकी शक्तिसे सम्पन्न जीवन्मुक्त संन्यासी दर्पणमें प्रतिबिम्बकी भाँति अपने अन्तःकरणमें उन्हीं परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं।'

आचार्य नीलकण्ठने धर्म तथा ब्रह्मके प्रतिपादनमें महाभारतका परमतात्पर्य माना है—'एवं भारतेऽपि धर्मब्रह्मप्रतिपादन एवं परमं तात्पर्यम्।' इससे भी पूर्वोक्त निर्णयका ही समर्थन होता है। पहले बताया गया है कि धर्मके मूल हैं भगवान् श्रीकृष्ण; अतः धर्म उन्हींकी प्राप्तिका साधन होनेके कारण उनसे भिन्न नहीं है। भगवान्की महिमा तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंका वर्णन ही तो इस ग्रन्थका ध्येय है। धर्मसम्बन्धी वचन भी अनेकों उपलब्ध होते हैं। यथा—'युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः,'[1] 'अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं तथा।'[2] 'धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च'[3] इत्यादि। तथा—

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥

'आपलोग सदा सावधान रहनेवाले हैं, अतः आपकी बुद्धि निरन्तर धर्ममें लगी रहे। धर्म ही एक ऐसी वस्तु है, जो परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है। धन और स्त्री आदि भोगोंका चतुर-से-चतुर मनुष्य भी क्यों न सेवन करे, उनपर न तो कभी भरोसा किया जा सकता है और न वे सदा स्थिर ही रहते हैं।'

इस प्रकार आदिपर्वमें, जो इस ग्रन्थका उपक्रम-भाग है, धर्म और ब्रह्मसे—भगवान् और उनकी प्राप्तिके साधनोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेकों वचन उपलब्ध होते हैं, जिनके आधारपर दृढ़ निश्चयके साथ यह कहा जा सकता है कि महाभारतके मुख्य प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। अब ग्रन्थके उपसंहारपर दृष्टिपात कीजिये। मौसल, स्वर्गारोहण और हरिवंशपर्वको महाभारतका उपसंहार-भाग कहते हैं। मौसलपर्वमें भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेकी कथा है। भगवान्के इस लोकसे चले जानेपर अर्जुनकी क्या दशा होती है? वे स्वयं ही व्यासजीसे कहते हैं—

तमपश्यन् विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम।
परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च॥
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे।

(महा० मौ० ८। २२-२३)

'भगवान् श्रीकृष्णको न देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, मस्तिष्कमें चक्कर आता है, चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया है; एक क्षणके लिये भी शान्ति नहीं मिलती। जनार्दनके बिना अब मैं जीवित नहीं रह सकता।'

कितनी विकलता है! कितनी लगन! प्रत्येक जीवके हृदयमें भगवान्के लिये वही व्याकुलता, वही पीडा होनी चाहिये जो अर्जुनके हृदयमें है—यही इस प्रसंगका मर्म है। भगवान् व्यास याद दिलाते हैं—'अर्जुन! वे केवल तुम्हारे मित्र नहीं थे, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा थे। इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही उन्होंने अवतार लिया था; वह काम पूरा हो गया, इसलिये वे अपने धामको चले गये। तुमलोग भी उन्हींका अनुसरण करो'—

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः।
मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम्॥

(महा० मौ० ८। २९-३०)

---

१. युधिष्ठिर धर्ममय महान् वृक्ष हैं।

२. इसे अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र भी कहा गया है।

३. धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें [जो इसमें है, वही अन्यत्र है]।

इस प्रकार इस पर्वमें भगवान्‌के स्वरूप, कार्य तथा उनके लिये जीवकी विह्वलताका दिग्दर्शन कराकर व्यासजी स्वर्गारोहणपर्वके अन्तमें स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा कर देते हैं कि महाभारतमें सर्वत्र भगवान्‌का ही गायन किया गया है —

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

(महा० स्वर्गा० ६ । ९३)

हरिवंश तो सारा-का-सारा भगवान्‌की महिमा तथा उनकी मधुर लीलाओंसे ही भरा पड़ा है; अतः उसके दो-एक वचनोंको यहाँ उद्धृत करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती । इस प्रकार उपसंहारकी आलोचनासे भी भगवान्‌में ही ग्रन्थका तात्पर्य निश्चित होता है । अब यह देखना चाहिये कि भगवत्प्राप्तिके साधनभूत धर्मके विषयमें यहाँ क्या कहा गया है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥

(स्वर्गा० ५ । ६२)

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता । धर्मसे केवल मोक्षकी ही नहीं, अर्थ और कामकी भी सिद्धि होती है; तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते ?' कितनी जोरदार अपील है ! और भी सुनिये—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये ·········· ॥

(महा० स्वर्गा० ५ । ६३)

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे । धर्म ही नित्य है, सुख-दुःख तो अनित्य हैं [अतः अनित्यके लिये नित्यका परित्याग कदापि न करे] ।' कामनाके वशीभूत होकर राजा नहुषने धर्मका परित्याग किया; इसलिये उनका पतन हुआ, उन्हें सर्पकी योनिमें जाना पड़ा । दुर्योधनने लोभवश धर्मसे मुँह मोड़ा और कुटुम्बसहित मारा गया । भयके कारण इन्द्रने धर्मकी अवहेलना की और वे श्रीहीन होकर स्वर्गसे भ्रष्ट हो गये । अश्वत्थामा जीवन-रक्षाके लिये धर्मसे विमुख हुआ और आपत्तिमें फँस गया ।

इस प्रकार उपक्रम और उपसंहारमें भगवान्‌की महिमा और उनकी प्राप्तिके साधनभूत धर्मका दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया गया है । अब तात्पर्यनिर्णयके दूसरे साधन अभ्यासपर विचार करते हैं । अभ्यास कहते हैं आवृत्तिको । अर्थात् ग्रन्थका जो मुख्य विषय है, उसका उस ग्रन्थमें बारंबार प्रतिपादन होना चाहिये । ऐसा होनेपर ही वह उस ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य माना जाता है । इस ढंगसे विचार करनेके लिये एक बार समूचे ग्रन्थपर दृष्टि डालनी होगी । यदि सम्पूर्ण या अधिकांश प्रमाणोंको यहाँ अङ्कित किया जाय, तो बहुत विस्तार हो जायगा । इसके लिये न हमारे पास समय है और न इस निबन्धमें स्थान । अतः यत्र-तत्रसे कुछ थोड़े-से प्रमाण उपस्थित करके यह दिखलानेकी चेष्टा की जायगी कि अभ्यासरूप लिङ्गके द्वारा भी ग्रन्थके पूर्वोक्त तात्पर्यकी ही पुष्टि होती है ।

धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ आरम्भ होनेवाला था । देश-देशके सामन्त नरेश वहाँ मौजूद थे, राजसभामें यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि सबसे पहले किसकी पूजा की जाय । युधिष्ठिरने भीष्मजीसे पूछा—'पितामह ! आप किन्हें अग्रपूजाके योग्य मानते हैं ? जिन्हें आप इसके लायक समझें, उनका नाम बतावें ।' भीष्मजीने सोचकर उत्तर दिया—'भगवान् श्रीकृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ और पूजनीय हैं ।' उनकी आज्ञा पाकर सहदेवने भगवान्‌के चरण पखारे । उस समय शिशुपालने अनुचित आक्षेप किया । तब भीष्मजी खीझकर बोले—'जो विश्ववन्द्य श्रीकृष्णकी पूजाका अभिनन्दन नहीं करता, वह क्षमाके योग्य नहीं है ।' फिर उन्होंने भगवान्‌की विस्तृत महिमा बतायी और शिशुपालको समझाते हुए कहा—'चेदिराज ! हमलोग किसी कामनासे या अपना सम्बन्धी मानकर अथवा इन्होंने हमारा उपकार किया है—इस दृष्टिसे श्रीकृष्णकी पूजा नहीं कर रहे हैं । हमारी दृष्टि तो यह है कि ये इस भूमण्डलके सभी प्राणियोंको सुख पहुँचानेवाले हैं और बड़े-बड़े संत-महात्माओंने इनकी पूजा की है । ब्राह्मणोंमें वही पूजनीय समझा जाता है, जो ज्ञानमें बड़ा हो और क्षत्रियोंमें वही पूजाके योग्य है, जो बलमें सबसे अधिक हो । श्रीकृष्णमें ये दोनों बातें हैं, ये वेद-वेदांगके विज्ञानमें भी बड़े हैं और बलमें भी; अतः इनकी पूज्यतामें क्या सन्देह हो सकता है ? संसारमें इनसे बढ़कर दूसरा है ही कौन ? दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शूरता, प्रज्ञा, यश, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धैर्य, सन्तोष और पुष्टि—ये सभी गुण श्रीकृष्णमें नियत-रूपसे रहते हैं । लोकमें छः व्यक्ति पूज्य माने गये हैं—

ऋत्विक्, गुरु, जिसके साथ कन्या ब्याही जानेवाली हो वह, राजा और अपने प्रियजन। भगवान् श्रीकृष्ण ये सभी हैं, इसीलिये इनकी पूजा की गयी है। ये अविनाशी परमेश्वर हैं, इन्हींसे सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति हुई है। ये ही अव्यक्त प्रकृति हैं और ये ही सनातन कर्ता हैं। साथ ही ये सम्पूर्ण भूतोंसे परे हैं, इन्हीं सब कारणोंसे इनकी पूजा की गयी है।'*

दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र खींचना चाहता है। भरी सभामें उसकी लाज जा रही है, कोई बचानेवाला नहीं है। निराश होकर उसने अशरण-शरण दीनबन्धु भगवान्को पुकारा और अंचलसे मुँह ढककर रो पड़ी। वह करुण पुकार भगवान्के कानोंमें पड़ी, वे विह्वल हो गये, गला भर आया। किसीसे कुछ न कहकर पैदल ही दौड़े और सभामें पहुँचकर सतीकी लाज रख ली। भगवान्की दयासे द्रौपदीके धर्मने ही वस्त्र बनकर उसके शरीरको ढक लिया अथवा धर्ममय दुकूल बनकर स्वयं भगवान्ने उसकी लज्जा बचायी। व्यासजी कहते हैं—

> कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
> त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।
> ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
> समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः॥
> (महा० सभापर्व)

इस प्रसंगसे भी भगवान् और धर्मकी महत्ता सिद्ध होती है। अब आगे देखिये। पाण्डव अन्यायपूर्वक जूएमें हराये गये। उन्हें तेरह वर्षके लिये वनमें रहना पड़ा। यह समाचार द्वारकामें वृष्णिवंशियोंने सुना। सब लोग भगवान् श्रीकृष्णको साथ लेकर पाण्डवोंसे मिलने आये। भगवान्ने जब शकुनिद्वारा किये गये छल-कपटकी बात सुनी, तो वे ऐसे कुपित हुए मानो उसी क्षण संसारको भस्म कर डालेंगे। उस समय अर्जुनने स्तवन करके भगवान्को शान्त किया। अर्जुनद्वारा की हुई स्तुति बड़ी है और उसमें भगवान्की महिमाका सुन्दर निरूपण है। फिर द्रौपदीने अपनी करुण-कथा सुनायी, भगवान्ने उस दुःखिनीको भी सान्त्वना दी। इन प्रसंगोंमें भगवान्की भक्तवत्सलताका विशेष परिचय मिलता है।

एक समयकी बात है, जब पाण्डव काम्यक वनमें रहते थे भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाको साथ लेकर उनसे मिलने गये। वहाँ मार्कण्डेयजीने पाण्डवोंसे अपना प्रलयकालका अनुभव सुनाते हुए भगवान् बालमुकुन्दकी बड़ी महिमा गायी और अन्तमें बताया कि 'मैंने महाप्रलयके समय जिनका दर्शन किया था, वे ही ये भगवान् श्रीकृष्ण हैं।'

> यः स देवो मया दृष्टः पुरा पद्मायतेक्षणः।
> स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः॥
> (महा० वनपर्व)

उन्होंने फिर कहा—'ये श्रीकृष्ण ही पुराणपुरुष परमात्मा हैं। ये ही जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले सनातन परमेश्वर हैं। इन्हें देखकर ही मुझे वह पुरानी बात याद आ गयी है। ये ही माधव सम्पूर्ण प्राणियोंके माता-पिता हैं। पाण्डवो! तुम सब लोग इन्हींकी शरणमें जाओ।'*

कुछ काल पश्चात् वनवासी पाण्डवोंपर दुर्वासाकी कृपादृष्टि हुई। असमयमें पहुँचकर उन्होंने हजारों ऋषियोंके लिये भोजन बनानेका आदेश किया। धर्मराजने आज्ञा स्वीकार कर ली, इसके सिवा कोई चारा नहीं था। द्रौपदीको जब यह बात मालूम हुई तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसके पास सूर्यकी दी हुई स्थाली थी; उसमेंसे प्रतिदिन जितने अतिथि आ जायँ उनके भोजनके लिये पर्याप्त अन्न मिलता था, मगर

---

* न केवलं वयं कामाच्चेदिराज जनार्दनम्।
न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथञ्चन॥
अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम्।
ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः॥
पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ।
वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा॥
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा॥
संनतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।
ऋत्विग्गुरुर्विवाह्यश्च स्नातको नृपतिः प्रियः॥
सर्वमेतद्धृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः।
कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः॥
(महा० सभा०)

* स एष कृष्णो वार्ष्णेयः पुराणपुरुषो विभुः।
एष धाता विधाता च संहर्ता चैव शाश्वतः॥
दृष्ट्वेमं वृष्णिप्रवरं स्मृतिर्मामियमागता।
सर्वेषामेव भूतानां पिता माता च माधवः॥
गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यं कौरवर्षभाः।
(महा० वन०)

द्रौपदीके भोजन करनेके पहले ही । उस दिन वह भोजन कर चुकी थी, अतः उस स्थालीसे अन्न प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं थी । इधर, ऋषिके रुष्ट होनेपर शापका भय था । द्रौपदीने पुनः अपने उन्हीं अनाथनाथका स्मरण किया । भगवान् आ गये । आते ही कहा—'बहिन ! बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दे ।' द्रौपदीने संकोचके साथ कहा—'आज कुछ भी नहीं है, इसीलिये तो तुम्हें बुलाया है । महर्षि दुर्वासाका आतिथ्य करना है, कोई प्रबन्ध करो ।' भगवान् बोले—'कृष्णे ! यह दिल्लगीका समय नहीं है । मैं थका-माँदा, भूखा-प्यासा आया हूँ और तू बातोंमें बहला रही है । ला, अपनी बटलोई मुझे दिखा ।' उनका आग्रह देखकर द्रौपदी बटलोई ले आयी । भगवान्‌ने देखा, उसमें सागका एक पत्ता सटा हुआ है; उसे लेकर खा लिया और सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त कर दिया । ऋषियोंको अजीर्ण सताने लगा । दुर्वासाको अम्बरीष-का प्रभाव याद आ गया । पाण्डव भी भगवान्‌के भक्त हैं, यहाँ भी वैसा ही कोई उपद्रव न खड़ा हो जाय—यह सोचकर मारे डरके वे सब लोग भाग गये ।

पाण्डवेभ्यो भृशं भीता दुद्रुवुस्ते दिशो दश ।

(महा० वन०)

इस प्रकार वनपर्वमें स्थान-स्थानपर भगवान्‌की भक्त-परवशताका परिचय मिलता है । आगे चलकर वनपर्वमें ही भगवान् नर-नारायणकी महिमा तथा उनके वाराह, नृसिंह और वामन अवतारोंका संक्षेपसे परिचय दिया गया है; साथ ही इसी पर्वमें व्रीहिद्रोणिक तथा धर्मव्याध आदिकी कथाओंमें धर्मका महत्त्व बताया गया है । पतिव्रताओंके उपाख्यानोंमें स्त्रियोंके धर्म-पालनका महत्त्व दिखलाया गया है । विराटपर्वमें भी धर्मकी ही महिमा व्यक्त की गयी है । द्रौपदीके पातिव्रत्य-धर्मने उसे पापीके हाथोंसे बचाया और कीचकको उसके पापने ही नष्ट कर दिया । परायी स्त्रियोंपर कुदृष्टि डालनेवालोंको कितना भयंकर दण्ड मिलता है—यह कीचकके दृष्टान्तसे शिक्षा लेनी चाहिये । विराट एक धार्मिक राजा हैं—धर्मके प्रतीक । पाँच पाण्डव पाँचों इन्द्रियाँ हैं, द्रौपदी प्रज्ञा है । धर्मकी छत्रछायामें रहनेवाली बुद्धिसहित इन्द्रियोंपर पापकी दाल नहीं गलती । यदि कदाचित् पापने आक्रमण किया भी तो वह कीचककी भाँति स्वयं नष्ट हो जाता है, अथवा कौरवोंकी भाँति पराजित होकर भाग जाता है । वह धर्मराज्यकी गौओं—इन्द्रियोंपर काबू नहीं कर सकता, उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता ।

अब उद्योगपर्वपर एक दृष्टि डालिये । उसमें यह कथा आती है कि भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका साथ दिया । इससे यह सूचित होता है कि भगवान् संकटके समय अपने भक्तोंको कदापि नहीं छोड़ते । प्रजागरपर्वमें विदुरकी धार्मिक नीतिका वर्णन है । सनत्सुजातीयमें मृत्यु और अमृतत्वकी व्याख्या है । परमात्माके स्वरूप और उनके ज्ञानके साधनोंका वर्णन है । ब्रह्मचर्यका परिचय दिया गया है, फिर भगवत्-शरणागतिके साथ उसका उपसंहार हुआ है । आगे दुर्योधनका मान भंग करनेके लिये भगवान्‌ने विराट्‌रूप दिखाकर अपने प्रभुत्वका परिचय दिया है । उसके यहाँका निमन्त्रण ठुकरा दिया और विदुरके घर बिना बुलाये ही जाकर उनकी सेवा स्वीकार की । भक्तोंके प्रति भगवान् कितना आत्मीयभाव रखते हैं—यह इस प्रसंगसे स्पष्ट हो जाता है । इसी पर्वमें आगे चलकर सञ्जयने धृतराष्ट्रसे भगवत्स्वरूपका वर्णन करते हुए उनके नामोंका निर्वचन किया है । उसमें 'कृष्ण' नामकी निरुक्ति इस प्रकार बतायी गयी है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः ॥

(महा० उद्योग०)

अर्थात् 'कृष्' नाम है सत्ताका और 'ण' आनन्दका वाचक है । सत्ता तथा आनन्द दोनोंके योगसे सनातन परमेश्वर 'कृष्ण' कहलाते हैं ।

इस प्रकार उद्योगपर्वमें भी श्रीकृष्णकी महिमाका ही विशेष वर्णन है । भीष्मपर्वमें पहले भूगोलका वर्णन आता है । यह जगत् भगवान्‌का स्थूल या विराट् रूप है । स्थूल रूपका ज्ञान होनेपर ही क्रमशः सूक्ष्म स्वरूपमें बुद्धिका प्रवेश होता है । इसीलिये पहले स्थूल रूपका निरूपण करके फिर भगवद्गीतामें भगवान्‌के सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन किया गया है । युद्धके प्रारम्भमें भगवती दुर्गाने दर्शन दिया है । इससे यह सूचित होता है कि जिसपर भगवान्‌की अनुकूलता होती है, उसपर सभी देवता कृपा करते हैं । इसके पश्चात् भगवद्गीता आरम्भ होती है । अर्जुनको मोह हुआ और वे भगवान्‌की शरणमें गये । भगवान्‌ने शरणागतपर दया की और थोड़े समयमें ही भक्तको कर्म, भक्ति तथा ज्ञानका रहस्य बताकर उसे शरणमें ले कृतार्थ कर दिया । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌की शरणमें गये बिना जीवको शोक-मोहके बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता ।

इसके बाद युद्ध आरम्भ होता है । भक्तवत्सल भगवान्

स्वयं सारथि बनकर घोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं और रणभूमिमें सब ओर विचरते हुए भक्तको संकटसे बचाते तथा विजयी बनाते हैं। जहाँ भक्त अपने कर्तव्यपालनमें जरा भी शिथिलता दिखाता है, वहाँ उसे सावधान करनेके लिये वे अपनी प्रतिज्ञाके विरुद्ध स्वयं हथियार उठा लेते हैं। एक दिन भीष्मपितामहके सामने अर्जुनको ढीला पड़ते देख उन्होंने घोड़ोंकी बागडोर छोड़ दी और हाथमें तीखी धारवाले चक्रको घुमाते हुए वे रथसे कूद पड़े। फिर जिस प्रकार सिंह मदान्ध एवं उन्मत्त गजराजको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर झपटे, उसी तरह वे भी अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कँपाते हुए भीष्मपर टूट पड़े। व्यासजीने उस समयका कितनी सुन्दर भाषामें चित्र खींचा है—

क्षुरान्तमुद्भ्राम्य भुजेन चक्रं
रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान्॥
स कम्पयन् गां चरणैर्महात्मा
वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम्।
मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं
सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम्॥
(महा० भीष्म०)

भगवान्‌को अपनी ओर आते देख भीष्मजी निहाल हो गये। वे तो चाहते ही थे। बोले—'आओ देवेश्वर! आओ जगदाधार! तुम्हें नमस्कार है। मुझे जबरदस्ती इस रथसे मार गिराओ। तुम्हारे हाथसे मरनेपर मेरे लिये इहलोक और परलोक दोनों जगह कल्याण है। नाथ! आज तुमने तीनों लोकोंमें मेरा गौरव बढ़ा दिया।'*

एक दिन दुर्योधनको अपने महारथी भाइयोंकी पराजयसे बड़ा दुःख हुआ। उसने भीष्मजीसे जाकर कहा—'पितामह! आप-जैसे वीरोंके होते हुए हमलोगोंकी क्यों हार होती है और पाण्डव कैसे प्रतिदिन विजयी हो रहे हैं?' भीष्मजीने समझाते हुए उत्तर दिया—'बेटा! मेरी राय तो यह है कि तू पाण्डवोंसे सन्धि कर ले। वे अपने बलसे नहीं जीतते, भगवान् श्रीकृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं। उनके रहते हुए संसारमें कोई नहीं है, जो पाण्डवोंको हरा सके।' इसके बाद उन्होंने प्राचीन कथा सुनाकर श्रीकृष्णके स्वरूपका विस्तारके साथ परिचय दिया।

इस तरह विचार करनेपर भीष्मपर्वमें भी श्रीकृष्णके महत्त्वका ही दर्शन होता है। द्रोणपर्वमें भी यही बात है। इसके ग्यारहवें अध्यायमें स्वयं धृतराष्ट्रने सञ्जयसे भगवान् कृष्णकी लीलाओं तथा प्रभावका वर्णन किया है।* जयद्रथवधके प्रसङ्गसे यह शिक्षा मिलती है कि 'भगवान् सहायक हों तो मनुष्य कठिन-से-कठिन प्रतिज्ञा भी पूरी कर सकता है और भगवान्‌की दृष्टि फिर जाय तो राज्य, बल, सेना, अतुल खजाना और अजेय वीर भी किसी काम नहीं आते। दुर्योधनके पास ये सभी साधन थे, किन्तु जयद्रथको न बचा सके।' युधिष्ठिरने तो भगवान्‌से स्पष्ट कह दिया कि 'गोविन्द! आपके द्वारा सुरक्षित रहनेपर ही अर्जुनने यह अद्भुत पराक्रम किया है।'†

भगवान्‌के विरुद्ध आचरण करनेवाला बड़े-से-बड़ा वीर भी विजयी नहीं हो सकता और उनके आश्रयमें रहनेवाले साधारण वीर भी अपने शत्रुओंको नीचा दिखा सकते हैं। इसी नीतिके अनुसार पाण्डवोंने कर्ण, शल्य और दुर्योधनपर विजय पायी। इस प्रकार कर्ण तथा शल्यपर्वमें भी भगवान्‌के ही प्रभावका वर्णन है। सौप्तिकपर्वकी कथासे यह सूचित किया गया है कि अधर्मी राजाका अन्न खानेवाले विद्वानोंकी भी बुद्धि मारी जाती है। वे भी कठोरतापूर्ण पापमें प्रवृत्त हो जाते हैं। तभी तो अश्वत्थामा रातमें सोते हुए पाण्डवोंको मार डालनेकी इच्छासे चोरकी भाँति शिविरमें घुसा था। जिनका हृदय वैर या द्वेषकी आगमें जलता है, उन्हें रातको नींद नहीं आती; यही दशा अश्वत्थामाकी थी। अभागा मनुष्य देवताका प्रसाद प्राप्त करके भी दुःखदायक पापकर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। जैसे अश्वत्थामाने शङ्करजीसे वरदान पाकर भी अपना पतन ही किया। रातमें सोते हुए बालकोंके

---

* एह्येहि देवेश जगन्निवास
नमोऽस्तु ते शार्ङ्गगदासिपाणे।
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ
रथोत्तमाद् भूतशरण्य संख्ये॥
त्वया हतस्येह ममाद्य कृष्ण
श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ
लोकैस्त्रिभिश्च प्रथितप्रभाव॥
(महा० भीष्म०)

* शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय।
(महा० द्रोण०)

† अत्यद्भुतमिदं सर्वं कृतं पार्थेन धीमता।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम्॥
(महा० द्रोण०)

प्राण लिये । उसे इस कुकर्मका फल भी हाथों-हाथ मिला, भगवान्‌ने घोर शाप दिया । यद्यपि अश्वत्थामाका यह उद्योग पाण्डवोंको भी मार डालनेके लिये था, तो भी भगवान् जिनके रक्षक हों उन्हें कौन मार सकता है ? उन्होंने ब्रह्मास्त्रसे भी पाण्डवोंकी रक्षा की । ऐषीकपर्वमें तो भगवत्-कृपाका अद्भुत चमत्कार देखा जाता है । उत्तराके गर्भका बालक अश्वत्थामा-की शस्त्राग्निसे घिर जानेपर भी भगवान्‌के अनुग्रहसे मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ । स्त्रीपर्वकी कथा है—धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे पीडित थे, उन्होंने भीमको छातीसे लगानेके व्याजसे मार डालनेका विचार किया । भगवान्‌ने लोहेकी प्रतिमासे धृतराष्ट्र-को मिलाया । प्रतिमा टूक-टूक हो गयी, भीमसेनके प्राण बच गये । भक्तोंपर प्रभुकी कितनी अपार दया है !

शान्तिपर्वमें राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म तथा मोक्षधर्मका वर्णन है । उसमें विस्तारके साथ धर्मकी महत्ता बतायी गयी है । मोक्षके स्वरूप और साधनोंका वर्णन किया गया है । साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका सुन्दर निरूपण है । युधिष्ठिर-ने जो भगवान्‌का स्तवन किया है, उससे उनका अनिर्वचनीय माहात्म्य प्रकट होता है । जब भगवान् श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास आते हैं, उस समय वे भगवान्‌की ओर देखकर स्तुति करने लगते हैं; उनके सामने भगवान्‌का दिव्यरूप प्रकट हो जाता है । भीष्मजी कहते हैं—

नमस्ते भगवन् कृष्ण लोकानां प्रभवाप्यय ।
योगीश्वर नमस्तेऽस्तु त्वं हि सर्वपरायणः ॥
दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुन्धरा ।
दिशो भुजै रविश्चक्षुर्वीर्ये शक्रः प्रतिष्ठितः ॥
त्वत्प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे ।
यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष त्वं नयस्व सुरोत्तम ॥

(महा० शान्ति०)

'सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ! तुम्हें नमस्कार है । योगीश्वर ! तुम्हीं सबको शरण देनेवाले हो । तुम्हें बारंबार प्रणाम है । यह सारा द्युलोक तुम्हारे मस्तकसे व्याप्त है और यह पृथ्वी तुम्हारे पैरोंके भीतर आ गयी है । भुजाओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हैं, सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं और वीर्यमें इन्द्र प्रतिष्ठित हैं । कमललोचन ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तुम्हारी शरणमें पड़ा हूँ और इच्छानुसार उत्तम गति प्राप्त करना चाहता हूँ । देवेश्वर ! जिसमें मेरा वास्तविक कल्याण हो, उसी गतिको मुझे पहुँचाओ ।'

भगवान्‌ने कहा—'राजन् ! मुझमें तुम्हारी परा भक्ति है, इसीलिये मैंने तुम्हें इस दिव्यरूपका दर्शन कराया है ।'*

अश्वमेधपर्वमें तीन उपाख्यान हैं—पहलेमें यह बताया गया है कि काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है; फिर यह कहा है कि धर्मसे ही धन उपार्जन करके चित्तशुद्धिके लिये यज्ञ करना चाहिये । दूसरा उपाख्यान है श्रीकृष्ण और धर्मका संवाद । इसमें शास्त्रके अर्थको सूत्ररूपमें बताया गया है, साथ ही कुटिलताका निषेध और सरलता, मृदुता आदि सद्गुणोंकी प्रशंसा की गयी है । तीसरा उपाख्यान श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरका संवाद है । इसमें शास्त्रीय अर्थकी विशद व्याख्या है । फिर ज्ञानके साधन, वैराग्य, काशीमाहात्म्य, शिवकी महिमा आदिका वर्णन है । आगे त्याग और तत्त्वज्ञानका महत्त्व बताया गया है । काम-विजयकी आवश्यकतापर जोर दिया गया है । इस प्रकार ये सभी बातें बताकर भगवान्‌ने ही युधिष्ठिरका शोक दूर किया है । अर्जुनकी प्रार्थनासे पुनः दया करके उन्होंने अनुगीता और ब्राह्मणगीताद्वारा उपदेश किया है ।

इस प्रकार जब हम सम्पूर्ण महाभारतपर दृष्टिपात करते हैं, तो उसमें सच्चिदानन्दविग्रह परात्पर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा और उनकी प्राप्तिके साधनभूत धर्मोंका ही पुनः-पुनः वर्णन मिलता है । यही अभ्यास है, इसके द्वारा भी इस ग्रन्थका भगवान्‌में ही तात्पर्य सिद्ध होता है । अब तात्पर्यनिर्णयके तीसरे लिङ्ग अपूर्वतापर विचार करते हैं । शास्त्रका तात्पर्य प्रायः कोई अपूर्व बात बतलानेमें ही होता है । जो स्वाभाविक हो, स्वतः प्राप्त हो, उसीको बतानेके लिये ऋषियोंका प्रयास नहीं होता । राग-द्वेष, ईर्ष्या-असूया, वैर-विरोध तथा काम-क्रोध-लोभ आदिकी लीलाएँ तो इस जगत्‌में निरन्तर होती रहती हैं; क्या इन्हींको बतानेके लिये महाभारतकी रचना-का प्रयास हुआ है ? कदापि नहीं । इनका दुष्परिणाम दिखाकर मनुष्योंको ऐसे आश्रयमें रहनेके लिये प्रेरणा देनी चाहिये, जहाँ इनसे छुटकारा मिले, जहाँ परम शान्ति, परमा-नन्दका साम्राज्य हो । इसी उद्देश्यसे इस महाग्रन्थकी अवतारणा हुई है, और ऐसा होनेसे ही इसमें अपूर्वता होगी । सम्पूर्ण ग्रन्थमें भगवान्‌के स्वरूप, उनकी शक्ति, उनकी दया, उनकी भक्तवत्सलता आदिका वर्णन करके यही अपूर्व उपदेश दिया गया है कि 'संसारके क्षणभंगुर विषय-भोगोंकी

* यतः खलु परा भक्तिर्मयि ते पुरुषर्षभ ।
ततो मया वपुर्दिव्यं त्वयि राजन् प्रदर्शितम् ॥
(महा० शान्ति०)

आसक्ति छोड़ो, धर्मका आचरण करो, भगवान्‌की शरण लो, उनका ध्यान करो और उनके ही तत्त्वको जानो।' —इत्यादि। यह तात्पर्य व्यञ्जनावृत्तिसे तो ध्वनित होता ही है, स्पष्ट वचनोंद्वारा भी इसका समर्थन होता है। धर्माचरण और भगवद्भजनके लिये विधि-वाक्योंकी भी महाभारतमें कमी नहीं है। धर्मविधायक वचन ये हैं—'धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानाम्' (आदि०) 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।' (स्वर्गा०) 'नियतं कुरु कर्म त्वम्', 'कार्यं कर्म समाचर' (भीष्म०) इत्यादि। भगवद्भक्तिका विधान करनेवाले वचन इस प्रकार हैं—

'तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः।' (सभा०)
'गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यं कौरवर्षभाः।' (वन०)
'प्रपद्यस्व जनार्दनम्।' 'शरणं गच्छ केशवम्।' (उद्योग०)
'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'
'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'
'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।'
'मच्चित्तः सततं भव।'
'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'
'मामेकं शरणं व्रज' (भीष्म०)
—इत्यादि।

तात्पर्य-निर्णयका चौथा लिङ्ग है फल। यदि पूर्वोक्त रूपसे भगवान् ही ग्रन्थके मुख्य प्रतिपाद्य हैं, उनके भजनमें प्रवृत्त कराना ही शास्त्रका उद्देश्य है, तो इसका फल क्या बतलाया गया है? फलका ज्ञान हुए बिना किसीकी उसमें प्रवृत्ति होनी कठिन है; क्योंकि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' (प्रयोजन जाने बिना मन्दबुद्धि मनुष्य भी किसी कार्यमें नहीं प्रवृत्त होता।) हाँ, ठीक है; फलका प्रतिपादन होना चाहिये और हुआ है। भगवान्‌के भजनका फल अनन्त है, महान् है। उसे वाणीके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। शास्त्रोंमें जो भी फल बताया गया है, वह अत्यन्त सीमित है, संकुचित है। उससे अनन्तगुना अधिक भजनका प्रभाव है। यहाँ थोड़ेसे फलसम्बन्धी वचन उद्धृत किये जाते हैं—

ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति जन्तवः।
भये महति मग्नांश्च त्राति नित्यं जनार्दनः॥
(भीष्म०)

'जो जीव भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें चले जाते हैं, वे कभी मोहके बन्धनमें नहीं पड़ते। वे बड़े भारी भयमें डूबे हों, तो भी जनार्दन भगवान् उनकी सदा रक्षा करते हैं।'

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(भीष्म०)

'जो मनुष्य मुझे अजन्मा, अनादि और सम्पूर्ण लोकोंका महेश्वर जानता है, वही मनुष्योंमें ज्ञानी है और वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

'तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'
(भीष्म०)

'उन परमेश्वरकी कृपासे तुम परमशान्ति और सनातन स्थान प्राप्त करोगे।'

य एनं संश्रयन्तीह भक्त्या नारायणं हरिम्।
ते तरन्तीह दुर्गाणि न चात्रास्ति विचारणा॥
(शान्ति०)

'जो भक्त इन भगवान् नारायणके आश्रयमें रहते हैं, वे कठिन-से-कठिन विपत्तियोंके पार हो जाते हैं—इसमें जरा भी अन्यथा विचार करनेकी गुंजायश नहीं है।'

अर्थवाद पाँचवाँ साधन है। अर्थवाद नाम है प्रशंसाका। जो शास्त्रका मुख्य विषय होता है, उसके प्रशंसक अर्थवाद भी उपलब्ध होते हैं। अभीतक महाभारतका जो तात्पर्य निर्णीत हुआ है, उसके भी अर्थवाद होने चाहिये। ठीक है, अर्थवादोंकी भी कमी नहीं है। एक बात यहाँ ध्यान रखनेकी है। बहुत-से अर्थवाद ऐसे होते हैं, जो यथार्थ नहीं कहे जा सकते। उनका उद्देश्य केवल अभीष्ट वस्तुमें रुचि उत्पन्न करानामात्र होता है। जैसे 'आदित्यो यूपः' (यूप सूर्य है)—यह अर्थवाद-वाक्य है। यूप कभी सूर्य नहीं हो सकता; यहाँ प्रशंसामात्र करना अभीष्ट है। इसके विपरीत 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' (आग सर्दीकी दवा है) इत्यादि अर्थवाद अनुवाद या यथार्थवाद हैं, इसी प्रकार भगवद्भजनकी महिमाके सम्बन्धमें या भागवतधर्मके सम्बन्धमें जो अर्थवाद उपलब्ध होते हैं, वे यथार्थवाद होते हैं। उनमें मिथ्यात्वबुद्धि करना पाप माना गया है। भजनकी कितनी ही बढ़ाकर प्रशंसा करें, पूरी महिमा नहीं कही जा सकती। विभिन्न उपाख्यानोंके द्वारा जो भिन्न-भिन्न धर्मोंकी महिमा बतायी गयी है, वह अर्थवाद ही है, पर है यथार्थवाद। ऐसे अर्थवाद महाभारतमें बहुत हैं। नीलकण्ठने एक ही वाक्यमें

सभी अर्थवादोंका संकलन कर दिया है। वे कहते हैं—

'अर्थवादजातमपि—युधिष्ठिरादिवद् वर्तितव्यम्, न दुर्योधनादिवत्।' (नीलकण्ठी, आदि०)

इसका भाव यों है—युधिष्ठिरने धर्मका पालन किया, भगवान्‌की शरण ली, तो उन्हें विजय मिली, संकटसे मुक्ति हुई और अन्तमें वे परमपदको प्राप्त हुए। दुर्योधनने धर्म और भगवान्‌की अवहेलना की, अतः उसका सर्वस्व नष्ट हुआ। इसलिये युधिष्ठिर आदिकी भाँति बर्ताव करना चाहिये, दुर्योधन आदिकी तरह नहीं। इसी प्रकार कुछ वचन भी हैं—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।'

'जो भक्तिभावसे मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।'

'तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।'
'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्॥'

(भीष्म०)

'जो मुझमें नित्य युक्त रहनेवाले हैं, उनके योगक्षेमका भार मैं स्वयं ढोता हूँ।' 'मृत्युमय संसारसमुद्रसे मैं उनका उद्धार कर देता हूँ।'—आदि।

तात्पर्यनिर्णयका छठा लिङ्ग है—उपपत्ति। उपपत्ति कहते हैं—युक्तिको। भगवान्‌का भजन क्यों करें? संसारके विषयोंमें भी तो सुख है, उन्हें क्यों छोड़ें? वह कौन-सी युक्ति है, जिससे विषयोंको त्यागकर भगवान्‌की ओर लगना ठीक जान पड़े? बतलाते हैं—विषय नश्वर हैं, क्षणिक हैं; इनपर भरोसा नहीं किया जा सकता, ये कभी स्थिर नहीं रहते। 'अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैवात्मभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्।' उनके सेवनसे स्वास्थ्य भी नष्ट होता है; इसके अलावे उनसे तृप्ति कभी नहीं होती, अधिकाधिक लालसा बढ़ती है, जिसके कारण नरकमें पड़ना पड़ता है। दुर्योधनके पास विषय-भोग और सुखकी सामग्रीकी सीमा नहीं थी, तो भी वह उतनेसे सन्तुष्ट नहीं था। किन्तु उसे नष्ट होते कितनी देर लगी। सेना, कोष, धन-जन—सब स्वाहा हो गया! और उसका जीवन, जिसको सुख देनेके लिये यह सारा संग्रह किया गया था, कितना धोखा साबित हुआ! पानीके बुलबुलेके समान क्षणिक—अस्तित्वहीन। क्या सुख मिला उसे? रोते-रोते तो मरा। अतः जिसे बुद्धि है, जो सोच सकता है, वह कभी इन नश्वर भोगोंके लिये जीवन नहीं खपावेगा। हम चाहते हैं सुख, हम चाहते हैं शान्ति—पर वही, 'जो नित्य हो, अमिट हो, टिकाऊ हो।' ऐसी सुख-शान्तिके केन्द्र हैं भगवान्। वे सच्चिदानन्द हैं। अतः उनकी प्राप्तिका ही प्रयत्न करना चाहिये। भगवान् स्वयं कहते हैं—'विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।' (इन नाशवान् पदार्थोंमें जो अविनाशीको ढूँढ़ निकालता है, वही ठीक देखता है।) 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।' (इस अनित्य और दुःखमय संसारको पाकर मेरा भजन करो।)

इस प्रकार पूर्वोक्तरूपसे सम्पूर्ण महाभारतकी पर्यालोचना करनेसे अन्तमें यही स्थिर होता है कि इस ग्रन्थके मुख्य प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनकी शरणमें जाना ही जीवमात्रका कर्तव्य है। जिन धर्मोंके आचरणसे भगवान्‌में प्रेम हो, उनका सदा पालन करते रहना चाहिये। यही इस ग्रन्थका सत्य, शिव और सुन्दर सन्देश है।

महाभारतके श्रीकृष्ण

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री)

महाभारतके श्रीकृष्ण केवल महापुरुष ही नहीं हैं, अपितु स्वयं श्रीभगवान् हैं। दर्शकोंको वे साधारण मानव प्रतीत होते हैं, किन्तु उनका रूप अप्राकृत है। 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' (ब्रह्मसूत्र १।१।२१) पर श्रीभाष्यमें रामानुजाचार्यने श्रुति और स्मृतिके उद्धरण देकर भगवान्‌के अप्राकृत रूपकी प्रतिष्ठा करते हुए महाभारतके प्रमाणसे अवतारके रूपकी भी अप्राकृतता सिद्ध की है। उनका वचन इस प्रकार है—

महाभारतेऽपि अवताररूपस्याप्यप्राकृतत्वमुच्यते 'न भूतसङ्घसंस्थानो देहोऽस्य परमात्मनः' इति।

भारतामृत

(लेखक—पं० श्रीनारायणाचार्यजी वरखेडकर, 'वेदान्तशास्त्री', 'वेदान्ताचार्य')

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥
धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन ।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।

'नित्य परम पुण्यकारक भारतकी कथा सुननेवाले मनुष्यको नित्य उसी फलकी प्राप्ति होती है, जो वेदवेत्ता तथा बहुश्रुत ब्राह्मणोंको सुवर्णके शृंगयुक्त सैकड़ों गौएँ दान करनेसे होती है। युधिष्ठिरके संकीर्तनसे धर्मकी वृद्धि, भीमसेनके कीर्तनसे पापोंका नाश, अर्जुनके कीर्तनसे शत्रुओंका क्षय, और माद्रीसुत नकुल-सहदेवके कीर्तनसे रोगोंका नाश होता है। जो भारतमें है, वही सब संसारमें है; जो भारतमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।'

नानाविध दुःखोंसे उद्विग्न तथा सन्तप्त भिन्न-भिन्न प्राणियोंको संसारसे छुटकारा दिलानेके लिये सरस, मधुर, रोचक तथा गम्भीर ढंगसे अभय देनेवाला, सार्वजनीन, सरल, मनोहारी, सर्वाङ्गीण, व्यापक वाङ्मय निःसन्दिग्धरूपसे यदि कोई है, तो वह एक श्रीमन्महाभारत ही है। इसीसे वेद-पुराणादिमें भी मुक्तकण्ठसे इसकी प्रशंसा पायी जाती है; इतना ही नहीं, सभी प्रातःस्मरणीय सम्प्रदायप्रवर्तक आस्तिकशिखामणि पूज्य आचार्यचरणोंने पद-पदमें बड़े गर्वसे इसको अपनाया है। भारतके सर्वश्रेष्ठ पञ्चरत्नोंमेंसे भी श्रेष्ठतम मध्यरत्नस्वरूप गीतारत्नसे अपरिचित भारतवर्षमें क्या, संसारमें भी भाग्यहीन कुछ इने-गिने ही हों।

श्रीमन्मध्वाचार्यजीने श्रीमन्महाभारतकी महत्ता, उसके स्वरूप, उसकी मर्यादा आदिका विस्तृत निरूपण श्रीमन्महाभारततात्पर्यनिर्णय, गीताभाष्योपक्रमणिका, गीतातात्पर्यनिर्णय, श्रीमद्विष्णुतत्त्वविनिर्णय, श्रीमन्न्यायसुधासूत्रप्रामाण्यविचार इत्यादि अनेक ग्रन्थोंमें विशदरूपसे आक्षेप-निराकरणपूर्वक करते हुए समस्त प्रमेयग्रन्थोंमें इसकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित की है।

उदाहरणार्थ ब्रह्माण्डपुराणका गीतातात्पर्यमें एक वचन वाचकोंके सामने रखते हैं—

शास्त्रेषु भारतं सारं तत्र नामसहस्रकम्
वैष्णवं कृष्णगीता च तज्ज्ञानान्मुच्यतेऽञ्जसा
न भारतसमं शास्त्रं कुत एवानयोः समम्
भारतं सर्ववेदाश्च तुलामारोपिताः पुरा
देवैर्ब्रह्मादिभिः सर्वैर्ऋषिभिश्च समन्वितैः
व्यासस्यैवाज्ञया तत्र त्वत्यरिच्यत भारतम्।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।
स्वयं नारायणो देवैर्ब्रह्मरुद्रेन्द्रपूर्वकैः।
अर्थितो व्यासतां प्राप्य केवलं तत्त्वनिर्णयम्॥
चकार पञ्चमं वेदं महाभारतसंज्ञितम् ।

'समस्त शास्त्रोंका निचोड़ भारत है। उसमें भगवद्गीता तथा श्रीविष्णुसहस्रनाम तो अत्यन्त ही श्रेष्ठ जिनके परिज्ञानसे मानव मुक्त हो जाता है। जब भार[illegible] समान ही कोई शास्त्र नहीं है, तब श्रीगीता तथा सहस्रना[illegible] तो बात ही क्या है। [सत्यलोकमें] वेदव्यासजीकी आज्ञासे सब देवताओंके सामने तराजूके एक पलड़ेपर भारत प्रतिनिधि एक मणि रक्खा गया तथा दूसरेपर उसी परिम[illegible] एवं वजनका दूसरा मणि वेदोंके प्रतिनिधिरूपमें रक्खा गया तौलनेपर महाभारतका पलड़ा भारी होनेके कारण नी[illegible] चला गया। इसीसे इसको महाभारत कहते हैं। इस प्रक[illegible] 'महाभारत' शब्दके अर्थको जाननेवाले महापातकोंसे छूट जा[illegible] हैं। केवल ब्रह्मरुद्रादि देवताओंकी प्रार्थनासे भगवा[illegible] नारायणने ही व्यासरूपसे अवतार धारण कर स्त्री-शूद्रादि सक[illegible] जनसाधारणको परम तत्त्वकी प्राप्ति करनेके लिये इ[illegible] इतिहास भारतरूपी पाँचवें वेदका निर्माण किया। ऐसे सर्वश्रे[illegible] ग्रन्थरत्नके निर्माता भगवान्‌के अतिरिक्त कौन हो सकते हैं? इस प्रकार अनेक अर्थपूर्ण बहुत प्रमाण होनेपर भी विस्तार-भयसे इस समय पाठकोंके सामने नहीं रख सकते।

अन्तमें इतनी सूचना विज्ञ वाचकोंको देना आवश्यक है कि भारतकी सर्वश्रेष्ठता इसलिये स्वीकार की जाती है कि वेदोंकी प्रवृत्ति जिस परमश्रेष्ठ उद्देश्यसे हुई है, वह श्रेष्ठतम उद्देश्य जिस प्रकार भारतसे पूर्ण होता है उस प्रकार अन्य

दादि ग्रन्थोंसे नहीं होता। वेदोंकी प्रवृत्तिका प्रधान उद्देश्य था—

अदुःखमितरत् सर्वं जीवा एव तु दुःखिनः ।
तेषां दुःखप्रहाणाय श्रुतिरेषा प्रवर्तते ॥

चेतनाहीन होनेके कारण जड पदार्थोंको एवं अपरिमित मङ्गल-ज्ञान-आनन्दशक्तिपूर्ण होनेके कारण परमात्माको दुःख-की प्रसक्ति ही नहीं है। केवल जीवोंको दुःखकी प्रसक्ति है और उनके दुःखोंका आत्यन्तिक नाश करनेके लिये ही वेदोंकी प्रवृत्ति है। वेदोंकी गहनार्थताके कारण यह सार्वजनीन आत्यन्तिक दुःखनाश वेदोंसे नहीं होता। वह भारतसे ही हो सकता है। इसीसे स्कान्दादि पुराणोंमें भारतकी वेदोंसे भी श्रेष्ठता वर्णन की है। जैसे—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥
वेदादपि परं चक्रे पञ्चमं वेदमुत्तमम्...... ।
भारतं चापि कृतवान् पञ्चमं वेदमुत्तमम् ॥
दशावरार्थं सर्वत्र केवलं विष्णुबोधकम् ।
परोक्षार्थं तु सर्वत्र वेदादप्युत्तमं च यत् ॥
—इत्यादि

अतएव अन्तमें उन कल्याणमय भगवान्से यही सविनय प्रार्थना करते हैं कि संसारके कल्याणार्थ प्रवृत्त परमकल्याण-स्वरूप भारतामृतके अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी दैवयोगसे अनायास प्राप्त सरल-सुबोध सुअवसरको व्यर्थ न करते हुए अमृत-पानका सौभाग्य सज्जनप्रेमी रसिक जनताको दें।

महाभारतका संक्षिप्त परिचय और उसकी महत्ता

(लेखक—श्री'राम')

महाभारत आर्ष-साहित्यका सबसे महान् ग्रन्थ है। विषय और कलेवर दोनों ही दृष्टियोंसे इसकी महत्ता सर्वमान्य है। समूचे भारतवर्षकी संस्कृति, सभ्यता अथवा आदर्शोंका प्राचीन चित्र देखना हो, तो वह महाभारतमें ही उपलब्ध हो सकता है। महाभारत एक अगाध महासागरके समान है। इसके भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनन्त उपदेशरत्न भरे पड़े हैं। संसारकी सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी रत्नाकरका एक जाज्वल्यमान रत्न है। यदि महाभारतको हम सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्र आदिका एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। ऐतिहासिक महत्त्व तो इसका सबसे बढ़कर है ही। भारतवर्ष-की पूर्वकालीन भौगोलिक परिस्थितिका भी स्पष्ट चित्रण इसमें देखनेको मिलता है। इसके सिवा ज्योतिष, राजनीति आदि अनेकों ज्ञातव्य विषयोंपर इसमें प्रकाश डाला गया है। इन सब कारणोंसे विद्वानोंका महाभारतके प्रति विशेष आदर है।

इसके निर्माता हैं भगवान् वेदव्यास। उन्होंने साठ लाख श्लोकोंकी महाभारतसंहिता बनायी थी।* उसमें एक ही ग्रन्थके छोटे-बड़े चार संस्करण थे। प्रत्येकमें संक्षेप या विस्तारके साथ महाभारतका सम्पूर्ण विषय आ गया था। इनमें पहला संस्करण तीस लाख श्लोकोंका था, जिसे नारदजीने देवलोकमें ले जाकर देवताओंको सुनाया था। पंद्रह लाख श्लोकोंका दूसरा संस्करण पितृलोकमें प्रचलित हुआ; उसके वक्ता थे देवल, असित और श्रोता पितृगण। तीसरे संस्करणमें चौदह लाख श्लोक थे; उसे शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षसोंको सुनाया था। एक लाख श्लोकोंके चतुर्थ संस्करणका प्रचार मनुष्यलोकमें हुआ। इसके वक्ता थे वैशम्पायन और श्रोता जनमेजय तथा उनके पार्श्ववर्ती ऋषि आदि।* जनमेजयके यहाँसे

* षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम् ।
(म० आदि० १।५)

* त्रिंशच्छतसहस्रं तु देवलोके प्रतिष्ठितम् ।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ॥ ६ ॥
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ।
नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् ॥ ७ ॥
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ।
असिस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान् ॥ ८ ॥
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः ।
एकं शतसहस्रं तु ······························ ॥ ९ ॥
(महा० आदि० १)

कथा सुननेके पश्चात् सौति उग्रश्रवाने नैमिषारण्यमें जाकर शौनकादि ऋषियोंको वही कथा सुनायी थी। व्यासजीने पूरे सौ पर्वोंमें महाभारत पूर्ण किया था, किन्तु उग्रश्रवाने नैमिषारण्यमें कथा सुनाते समय उन सौ पर्वोंको अठारह पर्वोंमें ही अन्तर्भूत करके सुनाया *। प्रायः सभी पुराणों और महाभारतको लोमहर्षण सूत अथवा उनके पुत्र उग्रश्रवाने ही सुनाया है। पहले लोमहर्षण ही ऋषियोंके सत्रमें पुराण सुनाया करते थे; किन्तु बलभद्रजी जब तीर्थयात्राके प्रसंगसे घूमते-घूमते नैमिषारण्यमें पहुँचे, तो उन्होंने सूतको ऋषियोंके समक्ष ऊँचे आसनपर बैठा देख अन्यायी समझकर मार डाला †। तबसे उनके पुत्र सौति उग्रश्रवा ही यह कार्य करने लगे। जनमेजयके महाभारत-श्रवणके समय लोमहर्षण सूत जीवित नहीं थे। जान पड़ता है सूत और सौतिके समयमें महर्षि व्यासजीने एक बार पुनः पुराणों और महाभारतका सम्पादन किया था। उस समयतक जो-जो पुराणोंके प्रमुख वक्ता और श्रोता हो चुके थे, उन सबके संवादको उन्होंने उसमें सम्मिलित कर लिया। उसके बाद पुराणोंकी श्लोक-संख्याको गिनकर प्रत्येक पुराणमें सभी पुराणोंका संक्षिप्त परिचय दे दिया। इसीलिये प्रायः सभी पुराण सूतके ही प्रवचनसे आरम्भ किये हुए देखे जाते हैं। महाभारतमें भी सौति-शौनक-संवाद और वैशम्पायन-जनमेजय-संवादको भगवान् व्यासने पुनः-सम्पादनके समयमें ही सम्मिलित किया होगा। फिर अनुक्रमणिकाध्याय और पर्व-संग्रह आदि देकर इसमें वर्णित विषयोंकी संक्षिप्त सूची और श्लोक-संख्या दे दी होगी। इससे महाभारतमें मिलावट आदि होनेकी आशङ्का प्रायः दूर हो गयी। अनुक्रमणिकाध्यायमें दी हुई सूचीके अनुसार महाभारतमें कुल १,९२३ अध्याय और ८४,२४४ श्लोक हैं। खिलपर्व हरिवंशके बारह हजार श्लोक और जोड़ लिये जायँ तो कुल ९६,२४४ श्लोक होते हैं। यही वर्तमान महाभारतकी श्लोक-संख्या है। प्रत्येक पर्वके अध्याय और श्लोकोंका विवरण निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाना जा सकता है—

पर्व	अध्याय	श्लोक
१ आदिपर्व	२२७	८८८४
२ सभापर्व	७८	२५११
३ वनपर्व	२६९	११६६४
४ विराटपर्व	६७	२०५०
५ उद्योगपर्व	१८६	६६९८
६ भीष्मपर्व	११७	५८८४
७ द्रोणपर्व	१७०	८९०९
८ कर्णपर्व	६९	४९६४
९ शल्यपर्व	५९	३२२०
१० सौप्तिकपर्व	१८	८७०
११ स्त्रीपर्व	२७	७७५
१२ शान्तिपर्व	३२९	१४७३२
१३ अनुशासनपर्व	१४६	८०००
१४ आश्वमेधिकपर्व	१०३	३३२०
१५ आश्रमवासिकपर्व	४२	११११
१६ मौसलपर्व	८	३२०
१७ महाप्रस्थानपर्व	३	१२३
१८ स्वर्गारोहणपर्व	५	२०९
योग	१९२३	८४२४४
१९ हरिवंश		१२०००
कुलयोग		९६२४४

आजकलकी कई प्रतियोंमें पूरे एक लाख तथा इससे अधिक श्लोक भी मिलते हैं। किन्तु महाभारतकी प्रामाणिक संख्या वही मानी जाती है, जो ऊपर दी गयी है। अस्तु, वर्तमान महाभारत ग्रन्थ लगभग एक लाख श्लोकोंका है, यह मान्यता प्राचीन कालसे चली आती है और महाभारतके अनुक्रमणिकाध्यायसे भी इसका समर्थन होता है। विभिन्न उपाख्यानोंसे युक्त यह लाख श्लोकोंवाला ग्रन्थ ही **आदिभारत** कहलाता है*। व्यासजीने उसीसे २४००० श्लोकोंको छाँटकर एक भारतसंहिता भी बनायी थी। इसमें केवल भरतवंशियोंकी कथा थी, दूसरे उपाख्यान नहीं लिये गये थे। यह

* एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ८३ ॥
यथावत् सूतपुत्रेण लौमहर्षणिना ततः।
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु ॥ ८४ ॥
(महा० आदि० २)

† देखिये श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध अ० ७८ श्लोक २२ से २८ तक।

* इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् ॥ १०१ ॥
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।

संहिता विद्वानोंमें 'भारत' के नामसे प्रसिद्ध थी * । आजकल इस नामकी कोई अलग पुस्तक नहीं उपलब्ध होती ।

कुछ लोगोंकी धारणा है कि महाभारतके तीन भाग हैं—जय, भारत और महाभारत । 'जय' व्यासका, 'भारत' वैशम्पायनका और महाभारत सौति उग्रश्रवाका बनाया हुआ है । 'जय' की श्लोक-संख्या कितनी है—इसको वे स्पष्टतया नहीं बताते, परन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहते हैं कि 'जय' को ही अपने श्लोकोंसे बढ़ाकर वैशम्पायनने चौबीस हजार श्लोकोंकी 'भारत-संहिता' बनायी । फिर उसमें बहुत-से नये-नये उपाख्यान जोड़कर सौतिने एक लाख श्लोकोंका महाभारत बना डाला । इस मतके अनुसार 'भारत' को महान् आकार देनेके कारण ही उसका नाम 'महाभारत' हुआ । साथ ही उनका यह भी कहना है कि व्यास, वैशम्पायन और सौति—ये तीनों व्यक्ति एक कालमें नहीं थे । वैशम्पायन व्यासके साक्षात् शिष्य नहीं थे, सम्भव है उनकी शिष्य-परम्परामें हुए हों । भारतवर्षकी ऐतिहासिक परिस्थितिका दिग्दर्शन कराते हुए वे लोग यह भी सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं कि शकसंवत्से तीन सौ वर्ष पहले, जब कि बौद्धों और जैनियोंका सनातनधर्मपर जोरदार आक्रमण हो रहा था, सौतिने महाभारतको वर्तमान रूप दिया ।

विचार करनेसे उपर्युक्त मान्यता ठीक नहीं जान पड़ती । महाभारतके सम्बन्धमें कुछ भी निर्णय करनेके लिये बाहरी प्रमाण ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है । उसके भीतर ही काफी सामग्री मौजूद है । पहले तो यही सिद्ध करना कठिन है कि जय, भारत और महाभारत तीन ग्रन्थ हैं । ऊपर बताया जा चुका है कि विविध उपाख्यानोंके साथ एक लाख श्लोकोंका जो ग्रन्थ है, वही आदिभारत है तथा उपाख्यानोंको छोड़कर जो चौबीस हजार श्लोकोंका संकलन हुआ, वह 'भारत' कहलाया । इस प्रकार आदिभारत या भारतमें कोई वास्तविक भेद नहीं सिद्ध होता । चौबीस हजार श्लोकोंका वह संक्षिप्त संस्करण भी वैशम्पायनजीने बनाया—यह महाभारतमें कहीं नहीं लिखा है । वहाँ जो 'चक्रे' क्रिया है, उसका कर्ता पूर्वके श्लोकमें 'द्वैपायनः' पद है; अतः उसका सम्पादन भी व्यासजीने ही किया । साथ ही, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि 'भारत' को बढ़ाकर 'महाभारत' नहीं बना, 'महाभारत' को ही घटाकर 'भारत' बना । अतः प्रथम रचना महाभारतकी ही है । 'आद्यं भारतम्' कहकर इसीकी पुष्टि की गयी है । अब यह देखना चाहिये कि एक लाख श्लोकोंका महाभारत व्यासने बनाया या सौतिने । तथा यह भी विचारणीय है कि जय और महाभारत एक हैं या दो । इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर वैशम्पायनजीके मुखसे सुनिये—

इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥१९॥
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ॥२०॥
(महा० आदि० ६२)

अर्थात् 'अमित तेजस्वी सत्यवतीनन्दन व्यासने इस लोकमें इन एक लाख श्लोकोंका निर्माण किया है । यह 'जय' नामक इतिहास है । विजयकी इच्छा रखनेवालोंको इसका श्रवण करना चाहिये ।' आगे यह भी कहा है कि व्यासजीने तीन वर्षतक लगातार परिश्रम करके इस अद्भुत उपाख्यान महाभारतको बनाया है—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥५२॥
(महा० आदि० ६२)

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि जय और महाभारत एक ही ग्रन्थके नाम हैं, 'भारत' इन्हींका संक्षिप्त रूप है और इनके कर्ता तीन नहीं, एकमात्र व्यासजी ही हैं । यदि पूर्वोक्त मतके अनुसार 'जय' को ही व्यासकृत मानें और उसे अलग ग्रन्थ समझ लें, तो प्रश्न यह होता है कि उसमें कितने श्लोक रहे होंगे । जिस तरह २४००० श्लोकोंको बढ़ाकर सौतिने एक लाख कर दिया, उसी प्रकार यदि वैशम्पायनने भी मूल ग्रन्थ 'जय' को बढ़ाकर २४००० श्लोकोंका 'भारत' बनाया हो तो 'जय' में कम-से-कम ५,००० और अधिक-से-अधिक दस या बारह हजार श्लोकोंके होनेका अनुमान किया जा सकता है । क्या यही ग्रन्थ व्यास-जैसे प्रतिभाशाली महर्षिने तीन वर्षमें बनाया ? बारह हजार श्लोकोंका ग्रन्थ स्वीकार करें, तो भी प्रतिदिन ग्यारह श्लोकका औसत पड़ता है । क्या इसीके लिये गणेशजी-जैसे लेखकको बुलानेकी आवश्यकता हुई ? मनुष्य दिनभरमें ग्यारह श्लोक भी नहीं लिख सकते थे ? आज भी कितने ही ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान् हैं, जो चाहें तो प्रतिदिन सौ श्लोकोंकी रचना कर सकते हैं । हम पहले कह आये हैं कि व्यासजीने साठ लाख श्लोकोंकी संहिता बनायी थी । उसी महान् ग्रन्थको लिपिबद्ध करनेके लिये गणेशजी-जैसे लेखककी आवश्यकता हुई और तभी उसकी

* चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ॥१०२॥
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।
(महा० आदि० १)

प्रतिलिपियाँ देवलोक, पितृलोक, गन्धर्वलोक तथा मनुष्यलोकमें भी शीघ्र सुलभ हो सकीं।

सौतिके बढ़ानेसे ही 'भारत' का नाम 'महाभारत' हो गया—यह कल्पना भी निराधार है। ग्रन्थमें ही 'महाभारत' शब्दकी जो व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं, उन्हींसे इसके 'महाभारत' नामकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। महाभारतको पञ्चम वेद माना गया है। कृष्णद्वैपायनद्वारा प्रकट होनेके कारण इसे 'कार्ष्णवेद' * भी कहते हैं। एक समय देवताओंने इस भारतको और चारों वेदोंको तराजूपर रखकर तौला; उस समय रहस्यसहित सम्पूर्ण वेदोंसे जब यह महान् सिद्ध हुआ, तो इसे महाभारत कहा जाने लगा। तुलापर रखनेसे यह महत्त्व और गुरुत्व दोनोंमें अधिक हो गया; अतः महान् और भारी होनेके कारण यह महाभारत कहलाता है †। इसमें भरतवंशी क्षत्रियोंके महान् वंशका वर्णन किया गया है, इसलिये भी इसे महाभारत कहते हैं। ‡

सौति और वैशम्पायन व्यासजीके समकालीन थे—यह बात जब महाभारतसे सिद्ध है, तो उन्हें अर्वाचीन बतलाना कैसे उचित हो सकता है? जनमेजयने जब व्यासजीसे कौरव-पाण्डवोंके वैमनस्यका कारण पूछा तो उन्होंने अपने पास ही बैठे हुए शिष्य वैशम्पायनको आज्ञा दी कि 'तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, वह सब जनमेजयको सुनाओ।' § इस प्रकार जिनका साक्षात् व्यासजीसे विद्याध्ययन करना प्रमाणित होता है, उन्हें अर्वाचीन और व्यासकी शिष्यपरम्पराके अन्तर्गत बतलाना किस अनुसन्धानका फल है—कहा नहीं जा सकता। जब सौति नैमिषारण्यमें स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'हम जनमेजयके सर्पसत्रसे महाभारतकी कथा सुनकर आ रहे हैं,' * तो केवल अनुमानके बलपर उन्हें शकसंवत्से तीन सौ वर्ष पूर्वका बताना कहाँकी बुद्धिमानी है? भगवान् शङ्कराचार्य भी धार्मिक संघर्षके समय ही अवतीर्ण हुए थे, उस समय भी बौद्धोंका जोर था। किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें वर्तमान पुराणों और महाभारतको उसी भाँति प्राचीन मानकर उनके प्रमाण उपस्थित किये हैं, जैसे आज हम मानते हैं। यदि उसी समय या उसके निकट कालमें ही पुराणों और महाभारतको वर्तमान रूप मिला होता तो कम-से-कम उनकी आस्था तो उनपर नहीं होनी चाहिये थी। यदि इन प्रमाणोंपर विश्वास न किया जाय तो समूचे महाभारतपर भी अविश्वास हो है। अतः केवल अनुमान या बहिरंग आधारोंपर महा अन्तरंग प्रमाणोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रत्येक ग्रन्थमें पहले उपक्रम या प्रस्तावनाका भाग करता है, उसके बाद ग्रन्थके मुख्य विषयका आरम्भ है। महाभारतके मुख्य विषयका आरम्भ किस अध्यायसे है, इस विषयमें मतभेद है। सौतिने तीन मतभेद बतला

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते॥
(महा० आदि० १।

अर्थात् कुछ लोग 'मनु' से महाभारतका आरम्भ मानते हैं। मनुके भी दो अर्थ लिये जाते हैं—मन्त्र और वै मनु। 'मन्त्र' अर्थ माननेवाले कहते हैं कि ग्रन्थके प्रार जो 'नारायणं नमस्कृत्य' अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदे मन्त्र दिया गया है, वहींसे ग्रन्थका आरम्भ म चाहिये। यही ठीक भी है। जो मनुसे 'वैवस्वत मनु ग्रहण करते हैं, उनके अनुसार आदिपर्वके प्रथम अध्य ४२वें श्लोकसे ग्रन्थारम्भ होता है। वहाँ विवस्वान्के 'दिवःपुत्र' का नाम आया है, जो 'वैवस्वत मनु'के न प्रसिद्ध हैं। दूसरे लोग आस्तीककी कथासे आरम्भ म हैं, यह कथा आदिपर्वके तेरहवें अध्यायसे आरम्भ होती अन्य विद्वान् राजा उपरिचरकी कथासे मुख्यतया ग्रन्थ आरम्भ स्वीकार करते हैं, उस कथाका प्रारम्भ आदिप ६३वें अध्यायसे होता है। इसका यह अभिप्राय नहीं समझ चाहिये कि जहाँसे मुख्यतया ग्रन्थका आरम्भ हुआ है व व्यासजीकी रचना है, उसके पहलेका अंश सौति या वैश यनका है। वैशम्पायन और सौतिका इस ग्रन्थके सम्पाद सहयोग होनेपर भी प्रधानता व्यासजीकी ही है।

* कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् ···। (महा० आदि० १। २६६)

† एकतश्चतुरो वेदा भारतं चैतदेकतः॥ २७१॥
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम्।
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा॥ २७२॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम्॥ २७३॥
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते॥ २७४॥
(महा० आदि० १)

‡ भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते॥ (महा० आदि० ६२।३९)

§ तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा।
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके॥ २१॥
कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत् पुरा।
तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि॥ २२॥
(महा० आदि० ६०)

* देखिये आदिपर्वका प्रथम अध्याय, श्लोक ९ से १६ तक।

महाभारतमें मुख्यतः किन-किन विषयोंका वर्णन है, इसका कुछ आभास पहले दिया जा चुका है। पूरा ज्ञान तो सम्पूर्ण महाभारतके पाठसे ही हो सकता है। फिर भी यदि पाठक संक्षेपसे सम्पूर्ण महाभारतके वर्णित विषयोंका दिग्दर्शन-मात्र चाहते हों तो आदिपर्वके आरम्भके दो अध्याय ध्यानसे पढ़ जायँ। इससे महाभारतके स्वरूपका बहुत कुछ परिचय मिल जायगा। स्वयं व्यासजीने ब्रह्माजीके प्रति जो इस ग्रन्थके विषयमें कहा है,* उसीका सारांश यहाँ दिया जा रहा है। व्यासजी कहते हैं—'मैंने इसमें वेदोंका रहस्य बतलाया है। वेदाङ्ग, उपनिषद् और वेदोंका विस्तार किया है। इतिहास और पुराणोंका विस्तृत वर्णन किया है। इसमें भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका वर्णन हुआ है। जरा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि भावोंके अभावका निश्चय किया गया है; इनके मिथ्यात्वका प्रतिपादन हुआ है। तीन प्रकारके धर्म और आश्रमोंका लक्षण बताया गया है। चारों वर्णोंकी उत्पत्ति तथा तप और ब्रह्मचर्यकी विधि बतायी गयी है। ग्रह, नक्षत्र, तारों तथा युगोंका प्रमाण, न्यायशिक्षा, चिकित्सा, दान, अन्तर्यामीका स्वरूप तथा दिव्य और मानव जन्मके कारण आदिका प्रतिपादन किया गया है। तीर्थ, नदी, पर्वत, वन, समुद्र और दिव्य नगरोंका वर्णन है। दुर्ग, सेना और व्यूह-रचनाकी विधियाँ तथा युद्धकी चतुराई बतलायी गयी है। नाना प्रकारकी जातियाँ और उनके बोलने-चालनेके ढंग बताये गये हैं। नीतिशास्त्रका वर्णन किया गया है तथा जो सर्वव्यापी परब्रह्म-तत्त्व है, उसका भी प्रतिपादन किया गया है।'

इन विषयोंकी परिगणनासे ग्रन्थकी महत्ता, गम्भीरता और उपादेयतामें कोई सन्देह नहीं रह जाता। उक्त विषयोंमेंसे किसका कहाँ वर्णन हुआ है, यह बतानेके लिये इस छोटे-से लेखमें स्थान नहीं है। महाभारतमें स्थान-स्थानपर इनका वर्णन मिलेगा, जिज्ञासुओंको वहींसे इनका रसास्वादन करना चाहिये।

महाभारत इतिहास तो है ही, अत्यन्त मनोरम काव्य भी है। स्वयं व्यासजीने ब्रह्माजीसे काव्य कहकर इसका परिचय दिया है—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।

ब्रह्माजीने भी इसका काव्यत्व स्वीकार किया है। वे कहते हैं—'व्यासजी! मैं जानता हूँ, जन्मसे ही आपकी वाणी ब्रह्मका प्रतिपादन करती है। आपने कभी असत्य-भाषण नहीं किया। जब आपने इसे 'काव्य' कह दिया, तो अवश्य ही यह 'काव्य' होगा। बड़े-बड़े कवि भी इस काव्यकी प्रशंसामें अपनेको असमर्थ पायेंगे।'

जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां ब्रह्मवादिनीम्।
त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात् काव्यं भविष्यति॥
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे।
(महा० आदि० १। ७२-७३)

यह बात बिल्कुल ठीक है। महाभारतमें वन, पर्वत, उद्यान, नदी, सरोवर, नगर तथा अन्यान्य रमणीय प्रदेशोंका इतना सरस और मनोरम वर्णन है, जिसे पढ़ते-पढ़ते किसी भी सहृदयका हृदय मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। विभिन्न उपाख्यानों और प्रसंगोंमें शृङ्गार, वीर, करुण, रौद्र, अद्भुत, भयानक, बीभत्स और शान्त—सभी रसोंकी अभिव्यञ्जनाएँ देखी जाती हैं। सहृदय पाठकोंको निरन्तर नवरसोंमें अवगाहन करानेवाला महाकाव्य महाभारतके समान शायद ही कोई होगा। संस्कृत-साहित्यके प्राचीन आचार्योंने काव्यगुणोंकी आलोचना करते समय महाभारतके अनेकों सुन्दर श्लोकोंको उदाहरणके रूपमें उद्धृत किया है। ध्वन्यालोकमें श्रीआनन्दवर्धनाचार्यने प्रबन्धव्यङ्ग्य संलक्ष्यक्रम ध्वनिके उदाहरणके रूपमें महाभारतके गृध्र-गोमायु-संवादका उल्लेख किया है। उनके परवर्ती आचार्य अभिनवगुप्तपाद, मम्मट और विश्वनाथ-पञ्चानन भट्ट आदिने भी इस संवादको अपने-अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किया है। रुद्रटके काव्यालङ्कारमें भी महाभारतके श्लोकका दृष्टान्त मिलता है। इतना ही नहीं, महाभारतमें इतनी सुन्दर कथाओंका सङ्कलन है, जिनपर स्वतन्त्र महाकाव्य बन सकते हैं। संस्कृतके तीन महाकाव्य किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित महाभारतकी ही कथावस्तुको लेकर निर्मित हुए हैं। महाकवि कालिदासका अभिज्ञान-शाकुन्तल, कविवर नारायणका वेणीसंहार तथा अन्यान्य कविवरोंके प्रभावती-परिणय और धनञ्जयविजय आदि अनेकों नाटकों तथा काव्योंकी आधारशिला महाभारतकी ही सुन्दर कथाएँ हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसी सुन्दर कथा नहीं है जो महाभारतके उपाख्यानोंमें न आ गयी हो—

अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
(महा० आदि० २। ३८८)

सभी अच्छे कवि महाभारतकी कथाका सहारा लेंगे, इसकी कथाके आधारपर काव्य लिखेंगे—'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते' (महा० आदि० २। ३८९)—यह

* देखिये महाभारत आदिपर्व अध्याय १ श्लोक ६२ से ७० तक।

भविष्योक्ति कितनी सच्ची है, यह ऊपरके दृष्टान्तोंसे स्पष्ट हो जाता है। इस महाभारत-काव्यका प्रधान रस है शान्तभक्ति या शान्तरस। यही अङ्गी रस है, सम्पूर्ण ग्रन्थके द्वारा इसीकी पुष्टि हुई है; दूसरे सभी रस अङ्गभूत हैं। इन अङ्गभूत रसोंमें वीररसकी प्रधानता है। इसमें वर्णित भीषण सङ्घर्ष तथा उसके परिणामको देखकर चित्तमें निर्वेद और वैराग्य आदिका सञ्चार होता है; अतः ये ही इसके सञ्चारी भाव हैं; 'शम' या शान्तरति स्थायी भाव है। इस शान्तरति-के आलम्बन हैं भगवान् श्रीकृष्ण।

आचार्य आनन्दवर्धनने ध्वन्यालोकके चतुर्थ उद्योतमें महाभारतकी काव्यदृष्टिसे आलोचना करते हुए लिखा है—

महाभारतेऽपि······वृष्णिपाण्डवविरसावसानवैमनस्य-दायिनीं समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजननतात्पर्यं प्राधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया विवक्षाविषयत्वेन सूचितः······काव्यनये तृष्णाक्षयसुखपरिपोषलक्षणः शान्तो रसो महाभारतस्याङ्गित्वेन विवक्षित इति सुप्रतिपादितम्। अत्यन्तसारभूतत्वाच्चायमर्थो व्यङ्ग्यत्वेनैव दर्शितो न तु वाच्यत्वेन। सारभूतो ह्यर्थः स्वशब्दानभिधेयत्वेन प्रकाशितः सुतरामेव शोभामावहति। प्रसिद्धिश्चेयमस्त्येव विदग्धविद्वत्परिषत्सु यदभिमततरं वस्तु व्यङ्ग्यत्वेन प्रकाशते न साक्षाच्छब्दवाच्यत्वेनैव।

अर्थात् 'महामुनि व्यासजीने महाभारतमें जो यदुवंशियों और पाण्डवोंके खेदजनक अन्तका वर्णन किया है, उससे चित्तमें निर्वेद पैदा होता है; संसारसे वैराग्य करानेके अभिप्रायसे ही इसका उल्लेख किया गया है। इसके द्वारा उन्होंने यह दिखाया है कि इस प्रबन्धका तात्पर्य वैराग्यमें है। इससे यह सूचित होता है कि वक्ताको इस ग्रन्थमें भगवत्प्राप्ति या मोक्षरूप परम पुरुषार्थ और शान्तरसको ही प्रधानरूपसे बतलाना अभीष्ट है। काव्यदृष्टिसे तृष्णाके अभावका जो सुख है, उसको पुष्ट करनेवाला शान्तरस ही महाभारतका अङ्गी (प्रधान) रस है—यह भलीभाँति बताया जा चुका है। ग्रन्थका सारभूत यह अर्थ वाच्यरूपसे स्पष्ट नहीं कहा गया है, अपि तु व्यङ्ग्यरूपसे सूचित किया गया है। सारभूत अर्थको उसके वाचक शब्दद्वारा न कहकर व्यङ्ग्यरूपसे प्रकाशित करनेमें ही उसकी अधिक शोभा है। सहृदय विद्वानोंकी मण्डलीमें यह प्रसिद्ध है ही कि वे अ अत्यन्त अभीष्ट वस्तुको संकेत या व्यञ्जनाद्वारा सूचित करते साक्षात् नाम लेकर नहीं बतलाते।' इससे भी पूर्व अभिप्रायकी ही पुष्टि होती है।

इस प्रकार इतिहास, अध्यात्मशास्त्र, धर्मशास्त्र त महाकाव्य—इन सभीके रूपमें महाभारतका स्वाध्याय वि जा सकता है। ऐसा सर्वगुणसम्पन्न साहित्य शायद ही दू होगा। आदिपर्व तथा स्वर्गारोहणपर्वमें इसके पाठकी ब भारी महिमा बतायी गयी है। पुष्कर समस्त तीर्थोंका रा है; उसमें स्नानसे बड़ा पुण्य होता है। परन्तु जो व्यासज मुखसे निकले हुए इस कल्याणकारी महाभारतको पढ़ते सुनते हैं, उन्हें पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेकी कोई आवश्यक नहीं रह जाती।* सायं-प्रातः महाभारतका पाठ करने मनुष्य रात-दिनके पापोंसे छुटकारा पा जाता है।† ए मनुष्य गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर प्रतिदिन सौ गौ वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको दान देता है, दूसरा प्रतिदि महाभारत सुनता है—इन दोनोंको बराबर ही फल मिल है।‡ महाभारत सुननेके बाद और कुछ सुनना अच्छा न लगता। भला, कोयलकी काकली सुनकर कौओंकी काँय-काँ कौन पसंद करेगा?§ जो विद्वान् पर्वके अवसरपर इसे सुनात है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होत है।× धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहं है, वह कहीं नहीं है।+

---

* द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च। यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन॥ (महा० आदि० २। ३९२)

† देखिये महाभारत आदि० अध्याय २, श्लोक ३९३-३९४।

‡ यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय। पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥ (महा० आदि० २। ३९५)

§ श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते। पुंस्कोकिलगिरं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव॥ ३८४॥ (महा० आदि० २)

× य इदं श्रावयेद् विद्वान् ब्राह्मणानिह पर्वसु। धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्म गच्छति शाश्वतम्॥ (महा० आदि० ६२। ३६)

\+ धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

महाभारत ग्रन्थका महत्त्व और उद्देश्य

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा 'सौरभ')

शताब्दियोंपर शताब्दियाँ व्यतीत होती जाती हैं, परन्तु रामायण और महाभारतका पवित्र स्रोत भारतमें नाममात्रको भी शुष्क नहीं होता। —रवीन्द्रनाथ।

विचारशील विद्वानोंकी दृष्टिमें इस समय भी भारतवर्ष सुन्दर, श्रेष्ठ, अभिनन्दनीय और विश्ववन्द्य है। इसका एकमात्र कारण उसका त्रैलोक्यवन्द्य साहित्य और मुख्यतः विशालकाय महाभारत-जैसे ग्रन्थ-रत्न ही हैं।

महाभारत अकेला ही काव्य, नाटक, चम्पू, इतिहास, दर्शन आदि सब कुछ है। यह पुरातत्त्व, विज्ञान, नृतत्त्व, समाज-तत्त्व, खगोल, भूगोल आदि शतशः विषयों और बुद्धि, विचार, कर्म, ज्ञान, भाव-भावना, उपासना आदि असंख्य तत्त्व-रत्नोंका उदधि—महोदधि है। साथ ही सहस्रों मानवीय क्रिया-कलापोंका मनोरंजक काव्यमय वर्णन, व्याख्यान, भाष्य और महाभाष्य है। इसका खुदका भी दावा है कि वह सर्वप्रधान काव्य, सब दर्शनोंका सार, स्मृति, इतिहास, चरित्र-चित्रणकी खान और पाँचवाँ वेद है। इसके सौ पर्वाध्याय जगतीतलकी सर्वोत्तम सौ समस्याओंके समाधान और अठारह पर्व मनुष्य-जीवनके उत्थान-पतनके अठारह सोपान हैं।

इतना ही नहीं, अपि तु यह परोक्ष एवं प्रत्यक्षरूपमें शाकुन्तल, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नलोदय आदि शतशः भारतीय एवं 'डायोनीसस आफ़ नन्स' आदि बीसियों पाश्चात्त्य साहित्यिक वस्तुओंका जनक और गीता-जैसे विश्वमान्य महातत्त्व और महादर्शनका उद्गमस्थान है। विशेषतः राजनीति, युद्धनीति और कार्य-सम्पादन-कलाका तो यह माना हुआ भंडार है।

फिर मानवीय, अतिमानवीय, प्राकृतिक, अतिप्राकृतिक, लौकिक, अतिलौकिक, पैशाचिक, अतिपैशाचिक, दैविक, अतिदैविक, भौतिक, अतिभौतिक, आध्यात्मिक, अत्याध्यात्मिक, स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वोंका विश्वकोष और अनन्त तात्त्विक गुत्थियों और रहस्योंका समाधान है। साथ ही न केवल लौकिक अपितु वैदिक साहित्यकी तुलनामें भी महत्त्वपूर्ण है। इस विषयमें इसकी अपनी उद्घोषणा है—

एकतश्चतुरो वेदा भारतञ्चैतदेकतः।
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम्॥
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्योऽभ्यधिकं यदा।
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते॥
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।

अनेक पाश्चात्त्य अन्वेषक विद्वानोंके भी महाभारत और उसके कर्त्ताके विषयमें अत्युच्च विचार हैं। उनका कथन है—

(१) महाभारतसे यह मालूम होता है कि महाभारतकार प्रकृतिके पूर्ण मर्मज्ञ हैं।

(२) महाभारत बुद्धि, सत्य, सत्य-प्रेम और जानकारीकी आश्चर्यजनक पुस्तक है।

(३) महाभारत आदर्शवादकी अक्षय खान है।

(४) महाभारत आर्य-जातिके आदर्श चरित्र और बौद्धिक योग्यताकी सुन्दर तस्वीर है।

(५) महाभारत आर्य-जातिके सदाचार और बुद्धिके द्वारा समस्त संसारकी आँखें खोलनेवाला है।

(६) महाभारत मानवीय प्रतिभाका सुन्दर और पवित्र उत्पादन है।

(७) महाभारत न केवल भारत प्रत्युत संसारके दूसरे देशोंके लिये भी महान् उपदेश है।

इन सबके बाद महाभारतकी एक महनीय महत्ता यह भी है कि ईश्वरावतार, वेदान्तकार, इतिहास-तत्त्वज्ञ, वेद-व्याख्याता, साथ ही तात्त्विक-अतितात्त्विक, सांसारिक-अतिसांसारिक, साहित्यिक-अतिसाहित्यिक बातोंके मर्मज्ञ, व्यष्टि-समष्टि-विज्ञानके विकासक, प्रकाशक और भाष्यकार कृष्णद्वैपायन-जैसे महामुनि इसके कर्त्ता हैं, जिनके सम्मुख जड-चेतनात्मक जगत्के भेदाभेद हस्तामलक-से हैं।

इसके साथ ही महाभारतकी एक अद्वितीय परम महत्ता यह भी है कि त्रैलोक्यवन्द्य महायोगी गीतोपदेशक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसके अन्यतम चरितनायक हैं, जिनके विषयमें प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद पाराशर-जैसे महर्षियों और विद्वानोंका मत है—

'श्रीकृष्ण प्रत्येक विषयके आचार्य और निर्भ्रान्त पुरुष हैं; प्रकृतिके स्वामी, स्थूल-सूक्ष्म जगत्के अधिनायक, मानव, अतिमानव और परमात्मरूप हैं; भौतिक, दैविक और

आध्यात्मिक विश्वके स्रष्टा, संचालक और अधिष्ठाता हैं। उनकी सम्पूर्ण शक्तियों और गोपज्ञानोंका विकास-प्रकाश पूर्णताको पहुँचा हुआ है। उनकी कायसम्पत्ति और गति-मति शत्रु-समूहको भी आकर्षित करनेवाली है और उनका युद्धकालीन गीतोपदेश आज भी संसारके साहित्यकी विभूति बना हुआ है। साथ ही उनके विचार और कृत्य भी त्रिकालाबाधित हैं। लौकिक जीवन-संग्रामकी दृष्टिसे भी वे सर्वोत्तम और अद्वितीय हैं। इस विषयमें उनका दावा है—

(१) सेनापतियोंमें स्कन्द उनका ही स्वरूप है।
(२) शस्त्रधारियोंमें राम वही हैं।
(३) जीतनेकी इच्छा करनेवालोंकी नीति वही हैं।
(४) प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव वही हैं।
(५) निश्चय करनेवालोंमें निश्चय उन्हींका रूप है।
(६) सात्त्विक पुरुषोंमें सात्त्विक गुण भी उन्हींका स्वरूप है।

महाभारत जीवन-संग्रामकी विद्याओंका शिक्षक है; अभ्युदय और निःश्रेयसके समन्वयद्वारा भगवद्भक्तिपुरःसर आर्योचित जीवन-मार्गको प्रशस्त करता है; प्रवृत्तिमय किन्तु निवृत्तिपरक राजमार्गपर जीवोंको ले जाना चाहता है; अपने शतशः कल्पित और ऐतिहासिक उपाख्यानोंद्वारा शान्ति और अशान्तिकालीन बातों, तत्त्वों और सिद्धान्तोंको हमारे सामने रखता है; आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक वस्तु-तत्त्वको समझाता है; युद्धकी शिक्षा देनेमें तो यह अद्वितीय है ही। इसकी घोषणा है कि जो नित्य ही इसका स्वाध्याय करता है, विजयश्री सदैव उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती है।

यह होनहार, नियति, ईश्वरेच्छा, साथ ही प्रयत्न, पुरुषार्थ और समारम्भ-जैसे पचासों गुह्य और जटिल तत्त्वोंकी समाधानात्मक सुन्दर व्याख्या हमारे सामने रखता है; साधारण-असाधारण, सैद्धान्तिक-क्रियात्मक ज्ञान-विज्ञान और सत्य-तथ्यका उपदेश देता है; प्रकृति-तत्त्व, जीव-तत्त्व और परमात्म-तत्त्वकी विवेचनाद्वारा संसारको तामसिक-राजसिक धरातलसे ऊपर उठाना चाहता है। पाप-पुण्यके परिणामोंको सामने रखकर विश्वको नैतिक, धार्मिक और आदर्शमय बनाना चाहता है; समाज-सेवा और तत्त्व-सेवाकी शिक्षा देकर समाजको समुन्नत करना चाहता है; मनस्तत्त्व और व्यवहार-तत्त्वके सुन्दर निदर्शनोंको समाजके सामने रखता है, और सबको यथाधिकार सब तरहकी कथा सुनाकर लोक-व्यवहारको सुव्यवस्थित करना चाहता है, किन्तु निम्नाङ्कित बातोंपर अ ज़ोर देता है—

क. (१) जीवन-संग्रामका परिष्कार।
(२) यौद्धिक तत्त्वोंका समादर।
(३) शस्त्र और शास्त्रधर्मका माहात्म्य।
(४) समयकी महिमा।
(५) ऐतिहासिक प्रवचनके लाभ।

ख. (१) नर-नारायणके सम्बन्धका महत्त्व।
(२) धर्माधर्मका विवेक।
(३) वर्णाश्रम-धर्मका पालन।
(४) जनता-जनार्दनकी सेवा।
(५) प्रवृत्ति-निवृत्तिका सामञ्जस्य।

ग. (१) हठवादके दुष्परिणाम।
(२) कौटुम्बिक कलहकी निन्दा।
(३) सतीत्व-धर्मकी रक्षा।
(४) वंश-रक्षाका ध्यान।
(५) मानव-धर्म-विवेचन।

इन बातोंके साथ-साथ आर्योचित जीवनकी दार्शनि प्रवृत्ति, परिणामदर्शिता, प्रगति-विवेक, सहिष्णुता-माहात्म्य धर्म-तत्त्व और आविष्कारकी शक्ति आदि जीवनोपयोगी तत्त्व और साधनोंका यह प्रतिपादक, विवेचक, उपदेष्टा और ए तरहसे प्रतीक ही है। यदि संक्षेपमें कहना हो तो यौद्धि तत्परता और कर्म-महिमाका गान ही इसका सर्वोच्च उद्देश है। परन्तु मोक्ष-धर्म और नारायण-माहात्म्यके वर्णनमें ह इसका अवसान है। वैसे तो इसका एक-एक शब्द और पद प्रत्यय अनन्त बातों और उद्देश्योंसे परिपूर्ण है; परन्तु इसवे अठारह पर्व, सौ पर्वाध्याय और तत्समवेत जीवन ही इसक मुख्यतम, अन्यतम और सर्वोत्तम उद्देश्य है। वैसे इसके सारका सार, उद्देश्यका उद्देश्य तो गीता-धर्म ही है परन्तु व्यष्टि-समष्टिसम्बन्धी सम्पूर्ण तत्त्व-समूहका उपदेश देना और यथाधिकार अनन्त मार्गोंका दिग्दर्शन कराना ही इसका विशेष उद्देश्य है। इस दृष्टिसे महाभारतका एकान्त और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य सम्पूर्णताका प्रदान ही है। यही कारण है कि यह अथसे इतितक गणनातीत किन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों, लक्ष्यों और उद्देश्योंको हमारे सामने रखता है। परन्तु ऐसे विद्वानोंकी भी कमी नहीं है, जिनकी दृष्टिमें युद्ध एवं तत्संलग्न जातियों और व्यक्तियोंके चरित्र-चित्रणके द्वारा युद्धसम्बन्धी हानि-लाभोंको समझाना ही इसका महतो महीयान् उद्देश्य है।

महाभारतमें यान्त्रिक पोत एवं विमान

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र एम्. ए., बी. एल्.)

पुण्यभूमि भारतवर्षका एक गौरवपूर्ण युग वह भी था, जब कि यहाँ बसनेवाली आर्यजाति केवल समुद्रयात्रा ही नहीं करती थी बल्कि उसने भारत-महासागरके तटप्रदेशमें तथा विदेशोंमें उपनिवेश भी स्थापित किये थे और उनपर अपना आधिपत्य कायम किया था। अतिप्राचीन कालसे बारहवीं शताब्दीपर्यन्त आर्यलोग समुद्र-पथसे भ्रमण किया करते थे। इसके बाद जब देशपर यवनोंका अधिकार होना आरम्भ हुआ, तभीसे हिंदुओंके लिये समुद्रयात्रा निषिद्ध कर दी गयी। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् डा० बुहलरने हिंदूशास्त्रोंकी आलोचना करके समुद्रयात्राके सम्बन्धमें लिखा है—

"During the time when Hindu rulers were strong, travelling beyond the sea and living in foreign countries was not forbidden. Numerous Sanskrit inscriptions in Champa, Kamboja, in Java and Sumatra tell us that Hindus conquered these countries, and held them from the second century of the Christian era downwards until the 12th century. Temples of Śiva and Viṣṇu were built there, the Vedas, the Purāṇas and the *Bhārata* were recited in these distant regions; among settlers were numerous Brahmins."—Dr. Buhler in the Bombay Gazette, 1890.*

महाभारत-कालमें भी भारतीय वणिक् सामुद्रिक वाणिज्य-द्वारा विशेष लाभवान् एवं महाधनवान् हो गये थे। विशेष धन-लाभके लिये ही वे असीम साहस दिखलाकर सामुद्रिक वाणिज्यमें अग्रसर हुए थे, इसका प्रमाण भी महाभारतमें मिलता है। (क) उन्हें समुद्रयात्रामें अनेक विपत्तियोंका सामना करना पड़ता था और एक द्वीपमें जाते हुए नावके भग्न हो जानेपर अन्य द्वीपमें पहुँचकर उनकी प्राण-रक्षा होती थी। (ख) इस समय भी जिस प्रकार एक जहाजके भग्न हो जानेपर समीपवर्ती दूसरे जहाजके नाविक भग्न जहाजके यात्रियोंको अपने जहाजमें शरण देकर उनकी प्राणरक्षा करते हैं, उसी प्रकार उस युगमें भी होता था। (ग)

महाभारतके समयमें हमें 'यन्त्रयुक्त' पोतका भी सन्धान मिलता है। जतुगृहदाहके समय कुन्तीके साथ पञ्च-पाण्डवोंकी रक्षा करनेके लिये विदुरने गुप्तभावसे जो नौका भेजी थी, वह 'मनोमारुतगामिनी', 'सर्ववातसहा', 'पताकिनी' एवं 'यन्त्रयुक्ता' कहकर विशेषित हुई है। (घ) बहुत संभव है कि इस प्रकारके 'सर्ववातसह', 'मनोमारुतगामी' पोतपर चढ़कर ही भारतीय आर्य वणिक् भारत-महासागर एवं प्रशान्त-महासागरकी यात्रा किया करते थे। जिन सब पोतों-पर आरोहण करके वणिक्गण समुद्रयात्रा करते थे, उनमें एक प्रकारके पोतको 'यानपात्र' या 'यानपात्रक' कहते थे। इसी 'यानपात्र' को आज भी चीनीलोग 'यानक' नामसे व्यवहार करते हैं। (ङ)

महाभारतकालीन 'मनोमारुतगामिनी', 'सर्ववातसहा', 'यन्त्रयुक्ता' नौकाकी बात सुनकर बहुत-से पाठक आश्चर्य करेंगे। किन्तु इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। 'रामायण' में पुष्पक विमानकी बात प्रायः सब लोग जानते हैं। भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण, सीता और वानर-

---

* जब हिंदू राजा बलवान् थे, उन दिनों समुद्रयात्रा तथा भारतेतर देशोंमें रहना निषिद्ध नहीं था। चम्पा, कम्बोज, जावा और सुमात्रामें अनेकों ऐसे संस्कृतके शिलालेख मिलते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि हिंदुओंने इन देशोंको जीतकर ईसवी सन्‌की दूसरी शताब्दीसे लेकर बारहवीं शताब्दीतक अपने अधीन रक्खा था। वहाँ शिव और विष्णुके मन्दिर बनवाये गये थे और इन सुदूर देशोंमें वेद-पाठ तथा पुराण और महाभारतकी कथाएँ होती थीं। वहाँ जो लोग जाकर बसे थे, उनमें बहुत-से ब्राह्मण भी थे।

(क) वणिग् यथा समुद्राद् वै यथार्थं लभते धनम्।
तथा मर्त्यार्णवे जन्तोः कर्मविज्ञानतो गतिः ॥(शान्तिपर्व)

(ख) भिन्ननौका यथा राजन् द्वीपमासाद्य निर्वृताः।
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ॥(द्रोणपर्व)
'विष्वग् वातहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे।'
वणिजो नावि भिन्नायामगाधे ह्यप्लवा यथा।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ॥(कर्णपर्व)

(ग) निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणिजो यथार्णवात्।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥
(कर्णपर्व)

(घ) ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा।
पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विस्रम्भिभिः कृताम् ॥
—आदिपर्व

(ङ) Chinese 'Junk'

सैन्यके साथ उस पुष्पक रथपर सवार होकर सुदूर लंकासे अयोध्या आये थे। वह विमान या वैहायस यानके रूपमें परिचित था। इस पुष्पक विमानको लोग कवि-कल्पना समझते थे, किन्तु यूरोपमें अब वायुयानका बहुत प्रचार होनेसे पुष्पक विमानको कवि-कल्पना कहना उचित नहीं कहा जा सकता। विश्वकर्माद्वारा रचित शिल्पशास्त्रमें पुष्पकनिर्माणका प्रसंग आया है। इसके अनुसार विश्वकर्माने ही सबसे पहले इस यानका निर्माण किया था। 'वह बाष्पयोगसे चालित, अविच्छेद गतियुक्त, वायुवत् कामगामी एवं नाना उपकरण-युक्त था।' (च) महाभारतमें शाल्वराजके वैहायस यानका भी उल्लेख है। विश्वकर्मा-रचित शिल्पसंहितामें लिखा है कि वृष्णिवंशके साथ वैरका बदला लेनेके लिये राजा शाल्वने 'तमोधाम' 'कामग' यान प्रस्तुत कराया था—जो इच्छानुसार भूमि, आकाश, गिरिशिखर एवं जलमें चल सकता था। (छ)

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि प्राचीन कालसे ही भारतवासी नाना प्रकारके बाष्प-चलित पोतों एवं विमानोंका व्यवहार जानते थे, किन्तु उस समय बहुव्यय-साध्य होनेके कारण जनसाधारणमें इनका व्यवहार प्रचलित नहीं हुआ था। भारतीय वणिक् यन्त्रयुक्त एवं सर्ववातसह पोत लेकर सुदूर देशोंमें वाणिज्यके लिये जाया करते थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अतिप्राचीन कालसे ही भारतवासी पोतनिर्माण एवं पोतपरिचालन-विद्यासे विशेष अभिज्ञ थे। तभी तो आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व चीनसम्राट्द्वारा वे नौवाणिज्य-रक्षामें एवं नौकाध्यक्षके पदपर नियुक्त हुए थे।

महाभारत

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या)

रामायण और महाभारत—प्रधानतः इन दोनोंकी कथाओंपर ही भारतीय कवियोंने अपने काव्योंकी सृष्टि की है; ये दोनों भारतीय साहित्यके प्राण हैं। रामायणमें मुख्यतः एक व्यक्तिकी जीवनकथा है; लेकिन महाभारत तो आर्य-जगत्का इतिहास है, जिसमें सभी उल्लेखनीय व्यक्तियोंके वृत्तान्त हैं। भले और बुरे दोनों प्रकारके मानवोंका—भलाई और बुराई दोनोंके उत्कृष्ट उदाहरणों एवं परिणामोंका—वर्णन होनेसे महाभारत आर्यसंस्कृतिका भी इतिहास है। इसके शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व एवं अति लघुकलेवर किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भगवद्गीता तो धर्म, कर्म और नीतिके ज्ञानके लिये प्रदीपके समान कार्य करते आ रहे हैं और करते रहेंगे। महा-भारतका शेष भाग इन्हीं तीनोंका दृष्टान्तरूप कहा जा सकता है।

यों तो महाभारतकी शिक्षाओंका पार नहीं है, लेकिन सर्वसाधारणकी अपेक्षासे दृष्टि तीन बातोंकी ओर विशेषरूपसे आकर्षित होती है। पहली बात है कौटुम्बिक कलह तथा गृहलक्ष्मीके अपमानका दुष्परिणाम। रामायणकी कथा भी कौटुम्बिक कलह तथा नारीके अपमानपर ही केन्द्रित है। लेकिन एकमें वह अपमान विजातीयके द्वारा है, तो दूसरेमें स्वकुटुम्बीके द्वारा ही। एकमें जहाँ राम और भरत दोनोंकी त्याग-भावनाने पारिवारिक कलहको मिटाकर खुदको तथा कुटुम्बको अनन्त कालके लिये गौरवशाली बना दिया है, तो दूसरेमें दुर्योधनके अत्यधिक लोभ एवं अनुचित स्वार्थने कुटुम्बका नाश कर दिया।

महाभारतमें युद्ध-कथा है, यहाँतक कि 'महाभारत' शब्द ही युद्धका पर्यायवाची बन गया है। लेकिन वस्तुतः महाभारत-में युद्धकी प्रशंसा नहीं बल्कि उसकी बीभत्सताका निरूपण है।

सबसे मुख्य तो है महाभारतमें जूएकी बुराई। वनवास रामायण और महाभारत दोनोंमें है; लेकिन वहाँ वह गौरवमय है, तो यहाँ जूएकी बुराईका मूर्तिमान् रूप।

सट्टा, स्टाक एक्सचेंज आदि भी—जिनमें वर्तमान जगत्के अनेक आर्थिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनैतिक दुःखोंका कारण निहित है—जूएके ही रूपान्तर हैं। भागवतमें जो कलियुगके आवासस्थान गिनाये गये हैं, उनकी और उनमेंसे अन्य सबके सिरमौर एवं मूलभूत जूएकी बुराइयोंको कलियुग-के मनुष्योंको बताना क्या महाभारतका प्रधान लक्ष्य नहीं है? गीताके अनुसार भी छल करनेवालोंमें जूआ ही मुख्य है।

रामायणमें आर्य-सभ्यताके उत्कर्षका चित्र है तो महाभारतमें उसके पतनका, उसकी हीनावस्थाका—जिसे कुछ असाधारण व्यक्तियोंके श्रेष्ठ गुण भी कम नहीं कर सके। क्या वर्तमान पतित भारत महाभारतसे देश, जाति एवं कुटुम्बके पतनके कारणोंको जानकर उनसे लाभ उठायेगा

(च) बाष्पयोगे तु वै यानं चकार विधिनन्दनः। अविच्छेदगतिर्यस्य वायुवत् कामगामिनम्॥
नानोपकरणैर्युक्तं भास्वन्तं पुष्पकं विदुः॥ (शिल्पसंहिता)

(छ) स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम्। ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन्॥
क्वचिद् भूमौ क्वचिद् व्योम्नि गिरिशृङ्गे जले क्वचित्॥ (शिल्पसंहिता)

महाभारतके अध्ययनकी एक दृष्टि

(लेखक—पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

१—महाभारतका महत्त्व

महाभारत इतिहास है और काव्य भी है। इसलिये केवल इतिहास और केवल काव्यकी अपेक्षा इसका महत्त्व अधिक है। महाभारत ऐतिहासिक काव्य है और हमारा 'राष्ट्रीय महाकाव्य' है; इससे हमारे लिये यह विशेष उपयोगी और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।

(श्रीमद्भागवत)

भारत अथवा महाभारतके मिषसे भगवान् वेदव्यासजीने वेदका ही आशय जनताको दर्शाया है। वेदका आशय जनताकी समझमें नहीं आता, अथवा जनताकी बुद्धिका इतना ह्रास हो चुका था कि वह वेदविद्याका ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं थी; इसलिये ऐतिहासिक कथाओंके रूपमें वेदका आदेश जनताको समझानेके लिये भगवान् वेदव्यासजीने महाभारतकी रचना की थी। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत जैसा 'इतिहास' है और 'काव्य' है, वैसा ही 'वैदिक धर्म' का भी महान् ग्रन्थ है; इसीलिये इसको पञ्चम वेद कहते हैं।

अतएव महाभारतका अध्ययन इतिहास समझकर करना चाहिये, काव्यकी दृष्टिसे इसका अध्ययन होना चाहिये और वैदिक धर्मकी दृष्टिसे भी इसका अध्ययन होना उचित है। यह शोककी बात है कि महाभारत ग्रन्थके ऊपर भारतीयोंकी इतनी श्रद्धा होनेपर भी वैदिक धर्मका यह ग्रन्थ है, ऐसा मानकर अध्ययन करने योग्य इस ग्रन्थका मुद्रण आजतक किसीने किया नहीं।

महाभारतके जिन श्लोकोंका सम्बन्ध वेदके जिन मन्त्रोंके साथ है, वे मन्त्र उसी पृष्ठपर उन श्लोकोंके नीचे टिप्पणीमें देने चाहिये और वेदमन्त्रोंका आशय दर्शानेके लिये महाभारतकी रचना श्रीव्यासजीके द्वारा हुई है, यह सिद्ध होना चाहिये। महाभारतका यदि कोई विद्वान् ऐसा सम्पादन करेगा, तो महाभारतका धर्मदृष्टिसे अध्ययन होनेमें सुविधा होगी। ऐसा सम्पादन होना अत्यन्त आवश्यक है, यह बात हम यहाँ प्रमुखतया पाठकोंके सामने रखना चाहते हैं।

इतिहासकी दृष्टिसे महाभारतका अध्ययन होनेके लिये भी महाभारतका इस प्रकार सम्पादन करना चाहिये कि जिसमें महाभारतकी प्रत्येक कथाकी टिप्पणीमें उस कथाका जो रूप अन्यान्य पुराणों एवं उपपुराणोंमें आया हो, वह मिल जाय। अर्थात् एक ही महाभारतका ग्रन्थ देखनेसे आर्योंका सम्पूर्ण इतिहास पढ़नेवालोंके सामने उपस्थित हो जाय। इस तरह विचार करनेपर यह बात पाठकोंके सामने स्पष्ट होगी कि महाभारतके ऐसे दो ग्रन्थ तैयार होने चाहिये, जिनमेंसे एकमें इसके समान आशयवाले वेदमन्त्र दिये गये हों और दूसरेमें पुराणोपपुराणमेंसे संकलित कथाभाग हो।

यह कार्य बड़े व्ययका और बड़े कष्टका है; पर भारतीयोंके गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहासका सम्पूर्ण अन्वेषण होनेके लिये तथा हमारे सर्वोत्तम वैदिक धर्मका ज्ञान होनेके लिये, इसके करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

२—महाभारतमें प्रक्षेप

बहुत-से सुविज्ञ लोग आजकल यह कहते हैं कि महाभारतमें बहुत ही प्रक्षेप हुए हैं। कम-से-कम (१) 'जय' इतिहास, (२) 'भारत' और (३) 'महाभारत'—ऐसे तीन ग्रन्थ तो एक-से-एक बढ़े हुए हैं, ऐसा इन विद्वानोंका कथन है। जय-इतिहास ८००० श्लोकोंका था, उसीसे भारत २४००० श्लोकोंका बनाया गया और इसके पश्चात् एक लाख श्लोकोंका यह महाभारत बना—ऐसा इन विद्वानोंका आग्रहसे कहना है।

इनका कहना ठीक है। पर इसमें एक बड़ी कठिनता है कि आजतक इतने ग्रन्थोंकी खोज हुई, और इतने प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं; पर किसी भी स्थानपर 'जय' इतिहास, अथवा 'भारत' ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ। यह एक आश्चर्यकी घटना है। पर इसपर हम यहाँ अधिक विचार करना नहीं चाहते। हम मान लेते हैं कि उक्त कथनके अनुसार महाभारतके तीन संस्करण एकसे एक बढ़कर हुए थे और महाभारतमें समय-समयपर प्रक्षेप भी होते रहे हैं। इस तरह ग्रन्थका वर्धन होना बुरा है वा अच्छा है, इतना ही हमें यहाँ देखना है।

भगवान् वेदव्यासजीने जनताको वेदका ज्ञान देनेके लिये 'भारत' नामक ग्रन्थकी रचना की। इसका जो ढाँचा भगवान् व्यासदेवजीने बनाया था, वह उन्हींके शब्दोंमें देखिये—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ।
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया ॥८६॥
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ।
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निमिषं च यत् ॥८७॥
चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः ।
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह ॥९१॥
न्यायशिक्षा चिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा ।
तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम् ।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च ॥९३॥
(म० भा० आदि० अ० १)

व्यास कहते हैं कि 'मैंने इस महाभारतमें वेदका रहस्य, उपनिषदोंका सार, वेदोंका विस्तार, इतिहास और पुराणोंका उन्मेष और निमेष, चातुर्वर्ण्यका धर्म, पुराणोंका आशय, ग्रह-नक्षत्र-तारा आदिका प्रमाण, न्यायशिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपत, तीर्थों और पुण्यदेशोंका वर्णन, तथा नदियों, पर्वतों, वनों और सागरोंका वर्णन किया है ।'

'जो कुछ भी इस विश्वमें जानने योग्य है, वह सब मैंने इस महाभारतमें संगृहीत किया है ।' यह है भगवान् व्यासदेवकी प्रतिज्ञा । इससे यह महाभारत 'विश्वकोश' (Encyclopedia, सारसंग्रह, सर्वशास्त्रसंग्रह) है, ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है ।

अर्थात् महाभारत काव्य है, इतिहास है, धर्मग्रन्थ है और सर्वशास्त्रसंग्रह-ग्रन्थ (Encyclopedia) भी है । भगवान् व्यासदेवजीने महाभारतका जो ढाँचा बनाया था, वह 'सर्वशास्त्रसंग्रह' ग्रन्थका ढाँचा था । यदि यह सच है, तो ऐसे ग्रन्थमें बार-बार नये-नये शास्त्रोंका जोड़ा जाना योग्य ही नहीं, आवश्यक भी है ।

उदाहरणके लिये आप Encyclopedia Britannica (ब्रिटेनका विश्वकोश) देखिये । इसके अबतक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और प्रथम बारके ग्रन्थकी अपेक्षा दशम बारके ग्रन्थमें सहस्रों पृष्ठोंका विषय और जोड़ा गया है। पर कोई विद्वान् इस 'भरती' को घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता, प्रत्युत सभी कोई नये-से-नये संस्करणको ही देखना पसंद करते हैं। क्योंकि Encyclopedia ग्रन्थका ढाँचा ही ऐसा होता है कि उसमें समय-समयपर नये-नये विषय जोड़े जाते रहें । यही इसका निज स्वभाव है ।

महाभारत भी आर्योंका Encyclopedia ही है भगवान् व्यासदेवजीने इसकी रचना करनेके समय इ 'सर्वशास्त्र-संग्रह-ग्रंथ' ही बनानेकी कल्पना अपने साम रक्खी थी । वह बात वैशम्पायन और सौतिको मालूम थी अतः इन दोनों विद्वानोंने श्रीव्यासदेवजीकी मूल कल्पनाके अपने सम्मुख रखकर, अपने समयतकके ज्ञानका संग्रह उस कर दिया । सबसे प्रथम सम्पादक व्यास थे । व्यासदेवजीने अपने समयके शास्त्रोंका संग्रह इसमें किया । पीछेके दोनों सम्पादकोंने अपने-अपने समयतकके सब शास्त्रोंका संग्रह इसमें किया । जिस तरह Encyclopedia Britannica दस संस्करणोंतक बढ़ता गया, वैसे ही महाभारत तीन संस्करणों तक बढ़ता गया । और यदि व्यास-जैसी योग्यतावाले विद्वान आगे होते, तो यह ग्रन्थ और भी बढ़ जाता; क्योंकि समय-समयपर नाना शास्त्रोंका संग्रह इसमें सम्मिलित होता रहे, ऐसी योजनासे ही यह ग्रन्थ प्रथमसे रचा गया था ।

अर्थात् इस समय वेदव्यास रहते तो महाभारतमें विद्युत्, स्टीम-एंजिन, रेडियो, बिना तारके तार, मोटर, विमान आदि सब विद्याओंका संग्रह करते और वैसा करना किसी प्रकारका दोष नहीं था; क्योंकि प्रथमसे इस ग्रन्थकी योजना ही ऐसी थी।

जैसा महाभारत 'सर्वसंग्रह' है, वैसा ही 'अग्निपुराण' भी सर्वसंग्रह ग्रन्थ है और कई अन्य ग्रन्थ भी वैसे हैं। ये ग्रन्थ भारतीय Encyclopedia हैं और समय-समयपर भरती होना इनका निजस्वरूप ही है । हाँ, भरती करनेवाला सम्पादक व्यास-जैसा विशेष योग्यतावाला होना चाहिये। भरती करनेका अधिकार हर कोईको नहीं है । पर इस ग्रन्थका निजधर्म भरतीको सहना है ।

जो लोग महाभारतमें हुई तीन बारकी भरतीको बुरा मानते हैं, वे इस ग्रन्थकी मूल आयोजना देखें और इसकी 'सर्वसंग्रहता' को ध्यानमें धारण करें तो वे ही स्वयं कहने लगेंगे कि समय-समयपर नये-नये शास्त्रोंकी इसमें भरती होना इसका स्वभावधर्म ही है ।

३—एन्साइक्लोपीडिया और महाभारतमें भेद

यहाँ हमने बताया कि महाभारत Encyclopedia अर्थात् 'संग्रहग्रन्थ' है । पर आजकलके संग्रहग्रन्थमें और व्यासप्रणीत इस संग्रहग्रन्थ (महाभारत) में बड़ा भारी भेद है । वह भेद यह है—

कोई भी मनुष्य Encyclopedia Britannica

को आदिसे अन्ततक पढ़नेका यत्न नहीं करता। और कोई करे, तो उसको पढ़नेमें कभी रस भी नहीं आवेगा। पर यह महाभारत संग्रहग्रन्थ ऐसा है कि वह आद्योपान्त पढ़ा जाता है, रसके साथ पढ़ा जाता है और साथ-साथ पढ़नेवालेको विविध शास्त्रोंका बोध भी प्राप्त होता है। अर्थात् महाभारत 'जीवित संग्रहग्रन्थ' है और आजकलके Encyclopedia मृतवत् रसरहित शुष्क संग्रहग्रन्थ हैं। यह भेद देखने योग्य है।

महाभारतको जीवित रसमय 'सर्वशास्त्रसंग्रहग्रन्थ' बनानेके लिये भगवान् श्रीव्यासदेवजीने भारतराष्ट्रकी माननीय वीर विभूतियोंका जीवन-चरित्र बुनियाद (Base) के रूपमें लिया है। और इस चरित्रके आधारपर ऐसी युक्तिसे अन्यान्य शास्त्रोंका उसमें समावेश किया है कि वे बड़ी ही सुन्दर, सुयोग्य रीतिसे सज गये हैं। जैसे सुवर्णके गहनेमें यथास्थान रत्न जड़े हों। तीनों सम्पादकोंका यह चातुर्य वर्णनीय है। इतने बड़े ग्रन्थका तीन बार संस्करण होनेपर भी काव्यरसको अखण्डरूपमें रखते हुए, इसमें सब शास्त्रोंका संग्रह अविकलरूपसे किया गया है—यह एक सम्पादकीय चातुर्यकी अद्भुतता है!

कुछ लोग दो-चार प्रसङ्ग ऐसे बताते हैं कि जो उनके मतसे प्रकरणहीन हैं और विरूप-जैसे दीखते हैं। हम इनकी युक्तायुक्तताका विचार यहाँ करना नहीं चाहते, परन्तु उक्त बात सत्य मानकर यही कहना चाहते हैं कि एक लाख श्लोकोंके प्रचण्ड ग्रन्थमें ऐसे दो-चार उदाहरण मिल भी जायँ तो वे क्षम्य ही हैं।

काव्यपूर्ण रसमयी Encyclopedia बनानेका श्रेय भारतीयोंने प्राप्त किया है, और उसमें इतिहासको भी सम्मिलित करना उनके अद्भुत सम्पादन-कौशलका निःसन्देह साक्षी है।

ऐसे अद्भुत महाभारत ग्रन्थका इतिहास, काव्य, वैदिक धर्म और शास्त्रसंग्रहकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। इस तरहका विचार इस समयतक नहीं हुआ है। इस तरहका विचार करनेके लिये आवश्यक टिप्पणियोंके साथ महाभारतका मुद्रण भी इस समयतक किसीने किया नहीं है।

४-जीवनका तत्त्वज्ञान

महाभारतको ऊपर-ऊपर देखनेसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस ग्रन्थमें धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह, विदुर, दुर्योधन आदिके जीवनके तत्त्वज्ञान विभिन्न थे। जिस तरह आजके युगमें हिटलर, मुसोलिनी, स्टैलिन, रूज़वेल्ट, चर्चिल, तोजो, चंकैशेक तथा महात्मा गांधीजीके जीवनके तत्त्वज्ञानोंमें भिन्नता है। इस विभिन्नताका परिणाम आजकी जनतापर हम देख रहे हैं। इसी तरह धर्मराज आदि तत्कालीन वीर पुरुषोंके जीवनके तत्त्वज्ञानका परिणाम उस समयकी जनतापर हुआ था। इसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इनमेंसे प्रत्येक व्यक्तिके जीवनके तत्त्वज्ञानका परिचय प्राप्त करना चाहिये।

पर ऐसे ग्रन्थ महाभारतका अध्ययन करके अभीतक किसीने लिखे ही नहीं हैं। भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्वज्ञान गीता ग्रन्थके रूपसे हमारे पास है; वैसे ही विदुरका तत्त्वज्ञान विदुरनीतिके रूपमें हमारे पास है। इसी प्रकार दूसरोंके भी विशिष्ट तत्त्वज्ञान हैं। ये सब तत्त्वज्ञान जनताके सामने आने चाहिये। तब पता लगेगा कि उस समयके सङ्घर्षका रहस्य क्या था।

हम आशा करते हैं कि इस तरह महाभारतका अध्ययन भारतवर्षमें हो और जिस जयिष्णु राष्ट्रके निर्माण करनेके लिये भगवान् व्यासदेवजीने इस महाभारतकी रचना की, उनका वह हेतु सफल और सुफल हो और भारतके विजयके द्वारा सम्पूर्ण संसारमें सुख और शान्ति सुस्थिर हों।
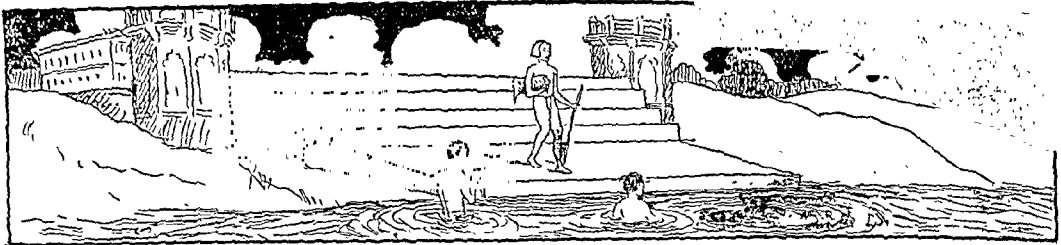
महाभारत और पाश्चात्य विद्वान्

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम० ए०)

महाभारतके आलोचनात्मक अध्ययनकी ओर सबसे पहले श्रीक्रिश्चियन लसेनका ध्यान गया। सन् १८३७ से उन्होंने उसपर विचार करना आरम्भ किया। उनकी 'इंडियन एण्टिक्विटीज्' नामक पुस्तकमें हमें उनके विचार मिलते हैं। उनका कहना है कि "जिस महाभारतको सूतने कहा, वह वास्तवमें मुख्य पुराण भारतका द्वितीय संस्करण है। 'आश्वलायन-गृह्यसूत्र' में 'भारत'के साथ 'महाभारत'का भी उल्लेख मिलता है। आश्वलायनका समय ३५० वर्ष पूर्व-मसीह हो सकता है। इस तरह 'महाभारत'का निर्माण-काल ४६० वर्ष पूर्व-मसीहसे अधिक नहीं हो सकता। बादमें वैष्णव-आख्यानोंका समावेश उसमें होता रहा। पञ्च पाण्डव वास्तवमें किसी राजनीतिक संघके प्रतिनिधिरूपसे भिन्न-भिन्न सदस्य थे।" सन् १८५२ से प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् वेबरका ध्यान 'महाभारत' की ओर गया। उनके विचार 'इंडियन स्टूडियेन्' में मिलते हैं। आपका कहना है कि "ऋग्वेदकी 'नाराशंस्य' गाथाएँ और 'दान-स्तुतियाँ' महाभारतका मूल स्रोत हैं। यज्ञके अवसरोंपर इनका गान होता था। कुरुवंशकी कुछ ऐसी ही गाथाएँ रही होंगी। विस्तार होते-होते उन्हींका 'महाभारत' बन गया। प्रायः ब्राह्मण यह नहीं चाहते थे कि यज्ञके अवसरोंपर क्षत्रियोंका यश-कीर्तन हो। इसलिये वैदिक गाथाओंमें देवताओंके ही नाम आये हैं। बादमें पुराणरचयिताओंने उनके स्थानपर मनुष्योंके नाम बैठा दिये।" सन् १८८४ से एक दूसरे जर्मन विद्वान् श्रीलुडविगने 'महाभारत' पर विचार आरम्भ किया। सन् १८९५ में प्रागसे 'यूबेर दाइ मिथिश ग्रंडलेज् दे महाभारत' नामसे आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें आपने भी वेबरकी तरह 'महाभारत'का मूल वेदोंमें ढूँढनेका प्रयत्न किया। परन्तु आपका मत वेबरसे भिन्न है। आपका कहना है कि "पाण्डव कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। इस तरह महाभारतको ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता। वास्तवमें उसमें देव-देवियोंकी कथाएँ हैं, जिनका बहुत कुछ सम्बन्ध ऋतु-परिवर्तनसे है। 'महाभारत' एक प्रकारसे ऋतु-परिवर्तनका आलंकारिक भाषामें रूपक है। पाण्डुसे अभिप्राय 'पीले सूर्य'से है। धृतराष्ट्रके अंधे होनेका अर्थ है—शक्तिहीन 'शरत्कालीन सूर्य'। गान्धारीका आँखोंमें पट्टी बाँधना सूर्यका बादलोंमें छिप जाना है। द्रौपदीका 'कृष्णा' नाम होनेसे पृथ्वीका अनुमान होता है। सभामें उसका एकवस्त्रा होना पृथ्वीका शीतकालमें शस्यहीन होना सिद्ध करता है।" श्रीकृष्णके काले होनेका कारण लुडविग महोदयको पहले समझमें न आया। उन्होंने बहुत दिमाग लड़ाया, तब यह पता लगा कि सम्भवतः वसन्तकालीन सूर्यको, जो यज्ञोंके निरन्तर धूएँसे धुँधला दिखायी देता होगा, श्रीकृष्ण नाम दिया गया।

इन्हीं दिनों चचा-भतीजे जर्मन विद्वान् 'होल्ट्ज्मान्'ने 'महाभारत'का अध्ययन आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप सन् १८९२–९५ में कीलसे चार जिल्दोंमें 'द महाभारत उंड सेन टेल' शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। होल्ट्ज्मान्को यह समझमें नहीं आ रहा था कि युधिष्ठिरके धर्मराज होते हुए भी उनमें द्यूतका व्यसन कैसे आ गया और श्रीकृष्ण ईश्वरका अवतार होते हुए भी छली तथा कपटी कैसे हुए। इस परस्पर विरोधकी गुत्थीको सुलझानेके लिये उनके दिमागने एक विचित्र बात खोज निकाली। वे लिखते हैं कि 'वास्तवमें कौरव ही धर्मभीरु एवं न्यायप्रिय थे। यद्यपि द्यूतको उन्होंने छलसे जीता, पर युद्धमें सारा छल पाण्डवोंहीकी ओरसे हुआ। इसलिये महाभारतके जितने अंशोंमें कौरवोंकी प्रशंसा है, वे ही प्राचीन हैं और जिनमें पाण्डवोंकी प्रशंसा है, वे सब नवीन हैं। कौरवोंका नाम वेद-ब्राह्मणादिमें भी आता है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। कौरव शैव और पाण्डव वैष्णव थे। इन दोनों सिद्धान्तोंमें बराबर विरोध रहा है। शैव-सिद्धान्तका बौद्धधर्मपर अवश्य कुछ प्रभाव जान पड़ता है; इसलिये सम्भव है कौरवोंने बुद्धके कुछ उपदेशोंको अपनाया हो। प्राचीन कालमें सूतोंके संघ रहते थे। उनमेंसे किसी योग्य कविने किसी बौद्ध राजा, सम्भवतः अशोककी प्रशंसामें एक काव्य रच डाला। परन्तु जब ब्राह्मणोंद्वारा बौद्धधर्मका पराभव हुआ, तब उन्होंने बहुत हेर-फेर करके इस काव्यको अपने साँचेमें ढाल लिया और कौरवोंकी सारी प्रशंसा पाण्डवोंके, जो उनके संरक्षक थे, नाम कर दी। धीरे-धीरे इस महाकाव्यसे बौद्धधर्मका नाम ही उठ गया और यह एक वैष्णवग्रन्थ बन गया। जिस रूपमें 'महाभारत' आजकल उपलब्ध है, वह ईसवी सन्‌की बारहवीं शताब्दीसे

अधिक प्राचीन नहीं हो सकता।' जर्मन विद्वान् फॉन् श्रोडरने भी कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है।

प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर भी इन्हीं दिनों महाभारतके पीछे पड़े थे। सन् १८५९ में आपका 'प्राचीन संस्कृत-साहित्यका इतिहास' प्रकाशित हुआ; इसमें आपने लासेनके मतका कुछ अंशोंमें समर्थन करते हुए लिखा कि 'महाभारत किसी एक कविकी कृति कभी नहीं हो सकता। इसके रचयिता अवश्य मनुप्रोक्त धर्मके पक्के अनुयायी ब्राह्मण रहे होंगे। परन्तु इनके लीपापोती करनेपर भी पाण्डवोंकी प्राचीन परम्परा जहाँ-तहाँ फूट ही निकली। बचपनसे ही पाण्डवोंकी 'ब्राह्मण-सम्प्रदाय' में शिक्षा हुई, ब्राह्मणोंसे उनका बराबर संसर्ग रहा; पर तब भी पाँचों भाई एक ही स्त्रीसे विवाह कर बैठे। प्रत्यक्ष धर्मविरुद्ध इस घटनापर महाभारतके ब्राह्मण सम्पादकोंने तरह-तरहके रंग चढ़ाये, पर यह दाग छिपा नहीं। एक और बात है। यद्यपि स्मार्तधर्मानुसार एक पति कई स्त्रियाँ रख सकता है, पर प्रधानरूपसे केवल पहली ही स्त्री विवाहिता समझी जाती है, और पतिके साथ सती होनेका उसे ही अधिकार है। परन्तु पाण्डुने दो विवाह किये; और उनके साथ सती हुई माद्री, न कि पहली स्त्री कुन्ती। यह भी धर्मविरुद्ध ही हुआ। प्राचीन शक, यवन, ट्यूटन आदि जातियोंमें यह प्रथा थी कि जिस स्त्रीमें पतिका सबसे अधिक प्रेम होता था, उसीका पतिकी समाधिपर वध कर दिया जाता था; यहाँ भी उसीकी झलक दिखायी पड़ रही है।''

डेन्मार्कके डॉ० सोयेन् सेन वहाँके कोपेनहेगन् विश्व-विद्यालयके अध्यापक थे। सन् १८८३ से उन्हें भी 'महाभारत' के अध्ययनका शौक हुआ। बड़े परिश्रमके साथ कई वर्षोंमें उन्होंने महाभारतमें आनेवाले नामोंकी एक बृहद्वर्णानुक्रमणिका (इन्डेक्स) तैयार की, जो उस ग्रन्थके अध्ययनके लिये बड़ी उपयोगी है। डैनिश् सरकारकी सहायतासे इनकी मृत्युके बाद, इसका प्रकाशन सन् १९२५ में समाप्त हुआ। 'महाभारत और भारतीय संस्कृतिमें उसका स्थान' इसपर निबन्ध लिखनेके कारण उन्हें 'आचार्य' पदवी मिली थी। आपका भी मत है कि 'महाभारतका मूल कोई प्राचीन पौराणिक गाथा ही रही होगी। उसकी एकतासे यह सिद्ध होता है कि उसका रचयिता भी कोई एक ही व्यक्ति रहा होगा। उसमें परस्परविरोधी सिद्धान्त, पुनरुक्ति और बिना प्रसंगकी बातें नहीं आनी चाहिये। जो ऐसे अंश हैं, उन्हें प्रक्षिप्त समझना चाहिये।' इस कसौटीपर कसते हुए विद्वान् लेखकको सात-आठ हजार श्लोकसे अधिक न मिल सके, जिनको उपलब्ध 'महाभारत' का मूल कहा जा सके।

श्रीबुहलर भी संस्कृतके अच्छे विद्वान् समझे जाते थे; आप भी जर्मन थे, आपने बंबई प्रान्तके शिक्षा-विभागमें बहुत दिनोंतक काम किया था। कई संस्कृत-ग्रन्थोंका आपने जर्मनमें अनुवाद भी किया है। 'बंबई-संस्कृत-ग्रंथमाला' के निकालनेका श्रेय बहुत कुछ आपहीको प्राप्त है। 'महाभारतके इतिहास' पर आपने भी एक निबन्ध लिखा है। संक्षेपमें आपका मत है कि महाभारत कोई इतिहास या पुराण नहीं है, वास्तवमें वह एक स्मृति या धर्मशास्त्र है। उनके सुयोग्य शिष्य श्रीजोजफ् डालमानने उनके इस मतकी अपने ग्रन्थोंमें पूरी व्याख्या की है। सन् १८९५ तथा १८९९ में बर्लिनसे उनके दो ग्रन्थ इस विषयपर प्रकाशित हुए। इनमेंसे दूसरे ग्रन्थ 'जेनेसिस दे महाभारत' (महाभारतका मूल) में उन्होंने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि 'कई पीढ़ियोंमें धीरे-धीरे इस महाकाव्यका विकास हुआ और समय-समयपर उसमें आख्यान जुड़ते गये— यह मत भ्रान्त है। वास्तवमें एक ही समयमें एक सम्पादक-मण्डलद्वारा इसकी रचना हुई। सब विभिन्न आख्यान एक ही सूत्रमें पिरोये हुए हैं, इस तरह इसकी एकता प्रत्यक्ष है। आप लिखते हैं कि 'वास्तविक युद्ध केवल कविकी कल्पना है, यदि कोई हुआ होता तो उसका ऐतिहासिक प्रमाण मिलता; इसमें तो धर्म और अधर्म-का युद्ध दिखलाया गया है, जो बराबर चलता रहता है। इस तरह यह केवल एक रूपक है, जिसमें पाण्डव धर्म और कौरव अधर्मके केवल प्रतिनिधिरूप हैं। पहले दो प्रकारका साहित्य रहा होगा—एक तो प्राचीन राजवंशोंकी पौराणिक गाथाएँ और दूसरे धर्मोपदेशकी कविताएँ। सर्व-साधारणमें धर्मप्रचारकी दृष्टिसे किसी कविमण्डलने इन दोनोंके भावोंको एक नवीन काव्यके रूपमें मिला दिया। पौराणिक अंशमें उन्होंने कौरवोंके पतन और पाञ्चालोंके उत्थानका प्राचीन आख्यान ले लिया और विभिन्न धार्मिक उपदेशोंको समझानेके लिये बीचमें तरह-तरहके आख्यान जोड़ दिये। धर्मोपदेशमें द्रौपदीके पाँच पति अवश्य बाधा डालते हैं। पर यह केवल ऋतुओंका, जैसा कि लुडविगका मत है, या सम्पत्ति-के बँटवारेका रूपक हो सकता है।' बार्थने भी अपना ऐसा ही मत प्रकट किया है। उनके ग्रन्थसंग्रहमें महाभारतपर पाश्चात्त्य विद्वानोंके मतोंका अच्छा सङ्कलन मिलता है। फ्रांसीसी विद्वान् श्रीसिल्वेन् लेवीने भी, जो पौरस्त्य साहित्यके अच्छे पण्डित माने जाते हैं, 'भंडारकर-स्मारक ग्रन्थ' के एक निबन्धमें

अपना कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है। आप लिखते हैं कि कृष्णके अनुयायी क्षत्रिय राजाओंकी शिक्षा-दीक्षाके लिये इसकी रचना हुई थी, इस तरह यह एक नीति या धर्मशास्त्रका ग्रन्थ है।

श्रीविंटरनिट्ज्का 'भारतीय साहित्यका इतिहास' जर्मन-भाषामें सन् १९०७ में प्रागसे प्रकाशित हुआ। इसका श्रीमती केतकरने, जो एक जर्मन महिला हैं, अंग्रेजीमें अनुवाद किया, जो कलकत्ता-विश्वविद्यालयकी ओरसे सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ। यह बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें श्रीविंटरनिट्ज् लिखते हैं कि "भारतयुद्धका ऐतिहासिक मूल सम्भवतः मानना पड़ेगा, पर एक साधारण घटनाको लेकर आख्यानों तथा विभिन्न विषयोंका एक तूमार खड़ा कर दिया गया। भारतके प्राचीन साहित्यका निर्माण बहुत कुछ ब्राह्मणोंके हाथमें रहा। अथर्ववेदके प्राचीन जादू-टोनेके गीतोंमें उन्होंने अपने उपदेशोंको ऐसा घुसेड़ दिया कि अब उनको पहचानातक नहीं जा सकता। अपने उपदेशोंमें उपनिषदोंके ज्ञानको भी वे घसीट लाये, जो उनके ही बताये धर्मके विरुद्ध पड़ता है। वीर-गाथाओंका जैसे-जैसे सर्वसाधारणमें प्रचार बढ़ता गया, ब्राह्मण भी वैसे-ही-वैसे उनको अपने साँचेमें ढालनेके लिये उत्सुक होते गये। इन लौकिक गाथाओंमें अपने धार्मिक उपदेशोंका रंग ला देनेकी कलामें वे बड़े निपुण थे। इस तरह देव-देवियोंके आख्यानों, ब्राह्मण-सम्प्रदायके उपदेशों, दर्शनों और नीतियोंका महाभारतमें समावेश हो गया। समाजपर अपना प्रभाव दृढ़ करनेके लिये ब्राह्मणोंने प्राचीन लोकप्रिय गाथाओंका स्वागत किया। ये ब्राह्मण ही थे, जिन्होंने उनमें प्राचीन ऋषि-महर्षियोंके इतिहास भर दिये और यह दिखलाया कि अपने तप और यज्ञोंके बलसे वे केवल मनुष्योंको ही नहीं, देवोंको भी प्रभावित कर सकते थे। वर और शापसे जिसको जो चाहें बना देनेकी उनमें सामर्थ्य थी। यह करतूत विद्वान् वैदिकोंकी नहीं थी; यदि ऐसा होता तो महाभारतमें भी यज्ञादि क्रियाकलापकी भरमार होती। वास्तवमें यह करतूत थी पुरोहितोंकी, जो राजदरबारोंमें सूत-मागधोंकी तरह भरे रहते थे। वहाँ उन्हें वीरगाथाओंके सुननेका अच्छा अवसर मिलता था। मन्दिरोंके पुजारी भी प्रायः ऐसे पुरोहित ही हुआ करते थे। शिव-विष्णु आदिके सम्बन्धमें जो कुछ उन्होंने सुना, उस सबको छन्दोबद्ध करके 'महाभारत' में घुसेड़ दिया। जिन प्रदेशोंमें विष्णुकी उपासना बहुत चलती थी, वहीं ऐसी गाथाओंका प्रचार भी अधिक था। इसीलिये उन्होंने महाभारतमें प्राधान्य विष्णुके अवतार कृष्णको ही दिया। जब शैव-प्रदेशोंमें भी उसका कुछ प्रचार हुआ, तब उसमें शिवाख्यानोंको भी जोड़ दिया गया। ब्राह्मण पुरोहितोंके अतिरिक्त इन दिनों एक वर्ग और था, जिसका भी तत्कालीन साहित्यके निर्माणमें हाथ था और जनसाधारणपर उसका प्रभाव भी पूरा पड़ता था। यह वर्ग साधु, संन्यासी, भिक्षुकोंका था। इन्होंने अपना एक विशेष साहित्य बना रक्खा था, जिसमें संसारको मिथ्या बतलाते हुए त्याग-वैराग्यका उपदेश दिया गया था। इनको समझानेके लिये उन्होंने पशु-पक्षियों, देव-दानवों, भूत-प्रेतोंकी कितनी ही कहानियाँ गढ़ डाली थीं। यह 'संत-साहित्य' भी अधिकांशरूपसे 'महाभारत' में समा गया।" आगे चलकर श्रीविंटरनिट्ज लिखते हैं कि "हमलोगोंके लिये, जो एक श्रद्धालु हिंदूकी दृष्टिसे नहीं बल्कि साहित्यके आलोचक इतिहासकारकी दृष्टिसे महाभारतको देखते हैं, वह एक 'कलाकी कृति' कभी नहीं हो सकती। यह तो निश्चित है कि उसकी रचना किसी एक व्यक्तिने नहीं की और संग्रहकर्त्ता भी चतुर नहीं हुआ। महाभारत सचमुच एक 'साहित्यिक दानव' है। यदि महाभारतका रचयिता कोई एक ही व्यक्ति माना जायगा, जैसा कि कृष्णद्वैपायनको बतलाया जाता है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह एक साथ ही महाकवि और तुच्छ लेखक, एक चतुर साधु और मूर्ख और एक सुयोग्य कलाकार तथा पक्का नक्काल रहा होगा। इसके अतिरिक्त यह विचित्र व्यक्ति अत्यन्त परस्परविरोधी धार्मिक भावों और दार्शनिक सिद्धान्तोंमें विश्वास या उनका ज्ञान रखता होगा। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस काव्यके जंगलमें, जिसको साफ करना विद्वानोंने अब आरम्भ किया है, घास-फूस तथा लता-पत्रोंमें छिपे हुए सच्ची कविताके भी कुछ पौधे हैं। साहित्यके इस बेतुके ढेरमें अमर कला और गम्भीर बुद्धिके कुछ रत्न भी चमक रहे हैं।"

अंग्रेज विद्वानोंमें सर मॉनियर विलियम्सका, जिनका 'अंग्रेजी-संस्कृत-कोश' प्रसिद्ध है, महाभारतकी ओर ध्यान गया। सन् १८९३ में प्रकाशित 'इंडियन विज्डम्' (भारतीय बुद्धि) नामक पुस्तकमें उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। आप लिखते हैं कि "ब्राह्मणसम्प्रदायका अड्डा अवध था, जो रामायणका कार्यक्षेत्र है; परन्तु उससे आगे बढ़कर कुरु-पञ्चाल प्रदेशोंमें इस सम्प्रदायका अधिक प्रभाव न था। इसीलिये 'महाभारत' में बौद्ध नास्तिकवादकी गन्ध है।

उसमें जिस समाजका वर्णन है, वह रामायणमें वर्णित समाजसे कम सभ्य है। रामायणकी अपेक्षा उसमें वर्णित धर्मव्यवस्था अधिक लोकप्रिय, उदार तथा व्यापक जान पड़ती है। यह ठीक है कि उसके विष्णुका सम्बन्ध श्रीकृष्णसे है, जैसा कि रामायणमें श्रीरामचन्द्रसे। रामायणके नायक श्रीरामचन्द्र हैं, पर 'महाभारत' में श्रीकृष्णको वैसा स्थान प्राप्त नहीं है। उसमें तो उसीके पात्रोंको श्रीकृष्णके ईश्वरत्वमें प्रायः सन्देह हो उठता है। पाण्डवोंमें कभी किसीको, तो कभी किसीको प्रधानता प्रदान की गयी। किसी तरह शिव भी घुस आये। कभी वे कृष्णकी और कभी कृष्ण उनकी पूजा करते हैं। ये सब परस्परविरोधी बातें हैं। 'महाभारत' में वर्तमान हिंदूधर्मका चित्र मिलता है, जिसमें अद्वैत तथा द्वैतवाद, अध्यात्म तथा भौतिकवाद, नियमोंकी कड़ाई तथा ढिलाई, पुरोहितवादका पक्षपात और उसका विरोध, वर्णभेदकी अनुदारता तथा असहिष्णुता और दर्शनोंके बुद्धिवादको घोट-पीटकर एकमें मिलानेका प्रयत्न किया गया है। यूनानी महाकवि होमरके 'इलियड' और 'ओडेसी' दोनों मिलाकर जितने बड़े काव्य हैं, 'महाभारत' उनसे अठगुना है; परन्तु कलाकी दृष्टिसे महाभारतकी उनसे तुलना वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे कि दस सिर और बीस भुजावाले राक्षस रावणकी तुलना किसी सुन्दर सुडौल यूनानी पाषाणमूर्तिसे नहीं हो सकती। यदि यूनानी काव्यमें सादगी है, तो इस पौरस्त्य महाकाव्यमें भद्दी अतिशयोक्ति। हाँ! यह बात अवश्य है कि रणक्षेत्रमें भारतीय योद्धा यूनानियोंकी अपेक्षा उच्च कोटिकी उदारता, पूर्ण वीरताका परिचय देते हैं, और उनका गार्हस्थ्य-जीवनका चित्र भी अधिक आकर्षक है।'' इसी प्रसंगमें आप एक जगह लिखते हैं कि ''जब 'रामायण', 'महाभारत' धर्मव्यवस्था और प्राचीन परम्पराके पवित्र आगार नहीं माने जायँगे, तब भी हमें आशा है कि इनमें प्रदर्शित स्त्री-स्वातन्त्र्यका स्मरण करके भारतका पुरुष-समाज आधुनिक स्त्रियोंको उनकी प्राचीन स्वतन्त्रता प्रदान करेगा, जिसको प्राप्त करके वे ईसाई-धर्मका शुभाशीर्वाद ग्रहण कर सकें और हमारे पौरस्त्य साम्राज्यके लिये वही करें जो उन्होंने योरपके लिये किया—अर्थात् वहाँके लोगोंके आचरणको मृदु, शक्तिशाली तथा प्रतिष्ठित बनायें।'' सन् १८९९में प्रकाशित 'संस्कृत-साहित्यके इतिहास' में श्रीमैकडोनेलने जर्मन विद्वान् डालमानके मतका ही समर्थन किया है। आप लिखते हैं कि यह प्राचीन 'भागवतोंका धर्मशास्त्र' ग्रन्थ है, जैसा कि इसके दूसरे नाम 'कार्ष्ण वेद' से प्रकट है। सन् १९०१ में 'येल-विश्वविद्यालय' (अमेरिका) के संस्कृत-अध्यापक श्रीवॉशबर्न हॉपकिन्सकी पुस्तक 'दि ग्रेट एपिक' (महापुराण) प्रकाशित हुई। इसमें आपने महाभारतमें वर्णित विषयोंका बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अन्तमें आपने भी यही निश्चित किया कि ''प्राचीन गाथाओंमें कितने ही उपाख्यान और धर्मोपदेश जोड़-जाड़कर भारतका महाभारत बना दिया गया। प्राचीन गाथाएँ कुरु और पाञ्चाल वंश-सम्बन्धी हैं। पाण्डव-गाथाएँ भी प्राचीन हैं, पर वे बादकी हैं। 'महाभारत' में दोनोंके मिलानेका प्रयत्न किया गया है।'' श्रीग्रियर्सनके नामसे हम सभी परिचित हैं, हालहीमें आपका निधन हुआ है। सन् १९०८ के 'जर्नल ऑफ् दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी' में प्रकाशित एक लेखमें आपने अपना मत प्रकट किया है। आपका कहना है कि 'प्राचीन भारतमें ब्राह्मण-क्षत्रियोंका झगड़ा बराबर चलता था। मध्यदेशमें ब्राह्मणोंका जोर था। पर कुरुदेशमें अधिक स्वतन्त्रता थी। पञ्चालमें बहुपति-विवाह भी जायज समझा जाता था। पञ्चालदेशके राजा द्रुपदने द्रोणाचार्यका अपमान किया था, जिन्होंने कौरवोंके यहाँ शरण ली। उसी अपमानका बदला चुकानेके लिये कौरव-पाञ्चालोंमें युद्ध हुआ; इस तरह महाभारत कौरव-पाण्डवोंका नहीं, कौरव-पाञ्चालोंका युद्ध था।' सर बेरिडेल कीथ अभी जीवित हैं। आपने भी भारतीय साहित्यका बहुत अध्ययन किया है और उसका एक इतिहास भी लिखा है। आप कहते हैं कि बहुपति-विवाहकी प्रथासे जान पड़ता है कि पाण्डव अर्ध-मंगोलियन थे। ऐसा अन्य कई विद्वानोंने भी पहले लिखा है। सन् १८९६ में प्रकाशित 'ट्राइब्स एंड कास्ट्स आफ दि नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्स' (पश्चिमोत्तर प्रान्तकी जातियाँ) नामक ग्रन्थमें क्रूकने भी ऐसा ही लिखा है, और जर्मन विद्वान् मायर्सने 'सेक्शुअल लाइफ इन् एन्शेंट इंडिया' (प्राचीन भारतमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध) नामक पुस्तकमें इसी मतकी पुष्टि की है। सन् १९३५ में डच विद्वान् श्रीहेल्डकी भी एक पुस्तक 'दि महाभारत, ऐन एन्थ्रॉलॉजिकल स्टडी' हालेंडसे प्रकाशित हुई है; इसमें जाति, कुल, वंश आदिकी प्राचीन परम्पराओंके आधारपर महाभारतका अध्ययन किया है और यह दिखलाया गया है कि पञ्च पाण्डव दुर्योधनादिके चचेरे भाई न थे। भारत-युद्ध वास्तवमें भिन्न-भिन्न जातियोंका द्यूतके कारण युद्ध था।

जिस महाभारतके लिये कहा गया है कि इस इतिहासरूपी दीपकने मोहरूपी अँधेरेको हरकर सम्पूर्ण भुवनरूपी

गुहामें उजेला कर दिया है, जिसके लिये यह प्रतिज्ञा है कि 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो इसमें है, वह अन्यत्र नहीं और जो इसमें नहीं, वह कहीं भी नहीं है।' उसी महाभारतके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य विद्वानोंका ऐसा मत है। उसपर उनका पूरा साहित्य तैयार हो गया है; उस बड़े ढेरमेंसे यहाँ केवल कुछ ऐसे विद्वानोंके मत दिये गये हैं, जो संस्कृत-साहित्यमें अपने प्रखर पाण्डित्यके लिये प्रसिद्ध हैं। ऐसे साहित्यको पढ़कर किसीको 'महाभारत'-में क्या श्रद्धा रह सकती है? परन्तु हमारे विद्यालयोंमें आजकल यही सब पढ़ाया जाता है। हमारे यहाँके नवीन विद्वानोंपर इसीकी छाप लगी हुई है। रावबहादुर श्रीचिंतामणि विनायक वैद्यने 'महाभारतमीमांसा' में अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ताका परिचय दिया है। उसमें उन्होंने वेबर, हॉपकिन्स आदिके कुछ मतोंका अवश्य खण्डन किया है। पर महाभारतकी रचनाशैली, उसके निर्माता तथा निर्माणकालके सम्बन्धमें उनका मत भी पाश्चात्त्य विद्वानोंके मतसे ही मिलता-जुलता है। द्रौपदीके पाँच पतियोंकी कथा वे भी हजम न कर सके। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं कि 'एक स्त्रीके अनेक पति करनेकी प्रथा पहले उन चन्द्रवंशी आर्योंमें थी, जो हिमालयसे नये-नये आये थे। द्रौपदीके उदाहरणसे यह बात माननी पड़ती है। आजकल भी हिमालयकी ओर पहाड़ी लोगोंमें जहाँ-तहाँ यह प्रथा जारी है। महाभारतकार-के लिये द्रौपदीके पाँच पति होना एक पहेली ही था और इसका निराकरण करनेके लिये सौतिने महाभारतमें दो-तीन कथाएँ मिला दीं।' प्रो० श्रीठडानीने बड़े परिश्रमके साथ पाँच जिल्दोंमें 'मिस्ट्री ऑफ् दि महाभारत' (महाभारतका रहस्य) नामक पुस्तक लिखी है। पर इसमें भी जर्मन विद्वान् डालमानके मतकी छाया स्पष्ट झलक रही है। पाश्चात्त्योंके विद्याव्यसन, अनुसन्धान, उनकी अनोखी सूझ, लगन और धुनकी हम प्रशंसा करते हैं। परन्तु जब वे हमारे शास्त्र, इतिहास, पुराणोंकी, जो सर्वथा लौकिक नहीं कहे जा सकते, छान-बीन करने बैठते हैं, तब वे उल्टे ही परिणामपर पहुँचते हैं। अनुसन्धानकी वेदीपर हमारे इन पवित्र ग्रन्थोंकी कैसी छीछालेदर हुई है! क्या कोई मनुष्यकी हड्डी-पसली पीस-पीसकर उसके प्राणोंका पता लगा सकता है? क्या बिना वैसे संस्कारोंके, बिना अधिकार और योग्यताके शास्त्रोंके गूढ रहस्योंको कोई समझ सकता है? फिर यह सारा अनुसन्धान किसी गूढ़ उद्देश्यसे भी खाली नहीं है। 'केवल ज्ञानके लिये ज्ञान' की उच्च भावनासे यह प्रेरित नहीं है। भारतमें अंग्रेजी शिक्षाके प्रबल प्रचारक लॉर्ड मैकॉलेने लिखा था कि 'हिंदुओंको ईसाई बनानेके लिये हिंदूधर्मके खण्डनकी आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्त्य शिक्षा पाकर किसी भी हिंदूको मूर्तिपूजन आदिमें विश्वास न रह जायगा।' और तो और, स्वयं मैक्समूलर, जो अपने भारत-प्रेमके लिये प्रसिद्ध हैं, अपनी 'आत्मकथा'में लिखते हैं कि 'वेद-मंत्र दकियानूसी और निरर्थक हैं। जिस वातावरणमें हम रह रहे हैं, उसमें मँडराते रहनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। अजायब-घरोंमें उन्हें प्रतिष्ठित पद देनेके लिये हम तैयार हैं। परन्तु हम कभी अपने जीवनको उनके द्वारा प्रभावित नहीं होने दे सकते।' दूसरी पुस्तक 'चिप्स फ्रॉम दि जर्मन वर्कशॉप' में वे और खुलकर लिखते हैं कि 'वेद हिंदूधर्मकी चाभी हैं और उनका अच्छा ज्ञान—उनके दृढ तथा दुर्बल स्थानोंका ज्ञान—धर्मके विद्यार्थियोंके लिये, विशेषतः ऐसे मिशनरियोंके लिये अनिवार्य है, जिन्हें ईसाई बनानेकी उत्कट इच्छा है। ऐसी दशामें यही बात मनमें आयी कि भारतवर्षमें ईसाई धर्मके प्रचारकोंके कामकी चीज वेदके एक संस्करणसे बढ़कर और कुछ न होगा।' ऐसे वाक्योंसे इन विद्वानोंके मनके भावोंका पता लगता है। हमारे यहाँके शास्त्रोंका अनुवाद करना, उनपर लंबी-चौड़ी आलोचनाएँ लिखना—इन सबका प्रायः उद्देश्य होता है, इनकी पोल खोलकर धार्मिक या राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करना। निष्पक्षताका ढोंग रचनेके लिये बीचमें कहीं-कहीं प्रशंसाके वाक्य भी डाल दिये जाते हैं। रामायण-भारतादि हमारे लिये किसी समय जीवित इतिहास थे, बचपनसे हमारे कानोंमें उनकी कहानियाँ पड़ती थीं, खेलोंमें हम उन्हींको खेलते थे, गीतोंमें हम उन्हींको सुनते थे। नाटकोंमें हम उन्हींको देखते थे। पर आज हमें बतलाया जा रहा है कि 'वे सब कवियोंकी कोरी कल्पनाएँ हैं। यदि इतिहासका प्रभाव हमारे जीवनपर नहीं पड़ता, तो उससे लाभ ही क्या? गड़े हुए मुर्दोंको खोदनेमें क्या रक्खा है?' हमारे शास्त्रोंके सम्बन्धमें अपने अनुसन्धानोंद्वारा पाश्चात्त्य विद्वान् जो विष-वमन किया करते हैं, उसकी दुर्गन्ध दूर रखनेके लिये क्या हमने भी कुछ किया है?

महाभारत-लेखन

|| श्रीगणेशाय नमः ||

संक्षिप्त महाभारत

आदिपर्व

ग्रन्थका उपक्रम

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके सखा नर-रत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर विजय प्राप्त करानेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमः पितामहाय। ॐ नमः प्रजापतिभ्यः।
ॐ नमः कृष्णद्वैपायनाय। ॐ नमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः।

लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा सूतवंशके श्रेष्ठ पौराणिक थे। एक बार जब नैमिषारण्य क्षेत्रमें कुलपति शौनक बारह वर्षका सत्संग-सत्र कर रहे थे, तब उग्रश्रवा बड़ी विनयके साथ सुखसे बैठे हुए व्रतनिष्ठ ब्रह्मर्षियोंके पास आये। जब नैमिषारण्यवासी तपस्वी ऋषियोंने देखा कि उग्रश्रवा हमारे आश्रममें आ गये हैं, तब उनसे चित्र-विचित्र कथा सुननेके लिये उन लोगोंने उन्हें घेर लिया। उग्रश्रवाने हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया और सत्कार पाकर उनकी तपस्याके सम्बन्धमें कुशल-प्रश्न किये। सब ऋषि-मुनि अपने-अपने आसनपर विराजमान हो गये और उनके आज्ञानुसार वे भी अपने आसनपर बैठ गये। जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम कर चुके, तब किसी ऋषिने कथाका प्रसङ्ग प्रस्तुत करनेके लिये उनसे यह प्रश्न किया—'सूतनन्दन! आप कहाँसे आ रहे हैं? आपने अबतकका समय कहाँ व्यतीत किया है?' उग्रश्रवाने कहा, 'मैं परिक्षित्-नन्दन राजर्षि जनमेजयके सर्प-सत्रमें गया हुआ था। वहाँ श्रीवैशम्पायनजीके मुखसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन-

के द्वारा निर्मित महाभारत ग्रन्थकी अनेकों पवित्र और विचित्र कथाएँ सुनीं। इसके बाद बहुत-से तीर्थों और आश्रमोंमें घूमकर समन्तपञ्चक क्षेत्रमें आया, जहाँ पहले कौरव और पाण्डवोंका महान् युद्ध हो चुका है। वहाँसे मैं आपलोगोंका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप सभी चिरायु और ब्रह्मनिष्ठ हैं। आपका ब्रह्मतेज सूर्य और अग्निके समान है। आपलोग स्नान, जप, हवन आदिसे निवृत्त होकर पवित्रता और एकाग्रताके साथ अपने-अपने आसनपर

बैठे हुए हैं। अब कृपा करके बतलाइये कि मैं आपलोगोंको कौन-सी कथा सुनाऊँ।'

ऋषियोंने कहा—सूतनन्दन! परमर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनने जिस ग्रन्थका निर्माण किया है और ब्रह्मर्षियों तथा देवताओंने जिसका सत्कार किया है, जिसमें विचित्र पदोंसे परिपूर्ण पर्व हैं, जो सूक्ष्म अर्थ और न्यायसे भरा हुआ है, जो पद-पदपर वेदार्थसे विभूषित और आख्यानोंमें श्रेष्ठ है, जिसमें भरतवंशका सम्पूर्ण इतिहास है, जो सर्वथा शास्त्रसम्मत है और जिसे श्रीकृष्णद्वैपायनकी आज्ञासे वैशम्पायनजीने राजा जनमेजयको सुनाया है, भगवान् व्यासकी वही पुण्यमयी पापनाशिनी और वेदमयी संहिता हमलोग सुनना चाहते हैं।

उग्रश्रवाजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण ही सबके आदि हैं। वे अन्तर्यामी, सर्वेश्वर, समस्त यज्ञोंके भोक्ता, सबके द्वारा प्रशंसित, परम सत्य ॐकारस्वरूप ब्रह्म हैं। वे ही सनातन व्यक्त एवं अव्यक्तस्वरूप हैं। वे असत् भी हैं और सत् भी हैं, वे सत्-असत् दोनों हैं और दोनोंसे परे हैं। वे ही विराट् विश्व भी हैं। उन्होंने ही स्थूल और सूक्ष्म दोनोंकी सृष्टि की है। वे ही सबके जीवनदाता, सर्वश्रेष्ठ और अविनाशी हैं। वे ही मङ्गलकारी, मङ्गलस्वरूप, सर्वव्यापक, सबके वाञ्छनीय, निष्पाप और परम पवित्र हैं। उन्हीं चराचरगुरु नयनमनोहारी हृषीकेशको नमस्कार करके सर्वलोकपूजित अद्भुतकर्मा भगवान् व्यासकी पवित्र रचना महाभारतका वर्णन करता हूँ। पृथ्वीमें अनेकों प्रतिभाशाली विद्वानोंने इस इतिहासका पहले वर्णन किया है, अब करते हैं और आगे भी करेंगे। यह परमज्ञानस्वरूप ग्रन्थ तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठित है। कोई संक्षेपसे, तो कोई विस्तारसे इसे धारण करते हैं। इसकी शब्दावली शुभ है। इसमें अनेकों छन्द हैं और देवता तथा मनुष्योंकी मर्यादाका इसमें स्पष्ट वर्णन है।

जिस समय यह जगत् ज्ञान और प्रकाशसे शून्य तथा अन्धकारसे परिपूर्ण था, उस समय एक बहुत बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ और वही समस्त प्रजाकी उत्पत्तिका कारण बना। वह बड़ा ही दिव्य और ज्योतिर्मय था। श्रुति उसमें सत्य, सनातन, ज्योतिर्मय ब्रह्मका वर्णन करती हैं। वह ब्रह्म अलौकिक, अचिन्त्य, सर्वत्र सम, अव्यक्त, कारणस्वरूप तथा सत् और असत् दोनों है। उसी अण्डेसे लोकपितामह प्रजापति ब्रह्माजी प्रकट हुए। तदनन्तर दस प्रचेता, दक्ष, उनके सात पुत्र, सात ऋषि और चौदह मनु उत्पन्न हुए। विश्वेदेवा, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक, पितर, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, जल, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात तथा जगत्में और जितनी भी वस्तुएँ हैं, सब उसी अण्डेसे उत्पन्न हुईं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रलयके समय जिससे उत्पन्न होता है, उसी परमात्मामें लीन हो जाता है। ठीक वैसे ही, जैसे ऋतु आनेपर उसके अनेकों लक्षण प्रकट हो जाते और बदलनेपर लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह कालचक्र, जिससे सभी पदार्थोंकी सृष्टि और संहार होता है, अनादि और अनन्त रूपसे सर्वदा चलता रहता है। संक्षेपमें देवताओंकी संख्या तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस (छत्तीस हजार तीन सौ तैंतीस) है। विवस्वान्के बारह पुत्र हैं—दिवःपुत्र, बृहद्भानु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि और मनु। मनुके दो पुत्र हुए—देवभ्राट् और सुभ्राट्। सुभ्राट्के तीन पुत्र हुए—दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति। ये तीनों ही प्रजावान् और विद्वान् थे। दशज्योतिके दस हजार, शतज्योतिके एक लाख और सहस्रज्योतिके दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हींसे कुरु, यदु, भरत, ययाति और इक्ष्वाकु आदि राजर्षियोंके वंश चले। बहुत-से वंशों और प्राणियोंकी सृष्टिकी यही परम्परा है।

भगवान् व्यास समस्त लोक, भूत-भविष्यत्-वर्तमानके रहस्य, कर्म-उपासना-ज्ञानरूप वेद, अभ्यासयुक्त योग, धर्म, अर्थ और काम, सारे शास्त्र तथा लोकव्यवहारको पूर्णरूपसे जानते हैं। उन्होंने इस ग्रन्थमें व्याख्याके साथ सम्पूर्ण इतिहास और सारी श्रुतियोंका तात्पर्य कह दिया है। भगवान व्यासने इस महान् ज्ञानका कहीं विस्तारसे और कहीं संक्षेपसे वर्णन किया है, क्योंकि विद्वान् लोग ज्ञानको भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रकाशित करते हैं। उन्होंने तपस्या और ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे वेदोंका विभाजन करके इस ग्रन्थका निर्माण किया और सोचा कि इसे शिष्योंको किस प्रकार पढ़ाऊँ? भगवान् व्यासका यह विचार जानकर स्वयं ब्रह्माजी उनकी प्रसन्नता और लोकहितके लिये उनके पास आये। भगवान् वेदव्यास उन्हें देखकर बहुत ही विस्मित हुए और मुनियोंके साथ उठकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा आसनपर बैठाया। स्वागत-सत्कारके बाद ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे भी उनके पास ही बैठ गये। तब व्यासजीने बड़ी प्रसन्नतासे मुसकराते हुए कहा, 'भगवन्! मैंने एक श्रेष्ठ काव्यकी रचना

चले गये और व्यासजीने गणेशजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशजी उपस्थित हुए। व्यासजी-

की है। इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदाङ्गसहित उपनिषद्, वेदोंका क्रियाविस्तार, इतिहास, पुराण, भूत, भविष्यत् और वर्तमानके वृत्तान्त, बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदिके भाव-अभावका निर्णय, आश्रम और वर्णोंका धर्म, पुराणोंका सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा और युगोंका वर्णन, उनका परिमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वण, अध्यात्म, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपतधर्म, देवता और मनुष्योंकी उत्पत्ति, पवित्र तीर्थ, पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन, समुद्र, पूर्व कल्प, दिव्य नगर, युद्धकौशल, विविध भाषा, विविध जाति, लोकव्यवहार और सबमें व्याप्त परमात्माका भी वर्णन किया है; परन्तु पृथ्वीमें इसको लिख लेनेवाला कोई नहीं मिलता, यही चिन्ताका विषय है।'

ब्रह्माजीने कहा—'महर्षे! आप तत्त्वज्ञानसम्पन्न हैं। इसलिये मैं तपस्वी और श्रेष्ठ मुनियोंसे भी आपको श्रेष्ठ समझता हूँ। आप जन्मसे ही अपनी वाणीके द्वारा सत्य और वेदार्थका कथन करते हैं। इसलिये आपका अपने ग्रन्थको काव्य कहना सत्य होगा। उसकी प्रसिद्धि काव्यके नामसे ही होगी। आपके काव्यसे श्रेष्ठ काव्यका निर्माण जगत्में कोई नहीं कर सकेगा। आप अपना ग्रन्थ लिखनेके लिये गणेशजी-का स्मरण कीजिये।' यह कहकर ब्रह्माजी तो अपने लोकको

ने पूजा करके उन्हें बैठाया और प्रार्थना की, 'भगवन्! मैंने मन-ही-मन महाभारतकी रचना की है। मैं बोलता हूँ, आप उसे लिखते जाइये।' गणेशजीने कहा, 'यदि मेरी कलम एक क्षणके लिये भी न रुके तो मैं लिखनेका काम कर सकता हूँ।' व्यासजीने कहा, 'ठीक है, किन्तु आप बिना समझे न लिखियेगा।' गणेशजीने 'तथास्तु' कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान् व्यासने कौतूहलवश कुछ ऐसे श्लोक बना दिये जो इस ग्रन्थकी गाँठ हैं। इनके सम्बन्धमें उन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है कि 'आठ हजार आठ सौ श्लोकोंका अर्थ मैं जानता हूँ, शुकदेव जानते हैं। सञ्जय जानते हैं या नहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं है।' वे श्लोक अब भी इस ग्रन्थमें हैं। बिना विचार किये उनका अर्थ नहीं खुल सकता। और तो क्या, सर्वज्ञ गणेश भी जब एक क्षणतक उन श्लोकोंके अर्थका विचार करते थे उतनेहीमें महर्षि व्यास दूसरे बहुत-से श्लोकोंकी रचना कर डालते थे।

यह महाभारत ज्ञानरूप अञ्जनकी सलाईसे अज्ञानके अन्धकारमें भटकते हुए लोगोंकी आँखें खोलनेवाला है। इस भारतरूपी सूर्यने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों

पुरुषार्थोंका संक्षेप और विस्तारसे वर्णन करके लोगोंका अज्ञानान्धकार नष्ट कर दिया है। इस भारतपुराणरूपी पूर्णचन्द्रने श्रुत्यर्थरूप चन्द्रिकाको छिटकाकर मनुष्योंकी बुद्धिरूप कुमुदोंको विकसित कर दिया है, इस इतिहासरूप दीपकने संसारके तहखानेको उजालेसे भर दिया है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने इस ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी प्रज्ञा, कुन्तीके धैर्य, दुर्योधनादिकी दुष्टता और पाण्डवोंकी सत्यताका वर्णन किया है। इसकी प्रत्येक कथासे भगवान् श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय महिमा प्रकट होती है। यह महाभारतरूप कल्पवृक्ष समस्त कवियोंके लिये आश्रयस्थान है। इसीके आधारपर सब अपने-अपने काव्यका निर्माण करेंगे।

जो श्रद्धापूर्वक महाभारतका अध्ययन करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि इसमें देवर्षि, ब्रह्मर्षि, देवता आदिके परम पवित्र कर्मोंका वर्णन है; इसमें सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णका स्थान-स्थानपर कीर्तन है। वे ही सत्य, ऋत, परम पवित्र और मङ्गलमय हैं; वे अविनाशी, अविचल, अखण्ड ज्ञानस्वरूप परब्रह्म हैं। बुद्धिमान् लोग उन्हींकी लीलाओंका गायन करते हैं, वे सत् और असत् दोनों हैं जगत्की सारी चेष्टा उन्हींकी शक्तिसे होती है। जो कुछ पाञ्च भौतिक, आध्यात्मिक अथवा प्रकृतिका मूलभूत निर्विशेष ब्रह्म स्वरूप है, वह सब उन्हींका स्वरूप है। संन्यासी ध्यानके द्वार उन्हींका चिन्तन करके मुक्त होते हैं और दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान सम्पूर्ण प्रपञ्चको उन्हींमें स्थित देखते हैं। यह ग्रन्थ उनके चरित्रसे पूर्ण है, इसलिये इसका पाठ करनेवाला पापोंसे छूट जाता है। इस महाभारत ग्रन्थका शरीर है सत्य और अमृत। इतिहासोंमें यही सर्वश्रेष्ठ है। इतिहास और पुराणोंके द्वारा ही वेदार्थका निश्चय करना चाहिये। वेद अल्पज्ञसे भयभीत रहते हैं कि कहीं यह हमारा सत्यानाश न कर डाले। देवताओंने महाभारतको तराजूपर वेदोंके साथ रखकर तौला है। उस समय चारों वेदोंसे इसकी महत्ता अधिक सिद्ध हुई है। महत्ता और भगवत्ताके कारण ही इसे महाभारत कहते हैं। तपस्या, अध्ययन, वैदिक कर्मानुष्ठान, शिलोञ्छवृत्ति आदि तभी चित्तशुद्धिके हेतु हैं, जब वे भावशुद्धिके साथ किये जायँ। इस ग्रन्थरत्नमें भावशुद्धिपर विशेष जोर है, इसलिये महाभारत ग्रन्थका अध्ययन करते समय भी भाव शुद्ध रखना चाहिये।

जनमेजयके भाइयोंको शाप और गुरुसेवाकी महिमा

उग्रश्रवाजीने कहा—'ऋषियो! परिक्षित्-नन्दन जनमेजय अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें एक लंबा यज्ञ कर रहे थे। उनके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। उस यज्ञके अवसरपर वहाँ एक कुत्ता आया। जनमेजयके भाइयोंने उसे पीटा और वह रोता-चिल्लाता अपनी माँके पास गया। रोते-चिल्लाते कुत्तेसे माँने पूछा, 'बेटा! तू क्यों रो रहा है? किसने तुझे मारा है?' उसने कहा, 'माँ! मुझे जनमेजयके भाइयोंने पीटा है।' माँ बोली, 'बेटा! तुमने उनका कुछ-न-कुछ अपराध किया होगा।' कुत्तेने कहा, 'माँ! न मैंने हविष्यकी ओर देखा और न किसी वस्तुको चाटा ही। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।' यह सुनकर माताको बड़ा दुःख हुआ और वह जनमेजयके यज्ञमें गयी। उसने क्रोधसे कहा—'मेरे पुत्रने हविष्यको देखातक नहीं, कुछ चाटा भी नहीं; और भी इसने कोई अपराध नहीं किया। फिर इसे पीटनेका कारण?' जनमेजय और उनके भाइयोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुतियाने कहा, 'तुमने बिना अपराध मेरे पुत्रको मारा है, इसलिये तुमपर अचानक ही कोई महान् भय आवेगा।' देवताओंकी कुतिया सरमाका यह शाप सुनकर जनमेजय बड़े दुखी हुए

और घबराये भी। यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर आये और एक योग्य पुरोहित ढूँढने लगे, जो इस अनिष्टको शान्त

पुरुषार्थोंका संक्षेप और विस्तारसे वर्णन करके लोगोंका अज्ञानान्धकार नष्ट कर दिया है। इस भारतपुराणरूपी पूर्ण-चन्द्रने श्रुत्यर्थरूप चन्द्रिकाको छिटकाकर मनुष्योंकी बुद्धि-रूप कुमुदोंको विकसित कर दिया है, इस इतिहासरूप दीपक-ने संसारके तहखानेको उजालेसे भर दिया है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने इस ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी प्रज्ञा, कुन्तीके धैर्य, दुर्योधनादिकी दुष्टता और पाण्डवोंकी सत्यताका वर्णन किया है। इसकी प्रत्येक कथासे भगवान् श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय महिमा प्रकट होती है। यह महाभारतरूप कल्पवृक्ष समस्त कवियोंके लिये आश्रयस्थान है। इसीके आधारपर सब अपने-अपने काव्यका निर्माण करेंगे।

जो श्रद्धापूर्वक महाभारतका अध्ययन करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि इसमें देवर्षि, ब्रह्मर्षि, देवता आदिके परम पवित्र कर्मोंका वर्णन है; इसमें सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णका स्थान-स्थानपर कीर्तन है। वे ही सत्य, ऋत, परम पवित्र और मङ्गलमय हैं; वे अविनाशी, अविचल, अखण्ड ज्ञानस्वरूप परब्रह्म हैं। बुद्धिमान् लोग उन्हींकी लीलाओंका गायन करते हैं, वे सत् और असत् दोनों हैं। जगत्की सारी चेष्टा उन्हींकी शक्तिसे होती है। जो कुछ पाञ्च-भौतिक, आध्यात्मिक अथवा प्रकृतिका मूलभूत निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूप है, वह सब उन्हींका स्वरूप है। संन्यासी ध्यानके द्वारा उन्हींका चिन्तन करके मुक्त होते हैं और दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान सम्पूर्ण प्रपञ्चको उन्हींमें स्थित देखते हैं। यह ग्रन्थ उनके चरित्रसे पूर्ण है, इसलिये इसका पाठ करनेवाला पापोंसे छूट जाता है। इस महाभारत ग्रन्थका शरीर है सत्य और अमृत। इतिहासोंमें यही सर्वश्रेष्ठ है। इतिहास और पुराणोंके द्वारा ही वेदार्थका निश्चय करना चाहिये। वेद अल्पज्ञसे भयभीत रहते हैं कि कहीं यह हमारा सत्यानाश न कर डाले। देवताओंने महाभारतको तराजूपर वेदोंके साथ रखकर तौला है। उस समय चारों वेदोंसे इसकी महत्ता अधिक सिद्ध हुई है। महत्ता और भगवत्ताके कारण ही इसे महाभारत कहते हैं। तपस्या, अध्ययन, वैदिक कर्मानुष्ठान, शिलोञ्छवृत्ति आदि तभी चित्तशुद्धिके हेतु हैं, जब वे भावशुद्धिके साथ किये जायँ। इस ग्रन्थरत्नमें भावशुद्धिपर विशेष जोर है, इसलिये महाभारत ग्रन्थका अध्ययन करते समय भी भाव शुद्ध रखना चाहिये।

जनमेजयके भाइयोंको शाप और गुरुसेवाकी महिमा

उग्रश्रवाजीने कहा—'ऋषियो! परिक्षित्-नन्दन जनमेजय अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें एक लंबा यज्ञ कर रहे थे। उनके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। उस यज्ञके अवसरपर वहाँ एक कुत्ता आया। जनमेजयके भाइयोंने उसे पीटा और वह रोता-चिल्लाता अपनी माँके पास गया। रोते-चिल्लाते कुत्तेसे माँने पूछा, 'बेटा! तू क्यों रो रहा है? किसने तुझे मारा है?' उसने कहा, 'माँ! मुझे जनमेजयके भाइयोंने पीटा है।' माँ बोली, 'बेटा! तुमने उनका कुछ-न-कुछ अपराध किया होगा।' कुत्तेने कहा, 'माँ! न मैंने हविष्यकी ओर देखा और न किसी वस्तुको चाटा ही। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।' यह सुनकर माताको बड़ा दुःख हुआ और वह जनमेजयके यज्ञमें गयी। उसने क्रोधसे कहा—'मेरे पुत्रने हविष्यको देखातक नहीं, कुछ चाटा भी नहीं; और भी इसने कोई अपराध नहीं किया। फिर इसे पीटनेका कारण?' जनमेजय और उनके भाइयोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुतियाने कहा, 'तुमने बिना अपराध मेरे पुत्रको मारा है, इसलिये तुमपर अचानक ही कोई महान् भय आवेगा।' देवताओंकी कुतिया सरमाका यह शाप सुनकर जनमेजय बड़े दुखी हुए

और घबराये भी। यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर आये और एक योग्य पुरोहित ढूँढने लगे, जो इस अनिष्टको शान्त

: सके। एक दिन वे शिकार खेलने गये। घूमते-घूमते पने राज्यमें ही उन्हें एक आश्रम मिला। उस आश्रम- श्रुतश्रवा नामके एक ऋषि रहते थे। उनके तपस्वी त्रका नाम था सोमश्रवा। जनमेजयने उस ऋषिपुत्र- ी ही पुरोहित बनानेका निश्चय किया। उन्होंने श्रुतश्रवा षिको नमस्कार करके कहा, 'भगवन्! आपके पुत्र मेरे रोहित बनें।' ऋषिने कहा, 'मेरा पुत्र बड़ा तपस्वी और ाध्यायसम्पन्न है। यह आपके सारे अनिष्टोंको शान्त कर कता है। केवल महादेवके शापको मिटानेमें इसकी गति नहीं है। न्तु इसका एक गुप्त व्रत है। वह यह कि यदि कोई ब्राह्मण ससे कोई चीज माँगेगा तो यह उसे अवश्य दे देगा। यदि

ुम ऐसा कर सको तो इसे ले जाओ।' जनमेजयने ऋषिकी भाज्ञा स्वीकार कर ली। वे सोमश्रवाको लेकर हस्तिनापुर आये ौर अपने भाइयोंसे बोले—'मैंने इन्हें अपना पुरोहित नाया है। तुमलोग बिना विचारके ही इनकी आज्ञाका ालन करना।' भाइयोंने उनकी आज्ञा स्वीकार की। उन्होंने क्षशिलापर चढ़ाई की और उसे जीत लिया।

उन्हीं दिनों उस देशमें आयोदधौम्य नामके एक ऋषि हा करते थे। उनके तीन प्रधान शिष्य थे—आरुणि, उपमन्यु और वेद। इनमें आरुणि पाञ्चालदेशका रहनेवाला था। उसे उन्होंने एक दिन खेतकी मेड़ बाँधनेके लिये भेजा। गुरुकी आज्ञासे आरुणि खेतपर गया और प्रयत्न करते-करते हार गया तो भी उससे बाँध न बँधा। जब वह तंग आ गया तो उसे एक उपाय सूझा। वह मेड़की जगह स्वयं लेट गया। इससे पानीका बहना बंद हो गया। कुछ समय बीतनेपर आयोदधौम्यने अपने शिष्योंसे पूछा कि 'आरुणि कहाँ गया?' शिष्योंने कहा, 'आपने ही तो उसे खेतकी मेड़ बाँधनेके लिये भेजा था।' आचार्यने शिष्योंसे कहा कि 'चलो, हमलोग भी जहाँ वह गया है वहीं चलें।' वहाँ जाकर आचार्य पुकारने लगे, 'आरुणि! तुम कहाँ हो? आओ बेटा!' आचार्यकी आवाज़ पहचानकर आरुणि उठ खड़ा हुआ और उनके पास आकर बोला, 'भगवन्! मैं यह हूँ। खेतसे जल बहा जा रहा था। जब उसे मैं किसी प्रकार नहीं रोक सका तो स्वयं ही मेड़के स्थानपर लेट गया। अब यकायक आपकी आवाज सुन मेड़ तोड़कर आपकी सेवामें आया हूँ। आपके चरणोंमें मेरे प्रणाम हैं। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी
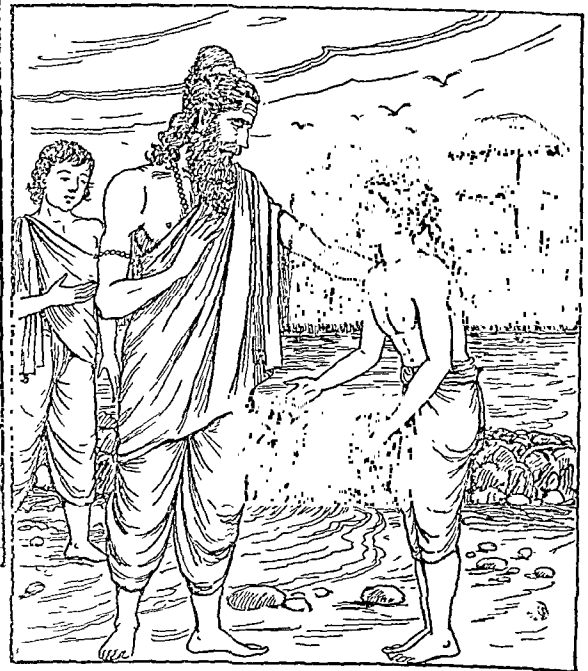
क्या सेवा करूँ?' आचार्यने कहा, ''बेटा! तुम मेड़के बाँधको उद्दलन (तोड़-ताड़) करके उठ खड़े हुए हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'उद्दालक' होगा।'' फिर कृपादृष्टिसे देखते हुए आचार्यने और भी कहा, 'बेटा! तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है। इसलिये तुम्हारा और भी कल्याण होगा। सारे वेद और धर्मशास्त्र तुम्हें ज्ञात हो जायँगे।' अपने आचार्यका वरदान पाकर वह अपने अभीष्ट स्थानपर चला गया।

आयोदधौम्यके दूसरे शिष्यका नाम था उपमन्यु। आचार्यने उसे यह कहकर भेजा कि 'बेटा! तुम गौओंकी रक्षा करो।' आचार्यकी आज्ञासे वह गाय चराने लगा। दिनभर गाय चरानेके बाद सायंकाल आचार्यके आश्रमपर आया और उन्हें नमस्कार किया। आचार्यने कहा, 'बेटा!

तुम मोटे और बलवान् दीख रहे हो। खाते-पीते क्या हो?' उसने कहा, 'आचार्य! मैं भिक्षा माँगकर खा-पी लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'बेटा! मुझे निवेदन किये बिना भिक्षा नहीं खानी चाहिये।' उसने आचार्यकी बात मान ली। अब वह भिक्षा माँगकर उन्हें निवेदित कर देता और आचार्य सारी भिक्षा लेकर रख लेते। वह फिर दिनभर गाय चराकर सन्ध्याके समय गुरुगृहमें लौट आता और आचार्यको नमस्कार करता। एक दिन आचार्यने कहा, 'बेटा! मैं तुम्हारी सारी भिक्षा ले लेता हूँ। अब तुम क्या खाते-पीते हो?' उपमन्युने कहा, 'भगवन्! मैं पहली भिक्षा आपको निवेदित करके फिर दूसरी माँगकर खा-पी लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'ऐसा करना अन्तेवासी (गुरुके समीप रहनेवाले ब्रह्मचारी) के लिये अनुचित है। तुम दूसरे भिक्षार्थियोंकी जीविकामें अड़चन डालते हो और इससे तुम्हारा लोभ भी सिद्ध होता है।' उपमन्युने आचार्यकी आज्ञा स्वीकार कर ली और वह फिर गाय चराने चला गया। सन्ध्या-समय वह पुनः गुरुजीके पास आया और उनके चरणोंमें नमस्कार किया। आचार्यने कहा, 'बेटा उपमन्यु! मैं तुम्हारी सारी भिक्षा ले लेता हूँ, दूसरी बार तुम माँगते नहीं, फिर भी तुम खूब हट्टे-कट्टे हो; अब क्या खाते-पीते हो?' उपमन्युने कहा, 'भगवन्! मैं इन गौओंके दूधसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'बेटा! मेरी आज्ञाके बिना गौओंका दूध पी लेना उचित नहीं है।' उसने उनकी वह आज्ञा भी स्वीकार की और फिर गौएँ चराकर शामको उनकी सेवामें उपस्थित होकर नमस्कार किया। आचार्यने पूछा—'बेटा! तुमने मेरी आज्ञासे भिक्षाकी तो बात ही कौन, दूध पीना भी छोड़ दिया; फिर क्या खाते-पीते हो?' उपमन्युने कहा, 'भगवन्! ये बछड़े अपनी माँके थनसे दूध पीते समय जो फेन उगल देते हैं, वही मैं पी लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'राम-राम! ये दयालु बछड़े तुमपर कृपा करके बहुत-सा फेन उगल देते होंगे; इस प्रकार तो तुम इनकी जीविकामें अड़चन डालते हो! तुम्हें वह भी नहीं पीना चाहिये।' उसने आचार्यकी आज्ञा शिरोधार्य की। अब खाने-पीनेके सभी दरवाजे बंद हो जानेके कारण भूखसे व्याकुल होकर उसने एक दिन आकके पत्ते खा लिये। उन खारे, तीते, कड़वे, रूखे और पचनेपर तीक्ष्ण रस पैदा करनेवाले पत्तोंको खाकर वह अपनी आँखोंकी ज्योति खो बैठा। अंधा होकर वनमें भटकता रहा और एक कूएँमें गिर पड़ा। सूर्यास्त हो गया, परन्तु उ[illegible] आचार्यके आश्रमपर नहीं आया। आचार्यने शि[illegible] पूछा—'उपमन्यु नहीं आया?' शिष्योंने कहा—'भग[illegible] वह तो गाय चराने गया है।' आचार्यने कहा—'मैंने उपम[illegible] खाने-पीनेके सभी दरवाजे बंद कर दिये हैं। इससे उसे [illegible] आ गया होगा। तभी तो अबतक नहीं लौटा। चलो, [illegible] ढूँढें।' आचार्य शिष्योंके साथ वनमें गये और जोरसे पुक[illegible] 'उपमन्यु! तुम कहाँ हो? आओ बेटा!' आचार्यकी आ[illegible] पहचानकर वह जोरसे बोला, 'मैं इस कूएँमें गिर पड़ा हूँ[illegible]
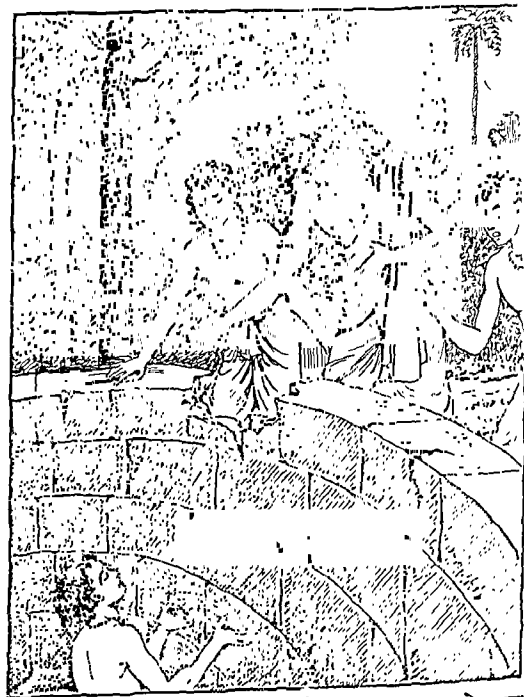
आचार्यने पूछा कि 'तुम कूएँमें कैसे गिरे?' उसने कहा, 'आकके पत्ते खाकर मैं अंधा हो गया और इस कूएँमें गिर पड़ा।' आचार्यने कहा, 'तुम देवताओंके चिकित्सक अश्विनीकुमारकी स्तुति करो। वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।' तब उपमन्युने वेदकी ऋचाओंसे अश्विनीकुमारकी स्तुति की।

उपमन्युकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार उसके पास आये और बोले, 'तुम यह पूआ खा लो।' उपमन्युने कहा, 'देववर! आपका कहना ठीक है। परन्तु आचार्यको निवेदन किये बिना मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकता।' अश्विनीकुमारोंने कहा, 'पहले तुम्हारे आचार्यने भी हमारी स्तुति की थी और हमने उन्हें पूआ दिया था। उन्होंने तो उसे अपने गुरुको निवेदन किये बिना ही खा

लिया था। सो जैसा उपाध्यायने किया, वैसा ही तुम भी करो।' उपमन्युने कहा—'मैं आपलोगोंसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। आचार्यको निवेदन किये बिना मैं पूआ
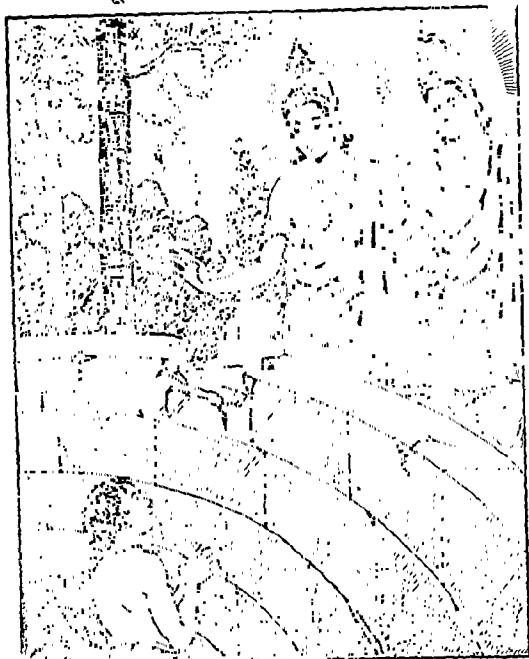
नहीं खा सकता।' अश्विनीकुमारोंने कहा, 'हम तुमपर प्रसन्न हैं तुम्हारी इस गुरुभक्तिसे। तुम्हारे दाँत सोनेके हो जायँगे, तुम्हारी आँखें ठीक हो जायँगी और तुम्हारा सब प्रकार कल्याण होगा।' अश्विनीकुमारोंकी आज्ञाके अनुसार उपमन्यु आचार्यके पास आया और सब घटना सुनायी। आचार्यने प्रसन्न होकर कहा, 'अश्विनीकुमारके कथनानुसार तुम्हारा कल्याण होगा और सारे वेद और सारे धर्मशास्त्र तुम्हारी बुद्धिमें अपने-आप ही स्फुरित हो जायँगे।'

आयोदधौम्यका तीसरा शिष्य था वेद। आचार्यने उससे कहा, 'बेटा! तुम कुछ दिनोंतक मेरे घर रहो। सेवा-शुश्रूषा करो, तुम्हारा कल्याण होगा।' उसने बहुत दिनोंतक वहाँ रहकर गुरु-सेवा की। आचार्य प्रतिदिन उसपर बैलकी तरह भार लाद देते और वह गर्मी-सर्दी, भूख-प्यासका दुःख सहकर उनकी सेवा करता। कभी उनकी आज्ञाके विपरीत न चलता। बहुत दिनोंमें आचार्य प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके कल्याण और सर्वज्ञताका वर दिया। ब्रह्मचर्याश्रमसे लौटकर वह गृहस्थाश्रममें आया। वेदके भी तीन शिष्य थे, परन्तु वे उन्हें कभी किसी काम या गुरु-सेवाका आदेश नहीं करते थे। वे गुरुगृहके दुःखोंको जानते थे और शिष्योंको दुःख देना नहीं चाहते थे। एक बार राजा जनमेजय और पौष्यने आचार्य वेदको पुरोहितके रूपमें वरण किया। वेद कभी पुरोहितीके कामसे बाहर जाते तो घरकी देखरेखके लिये अपने शिष्य उत्तङ्कको नियुक्त कर जाते थे। एक बार आचार्य वेदने बाहरसे लौटकर अपने शिष्य उत्तङ्कके सदाचार-पालनकी बड़ी प्रशंसा सुनी। उन्होंने कहा—'बेटा! तुमने धर्मपर दृढ़ रहकर मेरी बड़ी सेवा की है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी। अब जाओ।' उत्तङ्कने प्रार्थना की, 'आचार्य! मैं आपको कौन-सी प्रिय वस्तु भेंटमें दूँ?' आचार्यने पहले तो अस्वीकार किया, पीछे कहा कि 'अपनी गुरुआनीसे पूछ लो।' जब उत्तङ्कने गुरुआनीसे पूछा तो उन्होंने कहा, 'तुम राजा पौष्यके पास जाओ और उनकी रानीके कानोंके कुण्डल माँग लाओ। मैं आजके चौथे दिन उन्हें पहनकर ब्राह्मणोंको भोजन परसना चाहती हूँ। ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।'

उत्तङ्कने वहाँसे चलकर देखा कि एक बहुत लंबा-चौड़ा पुरुष बड़े भारी बैलपर चढ़ा हुआ है। उसने उत्तङ्कको सम्बोधन करके कहा कि 'तुम इस बैलका गोबर खा लो।' उत्तङ्कने 'ना' कर दिया। वह पुरुष फिर बोला, 'उत्तङ्क! तुम्हारे आचार्यने पहले इसे खाया है। सोच-विचार मत करो। खा जाओ।' उत्तङ्कने बैलका गोबर और मूत्र खा लिया और शीघ्रताके कारण बिना रुके कुल्ला करता हुआ ही वहाँसे चल पड़ा। उत्तङ्कने राजा पौष्यके पास जाकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा कि 'मैं आपके पास कुछ माँगनेके लिये आया हूँ।' पौष्यने उत्तङ्कका अभिप्राय जानकर उसे अन्तःपुरमें रानीके पास भेज दिया। परन्तु उत्तङ्कको रनिवासमें कहीं भी रानी दिखायी नहीं दी। वहाँसे लौटकर उसने पौष्यको उलाहना दिया कि 'अन्तःपुरमें रानी नहीं है।' पौष्यने कहा—'भगवन्! मेरी रानी पतिव्रता है। उसे उच्छिष्ट या अपवित्र मनुष्य नहीं देख सकता।' उत्तङ्कने स्मरण करके कहा कि 'हाँ, मैंने चलते-चलते आचमन कर लिया था।' पौष्यने कहा—'ठीक है, चलते-चलते आचमन करना निषिद्ध है। इसलिये आप जूठे हैं।' अब उत्तङ्कने पूर्वाभिमुख बैठकर, हाथ-पैर-मुँह धोकर शब्द, फेन और उष्णतासे रहित एवं हृदयतक पहुँचनेयोग्य जलसे तीन बार आचमन किया और दो बार मुँह धोया। इस बार अन्तःपुरमें जानेपर रानी दीख पड़ी और उसने उत्तङ्कको सत्पात्र

समझकर अपने कुण्डल दे दिये। साथ ही यह कहकर सावधान भी कर दिया कि 'नागराज तक्षक ये कुण्डल

चाहता है। कहीं तुम्हारी असावधानीसे लाभ उठाकर वह ले न जाय !'

मार्गमें चलते समय उत्तङ्कने देखा कि उसके पीछे-पीछे एक नग्न क्षपणक चल रहा है, कभी प्रकट होता है और

कभी छिप जाता है। एक बार उत्तङ्कने कुण्डल रखकर जल लेनेकी चेष्टा की। इतनेहीमें वह क्षपणक कुण्डल लेकर अदृश्य हो गया। नागराज तक्षक ही उस वेषमें था। उत्तङ्कने इन्द्रके वज्रकी सहायतासे नागलोकतक पीछा किया। अन्तमें भयभीत होकर तक्षकने उसे दे दिये। उत्तङ्क ठीक समयपर अपनी गुरुआनीके

पहुँचा और उसे कुण्डल देकर आशीर्वाद प्राप्त किया। आचार्यसे आज्ञा प्राप्त करके उत्तङ्क हस्तिनापुर आया। वह तक्षकपर अत्यन्त क्रोधित था और उससे बदला लेना चाहता था। उस समयतक हस्तिनापुरके सम्राट् जनमेजय तक्षशिलापर विजय प्राप्त करके लौट चुके थे। उत्तङ्कने कहा, 'राजन् ! तक्षकने आपके पिताको डँसा है। आप उससे बदला लेनेके लिये यज्ञ कीजिये। काश्यप आपके पिताकी रक्षा करनेके लिये आ रहे थे परन्तु उन्हें उसने लौटा दिया। अब आप सर्प-सत्र कीजिये और उसकी प्रज्वलित अग्निमें उस पापीको जलाकर भस्म कर डालिये। उस दुरात्माने मेरा भी कम अनिष्ट नहीं किया है। आप सर्प-सत्र करेंगे तो आपके पिताकी मृत्युका बदला चुकेगा और मुझे भी प्रसन्नता होगी।'

सर्पोंके जन्मकी कथा

शौनकजीने प्रश्न किया—सूतनन्दन उग्रश्रवा ! अब तुम आस्तीक ऋषिकी कथा सुनाओ, जिन्होंने जनमेजयके सर्प-सत्रमें नागराज तक्षककी रक्षा की थी। तुम्हारे मुँहकी कथा मिठाससे भरी और सुन्दर होती है। तुम अपने पिताके अनुरूप पुत्र हो। उन्हींके समान हमें कथा सुनाओ।

उग्रश्रवाजीने कहा—आयुष्मन् ! मैंने अपने पिताके मुँहसे आस्तीककी कथा सुनी है। वही आप लोगोंको सुनाता हूँ। सत्ययुगमें दक्षप्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं—कद्रू और विनता। उनका विवाह कश्यप ऋषिसे हुआ था। कश्यप अपनी धर्मपत्नियोंसे प्रसन्न होकर बोले, 'तुम्हारी जो इच्छा

हो, वर माँग लो।' कद्रूने कहा, 'एक हजार समानतेजस्वी नाग मेरे पुत्र हों।' विनता बोली, 'तेज, शरीर और बल-विक्रममें कद्रूके पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दो ही पुत्र मुझे प्राप्त हों।' कश्यपजीने 'एवमस्तु' कहा। दोनों प्रसन्न हो गयीं। सावधानीसे गर्भ-रक्षा करनेकी आज्ञा देकर कश्यपजी वनमें चले गये।

समय आनेपर कद्रूने एक हजार और विनताने दो अंडे दिये। दासियोंने प्रसन्न होकर गरम बर्तनोंमें उन्हें रख दिया। पाँच सौ वर्ष पूरे होनेपर कद्रूके तो हजार पुत्र निकल आये, परन्तु विनताके दो बच्चे नहीं निकले। विनताने अपने हाथों एक अंडा फोड़ डाला। उस अंडेका शिशु आधे शरीरसे तो पुष्ट हो गया था, परन्तु उसका नीचेका आधा शरीर अभी कच्चा था। नवजात शिशुने क्रोधित होकर अपनी माताको शाप दिया, 'माँ ! तूने लोभवश मेरे अधूरे शरीरको ही निकाल लिया है। इसलिये तू अपनी उसी सौत-की पाँच सौ वर्षतक दासी रहेगी, जिससे डाह करती है। यदि मेरी तरह तूने दूसरे अंडेको भी फोड़कर उसके बालकको अङ्गहीन या विकृताङ्ग न किया तो वही तुझे इस शापसे मुक्त करेगा। यदि तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरा दूसरा बालक बलवान् हो तो धैर्यके साथ पाँच सौ वर्षतक और प्रतीक्षा कर।'-इस प्रकार शाप देकर वह बालक आकाशमें उड़ गया और सूर्यका सारथि बना। प्रातःकालीन लालिमा उसीकी झलक है। उस बालकका नाम अरुण हुआ।

एक बार कद्रू और विनता दोनों बहनें एक साथ ही घूम रही थीं कि उन्हें पास ही उच्चैःश्रवा नामका घोड़ा दिखायी दिया। यह अश्व-रत्न अमृत-मन्थनके समय उत्पन्न हुआ था और समस्त अश्वोंमें श्रेष्ठ, बलवान्, विजयी, सुन्दर, अजर, दिव्य एवं सब शुभ लक्षणोंसे युक्त था। उसे देखकर वे दोनों आपसमें उसका वर्णन करने लगीं।

शौनकजीने पूछा—'सूतनन्दन ! देवताओंने अमृत-मन्थन किस स्थानपर और क्यों किया था ? अमृत-मन्थनके समय उच्चैःश्रवा घोड़ा किस प्रकार उत्पन्न हुआ ?' उग्रश्रवाजी महर्षि शौनकका यह प्रश्न सुनकर उनसे अमृत-मन्थनकी कथा कहने लगे।

समुद्र-मन्थन और अमृत आदिकी प्राप्ति

उग्रश्रवाजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! मेरु नामका एक पर्वत है। वह इतना चमकीला है मानो तेजकी राशि हो। उसकी सुनहली चोटियोंकी चमकके सामने सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ जाती है। वे गगनचुम्बी चोटियाँ रत्नोंसे खचित हैं। उन्हींमेंसे एकपर देवतालोग इकट्ठे होकर अमृतप्राप्तिके लिये सलाह करने लगे। उनमें भगवान्

नारायण और ब्रह्माजी भी थे। नारायणने देवताओंसे कहा, 'देवता और असुर मिलकर समुद्र-मन्थन करें। इस मन्थनके फलस्वरूप अमृतकी प्राप्ति होगी।' देवताओंने भगवान् नारायणके परामर्शसे मन्दराचलको उखाड़नेकी चेष्टा की।
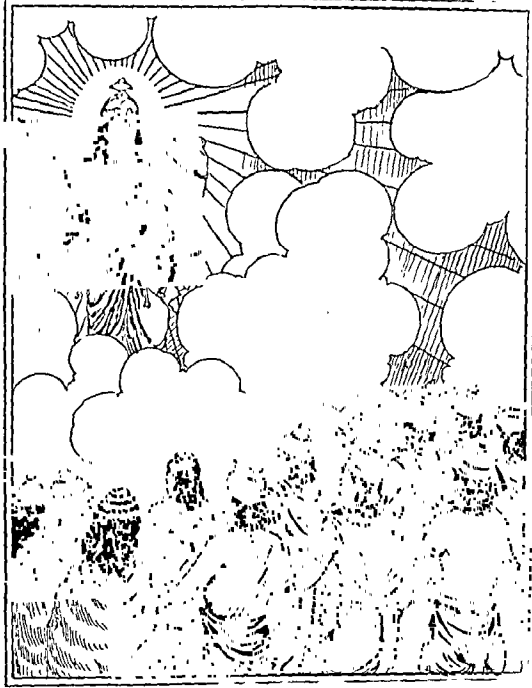
वह पर्वत मेघोंके समान ऊँची चोटियोंसे युक्त, ग्यारह हजार योजन ऊँचा और उतना ही नीचे धँसा हुआ था। जब सब देवता पूरी शक्ति लगाकर भी उसे नहीं उखाड़ सके, तब उन्होंने विष्णुभगवान् और ब्रह्माजीके पास जाकर प्रार्थना की—'भगवन्! आप दोनों हमलोगोंके कल्याणके लिये मन्दराचलको उखाड़नेका उपाय कीजिये और हमें कल्याणकारी ज्ञान दीजिये।' देवताओंकी प्रार्थना सुनकर श्रीनारायण और ब्रह्माजीने शेषनागको मन्दराचल उखाड़नेके लिये प्रेरित किया। महाबली शेषनागने वन और वन-वासियोंके साथ मन्दराचलको उखाड़ लिया। अब मन्दराचलके साथ देवगण समुद्रतटपर पहुँचे और समुद्रसे कहा कि 'हमलोग अमृतके लिये तुम्हारा जल मथेंगे।' समुद्रने कहा, 'यदि आपलोग अमृतमें मेरा भी हिस्सा रक्खें तो मैं मन्दराचलको घुमानेसे जो कष्ट होगा, वह सह लूँगा।' देवता और असुरोंने समुद्रकी बात स्वीकार करके कच्छपराजसे कहा, 'आप इस पर्वतके आधार बनिये।' कच्छपराजने 'ठीक है' कहकर मन्दराचलको अपनी पीठपर ले लिया। अब देवराज इन्द्र यन्त्रके द्वारा मन्दराचलको घुमाने लगे।

इस प्रकार देवता और असुरोंने मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागकी डोरी बनाकर समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया। वासुकि नागके मुँहकी ओर असुर और पूँछकी ओर देवता लगे थे। बार-बार खींचे जानेके कारण वासुकि
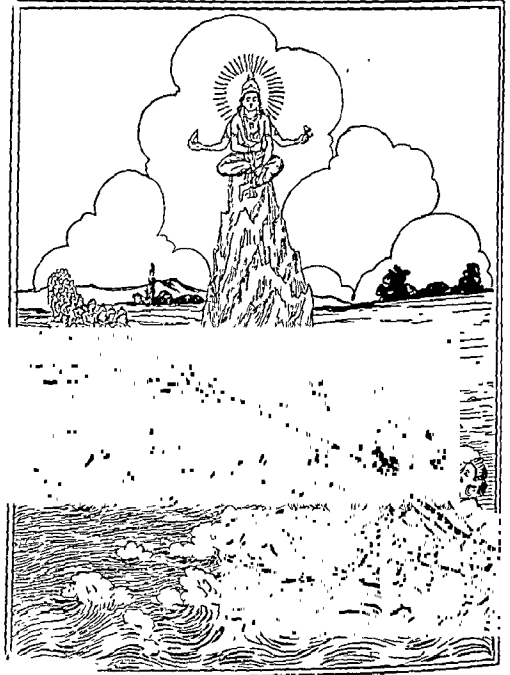
नागके मुखसे धुएँ और अग्निज्वालाके साथ साँस निकलने लगी। वह साँस थोड़ी ही देरमें मेघ बन जाती और वह मेघ थके-माँदे देवताओंपर जल बरसाने लगता। पर्वतके शिखरसे पुष्पोंकी झड़ी लग गयी। महामेघके समान गम्भीर शब्द होने लगा। पहाड़परके वृक्ष आपसमें टकराकर गिरने लगे। उनकी रगड़से आग लग गयी। इन्द्रने मेघोंके द्वारा जल बरसवाकर उसे शान्त किया। वृक्षोंके दूध और ओषधियोंके रस चू-चूकर समुद्रमें आने लगे। ओषधियोंके अमृतके समान प्रभावशाली रस और दूध तथा सुवर्णमय मन्दराचलकी अनेकों दिव्य प्रभाववाली मणियोंसे चूनेवाले जलके स्पर्शसे ही देवता अमरत्वको प्राप्त होने लगे। उन उत्तम रसोंके सम्मिश्रणसे समुद्रका जल दूध बन गया और दूधसे घी बनने लगा। देवताओंने मथते-मथते थककर ब्रह्माजीसे कहा, 'भगवान् नारायणके अतिरिक्त सभी देवता और असुर थक गये हैं। समुद्र मथते-मथते इतना समय बीत गया, परन्तु अबतक अमृत नहीं निकला।' ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा, 'भगवन्! आप इन्हें बल दीजिये। आप ही इनके एकमात्र आश्रय हैं।' विष्णुभगवान्‌ने कहा, 'जो लोग इस कार्यमें लगे हुए हैं, मैं उन्हें बल दे रहा

हूँ। सब लोग पूरी शक्ति लगाकर मन्दराचलको घुमावें और समुद्रको क्षुब्ध कर दें।'

भगवान्‌के इतना कहते ही देवता और असुरोंका बल बढ़ गया। वे बड़े वेगसे मथने लगे। सारा समुद्र क्षुब्ध हो उठा। उस समय समुद्रसे अगणित किरणों-वाला, शीतल प्रकाशसे युक्त, श्वेतवर्णका चन्द्रमा प्रकट हुआ। चन्द्रमाके बाद भगवती लक्ष्मी और सुरा देवी निकलीं। उसी समय श्वेतवर्णका उच्चैःश्रवा घोड़ा भी पैदा हुआ। भगवान् नारायणके वक्षःस्थलपर सुशोभित होने-वाली दिव्य किरणोंसे उज्ज्वल कौस्तुभमणि तथा वाञ्छित फल देनेवाले कल्पवृक्ष और कामधेनु भी उसी समय निकले। लक्ष्मी, सुरा, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा—ये सब आकाशमार्गसे देवताओंके लोकमें चले गये। इसके बाद दिव्यशरीरधारी धन्वन्तरि देव प्रकट हुए। वे अपने हाथमें अमृतसे भरा श्वेतकमण्डलु लिये हुए थे। यह अद्भुत चमत्कार देखकर दानवोंमें 'यह मेरा है, यह मेरा है' ऐसा कोलाहल मच गया। तदनन्तर चार श्वेत दाँतोंसे युक्त विशाल ऐरावत हाथी निकला। उसे इन्द्रने ले लिया। जब समुद्रका बहुत मन्थन किया गया, तब उसमेंसे कालकूट विष निकला। उसकी गन्धसे ही लोगोंकी चेतना जाती रही। ब्रह्माकी प्रार्थनासे भगवान् शङ्करने उसे अपने कण्ठमें धारण कर लिया। तभीसे वे 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। यह सब देखकर दानवोंकी आशा टूट गयी। अमृत और लक्ष्मीके लिये उनमें बड़ा वैर-विरोध और फूट हो गयी। उसी समय भगवान् विष्णु मोहिनी स्त्रीका वेष धारण करके दानवोंके पास आये। मूर्खोंने उनकी माया न जानकर मोहिनीरूपधारी भगवान्‌को अमृतका पात्र दे दिया। उस समय वे सभी मोहिनीके रूपपर लट्टू हो रहे थे।

इस प्रकार विष्णुभगवान्‌ने मोहिनीरूप धारण करके दैत्य और दानवोंसे अमृत छीन लिया और देवताओंने उनके पास जाकर उसे पी लिया। उसी समय राहु दानव भी देवताओंका रूप धारण करके अमृत पीने लगा। अभी अमृत उसके कण्ठतक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूर्यने उसका भेद बतला दिया। भगवान् विष्णुने तुरंत ही अपने चक्रसे उसका सिर काट डाला। राहुका पर्वत-शिखरके समान सिर आकाशमें उड़कर गरजने लगा और उसका धड़ पृथ्वीपर गिरकर सबको कँपाता हुआ तड़फड़ाने लगा। तभीसे राहुके साथ चन्द्रमा और सूर्यका वैमनस्य स्थायी हो गया। विष्णुभगवान्‌ने अमृत पिलानेके बाद अपना मोहिनीरूप त्याग दिया और वे

तरह-तरहके भयावने अस्त्र-शस्त्रोंसे असुरोंको डराने लगे। बस, खारे समुद्रके तटपर देवता और असुरोंका भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र बरसने लगे।

भगवान्‌के चक्रसे कट-कुटकर कोई-कोई असुर खून उगलने लगे तो कोई-कोई देवताओंके खड्ग, शक्ति और गदासे घायल होकर धरतीपर लोटने लगे। चारों ओरसे यही आवाज सुनायी पड़ती कि 'मारो, काटो, दौड़ो, गिरा दो,

पीछा करो !' इस प्रकार भयङ्कर युद्ध हो ही रहा था कि विष्णु-भगवान्‌के दो रूप 'नर' और 'नारायण' युद्ध-भूमिमें दिखायी पड़े। नरका दिव्य धनुष देखकर नारायणने अपने चक्रका स्मरण किया और उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी गोलाकार चक्र आकाशमार्गसे वहाँ उपस्थित हुआ। भगवान् नारायणके चलानेपर चक्र शत्रु-दलमें घूम-घूमकर कालाग्निके समान सहस्र-सहस्र असुरोंका संहार करने लगा। असुर भी आकाशमें उड़-उड़कर पर्वतोंकी वर्षासे देवताओंको घायल करते रहे। उस समय देवशिरोमणि नरने बाणोंके द्वारा पर्वतोंकी चो काट-काटकर उन्हें आकाशमें बिछा दिया और सुदर्श घास-फूसकी तरह दैत्योंको काटने लगा। इससे भयभीत ह असुरगण पृथ्वी और समुद्रमें छिप गये। देवताओंकी हुई। मन्दराचलको सम्मानपूर्वक यथास्थान पहुँचा गया। सभी अपने-अपने स्थानपर गये। देवता और इ बड़े आनन्दसे सुरक्षित रखनेके लिये भगवान् नरको अ दे दिया। यही समुद्र-मन्थनकी कथा है।

कद्रू और विनताकी कथा तथा गरुड़की उत्पत्ति

उग्रश्रवाजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! अमृत-मन्थनकी वह कथा, जिसमें उच्चैःश्रवा घोड़ेके उत्पन्न होनेकी बात भी है, आपको सुना दी। इसी उच्चैःश्रवा घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे कहा—'बहिन ! जल्दीसे बताओ तो यह घोड़ा किस रंगका है ?' विनताने कहा—'बहिन ! यह अश्वराज श्वेतवर्णका है। तुम इसे किस रंगका समझती हो ?' कद्रूने कहा—'अवश्य ही इस घोड़ेका रंग सफेद है, परन्तु पूँछ

काली है। आओ, हम दोनों इस विषयमें बाजी लगावें। यदि तुम्हारी बात ठीक हो तो मैं तुम्हारी दासी रहूँ और मेरी बात ठीक हो तो तुम मेरी दासी रहना।' इस प्रकार दोनों बहनें आपसमें बाजी लगाकर और दूसरे दिन घोड़ा देखनेका निश्चय करके घर चली गयीं। कद्रूने विनताको धोखा देनेके विचारसे अपने हजार पुत्रोंको यह आज्ञा दी कि 'पुत्र तुमलोग शीघ्र ही काले बाल बनकर उच्चैःश्रवाकी पूँछ द लो, जिससे मुझे दासी न बनना पड़े।' जिन सर्पोंने उस आज्ञा न मानी, उन्हें उसने शाप दिया कि 'जाओ, तु लोगोंको अग्नि जनमेजयके सर्प-यज्ञमें जलाकर भस्म क देगा।' यह दैवसंयोगकी बात है कि कद्रूने अपने पुत्रोंको ऐसा शाप दे दिया। यह बात सुनकर ब्रह्माजी और सम देवताओंने उसका अनुमोदन किया। उन दिनों पराक्र और विषैले सर्प बहुत प्रबल हो गये थे। वे दूसरोंको बड़ पीड़ा पहुँचाते थे। प्रजाके हितकी दृष्टिसे यह उचित ह हुआ। 'जो लोग दूसरे जीवोंका अहित करते हैं, उन्हें विधाता की ओरसे ही प्राणान्त दण्ड मिल जाता है।' ऐसा कहक ब्रह्माजीने भी कद्रूकी प्रशंसा की।

कद्रू और विनताने आपसमें दासी बननेकी बाजी लगाकर बड़े रोष और आवेशमें वह रात बितायी। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही निकटसे घोड़ेको देखनेके लिये दोनों चल पड़ीं। सर्पोंने परस्पर विचार करके यह निश्चय किया कि 'हमें माताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यदि उसका मनोरथ पूरा न होगा तो वह प्रेमभाव छोड़कर रोषपूर्वक हमें जला देगी। यदि इच्छा पूरी हो जायगी तो प्रसन्न होकर हमें अपने शापसे मुक्त कर देगी। इसलिये चलो, हमलोग घोड़ेकी पूँछको काली कर दें।' ऐसा निश्चय करके वे उच्चैःश्रवाकी पूँछसे बाल बनकर लिपट गये, जिससे वह काली जान पड़ने लगी। इधर कद्रू और विनता बाजी लगाकर आकाशमार्गसे समुद्रको देखते-देखते दूसरे पार जाने लगीं। दोनों ही घोड़ेके पास पहुँचकर नीचे उतर पड़ीं। उन्होंने

देखा कि घोड़ेका सारा शरीर तो चन्द्रमाकी किरणोंके समान

उज्ज्वल है, परन्तु पूँछ काली है। यह देखकर विनता उदास हो गयी, कद्रूने उसे अपनी दासी बना लिया।

समय पूरा होनेपर महातेजस्वी गरुड़ माताकी सहायताके बिना ही अण्डा फोड़कर उससे बाहर निकल

आये। उनके तेजसे दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। उनकी शक्ति, गति, दीप्ति और वृद्धि विलक्षण थी। नेत्र बिजलीके समान पीले और शरीर अग्निके समान तेजस्वी। वे जन्मते ही आकाशमें बहुत ऊपर उड़ गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो दूसरा बड़वानल ही हो। देवताओंने समझा अग्निदेव ही इस रूपमें बढ़ रहे हैं। उन्होंने विश्वरूप अग्निकी शरणमें जाकर प्रणामपूर्वक कहा, 'अग्निदेव! आप अपना शरीर मत बढ़ाइये। क्या आप हमें भस्म कर डालना चाहते हैं? देखिये, देखिये, आपकी यह तेजोमयी मूर्ति हमारी ओर बढ़ती आ रही है।' अग्निने कहा, 'देवगण! यह मेरी मूर्ति नहीं है। ये विनतानन्दन परमतेजस्वी पक्षिराज गरुड़ हैं। इन्हींको देखकर आपलोगोंको भ्रम हुआ है। ये नागोंके नाशक, देवताओंके हितैषी और असुरोंके शत्रु हैं। आप इनसे भयभीत न हों। मेरे साथ चलकर इनसे मिल लें।' अग्निके साथ जाकर देवता और ऋषियोंने गरुड़की स्तुति की।

देवता और ऋषियोंकी स्तुति सुनकर गरुड़जीने कहा—'मेरे भयङ्कर शरीरको देखकर जो लोग घबरा गये थे, वे अब भयभीत न हों। मैं अपने शरीरको छोटा और तेजको कम कर लेता हूँ।' सब लोग प्रसन्नतापूर्वक लौट गये।

एक दिन विनीत विनता अपने पुत्रके पास बैठी हुई थी, कद्रूने उसे बुलाकर कहा—'मुझे समुद्रके भीतर नागोंका

एक दर्शनीय स्थान देखना है। वहाँ तू मुझे ले चल।' अब

विनताने कद्रूको और गरुड़जीने माताकी आज्ञासे सर्पोंको अपने कन्धोंपर बैठा लिया और उनके अभीष्ट स्थानको चले। गरुड़जी बहुत ऊपर सूर्यके निकटसे चल रहे थे। तीक्ष्ण गर्मीके कारण सर्प बेहोश हो गये। कद्रूने इन्द्रकी प्रार्थना करके सारे आकाशको मेघ-मण्डलसे आच्छादित करा दिया, वर्षा हुई, सब सर्प सुखी हो गये। उन्होंने अभीष्ट स्थानपर पहुँचकर लवणसागर, मनोहर वन आदि देखा, यथेच्छ विहार किया और खूब खेल-कूदकर गरुड़से कहा—'तुमने तो आकाशमें उड़ते समय बहुत-से सुन्दर-सुन्दर द्वीप देखे होंगे। अब हमें और किसी द्वीपमें ले चलो।'

गरुड़ कुछ चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने सोच-विचारकर अपनी मातासे पूछा कि 'माँ! मुझे सर्पोंकी आज्ञाका पालन क्यों करना चाहिये?' विनताने कहा—'बेटा! इन सर्पोंके छलसे मैं बाजी हार गयी और दुर्भाग्यवश अपनी सौत कद्रूकी दासी हो गयी।' अपनी माताके दुःखसे गरुड़ भी बड़े दुखी हुए। उन्होंने सर्पोंसे कहा—'सर्पगण! ठीक-ठीक बताओ। मैं तुम्हें कौन-सी वस्तु ला दूँ, किस बातका पता लगा दूँ अथवा तुमलोगोंका कौन-सा उपकार कर दूँ, जिससे मैं और मेरी माता दासत्वसे मुक्त हो जायँ?' सर्पोंने कहा—'गरुड़! यदि तुम अपने पराक्रमसे हमारे लिये अमृत ला दो तो हम तुम्हें और तुम्हारी माताको दासत्वसे मुक्त कर देंगे।'

अमृतके लिये गरुड़की यात्रा और गज-कच्छपका वृत्तान्त

उग्रश्रवाजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! सर्पोंकी बात सुनकर गरुड़ने अपनी माता विनतासे कहा, 'माता! मैं अमृतके लिये जा रहा हूँ। उसके पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि वहाँ खाऊँगा क्या।' विनताने कहा, 'बेटा! समुद्रमें निषादोंकी एक बस्ती है। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। एक बातका स्मरण रखना। ब्राह्मणका वध कभी न करना। वे सबके लिये अवध्य हैं।' गरुड़जी माताजीकी आज्ञाके अनुसार उस द्वीपके निषादोंको खाकर आगे बढ़े। गलतीसे एक ब्राह्मण उनके मुँहमें आ गया, जिससे उनका तालू जलने लगा। उसे छोड़कर वे कश्यपजीके पास गये। कश्यपजीने पूछा 'बेटा! तुमलोग सकुशल तो हो? आवश्यकतानुसार भोजन तो मिल जाता है न?' गरुड़जीने कहा, 'मेरी माता सकुशल है। हम भी सानन्द हैं। यथेच्छ भोजन न मिलनेसे कुछ दुःख रहता है। मैं अपनी माताको दासीपनसे छुड़ानेके लिये सर्पोंके कहनेपर अमृत लानेके लिये जा रहा हूँ। माताने मुझे निषादोंका भोजन करनेके लिये कहा था, परन्तु उससे मेरा पेट नहीं भरा। अब आप कोई ऐसी खानेकी वस्तु बताइये, जिसे खाकर मैं अमृत ला सकूँ।' कश्यपजीने कहा, 'बेटा! यहाँसे थोड़ी दूरपर एक विश्वविख्यात सरोवर है। उसमें एक हाथी और एक कछुआ रहता है। वे दोनों पूर्वजन्मके भाई परन्तु एक दूसरेके शत्रु हैं। वे अब भी एक दूसरेसे उलझे रहते हैं। अच्छा, उनके पूर्व-जन्मकी कथा सुनो—

प्राचीन कालमें विभावसु नामक एक बड़े क्रोधी ऋषि थे। उनका छोटा भाई था बड़ा तपस्वी सुप्रतीक। सुप्रतीक अपने धनको बड़े भाईके साथ नहीं रखना चाहता था। वह नित्य बँटवारेके लिये कहा करता। विभावसुने अपने छोटे भाईसे कहा, 'सुप्रतीक! धनके मोहके कारण ही लोग उसका बँटवारा चाहते हैं, और बँटवारा होनेपर एक दूसरेके विरोधी हो जाते हैं। तब शत्रु भी उनके अलग-अलग मित्र बन जाते हैं और भाई-भाईमें भेद डाल देते हैं। उनका मन फटते ही मित्र बने हुए शत्रु दोष दिखा-दिखाकर वैर-भाव बढ़ा देते हैं। अलग-अलग होनेसे तत्काल उनका अधःपतन हो जाता है। क्योंकि फिर वे एक-दूसरेकी मर्यादा और सौहार्दका ध्यान नहीं रखते। इसीसे सत्पुरुष भाइयोंके अलगावकी बातको अच्छी नहीं मानते। जो लोग गुरु और शास्त्रके उपदेशपर ध्यान न देकर परस्पर एक-दूसरेको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं, उनको वशमें रखना कठिन है। तू भेद-भावके कारण ही धन अलग करना चाहता है। इसलिये जा, तुझे हाथीकी योनि प्राप्त होगी।' सुप्रतीकने कहा, 'मैं हाथी होऊँगा तो तुम कछुआ होगे।' गरुड़! इस प्रकार दोनों भाई धनके लालचसे एक-दूसरेको शाप देकर हाथी और कछुआ हो गये हैं। यह पारस्परिक द्वेषका परिणाम है। वे दोनों विशालकाय जन्तु अब भी आपसमें लड़ते रहते हैं। हाथी छः योजन ऊँचा और बारह योजन लंबा है। कछुआ तीन योजन ऊँचा और दस योजन गोल है। वे मतवाले एक-दूसरेका प्राण लेनेके लिये उतावले हो रहे हैं। तुम जाकर उन दोनों भयङ्कर जन्तुओंको खा जाओ और अमृत ले आओ।'

कश्यपजीकी आज्ञा प्राप्त करके गरुड़जी उस सरोवरपर गये। उन्होंने एक नखसे हाथीको और दूसरेसे कछुएको

पकड़ लिया तथा आकाशमें बहुत ऊँचे उड़कर अलम्ब तीर्थमें जा पहुँचे। वहाँ सुवर्णगिरिपर बहुत-से देववृक्ष लहलहा रहे थे।

वे गरुड़को देखते ही इस भयसे काँपने लगे कि कहीं इनके धक्केसे हम टूट न जायँ! उनको भयभीत देखकर गरुड़जी दूसरी ओर निकल गये। उधर एक बड़ा-सा वट-वृक्ष था। वट-वृक्षने गरुड़जीको मनके वेगसे उड़ते देखकर कहा कि 'तुम मेरी सौ योजन लंबी शाखापर बैठकर हाथी और कछुएको खा लो।' ज्यों ही गरुड़जी उसकी शाखापर बैठे त्यों ही वह चड़चड़ाकर टूट गयी और गिरने लगी। गरुड़जीने गिरते-गिरते उस शाखाको पकड़ लिया और बड़े आश्चर्यसे देखा कि उसमें नीचेकी ओर सिर करके वालखिल्य नामक ऋषिगण लटक रहे हैं। गरुड़जीने सोचा कि यदि शाखा गिर गयी तो ये तपस्वी ब्रह्मर्षि मर जायँगे। अब उन्होंने झपटकर अपनी चोंचसे वृक्षकी शाखा पकड़ ली और हाथी तथा कछुएको पंजोंमें दबाये आकाशमें उड़ने लगे। कहीं भी बैठनेका स्थान न पाकर वे आकाशमें उड़ते ही रहे। उस समय उनके पंखोंकी हवासे पहाड़ भी काँप उठते थे। वालखिल्य ऋषियोंके ऊपर दयाभाव होनेके कारण वे कहीं बैठ न सके और उड़ते-उड़ते गन्धमादन पर्वतपर गये। कश्यपजीने उन्हें उस अवस्थामें देखकर कहा, 'बेटा! कहीं सहसा साहसका काम न कर बैठना। सूर्यकी किरण पीकर तपस्या करनेवाले वालखिल्य ऋषि क्रुद्ध होकर कहीं तुम्हें भस्म न कर दें।' पुत्रसे इस प्रकार कहकर उन्होंने तपःशुद्ध वालखिल्य ऋषियोंसे प्रार्थना की, 'तपोधनो! गरुड़ प्रजाके हितके लिये एक महान् कार्य करना चाहता है। आपलोग इसे आज्ञा दीजिये।' वालखिल्य ऋषियोंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके वटवृक्षकी शाखा छोड़ दी और तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये। गरुड़जीने वह शाखा फेंक दी और पर्वतकी चोटीपर बैठकर हाथी तथा कछुएको खाया।

गरुड़जी खा-पीकर पर्वतकी उस चोटीसे ही ऊपरकी ओर उड़े। उस समय देवताओंने देखा कि उनके यहाँ भयङ्कर उत्पात हो रहे हैं। देवराज इन्द्रने बृहस्पतिजीके पास जाकर पूछा—'भगवन्! यकायक बहुत-से उत्पात क्यों होने लगे हैं? कोई ऐसा शत्रु तो नहीं दिखायी पड़ता, जो मुझे युद्धमें जीत सके।' बृहस्पतिजीने कहा, 'इन्द्र! तुम्हारे अपराध और प्रमादसे तथा महात्मा वालखिल्य ऋषियोंके तपोबलसे विनतानन्दन गरुड़ अमृत लेनेके लिये यहाँ आ रहा है। वह आकाशमें स्वच्छन्द विचरता तथा इच्छानुसार
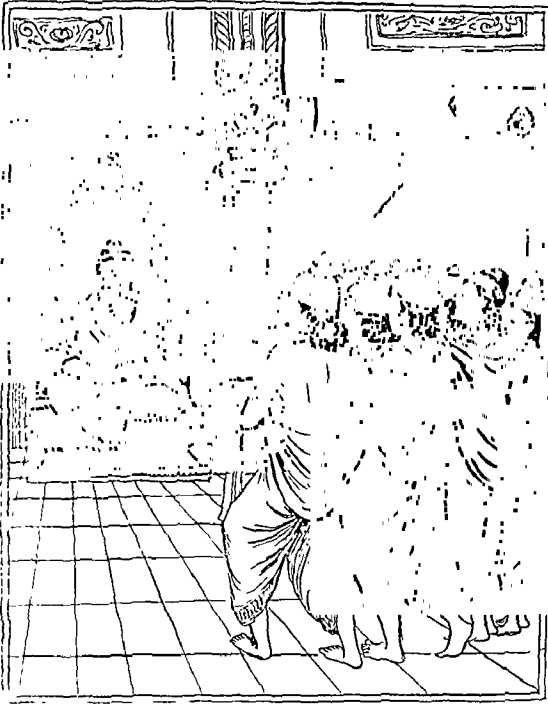
रूप धारण कर लेता है। वह अपनी शक्तिसे असाध्य कार्यको भी साध सकता है। अवश्य ही उसमें अमृत हर ले जानेकी शक्ति है।' बृहस्पतिजीकी बात सुनकर इन्द्रने अमृतके रक्षकोंको सावधान करके कहा कि 'देखो, परम पराक्रमी पक्षिराज गरुड़ यहाँसे अमृत ले जानेके लिये आ रहा है। सचेत रहो। वह बलपूर्वक अमृत न ले जाने पावे।' सभी देवता और स्वयं इन्द्र भी अमृतको घेरकर उसकी रक्षाके लिये डट गये।

गरुड़ने वहाँ पहुँचते ही पंखोंकी हवासे इतनी धूल उड़ायी कि देवता अन्धे-से हो गये। वे धूलसे ढककर मूढ़-से बन गये। सभी रक्षक आँखें खराब होनेसे डर गये। वे एक क्षणतक गरुड़को देख भी नहीं सके। सारा स्वर्ग क्षुब्ध हो गया। चोंच और डैनोंकी चोटसे देवताओंके शरीर जर्जरित हो गये। इन्द्रने वायुको आज्ञा दी कि 'तुम यह धूलका परदा फाड़ दो। यह तुम्हारा कर्तव्य है।' वायुने वैसा ही किया चारों ओर उजाला हो गया, देवता उनपर प्रहार करने लगे गरुड़ने उड़ते-उड़ते ही गरजकर उनके प्रहार सह लिये और आकाशमें उनसे भी ऊँचे पहुँच गये। देवताओंके शस्त्रास्त्रोंके प्रहारसे गरुड़ तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनके आक्रमणको विफल कर दिया। गरुड़के पंखों और चोंचोंकी चोटसे देवताओंकी चमड़ी उधड़ गयी, शरीर खूनसे लथपथ हो गया। वे घबराकर स्वयं ही तितर-बितर हो गये। इसके बाद गरुड़ आगे बढ़े। उन्होंने देखा कि अमृतके चारों ओर आगकी लाल-लाल लपटें उठ रही हैं। अब गरुड़ने अपने शरीरमें आठ हजार एक सौ मुँह बनाये तथा बहुत-सी नदियोंका जल पीकर उसे धधकती हुई आगपर उड़ेल दिया। अग्नि शान्त होनेपर छोटा-सा शरीर धारण करके वे और आगे बढ़े।

गरुड़का अमृत लेकर आना और विनताको दासीभावसे छुड़ाना

उग्रश्रवाजी कहते हैं—सूर्यकी किरणोंके समान उज्ज्वल और सुनहला शरीर धारण करके गरुड़ने बड़े वेगसे अमृतके स्थानमें प्रवेश किया। उन्होंने वहाँ देखा कि अमृतके पास एक लोहेका चक्र निरन्तर घूम रहा है। उसकी धार तीखी है, उसमें सहस्रों अस्त्र लगे हुए हैं। वह भयङ्कर चक्र सूर्य और अग्निके समान जान पड़ता है। उसका काम ही था अमृतकी रक्षा। गरुड़जी चक्रके भीतर घुसनेका मार्ग देखते रहे। एक क्षणमें ही उन्होंने अपने शरीरको सङ्कुचित किया और चक्रके आरोंके बीच होकर भीतर घुस गये। अब उन्होंने देखा कि अमृतकी रक्षाके लिये दो भयङ्कर सर्प नियुक्त हैं। उनकी लपलपाती जीभें, चमकती आँखें और अग्निकी-सी शरीर-कान्ति थी। उनकी दृष्टिसे ही विषका

सञ्चार होता था। गरुड़जीने धूल झोंककर उनकी आँखें बंद कर दीं। चोंचों और पंजोंसे मार-मारकर उन्हें कुचल दिया, चक्रको तोड़ डाला और बड़े वेगसे अमृत-पात्र लेकर वहाँसे उड़ चले। उन्होंने स्वयं अमृत नहीं पीया। बस, आकाशमें उड़कर सर्पोंके पास चल दिये।

आकाशमें उन्हें विष्णुभगवान्‌के दर्शन हुए। गरुड़के मनमें अमृत पीनेका लोभ नहीं है, यह जानकर अविनाशी भगवान् उनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'गरुड़! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। मनचाही वस्तु माँग लो।' गरुड़ने कहा, 'भगवन्! एक तो आप मुझे अपनी ध्वजामें

रखिये, दूसरे मैं अमृत पीये बिना ही अजर-अमर हो जाऊँ।' भगवान्‌ने कहा 'तथास्तु!' गरुड़ने कहा, 'मैं भी आपको वर देना चाहता हूँ। मुझसे कुछ माँग लीजिये।' भगवान्‌ने कहा, 'तुम मेरे वाहन बन जाओ।' गरुड़ने 'ऐसा ही होगा' कहकर उनकी अनुमतिसे अमृत लेकर यात्रा की।

अबतक इन्द्रकी आँखें खुल चुकी थीं। उन्होंने गरुड़को अमृत ले जाते देख क्रोधसे भरकर वज्र चलाया। गरुड़ने वज्राहत होकर भी हँसते हुए कोमल वाणीसे कहा—'इन्द्र! जिनकी हड्डीसे यह वज्र बना है, उनके सम्मानके लिये मैं अपना एक पंख छोड़ देता हूँ। तुम उसका भी अन्त नहीं पा सकोगे। वज्राघातसे मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं हुई है।' गरुड़ने अपना एक पंख गिरा दिया। उसे देखकर लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। सबने कहा, ''जिसका यह पंख है, उस पक्षीका नाम 'सुपर्ण' हो।'' इन्द्रने चकित होकर मन-ही-मन कहा, 'धन्य है यह पराक्रमी पक्षी!' उन्होंने कहा, 'पक्षिराज! मैं जानना चाहता हूँ कि तुममें कितना बल है। साथ ही तुम्हारी मित्रता भी चाहता हूँ।' गरुड़ने कहा, 'देवराज! आपके इच्छानुसार हमारी मित्रता रहे। बलके सम्बन्धमें क्या बताऊँ? अपने मुँहसे अपने गुणोंका बखान, बलकी प्रशंसा सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अच्छी नहीं है। आप मुझे मित्र मानकर पूछ रहे हैं तो मैं मित्रके समान ही बतलाता हूँ कि पर्वत, वन, समुद्र और जलसहित सारी पृथ्वीको तथा इसके ऊपर रहनेवाले आपलोगोंको अपने एक पंखपर उठाकर मैं बिना परिश्रम उड़ सकता हूँ।' इन्द्रने कहा, 'आपकी बात सोलहो आने सत्य है। आप अब मेरी घनिष्ठ मित्रता स्वीकार कीजिये। यदि आपको अमृतकी आवश्यकता न हो तो मुझे दे दीजिये। आप यह ले जाकर जिन्हें देंगे, वे हमें बहुत दुःख देंगे।' गरुड़जीने कहा, 'देवराज! अमृतको ले जानेका एक कारण है। मैं इसे किसीको पिलाना नहीं चाहता हूँ। मैं इसे जहाँ रक्खूँ, वहाँसे आप उठा लाइये।' इन्द्रने सन्तुष्ट होकर कहा, 'गरुड़! मुझसे मुँहमाँगा वर ले लो।' गरुड़को सर्पोंकी दुष्टता और उनके छलके कारण होनेवाले माताके दुःखका स्मरण हो आया। उन्होंने वर माँगा—'ये बलवान् सर्प ही मेरे भोजनकी सामग्री हों।' देवराज इन्द्रने कहा, 'तथास्तु।'

इन्द्रसे विदा होकर गरुड़ सर्पोंके स्थानपर आये। वहीं

उनकी माता भी थीं। उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए सर्पोंसे

कहा, 'यह लो, मैं अमृत ले आया। परन्तु पीनेमें जल्दी मत करो। मैं इसे कुशोंपर रख देता हूँ। स्नान करके पवित्र हो लो। फिर इसे पीना। अब तुम लोगोंके कथनानुसार मेरी माता दासीपनसे छूट गयी, क्योंकि मैंने तुम्हारी बात पूरी कर दी है।' सर्पोंने स्वीकार कर लिया। जब सर्पगण प्रसन्नतासे भरकर स्नान करनेके लिये गये, तब इन्द्र अमृत-कलश उठाकर स्वर्गमें ले आये। मङ्गल-कृत्योंसे लौटकर सर्पोंने देखा तो अमृत उस स्थानपर नहीं था। उन्होंने समझ लिया कि हमने विनताको दासी बनानेके लिये जो कपट किया था, उसीका यह फल है। फिर यह समझकर कि यहाँ अमृत रक्खा गया था, इसलिये सम्भव है इसमें उसका कुछ अंश लगा हो, सर्पोंने कुशोंको चाटना शुरू किया। ऐसा करते ही उनकी जीभके दो-दो टुकड़े हो गये। अमृतका स्पर्श होनेसे कुश पवित्र माना जाने लगा। अब गरुड़ कृतकृत्य होकर आनन्दसे अपनी माताके साथ रहने लगे। वे पक्षिराज हुए, उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी और माता सुखी हो गयीं।

शेषनागकी वर-प्राप्ति और माताके शापसे बचनेके लिये सर्पोंकी बातचीत

शौनकजीने पूछा—सूतनन्दन! जब सर्पोंको यह बात मालूम हो गयी कि माता कद्रूने हमें शाप दे दिया है, तब उन्होंने उसके निवारणके लिये क्या किया?

उग्रश्रवाजीने कहा—उन सर्पोंमें एक शेषनाग भी थे। उन्होंने कद्रू और अन्य सर्पोंका साथ छोड़कर कठिन तपस्या प्रारम्भ की। वे केवल हवा पीकर रहते और अपने व्रतका पूर्ण पालन करते थे। वे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गन्धमादन, बदरिकाश्रम, गोकर्ण और हिमालय आदिकी तराईमें एकान्तवास करते और पवित्र तीर्थों तथा धामोंकी यात्रा भी करते थे। ब्रह्माजीने देखा कि शेषनागके शरीरका मांस, त्वचा और नाड़ियाँ सूख गयी हैं। उनका सच्चा धैर्य और तपस्या देखकर वे उनके पास आये और बोले, 'शेष! तुम अपनी तीव्र तपस्यासे प्रजाको सन्तप्त क्यों कर रहे हो? इस घोर तपस्याका उद्देश्य क्या है? कोई प्रजाके हितका काम क्यों नहीं करते? बतलाओ, तुम्हारी क्या इच्छा है?' शेषजीने कहा, 'भगवन्! मेरे सब भाई मूर्ख हैं। इसलिये मैं उनके साथ नहीं रहना चाहता। आप मेरी इस इच्छाका अनुमोदन कीजिये। वे परस्पर एक-दूसरेसे शत्रुके समान डाह करते हैं, विनता और उसके पुत्र गरुड़ तथा अरुणसे द्वेष करते हैं। इसलिये मैं उनसे ऊबकर तपस्या कर रहा हूँ। विनतानन्दन गरुड़ निस्सन्देह हमारे भाई हैं। अब मैं तपस्या करके यह शरीर छोड़ दूँगा। मुझे चिन्ता है तो इस बातकी कि मरनेके बाद भी उन दुष्टोंका संग न हो।' ब्रह्माजीने कहा, 'शेष! मुझसे तुम्हारे भाइयोंकी करतूत छिपी नहीं है। माताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेके कारण वे स्वयं बड़ी विपत्तिमें पड़ गये हैं। अस्तु, मैंने उसका परिहार भी बना रक्खा है। अब तुम उनकी चिन्ता छोड़कर अपने लिये जो चाहो वर माँग लो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, क्योंकि सौभाग्यवश तुम्हारी बुद्धि धर्ममें अटल है। तुम्हारी बुद्धि सर्वदा ऐसी ही बनी रहे।' शेषजीने कहा, 'पितामह! मैं यही वर चाहता हूँ कि मेरी बुद्धि धर्म, तपस्या

और शान्तिमें संलग्न रहे।' ब्रह्माजीने कहा, 'शेष! मैं तुम्हारे इन्द्रियों और मनके संयमसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी आज्ञासे तुम प्रजाके हितके लिये एक काम करो। यह सारी पृथ्वी पर्वत, वन, सागर, ग्राम, विहार और नगरोंके साथ हिलती-डोलती रहती है। तुम इसे इस प्रकार धारण करो,

जिससे यह अचल हो जाय।' शेषजीने कहा, 'आप प्रजाके स्वामी और समर्थ हैं। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं पृथ्वीको इस प्रकार धारण करूँगा, जिससे वह हिले-डुले नहीं। आप इसको मेरे सिरपर रख दीजिये।' ब्रह्माजीने कहा—'शेष! पृथ्वी तुम्हें मार्ग देगी। तुम उसके भीतर घुस जाओ। तुम पृथ्वीको धारण करके मेरा बड़ा प्रिय कार्य करोगे।' ब्रह्माजीके आज्ञानुसार शेषनाग भू-विवरमें प्रवेश करके नीचे चले गये और समुद्रसे घिरी पृथ्वीको चारों ओरसे पकड़कर सिरपर उठा लिया। वे तभीसे स्थिरभावसे स्थित हैं। ब्रह्माजी उनके धर्म, धैर्य और शक्तिकी प्रशंसा करके अपने स्थानपर लौट गये।

माताका शाप सुनकर वासुकि नागको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि इस शापका प्रतीकार क्या है। उन्होंने अपने भाइयोंको इकट्ठा किया और सबसे सलाह करने लगे।
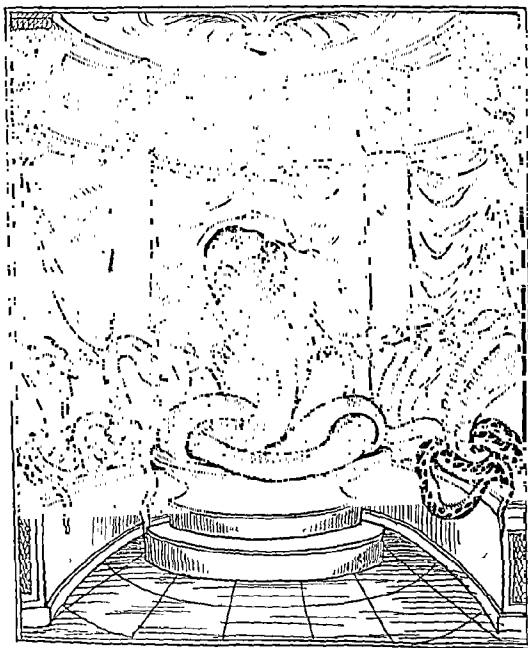
वासुकिने कहा, 'भाइयो! आपलोग जानते ही हैं कि माताने हमें शाप दे दिया है। अब हमलोगोंको चाहिये कि सोच-विचारकर उसके निवारणका उपाय करें। सब शापोंका प्रतीकार सम्भव है, परन्तु माताके शापका प्रतीकार दिखायी नहीं पड़ता। हमें अब समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। विपत्ति आनेसे पहले ही उपाय करनेसे काम बन सकता है।' तब 'ठीक है, ठीक है' कहकर सभी बुद्धिमान् और चतुर सर्प विचार करने लगे। कुछ नागोंने कहा, 'हमलोग ब्राह्मण बनकर जनमेजयसे भिक्षा माँगें कि तुम यज्ञ मत करो।' कुछने कहा, 'हम मन्त्री बनकर ऐसी सलाह दें, जिससे यज्ञ ही न होने पावे।' किसीने कहा कि 'उनके पुरोहितको ही डँसकर मार डाला जाय। पुरोहितके मरनेसे अपने-आप यज्ञ रुक जायगा।' धर्मात्मा और दयालु नागोंने कहा, 'राम-राम! ब्रह्महत्या करनेका विचार तो मूर्खतापूर्ण और अशुभ है! विपत्तिके समय धर्मसे ही रक्षा होती है। अधर्मका आश्रय लेनेसे तो सारे जगत्का ही सत्यानाश हो जायगा।' कुछ नागोंने कहा, 'हम बादल बनकर यज्ञकी आग बुझा देंगे।' कुछ बोले, 'हम यज्ञकी सामग्री ही चुरा लायेंगे।' कुछने कहा, 'हम लाखों आदमियोंको डँस लेंगे।' अन्तमें सर्पोंने कहा, 'वासुके! हम सब तो यही सोच सकते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, वह उपाय शीघ्र कीजिये।' वासुकिने कहा, 'हमें तो तुम लोगोंके विचार ठीक नहीं जँच रहे हैं। इन विचारोंमें अव्यवहार्यता बहुत अधिक है। चलो, हमलोग अपने पिता महात्मा कश्यपको प्रसन्न करें और उनके आज्ञानुसार काम करें। जिस प्रकार हमलोगोंका हित हो, वही काम करना है। मैं सबसे बड़ा हूँ। भलाई-बुराईकी जिम्मेवारी मेरे ही सिर होगी, इसलिये मैं बहुत चिन्तित हो रहा हूँ।'

उनमें एक एलापत्र नामका नाग था। उसने सब सर्पों और वासुकिकी सम्मति सुनकर कहा कि, "भाइयो! उस यज्ञका रुकना अथवा जनमेजयका मान जाना सम्भव नहीं है। अपने भाग्यके अपराधको भाग्यपर ही छोड़ देना चाहिये। दूसरेके आश्रयसे काम नहीं चलता। इस विपत्तिसे बचनेके लिये मैं जो कहता हूँ, उसे आपलोग ध्यानपूर्वक सुनिये। जिस समय माताने यह शाप दिया था, उस समय डरकर मैं उसीकी गोदमें छिप गया था। वह क्रूर शाप सुनकर देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर कहा, 'भगवन्! कठोरहृदया कद्रूको छोड़कर ऐसी कौन स्त्री होगी, जो अपने मुँहसे अपनी सन्तानको शाप दे डाले। पितामह! स्वयं आपने भी उसके शापका अनुमोदन ही किया, निषेध नहीं किया; इसका क्या कारण है?' ब्रह्माजीने कहा 'देवताओ! इस समय जगत्में सर्प बहुत बढ़ गये हैं। वे बड़े क्रोधी, डरावने और विषैले हैं। प्रजाके हितके लिये मैंने कद्रूको रोका नहीं। इस शापसे क्षुद्र, पापी और जहरीले सर्पोंका ही नाश होगा। धर्मात्मा सर्प सुरक्षित रहेंगे। और यह बात भी है कि यायावर वंशमें जरत्कारु नामके एक ऋषि होंगे। उनके पुत्रका नाम होगा आस्तीक। वही जनमेजयका सर्प-यज्ञ बंद करा सकेंगे। तब जाकर धार्मिक सर्पोंका छुटकारा होगा।' देवताओंके

पूछनेपर ब्रह्माजीने और भी बतलाया कि जरत्कारुकी पत्नीका नाम भी जरत्कारु ही होगा। वह सर्पराज वासुकिकी बहिन होगी। उसके गर्भसे आस्तीकका जन्म होगा और वही सर्पोंको मुक्त करेगा।' इस प्रकार बातचीत करके ब्रह्माजी और देवता अपने-अपने लोकको चले गये। सो, सर्पराज वासुके! मेरे विचारसे आपकी बहिन जरत्कारुका विवाह उस जरत्कारु ऋषिसे ही होना चाहिये। वे जिस समय भिक्षाके समान पत्नीकी याचना करें, उसी समय उन्हें आप अपनी बहन दे दें। यही इस विपत्तिसे रक्षाका उपाय है।''

एलापत्रकी बात सुनकर सभी सर्पोंने प्रसन्न चित्तसे कहा—'ठीक है, ठीक है।' तभीसे वासुकि नाग बड़े प्रेमसे अपनी बहिनकी रक्षा करने लगे। उसके थोड़े दिनों बाद ही समुद्र-मन्थन हुआ, जिसमें वासुकि नागकी नेती (मथनेवाली रस्सी) बनायी गयी। इसलिये देवताओंने वासुकि नागको ब्रह्माजीके पास ले जाकर फिरसे वही बात कहला दी, जो एलापत्र नागने कही थी। वासुकिने सर्पोंको जरत्कारु ऋषिकी खोजमें नियुक्त कर दिया और उनसे कह दिया कि 'जिस समय जरत्कारु ऋषि विवाह करना चाहें, उसी समय शीघ्र-से-शीघ्र आकर मुझे सूचित करना। हमलोगोंके कल्याणका यही सुनिश्चित उपाय है।'

जरत्कारु ऋषिकी कथा और आस्तीकका जन्म

शौनक ऋषिने पूछा—सूतनन्दन! आपने जिन जरत्कारु ऋषिका नाम लिया है, उनका जरत्कारु नाम क्यों पड़ा था? उनके नामका अर्थ क्या है और उनसे आस्तीकका जन्म कैसे हुआ?

उग्रश्रवाजीने कहा—'जरा' शब्दका अर्थ है क्षय, 'कारु' शब्दका अर्थ है दारुण। तात्पर्य यह कि उनका शरीर पहले बड़ा दारुण अर्थात् हट्टा-कट्टा था। पीछे उन्होंने तपस्या करके उसे जीर्ण-शीर्ण और क्षीण बना लिया। इसीसे उनका नाम 'जरत्कारु' पड़ा। वासुकि नागकी बहिन भी पहले वैसी ही थी। उसने भी अपने शरीरको तपस्याके द्वारा क्षीण कर लिया, इसलिये वह भी जरत्कारु कहलायी। अब आस्तीकके जन्मकी कथा सुनिये।

जरत्कारु ऋषि बहुत दिनोंतक ब्रह्मचर्य धारण करके तपस्यामें संलग्न रहे। वे विवाह करना नहीं चाहते थे। वे जप, तप और स्वाध्यायमें लगे रहते तथा निर्भय होकर स्वच्छन्द रूपसे पृथ्वीमें विचरण करते। उन दिनों परिक्षित्-का राजत्वकाल था। मुनिवर जरत्कारुका नियम था कि जहाँ सायंकाल हो जाता, वहीं वे ठहर जाते। वे पवित्र तीर्थोंमें जाकर स्नान करते और ऐसे कठोर नियमोंका पालन करते, जिनको पालना विषयलोलुप पुरुषोंके लिये प्रायः असम्भव है। वे केवल वायु पीकर निराहार रहते। इस प्रकार उनका शरीर सूख-सा गया था। एक दिन यात्रा करते समय उन्होंने देखा कि कुछ पितर नीचेकी ओर मुँह किये एक गढ़ेमें लटक रहे हैं। वे एक खसका तिनका पकड़े हुए थे और वही केवल बच भी रहा था। उस तिनकेकी जड़को भी धीरे-धीरे एक चूहा कुतर रहा था। पितृगण निराहार थे, दुबले और दुखी थे। जरत्कारुने उनके पास जाकर पूछा, 'आपलोग जिस खसके तिनकेका सहारा लेकर लटक रहे हैं, उसे एक चूहा कुतरता जा रहा है। आपलोग कौन हैं? जब इस खसकी जड़ कट जायगी, तब आप लोग नीचेकी ओर मुँह किये गढ़ेमें गिर जायँगे। आपलोगोंको इस अवस्थामें देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपलोग मेरी तपस्याके चौथे, तीसरे अथवा आधे भागसे इस विपत्तिसे बचाये जा सकें तो बतलावें। और तो क्या, मैं अपनी सारी तपस्याका फल देकर भी आपलोगोंको बचाना चाहता हूँ। आप आज्ञा कीजिये।'

पितरोंने कहा—''आप बूढ़े ब्रह्मचारी हैं, हमारी रक्षा करना चाहते हैं; परन्तु हमारी विपत्ति तपस्याके बलसे नहीं टल सकती। तपस्याका फल तो हमारे पास भी है। परन्तु वंशपरम्पराके नाशके कारण हम इस घोर नरकमें गिर रहे हैं। आप वृद्ध होकर करुणावश हमारे लिये चिन्तित हो रहे हैं, इसलिये हमारी बात सुनिये। हमलोग यायावर नामके ऋषि हैं। वंशपरम्परा क्षीण हो जानेसे हम पुण्यलोकोंसे नीचे गिर गये हैं। हमारे वंशमें अब केवल एक ही व्यक्ति रह गया है, वह भी नहींके बराबर है। हमारे अभाग्यसे वह तपस्वी हो गया है, उसका नाम जरत्कारु है। वह वेद-वेदाङ्गोंका विद्वान् तो है ही; संयमी, उदार और व्रतशील भी है। उसने तपस्याके लोभसे हमें सङ्कटमें डाल दिया है। उसके कोई भाई-बन्धु अथवा पत्नी-पुत्र नहीं है। इसीसे हमलोग बेहोश होकर अनाथकी तरह गढ़ेमें लटक रहे हैं। यदि वह आपको कहीं मिले तो उससे इस प्रकार कहना—'जरत्कारो! तुम्हारे पितर नीचे मुँह करके गढ़ेमें लटक रहे हैं। तुम विवाह करके

सन्तान उत्पन्न करो। अब हमारे वंशके तुम्हीं एक आश्रय हो।' ब्रह्मचारीजी! यह जो आप खसकी जड़ देख रहे हैं, यही हमारे वंशका सहारा है। हमारी वंशपरम्पराके जो लोग नष्ट हो चुके हैं, वही इसकी कटी हुई जड़ें हैं। यह अधकटी जड़ ही जरत्कारु है। जड़ कुतरनेवाला चूहा महाबली काल है। यह एक दिन जरत्कारुको भी नष्ट कर देगा, तब हमलोग और भी विपत्तिमें पड़ जायँगे। आप जो कुछ देख रहे हैं, वह सब जरत्कारुसे कहियेगा। कृपा करके यह बतलाइये कि आप कौन हैं और हमारे बन्धुकी तरह हमारे लिये क्यों शोक कर रहे हैं?''

पितरोंकी बात सुनकर जरत्कारुको बड़ा शोक हुआ। उनका गला रुँध गया, उन्होंने गद्गद वाणीसे अपने पितरोंसे कहा, 'आपलोग मेरे ही पिता और पितामह हैं। मैं आपलोगोंका अपराधी पुत्र जरत्कारु हूँ। आपलोग मुझ अपराधीको दण्ड दीजिये और मेरे करनेयोग्य काम बतलाइये।' पितरोंने कहा, 'बेटा! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम संयोगवश यहाँ आ गये। भला, बतलाओ तो तुमने अबतक विवाह क्यों नहीं किया?' जरत्कारुने कहा, 'पितृगण! मेरे हृदयमें यह बात निरन्तर घूमती रहती थी कि मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करके स्वर्ग प्राप्त करूँ। मैंने अपने मनमें यह दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था कि मैं कभी विवाह नहीं करूँगा। परन्तु आपलोगोंको उलटे लटकते देखकर मैंने अपना ब्रह्मचर्यका निश्चय पलट दिया है। अब मैं आपलोगोंके लिये निस्सन्देह विवाह करूँगा। यदि मुझे मेरे ही नामकी कन्या मिल जायगी और वह भी भिक्षाकी तरह, तो मैं उसे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लूँगा, परन्तु उसके भरण-पोषणका भार नहीं उठाऊँगा। ऐसी सुविधा मिलनेपर ही मैं विवाह करूँगा, अन्यथा नहीं। आपलोग चिन्ता मत कीजिये। आपके कल्याणके लिये मुझसे पुत्र होगा और आप परलोकमें सुखसे रहेंगे।'

जरत्कारु अपने पितरोंसे इस प्रकार कहकर पृथ्वीपर विचरने लगे। परन्तु एक तो उन्हें बूढ़ा समझकर कोई उनसे अपनी कन्या ब्याहना नहीं चाहता था और दूसरे उनके अनुरूप कन्या मिलती भी नहीं थी। वे निराश होकर वनमें गये और पितरोंके हितके लिये तीन बार धीरे-धीरे बोले, 'मैं कन्याकी याचना करता हूँ। यहाँ जो भी चर-अचर अथवा गुप्त या प्रकट प्राणी हैं, वे मेरी बात सुनें। मैं पितरोंका दुःख मिटानेके लिये उनकी प्रेरणासे कन्याकी भीख माँग रहा हूँ। जिस कन्याका नाम मेरा ही हो, जो भिक्षाकी तरह मुझे दी जाय और जिसके भरण-पोषणका भार मुझपर न रहे, ऐसी कन्या मुझे प्रदान करो।' वासुकि नागके द्वारा नियुक्त सर्प जरत्कारुकी बात सुनकर नागराजके पास गये और उन्होंने चटपट अपनी बहिन लाकर भिक्षारूपसे जरत्कारु ऋषिको समर्पित की। जरत्कारु ऋषिने उसके नाम और भरण-पोषणकी बात जाने बिना अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत उसे स्वीकार नहीं किया और वासुकिसे पूछा कि 'इसका क्या नाम है?' और साथ ही यह भी कहा कि 'मैं इसका भरण-पोषण नहीं करूँगा।'

वासुकि नागने कहा—'इस तपस्विनी कन्याका नाम भी जरत्कारु है और यह मेरी बहिन है। मैं इसका भरण-पोषण और रक्षण करूँगा। आपके लिये ही मैंने इसे अबतक रख छोड़ा है।' जरत्कारु ऋषिने कहा, 'मैं इसका भरण-पोषण नहीं करूँगा, यह शर्त तो हो ही चुकी। इसके अतिरिक्त एक शर्त यह है कि यह कभी मेरा अप्रिय कार्य न करे। करेगी तो मैं इसे अवश्य छोड़ दूँगा।' जब नागराज वासुकिने उनकी शर्त स्वीकार कर ली, तब वे उनके घर गये। वहाँ विधिपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। जरत्कारु ऋषि अपनी पत्नी जरत्कारुके साथ वासुकि नागके श्रेष्ठ भवनमें रहने लगे। उन्होंने अपनी पत्नीको भी अपनी शर्तकी सूचना दे दी कि 'मेरी रुचिके विरुद्ध न तो कुछ करना और न

कहना। वैसा करोगी तो मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा।' उनकी पत्नीने स्वीकार किया और वह सावधान रहकर उनकी सेवा करने लगी। समयपर उसे गर्भ रह गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

एक दिनकी बात है। जरत्कारु ऋषि कुछ खिन्न-से होकर अपनी पत्नीकी गोदमें सिर रखकर सोये हुए थे। वे सो ही रहे थे कि सूर्यास्तका समय हो आया। ऋषि-पत्नीने सोचा कि 'पतिको जगाना धर्मके अनुकूल होगा या नहीं? ये बड़े कष्ट उठाकर धर्मका पालन करते हैं। कहीं जगाने या न जगानेसे मैं अपराधिनी तो नहीं हो जाऊँगी? जगानेपर इनके कोपका भय है और न जगानेपर धर्म-लोपका। अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि ये चाहे कोप करें, परन्तु इन्हें धर्मलोपसे बचाना चाहिये।' ऋषि-पत्नीने बड़ी मधुर वाणीसे कहा, 'महाभाग! उठिये। सूर्यास्त हो रहा है। आचमन करके सन्ध्या कीजिये। यह अग्निहोत्रका समय है। पश्चिम दिशा लाल हो रही है।' ऋषि जरत्कारु जगे। क्रोधके मारे उनका होंठ काँपने लगा। उन्होंने कहा, 'सर्पिणी! तूने मेरा अपमान किया है। अब मैं तेरे पास नहीं रहूँगा। जहाँसे आया हूँ, वहीं चला जाऊँगा। मेरे हृदयमें यह दृढ़ निश्चय है कि मेरे सोते रहनेपर सूर्य अस्त नहीं हो सकते थे। अपमानके स्थानपर रहना अच्छा नहीं लगता। अब मैं जाऊँगा।' अपने पतिकी हृदयमें कँपकँपी पैदा करनेवाली बात सुनकर ऋषि-पत्नीने कहा, 'भगवन्! मैंने अपमान करनेके लिये आपको नहीं जगाया है। आपके धर्मका लोप न हो, मेरी यही दृष्टि थी।' जरत्कारु ऋषिने कहा, 'एक बार जो मुँहसे निकल गया, वह झूठा नहीं हो सकता। मेरे-तुम्हारे बीच इस प्रकारकी शर्त तो पहले ही हो चुकी है। तुम मेरे जानेके बाद अपने भाईसे कहना कि वे चले गये। यह भी कहना कि मैं यहाँ बड़े सुखसे रहा। मेरे जानेके बाद तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करना।'

ऋषि-पत्नी शोकग्रस्त हो गयी। उसका मुँह सूख गया, वाणी गद्गद हो गयी। आँखोंमें आँसू भर आये। उसने काँपते हृदयसे धीरज धरकर हाथ जोड़ कहा—'धर्मज्ञ! मुझ निरपराधको मत छोड़िये। मैं धर्मपर अटल रहकर आपके प्रिय और हितमें संलग्न रहती हूँ। मेरे भाईने एक प्रयोजन लेकर आपके साथ मेरा विवाह किया था। अभी वह पूरा नहीं हुआ। हमारे जाति-भाई कद्रू माताके शापसे ग्रस्त हैं। आपसे एक सन्तान उत्पन्न होनेकी आवश्यकता है। उसीसे हमारी जातिका कल्याण होगा। आपका और मेरा संयं निष्फल नहीं होना चाहिये। अभी मेरे गर्भसे सन्तान भी नहीं हुई! फिर आप मुझ निरपराध अबलाको छोड़कर व जाना चाहते हैं?' पत्नीकी बात सुनकर ऋषिने क 'तुम्हारे पेटमें अग्निके समान तेजस्वी गर्भ है। वह बहुत ब
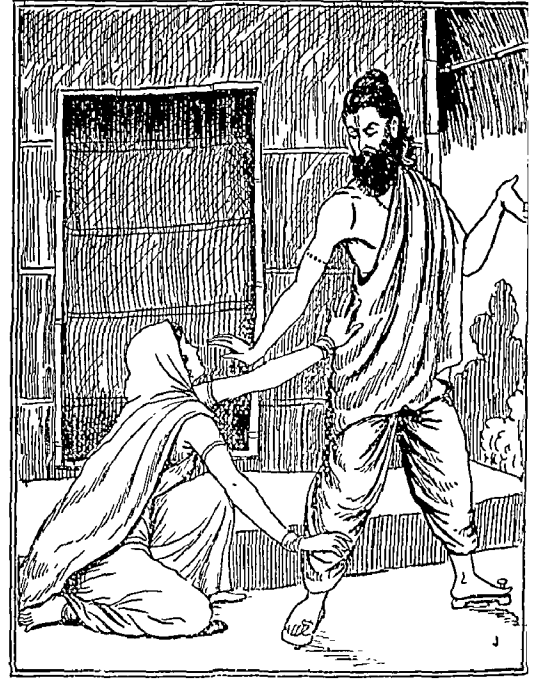
विद्वान् और धर्मात्मा ऋषि होगा।' यह कहकर जरत्का ऋषि चले गये।

पतिके जाते ही ऋषि-पत्नी अपने भाई वासुकिके पा गयी और उनके जानेका समाचार सुनाया। यह अप्रि घटना सुनकर वासुकिको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कहा 'बहिन! हमने जिस उद्देश्यसे उनके साथ तुम्हारा विवाह किय था, वह तो तुम्हें मालूम ही है। यदि उनके द्वारा तुम्हा गर्भसे पुत्र हो जाता तो नागोंका भला होता। वह पु ब्रह्माजीके कथनानुसार अवश्य ही जनमेजयके यज्ञसे हम लोगोंकी रक्षा करता। बहिन! तुम उनके द्वारा गर्भवर्त हुई हो न? हम चाहते हैं कि तुम्हारा विवाह निष्फल न हो। अपनी बहिनसे भाईका यह पूछना उचित नहीं है, फिर भी प्रयोजनके गौरवको देखते हुए मैंने यह प्रश्न किया है। मैं जानता हूँ कि जब उन्होंने एक बार जानेकी बात कह दी तो उन्हें लौटाना असम्भव है। मैं उनसे इसके लिये कहूँगा भी नहीं, कहीं वे मुझे शाप न दे दें। बहिन! तुम सब बात मुझसे कहो और मेरे हृदयसे यह सङ्कटका काँटा निकाल दो।' ऋषि-पत्नीने अपने भाई वासुकि नागको ढाढ़स

बँधाते हुए कहा, "भाई! मैंने भी उनसे यह बात कही थी। उन्होंने कहा है कि गर्भ है। उन्होंने कभी विनोदमें भी कोई झूठी बात नहीं कही है। फिर इस सङ्कटके अवसरपर तो उनका कहना झूठा हो ही कैसे सकता है। उन्होंने जाते समय मुझसे कहा कि 'नागकन्ये! अपनी प्रयोजन-सिद्धिके सम्बन्धमें कोई चिन्ता नहीं करना। तुम्हारे गर्भसे अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी पुत्र होगा।' इसलिये भाई! तुम अपने मनमें किसी प्रकारका दुःख न करो।" यह सुनकर वासुकि बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे अपनी बहिन-का स्वागत-सत्कार करने लगा और उसके पेटमें शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान गर्भ भी बढ़ने लगा।

समय आनेपर वासुकिकी बहिन जरत्कारुके गर्भसे एक दिव्य कुमारका जन्म हुआ। उसके जन्मसे मातृवंश और पितृवंश दोनोंका भय जाता रहा। क्रमशः बड़ा होनेपर उसने च्यवन मुनिसे वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। वह ब्रह्मचारी बालक बचपनमें ही बड़ा बुद्धिमान् और सात्त्विक था। जब वह गर्भमें था, तभी पिताने उसके सम्बन्धमें 'अस्ति' (है) पदका उच्चारण किया था; इसलिये उसका नाम 'आस्तीक' हुआ। नागराज वासुकिके घरपर बाल्य-अवस्थामें बड़ी सावधानी और प्रयत्नसे उसकी रक्षा की गयी। थोड़े ही दिनोंमें वह बालक इन्द्रके समान बढ़कर नागोंको हर्षित करने लगा।

परिक्षित्की मृत्युका कारण

श्रीशौनकजीने कहा—सूतनन्दन! राजा जनमेजयने उत्तङ्ककी बात सुनकर अपने पिता परिक्षित्की मृत्युके सम्बन्धमें जो पूछ-ताछ की थी, उसका आप विस्तारसे वर्णन कीजिये।

उग्रश्रवाजीने कहा—राजा जनमेजयने अपने मन्त्रियों-से पूछा कि 'मेरे पिताके जीवनमें कौन-सी घटना घटित हुई थी? उनकी मृत्यु किस प्रकार हुई थी? मैं उनकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर वही करूँगा, जिससे जगत्का लाभ हो?'

मन्त्रियोंने कहा—महाराज! आपके पिता बड़े
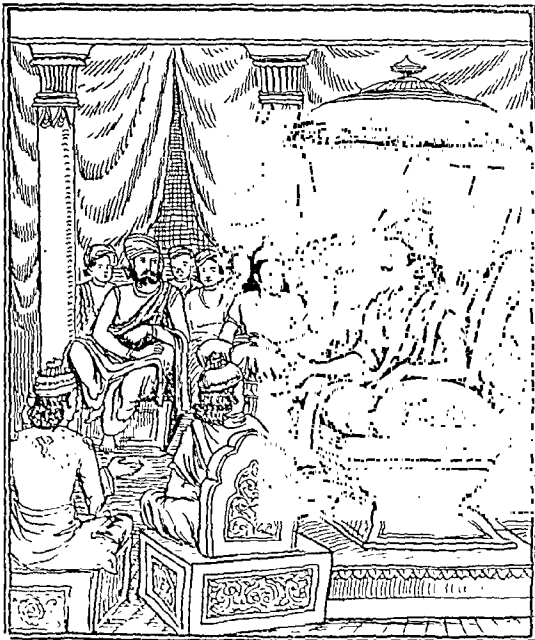
धर्मात्मा, उदार और प्रजापालक थे। हम बहुत संक्षेपसे उनका चरित्र आपको सुनाते हैं। आपके धर्मज्ञ पिता मूर्तिमान् धर्म थे। उन्होंने धर्मके अनुसार अपने कर्तव्यपालनमें संलग्न चारों वर्णोंकी प्रजाकी रक्षा की थी। उनका पराक्रम अतुलनीय था। वे सारी पृथ्वीकी ही रक्षा करते थे। न उनका कोई द्वेषी था और न वे ही किसीसे द्वेष करते थे। वे सबके प्रति समान दृष्टि रखते थे। उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी प्रसन्नताके साथ अपने-अपने कर्ममें लगे रहते थे। विधवा, अनाथ, लँगड़े, लूले और गरीबोंके खान-पानका भार उन्होंने अपने ऊपर ले रक्खा था। उनकी प्रजा हृष्ट-पुष्ट रहती थी। वे बड़े ही श्रीमान् और सत्यवादी थे। उन्होंने कृपाचार्यसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। भगवान् श्रीकृष्ण आपके पिताके प्रति बड़ा प्रेम रखते थे। विशेष क्या, वे सभीके प्रेमपात्र थे। कुरुवंशके परि-क्षीण होनेपर उनका जन्म हुआ था, इसीसे उनका नाम परीक्षित् हुआ। वे राजधर्म और अर्थशास्त्रमें बड़े कुशल थे। वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मसेवी, जितेन्द्रिय और नीतिनिपुण थे। उन्होंने साठ वर्षतक प्रजाका पालन किया। इसके बाद सारी प्रजाको दुखी करके वे परलोक सिधार गये। अब यह राज्य आपको प्राप्त हुआ है।

जनमेजयने कहा—मन्त्रियो! आपलोगोंने मेरे प्रश्नका उत्तर तो दिया ही नहीं। हमारे वंशके सभी राजा अपने पूर्वजोंके सदाचारका ध्यान रखकर प्रजाके हितैषी और प्रिय होते आये हैं। मैं तो अपने पिताकी मृत्युका कारण जानना चाहता हूँ।

मन्त्रियोंने कहा—महाराज ! आपके प्रजापालक पिता महाराज पाण्डुकी तरह ही शिकारके प्रेमी थे। उन्होंने सारा राजकार्य हमलोगोंपर छोड़ रक्खा था। एक बार वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये हुए थे। उन्होंने बाणसे एक हरिनको मारा और उसके भागनेपर उसका पीछा किया। वे अकेले ही पैदल बहुत दूरतक वनमें हरिनको ढूँढते हुए चले गये परन्तु उसे पा नहीं सके। वे साठ वर्षके हो चुके थे, इसलिये थक गये और उन्हें भूख भी लग गयी। उसी समय उन्हें एक मुनिका दर्शन हुआ। वे मौनी थे। उन्होंने उन्हींसे प्रश्न किया। परन्तु वे कुछ नहीं बोले। उस समय राजा भूखे और थके-माँदे थे, इसलिये मुनिको कुछ न बोलते देखकर क्रोधित हो गये। उन्होंने यह नहीं जाना कि ये मौनी हैं। इसलिये उनका तिरस्कार करनेके लिये धनुषकी नोकसे मरा साँप उठाकर उनके कंधेपर डाल दिया। मौनी मुनिने राजाके इस कृत्यपर भला-बुरा कुछ नहीं कहा। वे चुपचाप शान्तभावसे बैठे रहे। राजा ज्यों-के-त्यों वहाँसे उलटे पाँव राजधानीमें लौट आये।

मौनी ऋषि शमीकके पुत्रका नाम था शृङ्गी। वह बड़ा तेजस्वी और शक्तिशाली था। जब महातेजस्वी शृङ्गीने अपने सखाके मुँहसे यह बात सुनी कि राजा परिक्षित्‌ने मौन और निश्चल अवस्थामें मेरे पिताका तिरस्कार किया है तो वह क्रोधसे आग-बबूला हो गया। उसने हाथमें जल लेकर आपके पिताको शाप दिया—'जिसने मेरे निरपराध पिताके कंधेपर मरा हुआ साँप डाल दिया, उस दुष्टको तक्षक नाग क्रोध करके अपने विषसे सात दिनके भीतर ही जला देगा। लोग मेरी तपस्याका बल देखें।' इस प्रकार शाप देकर शृङ्गी अपने पिताके पास गया और सारी बात कह सुनायी। शमीक मुनिने यह सब सुनकर अच्छा नहीं समझा तथा आपके पिताके पास अपने शीलवान् एवं गुणी शिष्य गौरमुखको भेजा। गौरमुखने आकर आपके पितासे कहा, 'हमारे गुरुदेवने आपके लिये यह सन्देश भेजा है कि राजन् ! मेरे पुत्रने आपको शाप दे दिया है, आप सावधान हो जायँ। तक्षक अपने विषसे सात दिनके भीतर ही आपको जला देगा।' आपके पिता सावधान हो गये।

सातवें दिन जब तक्षक आ रहा था, तब उसने काश्यप नामक ब्राह्मणको देखा। उसने पूछा, 'ब्राह्मण देवता ! आप इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हैं और क्या करना चाहते हैं ?' काश्यपने कहा, 'जहाँ आज राजा परिक्षित्‌को तक्षक साँप जलावेगा, वहीं जा रहा हूँ। मैं उन्हें तुरंत जीवित कर दूँगा। मेरे पहुँच जानेपर तो सर्प उन्हें जला भी नहीं सकेगा।' तक्षकने कहा, 'मैं ही तक्षक हूँ। आप मेरे डँसनेके बाद उस राजाको क्यों जीवित करना चाहते हैं ? मेरी शक्ति देखिये, मेरे डँसनेके बाद आप उसे जीवित नहीं कर सकेंगे।' यह कहकर तक्षकने एक वृक्षको डँस

लिया। उसी क्षण वह वृक्ष जलकर खाक हो गया। काश्यप ब्राह्मणने अपनी विद्याके बलसे उस वृक्षको उसी समय हरा-भरा कर दिया। अब तक्षक ब्राह्मण देवताको प्रलोभन देने लगा। उसने कहा, 'जो चाहो, मुझसे ले लो।' ब्राह्मणने कहा, 'मैं तो धनके लिये वहाँ जा रहा हूँ।' तक्षकने कहा, 'तुम उस राजासे जितना धन लेना चाहते हो, मुझसे ले लो और यहींसे लौट जाओ।' तक्षकके ऐसा कहनेपर काश्यप ब्राह्मण मुँहमाँगा धन लेकर लौट गये। उसके बाद तक्षक छलसे आया और उसने आपके महलमें बैठे एवं सावधान धार्मिक पिताको विषकी आगसे भस्म कर दिया। तदनन्तर आपका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। यह कथा बड़ी दुःखद है। फिर भी आपकी आज्ञासे हमने सब सुना दिया है। तक्षकने आपके पिताको डँसा है और उत्तङ्क ऋषिको भी बहुत परेशान किया है। आप जैसा उचित समझें, करें।

जनमेजयने कहा—मन्त्रियो ! तक्षकके डँसनेसे वृक्षका राखकी ढेरी हो जाना और फिर उसका हरा हो जाना बड़े आश्चर्यकी बात है । यह बात आप लोगोंसे किसने कही ? अवश्य ही तक्षकने बड़ा अनर्थ किया । यदि वह ब्राह्मणको धन देकर न लौटा देता तो काश्यप मेरे पिताको भी जीवित कर देते । अच्छा मैं उसको इसका दण्ड दूँगा । पहले आप लोग इस कथाका मूल तो बतलाइये ।

मन्त्रियोंने कहा—महाराज ! तक्षकने जिस वृक्षको डँसा था, उसपर पहलेसे ही एक मनुष्य सूखी लकड़ियोंके लिये चढ़ा हुआ था । यह बात तक्षक और काश्यप दोनोंमेंसे किसीको मालूम न थी । तक्षकके डँसनेपर वृक्षके साथ वह मनुष्य भी भस्म हो गया था । काश्यपके मन्त्र-प्रभावसे वृक्षके साथ वह भी जीवित हो गया । तक्षक और काश्यपकी बातचीत उसीने सुनी थी और वहाँसे आकर हम लोगोंको सूचित की थी । अब आप हम लोगोंका देखा-सुना जानकर जो उचित हो कीजिये ।

सर्प-यज्ञका निश्चय और आरम्भ

उग्रश्रवाजी कहते हैं—'शौनकादि ऋषियो ! अपने पिताकी मृत्युका इतिहास सुनकर जनमेजयको बड़ा दुःख हुआ । वे क्रुद्ध होकर हाथ-से-हाथ मलने लगे । शोकके कारण उनकी लंबी और गरम साँस चलने लगी । आँखें आँसूसे भर गयीं । वे दुःख, शोक तथा क्रोधसे भरकर आँसू बहाते हुए शास्त्रोक्त विधिसे हाथमें जल लेकर बोले—'मेरे पिता किस प्रकार स्वर्गवासी हुए, यह बात मैंने विस्तारके साथ सुन ली है । जिसके कारण मेरे पिताकी मृत्यु हुई है, उस दुरात्मा तक्षकसे बदला लेनेका मैंने पक्का निश्चय कर लिया है । उसने स्वयं मेरे पिताका नाश किया है, शृङ्गी ऋषिका शाप तो एक बहाना मात्र है । इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उसने काश्यप ब्राह्मणको, जो विष उतारनेके लिये आ रहे थे और जिनके आनेसे मेरे पिता अवश्य ही जीवित हो जाते, धन देकर लौटा दिया । यदि हमारे मन्त्री काश्यप ब्राह्मणका अनुनय-विनय करते और वे अनुग्रहपूर्वक मेरे पिताको जीवित कर देते तो इससे उस दुष्टकी क्या हानि होती । ऋषिका शाप पूरा हो जाता और मेरे पिता जीवित रह जाते । मेरे पिताकी मृत्युमें सारा अपराध तक्षकका ही है, इसलिये मैं उससे अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेका सङ्कल्प करता हूँ ।' मन्त्रियोंने महाराज जनमेजयकी इस प्रतिज्ञाका अनुमोदन किया ।

अब राजा जनमेजयने पुरोहित और ऋत्विजोंको बुलाकर कहा, 'दुरात्मा तक्षकने मेरे पिताकी हिंसा की है । आप लोग ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मैं बदला ले सकूँ । क्या आप कोई ऐसा कर्म जानते हैं, जिससे मैं उस क्रूर सर्पको धधकती आगमें होम सकूँ ?' ऋत्विजोंने कहा—'राजन् ! देवताओंने आपके लिये पहलेसे ही एक महायज्ञका निर्माण कर रक्खा है । यह बात पुराणोंमें प्रसिद्ध है । उस यज्ञका अनुष्ठान आपके अतिरिक्त और कोई नहीं करेगा, ऐसा पौराणिकोंने कहा है और हमें उस यज्ञकी विधि मालूम है ।' ऋत्विजोंकी बात सुनकर जनमेजयको विश्वास हो गया कि निश्चय ही अब तक्षक जल जायगा । राजाने ब्राह्मणोंसे कहा, 'मैं वह यज्ञ करूँगा । आप लोग इसके लिये सामग्री संग्रह कीजिये ।' वेदज्ञ ब्राह्मणोंने शास्त्रविधिके अनुसार यज्ञ-मण्डप बनानेके लिये जमीन नाप ली, यज्ञशालाके लिये श्रेष्ठ मण्डप तैयार कराया तथा राजा जनमेजय यज्ञके लिये दीक्षित हुए ।

इसी समय एक विचित्र घटना घटित हुई । किसी कला-कौशलके पारङ्गत विद्वान्, अनुभवी एवं बुद्धिमान् सूतने कहा—'जिस स्थान और समयमें यज्ञ-मण्डप मापनेकी क्रिया प्रारम्भ हुई है, उसे देखकर यह मालूम होता है कि किसी ब्राह्मणके कारण यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकेगा ।' राजा जनमेजयने यह सुनकर द्वारपालसे कह दिया कि मुझे सूचना कराये बिना कोई मनुष्य यज्ञ-मण्डपमें न आने पावे ।

अब सर्पयज्ञकी विधिसे कार्य प्रारम्भ हुआ । ऋत्विज् अपने-अपने काममें लग गये । ऋत्विजोंकी आँखें धूएँके कारण लाल-लाल हो रही थीं । वे काले-काले वस्त्र पहनकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन कर रहे थे । उस समय सभी सर्प मन-ही-मन काँपने लगे । अब बेचारे सर्प तड़पते, पुकारते, उछलते, लंबी साँस लेते, पूँछ और फनोंसे एक-दूसरेको

लपेटते आगमें गिरने लगे। सफेद, काले, नीले, पीले, बच्चे,

बूढ़े, सभी प्रकारके सर्प चिल्लाते हुए टपाटप आगके मुँहमें गिरने लगे। कोई चार कोसतक लंबे और कोई-कोई गायके कान बराबर लंबे सर्प ऊपर-ही-ऊपर कुण्डमें आहुति बन रहे थे।

सर्प-यज्ञमें च्यवनवंशी चण्डभार्गव होता थे। कौत्स उद्गाता, जैमिनि ब्रह्मा तथा शार्ङ्गरव और पिङ्गल अध्वर्यु थे। एवं पुत्र और शिष्योंके साथ व्यासजी, उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु, असित, देवल आदि सदस्य थे। नाम ले-लेकर आहुति देते ही बड़े-बड़े भयानक सर्प आकर अग्नि-कुण्डमें गिर जाते थे। सर्पोंकी चर्बी और मेदकी धाराएँ बहने लगीं, बड़ी तीखी दुर्गन्ध चारों ओर फैल गयी तथा सर्पोंकी चिल्लाहटसे आकाश गूँज उठा। यह समाचार तक्षकने भी सुना। वह भयभीत होकर देवराज इन्द्रकी शरणमें गया। उसने कहा, 'देवराज! मैं अपराधी हूँ। भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।' इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा कि 'मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये पहलेसे ही ब्रह्माजीसे अभय-वचन ले लिया है। तुम्हें सर्प-यज्ञसे कोई भय नहीं। तुम दुखी मत होओ।' इन्द्रकी बात सुनकर तक्षक आनन्दसे इन्द्रभवनमें ही रहने लगा।

आस्तीकके वर माँगनेपर सर्प-यज्ञका बंद होना और सर्पोंसे बचनेका उपाय

उग्रश्रवाजी कहते हैं—जनमेजयके यज्ञमें सर्पोंका हवन होते रहनेसे बहुत-से सर्प नष्ट हो गये। केवल थोड़े-से ही बच रहे। इससे वासुकि नागको बड़ा कष्ट हुआ। घबराहटके मारे उनका हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने अपनी बहिन जरत्कारुसे कहा, 'बहिन! मेरा अङ्ग-अङ्ग जल रहा है। दिशाएँ नहीं सूझतीं। चक्कर आनेके कारण बेहोश-सा हो रहा हूँ। दुनिया घूम रही है। कलेजा फटा जा रहा है। मुझे ऐसा दीख रहा है कि अब मैं भी विवश होकर इस धधकती आगमें गिर जाऊँगा। इस यज्ञका यही उद्देश्य है। मैंने इसी समयके लिये तुम्हारा विवाह जरत्कारु ऋषिसे किया था। अब तुम हम लोगोंकी रक्षा करो। ब्रह्माजीके कथनानुसार तुम्हारा पुत्र आस्तीक इस सर्प-यज्ञको बंद कर सकेगा। वह बालक होनेपर भी श्रेष्ठ वेदवेत्ता और वृद्धोंका माननीय है। अब तुम उससे हम लोगोंकी रक्षाके लिये कह दो।' अपने भाईकी बात सुनकर ऋषि-पत्नी जरत्कारुने सब

बात बतलाकर नागोंकी रक्षाके लिये आस्तीकको प्रेरित

किया । आस्तीकने माताकी आज्ञा स्वीकार कर वासुकिसे कहा—'नागराज ! आप मनमें शान्ति रखिये । मैं आपसे सत्य-सत्य कहता हूँ कि उस शापसे आप लोगोंको मुक्त कर दूँगा । मैंने हास-विलासमें भी कभी असत्य-भाषण नहीं किया है । इसलिये मेरी बात झूठ न समझो । मैं अपनी शुभ वाणीसे राजा जनमेजयको प्रसन्न कर लूँगा और वह यज्ञ बंद कर देगा । मामाजी! आप मुझपर विश्वास कीजिये ।'

इस प्रकार वासुकि नागको आश्वासन देकर आस्तीक सर्पोंको मुक्त करनेके लिये यज्ञशालामें जानेके उद्देश्यसे चल पड़े । उन्होंने वहाँ पहुँचकर देखा कि सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी सभासदोंसे यज्ञशाला भरी है । द्वारपालोंने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया । अब वे भीतर प्रवेश पानेके लिये यज्ञकी स्तुति करने लगे । उनके द्वारा यज्ञकी स्तुति सुनकर जनमेजयने उन्हें भीतर आनेकी आज्ञा दे दी । आस्तीक यज्ञ-मण्डपमें जाकर यजमान, ऋत्विज्, सभासद् तथा अग्निकी और भी स्तुति करने लगे ।

आस्तीकके द्वारा की हुई स्तुति सुनकर राजा, सभासद्, ऋत्विज् और अग्नि, सभी प्रसन्न हो गये । सबके मनोभावको समझकर जनमेजयने कहा, 'यद्यपि यह बालक है, फिर भी बात अनुभवी वृद्धोंके समान कर रहा है । मैं इसे बालक नहीं, वृद्ध मानता हूँ । मैं इस बालकको वर देना चाहता हूँ, इस विषयमें आप लोगोंकी क्या सम्मति है ?' सभासदोंने कहा—'ब्राह्मण यदि बालक हो तो भी राजाओंके लिये सम्मान्य है । यदि वह विद्वान् हो, तब तो कहना ही क्या । अतः आप इस बालकको मुँहमाँगी वस्तु दे सकते हैं ।' जनमेजयने कहा, 'आप लोग यथाशक्ति प्रयत्न कीजिये कि मेरा यह कर्म समाप्त हो जाय और तक्षक नाग अभी यहाँ आ जाय । वही तो मेरा प्रधान शत्रु है ।' ऋत्विजोंने कहा, 'अग्निदेवका कहना है कि तक्षक भयभीत होकर इन्द्रके शरणागत हो गया है । इन्द्रने तक्षकको अभयदान भी दे दिया है ।' जनमेजयने कुछ दुखी होकर कहा—'आपलोग ऐसा मन्त्र पढ़कर हवन कीजिये कि इन्द्रके साथ तक्षक नाग आकर अग्निमें भस्म हो जाय ।' जनमेजयकी बात सुनकर होताने आहुति डाली । उसी समय आकाशमें इन्द्र और तक्षक दिखायी पड़े । इन्द्र तो उस यज्ञको देखकर बहुत ही घबरा गये और तक्षकको छोड़कर चलते बने । तक्षक क्षण-क्षण अग्निज्वालाके समीप आने लगा । तब ब्राह्मणोंने कहा, 'राजन् ! अब आपका काम ठीक हो रहा है। इस ब्राह्मणको वर दे दीजिये ।'

जनमेजयने कहा—'ब्राह्मणकुमार ! तुम्हारे-जैसे सत्पात्रको मैं उचित वर देना चाहता हूँ । अतः तुम्हारी जो इच्छा हो, प्रसन्नतासे माँग लो । मैं कठिन-से-कठिन वर भी तुम्हें दूँगा ।' आस्तीकने यह देखकर कि अब तक्षक अग्निकुण्डमें गिरनेहीवाला है, अवसरसे लाभ उठाया । उन्होंने कहा, 'राजन् ! आप मुझे यही वर दीजिये कि आपका यह यज्ञ बंद हो जाय और इसमें गिरते हुए सर्प बच जायँ ।' इसपर जनमेजयने कुछ अप्रसन्न होकर कहा, 'समर्थ ब्राह्मण ! तुम सोना, चाँदी, गौ और दूसरी वस्तुएँ इच्छानुसार ले लो । मैं चाहता हूँ कि यह यज्ञ बंद न हो ।' आस्तीकने कहा, 'मुझे सोना, चाँदी, गौ अथवा और कोई भी वस्तु नहीं चाहिये; अपने मातृकुलके कल्याणके लिये मैं आपका यज्ञ ही बंद कराना चाहता हूँ ।' जनमेजयने बार-बार अपनी बात दुहरायी, परन्तु आस्तीकने दूसरा वर माँगना स्वीकार नहीं किया । उस समय सभी वेदज्ञ सदस्य एक स्वरसे कहने लगे, 'यह ब्राह्मण जो कुछ माँगता है, वही इसको मिलना चाहिये ।'

शौनकजीने पूछा—सूतनन्दन ! उस यज्ञमें तो बड़े विद्वान् ब्राह्मण थे । किन्तु आस्तीकसे बात करते समय जो तक्षक अग्निमें नहीं गिरा, इसका क्या कारण हुआ ? क्या उन्हें वैसे मन्त्र ही नहीं सूझे ?

उग्रश्रवाजीने कहा—इन्द्रके हाथोंसे छूटते ही तक्षक मूर्छित हो गया । आस्तीकने तीन बार कहा, 'ठहर जा ! ठहर जा ! ठहर जा !' इसीसे वह आकाश और पृथ्वीके बीचमें लटका रहा और अग्निकुण्डमें नहीं गिरा । शौनकजी ! सभासदोंके बार-बार

कहनेपर जनमेजयने कहा, 'अच्छा, आस्तीककी इच्छा पूर्ण हो। यह यज्ञ समाप्त करो। आस्तीक प्रसन्न हों। हमारे सूतने जो कहा था, वह भी सत्य हो।' जनमेजयके मुँहसे यह बात निकलते ही सब लोग आनन्द प्रकट करने लगे। सभीको प्रसन्नता हुई। राजाने ऋत्विज् और सदस्योंको तथा जो अन्य ब्राह्मण वहाँ आये थे, उन्हें बहुत दान दिया। जिस सूतने यज्ञ बंद होनेकी भविष्यवाणी की थी, उसका भी बहुत सत्कार किया। यज्ञान्तका अवभृथ-स्नान करके आस्तीकका खूब स्वागत-सत्कार किया और उन्हें सब प्रकारसे प्रसन्न करके विदा किया। जाते समय जनमेजयने कहा, 'आप मेरे अश्वमेध यज्ञमें सभासद् होनेके लिये पधारियेगा।' आस्तीकने प्रसन्नतासे 'तथास्तु' कहा। तत्पश्चात् अपने मामाके घर जाकर अपनी माता जरत्कारु आदिसे सब समाचार कह सुनाया।

उस समय वासुकि नागकी सभा यज्ञसे बचे हुए सर्पोंसे भरी हुई थी। आस्तीकके मुँहसे सब समाचार सुनकर सर्प बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनपर प्रेम प्रकट करते हुए कहा, 'बेटा! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' वे बार-बार कहने लगे, 'बेटा! तुमने हमें मृत्युके मुँहसे बचा लिया। हम तुमपर प्रसन्न हैं। कहो तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करें?' आस्तीकने कहा—'मैं आप लोगोंसे यह वर माँगता हूँ कि जो कोई सायंकाल और प्रातःकाल प्रसन्नतापूर्वक इस धर्ममय उपाख्यानका पाठ करे, उसे सर्पोंसे कोई भय न हो।' यह बात सुनकर सभी सर्प बहुत प्रसन्न हुए। उन लोगोंने कहा, 'प्रियवर! तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण हो। हम बड़े प्रेम और नम्रतासे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करते रहेंगे। जो कोई असित, आर्तिमान् और सुनीथ मन्त्रोंमेंसे किसी एकका दिन या रातमें पाठ कर लेगा, उसे सर्पोंसे कोई भय नहीं होगा। वे मन्त्र क्रमशः ये हैं—

यो जरत्कारुणा जातो जरत्कारौ महायशाः।
आस्तीकः सर्पसत्रे वः पन्नगान् योऽभ्यरक्षत।
तं स्मरन्तं महाभागा न मां हिंसितुमर्हथ॥

(५८। २४)

'जरत्कारु ऋषिसे जरत्कारु नामक नागकन्यामें आस्तीक नामक यशस्वी ऋषि उत्पन्न हुए। उन्होंने सर्पयज्ञमें तुम सर्पोंकी रक्षा की थी। महाभाग्यवान् सर्पो! मैं उनका स्मरण कर रहा हूँ। तुमलोग मुझे मत डँसो।'

सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥

(५८। २५)

'हे महाविषधर सर्प! तुम चले जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाओ। जनमेजयके यज्ञकी समाप्तिमें आस्तीकने जो कुछ कहा था, उसका स्मरण करो।'

आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा॥

(५८। २६)

'जो सर्प आस्तीकके वचनकी शपथ सुनकर भी नहीं लौटेगा, उसका फन शीशमके फलके समान सैकड़ों टुकड़े हो जायगा।'

धार्मिकशिरोमणि आस्तीक ऋषिने इस प्रकार सर्प-यज्ञसे सर्पोंका उद्धार किया। शरीरका प्रारब्ध पूरा होनेपर पुत्र-पौत्रादिको छोड़कर आस्तीक स्वर्ग चले गये। जो आस्तीक-चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, उसे सर्पोंका भय नहीं होता।

सर्पयज्ञमें आस्तीक
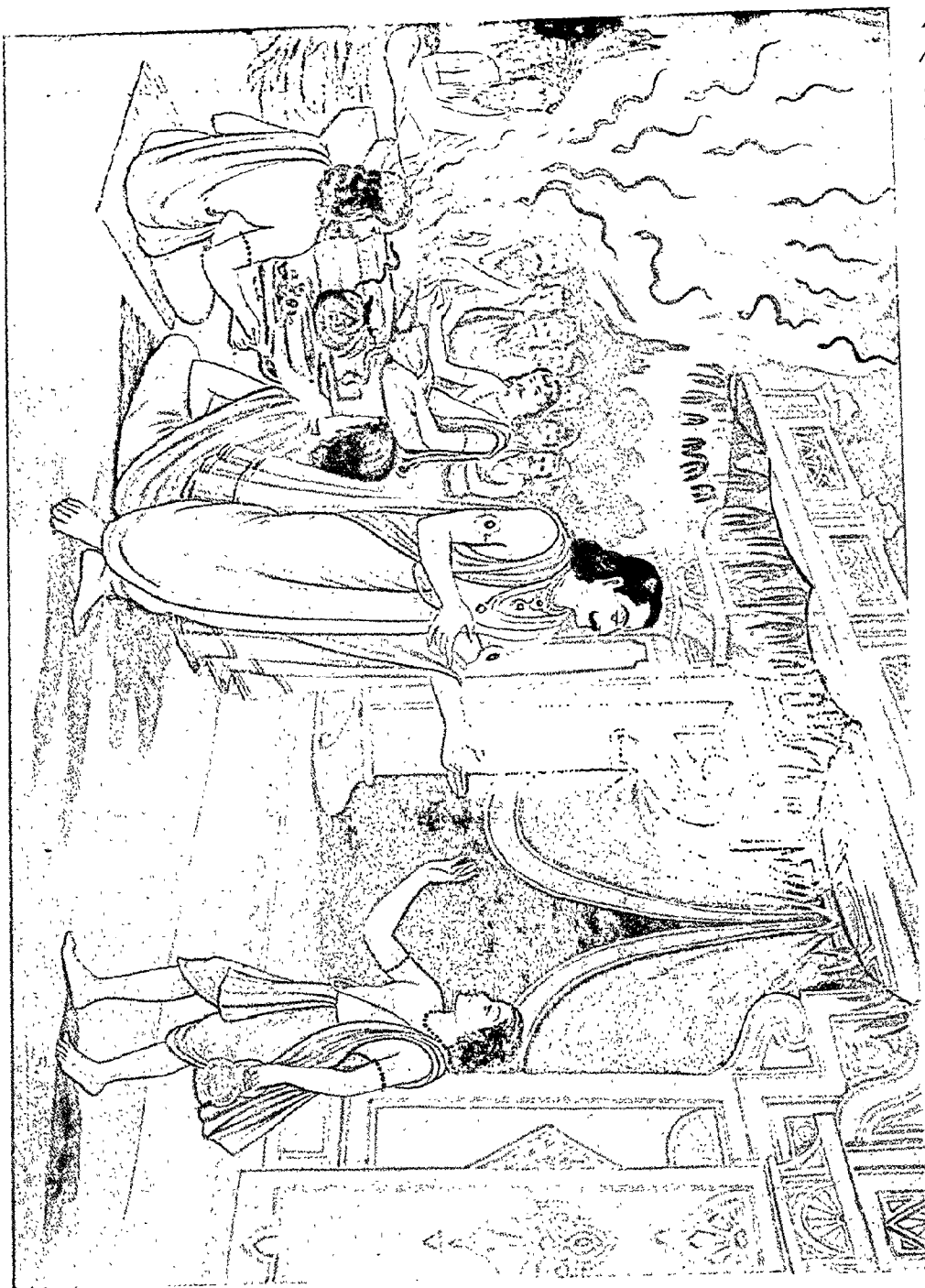
श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनजीका कथा प्रारम्भ करना

शौनकजीने कहा—सूतनन्दन ! महाभारतकी कथा बड़ी ही पवित्र है । इसमें पाण्डवोंका यश गाया गया है । सर्प-सत्रके अन्तमें जनमेजयकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन-ने वैशम्पायनजीको यह आज्ञा दी थी कि तुम वह कथा इन्हें सुनाओ । अब मैं वही कथा सुनना चाहता हूँ । वह कथा भगवान् व्यासके मनःसागरसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वरत्नमयी है । आप वही सुनाइये ।

उग्रश्रवाजीने कहा—शौनकजी ! भगवान् वेदव्यासके द्वारा निर्मित महाभारत आख्यान मैं आपको प्रारम्भसे ही सुनाऊँगा । उसका वर्णन करनेमें मुझे भी बड़ा आनन्द होता है । जब भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनको यह बात मालूम हुई कि जनमेजय सर्प-यज्ञमें दीक्षित हो गये हैं, तब वे वहाँ आये । भगवान् व्यासका जन्म शक्ति-पुत्र पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाकी रेतीमें हुआ था । वे ही पाण्डवोंके पितामह थे । वे जन्मते ही स्वेच्छासे बड़े हो गये और साङ्गोपाङ्ग वेद तथा इतिहासोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया । उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसे कोई तपस्या, वेदाध्ययन, व्रत, उपवास, स्वाभाविक शक्ति और विचारसे नहीं प्राप्त कर सकता । उन्होंने ही एक वेदको चार भागोंमें विभक्त कर दिया । वे महान् ब्रह्मर्षि त्रिकालदर्शी, सत्यव्रत, परम पवित्र एवं सगुण-निर्गुण

स्वरूपके तत्त्वज्ञ थे । उन्हींके कृपा-प्रसादसे पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरका जन्म हुआ था । उन्होंने अपने शिष्योंके साथ जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश किया । उन्हें देखते ही राजर्षि जनमेजय झटपट सदस्योंके सहित उठकर खड़े हो गये और शिष्टाचारपूर्वक यज्ञमण्डपमें ले आये । उन्हें सुवर्णसिंहासनपर बैठाकर विधिपूर्वक पूजा की । अपने वंश-प्रवर्तकको पाद्य, आचमन, अर्घ्य और गौएँ देकर जनमेजयको बड़ी प्रसन्नता हुई । दोनों ओरसे कुशल-मंगलके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर हुए । सभी सभासदोंने भगवान् व्यासकी पूजा की और उन्होंने यथायोग्य सबका सत्कार किया ।

तदनन्तर जनमेजयने सभासदोंके साथ हाथ जोड़कर व्यासजीसे यह प्रश्न किया, 'भगवन् ! आपने कौरवों और पाण्डवोंको अपनी आँखोंसे देखा था । मैं चाहता हूँ कि आपके मुँहसे उनका चरित्र सुनूँ । वे तो बड़े धर्मात्मा थे, फिर उन लोगोंमें अनबनका क्या कारण हुआ ? उस घोर संग्रामके होनेकी नौबत कैसे आ गयी ? उसके कारण तो प्राणियोंका बड़ा ही विध्वंस हुआ है । अवश्य ही दैववश उनका मन युद्धकी ओर झुक गया होगा । आप कृपा करके मुझे उसका पूरा विवरण सुनाइये ।' जनमेजयकी यह बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने पास ही बैठे हुए अपने शिष्य वैशम्पायनसे कहा, 'वैशम्पायन ! कौरव और पाण्डवोंमें जिस प्रकार फूट पड़ी थी, वह सब तुम मुझसे सुन चुके हो । अब वही बात तुम जनमेजयको सुना दो ।' अपने पूज्य गुरुदेवकी आज्ञा सुनकर भरी सभामें वैशम्पायनजीने कहना प्रारम्भ किया ।

वैशम्पायनजीने कहा—मैं सङ्कल्प, विचार और समाधिके द्वारा गुरुदेवको नमस्कार करता हूँ तथा सभी ब्राह्मण और विद्वानोंका सम्मान करके परम ज्ञानी भगवान् व्यासका मत सुनाता हूँ । भगवान् व्यासके द्वारा निर्मित यह इतिहास बड़ा ही पवित्र और विस्तृत है । उन्होंने पुण्यात्मा पाण्डवोंकी यह कथा एक लाख श्लोकोंमें कही है । इसके वक्ता और श्रोता ब्रह्मलोकमें जाकर देवताओंके समकक्ष हो जाते हैं । यह पवित्र और उत्तम पुराण वेद-तुल्य है, सुननेयोग्य कथाओंमें सर्वोत्तम है और बड़े-बड़े ऋषियोंने इसकी प्रशंसा की है । इस इतिहास-ग्रन्थमें अर्थ और कामकी प्राप्तिके धर्मानुकूल उपाय बतलाये गये हैं तथा इससे मोक्षतत्त्वको पहचाननेवाली बुद्धि भी प्राप्त हो जाती है । इसके श्रवण

कीर्तनसे मनुष्य सारे पापोंसे छूट जाता है। इस इतिहासका नाम 'जय' है। संसारपर परम विजय अर्थात् कल्याण प्राप्त करनेके इच्छुकोंको इसका श्रवण करना चाहिये। यह धर्म-शास्त्र, अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्र—सब कुछ है। जो इसका श्रवण-वर्णन करते हैं, उनके पुत्र सेवक और सेवक स्वामि-भक्त हो जाते हैं। जो इसका श्रवण करते हैं उनके वाचिक, मानसिक और शारीरिक पाप नष्ट हो जाते हैं। इसमें भरत-वंशियोंके महान् जन्मका कीर्तन है, इसलिये इसको महाभारत कहते हैं। जो इस नामका व्युत्पत्तियुक्त अर्थ जानता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन प्रति प्रातःकाल उठकर स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त हो इस रचना करते थे, इस प्रकार तीन वर्षमें यह पूरा हुआ थ इसलिये ब्राह्मणोंको भी नियममें स्थित होकर ही इस कथा श्रवण-वर्णन करना चाहिये। जैसे समुद्र और सुमेरु रत्नों खान हैं, वैसे ही यह ग्रन्थ कथाओंका मूल उद्गम है इसके दानसे सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है। ध अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो बात इस ग्रन्थमें वही सर्वत्र है। जो इसमें नहीं है, वह और कहीं नहीं है इसलिये आपलोग यह कथा पूरी-पूरी सुनें।

भूभार-हरणके लिये देवताओंके अवतारग्रहणके निश्चय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जमदग्निनन्दन

परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीके क्षत्रियोंका संहार किया था। यह काम करके वे महेन्द्र पर्वतपर चले गये और वहाँ तपस्या करने लगे। क्षत्रियोंका संहार हो जानेपर क्षत्रियोंकी वंशरक्षा तपस्वी, त्यागी, संयमी ब्राह्मणोंके द्वारा हुई। कुछ ही दिनों बाद फिर क्षत्रिय राज्यकी पुनः स्थापना हो गयी। क्षत्रियोंके धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेसे ब्राह्मण आदि वर्णाश्रमधर्मी सुखी हो गये। राजा लोग काम, क्रोध और उनके कारण होनेवाले दोषोंको छोड़कर धर्मानुसार शासन और पालन करने लगे समयपर वर्षा होती। बचपनमें कोई भी न मरता और युव वस्थाके पहले लोगोंको स्त्री-संसर्गका ज्ञान भी न होता। क्षत्रि बड़े-बड़े यज्ञ करके ब्राह्मणोंको खूब दक्षिणा देते और ब्राह्म साङ्गोपाङ्ग त्रिकाण्ड वेदका अध्ययन करते। उस समय को धन लेकर शास्त्रोंका अध्यापन नहीं करता था और न शूद्रोंके सन्निधिमें वेदोंका उच्चारण ही करता था। वैश्य दूसरोंसे बैलों द्वारा खेतीका काम कराते थे। स्वयं उनके कंधेपर जूआ नहीं रखते थे तथा कमजोर हो जानेपर भी घास, चारा आदिसे उनका पालन करते रहते थे। बछड़े जबतक और कुछ नहीं खाने लगते थे, तबतक गौएँ नहीं दुही जाती थीं। व्यापारी तौलने-जोखनेमें बेईमानी नहीं करते थे। सभी लोग अपने वर्ण और आश्रम आदिके अधिकारानुसार अपना-अपना काम करते थे। धर्म-हानिका तो कोई प्रसंग ही नहीं आता था। गौओं और स्त्रियोंको उचित समयपर ही बच्चे होते थे। यहाँ तक कि लता और वृक्ष भी ऋतुकालमें ही फलते-फूलते थे। उस समय सत्ययुग था।

जिस समय इस प्रकार आनन्द छा रहा था, उसी समय क्षत्रियोंमें राक्षस उत्पन्न होने लगे। उस समय देवताओंने युद्धमें दैत्योंको बार-बार हराया और ऐश्वर्यसे च्युत कर दिया। वे न केवल मनुष्योंमें बल्कि बैलों, घोड़ों, गधों, ऊँटों, भैंसों और मृगोंमें भी पैदा हुए। पृथ्वी उनके भारसे व्याकुल हो गयी। दैत्य और दानव मदोन्मत्त तथा उच्छृङ्खल राजाओंके रूपमें भी उत्पन्न हुए। उन्होंने तरह-तरहके रूप धारण करके

अवतारके लिये प्रार्थना

पृथ्वीको भर दिया और सारी प्रजाको सताने लगे। उनकी उच्छृङ्खलतासे पीड़ित और उद्विग्न होकर पृथ्वी ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। उस समय वह इतनी भाराक्रान्त हो रही थी कि शेष, कच्छप और दिग्गज भी उसे उठानेमें असमर्थ हो गये थे। प्रजापति भगवान् ब्रह्माने शरणागत पृथ्वीसे कहा 'देवि! तू जिस कार्यके लिये मेरे पास आयी है, उसके लिये मैं सब देवताओंको नियुक्त करूँगा।' पृथ्वी लौट आयीं।

ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी कि 'तुम लोग पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने-अपने अंशोंसे अलग-अलग पृथ्वी-पर अवतार लो।' इसके बाद गन्धर्व और अप्सराओंको भी बुलाकर कहा, 'तुमलोग भी स्वेच्छानुसार अपने-अपने अंशसे जन्म लो।' सब देवताओंने ब्रह्माजीके सत्य, हितकारी और प्रयोजनानुकूल वचनको स्वीकार किया। इसके बाद सबने शत्रुनाशक भगवान् नारायणके पास जानेके लिये वैकुण्ठकी यात्रा की। वे प्रभु अपने करकमलोंमें चक्र और गदा रखते हैं। उनके वस्त्र पीले हैं। शरीरकी कान्ति नीली है। उनका वक्षःस्थल ऊँचा और नेत्र बड़े मोहक हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है, वे सर्वशक्तिमान् तथा सबके स्वामी हैं। सभी देवता उनकी पूजा करते हैं। इन्द्रने उनसे प्रार्थना की कि आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अंशावतार ग्रहण कीजिये। भगवान्‌ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया। इन्द्रने भगवान् विष्णुसे अवतार ग्रहण करनेके सम्बन्धमें परामर्श किया, तदनुसार देवताओंको आज्ञा दी और फिर वैकुण्ठसे चले आये। अब देवतालोग प्रजाके कल्याण और राक्षसोंके विनाश-के लिये क्रमशः पृथ्वीपर अवतीर्ण होने लगे। वे स्वेच्छानुसार ब्रह्मर्षियों अथवा राजर्षियोंके वंशमें जन्म लेकर मनुष्य-भोजी असुरोंका संहार करने लगे। वे बचपनमें ही इतने बलवान् थे कि असुरगण उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते थे।

देवता, दानव, पशु, पक्षी आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति

जनमेजयने कहा—भगवन्! मैं देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, मनुष्य, यक्ष, राक्षस और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करके उसका प्रारम्भसे ही यथावत् वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—अच्छा, मैं स्वयम्प्रकाश भगवान्‌को प्रणाम करके देवता आदिकी उत्पत्ति और नाशकी कथा कहता हूँ। ब्रह्माजीके मानस-पुत्र मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतुको तो तुम जानते ही हो। मरीचिके पुत्र कश्यप थे और कश्यपसे ही यह सारी प्रजा उत्पन्न हुई है। दक्ष प्रजापतिकी तेरह कन्याओंका नाम था—अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू। इनसे उत्पन्न पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है। अदितिके बारह आदित्य हुए। उनके नाम हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें सबसे छोटे विष्णु गुणोंमें सबसे बड़े थे। दितिका एक पुत्र था हिरण्यकशिपु। उसके पाँच पुत्र थे—प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, शिबि और बाष्कल। प्रह्लादके तीन पुत्र थे—विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ। विरोचनका बलि और बलिका बाणासुर। बाणासुर भगवान् शङ्करका महान् सेवक था। वह महाकालके नामसे प्रसिद्ध है। दनुके चालीस पुत्रोंमें विप्रचित्ति सबसे बड़ा, यशस्वी और राजा था। दानवोंकी संख्या असंख्य है। सिंहिकासे राहु हुआ, जो सूर्य और चन्द्रमाको ग्रसता है। क्रूरा (क्रोधा) से सुचन्द्र, चन्द्रहन्ता और चन्द्रप्रमर्दन आदि पुत्र-पौत्र हुए। क्रोधवश नामका एक गण भी हुआ था। दनायुसे चार पुत्र हुए—विक्षर, बल, वीर और वृत्रासुर। कालासे विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता, क्रोधशत्रु और कालकेय नामसे प्रसिद्ध असुर हुए।

भृगु ऋषिसे असुरोंके पुरोहित शुक्राचार्यका जन्म हुआ। इनके चारों पुत्र, जिनमें त्वष्टाधर और अत्रि प्रधान थे, असुरोंका यज्ञ-याग कराया करते। यह असुर और सुरवंशकी उत्पत्ति पुराणोंके अनुसार है। इनके पुत्र-पौत्रोंकी गणना सम्भव नहीं है। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, अरुण, आरुणि और वारुणि—ये वैनतेय कहलाते हैं। शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, भुजङ्गम, कूर्म, कुलिक आदि सर्प कद्रूके पुत्र हैं। भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, नारद आदि सोलह देवगन्धर्व कश्यप-पत्नी मुनिके पुत्र हैं। ये सभी बड़े कीर्तिमान्, बलवान् और जितेन्द्रिय हैं। प्राधा नामकी दक्षकन्यासे भी अनवद्या, मनुवंशा आदि कन्याएँ और सिद्ध, पूर्ण, बर्हि आदि देवगन्धर्व उत्पन्न हुए। प्राधासे ही अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा, सुप्रिया आदि अप्सराएँ

और अतिबाहु, हाहा, हूहू और तुम्बुरु—ये चार गन्धर्व भी हुए। कपिलासे गौ, ब्राह्मण, गन्धर्व और अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार मैंने तुम्हें सभीकी उत्पत्ति सुना दी। इनमें सर्प, सुपर्ण, रुद्र, मरुत् और गौ, ब्राह्मण आदि सभी हैं।

ब्रह्माके मानसपुत्र छः ऋषियोंके नाम पहले ही बतला चुका हूँ। उनके सातवें पुत्र थे स्थाणु। स्थाणुके परम तेजस्वी ग्यारह पुत्र हुए—मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भव। इन्हें ही ग्यारह रुद्र कहते हैं। अङ्गिराके तीन पुत्र हुए—बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। अत्रिके बहुत-से पुत्र हुए। पुलस्त्यके राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हुए। पुलहके शलभ, सिंह, किम्पुरुष, व्याघ्र, यक्ष और ईहामृग (भेड़िया) जातिके पुत्र हुए। क्रतुके वालखिल्य हुए। ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे दक्ष और बायेंसे उनकी पत्नीका जन्म हुआ। उस पत्नीसे दक्षकी पाँच सौ कन्याएँ हुईं। पुत्रोंका नाश हो जानेपर दक्षप्रजापतिने कन्याओंका विवाह इस शर्तपर किया कि उनके प्रथम पुत्र उन्हें मिल जायँ। उन्होंने दस कन्याओं-का विवाह धर्मसे, सत्ताईसका चन्द्रमासे और तेरहका कश्यपसे किया था। धर्मकी दस पत्नियोंके नाम ये हैं—कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति। धर्मके द्वार होनेके कारण इन्हें उसकी पत्नी कहा गया है। सत्ताईस नक्षत्र ही चन्द्रमाकी पत्नियाँ हैं। वे समय-की सूचना देती हैं।

ब्रह्माजीके पुत्र मनु, मनुके प्रजापति और प्रजापतिके आठ वसु हुए—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। धर और ध्रुवकी माँका नाम धूम्रा, सोमकी माँका मनस्विनी, अहकी माँका रता, अनिलकी माँका श्वसा, अनलकी माँका शाण्डिली तथा प्रत्यूष और प्रभासकी माताका नाम प्रभाता था। धरके दो पुत्र हुए—द्रविण और हुतहव्यवह। ध्रुवके काल; सोमके वर्चा; वर्चाके शिशिर, प्राण और रमण नामके तीन पुत्र हुए। अहके चार पुत्र हुए—ज्योति, शम, शान्त और मुनि। अनलके कुमार हुए। कृत्तिकाओंने इनका मातृत्व स्वीकार किया था, इसलिये इन्हें कार्तिकेय भी कहते हैं। इनके तीन पुत्र हुए—शाख, विशाख और नैगमेय। अनिलकी पत्नी शिवासे मनोजव और अविज्ञातगति नामके दो पुत्र हुए। प्रत्यूषके पुत्र थे देवल ऋषि। उनके भी दो पुत्र हुए थे—क्षमावान् और मनीषी। बृहस्पतिकी बहिन ब्रह्मवादिनी और योगिनी थी। वही प्रभासकी पत्नी हुई। उसीसे देवताओंके कारीगर विश्वकर्मा[का] जन्म हुआ। उन्होंने ही देवताओंके भूषण और विमानों[का] निर्माण किया है। मनुष्य भी उन्हींकी कारीगरीके आधार[पर] अपनी जीविका करते हैं। भगवान् धर्म ब्रह्माजीके दाहि[ने] स्तनसे मनुष्यरूपमें प्रकट हुए थे! उनके तीन पुत्र हुए—शम, काम और हर्ष। उनकी पत्नियोंका क्रमशः नाम था—प्राप्ति, रति और नन्दा। सूर्यकी पत्नी बड़वा (घोड़ी) [से] अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अदितिके बारह पुत्रों[की] गणना की जा चुकी है। इस प्रकार बारह आदित्य, आ[ठ] वसु, ग्यारह रुद्र, प्रजापति और वषट्कार—ये मुख्य तैंती[स] देवता होते हैं। इनके गण भी हैं—जैसे रुद्रगण, साध्यगण, मरुद्गण, वसुगण, भार्गवगण और विश्वेदेवगण। गरुड़, अरुण और बृहस्पतिकी गणना आदित्योंमें ही की जाती है। अश्विनीकुमार, ओषधि और पशु आदिकी गिनती गुह्यकगणमें है। इन देवगणोंका कीर्तन करनेसे सारे पाप छूट जाते हैं।

महर्षि भृगु ब्रह्माके हृदयसे प्रकट हुए थे। भृगुके शुक्राचार्यके अतिरिक्त च्यवन नामक पुत्र हुए। ये अपनी माताकी रक्षाके लिये गर्भसे निकल आये थे। उनकी पत्नीका नाम था आरुषी। उसकी जाँघसे और्वका जन्म हुआ। और्वके ऋचीक और ऋचीकके जमदग्नि हुए। जमदग्निके चार पुत्रोंमें परशुरामजी सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े। वे शास्त्रकुशल तो थे ही, शस्त्रकुशल भी थे। उन्होंने ही क्षत्रियकुलका नाश किया था। ब्रह्माके दो पुत्र और भी थे—धाता और विधाता। वे मनुके साथ रहते हैं। कमलोंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हींकी बहिन हैं। शुक्रकी पुत्री देवी वरुणकी पत्नी हुई। उसके पुत्रका नाम हुआ बल और पुत्रीका सुरा। जब प्रजा अन्नके लोभसे एक-दूसरेका हक खाने लगी तब उस सुरासे ही अधर्मकी उत्पत्ति हुई, जो समस्त प्राणियोंका नाश कर देता है। अधर्मकी पत्नीका नाम था निर्ऋति। उसके तीन बड़े भयङ्कर पुत्र थे—भय, महाभय और मृत्यु। मृत्युके पत्नी-पुत्र कोई नहीं है।

ताम्राके पाँच कन्याएँ हुईं—काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री और शुकी। काकीसे उल्लू, श्येनीसे बाज, भासीसे कुत्ते और गीध, धृतराष्ट्रीसे हंस-कलहंस एवं चक्रवाक और शुकीसे तोतोंका जन्म हुआ। क्रोधासे नौ कन्याएँ हुईं—मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सुरसा। मृगीसे मृग, मृगमन्दासे रीछ और सृमर (छोटी

जातिके मृग), भद्रमनासे ऐरावत हाथी, हरीसे चञ्चल घोड़े, वानर एवं गौके समान पूँछवाले दूसरे पशु तथा शार्दूलीसे सिंह, बाघ और गैंडे उत्पन्न हुए। मातङ्गीसे सब तरहके हाथी और श्वेतासे श्वेत दिग्गज हुए। सुरभीसे रोहिणी, गन्धर्वी, विमला और अनला नामकी चार कन्याएँ हुईं। रोहिणीसे गाय-बैल, गन्धर्वीसे घोड़े, अनलासे खजूर, ताल, हिन्ताल, ताली, खर्जूरिका, सुपारी और नारियल—ये सात पिण्डफलवाले वृक्ष उत्पन्न हुए। अनलाकी पुत्री शुकी ही तोतोंकी जननी हुई। सुरसासे कङ्क पक्षी और नागोंका जन्म हुआ। अरुणकी भार्या श्येनीसे सम्पाति और जटायु हुए। कद्रूसे सर्पोंकी उत्पत्ति तो कही ही जा चुकी है। इस प्रकार मुख्य-मुख्य प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया। इस वृत्तान्तका श्रवण करनेसे पापियोंके पाप तो छूटते ही हैं, सर्वज्ञताकी प्राप्ति भी होती है और अन्तमें उत्तम गति मिलती है।

देवता, दानव आदिका मनुष्योंके रूपमें अंशावतार और कर्णकी उत्पत्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब मैं यह वर्णन करता हूँ कि किन-किन देवता और दानवोंने किन-किन मनुष्योंके रूपमें जन्म लिया था। दानवराज विप्रचित्ति जरासन्ध और हिरण्यकशिपु शिशुपाल हुआ था। संह्लाद शल्य और अनुह्लाद धृष्टकेतु हुआ था। शिबि दैत्य द्रुम राजाके रूपमें और बाष्कल भगदत्त हुआ था। कालनेमि दैत्यने ही कंसका रूप धारण किया था।

भरद्वाज मुनिके यहाँ बृहस्पतिजीके अंशसे द्रोणाचार्य अवतीर्ण हुए थे। वे श्रेष्ठ धनुर्धर, उत्तम शास्त्रवेत्ता और परम तेजस्वी थे। उनके यहाँ महादेव, यम, काल और क्रोधके सम्मिलित अंशसे भयङ्कर अश्वत्थामाका जन्म हुआ था। वसिष्ठ ऋषिके शाप और इन्द्रकी आज्ञासे आठों वसु राजर्षि शान्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनमें सबसे छोटे भीष्म थे। वे कौरवोंके रक्षक, वेदवेत्ता ज्ञानी और श्रेष्ठ वक्ता थे। उन्होंने भगवान् परशुरामसे युद्ध किया था। रुद्रके एक गणने कृपाचार्यके रूपमें अवतार लिया था। द्वापर युगके अंशसे शकुनिका जन्म हुआ था। मरुद्गणके अंशसे वीरवर सत्यवादी सात्यकि, राजर्षि द्रुपद, कृतवर्मा और विराटका जन्म हुआ था। अरिष्टाका पुत्र हंस नामक गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके रूपमें पैदा हुआ था और उसका छोटा भाई पाण्डुके रूपमें। सूर्यके अंश धर्म ही विदुरके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुरुकुलकलङ्क दुरात्मा दुर्योधन कलियुगके अंशसे उत्पन्न हुआ था। उसने आपसमें वैरकी आग सुलगाकर पृथ्वीको भस्म किया। पुलस्त्यवंशके राक्षसोंने दुर्योधनके सौ भाइयोंके रूपमें जन्म लिया था। धृतराष्ट्रका वह पुत्र, जिसका नाम युयुत्सु था, वैश्याके गर्भसे उत्पन्न एवं इनसे अलग था। युधिष्ठिर धर्मके, भीमसेन वायुके, अर्जुन इन्द्रके तथा नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे। चन्द्रमाका पुत्र वर्चा अभिमन्यु हुआ था। वर्चाके जन्मके समय चन्द्रमाने देवताओंसे कहा था, 'मैं अपने प्राणप्यारे पुत्रको नहीं भेजना चाहता। फिर भी इस कामसे पीछे हटना उचित नहीं जान पड़ता। असुरोंका वध करना भी तो अपना ही काम है। इसलिये वर्चा मनुष्य बनेगा तो सही, परन्तु वहाँ अधिक दिनोंतक नहीं रहेगा। इन्द्रके अंशसे नरावतार अर्जुन होगा, जो नारायणावतार श्रीकृष्णसे मित्रता करेगा। मेरा पुत्र अर्जुनका ही पुत्र होगा। नर-नारायणकी उपस्थिति न रहनेपर मेरा पुत्र चक्रव्यूहका भेदन करेगा और घमासान युद्ध करके बड़े-बड़े महारथियोंको चकित कर देगा। दिनभर युद्ध करनेके बाद सायङ्कालमें वह मुझसे आ मिलेगा। इसकी पत्नीसे जो पुत्र होगा, वही कुरुकुलका वंशधर होगा।' सभी देवताओंने चन्द्रमाकी इस उक्तिका अनुमोदन किया। जनमेजय! वही आपके दादा अभिमन्यु थे। अग्निके अंशसे धृष्टद्युम्न और एक राक्षसके अंशसे शिखण्डीका जन्म हुआ था। विश्वेदेवगण द्रौपदीके पाँचों पुत्र प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतसेनके रूपमें पैदा हुए थे।

वसुदेवजीके पिताका नाम शूरसेन था। उनकी एक अनुपम रूपवती कन्या थी, जिसका नाम था पृथा। शूरसेनने अग्निके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी पहली सन्तान अपनी बुआके सन्तानहीन पुत्र कुन्तिभोजको दे दूँगा। उनके यहाँ पहले पृथाका ही जन्म हुआ, इसलिये उन्होंने उसे कुन्तिभोजको दे दिया। जिस समय पृथा छोटी थी, अपने पिता कुन्तिभोजके पास रहती और अतिथियोंका सेवा-सत्कार करती। एक बार पृथाने दुर्वासा ऋषिकी बड़ी सेवा की। उसकी सेवासे जितेन्द्रिय ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पृथाको एक मन्त्र बतलाया और कहा कि 'कल्याणि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम इस मन्त्रसे जिस देवताका आवाहन करोगी, उसीके कृपाप्रसादसे तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा।' दुर्वासा ऋषिकी बात सुनकर पृथा (कुन्ती) को बड़ा कुतूहल हुआ। उसने एकान्तमें जाकर भगवान् सूर्यका आवाहन

किया। सूर्यदेवने आकर तत्काल गर्भस्थापन किया, जिससे उन्हींके समान तेजस्वी कवच और कुण्डल पहने एक सर्वाङ्ग-सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। कलङ्कसे भयभीत होकर कुन्तीने उस बालकको छिपाकर नदीमें बहा दिया। अधिरथने उसे निकाला और अपनी पत्नी राधाके पास ले जाकर उसे पुत्र बना लिया। उन दोनोंने उस बालकका नाम वसुषेण रक्खा था। वही पीछे कर्णके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह अस्त्र-विद्यामें बड़ा प्रवीण और वेदाङ्गोंका ज्ञाता हुआ। वह बड़ा उदार, सत्य-पराक्रमी और बुद्धिमान् था। जिस समय वह जप करनेके लिये बैठता, उस समय ब्राह्मण उससे जो माँगते वही दे देता था।

एक दिनकी बात है। कर्ण जप कर रहा था। देवराज इन्द्र सारी प्रजा और अपने पुत्र अर्जुनके हितके लिये ब्राह्मणका वेष धारण करके उसके पास आये और उन्होंने उसके शरीरके साथ उत्पन्न कवच और कुण्डल माँगे। कर्णने अपने शरीरसे चिपके कवचको उधेड़कर और कुण्डल उतारकर दे दिये। उसकी इस उदारतासे प्रसन्न होकर इन्द्रने एक शक्ति दी और कहा, 'हे अजित! तुम यह शक्ति देवता, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस अथवा जिस किसीपर चला उसका तत्काल नाश हो जायगा।' तभीसे वह वैक नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह श्रेष्ठ योद्धा, दुर्योधनका सखा और श्रेष्ठ महापुरुष था और सूर्यके अंशसे उत्पन्न था। देवाधिदेव सनातन पुरुष नारायणभगवान्के वासुदेव श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए। महाबली बलदेवजी अंश थे। सनत्कुमारजी प्रद्युम्न हुए। यदुवंशमें और बहुत-से देवता मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इ आज्ञानुसार अप्सराओंके अंशसे सोलह हजार स्त्रियाँ उ हुई थीं। राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीके रूपमें लक्ष्म और द्रुपदके यहाँ यज्ञकुण्डसे द्रौपदीके रूपमें इन्द्राणी उ हुई थीं। कुन्ती और माद्रीके रूपमें सिद्धि और धृ जन्म हुआ था। वे ही पाण्डवोंकी माता हुईं। मतिका राजा सुबलकी पुत्री गान्धारीके रूपमें हुआ था। इस प्र देवता, असुर, गन्धर्व, अप्सरा और राक्षस अपने-अ अंशसे मनुष्यके रूपमें उत्पन्न हुए थे।

दुष्यन्त और शकुन्तलाका गान्धर्व-विवाह

जनमेजयने कहा—भगवन्! मैंने आपके श्रीमुखसे देवता, दानव आदिके अंशोंद्वारा अवतरित होनेकी कथा सुन ली; अब आपकी पूर्व सूचनाके अनुसार कुरुवंशका श्रवण करना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! पूरुवंशका प्रवर्तक था परम प्रतापशाली राजा दुष्यन्त! समुद्रसे घिरे हुए बहुत-से प्रदेश और म्लेच्छोंके देश भी उसके अधीन थे। वह अपनी प्रजाका पालन-शासन बड़ी योग्यताके साथ करता था। उसके राज्यमें वर्णसङ्कर नहीं थे। खेती और खानोंके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। पाप तो कोई करता ही नहीं था। सभी धर्मके प्रेमी थे, इसलिये धर्म और अर्थ दोनों ही स्वतः प्राप्त थे। चोर, भूख अथवा रोगका भय बिल्कुल नहीं था। सभी लोग अपने-अपने धर्ममें सन्तुष्ट थे और राजाश्रयमें निर्भय रहकर निष्काम धर्मका पालन करते थे। समयपर वर्षा होती थी। अन्न सरस होते थे और पृथ्वी सब प्रकारके रत्न और पशुधनसे परिपूर्ण थी। ब्राह्मण कर्मनिष्ठ थे और छल-कपट-पाखण्डकी छाया भी उन्हें नहीं छूती थी। दुष्यन्त स्वयं एक बलवान् युवक था। उसकी शक्ति इतनी अद्भुत थी कि वह वन-उपवनसहित मन्दराचलको उखाड़कर धारण कर सकता था। वह गदा-युद्धके प्रक्षेप, विक्षेप, परिक्षेप और अभिक्षेप—चारों प्रकार और शस्त्र-विद्यामें बड़ा ही निपुण था। घोड़े और हाथी सवारीमें कोई उसका सानी नहीं था। वह विष्णुके समा बलवान्, सूर्यके समान तेजस्वी, समुद्रके समान अक्षोभ्य औ पृथ्वीके समान क्षमाशील था। नागरिक और देशवा प्रेमसे उसका सम्मान करते और वह धर्म-बुद्धिसे सबव शासन करता।

एक दिनकी बात है। महाबाहु राजा दुष्यन्त अपन चतुरङ्गिणी सेनाके साथ किसी गहन वनमें जा पहुँचा। उस पार करनेपर उसे एक मनोहर आश्रमयुक्त उपवन मिला। वह उपवन बड़ा ही सुन्दर था। वहाँके वृक्ष खिले हुए पुष्पोंसे लद रहे थे। दूर्वादलोंसे पृथ्वी हरी-भरी हो रही थी। सुन्दर-सुन्दर पक्षी मधुर स्वरोंसे चहक रहे थे। कहीं कोकिलोंकी 'कुहू-कुहू' तो कहीं भौंरोंकी गुंजार। राजा दुष्यन्त उपवनकी शोभा देख ही रहा था कि उसकी दृष्टि उस मनोरम आश्रमपर पड़ी। उस आश्रममें स्थान-स्थानपर अग्निहोत्रकी ज्वालाएँ प्रज्वलित हो रही थीं। वालखिल्य आदि ऋषि, यज्ञशाला, पुष्प और जलाशयोंके कारण उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी; सामने ही मालिनी नदी बह रही थी, जिसका जल बड़ा स्वादिष्ट था। अनेकों ऋषि-मुनि आनन्

लगाये ध्यानमग्न थे। ब्राह्मण देवताओंकी पूजा कर रहे थे। राजाको ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं ब्रह्मलोकमें खड़ा हूँ। दुष्यन्तके नेत्र और मन वनकी छटा देखकर तृप्त नहीं होते थे। इस प्रकार राजा दुष्यन्तने सब देखते-सुनते काश्यपगोत्रीय कण्व ऋषिके एकान्त और मनोहर आश्रममें मन्त्री और पुरोहितोंके साथ प्रवेश किया।

दुष्यन्तने मन्त्री और पुरोहितोंको आश्रमके द्वारपर ही रोक दिया और स्वयं भीतर गया। वहाँ उस समय कण्व ऋषि उपस्थित नहीं थे। राजाने आश्रमको सूना देखकर ऊँचे स्वरसे पुकारा—'यहाँ कौन है?' दुष्यन्तकी आवाज़ सुनकर एक लक्ष्मीके समान सुन्दरी कन्या तपस्विनीके वेषमें आश्रमसे निकली। उसने राजा दुष्यन्तको देखकर सम्मानपूर्वक कहा, 'स्वागत है।' फिर उसने आसन, पाद्य

और अर्घ्यके द्वारा राजाका आतिथ्य करके उनसे स्वास्थ्य और कुशलके सम्बन्धमें प्रश्न किया। स्वागत-सत्कारके बाद उस तपस्विनी कन्याने तनिक मुसकराकर पूछा कि 'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' राजा दुष्यन्तने सर्वाङ्गसुन्दरी एवं मधुरभाषिणी कन्याकी ओर देखकर कहा—'मैं परम भाग्यशाली महर्षि कण्वका दर्शन करनेके लिये आया हूँ। वे इस समय कहाँ हैं, कृपा करके बतलाइये।' शकुन्तलाने कहा, 'मेरे पूजनीय पिताजी फल-फूल लानेके लिये आश्रमसे बाहर गये हैं। आप घड़ी-दो-घड़ी उनकी प्रतीक्षा कीजिये, तब उनसे मिल सकेंगे।' शकुन्तलाकी भरी जवानी और अनुपम रूप देखकर दुष्यन्तने पूछा, 'सुन्दरी! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? और किसलिये यहाँ आयी हो? तुमने मेरा मन मोहित कर लिया है। मैं तुम्हें जानना चाहता हूँ।' शकुन्तलाने बड़ी मिठासके साथ कहा, 'मैं महर्षि कण्वकी पुत्री हूँ।' राजाने कहा, 'कल्याणि! विश्ववन्द्य महर्षि कण्व तो अखण्ड ब्रह्मचारी हैं। धर्म अपने स्थानसे विचलित हो सकता है, परन्तु वे नहीं। ऐसी दशामें तुम उनकी पुत्री कैसे हो सकती हो?' शकुन्तलाने कहा, 'राजन्! एक ऋषिके पूछनेपर मेरे पूजनीय पिता कण्वने मेरे जन्मकी कहानी सुनायी थी। उससे मैं जान सकी हूँ कि जिस समय परम प्रतापी विश्वामित्रजी तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्रने उनके तपमें विघ्न डालनेके लिये मेनका नामकी अप्सरा भेजी थी। उसीके संयोगसे मेरा जन्म हुआ। माता मुझे वनमें छोड़कर चली गयी, तब शकुन्तों (पक्षियों) ने सिंह, व्याघ्र आदि भयानक जन्तुओंसे मेरी रक्षा की थी; इसलिये मेरा नाम शकुन्तला पड़ा। महर्षि कण्वने वहाँसे उठा लाकर मेरा पालन-पोषण किया। शरीरका जनक, प्राणोंका रक्षक और अन्नदाता—ये तीनों ही पिता कहे जाते हैं। इस प्रकार मैं महर्षि कण्वकी पुत्री हूँ।'

दुष्यन्तने कहा—'कल्याणि! जैसा तुम कह रही हो, तुम ब्राह्मण-कन्या नहीं राजकन्या हो। इसलिये तुम मेरी पत्नी हो जाओ। सुन्दरि! तुम गान्धर्व-विधिसे मुझसे विवाह कर लो। राजाओंके लिये गान्धर्व-विवाह सर्वश्रेष्ठ माना गया है।' शकुन्तलाने कहा, 'मेरे पिताजी इस समय यहाँ नहीं हैं। आप थोड़ी देरतक प्रतीक्षा कीजिये। वे आकर मुझे आपकी सेवामें समर्पित कर देंगे।' दुष्यन्तने कहा—'मैं तुम्हें चाहता हूँ, यह भी चाहता हूँ कि तुम मुझे स्वयं वरण कर लो। मनुष्य स्वयं ही अपना हितैषी और जिम्मेवार है। तुम धर्मके अनुसार स्वयं ही मुझे अपना दान करो।' शकुन्तलाने कहा, 'राजन्! यदि आप इसे ही धर्म-पथ समझते हैं और मुझे स्वयं अपनेको दान करनेका अधिकार है तो आप मेरी शर्त सुन लीजिये। मैं सच-सच कहती हूँ कि आप यह प्रतिज्ञा कर लीजिये—'मेरे बाद तुम्हारा ही पुत्र सम्राट् होगा

और मेरे जीवनकालमें ही वह युवराज बन जायगा।' तो मैं आपको स्वीकार कर सकती हूँ।' दुष्यन्तने बिना कुछ सोचे-विचारे ही प्रतिज्ञा कर ली और गान्धर्व-विधिसे शकुन्तलाका पाणिग्रहण कर लिया। दुष्यन्तने उसके साथ समागम करके बार-बार यह विश्वास दिलाया कि 'मैं तुम्हें लानेके लिये चतुरङ्गिणी सेना भेजूँगा और शीघ्र-से-शीघ्र तुम्हें अपने महलमें ले चलूँगा।' इस प्रकार कह-सुनकर दुष्यन्त अपनी राजधानीके लिये रवाना हुआ। उसके मनमें बड़ी चिन्ता थी कि महर्षि कण्व यह सब सुनकर न जाने क्या करेंगे।

थोड़ी ही देर बाद महर्षि कण्व आश्रमपर आ पहुँचे। परन्तु शकुन्तला लज्जावश उनके पास नहीं गयी। त्रिकालदर्शी कण्वने दिव्य दृष्टिसे सारी बातें जानकर प्रसन्नताके साथ शकुन्तलासे कहा, 'बेटी! तुमने मुझसे बिना पूछे एकान्तमें जो काम किया है, वह धर्मके विरुद्ध नहीं है। क्षत्रियोंके लिये गान्धर्वविवाह शास्त्रसम्मत है। दुष्यन्त एक धर्मात्मा, उदार एवं श्रेष्ठ पुरुष है। उसके संयोगसे बड़ा बलवान् पुत्र होगा और वह सारी पृथ्वीका राजा होगा। जब वह शत्रुओंपर चढ़ाई करेगा, उसका रथ कहीं भी न रुकेगा।' शकुन्तलाके कहनेपर महर्षि कण्वने दुष्यन्तको वर दिया कि उसकी बुद्धि धर्ममें दृढ़ रहे और राज्य अविचल रहे।

भरतका जन्म, दुष्यन्तके द्वारा उसकी स्वीकृति और राज्याभिषेक

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! समयपर शकुन्तलाके गर्भसे पुत्र हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और बचपनमें ही बड़ा बलिष्ठ था। महर्षि कण्वने विधिपूर्वक उसके जातकर्म आदि संस्कार किये। उस शिशुके दाँत सफेद-सफेद और बड़े नुकीले थे, कन्धे सिंहके-से थे, दोनों हाथोंमें चक्रका

चिह्न था तथा सिर बड़ा और ललाट ऊँचा था। वह ऐसा जान पड़ता, मानो कोई देवकुमार हो। वह छः वर्षकी अवस्थामें ही सिंह, बाघ, सूकर और हाथियोंको आश्रमके वृक्षोंसे बाँध देता था। कभी उनपर चढ़ता, कभी डाँटता तथा कभी उनके साथ खेलता और दौड़ लगाता था। आश्रमवासियोंने उसके द्वारा समस्त हिंस्र जन्तुओंका दमन होते देख उसका नाम सर्वदमन रख दिया। वह बड़ा विक्रमी, ओजस्वी और बलवान् था। बालकके अलौकिक कर्म देखकर महर्षि कण्वने शकुन्तलासे कहा, 'अब यह युवराज होनेके योग्य हो गया।' फिर उन्होंने अपने शिष्योंको आज्ञा दी कि 'शकुन्तलाको पुत्रके साथ उसके पतिके घर पहुँचा आओ। कन्याका बहुत दिनोंतक मायकेमें रहना कीर्ति, चरित्र और धर्मका घातक है।' शिष्योंने आज्ञानुसार शकुन्तला और सर्वदमनको लेकर हस्तिनापुरकी यात्रा की।

सूचना और स्वीकृतिके बाद शकुन्तला राजसभामें गयी। अब ऋषिके शिष्य लौट गये। शकुन्तलाने सम्मानपूर्वक निवेदन किया कि 'राजन्! यह आपका पुत्र है। अब इसे आप युवराज बनाइये। इस देवतुल्य कुमारके सम्बन्धमें आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये।' शकुन्तलाकी बात सुनकर दुष्यन्तने कहा, 'अरी दुष्ट तापसी! तू किसकी

पत्नी है ? मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं है ! तेरे साथ धर्म, अर्थ और कामका कोई भी मेरा सम्बन्ध नहीं है। तू जा, ठहर अथवा जो तेरी मौजमें आवे कर।' दुष्यन्तकी बात सुनकर तपस्विनी शकुन्तला बेहोश-सी होकर खंभेकी तरह निश्चल भावसे खड़ी रह गयी। उसकी आँखें लाल हो गयीं, होठ फड़कने लगे और वह दृष्टि टेढ़ी करके दुष्यन्तकी ओर देखने लगी। थोड़ी देर ठहरकर दुःख और क्रोधसे भरी शकुन्तला दुष्यन्तसे बोली, "महाराज! आप जान-बूझकर ऐसा क्यों कह रहे हैं कि मैं नहीं जानता ? ऐसी बात तो नीच मनुष्य कहते हैं। आपका हृदय इस बातका साक्षी है कि झूठ क्या है और सच क्या है। आप अपनी आत्माका तिरस्कार मत कीजिये। हृदयपर हाथ रखकर सही-सही कहिये। आपका हृदय कुछ और कह रहा है और आप कुछ और। यह तो बहुत बड़ा पाप है। आप ऐसा समझ रहे हैं कि उस समय मैं अकेला था, कोई गवाह नहीं है। परन्तु आपको पता नहीं कि परमात्मा सबके हृदयमें बैठा है। वह सबके पाप-पुण्य जानता है और आप ठीक उसीके पास बैठकर पाप कर रहे हैं ? पाप करके यह समझना कि मुझे कोई नहीं देख रहा है, घोर अज्ञान है। देवता और अन्तर्यामी परमात्मा भी इन बातोंको देखता और जानता है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात, सन्ध्या, धर्म—ये सभी मनुष्यके शुभ-अशुभ कर्मोंको जानते हैं। जिसपर हृद्देशस्थित कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञ परमात्मा सन्तुष्ट रहते हैं, यमराज उसके पापोंको स्वयं नष्ट कर देते हैं। परन्तु जिसपर अन्तर्यामी सन्तुष्ट नहीं, यमराज स्वयं उसके पापोंका दण्ड देते हैं। जो स्वयं अपनी आत्माका तिरस्कार करके कुछ-का-कुछ कर बैठता है, देवता भी उसकी सहायता नहीं करते; क्योंकि वह स्वयं भी अपनी सहायता नहीं करता। मैं स्वयं आपके पास आयी हूँ, ऐसा समझकर आप मुझ पतिव्रताका तिरस्कार न करें। देखिये, आप अपनी आदरणीया पत्नीका तिरस्कार कर रहे हैं। आप भरी सभामें साधारण पुरुषके समान मेरा तिरस्कार कर रहे हैं ! क्या मैं जंगलमें रो रही हूँ ? सुनायी नहीं पड़ता ? मैं कहे देती हूँ कि यदि आप मेरी उचित याचनापर ध्यान नहीं देंगे तो आपके सिरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। पत्नीके द्वारा पुत्रके रूपमें स्वयं पतिका ही जन्म होता है, इसलिये प्राचीन विद्वानोंने पत्नीको 'जाया' कहा है। सदाचारसम्पन्न पुरुषोंकी सन्तान पूर्वजोंको और पिताको भी तार देती है, इसीसे सन्तानका नाम 'पुत्र' है। (पुत्रसे स्वर्ग और पौत्रसे उसकी अनन्तता प्राप्त होती है। प्रपौत्रसे बहुत-सी पीढ़ियाँ तर जाती हैं।)

"पत्नी उसे कहते हैं, जो घरके कामकाजमें चतुर हो, पुत्रवती हो, पतिको प्राणके समान मानती हो और सच्ची पतिव्रता हो। पत्नी पतिका अर्द्धाङ्ग है, उसका एक श्रेष्ठतम सखा है। पत्नीके द्वारा अर्थ, धर्म, कामकी सिद्धि होती है और मोक्षके पथपर अग्रसर होनेमें उससे बड़ी सहायता मिलती है। पत्नीकी सहायतासे ही श्रेष्ठ कर्म होते हैं, गृहस्थी बनती है, सुख मिलता है और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। पत्नी ही एकान्तमें मधुरभाषी सखा, धर्मकार्यमें पिता और दुःख पड़नेपर माताका काम करती है। बटोहियोंके लिये घोर-से-घोर जंगलमें भी पत्नी विश्रामस्थान है। व्यवहारमें लोग सपत्नीकका विशेष विश्वास करते हैं। घोर विपत्तिके समय और मरनेपर भी पत्नी ही अपने पतिका अनुगमन करती है। पतिके सुखके लिये स्त्रियाँ सती हो जाती हैं और स्वर्गमें पहले ही पहुँचकर पतिका स्वागत करती हैं। विवाह-का यही उद्देश्य है। इस लोक और परलोकमें पत्नी-जैसा सहायक और कौन है। पत्नीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र दर्पणमें दीख पड़ते मुखके समान है। भला, उसे देखकर कितना आनन्द होता है! रोगसे और मानसिक जलनसे व्याकुल पुरुष अपनी पत्नीको देखकर आह्लादित हो जाते हैं। इसीसे क्रोध आनेपर भी पत्नीका अप्रिय नहीं किया जाता। क्योंकि

प्रेम, प्रसन्नता और धर्म उसीके अधीन हैं । अपनी उत्पत्ति भी तो स्त्रियोंके द्वारा ही होती है । ऋषियोंमें भी ऐसी शक्ति नहीं कि बिना पत्नीके सन्तान उत्पन्न कर सकें । अपने धूलसे लथपथ पुत्रको भी हृदयसे लगानेमें जो सुख मिलता है, उससे बढ़कर और क्या है । आपका पुत्र स्वयं आपके सामने खड़ा है और प्रेमभरी दृष्टिसे देखता हुआ आपकी गोदमें बैठनेके लिये उत्सुक है । इसका तिरस्कार क्यों कर रहे हैं ? चींटियाँ भी अपने अण्डोंका पालन करती हैं, उन्हें फोड़ती नहीं हैं । आप इसका पालन-पोषण क्यों नहीं करते ? पुत्रको हृदयसे लगानेपर जैसा सुख होता है, वैसा सुकोमल वस्त्र, पत्नी अथवा जलके स्पर्शसे नहीं होता । यह पुत्र आपका स्पर्श करे ।

"राजन् ! मैंने इस पुत्रको तीन वर्षतक अपने गर्भमें धारण किया है । यह आपको सुखी करेगा । इसके जन्मके समय आकाशवाणीने कहा कि 'यह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा ।' जातकर्मके समय जो वेद-मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे सब आपको मालूम हैं । पिता पुत्रको अभिमन्त्रित करता हुआ कहता है, 'तुम मेरे सर्वाङ्गसे उत्पन्न हुए हो । तुम मेरे हृदयकी निधि हो । मेरा अपना ही नाम है पुत्र । बेटा ! तुम सौ वर्षतक जीओ । मेरा जीवन और आगेकी वंश-परम्परा तुम्हारे अधीन है । इसलिये तुम सुखी रहकर सौ वर्षतक जीओ ।' यह बालक आपके अङ्गसे ही, आपके हृदयसे ही उत्पन्न हुआ है । आप क्यों नहीं अपनेको इसके रूपमें मूर्तिमान् देखते ? मैं मेनकाकी कन्या हूँ । अवश्य ही मैंने पूर्वजन्ममें कोई पाप किया होगा, जिससे बचपनमें मेरी माँने मुझे छोड़ दिया और अब आप छोड़ रहे हैं । आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे भले ही छोड़ दीजिये । मैं अपने आश्रमपर चली जाऊँगी । परन्तु यह आपका पुत्र है । इस बच्चेको मत छोड़िये ।"

दुष्यन्तने कहा—'शकुन्तले ! मुझे मालूम नहीं कि मैंने तुमसे पुत्र उत्पन्न किया है । स्त्रियाँ तो प्रायः झूठ बोलती ही हैं, तुम्हारी बातपर भला कौन विश्वास करेगा । तुम्हारी एक भी बात विश्वास करनेयोग्य नहीं है । मेरे सामने इतनी ढिठाई ! कहाँ महर्षि विश्वामित्र, कहाँ मेनका और कहाँ तेरे-जैसी साधारण नारी ! चली जा यहाँसे । इतने थोड़े दिनोंमें भला, यह बालक सालके वृक्ष-जैसा कैसे हो सकता है ! जा-जा, चली जा ।' शकुन्तलाने कहा, 'राजन् ! कपट न करो । सत्य सहस्रों अश्वमेधसे भी श्रेष्ठ है । सारे वेदोंको पढ़ ले और सारे तीर्थोंमें स्नान कर ले, फिर भी सत्य उनसे बढ़कर है । सत्यसे बढ़कर धर्म भी नहीं है । सत्यसे बढ़कर कुछ है ही नहीं । झूठसे बढ़कर निन्दनीय भी कुछ नहीं है । सत्य स्वयं परब्रह्म परमात्मा है । सत्य ही सर्वश्रेष्ठ प्रतिज्ञा है । तुम अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो । सत्य सर्वदा तुम्हारे साथ रहे । यदि झूठसे ही तुम्हारा प्रेम है और मेरी बातपर विश्वास नहीं करते हो तो मैं स्वयं चली जाऊँगी । मैं झूठेके साथ नहीं रहना चाहती । राजन् ! मैं कहे देती हूँ कि चाहे तुम इस लड़केको अपनाओ या नहीं, मेरा यह पुत्र ही सारी पृथ्वीका शासन करेगा ।' इतना कहकर शकुन्तला वहाँसे चल पड़ी ।

इसी समय ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य और मन्त्रियोंके साथ बैठे हुए दुष्यन्तको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'माता तो केवल भाथी (धौंकनी) के समान है । पुत्र पिताका ही होता है, क्योंकि पिता ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है । तुम पुत्रका पालन-पोषण करो । शकुन्तलाका अपमान मत करो । अपना औरस पुत्र यमराजके पंजोंसे छुड़ा लेता है । सचमुच तुम्हींने इस बालकका गर्भाधान किया था । शकुन्तलाकी बात सर्वथा सत्य है । तुम्हें हमारी आज्ञा मानकर ऐसा करना ही चाहिये । तुम्हारे भरण-पोषणके कारण ही इसका नाम भरत होगा ।' आकाशवाणी सुनकर दुष्यन्त आनन्दसे भर गये । उन्होंने पुरोहित और मन्त्रियोंसे कहा, 'आपलोग अपने कानोंसे देवताओंकी वाणी सुन लें । मैं भी ठीक-ठीक यही जानता और समझता हूँ कि यह मेरा पुत्र है । यदि मैं केवल शकुन्तलाके कहनेसे ही इसे स्वीकार कर लेता तो सारी प्रजा इसपर सन्देह करती और इसका कलङ्क नहीं छूट पाता । इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने ऐसा दुर्व्यवहार किया है ।'

अब उन्होंने बच्चेको स्वीकार किया और उसके संस्कार कराये । उन्होंने अपने पुत्रका सिर चूमकर उसे छातीसे लगा लिया । चारों ओर आनन्दकी नदी उमड़ आयी, जय-जयकार होने लगा । दुष्यन्तने धर्मके अनुसार अपनी पत्नीका सत्कार किया और सान्त्वना देते हुए कहा, 'देवि ! मैंने तुम्हारे साथ जो सम्बन्ध किया था, वह किसीको मालूम नहीं था । अब सब लोग तुम्हें रानीके रूपमें स्वीकार कर लें, इसीलिये मैंने यह क्रूरता की थी । लोग समझने लगते कि मैंने मोहित होकर तुम्हारी बात स्वीकार कर ली है । लोग मेरे पुत्रके युवराज होनेमें भी आपत्ति करते । मैंने तुम्हें अत्यन्त क्रोधित कर दिया था, इसलिये तुमने प्रणयकोपवश मुझसे जो अप्रिय वाणी कही है उसका मुझे कुछ भी विचार नहीं है । हम

दोनों एक-दूसरेके प्रिय हैं ।' इस प्रकार कहकर दुष्यन्तने अपनी प्राण-प्रियाको वस्त्र, भोजन आदिसे सन्तुष्ट किया ।

समयपर भरतका युवराजपदपर अभिषेक हुआ । दूर-दूरतक भरतका शासन-चक्र प्रसिद्ध हो गया । उसने राजाओंको जीतकर वशवर्ती बना लिया और संत-सम्मत धर्मका पालन करके अनुत्तम यश लाभ किया । वह सारी पृथ्वीका चक्रवर्ती सम्राट् था । उसने इन्द्रके समान अनेकों यज्ञ किये । महर्षि कण्वने भरतसे गोवितत नामक अश्वमेध-यज्ञ कराया । उसमें यों तो सभी ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी गयी थी, परन्तु महर्षि कण्वको सहस्र पद्म मुहरें दी गयी थीं । भरतसे ही इस देशका नाम भारत पड़ा और वे ही भरतवंशके प्रवर्तक हुए । उन्हींके नामसे सभी पहलेके और पीछेके राजा भारत नामसे प्रसिद्ध हुए । उनके वंशमें अनेकों ब्रह्मज्ञानी राजर्षि हुए, जिनके नाम गिनाने भी कठिन हैं । मैं मुख्य-मुख्य सत्यनिष्ठ और शीलवान् राजाओंका ही वर्णन करता हूँ ।

दक्ष प्रजापतिसे ययाति तक वंश-वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अब मैं भरत, कुरु, पूरु आदिके वंशोंका वर्णन करता हूँ । यह बड़ा ही पवित्र और कल्याणकारी है । ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न दक्ष प्रजापति ही प्राचेतस दक्ष हुए । उन्हींसे सारी प्रजा उत्पन्न हुई । उन्होंने पहले अपनी पत्नी वीरणीके गर्भसे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे । नारद मुनिने उन्हें मोक्षप्रद ज्ञानका उपदेश करके विरक्त बना दिया । तब उन्होंने पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं । उन्होंने उनके प्रथम पुत्रको अपना बनानेकी शर्तपर उनका विवाह किया । यह बात कही जा चुकी है कि उन्होंने कश्यपसे तेरह कन्याओंका विवाह किया था । कश्यप-की श्रेष्ठ पत्नी अदितिसे इन्द्र और विवस्वान् आदि पुत्र हुए थे । विवस्वान्के ज्येष्ठ पुत्र मनु थे और कनिष्ठ यमराज । मनु बड़े धर्मात्मा थे । उन्हींसे मानव-जातिकी उत्पत्ति हुई, और सूर्यवंश मनुवंशके नामसे कहलाया । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी मानव कहलाते हैं । ब्राह्मणोंने साङ्ग वेदोंको धारण किया । मनुके दस पुत्र ये हैं—वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, इला कन्या, पृषध्र और नाभागारिष्ट । मनुके पचास पुत्र और भी थे, परन्तु वे आपसकी फूटके कारण लड़ मरे । इलासे पुरूरवा नामका पुत्र हुआ । इला पुरूरवाकी माता और पिता दोनों ही थी । पुरूरवा समुद्रके तेरह द्वीपोंका शासक था । वह मनुष्य होनेपर भी अमानुषिक भोग भोगता था । अपने बल-पौरुषके मदसे उन्मत्त होकर पुरूरवाने ब्राह्मणोंका बहुत-सा धन एवं रत्न छीन लिये । सनत्कुमारने ब्रह्मलोकसे आकर उसे बहुत समझाया भी, परन्तु उसपर कोई असर नहीं पड़ा । ऋषियोंने क्रोधित होकर शाप दिया और उसका नाश हो गया । यह वही पुरूरवा है, जो स्वर्गसे तीन प्रकारकी अग्नि और उर्वशी अप्सराको ले आया था । उसके उर्वशीके गर्भसे छः पुत्र हुए—आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु और शतायु । आयुकी पत्नीका नाम स्वर्भानवी था । उसके पाँच पुत्र हुए—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय और अनेना ।

आयुके पुत्र नहुष बड़े बुद्धिमान् और सच्चे वीर थे । उन्होंने धर्मके अनुसार अपने महान् राज्यका शासन किया । उनके राज्यमें सभी सुखी थे, चोर और लुटेरोंका बिल्कुल भय नहीं था । उन्होंने अभिमानवश ऋषियोंसे पालकी ढुवायी । यही उनके नाशका भी कारण हुआ । यों तो उन्होंने तेज, तपस्या और बल-विक्रमसे देवताओंको भी पराजित करके अपनेको इन्द्र बना लिया था । नहुषके छः पुत्र हुए—यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव । यति योग-साधना करके ब्रह्मस्वरूप हो गये । इसलिये नहुषके दूसरे पुत्र ययाति राजा हुए । उन्होंने बहुत-से यज्ञ किये और बड़ी भक्तिसे देवता और पितर आदिकी उपासना करते हुए प्रेमसे प्रजाका पालन किया । उनकी दो पत्नियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा । देवयानीसे दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठासे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु ।

कच और देवयानीकी कथा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! हमारे पूर्वज राजा ययाति ब्रह्मासे दसवें पुरुष थे।* उन्होंने शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीसे, जो ब्राह्मणी थी, कैसे विवाह किया? यह अनहोनी घटना कैसे घटित हुई? आप कृपा करके यह वृत्तान्त सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—'जनमेजय! आपके पूर्वज राजा ययातिने शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी पुत्रियोंसे किस प्रकार विवाह किया था, सो सुनिये। उन दिनों त्रिलोकीपर अधिकार करनेके लिये देवता और असुर आपसमें लड़-भिड़ रहे थे। देवताओंने अपनी विजयके लिये आङ्गिरस बृहस्पतिको और असुरोंने भार्गव शुक्रको अपना पुरोहित बनाया। ये दोनों ब्राह्मण भी आपसमें बड़ी होड़ रखते थे। जब युद्धमें देवताओंने असुरोंको मार डाला, तब शुक्राचार्यने उन्हें अपनी विद्याके बलसे जीवित कर दिया। परन्तु असुरोंने जिन देवताओंको मारा था, उन्हें बृहस्पति जीवित न कर

सके। शुक्राचार्य सञ्जीवनी विद्या जानते थे, परन्तु बृहस्पति नहीं। इससे देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे घबरा॰ बृहस्पतिके बड़े पुत्र कचके पास गये और उनसे यह प्रा॰ की, 'भगवन्! हम आपकी शरणमें हैं। आप हमारी सहा॰ कीजिये। अमित तेजस्वी विप्रवर शुक्राचार्यके पास सञ्जीवनी विद्या है, उसे आप शीघ्र ही प्राप्त कर लीजि॰ हमलोग आपको यज्ञमें भागीदार बना लेंगे। शुक्राच॰ आजकल वृषपर्वाके पास रहते हैं।' देवताओंकी प्रार्थ॰ स्वीकार कर कच शुक्राचार्यके पास गया और उनसे निवे॰ किया, 'मैं महर्षि अङ्गिराका पौत्र और देवगुरु बृहस्पति॰ पुत्र हूँ। मेरा नाम कच है। आप मुझे शिष्यके रूप॰ स्वीकार कीजिये, मैं एक हजार वर्षतक आपके पास रहक॰ ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। स्वीकृति दीजिये।' शुक्राचार्य॰ कहा, 'बेटा! स्वागत है। मैं तुम्हारी बात स्वीकार करता हूँ॰ तुम मेरे पूजनीय हो। मैं तुम्हारा सत्कार करूँगा और॰ समझता हूँ कि यह बृहस्पतिका ही सत्कार है।'
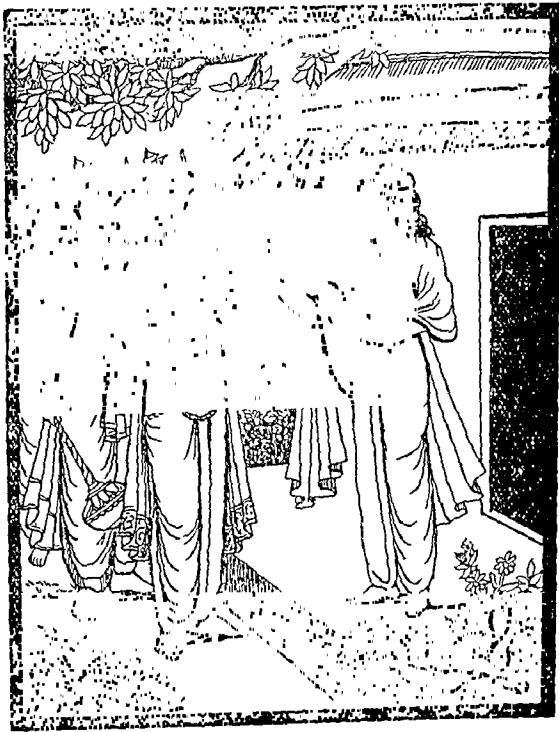
कचने शुक्राचार्यके आज्ञानुसार ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण॰ किया। वह अपने गुरुदेवको तो प्रसन्न रखता ही, गुरुपुत्री॰ देवयानीको भी सन्तुष्ट रखता। पाँच सौ वर्ष बीत जानेपर दानवोंको यह बात मालूम हुई कि कचका क्या अभिप्राय है। उन्होंने चिढ़कर गौ चराते समय बृहस्पतिजीसे द्वेष होनेके कारण और सञ्जीवनी विद्याकी रक्षाके लिये कचको मार डाला, और उसके टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियोंको खिला दिया। गौएँ बिना रक्षकके ही अपने स्थानपर लौट आयीं। देवयानीने देखा कि गौएँ तो आ गयीं, पर कच नहीं आया। तब उसने अपने पितासे कहा—'पिताजी! आपने अग्निहोत्र कर लिया, सूर्यास्त हो गया, गौएँ बिना रक्षकके ही लौट आयीं; किन्तु कच कहाँ रह गया? निश्चय ही उसे किसीने मार डाला या वह स्वयं मर गया। पिताजी! मैं आपकी सौगन्ध खाकर सच-सच कहती हूँ कि मैं बिना कचके नहीं जी सकती।' शुक्राचार्यने कहा, 'अरे, तू इतना घबराती क्यों है? मैं अभी उसे जिला देता हूँ।' शुक्राचार्यने सञ्जीवनी विद्याका प्रयोग करके कचको पुकारा, 'आओ बेटा!' कचका एक-एक अंग भेड़ियोंका शरीर छेद-छेदकर निकल आया और वह जीवित होकर शुक्राचार्यकी सेवामें उपस्थित हुआ। देवयानीके पूछनेपर उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसी प्रकार असुरोंके मारनेपर दूसरी बार भी शुक्राचार्यने कचको जिला दिया।

* ब्रह्मासे दक्ष, दक्षसे अदिति, अदितिसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे इलानाम्नी कन्या, इलासे पुरूरवा, पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययाति—इस प्रकार ये प्रजापतिसे दसवें थे।

तीसरी बार असुरोंने नयी युक्ति की। उन्होंने कचको काटकर आगसे जलाया और उसके शरीरकी राख वारुणीमें मिलाकर शुक्राचार्यको पिला दी। देवयानीने पितासे पूछा, 'पिताजी! फूल लेनेके लिये कच गया था, लौटा नहीं। कहीं वह फिर तो नहीं मर गया। मैं उसके बिना जी नहीं सकती। मैं यह बात सौगन्ध खाकर कहती हूँ।' शुक्राचार्यने कहा, 'बेटी! मैं क्या करूँ? असुर उसे बार-बार मार डालते हैं।' देवयानीके हठ करनेपर उन्होंने फिर सञ्जीवनी विद्याका प्रयोग किया और कचको बुलाया। कचने भयभीत होकर उनके पेटके भीतरसे ही धीरे-धीरे अपनी स्थिति बतलायी। शुक्राचार्यने कहा, 'बेटा! तुम सिद्ध हो। देवयानी तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न है। यदि तुम इन्द्र नहीं हो तो लो, मैं तुम्हें सञ्जीवनी विद्या बतलाता हूँ। तुम इन्द्र नहीं ब्राह्मण हो, तभी तो मेरे पेटमें अबतक जी रहे हो। लो, यह विद्या और मेरा पेट फाड़कर निकल आओ। तुम मेरे पेटमें रह चुके हो, इसलिये सुयोग्य पुत्रके समान मुझे फिर जीवित कर देना।' कचने वैसा ही किया और प्रणाम करके कहा, 'जिसने मेरे कानोंमें सञ्जीवनी विद्यारूप अमृतकी धारा डाली है, वही मेरा माता-पिता है। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं आपके साथ कभी कृतघ्नता नहीं कर सकता। जो वेदस्वरूप उत्तम ज्ञानके दाता गुरुका आदर नहीं करता, वह कलङ्कित होकर नरकगामी होता है।'

शुक्राचार्यजीको यह जानकर बड़ा क्रोध हुआ कि धोखेमें शराब पीनेके कारण मेरे विवेकका नाश हो गया और मैं ब्राह्मण-कुमार कचको ही पी गया। उन्होंने उस समय यह घोषणा की कि 'आजसे यदि जगत्का कोई भी ब्राह्मण शराब पीयेगा तो वह धर्मभ्रष्ट हो जायगा और उसे ब्रह्महत्या लगेगी। इस लोकमें तो वह कलङ्कित होगा ही, उसका परलोक भी बिगड़ जायगा। ब्राह्मणो! देवताओ! और मनुकी सन्तानो! सावधानीके साथ सुन लो। आजसे मैंने ब्राह्मणोंके लिये यह धर्ममर्यादा सुनिश्चित कर दी है।' कच सञ्जीवनी विद्या प्राप्त करके सहस्र वर्ष पूरे होनेतक उन्हींके पास रहा। समय पूरा होनेपर शुक्राचार्यने उसे स्वर्ग जानेकी आज्ञा दे दी।

जब कच वहाँसे चलने लगा तब देवयानीने कहा, 'ऋषिकुमार! तुम सदाचार, कुलीनता, विद्या, तपस्या और जितेन्द्रियताके उज्ज्वल आदर्श हो। मैं तुम्हारे पिताको अपने पिताके समान ही मानती हूँ। मैंने गुरु-गृहमें रहते समय तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया है, उसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। अब तुम स्नातक हो चुके हो; मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, तुम्हारी सेविका हूँ। अब विधिपूर्वक तुम मेरा पाणिग्रहण करो।' कचने कहा—'बहिन! भगवान् शुक्राचार्य जैसे तुम्हारे पिता हैं, वैसे ही मेरे भी। तुम मेरे लिये पूजनीया हो। जिस गुरुदेवके शरीरमें तुम निवास कर चुकी हो, उसीमें मैं भी रह चुका हूँ। तुम धर्मके अनुसार मेरी बहिन हो। मैं तुम्हारे स्नेहपूर्ण वात्सल्यकी छत्रछायामें बड़े स्नेहसे रहा। मुझे घर लौट जानेकी अनुमति और आशीर्वाद दो। कभी-कभी पवित्र भावसे मेरा स्मरण करना और सावधानीके साथ मेरे गुरुदेवकी सेवा करती रहना।' देवयानीने कहा, 'मैंने तुमसे प्रेमकी भिक्षा माँगी है। यदि तुम धर्म और कामकी सिद्धिके लिये मुझे अस्वीकार कर दोगे तो तुम्हारी सञ्जीवनी विद्या सिद्ध नहीं होगी।' कचने कहा—'बहिन! मैंने गुरुपुत्री समझकर ही अस्वीकार किया है, कोई दोष देखकर नहीं। गुरुदेवने भी मुझे इसके लिये कोई आज्ञा नहीं दी थी। तुम्हारी जो इच्छा हो, शाप दे दो। मैंने तुमसे ऋषिधर्मकी बात कही थी। मैं शापके योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्मके अनुसार नहीं, कामके वश होकर शाप दिया है; जाओ तुम्हारी कामना कभी पूरी नहीं होगी। कोई भी ब्राह्मण-कुमार तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा। मेरी विद्या सिद्ध नहीं होगी, इससे क्या; मैं जिसे सिखाऊँगा, उसकी विद्या सफल होगी।' ऐसा कहकर कच स्वर्गमें गया। देवताओंने अपने गुरु बृहस्पति और कचका अभिनन्दन किया, कचको यज्ञका भागीदार बनाया और यशस्वी होनेका वर दिया।

देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह एवं उसका परिणाम

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कच सञ्जीवनी विद्या सीख आया, इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कचसे वह विद्या सीख ली, उनका काम बन गया। देवताओंने एकत्र होकर इन्द्रपर जोर डाला कि अब दैत्योंपर आक्रमण कर देना चाहिये। इन्द्रने आक्रमण किया। रास्तेमें एक वन पड़ा, उस वनमें बहुत-सी स्त्रियाँ दीख पड़ीं। वहाँ कुछ कन्याएँ जलक्रीडा कर रही थीं। इन्द्रने वायु बनकर किनारेपर रक्खे हुए वस्त्रोंको आपसमें मिला

दिया । कन्याएँ जब बाहर निकलीं, तब असुरराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने भूलसे अपनी गुरुपुत्री देवयानीके वस्त्र पहन लिये । उसे मालूम नहीं था कि वस्त्र मिल गये हैं । कलह शुरू हुआ । देवयानीने कहा, 'अरे ! एक तो तू असुरकी लड़की और दूसरे मेरी चेली । फिर तूने मेरे कपड़े कैसे पहन लिये ? तू आचारभ्रष्ट है । इसका फल बड़ा बुरा होगा ।' शर्मिष्ठा बोली, 'वाह री वाह, तेरे बाप तो मेरे पिता-को सोते-बैठते भी नहीं छोड़ते; नीचे खड़े होकर भाटकी तरह स्तुति करते हैं और तेरा इतना घमंड !' देवयानी क्रुद्ध हो गयी । वह शर्मिष्ठाके वस्त्र खींचने लगी । इसपर

दुर्बुद्धि शर्मिष्ठाने उसे कूएँमें ढकेल दिया और उसे मरी जानकर बिना उधर देखे नगरमें लौट गयी ।

इसी समय राजा ययाति शिकार खेलते-खेलते घोड़ेके थकने और प्यास लगनेसे विकल होकर पानीके लिये कूएँपर पहुँचे । कूएँमें जल नहीं था । उन्होंने देखा कि उसमें एक सुन्दरी कन्या है । राजाने पूछा, 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? तुम कूएँमें कैसे गिरी हो ?' देवयानीने कहा, 'मैं महर्षि शुक्राचार्यकी पुत्री हूँ । जब देवता असुरोंका संहार करते हैं, तब वे सञ्जीवनी विद्याद्वारा उन्हें जीवित कर दिया करते हैं । मैं इस विपत्तिमें पड़ गयी हूँ, यह बात उन्हें मालूम नहीं है । तुम मेरा दाहिना हाथ पकड़-कर मुझे निकाल लो । मैं समझती हूँ कि तुम कुलीन, शान्त, बलशाली और यशस्वी हो । मुझे कूएँसे बाहर निकालना तुम्हारा उचित कर्तव्य है ।' ययातिने उसे ब्राह्मणकी कन्या समझकर कूएँसे बाहर निकाल दिया और उससे अनुमति लेकर अपनी राजधानीको लौट गये ।

इधर देवयानी शोकसे व्याकुल होकर नगरके पास आयी और दासीसे बोली, 'अरी दासी ! मेरे पिताके पास जाकर जल्दी कह दे कि मैं अब वृषपर्वाके नगरमें नहीं जा सकती ।' दासीने जाकर शुक्राचार्यसे शर्मिष्ठाके व्यवहारका वर्णन किया । देवयानीकी यह दुर्दशा सुनकर शुक्राचार्यको बड़ा दुःख हुआ, वे अपनी लड़कीके पास गये और अपनी प्यारी पुत्रीको हृदयसे लगाकर कहने लगे, 'बेटी ! सभीको अपने कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगना पड़ता है । जान पड़ता है कि तुमने कुछ अनुचित कार्य किया है, जिसका यह प्रायश्चित्त हुआ ।' देवयानीने कहा, 'पिताजी ! यह प्रायश्चित्त हो या न हो, मुझे एक बात बतलाइये । वृषपर्वाकी बेटीने क्रोधसे आँखें लाल-लाल करके रूखे स्वरसे कहा है कि 'तेरे बाप तो हमारे भाट हैं । वे हमारी स्तुति करते, हमसे भीख माँगते और प्रतिग्रह लेते हैं ।' क्या उसका कहना ठीक है ? यदि ऐसा है तो मैं अभी जाकर शर्मिष्ठासे क्षमा माँगूँ और उसे खुश करूँ ।' शुक्राचार्यने कहा, 'बेटी ! तू भाट, भिखमंगे या दान लेनेवालेकी पुत्री नहीं है । तू उस पवित्र ब्राह्मणकी कन्या है, जो कभी किसीकी स्तुति नहीं करता और जिसकी स्तुति सभी लोग करते हैं । इस बातको वृषपर्वा, इन्द्र और राजा ययाति जानते हैं । अचिन्त्य ब्राह्मणत्व और निर्द्वन्द्व ऐश्वर्य ही मेरा बल है । ब्रह्माने प्रसन्न होकर मुझे अधिकार दिया है । भूर्लोक और स्वर्गमें जो कुछ भी है, मैं उस सबका स्वामी हूँ । मैं ही प्रजाके हितके लिये जल बरसाता हूँ और मैं ही ओषधियोंका पोषण करता हूँ । यह मैं बिलकुल ठीक कहता हूँ ।'

इसके बाद शुक्राचार्यने देवयानीको समझाते हुए कहा—'जो मनुष्य अपनी निन्दा सह लेता है, उसने सारे जगत्‌पर विजय प्राप्त कर ली—ऐसा समझो । जो उभरे क्रोधको घोड़ेके

समान वशमें कर लेता है, वही सच्चा सारथि है, बागडोर

पकड़नेवाला नहीं । जो क्रोधको क्षमासे दबा लेता है, वही श्रेष्ठ पुरुष है । जो क्रोधको रोक लेता है, निन्दा सह लेता है और दूसरोंके सतानेपर भी दुखी नहीं होता, वह सब पुरुषार्थोंका भाजन होता है । एक मनुष्य सौ वर्षतक निरन्तर यज्ञ करे और दूसरा क्रोध न करे तो उससे क्रोध न करनेवाला ही श्रेष्ठ है । मूर्ख बच्चे तो आपसमें वैर-विरोध करते ही हैं । समझदार-को ऐसा नहीं करना चाहिये ।' देवयानीने कहा, 'पिताजी ! मैं अभी बालिका हूँ । फिर भी मैं धर्म-अधर्मका अन्तर समझती हूँ । क्षमा और निन्दाकी सबलता और निर्बलता भी मुझे ज्ञात है । अपना हित चाहनेवाले गुरुको शिष्यकी धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिये । इसलिये इन क्षुद्र विचारवालोंमें अब मैं नहीं रहना चाहती । जो किसीके सदाचार और कुलीनता-की निन्दा करते हैं, उनके बीचमें नहीं रहना चाहिये । रहना चाहिये वहाँ, जहाँ सदाचार और कुलीनताकी प्रशंसा हो ।'

देवयानीकी बात सुनकर बिना कुछ सोचे-विचारे शुक्राचार्य वृषपर्वाकी सभामें गये और क्रोधपूर्वक बोले, 'राजन् ! जो अधर्म करते हैं, उन्हें चाहे तत्काल उसका फल न मिले, लेकिन धीरे-धीरे वह उनकी जड़ काट डालता है । एक तो तुमलोगोंने बृहस्पतिके पुत्र सेवापरायण कचकी हत्या की और दूसरे मेरी पुत्रीके भी बधकी चेष्टा की । अब मैं तुम्हारे देशमें नहीं रह सकता । मैं तुम्हें छो जाता हूँ । मालूम होता है, तुम मुझे व्यर्थ बकवाद करने समझते हो, इसीसे अपने अपराधको न रोककर उ उपेक्षा कर रहे हो ?' वृषपर्वाने कहा—'भगवन् ! मैं कभी आपको झूठा या अधार्मिक नहीं माना । आपमें और धर्म प्रतिष्ठित हैं । यदि आप हमें छोड़कर चले ज तो हम समुद्रमें डूब मरेंगे । आपके अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है ।' शुक्राचार्यने कहा—'देखो, भाई ! तुम समुद्रमें डूब मरो अथवा अज्ञात देशमें चले ज मैं अपनी प्यारी पुत्रीका तिरस्कार नहीं सह सकता प्राण उसीमें बसते हैं । तुम अपना भला चाहते हो तो प्रसन्न करो ।'

वृषपर्वाने देवयानीके पास जाकर कहा, 'देवि ! मैं मुँहमाँगी वस्तु दूँगा, प्रसन्न हो जाओ ।' देवयानीने
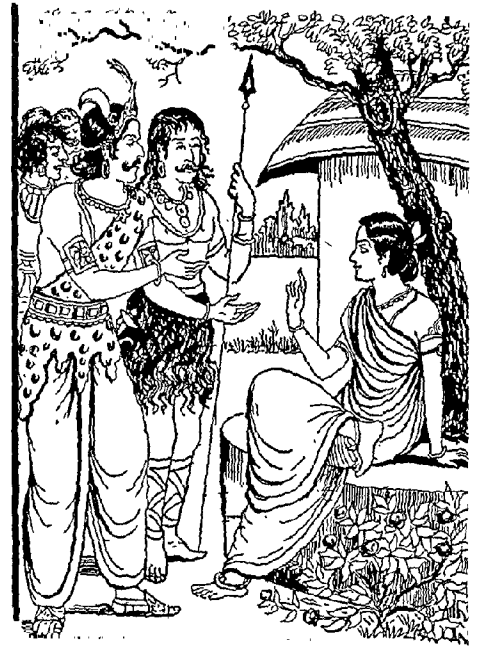
'शर्मिष्ठा एक हजार दासियोंके साथ मेरी सेवा करे । मैं जाऊँ, वह मेरा अनुगमन करे ।' वृषपर्वाने धात्रीके द्वा शर्मिष्ठाके पास सन्देश भेज दिया । उसने शर्मिष्ठासे कहला 'कल्याणि ! उठ, अपनी जातिका हित कर । शुक्रा अपने शिष्योंको छोड़कर जाना चाहते हैं । तू चल

देवयानीकी इच्छा पूर्ण कर।' शर्मिष्ठाने कहा, 'मुझे स्वीकार है। आचार्य और देवयानी यहाँसे न जायँ, मैं उनकी सब इच्छाएँ पूरी करूँगी।' शर्मिष्ठा दासीके रूपमें देवयानीके पास उपस्थित हुई और प्रार्थना की कि 'मैं यहाँ और तुम्हारी ससुरालमें भी तुम्हारी सेवा करूँगी।' देवयानीने कहा, 'क्यों जी! मैं तो तुम्हारे पिताके भिखमंगे, भाट और दान लेनेवालेकी लड़की हूँ और तुम बड़े बापकी बेटी हो; अब मेरी दासी बनकर कैसे रहोगी?' शर्मिष्ठाने कहा, 'जैसे बने वैसे विपद्ग्रस्त जातिकी रक्षा करनी चाहिये, यही सोचकर मैं तुम्हारी दासी हो गयी हूँ। मैं विवाह होनेके बाद भी तुम्हारे साथ चलकर सेवा करूँगी।' तब देवयानी प्रसन्न हो गयी और शुक्राचार्यके साथ अपने आश्रमपर लौट आयी।

ययातिका देवयानीके साथ विवाह, शुक्राचार्यका शाप और पूरुका यौवन-दान

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिनकी बात है, देवयानी अपनी दासियों और शर्मिष्ठाके साथ उसी वनमें क्रीड़ा करनेके लिये गयी। अभी वह विहार कर ही रही थी कि नहुषनन्दन राजा ययाति भी उधर ही आ निकले। वे खूब थके हुए थे, जल पीना चाहते थे। देवयानी, शर्मिष्ठा और दासियोंको देखकर उनके मनमें जिज्ञासा हो आयी और उन्होंने पूछा, 'इन दासियोंके बीचमें बैठी हुई आप दोनों कौन हैं?' देवयानीने उत्तर दिया—'मैं दैत्यगुरु महर्षि शुक्राचार्यकी पुत्री हूँ और यह मेरी सखी दासी है।

यह दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री है और मेरी सेवाके लिये सर्वदा मेरे साथ रहती है। इसका नाम शर्मिष्ठा है। मैं अपनी सब दासियों और शर्मिष्ठाके साथ आपके अधीन हूँ। आपको मैं अपने सखा और स्वामीके रूपमें स्वीकार करती हूँ। आप भी मुझे स्वीकार कीजिये। आपका कल्याण हो।' ययातिने कहा, 'शुक्रनन्दिनी! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे पिता क्षत्रियके साथ तुम्हारा विवाह नहीं कर सकते।' देवयानीने कहा, 'राजन्! आपसे पहले किसीने भी मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। कूएँसे निकालते समय आपने मेरा हाथ पकड़ लिया। इसलिये मैं आपको अपने स्वामीके रूपमें वरण करती हूँ। अब भला, दूसरा कोई पुरुष मेरे हाथका स्पर्श कैसे कर सकता है।' ययातिने कहा, 'कल्याणि! जबतक तुम्हारे पिता स्वयं तुम्हें मेरे हाथों सौंप नहीं देते, तबतक मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।'

तब देवयानीने अपनी धायसे पिताके पास सन्देश भेजा। उसके मुँहसे सब बातें ज्यों-की-त्यों सुनकर शुक्राचार्य राजा ययातिके पास आये। ययातिने उठकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये। देवयानीने कहा—'पिताजी! ये नहुषनन्दन राजा ययाति हैं। जब मैं कूएँमें गिरा दी गयी थी, तब इन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझे निकाला था। मैं आपके चरणोंमें पड़कर बड़ी नम्रताके साथ प्रार्थना करती हूँ कि आप इनके साथ मेरा विवाह कर दीजिये। मैं इनके अतिरिक्त और किसीको वरण नहीं करूँगी।' देवयानीकी बात सुनकर शुक्राचार्यने ययातिसे कहा—'राजन्! मेरी लाड़ली लड़कीने तुम्हें पतिरूपसे वरण किया है। मैं कन्यादान करता हूँ, तुम इसे पटरानीके रूपमें स्वीकार करो।' ययातिने कहा, 'ब्रह्मन्! मैं क्षत्रिय हूँ। ब्राह्मण-कन्याके साथ विवाह करनेसे मुझे वर्णसङ्करताका दोष लगेगा।

आप ऐसी कृपा कीजिये और वर दीजिये कि वह महान् दोष मेरा स्पर्श न करे ।' शुक्राचार्यने कहा, 'तुम यह सम्बन्ध स्वीकार कर लो । किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । मैं तुम्हारा पाप नष्ट किये देता हूँ । तुम मेरी पुत्रीको पत्नीके रूपमें स्वीकार करके धर्मका पालन करो और सुख भोगो । बेटा ! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाका भी तुम उचित सत्कार करना, परन्तु उसे कभी अपनी सेजपर मत बुलाना ।' तदनन्तर शास्त्रोक्त विधिसे देवयानीका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ और दासी, शर्मिष्ठा तथा देवयानीको लेकर ययातिने अपनी राजधानीकी यात्रा की ।

ययातिकी राजधानी अमरावतीके समान थी । वहाँ लौटकर उन्होंने देवयानीको तो अन्तःपुरमें रख दिया और शर्मिष्ठा तथा दासियोंके लिये देवयानीकी सम्मतिसे अशोकवाटिकाके पास एक स्थान बनवा दिया तथा अन्न-वस्त्रकी समुचित व्यवस्था कर दी । राजोचित भोग भोगते बहुत वर्ष बीत गये । समयपर देवयानीको गर्भ रहा और पुत्र उत्पन्न हुआ । एक बार संयोगवश राजा ययाति अशोकवाटिकाके पास जा निकले और वहीं शर्मिष्ठाको देखकर कुछ रुक गये । राजाको एकान्तमें पाकर शर्मिष्ठा उनके पास गयी और हाथ जोड़कर बोली—'जैसे चन्द्रमा, इन्द्र, विष्णु, यम और वरुणके महलमें कोई स्त्री सुरक्षित रह सकती है, वैसे ही मैं आपके यहाँ सुरक्षित हूँ । यहाँ मेरी ओर कौन दृष्टि डाल सकता है । आप मेरा रूप, कुल और शील तो जानते ही हैं । यह मेरे ऋतुका समय है । मैं आपसे उसकी सफलताके लिये प्रार्थना करती हूँ, आप मुझे ऋतुदान दीजिये ।' राजा ययातिने शर्मिष्ठाके कथनका औचित्य स्वीकार किया । उन्होंने उसकी प्रार्थना पूर्ण की ।

राजा ययातिके देवयानीसे दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु । शर्मिष्ठासे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु । इस प्रकार बहुत समय बीत गया । एक दिन देवयानी राजा ययातिके साथ अशोकवाटिकामें गयी । वहाँ देवयानीने देखा कि देवताओंके समान सुन्दर तीन सुकुमार कुमार खेल रहे हैं । उसके आश्चर्यकी सीमा न रही । उसने पूछा, 'आर्यपुत्र ! ये सुन्दर कुमार किसके हैं ? इनका सौन्दर्य तो आप-जैसा ही मालूम पड़ता है ।' फिर देवयानीने उन बच्चोंसे पूछा, 'तुमलोगोंके नाम क्या हैं ? किस वंशके हो ? तुम्हारे माँ-बाप कौन हैं ? ठीक-ठीक बताओ तो !' बच्चोंने अँगुलियोंसे राजाकी ओर सङ्केत किया और कहा, 'हमारी माँ हैं शर्मिष्ठा ।' बच्चे बड़े प्रेमसे राजाके पास दौड़ गये । उस समय देवयानी साथ थी, इसलिये राजाने उन्हें गोदमें नहीं लिया । वे उदास होकर रोते-रोते शर्मिष्ठाके पास चले गये । राजा कुछ

लज्जित-से हो गये । देवयानी सारा रहस्य समझ गयी । उसने

शर्मिष्ठाके पास जाकर कहा, 'शर्मिष्ठे ! तू मेरी दासी है। तूने मेरा अप्रिय क्यों किया ? तेरा आसुर स्वभाव मिटा नहीं। तू मुझसे डरती नहीं ?' शर्मिष्ठाने कहा, 'मधुरहासिनी ! मैंने राजर्षिके साथ जो समागम किया है, वह धर्म और न्यायके अनुसार है। फिर मैं डरूँ क्यों ? मैंने तो तुम्हारे साथ ही उन्हें अपना पति मान लिया था। तुम ब्राह्मणकन्या होनेके कारण मुझसे श्रेष्ठ हो। परन्तु ये राजर्षि तो तुम्हारी अपेक्षा भी मेरे अधिक प्रिय हैं।' देवयानी क्रोधित होकर राजासे कहने लगी, 'आपने मेरा अप्रिय किया। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।' वह आँखोंमें आँसू भरकर अपने पिताके घरके लिये चल पड़ी। ययाति दुखी हुए और साथ ही भयभीत भी। वे उसके पीछे-पीछे चलकर उसे बहुत समझाते-बुझाते रहे, परन्तु उसने एक न सुनी। दोनों शुक्राचार्यके पास पहुँचे।

प्रणामके पश्चात् देवयानीने कहा, 'पिताजी ! धर्मको अधर्मने जीत लिया, नीचा ऊँचा हो गया। शर्मिष्ठा मुझसे आगे बढ़ गयी। उसके तीन पुत्र हुए हैं मेरे इन महाराजसे ही ! इन्होंने धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन किया है धर्मज्ञ होकर ! आप इसपर विचार कीजिये।' शुक्राचार्यने कहा, 'राजन् ! तुमने जान-बूझकर धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये

मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम बूढ़े हो जाओ।' शुक्राचार्यके शाप देते ही राजा ययाति बूढ़े हो गये। अब उन्होंने शुक्राचार्यकी प्रार्थना की और कहा, 'मैं अभी आपकी पुत्री देवयानीके संगसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। आप हम दोनोंपर कृपा कीजिये, मैं बूढ़ा न होऊँ।' आचार्यने कहा, 'मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। हाँ, तुम्हें इतनी छूट देता हूँ कि तुम अपना यह बुढ़ापा किसी दूसरेको दे सकते हो।' ययातिने कहा, 'ब्रह्मन् ! आप ऐसी आज्ञा दीजिये कि जो पुत्र मुझे अपनी जवानी देकर बुढ़ापा ले ले वही राज्य, पुण्य और यशका भागी हो।' आचार्यने कहा, 'ठीक है। श्रद्धापूर्वक मेरा चिन्तन करनेपर तुम्हारा बुढ़ापा दूसरेपर चला जायगा और जो पुत्र तुम्हें जवानी देगा वही राजा, आयुष्मान्, यशस्वी और तुम्हारे कुलका वंशधर होगा।'

राजा ययाति अपनी राजधानीमें आये, पहले उन्होंने यदुको बुलाकर कहा, 'मैं बूढ़ा हो गया। मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं। बाल सफेद हो गये। परन्तु मैं अभी जवानीके भोगोंसे तृप्त नहीं हूँ। तुम मेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दो। एक हजार वर्ष पूरा होनेपर मैं तुम्हारी जवानी फिर तुम्हें लौटा दूँगा।' यदुने कहा—'बुढ़ापेमें अनेकों दोष हैं। उस अवस्थामें खाना-पीना भी तो ठीक नहीं होता। शरीर ढीला, बाल सफेद और सारे शरीरपर झुर्रियाँ। शक्ति नहीं, आनन्द नहीं। युवतियाँ तिरस्कार करती हैं। मैं आपका बुढ़ापा नहीं ले सकता।' ययातिने कहा, 'अजी ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न हुए हो। फिर भी मुझे अपनी जवानी नहीं देते ? जाओ, तुम्हारी सन्तानको राज्यका हक नहीं रहेगा।' फिर उन्होंने अपने दूसरे पुत्र तुर्वसुको बुलाकर भी वही बात कही, परन्तु उसने भी बुढ़ापा लेनेसे इन्कार कर दिया। ययातिने उसे भी शाप देते हुए कहा, 'तेरा वंश नहीं चलेगा। तू मांसभोजी, दुराचारी और वर्णसङ्कर म्लेच्छोंका राजा होगा।' इस प्रकार देवयानीके दोनों पुत्रोंको शाप देकर ययातिने शर्मिष्ठाके पुत्र द्रुह्युको बुलाया और उससे अपने बुढ़ापेके बदलेमें जवानी देनेकी बात कही। द्रुह्युने कहा, 'बूढ़ेको हाथी, घोड़े, रथ और युवतियोंका कुछ भी तो सुख नहीं मिलता। जबान लगने लगती है। मैं बुढ़ापा नहीं चाहता।' ययातिने कहा, 'अरे ! तू अपने बापसे ऐसा कह रहा है ? तुझे ऐसे स्थानमें रहना पड़ेगा जहाँ रथ, हाथी, घोड़े और पालकीकी तो बात ही क्या—बैल, बकरे और गधे भी नहीं जा सकेंगे। केवल नावसे जाना पड़ेगा। राज्य तुझे भी नहीं मिलेगा। लोग तुझे भोज कहेंगे। केवल तू ही नहीं, तेरे वंशकी यही गति होगी।' फिर अनुके भी अस्वीकार कर देनेपर राजाने उससे कहा, '

पुरुका ययातिको यौवनदान

मेरी बात नहीं मानता है, इसलिये तेरी सन्तान जवान होकर मर जायगी। तुझे अग्निहोत्र करनेका अधिकार नहीं रहेगा।'

इन पुत्रोंसे निराश होकर ययातिने अन्तमें पूरुको बुलाकर कहा, 'बेटा! तुम मेरे बड़े प्यारे हो। तुम मेरे अच्छे बेटे हो। देखो, मैं शापके कारण बूढ़ा हो गया हूँ और जवानीसे तृप्त नहीं हूँ, तुम मेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दो। विषयभोग करनेके बाद एक हजार वर्ष पूरा होनेपर मैं अपने पापके साथ बुढ़ापा ले लूँगा।' पूरुने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। ययातिने आशीर्वाद दिया—'मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी प्रजा सर्वदा सुखी रहेगी।' ऐसा कहकर उन्होंने शुक्राचार्यका ध्यान किया और अपना बुढ़ापा पूरुको देकर उसकी जवानी ले ली।

ययातिका भोग और वैराग्य, पूरुका राज्याभिषेक

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! नहुषनन्दन राजा ययाति पूरुका यौवन लेकर प्रेम, उत्साह और मौजसे इच्छानुसार समयानुकूल भोग भोगने लगे। परन्तु वे धर्मका उल्लङ्घन कभी नहीं करते थे। उन्होंने यज्ञोंसे देवताओंको, श्राद्धोंसे पितरोंको, दान-मान और वात्सल्यसे दीनजनोंको, मुँहमाँगी वस्तुओंसे ब्राह्मणोंको, खान-पानसे अतिथियोंको, संरक्षणसे वैश्योंको और सद्व्यवहारसे शूद्रोंको सन्तुष्ट कर दिया। डाकू और लुटेरोंको यथेष्ट दण्ड दिया। सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। वे इन्द्रके समान प्रजा-पालन करने लगे। उन्होंने मनुष्य-लोकके तो सारे भोग भोगे ही; नन्दनवन, अलकापुरी और सुमेरु पर्वतकी उत्तरी चोटीपर रहकर वहाँके भी भोग भोगे। धर्मात्मा ययातिने देखा कि अब सहस्र वर्ष पूरे हो रहे हैं। तब उन्होंने अपने पुत्र पूरुको बुलाया और कहा, 'बेटा! मैंने तुम्हारी जवानीसे इच्छानुसार उत्साहके साथ अपने प्रिय विषयोंका भोग किया है, परन्तु अब मुझे निश्चय हो गया कि विषयोंके भोगकी कामना उनके भोगसे शान्त नहीं होती। आगमें जितना घी डालते जाओ, वह बढ़ती ही जाती है। पृथ्वीमें जितना भी अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे एक कामुककी कामना पूर्ण करनेमें भी असमर्थ हैं। इसलिये सुख उनकी प्राप्तिसे नहीं, उनके त्यागसे ही होता है। दुर्बुद्धि लोग तृष्णाका त्याग नहीं कर सकते। बूढ़े होनेपर भी वह बूढ़ी नहीं होती। वह एक प्राणान्तक रोग है। उसे छोड़नेपर ही सुख मिलता है।* देखो, विषयोंका सेवन करते-करते एक हजार वर्ष पूरा हो गया, फिर भी मेरी तृष्णा दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। अब मैं इसे छोड़कर अपने मनको ब्रह्ममें लगाऊँगा और भूख-प्यास आदि द्वन्द्वोंसे निश्चिन्त तथा शरीर आदिसे निर्मम होकर हरिणोंके साथ वनमें विचरूँगा। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम अपनी जवानी ले लो और यह राज्य ग्रहण करो। तुम मेरे प्यारे पुत्र हो।' बस, पूरुने अपना यौवन ले लिया और ययातिने अपना बुढ़ापा।

प्रजाने देखा कि महाराज ययाति अपने बड़े पुत्रोंको राज्यसे वञ्चित करके छोटे पुत्र पूरुका अभिषेक करने जा रहे हैं। तब ब्राह्मणोंको आगे करके सब लोग उनके पास आये और बोले—'राजन्! आप अपने ज्येष्ठ पुत्र यदुको छोड़कर पूरुको क्यों राज्य दे रहे हैं? हम आपको सचेत करते हैं, अपने धर्मकी रक्षा कीजिये।' तब ययातिने कहा, 'सब लोग सावधानीसे मेरी बात सुनें। एक ऐसा कारण है कि मैं यदुको कभी राज्य नहीं दे सकता। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदुने मेरी आज्ञा नहीं मानी थी। जो अपने पिताकी आज्ञा नहीं मानता, वह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें पुत्र नहीं है। जो माँ-बापकी आज्ञा माने, उनका हित करे, उन्हें सुख पहुँचावे, वही पुत्र है। पूरुके अतिरिक्त सभी पुत्रोंने मेरी आज्ञाकी अवहेलना की। पूरुने मेरा सम्मान किया, मेरी आज्ञा मानी। इसलिये यही मेरा उत्तराधिकारी है। यदु आदिके नाना शुक्राचार्यने स्वयं ही मुझे यह वर दिया है कि जो तुम्हारी आज्ञाका पालन करे, वही राजा हो। इसलिये मैं सारी प्रजासे अनुरोध करता हूँ कि सब लोग पूरुको ही राजा बनावें।' प्रजाने सन्तुष्ट होकर पूरुका राज्याभिषेक किया। इसके बाद राजा ययाति वानप्रस्थाश्रमकी दीक्षा लेकर ब्राह्मण और तपस्वियोंके साथ नगरसे चले गये। यदुसे राज्याधिकार-हीन यदुवंशियोंकी, तुर्वसुसे यवनोंकी, द्रुह्युसे भोजोंकी और अनुसे म्लेच्छोंकी उत्पत्ति हुई। जनमेजय! पूरुसे ही प्रसिद्ध पौरववंश चला, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है।

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥
(महा० आदिपर्व ८५। १२—१४)

राजा ययाति वनमें कन्द, मूल, फलका भोजन करते रहे। उन्होंने अपने मनको वशमें किया, क्रोधपर विजय प्राप्त की। वे प्रतिदिन देवता और पितरोंका तर्पण करते, अग्निहोत्र करते। खेतोंमेंसे अन्नके कण बीन-बीनकर अतिथियोंको भोजन करानेके अनन्तर यज्ञशेषसे अपनी भूख बुझाते। इस प्रकार एक हजार वर्ष बिताये। तीस वर्षतक उन्होंने वाणी और मनको अपने अधीन करके केवल जलके आधारपर ही जीवन-निर्वाह किया। एक वर्षतक बिना सोये केवल वायु पीकर ही रहे। इसके बाद एक वर्ष और पञ्चाग्नियोंके बीचमें बैठकर बिताया। छः महीनेतक एक पैरसे खड़े रहकर केवल वायु-पान ही किया। उनकी पवित्र कीर्ति त्रिलोकीमें फैल गयी। शरीर छूटनेपर उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई।

ययातिका स्वर्गवास, इन्द्रसे बातचीत, पतन, सत्संग और पुनः स्वर्गगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा ययाति स्वर्गमें बड़े आनन्दसे रहने लगे। वहाँ इन्द्र, साध्य, मरुत्, वसु आदि उनका बड़ा सम्मान करते। इस प्रकार हजारों वर्ष बीत गये। एक दिन वे घूमते-घामते इन्द्रके पास आये। तरह-तरहकी बातचीत होनेके बाद इन्द्रने पूछा, 'राजन्! जिस समय आपने अपने पुत्र पूरुको जवानी लौटा दी और उससे अपना बुढ़ापा ले लिया तथा उसे राज्य दे दिया, उस समय आपने उसे क्या उपदेश दिया?' ययातिने कहा—'देवराज! मैंने अपने पुत्रसे कहा कि पूरो! मैं तुम्हें गङ्गा और यमुनाके बीचके देशका राजा बनाता हूँ। सीमान्तके देशोंका भोग तुम्हारे भाई करेंगे। देखो भाई! क्रोधियोंसे क्षमाशील श्रेष्ठ हैं और असहिष्णुसे सहिष्णु। मनुष्येतर जातियोंसे मनुष्य और मूर्खोंसे विद्वान् सर्वथा श्रेष्ठ हैं। किसीके बहुत सतानेपर भी उसको सतानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि दुखी प्राणीका शोक ही सतानेवालेका नाश कर देता है। मर्मभेदी और कड़वी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये; अनुचित उपायसे शत्रुको भी अपने वशमें नहीं करना चाहिये। जिससे किसीको कष्ट पहुँचता हो, ऐसी बात तो पापीलोग बोलते हैं। जो अपनी कड़वी, तीखी और मर्मस्पर्शी बातोंके काँटेसे लोगोंको सताता है, उसको देखना भी बुरा है, क्योंकि वह अपनी वाणीके रूपमें एक पिशाचिनीको ढो रहा है। ऐसा आचरण करना चाहिये कि सत्पुरुष सामने तो सत्कार करें ही, पीठ-पीछे भी तुम्हारी रक्षा करें। दुष्टलोग कोई कड़वी बात कहें तो सर्वदा उसे सहन ही करना चाहिये तथा सदाचारका आश्रय लेकर सर्वदा सत्पुरुषोंके व्यवहारको ही ग्रहण करना चाहिये। वाणीसे भी बाण-वृष्टि होती है। जिसपर इसकी बौछारें पड़ती हैं, वह रात-दिन सोचमें पड़ा रहता है। इसलिये ऐसी वाणीका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। त्रिलोकीमें सबसे बड़ी सम्पत्ति यह है कि सभी प्राणियोंके प्रति दया और मैत्रीका बर्ताव हो, यथाशक्ति सबको कुछ दिया जाय और मधुर वाणीका प्रयोग हो। सारांश यह कि कठोर वाणी न बोले, मीठी वाणी बोले; सम्मान करे, दान दे और कभी किसीसे कुछ माँगे नहीं। यही सर्वश्रेष्ठ व्यवहारका मार्ग है।'

ययातिकी बात सुनकर इन्द्रने पूछा, 'नहुषनन्दन! आपने गृहस्थाश्रम-धर्मका पूरा-पूरा पालन करके वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया था। मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आप तपस्यामें किसके समकक्ष हैं?' ययातिने कहा, 'देवता, मनुष्य, गन्धर्व और महर्षियोंमें अपने समान तपस्वी मुझे कोई नहीं दिखायी पड़ता।' इन्द्रने कहा, 'राम-राम, तुमने अपने समान, बड़े और छोटे लोगोंका प्रभाव न जानकर सबका तिरस्कार किया है। अपने मुँह अपनी करनीका बखान करनेसे तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया। यहाँके सुख-भोगोंकी सीमा तो है ही, जाओ यहाँसे पृथ्वीपर गिर पड़ो।' ययातिने कहा, 'ठीक है। यदि सबका अपमान करनेसे मेरा पुण्य क्षीण हो गया तो मैं यहाँसे संतोंके बीचमें गिरूँ।' इन्द्रने कहा, 'अच्छी बात।'

इसके पश्चात् राजा ययाति पवित्र लोकोंसे च्युत होकर उस स्थानपर गिरने लगे जहाँ अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान् और शिवि नामके तपस्वी तपस्या करते थे। उन्हें गिरते देखकर अष्टकने कहा, 'युवक! तुम्हारा रूप इन्द्रके समान

है। तुम्हें गिरते देखकर हम चकित हो रहे हैं। तुम जहाँतक आ गये हो, वहीं ठहर जाओ और विषाद तथा मोह छोड़कर अपनी बात बतलाओ। इन सत्पुरुषोंके सामने इन्द्र भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। दुखी और दीन पुरुषोंके लिये संत ही परम आश्रय हैं। सौभाग्यवश तुम उन्हींके बीचमें आ गये हो। तुम अपनी व्यवस्था ठीक-ठीक सुनाओ।'

ययातिने कहा—मैं समस्त प्राणियोंका तिरस्कार करनेके कारण स्वर्गसे च्युत हो रहा हूँ। मुझमें अभिमान था, अभिमान नरकका मूल कारण है। सत्पुरुषोंको दुष्टोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये। जो धन-धान्यकी चिन्ता छोड़कर अपनी आत्माका हित-साधन करता है, वही समझदार है। धन पाकर फूलना नहीं चाहिये। विद्वान् होकर अहङ्कार नहीं करना चाहिये। अपने विचार और प्रयत्नकी अपेक्षा दैवकी गति बलवान् है, ऐसा समझकर सन्ताप नहीं करना चाहिये। दुःखसे जले नहीं, सुखसे फूले नहीं। दोनोंमें समान रहे। अष्टक! मैं इस समय मोहित नहीं हूँ। मेरे मनमें कोई जलन भी नहीं है। मैं विधाताके विधानके विपरीत तो जा नहीं सकता, ऐसा समझकर मैं सन्तुष्ट रहता हूँ। अष्टक! मैं सुख-दुःख दोनोंकी अनित्यता जानता हूँ। फिर मुझे दुःख हो तो कैसे। क्या करूँ, क्या करके सुखी रहूँ—इन झंझटोंसे मैं उन्मुक्त रहता हूँ; इसलिये दुःख मेरे पास फटकते नहीं।

अष्टकने पूछा—आप तो अनेक लोकोंमें रह चुके हैं और आत्मज्ञानी नारदादिके समान भाषण कर रहे हैं। तो बताइये, आप प्रधानतः किन-किन लोकोंमें रहे?

ययातिने उत्तर दिया—मैं पहले पृथ्वीमें सार्वभौम राजा था। मैं एक सहस्र वर्षतक महत् लोकोंमें रहा और फिर सौ योजन लंबी-चौड़ी सहस्रद्वारयुक्त इन्द्रपुरीमें एक सहस्र वर्षतक रहा। तदनन्तर प्रजापतिके लोकमें जाकर वहाँ भी एक सहस्र वर्ष रहा। मैंने नन्दनवनमें स्वर्गीय भोगोंको भोगते हुए लाखों वर्षतक निवास किया। वहाँ मैं सुखोंमें आसक्त हो गया और पुण्य क्षीण होनेपर पृथ्वीपर आ रहा हूँ। जैसे धनका नाश होनेपर जगत्के सगे-सम्बन्धी छोड़ देते हैं, वैसे ही पुण्य क्षीण हो जानेपर इन्द्रादि देवता भी परित्याग कर देते हैं।

अष्टकने पूछा—राजन्! किन कर्मोंके अनुष्ठानसे मनुष्यको श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है? वे तपसे प्राप्त होते हैं या ज्ञानसे?

ययातिने उत्तर दिया—स्वर्गके सात द्वार हैं—दान, तप, शम, दम, लज्जा, सरलता और सबपर दया। अभिमानसे तपस्या क्षीण हो जाती है। जो अपनी विद्वत्ताके अभिमानमें फूले-फूले फिरते और दूसरोंके यशको मिटाना चाहते हैं, उन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। उनकी विद्या भी मोक्षदानमें असमर्थ रहती है। अभयके चार साधन हैं—अग्निहोत्र, मौन, वेदाध्ययन और यज्ञ। यदि अनुचित रीतिसे अहङ्कारके साथ इनका अनुष्ठान होता है तो ये भयके कारण बन जाते हैं। सम्मानित होनेपर सुख नहीं मानना चाहिये और अपमानित होनेपर दुःख। जगत्में सत्पुरुष ऐसे लोगोंकी पूजा करते हैं। दुष्टोंसे शिष्टबुद्धिकी चाह निरर्थक है। 'मैं दूँगा, मैं यज्ञ करूँगा, मैं जान लूँगा, मेरी यह प्रतिज्ञा है'—इस तरहकी बातें बड़ी भयङ्कर हैं। इनका त्याग ही श्रेयस्कर है।

अष्टकने पूछा—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी किन धर्मोंका पालन करनेसे मृत्युके बाद सुखी होते हैं?

ययातिने कहा—जो ब्रह्मचारी आचार्यके आज्ञानुसार अध्ययन करता है, जिसे गुरुसेवाके लिये आज्ञा नहीं देनी पड़ती, जो आचार्यसे पहले जागता और पीछे सोता है, जिसका स्वभाव मधुर होता है, जो इन्द्रियजयी, धैर्यशाली, सावधान तथा प्रमादरहित होता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है। जो पुरुष धर्मानुकूल धन प्राप्त करके यज्ञ करता है, अतिथियोंको खिलाता है, किसीकी वस्तु उसके बिना दिये नहीं लेता, वही सच्चा गृहस्थ है। जो स्वयं उद्योग करके फल-मूलसे अपनी जीविका चलाता है, पाप नहीं करता, दूसरोंको कुछ-न-कुछ देता रहता है तथा किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता, थोड़ा खाता और नियमित चेष्टा करता है, वह वानप्रस्थाश्रमी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करता है। जो किसी कला-कौशल—भाषण, चिकित्सा, कारीगरी आदिसे जीविका नहीं चलाता, समस्त सद्गुणोंसे युक्त, जितेन्द्रिय और असङ्ग है, किसीके घर नहीं रहता, थोड़ा चलता है, अनेक देशोंमें अकेले और नम्रताके साथ विचरण करता है, वही सच्चा संन्यासी है।

इस प्रकार और बहुत-सी बातचीत करनेके बाद ययातिने कहा, 'देवतालोग शीघ्रता करनेके लिये कह रहे हैं। मैं अब गिरूँगा। इन्द्रके वरदानसे मुझे आप-जैसे सत्पुरुषोंका समागम प्राप्त हुआ है।'

अष्टकने कहा—स्वर्गमें मुझे जितने लोक प्राप्त होने-वाले हैं, अन्तरिक्षमें अथवा सुमेरु पर्वतके शिखरोंपर—जहाँ भी मुझे पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप जाना है, उन्हें मैं आपको देता हूँ, आप गिरें नहीं।

ययातिने कहा—मैं ब्राह्मण तो हूँ नहीं। मैं दान कैसे लूँ ! इस प्रकारके दान तो मैंने भी पहले बहुत किये हैं।

प्रतर्दनने कहा—मुझे अन्तरिक्ष अथवा स्वर्गलोकमें जिन-जिन लोकोंकी प्राप्ति होनेवाली है, मैं आपको देता हूँ। आप यहाँ न गिरें, स्वर्गमें जायँ।

ययातिने कहा—कोई भी राजा अपने समकक्ष व्यक्तिसे दान नहीं ले सकता। क्षत्रिय होकर दान लेना, यह तो बड़ा अधम कार्य है। अबतक किसी श्रेष्ठ क्षत्रियने ऐसा काम नहीं किया है, फिर मैं ही कैसे करूँ।

वसुमान्ने कहा—राजन् ! मैं अपने सभी लोक आपको देता हूँ। आप यदि इसे दान समझकर लेनेमें हिचकते हैं तो एक तिनकेके बदलेमें सब खरीद लीजिये।

ययातिने कहा—यह क्रय-विक्रय तो सर्वथा मिथ्या है। मैंने अबतक ऐसा मिथ्याचार कभी नहीं किया है कोई भी सत्पुरुष ऐसा नहीं करते, मैं ऐसा कैसे करूँ।

शिबिने कहा—महाराज ! मैं औशीनर शिबि हूँ आप यदि खरीद-बिक्री नहीं करना चाहते तो मेरे पुण्योंक फल स्वीकार कर लीजिये। मैं इन्हें आपकी भेंट करता हूँ आप न भी लें तो भी मैं इन्हें स्वीकार नहीं करता।

ययातिने कहा—तुम बड़े प्रभावशाली हो। परन्तु मैं दूसरेके पुण्य-फलका उपभोग नहीं कर सकता।

अष्टकने कहा—अच्छा महाराज ! आप एक-एकके पुण्यलोक नहीं लेते तो सभीके स्वीकार कर लीजिये। हम आपको अपना सारा पुण्यफल देकर नरक जानेको भी तैयार हैं।

ययातिने उत्तर दिया—भाई ! तुमलोग मेरे स्वरूपके अनुरूप प्रयत्न करो। सत्पुरुष तो सत्यके ही पक्षपाती होते हैं। मैंने जो कभी नहीं किया, वह अब कैसे करूँ।

अष्टकने कहा—महाराज ! ये आकाशमें सोनेके पाँच रथ किसके दीख रहे हैं ? क्या इन्हींके द्वारा पुण्यलोकोंकी यात्रा होती है ?

ययातिने कहा—हाँ, ये सुनहले रथ तुमलोगोंको पुण्यलोकोंमें ले जायँगे।

अष्टकने कहा—आप इन रथोंके द्वारा स्वर्गकी यात्रा कीजिये, हमलोग भी समयपर आ जायँगे।

ययाति बोले—हम सभीने स्वर्गपर विजय प्राप्त कर ली। इसलिये चलो, हम सब साथ ही चलें। देखते नहीं, वह स्वर्गका प्रशस्त पथ दीख रहा है।

अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान् और शिबिका प्रतिग्रह अस्वीकार करनेके कारण ययाति भी स्वर्गके अधिकारी हो गये थे। अतः वे सभी रथोंपर बैठकर स्वर्गके लिये चल पड़े। उस समय उनके धार्मिक तेजसे स्वर्ग और आकाश प्रकाशित हो रहा था। औशीनर शिबिका रथ आगे बढ़ता देखकर अष्टकने ययातिसे पूछा, 'राजन् ! इन्द्र मेरा प्रिय मित्र है। मैं समझता था कि मैं ही सबसे पहले उसके पास पहुँचूँगा। यह शिबिका रथ आगे क्यों बढ़ रहा है ?' ययातिने कहा, 'शिबिने अपना सर्वस्व सत्पात्रोंको दे दिया था। दान, तपस्या, सत्य, धर्म, ह्री, श्री, क्षमा, सौम्यता, सेवाकी अभिलाषा—ये सभी गुण शिबिमें विद्यमान हैं। इतनेपर भी उसे अभिमानकी छायातक

नहीं छू गयी है। इसीसे वह सबके आगे बढ़ गया है।' अब अष्टकने पूछा, 'राजन्! सच-सच बताइये, आप कौन और किसके पुत्र हैं? आप-जैसा त्याग तो किसी ब्राह्मण अथवा क्षत्रियमें अबतक नहीं सुना गया।' ययातिने उत्तर दिया—'मैं सम्राट् नहुषका पुत्र ययाति हूँ। मेरा पुत्र पूरु है। मैं सार्वभौम चक्रवर्ती था। देखो, तुमसे गुप्त बात भी बतलाये देता हूँ; क्योंकि तुम अपने हो। मैं तुमलोगोंका नाना हूँ।' इस प्रकार बातचीत करते हुए सब स्वर्गमें चले गये।

पूरुवंशका वर्णन

जनमेजयने पूछा—भगवन्! मैं अब पूरुवंशके यशस्वी राजाओंकी वंशावली सुनना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस वंशमें शील, शक्ति अथवा सन्तानसे हीन कोई भी राजा नहीं हुआ है।

वैशम्पायनजीने कहा—ठीक है। महर्षि द्वैपायनने मुझे आपके वंशका वर्णन सुनाया है। मैं उसे सुनाता हूँ। दक्षसे अदिति, अदितिसे विवस्वान्, विवस्वान्‌से मनु, मनुसे इला, इलासे पुरूरवा, पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययातिका जन्म हुआ था। ययातिकी दो पत्नियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानीके दो पुत्र थे—यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठाके तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु। यदुसे यादव हुए और पूरुसे पौरव। पूरुकी पत्नीका नाम कौसल्या था। उससे जनमेजयका जन्म हुआ। उसने तीन अश्वमेध और एक विश्वजित् यज्ञ किया था। जनमेजयकी पत्नी थी—अनन्ता। उससे प्रचिन्वान् हुआ। प्रचिन्वान्‌की पत्नी थी अश्मकी, उससे संयाति हुआ। संयातिकी वराङ्गी नामक पत्नीसे अहंयातिका जन्म हुआ। अहंयातिकी पत्नी भानुमतीके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्रका जन्म हुआ। सार्वभौमकी पत्नी सुनन्दासे जयत्सेनकी उत्पत्ति हुई। जयत्सेनका विवाह हुआ सुश्रुवासे। उसके गर्भसे अवाचीनका जन्म हुआ। अवाचीनकी पत्नी मर्यादासे अरिह हुआ। अरिहकी खल्वाङ्गी पत्नीसे महाभौम, महाभौमकी सुयज्ञासे अयुतनायी, अयुतनायीकी कामासे अक्रोधन, अक्रोधनकी करम्भासे देवातिथि, देवातिथिकी मर्यादासे अरिह और अरिहकी सुदेवा पत्नीसे ऋक्ष नामक पुत्रका जन्म हुआ।

ऋक्षकी ज्वाला नामक पत्नीसे मतिनारका जन्म हुआ। उसने सरस्वतीके तटपर बारह वर्षतक सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होनेपर सरस्वतीने उससे विवाह कर लिया। उसके गर्भसे तंसु हुआ। तंसुकी पत्नी कालिङ्गीसे ईलिन हुआ। ईलिनकी स्त्री रथन्तरीसे दुष्यन्त आदि पाँच पुत्र हुए। दुष्यन्तकी भार्या शकुन्तलासे भरत हुआ। भरतकी पत्नी सुनन्दासे भुमन्यु, भुमन्युकी पत्नी विजयासे सुहोत्र और सुहोत्रकी सुवर्णा नामक पत्नीसे हस्तीका जन्म हुआ। उन्होंने ही हस्तिनापुर बसाया। हस्तीकी पत्नी यशोधराके गर्भसे विकुण्ठन और विकुण्ठनकी सुदेवासे अजमीढ, अजमीढकी विभिन्न पत्नियोंसे एक सौ चौबीस पुत्र हुए। सभी विभिन्न वंशोंके प्रवर्तक हुए। उनमें भरतवंशके प्रवर्तकका नाम था संवरण। संवरणकी पत्नी तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुकी पत्नी शुभाङ्गीसे विदूरथ, विदूरथकी संप्रियासे अनश्वा, अनश्वाकी अमृतासे परीक्षित्, परीक्षित्‌की सुयशासे भीमसेन, भीमसेनकी कुमारीसे प्रतिश्रवा और प्रतिश्रवाके प्रतीप हुए। प्रतीपकी पत्नी सुनन्दाके गर्भसे तीन पुत्र हुए—देवापि, शान्तनु और बाह्लीक। देवापि बचपनमें ही तपस्या करने चले गये। शान्तनु राजा हुए। वे जिस बूढ़ेको अपने हाथोंसे छू देते थे, वह फिर जवान और सुखी हो जाता था। इसीसे उनका नाम शान्तनु पड़ा था। शान्तनुका विवाह भागीरथी गङ्गासे हुआ था, जिससे देवव्रतका जन्म हुआ। वे जगत्‌में भीष्मके नामसे प्रसिद्ध हैं। भीष्मने अपने पिताकी प्रसन्नताके लिये सत्यवतीके साथ उनका विवाह करा दिया था। उसके गर्भसे विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद—दो पुत्र हुए। चित्राङ्गद बचपनमें ही गन्धर्वके हाथसे युद्धमें मारा गया। विचित्रवीर्य राजा हुआ। उसकी दो स्त्रियाँ थीं—अम्बिका और अम्बालिका। वह सन्तान होनेके पहले ही मर गया। उसकी माता सत्यवतीने सोचा कि अब तो दुष्यन्तके वंशका उच्छेद हुआ। उसने व्यासका स्मरण किया और उनके आनेपर कहा कि 'तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य बिना सन्तानके ही मर गया। तुम उसकी वंशरक्षा करो।' व्यासजीने माताकी आज्ञा स्वीकार करके अम्बिकासे धृतराष्ट्र, अम्बालिकासे पाण्डु और उनकी दासीसे विदुरको उत्पन्न किया। व्यासजीके वरदानसे धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए। उनमें चार प्रधान थे—दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन। पाण्डुकी पत्नी कुन्तीसे तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। उनकी दूसरी पत्नी माद्रीसे दो पुत्र हुए—नकुल और सहदेव। द्रुपदराजकी पुत्री द्रौपदीसे पाँचोंका विवाह हुआ। द्रौपदीके गर्भसे पाँचों पाण्डवोंके क्रमशः

प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्माका जन्म हुआ ।

युधिष्ठिरकी एक और पत्नी थी, उसका नाम था देविका । उसके गर्भसे यौधेय हुआ । भीमसेनने काशिराजकी कन्या बलन्धरासे सर्वग नामका पुत्र उत्पन्न किया । अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रासे विवाह करके अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया । वह बड़ा गुणवान् और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रीतिपात्र था । नकुलकी पत्नी करेणुमतीसे निरमित्र और सहदेवकी पत्नी विजयाके गर्भसे सुहोत्रका जन्म हुआ । भीमसेनके इनसे पहले हिडिम्बाके गर्भसे घटोत्कच नामका पुत्र पैदा हो चुका था । इस प्रकार पाण्डवोंके ग्यारह पुत्र हुए । परन्तु वंशका विस्तार अभिमन्युसे ही हुआ ।

इनके अतिरिक्त अर्जुनके दो पुत्र और थे—उलूपी इडावान् और चित्राङ्गदासे बभ्रुवाहन । वे दोनों अपनी-अपन माताके साथ नानाके घर रहे और उन्हींके उत्तराधिकार हुए । अभिमन्युका विवाह विराटकुमारी उत्तराके साथ हुअ था । इसके गर्भसे एक मृत बालकका जन्म हुआ, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जीवित किया । उसकी मृत्यु अश्वत्थामावे अस्त्रसे हुई थी । कुरुवंशके परिक्षीण होनेपर उसका जन्म हुआ था, इसलिये वह परिक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ । परिक्षित्की पत्नी माद्रवतीके पुत्र आप हैं । आपकी बहुष्टमा नामकी पत्नीसे दो पुत्र हुए हैं—शतानीक और शङ्कुकर्ण । शतानीकके भी एक पुत्र हो चुका है—अश्वमेधदत्त । इस प्रकार मैंने आपके प्रश्नके अनुसार पूरुवंशका वर्णन किया ।

राजर्षि शान्तनुका गङ्गासे विवाह और उनके पुत्र भीष्मका युवराज होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इक्ष्वाकुवंशमें महाभिष नामके एक राजा थे । वे बड़े सत्यनिष्ठ एवं सच्चे वीर थे । उन्होंने बड़े-बड़े अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करके स्वर्ग प्राप्त किया । एक दिन बहुत-से देवता और राजर्षि, जिनमें महाभिष भी थे, ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे । उसी समय श्रीगङ्गाजी भी वहाँ आयीं । वायुने उनके श्वेत वस्त्रको शरीरपरसे कुछ खिसका दिया । तब वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने अपनी आँखें नीची कर लीं, परन्तु राजर्षि महाभिष उन्हें निःशङ्क देखते रहे । तब ब्रह्माजीने कहा—'महाभिष ! अब तुम मर्त्यलोकमें जाओ । जिस गङ्गाको तुम देखते रहे हो, वह तुम्हारा अप्रिय करेगी और तुम जब उसपर क्रोध करोगे तब इस शापसे मुक्त हो जाओगे ।'

महाभिषने ब्रह्माजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर यह निश्चय किया कि मैं पूरुवंशी राजा प्रतीपका पुत्र बनूँ । गङ्गाजी जब वहाँसे लौटीं, तब रास्तेमें वसुओंसे उनकी भेंट हुई । वे भी वशिष्ठके शापसे श्रीहीन हो रहे थे । उन्हें यह शाप हो चुका था कि तुमलोग मनुष्य-योनिमें जन्म लो । गङ्गाजीने उनसे बातचीत करनेके बाद यह स्वीकार कर लिया कि मैं तुमलोगोंको अपने गर्भमें धारण करूँगी और तत्काल मनुष्य-योनिसे मुक्त कर दूँगी । उन आठों वसुओंने भी अपने-अपने अष्टमांशसे एक पुत्र मर्त्यलोकमें छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा की और यह भी कह दिया कि वह अपुत्र रहेगा ।

इधर पूरुवंशके राजा प्रतीप अपनी पत्नीके साथ गङ्गा-द्वारपर तपस्या कर रहे थे । एक दिन भगवती गङ्गा मनोहर मूर्ति धारण करके उनके पास आयीं । बातचीत होनेके बाद यह निश्चय हुआ कि वे राजा प्रतीपके भावी पुत्रकी पत्नी बनें । गङ्गाजीने प्रतीपकी बात स्वीकार कर ली और राजा प्रतीपने अपनी पत्नीके सहित पुत्रप्राप्तिके लिये बड़ी तपस्या की । वृद्धावस्थामें उनके यहाँ महाभिषने पुत्ररूपमें जन्म लिया । उस समय राजा प्रतीप शान्त हो रहे थे अथवा उनका वंश शान्त हो रहा था । ऐसी अवस्थामें सन्तान होनेके कारण उसका नाम 'शान्तनु' पड़ा । जब शान्तनु जवान हुए, तब पिताने उनसे कहा कि 'तुम्हारे पास एक दिव्य स्त्री पुत्रकी अभिलाषासे आवेगी । तुम उसकी कोई जाँच-पड़ताल मत करना । वह जो कुछ करे, उससे कुछ कहना मत ।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने पुत्र शान्तनुको राजगद्दीपर बैठाया और स्वयं वनमें चले गये ।

एक बार राजर्षि शान्तनु शिकार खेलते-खेलते गङ्गातट-पर जा पहुँचे । उन्होंने वहाँ एक परम सुन्दरी स्त्री देखी । वह दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी । उसकी रूप-सम्पत्ति देखकर शान्तनु विस्मित हो गये । सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया । इस प्रकार देखने लगे मानो नेत्रोंसे पी जायेंगे । उस दिव्य स्त्रीके मनमें भी उनके प्रति प्रेम उमड़ आया । शान्तनुने उसका परिचय पूछते हुए याचना की कि 'तुम मुझे पतिरूपमें स्वीकार कर लो ।' देवीने कहा—'राजन् ! मुझे आपकी रानी होना स्वीकार है । शर्त यह है कि मैं अच्छा-बुरा

जो कुछ करूँ, आप मुझे रोकियेगा नहीं। कुछ कहियेगा भी मत। जबतक आप मेरी यह शर्त पूरी करेंगे, तबतक मैं आपके पास रहूँगी। जिस दिन आप मुझे रोकेंगे या कड़ी बात कहेंगे, उसी दिन मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी।' राजाने उसकी बात स्वीकार कर ली। गङ्गादेवीको बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाने भी कुछ पूछताछ नहीं की।

राजर्षि शान्तनु गङ्गादेवीके शील, सदाचार, रूप, सौन्दर्य, उदारता आदि सद्गुण और सेवासे बहुत ही आनन्दित हुए। वे गङ्गादेवीके साथ इस प्रकार आसक्त हो गये कि उन्हें बहुत-से वर्ष बीत जानेका पतातक नहीं चला। अबतक गङ्गाजीके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। परन्तु ज्यों ही पुत्र होता त्यों ही गङ्गाजी 'मैं तेरी प्रसन्नताका कार्य करती हूँ' ऐसा कहकर उसे गङ्गाकी धारामें डाल देती थीं। राजा शान्तनुको यह बात बहुत अप्रिय मालूम होती, परन्तु वे इस भयसे कुछ बोलते नहीं कि कहीं यह मुझे छोड़कर चली न जाय! सातों पुत्रोंकी यही गति हुई। आठवाँ पुत्र होनेपर भी वे हँस रही थीं। राजा शान्तनुको इससे बड़ा दुःख हुआ और उनके मनमें यह इच्छा हुई कि वह पुत्र मुझे मिल जाय। उन्होंने कहा, 'अरे! तू कौन, किसकी पुत्री है? इन बच्चोंको क्यों मार डालती है? अरी पुत्रघ्नि! यह तो महान् पाप है।' गङ्गादेवीने कहा, 'ओ पुत्रके इच्छुक! लो, मैं तुम्हारे इस लड़केको नहीं मारती। अब शर्तके अनुसार मेरा यहाँ रहना नहीं हो सकता। देखो, मैं जह्नुकी कन्या गङ्गा हूँ। बड़े-बड़े महर्षि मेरा सेवन करते हैं। देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये ही मैं तुम्हारे पास इतने दिनोंतक रही। मेरे ये आठों पुत्र अष्ट वसु हैं। वसिष्ठके शापसे इन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। उन्हें मनुष्यलोकमें तुम्हारे-जैसा पिता और मेरी-जैसी माँ नहीं मिल सकती थी। वसुओंके पिता होनेके कारण तुम्हें अक्षय लोक मिलेंगे। मैंने उन्हें तुरंत मुक्त कर देनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, इसीसे ऐसा किया। अब वे शापसे मुक्त हो गये, मैं जा रही हूँ। यह पुत्र वसुओंका अष्टमांश है। इसकी तुम रक्षा करो।'

शान्तनुने कहा—'वसिष्ठ ऋषि कौन थे? उन्होंने वसुओंको शाप क्यों दिया? इस शिशुने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिससे यह मनुष्य-लोकमें रहेगा? वसुओंने मनुष्य-योनिमें जन्म ही क्यों लिया? ये सब बातें मुझे बताओ।' गङ्गादेवीने कहा, 'विश्वविख्यात वसिष्ठ मुनि वरुणके पुत्र हैं। मेरु पर्वतके पास ही उनका बड़ा पवित्र, सुन्दर और सुखकर आश्रम है। वे वहीं तपस्या करते हैं। कामधेनुकी पुत्री नन्दिनी उन्हें यज्ञका हविष्य देनेके लिये वहीं रहती है। एक बार पृथु आदि वसु अपनी पत्नियोंके साथ उस वनमें आये। एक वसु-पत्नीकी दृष्टि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली नन्दिनीपर पड़ गयी। उसने उसे अपने पति द्यौ नामक वसुको दिखाया। वसुने कहा, 'प्रिये! यह सर्वोत्तम गौ वसिष्ठ मुनिकी है। यदि कोई मनुष्य इसका दूध पी ले तो दस हजार वर्षतक जीवित और जवान रहे।' वसुपत्नीने कहा, 'मैं अपनी सखीके लिये यह गाय चाहती हूँ, तुम इसे हर ले चलो।' अपनी पत्नीकी बात मानकर द्यौने अपने भाइयोंको बुलाया और वह गौ हर ले गये। वसुको उस समय इस बातका ध्यान ही न रहा कि ऋषि बड़े तपस्वी हैं और वे हमें शाप देकर देवयोनिसे च्युत कर सकते हैं।

जब महर्षि वसिष्ठ फल-फूल लेकर अपने आश्रमपर लौटे, तब सारे वनमें ढूँढनेपर भी उन्हें अपनी सवत्सा गौ नन्दिनी न मिली। उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखकर वसुओंको शाप दिया, 'वसुओंने मेरी गाय हर ली है। इसलिये मनुष्य-योनिमें उनका जन्म होगा।' जब परम तपस्वी और प्रभावशाली ब्रह्मर्षि वसिष्ठने वसुओंको शाप दे दिया और उन्हें यह बात मालूम हुई, तब वे उन्हें प्रसन्न करनेके लिये नन्दिनीसहित उनके आश्रमपर आये। वसिष्ठने कहा, 'और सब तो एक-एक वर्षमें ही मनुष्य-योनिसे छुटकारा पा जायँगे, परन्तु यह द्यौ नामक वसु अपना कर्म भोगनेके लिये बहुत दिनोंतक मर्त्यलोकमें रहेगा। मेरे मुँहसे निकली बात कभी झूठी नहीं हो सकती। यह वसु भी मर्त्यलोकमें सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा। साथ ही अपने पिताकी प्रसन्नता और भलाईके लिये स्त्री-समागमका भी त्याग कर देगा।' वसिष्ठजीकी बात सुनकर सब-के-सब मेरे पास आये और यह प्रार्थना की कि हमें जन्म लेते ही तुम अपने जलमें फेंक देना। मैंने स्वीकार कर लिया और वैसा ही किया। यह अन्तिम शिशु वही द्यौ नामक वसु है। यह चिरकालतक मनुष्य-लोकमें रहेगा।' यह कहकर गङ्गाजी उस कुमारके साथ ही अन्तर्धान हो गयीं।

जनमेजय! राजा शान्तनु बड़े मेधावी, धर्मात्मा और सत्यनिष्ठ थे। बड़े-बड़े देवर्षि और राजर्षि उनका सत्कार करते थे। इन्द्रियनिग्रह, दान, क्षमा, ज्ञान, सङ्कोच, धैर्य और तेज उनमें स्वाभाविक रूपसे विद्यमान थे। वे धर्मनीति तथा अर्थनीतिमें निपुण थे। वे केवल भरतवंशके ही नहीं, सारी प्रजाके एकमात्र रक्षक थे। उनका चरित्र देखकर सब

लोगोंने यही निश्चय किया कि काम और अर्थसे बढ़कर धर्म ही है । उन दिनों धार्मिकतामें सबसे बढ़-चढ़कर वे ही थे । प्रजाका शोक, भय और बाधा मिट गयी थी; सब सुखकी नींद सोते और जागते । उनके तेजस्वी शासनसे प्रभावित होकर दूसरे सामन्त राजा भी यज्ञ-दान आदिमें तत्पर रहते थे । वर्णाश्रम-धर्मकी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी । क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी सेवा करते, वैश्य क्षत्रियोंके अनुगामी रहते और शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंकी प्रेमसे सेवा करते । उनकी राजधानी थी हस्तिनापुर । वहींसे वे सारी पृथ्वीका शासन करते थे । उनके राजत्वकालमें पशु, शूकर, हरिण और पक्षियोंतकको कोई नहीं मार सकता था । उनके राज्यमें ब्राह्मणोंकी प्रधानता थी और वे स्वयं बड़ी विनयके साथ राग और द्वेषसे रहित होकर प्रजाका पालन-शासन करते थे । देवता, ऋषि और पितरोंके यज्ञके लिये उद्योग होता रहता था । राजा शान्तनु दुखी, अनाथ और पशु-पक्षी—सभी प्राणियोंकी रक्षा करते थे । उस समय सबकी वाणी सत्यके आश्रित थी और सबका मन दानके लिये उत्साहित था । छत्तीस वर्षतक पूर्ण ब्रह्मचर्यका निर्वाह करते हुए राजाने वनवासी-जैसा जीवन व्यतीत किया ।

एक दिन राजा शान्तनु गङ्गानदीके तटपर विचर रहे थे । उन्होंने देखा कि गङ्गाजीमें बहुत थोड़ा जल रह गया है । वे बड़े विस्मित और चिन्तित हुए कि आज देवनदी गङ्गा बह क्यों नहीं रही है । आगे बढ़कर उन्होंने खोज की, तब पता चला कि एक बड़ा मनस्वी, सुन्दर और विशालकाय कुमार दिव्य अस्त्रोंका अभ्यास कर रहा है और उसने अपने बाणोंके प्रभावसे गङ्गाकी धारा रोक दी है । यह अलौकिक कर्म देखकर वे अत्यन्त विस्मित हो गये । उन्होंने अपने पुत्रको पैदा होनेके समय ही देखा था, इसलिये पहचान नहीं सके । उस कुमारने राजर्षि शान्तनुको मायासे मोहित कर दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गया । अब राजर्षि शान्तनुने गङ्गाजीसे कहा कि 'उस कुमारको दिखाओ ।' गङ्गाजी सुन्दर रूप धारण करके अपने पुत्रका दाहिना हाथ पकड़े उनके सामने आयीं । उनका अनुपम सौन्दर्य, दिव्य आभूषण और निर्मल वस्त्र देखकर राजर्षि

शान्तनु उन्हें पहचान न सके । गङ्गाजीने कहा 'महाराज ! यह आपका आठवाँ पुत्र है, जो मुझसे पै हुआ था । आप इसे स्वीकार कीजिये और अपनी राजधा में ले जाइये । इसने वशिष्ठ ऋषिसे साङ्गोपाङ्ग वेदों अध्ययन कर लिया है, अस्त्रोंका अभ्यास पूरा हो चुका है यह श्रेष्ठ धनुर्धर युद्धमें देवराज इन्द्रके समान है । देव और असुर सभी इसका सम्मान करते हैं । दैत्यगुरु शुक्र चार्य और देवगुरु बृहस्पति जो कुछ जानते हैं, वह स इसे मालूम है । स्वयं भगवान् परशुरामको जिन शस्त्रास्त्रों ज्ञान है, उन्हें भी यह जानता है । आप इस धर्मार्थनिपु धनुर्धर वीरको अपनी राजधानीमें ले जाइये । मैं इसे स रही हूँ ।' राजर्षि शान्तनु अपने पुत्रको राजधानीमें ला बहुत सुखी हुए और शीघ्र ही उसे युवराज-पदपर अभिषि कर दिया । गङ्गानन्दन देवव्रतने अपने शील और सदाचा से सारे देशको प्रसन्न कर लिया । इस प्रकार बड़े आनन्द चार वर्ष और बीत गये ।

भीष्मकी दुष्कर प्रतिज्ञा और शान्तनुको सत्यवतीकी प्राप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! एक दिन राजर्षि शान्तनु यमुना नदीके तटपर वनमें विचरण कर रहे थे । उन्हें वहाँ बहुत ही उत्तम सुगन्ध मालूम हुई, परन्तु यह मालूम नहीं होता था कि वह कहाँसे आ रही है ।

उन्होंने उसका पता लगानेकी चेष्टा की। वहाँके निषादोंमें उन्हें एक देवाङ्गनाके समान कन्या दीख पड़ी। राजाने उससे पूछा, 'कल्याणि! तुम किसकी कन्या हो? कौन हो? और किस उद्देश्यसे यहाँ रह रही हो?' कन्याने कहा, 'मैं निषाद-कन्या हूँ। पिताकी आज्ञासे धर्मार्थ नाव चलाती हूँ।' उसके सौन्दर्य, माधुर्य और सौगन्ध्यसे मोहित होकर राजर्षि शान्तनुने उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा और उसके पिताके पास जाकर उसके लिये याचना की। निषादराजने कहा, 'राजन्! जबसे यह दिव्य कन्या मुझे मिली है, तभीसे मैं इसके विवाहके लिये चिन्तित हूँ। परन्तु इसके सम्बन्धमें मेरे मनमें एक इच्छा है। यदि आप इसे धर्मपत्नी बनाना चाहते हैं तो आप शपथपूर्वक एक प्रतिज्ञा कीजिये, क्योंकि आप सत्यवादी हैं। आपके समान वर मुझे और कहाँ मिलेगा। इसलिये मैं आपके प्रतिज्ञा कर लेनेपर इसका विवाह कर दूँगा।' शान्तनुने कहा, 'पहले तुम अपनी शर्त

बताओ। कोई देनेयोग्य वचन होगा तो दूँगा, नहीं तो कोई बन्धन थोड़े ही है।' निषादराजने कहा, 'इसके गर्भसे जो पुत्र हो, वही आपके बाद राज्यका अधिकारी हो, और कोई नहीं।'

यद्यपि राजा शान्तनु उस समय कामसे अत्यन्त पीड़ित थे, फिर भी उन्होंने उसकी शर्त स्वीकार नहीं की। वे कामवश अचेत-से हो रहे थे और उसी कन्याका चिन्तन करते हुए हस्तिनापुर आये। एक दिन देवव्रतने अपने पिताको चिन्तित देखा तो उनके पास आकर कहने लगे, 'पिताजी! पृथ्वीके सभी राजा आपके वशवर्ती हैं। आप सब प्रकार सकुशल हैं। फिर आप दुखी होकर निरन्तर क्या सोचते रहते हैं? आप इतने चिन्तित हैं कि न मुझसे मिलते हैं और न घोड़ेपर सवार होकर बाहर ही निकलते हैं। आपका चेहरा फीका और पीला पड़ गया है। आप दुबले हो गये हैं। कृपा करके अपना रोग बताइये, मैं उसका प्रतीकार करूँगा।' शान्तनुने कहा, 'बेटा! सचमुच मैं चिन्तित हूँ। हमारे इस महान् कुलमें एकमात्र तुम्हीं वंशधर हो। सो सर्वदा सशस्त्र रहकर वीरताके कार्यमें तत्पर रहते हो। जगत्‌में निरन्तर ही लोग मरते-मिटते रहते हैं, यह देखकर मैं बहुत ही चिन्तित रहता हूँ। भगवान् न करें ऐसा हो; परन्तु यदि तुमपर विपत्ति आयी तो हमारे वंशका ही नाश हो जायगा। अवश्य ही अकेले तुम सैकड़ों पुत्रोंसे श्रेष्ठ हो और मैं व्यर्थमें बहुत-से विवाह भी नहीं करना चाहता, फिर भी वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये तो चिन्ता है ही।' गङ्गा-नन्दन देवव्रतने अपनी अलौकिक मेधासे सब कुछ सोच-विचार लिया और वृद्ध मन्त्रीसे पूछकर ठीक-ठीक कारण तथा निषादराजकी शर्त जान ली।

अब देवव्रतने बड़े-बूढ़े क्षत्रियोंको लेकर दाशराजके निवासस्थानकी ओर यात्रा की और वहाँ जाकर अपने पिताके लिये स्वयं ही कन्या माँगी। निषादराजने देवव्रतका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और भरी सभामें कहा, 'भरतवंशशिरोमणे! राजर्षि शान्तनुकी वंशरक्षाके लिये आप अकेले ही पर्याप्त हैं। फिर भी ऐसा वाञ्छनीय सम्बन्ध टूट जानेपर स्वयं इन्द्रको भी पश्चात्ताप करना पड़ेगा। यह कन्या जिन श्रेष्ठ राजाकी पुत्री है, वे आपलोगोंकी बराबरीके हैं। उन्होंने मेरे पास बार-बार सन्देश भेजा है कि तुम मेरी पुत्री सत्यवतीका विवाह राजर्षि शान्तनुसे करना। मैंने इसके इच्छुक देवर्षि असितको सूखा जवाब दे दिया है। परन्तु मैं पालन-पोषण करनेवाला होनेके कारण एक प्रकारसे इस कन्याका पिता ही हूँ, इसलिये कह रहा हूँ कि इस विवाह-सम्बन्धमें एक ही दोष है। वह यह कि सत्यवतीके पुत्रका शत्रु बड़ा प्रबल होगा। युवराज! जिसके आप शत्रु हो जायेंगे, वह चाहे गन्धर्व हो या असुर, जीवित नहीं रह

सकता । यही सोचकर मैंने आपके पिताको यह कन्या नहीं दी ।' गङ्गानन्दन देवव्रतने निषादराजकी बात सुनकर क्षत्रियोंके समाजमें अपने पिताका मनोरथ पूर्ण होनेके लिये प्रतिज्ञा की—'निषादराज ! मैं शपथपूर्वक यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा । मेरी यह कठोर प्रतिज्ञा अभूतपूर्व है

और आगे भी शायद ही कोई ऐसी प्रतिज्ञा करे ।' निषादराज अभी और कुछ चाहता था । उसने कहा, 'युवराज ! आपने सत्यवतीके लिये जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके अनुरूप ही है । इसके सम्बन्धमें मुझे कोई सन्देह भी नहीं है । मेरे मनमें एक सन्देह अवश्य है कि शायद आपका पुत्र सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीन ले ।' देवव्रतने निषादराजका आशय समझकर क्षत्रियोंकी भरी सभामें कहा, 'क्षत्रियो ! मैंने अपने पिताके लिये राज्यका परित्याग तो पहले ही कर दिया है । अब सन्तानके लिये आज निश्चय कर रहा हूँ । निषादराज ! आजसे मेरा ब्रह्मचर्य अखण्ड होगा । सन्तान न होनेपर भी मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी ।'

देवव्रतकी यह कठोर प्रतिज्ञा सुनकर निषादराजके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । उसने कहा, 'मैं कन्या देता हूँ ।' उसी समय आकाशसे देवता, ऋषि और अप्सराएँ देवव्रतपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं और सबने कहा—यह भीष्म है, इसका नाम 'भीष्म' होना चाहिये । इसके बाद देवव्रत भीष्म सत्यवतीको रथपर चढ़ाकर हस्तिनापुर ले आये और अपने पिताको सौंप दिया । देवव्रतकी इस भीषण प्रतिज्ञाकी प्रशंसा सब लोग इकट्ठे होकर और अलग-अलग भी करने लगे । सबने कहा, सचमुच यह भीष्म है । भीष्मका यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने पुत्रको वर दिया, 'मेरे निष्पाप पुत्र ! जबतक तुम जीना चाहोगे, तबतक मृत्यु तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगी । तुमसे अनुमति प्राप्त करके ही वह तुमपर अपना प्रभाव डाल सकेगी ।'

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्यका चरित्र, भीष्मका पराक्रम और दृढ़प्रतिज्ञता तथा धृतराष्ट्र आदिका जन्म

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजर्षि शान्तनुकी पत्नी सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य । दोनों ही बड़े होनहार और पराक्रमी थे । अभी चित्राङ्गदने युवावस्थामें प्रवेश भी नहीं किया था कि राजर्षि शान्तनु स्वर्गवासी हो गये । भीष्मजीने सत्यवतीकी सम्मतिसे चित्राङ्गदको राजगद्दीपर बैठाया । उसने अपने पराक्रमसे सभी राजाओंको पराजित किया । वह किसी भी मनुष्यको अपने समान नहीं समझता था । गन्धर्वराज चित्राङ्गदने यह देखकर कि शान्तनुनन्दन चित्राङ्गद अपने बल-पराक्रमसे देवता, मनुष्य और असुरोंको नीचा दिखा रहा है, उसपर चढ़ाई कर दी तथा दोनों नाम-राशियोंमें कुरुक्षेत्रके मैदानमें घमासान युद्ध हुआ । सरस्वती नदीके तटपर तीन वर्षतक लड़ाई चलती रही । गन्धर्वराज चित्राङ्गद बहुत बड़ा मायावी था । उसके हाथों राजा चित्राङ्गदकी मृत्यु हो गयी । देवव्रत भीष्मने भाईकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेके पश्चात् विचित्रवीर्यका राजगद्दीपर अभिषेक किया । विचित्रवीर्य भी अभी जवान नहीं हुए थे, बालक ही थे । वे भीष्मके आज्ञानुसार अपने पैतृक राज्यका शासन करने लगे । विचित्रवीर्य थे आज्ञाकारी और भीष्म रक्षक ।

जब भीष्मने देखा कि मेरा भाई विचित्रवीर्य यौवनमें प्रवेश कर चुका है, तब उन्होंने उसके विवाहका विचार किया । उन्हीं दिनों उन्हें यह समाचार मिला कि काशीनरेशकी तीन

कन्याओंका स्वयंवर हो रहा है। उन्होंने माताकी सम्मति लेकर अकेले ही रथपर सवार हो काशीकी यात्रा की। स्वयंवरके समय जब राजाओंका परिचय दिया जाने लगा, तब शान्तनुनन्दन भीष्मको अकेला और बूढ़ा समझकर सुन्दरी कन्याएँ घबराकर आगे बढ़ गयीं। उन्होंने समझा कि यह बूढ़ा है। वहाँ बैठे हुए राजालोग भी आपसमें हँसी करते हुए कहने लगे कि भीष्मने तो ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा ले ली थी, अब बाल सफेद होने और झुर्रियाँ पड़नेपर यह बूढ़ा

लज्जा छोड़कर यहाँ क्यों आया है। यह सब देख-सुनकर भीष्मको रोष आ गया। उन्होंने अपने भाईके लिये बलपूर्वक हरकर कन्याओंको रथपर बैठाया और कहा कि 'क्षत्रिय स्वयंवर-विवाहकी प्रशंसा करते हैं और बड़े-बड़े धर्मज्ञ मुनि भी। किन्तु राजाओ! मैं तुमलोगोंके सामने कन्याओंका बलपूर्वक हरण कर रहा हूँ। तुमलोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुझे जीत लो या हारकर भाग जाओ। मैं तुम लोगोंके सामने युद्धके लिये डटकर खड़ा हूँ।' इस प्रकार समस्त राजाओं और काशीनरेशको ललकारकर वे कन्याओंको लेकर चल पड़े।

भीष्मकी इस बातसे चिढ़कर सभी राजा ताल ठोंकते और ओठ चबाते हुए उनपर टूट पड़े। बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। सबने भीष्मपर एक साथ ही दस हजार बाण चलाये, परन्तु उन्होंने अकेले ही सबको काट डाला। उन्होंने बाणोंकी बौछारसे भीष्मको रोकना चाहा, परन्तु भीष्मके सामने किसीकी एक न चली। वह भयङ्कर युद्ध देवासुर-संग्राम-जैसा था। भीष्मने उस युद्धस्थलीमें सहस्रों धनुष, बाण, ध्वजा, कवच और सिर काट डाले। भीष्मका अलौकिक और अपूर्व हस्तलाघव तथा शक्ति देखकर शत्रुपक्षके होनेपर भी सब उनकी प्रशंसा करने लगे। भीष्म विजयी होकर कन्याओंके साथ हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ उन्होंने तीनों कन्याएँ विचित्रवीर्यको समर्पित कर दीं और विवाहका आयोजन किया। तब काशीनरेशकी बड़ी कन्या अम्बाने भीष्मसे कहा, 'भीष्म! मैं पहले मन-ही-मन राजा शाल्वको पति मान चुकी हूँ। इसमें मेरे पिताकी भी सम्मति थी। मैं स्वयंवरमें भी उन्हें ही चुनती। आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं। मेरी यह बात जानकर आप धर्मानुसार आचरण करें।' भीष्मने ब्राह्मणोंके साथ विचार करके अम्बाको उसके इच्छानुसार जानेकी अनुमति दे दी और शेष दो कन्याएँ अम्बिका और अम्बालिकाको विचित्रवीर्यके साथ ब्याह दिया। विवाहके बाद विचित्रवीर्य यौवनके उन्मादमें उन्मत्त होकर कामासक्त हो गया। उसकी दोनों पत्नियाँ भी प्रेमसे सेवा करने लगीं। सात वर्षतक विषय-सेवन करते रहनेके कारण भरी जवानीमें विचित्रवीर्यको क्षय हो गया और बहुत चिकित्सा करनेपर भी वह चल बसा। इससे धर्मात्मा भीष्मके मनपर बड़ी ठेस लगी। परन्तु उन्होंने धीरज धरकर ब्राह्मणोंकी सलाहसे विचित्रवीर्यकी उत्तर-क्रिया सम्पन्न की।

कुछ दिनोंके बाद वंशरक्षाके विचारसे सत्यवतीने भीष्मको बुलाकर कहा—'बेटा भीष्म! अब धर्मपरायण पिताके पिण्डदान, सुयश और वंशरक्षाका भार तुमपर ही है। मैं तुमपर पूरा-पूरा विश्वास करके एक काममें नियुक्त करती हूँ। तुम उसे पूरा करो। देखो, तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य इस लोकमें कोई सन्तान छोड़े बिना ही परलोकवासी हो गया है। तुम काशीनरेशकी पुत्रकामिनी कन्याओंके द्वारा सन्तान उत्पन्न करके वंशकी रक्षा करो। मेरी आज्ञा मानकर तुम्हें यह काम करना चाहिये। तुम स्वयं राजसिंहासनपर बैठो और प्रजाका पालन करो।' केवल माता सत्यवतीने ही नहीं, सभी सगे-सम्बन्धियोंने भी ऐसी प्रेरणा की। उस समय देवव्रत भीष्मने कहा कि 'माता! आपकी बात ठीक है। परन्तु आप जानती हैं कि मैंने आपके विवाहके समय

क्या प्रतिज्ञा कर रक्खी है। मैं पुनः प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'मैं त्रिलोकीका राज्य, ब्रह्माका पद और इन दोनोंसे अधिक मोक्षका भी परित्याग कर दूँगा परन्तु सत्य नहीं छोड़ूँगा। भूमि गन्ध छोड़ दे, जल सरसता छोड़ दे, तेज रूप छोड़ दे, वायु स्पर्श छोड़ दे, सूर्य प्रकाश छोड़ दे, अग्नि उष्णता छोड़ दे, आकाश शब्द छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे और इन्द्र भी अपना बल-विक्रम त्याग दे, और तो क्या, स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें; परन्तु मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़नेका सङ्कल्प भी नहीं कर सकता।' भीष्मकी भीषण प्रतिज्ञाकी पुनरावृत्ति सुनकर सत्यवतीने फिर उनसे सलाह की और निश्चयानुसार व्यासका स्मरण किया। व्यासने उपस्थित होकर कहा, 'माता! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' सत्यवतीने कहा, 'बेटा! तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य निस्सन्तान ही मर गया है। तुम उसके क्षेत्रमें पुत्र उत्पन्न करो।' व्यासजीने स्वीकार करके अम्बिकासे धृतराष्ट्र और अम्बालिकासे पाण्डुको उत्पन्न किया। जब अपनी-अपनी माताके दोषके कारण धृतराष्ट्र अंधे और पाण्डु पीले हो गये, तब अम्बिकाकी प्रेरणासे उसकी दासीने व्यासजीके

द्वारा ही विदुरको उत्पन्न किया। महात्मा माण्डव्यके शापसे धर्मराज ही विदुरके रूपमें अवतीर्ण हुए थे।

माण्डव्य ऋषिकी कथा

जनमेजयने पूछा—भगवन्! धर्मराजने ऐसा कौन-सा कर्म किया था, जिसके कारण उन्हें ब्रह्मर्षिने शाप दिया और वे शूद्रयोनिमें पैदा हुए?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! बहुत दिनोंकी बात है, माण्डव्य नामके एक यशस्वी ब्राह्मण थे। वे बड़े धैर्यवान्, धर्मज्ञ, तपस्वी एवं सत्यनिष्ठ थे। वे अपने आश्रमके दरवाजेपर वृक्षके नीचे हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करते थे। उन्होंने मौनका नियम ले रक्खा था। बहुत दिनोंके बाद एक दिन कुछ लुटेरे लूटका माल लेकर वहाँ आये। बहुत-से सिपाही उनका पीछा कर रहे थे, इसलिये उन्होंने माण्डव्यके आश्रममें लूटका सारा धन रख दिया और वहीं छिप गये। सिपाहियोंने आकर माण्डव्यसे पूछा कि 'लुटेरे किधरसे भगे? शीघ्र बतलाइये, हम उनका पीछा करें।' माण्डव्यने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजकर्मचारियोंने उनके आश्रमकी तलाशी ली, उसमें धन और चोर दोनों मिल गये। सिपाहियोंने माण्डव्य मुनि और लुटेरोंको पकड़कर राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने विचार करके सबको शूलीपर चढ़ानेका दण्ड दिया। माण्डव्य मुनि शूलीपर चढ़ा दिये गये। बहुत दिन बीत जानेपर भी बिना कुछ खाये-पीये वे शूलीपर बैठे रहे, उनकी मृत्यु नहीं हुई। उन्होंने अपने प्राण छोड़े नहीं, वहीं बहुत-से ऋषियोंको निमन्त्रित किया। ऋषियोंने रात्रिके समय पक्षियोंके रूपमें आकर दुःख प्रकट किया और पूछा कि आपने क्या अपराध किया था। माण्डव्यने कहा—'मैं किसे दोषी बनाऊँ? यह मेरे ही अपराधका फल है।'

पहरेदारोंने देखा कि ऋषिको शूलीपर चढ़ाये बहुत दिन हो गये, परन्तु ये मरे नहीं। उन्होंने जाकर अपने राजासे निवेदन किया। राजाने माण्डव्य मुनिके पास आकर प्रार्थना की कि 'मैंने अज्ञानवश आपका बड़ा अपराध किया। आप मुझे क्षमा कीजिये, मुझपर प्रसन्न होइये।' माण्डव्यने राजापर कृपा की, उन्हें क्षमा कर दिया। वे शूलीपरसे उतारे गये। जब बहुत उपाय करनेपर भी शूल उनके शरीरसे नहीं निकल सका, तब वह काट दिया गया। गड़े हुए शूलके साथ ही उन्होंने

तपस्या की और दुर्लभ लोक प्राप्त किये। तबसे उनका नाम अणीमाण्डव्य पड़ गया। महर्षि माण्डव्यने धर्मराजकी सभामें जाकर पूछा कि 'मैंने अनजानमें ऐसा कौन-सा पाप किया
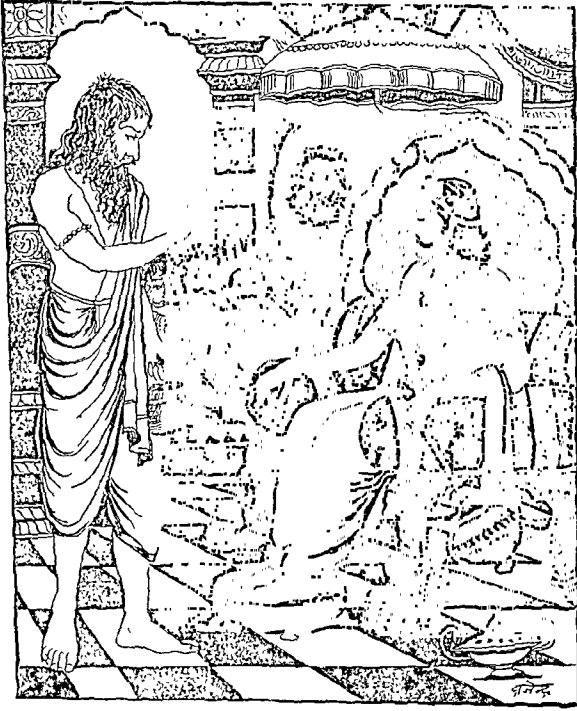
था, जिसका यह फल मिला ? जल्दी बतलाओ, नहीं तो मेरी तपस्याका बल देखो।' धर्मराजने कहा, 'आपने एक छोटे-से फतिंगेकी पूँछमें सींक गड़ा दी थी। उसीका यह फल है। जैसे थोड़े-से दानका अनेक गुना फल मिलता है, वैसे ही थोड़े-से अधर्मका भी कई गुना फल मिलता है।' अणीमाण्डव्यने पूछा कि 'ऐसा मैंने कब किया था ?' धर्मराजने कहा, 'बचपनमें।' इसपर अणीमाण्डव्य बोले, 'बालक बारह वर्षकी अवस्थातक जो कुछ करता है, उससे उसे अधर्म नहीं होता; क्योंकि उसे धर्म-अधर्मका ज्ञान नहीं रहता। तुमने छोटे अपराधका बड़ा दण्ड दिया है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि समस्त प्राणियोंके वधकी अपेक्षा ब्राह्मणका वध बड़ा है। इसलिये तुम्हें शूद्रयोनिमें जन्म लेकर मनुष्य बनना पड़ेगा। आज मैं संसारमें कर्मफलकी मर्यादा स्थापित करता हूँ। चौदह वर्षकी अवस्थातक किये कर्मोंका पाप नहीं लगेगा, उसके बाद किये कर्मोंका फल अवश्य मिलेगा।'

इसी अपराधके कारण माण्डव्यने शाप दिया और धर्मराज शूद्रयोनिमें विदुरके रूपमें उत्पन्न हुए। वे धर्म-शास्त्र और अर्थशास्त्रमें बड़े निपुण थे। क्रोध और लोभ तो उन्हें छूतक नहीं गया था। वे बड़े दूरदर्शी, शान्तिके पक्षपाती और समस्त कुरुवंशके हितैषी थे।

धृतराष्ट्र आदिका विवाह और पाण्डुका दिग्विजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके जन्मसे कुरुवंश, कुरुजाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र—तीनोंकी ही बड़ी उन्नति हुई। अन्नकी उपज बढ़ गयी। समयपर अपने-आप वर्षा होने लगी। वृक्षोंमें बहुत-से फल-फूल लगने लगे। पशु-पक्षी आदि भी सुखी हो गये। नगरोंमें व्यापारी, कारीगर और विद्वानोंकी संख्या बढ़ गयी। संत सुखी हो गये, कोई डाकू नहीं रहा, पापियोंका अभाव हो गया। न केवल राजधानीमें, सारे देशमें ही सत्ययुगका-सा समय हो गया। न कोई कंजूस था और न विधवा स्त्रियाँ। ब्राह्मणोंके घरमें सदा उत्सव होते रहते। भीष्म बड़ी लगनसे धर्मकी रक्षा करते थे। उन दिनों सर्वत्र धर्मशासनका बोलबाला था। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके कार्य देखकर पुरवासियोंको बड़ी प्रसन्नता होती थी। भीष्म बड़ी सावधानी-से राजकुमारोंकी रक्षा करते थे। सबके यथोचित संस्कार हुए। सबने अपने-अपने अधिकारानुसार अस्त्रविद्या तथा शास्त्रज्ञान सम्पादन किया। सबने गजशिक्षा और नीतिशास्त्रका भी अध्ययन किया। इतिहास, पुराण तथा अन्य अनेक विद्याओंमें उनकी अच्छी पैठ थी। सभी विषयोंपर वे अपना निश्चित मत रखते थे। मनुष्योंमें सबसे श्रेष्ठ धनुर्धर थे पाण्डु; और सबसे अधिक बलवान् थे धृतराष्ट्र। विदुरके समान धर्मज्ञ और धर्मपरायण तीनों लोकोंमें कोई नहीं था। उन दिनों सब लोग यही कहते थे कि वीरप्रसविनी माताओंमें काशीनरेशकी कन्या, देशोंमें कुरुजाङ्गल, धर्मज्ञोंमें भीष्म और नगरोंमें हस्तिनापुर सबसे श्रेष्ठ हैं। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे और विदुर दासीके पुत्र, इसलिये वे दोनों राज्यके अधिकारी नहीं माने गये। पाण्डुको ही राज्य मिला।

भीष्मने सुना कि गान्धारराज सुबलकी पुत्री गान्धारी सब लक्षणोंसे सम्पन्न है और उसने भगवान् शङ्करकी

आराधना करके सौ पुत्रोंका वरदान भी प्राप्त कर लिया है। तब भीष्मने गान्धारराजके पास दूत भेजा। पहले तो सुबलने अंधेके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करनेमें बहुत सोच-विचार किया परन्तु फिर कुल, प्रसिद्धि और सदाचारपर विचार करके विवाह करनेका निश्चय कर लिया। जब गान्धारीको यह बात मालूम हुई कि मेरे भावी पति नेत्रहीन हैं, तब उसने एक वस्त्रको कई तह करके उससे अपनी आँखें बाँध लीं। पतिव्रता गान्धारीका यह निश्चय था कि मैं अपने पतिदेवके अनुकूल रहूँगी। उसके भाई शकुनिने अपनी बहिनको धृतराष्ट्रके पास पहुँचा दिया। भीष्मकी अनुमतिसे विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। वह अपने चरित्र और सद्गुणोंसे अपने पति और परिवारको प्रसन्न रखने लगी।

यदुवंशी शूरसेनके पृथा नामकी बड़ी सुन्दरी कन्या थी। वसुदेवजी इसीके भाई थे। इस कन्याको शूरसेनने अपनी बुआके सन्तानहीन लड़के कुन्तिभोजको गोद दे दिया था। यह

कुन्तिभोजकी धर्मपुत्री पृथा अथवा कुन्ती बड़ी सात्त्विक, सुन्दरी और गुणवती थी। कई राजाओंने उसे माँगा था, इसलिये कुन्तिभोजने स्वयंवर किया। स्वयंवरमें कुन्तीने वीरवर पाण्डुको जयमाला पहना दी। अतः उनके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह हुआ। राजा पाण्डु वहाँसे बहुत-सी दहेजकी सामग्री प्राप्त करके अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आये। महात्मा भीष्मने पाण्डुका एक और विवाह करनेका निश्चय किया; अतः वे मन्त्री, ब्राह्मण, ऋषि, मुनि और चतुरङ्गिणी सेनाके साथ मद्रराजकी राजधानीमें गये। उनके कहनेपर शल्यने प्रसन्न चित्तसे अपनी यशस्विनी एवं साध्वी बहिन माद्री उन्हें दे दी। उसके साथ विधिपूर्वक विवाह करके धर्मात्मा पाण्डु अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ आनन्दसे रहने लगे।

फिर राजा पाण्डुने पृथ्वीके दिग्विजयकी ठानी। उन्होंने भीष्म आदि गुरुजनों, बड़े भाई धृतराष्ट्र और श्रेष्ठ कुरुवंशियोंको प्रणाम करके आज्ञा प्राप्त की और चतुरङ्गिणी सेना लेकर यात्रा आरम्भ की। ब्राह्मणोंने मङ्गलपाठ किये और आशीर्वाद दिये। यशस्वी पाण्डुने सबसे पहले अपने अपराधी शत्रु दशार्ण नरेशपर चढ़ाई की और उसे युद्धमें जीत लिया। इसके बाद प्रसिद्ध विजयी वीर मगधराजको राजगृहमें जाकर मार डाला। वहाँसे बहुत-सा खजाना और वाहन आदि लेकर उन्होंने विदेहपर चढ़ाई की और वहाँके राजाको परास्त किया। इसके बाद काशी, शुम्भ, पुण्ड्र आदिपर विजयका झंडा फहराया। अनेकों राजा पाण्डुसे भिड़े और नष्ट हो गये। सबने पराजित होकर उन्हें पृथ्वीका सम्राट् स्वीकार किया। साथ ही मणि-माणिक्य, मुक्ता, प्रवाल, सोना, चाँदी, गाय, घोड़े, रथ आदि भी भेंटमें दिये। महाराज पाण्डुने उनकी भेंट स्वीकार की और हस्तिनापुर लौट आये। पाण्डुको सकुशल लौटा देखकर भीष्मने उन्हें हृदयसे लगा लिया, उनकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। पाण्डुने सारा धन भीष्म और दादी सत्यवतीको भेंट किया। माताके आनन्दकी सीमा न रही।

भीष्मजीने सुना कि राजा देवकके यहाँ एक सुन्दरी एवं युवती दासीपुत्री है। उन्होंने उसे माँगकर परम ज्ञानी विदुरजीके साथ उसका विवाह कर दिया। उसके गर्भसे विदुरके समान ही गुणवान् कई पुत्र उत्पन्न हुए।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जन्म और नाम

वैशम्पायनजीने कहा-एक बार महर्षि व्यास हस्तिनापुरमें गान्धारीके पास आये। गान्धारीने सेवा-शुश्रूषा करके उन्हें बहुत ही सन्तुष्ट किया। तब उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा। गान्धारीने अपने पतिके समान ही बलवान् सौ
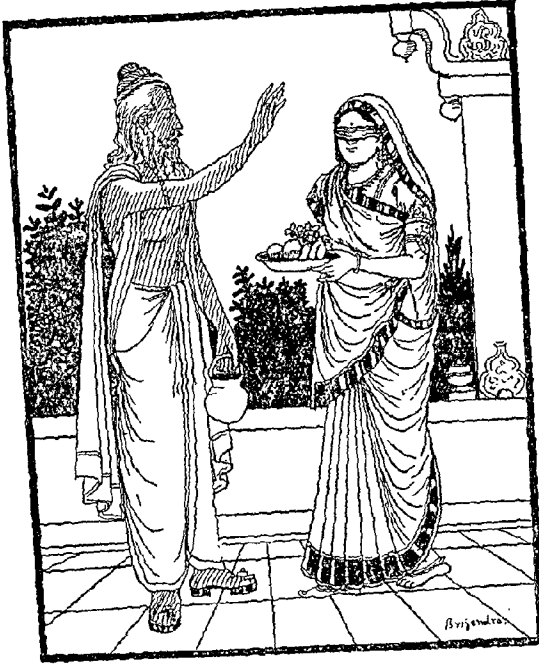
पुत्र होनेका वर माँगा। इससे समयपर उसके गर्भ रहा और वह दो वर्षतक पेटमें ही रुका रहा। इस बीचमें कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। स्त्री-स्वभाववश गान्धारी घबरा गयी और अपने पति धृतराष्ट्रसे छिपाकर इसने गर्भ गिरा दिया। इसके पेटसे लोहेके गोलेके समान एक मांस-पिण्ड निकला। दो वर्ष पेटमें रहनेके बाद भी उसका यह कड़ापन देखकर गान्धारीने उसे फेंक देनेका विचार किया। भगवान् व्यास अपनी योगदृष्टिसे यह सब जानकर झटपट उसके पास पहुँचे और बोले, 'अरी सुबलकी बेटी! तू यह क्या करने जा रही है?' गान्धारीने महर्षि व्याससे सारी बात सच-सच कह दी। उसने कहा, 'भगवन्! आपके आशीर्वादसे गर्भ तो मुझे पहले रहा, परन्तु सन्तान कुन्तीको ही पहले हुई। दो वर्ष पेटमें रहनेके बाद भी सौ पुत्रोंके बदले यह मांस-पिण्ड पैदा हुआ है। यह क्या बात है?' व्यासजीने कहा, 'गान्धारी! मेरा वर सत्य होगा। मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती, क्योंकि मैंने कभी हँसीमें भी झूठ नहीं कहा है। अब तुम चटपट सौ कुण्ड बनवाकर उन्हें घीसे भर दो और सुरक्षित स्थानमें उनकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर दो तथा इस मांस-पिण्डपर ठंडा जल छिड़को।' जल छिड़कनेपर उस पिण्डके सौ टुकड़े हो गये। प्रत्येक टुकड़ा अँगूठेके पोरुएके बराबर था। उनमें एक टुकड़ा सौसे अधिक भी था। व्यासजीके आज्ञानुसार जब सब टुकड़े कुण्डोंमें रख दिये गये, तब उन्होंने कहा कि 'इन्हें दो वर्षके बाद खोलना।' इतना कहकर वे तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये। समय आनेपर उन्हीं मांस-पिण्डोंमेंसे पहले दुर्योधन और पीछे गान्धारीके अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। यह बात कही जा चुकी है कि दुर्योधनका जन्म होनेके पहले ही युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। जिस दिन दुर्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन परम पराक्रमी भीमसेनका भी जन्म हुआ था।

दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा। उसका शब्द सुनकर गधे, गीदड़, गिद्ध और कौए भी चिल्लाने लगे, आँधी चलने लगी, कई स्थानोंमें आग लग गयी। इन उपद्रवोंसे भयभीत होकर धृतराष्ट्रने ब्राह्मण, भीष्म, विदुर आदि सगे-सम्बन्धियों तथा कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुषोंको बुलवाया और कहा, 'हमारे वंशमें पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ज्येष्ठ राजकुमार हैं। उन्हें तो उनके गुणोंके कारण ही राज्य मिलेगा, इस सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं कहना है। युधिष्ठिरके बाद मेरे इस पुत्रको राज्य मिलेगा या नहीं, यह बात आप लोग बताइये।' अभी उनकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि मांसभोजी जन्तु गीदड़ आदि चिल्लाने लगे। इन अमङ्गलसूचक अपशकुनोंको देखकर ब्राह्मणोंके साथ विदुरजीने कहा, 'राजन्! आपके इस ज्येष्ठ पुत्रके जन्मके समय जैसे अशुभ लक्षण प्रकट हो रहे हैं, उनसे तो मालूम होता है कि आपका यह पुत्र कुलका नाश करनेवाला होगा। इसलिये इसे त्याग देनेमें ही शान्ति है। इसका पालन करनेपर दुःख उठाना पड़ेगा। यदि आप अपने कुलका कल्याण चाहते हैं तो सौमें एक कम ही सही, ऐसा समझकर इसे त्याग दीजिये और अपने कुल तथा सारे जगत्का मङ्गल कीजिये। शास्त्र स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि कुलके लिये एक मनुष्यका, ग्रामके लिये एक कुलका, देशके लिये एक ग्रामका और आत्मकल्याणके लिये सारी पृथ्वीका भी परित्याग कर दे।' सबके समझाने-बुझानेपर भी पुत्रस्नेहवश राजा

धृतराष्ट्र दुर्योधनको नहीं त्याग सके। उन एक-सौ-एक टुकड़ोंसे सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। जिन दिनों गान्धारी गर्भवती थी और धृतराष्ट्रकी सेवा करनेमें असमर्थ थी, उन दिनों एक वैश्यकन्या उनकी सेवामें रहती थी और उसके गर्भसे उसी साल धृतराष्ट्रके युयुत्सु नामका पुत्र हुआ था। वह बड़ा यशस्वी और विचारशील था।

जनमेजय! धृतराष्ट्रके पुत्रोंके नाम क्रमशः ये हैं— दुर्योधन सबसे बड़ा था और उससे छोटा था युयुत्सु। तदनन्तर दुःशासन, दुस्सह, दुश्शल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्द्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरस्क, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरजा। कन्याका नाम दुश्शला था। ये सभी बड़े शूरवीर, युद्धकुशल तथा शास्त्रोंके विद्वान् थे। धृतराष्ट्रने समयपर योग्य कन्याओंके साथ सबका विवाह किया। दुश्शलाका विवाह समय आनेपर राजा जयद्रथके साथ हुआ।

ऋषिकुमार किन्दमके शापसे पाण्डुको वैराग्य

जनमेजयने पूछा—भगवन्! आपने धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जन्म और नाम सुनाया। अब मैं पाण्डवोंकी जन्म-कथा सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! राजा पाण्डु एक

वनमें विचर रहे थे। वह हिंस्र पशुओंसे पूर्ण और बड़ा भयङ्कर था। घूमते-घूमते उन्होंने देखा कि एक यूथपति मृग अपनी पत्नी मृगीके साथ मैथुन कर रहा है। पाण्डुने साधकर पाँच बाण मारे, वे दोनों घायल हो गये। तब मृगने कहा, 'राजन्! अत्यन्त कामी, क्रोधी, बुद्धिहीन और पापी मनुष्य भी ऐसा क्रूर कर्म नहीं करते। आपके लिये तो उचित यह है कि पापी और क्रूरकर्मा मनुष्योंको दण्ड दें। मुझ निरपराधको मारकर आपने क्या लाभ उठाया? मैं किन्दम नामका तपस्वी मुनि हूँ। मनुष्य रहकर यह काम करनेमें मुझे लज्जा मालूम हुई, इसलिये मृग बनकर अपनी मृगीके साथ मैं विहार कर रहा था। मैं प्रायः इसी वेषमें घूमता रहता हूँ। मुझे मारनेसे आपको ब्रह्महत्या तो नहीं लगेगी, क्योंकि आप यह बात जानते नहीं थे। परन्तु आपने मुझे जैसी अवस्थामें मारा है, वह सर्वथा मारनेके अनुपयुक्त थी। इसलिये यदि कभी आप अपनी पत्नीके साथ सहवास करेंगे तो उसी अवस्थामें आपकी मृत्यु होगी और वह पत्नी आपके साथ सती हो जायगी।' यह कहकर किन्दमने अपने प्राण छोड़ दिये।

मृगरूपधारी किन्दम मुनिकी मृत्युसे सपत्नीक पाण्डुको वैसा ही दुःख हुआ, जैसे किसी सगे-सम्बन्धीकी मृत्युसे होता है। पाण्डु आतुर होकर मन-ही-मन कहने लगे—'बड़े-बड़े कुलीन भी अपने अन्तःकरणपर वश न होनेके कारण कामके फंदेमें फँस जाते हैं और अपने ही हाथों अपनी दुर्गति करते हैं। मैंने सुना है कि धर्मात्मा शान्तनुके पुत्र मेरे पिता

विचित्रवीर्य भी कामवासनाके कारण बचपनमें ही मर गये थे। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। हाय-हाय! मैं कुलीन और विचारशील हूँ, फिर भी मेरी बुद्धि नीच हो गयी। अब मैं इस बन्धनका त्याग करके मोक्षका ही निश्चय करूँगा और अपने पिता महर्षि व्यासके समान अपना जीवन-निर्वाह करूँगा। अब मैं निस्सन्देह घोर तपस्या करूँगा, एक-एक वृक्षके नीचे एक-एक दिन अकेला ही रहूँगा और मौनी संन्यासी होकर इन आश्रमोंमें भिक्षा माँगूँगा। मेरा शरीर मिट्टीसे लथपथ होगा और खँडहर ही मेरा घर होगा। प्रिय और अप्रियकी भावना छोड़कर मैं शोक और हर्षसे ऊपर उठ जाऊँगा, निन्दा और स्तुति मेरे लिये समान हो जायँगी। आशीर्वाद, नमस्कार, सुख-दुःख और परिग्रहसे रहित होकर न तो किसीकी हँसी करूँगा और न किसीके प्रति क्रोध करूँगा। मुँह सर्वदा प्रसन्न होगा, शरीरसे सबका भला होगा और चर-अचर किसी भी प्राणीको नहीं सताऊँगा। सभी प्राणियोंको अपनी सन्तानकी तरह मानूँगा। कभी खा लूँगा, तो कभी उपवास करूँगा। लाभ और अलाभमें मेरी दृष्टि समान होगी। कोई मेरी एक बाँहको बसूलेसे काट डालेगा और एकमें चन्दन लगा देगा तो उन दोनोंके प्रति मैं बुरा-भला कुछ भी नहीं सोचूँगा। मैं न जीनेकी चेष्टा करूँगा और न मरनेकी। न जीवनसे प्रेम करूँगा और न मृत्युसे द्वेष। जीवित अवस्थामें अपने भलेके लिये जितने कर्म किये जाते हैं, उन्हें मैं छोड़ दूँगा; क्योंकि वे सब कालसे सीमित हैं। मैं भला, कर्मसे प्राप्त होनेवाले अनित्य फलोंको क्यों चाहूँगा। सारे पापोंसे छूट जाऊँगा, अविद्याके जालको फाड़ डालूँगा। प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंकी अधीनतासे छूट जाऊँगा और वायुकी तरह सर्वत्र विचरूँगा। जो मनुष्य सत्कार या तिरस्कारसे प्रभावित होकर कामनाएँ करने लगता है और उन्हींके अनुसार चेष्टा करता है, वह तो कुत्तोंके मार्गपर चल रहा है!'

इस प्रकार सोच-विचारकर पाण्डुने लंबी साँस लेते हुए कुन्ती और माद्रीसे कहा, 'तुमलोग राजधानीमें जाओ। वहाँ हमारी माता, विदुर, धृतराष्ट्र, दादी सत्यवती, भीष्म, राजपुरोहित, ब्राह्मण, महात्मा, सगे-सम्बन्धी, पुरवासी और मेरे आश्रित—सबको प्रसन्न करके कहना कि पाण्डुने संन्यास

ले लिया।' कुन्ती और माद्रीने अपने पतिकी बात सुनकर और उनके वनवासका निश्चय जानकर कहा, 'आर्यपुत्र! संन्यास-आश्रमके अतिरिक्त और भी तो ऐसे आश्रम हैं, जिनमें आप हमलोगोंके साथ महान् तपस्या कर सकते हैं। स्वर्गमें हम भी आपके साथ चलेंगी और वहाँ भी आप ही हमारे पति होंगे। हम दोनों अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके कामजन्य सुखको तिलाञ्जलि देकर स्वर्गमें भी आपको प्राप्त करनेके लिये आपके साथ महान् तपस्या करेंगी। महाराज! यदि आप हमें छोड़ जायेंगे तो हम अवश्य ही अपने प्राण त्याग देंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

अपनी पत्नियोंका दृढ़ निश्चय देखकर पाण्डुने कहा, 'यदि तुम दोनोंने धर्मके अनुसार ऐसा ही करनेका निश्चय किया है तो अच्छी बात है। मैं संन्यास न लेकर वानप्रस्थाश्रममें ही रहूँगा। विषय-सुख और कामोत्तेजक भोजनका परित्याग करके फल-मूल खाऊँगा, वल्कल पहनूँगा और घोर तपस्या करता हुआ इस महान् वनमें विचरूँगा। दोनों समय स्नान, सन्ध्या और अग्निहोत्र करूँगा, मृगचर्म और जटा धारण करूँगा। गर्मी, ठंढक और आँधी सहूँगा, भूख-प्यासका ध्यान नहीं रक्खूँगा और दुश्चर तपस्यासे शरीरको

सुखा डालूँगा। एकान्तमें रहकर परमात्माका चिन्तन करूँगा। कुछ भी कच्चा-पक्का खा लूँगा। फल-फूल, जल और वाणीसे पितरों तथा देवताओंको सन्तुष्ट कर लूँगा। महात्माओंके दर्शन करूँगा। किसी वनवासीका अप्रिय नहीं करूँगा। ग्रामवासियोंसे तो मेरा सम्बन्ध ही क्या है। इस प्रकार मैं वानप्रस्थाश्रमकी कठोर-से-कठोर विधियोंका मृत्युपर्यन्त पालन करूँगा।' अपनी पत्नियोंसे इस प्रकार कहकर पाण्डुने चूडामणि, हार, बाजूबंद, कुण्डल और बहुमूल्य वस्त्र एवं स्त्रियोंके अच्छे-अच्छे गहने उतारकर ब्राह्मणोंको दे दिये और बोले, 'ब्राह्मणो! आपलोग हस्तिनापुरमें जाकर कह दें कि पाण्डु अर्थ, काम और विषयसुख छोड़कर अपनी पत्नियोंके साथ वनवासी हो गये हैं।' उनकी करुणोत्पादक वाणी सुनकर सभी सेवक 'हाय-हाय' करने लगे। उनके नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहने लगे। वे सारा धन लेकर बड़े कष्टसे हस्तिनापुर आये और पाण्डुकी अनुपस्थितिमें राजकाज करनेवाले धृतराष्ट्रको सब दे दिया तथा सारा समाचार सुनाया। अपने भाईका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ; उन्हें सोने, बैठने और खाने-पीनेमें—कहीं भी रुचि नहीं रही। वे अपने भाईकी चिन्तामें ही मग्न रहने लगे।

उधर पाण्डु अपनी पत्नियोंके साथ एक-से-दूसरे पर्वतपर होते हुए गन्धमादनपर पहुँचे। वे केवल कन्द-मूल-फल खाकर रह जाते। ऊँची-नीची जमीनपर सो लेते। बड़े-बड़े ऋषि और सिद्ध उनका ध्यान रखते। इन्द्रद्युम्न सरोवरके आगे हंसकूट शिखरका उल्लङ्घन करके वे शतशृङ्ग पर्वतपर पहुँचे और तपस्या करने लगे। वहाँ सिद्ध, चारण आदि सभी उनसे बड़ा प्रेम करते। महात्मा पाण्डु सबकी सेवा करते, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते और कभी घमण्ड नहीं करते। वहाँ कोई ऋषि पाण्डुको अपना भाई मानते, तो कोई सखा; और कोई उन्हें पुत्र मानकर उनकी रक्षा-दीक्षाका ध्यान रखते। इस प्रकार पाण्डुकी तपस्या चलने लगी।

पाण्डवोंकी उत्पत्ति और पाण्डुका परलोक-गमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अमावस्या तिथि थी। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि ब्रह्माजीके दर्शनके लिये ब्रह्मलोककी यात्रा कर रहे थे। पाण्डुने उन लोगोंसे पूछा, आप कहाँ जा रहे हैं?' और उनका ब्रह्माजीके दर्शनोंके लिये ब्रह्मलोक जानेका विचार जानकर अपनी पत्नियोंके साथ उनके पीछे चल पड़े। ऋषियोंने कहा, 'राजन्! मार्गमें बहुत-से दुर्गम स्थान हैं। विमानोंकी भीड़से ठसाठस भरी अप्सराओंकी क्रीडाभूमि है। ऊँचे-नीचे उद्यान हैं। नदियोंके कगार हैं। बड़े भयङ्कर पर्वत और गुफाएँ हैं। वहाँ बर्फ-ही-बर्फ है। वृक्ष नहीं हैं। हरिण और पक्षी नहीं दीख पड़ते। पक्षी भी वहाँ उड़ नहीं सकते। केवल वायु जाता है और सिद्ध ऋषि-महर्षि जाते हैं। ऐसे दुर्गम मार्गसे राजकुमारी कुन्ती और माद्री कैसे चल सकेंगी? आप अपनी पत्नियोंके साथ यह यात्रा स्थगित कर दीजिये।' पाण्डुने कहा—'मैं समझता हूँ कि सन्तानहीनके लिये स्वर्गका द्वार बंद है। यह बात सोचकर मेरा हृदय जल रहा है। मनुष्य चार ऋण लेकर जन्म लेता है—पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण और मनुष्य-ऋण। यज्ञसे देवता, स्वाध्याय और तपस्यासे ऋषि, पुत्र तथा श्राद्धसे पितर एवं परोपकारसे मनुष्यका ऋण उतरता है। मैं और सब ऋणोंसे तो मुक्त हो गया हूँ, परन्तु पितरोंका ऋण मेरे सिरपर है। मुझे यही अभिलाषा है कि मेरी पत्नीके पेटसे पुत्रोंका जन्म हो।' ऋषियोंने कहा, 'धर्मात्मन्! हम दिव्य दृष्टिसे देख रहे हैं कि आपके देवताओंके समान पुत्र होंगे। आप अपने इस देवदत्त अधिकारका उपभोग करनेके लिये उद्योग कीजिये। आपका मनोरथ सफल होगा।' पाण्डु ऋषियोंकी बात सुनकर चिन्तित हो गये। वे जानते थे कि किन्दम ऋषिके शापके कार स्त्री-सहवास नहीं कर सकता। अब महर्षिगण वहाँसे गये थे।

एक दिन पाण्डुने अपनी यशस्विनी धर्मपत्नी कु कहा, 'प्रिये! तुम पुत्रोत्पत्तिके लिये प्रयत्न करो।' कु कहा, 'आर्यपुत्र! जब मैं छोटी थी, तब पिताने अतिथियोंके स्वागत-सत्कारका काम सौंप रक्खा था।

उस समय दुर्वासा नामके ऋषिको सेवासे प्रसन्न किया। उन्होंने मुझे एक मन्त्र बतलाकर वर दिया कि 'तुम इस मन्त्रसे जिस देवताका आवाहन करोगी, वह चाहे अथवा न चाहे तुम्हारे अधीन हो जायगा।' आपकी आज्ञा होनेपर मैं जिस देवताका आवाहन करूँगी, उसीसे मुझे सन्तान होगी। कहिये, किस देवताका आवाहन करूँ ?' पाण्डुने कहा, 'आज तुम विधिपूर्वक धर्मराजका आवाहन करो। वे त्रिलोकीमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा हैं। उनसे जो सन्तान होगी, वह निस्सन्देह धार्मिक होगी। उनके द्वारा प्राप्त पुत्रका मन अधर्मकी ओर कभी नहीं जायगा।'

तब कुन्तीने धर्मराजका आवाहन किया और उनकी पूजा करके वह मन्त्र जपने लगी। उसके प्रभावसे धर्मराज सूर्यके समान चमकीले विमानपर बैठकर कुन्तीके पास आये और मुसकराकर बोले, 'कुन्ति ! बता, मैं तुझे क्या वर दूँ ?' कुन्तीने भी मुसकराकर कहा, 'मुझे पुत्र दीजिये।' तदनन्तर योगमूर्तिधारी धर्मराजके संयोगसे कुन्तीको गर्भ रहा और समय आनेपर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके जन्मके समय शुक्ल पक्ष, पञ्चमी तिथि, ज्येष्ठा नक्षत्र और अभिजित् मुहूर्त था। सूर्य था तुलाराशिपर।* जन्म होते ही आकाशवाणीने कहा—"यह बालक धर्मात्मा मनुष्योंमें श्रेष्ठ होगा; यह सत्यवादी एवं सच्चा वीर तो होगा ही, सारी पृथ्वीका शासन भी करेगा। पाण्डुके इस प्रथम पुत्रका नाम होगा 'युधिष्ठिर' और यह तीनों लोकोंमें बड़ा यशस्वी होगा।"

कुछ दिनोंके बाद राजा पाण्डुने कुन्तीसे फिर कहा, 'प्रिये ! क्षत्रियजाति बलप्रधान है। इसलिये ऐसा पुत्र उत्पन्न करो, जो बलवान् हो।' तब पतिकी आज्ञा पाकर कुन्तीने वायुका आवाहन किया। महाबली वायुदेव हरिणपर सवार होकर आये। कुन्तीकी प्रार्थनासे उनके द्वारा भयङ्कर पराक्रमी एवं अतिशय बलशाली भीमसेनका जन्म हुआ। उस समय भी आकाशवाणी हुई कि 'यह पुत्र बलवानोंमें शिरोमणि होगा।' जनमेजय ! भीमसेनके पैदा होते ही एक बड़ी विचित्र घटना घटी। भीमसेन अपनी माताकी गोदमें सो रहे थे। इतनेमें वहाँ एक बाघ आया। उससे डरकर कुन्ती भाग निकलीं। उन्हें भीमसेनकी याद न रही। भीमसेन माताकी गोदसे एक चट्टानपर गिरे और वह चूर-चूर हो गयी। चट्टानके सैकड़ों टुकड़े देखकर राजा पाण्डु चकित हो गये। जिस दिन भीमसेनका जन्म हुआ, उसी दिन दुर्योधनका भी जन्म हुआ था।

अब पाण्डुको यह चिन्ता हुई कि 'मुझे एक ऐसा पुत्र

हो जाता, जो संसारमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता। देवताओंमें सबसे

* यह योग प्रायः आश्विन शुक्ल पञ्चमीको आता है।

श्रेष्ठ इन्द्र ही हैं। यदि वे किसी प्रकार सन्तुष्ट हो जायँ तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुत्रका दान कर सकते हैं।' ऐसा विचार करके उन्होंने कुन्तीको एक वर्षतक व्रत करनेकी आज्ञा दी और वे स्वयं सूर्यके सामने एक पैरसे खड़े होकर बड़ी एकाग्रताके साथ उग्र तप करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और बोले, 'तुम्हें मैं एक विश्वविख्यात, ब्राह्मण, गौ और सुहृदोंका सेवक तथा शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाला श्रेष्ठ पुत्र दूँगा।' इसके बाद पाण्डुने कुन्तीसे कहा, 'प्रिये! मैंने देवराज इन्द्रसे वर प्राप्त कर लिया है। अब तुम पुत्रके लिये उनका आवाहन करो।' कुन्तीने वैसा ही किया। तब देवराज इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने अर्जुनको उत्पन्न किया। अर्जुनके जन्मके समय आकाशवाणी-ने अपने गम्भीर स्वरसे आकाशको निनादित करते हुए कहा—'कुन्ती! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन और भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी तथा इन्द्रके समान अपराजित होकर तुम्हारा यश बढ़ावेगा। जैसे विष्णुने अपनी माता अदितिको प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा। यह बहुत-से सामन्तों और राजाओंपर विजय प्राप्त करके तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा। स्वयं भगवान् रुद्र भी इसके पराक्रमसे प्रसन्न होकर इसे अस्त्रदान करेंगे। यह इन्द्रकी आज्ञासे निवात-कवच नामक असुरोंको मारेगा और सारे दिव्य अस्त्र-शस्त्रों-को प्राप्त करेगा।' यह आकाशवाणी केवल कुन्तीने ही नहीं, आश्रमवासियों और समस्त प्राणियोंने सुनी। इससे ऋषि-मुनि, देवता और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। आकाशमें दुन्दुभि बजने लगी, पुष्पवर्षा होने लगी। इन्द्रादि देवगण, सप्तर्षि, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा आदि दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर अर्जुनके जन्मका आनन्दोत्सव मनाने लगे। देवताओंका यह उत्सव केवल ऋषि-मुनियोंने ही देखा, साधारण लोगोंने नहीं।

फिर एक दिन माद्रीके अनुरोध करनेपर पाण्डुने कुन्तीको एकान्तमें बुलाकर कहा, 'तुम प्रजा और मेरी प्रसन्नता-के लिये एक कठिन काम करो। उससे तुम्हारा यश हो। पहलेके लोगोंने भी यशके लिये बड़े कठिन-कठिन काम किये हैं। वह काम यही है कि माद्रीके गर्भसे सन्तान उत्पन्न हो।' कुन्तीने उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके माद्रीसे कहा, 'बहिन! तुम केवल एक बार किसी देवताका चिन्तन करो। उससे तुम्हें अनुरूप पुत्रकी प्राप्ति होगी।' माद्रीने अश्विनीकुमारोंका चिन्तन किया। उसी समय अश्विनीकुमारोंने आकर नकुल और सहदेवको जुड़वाँ उत्पन्न किया। दोनों बालक अनुपम रूपवान् थे। उस समय आकाशवाणीने कहा, 'ये दोनों बालक बल, रूप और गुणमें अश्विनीकुमारोंसे भी बढ़कर होंगे। ये अपने रूप, द्रव्य, सम्पत्ति और शक्तिसे जगत्में चमक उठेंगे।'

शतश‍ृङ्ग पर्वतपर रहनेवाले ऋषियोंने पाण्डुको बधाई और बालकोंको आशीर्वाद देकर क्रमशः नामकरण किया—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल, सहदेव। ये एक-एक वर्षके अन्तरसे उत्पन्न हुए थे। बचपनमें ऋषि और ऋषि-पत्नियाँ इनके प्रति बड़ी प्रीति रखते थे। राजा पाण्डु भी अपने पुत्र और पत्नियोंके साथ बड़ी प्रसन्नतासे वहाँ निवास करने लगे।

वसन्त ऋतु थी, सारे वनवृक्ष पुष्पोंसे लद रहे थे। उनकी शोभा देख-देखकर सभी प्राणी मुग्ध हो रहे थे। राजा पाण्डु उसी वनमें विचर रहे थे और उनके साथ अकेली माद्री भी घूम रही थी। वह सुन्दर वस्त्र धारण किये बहुत ही भली लग रही थी। युवावस्था, शरीरपर झीनी साड़ी और मुखपर मनोहर मुसकान देखकर पाण्डुके मनमें काम-भावका सञ्चार हो गया, मानो वनमें आग लग गयी हो। उन्होंने बलपूर्वक माद्रीको पकड़ लिया, उसके बहुत कुछ रोकने और यथाशक्ति छुड़ानेकी चेष्टा करनेपर भी उसे नहीं छोड़ा। वे कामके नशेमें इस प्रकार चूर हो रहे थे कि उन्हें शापका कुछ ध्यान ही न रहा। दैववश वे मैथुनधर्ममें प्रवृत्त हुए और उसी समय उनकी चेतना नष्ट हो गयी। माद्री उनके शवसे लिपटकर आर्तस्वरसे विलाप करने लगी। कुन्ती पाँचों पाण्डवोंको लेकर वहाँ पहुँची। कुछ दूर रहनेपर ही माद्रीने कहा, 'बहिन! तुम बच्चोंको वहीं छोड़कर अकेली यहाँ आओ।' वहाँकी दशा देखकर कुन्ती शोकग्रस्त हो गयी। वह विलाप करके बोली, 'मैंने तो सर्वदा अपने पति-देवकी रक्षा की थी। आज इन्होंने शापकी बात जान-बूझकर भी तेरा कहना क्यों नहीं माना?' माद्रीने कहा, 'बहिन! मैंने तो बड़ी नम्रता और विकलताके साथ इन्हें रोकनेकी चेष्टा की। परन्तु होनहार ही ऐसा था। ये अपने मनको वशमें नहीं रख सके।' कुन्तीने कहा, 'अच्छी बात, अब तुम उठो। पतिदेवको छोड़कर इधर आओ। तुम इन बच्चोंका पालन-पोषण करो। मैं इनकी बड़ी पत्नी हूँ। इसलिये इनके साथ सती होनेका मुझे अधिकार दे। मैं अब इनका

हस्तिनापुरमें कुन्ती और पाण्डवोंका आगमन तथा पाण्डुकी अन्त्येष्टि-क्रिया

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डुकी मृत्यु देखकर दिव्यज्ञानसम्पन्न महर्षियोंने आपसमें सलाह की। उन्होंने सोचा कि 'परम यशस्वी महात्मा पाण्डु अपना राज्य और देश छोड़कर इस स्थानमें तपस्या करनेके लिये हम तपस्वियोंकी शरण आये थे। उन्होंने अपने नन्हे-नन्हे बच्चों और पत्नीको धरोहरके रूपमें सौंपकर स्वर्गकी यात्रा की है। अब हम लोगोंके लिये उचित है कि उनके पुत्र, अस्थि और पत्नीको ले चलकर वहाँ पहुँचा दें। यही हमारा धर्म है।' ऐसा विचार करके तपस्वियोंने भीष्म और धृतराष्ट्रके हाथों पाण्डवोंको सौंपनेके लिये हस्तिनापुरकी यात्रा की। थोड़े ही दिनोंमें वे लोग हस्तिनापुरके वर्द्धमान द्वारपर आ पहुँचे। अनेक चारण आदि देवताओंके साथ मुनियोंका आगमन सुनकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने बाल-बच्चोंके साथ उनके दर्शनके लिये आने लगे। उस समय सवारीसे और पैदल आनेवाले चारों वर्णोंके लोगोंकी बड़ी भीड़ हो गयी। उस समय किसीके मनमें भेद-भाव नहीं था। भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, धृतराष्ट्र, विदुर, सत्यवती, काशिराजकी कन्या, गान्धारी और दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रकुमार—सभी वहाँ आये। सब उन महर्षियोंको प्रणाम करके बैठ गये। भीड़का कोलाहल शान्त हो जानेपर भीष्मने ऋषियोंका सत्कार किया और अपने राज्य तथा देशका कुशल-समाचार निवेदन किया। सबकी सम्मतिसे एक ऋषिने खड़े होकर कहना शुरू किया—'कुरुवंशशिरोमणि राजा पाण्डु विषयोंका त्याग करके शतश्रृङ्गपर रहने लगे थे। वे तो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते थे, परन्तु दिव्य मन्त्रके प्रभावसे धर्मराजके अंशसे युधिष्ठिर, वायुके अंशसे भीमसेन, इन्द्रके अंशसे अर्जुन और अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल-सहदेवका जन्म हुआ है। पहले तीनों कुन्तीके पुत्र हैं और पिछले दोनों माद्रीके। इनके जन्म, वृद्धि, वेदाध्ययन आदि देखकर राजा पाण्डुको बड़ी प्रसन्नता होती; परन्तु आज सतरह दिनकी बात है कि वे पितृलोकवासी हो गये। माद्री भी उन्हींके साथ सती हो गयी। अब आपलोग जो उचित समझें, वह करें। ये हैं उन दोनोंके शरीरकी अस्थियाँ और ये हैं उनके पुत्र। आपलोग इन बच्चों और इनकी मातापर कृपा रक्खें। साथ ही प्रेतकार्य समाप्त हो जानेपर राजा पाण्डुके लिये पितृमेध यज्ञ करें।' इतना कहकर वे ऋषि और उनके सभी साथी अन्तर्धान हो गये। सभी लोग इन सिद्ध तापसियोंका गन्धर्वनगरके समान दर्शन करके बड़े विस्मित हुए।

अब राजा धृतराष्ट्रने आज्ञा दी कि 'विदुर ! तुम महाराज पाण्डु और महारानी माद्रीकी अन्त्येष्टि-क्रिया राजोचित सामग्रीसे कराओ और उनके लिये पशु, वस्त्र, अन्न तथा आवश्यक धनका दान करो।' विदुरने उनकी आज्ञा स्वीकार की और भीष्मकी सम्मतिसे गङ्गाके परम पवित्र तटपर और्ध्व-दैहिक क्रिया सम्पन्न करायी। उस समय पाण्डुके वियोगसे दुःखी होकर सभी रो रहे थे। मन्त्रियोंने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया। पाण्डवोंने, सगे-सम्बन्धियोंने तथा ब्राह्मणादि पुरवासियोंने श्राद्धके उपलक्ष्यमें बारह दिनतक भूमिशयन किया। नगरमें कहीं भी हर्षका चित्रतक नहीं दिखायी दिया। कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्मने अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मिलकर राजा पाण्डुका श्राद्ध किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया, दक्षिणामें बहुत-से रत्न और अच्छे-अच्छे गाँव दिये। सूतक समाप्त हो जानेपर सब लोग हस्तिनापुरमें लौट आये।

सत्यवती आदिका देह-त्याग और दुर्योधनका भीमसेनको विष देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्राद्धके बाद पाण्डुके कुटुम्बी बहुत ही दुःखी रहे। दादी सत्यवती तो दुःख और शोकके आवेगसे पागल-सी हो रही थीं। अपनी माताको अत्यन्त व्याकुल देखकर व्यासजीने उनसे कहा, 'माताजी ! अब सुखका समय बीत गया। बड़े बुरे दिन आ रहे हैं। दिन-दिन पापकी बढ़ती होगी। पृथ्वीकी जवानी जाती रही, छल-कपट और दोषोंका बोलबाला हो रहा है। धर्म, कर्म और सदाचार लुप्त हो रहे हैं। कौरवोंके अन्यायसे बड़ा भारी

संहार होगा। तुम अब योगिनी बनकर योग करो और यहाँसे निकल जाओ। अपनी आँखों वंशका नाश देखना उचित नहीं।' माता सत्यवतीने उनकी बात स्वीकार करके अम्बिका और अम्बालिकाको इस बातकी सूचना दी और दोनोंके साथ भीष्मसे अनुमति लेकर वनमें चली गयीं। वनमें घोर तपस्या करके उन तीनोंने शरीरका त्याग किया और अभीष्ट गति प्राप्त की।

अब पाण्डवोंके वैदिक संस्कार हुए। वे आनन्दसे अपने पिताके घर रहकर बड़े होने लगे। बचपनमें वे खुशी-खुशी दुर्योधन आदिके साथ खेलते और उनसे बढ़-चढ़कर ही रहते। दौड़नेमें, निशाना लगानेमें, खानेमें, धूल उड़ानेमें भीमसेन धृतराष्ट्रके सभी लड़कोंको हरा देते थे। भीमसेन चुपके-से छिपकर उनका सिर पकड़ लेते और एक-दूसरेको टक्कर मारते। अकेले भीमसेन सभी भाइयोंको बाल पकड़कर खींचते और जमीनमें घसीटने लगते। इससे उनके शरीर छिल जाते। वे दस-दस बालकोंको अँकवारमें भरकर पानीमें डुबकी लगाते और उनकी दुर्दशा करके छोड़ते। जब दुर्योधन आदि बालक किसी वृक्षपर चढ़कर फल तोड़ते तो ये पैरकी ठोकरसे पेड़ हिला देते और ऊपरसे फलोंके साथ बच्चे टपक पड़ते। भीमसेनको कुश्तीमें, दौड़नेमें या किसी प्रकारके युद्धमें कोई नहीं पाता था। भीमसेन होड़के कारण ही ऐसा करते थे। उनके मनमें कोई वैर-विरोध नहीं था। परन्तु दुर्योधनके मनमें भीमसेनके प्रति दुर्भावने घर कर लिया। वह अपने अन्तःकरणके दोषसे भीमसेनमें रात-दिन दोष-ही-दोष देखता। मोह और लोभके कारण दोषका चिन्तन करनेसे वह स्वयं दोषी बन गया। उसने यह निश्चय किया कि नगरके उद्यानमें सोते समय भीमसेनको गङ्गामें डाल दें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनको कैद करके सारी पृथ्वीका राज्य करें। ऐसा निश्चय करके वह मौका देखने लगा।

दुर्योधनने एक बार जल-विहारके लिये गङ्गाके तटपर प्रमाणकोटि स्थानमें बड़े-बड़े तंबू और खेमे लगवाये। उनमें सारी सामग्रियाँ सजायी गयीं और अलग-अलग कमरे बनवाये गये। उस स्थानका नाम रक्खा गया उदकक्रीडन। चतुर रसोइयोंने खाने-पीनेकी बहुत-सी वस्तुएँ तैयार कीं। दुर्योधनके कहनेपर युधिष्ठिरने वहाँकी यात्रा स्वीकार कर ली और सब मिल-जुलकर नगराकार रथों और हाथियोंपर सवार हो वहाँ गये। उन लोगोंने प्रजाको तो रास्तेमेंसे ही लौटा दिया और स्वयं वनकी शोभा देखते-देखते बागमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर सभी राजकुमार परस्पर एक-दूसरेको खिलाने-पिलानेमें जुट गये। दुरात्मा दुर्योधनने भीमसेनको मार डालनेकी बुरी नीयतसे उनके भोजनकी सामग्रीमें पहलेसे ही विष मिला दिया था। उसने बड़ी मिठाससे मित्र और भाईकी तरह आग्रह करके भीमसेनको सब परोस दिया और वे अनजानमें सब-का-सब खा गये। दुर्योधनने समझा ठीक है, अब मेरा काम

बन गया। इसके बाद जलक्रीडा हुई। जलक्रीडा करते-करते भीमसेन थक गये और सबके साथ खेममें आकर सो गये। वे रग-रगमें विष फैल जानेसे निश्चेष्ट हो गये। दुर्योधनने स्वयं लताकी रस्सियोंसे भीमसेनके मुर्देके समान शरीरको बाँधा और गङ्गाके ऊँचे तटसे जलमें ढकेल दिया। भीमसेन इसी अवस्थामें नागलोकमें जा पहुँचे। वहाँ विषैले साँपोंने भीमसेनको खूब डँसा। सर्पोंके डँसनेसे कालकूटका प्रभाव कम हो गया। यद्यपि साँपोंने उनके मर्मस्थानपर भी डँसनेकी चेष्टा की, परन्तु उनका चाम इतना कठोर था कि वे कुछ नहीं कर सके। विष उतरनेसे भीमसेन सचेत हो गये और साँपोंको पकड़-पकड़कर पटकने लगे। बहुत-से साँप मर गये और बहुत-से डरकर भग गये। भगे हुए साँपोंने नागराज वासुकिके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया।

वासुकि नाग स्वयं भीमसेनके पास आये। उनके साथी आर्यक नागने भीमसेनको पहचान लिया। आर्यक नाग

नके नानाका नाना था । वह भीमसेनसे बड़े प्रेमके साथ । वासुकिने आर्यकसे पूछा, 'हमलोग इसको क्या भेंट सको बहुत-सा धन-रत्न देकर भेज दो ।' आर्यकने 'नागेन्द्र ! यह धन-रत्न लेकर क्या करेगा । आप हैं तो इसे उन कुण्डोंका रस पीनेकी आज्ञा दीजिये, सहस्रों हाथियोंका बल प्राप्त होता है ।' नागोंने नसे स्वस्तिवाचन कराया और वे पवित्र हो पूर्वाभिमुख स पीने लगे । बलशाली भीमसेन एक घूँटमें एक कुण्ड ते । इस प्रकार आठ कुण्ड पीकर वे नागोंके निर्देशा- एक दिव्य शय्यापर जाकर सो गये ।

इधर नींद टूटनेपर कौरव और पाण्डव खूब खेल-कूदकर भीमसेनके ही हस्तिनापुरके लिये रवाना हो गये । वे में यह कह रहे थे कि भीमसेन आगे ही चले गये दुर्योधन अपनी चाल चल जानेसे फूला न समाता धर्मात्मा युधिष्ठिरके पवित्र हृदयमें भीमसेनकी स्थिति- ल्पना भी नहीं हुई । वे दुर्योधनको भी अपने ही समान ामझते थे । उन्होंने माता कुन्तीके पास जाकर पूछा, जी ! भीमसेन यहाँ आ गये क्या ? हमने तो वहाँ भी बहुत ढूँढा, परन्तु न मिलनेपर सोचा कि घर चले ोंगे । आपने उन्हें कहीं भेजा तो नहीं है ? हम बड़े ुल हो रहे हैं ।' यह सुनकर कुन्ती घबरा गयीं । उन्होंने , 'भीमसेन यहाँ नहीं आया । उसे शीघ्र ढूँढनेका प्रयत्न ।' कुन्ती माताने तुरंत विदुरजीको बुलवाया और ां, 'विदुरजी ! भीमसेनका पता नहीं है । सब आ गये, तु वह नहीं लौटा । दुर्योधनकी दृष्टिमें वह सर्वदा खटका ा है । दुर्योधन बड़ा क्रूर, क्षुद्र, लोभी और निर्लज्ज है । उसने क्रोधवश मेरे वीर पुत्रको मार न डाला हो । मेरे में बड़ी जलन हो रही है ।' विदुरजीने कहा, 'कल्याणि ! बात मुँहसे मत निकालो । शेष पुत्रोंकी रक्षा करो । दुरात्मा धनसे पूछनेपर वह और चिढ़ जायगा । दूसरे पुत्रोंपर भी त्ति आ जायगी । महर्षि व्यासके कथनानुसार तुम्हारे पुत्र ायु हैं । भीमसेन चाहे कहीं भी हो, लौटेगा अवश्य ।' विदुर- समझा-बुझाकर चले गये । कुन्ती माता चिन्तित हो गयीं ।

उधर नागलोकमें बलवान् भीमसेन आठवें दिन रस पच जानेपर जगे । नागोंने भीमसेनके पास आकर उन्हें बहुत तसल्ली दी और कहा, 'आपने जो रस पीया है, वह बड़ा बलवर्द्धक है । आप दस हजार हाथियोंके समान बलवान् हो जायँगे । युद्धमें आपको कोई नहीं जीत सकेगा । अब आप दिव्य जलसे स्नान करके पवित्र श्वेत वस्त्र धारण करें और अपने घर पधारें । आपके बिछोहसे सभी भाई अत्यन्त दुखी हो रहे हैं ।' फिर भीमसेन वहाँ खा-पीकर, दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो नागोंकी अनुमतिसे ऊपर आये । नागोंने उन्हें उस बगीचेतक पहुँचा दिया । फिर अन्तर्धान हो गये । भीमसेनने अपनी माताके पास आकर उन्हें तथा बड़े भाईको प्रणाम किया, छोटोंके सिर सूँघे । सभी प्रेमसे आनन्द मनाने लगे । भीमसेनने दुर्योधनकी सारी करतूत कह सुनायी और यह भी बतलाया कि नागलोकमें क्या सुख- दुःख मिला । राजा युधिष्ठिरने भीमसेनसे बड़े महत्त्वकी बात कही, 'भाई ! बस, अब चुप हो जाओ । यह बात कभी किसीसे न कहना । हमलोग आपसमें बड़ी सावधानीके साथ एक-दूसरेकी रक्षा करें ।'

दुरात्मा दुर्योधनने भीमसेनके प्यारे सारथिको गला घोंटकर मार डाला । धर्मात्मा विदुरने पाण्डवोंको यही सलाह दी कि 'तुमलोग चुप रहो ।' भीमसेनके भोजनमें एक बार और विष डाला गया । युयुत्सुने इसका समाचार पाण्डवोंको दे दिया । परन्तु भीमसेनने वह विष खाकर बिना किसी विकारके पचा लिया । दुर्योधन, कर्ण और शकुनिने भीमसेन- को विषसे न मरते देखकर उन्हें तरह-तरहसे मारनेकी चेष्टा की । परन्तु पाण्डव सब कुछ जान-बूझकर भी विदुरकी सलाहके अनुसार चुप ही रहे । राजा धृतराष्ट्रने देखा कि सब-के-सब राजकुमार खेल-कूदमें ही लगे रहते हैं, तब उन्होंने गुरु कृपाचार्यको ढुँढवाकर शिक्षा देनेके लिये उन्हें सौंप दिया । कौरव और पाण्डवोंने कृपाचार्यसे विधिपूर्वक धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की ।

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाका जन्म तथा उनका कौरवोंसे सम्बन्ध

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! आप कृपा करके मुझे चार्यके जन्मकी कथा सुनाइये ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! महर्षि गौतमके पुत्र थे शरद्वान् । वे बाणोंके साथ ही पैदा हुए थे । उनका मन धनुर्वेदमें जितना लगता था, उतना वेदाभ्यासमें नहीं । उन्होंने तपस्यापूर्वक सारे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये । शरद्वान्की

घोर तपस्या और धनुर्वेदमें निपुणता देखकर इन्द्र बहुत भयभीत हुए। उन्होंने शरद्वान्‌की तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये जानपदी नामकी देवकन्या भेजी। वह धनुर्धर शरद्वान्‌के आश्रममें जाकर तरह-तरहके हाव-भावसे उन्हें लुभाने लगी। उस सुन्दरी और एक साड़ी पहने युवतीको देखकर उनके शरीरमें कँपकँपी आने लगी। उनके हाथसे धनुष-बाण गिर पड़े। वे बड़े विवेकी और तपस्याके पक्षपाती थे। इसलिये उन्होंने धैर्यसे अपनेको रोक लिया। उनके मनमें विकार हो चुका था, इसलिये उनके अनजानमें ही शुक्रपात हो गया। उन्होंने धनुष, बाण, मृगचर्म, आश्रम और उस कन्याको छोड़कर तुरंत वहाँसे यात्रा कर दी। उनका वीर्य सरकंडोंपर गिरा था। इसलिये वह दो भागोंमें विभक्त हो गया। उससे एक कन्या और एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।

संयोगवश राजर्षि शान्तनु अपने दल-बलके साथ शिकार खेलते हुए वहाँ आ निकले। किसी सेवककी दृष्टि उधर पड़ गयी। उसने यह सोचकर कि हो-न-हो ये बालक किसी धनुर्वेदके पारदर्शी ब्राह्मणके हैं, राजर्षिको सूचना दी। उन्होंने कृपापरवश होकर उन बालकोंको उठा लिया और ये तो अपने ही बालक हैं—ऐसा सोचकर घर ले आये। उन्होंने उन बच्चोंका पालन-पोषण और यथोचित संस्कार किया तथा उनके नाम कृप एवं कृपी रख दिये। जब शरद्वान्‌को तपोबलसे यह बात मालूम हुई, तब वे भी राजर्षि शान्तनुके पास आये और उन बालकोंके नाम-गोत्र आदि बतलाकर चारों प्रकारके धनुर्वेदों, विविध शास्त्रों और उनके रहस्योंकी शिक्षा दी। थोड़े ही दिनोंमें बालक कृप सभी विषयोंके परमाचार्य हो गये। अब कौरव और पाण्डव यदुवंशी तथा अन्य राजकुमारोंके साथ उनसे धनुर्वेदका अभ्यास करने लगे।

भीष्मने विचार किया कि पाण्डवों और कौरवोंको इससे भी अधिक अस्त्र-ज्ञान प्राप्त होना चाहिये। अब इन्हें कोई साधारण पुरुष तो शिक्षा दे नहीं सकता। इसलिये इस विद्याका कोई विशेषज्ञ ढूँढना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने पाण्डवों और कौरवोंको द्रोणाचार्यके हाथों सौंप दिया। वे भीष्मके सत्कारसे प्रसन्न होकर राजकुमारोंको धनुर्वेदकी शिक्षा देने लगे। थोड़े ही दिनोंमें सब-के-सब राजकुमार सारे शास्त्रोंमें प्रवीण हो गये।

जनमेजयने पूछा—भगवन्! द्रोणाचार्यका जन्म कैसे हुआ था? उन्हें अस्त्र कैसे मिले थे और कौरवोंके साथ उनका सम्बन्ध किस प्रकार हुआ? साथ ही यह भी सुनाइये कि श्रेष्ठ अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाका जन्म कैसे हुआ?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! पहले युगमें गङ्गाद्वार नामक स्थानपर महर्षि भरद्वाज रहा करते थे। वे बड़े व्रतशील और यशस्वी थे। एक बार वे यज्ञ कर रहे थे। उस दिन सबसे पहले ही वे महर्षियोंको साथ लेकर गङ्गास्नान करने गये। वहाँ उन्होंने देखा कि घृताची अप्सरा स्नान करके जलसे निकल रही है। उसे देखकर उनके मनमें काम-वासना जाग उठी। जब उनका वीर्य स्खलित होने लगा, तब उन्होंने उसे द्रोणनामक यज्ञपात्रमें रख दिया। उसीमें द्रोणका जन्म हुआ। द्रोणने सारे वेद और वेदाङ्गोंका स्वाध्याय किया। महर्षि भरद्वाजने पहले ही आग्नेयास्त्रकी शिक्षा अग्निवेश्यको दे दी थी। अपने गुरु भरद्वाजकी आज्ञासे अग्निवेश्यने द्रोणको आग्नेयास्त्रकी शिक्षा दी।

पृषत् नामके एक राजा भरद्वाज मुनिके मित्र थे। द्रोणके जन्मके समय ही उसके भी द्रुपद नामक पुत्र पैदा हुआ था। वह भी भरद्वाज-आश्रममें आकर द्रोणके साथ ही शिक्षा प्राप्त कर रहा था। द्रोणसे उसकी गाढ़ी मैत्री हो गयी थी। पृषत्‌का स्वर्गवास हो जानेपर द्रुपद उत्तर-पाञ्चाल देशके राजा हुए। भरद्वाज ऋषिके ब्रह्मलीन होनेपर द्रोण अपने आश्रममें रहकर तपस्या करने लगे। उन्होंने शरद्वान्‌की पुत्री कृपीसे विवाह किया। वह बड़ी धर्मशीला और जितेन्द्रिया थी। कृपीके गर्भसे अश्वत्थामाका जन्म हुआ। उसका 'अश्वत्थामा' नाम होनेका कारण यह था कि उसने जन्मते ही उच्चैःश्रवा अश्वके समान स्थाम अर्थात् शब्द किया था। अश्वत्थामाके जन्मसे द्रोणाचार्यको बड़ा हर्ष हुआ। वे वहीं रहकर धनुर्वेदका अभ्यास करने लगे।

इन्हीं दिनों आचार्य द्रोणको मालूम हुआ कि जमदग्नि-नन्दन भगवान् परशुराम ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व दान कर रहे हैं। द्रोणाचार्य उनसे धनुर्वेदसम्बन्धी ज्ञान और दिव्य अस्त्रोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये चल पड़े। अपने शिष्योंके साथ महेन्द्राचलपर पहुँचकर उन्होंने परशुराम-जीको प्रणाम किया और बतलाया कि 'मैं महर्षि अङ्गिराके गोत्रमें भरद्वाज ऋषिके द्वारा बिना योनि-संसर्गके ही पैदा हुआ हूँ। मैं आपके पास कुछ प्राप्त करनेके लिये आया हूँ।' परशुरामजीने कहा, 'मेरे पास जो कुछ धन-रत्न था, वह मैं ब्राह्मणोंको दे चुका। सारी पृथ्वी भी मैंने कश्यप ऋषिको दे दी।

अब मेरे पास इस शरीर और अस्त्रोंके सिवा और कुछ नहीं है। इनमेंसे तुम जो चाहो माँग लो।' द्रोणाचार्यने कहा, 'भृगुनन्दन! आप मुझे प्रयोग, रहस्य और उपसंहार-विधिके साथ सारे अस्त्र-शस्त्र दे दें।' परशुरामजीने तत्काल 'तथास्तु' कहकर उन्हें सबकी शिक्षा दे दी। अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करके द्रोणाचार्यको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वे अपने मित्र द्रुपदके पास गये।

द्रोणाचार्यने द्रुपदके पास जाकर कहा, 'राजन्! मैं आपका प्रिय सखा द्रोण हूँ। आपने मुझे पहचान तो लिया?' पाञ्चालराज द्रुपद द्रोणाचार्यकी बातसे चिढ़ गये। उन्होंने भौंहें टेढ़ी और आँखें लाल करके कहा, 'ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई। भला, मुझे अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें कुछ हिचकिचाहट नहीं मालूम होती! राजाओंकी गरीबोंसे क्या दोस्ती? यदि कदाचित् हो भी जाय तो समय बीतनेपर वह भी मिट-मिटा जाती है।' द्रुपदकी बात सुनकर द्रोण क्रोधसे काँप उठे। उन्होंने मन-ही-मन कुछ निश्चय किया और कुरुवंशकी राजधानी हस्तिनापुरमें आये। वहाँ आकर उन्होंने कुछ दिनोंतक गुप्तरूपसे कृपाचार्यके घर निवास किया।

एक दिन युधिष्ठिर आदि सभी राजकुमार नगरके बाहर जाकर मैदानमें गेंद खेल रहे थे। गेंद अचानक कूएँमें गिर पड़ी। राजकुमारोंने उसे निकालनेका प्रयत्न तो किया, परन्तु किसी प्रकार उन्हें सफलता न मिली। वे कुछ सकुचाकर एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। इसी समय उनकी दृष्टि पासके ही एक ब्राह्मणपर पड़ी, जिन्होंने अभी-अभी नित्यकर्म समाप्त किया था। उनका शरीर दुर्बल और रंग साँवला था। सभी राजकुमार उन्हें घेरकर खड़े हो गये। ब्राह्मणने राजकुमारोंको उदास देखकर मुसकराते हुए कहा, 'राम-राम! धिक्कार है तुम्हारे क्षत्रियबल और अस्त्र-कौशलको। तुमलोग कूएँमेंसे एक गेंद नहीं निकाल सकते? देखो, मैं तुमलोगोंकी गेंद और अपनी यह अँगूठी अभी कूएँमेंसे निकाल देता हूँ। तुमलोग मेरे भोजनका प्रबन्ध कर दो।' यह कहकर उन्होंने अपनी अँगूठी कूएँमें डाल दी। युधिष्ठिरने कहा, 'भगवन्! आप कृपाचार्यकी अनुमति मिल जानेपर सर्वदाके लिये भोजन पा सकते हैं।' अब द्रोणाचार्यने कहा, 'देखो, ये एक मुट्ठी सींकें हैं। इन्हें

मैंने मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर रक्खा है। मैं एक सींकसे गेंद छेद देता हूँ और फिर दूसरी सींकोंसे एक-दूसरीको छेदकर तुम्हारी गेंद खींच लेता हूँ।' द्रोणाचार्यने वैसा ही किया। राजकुमारोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने कहा—'भगवन्! आप अपनी अँगूठी तो निकालिये।' द्रोणाचार्यने बाणका प्रयोग करके बाणसहित अपनी अँगूठी भी निकाल ली। अँगूठी निकली देखकर राजकुमारोंने कहा, 'आश्चर्य है, आश्चर्य है। हमने तो ऐसी अस्त्रविद्या और कहीं नहीं देखी। आप कृपा करके अपना परिचय दीजिये और बताइये कि हमलोग आपकी क्या सेवा करें।' द्रोणाचार्यने कहा कि 'तुमलोग यह सब बात भीष्मजीसे कहना, वे मेरे रूप और गुणसे मुझे पहचान जायेंगे।'

राजकुमारोंने नगरमें लौटकर भीष्मपितामहसे सारी बातें कहीं। वे यह सब सुनते ही समझ गये कि हो-न-हो महारथी द्रोणाचार्य आ गये हैं। उन्होंने निश्चय किया कि अब इन राजकुमारोंको द्रोणाचार्यसे ही शिक्षा दिलानी चाहिये। वे तुरंत स्वयं जाकर द्रोणाचार्यको लिवा लाये और उनका खूब स्वागत-सत्कार करके उनके शुभागमनका कारण पूछा। द्रोणाचार्यने कहा, ''भीष्मजी! जिस समय

मैं ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ शिक्षा प्राप्त कर रहा था, उसी समय पाञ्चालराजके पुत्र द्रुपद भी हमारे साथ धनुर्विद्या सीख रहे थे। हम दोनोंमें बड़ी मित्रता थी। उस समय वे मुझे प्रसन्न करनेके लिये कहा करते थे कि 'जब मैं राजा हो जाऊँगा, तब तुम मेरे साथ रहना। मैं सत्य शपथ करता हूँ कि मेरा राज्य, सम्पत्ति और सुख—सब तुम्हारे अधीन होगा।' उनकी यह प्रतिज्ञा स्मरण करके मैं बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित रहा करता था। कुछ दिनोंके बाद मैंने शरद्वान्‌की पुत्री कृपीसे विवाह किया और उसके गर्भसे सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाका जन्म हुआ।

''एक दिनकी बात है, गोधनके धनी ऋषिकुमार दूध पी रहे थे। अश्वत्थामा उन्हें देखकर दूध पीनेके लिये मचल गया और रोने लगा। उस समय मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। यदि मैं किसी कम गायवालेसे गाय ले लेता तो उसके धर्म-कर्ममें अड़चन पड़ती। बहुत घूमनेपर भी मुझे दूध देनेवाली गाय न मिल सकी। जब मैं लौटकर आया तब देखता हूँ कि छोटे-छोटे बच्चे आटेके पानीसे अश्वत्थामाको ललचा रहे हैं और वह अज्ञान बालक उसे ही पीकर यह कहता हुआ नाच रहा है कि मैंने दूध पी लिया। अपने बच्चेकी यह हँसी और दुर्दशा देखकर मेरे चित्तमें बड़ा क्षोभ हुआ। मैंने सोचा—धिक्कार है मेरे इस दरिद्र जीवनको। मेरे धैर्यका बाँध टूट गया।

''भीष्मजी! जब मैंने सुना कि मेरा प्रिय सखा द्रुपद राजा हो गया है, तब मैं अपनी पत्नी और बच्चेके साथ प्रसन्नतापूर्वक उसकी राजधानीके लिये चल पड़ा। मुझे द्रुपदकी प्रतिज्ञापर विश्वास था। परन्तु जब मैं द्रुपदसे मिला, तब उसने अपरिचितके समान कहा, 'ब्राह्मण देवता! अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची और लोक-व्यवहारसे अनभिज्ञ है। तुमने क्या ही बेधड़क कह दिया कि मैं तुम्हारा सखा हूँ। अरे भाई! जो मिलते हैं, वे बिछुड़ते हैं। उस समय हम-तुम दोनों समान थे, इसलिये मित्रता थी। अब मैं धनी हूँ; तुम निर्धन हो। मित्रताका दावा बिल्कुल व्यर्थ है। तुम कहते हो कि मैंने राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी। उसका मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं है। तुम चाहो तो एक दिन अच्छी तरह इच्छानुसार भोजन कर लो।' वहाँसे चलते समय मैंने एक प्रतिज्ञा की है। द्रुपदके तिरस्कारसे मेरा कलेजा जल रहा है। मैं अपनी प्रतिज्ञा शीघ्र ही पूर्ण करूँगा। मैं गुणवान् शिष्योंको शिक्षा

देनेके उद्देश्यसे यहाँ आया हूँ। आप मुझसे क्या चाहते हैं? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'' भीष्मपितामहने कहा, 'अब आप अपने धनुषसे डोरी उतार दीजिये और यहाँ रहकर राजकुमारोंको धनुर्वेद और अस्त्रकी शिक्षा दीजिये। कौरवोंका धन, वैभव और राज्य आपका ही है। हम सब आपके आज्ञाकारी सेवक हैं। आपका शुभागमन हमारे लिये अहोभाग्य है।'

राजकुमारोंकी शिक्षा और परीक्षा तथा एकलव्यकी गुरुभक्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्रोणाचार्य भीष्मपितामहसे सम्मानित होकर हस्तिनापुरमें रहने लगे। भीष्मने उन्हें धन-अन्नसे भरा एक सुन्दर भवन रहनेके लिये दिया। वे धृतराष्ट्र और पाण्डुके पुत्रोंको शिष्यरूपमें स्वीकार करके धनुर्वेदकी विधिपूर्वक शिक्षा देने लगे। द्रोणाचार्यने एक दिन अपने सभी शिष्योंको एकान्तमें बुलाकर कहा कि 'मेरे मनमें एक इच्छा है। अस्त्र-शिक्षा समाप्त होनेके बाद क्या तुमलोग मेरी वह इच्छा पूरी करोगे?' सभी राजकुमार चुप रह गये। अर्जुनने बड़े उत्साहसे आचार्यकी इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुनको हृदयसे लगाया, उनकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। द्रोणाचार्य अपने शिष्योंको तरह-तरहके दिव्य और अलौकिक अस्त्रोंकी शिक्षा देने लगे। उस समय उनके शिष्योंमें यदुवंशी तथा दूसरे देशके राजकुमार भी थे। सूतपुत्रके नामसे प्रसिद्ध कर्ण भी वहीं शिक्षा पा रहे थे। अर्जुनके मनमें इस विषयकी ओर बड़ी रुचि और लगन थी। वे द्रोणाचार्यकी सेवा भी बहुत करते। इसलिये शिक्षा, बाहुबल और उद्योगकी दृष्टिसे समस्त शस्त्रोंके प्रयोग, फुर्ती और सफाईमें अर्जुन ही सबसे बढ़-चढ़कर निकले।

द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामापर विशेष अनुराग रखते थे। उन्होंने शिष्योंको पानी लानेके लिये जो बर्तन दिये थे, उनमें औरोंके तो देरसे भरते, लेकिन अश्वत्थामाका सबसे पहले ही भर जाता। इससे अश्वत्थामा सबसे पहले अपने पिताके पास पहुँचकर गुप्त रहस्य सीख लेता। अर्जुनने यह बात ताड़ ली। अब वे वारुणास्त्रसे अपना बर्तन झटपट भरकर चटपट आचार्यके पास आ पहुँचते। इसीसे उनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुपुत्र अश्वत्थामासे किसी भी अंशमें कम नहीं हुई। एक दिन भोजन करते समय तेज हवाके कारण दीपक बुझ गया। अन्धकारमें भी हाथको बिना भटके मुँहके पास जाते देखकर अर्जुनने समझ लिया कि निशाना लगानेके लिये प्रकाशकी आवश्यकता नहीं, केवल अभ्यासकी है। वे अब अँधेरेमें बाण चलानेका अभ्यास करने लगे। एक दिन रातमें अर्जुनकी प्रत्यञ्चाकी टंकार सुनकर द्रोणाचार्य उनके पास आये और अर्जुनको हृदयसे लगाकर कहा, 'बेटा! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि संसारमें तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो। यह बात मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ।' आचार्यने सब राजकुमारोंको हाथी, घोड़ों, रथ और पृथ्वीपरका युद्ध, गदा-युद्ध, तलवार चलाना, तोमर-प्रास-शक्ति आदिके प्रयोग एवं सङ्कीर्ण-युद्धकी शिक्षा दी। यह सब सिखानेमें अर्जुनकी ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। द्रोणाचार्यके शिक्षा-कौशलकी बात देश-देशान्तरमें फैल गयी। दूर-दूरके राजा और राजकुमार आने लगे। एक दिन निषादपति हिरण्यधनुका पुत्र एकलव्य भी अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करनेके लिये उनके पास आया। परन्तु द्रोणाचार्यने, यह सोचकर कि यह निषाद जातिका है, शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया। वह लौट गया। वनमें जाकर उसने द्रोणाचार्यकी एक मिट्टीकी मूर्ति बनायी और उसीमें आचार्य-भाव रखकर उत्कट श्रद्धा और प्रेमसे नियमितरूपसे अस्त्राभ्यास करने लगा और अत्यन्त निपुण हो गया।

एक बार सभी राजकुमार आचार्यकी अनुमतिसे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। राजकुमारोंका सामान और एक कुत्ता साथ लिये एक अनुचर भी वनमें चल रहा था। वह कुत्ता घूमता-फिरता वहाँ पहुँच गया, जहाँ एकलव्य बाणोंका अभ्यास कर रहा था। एकलव्यका शरीर मैला-कुचैला था। वह काला मृगचर्म पहने था और उसके सिरपर जटाएँ थीं। कुत्ता उसे देखकर भूँकने लगा। एकलव्यने खीझकर सात बाण मारे, जिससे उस कुत्तेका मुँह भर गया। परन्तु उसे चोट कहीं नहीं लगी। कुत्ता बाणभरे मुँहसे पाण्डवोंके पास

आया। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर पाण्डव कहने लगे

कि 'उसका शब्द-वेध और फुर्ती तो विलक्षण है।' टोह लगानेपर उसी वनमें उन्हें एकलव्य मिल गया। वह लगातार बाणोंका अभ्यास कर रहा था। पाण्डव एकलव्यका रूप बदल जानेके कारण उसे पहचान न सके। पूछनेपर एकलव्यने बतलाया, 'मेरा नाम एकलव्य है। मैं भीलराज हिरण्यधनु-का पुत्र और द्रोणाचार्यका शिष्य हूँ। मैं यहाँ धनुर्विद्याका अभ्यास करता हूँ।' अब सभीने उसे अच्छी तरह पहचान लिया। वहाँसे लौटकर सब राजकुमारोंने द्रोणाचार्यसे सब हाल कह सुनाया। अर्जुनने कहा, "गुरुदेव आपने मुझे हृदयसे लगाकर बड़े प्रेमसे यह बात कही थी कि 'मेरा कोई भी शिष्य तुमसे बढ़कर न होगा।' परन्तु यह आपका शिष्य एकलव्य तो सबसे और मुझसे भी बढ़कर है।" अर्जुनकी बात सुनकर द्रोणाचार्यने थोड़ी देरतक कुछ विचार किया और फिर उन्हें साथ लेकर उसी वनमें गये।

द्रोणाचार्यने अर्जुनके साथ वहाँ पहुँचकर देखा कि जटा-वल्कल धारण किये एकलव्य बाण-पर-बाण चला रहा है। शरीरपर मैल जम गया है, परन्तु उसे इस बातका ध्यान नहीं है। आचार्यको देखकर एकलव्य उनके पास आया और चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वह उनकी विधिपूर्वक पूजा करके हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा गया और बोला, 'आपका शिष्य सेवामें उपस्थित है। आ कीजिये।' द्रोणाचार्यने कहा, 'यदि तू सचमुच मेरा शिष्य तो मुझे गुरुदक्षिणा दे।' एकलव्यको बड़ी प्रसन्नता हुई उसने कहा, 'आज्ञा कीजिये। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नह जो मैं आपको न दे सकूँ।' द्रोणाचार्यने कहा, 'एकलव्य

तुम अपने दाहिने हाथका अँगूठा मुझे दे दो।' सत्यवादी एकलव्य अपनी प्रतिज्ञापर डटा रहा और उसने उत्साह तथा प्रसन्नतासे दाहिने हाथका अँगूठा काटकर गुरुदेवको सौंप दिया। इसके बाद उसकी बाण चलानेकी वह सफाई और फुर्ती नहीं रही।

एक बार द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने कारीगरसे एक नकली गीध बनवाया और उसे कुमारोंसे छिपाकर एक वृक्षपर टाँग दिया। तदनन्तर राजकुमारोंसे कहा, 'धनुषपर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ। तुम्हें निशाना लगाकर उस गीधका सिर उड़ाना होगा।' उन्होंने पहले युधिष्ठिरको आज्ञा दी; पूछा कि 'युधिष्ठिर! क्या तुम इस वृक्षपर बैठे गीधको देख रहे हो?' युधिष्ठिरने कहा, 'जी! मैं देख रहा हूँ।' द्रोणने पूछा, 'क्या तुम इस वृक्षको, मुझे और अपने भाइयोंको भी देख रहे हो?' युधिष्ठिर बोले, 'जी हाँ, मैं इस वृक्षको, आपको और अपने
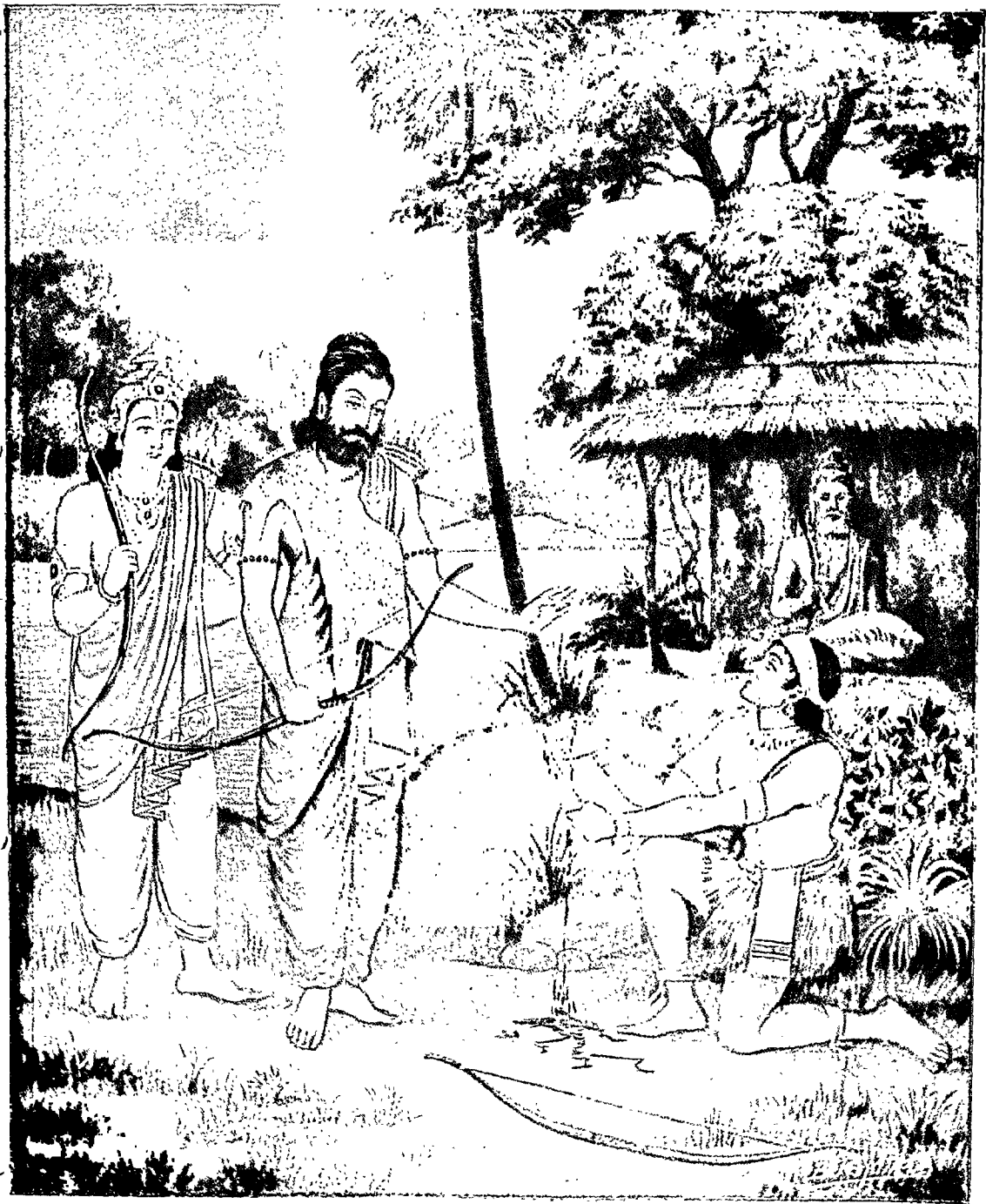
गुरुभक्त एकलव्यका आदर्श-त्याग

। भी देख रहा हूँ।' द्रोणाचार्यने कुछ खीझकर हुए कहा, 'हट जाओ, तुम यह निशाना नहीं मार इसके बाद उन्होंने दुर्योधन आदि राजकुमारोंको करके वहाँ खड़ा कराया और यही प्रश्न किया। ने वही उत्तर दिया, जो युधिष्ठिरने दिया था। ने सबको झिड़ककर वहाँसे हटा दिया।

न्तमें अर्जुनको बुलाकर उन्होंने कहा, 'देखो निशाने-

र, चूकना मत। धनुष चढ़ाकर मेरी आज्ञाकी बाट जोहो।' क्षणभर ठहरकर आचार्यने पूछा, 'क्या तुम इस वृक्षको, गीधको और मुझे देख रहे हो?' अर्जुनने कहा, 'भगवन्! मैं गीधके अतिरिक्त और कुछ नहीं देख रहा हूँ।' द्रोणाचार्यने पूछा, 'अर्जुन! भला बताओ तो, गीधकी आकृति कैसी है?' अर्जुन बोले, 'भगवन्! मैं तो केवल उसका सिर देख रहा हूँ। आकृतिका पता नहीं।' द्रोणाचार्य-का रोम-रोम आनन्दकी बाढ़से पुलकित हो गया। वे बोले, 'बेटा! बाण चलाओ।' अर्जुनने तत्काल बाणसे गीधका सिर काट गिराया। अर्जुनकी सफलता देखकर आचार्यने निश्चय कर लिया कि द्रुपदके विश्वासघातका बदला अर्जुन ही ले सकेगा।
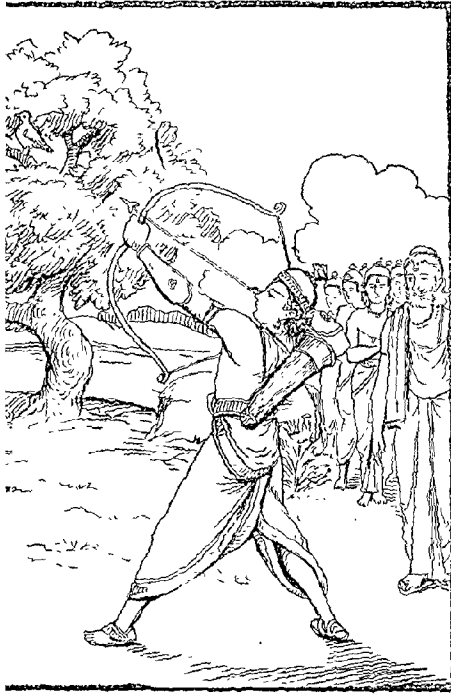
एक दिन गङ्गास्नान करते समय मगरने द्रोणाचार्यकी जाँघ पकड़ ली। द्रोण स्वयं उससे छूट सकते थे, फिर भी उन्होंने शिष्योंसे कहा कि 'मगरको मारकर मुझे बचाओ।' उनकी बात पूरी होनेके पहले ही अर्जुनने पाँच पैने बाणोंसे पानीमें डूबे मगरको बेध दिया। और सभी राजकुमार हक्के-बक्के होकर अपने-अपने स्थानपर ही खड़े रहे। मगर मर गया और आचार्यकी जाँघ छूट गयी। इससे प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य बोले, 'बेटा अर्जुन! मैं तुम्हें ब्रह्मशिर नामका दिव्य अस्त्र प्रयोग और संहारके साथ बतलाता हूँ। यह अमोघ है। इसे कभी किसी साधारण मनुष्यपर न चलाना। यह सारे जगत्को जला डालनेकी शक्ति रखता है।' अर्जुनने हाथ जोड़कर अस्त्र स्वीकार किया। द्रोणाचार्यने कहा, 'अब पृथ्वीपर तुम्हारे समान कोई धनुर्धर न होगा।'

रङ्गमण्डपमें राजकुमारोंके अस्त्रकौशलका प्रदर्शन और कर्णको अङ्ग देशका राजा बनाना

ैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्रोणाचार्यने मारोंको अस्त्रविद्यामें निपुण देखकर कृपाचार्य, सोमदत्त, ह, भीष्म, व्यास और विदुर आदिके सामने धृतराष्ट्रसे 'राजन्! सभी राजकुमार सब प्रकारकी विद्यामें निपुण के हैं। आपकी इच्छा हो, अनुमति दें तो उनकी वेद्याका कौशल एक दिन सबके सामने दिखाया जाय।' ष्ट्रने प्रसन्न होकर कहा, 'आचार्य! आपने हमारा बहुत उपकार किया है। आप जिस समय, जिस जगह, जिस : अस्त्र-कौशलका प्रदर्शन उचित समझते हों, करें। उसके लिये जिस प्रकारकी तैयारी आवश्यक हो, उसकी आज्ञा करें।' तदनन्तर उन्होंने विदुरजीसे कहा, 'विदुर! आचार्यके आज्ञानुसार तैयारी कराओ। यह काम मुझे बहुत प्रिय है।' द्रोणाचार्यने रङ्गमण्डपके लिये एक झाड़-झंखाड़से रहित समतल भूमि पसंद की। जलाशयोंके कारण वह भूमि और भी सुहावनी थी। शुभ मुहूर्तमें पूजा करके रङ्गमण्डप-की नींव डाली गयी। रङ्गमण्डप तैयार होनेपर उसमें अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्र टाँगे गये और राजघरानेके स्त्री-पुरुषोंके लिये उचित स्थान बनवाये गये। स्त्रियों और साधारण

दर्शकोंके स्थान अलग-अलग थे। नियत दिन आनेपर राजा धृतराष्ट्र भीष्म एवं कृपाचार्यके साथ वहाँ आये। चारों ओर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। साथ ही गान्धारी, कुन्ती एवं बहुत-सी राजपरिवारकी महिलाएँ भी अपनी-अपनी दासियोंके साथ आयीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आकर यथास्थान बैठ गये। वहाँकी भीड़ उमड़ते समुद्रके समान जान पड़ी। बाजे बजने लगे। आचार्य द्रोण श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत और श्वेत पुष्पोंकी माला पहने अपने पुत्र अश्वत्थामाके साथ वहाँ आये। उनके सिरके और मूँछ-दाढ़ीके बाल भी श्वेत ही थे।

द्रोणाचार्यने समयानुसार देवताओंकी पूजा कर वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ करवाया। राजकुमारोंने पहले धनुष-बाणका कौशल दिखलाया। तदनन्तर रथ, हाथी और घोड़ोंपर चढ़कर अपनी-अपनी युद्ध-चातुरी प्रकट की। उन्होंने आपसमें कुश्ती भी लड़ी। इसके बाद ढाल-तलवार लेकर तरह-तरहके पैंतरे बदलने तथा हस्तलाघव दिखलाने लगे। सब लोग उनकी फुर्ती, सफाई, शोभा, स्थिरता और मुट्ठीकी मजबूती आदि देखकर प्रसन्न हुए। भीमसेन और दुर्योधन दोनों हाथमें गदा लेकर रङ्गभूमिमें उतरे। वे पर्वत-शिखरके समान हट्टे-कट्टे वीर लंबी भुजा और कसी कमरके कारण बड़े ही शोभायमान हुए। वे मदमत्त हाथियोंके समान चिग्घाड़-चिग्घाड़कर पैंतरे बदलने और चक्कर काटने लगे। विदुरजी धृतराष्ट्रको और कुन्ती गान्धारीको सब बातें बतलाती जाती थीं। उस समय दर्शकोंमें दो दल हो गये। कुछ लोग भीमसेनकी जय बोलते तो कुछ लोग राजा दुर्योधनकी। समुद्रके समान उमड़ती हुई भीड़का कोलाहल सुनकर द्रोणाचार्यने अश्वत्थामासे कहा, 'बेटा! इन्हें अब रोक दो। बात बढ़ जायगी तो दर्शक गड़बड़ कर बैठेंगे।' अश्वत्थामाने उनकी आज्ञाका पालन किया।

द्रोणाचार्यने खड़े होकर बाजे बंद करवाये और गम्भीर स्वरसे कहा, 'अब आपलोग अर्जुनका अस्त्रकौशल देखें। ये मुझे सबसे अधिक प्यारे हैं।' अर्जुन रङ्गभूमिमें आये। उन्होंने पहले आग्नेयास्त्रसे आग पैदा की, फिर वारुणास्त्रसे जल उत्पन्न करके उसे बुझा दिया। वायव्यास्त्रसे आँधी चला दी, पर्जन्यास्त्रसे बादल पैदा किये, भौमास्त्रसे पृथ्वी और पर्वतास्त्रसे पर्वत प्रकट कर दिये। अन्तर्धानास्त्रके द्वारा वे स्वयं छिप गये। वे क्षणभरमें बहुत लंबे हो जाते, तो पलक मारते बहुत छोटे। लोगोंने चकित होकर देखा कि वे दमभरमें रथके धुरेपर, तो उसी क्षण रथके बीचमें और पलक मारते पृथ्वीपर अस्त्रकौशल दिखा रहे हैं। उन्होंने बड़ी फुर्ती, सफाई और खूबसूरतीके साथ सुकुमार, सूक्ष्म और भारी निशाने उड़ाकर अपनी निपुणता दिखायी। उन्होंने लोहेके बने सूअरको इतनी फुर्तीसे पाँच बाण मारे कि लोग एक ही बाण देख पाये। चञ्चल निशानेको भी वेधा। इसके बाद खड्गयुद्ध, गदायुद्ध तथा धनुर्युद्धके अनेक पैंतरे तथा हाथ दिखलाये।

इसी समय कर्णने रङ्गभूमिके भीतर प्रवेश किया। जान पड़ा मानो कोई जीता-जागता पहाड़ टहलता हुआ आ रहा है। कर्णने अर्जुनको सम्बोधित करके कहा—'अर्जुन! घमण्ड न करना। मैं तुम्हारे दिखाये हुए काम और भी विशेषताके साथ दिखाऊँगा।' उस समय दर्शकोंमें तहलका मच गया और वे इस प्रकार खड़े हो गये, मानो मशीनसे उन्हें एक साथ खड़ा कर दिया गया हो। कर्णकी बात सुनकर अर्जुन एक बार तो लज्जित-से हो गये, पर फिर उन्हें क्रोध आ गया। कर्णने द्रोणाचार्यकी आज्ञासे वे सभी कौशल दिखलाये, जिन्हें अर्जुनने दिखलाया था। इससे दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कर्णको गले लगाकर कहा, 'मेरे सौभाग्यसे ही आपका आगमन हुआ है। हम और हमारा राज्य आपका ही है। इच्छानुसार इसका उपभोग कीजिये।' कर्णने कहा, 'मैं तो स्वयं आपके साथ मित्रता करनेको उत्सुक हूँ। इस समय मैं अर्जुनसे द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता हूँ।' दुर्योधनने कहा, 'आप हमारे साथ रहकर सब प्रकारके भोग भोगिये, मित्रोंका प्रिय कीजिये और शत्रुओंके सिरपर पैर रखिये।'

अर्जुनको ऐसा जान पड़ा, मानो कर्ण भरी सभामें मेरा तिरस्कार कर रहा है। उन्होंने कर्णको पुकारकर कहा, 'कर्ण! बिना बुलाये आनेवालों और बिना बुलाये बोलनेवालोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें मेरे हाथसे मरनेपर मिलेगी।' कर्णने कहा, 'अजी, यह रङ्गमण्डप तो सबके लिये है। क्या इसपर केवल तुम्हारा ही अधिकार है? कमजोरकी तरह आक्षेप क्या करते हो? साहस हो तो धनुष-बाणसे बातचीत करो। मैं तुम्हारे गुरुके सामने ही तुम्हारा सिर धड़से अलग किये देता हूँ।' गुरु द्रोणकी आज्ञासे अर्जुन द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये कर्णके पास जा पहुँचे। कर्ण भी धनुष-बाण लेकर खड़ा हो गया।

इतनेमें नीतिनिपुण कृपाचार्यने दोनोंको द्वन्द्वयुद्धके

लिये तैयार देखकर कहा, 'कर्ण ! पाण्डुनन्दन अर्जुन कुन्तीका सबसे छोटा पुत्र है। इस कुरुवंशशिरोमणिका तुम्हारे साथ युद्ध होने जा रहा है, इसलिये तुम भी अपने माँ-बाप और वंशका परिचय बतलाओ। यह जान लेनेपर ही युद्ध करने-न-करनेका निश्चय होगा। क्योंकि राजकुमार अज्ञात-कुल-शील अथवा नीच वंशके पुरुषके साथ द्वन्द्वयुद्ध नहीं करते।' कर्णपर मानो सौ घड़ा पानी पड़ गया। उसका शरीर श्रीहीन हो गया, मुँह लज्जासे झुक गया। दुर्योधनने कहा, 'आचार्यजी ! शास्त्रके अनुसार उच्च कुलके पुरुष, शूरवीर और सेनापति—तीनों ही राजा हो सकते हैं। यदि अर्जुन कर्णके साथ इसलिये नहीं लड़ना चाहते कि वह राजा नहीं है तो मैं कर्णको अङ्गदेशका राज्य देता हूँ।' यह

कहकर दुर्योधनने कर्णको सुवर्ण-सिंहासनपर बैठाया और तत्काल अभिषेक कर दिया। उस समय कर्णके धर्मपिता अधिरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका दुपट्टा खिसक रहा था, शरीर पसीनेसे लथपथ था और दुर्बल होनेके कारण उसका अंजर-पंजर दीख रहा था। वह काँपता-काँपता कर्णके पास आया और 'बेटा-बेटा !' कहकर दुलार करने लगा। कर्णने धनुष छोड़कर बड़े सम्मानसे उसके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। अभी उसका सिर अभिषेकके जलसे भींग रहा था। अधिरथने झटपट कपड़ेके छोरसे अपना पैर ढँक लिया, उसे छातीसे लगाया तथा प्रेमाश्रुसे उसका सिर भिगो दिया। अधिरथका ऐसा व्यवहार देखकर पाण्डवोंने निश्चय कर लिया कि यह सूतपुत्र है। भीमसेनने हँसते हुए कहा, 'अरे सूतपुत्र ! तू अर्जुनके हाथों मरने योग्य भी नहीं है। तेरे वंशके अनुरूप तो यह है कि झटपट घोड़ोंकी चाबुक सँभाल ले। अरे नीच ! तू अंग देशका राज्य करने योग्य नहीं है। भला, कहीं कुत्ता यज्ञके हविष्यका अधिकारी होता है।' कर्ण लंबी साँस लेकर सूर्यकी ओर देखने लगा।

उस समय महाबली दुर्योधन मदमत्त हाथीके समान भाइयोंके झुंडमेंसे उछलकर निकल आया और भीमसेनसे बोला, 'भीमसेन ! तुम्हें ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये। क्षत्रियोंमें बलकी श्रेष्ठता ही सर्वमान्य है। इसलिये नीच कुलके शूरवीरके साथ भी युद्ध करना ही चाहिये। शूरवीर और नदियोंकी उत्पत्तिका ज्ञान बड़ा कठिन है। कर्ण स्वभावसे ही कवच-कुण्डलधारी और सर्वलक्षणसम्पन्न है। इस सूर्यके समान तेजस्वी कुमारको भला, कोई सूतपत्नी जन सकती है। कर्ण अपने बाहुबल तथा मेरी सहायतासे केवल अङ्ग देशका ही नहीं, सारी पृथ्वीका शासन कर सकता है। मेरा यह काम जिससे न सहा जाता हो, वह रथपर बैठकर धनुषपर डोरी चढ़ावे।' सारे रङ्गमण्डपमें हाहाकार मच गया। अबतक सूर्यास्त हो गया था। दुर्योधन कर्णका हाथ पकड़कर वहाँसे बाहर निकल गया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा भीष्मजीके साथ पाण्डव भी अपने-अपने निवासस्थानपर चले गये।

द्रुपदका पराभव

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब द्रोणाचार्यने देखा कि सभी राजकुमार अस्त्रविद्याके अभ्यासमें पूर्णतः निपुण हो चुके हैं, तब उन्होंने निश्चय किया कि अब गुरुदक्षिणा लेनेका समय आ गया है। उन्होंने सब राजकुमारोंको अपने पास बुलाकर कहा, 'तुमलोग पाञ्चालराज द्रुपदको युद्धमें पकड़कर ले आओ। यही मेरे लिये सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी।' सबने बड़ी प्रसन्नतासे गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके साथ शस्त्र धारण कर रथपर सवार हो द्रुपदनगरकी यात्रा कर दी। दुर्योधन, कर्ण, युयुत्सु, दुःशासन और दूसरे राजकुमार पहले आक्रमण करके मैं

पकड़ूँगा—ऐसा निश्चय करके आपसमें स्पर्द्धा करने लगे। उन्होंने क्रमशः देशमें और फिर राजधानीमें प्रवेश किया। पाञ्चालराज द्रुपदने बड़ी शीघ्रतासे किलेसे बाहर निकलकर अपने भाइयोंके साथ आक्रमणकारियोंपर बाणवर्षा शुरू कर दी।

अर्जुनने दुर्योधन आदि कौरवोंको बहुत घमण्ड करते देखकर पहले ही द्रोणाचार्यसे कहा था, 'आचार्यचरण! इन लोगोंको पहले अपना पराक्रम दिखा लेने दीजिये। ये लोग पाञ्चालराजको नहीं पकड़ सकेंगे। इनके बाद हमलोगोंकी बारी आयेगी।' अर्जुन अपने भाइयोंके साथ नगरसे आधा कोस इधर ही ठहर गये थे। उधर द्रुपदने अपने बाणोंकी बौछारसे कौरवोंकी सेनाको चकित कर दिया। वे इतनी फुर्ती और सफाईसे बाण चला रहे थे कि कौरव भयवश उन्हें अनेक रूपोंमें देखने लगे। जिस समय द्रुपद घमासान बाण-वर्षा कर रहे थे उस समय शङ्ख, मेरी, मृदङ्ग और सिंहनादसे सारी राजधानी गूँज उठी। धनुषकी टंकार आकाशका स्पर्श करने लगी। इधर दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु और दुःशासन आदि भी बाण चलानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते थे। द्रुपद अलातचक्र (बनेठी) की तरह घूम-घूमकर अकेले ही सबका सामना कर रहे थे। उस समय पाञ्चालराजकी राजधानीके सभी साधारण और असाधारण नागरिक—जिनमें बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ भी थीं—लाठी, मूसल आदि लेकर निकल पड़े और बरसते हुए बादलोंके समान कौरवोंपर टूट पड़े। कौरवोंकी सेनापर ऐसी मार पड़ी कि वे उस भयङ्कर मारके सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सके, रोते-चिल्लाते पाण्डवोंके पास भाग आये।

कौरवोंका करुणक्रन्दन सुनकर पाण्डवोंने द्रोणाचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया और रथपर सवार हुए। अर्जुनने युधिष्ठिरको रोक दिया। नकुल और सहदेवको अपने रथके चक्कोंका रक्षक बनाया। भीमसेन हाथमें भीषण गदा लेकर सेनाके आगे-आगे स्वयं चलने लगे। अभी द्रुपद आदि वीर कौरवोंको हराकर हर्षनाद कर ही रहे थे कि अर्जुनका रथ दिशाओंको गुञ्जायमान करता हुआ वहाँ जा पहुँचा। भीमसेन दण्डपाणि कालके समान हाथमें गदा लेकर द्रुपदकी सेनाके भीतर घुस गये और गदा मार-मारकर हाथियोंके सिर तोड़ने लगे। उन्होंने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—समस्त सेनाको तहस-नहस कर दिया। अर्जुनने उस महान् और विलक्षण युद्धमें बाणोंकी ऐसी झड़ी लगायी कि पाञ्चालराजकी सारी सेना ढक गयी। पहले सत्यजित्ने अर्जुनपर बड़ा भीषण आक्रमण किया, परन्तु अर्जुनने थोड़ी ही देरमें उसे युद्धसे विमुख कर दिया। इसके बाद अर्जुनने द्रुपदका धनुष : ध्वजा काटकर जमीनपर गिरा दिये और पाँच बाणोंसे : घोड़ों तथा सारथिको मारा। अभी द्रुपदराज दूसरा ध उठाना ही चाहते थे कि अर्जुन हाथमें खड्ग लेकर अ रथसे कूद पड़े और द्रुपदके रथपर जाकर उन्हें पकड़ लिय जब अर्जुन द्रुपदको लेकर द्रोणाचार्यके पास चले, तब र राजकुमार द्रुपदकी राजधानीमें लूटपाट मचाने लगे अर्जुनने कहा, 'भैया भीमसेन! राजा द्रुपद कौरवोंके सम्बन हैं। इनकी सेनाका संहार मत कीजिये, केवल गुरुदक्षिणारू द्रुपदको ही गुरुके अधीन कर दीजिये।' यद्यपि भीमसे अभी लड़नेसे तृप्त नहीं हुए थे, फिर भी उन्होंने अर्जुन बात मान ली और लौट आये।

इस प्रकार पाण्डव द्रुपदको पकड़कर द्रोणाचार्यके पा ले आये। अब उनका घमण्ड चूर-चूर हो चुका था, धन भ छिन गया था। वे सर्वथा द्रोणाचार्यके अधीन हो रहे थे उनकी यह स्थिति देखकर आचार्य द्रोण बोले, 'द्रुपद! मैंने बलपूर्वक तुम्हारे देश और नगरको रौंद डाला है। अब तुम्हारा जीवन तुम्हारे शत्रुके अधीन है। क्या तुम पुरानी मित्रताको चालू रखना चाहते हो?' उन्होंने तनिक हँसकर और भी कहा, 'द्रुपद! तुम प्राणोंसे निराश मत होओ। हम तो स्वभावसे ही क्षमाशील ब्राह्मण हैं। बचपनमें हमलोग एक साथ खेला करते थे। वह प्रेमसम्बन्ध अब भी है। राजन्! मैं चाहता हूँ कि हमलोग फिर वैसे ही मित्र बन जायँ। मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम आधे राज्यके स्वामी रहो। तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है, वह राजाका सखा नहीं हो सकता। इसलिये मैं भी तुम्हारा आधा राज्य लेकर राजा हो गया हूँ। तुम गङ्गाजीके दक्षिणतटके राजा रहो और मैं उत्तर तटका। अब तुम मुझे अपना मित्र समझो।' द्रुपदने कहा, 'ब्रह्मन्! आप-जैसे पराक्रमी उदारहृदय महात्माओंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मैं आपसे प्रसन्न हूँ और आपका अनन्त प्रेम चाहता हूँ।' अब द्रोणने उन्हें मुक्त कर दिया तथा बड़ी प्रसन्नतासे सत्कार करके आधा राज्य दे दिया। द्रुपद माकन्दी-प्रदेशके श्रेष्ठ नगर काम्पिल्यमें रहने लगे। उसे दक्षिण-पाञ्चाल कहते हैं, वहाँ चर्मण्वती नदी है। इस प्रकार यद्यपि द्रोणने द्रुपदको पराजित करके भी उनकी रक्षा ही की, परन्तु द्रुपदके मनमें सन्तोष नहीं हुआ। इधर अहिच्छत्र-प्रदेशकी अहिच्छत्रा नगरीमें द्रोणाचार्य रहने लगे। अर्जुनके पराक्रमसे ही उन्हें यह राज्य प्राप्त हुआ था।

युधिष्ठिरका युवराजपद, उनके गुणप्रभावकी वृद्धिसे धृतराष्ट्रको चिन्ता, कणिककी कूटनीति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! द्रुपदको जीत लेनेके एक वर्ष बाद राजा धृतराष्ट्रने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको युवराजपदपर अभिषिक्त कर दिया। एक तो युधिष्ठिरमें धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, दयालुता, नम्रता और अविचल प्रेम आदि बहुत-से लोकोत्तर गुण थे; दूसरे सारी प्रजा चाह रही थी कि युधिष्ठिर ही युवराज हों। युवराज होनेके अनन्तर थोड़े ही दिनोंमें धर्मराज युधिष्ठिरने अपने शील, सदाचार और विचारशीलताके द्वारा प्रजाके हृदयपर अपने सद्‌गुणोंकी ऐसी छाप बैठा दी कि लोग उनके उदारचरित्र पिताको भी भूलने लगे।

इधर भीमसेनने बलरामजीसे खड्ग, गदा और रथके युद्धकी विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की। युद्धकी शिक्षा पूरी हो जानेपर वे अपने भाइयोंके अनुकूल रहने लगे। कई विशेष अस्त्र-शस्त्रोंके सञ्चालनमें, फुर्ती और सफाईमें उन दिनों अर्जुनके समान कोई योद्धा नहीं था। द्रोणाचार्यका ऐसा ही निश्चय था। उन्होंने एक दिन कौरवोंकी भरी सभामें अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन ! देखो, मैं महर्षि अगस्त्यके शिष्य अग्निवेश्यका शिष्य हूँ। उन्हींसे मैंने ब्रह्मशिर नामक अस्त्र प्राप्त किया था, जो तुम्हें दे दिया। उसके जो नियम हैं, वे तुम्हें बतला चुका हूँ। अब मुझे तुम अपने भाई-बन्धुओंके सामने यह गुरु-दक्षिणा दो कि यदि युद्धमें मेरा और तुम्हारा मुकाबिला हो तो तुम मुझसे लड़नेमें भी मत हिचकना।' अर्जुनने गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके चरणोंका स्पर्श करके बायीं ओरसे निकल गये। पृथ्वीमें सर्वत्र यह बात फैल गयी कि अर्जुनके समान श्रेष्ठ धनुर्धर और कोई नहीं है।

भीमसेन और अर्जुनके समान ही सहदेवने भी बृहस्पतिसे सम्पूर्ण नीतिशास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की थी। अतिरथी नकुल भी बड़े विनीत और तरह-तरहके युद्धोंमें कुशल थे। अर्जुनने तो सौवीर देशके राजा दत्तामित्रको भी, जो बड़ा बली और मानी था, जिसने गन्धर्वोंका उपद्रव रहते हुए भी तीन वर्ष-तक लगातार यज्ञ किया था और जिसे स्वयं राजा पाण्डु भी नहीं जीत सके थे, युद्धमें मार गिराया। इसके अतिरिक्त भीमसेनकी सहायतासे पूर्व दिशा और बिना किसीकी सहायता-के दक्षिण दिशापर भी विजय प्राप्त कर ली। दूसरे राज्योंके धन-वैभव कौरवोंके राज्यमें आने लगे, उनके राज्यकी बड़ी वृद्धि हुई। देश-देशमें पाण्डवोंकी प्रसिद्धि हो गयी और सब उनकी ओर आकर्षित होने लगे।

यह सब देख-सुनकर यकायक धृतराष्ट्रके भावमें परिवर्तन हो गया। दूषित भावके उद्रेकके कारण वे अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। जब उनकी आतुरता अत्यन्त बढ़ गयी, तब उन्होंने अपने श्रेष्ठ मन्त्री राजनीतिविशारद कणिकको बुलवाया। धृतराष्ट्रने कहा, 'कणिक ! दिनोंदिन पाण्डवोंकी बढ़ती ही होती जा रही है। मेरे चित्तमें बड़ी जलन हो रही है। तुम निश्चितरूपसे बतलाओ कि उनके साथ मुझे सन्धि करनी चाहिये या विग्रह ! मैं तुम्हारी बात मानूँगा।'

कणिकने कहा—राजन् ! आप मेरी बात सुनिये, मुझपर रुष्ट न होइयेगा। राजाको सर्वदा दण्ड देनेके लिये

उद्यत रहना चाहिये और दैवके भरोसे न रहकर पौरुष प्रकट करना चाहिये। अपनेमें कोई कमजोरी न आने दे और हो भी तो किसीको मालूम न होने दे। दूसरोंकी कमजोरी जानता रहे। यदि शत्रुका अनिष्ट प्रारम्भ कर दे तो उसे बीचमें न रोके। काँटेकी नोक भी यदि भीतर रह जाय तो बहुत दिनों-तक मवाद देती रहती है। शत्रुको कमजोर समझकर आँख नहीं मूँद लेनी चाहिये। यदि समय अनुकूल न हो तो उसकी ओरसे आँख-कान बंद कर ले। परन्तु सावधान रहे सर्वदा। शरणागत शत्रुपर भी दया नहीं दिखानी चाहिये। शत्रुके

तीन (मन्त्र, बल और उत्साह), पाँच (सहाय, सहायक, साधन, उपाय, देश और कालका विभाग) तथा सात (साम, दान, भेद, दण्ड, माया, ऐन्द्रजालिक प्रयोग और शत्रुके गुप्त कार्य) राज्याङ्गोंको नष्ट करता रहे। जबतक समय अपने अनुकूल न हो, तबतक शत्रुको कंधेपर चढ़ाकर भी ढोया जा सकता है। परन्तु समय आनेपर मटकेकी तरह पटककर उसे फोड़ डालना चाहिये। साम, दान, दण्ड, भेद आदि किसी भी उपायसे अपने शत्रुको नष्ट कर देना ही राजनीतिका मूल मन्त्र है।

धृतराष्ट्रने कहा—कणिक ! साम, दान, भेद अथवा दण्डके द्वारा किस प्रकार शत्रुका नाश किया जाता है—यह बात तुम ठीक-ठीक बतलाओ।

कणिकने कहा—"महाराज ! मैं आपको इस विषयमें एक कथा सुनाता हूँ। किसी वनमें एक बड़ा बुद्धिमान् और स्वार्थकोविद गीदड़ रहता था। उसके चार सखा—बाघ, चूहा, भेड़िया और नेवला भी वहीं रहते थे। एक दिन उन्होंने एक बड़ा बलवान् और हट्टा-कट्टा हरिणोंका सरदार देखा। पहले तो उन्होंने उसे पकड़नेकी चेष्टा की परन्तु असफल रहे। तदनन्तर उन लोगोंने आपसमें विचार किया। गीदड़ने कहा, 'यह हरिण दौड़नेमें बड़ा फुर्तीला, जवान और चतुर है। भाई बाघ ! तुमने इसे मारनेकी कई बार कोशिश की, पर सफलता न मिली। अब ऐसा उपाय किया जाय कि जब यह हरिण सो रहा हो तो चूहा भाई जाकर धीरे-धीरे इसका पैर कुतर लें। फिर आप पकड़ लीजिये तथा हम सब मिलकर इसे मौजसे खा जायें।' सबने मिल-जुलकर वैसा ही किया। हरिण मर गया। खानेके समय गीदड़ने कहा, 'अच्छा, अब तुमलोग स्नान कर आओ। मैं इसकी देख-भाल करता हूँ।' सबके चले जानेपर गीदड़ मन-ही-मन कुछ विचार करने लगा। तबतक बलवान् बाघ स्नान करके नदीसे लौट आया।

गीदड़को चिन्तित देखकर बाघने पूछा, 'मेरे चतुर मित्र ! तुम किस उधेड़-बुनमें पड़े हो ? आओ, आज इस हरिणको खाकर हमलोग मौज करें।' गीदड़ने कहा, 'बलवान् बाघ भाई ! चूहेने मुझसे कहा है कि बाघके बलको धिक्कार है ! हरिणको तो मैंने मारा है। आज वह बाघ मेरी कमाई खायेगा। सो भाई ! उसकी यह घमण्डभरी बात सुनकर मैं तो अब हरिणको खाना अच्छा नहीं समझता।' बाघने कहा—'अच्छा, ऐसी बात है ? उसने तो मेरी आँखें खोल दीं। अब मैं अपने बूतेपर पशुओंको मारकर खाऊँगा।' यह कहकर बाघ चला गया। उसी समय चूहा आया। गीदड़ने कहा, 'चूहा भाई ! नेवला मुझसे कह रहा था कि बाघके काटनेसे हरिणके मांसमें जहर मिल गया है। सो मैं तो इसे खाऊँगा नहीं, यदि तुम कहो तो मैं चूहेको खा जाऊँ। अब तुम जैसा ठीक समझो, करो।' चूहा डरकर अपने बिलमें घुस गया। अब भेड़ियेकी बारी आयी। गीदड़ने कहा, 'भेड़िया भाई ! आज बाघ तुमपर बहुत नाराज हो गया है। मुझे तो तुम्हारा भला नहीं दीखता। वह अभी बाघिनके साथ यहाँ आयेगा। जो ठीक समझो, करो।' भेड़िया दुम दबाकर भाग निकला। तबतक नेवला आया। गीदड़ने कहा, 'देख रे नेवले ! मैंने लड़कर बाघ, भेड़िये और चूहेको भगा दिया है। यदि तुझे कुछ घमण्ड हो तो आ, मुझसे लड़ ले और फिर हरिणका मांस खा।' नेवलेने कहा, 'जब सभी तुमसे हार गये तो मैं तुमसे लड़नेकी हिम्मत कैसे करूँ।' वह भी चला गया। अब गीदड़ अकेला ही मांस खाने लगा।

"राजन् ! चतुर राजाके लिये भी ऐसी ही बात है। डरपोकको भयभीत कर दे, शूरवीरको हाथ जोड़ ले। लोभीको कुछ दे दे और बराबर तथा कमजोरको पराक्रम दिखाकर वशमें कर ले। शत्रु चाहे कोई भी हो, उसे मार डालना चाहिये। सौगन्ध खाकर और धनकी लालच देकर जहर या धोखेसे भी शत्रुको ले बीतना चाहिये। मनमें द्वेष रहनेपर भी मुसकराकर बातचीत करनी चाहिये। मारनेकी इच्छा रखता और मारता हुआ भी मीठा ही बोले। मारकर कृपा करे, अफसोस करे और रोवे। शत्रुको सन्तुष्ट रक्खे, परन्तु उसकी चूक देखते ही चढ़ बैठे। जिनपर शङ्का नहीं होती, उन्हींपर अधिक शङ्का करनी चाहिये। वैसे लोग अधिक धोखा देते हैं। जो विश्वासपात्र नहीं हैं, उनपर तो विश्वास नहीं ही करना चाहिये। जो विश्वासपात्र हैं, उनपर भी विश्वास नहीं करना चाहिये। सर्वत्र पाखण्डी, तपस्वी आदिके वेषमें परीक्षित गुप्तचर रखने चाहिये। बगीचे, टहलनेके स्थान, मन्दिर, सड़क, तीर्थ, चौराहे, कूएँ, पहाड़, जंगल और सभी भीड़भाड़के स्थानोंमें गुप्तचरोंको अदलते-बदलते रहना चाहिये। वाणीका विनय और हृदयकी कठोरता, भयङ्कर काम करते हुए भी मुसकराकर बोलना—यह नीतिनिपुणताका चिह्न है। हाथ जोड़ना, सौगन्ध खाना, आश्वासन देना, पैर छूना और आशा बँधाना—ये ही सब ऐश्वर्यप्राप्तिके उपाय हैं। जो अपने

शत्रुसे सन्धि करके निश्चिन्त हो जाता है, उसका होश तब ठिकाने आता है जब उसका सर्वनाश हो जाता है। अपनी बातें केवल शत्रुसे ही नहीं, मित्रसे भी छिपानी चाहिये। किसीको आशा दे भी तो बहुत दिनोंकी। बीचमें अड़चन डाल दे। कारण-पर-कारण गढ़ता जाय। राजन्! आपको पाण्डुपुत्रोंसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। वे दुर्योधन आदिसे बलवान् हैं। आप ऐसा उपाय कीजिये कि उनसे कोई भय न रहे और पीछे पश्चात्ताप भी न करना पड़े। इससे अधिक और मैं क्या कहूँ।" यह कहकर कणिक अपने घर चला गया। धृतराष्ट्र और भी चिन्तातुर होकर सोच-विचार करने लगे।

पाण्डवोंको वारणावत जानेकी आज्ञा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनने देखा कि भीमसेनकी शक्ति असीम है और अर्जुनका अस्त्र-ज्ञान तथा अभ्यास विलक्षण है। उसका कलेजा जलने लगा। उसने कर्ण और शकुनिसे मिलकर पाण्डवोंको मारनेके बहुत उपाय किये, परन्तु पाण्डव सबसे बचते गये। विदुरकी सलाहसे उन्होंने यह बात किसीपर प्रकट भी नहीं की। नागरिक और पुरवासी पाण्डवोंके गुण देखकर भरी सभामें उनके गुणोंका बखान करने लगे। वे जहाँ-कहीं चबूतरोंपर इकट्ठे होते, सभा करते, वहीं इस बातपर जोर डालते कि 'पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरको राज्य मिलना चाहिये। धृतराष्ट्रको तो पहले ही अंधे होनेके कारण राज्य नहीं मिला, अब वे राजा कैसे हो सकते हैं। शान्तनुनन्दन भीष्म भी बड़े सत्यसन्ध और प्रतिज्ञापरायण हैं; वे पहले भी राज्य अस्वीकार कर चुके हैं, तो अब कैसे ग्रहण करेंगे। इसलिये हमें उचित है कि सत्य और करुणाके पक्षपाती, पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरको ही राजा बनावें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके राजा होनेसे भीष्म और धृतराष्ट्र आदिको भी कोई असुविधा न होगी। वे बड़े प्रेमसे उनकी सँभाल रक्खेंगे।'

प्रजाकी यह बात सुनकर दुर्योधन जलने लगा। वह जल-भुन और कुढ़कर धृतराष्ट्रके पास गया और उनसे कहने लगा, 'पिताजी! लोगोंके मुँहसे बड़ी बुरी बकझक सुननेको मिल रही है। वे भीष्मको और आपको हटाकर पाण्डवोंको राजा बनाना चाहते हैं। भीष्मको तो इसमें कोई आपत्ति है नहीं, परन्तु हमलोगोंके लिये यह बहुत बड़ा खतरा है। पहले ही भूल हो गयी, पाण्डुने राज्य स्वीकार कर लिया और आपने अपनी अन्धताके कारण मिलता हुआ राज्य भी अस्वीकार कर दिया। यदि युधिष्ठिरको राज्य मिल गया तो फिर यह उन्हींकी वंश-परम्परामें चलेगा और हमें कोई

नहीं पूछेगा। हमें और हमारी सन्तानको दूसरोंके आश्रित रहकर नरकके समान कष्ट न भोगना पड़े, इसके लिये आप कोई-न-कोई युक्ति सोचिये। यदि पहले ही आपने राज्य ले लिया होता तो कहनेकी कोई बात ही नहीं होती। अब क्या किया जाय?' धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधनकी बात और कणिककी नीति सुनकर दुविधामें पड़ गये। दुर्योधनने कर्ण, शकुनि और दुःशासनके साथ विचार करके धृतराष्ट्रसे कहा, 'पिताजी! आप कोई सुन्दर-सी युक्ति सोचकर पाण्डवोंको यहाँसे वारणावत भेज दीजिये।' धृतराष्ट्र सोच-विचारमें पड़ गये।

धृतराष्ट्रने कहा—बेटा! मेरे भाई पाण्डु बड़े धर्मात्मा थे। सबके साथ और विशेष रूपसे मेरे साथ वे बड़ा उत्तम

व्यवहार करते थे। वे अपने खाने-पीनेकी भी परवा नहीं रखते थे, सब कुछ मुझसे कहते और मेरा ही राज्य समझते। उनका पुत्र युधिष्ठिर भी वैसा ही धर्मात्मा, गुणवान्, यशस्वी और वंशके अनुरूप है। हमलोग बलपूर्वक उसे वंशपरम्परागत राज्यसे कैसे च्युत कर दें, विशेष करके जब उसके सहायक भी बहुत बड़े-बड़े हैं। पाण्डुने मन्त्री, सेना और उनकी वंश-परम्पराका खूब भरण-पोषण किया है। सारे नागरिक युधिष्ठिरसे सन्तुष्ट रहते हैं। वे बिगड़कर हमलोगोंको मार डालें तो ?

दुर्योधनने कहा—पिताजी ! इस भावी आपत्तिके विषयमें मैंने पहले ही सोचकर अर्थ और सम्मानके द्वारा प्रजाको प्रसन्न कर लिया है। वह प्रधानतया हमारी सहायता करेगी। खजाना और मन्त्री मेरे अधीन हैं ही। इस समय यदि आप नम्रताके साथ पाण्डवोंको वारणावत भेज दें तो राज्यपर मैं पूरी तरह कब्जा कर लूँगा। उसके बाद वे आ जायँ तो कोई हानि नहीं।

धृतराष्ट्रने कहा—बेटा ! मैं भी तो यही चाहता हूँ। परन्तु यह पापपूर्ण बात उनसे कहूँ कैसे ? भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुरकी इसमें सम्मति नहीं है। उनका कौरव और पाण्डवोंपर समान प्रेम है। यह विषमता उन्हें अच्छी नहीं मालूम होगी। यदि हम ऐसा करेंगे, तो हमपर उन कौरव महानुभाव और जनताका कोप क्यों न होगा ?

दुर्योधनने कहा—पिताजी ! भीष्म तो मध्यस्थ हैं। अश्वत्थामा मेरे पक्षमें है, इसलिये द्रोण उसके विरुद्ध नहीं जा सकते। कृपाचार्य अपनी बहिन, बहनोई और भांजेको कैसे छोड़ेंगे। रह गयी बात विदुरकी, वे छिपे-छिपे पाण्डवोंसे मिले हैं। पर वे अकेले करेंगे क्या ? इसलिये आप बिना शङ्का-सन्देहके कुन्ती और पाण्डवोंको वारणावत भेज दीजिये, तभी मेरी जलन मिटेगी।

यह कहकर दुर्योधन तो प्रजाको प्रसन्न करनेमें लग गया और धृतराष्ट्रने कुछ ऐसे चतुर मन्त्रियोंको नियुक्त किया, जो वारणावतकी प्रशंसा करके पाण्डवोंको वहाँ जानेके लिये उकसावें। कोई उस सुन्दर और सम्पन्न देशकी प्रशंसा करता तो कोई नगरकी। कोई वहाँके मेलेका बखान करते नहीं अघाता। इस प्रकार वारणावत नगरकी बहुत प्रशंसा सुनकर पाण्डवोंका मन कुछ-कुछ वहाँ जानेके लिये उत्सुक हो गया। अवसर देखकर धृतराष्ट्रने कहा, 'प्यारे पुत्रो ! लोग मुझसे वारणावतकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। यदि तुमलोग वहाँ जाना चाहते हो तो हो आओ। आजकल वहाँ मेलेकी बड़ी धूम है। देखो, वहाँ तुमलोग ब्राह्मणों और गवैयोंको खूब दान देना तथा तेजस्वी देवताओंकी तरह विहार करके फिर यहाँ लौट आना।' युधिष्ठिर धृतराष्ट्रकी चाल तुरंत समझ गये। उन्होंने अपनेको असहाय देखकर कहा, 'आपकी जैसी आज्ञा, हमें क्या आपत्ति है।' उन्होंने कुरुवंशके बाह्लीक, भीष्म, सोमदत्त आदि बड़े-बूढ़ों, द्रोणाचार्य आदि तपस्वी ब्राह्मणों तथा गान्धारी आदि माताओंसे दीनतापूर्वक कहा, 'हम राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे अपने साथियोंके सहित वारणावत जा रहे हैं। आपलोग प्रसन्न मनसे हमें आशीर्वाद दें कि वहाँ पाप हमारा स्पर्श न कर सके।' सबने कहा, 'सर्वत्र तुम्हारा कल्याण हो। किसीसे कोई अनिष्ट न हो। मङ्गल हो।'

वारणावतमें लाक्षाभवन, पाण्डवोंकी यात्रा, विदुरका गुप्त उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको वारणावत जानेकी आज्ञा दे दी, तब दुरात्मा दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने मन्त्री पुरोचनको एकान्तमें बुलाया और उसका दाहिना हाथ पकड़कर कहा, 'भाई पुरोचन ! इस पृथ्वीको भोगनेका जैसा मेरा अधिकार है, वैसा ही तुम्हारा भी है। तुम्हारे सिवा मेरा ऐसा और कोई विश्वासपात्र और सहायक नहीं है, जिसके साथ मैं इतनी गुप्त सलाह कर सकूँ। मैं तुम्हें यह काम सौंपता हूँ कि मेरे शत्रुओंकी जड़ उखाड़ फेंको। होशियारीसे काम करना, किसीको मालूम न हो। पिताजीके आज्ञानुसार पाण्डव कुछ दिनतक वारणावत रहेंगे। तुम पहले ही वहाँ चले जाओ। वहाँ नगरके किनारेपर सन, सर्जरस (राल) और लकड़ी आदिसे ऐसा भवन बनवाओ जो आगसे भड़क उठे। उसकी भीतोंपर घी, तेल, चर्बी और लाख मिली हुई मिट्टीका

करा देना। पाण्डवोंको परीक्षा करनेपर भी इस बातका पता
ले। उसीमें कुन्ती, पाण्डव और उनके मित्रोंको रखना।
दिव्य आसन, वाहन और शय्या सजा देना। फिर वे
सपूर्वक निश्चिन्त होकर सो जायँ तो दरवाजेपर आग
देना। इस प्रकार जब वे अपने रहनेके घरमें ही जल
गे तो हमारी निन्दा भी न होगी।' पुरोचनने वैसा
की प्रतिज्ञा की और एक खच्चर जुती हुई तेज गाड़ीसे
को चल दिया। वहाँ जाकर उसने दुर्योधनके आज्ञानुसार
तैयार कराया।

समय आनेपर पाण्डवोंने यात्राके लिये शीघ्रगामी और
घोड़ोंको रथमें जुड़वाया। उन लोगोंने बड़े दीन-
से बड़े-बूढ़ोंके चरणोंका स्पर्श किया, छोटोंका आलिङ्गन
और फिर यात्रा की। उस समय कुरुवंशके बहुत-से
बूढ़े, बुद्धिमान् विदुर और सारी प्रजा युधिष्ठिरके
पीछे चलने लगी। पाण्डवोंको उदास देखकर निर्भय
णोंने आपसमें कहा, 'राजा धृतराष्ट्रकी बुद्धि मन्द हो
है। तभी तो वे अपने लड़कोंका पक्षपात करते हैं।
की धर्मदृष्टि लुप्त हो रही है। पाण्डवोंने तो किसीका कुछ
ाड़ा नहीं है। अपने पिताका ही राज्य उन्हें प्राप्त हो रहा
फिर धृतराष्ट्र इसे भी क्यों नहीं सहते। पता नहीं, धर्मात्मा
म यह अन्याय कैसे सह रहे हैं। हमलोग यह सब नहीं
चाहते। सह भी नहीं सकते। हम सब अब हस्तिनापुरको
छोड़कर वहीं चलेंगे, जहाँ राजा युधिष्ठिर रहेंगे।' पुरवासियोंकी
बात सुन तथा उनका दुःख जानकर युधिष्ठिरने कहा,
'पुरवासियो! राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता, परम मान्य और
गुरु हैं। वे जो कुछ कहेंगे, वह हम निःशङ्कभावसे करेंगे।
यह हमारी प्रतिज्ञा है। यदि आपलोग हमारे हितैषी और
मित्र हैं तो हमारा अभिनन्दन कीजिये और आशीर्वादपूर्वक
हमें दाहिने करके लौट जाइये। जब हमारे काममें कोई
अड़चन पड़ेगी, तब आपलोग हमारा प्रिय और हित
कीजियेगा।' युधिष्ठिरकी धर्मसङ्गत बात सुनकर सभी पुरवासी
आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रदक्षिणा करके नगरमें लौट गये।

सबके लौट जानेपर अनेक भाषाओंके ज्ञाता विदुरजीने
युधिष्ठिरसे साङ्केतिक भाषामें कहा, 'नीतिज्ञ पुरुषको शत्रुका
मनोभाव समझकर उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये। एक
ऐसा अस्त्र है, जो लोहेका तो नहीं है, परन्तु शरीरको नष्ट
कर सकता है। यदि शत्रुके इस दावको कोई समझ ले तो
वह मृत्युसे बच सकता है।* आग घास-फूस और सारे जङ्गल-
को जला डालती है। परन्तु बिलमें रहनेवाले जीव उससे अपनी
रक्षा कर लेते हैं। यही जीवित रहनेका उपाय है।† अन्धेको
रास्ता और दिशाओंका ज्ञान नहीं होता। बिना धैर्यके
समझदारी नहीं आती। मेरी बातको भलीभाँति समझ लो।‡
शत्रुओंके दिये हुए बिना लोहेके हथियारको जो स्वीकार
करता है, वह स्याहीके बिलमें घुसकर आगसे बच जाता है।§
घूमने-फिरनेसे रास्तेका ज्ञान हो जाता है। नक्षत्रोंसे दिशाका
पता लग जाता है। जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ वशमें हैं, शत्रु
उसकी कुछ भी हानि नहीं कर सकते।'× विदुरका सङ्केत
सुनकर युधिष्ठिरने कहा, 'मैंने आपकी बात भलीभाँति समझ
ली।' विदुर हस्तिनापुर लौट आये। यह घटना फाल्गुन
शुक्ल अष्टमी, रोहिणी नक्षत्रकी है।

* अर्थात् शत्रुओंने तुम्हारे लिये एक ऐसा भवन तैयार किया है, जो आगसे भड़क उठनेवाले पदार्थोंसे बना है।

† अर्थात् उससे बचनेके लिये तुम एक सुरङ्ग तैयार करा लेना।

‡ अर्थात् दिशा आदिका ज्ञान पहलेसे ही ठीक कर लेना, जिससे रातमें भटकना न पड़े।

§ अर्थात् उस सुरङ्गसे यदि तुम बाहर निकल जाओगे तो उस भवनकी आगमें जलनेसे बच जाओगे।

× अर्थात् यदि तुम पाँचों भाई एकमत रहोगे तो शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

पाण्डवोंका लाक्षागृहमें रहना, सुरङ्गका खोदा जाना और आग लगाकर निकल भागना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डवोंके शुभागमनका समाचार सुनकर वारणावतके नागरिक शास्त्र-विधिके अनुसार मङ्गलमयी वस्तुओंकी भेंट लेकर प्रसन्नता और उत्साहके साथ सवारियोंपर चढ़कर उनकी अगवानीके लिये आये। उनके जय-जयकार और मङ्गलध्वनिसे दिशाएँ गूँज उठीं। पुरवासियोंके बीचमें युधिष्ठिर ऐसे जान पड़ते थे मानो स्वयं देवराज इन्द्र हों। स्वागत करनेवालोंका अभिनन्दन करके माता कुन्तीके साथ पाण्डवोंने वारणावत नगरमें प्रवेश किया। उन्होंने पहले वेदपाठी, कर्मकाण्डी ब्राह्मणोंसे मिलकर फिर क्रमशः नगरके अधिकारी योद्धा, वैश्य और शूद्रोंसे भेंट की। पुरोचनने उनके लिये नियत वासस्थानपर आदरके साथ उन्हें ठहराया और भोजन, पलंग, आसन आदि सामग्रियोंसे उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की। पाण्डवलोग

सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे। पुरवासियोंकी भीड़ प्रायः लगी ही रहती। दस दिन बीत जानेपर पुरोचनने पाण्डवोंसे उस सुन्दर नामवाले, किन्तु अमङ्गल भवनकी चर्चा की। उसकी प्रेरणासे पाण्डव सामग्रियोंके साथ जाकर वहाँ रह

धर्मराज युधिष्ठिरने उस घरको चारों ओरसे भीमसेनसे कहा, 'भाई भीम ! देखते हो न ? इस एक-एक कोना आग भड़कानेवाली सामग्रियोंसे ब घी, लाख और चर्बीकी मिश्रित गन्धसे यही प्रमाणि है। शत्रुके कारीगरोंने बड़ी चतुराईसे सन, सर्जरस (र मूँज, घास, बाँस आदिको घीसे तर करके इसका नि किया है। निश्चय ही पुरोचनका विचार है कि जब हम इसमें बेखटके रहने लगें तब वह आग लगाकर इसे जला विदुरने पहले ही यह बात ताड़ ली थी। तभी तो उन हमें स्नेहवश इसकी सूचना दे दी।' भीमसेनने क 'भाईजी ! यदि ऐसी बात है तो हमलोग अपने पहले स्थानपर क्यों न लौट चलें ?' युधिष्ठिरने कहा, 'भैया भीम हमें बड़ी सावधानीके साथ अपनी जानकारी छिपाकर य रहना चाहिये। हमारे चेहरे-मोहरे या रंग-ढंगसे किसीक शङ्का-सन्देह न हो। हमलोग निकलनेकी घात ढूँढ लें। यदि हमारी भाव-भङ्गीसे पुरोचनको पता चल गया तो वह बलपूर्वक भी हमें जला सकता है। उसे लोकनिन्दा अथवा अधर्मकी परवा नहीं है। यदि हम मर ही गये तो फिर पितामह भीष्म तथा दूसरे लोग कौरवोंपर किसलिये रुष्ट होंगे या उन्हें रुष्ट करेंगे ? उस समयका क्रोध भी तो व्यर्थ ही जायगा। यदि हम डरकर यहाँसे भागेंगे तो दुर्योधन अपने गुप्तचरोंसे पता लगाकर हमें मरवा डालेगा। इस समय वह अधिकारी है। उसके पास सहायक और खजाना है। हमारे पास तीनों ही बातें नहीं हैं। आओ हमलोग यहाँ रहकर वनमें खूब घूमें-फिरें, रास्तोंका पता लगा रक्खें। सुरक्षित सुरंग बन जानेपर हम यहाँसे भाग निकलें और किसीको कानोंकान इस बातकी खबर न हो कि पाण्डव जीते बच गये हैं।' भीमसेनने बड़े भाईकी बात मान ली।

एक सुरंग खोदनेवाला विदुरका बड़ा विश्वासपात्र था।

उसने पाण्डवोंके पास आकर कहा, 'मैं खुदाईके काममें

बड़ा निपुण हूँ, विदुरकी आज्ञासे आपके पास आया हूँ। आप मुझपर विश्वास कीजिये। विदुरने सङ्केतके तौरपर मुझे बतलाया है कि "चलते समय मैंने युधिष्ठिरसे म्लेच्छ-भाषामें कुछ कहा था और उन्होंने 'मैंने आपकी बात भलीभाँति समझ ली' यह कहा था।" पुरोचन जल्दी ही आग लगानेवाला है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' युधिष्ठिरने कहा, 'भैया! मैं तुमपर पूरा विश्वास करता हूँ। हमारे जैसे हितचिन्तक विदुर हैं, वैसे ही तुम भी हो। हमें अपना ही समझो और जैसे वे हमारी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम भी करो। इस आगके भयसे तुम हमें बचा लो। इस घरमें चारों ओर ऊँची दीवारें हैं, एक ही दरवाजा है।' तब सुरंग खोदनेवाला कारीगर युधिष्ठिरको आश्वासन देकर खाईकी सफाई करनेके बहाने अपने कामपर डट गया। उसने उस घरके बीचोबीच एक बड़ी भारी सुरंग बनायी और जमीनके बराबर ही किवाड़ लगा दिये। पुरोचन उस महलके दरवाजे-पर ही सर्वदा रहता था। कहीं वह आकर देख न ले, इसलिये सुरंगका मुँह बिल्कुल बंद रक्खा गया।

पाण्डव अपने साथ शस्त्र रखकर बड़ी सावधानीसे उस महलमें रात बिताते थे। दिनभर शिकार खेलनेके बहाने जङ्गलोंमें घूमा करते। विश्वास न होनेपर भी वे ऐसी ही चेष्टा करते मानो पूरे विश्वासी हैं। उस खोदनेवाले कारीगर-के अतिरिक्त पाण्डवोंकी इस स्थितिका पता किसीको नहीं था।

पुरोचनने देखा एक वर्षके लगभग हो गया, पाण्डव इसमें बड़े विश्वाससे निःशङ्क रह रहे हैं। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी प्रसन्नता देखकर युधिष्ठिरने भाइयोंसे कहा, 'पापी पुरोचन समझ रहा है कि ये ठग लिये गये। यह भुलावेमें आ गया है। अतः अब यहाँसे निकल चलना चाहिये। शस्त्रागार और पुरोचनको भी जलाकर अलक्षित रूपसे भाग निकलना चाहिये।'

एक दिन कुन्तीने दान देनेके लिये ब्राह्मण-भोजन कराया। बहुत-सी स्त्रियाँ भी आयी थीं। जब सब खा-पीकर चले गये, तब संयोगवश एक भीलकी स्त्री अपने पाँच पुत्रोंके साथ वहाँ भोजन माँगनेके लिये आयी। वे सब शराब पीकर मस्त थे, इसलिये बेहोश होकर लाक्षाभवनमें ही सो रहे। सब लोग सो चुके थे, आँधी चल रही थी, भयङ्कर अन्धकार था। भीमसेन उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ पुरोचन सो रहा था। भीमसेनने पहले उस मकानके दरवाजेपर आग लगायी और फिर चारों तरफ आग भभका दी। बात-की-बातमें विकराल लपटें उठने लगीं। पाँचों भाई अपनी माताके साथ सुरंगमें घुस चले। जब आगकी असह्य गर्मी और उत्कट उजेला चारों ओर फैल गया और इमारतके चटचटाने तथा गिरनेसे धाँय-धाँय ध्वनि होने लगी, तब पुरवासी जगकर वहाँ दौड़े आये। उस घरकी भयानक दुर्दशा देखकर सब कहने

लगे कि 'दुरात्मा दुर्योधनकी प्रेरणासे पुरोचनने यह जाल रचा होगा। हो-न-हो, यह उसीकी करतूत है। धृतराष्ट्रकी इस स्वार्थपरताको धिक्कार है! हाय-हाय! उन्होंने सीधे और सच्चे पाण्डवोंको जलवाकर मार डाला! पुरोचनको भी अच्छा फल मिला! वह निर्दयी भी इसीमें जलकर राखका ढेर हो गया।' इस तरह वारणावतके नागरिक रोते-कलपते रातभर उस महलको घेरे रहे।

पाण्डव माता कुन्तीको साथ लिये सुरंगसे बाहर एक वनमें निकले। सब चाहते थे कि यहाँसे जल्दी भाग चलें, परन्तु नींद और डरके मारे सब लाचार थे। माता कुन्तीके कारण फुर्तीसे चलना असम्भव हो रहा था। तब भीमसेन माताको कंधेपर और नकुल-सहदेवको गोदमें बैठाकर युधिष्ठिर और अर्जुनको दोनों हाथोंका सहारा देते जल्दी-जल्दी ले चले। उस समय भीमसेन बड़ी तेज गतिसे चलकर गङ्गाजीके तटपर पहुँच गये।

पाण्डवोंका गङ्गापार होना, कौरवोंके द्वारा उनकी अन्त्येष्टिक्रिया और वनमें भीमसेनका विषाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उसी समय विदुरका भेजा हुआ एक विश्वासपात्र मनुष्य पाण्डवोंके पास आया। उसने पाण्डवोंको विदुरका बतलाया हुआ सङ्केत सुनाया और कहा, 'मैं विदुरजीका विश्वासपात्र सेवक हूँ। मैं अपने कर्तव्यको ठीक-ठीक समझता हूँ। आप विदुरजीके कथनानुसार शत्रुओंपर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। यह नौका तैयार है। आप इसपर चढ़कर गङ्गापार हो जाइये।' जब पाण्डव अपनी माताके साथ नावपर बैठ गये तब उसने कहा, 'विदुरजीने बड़े प्रेमसे कहा है कि आपलोग निर्विघ्न अपने मार्गपर बढ़ते चलें। घबरायें बिल्कुल नहीं।' उसने गङ्गापार पहुँचाकर पाण्डवोंका जय-जयकार किया और उनका कुशल-सन्देश लेकर विदुरके पास चला गया तथा पाण्डव भी गङ्गापार होकर लुकते-छिपते बड़े वेगसे आगे बढ़ने लगे।

इधर वारणावतमें पूरी रात बीत जानेपर सारे पुरवासी पाण्डवोंको देखनेके लिये आये। आग बुझाते-बुझाते उन लोगोंको मालूम हुआ कि यह घर लाखका बना है और मन्त्री पुरोचन भी इसीमें जल गया है। उन्होंने निश्चय किया कि ''पापी दुर्योधनका ही यह षड्यन्त्र है। अवश्य ही यह बात धृतराष्ट्रकी जानकारीमें हुई है। भीष्म, विदुर और दूसरे कौरव भी धर्मका पक्ष नहीं ले रहे हैं। आओ, हमलोग धृतराष्ट्रके पास सन्देश भेज दें कि 'तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया। अब तुम्हारी करतूतसे पाण्डव जलकर मर गये।' '' जब सब लोग आग हटाकर देखने लगे तो अपने पाँचों पुत्रोंके साथ मरी भीलनी मिली। उन लोगोंने उन्हें पाँचों पाण्डव और कुन्ती समझा। सुरंग खोदनेवाले मनुष्यने घर साफ करते-करते राखसे सुरंग पाट दी; इसलिये किसीको भी उसका पता न चल सका। पुरवासियोंने यह सन्देश धृतराष्ट्रके पास हस्तिनापुर भेज दिया।

यह अशुभ समाचार सुनकर धृतराष्ट्रने ऊपर-ऊपरसे

बहुत दुःख प्रकट किया। वे विलाप करने लगे कि 'हाय-हाय! पाण्डव और उनकी माताके मरनेसे मुझे पाण्डुकी मृत्युसे भी बढ़कर दुःख हो रहा है!' उन्होंने कौरवोंको आज्ञा दी कि तुमलोग शीघ्र-से-शीघ्र वारणावतमें जाकर पाण्डवों और उनकी माताका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-संस्कार करो। पुरोचनके भाई-बन्धु भी वहाँ जाकर उसका क्रियाकर्म करें। पाण्डवोंका कर्म इस प्रकार खूब खर्च करके किया जाय, जिससे उन्हें सद्गति प्राप्त हो। सब जाति-भाइयों और धृतराष्ट्रने विलाप करके पाण्डवोंको तिलाञ्जलि दी। पुरवासियोंने उनकी दुर्घटनापर बड़ा शोक प्रकट किया। विदुरने सब हाल मालूम होनेपर भी थोड़ी-बहुत सहानुभूति प्रकट की।

इधर पाण्डव नावसे उतरनेके बाद दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ने लगे। उस समय नींदके मारे सबकी आँखें बंद हो रही थीं। सभी थके और प्यासे थे। घना जङ्गल था, दिशाओंका पता नहीं चलता था। यद्यपि पुरोचन जल गया था, फिर भी उन्हें छिपकर ही जाना था। इसलिये युधिष्ठिर-की आज्ञासे भीमसेनने फिर सबको पूर्ववत् लाद लिया और तेजीके साथ चलने लगे। भीमसेन इतने भीषण वेगसे चल रहे थे कि सारा वन काँपता हुआ-सा जान पड़ता था। इस समय पाण्डवलोग प्यास, थकावट और नींदसे बड़े बेचैन हो रहे थे। उन्हें आगे बढ़ना कठिन हो रहा था। वे ऐसे घोर वनमें जा पहुँचे, जहाँ पानीका कहीं पता न था। इस समय कुन्तीने अत्यन्त तृषातुर होकर जलकी इच्छा प्रकट की। तब भीमसेनने उन सबको एक वट-वृक्षके नीचे उतारकर कहा, 'तुमलोग थोड़ी देर यहीं विश्राम करो। मैं जल लानेके लिये जा रहा हूँ। निश्चय ही यहाँसे थोड़ी दूरपर कोई बड़ा जलाशय है। तभी तो जलमें रहनेवाले सारस पक्षियोंकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ रही है।' युधिष्ठिरकी आज्ञा मिलनेपर सारस पक्षियोंकी ध्वनिके आधारसे भीमसेन तालाबके पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने जल पीया, स्नान किया और उन लोगोंके लिये अपने दुपट्टेमें पानी भरकर ले आये।

वट-वृक्षके नीचे पहुँचकर भीमसेनने देखा कि माता और सब भाई सो गये हैं। वे दुःख और शोकसे भरकर उन्हें बिना जगाये ही मन-ही-मन कहने लगे—'मेरे लिये इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी कि मैं आज अपने उन भाइयोंको, जिन्हें बहुमूल्य सुकोमल सेजपर भी नींद नहीं आती थी, खुली जमीनपर सोते देख रहा हूँ। मेरी माता वसुदेवकी बहिन और कुन्तिराजकी पुत्री हैं। वे विचित्रवीर्य-जैसे सुखी पुरुषकी पुत्रवधू, महात्मा पाण्डुकी पत्नी और हमारे-जैसे पुत्रोंकी माता हैं। फिर भी खुली धरतीपर लुढ़क रही हैं। मेरे लिये इससे बढ़कर और दुःखकी बात क्या होगी कि जिन्हें अपने धर्मपालनके फलस्वरूप तीनों लोकोंका शासक होना चाहिये, वे युधिष्ठिर थककर साधारण पुरुषकी भाँति जमीनपर लेटे हुए हैं। हाय-हाय! आज मैं अपनी आँखोंसे वर्षा-कालीन मेघके समान श्यामसुन्दर नररत्न अर्जुन और देवताओंमें अश्विनीकुमारोंके समान रूप-सम्पत्तिमें सबसे बढ़े-चढ़े नकुल और सहदेवको आश्रयहीनकी तरह वृक्षके नीचे नींद लेते देख रहा हूँ। दुरात्मा दुर्योधनने हमलोगोंको घरसे निकाल दिया और जलानेका प्रयत्न किया। किन्तु भाग्यवश हमलोग बच गये। आज हम वृक्षके नीचे हैं। कहाँ जायेंगे, क्या भोगेंगे, इसका पता नहीं। आह! पापी दुर्योधन, सुखी हो ले। युधिष्ठिर मुझे तेरे वधके लिये आज्ञा नहीं देते। नहीं तो मैं आज तुझे मित्रों और कुटुम्बियोंके साथ यमराजके हवाले कर देता। अरे पापी! जब युधिष्ठिर तुझपर क्रोध नहीं करते तो मैं क्या करूँ।' भीमसेन क्रोधसे उतावले हो रहे थे। साँस लंबी चल रही थी और वे हाथ-से-हाथ पीस रहे थे। अपने भाइयोंको निश्चिन्त सोते देखकर वे फिर सोचने लगे कि 'हाय-हाय! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वारणावत नगर है। यहाँ तो बड़ी सावधानीसे जागना चाहिये था, फिर भी ये सो रहे हैं। अच्छा, मैं ही जागूँगा। हाँ, तो जलका क्या होगा? अभी थके-माँदे हैं। जब जगेंगे तब पी लेंगे।' यह सोचकर स्वयं भीमसेन जागकर पहरा देने लगे।

हिडिम्बासुरका वध

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जिस वनमें युधिष्ठिर आदि सो रहे थे, उससे थोड़ी ही दूरपर एक शाल-

वृक्ष था। उसपर हिडिम्बासुर बैठा हुआ था। वह बड़ा क्रूर, पराक्रमी एवं मांसभक्षी था। उसके शरीरका रंग एकदम काला, आँखें पीली और आकृति बड़ी भयानक थी। दाढ़ी-मूँछ और सिरके बाल लाल-लाल थे तथा बड़ी-बड़ी डाढ़ोंके कारण उसका मुख अत्यन्त भीषण था। उस समय उसे भूख लगी थी। मनुष्यकी गन्ध पाकर उसने पाण्डवोंकी ओर देखा और फिर अपनी बहिन हिडिम्बासे कहा, 'बहिन ! आज बहुत दिनोंके बाद मुझे अपना प्रिय मनुष्य-मांस मिलनेका सुयोग दीखता है। जीभपर बार-बार पानी आ रहा है। आज मैं अपनी डाढ़ें इनके शरीरमें डुबा दूँगा और ताजा-ताजा गरम खून पीऊँगा। तुम इन मनुष्योंको मारकर मेरे पास ले आओ। तब हम दोनों इन्हें खायेंगे और ताली बजा-बजाकर नाचेंगे।'

अपने भाईकी आज्ञा मानकर वह राक्षसी बहुत जल्दी-जल्दी पाण्डवोंके पास पहुँची। उसने जाकर देखा कि कुन्ती और युधिष्ठिर आदि तो सो रहे हैं, लेकिन महाबली भीमसेन जग रहे हैं। भीमसेनके विशाल शरीर और परम सुन्दर रूपको देखकर हिडिम्बाका मन बदल गया और वह सोचने लगी—'इनका वर्ण श्याम है, बाँहें लंबी हैं, सिंहके समान कंधे हैं, शङ्खकी तरह गर्दन और कमल-से सुकुमार नेत्र हैं। रोम-रोमसे छबि छिटक रही है। अवश्य ही ये मेरे पति होने योग्य हैं। मैं अपने भाईकी क्रूरतापूर्ण बात नहीं मानूँगी। क्योंकि भ्रातृ-प्रेमसे बढ़कर पति-प्रेम है। यदि इन्हें मारकर खाया जाय तो थोड़ी देरतक हम दोनों तृप्त रह सकते हैं, परन्तु इनको जीवित रखकर तो मैं बहुत वर्षोंतक सुख-भोग कर सकती हूँ।'

यह सोचकर हिडिम्बाने मानुषी स्त्रीका रूप धारण किया और धीरे-धीरे भीमसेनके पास गयी। दिव्य गहने और वस्त्रोंसे भूषित सुन्दरी हिडिम्बाने कुछ सङ्कोचके साथ मुसकराते हुए पूछा, 'पुरुषशिरोमणे ! आप कौन, कहाँसे आये हैं ? ये सोनेवाले पुरुष कौन हैं ? ये बड़ी-बूढ़ी स्त्री कौन हैं ? ये लोग इस घोर जङ्गलमें घरकी तरह निःशङ्क होकर सो रहे हैं। इन्हें पता नहीं कि इसमें बड़े-बड़े राक्षस रहते हैं और हिडिम्ब राक्षस तो पास ही है। मैं उसीकी बहिन हूँ। आपलोगोंका मांस खानेकी इच्छासे ही उसने मुझे यहाँ भेजा है। मैं आपके देवोपम सौन्दर्यको देखकर मोहित हो गयी हूँ। मैं आपसे शपथपूर्वक सत्य कहती हूँ कि आपके अतिरिक्त और किसीको अब अपना पति नहीं बना सकती। आप धर्मज्ञ हैं। जो उचित समझें, करें। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। आप भी मुझसे प्रेम कीजिये। मैं इस नरभक्षी राक्षससे आपकी रक्षा करूँगी और हम दोनों सुखसे पर्वतोंकी गुफामें निवास करेंगे। मैं स्वेच्छानुसार आकाशमें विचर सकती हूँ। आप मेरे साथ अतुलनीय आनन्दका उपभोग कीजिये।' भीमसेनने कहा, 'अरी राक्षसी ! मेरी माँ, बड़े भाई और छोटे भाई सुखसे सो रहे हैं। मैं इन्हें तो छोड़कर राक्षसका भोजन बना दूँ और तेरे साथ काम-क्रीडा करनेके लिये चला चलूँ, यह भला कैसे हो सकता है।' हिडिम्बाने कहा, 'आप जैसे प्रसन्न होंगे, मैं वही करूँगी। आप इन लोगोंको जगा दीजिये, मैं राक्षससे बचा लूँगी।' भीमसेन बोले, 'वाह, वाह ! यह खूब रही। मैं अपने सुखसे सोये हुए भाइयों और माँको दुरात्मा राक्षसके भयसे जगा दूँ ? जगत्का कोई भी मनुष्य, राक्षस अथवा गन्धर्व मेरे सामने ठहर नहीं सकता। सुन्दरि ! तुम जाओ या रहो, मुझे दूसरी कोई परवा नहीं है।'

उधर राक्षसराज हिडिम्बने सोचा कि मेरी बहिनको गये बहुत देर हो गयी। इसलिये उस वृक्षसे उतरकर वह पाण्डवोंकी ओर चला। उस भयङ्कर राक्षसको आते देखकर हिडिम्बाने भीमसेनसे कहा, 'देखिये, देखिये, वह नरभक्षी राक्षस क्रोधित होकर इधर आ रहा है। आप मेरी बात मानिये। मैं स्वेच्छानुसार चल सकती हूँ। मुझमें राक्षसबल भी है। मैं आपको और इन सबको लेकर आकाशमार्गसे उड़ चलूँगी।' भीमसेन बोले, 'सुन्दरि! तू डर मत। मेरे रहते कोई राक्षस इनका बाल बाँका नहीं कर सकता। मैं तेरे सामने उसे मार डालूँगा। देख मेरी यह बाँह और मेरी यह जाँघ! यह क्या, कोई भी राक्षस इनसे पिस जायगा। मुझे मनुष्य समझकर तू मेरा तिरस्कार न कर।' इस तरहकी बातें हो ही रही थीं कि उन्हें सुनता हुआ हिडिम्ब वहाँ आ पहुँचा। उसने देखा कि मेरी बहिन तो मनुष्योंका-सा सुन्दर रूप धारण करके खूब बन-ठन और सज-धजकर भीमसेनको पति बनाना चाहती है। वह क्रोधसे तिलमिला उठा और बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर कहने लगा, 'अरे हिडिम्बा! मैं इनका मांस खाना चाहता हूँ और तू इसमें विघ्न डाल रही है। धिक्कार है! तूने हमारे कुलमें कलङ्क लगा दिया। जिनके सहारे तूने ऐसी हिम्मत की है, देख मैं तेरे सहित उन्हें अभी मार डालता हूँ।' यह कहकर हिडिम्ब दाँत पीसता हुआ अपनी बहिन और पाण्डवोंकी ओर झपटा।

भीमसेनने उसे आक्रमण करते देखकर डाँटते हुए कहा, 'ठहर जा! ठहर जा! मूर्ख! तू इन सोते हुए भाइयोंको क्यों जगाना चाहता है? तेरी बहिनने ही ऐसा क्या अपराध कर दिया है? हिम्मत हो तो मेरे सामने आ। तेरे लिये मैं अकेला ही काफी हूँ, तू स्त्रीपर हाथ न उठा।' भीमसेनने बलपूर्वक हँसते हुए उसका हाथ पकड़ लिया और वे उसको वहाँसे बहुत दूर घसीट ले गये। इसी प्रकार एक-दूसरेको कसकते-मसकते तनिक और दूर चले गये और वृक्ष उखाड़-उखाड़कर गरजते हुए लड़ने लगे। उनकी गर्जनासे कुन्ती और पाण्डवोंकी नींद खुल गयी। उन लोगोंने आँख खुलते ही देखा कि सामने परम सुन्दरी हिडिम्बा खड़ी है। उसके रूप-सौन्दर्यसे विस्मित होकर कुन्तीने बड़ी मिठासके साथ धीरे-धीरे कहा, 'सुन्दरि! तुम कौन हो? यहाँ किसलिये कहाँसे आयी हो?' हिडिम्बाने कहा, 'यह जो काला-काला घोर जङ्गल है, वही मेरा और मेरे भाई हिडिम्बका वासस्थान है। उसने मुझे तुमलोगोंको मार डालनेके लिये भेजा था। यहाँ आकर मैंने

तुम्हारे परम सुन्दर पुत्रको देखा और मोहित हो गयी। मैंने मन-ही-मन उनको पति मान लिया और उन्हें यहाँसे ले जानेकी चेष्टा की, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। मुझे देर करते देख मेरा भाई स्वयं यहाँ चला आया और उसे तुम्हारे पुत्र घसीटते हुए बहुत दूर ले गये हैं। देखो, इस समय वे दोनों गरजते हुए एक-दूसरेको रगड़ रहे हैं।' हिडिम्बाकी यह बात सुनते ही चारों पाण्डव उठकर खड़े हो गये और देखा कि वे दोनों एक-दूसरेको परास्त करनेकी अभिलाषासे भिड़े हुए हैं। भीमसेनको कुछ दबते देखकर अर्जुनने कहा, 'भाईजी, कोई डर नहीं। नकुल और सहदेव माँकी रक्षा करते हैं। मैं अभी इस राक्षसको मारे डालता हूँ।' भीमसेन बोले, 'भैया अर्जुन! चुपचाप खड़े रहकर देखो, घबराओ मत। मेरी बाँहोंके भीतर आकर यह बच नहीं सकता।' अब भीमसेनने क्रोधसे जल-भुनकर आँधीकी तरह झपटकर उसे उठा लिया और अन्तरिक्षमें सौ बार घुमाया। भीमसेनने कहा, 'रे राक्षस! तू व्यर्थके मांससे झूठमूठ इतना हट्टा-कट्टा हो गया था। तेरा बढ़ना व्यर्थ और तेरा विचारना व्यर्थ। जब तेरा जीवन ही व्यर्थ है, तब मृत्यु भी व्यर्थ होनी चाहिये।' इस प्रकार कहकर भीमसेनने उसे जमीनपर दे मारा। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। अर्जुनने भीमसेनका सत्कार करके कहा, 'भाईजी! यहाँसे वारणावत नगर कुछ बहुत दूर नहीं है।

चलिये, यहाँसे जल्दी निकल चलें। कहीं दुर्योधनको हमारा पता न चल जाय।' इसके बाद माताके साथ सब लोग वहाँसे चलने लगे। हिडिम्बा राक्षसी भी उनके पीछे-पीछे चल रही थी।

हिडिम्बाके साथ भीमसेनका विवाह, घटोत्कचकी उत्पत्ति और पाण्डवोंका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राक्षसीको पीछे आते देखकर भीमसेनने कहा, 'हिडिम्बे! मैं जानता हूँ कि राक्षस मोहिनी मायाके सहारे पहले वैरका बदला लेते हैं। इसलिये जा, तू भी अपने भाईका रास्ता नाप।' युधिष्ठिरने कहा, 'राम-राम! क्रोधवश होकर भी स्त्रीपर हाथ नहीं छोड़ना चाहिये। हमारे शरीरकी रक्षासे भी बढ़कर धर्मकी रक्षा है। तुम धर्मकी रक्षा करो। जब इसके भाईको तुमने मार डाला, तब यह हमलोगोंका क्या बिगाड़ सकती है।' इसके बाद हिडिम्बा कुन्ती और युधिष्ठिरको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कुन्तीसे बोली, 'आर्ये! आप जानती हैं कि स्त्रियोंको कामदेवकी पीड़ा कितनी दुस्सह होती है। मैं आपके पुत्रके कारण बहुत देरसे व्यथित हो रही हूँ। अब मुझे सुख मिलना चाहिये। मैंने अपने सगे-सम्बन्धी, कुटुम्बी और धर्मको तिलाञ्जलि देकर आपके पुत्रको पतिके रूपमें वरण किया है। मैं आप और आपके पुत्र दोनोंकी स्वीकृति प्राप्त करनेयोग्य हूँ। यदि आपलोग मुझे स्वीकार न करेंगे तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह बात मैं सत्य-सत्य शपथपूर्वक कहती हूँ। आप मुझपर कृपा कीजिये। मैं मूढ़, भक्त या सेवक जो कुछ हूँ, आपकी हूँ। मैं आपके पुत्रको लेकर जाऊँगी और थोड़े ही दिनोंमें लौट आऊँगी। आप मेरा विश्वास कीजिये। जब आपलोग याद करेंगे, मैं आ जाऊँगी। आप जहाँ कहेंगे, पहुँचा दूँगी। बड़ी-से-बड़ी कठिनाई और आपत्तिके समय मैं आपलोगोंको बचाऊँगी। आपलोग कहीं जल्दी पहुँचना चाहेंगे तो मैं पीठपर ढोकर शीघ्र-से-शीघ्र पहुँचा दूँगी। जो आपत्कालमें भी अपने धर्मकी रक्षा करता है, वह श्रेष्ठ धर्मात्मा है।'

युधिष्ठिरने कहा—'हिडिम्बे! तुम्हारा कहना ठीक है। सत्यका कभी उल्लङ्घन मत करना। प्रतिदिन सूर्यास्तके पूर्वतक तुम पवित्र होकर भीमसेनकी सेवामें रह सकती हो। भीमसेन दिनभर तुम्हारे साथ रहेंगे, सायङ्काल होते ही तुम इन्हें मेरे

पास पहुँचा देना।' राक्षसीके स्वीकार कर लेनेपर भीमसेनने कहा, 'मेरी एक प्रतिज्ञा है। जबतक पुत्र नहीं होगा, तभीतक मैं तुम्हारे साथ जाया करूँगा। पुत्र हो जानेपर नहीं।' हिडिम्बाने यह भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह भीमसेनको साथ लेकर आकाशमार्गसे उड़ गयी। अब हिडिम्बा अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके दिव्य आभूषणोंसे आभूषित हो मीठी-मीठी बातें करती हुई पहाड़ोंकी चोटियोंपर, जङ्गलोंमें, तालाबोंमें, गुफाओंमें, नगरोंमें और दिव्य भूमियोंमें भीमसेनके साथ विहार करने लगी। समय आनेपर उसके गर्भसे एक पुत्र हुआ। विकट नेत्र, विशाल मुख, नुकीले कान, भीषण शब्द, लाल होंठ, तीखी डाढ़ें, बड़ी-बड़ी बाँहें, विशाल शरीर, अपरिमित शक्ति और मायाओंका खजाना। वह क्षणभरमें ही बड़े-बड़े राक्षसोंसे भी बढ़ गया और तत्काल ही जवान, सर्वास्त्रविद् और वीर हो गया। जनमेजय!

राक्षसियाँ तुरंत गर्भ धारण कर लेती, बच्चा पैदा कर देती और चाहे जैसा रूप बना लेती हैं।

हिडिम्बाके बालकके सिरपर बाल नहीं थे। उसने धनुष धारण किये माता-पिताके पास आकर प्रणाम किया। माता-पिताने उसके 'घट' अर्थात् सिरको 'उत्कच' यानी केशहीन देखकर उसका 'घटोत्कच' नाम रख दिया। घटोत्कच पाण्डवोंके प्रति बड़ी ही श्रद्धा और प्रेम रखता और वे भी उसके प्रति बड़ा स्नेह रखते। हिडिम्बाने सोचा कि अब भीमसेनकी प्रतिज्ञाका समय पूरा हो गया। इसलिये वह वहाँसे चली गयी। घटोत्कचने माता कुन्ती और पाण्डवोंको नमस्कार करके कहा, 'आपलोग हमारे पूजनीय हैं। आप निःसङ्कोच बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ।' कुन्तीने कहा, 'बेटा! तू कुरुवंशमें उत्पन्न हुआ है और स्वयं

भीमसेनके समान है। इन पाँचोंके पुत्रोंमें तू सबसे बड़ा है। इसलिये समयपर इनकी सहायता करना।' कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर घटोत्कचने कहा, 'मैं रावण और इन्द्रजित्‌के समान पराक्रमी तथा विशालकाय हूँ। जब आपलोगोंको कोई आवश्यकता हो तो मेरा स्मरण करें। मैं आ जाऊँगा।' यह कहकर उसने उत्तरकी ओर प्रस्थान किया। जनमेजय! देवराज इन्द्रने कर्णकी शक्तिका आघात सहन करनेके लिये घटोत्कचको उत्पन्न किया था।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! आगे चलकर पाण्डवोंने सिरपर जटाएँ रख लीं और वृक्षोंकी छाल तथा मृगचर्म पहन लिये। इस प्रकार तपस्वियोंका वेष धारण करके वे अपनी माताके साथ विचरने लगे। कहीं-कहीं माताको पीठपर चढ़ा लेते तो कहीं धीरे-धीरे मौजसे चलते। एक बार वे शास्त्रोंके स्वाध्यायमें लग रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीवेदव्यास उनके पास आये। उन्होंने उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। व्यासजीने कहा, 'युधिष्ठिर! मुझे तुमलोगोंकी यह विपत्ति पहले ही मालूम हो गयी थी। मैं जानता था कि दुर्योधन आदिने अन्याय करके तुम्हें राजधानीसे निर्वासित कर दिया है। मैं तुमलोगोंका हित करनेके लिये ही आया हूँ। तुम इस विषादमयी परिस्थितिसे दुखी मत होना। यह सब तुम्हारे सुखके लिये ही हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि मेरे लिये तुमलोग और धृतराष्ट्रके लड़के समान ही हैं, फिर भी तुमलोगोंकी दीनता और बचपन देखकर अधिक स्नेह होता है। इसलिये मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। यहाँसे पास ही एक बड़ा रमणीय नगर है। वहाँ तुमलोग छिपकर रहो और फिर मेरे आनेकी बाट जोहो।'

पाण्डवोंको इस प्रकार आश्वासन देकर और उन्हें साथ लेकर वे एकचक्रा नगरीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कुन्तीसे कहा, 'कल्याणि! तुम्हारे पुत्र युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा हैं। ये धर्मके अनुसार सारी पृथ्वी जीतकर समस्त राजाओंपर शासन करेंगे। तुम्हारे और माद्रीके सभी पुत्र महारथी होंगे और अपने राज्यमें बड़ी प्रसन्नताके साथ जीवन-निर्वाह करेंगे। ये लोग राजसूय, अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञ करेंगे, अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंको सुखी करेंगे और परम्परागत राज्यका चिरकालतक उपभोग करेंगे।' व्यासजीने इस प्रकार कहकर कुन्ती और पाण्डवोंको एक ब्राह्मणके घरमें ठहरा दिया और जाते-जाते कहा, 'एक महीनेतक मेरी बाट जोहना। मैं फिर आऊँगा। देश और कालके अनुसार सोच-समझकर काम करना। तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा।' सबने हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा स्वीकार की। फिर वे चले गये।

आर्त्त ब्राह्मणपरिवारपर कुन्तीकी दया

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई अपनी माता कुन्तीके साथ एकचक्रा नगरीमें रहकर तरह-तरहके दृश्य देखते हुए विचरने लगे। वे भिक्षावृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। नगरनिवासी उनके गुणोंसे मुग्ध होकर उनसे बड़ा प्रेम करने लगे। वे सायङ्काल होनेपर दिनभरकी भिक्षा लाकर माताके सामने रख देते। माताकी अनुमतिसे आधा भीमसेन खाते और आधेमें सब लोग। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये।

एक दिन और सब लोग तो भिक्षाके लिये चले गये थे, परन्तु किसी कारणवश भीमसेन माताके पास ही रह गये थे। उसी दिन ब्राह्मणके घरमें करुण-क्रन्दन होने लगा। वे लोग बीच-बीचमें विलाप करते और रोते जाते। यह सब सुनकर कुन्तीका सौहार्दपूर्ण हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने भीमसेनसे कहा, 'बेटा! हमलोग ब्राह्मणके घरमें रहते हैं और ये हमारा बहुत सत्कार करते हैं। मैं प्रायः यह सोचा करती हूँ कि इस ब्राह्मणका कुछ-न-कुछ उपकार करना चाहिये। कृतज्ञता ही मनुष्यका जीवन है। जितना कोई अपना उपकार करे, उससे बढ़कर उसका करना चाहिये। अवश्य ही इस ब्राह्मणपर कोई विपत्ति आ पड़ी है। यदि हम इसकी कुछ सहायता कर सकें तो उऋण हो जायँ।' भीमसेनने कहा, 'माँ! तुम ब्राह्मणके दुःख और दुःखके कारणका पता लगा लाओ। मैं उनके लिये कठिन-से-कठिन काम भी करूँगा।' कुन्ती जल्दीसे ब्राह्मणके घरमें गयीं, मानो गाय अपने बँधे बछड़ेके पास दौड़ी गयी हो। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ मुँह लटकाकर बैठा है और कह रहा है—'धिक्कार है मेरे इस जीवनको! क्योंकि यह सारहीन, व्यर्थ, दुखी और पराधीन है। जीव अकेला ही धर्म, अर्थ और कामका भोग करना चाहता है। इनका वियोग होना ही उसके लिये महान् दुःख है। अवश्य ही मोक्ष सुखस्वरूप है। परन्तु मेरे लिये उसकी कोई सम्भावना नहीं है। इस आपत्तिसे छूटनेका न तो कोई उपाय दीखता है और न मैं अपनी पत्नी और पुत्रके साथ भाग ही सकता हूँ। तुम मेरी जितेन्द्रिय एवं धर्मात्मा सहचरी हो। देवताओंने तुम्हें मेरी सखी और सहारा बना दिया है। मैंने मन्त्र पढ़कर तुमसे विवाह किया है। तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो। तुम सती-साध्वी और मेरी हितैषिणी हो। राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये मैं तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता।'

पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा, 'स्वामिन्! आप साधारण मनुष्यके समान शोक क्यों कर रहे हैं? एक-न-एक दिन सभी मनुष्योंको मरना ही पड़ता है। फिर इस अवश्यम्भावी बातके लिये शोक क्यों किया जाय। पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री सब अपने ही लिये होते हैं। आप विवेकके बलसे चिन्ता छोड़िये। मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी। पत्नीके लिये सबसे बढ़कर यही सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी भलाई करे। मेरे इस कामसे आप सुखी होंगे और मुझे भी परलोकमें सुख तथा इस लोकमें यश मिलेगा। मैं आपके धर्म और लाभकी बात कहती हूँ। जिस उद्देश्यसे विवाह किया जाता है, वह अब पूरा हो चुका। आपके मेरे गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री है। आप इन बच्चोंका जैसा पालन-पोषण कर सकते हैं, वैसा मैं नहीं कर सकती। यदि आप नहीं रहेंगे तो मेरे प्राणेश्वर! मेरे जीवनसर्वस्व! मैं कैसे रहूँगी और इन बच्चोंकी क्या दशा होगी? यदि मैं अनाथ और विधवा होकर जीवित भी रहूँ तो इन बच्चोंको कैसे रक्खूँगी। जब घमंडी और अयोग्य पुरुष इस लड़कीको माँगने लगेंगे, तब मैं इसकी रक्षा कैसे कर पाऊँगी। जैसे पक्षी मांसके टुकड़ेपर झपटते हैं, वैसे ही दुष्ट पुरुष विधवा स्त्रीपर। मैं भला, वैसा जीवन कैसे बिता सकूँगी। इस कन्याको मर्यादामें रखना और बच्चेको सद्गुणी बनाना मुझसे कैसे हो सकेगा। आपके वियोगमें मैं न रहूँगी और आपके तथा मेरे बिना इन बच्चोंका नाश हो जायगा। आपके जानेसे हम चारोंका विनाश हो जायगा, इसलिये आप मुझे भेज दीजिये। स्त्रियोंके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अपने पतिसे पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ। मैंने सब कुछ छोड़ दिया है, पुत्र और पुत्री भी। मेरा जीवन आपके लिये निछावर है। स्त्रीके लिये यज्ञ, तपस्या, नियम और दानसे भी बढ़कर है अपने पतिका प्रिय और हित। मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह आपके और इस वंशके लिये भी हितकारी है। इस लोकमें स्त्री, पुत्र, मित्र और धन आदिका संग्रह आपत्तिसे रक्षाके लिये किया जाता है। आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धन खोकर भी पत्नीकी रक्षा करे तथा पत्नी और धन दोनोंको खोकर भी आत्मकल्याण सम्पादन करे।

यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे। पुरुषका वध निर्विवाद है और स्त्रीका सन्देहग्रस्त, इसलिये मुझे ही उसके पास भेजिये। अब मुझे करना ही क्या है। अच्छे पदार्थ भोग लिये, धर्म-कर्म कर लिये, पुत्र भी हो चुके, मेरे मरनेमें भला दुःख ही क्या है। मेरे मर जानेपर आप तो दूसरा विवाह भी कर सकते हैं। क्योंकि पुरुषके लिये अधिक विवाह अधर्म नहीं है और स्त्रीके लिये तो महान् अधर्म है। यह सब सोच-विचारकर आप मेरी बात मानिये और इन बच्चोंकी रक्षाके लिये आप स्वयं रह जाइये और मुझे उस राक्षसके पास भेजिये।' स्त्रीके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने उसे अपनी छातीसे लगा लिया। उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे।

माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली, 'आप दोनों दुःखार्त होकर क्यों अनाथके समान रो रहे हैं? देखिये, धर्मके अनुसार आप दोनों मुझे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे। इसलिये आज ही मुझे छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते? लोग सन्तान इसीलिये चाहते हैं कि वह हमें दुःखसे बचावे। इस अवसरपर आपलोग मेरा सदुपयोग क्यों नहीं कर लेते? आपके परलोकवासी हो जानेपर मेरा यह प्यारा-प्यारा छोटा भाई नहीं बचेगा। माँ-बाप और भाईकी मृत्युसे आपकी वंशपरम्पराका ही उच्छेद हो जायगा। जब कोई नहीं रहेंगे तो मैं भी तो नहीं रह सकूँगी। आपलोगोंके रहनेसे सबका कल्याण हो जायगा। मैं ही राक्षसके पास जाकर इस वंशकी रक्षा करूँगी। इससे मेरा लोक-परलोक दोनों बनेंगे।' कन्याकी यह बात सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे। कन्या भी बिना रोये न रह सकी। सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-शिशु मिठासभरी तोतली वाणीसे कहने लगा—'पिताजी! माताजी! बहिन! मत रोओ।' प्रत्येकके पास जा-जाकर वह यही कहने लगा। उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा।' बच्चेकी इस बातसे उस दुःखकी घड़ीमें भी तनिक प्रसन्नता प्रस्फुटित हो उठी।

कुन्ती यह सब कुछ देख-सुन रही थीं। वे अपनेको प्रकट करनेका अवसर देखकर पास चली गयीं और मुर्दोंपर मानो अमृतकी धारा उड़ेलते हुए बोलीं, 'ब्राह्मणदेवता! आपके दुःखका क्या कारण है? उसे जानकर यदि हो सकेगा तो मिटानेकी चेष्टा करूँगी।' ब्राह्मणने कहा, 'तपस्विनी! आपकी बात सज्जनोंके अनुरूप है। परन्तु मेरा दुःख मनुष्य नहीं मिटा सकता। इस नगरके पास ही एक बक नामका राक्षस रहता है। उस बलवान् राक्षसके लिये एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे प्रतिदिन दिये जाते हैं। जो मनुष्य लेकर जाता है, उसे भी वह खा जाता है। प्रत्येक गृहस्थको यह काम करना पड़ता है। परन्तु इसकी बारी बहुत वर्षोंके बाद आती है। जो उससे छूटनेका यत्न करते हैं, वह उनके सारे कुटुम्बको खा जाता है। यहाँका राजा यहाँसे थोड़ी दूर वेत्रकीयगृह नामक स्थानमें रहता है। वह अन्यायी हो गया है और इस विपत्तिसे प्रजाकी रक्षा नहीं करता। आज हमारी बारी आ गयी है। मुझे उसके भोजनके लिये अन्न और एक मनुष्य देना पड़ेगा। मेरे पास इतना धन नहीं कि किसीको खरीदकर दे दूँ और अपने सगे-सम्बन्धियोंको देनेकी शक्ति नहीं है। अब अपने छुटकारेका कोई उपाय न देखकर मैं अपने सारे कुटुम्बके साथ जाना चाहता हूँ। वह दुष्ट सभीको खा डालेगा।' कुन्तीने कहा, 'ब्राह्मणदेवता! आप न डरें और न शोक करें, उससे छुटकारेका उपाय मैं समझ गयी। आपके तो एक ही पुत्र और एक ही कन्या है। आप दोनोंमेंसे किसीका जाना भी मुझे ठीक नहीं लगता। मेरे पाँच लड़के हैं, उनमेंसे एक पापी राक्षसका भोजन लेकर चला जायगा।'

ब्राह्मणने कहा 'हरे-हरे! मैं अपने जीवनके लिये अतिथिकी हत्या नहीं कर सकता। अवश्य ही आप बड़ी कुलीन और धर्मात्मा हैं, तभी तो ब्राह्मणके लिये अपने पुत्रका भी त्याग करना चाहती हैं। मुझे स्वयं अपने कल्याणकी बात सोचनी चाहिये। आत्मवध और ब्राह्मणवधके विकल्पमें मुझे तो आत्मवध ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। ब्रह्महत्याका कोई प्रायश्चित्त नहीं। अनजानमें भी ब्रह्महत्या करनेकी अपेक्षा अपनेको नष्ट कर देना उत्तम है। मैं अपने-आप तो मरना चाहता नहीं। दूसरा कोई मुझे मार डालता है तो इसका पाप मुझे नहीं लगेगा। चाहे कोई भी हो, जो अपने घर आया, शरणमें आया, जिसने रक्षाकी याचना की, उसे मरवा डालना बड़ी नृशंसता है। आपत्तिकालमें भी निन्दित और क्रूर कर्म नहीं करना चाहिये। मैं स्वयं अपनी पत्नीके साथ मर जाऊँ, यह श्रेष्ठ है। परन्तु ब्राह्मणवधकी बात तो मैं सोच भी नहीं सकता।' कुन्तीने कहा, 'ब्रह्मन्! मेरा भी यह दृढ़ निश्चय है कि ब्राह्मणकी रक्षा करनी चाहिये। मैं भी अपने पुत्रका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ। परन्तु बात यह है कि राक्षस मेरे बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी पुत्रका अनिष्ट नहीं कर सकता। वह राक्षसको भोजन पहुँचाकर भी अपनेको छुड़ा लेगा, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है। अबतक न जाने कितने

बलवान् और विशालकाय राक्षस इसके हाथों मारे गये हैं। एक बात है, इसकी सूचना आप किसीको न दें; क्योंकि लोग यह विद्या जाननेके लिये मेरे पुत्रोंको तंग करेंगे।'

कुन्तीकी बातसे ब्राह्मण-परिवारको बड़ी प्रसन्नता हुई, कुन्तीने ब्राह्मणके साथ जाकर भीमसेनसे कहा कि 'तुम यह काम कर दो।' भीमसेनने बड़ी प्रसन्नताके साथ माताकी बात स्वीकार

कर ली। जिस समय भीमसेनने वह काम करनेकी प्रतिज्ञा की, उसी समय युधिष्ठिर आदि भिक्षा लेकर लौटे। युधिष्ठिरने भीमसेनके आकारसे ही सब कुछ समझ लिया। उन्होंने एकान्तमें बैठकर अपनी मातासे पूछा, 'माँ! भीमसेन क्या करना चाहते हैं? यह उनकी स्वतन्त्र इच्छा है या आपकी आज्ञा?' कुन्ती बोली, 'मेरी आज्ञा।' युधिष्ठिरने कहा, 'माँ! आपने दूसरेके लिये अपने पुत्रको सङ्कटमें डालकर बड़े साहसका काम किया है।' कुन्तीने कहा, 'बेटा! भीमसेनकी चिन्ता मत करो। मैंने विचारकी कमीसे ऐसा नहीं किया है। हमलोग यहाँ इस ब्राह्मणके घरमें आरामसे रहते हैं। उससे उऋण होनेका यही उपाय है। मनुष्य-जीवनकी सफलता इसीमें है कि वह कभी उपकारीके उपकारको न भूले। उसके उपकारसे भी बढ़कर उसका उपकार कर दे। भीमसेनपर मेरा विश्वास है। पैदा होते ही वह मेरी गोदसे गिरा था। उसके शरीरसे टकराकर चट्टान चूर-चूर हो गयी। मेरा निश्चय विशुद्ध धार्मिक है। इससे प्रत्युपकार तो होगा ही, धर्म भी होगा।' युधिष्ठिर बोले, 'माता! आपने जो कुछ समझ-बूझकर किया है, वह सब उचित है। अवश्य ही भीमसेन राक्षसको मार डालेंगे। क्योंकि आपके हृदयमें ब्राह्मणकी रक्षाके लिये विशुद्ध धर्म-भाव है। किन्तु ब्राह्मणसे यह अवश्य कह देना चाहिये कि नगरनिवासियोंको यह बात मालूम न होने पावे।'

बकासुरका वध

वैशम्पायनजी कहते हैं—'जनमेजय! कुछ रात बीत जानेपर भीमसेन राक्षसका भोजन लेकर बकासुरके वनमें गये और वहाँ उसका नाम ले-लेकर पुकारने लगे। वह राक्षस विशालकाय, वेगवान् और बलशाली था। उसकी आँखें लाल, दाढ़ी-मूँछ लाल, कान नुकीले, मुँह कानतक फटा था। देखकर डर लगता था। भीमसेनकी आवाज सुनकर वह तमतमा उठा। वह भौंहें टेढ़ी करके दाँत पीसता हुआ इस प्रकार भीमसेनकी ओर दौड़ा, मानो धरती फाड़ डालेगा। उसने वहाँ आकर देखा तो भीमसेन उसके भागका अन्न खा रहे हैं। वह क्रोधसे आग-बबूला हो आँखें फाड़कर बोला, 'अरे, यह दुर्बुद्धि कौन है, जो मेरे सामने ही मेरा अन्न निगलता जा रहा है? क्या यह यमपुरी जाना चाहता है?' भीमसेन हँस पड़े। उसकी कुछ भी परवा न करके मुँह फेर लिया और खाते रहे। वह दोनों हाथ उठाकर भयङ्कर नाद करता हुआ उन्हें मार डालनेके लिये टूट पड़ा। फिर भी भीमसेन उसका तिरस्कार करते हुए खाते ही रहे। उसने भीमसेनकी पीठपर दोनों हाथोंसे दो घूँसे कसकर जमाये। फिर भी वे खाते ही गये। अब बकासुर और भी क्रोधित हो एक वृक्ष उखाड़कर उनपर झपटा। भीमसेन धीरे-धीरे खा-पीकर, हाथ-मुँह धोकर हँसते हुए डटकर खड़े हो गये। राक्षसने उनपर जो वृक्ष चलाया, उसे उन्होंने बायें हाथसे पकड़ लिया। अब दोनों ओरसे वृक्षोंकी
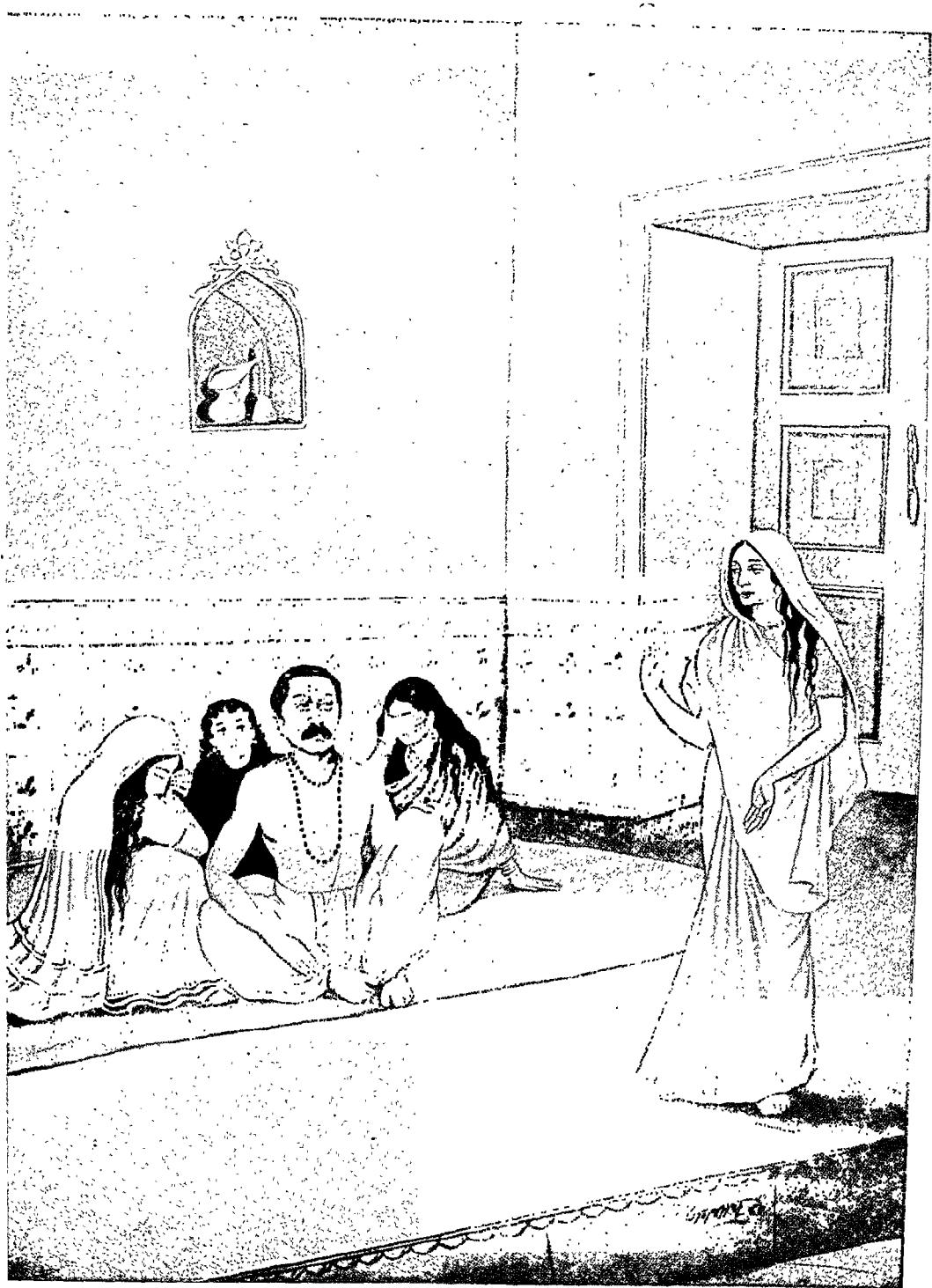
ब्राह्मणकी विपत्तिमें कुन्तीकी सहानुभूति

होने लगी। घमासान लड़ाई हुई। वनके वृक्षों-विनाश-सा हो गया। बकने दौड़कर भीमसेनको ा। वे उसे हाथोंमें कसकर घसीटने लगे। जब थक गया, तब भीमसेन उसे जमीनमें पटककर ौंसे रगड़ने लगे। उसकी गरदन पकड़कर दबा दी और ट खींच उसे मरोड़कर कमर तोड़ डाली। उसके मुँहसे गिरने लगा तथा हड्डी-पसली टूट जानेसे प्राण-पखेरू गये।

बकासुरकी चिल्लाहटसे उसके परिवारके राक्षस डर और अपने सेवकोंके साथ बाहर निकल आये। भीमसेनने ें डरसे अचेत देखकर ढाढस बँधाया और उनसे यह शर्त यी कि अब तुमलोग कभी मनुष्योंको न सताना। यदि से भी ऐसा किया तो इसी प्रकार तुम्हें भी मरना गा। राक्षसोंने भीमसेनकी बात स्वीकार कर ली। मसेन बकासुरकी लाश लेकर नगरके द्वारपर आये और ाँ उसे पटककर चुपचाप चले गये। तभीसे नागरिकोंको ी राक्षसोंके उपद्रवका अनुभव नहीं हुआ। बकासुरके वारवाले भी इधर-उधर भग गये। भीमसेनने ब्राह्मणके घर जाकर धर्मराज युधिष्ठिरसे वहाँकी सब घटना कह दी।

इधर नगरवासी प्रातःकाल उठकर बाहर निकले तो देखते हैं कि वह पहाड़के समान राक्षस खूनसे लथपथ होकर जमीनपर पड़ा है। उसे देखकर सबके रोंगटे खड़े हो गये। बात-की-बातमें यह समाचार चारों ओर फैल गया। हजारों नागरिक, जिनमें बच्चे-बूढ़े और स्त्रियाँ भी थीं, उसे देखने-के लिये आये। सबने यह अलौकिक कर्म देखकर आश्चर्य प्रकट किया और अपने-अपने इष्टदेवताकी पूजा की। लोगोंने पता लगाया कि आज किसकी बारी थी। फिर ब्राह्मणके पास जाकर पूछताछ की। ब्राह्मणने यह घटना छिपाते हुए कहा, 'आज मेरी बारी थी। इसलिये मैं अपने परिवारके साथ रो रहा था। उसी समय किसी उदारचरित्र मन्त्रसिद्ध ब्राह्मणने आकर मेरे दुःखका कारण पूछा और प्रसन्नतापूर्वक मुझे विश्वास दिलाकर बोला कि मैं उस राक्षसको अन्न पहुँचा दूँगा। तुम मेरे बारेमें चिन्ता या भय मत करना। वे ही राक्षसका भोजन लेकर गये थे, अवश्य ही यह उन्हींका काम है।' सभी वर्णके लोग इस घटनासे प्रसन्न होकर ब्रह्मोत्सव मनाने लगे। पाण्डव भी यह आनन्दोत्सव देखते हुए वहीं सुखसे निवास करने लगे।

द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार तथा धृष्टद्युम्न और द्रौपदीकी जन्म-कथा

जनमेजयने पूछा—भगवन्! बकासुरको मारनेके द पाण्डवोंने क्या किया? कृपया वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! बकासुरको मारनेके श्चात् पाण्डव वेदाध्ययन करते हुए उसी ब्राह्मणके घरमें वास करने लगे। कुछ दिनोंके बाद उसके यहाँ एक दाचारी ब्राह्मण आया। बड़े आदर-सत्कारसे उसे स्थान या गया। कुन्ती और पाँचों पाण्डव भी उसकी सेवा-त्कारमें लग रहे थे। ब्राह्मणने कथा-प्रसङ्गमें देश, तीर्थ, दी, नद और राजाओंका वर्णन करते-करते द्रुपदकी कथा ेड़ दी तथा द्रौपदीके स्वयंवरकी बात भी कही। पाण्डवोंने वेस्तारपूर्वक द्रौपदीकी जन्म-कथा सुननी चाही, इसपर वह अतिथि ब्राह्मण द्रुपदका पूर्वचरित्र सुनाकर कहने लगा—जबसे द्रोणाचार्यने पाण्डवोंके द्वारा द्रुपदको पराजित करवाया, तबसे घड़ी-दो-घड़ीके लिये भी द्रुपदको चैन नहीं मिला। वे चिन्तित रहनेके कारण दुर्बल पड़ गये और द्रोणाचार्यसे बदला लेनेके लिये कर्मसिद्ध ब्राह्मणोंकी खोजमें एक आश्रमसे दूसरे आश्रमपर घूमने लगे। वे शोकातुर होकर यही सोचते रहते कि मुझे श्रेष्ठ सन्तानकी प्राप्ति कैसे हो। किन्तु किसी भी प्रकार द्रोणाचार्यके प्रभाव, विनय, शिक्षा और चरित्रको नीचा दिखानेमें वे समर्थ न हुए।

राजा द्रुपद गङ्गातटपर घूमते-घूमते कल्माषी नगरीके पास एक ब्राह्मण-बस्तीमें गये। उस बस्तीमें ऐसा कोई नहीं था, जो ब्रह्मचर्यका विधिवत् पालन करनेवाला अथवा स्नातक न हो। उनमें कश्यपगोत्रके दो ब्राह्मण बड़े ही शान्त, तपस्वी और स्वाध्यायशील थे। उनके नाम थे याज और उपयाज। उन्होंने पहले छोटे भाई उपयाजके पास जाकर सेवा-शुश्रूषाके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'आप कोई ऐसा कर्म कराइये, जिससे मेरे यहाँ द्रोणको मारनेवाले पुत्रका जन्म हो; मैं आपको एक अर्बुद (दस करोड़) गाय दूँगा। यही नहीं, आपकी जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा।' उपयाजने कहा, 'मैं ऐसा नहीं कर सकता।' द्रुपदने फिर भी एक वर्षतक उनकी सेवा की। उपयाजने कहा, 'राजन्!

मेरे बड़े भाई याज एक दिन वनमें विचर रहे थे। उन्होंने एक ऐसी जमीनपर गिरे हुए फलको उठा लिया, जिसकी शुद्धि-अशुद्धिके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं था। मैंने उनका यह काम देख लिया और सोचा कि वे किसी वस्तुके ग्रहणमें शुद्धि-अशुद्धिका विचार नहीं करते। तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हारा यज्ञ करा देंगे।' उन्होंने याजकी सेवा-शुश्रूषा

करके उन्हें प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'मैं द्रोणसे श्रेष्ठ और उनको युद्धमें मारनेवाला पुत्र चाहता हूँ। आप वैसा यज्ञ मुझसे कराइये। मैं आपको एक अर्बुद गौ दूँगा।' याजने स्वीकार कर लिया।

याजकी सम्मतिसे द्रुपदका यज्ञकार्य सम्पन्न हुआ और अग्निकुण्डसे एक दिव्य कुमार प्रकट हुआ। उसके शरीरका रंग धधकती आगके समान था। सिरपर मुकुट और शरीर-पर कवच था। उसके हाथमें धनुष-बाण और खड्ग थे। वह बार-बार गर्जना कर रहा था। अग्निकुण्डसे निकलते ही वह दिव्य कुमार रथपर सवार होकर इधर-उधर विचरने लगा। सभी पाञ्चालवासी हर्षित होकर 'साधु-साधु'का उद्घोष करने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई—'इस पुत्र जन्मसे द्रुपदका सारा शोक मिट जायगा। यह कुमार द्रोण मारनेके लिये ही पैदा हुआ है।'

उसी वेदीसे कुमारी पाञ्चालीका भी जन्म हुआ। व सर्वाङ्गसुन्दरी, कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली और श्या वर्णकी थी। उसके नीले-नीले घुँघराले बाल, लाल-ला ऊँचे नख, उभरी छाती और टेढ़ी भौंहें बड़ी मनोहर थीं ऐसा जान पड़ता था मानो कोई देवाङ्गना मनुष्य-शरी धारण करके प्रकट हुई है। उसके शरीरसे तुरंतके खिले नील कमलके समान सुन्दर गन्ध निकलकर कोसभरतव फैल रही थी। उस समय वैसी सुन्दरी पृथ्वीभरमें नहं थी। उसके जन्म लेनेपर भी आकाशवाणीने कहा—'यह रमणीरत्न कृष्णा है। देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये क्षत्रियोंके संहारके उद्देश्यसे इसका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवोंको बड़ा भय होगा।' यह सुनकर सभी पाञ्चाल-वासी सिंहोंके समान हर्षध्वनि करने लगे। इस दिव्य कुमारी और कुमारको देखकर द्रुपदराजकी रानी याजके पास आयीं और प्रार्थना करने लगीं कि 'ये दोनों मेरे अतिरिक्त और किसीको अपनी माँ न जानें।' याजने राजाकी प्रसन्नता-के लिये कहा—'एवमस्तु।'

ब्राह्मणोंने इन दिव्य कुमार और कुमारीका नामकरण किया। वे बोले, 'यह कुमार बड़ा धृष्ट (ढीठ) और असहिष्णु है। बलरूप धन अथवा कवच-कुण्डल आदिकी कान्तिसे सम्पन्न है। इसकी उत्पत्ति भी अग्निकी द्युतिसे हुई है। इसलिये इसका नाम होगा 'धृष्टद्युम्न'। और यह कुमारी कृष्ण वर्णकी है, इसलिये इसका नाम 'कृष्णा' होगा।' यज्ञ समाप्त हो जानेपर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नको अपने घर ले आये और उसे अस्त्र-शस्त्रकी विशिष्ट शिक्षा दी। परम बुद्धिमान् द्रोणाचार्य यह जानते थे कि प्रारब्धानुसार जो कुछ होना है, वह तो होकर ही रहेगा। इसलिये उन्होंने अपनी कीर्तिके अनुरूप उस शत्रुको भी अस्त्र-शिक्षा दी, जिसके हाथों उनका मरना निश्चित था।

व्यासजीका आगमन और द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्रौपदीके जन्म-की कथा और उसके स्वयंवरका समाचार सुनकर पाण्डवोंका मन बेचैन हो गया। उनकी व्याकुलता और द्रौपदीके प्रति प्रीति देखकर कुन्तीने कहा कि 'बेटा! हमलोग बहुत दिनोंसे इस ब्राह्मणके घरमें आनन्दपूर्वक रह रहे हैं। अब यहाँका सब कुछ हमलोग देख चुके; चलो न, तुम्हारी इच्छा हो तो

पञ्चाल देशमें चलें।' युधिष्ठिरने कहा कि यदि सब भाइयोंकी सम्मति हो तो चलनेमें क्या आपत्ति है। सबने स्वीकृति दे दी। प्रस्थानकी तैयारी हुई।

उसी समय श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास पाण्डवोंसे मिलनेके लिये एकचक्रा नगरीमें आये। सब उनके चरणोंमें प्रणाम

करके हाथ जोड़ खड़े हो गये। व्यासजीने एकान्तमें पाण्डवोंका किया सत्कार स्वीकार करके उनके धर्म, सदाचार, शास्त्राज्ञा-पालन, पूज्यपूजा, ब्राह्मणपूजा आदिके सम्बन्धमें पूछकर धर्मनीति और अर्थनीतिका उपदेश किया, चित्र-विचित्र कथाएँ सुनायीं। इसके बाद प्रसङ्गानुसार कहने लगे, ''पाण्डवो! पहलेकी बात है। एक बड़े महात्मा ऋषिकी सुन्दरी और गुणवती कन्या थी। परन्तु रूपवती, गुणवती और सदाचारिणी होनेपर भी पूर्वजन्मोंके बुरे कर्मोंके फलस्वरूप किसीने उसे पत्नीके रूपमें स्वीकार नहीं किया। इससे दुखी होकर वह तपस्या करने लगी। उसकी उग्र तपस्यासे भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसके सामने प्रकट होकर कहा, 'तू मुँहमाँगा वर माँग ले।' उस कन्याको भगवान् शङ्करके दर्शनसे और वर माँगनेके लिये कहनेसे इतना हर्ष हुआ कि वह बार-बार कहने लगी—'मैं सर्वगुणयुक्त पति चाहती हूँ।' शङ्करभगवान्‌ने कहा कि 'तुझे पाँच भरतवंशी पति प्राप्त होंगे।' कन्या बोली, 'मैं तो आपकी कृपासे एक ही पति चाहती हूँ।' भगवान् शङ्करने कहा, 'तूने पति प्राप्त करनेके लिये मुझसे पाँच बार प्रार्थना की है। मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती। दूसरे जन्ममें तुझे पाँच ही पति प्राप्त होंगे।' पाण्डवो! वही देवरूपिणी कन्या द्रुपदकी यज्ञवेदीसे प्रकट हुई है। तुमलोगोंके लिये विधि-विधानके अनुसार वही सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या निश्चित है। तुम जाकर पाञ्चाल-नगरमें रहो। उसे पाकर तुमलोग सुखी होओगे।'' इस प्रकार कहकर पाण्डवोंकी अनुमतिसे व्यासजीने प्रस्थान किया।

पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और अर्जुनके हाथों चित्ररथ गन्धर्वकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् व्यासके चले जानेपर पाण्डवोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी माताको आगे करके पञ्चाल देशकी यात्रा की। पहले ही उन्होंने अपने आश्रयदाता ब्राह्मणकी अनुमति ले ली और चलते समय आदरके साथ उन्हें प्रणाम किया। वे लोग उत्तरकी ओर बढ़ने लगे। एक दिन-रात यात्रा करनेके बाद वे गङ्गातटके सोमाश्रयायण तीर्थपर पहुँचे। उस समय उनके आगे-आगे महारथी अर्जुन मसाल लिये चल रहे थे। उस तीर्थके पास स्वच्छ एवं एकान्त गङ्गाजलमें गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) स्त्रियोंके साथ विहार कर रहा था। उसने उन लोगोंके पैरोंकी धमक और नदीकी ओर बढ़ना देख-सुनकर बड़ा क्रोध प्रकट किया और अपने धनुषको टंकारकर पाण्डवोंसे बोला, 'अजी, दिनके अन्तमें जब लालिमामयी सन्ध्या होती है, उसके बाद अस्सी लव (चालीस निमेष) के अतिरिक्त सारा समय गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंके लिये है। दिनका सारा समय तो मनुष्योंके लिये है ही। जो मनुष्य लोभवश हमलोगोंके समयमें इधर आते हैं, उन्हें हम और राक्षस कैद कर लेते हैं। इसीसे रातके समय जलमें प्रवेश करना निषिद्ध है। खबरदार! दूर ही रहो। क्या तुमलोगोंको पता नहीं कि मैं गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण इस समय गङ्गाजलमें विहार कर रहा हूँ? मैं अपने बलके लिये प्रसिद्ध, कुबेरका प्रिय सखा और पूरे-पूरे आत्मसम्मानका पक्षपाती हूँ। मेरे ही नामसे यह वन भी प्रसिद्ध है। मैं गङ्गाके तटपर चाहे कहीं भी मौजसे विहार करता हूँ। इस समय यहाँ राक्षस, रुद्रगण, देवता अथवा मनुष्य कोई नहीं आ सकता; तुम क्यों आ रहे हो?'

अर्जुनने कहा, 'अरे मूर्ख ! समुद्र, हिमालयकी तराई और गङ्गानदीके स्थान रात, दिन अथवा सन्ध्याके समय किसके लिये सुरक्षित हैं ? भूखे-नंगे, अमीर-गरीब, सभीके लिये रात-दिन गङ्गा माईका द्वार खुला है; यहाँ आनेके लिये समयका कोई नियम नहीं । यदि मान भी लें कि तुम्हारी बात ठीक है तो भी हम शक्ति-सम्पन्न हैं, बिना समयके भी तुम्हें पीस सकते हैं । कमजोर, नपुंसक ही तुम्हारी पूजा करते हैं । देवनदी गङ्गा कल्याणजननी एवं सबके लिये बेरोक-टोक है । तुम जो इसमें रोक-टोक करना चाहते हो, वह सनातन धर्मके विरुद्ध है । क्या केवल तुम्हारी बंदरघुड़कीसे डरकर हम गङ्गाजलका स्पर्श न करें ? यह नहीं हो सकता ।' अर्जुनकी

बात सुनकर चित्ररथने धनुष खींचकर जहरीले बाण छोड़ने प्रारम्भ किये । अर्जुनने अपनी मशाल और ढालका ऐसा हाथ घुमाया, जिससे सारे बाण व्यर्थ हो गये ।

अर्जुनने कहा, 'अरे गन्धर्व ! अस्त्रके मर्मज्ञोंके सामने धमकीसे काम नहीं चलता । ले, मैं तुझसे माया-युद्ध नहीं करता, दिव्य अस्त्र चलाता हूँ । यह आग्नेय अस्त्र बृहस्पतिने भरद्वाजको, भरद्वाजने अग्निवेश्यको, अग्निवेश्यने मेरे गुरु द्रोणाचार्यको और उन्होंने मुझे दिया है । ले, सँभाल !' ऐसा कहकर अर्जुनने आग्नेयास्त्र छोड़ा । चित्ररथ रथ जल जानेके कारण दग्धरथ हो गया । वह अस्त्रके तेजसे इतना चकरा गया कि रथसे कूदकर मुँहके बल लुढ़कने लगा । अर्जुनने झपटकर उसके केश पकड़ लिये और घसीटकर अपने भाइयोंके पास ले आये । गन्धर्व-पत्नी कुंभीनसी अपने पतिदेवकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरकी शरणमें आयी । उसकी शरणागति और रक्षा-प्रार्थनासे द्रवित होकर युधिष्ठिरने आज्ञा दे दी कि 'अर्जुन ! इस यशोहीन, पराक्रमहीन, स्त्रीरक्षित गन्धर्वको छोड़ दो ।' अर्जुनने उसे छोड़ते हुए कहा, 'गन्धर्व ! शोक न करो । जाओ, तुम्हारी जान बच गयी । कुरुराज युधिष्ठिर तुम्हें अभयदान देते हैं ।' गन्धर्वने कहा, 'मैं हार गया । इसलिये अपना अङ्गारपर्ण नाम छोड़े देता हूँ । यह बात बड़ी अच्छी हुई कि मुझे दिव्य अस्त्रका मर्मज्ञ मित्र मिला । मैं अर्जुनको गन्धर्वोंकी माया सिखला देना चाहता हूँ । मैं आज चित्ररथसे दग्धरथ हो गया । आज मुझे हराकर भी आपने जीवित छोड़ दिया, इसलिये आप सारे कल्याणोंके भाजन हैं । इस विद्याका नाम चाक्षुषी है । इसे मनुने सोमको, सोमने विश्वावसुको और विश्वावसुने मुझे दिया है । इस विद्याका प्रभाव यह है कि इसके बल जगत्की कोई भी वस्तु, चाहे वह जितनी सूक्ष्म हो, नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष देख सकते हैं । जो छः महीनेतक एक पैर खड़ा रहे, वह इसका अधिकारी है । परन्तु मैं आप अनुनय करता हूँ कि इसे आप बिना व्रतके ही स्वीकार क लीजिये । इसी विद्याके कारण हम गन्धर्व मनुष्योंसे श्रेष्ठ मा जाते हैं । मैं आप सब भाइयोंको गन्धर्वोंके दिव्य वेगशाल और दुबले होनेपर भी कभी न थकनेवाले सौ-सौ घोड़े देत हूँ । वे चाहते ही आ जाते हैं, चाहते ही चाहे जहाँ चले जाते और चाहते ही अपना रंग बदल लेते हैं ।' अर्जुनने कहा, 'गन्धर्वराज ! मैंने मृत्युसे तुम्हें बचा दिया है, यदि तुम इसलिये मुझे कुछ देना चाहते हो तो मैं लेना पसंद नहीं करता ।' गन्धर्व बोला, 'जब सत्पुरुष इकट्ठे होते हैं, तब उनका परस्पर प्रेमभाव बढ़ता ही है । मैं आपको प्रेमवश यह भेंट करता हूँ । आप भी मुझे आग्नेय अस्त्र दीजिये ।' अर्जुनने कहा, 'मित्र ! यह बात ठीक है । हमारी मैत्री अनन्त हो । तुम्हें किसीका भय हो तो बतलाओ । एक बात
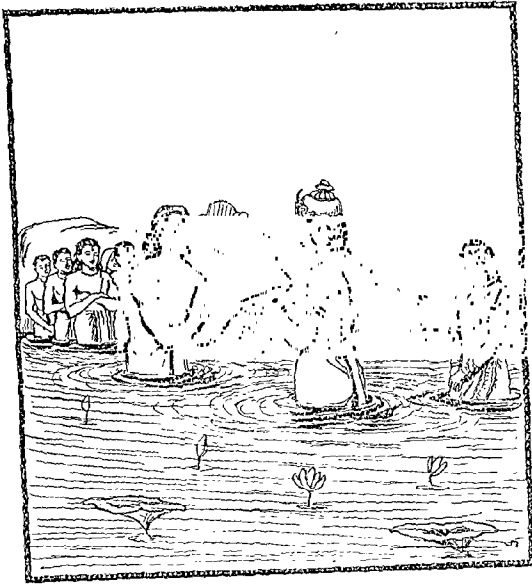
और बतलाओ कि तुमने हमलोगोंपर आक्रमण किस कारणसे किया ?'

गन्धर्वने कहा, 'न आपलोग अग्निहोत्री हैं और न प्रतिदिन स्मार्त हवन ही करते हैं। आपके साथ ब्राह्मण भी नहीं हैं। इसीसे मैंने आक्रमण किया है। आपका यशस्वी वंश सभीको मालूम है। नारद आदिसे मैंने सुना है और स्वयं भी पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके समय सब कुछ देखा है। मैं आपके आचार्य, पिता और गुरुजनोंसे भी परिचित हूँ। आपलोगोंके विशुद्ध अन्तःकरण, उत्तम विचार और श्रेष्ठ सङ्कल्पको जानकर भी मैंने आक्रमण किया। एक तो स्त्रियोंके सामने अपमान नहीं सहा जाता, दूसरे रातके समय बल अधिक बढ़ जानेसे क्रोध भी अधिक आता है। परन्तु आप श्रेष्ठ धर्म ब्रह्मचर्यके सच्चे पुजारी हैं। आपके ब्रह्मचर्यके कारण ही मुझे हारना पड़ा। कोई ब्रह्मचर्यहीन क्षत्रिय रात्रिमें मेरा सामना करता तो उसे मरना ही पड़ता। ब्रह्मचर्यहीन होनेपर भी यदि आगे-आगे ब्राह्मण चल रहे हों तो सारी जिम्मेदारी पुरोहितपर रहती है। तपतीनन्दन! मनुष्यको चाहिये कि अभिलषित कल्याणकी प्राप्तिके लिये अवश्य ही जितेन्द्रिय पुरोहितको कर्ममें नियुक्त करे। अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा करनेके लिये गुणवान् पुरोहितकी अत्यन्त आवश्यकता है। तपतीनन्दन! बिना ब्राह्मणकी सहायताके केवल अपने पराक्रम अथवा पुरजन-परिजनके द्वारा पृथ्वीपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। इसलिये आप यह निश्चय कर लीजिये कि ब्राह्मणको नेता बनानेपर ही चिरकालतक पृथ्वीपालन सम्भव है।'

सूर्यपुत्री तपतीके साथ राजा संवरणका विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गन्धर्वके मुखसे 'तपतीनन्दन' सम्बोधन सुनकर अर्जुनने कहा, 'गन्धर्वराज! हमलोग तो कुन्तीके पुत्र हैं। फिर तुमने तपतीनन्दन क्यों कहा? यह तपती कौन थी, जिसके कारण हमें तपतीनन्दन कह रहे हो?'

गन्धर्वराजने कहा—अर्जुन! आकाशमें सर्वश्रेष्ठ ज्योति हैं भगवान् सूर्य, इनकी प्रभा स्वर्गतक परिव्याप्त है। इनकी पुत्रीका नाम था तपती। वह भी इनके-जैसी ही ज्योतिष्मती थी। वह सावित्रीकी छोटी बहन थी तथा अपनी तपस्याके कारण तीनों लोकोंमें 'तपती' नामसे विख्यात थी। वैसी रूपवती कन्या देवता, असुर, अप्सरा, यक्ष आदि किसीकी भी नहीं थी। उन दिनों उसके समान योग्य कोई भी पुरुष नहीं था, जिसके साथ भगवान् सूर्य उसका विवाह करें। इसके लिये वे सर्वदा चिन्तित रहा करते थे।

उन्हीं दिनों पूरुवंशमें राजा ऋक्षके पुत्र संवरण बड़े ही बलवान् एवं भगवान् सूर्यके सच्चे भक्त थे। वे प्रतिदिन सूर्योदयके समय अर्घ्य, पाद्य, पुष्प, उपहार, सुगन्ध आदिसे पवित्रताके साथ उनकी पूजा करते; नियम, उपवास, तपस्या-से उन्हें सन्तुष्ट करते और अहङ्कारके बिना भक्तिभावसे उनकी पूजा करते। सूर्यके मनमें धीरे-धीरे यह बात आने लगी कि ये मेरी पुत्रीके योग्य पति होंगे। बात थी भी ऐसी ही। जैसे आकाशमें सबके पूज्य और प्रकाशमान सूर्य हैं, वैसे ही पृथ्वीमें संवरण थे।

एक दिनकी बात है। संवरण घोड़ेपर चढ़कर पर्वतकी तराइयों और जङ्गलमें शिकार खेल रहे थे। भूख-प्याससे व्याकुल होकर उनका श्रेष्ठ घोड़ा मर गया। वे पैदल ही चलने लगे। उस समय उनकी दृष्टि एक सुन्दर कन्यापर पड़ी। एकान्तमें अकेली कन्याको देखकर वे एकटक उसकी

ओर निहारने लगे। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो सूर्यकी प्रभा ही पृथ्वीपर उतर आयी हो। वे सोचने लगे कि ऐसा सुन्दर रूप तो मैंने जीवनमें कभी नहीं देखा। राजाकी आँखें और मन उसीमें गड़ गये; वे सब कुछ भूल गये, हिल-डुल तक नहीं सके। चेत होनेपर उन्होंने यही निश्चय किया कि ब्रह्माने त्रिलोकीका रूप-सौन्दर्य मथकर इस मधुर मूर्तिका आविष्कार किया होगा। उन्होंने कहा, 'सुन्दरि! तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा क्या नाम है? इस निर्जन जङ्गलमें किस उद्देश्यसे विचर रही हो? तुम्हारे शरीरकी अनुपम छबिसे आभूषण भी चमक उठे हैं। त्रिलोकीमें ऐसी सुन्दरी और कोई न होगी। तुम्हारे लिये मेरा मन अत्यन्त चञ्चल और लालायित हो रहा है।' राजाकी बात सुनकर वह कुछ न बोली। बादलमें बिजलीकी तरह तत्क्षण अन्तर्धान हो गयी। राजाने उसे ढूँढ़नेकी बड़ी चेष्टा की। अन्तमें असफल होनेपर विलाप करते-करते वे निश्चेष्ट हो गये।

राजा संवरणको बेहोश और धरतीपर पड़ा देखकर तपती फिर वहाँ आयी और मिठासभरी वाणीसे बोली, 'राजन्! उठिये, उठिये। आप-जैसे सत्पुरुषको अचेत होकर धरतीपर नहीं लोटना चाहिये।' अमृतघोली बोली सुनकर संवरण उठ गये। उन्होंने कहा, 'सुन्दरि! मेरे प्राण तुम्हारे हाथ हैं। मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। तुम मुझपर दया करो और मुझ सेवकको मत छोड़ो। तुम गान्धर्व विवाहके द्वारा मुझे स्वीकार कर लो। मुझे जीवन-दान दो।' तपतीने कहा, 'राजन्! मेरे पिता जीवित हैं। मैं स्वयं अपने सम्बन्धमें स्वतन्त्र नहीं हूँ। यदि आप सचमुच ही मुझसे प्रेम करते हैं तो मेरे पितासे कहिये। इस परतन्त्र शरीरसे मैं आपके पास नहीं रह सकती। आप-जैसे कुलीन, भक्तवत्सल और विश्वविश्रुत राजाको पतिरूपसे स्वीकार करनेमें मेरी ओरसे कोई आपत्ति नहीं है। आप नम्रता, नियम और तपस्याके द्वारा मेरे पिताको प्रसन्न करके मुझे माँग लीजिये। मैं भगवान् सूर्यकी कन्या और विश्ववन्द्या

सावित्रीकी छोटी बहिन हूँ।' यह कहकर तपती आकाशमार्गसे चली गयी। राजा संवरण वहीं मूर्छित हो गये।

उसी समय राजा संवरणको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनके मन्त्री, अनुयायी और सैनिक आ पहुँचे। उन्होंने राजाको जगाया और अनेक उपायोंसे चेतमें लानेकी चेष्टा की। होशमें आनेपर उन्होंने सबको लौटा दिया, केवल एक मन्त्रीको अपने पास रख लिया। अब वे पवित्रतासे हाथ जोड़कर ऊपरकी ओर मुँह करके भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगे। उन्होंने मन-ही-मन अपने पुरोहित महर्षि वशिष्ठका ध्यान किया। ठीक बारहवें दिन वशिष्ठ महर्षि आये। उन्होंने राजा संवरणके मनका सारा हाल जानकर उन्हें आश्वासन दिया और उनके सामने ही भगवान् सूर्यसे मिलनेके लिये चल पड़े। सूर्यके सामने जाकर उन्होंने अपना परिचय दिया और उनके स्वागत-प्रश्न आदिके अनन्तर इच्छा पूर्ण करनेकी बात कहनेपर महर्षि वशिष्ठने प्रणामपूर्वक कहा, 'भगवन्! मैं राजा संवरणके लिये आपकी कन्या तपतीकी याचना करता हूँ। आप उनके उज्ज्वल यश, धार्मिकता और नीतिज्ञतासे परिचित ही हैं। मेरे विचारसे वह आपकी कन्याके योग्य पति हैं।' भगवान् सूर्यने तत्काल उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्हींके साथ

अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्याको संवरणके पास भेज दिया।

वशिष्ठके साथ तपतीको आते देखकर संवरण अपनी

प्रसन्नताका संवरण न कर सके। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी आराधना और अपने पुरोहित वशिष्ठकी शक्तिसे राजा संवरणने तपतीको प्राप्त किया और विधिपूर्वक पाणिग्रहण-संस्कारसे सम्पन्न होकर उसके साथ उसी पर्वतपर सुखपूर्वक विहार करने लगे। इस प्रकार वे बारह वर्षतक वहीं रहे। राजकाज मन्त्रीपर रहा। इससे इन्द्रने उनके राज्यमें वर्षा ही बंद कर दी। अनावृष्टिके कारण प्रजाका नाश होने लगा। ओस तक न पड़नेके कारण अन्नकी पैदावार सर्वथा बंद हो गयी। प्रजा मर्यादा तोड़कर एक-दूसरेको लूटने-पीटने लगी। तब वशिष्ठ मुनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे वहाँ वर्षा करवायी और तपती-संवरणको राजधानीमें ले आये। इन्द्र पूर्ववत् वर्षा करने लगे। पैदावार शुरू हो गयी। राजदम्पतिने सहस्रों वर्षतक सुख-भोग किया।

गन्धर्वराज कहते हैं—अर्जुन! यही सूर्यकन्या तपती आपके पूर्वपुरुष राजा संवरणकी पत्नी थीं। इन्हीं तपतीके गर्भसे राजा कुरुका जन्म हुआ, जिनसे कुरुवंश चला। उन्हींके सम्बन्धसे मैंने आपको 'तपतीनन्दन' कहा है।

ब्रह्मतेजकी महिमा और विश्वामित्रका वशिष्ठकी नन्दिनीके साथ सङ्घर्ष

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गन्धर्वराज चित्ररथके मुखसे महर्षि वशिष्ठकी महिमा सुनकर अर्जुनके मनमें उनके सम्बन्धमें बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने पूछा, 'गन्धर्वराज! हमारे पूर्वजोंके पुरोहित महर्षि वशिष्ठ कौन थे? कृपया उनका चरित्र सुनाइये।'

गन्धर्वने कहा—महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती है। उन्होंने अपनी तपस्याके बलसे देवताओंके लिये भी अजेय काम और क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था, इसलिये उनका नाम वशिष्ठ हुआ। विश्वामित्रके बहुत अपराध करनेपर भी उन्होंने अपने मनमें क्रोध नहीं आने दिया और उन्हें क्षमा कर दिया। यद्यपि विश्वामित्रने उनके सौ पुत्रोंका नाश कर दिया था और वशिष्ठमें बदला लेनेकी पूरी शक्ति थी, फिर भी उन्होंने कोई प्रतीकार नहीं किया। वे यमपुरीसे भी अपने पुत्रोंको ला सकते थे, परन्तु क्षमावश यमराजके नियमोंका उल्लङ्घन नहीं किया। उन्हींको पुरोहित बनाकर इक्ष्वाकुवंशी राजाओंने पृथ्वीपर विजय प्राप्त की थी और अनेकों यज्ञ किये थे। आपलोग भी कोई वैसे ही धर्मात्मा और वेदज्ञ ब्राह्मणको पुरोहित बनाइये।

अर्जुनने पूछा—'गन्धर्वराज! वशिष्ठ और विश्वामित्र तो आश्रमवासी थे, उनके वैरका क्या कारण है?' गन्धर्वने कहा—'यह उपाख्यान बड़ा प्राचीन और विश्वविश्रुत है। मैं तुम्हें सुनाता हूँ। कान्यकुब्ज देशमें गाधि नामके एक बहुत बड़े राजा थे। वे राजर्षि कुशिकके पुत्र थे। उन्हींसे विश्वामित्रका जन्म हुआ। एक बार विश्वामित्र अपने मन्त्रीके साथ मरुधन्व देशमें शिकार खेलते-खेलते थककर वशिष्ठके आश्रमपर आये। वशिष्ठने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और अपनी कामधेनु नन्दिनीके प्रतापसे अनेकों प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदिके द्वारा उन्हें तृप्त किया। इस आतिथ्यसे विश्वामित्रको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महर्षि वशिष्ठसे कहा कि 'ब्रह्मन्! आप मुझसे एक अर्बुद गौएँ या मेरा राज्य ही ले लीजिये, परन्तु अपनी कामधेनु नन्दिनी मुझे दे दीजिये।'

वशिष्ठ बोले, 'मैंने यह दुधार गाय देवता, अतिथि, पितर और यक्षोंके लिये रख छोड़ी है। आपके राज्यके बदलेमें भी यह देने योग्य नहीं है।' विश्वामित्र बोले, 'मैं क्षत्रिय हूँ और आप ब्राह्मण। आप शान्त महात्मा हैं, तपस्या-स्वाध्यायमें लगे रहते हैं, आप इसकी रक्षा कैसे करेंगे? आप एक अर्बुद गायके बदलेमें भी इसे नहीं दे रहे हैं तो मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा, कदापि न छोड़ूँगा।' वशिष्ठजी बोले, 'आप बलवान् क्षत्रिय हैं, जो चाहें तुरंत कर सकते हैं। फिर सोच-विचार क्या है?' जब विश्वामित्र बलपूर्वक नन्दिनीको हँकवाकर ले जाने लगे, तब वह डकराती हुई वशिष्ठजीके पास आकर खड़ी हो गयी। वशिष्ठने कहा, 'कल्याणी! मैं तुम्हारा क्रन्दन सुन रहा हूँ। विश्वामित्र तुम्हें बलपूर्वक छीनकर ले जा रहे हैं। मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूँ। क्या करूँ, लाचारी है।' नन्दिनी बोली, 'भगवन्! ये सब मुझे चाबुक और डंडोंसे पीट रहे हैं, मैं अनाथकी तरह डकरा रही हूँ। आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?' वशिष्ठ उसका करुण-क्रन्दन सुनकर भी न क्षुब्ध हुए और न धैर्यसे विचलित। वे बोले, 'क्षत्रियोंका बल है तेज और ब्राह्मणोंका क्षमा। मेरा प्रधान बल क्षमा मेरे पास है। तुम्हारी मौज हो तो जाओ।' नन्दिनीने कहा, 'आपने मुझे छोड़ा तो नहीं है? यदि नहीं तो बलपूर्वक मुझे कोई नहीं ले जा सकता।' वशिष्ठजी बोले, 'कल्याणी! मैंने तुझे नहीं छोड़ा। यदि तुझमें शक्ति है तो रह जा; देख, तेरे बच्चेको ये लोग मज़बूत रस्सीसे बाँधकर लिये जा रहे हैं।'

वशिष्ठकी बात सुनकर नन्दिनीका सिर ऊपर उठ ग आँखें लाल हो गयीं। वह वज्रकर्कश ध्वनि करने लगी। उ भीषण मूर्ति देखकर सैनिक भाग चले। जब लोगोंने उ फिर ले जानेकी चेष्टा की, तब वह सूर्यके समान चमकने ल उसके रोम-रोमसे मानो अङ्गारोंकी वर्षा होने लगी। उ एक-एक अङ्गसे पह्लव, द्रविण, शक, यवन, शबर, पौ किरात, चीन, हूण, सिंहली, बर्बर, खस, यूनानी म्लेच्छ प्रकट हो गये तथा हथियार उठाकर विश्वामि एक-एक सैनिकपर पाँच-पाँच, सात-सात करके टूट प भगदड़ मच गयी। आश्चर्य तो यह था कि नन्दिनी-पक्ष कोई भी सैनिक विश्वामित्रके सैनिकपर प्राणान्तक प्र नहीं करता था। जब उनकी सेना बारह कोस भाग और उसे कोई रक्षक नहीं मिला, तब विश्वामित्र यह ब्रह्म देखकर आश्चर्यचकित हो गये। अपने क्षत्रियभावसे उ बड़ी ग्लानि हुई। वे उदास होकर कहने लगे, 'क्षत्रिय-बल धिक्कार है। वास्तवमें ब्रह्मतेजका बल ही सच्चा बल है सच पूछो तो इन दोनोंका कारण तपोबल ही प्रधान है यह विचारकर उन्होंने अपना विशाल राज्य, सौभाग्यलक्ष तथा सांसारिक सुखभोग छोड़ दिये और तपस्या करने लगे तपस्यासे सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने सारे लोकोंको अप तेजसे भर दिया और ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। उन्होंने इन्द्र साथ सोमपान भी किया था।

महर्षि वशिष्ठकी क्षमा—कल्माषपादकी कथा

गन्धर्वराज चित्ररथ कहते हैं—अर्जुन! राजा इक्ष्वाकुके वंशमें कल्माषपाद नामका एक राजा हो गया है। एक दिनकी बात है, वह शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। लौटनेके समय वह एक ऐसे मार्गसे आने लगा, जिससे केवल एक ही मनुष्य चल सकता था। वह थका-माँदा और भूखा-प्यासा तो था ही, उसी मार्गपर सामनेसे शक्तिमुनि आते दीख पड़े। शक्तिमुनि वशिष्ठके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। राजाने कहा, 'तुम हट जाओ। मेरे लिये रास्ता छोड़ दो।' शक्तिने कहा, 'महाराज! सनातनधर्मके अनुसार क्षत्रियका यही कर्तव्य है कि वह ब्राह्मणके लिये मार्ग छोड़ दे।' इस प्रकार दोनोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी। न ऋषि हटे और न राजा। राजाके हाथमें चाबुक था, उन्होंने बिना सोचे-विचारे ऋषिपर चला दिया। शक्तिमुनिने राजाका अन्याय समझकर उन्हें शाप दिया कि 'अरे नृपाधम! तू राक्षसकी तरह तपस्वीपर चाबुक चलाता है; इसलिये जा, राक्षस हो जा।' राजा राक्षसभावाक्रान्त हो गया। उसने कहा, 'तुमने मुझे अयोग्य शाप दिया है; इसलिये लो, मैं

तुमसे ही अपना राक्षसपना प्रारम्भ करता हूँ।' इसके बाद कल्माषपाद शक्तिमुनिको मारकर तुरंत खा गया। केवल शक्तिमुनिको ही नहीं; वशिष्ठके जितने पुत्र थे, सभीको उसने खा लिया।

शक्ति और वशिष्ठके दूसरे पुत्रोंके भक्षणमें कल्माषका राक्षसपना तो कारण था ही, इसके सिवा विश्वामित्रने भी पहले द्वेषका स्मरण करके किङ्कर नामके राक्षसको आज्ञा दी थी कि वह कल्माषपादमें प्रवेश कर जाय, जिसके कारण वह ऐसे नीच कर्ममें प्रवृत्त हुआ। वशिष्ठजीको यह बात मालूम हुई। उन्होंने जाना कि इसमें विश्वामित्रकी प्रेरणा है। फिर भी उन्होंने अपने शोकके वेगको वैसे ही धारण कर लिया, जैसे पर्वतराज सुमेरु पृथ्वीको। उन्होंने प्रतीकारकी सामर्थ्य होनेपर भी उनसे किसी प्रकारका बदला नहीं लिया।

एक बार महर्षि वशिष्ठ अपने आश्रमपर लौट रहे थे। इसी समय ऐसा जान पड़ा, मानो उनके पीछे-पीछे कोई षडङ्ग वेदोंका अध्ययन करता हुआ चलता है। वशिष्ठने पूछा कि 'मेरे पीछे-पीछे कौन चल रहा है?' आवाज आयी कि 'मैं आपकी पुत्र-वधू शक्तिपत्नी अदृश्यन्ती हूँ।' वशिष्ठ बोले, 'बेटी! मेरे पुत्र शक्तिके समान स्वरसे साङ्ग वेदोंका अध्ययन

कौन कर रहा है?' अदृश्यन्तीने कहा, 'आपका पौत्र मेरे गर्भमें है। वह बारह वर्षसे गर्भमें ही वेदाध्ययन कर रहा है।' यह सुनकर वशिष्ठ मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा, 'अच्छी बात है। मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद नहीं हुआ।' यही सब सोचते हुए वे लौट ही रहे थे कि एक निर्जन वनमें कल्माषपादसे उनकी भेंट हो गयी।

कल्माषपाद विश्वामित्रके द्वारा प्रेरित उग्र राक्षससे आविष्ट होकर वशिष्ठ मुनिको खा जानेके लिये दौड़ा। उस क्रूरकर्मा राक्षसको देखकर अदृश्यन्ती डर गयी और कहने लगी, 'भगवन्! देखिये, देखिये; यह हाथमें सूखा काठ लिये भयङ्कर राक्षस दौड़ा आ रहा है। आप इससे मेरी रक्षा कीजिये।' वशिष्ठने कहा, 'बेटी, डरो मत। यह राक्षस नहीं, कल्माषपाद है।' यह कहकर महर्षि वशिष्ठने

हुङ्कारसे ही उसे रोक दिया। इसके बाद उन्होंने जलको हाथमें लेकर मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और कल्माषपादके ऊपर डाला। वह तुरंत शापसे मुक्त हो गया। बारह वर्षके बाद आज वह शापसे छूटा। उसका तेज बढ़ गया, वह होशमें आया और हाथ जोड़कर श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठसे कहने लगा, 'महाराज! मैं सुदासका पुत्र कल्माषपाद आपका यजमान हूँ। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' वशिष्ठजीने कहा, 'यह सब बात तो भैया, समय-समयकी है। अब जाओ, तुम अपने राज्यकी देख-भाल करो। हाँ, इतना ध्यान रखना कि कभी किसी ब्राह्मणका अपमान न हो।' राजाने प्रतिज्ञा की, 'महाभाग्यवान् ऋषिश्रेष्ठ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। कभी ब्राह्मणोंका तिरस्कार नहीं करूँगा, उनका प्रेमसे सत्कार करूँगा।' क्षमाशील महर्षि वशिष्ठ इसी पुत्रघाती राजाके साथ अयोध्यामें आये और अपने कृपाप्रसादसे उसे पुत्रवान् बनाया।

इधर वशिष्ठके आश्रमपर अदृश्यन्तीके गर्भसे पराशरका जन्म हुआ। स्वयं भगवान् वशिष्ठने पराशरके जातकर्मादि संस्कार कराये। धर्मात्मा पराशर वशिष्ठ मुनिको ही अपना पिता समझते थे और 'पिताजी! पिताजी!' कहकर पुकारते थे। एक दिन अदृश्यन्तीने बतलाया कि ये तुम्हारे पिता नहीं, दादा हैं; इसी प्रसङ्गमें पराशरजीको यह भी मालूम हुआ कि मेरे पिताको राक्षसने खा डाला। यह सुनकर उनके चित्तमें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने सब राजाओंपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय किया। महर्षि वशिष्ठने प्राचीन कथाएँ कहकर उन्हें समझाया और आज्ञा की कि 'तुम्हारा कल्याण इसीमें है। तुम क्षमा करो, किसीको पराजित मत करो। तुम्हें मालूम ही है कि इन राजाओंकी जगत्में कितनी आवश्यकता है।' वशिष्ठके समझाने-बुझानेसे पराशरने राजाओंको पराजित करनेका निश्चय तो छोड़ दिया परन्तु राक्षसोंके विनाशके लिये घोर यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञसे जब राक्षसोंका नाश होने लगा, तब महर्षि पुलस्त्य और वशिष्ठने उन्हें समझाया—'पराशर! क्षमा ही परम धर्म है। तुम्हारे सभी पूर्वज क्षमाकी मूर्ति हैं। मनुष्य तो यों ही किसीकी मृत्युका निमित्त बन जाता है, तुम यह भयङ्कर क्रोध त्याग दो।' ऋषियोंकी आज्ञासे पराशरने भी क्षमा स्वीकार की और अपने यज्ञाग्निको हिमाचलमें छोड़ दिया। वह आग अब भी राक्षस, वृक्ष और पत्थरोंको जलाती फिरती है।

पाण्डवोंका धौम्य मुनिको पुरोहित बनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गन्धर्वराजके मुखसे पुरोहितकी महिमा और प्रसङ्गवश महर्षि वशिष्ठकी क्षमाशीलता सुनकर अर्जुनने पूछा—'गन्धर्वराज! तुम तो सब कुछ जानते हो। यह बतलाओ कि हमलोगोंके योग्य वेदज्ञ पुरोहित कौन होगा।' गन्धर्वने कहा, 'अर्जुन! इसी वनके उत्कोचक तीर्थमें देवलके छोटे भाई धौम्य तपस्या कर रहे हैं। आपलोगोंकी इच्छा हो तो उन्हें पुरोहित बना लें।' इसके बाद अर्जुनने गन्धर्वराजको विधिपूर्वक आग्नेय अस्त्र दिया और प्रसन्नतासे कहा, 'गन्धर्वराज! तुम जो घोड़े देना चाहते हो, वे अभी तुम्हारे ही पास रहें।

समय आनेपर हम उन्हें ले लेंगे ।' इस प्रकार आपसमें एक-दूसरेका सत्कार करके गन्धर्व और पाण्डव भगवती भागीरथीके रमणीय तटसे अभीष्ट स्थानकी ओर चल पड़े ।

पाण्डवोंने उत्कोचक तीर्थमें धौम्य मुनिके आश्रमपर जाकर उनसे पुरोहित बननेकी प्रार्थना की । धौम्यने कन्द, मूल, फलसे पाण्डवोंका स्वागत किया और पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया । इससे पाण्डवोंको इतनी प्रसन्नता हुई और उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो सारी सम्पत्ति और राज्य मिल गया । उन्हें इस बातका पक्का विश्वास हो गया कि अब स्वयंवरमें द्रौपदी हमें ही मिलेगी । पाण्डव सनाथ हो गये । धौम्य मुनिको भी ऐसा दीखने लगा कि इन धर्मात्मा वीरोंको इनकी विचारशीलता, शक्ति और उत्साहके फलस्वरूप शीघ्र ही राज्यकी प्राप्ति होगी । मङ्गलाचारके अनन्तर पाण्डवोंने द्रौपदीके स्वयंवरके लिये यात्रा की ।

द्रौपदी-स्वयंवर

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब नर-रत्न पाण्डव अपनी माताके साथ राजा द्रुपदके श्रेष्ठ देश, उनकी पुत्री द्रौपदी और उसके स्वयंवर-महोत्सवको देखनेके लिये रवाना हुए तब उन्हें मार्गमें एक साथ ही बहुत-से ब्राह्मणोंके दर्शन हुए । ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे पूछा कि 'आपलोग कहाँसे चलकर किस स्थानको जा रहे हैं ?' युधिष्ठिरने उत्तर दिया, 'पूजनीय ब्राह्मणो, हम सब भाई एक साथ ही रहते हैं और इस समय एकचक्रा नगरीसे आ रहे हैं ।' ब्राह्मणोंने कहा 'आपलोग आज ही पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदकी राजधानीमें चलिये । वहाँ स्वयंवरका बहुत बड़ा उत्सव होनेवाला है । हम भी वहीं चल रहे हैं । आइये, हमलोग साथ-साथ चलें ।' युधिष्ठिरने उनकी बात स्वीकार कर ली, सबलोग एक साथ ही चलने लगे । कुछ आगे चलनेपर उन्हें महर्षि वेदव्यासके भी दर्शन हुए । रास्तेमें बहुत-से हरे-भरे जंगल और खिले कमलोंसे शोभायमान सरोवर देखते हुए तथा स्थान-स्थानपर विश्राम करते हुए सब लोग आगे बढ़ने लगे । साथियोंको पाण्डवोंके पवित्र चरित्र,

मधुर स्वभाव, मीठी वाणी और स्वाध्यायशीलतासे बहुत प्रसन्नता हुई । जब पाण्डवोंने देखा कि द्रुपदनगर निकट आ गया है और उसकी चहारदीवारी स्पष्ट दीख रही है,

तब उन्होंने एक कुम्हारके घर डेरा डाल दिया। वे उसके घर रहकर ब्राह्मणोंके समान भिक्षावृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करने लगे। किसी भी नागरिकको यह बात मालूम नहीं हुई कि ये पाण्डुपुत्र हैं।

राजा द्रुपदके मनमें इस बातकी बड़ी लालसा थी कि मेरी पुत्री द्रौपदीका विवाह किसी-न-किसी प्रकार अर्जुनके साथ हो। परन्तु उन्होंने अपना यह विचार किसीपर प्रकट नहीं किया। अर्जुनको पहचाननेके लिये उन्होंने एक ऐसा धनुष बनवाया, जो किसी दूसरेसे झुक न सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने आकाशमें एक ऐसा यन्त्र टँगवा दिया, जो चक्कर काटता रहता था। उसीके ऊपर वेधनेका लक्ष्य रक्खा गया। द्रुपदने घोषणा कर दी कि जो वीर-रत्न इस धनुषपर डोरी चढ़ाकर इन सजे हुए बाणोंसे घूमनेवाले यन्त्रके छिद्रमेंसे लक्ष्यवेध करेगा, वही मेरी पुत्रीको प्राप्त करेगा। स्वयंवरका मण्डप नगरके ईशान कोणमें एक समतल और सुन्दर स्थान-पर बनवाया गया था। उसके चारों ओर बड़े-बड़े महल, परकोटे, खाइयाँ और फाटक बने हुए थे। उनके चारों ओर बन्दनवारें लटक रही थीं। भीतोंकी ऊँचाई और रंग-बिरंगी चित्रकलाके कारण वे महल हिमालय-जैसे जान पड़ते थे। राजा द्रुपदके द्वारा आमन्त्रित नरपति और राजकुमार स्वयंवर-मण्डपमें आकर अपने लिये बनाये हुए विमानोंके समान मञ्चोंपर बैठने लगे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी ब्राह्मणोंके साथ राजा द्रुपदका वैभव देखते हुए वहाँ आये और उन्हींके साथ बैठ गये। वह उत्सवका सोलहवाँ दिन था। द्रुपद-कुमारी कृष्णा सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सज-धजकर हाथमें सोनेकी वर-माला लिये मन्दगतिसे रंग-मण्डपमें आयी। धृष्टद्युम्नने अपनी बहिन द्रौपदीके पास खड़े होकर गम्भीर, मधुर और प्रिय वाणीसे कहा, 'स्वयंवरके उद्देश्यसे समागत नरपतियो और राजकुमारो! आपलोग ध्यान देकर सुनें। यह धनुष है, ये बाण हैं और यह आपलोगोंके सामने लक्ष्य है। आपलोग घूमते हुए यन्त्रके छिद्रमेंसे अधिक-से-अधिक पाँच बाणोंके द्वारा लक्ष्यवेध कर दें। जो बलवान्, रूपवान् एवं कुलीन पुरुष यह महान् कर्म करेगा, मेरी प्यारी बहिन द्रौपदी उसकी अर्द्धाङ्गिनी बनेगी। मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती।'
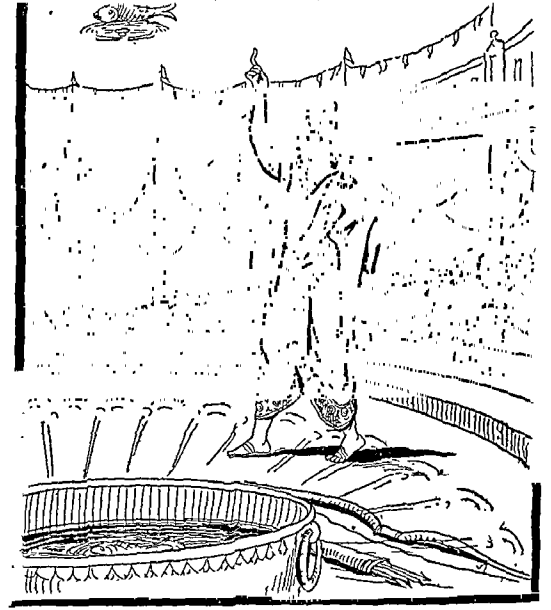
यह घोषणा करनेके अनन्तर धृष्टद्युम्नने द्रौपदीकी ओर देखकर कहा, 'बहिन! देखो, धृतराष्ट्रके बलवान् पुत्र दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण, विविंशति, विकर्ण, दुश्शासन, युयुत्सु आदि वीरवर कर्णको साथ लेकर तुम्हारे लिये यहाँ आये हैं। बड़े-बड़े यशस्वी और कुलीन नरपति, जिनमें शकुनि, वृषक, बृहद्बल आदि प्रधान हैं, स्वयंवरमें तुम्हें पानेके लिये यहाँ आये हैं। अश्वत्थामा, भोज, मणिमान्, सहदेव, जयत्सेन, राजा विराट, सुशर्मा, चेकितान, पौण्ड्रक वासुदेव, भगदत्त, शल्य, शिशुपाल, जरासन्ध और बहुत-से सुप्रसिद्ध राजा-महाराजा यहाँ उपस्थित हैं। इन पराक्रमी राजाओंमेंसे जो इस लक्ष्यको वेध दे, उसके गलेमें तुम वरमाला डाल देना।' जिस समय धृष्टद्युम्न इस प्रकार सबका परिचय दे रहा था, उसी समय वहाँ रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, यमराज और कुबेर आदि देवता भी विमानोंद्वारा आकाशमें आकर स्थित हुए। दैत्य, गरुड़, नाग, देवर्षि और मुख्य-मुख्य गन्धर्व भी उपस्थित हुए। वसुदेव-नन्दन बलरामजी, भगवान् श्रीकृष्ण, प्रधान-प्रधान यदुवंशी और अन्य बहुत-से महानुभाव स्वयंवर-महोत्सव देखनेके लिये वहाँ आये हुए थे।

धृष्टद्युम्नका वक्तव्य सुनकर दुर्योधन, शाल्व, शल्य आदि राजा और राजकुमारोंने अपने बल, विद्या, गुण और धर्मके

द्रौपदी-स्वयंवर
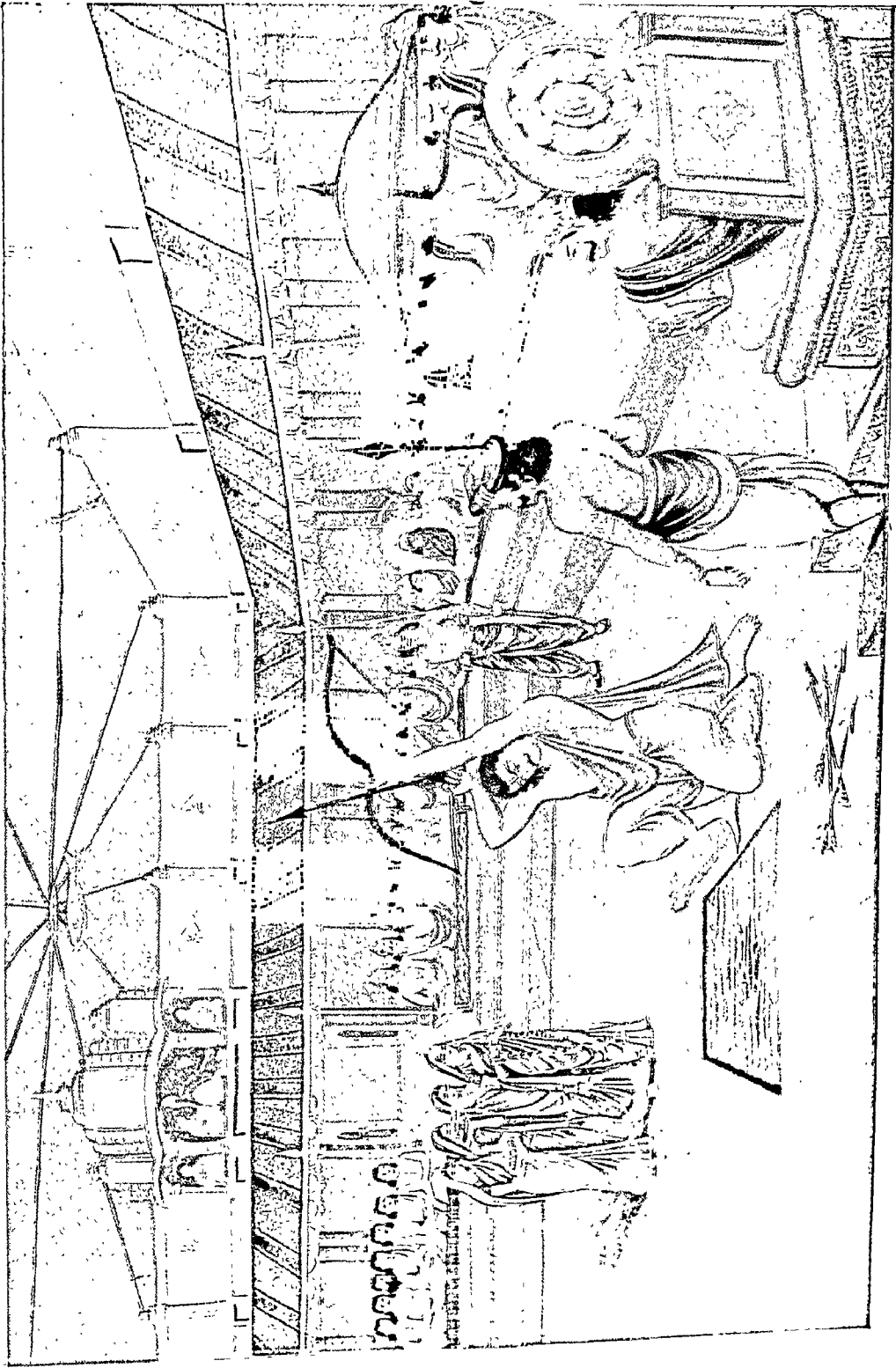
अनुसार धनुषको झुकाकर डोरी चढ़ानेकी चेष्टा की; परन्तु उन्हें ऐसा झटका लगा कि वे धमाक-धमाक धरतीपर जा गिरे। बेहोशीके कारण उनका उत्साह तो टूट ही गया; साथ ही उनके मुकुट और हार भी गिर पड़े, दम फूल गया। वे द्रौपदीको पानेकी आशा छोड़कर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। दुर्योधन आदिको निराश और उदास देखकर धनुर्धर-शिरोमणि कर्ण उठा। उसने धनुषके पास जाकर झटपट उसे उठाया और देखते-देखते डोरी चढ़ा दी। वह क्षणभरमें ही लक्ष्यको वेध देता कि द्रौपदी जोरसे बोल उठी, 'मैं सूतपुत्रको नहीं वरूँगी।' कर्णने यह सुनकर ईर्ष्याभरी हँसीके साथ सूर्यको देखा और फड़कते हुए धनुषको नीचे रख दिया। जब इस प्रकार बहुत-से लोग निराश हो गये, तब शिशुपाल धनुष चढ़ानेके लिये आया। किन्तु धनुष उठानेके समय ही वह घुटनोंके बल नीचे जा पड़ा। जरासन्धकी भी वही दशा हुई और वह उसी समय अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान कर गया। मद्रदेशके राजा शल्यकी भी वही गति हुई, जो शिशुपालकी हुई थी। जब इस प्रकार बड़े-बड़े प्रभावशाली राजा लक्ष्यवेध न कर सके, सारा समाज सहम गया, लक्ष्यवेध-की बातचीततक बंद हो गयी। उसी समय अर्जुनके चित्तमें यह सङ्कल्प उठा कि अब मैं चलकर लक्ष्यवेध करूँ।

अर्जुनका लक्ष्यवेध और उनके तथा भीमसेनके द्वारा अन्य राजाओंकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ब्राह्मणोंके समाजमें अर्जुन खड़े हो गये। परम सुन्दर एवं वीर अर्जुनको धनुष चढ़ानेके लिये तैयार देखकर ब्राह्मणलोग चकित रह गये। कोई सोचने लगा कि कहीं यह हमारी हँसी न करा दे। कहीं राजालोग इसीके कारण ब्राह्मणोंसे द्वेष न करने लगें। कोई-कोई कहने लगा कि 'यह उत्साही वीर है, इसका मनोरथ पूर्ण होगा। देखो, यह सिंहके समान चलता है, गजराजके समान बलवान् है, यह सब कुछ कर सकता है। यदि इसमें शक्ति न होती तो यह ऐसी हिम्मत ही क्यों करता? तपस्वी और दृढनिश्चयी ब्राह्मणके लिये असाध्य ही क्या है? ब्राह्मण अपनी शक्तिसे छोटे-बड़े सभी तरहके काम कर सकता है। परशुरामने युद्धमें क्षत्रियोंको जीत लिया, अगस्त्यने समुद्रको पी लिया! इसे आपलोग आशीर्वाद दें कि यह लक्ष्यवेध कर ले।' ब्राह्मण आशीर्वादकी वर्षा करने लगे।

जिस समय ब्राह्मणोंमें इसी प्रकारकी अनेकों बातें हो रही थीं, उसी समय अर्जुन धनुषके पास पहुँच गये। उन्होंने धनुषकी प्रदक्षिणा की, भगवान् शङ्कर और श्रीकृष्णको सिर झुकाकर मन-ही-मन प्रणाम किया और धनुषको उठा लिया। जिस धनुषको बड़े-बड़े वीर उठा नहीं सके, रोंदा नहीं चढ़ा सके, उसी धनुषको अर्जुनने बिना परिश्रम उठा लिया और बात-की-बातमें डोरी चढ़ा दी। अभी लोगोंकी आँखें अर्जुनपर ठीक-ठीक जम भी नहीं पायी थीं कि उन्होंने पाँच बाण उठाकर उनमेंसे एक लक्ष्यपर चलाया और वह यन्त्रके छिद्रमें होकर जमीनपर गिर पड़ा। चारों तरफ कोलाहल होने लगा, अर्जुनके सिरपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, ब्राह्मण अपने दुपट्टे हिलाने लगे। अर्जुनको देखकर द्रुपदकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अवसर पड़ने-पर मैं अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ इस वीरकी सहायता करूँगा। जब युधिष्ठिरने देखा कि अर्जुनने अपना काम कर लिया, तब वे झट नकुल और सहदेवको लेकर वहाँसे अपने निवासस्थानपर चले आये। द्रौपदी हाथमें वरमाला लेकर प्रसन्नताके साथ अर्जुनके पास गयी और उसे उनके गलेमें डाल दिया। ब्राह्मणोंने अर्जुनका सत्कार किया और वे द्रौपदीके साथ रंगभूमिसे बाहर निकले।

जब राजाओंने देखा कि राजा द्रुपद तो अपनी कन्याका विवाह एक ब्राह्मणके साथ करना चाहते हैं, तब वे बहुत क्रोधित हुए और एक दूसरेसे कहने लगे—'देखो तो सही, राजा द्रुपद हमलोगोंको तिनकेकी तरह तुच्छ समझकर अपनी श्रेष्ठ कन्याका विवाह एक ब्राह्मणके साथ कर देना चाहता है। हमलोगोंको बुलाकर ऐसा तिरस्कार तो नहीं करना चाहिये न! यह हमें कुछ नहीं समझता, इसलिये इसकी परवा न करके इसको मार डालना ही उचित है। इस राजद्वेषी दुरात्माको छोड़नेका कोई कारण नहीं है। क्या हमलोगोंमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसे यह अपनी पुत्रीके योग्य समझे? स्वयंवर क्षत्रियोंके लिये है, उसमें ब्राह्मणोंको आनेका कोई अधिकार नहीं है। यदि यह कन्या हमलोगोंको वरण नहीं करती तो इसे आगमें डाल दिया जाय। ब्राह्मणकुमारने चपलतावश हमलोगोंका अप्रिय किया है। परन्तु उसे तो ब्राह्मणके नाते छोड़ देना ही उचित है।' राजाओंने ऐसा निश्चय करके अपने-अपने शस्त्र उठा लिये और द्रुपदको मार डालनेके

लिये दौड़े । राजाओंको क्रोधित देखकर द्रुपद डर गये । वे ब्राह्मणोंकी शरणमें गये । द्रुपदको भयभीत और राजाओंको आक्रमण करते देख भीमसेन और अर्जुन उनके बीचमें आ गये, राजाओंने उन्हींपर धावा बोल दिया । ब्राह्मणोंने एक-स्वरसे मृगचर्म और कमण्डलु हिलाते हुए कहा, 'डरना नहीं, हम तुम्हारे शत्रुओंके साथ लड़ेंगे ।' अर्जुनने मुसकराकर कहा—'ब्राह्मणो ! आपलोग एक ओर खड़े होकर तमाशा देखते रहिये । इन लोगोंके लिये तो मैं ही बहुत हूँ ।' अर्जुन धनुष चढ़ाकर भीमसेनके साथ पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये । मदोन्मत्त कर्ण आदि वीरोंको सामने आते देख वे उनपर टूट पड़े । सभी उपस्थित वीर युद्धमें ब्राह्मणोंको मारना अधर्म नहीं है, ऐसा कहकर उनपर आक्रमण करने लगे । अर्जुन और कर्णका सामना हुआ । अर्जुनने ऐसे बाण खींच-

खींचकर मारे कि कर्ण युद्धभूमिमें ही अचेत-सा हो गया । दोनों बड़ी वीरताके साथ एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अपने-अपने हाथोंकी सफाई दिखलाने लगे । कर्णने कहा, 'अजी ! आपने तो ब्राह्मण होनेपर भी ऐसे हाथ दिखलाये कि मेरी प्रसन्नताकी सीमा न रही । आपके मुखपर विषादका कोई चिह्न नहीं है और हस्तकौशल भी बड़ा विलक्षण है । आप स्वयं धनुर्वेद अथवा परशुराम तो नहीं हैं ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो स्वयं विष्णु या इन्द्र ही अपनेको छिपाकर मुझसे युद्ध कर रहे हैं । मेरा निश्चय है कि यदि मैं क्रोधमें भरकर युद्ध करूँ तो देवराज इन्द्र और पाण्डुनन्दन अर्जुनके सिवा कोई भी मेरा सामना नहीं कर सकता ।'

अर्जुनने कहा, 'कर्ण ! मैं साक्षात् धनुर्वेद या परशुराम नहीं हूँ । मैं समस्त शस्त्रोंका रहस्यज्ञ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण योद्धा हूँ । श्रीगुरुदेवके प्रतापसे ब्रह्मास्त्र और इन्द्रास्त्रका मुझे अच्छा अभ्यास है । मैं तुम्हें जीतनेके लिये जमकर खड़ा हूँ । तुम अपना जोर आजमाओ ।' महारथी कर्ण ब्रह्मास्त्रविशारद प्रतिद्वन्द्वीको अजेय समझकर युद्धसे स्वयं हट गया ।

जिस समय कर्ण और अर्जुन एक-दूसरेसे भिड़े हुए थे, उसी समय दूसरे स्थानपर शल्य और भीमसेन एक-दूसरेको ललकारते हुए मतवाले हाथियोंकी तरह युद्ध कर रहे थे । आगे खींचकर, पीछे झोंककर एक-दूसरेको गिरानेका प्रयत्न करते और तरह-तरहके दाँव करके घूँसोंकी चोट करते । पत्थरोंके टकरानेकी तरह दोनोंके शरीर चटचटा रहे थे । दो घड़ीतक लड़-भिड़कर भीमसेनने शल्यको धरतीपर गिरा दिया । सभी ब्राह्मण हँसने लगे । भीमसेनका यह काम और भी आश्चर्यजनक रहा कि उन्होंने अपने शत्रुको धरतीपर गिराकर भी उसे मारा नहीं ।

इस प्रकार जब भीमसेनने शल्यको पछाड़ दिया और कर्ण भी युद्धसे हट गया तब सभी लोग सशङ्क हो गये, सर्वसम्मतिसे युद्ध बंद कर दिया गया । भगवान् श्रीकृष्णने पहले ही पहचान लिया था कि ये तो पाण्डव हैं, इसलिये उन्होंने सब राजाओंको बड़ी नम्रताके साथ समझाया कि इस व्यक्तिने धर्मके अनुसार द्रौपदीको प्राप्त किया, इसलिये इससे युद्ध करना उचित नहीं है । भगवान् श्रीकृष्णके समझाने-बुझाने और भीमसेनके पराक्रमसे विस्मित होकर सब लोग युद्ध बंद करके अपने-अपने निवासस्थानपर लौट गये । धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी । भीमसेन और अर्जुन ब्राह्मणोंसे घिरे हुए, द्रौपदीको साथ लेकर, अपने निवासस्थान कुम्हारके घरकी ओर चले ।

भिक्षा लेकर लौटनेका समय बीत चुका था । माता कुन्ती अपने पुत्रोंके समयपर न लौटनेसे तरह-तरहकी आशङ्काएँ कर रही थीं । माताके स्नेहमय हृदयका यह स्वभाव ही है । वे एक बार सोचतीं कि कहीं दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनका कुछ अनिष्ट तो नहीं कर दिया, कहीं राक्षसोंसे तो मुठभेड़ नहीं हो गयी । उसी समय तीसरे पहर भीमसेन और अर्जुन द्रौपदीको साथ लिये कुम्हारके घरपर आये ।

कुन्तीकी आज्ञापर द्रौपदीके विषयमें पाण्डवोंका विचार तथा श्रीकृष्ण और बलरामसे भेंट

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीमसेन और अर्जुनने द्रौपदीके साथ कुम्हारके घरमें प्रवेश करके अपनी मातासे कहा कि 'माँ, आज हमलोग यह भिक्षा लाये हैं।' माता कुन्ती उस समय घरके भीतर थीं। उन्होंने अपने पुत्रों और भिक्षाको देखे बिना ही कह दिया कि 'बेटा, पाँचों भाई मिलकर उसका उपभोग करो।' बाहर निकलकर जब कुन्तीने देखा कि यह तो साधारण भिक्षा नहीं, राजकुमारी द्रौपदी है, तब तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे कहने लगीं—'हाय, हाय! मैंने क्या किया?' वे तुरंत द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास ले गयीं और बोलीं—'बेटा! जब भीमसेन और अर्जुन इस राजकुमारी द्रौपदीको लेकर भीतर आये, तब

मैंने बिना देखे ही कह दिया कि तुम सब लोग मिलकर इसका उपभोग करो। मैंने आजतक कभी कोई बात झूठी नहीं कही है। अब तुम कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे द्रौपदीको तो अधर्म न हो और मेरी बात झूठी भी न हो।' युधिष्ठिरने क्षणभर विचार करके माता कुन्तीको ऐसा ही करनेका आश्वासन दिया और अर्जुनको बुलाकर कहा, 'भाई! तुमने मर्यादाके अनुसार द्रौपदीको प्राप्त किया है। अब विधिपूर्वक अग्नि प्रज्वलित करके उसका पाणिग्रहण करो।' अर्जुनने कहा, 'भाईजी! आप मुझे अधर्मका भागी मत बनाइये। सत्पुरुषोंने कभी ऐसा आचरण नहीं किया है। पहले आप, तब भीमसेन, तदनन्तर मैं विवाह करूँ। फिर मेरे बाद नकुल और सहदेवका विवाह हो। इसलिये इस राजकुमारीका विवाह तो आपके ही साथ होना चाहिये। साथ ही यह भी निवेदन है कि आप अपनी बुद्धिसे धर्म, यश और हितके लिये जैसा करना उचित समझें, वैसी आज्ञा दें। हमलोग आपके आज्ञाकारी हैं।' सभी पाण्डव अर्जुनका प्रेम और ममतासे भरा वचन सुनकर द्रौपदीको देखने लगे। उस समय द्रौपदी भी उन्हीं लोगोंकी ओर देख रही थी। द्रौपदीके सौन्दर्य, माधुर्य और सौशील्यसे मुग्ध होकर पाँचों भाई एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। उनके मनमें द्रौपदी बस गयी। युधिष्ठिरने अपने भाइयोंकी मुखाकृतिसे उनके मनका भाव जानकर और महर्षि व्यासके वचनोंका स्मरण करके निश्चयपूर्वक कहा कि 'द्रौपदी हम सब भाइयोंकी पत्नी होगी।' इससे सभी भाइयोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने मनमें इसी बातपर विचार करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें ही पाण्डवोंको पहचान लिया था। अब वे बड़े भाई बलरामजीके साथ पाण्डवोंके निवासस्थानपर आये। उन्होंने वहाँ पाँचों भाइयोंको देखकर पहले धर्मराज युधिष्ठिरके चरणोंका स्पर्श किया और अपने-अपने नाम बतलाये। पाण्डवोंने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत-सत्कार

किया। दोनों भाइयोंने अपनी बुआ कुन्तीके चरणोंमें प्रणाम

किया। युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे कुशल-प्रश्नके अनन्तर पूछा कि 'भगवन्! हमलोग तो यहाँ छिपकर रह रहे हैं। आपने हमें कैसे पहचान लिया?' भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा, 'महाराज! क्या लोग छिपी हुई आगको नहीं ढूँढ लेते? आज भीमसेन और अर्जुनने जिस पराक्रमका परिचय दिया है, वह पाण्डवोंके अतिरिक्त और किसमें सम्भव है? यह बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है कि दुर्योधन और उसके मन्त्री पुरोचनकी अभिलाषा पूरी न हुई। आपलोग लाक्षाभवनकी आगसे बच निकले। आपके सङ्कल्प पूर्ण हों, आपका निश्चय सार्थक हो। अब हमलोग यहाँ अधिक देरतक रहेंगे तो लोगोंको पता चल जायेगा। इसलिये हम-लोगोंको अपने डेरेपर जानेकी अनुमति दीजिये।' युधिष्ठिरकी अनुमतिसे भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेव उसी समय लौट गये।

जिस समय भीमसेन और अर्जुन द्रौपदीको साथ लेकर कुम्हारके घर जा रहे थे, उस समय राजकुमार धृष्टद्युम्न छिप-कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा था। उसने सब ओर अपने कर्मचारियोंको नियुक्त कर दिया और स्वयं सजग होकर पाण्डवोंके पास ही बैठ रहा। वह पाण्डवोंके सब काम बड़ी सावधानीसे देख रहा था। चारों भाइयोंने भिक्षा लाकर अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके सामने रख दी। कुन्तीने द्रौपदीसे कहा, 'कल्याणि! पहले तुम इस भिक्षामेंसे देवताओंका अंश निकालो, ब्राह्मणोंको भिक्षा दो, आश्रितोंको बाँटो। बचे हुए अन्नका आधा भीमसेनको दे दो। आधेमें छः हिस्से करके हमलोग खा लें।' साध्वी द्रौपदीने अपनी सासकी आज्ञामें किसी प्रकारकी शङ्का किये विना प्रसन्नतासे उसका पालन किया। भोजनके पश्चात् सबके लिये कुशासन बिछाया। सबने अपने-अपने मृगचर्म बिछाये और धरतीपर ही पड़ रहे। पाण्डवोंने अपना सिरहाना दक्षिण दिशामें किया। सिरकी ओर माता कुन्ती और पैरोंकी ओर राजकुमारी द्रौपदी सोयीं। सोते समय वे लोग आपसमें रथ, हाथी, तलवार, गदा आदिकी ऐसी विचित्र-विचित्र बातें कर रहे थे, मानो कोई सेनाधिकारी हों।

धृष्टद्युम्न और द्रुपदकी बातचीत, पाण्डवोंकी परीक्षा और परिचय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धृष्टद्युम्न पाण्डवों-के इतना निकट बैठा हुआ था कि वह उनकी बातें तो सुन ही रहा था, द्रौपदीको देख भी रहा था। उसके कर्मचारी भी उसके साथ ही थे। वहाँकी सब बात देख-सुनकर वह अपने पिता द्रुपदके पास पहुँचा। द्रुपद उस समय कुछ चिन्तित हो रहे थे। उन्होंने अपने पुत्र धृष्टद्युम्नको देखते ही पूछा, 'बेटा, द्रौपदी कहाँ गयी? उसे ले जानेवाले कौन हैं? मेरी कन्या किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय अथवा ब्राह्मणके हाथमें ही पड़ी है न? कहीं किसी वैश्य या शूद्रको तो नहीं मिल गयी? क्या ही अच्छा होता, यदि मेरी सौभाग्यवती पुत्री नर-रत्न अर्जुनको प्राप्त हुई होती!'

धृष्टद्युम्नने कहा—'पिताजी, जिस कृष्णमृगचर्मधारी परम सुन्दर नवयुवकने लक्ष्यवेध किया था, वह बड़ा ही फुर्तीला और वीर है—इसमें सन्देह नहीं। जिस समय वह बहिन द्रौपदीको साथ लेकर ब्राह्मणों और राजाओंके बीचमेंसे निकला, उस समय उसके मुखपर किसी प्रकारके सङ्कोचका भाव नहीं था। उसकी ढिठाई देखकर राजालोग क्रोधसे जल-भुन उठे और उनपर आक्रमण कर बैठे। उसके साथी पुरुषने देखते-ही-देखते एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और उससे राजाओंका संहार प्रारम्भ कर दिया। कोई राजा उनका बालतक बाँका नहीं कर सका। वे दोनों मेरी बहिनको लेकर नगरके बाहर कुम्हारके घर गये। वहाँ एक अग्निके समान तेजस्विनी स्त्री बैठी थी। अवश्य ही वह उनकी माता होगी। उसके पास और भी तीन परम सुन्दर नवयुवक बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम करके द्रौपदी-को प्रणाम करनेकी आज्ञा दी और अपनी माताके पास उसे रखकर सब भाई भिक्षा माँगने चले गये। भिक्षा लेकर लौटनेपर द्रौपदीने माताके आज्ञानुसार देवता, ब्राह्मण आदि-को दिया, उन लोगोंको परोसा और स्वयं खाया। द्रौपदी उनके पैरोंकी ओर सोयी। सभी लोग कुश और मृगचर्म बिछाकर धरतीपर सो रहे थे। सोते समय वे लोग आपसमें जो बातचीत कर रहे थे, वह ब्राह्मणों, वैश्यों या शूद्रों-जैसी नहीं थी, वह सीधे युद्धसे सम्बन्ध रखती थी और वैसी बातें कुलीन क्षत्रिय ही किया करते हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि हमारी आशा पूर्ण हुई है और अग्निदाहसे बचे पाण्डवोंने ही मेरी बहिनको प्राप्त किया है।'

धृष्टद्युम्नकी बातसे राजा द्रुपदको बड़ी प्रसन्नता हुई। न्होंने तुरंत उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये अपने रोहितको भेजा। पुरोहितने पाण्डवोंके पास जाकर कहा ; "आपलोग चिरजीवी हों। पञ्चालराज महात्मा द्रुपदने ाशीर्वादपूर्वक आपलोगोंका परिचय जानना चाहा है। र युवको! महाराज द्रुपदके मनमें यह चिरकालीन भिलाषा थी कि विशालबाहु नररत्न अर्जुन ही मेरी पुत्रीका ाणिग्रहण करें। उन्होंने मेरेद्वारा यह सन्देश भेजा है कि दि भगवत्कृपासे मेरी लालसा पूर्ण हुई हो तो बड़े आनन्दकी ात है; इस सम्बन्धसे मेरा यश, पुण्य और हित होगा।'' ,धिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनने पुरोहितजीका आदर-सत्कार

किया, वे आनन्दसे बैठ गये और पूजा स्वीकार की। युधिष्ठिरने कहा, 'भगवन्! राजा द्रुपदने स्वयंवर करके अपनी पुत्रीका विवाह करनेका निश्चय किया था; यह क्षत्रिय-धर्मके अनुकूल ही था। स्वयंवर करनेका उद्देश्य किसी व्यक्तिके साथ विवाह करना तो नहीं था। इस वीरने उनके नियमोंका पालन करते हुए भरी सभामें उनकी पुत्रीको प्राप्त किया है। अब राजा द्रुपदको पछतानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके द्वारा उनकी चिरकालीन अभिलाषा भी तो पूर्ण हो सकती है।' जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय राजा द्रुपदके दरबारसे दूसरा मनुष्य वहाँ आया। उसने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'महाराज द्रुपदने आपलोगोंके भोजनके लिये रसोई तैयार करा ली है, आपलोग नित्यकर्मसे निवृत्त होकर राजकुमारी कृष्णाके साथ वहाँ चलिये। सुन्दर घोड़ोंसे जुते रथ आपलोगोंके लिये खड़े हैं।' धर्मराज युधिष्ठिरने माता कुन्ती और द्रौपदीको एक रथमें बैठाया और पाँचों भाई पाँच विशाल रथोंमें बैठकर राजभवनके लिये रवाना हुए।

राजा द्रुपदने पाण्डवोंकी प्रवृत्तिकी परीक्षा लेनेके लिये राजमहलको अनेक वस्तुओंसे सजा दिया था। फल, फूल, आसन, गाय, रस्सियाँ, बीज और कृषकोपयोगी वस्तुएँ एक ओर सजायी गयी थीं। दूसरी कक्षामें शिल्पकलाके काममें आनेवाले औजार रक्खे गये थे। तरह-तरहके खिलौने एक ओर; दूसरी ओर ढाल, तलवार, घोड़े, रथ, कवच, धनुष, बाण, शक्ति, ऋष्टि और भुशुण्डी आदि युद्धकी सामग्रियाँ शोभायमान थीं। उत्तम-उत्तम वस्त्र, आभूषण अन्य कक्षामें शोभा पा रहे थे। जिस समय पाण्डवोंके रथ वहाँ पहुँचे, माता कुन्ती और राजकुमारी द्रौपदी तो रनिवासमें चली गयीं। राजमहलकी स्त्रियोंने बड़े आदर-सत्कारके साथ उनकी अगवानी और सम्मान किया। इधर राजा, मन्त्री, राजकुमार, उनके इष्टमित्र, कर्मचारी और सम्मानित पुरुष पाण्डवोंके शरीरकी गठन, चाल-ढाल, प्रभाव, पराक्रम आदि देखकर बहुत आनन्दके साथ उनका स्वागत करने लगे। जो बड़े ऊँचे-ऊँचे और बहुमूल्य राजोचित आसन लगाये गये थे,
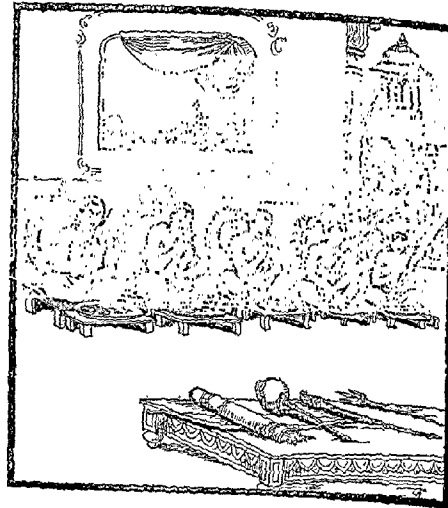
उनपर पाण्डव विना किसी हिचकके जाकर बैठ गये। दास-दासी सोनेके बर्तनोंमें बड़ी सज-धजके साथ सुन्दर-सुन्दर भोजन परसने लगे और उन लोगोंने उचित रीतिसे

सबको ग्रहण किया। भोजनके बाद जब सब वस्तुओंको देखने-दिखानेका अवसर आया तब पाण्डवोंने पहले उसी कक्षामें प्रवेश किया, जिसमें युद्धसम्बन्धी वस्तुएँ रक्खी हुई थीं। उनका यह काम देखकर सभी लोगोंके मनमें यह निश्चय-सा हो गया कि ये अवश्य ही पाण्डव-राजकुमार हैं।

पाञ्चालराज द्रुपदने धर्मराज युधिष्ठिरको अलग बुलाकर कहा—'आपलोग ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय अथवा शूद्र हैं—यह बात हम कैसे मालूम करें? कहीं आपलोग देवता [illegible] नहीं हैं, जो मेरी पुत्रीको प्राप्त करनेके लिये इस वेषमें आ[illegible] हैं?' धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—'राजेन्द्र! आपकी अभिला[illegible] पूर्ण हुई, आप प्रसन्न हों। मैं महात्मा पाण्डुका पुत्र युधिष्ठि[illegible] हूँ; मेरे चारों भाई भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदे[illegible] वहाँ बैठे हुए हैं। मेरी माता कुन्ती राजकुमारी द्रौपदी[illegible] साथ रनिवासमें हैं।'

व्यासजीके द्वारा द्रौपदीके साथ पाण्डवोंके विवाहका निर्णय

धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर द्रुपदकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। आनन्दमग्न हो जानेके कारण वे कुछ भी बोल न सके। द्रुपदने ज्यों-त्यों करके अपनेको सम्हाला और युधिष्ठिरसे वारणावत नगरके लाक्षा-भवनसे निकलकर भागने तथा अबतकके जीवन-निर्वाहका समाचार पूछा। युधिष्ठिरने संक्षेपमें क्रमशः सब बातें कह दीं। तब द्रुपदने धृतराष्ट्रको बहुत कुछ बुरा-भला कहा और युधिष्ठिरको आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारा राज्य तुम्हें दिलवा दूँगा। अनन्तर उन्होंने कहा कि 'युधिष्ठिर! अब तुम अर्जुनको आज्ञा दो कि वे विधिपूर्वक द्रौपदीका पाणिग्रहण करें।' युधिष्ठिरने कहा, 'राजन्! विवाह तो मुझे भी करना ही है।' द्रुपद बोले—'यह तो बड़ी अच्छी बात है, तुम्हीं मेरी कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करो।' युधिष्ठिरने कहा, 'राजन्! आपकी राजकुमारी हम सबकी पटरानी होगी। हमारी माताजी ऐसी ही आज्ञा दे चुकी हैं। इसलिये आप आज्ञा दीजिये कि हम सभी क्रमशः उसका पाणिग्रहण करें।' राजा द्रुपद बोले, 'कुरुवंशभूषण! तुम यह कैसी बात कर रहे हो? एक राजाके बहुत-सी रानियाँ तो हो सकती हैं, परन्तु एक स्त्रीके बहुत-से पति हों—ऐसा तो कभी सुननेमें नहीं आया। तुम धर्मके मर्मज्ञ और पवित्र हो, तुम्हें लोक-मर्यादा और धर्मके विपरीत ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिये।' युधिष्ठिर बोले—'महाराज! धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है। हमलोग तो उसे ठीक-ठीक समझते भी नहीं हैं। हम तो उसी मार्गसे चलते हैं, जिससे पहलेके लोग चलते रहे हैं। मेरी वाणीसे कभी झूठ नहीं निकला है। मेरा मन कभी अधर्मकी ओर नहीं जाता। मेरी माताकी ऐसी आज्ञा है और मेरा मन इसे स्वीकार करता है।' द्रुपदने कहा—'अच्छी बात है। पहले तुम, तुम्हारी माता और धृष्टद्युम्न सब मिलकर कर्तव्यका निर्णय करें और फिर बतलावें। उसके अनुसार जो कुछ करना होगा, कल किया जायगा।'

सब लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे। उसी सम[illegible] भगवान् वेदव्यास अचानक आ गये। सब लोगोंने अप[illegible] अपने आसनसे उठकर उनका स्वागत-अभिनन्दन कि[illegible] और प्रणाम करके उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्वर्ण-सिंहासनपर बैठाया[illegible] व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग अपने-अपने आसनपर बैठ गये[illegible] कुशल-समाचार निवेदन करनेके बाद राजा द्रुपदने भगवा[illegible] वेदव्याससे प्रश्न किया, 'भगवन्! एक ही स्त्री अने[illegible] पुरुषोंकी धर्मपत्नी किस प्रकार हो सकती है? ऐसा करने[illegible] सङ्करताका दोष होगा या नहीं? आप कृपा करके मे[illegible] धर्म-सङ्कट दूर कीजिये।' व्यासजीने कहा, 'राजन्! एक स्त्री के अनेक पति हों, यह बात लोकाचार और वेदके विरु[illegible] है। समाजमें यह प्रचलित भी नहीं है। इस विषयमें तु[illegible] लोगोंने क्या-क्या सोच रक्खा है, पहले अपना मत सुनाओ।[illegible] द्रुपदने कहा, 'भगवन्, मैं तो ऐसा समझता हूँ कि ऐसा करना अधर्म है। लोकाचार, वेदाचार और सदाचारके विपरीत होनेके कारण एक स्त्री बहुत पुरुषोंकी पत्नी नहीं हो सकती। मेरे विचारसे ऐसा करना अधर्म है।' धृष्टद्युम्न बोला, 'भगवन्, मेरा भी यही निश्चय है। कोई भी सदाचारी पुरुष अपने भाईकी पत्नीके साथ कैसे सहवास कर सकता है?' युधिष्ठिरने कहा, 'मैं आपलोगोंके सामने फिरसे यह बात दुहराता हूँ कि मेरी वाणीसे कभी झूठी बात नहीं निकलती। मेरा मन कभी अधर्मकी ओर नहीं जाता। मेरी बुद्धि मुझे स्पष्ट आदेश दे रही है कि यह अधर्म नहीं है। शास्त्रोंमें गुरुजनोंके वचनको ही धर्म कहा गया है और माता गुरुजनोंमें सर्वश्रेष्ठ है। माताने हमें यही आज्ञा दी है कि तुमलोग भिक्षाकी तरह इसका मिल-जुलकर उपभोग करो। मेरी

दृष्टिमें तो वैसा करना धर्म ही जँचता है।' कुन्तीने कहा—'मेरा बेटा युधिष्ठिर बड़ा धार्मिक है। उसने जो कुछ कहा है, बात वैसी ही है; मुझे अपनी वाणी मिथ्या होनेका भय है। इसलिये आपलोग बताइये कि अब ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे मैं असत्यसे बच जाऊँ।' व्यासजीने कहा—

'कल्याणि, इसमें सन्देह नहीं कि असत्यसे तुम्हारी रक्षा हो जायगी। द्रुपद! राजा युधिष्ठिरने जो कुछ कहा है, वह धर्मके प्रतिकूल नहीं, अनुकूल ही है। परन्तु इस बातका रहस्य मैं सबके सामने नहीं बतला सकता। इसलिये तुम मेरे साथ एकान्तमें चलो।' ऐसा कहकर व्यासजी उठ गये और राजा द्रुपदका हाथ पकड़कर एकान्तमें ले गये। धृष्टद्युम्न आदि उनकी बाट देखते हुए वहीं बैठे रहे।

व्यासजीने द्रुपदको एकान्तमें ले जाकर द्रौपदीके पहलेके दो जन्मोंकी कथा सुनायी और यह बतलाया कि भगवान् शङ्करके वरदानके कारण ये पाँचों ही द्रौपदीके पति होंगे। इसके बाद उन्होंने कहा, 'द्रुपद, मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ। उसके द्वारा तुम इन पाण्डवोंके पूर्वजन्मके शरीरोंको देखो।' द्रुपदने भगवान् वेदव्यासके कृपा-प्रसादसे दिव्य दृष्टि प्राप्त करके देखा कि पाँचों पाण्डवोंके दिव्य रूप चमक रहे हैं। वे अनेकों आभूषण धारण किये हुए हैं, विशाल वक्षःस्थलपर दिव्य वस्त्र हैं; वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो स्वयं भगवान् शिव, आदित्य अथवा वसु विराजमान हो रहे हों। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि उनकी पुत्री द्रौपदी दिव्य रूपसे चन्द्रकला अथवा अग्निकलाके समान देदीप्यमान हो रही है, मानो उसके रूपमें भगवान्‌की दिव्य माया ही प्रकाशित हो रही हो। वह रूप, तेज और कीर्तिके कारण पाण्डवोंके सर्वथा अनुरूप दीख रही है। यह झाँकी देखकर द्रुपदको बड़ी प्रसन्नता हुई। आश्चर्यचकित होकर उन्होंने व्यासजीके चरण पकड़ लिये। बोल उठे—'धन्य हैं, धन्य हैं! आपकी कृपासे ऐसा अनुभव होना कुछ विचित्र नहीं है।' राजा द्रुपदने आगे कहा, 'भगवन्, मैंने आपके मुखसे जबतक अपनी कन्याके पूर्वजन्मकी बात नहीं सुनी थी और यह विचित्र दृश्य नहीं देखा था, तभीतक मैं युधिष्ठिरकी बातका विरोध कर रहा था। परन्तु विधाताका ऐसा ही विधान है, तब उसे कौन टाल सकता है? आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही किया जायगा। भगवान् शङ्करने जैसा वर दिया है, चाहे वह धर्म हो या अधर्म, वैसा ही होना चाहिये। अब इसमें मेरा कोई अपराध नहीं समझा जायगा। इसलिये पाँचों पाण्डव प्रसन्नताके साथ द्रौपदीका पाणिग्रहण करें। क्योंकि द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी पत्नीके रूपमें प्रकट हुई है।'

पाण्डवोंका विवाह

अब भगवान् वेदव्यासने द्रुपदके साथ युधिष्ठिरके पास आकर कहा, 'आज ही विवाहके लिये शुभ दिन और शुभ मुहूर्त है। आज चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रपर है। इसलिये आज तुम द्रौपदीका पाणिग्रहण करो।' आज ही विवाहकार्य सम्पन्न होगा, यह निर्णय होते ही द्रुपद और धृष्टद्युम्न आदिने विवाहके लिये आवश्यक सामग्री जुटानेका प्रबन्ध किया। द्रौपदीको नहला-धुलाकर उत्तम-उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाये गये। समय होनेपर द्रौपदी मण्डपमें लायी गयी। राजपरिवारके इष्टमित्र, मन्त्री, ब्राह्मण, परिजन, पुरजन बड़े आनन्दसे विवाह देखनेके लिये आ-आकर अपने-अपने योग्य स्थानोंपर बैठने लगे। उस समय विवाह-मण्डपका सौन्दर्य अवर्णनीय हो रहा था। स्नान और स्वस्त्ययनके अनन्तर पाँचों पाण्डव भी वस्त्रालङ्कारसे सज-धजकर महाराज द्रुपदके आँगनमें आये। उनके आगे-आगे तेजस्वी पुरोहित धौम्य चल रहे थे।

वेदीपर अग्नि प्रज्वलित की गयी। युधिष्ठिरने विधिपूर्वक द्रौपदीका पाणिग्रहण किया, हवन हुआ और अन्तमें भाँवरें फिराकर विवाहकर्म समाप्त किया गया। इसी प्रकार शेष भाइयोंने भी क्रमशः एक-एक दिन द्रौपदीका पाणिग्रहण किया। इस अवसरपर सबसे विलक्षण बात यह हुई कि देवर्षि नारदके कथनानुसार द्रौपदी पुनः प्रतिदिन कन्याभावको प्राप्त हो जाया करती थी। विवाहके अनन्तर राजा द्रुपदने दहेजमें बहुत-से रत्न, धन और श्रेष्ठ सामग्रियाँ दीं। रत्नोंसे जड़ी रासें, लगाम, उत्तम जातिके घोड़ोंसे जुते सौ रथ, सौ हाथी, वस्त्राभूषणसे विभूषित सौ दासियाँ प्रत्येक दामादको दी गयीं। इसके अतिरिक्त भी बहुत-सा धन, रत्न और अलङ्कार पाण्डवोंको दिये गये। इस प्रकार पाण्डव अपार सम्पत्ति और स्त्रीरत्न द्रौपदीको प्राप्त करके राजा द्रुपदके पास ही सुखसे रहने लगे।

द्रुपदकी रानियोंने कुन्तीके पास आकर, उनके पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। रेशमी साड़ी पहने द्रौपदी भी सासको प्रणाम करके हाथ जोड़े नम्र भावसे उनके सामने खड़ी हो गयी। तब कुन्तीने बड़े प्रेमसे अपनी शीलवती पुत्र-वधू द्रौपदीको आशीर्वाद देते हुए कहा, 'जैसे इन्द्राणीने इन्द्रसे, स्वाहाने अग्निसे, रोहिणीने चन्द्रमासे, दमयन्तीने नलसे, अरुन्धतीने वशिष्ठसे और लक्ष्मीने भगवान् नारायणसे प्रेम-नेम निभाया है, वैसे ही तुम भी अपने पतियोंसे निभाना। तुम आयुष्मती, वीरप्रसविनी, सौभाग्यवती और पतिव्रता होकर सुख भोगो। अतिथि, अभ्यागत, साधु, बूढ़े और बालकोंकी आवभगत तथा पालन-पोषणमें ही तुम्हारा समय व्यतीत हो। तुम अपने सम्राट् पतियोंकी पटरानी बनो। जगत्‌के सारे सुख तुम्हें मिलें और तुम सौ वर्षतक उनका उपभोग करो।'

भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका विवाह हो जानेपर भेंटके रूपमें वैदूर्य आदि मणियोंसे जड़े हुए स्वर्णालङ्कार, कीमती कपड़े, देश-विदेशके बहुमूल्य कम्बल, दुशाले, सैकड़ों दासियाँ, बड़े-बड़े घोड़े, हाथी, रथ, करोड़ों मोहरें और छकड़ों सोना भेजा। युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नता के लिये सब कुछ बड़े हर्षसे स्वीकार किया।

पाण्डवोंको राज्य देनेके सम्बन्धमें कौरवोंका विचार और निर्णय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सभी राजाओं-को अपने गुप्तचरोंसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि द्रौपदीका विवाह पाण्डवोंके साथ हुआ है। लक्ष्यवेध करनेवाले और कोई नहीं, स्वयं वीरवर अर्जुन थे। उनका साथी, जिसने शल्यको पटक दिया था और पेड़ उखाड़कर बड़े-बड़े राजाओंके छक्के छुड़ा दिये थे, भीमसेन था। इस समाचारसे सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पाण्डवोंके बच जानेसे प्रसन्नता प्रकट की और कौरवोंके दुर्व्यवहारसे खिन्न होकर उन्हें धिक्कारा।

दुर्योधनको यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। वह अपने साथी अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण आदिके साथ द्रुपदकी राजधानीसे हस्तिनापुरके लिये लौट पड़ा। दुःशासन-ने दुर्योधनसे धीमे स्वरसे कहा, 'भाईजी, अब मैं ऐसा समझ रहा हूँ कि भाग्य ही बलवान् है। प्रयत्नसे कुछ नहीं होता। तभी तो पाण्डव अबतक जी रहे हैं।' उस समय सभी कौरव दीन और निराश हो रहे थे। उनके हस्तिनापुर पहुँचनेपर वहाँका सब समाचार सुनकर विदुरजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उसी समय धृतराष्ट्रके पास जाकर बोले—'महाराज, धन्य हैं, धन्य हैं। कुरुवंशियोंकी अभिवृद्धि हो रही है।' धृतराष्ट्र भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि 'बड़े आनन्दकी बात है, बड़े आनन्दकी बात है!' धृतराष्ट्रने ऐसा समझ लिया था कि द्रौपदी मेरे पुत्र दुर्योधनको मिल गयी। इसलिये उन्होंने

तरह-तरहके गहने भेजनेकी आज्ञा देते हुए कहा कि 'वर-वधूको मेरे पास लाओ।' विदुरने बतलाया कि द्रौपदीका विवाह पाण्डवोंके साथ हुआ और वे बड़े आनन्दसे द्रुपदकी राजधानीमें निवास कर रहे हैं। धृतराष्ट्रने कहा, 'विदुर, पाण्डवोंको तो मैं अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर प्यार करता हूँ। उनके जीवनसे, विवाहसे और द्रुपद-जैसा सम्बन्धी प्राप्त होनेसे मैं और भी प्रसन्न हुआ हूँ। द्रुपदके आश्रयसे वे बहुत ही शीघ्र अपनी उन्नति कर लेंगे।' विदुरने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि जन्मभर आपकी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे।'

जब विदुर वहाँसे चले गये, तब दुर्योधन और कर्णने धृतराष्ट्रके पास आकर कहा कि 'महाराज, विदुरके सामने हमलोग आपसे कुछ भी नहीं कह सकते। आप उनके सामने शत्रुओंकी बढ़तीको अपनी बढ़ती मानकर हर्ष प्रकट करते हैं? हमें तो रात-दिन शत्रुओंके बलके नाशकी धुनमें लगे रहना चाहिये। हमें तो अभीसे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे वे आगे चलकर हमारी राज्यसम्पत्तिको हथिया न सकें।' धृतराष्ट्र बोले, 'बेटा, यही तो मैं भी कहता हूँ। परन्तु विदुरके सामने वाणीसे तो क्या, चेहरेसे भी मेरा यह भाव प्रकट नहीं होना चाहिये। कहीं वह मेरे भावको भाँप न ले, इसलिये मैं उसके सामने पाण्डवोंके ही गुणोंका बखान करता हूँ। तुम दोनों इस समय जो करना उचित समझते हो, वह बतलाओ।'

दुर्योधनने कहा—पिताजी, मेरा तो ऐसा विचार है कि कुछ विश्वासी गुप्तचर एवं चतुर ब्राह्मणोंको भेजकर कुन्ती और माद्रीके पुत्रोंमें मनमुटाव उत्पन्न करा दिया जाय अथवा राजा द्रुपद, उनके पुत्र और मन्त्रियोंको लोभके फंदेमें फँसाकर वशमें कर लेना चाहिये और उनके द्वारा उनको वहाँसे निकलवा देना चाहिये। यह उपाय भी कर सकते हैं कि द्रौपदी उन्हें छोड़ दे। यदि किसी तरह धोखा देकर भीमसेनको मारा जा सके, तब तो सारा काम ही बन जाय। भीमसेनके बिना अर्जुन तो हमारे कर्णका चौथाई भी नहीं है। यदि ये उपाय आपको न जँचें तो कर्णको उनके पास भेज दीजिये। जब वे लोग कर्णके साथ यहाँ आ जायँगे तो फिर पहलेकी तरह कोई-न-कोई उपाय किया जायगा और इस बार वे नहीं बच सकेंगे। द्रुपदका पूरा विश्वास और सहानुभूति प्राप्त करनेके पहले ही उन्हें मार डालना चाहिये। मेरी तो यही सलाह है। कर्ण, इस सम्बन्धमें तुम्हारी क्या राय है?

कर्णने कहा—'दुर्योधन, मैं तो तुम्हारी राय पसंद नहीं करता। तुम्हारे बतलाये हुए उपायोंसे पाण्डवोंका वशमें होना सम्भव नहीं दीखता। वे आपसमें इतना प्रेम करते हैं कि मनमुटावका कोई ढंग नहीं दीखता। सबका प्रेम एक ही स्त्रीमें है और वह विवाहके द्वारा प्राप्त है, इससे उनकी घनिष्ठता और भी सिद्ध होती है। राजा द्रुपद भी एक श्रेष्ठ पुरुष है। वह धनका लोभी नहीं। तुम सारा राज्य देकर भी उसे पाण्डवोंके विपक्षमें नहीं कर सकते। जबतक श्रीकृष्ण यादवोंकी सेना लेकर पाण्डवोंको राज्य दिलवानेके लिये राजा द्रुपदके यहाँ नहीं पहुँचते, तभीतक तुम अपना पराक्रम प्रकट कर लो। बात यह है कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके लिये अपनी अपार सम्पत्ति, सारे भोग और राज्यका भी त्याग करनेमें नहीं हिचकेंगे। इसलिये मेरी सम्मति तो यह है कि हम एक बहुत बड़ी सेना लेकर अभी चढ़ाई कर दें और द्रुपदको हराकर पाण्डवोंको पराक्रमसे ही मार डालें; क्योंकि पाण्डव साम, दान और भेद-नीतिसे वशमें नहीं किये जा सकते। उन वीरोंको तो केवल वीरतासे ही मार डालना चाहिये।' धृतराष्ट्रने कहा, 'बेटा कर्ण! तुम शस्त्रास्त्र-कुशल तो हो ही, नीतिकुशल भी हो। जो कुछ तुमने कहा है, वह तुम्हारे अनुरूप है। परन्तु मेरा विचार यह है कि आचार्य द्रोण, भीष्मपितामह, विदुर और तुम दोनों—सब मिलकर इस सम्बन्धमें फिर विचार कर लो और ऐसा उपाय निकालो, जिससे परिणाममें सुख मिले।'

राजा धृतराष्ट्रने भीष्मपितामह आदिको बुलवाया।

सब लोग गुप्त स्थानमें बैठकर विचार करने लगे। भीष्म-पितामहने कहा, 'मुझे पाण्डवोंके साथ वैर-विरोध करना पसंद नहीं है। मेरे लिये धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा दोनोंके लड़के एक-से हैं। मैं सबसे एक-सा प्यार करता हूँ। जैसे मेरा धर्म है पाण्डवोंकी रक्षा करना, वैसे ही तुमलोगोंका भी है। मैं पाण्डवोंसे झगड़ा करनेका समर्थन नहीं कर सकता। तुम उनके साथ मेल-मिलापका बर्ताव करो और उनका आधा राज्य दे दो। जैसे तुम इस राज्यको अपने बाप-दादोंका समझते हो, वैसे ही यह उनके बाप-दादोंका भी तो है। दुर्योधन! यदि यह राज्य पाण्डवोंको नहीं मिलेगा तो तुम या भरतवंशका कोई भी पुरुष अपनेको उस राज्यका स्वत्वाधिकारी कैसे कह सकेगा? तुम जो अभी राजा बन बैठे हो, यह धर्मके विपरीत है। तुमसे भी पहले वे राज्यके अधिकारी हैं। तुम्हें हँसी-खुशीसे उनका राज्य लौटा देना चाहिये। इसीमें तुम्हारा और सब लोगोंका भला है, अन्यथा नहीं। तुम अपने सिरपर कलङ्कका टीका क्यों लगा रहे हो! जबसे मैंने सुना कि कुन्ती और पाँचों पाण्डव भस्म हो गये, तबसे मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया था। उनके जलनेका दोष जितना तुमपर लगाया गया, उतना पुरोचनपर नहीं। अब पाण्डवोंके जीवित रहने और मिलनेसे तुम्हारी अपकीर्ति मिटायी जा सकती है। पाण्डवोंके जीवित रहते स्वयं इन्द्र भी उन्हें उनके राज्यसे वञ्चित नहीं कर सकते। वे बुद्धिमान् और धर्मात्मा हैं। आपसमें मेल-जोल भी रखते हैं। उन्हें तुमने अबतक जो राज्यसे दूर रखनेका प्रयत्न किया है, यह अधर्म है। धृतराष्ट्र, मैं तुम्हें स्पष्टरूपसे अपनी सम्मति बतलाये देता हूँ। यदि तुम्हें धर्मसे रत्तीभर भी प्रेम है, तुम मेरा प्रिय और अपना कल्याण करना चाहते हो, तो शीघ्र-से-शीघ्र पाण्डवोंका आधा राज्य उन्हें लौटा दो।'

द्रोणाचार्यने कहा—धृतराष्ट्र! मित्रोंका यही धर्म है कि जब उनसे कोई सलाह पूछी जाय तो वे धर्म, अर्थ और यशकी वृद्धि करनेवाली सम्मति दें। मैं महात्मा भीष्मकी सम्मति पसंद करता हूँ। सनातन धर्मके अनुसार मैं यही ठीक समझता हूँ कि पाण्डवोंको आधा राज्य दे दिया जाय। आप किसी प्रियवादी पुरुषको द्रुपदकी राजधानीमें भेजिये। वह पाण्डवों और नववधू द्रौपदीके लिये अनेकों प्रकारके रत्न और सामग्री लेकर जाय और द्रुपदसे कहे कि 'महाराज द्रुपद! आपके पवित्र वंशमें सम्बन्ध होनेसे समस्त कुरुवंशको, राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई है। इसे वे अपने कुल और गौरवकी वृद्धि मानते हैं।' इसके बाद वह कुन्ती और पाण्डवोंको आश्वासन दे, समझावे-बुझावे। जब उन लोगोंके चित्तमें आपके प्रति विश्वासका उदय हो जाय और वे शान्त हो जायँ, तब उनके सामने यहाँ आनेका प्रस्ताव उपस्थित करे। द्रुपदकी ओरसे स्वीकृति मिल जानेपर दुःशासन और विकर्ण सेना एवं सामन्तोंसहित जाकर सम्मानके साथ द्रौपदी और पाण्डवोंको ले आवें। उन्हें उनका पैतृक राज्य दे दिया जाय। उनका आदर करनेसे सारी प्रजा आपपर प्रसन्न होगी, क्योंकि सब लोग ऐसा ही चाहते हैं। इस प्रकार मैं स्पष्ट रूपसे महात्मा भीष्मकी सम्मतिका अनुमोदन करता हूँ और आपके हितकी सलाह देता हूँ। इसीमें आपके वंशकी भलाई है।

भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यकी बात सुनकर कर्ण जल-भुन रहा था। उसने कहा कि, 'महाराज, पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण आपके द्वारा सब प्रकारसे सम्मानित और सत्कृत हैं। आप प्रायः इनसे अपने हितकी सलाह लेते ही रहते हैं। यदि विधाताने आपके भाग्यमें राज्य लिखा है तो सारे संसारके शत्रु हो जानेपर भी वह आपके हाथसे नहीं छिन सकता। यदि कोई अपने हृदयके भावको छिपाकर बुरे इरादे-से अमङ्गलको मङ्गल बतावे तो समझदार पुरुषको उसका कहा नहीं मानना चाहिये। आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। मन्त्रियोंकी सलाह अच्छी है या बुरी, इसका निर्णय आप स्वयं कीजिये। क्योंकि आप अपना हित और अहित तो भलीभाँति समझते ही हैं।' द्रोणाचार्यने कहा कि, 'अरे कर्ण! मैं तेरी दुष्टता समझ रहा हूँ। तेरा हृदय दुर्भावसे परिपूर्ण है। तू पाण्डवोंका अनिष्ट करनेके लिये हमारी सलाहको अनिष्टकारिणी ब[illegible] रहा है। मैंने अपनी समझसे कुरुवंशकी रक्षा और हि[illegible] बात कही है। यदि हमारी सलाहसे कुरुवंशका अहित [illegible] पड़ता हो तो तुझे जिससे हित दीखे, वही कह। मैं कहे[illegible] हूँ कि हमारी सलाह न माननेसे शीघ्र ही कौरववंश[illegible] विनाश हो जायगा।'

विदुरने कहा—महाराज, हितैषी बन्धु-बान्धवोंका कर्तव्य है कि वे निस्सङ्कोच आपके हितकी बात कह दे[illegible] परन्तु आप किसीकी बात सुनना भी तो नहीं चाहते। इस[illegible] उनकी बातको हृदयमें स्थान नहीं देते। पितामह भी[illegible] और आचार्य द्रोणने बहुत ही प्रिय और हितकर बात क[illegible] है। परन्तु आपने अभी उन्हें कहाँ स्वीकार किया! मैं[illegible] खूब सोच-विचारकर देख लिया है कि भीष्म और द्रोण

बढ़कर आपका कोई मित्र नहीं है। ये दोनों महापुरुष अवस्था, बुद्धि और शास्त्रज्ञान आदि सभी बातोंमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं। इनके हृदयमें आपके और पाण्डुके पुत्रोंके प्रति समान स्नेह-भाव है। बायें हाथसे भी बाण चलानेवाले अर्जुनको और तो क्या, स्वयं इन्द्र भी युद्धमें नहीं जीत सकता। महाबाहु भीम जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल है, उसको देवतालोग भी युद्धमें कैसे जीत सकते हैं? रण-बाँकुरे नकुल-सहदेव अथवा धैर्य, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रमके मूर्तिमान् विग्रह धर्मराज युधिष्ठिरको ही युद्धके द्वारा किस प्रकार हराया जा सकता है? आपको समझ लेना चाहिये कि पाण्डवोंके पक्षमें स्वयं श्रीबलरामजी और सात्यकि हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उनके सलाहकार हैं। बलवान् एवं असंख्य यदुवंशी उनके लिये प्राणोंकी बाजी लगानेको तैयार हैं। यदि युद्ध हुआ तो पाण्डवोंकी विजय निश्चित है। यदि मान भी लें कि आपका पक्ष निर्बल नहीं है, फिर भी जो काम मेल-जोलसे निकल सकता है, उसे झगड़ा-बखेड़ा करके सन्देहास्पद बना देना कहाँकी बुद्धिमानी है? जबसे प्रजाको यह बात मालूम हुई है कि पाण्डव जीवित हैं, तबसे सभी नागरिक-अनागरिक उनके दर्शनके लिये उत्सुक हो रहे हैं। इस समय पाण्डवोंके विरुद्ध कोई काम करनेसे राज्य-विप्लव हो जायगा। आप पहले अपनी प्रजाको प्रसन्न कीजिये। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि अधर्मी और दुष्ट हैं। इनकी समझ अभीतक कच्ची है। इनकी बात मत मानिये। मैंने आपको पहले ही सूचित कर दिया था कि दुर्योधनके अपराधसे सारी प्रजाका सत्यानाश हो जायगा।

धृतराष्ट्रने कहा—'विदुर, भीष्मपितामह एवं आचार्य द्रोण बड़े ही बुद्धिमान् एवं ऋषितुल्य हैं। इनकी सलाह मेरे परम हितकी है। तुमने भी जो कुछ कहा है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव जैसे पाण्डुके पुत्र हैं, वैसे ही मेरे भी। मेरे पुत्रोंकी तरह ही राज्यपर उनका भी अधिकार है। तुम पञ्चाल देशमें जाओ और राजा द्रुपदकी अनुमतिसे कुन्ती, द्रौपदी तथा पाण्डवोंको सत्कारपूर्वक यहाँ ले आओ।' धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरने द्रुपदकी राजधानीके लिये प्रस्थान किया।

विदुरका पाण्डवोंको हस्तिनापुर लाना और इन्द्रप्रस्थमें उनके राज्यकी स्थापना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महात्मा विदुर रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास राजा द्रुपदकी राजधानीमें गये। विदुरजी द्रुपद, पाण्डव एवं द्रौपदीके लिये तरह-तरहके रत्न और उपहार अपने साथ ले गये थे। वे पहले नियमानुसार राजा द्रुपदसे मिले। उन्होंने विदुरका बड़ा सत्कार किया। कुशल-प्रश्नके अनन्तर विदुर श्रीकृष्ण और पाण्डवोंसे मिले। उन लोगोंने विदुरजीकी बड़े प्रेमसे आवभगत की। विदुरजीने धृतराष्ट्रकी ओरसे बार-बार पाण्डवोंका कुशल-मङ्गल पूछा और सबके लिये लाये हुए उपहार अर्पित किये। उपयुक्त अवसर पाकर महात्मा विदुरने श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके सामने ही द्रुपदसे निवेदन किया कि 'महाराज, आपलोग कृपा करके मेरी प्रार्थनापर ध्यान दें। महाराज धृतराष्ट्रने अपने पुत्र और मन्त्रियोंसहित आपसे कुशल-मङ्गल पूछा है। आपके साथ विवाहसम्बन्ध होनेसे उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। पितामह भीष्म और द्रोणाचार्यने भी आपकी कुशल जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता प्रकट की है। इस अवसरपर वे जितने प्रसन्न हैं, उतनी प्रसन्नता उन्हें राज्य-लाभसे भी नहीं होती। अब आप पाण्डवोंको हस्तिनापुर भेजनेकी तैयारी कीजिये। सभी कुरुवंशी पाण्डवोंको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं। कुरुकुलकी नारियाँ नववधू द्रौपदीको देखनेके लिये लालायित हैं। पाण्डवोंको भी अपने देशसे चले बहुत दिन हो गये। ये भी वहाँ जानेके लिये

उत्सुक होंगे। आप अब इन लोगोंको वहाँ जानेकी आज्ञा

दें। आपसे आज्ञा प्राप्त होते ही मैं वहाँ सन्देश भेज दूँगा कि पाण्डवलोग अपनी माता कुन्ती और नववधू द्रौपदीके साथ आनन्दपूर्वक हस्तिनापुरके लिये प्रस्थान कर रहे हैं।'

राजा द्रुपदने कहा—'महात्मा विदुर, आपका कहना ठीक है। कुरुवंशियोंसे सम्बन्ध करके मुझे भी कम प्रसन्नता नहीं हुई है। पाण्डवोंका अपनी राजधानीमें जाना तो उचित ही है, परन्तु मैं अपनी जबानसे यह बात कह नहीं सकता। जानेके लिये कहना मुझे शोभा नहीं देता।' युधिष्ठिरने कहा, 'महाराज, हमलोग अपने अनुचरोंसहित आपके अधीन हैं। आप प्रसन्नतासे जो आज्ञा देंगे, वही हम करेंगे।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा, 'मैं तो ऐसा समझता हूँ कि पाण्डवोंको इस समय हस्तिनापुर जाना चाहिये। वैसे राजा द्रुपद समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ हैं। वे जैसा कहें, वैसा करना चाहिये।' द्रुपद बोले, 'पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण देश-कालका विचार करके जो कुछ कह रहे हैं, वही मुझे ठीक जँचता है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं पाण्डवोंसे जितना प्रेम करता हूँ, उतना ही भगवान् श्रीकृष्ण भी करते हैं। पाण्डवोंकी जितनी मङ्गलकामना श्रीकृष्ण करते हैं, उतनी स्वयं पाण्डव भी नहीं करते।'

इस प्रकार सलाह करके पाण्डव राजा द्रुपदसे विदा हुए और भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा विदुर, कुन्ती तथा द्रौपदीके साथ हस्तिनापुर पहुँच गये। रास्तेमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। जब राजा धृतराष्ट्रको यह बात मालूम हुई कि वीर पाण्डव आ रहे हैं तब उन्होंने उनकी अगवानीके लिये विकर्ण, चित्रसेन और अन्यान्य कौरवोंको भेजा। द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी गये। सब लोग नगरके पास ही पाण्डवोंसे मिले और उन लोगोंसे घिरकर पाण्डवोंने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। पाण्डवोंके दर्शनके लिये सारे नगरनिवासी टूटे पड़ते थे। उनके दर्शनसे प्रजाका शोक और दुःख दूर हो गया। प्रजा आपसमें पाण्डवोंकी प्रशंसा करके कहने लगी कि यदि हमने दान, होम, तप आदि कुछ भी पुण्यकर्म किया हो तो उसके फलस्वरूप पाण्डव जीवनभर इसी नगरीमें रहें।

पाण्डवोंने राजसभामें जाकर राजा धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह और समस्त पूज्य पुरुषोंके चरणोंमें प्रणाम किया। उनकी आज्ञासे भोजन-विश्राम करनेके अनन्तर बुलवानेपर वे फिर राजसभामें गये। धृतराष्ट्रने कहा, 'युधिष्ठिर, तुम अपने भाइयोंके साथ सावधानीसे मेरी बात सुनो। अब तुमलोगोंका
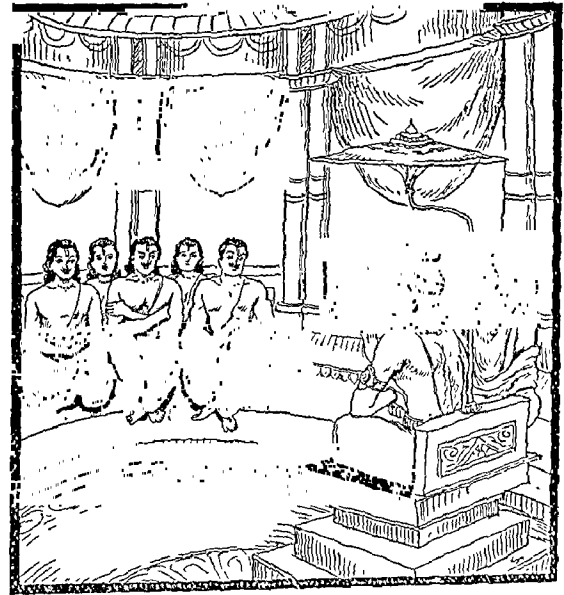
दुर्योधन आदिके साथ किसी तरहका झगड़ा और मनमुटाव न हो, इसलिये तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें अपनी राजधानी बना लो और वहीं रहो। वहाँ तुम्हें किसीका कोई भय नहीं है; क्योंकि जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं वैसे ही अर्जुन तुमलोगोंकी रक्षा करेगा।' पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी यह बात स्वीकार की और उनके चरणोंमें प्रणाम करके खाण्डवप्रस्थमें रहने लगे।

व्यास आदि महर्षियोंने शुभ मुहूर्तमें धरती नापकर शास्त्रविधिके अनुसार राजभवनकी नींव डलवायी। थोड़े ही दिनोंमें वह तैयार होकर स्वर्गके समान दिखायी देने लगा। युधिष्ठिरने अपने बसाये हुए नगरका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा। नगरके चारों ओर समुद्रके समान गहरी खाई और आकाशको छूनेवाली चहारदीवारी बनायी गयी थी। बड़े-बड़े फाटक, ऊँचे-ऊँचे महल और गोपुर दूरसे ही दीख पड़ते थे। स्थान-स्थानपर अस्त्र-शिक्षाके अखाड़े बने हुए थे। पहरेका बड़ा कड़ा प्रबन्ध था। बर्छियाँ, तोप, बन्दूकें और अन्यान्य युद्धसम्बन्धी यन्त्र स्थान-स्थानपर लगाये हुए थे। सड़कें चौड़ी, सीधी और स्वच्छ थीं। दैवी बाधाके लिये भी उपाय कर दिये गये थे। अमरावतीके समान इन्द्रप्रस्थ नगरी सुन्दर-सुन्दर भवनोंसे सुशोभित थी। नगर तैयार होते ही विभिन्न भाषाओंके जानकार ब्राह्मण, सेठ, साहूकार, कारीगर और गुणीजन आ-आकर बसने लगे। बड़े-बड़े उद्यान, उपवन हरे-भरे फल-पुष्पोंसे लदे वृक्षोंसे परिपूर्ण हो रहे थे। कहीं भ्रम

मोर नाच रहे हैं तो कहीं कोकिलाएँ कुहू-कुहू कर रही हैं। पक्षियोंका कलरव निराला ही था। तरह-तरहके शीशमहल, लता-कुञ्ज, चित्रशालाएँ, नकली पहाड़, कृत्रिम झरने, बावलियाँ स्थान-स्थानपर शोभायमान थीं। सफेद, लाल, नीले, पीले कमल सुगन्धिका विस्तार कर रहे थे। नगरकी बनावट और प्रजाकी उत्तमतासे पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका आधा राज्य मिल गया, नगर बस गया, दिनों-दिन उन्नति होने लगी। जब पाण्डव बेखटके होकर राज्य-भोग करने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम उनसे अनुमति लेकर द्वारका चले गये।

इन्द्रप्रस्थमें देवर्षि नारदका आगमन, सुन्द और उपसुन्दकी कथा

जनमेजयने पूछा—भगवन्! इन्द्रप्रस्थका राज्य पानेके बाद पाण्डवोंने क्या-क्या किया? उनकी धर्मपत्नी द्रौपदी उनके साथ कैसा व्यवहार करती थी? वे एक पत्नीमें आसक्त होनेपर भी पारस्परिक वैमनस्य और विरोधसे कैसे बचे रहे? मैं उनकी कथा विस्तारसे सुनना चाहता हूँ, आप कृपा करके सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय, महातेजस्वी सत्य-वादी धर्मराज युधिष्ठिर अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ इन्द्रप्रस्थमें सुखपूर्वक रहकर भाइयोंकी सहायतासे सम्पूर्ण प्रजाका पालन करने लगे। सारे शत्रु उनके वशमें हो गये, धर्म और सदाचारका पालन करनेके कारण उनके आनन्दमें किसी प्रकारकी कमी नहीं थी। एक दिनकी बात है, सभी पाण्डव राजसभामें बहुमूल्य आसनोंपर बैठे हुए राजकाज कर रहे थे। उसी समय स्वेच्छासे विचरते हुए देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिरने अपने आसनसे उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया। देवर्षि नारदकी विधिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य आदिसे पूजा की गयी। युधिष्ठिरने बड़ी नम्रतासे उन्हें अपने राज्यकी सब बातें निवेदन कीं। नारदजीने उनके सम्मानार्थ पूजा स्वीकार करके उन्हें बैठनेकी आज्ञा दी। द्रौपदीको देवर्षि नारदके शुभागमनका समाचार भेज दिया गया। शीलवती द्रौपदी बड़ी पवित्रता और सावधानीके साथ देवर्षि नारदके पास आयी और प्रणाम करके बड़ी मर्यादाके साथ हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। देवर्षि नारदने आशीर्वाद देकर द्रौपदीको रनिवासमें जानेकी आज्ञा दे दी।

द्रौपदीके चले जानेपर देवर्षि नारदने पाण्डवोंको एकान्तमें बुलाकर कहा—वीर पाण्डवो! यशस्विनी द्रौपदी तुम पाँचों भाइयोंकी एकमात्र धर्मपत्नी है, इसलिये तुमलोगोंको कुछ ऐसा नियम बना लेना चाहिये जिससे आपसमें किसी प्रकारका झगड़ा-बखेड़ा न खड़ा हो। प्राचीन समयकी बात है, असुर-वंशमें सुन्द और उपसुन्द नामके दो भाई हो गये
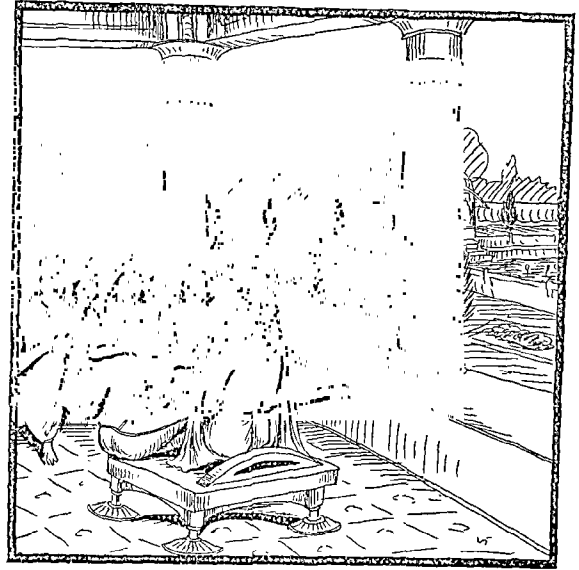
हैं। उनमें इतनी घनिष्ठता थी कि उनपर कोई हमला नहीं कर सकता था। वे एक साथ राज्य करते, एक साथ सोते-जागते और एक साथ ही खाते-पीते थे। परन्तु वे दोनों तिलोत्तमा नामकी एक ही स्त्रीपर रीझ गये और एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक बन गये। इसलिये तुमलोग ऐसा नियम बनाओ, जिससे आपसका हेल-मेल और अनुराग कभी कम न हो और न कभी आपसमें फूट ही पड़े।'

युधिष्ठिरके विस्तारसे पूछनेपर देवर्षि नारदने सुन्द और उपसुन्दकी कथा प्रारम्भ की। उन्होंने कहा कि 'हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामका एक महाबली और प्रतापी दैत्य था। उसके दो पुत्र थे—सुन्द और उपसुन्द। दोनों बड़े शक्तिशाली, पराक्रमी, क्रूर और दैत्योंके सरदार थे। उनके उद्देश्य, कार्य, भाव, सुख और दुःख एक ही प्रकारके थे। एकके बिना दूसरा न तो कहीं जाता और न कुछ खाता-पीता ही था। अधिक तो क्या—वे एक प्राण, दो देह थे। दोनोंकी

वृद्धि भी एक-सी ही होने लगी। उन्होंने त्रिलोकीको जीतनेकी इच्छासे विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करके विन्ध्याचलपर तपस्या प्रारम्भ की। वे भूखे और प्यासे रहकर जटा-वल्कल धारण किये हुए केवल हवा पीकर तपस्या करने लगे। उनके शरीरपर मिट्टीका ढेर लग गया। केवल एक अँगूठेके बलपर खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाये वे सूर्यकी ओर एकटक निहारते रहते। बहुत दिनोंतक ऐसी तपस्या करनेसे विन्ध्य पर्वत भी प्रभावित हो गया। उनकी तपस्याका फल देनेके लिये स्वयं ब्रह्माजी प्रकट हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। सुन्द-उपसुन्दने ब्रह्माजीको देख, हाथ जोड़कर कहा— 'प्रभो, यदि आप हमारी तपस्यासे प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम दोनों श्रेष्ठ मायावी, अस्त्र-शस्त्रोंके जानकार, स्वेच्छानुसार रूप बदलनेवाले, बलवान् एवं अमर हो जायँ।' ब्रह्माजीने कहा, 'अमर होना तो देवताओंकी विशेषता है। तुम्हारी तपस्याका यह उद्देश्य भी नहीं था। इसलिये अमर होनेके सिवा और जो कुछ तुमने माँगा है, वह प्राप्त होगा।' दोनों भाइयोंने कहा, 'पितामह, तब आप हमें ऐसा वर दीजिये कि हम

संसारके किसी भी प्राणी या पदार्थके द्वारा न मरें। हमारी मृत्यु कभी हो तो एक-दूसरेके हाथसे ही हो।' ब्रह्माजीने उन्हें यह वर दे दिया और फिर अपने लोकको चले गये तथा वे दोनों वर पाकर अपने घर लौट आये।

सुन्द और उपसुन्दके बन्धु-बान्धवोंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। दोनों भाई सज-धजकर उत्सव मनाने लगे। 'खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ' की आवाजसे उनका नगर गूँज उठा। जब नगरमें घर-घर इस प्रकार उत्सव होने लगा, तब सुन्द और उपसुन्दने बड़े-बूढ़ोंकी सलाहसे दिग्विजयके लिये यात्रा की। उन्होंने इन्द्रलोक, यक्ष, राक्षस, नाग, म्लेच्छ आदि सबपर विजय प्राप्त करके सारी पृथ्वी अपने वशमें करनेकी चेष्टा की। दोनों भाइयोंकी आज्ञासे असुरगण घूम-घूमकर ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंका सत्यानाश करने लगे। वे ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी अग्नि उठाकर पानीमें फेंक देते। तपस्वियोंके आश्रम उजड़ गये। उनमें टूटे-फूटे कमण्डलु, स्रुवा और कलशोंके ही दर्शन होते थे। जब ऋषिलोग दुर्गम स्थानोंमें जा-जाकर छिपने लगे तब वे दोनों असुर हाथी, सिंह और बाघ बनकर उनकी हत्या करने लगे। ब्राह्मण और क्षत्रियोंका विध्वंस होने लगा। यज्ञ, स्वाध्याय और उत्सवोंके बंद होनेसे चारों ओर हाहाकार मच गया। बाजारके कारोबार बंद हो गये। संस्कारोंका लोप होने और हड्डियोंका ढेर लग जानेसे पृथ्वी भयङ्कर हो गयी।

इस भयानक हत्याकाण्डको देखकर जितेन्द्रिय ऋषि-मुनि और महात्माओंको बड़ा कष्ट हुआ। सब मिलकर ब्रह्मलोकमें गये। उस समय ब्रह्माजीके पास महादेव, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देवता, वैखानस वालखिल्य आदि सभी विद्यमान थे। महर्षियों और देवताओंने बड़ी नम्रताके साथ ब्रह्माजीके सामने यह निवेदन किया कि सुन्द एवं उपसुन्दने प्रजाको किस प्रकार चौपट किया है और कितने निष्ठुर कर्म किये हैं। ब्रह्माजीने क्षणभर सोचकर विश्वकर्माको बुलाया और कहा कि तुम एक ऐसी अनुपम सुन्दरी स्त्री बनाओ, जो सभीको लुभा ले। विश्वकर्माजीने बहुत सोच-विचारकर एक त्रिलोकसुन्दरी अप्सराका निर्माण किया। संसारके श्रेष्ठ रत्नोंका तिल-तिलभर अंश लेकर उसका एक-एक अङ्ग बनाया गया था। इसलिये ब्रह्माजीने उस सुन्दरीका नाम 'तिलोत्तमा' रक्खा। तिलोत्तमाने ब्रह्माजीके सामने हाथ जोड़कर पूछा कि 'भगवन्, मुझे क्या आज्ञा है?' ब्रह्माजीने कहा—'तिलोत्तमे! तुम सुन्द और उपसुन्दके पास जाओ और अपने मनोहर रूपसे उन्हें लुभा लो। तुम्हारी सुन्दरता और कौशलसे उनमें फूट पड़ जाय, ऐसा उपाय करो।' तिलोत्तमाने ब्रह्माजीकी आज्ञा स्वीकार करके प्रणाम किया और सब देवताओंकी प्रदक्षिणा की। उसके रूपकी शोभा देखकर देवताओं और ऋषियोंने समझ लिया कि अब काम बननेमें अधिक विलम्ब नहीं है।

इधर दोनों दैत्य पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके निश्चिन्त भावसे निष्कण्टक राज्य करने लगे । उनका सामना करनेवाला तो कोई था नहीं, इसलिये वे आलसी और विलासी हो गये । एक दिन दोनों भाई विन्ध्याचलकी उपत्यकाओंमें रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे सुगन्धिमय लता-वृक्षोंकी झुरमुटमें आमोद-प्रमोद कर रहे थे । उसी समय तिलोत्तमा नाज-नखरेके साथ कनेरके पुष्पोंको चुनती हुई उनके सामने आ निकली । वे दोनों शराब पीकर नशेमें बेहोश हो रहे थे । उनकी आँखें चढ़ी हुई थीं । तिलोत्तमापर दृष्टि पड़ते ही वे काममोहित हो गये और अपने स्थानसे उठकर तिलोत्तमाके पास आ गये । वे इतने कामान्ध हो गये थे कि उन्होंने बिना कुछ सोचे-विचारे तिलोत्तमाके हाथ पकड़ लिये । सुन्दने दायाँ हाथ पकड़ा और उपसुन्दने बायाँ हाथ । वे दोनों शारीरिक बल, धन, नशे और उन्मादमें एक-दूसरेसे कम न थे । इसलिये कामातुर होकर आपसमें ही तनातनी करने लगे । सुन्दने कहा, 'अरे!

यह तो मेरी पत्नी है, तेरी भाभी लगती है ।' उपसुन्दने कहा, 'यह तो मेरी पत्नी है, तुम्हारी पुत्रवधूके समान है ।' दोनों ही अपनी-अपनी बातपर अकड़ गये और 'तेरी नहीं, मेरी' कहकर झगड़ा करने लगे । क्रोधके आवेगमें दोनों अपने स्नेह और सौहार्दको भूल गये । गदाएँ उठीं और 'पहले मैंने इसका हाथ पकड़ा है, पहले मैंने इसका हाथ पकड़ा है' ऐसा कहते हुए दोनों एक-दूसरेपर टूट पड़े । दोनोंके शरीर खूनसे लथपथ हो गये । कुछ ही क्षणोंमें दोनों भयङ्कर असुर पृथ्वीपर गिरते हुए दिखायी पड़े । उनकी यह दशा देखकर उनके साथी स्त्री-पुरुष पातालमें भग गये । देवता, महर्षि और स्वयं ब्रह्माजीने तिलोत्तमाकी प्रशंसा की और उसे यह वर दिया कि किसी भी मनुष्यकी दृष्टि तुझपर अधिक देरतक नहीं टिक सकेगी । इन्द्रको राज्य मिला, संसारकी व्यवस्था ठीक हो गयी, ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये ।

नारदजीने कहा—पाण्डुनन्दन ! सुन्द और उपसुन्द एक-दूसरेसे अत्यन्त हिले-मिले तथा एक प्राण, दो देह थे । परन्तु एक स्त्री उन दोनोंकी फूट और विनाशका कारण बनी । मेरा तुमलोगोंपर अतिशय अनुराग और स्नेह है । इसलिये मैं तुमलोगोंसे यह बात कह रहा हूँ कि तुम ऐसा नियम बना लो, जिससे द्रौपदीके कारण तुमलोगोंमें झगड़ा होनेका कोई अवसर ही न आये । देवर्षि नारदकी बात सुनकर पाण्डवोंने उसका अनुमोदन किया और उनके सामने ही यह प्रतिज्ञा की कि एक नियमित समयतक हर एक भाईके पास द्रौपदी रहेगी । जब एक भाई द्रौपदीके साथ एकान्तमें होगा, तब दूसरा भाई वहाँ न जायगा । यदि कोई भाई वहाँ जाकर द्रौपदीके एकान्तवासको देख लेगा तो उसे ब्रह्मचारी होकर बारह वर्षतक वनमें रहना पड़ेगा । पाण्डवों-के नियम कर लेनेपर नारदजी प्रसन्नताके साथ वहाँसे चले गये । जनमेजय ! यही कारण है कि पाण्डवोंमें द्रौपदीके कारण किसी प्रकारकी फूट नहीं पड़ सकी ।

नियम-भङ्गके कारण अर्जुनका वनवास एवं उलूपी और चित्राङ्गदाके साथ विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डवलोग ऐसा नियम बनाकर वहाँ रहने लगे । उन्होंने अपने शारीरिक बल और अस्त्रकौशलसे एक-एक करके राजाओंको वशमें कर लिया । द्रौपदी सभीके अनुकूल रहती । पाण्डव उसे पाकर बहुत सन्तुष्ट और सुखी हुए । वे धर्मानुसार प्रजाका पालन करते थे । उनकी धार्मिकताके प्रभावसे कुरुवंशियोंके दोष भी मिटने लगे ।

एक दिनकी बात है, लुटेरोंने किसी ब्राह्मणकी गौएँ लूट

लीं और उन्हें लेकर भागने लगे। ब्राह्मणको बड़ा क्रोध आया और वह इन्द्रप्रस्थमें आकर पाण्डवोंके सामने करुण-क्रन्दन करने लगा। ब्राह्मणने कहा कि 'पाण्डव! तुम्हारे राज्यमें दुष्टात्मा और क्षुद्र लुटेरे मेरी गौएँ छीनकर बलपूर्वक लिये जा रहे हैं। तुम दौड़कर इन्हें बचाओ। जो राजा प्रजासे कर लेकर भी उसकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता, वह निस्सन्देह पापी है। मैं ब्राह्मण हूँ। गौओंका छिन जाना मेरे धर्मका नाश है। तुम्हें उचित है कि इस समय तुम पूरी शक्तिसे मेरी गौओंकी रक्षा करो।' अर्जुनने ब्राह्मणका करुण-क्रन्दन सुनकर उन्हें ढाढ़स बँधाया। परन्तु उनके सामने अड़चन यह थी कि जिस घरमें राजा युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे, उसी घरमें उनके अस्त्र-शस्त्र थे। नियमानुसार अर्जुन उस घरमें नहीं जा सकते थे। एक ओर कौटुम्बिक नियम, दूसरी ओर ब्राह्मणकी करुण पुकार। अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि 'ब्राह्मणका गोधन लौटाकर आँसू पोंछना मेरा निश्चित कर्तव्य है। यदि मैं इसकी उपेक्षा कर दूँगा तो राजाको अधर्म होगा, हमलोगोंकी निन्दा होगी और पाप भी लगेगा। दूसरी ओर प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेसे भी पाप लगेगा, वनमें जाना पड़ेगा! अच्छी बात है। मैं ब्राह्मणकी रक्षा करूँगा। कोई रुकावट हो तो रहे। नियम-भङ्गके कारण कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, इस दीन ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करना

मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' अर्जुन राजा युधिष्ठिरके घरमें निस्सङ्कोच चले गये। राजासे अनुमति लेकर धनुष उठाया और आकर ब्राह्मणसे बोले, 'ब्राह्मणदेवता! जल्दी चलो। अभी वे दुष्ट अधिक दूर नहीं गये हैं। उनसे गोधनका उद्धार कर लायें।' थोड़ी ही देरमें अर्जुनने बाणोंकी बौछारसे लुटेरोंको मारकर गौएँ ब्राह्मणको सौंप दीं। नागरिकोंने अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की, कुरुवंशियोंने अभिनन्दन किया। अर्जुनने युधिष्ठिरके पास जाकर कहा, 'भाईजी! मैंने आपके एकान्तगृहमें जाकर प्रतिज्ञा तोड़ी है। इसलिये मुझे बारह वर्षतक वनवास करनेकी आज्ञा दीजिये। क्योंकि हमलोगोंमें ऐसा नियम बन चुका है।' यकायक अर्जुनके मुँहसे ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिर शोकमें पड़ गये। उन्होंने व्याकुल होकर अर्जुनसे कहा, 'भैया! यदि तुम मेरी बात मानते हो तो मैं जो कहता हूँ, सुनो। यदि तुमने नियम-भङ्ग किया भी है तो उसे मैं क्षमा करता हूँ। मेरे अन्तःकरणमें उससे तनिक भी दुःख नहीं हुआ, तुमने तो बहुत अच्छा काम किया। बड़ा भाई स्त्रीके साथ बैठा हो तो वहाँ छोटे भाईका जाना अपराध नहीं है। छोटा भाई स्त्रीके साथ बैठा हो तो वहाँ बड़े भाईको नहीं जाना चाहिये। तुम वनवासका विचार छोड़ दो। न तो तुम्हारे धर्मका लोप हुआ है और न मेरा अपमान।' अर्जुनने कहा, 'आप ही

कहते हैं कि धर्म-पालनमें बहानेबाजी नहीं करनी चाहिये। मैं शस्त्र छूकर सच-सच कहता हूँ कि अपनी सत्य प्रतिज्ञाको कभी नहीं तोड़ूँगा।' अर्जुनने वनवासकी दीक्षा ली और बारह वर्षतक वनवास करनेके लिये चल पड़े। अर्जुनके साथ बहुत-से वेद-वेदाङ्गके मर्मज्ञ, अध्यात्मचिन्तक, भगवद्भक्त, त्यागी

ब्राह्मण, कथावाचक, वानप्रस्थ और भिक्षाजीवी भी चले। स्थान-स्थानपर कथाएँ होतीं। उन्होंने सैकड़ों वन, सरोवर, नदी, पुण्यतीर्थ, देश एवं समुद्रके दर्शन किये। अन्तमें हरिद्वार पहुँचकर वे कुछ दिनोंके लिये ठहर गये। ब्राह्मणोंने स्थान-स्थानपर अग्निहोत्रकी स्थापना कर ली। स्वाहा-स्वाहाकी गम्भीर ध्वनिसे सारा वनप्रान्त गूँज उठा।

एक दिन अर्जुन स्नान करनेके लिये गङ्गाजीमें उतरे। वे स्नान-तर्पण करके हवन करनेके लिये बाहर निकलनेही-वाले थे कि नागकन्या उलूपीने कामासक्त होकर उन्हें जलके भीतर खींच लिया और अपने भवनको ले गयी। अर्जुनने देखा कि वहाँ यज्ञीय अग्नि प्रज्वलित हो रहा है। उन्होंने उसमें हवन किया और अग्निदेवको प्रसन्न करके नागकन्या उलूपीसे पूछा, 'सुन्दरि! तुम कौन हो? तुम ऐसा साहस करके मुझे किस देशमें ले आयी हो?' उलूपीने कहा, 'मैं ऐरावत वंशके कौरव्य नागकी कन्या उलूपी हूँ। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है। आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये, मुझे स्वीकार कीजिये।' अर्जुनने कहा, 'देवि! मैंने धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे बारह वर्षके ब्रह्मचर्यका नियम ले रक्खा है। मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मैं तुम्हें प्रसन्न करना चाहता तो हूँ, परन्तु मैंने अबतक कभी किसी प्रकार असत्यभाषण नहीं किया है। मुझे झूठका पाप न लगे, मेरे धर्मका लोप न हो, ऐसा ही काम तुम्हें करना चाहिये।' उलूपीने कहा, 'आप-लोगोंने द्रौपदीके लिये जो मर्यादा बनायी थी, उसे मैं जानती हूँ। परन्तु वह नियम द्रौपदीके साथ धर्म-पालन करनेके लिये ही है, इस लोकमें मेरे साथ उस धर्मका लोप नहीं होता। साथ ही आर्त-रक्षा भी तो परम धर्म है। मैं दुःखिनी हूँ, आपके सामने रो रही हूँ। यदि आप मेरी इच्छा पूर्ण नहीं करेंगे तो मैं मर जाऊँगी। मेरी प्राण-रक्षा करनेसे आपका धर्म-लोप नहीं होगा, आर्त-रक्षाका पुण्य ही होगा। आप मुझे प्राण-दान देकर धर्म उपार्जन कीजिये।' अर्जुनने उलूपीकी प्राण-रक्षाको धर्म समझकर उसकी इच्छा पूर्ण की और रातभर वहीं रहे। दूसरे दिन वे वहाँसे निकलकर हरिद्वारमें आ गये। चलते समय नागकन्या उलूपीने अर्जुनको वर दिया कि 'किसी भी जलचर प्राणीसे आपको भय नहीं होगा। सब जलचर आपके अधीन रहेंगे।' अर्जुनने वहाँकी सब घटना ब्राह्मणोंसे कही। तदनन्तर वे हिमालयकी तराईमें चले गये। अगस्त्यवट, वशिष्ठपर्वत, भृगुतुङ्ग आदि पुण्यतीर्थोंमें स्नान करते, ऋषियोंके दर्शन करते विचरण करने लगे। उन्होंने बहुत-सी गौएँ दान कीं तथा अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग आदि देशोंके तीर्थोंके दर्शन किये। जो कुछ ब्राह्मण अर्जुनके साथ रह गये थे, वे भी कलिङ्ग देशकी सीमासे उनकी अनुमति लेकर लौट पड़े।

अर्जुन महेन्द्र पर्वतपर होकर समुद्रके किनारे चलते-चलते मणिपूर पहुँचे। वहाँके राजा चित्रवाहन बड़े धर्मात्मा थे। उनकी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्याका नाम चित्राङ्गदा था। एक दिन अर्जुनकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। उन्होंने समझ लिया कि यह यहाँकी राजकुमारी है; और राजा चित्रवाहनके पास जाकर कहा—'राजन्! मैं कुलीन क्षत्रिय हूँ। आप

मुझसे अपनी कन्याका विवाह कर दीजिये।' चित्रवाहनके पूछनेपर अर्जुनने बतलाया कि 'मैं पाण्डुपुत्र अर्जुन हूँ।' चित्रवाहनने कहा कि 'वीरवर! मेरे पूर्वजोंमें प्रभञ्जन नामके एक राजा हो गये हैं। उन्होंने सन्तान न होनेपर उग्र तपस्या करके देवाधिदेव महादेवको प्रसन्न किया। उन्होंने वर दिया कि तुम्हारे वंशमें सबके एक-एक सन्तान होती जायगी। वीर! तबसे हमारे वंशमें वैसा ही होता आया है। मेरे यह एक ही कन्या है, इसे मैं पुत्र ही समझता हूँ। इसका मैं पुत्रिका-धर्मके अनुसार विवाह करूँगा, जिससे इसका पुत्र मेरा दत्तक पुत्र हो जाय और मेरा वंशप्रवर्तक बने।' अर्जुनने राजाकी शर्त मान ली। विधिपूर्वक विवाह हुआ। पुत्र होनेपर अर्जुन राजासे अनुमति लेकर फिर तीर्थयात्राके लिये चल पड़े।

वीरवर अर्जुन वहाँसे चलकर समुद्रके किनारे-किनारे अगस्त्यतीर्थ, सौभद्रतीर्थ, पौलोमतीर्थ, कारन्धमतीर्थ और भारद्वाजतीर्थमें गये। उन तीर्थोंके पासके ऋषि-मुनि उनमें स्नान नहीं करते थे। अर्जुनके पूछनेपर मालूम हुआ कि उनमें बड़े-बड़े ग्राह रहते हैं, जो ऋषियोंको निगल जाते हैं। तपस्वियोंके रोकनेपर भी अर्जुनने सौभद्रतीर्थमें जाकर स्नान किया। जब वहाँ मगरने अर्जुनका पैर पकड़ा, तब वे उसे उठाकर ऊपर ले आये। परन्तु उस समय यह बड़ी विचित्र घटना घटी कि वह मगर तत्क्षण एक सुन्दरी अप्सराके रूपमें परिणत हो गया। अर्जुनके पूछनेपर अप्सराने बतलाया कि "मैं कुबेरकी प्रेयसीवर्गा नामकी अप्सरा हूँ। एक बार मैं अपनी चार सखियोंके साथ कुबेरजीके पास जा रही थी। रास्तेमें एक तपस्वीके तपमें हमलोगोंने विघ्न डालना चाहा। तपस्वीके चित्तमें कामका तो उदय नहीं हुआ, परन्तु उन्होंने क्रोधवश शाप दे दिया कि 'तुम पाँचों मगर होकर सौ वर्षतक पानीमें रहो।' देवर्षि नारदसे यह जानकर कि पाण्डव अर्जुन यहाँ आकर थोड़े ही दिनोंमें हमलोगोंका उद्धार कर देंगे, हम-लोग इन तीर्थोंमें मगर होकर रह रही हैं। आपने मेरा तो उद्धार कर दिया, अब मेरी चार सखियोंका भी उद्धार कर दीजिये।" उलूपीके वरदानके कारण अर्जुनको जलचरोंसे कोई भय तो था ही नहीं, उन्होंने सब अप्सराओंका उद्धार भी कर दिया और उनके प्रयत्नसे वहाँके सब तीर्थ बाधाहीन भी हो गये।

वहाँसे लौटकर अर्जुन फिर एक बार मणिपूर गये। चित्राङ्गदाके गर्भसे जो पुत्र हुआ, उसका नाम बभ्रुवाहन रक्खा गया। अर्जुनने राजा चित्रवाहनसे कहा कि आप इस लड़केको ले लीजिये, जिससे इसकी शर्त पूरी हो जाय। उन्होंने चित्राङ्गदाको भी बभ्रुवाहनके पालन-पोषणके लिये वहाँ रहनेकी आवश्यकता बतलायी और उसे राजसूय यज्ञमें अपने पिताके साथ इन्द्रप्रस्थ आनेके लिये कहकर फिर तीर्थ-यात्राके लिये गोकर्ण-क्षेत्र गये।

दक्षिणी समुद्रके उत्तरतटवर्ती तीर्थोंकी यात्रा करके अर्जुन पश्चिमी समुद्रके तटवर्ती तीर्थोंकी यात्रा करने लगे। जब वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे, तब भगवान् श्रीकृष्णको वहाँ उनके आनेका समाचार मिला और उन्होंने उसी समय अपने

परम मित्र अर्जुनसे मिलनेके लिये प्रभासक्षेत्रकी यात्रा की। नर और नारायणके मिलनसे आनन्दकी बाढ़ आ गयी, दोनों परस्पर गले मिले। कुशल-मङ्गल, तीर्थयात्रा और उसके कारणके सम्बन्धमें विस्तारसे बातचीत हुई। कुछ समयके बाद दोनों मित्र रैवतक पर्वतपर जाकर रहने लगे। वहाँ श्रीकृष्णके सेवकोंने पहलेसे ही सब प्रकारकी सजावट एवं खाने-पीने, सोने, घूमनेकी सुविधा कर रक्खी थी। वहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी ओरसे अर्जुनका राजोचित सम्मान और तरह-तरहसे मनोरञ्जन किया गया। रातको सोनेके समय अर्जुन अपनी यात्राकी बातें सुनाते रहे।

वहाँसे रथपर सवार होकर दोनों मित्र द्वारका गये। अर्जुनके सम्मानके लिये द्वारकापुरीके उपवन, महल, सड़कें—सब सजा दिये गये थे। यदुवंशियोंने बड़े उत्साहके साथ अर्जुनका स्वागत-सत्कार किया और अपनी स्थिति, पद और योग्यताके अनुसार उनका अभिनन्दन किया। द्वारकापुरीमें वे भगवान् श्रीकृष्णके निज मन्दिरमें ही ठहरे और दोनों अनेक रात्रियोंमें एक साथ ही सोये।

सुभद्राहरण और अभिमन्यु एवं प्रतिविन्ध्य आदि कुमारोंका जन्म

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! एक बार वृष्णि, भोज और अन्धक वंशोंके यादवोंने रैवतक पर्वतपर बहुत बड़ा उत्सव मनाया। इस अवसरपर ब्राह्मणोंको हजारों रत्न और अपार सम्पत्तिका दान किया गया। यदुवंशी बालक

सज-धजकर टहल रहे थे। अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, हार्दिक्य, उद्धव, बलराम तथा अन्य प्रधान-प्रधान यदुवंशी अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ उत्सवकी शोभा बढ़ा रहे थे। गन्धर्व और वन्दीजन उनका विरद बखान रहे थे। गाजे-बाजे, नाच-तमाशेकी भीड़ सब ओर लगी हुई थी। इस उत्सवमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बड़े प्रेमसे साथ-साथ घूम रहे थे। वहीं श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा भी थी। उसकी रूप-राशिसे मोहित होकर अर्जुन एकटक उसकी ओर देखने लगे। भगवान् कृष्णने अर्जुनके अभिप्रायको जानकर कहा कि 'क्षत्रियोंके यहाँ स्वयंवरकी चाल है। परन्तु यह निश्चय नहीं कि सुभद्रा तुम्हें स्वयंवरमें वरेगी या नहीं, क्योंकि सबकी रुचि अलग-अलग होती है। क्षत्रियोंमें बलपूर्वक हरकर ब्याह करनेकी भी नीति है। तुम्हारे लिये यही मार्ग

प्रशस्त है।' भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने यह सलाह करके अनुमतिके लिये युधिष्ठिरके पास दूत भेजा। युधिष्ठिरने हर्षके साथ इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। दूतके लौट आनेपर श्रीकृष्णने अर्जुनको वैसी सलाह दे दी।

एक दिन सुभद्राने रैवतक पर्वतपर देवपूजा करके पर्वतकी प्रदक्षिणा की। ब्राह्मणोंने मङ्गलवाचन किया। जब सुभद्राकी सवारी द्वारकाके लिये रवाना हुई, तब अवसर पाकर अर्जुनने बलपूर्वक उसे उठाकर रथमें बिठा लिया और उस सुवर्णमय रथसे अपने नगरकी ओर चल दिये। सैनिक सुभद्राहरणका यह दृश्य देखकर चिल्लाते हुए द्वारकाकी सुधर्मा सभामें गये और वहाँका सब हाल कहा। सभापालने युद्धका स्वर्णजटित डंका बजानेका आदेश किया। वह आवाज सुनकर भोज, अन्धक और वृष्णि वंशोंके यादव अपने जरूरी काम-काज छोड़कर वहाँ इकट्ठे होने लगे। सभा भर गयी। सैनिकोंके मुखसे सुभद्राहरणका वृत्तान्त सुनकर यादवोंकी आँखें चढ़ गयीं। उन्होंने अपने इस अपमानका बदला लेना ही निश्चित किया। कोई रथ जोतने लगा, कोई कवच बाँधने लगा, कोई तावके मारे खुद घोड़ा जोतने लगा, युद्धकी सामग्री इकट्ठी होने लगी। बलरामजीने कहा, 'यदुवंशियो! श्रीकृष्णकी बात सुने बिना तुमलोग ऐसी नासमझी क्यों कर रहे हो? इस झूठमूठके गरजनेका अभिप्राय क्या है?' इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'जनार्दन! तुम्हारी इस चुप्पीका क्या अभिप्राय है? तुम्हारा मित्र समझकर अर्जुनका इतना सत्कार किया गया और उसने जिस पत्तलमें खाया, उसीमें छेद किया। वह उत्तम वंशका होनहार युवक है। उसके साथ सम्बन्ध करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी उसने यह साहस करके हमें अपमानित और अनादृत किया है। उसका यह कार्य हमारे माथेपर पैर रखनेके बराबर है। मैं यह नहीं सह सकता। मैं अकेला ही समस्त कुरुवंशियोंके लिये काफी हूँ। मैं अर्जुनकी ढिठाई क्षमा नहीं कर सकता।' बलरामजीकी वीरोचित बातका सब यदुवंशियोंने अनुमोदन किया।

सबके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुनने हमारे वंशका अपमान नहीं, सम्मान किया है। उन्होंने हमारे वंशकी

महत्ता समझकर ही हमारी बहिनका हरण किया है। क्योंकि उन्हें स्वयंवरके द्वारा उसके मिलनेमें सन्देह था। उनका काम क्षत्रियधर्मके अनुरूप हुआ है और हमारे योग्य है। सुभद्रा और अर्जुनकी जोड़ी बहुत ही सुन्दर होगी। महात्मा भरतके वंशधर और कुन्तिभोजके दौहित्रको कन्या देकर नाता जोड़ना भला, किसे नापसंद हो सकता है? अर्जुनको जीतना भी भगवान् शङ्करके अतिरिक्त और किसीके लिये दुष्कर है। इस समय उस फुर्तीले जवान योद्धाके पास मेरे रथ और घोड़े हैं। मैं समझता हूँ कि इस समय लड़ाईका उद्योग न करके अर्जुनके पास जाकर मित्रभावसे कन्या सौंप देना ही उत्तम है। कहीं अर्जुनने अकेले ही तुमलोगोंको जीत लिया और कन्याको हस्तिनापुर ले गया तो यदुवंशकी बड़ी बदनामी होगी। यदि उससे मित्रता कर ली जाय तो हमारा यश बढ़ेगा।' सब लोगोंने श्रीकृष्णकी बात मान ली। सम्मानके साथ अर्जुन लौटा लाये गये। द्वारकामें सुभद्राके साथ उनका विधिपूर्वक विवाहसंस्कार सम्पन्न हुआ। विवाहके बाद वे एक वर्षतक द्वारकामें रहे और शेष समय पुष्कर क्षेत्रमें व्यतीत किया। बारह वर्ष पूरे होनेपर वे सुभद्राके साथ इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

अर्जुनने नम्रताके साथ अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके चरणोंमें नमस्कार करके ब्राह्मणोंकी पूजा की। द्रौपदीने उन्हें प्रेमभरा उलाहना दिया और उन्होंने उसे प्रसन्न किया। सुभद्रा लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहिनकर ग्वालिनके वेषमें रनिवासमें गयी। कुन्तीके चरण छुए। सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्र-वधूको देखकर कुन्तीने आशीर्वाद दिया। सुभद्राने द्रौपदीके पैर छूकर कहा कि 'बहिन! मैं तुम्हारी दासी हूँ।' द्रौपदीने प्रसन्नतासे भरकर गले लगा लिया। अर्जुनके आ जानेसे महल और नगरमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। जब द्वारकामें यह समाचार पहुँचा कि अर्जुन इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये हैं तब भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, बहुत-से श्रेष्ठ यदुवंशी, उनके पुत्र-पौत्र तथा बहुत-सी सेना भी इन्द्रप्रस्थके लिये रवाना हुई। उनके शुभागमनका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको अगवानी करनेके लिये भेजा। सारा इन्द्रप्रस्थ झंडियों और फूल-पत्तोंसे सजा दिया गया। सड़कोंपर छिड़काव कर दिया गया। चन्दन और अगरकी सुगन्ध चारों ओर फैल गयी। श्रीकृष्ण और बलरामने राजभवनमें पहुँचकर सबके साथ प्रणाम-आशीर्वाद आदि उचित व्यवहार किया। सबकी यथायोग्य आवभगत की गयी।

भगवान् श्रीकृष्णने सुभद्राके विवाहके उपलक्ष्यमें बहुत-सा दहेज दिया। किङ्किणीजालमण्डित चार घोड़ोंसे युक्त चतुर सारथिसहित सुवर्णजटित एक सहस्र रथ, मथुरा देशकी दुधार एवं पवित्र दस हजार गौएँ, एक हजार सुवर्णभूषित सफेद रंगकी घोड़ियाँ, सधी हुई तेज चालकी एक हजार खच्चरियाँ,

सब प्रकारसे योग्य सहस्र दासियाँ, एक लाख घोड़े और कीमती कपड़े तथा कम्बल भी दिये तथा दस भार सोना और एक हजार मदमत्त हाथी दिये गये। युधिष्ठिरकी सम्पत्ति बढ़ गयी। सब लोग राजभवनमें रहकर आमोद-प्रमोद करने लगे। पाण्डवोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। यदुवंशी तो कुछ दिनोंतक वहाँ रहकर द्वारकापुरी चले गये। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण कुछ समयके लिये अर्जुनके पास इन्द्रप्रस्थमें ही रह गये। समय आनेपर सुभद्राके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अभिमन्यु रक्खा गया। उसके जन्मके अवसरपर युधिष्ठिरने दस हजार गौएँ, बहुत-सा सोना और रत्न, धन आदिका दान किया। अभिमन्यु पाण्डवोंको, श्रीकृष्णको और पुरवासियोंको बहुत प्यारे लगते थे। श्रीकृष्णने उनके सब संस्कार सम्पन्न किये। वेदाध्ययनके बाद उन्होंने अर्जुनसे ही धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। अभिमन्युका अस्त्र-कौशल देखकर अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता होती। वे बहुत-से गुणोंमें तो भगवान् श्रीकृष्णके तुल्य थे।

द्रौपदीके गर्भसे भी पाँचों पाण्डवोंके द्वारा एक-एक वर्षके अन्तरपर पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मणोंने युधिष्ठिरसे कहा, 'महाराज! आपका पुत्र शत्रुओंका प्रहार सहन करनेमें विन्ध्याचलके समान होगा, इसलिये उसका नाम 'प्रतिविन्ध्य' होगा। भीमसेनने एक सहस्र सोमयाग करके पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये उनके पुत्रका नाम 'सुतसोम' होगा। अर्जुनने बहुत-से प्रसिद्ध कर्म करनेके अनन्तर लौटकर पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये इस बालकका नाम होगा 'श्रुतकर्मा'। कुरुवंशमें पहले शतानीक नामके एक बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं। नकुल अपने पुत्रका नाम उन्हींके नामपर रखना चाहते हैं, इसलिये इस पुत्रका नाम 'शतानीक' होगा। सहदेवका पुत्र कृत्तिका नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये उसका नाम 'श्रुतसेन' होगा।' धौम्यने इन बालकोंके संस्कार विधिपूर्वक कराये। बालकोंने वेदपाठ समाप्त करके अर्जुनसे दिव्य और मानुष युद्धकी अस्त्रशिक्षा प्राप्त की। इन सब बातोंसे पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

खाण्डव-दाहकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जैसे जीव शुभ लक्षणों और पवित्र कर्मोंसे युक्त मानवशरीर पाकर सुखसे रहता और अपनी उन्नति करता है, वैसे ही प्रजा धर्मराज युधिष्ठिरको राजाके रूपमें पाकर सुख और शान्तिके साथ उन्नति करने लगी। उनके राजत्वकालमें सामन्त राजाओंकी राज्यलक्ष्मी अविचल हो गयी। प्रजाकी बुद्धि अन्तर्मुख हो गयी, धर्मका बोलबाला हो गया। जैसे पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाको देखकर लोगोंके नेत्र और मन शीतल हो जाते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण प्रजा राजा युधिष्ठिरके दर्शनसे आनन्दित हो जाती। प्रजा युधिष्ठिरको केवल राजा मानकर ही आनन्दित नहीं होती थी, बल्कि वे कार्य भी ऐसे ही करते थे जो प्रजाको अभीष्ट होते थे। धर्मराज कभी अनुचित, असत्य अथवा अप्रिय वाणी नहीं बोलते थे। वे जैसे अपनी भलाई चाहते, वैसे ही प्रजाकी भी। इस प्रकार सब पाण्डव अपने तेजसे समस्त राजाओंको सन्तप्त करते हुए आनन्दसे रहते थे।

एक दिन अर्जुनकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर यमुनाके पावन पुलिनपर जल-विहार करनेके लिये गये। वहाँ उन लोगोंकी सुख-सुविधाके लिये विहार-भूमि सुसज्जित कर दी गयी थी। उस समृद्धिसम्पन्न वन्य प्रदेश और उनके विश्रामभवनमें वीणा, मृदङ्ग और बाँसुरी आदि बाजोंकी सुमधुर ध्वनि हो रही थी। भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ आनन्दोत्सव
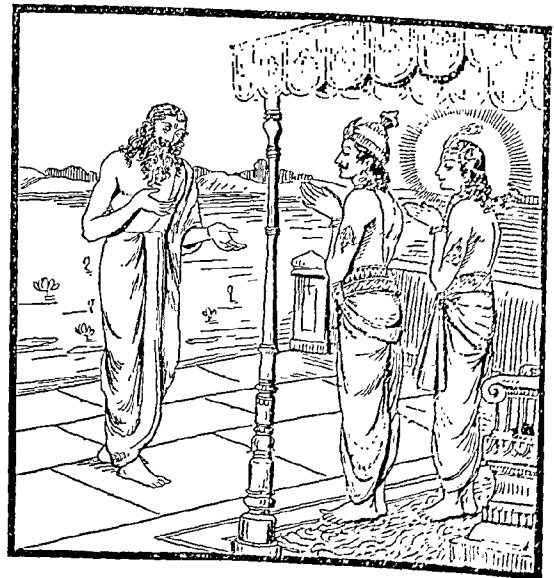
मनाया। दोनों मित्र पास-ही-पास बहुमूल्य आसनोंपर बैठे हुए थे। उसी समय एक लंबे डील-डौलके ब्राह्मण ...

उपस्थित हुए। उनका शरीर क्या था, मानो तपाया हुआ सोना ही था। सिरपर पिङ्गलवर्णकी जटाएँ, मुँहपर दाढ़ी-मूँछ और शरीरपर वल्कल वस्त्र थे। इस तेजस्वी ब्राह्मणको देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन उठ खड़े हुए। ब्राह्मणने कहा कि 'आप दोनों संसारके श्रेष्ठ वीर और महापुरुष हैं। मैं एक बहुभोजी ब्राह्मण हूँ। इस समय मैं खाण्डव वनके पास बैठे हुए आपलोगोंके सामने भोजनकी भिक्षा माँगने आया हूँ।' भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने कहा कि 'आपकी तृप्ति किस प्रकारके अन्नसे होती है? आज्ञा कीजिये, हमलोग उसीके लिये प्रयत्न करें।' ब्राह्मणने कहा, 'मैं अग्नि हूँ। मुझे साधारण अन्नकी आवश्यकता नहीं। आप मुझे वही अन्न दीजिये, जो मेरे योग्य है। मैं खाण्डव वनको जला डालना चाहता हूँ। परन्तु इस वनमें तक्षक नाग अपने परिवार और मित्रोंके साथ रहता है, इसलिये इन्द्र सर्वदा इस वनकी रक्षामें तत्पर रहता है। जब-जब मैं इस वनको जलानेकी चेष्टा करता हूँ, तब-तब वह मुझपर जलकी धाराएँ उड़ेल देता है और मेरी लालसा पूरी नहीं हो पाती। आप दोनों अस्त्र-विद्याके पारदर्शी हैं। इसलिये आपलोगोंकी सहायतासे मैं इसे जला सकता हूँ। मैं आपलोगोंसे इसी भोजनकी याचना करता हूँ।'

जनमेजयने पूछा—भगवन्! अग्निदेव अनेकों प्राणियोंसे भरे एवं इन्द्रके द्वारा सुरक्षित खाण्डव वनको क्यों जलाना चाहते थे?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! प्राचीन समयकी बात है। एक बड़ा ही शक्तिशाली और पराक्रमी श्वेतकि नामका प्रसिद्ध राजा था। उन दिनों वैसा यज्ञप्रेमी, दाता और बुद्धिमान् कोई राजा नहीं था। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किये। उसके यज्ञ कराते-कराते ऋत्विज् आदि थक जाते, ऊब जाते और कभी-कभी तो अस्वीकार करके चले जाते। परन्तु राजाका यज्ञ तो चलता ही रहता। वह अनुनय-विनय करके और दान-दक्षिणा दे-देकर ब्राह्मणोंको प्रसन्न रखता। अन्तमें जब सभी ब्राह्मण यज्ञ कराते-कराते हार गये, तब राजाने तपस्याके द्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया और उनकी आज्ञासे दुर्वासा ऋषिके द्वारा महान् यज्ञ करवाया। पहले बारह वर्ष और फिर सौ वर्षके महायज्ञमें दक्षिणा दे-देकर राजाने ब्राह्मणोंको छका दिया। दुर्वासा प्रसन्न हुए। राजा श्वेतकि अपने सदस्यों और ऋत्विजोंके साथ स्वर्ग सिधारे। उस यज्ञमें बारह वर्षतक अग्निदेवने घीकी अखण्ड धाराएँ पीयी थीं; इससे उनकी पाचनशक्ति क्षीण हो गयी, रंग फीका पड़ गया और प्रकाश मन्द हो गया। जब अजीर्णके कारण उनका अङ्ग-अङ्ग ढीला पड़ गया, तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर प्रार्थना की कि 'आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं पहलेकी तरह भला-चंगा और स्वस्थ हो जाऊँ।' ब्रह्माजीने कहा, 'अग्निदेव! यदि तुम खाण्डव वनको जला दो तो तुम्हारी अरुचि और अजीर्ण दूर हो जायँ और तुम्हारी ग्लानि भी मिट जायगी।' वहाँसे आकर अग्निदेवने सात बार खाण्डव वनको जलानेकी चेष्टा की, परन्तु इन्द्रके संरक्षणके कारण वे अपने प्रयत्नमें सफल न हो सके। जब अग्नि निराश होकर दुबारा ब्रह्माजीके पास गये, तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे खाण्डव वन जलानेका उपाय बतलाया और अग्निदेवने यमुना-तटपर आकर उनसे पूर्वोक्त बातें कहीं।

ब्राह्मणवेषधारी अग्निदेवकी प्रार्थना सुनकर अर्जुनने कहा—'अग्निदेव! मेरे पास दिव्यास्त्रोंकी कमी नहीं है। उनके द्वारा मैं युद्धमें इन्द्रको भी छका सकता हूँ। परन्तु मेरे बाहुबलको सम्हाल सकनेवाला धनुष मेरे पास नहीं है और न उन अस्त्रोंके उपयुक्त बहुत-से बाण ही हैं। रथ भी तो ऐसा नहीं है, जो यथेष्ट बाणोंका बोझ ढो सके। श्रीकृष्णके पास भी इस समय कोई ऐसा शस्त्र नहीं है, जिससे ये युद्धमें नागों और पिशाचोंको मार सकें। खाण्डव वन जलाते समय इन्द्रको रोकनेके लिये युद्ध-सामग्रीकी आवश्यकता है। बल और कौशल हमारे पास है, सामग्री आप दीजिये।' अर्जुनकी समयोचित वाणी सुनकर अग्निदेवने जलाधिपति लोकपाल वरुणका स्मरण किया। तुरंत वरुण प्रकट हो गये। अग्निने कहा, 'आपको राजा सोमने जो अक्षय तरकस, गाण्डीव धनुष और वानरचिह्नयुक्त ध्वजासे मण्डित दिव्य रथ दिया है, वह शीघ्र मुझे दीजिये तथा चक्र भी दीजिये। श्रीकृष्ण और अर्जुन चक्र तथा गाण्डीव धनुषकी सहायतासे मेरा बड़ा भारी काम सिद्ध करेंगे।' वरुणने अग्निदेवकी प्रार्थना स्वीकार की। उन्होंने अर्जुनको वह अक्षय तरकस और गाण्डीव धनुष दे दिया। गाण्डीव धनुषकी महिमा अद्भुत है। वह किसी भी शस्त्रसे कट नहीं सकता और सभी शस्त्रोंको काट सकता है। उससे योद्धाका यश, कान्ति और बल बढ़ता है। वह अकेले ही लाखों धनुषोंके समान, क्षतरहित और तीनों लोकोंमें पूजित तथा प्रशंसित है। समस्त सामग्रियोंसे युक्त, सबके लिये अजेय, सूर्यके समान देदीप्यमान और रत्नजटित एक दिव्य रथ भी दिया। उस रथमें मन और पवनके समान तेज चलनेवाले सफेद, चमकीले, हार पहने हुए गन्धर्व-देशके घोड़े जुते हुए थे। रथपर सुवर्णके डंडेमें भयङ्कर वानरके चिह्नसे

चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी। यह सब पाकर अर्जुनके आनन्दकी सीमा न रही। जिस समय अर्जुनने रथपर सवार होकर धनुषको झुकाया और उसपर डोरी चढ़ायी, उस समय उसकी गम्भीर आवाज सुनकर लोगोंके कलेजे काँप उठे। अर्जुनने समझ लिया कि अब हम अग्निकी पूरी तरह सहायता कर सकेंगे। अग्निदेवने भगवान् श्रीकृष्णको दिव्य चक्र और आग्नेयास्त्र देते हुए कहा कि 'मधुसूदन! इस चक्रके द्वारा आप जिसे चाहेंगे, उसे मार डालेंगे। इस चक्रके प्रभावके सामने समस्त देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्योंकी शक्ति कुछ भी नहीं है। यह चक्र हर बार चलनेपर शत्रुका नाश करके फिर लौट आया करेगा।' वरुणने भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें दैत्यनाशिनी एवं वज्रध्वनिके समान शब्दसे शत्रुओंका दिल दहला देनेवाली कौमोदकी गदा अर्पित की। अब श्रीकृष्ण और अर्जुनने अग्निदेवकी सहायता करना स्वीकार कर लिया और उन्हें खाण्डव वन जलानेकी अनुमति दी।

भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अनुमति पाकर अग्निदेवने तेजोमय दावानलका प्रदीप्त रूप धारण किया और अपनी
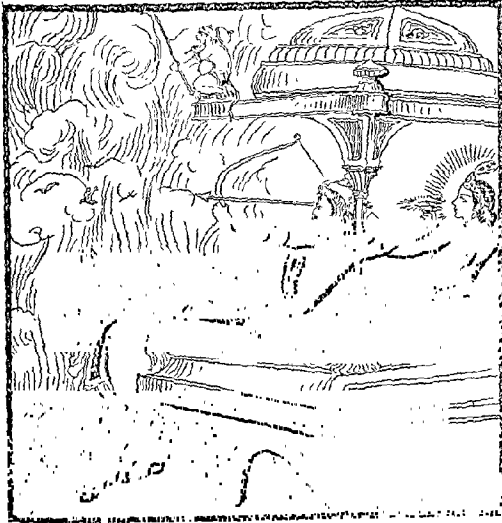
सातों ज्वालाओंसे खाण्डव वनको घेरकर प्रलयका-सा दृश्य उपस्थित करते हुए उसे भस्मसात् करना प्रारम्भ किया। उस वनके सैकड़ों-हजारों प्राणी चिल्लाते और चिग्घाड़ते हुए इधर-उधर भागने लगे। बहुत-से प्राणियोंका एक-एक अंग जल गया। कोई लपटोंसे झुलस गया, कितनोंकी आँखें फूट गयीं। किन्हींके शरीरपर फफोले पड़ गये। बहुत-से अपने सम्बन्धियोंके स्नेह-बन्धनमें पड़कर भाग न सके और एक-दूसरेसे लिपटकर भस्म हो गये। खाण्डव वनकी आग इस प्रकार धधकने और दहकने लगी कि उसकी ऊँची-ऊँची लपटें आकाशतक पहुँच गयीं। देवताओंके हृदयमें कँपकँपी होने लगी। आगकी गर्मीसे सन्तप्त होकर सभी देवता देवराज इन्द्रके पास गये और कहने लगे, 'देवेन्द्र! क्या यह आग समस्त प्राणियोंका संहार कर डालेगी? क्या अभी प्रलयका समय आ गया?' देवताओंकी घबराहट और प्रार्थनासे प्रभावित होकर और अग्निकी यह भयानक करतूत देखकर स्वयं इन्द्र खाण्डव वनको अग्निसे बचानेके लिये तैयार हुए। उनकी आज्ञासे दल-के-दल बादल खाण्डव वनपर उमड़

आये और गड़गड़ाहटके साथ जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्र-कौशलके बलसे बाणोंके द्वारा जलकी बौछारें रोक दीं, सारा आकाश बाणोंके द्वारा ऐसा घिर गया कि कोई भी प्राणी उससे निकलकर बाहर न जा सका। उस समय नागराज तक्षक खाण्डव वनमें नहीं था। वह कुरुक्षेत्र चला गया था। परन्तु उसका पुत्र अश्वसेन वहीं था और बचनेका बहुत प्रयत्न करनेपर भी अर्जुनके बाणोंके घेरेसे बाहर न जा सका। अश्वसेनकी माताने उसे निगलकर बचानेकी कोशिश की। वह मुँहकी ओरसे शुरू करके पूँछतक निगल भी गयी थी, परन्तु अग्निका प्रकोप बढ़ जानेसे बीचमें ही भागने लगी। अर्जुनने ऐसा तककर निशाना मारा कि उसका फन बिंध गया। इन्द्र

अर्जुनका यह काम देख रहे थे। उन्होंने अश्वसेनको बचानेके लिये ऐसी आँधी चलायी और बूँदोंकी बौछार डाली कि अर्जुन क्षणभरके लिये मोहित हो गये। अश्वसेन वहाँसे निकल भागा। इन्द्रके इस धोखेकी बात याद करके अर्जुन क्रोधसे तिलमिला उठे और पैने तथा तेज बाणोंसे आकाशको ढककर इन्द्रसे भिड़ गये। इन्द्रने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे अर्जुनको उत्तर दिया। प्रचण्ड पवन भयङ्कर गर्जनाके साथ समुद्रको क्षुब्ध करने लगा। आकाश जल बरसानेवाले बादलोंसे भर गया, बिजली चमकने लगी, वज्रकी कड़कसे लोगोंका दिल दहलने लगा। अर्जुनने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। इन्द्रका वज्र कमजोर पड़ गया। बादल तितर-बितर हो गये, जलधाराएँ सूख गयीं, बिजलियोंकी चमक लापता हो गयी, अँधेरा मिट गया। अर्जुनका यह अस्त्रकौशल देखकर देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प कोलाहल करते हुए सामने आ गये; वे तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनपर प्रहार करने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुनने संयुक्त-रूपसे चक्र और तीखे बाणोंके द्वारा सबकी सेनाको तहस-नहस कर दिया।

यह सब देख-सुनकर देवराज इन्द्रके क्रोधकी सीमा न रही। वे श्वेतवर्णवाले ऐरावत हाथीपर चढ़कर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर दौड़े। उन्होंने जल्दबाजीमें अपने वज्रका प्रयोग किया और देवताओंसे चिल्लाकर कहा कि 'अभी-अभी दोनों मरे जाते हैं।' सभी देवताओंने अपने-अपने अस्त्र उठाये। यमराजने कालदण्ड, कुबेरने गदा, वरुणने पाश और विचित्र वज्र। इधर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी अपने धनुष चढ़ाये और निर्भयताके साथ खड़े हो गये। इन दोनों मित्रोंकी बाण-वर्षाके सामने इन्द्रादि देवताओंकी एक न चली। इन्द्रने मन्दराचलका एक शिखर उठाकर अर्जुनपर दे मारनेकी चेष्टा की, परन्तु उसके पहले ही दिव्य बाणोंकी चोटसे वह हजारों टुकड़े हो गया था। उसके टुकड़ोंसे खाण्डव वनके दानव, राक्षस, नाग, बाघ, रीछ, हाथी, सिंह, मृग, भैंसे तथा अन्यान्य वन्य पशु और पक्षी घायल एवं भयभीत होकर भागने लगे। एक ओरसे आग सबको पी जाना चाहती थी, दूसरी ओरसे भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बाण-वर्षा। कोई वहाँसे भाग न सका। श्रीकृष्णके चक्र और अर्जुनके बाणोंसे कट-कटकर जीव-जन्तु स्वाहा हो रहे थे। समस्त प्राणियोंके आत्मा श्रीकृष्णने उस समय अपना कालरूप प्रकट कर दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषको देखकर दंग रह गये।

उस समय इन्द्रको सम्बोधन करके वज्रनिष्ठुर ध्वनिसे आकाशवाणी हुई कि 'इन्द्र! तुम्हारा मित्र तक्षक कुरुक्षेत्र जानेके कारण इस भयङ्कर अग्निकाण्डसे जला नहीं, बच गया है। तुम अर्जुन और श्रीकृष्णको युद्धमें कभी किसी प्रकार नहीं जीत सकते। तुम्हें समझना चाहिये कि ये तुम्हारे चिर-परिचित नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम हैं। ये सबके लिये अजेय हैं और देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य तथा सर्पादि सबके लिये पूजनीय हैं। तुम देवताओंको लेकर यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी शोभा है। इस अवसरपर खाण्डव वनका दाह दैवने ही रच रक्खा है।' आकाशवाणी सुनकर देवराज इन्द्र क्रोध और ईर्ष्या छोड़कर स्वर्गमें लौट गये, देवताओंने भी अपनी सेनाके साथ उनका अनुगमन किया। देवताओंको समरभूमिसे हटते देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने हर्षध्वनि की। खाण्डव वन अनाथके घरकी तरह धक-धक जलने लगा।

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मय दानव यकायक तक्षकके निवास-स्थानसे निकलकर भागा जा रहा है और अग्नि मूर्तिमान् होकर जलानेके लिये उसका पीछा कर रहा है। उन्होंने मय दानवको मार डालनेके लिये चक्र उठाया। आगे चक्र और पीछे धधकती आगको देखकर पहले तो मय दानव किङ्कर्तव्यविमूढ हो गया, पीछे उसने कुछ

सोचकर पुकारा—'वीर अर्जुन! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ।' केवल

तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकते हो।' अर्जुनने कहा, 'डरो मत।' अर्जुनको अभयदान करते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने चक्र रोक लिया और अग्निने भी उसे भस्म नहीं किया। मय दानवकी रक्षा हो गयी। वह वन पंद्रह दिनतक जलता रहा। इस अग्निकाण्डसे केवल छः प्राणी बच सके—अश्वसेन सर्प, मय दानव और चार शार्ङ्ग पक्षी। शार्ङ्ग पक्षियोंके पिता मन्दपालने और उन पक्षियोंमें सबसे बड़े जरितारिने अग्निदेवताकी स्तुति करके अपनी रक्षाका वचन ले लिया था।

अग्निदेवने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे प्रज्वलित होकर खाण्डव वनको जला डाला। अनन्तर ब्राह्मणके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए। उसी समय देवराज इन्द्र भी देवताओंके साथ अन्तरिक्षसे वहाँ उतरे। उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा, 'आपलोगोंने यह ऐसा दुष्कर कार्य किया है, जो देवताओंके लिये भी असाध्य है। मैं आपलोगोंपर प्रसन्न हूँ। इसलिये आप मनुष्योंके लिये दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तु भी मुझसे माँग सकते हैं।' अर्जुनने कहा, 'मुझे आप सब प्रकारके अस्त्र दे दीजिये।' इन्द्रने कहा, 'अर्जुन! जिस समय देवाधिदेव महादेव तुमपर प्रसन्न होंगे, उस समय तुम्हारे तपके प्रभावसे मैं तुम्हें अपने सारे अस्त्र दे दूँगा। मैं जानता हूँ कि वह समय कब आयेगा।'
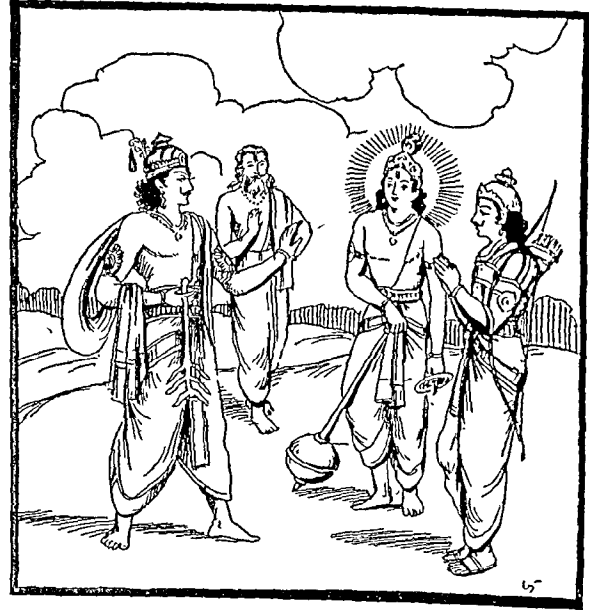
भगवान् श्रीकृष्णने कहा, 'देवराज! आप मुझे यह वर दीजिये कि मेरी और अर्जुनकी मित्रता क्षण-क्षण बढ़ती जाय और कभी न टूटे।' इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा 'एवमस्तु'। देवताओंके जानेके बाद अग्निदेव श्रीकृष्ण और अर्जुनका अभिनन्दन करके चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और मय दानव यमुनाके पावन पुलिनपर आकर बैठ गये।

आदिपर्व समाप्त
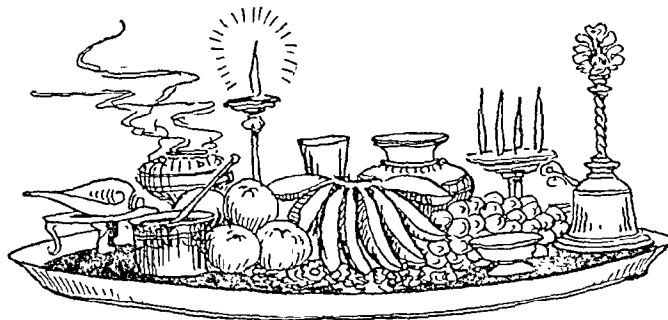
महाभारतके प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण

भारते सर्ववेदार्थो भारतार्थो हरिः स्वयम् ।
तस्माद् भारतमेवाहं वन्दे वेदैकविग्रहम् ॥

महाभारतमें समस्त वेदोंका तात्पर्य संगृहीत है और महाभारतके प्रतिपाद्य स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इसलिये वेदकी ही मूर्त्ति महाभारतकी मैं वन्दना करता हूँ ।

धर्मो निष्काम एवात्र प्रतिपाद्यतया मतः ।
सकामस्य यतो निन्दा श्रूयते बहुधा किल ॥
तेन निष्कामधर्मेण सदाचारयुतेन च ।
आराध्यो हरिरेवात्र मतं तत् संमतं सताम् ॥

महाभारतमें सकाम धर्मकी निन्दा स्थान-स्थानपर पायी जाती है तथा निष्काम धर्मको ही प्रतिपाद्यरूपमें स्वीकार किया गया है, इसलिये सदाचार-युक्त निष्काम धर्मके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी ही उपासना करनी चाहिये, यही मत सत्पुरुषोंको मान्य है ।

उपास्यो हरिरेवात्र प्रतिपाद्यत आदरात् ।
द्वितीयस्येश्वरस्यैवाभावादन्यो न विद्यते ॥

महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णका ही उपास्यरूपमें आदरपूर्वक प्रतिपादन हुआ है । उनके अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है; अतः वे ही एकमात्र सद्वस्तु हैं, उनके अतिरिक्त किसी दूसरेकी सत्ता ही नहीं है ।

ज्ञेयः स एव भगवान् सर्वात्मा प्रत्यगन्तरः ।
अखण्डानन्दरूपत्वात् पुरुषार्थविदां मतः ॥

सर्वात्मा एवं सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण ही जाननेयोग्य वस्तु हैं । वे अखण्डानन्दस्वरूप हैं, अतः पुरुषार्थवेत्ता जन उन्हींको परम पुरुषार्थके रूपमें स्वीकार करते हैं ।

(महाभारततात्पर्यप्रकाश)

श्रीकृष्णार्जुन और मय दानव

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

सभापर्व

मयासुरकी प्रार्थना-स्वीकृति एवं भगवान् श्रीकृष्णका द्वारका-गमन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नररत्न अर्जुन, दोनोंकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती एवं उसके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर विजय प्राप्त करानेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब मयासुरने भगवान् श्रीकृष्णके पास बैठे हुए अर्जुनकी बार-बार प्रशंसा की और हाथ जोड़कर मधुर वाणीसे कहा—'वीरवर अर्जुन! भगवान् श्रीकृष्ण अपना चक्र चलाकर मुझे मार डालना चाहते थे और अग्निदेव चाहते थे कि इसे जला डालूँ। आपने मेरी रक्षा की। अब कृपा करके बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ।' अर्जुनने कहा—'असुरश्रेष्ठ! तुमने मेरी सेवा स्वीकार करके बड़ा ही उपकार किया। तुम्हारा कल्याण हो। हमलोग तुमपर प्रसन्न हैं, तुम भी हमपर प्रसन्न रहना। अब तुम जा सकते हो।' मयासुरने कहा—'कुन्तीनन्दन! आपका कहना आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुषके अनुरूप ही है। परन्तु मैं बड़े प्रेमसे आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। मैं दानवोंका विश्वकर्मा हूँ, प्रधान शिल्पी हूँ; आप मेरी सेवा स्वीकार कीजिये।' अर्जुनने कहा—'मयासुर! तुम ऐसा समझते हो कि मैंने प्राण-सङ्कटसे तुम्हारी रक्षा की है। ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारी कोई सेवा स्वीकार नहीं कर सकता। साथ ही मैं तुम्हारी अभिलाषा भी नष्ट नहीं करना चाहता। इसलिये तुम भगवान् श्रीकृष्णकी कुछ सेवा कर दो। इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।'

जब मयासुरने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की, तब उन्होंने कुछ समयतक इस बातपर विचार किया कि मयासुरसे कौन-सा काम लेना चाहिये। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय करके मयासुरसे कहा—'मयासुर! तुम शिल्पियोंमें श्रेष्ठ हो। यदि तुम धर्मराज युधिष्ठिरका प्रिय कार्य करना चाहते हो तो अपनी रुचिके अनुसार उनके लिये एक सभा बना दो।
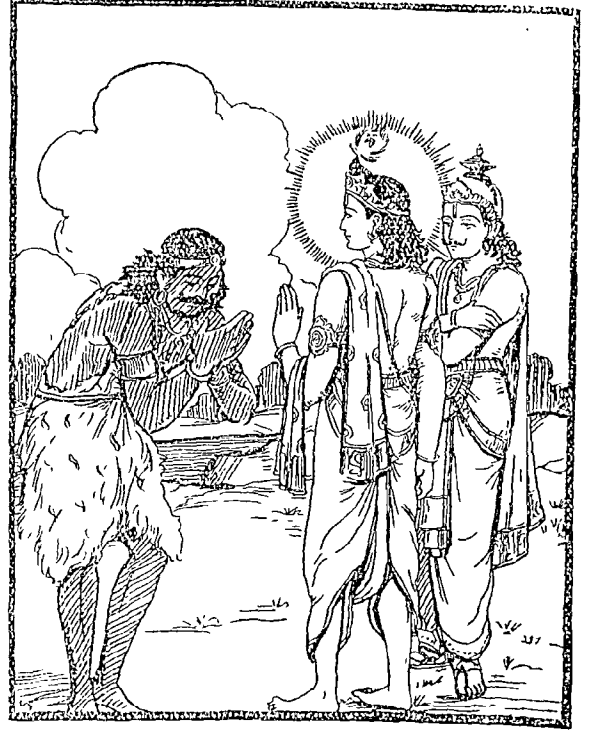
वह सभा ऐसी हो कि चतुर शिल्पी भी देखकर उसकी नकल न कर सकें। उसमें देवता, मनुष्य एवं असुरोंका सम्पूर्ण कला-कौशल प्रकट होना चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा सुनकर मयासुरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने वैसी ही सभा बनानेका निश्चय किया।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने यह बात धर्मराज युधिष्ठिरसे कही और मयासुरको उनके पास ले गये। युधिष्ठिरने उसका यथायोग्य सत्कार किया। मयासुरने धर्मराज युधिष्ठिरको दैत्योंके विचित्र चरित्र सुनाये। कुछ दिन वहाँ ठहरकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सलाहके अनुसार सभा बनानेके सम्बन्धमें विचार किया और फिर शुभ मुहूर्तमें मङ्गल-अनुष्ठान, ब्राह्मण-भोजन एवं दान आदि

करके सर्वगुणसम्पन्न एवं दिव्य सभाका निर्माण करनेके लिये दस हजार हाथ चौड़ी जमीन नाप ली।

जनमेजय! वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण ही परम पूजनीय हैं। पाण्डवोंने बड़े प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णका सत्कार किया और वे कुछ दिनोंतक वहीं बड़े सुखसे रहे। अब उन्होंने अपने पिता-माताके दर्शनके लिये उत्सुक होकर द्वारका जानेका विचार किया और इसके लिये धर्मराज युधिष्ठिरकी अनुमति प्राप्त की। विश्ववन्द्य भगवान् श्रीकृष्णने अपनी फूफी कुन्तीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और उन्होंने उनका सिर सूँघकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्राके पास गये। उस समय प्रेमवश उनके नेत्रोंमें आँसू छलछला आये थे। भगवान्ने अपनी बहिन मधुरभाषिणी सौभाग्यवती सुभद्राको बहुत थोड़ेमें सत्य, प्रयोजनपूर्ण, हितकारी, युक्तियुक्त एवं अकाट्य वचनोंसे अपने जानेकी आवश्यकता समझा दी। सौभाग्यवती सुभद्राने भी माता, पिता आदिसे कहनेके लिये सन्देश दिये और अपने भाई श्रीकृष्णका सत्कार करके उन्हें प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बहिनको प्रसन्न करके जानेकी अनुमति ली और फिर पुरोहित धौम्यके पास गये। परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णने पुरोहितको नमस्कार करके द्रौपदीको ढाढ़स बँधाया और उनसे अनुमति लेकर पाण्डवोंके पास आये। अपने फुफेरे भाई पाण्डवोंके साथ श्रीकृष्णकी वैसी ही शोभा हुई, जैसी देवताओंके बीच देवराज इन्द्रकी।

भगवान् श्रीकृष्णने यात्राके समय किये जानेवाले कर्म प्रारम्भ किये। उन्होंने स्नानादिसे निवृत्त होकर आभूषण धारण किये और पुष्पमाला, गन्ध, नमस्कार आदिसे देवता एवं ब्राह्मणोंकी पूजा की। जब सब काम समाप्त हो चुका, तब वे बाहरकी ड्योढ़ीपर आये। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया और उन्होंने दधि, अक्षत, फल, पात्र एवं द्रव्य आदिके द्वारा उनकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और अपने सोनेके रथपर सवार हुए। वह शीघ्रगामी रथ गरुड़चिह्नसे चिह्नित ध्वजा, गदा, चक्र, तलवार, शार्ङ्गधनुष आदि आयुधोंसे युक्त था। उसमें शैब्य, सुग्रीव आदि नामके घोड़े जुते हुए थे और प्रस्थानके समय तिथि, नक्षत्र आदि भी मङ्गलमय हो रहे थे। रथके चलनेसे पूर्व राजा युधिष्ठिर प्रेमसे उसपर चढ़ गये और भगवान्के श्रेष्ठ सारथि दारुकको हटाकर उन्होंने स्वयं घोड़ोंकी रास अपने हाथमें ले ली। अर्जुन भी उछलकर उस रथपर सवार हो गये और अपने हाथमें

श्वेत चँवरकी सोनेकी डाँड़ी पकड़कर उसे दाहिनी ओरसे डुलाने लगे। भीमसेन, नकुल, सहदेव ऋत्विज् एवं पुरवासियोंके साथ रथके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय अपने फुफेरे भाइयोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी झाँकी ऐसी मनोहर हुई, मानो अपने प्रेमी शिष्योंके साथ स्वयं गुरुदेव ही यात्रा कर रहे हों। अर्जुन भगवान्के विछोहसे बड़े ही व्यथित हो रहे थे। भगवान्ने उन्हें हृदयसे लगाकर बड़ी कठिनतासे जानेकी अनुमति दी, युधिष्ठिर और भीमसेनका सम्मान किया, उन लोगोंने उन्हें अपने हृदयसे लगाया। नकुल, सहदेवने उनके चरणोंमें नमस्कार किया। अबतक रथ दो कोस जा चुका था। भगवान्ने इसी प्रकार युधिष्ठिरको लौटनेके लिये राजी किया और धर्मके अनुसार उनके चरण छूकर नमस्कार किया। युधिष्ठिरने उन्हें उठाकर सिर सूँघा और उनको जानेकी अनुमति दी। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पुनः लौटनेकी प्रतिज्ञा की, किसी प्रकार

अनुचरोंके साथ उनको लौटाया और फिर द्वारकाकी यात्रा की। जहाँतक रथ दीखता रहा, पाण्डवोंके नेत्र उन्हींकी

ओर एकटक लगे रहे और वे मन-ही-मन उनके पीछे चलते रहे। अभी पाण्डवोंका प्रेमपूर्ण मन अतृप्त ही था कि उनके नयनोंके तारे जीवनसर्वस्व भगवान् श्रीकृष्ण उनकी आँखोंसे ओझल हो गये। पाण्डवोंके मनमें कोई स्वार्थ नहीं था। फिर भी उनके मनकी समस्त वृत्तियाँ श्रीकृष्णकी ओर ही बही जा रही थीं। उनके चले जानेपर वे चुपचाप लौटकर अपनी नगरीमें चले आये। भगवान् श्रीकृष्णका गरुड़के समान शीघ्रगामी रथ भी द्वारकाकी ओर बढ़ने लगा। उनके साथ दारुक सारथिके अतिरिक्त यदुवंशी वीर सात्यकि भी थे। कुछ ही समयमें भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे द्वारका पहुँच गये। उग्रसेन आदि यदुवंशियोंने नगरके बाहर आकर उनका सम्मान किया। भगवान्ने राजा उग्रसेन, माता, पिता और भाई बलरामजीको क्रमशः नमस्कार किया और अपने पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण आदिको हृदयसे लगाकर गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार रुक्मिणीके महलमें प्रवेश किया।

दिव्य सभाका निर्माण एवं देवर्षि नारदका प्रश्नके रूपमें प्रवचन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णके प्रस्थान कर जानेपर मयासुरने अर्जुनसे कहा—'वीर! मैं इस समय आपकी आज्ञा लेकर कैलासके उत्तर मैनाक पर्वतपर जाना चाहता हूँ। वहाँ विन्दुसरके समीप दैत्योंने एक यज्ञ किया था। वहाँ मैंने एक मणिमय पात्र बनाया था और वह दैत्यराज वृषपर्वाकी सभामें रक्खा गया था। यदि वह अबतक वहाँ होगा तो उसे लेकर मैं शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा। वहाँ एक बड़ी विचित्र रत्नमण्डित, सुखद एवं मजबूत गदा भी है। उसपर सोनेके तारे जड़े हुए हैं। वृषपर्वाने शत्रुओंका संहार करके वह गदाओंकी चोट सहनेवाली भारी गदा वहीं रख छोड़ी है। वह लाखों गदाओंकी तुलनामें अद्वितीय है। वह आपके गाण्डीव धनुषके समान ही भीमसेनके योग्य होगी। देवदत्त नामका शङ्ख भी वहीं है, जिसे लाकर मैं आपकी भेंट करूँगा।' यह कहकर मयासुरने ईशान कोणकी यात्रा की और वह पूर्वोक्त विन्दुसरपर पहुँच गया। राजा भगीरथने गङ्गाजीके अवतरणके लिये वहीं तपस्या की थी और प्रजापतिने उसी स्थानपर सौ यज्ञ किये थे। देवराज इन्द्रने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। वहीं सहस्रों प्राणी भगवान् शङ्करकी उपासना करते हैं; वहीं नर-नारायण, ब्रह्मा, यम, शिव सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर यज्ञ करते हैं और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी वर्षोंतक यज्ञ करके वहीं सुवर्णमण्डित यज्ञस्तम्भों और वेदियोंका दान किया था।

जनमेजय! मयासुरने वहाँ जाकर सभा बनानेकी सारी सामग्री, पूर्वोक्त गदा, देवदत्त शङ्ख और अपरिमित धन अपने अधिकारमें कर लिया तथा वहाँसे लौटकर युधिष्ठिरके लिये विश्वविश्रुत मणिमय दिव्य सभाका निर्माण किया। वह श्रेष्ठ गदा भीमसेनको एवं देवदत्त शङ्ख अर्जुनको उपहार दिया; उस शङ्खकी गम्भीर ध्वनिसे तीनों लोक काँप उठते थे। वह सभा दस हजार हाथ लंबी-चौड़ी थी। उसमें सुनहले वृक्ष लहलहा रहे थे। वह ऐसी जान पड़ती, मानो सूर्य, अग्नि

अथवा चन्द्रमाकी सभा हो। उसकी अलौकिक चमक-दमकके सामने सूर्यकी प्रभा भी फीकी पड़ जाती थी। मयासुरकी आज्ञासे आठ हजार किङ्कर राक्षस उस दिव्य सभाकी रखवाली और देखभाल करते थे। वे आवश्यकता होनेपर उसे दूसरे स्थानपर भी ले जा सकते थे। उस सभा-भवनमें एक दिव्य सरोवर भी था। वह अनेक प्रकारके मणि-माणिक्यकी सीढ़ियोंसे शोभायमान, कमल-कुसुमोंसे उल्लसित और धीमी-

धीमी वायुके स्पर्शसे तरङ्गायमान था। कितने ही बड़े-बड़े नरपति भी उसके जलको स्थल समझकर धोखा खा जाते थे। उसके चारों ओर गगनचुंबी वृक्षोंके हरे-हरे पत्तोंकी छाया पड़ती रहती थी। सभाके चारों ओर दिव्य सौरभसे भरे उद्यान थे। छोटी-छोटी बावलियाँ थीं, जिनमें हंस, सारस और चकवा-चकवी खेलते रहते थे। जल और स्थलकी कमल-पंक्तियाँ अपनी सुगन्धसे लोगोंको मुग्ध करती रहती थीं। मयासुरने केवल चौदह महीनेमें इस दिव्य सभाका निर्माण करके धर्मराज युधिष्ठिरको निवेदन किया।
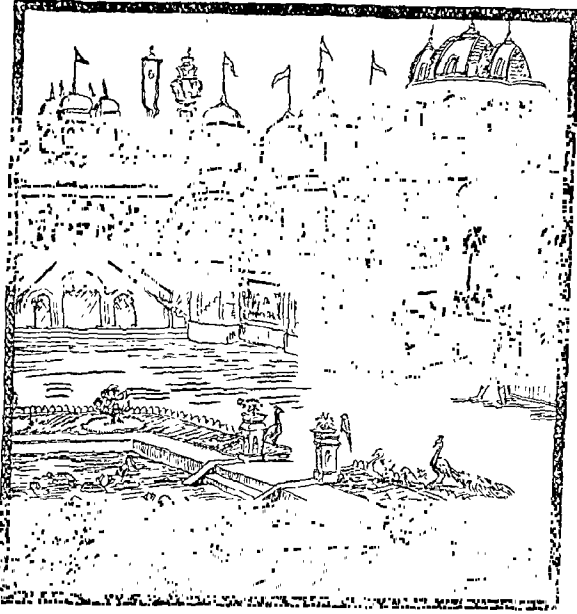
जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरने शुभ मुहूर्त आनेपर दस हजार ब्राह्मणोंको फल, कन्द-मूल, खीर आदि तरह-तरहके पदार्थोंका भोजन कराया। उन्हें वस्त्र, पुष्पमाला, छोटी-बड़ी सामग्री आदिसे तृप्त करके प्रत्येकको एक-एक हजार गौओंका दान किया। इसके बाद जब वे सभामें प्रवेश करने लगे, तब ब्राह्मणलोग पुण्याहवाचन करने लगे। गाजे-बाजे और फल-फूलोंसे देवताओंकी पूजा की गयी। मल्ल-झल्ल (पहलवान् और लठैत), नट, वैतालिक और वन्दीजनोंने धर्मराजको अपनी-अपनी कला दिखलायी। इसके बाद वे अपने भाइयोंके साथ देवराज इन्द्रके समान सभामें विराजमान हुए। उनके साथ सभा-मण्डपमें अनेकों ऋषि-मुनि तथा राजा-महाराजा भी बैठे हुए थे। ऋषियोंमें मुख्यतः असित, देवल, कृष्ण-द्वैपायन, जैमिनि, याज्ञवल्क्य आदि वेद-वेदाङ्गके पारदर्शी, धर्मज्ञ, संयमी एवं प्रवचनकार बैठे हुए थे। भगवान् व्यासके शिष्य हमलोग भी वहीं थे। राजाओंमें कक्षसेन, क्षेमक, कमठ, कम्पन, मद्रकाधिपति जटासुर, पुलिन्द, अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्रक, अन्धक, पाण्ड्य एवं उड़ीसा आदि देशोंके अधिपति महाराज युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित थे। अर्जुनसे अस्त्र-विद्या सीखनेवाले राजकुमार और यदुवंशी प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि आदि भी वहीं बैठे हुए थे। तुम्बुरु, चित्रसेन आदि गन्धर्व एवं अप्सराएँ भी धर्मराजको प्रसन्न करनेके लिये वहाँ आकर गाया-बजाया करते थे। उस समय युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा होती, मानो महर्षियों और राजर्षियोंसे घिरे स्वयं ब्रह्माजी ही अपनी सभामें विराजमान हों।

जनमेजय! एक दिन महात्मा पाण्डव और गन्धर्व आदि उस दिव्य सभामें आनन्दसे विराजमान थे। उसी समय देवर्षि नारद और भी अनेक ऋषियोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। राजन्! देवर्षि नारदकी महिमा अपार है। वे वेद एवं उपनिषदोंके पारदर्शी विद्वान् हैं। बड़े-बड़े देवता उनकी पूजा करते हैं। इतिहास, पुराण, प्राचीन कल्प और पूर्वोत्तर-मीमांसाकी विद्वत्तामें वे बेजोड़ हैं। वे वेदोंके छः अङ्ग—व्याकरण, कल्प, शिक्षा आदिको तो जानते ही हैं, धर्मके भी पूरे मर्मज्ञ हैं। वे वेदके परस्परविरुद्ध वचनोंकी एकवाक्यता, एकमें मिले हुए वचनोंका कर्मके अनुसार पृथक्करण और यज्ञके अनेक कर्मोंके एक साथ उपस्थित होनेपर उनके सम्पादनमें अत्यन्त निपुण हैं। वे प्रगल्भ वक्ता, स्मृतियुक्त मेधावी, नीति-कुशल एवं सहृदय कवि हैं। वे कर्म और ज्ञानके विभाजनमें समर्थ हैं। वे प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आप्तवचनके द्वारा सब विषयोंका ठीक-ठीक निश्चय करते हैं और प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय एवं निगमन—इन पाँच अङ्गोंसे युक्त वाक्योंके गुण-दोष खूब समझते हैं। बृहस्पतिके साथ बातचीत होनेपर भी वे उत्तर-प्रत्युत्तर करनेमें विशारद हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके सम्बन्धमें उनका निश्चय सर्वथा सुसङ्गत है। उन्होंने चौदहों भुवनोंको ऊपर-नीचे, आड़े-टेढ़े, प्रत्यक्ष देख लिया है। सांख्य और योग दोनों ही

मार्गोंको वे जानते हैं और देवताओं तथा असुरोंके प्रत्येक विचारकी टोह रखते हैं। मेल-जोल और वैर-बिगाड़के तत्त्वको भलीभाँति जानते हैं और शत्रु तथा मित्रकी शक्तिका रत्ती-रत्ती ज्ञान रखते हैं। सुलह, बिगाड़, चढ़ाई, फूट डालना आदि राजनीति और कूटनीति भी उन्हें पूर्णतः ज्ञात हैं। और तो क्या, वे सारे शास्त्रोंके निपुण विद्वान् हैं। वे युद्ध और गायन दोनोंके प्रेमी हैं, उन्हें कहीं भी आने-जानेमें कोई रुकावट नहीं है। ऐसे-ऐसे अनेक गुण उनमें हैं। उस दिन वे लोक-लोकान्तरमें घूमते-फिरते पारिजात, पर्वत, सुमुख आदि ऋषियोंके साथ पाण्डवोंसे मिलनेके लिये उनकी सभामें आ पहुँचे। उन्होंने मनके वेगके समान वहाँ आकर प्रेमसे धर्मराजको आशीर्वाद दिया—'जय हो! जय हो!!'

सब धर्मोंके मर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर देवर्षि नारदको आया देखकर भाइयोंके साथ झटपट उठकर खड़े हो गये, विनयसे झुककर बड़े प्रेमसे नमस्कार किया और विधिपूर्वक योग्य आसनपर बैठाया। मधुपर्क आदिके द्वारा उनकी सविधि पूजा सम्पन्न हुई। देवर्षि नारद पाण्डवोंके सत्कारसे बहुत

प्रसन्न हुए और कुशल-प्रश्नके बहाने उन्हें धर्म, अर्थ तथा कामका उपदेश करने लगे।

नारदजीने कहा—धर्मराज! आपके धनका ठीक उपयोग तो होता है न? आपका मन तो धर्मके कार्यमें खूब लगता होगा? आशा है आप सुखी होंगे। आपके मनमें कभी बुरे विचार नहीं आते होंगे। आपके पिता-पितामहने जिस सदाचारका पालन किया था, उसी धर्म एवं अर्थके अनुकूल उदार नीतिका आश्रय आपने भी लिया होगा। आपकी अर्थप्रियता धर्मकी, धर्मप्रियता अर्थकी, कामप्रियता अर्थ और धर्मकी बाधक न होगी। आप तो समयका रहस्य जानते हैं। अर्थ, धर्म और काम-सेवनके लिये अलग-अलग समय निश्चित कर लिया है न? राजामें छः गुण होने चाहिये—व्याख्यानशक्ति, वीरता, मेधावीपन, परिणामदर्शिता, नीति-निपुणता और कर्तव्याकर्तव्यविवेक। सात उपाय हैं—मन्त्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दाम, दण्ड और भेद। पूर्वोक्त गुणोंके द्वारा इन उपायोंका निरीक्षण करना चाहिये और अपने चौदह दोषोंपर दृष्टि रखनी चाहिये। वे चौदह दोष हैं—नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियोंका संग न करना, आलस्य, इन्द्रियपरवशता, केवल अर्थका ही चिन्तन, मूर्खोंके साथ सलाह, निश्चित कार्यमें टालमटोल, सलाहको गुप्त न रखना, समयपर उत्सव आदि न करना और एक साथ ही कई शत्रुओंपर चढ़ाई कर देना। इन दोषोंसे बचकर आप अपनी शक्ति और शत्रु-शक्तिका ठीक-ठीक ज्ञान रखते हैं न? अपनी शक्ति और शत्रु-शक्तिके अनुसार सन्धि या विग्रह करके आप अपनी खेती-बारी, व्यापार, किला, पुल, हाथी, हीरा-सोना आदिकी खानें, करकी वसूली, उजाड़ प्रान्तोंमें लोगोंको बसाना आदि कार्योंकी देख-रेख ठीक-ठीक रखते हैं न? युधिष्ठिर! आपके राज्यके सातों अंग—स्वामी, मन्त्री, मित्र, खजाना, राष्ट्र, दुर्ग और पुरवासी शत्रुओंसे मिले तो नहीं हैं? धनीलोग बुरे व्यसनोंसे बचे तो हैं? आपके प्रति उनकी प्रेम-दृष्टि तो है न? कहीं आपके शत्रुके गुप्तचर अपना विश्वास जमाकर आपसे या आपके मन्त्रियोंसे आपका सलाह-मश्विरा जान तो नहीं लेते? आप अपने मित्र, शत्रु, उदासीन लोगोंके सम्बन्धमें यह ज्ञान तो रखते हैं न कि वे क्या करना चाहते हैं? आप मेल-मिलाप अथवा वैर-विरोध समयके अनुसार ही करते हैं न? उदासीनोंके प्रति विषम दृष्टि तो नहीं रखते? आपके मन्त्री आपके ही समान ज्ञानवृद्ध, पुण्यात्मा, समझदार, कुलीन और प्रेमी तो हैं न?

युधिष्ठिर! विजयका मूल है अपने विचारोंकी गुप्ति। आपके शास्त्रज्ञ मन्त्री आपके विचारों और सङ्कल्पोंको सुरक्षित रखते हैं न? इसी प्रकार देशकी रक्षा होती है। शत्रु कहीं आपकी बातोंका पता तो नहीं लगा लेते? आप असमय ही

निद्राके वश तो नहीं हो जाते ? ठीक समयपर जाग तो जाते हैं ? रात्रिके पिछले भागमें जगकर आप अपने अर्थके सम्बन्धमें विचार तो करते हैं न ? कहीं आप अकेले या बहुतोंके साथ तो मन्त्रणा नहीं करते ? आपकी सलाह कहीं शत्रुदेशतक तो नहीं पहुँच पाती ? थोड़े प्रयत्नसे बड़े-बड़े कार्य सिद्ध हो जायँ, ऐसा सोचकर कार्य प्रारम्भ करते हैं न ? कहीं ऐसे कार्योंमें आलस्य तो नहीं कर बैठते ? कहीं किसानोंके काम आपके अनजाने तो नहीं रहते ? उनपर आपका विश्वास तो है न ? कहीं उनकी ओरसे उदासीन न हो बैठियेगा, उनका प्रेम ही राज्यकी उन्नतिका कारण है। किसानोंका काम विश्वसनीय, निर्लोभ और कुलीनोंसे ही करवाना चाहिये। आपके कार्योंकी सूचना सिद्धि प्राप्त होनेके पहले ही तो लोगोंको नहीं मिल जाती ?

आपके आचार्य धर्मज्ञ एवं सर्वशास्त्रोंमें निपुण होकर कुमारोंको ठीक-ठीक युद्ध-शिक्षा देते हैं न ? आप हजारों मूर्खोंके बदले एक विद्वान्‌का संग्रह तो करते हैं ? विद्वान् ही विपत्तिके समय रक्षा कर सकता है। आपके सब किलोंमें धन, धान्य, अस्त्र, शस्त्र, जल, यन्त्र, कारीगर और सैनिकोंका ठीक-ठीक प्रबन्ध है न ? यदि एक भी मन्त्री मेधावी, संयमी और चतुर हो तो राजा या राजकुमारको विपुल सम्पत्तिका स्वामी बना देता है। आप शत्रु-पक्षके मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागाराध्यक्ष, खजांची, कार्यके कृत्याकृत्यका निर्णायक, प्रदेष्टा, नगराधिपति (कोतवाल), कार्य-निर्माणकर्ता, धर्माध्यक्ष, सभापति, दण्डपाल, दुर्गपाल, सीमापाल और वनविभागके अधिकारीपर तीन-तीन अज्ञात गुप्तचर रखते हैं न ? पहले तीनोंको छोड़कर अपने पक्षके शेष अधिकारियोंपर भी तीन-तीन छिपे गुप्तचर रखने चाहिये। आप स्वयं सावधान रहकर अपनी बात शत्रुओंसे छिपावें और उनके कामका पता लगावें। अच्छा, यह तो बताइये कि आपका पुरोहित कुलीन, विनयी एवं विद्वान् तो है न ? वह किंकर्तव्यविमूढ़ एवं निन्दक तो नहीं है ? आप उसका ठीक-ठीक सत्कार करते होंगे। आपने बुद्धिमान्, सरल एवं विधि-विधानका ज्ञाता ऋत्विज् नियुक्त कर रक्खा है न ? वह हवन की हुई और की जानेवाली सामग्रीका निवेदन तो कर जाता है ? आपका ज्योतिषी शास्त्रके सारे अङ्गोंका विशेषज्ञ, नक्षत्रोंकी चाल, वक्रता आदिका ज्ञाता एवं उत्पात आदिको पहलेसे ही जान लेनेमें निपुण तो है न ? आपने अपने कर्मचारियोंको कहीं नीचे-ऊँचे अयोग्य काममें तो नहीं लगा दिया है ? आप अपने निश्छल, कुलक्रमागत और सदाचारी मन्त्रियोंको बराबर कार्योंका निर्देश तो करते रहते हैं ? आपके मन्त्री कहीं शील-सौजन्य और प्रेमको तिलाञ्जलि देकर प्रजापर कठोर शासन तो नहीं करते ? जैसे पवित्र याज्ञिक पतित यजमानका और स्त्रियाँ व्यभिचारी पुरुषका तिरस्कार कर देती हैं, वैसे ही कहीं प्रजा अधिक कर लेनेके कारण आपका अनादर तो नहीं करती ?

आपका सेनापति तेजस्वी, वीर, बुद्धिमान्, धैर्यशाली, पवित्र, कुलीन, स्वामिभक्त और चतुर तो है न ? आपकी सेनाके सब दलपति सब प्रकारके युद्धोंमें चतुर, निष्कपट, शूरवीर और आपके द्वारा सम्मानित तो हैं न ? आप अपनी सेनाके भोजन और वेतनका प्रबन्ध समयपर ठीक-ठीक करते हैं न ? कहीं देर और कमी तो नहीं करते ? भोजन और वेतन ठीक समयपर न मिलनेसे सैनिकोंको कष्ट होता है और वे अपने स्वामीके ही विद्रोही बन बैठते हैं। आपके कुलीन कर्मचारी क्या आपके प्रति ऐसा प्रेम रखते हैं कि आवश्यकता होनेपर आपके लिये अपने प्राण भी निछावर कर दें ? कोई यह चेष्टा तो नहीं कर रहा है कि सारी सेना उसकी इच्छाके अनुसार चलने लगे और आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दे ? जब कोई कर्मचारी बहादुरीका काम करता है, तब आप उसका विशेष सम्मान करके उसका भोजन और वेतन बढ़ा देते हैं न ? आप विद्याविनयी, ज्ञानी एवं गुणी पुरुषोंकी यथायोग्य दानके द्वारा सेवा करते हैं न ? राजन् ! जो लोग आपकी रक्षाके लिये मर मिटते हैं या अपनेको सङ्कटमें डाल देते हैं, उनके बाल-बच्चोंकी रक्षा तो आप करते हैं न ? जब निर्बल शत्रु युद्धमें पराजित होकर आपकी शरणमें आता है, तब आप पुत्रके समान उसकी रक्षा तो करते हैं ? सारी प्रजा आपको निष्पक्ष हितकारी एवं माँ-बापके समान मानती है न ?

पहले अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके तब इन्द्रियोंके अधीन शत्रुओंपर विजय प्राप्त की जाती है। शत्रुओंको वशमें करनेके लिये साम, दान, दण्ड आदि सभी उपायोंका उपयोग करना चाहिये। अपने राज्यकी रक्षाकी व्यवस्था करके शत्रुपर चढ़ाई करनी चाहिये और उसे जीतकर फिर उसी राज्यपर स्थापित कर देना चाहिये। अवश्य ही आप ऐसा ही करते होंगे।

आप अपने कुटुम्बी, गुरुजन, वृद्ध, व्यापारी, कारीगर, आश्रित और दरिद्रोंका धन-धान्यसे सदा-सर्वदा भरण-पोषण

तो करते हैं न ? जो लोग आमदनी और खर्चके काममें नियुक्त हैं, वे प्रतिदिन आपके सामने अपना हिसाब तो पेश करते हैं ? कभी किसी होनहार एवं हितैषी कर्मचारीको बिना अपराधके ही पदच्युत तो नहीं करते ? कहीं किसी काममें लोभी, चोर, शत्रु अथवा अनुभवहीनकी तो नियुक्ति नहीं हो गयी है ? कहीं चोर, लालची, राजकुमार, रानियाँ या स्वयं आप ही देशवासियोंको दुःख तो नहीं देते ? किसानोंको प्रसन्न रखना चाहिये भला ! आपके राज्यमें जलसे लबालब भरे तालाब तो बहुतायतसे हैं न ? कहीं आपने खेतीको वर्षाके भरोसे तो नहीं छोड़ रक्खा है ? किसानका बीज और भोजन कभी नष्ट नहीं होना चाहिये । आवश्यकता होनेपर थोड़ा-सा ब्याज लेकर उन्हें धन भी देना चाहिये । आपके राज्यमें खेती, गोरक्षा और व्यापारसम्बन्धी लेन-देन ईमानदारीसे होते हैं न ? धर्मानुकूल व्यापारसे ही प्रजा सुखी होती है । आपके राज्यमें जज, तहसीलदार, सरपंच, पेशकार और गवाह—ये पाँचों प्रजाके हितमें तत्पर और बुद्धिमानीसे काम करनेवाले हैं न ? नगरकी रक्षाके लिये गाँवोंकी रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है । प्रान्तोंकी रक्षा भी ग्राम-रक्षाके समान ही हाथमें होनी चाहिये । वहाँके समाचार तो निश्चित समयपर मिला करते हैं न ? आपके राज्यमें अपराधी चोर ऊँचे-नीचे, लुक-छिपकर गाँवोंको लूटते तो नहीं हैं ? आप स्त्रियोंको सुरक्षित और सन्तुष्ट तो रखते हैं ? कहीं आप उनपर विश्वास करके उन्हें गुप्त बात तो नहीं बता देते ? आप कहीं भोग-विलासमें लिप्त होकर विपत्तिकी उपेक्षा तो नहीं कर बैठते ? आपके सेवक लाल वस्त्र पहने हाथोंमें खड्ग लिये आपकी रक्षाके लिये सेवामें उद्यत रहते हैं न ? आप अपराधियोंके लिये यमराज और पूजनीयोंके लिये धर्मराज तो हैं न ? आप प्रिय एवं अप्रिय व्यक्तियोंकी भलीभाँति परीक्षा करके ही तो व्यवहार करते हैं ? शरीरकी पीड़ा मिटती है नियमोंके पालन और औषधोंके सेवनसे तथा मनकी पीड़ा मिटती है ज्ञानी पुरुषोंके सत्संगसे । आप उनका यथायोग्य सेवन तो करते हैं ?

आपके वैद्य अष्टाङ्ग-चिकित्सामें निपुण, हितैषी, प्रेमी एवं शरीरकी देख-रेख रखनेवाले हैं न ? कहीं आप लोभ, मोह या अभिमानसे अर्थी एवं प्रत्यर्थियों (विरोधियों)की उपेक्षा तो नहीं कर देते ? आप लोभ, मोह, विश्वास अथवा प्रेमसे अपने आश्रित जनोंकी जीविकामें बाधा तो नहीं डालते ? आपके पुरवासी एवं देशवासी शत्रुओंसे घूस लेकर और मिल-जुलकर भीतर-ही-भीतर आपका विरोध तो नहीं करते ? प्रधान-प्रधान राजा प्रेमपरवश होकर आपके लिये प्राणोंकी बलि देनेके लिये तैयार रहते हैं या नहीं ? आपकी विद्वत्ता और गुणोंके कारण ब्राह्मण और साधु आपकी कल्याणकारिणी प्रशंसा करते हैं या नहीं ? आप उन्हें दक्षिणा देते हैं या नहीं ? ऐसा करना आपके लिये स्वर्ग और मोक्षका हेतु है । आपके पूर्वजोंने जिस वैदिक सदाचारका पालन किया था, उसका ठीक-ठीक पालन करते हैं न ? आपके महलमें आपकी आँखोंके सामने गुणवान् ब्राह्मण स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर भोजन करके दक्षिणा तो पाते हैं न ? आप पूरे संयम और एकाग्र मनसे समय-समयपर यज्ञ-याग आदि तो करते ही होंगे । जाति-भाई, गुरु, बूढ़े, देवता, तपस्वी, देवस्थान, शुभ वृक्ष और ब्राह्मणोंको नमस्कार तो करते हैं न ? आप किसीके मनमें शोक या क्रोध तो नहीं उभाड़ते ? कोई मनुष्य अपने हाथमें मङ्गल-सामग्री लेकर आपके पास सर्वदा रहता है न ? आपकी यह मङ्गलमयी धर्मानुकूल वृत्ति सर्वदा एक-सी रहती तो है ? ऐसी वृत्ति आयु और यशको बढ़ानेवाली एवं धर्म, अर्थ और कामको पूर्ण करनेवाली है । जो ऐसी वृत्ति रखता है, उसका देश कभी सङ्कटग्रस्त नहीं होता, सारी पृथ्वी उसके वशमें हो जाती है । वह सुखी होता है ।

धर्मराज ! कहीं आपके शास्त्र-कुशल मन्त्री अज्ञानवश किसी श्रेष्ठ पवित्र निरपराध पुरुषको चोर-चाँई समझकर सताते तो नहीं हैं ? कहीं आपके कर्मचारी घूस लेकर प्रमाणित चोरको बिना दण्डके ही छोड़ तो नहीं देते ? कभी धनी एवं दरिद्रके विवादमें आपके कर्मचारी धनके लोभसे दरिद्रोंके साथ अन्याय तो नहीं कर बैठते ? मैंने पहले जिन चौदह दोषोंका वर्णन किया है, उनसे आपको अवश्य बचना चाहिये । वेदकी सफलता यज्ञसे, धनकी सफलता दान और भोगसे, पत्नीकी सफलता आनन्द और सन्तानसे एवं शास्त्रकी सफलता शील तथा सदाचारसे होती है ।

दूर-दूरसे व्यापार करनेवाले वैश्योंसे ठीक-ठीक कर तो वसूल होता है न ? राजधानी एवं देशमें व्यापारियोंका सम्मान तो होता है ? वे कहीं धोखे-धड़ीमें आकर ठगे तो नहीं जाते ? आप गुरुजनोंसे प्रतिदिन धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रका श्रवण तो करते हैं ? खेती-बारीसे उत्पन्न होनेवाले अन्न, फूल, फल, गोरस, मधु, घृत आदि पदार्थ धर्म-बुद्धिसे ब्राह्मणोंको दिये जाते हैं न ? आप अपने कारीगरोंको उचित सामग्री, वेतन और काम तो देते हैं न ? भलाई करनेवालोंके प्रति भरी सभामें कृतज्ञता-ज्ञापन और आदर-सत्कारका भाव तो दिखलाते

हैं न ? आप सभी प्रकारके सूत्रग्रन्थ—जैसे हस्तिसूत्र, रथसूत्र, अश्वसूत्र, अस्त्रसूत्र, यन्त्रसूत्र और नागरिकसूत्रका अभ्यास तो करते ही होंगे। आप सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, मारण-प्रयोग, ओषधियोंके विषैले योग अवश्य जानते होंगे? आप अग्नि, हिंस्र जन्तु, रोग एवं राक्षसोंसे समूचे राष्ट्रकी रक्षा करते हैं न? अन्धे, गूँगे, लँगड़े, लूले, अनाथ एवं साधु-संन्यासियोंके धर्मतः रक्षक आप ही हैं। महाराज! राजाके लिये छः दोष अनर्थकारी हैं—निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, मृदुता और दीर्घसूत्रता।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनके चरणोंका स्पर्श किया और बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'महाराज! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। आज मेरी बुद्धि बहुत ही बढ़ गयी है।' यह कहकर उन्होंने उसी समय वैसा करनेकी चेष्टा प्रारम्भ कर दी। देवर्षि नारदने कहा—'जो राजा इस प्रकार वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षा करता है, वह इस लोकमें तो सुखी होता ही है, परलोकमें भी सुख पाता है।'

देव-सभाओंका कथन और स्वर्गीय पाण्डुका सन्देश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवर्षि नारदके उपदेश सुनकर धर्मराजने उनका बहुत ही स्वागत-सत्कार किया। विश्रामके पश्चात् फिर उनके पास उपस्थित होकर धर्मराजने यह प्रश्न किया—'देवर्षे! आप सदा-सर्वदा मनके समान पर्यटन करते रहते हैं और ब्रह्माके बनाये विभिन्न लोकोंका दर्शन करते रहते हैं। आपने कहीं ऐसी या इससे अच्छी सभा देखी है? कृपा करके बतलाइये।' धर्मराज युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने मुसकराते हुए मधुर वाणीसे कहा—'धर्मराज! मनुष्य-लोकमें ऐसी मणिमयी सभा मैंने न देखी है और न तो सुनी है। मैं आपको यमराज, वरुण, इन्द्र, कुबेर एवं ब्रह्माकी सभाओंका वर्णन सुनाता हूँ। वे लौकिक तथा अलौकिक कला-कौशलोंसे युक्त हैं। सूक्ष्मतत्त्वोंसे बनी होनेके कारण एक-एक सभा अनेक-अनेक रूपोंमें दीखती है। देवता, पितर, याज्ञिक, वेद, यज्ञ, ऋषि, मुनि आदि उनमें मूर्तिमान् होकर निवास करते हैं।' देवर्षि नारदकी बात सुनकर पाँचों पाण्डव और उपस्थित ब्राह्मण-मण्डली उन सभाओंका वर्णन सुननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयी। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'आप अवश्य उन सभाओंका वर्णन कीजिये। हम सब बड़े प्रेमसे सुनना चाहते हैं। वे सभाएँ किन-किन वस्तुओंसे कितनी लंबी-चौड़ी बनी हैं? उनके सभासद् कौन हैं? और भी उनमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं?' धर्मराजका यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने देवराज इन्द्र, सूर्यपुत्र यम, बुद्धिमान् वरुण, यक्षराज कुबेर और लोकपितामह ब्रह्माजीकी अलौकिक सभाओंका विस्तारसे वर्णन किया।*

* महाभारतमें देवसभाओंका वर्णन बड़ा ही सुन्दर और विस्तृत है। परलोक-जिज्ञासुओंके लिये वह बड़े ही कामकी वस्तु है। उसका अध्ययन मूल ग्रन्थमें ही करना चाहिये।

जनमेजय! दिव्य सभाओंका वर्णन सुनकर धर्मराजने देवर्षि नारदसे कहा—'भगवन्! आपने यमराजकी सभामें प्रायः सभी राजाओंकी उपस्थितिका वर्णन किया। वरुणकी सभामें नाग, दैत्यराज, नदी और समुद्रोंकी स्थिति बतलायी। कुबेरकी सभामें यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, गुह्यक और रुद्रदेवकी उपस्थिति भी हमने जान ली। आपने यह बतलाया कि ब्रह्माजीकी सभामें ऋषि-मुनि, देवता और शास्त्र-पुराण निवास करते हैं। आपने देवराज इन्द्रकी सभाके देवता, गन्धर्व और ऋषि-मुनियोंकी गणना भी कर दी। आपने बतलाया कि वहाँ राजर्षियोंमें केवल हरिश्चन्द्र ही रहते हैं। उन्होंने ऐसा कौन-सा सत्कर्म, तपस्या अथवा व्रत किया है, जिसके फल-स्वरूप वे इन्द्रके समकक्ष हो गये हैं। भगवन्! आपने पितृलोकमें मेरे पिता पाण्डुको किस प्रकार देखा था? उन्होंने मेरे लिये क्या सन्देश दिया? आप कृपा करके अवश्य उनकी बात सुनाइये।'

देवर्षि नारदने कहा—राजन्! मैं आपके प्रश्नके अनुसार राजर्षि हरिश्चन्द्रकी महिमा सुनाता हूँ। वे धीर-वीर एवं एकच्छत्र सम्राट् थे। पृथ्वीके सभी नरपति उनसे झुके रहते थे। उन्होंने अकेले ही सबपर दिग्विजय प्राप्त की थी और महान् यज्ञ राजसूयका अनुष्ठान किया था। सब राजाओं-ने उन्हें कर दिया और उनके यज्ञमें परसनेका काम किया। याचकोंने उनसे जितना माँगा, उसका पाँचगुना उन्होंने दिया। उन्होंने ब्राह्मणोंको भोजन, वस्त्र और हीरा, लाल तथा मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर इस प्रकार प्रसन्न कर लिया कि वे देश-देशमें उनके बड़प्पनकी घोषणा करने लगे। यज्ञके फल एवं ब्राह्मणों-के आशीर्वादस्वरूप हरिश्चन्द्र सम्राट्-पदपर अभिषिक्त हुए। जो राजा राजसूय यज्ञ करता है, संग्राममें पीठ दिखाये बिना

मर मिटता है और तीव्र तपस्याके द्वारा शरीरका परित्याग करता है, वह देवराज इन्द्रकी सभामें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता है।

युधिष्ठिर ! आपके पिता पाण्डु स्वर्गीय हरिश्चन्द्रका ऐश्वर्य देखकर विस्मित हो गये। जब उन्होंने देखा कि मैं मनुष्य-लोकमें जा रहा हूँ, तब उन्होंने आपके लिये यह सन्देश भेजा—'युधिष्ठिर ! तुम्हारे भाई तुम्हारे वशमें हैं। इसलिये तुम सारी पृथ्वी जीतनेमें समर्थ हो। मेरे लिये तुम्हें महान् यज्ञ राजसूय करना चाहिये। युधिष्ठिर ! तुम मेरे पुत्र हो। यदि तुम राजसूय यज्ञ करोगे तो मैं भी देवराज इन्द्रकी सभामें हरिश्चन्द्रके समान चिरकालपर्यन्त आनन्द भोगूँगा।' धर्मराज ! आपके पिताके सामने मैंने यह स्वीकार कर लिया था कि आपसे यह सन्देश कहूँगा। राजन्! आप अपने पिताका सङ्कल्प पूर्ण करें। इस यज्ञके फलस्वरूप केवल आपके पिताको ही नहीं, स्वयं आपको भी वही स्थान प्राप्त होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस यज्ञमें बड़े-बड़े विघ्न आते हैं और यज्ञद्रोही राक्षस वैसे अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। थोड़ा-सा भी निमित्त मिल जानेपर बड़ा भयङ्कर क्षत्रिय-कुलान्तक युद्ध हो जाता है, जिससे एक प्रकारसे पृथ्वीका प्रलय ही उपस्थित हो जाता है। धर्मराज ! यह सब सोच-विचारकर अपने लिये जो कल्याणकारी समझिये, वही कीजिये। सावधान रहकर चारों वर्णोंकी रक्षा करते हुए उन्नति और आनन्द प्राप्त कीजिये तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कीजिये। आपके प्रश्नका उत्तर हो चुका। अब मुझे अनुमति दीजिये। मैं भगवान् श्रीकृष्णकी नगरी द्वारका जाऊँगा।

जनमेजय ! देवर्षि नारद इतना कहकर अपने साथी ऋषियोंके सहित वहाँसे चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ राजसूय यज्ञकी चिन्तामें लग गये।

राजसूय यज्ञके सम्बन्धमें विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवर्षि नारदकी बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञकी चिन्तासे बेचैन हो गये। उन्होंने अपने सभासदोंका सत्कार किया, वे स्वयं उनके द्वारा सत्कृत हुए; परन्तु उनका मन राजसूयके सङ्कल्पमें ही मग्न था। उन्होंने अपने धर्मका विचार किया और जिस प्रकार प्रजाकी भलाई हो, वही करने लगे। वे किसीका भी पक्ष नहीं करते थे। उन्होंने आज्ञा कर दी कि क्रोध और अभिमान छोड़कर सबका पावना चुका दिया जाय। सारी पृथ्वीमें युधिष्ठिरका जय-जयकार होने लगा। धर्मराज युधिष्ठिरके साधु-व्यवहारसे प्रजा उनपर पिताके समान विश्वास करने लगी। उनके साथ किसीकी शत्रुता न रही, इसलिये वे अजातशत्रु कहलाने लगे। युधिष्ठिरने सबको अपना लिया। भीमसेन सबकी रक्षामें और अर्जुन शत्रुओंके संहारमें तत्पर रहते। सहदेव धर्मानुसार शासन करते और नकुल स्वभावसे ही सबके सामने झुक जाते। उनकी प्रजामें वैर-विरोध, भय-अधर्म बिल्कुल नहीं रहे। सभी अपने कर्तव्यमें संलग्न थे, समयपर वर्षा होती, सब सुखी थे। उस समय यज्ञकी शक्ति, गोरक्षा, खेती और व्यापारकी उन्नति चरम सीमापर पहुँच गयी। प्रजापर कर बाकी नहीं रहता, बढ़ाया नहीं जाता, वसूलीमें किसीको सताया नहीं जाता। रोग, अग्नि या मूर्च्छाका किसीको भय नहीं था। लुटेरे, ठग और मुँहलगे प्रजापर किसी प्रकारका अत्याचार या उनके साथ झूठा व्यवहार नहीं कर पाते। देशके सभी सामन्त विभिन्न देशोंके वैश्योंके साथ आकर धर्मराजकी भलाई, सेवा, करदान और सन्धि-विग्रह आदिमें सहयोग देते थे। धर्मात्मा युधिष्ठिर जिस राज्यपर अधिकार कर लेते वहाँके ब्राह्मण, ग्वाले और सारी प्रजा उनसे प्रेम करने लगती थी।

जनमेजय ! धर्मराजने अपने मन्त्री और भाइयोंको

बुलाकर पूछा कि 'राजसूय यज्ञके सम्बन्धमें आपलोगोंकी क्या

सम्मति है ।' मन्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि 'राजसूय यज्ञके अभिषेकसे राजा सारी पृथ्वीका एकच्छत्र स्वामी हो जाता है—ठीक वैसे ही, जैसे जलके एकच्छत्र स्वामी वरुण हैं। आप सम्राट् होने योग्य हैं । राजसूय यज्ञ करनेका यही अवसर भी है । जो बलवान् है, वही उस यज्ञका अधिकारी है । इसलिये आप अवश्य वह यज्ञ कीजिये । इसमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।' मन्त्रियोंकी बात सुनकर धर्मराजने अपने भाई, ऋत्विज्, धौम्य एवं श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास आदिसे परामर्श किया । सभी लोगोंने यही परामर्श दिया कि 'आप राजसूय महायज्ञ करनेके सर्वथा योग्य हैं ।' सबकी सम्मति सुनकर परम बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने सबके कल्याणके लिये स्वयं मन-ही-मन विचार किया। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अपनी शक्ति, साधन, देश, काल, आय और व्ययपर भलीभाँति विचार करके तब कुछ निश्चय करे । ऐसा करनेसे विपत्तिकी सम्भावना नहीं रहती । केवल मेरे निश्चयसे ही तो यज्ञ नहीं हो जाता, यह समझकर ही यज्ञका प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार मन-ही-मन विचार करते-करते धर्मराज युधिष्ठिर इस निश्चयपर पहुँचे कि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ही इसका ठीक निर्णय कर सकते हैं । वे जगत्के समस्त लोकों और लोगोंसे श्रेष्ठ हैं, उनका स्वरूप और ज्ञान अगाध है । उनकी शक्ति बेजोड़ है । उन्होंने अजन्मा होनेपर भी जगत्का कल्याण करनेके लिये लीलासे ही जन्म ग्रहण किया है । वे सब कुछ जानते और सब कुछ कर सकते हैं । बड़े-से-बड़ा भार भी उनके लिये बहुत ही हल्का है । ऐसा सोचकर उन्होंने मन-ही-मन भगवान्की शरण ली और उनका निर्णय माननेका दृढ़ निश्चय किया । अब धर्मराजने त्रिलोकशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके लिये बड़े आदरसे दूत भेजा । दूत शीघ्रगामी रथपर सवार होकर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचा । भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे बातचीत करके यही निश्चय किया कि 'धर्मराज युधिष्ठिर मुझसे मिलना चाहते हैं, अतः उनसे स्वयं मिलना चाहिये ।' उन्होंने उसी समय इन्द्रसेन दूतके साथ इन्द्रप्रस्थकी यात्रा कर दी । भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ शीघ्र ही पहुँचना चाहते थे । इसलिये शीघ्रगामी रथपर सवार होकर अनेक देशोंको पार करते हुए वे इन्द्रप्रस्थमें धर्मराजके पास जा पहुँचे । फुफेरे भाई धर्मराज और भीमसेनने पिताके समान उनका सत्कार किया । तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी प्रसन्नतासे अपनी बुआ कुन्तीसे मिले । वे अपने प्रेमी मित्र एवं सम्बन्धियोंके साथ बड़े आनन्दसे रहने लगे । अर्जुन, सहदेव एवं नकुल गुरु-बुद्धिसे उनकी पूजा करने लगे ।

एक दिन जब भगवान् श्रीकृष्ण विश्राम कर चुके और उन्हें अवकाश मिला, तब धर्मराज युधिष्ठिरने उनके पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया । धर्मराजने कहा— 'श्रीकृष्ण ! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ । परन्तु आप तो जानते ही हैं कि राजसूय यज्ञ केवल चाहने भरसे ही नहीं होता । जो सब कुछ कर सकता है, जिसकी सर्वत्र पूजा होती है, जो सर्वेश्वर होता है, वही राजसूय यज्ञ कर सकता है । मेरे मित्र एक स्वरसे कहते हैं कि तुम राजसूय यज्ञ अवश्य करो । परन्तु इसका निश्चय तो आपकी सम्मतिसे ही होगा । बहुत-से लोग प्रेम-सम्बन्धके कारण और कुछ लोग स्वार्थके कारण मेरी त्रुटियोंको न बतलाकर मुझसे मीठी-मीठी बातें ही करते हैं । कुछ लोग तो अपनी भलाईके कामको ही मेरी भलाईका भी काम समझ बैठते हैं । इस प्रकार लोग तरह-तरहकी बातें करते हैं । परन्तु आप स्वार्थसे परे हैं । आपमें राग और द्वेषका लेश भी नहीं है । मैं राजसूय यज्ञ कर सकता हूँ या नहीं, यह बात आप ही ठीक-ठीक बतला सकते हैं ।'

जरासन्धके विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरकी बातचीत

भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराजसे कहा—महाराज ! आपमें सभी गुण हैं । इसलिये आप राजसूय यज्ञके वास्तवमें अधिकारी हैं । आप सब कुछ जानते हैं । फिर भी आपके पूछनेपर मैं कुछ कहता हूँ । इस समय राजा जरासन्धने अपने बाहुबलसे सब राजाओंको हराकर अपनी राजधानीमें कैद कर रक्खा है, वह उनसे सेवा लेता है । इस समय वही है सबसे प्रबल राजा । प्रतापी शिशुपाल उसीका आश्रय लेकर सेनापतिका काम कर रहा है । करूपदेशका अधिपति, जो महाबली और

माया-युद्धमें कुशल है, शिष्यके समान जरासन्धकी सेवा करता है। पश्चिमके अतुल पराक्रमी मुर और नरकदेशके शासक यवनाधिपतिने भी उसीकी अधीनता स्वीकार कर ली है। आपके पिताके मित्र भगदत्त भी उससे बातचीत करनेमें झुके रहते हैं और उसके इशारेसे अपने राज्यका शासन करते हैं। वङ्ग, पुण्ड्र और किरात-देशका स्वामी मिथ्या-वासुदेव घमण्डवश मेरे चिह्नोंको धारण करता है, अपनेको पुरुषोत्तम बतलाता है, मेरी उपेक्षासे ही जीवित है; फिर भी उसने इस समय जरासन्धका ही आश्रय ले रक्खा है। शत्रुकी तो बात जाने दीजिये, मेरे सगे श्वशुर भीष्मक, जो पृथ्वीके चतुर्थांशके स्वामी और इन्द्रके सखा हैं, भोजराज और देवराज जिनसे मित्रता रखते हैं, जिन्होंने अपने विद्या-बलसे पाण्ड्य, क्रथ और कौशिक देशोंपर विजय प्राप्त की थी, जिनका भाई परशुरामके समान बलवान् है, वे भी आजकल जरासन्धके वशमें हैं। हम उनसे प्रेम रखते हैं, उनकी भलाई करते हैं; फिर भी वे हमसे नहीं, हमारे शत्रुसे मेल रखते हैं। वे जरासन्धकी कीर्तिसे चकित होकर अपने कुलाभिमान और बलाभिमानको तिलाञ्जलि देकर जरासन्धकी शरणमें रह रहे हैं। धर्मराज! उत्तर दिशाके अधिपति अठारह भोजपरिवार जरासन्धसे भयभीत होकर पश्चिमकी ओर भाग गये हैं। शूरसेन, भद्रकार, शाल्व, योध, पटच्चर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्वायन आदि राजा, दक्षिणपञ्चाल एवं पूर्वकोसल और मत्स्य, संन्यस्तपाद आदि उत्तर देशोंके राजा जरासन्धके भयसे अपना-अपना राज्य छोड़कर पश्चिम और दक्षिणकी ओर भाग गये हैं। दानवराज कंस जाति-भाइयोंको बहुत सताकर राजा बन बैठा था। जब उसकी अनीति बहुत बढ़ गयी, तब मैंने सबके कल्याणके लिये बलरामको साथ लेकर उसका वध किया। ऐसा करनेसे कंसका भय तो जाता रहा, परन्तु जरासन्ध और भी प्रबल हो उठा। उसकी सेना उस समय इतनी प्रबल हो गयी थी कि यदि हमलोग अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा तीन सौ वर्षोंतक लगातार उसका संहार करते रहते तब भी उसका सर्वथा सफाया नहीं कर पाते। वह अपनी शक्तिसे राजाओंको जीतकर अपने पहाड़ी किलेमें बंद कर देता है। भगवान् शङ्करकी उपासनासे ही उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हुई है। अब उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है। कैदी राजाओंके द्वारा वह यज्ञ सम्पन्न करना चाहता है। इसलिये और राजाओंपर विजय प्राप्त करनेकी चिन्ता छोड़कर सबसे पहले उन कैदी राजाओंको छुड़ाना चाहिये। धर्मराज! यदि आप राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम कर्तव्य है कैदी राजाओंकी मुक्ति और जरासन्धका वध। यह काम किये बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकेगा। आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। यज्ञके सम्बन्धमें मेरी तो यही सम्मति है। आप सब बातोंको सोचकर स्वयं निश्चय कीजिये और तब अपनी सम्मति बताइये।

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—परमज्ञानसम्पन्न श्रीकृष्ण! आपने मुझे जैसी सम्मति दी है, वैसी और कोई नहीं दे सकता। भला, आपके समान संशय मिटानेवाला पृथ्वीपर और कौन है? आजकल तो घर-घरमें राजा हैं, सभी अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं; परन्तु वे सम्राट् नहीं हैं। वह पद बड़ी कठिनाईसे मिलता है। भगवन्! जरासन्धसे तो हमें भी शङ्का ही है। सचमुच वह बड़ा दुष्ट है। हम तो आपके बलसे ही अपनेको बलवान् मानते हैं। जब आप ही उससे शङ्कित हैं, तब मैं उसके सामने अपनेको बलवान् नहीं मान सकता। मैं ऐसा सोचता हूँ कि आप, बलराम, भीमसेन या अर्जुन—इनमेंसे कोई उसे मार सकता है या नहीं। मैं इस बातपर बहुत विचार करता हूँ। मैं तो आपकी सम्मतिसे ही सभी काम करता हूँ। कृपया बतलाइये, क्या किया जाय?

धर्मराजकी बात सुनकर श्रेष्ठ वक्ता भीमसेनने कहा—'जो राजा उद्योग नहीं करता, दुर्बल होनेपर भी बलवान्से भिड़ जाता है, युक्तिसे काम नहीं लेता, वह हार जाता है। सावधान, उद्योगी और नीति-निपुण राजा कम शक्ति होनेपर भी बलवान् शत्रुको जीत लेता है। भाईजी! श्रीकृष्णमें नीति है, मुझमें बल है, अर्जुनमें विजय पानेकी योग्यता है; इसलिये

हम तीनों मिलकर जरासन्धके वधका काम पूरा कर लेंगे।' भीमकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! शत्रुकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। आपमें शत्रु-विजय, प्रजा-पालन, तपस्या-शक्ति और समृद्धि—सभी गुण हैं। जरासन्धमें केवल एक गुण है—बल। जो लोग उसकी सेवामें लगे हुए हैं, वे भी उससे सन्तुष्ट नहीं हैं; क्योंकि वह उनके साथ बार-बार अन्याय करता है। उसने योग्य पुरुषोंको अयोग्य काममें लगाकर अपना शत्रु बना लिया है। हमलोग उसे युद्धके लिये बाध्य करके जीत सकते हैं। छियासी राजाओंको वह कैद कर चुका है, चौदह और बाकी हैं। फिर वह सबका वध करना चाहता है। जो उसके इस क्रूर कर्मको रोक सकेगा, वह बड़ा यशस्वी होगा और जो जरासन्धपर विजय प्राप्त करेगा, निश्चय ही वह सम्राट् होगा।'

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! मैं चक्रवर्ती सम्राट् होनेके स्वार्थसे साहस करके आपको या भीमसेन, अर्जुनको वहाँ कैसे भेज दूँ! भीमसेन और अर्जुन दोनों मेरे नेत्र हैं। आप मेरे मन हैं। मैं अपने नेत्र और मनको खोकर कैसे जीवित रह सकूँगा! यज्ञके सम्बन्धमें मैंने तो दूसरा ही विचार किया है। अब यज्ञका सङ्कल्प छोड़ देना चाहिये। मुझे तो उसके सङ्कल्पसे ही बड़ी ठेस लगती है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस समयतक अर्जुन गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ, ध्वजा और सभा प्राप्त कर चुके थे। इससे उनका उत्साह बढ़तीपर था। उन्होंने धर्मराजके पास आकर कहा—'भाईजी! धनुष, शस्त्र, बाण, पराक्रम, सहायक, भूमि, यश और सेनाकी प्राप्ति बड़ी कठिनतासे होती है। सो सब हमने मनमाना प्राप्त कर लिया है। लोग कुलीनताकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु मुझे तो क्षत्रियोंका बल और वीरता ही प्रशंसनीय जान पड़ती है। यदि हमलोग राजसूय यज्ञको निमित्त बनाकर जरासन्धका वध और कैदी राजाओंकी रक्षा कर सकें तो इससे बढ़कर और क्या होगा?'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धर्मराज! भरतवंश-शिरोमणि कुन्तीनन्दन अर्जुनमें जैसी बुद्धि होनी चाहिये, वह प्रत्यक्ष दीख रही है। हमारी मृत्यु चाहे दिनमें हो या रातमें, हम उसकी परवा नहीं करते। अबतक अपनेको युद्धसे बचाकर कोई अमर भी तो नहीं हुआ है। इसलिये वीर पुरुषका कर्तव्य है कि वह अपने सन्तोषके लिये विधि और नीतिके अनुसार शत्रुपर चढ़ाई करके विजयकी भरपूर चेष्टा कर ले। सफलतामें लोक, विफलतामें परलोक—दोनों ही अवस्थाओंमें अपना काम तो बनता ही है।

जरासन्धकी उत्पत्ति और शक्तिका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी बात सुनकर उनसे प्रश्न किया। उन्होंने पूछा—'श्रीकृष्ण! यह जरासन्ध कौन है? इसे इतनी शक्ति और पराक्रम कहाँसे प्राप्त हुआ? भला बताइये तो सही, जैसे धधकती हुई आगका स्पर्श करके पतङ्ग जल मरता है, वैसे ही वह आपसे शत्रुता करके भी भस्म नहीं हो गया—इसका क्या कारण है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'धर्मराज! जरासन्धके बल-वीर्यका वर्णन मैं करता हूँ और यह भी बतलाता हूँ कि इतना अनिष्ट करनेपर भी मैंने अबतक उसे छोड़ क्यों रक्खा है। कुछ समय पहले मगधदेशमें बृहद्रथ नामके राजा राज्य करते थे। वे तीन अक्षौहिणियोंके स्वामी, वीरमानी, रूपवान्, धनवान्, शक्तिसम्पन्न एवं याज्ञिक थे। वे तेजस्वी, क्षमाशील, दण्डधर एवं ऐश्वर्यशाली थे। उन्होंने काशिराजकी दो सुन्दरी कन्याओंसे विवाह किया और उनसे प्रतिज्ञा की कि 'मैं तुम दोनोंके साथ समान प्रेम रक्खूँगा।' इस प्रकार विषय-सेवन करते-करते उनकी जवानी बीत गयी। परन्तु मङ्गलमय होम, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि करनेपर भी उन्हें पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। एक दिन उन्होंने सुना कि गौतम कक्षीवान्के पुत्र महात्मा चण्डकौशिक तपस्यासे उपराम होकर इधर आये हैं और एक वृक्षके नीचे ठहरे हुए हैं। राजा बृहद्रथ अपनी दोनों रानियोंके साथ उनके पास गये और रत्न आदिकी भेंट करके उन्हें सन्तुष्ट किया। सत्यवादी चण्डकौशिक ऋषिने राजा बृहद्रथसे कहा—'राजन्! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ, जो चाहो मुझसे माँग लो।' राजाने कहा—'भगवन्! मैं अभागा एवं सन्तानहीन हूँ, राज्य छोड़कर तपोवनमें आ गया हूँ। भला, अब मैं वर लेकर क्या करूँगा?' राजाकी कातर वाणी सुनकर चण्डकौशिक ऋषि कृपापरवश हो गये एवं ध्यान करने लगे। उसी समय जिस आमके पेड़के नीचे वे बैठे हुए थे, उससे एक फल उनकी गोदमें गिरा। वह फल या तो बड़ा सरस, परन्तु

फिर भी तोतेकी चोंचसे अछूता था। महर्षिने उसे उठाकर अभिमन्त्रित किया और राजाको दे दिया। वास्तवमें उन्हें

पुत्र-प्राप्ति करानेके लिये ही वह गिरा था। महात्मा चण्डकौशिकने राजासे कहा कि 'अब तुम अपने घर लौट जाओ। शीघ्र ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।' प्रणामके पश्चात् बृहद्रथ अपनी राजधानीमें लौट आये और शुभ मुहूर्तमें वह फल दोनों रानियोंको दे दिया। रानियोंने उसके दो टुकड़े किये और बाँटकर एक-एक टुकड़ा खा लिया। संयोगकी बात, महर्षिकी सत्यवादिताके प्रभावसे दोनों रानियोंको गर्भ रह गया।

राजा बृहद्रथकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। धर्मराज! समय आनेपर दोनोंके गर्भसे शरीरका एक-एक टुकड़ा पैदा हुआ। प्रत्येकमें एक आँख, एक बाँह, एक पैर, आधा पेट, आधा मुँह और आधी कमर थी। उन्हें देखकर दोनों रानियाँ काँप उठीं। उन्होंने दुःखसे घबराकर यही सलाह की कि इन दोनों टुकड़ोंको फेंक दिया जाय। दोनोंकी दासियोंने आज्ञा पाते ही दोनों सजीव टुकड़ोंको भलीभाँति ढँककर रनिवासके बाहर डाल दिया।

राजन्! वहाँ एक राक्षसी रहती थी। उसका नाम था जरा! वह खून पीती और मांस खाती थी। उसने उन टुकड़ोंको उठाया और संयोगवश सुविधासे ले जानेके लिये

एक साथ जोड़ दिया। बस, अब क्या, दोनों टुकड़े मिलकर एक महाबली और परम पराक्रमी राजकुमार बन गया। जरा राक्षसी आश्चर्यचकित हो गयी। वह वज्र-कर्कशशरीर कुमारको उठातक न सकी। कुमारने मुट्ठी बाँधकर मुँहमें डाल ली और वर्षाकालीन मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे रोना शुरू किया। रनिवासके लोग वह शब्द सुनकर आश्चर्यचकित हो राजाके साथ बाहर निकल आये। यद्यपि रानियाँ पुत्रकी ओरसे निराश हो चुकी थीं, फिर भी उनके स्तनोंमें दूध उमड़ रहा था। वे उदास मुँहसे पुत्र-दर्शनकी लालसासे भरकर बाहर निकल आयीं। जरा राक्षसी राजपरिवारकी स्थिति, ममता, लालसा और व्याकुलता तथा बालकका मुँह देखकर सोचने लगी कि 'मैं इस राजाके देशमें रहती हूँ। इसे सन्तानकी बड़ी अभिलाषा है। साथ ही यह धार्मिक और महात्मा भी है। इसलिये

इस नवजात सुकुमार कुमारको नष्ट करना अनुचित है।' अब वह मनुष्यरूप धारण करके बालकको गोदमें लिये

राजाके पास आकर बोली—'राजन्! यह लीजिये अपना पुत्र। महर्षिके आशीर्वादसे आपको यह प्राप्त हुआ है। मैंने इसकी रक्षा की है, आप इसे स्वीकार कीजिये।' राक्षसीके इस प्रकार कहते-न-कहते रानियोंने उसे अपनी गोदमें लेकर स्तनोंके दूधसे सींच दिया।

राजा बृहद्रथ यह सब देख-सुनकर आनन्दसे फूल उठे। उन्होंने सोने-सी मनोहर मनुष्यरूपधारिणी राक्षसीसे पूछा—'अहो! मुझे पुत्र देनेवाली तुम कौन हो? मुझको ऐसा जान पड़ता है कि तुम कोई देवी हो। क्या यह सत्य है?' जराने कहा—'राजन्! आपका कल्याण हो। मैं जरा नामकी राक्षसी हूँ। मैं आदरपूर्वक आरामसे आपके घरमें रहती हूँ। मैं सुमेरु-सरीखे पर्वतको भी निगल सकती हूँ। आपके बच्चेमें तो रक्खा ही क्या है? किन्तु मैं आपके घरमें सर्वदा सत्कार पाती हूँ, आपसे प्रसन्न हूँ, इसलिये आपका पुत्र आपके हाथोंमें सौंप रही हूँ।' धर्मराज! जरा राक्षसी इतना कहकर अन्तर्धान हो गयी और राजा बृहद्रथ नवजात शिशुको लेकर अपने महलमें लौट आये। बालकके जातकर्मादि संस्कार विधिपूर्वक हुए, जरा राक्षसीके नामपर सारे मगधदेशमें उत्सव मनाया गया। बृहद्रथने अपने पुत्रका नामकरण करते हुए कहा कि इस बालकको जराने सन्धित किया है (जोड़ा है), इसलिये इसका नाम 'जरासन्ध' होगा। बालक जरासन्ध शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान एवं हवन की हुई आगके समान आकार और बलमें दिन-दिन बढ़ने तथा अपने माँ-बापको आनन्दित करने लगा।

कुछ समयके बाद महर्षि चण्डकौशिक पुनः मगधदेशमें आये। राजाने उनकी बड़ी आवभगत की। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! जरासन्धके जन्मकी सारी बातें मुझे दिव्य दृष्टिसे मालूम हो गयी थीं। तुम्हारा पुत्र बड़ा तेजस्वी, ओजस्वी, बलवान् एवं रूपवान् होगा। इसके बाहुबलके आगे कुछ भी अप्राप्य न होगा। कोई भी इसका मुकाबला नहीं कर सकेगा और विरोधी अपने आप नष्ट हो जायँगे। देवताओंके अस्त्र-शस्त्र भी इसे चोट नहीं पहुँचा सकेंगे। सभी लोग इसकी आज्ञा मानेंगे। और तो क्या, इसकी आराधनासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् शङ्कर इसे दर्शन देंगे।' इतना कहकर महर्षि चण्डकौशिक चले गये। राजा बृहद्रथने जरासन्धका राज्यसिंहासनपर अभिषेक किया और स्वयं वे रानियोंके साथ वनमें चले गये। वास्तवमें जरासन्धकी शक्ति महर्षि चण्डकौशिकके कहे-जैसी ही है। यद्यपि हमलोग बलवान् हैं, फिर भी अबतक नीतिकी दृष्टिसे उसकी उपेक्षा करते रहे हैं।

श्रीकृष्ण, भीमसेन एवं अर्जुनकी मगध-यात्रा और जरासन्धसे बातचीत

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—धर्मराज! जरासन्धके मुख्य सहायक थे—हंस और डिम्भक। वे मारे जा चुके। साथियोंसहित कंसका भी सत्यानाश हो गया। अब जरासन्धके नाशका समय आ पहुँचा है। आमने-सामनेकी लड़ाईमें देव-दानव सभीके लिये उसको हराना कठिन है। इसलिये उससे द्वन्द्वयुद्ध अर्थात् कुश्ती लड़कर ही उसे जीतना चाहिये। जैसे तीन अग्नियोंसे यज्ञकार्य सम्पन्न होता है, वैसे ही मेरी नीति, भीमसेनके बल और अर्जुनकी रक्षासे जरासन्धका वध सध सकता है। जब एकान्तमें हम तीनोंसे उसकी भेंट होगी तो वह अवश्य ही किसी-न-किसीके साथ युद्ध करना स्वीकार कर लेगा। यह निश्चित है कि वह घमण्डी भीमसेनसे ही लड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भीमसेन उसके लिये यमराजके समान प्राणान्तक हैं। यदि आप मेरे हृदयकी बात जानते हैं, मुझपर विश्वास करते हैं, तो भीमसेन और

हरके रूपमें मुझे दे दीजिये। मैं सब काम

यनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान्
णी सुनकर भीमसेन और अर्जुन प्रसन्नताके
ए थे। उनकी ओर देखकर युधिष्ठिरने कहा—
ष्ण, ऐसी बात न कहिये। आप हमारे स्वामी
के आश्रित हैं, सेवक हैं। आपकी वाणी, आप-
अक्षर सत्य है। आप जिसके पक्षमें हैं, उसकी
त है। आपकी आज्ञामें स्थित होकर मैं तो ऐसा
हूँ कि जरासन्धका वध, कैदी राजाओंका
राजसूय यज्ञकी समाप्ति—सब कुछ सकुशल
गया। स्वामी ! आप सावधान होकर
जिससे काम बने। आप तीनोंके बिना मैं जीना
रता। अर्जुनके बिना आप और आपके बिना
हीं सकता। आप दोनोंके लिये कोई भी अजेय
प दोनोंके साथ भीमसेन सब कुछ कर सकता
ीति-निपुण हैं। आपकी शरण ग्रहण करके ही
द्धिका प्रयत्न करेंगे। अर्जुन आपका, भीमसेन
नुगमन करें। नीति, जय और बलके मेलसे
इ मिलेगी।'

ायनजी कहते हैं—जनमेजय ! युधिष्ठिरकी
त करके श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन—तीनों
के लिये चल पड़े। पद्मसर, कालकूट, गण्डकी,
दानीरा, गङ्गा, चर्मण्वती आदि पर्वत और नदी-
र करते हुए वे मगधदेशमें जा पहुँचे। उस
ग वल्कल वस्त्र धारण किये हुए थे। कुछ ही
श्रेष्ठ पर्वत गोरथपर पहुँच गये। उसपर बड़े
र वृक्ष एवं जलाशय थे। गौओंके लिये तो वह
था। वहाँसे मगधराजकी राजधानी स्पष्ट दीख
हाँ पहुँचते ही उन लोगोंने सबसे पहले राजधानी-
बुर्ज नष्ट-भ्रष्ट कर दी, तदनन्तर मगधपुरीमें
। इन दिनों वहाँ बड़े अशकुन हो रहे थे।
ाकर जरासन्धसे निवेदन किया और अरिष्टकी
लिये जरासन्धको हाथीपर चढ़ाकर अग्निकी प्रदक्षिणा
स्वयं मगधराजने भी अरिष्टशान्तिके लिये बहुत-से
ालन करते हुए उपवास किया। इधर भगवान्
भीमसेन और अर्जुन अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग करके
-से वेषमें जरासन्धसे बाहुयुद्ध करनेका उद्देश्य
रखकर नगरमें घुसे। उनके विशाल वक्षःस्थल देखकर नागरिक
चकित एवं विस्मित हो रहे थे। उन्होंने क्रमशः जन-सङ्कीर्ण तीन
सुरक्षित तीन ड्योढ़ियाँ पार कीं। वे निश्शङ्क भावसे जरासन्ध-
के पास पहुँच गये। जरासन्ध उन्हें देखते ही खड़ा हो गया
और उसने अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क आदिसे उनका सत्कार किया।

जनमेजय ! श्रीकृष्ण आदिके वेषसे उनके आचरणका
कोई मेल नहीं था। इसलिये जरासन्धने कुछ तिरस्कारपूर्वक
कहा—'ब्राह्मणो ! मैं जानता हूँ कि स्नातक ब्रह्मचारी स्नानके
जानेके अतिरिक्त और किसी भी समय माला और चन्दन
धारण नहीं करते। आपलोग, बताइये, कौन हैं ? आपके
कपड़े लाल हैं, शरीरपर पुष्पोंकी माला और अङ्गराग भी
है। आपलोगोंकी भुजाओंपर धनुषकी प्रत्यञ्चाका निशान
स्पष्ट झलक रहा है। आपलोग द्वारसे होकर क्यों नहीं आये ?
निर्भयतापूर्वक वेष बदलकर और बुर्जको तोड़कर आनेका
क्या कारण है ! आपलोगोंका वेष तो ब्राह्मणका और कार्य
उसके ठीक विपरीत है। अस्तु, जो कुछ भी हो, आपके
आगमनका प्रयोजन क्या है ?'

जरासन्धकी बात सुनकर कुशल वक्ता मनस्वी श्रीकृष्णने स्निग्ध, गम्भीर वाणीसे कहा—राजन् ! हम
स्नातक ब्राह्मण हैं, यह तो आपकी समझकी बात है। स्नातक-
का वेष तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों ही धारण कर
सकते हैं। पुष्पमाला धारण करना तो श्रीमानोंका काम है।
क्षत्रियोंकी भुजाएँ ही उनका बल हैं। हम वाणीकी वीरता

नहीं दिखाते। यदि आप हमारा बाहुबल देखना चाहते हों तो

अभी देख लें। धीर, वीर पुरुष शत्रुके घरमें बिना द्वारके और मित्रके घरमें द्वारसे प्रवेश करते हैं। हमने जो कुछ किया है, सब सुसङ्गत है।

जरासन्धने कहा—मैंने किस समय आपलोगोंके साथ शत्रुता या दुर्व्यवहार किया है, यह ध्यान देनेपर भी याद नहीं पड़ता। मुझ निरपराधको शत्रु समझनेका क्या कारण है? क्या सत्पुरुषोंके लिये यही उचित है? मैं अपने धर्ममें तत्पर हूँ। प्रजाका अपकार नहीं करता। फिर मुझे शत्रु माननेका कारण? कहीं आप उन्मादवश तो ऐसा नहीं कह रहे हैं?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! तुमने क्षत्रियोंका बलिदान करनेका निश्चय किया है। क्या यह क्रूर कर्म अपराध नहीं है? तुम सर्वश्रेष्ठ राजा होकर भी निरपराध राजाओंकी हिंसा करना कैसे उचित समझते हो? किन्तु बात यही है। हम दुखियोंकी सहायता करते हैं और तुम क्षत्रिय जातिका नाश करना चाहते हो! हम जातिकी अभिवृद्धिके लिये तुम्हारे वधका निश्चय करके यहाँ आये हैं। तुम जो इस घमण्डमें फूले रहते हो कि मेरे समान कोई योद्धा क्षत्रिय नहीं है, यह तुम्हारा भ्रम है। इस विशाल पृथ्वीके वक्षःस्थल-पर तुमसे भी अधिक वीर हैं। हमारे लिये तुम्हारा यह घमण्ड असह्य है। अपने बराबरवालोंके सामने यह घमण्ड छोड़ दो; अन्यथा तुम्हें पुत्र, मन्त्री और सेनाके साथ यमपुरीमें जाना पड़ेगा। हमारे आनेका उद्देश्य निश्चय ही युद्ध है। हम ब्राह्मण नहीं हैं। मैं हूँ वसुदेवका पुत्र कृष्ण। ये दोनों हैं पाण्डुनन्दन भीमसेन और अर्जुन! हम तुम्हें युद्धके लिये ललकारते हैं। तुम या तो समस्त कैदी नरपतियोंको छोड़ दो अथवा हमारे साथ युद्ध करके परलोक सिधारो।

जरासन्धने कहा—'वासुदेव! मैं किसी भी राजाको बिना जीते नहीं लाया हूँ। तनिक दिखाओ तो सही—वह कौन है, जिसे मैंने जीता न हो, जो मेरा सामना कर सकता हो? क्या मैं तुमसे डरकर इन राजाओंको छोड़ दूँ? यह नहीं हो सकता। तुम चाहो तो सेनाके साथ लड़ लो। मैं एकके साथ या तीनोंके साथ अकेले ही लड़ सकता हूँ। चाहे एक साथ लड़ लो या अलग-अलग!' यह कहकर जरासन्धने अपने पुत्र सहदेवके राज्याभिषेककी आज्ञा दे दी। भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि आकाशवाणीके अनुसार यदुवंशियोंके हाथसे जरासन्धका वध नहीं होना चाहिये। इसलिये उन्होंने जरासन्धको स्वयं न मारकर भीमसेनके हाथों मरवानेका निश्चय किया।

जरासन्ध-वध और बंदी राजाओंकी मुक्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि जरासन्ध युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गया है, तब उन्होंने उससे पूछा—'राजन्! तुम हम तीनोंमेंसे किसके साथ युद्ध करना चाहते हो? हममेंसे कौन युद्धके लिये तैयार हो?' जरासन्धने भीमसेनके साथ कुश्ती लड़ना स्वीकार किया। उसने माला और माङ्गलिक चिह्न धारण किये, पीड़ा मिटानेवाले बाजूबन्द पहने, ब्राह्मणने आकर स्वस्तिवाचन किया। क्षत्रियधर्मके अनुसार उसने बख्तर पहना, मुकुट उतारा और बालोंको बाँधता हुआ खड़ा हो गया। जरासन्धने कहा—'भीमसेन! आओ। बलवान्के साथ लड़कर हारनेपर भी यश ही मिलता है।'

बलवान् भीमसेन श्रीकृष्णसे परामर्श लेकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा जरासन्धसे भिड़नेके लिये अखाड़ेमें उतर गये। दोनों ही अपनी-अपनी विजय चाहते थे। दोनोंने ही अपनी-अपनी भुजाओंको ही शस्त्र बनाया था। हाथ मिलनेके पहले एकने दूसरेका पैर छूआ, तदनन्तर खम और ताल ठोंकते हुए परस्पर गुथ गये। उन्होंने तृणपीड, पूर्णयोग,

समुष्टिक आदि अनेकों दाव-पेंच किये। उनकी कुश्ती अपूर्व

थी। उनका मल्लयुद्ध देखनेके लिये हजारों पुरवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री एवं वृद्ध इकट्ठे हो गये। उनके प्रहार और छीना-झपटीसे बड़ी कर्कश ध्वनि होने लगी। वे कभी हाथोंसे एक-दूसरेको ढकेल देते, गर्दन पकड़कर घुमा देते, कभी एक-दूसरेको खदेड़ते, खींचते, घसीटते, घुटनोंसे चोट करते और हुंकार करते हुए घूँसोंका प्रहार करते। वे जिधर जाते, उधरकी जनता भाग खड़ी होती। दोनों हट्टे-कट्टे, चौड़ी छाती और लंबी बाँहवाले पहलवान अपनी भुजाओंसे इस प्रकार लड़ रहे थे, मानो लोहेके बेलन टकरा रहे हों।

यह युद्ध कार्तिक कृष्ण प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर लगातार तेरह दिन-रात तक बिना खाये-पीये और बिना रुके चलता रहा। चौदहवें दिन रातके समय जरासन्ध थककर कुछ ढीला पड़ गया। उसकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्णने भीमकर्मा भीमसेनको उभाड़ते हुए कहा—'वीर भीमसेन! थक जानेपर शत्रुको अधिक दबाना उचित नहीं। अरे, अधिक जोर लगानेपर तो वह मर ही जायगा। इसलिये अब तुम जरासन्धको ज्यादा न दबाकर केवल बाहुयुद्ध करते रहो।' श्रीकृष्णकी बात सुनते ही भीमसेनने जरासन्धकी स्थिति समझ ली और उसे मार डालनेका सङ्कल्प किया। भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेनको और भी फुर्ती करनेके लिये उत्साहित करते हुए सङ्केत किया कि 'भीमसेन! तुममें दैवबल और वायुबल दोनों ही विद्यमान हैं। तुम जरासन्धपर तनिक उन बलोंको दिखाओ तो!' श्रीकृष्णका इशारा समझकर बलवान् भीमसेनने जरासन्धको उठा लिया और बड़े जोरसे उसे आकाशमें घुमाने लगे। सौ बार घुमाकर उसे उन्होंने जमीनपर पटका और घुटनोंकी चोटसे उसकी पीठकी रीढ़ तोड़कर पीस दिया। साथ ही हुंकार करके उसका एक पैर पकड़ा और दूसरे पैरपर अपना पैर रखकर उसे दो खण्डोंमें चीर डाला। जरासन्धकी इस दुर्दशा और भीमसेनकी गर्जनासे उपस्थित जनता भयभीत हो गयी। स्त्रियोंके तो गर्भपात तककी नौबत आ गयी। सब लोग चकित—विस्मित होकर सोचने लगे कि कहीं हिमालय तो नहीं टूट पड़ा, पृथ्वी तो खण्ड-खण्ड नहीं हो गयी!

भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने शत्रुका नाश कर उसके प्राणहीन शरीरको रनिवासकी ड्यौढ़ीपर डाल दिया और वे रातों-रात वहाँसे बाहर निकल गये। श्रीकृष्णने जरासन्धके ध्वजामण्डित दिव्य रथको जोता। उसपर भीमसेन और अर्जुनको बैठाया और वहाँसे चलकर कैदी राजाओंको पहाड़ी खोहसे बाहर किया। उस रथसे ही वे राजाओंके साथ वहाँसे चल पड़े। उस रथका नाम था सोदर्यवान्। दो महारथी उसपर एक साथ बैठकर युद्ध कर सकते थे। उसपर भीमसेन और अर्जुन बैठ गये। भगवान् श्रीकृष्ण सारथि बने। उसी रथपर बैठकर इन्द्रने पहले निन्यानबे बार दानवोंका संहार किया था। उसके ऊपर एक दिव्य ध्वजा थी, जो बिना किसी आधारके ही लहराती रहती, इन्द्रधनुषकी-सी चमकती और एक योजन दूरसे ही दीख जाती थी। वह रथ इन्द्रने वसु नामके राजाको, वसुने बृहद्रथको और बृहद्रथने जरासन्धको दिया था। वह दिव्य रथ पाकर बड़ी प्रसन्नतासे तीनों भाइयोंने वहाँसे यात्रा की।

परम यशस्वी करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्ण रथ हाँककर गिरिव्रजसे बाहर निकले, खुले मैदानमें आये। वहाँ ब्राह्मण आदि नागरिकोंने एवं कैदसे छूटे हुए राजाओंने श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक पूजा की। राजाओंने कहा—'सर्वशक्तिमान् प्रभो! आपने भीम और अर्जुनके साथ हमें छुड़ाकर अपने धर्मकी ही रक्षा की है। यह आपके लिये कोई नवीनता नहीं। हम जरासन्धरूप विशाल तालके दुःख-दलदलमें फँस रहे थे। आपने हमारा उद्धार किया है। सर्वव्यापक

यदुनन्दन! हम दुःखसे मुक्त हुए। आपने उज्ज्वल कीर्तिकी स्थापना की। हम आपके सामने नम्रतासे झुककर खड़े हैं। हमें कुछ आज्ञा दीजिये, आपका कठिन-से-कठिन काम भी करें।' भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'धर्मराज युधिष्ठिर चक्रवर्तिपद प्राप्त करनेके लिये राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। आपलोग उनकी सहायता कीजिये।'

राजाओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने हृदयसे यह प्रस्ताव स्वीकार किया। अब वे लोग भगवान् श्रीकृष्णको रत्नराशिकी भेंट देने लगे। भगवान्ने उनपर कृपा करके बड़ी कठिनाईसे भेंट स्वीकार की। जरासन्धका पुत्र सहदेव मन्त्रियोंके साथ पुरोहितको आगे कर अनेकों रत्न लिये बड़ी नम्रतासे श्रीकृष्णके सामने उपस्थित हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने भयभीत सहदेवको अभयदान देकर भेंट स्वीकार की। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने वहीं सहदेवका अभिषेक किया। सहदेव बड़ी प्रसन्नतासे अपनी राजधानीमें लौट गया।

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपने दोनों फुफेरे भाइयोंके और उन सब राजाओंके साथ धन-रत्नसे लदे रथपर शोभायमान हो इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। उन्हें देखकर धर्मराजके आनन्दकी सीमा न रही। भगवान्ने कहा—'राजेन्द्र! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वीरवर भीमसेनने जरासन्धको मारने और कैदी राजाओंको कैदसे छुड़ानेका सुयश प्राप्त किया है। इससे बढ़कर और क्या आनन्द होगा कि भीमसेन और अर्जुन कार्य-सिद्ध करके सकुशल निर्विघ्न लौट आये।' धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नतासे भगवान् श्रीकृष्णका सत्कार किया और अपने भाइयोंको प्रेमसे गले लगाया। जरासन्धकी मृत्युसे सभी पाण्डव आनन्दित हुए। उन्होंने सब बन्धनमुक्त राजाओंसे मिल-भेंटकर उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और समयपर उन्हें विदा किया। सब राजा धर्मराजकी अनुमतिसे बड़ी प्रसन्नताके साथ विभिन्न वाहनोंके द्वारा अपने-अपने देश चले गये।

परम प्रवीण भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार जरासन्धका वध कराकर धर्मराजकी अनुमति प्राप्त करके कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और धौम्यसे विदा ली तथा उसी रथपर, जो जरासन्धके यहाँसे ले आये थे, युधिष्ठिरके कहनेसे सवार होकर द्वारकाकी यात्रा की। यात्राके समय पाण्डवोंने आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णका यथोचित अभिवादन एवं परिक्रमा की। जनमेजय! इस ऐतिहासिक विजय एवं राजाओंको छुड़ाकर अभय देनेके कारण पाण्डवोंका यश दिग्-दिगन्तमें फैल गया। धर्मराज युधिष्ठिर समयके अनुसार धर्मपर दृढ़ रहकर प्रजा-पालन करने लगे। धर्म, काम एवं अर्थ—तीनों ही पुरुषार्थ उनकी सेवामें संलग्न रहते थे।

पाण्डवोंकी दिग्विजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं दिग्विजयके लिये जाऊँ और पृथ्वीके सभी राजाओंसे आपके लिये कर वसूल करूँ।' युधिष्ठिरने अर्जुनको उत्साहित करते हुए कहा—'अवश्य, तुम्हारी विजय निश्चित है।' युधिष्ठिरकी आज्ञा प्राप्त करके चारों भाइयोंने दिग्विजय-यात्रा की। जनमेजय! यद्यपि चारों भाइयोंने एक साथ ही चारों दिशाओंपर विजय प्राप्त की थी, फिर भी मैं तुम्हें उनका क्रमशः वर्णन सुनाऊँगा।

जनमेजय! अर्जुनने उत्तर दिशाकी विजयका भार लिया था। उन्होंने पहले साधारण पराक्रमसे ही आनर्त, कालकूट और कुलिन्द देशोंपर विजय प्राप्त करके सेनासहित सुमण्डलको जीत लिया। सुमण्डलको साथी बनाकर शाकलद्वीप और प्रतिविन्ध्य पर्वतके राजाओंपर विजय प्राप्त की। सात द्वीपके राजाओंमेंसे शाकलद्वीपवालोंने बड़ा घमासान युद्ध किया। परन्तु अर्जुनके बाणोंके सामने उन्हें हारना ही पड़ा। उनकी सहायतासे अर्जुनने प्राग्ज्योतिषपुरपर चढ़ाई की। वहाँके प्रतापी राजाका नाम भगदत्त था। भगदत्तके सहायक किरात, चीन आदि बहुत-से समुद्री देशोंके लोग भी थे। आठ दिनतक भयङ्कर युद्ध होनेके बाद भी अर्जुनका

पूर्ववत् उत्साह देखकर भगदत्तने मुसकराते हुए कहा—'महाबाहु अर्जुन! तुम्हारा पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। तुम

देवराज इन्द्रके पुत्र हो न ! इन्द्रसे मेरी मित्रता है और मैं उनसे कम वीर नहीं हूँ। इसलिये मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता। बेटा ! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा; बताओ, क्या चाहते हो ?' अर्जुनने कहा—'राजन् ! कुरुवंशशिरोमणि सत्यप्रतिज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि वे चक्रवर्ती सम्राट् हों। आप उन्हें कर दीजिये। आप मेरे पिता इन्द्रके मित्र और मेरे हितैषी हैं। इसलिये मैं आपको आज्ञा तो दे नहीं सकता, आप प्रेम-भावसे ही उन्हें भेंट दीजिये।' भगदत्तने कहा—'अर्जुन ! धर्मराज युधिष्ठिर भी तुम्हारे ही समान मेरे प्रेमपात्र हैं। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। और कोई बात हो तो कहो।' वीर अर्जुनने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके आगेकी यात्रा प्रारम्भ की।

अर्जुनने कुबेरके द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशामें बढ़कर पर्वतोंके भीतर-बाहर और आस-पासके सब स्थानोंपर अधिकार कर लिया। उलूक देशके राजा बृहन्तने घोर युद्ध करके हार मानी और वह अर्जुनकी शरणमें आया। अर्जुनने बृहन्तका राज्य उसीको सौंपकर उसकी सहायतासे सेनाबिन्दुके देशपर धावा बोलकर उसे राज्यच्युत कर दिया। क्रमशः मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसङ्कुल और उत्तर उलूक देशोंके राजाओंको वशमें करके पञ्चगणोंको अपने वशमें किया। उन्होंने पौरव नामके राजाको तथा पहाड़ी लुटेरों और म्लेच्छोंको, जो सात प्रकारके थे, जीता। कश्मीरके वीर क्षत्रिय और दस मण्डलोंका अध्यक्ष राजा लोहित भी उनके अधीन हो गये। त्रिगर्त, दारु और कोकनदके नरपति स्वयं शरणागत हुए। अर्जुनने अभिसारीपर अधिकार करके उरग देशके राजा रोचमानको हराया और बाह्लीक वीरोंको अपने अधीन करके दरद, कम्बोज और ऋषिक देशोंको अपने अधीन किया। ऋषिक देशमें तोतेके उदरके समान हरे रंगके आठ घोड़े लिये। निकूट और पूरे हिमालयपर विजयवैजयन्ती फहराकर धवलगिरिपर सेनाका पड़ाव डाला।

अर्जुन क्रमशः किम्पुरुषवर्षके अधिपति द्रुमपुत्र और हाटक देशके रक्षक गुह्यकोंको हराकर मानसरोवर पहुँचे। वहाँ ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंके दर्शन हुए। वहींसे हाटक देशके आस-पास बसे प्रान्तोंपर भी अधिकार कर लिया। तदनन्तर अर्जुनने उत्तरी हरिवर्षपर विजय प्राप्त करनी चाही। परन्तु वहाँ प्रवेश करते-न-करते बड़े वीर और विशालकाय द्वारपालोंने आकर प्रसन्नतासे कहा—'अवश्य ही आप कोई असाधारण पुरुष हैं। क्योंकि यहाँतक पहुँचना सबके लिये सुगम नहीं है। आप यहाँ आ गये, यही विजय है। यहाँकी कोई भी वस्तु मनुष्य-शरीरसे नहीं देखी जा सकती। इसलिये दिग्विजयकी तो कोई बात ही नहीं है। हमलोग आपपर प्रसन्न हैं। आपका कोई काम हो तो कर सकते हैं।' अर्जुनने हँसते हुए कहा—'मैं अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरको चक्रवर्ती सम्राट् बनानेके लिये दिग्विजय कर रहा हूँ। यदि तुम्हारे इस देशमें मनुष्योंका आना-जाना निषिद्ध है तो मैं इसमें नहीं घुसूँगा; तुमलोग केवल कुछ कर दे दो।' हरिवर्षके लोगोंने अर्जुनको कर-रूपसे अनेकों दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और मृगचर्म आदि दिये। इस प्रकार उत्तर दिशापर विजय करके वीरवर अर्जुन महान् चतुरङ्गिणी
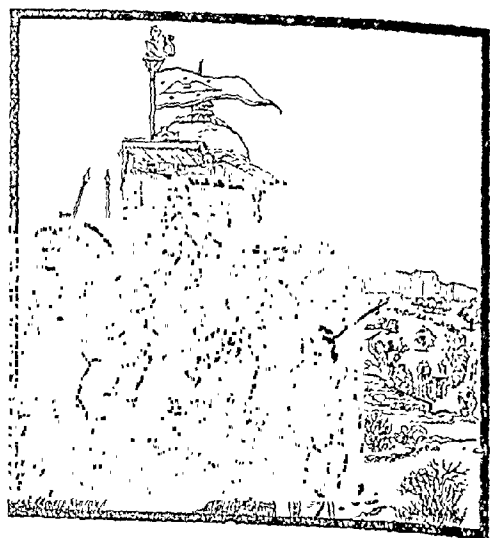
सेनाके साथ बड़ी प्रसन्नतासे इन्द्रप्रस्थ लौट आये और सारा धन एवं सारे वाहन धर्मराजको सौंपकर उनकी आज्ञासे अपने महलमें गये।

जनमेजय ! अर्जुनके साथ ही भीमसेन भी धर्मराजकी अनुमतिसे बहुत बड़ी सेना लेकर पूर्व दिशाके लिये चल पड़े थे। दशार्ण देशके राजा सुधर्माने बिना किसी शस्त्रके भीमसेनके साथ बाहु-युद्ध किया। भीमसेनने उसे परास्त कर उसकी वीरतासे प्रसन्न हो अपना सेनापति बना लिया। उन्होंने क्रमशः अश्वमेध, पुलिन्दनगर आदि अधिकांश प्राच्य राज्योंपर अधिकार कर लिया। चेदिदेशके राजा शिशुपालसे उन्हें युद्ध नहीं करना पड़ा। उसने सम्बन्धके कारण धर्मराजके सन्देशमात्रसे ही कर देना स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर भीमसेनने कुमार देशके राजा श्रेणिमान्‌को, कोसल देशके स्वामी बृहद्बलको और अयोध्याधिपति धर्मात्मा दीर्घयज्ञको अनायास ही वशमें कर लिया। तत्पश्चात् उत्तरकोसल, मल्लदेश और हिमालयतटवर्ती जलोद्भवदेशके प्रान्त अपने अधीन किये। काशिराज सुबाहु, सुपार्श्व, राजेश्वर क्रथ, मत्स्य एवं मलददेशके वीरों एवं वसुभूमिको भी अपने अधिकारमें कर लिया। पूर्वोत्तरके देशोंमें मदधार, सोमधेय एवं वत्सदेशको भी उन्होंने ही अपने कब्जेमें किया था। भर्गदेशके स्वामी निषादराज और मणिमान्‌पर विजय प्राप्त करके दक्षिणमल्ल और भोगवान् पर्वतपर भी उन्होंने कब्जा कर लिया। शर्मक और वर्मकपर विजय प्राप्त करनेके बाद मिथिलाधीशको अधीन किया और वहींसे किरात राजाओंको भी अपने वशमें कर लिया। सुह्य, प्रसुह्य, दण्ड, दण्डधार आदि नरपति अनायास ही परास्त हो गये। गिरिव्रजसे जरासन्धनन्दन सहदेवको साथ लेकर मोदाचलके राजाका संहार किया। पौण्ड्रक वासुदेव और कौशिक नदीके द्वीपमें रहनेवाला राजा भी पराजित हो गया। वंगदेशके राजा समुद्रसेन, चन्द्रसेन, कर्वटाधिपति ताम्रलिप्त और सभी समुद्रतटवर्ती म्लेच्छ भी उनके अधीन हो गये। इस प्रकार अनेक देशोंपर विजय प्राप्त करके वीर भीमसेन लौहित्यके पास आये। समुद्रतट और समुद्रके टापुओंमें रहनेवाले म्लेच्छोंने बिना युद्धके ही उन्हें तरह-तरहके हीरे, मोती, मणि, माणिक्य, सोना, चाँदी, ऊनी-सूती वस्त्र आदि दिये।
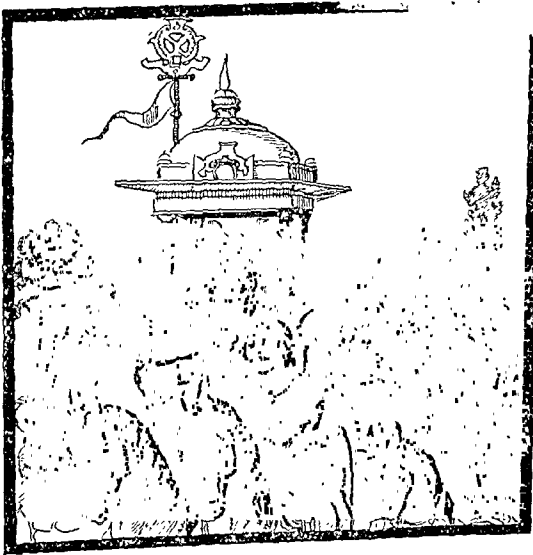
उन्होंने धनसे भीमसेनको सन्तुष्ट कर दिया। भीमसेन सब धन लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट आये और उन्होंने बड़े प्रेमसे सारा-का-सारा धन अपने बड़े भाई धर्मराजको सौंप दिया।

जनमेजय! उसी समय सहदेवने भी बहुत बड़ी सेनाके साथ दिग्विजयके लिये दक्षिणकी यात्रा की थी। उन्होंने क्रमशः मथुरा, मत्स्यदेश और अधिराजके अधिपतियोंको वशमें करके करद सामन्त बना लिया। राजा सुकुमार और सुमित्रके बाद द्वितीय मत्स्य और पटच्चरोंको जीता और बलपूर्वक निषादभूमि, गोशृङ्गपर्वत और श्रेणिमान् राजाको अपने वशमें कर लिया। नरराष्ट्रपर विजय प्राप्त कर लेनेके बाद कुन्तिभोजपर आक्रमण किया और उन्होंने सहर्ष धर्मराजका शासन स्वीकार कर लिया। इसके बाद सहदेव नर्मदाकी ओर बढ़े। उधर उज्जैनके प्रसिद्ध वीर विन्द और अनुविन्दको हराकर वशमें कर लिया। नाटकेय और हेरम्बकोंको परास्त कर मारुध तथा मुञ्जग्रामपर अधिकार कर लिया। उन्होंने क्रमशः अर्बुक, वातराज और पुलिन्दोंको हराकर पाण्ड्यनरेशपर विजय प्राप्त की और किष्किन्धाके मैंद एवं द्विविदको जीता तथा माहिष्मतीपर धावा बोल दिया। भयङ्कर युद्धके बाद महाराज नील उनके करद सामन्त बन गये। आगे बढ़कर त्रिपुर-रक्षक और पौरवेश्वरको वशमें किया। सुराष्ट्रदेशके स्वामी कौशिकाचार्य आकृतिपर विजय प्राप्त करके भोजकटके रुक्मी और निषधके भीष्मकके पास दूत भेजा। उन लोगोंने श्रीकृष्णके सम्बन्धके कारण बड़े प्रेमसे सहदेवकी आज्ञा मान ली। वहाँसे चलकर शूर्पारक, तालाकट, दण्डक और समुद्री टापुओंको अपने अधीन करते हुए म्लेच्छ, निषाद, पुरुषाद, कर्णप्रावरण एवं कालमुखसंज्ञक मनुष्य तथा राक्षसोंपर विजय प्राप्त की। कोलाचल, सुरभीपट्टन, ताम्रद्वीप और रामपर्वत उनके वशमें हो गये। राजा तिमिङ्गिल, जङ्गली केरल, एक पैरवाले पुरुष, तथा सञ्जयन्ती नगरी उनकी हो गयी। पापण्ड और करहाटक भी अलग नहीं रह गये। पाण्ड्य, द्रविड, उण्ड्र, केरल, आन्ध्र, तालवन, कलिङ्ग, उष्ट्रकर्णिक, आटवीपुरी और आक्रमणकारी यवनोंकी राजधानियाँ भी उनके वशमें हो गयीं। सहदेवने दूतके द्वारा लङ्काधिपतिके पास सन्देश भेजा और विभीषणने बड़े प्रेमसे उसे स्वीकार कर लिया। सहदेवने इसे भगवान् श्रीकृष्णकी ही महिमा समझी। सभी स्थानोंसे उन्हें अनेकों प्रकारकी वस्तुएँ

हूण आदि राजा नकुलकी आज्ञामात्रसे उनके अधीन हो गये। द्वारकावासी यदुवंशी और श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे नकुलका शासन स्वीकार किया। नकुलके मामा शल्य भी प्रेमसे उनके अधीन हो गये। सबसे धन-रत्नकी भेंट लेकर नकुलने समुद्रके टापुओंमें रहनेवाले भयङ्कर म्लेच्छ, पह्लव, बर्बर, किरात, यवन और शकराजोंको वशमें किया। सभीसे

उपहारके रूपमें प्राप्त हुई थीं। सब कुछ लेकर, सबको सामन्त बनाकर बड़ी शीघ्रतासे बुद्धिमान् सहदेव इन्द्रप्रस्थ लौट आये और सारी वस्तुएँ धर्मराजको सौंपकर वे सुखपूर्वक इन्द्रप्रस्थमें रहने लगे।

जनमेजय! नकुलने भी उसी समय बड़ी भारी सेना लेकर पश्चिम दिशाकी विजयके लिये प्रस्थान किया था। स्वामिकार्तिकके प्यारे धन, धान्य, गोधन आदिसे परिपूर्ण रोहितक देशमें वहाँके मत्तमयूर शासकोंके साथ उनका घोर संग्राम हुआ। अन्तमें नकुलने मरुभूमि, शैरीषक और अन्नके भण्डार महेत्थ देशपर पूर्ण अधिकार कर लिया। राजर्षि आक्रोशको वशमें करके दशार्ण, शिबि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक, वाटधान और द्विजोंको जीत लिया। वहाँसे लौटकर पुष्कर वनके निवासी उत्सवसङ्केतोंको, सिन्धुतटवर्ती गन्धर्वोंको तथा सरस्वतीतटवर्ती शूद्रों और आभीरोंको वशमें कर लिया। सम्पूर्ण पञ्चनद, अमर पर्वत, उत्तर ज्योतिष, दिव्यकट नगर और द्वारपाल उनके अधिकारक्षेत्रमें आ गया। पश्चिमके रामठ, हार और सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंकी भेंट लेकर वे खाण्डवप्रस्थ लौट आये। नकुलने कर और उपहारमें जो धन-राशि प्राप्त की थी, उसे दस हजार हाथी बड़ी कठिनतासे ढो सकते थे। इन्द्रप्रस्थमें आकर उन्होंने वरुणद्वारा सुरक्षित और श्रीकृष्णद्वारा अधिकृत पश्चिम दिशाकी जीतका सारा धन अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको सौंप दिया।

राजसूय-यज्ञका प्रारम्भ

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराजकी सत्यनिष्ठा, प्रजापालनमें अनुराग और शत्रुसंहार देखकर सारी प्रजा अपने-आप अपने-अपने धर्मका पालन करने लगी। शास्त्रके अनुसार करकी वसूली और धर्मपूर्वक शासन करनेसे समयपर मनचाही वर्षा होने लगी; राष्ट्र सुख-समृद्धिसे भर गया; राजाके पुण्य-प्रभावसे खेती-बारी, व्यापार और गो-रक्षा ठीक-ठीक होने लगी। प्रजामें परस्परकी धोखेबाजी, चोरी और लूटका नाम भी नहीं था। राजकर्मचारी झूठ नहीं बोलते थे। धर्मराजके धर्माचरणसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, अग्नि आदिका भय न रहा। लोग उनके पास भेंट देने या

प्रिय कार्य करनेके लिये ही आते, युद्ध आदिके लिये नहीं। धर्मानुकूल धनकी आमदनीसे कोष भरा-पूरा एवं अक्षय हो रहा था।

जब धर्मराजने देखा कि मेरे अन्न, वस्त्र, रत्न आदिके भण्डार सर्वथा पूर्ण हैं तब उन्होंने यज्ञ करनेका सङ्कल्प किया। मित्रोंने उनसे अलग-अलग और इकट्ठे होकर भी आग्रह किया कि यही यज्ञ करनेका शुभ समय है। अब शीघ्र ही यज्ञ आरम्भ कर देना चाहिये। जिन दिनों लोगोंका आग्रह सीमापर पहुँच गया था, उन्हीं दिनों भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही वहाँ पधार गये। जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही नारायण हैं। वे ही वेदस्वरूप हैं और बड़े-बड़े ज्ञानियोंके ध्यानमें आनेवाले हैं। जड-चेतनमय जगत्में वे सबसे श्रेष्ठ एवं विश्व-ब्रह्माण्डके उद्गमस्थान तथा प्रलयस्थान हैं। वे भूत, भविष्य, वर्तमानके स्वामी, दैत्यनाशक, भक्तवत्सल एवं आपत्कालमें शरण देनेवाले हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त युधिष्ठिरपर कृपा करनेके लिये असंख्य धन, अक्षय रत्नराशि और महान् सेना लेकर रथकी ध्वनिसे दिग्-दिगन्तको मुखरित करते हुए इन्द्रप्रस्थमें आ पहुँचे।

सबने उनकी अगवानी करके उनका यथोचित सत्कार किया। धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाई, पुरोहित धौम्य और श्रीकृष्ण-द्वैपायन आदि ऋषियोंके साथ उनके पास गये तथा विश्राम, कुशल-प्रश्न आदिके अनन्तर उनसे बोले—'भैया श्रीकृष्ण! यह सारा भूमण्डल आपके कृपा-प्रसादसे ही हमारे अधीन हुआ है। बहुत-सी धन-सम्पत्ति भी हमें प्राप्त हुई है। यह सब आपके लिये ही है। अब मैं चाहता हूँ कि इस द्वारा विधिपूर्वक हवन और ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न हों अब आप मेरे अभिलषित राजसूय-यज्ञके लिये मुझे अनुमति दीजिये। गोविन्द! अब आप यज्ञकी दीक्षा ग्रहण कीजिये आपके यज्ञसे मैं निष्पाप हो जाऊँगा। अथवा मुझे ही यज्ञ-दीक्षा लेनेकी अनुमति दीजिये। आपकी इच्छाके अनुसार ही सारा कार्य सम्पन्न होगा। भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा—'महाराज! आप सम्राट् हैं। आपको ही यह महायज्ञ करना चाहिये। अब आप इस यज्ञकी दीक्षा लीजिये।' युधिष्ठिरने विनयपूर्वक कहा—'हृषी-केश! आप मेरी इच्छाके अनुसार स्वयं ही आ गये हैं। इतनेसे ही मेरा सङ्कल्प सिद्ध हो गया, अब यज्ञ सम्पन्न होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा।'

अब धर्मराज युधिष्ठिरने सहदेव और मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि ब्राह्मणोंके एवं पुरोहित धौम्यके आज्ञानुसार यज्ञकी सारी सामग्री शीघ्र ही मँगवायी जाय। अभी धर्मराज युधिष्ठिरकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि सहदेवने नम्रतासे निवेदन किया—'प्रभो! आपकी आज्ञासे पहले ही यह काम हो चुका है।' इसी समय महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन तेजस्वी, तपस्वी और वेदज्ञ ब्राह्मणोंको ले आये। वे स्वयं यज्ञके ब्रह्मा बने और सुसामा सामवेदके उद्गाता। ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य अध्वर्यु हुए। पैल और धौम्य होता। इन ऋषियोंके वेद-वेदाङ्गपारदर्शी शिष्य एवं पुत्र सदस्य हुए। स्वस्तिवाचनके अनन्तर यज्ञकी शास्त्रोक्त विधिके सम्बन्धमें परस्पर विचार करके विशाल यज्ञशालाका पूजन किया गया। शिल्पकारोंने आज्ञाके अनुसार देवमन्दिरोंके समान बहुत-से सुगन्धित भवनोंका निर्माण किया। अब धर्मराजने सहदेवको यह आज्ञा दी कि निमन्त्रण देनेके लिये दूत भेजो। सहदेवने दूतोंको भेजते समय कह दिया कि देशके समस्त ब्राह्मण एवं क्षत्रियोंको निमन्त्रण दे आओ तथा वैश्य और सम्माननीय शूद्रोंको साथ ही ले आओ। दूतोंने वैसा ही किया।

जनमेजय! ब्राह्मणोंने ठीक समयपर धर्मराजको राजसूय यज्ञकी दीक्षा दी। उन्होंने सहस्रों ब्राह्मण, भाई, सगे-सम्बन्धी, सखा-सहचर, समागत क्षत्रिय और मन्त्रियोंके साथ मूर्तिमान् धर्मके समान यज्ञशालामें प्रवेश किया। चारों ओरसे शास्त्र-पारङ्गत, वेद-वेदान्तमें निपुण झुंड-के-झुंड ब्राह्मण आने लगे। उनके निवासके लिये हजारों कारीगरोंके द्वारा अलग-अलग ऐसे स्थान बनवाये गये थे जो अन्न,

जल, वस्त्र आदिसे परिपूर्ण एवं सब ऋतुओंके योग्य सुखकर सामग्रीसे परिपूर्ण थे। उन निवासस्थानोंमें ब्राह्मण कथा-वार्त्ता एवं भोजन आदि प्रसन्न चित्तसे करते रहते थे। जब देखो वहाँ यही कोलाहल हो रहा है—'दीजिये, दीजिये! लीजिये, लीजिये!'

धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्म, धृतराष्ट्र आदिको बुलानेके लिये नकुलको हस्तिनापुर भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर सबको सत्कारपूर्वक विनयके साथ निमन्त्रण दिया और वे लोग बड़ी प्रसन्नतासे निमन्त्रण स्वीकार करके ब्राह्मणोंके साथ वहाँ आये। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, कृपाचार्य, दुर्योधन आदि सभी कौरव, गान्धार देशके राजा सुबल, शकुनि, अचल, वृषक, कर्ण, शल्य, बाह्लीक, सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा, शल, अश्वत्थामा, जयद्रथ, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शाल्व, भगदत्त, पर्वतीय प्रदेशके नरपति, बृहद्बल, पौण्ड्रक वासुदेव, कुन्तिभोज, कलिङ्गाधिपति, वङ्ग, आकर्ष, कुन्तल, मालव, आन्ध्र, द्रविड, सिंहल, काश्मीर आदि देशोंके राजा, गौरवाहन, बाह्लीक देशके राजा, विराट और उनके पुत्र, मावेल्ल, शिशुपाल और उसके लड़के—सब-के-सब यज्ञभूमिमें आये। यज्ञमें समागत राजा और राजकुमारोंकी गणना कठिन है। सभी बहुमूल्य भेंट ले-लेकर आये थे। बलराम, अनिरुद्ध, कङ्क, सारण, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण, उल्मुक आदि समस्त यादव महारथी भी आये। धर्मराजकी आज्ञासे सभी समागत राजाओंको सत्कारपूर्वक अलग-अलग स्थानोंमें ठहराया गया। उनके लिये जो स्थान बनवाये गये थे, उनमें खाने-पीनेकी सारी सामग्री, बावलियाँ और हरे-भरे नयनमनोहर वृक्ष थे। स्वागत-सत्कारके बाद सब लोग अपने-अपने निवासस्थानोंमें ठहर गये।

धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्मपितामह और गुरु द्रोणाचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'आपलोग इस यज्ञमें मेरी सहायता कीजिये। इस विशाल धनागारको अपना ही समझिये और इस प्रकार कार्य कीजिये, जिससे मेरा मनोरथ सफल हो।' यज्ञदीक्षित धर्मराजने उन लोगोंकी सम्मतिसे सबको एक-एक कार्य सौंप दिया। दुश्शासन भोजनसम्बन्धी पदार्थोंकी देखभालमें, अश्वत्थामा ब्राह्मणोंकी सेवा-शुश्रूषामें और सञ्जय राजाओंके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त किये गये। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य सभी कार्यों और कर्मचारियोंका निरीक्षण करने लगे। कृपाचार्य सोने-चाँदी और रत्नोंकी देखभाल तथा दक्षिणा देनेके कार्यपर नियुक्त हुए। बाह्लीक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त और जयद्रथ घरके स्वामीकी तरह स्थित हुए। धर्मके मर्मज्ञ महात्मा विदुर खर्च करनेके काममें और दुर्योधन भेंटमें आये हुए पदार्थोंको रखनेके काममें लगे। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही ब्राह्मणोंके पाँव पखारनेका

काम अपने जिम्मे लिया। इसी प्रकार सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने अपने-अपने जिम्मे किसी-न-किसी सेवाका भार लिया।

जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन करके कृतकृत्य होनेके लिये वहाँ जितने लोग उपस्थित हुए थे, उनमेंसे किसीने सहस्र मुद्रासे कम भेंट नहीं दी। सभी चाहते थे कि केवल मेरे ही धनसे यज्ञ सम्पन्न हो जाय। सेनाके व्यूह, विचित्र विमानोंकी पंक्तियाँ, रत्नोंकी राशि, लोकपालोंके विमान, ब्राह्मणोंके स्थान और राजाओंकी भीड़से युधिष्ठिरके

राजसूय यज्ञकी शोभा बहुत ही बढ़ गयी। धर्मराज युधिष्ठिरका ऐश्वर्य लोकपाल वरुणके समकक्ष था। उन्होंने यज्ञमें छः अग्नियोंकी स्थापना करके पूरी-पूरी दक्षिणा देकर यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यजन किया। अतिथि-अभ्यागतोंको मुँह-माँगी वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया। सबके खा-पी लेनेपर भी बहुत-सा अन्न बच रहा। उस उत्सव-समारोहमें जिधर देखिये, उधर ही हीरे-मोतियोंके उपहारकी धूम मची है। महर्षि एवं मन्त्र-कुशल ब्राह्मणोंने उत्तम रीतिसे घृत, तिल, शाकल्य आदिकी आहुति देकर देवताओंको निहाल कर दिया। दक्षिणामें बहुत-सा धन पाकर ब्राह्मण भी सन्तुष्ट हो गये। जनमेजय! कहाँतक कहें, उस यज्ञसे सभीको तृप्ति मिली।

भगवान् श्रीकृष्णकी अग्रपूजा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यज्ञके अन्तमें अभिषेकके दिन सत्कारके योग्य महर्षि और ब्राह्मणोंने यज्ञशालाकी अन्तर्वेदीमें प्रवेश किया। नारद आदि महात्मा राजर्षियोंके साथ बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। वह अन्तर्वेदी ऐसी जान पड़ती मानो ताराओंसे भरा आकाश ही हो। उस समय वहाँ न कोई शूद्र था और न तो दीक्षाहीन द्विज ही। धर्मराजकी राज्यलक्ष्मी और यज्ञविधि देखकर देवर्षि नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई। क्षत्रियोंका समूह देखकर उन्हें पहलेकी वह घटना याद आ गयी, जो भगवान्‌के अवतारके सम्बन्धमें ब्रह्मलोकमें हुई थी। उन्हें राजाओंका समागम ऐसा जान पड़ने लगा कि इन रूपोंमें देवता ही इकट्ठे हुए हैं। अब उन्होंने मन-ही-मन कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया। देवर्षि नारद सोचने लगे—'धन्य है! सर्वव्यापक, असुरविनाशक अन्तर्यामी भगवान् नारायणने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये क्षत्रियोंमें अवतार ग्रहण किया है। जिन्होंने पहले देवताओंको यह आज्ञा दी थी कि तुमलोग पृथ्वीमें अवतार लेकर संहार-कार्य पूरा करो और फिर अपने लोकोंमें आ जाओ, वही कल्याणकारी जगन्नाथ भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं। देवराज इन्द्र आदि समस्त महान् पुरुष जिनके बाहुबलकी उपासना करते हैं, वही प्रभु यहाँ मनुष्यके समान बैठे हैं। स्वयंप्रकाश महाविष्णु इस बलशाली क्षत्रियवंशको अवश्य ही पुनः निगल जायेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त यज्ञोंके द्वारा आराध्य, सर्वशक्तिमान् एवं अन्तर्यामी हैं।' इस प्रकारके विचारमें देवर्षि नारद डूब गये। उसी समय महात्मा भीष्मने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! अब तुम सब समागत राजाओंका यथायोग्य सत्कार करो। आचार्य, ऋत्विज्, सम्बन्धी, स्नातक, राजा और प्रिय व्यक्तिको, यदि ये एक वर्षमें अपने यहाँ आवें तो, विशेष पूजा—अर्घ्यदान करना चाहिये। ये सभी लोग हमारे यहाँ बहुत दिनोंके बाद आये हैं; इसलिये तुम सबकी अलग-अलग पूजा करो और इनमें जो सर्वश्रेष्ठ हो, उसकी सबसे पहले।' धर्मराजने पूछा—'पितामह! कृपा
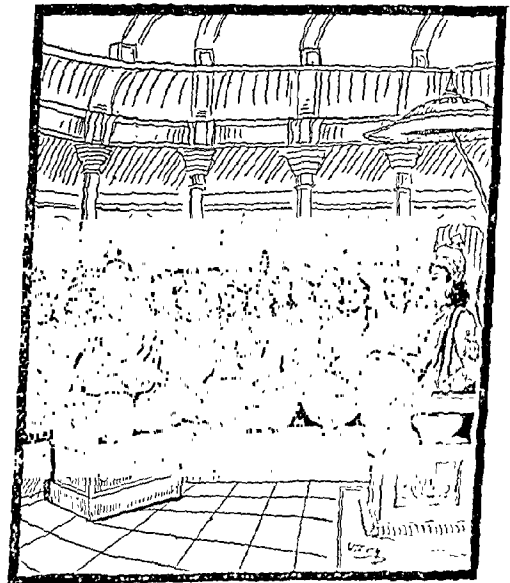
करके बतलाइये, इन समागत सज्जनोंमें हमलोग सबसे

पहले किसकी पूजा करें ? आप किसे सबसे श्रेष्ठ और पूजाके योग्य समझते हैं ?' शान्तनुनन्दन भीष्मने कहा—'धर्मराज ! पृथ्वीमें यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण ही सबसे बढ़कर पूजाके पात्र हैं। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि उपस्थित सदस्योंमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने तेज, बल और पराक्रमसे वैसे ही देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे छोटे-छोटे तारोंमें भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य। जैसे तमसाच्छन्न स्थान सूर्यके शुभागमनसे और वायुहीन स्थान वायुके सञ्चारसे जीवन-ज्योतिसे जगमगा उठता है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा हमारी सभा आह्लादित और प्रकाशित हो रही है।' भीष्मकी आज्ञा मिलते ही प्रतापी सहदेवने विधिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण-को अर्घ्यदान किया और श्रीकृष्णने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उसे स्वीकार किया। चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा।
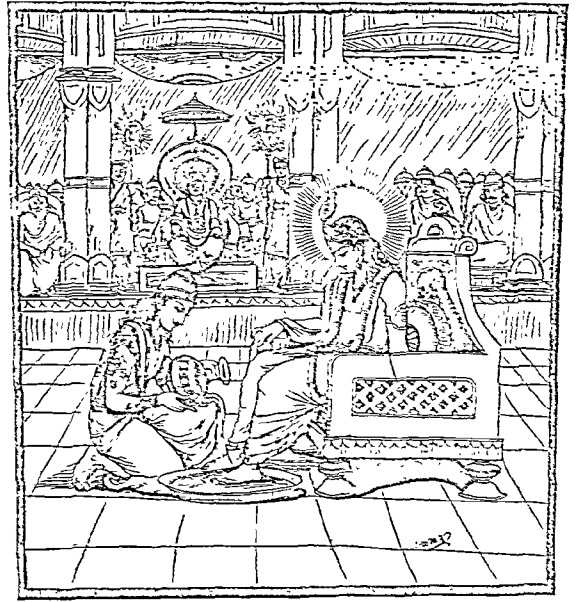
शिशुपालका क्रोध, युधिष्ठिरका समझाना और भीष्मादिका कथन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! चेदिराज शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णकी अग्रपूजा देखकर चिढ़ गया। उसने भरी सभामें भीष्मपितामह और धर्मराज युधिष्ठिरको धिक्कारते हुए श्रीकृष्णको फटकारना शुरू किया। उसने कहा—'बड़े-बड़े महात्माओं और राजर्षियोंके उपस्थित रहते राजाके समान राजोचित पूजाका पात्र कृष्ण नहीं हो सकता। महात्मा पाण्डवोंने कृष्णकी पूजा करके अपने योग्य काम नहीं किया है। पाण्डवो ! अभी तुमलोग बालक हो, तुम्हें सूक्ष्म धर्मका ज्ञान नहीं है। भीष्मपितामह भी सठिया गये हैं। इनकी दृष्टि दीर्घदर्शिनी नहीं रह गयी है। भीष्म ! तुम्हारे-जैसे धर्मात्मा पुरुष भी जब मनमाना काम करने लगते हैं तो जगत्में अपमानित होते हैं। कृष्ण राजा नहीं है। फिर यह राजाओंमें सम्मानका पात्र कैसे हो सकता है ? यह आयुमें भी तो सबसे वृद्ध नहीं है। इसके पिता वसुदेव अभी जीवित हैं। यदि इसे अपना सच्चा हितैषी और अनुकूल समझकर तुमलोगोंने इसकी पूजा की हो तो क्या यह द्रुपदसे बढ़कर है ? यदि तुमलोग कृष्णको आचार्य मानते हो तो भी द्रोणाचार्यकी उपस्थितिमें इसकी पूजा सर्वथा अनुचित है। ऋत्विज्की दृष्टिसे भी सबसे पहले विद्या-वयोवृद्ध भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनकी ही पूजा होनी चाहिये थी। युधिष्ठिर ! इच्छामृत्यु पुरुषश्रेष्ठ भीष्मपितामहके रहते तुमने कृष्णका पूजन कैसे किया ? शास्त्रपारदर्शी वीर अश्वत्थामाके सामने कृष्णकी पूजा भला, किस दृष्टिसे उचित हो सकती है ? पाण्डवो ! राजाधिराज दुर्योधन, भरतवंशके आचार्य महात्मा कृप, किम्पुरुषोंके आचार्य द्रुम तथा पाण्डुके समान माननीय सर्वसद्गुणसम्पन्न भीष्मकको छोड़कर, उनकी उपस्थितिमें तुमने कृष्णकी पूजाका अनर्थ कैसे कर डाला ? यह कृष्ण न ऋत्विज् है, न राजा है और न तो आचार्य ही है। फिर तुमने किस कामनासे इसकी पूजा की है ? यदि तुम्हें कृष्णकी ही अग्रपूजा करनी थी तो इन राजाओंको, हमलोगोंको, बुलाकर इस प्रकार अपमान तो नहीं करना चाहिये था। हमलोग भय, लोभ आदिके कारण तुम्हें कर नहीं देते; हम तो ऐसा समझते थे कि यह सीधा-सादा धर्मात्मा मनुष्य है, यह सम्राट् हो जाय तो अच्छा ही है। तो तुम इस गुणहीन कृष्णकी पूजा करके हमलोगोंका तिरस्कार कर रहे हो। तुम अचानक ही

धर्मात्माके रूपमें प्रख्यात हो गये । तभी तो तुमने इस धर्मच्युतकी पूजा करके अपनी बुद्धिका दिवालियापन दिखलाया है !'

शिशुपालने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर मुँह करके कहा— 'कृष्ण ! मैं मानता हूँ कि पाण्डव बेचारे डरपोक और तपस्वी
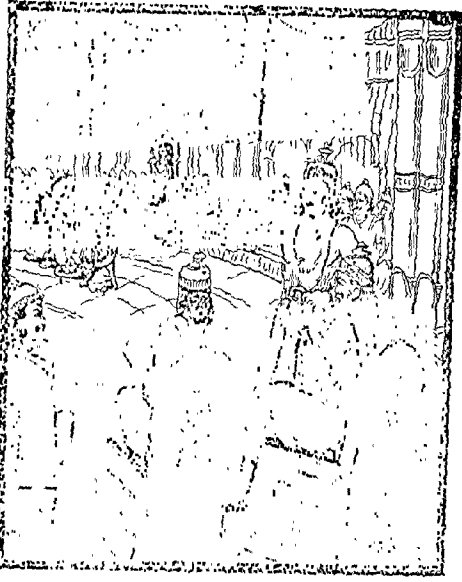
हैं । इन्होंने यदि ठीक-ठीक नहीं समझा तो तुम्हें तो जता देना चाहिये था कि तुम किस पूजाके अधिकारी हो । यदि कायरता और मूर्खतावश इन्होंने तुम्हारी पूजा कर भी दी तो तुमने अयोग्य होकर उसे स्वीकार क्यों किया ? जैसे कुत्ता लुक-छिपकर जरा-सा घी चाट ले और अपनेको धन्य-धन्य मानने लगे, वैसे ही तुम यह अयोग्य पूजा स्वीकार करके अपनेको बड़ा मान रहे हो । तुम्हारी इस अनुचित पूजासे हम राजाओंका कोई अपमान नहीं होता । ये पाण्डव तो स्पष्टरूपसे तुम्हारा ही तिरस्कार कर रहे हैं । नपुंसकका ब्याह करना, अन्धेको रूप दिखाना, राज्यहीनको राजाओंमें बैठा देना जिस प्रकार अपमान है, वैसे ही तुम्हारी यह पूजा भी। हमने युधिष्ठिर, भीष्म और तुमको देख लिया । तुम सब एक-से-एक बढ़कर हो ।' ऐसा कहकर शिशुपाल अपने आसन-से उठ खड़ा हुआ और कुछ राजाओंको साथ लेकर वहाँसे जानेके लिये तैयार हो गया ।

धर्मराज युधिष्ठिरने तत्क्षण शिशुपालके पास जाकर समझाते हुए मधुर वाणीसे कहा—'राजन् ! आपका कहना उचित नहीं है । कड़वी बात कहना निरर्थक तो है ही, अधर्म भी है । हमारे पितामह भीष्म धर्मका रहस्य न जानते हों ऐसा नहीं है । आप व्यर्थ उनका तिरस्कार मत कीजिये । देखिये, यहाँ आपसे भी विद्यावयोवृद्ध बहुत-से राजा उपस्थित हैं । उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा बुरी नहीं मालूम हुई है । आपको भी उन्हींके समान इसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहिये । चेदिनरेश ! पितामह भीष्म ही भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानते हैं । श्रीकृष्णके सम्बन्ध-में उनके-जैसा तत्त्वज्ञान आपको नहीं है ।' युधिष्ठिर इस प्रकार कह ही रहे थे कि भीष्मपितामहने उन्हें सम्बोधन करके कहा—'धर्मराज ! भगवान् श्रीकृष्ण त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ हैं । जो उनकी पूजाको अङ्गीकार नहीं करता, उससे अनुनय-विनय करना अनुचित है । क्षत्रिय-धर्मके अनुसार जो जिसे युद्धमें जीत लेता है, वह उससे श्रेष्ठ माना जाता है । भगवान् श्रीकृष्णने इन उपस्थित राजाओंमेंसे किसपर विजय नहीं प्राप्त की है ? एकका भी नाम तो बतलाओ । ये केवल हमारे ही पूज्य हों, ऐसी बात नहीं; सारा जगत् इनकी उपासना करता है । इन्होंने सबपर विजय प्राप्त की हो, इतना ही नहीं; सम्पूर्ण जगत् सर्वात्मना इन्हींके आधार-पर स्थित है । मैं मानता हूँ कि यहाँ बहुत-से गुरुजन और पूज्य उपस्थित हैं । फिर भी पूर्वोक्त कारणसे हम भगवान् श्रीकृष्णकी ही पूजा कर रहे हैं । भगवान् श्रीकृष्णकी पूजाका निषेध करनेका अधिकार किसीको भी नहीं है । मैंने अपने विशाल जीवनमें बड़े-बड़े ज्ञानियोंका सत्संग किया है और उनके मुँहसे सकल गुणोंके आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य गुणोंका वर्णन सुना है । यहाँ आये हुए श्रेष्ठ पुरुषोंकी सम्मति भी मैंने जान ली है । इन्होंने अपने जन्मसे लेकर अबतक जितने कर्म किये हैं, उनका मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंसे श्रवण किया है । शिशुपाल ! हमलोग केवल स्वार्थवश, सम्बन्धके कारण अथवा उपकारी होनेसे ही भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा नहीं करते; हमारे पूजा करनेका कारण तो यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण जगत्के समस्त प्राणियोंके लिये सुखकारी हैं और समस्त श्रेष्ठ पुरुष उनकी पूजा करते हैं । यहाँ जितने लोग हैं, उन सबकी, बच्चे-बच्चेकी परीक्षा हमने ले ली है । यश, शूरता और विजयमें कोई भी भगवान् श्रीकृष्णके समान नहीं है । ज्ञान और बल दोनों ही दृष्टियोंसे भगवान् श्रीकृष्णसे बढ़कर कहीं कोई नहीं है । दान, कौशल, शास्त्रज्ञान, शूरता, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि, विनय, लक्ष्मी, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि, सभी गुण भगवान् श्रीकृष्णमें नित्य-निरन्तर निवास करते हैं । परमज्ञानी श्रीकृष्ण हमारे

आचार्य, पिता और गुरु हैं। सब लोगोंको इसमें हार्दिक सहयोग देना चाहिये था। वे हमारे ऋत्विज्, गुरु, विवाह्य, स्नातक, राजा, प्रिय, मित्र, सब कुछ हैं। इसीलिये हमने उनकी अग्रपूजा की है। भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति एवं प्रलयके स्थान हैं। उनकी क्रीडाके लिये ही सारा जड-चेतन जगत् है। वे ही अव्यक्त प्रकृति हैं और वे ही सनातन कर्त्ता हैं। जन्मने-मरनेवाले समस्त पदार्थोंसे वे परे हैं, इसलिये सबसे बढ़कर पूजनीय हैं। बुद्धि, मन, महत्तत्त्व, वायु, तेज, जल, आकाश, पृथ्वी और चारों प्रकारके सब प्राणी भगवान् श्रीकृष्णके आधारपर ही स्थित हैं। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिशा, विदिशा, सब-के-सब श्रीकृष्णमें ही स्थित हैं। जैसे वेदोंमें अग्निहोत्र, छन्दोंमें गायत्री, मनुष्योंमें राजा, नदियोंमें समुद्र, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ज्योतिश्चक्रमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु और पक्षियोंमें गरुड़ श्रेष्ठ हैं, वैसे ही त्रिलोकीकी ऊर्ध्व, मध्यम और अधोलोकरूप त्रिविध गतियोंमें भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। शिशुपाल तो अभी कलका अबोध बालक है। उसे इस बातका ज्ञान नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदा सर्वत्र सब रूपोंमें विद्यमान हैं। इसीसे वह ऐसा कह रहा है। जो सदाचारी एवं बुद्धिमान् पुरुष धर्मका मर्म जानना चाहता है, उसे जैसा धर्मका तत्त्वज्ञान होता है वैसा शिशुपालको नहीं है। इसे तो कभी सच्ची जिज्ञासा ही नहीं हुई। यहाँ जितने छोटे-बड़े राजर्षि-महर्षि उपस्थित हैं, उनमें कौन ऐसा है जो भगवान् श्रीकृष्णको पूज्य नहीं मानता और उनकी पूजा नहीं करता? एकमात्र शिशुपाल इस पूजाको बुरा समझता है। वह समझा करे, वह जो ठीक समझे कर सकता है।'

भीष्मपितामह इतना कहकर चुप हो गये। अब माद्रीनन्दन सहदेवने कहा—'भगवान् श्रीकृष्ण परम पराक्रमी हैं। उनकी मैंने पूजा की है। जिन्हें यह बात सहन नहीं हो रही है, उनके सिरपर मैं लात मारता हूँ। मेरे इतना कहनेके बाद जिसको विरोध करना हो, वह बोले। मैं उसका बध करूँगा। सभी बुद्धिमान् हमारे आचार्य, पिता, गुरु एवं पूजनीय भगवान् श्रीकृष्णकी पूजाका समर्थन करें।' सहदेवने इस प्रकार कहकर जोरसे लात पटकी। परन्तु उन मानी और बलवान् राजाओंमेंसे किसीकी जीभतक न हिली। आकाशसे सहदेवके सिरपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और अदृश्यरूपसे 'साधु-साधु' की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। देवर्षि नारद भी वहीं बैठे थे। उनकी सर्वज्ञता प्रसिद्ध है। उन्होंने सबके सामने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि 'जो लोग कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा नहीं करते, उन्हें जिंदा रहनेपर भी मुर्दा ही समझना चाहिये। उनके साथ तो कभी बाततक नहीं करनी चाहिये।' इसके अनन्तर सहदेवने ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी यथोचित पूजा की। इस प्रकार पूजाका काम समाप्त हुआ।

भगवान् श्रीकृष्णकी पूजासे शिशुपाल क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया था, उसकी आँखें खून उगल रही थीं। उसने राजाओंको पुकारकर कहा कि 'मैं सेनापति बनकर खड़ा हूँ। अब आपलोग किस उधेड़-बुनमें पड़े हैं? आइये, हमलोग डटकर यादवों और पाण्डवोंकी सम्मिलित सेनासे भिड़ जायँ।' इस प्रकार शिशुपाल यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये राजाओंको उत्साहित कर उनसे सलाह करने लगा। उस समय वे लोग क्रोधसे तिलमिला रहे थे, चेहरेपर शिकन पड़ गयी थी। वे यही सोच रहे थे कि श्रीकृष्णकी पूजा और युधिष्ठिरका यज्ञान्त-अभिषेक न होने पावे।

धर्मराज युधिष्ठिरने देखा कि बहुत-से लोग क्षुब्ध सागरकी भाँति उमड़कर युद्ध करना चाहते हैं। तब उन्होंने भीष्मपितामहके पास जाकर कहा—'पितामह! अब मुझे क्या करना चाहिये? आप यज्ञकी निर्विघ्न समाप्ति और प्रजाके हितका उपाय बतलाइये।' भीष्मपितामहने कहा—'बेटा! डरनेकी कोई बात नहीं। क्या कभी कुत्ता सिंहको मार सकता है? मैंने पहले ही तुम्हारे कर्तव्यका निश्चय कर लिया है। जैसे सिंहके सो जानेपर कुत्ते भोंकते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णके चुप रहनेसे ही ये चिल्ला रहे हैं। मूर्ख शिशुपाल अनजानमें इन राजाओंको यमपुरी भेजना चाहता है। निस्सन्देह भगवान् श्रीकृष्ण शिशुपालका तेज खींच लेना चाहते हैं। ये जिसको खींच लेना चाहते हैं, उसीकी बुद्धि ऐसी हो जाती है। ये सारे जगत्के मूलकारण और प्रलय-स्थान हैं। तुम निश्चिन्त रहो।'

भीष्मपितामहकी बात शिशुपालने भी सुनी। उसने भीष्मको डाँटते हुए कहा—'भीष्म! तुम्हें सब राजाओंको धमकाते समय शर्म नहीं आती। अरे! बूढ़े होकर अपने कुलको क्यों कलङ्कित करते हो? मूर्ख और घमण्डी कृष्णकी प्रशंसा करते समय तुम्हारी जीभके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? मूर्ख-से-मूर्ख भी जिसकी निन्दा करता है, उसी ग्वालियेकी तुम ज्ञानी होकर क्यों प्रशंसा कर रहे हो? यदि इसने बचपनमें किसी पक्षी (बकासुर), घोड़े (केशी) अथवा

बैल (वृषभासुर) को मार ही डाला तो क्या हुआ ? वे कोई युद्धके उस्ताद तो नहीं थे । यदि इसने चेतनाहीन छकड़े (शकटासुर) को पैर मारकर उलट दिया तो क्या चमत्कार हुआ ? यदि इसने गोवर्द्धन पर्वतको सात दिनतक उठा रक्खा तो कौन-सी अलौकिक घटना घट गयी ? अरे, वह तो दीमकोंकी बाँबीमात्र है । अवश्य ही, यह सुनकर हमें आश्चर्य हुआ कि पेटू कृष्णने गोवर्द्धनपर बहुत-सा अन्न खा लिया ! जिस महाबली कंसका नमक खाकर यह पला था, उसीको इसने मार डाला ! है न कृतघ्नताकी हद ? धर्म-ज्ञानीजी ! धर्मके अनुसार स्त्री, गौ, ब्राह्मण और जिसका अन्न खाय, जिसके आश्रयमें रहे, उसे नहीं मारना चाहिये । जिसने जन्मते ही स्त्री (पूतना) को मार डाला, उसे ही तुम जगत्पति बतलाते हो ! बुद्धिकी बलिहारी है । अजी, तुम्हारे कहनेसे यह कृष्ण भी अपनेको वैसा ही मानने लगेगा । अजी, धर्मध्वजी ! तुमने अपने स्वभावकी नीचताके कारण ही पाण्डवोंको ऐसा बना दिया है । तुमने धर्मकी आड़में जो-जो दुष्कर्म किये हैं, वे क्या कभी किसी ज्ञानीके द्वारा किये जा सकते हैं ? काशीनरेशकी कन्या अम्बा शाल्वको अपना पति बनाना चाहती थी, परन्तु तुम उसे बलपूर्वक हर लाये । यह कौन-सा धर्म है जी ? तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्यर्थ है । तुमने नपुंसकता अथवा मूर्खताके कारण यह ह[ठ] पकड़ रक्खा है । अबतक तुमने कौन-सी उन्नति सम्पादन [की] है ? हाँ, धर्मकी बातें तो बढ़-बढ़कर अवश्य करते हो ! सभ[ी] लोग जरासन्धका आदर करते थे । उन्होंने कृष्णको दास समझकर ही इसका वध नहीं किया । उनकी हत्या करनेमें इस कृष्णने भीमसेन और अर्जुनके साथ मिलकर जो करतूत की, उसे कौन ठीक समझता है ? आश्चर्य तो यह है कि तुम्हारी बातोंमें आकर पाण्डव भी कर्तव्यच्युत हो रहे हैं । क्यों न हो, तुम्हारे-जैसे नपुंसक, पुरुषार्थहीन और बूढ़े जब सम्मति देनेवाले हों, तब ऐसा होना ही चाहिये ।'

शिशुपालकी रूखी और कठोर बातें सुनकर प्रतापी भीमसेन क्रोधसे तिलमिला उठे । सबने देखा कि भीमसेन प्रलयकालीन कालके समान दाँत पीस रहे हैं । वे क्रोधमें आकर शिशुपालपर टूटना ही चाहते थे कि महाबाहु भीष्मने उन्हें रोक लिया । इतना सब होनेपर भी शिशुपाल टस-से-मस नहीं हुआ । वह डटा ही रहा । उसने हँसकर कहा—'भीष्म ! छोड़ दो, छोड़ दो इसे । अभी-अभी सब लोग देखेंगे कि यह मेरे क्रोधकी आगमें पतंगेकी भाँति भस्म हो रहा है ।' भीष्मपितामहने शिशुपालकी बातकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया । वे भीमसेनको समझाने लगे ।

शिशुपालकी जन्म-कथा और वध

भीष्मपितामहने कहा—भीमसेन ! यह शिशुपाल

जब चेदिराजके वंशमें पैदा हुआ, तब इसके तीन नेत्र थे और चार भुजाएँ थीं । पैदा होते ही यह गधोंके समान रेंकने-चिल्लाने लगा था । सगे-सम्बन्धी इसकी यह दशा देखकर डर गये और इसके त्यागका विचार करने लगे । माता-पिता, मन्त्री आदिका एक ही विचार देखकर आकाश-वाणी हुई—'राजन् ! तुम्हारा यह पुत्र बड़ा श्रीमान् और बली होगा । इससे डरो मत, निश्चिन्त होकर इसका पालन करो ।' माता यह सुनकर प्रेममें पग गयी । उसने हाथ जोड़कर कहा—'जिसने मेरे पुत्रके सम्बन्धमें यह भविष्यवाणी की है, वह चाहे कोई हो—स्वयं भगवान्, देवता अथवा अन्य—मैं उसे प्रणाम करती हूँ और उससे इतना और जानना चाहती हूँ कि मेरे पुत्रकी मृत्यु किसके हाथों होगी ।' आकाशवाणीने दुबारा कहा—'जिसकी गोदमें जानेपर तुम्हारे पुत्रकी दो अधिक भुजाएँ गिर पड़ें और जिसे देखनेमात्रसे तीसरा नेत्र लुप्त हो जाय, उसीके हाथों इसकी मृत्यु होगी !' उस समय इस विचित्र शिशुका समाचार सुनकर पृथ्वीके अधिकांश राजा इसे देखनेके लिये आये थे । चेदिराजने सबका यथोचित सत्कार करके बालक शिशुपालको सबकी

इसलिये मुझे एक वर दो। तुम मेरी ओर देखकर शिशुपालके सारे अपराध क्षमा कर देना। बस, मैं केवल इतना ही वर माँगती हूँ।' श्रीकृष्णने कहा—'बुआजी! तुम शोक मत करो। मैं तुम्हारे पुत्रके ऐसे सौ अपराध भी क्षमा कर दूँगा, जिनके बदले इसे मार डालना चाहिये।' भीमसेन! इसीसे कुल-कलङ्क शिशुपालने आज भरी सभामें मेरा तिरस्कार किया है! भला, और किस राजाकी ऐसी हिम्मत है, जो इस प्रकार मेरा अपमान कर सके? यह कुल-कलङ्क अब कालके गालमें है। इस समय यह मूर्ख हमलोगोंको कुछ न समझकर सिंहके समान दहाड़ रहा है, परन्तु इसे पता नहीं कि कुछ ही क्षणोंमें श्रीकृष्ण अपने इस तेजको ले लेना चाहते हैं।'

भीष्मकी बात शिशुपालसे सही नहीं गयी। वह क्रोधसे जलकर कहने लगा—'भीष्म! तुम भाटके समान बार-बार जिसका गुणगान कर रहे हो, वह कृष्ण क्यों नहीं मुझपर अपना प्रभाव दिखलाता? हम तो निश्चय ही उससे द्वेष करते हैं। यदि तुम्हारी आदत ही प्रशंसा करनेकी है तो दूसरोंकी प्रशंसा क्यों नहीं करते? दरदराज बाह्लीककी स्तुति करो, जिसके जन्मते ही पृथ्वी काँप उठी थी। अङ्ग-बङ्गाधिपति कर्ण, महारथी द्रोण और अश्वत्थामा—इनकी भरपेट स्तुति कर लो। क्या तुम्हें प्रशंसा करनेके लिये कोई मिलता ही नहीं? तुम अपने मनसे ही भोजपति कंसके चरवाहे दुरात्मा कृष्णको ही सब कुछ मानकर बातें बघार रहे हो? वास्तवमें इन राजाओंकी दयासे ही तुम जी रहे हो। ये चाहें तो अभी तुम्हारे प्राण ले लें। सचमुच तुम बहुत ही खोटे हो।' भीष्मपितामहने कहा—'शिशुपाल! तू कहता है कि मैं राजाओंकी दयासे जीवित हूँ, परन्तु मैं इन राजाओंको तृणके बराबर भी नहीं समझता। हमने जिन

श्रीकृष्णने बड़ी गम्भीरतासे मधुर शब्दोंमें कहा—राजाओ! यह हम लोगोंका सम्बन्धी है। फिर भी हमसे बड़ी शत्रुता रखता है। इसने हम यदुवंशियोंका सत्यानाश करनेमें कोई कोर-कसर नहीं की। इस दुरात्माने मेरे प्राग्ज्योतिषपुर चले जानेपर बिना किसी अपराधके ही द्वारकापुरी जला देनेकी चेष्टा की। जिस समय भोजराज रैवतक पर्वतपर विहार करनेके लिये गये हुए थे, इसने उनके सभी साथियोंको मार डाला अथवा बाँधकर अपनी राजधानीमें ले गया। जब मेरे पिता अश्वमेध कर रहे थे, तब इस पापात्माने उसमें विघ्न डालनेके लिये यज्ञीय अश्वको पकड़ लिया था। यदुवंशी तपस्वी बभ्रुकी पत्नी जिस समय सौवीरदेशके लिये जा रही थीं, यह उन्हें देखकर मोहित हो गया और बलपूर्वक हर ले गया। इसकी ममेरी बहन भद्रा करूषराजके लिये तपस्या कर रही थी, परन्तु इसने छलसे रूप बदलकर उसे हर लिया। यह सब देख-सुनकर मुझे बड़ा कष्ट होता था, परन्तु अपनी बुआकी बात मानकर मैं अबतक सहता रहा। आज यह दुष्ट आपलोगोंके सामने ही विद्यमान है। यहाँ इसने भरी सभामें मेरे प्रति जैसा व्यवहार किया है, वह आपलोग देख ही रहे हैं। इससे आपलोग समझ सकते हैं कि आपलोगोंकी अनुपस्थितिमें इसने क्या किया होगा। आज इसने इस आदरणीय राज-समाजके बीचमें घमण्डवश जो दुर्व्यवहार किया है, उसे मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिशुपाल उठकर खड़ा हो गया और ठठा-ठठाकर हँसने लगा। उसने कहा—'कृष्ण! यदि तुझे सौ बार गरज हो तो मेरी बात सुन और सह। न गरज हो तो जो चाहे कर ले। तेरे क्रोध या प्रसन्नतासे न मेरी कुछ हानि है और न तो लाभ।' जिस

समय शिशुपाल इस प्रकार कह रहा था, उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने चक्रका स्मरण किया। स्मरण करते-न-करते चक्र उनके हाथमें चमकने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने ऊँचे स्वरसे कहा—'नरपतियो! मैंने इसे अबतक जो क्षमा किया था, इसका कारण यह था कि मैंने इसकी माताकी प्रार्थनासे इसके सौ अपराध क्षमा करनेकी बात स्वीकार कर ली थी। अब मेरे वचनके अनुसार संख्या पूरी हो गयी। इसलिये आपलोगोंके सामने ही इसका सिर धड़से अलग किये देता हूँ।' भगवान् श्रीकृष्णने यह कहकर बिना विलम्ब उसी चक्रसे शिशुपालका सिर काट डाला और सब लोगोंके देखते-देखते ही वह वज्रविद्ध पर्वतके समान धराशायी हो गया। उस समय राजाओंने देखा कि शिशुपालके शरीरसे सूर्यके समान प्रकाशमान एक श्रेष्ठ ज्योति निकली। उसने जगद्वन्दित कमललोचन भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और लोगोंके देखते-देखते ही वह उनमें समा गयी। यह अद्भुत घटना देखकर उपस्थित जनता आश्चर्यचकित हो गयी। सभी एक स्वरसे भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे। धर्मराज

युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेन आदिने तत्काल उसके प्रेत-संस्कारका प्रबन्ध किया। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सभी नरपतियोंके साथ शिशुपालके पुत्रका चेदिराज्यपर अभिषेक कर दिया।

राजसूय-यज्ञकी समाप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! परम प्रतापी युधिष्ठिरका यज्ञ समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण था। उसे देखकर उत्साही वीरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसमें आनेवाले विघ्न अपने-आप शान्त हो गये। सारे कर्म सुखपूर्वक हुए। धन-सम्पत्ति आवश्यकतासे अधिक आयी। असंख्य मनुष्यों और प्राणियोंके खाते-पीते रहनेपर भी अन्नके गोदाम भरे रहे। इसका कारण यही था कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उसके संरक्षक थे। धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नतासे वह यज्ञ पूर्ण किया। जबतक यज्ञ समाप्त नहीं हो गया, तबतक सर्वशक्तिमान् शार्ङ्ग-चक्र-गदाधारी भगवान् श्रीकृष्ण उसकी रक्षामें तत्पर रहे।

जब धर्मराज युधिष्ठिर यज्ञान्तमें अवभृथ स्नान कर चुके, तब सभी राजाओंने उनके पास आकर कहा—'धर्मज्ञ सम्राट्! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। आपने सम्राट्-पद प्राप्त करके अजमीढवंशी राजाओंका यश उज्ज्वल किया है। राजेन्द्र! इस यज्ञके द्वारा महान् धर्मानुष्ठान सम्पन्न हुआ है। इस यज्ञमें हमलोगोंका भी सब प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार हुआ है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं हुई है। आज्ञा दीजिये, अब हमलोग अपनी-अपनी राजधानीमें जायँ।' धर्मराजने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उन्हें सीमातक पहुँचा आनेके लिये भाइयोंको नियुक्त किया और कहा—'अच्छा पधारिये, आपलोगोंका मङ्गल हो।' भीमसेन, अर्जुन आदिने बड़े भाईकी आज्ञासे प्रत्येक राजाको सत्कारपूर्वक विदा किया।

जब सब राजा और ब्राह्मण वहाँसे पधार गये तब भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजेन्द्र! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका राजसूय महायज्ञ सकुशल समाप्त हुआ। अब मैं द्वारका जानेके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ।' धर्मराजने कहा—'आनन्दकन्द गोविन्द! यह यज्ञ तो केवल आपके अनुग्रहसे ही पूरा हुआ है। यह आपकी कृपाका ही प्रत्यक्ष फल है कि सब राजाओंने मेरी अधीनता स्वीकार करके कर दिया और स्वयं इस यज्ञमें उपस्थित हुए। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! मेरी वाणी आपको जानेके लिये कैसे कहे? आपके बिना मुझे एक क्षणके लिये भी कहीं आनन्द नहीं मिलता। परन्तु करूँ क्या,

लाचारी है। आपको द्वारका भी तो जाना ही पड़ेगा।' तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराजको साथ लेकर अपनी बुआ कुन्तीके पास गये और बड़ी प्रसन्नतासे बोले—'बुआजी! आपके पुत्रोंने सम्राट्का पद प्राप्त कर लिया। इनका मनोरथ पूरा हो गया। धन-सम्पत्ति भी बहुत अधिक मिल गयी। अब आप प्रसन्नतासे रहिये। मैं आपकी आज्ञा लेकर द्वारका जाना चाहता हूँ।' इस प्रकार सुभद्रा और द्रौपदीको भी प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्ण महलसे बाहर आये, स्नान-जप आदि करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। इसी समय दारुक मेघके समान श्यामवर्ण रथ सजाकर ले आया। उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण गरुडध्वज रथके पास पधारे, प्रदक्षिणा की और उसपर सवार हो गये। रथ रवाना हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयोंके साथ पैदल ही रथके पीछे-पीछे चलने लगे। कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने क्षणभर रथ रोककर धर्मराजसे कहा—'राजेन्द्र! जैसे मेघ समस्त प्राणियोंकी रक्षा करता है, जैसे विशाल वृक्ष सभी पक्षियोंको आश्रय देता है, वैसे ही आप बड़ी सावधानीसे प्रजाका पालन कीजिये। जैसे सभी देवता देवराज इन्द्रका अनुगमन करते हैं, वैसे ही आपके सभी भाई आपकी इच्छा पूर्ण करें।' इस प्रकार एक-दूसरेसे कह-सुन और मिल-भेंटकर श्रीकृष्ण और पाण्डव अपने-अपने स्थानपर चले गये।

धर्मराज युधिष्ठिरसे व्यासका भविष्य-कथन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब महायज्ञ राजसूय, जिसका होना अत्यन्त दुर्लभ है, समाप्त हो चुका
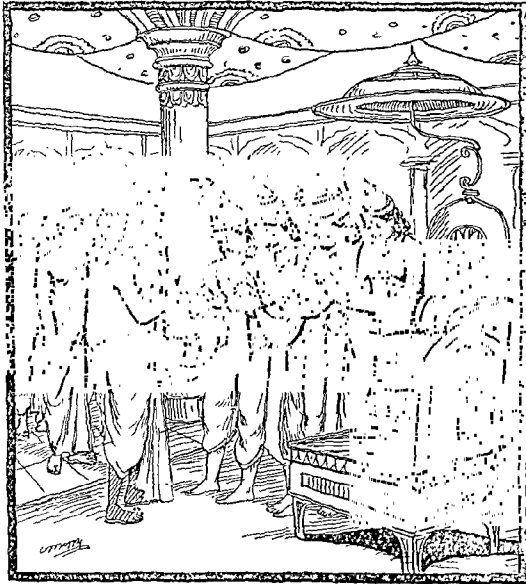
तब भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन अपने शिष्योंके साथ धर्मराज युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ उठकर पाद्य, आसन आदिके द्वारा उनकी पूजा की; उन्होंने सुवर्ण-सिंहासनपर बैठकर युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंको भी बैठनेकी आज्ञा दी। उन सबके बैठ जानेपर भगवान् व्यासने कहा—'कुन्तीनन्दन! तुमने परम दुर्लभ सम्राट्पद प्राप्त करके इस देशकी बड़ी उन्नति की है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारे-जैसे सत्पुत्रसे कुरुवंशकी कीर्ति बढ़ गयी। इस यज्ञमें मेरा भी खूब सत्कार हुआ। अब मैं तुमसे जानेकी अनुमति चाहता हूँ।' धर्मराजने हाथ जोड़कर पितामह व्यासका चरणस्पर्श किया और कहा—'भगवन्! मुझे एक बातका संशय है। आप ही उसे दूर कर सकते हैं। देवर्षि नारदने कहा था कि वज्रपात आदि दैविक, धूमकेतु आदि आन्तरिक्ष और भूकम्प आदि पार्थिव उत्पात हो रहे हैं। आप कृपा करके यह बतलाइये कि शिशुपालकी मृत्युसे उनकी समाप्ति हो गयी या वे अभी बाकी हैं।' धर्मराज युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने कहा—'राजन्! इन उत्पातोंका फल तेरह वर्षके बाद होगा और वह होगा समस्त क्षत्रियोंका संहार। उस समय दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे और सब क्षत्रिय इकट्ठे होकर भीमसेन और अर्जुनके बलसे मर मिटेंगे।' भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन इस प्रकार कहकर अपने शिष्योंके साथ कैलास चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर चिन्ता और शोकसे विह्वल हो गये। उनकी साँस गरम चलने लगी। वे बीच-बीचमें भगवान् व्यासकी बात याद करके अपने भाइयोंसे कहते कि 'भाइयो! तुम्हारा कल्याण हो, आजसे मेरी जो प्रतिज्ञा है उसे सुनो। अब मैं तेरह वर्ष जीकर ही क्या करूँगा? यदि जीना ही है तो आजसे मैं किसीके प्रति कड़वी बात नहीं कहूँगा। भाई-बन्धुओंकी आज्ञामें रहकर उनके कथनानुसार काम करूँगा। अपने पुत्र और शत्रुके प्रति एक-सा बर्ताव करनेसे मुझमें भेद-भाव नहीं रहेगा। यह भेद-भाव ही तो लड़ाईकी जड़ है न!' धर्मराज

युधिष्ठिर भाइयोंके साथ ऐसा नियम बनाकर उसका पालन करने लगे। वे नियमसे पितरोंका तर्पण और देवताओंकी पूजा करते। इस प्रकार सबके चले जानेपर भी केवल दुर्यो और शकुनि धर्मराज युधिष्ठिरके पास इन्द्रप्रस्थमें ही रहे।

दुर्योधनकी जलन और शकुनिकी सलाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा दुर्योधनने शकुनिके साथ इन्द्रप्रस्थमें ठहरकर धीरे-धीरे सारी सभाका निरीक्षण किया। उसने वहाँ ऐसा कला-कौशल देखा, जो हस्तिनापुरमें कभी देखा नहीं था। एक दिन सभामें घूमते समय दुर्योधन किसी स्फटिकके चौकमें पहुँच गया और उसे जल समझकर उसने अपना वस्त्र उठा लिया। पीछे अपना भ्रम जानकर उसे दुःख हुआ और वह यों ही इधर-उधर भटकने लगा। अन्तमें वह स्थलको जल समझकर गिर पड़ा और दुखी एवं लज्जित हुआ। वह वहाँसे अभी कुछ ही आगे बढ़ा था कि स्थलके धोखे स्फटिकके समान निर्मल जल एवं कमलोंसे सुशोभित बावलीमें जा पड़ा। धर्मराजकी आज्ञासे सेवकोंने उसे उत्तम-उत्तम वस्त्र लाकर दिये। उसकी यह दशा देखकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सब-के-सब हँसने लगे। दुर्योधनके असहिष्णु चित्तमें उनकी हँसीसे कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उसने अपने मनका भाव छिपा लिया और उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखा भी नहीं। इसके बाद जब वह दरवाजेके आकारकी स्फटिक-निर्मित भीतको फाटक समझकर घुसने लगा, तब ऐसी टक्कर लगी कि उसे चक्कर आ गया। एक स्थानपर बड़े-बड़े किवाड़ धक्का देकर खोलने लगा तो दूसरी ओर गिर पड़ा। एक बार सही दरवाजेपर पहुँचा तो भी धोखा समझकर उधरसे लौट आया। इस प्रकार बार-बार धोखा खानेसे और यज्ञकी अद्भुत विभूति देखनेसे दुर्योधनके मनमें बड़ी जलन एवं पीड़ा हुई। वह युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर हस्तिनापुरके लिये चल पड़ा। चलते समय पाण्डवोंके ऐश्वर्य एवं सम्पत्तिके विचारसे दुर्योधनका मन भयङ्कर सङ्कल्पोंसे भर गया। पाण्डवोंकी प्रसन्नता, राजाओंकी अधीनता और आबाल-वृद्धकी उनके प्रति सहानुभूति देखकर दुर्योधनके चित्तमें इतनी जलन हुई कि उसके शरीरकी कान्ति यकायक नष्ट हो गयी।

शकुनिने अपने भांजेकी विकलता ताड़कर कहा—दुर्योधन! तुम्हारी साँस लंबी क्यों चल रही है?

दुर्योधनने कहा—मामाजी! धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनके शस्त्र-कौशलसे सारी पृथ्वी अपने अधीन कर ली है और उन्होंने इन्द्रके समान निर्विघ्न राजसूय यज्ञ सम्पन्न कर लिया है। उन

यह ऐश्वर्य देखकर मेरा शरीर रात-दिन जलता रहता है। श्रीकृष्णने सबके सामने ही शिशुपालको मार गिराया। परन्तु किसी राजाकी चूँतक करनेकी हिम्मत न हुई। कठिनाई तो यह है कि मैं अकेला उनकी राज्यलक्ष्मी ले नहीं सकता और मुझे मेरा कोई सहायक दीखता नहीं है। अब मैं प्राण त्यागनेका विचार कर रहा हूँ। मेरे मनमें युधिष्ठिरका महान् ऐश्वर्य देखकर यही निश्चय हुआ कि प्रारब्ध ही प्रधान है और पुरुषार्थ व्यर्थ। मैंने पहले पाण्डवोंके नाशका प्रयत्न किया था, परन्तु वे सभी विपत्तियोंसे बच गये और अब दिनोंदिन उन्नत होते जा रहे हैं। यही तो दैवकी प्रधानता और पुरुषार्थकी निरर्थकता है। दैवकी अनुकूलतासे वे बढ़ रहे हैं और पुरुषार्थ करनेपर भी मेरी अवनति होती जा रही है। मामाजी! अब आप मुझ दुखीको प्राणत्यागकी आज्ञा दीजिये, क्योंकि मैं क्रोधकी आगमें झुलस रहा हूँ। आप पिताजीके पास जाकर यह समाचार सुना दीजियेगा।

शकुनिने कहा—दुर्योधन! पाण्डव अपने भाग्यानुसार प्राप्त भागका भोग कर रहे हैं, उनसे द्वेष नहीं करना

दुर्योधन और धृतराष्ट्रकी बातचीत तथा विदुरकी सलाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! हस्तिनापुर लौटनेपर शकुनिने प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रके पास जाकर कहा—'महाराज ! मैं आपको समयपर यह सूचित किये देता हूँ कि दुर्योधनका चेहरा उतर गया है । वह दिनोंदिन दुबला और पीला होता जा रहा है । आप उसके शत्रुजनित शोक, चिन्ता और हार्दिक सन्तापका पता क्यों नहीं लगाते ?' धृतराष्ट्रने दुर्योधनको सम्बोधन करके कहा—'बेटा ! तुम इतने खिन्न क्यों हो रहे हो ? क्या शकुनिके कथनानुसार तुम पीले, दुबले एवं विवर्ण हो गये हो ? मुझे तो तुम्हारे शोकका कोई कारण नहीं मालूम होता । तुम्हारे भाई और मित्र भी कोई अनिष्ट नहीं करते, फिर तुम्हारी उदासीका कारण ?' दुर्योधनने कहा—'पिताजी ! मैं तो कायरोंके समान खा-पी, पहनकर अपना समय काट रहा हूँ । मेरे हृदयमें द्वेषकी आग धधक रही है । जिस दिनसे मैंने युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मी देखी है, मुझे खाना-पीना अच्छा नहीं लगता । मैं दीन-दुर्बल हो रहा हूँ । युधिष्ठिरके यज्ञमें राजाओंने इतना धन-रत्न दिया कि मैंने उससे पहले उतना देखा तो क्या, सुनातक नहीं था । शत्रुकी अतुल धनराशि देखकर मैं बेचैन हो गया हूँ । श्रीकृष्णने जो बहुमूल्य सामग्रियोंसे युधिष्ठिरका अभिषेक किया था, उसकी जलन मेरे चित्तमें अब भी बनी हुई है । लोग सब ओर तो दिग्विजय कर लेते हैं, परन्तु उत्तरकी ओर पक्षियोंके सिवा कोई नहीं जाता । पिताजी ! अर्जुन वहाँसे भी अपार धन-राशि ले आया । लाख-लाख ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर सङ्केतरूपसे जो शङ्खध्वनि होती थी, उसे बार-बार सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते । युधिष्ठिरके ऐश्वर्यके समान इन्द्र, यम, वरुण, कुबेरका भी ऐश्वर्य नहीं होगा । उनकी राज्यलक्ष्मी देखकर मेरा चित्त जल रहा है । मैं अशान्त हो रहा हूँ ।'

दुर्योधनकी बात समाप्त होनेपर धृतराष्ट्रके सामने ही शकुनिने कहा—'दुर्योधन ! वह राज्यलक्ष्मी पानेका उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ । मैं द्यूतक्रीडामें संसारमें सबसे अधिक कुशल हूँ । युधिष्ठिर इसके शौकीन तो हैं परन्तु खेलना नहीं जानते । तुम उन्हें बुलाओ । मैं कपटद्यूतसे उन्हें जीतकर निश्चय ही उनकी सारी दिव्य सम्पत्ति ले लूँगा ।' शकुनिकी बात पूरी हो जानेपर दुर्योधनने कहा—'पिताजी ! द्यूत-क्रीडाकुशल मामाजी केवल द्यूतके द्वारा ही पाण्डवोंकी सारी राजलक्ष्मी ले लेनेका उत्साह दिखाते हैं । आप इनको आज्ञा दे दीजिये ।' धृतराष्ट्रने कहा—'मेरे मन्त्री विदुर बड़े बुद्धिमान् हैं । मैं उनके उपदेशके अनुसार ही काम करता हूँ । उनसे परामर्श करके मैं निश्चय करूँगा कि इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये । वे दूरदर्शी हैं । जो बात दोनों पक्षके लिये हितकर होगी, वही वे कहेंगे ।' दुर्योधनने कहा—'पिताजी ! यदि विदुरजी आ गये, तब तो वे आपको अवश्य रोक देंगे । ऐसी अवस्थामें मैं निस्सन्देह प्राणत्याग कर दूँगा । तब आप

विदुरके साथ आरामसे राज्य भोगियेगा। मुझसे आपको क्या लेना है?' दुर्योधनके कातर वचन सुनकर धृतराष्ट्रने उसकी बात मान ली। परन्तु फिर जूएको अनेक अनर्थोंकी खान जानकर विदुरसे सलाह करनेका निश्चय किया और उनके पास सब समाचार भेज दिया।

समाचार पाते ही बुद्धिमान् विदुरजीने समझ लिया कि अब कलियुग अथवा कलह-युगका प्रारम्भ होनेवाला है। विनाशकी जड़ जम रही है। वे बड़ी शीघ्रतासे धृतराष्ट्रके पास पहुँचे। बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने कहा—'राजन्! मैं जूएके उद्योगको बहुत ही अशुभ लक्षण समझ रहा हूँ। आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे जूएके कारण आपके पुत्र और भतीजोंमें परस्पर वैर-विरोध न हो।' धृतराष्ट्रने कहा—'मैं भी तो यही कहता हूँ। परन्तु यदि देवता हमारे अनुकूल होंगे तो पुत्र और भतीजोंमें कलह नहीं होगा। भीष्म, द्रोण एवं मेरी और तुम्हारी उपस्थितिमें किसी प्रकारकी अनीति नहीं होगी।' इतना कहनेके बाद धृतराष्ट्रने अपने पुत्र दुर्योधनको बुलवाया और एकान्तमें उससे कहा—'बेटा! विदुर बड़े नीति-निपुण और ज्ञानी हैं। वे हमें बुरी सम्मति कभी नहीं दे सकते। जब वे जूएको अशुभ बतलाते हैं, तब तुम शकुनिके द्वारा जूआ करानेका सङ्कल्प छोड़ दो। विदुरकी बात परम हितकारी है। उनकी सम्मतिसे काम करनेमें ही तुम्हारा हित है। भगवान् बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको जिस नीति-शास्त्रका उपदेश किया था, विदुर उसके मर्मज्ञ हैं। यादवोंमें जैसे उद्धव, वैसे ही कौरवोंमें विदुर। मुझे तो जूएमें विरोध-ही-विरोध दीख रहा है। जूआ आपसकी फूटका मूल कारण है। इसलिये तुम इसका उद्योग बंद कर दो। देखो, माता-पिताका काम है हित-अहित समझा देना। सो मैंने कर दिया है। तुम्हें वंश-परम्परागत राज्य प्राप्त हो गया है और मैंने तुम्हें पढ़ा-लिखाकर पक्का भी कर दिया है। जूएमें क्या रक्खा है, छोड़ो यह बखेड़ा।' दुर्योधनने कहा—'पिताजी! मेरी धन-सम्पत्ति तो बहुत ही साधारण है। इससे मुझे सन्तोष नहीं है। मैं युधिष्ठिरकी सौभाग्य-लक्ष्मी और उनके अधीन सारी पृथ्वी देखकर बेचैन हो रहा हूँ। मेरा कलेजा विहर रहा है। हाय! मेरा कलेजा पत्थरका है, तभी तो मैं इतनी बातें करता और सब कुछ सहता हूँ। मैंने अपनी आँखों देखा है कि युधिष्ठिरके यहाँ नीप, चित्रक, कौकुर, कारस्कार और लोहजंघ आदि राजा दासोंके समान विनीत भावसे सेवा-टहल कर रहे थे। समुद्रके अनेक द्वीपों, रत्नोंकी खानों और हिमालयके राजा तनिक देर करके आये थे; इसलिये उनकी भेंट अस्वीकार कर दी गयी। युधिष्ठिरने मुझे ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समझकर सत्कारके साथ रत्नोंकी भेंट लेनेके लिये नियुक्त किया था, इसलिये मैं सब कुछ जानता हूँ। हीरों, रत्नों और मणि-माणिक्योंकी इतनी राशि इकट्ठी हो गयी थी कि उसके ओर-छोरका पतातक नहीं चलता था। जब रत्नोंकी भेंट लेते-लेते मेरे हाथ थक गये, मैंने क्षणभर विश्राम किया, तब भेंट लिये राजाओंकी भीड़ बड़ी दूरतक लग गयी थी। मय दानव बिन्दुसरोवरसे अनेकों रत्न ले आया है और स्फटिककी शिलाएँ बिछाकर बावली-सी बना दी है। मैंने उसे जल समझ लिया और स्फटिकके गचपर वस्त्र उठाकर चलने लगा। भीमसेनने यह समझकर हँस दिया कि यह हमारी सम्पत्ति देखकर भौचक्का हो गया है और रत्नोंकी पहचानमें तो बिल्कुल मूर्ख है। जिस समय मैं बावलीको स्फटिकका गच समझकर जलमें गिर गया, उस समय तो केवल भीमसेन ही नहीं, कृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ हँसने लगी थीं। इससे मेरे चित्तको बड़ी चोट लगी है। जिन रत्नोंके मैंने कभी नाम भी नहीं सुने थे, उन्हें मैंने पाण्डवोंके पास अपनी आँखों देखा है। समुद्र-पार या समुद्र-तटके वनोंमें रहनेवाले वैराम, पारद, आभीर और कितव जातिके लोग, जो वर्षाके जलसे उत्पन्न अन्नके द्वारा ही जीवननिर्वाह करते हैं, अनेकों रत्न, बकरे, भेड़े, गौ, सुवर्ण,

खच्चर, ऊँट और तरह-तरहके कम्बल लिये भेंट देनेको

माला-पगड़ी, वसुदानने साठ वर्षका हाथी, एकलव्यने जूते, अवन्तिराजने अभिषेकके लिये अनेक तीर्थोंका जल लाकर दिया। शल्यने सुन्दर मूठकी तलवार और सुवर्णजटित पेटी, चेकितानने तरकस और काशिराजने धनुष दिया। इसके बाद पुरोहित धौम्य और महर्षि व्यासने नारद, असित और देवल मुनिके साथ युधिष्ठिरका अभिषेक किया; उस अभिषेकमें महर्षि परशुरामके साथ बहुत-से वेदपारदर्शी ऋषि-महर्षि सम्मिलित हुए थे। उस समय युधिष्ठिर देवराज इन्द्रके समान शोभायमान हो रहे थे। अभिषेकके समय सात्यकिने राजा युधिष्ठिरका छत्र, अर्जुन और भीमसेनने व्यजन तथा नकुल एवं सहदेवने दिव्य चमर ले रक्खे थे। वरुण देवताका कलशोदधि शङ्ख, जिसे ब्रह्माने इन्द्रको दिया था, और सहस्र छिद्रोंका फुहारा, जिसे विश्वकर्माने अभिषेकके लिये तैयार किया था, लेकर श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको दिया और उसीसे उनका अभिषेक किया। पिताजी! यह सब देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। अर्जुनने बड़े गौरव और प्रसन्नता-के साथ पाँच सौ बैल ब्राह्मणोंको दिये। उनके सींग सोनेसे

मढ़े हुए थे। राजसूय यज्ञके समय युधिष्ठिरकी जैसी सौभाग्य-लक्ष्मी चमक रही थी वैसी रन्तिदेव, नाभाग, मान्धाता, मनु, पृथु, भगीरथ, ययाति और नहुषकी भी नहीं होगी। पिताजी! इन्हीं सब कारणोंसे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। चैन नहीं है। मैं दिनोंदिन दुबला और पीला पड़ता जाता हूँ। शोकके समुद्रमें गोते खा रहा हूँ।'

दुर्योधनकी बात सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। पाण्डवोंसे द्वेष मत करो। द्वेषीको मृत्युतुल्य कष्ट भोगना पड़ता है। जब वे तुमसे द्वेष नहीं करते, तब तुम मोहवश उनसे द्वेष करके क्यों अशान्त हो रहे हो! उनकी सम्पत्ति क्यों चाहते हो? यदि तुम्हें उनके समान यज्ञ-वैभवकी चाह है तो ऋत्विजोंको आज्ञा दो, तुम्हारे लिये भी राजसूय महायज्ञ हो जाय। तुम्हें भी राजालोग तरह-तरहकी भेंट दें। बेटा! दूसरेका धन चाहना तो लुटेरोंका काम है। जो अपने धनसे सन्तुष्ट रहकर धर्ममें स्थित रहता है, वही सुखी होता है। दूसरोंका धन मत चाहो। अपने कर्तव्यकर्ममें लगे रहो और जो कुछ तुम्हारे पास है, उसकी रक्षा करो। यही वैभवका लक्षण है। जो विपत्तिसे दबता नहीं, कुशलतासे अपने काम करता है और चाहता है सबकी उन्नति, जो सावधान और विनयी है, उसे सर्वदा मङ्गलके ही दर्शन होते हैं। अरे बेटा! वे तो तेरी रक्षक भुजा हैं। उन्हें काटो मत। उनका धन भी तो तुम्हारा ही धन है न! इस गृहकलहमें अधर्म-ही-अधर्म है। उनके और तुम्हारे दादा एक हैं। तुम क्यों अनर्थका बीज बो रहे हो?'

दुर्योधनने कहा—'पिताजी! आप तो बड़े अनुभवी हैं। आपने जितेन्द्रिय रहकर गुरुजनोंकी सेवा भी की है। फिर आप मेरे कार्य-साधनमें बाधा क्यों डाल रहे हैं? क्षत्रियों-

का प्रधान कर्म है शत्रुपर विजय। फिर इस स्वकर्ममें धर्म-अधर्मकी शङ्का उठानेसे क्या मतलब? गुप्त या प्रकट उपायसे शत्रुओंको दबानेका साधन ही शस्त्र है। केवल मार-काटके साधनोंको ही तो शस्त्र नहीं कहते। असन्तोषसे ही राज्यलक्ष्मी-की प्राप्ति होती है। इसलिये मैं तो असन्तोषसे ही प्रेम करता

उनका यथोचित सत्कार करके पूछा—'विदुरजी! आपका मन कुछ खिन्न-सा जान पड़ता है। आप सकुशल तो आये हैं न? हमारे भाई दुर्योधन आदि राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाका पालन तो करते हैं? वैश्य तो उनके अधीन हैं?' विदुरजीने कहा—"देवराज इन्द्रके समान प्रतापी धृतराष्ट्र अपने पुत्र एवं सगे-सम्बन्धियोंके साथ सकुशल हैं। आपकी कुशल और आरोग्य पूछकर उन्होंने यह सन्देश भेजा है कि 'युधिष्ठिर! मैंने भी तुम्हारी सभा-जैसी एक बड़ी सुन्दर सभा बनवायी है। तुम अपने भाइयोंके साथ आकर उसका निरीक्षण करो और भाइयोंके साथ द्यूत-क्रीडा करो।'" धृतराष्ट्रका सन्देश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—'चाचाजी! द्यूत खेलना तो मुझे कल्याणकारी नहीं जान पड़ता। वह तो केवल झगड़े-बखेड़ेकी ही जड़ है। ऐसा कौन भला आदमी होगा जो जूआ खेलना पसंद करेगा? इस सम्बन्धमें आपकी क्या सम्मति है? हमलोग तो आपके परामर्शके अनुसार ही काम करना चाहते हैं।' विदुरने कहा—'धर्मराज! मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि जूआ

खेलना सारे अनर्थोंका मूल है। मैंने इसे रोकनेके लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न मिली। मैं धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विवश होकर आया हूँ। आप जो उचित समझें, वही करें।' युधिष्ठिरने पूछा—'महात्मन्! क्या वहाँ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन, दुःशासन आदिके सिवा और भी खिलाड़ी इकट्ठे हैं? हमें किनके साथ जूआ खेलनेके लिये बुलाया जा रहा है?' विदुरजीने कहा—'गान्धारराज शकुनिको तो आप जानते ही हैं। वह पासे फेंकनेमें प्रसिद्ध, पासोंका निर्माता और सबसे बड़ा खिलाड़ी है। उसके अतिरिक्त विविंशति, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय आदि भी वहाँ विद्यमान हैं।' युधिष्ठिरने कहा—'चाचाजी! तब तो आपका कहना ही ठीक है। इस समय वहाँ बड़े-बड़े भयानक और मायावी खिलाड़ियोंका जमघट है। अस्तु, सारा संसार ही दैवके अधीन है। कोई स्वतन्त्र नहीं। यदि धृतराष्ट्र मुझे न बुलाते तो मैं शकुनिके साथ जूआ खेलनेके लिये कदापि नहीं जाता।'

धर्मराजने विदुरजीसे ऐसा कहकर आज्ञा की कि 'प्रातःकाल द्रौपदी आदि रानियोंके साथ हम सब भाई हस्तिनापुर चलेंगे।' तैयारी पूरी हो गयी। प्रातःकाल चलनेके समय युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मी उनके रोम-रोमसे फूटी पड़ती थी। हस्तिनापुर पहुँचकर धर्मात्मा युधिष्ठिर भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाके साथ विधिपूर्वक मिले। तदनन्तर वे सोमदत्त, दुर्योधन, शल्य, शकुनि, समागत राजा, दुःशासन आदि भाई, जयद्रथ एवं समस्त कुरुवंशियोंसे मिल-जुलकर राजा धृतराष्ट्रके पास गये। धर्मराजने पतिव्रता गान्धारी एवं प्रज्ञाचक्षु पितातुल्य धृतराष्ट्रको प्रणाम किया। उन्होंने बड़े प्रेमसे पाण्डवोंका सिर सूँघा। पाण्डवोंके आगमनसे कौरवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। धृतराष्ट्रने उन्हें रत्नजटित महलोंमें ठहराया। द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे यथायोग्य मिलीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सब लोग नित्यकर्मसे निवृत्त होकर धृतराष्ट्रकी नवीन सभामें गये। जूएके खिलाड़ियोंने वहाँ सबका सहर्ष स्वागत किया। पाण्डवोंने सभामें पहुँचकर सबके साथ यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद, स्वागत-सत्कार आदिका व्यवहार किया। इसके बाद सब लोग अपनी-अपनी आयुके अनुसार योग्य आसनपर बैठ गये। तदनन्तर मामा शकुनिने प्रस्ताव किया—'धर्मराज! यह सभा आपकी ही प्रतीक्षा कर रही थी। अब पासे डालकर खेल शुरू करना चाहिये।' युधिष्ठिरने कहा—'राजन्! जूआ खेलना तो छलरूप और पापका मूल है। इसमें न तो क्षत्रियोचित वीरता-प्रदर्शनका अवसर है और न तो इसकी कोई निश्चित नीति ही है। जगत्‌का कोई भी भलामानुस जुआरियोंके कपटपूर्ण आचरणकी प्रशंसा नहीं करता। आप जूएके लिये क्यों उतावले हो रहे हैं? आपको निर्दय पुरुषोंके समान

कुमार्गसे हमें पराजित करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।' शकुनिने कहा—'युधिष्ठिर! देखो, बलवान् और शस्त्र-कुशल पुरुष दुर्बल एवं शस्त्रहीनके ऊपर प्रहार करते हैं। ऐसी धूर्तता तो सभी कामोंमें है। जो पासे फेंकनेमें चतुर है, वह यदि कौशलसे अनजानको जीत ले तो उसको धूर्त कहनेका क्या कारण है?' युधिष्ठिरने कहा—'अच्छी बात। यह तो बतलाइये, यहाँके इकट्ठे लोगोंमेंसे मुझे किसके साथ खेलना होगा? और कौन दाव लगावेगा? कोई तैयार हो तो खेल शुरू किया जाय।' दुर्योधनने कहा—'दाव लगानेके लिये धन और रत्न तो मैं दूँगा, परन्तु मेरी ओरसे खेलेंगे मेरे मामा शकुनि।'

जूआ प्रारम्भ हुआ, उस समय धृतराष्ट्रके साथ बहुत-से राजा वहाँ आकर बैठ गये थे—भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य

और विदुरजी भी; यद्यपि उनके मनमें बड़ा खेद था। युधिष्ठिरने कहा कि 'सागरावर्तमें उत्पन्न, सुवर्णके सब आभूषणोंमें श्रेष्ठ परम सुन्दर मणिमय हार मैं दावपर रखता हूँ। अब आप बताइये, आप दावपर क्या रखते हैं?' दुर्योधनने कहा कि 'मेरे पास बहुत-सी मणियाँ और धन हैं। मैं उनके नाम गिनाकर अहङ्कार नहीं दिखाना चाहता। आप इस दावको जीतिये तो!' दाव लग जानेपर पासोंके विशेषज्ञ शकुनिने हाथमें पासे उठाये और बोला, 'यह दाव मेरा रहा।' और इस प्रकार उसने पासे डाले कि सचमुच उसकी जीत रही। युधिष्ठिरने कहा—'शकुने! यह तो तुम्हारी चालाकी है। अच्छा, मैं इस बार एक लाख अठारह हजार मुहरोंसे भरी थैलियाँ, अक्षय धन-भण्डार और बहुत-सी सुवर्ण-राशि दावपर लगाता हूँ।' शकुनिने 'इसको भी मैंने जीत लिया' यह कहकर पासे फेंके और उसीकी जीत हुई। युधिष्ठिरने कहा—'मेरे पास ताँबे और लोहोंकी सन्दूकोंमें चार सौ खजाने बंद हैं। एक-एकमें पाँच-पाँच द्रोण सोना भरा है। वही मैं दावपर लगाता हूँ।' शकुनिने कहा—'लो, मैंने यह भी जीत लिया' और सचमुच जीत लिया। इस प्रकार भयङ्कर जूआ उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। यह अन्याय विदुरजीसे नहीं देखा गया। उन्होंने समझाना-बुझाना शुरू किया।

विदुरजीने कहा—महाराज! मरणासन्न रोगीको औषध अच्छी नहीं लगती। ठीक वैसे ही, मेरी बात आपलोगोंको अच्छी नहीं लगेगी। फिर भी मेरी प्रार्थना ध्यान देकर सुनिये। यह पापी दुर्योधन जिस समय गर्भसे बाहर आया था गीदड़के समान चिल्लाने लगा था। यह कुलक्षण कुरुवंशके नाशका कारण बनेगा। यह कुलकलङ्क आपके घरमें ही रहता है, परन्तु आपको मोहवश इसका ज्ञान नहीं है। मैं आपको नीतिकी बात बतलाता हूँ। जब शराबी शराब पीकर उन्मत्त हो जाता है, तब उसे अपने शराब पीनेका भी होश नहीं रहता। नशा होनेपर वह पानीमें डूब मरता है या धरतीपर गिर पड़ता है। वैसे ही दुर्योधन जूएके नशेमें इतना उन्मत्त हो रहा है कि इसे इस बातका भी पता नहीं है कि पाण्डवोंसे वैर-विरोध मोल लेनेका फल इसकी घोर दुर्दशा होगी। एक भोजवंशी राजाने पुरवासियोंके हितके लिये अपने कुकर्मी पुत्रका परित्याग कर दिया था। भोज-वंशियोंने दुरात्मा कंसको छोड़ दिया था और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा उसके मारे जानेपर वे सुखी हुए थे। राजन्! आप अर्जुनको आज्ञा दीजिये कि वह पापी दुर्योधनको दण्ड देकर ठीक कर दे। इसे दण्ड देनेपर ही कुरुवंशी सैकड़ों वर्षतक सुखी रह सकते हैं। कौए या गीदड़के समान दुर्योधनको त्याग कर मयूर अथवा सिंहके समान पाण्डवोंको अपने पास रख लीजिये। आपको शोक न हो, इसका यही मार्ग है। शास्त्रोंमें स्पष्टरूपसे कहा गया है कि कुलकी रक्षाके लिये एक पुरुषको, गाँवकी रक्षाके लिये एक कुलको, देशकी

रक्षाके लिये एक गाँवको और आत्माकी रक्षाके लिये देशको भी छोड़ दे। सर्वज्ञ महर्षि शुक्राचार्यने जम्भ दैत्यके परित्याग-के समय असुरोंसे एक बड़ी सुन्दर कथा कही थी, उसे मैं आपको सुनाता हूँ।

उन्होंने कहा था कि किसी वनमें बहुत-से पक्षी रहा करते थे। वे सब-के-सब सोना उगला करते थे। उस देशका राजा बड़ा ही लोभी और मूर्ख था। उसने लोभवश अन्धे होकर एक साथ ही बहुत-सा सोना पानेके लिये उन पक्षियों-को मरवा डाला, जब कि वे अपने-अपने घोंसलोंमें निरीह भावसे बैठे हुए थे। इस पापका फल क्या हुआ ? यही कि उसे उस समय तो सोना नहीं ही मिला, आगेका मार्ग भी बंद हो गया। मैं स्पष्ट कहे देता हूँ कि पाण्डवोंकी महान् धनराशि पानेके लालचसे आपलोग उनके साथ द्रोह न करें। नहीं तो उसी लोभान्ध राजाके समान आपलोगोंको भी पीछे पछताना पड़ेगा। राजर्षि भरतकी पवित्र सन्तानो ! जैसे माली उद्यानके वृक्षोंको सींचता है और समय-समयपर खिले पुष्पोंको चुनता भी रहता है, वैसे ही आप पाण्डवोंको स्नेह-जलसे सींचते रहिये और उपहाररूपमें उनसे बार-बार थोड़ा-थोड़ा धन लेते रहिये। वृक्षोंकी जड़में आग लगाकर उन्हें भस्म करनेके समान पाण्डवोंका सर्वनाश करनेकी चेष्टा मत कीजिये। आप निश्चय समझिये, पाण्डवोंके साथ विरोध करनेका फल यह होगा कि आपके सेवक, मन्त्री और पुत्रोंको यमराजका अतिथि बनना पड़ेगा। ये जब इकट्ठे होकर रणभूमिमें आयेंगे, तब देवताओंके साथ स्वयं इन्द्र भी इनका मुकाबला नहीं कर सकेंगे।

सभ्यो ! जूआ खेलना कलहका मूल है। जूएसे आपसका प्रेम-भाव नष्ट हो जाता है। बड़े भयके बनाव बन जाते हैं। दुर्योधन इस समय उसी विपत्तिकी सृष्टिमें संलग्न है। इसके अपराधसे प्रतीक, शान्तनु और बाह्लीकके वंशज घोर सङ्कटमें पड़ जायेंगे। जैसे उन्मत्त बैल अपने सींगोंसे अपने-आपको ही घायल कर लेता है, वैसे ही दुर्योधन उन्माद-वश अपने राज्यसे मङ्गलका बहिष्कार कर रहा है। आप-लोग स्वयं विचार कीजिये। मोहवश अपने विचारका तिरस्कार मत कीजिये। महाराज ! अभी आप दुर्योधनकी जीत देखकर प्रसन्न हो रहे हैं; परन्तु इसीके कारण शीघ्र ही युद्धका आरम्भ होगा, जिसमें बहुत-से वीर मारे जायेंगे। आप बातोंमें तो जूएसे विरोध प्रकट करते हैं, परन्तु भीतर-भीतरसे उसे चाहते हैं। यह विचारहीनता है। पाण्डवोंका विरोध बड़े अनर्थका कारण होगा।

प्रतीप और शान्तनुके वंशजो ! आपलोग इस सभामें दुर्योधन आदिकी व्यङ्ग्योक्ति और कड़ी बातें सहन कर लें, परन्तु इस अज्ञानीके अनुयायी बनकर धधकती आगमें न कूदें। ये जूएके पागल जब पाण्डवोंका भरपेट तिरस्कार कर लेंगे और वे अपना क्रोध न रोक सकेंगे, तब घोर उप-द्रवके समय आपलोगोंमेंसे कौन मध्यस्थ बनेगा ? महाराज ! आप तो जूएके पहले भी कोई दरिद्र नहीं थे, धनी थे। फिर आपने जूएसे धन बटोरनेका उपाय क्यों सोचा ? यदि आप पाण्डवोंका धन जीत भी लें तो इससे आपका क्या भला हो जायगा ? आप पाण्डवोंका धन नहीं, पाण्डवोंको ही अपनाइये। फिर तो उनकी सारी सम्पत्ति अपने-आप आपकी हो जायगी। इस पहाड़ी शकुनिके द्यूत-कौशलसे मैं अपरि-चित नहीं हूँ। यह छल करना खूब जानता है। बस, अब बहुत हो चुका। यह जिस राह आया है, उसी राह शीघ्र इसे यहाँसे लौटा दीजिये। पाण्डवोंके साथ लड़ाई मत ठानिये।

दुर्योधनने कहा—विदुर ! यह कौन-सी बात है कि तुम सदा शत्रुओंकी प्रशंसा और हमलोगोंकी निन्दा करते हो ? अपने स्वामीकी निन्दा करना तो कृतघ्नता है। तुम्हारी जीभ तुम्हारे मनकी बात बतला रही है। तुम भीतर-ही-भीतर हमारे विरोधी हो। तुम हमारे लिये गोदमें बैठे साँपके समान हो और पालनेवालेका गला घोंटनेपर उतारू हो। इससे बढ़कर पाप और क्या होगा ? क्या तुम्हें इसका भय नहीं है ? तुम समझ लो कि मैं चाहे जो कर सकता हूँ। मेरा अपमान मत करो और कड़वी बात भी मत बोला करो। मैं तुमसे अपने हितके सम्बन्धमें कब पूछता हूँ ? बहुत सह चुका, हद हो गयी। अब मुझे मत बेधो। देखो, संसारका शासन करनेवाला एक ही है, दो नहीं हैं। वही माताके गर्भमें भी शिशुपर शासन करता है। मैं भी उसीके शासनके अनुसार काम कर रहा हूँ। तुम बीचमें उछल-कूद मचाकर शत्रु मत बनो, मेरे काममें हस्तक्षेप मत करो। प्रज्वलित आगको उकसाकर भाग जाना चाहिये। नहीं तो ढूँढे राख भी नहीं मिलती। तुम्हारे-जैसे शत्रुपक्षके मनुष्यको अपने पास नहीं रखना चाहिये। इसलिये तुम जहाँ चाहो, चले जाओ। यहाँ तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।

विदुरने कहा—'दुर्योधन! तुम अच्छे-बुरे सभी कामोंमें
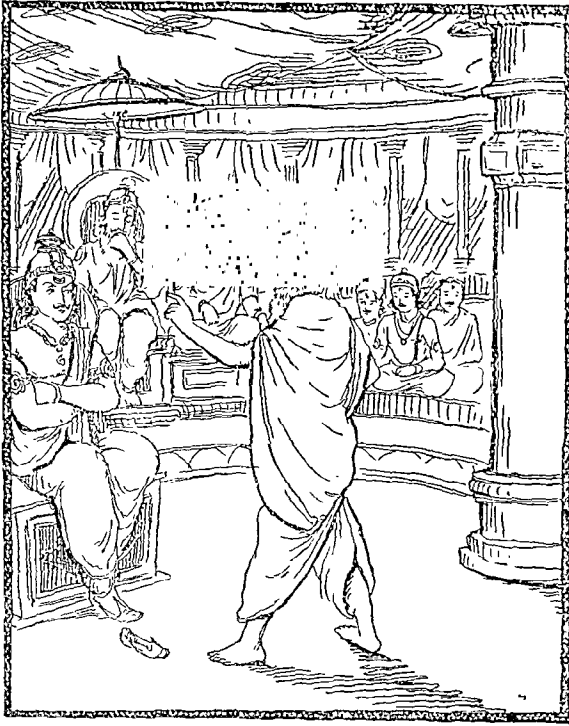
मीठी बात सुनना चाहते हो? अरे भाई! तब तो तुम्हें स्त्रियों और मूर्खोंकी सलाह लेनी चाहिये। देखो, चिकनी-चुपड़ी कहनेवाले पापियोंकी कमी नहीं है। परन्तु वैसे लोग बहुत दुर्लभ हैं, जो अप्रिय किन्तु हितकारी बात कहें-सुनें। जो अपने स्वामीके प्रिय-अप्रियका ख्याल न करके धर्मपर अटल रहता है और अप्रिय होनेपर भी हितकारी बात कहता है, वही राजाका सच्चा सहायक है। देखो, क्रोध एक तीखी जलन है; यह बिना रोगका रोग है, कीर्तिनाशक और घोर दुर्गन्धयुक्त है। इसे सत्पुरुष ही शमन कर सकते हैं, दुर्जन नहीं। तुम इसे पी जाओ और शान्ति प्राप्त करो। मैं सर्वदा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रोंके धन और यशकी बढ़ती चाहता हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो करो। मैं तुम्हें दूरसे नमस्कार करता हूँ।' विदुरजी मौन हो गये।

शकुनिने कहा—'युधिष्ठिर! अबतक तुम बहुत-सा धन हार चुके हो। यदि तुम्हारे पास कुछ और बच रहा हो तो दावपर रक्खो।' युधिष्ठिरने कहा—'शकुने! मेरे पास असंख्य धन है। उसे मैं जानता हूँ। तुम पूछनेवाले कौन? अयुत, प्रयुत, पद्म, अर्बुद, खर्व, शङ्ख, निखर्व, महापद्म, कोटि, मध्यम और परार्ध तथा इससे भी अधिक धन मेरे पास है। मैं सब दावपर लगाता हूँ।' शकुनिने पासा फेंकते हुए कहा—'यह लो, जीत लिया मैंने।' युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणों और उनकी सम्पत्तिको छोड़कर नगर, देश, भूमि, प्रजा और उसका धन मैं दावपर लगाता हूँ।' शकुनिने पूर्ववत् छलसे पासे फेंककर कहा—'लो, यह भी मेरा रहा।' अब युधिष्ठिरने कहा—'जिनके नेत्र लाल-लाल और सिंहके-से कन्धे हैं, जिनका वर्ण श्याम और भरी जवानी है, उन्हीं नकुलको, हाँ अपने प्यारे भाई नकुलको मैं दावपर लगाता हूँ।' शकुनिने कहा—'अच्छा, तुम्हारे प्यारे भाई राजकुमार नकुल भी अधीन हो गये।' और पासे फेंककर उसने फिर कहा—'हमारी जीत रही।' युधिष्ठिरने कहा—'मेरे भाई सहदेव धर्मके व्यवस्थापक हैं। इन्हें सब लोग पण्डित कहते हैं। अवश्य ही मेरे प्यारे भाई सहदेव दावपर लगानेयोग्य नहीं हैं। फिर भी मैं इन्हें दावपर रखता हूँ।' शकुनिने पूर्ववत् सहदेवको भी जीत लिया। युधिष्ठिरने कहा—'मेरे भाई अर्जुन प्रतापी वीर और संग्रामविजयी हैं। ये दावपर लगानेयोग्य नहीं हैं। फिर भी मैं इन्हें दावपर रखता हूँ।' शकुनिने फिर छलसे पासे फेंककर अपनी जीत घोषित कर दी। युधिष्ठिरने कहा—'भीमसेन हमारे सेनापति हैं। ये अनुपम बली हैं। इनके कन्धे सिंहके समान हैं। भौंहें चढ़ी रहती हैं। गदा-युद्धमें प्रवीण हैं और सर्वदा शत्रुओंपर क्रोधित रहते हैं। मेरे भाई भीमसेन अवश्य ही दावपर रखनेयोग्य नहीं हैं। फिर भी मैं इन्हें दावपर रखता हूँ।' शकुनिने इस बार भी अपनी जीत बतलायी। युधिष्ठिरने कहा कि 'मैं सब भाइयोंमें बड़ा और सबका प्यारा हूँ। मैं अपनेको दावपर लगाता हूँ। यदि मैं हार जाऊँगा तो तुम्हारा काम करूँगा।' शकुनिने कहा—'यह मारा' और पासे फेंककर अपनी जीत घोषित कर दी।

शकुनिने धर्मराजसे कहा—'राजन्! तुमने अपनेको जूएमें हारकर बड़ा अनर्थ किया, क्योंकि दूसरा धन पास रहते अपनेको हार जाना बड़ा अन्याय है। अभी तो तुम्हारे पास दावपर लगानेके लिये तुम्हारी प्रिया द्रौपदी बाकी है। तुम उसे दावपर लगाकर अबकी बार जीत लो।' युधिष्ठिरने कहा—'शकुने! द्रौपदी सुशीलता, अनुकूलता और प्रिय-वादिता आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। वह चरवाहों और सेवकोंसे भी पीछे सोती है, सबसे पहले जागती है। सभी कार्योंके होने-न-होनेका ख्याल रखती है। हाँ, उसी सर्वाङ्ग-सुन्दर लावण्यमयी द्रौपदीको मैं दावपर रख रहा हूँ, यद्यपि ऐसा करते समय मुझे महान् कष्ट हो रहा है।' युधिष्ठिरके

ऐसा कहनेपर चारों ओरसे धिक्कारकी बौछारें आने लगीं। सारी सभा क्षुब्ध हो उठी। सभ्य राजा शोकाकुल हो गये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महात्माओंके शरीर पसीनेसे लथपथ हो गये। विदुरजी सिर पकड़कर लंबी साँस लेते हुए मुँह लटकाकर चिन्ताग्रस्त हो गये। धृतराष्ट्र हर्षित हो रहे थे। वे बार-बार पूछते—'क्या हमारी जीत हो गयी?' दुःशासन, कर्ण आदिकी खल-मण्डली हँसने लगी। परन्तु सभासदोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। दुष्टात्मा शकुनिने विजयोन्मादसे मत्त होकर 'यह लिया' कहकर छलसे पासे फेंके और अपनी विजय घोषित कर दी।

कौरव-सभामें द्रौपदी

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब दुर्योधनने विदुरजीको पुकारकर कहा—'विदुर! तुम यहाँ आओ। तुम जाकर पाण्डवोंकी प्रियतमा सुन्दरी द्रौपदीको शीघ्र ले आओ। वह अभागिनी यहाँ आकर हमारे महलमें झाड़ू लगावे और दासियोंके साथ रहे।' विदुरजीने कहा—'मूर्ख! तुझे पता नहीं है कि तू फाँसीमें लटक रहा है और मरनेवाला है। तभी तो तेरे मुँहसे ऐसी बात निकल रही है। अरे! तू इन पाण्डव-सिंहोंको क्यों क्रोधित कर रहा है? तेरे सिरपर विषैले साँप क्रोधसे फन फैला-फैलाकर फुफकार रहे हैं। तू उनसे छेड़खानी करके यमपुरी मत जा। देख, द्रौपदी कभी दासी नहीं हो सकती। युधिष्ठिरने अनधिकार उसे दावपर लगाया है। सभासदो! जब बाँसका नाश होनेपर होता है, तब उसमें फल लगते हैं। मतवाले दुर्योधनने जड़-मूलसे नष्ट होनेके लिये ही जूएके खेलसे घोर वैर और महाभयकी सृष्टि की है। मरणासन्न पुरुषको हिताहितका ज्ञान नहीं होता। किसीको मर्मवेधी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये। कठोर और उद्वेगकारी वचनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह सब अधःपतनका हेतु है। कड़वी बात निकलती तो मुँहसे है; पर जिसके लिये निकलती है, उसके मर्मस्थानमें चुभकर रात-दिन विह्वल किया करती है। इसलिये ऐसा कभी नहीं करना चाहिये। धृतराष्ट्र बड़े भयङ्कर और विकट सङ्कटके निकट पहुँच गया है। दुःशासन आदि भी इसीकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। चाहे तूँबा जलमें डूब जाय, पत्थर तैरने लगे; परन्तु यह मूर्ख मेरी हितकारी बात नहीं मानेगा। यह मित्रोंकी श्रेष्ठ और हितभरी बात नहीं सुनता। इसका लोभ बढ़ता जा रहा है। इससे निश्चय होता है कि शीघ्र ही कौरवोंके सर्वस्वनाशका हेतु भयङ्कर विध्वंस होगा।'

अब मदान्ध दुर्योधनने विदुरको धिक्कारकर भरी सभामें प्रातिकामीसे कहा—'तुम इसी समय जाकर द्रौपदीको ले आओ। पाण्डवोंसे डरनेकी कोई बात नहीं है।' प्रातिकामी दुर्योधनके आज्ञानुसार द्रौपदीके पास गया और कहा—'सम्राज्ञी! सम्राट् युधिष्ठिर जूएमें सब धन हार गये। जब दावपर लगानेको कुछ न रहा तब उन्होंने भाइयोंको, अपनेको और अन्तमें आपको भी हार दिया। अब आप दुर्योधनकी जीती हुई वस्तुओंमें हैं। आपको लानेके लिये उन्होंने मुझे भेजा है। जान पड़ता है अब कौरवोंका नाश निकट आया है।' द्रौपदीने कहा—'सूतपुत्र! अवश्य विधाताका यही विधान है। बालक, वृद्ध सभीपर दुःख-सुख तो पड़ते ही हैं। जगत्में धर्म सबसे बड़ी वस्तु है। यदि हम दृढ़तासे धर्मपर आरूढ़ रहें तो वह हमारी रक्षा करेगा। तुम सभामें जाओ और वहाँके धर्मात्माओंसे पूछो कि ऐसे अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये। मैं धर्मका उल्लङ्घन नहीं करना चाहती।' द्रौपदीकी बात सुनकर प्रातिकामी सभामें लौट आया और सभासदोंसे पूछा कि द्रौपदीको क्या उत्तर दें। उस समय सभासदोंने अपना-अपना मुँह नीचे कर लिया। दुर्योधनका हठ जानकर किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। महात्मा पाण्डव उस समय बड़े दुखी और दीन हो रहे थे। वे सत्यसे बँधे होनेके कारण क्या करना चाहिये, इसका ठीक-ठीक निर्णय करनेमें असमर्थ थे। पाण्डवोंकी खिन्नतासे लाभ उठाकर दुर्योधनने कहा—'प्रातिकामी! जा, तू द्रौपदीको यहीं ले आ। उसके प्रश्नका उत्तर यहीं दे दिया जायगा।' प्रातिकामी द्रौपदीके क्रोधसे भी डरता था। उसने दुर्योधनकी बात टालकर सभासदोंसे फिर पूछा कि 'मैं द्रौपदीसे क्या कहूँ?' दुर्योधनको यह बात बहुत बुरी लगी। उसने प्रातिकामीकी ओर कठोर दृष्टिसे देखकर अपने छोटे भाई दुःशासनसे कहा—'भाई! यह क्षुद्र प्रातिकामी भीमसेनसे डर रहा है। इसलिये तुम स्वयं जाकर द्रौपदीको पकड़ लाओ। ये हारे हुए पाण्डव तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।'

बड़े भाईकी आज्ञा सुनते ही दुःशासन लाल-लाल नेत्र किये वहाँसे चल पड़ा और पाण्डवोंके निवासस्थानमें आकर

द्रौपदीसे बोला—'कृष्णे ! चल, तुझे हमने जीत लिया है । अब लज्जा छोड़कर दुर्योधनको देख । सुन्दरी ! हमने धर्मतः तुझे पा लिया है । अब सभामें चल और कौरवोंकी सेवा कर ।' दुःशासनकी बात सुनकर द्रौपदीका हृदय दुःखसे भर आया । मुँह मलिन हो गया । वह आर्तभावसे मुँह ढककर राजा धृतराष्ट्रके रनिवासकी ओर दौड़ी । पापी दुःशासनने क्रोधसे भरकर उसे डाँटा और पीछेसे दौड़कर महारानी द्रौपदीके नीले-नीले घुँघराले और लंबे बालोंको पकड़ लिया । हाय ! हाय !! अभी यही बाल कुछ ही दिनों पहले राजसूय-यज्ञमें अवभृय स्नानके समय मन्त्रपूत जलसे सींचे गये थे । दुरात्मा दुःशासन पाण्डवोंका तिरस्कार करनेके लिये आज उन्हीं बालोंको बलपूर्वक पकड़कर द्रौपदीको अनाथके समान घसीटता चला जा रहा है । द्रौपदीका रोम-रोम काँप रहा था । शरीर झुक गया था । वे खिंची जा रही थीं । द्रौपदीने धीरेसे कहा—'अरे मूढ़ दुरात्मा दुःशासन ! मैं रजस्वला हूँ, एक ही वस्त्र पहने हूँ । ऐसी अवस्थामें मुझे वहाँ ले जाना अनुचित है ।' दुःशासनने द्रौपदीकी बातपर कुछ ध्यान न देकर केशोंको और भी जोरसे पकड़ा और बोला—'द्रुपदकी बेटी ! तू रजस्वला हो या एकवस्त्रा, भले ही तू नंगी हो, हमने तुझे जूएमें जीता है । तू हमारी दासी है । अब तुझे नीच स्त्रियोंके समान हमारी दासियोंमें रहना पड़ेगा ।' दुःशासन द्रौपदीको सभामें घसीट लाया ।

दुःशासनके घसीटनेसे द्रौपदीके केश बिखर गये । आधे शरीरसे वस्त्र खिसक गया । वह लज्जावश क्रोधसे लाल होकर धीरे-धीरे बोली—'अरे दुष्ट ! इस सभामें सभी शास्त्रके ज्ञाता, क्रियावान्, इन्द्रके समान प्रतिष्ठित मेरे गुरुजन बैठे हैं । इनके सामने इस दशामें मैं कैसे खड़ी हो सकूँगी ? अरे दुराचारी ! मुझे घसीट मत, नग्न मत कर । इस नीच कर्मसे तनिक डर तो सही । देख, यदि इन्द्रके साथ सारे देवता तेरी सहायता करें तो भी पाण्डवोंके हाथसे तेरा छुटकारा न होगा । धर्मराज अपने धर्मपर अटल हैं, वे सूक्ष्म धर्मका मर्म जानते हैं । मुझे तो उनमें गुण-ही-गुण दीखते हैं, तनिक भी दोष नहीं दीखता । हाय-हाय ! भरतवंशको धिक्कार है । इन कुपूतोंने क्षत्रियत्वका नाश कर दिया । ये सभामें बैठे हुए कौरव अपनी आँखों कुलकी मर्यादाका नाश देख रहे हैं । द्रोण, भीष्म और महात्मा विदुरका आत्मबल कहाँ गया ? बड़े-बूढ़े इस अधर्मको क्यों देख रहे हैं ?' द्रौपदीने यह बात क्रोधित पाण्डवोंकी ओर कनखियोंसे देखते-देखते ही कही, मानो वह उनके शरीरमें दहकती क्रोधाग्निको और भी धधका रही हो । उस समय पाण्डवोंको जैसा दुःख हुआ वैसा सम्पूर्ण राज्य, धन और श्रेष्ठ रत्नोंके छिन जानेपर भी नहीं हुआ था । पाण्डवोंकी ओर देखते देखकर दुःशासनने और भी जोरसे द्रौपदीको घसीटा और 'ओ दासी ! ओ दासी !' कहकर ठठाकर हँसने लगा । कर्णने प्रसन्नतासे उसकी बातका समर्थन किया और शकुनिने उसकी प्रशंसा की । इन तीनोंके अतिरिक्त सभी सभासद् यह क्रूर कर्म देखकर अत्यन्त दुःखी हुए ।

द्रौपदीने कहा—इन छली पापात्माओंने धूर्ततासे धर्मराजको जूआ खेलनेके लिये तैयार कर लिया और छलसे उन्हें और उनके सर्वस्वको जीत लिया । उन्होंने पहले अपने भाइयोंको, तब अपनेको हारकर मुझे दावपर लगाया है । मैं यह जानना चाहती हूँ कि अब उन्हें मुझे दावपर लगानेका धर्मके अनुसार अधिकार था या नहीं । यहाँ सभामें अनेकों कुरुवंशी बैठे हैं । वे मेरे प्रश्नपर विचार करके ठीक-ठीक उत्तर दें । पाण्डवोंका दुःख और द्रौपदीकी कातरता देखकर धृतराष्ट्रनन्दन विकर्णने कहा—'सभासदो ! द्रौपदीके प्रश्नके सम्बन्धमें हम सभी लोगोंको ठीक-ठीक विचारकर उत्तर देना चाहिये । इसमें त्रुटि होनेपर हमें नरकगामी होना पड़ेगा । भीष्मपितामह, पिता धृतराष्ट्र और महामति विदुरजी इस विषयमें परामर्श करके उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं ? आचार्य द्रोण और कृपाचार्य क्यों चुप हैं ? ये राजा राग-द्वेष छोड़कर क्यों नहीं इस प्रश्नका निर्णय करते ? आपलोग पतिव्रता द्रौपदीके प्रश्नपर विचार करके अलग-अलग अपना मत प्रकट कीजिये ।'

इस प्रकार विकर्णके बार-बार कहनेपर भी किसीने कुछ नहीं कहा । अब विकर्ण हाथ मलकर लंबी साँस लेता हुआ बोला—'कौरवो ! ये सभासद् उत्तर दें या न दें । इस विषयमें मैं जिस बातको न्यायसङ्गत समझता हूँ, वह कहे बिना न रहूँगा । श्रेष्ठ पुरुषोंने राजाओंके चार व्यसन बहुत बुरे बतलाये हैं—शिकार, शराब, जूआ और स्त्री-प्रसङ्गमें आसक्ति । इनमें संलग्न होनेपर मनुष्यका पतन हो जाता है । यहाँ जुआरियोंके बुलानेपर राजा युधिष्ठिरने आकर जूएकी आसक्तिवश द्रौपदीको दावपर लगा दिया । द्रौपदी केवल युधिष्ठिरकी ही स्त्री नहीं, उसपर पाँचों पाण्डवोंका समान अधिकार है । यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि युधिष्ठिरने अपनेको हारनेके बाद द्रौपदीको दावपर लगाया । इसलिये मेरे विचारसे युधिष्ठिरको यह अधिकार नहीं था कि वे द्रौपदीको दावपर लगायें । दूसरी बात यह है कि उन्होंने स्वेच्छासे नहीं, शकुनिकी प्रेरणासे उसे दावपर रक्खा था । इन सब बातोंसे मैं तो इस निश्चयपर

पहुँचता हूँ कि द्रौपदी जूएमें नहीं हारी गयी ।' विकर्णकी बात सुनकर सभी सभासद् उसकी प्रशंसा और शकुनिकी निन्दा करने लगे । चारों ओर कोलाहल होने लगा । शान्ति होनेपर कर्णने क्रोधमें भरकर विकर्णका हाथ पकड़ लिया और बोला—'विकर्ण! तू इतनी उल्टी बातें क्यों कर रहा है ? मालूम होता है कि तू अरणिसे उत्पन्न अग्निके समान अपने वंशका ही सत्यानाश करना चाहता है । द्रौपदीके बार-बार पूछनेपर भी कोई सभासद् उत्तर नहीं दे रहा है, इसका अर्थ यह है कि सब लोग उसको धर्मके अनुसार जीती हुई मानते हैं । तू बचपनके कारण धीरज खोकर बड़े-बूढ़ोंकी-सी बातें बना रहा है । एक तो तू दुर्योधनसे छोटा और दूसरे धर्मके मर्मसे अनभिज्ञ है । तेरी तुच्छ बुद्धिके निर्णयका महत्त्व ही क्या है ? युधिष्ठिरने अपना सर्वस्व दावपर लगाकर हार दिया, तब द्रौपदी बिना जीती कैसे रही ? द्रौपदी भी तो 'सर्वस्व' के भीतर ही है । क्या द्रौपदीको दावपर लगानेमें पाण्डवोंकी सम्मति नहीं थी ? यदि तू ऐसा समझता है कि द्रौपदीको रजस्वला होनेके समय सभामें नहीं लाना चाहिये था तो इसका उत्तर भी सुन । देवताओंने स्त्रीके लिये एक ही पतिका विधान किया है । द्रौपदी पाँच पतियोंकी स्त्री होनेके कारण निस्सन्देह वेश्या है । इसलिये मेरी समझसे इसे एकवस्त्रा अथवा वस्त्रहीना होनेपर भी सभामें लाना अनुचित नहीं है । अतः पाण्डव, उनकी पत्नी द्रौपदी और उनका सब धन जीत लिया गया है ।' अब कर्णने दुःशासनकी ओर देखकर कहा—'दुःशासन ! विकर्ण बालक होकर बड़े-बूढ़ोंकी-सी बातें कर रहा है । इसपर ध्यान मत दो और द्रौपदी तथा पाण्डवोंके सारे वस्त्र उतार लो ।' कर्णकी बात सुनते ही पाण्डवोंने अपने ऊपरके वस्त्र उतार डाले और दुःशासन बलपूर्वक द्रौपदीका वस्त्र उतारनेका प्रयत्न करने लगा ।

जिस समय दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र खींचने लगा, द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी—'हे गोविन्द ! हे द्वारकावासी ! हे सच्चिदानन्दस्वरूप प्रेमघन ! हे गोपीजनवल्लभ ! हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! कौरव मुझे अपमानित कर रहे हैं । क्या यह बात आपको मालूम नहीं है ? हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्तिनाशन जनार्दन ! मैं कौरवोंके समुद्रमें डूब रही हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये । हे कृष्ण ! आप सच्चिदानन्दस्वरूप महायोगी हैं । आप सर्वस्वरूप एवं सबके जीवनदाता हैं । गोविन्द ! मैं कौरवोंसे घिरकर बड़े सङ्कटमें पड़ गयी हूँ । आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये ।'*

द्रौपदी त्रिभुवनपति भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणमें तन्मय हो मुँह ढककर रोने लगी । उसकी आर्त पुकार भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँची, उनका हृदय करुणासे भर आया । भक्तवत्सल प्रभु प्रेमपरवश होकर द्वारकाकी सेज, भोजन और लक्ष्मीको भी भूल गये और दौड़े-दौड़े द्रौपदीके पास पहुँचे । उस समय द्रौपदी अपनी रक्षाके लिये 'हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे हरे !' इस प्रकार पुकार-पुकारकर छटपटा रही थी । धर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने गुप्तरूपसे वहाँ आकर बहुत-से सुन्दर वस्त्रोंसे द्रौपदीको सुरक्षित कर दिया । दुरात्मा दुःशासन द्रौपदीको नंगी करनेके लिये वस्त्रोंको जितना ही खींचता, उतनी ही वस्त्रोंकी बढ़ती होती जाती । इस प्रकार रंग-बिरंगे बहुत-से वस्त्रोंका ढेर लग गया । धन्य है ! धर्मकी महिमा अद्भुत है ! श्रीकृष्णकी कृपा अनिर्वचनीय है । चारों ओर सभामें हलचल मच गयी । यह अद्भुत घटना देखकर सभी सभासद् स्पष्टरूपसे दुःशासनको धिक्कारने और द्रौपदीकी प्रशंसा करने लगे ।

उस समय भीमसेनके दोनों होंठ क्रोधसे काँप रहे थे । उन्होंने भरी सभामें हाथ-से-हाथ मलकर गरजते हुए शपथ ली—'देश-देशान्तरके नृपतिगण ! ध्यानसे मेरी बात सुनें । ऐसी बात न कभी किसीने कही होगी और न कोई आगे

---

* गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥
(६७ । ४१-४४)

द्रौपदी-लज्जा-रक्षा
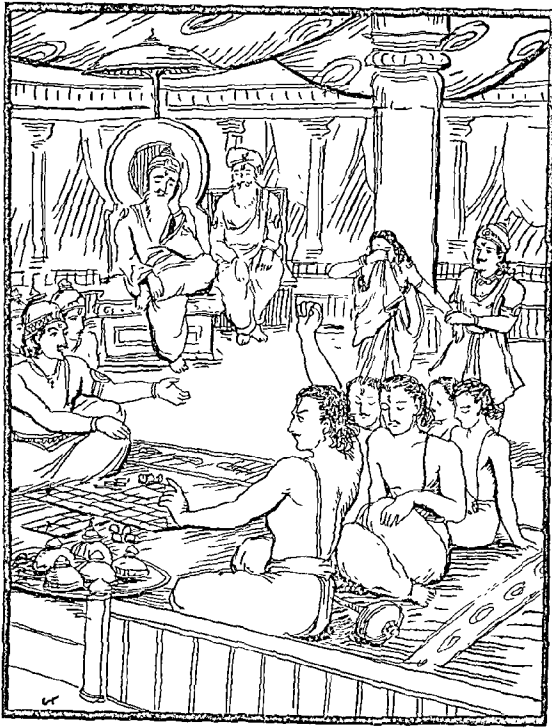
कहेगा। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, यदि वैसा ही न करूँ तो मुझे अपने पूर्वपुरुषोंकी गति न मिले। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं रणभूमिमें बलात्कारसे भरतकुलकलङ्क पापी दुरात्मा दुःशासनकी छाती फाड़ डालूँगा और उसका गरम-गरम खून पीऊँगा।' भीमसेनकी भीषण प्रतिज्ञा सुनकर सभीके रोंगटे खड़े हो गये। सभी सभासद् भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा और दुःशासनकी निन्दा करने लगे। अबतक दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र खींचते-खींचते थक गया था। वस्त्रोंका ढेर लग गया और वह अपनी असमर्थतापर खीझकर लज्जाके मारे बैठ गया। चारों ओर तहलका मच गया। दुःशासनके लिये सबके मुँहसे 'धिक्कार-धिक्कार' के शब्द निकलने लगे। लोग कहने लगे कि 'कौरव द्रौपदीके प्रश्नोंका उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय-हाय ! यह तो बड़े खेदकी बात है।'

अब धर्मके मर्मज्ञ विदुरजीने हाथ उठाकर सबको शान्त करते हुए कहा—''सभासद्वृन्द ! द्रौपदी आपलोगोंके सामने प्रश्न रखकर अनाथके समान रो रही है। परन्तु आपलोगोंमें-से कोई भी उसके प्रश्नका उत्तर नहीं देता। यह अधर्म है। आर्त पुरुष दुःखाग्निसे जलकर ही सभाकी शरण लेता है। सभासदोंको चाहिये कि सत्य और धर्मका आश्रय लेकर उसे शान्ति दें। श्रेष्ठ पुरुषोंको सत्यके अनुसार धर्मसम्बन्धी प्रश्नों-की मीमांसा अवश्य करनी चाहिये। विकर्णने अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर दे दिया है। अब आपलोग भी राग-द्वेषके वेगको रोककर द्रौपदीके प्रश्नका उचित उत्तर दीजिये। जो धर्मज्ञ पुरुष सभामें जाकर किसीके प्रश्नका उत्तर नहीं देता, उसको आधा झूठ बोलनेका पाप लगता है। जो झूठी बात कहता है, उसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या ? इस विषयमें मैं आपलोगोंको एक इतिहास सुनाता हूँ।

वह इतिहास यह है कि एक बार दैत्यराज प्रह्लादके पुत्र विरोचन और अङ्गिरा ऋषिके पुत्र सुधन्वाने एक कन्या प्राप्त करनेके लिये आपसमें विवाद कर लिया और 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ' ऐसी प्रतिज्ञा करके दोनोंने प्राणोंकी बाज़ी लगा ली। इस विवादका निर्णय करनेके लिये दोनोंने प्रह्लादजीको ही चुना। उनके पास जाकर दोनोंने पूछा—'आप ठीक-ठीक निर्णय दीजिये कि हम दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है।' प्रह्लादजी बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। एक ओर पुत्रके प्राण और दूसरी ओर धर्म ! कुछ भी निश्चय न कर सकनेके कारण प्रह्लादजी महर्षि कश्यपके पास गये और उनसे पूछा—'महाभाग ! आप देवता, असुर और ब्राह्मणोंका धर्म जानते हैं। मैं इस समय बड़े धर्म-सङ्कटमें हूँ। आप कृपा करके यह बतलाइये कि किसी प्रश्नका उत्तर न देनेसे तथा जान-बूझकर कुछ-का-कुछ उत्तर देनेसे क्या गति होती है।' महर्षि कश्यपने कहा—'जो जान-बूझकर राग-द्वेष अथवा भयके कारण ठीक-ठीक उत्तर नहीं देता, अथवा जो गवाह गवाही देनेमें ढिलाई करता है या कुछ-का-कुछ कह देता है, वह वरुणके सहस्र पाशोंसे बाँधा जाता है। प्रत्येक वर्षमें उसके पाशकी एक-एक गाँठ खुलती है। इसलिये जिसे सत्यका सुस्पष्ट ज्ञान हो, उसे सत्य ही बोलना चाहिये। जिस सभामें अधर्मसे धर्मको दबा दिया जाता है और वहाँके सभासद् अधर्मको नहीं हटाते तो सभासद् ही पापभागी होते हैं। जिस सभामें निन्दित पुरुषकी निन्दा नहीं होती, वहाँ सभापतिको उसके अधर्मका आधा, करनेवालेको चौथाई और अन्य सभासदोंको भी पापका चौथाई भाग प्राप्त होता है। जहाँ निन्दित पुरुषकी निन्दा होती है, वहाँ सभापति और सदस्य पाप-मुक्त रहते हैं, सारा पाप केवल कर्त्ताको ही लगता है। प्रह्लाद ! जो जान-बूझकर प्रश्नका उत्तर धर्मके प्रतिकूल देते हैं, उनकी आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियाँ और श्रौत-स्मार्त

आदि शुभकर्म नष्ट हो जाते हैं। साथियोंसे धोखा खानेपर मनुष्यको बहुत बड़ा दुःख होता है। जो पुरुष झूठ बोलता है, उसे उससे भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है। प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर और धारणासे भी गवाही दी जा सकती है। सत्यवादी साक्षीके धर्म और अर्थ नष्ट नहीं होते।' सभासदो! कश्यपजीकी बात सुनकर दैत्यराज प्रह्लादने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा विरोचन! सुधन्वाके पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं। सुधन्वाकी माता तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ हैं। और सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये अब ये सुधन्वा ही तुम्हारे प्राणोंके स्वामी हैं। ये चाहे तुम्हारे प्राण ले लें और चाहे छोड़ दें।' प्रह्लादकी सत्यवादितासे प्रसन्न होकर सुधन्वाने कहा—'प्रह्लाद! आप पुत्रके प्रेम-परवश न हो धर्मपर अटल रहे। इसलिये मैं आपके पुत्र विरोचनको आशीर्वाद देता हूँ कि वह सौ वर्षतक जीवित रहे।' अवश्य ही धर्मपर दृढ़ रहनेसे प्रह्लाद अपने पुत्रको मृत्युसे और अपनेको अधर्मसे बचानेमें समर्थ हुए। सभासदो! आपलोग अपने धर्म और सत्यकी दृष्टिसे द्रौपदीके प्रश्नका उचित उत्तर दें।

विदुरजीकी बात सुनकर भी सभासदोंमेंसे किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। कर्णने कहा—'दुःशासन भाई! इस दासी द्रौपदीको घर ले जाओ।' कर्णकी आज्ञा पाते ही दुःशासन भरी सभामें द्रौपदीको घसीटने लगा। वह लज्जावश काँपने लगी और पाण्डवोंकी ओर देखकर बोली—'पहले जब महलमें मुझे वायु छू जाया करती, तब पाण्डवोंसे सहन नहीं होता। आज यह दुरात्मा भरी सभामें मुझे घसीट रहा है, पर वे शान्तभावसे बैठे सह रहे हैं। मैं कौरवोंकी पुत्रीके समान पुत्रवधू हूँ। पर वे मुझे इस क्लेशमें पड़ी देख चूँतक नहीं करते। यही समयका फेर है। इससे अधिक दयनीय बात और क्या होगी कि मैं आज भरी सभामें घसीटी जा रही हूँ? आज राजाओंका धर्म कहाँ गया? धर्मपरायणा स्त्रीको इस प्रकार सभामें लाकर कौरवोंने अपना सनातन-धर्म नष्ट किया है। मैं पाण्डवोंकी सहधर्मिणी, धृष्टद्युम्नकी बहिन और श्रीकृष्णकी कृपापात्र हूँ। हाय! न जाने क्यों आज मेरी दुर्दशा की जा रही है। कौरवो! मैं धर्मराजकी पत्नी और क्षत्राणी हूँ। तुम मुझे दासी बनाओ चाहे अदासी, जो कहो करूँगी; परन्तु यह दुःशासन कौरवोंकी कीर्तिमें कलङ्क-कालिमा लगाकर मुझे जो दुःख दे रहा है, उसे मैं नहीं सह सकती। तुमलोग मुझे जीती हुई समझते हो या नहीं? स्पष्ट बतला दो, मैं वैसा ही करूँगी।'

भीष्मपितामहने कहा—कल्याणी! धर्मकी ग बड़ी गहन है। बड़े-बड़े विद्वान्, बुद्धिमान् भी उसका रह समझनेमें भूल कर जाते हैं। जो धर्म सबसे बलवान् अ सर्वोपरि है, वही अधर्मके उत्थानके समय दब जाता है तुम्हारा प्रश्न बड़ा सूक्ष्म, गहन और गौरवपूर्ण है। क भी निश्चयपूर्वक इसका निर्णय नहीं दे सकता। इस सम कौरव लोभ और मोहके वश हो गये हैं। यह इस बात सूचना है कि शीघ्र ही कुरुकुलका नाश हो जायगा। तु जिस कुलकी बहू हो, उस कुलके लोग बड़े-बड़े दुःख सहक भी धर्म-मार्गसे नहीं डिगते। इसीसे इस दुर्दशामें पड़क भी तुम्हारा धर्मकी ओर देखना इस कुलके अनुरूप ही है धर्मके मर्मज्ञ द्रोण, कृप आदि इस समय सिर झुकाक प्राणहीनके समान सुन्न बैठे हैं। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रश्नका जैसा उत्तर दें, उसे ही प्रमा माना जाय। तुम जीती गयी या नहीं, इसको स्वयं वे ही कहें।

सभाके सभी लोग दुर्योधनसे भयभीत होनेके कारण द्रौपदीकी दुर्दशा और उसका करुण-क्रन्दन सुनकर भी उचित-अनुचित कुछ नहीं बोले। दुर्योधनने मुसकराकर द्रौपदीसे कहा—'द्रुपदकी बेटी! तेरा यह प्रश्न तेरे उदार स्वभाव पति भीम, अर्जुन, सहदेव और नकुलके प्रति हो रहा। ये ही तेरे प्रश्नका उत्तर क्यों नहीं देते? यदि ये आज सभ्योंके सामने कह दें कि युधिष्ठिरका तुझपर कोई अधिकार नहीं और उन्हें झूठा ठहरा दें तो तू अभी दासीपने-से मुक्त हो सकती है।'

भीमसेनने अपनी चन्दनचर्चित दिव्य भुजा उठाकर कहा—'सभासदो! यदि उदारशिरोमणि धर्मराज हमारे कुलके कर्ता-धर्ता और सर्वस्व न होते तो क्या हम यह अत्याचार सहन कर लेते? ये हमारे पुण्य, तप और जीवनके स्वामी हैं। यदि ये अपनेको हारा हुआ मानते हैं तो हम भी हार गये, इसमें सन्देह ही क्या है? यदि मेरी प्रभुता होती तो क्या दुरात्मा दुःशासन द्रौपदीके केश पकड़कर, भूमिपर गिराकर और पैरोंसे ठुकराकर भी अबतक जीवित रहता? मेरे इन लोहदण्डोंके समान लंबे और मोटे भुजदण्डों-को देखिये। इनके बीचमें आकर एक बार इन्द्र भी पिस जाय। मैं धर्मकी रस्सीसे बँधा हूँ। अर्जुनने मुझे रोक दिया है। धर्मराजका गौरव भी मुझे इस सङ्कटसे पार होनेके लिये कुछ करने नहीं देता। यदि धर्मराज मुझे इशारेसे भी आज्ञा दे दें तो इन क्षुद्र जन्तुओंको मैं क्षणभरमें ही मसल डालूँ।'

ामकी क्रोधाग्निको भभकते देखकर भीष्म, द्रोण और ादुरने कहा—'भीमसेन ! क्षमा करो। तुम्हारे लिये कुछ ी कठिन नहीं है। तुम सब कर सकते हो।' उस समय र्मराज युधिष्ठिर बेहोश-से हो रहे थे। दुर्योधनने उन्हें ुकारकर कहा—'राजन् ! भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तुम्हारे वशमें हैं। अब तुम्हीं द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर दो। क्या तुम ऐसा मानते हो कि द्रौपदी दावपर नहीं हारी गयी ?' मतवाले दुरात्मा दुर्योधनने युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर कर्णकी ओर देखा और मुसकराकर भीमसेनको लज्जित करनेके लिये अपनी मोटी-मोटी बायीं जाँघ दिखाने लगा। भीमसेनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उन्होंने चिल्लाकर सभा-मण्डपको प्रतिध्वनित करते हुए कहा—'दुर्योधन ! सुन, यदि महायुद्धमें तेरी यह जाँघ भीमसेनने अपनी गदासे नहीं तोड़ दी तो वह अपने पूर्वपुरुषोंके समान सद्गति न प्राप्त करे।' उस समय क्रोधसे भरे भीमसेनके रोम-रोमसे चिनगारियाँ निकल रही थीं।'

विदुरजीने कहा—"राजाओ ! देखो, इस समय भीमसेनने बड़ा भय उपस्थित कर दिया है। अवश्य ही आजका प्रसङ्ग भरतवंशके अनर्थका मूल है। धृतराष्ट्रकुमारो ! तुम्हारा यह जूआ अन्यायसे भरा है। तभी तो तुम भरी सभामें स्त्रीके लिये लड़-झगड़ रहे हो। तुमने अपना सारा मङ्गल खो दिया। तुम्हारी मति-गति खोटे कामोंमें ही रहती है। भरी सभामें धर्मका उल्लङ्घन करनेसे सारी सभाको दोष लगता है। धर्मपर विचार करो। यदि युधिष्ठिर अपनेको हारनेसे पहले द्रौपदीको दावपर रखते तो वे अवश्य ही द्रौपदीको हार सकते थे। पहले अपने शरीरको हार जानेके कारण उन्हें द्रौपदीको दावपर रखनेका अधिकार ही नहीं रह गया था। 'द्रौपदीको हमने जीत लिया'—यह तुम्हारा एक स्वप्न है। शकुनिकी बातोंमें आकर धर्मका नाश मत करो।" इस प्रकार प्रश्नोत्तर हो ही रहे थे कि धृतराष्ट्रकी यज्ञशालामें बहुत-से गीदड़ इकट्ठे होकर 'हुआँ-हुआँ' करने लगे, गधे रेंकने लगे और पक्षीगण उड़-उड़कर चिल्लाने लगे। यह भयानक कोलाहल सुनकर गान्धारी डर गयीं। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य, 'स्वस्ति, स्वस्ति' कहने लगे। विदुर और गान्धारीने

घबराकर राजा धृतराष्ट्रको इसकी सूचना दी। धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा—'रे दुर्विनीत ! तेरा तो एकबारगी सत्यानाश हो गया। अरे दुर्बुद्धे ! तू कुरुकुलकी महिला और पाण्डवोंकी राजरानीको सभामें लाकर बातें बना रहा है ?' धृतराष्ट्रने कुछ सोच-विचारकर द्रौपदीको समझाते हुए कहा—'बहू ! तुम परम पतिव्रता और मेरी पुत्र-वधुओंमें सर्वश्रेष्ठ हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' द्रौपदीने कहा—'राजन् ! यदि आप मुझे वर देते हैं तो मैं यह माँगती हूँ कि धर्मात्मा सम्राट् युधिष्ठिर दासत्वसे मुक्त हो जायँ, जिससे मेरे पुत्र प्रतिविन्ध्यको अज्ञानवश कोई दासपुत्र न कहे।' धृतराष्ट्रने कहा—'कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई। अब तुम और वर माँगो; क्योंकि तुम एक ही वर पानेयोग्य नहीं हो।' द्रौपदीने कहा—'मैं दूसरा वर यह माँगती हूँ कि रथ और धनुषके साथ भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी दासत्वसे छूटकर स्वाधीन हो जायँ।' धृतराष्ट्रने कहा—'सौभाग्यवती बहू ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। परन्तु इतनेसे ही तुम्हारा सत्कार नहीं हुआ। तुम और भी वर माँगो।' द्रौपदीने कहा—'महाराज ! अधिक लोभसे धर्मका नाश होता है। तीसरा वर माँगनेके लिये मेरे चित्तमें उत्साह नहीं है और न तो मैं उसकी अधिकारिणी हूँ। शास्त्रके अनुसार वैश्यको एक, क्षत्रिय-स्त्रीको दो, क्षत्रियको तीन और ब्राह्मणको सौ वर लेनेका अधिकार है। इस समय मेरे पति दासताके दलदलमें

फँसकर भी छूट गये हैं, अब वे स्वयं सत्कर्मसे शुभ पदार्थ प्राप्त कर लेंगे।' द्रौपदीकी बुद्धिमानी देखकर कर्ण उसकी प्रशंसा करने लगा।

भीमसेनने युधिष्ठिरसे कहा—'राजेन्द्र! मैं अपने शत्रुओंको यहीं या यहाँसे निकलते ही मार डालूँगा।' उस समय क्रोधके मारे भीमसेनका रोम-रोम आग उगल रहा था। भौंहें चढ़ रही थीं और मुख विकट हो गया था। युधिष्ठिरने भीमसेनको शान्त किया। अब वे अपने ताऊ धृतराष्ट्रके पास गये। उन्होंने कहा—'महाराज! आज्ञा कीजिये, अब हम क्या करें, आप हमारे मालिक हैं। हम तो चिरकालतक आपकी आज्ञामें ही रहना चाहते हैं।' धृतराष्ट्रने कहा—'अजातशत्रु युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो। आनन्दसे रहो। तुम अपना सब धन लेकर लौट जाओ और अपने राज्यका पालन करो। बस, मुझ बूढ़ेकी यही आज्ञा है। मेरी बात तुम्हारे हित और मङ्गलके लिये है। युधिष्ठिर! तुम बुद्धिमान्, धर्ममर्मज्ञ, विनम्र और वृद्धोंके सेवक हो। बुद्धि और क्षमाका मेल है। तुम क्षमा करो। उत्तम पुरुष किसीसे वैर नहीं करते। दोषोंकी ओर न देखकर गुणोंकी ओर देखते हैं और विरोध तो किसीसे करते ही नहीं। सत्पुरुषोंकी दृष्टि सत्कर्मोंकी ओर ही रहती है। कोई वैर-विरोध करता है तो वे उसे भूल जाते हैं। शत्रुकी भी भलाई करते हैं और बदला लेनेका उद्योग नहीं करते। नीच पुरुष साधारण बातचीतमें भी कड़वी बात कहते हैं। और मध्यम श्रेणीके पुरुष कठोर वचन सुनकर कठोर वाणीका प्रयोग करते हैं। उत्तम पुरुष किसी भी स्थितिमें कठोर वचनका प्रयोग नहीं करते। सत्पुरुष बुरी-से-बुरी स्थितिमें भी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते। उनको देखकर सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। इस समय तुमने बड़े ही सौजन्यका व्यवहार किया है। सो भैया! अब तुम मुझ बूढ़े ताऊ धृतराष्ट्र और माता गान्धारीकी ओर देखकर दुर्योधनका दुर्व्यवहार भूल जाओ। अपने बूढ़े और अन्धे ताऊको देखो। मैंने पहले तो जूएका निषेध ही किया था। फिर मित्रोंसे मिलने-जुलने और पुत्रोंका बलाबल देखनेके लिये इसकी आज्ञा दे दी। तुम्हारे-जैसा शासक और विदुर-जैसा मन्त्री पाकर कुरुवंश धन्य हो गया है। तुममें धर्म है, अर्जुनमें धीरता है, भीमसेनमें पराक्रम है, नकुल और सहदेवमें विशुद्ध गुरु-सेवाका भाव है। धर्मराज! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम खाण्डवप्रस्थ जाओ।'

धर्मराज युधिष्ठिर बड़ी नम्रतासे शिष्टाचारके साथ प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रकी अनुमति प्राप्त करके अपने भाई-बन्धु एवं इष्ट-मित्रोंके साथ इन्द्रप्रस्थके लिये रवाना हुए।

दुबारा कपट-द्यूत और पाण्डवोंकी वनयात्रा

जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी महाराज! जब राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको अपना धन और रत्नराशि लेकर जानेकी अनुमति दे दी, तब दुर्योधन आदिकी क्या दशा हुई?

वैशम्पायनजीने कहा—धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको धन-सम्पत्तिके साथ जानेकी अनुमति दे दी, यह सुनते ही दुःशासन अपने बड़े भाई दुर्योधनके पास गया और बड़े दुःखके साथ कहा कि 'भैया! बूढ़े राजाने हमारे बड़े कष्टसे प्राप्त धनको खो दिया। सब धन शत्रुओंके हाथमें चला गया। अभी कुछ सोच-विचार करना हो तो कर लो।' यह सुनते ही दुर्योधन, कर्ण और शकुनिने आपसमें सलाह की और सब-के-सब एक साथ ही धृतराष्ट्रके पास गये। उन्होंने बड़े विनयसे कहा—'राजन्! यदि इस समय हमलोग पाण्डवोंसे प्राप्त धनके द्वारा ही राजाओंको प्रसन्न करके युद्धके लिये तैयार कर लेते तो हमारी क्या हानि थी? देखिये, डँसनेको तैयार क्रोधमें भरे साँपोंको गलेमें लटकाकर या पीठपर रखकर कौन बच सकता है? इस समय पाण्डव भी सर्पोंके समान ही हैं। वे जिस समय रथमें बैठकर शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर हमपर धावा बोल देंगे उस समय हममेंसे किसीको जीता न छोड़ेंगे। अब वे सेना इकट्ठी करनेको निकल पड़े हैं। हमने एक बार उनसे बिगाड़ कर लिया है। अब वे हमें क्षमा नहीं करेंगे। द्रौपदी-को जो क्लेश पहुँचा है, उसे उनमेंसे कोई भी क्षमा नहीं कर सकता। इसलिये हम वनवासकी शर्तपर पाण्डवोंके साथ फिरसे जूआ खेलेंगे। इस प्रकार वे हमारे वशमें हो जायँगे। जूएमें जो भी हार जायँ, हम या वे, बारह वर्षतक मृगचर्म पहनकर वनमें रहें और तेरहवें वर्ष किसी नगरमें इस प्रकार छिपकर रहें कि किसीको पता न चले। यदि पता चल जाय कि ये कौरव या पाण्डव हैं तो फिर बारह वर्षतक वनमें रहें। इस शर्तपर आप फिर जूआ खेलनेकी आज्ञा दे दीजिये। यह काम बहुत आवश्यक है। पासे डालनेकी विद्यामें हमारे मामा शकुनि बड़े चतुर हैं। यदि पाण्डव कदाचित् यह शर्त पूरी कर लेंगे

यदि ऐसी बात है तो पाण्डव दूर चले गये हों, तब भी दूत भेजकर उन्हें तुरंत बुला लो। वे आ जायँ तो फिर इसी शर्तपर खेल हो।' धृतराष्ट्रकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्मपितामह और विकर्ण—सभीने एक स्वरसे कहा कि 'अब जूआ मत खेलो, शान्ति धारण करो।' परन्तु पुत्रस्नेहवश धृतराष्ट्रने अपने सभी दूरदर्शी मित्रोंकी सलाह ठुकरा दी और पाण्डवोंको जूआ खेलनेके लिये बुलवाया। यह सब देख-सुनकर धर्मपरायणा गान्धारी अत्यन्त शोक-सन्तप्त हो रही थी। उन्होंने अपने पति धृतराष्ट्रसे कहा—"स्वामी! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़के समान रोने-चिल्लाने लगा था। इसलिये उसी समय परम ज्ञानी विदुरने कहा कि इस पुत्रका परित्याग कर दो। मुझे तो वह बात याद करके यही मालूम होता है कि यह कुरुवंशका नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र! आप अपने दोषसे सबको विपत्तिके सागरमें मत डुबाइये। इन ढीठ मूर्खोंकी 'हाँ' में 'हाँ' मत मिलाइये। इस वंशका नाश न कीजिये। बँधे हुए पुलको मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त और वैर-विरोधसे विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं है। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं स्मरण दिला रही हूँ। दुर्बुद्धि पुरुषके चित्तपर शास्त्रके उपदेशका भला-बुरा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु आप वृद्ध होकर बालकोंकी-सी बात करें, यह अनुचित है। इस समय आप अपने पुत्रतुल्य पाण्डवोंको अपने वशमें रखिये। कहीं वे दुखी होकर आपसे विलग न हो जायँ। कुलकलङ्क दुर्योधनको त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने उस समय मोहवश विदुरकी बात नहीं मानी थी। यह सब उसीका फल है। शान्ति, धर्म और मन्त्रियोंकी सम्मतिसे अपनी विचारशक्ति सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपको बड़ा दुःख देगा। राज्यलक्ष्मी क्रूरके हाथमें पड़कर उसीका सत्यानाश कर देती है। सरल पुरुषके पास रहकर ही वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है।" गान्धारीकी बात सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'प्रिये! यदि कुलका नाश होना ही
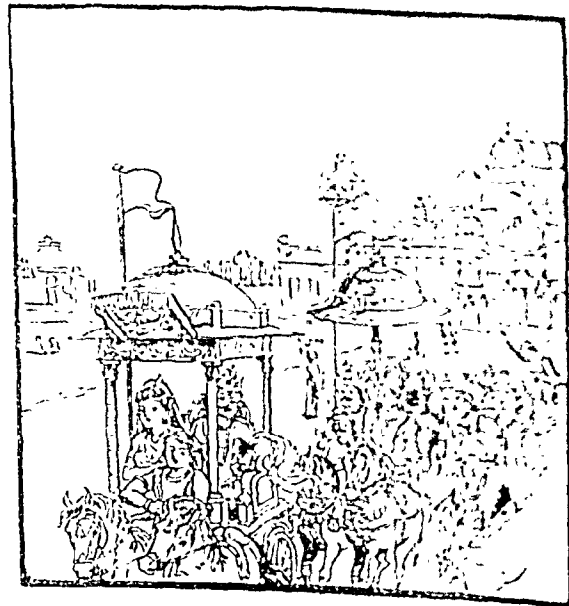
बढ़ गये थे। प्रातिकामीने कहा—'राजन्! फिर सभा जोड़ी गयी है। महाराज धृतराष्ट्रने कहा है कि आप फिर यहाँ चल-कर जूआ खेलिये।' धर्मराज बोले—'सभी प्राणी दैवके अधीन हैं। उसीके अनुसार शुभ-अशुभ फल भोगते हैं। किसीका कोई वश नहीं है। चलो, फिर जूआ खेलना पड़ता है तो ऐसा ही सही। मैं जानता हूँ कि ऐसा करनेसे वंशका नाश हो जायगा। फिर भी मैं अपने बूढ़े ताऊजीकी आज्ञा कैसे टालूँ?' युधिष्ठिर भाइयोंके साथ फिर लौट आये। वे 'शकुनि छली है'—यह बात जानकर भी फिरसे उसके साथ जूआ खेलनेको तैयार हो गये। धर्मराजकी यह स्थिति देखकर उनके मित्रोंको बड़ा कष्ट हुआ।

शकुनिने धर्मराजको सम्बोधन करके कहा—'राजन्! हमारे वृद्ध महाराजने आपकी धनराशि आपके पास ही छोड़ दी है। इससे हमें प्रसन्नता हुई है। अब हम एक दाव और लगाना चाहते हैं। यदि हम आपसे जूएमें हार जायँ तो मृगचर्म धारण करके बारह वर्षतक वनमें रहें और तेरहवें वर्ष किसी नगरमें अज्ञातरूपसे रहें। यदि उस समय कोई पहचान ले तो बारह वर्ष और भी वनमें रहें। और यदि हम

आपको हरा दें तो द्रौपदीके साथ आपलोग कृष्णमृगचर्म धारण करके बारह वर्षतक वनमें रहें और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करें। यदि उस समय कोई पहचान ले तो फिर बारह वर्ष वनमें रहना होगा। इस प्रकार तेरह वर्ष पूरे होनेपर आप या हम उचित रीतिसे अपना-अपना राज्य ले लेंगे। इसी शर्तपर हमलोग फिर पासे खेलें।' शकुनिकी बात सुनकर सभी सभासद् खिन्न हो गये। वे बड़े उद्वेगसे हाथ उठाकर कहने लगे कि 'अन्धे धृतराष्ट्र जूएके कारण आनेवाले भयको देख रहे हों या नहीं, परन्तु इनके मित्र तो धिक्कारके योग्य हैं; क्योंकि वे समयपर इनको सावधान नहीं कर रहे हैं।' सभासदोंकी यह बात युधिष्ठिर भी सुन रहे थे और वे यह भी समझ रहे थे कि इस बारके जूएका क्या दुष्परिणाम होगा! फिर भी उन्होंने यह सोचकर कि कौरवोंका विनाशकाल समीप आ गया है, जूआ खेलना स्वीकार कर लिया। शकुनिने उनकी स्वीकृति पाते ही छलसे पासे डाले और युधिष्ठिरसे कहा 'लो, यह दाव मैंने जीत लिया!'

जूएमें हारकर पाण्डवोंने कृष्णमृगचर्म धारण किया और वनमें जानेके लिये तैयार हो गये। उनको ऐसी स्थितिमें देखकर दुःशासन कहने लगा कि 'धन्य है, धन्य है। अब महाराज दुर्योधनका शासन प्रारम्भ हो गया। पाण्डव विपत्तिमें पड़ गये। राजा द्रुपद तो बड़े बुद्धिमान् हैं। फिर उन्होंने अपनी कन्या पाण्डवोंको कैसे ब्याह दी? अरे! ये पाण्डव तो नपुंसक हैं। द्रुपदकी बेटी! अब तो ये पाण्डव थोड़े-से वस्त्र और मृगचर्मसे बड़ी गरीबीके साथ वनमें अपना जीवन बितायेंगे, तू अब इनके प्रति प्रेम कैसे रक्खेगी? अब किसी मनचाहे पुरुषको वर क्यों नहीं लेती?' दुःशासन बकता ही रहा। भीमसेनने जोरसे ललकारकर कहा कि 'रे क्रूर! तूने हमें अपने बाहुबलसे नहीं जीता है। छल-विद्याके बलपर जीतकर तू शेखी बघार रहा है? ऐसी बात केवल पापी ही कह सकते हैं। तू इस समय कड़वे वचनोंके बाणसे हमारे मर्मस्थानपर चोट कर ले। मैं रणभूमिमें तेरे मर्मस्थानोंको काटकर इनकी याद दिलाऊँगा। आज जो लोग क्रोध या लोभके वशमें होकर तेरा पक्षपात कर रहे हैं, तेरे रक्षक बने हुए हैं, उन्हें भी मैं इष्ट-मित्रोंके सहित यमराजके हवाले करूँगा।'

इस समय भीमसेन मृगचर्म धारण किये खड़े थे। धर्मके कारण वे शत्रुओंका नाश नहीं कर सकते थे। भीमसेनके ऐसा कहनेपर दुःशासन भरी सभामें 'ओ बैल! ओ बैल!' कहकर निर्लज्जकी तरह नाचने-कूदने लगा। भीमसेनने कहा—'रे दुष्ट! कटु वचन कहते तुझे शर्म नहीं आती? छलसे सम्पत्ति छीनकर अब बढ़-बढ़कर बातें बना रहा है? यदि यह वृकोदर भीम कुन्तीकी कोखका जना है तो रणभूमिमें तेरा कलेजा चीरकर खून पीयेगा! यदि ऐसा न करे तो इसे पुण्यवानोंका लोक न मिले। मैं सब धनुर्धरोंके सामने ही धृतराष्ट्रके सारे-के-सारे पुत्रोंका संहार करके शान्ति प्राप्त करूँगा। यह मेरी सत्य शपथ है।'

पाण्डव राजसभासे बाहर निकलने लगे। भीमसेन सिंहके समान धीरे-धीरे चल रहे थे। दुर्योधन उन्हें चिढ़ानेके लिये वैसे ही उनके पीछे-पीछे चलने लगा। भीमसेनने मुड़कर देखा और कहा कि 'मूर्ख! यह बात यहीं नहीं समाप्त हो रही है। मैं तेरे सहायकोंके साथ तेरा नाश करते समय थोड़े ही दिनोंमें इस हँसीका उत्तर दूँगा।' भीमसेनने अपनेको शान्त करके धर्मराज युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चलते हुए ही कहा कि 'मैं दुर्योधनका, अर्जुन कर्णका और सहदेव शकुनिका नाश करेंगे। मैं भरी सभामें फिर सत्य शपथ करता हूँ कि देवता हमारी बात अवश्य पूरी करेंगे। मैं गदासे दुर्योधनकी जाँघ तोड़कर इसके सिरपर अपना पैर रक्खूँगा और दुःशासनके कलेजेका गरम-गरम खून पीऊँगा।' अर्जुन भी बोल उठे—'भाई भीमसेन! आपकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये अर्जुन प्रतिज्ञा करता है कि वह संग्राममें कर्ण और उसके सारे साथियोंका संहार करेगा। अपने साथ युद्ध करनेवाले सभी मूर्खोंको मैं यमराजके हवाले करूँगा। भाईजी! हिमालय अपने स्थानसे डिग जाय, सूर्यमें अँधेरा छा जाय, चन्द्रमा धधकती आग बन जाय; परन्तु मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। यदि चौदहवें वर्ष दुर्योधनने हमारा राज्य सत्कारपूर्वक नहीं लौटा दिया तो हमारी वाणी अवश्य ही सत्य-सत्य होकर रहेगी।' सहदेवने कहा—'अरे कन्धारके कुलकलङ्क! जिन्हें तू पासे समझ रहा है, वे तेरे लिये तीखे बाण हैं। मैं तेरा और तेरे सम्बन्धियोंका अपने हाथों सत्यानाश करूँगा। शर्त केवल यही है कि तू रणभूमिमें क्षत्रियोंकी तरह डटकर भिड़ना, मुँह मत चुराना।'

पाण्डव इस प्रकार और भी बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ करके राजा धृतराष्ट्रके पास गये। युधिष्ठिरने कहा—'ताऊजी! मैं भरतवंशके वयोवृद्ध पितामह भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, दुर्योधनादि सब भाई, युयुत्सु, सञ्जय, अन्य नरपति तथा सभासदोंकी

आज्ञा लेकर वनवासके लिये जा रहा हूँ। वहाँसे लौटनेपर आपलोगोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा।' उस समय सभाके किसी सभासद्‌से युधिष्ठिरके प्रति कुछ भी नहीं कहा गया। लज्जाके कारण सबका सिर नीचे झुक गया और सब मन-ही-मन धर्मराजका कल्याण चाहने लगे। विदुरने कहा—'पाण्डवो! आर्या कुन्ती राजकुमारी, कोमल-शरीर और बूढ़ी हैं। अब वे सर्वथा आराम करनेयोग्य हैं। इसलिये उनका वनमें जाना उचित नहीं है। ये सत्कारपूर्वक मेरे घर रहें। यह बात आपलोगोंसे कहकर मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपलोग सर्वत्र स्वस्थ और प्रसन्न रहें।' युधिष्ठिरने कहा—'निष्पाप! हम आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। आप हमारे चाचा, पितृतुल्य हैं। हम सदा आपके आश्रित हैं।' विदुरजीने कहा—'युधिष्ठिर! आप धर्मके मर्मज्ञ हैं। अर्जुन विजयशील हैं, भीमसेन शत्रुनाशक हैं, नकुल धनसंग्रहकुशल हैं और सहदेव शत्रुओंको वशमें करनेवाले हैं। धौम्य ऋषि वेदज्ञ हैं, पतिव्रता द्रौपदी धर्म और अर्थके संग्रहमें निपुण हैं। आप सभी परस्पर प्रेम-भावसे रहते हैं। शत्रु भी आपके चित्तमें भेद-भावकी सृष्टि नहीं कर सकते। आप बड़े निर्मल और सन्तोषी हैं। जगत्‌के सभी लोग आपको चाहते हैं और आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित रहते हैं। हिमालयपर मेरुसावर्णि, वारणावतमें व्यासजी, भृगुतुङ्ग पर्वतपर परशुरामजी और दृषद्वती नदीके तटपर महादेवजी आपको धर्मोपदेश कर चुके हैं। अञ्जन पर्वतपर आपने असित महर्षिसे और कल्माषी नदीके तटपर भृगुमुनिसे ज्ञान प्राप्त किया है। देवर्षि नारद सर्वदा आपकी देख-रेख रखते हैं और धौम्यमुनि तो आपके पुरोहित ही हैं। देखिये, विषम परिस्थितिमें युद्धके अवसरपर कहीं उन ऋषियोंका उपदेश मत भूल जाइयेगा। पाण्डवश्रेष्ठ! आप पुरूरवासे भी अधिक बुद्धिमान् हैं। कोई भी राजा शक्तिमें आपकी समता नहीं कर सकता। आप धर्माचरणमें ऋषियोंसे भी आगे हैं। शत्रुओंको अधीन करनेमें आप वरुणके समकक्ष हैं। आप जलके समान निर्मल और अपना जीवन-दान करके भी दूसरोंका हित करते हैं। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आप पृथ्वीसे क्षमा, सूर्यमण्डलसे तेज, वायुसे बल और समस्त प्राणियोंसे आत्मधन प्राप्त करें। आपका शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहे। कोई भी काम करना हो तो पहले ठीक-ठीक विचार कर लीजियेगा। आपने कभी कोई पाप किया है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं। इसलिये आप अवश्य कृतार्थ होकर आनन्दसे यहाँ लौटेंगे। अब आप जाइये। आपका कल्याण हो।'

राजा युधिष्ठिर विदुरजीकी बातोंको सिर-आँखों चढ़ाकर भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यको प्रणाम करके वनवासके लिये चल पड़े। माता कुन्तीको प्रणाम कर उनसे भी आज्ञा ले ली। जिस समय दुःखातुरा द्रौपदी अपनी सास कुन्ती एवं अन्य महिलाओंसे विदा लेनेके लिये आयीं, उस समय अन्तःपुरमें बड़ा कोलाहल हुआ। माता कुन्तीने शोकाकुल वाणीसे कहा—'बेटी! तुम स्त्रियोंका धर्म जानती हो। इस घोर
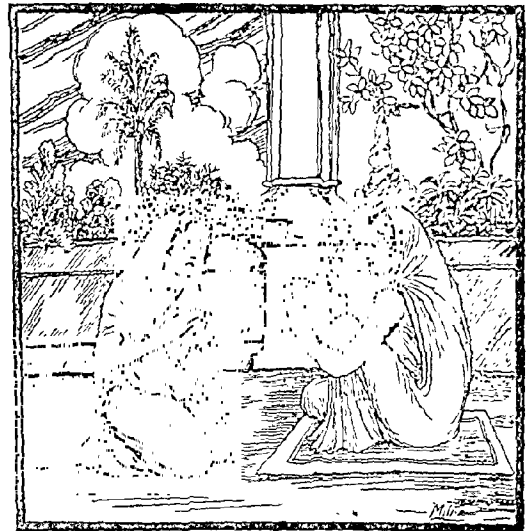
सङ्कटमें पड़कर दुःख मत करना। तुम स्वयं शील और सदाचारसे सम्पन्न हो। इसलिये पतियोंके प्रति तुम्हारे कर्तव्यके सम्बन्धमें शिक्षा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम स्वयं परम साध्वी, गुणवती और दोनों कुलोंकी भूषण हो। निर्दोष द्रौपदी! तुमने कौरवोंको शाप देकर भस्म नहीं किया, यह उनका सौभाग्य और तुम्हारा सौजन्य है। तुम्हारा मार्ग निष्कण्टक हो। सुहाग अचल रहे। कुलीन स्त्रियाँ अचानक दुःख पड़नेपर घबराती नहीं। पातिव्रत-धर्म सर्वदा तुम्हारी रक्षा करेगा और सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल होगा। एक बात तुमसे कहनी है। तुम वनमें रहते समय मेरे प्यारे पुत्र सहदेवका विशेष ध्यान रखना। कहीं उसे कष्ट न होने पावे।' माता कुन्तीने पाण्डवोंसे कहा—'बेटा! तुमलोग धर्मपरायण, सदाचारी, भक्त, पापरहित और देवताओंके पुजारी हो। तुमपर यह सङ्कट कैसे आ पड़ा! अवश्य ही यह प्रारब्धका दोष है। तुमलोगोंने तो ऐसा

हूँ । द्रौपदीकी आर्त दृष्टिसे सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है, हमारे पुत्रोंमें तो रक्खा ही क्या है ? उस समय धर्मचारिणी द्रौपदीको सभामें अपमानित होते देखकर भरतवंशकी सभी स्त्रियाँ गान्धारीके पास आकर करुणक्रन्दन करने लगी थीं। ब्राह्मण भी हमारे विरोधी हो गये हैं। वे सायंकाल हवन न करके नागरिकोंके साथ उन्हीं बातोंकी चर्चा करते हैं और दुखी होते रहते हैं। जिस समय भरी सभामें द्रौपदीके वस्त्र खींचे गये थे, उस समय तूफान आ गया। बिजली गिरी, उल्कापात हुआ। बिना अमावस्याके ही सूर्यग्रहण लग गया। सारी प्रजा भयभीत हो गयी थी। रथशालामें आग लग गयी। मन्दिरोंकी ध्वजाएँ गिरने लगीं। यज्ञशालामें सियारिनें 'हुआँ-हुआँ' करने लगीं। गधे रेंकने लगे। ऐसे अपशकुन देखकर भीष्म, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक और द्रोणाचार्य सभाभवनसे उठकर चले गये। विदुरकी सम्मतिसे मैंने द्रौपदीको मुँहमाँगा वर दिया और पाण्डवोंको इन्द्रप्रस्थ जानेकी अनुमति दे दी। उसी समय विदुरने मुझसे कहा था कि द्रौपदीको अपमानित करनेके फलस्वरूप भरतवंशका नाश होगा। द्रौपदी दैवके द्वारा उत्पन्न एक अनुपम लक्ष्मी है। वह पाण्डवोंके पीछे-पीछे फिरती है। यह महान् अपमान और क्लेश पाण्डव, यदुवंशी और पाञ्चाल नहीं सहेंगे; क्योंकि इनके सहायक और रक्षक हैं सत्यप्रतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण। बहुत समझा-बुझाकर विदुरने हमारे कल्याणके लिये अन्तमें यही सम्मति दी कि आप सबके भलेके लिये पाण्डवोंसे सन्धि कर लीजिये। सञ्जय ! विदुरकी बात धर्मानुकूल तो थी ही, अर्थकी दृष्टिसे भी कम लाभकी नहीं थी। परन्तु मैंने पुत्रके मोहमें पड़कर उसकी प्रसन्नताके लिये उनकी बातकी उपेक्षा कर दी।

सभापर्व समाप्त
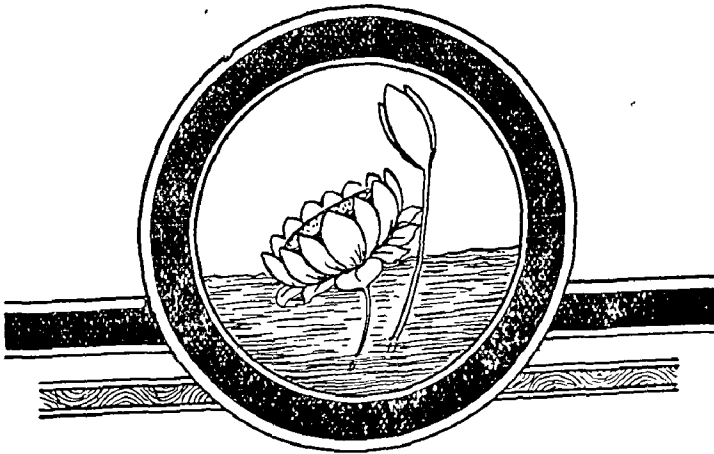
पाण्डवोंका वन-गमन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

वनपर्व

पाण्डवोंका वनगमन और उनके प्रति प्रजाका प्रेम

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तः-करणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—महर्षे! दुरात्मा दुर्योधन, दुःशासन आदिने अपने मन्त्रियोंकी सहायतासे कपट-द्यूतमें पाण्डवोंको जीत लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने वैरभाव बढ़ानेके लिये भला-बुरा भी कहा। तदनन्तर मेरे पूर्वज पाण्डवोंने इस विपत्तिमें पड़कर किस प्रकार अपना समय बिताया, उनके साथ वनमें कौन-कौन गये? वे वनमें कैसा बर्ताव करते थे, क्या भोजन करते थे और कहाँ रहते थे? वनमें उनके बारह वर्ष किस प्रकार व्यतीत हुए? परमसौभाग्यवती सत्यवादिनी राजकुमारी द्रौपदीने किस प्रकार वनके दुःखोंको सहा? आप इन सब बातोंका वर्णन करके मेरी उत्कण्ठा शान्त कीजिये।
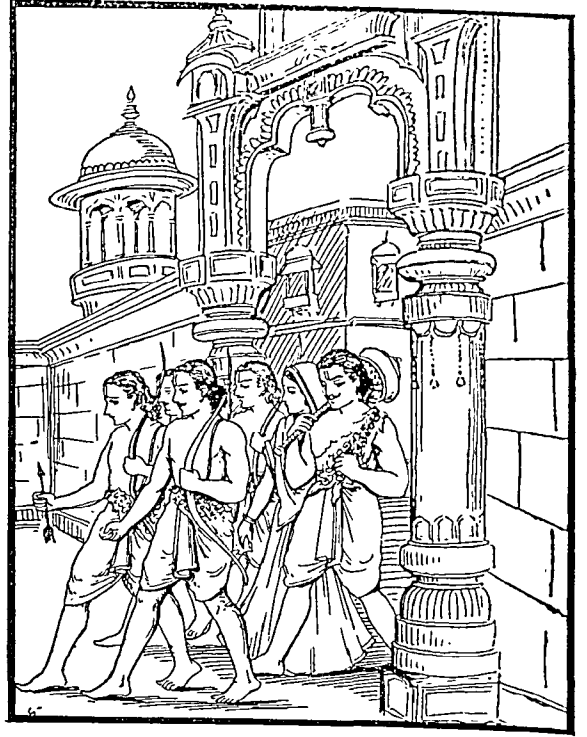
वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! महात्मा पाण्डव दुरात्मा दुर्योधन आदिके दुर्व्यवहारसे दुःखित और क्रोधित होकर अपने अस्त्र-शस्त्र और रानी द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरसे निकल पड़े। वे हस्तिनापुरके वर्धमानपुरके सामनेवाले द्वारसे निकलकर उत्तरकी ओर चले। इन्द्रसेन आदि चौदह सेवक भी अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्रगामी रथोंपर सवार होकर उनके पीछे-पीछे चले। जब हस्तिनापुरकी जनताको यह बात मालूम हुई तो उसके दुःखका पारावार न रहा। सब लोग शोकसे व्याकुल होकर इकट्ठे हुए और निर्भयताके साथ भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण आदिकी निन्दा करने लगे। वे आपसमें कहने लगे—'दुरात्मा दुर्योधन शकुनि आदिकी सहायतासे राज्य करना चाहता है। इसके राज्यमें हम, हमारा वंश, प्राचीन सदाचार और घर-द्वार भी सुरक्षित रहेंगे—इसकी आशा नहीं है। राजा पापी हो और उसके सहायक भी पापी हों तो भला कुल-मर्यादा, आचार, धर्म और अर्थ कैसे रह सकते हैं? और उनके न रहनेपर सुखकी तो आशा ही क्या हो सकती है। दुर्योधन एक तो अपने गुरुजनोंसे द्वेष करता है। दूसरे

वंशकी मर्यादा और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंको भी त्याग चुका है। ऐसे अर्थ-लोलुप, घमण्डी और क्रूरके शासनमें इस पृथ्वीका ही सर्वनाश निश्चित है। आओ, हम सब वहीं चलकर रहें जहाँ हमारे प्यारे महात्मा पाण्डव जाते हैं। वे दयालु, जितेन्द्रिय, यशस्वी और धर्मनिष्ठ हैं।'

हस्तिनापुरकी जनता इस प्रकार आपसमें विचार करके वहाँसे चल पड़ी और पाण्डवोंके पास जाकर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़ कहने लगी—'पाण्डवो! आपलोगोंका कल्याण
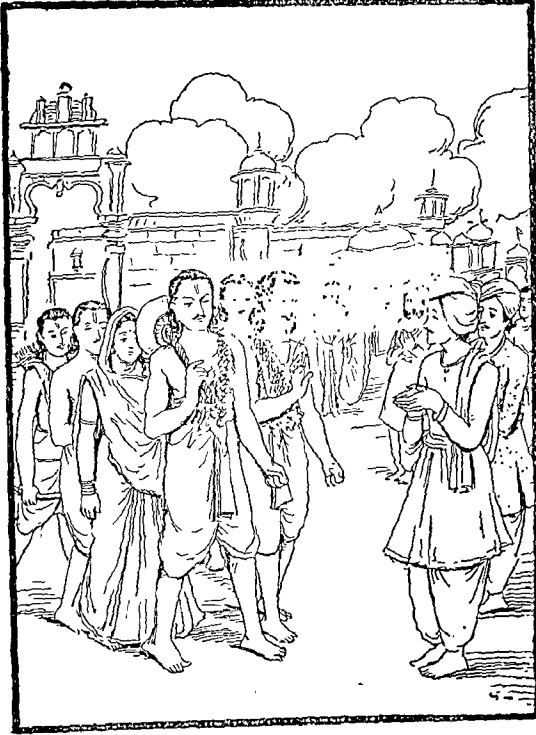
हो। आपलोग हमें हस्तिनापुरमें दुःख भोगनेके लिये छोड़कर स्वयं कहाँ जा रहे हैं? आपलोग जहाँ जायँगे, वहीं हम भी चलेंगे। जबसे हमें यह बात मालूम हुई है कि दुर्योधन आदिने बड़ी निर्दयतासे कपट-द्यूतमें हराकर आपलोगोंको वनवासी बना दिया है, तबसे हमलोग बहुत भयभीत हो गये हैं। हमें ऐसी अवस्थामें छोड़कर जाना उचित नहीं है। हम आपके सेवक, प्रेमी और हितैषी हैं। कहीं दुरात्मा दुर्योधनके कुराज्यमें हमारा सर्वनाश न हो जाय। आप जानते ही हैं कि दुष्ट पुरुषोंके साथ रहनेमें क्या-क्या हानियाँ हैं और सत्पुरुषोंके साथ रहनेमें क्या-क्या लाभ हैं। जैसे सुगन्धित पुष्पोंके संसर्गसे जल, तिल और स्थान सुगन्धित हो जाते हैं वैसे ही मनुष्य भी भले-बुरेके संगके अनुसार भला-बुरा हो जाता है। दुष्टोंके संगसे मोहकी वृद्धि होती है और सत्पुरुषोंके साथसे धर्मकी। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि ज्ञानी, वृद्ध, दयालु, शान्त, जितेन्द्रिय और तपस्वी पुरुषोंका ही संग करें। कुलीन, विद्वान् एवं धर्मपरायण पुरुषोंकी सेवा और उनका सत्संग शास्त्रोंके स्वाध्यायसे भी बढ़कर है। पापी पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप करनेसे तथा उनके साथ बैठनेसे धर्म और सदाचारका नाश हो जाता है और उन्नतिके स्थानपर अवनति होती है। नीचोंके संगसे मनुष्योंकी बुद्धि नष्ट होती है और सत्पुरुषोंके संगसे वह उन्नत हो जाती है। पाण्डवो! जगत्के गुप्त-से-गुप्त और श्रेष्ठ महात्माओंने मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता बतलायी है, लोक-व्यवहारमें जिन वेदोक्त आचरणोंकी आवश्यकता है, वे सब-के-सब आपलोगोंमें विद्यमान हैं। इसलिये आप-जैसे सत्पुरुषोंके साथ ही हमलोग रहना चाहते हैं, क्योंकि इसीमें हमारा कल्याण है।'

प्रजाकी बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा— मेरे पूजनीय और आदरणीय ब्राह्मणादि प्रजाजन! वास्तवमें हमलोगोंमें कोई गुण नहीं है, फिर भी आपलोग स्नेह और दयाके वश होकर हममें गुण देख रहे हैं और उसका वर्णन कर रहे हैं—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। मैं अपने भाइयोंके साथ आपलोगोंसे प्रार्थना करता हूँ, आप अपने प्रेम और कृपासे हमारी बात स्वीकार करें। इस समय हस्तिनापुरमें पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, हमारी माता कुन्ती और गान्धारी तथा हमारे सभी सगे-सम्बन्धी सुहृद् निवास कर रहे हैं। जैसे हमारे लिये आपलोग दुखी हो रहे हैं, वैसे ही उनके हृदयमें भी बड़ा शोक-बड़ी वेदना है। आपलोग हमारी प्रसन्नताके लिये वहाँ लौ जाइये और उनका पालन-पोषण और देख-रेख कीजिये आपलोग बहुत दूरतक आ गये, अब आगे न चलें। मेरे उ स्वजन-सम्बन्धी आपलोगोंके पास धरोहरके रूपमें रक्खे हु हैं, उनके साथ प्रेमका व्यवहार करें। मैं आपलोगोंसे अप हृदयकी सच्ची बात कह रहा हूँ। उन लोगोंकी रक्षा ही मेर सबसे बड़ा काम है। आपलोगोंके वैसा करनेसे मुझे बड़ा सन्तोष होगा और मैं उसे अपना ही सत्कार समझूँगा।

जिस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अपनी प्रजासे यह बात कही, उस समय सब लोग बड़े आर्त्तस्वरसे 'हाय! हाय!!' पुकार उठे। पाण्डवोंके गुण, स्वभाव आदिका स्मरण करके उनकी आकुलताकी सीमा न रही और वे इच्छा न रहनेपर भी

पाण्डवोंके आग्रहसे लौट आये। जब पुरजन लौट गये, तब पाण्डव रथपर सवार होकर गङ्गा-तटपर प्रमाण नामक बहुत बड़े बरगदके पास आये। उस समय सन्ध्या हो चली थी। वहाँ उन्होंने हाथ-मुँह धोया और केवल जलपान करके ही वह रात बितायी। उस समय बहुत-से ब्राह्मण प्रेमवश पाण्डवोंके पास आये, उनमें बहुत-से अग्निहोत्री ब्राह्मण भी थे। उनकी मण्डलीमें बैठकर पाण्डवोंने विभिन्न प्रकारकी चर्चा करते हुए वह रात बिता दी।

धर्मराज युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंसे संवाद और शौनकजीका उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! रात बीत गयी। [illegible]ण्डव नित्यकर्मसे निवृत्त हुए। जब उन्होंने वनमें जानेकी [illegible] की, तब धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे कहा—[illegible]गो! इस समय हमारा राज्य, लक्ष्मी और सर्वस्व शत्रुओंने [illegible] हम कन्द-मूल-फलका भोजन करते हुए वनमें जा रहे हैं। वनमें बड़े-बड़े विघ्न और बाधाएँ [illegible]लये आपलोगोंको वहाँ बड़ा कष्ट होगा। इसलिये [illegible]ग अब अपने-अपने अभीष्ट स्थानको जायँ।' ब्राह्मणोंने कहा—'राजन्! प्रेमके कारण हमलोग आपके साथ रहना चाहते हैं। हमें आप अपने पास रखनेकी कृपा कीजिये। धर्मराज! हमारे पालन-पोषणके सम्बन्धमें आप तनिक भी चिन्ता न करें; हम अपने-आप अपने भोजनका प्रबन्ध कर लेंगे और आपके साथ वनमें रहेंगे। वहाँ बड़े प्रेमसे अपने इष्टदेवका ध्यान करेंगे, जप करेंगे, पूजा करेंगे; उससे आपका कल्याण होगा। वहाँ सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनाकर बड़े सुखसे वनमें विचरेंगे।' धर्मराजने कहा—'महात्माओ! आपलोगोंका कहना ठीक है। मैं सर्वदा ब्राह्मणोंमें ही रहना चाहता हूँ; परन्तु इस समय मेरे पास धन नहीं है। इसलिये लाचारी है। भला, मैं यह बात कैसे देख सकूँगा कि आपलोग स्वयं अपने भोजनका प्रबन्ध करें। हाय! हाय! मेरे कारण आपलोगोंको कितना कष्ट होगा!'

जब धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार शोक प्रकट किया और उदास होकर पृथ्वीपर बैठ गये, तब आत्मज्ञानी शौनकने उनसे कहा—'राजन्! अज्ञानी मनुष्योंके सामने प्रतिदिन सैकड़ों और हजारों शोक तथा भयके अवसर आया करते हैं, ज्ञानियोंके सामने नहीं। आप-जैसे सत्पुरुष ऐसे अवसरोंसे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। वे तो सर्वदा मुक्त ही रहते हैं। आपकी चित्तवृत्ति यम, नियम आदि अष्टाङ्गयोगसे परिपुष्ट है। श्रुति और स्मृतिके ज्ञानसे सम्पन्न है। आपकी-जैसी अटल बुद्धि जिसे प्राप्त है वह सम्पत्तिके नाशसे, अन्न-वस्त्रके न मिलनेसे, घोर-से-घोर विपत्तिके समय भी दुखी नहीं होता। कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक दुःख उसे प्रभावित नहीं कर सकता। महात्मा जनकने जगत्‌को शारीरिक और मानसिक दुःखसे पीड़ित देखकर उसकी शान्तिके लिये यह बात कही थी। आप उनके वचन सुनिये। शरीरके दुःखके चार कारण हैं—रोग, दुःखद वस्तुका स्पर्श, अधिक परिश्रम और अभिलषित वस्तुका न मिलना। इन निमित्तोंसे मनमें चिन्ता हो जाती है और मानसिक दुःख ही शारीरिक दुःखका रूप धारण कर लेता है। लोहेका गरम गोला यदि घड़ेके जलमें डाल दिया जाय तो वह जल भी गरम हो जाता है। वैसे ही मानसिक पीड़ासे शरीर भी व्यथित हो जाता है। इसलिये जैसे जलके द्वारा अग्निको शान्त किया जाता है, वैसे ही ज्ञानके द्वारा मनको शान्त रखना चाहिये। मनका दुःख मिट जानेपर शरीरका दुःख भी मिट जाता है। मनके दुःखी होनेका कारण है स्नेह। स्नेहके कारण ही मनुष्य विषयोंमें फँसता है और अनेकों प्रकारके दुःख भोगने लगता है। स्नेहके कारण ही दुःख, भय, शोक आदि विकारोंकी प्राप्ति होती है। स्नेहके कारण ही विषयोंकी सत्ताका अनुभव होता है और फिर उनमें राग हो जाता है। विषयोंके चिन्तन और रागसे भी बढ़कर स्नेह ही है। जैसे खोडरकी आग सारे वृक्षको जला डालती है, वैसे ही थोड़ा-सा भी राग धर्म और अर्थका सत्यानाश कर देता है। विषयोंके न मिलनेपर जो अपनेको त्यागी कहता है, वह त्यागी नहीं है। वास्तवमें सच्चा त्यागी तो वह है, जो विषयोंके मिलनेपर भी उनमें दोष-दृष्टि करता है और उनसे दूर रहता है। विरक्त पुरुष द्वेष-रहित भी होता है। इसलिये उसे कभी कर्मबन्धनमें नहीं बँधना पड़ता। जगत्‌में मित्र और धनका संग्रह तो करना चाहिये, परन्तु उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। विचारके द्वारा स्नेहका त्याग होता है। जैसे कमलके दलपर जल अटल नहीं रह सकता वैसे ही विवेकी, भगवत्प्राप्तिके इच्छुक और आत्म-ज्ञानी पुरुषके चित्तमें स्नेह नहीं टिक सकता। विषयके दर्शनसे उसमें रमणीय-बुद्धि होती है। फिर प्रियता मालूम होने लगती है। उसे लेनेकी इच्छा होती है। मिल जानेपर उसकी चाट

लग जाती है और बार-बार उसे पानेकी तृष्णा होती है। यह तृष्णा ही समस्त पापोंका मूल है। उद्वेगकी जननी है। अधर्मसे पूर्ण और भयङ्कर है। मूर्ख इसका त्याग नहीं कर सकते। बूढ़े होनेपर भी यह बूढ़ी नहीं होती। यह शरीरके साथ मिटनेवाली बीमारी है। इसका त्याग करनेसे ही सच्चा सुख प्राप्त होता है। जैसे लोहेके भीतर प्रवेश करके आग उसका नाश कर देती है, वैसे ही प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके यह तृष्णा भी उनका नाश कर देती है और स्वयं कभी नहीं मिटती। जैसे ईंधन अपनी ही आगसे भस्म हो जाता है, वैसे ही लोभी पुरुष स्वाभाविक लोभसे ही नष्ट हो जाता है। जैसे प्राणियोंके सिरपर मृत्युका भय सर्वदा सवार रहता है वैसे ही धनी पुरुषोंको राजा, जल, अग्नि, चोर और कुटुम्बका भय सदा ही बना रहता है। जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, भूमिपर हिंसक जीव और जलमें मगर-मच्छ खा जाते हैं वैसे ही धनी पुरुषके धनको भी सब कहीं दूसरे लोग ही भोगा करते हैं। मूर्खोंकी तो बात ही क्या, बड़े-बड़े बुद्धिमानोंके लिये भी धन अनर्थका ही कारण है। वे धनसे सिद्ध होनेवाले फलोंके लिये कर्ममें लग जाते हैं और अपना परम कल्याण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। सभी प्रकारके धन लोभ, मोह, कंजूसी, घमण्ड, हेकड़ी, भय और उद्वेगको बढ़ानेवाले हैं। धनके पैदा करनेमें, रक्षा करनेमें और खर्च करनेमें भी बड़ा दुःख सहना पड़ता है। धनके लिये लोग एक-दूसरेके प्राण ले लेते हैं। यदि धन अपने पास इकट्ठा हो जाय तो वह पाले हुए शत्रुके समान है। उसको छोड़ना भी कठिन हो जाता है। धनकी चिन्ता करना अपना नाश करना है। इसीसे अज्ञानी सर्वदा असन्तुष्ट रहते हैं और ज्ञानी सन्तुष्ट। धनकी प्यास कभी बुझती नहीं। उसकी ओरसे मुँह मोड़ लेना ही परम सुख है। सच्चा सन्तोष ही परम शान्ति है। धर्मराज! जवानी, सुन्दरता, जीवन, रत्नोंकी राशि, ऐश्वर्य और प्रिय वस्तु तथा व्यक्तियों-का समागम—सभी अनित्य हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन्हें कभी नहीं चाहता। इसलिये उचित यह है कि सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहका परित्याग कर दे; और त्याग करनेके कारण जो कुछ भी कष्ट उठाना पड़े, प्रसन्नतासे उठावे। अबतक जगत्में कोई भी संग्रही अपने संग्रहके कारण सुखी नहीं देखा गया है। इसलिये धर्मात्मा पुरुष उसी मनुष्यकी प्रशंसा करते हैं, जो प्रारब्धसे प्राप्त वस्तुमें ही सन्तुष्ट है। धर्म करनेके लिये भी धन कमानेकी अपेक्षा न कमाना ही अच्छा है। जब अन्तमें कीचड़को धोना ही पड़ेगा तो उसको छुआ ही क्यों जाय? धर्मराज! इसलिये आप किसी भी वस्तुकी इच्छा मत कीजिये। यदि आप अपने धर्मपर अटल रहना चाहते हों तो धनकी इच्छा सर्वथा त्याग दें।'

युधिष्ठिरने कहा—ब्राह्मणो! मैं इसलिये धन नहीं चाहता कि उसका स्वयं उपभोग करूँ। मैं तो केवल ब्राह्मणोंका भरण-पोषण चाहता हूँ। मेरे चित्तमें धनका लोभ तनिक भी नहीं है। महात्मन्! मैं पाण्डुवंशी गृहस्थ हूँ। ऐसी अवस्थामें अनुयायियोंका पालन-पोषण कैसे न करूँ! गृहस्थ पुरुषके भोजनमें सभी प्राणी हिस्सेदार हैं। गृहस्थके लिये यह धर्म है कि वह संन्यासी आदि उन लोगोंको भोजन करावे, जो अपने हाथसे अन्न नहीं पकाते। सत्पुरुषोंके घरमें तिनकोंके आसन, बैठनेके स्थान, जल और मीठी बातका कभी अभाव नहीं होता। दुःखीको सोनेके लिये शय्या, थके-माँदेके लिये बैठनेको आसन, प्यासेको पानी और भूखेको भोजन तो देना ही चाहिये। यह सनातन धर्म है कि जो अपने पास आवे, उसे प्रेमभरी दृष्टिसे देखे। मनसे उसके प्रति सद्भाव करे। मधुर वाणीसे बोले और उठकर आसन दे। अतिथिको आता हुआ देखकर अगवानी और सत्कार तो करना ही चाहिये। जो गृहस्थ अग्निहोत्र, गौ, जातिवाले, अतिथि, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और सेवकोंका सत्कार नहीं करता उसे वे जला डालते हैं। गृहस्थ देवता और पितरोंके लिये भोजन बनावे। उन्हें अर्पण किये बिना अपने काममें नहीं लाना चाहिये। कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंके लिये भी निकाल दे। यह बलिवैश्वदेव कर्म है। बलिवैश्वदेव करके और दूसरोंको खिलाकर खाना ही अमृतभोजन है। अतिथिको प्रेमकी दृष्टिसे देखे, मनसे उसका भला चाहे, सत्य और मीठी वाणीसे बोले, हाथोंसे उसकी सेवा करे और जानेके समय उसके पीछे-पीछे चले। इसका नाम पञ्चदक्षिण यज्ञ है। कोई अनजान मनुष्य थका-माँदा मार्गमें चला आ रहा हो तो उसे बड़े प्रेमसे खिलाना-पिलाना चाहिये। यह महान् पुण्य कार्य है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें रहकर इस प्रकारका व्यवहार करता है, वही अपने धर्मका पालन करता है। हमारे-जैसे गृहस्थको आप इससे भिन्न धर्मका उपदेश कैसे कर रहे हैं?

शौनकजीने कहा—सचमुच इस जगत्की चाल उलटी है। आप-जैसे सत्पुरुष दूसरोंको खिलाये बिना स्वयं खाने-पीनेमें संकोच करते हैं और दुष्टलोग अपना पेट भरनेके लिये दूसरोंका हक भी खा जाते हैं। इन्द्रियाँ बड़ी बलवान

और विषयोंका संयोग रहता ही है। इन दोनोंसे पुरुष विवश हो जाता है और रूपके लोभसे पतिङ्गेके समान आगमें गिर पड़ता है। वह अपनी वासनाके अनुसार रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके भोगोंमें इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि उसे अपने-आपकी भी याद नहीं रहती। अज्ञानके कारण कामनाएँ, कामनापूर्ति होनेपर तृष्णा, तृष्णाके कारण अनेकों प्रकारके उचित-अनुचित कर्म होने लगते हैं। फिर तो कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें भटकना अनिवार्य हो जाता है। ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जलचर, थलचर और नभचर प्राणियोंमें उसे चक्कर काटना पड़ता है। यह गति तो बुद्धिहीन विषयासक्त प्राणियोंकी होती है। जो लोग अपने श्रेष्ठ कर्तव्यका पालन करते हैं और जगत्के चक्करसे मुक्त होना चाहते हैं, उन अध्ययन, दान, तपस्या, सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह और निर्लोभता; इनमें पहले चार कर्मरूप हैं और पिछले चार मनोभावरूप। इनका अनुष्ठान भी कर्तव्यबुद्धिसे अभिमान छोड़कर ही करना चाहिये। जो लोग संसारपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें भलीभाँति इन नियमोंका पालन करना चाहिये—शुद्ध संकल्प, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण, ब्रह्मचर्य-अहिंसा आदि व्रत, गुरुदेवकी सेवा, भोजनकी शुद्धि और नियमितता, सत् शास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय, कर्मफलका परित्याग और चित्तनिरोध। इन्हीं नियमोंके पालनसे बड़े-बड़े देवता अपने-अपने अधिकारमें स्थित हैं। धर्मराज! आप भी इन नियमों और तपस्याके द्वारा ऐसी सिद्धि प्राप्त कीजिये, जिससे ब्राह्मणोंके भरण-पोषणकी शक्ति प्राप्त हो जाय।

पुरोहित धौम्यके आदेशानुसार युधिष्ठिरकी सूर्योपासना और अक्षय पात्रकी प्राप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शौनकजीका यह उपदेश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यके पास आ गये और अपने भाइयोंके सामने ही उनसे कहने लगे—'भगवन्! वेदोंके बड़े-बड़े पारदर्शी ब्राह्मण मेरे साथ-साथ वनमें चल रहे हैं। उनके पालन-पोषणकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, इससे मैं बहुत दुःखी हूँ। न तो मैं उनका पालन-पोषण ही कर सकता हूँ और न उन्हें छोड़ ही सकता हूँ। ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, आप कृपा करके यह बतलाइये।' धर्मराज युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर पुरोहित धौम्यने योगदृष्टिसे कुछ समयतक इस विषयपर विचार किया। तदनन्तर धर्मराजको सम्बोधन करके कहा—'धर्मराज! सृष्टिके प्रारम्भमें जब सभी प्राणी भूखसे व्याकुल हो रहे थे, तब भगवान् सूर्यने दया करके पिताके समान अपने किरण-करोंसे पृथ्वीका रस खींचा और फिर दक्षिणायनके समय उसमें प्रवेश किया। इस प्रकार जब उन्होंने क्षेत्र तैयार कर दिया, तब चन्द्रमाने उसमें ओषधियोंका बीज डाला और उसीके फलस्वरूप अन्नकी उत्पत्ति हुई। उसी अन्नसे प्राणियोंने अपनी भूख मिटायी। धर्मराज! कहनेका तात्पर्य यह है कि सूर्यकी कृपासे अन्न उत्पन्न होता है। सूर्य ही समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। वही सबके पिता हैं। इसलिये तुम भगवान् सूर्यकी शरण ग्रहण करो और उनके कृपाप्रसादसे ब्राह्मणोंका पोषण करो।'

पुरोहित धौम्यने धर्मराजको सूर्यकी आराधन-पद्धति बतलाते हुए कहा—'मैं तुम्हें सूर्यके एक सौ आठ नाम बतलाता हूँ। सावधान होकर श्रवण करो—सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाशस्वरूप, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मंगल, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, सौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, यम, वैद्युत, अग्नि, जाठर अग्नि, ऐन्धन अग्नि, तेजस्पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा, याम, क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, शाश्वत पुरुष, योगी, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष,

विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण, सागर, अंश, जीमूत, जीवन, अरिहा, भूताश्रेय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक वह्नि, सर्वादि, अलोलुप, अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, सर्वधातुनिषेचिता, मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, प्राणधारक, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष, माता-पिता-पितामह-स्वरूप, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप, देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय और करुणान्वित। धर्मराज! अमित तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके ये एक सौ आठ नाम हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इनका वर्णन किया है। इन नामोंका उच्चारण करके भगवान् सूर्यको इस प्रकार नमस्कार करना चाहिये। समस्त देवता, पितर और यक्ष जिनकी सेवा करते हैं, असुर, राक्षस और सिद्ध जिनकी वन्दना कर हैं, तपाये हुए सोने और अग्निके समान जिनकी कान्ति है, उन भगवान् भास्करको मैं अपने हितके लिये प्रणाम करता हूँ। जो मनुष्य सूर्योदयके समय एकाग्र होकर इसका पाठ करता है उसे स्त्री, पुत्र, धन, रत्नोंकी राशि, पूर्वजन्मका स्मरण, धैर्य और श्रेष्ठ बुद्धिकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य पवित्र होकर शुद्ध और एकाग्र मनसे भगवान् सूर्यकी इस स्तुतिका पाठ करता है, वह समस्त शोकोंसे मुक्त होकर अभीष्ट वस्तु प्राप्त करता है।'

पुरोहित धौम्यकी यह बात सुनकर संयमी एवं दृढ़व्रती धर्मराजने शास्त्रोक्त सामग्रियोंसे भगवान् सूर्यकी आराधना और तपस्या की। वे स्नान करके भगवान् सूर्यके सामने खड़े हुए और आचमन, प्राणायाम आदि करके भगवान् सूर्यकी स्तुति करने लगे। युधिष्ठिरने कहा—'सूर्यदेव! आप सारे जगत्‌के नेत्र हैं। समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आप ही समस्त प्राणियोंके मूल कारण और कर्मनिष्ठोंके सदाचार हैं। सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठाके उपासक अन्तमें आपको ही प्राप्त होते हैं। आप मोक्षके खुले द्वार हैं और मुमुक्षुओंके परम आश्रय हैं। आप ही समस्त लोकोंको धारण करते, प्रकाशित करते, पवित्र करते तथा बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं। अबतकके बड़े-बड़े ऋषियोंने आपकी पूजा की है और अब भी वेदज्ञ ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त मन्त्रोंके द्वारा समयपर आपका उपस्थान करते हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक और पन्नग आपसे वर प्राप्त करनेकी अभिलाषासे आपके दिव्य रथके पीछे-पीछे चलते हैं। तैंतीस देवता, विश्वेदेव आदि देवगण, उपेन्द्र और महेन्द्र भी आपकी आराधनासे ही सिद्ध हुए हैं। विद्याधर कल्पवृक्षके पुष्पोंसे आपकी पूजा करके अपना मनोरथ सफल करते हैं। गुह्यक, पितर, देवता, मनुष्य, सभी आपकी पूजा करके गौरवान्वित होते हैं। आठ वसु, उनचास मरुद्गण, ग्यारह रुद्र, साध्यगण और वालखिल्य आदि सभी आपकी आराधनासे श्रेष्ठताको प्राप्त हुए हैं। ब्रह्मलोकसे लेकर पृथ्वीपर्यन्त समस्त लोकोंमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं, जो आपसे बढ़कर हो। यों तो बहुत बड़े-बड़े शक्तिशाली जगत्‌में निवास करते हैं, परन्तु आपके प्रभाव और कान्तिके सामने वे नहीं ठहर सकते। जितने भी ज्योतिर्मय पदार्थ हैं, वे सब आपके अन्तर्गत हैं। आप समस्त ज्योतियोंके स्वामी हैं। सत्य, सत्त्व और सभी सात्त्विक भाव आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। भगवान् विष्णु जिस चक्रके द्वारा असुरोंका घमण्ड चूर्ण करते हैं, वह आपके ही अंशसे बना हुआ है। आप ग्रीष्म ऋतुमें अपनी किरणोंसे समस्त ओषधि, रस और प्राणियोंका तेज खींच लेते हैं और वर्षा ऋतुमें लौटा देते हैं; वर्षा ऋतुमें आपकी ही बहुत-सी किरणें तपती हैं, जलाती हैं और गर्जती हैं। वे ही बिजली बनकर चमकती हैं और बादलोंके रूपमें बरसती भी हैं। जाड़ेसे ठिठुरते हुए पुरुषको अग्निसे, ओढ़नोंसे और कंबलोंसे वैसा सुख नहीं मिलता जैसा आपकी किरणोंसे मिलता है। आप अपनी रश्मियोंसे तेरह द्वीपवाली पृथ्वीको प्रकाशित करते हैं। आप बिना किसीकी सहायताकी अपेक्षाके तीनों लोकोंके हितमें लगे रहते हैं। यदि आपका उदय न हो तो सारा जगत् अन्धा हो जाय। धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी कर्मोंमें किसीकी प्रवृत्ति ही न हो। ब्राह्मणादि द्विजाति-संस्कार, यज्ञ, मन्त्र, तपस्या और वर्णाश्रमोचित कर्म आपकी कृपासे ही करते हैं। ब्रह्माका एक दिन एक हजार युगका होता है। उसके आदि-अन्तके विधाता भी आप ही हैं। मनु, मनुपुत्र, जगत्, मनुष्य, मन्वन्तर और ब्रह्मादि समर्थोंके भी स्वामी आप ही हैं। प्रलयका समय आनेपर आपके क्रोधसे ही संवर्तक अग्नि प्रकट होता है और तीनों लोकोंको जलाकर आपमें स्थित हो जाता है। आपकी किरणोंसे ही रंग-बिरंगे ऐरावत आदि मेघ और बिजलियाँ पैदा होती हैं तथा प्रलय करती हैं। आप ही बारह रूप बनाकर द्वादश आदित्योंके नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रलयके समय सारे समुद्रका जल आप अपनी किरणोंसे सुखा लेते हैं। इन्द्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु, शाश्वत ब्रह्म आदि आपके ही नाम हैं। आप ही हंस, सविता, भानु, अंशुमाली, वृषाकपि, विवस्वान्, मिहिर, पूषा, मित्र तथा धर्म हैं। आप ही सहस्ररश्मि, आदित्य, तपन, गोपति, मार्तण्ड, अर्क, रवि, सूर्य, शरण्य एवं

दिनकर हैं। आप ही दिवाकर, सप्तसप्ति, धामकेशी, विरोचन, आशुगामी, तमोघ्न और हरिताश्व कहलाते हैं। जो सप्तमी अथवा षष्ठीके दिन प्रसन्नता और भक्तिसे आपकी पूजा करता है तथा अहङ्कार नहीं करता, उसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो अनन्य चित्तसे आपकी पूजा और नमस्कार करते हैं उन्हें आधि, व्याधि तथा आपत्तियाँ नहीं सतातीं। आपके भक्त समस्त रोगोंसे रहित, पापोंसे मुक्त, सुखी और चिरजीवी होते हैं। हे अन्नपते ! मैं श्रद्धापूर्वक सबको अन्न देना और सबका आतिथ्य करना चाहता हूँ। मुझे अन्नकी कामना है। आप कृपा करके मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। आपके चरणोंमें रहनेवाले माठर, अरुण, दण्ड आदि उन अनुचरोंको मैं प्रणाम करता हूँ जो वज्र, बिजली आदिके प्रवर्तक हैं। क्षुभा, मैत्री आदि अन्य भूतमाताओंको भी मैं प्रणाम करता हूँ। वे मुझ शरणागतकी रक्षा करें।'

जब धर्मराज युधिष्ठिरने भुवनभास्कर भगवान् अंशुमाली-

की इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर अपने अग्निके समान देदीप्यमान श्रीविग्रहसे उनको दर्शन दिया और कहा—'युधिष्ठिर ! तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो। मैं बारह वर्षतक तुम्हें अन्नदान करूँगा। देखो, यह ताँबेका बर्तन मैं तुम्हें देता हूँ। तुम्हारे रसोईघरमें जो कुछ फल, मूल, शाक आदि चार प्रकारकी भोजनसामग्री तैयार होगी वह तबतक अक्षय रहेगी जबतक द्रौपदी परसती रहेगी। आजके चौदहवें वर्षमें तुम्हें अपना राज्य मिल जायगा।' इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये।

जो पुरुष संयम और एकाग्रताके साथ किसी अभिलाषासे इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् सूर्य उसकी इच्छा पूर्ण करते हैं। जो बार-बार इसका धारण और श्रवण करता है उसे उसकी अभिलाषाके अनुसार पुत्र, धन, विद्या आदिकी प्राप्ति होती है। स्त्री, पुरुष कोई भी दोनों समय इसका पाठ करे तो घोर-से-घोर संकटसे भी छूट जाता है। यह स्तुति ब्रह्मासे इन्द्रको, इन्द्रसे नारदको, नारदसे धौम्यको और धौम्यसे युधिष्ठिरको प्राप्त हुई थी। इससे युधिष्ठिरकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। इस स्तोत्रके पाठसे संग्राममें विजय और धनकी प्राप्ति होती है, सारे पाप छूट जाते हैं और अन्तमें सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

जनमेजय ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यसे वर प्राप्त किया। तदनन्तर जलसे बाहर निकलकर पुरोहित धौम्यके चरण पकड़ लिये और भाइयोंका आलिङ्गन किया। तदनन्तर वह पात्र द्रौपदीको दे दिया। रसोई तैयार हुई। थोड़ा-सा पकाया हुआ अन्न भी उस पात्रके प्रभावसे बढ़ जाता और अक्षय हो जाता। उसीसे धर्मराज युधिष्ठिर ब्राह्मणोंको भोजन कराने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ब्राह्मणोंके भोजनके पश्चात् भाइयोंको खिलाकर तब यज्ञसे बचे हुए अमृतके समान अन्नका भोजन करते। युधिष्ठिरके बाद द्रौपदी भोजन करती। तब उस पात्रका अन्न समाप्त हो जाता। इस प्रकार युधिष्ठिर भगवान् सूर्यसे अक्षय पात्र प्राप्त करके ब्राह्मणोंकी अभिलाषा पूर्ण करने लगे। पर्वोंपर यज्ञ होने लगे। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने सबके साथ काम्यक वनकी यात्रा की।

धृतराष्ट्रके क्रोधित होनेपर विदुरका पाण्डवोंके पास जाना और उनके बुलानेपर लौट आना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब पाण्डव वनमें चले गये, तब प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रके चित्तमें बड़ी उद्विग्नता और जलन होने लगी। उन्होंने परम ज्ञानसम्पन्न धर्मात्मा विदुरको बुलाया और उनसे कहा—'भाई विदुर ! तुम्हारी बुद्धि

महात्मा शुक्राचार्यके समान शुद्ध है, तुम सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और श्रेष्ठ धर्मको समझते हो । कौरव और पाण्डव तुम्हारा सम्मान करते हैं और दोनोंके प्रति तुम्हारी समान दृष्टि है । अब तुम कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे दोनोंका ही हित-साधन हो । अब पाण्डवोंके चले जानेपर मुझे क्या करना चाहिये ? प्रजा किस प्रकार हमलोगोंसे प्रेम करे ? पाण्डव भी क्रोधित होकर हमलोगोंकी कोई हानि न कर सकें, ऐसा उपाय तुम बतलाओ ।'

विदुरजीने कहा—राजन् ! अर्थ, धर्म और काम—इन

तीनोंके फलकी प्राप्ति धर्मसे ही होती है । राज्यकी जड़ है धर्म । आप धर्ममें स्थित होकर पाण्डवोंकी और अपने पुत्रोंकी रक्षा कीजिये । आपके पुत्रोंने शकुनिकी सलाहसे भरी सभामें धर्मका तिरस्कार किया है, क्योंकि सत्यसन्ध युधिष्ठिरको कपट-द्यूतसे हराकर उन्होंने उनका सर्वस्व छीन लिया है । यह बड़ा अधर्म हुआ । इसके निवारणका मेरी दृष्टिमें एक ही उपाय है । वैसा करनेसे आपका पुत्र पाप और कलङ्कसे छूटकर प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा । वह उपाय यह है कि आपने पाण्डवोंका जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें दे दिया जाय । राजाका यह परम धर्म है कि वह अपने हकमें ही सन्तुष्ट रहे, दूसरेका हक न चाहे । जो उपाय मैंने बतलाया है उससे आपका लाञ्छन छूट जायगा, भाई-भाईमें फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी नहीं होगा । यह काम आपके लिये सबसे बढ़कर है कि : पाण्डवोंको सन्तुष्ट करें और शकुनिका अपमान करें । र आपके पुत्रोंका सौभाग्य तनिक भी शेष रह गया हो तो शीघ्र शीघ्र यह काम कर डालना चाहिये । यदि आप मोहवश ऐ नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंशका नाश हो जायगा । यदि आप पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतासे पाण्डवोंके साथ रहना स्वीकार कर तब तो ठीक ही है, अन्यथा परिवार और प्रजाके सुखके लि उस कुलकलङ्क और दुरात्माको कैद करके युधिष्ठिरव राजसिंहासनपर बैठा दीजिये । युधिष्ठिरके चित्तमें किसीके प्रि राग-द्वेष नहीं है, इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करें यदि सब लोग मेल-मिलापसे रह सकें तो पृथ्वीके सभी राजा हमारे सामने वैश्योंके समान सेवा करनेके लिये उपस्थित हों । दुःशासन भरी सभामें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा-याचना करे । आप युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर राजसिंहासनपर बैठा दें । और तो क्या कहूँ; बस, आप इतना करनेसे कृतकृत्य हो जायँगे ।

धृतराष्ट्रने कहा—'विदुर ! यह तुम क्या कह रहे हो । तुम पाण्डवोंका हित चाहते हो और मेरे पुत्रोंका अहित । मेरे मनमें तुम्हारी बातें नहीं बैठतीं । तुम बार-बार पाण्डवोंके पक्षकी ही बात कहते हो । भला, मैं उनके लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ सकता हूँ । विदुर ! मैं तो तुम्हारा इतना सम्मान करता हूँ और तुम मेरे पुत्रोंका अहित चाहते हो । अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है । तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ ।' इतना कहकर धृतराष्ट्र उठ खड़े हुए और झटपट महलमें चले गये । धृतराष्ट्रकी यह दशा देखकर विदुरने कहा—'अब कौरवकुलका नाश अवश्यम्भावी है ।' ऐसा कहकर उन्होंने पाण्डवोंसे मिलनेके लिये यात्रा कर दी ।

यों तो विदुरजीके चित्तमें सर्वदा ही पाण्डवोंसे मिलनेकी लालसा बनी रहती थी, परन्तु आज धृतराष्ट्रके व्यवहारसे उन्हें उसको पूरा करनेका अवसर मिल गया और उन्होंने एक रथपर सवार होकर काम्यक वनकी यात्रा कर दी । उनके शीघ्रगामी घोड़ोंने थोड़े ही समयमें उन्हें वहाँ पहुँचा दिया । उस समय धर्मात्मा युधिष्ठिर ब्राह्मणों, भाइयों और द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे । उन्होंने देखा और दूरसे ही पहचान लिया कि विदुरजी बड़ी शीघ्रतासे हमारे पास आ रहे हैं । युधिष्ठिरजी-ने भीमसेनसे कहा—'भाई, पता नहीं कि इस बार विदुरजी यहाँ आकर हमलोगोंसे क्या कहेंगे ।' तदनन्तर पाण्डवोंने उठकर विदुरजीकी अगवानी की । स्वागत-सत्कार किया ।

विदुरसे मिलकर धृतराष्ट्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'मेरे प्यारे भाई! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम सकुशल लौट आये। तुम्हें वहाँ मेरी याद तो आती थी न? तुम्हारे जानेके बाद मुझे नींद नहीं आयी। मैं जाग्रत् अवस्थामें ही अपने शरीरको श्रीहीन देखता था। मैंने तुमसे जो कुछ अनुचित कहा, उसके लिये मुझे क्षमा कर दो।' विदुरजीने कहा—'राजन्! आप मेरे पूजनीय और बड़े हैं। मैंने तो आपकी बातोंपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था। अब भला, उसमें क्षमा करना क्या है। आपके दर्शनके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं, फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें स्वभावसे ही उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे चित्तमें आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं है।' इस प्रकार दोनों एक-दूसरेको प्रसन्न करके सुखसे रहने लगे।

दुर्योधनकी दुरभिसन्धि, व्यासजीका आगमन और मैत्रेयजीका शाप

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब दुरात्मा दुर्योधनको यह समाचार मिला कि विदुरजी पाण्डवोंके पाससे लौट आये हैं, तब उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने मामा शकुनि, कर्ण और दुःशासनको बुलाकर कहा—'पाण्डवोंके हितैषी और हमारे पिताजीके अन्तरङ्ग मन्त्री विदुर वनसे लौटकर आ गये हैं। वे पिताजीको ऐसी उलटी-सीधी समझावेंगे कि फिरसे पाण्डव बुलवा लिये जायँ। उनके ऐसा करनेके पहले ही आपलोग कोई ऐसी युक्ति लगावें, जिससे मेरा काम बन जाय।' दुर्योधनका अभिप्राय समझकर कर्णने कहा—'हम सब कवच एवं शस्त्रास्त्र धारण करके रथपर सवार हों और वनवासी पाण्डवोंको मार डालनेके लिये चल पड़ें। इस प्रकार पाण्डवोंकी मृत्युकी बात लोगोंको मालूम भी नहीं होगी और हमारा कलह भी सदाके लिये समाप्त हो जायगा। जबतक पाण्डव लड़ने-भिड़नेके लिये उत्सुक नहीं हैं, शोकग्रस्त हैं, असहाय हैं, तभीतक उनपर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिये।' सभीने एक स्वरसे कर्णकी बात स्वीकार कर ली। वे सब क्रोधके अधीन होकर रथोंपर सवार हुए और पाण्डवोंको मारनेके लिये वनके लिये चल पड़े।

महर्षि व्यास बड़े ही शुद्ध अन्तःकरणके पुरुष हैं। उनकी सामर्थ्य अनिर्वचनीय है। जिस समय कौरव पाण्डवोंका अनिष्ट करनेके लिये यात्रा कर रहे थे, उसी समय वे वहाँ आ पहुँचे। उन्हें अपनी दिव्य दृष्टिसे कौरवोंकी दुर्बुद्धिका पता चल गया था। उन्होंने स्पष्टरूपसे आज्ञा देकर कौरवोंको वैसा करनेसे रोक दिया। तदनन्तर धृतराष्ट्रके पास जाकर वे बोले—'धृतराष्ट्र! मैं तुमलोगोंके हितकी बात कहता हूँ। दुर्योधनने कपटपूर्वक जूआ खेलकर पाण्डवोंको हरा दिया और उन्हें वनमें भेज दिया, यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी है। यह निश्चित है कि तेरह वर्षके बाद कौरवोंके दिये हुए कष्टोंको स्मरण करके पाण्डव बड़ा उग्र रूप धारण करेंगे और बाणोंकी बौछारसे तुम्हारे पुत्रोंका ध्वंस कर डालेंगे। भला, यह कैसी बात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके लोभसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है। मैं कहे देता हूँ कि तुम अपने लाड़ले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि तुम अपने पुत्रकी द्वेष-बुद्धि मिटानेका यत्न न करोगे तो बड़ा अन्याय होगा। मेरी सम्मति तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें जाकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है पाण्डवोंके सत्संगसे दुर्योधनका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभावकी जाग्रति हो जाय। परन्तु यह बात है बहुत कठिन, क्योंकि जन्मगत स्वभावका बदल जाना सरल नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पाण्डवोंके साथ मेल-मिलाप कर ले।'

धृतराष्ट्रने कहा—'परम ज्ञानसम्पन्न महर्षे! जो कुछ आप कह रहे हैं, वही तो मैं भी कहता हूँ। यह बात सभी लोग जानते हैं। आप कौरवोंकी उन्नति और कल्याणके लिये जो सम्मति दे रहे हैं वही विदुर, भीष्म और द्रोणाचार्य भी देते हैं। यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करते हैं, कुरुवंशियोंपर दया करते हैं, तो आप मेरे दुष्ट पुत्र दुर्योधनको ऐसी ही शिक्षा दें।' व्यासजीने कहा—'राजन्! थोड़ी ही देरमें महर्षि मैत्रेय यहाँ आ रहे हैं। वे पाण्डवोंसे मिलकर अब हमलोगोंसे मिलना चाहते हैं। वे ही तुम्हारे पुत्रको मेल-मिलापका उपदेश करेंगे। हाँ, इस बातकी सूचना मैं दिये देता हूँ कि वे जो कुछ कहें, बिना सोच-विचारके करना चाहिये। यदि उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा तो वे क्रोधसे शाप दे देंगे।' इतना कहकर महर्षि वेदव्यास वहाँसे रवाना हो गये।

महर्षि मैत्रेयके पधारते ही धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके सहित

संयोगवश काम्यक वनमें धर्मराज युधिष्ठिरसे भेंट हो गयी। वे आजकल जटा और मृगछाला धारण किये तपोवनमें निवास कर रहे हैं। उनके दर्शनके लिये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आते हैं। धृतराष्ट्र! मैंने वहीं यह सुना कि तुम्हारे पुत्रोंने अज्ञानवश जूआ खेलकर उनके साथ अन्याय किया है। यह तो तुमलोगोंके लिये बड़ी भयावनी बात है। वहाँसे मैं तुम्हारे पास आया हूँ, क्योंकि मैं तुमपर सदासे स्नेह और प्रेम रखता हूँ। राजन्! यह किसी प्रकार उचित नहीं है कि तुम्हारे और भीष्मके जीवित रहते तुम्हारे पुत्र एक-दूसरेसे विरोध करके मर मिटें। तुम सबके केन्द्र एवं रोकने, सजा करने आदिमें समर्थ हो। फिर इस घोर अन्यायकी क्यों उपेक्षा कर रहे हो? तुम्हारी सभामें तुम्हारे सामने डाकुओंके समान जो अन्याय-कार्य हुआ है, उससे ऋषि-मुनियोंके समाजमें तुम्हारी बड़ी हेठी हुई है। अब भी सँभल जाओ।' इसके बाद दुर्योधनकी ओर मुँह फेरकर कहा—'बेटा दुर्योधन! मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। तुम तनिक समझदारीसे काम लो। पाण्डवोंका, कुरुवंशियोंका, सारी प्रजाका और तुम्हारा भी हित तथा प्रिय इसीमें है कि तुम पाण्डवोंसे द्रोह मत करो। वे सब-के-सब वीर, योद्धा, बलवान्, दृढ़ एवं नर-रत्न हैं। वे बड़े सत्यप्रतिज्ञ, आत्माभिमानी और राक्षसोंके शत्रु हैं। वे चाहे जब जैसा रूप धारण कर सकते हैं। उनके हाथों बड़े-बड़े राक्षसोंका नाश होनेवाला है और हिडिम्ब, बक, किर्मीर आदि राक्षसोंको उन्होंने मार भी डाला है। जिस समय रातमें वे यहाँसे जा रहे थे, किर्मीर-जैसे बलवान् राक्षसको भीमसेनने बात-की-बातमें मार डाला। तुम तो जानते ही हो कि दिग्विजयके समय भीमसेनने दस हजार हाथियोंके समान बली जरासन्धको नष्ट कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण उनके सम्बन्धी हैं। द्रुपदके पुत्र उनके साले हैं। पाण्डवोंके साथ युद्धमें टक्कर लेनेवाला इस समय कोई नहीं है। इसलिये तुम्हें उनके साथ मेल कर लेना चाहिये। बेटा! तुम मेरी बात मान लो। क्रोधके वश होकर अनर्थ मत करो।'

दिया—'मूर्ख दुर्योधन! तू मेरा तिरस्कार करता है और मेरी बात नहीं मानता। ले, तू इस अभिमानका फल चख। तेरे इस द्रोहके कारण कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध होगा। उसमें भीमसेन गदाकी चोटसे तेरी जाँघ तोड़ डालेंगे।' महर्षि मैत्रेयके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्र उनके चरणोंपर गिरकर अनुनय-विनय करने लगे। उन्होंने कहा—'भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह शाप न लगे।' मैत्रेयजीने कहा—'राजन्! यदि तुम्हारा पुत्र पाण्डवोंसे मेल कर लेगा तब तो मेरा शाप नहीं लगेगा, नहीं तो अवश्य लगेगा।' तदनन्तर महर्षि मैत्रेयने वहाँसे प्रस्थान किया। दुर्योधन भी भीमसेनके किर्मीर-वध-सम्बन्धी पराक्रमको सुनकर उदास मुँहसे वहाँसे चला गया।

किर्मीर-वधकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मैत्रेय मुनिके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीसे पूछा—'विदुर ! भीमसेनसे किर्मीर राक्षसकी भेंट कहाँ हुई ? तुम मुझे किर्मीर-वधकी कथा सुनाओ ।' विदुरजीने कहा—"राजन् ! पाण्डवोंके सभी काम अलौकिक हैं । मुझे तो बार-बार उन्हें सुननेका अवसर मिलता है । राजन् ! जिस समय पाण्डव जूएमें हारकर वनवासके लिये हस्तिनापुरसे रवाना हुए उस समय लगातार तीन दिनतक चलते ही रहे । जिस मार्गसे वे काम्यक वनमें प्रवेश करना चाहते थे, आधी रातके समय उस मार्गको रोककर किर्मीर राक्षस खड़ा हो गया । वह हाथमें जलती हुई लूक लिये हुए था । भुजाएँ लंबी थीं और डाढ़ें भयङ्कर । आँखें लाल-लाल । सिरके खड़े-खड़े बाल, मानो आगकी लपटें हों । वह कभी तरह-तरहकी माया फैलाता तो कभी बादलोंकी तरह गरजता । उसकी गर्जनासे सारे वनपशु भयभीत होकर खलबला उठे । आँधी चलने लगी । धूलसे आकाश आच्छादित हो गया । द्रौपदी तो उसके दर्शनमात्रसे वेहोश-सी हो गयी । उसकी यह चाल देखकर पुरोहित धौम्यने रक्षोघ्न मन्त्रका पाठ करके राक्षसी माया नष्ट कर दी । उसी समय किर्मीर राक्षस भयावने वेषमें पाण्डवोंके सामने आकर खड़ा हो गया । पाण्डवोंका परिचय जानकर किर्मीरने कहा कि 'मैं बकासुरका भाई और हिडिम्बका मित्र हूँ । इसी भीमसेनने उनको मारा है । इसलिये आज अच्छा अवसर मिला । इसे मैं अभी नष्ट किये डालता हूँ ।' उसी समय भीमसेनने एक बहुत बड़ा पेड़ उखाड़ा और उसके पत्ते तोड़-ताड़कर फेंक दिये । भीमसेनने दृढ़ताके साथ लँगोट कसकर वृक्षको उठाया और राक्षसके सिरपर दे मारा । परन्तु इससे राक्षसको कोई घबराहट नहीं हुई । राक्षसने उनके ऊपर एक जलती हुई लकड़ी फेंकी, परन्तु भीमसेनने पैरसे मारकर अपनेको बचा लिया । इसके बाद दोनोंमें भयङ्कर वृक्ष-युद्ध हुआ, जिससे आस-पासके बहुत-से वृक्ष नष्ट हो गये । भीमसेनने हाथीके समान झपटकर राक्षसको अपनी बाँ[हों में] बाँध तो लिया अवश्य, परन्तु वह जोर करके निकल [गया] और उलटे भीमसेनको ही पकड़ लिया । तदनन्तर बलव[ान्]

भीमसेनने उसको जमीनपर गिरा दिया और उसकी [कमर] घुटनोंसे दबाकर गला घोंट दिया । उसका शरीर ढीला [हो] गया । आँखें निकल आयीं । इस प्रकार किर्मीर राक्ष[स के] मर जानेपर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । सब [लोग] भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे और फिर काम्यक वनमें प्र[वेश] किया ।" इस प्रकार विदुरजीसे किर्मीर-वधकी बात सुन[कर] राजा धृतराष्ट्र उदास हो गये और उन्होंने लंबी साँस ली ।

भगवान् श्रीकृष्ण आदिका काम्यक वनमें आगमन, उनके साथ पाण्डवोंकी बातचीत और उनका वापस लौटना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब भोज, वृष्णि, अन्धक आदि वंशोंके यादव, पञ्चालके धृष्टद्युम्न, चेदिदेशके धृष्टकेतु एवं केकय देशके सगे-सम्बन्धियोंको यह संवाद मिला कि पाण्डवगण अत्यन्त दुखी होकर राजधानीसे चले गये और काम्यक वनमें निवास कर रहे हैं, तब [वे] कौरवोंपर बहुत चिढ़कर क्रोधके साथ उनकी निन्दा करते हु[ए] अपना कर्तव्य निश्चय करनेके लिये पाण्डवोंके पास गये । सभ[ी] क्षत्रिय भगवान् श्रीकृष्णको अपना नेता बनाकर धर्मराज

आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। आप समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं, इसलिये मैं प्रेमसे आपके सामने अपना दुःख निवेदन करती हूँ। श्रीकृष्ण! मैं पाण्डवोंकी पत्नी, धृष्टद्युम्नकी बहिन और आपकी सखी हूँ। मुझ-जैसी गौरवशालिनी स्त्री कौरवोंकी भरी सभामें घसीटी जाय, यह कितने दुःखकी बात है। कौरवोंने बेईमानीसे हमारा राज्य छीन लिया, वीर पाण्डवोंको दास बना लिया और राजाओंसे ठसाठस भरी सभामें मुझ एकवस्त्रा रजस्वला स्त्रीको चोटी पकड़कर घसीट मँगवाया। मधुसूदन! मैं जानती हूँ कि गाण्डीव धनुषको अर्जुन, भीमसेन और आपके अतिरिक्त और कोई नहीं चढ़ा सकता। फिर भी भीमसेन और अर्जुन मेरी रक्षा नहीं कर सके। धिक्कार है इनके बल-पौरुषको! इनके जीते-जी दुर्योधन क्षणभर भी कैसे जीवित है। यह वही दुर्योधन है, जिसने अजातशत्रु सरलचित्त पाण्डवोंको इनकी माताके साथ हस्तिनापुरसे निकाल दिया था। इसीने भीमसेनको विष देकर मार डालनेकी चेष्टा की थी। भीमसेन-की आयु शेष थी, विष पच गया, वे जी गये—यह दूसरी बात है। जिस समय भीमसेन प्रमाणकोटि वटके नीचे सो रहे थे, उस समय दुर्योधनने इन्हें रस्सीसे बँधवाकर गङ्गामें डाल दिया था। अवश्य ही ये रस्सी तोड़-ताड़कर तैरकर निकल आये। साँपोंसे डसवानेमें भी उसने कोई कसर नहीं की। जिस समय हमारी सास अपने पाँचों पुत्रोंके साथ वारणावत नगरमें सो रही थीं, उसने आग लगाकर उन्हें जला डालनेकी चेष्टा की। ऐसा नीच कर्म भला, और कौन मनुष्य कर सकता है! श्रीकृष्ण! मुझ सतीकी चोटी पकड़कर दुःशासनने भरी सभामें घसीटा और ये पाण्डव टुकुर-टुकुर देखते रहे।' द्रौपदीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। वह अपना मुँह ढककर रोने लगी। उसकी साँस लंबी चलने लगी। उसने अपनेको कुछ सम्हाला और गद्गद कण्ठसे क्रोधमें भरकर फिर कहने लगी।

द्रौपदीने कहा—'श्रीकृष्ण! चार कारणोंसे तुम्हें सदा मेरी रक्षा करनी चाहिये। एक तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, दूसरे अग्निकुण्डमेंसे उत्पन्न होनेके कारण मैं गौरवशालिनी हूँ, तीसरे तुम्हारी सच्ची प्रेमिका हूँ और चौथे तुमपर मेरा पूरा अधिकार है तथा तुम मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हो।'

तब श्रीकृष्णने भरी सभामें वीरोंके सामने द्रौपदीको सम्बोधित करके कहा—'कल्याणी! तुम जिनपर क्रोधित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी इसी तरह रोयेंगी। थोड़े ही दिनोंमें अर्जुनके बाणोंसे कटकर खूनसे लथपथ होकर वे जमीनपर सो जायँ मैं वही काम करूँगा, जो पाण्डवोंके अनुकूल होगा।

शोक मत करो। मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम राजरानी बनोगी। चाहे आकाश फट जाय, हिमाचल टुकड़े-टुकड़े हो जाय, पृथ्वी चूर-चूर हो जाय, समुद्र सूख जाय परन्तु द्रौपदी! मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती।' द्रौपदीने श्रीकृष्णकी बात सुनकर टेढ़ी नजरसे अर्जुनकी ओर देखा। अर्जुनने कहा—'प्रिये! तुम रोओ मत। श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, वैसा ही होगा। उसे कोई टाल नहीं सकता।' धृष्टद्युम्नने कहा—'बहिन! मैं द्रोणको, शिखण्डी भीष्मपितामहको, भीमसेन दुर्योधनको और अर्जुन कर्णको मार डालेंगे। जब हमें बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायता प्राप्त है, तब स्वयं इन्द्र भी नहीं जीत सकते। धृतराष्ट्रके लड़कोंमें तो रक्खा ही क्या है।'

अब सबकी दृष्टि भगवान् श्रीकृष्णकी ओर घूम गयी। श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरको सम्बोधित करके कहा—"राजन्! यदि उस समय मैं द्वारकामें होता तो आपको इतना दुःख नहीं उठाना पड़ता। यदि कुरुवंशी मुझे जूएमें नहीं भी बुलाते, तब भी मैं स्वयं वहाँ आता और बहुत-से दोष दिखाकर जूएका अनर्थ रोक देता। मैं भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य,

द्रौपदीको सान्त्वना

कृपाचार्य और बाह्लीकको बुलाकर धृतराष्ट्रसे कहता—'राजन्! तुम अपने पुत्रोंमें जूआ मत कराओ। बस करो।' जूएके दोषसे राजा नलको कितनी विपत्ति उठानी पड़ी, यह मैं उन्हें सुनाता। धर्मराज! उसी जूएके कारण तो आप भी राज्यच्युत हुए हैं। जूएसे बिना समयके ही धन-सम्पत्तिका विनाश हो जाता है। बार-बार खेलनेकी ऐसी सनक सवार हो जाती है कि उसकी लड़ी टूटती ही नहीं। स्त्रियोंसे हेलमेल, जूआ खेलना, शिकारका शौक और शराब पीना—ये चारों बातें प्रत्यक्ष दुःख हैं। इनसे मनुष्य श्रीभ्रष्ट हो जाता है। यों तो चारों बातें बुरी हैं, परन्तु उनमें जूआ सबसे बढ़-चढ़कर है। जूएसे एक दिनमें ही सारी सम्पत्तिका नाश हो जाता है। मनुष्य बुरी आदतमें फँस जाता है। धर्म, अर्थ आदिका बिना भोगे ही नाश हो जाता है और इसके कारण मित्रोंमें भी गाली-गलौज होने लगती है। मैं राजा धृतराष्ट्रको जूएके और भी बहुत-से दोष बतलाता। यदि वे मेरी बात मान लेते तो कुरुवंशका कल्याण होता, धर्मकी रक्षा होती। यदि वे मेरी हितैषितापूर्ण प्रिय बातोंको स्वीकार नहीं करते तो मैं बलपूर्वक उन्हें दण्ड देता। यदि उनके जुआरी सभासद् या मित्र अन्यायवश उनका पक्ष लेते तो मैं उन्हें मार डालता। उस समय मेरे द्वारकामें न रहनेसे ही आपने जूआ खेलकर घर बैठे विपत्ति बुला ली और आज मैं आपको इस विपत्तिमें देख रहा हूँ।''

युधिष्ठिरने पूछा—'श्रीकृष्ण! तुम उस समय द्वारकामें नहीं तो कहाँ थे और कौन-सा काम कर रहे थे?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—''धर्मराज! उस समय मैं शाल्वका और उसके नगराकार विमान सौभका नाश करनेके लिये द्वारकासे बाहर चला गया था। जिस समय आपके राजसूय यज्ञमें मेरी अग्रपूजा की गयी थी और शिशुपालकी दुष्टताके कारण मैंने उसे भरी सभामें चक्रके द्वारा मार डाला था, उस समय मैं तो यहाँ था और उधर शिशुपालकी मृत्युका समाचार पाकर शाल्वने द्वारकापर चढ़ाई कर दी। वह अपने सप्तधातुनिर्मित सौभ विमानपर बैठकर बड़ी क्रूरताके साथ द्वारकाके कुमारोंका संहार करने लगा। बाग-बगीचे, महल नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। उसने वहाँ लोगोंसे इस प्रकार पूछा कि 'यादवाधम मूर्ख कृष्ण कहाँ है? मैं उसका घमण्ड चूर-चूर कर दूँगा। वह जहाँ होगा, वहीं मैं उसके पास जाऊँगा। मैं अपने शस्त्रकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं कृष्णको मारे बिना लौटूँगा नहीं।' शाल्वने लोगोंसे और भी कहा कि 'विश्वासघाती कृष्णने मेरे मित्र शिशुपालको मार डाला है। इसलिये आज मैं उसे यमराजके हवाले करूँगा।' धर्मराज! शाल्वने बहुत कुछ बक-झककर द्वारकामें बहुत ऊधम मचाया और सौभ विमानपर बैठकर मेरी बाट जोहने लगा। मैं जब यहाँसे चलकर द्वारका पहुँचा और मैंने वहाँकी दशा देखी, तब मुझे बहुत क्रोध आया और मैंने उसकी करतूतपर विचार करके यही निश्चय किया कि उसको मार डालना चाहिये। मैंने जब द्वारकासे बाहर निकलकर उसकी खोज की, तब वह समुद्रके एक भयानक द्वीपमें अपने सौभ विमानसहित मिला। मैंने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाकर युद्धके लिये शाल्वको ललकारा। कुछ समयतक हमलोगोंमें घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें मैंने शाल्वसमेत समस्त दानवोंको मारकर धराशायी कर दिया। यही कारण है कि मैं उस समय द्वारकापुरीमें नहीं था। जब मैं लौटकर द्वारका पहुँचा तब मालूम हुआ कि हस्तिनापुरमें कपटद्यूतके द्वारा आपलोगोंको जीत लिया गया है। उसी समय मैं वहाँसे चल पड़ा और हस्तिनापुर होकर यहाँ आया हूँ।''

भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके पूछनेपर शाल्व-वधकी कथा विस्तारसे सुनायी और अन्तमें उनसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी। अनुमति मिल जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरको प्रणाम किया, भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णका सिर चूमा, श्रीकृष्ण और अर्जुन गले लगे, नकुल और सहदेवने उन्हें प्रणाम किया, धौम्य पुरोहितने उनका सम्मान किया, द्रौपदीने अपने आँसुओंसे श्रीकृष्णको भिगो दिया। श्रीकृष्ण अपने स्वर्णरथमें सुभद्रा और अभिमन्युको बैठाकर युधिष्ठिरको बार-बार धीरज दे द्वारकाके लिये रवाना हुए। तदनन्तर धृष्टद्युम्नने द्रौपदीके पुत्रोंको लेकर अपने नगरके लिये प्रस्थान किया। शिशुपालके पुत्र धृष्टकेतुने अपनी बहिन करेणुमती (नकुलकी स्त्री) को लेकर अपनी नगरी शुक्तिमतीकी यात्रा की। सभी राजा-महाराजा अपने-अपने देश लौट गये। पाण्डवोंने बहुत समझा-बुझाकर अपनी प्रजाको लौटाना चाहा, परन्तु लोग लौटे नहीं। वह दृश्य बड़ा अद्भुत था। किसी प्रकार सबके लौटनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंका सत्कार किया और उनसे आगे जानेकी आज्ञा माँगी और सेवकोंसे कहा—'तुमलोग रथ तैयार करो।'

द्वैतवनमें पाण्डवोंका निवास, मार्कण्डेय मुनि और दाल्भ्यबकका उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब भगवान् श्रीकृष्ण आदि अपने-अपने स्थानके लिये रवाना हो गये तब प्रजापतियोंके समान तेजस्वी पाण्डवोंने वेद-वेदाङ्गवेत्ता ब्राह्मणोंको सोनेकी मुहरें, वस्त्र और गौएँ देकर रथपर सवार हो अगले वनके लिये प्रस्थान किया । इन्द्रसेन सुभद्राकी दाइयों, दासियों और वस्त्राभूषणोंको लेकर बीस सैनिकोंके संरक्षणमें रथपर द्वारकाके लिये रवाना हुआ । उस समय मनस्वी नागरिक धर्मराज युधिष्ठिरके पास आकर उनके बायें खड़े हो गये और उनमेंसे मुख्य-मुख्य ब्राह्मण प्रसन्नताके साथ धर्मराजसे बातचीत करने लगे । पाण्डवगण झुंड-की-झुंड प्रजाको आयी देख खड़े हो गये और उनसे बात करने लगे । उस समय राजा और प्रजा दोनों ही आपसमें पिता-पुत्रके समान व्यवहार कर रहे थे । सारी प्रजा कहने लगी—'हा स्वामी ! हा धर्मराज ! आप हमलोगोंको अनाथ करके क्यों जा रहे हैं ? आप कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ और हमारे स्वामी हैं । आप इस देश तथा हम नागरिकोंको छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? क्या पिता कभी अपनी सन्तानको इस प्रकार अनाथ करता है ? क्रूरबुद्धि दुर्योधन, शकुनि और कर्णको धिक्कार है, जिन्होंने आप-जैसे धर्मात्मा महापुरुषको कपटद्यूतके द्वारा छलकर दुखी करना चाहा है । आप अपने बसाये हुए कैलासके समान चमकीले इन्द्रप्रस्थको छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? आप हमलोगोंको क्यों नहीं बतला जाते कि मयदानवके द्वारा निर्मित सभा छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ?' प्रजाकी बात सुनकर महापराक्रमी अर्जुनने सारी प्रजासे ऊँचे स्वरमें कहा—'उपस्थित नागरिको ! धर्मराज वनमें निवास करनेके बाद वह दिव्यसभा और शत्रुओंकी कीर्ति छीन लेंगे । तुमलोग अपने धर्मके अनुसार अलग-अलग सत्पुरुषोंकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करना, जिससे आगे चलकर हमारा काम बन जाय ।' अर्जुनकी बात सुनकर सब लोगोंने वैसा करना स्वीकार किया । उन लोगोंने युधिष्ठिरके बहुत कहनेपर पाण्डवोंको दाहिने करके खिन्नताके साथ अपने-अपने घरकी यात्रा की ।

प्रजाके चले जानेपर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा कि 'हमें बारह वर्षतक निर्जन वनमें रहना है । इसलिये इस जङ्गलमें जहाँ फूल-फल अधिक हों, स्थान रमणीय और सुखदायक हो, ऋषियोंके पवित्र आश्रम हों, ऐसा प्रदेश ढूँढ़ लेना चाहिये ।' अर्जुनने धर्मराजका गुरुके समान सम्मान करके कहा कि 'आपने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और महापुर सेवा की है । मनुष्य-लोककी कोई भी वस्तु आपके अज्ञात नहीं है । इसलिये आपकी जहाँ इच्छा हो, वहीं ि करना चाहिये । भाईजी ! अब जो वन पड़ेगा, उसका द्वैतवन है । उसमें पवित्र जलसे भरा एक सरोवर तो है रंग-बिरंगे फूल भी खिल रहे हैं और आवश्यक फल भी हैं । वह वन पक्षियोंके कलरवसे परिपूर्ण रहता है । मुझे इस वनमें रहना अच्छा लगता है, परन्तु आपकी अनुमति तभी । आज्ञा कीजिये ।' युधिष्ठिरने कहा कि 'अर्जुन ! भी यही सम्मति है । आओ, हमलोग द्वैतवनमें चलें ।' नि हो जानेपर अग्निहोत्री, संन्यासी, स्वाध्यायशील भिक्षु वानप्रस्थ, तपस्वी, व्रती, महात्मा ब्राह्मणोंके साथ धर्मा पाण्डवोंने द्वैतवनमें प्रवेश किया । वहाँ धर्मात्मा तपस्वी पवित्र स्वभाववाले आश्रमवासी धर्मराजके सामने आये

धर्मराजने यथायोग्य सबका स्वागत-सत्कार किया । तदनन्तर एक फूलोंसे लदे कदम्ब वृक्षकी छायामें आकर बैठ गये । भीमसेन, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल, सहदेव और उनके सेवकोंने रथोंसे नीचे उतरकर घोड़े खोल दिये और सब धर्मराजके

पास आकर बैठ गये। वहाँ रहकर धर्मराज समस्त अतिथि-अभ्यागत, ऋषि-मुनि और ब्राह्मणोंको कन्द, मूल, फलसे तृप्त करने लगे। बड़ी-बड़ी इष्टियाँ, श्राद्धकर्म, शान्तिक-पौष्टिक क्रियाएँ धौम्य पुरोहितके निर्देशानुसार होतीं। समृद्धिशाली पाण्डव इन्द्रप्रस्थका राज्य छोड़कर द्वैतवनमें रहने लगे।

इन्हीं दिनों परम तेजस्वी महामुनि मार्कण्डेय पाण्डवोंके आश्रमपर आये। महामनस्वी युधिष्ठिरने देवता, ऋषि और मनुष्योंके पूजनीय मार्कण्डेयजीका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। मार्कण्डेयजी महाराज वनवासी पाण्डव और द्रौपदीकी ओर देखकर मुसकराने लगे। धर्मराज युधिष्ठिरने पूछा—'माननीय! अन्य सभी तपस्वी मुझे इस दशामें देखकर सङ्कोचके मारे कुछ बोल नहीं पाते और आप मेरी ओर देखकर मुसकरा रहे हैं। इसका क्या अभिप्राय है?' मार्कण्डेयजीने कहा—"मैं तुम्हें इस दशामें देखकर प्रसन्नतासे नहीं मुसकरा रहा हूँ। मुझे किसी बातका घमंड नहीं है। तुमलोगोंको इस दशामें देखकर मुझे सत्यनिष्ठ दशरथनन्दन भगवान् रामचन्द्रकी स्मृति हो आयी है। उन्होंने पिताकी आज्ञासे एकमात्र धनुष लेकर सीता और लक्ष्मणके साथ वनवास किया था। उन्हें मैंने ऋष्यमूक पर्वतपर विचरते समय देखा था। भगवान् रामचन्द्र इन्द्रसे भी बलवान्, यमको भी दण्ड देनेकी शक्ति रखनेवाले, महामनस्वी तथा निर्दोष थे। फिर भी उन्होंने पिताकी आज्ञासे वनवास स्वीकार करके अपने धर्मका पालन किया। यद्यपि उन्हें संग्राममें कोई भी जीत नहीं सकता था, फिर भी उन्होंने राजोचित भोगोंका त्याग करके वनवास किया। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यको 'मैं बड़ा बलवान् हूँ'—ऐसा समझकर अधर्म नहीं करना चाहिये। भारतवर्षके बड़े-बड़े इतिहासप्रसिद्ध राजा नाभाग, भगीरथ आदिने सत्यके बलपर ही पृथ्वीका शासन किया था। धर्मराज! इस समय जगत्में तुम्हारा यश और तेज देदीप्यमान हो रहा है। तुम्हारी धार्मिकता, सत्यनिष्ठा, सद्व्यवहार जगत्के समस्त प्राणियोंसे बढ़े-चढ़े हैं। तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनवासकी तपस्या कर लेनेके बाद अपनी तेजोमयी राजलक्ष्मीको कौरवोंसे छीन लोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।" इस प्रकार कहकर महामुनि मार्कण्डेय पुरोहित धौम्य और पाण्डवोंसे अनुमति लेकर उत्तर दिशाकी ओर चले गये।

जबसे महात्मा पाण्डव द्वैतवनमें आकर रहने लगे, तबसे वह विशाल वन ब्राह्मणोंसे भर गया। उस वनमें तथा सरोवरके आस-पास ऐसी वेदध्वनि होती थी, जिससे वह ब्रह्मलोकके समान जान पड़ता था। वह ध्वनि जो सुनता, उसीके हृदयमें वह रम जाती। एक दिन दाल्भ्यबक मुनिने सन्ध्याके समय धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'राजन्! देखो, इस समय द्वैतवनके आश्रमोंमें सब ओर तपस्वी ब्राह्मणोंकी यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो रही है। भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य और अत्रि गोत्रके उत्तम-उत्तम तपस्वी ब्राह्मण इस पवित्र वनमें इकट्ठे हुए हैं और तुम्हारे संरक्षणमें सुख-सुविधाके साथ अपने-अपने धर्मका पालन कर रहे हैं। मैं तुमलोगोंसे एक बात कहता हूँ, सावधानीके साथ सुनो। जब ब्राह्मण और क्षत्रिय मिल-जुलकर काम करते हैं, एक-दूसरेकी सहायता करते हैं, तब उनकी उन्नति और अभिवृद्धि होती है। फिर तो वे अग्नि और पवनके समान हिल-मिलकर शत्रुओंके वन-के-वन भस्म कर डालते हैं। बिना ब्राह्मणका आश्रय लिये दीर्घकालतक सतत प्रयत्न करनेपर भी किसीको इस लोक और परलोककी प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रमें प्रवीण निर्लोभी ब्राह्मणका आश्रय लेकर ही राजा अपने शत्रुओंका नाश कर सकता है। राजा बलिको ब्राह्मणोंकी सहायतासे ही उन्नति प्राप्त हुई थी। ब्राह्मण एक अनुपम दृष्टि और क्षत्रिय एक अनुपम बल है; ये दोनों जब साथ रहते हैं, तब जगत्में सुख-समृद्धिकी अभिवृद्धि होती है। इसलिये विद्वान् क्षत्रियको चाहिये कि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति और प्राप्त वस्तुकी वृद्धिके लिये ब्राह्मणोंकी सेवा करके उनसे ज्ञान प्राप्त करे। युधिष्ठिर! तुम तो सदा-सर्वदा ब्राह्मणोंके साथ उत्तम व्यवहार करते ही हो। इसलिये लोकमें तुम यशस्वी हो रहे हो।' धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नताके साथ दाल्भ्यबक मुनिके उपदेशका अभिनन्दन किया। महात्मा वेदव्यास, नारद, परशुराम, पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न, भालुकि, हारीत, अग्निवेश्य आदि बहुत-से व्रतधारी ब्राह्मणोंने दाल्भ्यबक और धर्मराज युधिष्ठिरका सम्मान किया।

धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदीका संवाद, क्षमाकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन सन्ध्याके समय वनवासी पाण्डव कुछ शोकग्रस्त-से होकर द्रौपदीके साथ बैठकर बातचीत कर रहे थे। बातचीतके सिलसिलेमें द्रौपदी कहने लगी—'सचमुच दुर्योधन बड़ा क्रूर

मन्त्री विदुर, कृपाचार्य, सञ्जय और महात्मा वेदव्यास भी क्षमाकी ही प्रशंसा करते हैं। क्षमा और दया ही ज्ञानियोंका सदाचार है, यही सनातन-धर्म है। मैं सचाईके साथ क्षमा और दयाका पालन करूँगा।

युधिष्ठिर और द्रौपदीका संवाद, निष्कामधर्मकी प्रशंसा, द्रौपदीका उद्योगके लिये प्रोत्साहन

धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर द्रौपदीने कहा— धर्मराज! इस जगत्में धर्माचरण, दयाभाव, क्षमा, सरलताके व्यवहारसे तथा लोक-निन्दाके भयसे राज्यलक्ष्मी नहीं मिलती। यह बात प्रत्यक्ष है कि आपमें तथा आपके महाबली भाइयोंमें प्रजापालन करनेयोग्य सभी गुण हैं। आपलोग दुःख भोगनेयोग्य नहीं हैं। फिर भी आपको यह कष्ट सहना पड़ रहा है। आपके भाई राज्यके समय तो धर्मपर प्रेम रखते ही थे, इस दीन-हीन दशामें भी धर्मसे बढ़कर और किसीसे भी प्रेम नहीं करते। ये धर्मको अपने प्राणोंसे भी श्रेष्ठ मानते हैं। यह बात ब्राह्मण, देवता और गुरु सभी जानते हैं कि आपका राज्य धर्मके लिये, आपका जीवन धर्मके लिये है। मुझे इस बातका दृढ़ निश्चय है कि आप धर्मके लिये भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा मुझे भी त्याग सकते हैं। मैंने अपने गुरुजनोंसे सुना है कि यदि कोई अपने धर्मकी रक्षा करे तो वह अपने रक्षककी रक्षा करता है। परन्तु मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि मानो वह भी आपकी रक्षा नहीं करता। जैसे मनुष्यके पीछे उसकी छाया चला करती है, वैसे ही आपकी बुद्धि सर्वदा धर्मके पीछे चला करती है। आप जब सारी पृथ्वीके चक्रवर्ती सम्राट् हो गये थे, उस समय भी आपने छोटे-छोटे राजाओंका भी अपमान नहीं किया था, बड़ोंकी तो बात ही क्या। आपमें सम्राट्पनेका अभिमान बिल्कुल नहीं था। आपके महलोंमें देवताओंके लिये 'स्वाहा' और पितरोंके लिये 'स्वधा' की ध्वनि गूँजती रहती थी। तब और अब भी अतिथि-ब्राह्मणोंकी सेवा होती ही है। आपने साधु, संन्यासी और गृहस्थोंकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण की थीं, उन्हें तृप्त किया था। उस समय आपके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जो ब्राह्मणोंको न दी जा सके। अब तो आपके यहाँ पाँच दोषोंकी शान्तिके लिये केवल बलिवैश्वदेव यज्ञ किया जाता है और उसके बाद अतिथियों तथा प्राणियोंको खिलाकर शेष बचे हुए अन्नसे अपना जीवननिर्वाह हो रहा है। आपकी बुद्धि ऐसी उल्टी हो गयी कि आपने राज्य, धन, भाई तथा मुझतकको जूएमें हार दिया। आपकी इस आपत्ति-विपत्तिको देखकर मेरे मनमें बड़ी वेदना होती है, मैं बेहोश-सी हो जाती हूँ। मनुष्य ईश्वरके अधीन है, उसकी स्वाधीनता कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही प्राणियोंके पूर्वजन्मके कर्मबीजके अनुसार उनके सुख-दुःख तथा प्रिय-अप्रिय वस्तुओंकी व्यवस्था करता है। जैसे कठपुतली सूत्रधारके इच्छानुसार नाचती है, वैसे ही सारी प्रजा ईश्वरेच्छानुसार संसारके व्यवहारमें नाच रही है। ईश्वर सबके भीतर और बाहर व्याप्त रहता है, सबको प्रेरित करता और साक्षीरूपसे देखता रहता है। जीव एक कठपुतली है; वह स्वतन्त्र नहीं, ईश्वराधीन है। जैसे सूतमें गूँथी हुई मणियाँ, नाथे हुए बैल और जलधारामें गिरे हुए वृक्ष पराधीन होते हैं वैसे ही जीव भी ईश्वरके अधीन है। जो वस्तु जिसमें लीन होती है, तत्त्वरूप ही वह होती है। मिट्टीसे उत्पन्न घड़ा आदि, मध्य और अन्तमें मिट्टीके अधीन रहता है; ठीक वैसे ही जीव आदि, मध्य और अन्तमें ईश्वरके ही अधीन रहता है। जीवको किसी भी बातका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है, इसलिये वह सुख पाने या दुःख हटानेमें असमर्थ है। वह ईश्वरकी ही प्रेरणासे स्वर्ग या नरकमें जाता है। जैसे नन्हे-नन्हे तिनके वायुके अधीन होते हैं, वैसे ही सभी प्राणी ईश्वरके। जैसे बच्चा खिलौनोंसे खेल-खेलकर उन्हें छोड़ देता है, वैसे ही प्रभु जगत्में जीवोंके संयोग-वियोगकी लीला करते रहते हैं। राजन्! मैं तो ऐसा समझती हूँ कि ईश्वर प्राणियोंके साथ माता-पिताके समान दयाका बर्ताव नहीं करते; वे तो जैसा कोई साधारण पुरुष क्रोधसे क्रूरताका व्यवहार करता हो, वैसा ही करते हैं। जब मैं देखती हूँ कि आप-जैसे शील-सदाचारसम्पन्न आर्य पुरुष भलीभाँति जीवन-निर्वाह भी नहीं कर सकते, चिन्तासे विह्वल रहते हैं, और अनार्य पुरुष सुख भोगते हैं, तब मुझे बड़ा दुःख होता है। आपकी यह विपत्ति और दुर्योधनकी सम्पत्ति देखकर मैं ईश्वरकी निन्दा करती हूँ, क्योंकि वह विषम दृष्टिसे बर्ताव करता है। यदि कर्मका फल कर्त्ताको मिलता है, दूसरेको नहीं, तो यह विषम दृष्टि करनेका फल अवश्य ही ईश्वरको मिलेगा। यदि कर्मका फल कर्त्ताको नहीं मिलता, तब तो अपनी उन्नतिका कारण लौकिक बल ही है; मुझे निर्बल पुरुषोंके लिये बड़ा शोक हो रहा है।

है। तथापि विरक्त, मितभोजी, जितेन्द्रिय एवं तपस्वी योगी शुद्ध चित्तसे ध्यान करके पूर्वोक्त कर्मोंका स्वरूप जान लेते हैं। धर्माचरण करनेपर भी यदि उसका फल न मिले तो भी धर्मपर सन्देह नहीं करना चाहिये। और भी उद्योग करके यज्ञ करना चाहिये, ईर्ष्याका त्याग करके दान करना चाहिये। इस बातके साक्षी महर्षि कश्यप हैं कि ब्रह्माजीने सृष्टिके प्रारम्भमें अपने पुत्रोंसे यह कहा था—'कर्मका फल अवश्य मिलता है और धर्म सनातन है।' प्रिये! धर्मके सम्बन्धमें तुम्हारा सन्देह कुहरेकी तरह नष्ट हो जाय। सब कुछ ठीक है, ऐसा निश्चय करके तुम नास्तिकताका त्याग कर दो और धर्मपर, ईश्वरपर आक्षेप न करो। इसको जानो और उन्हें नमस्कार करो। तुम्हारे मनमें ऐसी बात कभी न आवे। जिनकी कृपासे भक्त पुरुष मृत्युशीलसे अमर हो जाते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ परमात्माका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

द्रौपदीने कहा—धर्मराज! मैं धर्म अथवा ईश्वरकी अवमानना और तिरस्कार कभी नहीं करती। मैं इस समय विपत्तिकी मारी हूँ, इसलिये ऐसा प्रलाप कर रही हूँ। मैं अभी इस सम्बन्धमें और भी विलाप करूँगी। जानकार मनुष्यको कर्म अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि बिना कर्म किये केवल जड पदार्थ ही जी सकते हैं, चेतन प्राणी नहीं। पूर्वजन्मके कर्मोंकी बात तो तनिक-सा विचार करते ही सिद्ध हो जाती है; क्योंकि गायका बछड़ा जन्मते ही दूधके लिये थन पीने लगता और धूप लगनेपर छायामें जा बैठता है। अवश्य ही इस क्रियामें पूर्वजन्मके संस्कार काम करते रहते हैं। सब प्राणी अपनी उन्नति समझते हैं और प्रत्यक्षरूपसे अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं। इसलिये आप कर्म कीजिये, उससे उकताइये मत। आप कर्मके कवचसे सुरक्षित होकर सुखी होइये। सहस्रों मनुष्योंमेंसे भी कोई एक कर्म करनेकी विधि ठीक-ठीक जानता है या नहीं, इसमें सन्देह है। यदि हिमालय-जैसा पहाड़ भी प्रति-दिन खाया जाय और उसमें वृद्धि न हो तो थोड़े दिनोंमें क्षीण हो जाता है। इसलिये धनकी रक्षा और वृद्धि करनेके लिये कर्म करनेकी बड़ी आवश्यकता है। प्रजा यदि कर्म न करे तो उजड़ जाय। यदि उसका कर्म निष्फल हो जाय तो उसकी उन्नति रुक जाय। यदि कर्मको निष्फल माना जाय तो भी कर्म तो करना ही पड़ेगा; क्योंकि कर्म किये बिना किसी प्रकार जीविका नहीं चल सकती। जो भाग्यके ऊपर भरोसा करके हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं, हठवादी हैं, स्वयं ही वस्तुओंकी प्राप्ति मानते हैं, वे पूर्वजन्मके कर्मोंको स्वीकार नहीं करते। उन्हें मूर्ख समझना चाहिये। जो कर्म न करके आलस्यमय जीवन व्यतीत करता है, वह पानीमें पड़े कच्चे घड़ेकी भाँति गल जाता है। जो काम करनेकी शक्ति रहते हुए भी उससे हठवश अलग रहते हैं, वे चिरकालतक जीवनधारण भी नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस सन्देहमें रहते हैं कि मुझे अमुक कर्मका फल मिलेगा या नहीं, उन्हें कर्मका कुछ भी फल नहीं मिलता। जो निस्सन्देह होते हैं, वे अपना काम बना लेते हैं। धीर पुरुष सर्वदा कर्म करनेमें लगे रहते हैं और फलके सम्बन्धमें कभी सन्देह नहीं करते। परन्तु वैसे मनुष्य होते हैं बहुत थोड़े। किसान हलसे धरती जोतकर अन्न बो देता है और सन्तोषके साथ प्रतीक्षा करता है। इसके बाद बोये हुए अन्नको जलसे सींचकर अङ्कुरित करनेका काम मेघ करता है। यदि मेघ किसानपर अनुग्रह न करे, जल न बरसे, तो इसमें किसानका कोई अपराध नहीं है। उस समय किसान यही सोचता है कि सब लोगोंने जो काम किया, वही मैंने भी किया। अब मेघ बरसे या न बरसे, फल मिले या न मिले, किसान निर्दोष है। वैसे ही धीर पुरुषको अपनी बुद्धिके अनुसार देश, काल, शक्ति और उपायोंका ठीक-ठीक विचार करके अपना काम करना चाहिये। ये बातें मैंने अपने पिताजीके घरपर बृहस्पति-नीतिके मर्मज्ञ विद्वानोंसे सुनी हैं। आप विचार करके अपने कर्तव्यका निश्चय कीजिये।

युधिष्ठिर और भीमसेनकी कर्तव्यके विषयमें बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्रौपदीकी बातें सुनकर भीमसेनके मनमें क्रोध जग गया। वे लंबी साँस लेते हुए युधिष्ठिरके कुछ पास आकर कहने लगे—'भाईजी! आप सत्पुरुषोचित धर्मानुकूल राजमार्गसे चलिये। यदि हमलोग धर्म, अर्थ और कामसे वञ्चित होकर इस तपोवनमें पड़े रहेंगे तो हमें क्या मिलेगा। दुर्योधनने हमारा राज्य धर्म, सरलता अथवा बल-पौरुषसे नहीं लिया है। उसने कपटद्यूतके सहारे हमलोगोंको धोखा दिया है। हम कौरवोंके अपराधको जितना-जितना क्षमा करते जाते हैं, उतना-उतना वे हमें असमर्थ मानकर दुःख देते जा रहे हैं। इससे तो यही अच्छा है कि हमलोग टालमटोल न करके लड़ाई छेड़ दें। निष्कपट भावसे युद्ध करते हुए यदि हम मर भी जायँ तो अच्छा है, क्योंकि

अर्जुनको भी मालूम है। इसके बाद वह अधर्ममय जूआ हुआ, हमलोग हार गये और नियमके अनुसार वनवास कर रहे हैं। सत्पुरुषोंके सामने एक बार प्रतिज्ञा करके फिर राज्यके लिये कौन मनुष्य उसे तोड़ेगा। एक कुलीन मनुष्य यदि राज्यके लिये प्रतिज्ञाभङ्ग करके उसे पा भी ले तो वह मरणसे भी अधिक दुःखदायक होगा। मैंने कुरुवंशी वीरोंके बीचमें प्रतिज्ञापूर्वक जो बात कही है, उससे मैं टल नहीं सकता। जैसे किसान बीज बोकर पकनेतक उसके फलकी आशा लगाये बैठा रहता है, वैसे ही तुम्हें भी अपनी उन्नतिके समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये; समय आये बिना कुछ नहीं होगा। भीमसेन! तुम मेरी सत्य प्रतिज्ञा सुन लो, मैं देवत्वकी प्राप्ति तथा इस लोकमें जीवित रहनेकी अपेक्षा भी धर्मसे अधिक प्रेम करता हूँ। मेरा ऐसा दृढ़ निश्चय है कि राज्य, पुत्र, कीर्ति और धन—ये सब मिलकर सत्यधर्मके सोलहवें हिस्सेकी भी बराबरी नहीं कर सकते।

भीमसेनने कहा—भाईजी! जैसे सलाईसे लेते-लेते एक दिन अञ्जन समाप्त हो जाता है, वैसे ही मनुष्यकी आयु पल-पलपर छीजती जा रही है। ऐसी स्थितिमें मनुष्यको क्या समयकी बाट जोहते हुए बैठ रहना चाहिये? जिसे अपनी लंबी उम्रका पता हो, अपने अन्तसमयका ज्ञान हो, जो भूत-भविष्य आदि सब वस्तुओंको प्रत्यक्ष देख सकता हो, केवल उसीको समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। मृत्यु सिरपर सवार है, इसलिये उसके प्रकट होनेके पहले ही हमें राज्य प्राप्त करनेका उपाय कर लेना चाहिये। आप बुद्धिमान्, पराक्रमी, शास्त्रज्ञ और सम्मानित वंशके हैं। आप धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंपर क्षमा क्यों करते हैं? इस तरह चुपचाप बैठकर विलम्ब करनेका क्या कारण है? आप हमलोगोंको वनमें गुप्त रखना चाहते हैं; यह तो ऐसा ही है, जैसे कोई घासके पूलेसे हिमालयको ढकना चाहे। आप एक जगत्प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। जैसे सूर्य आकाशमें छिपकर नहीं विचर सकता, वैसे ही आप भी कहीं नहीं छिप सकते। अर्जुन, नकुल अथवा सहदेव ही एक साथ रहकर कैसे छिप सकेंगे? भला, यह राजपुत्री द्रौपदी ही कैसे छिपकर रहेगी। मुझे तो बच्चे और बूढ़े सभी पहचानते हैं, मैं एक वर्षतक गुप्त कैसे रह सकूँगा? हमलोग अबतक वनमें तेरह महीने बिता चुके हैं। वेदके आज्ञानुसार आप इन्हें ही तेरह वर्ष गिन लीजिये। महीने वर्षके प्रतिनिधि हैं। इसलिये तेरह महीनेमें भी तेरह वर्षकी प्रतिज्ञा पूरी कर सकते हैं। भाईजी! आप शत्रुओंके विनाशके लिये एक निश्चय कर लीजिये। क्षत्रियोंके लिये युद्धके अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है। इसलिये आप युद्धका निश्चय कीजिये।

कुछ समयतक सोच-विचारकर युधिष्ठिरने कहा—वीर भीमसेन! तुम्हारी दृष्टि केवल अर्थपर है। इसलिये तुम्हारा कहना भी ठीक ही है। परन्तु मैं दूसरी बात कह रहा हूँ। केवल साहससे ही तो कोई काम नहीं करना चाहिये न! वैसे कामसे तो करनेवालेको ही दुःख भोगना पड़ता है। कोई भी काम करना हो तो भलीभाँति विचार करके युक्ति और उपायोंके द्वारा करना चाहिये। फिर तो दैव भी अनुकूल हो जाता है। प्रयोजन-सिद्धिमें कोई सन्देह नहीं रहता। बल एवं घमण्डसे उत्साहित होकर बालसुलभ चपलताके कारण तुम जिस कामको प्रारम्भ करनेके लिये कह रहे हो, उसके सम्बन्धमें मुझे बहुत कुछ कहना है। भूरिश्रवा, शल, जलसन्ध, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा तथा दुर्योधन, दुःशासन आदि धृतराष्ट्रके प्रचण्ड पुत्र शस्त्रास्त्र-विद्यामें बड़े कुशल और हमपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हैं। पहले हमलोगोंने जिन राजाओंको बलपूर्वक दबा दिया था, वे अब उनसे मिल गये हैं। दुर्योधनने कौरव-सेनाके सब वीरों, सेनापतियों और मन्त्रियोंको तथा उनके परिवारवालोंको भी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ तथा भोग-सामग्री देकर अपने पक्षमें कर लिया है। वे दम रहते दुर्योधनकी ओरसे लड़ेंगे, ऐसा मेरा निश्चित विचार है। यद्यपि भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य उनपर और हमपर समान दृष्टि रखते हैं, तथापि उन्होंने राज्यका अन्न खाया है, इसलिये उसका बदला चुकानेके लिये दुर्योधनकी ओरसे प्राणपणसे लड़ेंगे। वे सब अस्त्र-शस्त्रके मर्मज्ञ और ईमानदार हैं। मेरा विश्वास है कि समस्त देवताओंके साथ इन्द्र भी उन्हें नहीं जीत सकते। कर्णकी वीरता, उत्साह और प्रवीणता अपूर्व है। उनका शरीर अभेद्य कवचसे ढका रहता है। उनको जीते बिना तुम दुर्योधनको नहीं मार सकते।

इस प्रकार भीमसेनके साथ युधिष्ठिर बातचीत कर ही रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी वहाँ आ पहुँचे।

तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर गये और बड़ी सावधानीके साथ रात-दिन रास्ता काटते-काटते इन्द्रकीलके समीप पहुँच गये। वहाँ उन्हें एक आवाज सुनायी पड़ी—'खड़े हो जाओ।' इधर-उधर देखनेपर मालूम हुआ कि एक वृक्षकी छायामें कोई तपस्वी बैठा हुआ है। तपस्वीका शरीर तो दुबला था, परन्तु ब्रह्मतेजसे चमक रहा था। इस जटाधारी तपस्वीको देखकर अर्जुन खड़े हो गये। तपस्वीने कहा—'तुम धनुष-बाण, कवच और तलवार धारण किये कौन हो? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? यहाँ शस्त्रोंका कुछ काम नहीं। शान्तस्वभाव तपस्वी रहते हैं। युद्ध होता नहीं, इसलिये तुम अपना धनुष फेंक दो।' तपस्वीने मुसकराकर कई बार यह बात कही, परन्तु अर्जुन टस-से-मस नहीं हुए। उन्होंने शस्त्र न छोड़नेका निश्चय कर रक्खा था। अर्जुनको अविचल देखकर तपस्वीने हँसते हुए कहा—'अर्जुन! मैं इन्द्र हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' अर्जुनने दोनों हाथ जोड़कर इन्द्रको प्रणाम किया। बोले—'भगवन्! मैं आपसे सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या सीखना चाहता हूँ। आप मुझे यही वर दीजिये।' इन्द्रने कहा—'अब तुम अस्त्रोंको सीखकर क्या करोगे? मन चाहे ऐश्वर्य-भोग माँग लो।' अर्जुनने कहा—'मैं लोभ, काम, देवत्व, सुख अथवा ऐश्वर्यके लिये अपने भाइयोंको वनमें नहीं छोड़ सकता। मैं तो अस्त्र-विद्या सीखकर अपने भाइयोंके पास ही लौट जाऊँगा।' इन्द्रने अर्जुनको समझाकर कहा—'वीर! जब तुम्हें भगवान् शङ्करका दर्शन होगा, तब तुम्हें मैं सब दिव्य अस्त्र दे दूँगा। तुम उनके दर्शनके लिये प्रयत्न करो। उनके दर्शनसे सिद्ध होकर तुम स्वर्गमें आओगे।' इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये।

अर्जुनकी तपस्या, शङ्करके साथ युद्ध, पाशुपतास्त्र तथा दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति

जनमेजयने पूछा—भगवन्! मनस्वी अर्जुनने किस प्रकार दिव्य अस्त्र प्राप्त किये? यह बात मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! महारथी एवं दृढनिश्चयी अर्जुन हिमालय लाँघकर एक बड़े कँटीले जङ्गलमें जा पहुँचे। उसकी शोभा अपूर्व थी। उसे देखकर अर्जुनके मनमें प्रसन्नता हुई। वे डाभ (कुश) के वस्त्र, दण्ड, मृगछाला और कमण्डलु धारण करके आनन्दपूर्वक तपस्या करने लगे। पहले महीनेमें उन्होंने तीन-तीन दिनपर पेड़ोंसे गिरे सूखे पत्ते खाये। दूसरे महीनेमें छः-छः दिनपर और तीसरे महीनेमें पंद्रह-पंद्रह दिनपर। चौथे महीनेमें बाँह उठाकर पैरके अँगूठेकी नोकके बलपर निराधार खड़े हो गये और केवल हवा पीकर तपस्या करने लगे। नित्य जलमें स्नान करनेके कारण उनकी जटाएँ पीली-पीली हो गयी थीं।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंने भगवान् शङ्करके पास जाकर प्रार्थना की। उन्होंने कहा—भगवन्! अर्जुनकी तपस्याके तेजसे दिशाएँ धूमिल हो गयीं। भगवान् शङ्करने उनसे कहा—'मैं आज अर्जुनकी इच्छा पूर्ण करूँगा।' ऋषियोंके जानेपर भगवान् शङ्करने सोनेका-सा दमकता हुआ भीलका रूप ग्रहण किया। सुन्दर धनुष, सर्पाकार बाण लेकर पार्वतीके साथ वे अर्जुनके पास आये। बहुत-से भूत-प्रेत भी वेष बदलकर भील-भीलनियोंके वेषमें उनके साथ हो लिये। भीलवेषधारी भगवान् शङ्करने अर्जुनके पास आकर देखा कि दानव जङ्गली शूकरका वेष धारण कर तपस्वी अर्जुनको डालनेकी घात देख रहा है। अर्जुनने भी शूकरको [illegible] लिया। उन्होंने गाण्डीव धनुषपर सर्पाकार बाण च[illegible] धनुष टंकारते हुए मूक दानवसे कहा—'दुष्ट! तू [illegible] निरपराधको मारना चाहता है। इसलिये मैं तुझे पहले यमराजके हवाले करता हूँ।' ज्यों ही उन्होंने बाण छो[illegible] चाहा, भीलवेषधारी शिवजीने रोककर कहा कि 'मैं प[illegible] ही इसे मारनेका निश्चय कर चुका हूँ। इसलिये तुम [illegible] मत मारो।' अर्जुनने भीलकी बातकी कुछ भी परवा न [illegible] शूकरपर बाण छोड़ दिया। शिवजीने भी उसी समय [illegible] वज्र-सा बाण चलाया। दोनोंके बाण मूकके शरीरपर [illegible] टकराये, बड़ी भयङ्कर आवाज हुई। इस प्रकार अ[illegible] बाणोंसे शूकरका शरीर बिंध गया, वह दानवके रूपमें [illegible] होकर मर गया। अब अर्जुनने भीलकी ओर देखा। उ[illegible] कहा—'तू कौन है? इस मण्डलीके साथ निर्जन वनमें क्यों [illegible] रहा है? यह शूकर मेरा तिरस्कार करनेके लिये यहाँ [illegible] था, मैंने पहले ही इसको मारनेका विचार भी कर लिया [illegible] फिर तूने इसका वध क्यों किया? अब मैं तुझे जीता [illegible] छोड़ूँगा।' भीलने कहा—'इस शूकरपर मैंने तुमसे [illegible] प्रहार किया। मेरा विचार भी तुमसे पहलेका था। यह [illegible] निशाना था, मैंने ही इसे मारा है। तुम तनिक ठहर जाओ

समाप्त हो गये। अब अर्जुनने धनुषकी नोकसे मारना शुरू किया। भीलने धनुष भी छीन लिया। तलवारका प्रहार किया तो वह दो टुकड़े होकर जमीनपर गिर पड़ी। पत्थरों और वृक्षोंसे प्रहार करना चाहा तो भीलने प्रहार करनेके पहले ही छीन लिया। अब घूँसेकी बारी आयी। भीलने बदलेमें जो घूँसा मारा, उससे अर्जुनका होश हवा हो गया। अब भीलने अर्जुनको दोनों भुजाओंमें दबाकर पिण्डी कर दिया, वे हिलने-चलनेमें भी असमर्थ हो गये। दम घुटने लगा, लोहू-लुहान होकर जमीनपर पड़ गये।

थोड़ी देर बाद अर्जुनको होश आया। उन्होंने मिट्टीकी

अर्जुन भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके लिये स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप देवताओंके स्वामी महादेव हैं। आपके कण्ठमें जगत्के उपकारका चिह्न नीलिमा है, सिरपर जटा है। आप कारणोंके भी परम कारण, त्रिनेत्र एवं व्यापक हैं। आप देवताओंके आश्रय एवं जगत्के मूल कारण हैं। आपको कोई नहीं जीत सकता। आप ही शिव और आप ही विष्णु हैं। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। आप दक्षके यज्ञके विध्वंसक एवं हरिहरस्वरूप हैं। आपके ललाटमें नेत्र है। आप सर्वस्वरूप, भक्तवत्सल, त्रिशूलधारी एवं पिनाकपाणि हैं और सूर्यस्वरूप, शुद्धमूर्ति एवं सृष्टिके विधाता हैं। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। सर्वभूत-महेश्वर, सर्वेश्वर, कल्याणकारी, परमकारण, स्थूल-सूक्ष्म-स्वरूप! मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। मैं आपके दर्शनकी लालसासे इस पर्वतपर आया हूँ। मैंने अज्ञानवश आपसे युद्ध करनेका साहस किया है। इसे अपराध न मानिये, मुझ शरणागतको क्षमा कीजिये।' अर्जुनकी स्तुति सुनकर भगवान् शङ्कर हँस पड़े और अर्जुनका हाथ पकड़कर बोले—'क्षमा किया।' फिर भगवान् शङ्करने अर्जुनको गले लगा लिया।

भगवान् शङ्करने कहा—'अर्जुन! तुम नारायणके नित्य सहचर नर हो। पुरुषोत्तम विष्णु और तुम्हारे परम तेजके आधारपर ही जगत् टिका हुआ है। इन्द्रके अभिषेकके समय

तुमने और श्रीकृष्णने धनुष उठाकर दानवोंका नाश किया था। आज मैंने मायासे भीलका रूप धारण करके तुम्हारे अनुरूप गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको छीन लिया है। अब तुम उन्हें ले लो। तुम्हारा शरीर भी नीरोग हो जायगा। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' अर्जुनने कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मुझे आप अपना पाशुपतास्त्र दे दीजिये। वह ब्रह्मशिर अस्त्र प्रलयके समय जगत्‌का नाश करता है। उस अस्त्रसे मैं भावी युद्धमें सबको जीत सकूँ, ऐसी कृपा कीजिये। मैं उस अस्त्रसे रणभूमिमें दानव, राक्षस, भूत, पिशाच, गन्धर्व और सर्पोंको भी भस्म कर डालूँ। मैं जानता हूँ कि मन्त्र पढ़कर छोड़नेपर पाशुपतास्त्रमेंसे हजारों त्रिशूल, भयङ्कर गदाएँ और सर्पाकार बाण निकल पड़ते हैं। मैं उस पाशुपतास्त्रसे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और कटुवादी कर्णके साथ

लड़ूँ।' भगवान् शङ्करने कहा कि 'समर्थ अर्जुन! तुम्हें मैं अपना प्यारा पाशुपतास्त्र देता हूँ; क्योंकि तुम उसके धारण, प्रयोग और उपसंहारके अधिकारी हो। इन्द्र, यमराज, कुबेर, वरुण और वायु भी उस अस्त्रके धारण, प्रयोग और उपसंहारमें कुशल नहीं हैं। फिर मनुष्य तो भला, जान ही कैसे सकते हैं। मैं तुम्हें यह अस्त्र देता हूँ, परन्तु तुम इसे किसीके ऊपर सहसा छोड़ मत देना। अल्पशक्ति मनुष्यके ऊपर प्रयोग करनेपर यह जगत्‌का नाश कर डालेगा। यदि सङ्कल्प, वाणी, धनुष अथवा दृष्टिसे—किसी भी प्रकार शत्रुपर इसका प्रयोग हो तो यह उसका नाश कर डालता है।'

अर्जुन स्नान करके पवित्रताके साथ भगवान् शङ्करके पास आये और बोले कि अब मुझे पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दीजिये। महादेवजीने अर्जुनको प्रयोगसे लेकर उपसंहारतक सब तत्त्व, रहस्य समझा दिया। अब पाशुपतास्त्र मूर्तिमान् कालके समान अर्जुनके पास आया और उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया। उस समय पर्वत, वन, समुद्र, नगर, गाँव और खानोंके साथ सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। भगवान् शङ्करने अर्जुनको आज्ञा दी कि 'अब तुम स्वर्गमें जाओ।' अर्जुन भगवान् शङ्करको प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े रहे। भगवान् शङ्करने गाण्डीव धनुष अपने हाथसे उठाकर अर्जुनको दे दिया। वे अर्जुनके सामने ही आकाशमार्गसे चले गये।

अर्जुनकी मानसिक स्थिति बड़ी विलक्षण हो रही थी। वे सोच रहे थे कि 'आज मुझे भगवान् शङ्करके दर्शन मिले। उन्होंने मेरे शरीरपर अपना वरद हस्त फेरा। मैं धन्य हूँ। आज मेरा काम पूर्ण हो गया।' अर्जुन यही सब सोच रहे थे कि उनके सामने वैदूर्यमणिके समान कान्तिमान् जलचरोंसे घिरे जलाधीश वरुण, सुवर्णके समान दमकते हुए शरीरवाले धनाधीश कुबेर, सूर्यके पुत्र यमराज और बहुत-से गुह्यक-गन्धर्व आदि मन्दराचलके तेजस्वी शिखरपर आकर उतरे। कुछ ही क्षण बाद देवराज इन्द्र भी इन्द्राणीके साथ ऐरावतपर बैठकर देवगणोंसहित मन्दराचलपर आये। सब देवताओंके आ जानेपर धर्मके मर्मज्ञ यमराजने मधुर वाणीसे कहा—'अर्जुन! देखो, सब लोकपाल तुम्हारे पास आये हैं। आज तुम हमलोगोंके दर्शनके अधिकारी हो गये हो। इसलिये दिव्य दृष्टि लो। हमारा दर्शन करो। तुम सनातन ऋषि नर हो। तुमने मनुष्यरूपमें अवतार ग्रहण किया है। अब तुम भगवान् श्रीकृष्णके साथ रहकर पृथ्वीका भार मिटाओ। मैं तुम्हें अपना वह दण्ड देता हूँ, जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता।' अर्जुनने आदरके साथ वह दण्ड स्वीकार किया। उसका मन्त्र, पूजाका विधान तथा प्रयोग-उपसंहारकी विधि भी सीख ली। वरुणने कहा—'अर्जुन! मेरी ओर देखो। मैं जलाधीश वरुण हूँ। मेरा वारुण पाश युद्धमें कभी निष्फल नहीं होता। तुम इसे ग्रहण करो और छोड़ने-लौटानेकी गुप्त विधि भी सीख लो। तारकासुरके घोर संग्राममें इसी पाशसे

देवताओंद्वारा अर्जुनको अस्त्रदान
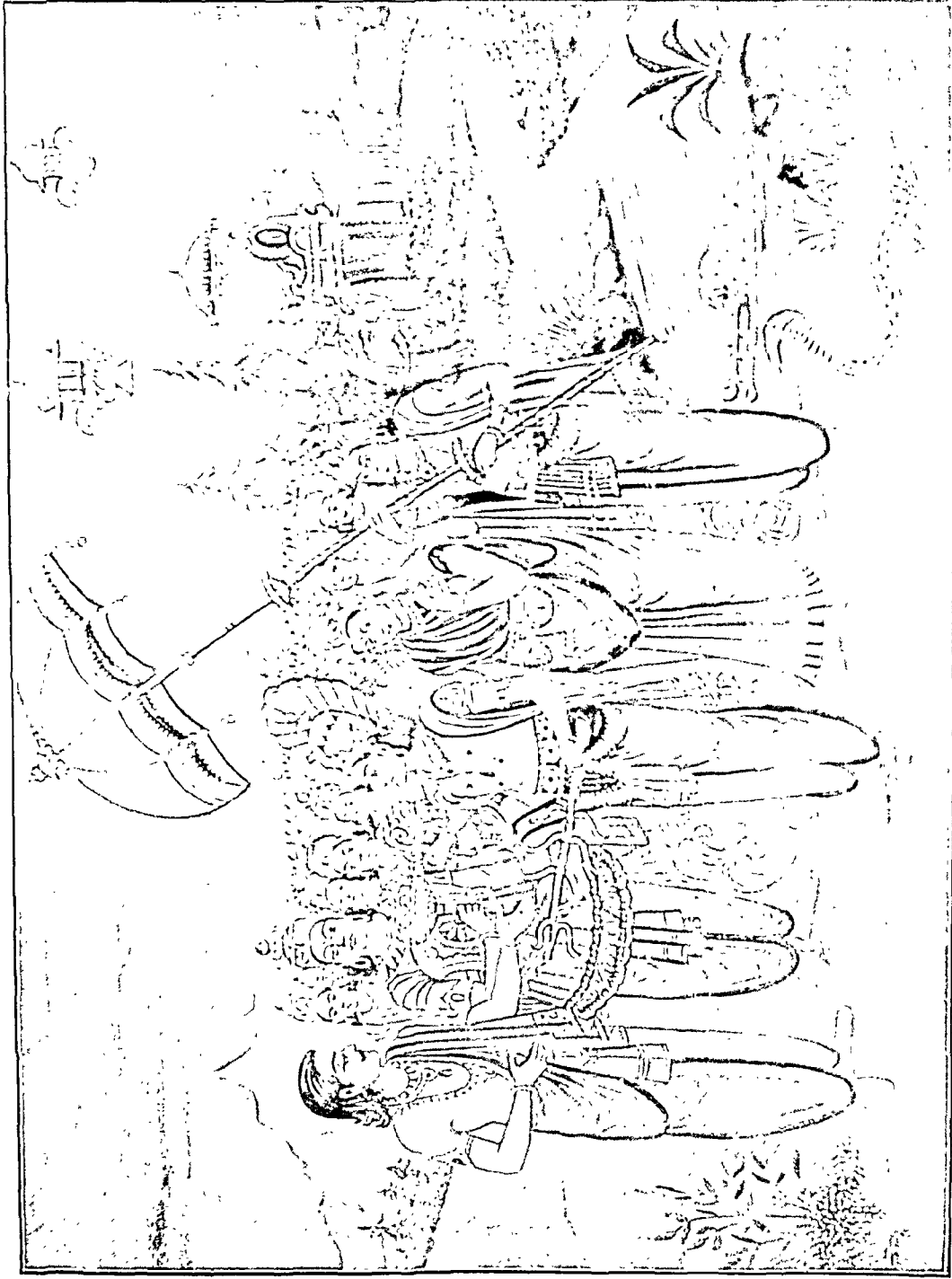
स्वर्गमें अर्जुनकी अस्त्र एवं नृत्य-शिक्षा, उर्वशीके प्रति मातृभाव, इन्द्रका लोमश मुनिको पाण्डवोंके पास भेजना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंके चले जानेपर अर्जुन वहीं रहकर देवराज इन्द्रके रथकी प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी ही देरमें इन्द्रका सारथि मातलि दिव्य रथ लेकर वहाँ उपस्थित हुआ। उस रथकी उज्ज्वल कान्तिसे आकाशका अँधेरा मिट रहा था, बादल तितर-बितर हो रहे थे। भीषण ध्वनिसे दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। उसकी कान्ति दिव्य थी। रथमें तलवार, शक्ति, गदाएँ, तेजस्वी भाले, वज्र, पहियोंवाली तोपें, वायुवेगसे गोलियाँ फेंकनेवाले यन्त्र, तमंचे तथा और भी बहुत-से अस्त्र-शस्त्र भरे हुए थे। दस हजार वायुगामी घोड़े उनमें जुते हुए थे। उस मायामय दिव्य रथकी चमकसे आँखें चौंधिया जातीं। सोनेके दण्डमें कमलके समान श्यामवर्णकी वैजयन्ती नामक ध्वजा फहरा रही थी। मातलि सारथिने अर्जुनके पास आकर प्रणाम करके कहा—'इन्द्रनन्दन! श्रीमान् देवराज इन्द्र आपसे मिलना चाहते हैं। आप उनके इस प्यारे रथमें सवार होकर शीघ्र ही चलिये।' सारथिकी बात सुनकर अर्जुनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने गङ्गा-स्नान करके पवित्रताके साथ विधिपूर्वक मन्त्रका जप किया। तदनन्तर शास्त्रोक्त रीतिसे देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण किया। फिर मन्दराचलसे आज्ञा माँगकर इन्द्रके दिव्य रथपर आ बैठे। उस समय इन्द्रका रथ और भी चमक उठा। क्षणभरमें ही वह रथ मन्दराचलसे उठकर वहाँके तपस्वी ऋषि-मुनियोंकी दृष्टिसे ओझल हो गया। अर्जुनने देखा कि वहाँ सूर्यका, चन्द्रमाका अथवा अग्निका प्रकाश नहीं था। हजारों विमान वहाँ अद्भुत रूपमें चमक रहे थे। वे अपनी पुण्यप्राप्त कान्तिसे चमकते

रहते हैं और पृथ्वीसे तारोंके रूपमें दीपकके समान दीखते हैं। जब अर्जुनने इस विषयमें मातलिसे प्रश्न किया, तब मातलिने कहा कि 'वीर! पृथ्वीपरसे जिन्हें आप तारोंके रूपमें देखते हैं, वे पुण्यात्मा पुरुषोंके निवासस्थान हैं।' अबतक वह रथ सिद्ध पुरुषोंका मार्ग लाँघकर आगे निकल गया था। इसके बाद राजर्षियोंके पुण्यवान् लोक पड़े। तदनन्तर इन्द्रकी दिव्य पुरी अमरावतीके दर्शन हुए।

स्वर्गकी शोभा, सुगन्धि, दिव्यता, अभिजन और दृश्य अनूठा ही था। यह लोक बड़े-बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंको प्राप्त होता है। जिसने तप नहीं किया, अग्निहोत्र नहीं किया, जो युद्धसे पीठ दिखाकर भग गया, वह इस लोकका दर्शन नहीं कर सकता। जो यज्ञ नहीं करते, व्रत नहीं करते, वेदमन्त्र नहीं जानते, तीर्थोंमें स्नान नहीं करते, यज्ञ और दानोंसे बचे रहते हैं, यज्ञमें विघ्न डालते रहते हैं, क्षुद्र हैं, शराबी, गुरुस्त्रीगामी, मांसभोजी और दुरात्मा हैं, उन्हें किसी प्रकार स्वर्गका दर्शन नहीं हो सकता। अमरावतीमें देवताओंके सहस्रों इच्छानुसार चलनेवाले विमान खड़े थे, सहस्रों इधर-उधर आ-जा रहे थे। जब अप्सरा और गन्धर्वोंने देखा कि अर्जुन स्वर्गमें आ गये हैं, तब वे उनकी स्तुति-सेवा करने लगे। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि प्रसन्न होकर उदारचरित्र अर्जुनकी पूजामें लग गये। बाजे बजने लगे। अर्जुनने क्रमशः साध्य देवता, विश्वेदेवा, पवन, अश्विनीकुमार, आदित्य, वसु, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, तुम्बुरु, नारद तथा हाहा-हूहू आदि गन्धर्वोंके दर्शन किये। वे अर्जुनका स्वागत करनेके लिये ही बैठे हुए थे। उनके साथ व्यवहारके अनुसार मिलकर आगे जानेपर अर्जुनको देवराज इन्द्रके दर्शन हुए। रथसे उतरकर अर्जुनने देवराज इन्द्रके पास जा, सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इन्द्रने अपने प्रेमपूर्ण हाथोंसे अर्जुनको उठाकर अपने पवित्र देवासनपर बैठा लिया और फिर अपनी गोदमें बैठाकर प्रेमसे सिर सूँघा। सङ्गीतविद्या और सामगानके कुशल गायक तुम्बुरु आदि गन्धर्व प्रेमके साथ मनोहर गाथाएँ गाने लगे। अन्तःकरण तथा बुद्धिको लुभानेवाली घृताची, मेनका, रम्भा, पूर्वचित्ति, स्वयंप्रभा, उर्वशी, मिश्रकेशी, दण्डगौरी, वरूथिनी, गोपाली, सहजन्या, कुम्भयोनि, प्रजागरा, चित्रसेना, चित्रलेखा, सहा, मधुस्वरा आदि अप्सराएँ नाचने लगीं। इन्द्रके अभिप्रायके अनुसार देवता और गन्धर्वोंने उत्तम अर्घ्यसे अर्जुनका सेवा-सत्कार किया। उनके पैर धुलवाकर आचमन कराया। इसके अनन्तर अर्जुन देवराज इन्द्रके भवनमें गये। वीर अर्जुन इन्द्रके महलमें ठहरकर अस्त्रोंके प्रयोग और उपसंहारका अभ्यास करने लगे। वे इन्द्रके प्रिय और शत्रुघाती वज्रका भी अभ्यास करने लगे। उन्होंने अचानक ही घटा छा जाने, गर्जना करने और बिजलियोंके चमकनेका भी अभ्यास कर लिया। समस्त शस्त्र-अस्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेके अनन्तर अर्जुन अपने वनवासी भाइयोंका स्मरण करके स्वर्गसे मर्त्यलोकमें आना चाहते थे। परन्तु इन्द्रकी आज्ञासे वे पाँच वर्षतक स्वर्गमें ही रहे।

एक दिन अनुकूल अवसर पाकर देवराज इन्द्रने अस्त्रविद्याके मर्मज्ञ अर्जुनसे कहा कि 'प्रिय अर्जुन! अब तुम चित्रसेन गन्धर्वसे नाचना और गाना सीख लो। साथ ही मर्त्यलोकमें जो बाजे नहीं हैं, उन्हें भी बजाना सीख लो।' इन्द्रके मित्रता करा देनेपर अर्जुन चित्रसेनसे मिलकर गाने-बजाने और नाचनेका अभ्यास करने लगे। अर्जुन इस विद्यामें प्रवीण हो गये। यह सब करते समय भी जब अर्जुनको अपने भाइयों और माताकी याद आ जाती, तब वे दुःखसे विह्वल हो जाते।

और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो।' उर्वशीने कहा—'वीर! हम अप्सराओंका किसीके साथ विवाह नहीं होता। हम स्वतन्त्र हैं। इसलिये मुझे गुरुजनकी पदवीपर बैठाना उचित नहीं है। आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये और मुझ कामपीड़िताका त्याग मत कीजिये। मैं काम-वेगसे जल रही हूँ। आप मेरा दुःख मिटाइये।' अर्जुनने कहा—'देवि! मैं तुमसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ। दिशा और विदिशाएँ अपने अधिदेवताओंके साथ मेरी बात सुन लें। जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्रपत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पुरुवंशकी जननी होनेके कारण मेरी पूजनीया माता हो। मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। तुम माताके समान मेरी पूजनीय और मैं तुम्हारा पुत्रके समान रक्षणीय हूँ।'

अर्जुनकी बात सुनकर उर्वशी क्रोधके मारे काँपने लगी। उसने भौंहें टेढ़ी करके अर्जुनको शाप दिया—'अर्जुन! मैं

तुम्हारे पिता इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी हूँ, फिर भी तुम मेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर रहे हो। इसलिये जाओ, तुम्हें स्त्रियोंमें नर्तक होकर रहना पड़ेगा और सम्मान-रहित होकर तुम नपुंसकके नामसे प्रसिद्ध होओगे।' उस समय उर्वशीके ओठ फड़क रहे थे। साँसें लंबी चल रही थीं। वह अपने निवासस्थानपर लौट गयी। अर्जुन शीघ्रतासे चित्रसेनके पास गये और उर्वशीने जो कुछ कहा था, वह कह सुनाया। चित्रसेनने सारी बातें इन्द्रसे कहीं। इन्द्रने अर्जुनको एकान्तमें बुलाकर बहुत कुछ समझाया-बुझाया और तनिक हँसते हुए कहा—'प्रिय अर्जुन! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर कुन्ती सचमुच पुत्रवती हुई। तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया। उर्वशीने तुम्हें जो शाप दिया है उससे तुम्हारा बहुत काम बनेगा। जिस समय तुम तेरहवें वर्षमें गुप्तवास करोगे, उस समय तुम नपुंसकके रूपमें एक वर्षतक छिपकर यह शाप भोगोगे। फिर तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी।' अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। उनकी चिन्ता मिट गयी। वे गन्धर्वराज चित्रसेनके साथ रहकर स्वर्गके सुख लूटने लगे। जनमेजय! अर्जुनका यह चरित्र इतना पवित्र है कि जो इसका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसके मनमें भी पाप करनेकी इच्छा नहीं होती। वास्तवमें अर्जुनका यह चरित्र ऐसा ही है।

इन्हीं दिनों एक दिन महर्षि लोमश स्वर्गमें आये। उन्होंने देखा कि अर्जुन इन्द्रके आधे आसनपर बैठे हुए हैं। वे भी एक आसनपर बैठ गये और मन-ही-मन सोचने लगे कि 'अर्जुनको यह आसन कैसे मिल गया? इसने कौन-सा ऐसा पुण्य किया है, किन देशोंको जीता है, जिससे इसे सर्व-देववन्दित इन्द्रासन प्राप्त हुआ है?' देवराज इन्द्रने लोमश मुनिके मनकी बात जान ली। उन्होंने कहा—"ब्रह्मर्षे! आपके मनमें जो विचार उत्पन्न हुआ है, उसका उत्तर मैं देता हूँ। यह अर्जुन केवल मनुष्य नहीं है। यह मनुष्यरूपधारी देवता है। मनुष्योंमें तो इसका अवतार हुआ है। यह सनातन ऋषि नर है। इसने इस समय पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है। महर्षि नर और नारायण कार्यवश पवित्र पृथ्वीपर श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इस समय निवातकवच नामक दैत्य मदोन्मत्त होकर मेरा अनिष्ट कर रहे हैं। वे वरदान पाकर अपने आपको भूल गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णने जैसे कालिन्दीके कालिय-ह्रदसे सर्पोंका उच्छेद किया था, वैसे ही वे दृष्टिमात्रसे निवात-कवच दैत्योंको अनुचरोंसहित नष्ट कर सकते हैं। परन्तु इस छोटे-से कामके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कुछ कहना ठीक नहीं है; क्योंकि वे महान् तेजःपुञ्ज हैं। उनका क्रोध कहीं जाग उठे तो वह सारे जगत्‌को जलाकर भस्म कर सकता है। इस कामके लिये तो अकेले अर्जुन ही पर्याप्त हैं। ये निवातकवचोंका नाश करके तब मनुष्यलोकमें जायँगे। ब्रह्मर्षे! आप पृथ्वी-पर जाकर काम्यक वनमें रहनेवाले दृढ़प्रतिज्ञ धर्मात्मा

युधिष्ठिरसे मिलिये और कहिये कि वे अर्जुनकी तनिक भी चिन्ता न करें। साथ ही यह भी कहियेगा कि 'अब अर्जुन अस्त्र-विद्यामें निपुण हो गया है। वह दिव्य नृत्य, गायन और वादनकलामें भी बड़ा कुशल हो गया है। आप अपने भाइयोंके साथ एकान्त और पवित्र तीर्थोंकी यात्रा कीजिये। तीर्थयात्रासे सारे पाप-ताप नष्ट हो जायँगे और आप पवित्र होकर राज्य भोगेंगे।' ब्रह्मर्षे! आप बड़े तपस्वी और समर्थ हैं, इसलिये पृथ्वीपर विचरते समय पाण्डवोंका ध्यान रखियेगा।" इन्द्रकी बात सुनकर लोमश मुनि काम्यक वनमें पाण्डवोंके पास आये।

अर्जुनके स्वर्ग जानेपर धृतराष्ट्र और पाण्डवोंकी स्थिति तथा बृहदश्वका आगमन

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! राजा धृतराष्ट्रको अर्जुनके स्वर्गमें निवास करनेका समाचार भगवान् व्याससे प्राप्त हुआ। उनके जानेके बाद धृतराष्ट्रने सञ्जयसे कहा—'सञ्जय! मैंने अर्जुनका सब समाचार पूर्णरूपसे सुन लिया है। क्या तुम्हें भी उस बातका पता है? मेरे पुत्र दुर्योधनकी बुद्धि मन्द है। इसीसे वह बुरे कामों और विषयभोगोंमें लगा रहता है। वह अपनी दुष्टताके कारण राज्यका नाश कर डालेगा। धर्मराज युधिष्ठिर बड़े महात्मा हैं। वे साधारण बातचीतमें भी सत्य बोलते हैं। उन्हें अर्जुन-सा वीर योद्धा

प्राप्त है। अवश्य ही उनका राज्य त्रिलोकीमें हो सकता है। जिस समय अर्जुन अपने पैने बाणोंका प्रयोग करेगा उस समय भला, कौन उसके सामने खड़ा हो सकेगा।' सञ्जयने कहा—'महाराज! आपने दुर्योधनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, वह सत्य है। अर्जुनके सम्बन्धमें मैंने यह सुना है कि उन्होंने युद्धमें अपने धनुषका बल दिखाकर भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया है। अर्जुनकी परीक्षा करनेके लिये देवाधिदेव भगवान् शङ्कर स्वयं भीलका वेष धारण करके उनके पास आये थे और उनसे युद्ध किया था। उन्होंने युद्धमें प्रसन्न होकर अर्जुनको दिव्य अस्त्र दिया। अर्जुनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर सब लोकपालोंने आकर अर्जुनको दर्शन दिये और दिव्य अस्त्र-शस्त्र दिये। ऐसा भाग्यशाली अर्जुनके सिवा और कौन है? अर्जुनका बल अपार है, उनकी शक्ति अपरिमित है।' धृतराष्ट्रने कहा—'सञ्जय! मेरे पुत्रोंने पाण्डवोंको बड़ा कष्ट दिया है। पाण्डवोंकी शक्ति बढ़ती ही जा रही है। जिस समय बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायता करनेके लिये यदुकुलके योद्धाओंको उत्साहित करेंगे, उस समय कौरव-पक्षका कोई भी वीर उनका सामना नहीं कर सकेगा। अर्जुनके धनुषकी टंकार और भीमसेनकी गदाका वेग सह सके, हमारे पक्षमें ऐसा कोई भी राजा नहीं है। मैंने दुर्योधनकी बातोंमें आकर अपने हितैषी पुरुषोंकी हितभरी बातें नहीं मानीं। जान पड़ता है मुझे पीछेसे उन्हें सोच-सोचकर पछताना पड़ेगा।' सञ्जयने कहा—'राजन्! आप सब कुछ कर सकते थे। परन्तु स्नेहवश आपने अपने पुत्रको बुरे कामोंसे रोका नहीं। उपेक्षा करते रहे। उसीका भयङ्कर फल आपके सामने आनेवाला है। जिस समय पाण्डव कपटद्यूतमें हारकर पहले-पहल काम्यक वन गये थे, तब भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ जाकर उन्हें आश्वासन दिया था। उन्होंने तथा धृष्टद्युम्न, राजा विराट, धृष्टकेतु तथा केकय आदिने वहाँ पाण्डवोंसे जो कुछ कहा था वह दूतोंसे मालूम होनेपर मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दिया था। जिस समय वे सब हमलोगोंपर चढ़ाई करेंगे, उस समय कौन उनका सामना करेगा?'

जनमेजयने पूछा—भगवन्! महात्मा अर्जुन जब अस्त्र

लोकपाल भी अपनी मण्डली और वाहनोंसहित विदर्भ देशके लिये रवाना हुए। राजा नलका चित्त पहलेसे ही दमयन्तीपर आसक्त हो चुका था। उन्होंने भी दमयन्तीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये विदर्भ देशकी यात्रा की। देवताओंने स्वर्गसे उतरते समय देख लिया कि कामदेवके समान सुन्दर नल दमयन्तीके स्वयंवरके लिये जा रहे हैं। नलकी सूर्यके समान कान्ति और लोकोत्तर रूपसम्पत्तिसे देवता भी चकित हो गये। उन्होंने पहचान लिया कि ये नल हैं। उन्होंने अपने विमानोंको आकाशमें खड़ा कर दिया और नीचे उतरकर नलसे कहा—'राजेन्द्र नल! आप बड़े सत्यव्रती हैं। आप हमलोगोंकी सहायता करनेके लिये दूत बन जाइये।' नलने प्रतिज्ञा कर ली और कहा कि 'करूँगा।' फिर पूछा कि आपलोग कौन हैं और मुझे दूत बनाकर कौन-सा काम लेना चाहते हैं?' इन्द्रने कहा—'हमलोग देवता हैं। मैं इन्द्र हूँ और ये अग्नि, वरुण और यम हैं। हमलोग दमयन्तीके लिये यहाँ आये हैं। आप हमारे दूत बनकर दमयन्तीके पास जाइये और कहिये कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमदेवता तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाह करना चाहते हैं। इनमेंसे तुम चाहे जिस देवताको पतिके रूपमें स्वीकार कर लो।' नलने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि 'देवराज! वहाँ आपलोगोंके और मेरे जानेका एक ही प्रयोजन है। इसलिये आप मुझे दूत बनाकर वहाँ भेजें, यह उचित नहीं है। जिसकी किसी स्त्रीको पत्नीके रूपमें पानेकी इच्छा हो चुकी हो वह भला, उसको कैसे छोड़ सकता है और उसके पास जाकर ऐसी बात कह ही कैसे सकता है। आपलोग कृपया इस विषयमें मुझे क्षमा कीजिये।' देवताओंने कहा—'नल! तुम पहले हमलोगोंसे प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं तुम्हारा काम करूँगा। अब प्रतिज्ञा मत तोड़ो। अविलम्ब वहाँ चले जाओ।' नलने कहा—'राजमहलमें निरन्तर कड़ा पहरा रहता है, मैं कैसे जा सकूँगा?' इन्द्रने कहा—'जाओ, तुम वहाँ जा सकोगे।' इन्द्रकी आज्ञासे नलने राजमहलमें बेरोक-टोक प्रवेश करके दमयन्तीको देखा। दमयन्ती और सखियाँ भी उसे देखकर अवाक् रह गयीं। वे इस अनुपम सुन्दर पुरुषको देखकर मुग्ध हो गयीं और लज्जित होकर कुछ बोल न सकीं।

दमयन्तीने अपनेको सम्हालकर राजा नलसे कहा—'वीर! तुम देखनेमें बड़े सुन्दर और निर्दोष जान पड़ते हो। पहले अपना परिचय बताओ। तुम यहाँ किस उद्देश्यसे आये हो और यहाँ आते समय द्वारपालोंने तुम्हें देखा क्यों नहीं? उनसे तनिक भी चूक हो जानेपर मेरे पिता उन्हें बड़ा कड़ा दण्ड देते हैं।' नलने कहा—'कल्याणी! मैं नल हूँ। लोकपालोंका दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूँ। सुन्दरी! इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम—ये चारों देवता तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं। तुम इनमेंसे किसी एक देवताको अपने पतिके रूपमें वरण कर लो। यही सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। उन देवताओंके प्रभावसे ही जब मैं तुम्हारे महलमें प्रवेश करने लगा तब मुझे कोई देख नहीं सका। मैंने देवताओंका सन्देश कह दिया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।' दमयन्तीने बड़ी श्रद्धाके साथ देवताओंको प्रणाम करके मन्द-मन्द मुसकराकर नलसे कहा—'नरेन्द्र! आप मुझे प्रेमदृष्टिसे देखिये और आज्ञा कीजिये कि मैं यथाशक्ति आपकी क्या सेवा करूँ। मेरे स्वामी! मैंने अपना सर्वस्व और अपने आपको भी आपके चरणोंमें सौंप दिया है। आप मुझपर विश्वासपूर्ण प्रेम कीजिये। जिस दिनसे मैंने हंसोंकी बात सुनी, उसी दिनसे मैं आपके लिये व्याकुल हूँ। आपके लिये ही मैंने राजाओंकी भीड़ इकट्ठी की है। यदि आप मुझ दासीकी प्रार्थना अस्वीकार कर देंगे तो मैं विष खाकर, आगमें जलकर, पानीमें डूबकर या फाँसी लगाकर आपके लिये मर जाऊँगी।' राजा नलने कहा—'जब बड़े-बड़े लोकपाल तुम्हारे प्रणय-सम्बन्धके प्रार्थी हैं, तब तुम मुझ मनुष्यको क्यों चाह रही हो? उन ऐश्वर्यशाली देवताओंके चरण-रेणुके समान भी तो मैं नहीं हूँ। तुम अपना मन उन्हींमें लगाओ। देवताओंका अप्रिय करनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। तुम मेरी रक्षा करो और उनको वरण कर लो।' नलकी बात सुनकर दमयन्ती घबरा गयी। उसके दोनों नेत्रोंमें आँसू छलक आये। वह कहने लगी—'मैं सब देवताओंको प्रणाम करके आपको ही पतिरूपमें वरण कर रही हूँ। यह मैं सत्य शपथ खा रही हूँ।' उस समय दमयन्तीका शरीर काँप रहा था, हाथ जुड़े हुए थे।

राजा नलने कहा—'अच्छा, तब तुम ऐसा ही करो। परन्तु यह तो बतलाओ कि मैं यहाँ उनका दूत बनकर सन्देश पहुँचानेके लिये आया हूँ। यदि इस समय मैं अपना स्वार्थ बनाने लगूँ तो कितनी बुरी बात है। मैं अपना स्वार्थ तो तभी बना सकता हूँ, यदि वह धर्मके विरुद्ध न हो। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये।' दमयन्तीने गद्गद कण्ठसे कहा—'नरेश्वर! इसके लिये एक निर्दोष उपाय है। उसके अनुसार काम करनेपर आपको कोई दोष नहीं लगेगा। वह उपाय यह है कि आप लोकपालोंके साथ स्वयंवर-मण्डपमें आयें। मैं

उनके सामने ही आपको वरण कर लूँगी। तब आपको दोष नहीं लगेगा।' अब राजा नल देवताओंके पास आये। देवताओंके पूछनेपर उन्होंने कहा—"मैं आपलोगोंकी आज्ञासे दमयन्तीके महलमें गया। बाहर बूढ़े द्वारपाल पहरा दे रहे थे, परन्तु उन्होंने आपलोगोंके प्रभावसे मुझे देखा नहीं। केवल दमयन्ती और उसकी सखियोंने मुझे देखा। वे आश्चर्यमें पड़ गयीं। मैंने दमयन्तीके सामने आपलोगोंका वर्णन किया, परन्तु वह तो आपलोगोंको न चाहकर मुझे ही वरण करनेपर तुली हुई है। उसने कहा है कि 'सब देवता आपके साथ स्वयंवरमें आवें। मैं उनके सामने ही आपको वरण कर लूँगी। इसमें आपको दोष नहीं लगेगा।' मैंने आपलोगोंके सामने सब बातें कह दीं। अन्तिम प्रमाण आपलोग ही हैं।"

राजा भीमकने शुभ मुहूर्तमें स्वयंवरका समय रक्खा और लोगोंको बुलवा भेजा। सब राजा अपने-अपने निवासस्थानसे आ-आकर स्वयंवर-मण्डपमें यथास्थान बैठने लगे। पूरी सभा राजाओंसे भर गयी। जब सब लोग अपने-अपने आसनपर बैठ गये, तब सुन्दरी दमयन्ती अपनी अङ्गकान्तिसे राजाओंके मन और नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित करती हुई रङ्गमण्डपमें आयी। राजाओंका परिचय दिया जाने लगा। दमयन्ती एक-एकको देखकर आगे बढ़ने लगी। आगे एक ही स्थानपर नलके समान आकार और वेषभूषाके पाँच राजा इकट्ठे ही बैठे हुए थे। दमयन्तीको सन्देह हो गया, वह राजा नलको नहीं पहचान सकी। वह जिसकी ओर देखती, वही नल जान पड़ता। इसलिये विचार करने लगी कि 'मैं देवताओंको कैसे पहचानूँ और ये राजा नल हैं—यह कैसे जानूँ?' उसे बड़ा दुःख हुआ। अन्तमें दमयन्तीने यही निश्चय किया कि देवताओंकी शरणमें जाना ही उचित है। हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक स्तुति करने लगी—'देवताओ! हंसोंके मुँहसे नलका वर्णन सुनकर मैंने उन्हें पतिरूपसे वरण कर लिया है। मैं मनसे और वाणीसे नलके अतिरिक्त और किसीको नहीं चाहती। देवताओंने निषधेश्वर नलको ही मेरा पति बना दिया है। तथा मैंने नलकी आराधनाके लिये ही यह व्रत प्रारम्भ किया है। मेरी इस सत्य शपथके बलपर देवतालोग मुझे उन्हें ही दिखला दें। ऐश्वर्यशाली लोकपालो! आपलोग अपना रूप प्रकट कर दें, जिससे मैं पुण्यश्लोक नरपति नलको पहचान लूँ।' देवताओंने दमयन्तीका यह आर्तविलाप सुना। उसके दृढ़ निश्चय, सच्चे प्रेम, आत्मशुद्धि, बुद्धि, भक्ति और नल-परायणताको देखकर उन्होंने उसे ऐसी शक्ति दे दी जिससे वह देवता और मनुष्यका भेद समझ सके। दमयन्तीने देखा कि देवताओंके शरीरपर पसीना नहीं है। पलकें गिरती नहीं हैं। माला कुम्हलायी नहीं है। शरीरपर मैल नहीं है। स्थिर हैं, परन्तु धरती नहीं छूते। इधर नलके शरीरकी छाया पड़ रही है। माला कुम्हला गयी है। शरीरपर कुछ धूल और पसीना भी है। पलकें बराबर गिर रही हैं। और धरती छूकर

स्थित हैं। दमयन्तीने इन लक्षणोंसे देवताओं और पुण्यश्लोक नलको पहचान लिया। फिर धर्मके अनुसार नलको वरण कर लिया। दमयन्तीने कुछ सकुचाकर घूँघट काढ़ लिया और नलके गलेमें वरमाला डाल दी। देवता और महर्षि साधु-साधु कहने लगे। राजाओंमें हाहाकार मच गया।

राजा नलने आनन्दातिरेकसे दमयन्तीका अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा—'कल्याणी! तुमने देवताओंके सामने रहनेपर भी उन्हें वरण न करके मुझे वरण किया है, इसलिये तुम मुझको प्रेमपरायण पति समझना। मैं तुम्हारी बात मानूँगा। जबतक मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे, तबतक मैं तुमसे प्रेम करूँगा—यह मैं तुमसे शपथपूर्वक सत्य कहता हूँ।' दोनोंने प्रेमसे एक-दूसरेका अभिनन्दन

करके इन्द्रादि देवताओंकी शरण ग्रहण की । देवता

भी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने नलको आठ वर दिये । इन्द्रने कहा—'नल ! तुम्हें यज्ञमें मेरा दर्शन होगा उत्तम गति मिलेगी।' अग्निने कहा—'जहाँ तुम स्मरण करोगे, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा और मेरे ही सम प्रकाशमय लोक तुम्हें प्राप्त होंगे।' यमराजने कहा- 'तुम्हारी बनायी हुई रसोई बहुत मीठी होगी और अपने धर्ममें दृढ़ रहोगे।' वरुणने कहा—'जहाँ तुम चाहो वहीं जल प्रकट हो जायगा। तुम्हारी माला उत्तम गन्ध परिपूर्ण रहेगी।' इस प्रकार दो-दो वर देकर सब देव अपने-अपने लोकमें चले गये। निमन्त्रित राजालोग भी वि हो गये। भीमकने प्रसन्न होकर दमयन्तीका नलके सा विधिपूर्वक विवाह कर दिया। राजा नल कुछ दिनोंत विदर्भ देशकी राजधानी कुण्डिनपुरमें रहे। तदनन्तर भीमक की अनुमति प्राप्त करके वे अपनी पत्नी दमयन्तीके सा अपनी राजधानीमें लौट आये। राजा नल अपनी राजधानी धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करने लगे। सचमुच उनके द्वारा 'राजा' नाम सार्थक हो गया। उन्होंने अश्वमेध आदि बहुत-से यज्ञ किये। समय आनेपर दमयन्तीके गर्भसे इन्द्रसेन नामक पुत्र और इन्द्रसेना नामक कन्याका भी जन्म हुआ।

कलियुगका दुर्भाव, जूएमें नलका हारना और नगरसे निर्वासन

महर्षि बृहदश्व कहते हैं—युधिष्ठिर ! जिस समय दमयन्तीके स्वयंवरसे लौटकर इन्द्रादि लोकपाल अपने-अपने लोकोंमें जा रहे थे, उस समय उनकी मार्गमें ही कलियुग और द्वापरसे भेंट हो गयी। इन्द्रने पूछा—'क्यों कलियुग! कहाँ जा रहे हो?' कलियुगने कहा—'मैं दमयन्तीके स्वयंवरमें उससे विवाह करनेके लिये जा रहा हूँ।' इन्द्रने हँसकर कहा—'अजी, वह स्वयंवर तो कभीका पूरा हो गया। दमयन्तीने राजा नलको वरण कर लिया, हमलोग ताकते ही रह गये।' कलियुगने क्रोधमें भरकर कहा—'ओह, तब तो बड़ा अनर्थ हुआ। उसने देवताओंकी उपेक्षा करके मनुष्यको अपनाया, इसलिये उसको दण्ड देना चाहिये।' देवताओंने कहा—'दमयन्तीने हमारी आज्ञा प्राप्त करके नलको वरण किया है। वास्तवमें नल सर्वगुणसम्पन्न और उसके योग्य हैं। वे समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ और सदाचारी हैं। उन्होंने इतिहास-पुराणोंके सहित वेदोंका अध्ययन किया है। वे धर्मानुसार यज्ञमें देवताओंको तृप्त करते हैं, कभी किसीको सताते नहीं, सत्यनिष्ठ और दृढनिश्चयी हैं। उनकी चतुरता, धैर्य, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, दम और शम लोकपालोंके समान हैं। उनको शाप देना तो नरककी धधकती आगमें गिरना है।' यह कहकर देवतालोग चले गये।

अब कलियुगने द्वापरसे कहा—'भाई ! मैं अपने क्रोधको शान्त नहीं कर सकता। इसलिये मैं नलके शरीरमें निवास करूँगा। मैं उसे राज्यच्युत कर दूँगा। तब वह दमयन्तीके साथ नहीं रह सकेगा। इसलिये तुम भी जूएके पासोंमें प्रवेश करके मेरी सहायता करना।' द्वापरने उसकी बात स्वीकार कर ली। द्वापर और कलियुग दोनों ही नलकी राजधानीमें आ बसे। बारह वर्षतक वे इस बातकी प्रतीक्षामें रहे कि नलमें कोई दोष दीख जाय। एक दिन राजा नल सन्ध्याके समय लघुशङ्कासे निवृत्त होकर पैर धोये बिना ही आचमन करके सन्ध्या-वन्दन करने बैठ गये। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीरमें प्रवेश कर गया। साथ ही दूसरा रूप धारण करके वह पुष्करके पास गया और बोला—

'तुम नलके साथ जूआ खेलो और मेरी सहायतासे जूएमें राजा नलको जीतकर निषध देशका राज्य प्राप्त कर लो।' पुष्कर उसकी बात स्वीकार करके नलके पास गया। द्वापर भी पासोंका रूप धारण करके उनके साथ हो लिया। जब पुष्करने राजा नलसे बार-बार जूआ खेलनेका आग्रह किया, तब राजा नल दमयन्तीके सामने अपने भाईकी बार-बारकी ललकारको सह न सके। उन्होंने उसी समय पासे खेलनेका निश्चय कर लिया। उस समय नलके शरीरमें कलियुग घुसा हुआ था; इसलिये राजा नल दावमें सोना, चाँदी, रथ, वाहन आदि जो कुछ लगाते वह हार जाते। प्रजा और मन्त्रियोंने बड़ी व्याकुलताके साथ राजा नलसे मिलकर जूएको रोकना चाहा और आकर फाटकके सामने खड़े हो गये। उनका अभिप्राय जानकर द्वारपाल रानी दमयन्तीके पास गया और बोला कि 'आप महाराजसे निवेदन कर दीजिये, आप धर्म और अर्थके तत्त्वज्ञ हैं। आपकी सारी प्रजा आपका दुःख सह्य न होनेके कारण कार्यवश दरवाजेपर आकर खड़ी है।' दमयन्ती स्वयं दुःखके मारे दुर्बल और अचेत हुई जा रही थी। उसने आँखोंमें आँसू भरकर गद्‌गद कण्ठसे महाराजके सामने निवेदन किया—'स्वामी!

नगरकी राजभक्त प्रजा और मन्त्रिमण्डलके लोग आपसे मिलने आये हैं और ड्योढ़ीपर खड़े हैं। आप उनसे मिल लीजिये।' परन्तु नल कलियुगका आवेश होनेके कारण कुछ भी नहीं बोले। मन्त्रिमण्डल और प्रजाके लोग शोकग्रस्त होकर लौट गये। पुष्कर और नलमें कई महीनोंतक जूआ होता रहा तथा राजा नल बराबर हारते गये। राजा नल जूएमें जो पासे फेंकते, वे बराबर ही उनके प्रतिकूल पड़ते। सारा धन हाथसे निकल गया। जब दमयन्तीको इस बातका पता चला, तब उसने बृहत्सेना नामकी धायके द्वारा राजा नलके सारथि वार्ष्णेयको बुलवाया और उससे कहा—'सारथि! तुम राजाके प्रेमपात्र हो। अब यह बात तुमसे छिपी नहीं है कि महाराज बड़े सङ्कटमें पड़ गये हैं। इसलिये तुम घोड़ोंको रथमें जोड़ लो और मेरे दोनों बच्चोंको रथमें बैठाकर कुण्डिननगरमें ले जाओ। तुम रथ और घोड़ोंको भी वहीं छोड़ देना। तुम्हारी इच्छा हो तो वहीं रहना। नहीं तो कहीं दूसरी जगह चले जाना।' सारथिने दमयन्तीके कथनानुसार मन्त्रियोंसे सलाह करके बच्चोंको कुण्डिनपुरमें पहुँचा दिया, रथ और घोड़े भी वहीं छोड़ दिये। वहाँसे पैदल ही चलकर वह अयोध्या जा पहुँचा और वहीं ऋतुपर्ण राजाके पास सारथिका काम करने लगा।
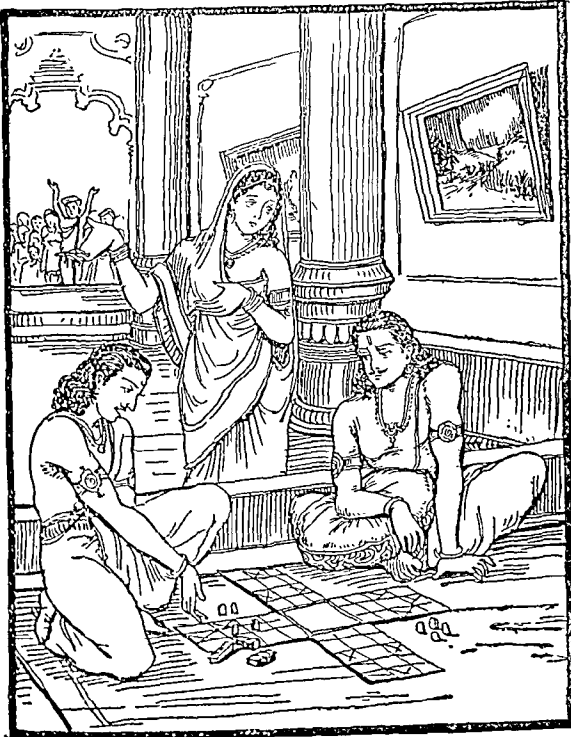
वार्ष्णेय सारथिके चले जानेके बाद पुष्करने पासोंके खेलमें राजा नलका राज्य और धन ले लिया। उसने नलको सम्बोधन करके हँसते हुए कहा—'और जूआ खेलोगे? परन्तु तुम्हारे पास दावपर लगानेके लिये तो कुछ है ही नहीं। यदि तुम दमयन्तीको दावपर लगानेयोग्य समझो तो फिर खेल हो।' नलका हृदय फटने लगा। वे पुष्करसे कुछ भी नहीं बोले। उन्होंने अपने शरीरसे सब वस्त्राभूषण उतार दिये और केवल एक वस्त्र पहने नगरसे बाहर निकले। दमयन्तीने भी केवल एक साड़ी पहनकर अपने पतिका अनुगमन किया। नलके मित्र और सम्बन्धियोंको बड़ा शोक हुआ। नल और दमयन्ती दोनों नगरके बाहर तीन राततक रहे। पुष्करने नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो मनुष्य नलके प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा, उसको फाँसीकी सजा दी जायगी। भयके मारे नगरके लोग अपने राजा नलका सत्कारतक न कर सके। राजा नल तीन दिन-राततक अपने नगरके पास केवल पानी पीकर रहे। चौथे दिन उन्हें बड़ी भूख लगी। फिर दोनों फल-मूल खाकर वहाँसे आगे बढ़े।

एक दिन राजा नलने देखा कि बहुत-से पक्षी उनके पास ही बैठे हैं। उनके पंख सोनेके समान दमक रहे हैं। नलने सोचा

कि इनकी पाँखसे कुछ धन मिलेगा। ऐसा सोचकर उन्हें

पकड़नेके लिये नलने उनपर अपना पहननेका वस्त्र डाल दिया। पक्षी उनका वस्त्र लेकर उड़ गये। अब नल नंगे होकर बड़ी दीनताके साथ मुँह नीचे किये खड़े हो गये। पक्षियोंने कहा—'दुर्बुद्धे! तू नगरसे एक वस्त्र पहनकर निकला था। उसे देखकर हमें बड़ा दुःख हुआ था। ले, अब हम तेरे शरीरपरका वस्त्र लिये जा रहे हैं। हम पक्षी नहीं, जूएके पासे हैं।' नलने दमयन्तीसे पासोंकी बात कह दी।

इसके बाद नलने कहा—'प्रिये! तुम देख रही हो, यहाँ बहुत-से मार्ग हैं। एक अवन्तीकी ओर जाता है, दूसरा ऋक्षवान् पर्वतपर होकर दक्षिण देशको। सामने विन्ध्याचल पर्वत है। यह पयोष्णी नदी समुद्रमें मिलती है। ये महर्षियोंके आश्रम हैं। सामनेका रास्ता विदर्भ देशको जाता है। यह कोसल देशका मार्ग है।' इस प्रकार राजा नल दुःख और शोकसे भरकर बड़ी सावधानीके साथ दमयन्तीको भिन्न-भिन्न मार्ग और आश्रम बतलाने लगे। दमयन्तीकी आँखें आँसूसे भर गयीं। वह गद्गद स्वरसे कहने लगी—'स्वामी! आप क्या सोच रहे हैं? मेरा शरीर फट रहा है। कलेजेमें काँटे गड़ रहे हैं। आपका राज्य गया, धन गया, शरीरपर वस्त्र नहीं रहा, थके-माँदे तथा भूखे-प्यासे हैं; क्या मैं आपको इस निर्जन वनमें छोड़कर अकेली कहीं जा सकती हूँ? मैं आपके साथ रहकर आपके दुःख दूर करूँगी। दुःखके अवसरोंपर पत्नी पुरुषके लिये औषध है। वह धैर्य देकर पतिके दुःखको कम करती है। यह बात वैद्य भी स्वीकार करते हैं।' नलने कहा—'प्रिये! तुम्हारा कहना ठीक है। पत्नी मित्र है, पत्नी औषध है। परन्तु मैं तो तुम्हारा त्याग करना नहीं चाहता। तुम ऐसा सन्देह क्यों कर रही हो?' दमयन्ती बोली—'आप मुझे छोड़ना नहीं चाहते, परन्तु विदर्भ देशका मार्ग क्यों बतला रहे हैं? मुझे निश्चय है कि आप मेरा त्याग नहीं कर सकते। फिर भी इस समय आपका मन उल्टा हो गया है, इसलिये ऐसी शङ्का करती हूँ। आपके मार्ग बतानेसे मेरा मन दुखता है। यदि आप मुझे मेरे पिता या किसी सम्बन्धीके घर भेजना चाहते हों तो ठीक है, हम दोनों साथ-साथ चलें। मेरे पिता आपका सत्कार करेंगे। आप वहीं सुखसे रहियेगा।' नलने कहा—'प्रिये! तुम्हारे पिता राजा हैं और मैं भी कभी राजा था। इस समय मैं सङ्कटमें पड़कर उनके पास नहीं जाऊँगा।' राजा नल दमयन्तीको समझाने लगे। तदनन्तर दोनों एक ही वस्त्रसे शरीर ढक वनमें इधर-उधर घूमते रहे। भूख-प्याससे व्याकुल होकर दोनों एक धर्मशालामें आये और ठहर गये।

नलका दमयन्तीको त्यागना, दमयन्तीको संकटोंसे बचते हुए दिव्य ऋषियोंके दर्शन और राजा सुबाहुके महलमें निवास

बृहदश्वजी कहते हैं—युधिष्ठिर! उस समय राजा नलके शरीरपर वस्त्र नहीं था। और तो क्या, धरतीपर बिछानेके लिये एक चटाई भी नहीं थी। शरीर धूलसे लथपथ हो रहा था। भूख-प्यासकी पीड़ा अलग ही थी। राजा नल जमीनपर ही सो गये। दमयन्तीके जीवनमें भी कभी ऐसी परिस्थिति नहीं आयी थी। वह सुकुमारी भी वहीं सो गयी। दमयन्तीके सो जानेपर राजा नलकी नींद टूटी। सच्ची बात तो यह थी कि वे दुःख और शोककी अधिकताके कारण सुखकी नींद सो भी नहीं सकते थे। आँख खुलनेपर उनके सामने राज्यके छिन जाने, सगे-सम्बन्धियोंके छूटने और पक्षियोंके वस्त्र लेकर उड़ जानेके दृश्य एक-एक करके आने लगे। वे सोचने लगे कि 'दमयन्ती मुझपर बड़ा प्रेम करती है। प्रेमके

कारण ही वह इतना दुःख भी भोग रही है। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा तो यह अपने पिताके घर चली जायेगी। मेरे साथ तो इसे दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ेगा। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊँ तो सम्भव है कि इसे सुख भी मिल जाय।' अन्तमें राजा नलने यही निश्चय किया कि दमयन्तीको छोड़कर चले जानेमें ही भला है। दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है। कोई भी इसके सतीत्वको भङ्ग नहीं कर सकता। इस प्रकार त्यागनेका निश्चय करके और सतीत्वकी ओरसे निश्चिन्त होकर राजा नलने यह विचार किया कि 'मैं नंगा हूँ और दमयन्तीके शरीरपर भी केवल एक ही वस्त्र है। फिर भी इसके वस्त्रमेंसे आधा फाड़ लेना ही श्रेयस्कर है। परन्तु फाड़ूँ कैसे? शायद यह जग जाय?' वे धर्मशालामें इधर-उधर घूमने लगे। उनकी दृष्टि एक बिना म्यानकी तलवारपर पड़ गयी। राजा नलने उसे उठा लिया और धीरेसे दमयन्तीका आधा वस्त्र फाड़कर अपना शरीर ढक

लिया। दमयन्ती नींदमें थी। राजा नल उसे छोड़कर निकल पड़े। थोड़ी देर बाद जब उनका हृदय शान्त हुआ, तब वे फिर धर्मशालामें लौट आये और दमयन्तीको देखकर रोने लगे। वे सोचने लगे कि 'अबतक मेरी प्राणप्रिया अन्तःपुरके परदेमें रहती थी, इसे कोई छू भी नहीं सकता था। आज यह अनाथके समान आधा वस्त्र पहने धूलमें सो रही है। यह मेरे बिना दुखी होकर वनमें कैसे फिरेगी? प्रिये! तू धर्मात्मा है; इसलिये आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और पवन देवता तेरी रक्षा करें।' उस समय राजा नलका हृदय दुःखके मारे टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था, वे झूलेकी तरह बार-बार धर्मशालासे बाहर निकलते और फिर लौट आते। शरीरमें कलियुगका प्रवेश होनेके कारण बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इसलिये अन्ततः वे अपनी प्राणप्रिया पत्नीको वनमें अकेली छोड़कर वहाँसे चले गये।

जब दमयन्तीकी नींद टूटी, तब उसने देखा कि राजा नल वहाँ नहीं हैं। वह आशङ्कासे भरकर पुकारने लगी कि 'महाराज! स्वामी! मेरे सर्वस्व! आप कहा हैं? मैं अकेली डर रही हूँ, आप कहाँ गये? बस, अब अधिक हँसी न कीजिये। मेरे कठोर स्वामी! मुझे क्यों डरा रहे हैं? शीघ्र दर्शन दीजिये। मैं आपको देख रही हूँ। लो, यह देख लिया। लताओंकी आड़में छिपकर चुप क्यों हो रहे हैं? मैं दुःखमें पड़कर इतना विलाप कर रही हूँ और आप मेरे पास आकर धैर्य भी नहीं देते? स्वामी! मुझे अपना या और किसीका शोक नहीं है। मुझे केवल इतनी ही चिन्ता है कि आप इस घोर जङ्गलमें अकेले कैसे रहेंगे? हा नाथ! निर्मलचित्तवाले आप-की जिस पुरुषने यह दशा की है, वह आपसे भी अधिक दुर्दशाको प्राप्त होकर निरन्तर दुखी जीवन बितावे।' दमयन्ती इस प्रकार विलाप करती हुई इधर-उधर दौड़ने लगी। वह उन्मत्त-सी होकर इधर-उधर घूमती हुई एक अजगरके पास जा पहुँची, शोकग्रस्त होनेके कारण उसे इस बातका पता भी नहीं चला। अजगर दमयन्तीको निगलने लगा। उस समय भी दमयन्तीके चित्तमें अपनी नहीं, राजा नलकी ही चिन्ता थी कि वे अकेले कैसे रहेंगे। वह पुकारने लगी—'स्वामी! मुझे अनाथकी भाँति यह अजगर निगल रहा है, आप मुझे छुड़ानेके लिये क्यों नहीं दौड़ आते?'

दमयन्तीकी आवाज एक व्याधके कानमें पड़ी। वह उधर ही घूम रहा था। वह वहाँ दौड़कर आया और यह देखकर कि दमयन्तीको अजगर निगल रहा है, अपने तेज शस्त्रसे अजगरका मुँह चीर डाला। उसने दमयन्तीको छुड़ाकर नहलाया,

आश्वासन देकर भोजन कराया। दमयन्ती कुछ-कुछ शान्त हुई। व्याधने पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? किस कष्टमें पड़कर किस उद्देश्यसे यहाँ आयी हो?' दमयन्तीने व्याधसे अपनी कष्ट-कहानी कही। दमयन्तीकी सुन्दरता, बोल-चाल और मनोहरता देखकर व्याध काममोहित हो गया। वह मीठी-मीठी बातें करके दमयन्तीको अपने वशमें करनेकी चेष्टा करने लगा। दमयन्ती दुरात्मा व्याधके मनका भाव जानकर क्रोधके आवेशसे प्रज्वलित हो गयी। दमयन्तीने व्याधके बलात्कारकी चेष्टाको बहुत रोकना चाहा; परन्तु जब वह किसी प्रकार न माना, तब उसने शाप दे दिया—'यदि मैंने निषधनरेश राजा नलको छोड़कर और किसी पुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं किया हो तो यह पापी क्षुद्र व्याध मरकर जमीनपर गिर पड़े।'

दमयन्तीके मुँहसे ऐसी बात निकलते ही व्याधके प्राण-पखेरू उड़ गये, वह जले हुए ठूँठकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

व्याधके मर जानेपर दमयन्ती राजा नलको ढूँढ़ती हुई एक निर्जन और भयङ्कर वनमें जा पहुँची। बहुत-से पर्वत, नदी, नद, जङ्गल, हिंस्र पशु, पक्षी, पिशाच आदिको देखती हुई और विरहके उन्मादमें उनसे राजा नलका पता पूछती हुई वह उत्तरकी ओर बढ़ने लगी। तीन दिन, तीन रात बीत जानेके बाद दमयन्तीने देखा कि सामने ही एक बड़ा सुन्दर तपोवन है। उस आश्रममें वशिष्ठ, भृगु और अत्रिके समान मितभोजी, संयमी, पवित्र, जितेन्द्रिय और तपस्वी ऋषि निवास कर रहे हैं। वे वृक्षोंकी छाल अथवा मृगछाला धारण किये हुए थे। दमयन्तीको कुछ धैर्य मिला, उसने आश्रममें जाकर बड़ी नम्रताके साथ तपस्वी ऋषियोंको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। ऋषियोंने 'स्वागत है' कहकर दमयन्तीका सत्कार किया और बोले 'बैठ जाओ। हम तुम्हारा क्या काम करें?' दमयन्तीने भद्र महिलाके समान

सती दमयन्तीके तेजसे व्याधका विनाश

पूछा—'आपकी तपस्या, अग्नि, धर्म और पशु-पक्षी तो सकुशल हैं न ? आपके धर्माचरणमें तो कोई विघ्न नहीं पड़ता ?' ऋषियोंने कहा—'कल्याणी ! हम तो सब प्रकारसे सकुशल हैं। तुम कौन हो, किस उद्देश्यसे यहाँ आयी हो ? हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। क्या तुम वन, पर्वत, नदीकी अधिष्ठातृदेवता हो ?' दमयन्तीने कहा—'महात्माओ ! मैं कोई देवी-देवता नहीं, एक मनुष्य स्त्री हूँ। मैं विदर्भनरेश राजा भीमककी पुत्री हूँ। बुद्धिमान्, यशस्वी एवं वीरविजयी निषधनरेश महाराज नल मेरे पति हैं। कपटद्यूतके विशेषज्ञ एवं दुरात्मा पुरुषोंने मेरे धर्मात्मा पतिको जूआ खेलनेके लिये उत्साहित करके उनका राज्य और धन ले लिया है। मैं उन्हींकी पत्नी दमयन्ती हूँ। संयोगवश वे मुझसे बिछुड़ गये हैं। मैं उन्हीं रणबाँकुरे, शस्त्रविद्याकुशल एवं महात्मा पतिदेवको ढूँढनेके लिये वन-वन भटक रही हूँ। मैं यदि उन्हें शीघ्र ही नहीं देख पाऊँगी तो जीवित नहीं रह सकूँगी। उनके बिना मेरा जीवन निष्फल है। वियोगके दुःखको मैं कबतक सह सकूँगी।' तपस्वियोंने कहा—'कल्याणी ! हम अपनी तपःशुद्ध दृष्टिसे देख रहे हैं कि तुम्हें आगे बहुत सुख मिलेगा और थोड़े ही दिनोंमें राजा नलका दर्शन होगा। धर्मात्मा निषधनरेश थोड़े ही दिनोंमें समस्त दुःखोंसे छूटकर सम्पत्तिशाली निषध देशपर राज्य करेंगे। उनके शत्रु भयभीत होंगे, मित्र सुखी होंगे और कुटुम्बी उन्हें अपने बीचमें पाकर आनन्दित होंगे।' इस प्रकार कहकर वे सब तपस्वी अपने आश्रमके साथ अन्तर्धान हो गये। यह आश्चर्यकी घटना देखकर दमयन्ती विस्मित हो गयी। वह सोचने लगी कि 'अहो ! मैंने यह स्वप्न देखा है क्या ? यह कैसी घटना हो गयी ! वे तपस्वी, आश्रम, पवित्रसलिला नदी, फल-फूलोंसे लदे हरे-भरे वृक्ष कहाँ गये ?' दमयन्ती फिर उदास हो गयी, उसका मुख मुरझा गया।

वहाँसे चलकर विलाप करती हुई दमयन्ती एक अशोक वृक्षके पास पहुँची। उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू झर रहे थे। उसने अशोक-वृक्षसे गद्गद स्वरमें कहा—'शोकरहित अशोक ! तू मेरा शोक मिटा दे। क्या कहीं तूने राजा नलको शोक-रहित देखा है ? अशोक ! तू अपने शोकनाशक नामको सार्थक कर।' दमयन्तीने अशोककी प्रदक्षिणा की और वह आगे बढ़ी। भयङ्कर वनमें अनेकों वृक्ष, गुफा, पर्वतोंके शिखर और नदियोंके आस-पास अपने पतिदेवको ढूँढती हुई दमयन्ती बहुत दूर निकल गयी। वहाँ उसने देखा कि बहुत-से हाथी, घोड़ों और रथोंके साथ व्यापारियोंका एक झुंड आगे बढ़ रहा है। व्यापारियोंके प्रधानसे बातचीत करके और यह जानकर कि ये व्यापारी राजा सुबाहुके राज्य चेदिदेशमें जा रहे हैं, दमयन्ती उनके साथ हो गयी। उसके मनमें अपने पतिके दर्शनकी लालसा बढ़ती ही जा रही थी। कई दिनोंतक चलनेके बाद वे व्यापारी एक भयङ्कर वनमें पहुँचे। वहाँ एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर था। लंबी यात्रा करनेके कारण सब लोग थक गये थे। इसलिये उन लोगोंने वहीं पड़ाव डाल दिया। दैव व्यापारियोंके प्रतिकूल था। रातके समय जङ्गली
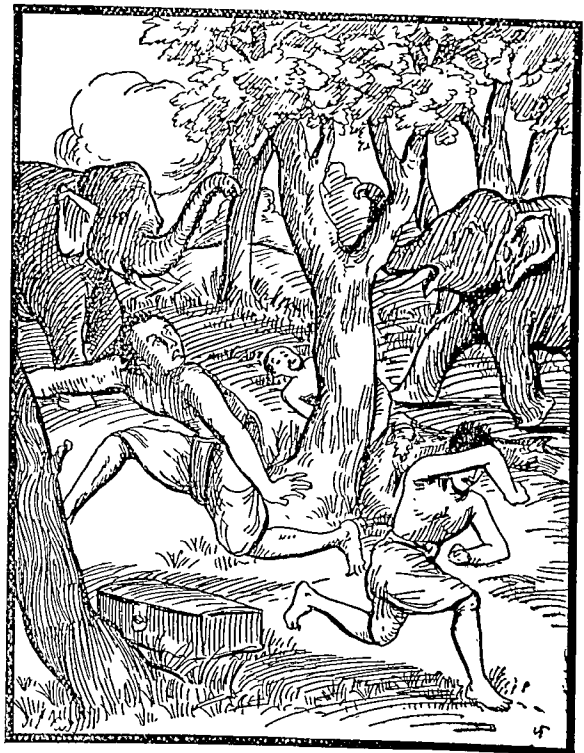
हाथी व्यापारियोंके हाथियोंपर टूट पड़े और उनकी भगदड़में सब-के-सब व्यापारी नष्ट-भ्रष्ट हो गये। कोलाहल सुनकर दमयन्तीकी नींद टूटी। वह इस महासंहारका दृश्य देखकर बावली-सी हो गयी। उसने कभी ऐसी घटना नहीं देखी थी। वह डरकर वहाँसे भाग निकली और जहाँ कुछ बचे हुए मनुष्य खड़े थे, वहाँ जा पहुँची। तदनन्तर दमयन्ती उन वेदपाठी और संयमी ब्राह्मणोंके साथ, जो उस महासंहारसे बच गये थे, शरीरपर आधा वस्त्र धारण किये चलने लगी और सायङ्कालके समय चेदिनरेश राजा सुबाहुकी राजधानीमें जा पहुँची।

जिस समय दमयन्ती राजधानीके राजपथपर चल रही थी, नागरिकोंने यही समझा कि यह कोई बावली स्त्री है। छोटे-

छोटे बच्चे उसके पीछे लग गये। दमयन्ती राजमहलके पास जा पहुँची। उस समय राजमाता राजमहलकी खिड़कीमें बैठी हुई थीं। उन्होंने बच्चोंसे घिरी दमयन्तीको देखकर धायसे कहा कि 'अरी देख तो, यह स्त्री बड़ी दुखिया मालूम पड़ती है। अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ रही है। बच्चे इसे दुःख दे रहे हैं। तू जा, इसे मेरे पास ले आ। यह सुन्दरी तो इतनी है, मानो मेरे महलको भी दमका देगी।' धायने आज्ञापालन किया। दमयन्ती राजमहलमें आ गयी। राजमाताने दमयन्तीका सुन्दर शरीर देखकर पूछा—'देखनेमें तो तुम दुखिया जान पड़ती हो, तो भी तुम्हारा शरीर इतना तेजस्वी कैसे है?

बताओ, तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो, असहाय अवस्थामें भी किसीसे डरती क्यों नहीं हो?' दमयन्तीने कहा—'मैं एक पतिव्रता नारी हूँ। मैं हूँ तो कुलीन परन्तु दासीका काम करती हूँ। अन्तःपुरमें रह चुकी हूँ। मैं कहीं भी रह जाती हूँ। फल-मूल खाकर दिन बिता देती हूँ। मेरे पतिदेव बहुत गुणी हैं और मुझसे प्रेम भी बहुत करते हैं। मेरे अभाग्यकी बात है कि वे बिना मेरे किसी अपराधके ही रातके समय मुझे सोती छोड़कर न जाने कहाँ चले गये। मैं रात-दिन अपने प्राणपतिको ढूँढती और उनके वियोगमें जलती रहती हूँ।' इतना कहते-कहते दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये, वह रोने लगी। दमयन्तीके दुःखभरे विलापसे राजमाताका जी भर आया। वे कहने लगीं—'कल्याणी! मेरा तुमपर स्वाभाविक ही प्रेम हो रहा है। तुम मेरे पास रहो, मैं तुम्हारे पतिको ढूँढनेका प्रबन्ध करूँगी। जब वे आवें, तब तुम उनसे यहीं मिलना।' दमयन्तीने कहा—'माताजी! मैं एक शर्तपर आपके घर रह सकती हूँ। मैं कभी जूठा न खाऊँगी, किसीके पैर नहीं धोऊँगी और पर-पुरुषके साथ किसी प्रकार भी बातचीत नहीं करूँगी। यदि कोई पुरुष मुझसे दुश्चेष्टा करे तो उसे दण्ड देना होगा। बार-बार ऐसा करनेपर उसे प्राणान्त दण्ड भी देना होगा। मैं अपने पतिको ढूँढनेके लिये ब्राह्मणोंसे बातचीत करती रहूँगी। आप यदि मेरी यह शर्त स्वीकार करें तब तो मैं रह सकती हूँ, अन्यथा नहीं।' राजमाता दमयन्तीके नियमोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने कहा कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर उन्होंने अपनी पुत्री सुनन्दाको बुलाया और कहा कि 'बेटी! देखो, इस दासीको देवी समझना। यह अवस्थामें तुम्हारे बराबरकी है, इसलिये इसे सखीके समान राजमहलमें रक्खो और प्रसन्नताके साथ इससे मनोरञ्जन करती रहो।' सुनन्दा प्रसन्नताके साथ दमयन्तीको अपने महलमें ले गयी। दमयन्ती अपने इच्छानुसार नियमोंका पालन करती हुई महलमें रहने लगी।

नलका रूप बदलना, ऋतुपर्णके यहाँ सारथि होना, भीमकके द्वारा नल-दमयन्तीकी खोज और दमयन्तीका मिलना

बृहदश्वजीने कहा—युधिष्ठिर! जिस समय राजा नल दमयन्तीको सोती छोड़कर आगे बढ़े, उस समय वनमें दावाग्नि लग रही थी। नल कुछ ठिठक गये, उनके कानोंमें आवाज आयी—'राजा नल, शीघ्र दौड़ो। मुझे बचाओ।' नलने कहा—'डरो मत।' वे दौड़कर दावानलमें घुस गये और देखा कि नागराज कर्कोटक कुण्डली बाँधकर पड़ा हुआ है। उसने हाथ जोड़कर नलसे कहा—'राजन्! मैं कर्कोटक नामका सर्प हूँ। मैंने तेजस्वी ऋषि नारदको धोखा दिया था। उन्होंने शाप दे दिया कि जबतक राजा नल तुम्हें न उठावें, तबतक यहीं पड़ा रह। उनके उठानेपर तू शापसे छूट जायगा। उनके शापके कारण मैं यहाँसे एक पग भी हट-बढ़ नहीं सकता। तुम शापसे मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हें हितकी

बात बताऊँगा और तुम्हारा मित्र बन जाऊँगा। मेरे भारसे डरो मत। मैं अभी हल्का हो जाता हूँ।' वह अँगूठेके बराबर हो गया। नल उसे उठाकर दावानलसे बाहर ले आये। कर्कोटकने कहा—'राजन्! तुम अभी मुझे पृथ्वीपर न डालो। कुछ पगोंतक गिनती करते हुए चलो। राजा नलने ज्यों ही पृथ्वीपर दसवाँ पग डाला और कहा 'दश', त्यों ही कर्कोटक नागने उन्हें डस लिया। उसका नियम था कि जब कोई 'दश' अर्थात् 'डसो' कहता तभी वह डसता, अन्यथा नहीं। कर्कोटकके डसते ही नलका पहला रूप बदल गया और कर्कोटक अपने रूपमें हो गया। आश्चर्यचकित नलसे उसने

कहा—'राजन्! तुम्हें कोई पहचान न सके, इसलिये मैंने तुम्हारा रूप बदल दिया है। कलियुगने तुम्हें बहुत दुःख दिया है, अब मेरे विषसे वह तुम्हारे शरीरमें बहुत दुखी रहेगा। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हें हिंसक पशु-पक्षी, शत्रु और ब्रह्मवेत्ताओंसे भी कोई भय नहीं रहेगा। अब तुमपर किसी भी विषका प्रभाव नहीं होगा और युद्धमें सर्वदा तुम्हारी जीत होगी। अब तुम अपना नाम बाहुक रख लो और द्यूतकुशल राजा ऋतुपर्णकी नगरी अयोध्यामें जाओ। तुम उन्हें घोड़ोंकी विद्या बतलाना और वे तुम्हें जूएका रहस्य बतला देंगे तथा तुम्हारे मित्र भी बन जायेंगे। जूएका रहस्य जान लेनेपर तुम्हारी पत्नी, पुत्री, पुत्र, राज्य, सब कुछ मिल जायगा। जब तुम अपने पहले रूपको धारण करना चाहो, तब मेरा स्मरण करना और मेरे दिये हुए वस्त्र धारण कर लेना।' यह कहकर कर्कोटकने दो दिव्य वस्त्र दिये और वहीं अन्तर्धान हो गया।

राजा नल वहाँसे चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्णकी राजधानी अयोध्यामें पहुँच गये। उन्होंने वहाँ राजदरबारमें निवेदन किया कि 'मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़ोंको हाँकने तथा उन्हें तरह-तरहकी चालें सिखानेका काम करता हूँ।
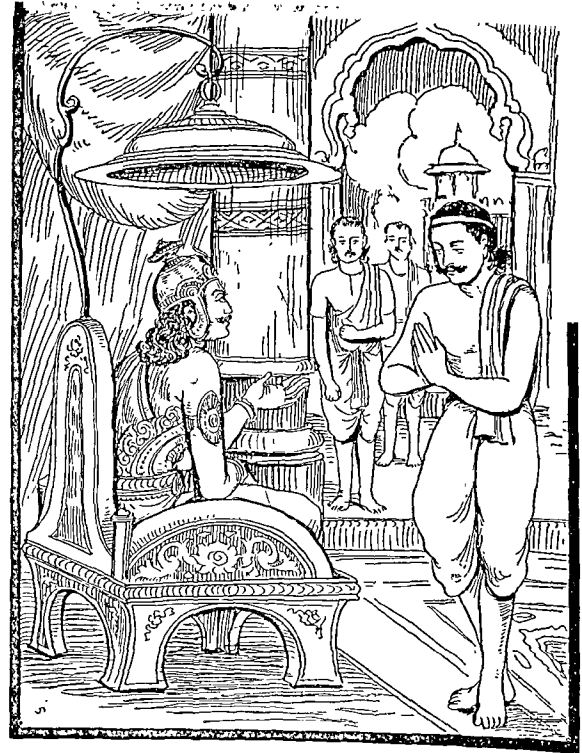
घोड़ोंकी विद्यामें मेरे-जैसा निपुण इस समय पृथ्वीपर और कोई नहीं है। अर्थसम्बन्धी तथा अन्यान्य गम्भीर समस्याओं-पर मैं अच्छी सम्मति देता हूँ और रसोई बनानेमें भी बहुत ही चतुर हूँ, एवं हस्तकौशलके सभी काम तथा और दूसरे भी कठिन कामोंको मैं करनेकी चेष्टा करूँगा। आप मेरी आजीविका निश्चित करके मुझे रख लीजिये।' ऋतुपर्णने कहा—'बाहुक! तुम भले आये। तुम्हारे जिम्मे ये सभी काम रहेंगे। परन्तु मैं शीघ्रगामी सवारीको विशेष पसंद करता हूँ, इसलिये तुम ऐसा उद्योग करो कि मेरे घोड़ोंकी चाल तेज हो जाय। मैं तुम्हें अश्वशालाका अध्यक्ष बनाता हूँ। तुम्हें हर महीने सोनेकी दस हजार मुहरें मिला

करेंगी। इसके अतिरिक्त वार्ष्णेय (नलका पुराना सारथि) और जीवल हमेशा तुम्हारे पास उपस्थित रहेंगे। तुम आनन्दसे मेरे दरबारमें रहो।' राजा ऋतुपर्णसे सत्कार पाकर राजा नल बाहुकके रूपमें वार्ष्णेय और जीवलके साथ अयोध्यामें रहने लगे। राजा नल प्रतिदिन रातको दमयन्तीका स्मरण करके कहा करते कि 'हाय-हाय, तपस्विनी दमयन्ती भूख-प्याससे घबराकर थकी-माँदी उस मूर्खका स्मरण करती होगी और न जाने कहाँ सोती होगी? भला, वह अपने जीवननिर्वाहके लिये किसके पास जाती होगी?' इसी प्रकार वे अनेकों बातें सोचते और इस प्रकार ऋतुपर्णके पास रहते कि उन्हें कोई पहचान न सके।

जब विदर्भनरेश भीमकको यह समाचार मिला कि मेरे दामाद नल राज्यच्युत होकर मेरी पुत्रीके साथ वनमें चले गये हैं, तब उन्होंने ब्राह्मणोंको बुलवाया और उन्हें बहुत-सा धन देकर कहा कि आपलोग पृथ्वीपर सर्वत्र जा-जाकर नल-दमयन्तीका पता लगाइये और उन्हें ढूँढ़ लाइये। जो ब्राह्मण यह काम पूरा कर लेगा, उसे एक सहस्र गौएँ और जागीर दी जायेगी। यदि आपलोग उन्हें ला न सकें, केवल पता ही लगा लावें तो भी दस हजार गौएँ दी जायँगी। ब्राह्मण-लोग बड़ी प्रसन्नतासे नल-दमयन्तीका पता लगानेके लिये निकल पड़े।

सुदेव नामक ब्राह्मण नल-दमयन्तीका पता लगानेके लिये चेदिनरेशकी राजधानीमें गया। उसने एक दिन राजमहलमें दमयन्तीको देख लिया। उस समय राजाके महलमें पुण्याह-वाचन हो रहा था और दमयन्ती-सुनन्दा एक साथ बैठकर ही वह मङ्गलकृत्य देख रही थीं। सुदेव ब्राह्मणने दमयन्ती-को देखकर सोचा कि वास्तवमें यही भीमक-नन्दिनी है। मैंने इसका जैसा रूप पहले देखा था, वैसा ही अब भी देख रहा हूँ। बड़ा अच्छा हुआ, इसे देख लेनेसे मेरी यात्रा सफल हो गयी। सुदेव दमयन्तीके पास गया और बोला—'विदर्भ-नन्दिनी! मैं तुम्हारे भाईका मित्र सुदेव ब्राह्मण हूँ। राजा भीमककी आज्ञासे तुम्हें ढूँढ़नेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम्हारे माता-पिता और भाई सानन्द हैं। तुम्हारे दोनों बच्चे भी विदर्भ देशमें सकुशल हैं। तुम्हारे विछोहसे सभी कुटुम्बी

प्राणहीन-से हो रहे हैं और तुम्हें ढूँढनेके लिये सैकड़ों ब्राह्मण पृथ्वीपर घूम रहे हैं।' दमयन्तीने ब्राह्मणको पहचान लिया।

वह क्रम-क्रमसे सबका कुशल-मङ्गल पूछने लगी और फूट-

पूछते ही रो पड़ी। सुनन्दा दमयन्तीको बात करते रोते देखकर घबरा गयी और उसने अपनी माताके पास जाकर सब हाल कहा। राजमाता तुरंत अन्तःपुरसे बाहर निकल आयीं और ब्राह्मणके पास जाकर पूछने लगीं कि 'महाराज! यह किसकी पत्नी है, किसकी पुत्री है, अपने घरवालोंसे कैसे बिछुड़ गयी है? तुमने इसे पहचाना कैसे?' सुदेवने नल-दमयन्तीका पूरा चरित्र सुनाया और कहा कि जैसे राखमें दबी हुई आग गर्मीसे जान ली जाती है, वैसे ही इस देवीके सुन्दर रूप और ललाटसे मैंने इसे पहचान लिया है। सुनन्दाने अपने हाथोंसे दमयन्तीका ललाट धो दिया, जिससे उसकी भौंहोंके बीचका लाल चिह्न चन्द्रमाके समान प्रकट हो गया। ललाटका वह तिल देखकर सुनन्दा और राजमाता दोनों ही रो पड़ीं। उन्होंने दो घड़ीतक दमयन्तीको अपनी छातीसे सटाये रक्खा। राजमाताने कहा—'दमयन्ती! मैंने इस तिलसे पहचान लिया कि तुम मेरी बहिनकी पुत्री हो। तुम्हारी माता मेरी सगी बहिन है। हम दोनों दशार्ण देशके राजा सुदामाकी पुत्री हैं। तुम्हारा जन्म मेरे पिताके घर ही हुआ था, उस समय मैंने तुम्हें देखा था। जैसे तुम्हारे पिताका घर तुम्हारा है, वैसे ही यह घर भी तुम्हारा ही है। यह सम्पत्ति जैसे मेरी है, वैसे ही तुम्हारी भी।' दमयन्ती बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपनी मौसीको प्रणाम करके कहा—'माँ! तुमने मुझे पहचाना नहीं तो क्या हुआ? मैं रही हूँ यहाँ लड़कीकी ही तरह। तुमने मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण की हैं तथा मेरी रक्षा की है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि मैं अब यहाँ और भी सुखसे रहूँगी। परन्तु मैं बहुत दिनोंसे घूम रही हूँ। मेरे छोटे-छोटे दो बच्चे पिताजीके घर हैं। वे अपने पिताके वियोगसे दुखी रहते होंगे। न जाने उनकी क्या दशा होगी। आप यदि मेरा हित करना चाहती हैं तो मुझे विदर्भ देशमें भेजकर मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये।' राजमाता बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने पुत्रसे कहकर पालकी मँगवायी। भोजन, वस्त्र और बहुत-सी वस्तुएँ देकर एक बड़ी सेनाके संरक्षणमें दमयन्तीको विदा कर दिया। विदर्भ देशमें दमयन्तीका बड़ा सत्कार हुआ। दमयन्ती अपने भाई, बच्चे, माता-पिता और सखियोंसे मिली। उसने देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा की। राजा भीमकको अपनी पुत्रीके मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुदेव नामक ब्राह्मणको एक हजार गौएँ, गाँव तथा धन देकर सन्तुष्ट किया।

नलकी खोज, ऋतुपर्णकी विदर्भ-यात्रा, कलियुगका उतरना

बृहदश्वजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अपने पिताके घर एक दिन विश्राम करके दमयन्तीने अपनी मातासे कहा कि 'माताजी! मैं आपसे सत्य कहती हूँ। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहती हैं तो मेरे पतिदेवको ढुँढ़वानेका उद्योग कीजिये।' रानीने बहुत दुखित होकर अपने पति राजा भीमकसे कहा कि 'स्वामी! दमयन्ती अपने पतिके लिये बहुत व्याकुल है। उसने सङ्कोच छोड़कर मुझसे कहा है कि उन्हें ढुँढ़वानेका उद्योग करना चाहिये।' राजाने अपने आश्रित ब्राह्मणोंको बुलवाया और नलको ढूँढ़नेके लिये उन्हें नियुक्त कर दिया। ब्राह्मणोंने दमयन्तीके पास जाकर कहा कि 'अब हम राजा नलका पता लगानेके लिये जा रहे हैं।' दमयन्तीने ब्राह्मणोंसे कहा कि "आपलोग जिस राज्यमें जायँ, वहाँ मनुष्योंकी भीड़में यह बात कहें—'मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ीमेंसे आधी फाड़कर तथा मुझ दासीको वनमें सोती छोड़कर कहाँ चले गये? तुम्हारी वह दासी अब भी उसी अवस्थामें आधी साड़ी पहने तुम्हारे आनेकी बाट जोह रही है और तुम्हारे वियोगके दुःखसे दुखी हो रही है।' उनके सामने मेरी दशाका वर्णन कीजियेगा और ऐसी बात कहियेगा, जिससे वे प्रसन्न हों और मुझपर कृपा करें। मेरी बात कहनेपर यदि आपलोगोंको
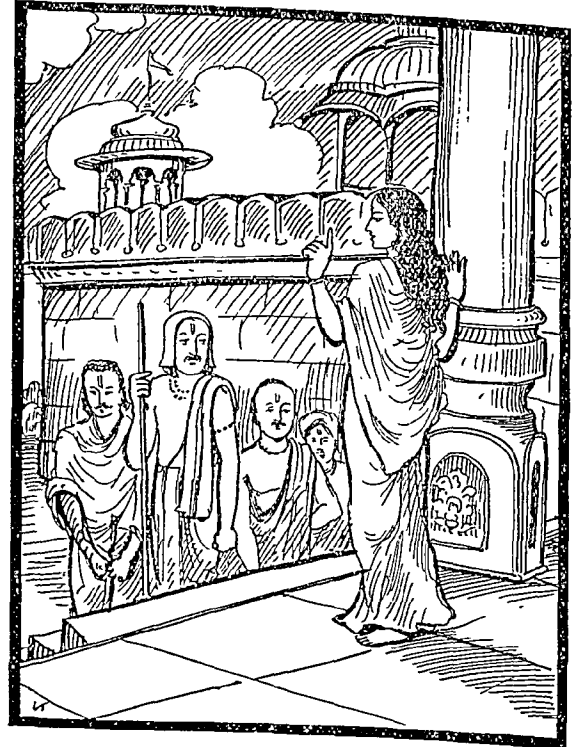
कोई उत्तर दे तो वह कौन है, कहाँ रहता है—इन बातोंका

पता लगा लीजियेगा और उसका उत्तर याद रखकर मुझे सुनाइयेगा। इस बातका भी ध्यान रखियेगा कि आपलोग यह बात मेरी आज्ञासे कह रहे हैं, यह उसे मालूम न होने पावे।'' ब्राह्मणगण दमयन्तीके निर्देशानुसार राजा नलको ढूँढ़नेके लिये निकल पड़े।

बहुत दिनोंतक ढूँढ़ने-खोजनेके बाद पर्णाद नामक ब्राह्मणने महलमें आकर दमयन्तीसे कहा—''राजकुमारी! मैं आपके निर्देशानुसार निषधनरेश नलका पता लगाता हुआ अयोध्या जा पहुँचा। वहाँ मैंने राजा ऋतुपर्णके पास जाकर भरी सभामें तुम्हारी बात दुहरायी। परन्तु वहाँ किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब मैं चलने लगा, तब उसके बाहुक नामक सारथिने मुझे एकान्तमें बुलाकर कुछ कहा। देवि! वह सारथि राजा ऋतुपर्णके घोड़ोंको शिक्षा देता है, स्वादिष्ट भोजन बनाता है; परन्तु उसके हाथ छोटे और शरीर कुरूप है। उसने लंबी साँस लेकर रोते हुए कहा कि 'कुलीन स्त्रियाँ घोर कष्ट पानेपर भी अपने शीलकी रक्षा करती हैं और अपने सतीत्वके बलपर स्वर्ग जीत लेती हैं। कभी उनका पति उन्हें त्याग भी दे तो वे क्रोध नहीं करतीं, अपने सदाचारकी रक्षा करती हैं। त्यागनेवाला पुरुष विपत्तिमें पड़नेके कारण दुखी और अचेत हो रहा था, इसलिये उसपर क्रोध करना उचित नहीं है। माना कि पतिने अपनी पत्नीका योग्य सत्कार नहीं किया। परन्तु वह उस समय राज्यलक्ष्मीसे च्युत, क्षुधातुर, दुखी और दुर्दशाग्रस्त था। ऐसी अवस्थामें उसपर क्रोध करना उचित नहीं है। जब वह अपनी प्राणरक्षाके लिये जीविका चाह रहा था, तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गये। उसके हृदयकी पीड़ा असह्य थी।' राजकुमारी! बाहुककी यह बात सुनकर मैं तुम्हें सुनानेके लिये आया हूँ। तुम जैसा उचित समझो, करो। चाहो तो महाराजसे भी कह दो।''

ब्राह्मणकी बात सुनकर दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने अपनी माँसे एकान्तमें कहा—'माताजी! आप यह बात पिताजीसे न कहें। मैं सुदेव ब्राह्मणको इस काममें नियुक्त करती हूँ। जैसे सुदेवने मुझे शुभ मुहूर्तमें यहाँ पहुँचाया था, वैसे ही वह शुभ शकुन देखकर अयोध्या जाय और मेरे पतिदेवको लानेकी युक्ति करे।' इसके बाद दमयन्तीने पर्णादका

सत्कार करके उसे विदा किया और सुदेवको बुलाया। दमयन्तीने सुदेवसे कहा—'ब्राह्मणदेवता! आप शीघ्र-से-शीघ्र अयोध्या नगरीमें जाकर राजा ऋतुपर्णसे यह बात कहिये कि भीमक-पुत्री दमयन्ती फिरसे स्वयंवरमें स्वेच्छानुसार पति-वरण करना चाहती है। बड़े-बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवरकी तिथि कल ही है। इसलिये यदि आप पहुँच सकें तो वहाँ जाइये। नलके जीने अथवा मरनेका किसीको पता नहीं है, इसलिये वह कल सूर्योदयके समय दूसरा पति वरण करेगी।' दमयन्तीकी बात सुनकर सुदेव अयोध्या गये और उन्होंने राजा ऋतुपर्णसे सब बातें कह दीं।

राजा ऋतुपर्णने सुदेव ब्राह्मणकी बात सुनकर बाहुकको बुलाया और मधुर वाणीसे समझाकर कहा कि 'बाहुक! कल दमयन्तीका स्वयंवर है। मैं एक ही दिनमें विदर्भ देशमें पहुँचना चाहता हूँ। परन्तु यदि तुम इतना जल्दी वहाँ पहुँच जाना सम्भव समझो, तभी मैं वहाँ जाऊँगा।' ऋतुपर्णकी बात सुनकर नलका कलेजा फटने लगा। उन्होंने अपने मनमें सोचा कि 'दमयन्तीने दुःखसे अचेत होकर ही ऐसा कहा होगा। सम्भव है, वह ऐसा करना चाहती हो। परन्तु

नहीं-नहीं, उसने मेरी प्राप्तिके लिये ही यह युक्ति की होगी। वह पतिव्रता, तपस्विनी और दीन है। मैंने दुर्बुद्धिवश उसे त्याग कर बड़ी क्रूरता की। अपराध मेरा ही है। वह कभी ऐसा नहीं कर सकती। अस्तु, सत्य क्या है, असत्य क्या है—यह बात तो वहाँ जानेपर ही मालूम होगी। परन्तु ऋतुपर्णकी इच्छा पूरी करनेमें मेरा भी स्वार्थ है।' बाहुकने हाथ जोड़कर कहा कि 'मैं आपके कथनानुसार काम करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।' बाहुक अश्वशालामें जाकर श्रेष्ठ घोड़ोंकी परीक्षा करने लगे। नलने अच्छी जातिके चार शीघ्रगामी घोड़े रथमें जोत लिये। राजा ऋतुपर्ण रथपर सवार हो गये।

जैसे आकाशचारी पक्षी आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही बाहुकका रथ थोड़े ही समयमें नदी, पर्वत और वनोंको

लाँघने लगा। एक स्थानपर राजा ऋतुपर्णका दुपट्टा नीचे गिर गया। उन्होंने बाहुकसे कहा—'रथ रोको, मैं वार्ष्णेयसे उसे उठवा मँगाऊँ।' नलने कहा 'आपका वस्त्र गिरा तो अभी है, परन्तु अब हम वहाँसे एक योजन आगे निकल आये हैं। अब वह नहीं उठाया जा सकता।' जिस समय यह बात हो रही थी, उस समय वह रथ एक वनमें चल रहा था। ऋतुपर्णने कहा—'बाहुक! तुम मेरी गणित-विद्याकी चतुराई देखो। सामनेके वृक्षमें जितने पत्ते और फल दीख रहे हैं, उनकी अपेक्षा भूमिपर गिरे हुए फल और पत्ते एक सौ एक गुने अधिक हैं। इस वृक्षकी दोनों शाखाओं और टहनियोंपर पाँच करोड़ पत्ते हैं और दो हजार पंचानवे फल हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो गिन लो।' बाहुकने रथ खड़ा कर दिया और कहा कि 'मैं इस बहेड़ेके वृक्षको काटकर इसके फलों और पत्तोंको ठीक-ठीक गिनकर निश्चय करूँगा।' बाहुकने वैसा ही किया। फल और पत्ते ठीक उतने ही हुए, जितने राजाने बतलाये थे। नल आश्चर्यचकित हो गये। बाहुकने कहा—'आपकी विद्या अद्भुत है। आप अपनी विद्या बतला दीजिये।' ऋतुपर्णने कहा—'गणित-विद्याकी ही तरह मैं पासोंकी वशीकरण-विद्यामें भी ऐसा ही निपुण हूँ।' बाहुकने कहा कि 'आप मुझे यह विद्या सिखा दें तो मैं आपको घोड़ोंकी भी विद्या सिखा दूँ।' ऋतुपर्णको विदर्भ देश पहुँचनेकी बहुत जल्दी थी और अश्वविद्या सीखनेका लोभ भी था, इसलिये उन्होंने राजा नलको पासोंकी विद्या सिखा दी और कह दिया कि 'अश्वविद्या तुम मुझे पीछे सिखा देना। मैंने उसे तुम्हारे पास धरोहर छोड़ दिया।'

जिस समय राजा नलने पासोंकी विद्या सीखी, उसी समय कलियुग कर्कोटक नागके तीखे विषको उगलता हुआ नलके शरीरसे बाहर निकल गया। कलियुगके बाहर निकलनेपर नलको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे शाप देना चाहा। कलियुग दोनों हाथ जोड़कर भयसे काँपता हुआ कहने लगा—'आप क्रोध शान्त कीजिये, मैं आपको यशस्वी बनाऊँगा। आपने जिस समय दमयन्तीका त्याग किया था, उसी समय उसने मुझे शाप दे दिया था। मैं बड़े दुःखके साथ कर्कोटक नागके विषसे जलता हुआ आपके शरीरमें रहता था। मैं आपकी शरणमें हूँ, मेरी प्रार्थना सुनें और मुझे शाप न दें। जो आपके पवित्र चरित्रका गान करेंगे, उन्हें मेरा भय नहीं होगा।' राजा नलने क्रोध शान्त किया। कलियुग भयभीत होकर बहेड़ेके पेड़में घुस गया। यह संवाद कलियुग और नलके अतिरिक्त और किसीको मालूम नहीं हुआ। वह वृक्ष ठूँठ-सा हो गया।

इस प्रकार कलियुगने राजा नलका पीछा छोड़ दिया, परन्तु अभी उनका रूप नहीं बदला था। उन्होंने अपने रथको जोरसे हाँका और सायङ्काल होते-न-होते वे विदर्भ देशमें जा पहुँचे। राजा भीमकके पास समाचार भेजा गया। उन्होंने ऋतुपर्णको अपने यहाँ बुला लिया। ऋतुपर्णके रथकी झङ्कारसे दिशाएँ गूँज उठीं। कुण्डिननगरमें राजा नलके वे घोड़े

भी रहते थे, जो उनके बच्चोंको लेकर आये थे। रथकी घरघराहटसे उन्होंने राजा नलको पहचान लिया और वे पूर्ववत् प्रसन्न हो गये। दमयन्तीको भी वह आवाज वैसी ही जान पड़ी। दमयन्ती कहने लगी कि 'इस रथकी घरघराहट मेरे चित्तमें उल्लास पैदा करती है, अवश्य ही इसको हाँकनेवाले मेरे पतिदेव हैं। यदि आज वे मेरे पास नहीं आयेंगे तो मैं धधकती आगमें कूद पड़ूँगी। मैंने कभी हँसी-खेलमें भी बात कही हो, उनका कोई अपकार किया हो, प्रां तोड़ दी हो, ऐसी याद नहीं आती। वे शक्तिशाली, वीर, दाता और एकपत्नीव्रती हैं। उनके वियो छाती फट रही है।' दमयन्ती महलकी छतपर चढ़ आना और उसपरसे रथी-सारथिका उतरना देखा

दमयन्तीके द्वारा राजा नलकी परीक्षा, पहचान, मिलन, राज्यप्राप्ति और कथाका उपसंह

बृहदश्वजी कहते हैं—युधिष्ठिर! विदर्भनरेश भीमकने अयोध्याधिपति ऋतुपर्णका खूब स्वागत-सत्कार किया। ऋतुपर्णको अच्छे स्थानमें ठहरा दिया गया। उन्हें कुण्डिनपुरमें स्वयंवरका कोई चिह्न नहीं दिखायी पड़ा। भीमकको इस बातका बिल्कुल पता नहीं था कि राजा ऋतुपर्ण मेरी पुत्रीके स्वयंवरका निमन्त्रण पाकर यहाँ आये हैं। उन्होंने कुशल-मङ्गलके बाद पूछा कि 'आप यहाँ किस उद्देश्यसे पधारे हैं?' ऋतुपर्णने स्वयंवरकी कोई तैयारी न देखकर निमन्त्रणकी बात दबा दी और कहा—'मैं तो केवल आपको प्रणाम करनेके लिये ही चला आया हूँ।' भीमक सोचने लगे कि 'सौ योजनसे भी अधिक दूर कोई प्रणाम करनेके लिये नहीं आ सकता। अस्तु, आगे चलकर यह बात खुल ही जायेगी।' भीमकने बड़े सत्कारके साथ आग्रह करके ऋतुपर्णको अपने यहाँ रख लिया। बाहुक भी वार्ष्णेयके साथ अश्वशालामें ठहरकर घोड़ोंकी सेवामें संलग्न हो गया।

दमयन्ती आकुल होकर सोचने लगी कि 'रथकी ध्वनि तो मेरे पतिदेवके रथके ही समान जान पड़ती थी, परन्तु उनके कहीं दर्शन नहीं हो रहे हैं। हो-न-हो वार्ष्णेयने उनसे रथविद्या सीख ली होगी; इसी कारण रथ उनका मालूम पड़ता था। सम्भव है, ऋतुपर्णको भी यह विद्या मालूम हो। उसने अपनी दासीको बुलाकर कहा कि 'केशिनी! तू जा। इस बातका पता लगा कि वह कुरूप पुरुष कौन है। सम्भव है, यही हमारे पतिदेव हों। मैंने ब्राह्मणोंके द्वारा जो सन्देश भेजा था, वही उसे बतलाना और उसका उत्तर सुनकर मुझसे कहना।' केशिनीने जाकर बाहुकसे बातें कीं। बाहुकने राजाके आनेका कारण बताया और संक्षेपमें वार्ष्णेय तथा अपनी अश्वविद्या एवं भोजन बनानेकी चतुरताका परिचय दिया। केशिनीने पूछा—'बाहुक! राजा नल कहाँ हैं? क्या तुम जानते हो? अथवा तुम्हारा साथी वार्ष्णेय जानता है?' बाहुकने कहा—

'केशिनी! वार्ष्णेय राजा नलके बच्चेको यहाँ छोड़कर

गया था। उसे उनके सम्बन्धमें कुछ भी मालूम नहीं है। इस समय नलका रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हें या तो स्वयं वे ही पहचान सकते हैं या उनकी पत्नी दमयन्ती। क्योंकि वे अपने गुप्त चिह्नोंको दूसरोंके सामने प्रकट करना नहीं चाहते। केशिनी! राजा नल विपत्तिमें पड़ गये थे। इसीसे उन्होंने अपनी पत्नीका त्याग किया। दमयन्तीको अपने पतिपर क्रोध नहीं करना चाहिये। जिस समय वे भोजनकी चिन्तामें थे, पक्षी उनके वस्त्र लेकर उड़ गये। उनका हृदय पीड़ासे जर्जरित था। यह ठीक है कि उन्होंने अपनी पत्नीके साथ उचित व्यवहार नहीं किया। फिर भी दमयन्तीको

उनकी दुरवस्थापर विचार करके क्रोध नहीं करना चाहिये।' यह कहते नलका हृदय खिन्न हो गया। आँखोंमें आँसू आ गये, वे रोने लगे। केशिनीने दमयन्तीके पास आकर वहाँकी सब बातचीत और उनका रोना भी बतलाया।

अब दमयन्तीकी आशङ्का और भी दृढ़ होने लगी कि यही राजा नल हैं। उसने दासीसे कहा कि 'केशिनी! तुम फिर बाहुकके पास जाओ और उसके पास बिना कुछ बोले खड़ी रहो। उसकी चेष्टाओंपर ध्यान दो। वह आग माँगे तो मत देना। जल माँगे तो देर कर देना। उसका एक-एक चरित्र मुझे आकर बताओ।' केशिनी फिर बाहुकके पास गयी और वहाँ उसके देवताओं एवं मनुष्योंके समान बहुत-से चरित्र देखकर लौट आयी और दमयन्तीसे कहने लगी—'राजकुमारी! बाहुकने तो जल, थल और अग्निपर सब तरहसे विजय प्राप्त कर ली है। मैंने आजतक ऐसा पुरुष न कहीं देखा है और न सुना ही है। यदि कहीं नीचा द्वार आ जाता है तो वह झुकता नहीं, उसे देखकर द्वार ही ऊँचा हो जाता है। वह बिना झुके ही चला जाता है। छोटे-से-छोटा छेद भी उसके लिये गुफा बन जाता है। वहाँ जलके लिये जो घड़े रक्खे थे, वे उसकी दृष्टि पड़ते ही जलसे भर गये। उसने फूसका पूला लेकर सूर्यकी ओर किया और वह जलने लगा। इसके अतिरिक्त वह अग्निका स्पर्श करके भी जलता नहीं है। पानी उसके इच्छानुसार बहता है। वह जब अपने हाथसे फूलोंको मसलने लगता है, तब वे कुम्हलाते नहीं और प्रफुल्लित तथा सुगन्धित दीखते हैं। इन अद्भुत लक्षणोंको देखकर मैं तो भौंचक्की-सी रह गयी और बड़ी शीघ्रतासे तुम्हारे पास चली आयी।' दमयन्ती बाहुकके कर्म और चेष्टाओंको सुनकर निश्चितरूपसे जान गयी कि ये अवश्य ही मेरे पतिदेव हैं। उसने केशिनीके साथ अपने दोनों बच्चोंको नलके पास भेज दिया। बाहुक इन्द्रसेना और इन्द्रसेनको पहचानकर उनके पास आ गया और दोनों बालकोंको छातीसे लगाकर गोदमें बैठा लिया। बाहुक अपनी सन्तानोंसे मिलकर घबरा गया और रोने लगा। उसके मुखपर पिताके समान स्नेहके भाव प्रकट होने लगे। तदनन्तर बाहुकने दोनों बच्चे केशिनीको दे दिये और कहा—'ये बच्चे मेरे दोनों बच्चोंके समान ही हैं,

इसलिये मैं इन्हें देखकर रो पड़ा। केशिनी! तुम बार-बार मेरे पास आती हो, लोग न जाने क्या सोचने लगेंगे। इसलिये यहाँ मेरे पास बार-बार आना उत्तम नहीं है। तुम जाओ।' केशिनीने दमयन्तीके पास आकर वहाँकी सारी बातें कह दीं।

अब दमयन्तीने केशिनीको अपनी माताके पास भेजा और कहलाया कि 'माताजी! मैंने राजा नल समझकर बार-बार बाहुककी परीक्षा करवायी है। अब मुझे केवल उसके रूपके सम्बन्धमें ही सन्देह रह गया है। अब मैं स्वयं उसकी परीक्षा करना चाहती हूँ। इसलिये आप बाहुकको मेरे महलमें आनेकी आज्ञा दे दीजिये अथवा उसके पास ही जानेकी आज्ञा दे दीजिये। आपकी इच्छा हो तो यह बात पिताजीको बतला दीजिये अथवा मत बतलाइये।' रानीने अपने पति भीमकसे अनुमति ली और बाहुकको रनिवासमें बुलवानेकी आज्ञा दे दी। बाहुक बुला लिया गया। दमयन्तीके देखते ही नलका हृदय एक साथ ही शोक और दुःखसे भर आया। वे आँसुओंसे नहा गये। बाहुककी आकुलता देखकर दमयन्ती भी शोकग्रस्त हो गयी। उस समय दमयन्ती गेरुआ वस्त्र पहने हुए थी। केशोंकी जटा बँध गयी थी, शरीर मलिन था। दमयन्तीने कहा—'बाहुक! पहले एक धर्मज्ञ पुरुष अपनी

पत्नीको वनमें सोती छोड़कर चला गया था। क्या कहीं तुमने उसे देखा है? उस समय वह स्त्री थकी-माँदी थी, नींदसे अचेत थी; ऐसी निरपराध स्त्रीको पुण्यश्लोक निषधनरेशके सिवा और कौन पुरुष निर्जन वनमें छोड़ सकता है? मैंने जीवनभरमें जान-बूझकर उनका कोई भी अपराध नहीं किया है। फिर भी वे मुझे वनमें सोती छोड़कर चले गये।' इतना कहते-कहते दमयन्तीके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। दमयन्तीके विशाल, साँवले एवं रतनारे नेत्रोंसे आँसू टपकते देखकर नलसे रहा न गया। वे कहने लगे—'प्रिये! मैंने जान-बूझकर न तो राज्यका नाश किया है और न तो तुम्हें त्यागा है। यह तो कलियुगकी करतूत है। मैं जानता हूँ कि जबसे तुम मुझसे बिछुड़ी हो तबसे रात-दिन मेरा ही स्मरण-चिन्तन करती रहती हो। कलियुग मेरे शरीरमें रहकर तुम्हारे शापके कारण जलता रहता था। मैंने उद्योग और तपस्याके बलसे उसपर विजय पा ली है और अब हमारे दुःखका अन्त आ गया है। कलियुग अब मुझे छोड़कर चला गया, मैं एकमात्र तुम्हारे लिये ही यहाँ आया हूँ। यह तो बतलाओ कि तुम मेरे-जैसे प्रेमी और अनुकूल पतिको छोड़कर जिस प्रकार दूसरे पतिसे विवाह करनेके लिये तैयार हुई हो, क्या कोई दूसरी स्त्री ऐसा कर सकती है? तुम्हारे स्वयंवरका समाचार सुनकर ही तो राजा ऋतुपर्ण बड़ी शीघ्रताके साथ यहाँ आये हैं।' दमयन्ती यह सुनकर भयके मारे थर-थर काँपने लगी।

दमयन्तीने हाथ जोड़कर कहा—आर्यपुत्र! मुझपर दोष लगाना उचित नहीं है। आप जानते हैं कि मैंने अपने सामने प्रकट देवताओंको छोड़कर आपको वरण किया है। मैंने आपको ढूँढनेके लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको भेजा था और वे मेरी कही बात दुहराते हुए चारों ओर घूम रहे थे। पर्णाद नामक ब्राह्मण अयोध्यापुरीमें आपके पास भी पहुँचा था। उसने आपको मेरी बातें सुनायी थीं और आपने उनका यथोचित उत्तर भी दिया था। वह समाचार सुनकर मैंने आपको बुलानेके लिये ही यह युक्ति की थी। मैं जानती हूँ कि आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मनुष्य नहीं है, जो एक दिनमें घोड़ोंके रथसे सौ योजन पहुँच जाय। मैं आपके चरणोंका स्पर्श करके शपथपूर्वक सत्य-सत्य कहती हूँ कि मैंने कभी मनसे भी पर-पुरुषका चिन्तन नहीं किया है। यदि मैंने कभी मनसे भी पापकर्म किया हो तो निरन्तर भूमिपर विचरनेवाले वायुदेव, भगवान् सूर्य और मनके देवता चन्द्रमा मेरे प्राणोंका नाश कर दें। ये तीनों देवता सकल

भूमण्डलमें विचरते हैं। वे सच्ची बात बतला दें और यदि मैं पापिनी होऊँ तो मुझे त्याग दें।' उसी समय वायुने अन्तरिक्षमें स्थित होकर कहा—'राजन्! मैं सत्य कहता हूँ कि दमयन्तीने कोई पाप नहीं किया है। इसने तीन वर्षतक अपने उज्ज्वल शीलव्रतकी रक्षा की है। हमलोग इसके रक्षकरूपमें रहे हैं और इसकी पवित्रताके साक्षी हैं। इसने स्वयंवरकी सूचना तो तुम्हें ढूँढनेके लिये ही दी थी। वास्तवमें दमयन्ती तुम्हारे योग्य है और तुम दमयन्तीके योग्य हो। कोई शङ्का न करो और इसे स्वीकार करो।' जिस समय पवन देवता यह बात कह रहे थे, उस समय आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी। ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर राजा नलने अपना सन्देह छोड़ दिया और नागराज कर्कोटकका दिया हुआ वस्त्र ओढ़कर उसका स्मरण किया। उनका शरीर तुरंत पूर्ववत् हो गया। दमयन्ती राजा नलको पहले रूपमें देखकर उनसे लिपट गयी और रोने लगी। राजा नलने भी प्रेमके साथ दमयन्तीको गलेसे लगाया और दोनों बालकोंको छातीसे लिपटाकर उनके साथ प्यारकी बात करने लगे। सारी रात दमयन्तीके साथ बातचीत करनेमें ही बीत गयी।

प्रातःकाल होनेपर नहा-धो, सुन्दर वस्त्र पहनकर दमयन्ती

और राजा नल भीमकके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भीमकने बड़े आनन्दसे उनका सत्कार किया और आश्वासन दिया। बात-की-बातमें यह समाचार सर्वत्र पहुँच गया, नगरके नर-नारी आनन्दमें भरकर उत्सव मनाने लगे। देवताओंकी पूजा हुई। जब राजा ऋतुपर्णको यह बात मालूम हुई कि बाहुकके रूपमें तो राजा नल ही थे, यहाँ आकर वे अपनी पत्नीसे मिल गये, तब उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने नलको अपने पास बुलवाकर क्षमा माँगी। राजा

नलने उनके व्यवहारोंकी उत्तमता बताकर प्रशंसा की और उनका सत्कार किया। साथ ही उन्हें अश्वविद्या भी सिखा दी। राजा ऋतुपर्ण किसी दूसरे सारथिको लेकर अपने नगर चले गये।

राजा नल एक महीनेतक कुण्डिननगरमें ही रहे। तदनन्तर अपने श्वशुर भीमककी आज्ञा लेकर थोड़े-से लोगोंको साथ ले निषध देशके लिये रवाना हुए। राजा भीमकने एक श्वेतवर्णका रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े और छः सौ पैदल राजा नलके साथ भेज दिये। अपने नगरमें प्रवेश करके राजा नल पुष्करसे मिले और बोले कि 'या तो तुम कपटभरे जूएका खेल फिर मुझसे खेलो या धनुषपर डोरी चढ़ाओ।' पुष्करने हँसकर कहा—'अच्छी बात है, तुम्हें दावपर लगानेके लिये फिर धन मिल गया। आओ, अबकी बार तुम्हारे धन तथा दमयन्तीको भी जीत लूँगा।' राजा नलने कहा—'अरे भाई! जूआ खेल लो, बकते क्या हो? हार जाओगे तो तुम्हारी क्या दशा होगी, जानते हो?' जूआ होने लगा, राजा नलने पहले ही दावमें पुष्करके राज्य, रत्नोंके भण्डार और उसके प्राणोंको भी जीत लिया। उन्होंने पुष्करसे कहा कि 'यह सब राज्य मेरा हो गया। अब तुम दमयन्तीकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। तुम दमयन्तीके सेवक हो। अरे मूढ़! पहली बार भी तुमने मुझे नहीं जीता था। वह काम कलियुगका था, तुम्हें इस बातका पता नहीं है। मैं कलियुगके दोषको तुम्हारे सिर नहीं मढ़ना चाहता। तुम अपना जीवन सुखसे बिताओ, मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ। तुम्हारी सब वस्तुएँ और तुम्हारे राज्यका भाग भी दे देता हूँ। तुमपर मेरा प्रेम पहलेके ही समान है। तुम मेरे भाई हो। मैं कभी तुमपर अपनी आँख टेढ़ी नहीं करूँगा। तुम सौ वर्षतक जीओ।' राजा नलने इस प्रकार कहकर पुष्करको धैर्य दिया और उसे अपने हृदयसे लगाकर जानेकी आज्ञा दी। पुष्करने हाथ जोड़कर राजा नलको प्रणाम
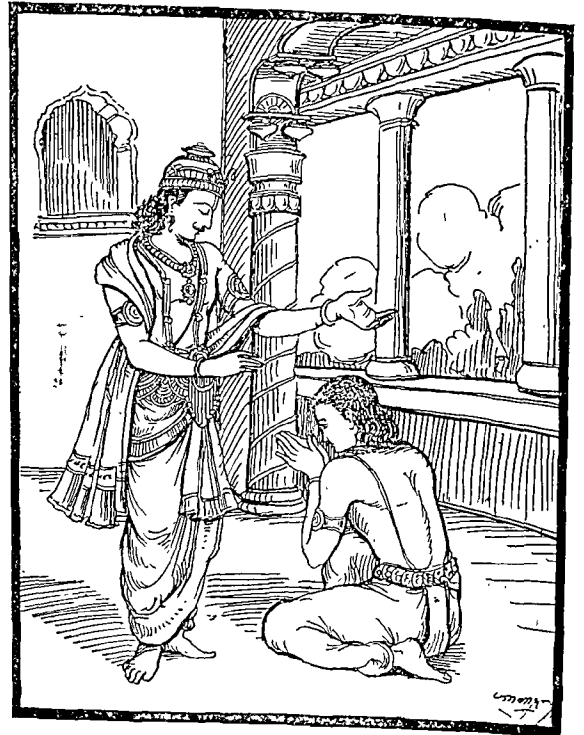
किया और कहा—'जगत्में आपकी अक्षय कीर्ति हो और आप दस हजार वर्षतक सुखसे जीवित रहें। आप मेरे अन्न-

दाता और प्राणदाता हैं ।' पुष्कर बड़े सत्कार और सम्मानके साथ एक महीनेतक राजा नलके नगरमें ही रहा । तदनन्तर सेना, सेवक और कुटुम्बियोंके साथ अपने नगरमें चला गया । राजा नल भी पुष्करको पहुँचाकर अपनी राजधानीमें लौट आये। सभी नागरिक, साधारण प्रजा तथा मन्त्रिमण्डलके लोग राजा नलको पाकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने रोमाञ्चित शरीरसे हाथ जोड़कर राजा नलसे निवेदन किया—'राजेन्द्र ! आज हमलोग दुःखसे छुटकारा पाकर सुखी हुए हैं । जैसे देवता इन्द्रकी सेवा करते हैं, वैसे ही आपकी सेवा करनेके लिये हम सब आये हैं ।'

घर-घर आनन्द मनाया जाने लगा । चारों ओर शान्ति फैल गयी । बड़े-बड़े उत्सव होने लगे । राजा नलने सेना भेजकर दमयन्तीको बुलवाया । राजा भीमकने अपनी पुत्रीको बहुत-सी वस्तुएँ देकर ससुराल भेज दिया । दमयन्ती अपनी दोनों सन्तानोंको लेकर महलमें आ गयी । राजा नल बड़े आनन्दके साथ समय बिताने लगे । राजा नलकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी । वे धर्मबुद्धिसे प्रजाका पालन करने लगे । उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ करके भगवान्‌की आराधना की ।

बृहदश्वजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तुम्हें भी थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा राज्य और सगे-सम्बन्धी मिल जायँगे । राजा नलने जूआ खेलकर बड़ा भारी दुःख मोल ले लिया था । उसे अकेले ही सब दुःख भोगना पड़ा; परन्तु तुम्हारे साथ तो भाई हैं, द्रौपदी है और बड़े-बड़े विद्वान् तथा सदाचारी ब्राह्मण हैं । ऐसी दशामें शोक करनेका तो कोई कारण ही नहीं है । संसारकी स्थितियाँ सर्वदा एक-सी नहीं रहतीं । यह विचार करके भी उनकी अभिवृद्धि और ह्राससे चिन्ता नहीं करनी चाहिये । नागराज कर्कोटक, दमयन्ती, नल और ऋतुपर्णकी यह कथा कहने-सुननेसे कलियुगके पापोंका नाश होता है और दुखी मनुष्योंको धैर्य मिलता है ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! फिर महर्षि बृहदश्वके प्रेरित करनेपर धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रार्थनासे वे उनके पासोंकी वशीकरण-विद्या और अश्वविद्या सिखलाकर स्नान करनेके लिये चले गये । उनके जानेपर धर्मराज युधिष्ठिर ऋषि-मुनियोंसे अर्जुनकी तपस्याके सम्बन्धमें बातचीत करने लगे ।

नारदजीद्वारा तीर्थयात्राकी महिमाका वर्णन

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! मेरे परदादा अर्जुनके वियोगमें शेष पाण्डवोंने काम्यक वनमें किस प्रकार अपने दिन बिताये ?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! जब अर्जुन तपस्या करनेके उद्देश्यसे चले गये, तब शेष पाण्डवोंने अर्जुनके वियोगमें बड़ी उदासीके साथ अपने दिन बिताये । वे दुःख और शोकमें डूबे रहते थे । उन्हीं दिनों परम तेजस्वी देवर्षि नारद उनके निवासस्थानपर आये । धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित खड़े होकर शास्त्रोक्त रीतिसे उनकी पूजा की । देवर्षि नारदने कुशल-प्रश्न पूछकर उन्हें आश्वासन दिया और कहा—'युधिष्ठिर ! इस समय तुम क्या चाहते हो ? मैं तुम्हारा कौन-सा काम करूँ ?' धर्मराज युधिष्ठिरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके बड़ी नम्रताके साथ कहा—'महाराज ! सभी लोग आपकी पूजा करते हैं । जब आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमलोग ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि आपकी कृपासे हमारे सारे काम सिद्ध हो गये । आप कृपा करके हमलोगोंको एक बात बतलाइये । जो तीर्थोंका सेवन करता हुआ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे क्या फल मिलता है ?' नारदजीने कहा—'राजन् ! तुम सावधान होकर सुनो, एक बार तुम्हारे

पितामह भीष्म हरिद्वारमें ऋषि, देवता एवं पितरोंकी तृप्तिके

लिये कोई अनुष्ठान कर रहे थे। वहीं एक दिन पुलस्त्य मुनि आये। भीष्मने उनकी सेवा-पूजा करके यही प्रश्न किया, जो तुम मुझसे कर रहे हो। उसके उत्तरमें पुलस्त्य मुनिने जो कुछ कहा, वही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! तीर्थोंमें प्रायः बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते हैं। उन तीर्थोंके सेवनसे जो फल प्राप्त होता है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जिसके हाथ दान लेने और बुरे कर्म करनेसे अपवित्र नहीं हैं, जिसके पैर नियमपूर्वक पृथ्वीपर पड़ते हैं अर्थात् जीव-जन्तुओंको अपने नीचे न दबाकर दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिये चलते हैं, जिसका मन दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तनसे बचा हुआ है, जिसकी विद्या मारण-मोहन-उच्चाटन आदिसे युक्त एवं विवादजननी न हो, जिसकी तपस्या अन्तःकरणकी शुद्धि और जगत्कल्याणके लिये हो, जिसकी कृति और कीर्ति निष्कलङ्क हो, उसे तीर्थोंका वह फल, जिसका शास्त्रोंमें वर्णन है, प्राप्त होता है। जो किसी प्रकारका दान नहीं लेता, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहता है और साथ ही अहङ्कार भी नहीं करता, जो दम्भ एवं कामनासे रहित है, थोड़ा खाता और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, साथ ही समस्त पापोंसे बचा भी रहता है, जो कभी किसीपर क्रोध नहीं करता, स्वभावसे ही सत्यका पालन करता है, दृढ़तासे अपने नियमोंमें संलग्न रहता है और समस्त प्राणियोंके सुख-दुःखको अपने शरीरके सुख-दुःखके समान ही समझता है, उसे शास्त्रोक्त तीर्थफलकी प्राप्ति होती है। तीर्थयात्राके द्वारा निर्धन मनुष्य भी बड़े-बड़े यज्ञोंका फल प्राप्त कर सकता है।

मर्त्यलोकमें भगवान्‌का पुष्कर तीर्थ बहुत ही प्रसिद्ध है। पुष्करमें करोड़ों तीर्थ निवास करते हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ सर्वदा वहाँ उपस्थित रहती हैं। बड़े-बड़े देवता, दैत्य और ब्रह्मर्षियोंने तपस्या करके वहाँ सिद्धि प्राप्त की है। जो उदार पुरुष मनसे भी पुष्करका स्मरण करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। स्वयं ब्रह्माजी बड़े प्रेमसे पुष्करमें निवास करते

हैं। इस तीर्थमें जो स्नान करता है और देवता-पितरोंको सन्तुष्ट करता है, उसे अश्वमेध यज्ञसे भी दस गुना फल मिलता है। जो पुष्करारण्य तीर्थमें एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसे इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है। मनुष्य स्वयं शाक, कन्दमूल, फल आदि जिस वस्तुसे अपना जीवन-निर्वाह करता है, उसी वस्तुके द्वारा श्रद्धाके साथ ब्राह्मणको भोजन करावे। किसीसे भी ईर्ष्या न करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परम पवित्र पुष्कर तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें फिर जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। कार्तिक मासमें पुष्कर तीर्थमें वास करनेसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो सायं और प्रातःकाल दोनों हाथ जोड़कर पुष्कर क्षेत्रमें आये हुए तीर्थोंका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। स्त्री अथवा पुरुषने अपनी आयुभरमें जो पाप किया हो, वह सब पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाता है। जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु प्रधान हैं, वैसे ही तीर्थोंमें पुष्करराज प्रधान हैं।

इसी प्रकार अन्यान्य तीर्थोंका भी वर्णन करते हुए पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! तीर्थराज प्रयागकी महिमाका

वर्णन सभी करते हैं। वहाँ अवश्य जाना चाहिये। उसमें ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अङ्गिरा आदि निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, नदी, समुद्र, गन्धर्व और अप्सरा आदि सभी रहते हैं। ब्रह्माके साथ स्वयं विष्णु-भगवान् भी वहाँ निवास करते हैं। प्रयाग क्षेत्रमें अग्निके तीन कुण्ड हैं। उनके बीचोंबीचसे श्रीगङ्गाजी प्रवाहित होती हैं। तीर्थशिरोमणि सूर्यपुत्री यमुनाजी भी आती हैं। वहीं लोकपावनी यमुनाजीका गङ्गाजीके साथ सङ्गम हुआ है। गङ्गा और यमुनाके मध्यभागको पृथ्वीकी जाँघ समझना चाहिये। प्रयाग पृथ्वीका जननेन्द्रिय है। प्रयाग, प्रतिष्ठान (झूसी), कम्बल एवं अश्वतर नाग, भोगवती तीर्थ—ये प्रजापतिकी वेदी हैं। इनमें वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं। बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि प्रजापतिकी उपासना एवं चक्रवर्ती राजा यज्ञोंके द्वारा देवताओंका यजन करते हैं। इसीसे यह स्थान परम पवित्र है। ऋषिलोग कहते हैं कि प्रयाग समस्त तीर्थोंसे श्रेष्ठ है। प्रयागकी यात्रासे, प्रयागके नाम-सङ्कीर्तनसे और प्रयागकी मिट्टीके स्पर्शसे मनुष्यके सारे पाप छूट जाते हैं। जो विश्वविख्यात गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करता है, उसे राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। यह देवताओंकी यज्ञ-भूमि है, यहाँ थोड़ा-सा भी दान करनेसे बहुत बड़े दानका फल मिलता है, यद्यपि वेदमें और लोक-व्यवहारमें हठपूर्वक मृत्युको बहुत बुरा कहा गया है, फिर भी प्रयागकी मृत्युके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिये। प्रयागमें सदा-सर्वदा साठ करोड़ दस हजार तीर्थोंका सान्निध्य रहता है। चार प्रकारकी विद्याओंके अध्ययनका और सत्यभाषणका जो पुण्य होता है, वह गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करनेसे होता है। वासुकि नागके भोगवती तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। विश्वविख्यात हंसप्रपतन तीर्थ एवं गङ्गादशाश्वमेधिक तीर्थ भी वहीं हैं। और तो क्या, देवनदी गङ्गाजी जहाँ भी हों, वहीं स्नान करनेसे कुरुक्षेत्र-यात्राका फल मिलता है। गङ्गास्नानमें कनखलका विशेष माहात्म्य है। प्रयाग तो उससे भी बढ़कर है।

जिसने सैकड़ों पाप किये हों वह भी यदि एक बार गङ्गा-जल अपने ऊपर डाल ले तो गङ्गाजल उसके सारे पापोंको वैसे ही भस्म कर डालता है, जैसे अग्नि सूखी लकड़ीको। सत्ययुगमें सभी तीर्थ पुण्यदायक होते हैं। त्रेतामें पुष्कर और द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है। कलियुगमें तो एकमात्र गङ्गाका माहात्म्य ही सबसे श्रेष्ठ है। पुष्करमें तपस्या, महालय तीर्थपर दान, मलयाचलपर शरीर-दाह और भृगु-तुङ्ग क्षेत्रपर अनशन करना श्रेष्ठ है। परन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गङ्गा एवं मगध देशमें स्नानमात्रसे ही सात-सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। गङ्गाजी नामोच्चारणमात्रसे पापोंको धो बहाती हैं, दर्शनमात्रसे कल्याणदान करती हैं, स्नान और पानसे सात पीढ़ियोंतक पवित्र कर देती हैं, जबतक मनुष्यकी हड्डी गङ्गाजलमें रहती है, तबतक उसे स्वर्गमें सम्मान प्राप्त होता है। जो पुण्यतीर्थ एवं पुण्यक्षेत्रोंका सेवन करते हैं, वे पुण्य उपार्जन करके स्वर्गके अधिकारी होते हैं। ब्रह्माजीने यह बात स्पष्ट कह दी है कि गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं, भगवान्से बढ़-कर कोई देवता नहीं और ब्राह्मणोंसे बढ़कर कोई प्राणी नहीं। जहाँ गङ्गाजी हैं, वही पवित्र देश है, वही पवित्र तपोवन है। गङ्गातटका स्थान ही सिद्धिक्षेत्र है।

भीष्म! मैंने जो तीर्थयात्राका वर्णन किया है, वह सत्य है; इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सत्पुरुष, पुत्र, मित्र, शिष्य और सेवकोंको गोपनीय-से-गोपनीय निधिके रूपमें कानमें बतलाना चाहिये। इस माहात्म्यके वर्णन एवं श्रवणसे बहुत फल मिलता है। इससे शुद्ध बुद्धि उत्पन्न होती है। इससे चारों वर्णोंके लोगोंकी इच्छा पूरी होती है। मैंने जिन तीर्थोंका वर्णन किया है, उनमेंसे जहाँ जाना सम्भव न हो, वहाँ मानसिक यात्रा करनी चाहिये। उसमें बड़े-बड़े देवता और ऋषियों-ने स्नान किया है। भीष्म! तुम श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त नियमा-नुसार इन्द्रियोंको शुद्ध रखते हुए तीर्थोंकी यात्रा करो और अपना पुण्य बढ़ाओ। शास्त्रदर्शी सत्पुरुष ही उन तीर्थोंको प्राप्त कर सकते हैं। नियमहीन, असंयमी, अपवित्र एवं चोर उन तीर्थोंकी उपलब्धि नहीं कर सकते। तुम सदाचारी एवं धर्मके मर्मज्ञ हो। तुम्हारे धर्मपालनके प्रतापसे सभी तृप्त हो रहे हैं। तुमने तो देवता, पितर, ऋषि आदि सभीको तीर्थ-स्नान करा दिया है। तुम्हें श्रेष्ठ लोक और महान् कीर्तिकी प्राप्ति होगी।

'धर्मराज! भीष्मपितामहसे इतना कहकर पुलस्त्य मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये। भीष्मपितामहने विधिपूर्वक तीर्थयात्रा की। जो इस विधिसे पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, उसे सौ अश्वमेधोंका फल प्राप्त होता है। तुम तो अकेले नहीं, इन ऋषियोंको भी तीर्थमें ले जाओगे; इसलिये तुम्हें अठगुना फल प्राप्त होगा। बहुत-से तीर्थोंको राक्षसोंने

रोक रक्खा है। वहाँ केवल तुम्हीं लोग जा सकते हो। तीर्थोंमें वाल्मीकि, कश्यप, दत्तात्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, वशिष्ठ मुनि, उद्दालक, शौनक, व्यास, शुकदेव, दुर्वासा, जाबालि आदि बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम उन लोगोंको साथ लेते हुए सब तीर्थोंमें जाओ। परम तेजस्वी लोमश ऋषि भी तुम्हारे पास आयेंगे। उन्हें भी ले लो। मैं भी चलूँगा। तुम ययाति और पुरूरवाके समान यशस्वी धर्मात्मा हो। तुम राजा भगीरथ और लोकाभिराम रामके समान समस्त राजाओंसे श्रेष्ठ हो। मनु, इक्ष्वाकु, पूरु, पृथु और इन्द्रके समान यशस्वी तथा प्रजापालक हो। तुम अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके प्रजापालन करोगे और धर्मके अनुसार पृथ्वीका साम्राज्य भोग करते हुए कार्तवीर्य अर्जुनके समान कीर्तिमान् होओगे।' इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरसे कहकर देवर्षि नारद वहीं अन्तर्धान हो गये। धर्मात्मा युधिष्ठिर तीर्थोंके सम्बन्धमें चिन्तन करने लगे।

धौम्यद्वारा तीर्थोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरने देवर्षि नारदसे तीर्थोंका माहात्म्य सुनकर अपने भाइयोंसे सलाह की और उनकी सम्मति जानकर वे अपने पुरोहित धौम्यके पास गये और बोले—'भगवन्! मेरा भाई अर्जुन बड़ा ही धीर, वीर एवं पराक्रमी है। मैंने अपने उद्योगी, साहसी, शक्तिशाली एवं तपोधन भाईको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये वनमें भेज दिया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन और श्रीकृष्ण भगवान् नर-नारायणके अवतार हैं। परम समर्थ भगवान् वेदव्यास भी ऐसा कहते हैं। इन दोनोंमें समग्र ऐश्वर्य, ज्ञान, कीर्ति, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म—ये छः भग नित्य निवास करते हैं, इसलिये इन्हें भगवान् कहते हैं। स्वयं देवर्षि नारद भी यह बात कहते और उनकी प्रशंसा करते हैं। अर्जुनकी शक्ति और अधिकार समझकर ही मैंने उसे देवराज इन्द्रके पास अस्त्रविद्या ग्रहण करनेके लिये भेजा है। यह तो अर्जुनकी बात हुई। कौरवोंका ध्यान आते ही सबसे पहले भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यपर दृष्टि जाती है। अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी दुर्जय हैं। दुर्योधनने पहलेसे ही इन महारथियोंको अपनी ओरसे लड़नेका वचन लेकर बाँध रक्खा है। सूतपुत्र कर्ण भी महारथी है और दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करना जानता है। परन्तु मेरा विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे परपुरञ्जय धनञ्जय इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीख आनेके बाद सब लोगोंके लिये अकेला ही पर्याप्त होगा। अर्जुनके अतिरिक्त हमारे लिये कोई सहारा नहीं है। हमलोग अर्जुनकी बाट जोहते हुए ही यहाँ निवास कर रहे हैं। उसकी शूरता और सामर्थ्यपर हमारा विश्वास है। हम सभी अर्जुनके लिये चञ्चल हैं। आप कृपा करके कोई ऐसा पवित्र और रमणीय वन बतलाइये जिसमें अन्न, फल, फूल आदिकी अधिकता हो एवं पुण्यात्मा सत्पुरुष रहते हों। हमलोग वहीं चलकर कुछ दिनोंतक रहें और अर्जुनकी प्रतीक्षा करें।'

पुरोहित धौम्यने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर! मैं तुम्हें पवित्र आश्रम, तीर्थ और पर्वतोंका वर्णन सुनाता हूँ। उसके श्रवणसे द्रौपदीकी और तुमलोगोंकी उदासी दूर हो जायगी। तीर्थोंका माहात्म्य श्रवण करनेसे पुण्य होता है और तदनन्तर यदि उनकी यात्रा की जाय तो सौगुना अधिक पुण्य होता है। अब मैं अपनी स्मृतिके अनुसार पूर्वदिशाके राजर्षिसेवित तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। नैमिषारण्य तीर्थका नाम तो तुमने सुना ही होगा। वहाँ देवताओंके अलग-अलग बहुत-से क्षेत्र हैं। वह तीर्थ परम पवित्र, पुण्यप्रद एवं रमणीय गोमती नदीके तटपर स्थित है। वह देवताओंकी यज्ञभूमि है और बड़े-बड़े देवर्षि उसका सेवन करते हैं। गयाके सम्बन्धमें प्राचीन विद्वानोंने कहा है कि मनुष्यके बहुत-से पुत्र हों तो अच्छा है; क्योंकि यदि उनमेंसे कोई एक भी गया क्षेत्रमें जाकर पिण्डदान कर दे, अश्वमेध यज्ञ कर दे अथवा नील वृषोत्सर्ग कर दे तो उसके पहले-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। गया क्षेत्रमें एक महानदी नामका और गयशिर नामका तीर्थस्थान है। वह महानदी फल्गु है। एक अक्षयवट नामका महावट है, जहाँ पिण्डदान करनेसे अक्षय फल मिलता है। विश्वामित्रकी तपस्याका स्थान कौशिकी नदी, जहाँ उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, पूर्व दिशामें ही है। पुण्यसलिला भगवती भागीरथीकी विशाल धारा भी पूर्व दिशामें ही है। उसके तटपर बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर राजा भगीरथने बहुत-से यज्ञ किये थे। गङ्गा और यमुनाका विश्वविख्यात

सङ्गमस्थान प्रयाग है। वह परम पवित्र और पुण्यप्रद है। बड़े-बड़े ऋषि उसकी सेवा करते हैं। सर्वात्मा ब्रह्माजीने वहाँ बहुत-से यज्ञ-याग किये थे। इसीलिये उसका नाम प्रयाग पड़ा है। अगस्त्य मुनिका उत्तम आश्रम और बड़े-बड़े तपस्वियोंसे परिपूर्ण तपोवन भी पूर्व दिशामें ही हैं। कालञ्जर पर्वतपर हिरण्यविन्दु आश्रम है। अगस्त्य पर्वत बड़ा रमणीय, पवित्र एवं कल्याणसाधनाके उपयुक्त है। परशुरामका तपस्याक्षेत्र महेन्द्र पर्वत, जिसपर ब्रह्माने यज्ञ किया था, उधर ही है। बाहुदा और नन्दा नामकी नदियाँ भी वहीं हैं।

दक्षिण दिशामें गोदावरी नामकी पवित्र नदी बहती है। उस नदीका जल मङ्गलमय एवं तपस्वियोंके द्वारा सेवित है। उसके तटपर बड़े-बड़े ऋषियोंके आश्रम हैं। वेणा और भागीरथी नदियोंके जल भी बड़े पवित्र हैं। उधर ही राजा नृगकी पयोष्णी नदी भी है। पयोष्णी नदीका जल पात्रमें, पृथ्वीपर अथवा वायुके द्वारा उड़कर शरीरका स्पर्श कर ले तो जीवनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। एक ओर गङ्गा आदि सब नदियोंको रक्खा जाय और दूसरी ओर परम पवित्र पयोष्णीको, तो पयोष्णी नदी ही सबसे बढ़कर होगी, ऐसा मेरा विचार है। द्रविड़ देशके अन्तर्गत पाण्ड्य तीर्थमें अगस्त्यतीर्थ, वरुणतीर्थ और कुमारीतीर्थ भी हैं। ताम्रपर्णी नदी, गोकर्ण-आश्रम, अगस्त्य-आश्रम आदि भी बहुत ही पुण्यप्रद और रमणीय हैं।

सौराष्ट्र देशमें बड़े ही महिमामय आश्रम, देवमन्दिर, नदियाँ और सरोवर हैं। सौराष्ट्र देशके चमसोद्भेदन और प्रभास तीर्थ तो विश्वविश्रुत हैं। पिण्डारक तीर्थ एवं उज्जयन्त पर्वत भी हैं। सौराष्ट्र देशमें ही द्वारका भी है, जिसमें पुराण-पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं। वे सनातनधर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञ महात्मा वास्तवमें श्रीकृष्णका वही स्वरूप बतलाते हैं। कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण पवित्रोंमें पवित्र, पुण्योंमें पुण्य, मङ्गलोंमें मङ्गल और देवताओंमें देवता हैं। वे क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—सब कुछ हैं। उनका स्वरूप अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय है। वे ही प्रभु द्वारकामें निवास करते हैं। पश्चिम दिशामें आनर्त देशके अन्तर्गत बहुत-से पवित्र और पुण्यप्रद देवमन्दिर तथा तीर्थ हैं। वहाँ पुण्यसलिला नर्मदा नदी है। उसकी गति पश्चिमकी ओर है। उसके तटपर बड़े सुन्दर-सुन्दर वृक्ष, झाड़ियाँ एवं जङ्गल हैं। तीनों लोकके पवित्र तीर्थ, देवमन्दिर, नदी, वन, पर्वत, ब्रह्मादि देवता, ऋषि-महर्षि, सिद्ध-चारण और बड़े-बड़े पुण्यात्मा प्रतिदिन नर्मदाके पवित्र जलमें स्नान करनेके लिये आते हैं। नर्मदातटपर ही विश्रवा मुनिका आश्रम है, जहाँ कुबेरका जन्म हुआ था। वैदूर्यशिखर नामक पर्वत भी नर्मदातटपर ही है। उधर केतुमाला, मेध्या नदी और गङ्गाद्वार—ये तीन तीर्थ हैं। सैन्धवारण्य नामका एक पवित्र वन है, उसमें तपस्वी ब्राह्मण रहते हैं। ब्रह्माका पुण्यदायक सरोवर पुष्कर भी बहुत प्रसिद्ध है। वह कर्ममार्गको त्याग कर ज्ञानमार्गपर आरूढ़ होनेवाले ऋषियोंका पवित्र आश्रम है। उसके सम्बन्धमें स्वयं श्रीब्रह्माजीने कहा है कि जो मनस्वी पुरुष मनसे भी पुष्कर तीर्थकी यात्राकी इच्छा करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

उत्तर दिशामें परम पवित्र सरस्वती नदीके तटपर बहुत-से तीर्थ हैं। यमुना नदीका उद्गम भी उत्तर दिशामें ही है। प्लक्षावतरण नामके मङ्गलमय तीर्थमें यज्ञ करके सरस्वती नदीमें अवभृथस्नान किया जाता है, फिर स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अग्निशिर तीर्थ भी वहीं है। सरस्वती नदीके तटपर बालखिल्य ऋषियोंने यज्ञ किया था। सत्पुरुष उसकी महिमाका बखान करते हैं। दृषद्वती नदी, न्यग्रोध, पाञ्चाल्य, दाल्भ्यघोष और दाल्भ्य नामके आश्रम भी वहीं हैं। उत्तरके पर्वतोंमेंसे एक पर्वतको फोड़कर गङ्गाजी निकली थीं। उसी स्थानका नाम गङ्गाद्वार है। उस पवित्र तीर्थमें बड़े-बड़े ब्रह्मर्षि निवास करते हैं। कनखलमें सनत्कुमारका निवासस्थान है। पूरु पर्वत भी वहीं है। भृगु मुनिकी तपस्याका स्थान भृगुतुङ्ग महापर्वत भी है।

भगवान् नारायण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् एवं पुरुषोत्तम हैं। उनकी कीर्ति बड़ी मङ्गलमयी है। उनकी विशाला नामकी नगरी बदरिकाश्रमके पास है। विशाला नगरी तीनों लोकोंमें परम पवित्र और प्रसिद्ध है। बदरिकाश्रमके पास पहले ठंडे एवं गरम जलकी गङ्गा बहती थीं। उनमें सोनेकी रेत चमका करती थी। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, देवी-देवता भगवान् नारायणको नमस्कार करनेके लिये उस आश्रममें जाते हैं। स्वयं परमात्माका निवासस्थान होनेके कारण उस तीर्थमें जगत्‌के सम्पूर्ण तीर्थ और देवमन्दिर निवास करते हैं। वह पुण्यक्षेत्र, तीर्थ एवं तपोवन परब्रह्मस्वरूप है। क्योंकि
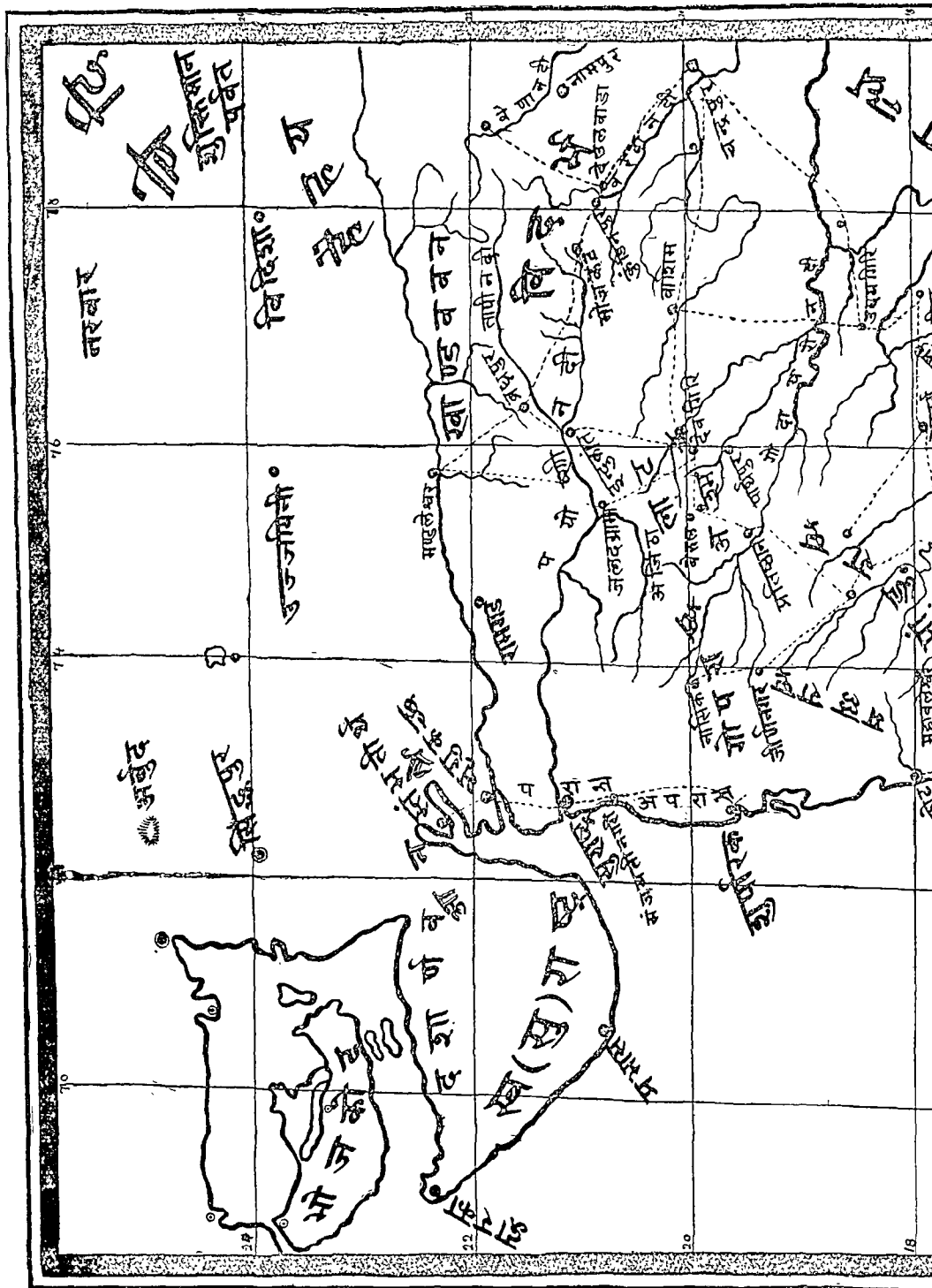
भी मुझसे कहा कि 'तपोधन! तुम धर्मके मर्मज्ञ एवं तपस्वी हो; तुमसे राजधर्म अथवा मनुष्य-धर्मका कोई भी पहलू छिपा नहीं है। इसलिये मेरे पूज्य भाई युधिष्ठिरको ऐसा उपदेश कीजिये कि वे धर्मकी पूँजी इकट्ठी करें। आप पाण्डवोंको तीर्थयात्रा कराकर उनके पुण्यकी वृद्धि करें।' अतः इन्द्र और अर्जुनके प्रेरणानुसार मैं तुम्हारे साथ तीर्थयात्रा करूँगा। मैंने पहले भी दो बार तीर्थयात्रा की है, अब मेरी यह तीसरी यात्रा होगी। युधिष्ठिर! तुम्हारी स्वभावसे ही धर्ममें रुचि है; तुम धर्मके मर्मज्ञ एवं सत्यप्रतिज्ञ हो। तुम तीर्थयात्राके प्रभावसे समस्त आसक्तियोंसे छूटकर मुक्त हो जाओगे। जैसे राजा भगीरथ, गय और ययाति जगत्में यशस्वी और विजयी हो गये हैं, वैसे ही तुम भी होओगे।''

युधिष्ठिरने कहा—महर्षे! आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा सुख मिला है। मुझे यह नहीं सूझता कि मैं आपको क्या उत्तर दूँ। देवराज इन्द्र जिसका स्मरण करें, उससे अधिक भाग्यशाली और कौन होगा? जिसे आप-जैसे सत्-पुरुषका समागम प्राप्त हो, जिसके अर्जुन-जैसा भाई हो और जिसपर देवराज इन्द्रकी कृपा हो, उसके भाग्यशाली होनेमें क्या सन्देह है? देवराज इन्द्रने आपके द्वारा मुझे जो तीर्थ-यात्रा करनेका आदेश दिया है, उसके लिये तो मैंने पहलेसे ही आचार्य धौम्यके कथनानुसार विचार कर रक्खा है। अब जब आपकी आज्ञा हो, तभी मैं आपके साथ-साथ तीर्थयात्रा करनेके लिये चलूँगा। मेरा तो ऐसा ही निश्चय है, आगे आपकी जैसी इच्छा।

तीन राततक काम्यक वनमें निवास करनेके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरने तीर्थयात्राकी तैयारी की। उस समय वनवासी ब्राह्मण उनके पास आकर बोले कि 'महाराज! आप लोमश मुनि और भाइयोंके साथ पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करने जा रहे हैं। आप हमें भी अपने साथ ले चलिये, क्योंकि आपके बिना हमलोग तीर्थयात्रा करनेमें असमर्थ हैं। हिंसक पशु-पक्षी और काँटे आदिके कारण उन तीर्थोंमें प्रायः साधारण मनुष्य नहीं जा सकते। आपके शूरवीर भाइयोंके संरक्षणमें रहकर हमलोग भी अनायास ही तीर्थयात्रा कर लेंगे। आपका ब्राह्मणोंपर स्वाभाविक ही प्रेम है। इसलिये हम आपके साथ प्रभास आदि तीर्थ, महेन्द्र आदि पर्वत, गङ्गा आदि नदी एवं अक्षयवट आदि वृक्षोंके दर्शन करके कृतार्थ होंगे।' जब वनवासी ब्राह्मणोंने इस प्रकार सत्कारपूर्वक धर्मराज युधिष्ठिरसे प्रार्थना की, तब वे आनन्दके आँसुओंसे नहा गये और बोले कि 'बहुत अच्छा, आपलोग भी चलिये।' जब धर्मराजने इस प्रकार लोमश मुनि एवं आचार्य धौम्यकी सम्मतिके अनुसार भाइयों और द्रौपदीके साथ तीर्थयात्रा
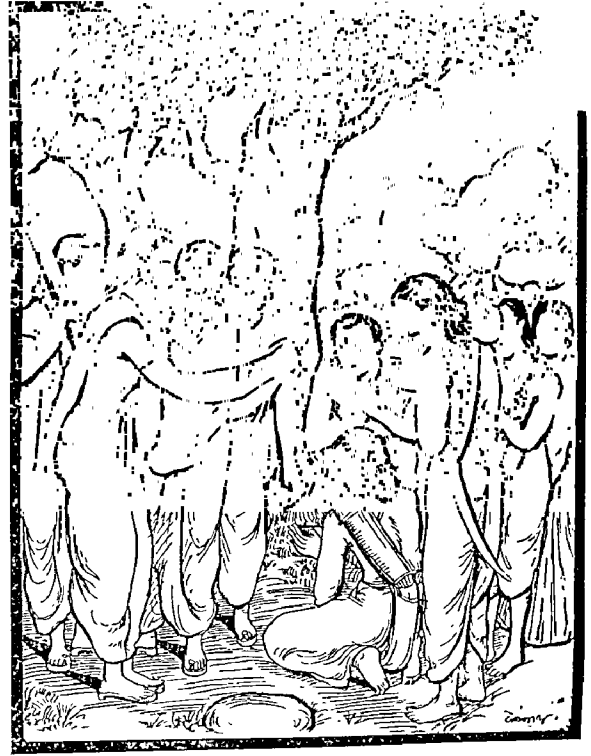
करनेका विचार किया, उसी समय भगवान् वेदव्यास, देवर्षि नारद एवं पर्वत मुनि पाण्डवोंकी सुधि लेनेके लिये काम्यक वनमें आये। युधिष्ठिरने सबकी शास्त्रोक्त विधिसे पूजा की। उन्होंने कहा—'शारीरिक शुद्धि और मानसिक शुद्धि दोनोंकी ही आवश्यकता है। मनकी शुद्धि ही पूर्ण शुद्धि है। इसलिये अब तुमलोग किसीके प्रति द्वेषबुद्धि न रखकर सबके प्रति मित्रबुद्धि रक्खो। इससे तुम्हारी मानसिक शुद्धि हो जायेगी। तब तीर्थयात्रा करो।' ऋषियोंकी यह बात सुनकर द्रौपदी और पाण्डवोंने प्रतिज्ञा की कि हम ऐसा ही करेंगे। अब दिव्य एवं मानव मुनियोंने स्वस्तिवाचन किया। पाण्डव और द्रौपदीने सब ऋषि-मुनियोंके चरण छूये। मार्गशीर्ष पूर्णिमाके अनन्तर पुष्य नक्षत्रमें पुरोहित धौम्य एवं वनवासी ब्राह्मणोंके साथ पाण्डवोंने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। उस समय सबके हाथमें डंडे थे, शरीरपर फटे वस्त्र तथा मृगचर्म थे, मस्तकपर जटाएँ थीं, शरीर अभेद्य कवचोंसे ढके हुए थे, हाथमें आयुध, कमरमें तलवार और कंधेपर बाणभरे तरकस रक्खे हुए थे तथा इन्द्रसेन आदि सेवक पीछे-पीछे चल रहे थे।

नैमिषारण्य, प्रयाग और गयाकी यात्रा तथा अगस्त्याश्रममें लोमशजीद्वारा अगस्त्य-लोपामुद्राकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वीर पाण्डव अपने साथियोंके सहित जहाँ-तहाँ बसते हुए नैमिषारण्य क्षेत्रमें पहुँचे । वहाँ गोमतीमें स्नान करके उन्होंने बहुत-सा धन और गौएँ दान कीं । फिर देवता, पितर और ब्राह्मणोंको तृप्त कर उन्होंने कन्यातीर्थ, अश्वतीर्थ, गोतीर्थ, कालकोटि और विषप्रस्थ पर्वतपर निवास कर बाहुदा नदीमें स्नान किया । वहाँसे वे देवताओंकी यज्ञभूमि प्रयागमें पहुँचे । यहाँ सत्यनिष्ठ पाण्डवोंने गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नान कर ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया । इसके पश्चात् वे प्रजापति ब्रह्माकी वेदीपर गये । यहाँ बहुत-से तपस्वी निवास करते थे । इस स्थानपर रहकर वीर पाण्डवोंने तपस्या की और फिर वे ब्राह्मणोंको वनके कन्द, मूल, फलोंसे तृप्त करते हुए गया पहुँचे । यहाँ गयशिर नामका पर्वत और बेंतके वनसे घिरी हुई अति रमणीक महानदी नामकी नदी है । वहाँपर ऋषिजन-सेवित पवित्र शिखरोंवाला धरणीधर नामक पर्वत भी है । उस पर्वतपर ब्रह्मसर नामका बड़ा ही पवित्र तीर्थ है, जहाँ सनातन धर्मराज स्वयं निवास करते हैं । एक समय भगवान् अगस्त्यजी भी यहाँ सूर्यपुत्र यमराजसे मिलने आये थे । पिनाकधारी श्रीमहादेवजीका भी इस तीर्थमें नित्य निवास है । इसके तटपर अनेकों मुनिजन निवास करते हैं । इस देशके सहस्रों तपोधन ब्राह्मण महाराज युधिष्ठिरके पास आये । उन्होंने वेदोक्त विधिसे चातुर्मास्य यज्ञ कराया । वे विप्रप्रवर वेद-वेदाङ्गके पारगामी तथा विद्या और तपमें बहुत बढ़े-चढ़े थे । उन्होंने सभा जोड़कर कुछ शास्त्रचर्चा भी चलायी ।

उस सभामें शमठ नामके एक विद्वान् और संयमी ब्रह्मचारी थे । उन्होंने अमूर्तरयाके पुत्र राजर्षि गयका चरित सुनाया । वे बोले—'यहाँ महाराज गयने अनेकों पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान किया है । उनके यज्ञमें पक्वान्न और दक्षिणाकी बड़ी भरमार थी । अन्नके सैकड़ों-हजारों पर्वत लग गये थे । घीकी सैकड़ों नहरें और दहीकी नदियाँ-सी बहने लगी थीं । उत्तमोत्तम व्यञ्जनोंका ताँता लगा हुआ था । याचकोंको नित्यप्रति खुले हाथों दान दिया जाता था । जिस प्रकार संसारमें बालूके कण, आकाशके तारे और बरसते हुए मेघकी धाराओंको कोई नहीं गिन सकता उसी प्रकार गयके यज्ञमें दी हुई दक्षिणा भी गिनी नहीं जा सकती । कुरुनन्दन युधिष्ठिर ! राजर्षि गयके ऐसे ही अनेकों यज्ञ इस सरोवरके समीप हुए हैं ।'

इस प्रकार गयशिर क्षेत्रमें चातुर्मास्य यज्ञ कर, ब्राह्मणोंको बहुत-सी दक्षिणा दे कुन्तिनन्दन युधिष्ठिर अगस्त्याश्रममें आये । यहाँ उनसे लोमश ऋषिने कहा—"कुरुनन्दन ! एक बार

भगवान् अगस्त्यने एक गड्ढेमें अपने पितरोंको उलटे सिर लटकते देखकर उनसे पूछा, 'आपलोग इस प्रकार नीचेको सिर किये क्यों लटके हुए हैं ?' तब उन वेदवादी मुनियोंने कहा, 'हम तुम्हारे ही पितृगण हैं और पुत्र होनेकी आशा लगाये इस गड्ढेमें लटके हुए हैं । बेटा अगस्त्य ! यदि तुम्हारे एक पुत्र हो जाय तो इस नरकसे हमारा छुटकारा हो सकता है और तुम्हें भी सद्गति मिल सकती है ।' अगस्त्य बड़े तेजस्वी और सत्यनिष्ठ थे । उन्होंने पितरोंसे कहा, 'पितृगण ! आप निश्चिन्त रहिये, मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा ।'

"पितरोंको इस प्रकार ढाढस बँधा भगवान् अगस्त्यने विचार किया कि वंशपरम्पराका उच्छेद न हो, इसलिये

विवाह करना आवश्यक है। किन्तु उन्हें कोई भी स्त्री अपने अनुरूप न जान पड़ी। तब उन्होंने विदर्भ देशके राजाके पास जाकर कहा 'राजन्! पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे मेरा विचार विवाह करनेका है। इसलिये मैं आपसे आपकी पुत्री लोपामुद्राको माँगता हूँ। आप मेरे साथ इसका विवाह कर दें।'

"मुनिवर अगस्त्यकी यह बात सुनकर राजाके होश उड़ गये। वे न तो अस्वीकार ही कर सके और न कन्या देनेका साहस ही। उन्होंने महारानीके पास जा उन्हें सब वृत्तान्त सुनाकर कहा, 'प्रिये! महर्षि अगस्त्य बड़े ही तेजस्वी हैं। वे क्रोधित हो गये तो हमें शापकी भयानक आगसे भस्म कर डालेंगे। बताओ, इस विषयमें तुम्हारा क्या मत है?' तब राजा और रानीको अत्यन्त दुखी देख राजकन्या लोपामुद्राने उनके पास आकर कहा, 'पिताजी! मेरे लिये आप खेद न करें, मुझे अगस्त्य मुनिको सौंपकर अपनी रक्षा करें।'

"पुत्रीकी यह बात सुनकर राजाने शास्त्रविधिसे अगस्त्य-जीके साथ उसका विवाह कर दिया। पत्नी मिल जानेपर अगस्त्यजीने उससे कहा, 'देवि! तुम इन बहुमूल्य वस्त्रा-भूषणोंको त्याग दो।' तब लोपामुद्राने अपने दर्शनीय बहुमूल्य और महीन वस्त्रोंको वहीं उतार दिया तथा चीर, पेड़की छालके वस्त्र और मृगचर्म धारण कर वह अपने पतिके समान ही व्रत और नियमोंका पालन करने लगी। तदनन्तर भगवान् अगस्त्य हरिद्वार क्षेत्रमें आकर अपनी अनुगता भार्याके सहित घोर तपस्या करने लगे। लोपामुद्रा बड़े ही प्रेम और तत्परतासे अपने पतिदेवकी सेवा करती थी तथा भगवान् अगस्त्यजी भी अपनी भार्याके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव करते थे।

"राजन्! जब इसी प्रकार बहुत समय निकल गया तो एक दिन मुनिवर अगस्त्यने ऋतुस्नानसे निवृत्त हुई लोपामुद्रा-को देखा। इस समय तपके प्रभावसे उसकी कान्ति बहुत बढ़ी हुई थी। उसकी सेवा, पवित्रता, संयम, कान्ति और रूपमाधुरीने भी उन्हें मुग्ध कर दिया था। अतः उन्होंने प्रसन्न होकर समागमके लिये उसका आवाहन किया। तब कल्याणी लोपामुद्राने कुछ सकुचाते हुए हाथ जोड़कर कहा, 'मुनिवर! इसमें सन्देह नहीं कि पति सन्तानके लिये ही पत्नीको स्वीकार करता है। किन्तु मेरे प्रति आपकी जो प्रीति है, उसे भी सार्थक करना ही चाहिये। मेरी इच्छा है कि अपने पिताके महलोंमें मैं जिस प्रकारके सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित रहती थी, वैसे ही यहाँ भी रहूँ और तब आपके साथ मेरा समागम हो। साथ ही आप भी बहुमूल्य हार और आभूषणोंसे

विभूषित हों। इन काषायवस्त्रोंको धारण करके तो मैं समागम नहीं करूँगी। यह तपका बाना बड़ा पवित्र है, इसे किसी भी प्रकार सम्भोगादिके द्वारा अपवित्र नहीं करना चाहिये।' अगस्त्यजीने कहा, 'लोपामुद्रे! तुम्हारे पिताजीके घरमें जो धन था, वह न तो तुम्हारे पास है और न मेरे ही पास है। फिर ऐसा कैसे हो सकता है?' लोपामुद्रा बोली, 'तपोधन! इस जीवलोकमें जितना धन है, उस सबको आप अपने तपके प्रभावसे एक क्षणमें ही प्राप्त कर सकते हैं।' अगस्त्यजी बोले, 'प्रिये! तुम जो कहती हो सो ठीक है, किन्तु ऐसा करनेसे तपका जो क्षय होगा। तुम कोई ऐसी बात बताओ, जिससे मेरा तप क्षीण न हो।' लोपामुद्राने कहा, 'तपोधन! मैं आपके तपको भी नष्ट नहीं करना चाहती, इसलिये आप उसकी रक्षा करते हुए ही मेरी कामना पूर्ण करें।' तब अगस्त्यजी बोले, 'सुभगे! यदि तुमने अपने मनमें ऐश्वर्य भोगनेका ही निश्चय किया है तो तुम यहाँ रहकर इच्छानुसार धर्मका आचरण करो, मैं तुम्हारे लिये धन लाने बाहर जाता हूँ।'

"लोपामुद्रासे ऐसा कह महर्षि अगस्त्य धन माँगनेके लिये महाराज श्रुतर्वाके पास चले। उनके आनेका समाचार

पाकर राजा श्रुतर्वा मन्त्रियोंके सहित उनकी अगवानीके लिये अपने राज्यकी सीमातक आया और उन्हें आदरपूर्वक नगरमें ले जाकर विधिवत् अर्घ्य अर्पण किया । फिर उसने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक उनके आगमनका कारण पूछा। तब अगस्त्यजीने कहा, 'राजन् ! मैं धनकी इच्छासे आपके पास आया हूँ । अतः आपको जो धन दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना मिला हो, उसीमेंसे यथाशक्ति दीजिये ।'

अगस्त्यजीकी बात सुनकर राजाने अपना सारा आय-व्ययका हिसाब उनके आगे रख दिया और कहा कि इसमेंसे आप जो धन लेना उचित समझें, वही ले लें । अगस्त्यजीने देखा कि उस हिसाबमें आय-व्ययका लेखा बराबर था । इसलिये यह सोचकर कि इसमेंसे थोड़ा-सा भी धन लेनेसे प्राणियोंको दुःख होगा, उन्होंने कुछ नहीं लिया ।

फिर वे श्रुतर्वाको साथ लेकर ब्रध्नश्वके पास चले । ब्रध्नश्वने भी अपने राज्यकी सीमापर आकर उन दोनोंका विधिवत् स्वागत किया, उन्हें घर ले जाकर अर्घ्य और पाद्य दिया तथा उनकी आज्ञा पाकर वहाँ पधारनेका प्रयोजन पूछा । तब अगस्त्यजीने कहा, 'राजन् ! हम दोनों आपके पास धन लेनेकी इच्छासे आये हैं, अतः तुम दूसरोंको पीड़ा न पहुँचाकर प्राप्त किये हुए धनमेंसे हमें यथासम्भव भाग दो ।' अगस्त्यजीकी बात सुनकर राजाने उन्हें आय-व्ययका हिसाब दिखा दिया और कहा कि इसमें जो धन अधिक हो वह आप ले लीजिये । समदृष्टि अगस्त्यजीने आय-व्ययका लेखा बराबर देखकर विचार किया कि इसमेंसे कुछ भी लेनेसे प्राणियोंको दुःख ही होगा । इसलिये वहाँसे धन लेनेका सङ्कल्प छोड़कर वे तीनों पुरुकुत्सके पुत्र महान् धनवान् राजा त्रसद्दस्युके पास चले । इक्ष्वाकुकुलभूषण महाराज त्रसद्दस्युने भी उसी प्रकार उनका स्वागत-सत्कार किया । वहाँ भी आय-व्ययका जोड़ समान देखकर उन्होंने धन नहीं लिया ।

तब उन सब राजाओंने आपसमें विचार करके कहा, 'मुनिवर ! इस समय संसारमें इल्वल नामका एक दैत्य बड़ा धनवान् है । उसके सिवा हम सब लोग तो धनकी इच्छा रखनेवाले ही हैं ।' अतः वे सब मिलकर इल्वलके पास चले । इल्वलको जब मालूम हुआ कि महर्षि अगस्त्य राजाओंको साथ लिये आ रहे हैं तो उसने अपने मन्त्रियोंके सहित राज्यकी सीमापर जाकर उनका सत्कार किया । फिर हाथ जोड़कर पूछा, 'आपलोगोंने इधर कैसे कृपा की है; कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' तब अगस्त्यजीने हँसकर कहा, 'असुरराज ! हम आपको बड़ा सामर्थ्यवान् और धनकुबेर समझते हैं । मेरे साथ जो राजालोग हैं ये तो विशेष धनी नहीं हैं और मुझे धनकी बड़ी आवश्यकता है । अतः दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना जो न्याययुक्त धन आपको मिला हो, उस अपने धनका कुछ भाग यथाशक्ति हमें दीजिये !' यह सुनकर इल्वलने मुनिवरको प्रणाम करके कहा, 'मुनिवर ! यदि आप मैं जितना धन देना चाहता हूँ, मेरे उस मनोभावको बता दें तो मैं आपको धन दे दूँगा ।' अगस्त्यजी बोले, 'असुरराज ! तुम प्रत्येक राजाको दस हजार गौएँ और इतनी ही सुवर्णमुद्राएँ देना चाहते हो तथा मुझे इससे दूनी गौएँ और सुवर्णमुद्रा, एक सोनेका रथ और मनके समान वेगवान् दो घोड़े देनेकी तुम्हारी इच्छा है । तुम पता लगाकर देखो, यह सामनेवाला रथ सोनेका ही है ।' यह सुनकर उस दैत्यने उन्हें बहुत-सा धन दिया । उस रथमें जुते हुए विराव और सुराव नामके घोड़े तुरंत ही सम्पूर्ण धन और राजाओंके सहित अगस्त्यजीको उनके आश्रमपर ले आये । फिर अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर राजालोग अपने-अपने देशोंको चले गये और अगस्त्यजीने लोपामुद्राकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कीं।

तब लोपामुद्राने कहा—'भगवन् ! आपने मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर दीं, अब आप मेरे गर्भसे एक

पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करें ।' अगस्त्यजी बोले, 'सुन्दरि ! मैं तुम्हारे सदाचारसे बहुत प्रसन्न हूँ । इसलिये तुम्हारी सन्ततिके विषयमें मेरा जैसा विचार है उसे कहता हूँ, सुनो । बताओ, तुम्हारे सहस्र पुत्र हों, या सहस्र पुत्रोंके समान सौ पुत्र हों अथवा सौ-सौके समान दस पुत्र हों ? या सहस्रोंको परास्त कर देनेवाला केवल एक ही पुत्र हो ?' लोपामुद्राने कहा, 'तपोधन ! मुझे तो सहस्रोंकी बराबरी करनेवाला एक ही पुत्र दीजिये । बहुत-से अयोग्य पुरुषोंसे तो एक ही योग्य और विद्वान् पुरुष अच्छा है ।'

इसपर मुनिवर अगस्त्यने 'बहुत अच्छा' कह ऋतुकाल आनेपर अपनी सहधर्मिणीके साथ समागम किया । गर्भाधानके पश्चात् वे वनमें चले गये । उनके वनमें चले जानेपर सात वर्षतक वह गर्भ पेटहीमें बढ़ता रहा । जब सातवाँ वर्ष भी समाप्त हो गया तो लोपामुद्राके गर्भसे दृढस्यु नामका बड़ा ही बुद्धिमान् और तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ । परम तपस्वी तथा साङ्गोपाङ्ग वेद और उपनिषदोंका करनेवाला था । उसका जन्म होनेपर अगस्त्यजीके पितर उनके अभीष्ट लोक प्राप्त हो गये । तभीसे पृथ्वीपर यह स्थान 'अगस्त्याश्रम'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । राजन् ! यह आश्रम अनेकों रमणीय गुणोंसे सम्पन्न है । देखो, इसके समीप परम पवित्र भागीरथी प्रवाहित हो रही है । बड़े-बड़े देवता और गन्धर्व भी इसका सेवन करते हैं । यह भृगुतीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है । भगवान् श्रीरामने भृगुनन्दन परशुरामके तेजको कुण्ठित कर दिया था । उसे उन्होंने इसी तीर्थमें स्नान करके पुनः प्राप्त किया था । इस समय तुम्हारा तेज भी दुर्योधनने हर लिया है, सो तुम इस तीर्थमें स्नान करके उसे प्राप्त करो ।

परशुरामजीके तेजोहीन होने तथा पुनः तेज प्राप्त करनेका प्रसङ्ग

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि लोमशकी यह बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरने भाइयों और द्रौपदीके सहित उस तीर्थमें स्नान करके अपने पितर और देवताओंको सन्तुष्ट किया । उसमें स्नान करनेसे उनका तेजस्वी शरीर और भी कान्तिमान् प्रतीत होने लगा और वे शत्रुओंके लिये दुर्जय हो गये । फिर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने लोमशजीसे पूछा, 'भगवन् ! कृपा करके बताइये कि परशुरामजीके शरीरका तेज क्यों क्षीण हो गया था और वह उन्हें फिर किस प्रकार प्राप्त हुआ ।'

लोमशजी बोले—महाराज ! मैं आपको भगवान् श्रीराम और मतिमान् परशुरामजीका चरित सुनाता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये । महात्मा दशरथजीके यहाँ पुत्ररूपसे स्वयं भगवान् विष्णुने ही रावणके वधके लिये रामावतार धारण किया था । दशरथनन्दन श्रीरामने बाल्यकालमें ही अनेकों अद्भुत पराक्रम किये थे । उनका सुयश सुनकर रेणुकासुवन भृगुवर्य परशुरामजीको बड़ा कुतूहल हुआ और वे अपना क्षत्रियोंका संहार करनेवाला दिव्य धनुष ले उनके पराक्रमकी परीक्षा लेनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये । जब दशरथजीने उनके आगमनका समाचार सुना तो उन्होंने राजकुमार रामको सबके आगे रखकर अपने राज्यकी सीमापर भेजा । रामजीको प्रसन्नवदन और शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित देख परशुरामजीने कहा, 'राजकुमार ! मेरा यह धनुष कालके समान कराल है, यदि तुममें बल हो तो इसे चढ़ाओ ।' तब श्रीरामचन्द्रने परशुरामजीके हाथसे वह दिव्य धनुष ले लिया और खेलहीमें उसे चढ़ा दिया । फिर मुसकराते हुए उसकी प्रत्यञ्चाका टंकार किया । उसके शब्दसे समस्त प्राणी ऐसे भयभीत हो गये मानो उनपर वज्र टूट पड़ा हो । इसके पश्चात् उन्होंने परशुरामजीसे कहा, 'ब्रह्मन् ! लीजिये, आपका धनुष तो चढ़ा दिया, अब और क्या सेवा करूँ ?' तब परशुरामजीने उन्हें एक दिव्य बाण देकर कहा कि 'इसे धनुषपर रखकर उसे कानतक खींचकर दिखाओ ।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रने कहा, 'भृगुनन्दन ! आप बड़े अभिमानी जान पड़ते हैं । मैं आपकी बातें सुनकर भी अनसुनी कर रहा हूँ । आपने अपने पितामह ऋचीककी कृपासे विशेषतः क्षत्रियोंको हराकर ही यह तेज प्राप्त किया है; निश्चय इसीसे आप मेरा भी तिरस्कार कर रहे हैं । अच्छा, मैं आपको दिव्य नेत्र देता हूँ, उनसे आप मेरे स्वरूपको देखिये ।' तब भृगुश्रेष्ठ परशुरामने भगवान् श्रीरामके शरीरमें आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, पितर, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदियाँ, तीर्थ, वालखिल्यादि ब्रह्मभूत सनातन मुनिवर, देवर्षि तथा सम्पूर्ण समुद्र और पर्वतोंको देखा । इनके सिवा उन्हें उसमें उपनिषदोंके सहित वेद,

अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, 'देवगण ! तुम्हारा जिसमें हित हो, वही मैं करूँगा; तुम्हारे लिये मैं अपने शरीरको भी न्योछावर कर सकता हूँ ।' फिर देवताओंके अस्थियाचना करनेपर मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले मुनिवर दधीचने सहसा अपने प्राण त्याग दिये । देवताओंने ब्रह्माजीके आदेशानुसार उनके निष्प्राण शरीरकी हड्डियाँ ले लीं और विश्वकर्माके पास आकर अपना प्रयोजन बताया; विश्वकर्माने उन हड्डियोंसे एक भयङ्कर वज्र तैयार किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहा, 'देवराज ! इस वज्रसे आप देवताओंके शत्रु उग्रकर्मा वृत्रासुरको भस्म कर डालिये ।'

विश्वकर्माके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्रने वज्र लेकर बलशाली देवताओंको साथ ले पृथ्वी और आकाशको घेरकर खड़े हुए वृत्रासुरपर धावा बोल दिया । उस समय शिखर-युक्त पर्वतोंके समान विशालकाय कालकेयगण अनेकों अस्त्र-शस्त्र लिये वृत्रासुरकी सब ओरसे रक्षा कर रहे थे । देवता और ऋषियोंके तेजसे सम्पन्न इन्द्रका बल बढ़ा हुआ देख वृत्रासुरने बड़ा भीषण सिंहनाद किया । उसकी गर्जनासे पृथ्वी, आकाश, समस्त दिशाएँ और पर्वत डगमगाने लगे । यहाँतक कि उससे इन्द्र भी भयभीत हो गया और उसने वृत्रासुरपर अपना भीषण वज्र छोड़ा । उस वज्रकी चोटसे प्राणहीन होकर वह महादैत्य उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे पूर्वकालमें विष्णु-भगवान्‌के हाथसे खिसककर महाशैल मन्दराचल गिर गया था ।

वृत्रासुरके मारे जानेसे सभी देवता और महर्षियोंको बड़ा आनन्द हुआ और वे इन्द्रकी स्तुति करने लगे । इसके पश्चात् उन्होंने वृत्रासुरके वधसे दुखी कालकेयादि समस्त दैत्योंको भी मारना आरम्भ किया । तब वे सब दैत्य उनसे भयभीत होकर बड़े-बड़े मच्छों और नाकोंसे भरे हुए अगाध समुद्रमें घुसकर छिप गये । वहाँ वे अत्यन्त व्याकुल होकर आपसमें त्रिलोकीके नाशका उपाय सोचने लगे । विचार करते-करते उन्हें कालवश एक बड़ा ही भयंकर उपाय सूझा । उन्होंने निश्चय किया कि समस्त लोकोंकी रक्षा तपसे होती है, अतः सबसे पहले तपका ही नाश करना चाहिये । पृथ्वीमें जो भी तपस्वी, धर्मात्मा और ज्ञाननिष्ठ पुरुष हैं उनके संहारके लिये शीघ्रता करनी चाहिये । बस, उनका नाश होनेसे सारा संसार स्वयं ही नष्ट हो जायगा ।

ऐसा निश्चय कर वे समुद्रमें रहते हुए ही त्रिलोकीका नाश करनेमें तत्पर हो गये । वे क्रोधमें भर गये और नित्यप्रति रातमें समुद्रसे बाहर आकर आस-पासके आश्रम और तीर्थादि-में रहनेवाले मुनियोंको खा जाते तथा दिनमें समुद्रमें छिपे रहते । उनका अत्याचार यहाँतक बढ़ा कि सारी पृथ्वीपर ऋषि-मुनियोंकी हड्डियाँ दिखायी देने लगीं और उनके कारण वह ऐसी जान पड़ने लगी मानो शंखोंकी ढेरियोंसे ढकी हुई हो ।

राजन् ! जब इस प्रकार संसारका संहार होने लगा तथा यज्ञ-यागादिके समारोह नष्ट हो गये तो देवतालोग बड़े दुखी हुए । उन्होंने देवराज इन्द्रके साथ मिलकर सलाह की और शरणा-गतवत्सल देवाधिदेव श्रीमन्नारायणकी शरण ली । देवताओंने वैकुण्ठनाथ अपराजित भगवान् मधुसूदनके पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी इस प्रकार स्तुति की—'प्रभो ! आप सारे संसारके उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं; आपहीने इस चराचर विश्वकी रचना की है । कमलनयन ! पूर्वकालमें जब पृथ्वी समुद्रमें डूब गयी थी तो आपहीने वाराह-रूप धारण करके इसका उद्धार किया था । पुरुषोत्तम ! आपहीने नृसिंहरूप धारण करके महाबली आदिदैत्य हिरण्य-कशिपुका वध किया था । महादैत्य बलिको मारना किसी भी देहधारीके वशकी बात नहीं थी, उसे भी आपहीने वामनरूप धारण करके त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे भ्रष्ट किया था । महान् धनुर्धर जम्भ बड़ा ही क्रूर और यज्ञ-यागादिको ध्वंस करने-वाला था । उस सुप्रसिद्ध दानवका भी आपने ही दलन किया था । इसी प्रकार आपके अगणित पराक्रम हैं । हे मधुसूदन ! हम भयभीतोंके तो एकमात्र आप ही आश्रय हैं । अतः हे देवदेवेश्वर ! त्रिलोकीके कल्याणके लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि इस महान् भयसे सम्पूर्ण लोक, देवगण

रोकनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये आप रोकनेकी कृपा करें।'

देवताओंकी यह बात सुनकर अगस्त्यजी अपनी पत्नीके

सहित विन्ध्याचलके पास आये और उससे बोले, 'पर्वतप्रवर! मैं किसी कार्यसे दक्षिणकी ओर जा रहा हूँ, इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम मुझे उधर जानेका मार्ग दो। जबतक मैं उधरसे लौटूँ तबतक तुम मेरी प्रतीक्षा करना, उसके बाद इच्छानुसार बढ़ते रहना।' शत्रुदमन युधिष्ठिरजी! विन्ध्याचलसे यह ठहराकर अगस्त्यजी दक्षिणकी ओर चले गये और वहाँसे आजतक नहीं लौटे। इसीसे अगस्त्यजीके प्रभावसे विन्ध्याचलका बढ़ना रुका हुआ है। तुम्हारे पूछनेसे यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। अब, जिस प्रकार उनसे वर पाकर देवताओंने कालकेयोंका संहार किया था वह सुनो।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यजीने कहा, 'आप लोग यहाँ कैसे आये हैं और मुझसे क्या वर चाहते हैं?' तब देवताओंने कहा, 'महात्मन्! हमारी ऐसी इच्छा है कि आप महासागरको पी जाइये। ऐसा होनेपर हम देवद्रोही कालकेयोंको उनके परिवारके सहित मार डालेंगे।' देवताओंकी बात सुनकर मुनिवर अगस्त्यने कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा और संसारका दुःख दूर कर दूँगा।'

तदनन्तर वे तपःसिद्ध ऋषियों और देवताओंको साथ ले

नदीनाथ समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँ एकत्रित हुए देवता

और ऋषियोंसे कहने लगे, 'मैं संसारके हितके लिये समुद्रका पान करता हूँ ।' ऐसा कहकर उन्होंने बात-की-बातमें समुद्रको जलहीन कर दिया। तब देवतालोग प्रबल होकर अपने दिव्य शस्त्रोंसे कालकेयोंका संहार करने लगे। इस प्रकार गर्ज-गर्जकर प्रहार करते हुए देवताओंकी मारसे वे व्याकुल हो गये और उन्हें उनका वेग असह्य हो गया। उनकी मार खाकर दो घड़ीतक तो कालकेयोंने भी भयङ्कर सिंहनाद करते हुए घनघोर युद्ध किया। किन्तु वे पवित्रात्मा मुनियोंके तपसे पहले ही दग्ध हो चुके थे, इसलिये सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करनेपर भी वे देवताओंके हाथसे नष्ट हो गये तथा जो किसी प्रकार उस संहारसे बचे, वे पृथ्वीको फोड़कर पातालमें चले गये।

इस प्रकार दानवोंका ध्वंस हो जानेपर देवताओंने अनेकों प्रकारसे स्तुति करते हुए अगस्त्यजीसे प्रार्थना की कि अब आप पीये हुए जलको छोड़कर फिर समुद्रको भर दीजिये। इसपर अगस्त्यजी बोले, 'वह जल तो पच गया, अब समुद्रको भरनेके लिये तुम कोई और उपाय सोचो।' महर्षिकी इस बातसे देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उदास हो गये। फिर उन्हें प्रणाम कर वे ब्रह्माजीके पास आये और हाथ जोड़कर उनसे समुद्रको भरनेकी प्रार्थना की। ब्रह्माजीने कहा, 'देवगण! अब तुम इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ। आजसे बहुत समय बाद राजा भगीरथ अपने पुरखाओंके उद्धारका प्रयत्न करेगा, उससे समुद्र फिर जलसे भर जायगा।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये और उस समयकी प्रतीक्षा करने लगे।

सगरपुत्रोंका नाश और गङ्गावतरण

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! समुद्रके भरनेमें भगीरथके पूर्वपुरुष किस प्रकार कारण हुए, भगीरथने उसे किस प्रकार भरा—यह प्रसङ्ग मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

लोमशजी बोले—राजन्! इक्ष्वाकुवंशमें सगर नामके

एक राजा थे। वे बड़े ही रूपवान्, बलवान्, प्रतापी और पराक्रमशील थे। उनकी वैदर्भी और शैब्या नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उन्हें साथ लेकर वे कैलास पर्वतपर गये और वहाँ योगाभ्यास करते हुए बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। कुछ काल तपस्या करनेपर उन्हें त्रिपुरनाशक त्रिनयन भगवान् शङ्करके दर्शन हुए। महाराज सगरने दोनों रानियोंके सहित भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और पुत्रके लिये प्रार्थना की।

तब श्रीमहादेवजीने प्रसन्न होकर राजा और रानियोंसे कहा, 'राजन्! तुमने जिस मुहूर्तमें वर माँगा है, उसके प्रभावसे तुम्हारी एक रानीसे तो अत्यन्त गर्वीले और शूरवीर साठ हजार पुत्र होंगे, किन्तु वे सब एक साथ ही नष्ट हो जायँगे; तथा दूसरी रानीसे वंशको चलानेवाला केवल एक ही शूरवीर पुत्र होगा।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहीं अन्तर्धान हो गये और राजा सगर अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी रानियोंके सहित घर लौट आये। फिर कमलनयनी वैदर्भी और शैब्याने गर्भ धारण किया और समय आनेपर वैदर्भीके गर्भसे एक तूँबी उत्पन्न हुई तथा शैब्याने एक देवरूपी बालक उत्पन्न किया। राजाने उस तूँबीको फेंकवानेका विचार किया। इसी समय गम्भीर स्वरसे यह आकाशवाणी हुई कि 'राजन्! ऐसा साहस न करो, इस प्रकार पुत्रोंका परित्याग करना उचित नहीं है। इस तूँबीके बीज निकालकर उन्हें कुछ-कुछ गरम किये हुए घीसे भरे हुए घड़ोंमें पृथक्-पृथक् रख दो। इससे तुम्हें साठ हजार पुत्र प्राप्त होंगे।'

आकाशवाणी सुनकर राजाने वैसा ही किया। उन्होंने

तूँबीका एक-एक बीज एक-एक घृतपूर्ण घटमें रखवा दिया और प्रत्येक घड़ेकी रक्षा करनेके लिये एक-एक दासी नियुक्त कर दी। बहुत काल बीतनेपर भगवान् शङ्करकी कृपासे उनमेंसे अतुलित तेजस्वी साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। वे बड़े ही घोर प्रकृतिके और क्रूर कर्म करनेवाले थे तथा आकाशमें उड़कर चलते थे। संख्यामें बहुत होनेके कारण वे देवताओं-के सहित सम्पूर्ण लोकोंका तिरस्कार किया करते थे।

इस प्रकार बहुत समय निकल जानेपर राजा सगरने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली। उनका छोड़ा हुआ घोड़ा पृथ्वी-पर विचरने लगा। राजाके पुत्र उसकी रखवालीपर नियुक्त थे। घूमता-घूमता वह जलहीन समुद्रके पास पहुँचा, जो इस समय बड़ा भयङ्कर जान पड़ता था। यद्यपि राजकुमार बड़ी सावधानीसे उसकी चौकसी कर रहे थे, तो भी वह वहाँ पहुँचनेपर अदृश्य हो गया। जब वह ढूँढ़नेपर भी न मिला तो राजपुत्रोंने समझा कि उसे किसीने चुरा लिया है और राजा सगरके पास आकर ऐसा ही कह दिया। वे बोले, 'पिताजी! हमने समुद्र, द्वीप, वन, पर्वत, नदी, नद और कन्दराएँ—सभी स्थान छान डाले; परन्तु हमें न तो घोड़ा ही मिला और न उसको चुरानेवाला ही।' पुत्रोंकी यह बात सुनकर सगरको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने आज्ञा दी कि 'जाओ, फिर घोड़ेकी खोज करो, और बिना उस यज्ञपशुके लौटकर मत आना।'

पिताका ऐसा आदेश पाकर सगरपुत्र फिर सारी पृथ्वीमें घोड़ेकी खोज करने लगे। अन्तमें उन शूरवीरोंने एक जगह पृथ्वीको फटी हुई देखा। उसमें उन्हें एक छिद्र भी दिखायी दिया। तब वे कुदाल तथा दूसरे हथियारोंसे उस छिद्रको खोदने लगे। खोदते-खोदते उन्हें बहुत समय हो गया, किन्तु फिर भी घोड़ा दिखायी न दिया। इससे उनका क्रोध और भी बढ़ गया और उन्होंने ईशान कोणमें उसे पातालतक खोद डाला। वहाँ उन्होंने अपने घोड़ेको घूमता देखा तथा उसके पास ही उन्हें अतुलित तेजोराशि महात्मा कपिल भी दिखायी दिये। घोड़ेको देखकर उन्हें हर्षसे रोमाञ्च हो आया, किन्तु कालवश भगवान् कपिलपर वे क्रोधसे भर गये और उनका तिरस्कार करके घोड़ेको लेनेके लिये बढ़े। इससे महातेजस्वी कपिलजीको भी क्रोध हो आया। उन्होंने त्यौरी चढ़ाकर सगरपुत्रोंपर अपना तेज छोड़ा और उन मन्दबुद्धियोंको भस्म कर दिया। उन्हें भस्मीभूत हुए देख देवर्षि नारद राजा सगरके पास आये और उन्हें सारा समाचार सुना दिया।

नारदजीकी बात सुनकर एक मुहूर्तके लिये तो राजा उदास हो गये, किन्तु फिर उन्हें महादेवजीकी बातका स्मरण हो आया। तब उन्होंने असमञ्जसके पुत्र अपने पोते अंशुमान्को बुलाकर कहा, 'बेटा! मेरे अतुलित तेजस्वी साठ हजार पुत्र कपिलजीके तेजसे मेरे ही कारण नष्ट हो गये हैं। तथा उ धर्मकी रक्षा और प्रजाका हित करनेके लिये मैंने तुम पिताका भी परित्याग कर दिया है।'

युधिष्ठिरने पूछा—तपोधन लोमशजी! राजाओंमें सगरने अपने औरस पुत्रको क्यों त्याग दिया था?

लोमशजी बोले—राजन्! महाराज सगरका शैब्या गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र असमञ्जस नामसे विख्यात था। व अपने पुरवासियोंके दुर्बल बालकोंको रोने-चिल्लानेपर भी गल पकड़कर नदीमें डाल देता था। इससे सब पुरवासी भय औ शोकसे व्याकुल रहने लगे और एक दिन राजा सगरके पास आकर हाथ जोड़कर कहने लगे, 'महाराज! आप हमारी शत्रुओंके शासनादिजनित संकटोंसे रक्षा करनेवाले हैं, अतः इस समय असमञ्जससे हमें जो घोर भय उपस्थित हो गया है उससे भी हमारी रक्षा कीजिये।' पुरवासियोंकी बात सुनकर महाराज सगर एक मुहूर्त्ततक उदास रहे। और फिर मन्त्रियों-को बुलाकर इस प्रकार कहा, 'यदि आपलोग मेरा प्रिय

करना चाहते हैं तो तुरंत ही एक काम कीजिये—मेरे पुत्र असमञ्जसको अभी इस नगरसे बाहर निकाल दीजिये।' राजाके आज्ञानुसार मन्त्रियोंने तत्काल वैसा ही किया। इस प्रकार महात्मा सगरने पुरवासियोंके हितके लिये अपने पुत्रको निकाल दिया था।

सगरने अंशुमान्से कहा—'बेटा! तुम्हारे पिताको मैं नगरसे निकाल चुका हूँ, मेरे और सब पुत्र भस्म हो गये हैं और यज्ञका घोड़ा भी मिला नहीं है; इसलिये मेरे चित्तमें बड़ा खेद हो रहा है। तुम किसी प्रकार घोड़ा ढूँढ़कर लाओ, जिससे मैं यज्ञको पूरा करके स्वर्ग प्राप्त कर सकूँ।' सगरकी बात सुनकर अंशुमान्को बड़ा दुःख हुआ और वह उसी स्थानपर आया, जहाँ पृथ्वी खोदी गयी थी। तथा उसी मार्गसे समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ उसने उस अश्व और महात्मा कपिलको देखा। तेजोनिधि परमर्षि कपिलके दर्शन कर उसने प्रणाम किया और उनकी सेवामें वहाँ आनेका प्रयोजन निवेदन किया। अंशुमान्की बातें सुनकर महर्षि कपिल बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले, 'वत्स! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो।' अंशुमान्ने पहले वरमें यज्ञीय अश्व माँगा और दूसरे वरसे अपने पितरोंको

पवित्र करनेकी प्रार्थना की। तब महातेजस्वी मुनिवर कपिलने कहा, 'हे अनघ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम जो वर माँगते हो वह मैं तुम्हें देता हूँ। तुममें क्षमा, धर्म और सत्य विद्यमान हैं। तुमसे सगरका जीवन सफल होगा और तुम्हारे पिता भी पुत्रवान् गिने जायँगे। तुम्हारे प्रभावसे ही सगरपुत्र स्वर्ग प्राप्त करेंगे। तुम्हारा पौत्र भगीरथ सगरपुत्रोंका उद्धार करनेके लिये महादेवजीको प्रसन्न करके स्वर्गलोकसे गङ्गाजीको लावेगा और यह यज्ञीय अश्व तो तुम प्रसन्नतासे ले जाओ।'

कपिलजीके इस प्रकार कहनेपर अंशुमान् घोड़ा लेकर राजा सगरकी यज्ञशालामें आया और उसने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजा सगरने अंशुमान्का सिर सूँघा तथा यह जानकर कि घोड़ा यज्ञशालामें आ गया है उन्होंने पुत्रोंके मरे जानेका शोक त्याग दिया। उन्होंने अंशुमान्का बड़ा आदर किया और अपना अधूरा यज्ञ पूरा कर दिया। इसके बाद बहुत दिनोंतक राजा सगरने अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन किया। अन्तमें अपने पौत्रपर राज्यका भार छोड़कर स्वयं स्वर्ग सिधारे। महात्मा अंशुमान्ने भी अपने पितामहके समान ही आसमुद्र भूमण्डलका पालन किया। उनके दिलीप नामका धर्मात्मा पुत्र हुआ। उसे राज्य सौंपकर अंशुमान् भी परलोकवासी हुए। दिलीपको जब अपने पितृगणके विनाशकी बात मालूम हुई तो उनके हृदयमें बड़ा सन्ताप हुआ। वे उनके उद्धारका उपाय सोचने लगे और गङ्गाजीको लानेके लिये भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। परन्तु बहुत चेष्टा करनेपर भी वे सफल न हो सके। उनके परम ऐश्वर्यशाली और धर्मपरायण भगीरथ नामका पुत्र हुआ। उसे राज्यपर अभिषिक्त कर दिलीप वनमें चले गये और वहाँ कालवश तपस्याके प्रभावसे स्वर्गवासी हो गये।

महाराज! राजा भगीरथ महान् धनुर्धर, चक्रवर्ती और महारथी थे। उनके दर्शनमात्रसे सब लोकोंके मन और नयन शीतल हो जाते थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि कपिलजीके कोपसे उनके पितृगण भस्म हो गये थे और उन्हें स्वर्गलोककी भी प्राप्ति नहीं हुई तो वे बड़े दुखी हुए और अपना राज्य मन्त्रीको सौंपकर तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये। वहाँ उन्होंने फल-मूल और जलका ही आहार करते हुए देवताओंके एक हजार वर्षतक घोर तपस्या की। एक हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर महानदी गङ्गाने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा, 'राजन्! तुम मुझसे क्या चाहते हो? बताओ, मैं तुम्हें क्या दूँ? तुम जो कहोगे, वही करूँगी।' गङ्गाजीके इस प्रकार कहनेपर राजाने उनसे कहा, 'हे वरदायिनि!

मेरे पितृगण महाराज सगरके साठ हजार पुत्र घोड़ा ढूँढ़नेके लिये निकले थे । उन्हें भगवान् कपिलने भस्म करके यमलोकमें भेज दिया है । हे महानदि ! जबतक आप अपने जलसे उनका अभिषेक नहीं करेंगी, तबतक उनकी सद्गति नहीं हो सकती । उन सगरपुत्रोंके उद्धारके लिये ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ।'

लोमशजी कहते हैं—राजा भगीरथकी बात सुनकर विश्ववन्दनीया गङ्गाजीने उनसे इस प्रकार कहा, 'राजन् ! मैं तुम्हारा कथन पूरा करूँगी, इसमें तो सन्देह नहीं; किन्तु जिस समय मैं आकाशसे पृथ्वीपर गिरूँगी, उस समय मेरा वेग

असह्य होगा । तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है जो मुझे धारण कर सके । हाँ, एक देवाधिदेव नीलकण्ठ भगवान् शंकर अवश्य मुझे धारण करनेमें समर्थ हैं । महाबाहो ! तुम तप करके उन्हें प्रसन्न कर लो । जब मैं पृथ्वीपर गिरूँगी तो वे ही मुझे अपने मस्तकपर धारण कर लेंगे । तुम्हारे पितरोंका हित करनेके लिये वे अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे ।'

यह सुनकर महाराज भगीरथ कैलासपर गये और कुछ कालतक तीव्र तपस्या करके उन्होंने महादेवजीको प्रसन्न कर उनसे उन्होंने अपने पितरोंको स्वर्गमें पहुँचानेके उद्देश्यसे गङ्गाजीको धारण करनेके लिये वर प्राप्त कर लिया । भगीरथको वर देकर भगवान् शङ्कर हिमालयपर आये और वहाँ खड़े होकर उनसे कहने लगे, 'महाबाहो ! अब तुम पर्वतराजपुत्री गङ्गासे प्रार्थना करो, मैं स्वर्गसे गिरनेपर उसे धारण कर लूँगा ।' यह सुनकर महाराज भगीरथ सावधान हो गङ्गाजीका ध्यान करने लगे । उनके स्मरण करते पवित्रसलिला गङ्गाजी महादेवजीको खड़े देखकर आका गिरने लगीं । उन्हें गिरते देखकर देवता, महर्षि, गन नाग और यक्षलोग उनके दर्शनोंकी लालसासे वहाँ एक हो गये । श्रीमहादेवजीके मस्तकपर वे इस प्रकार गिरीं म स्वच्छ मोतियोंकी माला हो । भगवान् शङ्करने उ तत्काल धारण कर लिया । तब श्रीगङ्गाजीने भगीरथसे क 'राजन् ! मैं तुम्हारे लिये ही पृथ्वीपर उतरी हूँ; अतः बता मैं किस मार्गसे चलूँ ?' यह सुनकर राजा उन्हें उस स्थान ले गये, जहाँ उनके पूर्वजोंके शरीर भस्म हुए थे । गङ्गाज जलसे समुद्र तत्काल भर गया । राजा भगीरथने उ अपनी पुत्री मान लिया । फिर सफलमनोरथ होकर रा भगीरथने गङ्गाजलसे अपने पितरोंको जलाञ्जलि दी । इ प्रकार जिस तरह समुद्रको भरनेके लिये गङ्गाजी पृथ्वी पधारीं, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया ।

ऋष्यशृङ्गका चरित

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! फिर कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिर क्रमशः नन्दा और अपरनन्दा नामकी नदियोंपर गये, जो सब प्रकारके पाप और भयको नष्ट करनेवाली हैं । वहाँ हेमकूट पर्वतपर जाकर उन्होंने बहुत-सी अद्भुत बातें देखीं । उस स्थानपर निरन्तर वायु बहता रहता था और नित्य वर्षा होती थी । वहाँ वेदाध्ययनका शब्द तो सुना जाता था किन्तु कोई स्वाध्याय करनेवाला दिखायी नहीं देता था ।

तब लोमशजीने कहा—कुरुवर ! यहाँ नन्दा नदी स्नान करनेसे पुरुष तत्काल पापमुक्त हो जाता है, इसलि आप भाइयोंसहित इसमें स्नान करें ।

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिरने अपने भाई औ साथियोंके सहित नन्दामें स्नान किया और फिर शीतल जल वाली अत्यन्त रमणीक और पवित्र कौशिकी नदीपर गये वहाँ लोमशजीने कहा, 'भरतश्रेष्ठ ! यह परमपवित्र देवनद

गङ्गावतरण

शिवजीने गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण कर लिया ।

कौशिकी है। इसके तटपर यह विश्वामित्रजीका रमणीक आश्रम दिखायी दे रहा है। यहीं महात्मा काश्यप (विभाण्डक) का आश्रम है। इसे पुण्याश्रम कहते हैं। महर्षि विभाण्डकके पुत्र ऋष्यशृङ्ग बड़े ही तपस्वी और संयतेन्द्रिय थे। एक बार अनावृष्टि होनेपर उन्होंने अपने तपके प्रभावसे वर्षा कर दी थी। वे परम तेजस्वी और समर्थ विभाण्डककुमार मृगीसे उत्पन्न हुए थे।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! मनुष्यका पशुजातिके साथ योनिसंसर्ग होना तो शास्त्र और लोक दोनोंकी ही दृष्टिमें विरुद्ध है, फिर परमतपस्वी काश्यपनन्दन ऋष्यशृङ्गने मृगीके उदरसे कैसे जन्म लिया ? तथा अनावृष्टि होनेपर उस बालकके भयसे वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने कैसे वर्षा की ?

लोमशजी बोले—राजन् ! ब्रह्मर्षि विभाण्डक बड़े ही साधुस्वभाव और प्रजापतिके समान तेजस्वी थे। उनका वीर्य अमोघ था और तपस्याके कारण अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। एक बार वे एक सरोवरपर स्नान करने गये। वहाँ उर्वशी अप्सराको देखकर जलमें ही उनका वीर्य स्खलित हो गया। इतनेहीमें वहाँ एक प्यासी मृगी आयी और वह जलके साथ उस वीर्यको भी पी गयी। इससे उसको गर्भ रह

गया। वास्तवमें यह एक देवकन्या थी। किसी कारणसे ब्रह्माजीने इसे शाप देते हुए कहा था कि 'तू मृगजातिमें जन्म लेकर एक मुनिपुत्रको उत्पन्न करेगी, तब शापसे छूट जायगी।' विधिका विधान अटल है, इसीसे महामुनि ऋष्यशृङ्ग उस मृगीके पुत्र हुए। वे बड़े तपोनिष्ठ थे और सर्वदा वनमें ही रहा करते थे। उनके सिरपर एक सींग था, इसीसे वे ऋष्यशृङ्ग नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपने पिताके सिवा किसी और मनुष्यको नहीं देखा था, इसलिये उनका मन सर्वदा ब्रह्मचर्यमें स्थित रहता था।

इसी समय अंगदेशमें महाराज दशरथके मित्र राजा लोमपाद राज्य करते थे। हमने ऐसा सुना था कि उन्होंने किसी ब्राह्मणको कोई चीज देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछे उसे निराश कर दिया था। इसलिये ब्राह्मणोंने उनको त्याग दिया। इससे उनके राज्यमें वर्षा होनी बंद हो गयी और प्रजामें हाहाकार मच गया। तब उन्होंने तपस्वी और मनस्वी ब्राह्मणोंसे पूछा, 'भूदेवो ! अब वर्षा कैसे हो, इसका कोई उपाय बताइये।' वे सब अपना-अपना मत प्रकट करने लगे। तब उनमेंसे एक मुनिश्रेष्ठने कहा, 'राजन् ! ब्राह्मण आपपर कुपित हैं, इसका आप प्रायश्चित्त कीजिये। ऋष्यशृङ्ग नामक एक मुनिकुमार हैं। वे वनमें ही रहते हैं और बड़े ही शुद्ध एवं सरल हैं। स्त्रीजातिका तो उन्हें कोई पता ही नहीं है। उन्हें आप अपने देशमें बुला लीजिये। वे यदि यहाँ आ गये तो तुरंत ही वर्षा होने लगेगी—।' यह सुनकर राजा लोमपादने ब्राह्मणोंके पास जाकर अपने अपराधका प्रायश्चित्त कराया। उनके प्रसन्न होनेपर उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर ऋष्यशृङ्गको लानेके विषयमें परामर्श किया। उनसे सलाह करके उन्होंने अपने राज्यकी प्रधान-प्रधान वेश्याओंको बुलाया और उनसे कहा, 'सुन्दरियो ! तुम किसी प्रकार मोहित करके और अपनेमें विश्वास उत्पन्न करके मुनिकुमार ऋष्यशृङ्गको मेरे राज्यमें ले आओ।' तब उनमेंसे एक वृद्धा वेश्याने कहा, 'राजन् ! मैं तपोधन ऋष्यशृङ्गको लानेका प्रयत्न तो करूँगी, परन्तु मुझे जिन-जिन भोगसामग्रियोंकी आवश्यकता है उन सबको दिलानेकी आप कृपा करें।'

तब राजाका आदेश पाकर उस वृद्धाने अपनी बुद्धिके अनुसार नौकाके भीतर एक आश्रम तैयार कराया। उस आश्रमको अनेक प्रकारके फल और फूलोंवाले बनावटी वृक्षोंसे सजाया गया, जिनपर तरह-तरहकी झाड़ियाँ और लताएँ छायी हुई थीं। वह नौकाश्रम बड़ा ही रमणीय और मनको लुभानेवाला था। उसे विभाण्डक मुनिके आश्रमसे थोड़ी

दूरीपर बँधवाकर गुप्तचरोंसे इस बातका पता लगवाया कि मुनिवर किस समय आश्रमसे बाहर चले जाते हैं। फिर विभाण्डक मुनिकी अनुपस्थितिके समय अपनी पुत्री वेश्याको सब बातें समझाकर ऋष्यश्रृङ्गके पास भेजा। उस वेश्याने आश्रममें जाकर उन तपोनिष्ठ मुनिकुमारके दर्शन किये और उनसे कहा, 'मुनिवर! यहाँ सब तपस्वी आनन्दमें हैं न? आप भी कुशलसे हैं न? तथा आपका वेदाध्ययन तो अच्छी तरह चल रहा है न?'

ऋष्यश्रृङ्गने कहा—आप कान्तिके कारण साक्षात् तेजःपुञ्जके समान प्रकाशमान प्रतीत होते हैं; मैं आपको कोई वन्दनीय महानुभाव समझता हूँ। मैं पादप्रक्षालनके लिये आपको जल दूँगा तथा अपने धर्मके अनुसार कुछ फल भी भेंट करूँगा। देखिये, यह कृष्णमृगचर्मसे ढका हुआ कुशका आसन है; इसपर विराज जाइये। आपका आश्रम कहाँ है? और आप किस नामसे प्रसिद्ध हैं?

वेश्या बोली—काश्यपनन्दन! मेरा आश्रम इस पर्वतके

उस ओर यहाँसे तीन योजनकी दूरीपर है। मेरा ऐसा नियम है कि मैं किसीको प्रणाम नहीं करने देता और न किसीका दिया हुआ पाद्य ही स्पर्श करता हूँ। मैं आपका प्रणम्य नहीं हूँ, बल्कि आप ही मेरे वन्द्य हैं।

ऋष्यश्रृङ्ग बोले—ये भिलावे, आँवले, करूषक, इंगुदी और पिप्पली आदि पके हुए फल रक्खे हैं; इनमेंसे आप अपनी रुचिके अनुसार ग्रहण करें।

लोमशजी कहते हैं—राजन्! उस वेश्याकी लड़कीने उन सब फलोंको त्यागकर उन्हें अपने पाससे बड़े रसीले, दर्शनीय और रुचिवर्धक स्वादिष्ट पदार्थ दिये। इसके सिवा सुगन्धित मालाएँ, विचित्र और चमकीले वस्त्र तथा बढ़िया-बढ़िया शरबत भी दिये। उन्हें पाकर ऋष्यश्रृङ्ग बड़े प्रसन्न हुए और हँसने-खेलनेमें उनकी प्रवृत्ति हो गयी। इस प्रकार उनके मनमें विकारका अंकुर फूटता देख वेश्या उन्हें तरह-तरहसे लुभाने लगी। फिर कई बार उनका गाढ़ आलिङ्गन कर उनकी ओर कटाक्षपात करती अग्निहोत्रका बहाना करके वहाँसे चल दी। एक मुहूर्त्त बीतनेपर आश्रममें कश्यपनन्दन विभाण्डक मुनि आये। उन्होंने देखा कि ऋष्यश्रृङ्ग अकेलेमें ध्यान-सा लगाये बैठा है। उसके चित्तकी स्थिति सर्वथा विपरीत हो गयी है। वह ऊपरको देख-देखकर बार-बार दीर्घ निःश्वास छोड़ता है। उसकी ऐसी दीन दशा देखकर उन्होंने कहा, 'बेटा! आज सायंकालके अग्निहोत्रके लिये तुमने समिधाएँ ठीक क्यों नहीं कीं, क्या आज तुम अग्निहोत्रसे निवृत्त हो चुके हो? आज तुम और दिनोंकी तरह प्रसन्न नहीं जान पड़ते; बड़े ही चिन्तातुर, अचेत और दीन-से दिखायी देते हो। बताओ तो, आज यहाँ कोई आया था क्या?'

ऋष्यश्रृङ्गने कहा—पिताजी! यहाँ आश्रममें एक जटाधारी ब्रह्मचारी आया था। वह सुवर्णके समान उज्ज्वल-वर्ण था। उसके नेत्र कमलके समान विशाल थे। वह बड़ा ही रूपवान्, सूर्यके समान तेजस्वी और अत्यन्त गौरवर्ण था। उसके सिरपर बड़ी सुगन्धित और लंबी-लंबी काली जटाएँ थीं। वे सुनहरी डोरियोंसे गूँथी हुई थीं। आकाशमें जैसे बिजली चमकती है, उसी प्रकार उसके गलेमें सुवर्णके आभूषण झिलमिला रहे थे। गलेके नीचे उसके दो मांसपिण्ड थे। वे रोमहीन और बड़े ही मनोहर थे। जिस समय वह चलता था उसके पैरोंसे बड़ी ही अद्भुत झनकार होती थी तथा मेरे हाथोंमें जैसे यह रुद्राक्षकी माला बँधी हुई है, उसी तरह उसके दोनों हाथोंमें झनकारती हुई सोनेकी लड़ियाँ पड़ी हुई थीं। उसका मुख भी बड़ा ही विचित्र और दर्शनीय था। उसकी बातचीत सुनकर हृदयमें आनन्दकी लहरें उठने लगती थीं। उसकी कोयलकी-सी वाणी बड़ी ही सुरीली थी। उसे सुननेसे मेरे हृदयमें हूक-सी उठती थी। वह मुनिकुमार क्या था,

मानो कोई देवपुत्र ही था। उसे देखकर मेरे मनमें उसके प्रति बहुत ही प्रीति और आसक्ति हो गयी है। उसने मुझे नये-नये फल दिये थे। मैंने अबतक जो-जो फल खाये हैं, उनमेंसे किसीमें भी वैसा रस नहीं मिला। उनमें न तो वैसे छिलके ही हैं और न उनके समान गूदा ही है। उस रूपवान् मुनिकुमारने मुझे बड़ा ही स्वादिष्ट जल पीनेको दिया था। उसे पीते ही मुझे बड़े आनन्दका अनुभव हुआ और पृथ्वी घूमती-सी दिखायी देने लगी। वे जो बड़े ही विचित्र और सुगन्धित पुष्प पड़े हुए हैं, उसके वस्त्रोंमें गुँथे हुए थे। इन्हें बिखेरकर वह तपसे देदीप्यमान मुनिकुमार अपने आश्रमको चला गया है। उसके जाते ही मैं अचेत-सा हो गया हूँ और मेरे शरीरमें दाह-सा होता है। मैं चाहता हूँ, जल्दी-से-जल्दी उसके पास पहुँचूँ और उसे यहाँ लाकर सदा अपने साथ रक्खूँ।

विभाण्डक बोले--बेटा! ये तो राक्षस हैं। ये ऐसे ही विचित्र और दर्शनीय रूपसे घूमते रहते हैं। ये बड़े ही पराक्रमी होते हैं और ऐसे सुन्दर-सुन्दर रूप धारण करके सर्वदा तपस्यामें विघ्न डालनेका विचार करते रहते हैं। जिस जितेन्द्रिय मुनिको उत्तम लोकोंमें जानेकी इच्छा हो, उसे इनका साथ नहीं करना चाहिये। ये बड़े पापी होते हैं और तपस्वियोंको विघ्न पहुँचाकर ही प्रसन्न होते हैं। तपस्वीको तो उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी नहीं चाहिये। बेटा! तुम जिन स्वादिष्ट पेय पदार्थोंकी बात कहते हो, उन्हें तो दुष्ट लोग पीते हैं और वे ही ऐसी रंग-बिरंगी सुगन्धित मालाएँ पहनते हैं। ये चीजें मुनियोंके लिये नहीं बतायी गयी हैं।

'ये राक्षस हैं' ऐसा कहकर विभाण्डक मुनिने अपने पुत्रको रोक दिया और स्वयं उस वेश्याको ढूँढ़ने लगे। जब तीन दिनतक उसका कोई पता न लगा तो आश्रममें लौट आये। इसके पश्चात् जब श्रौत विधिके अनुसार विभाण्डक मुनि फिर फल लेनेके लिये गये तो वह वेश्या ऋष्यशृङ्गको फँसानेके लिये फिर आयी। उसे देखते ही ऋष्यशृङ्ग बड़े हर्षित हुए और हड़बड़ाकर उसके पास दौड़ आये तथा उससे बोले, 'देखो, पिताजीके यहाँ आनेसे पहले ही हम तुम्हारे आश्रमको चलेंगे।' हे राजन्! इस युक्तिसे विभाण्डक मुनिके एकमात्र पुत्र ऋष्यशृङ्गको उन माँ-बेटीने नावपर चढ़ा लिया और उसे खोलकर वे तरह-तरहके उपायोंसे उन्हें आनन्दित करती अङ्गराज लोमपादके पास ले आयीं। अङ्गराज उन्हें अपने अन्तःपुरमें ले गये। इतनेहीमें उन्होंने देखा कि सहसा वृष्टि होने लगी और सब ओर जल-ही-जल हो गया। इस प्रकार अपनी मनःकामना पूर्ण होनेपर राजा लोमपादने उन्हें अपनी कन्या शान्ता विवाह दी।

इधर जब विभाण्डक मुनि फल-फूल लेकर आश्रममें लौटे तो बहुत ढूँढ़नेपर भी उन्हें अपना पुत्र दिखायी न दिया। इससे उन्हें बड़ा ही क्रोध हुआ और ऐसी आशङ्का हुई कि यह सारा षड्यन्त्र अङ्गराजका ही रचा हुआ है। अतः वे अङ्गाधिपतिको उनके नगर और राष्ट्रके सहित भस्म कर डालनेके विचारसे चम्पापुरीकी ओर चले। मार्गमें चलते-चलते जब वे थक गये और उन्हें भूख सताने लगी तो वे ग्वालियोंके सम्पत्तिशाली घोषोंमें आये। ग्वालोंने उनका राजाओंके समान बड़ा आदर-सत्कार किया और वहाँ उन्होंने

एक रात विश्राम किया। जब गोपोंने उनकी अत्यन्त आवभगत की तो उन्होंने पूछा, 'क्यों भाई! तुम किसके सेवक हो?' तब वे सभी ग्वालिये बोले, 'यह सब आपके पुत्रकी ही सम्पत्ति है।' इस प्रकार देश-देशमें सत्कार पानेसे और ऐसे ही मधुर वाक्य सुननेसे उनका उग्र कोप शान्त हो गया और वे प्रसन्नचित्तसे अङ्गराजके पास पहुँचे। [illegible]

लोमपादने उनका विधिवत् पूजन किया । उन्होंने देखा कि स्वर्गलोकमें जैसे देवराज इन्द्र रहते हैं, वैसे ही वहाँ उनका पुत्र विद्यमान है । साथ ही उन्होंने विद्युत्के समान चमचमाती अपनी पुत्रवधू शान्ताको भी देखा । पुत्रको अनेकों ग्राम और घोष मिले देखकर तथा शान्ताको देखकर उनका सारा क्रोध उतर गया । फिर तो जिसमें राजा लोमपादकी विशेष प्रसन्नता थी, वही काम उन्होंने किया । पुत्रको वहीं छोड़कर उन्होंने उससे कहा, 'जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो जाय तो राजाका सब प्रकार मन रखकर वनमें ही चले आना ।'

ऋष्यशृङ्ग भी पिताकी आज्ञाका पालन कर फिर उन्हींके पास चले आये । शान्ता भी सब प्रकार अपने पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली थी । वह भी वनमें ही रहकर उनकी सेवा करने लगी । जिस प्रकार सौभाग्यवती अरुन्धती वसिष्ठकी, लोपामुद्रा अगस्त्यकी और दमयन्ती नलकी सेवा करती थी उसी प्रकार शान्ताने भी अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने वनवासी पतिदेवकी सेवा की । यह पवित्रकीर्तिशाली आश्रम उन्हीं ऋष्यशृङ्गका है । इसके कारण इस समीपवर्ती विशाल सरोवर-की शोभा भी बहुत बढ़ गयी है । इसमें स्नान करके तुम कृतकृत्य और शुद्ध हो जाओ, फिर दूसरे तीर्थोंकी यात्रा करना ।

परशुरामजीकी उत्पत्ति और उनके चरित्रोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस सरोवरमें स्नान करके महाराज युधिष्ठिर कौशिकी नदीके किनारे होते हुए क्रमशः सभी तीर्थस्थानोंमें गये । फिर उन्होंने समुद्रतटपर पहुँचकर गङ्गाजीके सङ्गमस्थानमें मिली हुई पाँच सौ नदियोंकी सम्मिलित धारामें स्नान किया । इसके पश्चात् वे समुद्रके किनारे-किनारे अपने भाइयोंके सहित कलिङ्गदेशमें आये । वहाँ लोमशजी कहने लगे, 'कुन्तीनन्दन ! यह कलिङ्गदेश है । यहाँ वैतरणी नदी बहती है । इस स्थानपर देवताओंका आश्रय लेकर स्वयं धर्मराजने यज्ञ किया था ।'

इसके अनन्तर भाग्यवान् पाण्डवोंने द्रौपदीसहित वैतरणी नदीमें उतरकर पितृतर्पण किया । उस समय महाराज युधिष्ठिर कहने लगे, 'लोमशजी ! इस नदीमें आचमन करके मैं तपके प्रभावसे मानवी विषयोंसे मुक्त हो गया हूँ । आपकी कृपासे मुझे सारे लोक दिखायी दे रहे हैं । देखिये, यह मुझे पाठ करते हुए वानप्रस्थी महात्माओंका शब्द सुनायी दे रहा है ।' तब लोमशजीने कहा, 'राजन् ! चुप हो जाइये । यह ध्वनि तो तुम्हें तीस हजार योजन दूरसे सुनायी दे रही है ।'

वैशम्पायनजी बोले—इसके पश्चात् महात्मा युधिष्ठिर महेन्द्रपर्वतपर गये और वहाँ एक रात निवास किया । वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंने उनका बड़ा सत्कार किया । लोमशमुनिने उन भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ और कश्यपवंशीय ऋषियोंका परिचय दिया । फिर उनके पास जाकर राजर्षि युधिष्ठिरने प्रणाम किया और परशुरामजीके सेवक वीरवर अकृतव्रणसे पूछा, 'भगवान् परशुरामजी इन तपस्वियोंको किस समय दर्शन देंगे ? इनके साथ ही मैं भी उनके दर्शन करना चाहता हूँ ।' अकृतव्रणने कहा, 'श्रीपरशुरामजी तो सबके हृदयकी बात जाननेवाले हैं । आपके आनेका तो उन्हें पता लग ही गया होगा । आपके प्रति उनका प्रेम भी है ही । इसलिये वे शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे । तपस्वियोंको उनका दर्शन चतुर्दशी और अष्टमीको होता है । आजकी रात बीतने-

पर कल चतुर्दशी होगी । तब आप भी उनका दर्शन करेंगे ।'

युधिष्ठिरने पूछा—आप जमदग्निनन्दन महाबली परशुरामजीके सेवक हैं । उन्होंने पहले जो-जो कृत्य किये हैं, वे सब आपने प्रत्यक्ष देखे हैं । अतः जिस प्रकार और जिस निमित्तसे उन्होंने युद्धमें क्षत्रियोंको परास्त किया था, वह सब आप मुझे सुनाइये ।

अकृतव्रणने कहा—राजन् ! मैं भृगुवंशमें उत्पन्न हुए जमदग्निनन्दन देवतुल्य भगवान् परशुरामजीका चरित्र सुनाता हूँ । यह आख्यान बड़ा ही सुन्दर और महान् है । उन्होंने हैहयवंशमें उत्पन्न हुए जिस कार्तवीर्य अर्जुनका वध किया था, उसके एक हजार भुजाएँ थीं । श्रीदत्तात्रेयजीकी कृपासे उसे एक सोनेका विमान मिला था तथा पृथ्वीके सभी प्राणियोंपर उसका प्रभुत्व था । उसके रथकी गतिको कोई भी रोक नहीं सकता था । उस रथ और वरके प्रभावसे वह वीर देवता, यक्ष और ऋषि—सभीको कुचले डालता था । इस प्रकार उसके द्वारा सर्वत्र सभी प्राणी पीड़ित हो रहे थे ।

इसी समय कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक नगरमें गाधि नामका एक बलवान् राजा राज्य करता था । वह वनमें जाकर रहने लगा । वहाँ उसके एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो

अप्सराके समान सुन्दरी थी । उसका नाम था सत्यवती । उसके लिये भृगुनन्दन ऋचीकने राजाके पास जाकर याचना की । राजा गाधिने ऋचीक मुनिके साथ सत्यवतीका व्याह कर दिया । विवाहकार्य सम्पन्न हो जानेपर भृगुजी आये और अपने पुत्रको सपत्नीक देखकर बड़े प्रसन्न हुए । तब उन्होंने पुत्रवधूसे कहा, 'सौभाग्यवती वधू ! तुम वर माँगो, तुम्हारी जो इच्छा होगी वही मैं दूँगा ।' उसने अपने ससुरजीको प्रसन्न देखकर अपने और अपनी माताके लिये पुत्रकी याचना की । तब भृगुजीने कहा, 'तुम और तुम्हारी माता ऋतुस्नान करनेके पश्चात् पुत्रोत्पत्तिकी कामनासे अलग-अलग वृक्षोंका आलिङ्गन करना । वह पीपलका आलिङ्गन करे और तुम गूलरका करना । इसके सिवा मैंने सारे संसारमें घूमकर तुम्हारे और तुम्हारी माताके लिये बड़े प्रयत्नसे ये दो चरु तैयार किये हैं, इन्हें तुम सावधानीसे खा लेना ।' ऐसा कहकर मुनि अन्तर्धान हो गये । किन्तु उन माँ-बेटीने चरु भक्षण करने और वृक्षोंका आलिङ्गन करनेमें उलट-फेर कर दिया ।

बहुत दिन बीतनेपर भगवान् भृगु फिर लौटे और उन्होंने दिव्य दृष्टिसे सब बात जान ली । तब उन्होंने अपनी पुत्रवधू सत्यवतीसे कहा, 'बेटी ! चरु और वृक्षोंमें उलट-फेर करके तेरी माताने तुझे धोखा दिया है । तूने जो चरु खाया है और जिस वृक्षका आलिङ्गन किया है, उसके प्रभावसे तेरा पुत्र ब्राह्मण होनेपर भी क्षत्रियोंके-से आचरणवाला होगा तथा तेरी माताका पुत्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणोंके-से आचार-वाला, बड़ा तेजस्वी और सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करने-वाला होगा ।' तब उसने बार-बार प्रार्थना करके अपने ससुरजीको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र ऐसे स्वभाववाला हो जाय । भृगुजीने 'अच्छा, ऐसा ही हो' यह कहकर अपनी पुत्रवधूका अभिनन्दन किया । यथासमय उसके गर्भसे जमदग्नि मुनिका जन्म हुआ । वे बड़े ही तेजस्वी और प्रतापी थे ।

महातपस्वी जमदग्निने वेदाध्ययन आरम्भ किया और नियमानुसार स्वाध्याय करनेसे सभी वेदोंको कण्ठस्थ कर लिया । फिर उन्होंने राजा प्रसेनजित्के पास जाकर उनकी पुत्री रेणुकाके लिये याचना की और राजाने उन्हें अपनी बेटी विवाह दी । रेणुकाका आचरण सब प्रकार अपने पतिदेवके अनुकूल था । उसके साथ आश्रममें रहकर वे तपस्या करने लगे । उनके क्रमशः चार पुत्र हुए । इसके बाद परशुरामजीका प्रादुर्भाव हुआ, ये पाँचवें थे । भाइयोंमें छोटे होनेपर भी ये गुणोंमें सबसे बढ़े-चढ़े थे । एक दिन जब सब पुत्र फल लेनेके लिये

चले गये तो व्रतशीला रेणुका स्नान करनेको गयी। जिस समय वह स्नान करके आश्रमको लौट रही थी, उसने दैवयोगसे राजा चित्ररथको जलक्रीड़ा करते देखा। उस सम्पत्तिशाली राजाको जलविहार करते देखकर रेणुकाका चित्त चलायमान हो गया। इस मानसिक विकारसे दीन, अचेत और त्रस्त होकर उसने आश्रममें प्रवेश किया। महातेजस्वी जमदग्नि मुनिने सब बात जान ली और उसे अधीर एवं ब्राह्मतेजसे च्युत हुई देखकर बहुत धिक्कारा। इतनेहीमें उनके ज्येष्ठ पुत्र रुक्मवान् और फिर सुषेण, वसु और विश्वावसु भी आ गये। मुनिने क्रमशः उन सभीसे कहा कि इस अपनी माँको तुरंत मार डालो। किन्तु वे मोहवश हक्के-बक्के-से रह गये, कुछ भी न बोल सके। तब मुनिने क्रोधित होकर उन्हें शाप दिया, जिससे

उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी और वे मृग एवं पक्षियोंके समान जड़-बुद्धि हो गये। उन सबके पीछे शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले परशुरामजी आये। उनसे महातपस्वी जमदग्नि मुनिने कहा, 'बेटा! अपनी इस पापिनी माताको अभी मार डाल और इसके लिये मनमें किसी प्रकारका खेद न कर।' यह सुनकर परशुरामने फरसा लेकर उसी क्षण अपनी माताका मस्तक काट डाला।'

राजन्! इससे जमदग्निका कोप सर्वथा शान्त हो गया और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, 'बेटा! तुमने मेरे कहने काम किया है, जिसे करना बड़ा ही कठिन है; इसलिये तु जो-जो कामनाएँ हों, वे सब माँग लो।' तब उन्होंने क 'पिताजी! मेरी माता जीवित हो जायँ, उन्हें मेरेद्वारा जानेकी बात याद न रहे, उनके मानस पापका ना जाय, मेरे चारों भाई स्वस्थ हो जायँ, युद्धमें मेरा सा करनेवाला कोई न हो और मैं लंबी आयु प्राप्त करूँ परमतपस्वी जमदग्निने भी वरदानके द्वारा उनकी ह कामनाएँ पूर्ण कर दीं।

एक बार इसी तरह उनके सब पुत्र बाहर गये हुए थे उसी समय अनूप देशका राजा कार्तवीर्य अर्जुन उधर आ निकला। जिस समय वह आश्रममें पहुँचा, मुनिपत्नी रेणुकाने उसका आतिथ्य-सत्कार किया। कार्तवीर्य अर्जुन युद्धके मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सत्कारकी कुछ कीमत न करके आश्रमकी होमधेनुके डकराते रहनेपर भी उसके बछड़ेको हर लिया और वहाँके वृक्षादि भी तोड़ दिये। जब परशुरामजी आश्रममें आये तो स्वयं जमदग्निजीने उनसे सारी बातें कहीं। उन्होंने होमकी गायको भी रोते देखा। इससे वे बड़े ही कुपित

हुए और कालके वशीभूत हुए सहस्रार्जुनके पास आये।

जमदग्नि-परशुराम

तब शत्रुदमन परशुरामजीने अपना सुन्दर धनुष ले उसके साथ बड़ी वीरतासे युद्ध कर पैने बाणोंसे उसकी परिघसदृश हजारों भुजाओंको काट डाला तथा उसे परास्त कर कालके हवाले किया। इससे सहस्रार्जुनके पुत्रोंको बड़ा क्रोध हुआ और वे एक दिन परशुरामजीकी अनुपस्थितिमें आश्रममें बैठे हुए जमदग्निजीपर जा टूटे। परम तेजस्वी जमदग्निजी तो तपस्वी ब्राह्मण थे, उन्होंने युद्धादि कुछ भी नहीं किया तो भी उन्होंने उन्हें मार डाला। इस समय वे अनाथकी तरह 'हे राम! हे राम!' यही चिल्लाते रहे। जब उनकी हत्या करके वे आश्रमसे चले गये तो परशुरामजी समिधा लेकर आये। वहाँ अपने पिताजीको इस प्रकार दुर्दशापूर्वक मरे देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे फूट-फूटकर रोने लगे। कुछ समयतक वे करुणापूर्वक तरह-तरहसे विलाप करते रहे; फिर उन्होंने अपने पिताके

सब प्रेतकर्म किये और उनका अग्निसंस्कार कर सम्पूर्ण क्षत्रियोंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की।

महाबली भृगुनन्दन क्रोधके आवेशमें साक्षात् कालके समान हो गये और उन्होंने अकेले ही कार्तवीर्यके सब पुत्रोंको मार डाला। उस समय जिन-जिन क्षत्रियोंने उनका पक्ष लिया, उन सबका भी उन्होंने सफाया कर दिया। इस प्रकार इक्कीस बार भगवान् परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और उनके रक्तसे समन्तपञ्चक क्षेत्रमें पाँच सरोवर भर दिये। इसी समय महर्षि ऋचीकने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें इस घोर कर्मसे रोका। तब उन्होंने क्षत्रियोंका संहार करना बंद कर दिया और सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर

दी। इस प्रकार समस्त भूमण्डल ब्राह्मणोंको देकर वे इस महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! फिर चौदसके दिन अपने नियमके अनुसार महामना परशुरामजीने समस्त ब्राह्मण और भाइयोंके सहित महाराज युधिष्ठिरको दर्शन दिये। धर्मराजने अपने भाइयोंके सहित उनका पूजन किया और वहाँ रहनेवाले सब ब्राह्मणोंका भी खूब सत्कार किया। फिर परशुरामजीकी आज्ञासे उस रातको महेन्द्र पर्वतपर ही रहकर वे दूसरे दिन दक्षिणकी ओर चले।

प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंसे यादवोंकी भेंट

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! महाराज युधिष्ठिर समुद्रतटके सब तीर्थोंके दर्शन करते आगे बढ़ने लगे । वे सब प्रकारके सदाचारका पालन करते थे । उन्होंने भाइयोंके सहित सभी तीर्थोंमें स्नान किया । फिर वे क्रमशः समुद्रगामिनी प्रशस्ता नदीपर पहुँचे । वहाँ स्नान और तर्पण कर उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धन दान किया । इसके पश्चात् वे गोदावरी नदीपर आये । उसमें स्नानादि करके निष्पाप हो उन्होंने द्रविड़ देशमें समुद्रतीरवर्ती परमपवित्र अगस्त्यतीर्थ और नारीतीर्थके दर्शन किये । फिर वे शूर्पारक क्षेत्रमें पहुँचे । वहाँ समुद्रके कुछ अंशको पार करके वे एक प्रसिद्ध वनमें आये । यहाँ उन्होंने धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीकी वेदी देखी । इसके आस-पास अनेकों तपस्वी रहते थे और पुण्यात्मा पुरुष इसे पूजनीय मानते थे । इसके पश्चात् उन्होंने वसु, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, आदित्य, कुबेर, इन्द्र, विष्णु, सविता, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, साध्यगण, ब्रह्मा, पितृगण, गणोंके सहित रुद्र, सरस्वती, सिद्ध और अन्यान्य देवताओंके परम पवित्र और मनोहर मन्दिरोंके दर्शन किये । उन तीर्थोंमें तरह-तरहसे उपवास कर उन्होंने स्नानादि किये और विद्वान् ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्नादि दान कर वे फिर शूर्पारक क्षेत्रमें लौट आये । वहाँसे वे भाइयोंके सहित अन्य समुद्रतीर-वर्ती तीर्थोंमें गये और फिर पृथ्वीभरमें प्रसिद्ध प्रभासक्षेत्रमें आये । वहाँ स्नान और तर्पणादि करके उन्होंने देवता और पितरोंको तृप्त किया । फिर बारह दिनतक केवल जल और वायु ही भक्षण करते हुए चारों ओर अग्नि जलाकर तप किया ।

इसी समय भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने सुना कि महाराज युधिष्ठिर प्रभासक्षेत्रमें उग्र तपस्या कर रहे हैं, तो वे अपने परिकरोंके साथ उनके पास आये । उन्होंने देखा कि पाण्डवलोग पृथ्वीपर पड़े हुए हैं; उनके शरीर धूलसे सने हुए हैं तथा कष्टसहनके अयोग्य द्रौपदी भी महान् दुःख भोग रही है । यह देखकर वे बिलख-बिलखकर रोने लगे । महाराज युधिष्ठिर दुःख-पर-दुःख भोग रहे थे, तो भी उनका धैर्य शिथिल नहीं पड़ा था । उन्होंने बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, अनिरुद्ध तथा और भी सभी वृष्णिवंशियोंका बड़ा आदर किया । उनसे सम्मानित होकर यादवोंने भी उनका यथोचित सत्कार किया और फिर देवता जैसे इन्द्रके चारों ओर बैठ जाते हैं, उसी प्रकार वे धर्मराज युधिष्ठिरको घेरकर बैठ गये ।

तदनन्तर बलदेवजीने कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! देखो, धर्मराज सिरपर जटाएँ धारण करके वनमें रहते हैं और वल्कल-वस्त्रोंसे शरीर ढककर तरह-तरहके कष्ट भोग रहे हैं तथा पापात्मा दुर्योधन पृथ्वीका शासन कर
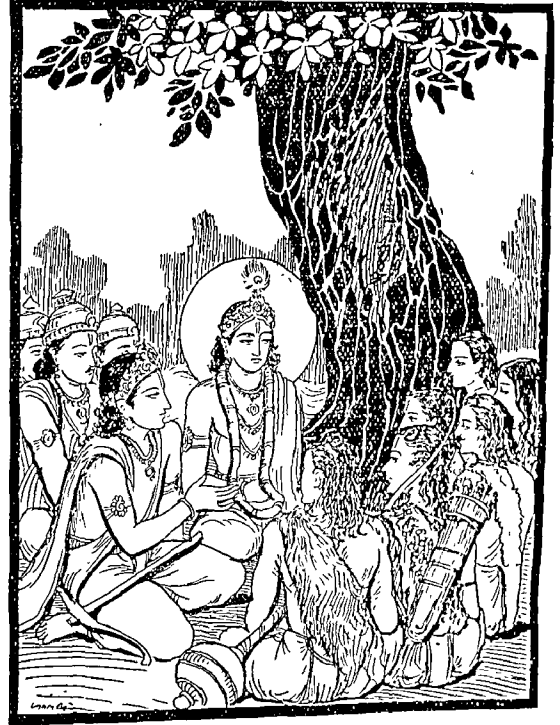
रहा है । हाय ! इसके लिये पृथ्वी भी नहीं फटती । इससे अल्पबुद्धि पुरुष तो यही समझेंगे कि धर्माचरणकी अपेक्षा पाप करना ही अच्छा है । ये साक्षात् धर्मके पुत्र हैं, धर्म ही इनका आधार है, सत्यसे भी ये कभी नहीं डिगते और निरन्तर दान भी करते रहते हैं । इनका राज्य और सुख भले ही नष्ट हो जाय, किन्तु धर्मको छोड़कर ये कभी चैनसे नहीं बैठ सकते । पापी धृतराष्ट्रने अपने निर्दोष भतीजोंको राज्यसे निकाल दिया है । अब, परलोकमें पितृगणके सामने वे कैसे कहेंगे कि मैंने इनके साथ उचित व्यवहार किया है । देखो, अब भी उन्हें यह नहीं सूझता कि 'मैं पृथ्वीमें इस प्रकार आँखोंसे लाचार क्यों उत्पन्न हुआ हूँ और इन्हें राज्यच्युत कर देनेसे अब मेरी क्या गति होगी ।' भला, इन पाण्डवोंका वे क्या सामना करेंगे ? महाबाहु भीमको तो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेके लिये शस्त्रोंकी भी आवश्यकता नहीं है । इनके तो हुंकारसे ही सैनिकोंके मल-मूत्र निकल पड़ते हैं । देखो, जब

यह पूर्वदिशामें दिग्विजयके लिये गया था तो इसने अकेले ही वहाँके सब राजाओंको उनके अनुचरोंके सहित परास्त कर दिया और यह सकुशल अपने नगरमें लौट आया, कोई इसका बाल भी बाँका नहीं कर सका। किन्तु आज यह फटे-पुराने वस्त्र पहनकर दुःख भोग रहा है। इस फुर्तीले वीर सहदेवको देखो। इसने समुद्रतटपर अपने सामने इकट्ठे होकर आये हुए दक्षिणदेशके सभी राजाओंके दाँत खट्टे कर दिये थे। आज यह भी तपस्वी बना हुआ है। द्रौपदी तो परम पतिव्रता और सब प्रकार सुख भोगने योग्य ही है। महारथी द्रुपदके समृद्धिशाली यज्ञकी वेदीसे इसका जन्म हुआ है। यह भला, वनवासका दुःख कैसे सहती होगी? दुर्योधनने कपटद्यूतमें जीतकर धर्मराजको इनके भाई, स्त्री और अनुचरोंसहित राज्यसे बाहर निकाल दिया और वह दिनोंदिन बढ़ रहा है—यह देखकर इस पर्वतमालामण्डिता वसुन्धराको खेद क्यों नहीं होता?

सात्यकि कहने लगे—बलरामजी! यह समय व्यर्थ पश्चात्ताप करनेका नहीं है। महाराज युधिष्ठिर यद्यपि कुछ कह नहीं रहे हैं, तो भी अब आगे हमारा जो कर्त्तव्य हो वही हमें करना चाहिये। संसारमें जिनके दूसरे रक्षक होते हैं, वे स्वयं काम नहीं किया करते। मेरे सहित आप, कृष्ण, प्रद्युम्न और साम्ब चुपचाप कैसे बैठे हैं? हम तो तीनों लोकोंकी रक्षा कर सकते हैं; फिर हमारे पास आकर भी ये पाण्डवलोग भाइयोंसहित वनमें रहें—यह कैसे हो सकता है? आज ही अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और कवचादिसे सन्नद्ध यादवी सेना कूच करे और उससे पराजित होकर दुर्योधन अपने भाइयोंसहित यमलोकको चला जाय। बलरामजी! आप तो अकेले ही अपने कोपसे इस पृथ्वीका नाश कर सकते हैं; अतः देवराज इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका वध किया था, उसी प्रकार आप दुर्योधनको उसके सम्बन्धियोंसहित मार डालिये। मैं भी अपने सर्पके विषकी ज्वालाके समान तीखे बाणोंसे उसके सिरको छिन्न-भिन्न कर दूँगा और फिर उसे अपनी पैनी तलवारसे रणाङ्गणमें काट डालूँगा। फिर सब कौरवोंको मारकर उनके अनुचरोंका भी नाश कर दूँगा। जिस समय प्रद्युम्नजी प्रधान-प्रधान कौरव वीरोंका संहार करेंगे उस समय, तिनकोंकी ढेरी जैसे आगको सहन नहीं कर सकती, उसी प्रकार उनके छोड़े हुए तीखे तीरोंको कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, कर्ण और विकर्ण सह नहीं सकेंगे। अभिमन्युके पराक्रमको भी मैं खूब जानता हूँ। ये रणभूमिमें प्रद्युम्नजीके ही समान हैं। और साम्ब भी अपने बाहुबलसे रथ और सारथिके सहित दुःशासनको कुचल सकते हैं। ये जाम्बवतीनन्दन बड़े ही रणवीर हैं, इनके बलको तो कोई नहीं सह सकता। श्रीकृष्णके विषयमें क्या कहें? जिस समय ये अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो उत्तम-उत्तम बाण और सुदर्शन चक्र धारण करते हैं, उस समय युद्धमें इनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। देवताओंके सहित इन सम्पूर्ण लोकोंमें इनके लिये कौन-सा काम कठिन है? इस समय अनिरुद्ध, गद, उल्मुक, बाहुक, भानु, नीथ और रणवीर कुमार निशठ तथा रणबाँकुरे सारण और चारुदेष्ण—सभीको अपना-अपना कुलोचित पुरुषार्थ दिखाना चाहिये। वृष्णि, भोज और अन्धक वंशोंके मुख्य-मुख्य योद्धा तथा सात्वत एवं शूरकुलकी सेनाएँ मिलकर रणभूमिमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार कर उज्ज्वल यश प्राप्त करें। ऐसा होनेपर जबतक धर्मराज युधिष्ठिर जुआ खेलनेके समय किये हुए नियमका पालन करें, तबतक पृथ्वीके शासनका भार अभिमन्युके हाथमें रहे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सात्यकि! तुम्हारी बात निःसन्देह ठीक है, हमें तुम्हारा कथन स्वीकार है; किन्तु कुरुराज अपने भुजबलसे न जीती हुई भूमिको लेना किसी प्रकार पसंद न करेंगे। महाराज युधिष्ठिर किसी इच्छा, भय या लोभसे स्वधर्मका त्याग नहीं कर सकते। इसी प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी भी काम, लोभ या भयसे अपना धर्म नहीं छोड़ सकते। भीम और अर्जुन तो अतिरथी हैं; पृथ्वीमें ऐसा कोई वीर नहीं है, जो युद्धमें इनके साथ लोहा ले सके। माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव भी कुछ कम नहीं हैं। इन सबकी सहायतासे ही ये सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन क्यों न करें? जिस समय महात्मा पञ्चालराज, केकयनरेश, चेदिराज और हय आपसमें मिलकर रणाङ्गणमें कूद पड़ेंगे उस समय शत्रुओंका नाम-निशान भी न रहेगा।

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिरने कहा—माधव! आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वास्तवमें, मेरे स्वभावको ठीक-ठीक श्रीकृष्ण ही जानते हैं और उनके स्वरूपको भी यथार्थ रीतिसे मैं जानता हूँ। सात्यकि! देखो, जब श्रीकृष्ण पराक्रम दिखानेका समय समझेंगे उसी समय तुम और श्रीकेशव दुर्योधनपर विजय प्राप्त कर सकोगे। अब आप सब यादव वीर अपने-अपने घरोंको पधारें, आपलोग मुझसे मिलनेके लिये यहाँ आये, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आप सावधानीसे धर्मका पालन करें, मैं फिर आप सबको सकुशल एकत्रित हुए देखूँगा।

तब उन यादव वीरोंने बड़ोंको प्रणाम किया और

बालकोंको हृदयसे लगाया। इसके पश्चात् वे अपने-अपने घरोंको चले गये तथा पाण्डवोंने तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार श्रीकृष्णको विदा कर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाई, अनुचर और लोमशजीके सहित परमपवित्र पयोष्णी नदीपर पहुँचे। इस नदीके तीरपर अमूर्त्तरयाके पुत्र राजा गयने सात अश्वमेध यज्ञ करके इन्द्रको तृप्त किया था।

राजकुमारी सुकन्या और महर्षि च्यवन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पयोष्णीमें स्नान कर महाराज युधिष्ठिर वैदूर्य पर्वत और नर्मदा नदीकी ओर गये। वहाँ भगवान् लोमशने समस्त तीर्थ और देवस्थानोंका परिचय दिया। तब भाइयोंके सहित धर्मराज अपने सुभीते और उत्साहके अनुसार उन सभी तीर्थोंमें गये और वहाँ हजारों ब्राह्मणोंको धन दान किया।

फिर लोमश मुनिने एक स्थानकी ओर संकेत करके कहा—राजन्! यह महाराज शर्यातिका यज्ञस्थान है, यहाँ कौशिक मुनिने अश्विनीकुमारोंके सहित स्वयं ही सोमपान किया था। इसी स्थानपर महान् तपस्वी च्यवन मुनि इन्द्रपर कुपित हुए थे और उन्होंने उसे स्तम्भित कर दिया था तथा यहीं उन्हें पत्नीरूपसे राजकुमारी सुकन्या प्राप्त हुई थी।

युधिष्ठिरने पूछा—महातपस्वी च्यवनको क्रोध क्यों हुआ? उन्होंने इन्द्रको स्तब्ध क्यों किया? तथा अश्विनीकुमारोंको उन्होंने सोमपानका अधिकारी कैसे बनाया? भगवन्! कृपा करके यह सारा वृत्तान्त मुझे सुनाइये।

लोमशजी बोले—महर्षि भृगुका च्यवन नामक एक बड़ा ही तेजस्वी पुत्र था। वह इस सरोवरके तटपर तपस्या करने लगा। राजन्! वह मुनिकुमार बहुत समयतक वृक्षके समान निश्चल रहकर एक ही स्थानपर वीरासनसे बैठा रहा। धीरे-धीरे अधिक समय बीतनेपर उसका शरीर तृण और लताओंसे ढक गया। उसपर चींटियोंने अड्डा जमा लिया। ऋषि बाँबीके रूपमें दिखायी देने लगे। वे चारों ओरसे केवल मिट्टीका पिण्ड जान पड़ते थे। इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होनेके बाद एक दिन राजा शर्याति इस सरोवरपर क्रीडा करनेके लिये आया। उसकी चार सहस्र सुन्दरी रानियाँ और एक सुन्दर भ्रुकुटियोंवाली कन्या थी। उसका नाम सुकन्या था। वह दिव्य आभूषणोंसे विभूषित कन्या अपनी सहेलियोंके साथ विचरती उस च्यवनजीकी बाँबीके पास पहुँच गयी। उसने उस बाँबीके छिद्रमेंसे च्यवनजीकी चमकती हुई आँखोंको देखा। इससे उसे बड़ा कुतूहल हुआ। फिर बुद्धि भ्रमित हो जानेसे उसने उन्हें काँटेसे छेद दिया। इस प्रकार आँखें फूट जानेसे च्यवन मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने

शर्यातिकी सेनाके मल-मूत्र बंद कर दिये। मल-मूत्र रुक जानेसे सेनाको बड़ा कष्ट हुआ। यह दशा देखकर राजाने पूछा, 'यहाँ निरन्तर तपस्यामें निरत वयोवृद्ध महात्मा च्यवन रहते हैं। वे स्वभावसे बड़े क्रोधी हैं। उनका जानकर अथवा बिना जाने किसने अपकार किया है? जिससे भी ऐसा हुआ हो, वह बिना विलम्ब किये तुरंत बता दे।'

जब सुकन्याको ये सब बातें मालूम हुईं तो उसने कहा, 'मैं घूमती-घूमती एक बाँबीके पास गयी थी। उसमें मुझे एक चमकता हुआ जीव दिखायी दिया। वह जुगनू-सा जान पड़ता था। उसे मैंने बींध दिया।' यह सुनकर शर्याति तुरंत ही बाँबीके पास गया। वहाँ उसे तपोवृद्ध और वयोवृद्ध च्यवन मुनि दिखायी दिये। उसने उनसे हाथ जोड़कर सेनाको क्लेश मुक्त करनेकी प्रार्थना की और कहा कि 'भगवन्!

अज्ञानवश इस बालिकासे जो अपराध बन गया है, उसे क्षमा करनेकी कृपा करें।' तब भृगुनन्दन च्यवनने राजासे कहा, 'इस गर्वीली छोकरीने अपमान करनेके लिये ही मेरी आँखें फोड़ी हैं। अब मैं इसे पाकर ही क्षमा कर सकता हूँ।'

लोमशजी कहते हैं—राजन्! यह बात सुनकर राजा शर्यातिने बिना कोई विचार किये महात्मा च्यवनको अपनी कन्या दे दी। उस कन्याको पाकर च्यवन मुनि प्रसन्न हो गये और उनकी कृपासे क्लेशमुक्त हो राजा सेनाके सहित अपने नगरमें लौट आया। सती सुकन्या भी अपने तप और नियमोंका पालन करती हुई प्रेमपूर्वक अपने तपस्वी पतिकी परिचर्या करने लगी।

एक दिन सुकन्या स्नान करके अपने आश्रममें खड़ी थी। उस समय उसपर अश्विनीकुमारोंकी दृष्टि पड़ी। वह साक्षात् देवराजकी कन्याके समान मनोहर अङ्गोंवाली थी। तब अश्विनीकुमारोंने उसके समीप जाकर कहा, 'सुन्दरि! तुम किसकी पुत्री एवं किसकी भार्या हो और इस वनमें क्या करती हो?'

यह सुनकर सुकन्याने सलज्ज भावसे कहा, 'मैं महाराज शर्यातिकी कन्या और महर्षि च्यवनकी भार्या हूँ।'

तब अश्विनीकुमार बोले, 'हम देवताओंके वैद्य हैं और तुम्हारे पतिको युवा एवं रूपवान् कर सकते हैं। तुम हमारी यह बात अपने पतिदेवसे जाकर कहो।'

उनकी यह बात सुनकर सुकन्या च्यवन मुनिके पास गयी और उन्हें यह बात सुना दी। मुनिने उसे अपनी स्वीकृति दे दी। तब उसने अश्विनीकुमारोंसे वैसा करनेके लिये ... । अश्विनीकुमारोंने कहा, 'मुनि इस सरोवरमें प्रवेश करें।' महर्षि च्यवन रूपवान् होनेको उत्सुक थे। उन्होंने तुरंत ही जलमें प्रवेश किया। उनके साथ अश्विनीकुमारोंने भी उसमें गोता लगाया। फिर एक मुहूर्त बीतनेपर वे तीनों उस सरोवरसे बाहर निकले। वे सभी दिव्यरूपधारी, युवा और समान आकृतिवाले थे। उन तीनोंको ही देखकर चित्तमें अनुरागकी वृद्धि होती थी। उन तीनोंहीने कहा, 'सुन्दरि! तुम हममेंसे किसी भी एकको वर लो।' वे तीनों ही समान रूपवाले थे। सुकन्या एक बार तो सहम गयी, परन्तु फिर

उसने मन और बुद्धिसे निश्चय कर अपने पतिको पहचान लिया और उन्हें ही वरा। इस प्रकार अपनी पत्नी और मनमाना रूप एवं यौवन पाकर च्यवन ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और अश्विनीकुमारोंसे बोले, 'मैं वृद्ध था, तुमने ही मुझे रूप और यौवन दिया है। इसलिये मैं भी तुम्हें सोमपानका अधिकार दिलाऊँगा।' यह सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर स्वर्गको चले गये तथा च्यवन और सुकन्या उस आश्रममें देवताओंके समान विहार करने लगे।

जब शर्यातिने सुना कि च्यवन मुनि युवा हो गये हैं तो उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई और वह अपनी सेनाके सहित उनके आश्रममें आया। उसने देखा कि च्यवन और सुकन्या साक्षात् देवदम्पति-से जान पड़ते हैं। इससे राजा और रानीको ऐसा हर्ष हुआ मानो उन्हें सारी पृथ्वीका ही राज्य मिल गया हो। फिर च्यवन मुनिने राजासे कहा, 'राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप सब सामग्री एकत्रित कीजिये।' राजाने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी यह बात स्वीकार कर ली। जब यज्ञके लिये समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला शुभ दिन उपस्थित हुआ तो राजा शर्यातिने एक सुन्दर यज्ञमण्डप तैयार कराया।

उसीमें भृगुनन्दन महर्षि च्यवनने राजाके यज्ञानुष्ठानका आयोजन किया। इस यज्ञमें जो नयी बातें हुईं, उन्हें सुनिये। जिस समय च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग दिया, तब इन्द्रने उन्हें रोकते हुए कहा, 'मेरे विचारसे दोनों ही अश्विनीकुमार यज्ञभाग लेनेके अधिकारी नहीं हैं।' च्यवनने कहा, 'ये दोनों कुमार बड़े ही उत्साही, उदारहृदय, रूपवान् और धनवान् हैं। भला, तुम्हारे या दूसरे देवताओंके सामने इनका सोमपानमें अधिकार क्यों नहीं है?' इन्द्रने कहा, 'ये चिकित्साकार्य करते हैं और मनमाना रूप धारण कर मृत्युलोकमें भी विचरते रहते हैं। इन्हें सोमपानका अधिकार कैसे हो सकता है?'

जब च्यवन ऋषिने देखा कि देवराज बार-बार उसी बातपर जोर दे रहे हैं तो उन्होंने उनकी उपेक्षा कर अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये उत्तम सोमरस लिया। उन्हें इस प्रकार

आग्रहपूर्वक सोम लेते देखकर इन्द्रने कहा, 'यदि तुम हमारे लिये तैयार हुए सोमरसको इस प्रकार अश्विनीकुमारोंके लिये स्वयं ग्रहण करोगे तो मैं तुमपर अपना भयङ्कर वज्र छोड़ दूँगा।' ऐसा कहनेपर भी च्यवन मुनिने मुसकराते हुए अश्विनीकुमारोंके लिये सोम ले लिया। तब तो इन्द्र उनपर अपना भयङ्कर वज्र छोड़नेके लिये उद्यत हुए। वे जैसे ही प्रहार करने लगे कि च्यवनने उनकी भुजाको स्तम्भित कर दिया। और अपने तपोबलसे अग्निकुण्डमेंसे 'मद' नामक एक अत्यन्त भयङ्कर राक्षसको उत्पन्न किया, जो अपनी भीषण गर्जनासे त्रिभुवनको त्रस्त करता हुआ इन्द्रको निगल जानेके लिये उनकी ओर दौड़ा। इससे इन्द्रको बड़ी ही व्यथा हुई और उन्होंने पुकार-पुकारकर कहा, 'आजसे अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी हुए। अब आप मेरे ऊपर कृपा करें, आप जैसा चाहेंगे वही होगा।' इन्द्रने जब ऐसा कहा तब भृगुनन्दन महात्मा च्यवनका कोप शान्त हो गया और उन्होंने इन्द्रको उसी समय उस दुःखसे मुक्त कर दिया। राजन्! यह झिलमिलाता हुआ द्विजसंघुष्ट नामका सरोवर उन्हीं च्यवन मुनिका है। तुम अपने भाइयोंसहित इस सरोवरमें देवता और पितरोंका तर्पण करो। यहाँ भगवान् शङ्करके मन्त्रोंका जप करनेसे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो। यहाँ त्रेता और द्वापरकी सन्धिके समान काल रहता है, इस तीर्थमें स्नान करनेवालोंको कलियुगका स्पर्श नहीं होता। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। इसमें स्नान करो। इसके आगे आर्चीक पर्वत है। यहाँ अनेकों मनीषी महर्षिगण निवास करते हैं। इसपर अनेक प्रकारके देवस्थान हैं। यह चन्द्रमाका तीर्थ है। यहाँ वालखिल्य नामके तेजस्वी और वायुभोजी वानप्रस्थ रहते हैं। यहाँ तीन शिखर और तीन झरने हैं। ये बड़े ही पवित्र हैं। तुम प्रदक्षिणा करके क्रमशः इन सभीमें यथेच्छ स्नान करो। इसके पास ही यमुनाजी बह रही हैं। स्वयं श्रीकृष्णने भी यहाँ तपस्या की थी। नकुल, सहदेव, भीमसेन, द्रौपदी और हम सब भी तुम्हारे साथ इसी स्थानपर चलेंगे। इसी जगह महान् धनुर्धर राजा मान्धाताने भी यज्ञ किया था।

राजा मान्धाताका जन्मवृत्तान्त

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! राजा युवनाश्वके पुत्र नृपश्रेष्ठ मान्धाता तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनका जन्म किस प्रकार हुआ था?

लोमशजी बोले—राजा युवनाश्व इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने एक सहस्र अश्वमेध करके और भी बहुत-से यज्ञ किये और उन सभीमें बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दीं। अपने मन्त्रियोंपर राज्यका भार छोड़कर उस मनस्वी राजाने मनोनिग्रह करते हुए निरन्तर वनमें ही रहना आरम्भ कर

दिया । एक बार महर्षि भृगुके पुत्रने उससे पुत्र-प्राप्तिके लिये यज्ञ कराया । रात्रिके समय उपवाससे गला सूख जानेके कारण राजाको बड़ी प्यास लगी । उसने आश्रमके भीतर जाकर जल माँगा । किन्तु सब लोग रात्रिके जागरणसे थककर ऐसी गाढ़ निद्रामें पड़े थे कि किसीने उसकी आवाज न सुनी । महर्षिने मन्त्रपूत जलका एक बड़ा कलश रख छोड़ा था ।
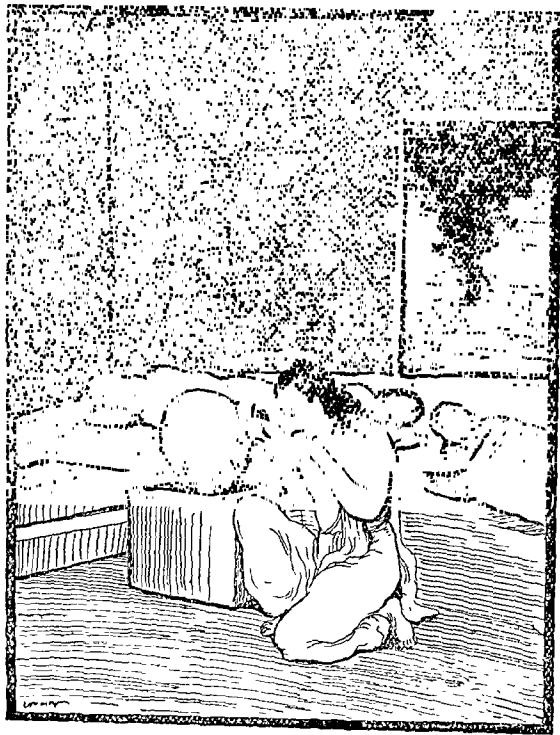
उसे देखकर राजाने जल्दीसे उसीमेंसे कुछ जल पीकर अपनी प्यास बुझायी और उसे वहीं छोड़ दिया ।

कुछ देरमें तपोधन भृगुपुत्रके सहित सब मुनिजन उठे और उन सभीने उस घड़ेको जलसे खाली देखा । तब उन सभीने आपसमें मिलकर पूछा कि यह किसका काम है । इसपर युवनाश्वने सच-सच कह दिया कि 'मेरा है ।' यह सुनकर भृगुपुत्रने कहा, 'राजन् ! यह काम अच्छा नहीं हुआ । मैंने तुम्हारे एक महान् बलवान् और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो—इसी उद्देश्यसे यह जल अभिमन्त्रित करके रक्खा था । अब जो हो गया, उसे पलटा भी नहीं जा सकता । अवश्य ही जो कुछ हुआ है, वह दैवकी ही प्रेरणासे हुआ है । तुमने प्याससे व्याकुल होकर मन्त्रपूत जल पिया है, इसलिये तुम्हींको एक पुत्र प्रसव करना होगा ।'

ऐसा कहकर मुनि अपने-अपने स्थानोंको चले गये । फिर सौ वर्ष बीतनेपर राजाकी बायीं कोख फाड़कर एक सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी बालक निकला । ऐसा होनेपर भी यह बड़ा आश्चर्य-सा हुआ कि इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई । उस बालकको देखनेके लिये स्वयं देवराज इन्द्र उस स्थानपर आये । उनसे देवताओंने पूछा 'किं धास्यति' यह बालक क्या पियेगा ? इसपर इन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली देकर कहा, 'मां धाता (मेरी अँगुली पियेगा) ।' इसीसे देवताओंने उसका नाम मान्धाता रक्खा । फिर उसके ध्यान करते ही धनुर्वेदके सहित सम्पूर्ण वेद और दिव्य अस्त्र उसके पास उपस्थित हो गये । साथ ही आजगव नामका धनुष
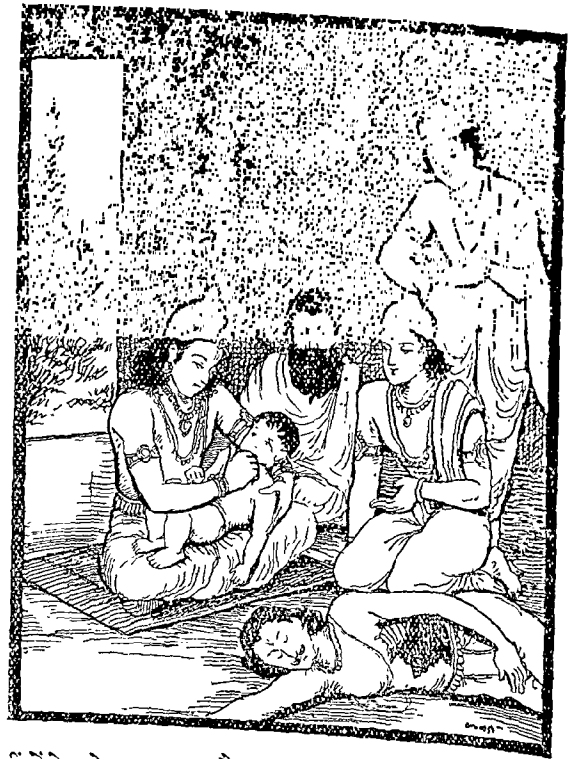
सींगोंके बने हुए बाण और अभेद्य कवच भी आ गये । इसके पश्चात् स्वयं इन्द्रने ही उसका राज्यसिंहासनपर अभिषेक किया ।

राजा मान्धाता सूर्यके समान तेजस्वी था । इस परम पवित्र कुरुक्षेत्र प्रदेशमें यह उसीका यज्ञ करनेका स्थान है । तुमने मुझसे उसके चरित्रके विषयमें पूछा था, सो मैंने उसका महत्त्वपूर्ण वृत्तान्त सुना दिया । राजन् ! इसी क्षेत्रमें पहले प्रजापतिने एक हजार वर्षमें पूर्ण होनेवाला इष्टीकृत नामका याग किया था । यहींपर नाभागके पुत्र राजा अम्बरीषने यमुनाजीके तटपर यज्ञके सदस्योंको दस पद्म गौएँ दान की थीं तथा अनेकों यज्ञ और तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी । यह

देश नहुषके पुत्र पुण्यकर्मा राजा ययातिका है। यहाँ राजा ययातिने अनेकों यज्ञ किये थे। इसी जगह महाराज भरतने भी अश्वमेध यज्ञ करके घोड़ा छोड़ा था। राजा मरुत्तने भी मुनिवर संवर्त्तकी अध्यक्षतामें इसी क्षेत्रमें यज्ञ किया था। राजन्! जो पुरुष इस तीर्थमें आचमन करता है, उसे सम्पूर्ण लोकोंका दर्शन होने लगता है और वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुम इसमें आचमन करो।

महर्षि लोमशकी यह बात सुनकर भाइयोंके सहित धर्मराज युधिष्ठिरने स्नान किया। उस समय महर्षिगण स्वस्तिवाचन कर रहे थे। स्नान कर चुकनेपर उन्होंने लोमशजीसे कहा, 'हे सत्यपराक्रमी मुनिवर! देखिये, इस त प्रभावसे मुझे सब लोक दिखायी दे रहे हैं। मैं यहींसे इ घोड़ेपर चढ़े हुए अर्जुनको देख रहा हूँ।' लोमशजीने क 'महाबाहो! तुम्हारा कथन ठीक है। महर्षिगण इसी प्रव स्वर्गका दर्शन किया करते हैं। देखो, यह परमपवित्र सरस्व नदी है। इसमें स्नान करनेसे पुरुष सब पापोंसे मुक्त जाता है। यह चारों ओरसे पाँच-पाँच कोसके विस्तारवा प्रजापति ब्रह्माकी वेदी है। यही महात्मा कुरुका क्षेत्र है, कुरुक्षेत्र नामसे विख्यात है।'

कुछ अन्य तीर्थोंका वर्णन और राजा उशीनरकी कथा

लोमशजी बोले—राजन्! यह विनशन तीर्थ है। यहाँ सरस्वती नदी अदृश्य हो जाती है। यह स्थान निषाद देशका द्वार है। यहाँ इस विचारसे कि निषादलोग मुझे न देखें सरस्वती भूमिमें समा गयी है। इसके आगे यह चमसोद्भेद नामका स्थान है, जहाँ सरस्वती फिर प्रकट हो जाती है और जहाँ इसमें समुद्रमें मिलनेवाली सब पवित्र नदियाँ मिल जाती हैं। यह सिन्धुनदीका बहुत बड़ा तीर्थस्थान है, इसी जगह अगस्त्यजीसे समागम होनेपर लोपामुद्राने उन्हें पतिरूपसे वरण किया था। यह विष्णुपद नामका पवित्र तीर्थ दिखायी दे रहा है और यह विपाशा नामकी परम पवित्र नदी है। हे शत्रुदमन! यह सबसे पवित्र काश्मीर मण्डल है। यहाँ अनेकों महर्षि निवास करते हैं, तुम भाइयोंके सहित उनके दर्शन करो। यह मानसरोवरका द्वार दिखायी दे रहा है। इस तीर्थमें एक बड़े आश्चर्यकी बात है। वह यह कि जब एक युग पूरा होता है तो यहाँ श्रीपार्वतीजी और पार्षदोंके सहित इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले श्रीमहादेवजीके दर्शन होते हैं। जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् याजकलोग अपने परिवारके हितकी कामनासे इस सरोवरपर चैत्र मासमें स्नान करके श्रीमहादेवजीका पूजन किया करते हैं।

यह सामने उज्जानक तीर्थ है। इसके पास ही यह कुशवान् सरोवर है। इसमें कुशेशय नामके कमल उत्पन्न होते हैं। पाण्डुनन्दन! अब तुम भृगुतुङ्ग पर्वतको देखोगे। पहले समस्त पापको नष्ट करनेवाली इस वितस्ता नदीके दर्शन करो। ये यमुनाकी ओरसे आनेवाली जला और उपजला नामकी नदियाँ हैं। इन्हींके तटपर यज्ञानुष्ठान करके राजा उशीनर इन्द्रसे भी बढ़ गये थे। राजन्! एक बार इन्द्र और अग्नि उनकी परीक्षा करनेके लिये आये। इन्द्रने बाजका और अग्निने कबूतरका रूप धार किया। इस प्रकार वे यज्ञशालामें महाराज उशीनरके पा पहुँचे। तब बाजके भयसे डरकर कबूतर अपनी रक्षाके लि राजाकी गोदीमें छिप गया। तब बाजने कहा, 'राजन् समस्त राजागण केवल आपको ही धर्मात्मा बताते हैं, सो आ यह सम्पूर्ण धर्मोंसे विरुद्ध कर्म कैसे करना चाहते हैं? मैं भूखसे मर रहा हूँ और यह कबूतर मेरा आहार है। आ धर्मके लोभसे इसकी रक्षा न करें।' राजाने कहा, 'महापक्षिन् यह पक्षी तुमसे डरकर भयभीत हुआ अपने प्राण बचानेके लिये मेरी शरणमें आया है। इसने अभय पानेके लिये ही मेरा आश्रय लिया है। यदि मैं इसे तुम्हारे चंगुलमें न पड़ने दूँ तो इसमें तुम्हें धर्म क्यों नहीं जान पड़ता? देखो, यह घबराहटके मारे कैसा काँप रहा है। इसने प्राणोंकी रक्षाके लिये ही मेरी शरण तकी है। ऐसी स्थितिमें इसे त्यागना तो बड़ी बुराईकी बात है। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी हत्या करता है, जो जगन्माता गौका वध करता है और जो शरणागतको त्यागता है—उन तीनोंको समान पाप लगता है।' बाज बोला, 'राजन्! सब प्राणी आहारसे ही उत्पन्न होते हैं और आहारसे ही उनकी वृद्धि होती है तथा आहारसे ही वे जीवित रहते हैं। जिस धनको त्यागना अत्यन्त कठिन माना जाता है, उसके बिना भी मनुष्य बहुत दिनोंतक जीवित रह सकता है; किन्तु भोजनको त्याग कर कोई भी अधिक समयतक नहीं टिक सकता। आज आपने मुझे भोजनसे वञ्चित कर दिया है, इसलिये मैं जी नहीं सकूँगा। और जब मैं मर जाऊँगा तो मेरे स्त्री-बच्चे भी नष्ट हो जायँगे। इस प्रकार इस कबूतरको बचाकर आप कई प्राणियोंकी जानके गाहक हो जायँगे। जो धर्म दूसरे धर्मका

बाधक हो वह धर्म नहीं, कुधर्म ही है; धर्म तो वही है, जिससे किसी दूसरे धर्मका विरोध न हो। जहाँ दो धर्मोंमें विरोध हो, वहाँ छोटे-बड़ेका विचार कर जिसका किसीसे विरोध न हो, उसी धर्मका आचरण करे। अतः राजन्! आप भी धर्म और अधर्मके निर्णयमें गौरव और लाघवपर दृष्टि रखकर जिसमें विशेष पुण्य हो, उसी धर्मके आचरणका निश्चय करें।'

इसपर राजाने कहा—पक्षिप्रवर! आप बहुत अच्छी बातें कह रहे हैं, क्या आप साक्षात् पक्षिराज गरुड़ हैं? इसमें तो सन्देह नहीं, आप धर्मके मर्मको अच्छी तरह समझते हैं। आप जो बातें कह रहे हैं वे बड़ी ही विचित्र और धर्मसम्मत हैं। मैं यह भी देखता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपको मालूम न हो। किन्तु शरणार्थीके परित्यागको आप कैसे अच्छा मानते हैं? पक्षिवर! आपका यह सारा प्रयत्न आहारके लिये ही जान पड़ता है, सो आपको आहार तो इससे भी अधिक दिया जा सकता है। लीजिये, मैं आपको शिबि प्रदेशका समृद्धिशाली राज्य देता हूँ। और भी आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मैं दे सकता हूँ। किन्तु इस शरणमें आये हुए पक्षीको नहीं त्याग सकता। विहगवर! जिस कामके करनेसे आप इसे छोड़ सकें, वह मुझे बताइये। मैं वही करूँगा, किन्तु इस कबूतरको तो नहीं दूँगा।

बाज बोला—नृपवर! यदि आपका इस कबूतरपर स्नेह है तो इसीके बराबर अपना मांस काटकर तराजूमें रखिये। जब वह तौलमें इस कबूतरके बराबर हो जाय तो वही मुझे दे दीजिये। उसीसे मेरी तृप्ति हो जायगी।

लोमशजी कहने लगे—राजन्! फिर परम धर्मज्ञ उशीनरने अपना मांस काटकर तौलना आरम्भ किया। दूसरे पलड़ेमें रक्खा हुआ कबूतर उनके मांससे भारी ही निकला, तो उन्होंने फिर अपना मांस काटकर रक्खा। इस प्रकार कई

बार करनेपर भी जब मांस कबूतरके बराबर न हुआ तो वह स्वयं ही तराजूमें बैठ गया। यह देखकर बाज बोला, 'हे धर्मज्ञ! मैं इन्द्र हूँ और ये अग्निदेव हैं; हम आपकी धर्मनिष्ठाकी परीक्षा लेनेके लिये ही आपकी यज्ञशालामें आये थे। राजन्! जबतक संसारमें लोगोंको आपका स्मरण रहेगा, तबतक आपका सुयश निश्चल रहेगा और आप पुण्यलोकोंका भोग करेंगे।' राजासे ऐसा कहकर वे दोनों देवलोकको चले गये। महाराज! यह पवित्र आश्रम उसी महानुभाव राजा उशीनरका है। यह बड़ा ही पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला है। आप मेरे साथ इसके दर्शन करें।

अष्टावक्रके जन्म और शास्त्रार्थका वृत्तान्त

मुनिवर लोमशने कहा—राजन्! उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतु इस पृथ्वीभरमें मन्त्रशास्त्रमें पारङ्गत समझे जाते थे। यह निरन्तर फल-फूलोंसे सम्पन्न रहनेवाला आश्रम उन्हींका है। आप इसके दर्शन कीजिये। इस आश्रममें महर्षि श्वेतकेतुको मानवीके रूपमें साक्षात् सरस्वती देवीके दर्शन हुए थे।

लोमशजीने कहा—उद्दालक मुनिका कहोड नामसे प्रसिद्ध एक शिष्य था। उसने अपने गुरुदेवकी बड़ी सेवा की। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने बहुत जल्द सब वेद पढ़ा दिये और अपनी कन्या सुजाता भी उसे विवाह दी। कुछ काल बीतनेपर सुजाता गर्भवती हुई। वह गर्भ अग्निके समान तेजस्वी था। एक दिन कहोड वेदपाठ कर रहे थे, उस समय वह बोला, 'पिताजी! आप रातभर वेदपाठ करते हैं, किन्तु यह ठीक-ठीक नहीं होता।'

शिष्योंके बीचमें ही इस प्रकार आक्षेप करनेसे पिताको

बहुत क्रोध हुआ और उन्होंने उस उदरस्थ बालकको शाप दिया कि तू पेटमेंसे ही ऐसी टेढ़ी-टेढ़ी बातें करता है, इसलिये आठ जगहसे टेढ़ा उत्पन्न होगा। जब अष्टावक्र पेटमें बढ़ने लगे तो सुजाताको बड़ी पीड़ा हुई और उसने एकान्तमें अपने धनहीन पतिसे धन लानेके लिये प्रार्थना की। कहोड धन लेनेके लिये राजा जनकके पास गये, किन्तु वहाँ वाद करनेमें कुशल बन्दीने उन्हें शास्त्रार्थमें हरा दिया और शास्त्रार्थके नियमके अनुसार उन्हें जलमें डुबो दिया गया। जब उद्दालकको यह समाचार विदित हुआ तो उन्होंने सुजाताके पास जाकर उसे सब बात सुना दी और कहा कि तू अष्टावक्रसे इसके विषयमें कुछ मत कहना। इसीसे उत्पन्न होनेके पश्चात् अष्टावक्रको इसका कुछ पता न लगा। वे उद्दालकको ही अपना पिता समझते थे और उनके पुत्र श्वेतकेतुको अपना भाई मानते थे।

एक दिन जब अष्टावक्रकी आयु बारह वर्षकी थी, वे उद्दालककी गोदमें बैठे थे। उसी समय वहाँ श्वेतकेतु आये

और उन्हें पिताकी गोदमेंसे खींचकर कहा, 'यह गोदी तेरे बापकी नहीं है।' श्वेतकेतुकी इस कटूक्तिसे उनके चित्तपर बड़ी चोट लगी और उन्होंने घर जाकर अपनी मातासे पूछा कि 'मेरे पिता कहाँ गये हैं?' इससे सुजाताको बड़ी घबराहट हुई और उसने शापके भयसे सब बात बता दी। यह सब रहस्य सुनकर उन्होंने रात्रिके समय श्वेतकेतुसे मिल यह सलाह की कि 'हम दोनों राजा जनकके यज्ञमें च वह यज्ञ बड़ा विचित्र सुना जाता है। वहाँ हम ब्राह्मण बड़े-बड़े शास्त्रार्थ सुनेंगे।' ऐसी सलाह करके वे दोनों मा भानजे राजा जनकके समृद्धिसम्पन्न यज्ञके लिये चल दिये।

यज्ञशालाके द्वारपर पहुँचकर जब वे भीतर ज लगे तो उनसे द्वारपालने कहा—आपलोगोंको प्रणाम हम तो आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, राजाके आदेशानुसार हम जो निवेदन है, उसपर आप ध्यान दें। इस यज्ञशाल बालकोंको जानेकी आज्ञा नहीं है, केवल वृद्ध और विद्व ब्राह्मण ही इसमें प्रवेश कर सकते हैं।

तब अष्टावक्रने कहा—द्वारपाल! मनुष्य अ वर्षोंकी उम्र होनेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा अ
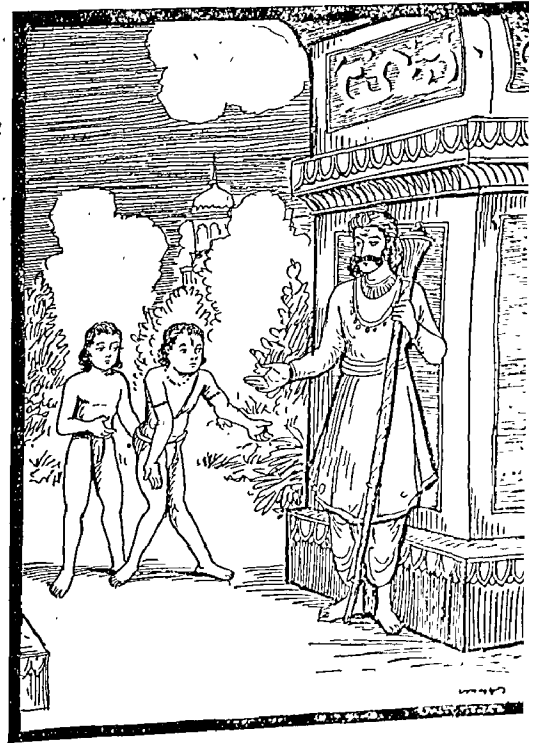
कुटुम्बसे बड़ा नहीं माना जाता। ब्राह्मणोंमें तो वही बड़ा जो वेदोंका वक्ता हो। ऋषियोंने ऐसा ही नियम बताया है मैं इस राजसभामें बन्दीसे मिलना चाहता हूँ। तुम मे ओरसे यह सूचना महाराजको दे दो। आज तुम हमें विद्वा के साथ शास्त्रार्थ करते देखोगे और वाद बढ़ जानेपर बन्द को परास्त हुआ पाओगे।

द्वारपाल बोला—'अच्छा, मैं किसी उपायसे आपक

सभामें ले जानेका प्रयत्न करता हूँ, किन्तु वहाँ जाकर आपको विद्वानोंके योग्य काम करके दिखाना चाहिये।' ऐसा कहकर द्वारपाल उन्हें राजाके पास ले गया। वहाँ अष्टावक्रने कहा, 'राजन्! आप जनकवंशमें प्रधान स्थान रखते हैं और चक्रवर्ती राजा हैं। मैंने सुना है, आपके यहाँ बन्दी नामका कोई विद्वान् है। वह ब्राह्मणोंको शास्त्रार्थमें परास्त कर देता है और फिर आपहीके आदमियोंसे उन्हें जलमें डलवा देता है। यह बात ब्राह्मणोंके मुखसे सुनकर मैं अद्वैत ब्रह्मविषयपर उससे शास्त्रार्थ करने आया हूँ। वह बन्दी कहाँ है, मैं उससे मिलूँगा।'

राजाने कहा—'बन्दीका प्रभाव बहुत-से वेदवेत्ता ब्राह्मण देख चुके हैं। तुम उसकी शक्तिको न समझकर ही उसे जीतनेकी आशा कर रहे हो। पहले कितने ही ब्राह्मण आये; किन्तु सूर्यके आगे जैसे तारे फीके पड़ जाते हैं, उसी प्रकार वे सभी उसके सामने हतप्रभ हो गये।' इसपर अष्टावक्रने कहा, 'उसे मेरे-जैसोंसे पाला नहीं पड़ा, इसीसे वह सिंहके समान निर्भय होकर बातें करता है। किन्तु अब मुझसे परास्त होकर वह उसी प्रकार मूक हो जायगा, जैसे रास्तेमें टूटा हुआ रथ जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहता है।'
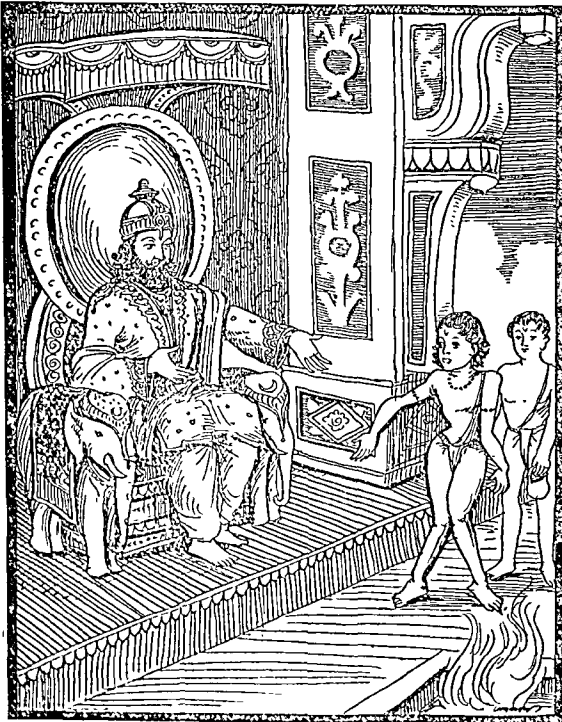
तब राजाने अष्टावक्रकी परीक्षा करनेके विचारसे कहा—'जो पुरुष तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरोंवाले पदार्थको जानता है वह बड़ा विद्वान् है।' यह सुनकर अष्टावक्र बोले—'जिसमें पक्षरूप चौबीस पर्व, ऋतुरूप छः नाभि, मासरूप बारह अंश और दिनरूप तीन सौ साठ अरे हैं वह निरन्तर घूमनेवाला संवत्सररूप कालचक्र आपकी रक्षा करे।'

ऐसा यथार्थ उत्तर सुनकर राजाने ये प्रश्न किये—'सोनेके समय कौन नेत्र नहीं मूँदता? जन्म लेनेके बाद किसमें गति नहीं होती? हृदय किसमें नहीं है? और वेगसे कौन बढ़ता है?' अष्टावक्रने कहा, 'मछली सोनेके समय नेत्र नहीं मूँदती, अण्डा उत्पन्न होनेपर चेष्टा नहीं करता, पत्थरमें हृदय नहीं है और नदी वेगसे बढ़ती है।' यह सुनकर राजाने कहा, 'आप तो देवताओंके समान प्रभाववाले हैं। मैं आपको मनुष्य नहीं समझता। आप बालक भी नहीं हैं, मैं तो आपको वृद्ध ही मानता हूँ। वाद-विवाद करनेमें आपके समान कोई नहीं है। इसलिये मैं आपको मण्डपका द्वार सौंपता हूँ और यही वह बन्दी है।'

तब अष्टावक्रने बन्दीकी ओर घूमकर कहा—अपनेको अतिवादी[1] माननेवाले बन्दी! तुमने हारनेवालोंको जलमें डुबोनेका नियम कर रक्खा है। किन्तु मेरे सामने तुम बोल नहीं सकोगे। जैसे प्रलयकालीन अग्निके निकट नदीका प्रवाह सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे सामने तुम्हारी वादशक्ति नष्ट हो जायगी। अब तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो और मैं तुम्हारी बातोंका उत्तर देता हूँ।

राजन्! जब भरी सभामें अष्टावक्रने क्रोधके साथ गरजकर इस प्रकार ललकारा तो बन्दीने कहा—"अष्टावक्र! एक ही अग्नि अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है, एक सूर्य सारे जगत्को प्रकाशित कर रहा है, शत्रुओंका नाश करनेवाला देवराज इन्द्र एक ही वीर है तथा पितरोंका ईश्वर यमराज भी एक ही है।"

अष्टावक्र—"इन्द्र और अग्नि—ये दो देवता हैं, नारद और पर्वत—ये देवर्षि भी दो हैं, दो ही अश्विनीकुमार हैं,

[1] शास्त्रार्थविजयी।

रथके पहिये भी दो होते हैं और विधाताने पति और पत्नी —ये सहचर भी दो ही बनाये हैं।''

वन्दी—''यह सम्पूर्ण प्रजा कर्मवश तीन प्रकारसे जन्म धारण करती है; सब कर्मोंका प्रतिपादन भी तीन वेद ही करते हैं, अध्वर्युजन भी प्रातः, मध्याह्न और सायं—इन तीनों समय यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; कर्मानुसार प्राप्त होनेवाले भोगोंके लिये स्वर्ग, मृत्यु और नरक—ये लोक भी तीन ही हैं तथा वेदमें कर्मजन्य ज्योतियाँ भी तीन प्रकारकी हैं।''

अष्टावक्र—''ब्राह्मणोंके लिये आश्रम चार हैं, वर्ण भी चार ही यज्ञोंद्वारा अपना-अपना निर्वाह करते हैं, मुख्य दिशाएँ भी चार ही हैं; ॐकारके अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये चार ही वर्ण हैं तथा परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भेदसे वाणी भी चार ही प्रकारकी कही गयी है।''

वन्दी—''यज्ञकी अग्नियाँ (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य) पाँच हैं, पंक्ति छन्द भी पाँच पदोंवाला है, यज्ञ भी (अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और सोम) पाँच ही प्रकारके हैं, इन्द्रियाँ पाँच हैं, वेदमें पञ्च शिखावाली अप्सराएँ भी पाँच हैं तथा संसारमें पवित्र नद भी पाँच ही प्रसिद्ध हैं।''

अष्टावक्र—''कितने ही इस प्रकार कहते हैं कि अग्नि-का आधान करते समय दक्षिणामें गौएँ छः ही देनी चाहि कालचक्रमें ऋतुएँ भी छः ही रहती हैं, मनसहित ज्ञानेन्द्रि भी छः ही हैं, कृत्तिकाएँ छः हैं तथा समस्त वेदोंमें साध यज्ञ भी छः ही कहे गये हैं।''

वन्दी—''ग्राम्य पशु सात हैं, वन्य पशु भी सात ही यज्ञको पूर्ण करनेवाले छन्द भी सात ही हैं, ऋषि सात मान देनेके प्रकार भी सात हैं और वीणाके तार भी सात प्रसिद्ध हैं।''

अष्टावक्र—''सैकड़ों वस्तुओंका तौल करनेवाले शा (तोल) के गुण आठ होते हैं, सिंहका नाश करनेवाले शरभ के चरण भी आठ ही हैं, देवताओंमें वसु नामक देवताओंक भी आठ ही सुना है और सब यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भके कोण भ आठ ही कहे हैं।''

वन्दी—''पितृयज्ञमें समिधा छोड़नेके मन्त्र नौ कहे गये हैं, सृष्टिमें प्रकृतिके विभाग भी नौ ही किये गये हैं, बृहती छन्दके अक्षर भी नौ ही हैं और जिनसे अनेकों प्रकारकी संख्याएँ उत्पन्न होती हैं, ऐसे एकसे लेकर अंक भी नौ ही हैं।''

अष्टावक्र—''संसारमें दिशाएँ दस हैं, सहस्रकी संख्या भी सौको दस बार गिननेसे ही होती है, गर्भवती स्त्री भी गर्भधारण दस मास ही करती है, तत्त्वका उपदेश करनेवाले भी दस हैं तथा पूजनेयोग्य भी दस ही हैं।''

वन्दी—''पशुओंके शरीरोंमें ग्यारह विकारोंवाली इन्द्रियाँ ग्यारह होती हैं, यज्ञके स्तम्भ ग्यारह होते हैं, प्राणियोंके विकार भी ग्यारह हैं तथा देवताओंमें रुद्र भी ग्यारह ही कहे गये हैं।''

अष्टावक्र—''एक वर्षमें महीने बारह होते हैं, जगती छन्दके चरणोंमें भी बारह ही अक्षर होते हैं, प्राकृत यज्ञ बारह दिनका कहा है और धीर पुरुषोंने आदित्य भी बारह ही कहे हैं।''

वन्दी—''तिथियोंमें त्रयोदशीको उत्तम कहा है और पृथ्वी भी तेरह द्वीपोंवाली बतलायी गयी है।''*

इस प्रकार वन्दीके आधा श्लोक ही कहकर चुप हो जानेपर अष्टावक्रजी शेष आधे श्लोकको पूरा करते हुए कहने लगे—''अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों देवता तेरह दिनोंके यज्ञोंमें व्यापक हैं और वेदोंमें भी तेरह आदि अक्षरोंवाले

* त्रयोदशी तिथिरुक्ता प्रशस्ता त्रयोदशद्वीपवती मही च।

अतिछन्द कहे गये हैं।''* इतना सुनते ही बन्दीका मुख नीचा हो गया और वह बड़े विचारमें पड़ गया। परन्तु अष्टावक्रके मुखसे वाणीकी झड़ी लगी ही रही। यह देखकर सभाके ब्राह्मण हर्षध्वनि करते हुए अष्टावक्रके पास आकर उनका सम्मान करने लगे।

अष्टावक्रने कहा—''राजन्! यह बन्दी शास्त्रार्थमें अनेकों विद्वान् ब्राह्मणोंको परास्त कर जलमें डुबवा चुका है। अब इसकी भी तुरंत वही गति होनी चाहिये।''

बन्दीने कहा—''महाराज! मैं जलाधीश वरुणका पुत्र हूँ। मेरे पिताके यहाँ भी आपकी ही तरह बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाला यज्ञ हो रहा है। उसीके लिये मैंने जलमें डुबानेके बहाने चुने हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वरुणलोक भेज दिया है, वे सब अभी लौट आवेंगे। अष्टावक्रजी मेरे पूजनीय हैं, इनकी कृपासे जलमें डूबकर मैं भी अपने पिता वरुणदेवसे शीघ्र मिलनेका सौभाग्य प्राप्त करूँगा।''

राजाको बन्दीकी बातोंमें फँस देर करते देखकर अष्टावक्र कहने लगे—राजन्! मैं कई बार कह चुका, फिर भी तुम मतवाले हाथीकी तरह कुछ भी सुन नहीं रहे हो। इससे मालूम पड़ता है लसौड़ेके पत्तोंपर भोजन करनेसे तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है अथवा तुम इस चापलूसकी बातोंमें आ गये हो।

जनकने कहा—देव! मैं आपकी दिव्य वाणी सुन रहा हूँ, आप साक्षात् दिव्य पुरुष हैं। आपने शास्त्रार्थमें बन्दीको परास्त कर दिया है। मैं आपके इच्छानुसार अभी-अभी इसके दण्डकी व्यवस्था करता हूँ।

बन्दीने कहा—राजन्! वरुणका पुत्र होनेसे मुझे डूबनेमें कुछ भी भय नहीं है। ये अष्टावक्र भी बहुत दिनों-से डूबे हुए अपने पिता कहोडका अभी दर्शन करेंगे।

लोमशजी कहते हैं—सभामें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि समुद्रमें डुबाये हुए सभी ब्राह्मण वरुणदेवसे सम्मानित होकर जलसे बाहर निकल आये और राजा जनककी सभामें आ पहुँचे। उनमेंसे कहोडने कहा, 'मनुष्य ऐसे ही कामोंके लिये पुत्रोंकी कामना करते हैं। जिस कामको मैं नहीं कर सका था, वही मेरे पुत्रने करके दिखा दिया। राजन्! कभी-कभी दुर्बल मनुष्यके भी बलवान् और मूर्खके भी विद्वान् पुत्र उत्पन्न हो जाता है।' इसके पश्चात् बन्दी भी राजा जनककी आज्ञा लेकर समुद्रमें कूद पड़ा। तदनन्तर ब्राह्मणोंने अष्टावक्रकी पूजा की और अष्टावक्रने अपने पिताका पूजन किया। फिर अपने मामा श्वेतकेतुके सहित वे अपने आश्रमको चले। वहाँ पहुँचकर कहोडने अष्टावक्रसे कहा, 'तुम इस समंगा नदीमें प्रवेश करो।' बस, अष्टावक्रने जैसे ही उसमें डुबकी लगायी कि उनके अंग सीधे हो गये। उनके संसर्गसे यह नदी भी पवित्र हो गयी। जो पुरुष इस नदीमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्!

तुम भी द्रौपदी और भाइयोंके सहित स्नान और आचमन करनेके लिये इसमें प्रवेश करो।

पाण्डवोंकी गन्धमादन-यात्रा

लोमश मुनिने कहा—राजन्! यह मधुविला नदी दिखायी दे रही है, इसीका दूसरा नाम समंगा है। यह कर्दमिल क्षेत्र है। यहाँ राजा भरतका अभिषेक किया गया था। वृत्रासुरका वध करनेपर शचीपति इन्द्र जब राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गये थे, तब इस समंगा नदीमें स्नान करके ही वे पापोंसे छुटकारा पा सके थे। यह मैनाक पर्वतके मध्यभागमें विनशन

* त्रयोदशाहानि ससार केशी त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः॥

तीर्थ है। इधर यह कनखल नामकी पर्वतमाला है। यह ऋषियोंको बहुत प्रिय है। इसके पास ही यह महानदी गङ्गा दिखायी दे रही है। पूर्वकालमें यहाँ भगवान् सनत्कुमारने सिद्धि प्राप्त की थी। राजन्! इसमें स्नान करके तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे। इसके आगे पुण्य नामका सरोवर और भृगुतुङ्ग नामका पर्वत आवेगा। वहाँ तुम उष्णगङ्गा तीर्थमें अपने मन्त्रियोंके सहित स्नान करना। देखो, वह स्थूलशिरा मुनिका सुन्दर आश्रम दिखायी दे रहा है। वहाँ अपने मनसे मान और क्रोधको निकाल देना। इधर यह रैभ्य ऋषिका श्रीसम्पन्न आश्रम सुशोभित है। यहाँके वृक्ष सर्वदा फल-फूलोंसे लदे रहते हैं। यहाँ निवास करनेसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे।

राजन्! तुम उशीरबीज, मैनाक, श्वेत और काल नामके पर्वतोंको लाँघकर आगे निकल आये हो। यहाँ सात प्रकारसे बहती हुई श्रीभागीरथी सुशोभित हैं। यह बड़ा ही निर्मल और पवित्र स्थान है। यहाँ अग्नि सर्वदा ही प्रज्वलित रहती है। अब यह स्थान मनुष्योंको दिखायी नहीं देता। तुम धैर्यपूर्वक समाधि प्राप्त करो, तब इन तीर्थोंका दर्शन कर सकोगे। अब हम मन्दराचल पर्वतपर चलेंगे। वहाँ मणिभद्र नामका यक्ष और यक्षराज कुबेर रहते हैं। राजन्! इस पर्वतपर अट्ठासी हजार गन्धर्व और किन्नर तथा उनसे चौगुने यक्ष अनेकों प्रकारके शस्त्र धारण किये यक्षराज मणिभद्रकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। ये तरह-तरहके रूप धारण कर लेते हैं। यहाँ उनका बड़ा प्रभाव है, गतिमें तो वे साक्षात् वायुके समान हैं। उन बलवान् यक्ष और राक्षसोंसे सुरक्षित रहनेके कारण ये पर्वत बड़े दुर्गम हैं, इसलिये यहाँ तुम बहुत सावधान रहना। हमें यहाँ कुबेरके साथी जो मैत्र नामके भयानक राक्षस हैं, उनसे सामना करना पड़ेगा। राजन्! कैलास पर्वत छः योजन ऊँचा है। उस पर्वतपर देवता आया करते हैं और उसीपर बदरिकाश्रम नामका तीर्थ भी है। अतः तुम मेरी तपस्या और भीमसेनके बलसे सुरक्षित होकर इस तीर्थमें स्नान करो। 'देवि गङ्गे! मैं काञ्चनमय पर्वतसे उतरती हुई आपकी कलकल ध्वनि सुन रहा हूँ। आप इन नरेन्द्र युधिष्ठिरकी रक्षा करें।' इस प्रकार गङ्गाजीसे प्रार्थना करके लोमशजीने युधिष्ठिरको सावधान होकर आगे बढ़नेका आदेश दिया।

तब महाराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा—भाइयो! महर्षि लोमशजी इस देशको अत्यन्त भयङ्कर मानते हैं। इसलिये तुमलोग द्रौपदीकी सँभाल रक्खो, इसमें प्रमाद न हो। यहाँ मन, वाणी और शरीरसे भी बहुत पवित्र रहना। भीमसेन! मुनिवरने कैलासके विषयमें जो बात कही है, वह तुमने भी सुनी ही है। अब जरा विचार लो इसपर द्रौपदी कैसे बढ़ेगी। नहीं तो, एक काम करो सहदेव! भगवान् धौम्य, रसोइयों, पुरवासियों, रथ, घोड़ों, नौकर-चाकरों और रास्तेका कष्ट न सह सकनेवाले ब्राह्मणोंको लेकर तुम लौट जाओ। मैं, नकुल और भगवान् लोमशजी—तीन ही अल्पाहारका नियम रखते हुए इस पर्वतपर चढ़ेंगे। मेरे लौटकर आने-

तक तुम सावधानीसे हरिद्वारमें रहो और जबतक मैं न आऊँ, द्रौपदीकी भलीभाँति देख-रेख करते रहो।

भीमसेनने कहा—राजन्! इस पर्वतपर राक्षसोंकी भरमार है। यों भी यह बड़ा ही दुर्गम और बीहड़ है। सौभाग्यवती द्रौपदी भी आपके बिना लौटना नहीं चाहती। इसी तरह यह सहदेव भी सदा आपके पीछे ही रहना चाहता है। मैं इसके मनकी बात खूब जानता हूँ, यह भी कभी नहीं लौटेगा। इसके सिवा सभी लोग अर्जुनको देखनेके लिये बहुत उत्सुक हो रहे हैं, इसलिये सब आपके साथ ही चलेंगे। यदि अनेकों गुहाओंके कारण इस पर्वतपर रथोंसे यात्रा करना सम्भव न हो तो हम पैदल ही चलेंगे।

और आप चिन्ता न करें; जहाँ-जहाँ द्रौपदी पैदल न चल सकेगी, वहाँ-वहाँ मैं इसे कन्धेपर चढ़ाकर ले चलूँगा। ये माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी सुकुमार हैं; जहाँ कहीं दुर्गम स्थानमें इन्हें चलनेकी शक्ति न होगी, वहाँ इन्हें भी मैं पार लगा दूँगा।

यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'तुम यशस्विनी पाञ्चाली और नकुल, सहदेवको भी ले चलनेका साहस दिखा रहे हो, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। किसी दूसरेसे ऐसी आशा नहीं की जा सकती। भैया! तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हारे बल, धर्म और सुयशकी वृद्धि हो।' फिर द्रौपदीने भी हँसकर कहा, 'राजन्! मैं आपके साथ ही चलूँगी, आप मेरेलिये चिन्ता न करें।'

लोमशजी बोले—कुन्तीनन्दन! इस गन्धमादन पर्वतपर तपके प्रभावसे ही चढ़ा जा सकता है, इसलिये हम सभीको तपस्या करनी चाहिये। तपके द्वारा ही हम, तुम तथा नकुल, सहदेव और भीमसेन अर्जुनको देख सकेंगे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बातचीत करते वे आगे बढ़े तो उन्हें राजा सुबाहुका विस्तृत देश दिखायी दिया। वहाँ हाथी-घोड़ोंकी बहुतायत थी तथा सैकड़ों किरात, तंगण और पुलिन्द जातिके लोग रहते थे। जब पुलिन्द देशके राजाको पता लगा कि उसके देशमें पाण्डवलोग आये हैं तो उसने बड़े प्रेमसे उनका सत्कार किया। उससे पूजित होकर वे बड़े आनन्दसे उसके यहाँ रहे; दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर उन्होंने बर्फीले पहाड़ोंकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने इन्द्रसेन आदि सेवकोंको, रसोइयोंको तथा द्रौपदीके सारे सामानको पुलिन्दराजके यहाँ छोड़ दिया और फिर पैदल ही आगे बढ़े।

फिर युधिष्ठिर इस प्रकार कहने लगे—भीम! मैं अर्जुनको देखनेकी इच्छासे ही पाँच वर्षसे तुम सबको साथ लिये सुरम्य तीर्थ, वन और सरोवरोंमें विचर रहा हूँ; परन्तु अभीतक सत्यसन्ध और शूरवीर धनञ्जयको न देख सकनेसे मुझे बड़ा ताप हो रहा है। अर्जुनके गुणोंकी क्या बात कहूँ? यदि छोटे-से-छोटा आदमी भी उसका तिरस्कार करता तो भी वह उसे क्षमा कर देता था। सीधी-सादी चालसे चलनेवाले पुरुषोंको वह सुख-शान्ति देता था और उन्हें अभय कर देता था। यदि कोई छल-कपटसे उसके साथ घात करता तो वह, स्वयं इन्द्र ही क्यों न हो, उसके हाथसे बच नहीं सकता था। अपनी शरणमें आये हुए शत्रुपर भी उसका बड़ा उदार भाव रहता था। हम सबका तो वह सहारा ही था। वह शत्रुओंको कुचलनेवाला, सब प्रकारके रत्नोंको जीतनेवाला और सभीको सुखी रखनेवाला था। देखो, उसीके बाहुबलके प्रतापसे मुझे त्रिलोकीमें विख्यात दिव्य सभा मिली थी। उसका पराक्रम महाबली संकर्षण, वीरवर वासुदेव और तुमसे टक्कर लेता है। उसीको देखनेके लिये हमलोग गन्धमादन पर्वतपर चढ़ रहे हैं। इस देशमें कोई सवारीपर बैठकर नहीं चल सकता और न क्रूर, लोभी एवं अशान्तचित्त पुरुष ही यहाँकी यात्रा कर सकते हैं। जो लोग असंयमी होते हैं उन्हींको यहाँ मक्खी, मच्छर, डाँस, सिंह, व्याघ्र और सर्पादि सताते हैं; संयमियोंके तो ये सामने भी नहीं आते। अतः हमें संयतचित्त और अल्पाहारी होकर इस पर्वतपर चढ़ना चाहिये।

लोमश मुनि बोले—हे सौम्य! यह शीतल और पवित्र जलवाली अलकनन्दा नदी बह रही है। यह बदरिकाश्रमसे ही निकली है। देवर्षिगण इसके जलका सेवन करते हैं। आकाशचारी वालखिल्यगण और गन्धर्वगण भी इसके तटपर आते रहते हैं। यहाँ मरीचि, पुलह, भृगु और अंगिरा आदि मुनिगण शुद्ध स्वरसे सामगान किया करते हैं। गङ्गाद्वारमें भगवान् शङ्करने इसी नदीका जल अपनी जटाओंमें धारण किया था। तुम सब विशुद्ध भावसे इस भगवती भागीरथीके पास जाकर प्रणाम करो।

महामुनि लोमशकी यह बात सुनकर पाण्डवोंने अलकनन्दाके पास जाकर प्रणाम किया। और फिर बड़े आनन्दसे समस्त ऋषियोंके सहित चलने लगे।

लोमशजीने कहा—सामने जो यह कैलास पर्वतके शिखरके समान सफेद-सफेद पहाड़-सा दिखायी दे रहा है, वह नरकासुरकी हड्डियाँ हैं। पूर्वकालमें देवराज इन्द्रका हित करनेके लिये इसी स्थानपर भगवान् विष्णुने उस दैत्यका वध किया था। उस दैत्यने दस हजार वर्षतक कठोर तपस्या करके इन्द्रासन लेना चाहा। अपने तपोबल और बाहुबलके कारण वह देवताओंके लिये अजेय हो गया था और उन्हें सदा ही तंग करता रहता था। इससे इन्द्रको बड़ी घबराहट हुई और वे मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे। भगवान्ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। तब सभी देवता और ऋषियोंने उनकी स्तुति की और अपना सारा कष्ट सुना

दिया । इसपर भगवान्‌ने कहा, 'देवराज ! तुम्हें नरकासुरसे भय है, यह मैं जानता हूँ और यह बात भी मुझसे छिपी नहीं है कि वह अपने तपके प्रभावसे तुम्हारा स्थान छीनना चाहता है । सो तुम निश्चिन्त रहो । वह तपस्यासे भले ही सिद्ध हो

गया हो, तो भी मैं शीघ्र ही उसे मार डालूँगा ।' देवराजसे ऐसा कहकर उन्होंने एक ही तमाचेसे उसके प्राण ले लिये और वह चोट खाये हुए पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर ग इस प्रकार भगवान्‌के द्वारा मारे हुए उस दैत्यकी हड्डि ढेर ही यह सामने दिखायी दे रहा है ।

इसके सिवा श्रीविष्णुभगवान्‌का एक और कर्म प्रसिद्ध है । सत्ययुगमें आदिदेव श्रीनारायण यमका करते थे । उस समय मृत्यु न होनेके कारण सभी प्राणी बढ़ गये थे । उनके भारसे आक्रान्त पृथ्वी जलके सौ योजन धुस गयी और श्रीनारायणकी शरणमें ज कहने लगी—'भगवन् ! आपकी कृपासे मैं बहुत समय स्थिर रही; परन्तु अब बोझा बहुत बढ़ गया है, इसलिये ठहर नहीं सकूँगी । मेरे इस भारको आप ही दूर कर स हैं । मैं शरणागता हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये ।'

पृथ्वीके ये वचन सुनकर श्रीभगवान्‌ने कहा—पृथ्वी ! तू भारसे पीडित है—यह ठीक है, किन्तु भयकी क बात नहीं है । मैं अब ऐसा उपाय करूँगा, जिससे तू हल्की जायगी ।' ऐसा कहकर भगवान्‌ने पृथ्वीको विदा कर दि और स्वयं एक सींगवाले वराहका रूप धारण किया । फि भूमिको उसी एक सींगपर रखकर सौ योजन नीचेसे पानीके बाहर ले आये ।

इस अद्भुत कथाको सुनकर पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए और लोमशजीके बताये हुए मार्गसे जल्दी-जल्दी चलने लगे ।

बदरिकाश्रमकी यात्रा

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! जब पाण्डवोंने गन्धमादन पर्वतपर पदार्पण किया तो बड़ा प्रचण्ड पवन बहने लगा । वायुके वेगसे धूल और पत्ते उड़ने लगे । उन्होंने अकस्मात् पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर लिया । धूलके कारण अन्धकार छा जानेसे एक दूसरेको देखना और आपसमें बात करना कठिन हो गया । थोड़ी देरमें जब वायुका वेग कम हुआ तो धूल उड़नी बंद हो गयी और मूसलधार वर्षा होने लगी । आकाशमें क्षण-क्षणमें बिजली चमकने लगी और वज्रपातके समान मेघोंकी गड़गड़ाहट होने लगी । कुछ देर पीछे यह तूफान शान्त हुआ । पवनका वेग कम हुआ, बादल फट गये और सूर्यदेव उनकी ओटसे निकलकर चमकने लगे ।

इस स्थितिमें पाण्डवलोग प्रायः एक कोस ही गये होंगे कि पञ्चाल-राजकुमारी द्रौपदी इस बवंडरके उत्पातसे थक-कर शिथिल हो गयी । वह सुकुमारी थी, इस प्रकार पैदल चलनेका उसे अभ्यास ही नहीं था, इसलिये वह पृथ्वीपर बैठ गयी । तब धर्मराज युधिष्ठिरने उसे गोदमें लिटाकर भीमसेनसे कहा, 'भैया भीम ! अभी तो बहुत-से ऊँचे-नीचे

भगवान विष्णु

पर्वत आवेंगे। बर्फके कारण उनको पार करना बड़ा ही कठिन होगा। उनपर सुकुमारी द्रौपदी कैसे चलेगी?' तब भीमसेनने कहा, 'राजन्! मैं स्वयं ही आपको, द्रौपदीको और नकुल-सहदेवको ले चलूँगा; आप चिन्ता न करें। इसके सिवा हिडिम्बाका पुत्र घटोत्कच भी बलमें मेरे ही समान है, वह आकाशमें चल सकता है। आपकी आज्ञा होनेपर वह हम सबको ले चलेगा।'

यह सुनकर धर्मराजने कहा, 'तो भीम! तुम उसे यहाँ बुला लो।' उनकी आज्ञा होनेपर भीमसेनने अपने राक्षस पुत्रका स्मरण किया और उनके स्मरण करते ही घटोत्कच वहाँ उपस्थित हो गया। उसने हाथ जोड़कर पाण्डवों और सब ब्राह्मणोंका अभिवादन किया तथा उन्होंने भी उसका यथोचित सत्कार किया। इसके पश्चात् भयङ्कर वीर घटोत्कचने हाथ जोड़कर भीमसेनसे कहा, 'मैं आपके स्मरण करते ही आपकी सेवाके लिये उपस्थित हो गया हूँ। कहिये, क्या आज्ञा है?'

तब भीमसेनने उसे गलेसे लगाकर कहा, 'बेटा! तेरी माता द्रौपदी बहुत थक गयी है, तू इसे अपने कन्धेपर चढ़ा ले। इस प्रकार धीमी चालसे चल, जिससे इसे कष्ट न हो।'

घटोत्कचने कहा—'मैं अकेला ही धर्मराज, धौम्य, द्रौपदी और नकुल-सहदेव—सबको ले चल सकता हूँ; तिसपर

भी मेरे साथ तो और भी सैकड़ों इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सैकड़ों शूरवीर हैं, वे ब्राह्मणोंके सहित आप सभीको ले चलेंगे।' ऐसा कहकर वीर घटोत्कच तो द्रौपदीको लेकर पाण्डवोंके बीचमें चलने लगा तथा दूसरे राक्षस पाण्डवोंको ले चले। अतुलित तेजस्वी भगवान् लोमश तो अपने तपोबलसे स्वयं ही आकाशमार्गसे चलने लगे। उस समय वे दूसरे सूर्यके समान ही जान पड़ते थे। घटोत्कचकी आज्ञासे ब्राह्मणोंको भी दूसरे राक्षसोंने कन्धोंपर चढ़ा लिया। इस प्रकार वे सुरम्य वन और उपवनोंको देखते हुए बदरिकाश्रम-की ओर चले। राक्षस तो बहुत तेज चलनेवाले थे, इसलिये थोड़ी ही देरमें वे उन्हें बहुत दूर ले गये। मार्गमें जाते हुए उन्होंने म्लेच्छोंसे बसे हुए उस देशको तथा वहाँकी रत्नोंकी खानों और तरह-तरहकी धातुओंसे सम्पन्न पर्वतकी तलैटियोंको देखा। उस देशमें अनेकों विद्याधर, किन्नर, गन्धर्व और किम्पुरुष विचर रहे थे तथा जहाँ-तहाँ बहुत-से वानर, मयूर, चमरी गाय, रुरु मृग, शूकर, गवय, भैंसे और लंगूर घूम रहे थे। जगह-जगह नदियाँ भी दिखायी देती थीं।

इस प्रकार उत्तर कुरुदेशको लाँघकर उन्होंने अनेकों आश्चर्योंसे युक्त कैलास पर्वत देखा। उसके पास ही श्रीनर-

नारायणके आश्रमके दर्शन किये। यह आश्रम दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित था, जो सदा ही फल-फूलोंसे लदे रहते थे। यहाँ उन्होंने उस गोल टहनियोंवाली मनोहर बदरीके भी दर्शन किये। इसकी छाया बड़ी ही शीतल और सघन थी, तथा इसके पत्ते बड़े चिकने और कोमल थे; उसमें बहुत मीठे-मीठे फल लगे हुए थे। उस बदरीके पास पहुँचकर वे सब महानुभाव और ब्राह्मणलोग राक्षसोंके कन्धोंसे उतर पड़े और जिसमें स्वयं श्रीनर-नारायण विराजते हैं, ऐसे उस आश्रमकी शोभा निहारने लगे। इस आश्रममें अन्धकार नहीं था, किन्तु वृक्षोंकी सघनताके कारण इसमें सूर्यकी किरणोंका प्रवेश भी नहीं होता था। इसी प्रकार इसमें क्षुधा-प्यास, शीत-उष्ण आदि दोषोंकी बाधा भी नहीं होती थी तथा इसमें प्रवेश करते ही शोक अपने-आप निवृत्त हो जाता था। यहाँ महर्षियोंकी भीड़ लगी रहती थी तथा ऋक्-साम-यजूरूपा ब्राह्मी लक्ष्मी विराजमान थी। जो लोग धर्मबहिष्कृत थे, उनका तो इसमें प्रवेश ही नहीं हो सकता था। जिनका तेज सूर्य और अग्निके समान था और अन्तःकरणका मल तपसे दग्ध हो गया था, वे महर्षि और संयतेन्द्रिय मुमुक्षु यतिजन ही वहाँ रहते थे। इनके सिवा वहाँ ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त अनेकों ब्रह्मज्ञ महानुभाव भ रहते थे।

जितेन्द्रिय और पवित्रात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित उन महर्षियोंके पास गये। वे सब दिव्य ज्ञानसम्पन्न थे उन्होंने जब महाराज युधिष्ठिरको अपने आश्रममें आते देखा तो वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए उनका स्वागत करनेके लिये चले। उन महर्षियोंका तेज अग्निके समान था और वे निरन्तर स्वाध्यायमें लगे रहते थे। उन्होंने विधिपूर्वक धर्मराजका सत्कार किया तथा पवित्र जल, पुष्प, फल और मूल समर्पण किये। महाराज युधिष्ठिरने भी बड़ी विनयसे महर्षियों-का सत्कार स्वीकार किया। फिर भीमसेन आदि भाइयोंने द्रौपदी और वेद-वेदांगमें पारङ्गत सहस्रों ब्राह्मणोंके सहित उस मनोरम और पवित्र आश्रममें प्रवेश किया। यह साक्षात् इन्द्रभवन और स्वर्गके समान जान पड़ता था। वहाँके सब स्थानोंका दर्शन कर वे परम पवित्र भागीरथीके तटपर आये। वहाँ यह सीतानामसे विख्यात है। उसमें स्नानादिसे पवित्र हो, देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण एवं जप करके वे बड़े आनन्दके साथ अपने आश्रममें रहने लगे।

भीमसेनकी हनुमान्‌जीसे भेंट और बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्जुनसे मिलने-

की इच्छासे पाण्डवलोग उस स्थानपर छः रात रहे। इतने-हीमें दैवयोगसे ईशानकोणकी ओरसे बहते हुए वायुसे एक सहस्रदल कमल उड़ आया। वह बड़ा ही दिव्य और साक्षात् सूर्यके समान था। उसकी गन्ध बड़ी ही अनूठी और मनोमोहक थी। पृथ्वीपर गिरते ही उसपर द्रौपदीकी दृष्टि पड़ी। उसे देखते ही वह उस सौगन्धिक नामवाले कमलके पास आयी और मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर भीमसेनसे कहने लगी—'आर्य! मैं वह कमल धर्मराजको भेंट करूँगी। यदि आपका मेरे प्रति वास्तवमें प्रेम है तो मेरे लिये ऐसे ही बहुत-से पुष्प ले आइये। मैं इन्हें काम्यकवनमें अपने आश्रमपर ले जाना चाहती हूँ।'

भीमसेनसे ऐसा कहकर द्रौपदी उसी समय उस फूलको लेकर धर्मराजके पास चली आयी। राजमहिषी द्रौपदीका आशय समझ महाबली भीमसेन अपनी प्रियाका प्रिय करनेकी इच्छासे जिस ओरसे वायु उसे उड़ाकर लाया था, उसी ओर दूसरे फूल लेनेके विचारसे बड़ी तेजीसे चले। उन्होंने मार्गके विघ्नोंको हटानेके लिये अपना सुवर्णकी पीठवाला धनुष और विषधर सर्पके समान पैने बाण ले लिये और वे कुपित सिंह अथवा मतवाले हाथीके समान चलने लगे। मार्गमें चलते समय वे आपसमें टकराते हुए बादलोंके समान भीषण गर्जना करते जाते थे। उस शब्दसे चौकन्ने होकर बाघ अपनी

गुफाओंको छोड़कर भागने लगे। जंगली जीव जहाँ-तहाँ छिपने लगे, पक्षी भयभीत होकर उड़ने लगे और मृगोंके झुंड घबराकर चौकड़ी भरने लगे। भीमसेनकी गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। वे बराबर आगे बढ़ते गये। थोड़ी दूर जानेपर उन्हें गन्धमादनकी चोटीपर एक कई योजन लंबा-चौड़ा केलेका बगीचा दिखायी दिया। महाबली भीम नृसिंहके समान गर्जना करते हुए झपटकर उसके भीतर घुस गये।

इस वनमें महावीर हनुमान्‌जी रहते थे। उन्हें अपने भाई भीमसेनके उधर आनेका पता लग गया। उन्होंने

सोचा कि भीमसेनका इधरसे होकर स्वर्गमें जाना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे सम्भव है मार्गमें कोई उनका तिरस्कार कर दे अथवा उन्हें शाप दे दे। यह सोचकर उनकी रक्षा करनेके विचारसे वे केलेके बगीचेमेंसे होकर जानेवाले सकड़े मार्गको रोककर लेट गये। वहाँ पड़े-पड़े जब ऊँघ आनेपर वे जँभाई लेकर अपनी पूँछ फटकारते थे तो उसकी प्रतिध्वनि सब ओर फैल जाती थी। इससे वह महापर्वत डगमगाने लगता था और उसके शिखर टूट-टूटकर लुढ़क जाते थे। वह शब्द मतवाले हाथीकी गर्जनाको भी दबाकर पर्वतपर सब ओर फैल रहा था। उसे सुनकर भीमसेनके रोएँ खड़े हो गये और वे उसके कारणको ढूँढनेके लिये उस केलेके बगीचेमें सब ओर घूमने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्हें उस बगीचेमें एक मोटी शिलापर लेटे हुए वानरराज हनुमान् दिखायी दिये। उनके ओठ पतले थे, जीभ और मुँह लाल थे, कानोंका रंग भी लाल-लाल था, भौंहें चञ्चल थीं तथा खुले हुए मुखमें सफेद, नुकीले और तीखे दाँत और दाढ़ें दीखती थीं। उनके कारण उनका वदन किरणयुक्त चन्द्रमाके समान जान पड़ता था। वे बड़े ही तेजस्वी थे और सुनहरे कदलीवृक्षोंके बीचमें लेटे हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो केसरोंके बीचमें अशोकका फूल रक्खा हो। उनके अङ्गकी कान्ति प्रज्वलित अग्निके समान थी और अपनी मधुके समान पीली आँखोंसे इधर-उधर देख रहे थे। उनका शरीर बड़ा स्थूल था और वे स्वर्गके मार्गको रोककर हिमालयके समान स्थित थे।

उस महान् वनमें हनुमान्‌जीको अकेले लेटे देखकर महाबली भीमसेन निर्भय उनके पास चले गये और बिजलीकी कड़कके समान भीषण सिंहनाद करने लगे। भीमसेनकी उस गर्जनासे वनके जीव-जन्तु और पक्षियोंको बड़ा त्रास हुआ। महाबली हनुमान्‌जीने भी अपने नेत्रोंको कुछ-कुछ खोलकर उपेक्षापूर्वक भीमसेनकी ओर देखा और फिर उन्हें अपने निकट पाकर मुसकराते हुए कहने लगे—'भैया! मैं तो रोगी हूँ, यहाँ आनन्दसे सो रहा था; तुमने मुझे क्यों जगा दिया? तुम समझदार हो, तुम्हें जीवोंपर दया करनी चाहिये। तुम्हारी प्रवृत्ति ऐसे धर्मका नाश करनेवाले तथा मन, वाणी और शरीरको दूषित करनेवाले क्रूर कर्मोंमें क्यों होती है? मालूम होता है, तुमने विद्वानोंकी सेवा नहीं की। बताओ तो, तुम हो कौन और इस वनमें किसलिये आये हो? यहाँ तो न कोई मानवी भाव रह सकता है और न कोई मनुष्य ही। आगे तुम्हें कहाँतक जाना है? यहाँसे आगे तो यह पर्वत अगम्य है, इसपर कोई भी चढ़ नहीं सकता। अतः तुम ये अमृतके समान मीठे कन्द-मूल-फल खाकर विश्राम करो और यदि मेरी बातको हितकर समझो तो यहाँसे लौट जाओ आगे जानेमें व्यर्थ अपने प्राणोंको सङ्कटमें क्यों डालते हो?'

यह सुनकर भीमसेनने कहा—वानरराज! आप कौन हैं और इस वानर-देहको आपने क्यों धारण कर रक्खा है? मैं तो चन्द्रवंशके अन्तर्गत कुरुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने माता कुन्तीके गर्भसे जन्म लिया है और मैं महाराज पाण्डुका पुत्र हूँ, लोग मुझे वायुपुत्र भी कहते हैं। मेरा नाम भीमसेन है।

अनेकों भोग और स्वर्गकी इच्छासे यज्ञानुष्ठान करते हैं। इस प्रकार द्वापरयुगमें अधर्मके कारण प्रजा क्षीण होने लगती है। फिर कलियुगमें तो धर्म केवल एक ही पादसे स्थित रहता है। इस तमोगुणी युगके आनेपर भगवान् श्यामवर्ण हो जाते हैं, वैदिक आचार नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म, यज्ञ और क्रियाका ह्रास हो जाता है। इस समय ईति-भीति, व्याधि, तन्द्रा और क्रोधादि दोष तथा तरह-तरहके उपद्रव, मानसिक चिन्ता और क्षुधा—इन सबकी वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार युगोंके परिवर्तनसे धर्ममें भी परिवर्तन होता रहता है और धर्ममें परिवर्तन होनेसे लोककी स्थितिमें भी परिवर्तन हो जाता है। जब लोककी स्थिति गिर जाती है, तब उसके प्रवर्तक भावोंका भी क्षय हो जाता है। अब शीघ्र ही कलियुग आनेवाला है। इसलिये तुम्हें जो मेरा पूर्वरूप देखनेका कौतूहल हुआ है, वह ठीक नहीं है। समझदार लोग व्यर्थ बातोंके लिये आग्रह नहीं किया करते। इस प्रकार तुमने मुझसे जो बातें पूछी थीं, वे सब मैंने कह दीं; अब तुम प्रसन्नतापूर्वक जा सकते हो।

भीमसेनने कहा—मैं आपके पूर्वरूपको देखे बिना यहाँसे किसी प्रकार नहीं जा सकता। यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो मुझे उसके दर्शन अवश्य कराइये।

भीमसेनके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने मुसकराकर अपना वह रूप दिखाया, जो उन्होंने समुद्र लाँघते समय धारण किया था। अपने भाईको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अपने शरीरको बहुत बड़ा कर दिया और वह लंबाई-चौड़ाईमें बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अतुलित कीर्तिमान् हनुमान्‌जीके विशाल विग्रहसे दूसरे वृक्षोंके सहित वह केलोंका बगीचा आच्छादित हो गया। कुरुश्रेष्ठ भीमसेन अपने भाईका वह विशाल रूप देखकर बड़े विस्मित हुए और उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। श्रीहनुमान्‌जीका वह विग्रह तेजमें सूर्यके समान था और सोनेका पहाड़-सा जान पड़ता था। उसकी विशालताका कहाँतक वर्णन करें? मानो देदीप्यमान आकाश ही हो। उसे देखते ही भीमसेनने आँखें बंद कर लीं। विन्ध्याचलके समान उस विचित्र और अत्यन्त भयानक देहको देखकर भीमसेनको रोमाञ्च हो आया और वे उनसे हाथ जोड़कर कहने लगे, 'समर्थ हनुमान्‌जी! मैंने आपके इस शरीरका महान् विस्तार देख लिया। अब आप अपने इस स्वरूपको समेट लीजिये। आप तो साक्षात् उदित होते हुए सूर्यके समान हैं और मैनाक पर्वतके समान अपरिमित एवं दुराधर्ष जान पड़ते हैं। मैं आपकी ओर देख नहीं सकता। हे वीर! मेरे मनमें तो आज यही बड़ा आश्चर्य है कि आपके समीप रहते हुए भी श्रीरामजीको रावणसे स्वयं युद्ध करना पड़ा। उस लंकाको तो उसके योद्धा और वाहनोंके सहित आप ही अपने बाहुबलसे सहजमें नष्ट कर सकते थे। पवननन्दन! ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको प्राप्त न हो; रावण तो अपने परिकरके सहित अकेले आपसे ही लड़नेमें *समर्थ नहीं था।'*

भीमसेनके इस प्रकार कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने बड़े मधुर और गम्भीर शब्दोंमें कहा—भारत! तुम जैसा कहते हो, ठीक ही है; वह अधम राक्षस वास्तवमें मेरा सामना नहीं कर सकता था। किन्तु सारे लोकोंको काँटेके समान सालनेवाले उस रावणको यदि मैं मार डालता तो श्रीरामजीको यश कैसे मिलती, इसीसे मैंने उसकी उपेक्षा कर दी थी। वीरवर श्रीरघुनाथजीने सेनाके सहित उस राक्षसाधमका वध किया और सीताजीको अपनी पुरीमें ले आये। इससे लोगोंमें उनका सुयश भी फैल गया। अच्छा, बुद्धिमन्! अब तुम जाओ। देखो, यह सामनेवाला मार्ग सौगन्धिक वनको जाता है। वहाँ तुम्हें यक्ष और राक्षसोंसे सुरक्षित कुबेरका बगीचा

मिलेगा। तुम स्वयं ही जल्दीसे पुष्पचयन मत करने लगना। मनुष्योंको तो विशेषरूपसे देवताओंका मान करना ही चाहिये। भैया! तुम साहस मत कर बैठना, अपने धर्मका पालन करना। अपने धर्ममें स्थित रहकर तुम श्रेष्ठ धर्मका ज्ञान सम्पादन करो और उसी प्रकार व्यवहार करो। क्योंकि धर्मको जाने बिना और बड़ोंकी सेवा किये बिना बृहस्पतिके समान होते हुए भी तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको नहीं जान सकते। किसी समय अधर्म धर्म हो जाता है और धर्म अधर्म हो जाता है। अतः धर्म और अधर्मका अलग-अलग ज्ञान होना चाहिये, बुद्धिहीन लोग इसमें मोहित हो जाते हैं। धर्म आचारसे होता है, धर्ममें वेद प्रतिष्ठित हैं, वेदोंसे यज्ञोंकी प्रवृत्ति हुई है और यज्ञोंमें देवताओंकी स्थिति है। देवताओंकी आजीविका वेदाचारके विधानसे बतलाये हुए यज्ञोंपर है और मनुष्योंका आधार बृहस्पति और शुक्रकी बनायी हुई नीतियाँ हैं। इनमें ब्राह्मणलोग वेदपाठसे, वैश्य व्यापारसे और क्षत्रिय दण्डनीतिसे अपना निर्वाह करते हैं। इन तीनों वृत्तियोंका ठीक-ठीक प्रयोग होनेसे लोकयात्राका निर्वाह होता है। इन तीनोंकी सम्यक् प्रवृत्ति होनेसे इन्हींसे प्रजा धर्मको प्रादुर्भूत करती है। द्विजातियोंमें ब्राह्मणका मुख्य धर्म आत्मज्ञान है तथा यज्ञ, अध्ययन और दान—ये तीन साधारण धर्म हैं। इसी प्रकार क्षत्रियका मुख्य धर्म प्रजापालन है और वैश्यका पशुपालन, तथा तीनों वर्णोंकी सेवा करना-यह शूद्रोंका मुख्य धर्म है। उन्हें भिक्षा, होम अथवा व्रतका अधिकार नहीं है; उन्हें तो द्विजोंके घरोंमें रहकर उनकी सेवा ही करनी चाहिये। कुन्तीनन्दन! तुम्हारा निजधर्म तो क्षत्रियोंका प्रधान धर्म प्रजापालन ही है; उसका तुम विनय और इन्द्रियसंयमपूर्वक पालन करो। जो राजा वृद्ध, साधु, बुद्धिमान् और विद्वानोंके साथ परामर्श करके शासन करता है वह राजदण्ड धारण कर सकता है, दुर्व्यसनीका तो तिरस्कार ही होता है। जब राजा प्रजाके निग्रह और अनुग्रहमें उचित रीतिसे प्रवृत्त होता है, तभी लोककी मर्यादा सुव्यवस्थित होती है। अतः राजाको देश और दुर्गमें अपने शत्रु और मित्रोंकी सेनाओंकी स्थिति, वृद्धि और क्षयका दूतोंद्वारा सर्वदा पता लगाते रहना चाहिये। साम, दान, दण्ड और भेद—ये चार उपाय, दूत, बुद्धि, गुप्त विचार, पराक्रम, निग्रह, अनुग्रह और दक्षता—ये गुण ही राजाओंके कार्यको सिद्ध करनेवाले हैं। राजाको साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा—इन पाँच साधनोंके एक साथ या अलग-अलग प्रयोगद्वारा अपने काम बना लेने चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! सारी नीतियों और दूतोंका मूल गुप्त विचार है; इसलिये जिस शुभ विचारसे कार्यकी सिद्धि हो, उसीकी ब्राह्मणोंके साथ मन्त्रणा करे। स्त्री, मूर्ख, बालक, लोभी और नीच पुरुषोंके साथ तथा जिनमें उन्मादके लक्षण पाये जायँ, उनके साथ गुह्य परामर्श न करे। परामर्श विद्वानोंके साथ करना चाहिये; जो सामर्थ्यवान् हों, उनसे कार्य कराना चाहिये और जो हितैषी हों, उनसे न्याय कराना चाहिये। मूर्खोंको तो सभी कामोंसे अलग रखना चाहिये। राजा धर्मकार्योंमें धार्मिकोंको, अर्थकार्यमें विद्वानोंको और स्त्रियोंमें काम करनेके लिये नपुंसकोंको नियुक्त करे तथा कठोर कामोंमें क्रूर प्रकृतिके लोगोंको लगावे। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके विषयमें अपने और शत्रुपक्षके लोगोंकी सम्मति जाने तथा शत्रुओंके बलाबलका भी ज्ञान रक्खे। बुद्धिसे जिनकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली हो, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करे तथा मर्यादाहीन अशिष्ट पुरुषोंका दमन करे। इस प्रकार हे पार्थ! मैंने तुम्हें कठोर राजधर्मका उपदेश किया। इसका मर्म समझमें आना बड़ा कठिन है। तुम अपने धर्मके विभागानुसार इसका विनयपूर्वक पालन करो। जिस प्रकार ब्राह्मण तप, धर्म, दम और यज्ञानुष्ठानके द्वारा उत्तम लोक प्राप्त करते हैं तथा वैश्य दान और आतिथ्यरूप धर्मोंसे सद्गति प्राप्त कर लेते हैं, उसी प्रकार जो दण्डका ठीक-ठीक प्रयोग करते हैं, काम और द्वेषसे रहित हैं, लोभहीन हैं और जिनमें क्रोध नहीं है, ऐसे क्षत्रियलोग पृथ्वीमें दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करते हुए सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंमें जाते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—फिर अपनी इच्छासे बढ़ाये हुए शरीरको सिकोड़कर वानरराज हनुमान्‌जीने दोनों भुजाओंसे भीमसेनको छातीसे लगाया। इससे तत्काल ही भीमसेनकी सारी थकावट जाती रही और सब प्रकारकी अनुकूलताका अनुभव होने लगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मैं बड़ा बलवान् हूँ और मेरे समान कोई भी महान् नहीं है। फिर हनुमान्‌जीने आँखोंमें आँसू भरकर सौहार्दसे गद्गदकण्ठ हो

तुम्हें भी मेरे दर्शनोंका कुछ फल प्राप्त होना चाहिये। तुम भ्रातृत्वके नाते ही मुझसे कोई वर माँगो। यदि तुम्हारी इच्छा हो कि मैं हस्तिनापुरमें जाकर तुच्छ धृतराष्ट्र-पुत्रोंको मार डालूँ तो यह भी मैं कर सकता हूँ तथा तुम चाहो तो पत्थरोंसे उस नगरको नष्ट कर दूँ अथवा अभी दुर्योधनको बाँधकर तुम्हारे पास ले आऊँ। महाबाहो ! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, उसे मैं पूर्ण कर सकता हूँ।'

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए और उनसे कहने लगे, 'वानरराज ! आपका मङ्गल हो; मेरे ये सब काम तो आप कर ही चुके—अब इनके होनेमें कोई सन्देह नहीं है। बस, आपकी दयादृष्टि बनी रहे—यही मैं चाहता हूँ। आप हमारे रक्षक हैं, इसलिये अब पाण्डवलोग सनाथ हो गये। आपके ही प्रतापसे हम सब शत्रुओंको जीत लेंगे।'

भीमसेनके ऐसा कहनेपर उनसे हनुमान्‌जीने कहा, 'भाई और सुहृद् होनेके नाते ही मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा। जिस समय तुम शक्ति और बाणोंसे व्याप्त शत्रुकी सेनामें घुसकर सिंहनाद करोगे, उस समय मैं अपने शब्दसे तुम्हारी गर्जनाको बढ़ा दूँगा तथा अर्जुनकी ध्वजापर बैठा हुआ ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जिससे शत्रुओंके प्राण सूख जायँगे और तुम उन्हें सुगमतासे मार सकोगे।' ऐसा कहकर हनुमान्‌जीने उन्हें मार्ग दिखाया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

भीमसेनसे कहा, 'भैया ! अब तुम जाओ, कभी कोई चर्चा चले तो मेरा स्मरण कर लेना। और मैं इस स्थानपर रहता हूँ—यह बात किसीसे मत कहना। अब कुबेरके भवनसे भेजी हुई देवाङ्गनाओं और अप्सराओंके यहाँ आनेका समय हो गया है। तुम्हारे मानवी शरीरका स्पर्श होनेसे मुझे भी संसारके हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले भगवान् श्रीरामका स्मरण हो आया। अब

भीमके सौगन्धिक वनमें पहुँचनेपर यक्ष-राक्षसोंसे युद्ध होना तथा युधिष्ठिरादिका भी वहाँ पहुँच जाना और सबका वापस लौटना

वैशम्पायनजी कहते हैं—कपिवर हनुमान्‌जीके अन्तर्धान हो जानेपर महाबली भीमसेन उनके बताये हुए मार्गसे गन्धमादन पर्वतपर बढ़ने लगे। मार्गमें वे हनुमान्‌जीके विशाल विग्रह और अलौकिक शोभाका तथा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके माहात्म्य और प्रभावका चिन्तन करते जाते थे। सौगन्धिक वनको देखनेकी इच्छासे जाते हुए उन्होंने मार्गके रमणीय वन और उपवन देखे तथा तरह-तरहके पुष्पित वृक्षोंसे सुशोभित सरोवर और नदियाँ देखीं।

इसी प्रकार और आगे बढ़नेपर वे कैलास पर्वतके समीप कुबेरके राजभवनके पास एक सरोवरके निकट पहुँचे। भीमसेनने वहाँ पहुँचकर उसका निर्मल जल जी भरकर पिया। महात्मा कुबेर इस सरोवरमें जलक्रीडा किया करते थे। उसके आसपास देवता, गन्धर्व, अप्सरा और ऋषि रहते थे। उस सरोवर और सौगन्धिक वनको देखकर भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए। महाराज कुबेरकी ओरसे हजारों क्रोधवश नामके राक्षस तरह-तरहके शस्त्र और पहनावोंसे सुसज्जित हो इस स्थानकी रक्षा करते थे। उन्होंने महाबाहु भीमके पास जाकर उनसे पूछा, 'कृपया बताइये, आप कौन हैं? आपका वेष तो

मुनियोंका-सा है, परन्तु आप हथियार भी लिये हुए हैं। कहिये, यहाँ आप किस उद्देश्यसे आये हैं?'

भीमसेनने कहा—राक्षसो! मेरा नाम भीमसेन है, मैं धर्मराज युधिष्ठिरसे छोटा महाराज पाण्डुका पुत्र हूँ। मैं भाइयोंके साथ आकर विशालामें ठहरा हुआ हूँ। यहाँसे वायुसे उड़कर एक सुन्दर सौगन्धिक पुष्प हमारे निवास-स्थानपर गया था। उसे देखकर द्रौपदीको वैसे ही और फूल लेनेकी इच्छा हुई। इसीसे मैं यहाँ आया हूँ।

राक्षसोंने कहा—पुरुषप्रवर! यह यक्षराज कुबेरका प्रिय क्रीडास्थान है। यहाँ मरणधर्मा मनुष्य विहार नहीं कर सकता। यहाँ देवर्षि, यक्ष और देवता भी यक्षराजसे आज्ञा लेकर ही जलपान और विहारादि कर पाते हैं। फिर आप उनका निरादर करके बलात्कारसे कमल क्यों लेना चाहते हैं, और ऐसा अन्याय करनेपर भी अपनेको धर्मराजका भाई कैसे कहते हैं? आप महाराजकी आज्ञा ले लीजिये। फिर जल भी पी सकेंगे और कमल भी ले जा सकेंगे; नहीं तो आप कमलोंकी तरफ झाँक भी नहीं सकते।

भीमसेन बोले—राक्षसो! राजालोग माँगा नहीं करते, यही सनातन धर्म है। और मैं किसी भी प्रकार क्षात्रधर्मको छोड़ना नहीं चाहता। यह सुरम्य सरोवर पहाड़ी झरनोंसे बना है। इसपर कुबेरके समान ही सबका अधिकार है। ऐसे सर्वसाधारणके पदार्थोंके लिये कौन किससे याचना करे?

ऐसा कहकर भीमसेन उन राक्षसोंकी उपेक्षा कर स्नान करनेके लिये उस सरोवरमें उतर पड़े। तब सब राक्षसोंने

उन्हें रोका और वे एक साथ ही शस्त्र उठाकर उनपर टूट पड़े। भीमसेनने भी अपनी यमदण्डके समान सुवर्णमण्डित भारी गदा उठाकर 'ठहरो! ठहरो!' ऐसा चिल्लाते हुए उनपर आक्रमण किया। इससे राक्षसोंका रोष भी बढ़ गया और वे चारों ओरसे घेरकर उनपर तोमर और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। महात्मा भीमने उनके सब वारोंको विफल कर दिया और उनके शस्त्रोंके खण्ड-खण्ड करके सरोवरके पास ही सैकड़ों वीरोंको बिछा दिया। भीमसेन-की मारसे पीडित और अचेत हुए वे क्रोधवश राक्षस रणाङ्गण-से भागे और विमानोंपर चढ़कर आकाशमार्गसे कैलासकी चोटियोंपर चले गये। उन्होंने यक्षराज कुबेरके पास जाकर बहुत डरते-डरते युद्धमें भीमसेनके बल और पराक्रमका वर्णन किया। इधर भीम सुगन्धित रम्य कमलोंको बीनने लगे।

राक्षसोंकी बात सुनकर कुबेर बड़े हँसे और बोले, 'मुझे इन सब बातोंका पता है; द्रौपदीके लिये भीमसेनको जितने

कमल चाहिये, उतने ले जायँ ।' इससे राक्षसोंका क्रोध ठंडा पड़ गया और वे भीमसेनके पास आये ।

इधर बदरिकाश्रममें भीमसेनके युद्धकी सूचना देनेवाला बड़ा वेगवान्, तीखा और धूल बरसानेवाला वायु चलने लगा । वहाँ बार-बार बड़ी गड़गड़ाहटके साथ पृथ्वीपर उल्कापात होने लगा, जो सबके हृदयमें बड़ा भय उत्पन्न कर देता था; धूलसे ढक जानेके कारण सूर्यका तेज मन्द पड़ गया, पृथ्वी डगमगाने लगी, दिशाएँ लाल-लाल हो गयीं, मृग और पक्षी चीत्कार करने लगे, सब ओर अँधेरा-ही-अँधेरा छा गया, आँखोंसे कुछ भी नहीं सूझता था । इनके सिवा वहाँ और भी अनेकों भयङ्कर उत्पात होने लगे । ऐसी विचित्र स्थिति देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने कहा, 'पाञ्चालि ! भीम कहाँ है ? मालूम होता है वह कहीं कुछ भयङ्कर कर्म करना चाहता है, अथवा कुछ कर बैठा है; क्योंकि ये अकस्मात् होनेवाले उत्पात किसी महान् युद्धकी सूचना दे रहे हैं ।'

तब द्रौपदीने कहा—"राजन् ! वायुसे उड़कर जो सौगन्धिक कमल आया था, वह मैंने प्रेमपूर्वक भीमसेनको भेंट करके कहा था कि यदि 'आपको ऐसे बहुत-से फूल मिल जायँ तो आप उन्हें लेकर शीघ्र ही आ जायँ ।' वे महाबाहु मेरा प्रिय करनेके लिये उन कमलोंकी खोजमें अवश्य पूर्वोत्तर दिशाकी ओर गये हैं ।"

द्रौपदीके ऐसा कहनेपर महाराज युधिष्ठिरने नकुल-सह से कहा, 'जिस ओर भीम गया है, उसी ओर हम सबको शीघ्र ही साथ-साथ चलना चाहिये । राक्षसलोग तो ब्राह्म को ले चलें और भैया घटोत्कच ! तुम द्रौपदीको ले चल देखो ! भीमसेन ब्रह्मवादी सिद्ध पुरुषोंका कोई अपराध व उससे पहले ही यदि हम आपलोगोंके प्रभावसे पहुँच जायँ बहुत अच्छा हो ।'

तब घटोत्कच इत्यादि सब राक्षस 'जो आज्ञा' ऐसा क कर पाण्डवों और अनेकों ब्राह्मणोंको उठाकर लोमशजीके स प्रसन्न चित्तसे चल दिये, क्योंकि वे अपने लक्ष्यस्थान कुबेर सरोवरको जानते थे । उन्होंने शीघ्र ही जाकर एक सुन्द वनमें कमलकी गन्धसे सुवासित एक अत्यन्त मनोहर सरोव देखा । उसीके तीरपर उन्हें परम तेजस्वी भीमसेन दिखाय दिये और उनके पास ही अनेकों मरे हुए यक्ष भी देखे भीमसेनको देखकर धर्मराजने बार-बार उनका आलिङ्गन किय और फिर मीठी वाणीमें कहा, 'कुन्तीनन्दन ! तुम यह क्य कर बैठे हो ? यह तो तुम्हारा साहस ही है, इससे देवताओंक भी अप्रिय हुआ ही है । यदि तुम मेरा भला चाहते हो तो ऐसा काम फिर कभी मत करना ।' इस प्रकार भीमसेनको समझाकर उन्होंने सौगन्धिक कमल ले लिये और फिर देवताओंके समान उसी सरोवरमें क्रीडा करने लगे । इतनेहीमें उस बगीचेके रक्षक विशालकाय यक्ष-राक्षस प्रकट हो गये । उन्होंने धर्मराज, नकुल-सहदेव, महर्षि लोमश तथा दूसरे ब्राह्मणोंको देखकर विनयसे झुककर प्रणाम किया । धर्मराजके सान्त्वना देनेसे वे कुबेरके दूत शान्त हुए और कुबेरको भी पाण्डवोंके आनेकी सूचना मिल गयी । फिर अर्जुनके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने कुछ समयतक वहाँ गन्धमादनके शिखरपर ही निवास किया ।

वहाँ रहते समय एक दिन द्रौपदी, भाई और ब्राह्मणोंके साथ वार्तालाप करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने कहा, 'जहाँ पहले देवता और मुनियोंने निवास किया है, ऐसे अनेकों पवित्र और कल्याणकारी तीर्थ और मनको आनन्दित करनेवाले वनोंके हमने दर्शन किये हैं । साथ ही जहाँ-तहाँ आश्रमोंमें अनेकों शुभ कथाएँ सुनते हुए हमने विशेषतः ब्राह्मणोंके साथ तीर्थोंमें स्नान किया है तथा सर्वदा पुष्प और जलसे देवपूजन

करते रहे हैं और जैसे कन्द-मूल-फल मिल सके हैं, उनसे पितरोंका भी तर्पण किया है। इस प्रकार महात्मा लोमशने हमें क्रमशः सभी तीर्थस्थानोंके दर्शन करा दिये हैं। अब यह सिद्धोंसे सेवित कुबेरजीका पवित्र मन्दिर है। इसमें हमारा प्रवेश कैसे होगा?'

जिस समय धर्मराज इस प्रकार बातचीत कर रहे थे उसी समय उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—'अब तुम यहाँसे आगे नहीं जा सकते, यह मार्ग बहुत दुर्गम है; इसलिये कुबेरके आश्रमसे आगे न बढ़कर तुम जिस मार्गसे आये हो, उसीसे श्रीनर-नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको लौट जाओ। वहाँसे तुम सिद्ध और चारणोंसे सेवित वृषपर्वाके आश्रमको जाना, जो बड़ा ही रमणीक और सिद्ध एवं चारणोंसे सेवित है। फिर उसे पार करके तुम आर्ष्टिषेणके आश्रममें निवास करना। उससे आगे जानेपर तुम्हें कुबेरके मन्दिरके दर्शन होंगे।' इसी समय वहाँ दिव्य गन्धमय पवित्र और शीतल वायु बहने लगा तथा पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। उस अत्यन्त आश्चर्यमय आकाशवाणीको सुनकर राजा युधिष्ठिर महर्षि धौम्यकी बात मानकर वहाँसे लौटकर श्रीनर-नारायणके आश्रममें आ गये।

जटासुर-वध

दैवयोगसे एक समय धर्मराजके पास एक राक्षस आया और 'मैं समस्त शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और मन्त्रविद्यामें कुशल ब्राह्मण हूँ।' ऐसा कहकर वह सर्वदा पाण्डवोंके धनुष और तरकस तथा द्रौपदीको उड़ा ले जानेकी ताकमें उन्हींके पास रहने लगा। उस दुष्टका नाम जटासुर था। राजन्! एक समय भीमसेन वनमें गये हुए थे तथा लोमशादि महर्षि-

गण स्नान करने चले गये थे। उस समय जटासुर भयानक रूप धारण कर तीनों पाण्डव, द्रौपदी और सारे शस्त्रोंको उठाकर ले चला। उनमेंसे सहदेव किसी प्रकार पराक्रम करके छूट गये और उस राक्षससे अपनी कौशिकी नामकी तलवार छीनकर जिस ओर भीमसेन गये थे, उस ओर आवाज लगाने लगे।

फिर जिन्हें राक्षस हरे लिये जाता था, उन धर्मराज युधिष्ठिरने उससे कहा, 'रे मूर्ख! इस प्रकार चोरी करनेसे तो तेरे धर्मका नाश होता है, तू इसका कुछ भी विचार नहीं करता। तुझे सब प्रकार धर्मका विचार करके ही काम करना चाहिये। प्रामाणिक पुरुषोंको गुरु, ब्राह्मण, मित्र और विश्वास करनेवालोंसे तथा जिनका अन्न खाया हो और जिन्होंने आश्रय दिया हो, उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये। तू हमारे यहाँ बड़े सम्मानसे सुखपूर्वक रहा है। अरे दुर्बुद्धि! हमारा अन्न खाकर तू हमें ही कैसे हरना चाहता है? इस प्रकार तो तेरा आचार, आयु और बुद्धि—सभी निष्फल हो गये। अब वृथा मरना चाहता है। अरे राक्षस! आज तूने इस मानवीका स्पर्श क्या किया है मानो घड़ेमें रक्खे हुए विषको ही हिलाकर पिया है।'

ऐसा कहकर युधिष्ठिर उसके लिये भारी हो गये, उनके भारसे दबकर उसकी गति उतनी तेज नहीं रही। तब धर्मराजने नकुल और द्रौपदीसे कहा, 'तुम इस मूढ़ राक्षससे डरो मत; मैंने इसकी गतिको कुण्ठित कर दिया है। यहाँसे थोड़ी ही दूर महाबाहु भीमसेन होगा। बस, अब वह आता ही होगा, फिर इस राक्षसका कहीं नाम-निशान भी नहीं रहेगा।' तदनन्तर उस मूढबुद्धि राक्षसको देखकर सहदेवने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, 'राजन्! यह देश और काल ऐसा है कि हम इससे युद्ध करें। यदि इस युद्धमें इसे मार डालें तो विजय पावेंगे और यदि हम ही मारे गये तो सद्गति प्राप्त करेंगे।' फिर उन्होंने राक्षसको ललकारते हुए कहा, 'अरे ओ राक्षस! जरा खड़ा रह। तू या तो मुझे मारकर द्रौपदीको ले

जाना, नहीं तो अभी मेरे हाथसे मारा जाकर यहाँ शयन करेगा।'

माद्रीकुमार सहदेव ऐसा कह ही रहे थे कि अकस्मात् वज्रधारी इन्द्रके समान गदाधारी भीमसेन दिखायी दिये। उन्होंने देखा कि राक्षस उनके भाइयों और द्रौपदीको लिये जाता है। यह देखकर वे क्रोधसे भर गये और उस राक्षससे बोले, "रे पापी! मैंने तो तुझे पहले ही शस्त्रोंकी परीक्षा करते समय पहचान लिया था। किन्तु तू हमारे यहाँ ब्राह्मणवेषमें रहता था, इसलिये मैं तुझे कैसे मारता? 'यह राक्षस है' ऐसा जान लिया जाय तो भी बिना अपराधके मारना उचित नहीं है और जो बिना अपराधके मारता है, वह नरकमें जाता है। मालूम होता है आज तेरी मौत आ गयी है, इसीसे तुझे ऐसी कुबुद्धि उपजी है। अवश्य अद्भुतकर्मा कालने ही तुझे कृष्णाको हरण करनेकी बात सुझायी है। अब तू जहाँ जाना चाहता है, वहाँ नहीं जा सकता; बल्कि तुझे बक और हिडिम्बके रास्तेसे जाना होगा।"

भीमसेनके ऐसा कहनेपर कालकी प्रेरणासे वह राक्षस डर गया और उन सबको छोड़कर वह युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया। क्रोधसे उसके होठ काँपने लगे और उसने भीमसेनसे कहा, 'अरे पापी! तूने जिन-जिन राक्षसोंको युद्धमें मारा है, उनके नाम मैंने सुने हैं; आज तेरे ही खूनसे मैं उनका तर्पण करूँगा।' फिर उन दोनोंमें बड़ा भयङ्कर बाहुयुद्ध होने लगा। तब दोनों माद्रीकुमार भी क्रोधमें भरकर उसपर टूट पड़े। परन्तु भीमसेनने हँसकर उन्हें रोक दिया और कहा कि 'मैं अकेला ही इसके लिये बहुत हूँ, तुम अलग रहकर हमारा युद्ध देखो।' बस, अब वे दोनों वीर आपसमें होड़ बदकर बाहुयुद्ध करने लगे। जैसे देव और दानव एक-दूसरेकी वृद्धि सहन न होनेसे भिड़ जाते हैं, उसी प्रकार भीमसेन और जटासुर भी एक-दूसरेपर चोटें करने लगे। जिस प्रकार पहले स्त्रीकी इच्छासे वाली और सुग्रीवका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार इन दोनोंका भी वृक्षयुद्ध होने लगा, जिससे वहाँके अनेकों वृक्ष उजड़ गये। फिर उन्होंने वज्रके समान वेगवाली शिलाओंसे लड़ना आरम्भ किया अन्तमें वे आपसमें एक-दूसरेपर घूँसोंकी वर्षा करने लगे। इस समय भीमसेनने जटासुरकी गर्दनपर बड़े वेगसे मुक्का मारा।

उससे वह राक्षस बहुत ढीला पड़ गया। उसे थका हुआ देख भीमसेनने पृथ्वीपर दे मारा और उसके सारे अङ्ग चूर-चूर कर दिये। फिर कोहनीकी चोटसे उसका सिर धड़से अलग कर दिया।

इस प्रकार उस राक्षसका वध कर भीमसेन युधिष्ठिरके पास आये। उस समय मरुद्गण जैसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणलोग भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे।

पाण्डवोंका वृषपर्वा और आर्ष्टिषेणके आश्रमोंपर जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जटासुरके मारे जानेपर महाराज युधिष्ठिर फिर श्रीनर-नारायणके आश्रममें आकर रहने लगे। इस समय उन्हें अपने भाई अर्जुनका स्मरण हो आया। वे द्रौपदीके सहित सब भाइयोंको बुलाकर कहने लगे, "अर्जुनने मुझसे कहा था कि 'मैं पाँच वर्षतक स्वर्गमें अस्त्रविद्या सीखनेके बाद यहाँ मृत्युलोकमें लौट आऊँगा।' इसलिये जिस समय अर्जुन अस्त्रविद्या सीखकर यहाँ आवें, उस समय हमलोगोंको उससे मिलनेके लिये तैयार रहना चाहिये।" इस प्रकार बातचीत करते हुए उन्होंने ब्राह्मण और भाइयोंके साथ आगेके लिये

प्रस्थान किया। वे कहीं तो पैदल चलते थे और कहीं राक्षस-लोग उन्हें कन्धेपर बैठाकर ले चलते। इस प्रकार रास्तेमें कैलासपर्वत, मैनाकपर्वत और गन्धमादनकी तलैटीको, श्वेतगिरिको तथा ऊपर-ऊपरके पहाड़ोंकी अनेकों निर्मल नदियोंको देखते वे सातवें दिन हिमालयके पवित्र पृष्ठपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजर्षि वृषपर्वाका पवित्र आश्रम देखा।

वह अनेकों प्रकारके पुष्पित वृक्षोंसे सुशोभित था। पाण्डवोंने उस आश्रममें पहुँचकर परमधार्मिक राजर्षि वृषपर्वाको प्रणाम किया। राजर्षिने पुत्रोंके समान उनका अभिनन्दन किया। और उनसे सत्कृत हो पाण्डवोंने वहाँ सात रात निवास किया। आठवें दिन उन्होंने जगत्प्रसिद्ध वृषपर्वाजीसे आगे जानेकी इच्छा प्रकट की। उनके पास जो सामान बच रहा था, वह उन्होंने उन्हींको दे दिया तथा अपने यज्ञपात्र, रत्न और आभूषण भी उन्हींके आश्रममें छोड़ दिये। राजर्षि वृषपर्वा भूत और भविष्यत्‌के ज्ञाता तथा समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने चलते समय पाण्डवोंको पुत्रोंकी तरह उपदेश दिया। फिर उनकी आज्ञा लेकर वे उत्तर दिशाको चले।

वहाँसे सत्यपराक्रमी कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पैदल ही चले। वह प्रान्त अनेक प्रकारके मृगोंसे पूर्ण था। रास्तेमें पहाड़ोंके ऊपर तरह-तरहके वृक्षोंकी कुञ्जोंमें निवास करते हुए उन्होंने चौथे दिन श्वेतपर्वतपर पदार्पण किया। श्वेताचल एक बहुत बड़े बादलके समान सफेद-सफेद दिखायी देता था; इसपर जलकी अधिकता थी तथा मणि, सुवर्ण और चाँदीकी शिलाएँ थीं। मार्गमें धौम्य, द्रौपदी, पाण्डव और महर्षि लोमश साथ-साथ ही चलते थे। उनमेंसे कोई भी थकता नहीं था। इस प्रकार चलते-चलते वे माल्यवान् पर्वतपर पहुँच गये। उसके ऊपर चढ़कर उन्होंने किम्पुरुष, सिद्ध और चारणोंसे सेवित गन्धमादनके दर्शन किये। उसे देखकर उन्हें हर्षसे रोमाञ्च हो आया। क्रमशः उन वीरोंने मन और नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले परम पवित्र गन्ध-मादनके वनमें प्रवेश किया। उस समय महाराज युधिष्ठिरने भीमसेनसे प्रेमपूर्वक कहा, 'अहो! यह गन्धमादनका जंगल कैसा शोभासम्पन्न है! इस मनोहर वनमें बड़े दिव्य वृक्ष हैं तथा पत्र, पुष्प और फलोंसे सुशोभित तरह-तरहकी लताएँ हैं। इधर, इस परम पवित्र देवनदी गङ्गाकी ओर तो देखो। इसमें अनेकों कलहंस क्रीडा कर रहे हैं तथा इसके तटपर ऋषि और किन्नरलोग निवास करते हैं। हे कुन्तीनन्दन भीम! तरह-तरहके धातु, नदी, किन्नर, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, मनोरम वन, अनेकों आकारोंके सर्प और सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित इस पर्वतराजकी ओर जरा दृष्टिपात करो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार शूरवीर पाण्डव अपने लक्ष्यस्थानपर पहुँचकर मनमें बड़े ही आनन्दित हुए। उस पर्वतराजको देखते-देखते उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। फिर उन्होंने फल-फूलवाले वृक्षोंसे सुशोभित राजर्षि आर्ष्टिषेणका आश्रम देखा। राजर्षि बड़े ही तपस्वी थे। उनका शरीर अत्यन्त कृश था, शरीरकी नसें दिखायी देने लगी थीं और वे समस्त धर्मोंके पारगामी थे। पाण्डवोंने उनके पास जाकर यथायोग्य प्रणाम किया। धर्मज्ञ आर्ष्टिषेणने

दिव्य दृष्टिसे पाण्डवोंको पहचान लिया और उनसे बैठनेके लिये कहा।

पाण्डवोंके बैठ जानेपर महातपा आर्ष्टिषेणने कौरवोंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरका सत्कार करके पूछा, 'राजन्! तुम्हारा

मन कभी असत्यमें तो नहीं जाता, तुम बराबर धर्ममें स्थित रहते हो न? तुम्हारे माता-पिताकी सेवामें तो कोई अन्तर नहीं आता? अपने समस्त गुरुजन, वृद्ध पुरुष और विद्वानोंका तो तुम सत्कार करते हो न? पापकर्मोंमें तो कभी तुम्हारा मन नहीं जाता? तुम उपकारका बदला चुकाना और अपकारको भूल जाना तो अच्छी तरह जानते हो न, और उस ज्ञानका तुम्हें अभिमान तो नहीं होता? तुमसे यथायोग्य मान पाकर साधुजन प्रसन्न रहते हैं न? वनोंमें रहते समय भी तुम धर्मका ही अनुवर्तन करते हो न? तुम्हारे व्यवहारसे धौम्य-जीको तो कभी कष्ट नहीं होता? दान, धर्म, तप, शौच, आर्जव और तितिक्षाका आचरण करते हुए तुम अपने बाप-दादोंके शीलका अनुसरण करते हो न? तुम राजर्षियोंके द्वारा आचरित मार्गसे ही चलते हो न? जब अपने कुलमें पुत्र या नातीका जन्म होता है तो पितृलोकमें रहनेवाले पितर हँसते भी हैं और शोक भी मनाते हैं; क्योंकि वे सोचते हैं कि पता नहीं हमें इसके कुकर्मोंसे दुःख ही भोगना पड़ेगा या इसके शुभ कर्मोंसे सुख मिलेगा। हे पार्थ! जो पुरुष माता, पिता, अग्नि, गुरु और आत्माकी पूजा करता है, वह इहलोक और परलोक दोनोंहीको जीत लेता है।'

इसपर महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपने यह धर्मके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है। मैं भी यथाशक्ति अपनी योग्यताके अनुसार इसका विधिवत् पालन करता हूँ।

आर्ष्टिषेणने कहा—पूर्णिमा और प्रतिपदाकी सन्धिमें इस पर्वतपर केवल जल या पवनका ही सेवन करनेवाले मुनिगण आकाशमार्गसे आते हैं। उस समय यहाँ भेरी, पणव, शंख और मृदंगोंका शब्द भी सुनायी देता है। आपलोगोंको यहीं बैठे-बैठे उसे सुनना चाहिये, वहाँ जानेका विचार बिल्कुल नहीं करना चाहिये। यहाँसे आगे तुम्हारे लिये जाना सम्भव भी नहीं है; क्योंकि अब आगे देवताओंकी विहारभूमि है, उसमें मनुष्योंकी गति नहीं हो सकती। इस कैलासके शिखरको लाँघकर केवल परमसिद्ध और देवर्षिगण ही जा सकते हैं। यदि कोई मनुष्य चपलतावश जानेका प्रयत्न करता है तो उससे समस्त पर्वतीय जीव द्वेष करने लगते हैं और राक्षसलोग उसे लोहेकी बर्छियोंसे मारते हैं। पर्वसन्धियोंपर यहाँ नरवाहन कुबेरजी भी बड़े ठाट-बाटसे आते हैं। इस कैलासके शिखर-पर ही देवता, दानव, सिद्धों और कुबेरका उद्यान है। इस प्रकार पर्वसन्धियोंपर यहाँ सभी प्राणियोंको ऐसी ही बहुत-सी विचित्र बातें दिखायी दिया करती हैं। अतः जबतक अर्जुन आवें, तबतक तुम यहीं निवास करो।

अतुलित तेजस्वी मुनिवर आर्ष्टिषेणकी यह हितकर बात सुनकर पाण्डवलोग निरन्तर उन्हींकी आज्ञाके अनुसार बर्ताव करने लगे। वे हिमालयपर रहकर महर्षि लोमशसे तरह-तरहके उपदेश सुनते रहते थे। इस प्रकार वहाँ रहते हुए उनके वनवासका पाँचवाँ वर्ष बीत गया। घटोत्कच तो राक्षसोंके साथ पहले ही चला गया था। जाती बार वह कह गया था कि आवश्यकता पड़नेपर मैं फिर उपस्थित हो जाऊँगा। उस आश्रमपर पाण्डवलोग कई मासतक रहे और उन्होंने अनेकों अद्भुत घटनाएँ देखीं। एक दिन बहता हुआ वायु ही हिमालयके शिखरसे सब प्रकारके सुन्दर और सुगन्धित पुष्प उड़ा लाया। बन्धु-बान्धवोंके सहित पाण्डवोंने और यशस्विनी द्रौपदीने वहाँ वे पचरंगे पुष्प देखे।

भीमसेनके हाथसे यक्ष और राक्षसोंका वध तथा कुबेरके द्वारा शान्तिस्थापन

एक दिन भीमसेन उस पर्वतपर आनन्दसे एकान्तमें बैठे थे। उस समय द्रौपदीने उनसे कहा, 'महाबाहो! यदि समस्त राक्षस आपके बाहुबलसे पीडित होकर इस पर्वतको छोड़कर भाग जायँ तो कैसा रहे? फिर तो आपके सुहृदोंको इस

पर्वतका विचित्र पुष्पावलिमण्डित मंगलमय शिखर सब प्रकारके भय और मोहसे रहित दिखायी देगा। भीमसेन! मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह बात आ रही है।'

द्रौपदीकी बात सुनकर भीमसेनने सुवर्णकी पीठवाला धनुष, तलवार और तरकस उठा लिये और वे हाथमें गदा लेकर बेखटके गन्धमादनपर आगे बढ़ने लगे। यह देखकर द्रौपदीका उल्लास उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। पवनपुत्र भीमसेनपर ग्लानि, भय, कायरता और मत्सरताका प्रभाव तो किसी समय भी नहीं होता था। उस पर्वतकी चोटीपर जाकर वे वहाँसे कुबेरके महलको देखने लगे। वह सुवर्ण और स्फटिकके भवनोंसे सुशोभित था। उसके चारों ओर सोनेका परकोटा बना हुआ था। उसमें सब प्रकारके रत्न जगमगा रहे थे और तरह-तरहके उद्यान उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। इस प्रकार राक्षसराज कुबेरके रत्नजटित और पुष्पमालामण्डित प्रासादको देखकर उन्होंने अपने शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला शंख बजाया तथा अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा और तालियोंका भीषण शब्द करके सब जीवोंको मोहित कर दिया। उस शब्दसे यक्ष, राक्षस और गन्धर्वोंके रोंगटे खड़े हो गये और वे गदा, परिघ, तलवार, त्रिशूल, शक्ति और फरसा लेकर भीमसेनकी ओर दौड़े। फिर तो उनके साथ भीमसेनका युद्ध होने लगा। भीमसेनने अपने प्रबल वेगवाले भालेसे उनके चलाये हुए त्रिशूल, शक्ति और फरसे आदि सभी शस्त्रोंको काट डाला। उनके हाथोंसे छूटे हुए आयुधोंसे कटे हुए यक्ष और राक्षसोंके शरीर और सिर सब ओर दिखायी देने लगे। इस प्रकार अंग-भंग होनेसे यक्षलोग भीमसेनसे बहुत डर गये, उनके हाथसे सारे अस्त्र-शस्त्र गिर गये और वे भयङ्कर चीत्कार करने लगे। अन्तमें प्रचण्ड धनुर्धर भीमसेनसे डरकर वे अपने गदा, त्रिशूल, तलवार, शक्ति और फरसे आदि फेंककर दक्षिण दिशाको भागे। उधर कुबेरका मित्र मणिमान् नामका एक राक्षस रहता था। उसने यक्ष-राक्षसोंको भागते देखकर मुसकराकर कहा, 'अरे! तुम अनेकोंको अकेले आदमीने परास्त कर दिया! अब तुम कुबेरके पास जाकर क्या कहोगे?'

उन सबसे ऐसा कहकर वह राक्षस शक्ति, त्रिशूल और गदा लेकर भीमसेनपर टूट पड़ा। भीमसेनने भी मदस्रावी हाथीके समान उसे अपनी ओर आते देखकर अपने वत्सदन्त नामक तीन बाणोंसे उसकी पसलियोंपर प्रहार किया। इससे मणिमान् अत्यन्त क्रोधमें भर गया और उसने अपनी भारी गदा उठाकर भीमसेनके ऊपर छोड़ी। परन्तु भीमसेन गदा-युद्धकी चालोंमें खूब दक्ष थे, अतः उन्होंने उसके उस प्रहारको व्यर्थ कर दिया। इसी समय उस राक्षसने सोनेकी मूठवाली एक फौलादकी शक्ति छोड़ी। वह भीषण शक्ति भीमसेनके दाहिने हाथको घायल करके अग्निकी लपटें निकालती हुई पृथ्वीपर गिर गयी। उस शक्तिके लगनेसे अतुलित पराक्रमी भीमसेनकी आँखें क्रोधसे घूमने लगीं और उन्होंने अपनी सुवर्णके पत्रसे मढ़ी हुई गदा उठा ली। वे आकाशमें उछलकर उस गदाको घुमाते हुए उसकी ओर दौड़े और संग्राममभूमिमें भयंकर गर्जना करते हुए उसे मणिमान्‌के

ऊपर फेंका। वह गदा वायुके समान बड़े वेगसे उस राक्षसका संहार करके पृथ्वीपर गिर गयी। मणिमान्‌को मरकर पृथ्वीपर गिरते देख जो राक्षस मरनेसे बचे थे, वे भयंकर आर्तनाद करते पूर्वकी ओर भाग गये।

इस समय पर्वतकी गुफाओंको अनेक प्रकारके शब्दोंसे गूँजते देखकर अजातशत्रु युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धौम्य, द्रौपदी, ब्राह्मण और सब सुहृद्गण भीमसेनको न देखकर उदास हो गये। फिर द्रौपदीको आर्ष्टिषेण मुनिको सौंपकर वे सब वीर अस्त्र-शस्त्र लेकर एक साथ पर्वतपर चढ़ने लगे। पहाड़की चोटीपर पहुँचकर उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली तो देखा कि एक ओर भीमसेन खड़े हैं और वहीं उनके मारे हुए अनेकों विशालकाय राक्षस पृथ्वीपर पड़े हैं। भीमसेनको देखकर सब भाई उनसे गले मिले और फिर वहीं बैठ गये। महाराज युधिष्ठिरने कुबेरके महल और मरे हुए राक्षसोंकी ओर देखकर भीमसेनसे कहा, 'भैया भीम! तुमने यह पाप साहस या मोहवश ही किया है; तुम मुनियोंका-सा जीवन व्यतीत कर रहे हो, इस प्रकार व्यर्थ हत्या करना तुम्हें शोभा नहीं देता। देखो, यदि तुम मेरी प्रसन्नता करना चाहते हो तो फिर कभी ऐसा न करना।'

इधर भीमसेनके आक्रमणसे बचे हुए कुछ राक्षस बड़ी तेजीसे दौड़कर कुबेरके पास आये और चीख-चीखकर उनसे कहने लगे, 'यक्षराज! आज संग्रामभूमिमें एक अकेले मनुष्यने क्रोधवश नामके राक्षसोंको मार डाला है। वे सब उसकी मारसे निःसत्त्व और प्राणहीन हुए पड़े हैं। हम जैसे-तैसे उसके हाथसे बचकर आपके पास आये हैं। आपका सखा मणिमान् भी मारा जा चुका है। यह सब काण्ड एक मनुष्यने ही कर डाला है। अब जो करना चाहें, वह कीजिये।' यह समाचार पाकर समस्त यक्ष और राक्षसोंके स्वामी कुबेरजी बड़े ही कुपित हुए, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे बोले, 'यह सब कैसे हुआ?' फिर यह दूसरा अपराध भी भीमसेनका ही सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने आज्ञा दी कि हमारा पर्वतशिखरके समान ऊँचा रथ सजा लाओ। रथ तैयार हो जानेपर राजराजेश्वर महाराज कुबेर उसपर चढ़कर चले। जब वे गन्धमादनपर पहुँचे तो यक्ष-

राक्षसोंसे घिरे हुए प्रियदर्शन कुबेरजीको देखकर पाण्डवोंको रोमाञ्च हो आया। तथा महाराज पाण्डुके धनुष-बाणधारी महारथी पुत्रोंको देखकर कुबेरजी भी बड़े प्रसन्न हुए। वे उनसे देवताओंका एक कार्य कराना चाहते थे, इसलिये उन्हें देखकर वे हृदयमें सन्तुष्ट ही हुए। कुबेरजीके जो सेवक पीछे रह गये थे, वे पक्षियोंके समान सीधे ही उस पर्वतपर पहुँच गये तथा यक्षराजको पाण्डवोंपर प्रसन्न देखकर उनका मन-मुटाव भी दूर हो गया।

धर्मके रहस्यको जाननेवाले युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवने कुबेरको प्रणाम किया और अपनेको उनका अपराधी-सा माना। अतः वे सब यक्षराजको घेरकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इस समय भीमसेनके हाथमें पाश, खड्ग और धनुष सुशोभित थे और वे कुबेरकी ओर देख रहे थे। उन्हें देखकर नरवाहन कुबेरजीने धर्मराजसे कहा, 'पार्थ! आप समस्त प्राणियोंका हित करनेमें तत्पर रहते हैं—यह बात सब जीव जानते हैं। इसलिये आप भाइयोंके सहित बेखटके इस पर्वतपर रहिये। देखिये, भीमसेनके ऊपर आप क्रोध न करें; क्योंकि राक्षस तो अपने कालसे ही मरे हैं, आपका भाई तो उसमें निमित्तमात्र है। राजन्! एक बार कुशस्थली नामके स्थानमें देवताओंकी एक मन्त्रणा हुई थी। उसमें मुझे भी बुलाया गया था। तब मैं तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित अत्यन्त भयंकर तीन सौ महापद्म यक्षोंके साथ वहाँ गया था। मार्गमें मुझे मुनिवर अगस्त्यजी मिले। वे यमुनाजीके तटपर बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय मेरा मित्र राक्षसराज मणिमान् भी मेरे साथ ही था। उसने मूर्खता, अज्ञान, गर्व और मोहके अधीन होकर ऊपरसे उन महर्षिके ऊपर थूक दिया। तब मुनिवरने कोप करके मुझसे कहा, 'कुबेर! देखो, तुम्हारे इस सखाने मुझे कुछ न समझकर मेरा तिरस्कार किया है; इसलिये यह अपनी सेनाके सहित केवल एक ही मनुष्यके हाथसे मारा जायगा। तुम्हें भी अपने इन सेनानियोंके कारण दुःखी होना पड़ेगा और फिर उस मनुष्यका दर्शन करनेपर ही तुम्हारा वह दुःख दूर होगा।' इस प्रकार महर्षियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीने मुझे यह शाप दिया था। उस शापसे आज आपके भाईने मुझे मुक्त किया है। राजन्! लौकिक व्यवहारमें धैर्य, कुशलता, देश, काल और पराक्रम—इन पाँच साधनोंकी बड़ी आवश्यकता है। सत्ययुगमें लोग धैर्यवान्, अपने-अपने कर्ममें कुशल और पराक्रमी होते थे। जो क्षत्रिय धैर्यवान्, देश-कालका ज्ञान रखनेवाला और सब प्रकारकी धर्मविधिमें निपुण होता है, वह बहुत समयतक पृथ्वीका शासन करता है। जो पुरुष समस्त कर्मोंमें इस प्रकार बर्तता है, वह संसारमें यश प्राप्त करता है और मरनेपर सद्गति पाता है। किन्तु जो क्रोधके आवेशमें अपने पतनपर दृष्टि नहीं डालता और जिसके मन-बुद्धि पापमें ही रच-पच रहे हैं, वह तो केवल पापका ही अनुसरण करता है। तथा कर्मोंका विभाग न जाननेके कारण वह इस लोक और परलोकमें नाशको ही प्राप्त होता है। यह भीमसेन भी धर्मको नहीं जानता, गर्वीला है; इसकी बुद्धि बालकोंके समान है, सहन करना तो यह जानता ही नहीं और इसे किसी प्रकारका भय भी नहीं है। इसलिये आप फिर राजर्षि आर्ष्टिषेणके आश्रममें जाकर इसे समझाइये। यह

कृष्णपक्ष आप उसी आश्रममें व्यतीत कीजिये। मेरी आज्ञासे अलकापुरीमें रहनेवाले समस्त यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और पर्वतवासी आपकी देख-भाल रक्खेंगे। भीमसेन साहस करके यहाँ आ गया है, सो आप समझाकर इसे ऐसा करनेसे रोक दीजिये। इससे छोटा आपका भाई अर्जुन तो व्यवहारविषयमें निपुण है और सब प्रकारकी धर्ममर्यादाको भी जानता है। इसीसे लोकमें जितनी भी स्वर्गीय विभूतियाँ हैं, वे सब उसे प्राप्त हैं। उनके सिवा उसमें दम, दान, बल, बुद्धि, लज्जा, धैर्य और तेज—ये सब गुण भी हैं ही।'

कुबेरके ये वचन सुनकर पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। भीमसेनने भी शक्ति, गदा, खड्ग और धनुषको पीठपर बाँधकर उन्हें प्रणाम किया। शरणागतवत्सल कुबेरजीने भीमसेनसे कहा, 'तुम शत्रुओंका मान भङ्ग करनेवाले और सुहृदोंके सुखकी वृद्धि करनेवाले होओ।' फिर धर्मराजसे बोले, 'अब अर्जुन अस्त्रविद्यामें निपुण हो गया है, देवराज इन्द्रने भी उसे घर जानेकी आज्ञा दे दी है; इसलिये अब वह शीघ्र ही यहाँ आवेगा।' इस प्रकार उत्तम कर्म करनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरको उपदेश कर वे अपने स्थानको चले गये। भीमसेनके हाथसे जो राक्षस मारे गये थे, उनके शव कुबेरजीकी आज्ञासे

पहाड़के नीचे लुढ़का दिये गये। इस प्रकार युद्धमें मारे जानेसे उन्हें मतिमान् अगस्त्यजीका जो शाप था, उसका भी अन्त हो गया। पाण्डवोंने वह रात बड़े आनन्दसे कुबेरजीके महलोंमें ही बितायी।

धौम्यका युधिष्ठिरको नाना स्थान दिखलाना और अर्जुनका गन्धमादनपर लौटकर आना

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुदमन जनमेजय! सूर्योदय होनेपर मुनिवर धौम्य अपने आह्निक कर्मसे निवृत्त हो राजर्षि आर्ष्टिषेणके साथ पाण्डवोंकी ओर चले। पाण्डवोंने उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर अन्य सब ब्राह्मणोंका भी अभिवादन किया। फिर धौम्यने धर्मराजका हाथ पकड़कर पूर्व दिशाकी ओर संकेत करते हुए कहा, 'महाराज! यह जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर फैला हुआ महापर्वत दिखायी दे रहा है, इसका नाम मन्दराचल है। देखिये, इसकी कैसी शोभा हो रही है! अहा! पर्वतमाला और हरी-भरी वनावलीसे यह दिशा कैसी रमणीय जान पड़ती है। यह दिशा इन्द्र और कुबेरका निवासस्थान कही जाती है। सर्वधर्मज्ञ मुनिजन, प्रजाजन, सिद्ध, साध्य और देवतालोग इसी दिशामें उदित होते हुए सूर्यका पूजन करते हैं।' समस्त प्राणियोंके प्रभु परमधर्मज्ञ यमराज इस दक्षिण दिशामें रहते हैं, जो मरनेवाले प्राणियोंका गन्तव्य स्थान है। यह पवित्र और अद्भुत दिखायी देनेवाली संयमनी पुरी है। यही प्रेतराज यमका निवासस्थान है। इसका ऐश्वर्य भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इधर, पश्चिमकी ओर जो पर्वत दिखायी देता है उसे अस्ताचल कहते हैं। महाराज वरुण इस पर्वत और महासमुद्रमें रहकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। यह सामने उत्तर दिशाको आलोकित करता हुआ परम प्रतापी मेरुपर्वत खड़ा हुआ है। इसपर केवल ब्रह्मवेत्ता ही जा सकते हैं। इसीके ऊपर ब्रह्माजी-

की सभा है और इसीपर वे स्थावर-जङ्गमकी रचना करते हुए निवास करते हैं। इसी पर्वतके ऊपर वसिष्ठादि सप्तर्षियोंके उदय-अस्त होते रहते हैं। तुम तनिक मेरुपर्वतके इस पवित्र शिखरके दर्शन करो। अनादिनिधन श्रीनारायणका स्थान इससे भी परे चमक रहा है। वह सर्वतेजोमय और परम पवित्र है, देवता भी उसका दर्शन नहीं कर सकते। अग्नि और सूर्य उस स्थानको प्रकाशित नहीं कर सकते, वह तो स्वयं अपने प्रकाशसे ही प्रकाशित है। उसका दर्शन देवता और दानवोंको भी दुर्लभ है। उस स्थानपर अचिन्त्यमूर्ति श्रीहरि विराजते हैं। जो महान् तपस्वी और शुभकर्मोंसे पवित्रचित्त हो गये हैं, वे अज्ञान और मोहसे रहित योगसिद्ध महात्मा यतिजन ही भक्तिके द्वारा उनके पास जा सकते हैं। वहाँ जाकर वे फिर इस लोकमें नहीं आते। राजन्! यह परमेश्वरका स्थान ध्रुव, अक्षय और अविनाशी है; तुम इसे प्रणाम करो। देखो! सूर्य, चन्द्रमा और समस्त तारागण अपनी-अपनी मर्यादामें रहकर सर्वदा इस पर्वतराज मेरुकी ही प्रदक्षिणा किया करते हैं। इसकी परिक्रमा करते हुए ही नक्षत्रोंके सहित चन्द्रमा पर्वसन्धियोंका समय आनेपर महीनोंका विभाग करते हैं तथा महातेजस्वी सूर्य वर्षा, वायु और तापरूप सुखके साधनोंसे प्राणियोंका पोषण करते हैं। हे भारत! भगवान् सूर्य ही समस्त जीवोंकी आयु और कर्मोंका विभाग करके दिन, रात, कला, काष्ठा आदि कालके अवयवोंकी रचना करते हैं।'
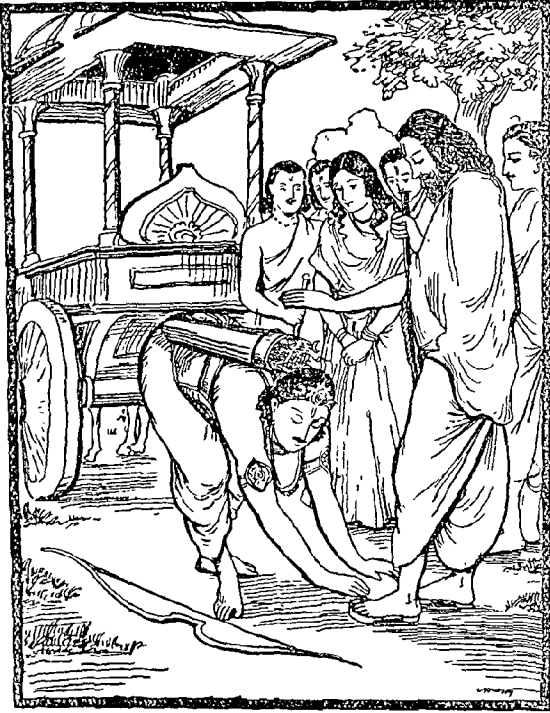
वैशम्पायनजी कहते हैं——राजन्! फिर उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले पाण्डवलोग उस पर्वतपर ही निवास करने लगे।

अर्जुन अस्त्रविद्या सीखनेके लिये इन्द्रके पास गये थे। वे पाँच वर्षतक इन्द्रके भवनमें रहे और उन्होंने देवराजसे अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, वायु, विष्णु, इन्द्र, पशुपति, परमेष्ठी ब्रह्मा, प्रजापति यम, धाता, सविता, त्वष्टा और कुबेर आदि देवताओंके अस्त्र प्राप्त किये। फिर इन्द्रने उन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी। तब वे उन्हें प्रणाम कर बड़ी खुशी-खुशी गन्धमादन पर्वतपर लौट गये।

अर्जुनकी प्रवासकथा—किरातका प्रसङ्ग और लोकपालोंसे अस्त्र प्राप्त करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—महावीर अर्जुन इन्द्रके रथमें बैठे हुए अकस्मात् उस पर्वतपर उतरे। उन्होंने रथसे उतरकर पहले मुनिवर धौम्यके और फिर महाराज युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके पश्चात् नकुल और सहदेवने उनका अभिवादन किया। फिर कृष्णासे मिलकर और उसे धीरज बँधाकर वे विनयपूर्वक बड़े भाई युधिष्ठिरके पास आकर खड़े हो गये। अतुलित प्रभावशाली अर्जुनसे मिलकर पाण्डवोंको बड़ा ही हर्ष हुआ। तथा अर्जुनको भी उन्हें देखकर अपार आनन्द हुआ और वे महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा करने लगे। पाण्डवोंने इन्द्रके रथके पास जाकर उसकी परिक्रमा की और इन्द्रके सारथि मातलिका इन्द्रके समान ही सत्कार किया और उससे सब प्रकार देवताओंका कुशल-क्षेम पूछा। मातलिने भी, पिता जैसे पुत्रको उपदेश करता है उसी प्रकार, पाण्डवोंको उपदेश करके उनका अभिनन्दन किया और फिर उस अमित प्रभावशाली रथमें बैठकर देवराज इन्द्रके पास चला गया।

मातलिके चले जानेपर अर्जुनने देवराजके दिये हुए अत्यन्त सुन्दर और बहुमूल्य आभूषण द्रौपदीको दे दिये। फिर सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी पाण्डव एवं ब्राह्मणोंके बीचमें बैठकर वे यथावत् सब बातें सुनाने लगे।

उन्होंने बताया कि 'इस-इस प्रकार मैंने इन्द्र, वायु और साक्षात् श्रीमहादेवजीसे अस्त्र प्राप्त किये हैं तथा मेरे स्वभावसे भी इन्द्र और समस्त देवता पूर्णतया सन्तुष्ट थे।' इस प्रकार शुद्ध-कर्मा अर्जुनने संक्षेपमें अपने स्वर्गके प्रवासकालकी बहुत-सी बातें सुनायीं। फिर उस रातको उन्होंने आनन्दपूर्वक नकुल और सहदेवके साथ शयन किया। रात्रि बीतनेपर प्रातःकालके समय वे भाइयोंके सहित धर्मराजके पास गये और उन्हें प्रणाम किया।

इसी समय देवराज इन्द्र अपने सुवर्णजटित रथसे आकर

उस पर्वतपर उतरे। जब पाण्डवोंने उन्हें उतरते देखा तो वे उनके पास आये और उनका विधिवत् पूजन किया। परम-तेजस्वी अर्जुनने भी देवराजको प्रणाम किया और सेवकके समान उनके पास खड़े हो गये। इस समय उदारचित्त धर्मराजका हृदय हर्षसे उमड़ रहा था, उनसे देवराज इन्द्रने कहा, 'पाण्डुपुत्र! तुम प्रसन्न रहो, तुम ही इस पृथ्वीका शासन करोगे। अब तुम काम्यक वनको लौट जाओ। अर्जुनने बड़ी सावधानीसे मुझसे सब शस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। इसने मेरा प्रिय भी किया है। अब इसे त्रिलोकी भी नहीं जीत सकती।' कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कह वे फिर स्वर्गको लौट गये।

इन्द्रके चले जानेपर धर्मराजने गद्गदकण्ठ होक अर्जुनसे पूछा—"भैया! तुम्हें इन्द्रके दर्शन किस प्रक हुए? भगवान् शङ्करसे तुम्हारा कैसे समागम हुआ? तुमने कि प्रकार सारी शस्त्रविद्या प्राप्त की? और कैसे श्रीमहादेवज की आराधना की? भगवान् इन्द्र कहते थे कि 'अर्जुन मेरा प्रिय किया है।' सो तुमने उनका क्या काम किया था ये सब बातें मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।"

यह सुनकर अर्जुनने कहा—महाराज! जिस प्रका मुझे इन्द्र और भगवान् शंकरके दर्शन हुए, वह सुनिये। आपने मुझे जिस विद्याका उपदेश किया था, उसे सीखकर आपकी आज्ञासे मैं तप करनेके लिये वनमें गया। काम्यक वनसे चलकर मैंने भृगुतुङ्ग पर्वतपर जाकर तप करना आरम्भ किया, किन्तु वहाँ मैं केवल एक ही रात रहा। उसके पश्चात् मैं हिमालयपर जाकर तप करने लगा। मैंने एक महीनेतक केवल कन्द और फलका आहार किया, दूसरा महीना जल पीकर बिताया और तीसरे महीने निराहार रहा। चौथे महीनेमें मैं ऊपरको हाथ उठाये खड़ा रहा। यह सब होनेपर भी विचित्र बात यह हुई कि मेरे प्राण नहीं छूटे। पाँचवें महीनेका एक दिन बीतनेपर एक सूअर इधर-उधर घूमता हुआ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे एक किरातवेषधारी पुरुष आया। वह धनुष, बाण और तलवार धारण किये हुए था तथा उसके पीछे-पीछे कई स्त्रियाँ चल रही थीं। तब मैंने धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ाया और उस रोमाञ्चकारी सूअरको बींध दिया। उसी समय उस भीलने भी अपना प्रबल धनुष खींचकर बाण छोड़ा, जिससे कि मेरा मन दहल-सा गया। राजन्! फिर उसने मुझसे कहा—'यह सूअर तो पहले मेरा निशाना बन चुका था, फिर तुमने आखेटके नियमको छोड़कर उसपर वार क्यों किया? अच्छा, तुम सावधान हो जाओ; मैं अपने पैने बाणोंसे अभी तुम्हारे गर्वको चूर किये देता हूँ।' ऐसा कहकर उस विशालकाय भीलने पर्वतके समान निश्चल खड़े हुए मुझको बाणोंसे आच्छादित कर दिया तथा मैंने भी भीषण बाणवर्षा करके उसे ढक दिया। उस समय उसके सैकड़ों-सहस्रों रूप प्रकट होने लगे और मैं उन सभीपर बाणवर्षा करने लगा। फिर वे सारे रूप मुझे एक हुए दिखायी दिये, तो मैंने उसे भी बींध दिया। जब इतनी बाणवर्षा करनेपर भी मैं उसे युद्धमें परास्त न कर सका तो मैंने वायव्यास्त्र छोड़ा। किन्तु वह भी उसका वध न कर सका। इस प्रकार वायव्यास्त्रको कुण्ठित हुआ देखकर

मुझे बड़ा ही विस्मय हुआ। फिर मैंने बारी-बारीसे उसपर स्थूणाकर्ण, वारुणास्त्र, शरवर्षास्त्र, शालभास्त्र और अश्मवर्षास्त्र भी छोड़े। किन्तु वह भील उन सभी अस्त्रोंको निगल गया। उनके ग्रस लिये जानेपर मैंने ब्रह्मास्त्रको आज्ञा दी। उससे निकलते हुए प्रज्वलित बाणोंसे वह सब ओरसे ढक गया। परन्तु उस महातेजस्वी भीलने उसे भी एक क्षणमें ही शान्त कर दिया। उसके व्यर्थ हो जानेपर तो मुझे बड़ा ही भय हुआ। फिर मैंने धनुष और अपने दोनों अक्षय तरकस लेकर उसपर प्रहार किया। किन्तु वह उन्हें भी निगल गया। इस प्रकार जब सभी अस्त्र नष्ट हो गये और मेरे सभी आयुधोंको वह निगल गया तो मेरा और उसका बाहुयुद्ध होने लगा। मैं मुक्का-मुक्की और हाथापाई करनेपर भी उस पुरुषकी बराबरी न कर सका और अचेत होकर पृथ्वीपर गिर गया। फिर मेरे देखते-देखते वह हँसकर उन स्त्रियोंके सहित वहीं अन्तर्धान हो गया। इससे मैं भौंचक्का-सा रह गया।

यह सब लीला करके वे देवाधिदेव महादेव उस किरात-वेषको छोड़कर अपने दिव्य रूपसे प्रकट हुए। उनके कण्ठमें सर्प पड़े हुए थे, हाथमें पिनाक धनुष था और साथमें देवी पार्वती थीं। मैं पूर्ववत् ही युद्धके लिये तैयार खड़ा था। किन्तु उन्होंने मेरे सम्मुख आकर कहा कि 'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' यह कहकर उन्होंने मेरे छीने हुए धनुष और अक्षय बाणों-वाले दोनों तरकस लौटा दिये और कहा, 'हे वीर! इन्हें धारण कर लो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; बताओ, तुम्हारा क्या काम करूँ? तुम्हारे मनमें जो बात हो, वह कह दो। अमरत्व-को छोड़कर और तुम्हारी सब कामना मैं पूर्ण कर दूँगा।' मेरे मनमें अस्त्र ही समाये हुए थे, इसलिये मैंने हाथ जोड़कर उन्हें मनसे प्रणाम करते हुए कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे तो देवताओंके दिव्य अस्त्रोंको पाने और उनका प्रयोग जाननेकी ही इच्छा है—यही मेरा अभीष्ट वर है।' तब भगवान् त्रिलोचनने कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हें यह वर देता हूँ; अब शीघ्र ही तुम्हें मेरा पाशुपतास्त्र प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर उन्होंने अपना महान् पाशुपतास्त्र मुझे दे दिया, और फिर कहा, 'तुम इस अस्त्रका मनुष्योंपर कभी प्रयोग न करना, क्योंकि यदि इसे अल्पवीर्य प्राणियोंपर छोड़ा जायगा तो यह त्रिलोकीको भस्म कर देगा। अतः जब तुम्हें अत्यन्त पीड़ा हो, तभी इसका प्रयोग करना। अथवा जब शत्रुके छोड़े हुए अस्त्रोंको रोकना हो, तब इसका प्रयोग करना।' इस प्रकार भगवान् शङ्करके प्रसन्न होनेसे वह समस्त अस्त्रोंको रोक देनेवाला और स्वयं किसीसे न रुकनेवाला दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे पास आ गया। फिर भगवान्की आज्ञा होनेसे मैं वहीं बैठ गया और मेरे देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये।

महाराज! देवदेव श्रीमहादेवजीकी कृपासे वह रात मैंने आनन्दपूर्वक वहीं बितायी। दूसरे दिन जब दिन ढलने लगा तो उस हिमालयकी तलैटीमें दिव्य, नवीन और सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सब ओर दिव्य वाद्योंकी ध्वनि होने लगी तथा देवराज इन्द्रकी स्तुतियाँ सुनायी देने लगीं। थोड़ी देरमें श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते हुए एक अत्यन्त सुसज्जित रथमें देवराज इन्द्र इन्द्राणीसहित वहाँ पधारे। उनके साथ और भी सभी देवता आये थे। इतनेहीमें मुझे महान् ऐश्वर्यसम्पन्न नरवाहन श्रीकुबेरजी दिखायी दिये। फिर मेरी दृष्टि दक्षिण दिशामें विराजमान यमपर और पूर्व दिशामें स्थित इन्द्र तथा पश्चिममें विराजमान महाराज वरुणपर पड़ी। राजन्! उन सबने मुझे धैर्य बँधाकर कहा, 'सव्यसाचिन्! देखो, हम सब लोकपाल यहाँ उपस्थित हैं। तुम्हें देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही महादेवजीके दर्शन हुए थे। तुम हम सबसे अस्त्र ग्रहण करो।' राजन्! तब मैंने सावधान होकर उन देवश्रेष्ठोंको प्रणाम किया और विधिपूर्वक उन सबके महान् अस्त्र ग्रहण किये। जब मैं अस्त्र ले चुका तो उन्होंने मुझे जानेकी आज्ञा दी और वे स्वयं अपने-अपने लोकोंको चले गये। देवराज इन्द्रने भी अपने तेजोमय रथपर चढ़कर मुझसे कहा, 'अर्जुन! तुम्हें स्वर्गमें आना होगा। तुमने कई बार तीर्थोंमें स्नान किया है और बड़ी भारी तपस्या भी की है। इसलिये तुम वहाँ अवश्य आना। मेरी आज्ञासे मातलि तुम्हें स्वर्गमें पहुँचा देगा।'

तब मैंने इन्द्रसे कहा, 'भगवन्! आप मुझपर कृपा कीजिये, मैं आपको अस्त्रविद्या सीखनेके लिये अपना गुरु बनाना चाहता हूँ।' इन्द्रने कहा, 'भारत! तुम मेरे लोकमें रहकर वायु, अग्नि, वसु, वरुण और मरुद्गण—सभीसे अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त करना। इसी प्रकार साध्यगण, ब्रह्मा, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, विष्णु और निर्ऋतिके तथा स्वयं मेरे अस्त्रोंका भी ज्ञान प्राप्त करना।' मुझसे ऐसा कहकर इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये।

अर्जुनद्वारा स्वर्गलोकमें अपनी अस्त्रशिक्षा और युद्धकी तैयारीका कथन

अर्जुनने कहा—राजन्! फिर दिव्य घोड़ोंसे जुते हुए इन्द्रके दिव्य और मायामय रथको लेकर मातलि मेरे पास आया और

मुझसे बोला, 'देवराज इन्द्र आपसे मिलना चाहते हैं।' यह सुनकर मैंने पर्वतराज हिमालयकी प्रदक्षिणा की और उनकी आज्ञा लेकर उस श्रेष्ठ रथमें सवार हुआ। तब अश्वविद्यामें निष्णात मातलिने उन मन और वायुके समान वेगवान् घोड़ोंको हाँका। जब मातलिने देखा कि रथके हिलनेपर भी मैं स्थिर रहता हूँ तो उसने बड़े आश्चर्यमें पड़कर कहा, 'आज मुझे यह बड़ी विचित्र बात दिखायी दे रही है। रथके घोड़े चलनेपर मैंने देवराजको भी हिलते हुए देखा है, किन्तु तुम बिल्कुल स्थिर दिखायी देते हो। तुम्हारी यह बात तो मुझे इन्द्रसे भी बढ़कर जान पड़ती है।' ऐसा कहते-कहते मातलि रथको आकाशमें ऊँचा ले गया और मुझे देवताओंके भवन तथा विमान दिखाने लगा। कुछ और आगे बढ़नेपर उसने मुझे देवताओंके नन्दनादि वन और उपवन दिखाये। उससे आगे इन्द्रकी अमरावती पुरी दिखायी दी। उसमें सूर्यका ताप नहीं होता और न शीत, उष्ण या श्रम ही होता है। वहाँ वृद्धावस्थाका भी कष्ट नहीं है और न कहीं शोक, दीनता या दुर्बलता ही दिखायी देते हैं। वहाँके बहुत-से निवासी विमानोंमें बैठकर आकाशमें विचर रहे थे। इस प्रकार देखता-देखता जब मैं और आगे बढ़ा तो मुझे वसु, रुद्र, साध्य, पवन, आदित्य और अश्विनीकुमारोंके दर्शन हुए। मैंने उन सभीकी पूजा की और उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें बल, वीर्य, यश, तेज, अस्त्र और युद्धमें विजय प्राप्त हो।'

इसके पश्चात् मैंने देवता और गन्धर्वोंसे पूजित अमरावती पुरीमें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रके पास पहुँचकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तब दानियोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने बैठनेके लिये मुझे अपना आधा सिंहासन दिया। वहाँ मैं अस्त्रविद्या प्राप्त करता हुआ परम प्रवीण देवता और गन्धर्वोंके साथ रहने लगा। रहते-रहते विश्वावसुके पुत्र चित्रसेनसे मेरी मित्रता हो गयी। उसने मुझे सम्पूर्ण गान्धर्व शास्त्रकी शिक्षा दी। वहाँ इन्द्रभवनमें रहकर मैंने तरह-तरहके गान और वाद्य सुने तथा अप्सराओंको नृत्य करते देखा। किन्तु इन सब बातोंको असार समझकर मैंने अस्त्रविद्यामें ही विशेष मनोनिवेश किया। मेरी ऐसी प्रवृत्ति देखकर देवराज भी मुझपर प्रसन्न रहे और स्वर्गमें रहते हुए मेरा समय आनन्दसे बीतने लगा। मुझमें सभीका बहुत विश्वास था तथा अस्त्रविद्यामें भी मैं काफी निपुण हो गया था। एक दिन इन्द्रने मुझसे कहा, 'वत्स! अब तुम्हें युद्धमें देवता भी परास्त नहीं कर सकते, फिर मर्त्यलोकमें रहनेवाले बेचारे मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? तुम युद्धमें अतुलित, अजेय और अनुपम होगे। अस्त्रयुद्धमें तुम्हारा सामना कर सके, ऐसा कोई वीर नहीं होगा। तुम सर्वदा सावधान रहते हो, व्यवहारकुशल हो, सत्यवादी हो, जितेन्द्रिय हो, ब्राह्मणसेवी हो और शूरवीर हो। तुमने पंद्रह अस्त्र प्राप्त किये हैं और तुम उनका प्रयोग, उपसंहार, आवृत्ति, प्रायश्चित्त और प्रतिघात—इन पाँच

विधियोंको भी अच्छी तरह जानते हो। अतः शत्रुदमन! अब गुरुदक्षिणा देनेका समय आ गया है। निवातकवच नामके दानव मेरे शत्रु हैं। वे समुद्रके भीतर दुर्गम स्थानमें रहते हैं। वे तीन करोड़ बताये जाते हैं और उन सभीके रूप, बल और प्रभाव समान ही हैं। तुम उन्हें मार डालो। बस, तुम्हारी गुरुदक्षिणा पूरी हो जायगी।' ऐसा कहकर इन्द्रने मुझे अपना अत्यन्त प्रभापूर्ण दिव्य रथ दिया। उसे मातलि चलाता था और मेरे सिरपर यह अत्यन्त प्रकाशमय मुकुट पहनाया। एक अभेद्य और सुन्दर कवच पहनाकर मेरे गाण्डीव धनुषपर एक अटूट प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। इस प्रकार जब मुझे सब प्रकारकी युद्धसामग्रीसे सुसजित कर दिया तो मैं उस रथपर चढ़कर दैत्योंके साथ युद्ध करनेके लिये चल दिया। तब उस रथकी घरघराहट सुनकर मुझे देवराज समझ सब देवता चौकन्ने होकर मेरे पास आये। फिर वहाँ मुझे देखकर उन्होंने पूछा, 'अर्जुन! तुम क्या करनेकी तैयारीमें हो?' तब मैंने उन्हें सब बात बताकर कहा, 'मैं निवातकवचों-का वध करनेके लिये जा रहा हूँ; अतः आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये, जिससे मेरा मङ्गल हो।' तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे कहा, 'इस रथमें बैठकर इन्द्रने शम्बर, नमुचि, बल, वृत्र और नरक आदि हजारों दैत्योंको जीता है; अतः कुन्तीनन्दन! इसके द्वारा तुम भी निवातकवचोंको युद्धमें परास्त करोगे।'
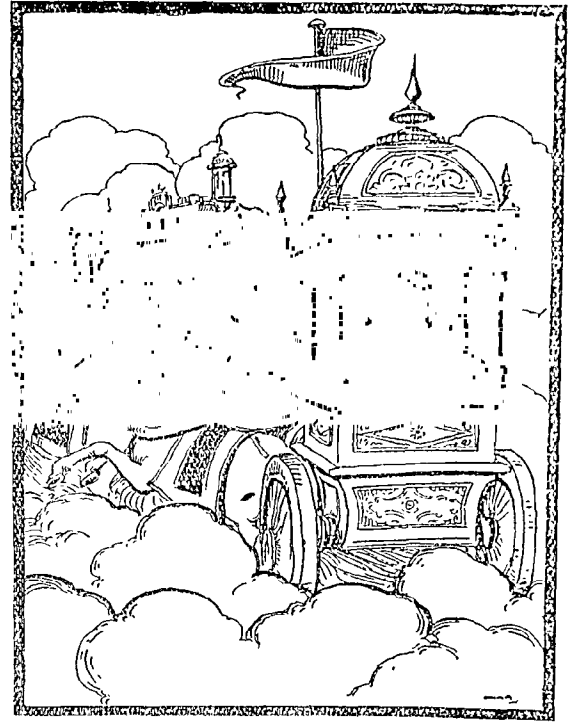
अर्जुनद्वारा निवातकवचोंके साथ अपने युद्धका वर्णन

अर्जुनने कहा—राजन्! मार्गमें जाते हुए भी जगह-जगहपर महर्षिगण मेरी स्तुति करते थे। अन्तमें मैंने अथाह और भयावह समुद्रके पास पहुँचकर देखा कि उसमें फेनसे मिली हुई पहाड़ोंके समान ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। वे कभी इधर-उधर फैल जाती थीं और कभी आपसमें टकरा जाती थीं। सब ओर रत्नोंसे भरी हुई हजारों नावें चल रही थीं तथा बड़े-बड़े मत्स्य, कछुए, तिमि, तिमिंगल और मकर जलमें डूबे हुए पहाड़-से जान पड़ते थे। इस प्रकार उस अत्यन्त वेगशाली महासागरको देखकर उसके पास ही मैंने दानवोंसे भरा हुआ उनका नगर देखा। वहाँ पहुँचकर मातलिने अपना रथ उस नगरकी ओर दौड़ाया। रथकी घरघराहटसे दानवोंके हृदय दहल गये। इसी समय मैंने भी बड़े आनन्दसे धीरे-धीरे अपना देवदत्त नामक शङ्ख बजाना आरम्भ कर दिया। उस शब्दने आकाशसे टकराकर प्रतिध्वनि पैदा कर दी। उसे सुनकर बहुत-से बड़े-बड़े जीव भी भयभीत होकर इधर-उधर छिप गये। फिर अनेकों प्रकार-के अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित सहस्रों निवातकवच दैत्य नगरसे बाहर आये। उन्होंने हजारों प्रकारके भीषण स्वर और आकारवाले बाजे बजाने आरम्भ किये। इस प्रकार निवात-कवचोंके साथ मेरा भीषण संग्राम छिड़ गया। उसे देखनेके लिये वहाँ अनेकों देवर्षि, दानवर्षि, ब्रह्मर्षि और सिद्धलोग आ गये। और मेरी ही विजयकी अभिलाषासे मधुर वाणी-द्वारा मेरी स्तुति करने लगे।

दानवोंने मेरे ऊपर गदा, शक्ति और शूलोंकी अनवरत वर्षा आरम्भ कर दी और वे तड़ातड़ मेरे रथके ऊपर गिरने लगे। तब मैंने बहुतोंको तो प्रत्येकके दस-दस बाण मारकर धराशायी कर दिया। इसी प्रकार अनेकों छोटे-छोटे शस्त्रोंसे भी मैंने सहस्रों असुरोंको काट डाला। इधर घोड़ोंकी मार और रथके प्रहारसे भी अनेकों राक्षस कुचल गये और कितने ही मैदान छोड़कर भाग गये। कुछ निवातकवच स्पर्धासे बाणोंकी वर्षा करके मेरी गतिको रोकने लगे। तब मैंने ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके हजारों छोटे-छोटे बाण छोड़कर

उनका सफाया कर दिया। उस समय उन दैत्योंके छिन्न-भिन्न शरीरोंसे उसी प्रकार रक्तका प्रवाह चलने लगा, जैसे वर्षा ऋतुमें पर्वतोंकी चोटियोंसे जलकी धाराएँ बहने लगती हैं।

राजन्! फिर सब ओर पर्वतके समान बड़ी-बड़ी चट्टानोंकी वर्षा आरम्भ हुई। उसने तो मुझे बहुत ही खिन्न कर दिया। तब मैंने इन्द्रास्त्रके द्वारा अनेकों वज्रके-से वेगवाले बाण छोड़कर उन्हें चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार पत्थरोंकी वर्षा बंद हुई तो मोटी-मोटी जलकी धाराएँ गिरने लगीं। इन्द्रने मुझे विशोषण नामका एक दीप्तिशाली दिव्य अस्त्र दिया था। उसे छोड़नेसे वह सारा जल सूख गया। इसके पश्चात् दानवोंने मायाद्वारा अग्नि और वायु छोड़े। तब तुरंत ही मैंने जलास्त्रसे अग्निको शान्त कर दिया और शैलास्त्रद्वारा वायुको रोक दिया। इतनेहीमें एक-एक करके वे सब दानव अदृश्य हो गये और इस अन्तर्धानी मायासे कोई भी दानव मेरे नेत्रोंके सामने न रहा। इस प्रकार अदृश्य रहकर ही वे मेरे ऊपर शस्त्र चलाने लगे तथा मैं भी अदृश्यास्त्रके द्वारा उनसे युद्ध करने लगा। इस युक्तिसे गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए बाण जहाँ-जहाँ वे दैत्य थे, वहीं जाकर उनके सिर काट डालते थे। जब मैं इस प्रकार युद्धक्षेत्रमें उनका संहार करने लगा तो वे अपनी मायाको समेटकर नगरमें घुस गये। दैत्योंके चले जानेसे जब वहाँका दृश्य स्पष्ट हो गया तो मुझे सैकड़ों-हजारों दानव मरे दिखायी दिये। वहाँ दैत्योंकी इतनी लाशें पड़ी थीं कि घोड़ोंके लिये एकके बाद दूसरा पैर रखना कठिन था। इसलिये घोड़े पृथ्वीसे उठकर आकाशमें स्थित हो गये। किन्तु निवातकवचोंने अदृश्यरूपसे पत्थरोंकी वर्षा करते हुए आकाशको भी आच्छादित कर दिया। पत्थरोंसे ढक जाने और घोड़ोंकी गति रुक जानेके कारण मैं बड़ा तंग आ गया। तब मातलिने मुझे डरा हुआ देखकर कहा, 'अर्जुन! अर्जुन! डरो मत, वज्रास्त्रका प्रयोग करो।' राजन्! मातलिका यह वचन सुनकर मैंने देवराजका प्रिय अस्त्र वज्र छोड़ा और एक अविचल स्थानपर बैठकर गा[ण्डीव] को अभिमन्त्रित कर मैंने लोहेके बने हुए वज्रके समान बाण छोड़े। उन वज्रतुल्य बाणोंके वेगसे आहत होक[र] पर्वतके समान विशालकाय दैत्य एक-दूसरेसे लिपट-लिप[टकर] पृथ्वीपर लुढ़कने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह हुई कि इतना संग्राम होनेपर भी रथ, मातलि या घो[ड़ों]को किसी भी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँची।

फिर मातलिने मुझसे हँसकर कहा, 'अर्जुन! तुममें [जैसा] पराक्रम देखा जाता है, वैसा तो देवताओंमें भी नहीं है।' [इस] प्रकार जब निवातकवचोंका अन्त हो गया तो नगरमें उन[की] स्त्रियाँ रोने-पीटने लगीं। उस समय ऐसा जान पड़ता [था] मानो शरद् ऋतुमें सारसोंका शब्द हो रहा हो। फिर [मैं] मातलिके साथ उस नगरमें गया। मेरे रथका घोष सुन[कर] दैत्योंकी स्त्रियाँ बहुत डरीं और उसे देखकर वे झुंड-क[े-]झुंड भागने लगीं। वह नगर अमरावतीसे भी बढ़-चढ़क[र] था। ऐसा अद्भुत नगर देखकर मैंने मातलिसे पूछा, 'ऐ[से] सुन्दर नगरमें देवतालोग क्यों नहीं रहते? मुझे तो य[ह] इन्द्रपुरीसे भी बढ़कर जान पड़ता है।' मातलिने कहा "पहले यह नगर हमारे देवराज इन्द्रका ही था; किन्तु फिर निवातकवचोंने देवताओंको यहाँसे भगा दिया। कहते हैं, पूर्वकालमें महान् तपस्या करके दानवोंने भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न किया और उनसे अपने रहनेके लिये यह स्थान और युद्धमें देवताओंसे अभय माँगा। तब इन्द्रने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की कि 'भगवन्! हमारे हितके लिये आप ही इनका संहार कीजिये।' तब ब्रह्माजीने कहा, 'इन्द्र! इस विषयमें विधाताका विधान ऐसा ही है कि दूसरे शरीरद्वारा तुम ही इनका नाश करोगे।' इसीसे इनका वध करनेके लिये इन्द्रने तुम्हें अपने अस्त्र दिये हैं। तुमने जिन असुरोंका संहार किया है, उन्हें देवता नहीं मार सकते थे।"

इस प्रकार उन दानवोंका नाश करके उस नगरमें शान्ति स्थापित कर मैं मातलिके साथ फिर देवलोकमें चला आया।

अर्जुनके द्वारा कालिकेय और पौलोमोंके साथ युद्ध और स्वर्गसे विदाईका वर्णन

अर्जुन कहते हैं—लौटते समय मार्गमें मुझे एक दूसरा दिव्य नगर दिखायी दिया। वह बहुत ही विस्तृत और अग्नि एवं सूर्यके समान कान्तिवाला था। उसे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाया जा सकता था। उसमें भी दैत्यलोग ही रहते थे। उस विचित्र नगरको देखकर मैंने मातलिसे पूछा, 'यह अद्भुत स्थान क्या है?' मातलिने कहा, 'पुलोमा और कालिका नामकी दो दानवियाँ थीं। उन्होंने सहस्र दिव्य वर्ष-तक बड़ी कठोर तपस्या की। तपके अन्तमें जब ब्रह्माजीने

न्न होकर उनसे वर माँगनेको कहा तो उन्होंने यह माँगा ; हमारे पुत्रोंको थोड़ा-सा भी कष्ट न हो; देवता, राक्षस या ाग—कोई भी उन्हें मार न सके तथा उनके रहनेके लिये क अत्यन्त रमणीय, प्रकाशपूर्ण और आकाशचारी नगर ो। तब ब्रह्माजीने कालिकाके पुत्रोंके लिये सब प्रकारके त्नोंसे सुसज्जित, देवताओंके लिये भी अजेय, सब प्रकारके अभीष्ट भोगोंसे पूर्ण तथा रोग-शोकसे रहित यह नगर तैयार किया। इसे महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, असुर या राक्षस—कोई भी नहीं जीत सकते। यह नगर आकाशमें भी उड़ता रहता है। इसमें कालिका और पुलोमाके पुत्र ही रहते हैं। ये लोग सब प्रकारके उद्वेग और चिन्तासे दूर रहकर बड़े आनन्दसे इसमें निवास करते हैं। कोई भी देवता इन्हें जीत नहीं सकता। ब्रह्माने इनकी मृत्यु मनुष्यके हाथ ही रक्खी है, अतः तुम वज्रद्वारा इन दुर्जय और महाबली दैत्योंका भी अन्त कर दो।'

तब मैंने प्रसन्न होकर मातलिसे कहा, 'अच्छा, तुम अभी मुझे इस नगरमें ले चलो। जो दुष्ट देवराजसे द्रोह करते हैं, उन्हें मैं अभी तहस-नहस कर डालूँगा।' मातलि तुरंत ही मुझे उस सुवर्णमय नगरके पास ले गया। मुझे देखकर वे दैत्य कवच धारण कर, रथोंमें सवार हो बड़े वेगसे मेरे ऊपर टूट पड़े और अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे ऊपर नालीक, नाराच, भाले, शक्ति, ऋष्टि और तोमरोंसे वार करने लगे। तब मैंने अपनी अस्त्रविद्याके बलसे भीषण बाणवर्षा कर उनकी शस्त्रवृष्टिको रोक दिया और उन सबको मोहित कर दिया, जिससे वे आपसमें ही एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। उनकी इस मुग्धावस्थामें ही मैंने अनेकों चमचमाते हुए बाण छोड़कर सैकड़ोंके सिर काट डाले। जब उनका इस प्रकार नाश होने लगा तो वे फिर अपने नगरमें ही घुस गये और मायाद्वारा उस पुरीके सहित आकाशमें उड़ गये। तब दिव्यास्त्रोंके द्वारा छोड़े हुए शरसमूहसे मैंने दैत्योंके सहित उस नगरको घेर दिया। मेरे छोड़े हुए लोहेके बाण सीधे पार निकल जानेवाले थे। उनसे टूट-फूटकर वह दैत्योंका नगर पृथ्वीपर गिर गया।

फिर तो मुझसे युद्ध करनेके लिये उनमेंसे साठ हजार रथी क्रोधित होकर मेरे ऊपर चढ़ आये और मुझे चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु मैंने पैने-पैने बाण छोड़कर उन सभीको नष्ट कर दिया। थोड़ी ही देरमें समुद्रकी लहरोंके समान एक दूसरा दल चढ़ आया। तब मैंने यह सोचकर कि मानवी युद्धसे इनपर विजय पाना कठिन है, धीरे-धीरे दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग आरम्भ कर दिया। किन्तु वे दैत्य रथी बड़े ही विचित्र योद्धा थे। वे मेरे दिव्य अस्त्रोंको भी काटने लगे। तब मैंने देवाधिदेव श्रीमहादेवजीकी ही शरण ली और 'सब प्राणियोंका कल्याण हो' ऐसा कहकर उनका सुप्रसिद्ध पाशुपतास्त्र गाण्डीव धनुषपर चढ़ाया। फिर भगवान् त्रिनयनको मन-ही-मन प्रणाम कर उन दैत्योंका नाश करनेके लिये उसे छोड़ दिया। उसकी प्रचण्ड मारसे दैत्य बात-की-बातमें नष्ट हो गये। राजन्! इस प्रकार एक मुहूर्तमें ही मैंने उन दानवोंका अन्त कर डाला।

इस प्रकार उन दिव्याभरणविभूषित दैत्योंको रौद्रास्त्रके प्रभावसे नष्ट हुआ देख मातलिको बड़ा ही हर्ष हुआ और उसने अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर कहा, 'यह आकाशचारी नगर देवता, दैत्य सभीके लिये अजेय था। स्वयं देवराज भी युद्धद्वारा इसे नहीं जीत सकते थे। किन्तु वीर! अपने पराक्रम और तपोबलसे आज तुमने इसे चूर-चूर कर दिया।' उस आकाशचारी नगरके नष्ट होने और दानवोंके मारे जाने-पर दैत्योंकी स्त्रियाँ भी बाल बिखेरे चीत्कार करती इस नगरके बाहर जा पड़ीं। वे दुःखित होकर कुररियोंके समान विलाप करने लगीं, वह नगर गन्धर्वनगरके समान देखते-देखते अदृश्य हो गया।

इस प्रकार उस युद्धमें विजय पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। फिर सारथि मातलि मुझे रणभूमिसे तुरंत ही इन्द्रके राजभवनमें ले गया। वहाँ पहुँचनेपर मातलिने हिरण्यनगरके पतन, दानवी मायाओंके नाश और रणदुर्मद निवात-कवचोंके वध आदि सभी वृत्तान्तोंको ज्यों-का-त्यों सुना दिया। वह सब समाचार सुनकर महाराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। और उन्होंने ये मधुर वचन कहे, 'पार्थ! तुमने संग्राममें देवता और असुरोंसे भी बढ़कर काम किया है। मेरे शत्रुओंका संहार करके तुमने अपनी गुरुदक्षिणा भी चुका दी है। अब देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, असुर, गन्धर्व तथा पक्षी और नाग—सभीके लिये तुम युद्धमें अजेय हो गये हो। अतः तुम्हारे बाहुबलसे जीती हुई वसुन्धरापर कुन्तीनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर निष्कण्टक राज्य करेंगे। तुम्हें सभी दिव्यास्त्र प्राप्त हैं, इसलिये भूमण्डलमें कोई भी योद्धा तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेगा।' बेटा! जब तुम

संग्रामभूमिमें खड़े होगे तो भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, शकुनि और अन्य सब राजा तुम्हारी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं होंगे।'

फिर राजा इन्द्रने मुझे शरीरकी रक्षा करनेवाला यह दिव्य अभेद्य कवच और यह सोनेकी माला प्रदान की। साथ ही उन्होंने यह देवदत्त नामक शंख भी दिया, जिसकी आवाज़ बहुत ऊँची है, और यह दिव्य किरीट तो स्वयं अपने हाथसे मेरे मस्तकपर रक्खा। इसके बाद उन्होंने ये बहुत ही सुन्दर दिव्य वस्त्र और आभूषण भी मुझे प्रदान किये। इस प्रकार इन्द्रसे सम्मानित होकर मैं वहाँ गन्धर्वकुमारोंके साथ बड़े आनन्दपूर्वक रहा। वहाँ मेरे पाँच वर्ष बीते। एक दिन इन्द्रने मुझसे कहा 'अर्जुन! अब तुम्हें यहाँसे जाना चाहिये। तुम्हारे भाई तुम्हें याद कर रहे हैं।' इससे मैं वहाँसे चला आया और आज इस गन्धमादन पर्वतके शिखर-पर भाइयोंसहित आपका दर्शन किया है।

युधिष्ठिर बोले—धनञ्जय! यह हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने देवराज इन्द्रको अपनी आराधना-से प्रसन्न किया और उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। पार्वती देवीके साथ ही भगवान् शङ्करका तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन हुआ तथा तुमने उन्हें अपनी युद्धकलासे सन्तुष्ट किया—यह तो और भी आनन्दकी बात है। तुम लोकपालोंसे भी मिले और कुशलपूर्वक पुनः मेरे पास लौट आये, इससे आज मुझे बड़ा सुख मिला है। अब तो मैं ऐसा समझता हूँ कि मैंने यह सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भी अपने अधीन कर लिया। अर्जुन! अब मैं उन दिव्य अस्त्रोंको देखना चाहता हूँ, जिनसे तुमने वैसे बलवान् निवातकवचोंका वध किया है।

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुनने देवताओंके दिये हुए उन दिव्य अस्त्रोंको दिखानेका विचार किया। पहले तो वे विधिपूर्वक स्नान करके शुद्ध हुए, फिर अपने अङ्गोंमें परम कान्तिमान् दिव्य कवच धारण कर लिया। एक हाथमें गाण्डीव धनुष और दूसरेमें देवदत्त शङ्ख ले लिया। इस प्रकार वीरोचित वेषसे सुशोभित हो महाबाहु अर्जुनने उन दिव्यास्त्रोंको क्रमशः दिखाना आरम्भ किया। जिस समय उन अस्त्रोंका प्रयोग प्रारम्भ हुआ, पृथ्वी वृक्षोंसहित काँप उठी, नदी और समुद्रोंमें उफान आ गया, पर्वत फटने लगे, वायु-की गति रुक गयी, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गयी और जलती हुई आग भी बुझ गयी।

तदनन्तर समस्त ब्रह्मर्षि, सिद्ध, महर्षि, सम्पूर्ण प्राणी, देवर्षि तथा स्वर्गवासी देवता—सब-के-सब वहाँ आकर उ हुए। लोकपितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकर भी गणोंसहित वहाँ पधारे। फिर सब देवताओंने नार अर्जुनके पास भेजा। वे आकर अर्जुनसे बोले—'उ अर्जुन! ठहरो, इस समय इन दिव्यास्त्रोंका प्रयोग न

बिना किसी लक्ष्यके इनका प्रयोग नहीं किया जाता। यदि कोई शत्रु लक्ष्य हो तो भी जबतक वह अपने ऊपर प्रहार करके कष्ट न पहुँचावे, तबतक उसपर भी दिव्यास्त्रोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा इनके व्यर्थ प्रयोग करनेपर महान् अनर्थ हो जाता है। यदि नियमानुसार तुम इनकी रक्षा करोगे तो ये शक्तिशाली और तुम्हें सुख देनेवाले होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि तुमने व्यर्थ प्रयोगसे इनकी रक्षा नहीं की तो ये त्रिलोकीका नाश कर डालेंगे; अतः आजसे फिर कभी ऐसा न करना। युधिष्ठिर! तुम भी इस समय इनको देखनेका लोभ छोड़ो; युद्धमें शत्रुओंका मर्दन करते समय जब अर्जुन इन दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करें, तब देख लेना।'

इस प्रकार जब नारदजीने अर्जुनको दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करनेसे रोक दिया, तब सब देवता तथा अन्य प्राणी, जो जहाँसे आये थे, वहाँ चले गये। और पाण्डव भी द्रौपदीके साथ उस वनमें प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

पाण्डवोंका गन्धमादन पर्वतसे चलकर अन्यत्र भ्रमण करते हुए द्वैतवनमें प्रवेश

जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी ! जब महारथी वीर अर्जुन अस्त्रविद्याकी पूर्ण शिक्षा पाकर इन्द्रभवनसे लौट आये, उसके बाद उनसे मिलकर पाण्डवोंने कौन-सा कार्य किया ?

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन अस्त्रविद्या सीखकर इन्द्रके समान महान् पराक्रमी वीर हो गये थे। उनके साथ सभी पाण्डव उन पूर्वोक्त वनोंमें ही रहते हुए अत्यन्त रमणीय गन्धमादन पर्वतपर विचरने लगे। उस पर्वतपर बड़े ही सुन्दर भवन बने हुए थे, तथा वहाँ नाना प्रकारके वृक्षोंके निकट अनेकों तरहके खेल होते रहते थे; उन सबको देखते हुए किरीटधारी अर्जुन वहाँ घूमते और हाथमें धनुष लेकर सदा अस्त्रसञ्चालनका अभ्यास किया करते थे। पाण्डवगण कुबेरके अनुग्रहसे वहाँ रहनेके लिये उत्तम निवासस्थान पाकर बड़े सुखी थे। अर्जुनके साथ वे वहाँ चार वर्षतक रहे, परन्तु उनको वह समय एक रातके समान ही प्रतीत हुआ। पहलेके छः वर्ष तथा वहाँके चार वर्ष—इस प्रकार सब मिलकर पाण्डवोंके वनवासके दस वर्ष सुखपूर्वक बीत गये।

तदनन्तर एक दिन भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव एकान्तमें राजा युधिष्ठिरके पास बैठकर उनसे मीठे शब्दोंमें अपने हितकी बात बोले, 'कुरुराज ! हम चाहते हैं आपकी प्रतिज्ञा सच्ची हो; तथा हम वही कार्य करना चाहते हैं, जो आपको प्रिय लगे। हमलोगोंके वनवासका यह ग्यारहवाँ वर्ष चल रहा है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर, मान-अपमानका विचार छोड़कर हम निर्भयतापूर्वक वनमें विचर रहे हैं। हमें विश्वास है, उस खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनको चकमा देकर तेरहवें वर्षका अज्ञातवास भी सुखसे व्यतीत करेंगे। एक वर्षतक गुप्तरीतिसे भ्रमण करके फिर हम उस नराधमका अनायास ही संहार कर डालेंगे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरने जब अपने भाइयोंका विचार अच्छी तरह जान लिया, तब उन्होंने कुबेरके उस निवासस्थानकी प्रदक्षिणा की और वहाँके उत्तम भवन, नदी, सरोवर तथा समस्त यक्ष-राक्षसोंसे जानेके लिये आज्ञा माँगी। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौट पड़े। रास्तेमें जहाँ कहीं भी अगम्य पर्वत और झरने आते, वहाँ घटोत्कच इन सबको एक ही साथ कन्धेपर उठाकर पार पहुँचा देता था। महर्षि लोमशने जब पाण्डवोंको वहाँसे प्रस्थान करते देखा तो जिस प्रकार दयालु पिता अपने पुत्रोंको उपदेश देता है, वैसे ही उन सबको सुन्दर उपदेश दिया और स्वयं मन-ही-मन प्रसन्न होकर देवताओंके निवासस्थानको चले गये। इसी प्रकार राजर्षि आर्ष्टिषेणने भी उन सबको उपदेश दिया। तत्पश्चात् वे नरश्रेष्ठ पाण्डव पवित्र तीर्थों, मनोहर तपोवनों और बड़े-बड़े सरोवरोंका दर्शन करते हुए आगे बढ़े। वे कभी रमणीय वनोंमें, कभी नदियोंके तटपर, कभी जलाशयोंके किनारे और कभी पर्वतोंकी छोटी-बड़ी गुफाओंमें रातको ठहरते जाते थे। इस प्रकार चलते-चलते वे राजा वृषपर्वाके अत्यन्त मनोरम आश्रमपर आ पहुँचे। वृषपर्वाजीने इन लोगोंका बड़ा आदर-सत्कार किया और पाण्डवोंने विश्राम करके थकावट दूर होनेपर उनसे जैसे-जैसे गन्धमादन पर्वतपर निवास किया था, वह सब समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

वृषपर्वाके आश्रमपर देवता और महर्षि आकर निवास किया करते थे, इससे वह अत्यन्त पवित्र हो गया था। पाण्डव भी वहाँ एक रात रहकर दूसरे दिन सबेरे बदरिकाश्रम तीर्थ—विशाला नगरीमें आये। वहाँ भगवान् नर-नारायणके क्षेत्रमें

एक मासतक वे बड़े आनन्दके साथ रहे। फिर जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौटकर उन्होंने किरातराज सुबाहुके राज्यकी ओर प्रस्थान किया। चीन, तुषार, दरद और कुलिन्द देशोंको, जहाँ रत्नों और मणियोंकी खानें हैं, लाँघकर तथा हिमालयके दुर्गम प्रदेशोंको पार करके उन्होंने राजा सुबाहुका नगर देखा।

राजा सुबाहुने जब सुना कि मेरे राज्यमें पाण्डवगण पधारे हुए हैं, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और नगरसे बाहर आकर इनकी अगवानी की। राजा युधिष्ठिरने भी उसका सम्मान किया। सुबाहुके यहाँ एक रात उन्होंने बड़े आनन्दसे व्यतीत की। सवेरे घटोत्कचको उसके अनुचरोंसहित विदा कर दिया। और सुबाहुके दिये हुए बहुत-से रथ और सारथि साथ लेकर उस पर्वतपर पहुँचे, जो यमुनाका उद्गमस्थान है। उसपर झरने बह रहे थे, उसके हिमाच्छादित शिखर बालसूर्यकी किरणें पड़नेसे श्वेत और अरुण रंगके दिखायी पड़ते थे। वीरवर पाण्डवोंने उस पर्वतपर विशाखयूप नामक वनमें निवास किया। वह महान् वन चैत्ररथ वनके समान शोभायमान था। वहाँ उन्होंने आनन्दपूर्वक एक वर्ष व्यतीत किया।

वहाँ निवास करते समय एक दिन भीम पर्वतकी कन्दरामें एक महाबली अजगरके पास जा पहुँचे, जो मृत्युके समान भयानक और भूखसे पीडित था। उसे देखते ही भीम भयभीत हो गये, उनकी अन्तरात्मा विषाद और मोहसे व्यथित हो उठी। उस अजगरने भीमके शरीरको लपेट लिया। वे भयके समुद्रमें डूब रहे थे। उस समय महाराज युधिष्ठिर ही द्वीपके

समान उन्हें शरण देनेवाले हुए। उन्होंने ही आकर उन्हें सर्पके चंगुलसे छुड़ाया।

उस समय पाण्डवोंके वनवासका ग्यारहवाँ वर्ष पूरा हो रहा था और बारहवाँ वर्ष समीप था। अतः वे किसी दूसरे वनमें भ्रमण करनेके लिये उस चैत्ररथके समान सुन्दर वनसे बाहर निकले और मरुभूमिके निकट सरस्वती नदीके तटपर जाकर द्वैतवनमें पहुँचे। वहाँ द्वैत नामक एक सुन्दर सरोवर भी था।

भीमका सर्पके चंगुलमें फँसना और युधिष्ठिरके द्वारा सर्पके प्रश्नोंका उत्तर

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! भीम तो दस हजार हाथियोंके समान बली और भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे। वे उस अजगरसे अत्यन्त भयभीत कैसे हो गये? जो कुबेरको भी युद्धमें ललकार सकते हैं, उन शत्रुहन्ता भीमको आप एक साँपसे डरा हुआ बता रहे हैं! यह बड़े आश्चर्यकी बात है। हमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है, आप कृपा करके सुनाइये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! जिस समय पाण्डवलोग महर्षि वृषपर्वाके आश्रमपर आये और वहाँके अनेकों प्रकारकी आश्चर्यजनक घटनाओंसे युक्त वनोंमें निवास करने लगे, उन्हीं दिनोंकी बात है। एक समय भीमसेन स्वेच्छानुसार वनकी शोभा देखनेके लिये आश्रमसे बाहर निकले। उस समय उनकी कमरमें तलवार बँधी थी और हाथमें धनुष था। भीमसेन धीरे-धीरे चले जा रहे थे, इतनेमें उनकी दृष्टि एक

विशालकाय अजगरपर पड़ी, जो एक पर्वतकी कन्दरामें पड़ा हुआ था। उसके पर्वतके समान विशाल शरीरसे सारी गुफा रुकी हुई थी। उसे देखते ही भयके मारे शरीरके रोएँ खड़े हो जाते थे। उसके शरीरकी कान्ति हल्दीके समान पीले रंगकी थी, मुँह पर्वतकी गुफाके समान था, उसमें चार चमकीली डाढ़ें थीं। उसकी लाल-लाल आँखें मानो आग उगल रही थीं, वह जीभसे बारंबार अपने जबड़े चाट रहा था। वह अजगर कालके समान विकराल और समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। उसके साँस लेनेसे जो फूत्कार शब्द होता था, उससे मानो वह सब जीवोंका तिरस्कार कर रहा था।

भीमसेनको सहसा अपने निकट पाकर वह महासर्प अत्यन्त क्रोधमें भर गया और उसने बलपूर्वक दोनों भुजाओंके सहित उनके शरीरको लपेट लिया। अजगरको मिले हुए वरके प्रभावसे उसका स्पर्श होते ही भीमसेनकी चेतना लुप्त हो गयी। यद्यपि उनकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था, तो भी उस सर्पके चंगुलमें फँसकर वे बेकाबू हो गये और धीरे-धीरे छूटनेके लिये तड़फड़ाने लगे; मगर उसने ऐसा बाँध लिया कि वे हिल भी न सके। भीमसेनके पूछनेपर उस अजगरने अपने पूर्वजन्मका परिचय दिया तथा शाप और वरदानकी कथा भी सुनायी। भीमसेनने उससे बहुत अनुनय-विनय की, फिर भी वे सर्पके बन्धनसे छुटकारा न पा सके।

इधर राजा युधिष्ठिर बड़े भयङ्कर अनिष्टकारी उत्पात देखकर घबरा उठे। उनके आश्रमके दक्षिण वनमें भयानक आग लगी और उससे डरी हुई गीदड़ी अमङ्गलसूचक स्वरमें दारुण चीत्कार करने लगी। हवा प्रचण्ड वेगसे बहने लगी, रेत और कंकड़ोंकी वर्षा शुरू हो गयी। साथ ही युधिष्ठिरका बायाँ हाथ भी फड़कने लगा। ये सब अपशकुन देखकर बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर समझ गये कि हमलोगोंपर कोई महान् भय उपस्थित हुआ है।

उन्होंने द्रौपदीसे पूछा, 'भीमसेन कहाँ हैं?' द्रौपदी बोली—'उन्हें तो वनमें गये बहुत देर हुई।' यह सुनकर वे स्वयं तो धौम्य ऋषिको साथ लेकर भीमकी खोजमें चले, अर्जुनको द्रौपदीकी रक्षाका कार्य सौंपा और नकुल-सहदेवको ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त कर दिया। भीमके पैरोंका चिह्न देखते हुए वे उस वनमें उनकी खोज करने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पर्वतके दुर्गम प्रदेशमें जाकर उन्होंने देखा कि एक महान् अजगरने उन्हें जकड़ लिया है और वे निश्चेष्ट हो गये हैं।

उनको उस अवस्थामें देखकर धर्मराजने पूछा, 'भीम! वीरमाता कुन्तीके पुत्र होकर तुम इस आपत्तिमें कैसे फँस गये? और यह पर्वताकार अजगर कौन है?'

बड़े भाई धर्मराजको देखकर भीमने अपना सब समाचार कह सुनाया कि किस प्रकार सर्पके चंगुलमें फँसकर वे चेष्टा-

हीन हो गये हैं और अन्तमें कहा—'भैया! यह महाबली सर्प मुझे खा जानेके लिये पकड़े हुए है।'

युधिष्ठिरने सर्पसे कहा—आयुष्मन्! तुम मेरे इस अनन्त पराक्रमी भाईको छोड़ दो। तुम्हारी भूख मिटानेके लिये मैं तुम्हें दूसरा आहार दूँगा।

सर्प बोला—यह राजकुमार मेरे मुखके पास स्वयं आकर मुझे आहाररूपमें प्राप्त हुआ है। तुम यहाँसे चले जाओ, यहाँ रुकनेमें कल्याण नहीं है। अगर रुके रहोगे तो कल तुम भी मेरे आहार बन जाओगे।

युधिष्ठिरने कहा—सर्प! तुम कोई देवता हो या दैत्य, अथवा वास्तवमें सर्प ही हो? सच बताओ, तुमसे युधिष्ठिर प्रश्न कर रहा है! भुजङ्गम! बोलो तो सही, है कोई ऐसी वस्तु जिसे पाकर अथवा जानकर तुम्हें प्रसन्नता हो? तुम भीमसेनको कैसे छोड़ सकते हो?

सर्प बोला—राजन्! मैं पहले जन्ममें तुम्हारा पूर्वज नहुष नामका राजा था। चन्द्रमासे पाँचवीं पीढ़ीमें जो आयु नामक राजा हुए थे, उन्हींका मैं पुत्र हूँ। मैंने अनेकों यज्ञ किये, तपस्या की, स्वाध्याय किया तथा अपने मन और इन्द्रियोंपर भी विजय प्राप्त की। इन सब सत्कर्मोंसे तथा अपने पराक्रमसे भी मुझे तीनों लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था। उस ऐश्वर्यको पाकर मेरा अहङ्कार बढ़ गया। मैंने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका अपमान किया, इससे कुपित हो महर्षि अगस्त्यने मुझे इस अवस्थाको पहुँचा दिया। महाराज अगस्त्यकी ही कृपासे आजतक मेरी पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई है। ऋषिके शापके अनुसार दिनके छठे भागमें यह तुम्हारा भाई मुझे भोजनके रूपमें प्राप्त हुआ है; अतः मैं न तो इसे छोड़ूँगा और न इसके बदले दूसरा आहार लूँगा। किन्तु एक बात है; यदि तुम मेरे पूछे हुए कुछ प्रश्नोंका उत्तर अभी दे दोगे, तो उसके बाद तुम्हारे भाई भीमसेनको मैं अवश्य छोड़ दूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—सर्प! तुम इच्छानुसार प्रश्न करो। यदि मुझसे हो सकेगा तो तुम्हारी प्रसन्नताके लिये अवश्य सब प्रश्नोंका उत्तर दूँगा।

सर्पने पूछा—राजा युधिष्ठिर! बताओ, ब्राह्मण कौन है? और जाननेयोग्य तत्त्व क्या है?

युधिष्ठिर बोले—नागराज! सुनो। जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरताका अभाव, तपस्या, दया—ये सद्गुण दिखायी दें, वही ब्राह्मण है; ऐसा स्मृतियोंका सिद्धान्त है। और जाननेयोग्य तत्त्व तो वह परब्रह्म ही है, जो दुःख-सुखसे परे है और जहाँ पहुँचकर या जिसे जानकर मनुष्य शोकके पार हो जाता है।

सर्प बोला—युधिष्ठिर! ब्रह्म और सत्य तो चारों वर्णोंके लिये हितकर तथा प्रमाणभूत हैं तथा वेदमें बताये हुए सत्य, दान, क्रोधका अभाव, क्रूरताका न होना, अहिंसा और दया आदि सद्गुण तो शूद्रोंमें भी पाये जाते हैं; अतः तुम्हारी मान्यताके अनुसार तो वे भी ब्राह्मण कहे जा सकते हैं। इसके सिवा, जो तुमने दुःख और सुखसे रहित वेद्य (जाननेयोग्य) पद बतलाया है, उसमें भी मुझे आपत्ति है। मेरे विचारमें तो यह आता है कि सुख और दुःख दोनोंसे रहित कोई दूसरा पद है ही नहीं।

युधिष्ठिरने कहा—यदि शूद्रमें सत्य आदि उपर्युक्त लक्षण हैं और ब्राह्मणोंमें नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। हे सर्प! जिसमें ये सत्य आदि लक्षण हों, उसे ब्राह्मण समझना चाहिये और जिसमें इनका अभाव हो, उसको 'शूद्र' कहना चाहिये। तथा यह जो तुमने कहा कि सुख-दुःखसे रहित कोई दूसरा पद है ही नहीं, सो तुम्हारा यह मत ठीक है। वास्तवमें जो अप्राप्त है और कर्मोंसे ही प्राप्त होनेवाला है, ऐसा पद कोई भी क्यों न हो, सुख-दुःखसे शून्य नहीं है। किन्तु जिस प्रकार शीतल जलमें उष्णता नहीं रहती तथा उष्ण स्वभाववाले अग्निमें जलकी शीतलता नहीं होती, क्योंकि इनमें परस्पर विरोध है, उसी प्रकार जो वेद्य पद है, जिसे केवल अज्ञानका आवरण दूर करके अपनेसे अभिन्न समझना है, उसका कभी और कहीं भी वास्तविक सुख-दुःखसे सम्पर्क नहीं होता।

सर्प बोला—राजन्! यदि तुम आचारसे ही ब्राह्मणकी परीक्षा करते हो, तब तो जबतक उसके अनुसार कर्म न हो जाति व्यर्थ ही है।

युधिष्ठिरने कहा—मेरे विचारसे तो मनुष्योंमें जातिकी परीक्षा करना बहुत कठिन है; क्योंकि इस समय सभी वर्णोंका आपसमें सङ्कर (सम्मिश्रण) हो रहा है। सभी मनुष्य सब जातिकी स्त्रियोंसे सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं। बोल-चाल, मैथुनमें प्रवृत्ति तथा जन्म और मरण—ये सब मनुष्योंमें एक से देखे जाते हैं। इस विषयमें आर्ष प्रमाण भी मिलता है 'ये यजामहे' यह श्रुति जातिका निश्चय न होनेके कारण ही 'जो हमलोग यज्ञ कर रहे हैं' ऐसा सामान्यरूपसे निर्देश करती है। उसमें 'ये' (जो) इस सर्वनामके साथ ब्राह्मण आदि कोई विशेषण नहीं लगाया गया है। इसलिये जो तत्त्वदर्शी विद्वान् हैं, वे शील (सदाचार) को ही प्रधानता देते हैं। जब बालक जन्म लेता है, तो नालच्छेदनके पहले उसका जातकर्म संस्कार किया जाता है; उसमें माता सावित्री कहलाती है और पिता आचार्य। जबतक बालकका संस्कार करके उसे वेदका स्वाध्याय न कराया जाय, तबतक वह शूद्रके समान है। जातिविषयक सन्देह होनेपर स्वायम्भुव मनुने यही निर्णय दिया है। यदि वैदिक संस्कार करके वेदाध्ययन करनेपर भी शील और सदाचार नहीं आया, तो उसमें प्रबल वर्णसंकरता है—ऐसा विचारपूर्वक निश्चय किया गया है। जिसमें संस्कारके साथ शील और सदाचारका विकास हो, उसे तो मैंने पहले ही ब्राह्मण बता दिया है।

सर्प बोला—युधिष्ठिर! तुम जानने योग्य सभी कुछ जानते हो; तुमने जो मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, उसे मैंने भलीभाँति सुन लिया। अब मैं तुम्हारे भाई भीमसेनको कैसे खा सकता हूँ?

कामनावाला तो मन ही माना गया है। मन और बुद्धिमें इतना ही भेद है। तुम भी इस विषयके ज्ञाता हो। तुम्हारा इसमें क्या मत है?

युधिष्ठिर बोले—बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी उत्तम है। तुम तो जो कुछ जानना है, जान चुके हो; फिर मुझसे क्यों पूछते हो? तुम्हारी इस दुर्गतिके विषयमें मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। तुमने बड़े-बड़े अद्भुत कर्म किये, स्वर्गका निवास पाया और सर्वज्ञ तो तुम थे ही; भला तुम्हें कैसे मोह हुआ, जो ब्राह्मणोंका अपमान कर बैठे?

सर्पने कहा—राजन्! यह धन और सम्पत्ति बड़े-बड़े बुद्धिमान् और शूरवीर मनुष्योंको भी मोहमें डाल देते हैं। मेरा तो यह अनुभव है कि सुख और विलासका जीवन व्यतीत करनेवाले सभी मनुष्य मोहित हो जाते हैं। यही कारण है कि मैं भी ऐश्वर्यके मोहसे मदोन्मत्त हो गया था। इस मोहके कारण जब मेरा अधःपतन हो गया, तब चेत हुआ है; अब तुम्हें सचेत कर रहा हूँ। महाराज! आज तुमने मेरा बहुत बड़ा कार्य किया, इस समय तुमसे वार्तालाप करनेके कारण मेरा वह कष्टदायक शाप निवृत्त हो गया। अब मैं अपने पतनका इतिहास तुम्हें बता रहा हूँ। पूर्वकालमें जब मैं स्वर्गका राजा था, दिव्य विमानपर चढ़कर आकाशमें विचरता रहता था। उस समय अहङ्कारके कारण मैं किसीको कुछ नहीं समझता था। ब्रह्मर्षि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग आदि जो भी इस त्रिलोकीमें निवास करते थे, सभी मुझे कर दिया करते थे। राजन्! उस समय मेरी दृष्टिमें इतनी शक्ति थी कि जिसकी ओर आँख उठाकर देखता, उसीका तेज छीन लेता था। मेरा अन्याय यहाँतक बढ़ गया कि एक हजार ब्रह्मर्षियोंको मेरी पालकी ढोनी पड़ती थी। इसी अत्याचारने मुझे राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया। मुनिवर अगस्त्य जब पालकी ढो रहे थे, मैंने उन्हें लात लगायी। तब वे क्रोधमें भरकर बोले, 'अरे ओ सर्प! तू नीचे गिर।' उनके इतना कहते ही मेरे सभी राजचिह्न लुप्त हो गये, मैं उस उत्तम विमानसे नीचे गिरा। उस समय मुझे मालूम हुआ कि मैं सर्प होकर नीचे मुँह किये गिर रहा हूँ। तब मैंने अगस्त्य मुनिसे यह याचना की, 'भगवन्! मैं प्रमादवश विवेकशून्य हो गया था, इसलिये यह घोर अपराध हुआ है; आप क्षमा करके ऐसी कृपा करें, जिससे इस शापका अन्त हो जाय।'

मुझे नीचे गिरते देखकर उनका हृदय दयार्द्र हो गया और वे बोले—'राजन्! धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। जब तुम्हारे इस अहङ्कार और घोर पापका फल क्षीण हो जायगा, उस समय तुम्हें फिर तुम्हारे पुण्योंका फल प्राप्त होगा।'

तब मुझे उनकी तपस्याका महान् बल देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज! लो, यह है तुम्हारा भाई महाबली भीमसेन। मैंने इसकी हिंसा नहीं की। तुम्हारा कल्याण हो, अब मुझे विदा दो; मैं पुनः स्वर्गलोकको जाऊँगा।

यह कहकर राजा नहुषने अजगरका शरीर त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर पुनः स्वर्गमें चले गये। धर्मात्मा

युधिष्ठिर भी अपने भाई भीम और धौम्य मुनिको साथ ले आश्रमपर लौट आये। वहाँ एकत्रित हुए ब्राह्मणोंसे युधिष्ठिरने यह सारी कथा कह सुनायी।

काम्यक वनमें पाण्डवोंके पास श्रीकृष्ण और मार्कण्डेय मुनिका आना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जिन दिनों पाण्डवलोग सरस्वतीके तटपर निवास करते थे, उसी समय वहाँ कार्तिककी पूर्णिमाका पर्व लगा। उस अवसरपर पाण्डवोंने बड़े-बड़े तपस्वियोंके साथ सरस्वती-तीर्थपर पर्वके अनुसार पुण्यकर्म किये और कृष्णपक्षका आरम्भ होते ही वे धौम्य मुनिके साथ सारथि और आगे चलनेवाले सेवकोंसहित काम्यक वनको चल दिये। वहाँ पहुँचनेपर मुनियोंने उनका अतिथि-सत्कार किया और वे द्रौपदीके सहित वहीं रहने लगे।

एक दिन एक ब्राह्मण, जो अर्जुनका प्रिय मित्र था, यह सन्देश लेकर आया कि 'महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ शीघ्र ही पधारनेवाले हैं। भगवान्‌को यह मालूम हो चुका है कि आपलोग इस वनमें आ गये हैं। वे सदा ही आपलोगोंसे मिलनेको उत्सुक रहते हैं और आपके कल्याणकी बातें सोचा करते हैं। दूसरा शुभ संवाद यह है कि स्वाध्याय और तपस्यामें लगे रहनेवाले कल्पान्तजीवी महान् तपस्वी महात्मा मार्कण्डेयजी भी शीघ्र ही आपलोगोंसे मिलेंगे।'

वह ब्राह्मण इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि देवकी-

नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ रथपर बैठकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रथसे नीचे उतरकर बड़े हर्षसे धर्मराज युधिष्ठिर और महाबली भीमके चरणोंमें प्रणाम करके फिर धौम्य मुनिका पूजन किया। फिर नकुल और सहदेवने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद भगवान् अर्जुनको हृदयसे लगाकर मिले और द्रौपदीको अपनी मीठी बातोंसे सान्त्वना दी। इसी प्रकार श्रीकृष्णकी रानी सत्यभामा भी द्रौपदीसे गले लगकर मिलीं।

इस प्रकार शिष्टाचार समाप्त होनेपर सभी पाण्डवोंने अपनी पत्नी द्रौपदी और पुरोहित धौम्य मुनिके साथ श्रीकृष्ण-का सत्कार किया और उन्हें सब ओरसे घेरकर बैठ गये। तब भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा—'पाण्डवश्रेष्ठ! धर्मका पालन राज्यकी प्राप्तिसे भी बढ़कर बताया गया है, धर्मकी ही प्राप्तिके लिये शास्त्र तपका उपदेश देते हैं। तुमने सत्यभाषण और सरल व्यवहारके द्वारा अपने धर्मका पालन करते हुए इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त कर ली है। तुम किसी कामनाके लिये नहीं, निष्कामभावसे शुभ कर्मोंका आचरण करते हो। धनके लोभसे भी स्वधर्मका त्याग नहीं करते। इसके ही प्रभावसे तुम धर्मराज कहलाते हो। तुममें दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा और धैर्य—सब कुछ है। राज्य, धन और भोगोंको पाकर भी तुमने इन सद्गुणोंसे सदा ही प्रेम रक्खा है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारी सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

तत्पश्चात् भगवान् द्रौपदीसे बोले—'याज्ञसेनि! तुम्हारे पुत्र बड़े ही सुशील हैं, धनुर्वेद सीखनेमें उनका बड़ा अनुराग है। वे अपने मित्रोंके साथ रहकर सदा ही सत्पुरुषोंके आचार-का पालन करते हैं। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न जिस प्रकार अनिरुद्ध और अभिमन्युको अस्त्रविद्याकी शिक्षा देता है, वैसे ही तुम्हारे प्रतिविन्ध्य आदि पुत्रोंको भी सिखलाता है।'

इस प्रकार द्रौपदीको उसके पुत्रोंका कुशल-समाचार सुनाकर श्रीकृष्णने पुनः धर्मराजसे कहा—'राजन्! दशार्ह, कुकुर और अन्धक वंशोंके वीर सदा आपकी आज्ञाका पालन करेंगे और आप उन्हें जहाँ चाहेंगे, वहीं वे खड़े रहेंगे। आप-की प्रतिज्ञाका समय पूरा होते ही दशार्हवंशी योद्धा आपके शत्रुओंकी सेनाका संहार कर डालेंगे। फिर आप सदाके लिये शोकरहित हो अपना राज्य प्राप्त कर हस्तिनापुरमें प्रवेश करेंगे।'

महात्मा युधिष्ठिरने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके विचार अपने अनुकूल जानकर उनकी प्रशंसा की और उनकी ओर एकटक दृष्टिसे देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—'केशव! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पाण्डवोंके केवल आप ही सहारे हैं; कुन्तीके पुत्र आपकी ही शरणमें हैं। हमें विश्वास है, समय आनेपर आप हमारे लिये, जो कुछ कह रहे हैं उससे भी बढ़कर कार्य करेंगे। हमलोगोंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार प्रायः बारह वर्षोंका समय निर्जन वनमें घूम-फिरकर व्यतीत कर दिया है। अब विधिपूर्वक अज्ञातवासकी अवधि पूरी करके ये पाण्डव आपकी ही शरण लेंगे।'

इस प्रकार श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर जब बात कर रहे थे, उसी समय हजारों वर्षोंकी आयुवाले तपोवृद्ध महात्मा मार्कण्डेयजीने वहाँ दर्शन दिया। मार्कण्डेयजी अजर-अमर हैं; वे रूप और उदारता आदि गुणोंसे युक्त हैं तथा हैं तो सबसे वृद्ध, किन्तु देखनेमें ऐसे जान पड़ते हैं मानो कोई पचीस वर्षका तरुण हो। वहाँ पधारनेपर समस्त पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण और वनवासी ब्राह्मणोंने मार्कण्डेय मुनिका पूजन करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। उनका आतिथ्य स्वीकार करके वे आसनपर विराजमान हुए। इसी समय देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। पाण्डवोंने उनका भी यथायोग्य सत्कार

किया। इसके बाद कथाका प्रसंग उपस्थित करनेके लिये धर्मराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे इस प्रकार प्रश्न किया—"मुने! सबसे प्राचीन हैं; देवता, दैत्य, ऋषि, महात्मा और राजर्षि सबका चरित्र आपको विदित है। इसीलिये मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। धर्मका पालन करनेपर भी जब मैं अपं सुखोंसे वञ्चित पाता हूँ और सदा दुराचारमें ही लगे रहने दुर्योधन आदिको सर्वथा ऐश्वर्यशाली होते देखता हूँ तो मनमें प्रायः यह प्रश्न उठा करता है कि 'पुरुष जिन शु अथवा अशुभ कर्मोंका आचरण करता है उनका फल वि तरह भोगता है और ईश्वर कर्मोंका नियन्ता किस प्रक होता है? मनुष्योंको सुख अथवा दुःख मिलनेमें क कारण है?'"

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! तुमने जो यह प्रश्न किया है, वह बिल्कुल ठीक है। यहाँ जानने योग्य जो कुछ भी है, वह सब तुम्हें विदित है; केवल लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये तुम मुझसे पूछ रहे हो। अतः मनुष्य इस लोक अथवा परलोकमें कैसे सुख-दुःखका उपभोग करता है—इस विषयमें मैं जो कुछ बताऊँ, उसे ध्यान देकर सुनो। सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने जीवोंके लिये निर्मल तथा विशुद्ध शरीर बनाये, साथ ही शुद्ध धर्मका ज्ञान करानेवाले उत्तम धर्मशास्त्रोंको प्रकट किया। उस समयके सभी मनुष्य उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले थे। उनका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं जाता था। वे सदा ही सत्यभाषण किया करते थे। सब-के-सब मनुष्य ब्रह्मभूत, पुण्यात्मा और दीर्घायु होते थे। सभी स्वच्छन्दतापूर्वक आकाशमार्गसे उड़कर देवताओंसे मिलने जाते और स्वच्छन्दचारी होनेके कारण जब इच्छा हुई पुनः लौट आते थे। वे अपनी इच्छा होनेपर ही मरते और इच्छाके अनुसार ही जीवित रहते थे। उन्हें किसी प्रकारकी बाधा नहीं सताती थी और न कोई भय ही होता था। वे उपद्रवसे रहित, पूर्णकाम, सभी धर्मोंको प्रत्यक्ष करनेवाले, जितेन्द्रिय और राग-द्वेषसे रहित होते थे। उनकी आयु हजार वर्षोंकी होती थी और वे हजार-ह सन्तान उत्पन्न करनेकी क्षमता रखते थे।

इसके पश्चात् कालान्तरमें मनुष्योंकी आकाश-गति हो गयी। लोग पृथ्वीपर ही विचरने लगे, उनपर का क्रोधका अधिकार हो गया। वे छल-कपटसे जीविका चला लगे और लोभ तथा मोहके वशीभूत हो गये। इसलि इस शरीरपर उनका अधिकार न रहा। वे बारंबार तरा तरहकी योनियोंमें जन्म-मरणका क्लेश भोगने लगे। उनक

कामनाएँ, उनके संकल्प और उनका ज्ञान—सभी निष्फल हो गये। स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी। सभी सबपर सन्देह करके एक-दूसरेको क्लेश देने लगे। इस प्रकार पापकर्मोंमें प्रवृत्त हुए पापियोंकी उनके कर्मानुसार आयु भी कम हो गयी। हे कुन्तीनन्दन! इस संसारमें मृत्युके पश्चात् जीवकी गति उसके कर्मोंके अनुसार ही होती है। यमराजके नियत किये हुए पुण्य-पापकर्मोंके फलका उपभोग करनेवाला जीव प्राप्त हुए सुख-दुःखको दूर करनेमें समर्थ नहीं है। कोई प्राणी इस लोकमें सुख पाता है और परलोकमें दुःख। किसी-को परलोकमें ही सुख मिलता है और इस लोकमें दुःख। किसीको दोनों ही लोकोंमें सुख मिलता है और किसीको दोनों-हीमें दुःख उठाना पड़ता है। जिनके पास बहुत धन होता है, वे अपने शरीरको हर तरहसे सजाकर नित्य आनन्द भोगते हैं। अपने देहके ही सुखमें आसक्त हुए उन मनुष्योंको केवल इसी लोकमें सुख मिलता है। परलोकमें तो उनके लिये सुखका नाम भी नहीं है। जो लोग इस लोकमें योग-साधना करते हैं, कठिन तपस्यामें लगे होते हैं और स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं तथा इस प्रकार जितेन्द्रिय एवं अहिंसापरायण होकर जो अपने शरीरको दुर्बल कर देते हैं उनके लिये इस लोकमें सुख नहीं है, वे परलोकमें सुख उठाते हैं। जो पहले धर्मका आचरण करते हैं और धर्मपूर्वक ही धनका उपार्जन करके समयपर स्त्रीसे विवाह कर उसके साथ यज्ञ-यागादिमें उस धनका सदुपयोग करते हैं, उनके लिये यह लोक और परलोक दोनों ही सुखके स्थान हैं। परन्तु जो मूर्ख मनुष्य विद्या, तप और दानके लिये प्रयास न करके केवल विषय-सुखके ही लिये प्रयत्न करते हैं उनके लिये न तो इस लोकमें सुख है, न परलोकमें। राजा युधिष्ठिर! तुम सब लोग बड़े ही पराक्रमी और सत्यवादी हो। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही तुम सब भाइयोंका प्रादुर्भाव हुआ है। तुम तपस्या, दम और सदाचारमें सदा ही तत्पर रहनेवाले और शूरवीर हो। इस संसारमें बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य करके तुम देवता और ऋषियोंको सन्तुष्ट करोगे और अन्तमें उत्तम लोकोंमें जाओगे। अपने इस वर्तमान कष्टको देखकर तुम मनमें किसी प्रकारकी शङ्का न करो। यह दुःख तो तुम्हारे भावी सुखका ही कारण है।

उत्तम ब्राह्मणोंका महत्त्व

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर पाण्डुपुत्रोंने महात्मा मार्कण्डेयजीसे कहा—मुनिवर! हम श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी महिमा सुनना चाहते हैं, आप कृपया वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी बोले—हैहयवंशी क्षत्रियोंका परपुरञ्जय नामक एक राजकुमार, जो बड़ा ही सुन्दर और अपने वंशकी मर्यादाको बढ़ानेवाला था, एक दिन वनमें शिकार खेलनेके लिये गया। तृण और लताओंसे भरे हुए उस वनमें घूमते-घूमते उस राजकुमारकी दृष्टि एक मुनिपर पड़ी, जो काला मृगचर्म ओढ़े थोड़ी ही दूरपर बैठे थे। कुमारने उन्हें काला मृग ही समझा और अपने तीरका निशाना बना दिया। मुनिकी हत्या हो गयी—यह जानकर राजकुमारको बड़ा अनुताप हुआ, वह शोकसे मूर्छित हो गया। फिर वह हैहयवंशी क्षत्रियोंके पास गया और उनसे इस दुर्घटनाका समाचार कहा। यह सुनकर वे भी बहुत दुखी हुए और वे मुनि किसके पुत्र हैं, इसका पता लगाते हुए कश्यपनन्दन अरिष्टनेमिके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ मुनिवर अरिष्टनेमिको प्रणाम करके वे खड़े हो गये। मुनिने उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये मधुपर्क आदि सामग्री अर्पण की। यह देखकर वे बोले—'मुनिवर! हम अपने दूषित कर्मके कारण आपसे सत्कार पाने योग्य नहीं रहे। हमसे ब्राह्मणकी हत्या हो गयी है।'

ब्रह्मर्षि अरिष्टनेमिने कहा—'आपलोगोंसे ब्राह्मणकी हत्या कैसे हुई? और वह मरा हुआ ब्राह्मण कहाँ है?' उनके पूछनेपर क्षत्रियोंने मुनिके वधका सारा समाचार ठीक-ठीक बता दिया और उन्हें साथ लेकर उस स्थानपर आये, जहाँ मुनिकी हत्या हुई थी। किन्तु वहाँ उन्हें मरे हुए मुनि-की लाश नहीं मिली।

तब मुनिवर अरिष्टनेमिने उनसे कहा—'परपुरञ्जय!

इधर देखो, यही वह ब्राह्मण है जिसे तुमलोगोंने मार डाला था। यह मेरा ही पुत्र है और तपोबलसे युक्त है।' उस मुनिकुमारको जीवित देख वे लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े और कहने लगे, 'यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। यह मरा हुआ मुनि यहाँ कैसे आ गया ? इसे किस प्रकार जीवन मिला ? क्या यह तपस्याका ही बल है, जिसने इसे पुनः जीवित कर दिया ? विप्रवर ! हम यह सब रहस्य सुनना चाहते हैं।'

ब्रह्मर्षिने उनसे कहा—राजाओ ! मृत्यु हमलोगोंपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इसका क्या कारण है, यह भी हम आपलोगोंको बताते हैं। हम सदा सत्य ही बोलते हैं और सर्वदा अपने धर्मका पालन करते रहते हैं। इसलिये हमें मृत्युका भय नहीं है। हम ब्राह्मणोंके कुशलकी, उनके शुभकर्मोंकी ही चर्चा करते हैं; उनके दोषोंका बखान नहीं करते। हम अतिथियोंको अन्न और जलसे तृप्त करते हैं; हमपर जिनके पालनका भार है, उन्हें पूर्ण भोजन देते हैं और उनसे बचा हुआ अन्न स्वयं भोजन करते हैं। हम सदा शम, दम, क्षमा, तीर्थसेवन और दानमें तत्पर रहनेवाले हैं; पवित्र देशमें निवास करते हैं। इन सब कारणोंसे भी हमें मृत्युका भय नहीं है। ये सब बातें मैंने संक्षेपमें ही सुनायी हैं। अब आप जायँ, ब्रह्महत्याके पापसे इस समय आपलोगोंको कोई भय नहीं रहा।

यह सुनकर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंने 'एवमस्तु' कहकर मुनिवर अरिष्टनेमिका सम्मान एवं पूजन किया और प्रसन्न होकर अपने देशको चले गये।

तार्क्ष्य-सरस्वती-संवाद

मार्कण्डेयजी कहते हैं—पाण्डुनन्दन ! एक समय मुनिवर तार्क्ष्यने सरस्वती देवीसे कुछ प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें सरस्वतीने जो कुछ कहा, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ; ध्यान देकर सुनो।

तार्क्ष्यने पूछा—भद्रे ! इस संसारमें मनुष्यका कल्याण करनेवाली वस्तु क्या है ? किस प्रकार आचरण करनेसे मनुष्य अपने धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता ? देवि ! तुम मुझसे इसका वर्णन करो, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा। मुझे दृढ़ विश्वास है, तुमसे उपदेश ग्रहण करके मैं अपने धर्मसे गिर नहीं सकता।

सरस्वतीने कहा—जो प्रमाद छोड़कर पवित्रभावसे नित्य स्वाध्याय—प्रणव-मन्त्रका जप करता रहता है और अर्चि आदि मार्गोंसे प्राप्त होने योग्य सगुण ब्रह्मको जान लेता है, वही देवलोकसे ऊपर ब्रह्मलोकमें जाता है और देवताओंके साथ उसका प्रेमसम्बन्ध (मित्रभाव) हो जाता है। दान करनेवालोंको भी उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। वस्त्र-दान करनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। सुवर्ण देनेवाला देवता होता है। जो अच्छे रंगकी हो, सुगमतासे दूध दुहवा लेती हो, अच्छे बछड़े देनेवाली हो और बन्धन तोड़कर भाग जानेवाली न हो—ऐसी गौका जो लोग दान करते हैं, वे गौके शरीरमें जितने रोएँ हों उतने वर्षोंतक परलोकमें पुण्यफलोंका उपभोग करते हैं। जो कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर उसके पास काँसीकी दोहनी रखकर उसे द्रव्य, वस्त्र आदि एवं दक्षिणाके साथ दान करता है उस दाताके पास वह गौ कामधेनुके रूपमें उपस्थित होकर उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण करती है। गोदान करनेवाला मनुष्य अपने

पुत्र, पौत्र आदि सात पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार करता है। काम, क्रोध आदि दानवोंके चंगुलमें फँसकर घोर अज्ञानान्धकारसे परिपूर्ण नरकमें गिरते हुए प्राणीको वह गोदान उसी भाँति बचा लेता है, जैसे हवाके इशारेसे चलती हुई नाव समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यको। ब्राह्म विवाहकी विधिसे कन्यादान करनेवाला, ब्राह्मणको पृथ्वी दान देनेवाला और शास्त्रीय विधिके अनुसार अन्य वस्तुओंका दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रलोकमें जाता है। जो सदाचारी रहकर नियमपूर्वक सात वर्षोंतक प्रज्वलित अग्निमें हवन करता है, वह

अपने पुण्यकर्मोंसे अपनी सात ऊपरकी और सात नीचेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है।

तार्क्ष्यने पूछा—देवि ! अग्निहोत्रके प्राचीन नियम क्या हैं ?

सरस्वतीने कहा—अपवित्र अवस्थामें और हाथ-पैर धोये बिना हवन नहीं करना चाहिये। जो वेदका पाठ और अर्थ नहीं जानता, अर्थ जाननेपर भी जिसे उसका अनुभव नहीं है, वह अग्निहोत्रका अधिकारी नहीं है। देवता यह जाननेकी इच्छा रखते हैं कि मनुष्य किस भावसे हवन कर रहा है। वे पवित्रता चाहते हैं, इसीलिये श्रद्धाहीन पुरुषके दिये हुए हविष्यको स्वीकार नहीं करते। वेद न जाननेवाले—अश्रोत्रिय पुरुषको देवताओंके लिये हविष्य प्रदान करनेके कार्यमें नियुक्त न करे; क्योंकि वैसा मनुष्य जो हवन करता है, वह व्यर्थ हो जाता है। अश्रोत्रिय पुरुषको वेदमें अपूर्व (अपरिचित) कहा गया है। जैसे मनुष्य अपरिचित पुरुषका दिया अन्न भोजन नहीं करता, वैसे ही अश्रोत्रियका दिया हुआ हविष्य देवता नहीं ग्रहण करते; अतः उसे अग्निहोत्र नहीं करना चाहिये। जो धन आदिके अभिमानसे रहित होकर सत्यव्रतका पालन करते हुए प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक हवन करते हैं और हवनसे शेष अन्नका भोजन करते हैं, वे पवित्र सुगन्धसे भरे हुए गौओंके लोकमें जाते हैं और वहाँ परम सत्य परमात्माका दर्शन करते हैं।

तार्क्ष्यने पूछा—सुन्दरि ! मेरे विचारसे तो तुम परमात्मस्वरूपमें प्रवेश करनेवाली क्षेत्रज्ञभूता प्रज्ञा (ब्रह्मविद्या) और कर्मफलको प्रकाशित करनेवाली उत्कृष्ट बुद्धि हो; किन्तु वास्तवमें तुम क्या हो, यह मैं पूछ रहा हूँ।

सरस्वती बोली—मैं परापर विद्यारूपा सरस्वती हूँ। तुम्हारा संशय दूर करनेके लिये ही यहाँ प्रकट हुई हूँ। आन्तरिक श्रद्धा और भावमें मेरी स्थिति है; जहाँ श्रद्धा और भाव हो, वहीं मैं प्रकट होती हूँ। तुम निकट हो, इसलिये मैंने तुमसे इन तात्त्विक विषयोंका यथावत् वर्णन किया है।

तार्क्ष्यने पूछा—देवि ! जिसे परम कल्याणस्वरूप मानते हुए मुनिजन इन्द्रियोंका निग्रह आदि करते हैं तथा जिस परम मोक्षस्वरूपमें धीर पुरुष प्रवेश करते हैं, उस शोकरहित परम मोक्षपदका वर्णन कीजिये। क्योंकि जिस परम मोक्षपदको सांख्ययोगी और कर्मयोगी जानते हैं, उस सनातन मोक्षतत्त्वको मैं नहीं जानता।

सरस्वती बोली—स्वाध्यायरूप योगमें लगे हुए तथा तपको ही धन माननेवाले योगी व्रत, पुण्य और योगके साधनोंसे जिस परमपदको प्राप्त कर शोकरहित हो मुक्त हो जाते हैं वही परात्पर सनातन ब्रह्म है, वेदवेत्ता उसी परम पदको प्राप्त होते हैं। उस परमब्रह्ममें ब्रह्माण्डरूपी एक विशाल बेंतका वृक्ष है, वह भोगस्थानरूपी अनन्त शाखाओंसे युक्त तथा शब्दादि विषयरूपी पवित्र सुगन्धसे सम्पन्न है। उस ब्रह्माण्डरूपी वृक्षका मूल अविद्या है। अविद्यारूपी मूलसे भोगवासनामयी निरन्तर बहनेवाली अनन्त नदियाँ उत्पन्न होती हैं। वे नदियाँ ऊपरसे तो रमणीय, पवित्र सुगन्धवाली प्रतीत होती हैं तथा मधुके समान मधुर एवं जलके समान

तृप्ति करनेवाले विषयोंको बढ़ाया करती हैं; परन्तु वास्तवमें ये सब भुने हुए जौके समान फल देनेमें असमर्थ, पूओंके समान अनेक छिद्रोंवाली, हिंसा करनेसे मिल सकनेवाली अर्थात् मांसके समान अपवित्र, सूखे शाकके समान सारशून्य और खीरके समान रुचिकर लगनेवाली होनेपर भी कीचड़के समान चित्तमें मलिनता उत्पन्न करनेवाली हैं। बालूके कणों समान परस्पर विलग एवं ब्रह्माण्डरूपी बेंतके वृक्षकी शाखाओं में बहनेवाली हैं। मुने! इन्द्र, अग्नि और पवन आदि देव मरुद्गणोंके साथ जिस ब्रह्मको प्राप्त करनेके लिये यज्ञोंद्वा जिसका पूजन करते हैं, वह मेरा परम पद है।

वैवस्वत मनुका चरित्र—महामत्स्यका उपाख्यान

वैशम्पायनजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे कहा, 'अब आप हमें वैवस्वत मनुके चरित्र सुनाइये।'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! विवस्वान् (सूर्य) के एक प्रतापी पुत्र था, जो प्रजापतिके समान कान्तिमान् और महान् ऋषि था। उसने बदरिकाश्रममें जाकर एक पैरपर खड़े हो दोनों बाँहें ऊपर उठाकर दस हजार वर्षतक बड़ा भारी तप किया। एक दिनकी बात है, मनु चीरिणी नदीके तटपर तपस्या कर रहे थे। वहाँ उनके पास एक मत्स्य आकर बोला, 'महात्मन्! मैं एक छोटी-सी मछली हूँ; मुझे यहाँ अपनेसे बड़ी मछलियोंसे सदा भय बना रहता है, आप कृपा करके मेरी रक्षा करें।'

वैवस्वत मनुको उस मत्स्यकी बात सुनकर बड़ी दया

बाहर लाकर एक मटकेमें रख दिया। मनुका उस मत्स्य पुत्रभाव हो गया था, उनकी अधिक देख-भालके कारण उस मटकेमें बढ़ने और पुष्ट होने लगा। कुछ ही समयमें बढ़कर बहुत बड़ा हो गया। अतः मटकेमें उसका रह कठिन हो गया।

एक दिन उस मत्स्यने मनुको देखकर कहा, 'भगवन अब आप मुझे इससे अच्छा कोई दूसरा स्थान दीजिये।' त मनुने उसे मटकेमेंसे निकालकर एक बहुत बड़ी बावलीमें डा दिया। वह बावली दो योजन लंबी और एक योजन चौ थी। वहाँ भी वह मत्स्य अनेकों वर्षोंतक बढ़ता रहा अ इतना बढ़ गया कि अब उसका विशाल शरीर उसमें भी न अँट सका। एक दिन उसने फिर मनुसे कहा—'भगवन अब तो आप मुझे समुद्रकी रानी गङ्गाजीके जलमें डाल दे वहाँ मैं आरामसे रह सकूँगा; अथवा आप जहाँ ठीक समझे वहीं मुझे पहुँचा दें।'

मत्स्यके ऐसा कहनेपर मनुने उसे गङ्गाजीके जलमें जाकर छोड़ दिया। कुछ कालतक वहाँ रहनेके पश्चात् वह उ भी बढ़ गया। फिर उसने मनुको देखकर कहा, 'भगव अब तो बहुत बड़ा हो जानेके कारण मैं गङ्गाजीमें भी हि डुल नहीं सकता। आप मुझपर कृपा करके अब समुद्रमें चलिये।' तब मनुने उसे गङ्गाजीके जलसे निकाला और जाकर समुद्रके जलमें डाल दिया। समुद्रमें डालनेपर महामत्स्यने मनुसे हँसकर कहा, 'तुमने मेरी हर तरहसे र की है। अब इस अवसरपर जो कार्य उपस्थित है, उसे मैं बताता हूँ; सुनो। थोड़े ही समयमें इस चराचर जगत्का प्रलय होने- वाला है। समस्त विश्वके डूब जानेका समय आ गया है; अतः एक सुदृढ़ नाव तैयार कराओ, उसमें बटी हुई मज़बूत रस्सी बाँध दो और सप्तर्षियोंको साथ लेकर उसपर बैठ जाओ। सब प्रकारके अन्न और ओषधियोंके बीजोंका अलग-अलग ... रख लो और नावपर

मत्स्यके सींगमें नौका बाँध दी गयी

मत्स्यके रूपमें आऊँगा, इससे तुम मुझे पहचान लेना। अब मैं जा रहा हूँ।'

उस मत्स्यके कथनानुसार मनु सब प्रकारके बीज लेकर नावमें बैठ गये और उत्ताल तरङ्गोंसे लहराते हुए समुद्रमें तैरने लगे। उन्होंने उस महामत्स्यका स्मरण किया। उनको चिन्तित जानकर वह शृङ्गधारी मत्स्य नौकाके पास आ गया। मनुने उस रस्सीका फंदा उसके सींगमें डाल दिया।

उससे बँधकर वह मत्स्य उस नावको बड़े वेगसे समुद्रमें खींचने लगा और नावपर बैठे हुए लोगोंको जलके ऊपर ही तैराता रहा। उस समय समुद्रमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं, पानीके वेगसे उसमें गर्जना हो रही थी। प्रलयकालीन वायुके झोंकोंसे वह नाव डगमगा रही थी। उस समय न भूमिका पता चलता था न दिशाओंका। द्युलोक और आकाश—सब जलमय हो रहा था। केवल मनु, सप्तर्षि और वह मत्स्य—ये ही दिखायी पड़ते थे। इस प्रकार वह महामत्स्य बहुत वर्षोंतक महासागरमें उस नावको सावधानीसे सब ओर खींचता रहा।

इसके बाद वह उस नावको खींचकर हिमालयकी सबसे ऊँची चोटीपर ले गया और उसपर बैठे हुए ऋषियोंसे हँसकर बोला, 'हिमालयके इस शिखरमें नावको बाँध दो, देरी न करो।' यह सुनकर उन ऋषियोंने शीघ्र ही उस नावको शिखरमें बाँध दिया। आज भी हिमालयका वह शिखर 'नौकाबन्धन' नामसे विख्यात है। इसके बाद महामत्स्यने पुनः उनके हितकी बात कही—'मैं भगवान् प्रजापति हूँ, मुझसे पर दूसरी कोई वस्तु नहीं उपलब्ध होती। मैंने ही मत्स्यरूप धारण कर तुमलोगोंको इस सङ्कटसे बचाया है। अब मनुको चाहिये कि देवता, असुर और मनुष्य आदि समस्त प्रजाकी, सब लोकोंकी और सम्पूर्ण चराचरकी सृष्टि करें। इन्हें जगत्‌की सृष्टि करनेकी प्रतिभा तपस्यासे प्राप्त होगी। और मेरी कृपासे प्रजाकी सृष्टि करते समय इन्हें मोह नहीं होगा।'

यह कहकर वह महामत्स्य अन्तर्धान हो गया। इसके बाद जब मनुको सृष्टि करनेकी इच्छा हुई तो उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या करके शक्ति प्राप्त की, उसके बाद सृष्टि आरम्भ की। फिर तो वे पहले कल्पके समान ही प्रजा उत्पन्न करने लगे। युधिष्ठिर! इस प्रकार तुमको यह मत्स्यका प्राचीन उपाख्यान सुनाया है।

श्रीकृष्णकी महिमा और सहस्रयुगके अन्तमें होनेवाले प्रलयका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—मत्स्योपाख्यान सुननेके पश्चात् युधिष्ठिरने पुनः मुनिवर मार्कण्डेयजीसे कहा, 'महामुने! आपने हजार-हजार युगोंके अन्तरसे होनेवाले अनेकों महाप्रलय देखे हैं। इस संसारमें आपके समान बड़ी आयुवाला दूसरा कोई दिखायी भी नहीं देता। आप भगवान् नारायणके पार्षदोंमें विख्यात हैं, परलोकमें आपकी महिमाका सर्वत्र गान होता है। आपने ब्रह्मकी उपलब्धिके स्थानभूत हृदयकमलकी कर्णिकाका योगकी कलासे उद्‌घाटन कर वैराग्य और अभ्याससे प्राप्त हुई दिव्यदृष्टिद्वारा विश्वरचयिता भगवान्‌का अनेकों बार साक्षात्कार किया है। इसीलिये सबको मारनेवाली मृत्यु और सबके शरीरको क्षीण तथा दुर्बल बनानेवाली वृद्धावस्था आपका स्पर्श नहीं करती। महाप्रलयके समय जब सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, अन्तरिक्ष, पृथ्वी आदिमेंसे कोई भी शेष नहीं रहता, सारे लोक जलमग्न हो जाते हैं, स्थावर, जंगम, देवता, असुर, सर्प आदि जातियाँ नष्ट हो जाती हैं, उस समय पद्मपत्रपर सोनेवाले सर्वभूतेश्वर ब्रह्माजीके पास रहकर केवल आप ही उपासना करते हैं।

विप्रवर ! यह सारा पूर्वकालीन इतिहास आपका प्रत्यक्ष देखा हुआ है, अनेकों बार अनुभव किया हुआ है । सम्पूर्ण लोकोंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो । अतः मैं आपसे सारी सृष्टिके कारणसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनना चाहता हूँ ।'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! मैं स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको नमस्कार करके तुम्हें यह कथा सुनाता हूँ । ये जो हमलोगोंके पास बैठे हुए पीताम्बरधारी जनार्दन (श्रीकृष्ण) हैं, ये ही इस संसारकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं । ये ही भगवान् समस्त भूतोंके अन्तर्यामी और उनके रचयिता हैं । ये परम पवित्र, अचिन्त्य एवं आश्चर्यमय तत्त्व हैं । ये सबके कर्ता हैं, इनका कोई कर्ता नहीं है । पुरुषार्थकी प्राप्तिमें भी ये ही कारण हैं । ये अन्तर्यामीरूपसे सबको जानते हैं, इन्हें वेद भी नहीं जानते । सम्पूर्ण जगत्का प्रलय हो जानेके पश्चात् इन आदिभूत परमेश्वरसे ही यह सम्पूर्ण आश्चर्यमय जगत् इन्द्रजालके समान पुनः उत्पन्न हो जाता है ।

चार हजार दिव्य वर्षोंका एक सत्ययुग बताया गया है, उतने ही (चार) सौ वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशके होते हैं । इस प्रकार कुल अड़तालीस सौ दिव्य वर्ष सत्ययुगके हैं । तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग होता है, तथा तीन-तीन सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशके होते हैं । इस प्रकार यह युग छत्तीस सौ दिव्य वर्षोंका होता है। द्वापरका मान दो हजार दिव्य वर्ष है तथा उतने ही (दो) सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशके हैं, अतः सब मिलकर चौबीस सौ दिव्य वर्ष द्वापरके हैं । कलियुगका मान है एक हजार दिव्य वर्ष । उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशके मान भी सौ-सौ दिव्य वर्ष हैं । इस प्रकार कलियुग बारह सौ दिव्य वर्षोंका होता है । कलियुगके क्षीण हो जानेपर पुनः सत्ययुगका आरम्भ होता है । इस प्रकार बारह हजार दिव्य वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है । एक हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। यह सारा जगत् ब्रह्माके दिनभर रहता है, दिन समाप्त होते ही नष्ट हो जाता है । इसीको इस विश्वका प्रलय कहते हैं ।

सहस्रयुगकी समाप्तिमें जब थोड़ा-सा ही समय शेष रह जाता है, उस समय कलियुगके अन्तिम भागमें प्रायः सभी मनुष्य मिथ्यावादी हो जाते हैं । ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करते हैं, शूद्र वैश्योंकी भाँति धन संग्रह करने लगते हैं अथवा क्षत्रियोंके कर्मोंसे जीविका चलाने लगते हैं । ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय, दण्ड और मृगचर्म आदिका त्याग कर देते हैं, भक्ष्याभक्ष्यका विचार छोड़ सभी कुछ भक्षण करते हैं तथा जपसे दूर भागते हैं और शूद्र गायत्रीके जपको अपनाते हैं ।

इस प्रकार जब लोगोंके विचार और व्यवहार विपरीत हो जाते हैं तो प्रलयका पूर्वरूप आरम्भ हो जाता है । पृथ्वीपर म्लेच्छोंका राज्य हो जाता है । महान् पापी और असत्यवादी आन्ध्र, शक, पुलिन्द, यवन तथा आभीर जातियोंके लोग राजा होते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—सभी अपने-अपने धर्म त्यागकर दूसरे वर्णोंके कर्म करने लगते हैं । सबकी आयु, बल, वीर्य और पराक्रम घट जाते हैं । मनुष्य नाटे कदके होने लगते हैं; उनकी बातचीतमें सत्यका अंश बहुत कम होता है । उस समयकी स्त्रियाँ भी नाटे कदवाली और बहुत बच्चे पैदा करनेवाली होती हैं । उनमें शील और सदाचार नहीं रह जाता । गाँव-गाँवमें अन्न बिकने लगता है, ब्राह्मण वेद बेचते हैं, स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति करने लगती हैं । गौएँ बहुत कम दूध देती हैं । वृक्षोंमें फूल-फल बहुत कम लगते हैं । उनपर अच्छे पक्षियोंके बदले अधिकतर कौए ही बसेरा लेते हैं ।

ब्राह्मणलोग लोभवश पातकी राजाओंसे भी दक्षिणा लेते हैं, झूठे धर्मका ढोंग रचते हैं, भिक्षा माँगनेके बहाने दसों दिशाओंमें घूम-घूमकर चोरी करते हैं । गृहस्थ भी अपने ऊपर टैक्सका भार बढ़ जानेसे इधर-उधर चोरी करते फिरते हैं । ब्राह्मण मुनियोंका वेष बनाकर वैश्यवृत्तिसे जीविका चलाते हैं तथा मदिरा पीते और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करते हैं । जिनसे शरीरमें मांस और रक्त बढ़े, उन लौकिक कार्योंको ही करते हैं—दुर्बल होनेके भयसे व्रत और तपस्याका नाम नहीं लेते । उस समय न तो समयपर वर्षा होती है और न बोये हुए बीज ही ठीक तरहसे जमते हैं । लोग बनावटी तौल-नापसे व्यापार करते हैं तथा व्यापारी बड़े कपटी होते हैं । राजन् ! कोई पुरुष विश्वास कर धरोहरके रीतिसे उनके यहाँ धन रखते हैं तो वे पापी निर्लज्ज उसकी धरोहरको हड़प जानेका प्रयत्न करते हैं और उससे कह देते हैं कि 'हमारे यहाँ तुम्हारा कुछ भी नहीं है ।'

स्त्रियाँ पतिको धोखा देकर नौकरोंके साथ व्यभिचार करती हैं। वीर पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी अपने स्वामीका परित्याग करके दूसरोंका आश्रय लेती हैं । इस प्रकार जब सहस्र युग पूरे होनेको आते हैं तो बहुत वर्षोंतक वृष्टि बंद हो जाती है, इससे थोड़ी शक्तिवाले प्राणी भूखसे व्याकुल होकर मर जाते हैं । इसके बाद सात सूर्योंका बहुत प्रचण्ड तेज बढ़ता

है; वे सातों सूर्य नदी और समुद्र आदिमें जो पानी होता है, उसे भी सोख लेते हैं। उस समय जो भी तृण, काष्ठ अथवा सूखे-गीले पदार्थ होते हैं, वे सभी भस्मीभूत दिखायी देने लगते हैं। इसके बाद संवर्तक नामकी प्रलयकालीन अग्नि वायुके साथ सम्पूर्ण लोकमें फैल जाती है। पृथ्वीका भेदन कर वह अग्नि रसातलतकमें पहुँच जाती है। इससे देवता, दानव और यक्षोंको महान् भय पैदा हो जाता है। वह नागलोकको जलाकर इस पृथ्वीके नीचे जो कुछ भी है, उस सबको क्षणभरमें नष्ट कर देती है। इसके बाद अशुभकारी वायु और वह अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस आदिसे युक्त समस्त विश्वको ही जलाकर भस्म कर डालते हैं।

फिर आकाशमें मेघोंकी घनघोर घटा घिर आती है, बिजली कौंधने लगती है और भयङ्कर गर्जना होती है। उस समय इतनी वर्षा होती है कि वह भयानक अग्नि शान्त हो जाती है। ये मेघ बारह वर्षतक वर्षा करते रहते हैं। इससे समुद्र मर्यादा छोड़ देते हैं, पर्वत फट जाते हैं और पृथ्वी जलमें डूब जाती है। तत्पश्चात् पवनके वेगसे आपसमें ही टकराकर ये मेघ भी नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद ब्रह्माजी उस प्रचण्ड पवनको पीकर उस एकार्णवके जलमें शयन करते हैं। उस समय देवता, असुर, यक्ष, राक्षस तथा अन्य चराचर जीवोंका तो नाश हो जाता है। केवल मैं ही उस एकार्णवमें उठती हुई लहरोंके थपेड़े खाता हुआ इधर-उधर भटकता फिरता हूँ।

मार्कण्डेयद्वारा बालमुकुन्दका दर्शन और उनकी महिमाका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर! एक समयकी बात है, जब मैं एकार्णवके जलमें सावधानतापूर्वक बड़ी देरतक तैरता-तैरता बहुत दूर जाकर थक गया तो विश्राम लेने लायक कोई भी सहारा न रहा। तब किसी समय उस अनन्त जलराशिमें मैंने एक बड़ा सुन्दर और विशाल वटका वृक्ष देखा। उसकी चौड़ी शाखापर एक नयनाभिराम श्यामसुन्दर बालक बैठा था। उसका मुख कमलके समान कोमल और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था तथा उसकी आँखें खिले हुए कमलके समान विशाल थीं। राजन्! उसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा—सारा संसार तो नष्ट हो गया, फिर यह बालक यहाँ कैसे सो रहा है। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञाता हूँ; तो भी अपने तपोबलसे भलीभाँति ध्यान लगानेपर भी उस बालकको न जान सका। तब वह बालक, जिसकी अतसी-पुष्पके समान श्यामसुन्दर कान्ति थी और जिसके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स शोभा पा रहा था, मेरे कानोंमें अमृत उड़ेलता हुआ-सा बोला, 'मार्कण्डेय! मैं जानता हूँ तुम बहुत थक गये हो और विश्राम लेनेकी इच्छा करते

हो। अतः हे मुने! तुमपर कृपा करके मैं यह निवास दे रहा हूँ।'

उस बालकके ऐसा कहनेपर मुझे अपने दीर्घ जीवन

और मनुष्यशरीरपर बड़ा खेद हुआ। इतनेहीमें बालकने अपना मुँह फैलाया और दैवयोगसे मैं परवशकी भाँति उसमें प्रवेश कर गया, सहसा उसके उदरमें जा पड़ा। वहाँ मुझे समस्त राष्ट्रों और नगरोंसे भरी हुई यह पृथ्वी दिखायी दी। मैंने उसमें गङ्गा, यमुना, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, नर्मदा और कावेरी आदि नदियोंको भी देखा तथा रत्नों और जलजन्तुओंसे भरा हुआ समुद्र, सूर्य और चन्द्रमासे शोभायमान आकाश तथा पृथ्वीपर अनेकों वन-उपवन भी देखे। वहाँ मैंने वर्णाश्रम-धर्मका यथावत् पालन होते देखा। ब्राह्मणलोग अनेकों यज्ञोंद्वारा यजन कर रहे थे, क्षत्रिय राजा सब वर्णोंकी प्रजाका अनुरञ्जन करते—सबको सुखी और प्रसन्न रखते थे, वैश्यलोग न्यायपूर्वक खेतीका काम और व्यापार कर रहे थे और शूद्र तीनों द्विजातियोंकी सेवामें संलग्न थे। तदनन्तर उस महात्माके उदरमें भ्रमण करता हुआ जब आगे बढ़ा तो हिमवान्, हेमकूट, निषध, श्वेतगिरि, गन्धमादन, मन्दराचल, नीलगिरि, मेरु, विन्ध्याचल, मलय, पारियात्र आदि जितने भी पर्वत हैं, सब मुझे दिखायी पड़े। वहाँ इधर-उधर विचरते-विचरते मैंने इन्द्रादि देवता, रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, यक्ष, ऋषि तथा दैत्य और दानवोंके समूहको भी देखा। कहाँतक कहूँ, इस पृथ्वीपर जो कुछ भी चराचर जगत् मेरे देखनेमें आया था, सब उस बालकके उदरमें मुझे दीख पड़ा। मैं प्रतिदिन फलाहार करता और घूमता रहता। इस प्रकार सौ वर्षतक विचरता रहा, किन्तु कभी उसके शरीरका अन्त न मिला। अन्तमें मैंने मन-वाणीसे उस वरदायक दिव्य बालककी ही शरण ली। बस, सहसा उसने अपना मुख खोला और मैं वायुके समान वेगसे अकस्मात् उसके मुखसे बाहर आ गया। देखा तो वह अमित तेजस्वी बालक पहलेहीकी भाँति सारे विश्वको अपने उदरमें रखकर उसी वटवृक्षकी शाखापर विराजमान है। मुझे देखकर उस महाकान्तिवाले पीताम्बरधारी बालकने प्रसन्न होकर कुछ मुसकराते हुए कहा, 'मार्कण्डेय ! मैं पूछता हूँ, तुमने मेरे इस शरीरमें अब विश्राम तो कर लिया है न ? तुम थके-से जान पड़ते हो।'

उस अतुलित तेजस्वी बालकके असीम प्रभावको देखकर मैंने उसके लाल-लाल तलुओं और कोमल अँगुलियोंसे सुशोभित दोनों सुन्दर चरणोंको मस्तकसे छुआकर प्रणाम किया। फिर विनयसे हाथ जोड़े प्रयत्नपूर्वक उसके पास जाकर उस सर्वभूतान्तरात्मा कमलनयन भगवान्के दर्शन किये और उनसे कहने लगा, 'भगवन् ! मैंने आपके शरीरके भीतर प्रवेश करके वहाँ समस्त चराचर जगत् देखा है। प्रभो ! बताइये तो, आप इस विराट् विश्वको इस प्रकार उदरमें धारण कर यहाँ बालक-वेषमें क्यों विराजमान हैं ? सारा संसार आपके उदरमें किसलिये स्थित है ? कबतक आप इस रूपमें यहाँ रहेंगे ?'

इस प्रकार मेरी प्रार्थना सुनकर वे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवदेव परमेश्वर मुझे सान्त्वना देते हुए बोले—विप्रवर ! देवता भी मेरे स्वरूपको ठीक-ठीक नहीं जानते; तुम्हारे प्रेमसे मैं जिस प्रकार इस जगत्की रचना करता हूँ, वह बताता हूँ। तुम पितृभक्त हो, तुमने महान् ब्रह्मचर्यका पालन किया है; इसके सिवा, तुम मेरी शरणमें भी आये हो। इसीसे तुम्हें मेरे इस स्वरूपका दर्शन हुआ है। पूर्वकालमें मैंने ही जलका 'नारा' नाम रक्खा था; वह 'नारा' मेरा अयन (वासस्थान) है, इसलिये मैं नारायण नामसे विख्यात हूँ। मैं सबकी उत्पत्तिका कारण, सनातन और अविनाशी हूँ। सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि और संहार करनेवाला मैं ही हूँ। तथा ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, शिव, सोम, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ भी मैं ही हूँ।

अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी चरण है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, द्युलोक मेरा मस्तक है; आकाश और दिशाएँ मेरे कान हैं। यह जल मेरे शरीरके पसीनेसे प्रकट हुआ है। वायु मेरे मनमें स्थित है। पूर्वकालमें पृथ्वी जब जलमें डूब गयी थी, तो मैंने ही वाराहरूप धारण करके इसे जलसे बाहर निकाला था। ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय दोनों भुजाएँ, वैश्य ऊरु और शूद्र चरण हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये मुझसे ही प्रकट होते और मुझमें ही लीन हो जाते हैं। शान्तिकी इच्छासे मन और इन्द्रियोंपर संयम करनेवाले जिज्ञासु यति और श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा मेरा ही ध्यान एवं उपासना करते हैं। आकाशके तारे मेरे रोमकूप हैं। समुद्र और चारों दिशाएँ मेरे वस्त्र, शय्या और निवास-मन्दिर हैं।

मार्कण्डेय ! जिन धर्मोंके आचरणसे मनुष्यको कल्याणकी प्राप्ति होती है, वे हैं—सत्य, दान, तप और अहिंसा। द्विजगण सम्यक् प्रकारसे वेदोंका स्वाध्याय और अनेकों प्रकारके यज्ञ करके शान्तचित्त एवं क्रोधशून्य होकर मुझे ही प्राप्त करते हैं। पापी, लोभी, कृपण, अनार्य और अजितेन्द्रिय

पुरुषोंको मैं कभी नहीं मिल सकता । जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ । हिंसामें प्रेम रखनेवाले दैत्य और दारुण राक्षस जब इस संसारमें उत्पन्न होकर अत्याचार करते हैं और देवता भी उनका वध नहीं कर पाते, उस समय मैं पुण्यवानोंके घरमें अवतार लेकर सब अत्याचारियोंका संहार करता हूँ । देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि प्राणियों तथा स्थावर भूतोंको भी मैं अपनी मायासे ही रचता हूँ और मायासे ही उनका संहार करता हूँ । मैं सृष्टि-रचनाके समय अचिन्त्य स्वरूप धारण करता हूँ और मर्यादाकी स्थापना तथा रक्षाके लिये मानव-शरीरसे अवतार लेता हूँ । सत्ययुगमें मेरा वर्ण श्वेत, त्रेतामें पीला, द्वापरमें लाल और कलियुगमें कृष्ण होता है । कलिमें धर्मका एक ही भाग शेष रह जाता है और अधर्मके तीन भाग रहते हैं । जब जगत्का विनाश-काल उपस्थित होता है, तब महादारुण कालरूप होकर मैं अकेला ही स्थावर-जंगम सम्पूर्ण त्रिलोकीको नष्ट कर देता हूँ ।

मैं स्वयम्भू, सर्वव्यापक, अनन्त, इन्द्रियोंका स्वामी और महान् पराक्रमी हूँ । यह जो सब भूतोंका संहार करने-वाला और सबको उद्योगशील बनानेवाला निराकार कालचक्र है, इसका सञ्चालन मैं ही करता हूँ । हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा मेरा स्वरूप है । मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर स्थित हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता । मैं शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाला विश्वात्मा नारायण हूँ । सहस्रयुगके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसमें उतने ही समयतक सब प्राणियोंको मोहित करके जलमें शयन करता हूँ । यद्यपि मैं बालक नहीं हूँ, फिर भी जबतक ब्रह्मा नहीं जागता तबतक बालकरूप धारण करके यहाँ रहता हूँ । विप्रवर ! इस प्रकार मैंने तुमसे अपने स्वरूपका उपदेश किया है, जिसको जानना देवता और असुरोंके लिये भी कठिन है । जबतक भगवान् ब्रह्माका जागरण न हो, तबतक तुम श्रद्धा और विश्वासपूर्वक सुखसे विचरते रहो । ब्रह्माके जागनेपर मैं उनसे एकीभूत होकर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी तथा अन्य चराचर भूतोंकी भी सृष्टि करूँगा ।

युधिष्ठिर ! यह कहकर वे परम अद्भुत भगवान् बालमुकुन्द अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार मैंने सहस्रयुगीके अन्तमें यह आश्चर्यजनक प्रलय-लीला देखी थी । उस समय जिन परमात्माका मुझे दर्शन हुआ था, ये तुम्हारे सम्बन्धी श्रीकृष्ण-चन्द्र वे ही हैं । इन्हींके वरदानसे मेरी स्मरणशक्ति कभी क्षीण नहीं होती, आयु लंबी हो गयी है और मृत्यु मेरे वशमें रहती है । ये वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए श्रीकृष्ण वास्तवमें पुराणपुरुष परमात्मा हैं । इनका स्वरूप अचिन्त्य है, तो भी ये हमारे सामने लीला करते हुए-से दीख रहे हैं । ये ही इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले सनातन पुरुष हैं । इनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है । ये गोविन्द ही प्रजापतियोंके भी पति हैं । इन्हें यहाँ देखकर मुझे इस घटनाकी स्मृति हो आयी है । पाण्डवो ! ये माधव ही सबके पिता-माता हैं; तुम इन्हींकी शरणमें जाओ, ये ही सबको शरण देनेवाले हैं ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार कहनेपर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी—सबने उठकर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और भगवान्ने भी उनका आदर करते हुए आश्वासन दिया ।

कलिधर्म और कल्कि-अवतार

युधिष्ठिरने उपर्युक्त कथा सुनकर पुनः मार्कण्डेय-जीसे कहा—भार्गव ! आपसे मैंने उत्पत्ति और प्रलयकी आश्चर्यमयी कथा सुनी । अब मुझे कलियुगके विषयमें सुननेका कौतूहल हो रहा है । कलिमें जब सम्पूर्ण धर्मोंका उच्छेद हो जायगा, उसके बाद क्या होगा ? कलियुगमें मनुष्योंके पराक्रम कैसे होंगे ? उनके आहार-विहारका स्वरूप क्या होगा ? लोगोंकी आयु कितनी होगी ? पहनावे कैसे होंगे ? कलियुगके किस सीमातक पहुँचनेपर पुनः सत्ययुग आरम्भ हो जायगा ? मुनिवर ! इन सब बातोंको आप विस्तारके साथ बताइये; क्योंकि आपके कहनेका ढंग बड़ा ही विचित्र है ।

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर मार्कण्डेयजी श्री-कृष्ण और पाण्डवोंसे पुनः कहने लगे—राजन् ! कलिकाल आनेपर इस जगत्का भविष्य कैसा होगा—इस विषयमें मैंने जैसा सुना और अनुभव किया है, वह सब तुम्हें बताता हूँ; ध्यान देकर सुनो । सत्ययुगमें धर्म अपने सम्पूर्ण रूपमें प्रतिष्ठित होता है; उसमें छल, कपट या दम्भ नहीं होता । उस समय उस धर्मरूपी वृषभके चारों चरण मौजूद रहते हैं । त्रेतायुगमें एक अंशमें अधर्म अपना पैर जमा लेता है; इससे धर्मका

एक पैर क्षीण हो जाता है, फिर तीन ही पैरोंसे वह स्थित रहता है। द्वापरमें धर्म आधा ही रह जाता है, आधेमें अधर्म आकर मिल जाता है। फिर तमोमय कलियुगके आनेपर तीन अंशोंसे इस जगत्पर अधर्मका आक्रमण होता है, चौथाई अंशमें ही धर्म रह जाता है। सत्ययुगके बाद ज्यों-ज्यों दूसरा युग आता है त्यों-ही-त्यों मनुष्योंकी आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेजका ह्रास होता जाता है। युधिष्ठिर ! कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातियोंके लोग भीतर कपट रखकर धर्मका आचरण करेंगे। मनुष्य धर्मका जाल रचकर लोगोंको अधर्ममें फँसावेंगे। अपनेको पण्डित माननेवाले लोग सत्यका गला घोंटेंगे। सत्यकी हानि होनेसे उनकी आयु थोड़ी हो जायगी। आयुकी कमीके कारण वे पूर्ण विद्याका उपार्जन नहीं कर सकेंगे। विद्याहीन होनेसे अज्ञानी मनुष्योंको लोभ दबा लेगा। लोभ और क्रोधके वशीभूत हुए मूढ मनुष्य कामनाओंमें आसक्त होंगे। इससे उनमें आपसमें वैर बढ़ेगा, फिर वे एक दूसरेके प्राण लेनेकी घातमें लगे रहेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये आपसमें सन्तानोत्पादन करके वर्णसंकर हो जायँगे; इनका विभाग करना कठिन हो जायगा। ये सभी तप और सत्यका परित्याग करके शूद्रके समान हो जायँगे।

कलियुगके अन्तमें संसारकी ऐसी ही दशा होगी। वस्त्रोंमें सनके बने हुए वस्त्र अच्छे समझे जायँगे। धानोंमें कोदोकी प्रशंसा होगी। उस समय पुरुषोंकी केवल स्त्रियोंसे मित्रता होगी। लोग मछली-मांस खायँगे और बकरी-भेड़का दूध पियेंगे। गौओंका तो दर्शन दुर्लभ हो जायगा। लोग एक-दूसरेको लूटेंगे, मारेंगे। भगवान्‌का कोई नाम नहीं लेगा। सभी नास्तिक और चोर होंगे। पशुओंके अभावमें खेती-बारी सब चौपट हो जायगी; लोग कुदालसे खोदकर नदियोंके तटपर अनाज बोयेंगे, उनमें भी फल बहुत कम लगेगा। ब्राह्मणलोग व्रत-नियमोंका पालन तो करेंगे नहीं, उलटे वेदोंकी निन्दा करने लगेंगे; शुष्क तर्कवादसे मोहित होकर वे यज्ञ-होम सब कुछ छोड़ देंगे। लोग गायों और एक सालके बछड़ोंके कन्धोंपर जुआ रखकर हलमें जोतेंगे। और सब लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर बड़ी बकवाद करेंगे, तथापि जगत्‌में कोई भी उनकी निन्दा नहीं करेगा। सारा जगत् म्लेच्छवत् व्यवहार करेगा, सत्कर्म और यज्ञ आदिका कोई नाम भी न लेगा। समस्त विश्व आनन्दहीन, उत्सवशून्य हो जायगा। लोग प्रायः दीनों, असहायों और विधवाओंका धन हर लेंगे। क्षत्रियलोग तो जगत्‌के लिये काँटा बन जायँगे। मान और अहङ्कारमें चूर रहेंगे। प्रजाकी रक्षा तो करेंगे नहीं; उनसे रुपये ऐंठनेके लिये लोभ अधिक रक्खेंगे। राजा कहलानेवाले लोगोंको सिर्फ प्रजाको दण्ड देनेका शौक होगा। लोग इतने निर्दयी हो जायँगे कि सज्जन पुरुषोंपर भी आक्रमण करके उनके धन और स्त्रीका बलात्कारसे उपभोग करेंगे। उन्हें रोते-बिलखते देखकर भी दया नहीं आवेगी। न तो कोई किसीसे कन्याकी याचना करेगा और न कोई कन्यादान ही करेंगे। कलियुगके वर-कन्या अपने-आप ही स्वयंवर कर लेंगे। उस समयके मूर्ख और असन्तोषी राजा सब तरहके उपायोंसे दूसरोंके धनका अपहरण करेंगे। हाथ हाथको लूटेगा—अपने सगे-सम्बन्धी ही सम्पत्तिको हरण करनेवाले हो जायँगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका नाम भी नहीं रह जायगा। सब एक जातिके हो जायँगे। भक्ष्याभक्ष्यका विचार छोड़कर सब लोग एक-सा ही आहार करेंगे। स्त्री और पुरुष—सब स्वेच्छाचारी होंगे; वे एक दूसरेके कार्य और विचारको सहन नहीं कर सकेंगे।

श्राद्ध और तर्पण उठ जायगा। न कोई किसीका उपदेश सुनेगा और न कोई किसीका गुरु होगा। सब अज्ञानमें डूबे रहेंगे। उस समय मनुष्यकी अधिक-से-अधिक आयु सोलह वर्षकी होगी। पाँच-ही-छः वर्षकी उम्रमें कन्याएँ गर्भवती होकर सन्तान उत्पन्न करेंगी। सात-आठ वर्षकी उम्रवाले पुरुष स्त्री-समागम करके सन्तानोत्पादन करने लगेंगे। अपने पतिसे स्त्री और अपनी स्त्रीसे पति सन्तुष्ट न होंगे—दोनों ही अतृप्त रहकर परपुरुष और परस्त्रीका सेवन करेंगे।

व्यापारमें क्रय-विक्रयके समय लोभके कारण सभी सबको ठगेंगे। क्रियाके तत्त्वको न जानकर भी उसे करनेमें प्रवृत्त होंगे। सभी स्वभावतः क्रूर और एक दूसरेपर अभियोग लगानेवाले होंगे। लोग बगीचे और वृक्ष कटवा डालेंगे, इसके लिये उनके हृदयमें तनिक भी पीड़ा न होगी। प्रत्येक मनुष्यके जीवनपर भी सन्देह हो जायगा। लोभी मनुष्य ब्राह्मणोंकी हत्या करके उनका धन छीनकर भोगेंगे। शूद्रोंसे पीड़ित हुए द्विज भयसे हाहाकार करने लगेंगे। सताये हुए ब्राह्मण नदी और पर्वतोंका आश्रय लेंगे। दुष्ट राजाओंके कारण प्रजा सर्वदा टैक्सके भारी भारसे दबी रहेगी। शूद्र धर्मका उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उनकी सेवामें रहेंगे, उनके उपदेशोंको प्रामाणिक बतावेंगे। समस्त लोकका व्यवहार विपरीत और उलट-पुलट

हो जायगा। लोग हड्डी जड़ी हुई दीवारोंकी पूजा करेंगे, देवमूर्तियोंकी नहीं। उस समयके शूद्र द्विजातियोंकी सेवा नहीं करेंगे। महर्षियोंके आश्रम, ब्राह्मणोंके घर, देवस्थान, धर्मसभा आदि सभी स्थानोंकी भूमि हड्डियोंसे जड़ी हुई होगी। देव-मन्दिर कहीं नहीं होंगे। यही सब युगान्तकी पहचान है। जिस समय अधिकांश मनुष्य धर्महीन, मांसभोजी और शराब पीनेवाले होंगे, उसी समय इस युगका अन्त होगा। उस समय बिना समयकी वर्षा होगी। शिष्य गुरुओंका अपमान करेंगे, सदा उनका अहित करेंगे। आचार्य धनहीन होंगे, उन्हें शिष्योंकी फटकार सुननी पड़ेगी। धनके लालचसे ही मित्र और सम्बन्धी अपने निकट रहेंगे।

युगान्त आनेपर समस्त प्राणियोंका अभाव हो जायगा। सारी दिशाएँ प्रज्वलित हो उठेंगी। तारोंकी चमक जाती रहेगी। नक्षत्र और ग्रहोंकी गति विपरीत हो जायगी। लोगोंको व्याकुल करनेवाली प्रचण्ड आँधियाँ उठेंगी, महान् भयकी सूचना देनेवाले उल्कापात अनेकों बार होंगे। एक सूर्य तो है ही, छः और उदय होंगे और सातों एक साथ तपेंगे। कड़कती हुई बिजली गिरेगी, सब दिशाओंमें आग लगेगी। उदय और अस्तके समय सूर्य राहुसे ग्रस्त-सा दीख पड़ेगा। इन्द्र बिना समयकी ही वर्षा करेगा। बोयी हुई खेती उगेगी ही नहीं। स्त्रियाँ कठोर स्वभाववाली और कटुभाषिणी होंगी। उन्हें रोना ही अधिक पसंद होगा। वे पतिकी आज्ञामें नहीं रहेंगी। पुत्र माता-पिताकी हत्या करेंगे। पत्नी अपने बेटेसे मिलकर पतिका वध कर डालेगी। अमावास्याके बिना ही सूर्यग्रहण लगेगा। पथिकोंको माँगनेपर कहीं अन्न, जल या ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा; वे सब ओरसे कोरा जवाब पाकर निराश हो रास्तोंपर ही पड़े रहेंगे। कौए, हाथी, पशु, पक्षी और मृग आदि युगान्तके समय बड़ी कठोर वाणी बोलेंगे। मनुष्य मित्रों, सम्बन्धियों तथा अपने कुटुम्बके लोगोंको भी त्याग देंगे। स्वदेश त्यागकर परदेशका आश्रय लेंगे। सभी लोग 'हा तात! हा बेटा!' इस प्रकार दर्दभरी पुकार मचाते हुए भूमण्डलमें भटकते फिरेंगे। युगान्तमें संसारकी यही अवस्था होगी। उस समय एक बार इस लोकका संहार होगा।

इसके पश्चात् कालान्तरमें सत्ययुगका आरम्भ होगा, क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण शक्तिशाली होंगे। लोकके अभ्युदयके लिये पुनः दैवकी अनुकूलता होगी। जब सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति एक ही राशिमें—एक ही पुष्य-नक्षत्रपर एकत्र होंगे, उस समय सत्ययुगका प्रारम्भ होगा। फिर तो मेघ समयपर पानी बरसायेंगे। नक्षत्रोंमें तेज आ जायगा। ग्रहोंकी गति अनुकूल हो जायगी। सबका मंगल होगा। तथा सुभिक्ष और आरोग्यका विस्तार होगा।

उस समय कालकी प्रेरणासे शम्भल नामक ग्रामके अन्तर्गत विष्णुयशा नामके ब्राह्मणके घरमें एक बालक उत्पन्न होगा, उसका नाम होगा कल्की विष्णुयशा। वह ब्राह्मणकुमार बहुत ही बलवान्, बुद्धिमान् और पराक्रमी होगा। मनके द्वारा चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे। वह ब्राह्मणोंकी सेना साथ लेकर संसारमें सर्वत्र फैले हुए म्लेच्छोंका नाश कर डालेगा। वही सब दुष्टोंका नाश करके सत्ययुगका प्रवर्तक होगा। धर्मके अनुसार विजय प्राप्त कर वह चक्रवर्ती राजा होगा और इस सम्पूर्ण जगत्को आनन्द प्रदान करेगा।

मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने पुनः मार्कण्डेयजीसे पूछा, 'मुने! प्रजाका पालन करते समय मुझे किस धर्मका आचरण करना चाहिये? मेरा व्यवहार और बर्ताव कैसा हो, जिससे मैं स्वधर्मसे भ्रष्ट न होऊँ?'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! तुम सब प्राणियोंपर दया करो। सबका हित-साधन करनेमें लगे रहो। किसीके गुणोंमें दोष न देखो। सदा सत्य-भाषण करो। सबके प्रति विनीत और कोमल बने रहो। इन्द्रियोंको वशमें रक्खो। प्रजाकी रक्षामें सदा तत्पर रहो। धर्मका आचरण और अधर्मका त्याग करो। देवताओं और पितरोंकी पूजा करो। यदि असावधानीके कारण किसीके मनके विपरीत कोई व्यवहार हो जाय तो उसे अच्छी प्रकार दानसे सन्तुष्ट करके वशमें करो। 'मैं सबका स्वामी हूँ' ऐसे अहङ्कारको कभी पास न आने दो, तुम अपनेको सदा पराधीन समझते रहो।

तात युधिष्ठिर! मैंने तुम्हें जो यह धर्म बताया है, इसका भूतकालमें भी धर्मात्मा पुरुष पालन करते रहे हैं और भविष्यमें भी इसका पालन आवश्यक है। तुम्हें तो सब मालूम ही है; क्योंकि इस पृथ्वीपर भूत या भविष्य ऐसा कुछ भी नहीं

है, जो तुम्हें ज्ञात न हो। प्रसिद्ध कुरुवंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है; अतः मैंने तुम्हें जो कुछ बताया है उसका मन, वाणी और कर्मसे पालन करो।

युधिष्ठिरने कहा—द्विजवर! आपने जो उपदेश दिया है, वह मेरे कानोंको मधुर और मनको बहुत ही प्रिय लगा है। मैं प्रयत्नपूर्वक आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। प्रभो! धर्मका त्याग होता है लोभ और भय आदिसे; मेरे मनमें न लोभ है, न भय। इसी प्रकार किसीके प्रति डाह या जलन भी नहीं है। इसलिये आपने मेरे लिये जो कुछ भी आज्ञा की है, सबका पालन करूँगा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके सहित समस्त पाण्डव तथा वहाँ आये हुए सभी ऋषि-महर्षिगण बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके मुखसे धर्मोपदेश और कथाएँ सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

इन्द्र और बकमुनिका संवाद

इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे निवेदन किया—मुनिवर! सुननेमें आता है कि बक और दाल्भ्य—ये दोनों महात्मा चिरंजीवी हैं और देवराज इन्द्रसे इनकी मित्रता है। अतः मैं बक और इन्द्रके समागमका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी बोले—एक समय देवता और असुरोंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ, उसमें इन्द्र विजयी हुए और उन्हें तीनों लोकोंका साम्राज्य प्राप्त हुआ। उस समय समयपर भलीभाँति वर्षा होनेके कारण खेतीकी उपज अधिक होती थी। प्रजाको कोई रोग नहीं होता था और सब लोग अपने धर्ममें स्थित रहते थे। सबके दिन बड़े चैनसे बीत रहे थे।

एक दिनकी बात है, देवराज इन्द्र अपनी प्रजाको देखनेके लिये ऐरावतपर चढ़कर निकले। वे पूर्व दिशामें समुद्रके समीप एक सुन्दर और सुखद स्थानपर, जहाँ हरे-भरे वृक्षोंकी पंक्ति शोभा दे रही थी, आकाशसे नीचे उतरे। वहाँ एक बहुत सुन्दर आश्रम था, जहाँ बहुत-से मृग और पक्षी दिखायी पड़ते थे। उस रमणीक आश्रममें इन्द्रने बक मुनिका दर्शन किया। बक भी देवराज इन्द्रको देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें बैठनेको आसन देकर पाद्य, अर्घ्य तथा फल-मूल आदिके द्वारा उनका पूजन—आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् इन्द्रने बक मुनिसे इस प्रकार प्रश्न किया—'ब्रह्मन्! आपकी उम्र एक लाख वर्षकी हो गयी! अपने अनुभवसे

बताइये, अधिक कालतक जीवित रहनेवालोंको क्या-क्या दुःख देखना पड़ता है?'

बकने कहा—अप्रिय मनुष्योंके साथ रहना पड़ता है, प्रिय व्यक्तियोंके मर जानेसे उनके वियोगका दुःख सहते हुए जीवन बिताना पड़ता है और कभी-कभी दुष्ट मनुष्योंका सङ्ग भी प्राप्त होता रहता है; चिरजीवी मनुष्योंके लिये इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा? अपनी आँखोंके सामने स्त्री और

पुत्रोंकी मृत्यु होती है, भाई-बन्धु और मित्रोंका सदाके लिये वियोग हो जाता है। जीवन-निर्वाहके लिये पराधीन होकर रहना पड़ता है, दूसरे लोग तिरस्कार करते हैं; इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है ?

इन्द्रने पूछा—मुने ! अब यह बताइये, चिरजीवी मनुष्योंको सुख किस बातमें है ?

बकने कहा—जो अपने परिश्रमसे उपार्जन करके घरमें केवल साग बनाकर खाता है, मगर दूसरेके अधीन नहीं है, उसे ही सुख है। दूसरोंके सामने दीनता न दिखाकर अपने घरमें फल और साग भोजन करना अच्छा है, परन्तु दूसरेके घर तिरस्कार सहकर प्रतिदिन मीठा पकवान खाना भी अच्छा नहीं है। यही सत्पुरुषोंका विचार है। जो दूसरेका अन्न खाना चाहता है, वह कुत्तेकी भाँति अपमानका टुकड़ा पाता है। उस दुरात्मा पुरुषके वैसे भोजनको धिक्कार है ! जो श्रेष्ठ द्विज सदा अतिथियों, भूत-प्राणियों तथा पितरोंको अर्पण करके अर्थात् बलिवैश्वदेव करके शेष अन्न स्वयं भोजन करता है, उससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है ? इस यज्ञशेष अन्नसे बढ़कर पवित्र और मधुर दूसरा कोई भोजन नहीं है। जो सदा अतिथियोंको जिमाकर स्वयं पीछे भोजन करता है, उसके अन्नके जितने ग्रास अतिथि ब्राह्मण भोजन करता है, उतने ही हजार गौओंके दानका पुण्य उस दाताको होता है। तथा उसके द्वारा युवावस्थामें जो पाप हुए होते हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार देवराज इन्द्र और बक मुनिमें बहुत देरतक बातचीत तथा उत्तम कथा-वार्ता होती रही। इसके पश्चात् मुनिसे पूछकर इन्द्र अपने भवन स्वर्गलोकको चले गये।

क्षत्रिय राजाओंका महत्त्व—सुहोत्र, शिबि और ययातिकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर पाण्डवोंने मार्कण्डेयजीसे कहा, 'मुनिवर ! आपने ब्राह्मणोंकी महिमा तो सुनायी, अब हम क्षत्रियोंके महत्त्वके विषयमें आपसे सुनना चाहते हैं।'

मार्कण्डेयजीने कहा—अच्छा सुनो, अब मैं क्षत्रियों-का महत्त्व सुनाता हूँ। कुरुवंशी क्षत्रियोंमें एक सुहोत्र नामक राजा हुए थे। एक दिन वे महर्षियोंका सत्संग करने गये। जब वहाँसे लौटे तो रास्तेमें अपने सामनेकी ओरसे उन्होंने उशीनरपुत्र राजा शिबिको रथपर आते देखा। निकट आने-पर उन दोनोंने अवस्थाके अनुसार एक दूसरेका सम्मान किया; परन्तु गुणमें अपनेको बराबर समझकर एकने दूसरेके लिये राह नहीं दी। इतनेहीमें वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उन्होंने पूछा—'यह क्या बात है ? तुम दोनों एक-दूसरेका मार्ग रोककर क्यों खड़े हो ?' वे बोले—'मार्ग अपनेसे बड़ेको दिया जाता है।
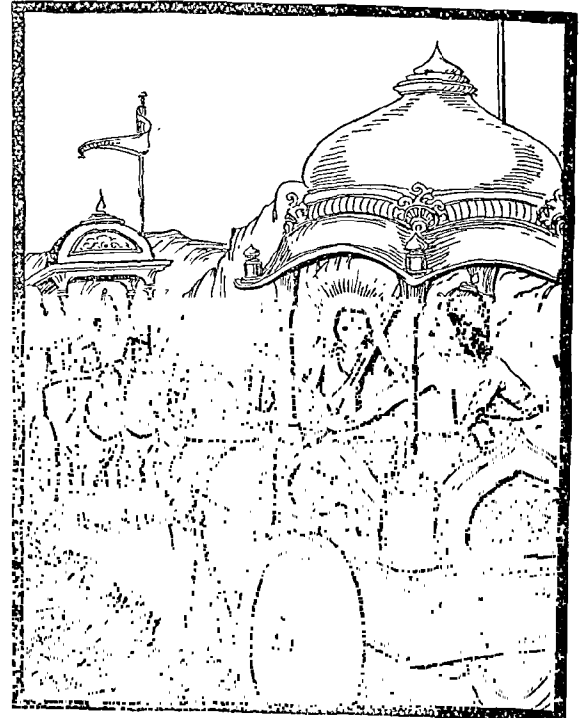
हम दोनों तो समान हैं, अतः कौन किसको मार्ग दे ?'

यह सुनकर नारदजीने तीन श्लोक पढ़े, जिनका सारांश यह है—'कौरव ! अपने साथ कोमलताका बर्ताव करनेवालेके लिये क्रूर मनुष्य भी कोमल बन जाता है। क्रूरता तो वह क्रूरोंके प्रति ही दिखाता है। परन्तु साधु पुरुष दुष्टोंके साथ भी साधुताका ही बर्ताव करता है; फिर वह सज्जनोंके साथ साधुताका बर्ताव कैसे नहीं करेगा ? अपने ऊपर एक बार किये हुए उपकारका बदला मनुष्य भी सौगुना करके चुका सकता है। देवताओंमें ही यह उपकारका भाव होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। इस उशीनरकुमार राजा शिबिका व्यवहार तुमसे अधिक अच्छा है। नीच प्रकृतिवाले मनुष्यको दान देकर वशमें करे, झूठेको सत्यभाषणसे जीते, क्रूरको क्षमासे और दुष्टको अच्छे व्यवहारसे अपने वशमें करे। अतः तुम दोनों ही उदार हो; अब तुममेंसे एक जो अधिक उदार हो, वह मार्ग छोड़ दे।' ऐसा कहकर नारदजी मौन हो गये। यह सुनकर कुरुवंशी राजा सुहोत्र शिबिको अपनी दायीं ओर करके उनकी प्रशंसा करते हुए चले गये। इस प्रकार नारदजीने राजा शिबिका महत्त्व अपने मुखसे कहा है।

अब एक दूसरे क्षत्रिय राजाका महत्त्व सुनो। न[...] पुत्र राजा ययाति जब राजसिंहासनपर विराजमान थे, [...] दिनों एक ब्राह्मण गुरुदक्षिणा देनेके लिये भिक्षा माँग[...] इच्छासे उनके पास आकर बोला—'राजन् ! मैं गु[रु]दक्षिणा देनेके लिये प्रतिज्ञा करके आया हूँ, भिक्षा चा[हता] हूँ। संसारमें अधिकांश मनुष्य माँगनेवालोंसे द्वेष करते [हैं,] अतः तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम मेरी अभीष्ट वस्तु [दे] सकोगे ?'

राजा बोले—मैं दान देकर उसका बखान नहीं कर[ता,] जो वस्तु देने योग्य है, उसको देकर अपना मुख उज्ज्व[ल] करता हूँ। मैं तुम्हें एक हजार लाल रंगकी गौएँ देता [हूँ,] क्योंकि न्याययुक्त याचना करनेवाला ब्राह्मण मुझे बहुत प्रि[य] है। याचना करनेवालेपर मुझे क्रोध नहीं होता और कोई ध[न] दानमें देकर मैं उसके लिये कभी पश्चात्ताप भी नहीं करता।

ऐसा कहकर राजाने ब्राह्मणको एक हजार गौएँ दीं और उन्होंने वह दान स्वीकार किया।

राजा शिबिका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! एक समय
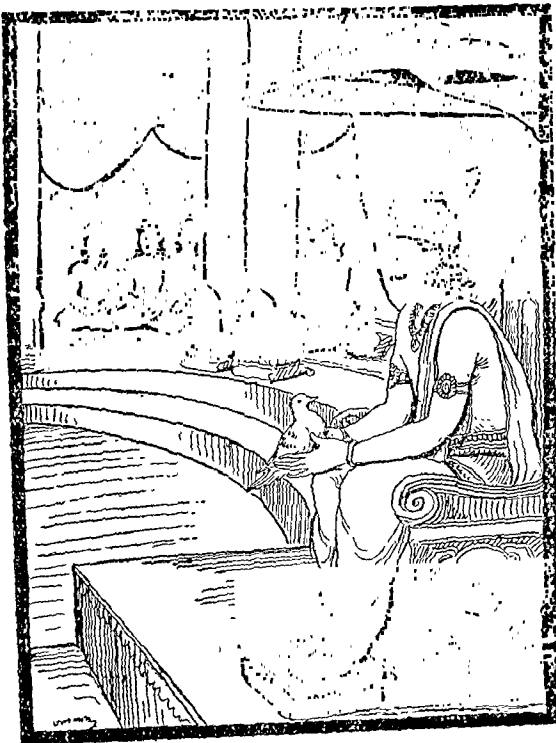
देवताओंने आपसमें सलाह की कि पृथ्वीपर चलकर उशीनरके पुत्र राजा शिबिकी साधुताकी परीक्षा करें। तब अग्नि कबूतरका रूप बनाकर चला और इन्द्रने बाज पक्षी होकर मांसके लिये उसका पीछा किया। राजा शिबि अपने दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए थे, कबूतर उनकी गोदमें जा गिरा। यह देखकर राजाके पुरोहितने कहा—'राजन् ! यह कबूतर बाजके डरसे अपने प्राण बचानेके लिये आपकी शरणमें आया है।'

कबूतरने भी कहा—महाराज ! बाज मेरा पीछा कर रहा है, उससे डरकर प्राणरक्षाके लिये आपकी शरणमें आया हूँ। वास्तवमें मैं कबूतर नहीं, ऋषि हूँ; मैंने एक शरीरसे दूसरा शरीर बदल लिया था। अब प्राणरक्षक होनेके कारण आप ही मेरे प्राण हैं; मैं आपकी शरण हूँ, मुझे बचाइये। मुझे ब्रह्मचारी समझिये; वेदोंका स्वाध्याय करके मैंने अपना शरीर दुर्बल किया है, मैं तपस्वी और जितेन्द्रिय हूँ। आचार्यके प्रतिकूल कभी कोई बात नहीं कहता। मैं सर्वथा निष्पाप और निरपराध हूँ, अतः मुझे बाजके हवाले न करें।

अब बाज बोला—राजन् ! आप इस कबूतरको लेकर मेरे काममें विघ्न न डालें।

राजा कहने लगे—ये बाज और कबूतर जितनी शुद्ध संस्कृत वाणी बोलते हैं, वैसी क्या कभी किसीने पक्षीके मुखसे

शिविका आत्मत्याग

सुनी है ? मैं किस प्रकार इन दोनोंका स्वरूप जानकर उचित न्याय करूँ ? जो मनुष्य अपनी शरणमें आये हुए भयभीत प्राणीको उसके शत्रुके हाथमें दे देता है, उसके देशमें समयपर अच्छी वर्षा नहीं होती, उसके बोये हुए बीज नहीं जमते और वह कभी संकटके समय जब अपनी रक्षा चाहता है तो उसे कोई रक्षक नहीं मिलता। उसकी सन्तान बचपनमें ही मर जाती है, उसके पितरोंको पितृलोकमें रहनेको स्थान नहीं मिलता। वह स्वर्गमें जानेपर वहाँसे नीचे ढकेल दिया जाता है, इन्द्र आदि देवता उसके ऊपर वज्रका प्रहार करते हैं। इसलिये मैं प्राणत्याग कर दूँगा, पर कबूतर नहीं दूँगा। बाज! अब तुम व्यर्थ कष्ट मत उठाओ। कबूतरको तो मैं किसी तरह नहीं दे सकता। इस कबूतरको देनेके सिवा और जो भी तुम्हारा प्रिय कार्य हो, वह बताओ; उसे मैं पूर्ण करूँगा।

बाज बोला—राजन्! अपनी दायीं जाँघसे मांस काटकर इस कबूतरके बराबर तोलो और जितना मांस चढ़े, वही मुझे अर्पण करो। ऐसा करनेपर कबूतरकी रक्षा हो सकती है।

तब राजाने अपनी दायीं जंघासे मांस काटकर उसे तराजूपर रक्खा, किन्तु वह कबूतरके बराबर नहीं हुआ। फिर दूसरी बार रक्खा तो भी कबूतरका ही पलड़ा भारी रहा। इस प्रकार क्रमशः उन्होंने अपने सभी अंगोंका मांस काट-काटकर तराजूपर चढ़ाया, फिर भी कबूतर ही भारी रहा। तब राजा स्वयं ही तराजूपर चढ़ गये। ऐसा करते समय उनके मनमें तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। यह देखकर बाज बोल उठा—'हो गयी कबूतरकी रक्षा!' और वहीं अन्तर्धान हो गया।

अब राजा शिबि कबूतरसे बोले—'कपोत! वह बाज कौन था?' कबूतरने कहा, 'वह बाज साक्षात् इन्द्र थे, और मैं अग्नि हूँ। राजन्! हम दोनों तुम्हारी साधुता देखनेके लिये यहाँ आये थे। तुमने मेरे बदलेमें जो यह अपना मांस तलवारसे काटकर दिया है, इसके घावको मैं अभी अच्छा कर देता हूँ। यहाँकी चमड़ीका रंग सुन्दर और सुनहला हो जायगा तथा इससे बड़ी पवित्र एवं सुन्दर गन्ध निकलती रहेगी। तुम्हारी जंघाके इस चिह्नके पाससे एक यशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा कपोतरोमा।'

यह कहकर अग्निदेव चले गये। राजा शिबिसे कोई कुछ भी माँगता, वे दिये बिना नहीं रहते थे। एक बार राजाके मन्त्रियोंने उनसे पूछा—'महाराज! आप किस इच्छासे ऐसा साहस करते हैं? अदेय वस्तुका भी दान करनेको उद्यत हो जाते हैं। क्या आप यश चाहते हैं?'

राजा बोले—नहीं, मैं यशकी कामनासे अथवा ऐश्वर्यके लिये दान नहीं करता। भोगोंकी अभिलाषासे भी नहीं। धर्मात्मा पुरुषोंने इस मार्गका सेवन किया है, अतः मेरा भी यह कर्तव्य है—ऐसा समझकर ही मैं यह सब कुछ करता हूँ। सत्पुरुष जिस मार्गसे चले हैं, वही उत्तम है—यही सोचकर मेरी बुद्धि उत्तम पथका ही आश्रय लेती है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार महाराज शिबिके महत्त्वको मैं जानता हूँ, इसलिये मैंने तुमसे उसका यथावत् वर्णन किया है।

दानके लिये उत्तम पात्रका विचार और दानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिर पूछते हैं—मुनिवर! मनुष्य किस अवस्थामें दान देनेसे इन्द्रलोकमें जाकर सुख भोगता है? तथा दान आदि शुभ कर्मोंका भोग उसे किस प्रकार प्राप्त होता है?

मार्कण्डेयजी बोले—(१) जो पुत्रहीन हैं, (२) जो धार्मिक जीवन नहीं व्यतीत करते, (३) जो सदा दूसरोंकी ही रसोईमें भोजन किया करते हैं (४) तथा जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाते हैं, देवता और अतिथिको अर्पण नहीं करते—इन चार प्रकारके मनुष्योंका जन्म व्यर्थ है। जो वानप्रस्थ या संन्यास आश्रमसे पुनः गृहस्थ आश्रममें लौट आया हो, उसको दिया हुआ दान तथा अन्यायसे कमाये हुए धनका दान व्यर्थ है। इसी प्रकार पतित मनुष्य, चोर ब्राह्मण, मिथ्यावादी गुरु, पापी, कृतघ्न, ग्रामयाजक, वेदका विक्रय करनेवाले, शूद्रसे यज्ञ करानेवाले, आचारहीन ब्राह्मण, शूद्राके पति एवं स्त्रीसमूहको दिया हुआ दान भी व्यर्थ है। इन दानोंका कोई फल नहीं होता। इसलिये सब अवस्थाओंमें सब प्रकारके दान उत्तम ब्राह्मणोंको ही देने चाहिये।

युधिष्ठिर बोले—हे मुने! ब्राह्मण किस विशेष धर्मका पालन करें, जिससे वे दूसरोंको भी तारें और स्वयं भी तर जायँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्राह्मण जप, मन्त्र, पाठ, होम, स्वाध्याय और वेदाध्ययनके द्वारा वेदमयी नौकाका निर्माण

करते हैं, जिसके सहारे वे दूसरोंको भी तारते हैं और स्वयं भी तर जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करता है, उसपर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं। श्राद्धमें प्रयत्न करके उत्तम ब्राह्मणोंको ही भोजन कराना चाहिये। जिनके शरीरका रंग घृणा उत्पन्न करता हो, जिनके नख गंदे रहते हों, जो कोढ़ी और कपटी हों, पिताकी जीवितावस्थामें जो माताके व्यभिचारसे उत्पन्न हुए हों अथवा जिनका जन्म विधवा माताके गर्भसे हुआ हो और जो पीठपर तरकस बाँधे क्षत्रियवृत्तिसे जीविका चलाते हों—ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें यत्नपूर्वक त्याग दे। क्योंकि उनको जिमानेसे श्राद्ध निन्दित हो जाता है और निन्दित श्राद्ध यजमानको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे अग्नि काष्ठको जला डालती है। किन्तु हे राजन्! अंधे, गूँगे, बहिरे आदि जिनको शास्त्रमें वर्जित बतलाया है, उनको वेदपारङ्गत ब्राह्मणके साथ श्राद्धमें निमन्त्रण दे सकते हैं।

युधिष्ठिर! अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि कैसे व्यक्तिको दान देना चाहिये। जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका विद्वान् हो और अपनेको तथा दाताको तारनेकी शक्ति रखता हो, ऐसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। अतिथियोंको भोजन देनेका भी बहुत बड़ा महत्त्व है। उन्हें भोजन करानेसे अग्निदेव जितने सन्तुष्ट होते हैं, उतना सन्तोष उन्हें हविष्यका हवन करने और फूल एवं चन्दन चढ़ानेसे भी नहीं होता। अतः तुम्हें अतिथियोंको भोजन देते रहनेका सदा ही प्रयत्न करना चाहिये। जो लोग दूरसे आये हुए अतिथिको पैर धोनेके लिये जल, उजालेके लिये दीपक, भोजनके लिये अन्न और रहनेके लिये स्थान देते हैं, उन्हें कभी यमराजके पास नहीं जाना पड़ता। कपिला गौका दान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; अतः अच्छी तरह सजायी हुई कपिला गौ ब्राह्मणको दान करनी चाहिये। दानपात्र ब्राह्मण श्रोत्रिय हो, नित्य अग्निहोत्र करता हो। दरिद्रताके कारण जिन्हें स्त्री और पुत्रोंके तिरस्कार सहने पड़ते हों तथा जिनसे अपना कोई उपकार न होता हो, ऐसे लोगोंको ही गौ दान करनी चाहिये, धनवानोंको नहीं। एक बात और ध्यान रखनेकी है। एक गौ एक ही ब्राह्मणको देनी चाहिये, बहुत-से ब्राह्मणोंको नहीं; क्योंकि एक ही गौ यदि बहुतोंको दी गयी तो वे उसे बेचकर उसकी कीमत बाँट लेंगे। दान की हुई गौ यदि बेची जायगी तो वह दाताकी तीन पीढ़ीतकको हानि पहुँचावेगी। जो लोग कन्धेपर जुआ उठानेमें समर्थ बलवान् बैल ब्राह्मणको दान करते हैं, वे दुःख और क्लेशोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाते हैं। जो विद्वान् ब्राह्मणोंको भूमि दान करते हैं, उन दाताओंके पास सभी मनोवाञ्छित भोग अपने-आप पहुँच जाते हैं। अन्नदानका महत्त्व तो सबसे बढ़कर है। यदि कोई दीन-दुर्बल पथिक थका-माँदा, भूखा-प्यासा, धूलभरे पैरोंसे आकर किसीसे पूछे 'क्या कहीं अन्न मिल सकता है?' और कोई उसे अन्नदाताका पता बता दे तो उस मनुष्यको भी अन्नदानका ही पुण्य मिलता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसलिये युधिष्ठिर! तुम अन्य प्रकारके दानोंकी अपेक्षा अन्नदानपर विशेष ध्यान दिया करो। क्योंकि इस जगत्में अन्नदानके समान अद्भुत पुण्य और किसी दानका नहीं है। जो अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको उत्तम अन्न दान करता है, वह उस पुण्यके प्रभावसे प्रजापतिलोकको प्राप्त होता है। वेदोंमें अन्नको प्रजापति कहा है, प्रजापति संवत्सर माना गया है। संवत्सर यज्ञरूप है और यज्ञमें सबकी स्थिति है। यज्ञसे ही समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अन्न ही सब पदार्थोंमें श्रेष्ठ है। जो लोग अधिक पानीवाले तालाब या पोखरे खुदवाते हैं, बावली और कुएँ बनवाते हैं, दूसरोंके रहनेके लिये धर्मशालाएँ तैयार कराते हैं, अन्नका दान करते और मीठी वाणी बोलते हैं, उन्हें यमराजकी बात भी नहीं सुननी पड़ती।

यमलोकका मार्ग और वहाँ इस लोकमें किये हुए दानका उपयोग

वैशम्पायनजी कहते हैं—यमराजका नाम सुनकर भाइयोंसहित धर्मराज युधिष्ठिरके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने महात्मा मार्कण्डेयजीसे इस प्रकार प्रश्न किया—'मुनिवर! अब यह बताइये कि इस मनुष्यलोकसे यमलोक कितनी दूरीपर है, कैसा है, कितना बड़ा है और क्या उपाय करनेसे मनुष्य उससे बच सकता है।'

मार्कण्डेयजी बोले—धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुमने यह बहुत गूढ़ प्रश्न किया है; यह बड़ा ही पवित्र, धर्मसम्मत तथा ऋषियोंके लिये भी आदरणीय है। सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। इस मनुष्यलोक और यमलोकमें छियासी हजार योजनका अन्तर है। उसके मार्गमें सुनसान आकाशमात्र है, वह देखनेमें बड़ा भयानक और दुर्गम है। वहाँ न वृक्षोंकी छाया है, न पानी है और न कोई ऐसा स्थान ही है, जहाँ रास्तेका थका हुआ जीव क्षणभर भी

हुए हों या नहीं, उसका अपमान नहीं करना चाहिये—जैसे राखसे ढकी हुई अग्निपर कोई पैर नहीं रखता। जहाँ सदाचारी, ज्ञानी और तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मण रहते हों, वही स्थान नगर है। गोशाला हो या जङ्गल—जहाँ कहीं भी बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले ब्राह्मण रहते हों, वह स्थान तीर्थ कहलाता है। पवित्र तीर्थोंमें स्नान, पवित्र वेदमन्त्रों या भगवान्‌के नामोंका कीर्तन एवं सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप—इन कार्योंको विद्वान् पुरुष उत्तम बताते हैं। सज्जन पुरुष सत्सङ्गसे पवित्र हुई सुन्दर वाणीरूप जलसे ही अपनी आत्माको पवित्र मानते हैं। जो मन, वाणी, कर्म और बुद्धिसे कभी पाप नहीं करते, वे ही महात्मा तपस्वी हैं; केवल शरीर सुखाना ही तपस्या नहीं है। जो व्रत-उपवासादि करके मुनिकी वृत्तिसे रहता है किन्तु अपने कुटुम्बीजनोंपर तनिक भी दया नहीं करता, वह कभी निष्पाप नहीं हो सकता। उसकी वह निर्दयता उस तपका नाश करनेवाली है; केवल भोजन त्याग देनेसे तपस्या नहीं होती। जो निरन्तर घरपर रहकर भी पवित्र भावसे रहता है और सब प्राणियोंपर दया करता है, उसे मुनि ही समझना चाहिये; वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

राजन्! शास्त्रोंमें जिनका उल्लेख नहीं है, ऐसे कर्मोंकी अपने मनसे कल्पना करके लोग तपायी हुई शिला आदिपर बैठते हैं। यह सब होता है तपस्याके नामपर पापोंको जलानेके लिये; परन्तु इससे केवल शरीरको पीडा होती है, और कोई लाभ नहीं होता। जिसका हृदय श्रद्धा और भावसे शून्य है, उसके पापकर्मोंको अग्नि भी नहीं जला सकती। दया तथा मन, वाणी और शरीरकी शुद्धिसे ही शुद्ध वैराग्य और मोक्ष प्राप्त होते हैं; केवल फल खाने या हवा पीकर रहनेसे, तथा सिर मुँड़ाने, घर छोड़ने, जटा बढ़ाने, पञ्चाग्नि तपने, जलके भीतर खड़े रहने या मैदानमें जमीनपर शयन करनेसे ही मोक्ष नहीं मिलता। ज्ञान अथवा निष्काम कर्मसे ही जरा-मृत्यु आदि सांसारिक व्याधियोंसे पिण्ड छूटता और उत्तम पदकी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार अग्निमें भूने हुए बीज नहीं उगते, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्निसे सभी अविद्याजनित क्लेशोंके दग्ध हो जानेपर पुनः उनसे आत्माका संयोग नहीं होता।

एक या आधे श्लोकसे भी यदि सम्पूर्ण भूतोंके हृदयदेशमें विराजमान आत्माका ज्ञान हो जाय तो मनुष्यके सम्पूर्ण शास्त्रोंके अध्ययनका प्रयोजन समाप्त हो जाता है। कोई 'तत्' इन दो ही अक्षरोंसे आत्माको जान लेते हैं, कुछ लोग मन्त्र-पदोंसे युक्त सैकड़ों और हजारों उपनिषद्-वाक्योंसे आत्म-तत्त्वको समझते हैं। जैसे भी हो, आत्मतत्त्वका सुदृढ़ बोध ही मोक्ष है। जिसके हृदयमें संशय है, आत्माके प्रति अविश्वास है, उसके लिये न लोक है, न परलोक और न उसे कभी सुख ही मिलता है। ज्ञानवृद्ध पुरुषोंने ऐसा ही कहा है। इसलिये श्रद्धा और विश्वासपूर्वक निश्चयात्मक बोध ही मोक्षका स्वरूप है। यदि तुम एक अविनाशी एवं सर्व-व्यापक आत्माको युक्तियोंसे जानना चाहते हो तो कोरा तर्क-वाद छोड़कर श्रुतियों और स्मृतियोंका आश्रय लो। उनमें आत्माका बोध करानेवाली बहुत उत्तम युक्तियाँ उपलब्ध होंगी। जो शुष्क तर्कका आश्रय लेता है, उसे साधनकी विपरीतताके कारण आत्माकी सिद्धि नहीं होती। अतः आत्माको वेदोंके द्वारा ही जानना चाहिये; क्योंकि आत्मा वेदस्वरूप है, वेद ही उसका शरीर है। वेदसे ही तत्त्वका बोध होता है। आत्मामें ही वेदोंका उपसंहार या लय होता है। आत्मा अपनी उपलब्धिमें स्वयं ही समर्थ नहीं है, उसका अनुभव सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा होता है। अतः मनुष्यको इन्द्रियोंकी निर्मलताके द्वारा विषय-भोगोंको त्याग देना चाहिये। यह इन्द्रियोंके निरोधसे होनेवाला अनशन (उपवास या विषयोंका अग्रहण) दिव्य होता है। तपसे स्वर्ग मिलता है, दानसे भोगोंकी प्राप्ति होती है, तीर्थस्नानसे पाप नष्ट होते हैं; परन्तु मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है—ऐसा समझना चाहिये।

धुन्धुमारकी कथा—उत्तङ्क मुनिकी तपस्या और उन्हें विष्णुका वरदान

तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे पूछा—मुने! हमने सुना है इक्ष्वाकुवंशी राजा कुवलाश्व बड़े प्रतापी थे। ये राजा कुछ समयके बाद 'धुन्धुमार' नामसे विख्यात हुए थे। सो उनके इस नाम-परिवर्तनका क्या कारण है? इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेयजी बोले—राजा धुन्धुमारका धार्मिक उपाख्यान मैं तुम्हें सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें उत्तङ्क नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि हो गये हैं। मरुदेश (मारवाड़) के सुन्दर प्रदेशमें उनका आश्रम था। एक समय महर्षि उत्तङ्कने भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये बहुत वर्षोंतक कठोर तपस्या की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके दर्शनसे मुनि निहाल हो गये और बड़ी विनयके

साथ नाना प्रकारके स्तोत्रपाठ करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

उत्तङ्क बोले—भगवन्! देवता, असुर और मनुष्य आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आपने ही चराचर प्राणियोंको जन्म दिया है। वेदवेत्ता ब्रह्माजी, वेद तथा उसके द्वारा जानने योग्य जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, उन सबकी सृष्टि आपसे ही हुई है। देवदेव! आकाश आपका मस्तक है, सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं, वायु साँस है और अग्नि आपका तेज है। सारी दिशाएँ आपकी भुजाएँ हैं, महासागर उदर है, पर्वत ऊरु हैं और अन्तरिक्ष जंघा है। पृथ्वी आपके चरण और ओषधियाँ रोम हैं। इन्द्र, सोम, अग्नि, वरुण, देवता, असुर, नाग—ये सब आपके सामने नतमस्तक हो नाना प्रकारकी स्तुतियाँ करते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। भुवनेश्वर! आप सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्याप्त हैं। बड़े-बड़े योगी और महर्षि आपकी ही स्तुति किया करते हैं।

उत्तङ्ककी स्तुति सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'उत्तङ्क! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, कोई वर माँगो।'

उत्तङ्क बोले—प्रभो! सारे जगत्‌की सृष्टि करनेवाले दिव्य सनातन पुरुष आप भगवान् नारायणका मुझे दर्शन मिला, यही मेरे लिये सबसे बढ़कर वर है।

विष्णुने कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारा हृदय लोभसे चञ्चल नहीं है, मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति है; इन कारणोंसे मैं तुम-पर विशेष प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर तो तुम्हें अवश्य ही लेना चाहिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार जब भगवान्‌ने वर माँगनेके लिये बारंबार अनुरोध किया, तब उत्तङ्कने हाथ जोड़कर यह वर माँगा—'हे कमललोचन! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना ही चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी बुद्धि सदा शम-दम, सत्यभाषण तथा धर्ममें ही लगी रहे और आपके भजनका अभ्यास कभी छूटने न पावे।'

भगवान्‌ने कहा—मुने! तुमने जो कुछ माँगा है, सब पूर्ण होगा। इसके सिवा तुम्हारे हृदयमें उस योगविद्याका भी प्रकाश होगा, जिससे तुम देवताओं तथा इन तीनों लोकोंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध करोगे। धुन्धु नामवाला एक महान् असुर तीनों लोकोंका विनाश करनेके लिये घोर तपस्या करेगा। उस असुरका वध जिसके हाथसे होनेवाला है, उसका नाम तुम्हें बताता हूँ; सुनो। इक्ष्वाकुवंशमें एक बलवान् और विजयी राजा होगा, उसका नाम होगा—बृहदश्व। उसके 'कुवलाश्व' नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र होगा। वह मेरे योगबलका आश्रय लेकर तुम्हारी आज्ञासे धुन्धुको मार डालेगा; उस समयसे वह इस जगत्‌में 'धुन्धुमार' के नामसे विख्यात होगा।

महर्षि उत्तङ्कसे ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

उत्तङ्क मुनिका राजा बृहदश्वसे धुन्धुको मारनेके लिये अनुरोध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु जब परलोकवासी हो गये तो उनका पुत्र शशाद इस पृथ्वीपर राज्य करने लगा। उसकी राजधानी अयोध्या थी। शशादका पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थका अनेना, अनेनाका पृथु, पृथुका विश्वगश्व, उसका अद्रि, अद्रिका युवनाश्व और उसका पुत्र श्राव हुआ; श्रावके श्रावस्त हुआ, जिसने श्रावस्ती नामकी पुरी बसायी। श्रावस्तके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ, उसका पुत्र कुवलाश्वके नामसे विख्यात हुआ। कुवलाश्वके इक्कीस हजार पुत्र थे। ये सभी विद्याओंमें पारंगत और महान् बलवान् थे। राजा कुवलाश्व भी गुणोंमें अपने पितासे बहुत बढ़-चढ़कर

था। जब वह राज्य सँभालनेके योग्य हो गया तो उसके पिताने उसे राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं तपस्या करनेके लिये वनमें जानेको उद्यत हो गये।

महर्षि उत्तङ्कने जब यह सुना कि बृहदश्व वनमें जानेवाले हैं तो वे उनकी राजधानीमें आये और राजाको रोकते हुए कहने लगे—राजन्! हमलोग आप-

की प्रजा हैं, आपका कर्तव्य है—प्रजाकी रक्षा करना। आप पहले अपने इस प्रधान कर्तव्यका ही पालन कीजिये। आपकी ही कृपासे सारी प्रजा और इस पृथ्वीका उद्वेग दूर होगा। यहाँ रहकर प्रजाकी रक्षा करनेमें तो बड़ा भारी पुण्य दिखायी देता है, वैसा धर्म वनमें जाकर तपस्या करनेमें नहीं दीखता। अतः अभी आपको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। आपके बिना हम निर्विघ्नतापूर्वक तपस्या नहीं कर सकेंगे। मरुदेशमें हमारे आश्रमके निकट ही रेतसे भरा हुआ एक समुद्र है, उसका नाम है उज्जालक सागर। उसकी लंबाई-चौड़ाई अनेकों योजन है। वहाँ एक बड़ा बलवान् दानव रहता है, उसका नाम है—धुन्धु। वह मधु-कैटभका पुत्र है। पृथ्वीके भीतर छिपकर रहा करता है। बालूके भीतर छिपकर रहनेवाला वह महाक्रूर दैत्य वर्षभरमें एक बार साँस लेता है। जब वह साँस छोड़ता है, उस समय पर्वत और वनोंके सहित यह पृथ्वी डोलने लगती है। उसके श्वासकी आँधीसे रेतका इतना ऊँचा बवंडर उठता है, जिससे सूर्य भी ढक जाता है, सात दिनोंतक भूचाल होता रहता है। अग्निकी लपटें, चिनगारियाँ और धूएँ उठते रहते हैं। महाराज! इन सब उत्पातोंके कारण हमारा आश्रममें रहना कठिन हो गया है। अतः हे राजन्! मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये आप उस दैत्यका वध कीजिये।

राजा बृहदश्वने हाथ जोड़कर कहा—ब्रह्मन्! आप जिस उद्देश्यसे यहाँ पधारे हैं, वह निष्फल नहीं होगा। मेरा पुत्र कुवलाश्व इस भूमण्डलमें अद्वितीय वीर है, वह बड़ा धैर्य रखनेवाला और फुर्तीला है। आपका अभीष्ट कार्य वह अवश्य पूर्ण करेगा। इसके बलवान् पुत्र भी अस्त्र-शस्त्र लेकर इस युद्धमें इसका साथ देंगे। आप मुझे छोड़ दीजिये; क्योंकि अब मैंने शस्त्रोंको त्याग दिया है, मैं युद्धसे निवृत्त हो गया हूँ।

उत्तङ्कने कहा—'बहुत अच्छा।' फिर राजर्षि बृहदश्वने उत्तङ्क मुनिकी आज्ञा पाकर उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेके लिये अपने पुत्र कुवलाश्वको आदेश दिया और स्वयं तपोवनमें चले गये।

धुन्धुका वध

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! ऐसा महाबली दैत्य तो मैंने आजतक नहीं सुना। वह दैत्य कौन था? उसका कुछ परिचय दीजिये?

मार्कण्डेयजी बोले—महाराज! धुन्धु मधु-कैटभका पुत्र था। एक समय उसने एक पैरसे खड़े होकर बहुत कालतक तपस्या की। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उससे वर माँगनेको कहा। वह बोला, 'मैं तो यही वर चाहता हूँ कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प—इनमें-से किसीके हाथसे भी मेरी मृत्यु न हो।' ब्रह्माजीने कहा, 'अच्छा, जा; ऐसा ही होगा।' उनकी स्वीकृति पाकर धुन्धुने उनके चरणोंका अपने मस्तकसे स्पर्श किया और वहाँसे चला गया।

तभीसे वह उत्तङ्कके आश्रमके पास अपने श्वाससे आगकी चिनगारियाँ छोड़ता हुआ रेतीमें रहने लगा। राजा बृहदश्वके वन चले जानेके बाद उनका पुत्र कुवलाश्व उत्तङ्क मुनिके साथ सेना और सवारी लेकर वहाँ आ पहुँचा। इक्कीस हजार

तो केवल उसके पुत्रोंकी सेना थी। उत्तङ्ककी अनुमतिसे भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंका कल्याण करनेके लिये राजा कुवलाश्वमें अपना तेज स्थापित कर दिया। कुवलाश्व ज्यों ही युद्धके लिये आगे बढ़ा, आकाशमें उच्च स्वरसे यह आवाज़

गूँज उठी कि 'यह राजा कुवलाश्व स्वयं अवध्य रहकर धुन्धुको मारेगा और धुन्धुमार नामसे विख्यात होगा।' देवताओंने उसके चारों ओर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की, बिना बजाये ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, ठंडी हवा चलने लगी और पृथ्वीकी उड़ती हुई धूल शान्त करनेके लिये इन्द्र धीरे-धीरे वर्षा करने लगा।

भगवान् विष्णुके तेजसे बढ़ा हुआ राजा शीघ्र ही समुद्रके किनारे पहुँचा और अपने पुत्रोंसे चारों ओरकी रेती खुदवाने लगा। सात दिनोंतक खुदाई होनेके बाद महाबलवान् धुन्धु दैत्य दिखायी पड़ा। बालूके भीतर उसका बहुत बड़ा विकराल शरीर छिपा हुआ था, जो प्रकट होनेपर अपने तेजसे देदीप्यमान होने लगा, मानो सूर्य ही प्रकाशमान हो रहे हों। धुन्धु प्रलयकालकी अग्निके समान पश्चिम दिशाको घेरकर सो रहा था। कुवलाश्वके पुत्रोंने उसे सब ओरसे घेर लिया और तीखे बाण, गदा, मूसल, पट्टिश, परिघ और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे उसपर प्रहार करने लगे। उन लोगोंकी मार खाकर वह महाबली दैत्य क्रोधमें भरकर उठा और उनके चलाये हुए तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंको निगल गया। इसके बाद वह मुखसे संवर्तक अग्निके समान आगकी लपटें उगलने लगा और अपने तेजसे उन सब राजकुमारोंको एक क्षणमें ही इस प्रकार भस्म कर दिया, जैसे पूर्वकालमें सगरपुत्रोंको महात्मा कपिलने दग्ध किया था। यह एक अद्भुत-सी बात हो गयी।

जब सभी राजकुमार धुन्धुकी क्रोधाग्निमें स्वाहा हो गये और वह महाकाय दैत्य दूसरे कुम्भकर्णके समान जगकर सावधान हो गया, तब महातेजस्वी राजा कुवलाश्व उसकी ओर बढ़ा। उसके शरीरसे जलकी वर्षा होने लगी, जिसने धुन्धुके मुखसे निकलती हुई आगको पी लिया। इस प्रकार योगी कुवलाश्वने योगबलसे उस आगको बुझा दिया और स्वयं ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके समस्त जगत्‌का भय दूर करनेके लिये उस दैत्यको जलाकर भस्म कर डाला। धुन्धुको मारनेके कारण वह 'धुन्धुमार' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस युद्धमें राजा कुवलाश्वके केवल तीन पुत्र बच गये थे—दृढाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व। इन तीनोंसे ही इक्ष्वाकुवंशकी परम्परा आगेतक चली।

पतिव्रता स्त्री और कौशिक ब्राह्मणका संवाद

धुन्धुमारकी कथा सुननेके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे कहा—भगवन्! अब मैं आपसे पतिव्रता स्त्रियोंके सूक्ष्म धर्म और उनके माहात्म्यकी कथा सुनना चाहता हूँ। माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले बालक और पातिव्रत्यका पालन करनेवाली स्त्रियाँ—ये सबके लिये आदरणीय हैं। स्त्रियाँ सदाचारकी रक्षा करती हुई अपने पतिको देवता मानकर जिस आदरभावसे उनकी सेवा करती हैं, वह कोई आसान काम नहीं है। इसी प्रकार माता-पिताकी सेवाकी भी बहुत बड़ी महिमा है। स्त्रियाँ तो बाल्यकालमें माता-पिताकी और विवाहके पश्चात् पतिदेवकी बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिके साथ सेवा करती हैं; उनका धर्म बड़ा ही कठिन है, उससे कठिन मुझे कोई और धर्म दिखायी नहीं देता। इसलिये मुनिवर! आज आप मुझे पतिव्रताओंके माहात्म्यकी कथा सुनाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! सती स्त्रियाँ पतिकी सेवासे स्वर्गलोकपर विजय पाती हैं तथा माता-पिताकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करनेवाला पुत्र इस संसारमें सुयश और सनातनधर्मका विस्तार कर अन्तमें उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है । इसी प्रकरणको लेकर मैं आगेकी बात कहूँगा । पहले पतिव्रताके महत्त्व और धर्मका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो ।

पूर्वकालमें कौशिक नामका एक ब्राह्मण था, वह बड़ा ही धर्मात्मा और तपस्वी था । उसने अङ्गोंसहित वेद और उपनिषदोंका अध्ययन किया था । एक दिनकी बात है, वह एक वृक्षके नीचे बैठकर वेदपाठ कर रहा था । उसी समय उस वृक्षके ऊपर एक बगुली बैठी हुई थी, उसने ब्राह्मण देवताके ऊपर बीट कर दी । ब्राह्मण क्रोधसे तमतमा उठा और बगुलीका अनिष्ट चिन्तन करते हुए उसकी ओर देखने लगा । बेचारी चिड़िया पेड़से गिर पड़ी और उसके प्राण-पखेरू

उड़ गये । बगुलीको देख ब्राह्मणके हृदयमें दयाका सञ्चार हुआ और उसे अपने इस कुकृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप होने लगा । उसके मुँहसे निकल पड़ा—'ओह ! आज मैंने क्रोधके वशीभूत होकर कैसा अनुचित कार्य कर डाला !'

इस प्रकार बारंबार पछताकर वह ब्राह्मण गाँवमें भिक्षाके लिये गया । उस गाँवमें जो लोग शुद्ध और पवित्र आचरणवाले थे, उन्हींके घरोंपर भिक्षा माँगता हुआ वह एक ऐसे घरपर जा पहुँचा, जहाँ पहले भी कभी भिक्षा प्राप्त कर चुका था । द्वारपर जाकर बोला—'भिक्षा देना, माई !' भीतरसे एक स्त्रीने कहा, 'ठहरो, बाबा ! अभी लाती हूँ !' वह स्त्री अपने घरके जूठे बर्तन साफ कर रही थी । ज्यों ही वह उस कामसे निवृत्त हुई, उसके पति घरपर आ गये । वे बहुत भूखे थे । पतिको आया देख स्त्रीको बाहर खड़े हुए ब्राह्मणकी याद न रही । वह उसकी सेवामें जुट गयी । पानी लाकर उसने पतिके पैर धोये, हाथ-मुँह धुलाया और बैठनेको आसन देकर एक पात्रमें सुन्दर स्वादिष्ट भोजन परोसकर लायी और जीमनेके लिये सामने रख दिया ।

युधिष्ठिर ! वह स्त्री प्रतिदिन पतिको भोजन कराकर उनके उच्छिष्टको प्रसाद समझकर बड़े प्रेमसे भोजन करती थी; पतिको ही अपना देवता मानती थी और स्वामीके विचारके अनुकूल ही आचरण करती थी । वह कभी मनसे भी परपुरुषका चिन्तन नहीं करती थी । अपने हृदयकी समस्त भावनाएँ, सम्पूर्ण प्रेम पतिके चरणोंमें चढ़ाकर वह अनन्यभावसे उन्हींकी सेवामें लगी रहती थी । सदाचारका पालन उसके जीवनका अंग था, उसका शरीर भी शुद्ध था और हृदय भी । वह घरके काम-काजमें कुशल थी, कुटुम्बमें रहनेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुषका हित चाहती थी और पतिके हित-साधनका उसे सदा ही ध्यान रहता । देवताकी पूजा, अतिथिका सत्कार, सेवकोंका भरण-पोषण और सास-ससुरकी सेवा—इनमें वह कभी असावधानी नहीं करती थी । अपने मन और इन्द्रियोंपर उसका पूरा अधिकार था ।

पतिकी सेवा करते-करते उसे भिक्षाके लिये खड़े हुए ब्राह्मणकी याद आयी । पतिकी सेवाका तात्कालिक कार्य पूर्ण हो ही चुका था । वह भिक्षा लेकर बड़े संकोचसे ब्राह्मण-

के निकट गयी। ब्राह्मण जला-भुना खड़ा था, देखते ही बोला—"देवी ! जब तुम्हें देर ही करनी थी तो 'ठहरो बाबा !'
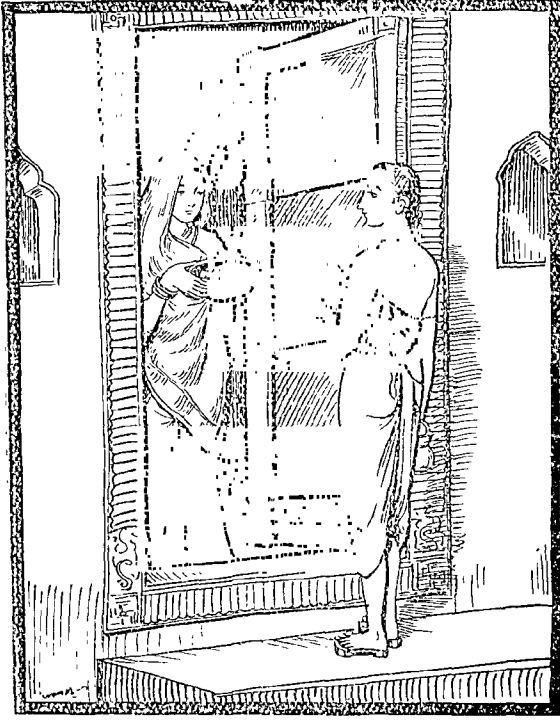
कहकर मुझे रोका क्यों ? मुझे जाने क्यों नहीं दिया ?" ब्राह्मणको क्रोधसे जलते देख उस सतीने बड़ी शान्तिसे कहा—'पण्डित बाबा ! क्षमा करो; मेरे सबसे महान् देवता मेरे पति हैं। वे भूखे-प्यासे, थके-माँदे घरपर आये थे; उन्हें छोड़कर कैसे आती ? उनकी ही सेवा-टहलमें लग गयी।'

ब्राह्मण बोला—क्या कहा ? ब्राह्मण बड़े नहीं हैं, पति ही सबसे बड़ा है ! गृहस्थ-धर्ममें रहते हुए भी तुम ब्राह्मणोंका अपमान कर रही हो। इन्द्र भी ब्राह्मणके सामने सिर झुकाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? क्या तुम ब्राह्मणोंको नहीं जानती ? कभी बड़े-बूढ़ोंसे भी नहीं सुना ? अरी ! ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी हैं, वे चाहें तो इस पृथ्वीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

सती स्त्रीने कहा—तपस्वी बाबा ! क्रोध न कीजिये, मैं वह बगुली चिड़िया नहीं हूँ। मेरी ओर यों लाल-लाल आँखें करके क्यों देखते हैं ? आप कुपित होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे ? मैं ब्राह्मणोंका अपमान नहीं करती। ब्राह्मण तो देवताके समान होते हैं। आपका अपराध मुझसे हुआ है, इसके लिये क्षमा चाहती हूँ। मैं ब्राह्मणोंके तेजसे अपरिचित नहीं हूँ, उनके महान् सौभाग्यको भी जानती हूँ। ब्राह्मणोंके ही क्रोधका फल है कि समुद्रका पानी पीने योग्य नहीं रहा। ये महान् तपस्वी और शुद्धान्तःकरण मुनिजन ही थे, जिनकी क्रोधाग्नि आज भी दण्डकारण्यमें नहीं बुझती। ब्राह्मणोंके ही तिरस्कारसे वातापि राक्षस अगस्त्यके पेटमें जाकर पच गया था। महात्मा ब्राह्मणोंका प्रभाव बहुत बड़ा सुना गया है। महात्माओंका क्रोध और प्रसाद दोनों ही महान् हैं। इस समय मुझसे जो आपकी उपेक्षा हुई है, उसके लिये आप क्षमा करें। मुझे तो पतिकी सेवासे जिस धर्मका पालन होता है, वही अधिक पसंद है। देवताओंमें भी मेरे लिये पति ही सबसे बड़े देवता हैं। मैं तो सामान्यरूपसे इस पातिव्रत्य-धर्मका ही पालन करती हूँ। ब्राह्मणदेवता ! इस पतिसेवाका फल भी आप प्रत्यक्ष देख लीजिये। आपने कुपित होकर बगुली पक्षीको दग्ध किया था, यह बात मुझे मालूम हो गयी। बाबा ! मनुष्योंका एक बहुत बड़ा शत्रु है, जो उनके शरीरमें ही रहता है; उसका नाम है—क्रोध। जो क्रोध और मोहको जीत ले और जो सदा सत्यभाषण करे, गुरुजनोंको सेवासे प्रसन्न रक्खे और किसीके द्वारा मार खाकर भी उसे न मारे, जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र भावसे धर्म और स्वाध्यायमें लगा रहे, जिसने कामको जीत लिया है, वही देवताओंके मतमें ब्राह्मण है। जिस धर्मज्ञ और मनस्वी पुरुषका सम्पूर्ण जगत्के प्रति आत्मभाव है और सभी धर्मोंपर अनुराग है, जो यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन आदि ब्राह्मणोचित कर्मोंको करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार दान भी करता रहता है, ब्रह्मचर्य-अवस्थामें जो सदा वेदोंका अध्ययन करता है, जिसके नित्य स्वाध्यायमें कभी भूल नहीं होती, उसीको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। ब्राह्मणोंके लिये जो कल्याणकारी धर्म है, उसीका उनके समक्ष वर्णन करना उचित है। इसीलिये मैं आपके सामने यह बात कह रही हूँ। ब्राह्मण सत्यवादी होते हैं, उनका मन कभी असत्य-में नहीं लगता। ब्राह्मणके लिये स्वाध्याय, दम, आर्जव (सरल भाव) और सत्यभाषण—यह परम धर्म बतलाया गया है। यद्यपि धर्मका स्वरूप समझनेमें कुछ कठिन है, तथापि वह सत्यमें प्रतिष्ठित है। वृद्ध पुरुष कहते हैं—धर्मके विषयमें वेद ही प्रमाण है, वेदसे ही धर्मका ज्ञान होता है। तथापि धर्मका स्वरूप सूक्ष्म ही देखा जाता है। केवल वेद पढ़नेसे उसका यथार्थ रूप प्रकट हो ही जायगा—ऐसा निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। मेरा तो यह विचार है कि अभी आपको

धर्मका यथार्थ तत्त्व ज्ञात नहीं हुआ है। ब्राह्मणदेव! यदि 'परम धर्म क्या है?' यह आप जानना चाहते हैं तो मिथिलापुरीमें जाकर माता-पिताके भक्त, सत्यवादी और जितेन्द्रिय धर्मव्याधसे पूछिये। वह आपको धर्मका तत्त्व समझा देगा। भगवान् आपका मङ्गल करें; अब आपकी जहाँ इच्छा हो, वहाँ पधारें। यदि मेरे मुखसे कोई अनुचित बात निकल गयी हो तो क्षमा करें, क्योंकि स्त्रियोंपर सभी दया करते हैं।

ब्राह्मण बोला—देवी! तुम्हारा कल्याण हो; मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा क्रोध अब दूर हो चुका है। तुमने मुझे जो उपालम्भ दिया है, यह मेरे लिये चेतावनी ही है। इससे मेरा बड़ा कल्याण होनेवाला है। तुम्हारा भला हो, अब मैं मिथिला जाऊँगा और अपना कार्य सिद्ध करूँगा।

कौशिक ब्राह्मणका मिथिलामें जाकर धर्मव्याधसे उपदेश लेना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—उस पतिव्रताकी बातें सुनकर कौशिक ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने क्रोधका स्मरण करके वह अपराधीकी भाँति अपनेको धिक्कारने लगा। फिर धर्मकी सूक्ष्म गतिपर विचार कर उसने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि 'मुझे उस सतीके कहनेपर श्रद्धा और विश्वास करना चाहिये, अतः मैं अवश्य ही मिथिला जाऊँगा और उस धर्मात्मा व्याधसे मिलकर धर्मसम्बन्धी प्रश्न करूँगा।'

इस प्रकार विचार कर वह कौतूहलवश मिथिलापुरीको चल दिया। रास्तेमें उसे अनेकों जंगल, गाँव और नगर पार करने पड़े। जाते-जाते वह राजा जनकसे सुरक्षित मिथिलापुरीमें पहुँच गया। उस नगरकी शोभा बड़ी सुन्दर थी, उसमें धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंका निवास था और अनेकों स्थानोंपर यज्ञ तथा धर्मसम्बन्धी महान् उत्सव हो रहे थे।
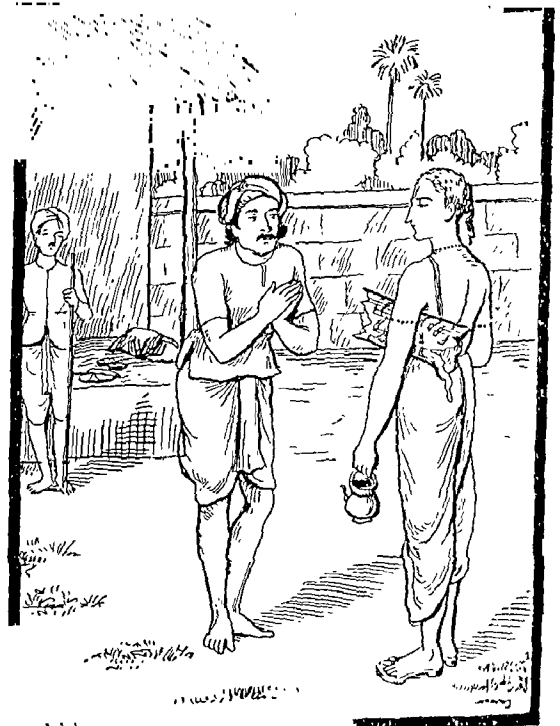
कौशिक ब्राह्मण उस नगरमें पहुँचकर सब ओर घूमने और धर्मव्याधका पता लगाने लगा। एक स्थानपर जाकर उसने पूछा तो ब्राह्मणोंने उसे उसका स्थान बता दिया। वहाँ जाकर देखा कि धर्मव्याध कसाईखानेमें बैठकर मांस बेच रहा है। ब्राह्मण एकान्तमें जाकर बैठ गया। व्याधको यह मालूम हो गया कि कोई ब्राह्मण मुझसे मिलनेके लये आये हैं, अतः वह शीघ्र ब्राह्मणके समीप आया और बोला—'भगवन्! आपके चरणोंमें प्रणाम है। मैं आपका स्वागत करता हूँ। मैं ही वह व्याध हूँ, जिसे ढूँढ़ते हुए आपने यहाँतक आनेका कष्ट किया है। आपका भला हो। आज्ञा दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ? यह तो मैं जानता हूँ कि आप कैसे यहाँ पधारे हैं। उस पतिव्रता स्त्रीने ही आपको मिथिलामें भेजा है।'

व्याधकी बात सुनकर ब्राह्मण बड़े विस्मयमें पड़ा और मन-ही-मन सोचने लगा—यह दूसरा आश्चर्य देखनेको मिला। व्याधने कहा, 'यह स्थान आपके योग्य नहीं है; यदि स्वीकार करें, तो हम दोनों घरपर चलें।'

ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा, 'ठीक है, ऐसा ही करो।' फिर आगे-आगे ब्राह्मण चला और पीछे-पीछे व्याध। घरपर पहुँचकर धर्मव्याधने ब्राह्मणदेवताके पैर धोकर बैठनेको आसन दिया। उसपर बैठकर उसने व्याधसे कहा, 'हे तात! यह मांस बेचनेका काम तुम्हारे योग्य नहीं है। मुझे तो तुम्हारे इस घोर कर्मसे बड़ा क्लेश हो रहा है।'

व्याध बोला—विप्रवर! मैंने यह काम अपनी इच्छासे नहीं उठाया है। यह धंधा मेरे कुलमें दादों-परदादोंके समयसे चला आ रहा है। स्वयं मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करता, जो धर्मके विपरीत हो। सावधानीके साथ बूढ़े माँ-बापकी सेवा करता हूँ। सत्य बोलता हूँ। किसीकी निन्दा नहीं करता। यथाशक्ति दान देता हूँ और देवता, अतिथि तथा सेवकोंको भोजन देकर जो बचता है, उसीसे अपनी जीविका चलाता हूँ।

शूद्रका कर्तव्य है—सेवा; वैश्यका कर्म है खेती करना और युद्ध करना क्षत्रियोंका कर्तव्य बताया गया है। ब्रह्मचर्यका पालन, तपस्या, वेदाध्ययन तथा सत्यभाषण—ये ब्राह्मणके सदा ही पालन करनेयोग्य धर्म हैं। राजाका यह कर्तव्य है कि वह अपने-अपने धर्मोंके पालनमें लगी हुई प्रजाका धर्मपूर्वक शासन करे तथा जो लोग धर्मसे गिर गये हों, उन्हें पुनः धर्मपालनमें लगावे। ब्राह्मण! यहाँ राजा जनकके राज्यमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो धर्मके विरुद्ध आचरण करे। चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करते हैं। ये राजा जनक दुराचारीको—धर्मके विरुद्ध चलनेवालेको, वह अपना पुत्र ही क्यों न हो, कठोर दण्ड देते हैं। [अतः आप मुझमें या और किसी मिथिलावासीमें अधर्मकी आशङ्का न करें।]

मैं स्वयं किसी जीवकी हिंसा नहीं करता। दूसरोंके मारे हुए सूअर और भैंसोंका मांस बेचता हूँ। फिर भी मैं स्वयं मांस कभी नहीं खाता। ऋतुकाल प्राप्त होनेपर ही स्त्री-संसर्ग करता हूँ। दिनमें सदा ही उपवास और रात्रिमें भोजन करता हूँ। कुछ लोग मेरी प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग निन्दा; परन्तु मैं उन सबको सद्व्यवहारसे प्रसन्न रखता हूँ।

द्वन्द्वोंको सहन करना, धर्ममें दृढ़ रहना, सब प्राणियोंका योग्यताके अनुसार सम्मान करना—ये मानवोचित गुण मनुष्यमें त्यागके बिना नहीं आते। व्यर्थका विवाद छोड़कर बिना कहे दूसरोंका भला करना चाहिये। किसी कामनासे, क्रोधसे या द्वेषवश धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होनेपर हर्षसे फूल न उठे, अपने मनके विपरीत कोई बात हो जाय तो दुःख न माने; आर्थिक सङ्कट आ पड़नेपर घबराये नहीं और किसी भी अवस्थामें अपना धर्म न छोड़े। यदि एक बार भूलसे धर्मके विपरीत कोई काम हो जाय, तो पुनः दुबारा वह काम न करे। जो विचार करनेपर अपने और दूसरोंके लिये कल्याणकारी प्रतीत हो, उसी काममें अपनेको लगाना चाहिये। बुराई करनेवालेके प्रति बदलेमें भी बुराई न करे, अपनी साधुता कभी न छोड़े। जो दूसरोंकी बुराई करना चाहता है, वह पापी अपने-आप नष्ट हो जाता है। जो पवित्र भावसे रहनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंके कर्मको अधर्म बताकर उनकी हँसी उड़ाते हैं, वे श्रद्धाहीन मनुष्य नाशको प्राप्त होते हैं। पापी मनुष्य धौंकनीके समान व्यर्थ फूले रहते हैं, वास्तवमें उनमें पुरुषार्थ बिल्कुल नहीं होता।

जो मनुष्य पापकर्म बन जानेपर सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता है, वह उस पापसे छूट जाता है; तथा 'फिर ऐसा कर्म कभी नहीं करूँगा' ऐसा दृढ़ संकल्प कर लेनेपर वह भविष्यमें होनेवाले दूसरे पापसे भी बच जाता है। लोभ ही पापका घर है, लोभी मनुष्य ही पाप करनेका विचार करते हैं। पापी पुरुष ऊपरसे धर्मका जाल फैलाये रहते हैं। जैसे तिनकोंसे ढका हुआ कुआँ हो, वैसे ही इनके धर्मकी आड़में पाप रहता है। इनमें इन्द्रियसंयम, बाहरी पवित्रता और धर्मसम्बन्धी बातचीत—ये सब तो होते हैं, किन्तु धर्मात्मा पुरुषोंका-सा शिष्टाचार नहीं होता।

शिष्टाचारका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—धर्मव्याधका उपर्युक्त उपदेश सुनकर कौशिक ब्राह्मणने उससे पूछा, 'नरश्रेष्ठ! मुझे शिष्ट पुरुषोंके आचारका ज्ञान कैसे हो? तुम्हीं मुझसे शिष्टोंके व्यवहारका यथार्थ रीतिसे वर्णन करो।'

व्याध बोला—ब्राह्मण! यज्ञ, तप, दान, वेदोंका स्वाध्याय और सत्यभाषण—ये पाँच बातें शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारमें सदा रहती हैं। जो काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और उद्दण्डता—इन दुर्गुणोंको जीत लेते हैं, कभी इनके वशमें नहीं होते, वे ही शिष्ट (उत्तम) कहलाते हैं और उनका ही शिष्ट पुरुष आदर करते हैं। वे सदा ही यज्ञ और स्वाध्याय-

में लगे रहते हैं, कभी मनमाना आचरण नहीं करते। सदाचारका निरन्तर पालन करना—शिष्ट पुरुषोंका दूसरा लक्षण है। शिष्टाचारी पुरुषोंमें गुरुकी सेवा, क्रोधका अभाव, सत्यभाषण और दान—ये चार सद्गुण अवश्य होते हैं। वेदका सार है सत्य, सत्यका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका सार है त्याग। यह त्याग शिष्ट पुरुषोंमें सदा विद्यमान रहता है। जो शिष्ट हैं, वे सदा ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मके मार्गपर ही चलते हैं। गुरुकी आज्ञाका पालन करते रहते हैं।

इसलिये हे प्यारे! तुम धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले नास्तिक, पापी और निर्दयी पुरुषोंका सङ्ग छोड़ दो। सदा धार्मिक पुरुषोंकी सेवामें रहो। यह शरीर एक नदी है, पाँच इन्द्रियाँ इसमें जल हैं, काम और लोभरूपी मगर इसके भीतर भरे पड़े हैं। जन्म-मरणके दुर्गम प्रदेशमें यह नदी बह रही है। तुम धैर्यकी नावपर बैठो और इसके दुर्गम स्थानों—जन्मादि क्लेशोंको पार कर जाओ। जैसे कोई भी रंग सफेद कपड़ेपर ही अच्छी तरह खिलता है, उसी प्रकार शिष्टाचारका पालन करनेवाले पुरुषमें ही क्रमशः सञ्चित किया हुआ कर्म और ज्ञानरूप महान् धर्म भलीभाँति प्रकाशित होता है। अहिंसा और सत्य—इनसे ही सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण होता है। अहिंसा सबसे महान् धर्म है, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा है सत्यमें। सत्यके आधारपर ही श्रेष्ठ पुरुषोंके सभी कार्य आरम्भ होते हैं। इसलिये सत्य ही गौरवकी वस्तु है। न्याययुक्त कर्मोंका आरम्भ धर्म कहा गया है। इसके विपरीत जो अनाचार है, उसे ही शिष्ट पुरुष अधर्म बताते हैं। जो क्रोध और निन्दा नहीं करते, जिनमें अहङ्कार और ईर्ष्याका भाव नहीं है, जो मनपर काबू रखनेवाले और सरल स्वभावके पुरुष हैं, उन्हें शिष्टाचारी कहते हैं। उनमें सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है; जिनका पालन दूसरोंको कठिन प्रतीत होता है, ऐसे सदाचारोंका भी वे सुगमतापूर्वक पालन करते हैं; अपने सत्कर्मोंके कारण ही उनका सर्वत्र आदर होता है। उनके हाथसे कभी हिंसा आदि घोर कर्म नहीं होते। सदाचार पुराने जमानेसे चला आ रहा है; यह सनातन धर्म है, इसको कोई मिटा नहीं सकता। सबसे प्रधान धर्म तो वह है, जिसका वेद प्रतिपादन करते हैं; दूसरा वह है, जिसका वर्णन धर्मशास्त्रोंमें हुआ है। तीसरा धर्म है शिष्ट (संत) पुरुषोंका आचरण। इस प्रकार ये धर्मके तीन लक्षण हैं। विद्याओंमें पारङ्गत होना, तीर्थोंमें स्नान करना तथा क्षमा, सत्य, कोमलता और पवित्रता आदि सद्गुणोंका सञ्चय शिष्ट पुरुषोंके ही आचारमें देखा जाता है। जो सबपर दया करते हैं, किसीका जी नहीं दुखाते, कभी कठोर वचन नहीं बोलते, वे ही संत या शिष्ट पुरुष हैं। जिन्हें शुभाशुभ कर्मोंके परिणामका ज्ञान है, जो न्यायप्रिय, सद्गुणी, सम्पूर्ण जगत्के हितैषी और सदा सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, वे सज्जन पुरुष ही शिष्ट हैं। उनका दान करनेका स्वभाव होता है। वे किसी भी वस्तुको पहले और सबको बाँटकर पीछे स्वीकार करते हैं तथा दीन-दुखियोंपर सदा उनकी कृपा रहती है। स्त्री और सेवकोंको कष्ट न हो, इसके लिये भी वे सदा सावधान रहते हैं और उन्हें अपनी शक्तिसे अधिक धन आदि देते रहते हैं। वे सर्वदा सत्पुरुषोंका सङ्ग करते हैं; संसारमें जीवननिर्वाह कैसे हो, धर्मकी रक्षा और आत्माका कल्याण किस प्रकार हो—इन सब बातोंपर उनकी दृष्टि रहती है। अहिंसा, सत्य, क्रूरताका अभाव, कोमलता, द्रोह और अहङ्कारका त्याग, लज्जा, क्षमा, शम, दम, बुद्धि, धैर्य, जीवदया, कामना एवं द्वेषका अभाव—ये सब शिष्ट पुरुषोंके गुण हैं। इनमें भी प्रधानता तीनकी है—किसीसे द्रोह न करे, दान करता रहे और सत्य बोले। शान्ति, सन्तोष और मीठे वचन—ये भी शिष्ट पुरुषोंके गुण हैं। इस प्रकार शिष्टोंके आचार-व्यवहारका पालन करनेवाले मनुष्य महान् भयसे मुक्त हो जाते हैं। हे ब्राह्मण! इस प्रकार जैसा मैंने सुना और जाना है, उसके अनुसार शिष्टोंके आचारका तुमसे वर्णन किया है।

धर्मकी सूक्ष्म गति और फलभोगमें जीवकी परतन्त्रता

मार्कण्डेयजी कहते हैं—धर्मव्याधने कौशिक ब्राह्मणसे कहा—"वृद्ध पुरुषोंका कहना है कि धर्मके विषयमें केवल वेद प्रमाण है। यह बात बिल्कुल ठीक है; तो भी धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है। उसके अनेकों भेद, अनेकों शाखाएँ हैं। वेदमें सत्यको धर्म और असत्यको अधर्म बताया गया है; परन्तु यदि किसीके प्राणोंका सङ्कट उपस्थित हो और वहाँ असत्यभाषणसे उसके प्राण बच जाते हों तो उस अवसरपर असत्य बोलना धर्म हो जाता है। वहाँ असत्यसे ही सत्यका काम निकलता है। ऐसे समयमें सत्य बोलनेसे असत्यका ही फल होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिससे परिणाममें प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, वह ऊपरसे असत्य दीखनेपर भी वास्तवमें सत्य है। इसके विपरीत जिससे किसीका अहित होता

हो, दूसरोंके प्राण जाते हों, वह देखनेमें सत्य होनेपर भी वास्तवमें असत्य एवं अधर्म है। इस प्रकार विचार करके देखो, तो धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म दिखायी देती है। मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। यदि उसे बुरे कर्मोंके फलस्वरूप प्रतिकूल दशा प्राप्त होती है; दुःख आ पड़ते हैं, तो वह देवताओंकी निन्दा करता है, ईश्वरको कोसता है; परन्तु अज्ञानवश अपने कर्मोंके परिणामपर उसका ध्यान नहीं जाता। मूर्ख, कपटी और चञ्चल चित्तवाला मनुष्य सदा ही सुख-दुःखके चक्करमें पड़ा रहता है। उसकी बुद्धि, सुन्दर शिक्षा और पुरुषार्थ–कोई भी उसे उस चक्करसे बचा नहीं सकते। यदि पुरुषार्थका फल पराधीन न होता तो जिसकी जो इच्छा होती, उसे ही प्राप्त कर लेता। परन्तु देखा यह जा रहा है कि बड़े-बड़े संयमी, कार्यकुशल और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपना काम करते-करते थक जाते हैं; तो भी उन्हें इच्छानुसार फल नहीं मिलता। तथा दूसरा मनुष्य, जो जीवोंकी हिंसा करता है और सदा लोगोंको ठगता ही रहता है, मौजसे जिंदगी बिता रहा है। कोई बिना उद्योगके ही अपार सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है और किसीको दिनभर काम करनेपर मज़दूरी भी नसीब नहीं होती। कितने ही दीन मनुष्य पुत्रके लिये तपस्या करते, देवताओंको पूजते हैं; किन्तु उनके बालक पैदा होकर कुलमें कलङ्क लगानेवाले निकल जाते हैं। और बहुत-से ऐसे हैं, जो अपने पिताके कमाये हुए धन-धान्य तथा प्रचुर भोग-विलासके साधनोंके साथ जन्म लेते हैं और लौकिक मङ्गलाचारमें ही इनका जन्म होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्योंको जो रोग होते हैं, वे उनके कर्मोंके ही फल हैं; जैसे बहेलिये छोटे मृगोंको कष्ट देते हैं, उसी प्रकार वे रोग और व्याधियाँ जीवोंको पीड़ा देती रहती हैं। [भोग पूरा होनेपर] ओषधोंका संग्रह रखनेवाले चिकित्साकुशल वैद्य उन रोगोंका उसी प्रकार निवारण कर देते हैं, जैसे वधिक मृगोंको भगा देते हैं। विप्रवर ! यह तो तुम भी देखते हो कि जिनके पास भोजनका भण्डार भरा पड़ा है, वे प्रायः संग्रहणीसे कष्ट पा रहे हैं, उसे खा नहीं सकते। दूसरी ओर, जिनकी भुजाओंमें बल है—जो स्वस्थ और शक्तिशाली हैं, वे अन्नके अभावमें 'त्राहि' 'त्राहि' कर रहे हैं; बड़ी कठिनतासे उनके पेटमें कुछ जा पाता है। इस प्रकार यह संसार असहाय है और मोह-शोकमें डूबा हुआ है। कर्मोंके अत्यन्त प्रबल प्रवाहमें पड़कर निरन्तर उसकी आधि-व्याधिरूपी प्रचण्ड तरङ्गोंके थपेड़े सह रहा है। यदि जीव फल भोगनेमें स्वतन्त्र होता, तो न कोई मरता और न बूढ़ा होता। सभी मनचाही कामनाओंको प्राप्त कर लेते, अप्रियकी प्राप्ति तो किसीको होती ही नहीं। देखा जा रहा है कि जगत्‌में सभी लोग सबसे ऊँचा होना चाहते हैं और इसके लिये यथाशक्ति प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु वैसा होता नहीं। बहुत-से मनुष्य एक ही नक्षत्र और लग्नमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु पृथक्-पृथक कर्मोंका संग्रह होनेके कारण फलकी प्राप्तिमें महान् अन्तर हो जाता है। कहाँतक कहा जाय, नित्य अपने उपयोगमें आनेवाली वस्तुपर भी किसीका अधिकार नहीं है। श्रुतिके अनुसार यह जीवात्मा सनातन है और सम्पूर्ण प्राणियोंका शरीर नाशवान् है। शरीरपर आघात करनेसे शरीरका तो नाश हो जाता है, किन्तु अविनाशी जीव नहीं मरता; वह कर्मबन्धनमें बँधा हुआ फिर दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।''

जीवात्माकी नित्यता और पुण्य-पापकर्मोंके शुभाशुभ परिणाम

कौशिक ब्राह्मणने प्रश्न किया—हे कर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! जीव सनातन कैसे है, इस विषयको मैं ठीक-ठीक समझना चाहता हूँ।

धर्मव्याधने कहा—देहका नाश होनेपर जीवका नाश नहीं होता। मूर्ख मनुष्य जो कहते हैं कि जीव मरता है, सो उनका यह कथन मिथ्या है। जीव तो इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें चला जाता है। शरीरके पाँचों तत्त्वोंका पृथक-पृथक् पाँच भूतोंमें मिल जाना ही उसका नाश कहलाता है। इस जगत्‌में मनुष्यके किये हुए कर्मोंको दूसरा कोई नहीं भोगता; उसने जो कुछ कर्म किया है, उसे वह स्वयं ही भोगेगा। किये हुए कर्मका कभी नाश नहीं होता। पवित्रात्मा मनुष्य पुण्यकर्मोंका आचरण करते हैं और नीच पुरुष पापकर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे कर्म मनुष्यका अनुसरण करते हैं और उनसे प्रभावित होकर वह दूसरा जन्म लेता है।

ब्राह्मण बोला—जीव दूसरी योनिमें कैसे जन्म लेता है ? पाप और पुण्यसे उसका सम्बन्ध किस प्रकार होता है ? और पुण्यमयी तथा पापमयी योनियोंकी प्राप्ति उसे किस तरह होती है ?

धर्मव्याधने कहा—जीव कर्मबीजोंका संग्रह करके जिस प्रकार शुभकर्मोंके अनुसार उत्तम योनियोंमें और पाप-

कर्मोंके अनुसार अधम योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है, उसका मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। केवल शुभ कर्मोंका संयोग होनेसे जीवको देवत्वकी प्राप्ति होती है, शुभ और अशुभ दोनोंका मिश्रण होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। मोहमें डालनेवाले तामस कर्मोंके आचरणसे पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जाना पड़ता है और पापी मनुष्य नरकमें पड़ता है। वह जन्म, मरण और वृद्धावस्थाके दुःखोंसे सदा पीड़ित होता रहता है। अपने ही पापोंके कारण उसे बारंबार संसारके क्लेश भोगने पड़ते हैं। कर्म-बन्धनमें बँधे हुए जीव हजारों प्रकारकी तिर्यग्योनियों और नरकोंमें चक्कर लगाया करते हैं। मृत्युके पश्चात् पापकर्मोंसे दुःख प्राप्त होता है और उस दुःखका भोग करनेके लिये ही वह जीव नीच जातिमें जन्म लेता है। वहाँ फिर नये-नये बहुत-से पापकर्म कर बैठता है, जिनके कारण कुपथ्य खा लेनेवाले रोगीकी तरह उसे पुनः नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार यद्यपि वह निरन्तर दुःख उठाता रहता है, तथापि अपनेको दुखी नहीं मानता, दुःखको ही सुख समझने लगता है। जबतक बन्धनमें डालनेवाले कर्मोंका भोग पूरा नहीं होता और नये-नये कर्म बनते रहते हैं, तबतक अनेकों कष्टोंको सहन करता हुआ वह चक्रकी तरह इस संसारमें चक्कर लगाता रहता है।

जब बन्धनकारक कर्मोंके भोग पूर्ण हो जाते हैं और सत्कर्मोंके द्वारा उसमें शुद्धि भी आ जाती है, तब वह तप और योगका आरम्भ करता है। अतः पुण्यकर्मोंके फल-स्वरूप उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, जहाँ जाकर वह शोकमें नहीं पड़ता। पाप करनेवाले मनुष्यको पापकी आदत हो जाती है, फिर उसके पापका अन्त नहीं होता। इसलिये पुण्य करनेके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये, पापका तो त्याग ही उचित है। जो संस्कारसम्पन्न, जितेन्द्रिय, पवित्र तथा मनपर काबू रखनेवाला है, उस बुद्धिमान् पुरुषको दोनों ही लोकोंमें सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह सत्पुरुषोंके धर्मका पालन करे और शिष्टोंके ही समान बर्ताव करे। संसारमें जिससे किसीको कष्ट न पहुँचे, ऐसी वृत्तिसे जीविका चलावे। अपने धर्मके अनुसार ही कर्म करे, जिससे कर्मोंका संकर (मिश्रण) न होने पावे। बुद्धि-मान् पुरुष धर्मसे ही आनन्द मानता है, धर्मका ही आश्रय ग्रहण करता है और धर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा धर्मका ही मूल सींचता है। इस प्रकार वह धर्मात्मा होता है, उसका चित्त स्वच्छ एवं प्रसन्न हो जाता है। तथा मित्रजनोंसे सन्तुष्ट होकर वह इस लोक और परलोकमें भी आनन्दित होता है। धर्मात्मा पुरुष शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—सभी प्रकारके विषय-सुख तथा प्रभुत्व प्राप्त करता है। यह स्थिति उसके धर्मका ही फल माना जाता है। धर्मके फलरूपसे सांसारिक सुखोंको पाकर जिसे तृप्ति या सन्तोष नहीं होता, वह ज्ञानदृष्टिके कारण वैराग्यको प्राप्त होता है। बुद्धिके नेत्रोंसे देखनेवाला मनुष्य राग-द्वेष आदि दोषोंसे युक्त नहीं होता। वह विरक्त तो पूर्ण हो जाता है, पर धर्मका परित्याग नहीं करता। सम्पूर्ण जगत्को नाशवान् समझकर वह सबको ही त्यागनेका प्रयत्न करता है, तत्पश्चात् प्रारब्धके भरोसे न बैठ-कर वह उचित उपायसे मुक्तिके लिये उद्योग करता है। इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त होकर वह पापकर्मोंका परित्याग करता है, फिर धार्मिक होकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जीवके कल्याणका साधन है तप; और तपका मूल है शम और दम—मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करना। उस तपके द्वारा मनुष्य अपनी सभी मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त करता है। इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और शम-दम—इनके द्वारा मनुष्य परमपद (मोक्ष) को भी प्राप्त कर लेता है।

इन्द्रियोंके असंयमसे हानि और संयमसे लाभ

ब्राह्मणने प्रश्न किया—धर्मात्मन्! इन्द्रियाँ कौन-कौन हैं? उनका निग्रह किस प्रकार करना चाहिये? निग्रहका फल क्या है? और उस फलकी प्राप्ति किस प्रकार होती है?

धर्मव्याध बोला—इन्द्रियोंद्वारा किसी-किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सबसे पहले मनुष्योंका मन प्रवृत्त होता है। उसको जान लेनेपर मनका उसके प्रति राग या द्वेष हो जाता है। जिसमें राग होता है, उसके लिये मनुष्य प्रयत्न करता है, उसे पानेके लिये फिर बड़े-बड़े कार्योंका आरम्भ करता है। और प्राप्त होनेपर अपने अभीष्ट विषयों-का बारंबार सेवन करता रहता है। अधिक सेवनसे उसमें राग उत्पन्न होता है, उसके निमित्तसे दूसरोंके साथ द्वेष हो जाता है; फिर लोभ और मोह बढ़ते हैं। इस प्रकार लोभसे आक्रान्त और राग-द्वेषसे पीडित मनुष्यकी बुद्धि धर्ममें नहीं लगती। अगर वह धर्म करता भी है तो कोरा बहाना मात्र होता है, उसकी ओटमें स्वार्थ छिपा रहता है। व्याजसे धर्मा-चरण करनेवाला मनुष्य वास्तवमें अर्थ चाहता है और

धर्मके व्याजसे जब अर्थकी सिद्धि होने लगती है, तो वह उसीमें रम जाता है; फिर उस धनसे उसके हृदयमें पाप करनेकी इच्छा जाग्रत् होती है। जब उसके मित्र और विद्वान् पुरुष उसे उस कर्मसे रोकते हैं, तो उसके समर्थनमें वह अशास्त्रीय उत्तर देते हुए भी उसे वेदप्रतिपादित बताता है। रागरूपी दोषके कारण उसके द्वारा तीन प्रकारके अधर्म होने लगते हैं—(१) वह मनसे पापका चिन्तन करता है, (२) वाणीसे पापकी ही बात बोलता है और (३) क्रियाद्वारा भी पापका ही आचरण करता है। अधर्ममें लग जानेपर उसके अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं। अपने-जैसे स्वभाववाले पापियोंसे उसकी मित्रता बढ़ती है। उस पापसे इस लोकमें तो दुःख होता ही है, परलोकमें भी उसे बड़ी दुर्गति भोगनी पड़ती है। इस प्रकार मनुष्य कैसे पापात्मा होता है, यह बात बतायी गयी।

अब धर्मकी प्राप्ति कैसे होती है, इसको सुनो। किसमें सुख है और किसमें दुःख—इसके विवेचनमें जो कुशल है, वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे विषयसम्बन्धी दोषोंको पहले ही समझ लेता है। इससे वह साधु-महात्माओंका संग करने लगता है। साधुसंगसे उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हो जाती है।

विप्रवर! पञ्चभूतोंसे बना हुआ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मसे उत्कृष्ट कोई पद नहीं है। पाँच भूत ये हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये क्रमशः इनके विशेष गुण हैं। पाँच भूतोंके अतिरिक्त छठा तत्त्व है चेतना, इसीको मन कहते हैं। सातवाँ तत्त्व है बुद्धि और आठवाँ है अहङ्कार। इनके सिवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, जीवात्मा और सत्त्व, रज, तम—सब मिलकर सत्रह तत्त्वोंका यह समूह अव्यक्त (मूल प्रकृतिका कार्य) कहलाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके तथा मन और बुद्धिके जो व्यक्त और अव्यक्त विषय हैं, उनको सम्मिलित करनेसे यह समूह चौबीस तत्त्वोंका माना जाता है; यह व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही प्रकारका तथा भोग्यरूप है।

पृथ्वीके पाँच गुण हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनमें गन्धको छोड़कर शेष चार गुण जलके भी हैं। तेजके तीन गुण हैं—शब्द, स्पर्श और रूप। वायुके शब्द और स्पर्श—दो ही गुण हैं और आकाशका शब्द ही एक गुण है। ये पाँच भूत एक दूसरेके बिना नहीं रह सकते, एकीभावको प्राप्त होकर ही स्थूल रूपमें प्रकाशित होते हैं। जिस समय चराचर प्राणी तीव्र संकल्पके द्वारा अन्य देहकी भावना करते हैं, उस समय कालके अधीन हो दूसरे शरीरमें प्रवेश करते हैं। पूर्व देहके विस्मरणको ही उनकी मृत्यु कहते हैं। इस प्रकार क्रमशः उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। देहके प्रत्येक अंगमें जो रक्त आदि धातु दिखायी देते हैं, ये पञ्चभूतोंके ही परिणाम हैं। इनसे सारा चराचर जगत् व्याप्त है। बाह्य इन्द्रियोंसे जिसका संसर्ग होता है, वह व्यक्त है; किन्तु जो विषय इन्द्रियग्राह्य नहीं है, केवल अनुमानसे ही जाना जाता है, उसे अव्यक्त समझना चाहिये।

अपने-अपने विषयोंका अतिक्रमण न करके शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन इन्द्रियोंको जब आत्मा अपने वशमें करता है, उस समय मानो वह तपस्या करता है—इन्द्रियनिग्रहद्वारा मानो आत्मतत्त्वके साक्षात्कारका प्रयत्न करता है। इससे आत्मदृष्टि प्राप्त हो जानेके कारण वह सम्पूर्ण लोकोंमें अपनेको व्याप्त और अपनेमें सम्पूर्ण लोकोंको स्थित देखता है। इस प्रकार परात्पर ब्रह्मको जाननेवाला ज्ञानी पुरुष जबतक प्रारब्ध शेष रहता है, तभीतक सम्पूर्ण भूतोंको देखता है। सब अवस्थाओंमें सब भूतोंको आत्मरूपसे देखनेवाले उस ब्रह्मभूत ज्ञानीका कभी भी अशुभ कर्मोंसे संयोग नहीं होता। जो मायामय क्लेशोंको लाँघ जाता है, उस योगीको लोकवृत्तिके प्रकाशक ज्ञानमार्गके द्वारा परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् ब्रह्माने वेदोंके द्वारा मुक्त जीवको आदि-अन्तसे रहित, स्वयम्भू, अविकारी, अनुपम तथा निराकार बताया है।

हे विप्र! सबका मूल है तप और तप होता है इन्द्रियोंका संयम करनेसे ही, और किसी प्रकार नहीं। स्वर्ग-नरक आदि जो कुछ भी है, वह सब इन्द्रियाँ ही हैं। मनसहित इन्द्रियोंको रोकना ही योगका अनुष्ठान है। यही सम्पूर्ण तपस्याका मूल है और इन्द्रियोंको अधीन न रखना ही नरकका हेतु है। इन्द्रियोंका साथ देनेसे—उनके पीछे चलनेसे सभी तरहके दोष संघटित होते हैं और उन्हींको वशमें कर लेनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। अपने शरीरमें ही विद्यमान मनसहित छहों इन्द्रियोंपर जो अधिकार प्राप्त कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापोंमें ही नहीं लगता, फिर अनर्थोंसे तो उसका संयोग हो ही कैसे सकता है? पुरुषका यह शरीर ही रथ है, आत्मा सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। जैसे कुशल सारथि घोड़ोंको अपने वशमें रखकर सुखपूर्वक यात्रा करता है, उसी प्रकार सावधान पुरुष अपनी इन्द्रियोंको अधीन रखकर सुखपूर्वक जीवनयात्रा पूर्ण करता है। जो देहरूपी रथमें जुते हुए

मन एवं इन्द्रियरूपी छः बलवान् घोड़ोंकी बागडोरको ठीक-से सँभालता है, वही उत्तम सारथि है। सड़कपर दौड़नेवाले घोड़ोंकी तरह विषयोंमें विचरनेवाली इन इन्द्रियोंको वशमें करनेके लिये धैर्यपूर्वक प्रयत्न करे। धीरतापूर्वक उद्योग करनेवालेको अवश्य ही उनपर विजय प्राप्त होती है। विषयोंकी ओर जानेवाली इन्द्रियोंके पीछे यदि मनको भी लगा दिया जाय तो वह बुद्धिको उसी भाँति हर लेता है, जैसे नदीकी मझधारमें चलती हुई नावको वायुका झोंका डुबो देता है। इन छः इन्द्रियोंके विषयमें अज्ञानी पुरुष मोहवश सुखकी भावना करते हैं, फलकी सिद्धि मानते हैं। परन्तु जो उनके दोषोंका अनुसन्धान करनेवाला वीतराग पुरुष है, वह उनका निग्रह करके ध्यानका आनन्द उठाता है।

तीनों गुणोंका स्वरूप तथा ब्रह्मसाक्षात्कारके उपाय

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके पश्चात् कौशिक ब्राह्मणने धर्मव्याधसे कहा, 'अब मैं सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका स्वरूप जानना चाहता हूँ। मुझसे इनका यथावत् वर्णन करो।'

धर्मव्याध बोला—अच्छा, अब मैं तीनों गुणोंका पृथक्-पृथक् स्वरूप बताता हूँ; सुनो। तीनों गुणोंमें जो तमोगुण है, वह मोह उपजानेवाला है; रजोगुण कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला है। परन्तु सत्त्वगुण विशेष ज्ञानका प्रकाश फैलानेवाला है, इसलिये वह सबसे उत्तम माना गया है। जिसमें अज्ञान अधिक है, जो मोहग्रस्त और अचेत होकर दिन-रात नींद लेता रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, जो अविवेकी, क्रोधी और आलसी है—ऐसे मनुष्यको तमोगुणी समझना चाहिये। जो प्रवृत्तिकी ही बात करनेवाला और विचारशील है, दूसरोंके दोष नहीं देखता, सदा कोई-न-कोई काम करना चाहता है, जिसमें विनयका अभाव और अभिमानकी अधिकता है, उसको रजोगुणी समझो। जिसके भीतर प्रकाश (ज्ञान) अधिक है, जो धीर और निष्क्रिय है, दूसरोंके दोष न देखनेवाला और जितेन्द्रिय है, तथा जिसने क्रोधको त्याग दिया है, वह सात्त्विक पुरुष है।

मनुष्यको चाहिये कि हल्का भोजन करे और अन्तःकरणको शुद्ध रक्खे। रातके पहले और पिछले पहरमें सदा अपना मन आत्मचिन्तनमें लगावे। इस प्रकार जो सदा अपने हृदयमें आत्मसाक्षात्कारका अभ्यास करता है, वह प्रज्वलित दीपककी भाँति अपने मनःप्रदीपसे निराकार आत्माका दर्शन (बोध) प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। सब तरहके उपायोंसे क्रोध और लोभकी वृत्तियोंको दबाना चाहिये। संसारमें यही तप है और यही भवसागरसे पार उतारनेवाला सेतु है। तपको क्रोधसे, धर्मको द्वेषसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचाना चाहिये। क्रूरताका अभाव (दया) सबसे बड़ा धर्म है, क्षमा सबसे प्रधान बल है, सत्य ही सबसे उत्तम व्रत है और आत्माका ज्ञान ही सबसे उत्तम ज्ञान है। सत्य बोलना सदा कल्याणकारी है, सत्यमें ही ज्ञानकी स्थिति है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त कल्याण हो, वही सबसे बढ़कर सत्य माना गया है। जिसके कर्म कामनाओंसे बँधे हुए नहीं होते, जिसने अपना सब कुछ त्यागकी अग्निमें हवन कर दिया है, वही बुद्धिमान् है और वही त्यागी है। किसी प्राणीकी हिंसा न करे, सबमें मित्रभाव रखते हुए विचरे। यह दुर्लभ मनुष्यजीवन पाकर किसीसे वैर न करे। कुछ भी संग्रह न रखना, सभी दशाओंमें सन्तुष्ट रहना, कामना और लोलुपताको त्याग देना—यही सबसे उत्तम ज्ञान है और यही आत्मज्ञानका साधन है। सब प्रकारके संग्रहका त्याग कर परलोक और इहलोकके भोगोंकी ओरसे सुदृढ़ वैराग्य धारण कर बुद्धिके द्वारा मन और इन्द्रियोंका संयम करे। जो जितेन्द्रिय है, जिसका मनपर अधिकार हो गया है और जो अजित पदको जीतनेकी इच्छा करता है, नित्य तपस्यामें लगे रहनेवाले उस मुनिको आसक्ति पैदा करनेवाले भोगोंसे अलग—अनासक्त रहना चाहिये। जहाँ गुण भी अगुण हो जाते हैं, जो विषयोंकी आसक्तिसे रहित है, जो एकमात्र नित्यसिद्धस्वरूप है, तथा जिसकी प्राप्तिमें अज्ञानके सिवा और कोई व्यवधान नहीं है—जो अज्ञान दूर होनेपर अपनेसे अभिन्नरूपमें प्रकाशित होता है, वही ब्रह्मका पद है, वही असीम आनन्द है। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनोंकी इच्छा त्याग देता है तथा जो अत्यन्त आसक्तिशून्य हो जाता है, वही ब्रह्मको प्राप्त होता है। विप्रवर! इस प्रकार इस विषयको मैंने जैसा सुना और जाना है, सो सब आपको सुना दिया।

धर्मव्याधकी अपने माता-पिताके प्रति भक्ति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार जब धर्मव्याधने मोक्षसाधक धर्मोंका वर्णन किया तो कौशिक ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न होकर यों बोला, 'तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, सब न्याययुक्त है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, धर्मके विषयमें ऐसी कोई बात नहीं है जो तुम्हें ज्ञात न हो।'

धर्मव्याधने कहा—ब्राह्मणदेव ! अब मेरा प्रत्यक्ष धर्म भी चलकर देखिये, जिसकी बदौलत मुझे यह सिद्धि मिली है। घरके भीतर पधारिये और मेरे पिता-माताका दर्शन कीजिये।

व्याधके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने भीतर प्रवेश किया, वहाँ उन्हें एक बहुत सुन्दर गृह दिखायी पड़ा, जिसमें चार कमरे थे, चूनेकी सफेदी की हुई थी। उस घरकी शोभा देखते ही मन मोह जाता था। ऐसा जान पड़ता था मानो देवताओंका निवासस्थान हो। देवताओंकी सुन्दर प्रतिमाओंसे वह भवन और भी सुशोभित हो रहा था। एक ओर सोनेके लिये बिछौनोंसहित पलंग था, दूसरी ओर बैठनेके लिये आसन रक्खे हुए थे। वहाँ धूप और केसर आदिकी मीठी सुगन्ध फैल रही थी। ब्राह्मणने देखा एक बहुत सुन्दर आसनपर धर्मव्याधके पिता-माता भोजन करके प्रसन्न चित्तसे बैठे हुए हैं, उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे हैं और पुष्प-चन्दन आदिसे उनकी पूजा की हुई है।

धर्मव्याधने पिता-माताको देखते ही उनके चरणोंपर सिर रख दिया, पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। बूढ़े माता-पिता बड़े स्नेहसे बोले, 'बेटा ! उठ, उठ; तू धर्मको जानता है, धर्म ही सदा तेरी रक्षा करे। हम दोनों तेरी सेवासे, तेरे शुद्ध भावसे बहुत प्रसन्न हैं। तेरी आयु बड़ी हो। तूने उत्तम गति, तप, ज्ञान और श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त की है। बेटा ! तू सत्पुत्र है, तूने नित्य नियमसे हमारा सत्कार—हमारा पूजन किया है। हमको ही देवता समझा है। द्विजोंके समान

शम-दमका पालन किया है। मेरे पिताके पितामह और प्रपितामह आदि तथा हम दोनों भी तेरे इस सेवाभावसे बहुत प्रसन्न हैं। मन, वाणी और शरीरसे कभी तू हमारी सेवा नहीं छोड़ता। अब भी तेरी बुद्धिमें हमारी सेवाके सिवा और कोई विचार नहीं है। परशुरामजीने जिस प्रकार अपने वृद्ध माता-पिताकी सेवा की थी, उसी प्रकार—उससे भी बढ़कर तूने हमारी सेवा की है।'

तत्पश्चात् व्याधने अपने माता-पिताको ब्राह्मणदेवताका परिचय दिया। उन्होंने भी ब्राह्मणका स्वागत-सम्मान किया। ब्राह्मणने कृतज्ञता प्रकट की और पूछा, 'आप दोनों इस घरमें पुत्र और सेवकोंसहित सकुशल तो हैं न ? आपका शरीर तो नीरोग है न ?' उन्होंने कहा, 'हाँ भगवन् ! हमारे घरमें तथा सेवकोंके यहाँ भी सब कुशल है। आप अपना कहें, आप यहाँ सकुशल पहुँच गये न ? रास्तेमें कोई कष्ट तो नहीं

हुआ ?' ब्राह्मणने कहा, 'हाँ, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।'

तदनन्तर व्याधने अपने पिता-माताकी ओर देखते हुए कौशिक ब्राह्मणसे कहा—भगवन्! ये माता-पिता ही मेरे प्रधान देवता हैं। जो कुछ देवताओंके लिये करना चाहिये, वह सब मैं इन्हीं दोनोंके लिये करता हूँ। इनकी सेवामें मुझे आलस्य नहीं होता। जैसे सारे संसारके लिये इन्द्र आदि तैंतीस देवता पूजनीय हैं, उसी प्रकार मेरे लिये ये बूढ़े माता-पिता पूज्य हैं। द्विजलोग देवताओंके लिये जैसे नाना प्रकारके उपहार समर्पण करते हैं, उसी प्रकार मैं भी इनके लिये करता हूँ। ब्रह्मन्! ये माता-पिता ही मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, मैं फूल-फल और रत्नोंसे इन्हींको सन्तुष्ट करता हूँ। जिन्हें विद्वान् लोग अग्नि कहते हैं, वे मेरे लिये ये ही हैं। चारों वेद और यज्ञ भी मेरे लिये ये पिता-माता ही हैं। इन्हींके लिये मेरे पुत्र, स्त्री तथा मित्र हैं। ये प्राण भी इन्हींकी सेवामें समर्पित हैं। स्त्री-बच्चोंके साथ नित्य मैं इन्हींकी सेवा करता हूँ। स्वयं ही इन्हें नहलाता हूँ, चरण धोता हूँ और स्वयं ही भोजन परोसकर जिमाता हूँ। मैं जानता हूँ इन्हें क्या रुचता है और क्या नहीं। इसीलिये इनकी पसंदकी चीज़ें लाता हूँ और जो इन्हें अच्छी नहीं लगती, वह चीज़ नहीं लाता। इस प्रकार आलस्य त्यागकर मैं सदा इनकी सेवामें लगा रहता हूँ।

कौशिक ब्राह्मणको माता-पिताकी सेवाके लिये उपदेश और कौशिकका जाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार धर्मात्मा व्याधने ब्राह्मणको अपने माता-पिताका दर्शन करानेके पश्चात् कहा, 'ब्राह्मण! माता-पिताकी सेवा ही मेरी तपस्या है, इस तपका बल देखिये। इसीके प्रभावसे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है, जिससे मैं यह जान गया कि आप उस पतिव्रता स्त्रीके कहनेसे यहाँ आये हैं। जिस सतीने आपको यहाँ भेजा है, वह अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे वास्तवमें ये सभी बातें जानती है। अब मैं आपके हितके लिये कुछ बातें बताता हूँ, सुनिये। आपने वेदोंका स्वाध्याय करनेके लिये पिता-माताकी आज्ञा लिये बिना गृहत्याग किया है, इससे उन दोनोंका तिरस्कार हुआ है और यह आपके लिये अत्यन्त अनुचित कार्य है। आपके शोकसे वे दोनों बूढ़े माता-पिता अन्धे हो गये हैं; जाइये, उन्हें प्रसन्न कीजिये। ऐसा करनेसे आपका धर्म नष्ट नहीं होगा। आप तपस्वी महात्मा और धर्मानुरागी हैं। किन्तु माता-पिताकी सेवाके बिना ये सब व्यर्थ हैं। आप शीघ्र ही जाकर उन्हें प्रसन्न कीजिये। मेरी बातमें विश्वास कीजिये, यह मैंने आपके हितकी बात कही है। मैं इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं समझता।'

ब्राह्मण बोला—धर्मात्मन्! यह मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो मैं यहाँ आया और तुम्हारा सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। तुम्हारे समान धर्मका तत्त्व समझानेवाले लोग इस संसारमें दुर्लभ हैं। प्रथम तो हजारों मनुष्योंमें कोई विरला ही ऐसा है, जो धर्मका तत्त्व जानता हो; पर वह भी प्रायः मिलता नहीं। तुम्हारा कल्याण हो, आज मैं तुमपर तुम्हारे सत्यके कारण बहुत प्रसन्न हूँ। जैसे स्वर्गसे भ्रष्ट हुए राजा ययातिको उनके दौहित्रोंने बचाया था, उसी प्रकार तुम-जैसे संतने आज मेरा नरकसे उद्धार किया है। अब मैं तुम्हारे कहनेके अनुसार माता-पिताकी सेवा करूँगा। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, वह धर्म-अधर्मका निर्णय नहीं कर सकता। आश्चर्य है कि यह सनातनधर्म, जिसका तत्त्व समझना कठिन है, शूद्र जातिके मनुष्यमें भी विद्यमान है। मैं तुमको शूद्र नहीं मानता, किसी प्रबल प्रारब्धके कारण तुम्हारा शूद्रयोनिमें जन्म हो गया है।

ब्राह्मणके पूछनेपर व्याधने बताया कि 'मैं पूर्वजन्ममें वेदवेत्ता ब्राह्मण था; सङ्गदोषसे मेरे द्वारा कुछ ऐसा कर्म बन गया, जिससे मुझे ऋषिका शाप प्राप्त हुआ। उसी शापसे मुझे शूद्र जातिमें व्याध होना पड़ा है।'

ब्राह्मणने कहा—शूद्र होनेपर भी मैं तुम्हें ब्राह्मण ही मानता हूँ। जो ब्राह्मण होकर भी पापी, दम्भी और असन्मार्गपर चलनेवाला है, वह शूद्रके ही समान है। इसके विपरीत जो शूद्र होकर भी शम, दम, सत्य तथा धर्मका सदा पालन करता है, उसे मैं ब्राह्मण ही मानता हूँ। क्योंकि मनुष्य सदाचारसे ही ब्राह्मण होता है। तुम ज्ञानवान् हो, बुद्धिमान् हो, तुम्हारी बुद्धि विशाल है, तुम धर्मके तत्त्वको जानते हो और ज्ञानानन्दसे तृप्त रहते हो; इसलिये कृतार्थ हो। अब मैं जानेके लिये तुम्हारी अनुमति चाहता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो और धर्म सदा तुम्हारी रक्षा करे।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्राह्मणकी बात सुनकर

धर्मात्मा व्याधने हाथ जोड़कर कहा, 'बहुत अच्छा, अब आप पधारें।' ब्राह्मणने धर्मव्याधकी प्रदक्षिणा की और वहाँसे चल दिया। घर जाकर उसने माता-पिताकी पूर्ण सेवा की और बूढ़े माँ-बापने प्रसन्न होकर उसकी बड़ी सराहना की। युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया था, उसके अनुसार मैंने पतिव्रता स्त्री और ब्राह्मणका महत्त्व सुनाया तथा धर्मव्याधने जो माता-पिताकी सेवाकी महिमा कही थी, वह भी सुना दी।

युधिष्ठिर बोले—मुनिवर! आपने धर्मके विषयमें यह बहुत ही अद्भुत उपाख्यान सुनाया है। इसे सुनकर इतना सुख मिला है कि बहुत-सा समय भी एक क्षणके समान बीत गया। आपसे यह धर्मकी कथा सुनते-सुनते मुझे तृप्ति ही नहीं हो रही है।

कार्त्तिकेयके जन्म और देवसेनापतित्व-ग्रहणका वृत्तान्त

युधिष्ठिरने पूछा—भार्गवश्रेष्ठ! स्वामिकार्त्तिकेयजीका जन्म किस प्रकार हुआ था और वे अग्निके पुत्र किस प्रकार हुए, यह सब प्रसङ्ग मुझे यथावत् सुनानेकी कृपा कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—कुरुनन्दन! सुनिये, मैं आपको मतिमान् कार्त्तिकेयजीके जन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ। पूर्वकालमें देवता और असुर आपसमें संग्राम ठानते रहते थे। उनमें सदा ही घोर रूपवाले असुरोंकी देवताओंपर विजय होती थी। जब इन्द्रने बार-बार अपनी सेनाको नष्ट होते देखा तो वे मानस पर्वतपर जाकर एक श्रेष्ठ सेनापति प्राप्त करनेके लिये विचार करने लगे। इतनेमें उनके कानोंमें एक स्त्रीके आर्त्तनादका शब्द पड़ा। वह बार-बार चिल्लाती थी—'अरे! कोई पुरुष दौड़ो! मेरी रक्षा करो!' इन्द्रने उसका विलाप सुनकर कहा,

'भीरु! तू डर मत, अब तेरे लिये भयकी कोई बात नहीं है।'

फिर उसके पास पहुँचकर देखा कि उसके सामने हाथमें गदा लिये केशी दैत्य खड़ा है। तब उस कन्याका हाथ पकड़कर इन्द्रने कहा, 'रे नीच कर्म करनेवाले! तू किस प्रकार इस कन्याका हरण करना चाहता है? याद रख, मैं वज्रधर इन्द्र हूँ। अब तू इसका पिण्ड छोड़ दे।' तब केशी बोला, 'अरे इन्द्र! तू ही इसे छोड़ दे; इसे तो मैं वरण कर चुका हूँ। ऐसा करनेपर ही तू जीता-जागता अपनी पुरीमें लौट सकता है।'

ऐसा कहकर केशीने इन्द्रपर अपनी गदा छोड़ी। किन्तु इन्द्रने अपने वज्रद्वारा उसे बीचहीमें काट डाला। फिर केशीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर इन्द्रपर एक पहाड़की चट्टान फेंकी। अपनी ओर आते देख इन्द्रने उसे भी टुकड़े-टुकड़े करके पृथ्वीपर गिरा दिया। गिरते समय उससे केशीको ही चोट लगी। उस चोटसे घबराकर वह उस कन्याको छोड़कर भागा। केशीके भाग जानेपर इन्द्रने उस कन्यासे पूछा, 'सुमुखि! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? और यहाँ तुम्हारा क्या काम है?'

कन्याने कहा—'इन्द्र! मैं प्रजापतिकी पुत्री हूँ, मेरा नाम देवसेना है। दैत्यसेना मेरी बहिन है, उसे यह केशी पहले ले जा चुका है। हम दोनों बहिनें प्रजापतिकी आज्ञा लेकर साथ-साथ खेलनेके लिये इस मानस पर्वतपर आया करती थीं और यह केशी दैत्य नित्यप्रति हमें अपने साथ चलनेके लिये कहा करता था; किन्तु दैत्यसेनाका तो इसपर प्रेम था, मैं इसे नहीं चाहती थी। इसलिये उसे तो यह ले गया, मैं आपके बल-पराक्रमसे बच गयी। अब तुम जिस दुर्जय वीरको निश्चित करोगे, उसीको मैं अपना पति बनाना चाहती हूँ।' इन्द्रने कहा, 'मेरी माता दक्षपुत्री अदिति है, इसलिये तू मेरी मौसेरी बहिन होती है। अच्छा, बता तेरे पतिका कैसा बल होना चाहिये।' कन्या बोली, 'जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस और दुष्ट दैत्योंको जीतनेवाला, महान् पराक्रमी

और अत्यन्त बलवान् हो तथा जो तुम्हारे साथ मिलकर सभी प्राणियोंपर विजय प्राप्त कर ले, वह ब्रह्मनिष्ठ और कीर्तिकी वृद्धि करनेवाला पुरुष ही मेरा पति होना चाहिये ।'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! उस कन्याकी बात सुनकर इन्द्रको बड़ा खेद हुआ और उन्होंने सोचा कि जैसा यह कहती है, वैसा तो कोई वर इसके लिये दिखायी नहीं देता । फिर वे उसे साथ ले ब्रह्मलोकमें पितामह ब्रह्माजीके पास गये और उनसे कहा, 'भगवन् ! आप इस कन्याके लिये कोई सद्गुणी और शूरवीर पति बताइये ।' ब्रह्माजीने कहा, 'इसके

लिये जिस प्रकार तुमने विचार किया है, वही बात मैंने भी सोची है । अग्निके द्वारा एक महान् पराक्रमी बालक होगा । वह इस कन्याका पति होगा और तुम्हारे सेनाध्यक्षका काम करेगा ।'

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया और उस कन्याको साथ लेकर जहाँ वसिष्ठादि प्रधान-प्रधान ब्रह्मर्षि और देवर्षि थे, वहाँ गये । उन दिनों वे महर्षिगण जो यज्ञ कर रहे थे, उसमें देवतालोग आ-आकर अपने भाग ग्रहण करते थे । ऋषियोंके आवाहन करनेपर अग्निदेव भी वहाँ आये और उनकी मन्त्रोच्चारणपूर्वक दी हुई बलियोंको ग्रहण करके भिन्न-भिन्न देवताओंको देने लगे । उस समय ऋषि-पत्नियोंका रूप देखकर अग्निदेवकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो गयीं और वे बहुत विचार करनेपर भी कामके वेगको रोक न सके । किन्तु उस कामाग्निको शान्त करनेका उन्हें कोई अवसर मिलना सम्भव नहीं था, क्योंकि ऋषिपत्नियाँ बड़ी पतिव्रता और शुद्ध हृदयवाली थीं । इसलिये अग्निदेवका हृदय बहुत सन्तप्त होने लगा और वे निराश होकर शरीर त्यागनेके विचारसे वनमें चले गये ।

जब अग्निकी पत्नी स्वाहाको मालूम हुआ कि वे ऋषि-पत्नियोंपर मोहित होनेसे कामसन्तप्त होकर वनमें चले गये हैं तो उसने विचार किया कि 'मैं ही ऋषिपत्नियोंका रूप धारण करके उन्हें अपनेमें आसक्त करूँगी । इससे उनका तो मेरे ऊपर प्रेम बढ़ जायगा और मेरी कामवासनाकी तृप्ति होगी ।' यह सोचकर स्वाहाने पहले महर्षि अङ्गिराकी पत्नी रूप-गुण-शीलवती शिवाका रूप धारण किया और अग्निदेवके पास जाकर कहने लगी, 'अग्निदेव ! मैं कामाग्निसे जली जा रही हूँ, इसलिये तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो । यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मेरे प्राण नहीं बच सकते । मैं महर्षि अङ्गिराकी भार्या शिवा हूँ ।' तब अग्निने बहुत प्रसन्न होकर उसके साथ समागम किया । स्वाहाने उनके वीर्यको अपने हाथपर ले लिया और उसे एक सोनेके कुण्डमें रख दिया । इसी प्रकार स्वाहाने सप्तर्षियोंमेंसे प्रत्येककी पत्नीका रूप धारण करके अग्निकी काम-शान्ति की । किन्तु अरुन्धतीके तप और पातिव्रत्यके प्रभावसे वह उसका रूप धारण नहीं कर सकी । इस प्रकार कामतप्ता स्वाहाने प्रतिपदाके दिन छः बार अग्निके वीर्यको उसी सुवर्णके कुण्डमें रक्खा । उससे एक ऋषिपूजित बालक उत्पन्न हुआ । स्खलित वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम 'स्कन्द' हुआ । उसके छः सिर, बारह कान, बारह नेत्र, बारह भुजाएँ तथा एक ग्रीवा और एक पेट था । वह

द्वितीयाको अभिव्यक्त हुआ, तृतीयाको शिशु रहा और चतुर्थीको अङ्ग-प्रत्यङ्गसे सम्पन्न हो गया। जिस प्रकार उदित होता हुआ सूर्य अरुणवर्ण बादलमें सुशोभित हो, उसी प्रकार विद्युत्युक्त अरुण मेघसे घिरा हुआ वह बालक जान पड़ता था। फिर त्रिपुरविनाशक महादेवजीने दैत्योंका संहार करनेवाला जो विशाल और रोमाञ्चकारी धनुष रख छोड़ा था, उसे स्कन्दजीने उठा लिया और अपने भीषण सिंहनादसे तीनों लोकोंके चराचर जीवोंको संज्ञाशून्य-सा कर दिया। उनकी उस महा-मेघके समान भयङ्कर गर्जनाको सुनकर बहुत-से प्राणी पृथ्वीपर गिर गये। उस समय जिन-जिन प्राणियोंने उनकी शरण ली, उन्हें उनका पार्षद कहा जाता है। उन सबको महाबाहु स्वामिकार्त्तिकेयने सान्त्वना दी।

फिर उन्होंने श्वेतपर्वतके ऊपर खड़े होकर हिमालयके पुत्र क्रौञ्च पर्वतको बाणोंसे बींध दिया। उसी छिद्रमें होकर हंस और गृध्र पक्षी आज भी मेरुपर्वतपर जाते हैं। कार्त्तिकेयजीके बाणोंसे विद्ध होकर क्रौञ्चपर्वत अत्यन्त आर्त्तनाद करता हुआ गिर पड़ा। उसके गिरनेपर दूसरे पर्वत भी बड़ा चीत्कार करने लगे। उन अत्यन्त आर्त्त पर्वतोंका वह चीत्कार-शब्द सुनकर भी महाबली कार्त्तिकेयजी विचलित नहीं हुए। बल्कि एक शक्ति हाथमें लेकर सिंहनाद करने लगे। जब उन्होंने उस शक्तिको छोड़ा तो उसने बड़े वेगसे श्वेत-गिरिके एक विशाल शिखरको फोड़ डाला। उनकी मारसे विदीर्ण हुआ वह श्वेतपर्वत डरकर दूसरे पहाड़ोंके सहित पृथ्वीको छोड़कर आकाशमें उड़ गया। तब पृथ्वी भी भयभीत होकर जहाँ-तहाँसे फट गयी, किन्तु व्याकुल होकर कार्त्तिकेयजीके पास जानेपर वह फिर बलवती हो गयी। पर्वतोंने भी उनके चरणोंमें सिर झुकाया और वे फिर पृथ्वीपर आ गये। तबसे शुक्लपक्षकी पञ्चमीके दिन लोग उनका पूजन करने लगे।

इधर, जब सप्तर्षियोंको इस महान् तेजस्वी पुत्रके उत्पन्न होनेका समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने अरुन्धतीके सिवा और सब पत्नियोंको त्याग दिया। किन्तु स्वाहाने सप्तर्षियोंसे बार-बार कहा कि 'मैं अच्छी तरह जानती हूँ यह मेरा पुत्र है; आपलोग जैसा समझते हैं, वैसी बात नहीं है।' विश्वामित्रजीने जब अग्निदेवको कामातुर देखा था तो वे भी सप्तर्षियोंकी इष्टि करके गुप्तरूपसे उनके पीछे चले गये थे। इसलिये उन्हें सब बातोंका ठीक-ठीक पता था। उन्होंने भी सप्तर्षियोंसे कहा कि 'इसमें आपलोगोंकी पत्नियोंका अपराध नहीं है।' किन्तु उनसे सब बातें यथावत् सुनकर भी उन्होंने अपनी पत्नियोंको त्याग ही दिया।

जब देवताओंने स्कन्दके बल-पराक्रमकी बातें सुनीं तो उन्होंने आपसमें मिलकर इन्द्रसे कहा, 'देवराज! स्कन्दका बल असह्य है, आप उसे तुरंत मार डालिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो वही देवताओंका राजा बन बैठेगा।' इन्द्रको यद्यपि अपनी विजयमें सन्देह था, तो भी उन्होंने ऐरावतपर चढ़कर सब देवताओंको साथ ले स्कन्दपर धावा बोल दिया। वहाँ पहुँचकर इन्द्र तथा समस्त देवताओंने भीषण सिंहनाद किया। उस शब्दको सुनकर कार्त्तिकेयजीने भी समुद्रके समान बड़ी भारी गर्जना की। उस महान् शब्दसे देवताओंकी सेना अचेत-सी हो गयी और उसमें खलबलाये हुए समुद्रके समान सनसनी फैल गयी। देवताओंको अपना वध करनेके लिये आया देख अग्निकुमार कार्त्तिकेयने कुपित होकर अपने मुखसे अग्निकी धधकती हुई ज्वालाएँ छोड़ीं। वे लपटें पृथ्वीपर भयसे काँपती हुई देवसेनाको जलाने लगीं। इससे देवताओंके मस्तक, शरीर, आयुध और वाहन जलने लगे तथा वे तितर-बितर हो जानेसे छिन्न-भिन्न तारागणके समान प्रतीत होने लगे। इस प्रकार जल-भुन जानेसे उन्होंने इन्द्रको छोड़कर अग्निपुत्र स्कन्दकी ही शरण ली। तब उन्हें कुछ चैन मिला।

देवताओंके त्याग देनेपर इन्द्रने स्कन्दपर वज्र छोड़ा। उस वज्रने उनके दाहिने अङ्गपर चोट की। उससे उनके अङ्गमेंसे एक और पुरुष प्रकट हुआ। वह युवावस्थाका था तथा सोनेका कवच, शक्ति और दिव्य कुण्डल धारण किये था। स्कन्दके अङ्गमें वज्रका प्रवेश होनेसे उत्पन्न होनेके कारण वह 'विशाख' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार प्रलयाग्निके समान तेजस्वी एक दूसरे पुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्रको बड़ा भय हुआ और उन्होंने हाथ जोड़कर स्कन्दकी ही शरण ली। साधु स्कन्दने सेनाके सहित इन्द्रको अभय-दान दिया। तब देवतालोग अत्यन्त प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे।

उस समय ऋषियोंने उनसे कहा—'देवश्रेष्ठ ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सम्पूर्ण लोकोंका मंगल करो। अभी तुम्हें उत्पन्न हुए छः रात्रियाँ ही बीती हैं; फिर भी तुमने सारे लोकोंको अपने काबूमें कर लिया है और फिर तुम्हींने इन्हें अभय भी दिया है। अतः अब तुम्हीं इन्द्र बनकर तीनों लोकोंको निर्भय कर दो।' स्वामिकार्त्तिकेयने पूछा, 'मुनिगण ! यह इन्द्र त्रिलोकीका क्या काम करता है, और किस प्रकार यह देवताओंकी रक्षा करता है ?' ऋषियोंने कहा, 'इन्द्र समस्त प्राणियोंको बल, तेज, प्रजा और सुख प्रदान करता है तथा प्रसन्न होनेपर वह सब प्रकारकी इच्छाएँ पूरी कर देता है। वह दुराचारियोंका संहार करता है, सदाचारियोंकी रक्षा करता है तथा प्राणियोंके प्रत्येक कार्यमें उनका अनुशासन करता है। जब सूर्य नहीं रहता तो वही सूर्य हो जाता है और चन्द्रमाके अभावमें वही चन्द्रमा होकर चमकता है। इसी प्रकार वही भिन्न-भिन्न कारणोंसे अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल बन जाता है। ये ही सब काम इन्द्रको करने पड़ते हैं, क्योंकि इन्द्रमें बड़ा बल होता है। वीरवर ! तुम भी बड़े ही बलवान् हो, इसलिये तुम्हीं हमारे इन्द्र बन जाओ।' तब इन्द्रने भी कहा, 'महाबाहो ! तुम इन्द्र बनकर हम सबको सुखी करो। तुम वास्तवमें इस पदके योग्य हो, इसलिये आज ही अपना अभिषेक कराओ।' स्कन्दने कहा, 'शक्र ! आप ही निश्चिन्त होकर त्रिलोकीका शासन करें। मैं तो आपका सेवक हूँ, मुझे इन्द्रपदकी इच्छा नहीं है।' इन्द्र बोले, 'वीर ! तुम्हारा बल अद्भुत है, तुम्हारे पराक्रमसे चकित हुए प्राणी मुझे गिरी हुई दृष्टिसे देखेंगे। यही नहीं, वे हमारे बीचमें भेद डालनेका भी प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार मतभेद हो जानेसे मेरी और तुम्हारी लड़ाई ठनेगी और, जैसी मेरी धारणा है, उसमें विजय तुम्हारी ही होगी। इसलिये तुम्हीं इन्द्र बन जाओ, इस विषयमें कोई सोच-विचार मत करो।' स्कन्दने कहा, 'शक्र ! इस त्रिलोकीके और मेरे भी आप ही राजा हैं; कहिये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ ?' इन्द्र बोले, 'अच्छा, तुम्हारे कहनेसे इन्द्र तो मैं बना रहूँगा; किन्तु यदि सचमुच तुम मेरी आज्ञा मानना चाहते हो तो सुनो। तुम देवसेनापतिके पदपर अपना अभिषेक करा लो।' स्कन्दने कहा, 'ठीक है; दानवोंके विनाश, देवताओंकी अर्थसिद्धि तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये आप सेनापतिके पदपर मेरा अभिषेक प्रसन्नतासे कर दीजिये।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—स्कन्दके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रने समस्त देवताओंके सहित उन्हें देवताओंका सेनापति बना दिया। उस समय महर्षियोंसे पूजित होकर वे बड़े ही सुशोभित हुए। उनके मस्तकपर सुवर्णका छत्र लगाया गया। इतनेहीमें वहाँ पार्वतीजीके सहित भगवान् शङ्कर पधारे। उन्होंने स्वयं ही विश्वकर्माकी बनायी हुई एक माला उनके गलेमें पहना दी। अग्निदेवने एक मुर्ग दिया। उसकी कालाग्निके समान लाल रंगकी ध्वजा सर्वदा उनके रथपर फहराया करती है। जो समस्त प्राणियोंकी चेष्टा, प्रभा, शान्ति और बल है तथा देवताओंकी विजयको बढ़ानेवाली है, वह शक्ति स्वयं ही उनके आगे आकर उपस्थित हो गयी। फिर उनके शरीरमें जन्मके साथ उत्पन्न हुए कवचने प्रवेश किया। वह युद्ध करनेके समय स्वयं ही प्रकट हो जाता है। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, उन्नति, ब्रह्मण्यता, असम्मोह, भक्तोंकी रक्षा, शत्रुओंका संहार और लोकोंकी रक्षा करना—ये सब

गुण स्कन्दमें जन्मतः ही हैं। इस प्रकार सभी देवगणोंने उन्हें अपना सेनापति बना लिया।

इसके पश्चात् कार्त्तिकेयजीके आगे सहस्रों देवसेनाएँ उपस्थित हुईं और कहने लगीं कि 'आप हमारे पति हैं।' तब उन्होंने उन सभीको स्वीकार किया और उनसे सम्मानित हो उन सभीको सान्त्वना दी। फिर इन्द्रको केशीके हाथसे छुटायी हुई देवसेनाका स्मरण हो आया और वे सोचने लगे, 'इसमें सन्देह नहीं इन्हें ही ब्रह्माजीने देवसेनाका पति नियत किया है।' अतः वे वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित कर उसे स्कन्दके पास लाये और उनसे कहा, 'देवश्रेष्ठ! ब्रह्माजीने आपके जन्मसे पहले ही इसे आपकी पत्नी निश्चित कर दिया है, इसलिये आप विधिवत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक इसका पाणिग्रहण कीजिये।' तब स्कन्दने विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। उस समय मन्त्रवेत्ता बृहस्पतिजीने मन्त्रोच्चारण और हवनादि किया। इस प्रकार देवसेना कार्त्तिकेयजीकी पटरानी होकर प्रसिद्ध हुई। उसीको ब्राह्मणलोग षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता भी कहते हैं।

श्रीकार्त्तिकेयजीके कुछ उदार कर्म और उनके नाम

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! कार्त्तिकेयको श्रीसम्पन्न और देवताओंका सेनापति हुआ देख सप्तर्षियोंकी छः पत्नियाँ उनके पास आयीं। वे धर्मयुक्ता और व्रतशीला थीं, फिर भी ऋषियोंने उन्हें त्याग दिया था। उन्होंने देवसेनाके स्वामी भगवान् कार्त्तिकेयसे कहा, 'बेटा! हमारे देवतुल्य पतियोंने अकारण ही हमारा त्याग कर दिया है, इसलिये हम पुण्यलोकसे च्युत हो गयी हैं। उन्हें किसीने यह समझा दिया है कि हमसे ही तुम्हारा जन्म हुआ है। अतः हमारी सच्ची बात सुनकर तुम हमारी रक्षा करो। तुम्हारी कृपासे हमें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है। इसके सिवा हम तुम्हें अपना पुत्र भी बनाना चाहती हैं।' स्कन्दने कहा, 'निर्दोष देवियो! आप मेरी माताएँ हैं और मैं आपका पुत्र हूँ। इसके सिवा आपकी यदि कोई और इच्छा हो तो वह भी पूर्ण हो जायगी।'

जब कार्त्तिकेयजीने अपनी माताओंका इस प्रकार प्रिय किया तो स्वाहाने भी उनसे कहा, 'तुम मेरे औरस पुत्र हो। मैं चाहती हूँ कि तुम मेरा एक अत्यन्त दुर्लभ प्रिय कार्य करो।' तब स्कन्दने उससे कहा, 'तुम्हारी क्या इच्छा है?' स्वाहा बोली, 'मैं दक्षप्रजापतिकी लाडिली कन्या हूँ। बचपनसे ही अग्निदेवपर मेरा अनुराग है। किन्तु अग्निको पूर्णतया मेरे प्रेमका पता नहीं है। मैं निरन्तर उन्हींके साथ रहना चाहती हूँ।' तब स्कन्दने कहा, 'ब्राह्मणोंके हव्य-कव्यादि जो भी पदार्थ मन्त्रोंसे शुद्ध किये हुए होंगे, उन्हें वे 'स्वाहा' ऐसा कहकर ही अग्निमें हवन करेंगे। कल्याणी! इस प्रकार अग्निदेव सर्वदा तुम्हारे साथ ही रहेंगे।'

स्कन्दने ऐसा कहकर फिर स्वाहाका पूजन किया। इससे उसे बड़ा सन्तोष हुआ और फिर अग्निसे संयुक्त हो उसने स्कन्दका पूजन किया। तदनन्तर ब्रह्माजीने स्कन्दसे कहा, 'तुम अपने पिता त्रिपुरविनाशक महादेवजीके पास जाओ, क्योंकि सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये भगवान् रुद्रने अग्निमें और उमाने स्वाहामें प्रवेश करके तुम्हें उत्पन्न किया है।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर श्रीकार्त्तिकेयजी 'तथास्तु' ऐसा कहकर महादेवजीके पास चले गये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जिस समय इन्द्रने अग्निकुमार कार्त्तिकेयजीको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया, उस समय भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न होकर पार्वतीजीके सहित एक सूर्यके समान कान्तिवाले रथमें बैठकर भद्रवटको चले। उस समय गुह्यकोंके सहित श्रीकुबेरजी पुष्पक विमानमें बैठकर उनके आगे चलते थे। इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके सहित उनके पीछे चलते थे। उनकी दाहिनी ओर वसु और रुद्रोंके सहित अनेकों अद्भुत देवसेनानी थे। यमराज भी मृत्युके सहित उन्हींके साथ थे। यमराजके पीछे भगवान् शंकरका अत्यन्त दारुण तीन नोकोंवाला विजय नामका त्रिशूल चलता था। उसके पीछे तरह-तरहके जलचरोंसे घिरे हुए जलाधीश वरुणजी चल रहे थे। उस समय चन्द्रमाने महादेवजीके ऊपर श्वेत छत्र लगाया। वायु और अग्नि चँवर लिये स्थित थे। उनके पीछे राजर्षियोंके सहित देवराज इन्द्र स्तुति करते चलते थे।

तब महादेवजीने बड़ी उदारतासे कार्त्तिकेयजीसे कहा, 'तुम सर्वदा सावधानीसे व्यूहकी रक्षा करना।' स्कन्दने कहा, 'भगवन्! मैं उसकी रक्षा अवश्य करूँगा। इसके सिवा कोई और सेवा हो तो कहिये।' श्रीमहादेवजी बोले, 'बेटा! काम करनेके समय भी तुम मुझसे मिलते रहना। मेरे दर्शन भक्तिसे तुम्हारा परम कल्याण होगा।' ऐसा कहकर

कार्त्तिकेयजीको हृदयसे लगाकर विदा किया। उनके विदा होते ही बड़ा भारी उत्पात होने लगा। उससे समस्त देवगण सहसा मोहमें पड़ गये। नक्षत्रोंके सहित आकाश जलने लगा, संसार मुग्ध-सा हो गया, पृथ्वी डगमगाने और गड़गड़ाने लगी, जगत्में अन्धकार छा गया। इतनेहीमें वहाँ पर्वत और मेघोंके समान अनेकों प्रकारके आयुधोंसे सुसजित बड़ी भयानक सेना दिखायी दी। वह बड़ी ही भीषण और असंख्येय थी तथा अनेक प्रकारसे कोलाहल कर रही थी। वह विकट वाहिनी सहसा भगवान् शंकर और समस्त देवताओंपर टूट पड़ी तथा अनेकों प्रकारके बाण, पर्वत, शतघ्नी, प्रास, तलवार, परिघ और गदाओंकी वर्षा करने लगी। उन भयङ्कर शस्त्रोंकी वर्षासे व्यथित होकर थोड़ी ही देरमें देवताओंकी सेना संग्राम छोड़कर भागने लगी।

दानवोंसे पीड़ित होकर अपनी सेनाको भागती देख देवराज इन्द्रने उसे ढाढस बँधाकर कहा, 'वीरो! भय छोड़कर अपने शस्त्र सँभालो, तुम्हारा मंगल होगा। जरा पराक्रम दिखानेका साहस करो, तुम्हारा सब दुःख दूर हो जायगा। इन भयानक और दुःशील दानवोंको परास्त कर दो। आओ,

मेरे साथ मिलकर इनपर टूट पड़ो।' इन्द्रकी बात सुनकर देवताओंको धीरज बँधा और वे इन्द्रका आश्रय लेकर दानवोंसे युद्ध करने लगे। तब वे समस्त देवता और महाबली मरुत्, साध्य एवं वसुगण भी शत्रुओंसे भिड़ गये तथा उनके छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्र और बाण दैत्योंके शरीरका भरपेट रुधिर पान करने लगे। बाणोंकी वर्षासे दानवोंके शरीर छलनी हो गये और छितराये हुए बादलोंके समान रणभूमिमें सब ओर गिरने लगे। इस प्रकार देवताओंने उस दानवसेनाको अनेकों प्रकारके बाणोंसे व्यथित कर डाला और उसके पैर उखाड़ दिये। इतनेहीमें महिष नामका एक दारुण दैत्य बड़ा भारी पर्वत लेकर देवताओंकी ओर दौड़ा। उसे देखकर देवता भागने लगे। किन्तु उसने पीछा करके भागते हुए देवताओंपर वह पहाड़ पटक दिया। उसके प्रहारसे दस हजार योद्धा धराशायी हो गये। फिर महिषासुर दूसरे दानवोंके सहित देवताओंपर टूट पड़ा। उसे अपनी ओर आते देख इन्द्रके सहित सभी देवगण भागने लगे। तब क्रोधातुर महिषासुर फुर्तीसे भगवान् रुद्रके रथके पास पहुँचा और उसका धुरा पकड़ लिया। यह देखकर श्रीमहादेवजीने महिषासुरके संहारका संकल्प कर उसके कालरूप श्रीकार्त्तिकेयजीका स्मरण

किया। बस, उसी समय कान्तिमान् कार्त्तिकेय रणभूमिमें

उपस्थित हो गये। वे क्रोधसे सूर्यके समान तमतमा रहे थे। वे लाल वस्त्र पहने हुए थे, उनके गलेमें लाल रंगकी मालाएँ थीं, उनके रथके घोड़े लाल थे, वे सुवर्णका कवच धारण किये थे तथा सूर्यके समान सुनहरी कान्तिवाले रथमें विराजमान थे। उन्हें देखते ही दैत्योंकी सेना मैदान छोड़कर भागने लगी। महाबली कार्त्तिकेयजीने महिषासुरका नाश करनेके लिये एक प्रज्वलित शक्ति छोड़ी। उसने छूटते ही उसका विशाल मस्तक काट डाला। सिर कटते ही महिषासुर प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गया। महिषासुरके पर्वतसदृश सिरने गिरकर उत्तरकुरु देशका सोलह योजन चौड़ा मार्ग रोक लिया। इसी प्रकार वह शक्ति बार-बार छोड़े जानेपर सहस्रों शत्रुओंका संहार करके फिर कार्त्तिकेयजीके ही हाथमें लौट आती थी। इसी क्रमसे कीर्त्तिमान् कार्त्तिकेयजीने अपने समस्त शत्रुओंको परास्त कर दिया—जैसे कि सूर्य अन्धकारको, अग्नि वृक्षोंको और वायु मेघोंको नष्ट कर देता है।

फिर उन्होंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया और देवताओंने उनका पूजन किया। इससे वे किरणजालमण्डित सूर्यके समान सुशोभित हुए। तब इन्द्रने उन्हें आलिङ्गन करके कहा, 'कार्त्तिकेयजी! यह महिषासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किये हुए था, इसलिये सब देवता इसके लिये तृणके समान थे; सो आज आपने इसका वध कर दिया। इस प्रकार आपने देवताओंका एक बड़ा भारी काँटा निकाल दिया। इसके सिवा आपने और भी ऐसे ही सैकड़ों दानवोंको रणाङ्गणमें गिरा दिया, जिन्होंने कि पहले हमें बड़े-बड़े कष्ट दिये थे। देव! आप भगवान् शंकरके समान ही संग्राममें अजेय होंगे और यह आपका प्रथम पराक्रम प्रसिद्ध होगा। तीनों लोकोंमें आपकी अक्षय कीर्त्ति फैल जायगी और हे महाबाहो! सब देवता आपके अधीन रहेंगे।' कार्त्तिकेयजीसे ऐसा कहकर देवताओंके सहित इन्द्र भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर वहाँसे चल दिये। फिर महादेवजीने अन्य देवताओंसे कहा, 'तुम सब कार्त्तिकेयजीको मेरे ही समान मानना।' ऐसा कहकर शिवजी भद्रवटको चले गये और देवता अपने-अपने स्थानोंको लौट आये। अग्निकुमार कार्त्तिकेयजीने एक ही दिनमें समस्त दानवोंका संहार करके त्रिलोकीको जीत लिया। तब महर्षियोंने उनकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की।

युधिष्ठिर बोले—द्विजवर! मैं भगवान् कार्त्तिकेयजीके तीनों लोकोंमें विख्यात नाम सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—सुनिये! आग्नेय, स्कन्द, दीप्तकीर्ति, अनामय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेश, महिषमर्दन, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिशु, शीघ्र, शुचि, चण्ड, दीप्तवर्ण, शुभानन, अमोघ, अनघ, रौद्र, प्रिय, चन्द्रानन, दीप्तशक्ति, प्रशान्तात्मा, भद्रकृत्, कूटमोहन, षष्ठीप्रिय, धर्मात्मा, पवित्र, मातृवत्सल, कन्याभर्ता, विभक्त, स्वाहेय, रेवतीसुत, प्रभु, नेता, विशाख, नैगमेय, सुदु सुव्रत, ललित, बालक्रीडनकप्रिय, खचारी, ब्रह्मचारी, शरवणोद्भव, विश्वामित्रप्रिय, देवसेनाप्रिय, वासुदेव और प्रियकृत्—ये कार्त्तिकेयजीके दिव्य नाम हैं। जो इ पाठ करता है वह निःसन्देह स्वर्ग, कीर्त्ति और धन करता है।

द्रौपदीका सत्यभामाको अपनी चर्या सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—एक दिन महात्मा पाण्डव और ब्राह्मणलोग आश्रममें बैठे थे। उसी समय प्रियवादिनी द्रौपदी और सत्यभामा भी आपसमें मिलकर एक जगह बैठीं। उन दोनोंकी भेंट बहुत दिनोंपर हुई थी। इसलिये वे प्रेम-पूर्वक आपसमें हँसी करने लगीं और कुरुकुल एवं यदुकुलसे सम्बद्ध तरह-तरहकी बातें करने लगीं। इसी समय श्रीकृष्णकी प्रेयसी महारानी सत्यभामाने द्रुपदनन्दिनी कृष्णासे कहा, 'बहिन! तुम्हारे पति पाण्डवलोग लोकपालोंके समान शूरवीर और सुदृढ शरीरवाले हैं; तुम उनके साथ किस प्रकारका बर्ताव करती हो, जिससे कि वे तुमपर कभी कुपित नहीं होते और सर्वदा तुम्हारे अधीन रहते हैं? प्रिये! मैं देखती हूँ कि पाण्डवलोग सर्वदा तुम्हारे वशमें रहते हैं और तुम्हारा मुँह ताका करते हैं; सो यह रहस्य मुझे भी बताओ न। पाञ्चाली! तुम मुझे भी कोई ऐसा व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, ओषधि, विद्या और यौवनका प्रभाव तथा जप, होम या जड़ी-बूटी बताओ, जो यश और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला हो और जिससे सर्वदा ही श्यामसुन्दर मेरे अधीन रहें।' ऐसा कहकर यशस्विनी सत्यभामा चुप हो गयी। तब पतिपरायणा सौभाग्यवती द्रौपदीने उससे कहा—

'सत्ये! तुम तो मुझसे दुराचारिणी स्त्रियोंके आचरणकी बात पूछ रही हो। भला, उन दूषित आचरणवाली स्त्रियोंके मार्गकी बातें मैं कैसे कहूँ? उनके विषयमें तो तुम्हारा प्रश्न या शङ्का करना भी उचित नहीं है; क्योंकि तुम बुद्धिमती और श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी हो। जब पतिको यह मालूम हो जाता है कि गृहदेवी उसे काबूमें करनेके लिये किसी मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग कर रही है तो वह उससे उसी प्रकार दूर रहने लगता है, जैसे घरमें घुसे हुए साँपसे। इस प्रकार जब चित्तमें उद्वेग हो जाता है तो शान्ति कैसे रह सकती है और

शान्त नहीं है, उसे सुख कैसे मिल सकता है। अतः न्त्र-तन्त्रसे कभी भी पति अपनी पत्नीके वशमें नहीं हो जाता। इसके विपरीत इससे कई प्रकारके अनर्थ हो जाते हैं। धूर्तलोग जन्तर-मन्तरके बहाने ऐसी चीजें दे देते हैं, जिनसे भयङ्कर रोग पैदा हो जाते हैं तथा पतिके शत्रु इसी बहानेसे विषतक दे डालते हैं। वे ऐसे चूर्ण होते हैं कि जिन्हें यदि पति जिह्वा या त्वचासे भी स्पर्श कर ले तो वे निःसन्देह उसी क्षण उसको मार डालें। ऐसी स्त्रियाँ अपने पतियोंको तरह-तरहके रोगोंका शिकार बना देती हैं। वे उनकी कुमतिसे जलोदर, कोढ़, बुढ़ापे, नपुंसकता, जडता और बधिरता आदिके पंजोंमें पड़ चुके हैं। इस प्रकार पापियोंकी बातें माननेवाली वे पापिनी नारियाँ अपने पतियोंको तंग कर डालती हैं। किन्तु स्त्रीको तो कभी किसी प्रकार अपने पतिका अप्रिय नहीं करना चाहिये।

यशस्विनी सत्यभामे! महात्मा पाण्डवोंके प्रति मैं जिस प्रकारका आचरण करती हूँ, वह सब सच-सच सुनाती हूँ; तुम सुनो। मैं अहङ्कार और काम-क्रोधको छोड़कर बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी, उनकी अन्यान्य स्त्रियोंके सहित, सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने पतियोंका मन रखती हूँ। यह सब करते हुए भी मैं अभिमानको अपने पास नहीं फटकने देती। मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ, असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, बुरी जगहपर नहीं बैठती, दूषित आचरणके पास नहीं फटकती तथा उनके अभिप्रायपूर्ण संकेतका अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, सजधजवाला, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घरमें आते हैं, तभी मैं खड़ी होकर आसन और जल देकर उनका सत्कार करती हूँ। मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ। सदा सावधान रहती हूँ, घरमें गुप्तरूपसे अनाजका सञ्चय रखती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंके पास नहीं फटकती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ। मैं दरवाजेपर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली या कूड़ा-करकट डालनेकी जगह भी अधिक नहीं ठहरती, किन्तु सदा ही सत्यभाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ। पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर जाते हैं तो मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए रहती हूँ। मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, उससे मैं भी दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ।

सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारोंपर पक्वान्न बनाना, माननीयोंका सत्कार करना तथा और भी जो-जो धर्म मेरे लिये विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ। मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे पति मृदुलचित्त, सरलस्वभाव, सत्यनिष्ठ और सत्यधर्मका ही पालन करनेवाले हैं। मैं सर्वदा सावधान रहकर उनकी सेवामें तत्पर रहती हूँ। मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिके अधीन रहना ही है, वही उनका इष्टदेव है और वही आश्रय है; भला, उसका अप्रिय कौन कामिनी करेगी? मैं अपने पतियोंसे बढ़कर कभी नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनकी अपेक्षा बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती और न कभी सासजीसे ही वाद-विवाद करती हूँ, तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ। सुभगे! मैं सावधानीसे सर्वदा अपने पतियोंसे पहले उठती हूँ तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ। इसीसे पति मेरे वशमें रहते हैं। वीरमाता, सत्यवादिनी, आर्या कुन्तीकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादिमें मैं कभी भी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिरके महलमें नित्यप्रति आठ हजार ब्राह्मण सुवर्णके पात्रोंमें भोजन किया करते थे। महाराज युधिष्ठिर अट्ठासी हजार गृहस्थ स्नातकोंका भरण-पोषण करते थे और उनके दस हजार दासियाँ थीं। वे मणिजटित सुवर्णके आभूषणोंसे सुसज्जित रहती थीं। मुझे उनके नाम, रूप, भोजन, वस्त्र—सभी बातोंका पता रहता था और इस बातकी भी निगाह रहती थी कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं किया। मतिमान् कुन्तीनन्दनकी दस हजार दासियाँ

हाथोंमें थाल लिये दिन-रात अतिथियोंको भोजन कराती रहती थी। जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और एक लाख हाथी चलते थे। उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी और मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी। अन्तःपुरके ग्वालों और गड़रियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख भी मैं ही किया करती थी।

यशस्विनी सत्यभामे! महाराजकी जो कुछ आमदनी, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे, और मैं सब प्रकारके सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी। मेरे धर्मात्मा पतियोंका जो वरुणके भंडारके समान अटूट खजाना था, उसका पता भी एक मुझहीको था। मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती। उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे। मेरी यह बात तुम सच मानो कि मैं सदा ही सबसे पहले उठती थी और सबसे पीछे सोती थी। पतियोंको वशमें करनेका मुझे तो यही उपाय मालूम है, दुष्ट स्त्रियोंके-से आचरण न तो मैं करती हूँ और न मुझे अच्छे ही लगते हैं।'

द्रौपदीकी ये धर्मयुक्त बातें सुनकर सत्यभामाने उसका आदर करते हुए कहा, 'पाञ्चाली! मेरी एक प्रार्थना है, तुम मेरे कहे-सुनेको क्षमा करना। सखियोंमें तो जान-बूझकर भी ऐसी हँसीकी बातें कह दी जाती हैं।'

द्रौपदीका सत्यभामाको उपदेश तथा सत्यभामाकी बिदाई

द्रौपदीने कहा—सत्ये! मैं पतिके चित्तको अपने वशमें करनेका यह निर्दोष मार्ग बताती हूँ। यदि तुम इसपर चलोगी तो अपने स्वामीके मनको अपनी ओर खींच लोगी। स्त्रीके लिये इस लोक या परलोकमें पतिके समान कोई दूसरा देवता नहीं है। उसकी प्रसन्नता होनेपर वह सब प्रकारके सुख पा सकती है और असन्तुष्ट होनेपर अपने सब सुखोंको मिट्टीमें मिला देती है। हे साध्वी! सुखके द्वारा सुख कभी नहीं मिल सकता, सुखप्राप्तिका साधन तो दुःख ही है। अतः तुम सुहृदता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता तथा तरह-तरहके पुष्प और चन्दनादिसे श्रीकृष्णकी सेवा करो तथा जिस प्रकार वे यह समझें कि मैं इसे प्यारा हूँ, तुम वही काम करो। जब तुम्हारे कानमें पतिदेवके द्वारपर आनेकी आवाज़ पड़े तो तुम आँगनमें खड़ी होकर उनके स्वागतके लिये तैयार रहो और जब वे भीतर आ जायँ तो तुरंत ही आसन और पैर धोनेके लिये जल देकर उनका सत्कार करो। यदि वे किसी कामके लिये दासीको आज्ञा दें तो तुम स्वयं ही उठकर उनके सब काम करो। श्रीकृष्णचन्द्रको ऐसा मालूम होना चाहिये कि तुम सब प्रकार उन्हें ही चाहती हो। तुम्हारे पति यदि तुमसे कोई ऐसी बात कहें कि जिसे गुप्त रखना आवश्यक न हो तो भी तुम उसे किसीसे मत कहो। पतिदेवके जो प्रिय, स्नेही और हितैषी हों, उन्हें तरह-तरहके उपायोंसे भोजन कराओ तथा जो उनके शत्रु, उपेक्षणीय और अशुभचिन्तक हों अथवा उनके प्रति कपटभाव रखते हों, उनसे सर्वदा दूर रहो। प्रद्युम्न और साम्ब यद्यपि तुम्हारे पुत्र ही हैं, तो भी एकान्तमें तो उनके पास भी मत बैठो। जो अत्यन्त कुलीन, दोषरहित और सती हों, उन्हीं स्त्रियोंसे तुम्हारा प्रेम होना चाहिये; क्रूर, लड़ाकी, पेटू, चोरीकी आदतवाली, दुष्ट और चञ्चल स्वभाववाली स्त्रियोंसे सर्वदा दूर रहो। इस प्रकार तुम सब तरह अपने पतिदेवकी सेवा करो। इससे तुम्हारे यश और सौभाग्यकी वृद्धि होगी, अन्तमें स्वर्ग मिलेगा तथा तुम्हारे विरोधियोंका अन्त हो जायगा।

गले मिलकर अपने विचारके अनुसार बहुत-सी ढाढस बँधानेवाली बातें कहीं। वे बोलीं, 'कृष्णे ! तुम चिन्ता न करो, व्याकुल मत होओ और इस प्रकार रात-रातभर जागना छोड़ दो। तुम्हारे देवतुल्य पति फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे। तुम्हारे समान शीलसम्पन्न और आदरणीया महिलाएँ

निपुण बाँकुरे वीर हैं। वे अभिमन्युकी तरह ही बड़े आनन्द-से द्वारकामें रहते हैं। सुभद्रादेवी उनकी सब प्रकार पुत्रके समान ही देख-भाल रखती हैं। वे किसी प्रकारका भी भेदभाव न रखकर उनपर निश्छल स्नेह रखती हैं तथा उनके दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी रहती हैं। प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीजी भी उनका सब प्रकार लाड़-चाव करती हैं और श्रीश्याम-सुन्दर भी भानु आदि अपने पुत्रोंसे उनमें किसी भी प्रकार-का भेदभाव नहीं करते। उनके भोजन-वस्त्रादिकी देख-भाल ससुरजी रखते हैं, तथा और भी श्रीबलरामजी आदि सब अन्धक और वृष्णिवंशी यादव उनकी सब प्रकारकी सुविधा-का ध्यान रखते हैं। उन्हें प्रद्युम्न और तुम्हारे पुत्रोंके प्रति एक-सी प्रीति है।' ऐसी ही बहुत-सी प्रिय, सत्य, आनन्द-दायिनी और मनोऽनुकूल बातें कहकर सत्यभामाजीने श्रीकृष्ण-के रथकी ओर जानेका विचार किया। उन्होंने द्रौपदीकी परिक्रमा की और फिर रथपर चढ़ गयीं। श्रीकृष्णने मुसकरा-कर द्रौपदीको धीरज बँधाया और फिर पाण्डवोंको लौटाकर घोड़ोंको तेज करके द्वारकापुरीको चले।

कौरवोंकी घोषयात्रा और उनका गन्धर्वोंके साथ युद्धमें पराभव

जनमेजयने पूछा—इस प्रकार वनमें रहकर जाड़ा, गर्मी, वायु और धूप सहनेसे नरश्रेष्ठ पाण्डवोंके शरीर बहुत कृश हो गये थे। ऐसी स्थितिमें उन्होंने द्वैतवनमें उस पवित्र सरोवरपर आकर फिर क्या किया, सो आप मुझसे कहिये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! उस रमणीय सरोवरपर आकर पाण्डवोंने अपने हितचिन्तकोंको विदा कर दिया तथा वहाँ कुटी बनाकर आस-पासके रमणीक वन, पर्वत और नदियोंके किनारे विचरने लगे। जब वे वीरश्रेष्ठ इस प्रकार वनमें निवास करने लगे तो उनके पास अनेकों वेदाध्ययनशील ब्राह्मण आते तथा नरश्रेष्ठ पाण्डव-लोग यथाशक्ति उनकी सेवा करते। इन्हीं दिनों वहाँ एक बातचीत करनेमें कुशल ब्राह्मण आया। उनसे मिलकर वह कौरवोंसे मिला और फिर धृतराष्ट्रजीके पास पहुँचा। वृद्ध कुरुराजने आसन देकर उसका यथोचित सत्कार किया और फिर आग्रहपूर्वक पाण्डवोंका वृत्तान्त पूछा। तब ब्राह्मणने कहा कि 'इस समय युधिष्ठिर, भीम,

अर्जुन, नकुल और सहदेव बड़ा भीषण कष्ट सह रहे हैं; वायु

और धूपके कारण उनके शरीर बहुत कृश हो गये हैं। द्रौपदीकी तो बात ही मत पूछिये, वह वीरपत्नी होकर भी अनाथा-सी हो रही है तथा सब ओरसे दुःखोंसे दबी हुई है।'

उसकी बातें सुनकर राजा धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ। जब उन्होंने सुना कि राजाके पुत्र और पौत्र होकर भी पाण्डवलोग इस प्रकार दुःखकी नदीमें पड़े हुए हैं तो उनका हृदय करुणासे भर आया और वे लंबी-लंबी साँसें लेकर कहने लगे, 'धर्मपुत्र युधिष्ठिर तो मेरे अपराधपर ध्यान नहीं देंगे और अर्जुन भी उन्हींका अनुसरण करेगा। किन्तु इस वनवाससे भीमका कोप तो उसी प्रकार बढ़ रहा है, जैसे हवा लगनेसे आग सुलगती रहती है। उस क्रोधानलसे जलकर वह वीर हाथसे हाथ मलकर इस प्रकार अत्यन्त भयानक और गर्म साँसें लिया करता है मानो मेरे पुत्र और पौत्रोंको जलाकर भस्म कर देगा। अरे! इन दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनकी बुद्धि न जाने कहाँ मारी गयी है। इन्होंने जो राज्य जूएके द्वारा छीना है, उसे ये मधु-सा मीठा समझते हैं; इसके द्वारा अपने सर्वनाशकी ओर इनकी दृष्टि ही नहीं जाती। देखो! शकुनिने कपटकी चालें चलकर अच्छा नहीं किया, फिर भी पाण्डवोंने इतनी साधुता की कि उसी समय इन्हें नहीं मारा। किन्तु इस कुपुत्रके मोहमें फँसकर मैंने तो वह काम क[illegible] जिसके कारण कौरवोंका अन्तकाल समीप दिखायी दे[illegible] सव्यसाची अर्जुन अद्वितीय धनुर्धर है, उसका गाण्डी[illegible] भी बड़े प्रचण्ड वेगवाला है। और अब उसके सिवा[illegible] और भी अनेकों दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। भल[illegible] यहाँ कौन है जो इन तीनोंके तेजको सहन कर सके।'

धृतराष्ट्रकी ये सब बातें सुबलपुत्र शकुनिने सु[illegible] फिर कर्णके साथ एकान्तमें बैठे हुए दुर्योधनके पास [illegible] उसे सुनायीं। यह सब सुनकर उस समय क्षुद्रबुद्धि [illegible] भी उदास हो गया। तब शकुनि और कर्णने उससे

'भरतनन्दन! अपने पराक्रमसे तुमने पाण्डवोंको य[illegible] निकाला है। अब तुम अकेले ही इस पृथ्वीको इस प्रकार भो[illegible] जैसे इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगता है। देखो! तुम्हारे बाहुब[illegible] आज पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर—चारों दिशाओंके नृपति[illegible] तुम्हें कर देते हैं। जो दीप्तिमती राजलक्ष्मी पहले पाण्डवों[illegible] सेवा करती थी, आज वह तुम्हें और तुम्हारे भाइयोंको मिली [illegible] है। राजन्! सुना है कि आजकल पाण्डवलोग द्वैतवनमें ए[illegible] सरोवरके ऊपर कुछ ब्राह्मणोंके साथ रहते हैं। सो मेरा ऐसा विचार है कि तुम खूब ठाट-बाटसे वहाँ चलो और सूर्य जैसे अपने तापसे संसारको तपाता है, उसी प्रकार अपने तेजसे

पाण्डवोंको सन्तप्त करो। तुम्हारी महिषियाँ भी बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर चलें और मृगचर्म एवं वल्कलधारिणी कृष्णाको देखकर छाती ठंडी करें तथा अपने ऐश्वर्यसे उसका जी जलावें।'

जनमेजय! दुर्योधनसे ऐसा कहकर कर्ण और शकुनि चुप हो गये। तब राजा दुर्योधनने कहा, 'कर्ण! तुम जो कुछ कहते हो, वह बात तो मेरे मनमें भी बसी हुई है। पाण्डवोंको वल्कलवस्त्र और मृगचर्म ओढ़े देखकर मुझे जैसी खुशी होगी, वैसी इस सारी पृथ्वीका राज्य पाकर भी नहीं होगी। भला, इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात क्या होगी कि मैं द्रौपदीको वनमें गेरुए कपड़े पहने देखूँ। परन्तु मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं सूझ रहा है, जिससे कि मैं द्वैतवनमें जा सकूँ और महाराज भी मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दें। इसलिये तुम मामा शकुनि और भाई दुःशासनके साथ सलाह करके कोई ऐसी युक्ति निकालो, जिससे हमलोग द्वैतवनमें जा सकें।'

तदनन्तर सब लोग 'बहुत ठीक' ऐसा कहकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। रात्रि बीतनेपर भोर होते ही वे फिर दुर्योधनके पास आये। तब कर्णने हँसकर दुर्योधनसे कहा, 'राजन्! मुझे द्वैतवनमें जानेका एक उपाय सूझ गया है, उसे सुनिये। आजकल आपकी गौओंके गोष्ठ द्वैतवनमें ही हैं और वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं; इसलिये हमलोग घोषयात्राके बहाने वहाँ चलेंगे।' यह सुनकर शकुनि भी हँसकर बोल उठा, 'द्वैतवनमें जानेका यह उपाय तो मुझे भी खूब जँचता है। इस कामके लिये महाराज हमें अवश्य अपनी अनुमति दे देंगे और पाण्डवोंसे मेल-जोल करनेके लिये भी समझावेंगे। ग्वाले लोग द्वैतवनमें तुम्हारे आनेकी बाट देखते ही हैं, इसलिये घोषयात्राके मिससे हम वहाँ जरूर जा सकते हैं।'

राजन्! इस प्रकार सलाह करके वे सब राजा धृतराष्ट्रके पास आये और उन सबने धृतराष्ट्रसे तथा धृतराष्ट्रने उनसे कुशलसमाचार पूछा। उन्होंने पहलेहीसे समंग नामके एक

गोपको पढ़ाकर ठीक कर लिया था। उसने राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें निवेदन किया कि महाराज! आजकल आपकी गौएँ समीप ही आयी हुई हैं। इसपर कर्ण और शकुनिने कहा, 'कुरुराज! इस समय गौएँ बड़े रमणीक प्रदेशमें ठहरी हुई हैं। यह समय गाय और बछड़ोंकी गणना करने तथा उनके रंग और आयु आदिका ब्योरा लिखनेके लिये भी बहुत उपयुक्त है। इसलिये आप दुर्योधनको वहाँ जानेकी आज्ञा दे दीजिये।' यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा, 'हे तात! गौओंकी देखभाल करनेमें तो कोई आपत्ति नहीं है; किन्तु मैंने सुना है कि आजकल नरशार्दूल पाण्डवलोग भी उधर कहीं पासहीमें ठहरे हुए हैं। इसलिये मैं तुमलोगोंको वहाँ जानेकी अनुमति नहीं दे सकता, क्योंकि तुमने उन्हें कपटसे जूएमें हराया है और उन्हें वनमें रहकर बहुत कष्ट भोगना पड़ा है। कर्ण! वे लोग तबसे निरन्तर तप करते रहे हैं और अब सब प्रकार शक्ति-सम्पन्न हो गये हैं। तुम तो अहङ्कार और मोहमें चूर हो र

हो, इसलिये उनका अपराध किये बिना मानोगे नहीं; और ऐसा होनेपर वे अपने तपके प्रभावसे तुम्हें अवश्य भस्म कर देंगे। यही नहीं, उनके पास अस्त्र-शस्त्र भी हैं ही। इसलिये क्रोधित हो जानेपर वे पाँचों वीर मिलकर तुम्हें अपनी शस्त्राग्निमें भी होम सकते हैं। यदि संख्यामें अधिक होनेके कारण किसी प्रकार तुमने ही उन्हें दबा लिया तो यह भी तुम्हारी नीचता ही समझी जायगी। और मैं तो तुम्हारे लिये उनपर काबू पाना असम्भव ही समझता हूँ। देखो! अर्जुनको जिस समय दिव्य अस्त्र नहीं मिले थे, तभी उसने सारी पृथ्वीको जीत लिया था; फिर अब दिव्यास्त्र पाकर तुम्हें मार डालना उसके लिये कौन बड़ी बात है? इसलिये मुझे स्वयं तुमलोगोंका वहाँ जाना उचित नहीं जान पड़ता। गौओंकी गणनाके लिये कोई दूसरे विश्वासपात्र आदमी भेजे जा सकते हैं।' इसपर शकुनिने कहा, 'राजन्! हमलोग केवल गौओंकी गणना करना चाहते हैं। पाण्डवोंसे मिलनेका हमारा विचार नहीं है। इसलिये वहाँ हमसे कोई अभद्रता होनेकी सम्भावना नहीं है। जहाँ पाण्डवलोग रहते होंगे, वहाँ तो हम जायँगे ही नहीं।'

शकुनिके इस प्रकार कहनेपर महाराज धृतराष्ट्रने, इच्छा न होनेपर भी, दुर्योधनको मन्त्रियोंके सहित जानेकी आज्ञा दे दी। उनकी आज्ञा पाकर राजा दुर्योधन बड़ी भारी सेना लेकर हस्तिनापुरसे चला। उसके साथ दुःशासन, शकुनि, कई भाई और हजारों स्त्रियाँ थीं। उनके सिवा आठ हजार रथ, तीस हजार हाथी, हजारों पैदल और नौ हजार घोड़े भी थे तथा सैकड़ोंकी संख्यामें बोझा ढोनेके छकड़े, दूकानें, बनिये और बंदीजन भी चले। इस सब लश्करके साथ वह जहाँ-तहाँ पड़ाव डालता घोषोंके पास पहुँच गया और वहाँ अपना डेरा लगा दिया। उसके साथियोंने भी उस सर्वगुणसम्पन्न, रमणीय, परिचित, सजल और सघन प्रदेशमें अपने-अपने ठहरनेकी जगहें ठीक कर लीं।

इस प्रकार जब सबके ठहरनेका ठीक-ठाक हो गया तो दुर्योधनने अपनी असंख्य गौओंका निरीक्षण किया और उनपर नंबर और निशानी डलवाकर सबकी अलग-अलग पहचान कर दी। फिर बछड़ोंपर निशानी डलवायी और उनमें जो नाथनेयोग्य थे, उन्हें अलग बता दिया। तथा जो गौएँ छोटे-छोटे बच्चोंवाली थीं, उनकी अलग गणना करा दी। इस प्रकार सब गाय-बछड़ोंकी गणना कर उनमेंसे तीन-तीन वर्षके बछड़ोंको अलग गिन वह ग्वालोंके साथ आनन्दसे वनमें विहार करने लगा। घूमते-घूमते वह द्वैतवनके सरोवरपर पहुँचा। उस समय उसका ठाट-बाट बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वहाँ उस सरोवरके तटपर ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर कुटी बनाकर रहते थे। वे महारानी द्रौपदीके सहित इस समय दिव्य विधिसे एक दिनमें समाप्त होनेवाला राजर्षि नामक यज्ञ कर रहे थे। तभी दुर्योधनने अपने सहस्रों सेवकोंको आज्ञा दी कि शीघ्र ही यहाँ क्रीडाभवन तैयार करो। सेवकलोग राजाज्ञाको सिरपर रख क्रीडाभवन बनानेके विचारसे द्वैतवनके सरोवरपर गये। जब वे वनके दरवाजेमें घुसने लगे तो उनके मुखियाको गन्धर्वोंने रोक दिया, क्योंकि उनके पहुँचनेसे पहले ही वहाँ गन्धर्वराज चित्ररथ जलक्रीडा करनेके विचारसे अपने सेवक देवता और अप्सराओंके सहित आया हुआ था और उसीने उस सरोवरको घेर रक्खा था।

इस प्रकार सरोवरको घिरा हुआ देख वे सब दुर्योधनके पास लौट आये। उनकी बात सुनकर दुर्योधनने कुछ रणोन्मत्त सैनिकोंको यह आज्ञा देकर कि 'उन्हें वहाँसे निकाल दो' उस सरोवरपर भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर गन्धर्वोंसे कहा, 'इस समय धृतराष्ट्रके पुत्र महाबली महाराज दुर्योधन यहाँ जलविहारके लिये आ रहे हैं, इसलिये तुमलोग यहाँसे हट जाओ।' राजपुरुषोंकी यह बात सुनकर गन्धर्व हँसने लगे और बोले, 'मालूम होता है तुम्हारा राजा दुर्योधन बड़ा ही मन्दबुद्धि है, उसे कुछ भी होश नहीं है; इसीसे हम देवताओंपर वह इस प्रकार हुकूमत चलाता है मानो हम बनिये ही हों। तुमलोग भी निःसन्देह बुद्धिहीन हो और मृत्युके मुँहमें जाना चाहते हो, इसीसे होशकी बात छोड़कर उसके कहनेसे ही हमारे सामने ऐसे वचन बोल रहे हो। इसलिये तुम या तो अपने राजाके पास लौट जाओ, नहीं तो इसी समय यमराजके घरकी हवा खाओगे।'

तब वे सब योद्धा इकट्ठे होकर दुर्योधनके पास आये और गन्धर्वोंने जो-जो बातें कही थीं, वे सब दुर्योधनको सुना दीं। इससे दुर्योधनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और उसने अपने सेनापतियोंको आज्ञा दी, 'अरे! मेरा अपमान करनेवाले इन पापियोंको जरा मजा तो चखा दो। कोई परवा नहीं, वहाँ देवताओंके सहित स्वयं इन्द्र ही क्रीडा क्यों न करता हो।' दुर्योधनकी आज्ञा पाते ही धृतराष्ट्रके सभी पुत्र और सहस्रों योद्धा कमर कसकर तैयार हो गये और गन्धर्वोंको मार-पीटकर बलात्कारसे उस वनमें घुस गये।

गन्धर्वोंने यह सब समाचार अपने स्वामी चित्रसेनको

जाकर सुनाया। तब उसने उन्हें आज्ञा दी कि 'जाओ, इन नीच कौरवोंकी अच्छी तरह मरम्मत कर दो।' तब वे सब-के-सब अस्त्र-शस्त्र लेकर कौरवोंपर टूट पड़े। कौरवोंने जब उन्हें अकस्मात् हथियार उठाये अपनी ओर आते देखा तो वे दुर्योधनके देखते-देखते इधर-उधर भाग गये। तब दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण तथा धृतराष्ट्रके कुछ अन्य पुत्र रथोंपर चढ़कर गन्धर्वोंके सामने डट गये। कर्ण उन सबके आगे रहा। बस, दोनों ओरसे बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। कौरवोंकी बाणवर्षाने गन्धर्वोंके शिकंजे ढीले कर दिये। तब गन्धर्वोंको भयभीत देख चित्रसेनको क्रोध चढ़ आया और उसने कौरवोंका नाश करनेके लिये मायास्त्र उठाया। चित्रसेनकी मायासे कौरव चक्करमें पड़ गये। उस समय एक-एक कौरव वीरको दस-दस गन्धर्वोंने घेर लिया। उनकी मारसे पीडित होकर वे रणभूमिसे प्राण लेकर भागे। इस प्रकार कौरवोंकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी। अकेला कर्ण ही पर्वतके समान अपने स्थानपर अचल खड़ा रहा। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि यद्यपि बहुत घायल हो गये थे, तो भी उन्होंने गन्धर्वोंके आगे पीठ नहीं दिखायी। वे बराबर मैदानमें डटे ही रहे। तब गन्धर्वोंने सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें मिलकर अकेले कर्णपर ही धावा बोल दिया। उन्होंने कर्णके रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब वह हाथमें ढाल-तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और विकर्णके रथपर बैठकर प्राण बचानेके लिये उसके घोड़े छोड़ दिये।

अब तो दुर्योधनके देखते-देखते कौरवोंकी सेना भागने लगी। किन्तु और सब भाइयोंके पीठ दिखानेपर भी दुर्योधनने मुँह न मोड़ा। जब उसने देखा कि अब गन्धर्वोंकी अपार सेना उसीकी ओर बढ़ रही है तो उसने उसका जवाब भीषण बाणवर्षासे ही दिया। किन्तु उस बाणवर्षाकी कुछ भी परवा न कर गन्धर्वोंने उसे मार डालनेके विचारसे चारों ओरसे घेर लिया। उन्होंने अपने बाणोंसे उसके रथको चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार रथसे नीचे गिर जानेपर उसे चित्रसेनने झपटकर जीवित ही कैद कर लिया। इसके बाद बहुत-से

गन्धर्वोंने रथमें बैठे हुए दुःशासनको घेरकर पकड़ लिया। कुछ गन्धर्वोंने विन्द, अनुविन्द और समस्त राजमहिलाओंको पकड़ लिया। गन्धर्वोंके आगेसे भागी हुई कौरवोंकी सेनाने सारा बचा-खुचा सामान लेकर पाण्डवोंकी शरण ली। तब दुर्योधनको गन्धर्वोंके पंजेसे छुड़ानेके लिये अत्यन्त आतुर हुए उनके मन्त्रियोंने रो-रोकर धर्मराजसे कहा, 'महाराज! हमारे प्रियदर्शी महाबाहु धृतराष्ट्रकुमार महाराज दुर्योधनको गन्धर्व पकड़कर लिये जाते हैं। उन्होंने दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुर्जय तथा सब रानियोंको भी कैद कर लिया है। अतः आप उनकी रक्षाके लिये दौड़िये।'

दुर्योधनके उन बूढ़े मन्त्रियोंको इस प्रकार दीन और दुखी होकर युधिष्ठिरके सामने गिड़गिड़ाते देख भीमसेनने कहा, 'हम बहुत प्रयत्न करके हाथी-घोड़ोंसे लैस होकर जो काम करते, वही आज गन्धर्वोंने कर दिया। यह बात हमारे सुननेमें आयी है कि जो लोग असमर्थ पुरुषोंसे द्वेष करते हैं, उन्हें दूसरे लोग ही नीचा दिखा देते हैं। यह बात हमें गन्धर्वोंने प्रत्यक्ष करके दिखा दी। हमलोग इस समय वनमें

रहकर शीत, वायु और घाम आदि सह रहे हैं तथा तप करनेसे हमारे शरीर बहुत कृश हो गये हैं। इस प्रकार हम इस समय विपरीत स्थितिमें हैं और दुर्योधन समयकी अनुकूलतासे मौज उड़ा रहा है, सो वह दुर्मति हमें इस अवस्थामें देखना चाहता था! वास्तवमें कौरवलोग बड़े ही कुटिल हैं।' जब भीमसेन कठोर स्वरसे इस प्रकार कहने लगे तो धर्मराजने कहा, 'भैया भीम! यह समय कड़वी बातें सुनानेका नहीं है। देखो, ये लोग भयसे पीडित होकर उससे त्राण पानेके लिये हमारी शरणमें आये हैं और इस समय बड़ी विकट परिस्थितिमें पड़े हुए हैं। फिर तुम ऐसी बातें क्यों कहते हो? कुटुम्बियोंमें मतभेद और लड़ाई-झगड़े होते ही रहते हैं, कभी-कभी उनमें वैर भी ठन जाता है; किन्तु जब कोई बाहरका पुरुष उनके कुलपर आक्रमण करता है तो उस तिरस्कारको वे नहीं सह सकते। समर्थ भीम! गन्धर्वलोग बलात्कारसे दुर्योधनको पकड़कर ले गये हैं और हमारे कुलकी स्त्रियाँ भी आज बाहरी लोगोंके अधिकारमें हैं। इस प्रकार यह हमारे कुलका ही तिरस्कार है। अतः शूरवीरो! शरणागतोंकी रक्षा करने और अपने कुलकी लाज रखनेके लिये खड़े हो जाओ। अस्त्र-शस्त्र धारण कर लो। देरी मत करो! अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम सब मिलकर जाओ और दुर्योधनको छुड़ा लाओ। देखो, कौरवोंके इन सुनहरी ध्वजाओंवाले रथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं। तुम इनमें बैठकर जाओ और गन्धर्वोंसे लड़कर दुर्योधनको छुड़ानेके लिये सावधानीसे प्रयत्न करो। अपनी शरणमें आये हुएकी तो प्रत्येक राजा यथाशक्ति रक्षा करता है, फिर तुम तो महाबली भीम हो। भला, इससे बढ़कर और क्या बात होगी कि आज दुर्योधन तुम्हारे बाहुबलके भरोसे अपने जीवनकी आशा कर रहा है। हे वीर! मैं तो स्वयं ही इस कार्यके लिये जाता; किन्तु इस समय मैंने यज्ञ आरम्भ किया है, इसलिये मुझे इस समय कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिये। देखो, यदि वह गन्धर्वराज समझाने-बुझानेसे न माने तो थोड़ा पराक्रम दिखाकर दुर्योधनको छुड़ा लाना और यदि हल्के-हल्का युद्ध करनेपर भी वह न छोड़े तो किसी भी प्रकार उसे दबाकर दुर्योधनको मुक्त कर देना।'

धर्मराजकी यह बात सुनकर अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि 'यदि गन्धर्वलोग समझाने-बुझानेसे कौरवोंको नहीं छोड़ेंगे तो आज

पृथ्वी गन्धर्वराजका रक्तपान करेगी।' सत्यवादी अर्जुनकी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर कौरवोंके जी-में-जी आया।

पाण्डवोंका गन्धर्वोंसे युद्ध करके दुर्योधनादिको छुड़ाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरकी बातें सुनकर भीम आदि सभी पाण्डवोंके मुख हर्षसे खिल गये और वे युद्धके लिये उत्साहित होकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने अभेद्य कवच और तरह-तरहके दिव्य आयुध धारण किये और गन्धर्वोंपर धावा बोल दिया। जब विजयोन्मत्त गन्धर्वोंने देखा कि लोकपालोंके समान चारों पाण्डव रथोंपर चढ़कर रणभूमिमें आये हैं तो वे लौट पड़े और व्यूहरचना करके उनके सामने खड़े हो गये।

तब अर्जुनने गन्धर्वोंको समझाते हुए कहा, 'तुम मेरे भाई राजा दुर्योधनको छोड़ दो।' इसपर गन्धर्वोंने कहा, 'हमें आज्ञा देनेवाला तो गन्धर्वराज चित्रसेनके सिवा और कोई नहीं है; एक वे ही हमें जैसी आज्ञा देते हैं, वैसा हम करते हैं।' गन्धर्वोंके ऐसा कहनेपर कुन्तीनन्दन अर्जुनने उनसे फिर कहा, 'परायी स्त्रियोंको पकड़ना और मनुष्योंके साथ युद्ध करना—ऐसा निन्दनीय काम तो गन्धर्वराजको शोभा नहीं देता। तुमलोग धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा मानकर

इन महापराक्रमी धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोड़ दो। यदि तुम शान्तिसे इन्हें नहीं छोड़ोगे तो मैं स्वयं ही पराक्रमद्वारा इनको छुड़ा लूँगा।' ऐसा कहनेपर भी जब गन्धर्वोंने अर्जुनकी बात उड़ा दी तो वे उनके ऊपर पैने-पैने बाण बरसाने लगे तथा गन्धर्वोंने भी उनपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। अर्जुनने आग्नेयास्त्र छोड़कर हजारों गन्धर्वोंको यमराजके पास भेज दिया। महाबली भीमने भी तीखे-तीखे तीरोंसे सैकड़ों गन्धर्वोंका अन्त कर दिया। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने भी संग्रामभूमिमें कदम बढ़ाकर अनेकों शत्रुओंको घेर-घेरकर मार डाला। महारथी पाण्डवलोग जब गन्धर्वोंको इस प्रकार दिव्य अस्त्रोंसे मारने लगे तो वे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको लेकर आकाशमें उड़कर जाने लगे। कुन्तीकुमार अर्जुनने उन्हें आकाशकी ओर उड़ते देख बाणोंका एक ऐसा विस्तृत जाल छा दिया कि जिसने चारों ओरसे उनकी गति रोक दी। उस जालमें वे उसी प्रकार बंद हो गये, जैसे पिंजड़ेमें पक्षी। अतः वे अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनपर गदा, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब महावीर अर्जुनने उनपर स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय तथा सौम्य आदि दिव्य अस्त्र चलाये। इनकी मारसे वे अत्यन्त पीडित होने लगे। ऊपर जानेसे तो उन्हें बाणोंका जाल रोक रहा था और इधर-उधर जाते तो अर्जुनके बाणोंसे बिंधने लगते।

जब चित्रसेनने देखा कि गन्धर्व अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त त्रस्त हो रहे हैं तो वह गदा लेकर उनकी ओर दौड़ा। किन्तु अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा उस लोहेकी गदाके सात टुकड़े कर दिये। तब वह मायासे अदृश्य रहकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। इससे अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ और वे दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित आकाशचारी आयुधोंसे युद्ध करने लगे तथा अन्तर्धान रहनेपर भी उसके शब्दका अनुसरण करके शब्दवेधी बाणोंसे उसे बींधने लगे। अर्जुनके उन अस्त्र-शस्त्रोंसे चित्रसेन तिलमिला उठा और उसने अपनेको प्रकट करके कहा, 'अर्जुन! देखो, युद्धमें तुम्हारे सामने आया हुआ मैं तुम्हारा सखा चित्रसेन हूँ।' अर्जुनने जब अपने

सखाको युद्धसे जर्जरित देखा तो उन्होंने अपने दिव्यास्त्रोंको लौटा लिया। यह देखकर सब पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए और फिर रथोंमें बैठे हुए भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और चित्रसेन आपसमें कुशल-प्रश्न करने लगे।

तब महाधनुर्धर अर्जुनने चित्रसेनसे हँसकर पूछा—'वीरवर! कौरवोंका पराभव करनेमें तुम्हारा क्या उद्देश्य था? तुमने स्त्रियोंके सहित दुर्योधनको क्यों कैद किया है?' चित्रसेनने कहा, ''वीर धनञ्जय! देवराज इन्द्रको स्वर्गमें ही दुरात्मा दुर्योधन और पापी कर्णका अभिप्राय मालूम हो गया था। ये लोग यह सोचकर कि आजकल पाण्डवलोग वनमें विपरीत परिस्थितिमें रहकर अनाथोंकी तरह कष्ट भोग रहे हैं और हम खूब आनन्दमें हैं, तुम्हें देखने और इस दुर्दशामें यशस्विनी द्रौपदीकी हँसी उड़ानेके लिये आये थे। इनकी ऐसी खोटी मनोवृत्ति जानकर उन्होंने मुझसे कहा, 'जाओ, दुर्योधनको उसके भाई और मन्त्रियोंके सहित बाँधकर यहाँ ले आओ। किन्तु देखो, भाइयोंके सहित अर्जुनकी सब प्रकार रक्षा करना; क्योंकि वह तुम्हारा प्रिय सखा और

(गानविद्याका) शिष्य है ।' तब देवराजके कहनेसे मैं तुरंत ही यहाँ आ गया और इस दुष्टको बाँध भी लिया । अब मैं देवलोकको जा रहा हूँ और इन्द्रके आज्ञानुसार इस दुरात्माको भी ले जाऊँगा ।'' अर्जुनने कहा, 'चित्रसेन ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो धर्मराजके आदेशसे तुम हमारे भाई दुर्योधनको छोड़ दो ।'

चित्रसेनने कहा—अर्जुन ! यह पापी है और बड़ा घमण्डमें भरा रहता है, इसे छोड़ना उचित नहीं है । इसने तो धर्मराज और कृष्णाको धोखा दिया था । धर्मराजका इस समय यह जो कुछ करना चाहता था, उसका पता नहीं है; अच्छा, चलो । उन्हें सब बातें बता देंगे; फिर उनकी जैसी इच्छा होगी, वैसा करेंगे ।

फिर वे सब महाराज युधिष्ठिरके पास गये और उसकी सब बातें उन्हें बता दीं । तब अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरने गन्धर्वोंकी बात सुनकर उनकी प्रशंसा की और समस्त कौरवोंको छुड़वा दिया । वे गन्धर्वोंसे कहने लगे, 'आपलोग बलवान् और शक्तिसम्पन्न हैं; यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने मेरे भाई-बन्धु और मन्त्रियोंके सहित दुराचारी दुर्योधनका वध नहीं किया । मेरे ऊपर आपलोगोंका यह बड़ा उपकार हुआ है ।' फिर बुद्धिमान् महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर अप्सराओंके सहित चित्रसेनादि गन्धर्व अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे स्वर्गको चले गये । देवराज इन्द्रने दिव्य अमृतकी वर्षा करके कौरवोंके हाथसे मरे हुए गन्धर्वोंको जीवित कर दिया । अपने स्वजन और राजमहिषियोंको गन्धर्वोंसे मुक्त कराकर पाण्डवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई । कौरवोंने स्त्री और कुमारोंके सहित पाण्डवोंका बड़ा सत्कार किया ।

तब भाइयोंके सहित बन्धनसे छूटे हुए दुर्योधनसे धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे कहा, 'भैया ! ऐसा साहस

फिर कभी मत करना; देखो, साहस करनेवालोंको कभी सुख नहीं मिलता । अब तुम सब भाइयोंके सहित कुशलपूर्वक अपने घर जाओ । इस घटनासे मनमें किसी प्रकारका खेद मत मानना ।' धर्मराजके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दुर्योधनने उन्हें प्रणाम किया और हृदयमें अत्यन्त लज्जित होकर अपने नगरकी ओर चला गया । उस समय वह ऐसा व्याकुल हो रहा था मानो उसकी इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी हों, तथा क्षोभके कारण उसका हृदय फटा जाता था ।

दुर्योधनका अनुताप और प्रायोपवेशका निश्चय

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! दुर्योधन लज्जाके भारसे बहुत दब गया था तथा शोकसे उसका हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । ऐसी स्थितिमें उसने हस्तिनापुरमें किस प्रकार प्रवेश किया, वह मुझे विस्तारसे सुनानेकी कृपा कीजिये ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! जब युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको विदा किया तो वह लज्जासे मुख नीचा किये हृदयमें कुढ़ता हुआ चतुरङ्गिणी सेनाके सहित वहाँसे हस्तिनापुरको चला । मार्गमें एक रमणीक स्थानपर, जहाँ जल और घासकी अधिकता थी, उसने विश्राम किया । वहाँ कर्णने उसके पास आकर कहा, 'राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका जीवन बच गया और हमारा पुनः समागम हुआ । मुझे तो आपके सामने ही गन्धर्वोंने ऐसा तंग किया कि मैं उनके बाणोंसे पीड़ित हुई सेनाको भी नहीं सँभाल सका । अन्तमें जब नाकमें दम आ गया तो वहाँसे भागना ही पड़ा । उस अतिमानुष युद्धसे आप रानियों और सेनाके सहित सकुशल लौट आये, किसी प्रकारका घाव आदि भी आपको नहीं लगा—यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । इस समय अपने भाइयोंके सहित आपने युद्धमें जो काम करके

दिखाया है, उसे कर सकनेवाला कोई दूसरा पुरुष संसारमें दिखायी नहीं देता ।'

कर्णके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्योधनने गद्गद-कण्ठ होकर कहा—राधेय ! तुम्हें असली भेदका पता नहीं है,

इसीसे मैं तुम्हारे कथनका बुरा नहीं मानता। तुम तो यही समझते हो कि गन्धर्वोंको मैंने अपने पराक्रमसे हराया है । सच्ची 'बात तो यह है कि मेरे और मेरे भाइयोंके साथ गन्धर्वोंका बहुत देरतक युद्ध हुआ और उसमें दोनों ही ओरकी हानि भी हुई । किन्तु जब वे मायासे युद्ध करने लगे तो हम उनका सामना नहीं कर सके। अन्तमें हार हमारी ही हुई और गन्धर्वोंने हमें सेवक, मन्त्री, पुत्र, स्त्री, सेना और सवारियोंके सहित कैद कर लिया । फिर वे हमें आकाशमार्गसे ले चले । उसी समय हमारे कुछ सैनिक और मन्त्रियोंने पाण्डवोंके पास जाकर कहा कि 'गन्धर्वलोग धृतराष्ट्रकुमार राजा दुर्योधनको उनके भाई और स्त्रियोंके सहित पकड़कर ले जा रहे हैं, इस समय आप उन्हें छुड़ाइये ।' तब धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको समझाकर हमें बन्धनसे छुड़ानेके लिये आज्ञा दी । पाण्डवलोग उस स्थानपर आये और गन्धर्वोंको हरानेकी शक्ति रखते हुए भी उन्होंने उन्हें समझाकर शान्तिपूर्वक छोड़ देनेका प्रस्ताव किया । किन्तु गन्धर्व हमें छोड़नेको तैयार नहीं हुए । इसपर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । तब गन्धर्वलोग रणभूमि छोड़कर हमें घसीटते हुए आकाशमें चढ़ने लगे । उस समय हमने आँख उठायी तो देखा कि सब ओरसे बाणोंके जालसे घिरा हुआ अर्जुन दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा कर रहा है । इस प्रकार जब अर्जुनके पैने बाणोंसे सारी दिशाएँ रुक गयीं तो अर्जुनके मित्र चित्रसेनने अपना रूप प्रकट कर दिया । फिर दोनों मित्र आपसमें खूब मिले और दोनोंहीने कुशल-प्रश्न किया । कर्ण ! फिर शत्रुदमन अर्जुनने हँसते-हँसते उत्साहपूर्वक यह बात कही, 'वीरवर ! आप मेरे भाइयोंको छोड़ दीजिये । पाण्डवोंके जीवित रहते हुए इनका तिरस्कार नहीं होना चाहिये ।' महात्मा अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर गन्धर्वराज चित्रसेनने उसे बताया कि हमलोग पाण्डवोंको उनकी स्त्रीके सहित इस दुर्दशामें देखनेके लिये वहाँ गये थे । चित्रसेनने जब ये शब्द कहे तो मैं लज्जासे यह सोचने लगा कि धरती फट जाय तो मैं यहीं समा जाऊँ । फिर पाण्डवोंके सहित गन्धर्वोंने युधिष्ठिरके पास जाकर हमें कैदीकी हालतमें खड़ा किया और उन्हें भी हमारा खोटा विचार सुनाया । इस प्रकार स्त्रियोंके सामने मैं दीन और कैदीकी दशामें युधिष्ठिरको भेंट किया गया । बताओ, इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी ? जिनका मैंने सर्वदा निरादर किया और जिनका सदासे शत्रु बना रहा, उन्होंने मुझ मन्दमतिको बन्धनसे छुड़ाया और मुझे जीवनदान दिया । हे वीर ! इसकी अपेक्षा तो यदि उस महान् संग्राममें मेरे प्राण निकल जाते तो बहुत अच्छा होता । इस प्रकारका जीना किस कामका ? यदि गन्धर्व मुझे मार डालते तो संसारमें मेरा यश फैल जाता और इन्द्रलोकमें अक्षय पुण्यलोकोंकी प्राप्ति होती । अब मेरा जो विचार है, वह सुनो । मैं यहाँ अन्न-जल छोड़कर प्राण त्याग दूँगा । तुम और दुःशासनादि मेरे सब भाई हस्तिनापुर चले जाओ । अब मैं हस्तिनापुर जाकर महाराजके आगे क्या उत्तर दूँगा ? भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, विदुर, सञ्जय, बाह्लीक, भूरिश्रवा तथा दूसरे बड़े-बूढ़े और उदासीन वृत्तिवाले प्रधान-प्रधान ब्राह्मण मुझसे क्या कहेंगे और मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? इस जीनेसे तो मरना ही अच्छा है ।

इस प्रकार दुर्योधन अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो रहा था । उसने फिर दुःशासनसे कहा, 'भैया ! तुम मेरी बात सुनो । मैं तुम्हें राज्य देता हूँ । इसे स्वीकार करके तुम मेरी जगह राजा बनो और कर्ण तथा शकुनिकी सलाहसे इस समृद्धिशाली

पृथ्वीका शासन करो।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर दुःशासनका गला दुःखसे भर आया और उसने दुर्योधनके चरणोंपर सिर रखते हुए रोकर कहा, 'महाराज! ऐसा कभी नहीं हो सकता। सारी भूमि फट जाय, सूर्य अपने तेजको और चन्द्रमा अपनी शीतलताको त्याग दे, हिमालय अपने स्थानको छोड़ दे और अग्नि उष्णताका परित्याग कर दे; तो भी आपके बिना मैं पृथ्वीका शासन नहीं करूँगा। बस, आप प्रसन्न हो जाइये।' ऐसा कहकर दुःशासनने दोनों हाथोंसे अपने बड़े भाईके चरण पकड़ लिये और वह ढाढ़ मारकर रोने लगा। दुर्योधन और दुःशासनको अत्यन्त दुःखित देख कर्णको भी बड़ी व्यथा हुई और उसने उनसे कहा, 'आप दोनों नासमझीसे सामान्य पुरुषोंके समान क्यों शोक करते हैं? शोक करनेवालोंका शोक तो कभी दूर नहीं हो सकता। अतः धैर्य धारण करें, इस प्रकार शोक करके शत्रुओंका हर्ष मत बढ़ाइये। पाण्डवोंने आपको गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ाया—ऐसा करके तो उन्होंने अपने कर्त्तव्यका ही पालन किया है। राज्यके भीतर रहनेवाले पुरुषोंको सर्वदा राजाका प्रिय करना ही चाहिये। इसलिये ऐसी कोई बात हो भी गयी तो उससे आपको सन्ताप नहीं होना चाहिये। देखिये, आपके प्रायोपवेशके विचारको सुनकर आपके सभी भाई उदास हो गये हैं। इसलिये इस सङ्कल्पको छोड़कर खड़े होइये और अपने भाइयोंको ढाढस बँधाइये। यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं भी आपके चरणोंकी सेवामें यहीं रहूँगा। आपके बिना तो मैं भी जीवित नहीं रह सकता।'

तब सुबलपुत्र शकुनिने भी दुर्योधनको समझाते हुए कहा—राजन्! कर्णने जो यथार्थ बात कही है, वह तो तुमने सुनी ही है। फिर मैंने तुम्हें जो समृद्धिशालिनी राजलक्ष्मी पाण्डवोंसे छीनकर दी है, उसे तुम इस प्रकार मोहवश क्यों खोना चाहते हो? तुम आज मूर्खतासे ही अपने प्राण त्यागनेको तैयार हुए हो। अथवा मेरे विचारसे तुमने कभी बड़े-बूढ़ोंकी सेवा नहीं की, इसीसे ऐसी उल्टी बातें सूझती हैं। यह तो हर्षकी बात है और तुम्हें इसके लिये पाण्डवोंका सत्कार करना चाहिये, और तुम शोक कर रहे हो! तुम्हारा यह काम तो उल्टा ही है। इसलिये तुम उदासी छोड़ दो और पाण्डवोंने तुम्हारे साथ जो उपकार किया है, उसे स्मरण करके उन्हें उनका राज्य दे दो। इससे तुम यश और धर्म प्राप्त करोगे। तुम मेरी बात मानकर ऐसा ही करो, इससे तुम कृतज्ञ माने जाओगे। तुम पाण्डवोंके साथ भाईचारेका-सा व्यवहार करके उन्हें अपनी जगह बैठा दो और उनका पैतृक राज्य उन्हें सौंप दो। इससे तुम्हें सुख मिलेगा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार दुर्योधनको उसके सुहृद्, मन्त्री, भाई और बन्धु-बान्धवोंने

बहुतेरा समझाया; परन्तु वह अपने निश्चयसे नहीं डिगा। उसने कुश और वल्कलके वस्त्र धारण किये और स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे वाणीका संयम कर उपवासके नियमोंका पालन करने लगा।

दुर्योधनका प्रायोपवेश-परित्याग

दुर्योधनको प्रायोपवेश करते देखकर देवताओंसे पराजित पातालवासी दैत्य और दानवोंने विचारा कि यदि इस प्रकार दुर्योधनका प्राणान्त हो गया तो हमारा पक्ष गिर जायगा। इसलिये उन्होंने उसे अपने पास बुलानेके लिये बृहस्पति और शुक्रके बताये हुए अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंद्वारा औपनिषद कर्मकाण्ड आरम्भ किया। वेद-वेदाङ्गमें निष्णात ब्राह्मणोंने

मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निमें घी और दूधकी आहुति देने लगे। कर्म समाप्त होनेपर यज्ञकुण्डमेंसे एक बड़ी ही अद्भुत कृत्या जँभाई लेती प्रकट हुई और बोली, 'बताओ, मैं क्या करूँ?' तब दैत्योंने प्रसन्न होकर कहा, 'तू प्रायोपवेश करते हुए राजा दुर्योधनको यहाँ ले आ।' तब कृत्या 'जो आज्ञा' कहकर गयी और एक क्षणमें ही दुर्योधनके पास पहुँच गयी। फिर एक क्षणमें ही उसे लेकर रसातलमें पहुँच गयी। दुर्योधनको आया देखकर दानवोंके चित्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उससे अभिमानपूर्वक कहा, 'भरतकुलदीपक महाराज दुर्योधन! आपके पास सदा ही बड़े-बड़े शूरवीर और महात्मा बने रहते

हैं। फिर आपने यह प्रायोपवेशका साहस क्यों किया है? जो पुरुष आत्महत्या करता है, वह तो अधोगतिको प्राप्त होता है और लोकमें भी उसकी निन्दा होती है। आपका यह विचार तो धर्म, अर्थ और सुखका नाश करनेवाला है; इसे आप छोड़ दीजिये। आप शोक क्यों करते हैं, आपके लिये अब किसी प्रकारका खटका नहीं है। आपकी सहायताके लिये अनेकों दानववीर पृथ्वीमें उत्पन्न हो चुके हैं। कुछ दूसरे दैत्य भीष्म, द्रोण और कृप आदिके शरीरोंमें प्रवेश करेंगे, जिससे वे दया और स्नेहको तिलाञ्जलि देकर आपके शत्रुओंसे संग्राम करेंगे। उनके सिवा क्षत्रियजातिमें उत्पन्न हुए और भी अनेकों दैत्य और दानव आपके शत्रुओंके साथ युद्धमें पूरे पराक्रमसे भिड़ जायँगे। महारथी कर्ण अर्जुन तथा और भी सभी शत्रुओंको परास्त करेगा। इस कामके लिये हमने संशप्तक नामवाले सहस्रों दैत्य और राक्षसोंको नियुक्त कर दिया है। वे सुप्रसिद्ध वीर अर्जुनको नष्ट कर डालेंगे। आप शोक न करें, अब इस पृथ्वीको शत्रुओंसे रहित ही समझें और निर्द्वन्द्व होकर इसे भोगें। देखिये, देवताओंने तो पाण्डवोंका आश्रय ले रक्खा है और आप सर्वदा हमारी गति हैं।' इस प्रकार दुर्योधनको उपदेश देकर उन्होंने कहा, 'अब आप अपने घर जाइये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कीजिये।'

दैत्योंके विदा करनेपर कृत्याने दुर्योधनको फिर प्रायोपवेशके स्थानपर ही पहुँचा दिया और वह वहीं अन्तर्धान हो गयी। कृत्याके चले जानेपर दुर्योधनको चेत हुआ और उसने इस सब प्रसंगको एक स्वप्न-सा समझा। दूसरे दिन सबेरा होते ही सूतपुत्र कर्णने हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा, 'महाराज! मरकर कोई भी मनुष्य शत्रुओंको नहीं जीत सकता; जो जीता रहता है, वह कभी सुखके दिन भी देख लेता है। आप इस तरह क्यों सो रहे हैं, शोककी ऐसी क्या बात है? एक बार अपने पराक्रमसे शत्रुओंको सन्तप्त करके अब मरना क्यों चाहते हैं? आपको अर्जुनका पराक्रम देखकर भय तो नहीं हो गया है। यदि ऐसा है तो आपके आगे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं उसे संग्राममें मार डालूँगा। मैं प्रतिज्ञापूर्वक शस्त्र छूकर कहता हूँ कि पाण्डवोंके अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष समाप्त होते ही मैं उन्हें आपके अधीन कर दूँगा।' कर्णके इस प्रकार कहने और दुःशासनादिके बहुत अनुनय-विनय करनेपर तथा दैत्योंकी बात याद करके दुर्योधन आसनसे खड़ा हो गया। उसने पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेका पक्का विचार कर लिया और फिर हस्तिनापुर चलनेके लिये रथ, हाथी, घोड़े और पदातियोंसे युक्त अपनी चतुरङ्गिणी सेनाको तैयारी करनेकी आज्ञा दी। वह विशाल वाहिनी सज-धजकर गङ्गाजीके प्रवाहके समान चलने लगी। इस प्रकार कुछ ही समयमें सब लोग हस्तिनापुर पहुँच गये।

कर्णकी दिग्विजय और दुर्योधनका वैष्णव याग

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! कृपा करके कहिये कि जिस समय महामना पाण्डवगण द्वैतवनमें रहते थे, उस समय हस्तिनापुरमें महाधनुर्धर धृतराष्ट्रपुत्र, सूतपुत्र कर्ण, महाबली शकुनि, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यने क्या किया ?

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! दुर्योधनके लौट आनेपर पितामह भीष्मने उससे कहा, 'वत्स ! जब तुम द्वैतवनको जानेके लिये तैयार हुए थे, उसी समय मैंने तुमसे कहा था कि मुझे तुम्हारा वहाँ जाना अच्छा नहीं मालूम होता। किन्तु तुम वहाँ चले ही गये। वहाँ शत्रुओंके हाथसे तुम्हें बन्धनमें पड़ना पड़ा और फिर धर्मज्ञ पाण्डवोंने ही तुम्हें उनसे छुड़ाया; इससे तुम्हें लज्जा नहीं आती ? देखो, उस समय सारी सेना और तुम्हारे भी सामने ही यह सूतपुत्र गन्धर्वोंसे
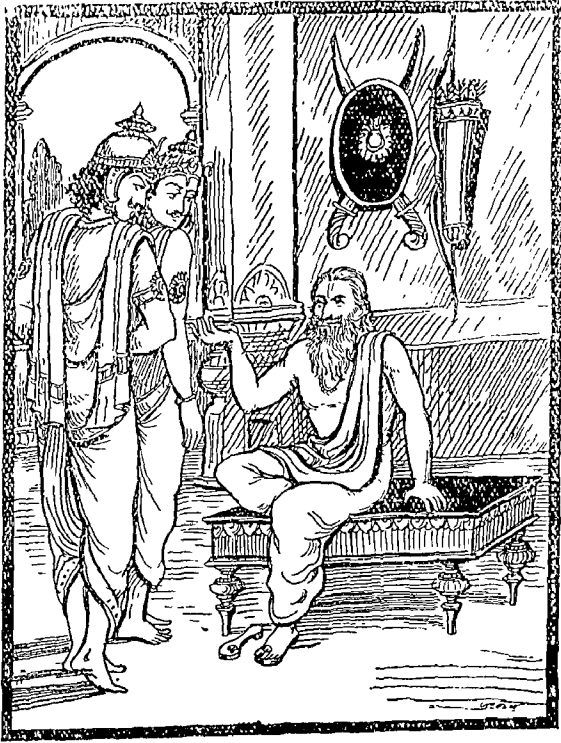
डरकर भाग गया था। उस समय तुमने महात्मा पाण्डव और दुष्टबुद्धि कर्णका पराक्रम भी देखा ही होगा। यह कर्ण तो धनुर्वेद, शूरवीरता या धर्ममें पाण्डवोंके चौथाई हिस्सेके बराबर भी नहीं है। अतः इस कुलकी वृद्धिके लिये मैं तो पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लेना ही अच्छा समझता हूँ।'

भीष्मके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्योधन हँसकर शकुनिके साथ चल दिये। उन्हें जाते देखकर कर्ण और दुःशासनादि भी उनके पीछे हो लिये। उन्हें अपनी पूरी बात सुने बिना ही जाते देख भीष्मजी भी अपने घरको चले गये। उनके जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन फिर उसी जगह आकर अपने मन्त्रियोंसे सलाह करने लगा कि 'हमारा हित किस प्रकार हो और अब हमें क्या करना चाहिये ?' उस समय कर्णने कहा—'राजन् ! सुनिये, मैं आपसे एक बात कहता हूँ। भीष्म सदा ही हमारी निन्दा करते रहते हैं और पाण्डवोंकी प्रशंसा करते हैं। आपसे द्वेष करनेके कारण उनका मेरे प्रति भी द्वेष हो गया है और आपके आगे वे मेरी तरह-तरहसे निन्दा करते हैं। सो मैं भीष्मके उन शब्दोंको सहन नहीं कर सकता। आप मुझे सेवक, सेना और सवारी देकर पृथ्वीको विजय करनेकी आज्ञा दीजिये। आपकी विजय अवश्य होगी। मैं शस्त्रोंकी शपथ करके सची प्रतिज्ञा करता हूँ।'

कर्णके ये शब्द सुनकर दुर्योधनने अत्यन्त प्रेमसे कहा—'वीर कर्ण ! तुम सदा ही मेरा हित करनेके लिये उद्यत रहते हो। यदि तुम्हें निश्चय है कि मैं अपने सारे शत्रुओंको परास्त कर दूँगा तो तुम जाओ और मेरे मनको शान्त करो।' दुर्योधनके ऐसा कहनेपर कर्णने अपनी दिग्विजय-यात्राके लिये सभी आवश्यक चीजें तैयार करनेकी आज्ञा दी। फिर अच्छा मुहूर्त्त देखकर माङ्गलिक द्रव्योंसे स्नान कर शुभ नक्षत्र और तिथिमें कूच किया। उस समय ब्राह्मणोंने उसे आशीर्वाद दिया तथा उसके रथकी घरघराहटसे तीनों लोक गूँज उठे।

हस्तिनापुरसे बड़ी भारी सेनाके साथ चलकर पहले महाधनुर्धर कर्णने राजा द्रुपदकी राजधानीको घेरा और बड़ा भीषण युद्ध करके वीर द्रुपदको अपना आश्रित बना लिया। उससे कररूपमें उसने बहुत-सा सोना, चाँदी और तरह-तरहके रत्न लिये। उसके बाद जो राजा द्रुपदके अधीन थे, उन्हें जीतकर उनसे भी कर लिया। फिर वहाँसे चलकर वह उत्तर दिशामें गया और उधरके सब राजाओंको हराया। महाराज भगदत्तको जीतकर वह शत्रुओंसे लड़ता-लड़ता हिमालयपर चढ़ गया। इस प्रकार उस ओरके सब राजाओंको जीतकर उसने नेपाल देशके राजाओंको भी परास्त किया। फिर हिमालयसे नीचे आकर पूर्वकी ओर धावा

पास जाकर प्रणाम किया और उनसे कहा, 'महाराज! नृपतिश्रेष्ठ दुर्योधन अपने पराक्रमसे बहुत-सा धन प्राप्त करके एक महायज्ञ कर रहे हैं। उसमें सम्मिलित होनेके लिये जहाँ-तहाँसे बहुत-से राजा और ब्राह्मण आ रहे हैं। महामना कुरुराजने मुझे आपकी सेवामें भेजा है। धृतराष्ट्रकुमार महाराज दुर्योधन आपको यज्ञके लिये निमन्त्रित करते हैं। आप उनका यह अभीष्ट यज्ञ देखनेकी कृपा करें।'

दूतकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, 'अपने पूर्वजोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले राजा दुर्योधन महायज्ञके द्वारा
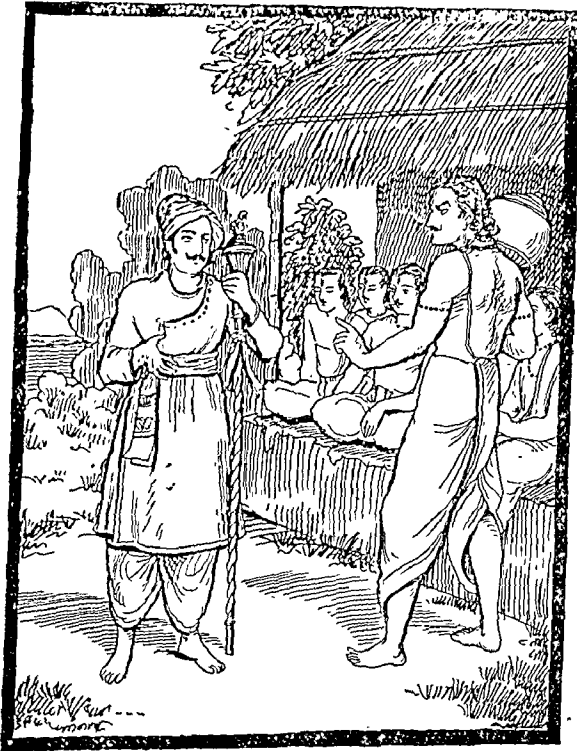
भगवान्‌का यजन कर रहे हैं—यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। हम भी उसमें सम्मिलित होते; किन्तु इस समय ऐसा किसी प्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि तेरह वर्षतक हमें वनवासके नियमका पालन करना है।' धर्मराजकी यह बात सुनकर भीमसेनने कहा, 'तुम दुर्योधनसे कह देना कि तेरह वर्ष बीतनेपर जब युद्धयज्ञमें अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रज्वलित अग्निमें तुझे होमा जायगा, तभी धर्मराज युधिष्ठिर वहाँ आवेंगे।' भीमके सिवा अन्य पाण्डवोंने कुछ भी नहीं कहा। फिर दूतने दुर्योधनके पास जाकर सब बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं।

अब अनेकों देशोंसे प्रधान-प्रधान पुरुष और ब्राह्मण हस्तिनापुरमें आने लगे। धर्मज्ञ विदुरजीने दुर्योधनकी आज्ञासे सभी वर्णोंके पुरुषोंका यथायोग्य सत्कार किया तथा उनके इच्छानुसार खाने-पीनेकी सामग्री, सुगन्धित माला और तरह-तरहके वस्त्र देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। राजा दुर्योधनने सभीके लिये शास्त्रानुसार यथायोग्य निवासगृह बनवाये तथा सभी राजा और ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर विदा किया। फिर वह भाइयों तथा कर्ण और शकुनिके सहित हस्तिनापुरमें लौट आया।

जनमेजयने पूछा—मुने! दुर्योधनको बन्धनसे छुड़ानेके पश्चात् महाबली पाण्डवोंने उस वनमें क्या किया, यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! कुछ दिन उसी रहकर फिर धर्मज्ञ पाण्डव ब्राह्मण तथा दूसरे साथि सहित वहाँसे चल दिये। इन्द्रसेन आदि सेवक भी साथ हो लिये। फिर जिस मार्गमें शुद्ध अन्न और जलका सुपास था, उससे चलकर वे काम्यकवनके आश्रममें पहुँच गये।

व्यासजीका युधिष्ठिरके पास आना और उन्हें तप एवं दानका महत्त्व बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार वनमें रहते हुए महात्मा पाण्डवोंके ग्यारह वर्ष बड़े कष्टसे बीते। वे फल-मूल खाकर रहते थे। सुख भोगनेके योग्य होकर भी महान् दुःख सहते थे। वे सब-के-सब महापुरुष थे, इसलिये यह सोचकर कि 'यह हमारे कष्टका समय है, इसे धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये' घबराते नहीं थे। राजा युधिष्ठिर सोचते—'हमारे भाइयोंपर जो यह महान् दुःख आ पड़ा है, यह मेरी ही करनीका तो फल है। ये सब मेरे ही अपराधसे तो कष्ट भोग रहे हैं!' ये बातें उनके हृद काँटे-सी चुभती थीं, उन्हें रातभर नींद नहीं आती अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी भी राजा युधि का मुँह देखकर सारा कष्ट धैर्यपूर्वक सह लेते थे। चेहरे दुःखका भाव नहीं प्रकट होने देते थे। उत्साहयुक्त चेष्टा उनके शरीरका भाव ही बदल गया था।

एक समयकी बात है, सत्यवतीनन्दन व्यासजी पाण्ड को देखनेके लिये वहाँ आये। उन्हें आते देख युधि

आगे बढ़कर बड़े सत्कारके साथ लिवा लाये। उन्हें आदरपूर्वक एक आसनपर बैठाया और भक्तिभावसे प्रणाम करके प्रसन्न किया। फिर स्वयं भी सेवाके विचारसे विनयपूर्वक उनके पास ही बैठ गये। अपने पौत्रोंको वनवासके कष्टसे दुर्बल और जङ्गली फल-मूल खाकर जीवन-निर्वाह करते देख व्यासजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे गद्गद कण्ठसे बोले—'महाबाहु युधिष्ठिर! सुनो, संसारमें तपस्याके बिना (कष्ट उठाये

बिना) किसीको भी उच्च कोटिका सुख नहीं मिलता। तपसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है, तपसे ही महत् पद (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है। कहाँतक कहें; तुम थोड़ेमें इतना ही जान लो कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तपस्यासे न मिल सके। सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, देवता और अतिथियोंको देकर अन्नादि ग्रहण करना, इन्द्रियों और मनको वशमें रखना, दूसरोंके दोष न देखना, किसी जीवकी हिंसा न करना, बाहर-भीतरकी पवित्रता रखना—ये सद्गुण मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं; इनसे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि होती है। जो लोग इन धर्मोंका पालन न कर अधर्ममें रुचि रखनेवाले हैं, उन्हें पशु-पक्षी आदि तिर्यग्-योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। उन कष्टदायक योनियोंमें जन्म लेकर वे कभी सुख नहीं पाते। इस लोकमें जो कुछ कर्म किया जाता है, उसका फल परलोकमें भोगना पड़ता है। इसलिये अपने शरीरको तप और नियमोंके पालनमें लगाना चाहिये। राजन्! समयपर यदि कोई ब्राह्मण या अतिथि आ जाय तो प्रसन्न होकर अपनी शक्तिके अनुसार उसे दान दे, विधिवत् पूजा करके उसे प्रणाम करे और मनमें कभी मत्सर (द्वेष) को स्थान न दे।

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! दान और तपस्यामें किसका फल अधिक है? और इन दोनोंमें कौन कठिन है?

व्यासजीने कहा—राजन्! दानसे बढ़कर कठिन कार्य इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। लोगोंको धनका लोभ विशेष होता है, धन मिलता भी बड़े कष्टसे है। उत्साही मनुष्य धनके लिये अपने प्यारे प्राणोंका भी मोह छोड़कर जङ्गलोंमें भटकते हैं, समुद्रमें गोते लगाते हैं। कोई खेती करते और कोई गौएँ पालते हैं। कोई लोग तो धनकी इच्छासे दूसरोंकी दासता भी स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार कष्ट सहकर कमाये हुए धनका त्याग बड़ा ही कठिन है। अतः दानसे दुष्कर कोई कार्य नहीं है। इसीलिये मैं दानको सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। उसमें भी यदि धन न्यायसे कमाया गया हो और उत्तम देश, काल तथा पात्रका विचार करके उसका दान किया जाय तो इसका और भी अधिक महत्त्व समझना चाहिये। अन्यायपूर्वक प्राप्त किये हुए धनसे जो दान-धर्म किया जाता है, वह कर्ताकी महान् भयसे रक्षा नहीं करता। युधिष्ठिर! यदि अच्छे समयपर शुद्धभावसे सत्पात्रको थोड़ा भी दान दिया जाय, तो परलोकमें उसका अनन्त फल होता है। इस विषयमें जानकार लोग एक पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं कि मुद्गल ऋषिने एक द्रोण (साढ़े पंद्रह सेरके लगभग) धानका दान करके महान् फल प्राप्त किया था।

मुद्गल ऋषिकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! महात्मा मुद्गलने एक द्रोण धानका दान कैसे और किस विधिसे किया था, तथा वह दान किसे दिया गया था—यह सब मुझे बताइये।

व्यासजी बोले—राजन्! कुरुक्षेत्रमें एक मुद्गल नामक ऋषि रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। सदा सत्य बोलते और किसीकी भी निन्दा नहीं करते थे।

अतिथियोंकी सेवाका उन्होंने व्रत ले रखा था, बड़े कर्मनिष्ठ और तपस्वी महात्मा थे। शिल और उञ्छ-वृत्तिसे ही उनकी जीविका चलती थी। पंद्रह दिनोंमें एक द्रोण धान इकट्ठा कर लेते थे। उसीसे 'इष्टीकृत' नामक यज्ञ करते और पंद्रहवें दिन प्रत्येक अमावस्या तथा पूर्णिमाको दर्श-पौर्णमास याग किया करते थे। यज्ञोंमें देवता और अतिथियोंको देनेसे जो अन्न बचता, उसीसे परिवारसहित निर्वाह करते थे। घरमें स्त्री थी, पुत्र था और वे स्वयं थे। तीनों एक पक्षमें एक ही दिन भोजन करते थे। महाराज! उनका प्रभाव ऐसा था कि प्रत्येक पर्वके दिन देवराज इन्द्र देवताओंके सहित उनके यज्ञमें साक्षात् उपस्थित होकर अपना भाग लेते थे। इस प्रकार मुनिवृत्तिसे रहना और प्रसन्न चित्तसे अतिथियोंको अन्न देना—यही उनके जीवनका व्रत था। किसीके प्रति द्वेष न रखकर बड़े शुद्धभावसे वे दान करते थे। इसलिये वह एक द्रोण अन्न पंद्रह दिनके भीतर कभी घटता नहीं था, बराबर बढ़ता रहता था; दरवाजेपर अतिथि देखकर उस अन्नमें अवश्य वृद्धि हो जाती थी। सैकड़ों ब्राह्मण और विद्वान् उसमेंसे भोजन पाते, पर कमी नहीं आती!

मुनिके इस व्रतकी ख्याति बहुत दूरतक फैल चुकी थी। एक दिन उनकी कीर्तिकथा दुर्वासा मुनिके कानोंमें पड़ी। वे नंग-धड़ंग पागलोंका-सा वेष बनाये मूँड़ मुँड़ाये कटु वचन कहते हुए वहाँ आ पहुँचे। आते ही बोले 'विप्रवर! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भोजनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ।' मुद्गलने कहा, 'मैं आपका स्वागत करता हूँ।' और पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि पूजनकी सामग्री भेंट की। तत्पश्चात् उन्होंने अपने भूखे अतिथिको बड़ी श्रद्धासे भोजन परोसकर जिमाया। श्रद्धासे प्राप्त हुआ वह अन्न बड़ा सरस लगा; मुनि भूखे तो थे ही, सब खा गये। मुद्गल उन्हें बराबर अन्न देते रहे और वे उसे हड़प करते रहे। अन्तमें जब उठने लगे तो जो कुछ जूठा अन्न बचा था, उसे अपने शरीरमें लपेट लिया और जिधरसे आये थे, उधर ही निकल गये। इसी प्रकार

दूसरे पर्वपर भी आये और भोजन करके चले गये। मुद्गल मुनिको परिवारसहित भूखा रह जाना पड़ा। फिर वे अन्नके दानोंका संग्रह करने लगे। स्त्री और पुत्रने भी उनका साथ दिया। भूखसे उनके मनमें तनिक भी विकार या खेद नहीं हुआ। क्रोध, ईर्ष्या या अनादरका भाव भी नहीं उठा। वे ज्यों-के-त्यों शान्त बने रहे। पर्व आनेपर दुर्वासा मुनि फिर उपस्थित हुए। इसी प्रकार वे लगातार छः बार प्रत्येक पर्वपर आये। किन्तु कभी भी मुद्गल ऋषिके मनमें कोई विकार नहीं देखा। हर बार उनके चित्तको शान्त और निर्मल ही पाया।

इससे दुर्वासाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुद्गलसे कहा, 'मुने! इस संसारमें तुम्हारे समान दाता कोई भी नहीं है। ईर्ष्या तो तुमको छूतक नहीं गयी है। भूख बड़े-बड़े लोगोंके धार्मिक विचारको हिला देती है और धैर्य हर लेती है। जीभ तो रसना ही ठहरी; यह सदा रसका आस्वादन करनेवाली है, मनुष्यका चित्त रसकी ओर खींचती ही रहती है। भोजनसे ही प्राणोंकी रक्षा होती है। मन तो इतना

चञ्चल है कि इसको वशमें करना अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रताको ही निश्चितरूपसे तप कहा गया है। इन सब इन्द्रियोंको काबूमें रखकर भूखका कष्ट सहते हुए बड़े परिश्रमसे प्राप्त किये हुए धनको शुद्ध हृदयसे दान करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु यह सब कुछ तुमने सिद्ध कर लिया है। तुमसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा अपने ऊपर अनुग्रह मानता हूँ। इन्द्रियविजय, धैर्य, दान, शम, दम, दया, सत्य और धर्म—ये सब तुममें पूर्णरूपसे विद्यमान हैं। तुमने अपने शुभ कर्मोंसे सभी लोकोंको जीत लिया, परम पद प्राप्त कर लिया है। देवता भी तुम्हारे दानकी महिमा गा-गाकर उसकी सर्वत्र घोषणा करते हैं।'

दुर्वासा मुनि इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि देवताओंका दूत एक विमानके साथ वहाँ आ पहुँचा। उसमें दिव्य हंस और सारस जुते हुए थे और उससे दिव्य सुगन्ध फैल रही थी। वह देखनेमें बड़ा ही विचित्र और इच्छानुसार चलनेवाला था। देवदूतने महर्षि मुद्गलसे कहा—'मुने! यह विमान आपको शुभकर्मोंसे प्राप्त हुआ है, इसपर

बैठिये। आप सिद्ध हो चुके हैं।' देवदूतकी बात सुनकर महर्षिने उससे कहा, 'देवदूत! सत्पुरुषोंमें सात पग एक साथ चलनेसे ही मित्रता हो जाती है, उसी मैत्रीको सामने रखकर मैं आपसे कुछ पूछ रहा हूँ; उत्तरमें जो सत्य और हितकर बात हो, उसे बताइये। आपकी बात सुनकर फिर अपना कर्तव्य निश्चित करूँगा। प्रश्न यह है—स्वर्गमें क्या सुख है और क्या दोष है?'

देवदूत बोला—महर्षि मुद्गल! आपकी बुद्धि बड़ी उत्तम है। जिसको दूसरे लोग बहुत बड़ी चीज़ समझते हैं, वह स्वर्गका उत्तम सुख आपके चरणोंमें लोट रहा है; फिर भी आप अनजान-से बनकर इसके सम्बन्धमें विचार करते हैं—पूछते हैं यह कैसा है। आपकी आज्ञाके अनुसार मैं बताता हूँ। स्वर्ग यहाँसे बहुत ऊपरका लोक है, उसको 'स्वर्लोक' भी कहते हैं। बड़े उत्तम मार्गसे वहाँ जाना होता है, वहाँके लोग सदा विमानोंपर विचरा करते हैं। जिसने तप, दान या महान् यज्ञ नहीं किये हैं, अथवा जो असत्यवादी या नास्तिक हैं, उनका उस लोकमें प्रवेश नहीं होता। जो लोग धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, शम-दमसे सम्पन्न और द्वेषरहित हैं तथा जिन्होंने दानधर्मका पालन किया है, वे उस लोकमें जाते हैं; इसके सिवा वे शूरवीर भी, जिनकी वीरता युद्धमें प्रमाणित हो चुकी है, स्वर्गलोकके अधिकारी हैं। वहाँ देवता, साध्य, विश्वेदेव, महर्षि, याम, धाम, गन्धर्व और अप्सरा—इन सबके अलग-अलग अनेकों लोक हैं, जो बड़े ही कान्तिमान्, इच्छानुसार प्राप्त होनेवाले भोगोंसे सम्पन्न तथा तेजस्वी हैं। स्वर्गमें तैंतीस हजार योजनका एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जिसका नाम है सुमेरुगिरि। वह पर्वत सुवर्णका है। उसके ऊपर देवताओंके नन्दनवन आदि अनेकों सुन्दर उद्यान हैं, जो पुण्यात्माओंके विहारके स्थान हैं। वहाँ किसीको भूख-प्यास नहीं लगती, मनमें कभी उदासी नहीं आती, गर्मी और जाड़ेका कष्ट नहीं होता और न कोई भय ही होता है। वहाँ कोई ऐसी अशुभ वस्तु नहीं होती, जिसको देखकर घृणा हो। सब ओर मनको प्रसन्न करनेवाली सुगन्ध छायी रहती है, शीतल-मन्द हवा चलती है। सब ओर मन और कानोंको प्रिय लगनेवाले शब्द सुन पड़ते हैं। वहाँ कभी शोक नहीं होता, किसीका विलाप नहीं सुनायी देता; न बुढ़ापा आता है और न शरीरमें थकावटका अनुभव होता है। स्वर्गवासियोंके शरीरमें तैजस तत्त्वकी प्रधानता होती है। वे शरीर पुण्यकर्मोंसे ही प्राप्त होते हैं, माता-पिताके रज-वीर्यसे उनकी उत्पत्ति नहीं होती। उनमें कभी पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती और मल-मूत्र भी नहीं निकलता। उनके

कपड़े कभी मैले नहीं होते। वहाँके दिव्य कुसुमोंकी मालाएँ दिव्य सुगन्ध फैलाती रहती हैं, कभी कुम्हलाती नहीं। तुम्हारे सामने जो यह विमान है, ऐसे विमान वहाँ सबके पास होते हैं। वे किसीसे ईर्ष्या नहीं रखते, द्वेष नहीं मानते। बड़े सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं।

इन देवताओंके लोकोंसे भी ऊपर अनेकों दिव्य लोक हैं। इनमें सबसे ऊपर ब्रह्मलोक है। वहाँ अपने शुभ कर्मोंसे पवित्र ऋषि-मुनि जाते हैं। वहीं ऋभु नामक देवता भी रहते हैं, जो स्वर्गवासी देवताओंके भी पूज्य हैं। देवता भी उनकी आराधना करते हैं। उनके लोक स्वयंप्रकाश हैं, तेजस्वी हैं और सब तरहकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। उन्हें लोकोंके ऐश्वर्यके लिये मनमें ईर्ष्या नहीं होती। आहुति-पर उनकी जीविका निर्भर नहीं हुआ करती। उन्हें अमृत पीनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। उनके देह दिव्य ज्योतिर्मय हैं, उनका कोई विशेष आकार नहीं है। वे सुख-स्वरूप हैं, सुख-भोगकी इच्छा उन्हें कभी नहीं होती। वे देवताओंके भी देवता एवं सनातन हैं। महाप्रलयके समय भी उनका नाश नहीं होता। फिर उनमें जरा-मृत्युकी आशङ्का तो हो ही कैसे सकती है? हर्ष-प्रीति, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदिका उनमें अत्यन्ताभाव होता है। स्वर्गके देवता भी उस स्थितिको प्राप्त करना चाहते हैं। वह परा सिद्धिकी अवस्था है, जो सबको सुलभ नहीं है। भोगोंकी इच्छा रखनेवाले तो उस सिद्धिको पा ही नहीं सकते।

ये जो तैंतीस देवता हैं, उन्हींके लोकोंको मनीषी पुरुष उत्तम नियमोंके आचरणसे तथा विधिपूर्वक दिये हुए दानसे प्राप्त करते हैं। तुमने अपने दानके प्रभावसे यह सुखमयी सिद्धि प्राप्त की है, अपनी तपस्याके तेजसे देदीप्यमान होकर अब उसका उपभोग करो। हे विप्र! यही स्वर्गका सुख है। और ये ही वहाँके अनेकों प्रकारके लोक हैं। इस प्रकार अबतक तो मैंने स्वर्गके गुण बताये हैं, अब दोष भी सुनो। स्वर्गमें अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगा जाता है, नया कर्म नहीं किया जाता। वहाँका भोग अपनी मूल पूँजी गँवाकर ही प्राप्त होता है। मेरी समझमें यही वहाँका सबसे बड़ा दोष है कि वहाँसे एक-न-एक दिन पतन हो ही जाता है। सुखद ऐश्वर्यका उपभोग करके उससे निम्न स्थानमें गिरने-वाले प्राणियोंको जो असन्तोष और वेदना होती है, उसका वर्णन करना कठिन है। उनके गलेकी माला कुम्हला जाती है, यही स्वर्गसे गिरनेकी सूचना है। यह देखते ही उनके मनमें भय समा जाता है—अब गिरा, अब गिरा। उनपर रजोगुणका प्रभाव पड़ता है। जब गिरने लगते हैं, तो उनकी चेतना लुप्त हो जाती है, सुध-बुध नहीं रहती। ब्रह्मलोकतक जितने भी लोक हैं, सबमें यह भय बना रहता है।

मुद्गल बोले—ये तो आपने स्वर्गके महान् दोष बताये। इनके अतिरिक्त जो निर्दोष लोक हो, उसका वर्णन कीजिये।

देवदूतने कहा—ब्रह्मलोकसे भी ऊपर विष्णुका परम धाम है; वह शुद्ध सनातन ज्योतिर्मय लोक है, उसे परब्रह्मपद भी कहते हैं। विषयी पुरुष तो वहाँ जा ही नहीं सकते। दम्भ, लोभ, क्रोध, मोह और द्रोहसे युक्त पुरुष भी वहाँ नहीं पहुँच सकते। वहाँ तो ममता और अहङ्कारसे रहित, द्वन्द्वोंसे परे रहनेवाले, जितेन्द्रिय तथा ध्यानयोगमें लगे रहनेवाले महात्मा पुरुष ही जा सकते हैं। मुद्गल! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार ये सारी बातें मैंने बता दीं। अब कृपा करके चलो, जल्दी चलें; देर न करो।

व्यासजी कहते हैं—देवदूतकी बात सुनकर मुद्गल ऋषिने उसपर अपनी बुद्धिसे विचार किया और फिर बोले—'देवदूत! मेरा आपको प्रणाम है, आप प्रसन्नतासे पधारिये। स्वर्गमें तो बड़ा भारी दोष है; मुझे उस स्वर्गसे और वहाँके सुखसे कोई काम नहीं है। ओह! पतनके बाद तो स्वर्गवासियोंको बड़ा भारी दुःख और पश्चात्ताप होता होगा। इसलिये मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये! जहाँ जाकर व्यथा और शोकसे पिण्ड छूट जाय, केवल उसी स्थानका अब मैं अनुसन्धान करूँगा।' ऐसा कहकर धर्मात्मा मुनिने देवदूतको तो विदा कर दिया और स्वयं पूर्ववत् शिलोञ्छ-वृत्तिसे रहते हुए उत्तम रीतिसे शमका पालन करने लगे। उनकी दृष्टिमें निन्दा और स्तुति, मिट्टीका ढेला और सुवर्ण—सब एक-से हो गये। वे विशुद्ध ज्ञानयोगका आश्रय ले नित्य ध्यानयोगके परायण रहने लगे। ध्यानसे वैराग्यका बल पाकर उन्हें उत्तम बोध प्राप्त हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने मोक्षरूपा परम सिद्धि प्राप्त कर ली। इसलिये युधिष्ठिर! तुम्हें भी शोक नहीं करना चाहिये। मनुष्यपर सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता रहता है। तेरहवें वर्षके बाद तुम्हें अपने पिता-पितामहोंका राज्य अवश्य प्राप्त होगा। अब अपने मनकी चिन्ता दूर करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—भगवान् व्यास युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर पुनः तप करनेके लिये अपने आश्रमपर चले गये।

दुर्योधनके द्वारा दुर्वासाका अतिथि-सत्कार और वरदान पाना

जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी ! जिस समय महात्मा पाण्डव वनमें निवास कर ऋषि-मुनियोंके साथ अत्यन्त विचित्र कथा-वार्ताएँ सुनते हुए अपना समय आनन्द-पूर्वक व्यतीत कर रहे थे उस समय दुःशासन, कर्ण और शकुनिकी रायसे चलनेवाले पापाचारी दुरात्मा दुर्योधन आदिने उनके साथ कैसा बर्ताव किया—भगवन् ! अब आप मुझे यही बात बताइये ।

वैशम्पायनजी बोले—महाराज ! जब दुर्योधनने यह सुना कि पाण्डवलोग तो वनमें भी उसी प्रकार आनन्दसे रहते हैं, जैसे नगरके निवासी रहा करते हैं, तो उनकी बुराई करनेका विचार किया । फिर तो छल-कपटकी विद्यामें प्रवीण कर्ण और दुःशासन आदिकी मण्डली एकत्रित हुई और पाण्डवोंको हानि पहुँचानेके अनेकों उपायोंपर विचार होने लगा । इसी बीचमें महान् यशस्वी महर्षि दुर्वासाजी अपने दस हजार शिष्योंको साथ लिये हुए वहाँ आ गये । परम क्रोधी दुर्वासा मुनिको घरपर पधारा देख दुर्योधन बहुत विनय दिखाता हुआ भाइयोंसहित उनके पास गया और नम्रता-पूर्वक उन्हें अतिथिसत्कारके लिये निमन्त्रित किया । बड़ी विधिसे उनकी पूजा की और स्वयं दासकी भाँति उनकी सेवामें खड़ा रहा । दुर्वासाजी कई दिन वहाँ ठहरे रहे । दुर्योधन आलस्य छोड़कर रात-दिन उनकी सेवा करता रहा । भक्ति-भावके कारण नहीं, उनके शापसे डरकर वह सेवा करता था । मुनिका भी स्वभाव विचित्र था । कभी कहते—'मुझे बड़ी भूख लगी है, राजन् ! शीघ्र भोजन तैयार कराओ ।' ऐसा कहकर नहाने चले जाते और वहाँसे लौटते खूब देर करके । आनेपर कहते 'आज तो भूख बिल्कुल नहीं है, नहीं खाऊँगा ।' यह कहकर दृष्टिसे ओझल हो जाते । इस प्रकार-का बर्ताव उन्होंने बारंबार किया, तो भी दुर्योधनके मनमें न तो कोई विकार हुआ और न क्रोध ही । इससे दुर्वासाजी प्रसन्न हो गये और बोले—'मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ; जो इच्छा हो, माँग लो ।'

दुर्वासाकी यह बात सुनकर दुर्योधनने मन-ही-मन ऐसा समझा मानो उसका नया जन्म हुआ है ! मुनि सन्तुष्ट हों तो उनसे क्या माँगना चाहिये—इस बातके लिये कर्ण, दुःशासन आदिके साथ पहलेसे ही सलाह हो चुकी थी । जब मुनिने वर माँगनेको कहा तो उसने बड़े प्रसन्न होकर यह वरदान माँगा, 'ब्रह्मन् ! हमारे कुलमें सबसे बड़े हैं युधिष्ठिर । वे इस समय अपने भाइयोंके साथ वनमें निवास करते हैं । बड़े गुणवान् और सुशील हैं । जैसे अपने शिष्योंके साथ आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार उनके भी अतिथि होइये । यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो मेरी एक और प्रार्थनापर ध्यान रखकर जाइयेगा । जिस समय राज-कुमारी द्रौपदी सब ब्राह्मणों और अपने पतियोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करनेके पश्चात् विश्राम कर रही हो, उस समय आप वहाँ पधारें ।'

'तुमपर प्रेम होनेके कारण मैं ऐसा ही करूँगा ।' यही कहकर दुर्वासाजी जैसे आये थे, वैसे ही चले गये । दुर्योधनने समझा अब 'मैंने बाजी मार ली ।' उसने प्रसन्न होकर कर्णसे हाथ मिलाया । कर्णने भी कहा—बड़े सौभाग्यकी बात है; अब तो काम बन गया । राजन् ! तुम्हारी इच्छा पूरी हुई और तुम्हारे शत्रु दुःखके महासागरमें डूब गये—यह सब कितने आनन्दकी बात है !

युधिष्ठिरके आश्रमपर दुर्वासाका आतिथ्य, भगवान‍्के द्वारा पाण्डवोंकी रक्षा

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर एक दिन दुर्वासा मुनि इस बातका पता लगाकर कि पाण्डव और द्रौपदी—सभी लोग भोजनसे निवृत्त हो आराम कर रहे हैं, दस हजार शिष्योंको साथ लेकर वनमें युधिष्ठिरके पास पहुँचे । राजा युधिष्ठिर अतिथिको आते देख भाइयोंसहित आगे बढ़कर उन्हें लिवा लाये । हाथ जोड़कर प्रणाम किया और एक सुन्दर आसनपर बैठाया । फिर विधिवत् पूजन करके उन्हें आतिथ्यके लिये निमन्त्रण देते हुए कहा—'भगवन् ! आप

नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शीघ्र आइये और भोजन
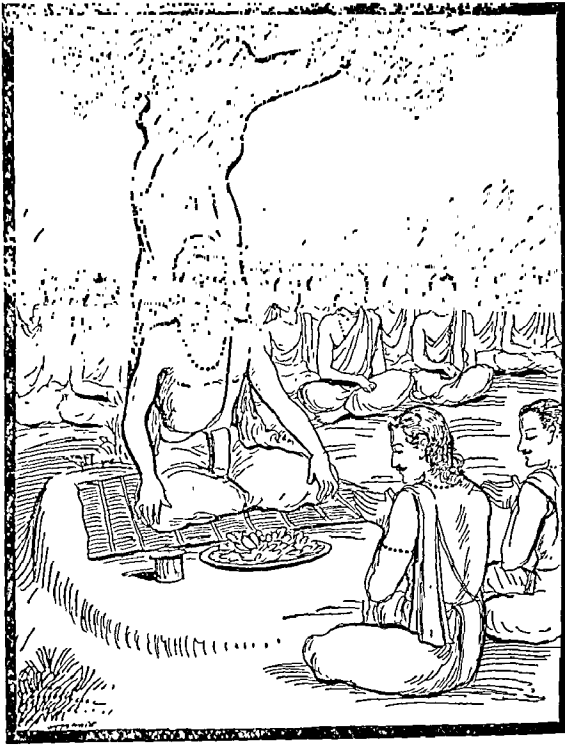
कीजिये।' मुनि भी शिष्योंके साथ स्नान करने चले गये। उन्होंने इस बातका तनिक भी विचार नहीं किया कि 'ये इस समय शिष्योंसहित मुझे कैसे भोजन दे सकेंगे।' सारी मुनिमण्डली जलमें स्नान करके ध्यान लगाने लगी।

इधर, पतिव्रता द्रौपदीको अन्नके लिये बड़ी चिन्ता हुई। उसने बहुत सोचा-विचारा, किन्तु उस समय अन्न मिलनेका कोई उपाय उसके ध्यानमें नहीं आया। तब वह मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार स्मरण करने लगी—'हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! देवकीनन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! चरणोंमें पड़े हुए दुखियोंका दुःख दूर करनेवाले हे जगदीश्वर! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हो। इस विश्वको बनाना और बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथोंका खेल है। प्रभो! तुम अविनाशी हो; शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोपाल! तुम्हीं सम्पूर्ण प्रजाके रक्षक परात्पर परमेश्वर हो; चित्तकी वृत्तियों और चिद्वृत्तियोंके प्रेरक तुम्हीं हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। सबके वरण करने योग्य वरदाता अनन्त! आओ; जिन्हें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है, उन असहाय भक्तोंकी सहायता करो। पुराणपुरुष! प्राण और मनकी वृत्तियाँ तुम्हारे पासतक नहीं पहुँच पातीं। सबके साक्षी परमात्मन्! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। शरणागतवत्सल! कृपा करके मुझे बचाओ। नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर! कमलपुष्पके भीतरी भागके समान किञ्चित् लाल नेत्रोंवाले! कौस्तुभमणिविभूषित एवं पीताम्बर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण! तुम्हीं सम्पूर्ण भूतोंके आदि और अन्त हो, तुम्हीं परम आश्रय हो। तुम्हीं परात्पर, ज्योतिर्मय, सर्वव्यापक एवं सर्वात्मा हो। ज्ञानी पुरुषोंने तुमको ही इस जगत्का परम बीज और सम्पूर्ण सम्पदाओंका अधिष्ठान कहा है। देवेश! यदि तुम मेरे रक्षक हो, तो मुझपर सारी विपत्तियाँ टूट पड़ें तो भी भय नहीं है। आजसे पहले सभामें दुःशासनके हाथसे जैसे तुमने मुझे बचाया था, उसी प्रकार इस वर्तमान संकटसे भी मेरा उद्धार करो।'*

द्रौपदीने जब इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान्की स्तुति की तो उन्हें मालूम हो गया कि द्रौपदीपर संकट आ पड़ा है। वे अचिन्त्यगति परमेश्वर तुरंत वहाँ आ पहुँचे। भगवान्को आया देख द्रौपदीके आनन्दका पार न रहा; उन्हें प्रणाम करके उसने दुर्वासा मुनिके आने आदिका सारा समाचार कह सुनाया। भगवान् बोले, 'कृष्णे! इस समय मैं बहुत थका हुआ हूँ, भूख लगी है; पहले शीघ्र मुझे कुछ खानेको दे, फिर सारा प्रबन्ध करती रहना।'

---

* कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते ॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर ॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥
(महा० वन० २६३। ८—१६)

उनकी बात सुनकर द्रौपदीको बड़ी लज्जा हुई, बोली—'भगवन्! सूर्यनारायणकी दी हुई बटलोईसे तो तभीतक अन्न मिलता है, जबतक मैं भोजन न कर लूँ। आज तो मैं भी भोजन कर चुकी हूँ; अतः अब कुछ भी नहीं है, कहाँसे लाऊँ?'

भगवान्‌ने कहा, 'द्रौपदी! मैं तो भूख और थकावटसे कष्ट पा रहा हूँ और तुझे हँसी सूझती है। यह हँसीका समय नहीं है; जल्दी जा और बटलोई लाकर मुझे दिखा।'

इस प्रकार हठ करके भगवान्‌ने द्रौपदीसे बटलोई मँगवायी। देखा तो उसके गलेमें जरा-सा साग लगा हुआ

है, उसे ही लेकर उन्होंने खा लिया और बोले—'इस सागके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तृप्त एवं सन्तुष्ट हों।' फिर सहदेवसे कहा—'अब शीघ्र ही मुनियोंको भोजनके लिये बुला लाओ।' उनकी आज्ञा पाते ही सहदेव दुर्वासा आदि सभी मुनियोंको, जो देवनदीमें स्नानके लिये गये हुए थे, बुलाने चले।

मुनिलोग पानीमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन्हें सहसा पूर्ण तृप्ति मालूम हुई, मानो भोजन कर चुके हों; बार-बार अन्नके रससे युक्त डकारें आने लगीं। जलसे बाहर निकलकर सब एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। सबकी एक

ही अवस्था हो रही थी। फिर सब लोग दुर्वासासे कहने लगे, 'ब्रह्मर्षे! राजाको अन्न तैयार करानेकी आज्ञा देकर हमलोग

यहाँ नहाने आये थे, पर इस समय तो इतनी तृप्ति हो गयी है कि कण्ठतक अन्न भरा हुआ जान पड़ता है। कैसे भोजन करेंगे? हमने जो रसोई तैयार करायी है, वह व्यर्थ होगी। अब इसके लिये क्या करना चाहिये?'

दुर्वासा बोले—सचमुच ही व्यर्थ भोजन बनवाकर हमलोगोंने राजर्षि युधिष्ठिरका महान् अपराध किया है। राजा अम्बरीषका प्रभाव अभी हमें भूला नहीं है, उस घटनाको याद करके मैं भगवान्‌के भक्तोंसे सदा डरता रहता हूँ। समस्त पाण्डव भी वैसे ही महात्मा हैं। ये धार्मिक, शूरवीर, विद्वान्, व्रतधारी, तपस्वी, सदाचारी तथा नित्य भगवान् वासुदेवके भजनमें ही लगे रहनेवाले हैं। जैसे आग रूईकी ढेरीको जला डालती है, उसी प्रकार क्रोधित होनेपर पाण्डव भी हमें जला सकते हैं। इसलिये शिष्यो! अब कल्याण इसीमें है कि पाण्डवोंसे बिना पूछे ही तुरंत भाग चलो।

अपने गुरुदेव दुर्वासा मुनिकी यह बात सुनकर भला, शिष्यलोग कैसे ठहर सकते थे! पाण्डवोंके भयसे भागकर सबने दसों दिशाओंकी शरण ली। सहदेवने जब देवनदी गङ्गाजीमें मुनियोंको नहीं देखा, तो आसपासके घाटोंपर घूम-

घूमकर खोजने लगे। वहाँ रहनेवाले तपस्वी ऋषियोंसे उन्होंने उनके भाग जानेका समाचार सुना, तब वे युधिष्ठिरके पास लौट आये और सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दिया। तत्पश्चात् जितेन्द्रिय पाण्डव उनके पुनः लौट आनेकी आशासे बड़ी देरतक प्रतीक्षा करते रहे। उनको यह सन्देह था कि 'मुनि आधी रातके बाद अचानक आकर फिर हमसे छल करेंगे। यह दैववश हमलोगोंपर बड़ा संकट आ गया, किस प्रकार इससे हमारा उद्धार हो?' इस प्रकार चिन्ता करते हुए वे बारंबार उच्छ्वास खींचने लगे। उनकी यह दशा देख भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'परम क्रोधी दुर्वासा मुनिसे आपलोगोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आनेवाली है, यह जानकर द्रौपदीने मेरा स्मरण किया था; इससे मैं तुरंत यहाँ आ गया। अब आपलोगोंको दुर्वासासे तनिक भी भय नहीं है, वे आपके तेजसे डरकर पहले ही भाग गये हैं। जो सदा धर्ममें तत्पर रहते हैं, वे दुःखमें नहीं पड़ते। अब आपलोगोंसे जानेके लिये आज्ञा चाहता हूँ। आपलोगोंका कल्याण हो।'

भगवान्‌की बात सुनकर द्रौपदीसहित पाण्डवोंकी घबराहट दूर हुई। वे बोले—'गोविन्द! तुम्हें ही अपना रक्षक पाकर हमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे पार हुए हैं। जैसे महासागरमें डूबते हुएको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार तुम हमें सहायक मिले हो। जाओ, यों ही भक्तोंका कल्याण किया करो।'

इस प्रकार उनकी अनुमति लेकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीको चले गये और पाण्डव भी द्रौपदीके साथ एक वनसे दूसरे वनमें घूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

जयद्रथके द्वारा द्रौपदीका हरण

वैशम्पायनजी कहते हैं—एक समयकी बात है, पाण्डवलोग द्रौपदीको अपने आश्रमपर अकेली छोड़कर पुरोहित धौम्यकी आज्ञासे ब्राह्मणोंके लिये आहारका प्रबन्ध करने वनमें चले गये थे। उसी समय सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ, जो वृद्धक्षत्रका पुत्र था, विवाहकी इच्छासे शाल्व देशकी ओर जा रहा था। वह बहुमूल्य राजसी ठाट-बाटसे सजा हुआ था, उसके साथ और भी अनेकों राजा थे। उन सबके साथ वह काम्यक वनमें आया। वहाँ निर्जन वनमें अपने आश्रमके दरवाजेपर पाण्डवोंकी प्यारी पत्नी द्रौपदी खड़ी थी, जयद्रथकी दृष्टि उसपर पड़ी। वह अनुपम सुन्दरी थी। उसका श्याम शरीर एक दिव्य तेजसे दमक रहा था, आश्रमके निकट वनका भाग उसकी कान्तिसे प्रकाशमान हो रहा था। जयद्रथके साथियोंने उस अनिन्द्य सुन्दरीकी ओर देखकर हाथ जोड़ लिये और मन-ही-मन तर्क-वितर्क करने लगे—यह कोई अप्सरा है, या देवकन्या है अथवा देवताओंकी रची हुई माया है?

सिन्धुराज जयद्रथ उस सुन्दराङ्गीको देखकर चकित रह गया, उसके मनमें बुरे विचार उठे और वह कामसे मोहित हो गया। उसने अपने साथी राजा कोटिकास्यसे कहा, 'कोटिक! जरा जाकर पता तो लगाओ यह सर्वाङ्गसुन्दरी किसकी स्त्री है। अथवा यह मनुष्यजातिकी स्त्री है ही नहीं! यदि यह मिल जाय तो मुझे विवाहकी कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। पूछो तो, यह किसकी है, कहाँसे आयी है और इस कँटीले जंगलमें किस उद्देश्यसे इसका आना हुआ है? क्या यह मेरी सेवा स्वीकार करेगी? इसे पाकर तो मैं कृतार्थ हो जाता।'

सिन्धुराजके वचन सुनकर कोटिक रथसे नीचे उतर पड़ा और गीदड़ जैसे व्याघ्रकी स्त्रीसे बात करे, उसी प्रकार द्रौपदीके पास जाकर बोला—"सुन्दरि! कदम्बकी डाली झुकाकर इसके सहारे इस आश्रमपर अकेली खड़ी हुई तू कौन है? तुझे इस भयानक जंगलमें डर नहीं लगता? क्या तू किसी देव, यक्ष या दानवकी पत्नी है? अथवा कोई श्रेष्ठ अप्सरा या नागकन्या है? यमराज, चन्द्रमा, वरुण और कुबेर—इनमेंसे तो तू किसीकी पत्नी नहीं है? बता, धाता विधाता, सविता, विष्णु या इन्द्र—किसके धामसे तू यहाँ आयी है?

"मैं राजा सुरथका पुत्र हूँ, मुझे लोग 'कोटिकास्य' कहते हैं। तथा सौवीर देशके बारह राजकुमार हाथमें ध्वजा लेकर जिनके रथके पीछे चलते हैं और छः हजार रथी, हाथी, घोड़े, पैदलोंकी सेना सदा जिनका अनुसरण किया करती है, वे सौवीरनरेश राजा जयद्रथ उधर खड़े हैं; उनका नाम कभी तुम्हारे सुननेमें भी आया होगा। इनके साथ और भी कई राजा हैं। अपना परिचय तो हमने बताया, पर तेरे विषयमें अभी हम अनभिज्ञ ही हैं; अतः बता, तू किसकी पत्नी है और किसकी सुपुत्री?"

कोटिकास्यके प्रश्न करनेपर द्रौपदीने एक बार धीरेसे उसकी ओर देखा और कदम्बकी डालीका सहारा छोड़कर अपनी रेशमी चादर सँभालते हुए नीची दृष्टि करके कहा—

'राजकुमार ! मैंने अपनी बुद्धिसे विचारकर अच्छी तरह समझ लिया है कि मेरी-जैसी स्त्रीको तुमसे बातचीत करना उचित नहीं है। पर यहाँ इस समय दूसरा कोई पुरुष या स्त्री मौजूद नहीं है, जो तुम्हारी बातका जवाब दे सके; इसलिये बोलना पड़ा है। मैं अपने पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री हूँ, सो भी इस समय अकेली हूँ; इस वनमें अकेले तुम्हारे साथ कैसे बात कर सकती हूँ। परन्तु मैं तुम्हें पहलेसे जानती हूँ कि तुम राजा सुरथके पुत्र हो और तुम्हारा कोटिकास्य नाम है, इसलिये तुमसे अपने बन्धुओं और विख्यात वंशका परिचय दे रही हूँ। मैं राजा द्रुपदकी पुत्री हूँ, मेरा नाम कृष्णा है। पाँच पाण्डवोंके साथ मेरा विवाह हुआ है; वे इन्द्रप्रस्थके रहनेवाले हैं, उनका नाम भी तुमने सुना होगा। अब तुम सब लोग अपने वाहन खोलकर यहाँ उतरो, पाण्डवोंका आतिथ्य स्वीकार कर फिर अपने अभीष्ट स्थानको चले जाना। उनके आनेका समय हो गया है। धर्मराज अतिथियोंके बड़े भक्त हैं, आपलोगोंको देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।'

द्रौपदी कोटिकास्यसे ऐसा कहकर अपनी पर्णकुटीमें चली गयी। उसका उन लोगोंपर विश्वास हो गया था, अतः उनके अतिथि-सत्कारकी तैयारीमें लग गयी। कोटिकास्य राजाओंके पास गया और द्रौपदीके साथ जो कुछ बात हुई थी, सब कह सुनायी। उसकी बात सुनकर दुष्ट जयद्रथने कहा, 'मैं स्वयं जाकर द्रौपदीको देखता हूँ।' वह अपने छः भाइयों-को साथ लेकर, जैसे भेड़िया सिंहकी गुफामें प्रवेश करे उसी प्रकार पाण्डवोंके आश्रममें घुस आया और द्रौपदीसे बोला, 'सुन्दरी ! तुम कुशलसे तो हो ? तुम्हारे स्वामी स्वस्थ तो हैं; तथा और जिन लोगोंकी तुम कुशल-कामना रखती हो, वे सब भी तो सकुशल हैं न ?'

द्रौपदीने कहा—राजकुमार ! तुम स्वयं सकुशल तो हो न ? तुम्हारे राज्य, खजाना और सैनिक तो कुशलसे हैं न ? मेरे पति कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं तथा उनके सब भाई भी कुशलसे हैं। राजन् ! यह पैर धोनेके लिये जल और आसन ग्रहण करो। तुम सब लोगोंके जलपानके लिये अभी प्रबन्ध करती हूँ।

जयद्रथ बोला—मेरी कुशल है ! जलपानके लिये तुम जो कुछ देना चाहती हो, सब मुझे प्राप्त हो चुका। अब तुमसे यही कहना है कि पाण्डवोंके पास अब धन नहीं रहा, वे राज्यसे निकाल दिये गये। अब इनकी सेवा करना व्यर्थ है। इतनी भक्तिसे जो तुम इनकी सेवा करती हो, उसका फल तो केवल क्लेश ही होगा। तुम इन पाण्डवोंको छोड़ दो और मेरी पत्नी होकर सुख भोगो। मेरे साथ ही सम्पूर्ण सिन्धु और सौवीर देशका राज्य तुम्हें प्राप्त होगा—रानी बनोगी।

जयद्रथकी यह बात सुनकर द्रौपदीका हृदय काँप उठा, उसकी भौंहें रोषसे तन गयीं। सहसा उस स्थानसे वह पीछे हट गयी। उसके इस प्रस्तावका तिरस्कार करके द्रौपदीने बहुत कड़ी बातें सुनायीं और बोली, 'खबरदार ! फिर कभी ऐसी बात मुँहसे मत निकालना, तुझे शर्म आनी चाहिये। मेरे पति महान् यशस्वी हैं, सदा धर्ममें स्थित रहनेवाले हैं, युद्धमें यक्षों और राक्षसोंका भी मुकाबला कर सकते हैं; ऐसे महारथी वीरोंकी शानके खिलाफ ओछी बातें कहते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अरे मूर्ख ! जैसे बाँस, केला और नरकुल—ये फल देकर अपना नाश कर लेते हैं, केंकड़ेकी मादा अपनी मृत्युके लिये ही गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार तू भी अपनी मौतके लिये ही मेरा अपहरण करना चाहता है !'

जयद्रथ बोला—कृष्णे ! मैं सब जानता हूँ। मुझे खूब मालूम है कि तुम्हारे पति राजपुत्र पाण्डव कैसे हैं। परन्तु इस समय यह विभीषिका दिखाकर तुम हमें डरा नहीं सकती। हम तुम्हारी बातोंमें नहीं आ सकते। अब तुम्हारे सामने सिर्फ दो काम हैं—या तो सीधी तरहसे हाथी या रथपर चलकर बैठ जाओ या पाण्डवोंके हार जानेपर सौवीरराज जयद्रथसे दीनतापूर्वक गिड़गिड़ाते हुए कृपाकी भीख माँगना।

द्रौपदीने कहा—मेरा बल, मेरी शक्ति महान् है; किन्तु सौवीरराजकी दृष्टिमें मैं दुर्बल-सी प्रतीत हो रही हूँ। मुझे अपने ऊपर विश्वास है, यों ज़ोर-जबरदस्ती करनेसे भी मैं जयद्रथके सामने कभी दीन वचन नहीं बोल सकती। एक रथपर एक साथ बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण और वीरवर अर्जुन जिसकी खोजमें निकलेंगे, उस द्रौपदीको देवराज इन्द्र भी हरकर नहीं ले जा सकते, बेचारे मनुष्यकी तो ताक़त ही क्या है ? अर्जुन जब शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करने लगते हैं, उस समय दुश्मनोंका दिल दहल जाता है; वे मेरे लिये आकर तेरी सेनाको चारों ओरसे घेर लेंगे और गर्मीके दिनोंमें आग जैसे तिनकोंको जलाती है, वैसे ही भस्म कर डालेंगे। जिस समय तू गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए बाणसमूहोंको टीडियोंकी तरह वेगसे उड़ते देखेगा और पराक्रमी वीर अर्जुनपर तेरी

दृष्टि पड़ेगी, उस समय अपने इस कुकर्मको याद करके तू अपनी बुद्धिको धिक्कारेगा। अरे नीच! जब भीम हाथमें गदा लिये दौड़ेंगे और नकुल-सहदेव क्रोधजन्य विष उगलते हुए तेरी ओर टूट पड़ेंगे, तब तुझे बड़ा पश्चात्ताप होगा। यदि मैंने कभी मनसे भी अपने पूजनीय पतियोंका उल्लङ्घन नहीं किया—यदि मेरा अखण्ड पातिव्रत्य सुरक्षित हो, तो इस सत्यके प्रभावसे मैं आज देखूँगी कि पाण्डव तुझे जीतकर अपने वशमें करके जमीनपर घसीट रहे हैं। मैं जानती हूँ तू नृशंस है, मुझे बलपूर्वक खींचकर ले जायगा; मगर इसकी भी कोई परवा नहीं। मेरे पति कुरुवंशी वीर शीघ्र ही मुझसे मिलेंगे और उनके साथ मैं पुनः इसी काम्यक वनमें आकर रहूँगी।

तदनन्तर द्रौपदीने देखा जयद्रथके आदमी मुझे पकड़ने आ रहे हैं। तब वह डाँटकर बोली, 'खबरदार! कोई मुझे हाथ न लगाना!' फिर भयभीत होकर उसने अपने पुरोहित धौम्य मुनिको पुकारा। तबतक जयद्रथने आगे बढ़कर द्रौपदीके दुपट्टेका छोर पकड़ लिया। द्रौपदीने उसे जोरसे धक्का दिया। धक्का लगते ही पापी जयद्रथ जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति जमीनपर गिर पड़ा। फिर बड़े वेगसे उठकर उसने द्रौपदीका दुपट्टा पकड़ लिया और उसे जोर-जोरसे खींचने लगा। द्रौपदी बारंबार उच्छ्वास लेने लगी और उसने जैसे-तैसे धौम्य मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और रथपर चढ़ गयी।

धौम्य बोले—जयद्रथ! जरा क्षत्रियोंके प्राचीन धर्मका तो खयाल कर। महारथी पाण्डव वीरोंपर विजय पाये बिना तुझे इसे ले जानेका कोई अधिकार नहीं है। पापी! धर्मराज आदि पाण्डवोंसे मुठभेड़ हो जानेपर तुझे इस नीच कर्मका फल मिलेगा—इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

यह कहकर धौम्य मुनि हरकर ले जायी जाती हुई राजकुमारी द्रौपदीके पीछे-पीछे पैदल सेनाके बीचमें होकर चलने लगे।

पाण्डवोंके द्वारा द्रौपदीकी रक्षा और जयद्रथकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब पाण्डव वनमेंसे आश्रमकी ओर लौट रहे थे, उस समय एक गीदड़ बड़े ज़ोरसे रोता हुआ उनके वाम भागसे निकल गया। इस अपशकुनपर विचार कर राजा युधिष्ठिरने भीम और अर्जुनसे कहा—'यह गीदड़ हमलोगोंकी बायीं ओर आकर जो रोता है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि पापी कौरवोंने यहाँ आकर कोई महान् उपद्रव किया है।' इस प्रकार बातें करते हुए जब वे आश्रमपर आये तो देखते हैं कि उनकी प्रिया द्रौपदीकी दासी धात्रेयिका रो रही है। उसे उस अवस्थामें देख इन्द्रसेन सारथि रथसे उतर पड़ा और दौड़ते हुए उसके पास जाकर बोला—'तू इस तरह धरतीपर पड़ी-पड़ी क्यों रो रही है? तेरा मुँह सूखा हुआ है। दीन हो रहा है। उन

निर्दयी और पापी कौरवोंने यहाँ आकर राजकुमारी द्रौपदीको कोई कष्ट तो नहीं दिया ?'

दाई बोली—इन्द्रके समान पराक्रमी इन पाँचों पाण्डवोंका अपमान करके जयद्रथ द्रौपदीको हर ले गया है। देखो, अभी उसके रथकी लीकें और सैनिकोंके पैरोंके चिह्न नये बने हुए हैं। अभी राजकुमारी दूर नहीं गयी होगी; जल्दी रथ लौटाओ और जयद्रथका पीछा करो। अब यहाँ अधिक देर नहीं होनी चाहिये।

पाण्डव बारंबार क्रुद्ध सर्पकी भाँति फुफकार छोड़ते और अपने धनुषका टंकार करते हुए उसी मार्गसे चले। कुछ ही दूर जानेपर जयद्रथकी फौजके घोड़ोंकी टापोंसे उड़ती हुई धूल दीख पड़ी। उन्होंने पैदल सेनाके बीचमें जाते हुए धौम्य मुनिको भी देखा, जो भीमको पुकार रहे थे। पाण्डवोंने मुनिको आश्वासन दिया कि 'अब आप सुखपूर्वक चलिये।' फिर जब उन्होंने एक ही रथमें अपनी प्रियतमा द्रौपदी और जयद्रथको बैठे देखा तो उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। फिर तो भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—सबने जयद्रथको ललकारा। पाण्डवोंको आया देख शत्रुओंके होश उड़ गये। पैदल सेना तो बहुत डर गयी, हाथ जोड़ने लगी। पाण्डवोंने उसे तो छोड़ दिया; किन्तु शेष जो सेना थी, उसे सब ओरसे घेरकर इतनी बाण-वर्षा की कि अन्धकार-सा छा गया।

तब सिन्धुराजने अपने साथके राजाओंको उत्साहित करते हुए कहा—'शत्रुओंके मुकाबलेमें डटकर खड़े हो जाओ; दौड़ो, मारो।' फिर उस युद्धमें महान् कोलाहल आरम्भ हो गया। शिबि, सौवीर और सिन्धु देशोंके सैनिक महाबलवान् व्याघ्रके समान भीम-अर्जुन-जैसे उत्कट वीरोंको देखकर दहल उठे, उन्हें बड़ा विषाद होने लगा। भीमपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, किन्तु वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने जयद्रथकी सेनाके अग्रभागमें स्थित सवारसहित एक हाथी और चौदह पैदलोंको गदासे मार डाला। अर्जुनने पाँच सौ महारथी वीरोंका संहार किया। युधिष्ठिरने सौ योद्धाओंका नाश किया। नकुल हाथमें तलवार ले रथसे नीचे कूद पड़ा और शत्रुओंके मस्तक काटकर इस भाँति बिखेर दिये, जैसे बीज बो रहा हो। सहदेवने अपना रथ हाथीसवारोंसे भिड़ा दिया और जैसे कोई शिकारी पेड़पर बैठे हुए मोरोंको मार-मारकर गिरावे उसी प्रकार बाणोंसे उन्हें गिराने लगा।

इतनेमें त्रिगर्त देशका राजा धनुष लेकर अपने विशाल रथसे नीचे उतर पड़ा और गदाके प्रहारसे राजा युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मार डाला। उसको अपने निकट आया देख राजा युधिष्ठिरने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी छातीको चीर डाला। इससे वह रक्त वमन करता हुआ गिरकर मर गया। घोड़े मर जानेसे युधिष्ठिर अपने सारथि इन्द्रसेनके साथ रथसे उतरकर सहदेवके विशाल रथपर बैठ गये।

भीमसेनने देखा मेरे ऊपर राजा कोटिकास्य चढ़ा आ रहा है; उन्होंने छुरा मारकर उसके सारथिका मस्तक काट लिया, किन्तु उसे पतातक न चला। सारथिके मरनेसे उसके घोड़े रणभूमिमें इधर-उधर भागने लगे। कोटिकास्यको विमुख होकर भागते देख भीमने प्रास नामक शस्त्रसे उसे मार डाला। अर्जुनने अपने तीखे बाणोंसे सौवीर देशके बारह राजाओंके धनुष और मस्तक काट लिये। उन्होंने शिबि और इक्ष्वाकु-वंशके राजाओंका तथा त्रिगर्त और सिन्धुदेशके नृपतियोंका भी संहार किया।

इन सब वीरोंके मारे जानेपर जयद्रथ बहुत डर गया। उसने द्रौपदीको नीचे उतार दिया और स्वयं प्राण बचानेके लिये वनकी ओर भाग गया। धर्मराजने देखा कि धौम्यको आगे करके द्रौपदी आ रही है तो सहदेवके द्वारा उसे रथपर चढ़वा लिया।

युद्ध समाप्त होनेपर भीमने युधिष्ठिरसे कहा—'भैया !

शत्रुओंके प्रधान-प्रधान वीर मारे गये। बहुत-से इधर-उधर भाग भी गये हैं। आप नकुल, सहदेव और महात्मा धौम्य मुनिके साथ आश्रमपर जाइये और द्रौपदीको शान्त कीजिये। मैं तो उस मूर्ख जयद्रथको जीवित नहीं छोड़ सकता। भले ही वह पातालमें जाकर छिप गया हो अथवा स्वयं इन्द्र सारथि बनकर उसकी सहायता करने आ गया हो।'

युधिष्ठिरने कहा—महाबाहु भीम! यद्यपि सिन्धुराज जयद्रथ बड़ा दुष्ट है, तो भी बहिन दुःशला और यशस्विनी गान्धारीका खयाल करके उसको जानसे मत मारना।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रौपदीको लेकर पुरोहितजीके साथ आश्रमपर आये। वहाँ मार्कण्डेय मुनि तथा और भी बहुत-से ब्राह्मण-ऋषि द्रौपदीके लिये शोक कर रहे थे। जब उन्होंने पत्नीसहित धर्मराजको लौटते देखा और उनके मुखसे सिन्धु तथा सौवीर देशोंके वीरोंकी पराजयका समाचार सुना तो सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। राजा उन ऋषियोंके साथ बाहर बैठे और द्रौपदीने नकुल-सहदेवके साथ आश्रममें प्रवेश किया।

इधर भीम और अर्जुनको यह पता मिला कि जयद्रथ एक कोस आगे निकल गया है, तब वे अपने ही हाथ घोड़ोंको हाँकते हुए बड़े वेगसे दौड़े। वहाँ अर्जुनने ए अद्भुत पराक्रम दिखाया; यद्यपि जयद्रथ दो मील आगे था तो भी उन्होंने अभिमन्त्रित किये हुए बाण चलाकर उसके घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मरनेसे जयद्रथ बहुत दुखी हुआ और अर्जुनको ऐसे अद्भुत पराक्रम करते देख उसने भाग जानेमें ही अपना उत्साह दिखाया। वह वनकी ओर दौड़ने लगा। अर्जुनने देखा जयद्रथ तो अब भागनेमें ही अपना पराक्रम दिखा रहा है, तो उन्होंने उसका पीछा करते हुए कहा—'राजकुमार! लौटो, लौटो; तुम्हारा भागना उचित नहीं है। क्या इसी बलपर परायी स्त्रीको जबरदस्ती ले जाना चाहते थे? अरे! अपने सेवकोंको शत्रुओंके बीचमें छोड़ कैसे भागे जा रहे हो?'

अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भी सिन्धुराज नहीं लौटा। तब महाबली भीमने वेगसे दौड़कर उसका पीछा किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह!' अर्जुनको जयद्रथपर दया आ गयी, उन्होंने कहा—'भैया! उसे जानसे न मारना

भीमके हाथों जयद्रथकी दुर्गति और बन्धन तथा युधिष्ठिरकी दयासे छूटकर तपस्या करके उसका वर प्राप्त करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीम और अर्जुन—दोनों भाइयोंको अपने वधके लिये तुले हुए देख जयद्रथ बहुत दुखी हुआ और घबराहट छोड़कर प्राण बचानेकी इच्छासे बहुत तेजीसे भागने लगा। उसे भागते देख भीम भी रथसे कूद पड़े और वेगपूर्वक दौड़कर उसकी चोटी पकड़ ली। फिर क्रोधमें भरे हुए भीमने उसे ऊपर उठाकर जमीनपर पटक दिया और खूब कचूमर निकाला। उन्होंने उसका सिर पकड़कर कई चपत लगाये। जब उसने पुनः उठनेकी कोशिश की तो उसके सिरपर लात जमा दी। वह बहुत रोने-चिल्लाने लगा, तो भी भीमसेन दोनों घुटने टेककर उसकी छातीपर चढ़ गये और घूँसोंसे मारने लगे। इस प्रकार बड़े जोरकी मार पड़नेसे जयद्रथ उसकी पीड़ा सह न सका और अचेत हो गया। फिर भी भीमका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ। तब अर्जुनने उन्हें रोका और कहा—'दुःशलाके वैधव्यका खयाल करके महाराजने जो आज्ञा दी थी, उसका भी तो विचार कीजिये।'

भीमसेनने कहा—इस नीच पापीने क्लेश पानेके अयोग्य द्रौपदीको कष्ट पहुँचाया है, अतः अब मेरे हाथसे इसका जीवित रहना ठीक नहीं है। लेकिन क्या करूँ? राजा युधिष्ठिर सदा ही दयालु बने रहते हैं और तुम भी नासमझीके कारण मेरे ऐसे कामोंमें बाधा पहुँचाया करते हो!

ऐसा कहकर भीमने जयद्रथके लंबे-लंबे बालोंको अर्धचन्द्राकार बाणसे मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दीं और कटु वचनोंसे उसका तिरस्कार करते हुए कहा—'अरे मूढ! यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मेरी बात सुन। तू राजाओंकी सभामें सदा अपनेको दास बताया कर; यह शर्त स्वीकार हो तो तुझे जीवनदान दे सकता हूँ।'

जयद्रथने स्वीकार किया। वह धूलमें लथपथ और अचेत-सा हो गया था। वह धरतीपरसे उठनेकी चेष्टा करने लगा। यह देख भीमने उसे बाँधा और उठाकर अपने रथपर डाल दिया। फिर अर्जुनको साथ लिये आश्रमपर

युधिष्ठिरके पास आये। भीमसेनने जयद्रथको उसी अवस्थामें धर्मराजके सामने पेश किया, वे हँस पड़े और कहा—'अच्छा, अब इसे छोड़ दो।' भीमने कहा—'द्रौपदीसे भी यह बात कह देनी चाहिये, अब यह पापी पाण्डवोंका दास हो चुका है।' उस समय द्रौपदीने युधिष्ठिरकी ओर देखकर भीमसेनसे कहा—

'आपने इसका सिर मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दी हैं, तथा यह महाराजकी दासता भी स्वीकार कर चुका है; अतः अब इसे छोड़ देना चाहिये।'

जयद्रथ बन्धनसे मुक्त कर दिया गया। उसने विह्वल होकर राजा युधिष्ठिरको तथा वहाँ बैठे हुए सभी मुनियोंको प्रणाम किया। दयालु राजाने उसकी ओर देखकर कहा—'जा, तुझे दासभावसे मुक्त कर दिया; फिर कभी ऐसा न करना। तू स्वयं तो नीच है ही, तेरे साथी भी वैसे ही नीच हैं। तूने परायी स्त्रीको अपनानेकी इच्छा की! धिक्कार है तुझे! भला, तेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य इतना अधम होगा जो ऐसा खोटा कर्म करे। जयद्रथ! जा, अब कभी पापमें मन न लगाना; अपने रथ, घोड़े और पैदल—सब साथ लिये जा।'

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर जयद्रथ बहुत लज्जित हुआ। वह चुपचाप नीचा मुँह किये चला गया। पाण्डवोंसे पराजित और अपमानित होनेके कारण उसे महान् दुःख हुआ, अतः अपने निवासस्थानको न जाकर वह हरद्वार चला गया। वहाँ भगवान् शङ्करकी शरण होकर उसने बहुत कड़ी तपस्या की। शिवजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसकी पूजा स्वीकार की और स्वयं वर माँगनेको कहा। जयद्रथने कहा—'मैं युद्धमें रथसहित पाँचों पाण्डवोंको जीत लूँ, यही वरदान दीजिये।' भगवान् शङ्कर बोले—'ऐसा

नहीं हो सकता। पाण्डवोंको तो युद्धमें न कोई जीत सकता है और न मार ही सकता है। केवल एक दिन तुम अर्जुनको छोड़ शेष चार पाण्डवोंको युद्धमें पीछे हटा सकते हो। अर्जुनपर तुम्हारा वश इसलिये नहीं चलेगा कि वे देवताओंके स्वामी नरके अवतार हैं, जिन्होंने बदरिकाश्रममें भगवान् नारायणके साथ तपस्या की है। उन्हें तो सारा विश्व भी नहीं जीत सकता, देवताओंके लिये भी वे अजेय हैं। मैंने उन्हें पाशुपत नामक दिव्य बाण दिया है, जिसकी तुलनाका कोई अस्त्र है ही नहीं। इसी प्रकार उन्होंने अन्य लोकपालोंसे भी वज्र आदि महान् अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये हैं। इस समय दुष्टोंका नाश और धर्मकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णुने यदुवंशमें अवतार लिया है। उन्हींको लोग श्रीकृष्ण कहते हैं। वे

स्वामी कुबेरको यह बात मालूम हो गयी कि मेरे पिता मुझपर नाराज हैं; अतः वे उन्हें प्रसन्न रखनेका यत्न करने लगे। उन्होंने तीन राक्षस-कन्याओंको पिताकी सेवामें नियुक्त किया। वे बड़ी सुन्दरी और नाचने-गानेमें निपुण थीं। तीनों ही अपना भला चाहती थीं, इसलिये एक दूसरीसे लाग-डाँट रखकर सदा महात्मा विश्रवाको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया करती थीं। उनके नाम थे—पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी। मुनि उनकी सेवाओंसे प्रसन्न हो गये और प्रत्येकको लोकपालोंके समान पराक्रमी पुत्र होनेका वरदान दिया। पुष्पोत्कटाके दो पुत्र हुए—रावण और कुम्भकर्ण। इस पृथ्वीपर इनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं था। मालिनीसे एक पुत्र विभीषणका जन्म हुआ। राकाके गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्रका नाम खर था और पुत्रीका शूर्पणखा। विभीषण इन सबमें अधिक सुन्दर, भाग्यशाली, धर्मरक्षक और सत्कर्मकुशल था। रावणके दस मुख थे, वह सबसे ज्येष्ठ था। उत्साह, बल और पराक्रममें भी वह महान् था। शारीरिक बलमें कुम्भकर्ण सबसे बढ़ा-चढ़ा था। मायावी और रणकुशल तो था ही, देखनेमें भी बड़ा भयङ्कर था। खरका पराक्रम धनुर्विद्यामें बढ़ा हुआ था; वह मांसाहारी और ब्राह्मणोंका द्वेषी था। शूर्पणखाकी आकृति बड़ी भयानक थी; वह सदा मुनियोंकी तपस्यामें विघ्न डाला करती थी।

एक दिन कुबेर महान् समृद्धिसे युक्त हो पिताके साथ बैठे थे; रावण आदिने जब उनका वह वैभव देखा तो उनके मनमें डाह पैदा हुई। उन सबने तपस्या करनेका निश्चय किया। ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेके लिये उन्होंने घोर तपस्या आरम्भ की। रावण एक पैरसे खड़ा हो पञ्चाग्नि तापता हुआ वायुके आहारपर रहकर एकाग्र चित्तसे एक हजार वर्षतक तपस्या करता रहा। कुम्भकर्णने भी आहारका संयम किया। वह भूमिपर सोता और कठोर नियमोंका पालन करता था। विभीषण केवल एक सूखा पत्ता खाकर रहते थे। उनका भी उपवासमें ही प्रेम था, वे सदा जप किया करते थे। कुम्भकर्ण और विभीषणने भी उतने ही वर्षोंतक कठोर तप किया। खर और शूर्पणखा—ये दोनों तपस्यामें लगे हुए अपने भाइयोंकी प्रसन्न चित्तसे सेवा करते थे।

एक हजार वर्ष पूरे होनेपर रावणने अपने मस्तक काट-काटकर अग्निमें उनकी आहुति दे दी। उसके इस अद्भुत कर्मसे ब्रह्माजी बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने स्वयं जाकर उन सबको तपस्या करनेसे रोका और सबको पृथक्-पृथक् वरदानका लोभ दिखाते हुए कहा, 'पुत्रो! मैं तुम सबपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो और तपसे निवृत्त हो जाओ। एक अमरत्व छोड़कर जो जिसकी इच्छा हो, माँग ले; वह पूर्ण होगी।' [फिर रावणकी ओर लक्ष्य करके कहा—] 'तुमने महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करनेकी इच्छासे अपने जिन मस्तकोंकी आहुति दी है, वे सब पूर्ववत् तुम्हारे शरीरमें जुड़ जायँगे। तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे तथा युद्धमें शत्रुओंपर विजयी होगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

रावण बोला—गन्धर्व, देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर तथा भूतोंसे मेरी कभी पराजय न हो।

ब्रह्माजीने कहा—तुमने जिन लोगोंका नाम लिया है, इनमें-

से किसीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा। केवल मनुष्यसे हो सकता है।

उनके ऐसा कहनेपर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—मनुष्य मेरा क्या कर लेंगे, मैं तो उनका भक्षण करने-वाला हूँ। इसके बाद ब्रह्माजीने कुम्भकर्णसे वरदान माँगनेको कहा। उसकी बुद्धि मोहसे ग्रस्त थी, इसलिये उसने अधिक कालतक नींद लेनेका वरदान माँगा। ब्रह्माजी उससे 'तथास्तु' कहकर विभीषणके पास गये और बारंबार कहा—'बेटा! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम भी वर माँगो।'

विभीषण बोले—भगवन्! बहुत बड़ा सङ्कट आनेपर भी कभी मेरे मनमें पापका विचार न उठे तथा बिना सीखे ही मेरे हृदयमें 'ब्रह्मास्त्रके प्रयोगकी विधि' स्फुरित हो जाय।

ब्रह्माजीने कहा—राक्षस-योनिमें जन्म लेकर भी तुम्हारा मन अधर्ममें नहीं लगा है, इसलिये तुम्हें 'अमर होने' का भी वर दे रहा हूँ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार वरदान प्राप्त कर

लेनेपर रावणने सबसे पहले लंकापर ही चढ़ाई की और कुबेरको युद्धमें जीतकर लंकासे बाहर कर दिया। भगवान् कुबेर लंका छोड़कर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरोंके साथ गन्धमादनपर आकर रहने लगे। रावणने उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया। इससे रुष्ट होकर कुबेरने शाप दिया कि 'यह विमान तुम्हारी सवारीमें नहीं आ सकता; जो युद्धमें तुम्हें मार डालेगा, उसीको यह वहन करेगा। मैं तुम्हारा बड़ा भाई और मान्य था, फिर भी तुमने मेरा अपमान किया है; इसका फल यह होगा कि बहुत जल्द तुम्हारा नाश हो जायगा।'

विभीषण धर्मात्मा था, वह सत्पुरुषोंके धर्मका विचार करके सदा कुबेरका अनुसरण किया करता था। इससे प्रसन्न होकर कुबेरने अपने भाई विभीषणको यक्ष और राक्षसोंकी सेनाका सेनापति बना दिया। इधर, मनुष्यभक्षी राक्षस और महाबली पिशाचोंने मिलकर रावणको अपना राजा बना लिया। दशानन बड़ा उत्कट बलवान् था; उसने चढ़ाई करके दैत्यों और देवताओंके पास जितने रत्न थे, सबका अपहरण कर लिया। सारे संसारको रुलानेके कारण उसका 'रावण' नाम सार्थक हुआ। देवताओंको तो वह सदा भयभीत किये रहता था।

देवताओंका रीछ और वानर-योनिमें उत्पन्न होना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर रावणसे कष्ट पाये हुए ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा सिद्धगण अग्निदेवको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। अग्निने कहा, 'भगवन्! आपने जो पहले वरदान देकर विश्रवाके पुत्र महाबली रावणको अवध्य कर दिया है, वह अब संसारकी समस्त प्रजाको सता रहा है; आप ही उसके भयसे हमारी रक्षा कीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—'अग्ने! देवता या असुर उसे युद्धमें नहीं जीत सकते। इसके लिये जो कार्य आवश्यक था, वह मैंने कर दिया है; अब शीघ्र ही उसका दमन हो जायगा। मैंने चतुर्भुज भगवान् विष्णुसे अनुरोध किया था, वे मेरी प्रार्थनासे संसारमें अवतार ले चुके हैं। वे ही रावणके दमन-का कार्य करेंगे।' फिर इन्द्रको लक्ष्य करके कहा, 'इन्द्र! तुम भी सब देवताओंके साथ पृथ्वीपर रीछ और वानरोंके रूपमें जन्म लो और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बलवान् पुत्र उत्पन्न करो।' फिर दुन्दुभी नामवाली गन्धर्वीसे कहा—'तुम भी देवकार्यकी सिद्धिके लिये पृथ्वीपर अवतार धारण करो।'

ब्रह्माजीका आदेश सुनकर दुन्दुभी मन्थराके नामसे अवतीर्ण हुई। वह शरीरसे कुबड़ी थी। इसी प्रकार इन्द्र आदि देवताओंने भी अवतीर्ण होकर रीछ और वानरोंकी स्त्रियोंमें पुत्र उत्पन्न किये। वे सब वानर और रीछ यश तथा बलमें अपने पिता देवताओंके समान ही हुए। वे पर्वतोंके

शिखर तोड़ डालते थे। शाल और ताड़के वृक्ष तथा पत्थर-की चट्टानें ही उनके आयुध थे। उनका शरीर वज्रके समान अभेद्य और सुदृढ था। वे सभी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, बलवान् और युद्ध करनेमें निपुण थे। ब्रह्माजीने यह सब व्यवस्था करके मन्थरासे जो काम लेना था, वह उसे समझा दिया।

रामका वनवास, खर-दूषण आदि राक्षसोंका नाश और रावणका मारीचके पास जाना

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! आपने श्रीरामचन्द्रजी आदि सभी भाइयोंके जन्मकी कथा तो सुना दी, अब मैं उनके वनवासका कारण सुनना चाहता हूँ। दशरथकुमार राम और लक्ष्मण तथा यशस्विनी सीताको वनमें क्यों जाना पड़ा?

मार्कण्डेयजीने कहा—अपने पुत्रोंके जन्मसे राजा दशरथको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके वे तेजस्वी पुत्र क्रमशः बढ़ने लगे। उन्होंने उपनयनके पश्चात् विधिवत् ब्रह्मचर्यका पालन किया और वेद तथा रहस्यसहित धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् हुए। समयानुसार जब उनका विवाह हुआ, उस समय राजा विशेष प्रसन्न और सुखी हुए। चारों पुत्रोंमें राम सबसे ज्येष्ठ थे; वे अपने मनोहर रूप और सुन्दर स्वभावसे समस्त प्रजाको आनन्दित करते थे, सबका मन उनमें रमता था।

राजा दशरथ बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने सोचा—'अब मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गयी, अतः रामको युवराज-पदपर अभिषिक्त कर देना चाहिये।' इस विषयमें उन्होंने अपने मन्त्रियों और धर्मज्ञ पुरोहितोंसे भी सलाह ली। सबने राजाके इस समयोचित प्रस्तावका अनुमोदन किया।

श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर नेत्र कुछ-कुछ लाल थे, भुजाएँ घुटनोंतक लंबी थीं, मस्त हाथीके समान चाल थी, छाती चौड़ी और सिरपर काले-काले घुँघराले बाल थे। देहकी दिव्य कान्ति दमकती रहती थी। युद्धमें उनका पराक्रम देवराज इन्द्रसे कम नहीं था। उनका नयनाभिराम रूप देखकर शत्रुके भी नेत्र और मन लुभा जाते थे। वे सब धर्मोंके तत्त्ववेत्ता और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। सम्पूर्ण प्रजाका उनमें अनुराग था। वे सभी विद्याओंमें प्रवीण, जितेन्द्रिय, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, धर्मात्मा, साधुओंके रक्षक, धैर्यवान्, दुर्द्धर्ष, विजयी और अजेय थे। ऐसे गुणवान् तथा माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले पुत्रको देख-देखकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न रहा करते थे।

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा दशरथने पुरोहितको बुलाकर कहा, 'ब्रह्मन्! आज पुष्य नक्षत्र है, रातमें बड़ा पवित्र योग आनेवाला है। आप राज्याभिषेककी सामग्री एकत्र कीजिये और रामको इसकी सूचना भी दे दीजिये।' राजाकी यह बात मन्थराने भी सुन ली। वह ठीक समयपर कैकेयीके पास जाकर बोली—

'रानी कैकेयी! आज राजाने तुम्हारे लिये दुर्भाग्यकी घोषणा की है। कौसल्याका ही भाग्य अच्छा है कि उसके पुत्रका राज्याभिषेक हो रहा है। तुम्हारे ऐसे भाग्य कहाँ? तुम्हारा पुत्र तो राज्यका अधिकारी ही नहीं है!'

मन्थराकी बात सुनकर परम सुन्दरी कैकेयी एकान्तमें अपने पति राजा दशरथके पास गयी और प्रेम जताती हुई हँस-हँसकर मधुर शब्दोंमें बोली, 'राजन्! आप बड़े सत्यवादी हैं; पहले जो मुझे एक वर देनेको कहा था, उसे दीजिये।' राजाने कहा, 'लो, अभी देता हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।' कैकेयीने राजाको वचनबद्ध करके कहा, 'आपने रामके लिये जो राज्याभिषेकका सामान तैयार कराया है, उससे भरतका अभिषेक किया जाय और राम वनमें चले
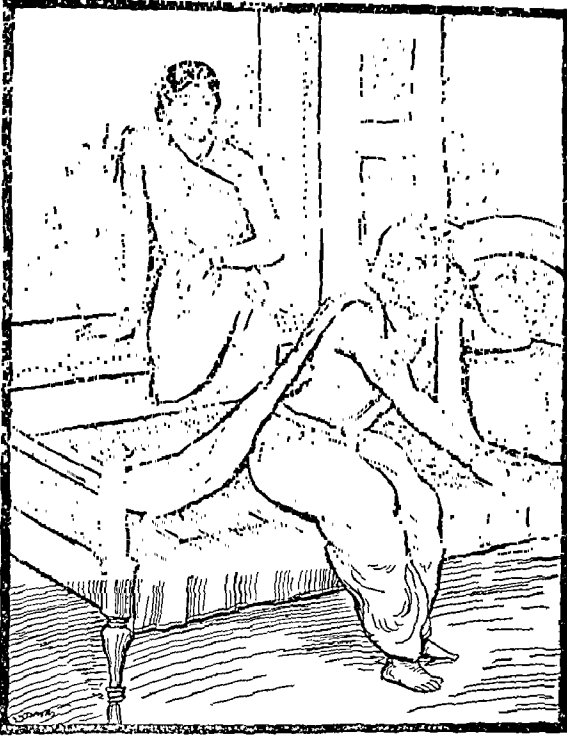
जायँ ।' कैकेयीकी यह अप्रिय बात सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ, वे मुँहसे कुछ भी न बोल सके । रामको जब यह मालूम हुआ कि पिताजी कैकेयीको वरदान देकर मेरा वनवास स्वीकार कर चुके हैं, तो उनके सत्यकी रक्षाके लिये वे स्वयं वनकी ओर चल दिये । लक्ष्मण भी हाथमें धनुष लिये भाईके पीछे हो लिये तथा सीताने भी रामका साथ दिया । रामके वन चले जानेपर राजा दशरथने शरीर त्याग दिया ।

तदनन्तर कैकेयीने भरतको [ननिहालसे] बुलवाया और कहा—'राजा स्वर्गवासी हो गये और राम-लक्ष्मण वनमें हैं; अब यह विशाल साम्राज्य निष्कण्टक हो गया है, तुम इसे ग्रहण करो ।' भरत बड़े धर्मात्मा थे । वे माताकी बात सुनकर बोले—'कुलघातिनी ! धनके लालचमें तूने कितनी क्रूरताका काम किया है । पतिकी हत्या की और इस वंशका सत्यानाश कर डाला ! मेरे माथेपर कलङ्कका टीका लगा दिया ।' यह कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे । उन्होंने सारी प्रजाके निकट अपनी सफाई दी कि इस षड्यन्त्रमें मेरा बिल्कुल हाथ नहीं था । फिर वे श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेकी इच्छासे कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीको आगे करके शत्रुघ्नके साथ वनको चले । साथमें वसिष्ठ-वामदेव आदि बहुत-से ब्राह्मण और हजारों पुरवासी भी थे । चित्रकूट पर्वतपर जाकर भरतने लक्ष्मणसहित रामको धनुष हाथमें लिये तपस्वीके वेषमें देखा । भरतके अनुनय-विनय करनेपर भी राम लौटनेको राजी न हुए । पिताकी आज्ञाका पालन करना था, इसलिये उन्होंने भरतको ही समझा-बुझाकर वापस कर दिया । भरतजी अयोध्यामें न जाकर नन्दिग्राममें रहने लगे और भगवान् श्रीरामकी चरण-पादुका सामने रखकर राज्यका प्रबन्ध देखने लगे ।

रामने सोचा, यदि यहाँ रहूँगा तो नगर और प्रान्तके लोग बराबर आते-जाते रहेंगे । इसलिये वे शरभङ्ग मुनिके आश्रमके पास घोर जंगलमें चले गये । शरभङ्गका आदर-सत्कार करके वे दण्डकारण्यमें जाकर गोदावरी नदीके सुरम्य तटपर रहने लगे । वहाँसे पास ही जनस्थान नामक वनका एक भाग था, उसमें 'खर' राक्षस रहता था । शूर्पणखाके कारण रामका उसके साथ वैर हो गया । श्रीरामचन्द्रजीने वहाँके तपस्वियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया । महाबलवान् खर और दूषणका वध करके उन्होंने उस स्थानको धर्मारण्य एवं निर्भय बना दिया । शूर्पणखाके

नाक और होठ काट लिये गये थे, इसीके कारण यह विवाद खड़ा हुआ था। जब जनस्थानके वे सब राक्षस मारे गये, तो शूर्पणखा लंकामें गयी और दुःखसे व्याकुल होकर रावणके चरणोंपर गिर पड़ी। उसके मुखपर अब भी लोहूके दाग बने हुए थे, जो सूख गये थे। अपनी बहिनको इस विकृत दशामें देखकर रावण क्रोधसे विह्वल हो उठा और दाँत कटकटाता हुआ सिंहासनसे कूद पड़ा। उसने मन्त्रियोंको वहाँ ही छोड़ एकान्तमें जाकर शूर्पणखासे कहा, 'कल्याणी! बताओ तो किसने मेरी परवा न करके, मुझे अपमानित करके तुम्हारी यह दशा की है। कौन तीखा त्रिशूल लेकर अपने सारे शरीरमें चुभोना चाहता है? कौन सिंहकी दाढ़ोंमें हाथ डालकर बेखटके खड़ा है?' इस प्रकार बोलते हुए रावणके कान, नाक और आँख आदि छिद्रोंसे आगकी लपटें निकलने लगीं।

शूर्पणखाने रामके पराक्रम और खर-दूषणसहित समस्त राक्षसोंके संहारका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने अपनी बहिनको सान्त्वना दी और उस समयका कर्तव्य निश्चित करके नगरकी रक्षा आदिका प्रबन्ध कर आकाशमार्गसे उड़ा। उसने गहरे महासागरको पार किया, फिर ऊपर-ही-ऊपर गोकर्ण-तीर्थमें पहुँचा। वहाँ आकर रावण अपने भूतपूर्व मन्त्री मारीचसे मिला, जो श्रीरामचन्द्रजीके ही डरसे वहाँ छिपकर तपस्या कर रहा था।

कपटमृगका वध और सीताका हरण

मार्कण्डेयजी कहते हैं—रावणको आया देख मारीच सहसा उठकर खड़ा हो गया और फल-मूल आदि लाकर उसने उसका अतिथि-सत्कार किया। फिर कुशल-मंगलके पश्चात् पूछा, 'राक्षसराज! ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी, जिसके लिये आपने यहाँतक आनेका कष्ट उठाया? मुझसे यदि आपका कोई कठिन-से-कठिन कार्य भी होनेवाला हो, तो उसे निःसंकोच बतावें और ऐसा समझें कि वह काम अब पूरा

रावण क्रोध और अमर्षमें भरा हुआ था, उसने एक-एक करके रामकी सारी करतूतें संक्षेपमें बयान कीं। सुनकर मारीचने कहा—'रावण! श्रीरामचन्द्रजीके पास जानेसे तुम्हारा कोई लाभ नहीं है। मैं उनका पराक्रम जानता हूँ। भला, इस जगत्‌में ऐसा कौन है जो उनके बाणोंका वेग सह सके। उन्हीं महापुरुषके कारण आज मैं यहाँ संन्यासी बना बैठा हूँ। बदला लेनेकी नीयतसे उनके पास जाना मृत्युके मुखमें
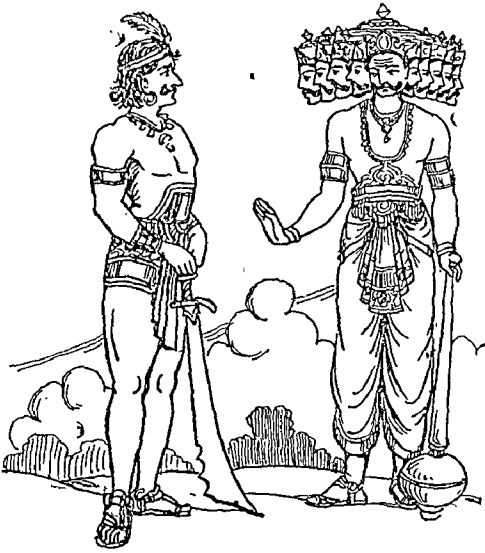
उसकी बात सुनकर रावणके क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उसने डाँटकर कहा—'मारीच! यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो निश्चय जान, तुझे अभी मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा।'

मारीचने मन-ही-मन सोचा—यदि मृत्यु निश्चित है, तो श्रेष्ठ पुरुषके ही हाथसे मरना अच्छा होगा। फिर उसने पूछा, 'अच्छा, बताओ, मुझे तुम्हारी क्या सहायता करनी होगी?' रावण बोला—'तुम एक सुन्दर मृगका रूप धारण करो, जिसके सींग रत्नमय प्रतीत हों और शरीरके रोएँ भी चित्र-विचित्र रत्नोंके ही रंगवाले जान पड़ें। फिर सीताकी दृष्टि जहाँ पड़ सके, ऐसी जगह खड़े रहकर उसे लुभाओ। सीता तुम्हें देखते ही, पकड़ लानेके लिये अवश्य ही रामचन्द्रको तुम्हारे पास भेजेगी। उनके दूर चले जानेपर सीताको वशमें करना सहज होगा। मैं उसे हरकर ले जाऊँगा और रामचन्द्र अपनी प्यारी स्त्रीके वियोगमें बेसुध होकर प्राण दे देंगे। बस, तुम्हें यही सहायता करनी है।'

रावणकी बात सुनकर मारीचको बहुत दुःख हुआ। वह रावणके पीछे-पीछे चला। श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके निकट पहुँचकर दोनोंने पहलेकी सलाहके अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया। मृगरूपमें मारीच ऐसे स्थानपर खड़ा हुआ, जहाँसे सीता उसे भलीभाँति देख सके। विधिका विधान प्रबल है; उसीकी प्रेरणासे सीताने रामको वह मृग मार लानेके लिये भेजा। श्रीरामचन्द्रजी सीताका प्रिय करनेके लिये हाथमें धनुष ले स्वयं तो मृगको मारने चले और लक्ष्मणको सीताकी रक्षामें नियुक्त कर दिया। उनको अपना पीछा करते देख वह मृग कभी छिपता और कभी प्रकट होता हुआ उन्हें बहुत दूर ले गया। तब भगवान् रामने यह जानकर कि यह तो निशाचर है, उसे अपने अचूक बाणका निशाना बनाया। रामचन्द्रजीके बाणकी चोट खाकर मारीचने उनके ही स्वरमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!!' कहकर आर्तनाद किया।

वह करुणाभरी पुकार सुनकर सीता जिधरसे आवाज़ आयी थी, उस ओर दौड़ पड़ी। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'माता! डरनेकी कोई बात नहीं है। भला, कौन ऐसा है जो भगवान् रामको मार सके। घबराओ नहीं, एक ही मुहूर्तमें तुम अपने पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीको यहाँ उपस्थित देखोगी।'

लक्ष्मणकी बात सुनकर सीताने उन्हें सन्देहभरी दृष्टिसे देखा। यद्यपि वह साध्वी और पतिव्रता थी, सदाचार ही उसका भूषण था; तथापि स्त्रीस्वभाववश वह लक्ष्मणके प्रति बड़े ही कठोर वचन कहने लगी। लक्ष्मण भगवान् रामके प्रेमी और सदाचारी थे, सीताके मर्मभेदी वचन सुनकर उन्होंने दोनों कान बंद कर लिये और श्रीरामचन्द्रजी जिस मार्गसे गये थे, उसीसे वे भी चल पड़े। हाथमें धनुष ले श्रीरामके चरण-चिह्नोंको देखते हुए वे आगे बढ़ गये।

इसी अवसरपर साध्वी सीताको हर ले जानेकी इच्छासे संन्यासीके वेषमें रावण वहाँ उपस्थित हुआ। यतिको अपने आश्रममें आया देख धर्मको जाननेवाली जनकनन्दिनीने फल-मूलके भोजन आदिसे अतिथि-सत्कारके लिये उसे निमन्त्रित किया। रावण बोला, 'सीते! मैं राक्षसोंका राजा रावण हूँ,

मेरा नाम सर्वत्र विख्यात है। समुद्रके पार बसी हुई रमणीय लंकापुरी मेरी राजधानी है। सुन्दरी! तुम इस तपस्वी रामको छोड़कर मेरे साथ लंकामें चलो। वहाँ मेरी पत्नी बनकर रहना। बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ तुम्हारी सेवामें रहेंगी और तुम उन सबमें रानीकी भाँति शोभायमान होगी।'
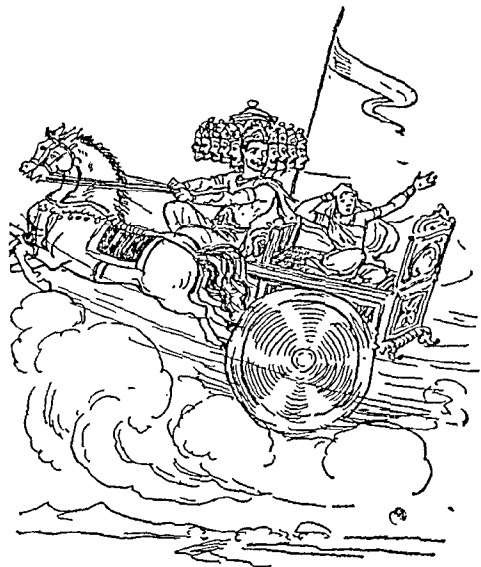
रावणके ऐसे वचन सुनकर जानकीने अपने दोनों कान मूँद लिये और बोली—'बस, अब ऐसी बातें मुँहसे मत निकाल। आकाशसे तारे टूट पड़ें, पृथ्वी टूक-टूक हो जाय और अग्नि अपने उष्ण-स्वभावका त्याग कर दे तो भी मैं श्रीरामचन्द्रजीका परित्याग नहीं कर सकती।' यह कहकर वह आश्रममें ज्यों ही प्रवेश करने लगी, रावणने दौड़कर उसे रोक लिया और बड़े कठोर स्वरमें डराने-धमकाने लगा। बेचारी सीता बेहोश हो गयी और रावण उसके केश पकड़कर बलपूर्वक आकाशमार्गसे ले चला। वह 'राम' का नाम ले-लेकर रो रही थी और राक्षस उसे हरकर लिये जा रहा था।

इसी अवस्थामें एक पर्वतकी गुफामें रहनेवाले गृध्रराज जटायुने सीताको देखा।

जटायु-वध और कबन्धका उद्धार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! गृध्रराज जटायु अरुणका पुत्र था, उसके बड़े भाईका नाम था सम्पाति। राजा दशरथके साथ उसकी बड़ी मित्रता थी। इसी नाते वह सीताको अपनी पुत्रवधूके समान समझता था। उसे रावणके चंगुलमें फँसी देखकर जटायुके क्रोधकी सीमा न रही। महान् वीर तो वह था ही, रावणके ऊपर वेगसे झपटा और ललकार-कर कहने लगा—'निशाचर! तू मिथिलेशकुमारी सीताको छोड़ दे, तुरंत छोड़ दे। यदि मेरी पुत्रवधूको नहीं छोड़ेगा, तो तुझे जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा।'

ऐसा कहकर जटायुने रावणको छेदना आरम्भ किया। नखोंसे, पंखोंसे और चोंचसे मार-मारकर उसके सैकड़ों घाव कर दिये। सारा शरीर जर्जर हो गया। देहसे रक्तकी धारा बहने लगी, मानो पहाड़से झरना गिर रहा हो। रामचन्द्रजीका प्रिय और हित चाहनेवाले जटायुको इस प्रकार चोट करते देख रावणने हाथमें तलवार ली और उसके दोनों पंख काट डाले। इस तरह जटायुको मारकर वह राक्षस सीताको लिये हुए फिर आकाशमार्गसे चल दिया। सीताको जहाँ कहीं मुनियोंका

आश्रम दीखता, जहाँ-जहाँ नदी, तालाब या पोखरा दिखायी पड़ता, उन सब स्थानोंपर वह कोई-न-कोई अपना गहना

गिरा देती थी। आगे जाकर सीताने एक पर्वतकी चोटीपर बैठे हुए पाँच बड़े-बड़े वानरोंको देखा, वहाँ भी उसने अपने शरीरका एक बहुमूल्य दिव्य वस्त्र गिरा दिया। रावण आकाशचारी पक्षीकी भाँति बड़ी मौजसे आकाशमें चल रहा था, उसने बड़ी शीघ्रतासे अपना मार्ग तै किया और सीताको लिये हुए विश्वकर्माकी बनायी हुई अपनी मनोहर पुरी लंकामें जा पहुँचा।

इस प्रकार इधर सीता हरी गयी और उधर श्रीरामचन्द्रजी उस कपटमृगको मारकर लौटे। रास्तेमें उनकी लक्ष्मणसे भेंट हुई। रामने उलाहना देते हुए कहा—'लक्ष्मण! राक्षसोंसे भरे हुए इस घोर जङ्गलमें जानकीको अकेली छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आये?' लक्ष्मणने सीताकी कही हुई सारी बातें उन्हें सुना दीं। सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके मनमें बड़ा क्लेश हुआ। शीघ्रतापूर्वक आश्रमके पास पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक पर्वतके समान विशालकाय गृध्र अधमरा पड़ा हुआ है। दोनों भाई जब निकट पहुँचे तो गृध्रने उनसे

कहा—'आप दोनोंका कल्याण हो, मैं राजा दशरथका मित्र गृध्रराज जटायु हूँ।' उसकी बात सुनकर दोनों भाई परस्पर कहने लगे—'यह कौन है, जो हमारे पिताका नाम लेकर परिचय दे रहा है?' निकट आनेपर उन्होंने उसके दोनों पंख कटे हुए देखे। गृध्रने बताया कि 'सीताको छुड़ानेके लिये युद्ध करते समय रावणके हाथसे मैं मारा गया हूँ।' रामने पूछा—'रावण किस दिशाकी ओर गया है?' गृध्रने सिर हिलाकर इशारेसे दक्षिण दिशा बतायी और प्राण त्याग दिया। उसका सङ्केत समझकर भगवान् रामने पिताका मित्र होनेके नाते उसे आदर देते हुए उसका विधिवत् अन्त्येष्टि-संस्कार किया।

तदनन्तर आश्रमपर जाकर उन्होंने देखा कुशकी चटाई उजड़ी हुई है, कुटी उजाड़ हो गयी है, घर सूना है। इससे सीता-हरणका निश्चय हो जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ी वेदना हुई। उनका हृदय दुःख और सोचसे व्याकुल हो गया। फिर वे सीताकी खोज करते हुए दण्डकारण्यके दक्षिणकी ओर चल दिये।

कुछ दूर जानेपर उस महान् वनमें राम और लक्ष्मणने देखा कि मृगोंके झुंड इधर-उधर भाग रहे हैं। थोड़ी ही देरमें उन्हें भयानक कबन्ध दिखायी पड़ा। वह मेघके समान काला और पर्वतके सदृश विशालकाय था। शाल वृक्षकी शाखाके समान उसकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। चौड़ी छाती, विशाल आँखें, लंबा-सा पेट और उसमें बहुत बड़ा मुँह—यही उसकी हुलिया थी। उस राक्षसने अचानक आकर लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया और उन्हें अपने मुँहकी ओर खींचा। इससे लक्ष्मण बहुत दुखी हुए और नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भगवान् रामने लक्ष्मणको धैर्य देते हुए कहा—'नरश्रेष्ठ! तुम खेद न करो; मेरे रहते यह राक्षस तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। देखो, मैं इसकी बायीं भुजा काटता हूँ; तुम भी दाहिनी बाँह काट लो।' यह कहते-कहते रामने तिलके पौधेके समान उसकी एक बाँह तीखी तलवारसे काटकर गिरा दी। फिर लक्ष्मणने भी अपने खड्गसे उसकी दूसरी बाँह काट ली और पसलीपर भी प्रहार किया।

पड़ा । उसकी देहसे एक सूर्यके समान प्रकाशमान दिव्य पुरुष निकलकर आकाशमें स्थित हो गया । श्रीरामचन्द्रजीने उससे पूछा—'तू कौन है ?' उसने कहा—"भगवन् ! मैं विश्वावसु नामक गन्धर्व हूँ, ब्राह्मणके शापसे राक्षसयोनिमें आ पड़ा था। आज आपके स्पर्शसे मैं शापमुक्त हो गया । अब सीताका समाचार सुनिये—लंकाका राजा रावण सीताको हरकर ले गया है । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर ऋष्यमूक पर्वत है, उसके निकट 'पम्पा' नामक छोटा-सा सरोवर है । वहाँ ही अपने चार मन्त्रियोंके साथ राजा सुग्रीव रहा करते हैं । वे सुवर्णमालाधारी वानरराज वालीके छोटे भाई हैं । उनसे मिलकर आप अपने दुःखका कारण बताइये; उनका शील और स्वभाव आपके ही समान है, अवश्य ही वे आपकी मदद कर सकते हैं । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि आपकी जानकीसे भेंट होगी ।"

यह कहकर वह परम कान्तिमान् दिव्य पुरुष अन्तर्धान हो गया और राम तथा लक्ष्मण दोनों ही उसकी बात सुनकर बहुत विस्मित हुए ।

इससे कबन्धके प्राणपखेरू उड़ गये और वह पृथ्वीपर गिर

भगवान् रामकी सुग्रीवसे मैत्री और वालीका वध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर सीताहरणके दुःखसे व्याकुल श्रीरामचन्द्रजी पम्पा सरोवरपर आये । उसके जलमें स्नान करके उन्होंने पितरोंका तर्पण किया; फिर दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वतपर चढ़ने लगे । उस समय पर्वतकी चोटीपर उन्हें पाँच वानर दिखायी पड़े । सुग्रीवने जब दोनोंको आते देखा तो उन्होंने अपने बुद्धिमान् मन्त्री हनुमान्‌को उनके पास भेजा । हनुमान्‌से बातचीत हो जानेपर दोनों उनके साथ सुग्रीवके पास गये । श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवके साथ मैत्री की और उनसे अपना कार्य निवेदन किया । उनकी बात सुनकर वानरोंने उन्हें वह दिव्य वस्त्र दिखलाया, जिसे हरणके समय सीताने आकाशसे नीचे डाल दिया था । उसे पाकर रामको और भी निश्चय हो गया कि सीताको रावण ही ले गया है । उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको समस्त भूमण्डलके वानरोंके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया । साथ ही उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं युद्धमें वालीको मार डालूँगा ।' तब सुग्रीवने भी सीताको ढूँढ़ लानेकी प्रतिज्ञा की ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके दोनोंने एक-दूसरेको विश्वास दिलाया, फिर सब मिलकर युद्धकी इच्छासे किष्किन्धाको चले। वहाँ पहुँचकर सुग्रीवने बड़े जोरसे गर्जना की। वालीको यह सहन नहीं हो सका; उसे युद्धके लिये निकलते देख उसकी स्त्री ताराने रोकते हुए कहा—'नाथ! आज सुग्रीव जिस प्रकार सिंहनाद कर रहा है, उससे मालूम होता है इस समय उसका बल बढ़ा हुआ है; उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है। अतः आप घरसे न निकलें।' वालीने कहा, 'तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी आवाजसे ही उनके विषयमें सब कुछ जान लेती हो; सोचकर बताओ तो सही, सुग्रीवको किसने सहारा दिया है?' तारा क्षणभर विचार करनेके बाद बोली—'राजा दशरथके पुत्र महाबली रामकी स्त्री सीताको किसीने हर लिया है; उसकी खोजके लिये उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता जोड़ी है। दोनोंने ही एक-दूसरेके शत्रुको शत्रु और मित्रको मित्र मान लिया है। श्रीरामचन्द्रजी धनुर्धर वीर हैं। उनके छोटे भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण हैं, उन्हें भी कोई युद्धमें नहीं जीत सकता। इनके सिवा, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान्—ये चार सुग्रीवके मन्त्री हैं; ये लोग भी बड़े बलवान् हैं। अतः इस समय श्रीरामचन्द्रजीके बलका सहारा लेनेके कारण सुग्रीव तुम्हें मार डालनेमें समर्थ है।'

ताराने यद्यपि उसके हितकी बात कही थी, तो भी उसने उसके ऊपर आक्षेप किया और किष्किन्धा-गुफाके द्वारसे बाहर निकल आया। सुग्रीव माल्यवान् पर्वतके पास खड़ा था, वहाँ पहुँचकर वालीने उससे कहा—'अरे! तू तो अपनी जान बचाता फिरता था, पहले अनेकों बार तुझे युद्धमें जीतकर भी मैंने भाई जानकर जीवित छोड़ दिया था। आज फिर मरनेके लिये क्या जल्दी आ पड़ी?'

उसकी बात सुनकर सुग्रीव भगवान् रामको सूचित करते हुए-से हेतुभरे वचन बोले, 'भैया! तुमने मेरा राज्य ले लिया, स्त्री छीन ली; अब मैं किसके आसरे जीवित रहूँ। यही सोचकर मरने चला आया हूँ।' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर वाली और सुग्रीव दोनों एक-दूसरेसे गुथ गये। उस युद्धमें साल और ताड़के वृक्ष तथा पत्थरकी चट्टानें—ये ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। दोनों दोनोंपर प्रहार करते, दोनों जमीनपर गिर जाते और फिर दोनों ही उठकर विचित्र ढंगसे पैंतरे बदलते तथा मुक्के और घूँसोंसे मारते थे। नख और दाँतोंसे दोनोंके शरीर छिन्न-भिन्न होकर लोहू-लुहान हो रहे थे। पता नहीं चलता था कि कौन वाली है और कौन सुग्रीव। तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवकी पहचानके लिये उनके गलेमें एक माला डाल दी। चिह्नके द्वारा सुग्रीवको
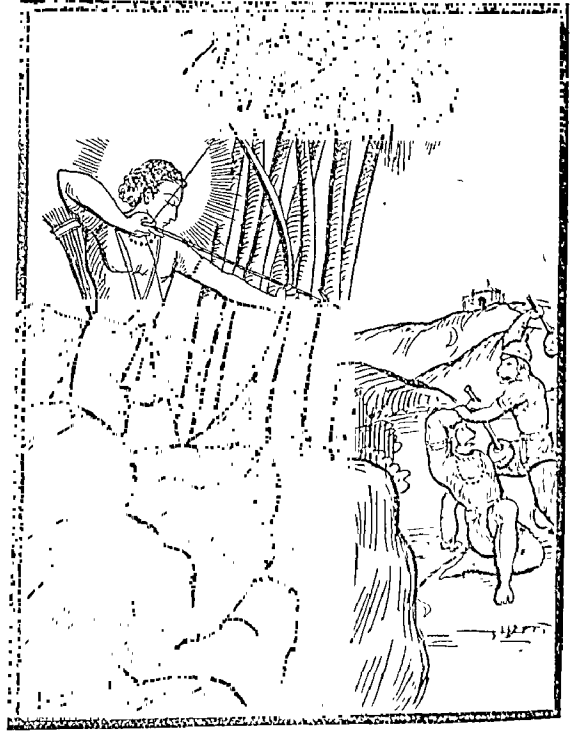
पहचानकर भगवान् रामने अपना महान् धनुष खींचकर चढ़ाया और वालीको लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया। वह बाण वालीकी छातीमें जाकर लगा। वालीने एक बार अपने सामने खड़े हुए लक्ष्मणसहित भगवान् रामको देखा और उनके इस कार्यकी निन्दा करता हुआ वह मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा। वालीकी मृत्युके पश्चात् सुग्रीवने किष्किन्धाके राज्य और तारापर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय वर्षाकालका आरम्भ था; अतः श्रीरामचन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतपर ही रहकर वर्षाके चार महीने व्यतीत किये। उन दिनों सुग्रीवने भलीभाँति उनका स्वागत-सत्कार किया।
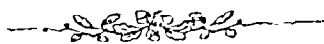
त्रिजटाका स्वप्न, रावणका प्रलोभन और सीताका सतीत्व

मार्कण्डेयजी कहते हैं—कामके वशीभूत हुए रावणने सीताको लंकामें ले जाकर एक सुन्दर भवनमें ठहराया। वह भवन नन्दनवनके समान मनोहर उद्यानके भीतर अशोक-वाटिकाके निकट बना हुआ था। सीता तपस्विनी-वेषमें वहाँ ही रहती और प्रायः तप-उपवास किया करती थी। निरन्तर अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका चिन्तन करते-करते वह दुबली हो गयी और बड़े कष्टसे दिन व्यतीत कर रही थी। रावणने सीताकी रक्षाके लिये कुछ राक्षसी स्त्रियोंको नियुक्त कर रक्खा था, उनकी आकृति बड़ी भयानक थी। कोई फरसा लिये हुए थी और कोई तलवार। किसीके हाथमें त्रिशूल था तो किसीके हाथमें मुद्गर। कोई जलती हुई लुआठी ही लिये रहती थी। वे सब-की-सब सीताको सब ओरसे घेरकर बड़ी सावधानीके साथ रात-दिन उसकी रक्षा करती थीं। वे बड़े विकट वेष बनाकर कठोर स्वरमें सीताको धमकाती हुई आपसमें कहती थीं—'आओ, हम सब मिलकर इसको काट डालें और तिलके समान टुकड़े-टुकड़े करके बाँटकर खा जायँ।' उनकी बातें सुनकर एक दिन सीताने कहा—'बहिनो! तुमलोग मुझे जल्दी खा जाओ। अब इस जीवनके लिये तनिक भी लोभ नहीं है। मैं अपने स्वामी कमललोचन भगवान् रामके बिना जीना ही नहीं चाहती। प्राणप्यारेके वियोगमें निराहार ही रहकर अपना शरीर सुखा डालूँगी, किन्तु उनके सिवा दूसरे पुरुषका सेवन नहीं करूँगी। इस बातको सत्य जानो और इसके बाद जो कुछ करना हो, करो।'

सीताकी बात सुनकर वे भयङ्कर शब्द करनेवाली राक्षसियाँ रावणको सूचना देनेके लिये चली गयीं। उनके चले जानेपर एक त्रिजटा नामकी राक्षसी वहाँ रह गयी। वह धर्मको जाननेवाली और प्रिय वचन बोलनेवाली थी। उसने सीताको सान्त्वना देते हुए कहा—"सखी! मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ। मुझपर विश्वास करो और अपने हृदयसे भयको निकाल दो। यहाँ एक श्रेष्ठ राक्षस रहता है, जिसका नाम है अविन्ध्य। वह वृद्ध होनेके साथ ही बड़ा बुद्धिमान् है और सदा श्रीरामचन्द्रजीके हितचिन्तनमें लगा रहता है। उसने तुमसे कहनेके लिये यह सन्देश भेजा है—'तुम्हारे स्वामी महाबली भगवान् राम अपने भाई लक्ष्मणके साथ कुशलपूर्वक हैं। वे इन्द्रके समान तेजस्वी वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता करके तुम्हें छुड़ानेका उद्योग कर रहे हैं। अब रावणसे भी तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये; क्योंकि नलकूबरने जो उसको शाप दे रक्खा है, उसीसे तुम सुरक्षित रहोगी। एक बार रावणने नलकूबरकी स्त्री रम्भाका स्पर्श किया था, इसीसे उसको शाप हुआ। अब वह अजितेन्द्रिय राक्षस किसी भी परस्त्रीको विवश करके उसपर बलात्कार नहीं कर सकता। तुम्हारे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणको साथ लेकर शीघ्र ही यहाँ आनेवाले हैं। उस समय सुग्रीव उनकी रक्षामें रहेंगे। भगवान् राम अवश्य ही तुम्हें यहाँसे छुड़ा ले जायँगे।' मैंने भी अनिष्टकी सूचना देनेवाले घोर स्वप्न देखे हैं, जिनसे रावणका विनाशकाल निकट जान पड़ता है। सपनेमें देखा है कि रावणका सिर मूँड़ दिया गया है, उसके सारे शरीरमें तेल लगा है और वह कीचड़में डूब रहा है। यह भी देखनेमें आया कि गदहोंसे जुते हुए रथपर खड़ा होकर वह बारंबार नाच रहा है। उसके साथ ही ये कुम्भकर्ण आदि भी मूँड़ मुड़ाये लाल चन्दन लगाये लाल-लाल फूलोंकी माला पहने नंगे होकर दक्षिण दिशाको जा रहे हैं। केवल विभीषण ही श्वेत छत्र धारण किये सफेद पगड़ी पहने श्वेत पुष्प और चन्दनसे चर्चित हो श्वेतपर्वतके ऊपर खड़े दिखायी पड़े हैं। विभीषणके चार मन्त्री भी उनके साथ उन्हींके वेषमें देखे गये हैं; अतः ये लोग उस आनेवाले महान् भयसे मुक्त हो जायँगे। स्वप्नमें यह भी देखा कि भगवान् रामके बाणोंसे समुद्रसहित सम्पूर्ण पृथ्वी आच्छादित हो गयी है; अतः यह निश्चय है कि तुम्हारे पतिदेवका सुयश समस्त भूमण्डलमें फैल जायगा। सीते! अब तुम शीघ्र ही अपने पति और देवरसे मिलकर प्रसन्न होगी।"

त्रिजटाकी ये बातें सुनकर सीताके मनमें बड़ी आशा बँध गयी कि पुनः पतिदेवसे भेंट होगी। उसकी बात समाप्त होते ही सभी राक्षसियाँ सीताके पास आकर उसे घेरकर बैठ गयीं। वह एक शिलापर बैठी हुई पतिकी यादमें रो रही थी। इतनेहीमें रावणने आकर उसे देखा और कामबाणसे पीड़ित होकर उसके पास आ गया। सीता उसे देखते ही भयभीत हो गयी। रावण कहने लगा—'सीते! आजतक तुमने जो अपने पतिपर अनुग्रह दिखाया, यह बहुत हुआ; अब मुझपर कृपा करो। मैं तुम्हें अपनी सब स्त्रियोंमें ऊँचा आसन देकर पटरानी बनाना चाहता हूँ। देवता, गन्धर्व, दानव और दैत्य—

इन सबकी कन्याएँ मेरी पत्नीके रूपमें यहाँ विद्यमान हैं। चौदह करोड़ पिशाच, अट्ठाईस करोड़ राक्षस और इनके तिगुने यक्ष मेरी आज्ञाका पालन करते हैं। मेरे भाई कुबेरकी तरह मेरी सेवामें भी अप्सराएँ रहती हैं। मेरे यहाँ भी इन्द्रके समान दिव्य भोग प्राप्त होते हैं। यहाँ रहनेसे तुम्हारा वनवासका दुःख दूर हो जायगा; इसलिये सुन्दरी! तुम मन्दोदरीके समान मेरी पत्नी हो जाओ।'

रावणके ऐसा कहनेपर सीताने दूसरी ओर मुँह फेर लिया, उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। तृणकी ओट करके वह काँपती हुई बोली—'राक्षसराज! तुमने अनेकों बार ऐसी बातें मेरे सामने कही हैं; इनसे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है, तो भी मुझ अभागिनीको ये सभी बातें सुननी पड़ी हैं। तुम मेरी ओरसे अपना मन हटा लो। मैं परायी स्त्री हूँ, पतिव्रता हूँ; तुम किसी तरह मुझे पा नहीं सकते।' यह कहकर सीता अञ्चलसे अपना मुँह ढककर फूट-फूटकर रोने लगी। उसका कोरा उत्तर पाकर रावण वहाँसे अन्तर्धान हो गया और शोकसे दुबली हुई सीता राक्षसियोंसे घिरी वहीं रहने लगी। उस समय त्रिजटा ही उसकी सेवा किया करती थी।

सीताकी खोजमें वानरोंका जाना तथा हनुमान्‌जीका श्रीरामचन्द्रजीसे सीताका समाचार कहना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ माल्यवान् पर्वतपर रहते थे; सुग्रीवने उनकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर दिया था। एक दिन भगवान् राम लक्ष्मणसे बोले—'सुमित्रानन्दन! जरा किष्किन्धामें जाकर पता तो लगाओ सुग्रीव क्या कर रहा है। मैं तो समझता हूँ वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना नहीं जानता; अपनी मन्दबुद्धिके कारण उपकारीका भी अनादर कर रहा है। यदि वह सीताके लिये कुछ उद्योग न करता हो, विषय-भोगमें ही आसक्त हो, तो उसे भी तुम वालीके ही मार्गपर पहुँचा देना। यदि हमारे कार्यके लिये कुछ चेष्टा कर रहा हो तो उसे साथ लेकर शीघ्र ही यहाँ लौट आना, विलम्ब न करना।'

भगवान् रामके ऐसा कहनेपर बड़े भाईकी आज्ञा माननेवाले वीरवर लक्ष्मणजी प्रत्यञ्चा चढ़ाया हुआ धनुष लेकर किष्किन्धाकी ओर चल दिये। नगरद्वारपर पहुँचकर वे बेरोक-टोक भीतर घुस गये। वानरराज सुग्रीव लक्ष्मणको कुपित जानकर स्त्रीको साथ ले बहुत ही विनीत भावसे उनकी अगवानीमें आये। उन्होंने उनका पूजन और सत्कार किया, इससे लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए और निर्भय होकर श्रीरामचन्द्रजीका आदेश सुनाने लगे। सब सुन लेनेपर सुग्रीवने हाथ जोड़कर कहा—'लक्ष्मण! मेरी बुद्धि खोटी नहीं है, मैं कृतघ्न और निर्दयी भी नहीं हूँ। सीताकी खोजके लिये जो यत्न मैंने किया है, उसे ध्यान देकर सुनिये। सब दिशाओंमें सुशिक्षित वानर पठाये गये हैं; उनके लौटनेका समय भी नियत कर दिया गया है। कोई भी एक महीनेसे अधिक समय नहीं

Deorali

लगा सकता। उन्हें आज्ञा दी गयी है कि वे इस पृथ्वीपर घूम-घूमकर प्रत्येक पहाड़, जंगल, समुद्र, गाँव, नगर और घरमें सीताकी खोज करें। पाँच रातमें उनके लौटनेका समय पूरा हो जायगा, उसके बाद आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ बहुत ही प्रिय समाचार सुनेंगे।'

सुग्रीवकी बात सुनकर लक्ष्मणजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना क्रोध त्याग दिया और इस प्रबन्धके लिये सुग्रीवकी बड़ी प्रशंसा की। फिर उन्हें साथ लेकर वे श्रीरामचन्द्र-जीके पास गये और सुग्रीवने जो कुछ प्रबन्ध किया था, उसे उनसे निवेदन किया। समय पूरा होते-होते तीन दिशाओंमें खोज करके हजारों वानर आ पहुँचे। केवल दक्षिण दिशामें गये हुए वानर अभीतक नहीं लौटे थे। आये हुए वानरोंने बताया कि 'बहुत ढूँढ़नेपर भी हमें रावण और सीताका पता नहीं लगा।' फिर दो मास व्यतीत होनेपर कुछ वानर बड़ी शीघ्रतासे सुग्रीवके पास आये और कहने लगे—'वानरराज! वाली तथा आपने जिस महान् मधुवनकी अबतक रक्षा की है, वह आज उजाड़ हो रहा है। आपने जिन-जिनको दक्षिण भेजा था, वे पवननन्दन हनुमान्, वालिकुमार अङ्गद तथा और भी बहुत-से वानर मधुवनका स्वेच्छानुसार उपभोग कर रहे हैं।'

उनकी धृष्टताका समाचार सुनकर सुग्रीव समझ गये कि उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया है। क्योंकि ऐसी चेष्टा वे ही भृत्य कर सकते हैं, जो स्वामीका कार्य सिद्ध करके आये हों। ऐसा सोचकर बुद्धिमान् सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर यह समाचार कह सुनाया। श्रीरामचन्द्रजीने भी यही अनुमान किया कि उन वानरोंने अवश्य ही सीताका दर्शन किया होगा।

तदनन्तर हनुमान् आदि वानरवीर मधुवनमें विश्राम करनेके पश्चात् सुग्रीवसे मिलनेके लिये राम लक्ष्मणके निकट आये। उनमेंसे हनुमान्की चाल-ढाल और मुखकी प्रसन्नता देखकर श्रीरामचन्द्रजीको यह विश्वास हो गया कि इसने ही सीताका दर्शन किया है। हनुमान् आदिने वहाँ आकर श्रीराम, सुग्रीव तथा लक्ष्मणको प्रणाम किया। फिर रामके पूछनेपर हनुमान्ने कहा—"रामजी! मैं आपको बहुत प्रिय समाचार सुनाता हूँ; मैंने जानकीजीका दर्शन किया है। पहले हम सब लोग यहाँसे दक्षिण दिशामें जाकर पर्वत, वन और गुफाओंमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये थे। इतनेमें एक बहुत

बड़ी गुफा दिखायी पड़ी, वह अनेकों योजन लंबी-चौड़ी थी; भीतर कुछ दूरतक अँधेरा था, घने जंगल थे और उसमें बहुत-से जानवर रहते थे। बहुत दूरतक मार्ग तै करनेके बाद सूर्यका प्रकाश देखनेमें आया। वहाँ एक बहुत सुन्दर दिव्य भवन बना हुआ था, वह मय दानवका निवासस्थान बताया जाता है। उसमें प्रभावती नामकी एक तपस्विनी तप कर रही थी। उसने हमलोगोंको नाना प्रकारके भोजन दिये, जिन्हें खानेसे हमारी थकावट दूर हो गयी, शरीरमें बल आ गया। फिर प्रभावतीके बताये हुए मार्गसे हमलोग ज्यों ही गुफासे बाहर निकले त्यों ही देखते हैं कि हम लवणसमुद्रके निकट पहुँच गये हैं और सह्य, मलय तथा दर्दुर नामक पर्वत हमारे सामने हैं। फिर हम सब लोग मलय पर्वतपर चढ़ गये। वहाँसे जब समुद्रपर दृष्टि पड़ी तो हृदय विषादसे भर गया। हम जीवनसे निराश हो गये। भयङ्कर जलजन्तुओंसे भरा हुआ यह सैकड़ों योजन विस्तृत महासागर कैसे पार किया जायगा, यह सोचकर हमें बड़ा दुःख हुआ। अन्तमें अनशन करके प्राण त्याग देनेका निश्चय करके हम सब लोग वहाँ बैठ गये। आपसमें बातचीत होने लगी; बीचमें जटायुका प्रसङ्ग छिड़ गया। उसे सुनकर एक पर्वतशिखरके समान विशालकाय घोररूपधारी भयङ्कर पक्षी हमारे सामने प्रकट

हुआ; देखनेसे जान पड़ता था मानो दूसरे गरुड़ हों। उसने हमलोगोंके पास आकर पूछा—'कौन जटायुकी बात कर रहा है ? मैं उसका बड़ा भाई हूँ, मेरा नाम सम्पाति है; मुझे अपने भाईको देखे बहुत दिन हो गये हैं, अतः उसके सम्बन्धमें मैं जानना चाहता हूँ।' तब हमने जटायुकी मृत्यु और आपके सङ्कटका समाचार संक्षेपसे सुना दिया। यह अप्रिय समाचार सुनकर उसे बड़ा कष्ट हुआ और फिर पूछने लगा—'राम कौन हैं ? सीता कैसे हरी गयी ? और जटायुकी मृत्यु किस प्रकार हुई ?' इसके उत्तरमें हमने आपका परिचय, आपपर सीताहरण, जटायुमरण आदि सङ्कटोंका आना तथा अपने अनशनका कारण—यह सब कुछ विस्तारसे बताया। यह सुनकर उसने हमलोगोंको उपवास करनेसे रोककर कहा—'रावणको मैं जानता हूँ उसकी महापुरी लंका भी मेरी देखी हुई है; वह समुद्रके उस पार त्रिकूट गिरिकी कन्दरामें बसी है। विदेह-कुमारी सीता वहीं होगी; इसमें तनिक भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

"उसकी बात सुनकर हमलोग तुरंत उठे और समुद्र पार करनेके विषयमें सलाह करने लगे। जब कोई भी उसे लाँघनेका साहस न कर सका, तब मैं अपने पिता वायुके स्वरूपमें प्रवेश करके सौ योजन विस्तृत समुद्र लाँघ गया। समुद्रके जलमें एक राक्षसी थी, जाते समय उसे भी मार डाला। लंकामें पहुँचकर रावणके अन्तःपुरमें मैंने पतिव्रता सीताका दर्शन किया। वे आपके दर्शनकी लालसासे बराबर तप और उपवास करती रहती हैं। उनके पास एकान्तमें जाकर कहा—'देवी ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत एक वानर हूँ, आपके दर्शनके लिये आकाशमार्गसे यहाँ आया हूँ। दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण कुशलसे हैं, वानरराज सुग्रीव इस समय उनके रक्षक हैं, उन सबने आपका कुशल-समाचार पूछा है। अब थोड़े ही दिनोंमें वानरोंकी सेना साथ लेकर आपके स्वामी यहाँ पधारनेवाले हैं। आप मेरी बातोंपर विश्वास करें, मैं राक्षस नहीं हूँ।' सीता थोड़ी देरतक विचार करके बोलीं—'अविन्ध्यके कथनानुसार मैं समझती हूँ तुम 'हनुमान्' हो। उसने तुम्हारे-जैसे मन्त्रियोंसे युक्त सुग्रीवका भी परिचय दिया है। महाबाहो ! अब तुम भगवान् रामके पास जाओ।' ऐसा कहकर उसने अपनी पहचानके लिये यह एक मणि दी तथा विश्वास दिलानेके लिये एक कथा भी सुनायी; जब आप चित्रकूट पर्वतपर रहते थे, उस समय आपने एक कौएके ऊपर सींकका बाण मारा था। यही उस कथाका मुख्य विषय है। इस प्रकार सीताका सन्देश अपने हृदयमें धारण करके मैंने लंकापुरी जलायी और फिर आपकी सेवामें चला आया।" यह प्रिय समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌की बड़ी प्रशंसा की।

वानर-सेनाका सङ्गठन, सेतुका निर्माण, विभीषणका अभिषेक और लंकामें सेनाका प्रवेश

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर वहाँपर सुग्रीवकी आज्ञासे बड़े-बड़े वानर वीर एकत्रित होने लगे। सर्वप्रथम वालीका श्वशुर सुषेण श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित हुआ, उसके साथ वेगवान् वानरोंकी दस अरब सेना थी। महाबलवान् गज और गवय एक-एक अरब सेना लेकर आये। गवाक्षके साथ साठ अरब वानर थे। गन्धमादन पर्वतपर रहनेवाला गन्धमादन नामसे प्रसिद्ध वानर अपने साथ सौ अरब वानरोंकी फौज लेकर आया। महाबली पनसके साथ बावन करोड़ सेना थी। अत्यन्त पराक्रमी दधिमुख भी तेजस्वी वानरोंकी बहुत बड़ी सेना लेकर उपस्थित हुआ। जाम्बवान्‌के साथ भयानक पौरुष दिखानेवाले काले रीछोंकी सौ अरब सेना थी। ये तथा और भी बहुत-से वानर-सेनाओंके सरदार श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये वहाँ एकत्रित हुए। इन वानरोंमेंसे कितनोंही-का शरीर पर्वतशिखरके समान ऊँचा था; कई भैंसोंकी तरह मोटे और काले थे; कितने ही शरद्-ऋतुके बादल-जैसे सफेद थे; बहुतोंका मुख सिन्दूरके समान लाल था। वानरोंकी वह विशाल सेना भरे-पूरे महासागरके समान दिखायी पड़ती थी। सुग्रीवकी आज्ञासे उस समय माल्यवान् पर्वतके ही आस-पास सबका पड़ाव पड़ गया।

इस प्रकार जब सब ओरसे वानरोंकी फौज इकट्ठी हो गयी, तब सुग्रीवसहित भगवान् रामने एक दिन अच्छी तिथि, उत्तम नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें वहाँसे कूच कर दिया। उस समय सेना व्यूहके आकारमें खड़ी की गयी थी। उस व्यूहके अग्रभागमें पवननन्दन हनुमान् थे और पिछले भागकी रक्षा लक्ष्मणजी कर रहे थे। इनके अतिरिक्त नल, नील, अंगद, क्राथ, मैन्द और द्विविद भी सेनाकी रक्षा करते थे। इन सबके द्वारा सुरक्षित होकर वह फौज श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये आगे बढ़ रही थी। मार्गमें अनेकों जङ्गल तथा पहाड़ोंपर पड़ाव डालती हुई वह लवणसमुद्रके पास जा पहुँची और उसके तटवर्ती वनमें उसने डेरा डाल दिया।

तदनन्तर भगवान् रामने प्रधान-प्रधान वानरोंके बीच सुग्रीवसे समयोचित बात कही—'हमारी यह सेना बहुत बड़ी है और सामने अगाध महासागर है, जिसको पार करना बहुत ही कठिन है; ऐसी दशामें आपलोग उस पार जानेके लिये क्या उपाय ठीक समझते हैं? इतनी सेना उतारनेके लिये तो हमलोगोंके पास नावें भी नहीं हैं। व्यापारियोंके जहाजोंसे पार जाया जा सकता है; पर हमारे-जैसे लोग अपने स्वार्थके लिये उन्हें हानि कैसे पहुँचा सकते हैं? हमारी फौज दूरतक फैली हुई है, यदि इसकी रक्षाका उचित प्रबन्ध नहीं हुआ तो मौका पाकर शत्रु इसका नाश कर सकता है। हमारे विचारमें तो यह आता है कि किसी उपायसे समुद्रकी ही आराधना करें, यहाँ उपवासपूर्वक धरना दें; यही कोई मार्ग बतावेगा। उपासना करनेपर भी यदि इसने मार्ग नहीं बताया तो अपने अग्निके समान तेजस्वी अमोघ बाणोंसे इसे जलाकर सुखा डालूँगा।'

यों कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित आचमन करके समुद्रके किनारे कुशासन बिछाकर लेट गये। तब नद और नदियोंके स्वामी समुद्रने जलचरोंसहित प्रकट होकर स्वप्नमें भगवान् रामको दर्शन दिया और मधुर वचनोंमें कहा—'कौसल्यानन्दन! मैं आपकी क्या सहायता करूँ?' श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'नदीश्वर! मैं अपनी सेनाके लिये मार्ग चाहता हूँ, जिससे जाकर रावणका वध कर सकूँ। यदि मेरे माँगनेपर भी रास्ता न दोगे तो अभिमन्त्रित किये हुए दिव्य बाणोंसे तुम्हें सुखा डालूँगा।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर समुद्रको बड़ा कष्ट हुआ, उसने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं आपका मुकाबला करना नहीं चाहता और आपके काममें विघ्न डालनेकी भी मेरी इच्छा नहीं है। पहले मेरी बात सुन लीजिये; फिर जो कुछ करना उचित हो, कीजिये। यदि आपकी आज्ञा मानकर राह दे दूँगा, तो दूसरे लोग भी धनुषका बल दिखाकर मुझे ऐसी आज्ञा दिया करेंगे। आपकी सेनामें नल नामक एक वानर है। वह विश्वकर्माका पुत्र है, उसे शिल्पशास्त्रका अच्छा ज्ञान है; वह अपने हाथसे जो भी तृण, काष्ठ या पत्थर डालेगा, उसे मैं ऊपर रोके रहूँगा। इस प्रकार आपके लिये एक पुल तैयार हो जायगा।'

यों कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया। श्रीरामचन्द्रजीने धरना छोड़ दिया और नलको बुलाकर कहा—'नल! तुम समुद्रपर एक पुल बनाओ, मुझे मालूम हुआ है कि तुम इस कार्यमें कुशल हो।' इस प्रकार नलको आज्ञा देकर भगवान् रामने पुल तैयार कराया, जिसकी लंबाई चार सौ कोसकी और चौड़ाई चालीस कोसकी थी। आज भी वह इस पृथ्वीपर 'नलसेतु' के नामसे प्रसिद्ध है।

तदनन्तर वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके पास राक्षसराज रावणका भाई परम धर्मात्मा विभीषण आया। उसके साथ चार मन्त्री भी थे। भगवान् राम बड़े ही उदार हृदयवाले थे, उन्होंने विभीषणको स्वागतपूर्वक अपना लिया। सुग्रीवके
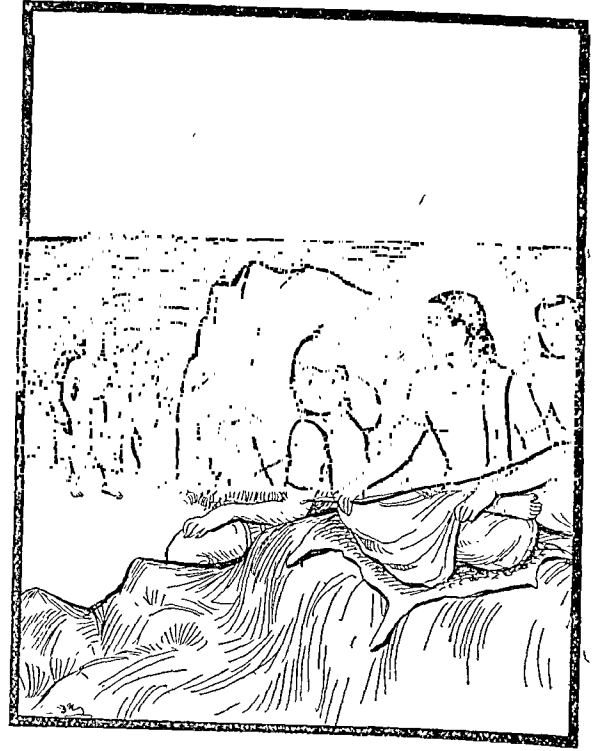
मनमें शङ्का हुई कि यह शत्रुका कोई जासूस न हो; परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उसकी चेष्टा, व्यवहार तथा मनोभावोंकी परीक्षा करके उसे सत्य और शुद्ध पाया, इसीलिये उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर उसका आदर किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसी क्षण विभीषणको राक्षसोंके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया, लक्ष्मणसे उसकी मित्रता करा दी और स्वयं उसे अपना गुप्त सलाहकार बना लिया। फिर विभीषणकी सम्मति लेकर सब लोग पुलकी राहसे चले और एक महीनेमें समुद्रके पार पहुँच गये। वहाँ लंकाकी सीमापर फौजकी छावनी पड़ गयी और वानर वीरोंने वहाँके कई सुन्दर-सुन्दर बगीचोंको तहस-नहस कर डाला। रावणके दो मन्त्री थे, शुक और

सारण । वे दोनों भेद लेने आये थे और वानरके वेषमें रामचन्द्रजीकी सेनामें मिल गये थे । विभीषणने उन दोनोंको पहचानकर पकड़ लिया । फिर जब वे अपने असली रूपमें प्रकट हुए तो उन्हें रामकी सेना दिखाकर छोड़ दिया। लंकाके उपवनमें सेना ठहरायी गयी और भगवान् रामने अत्यन्त बुद्धिमान् अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा।

अङ्गदका रावणके पास जाकर रामका सन्देश सुनाना और राक्षसों तथा वानरोंका संग्राम

मार्कण्डेयजी कहते हैं—लंकाके उस वनमें अन्न और पानीका अधिक सुभीता था, फल और मूल प्रचुर मात्रामें प्राप्य थे; इसीलिये वहाँ सेनाका पड़ाव पड़ा था और भगवान् राम सब ओरसे उसकी रक्षा करते थे। इधर रावण भी लंकामें शास्त्रोक्त प्रकारसे युद्धसामग्रीका संग्रह करने लगा । लंकाकी चहारदिवारी और नगरद्वार बहुत ही मज़बूत थे; अतः स्वभावसे ही किसी आक्रमणकारीका वहाँ पहुँचना कठिन था । नगरके चारों ओर सात गहरी खाइयाँ थीं, जिनमें अगाध जल था और उसमें बहुत-से मगर आदि जलजन्तु भरे रहते थे । इन खाइयोंमें खैरकी कीलें गड़ी हुई थीं, मजबूत किवाड़ लगे थे, गोलाबारी करनेवाली मशीनें फिट की गयी थीं । इन सब कारणोंसे उनमें प्रवेश करना कठिन था । मूसल, बनैठी, बाण, तोमर, तलवार, फरसे, मोमके मुद्गर और तोप आदि अस्त्र-शस्त्रोंका भी विशेष संग्रह था । नगरके सभी दरवाजोंपर छिपकर बैठनेके लिये बुर्ज़ बने हुए थे और घूम-फिरकर रक्षा करनेवाले रिसाले भी तैनात किये गये थे । इनमें अधिकांश पैदल और बहुत-से हाथीसवार तथा घुड़सवार भी थे ।

इधर, अंगदजी दूत बनकर लंकामें गये । नगरद्वारपर पहुँचकर उन्होंने रावणके पास खबर भेजी और निडर होकर पुरीमें प्रवेश किया । उस समय करोड़ों राक्षसोंके बीच महाबली अंगद मेघमालासे घिरे हुए सूर्यकी भाँति शोभा पा रहे थे । रावणके पास पहुँचकर उन्होंने कहा—"राक्षसराज ! कोसल देशके राजा श्रीरामचन्द्रजीने तुमसे कहनेके लिये जो सन्देश भेजा है, उसे सुनो और उसके अनुसार कार्य करो । 'जो अपने मनपर काबू न रखकर अन्यायमें लगा रहता है, ऐसे राजाको पाकर उसके अधीन रहनेवाले देश और नगर भी नष्ट हो जाते हैं । सीताका बलपूर्वक अपहरण करके अपराध तो अकेले तुमने किया है; परन्तु इसका दण्ड बेचारे निरपराध लोगोंको भी भोगना पड़ेगा, तुम्हारे साथ वे भी मारे जायँगे । तुमने बल और अहङ्कारसे उन्मत्त होकर वनवासी ऋषियोंकी हत्या की, देवताओंका अपमान किया और राजर्षियों तथा रोती-बिलखती अबलाओंके भी प्राण लिये । इन सब अत्याचारोंका फल अब प्राप्त होनेवाला है । मैं तुम्हें मन्त्रियोंसहित मार डालूँगा; साहस हो तो युद्ध करके पौरुष दिखाओ । निशाचर ! यद्यपि मैं मनुष्य हूँ, तो भी मेरे
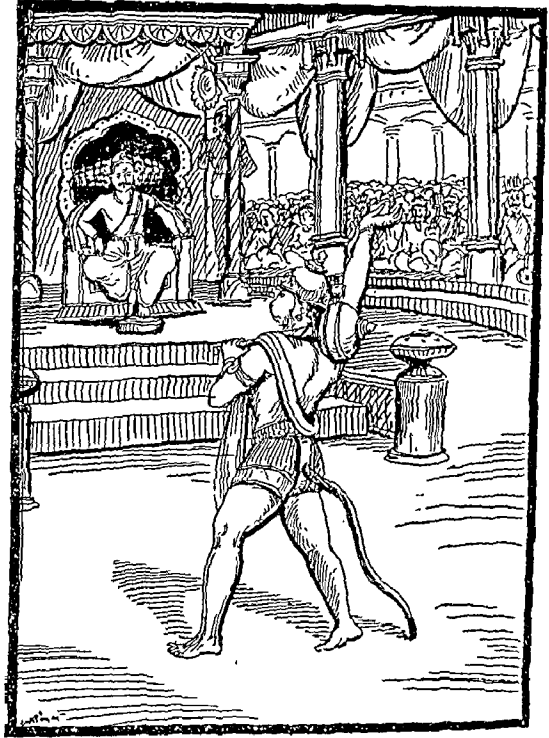
धनुषकी शक्ति देखना । जनकनन्दिनी सीताको छोड़ दो, अन्यथा मेरे हाथसे कभी भी तुम्हारा छुटकारा होना असम्भव है । मैं अपने तीखे बाणोंसे इस भूमण्डलको राक्षसोंसे शून्य कर दूँगा ।'''

श्रीरामचन्द्रजीके दूतके मुखसे ऐसी कठोर बात सुनकर रावण सहन न कर सका । वह क्रोधसे अचेत हो गया । उसका इशारा पाकर चार राक्षस उठे और जिस प्रकार पक्षी सिंहको पकड़ें, उसी तरह उन्होंने अंगदके चार अंगोंको पकड़ लिया । अंगद उन चारोंको लिये-दिये ही उछलकर महलकी छतपर जा बैठे । उछलते समय उनके शरीरसे छूटकर वे चारों

राक्षस जमीनपर जा गिरे। उनकी छाती फट गयी और अधिक चोट लगनेके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। अंगद महलके कँगूरेपर चढ़ गये और वहाँसे कूदकर लंकापुरीको लाँघते हुए अपनी सेनाके समीप आ पहुँचे। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीसे मिलकर उन्होंने सारी बातें बतायीं। रामने अंगदकी बड़ी प्रशंसा की, फिर वे विश्राम करने चले गये।

तदनन्तर भगवान् रामने वायुके समान वेगवाले वानरोंकी सम्पूर्ण सेनाके द्वारा लंकापर एक साथ धावा बोल दिया और उसकी चहारदिवारी तुड़वा डाली। नगरके दक्षिण द्वारमें प्रवेश करना बड़ा कठिन था, किन्तु लक्ष्मणने विभीषण और जाम्बवान्‌को आगे करके उसे भी धूलमें मिला दिया। फिर युद्ध करनेमें कुशल वानर वीरोंकी सौ अरब सेना लेकर लंकाके भीतर घुस गये। उस समय उनके साथ तीन करोड़ भालुओंकी सेना भी थी। इधर रावणने भी राक्षस वीरोंको युद्धका आदेश दिया। आज्ञा पाते ही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भयङ्कर राक्षस लाख-लाखकी टोली बनाकर आ पहुँचे और किलेबंदी करके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाद्वारा वानरोंको भगाने और अपने महान् पराक्रमका परिचय देने लगे। इधर वानर भी खंभोंसे मार-मारकर निशाचरोंको गिराने लगे। दूसरी ओर भगवान् रामने बाणोंकी वर्षा करके उनका संहार आरम्भ किया। एक ओर लक्ष्मण भी अपने सुदृढ बाणोंसे किलेके भीतर रहनेवाले राक्षसोंके प्राण लेने लगे।

जब रावणको यह सब समाचार ज्ञात हुआ तो वह अमर्षमें भरकर पिशाचों और राक्षसोंकी भयावनी सेना साथ ले स्वयं भी युद्धके लिये आ पहुँचा। वह दूसरे शुक्राचार्यके समान युद्धशास्त्रकी कलामें प्रवीण था। शुक्रकी बतायी हुई रीतिसे उसने अपनी सेनाका व्यूह रचाया और वानरोंका संहार करने लगा। श्रीरामचन्द्रजीने जब रावणको व्यूहाकार सेनाके साथ लड़नेको उपस्थित देखा तो उन्होंने उसके मुकाबलेमें बृहस्पतिकी बतायी हुई रीतिसे अपनी सेनाका व्यूह रचाया। फिर रावणके साथ भगवान् राम, इन्द्रजित्‌के साथ लक्ष्मण, विरूपाक्षके साथ सुग्रीव, निखर्वटके साथ तार, तुण्डके साथ नल और पटुशसे पनसका युद्ध होने लगा। जिसने जिसको अपने जोड़का समझा, वह उसके साथ भिड़ गया। यह युद्ध यहाँतक बढ़ा कि प्राचीन कालका देवासुर-संग्राम इसके सामने फीका पड़ गया।

प्रहस्त, धूम्राक्ष और कुम्भकर्णका वध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर युद्धमें भयानक पराक्रम दिखानेवाले प्रहस्तने सहसा विभीषणके पास आकर गर्जना करते हुए उन्हें गदासे मारा। विभीषणने भी एक महाशक्ति हाथमें ली और उसे अभिमन्त्रित कर प्रहस्तके मस्तकपर दे मारा। उस शक्तिका वेग वज्रके समान था; उसका आघात लगते ही प्रहस्तका मस्तक कटकर गिर पड़ा, और वह आँधीसे उखाड़े हुए वृक्षके समान धराशायी हो गया। उसको मरते देख धूम्राक्ष नामक राक्षस बड़े वेगसे वानरोंकी ओर दौड़ा और अपने बाणोंके प्रहारसे सबको इधर-उधर भगाने लगा। यह देख पवननन्दन हनुमान्‌ने धूम्राक्षको उसके घोड़े, रथ और सारथिसहित मार डाला। उसके मरनेसे वानरोंको कुछ तसल्ली हुई और वे अन्यान्य राक्षसोंको

मारने लगे। उनकी भयङ्कर मार पड़नेसे सभी राक्षस जीवनसे निराश हो गये। जो मरनेसे बचे, वे भयके मारे भागकर लंकामें घुस गये। वहाँ जाकर सबने रावणको युद्धका समाचार सुनाया।

उनके मुखसे सेनासहित प्रहस्त और धूम्राक्षके वधका वृत्तान्त सुनकर रावण बड़ी देरतक शोकभरे उच्छ्वास लेता रहा; फिर सिंहासनसे उठकर कहने लगा—'अब कुम्भकर्णके पराक्रम दिखानेका समय आ गया है।' ऐसा सोचकर उसने ऊँची आवाजवाले नाना प्रकारके बाजे बजवाये और विशेष प्रयत्न करके घोर निद्रामें पड़े हुए कुम्भकर्णको जगाया। फिर जब वह कुछ स्वस्थ और शान्त हुआ तो उससे रावणने कहा, 'भैया कुम्भकर्ण! तुम्हें पता नहीं, हम लोगोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है। मैं रामकी स्त्री सीताको हर लाया था, उसीको वापस लेनेके लिये वह समुद्रपर पुल बाँधकर यहाँ आया हुआ है; उसके साथ वानरोंकी बहुत बड़ी सेना है। अबतक उसने प्रहस्त आदि हमारे कई आत्मीय व्यक्तियोंको मार डाला है और राक्षसोंका संहार मचा रक्खा है। तुम्हारे सिवा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो उसे मार सके। तुम बलवानोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये जाओ और राम आदि सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करो।'

रावणकी आज्ञा मानकर कुम्भकर्ण जब अपने अनुचरों-

सहित नगरसे बाहर निकला तो उसकी दृष्टि सामने ही खड़ी हुई वानर-सेनापर पड़ी, जो विजयके उल्लाससे शोभा पा रही थी। फिर जब उसने भगवान् रामके दर्शनकी इच्छासे उस सेनामें इधर-उधर दृष्टि डाली तो उसे हाथमें धनुष लिये लक्ष्मण भी दिखायी पड़े। इतनेहीमें वानरोंने आकर कुम्भकर्णको सब ओरसे घेर लिया और बड़े-बड़े पेड़ उखाड़कर उसको मारने लगे। कुछ वानर नाना प्रकारके भयानक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे। कुम्भकर्ण इससे जरा भी विचलित न हुआ, वह हँसते-हँसते वानरोंका भक्षण करने लगा। देखते-देखते बल, चण्डबल और वज्रबाहु नामक वानर उसके मुखके ग्रास बन गये। कुम्भकर्णका यह दुःखदायी कर्म देखकर तार आदि वानर थर्रा उठे और बड़े जोरसे चीत्कार करने लगे। उनका क्रन्दन सुनकर सुग्रीव वहाँ दौड़े आये और एक शालका वृक्ष उखाड़कर उन्होंने कुम्भकर्णके सिरपर दे मारा। वह शाल टूट गया, पर कुम्भकर्णको पीडा न पहुँची। हाँ, उसके स्पर्शसे वह कुछ

सावधान अवश्य हो गया। फिर तो उसने विकट गर्जना क और सुग्रीवको बलपूर्वक पकड़कर अपनी दोनों भुजाओंमें दा लिया। लक्ष्मणजी यह सब देख रहे थे। जब वह राक्ष सुग्रीवको लेकर जाने लगा, तो वे दौड़कर उसके सामने अ गये। उन्होंने कुम्भकर्णको लक्ष्य करके एक बड़ा वेगशाल

बाण मारा, वह उसके कवचको काटकर शरीरको छेदता हुआ रक्तरञ्जित हो जमीनमें समा गया। छाती छिद जानेके कारण सुग्रीवको तो उसने छोड़ दिया और अपने दो हाथोंमें एक बहुत बड़ी चट्टान लिये लक्ष्मणपर धावा किया। लक्ष्मणने भी बड़ी शीघ्रताके साथ दो तीखे बाण मारकर ऊपर उठी हुई उसकी दोनों भुजाओंको काट डाला। अब उसके चार बाँहें हो गयीं। कुम्भकर्णने पुनः चारों हाथोंमें शिलाएँ लेकर आक्रमण किया; किन्तु सुमित्रानन्दनने हस्तलाघव दिखाते हुए फिरसे बाण मारकर उन चारों भुजाओंको भी काट दिया। तब उसने अपना शरीर बहुत बड़ा कर लिया; उसके अनेकों पैर, अनेकों सिर और अनेकों भुजाएँ हो गयीं। यह देख लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रका प्रहार करके उस पर्वताकार राक्षसको चीर डाला। जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार उस दिव्यास्त्रसे आहत होकर वह महाबली राक्षस पृथ्वीपर गिर पड़ा। कुम्भकर्णको प्राणहीन होकर गिरते देख राक्षसलोग भयके मारे भाग गये। इस युद्धमें राक्षसोंका ही अधिक संहार हुआ। वानर बहुत कम मारे गये।

राम-लक्ष्मणको मूर्च्छा और इन्द्रजित्का वध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर रावणने अपने वीर पुत्र इन्द्रजित्से कहा—'बेटा ! तू शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ है, युद्धमें इन्द्रको भी जीतकर तूने अपने उज्ज्वल सुयशका विस्तार किया है; अतः युद्धभूमिमें जाकर राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीवका नाश कर।'

इन्द्रजित्ने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा स्वीकार की और कवच बाँध, रथपर बैठकर तुरंत ही संग्रामभूमिकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर उसने स्पष्टरूपसे अपना नाम बताकर परिचय दिया और युद्धके लिये लक्ष्मणको ललकारा। लक्ष्मण भी धनुषपर बाण सन्धान किये बड़े वेगसे उसके सामने आ गये और सिंह जैसे छोटे मृगोंको भयभीत करता है, उसी प्रकार अपने धनुषकी टंकारसे सब राक्षसोंको त्रास देने लगे। इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनों ही दिव्यास्त्रोंका प्रयोग जानते थे, दोनोंकी ही आपसमें बड़ी लाग-डाँट थी, दोनों ही एक दूसरेपर विजय पाना चाहते थे; अतः उनमें बड़े जोरकी लड़ाई छिड़ गयी। इसी बीचमें वालिकुमार अङ्गदने एक पेड़ उखाड़कर उसे इन्द्रजित्के सिरपर मारा। चोट खाकर भी वह विचलित नहीं हुआ। इतनेमें अङ्गद उसके निकट चले आये। फिर तो उसने उनकी बायीं पसलीमें बड़े जोरसे गदा मारी। अङ्गद बड़े बलवान् थे, अतः उसके इस प्रहारको उन्होंने कुछ भी नहीं गिना। क्रोधमें भरकर पुनः एक शालका वृक्ष उखाड़ लिया और उसे इन्द्रजित्के ऊपर फेंका; उसकी चोटसे उसका रथ चकनाचूर हो गया और घोड़े तथा सारथि मर गये। तब इन्द्रजित् उस रथसे कूद पड़ा और मायाका आश्रय ले वहीं अन्तर्धान हो गया। उसे अन्तर्हित हुए देख भगवान् राम भी वहाँ आ गये और अपनी सेनाकी सब ओरसे रक्षा करने लगे। इन्द्रजित् भी क्रोधमें भरकर राम और लक्ष्मणके सारे शरीरपर सैकड़ों-हजारों बाणोंकी वर्षा करने लगा। वानरोंने देखा कि वह छिपकर बाणोंकी झड़ी लगा रहा है, तो वे हाथोंमें बड़ी-बड़ी शिलाएँ लिये आकाशमें उड़कर उसका पता लगाने लगे। इन्द्रजित् छिपे-ही-छिपे उन वानरों तथा राम और लक्ष्मणको भी बाणोंसे बींधने लगा। दोनों भाइयोंके शरीर बाणोंसे भर गये और वे आकाशसे गिरे हुए सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति इस पृथ्वीपर गिर पड़े।

इतनेमें वहाँ विभीषण आ पहुँचे। उन्होंने प्रज्ञास्त्रसे उनकी मूर्छा दूर की और सुग्रीवने विशल्या नामकी ओषधिको दिव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे दोनों भाइयोंकी देहमें लगाया। इसके प्रभावसे सरलतापूर्वक उनके शरीरका बाण निकलकर क्षणभरमें ही घाव अच्छा हो गया। इस

उपचारसे वे दोनों महापुरुष शीघ्र ही होशमें आ गये, आलस्य और थकावट दूर हो गयी। तदनन्तर भगवान् रामको पीड़ासे रहित देख विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज !

श्वेतगिरिसे यहाँ आपकी सेवामें एक गुह्यक आया है, जो कुबेरकी आज्ञासे यह दिव्य जल ले आया है। इससे आँख धो लेनेपर आप मायासे छिपे हुए प्राणियोंको भी देख सकते हैं; तथा जिसे-जिसे यह जल देंगे, वह-वह मनुष्य भी उन्हें देख सकता है।'

'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने वह जल स्वीकार किया और उससे अपने दोनों नेत्र धोये। इसके बाद लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद और नीलने भी उसका उपयोग किया। प्रायः सभी प्रमुख वानरोंने उससे अपने-अपने नेत्र धोये। विभीषणके बताये अनुसार ही उस जलका प्रभाव देखा गया। एक ही क्षणमें उन सबकी आँखोंसे अतीन्द्रिय वस्तुओंका भी प्रत्यक्ष होने लगा।

इन्द्रजित्ने उस दिन जो बहादुरी दिखायी थी, उसका बखान करनेके लिये वह अपने पिताके पास चला गया था; वहाँसे पुनः युद्धकी इच्छासे वह क्रोधमें भरा हुआ आ रहा था, इतनेमें विभीषणकी सम्मतिसे लक्ष्मणने उसके ऊपर धावा किया। यह देख इन्द्रजित्ने अनेकों मर्मभेदी बाण मारकर लक्ष्मणको बींध डाला। तब लक्ष्मणने भी अग्निके समान दाहक बाणोंसे इन्द्रजित्के ऊपर प्रहार किया। लक्ष्मणकी चोटसे आहत होकर इन्द्रजित् क्रोधसे मूर्छित हो गया और उसने अपने शत्रुके ऊपर विषधर साँपोंके समान आठ बाण मारे। फिर लक्ष्मणने भी अग्निके समान तीखे स्पर्शवाले तीन बाण मारे। उन बाणोंका स्पर्श होते ही इन्द्रजित्के प्राणपखेरू उड़ गये।

राम-रावण-युद्ध, रावण-वध और राम-सीता-सम्मिलन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—प्रिय पुत्र मेघनादके मारे जानेपर रावण रत्नजटित सुवर्णके रथपर बैठकर लंकासे चला। उसके साथ तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित अनेकों भयङ्कर राक्षस थे। इस प्रकार वह वानर यूथपतियोंके साथ मुठभेड़ करता रामजीकी ओर चला। उसे क्रोधातुर होकर रामजीकी ओर आते देख सेनाके सहित मैन्द, नील, नल, अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान्ने चारों ओरसे घेर लिया। उन रीछ और वानर वीरोंने वृक्षोंकी मारसे रावणके देखते-देखते उसकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। मायावी राक्षसराजने जब देखा कि शत्रु मेरी सेनाको नष्ट किये डालते हैं तो उसने माया फैलायी। थोड़ी ही देरमें उसके शरीरसे निकले हुए बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि आयुधोंसे सुसज्जित सैकड़ों-हजारों राक्षस दिखायी देने लगे। किन्तु भगवान् रामने दिव्य अस्त्रोंके द्वारा उन सभीको मार डाला। इसके बाद रावणने

दूसरी माया फैलायी। वह राम और लक्ष्मणके ही रूप

करके राम-लक्ष्मणकी ओर दौड़ा। राक्षसराजकी इस मायाको देखकर भी लक्ष्मणजीको किसी प्रकारकी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने रामजीसे कहा, 'भगवन्! अपने ही समान आकारवाले इन पापी राक्षसोंको मार डालिये।' तब श्रीरामने उन्हें तथा और भी अनेकों राक्षसोंको धराशायी कर दिया।

इसी समय इन्द्रका सारथि मातलि नीलवर्ण घोड़ोंसे जुता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी रथ लिये उस रणाङ्गणमें रामजीके पास उपस्थित हुआ और उनसे कहने लगा, 'रघुनाथजी! यह नीले घोड़ोंसे जुता हुआ इन्द्रका जैत्र नामक श्रेष्ठ रथ है, इसीपर चढ़कर इन्द्रने संग्रामभूमिमें सैकड़ों दैत्य और दानवोंका वध किया है। पुरुषसिंह! आप भी मेरे सारथ्यमें इसीपर सवार होकर तुरंत रावणको मार डालिये, देरी मत कीजिये।' तब श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर 'ठीक है' ऐसा कहकर उस रथपर चढ़ गये। रावणपर चढ़ाई करते ही सब राक्षस हाहाकार करने लगे तथा आकाशमें देवतालोग दुन्दुभियोंका शब्द करते हुए सिंहनाद करने लगे। इस प्रकार राम और रावणका बड़ा भीषण संग्राम छिड़ गया। उस युद्धकी कोई दूसरी उपमा मिलनी असम्भव ही है। राक्षसराज रावणने रामके ऊपर इन्द्रके वज्रके समान एक अत्यन्त कठोर त्रिशूल छोड़ा। उस त्रिशूलको रामजीने तत्काल अपने पैने बाणोंसे काट डाला। उनका यह दुष्कर कार्य देखकर रावणपर भय सवार हो गया और वह क्रोधित होकर हजारों-लाखों तीखे-तीखे बाण बरसाने लगा। उनके सिवा उसने भुशुण्डी, शूल, मूसल, फरसा, शक्ति और तरह-तरहके आकारकी शतघ्नियों और पैने-पैने छुरोंकी भी वर्षा आरम्भ कर दी। रावणकी इस विकट मायाको देखकर समस्त वानर इधर-उधर भागने लगे। तब रामजीने अपने तरकसमेंसे एक बाण खींचकर उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और फिर उस अतुलित प्रभावपूर्ण बाणको रावणपर छोड़ दिया। रामजीने ज्यों ही धनुषको कानतक खींचकर उसे छोड़ा वह राक्षस अपने रथ, घोड़े और सारथिके सहित भीषण अग्निसे व्याप्त होकर जलने लगा। इस प्रकार पुण्यकर्मा भगवान् रामके हाथसे रावणका वध हुआ देखकर गन्धर्व और चारणोंके

सहित सब देवता बड़े प्रसन्न हुए।

राजन्! देवताओंसे द्रोह करनेवाले नीच राक्षस रावणको
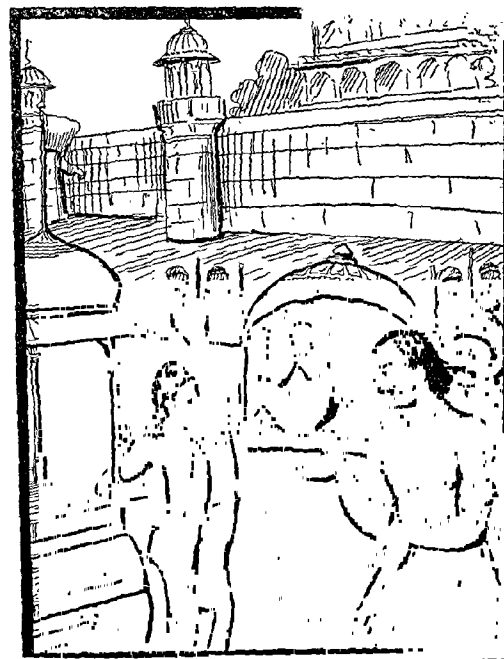
मारकर राम, लक्ष्मण और उनके सुहृदोंको बड़ा आनन्द

हुआ। फिर देवता और ऋषियोंने जय-जयकार करते हुए आशीर्वाद देकर महाबाहु रामका अभिनन्दन किया। सभी देवताओंने कमलनयन भगवान् रामकी स्तुति की और गन्धर्वोंने फूलोंकी वर्षा तथा गान करके उनका पूजन किया। फिर भगवान् रामने लंकाके राज्यपर विभीषणका अभिषेक किया। इसके पश्चात् अविन्ध्य नामका बुद्धिमान् और वयोवृद्ध मन्त्री सीताजीको लेकर विभीषणके साथ रामजीके पास आया और उनसे बड़ी दीनतापूर्वक कहने लगा, 'महात्मन्! सदाचारपरायणा देवी जानकीको स्वीकार कीजिये।' उस समय सुन्दरी श्रीसीताजी एक पालकीमें बैठी थीं। वे शोकसे अत्यन्त कृश हो गयी थीं तथा उनके शरीरमें मैल चढ़ा हुआ था और जटाएँ बढ़ी हुई थीं। उन्हें देखकर रामजीने कहा, 'जनकनन्दिनी! मुझे जो काम करना था, वह मैं कर चुका; अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ। मेरे समान जो पुरुष धर्मविधिको जाननेवाला है, वह दूसरेके हाथमें गयी हुई स्त्रीको एक मुहूर्त भी कैसे रख सकता है?' रामजीके ऐसे कठोर वचन सुनकर सुकुमारी सीताजी व्याकुल होकर कटे हुए केलेके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ीं। तथा समस्त वानर और लक्ष्मणजी भी यह बात सुनकर प्राणहीन-से होकर निश्चेष्ट रह गये।

इसी समय संसारकी रचना करनेवाले देवाधिदेव ब्रह्माजी विमानपर बैठकर वहाँ पधारे। उनके साथ ही इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर और सप्तर्षियोंने भी दर्शन दिया। तथा दिव्य तेजोमयी मूर्ति धारण किये राजा दशरथ भी एक हंसोंवाले प्रकाशपूर्ण श्रेष्ठ विमानपर बैठकर आये। उस समय देवता और गन्धर्वोंसे व्याप्त वह सारा आकाश तारोंसे भरे हुए शरत्कालीन आकाशके समान शोभा पाने लगा। तब यशस्विनी जानकीजीने उन सबके बीचमें खड़े होकर विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीरामचन्द्रजीसे कहा, 'राजपुत्र! आप स्त्री और पुरुषोंकी स्थितिसे अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिये मैं आपको कोई दोष नहीं देती; किन्तु आप मेरी बात सुनिये। यह निरन्तर गतिशील वायु सभी प्राणियोंके भीतर चल रहा है। यदि मैंने कभी कोई पाप किया हो तो यह मेरे प्राणोंको हर ले। वीरवर! यदि मैंने स्वप्नमें भी आपके सिवा किसी और पुरुषका चिन्तन न किया हो तो इन देवताओंके साक्षी देनेपर आप मुझे स्वीकार करें।' तब वायुने कहा, 'हे राम! मैं निरन्तर गतिशील वायु हूँ। सीता सचमुच निष्कलङ्क है। तुम अपनी भार्याको स्वीकार करो।' अग्निने कहा, 'रघुनन्दन! मैं प्राणियोंके शरीरके भीतर रहता हूँ, अतः मैं प्राणियोंकी बहुत गुप्त बातोंको भी जानता हूँ; मैं सत्य कहता हूँ कि मैथिलीका जरा भी अपराध नहीं है।' वरुण बोले, 'राघव! समस्त भूतोंमें रस मुझसे ही उत्पन्न होते हैं, मैं निश्चयपूर्वक तुमसे कहता हूँ, तुम मिथिलेशकुमारीको ग्रहण करो।' ब्रह्माजीने कहा, "रघुवीर! तुमने देवता, गन्धर्व, सर्प, यक्ष, दानव और महर्षियोंके शत्रु रावणका वध किया है। मेरे वरके प्रभावसे यह अबतक सभी जीवोंके लिये अवध्य हो रहा था। किसी कारणवश मैंने कुछ समयके लिये इस पापीकी उपेक्षा कर दी थी। इस दुष्टने अपने वधके लिये ही सीताको हरा था। नलकूबरके शापद्वारा मैंने ही जानकीकी रक्षा कर दी थी। रावणको पहले ही यह शाप हो चुका था कि 'यदि तू किसी परस्त्रीका शील उसकी इच्छाके बिना भङ्ग करेगा तो तेरे सिरके अवश्य ही सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे।' अतः परम तेजस्वी राम! तुम किसी प्रकारकी शंका मत करो और सीताको स्वीकार कर लो। तुमने देवताओंका बड़ा भारी काम किया है।" दशरथजी कहने लगे, 'वत्स! मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि अब तुम अयोध्याका राज्य करो।' तब रामजी बोले, 'महाराज! यदि आप मेरे पिताजी हैं तो मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मैं आपकी आज्ञासे अब सुरम्यपुरी अयोध्याको जाऊँगा।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! फिर रामजीने सब देवताओंको प्रणाम किया और अपने बन्धुवर्गोंसे अभिनन्दित हो इस प्रकार श्रीसीताजीसे मिले, जैसे इन्द्र इन्द्राणीसे मिलते हैं। इसके पश्चात् शत्रुसूदन श्रीरामभद्रने अविन्ध्यको अभीष्ट वर दिया और त्रिजटा राक्षसीको धन और मानद्वारा सन्तुष्ट किया। यह सब हो जानेपर भगवान् ब्रह्माने उनसे कहा 'कौसल्यानन्दन! कहो, आज तुम्हें हम क्या-क्या अभीष्ट वर दें?' तब रामजीने उनसे ये वर माँगे—'मेरी धर्ममें स्थिति रहे, शत्रुओंसे कभी पराजय न हो और राक्षसोंके द्वारा जो वानर मारे जा चुके हैं, वे फिर जी उठें।' इसपर ब्रह्माजीके 'तथास्तु' ऐसा कहते ही सब वानर जीवित होकर खड़े हो गये। इस समय सौभाग्यवती सीताने भी हनुमान्‌जीको यह वर दिया, 'पुत्र! भगवान् रामकी कीर्ति रहनेतक तुम्हारा जीवन रहेगा और मेरी कृपासे तुम्हें सदा ही दिव्य भोग प्राप्त होते रहेंगे।' फिर वहाँ सबके सामने ही वे इन्द्रादि सब देवता अन्तर्धान हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें लौटना और राज्याभिषेक

इसके पश्चात् विभीषणसे सम्मानित हो श्रीरामचन्द्रजीने लंकाकी रक्षाका प्रबन्ध किया और फिर सुग्रीवादि सभी प्रमुख वानरोंके सहित आकाशचारी पुष्पक विमानपर बैठकर
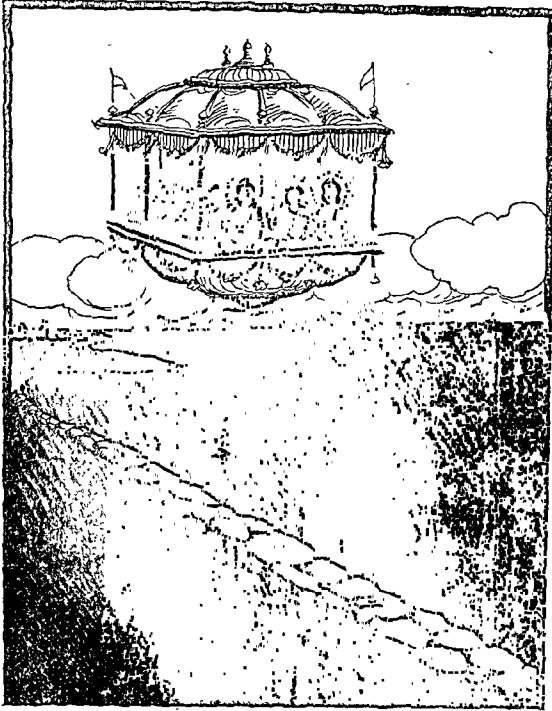
सेतुके ऊपर होकर समुद्रको पार किया। समुद्रके इस ओर आकर उन्होंने पहले जहाँ अपने मुख्य-मुख्य मन्त्रियोंके सहित शयन किया था, वहींपर विश्राम किया। फिर परम-धार्मिक भगवान् रामने रत्नोंकी भेंट देकर समस्त रीछ और वानरोंको सन्तुष्ट करके विदा किया। जब सब रीछ-वानर चले गये तो आप विभीषण और सुग्रीवके सहित पुष्पक विमानद्वारा किष्किन्धापुरीको चले। मार्गमें जानकीजीको वनकी रमणीयताका दिग्दर्शन कराते रहे। किष्किन्धामें पहुँचकर उन्होंने महान् पराक्रमी अङ्गदको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया। फिर वे सबको साथ लिये लक्ष्मणजीके सहित, जिस रास्ते आये थे, उसीसे, अपनी राजधानीको चले। अयोध्याके समीप पहुँचकर उन्होंने हनुमान्जीको अपना दूत बनाकर भरतजीके पास भेजा। जब हनुमान्जी लक्षणोंद्वारा उनका मनोभाव समझकर और उन्हें रामजीके पुनरागमनका प्रिय समाचार सुनाकर लौट आये तो सब लोग नन्दिग्राममें पहुँचे। रामजीने देखा कि भरतजी चीरवस्त्र पहने हुए हैं। उनका शरीर मैलसे भरा हुआ है और वे पादुकाएँ सामने रक्खे आसनपर बैठे हैं। भरत और शत्रुघ्नसे मिलकर परम पराक्रमी रघुनाथजी और लक्ष्मणजी बड़े प्रसन्न हुए। फिर भरत और शत्रुघ्न भी अपने बड़े भाईसे मिले। जानकीजीके दर्शन करके भी भरत-शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ। तदनन्तर भरतजीने बड़े आनन्दसे भगवान् रामको अपने पास धरोहर-रूपसे रक्खा हुआ उनका राज्य सौंप दिया। फिर विष्णु-देवतावाले श्रवणनक्षत्रका पुण्यदिवस आनेपर वसिष्ठ और

वामदेव दोनोंने मिलकर शूरशिरोमणि भगवान् रामका राज्याभिषेक किया।

अभिषेक हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने कपिराज सुग्रीव और पुलस्त्यनन्दन विभीषणको घर जानेकी आज्ञा दी। भगवान्ने तरह-तरहके भोगोंसे उनका सत्कार किया। इससे जब उन्हें प्रसन्न और आनन्दयुक्त देखा तो उनका कर्त्तव्य

समझाकर उन्हें विदा किया। इस समय रामसे बिछुड़नेमें उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। फिर पुष्पक विमानकी पूजा कर उसे कुबेरजीको ही दे दिया तथा देवर्षियोंकी सहायतासे गोमती नदीके तीरपर दस अश्वमेध यज्ञ किये, जिनमें अन्नार्थियोंके लिये हर समय भण्डार खुला रहता था।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाबाहु युधिष्ठिर! इस प्रकार पूर्वकालमें अतुलित पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी वनवासके कारण बड़ा भयङ्कर कष्ट भोग चुके हैं। पुरुषसिंह! तुम क्षत्रिय हो, शोक मत करो; तुम अपने भुजबलके भरोसे प्रत्यक्ष फल देनेवाले मार्गपर चल रहे हो। तुम्हारा इसमें अणुमात्र भी अपराध नहीं है। इस संकटपूर्ण मार्गमें तो इन्द्रके सहित सभी देवता और असुरोंको आना पड़ा है। किन्तु जिस प्रकार इन्द्रने मरुतोंकी सहायतासे वृत्रासुरका नाश किया था, उसी प्रकार अपने इन देवतुल्य धनुर्धर भाइयोंकी सहायतासे तुम अपने सभी शत्रुओंको संग्राममें परास्त करोगे। रामजी तो अकेले ही भयङ्कर पराक्रमी रावणको युद्धमें मारकर जानकीजीको ले आये थे। उनके सहायक तो केवल वानर और रीछ ही थे। इन सब बातोंपर तुम विचार करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार मतिमान् मार्कण्डेयजीने राजा युधिष्ठिरको धैर्य बँधाया।

सावित्रीचरित्र—सावित्रीका जन्म और विवाह

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! इस द्रौपदीके लिये मुझे जैसा शोक होता है वैसा न तो अपने लिये होता है, न इन भाइयोंके लिये और न राज्य छिन जानेके लिये ही। यह जैसी पतिव्रता है, वैसी क्या कोई दूसरी भाग्यवती नारी भी आपने पहले कभी देखी या सुनी है!

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! राजकन्या सावित्रीने जिस प्रकार यह कुलकामिनियोंका परम सौभाग्यरूप पातिव्रत्य-का सुयश प्राप्त किया था, वह मैं कहता हूँ; सुनो। मद्रदेशमें अश्वपति नामका एक बड़ा ही धार्मिक और ब्राह्मणसेवी राजा था। वह अत्यन्त उदारहृदय, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, दानी, चतुर, पुरवासी और देशवासियोंका प्रिय, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाला और क्षमाशील था। उस नियमनिष्ठ राजाकी धर्मशीला ज्येष्ठा पत्नीको गर्भ रहा और यथासमय उसके एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई। राजाने प्रसन्न होकर उस कन्याके जातकर्मादि सब संस्कार किये। वह कन्या सावित्रीके मन्त्रद्वारा हवन करनेपर सावित्री देवीने ही प्रसन्न होकर दी थी; इसलिये ब्राह्मणोंने और राजाने उसका नाम 'सावित्री' रक्खा।

मूर्तिमती लक्ष्मीके समान वह कन्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। यथासमय उसने युवावस्थामें प्रवेश किया। कन्याको युवती हुई देखकर महाराज अश्वपति बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने सावित्रीसे कहा, 'बेटी! अब तू विवाहके योग्य हो गयी है, इसलिये स्वयं ही अपने योग्य कोई वर खोज ले। धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा है कि विवाहके योग्य हो जानेपर जो कन्यादान नहीं करता, वह पिता निन्दनीय है; ऋतुकालमें जो स्त्रीसमागम नहीं करता, वह पति निन्दाका पात्र है और पतिके मर जानेपर उस विधवा माताका जो पालन नहीं करता, वह पुत्र निन्दनीय है। अतः तू शीघ्र ही वरकी खोज कर ले और ऐसा कर, जिससे मैं देवताओंकी दृष्टिमें अपराधी न बनूँ।' पुत्रीसे ऐसा कहकर उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'आपलोग सवारी लेकर सावित्रीके साथ जायँ।'
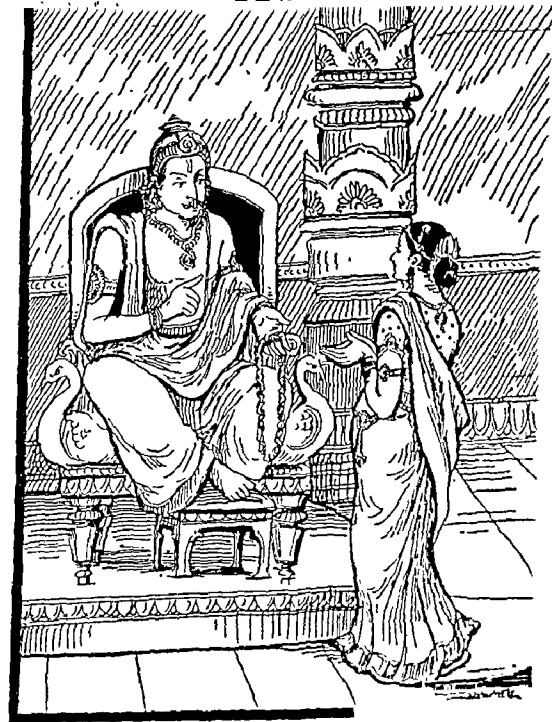
तपस्विनी सावित्रीने कुछ सकुचाते हुए पिताकी आज्ञा

स्वीकार की और उनके चरणोंमें नमस्कार कर सुवर्णके रथमें चढ़कर बूढ़े मन्त्रियोंके साथ वरकी खोज करनेके लिये चल दी। वह राजर्षियोंके रमणीय तपोवनोंमें गयी और उन माननीय वृद्ध पुरुषोंके चरणोंकी वन्दना कर फिर क्रमशः अन्य सब वनोंमें भी विचरती रही। इस तरह वह सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धन-दान करती विभिन्न देशोंमें घूमती रही।

राजन्! एक दिन मद्रराज अश्वपति अपनी सभामें बैठे हुए देवर्षि नारदसे बातें कर रहे थे। उसी समय मन्त्रियोंके सहित सावित्री समस्त तीर्थोंमें विचरकर अपने पिताके घर पहुँची। वहाँ पिताको नारदजीके साथ बैठे हुए देखकर उसने दोनोंहीके चरणोंमें प्रणाम किया। उसे देखकर नारदजीने पूछा, 'राजन्! आपकी यह पुत्री कहाँ गयी थी और अब कहाँसे आ रही है? यह युवती हो गयी है, फिर भी आप किसी वरके साथ इसका विवाह क्यों नहीं करते?' अश्वपतिने कहा, 'इसे मैंने इसी कामके लिये भेजा था और यह आज ही लौटी है। आप इसीसे पूछिये इसने किस वरको चुना है।' तब पिताके यह कहनेपर कि तू अपना सब वृत्तान्त सुना दे, सावित्रीने उनकी बात मानकर कहा—

'शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामसे विख्यात एक बड़े धर्मात्मा राजा थे। पीछे वे अन्धे हो गये थे। इस प्रकार आँखें चली जानेसे और पुत्रकी बाल्यावस्था होनेसे अवसर पाकर उनके पूर्वशत्रु एक पड़ोसी राजाने उनका राज्य हर लिया। तब अपने बालक पुत्र और भार्याके सहित वे वनमें चले आये और बड़े-बड़े व्रतोंका पालन करते हुए तपस्या करने लगे। उनके कुमार सत्यवान्, जो अब वनमें रहते हुए बड़े हो गये हैं, मेरे अनुरूप हैं और मैंने मनसे उन्हींको अपने पतिरूपसे वरण किया है।'

यह सुनकर नारदजीने कहा—राजन्! बड़े खेदकी बात है। हाय! सावित्रीसे तो बड़ी भूल हो गयी, जो इसने बिना जाने ही गुणवान् समझकर सत्यवान्‌को वर लिया! इस कुमारके पिता सत्य बोलते हैं और माता भी सत्यभाषण ही करती है। इसीसे ब्राह्मणोंने इसका नाम 'सत्यवान्' रक्खा है।

राजाने पूछा—अच्छा, इस समय अपने पिताका लाड़ला राजकुमार सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान् और शूरवीर तो है न?

नारदजी बोले—वह द्युमत्सेनका वीर पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्, इन्द्रके समान वीर, पृथ्वीके समान क्षमाशील, रन्तिदेवके समान दाता, उशीनरके पुत्र शिबिके समान ब्रह्मण्य और सत्यवादी, ययातिके समान उदार, चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन और अश्विनीकुमारोंके समान अद्वितीय रूपवान् है। वह जितेन्द्रिय है, मृदुलस्वभाव है, शूरवीर है, सत्यवादी है, मिलनसार है, ईर्ष्याहीन है, लज्जाशील है और तेजस्वी है। तप और शीलमें बढ़े हुए ब्राह्मणलोग संक्षेपमें उसके विषयमें ऐसा कहते हैं कि उसमें सरलताका निरन्तर निवास रहता है और उसमें उसकी अविचल स्थिति हो गयी है।

अश्वपतिने कहा—भगवन्! आप तो उसे सभी गुणोंसे सम्पन्न बता रहे हैं। अब यदि उसमें कोई दोष हों तो वे भी मुझे बताइये।

नारदजीने कहा—उसमें केवल एक ही दोष है; किन्तु उससे उसके सारे गुण दबे हुए हैं, तथा किसी प्रयत्नद्वारा भी उसे निवृत्त नहीं किया जा सकता। उसके सिवा उसमें और कोई दोष नहीं है। वह दोष यह है कि आजसे एक वर्ष बाद सत्यवान्‌की आयु समाप्त हो जायगी और वह देहत्याग कर देगा।

तब राजाने सावित्रीसे कहा—सावित्री ! यहाँ आ ! देख, तू फिर जा और किसी दूसरे वरकी खोज कर । देवर्षि नारदजी मुझसे कहते हैं कि सत्यवान् तो अल्पायु है, वह एक वर्ष पीछे ही देहत्याग कर देगा ।

सावित्रीने कहा—पिताजी ! काष्ठ-पाषाणादिका टुकड़ा एक बार ही उससे अलग होता है, कन्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' ऐसा सङ्कल्प भी एक बार ही होता है । ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं । अब तो जिसे मैंने एक बार वरण कर लिया—वह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, तथा गुणवान् हो अथवा गुणहीन—वही मेरा पति होगा; किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती । पहले मनसे निश्चय करके फिर वाणीसे कहा जाता है और उसके बाद कर्मद्वारा किया जाता है । अतः मेरे लिये तो मन ही परम प्रमाण है ।

नारदजी बोले—राजन् ! तुम्हारी पुत्री सावित्रीकी बुद्धि निश्चयात्मिका है । इसलिये इसे किसी भी प्रकार इस धर्मसे विचलित नहीं किया जा सकता । सत्यवान्में जो-जो गुण हैं, वे किसी दूसरे पुरुषमें हैं भी नहीं । अतः मुझे भी यही अच्छा जान पड़ता है कि आप उसे कन्यादान कर दें ।

राजाने कहा—आपने जो बात कही है, वह बहुत ठीक है और किसी प्रकार टाली नहीं जा सकती । अतः मैं ऐसा ही करूँगा । मेरे तो आप ही गुरु हैं ।

फिर कन्यादानके विषयमें नारदजीकी आज्ञाको ही शिरोधार्य समझ राजा अश्वपतिने सब वैवाहिक सामग्री एकत्रित करायी और वृद्ध ब्राह्मण तथा पुरोहितके सहित सभी ऋत्विजोंको बुलाकर शुभ दिनमें कन्याके सहित प्रस्थान किया । जब एक पवित्र वनमें राजा द्युमत्सेनके आश्रमपर पहुँचे तो ब्राह्मणोंके साथ पैदल ही उन राजर्षिके पास गये । वहाँ उन्होंने नेत्रहीन राजा द्युमत्सेनको सालवृक्षके नीचे एक कुशके आसनपर बैठे देखा । राजा अश्वपतिने राजर्षि द्युमत्सेनकी यथायोग्य पूजा की और विनीत शब्दोंमें उन्हें अपना परिचय दिया । धर्मज्ञ राजर्षिने अर्घ्य और आसन देकर राजाका सत्कार किया और पूछा, 'कहिये, किस निमित्तसे पधारनेकी कृपा की ?' तब अश्वपतिने कहा, 'राजर्षे ! मेरी यह सावित्री नामकी एक रूपवती कन्या है । इसे अपने धर्मके अनुसार आप अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार कीजिये ।'

द्युमत्सेनने कहा—हम राज्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं और यहाँ वनमें रहकर संयमपूर्वक तपस्वियोंका जीवन व्यतीत करते हैं । आपकी कन्या तो यह सब कष्ट सहन करनेयोग्य नहीं है । वह यहाँ आश्रममें वनवासके दुःखको सहन करती हुई कैसे रहेगी ?

अश्वपतिने कहा—राजन् ! सुख और दुःख तो आने-जानेवाले हैं, इस बातको मैं और मेरी पुत्री दोनों जानते हैं । मेरे-जैसे आदमीसे आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, मैं तो सब प्रकार निश्चय करके ही आपके पास आया हूँ ।

द्युमत्सेन बोले—राजन् ! मैं तो पहले ही आपके साथ सम्बन्ध करना चाहता था, किन्तु राज्यच्युत होनेके कारण मैंने अपना विचार छोड़ दिया था । अब यदि मेरी पहलेकी अभिलाषा स्वयं ही पूर्ण होना चाहती है तो ऐसा ही हो । आप तो मेरे अभीष्ट अतिथि हैं ।

तदनन्तर उस आश्रममें रहनेवाले सभी ब्राह्मणोंको बुलाकर दोनों राजाओंने विधिवत् विवाहसंस्कार कराया और यथायोग्य रीतिसे वर-कन्याको आभूषण आदि भी दिये । इसके पश्चात् राजा अश्वपति बड़े आनन्दसे अपने भवनको लौट आये । उस सर्वगुणसम्पन्ना भार्याको पाकर सत्यवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई और अपना मनमाना वर पाकर सावित्रीको भी बड़ा आनन्द हुआ । पिताके चले जानेपर सावित्रीने सब आभूषण उतार दिये और वल्कल-वस्त्र तथा गेरुए कपड़े पहन लिये । उसकी सेवा, गुण, विनय, संयम और सबके मनके अनुसार काम करनेसे सभीको बहुत सन्तोष हुआ । उसने शारीरिक सेवा और सब प्रकारके वस्त्राभूषणोंद्वारा सासको और देवताके समान सत्कार करते हुए अपनी वाणीका संयम करके ससुरजीको सन्तुष्ट किया । इसी प्रकार मधुर भाषण, कार्यकुशलता, शान्ति और एकान्तमें सेवा करके पतिदेवको प्रसन्न किया । इस प्रकार उस आश्रममें रहकर तपस्या करते हुए उन्हें कुछ समय बीता ।

सावित्रीद्वारा सत्यवान्‌को जीवनदान

जब बहुत दिन बीत गये तो अन्तमें वह समय भी आ ही गया, जिस दिन कि सत्यवान् मरनेवाला था। सावित्री एक-एक दिन गिनती रहती थी और उसके हृदयमें नारदजीका वचन सदा ही बना रहता था। जब उसने देखा कि अब इन्हें चौथे दिन मरना है तो उसने तीन दिनका व्रत धारण किया और वह रात-दिन स्थिर होकर बैठी रही। कल पतिदेवके प्राण प्रयाण करेंगे, इस चिन्तामें सावित्रीने बैठे-बैठे ही वह रात बितायी। दूसरे दिन यह सोचकर कि आज ही वह दिन है, उसने सूर्यदेवके चार हाथ ऊपर उठते-उठते अपने सब आह्निक कृत्य समाप्त किये और प्रज्वलित अग्निमें आहुतियाँ दीं। फिर सभी ब्राह्मण, बड़े-बूढ़े, सास और ससुरको क्रमशः प्रणाम कर संयमपूर्वक हाथ जोड़कर खड़ी रही। उस तपोवनमें रहनेवाले सभी तपस्वियोंने उसे अवैधव्य के सूचक शुभ आशीर्वाद दिये और सावित्रीने तपस्वियोंकी उस वाणीको 'ऐसा ही हो' इस प्रकार ध्यानयोगमें स्थित होकर ग्रहण किया। इसी समय सत्यवान् कन्धेपर कुल्हाड़ी रखकर वनसे समिधा लानेको तैयार हुआ। तब सावित्रीने कहा, 'आप अकेले न जायँ, मैं भी आपके साथ चलूँगी।' सत्यवान्‌ने कहा, 'प्रिये! तुम पहले कभी वनमें गयी नहीं हो, वनका रास्ता बड़ा कठिन होता है और तुम उपवासके कारण दुर्बल हो रही हो; फिर इस विकट मार्गमें पैदल ही कैसे चलोगी?' सावित्री बोली, 'उपवासके कारण मुझे किसी प्रकारकी शिथिलता या थकान नहीं है, चलनेके लिये मनमें बहुत उत्साह है। इसलिये आप रोकिये मत।' सत्यवान्‌ने कहा, 'यदि तुम्हें चलनेका उत्साह है तो मैं तो जो तुम्हें अच्छा लगे, करनेको तैयार हूँ; किन्तु तुम माताजी और पिताजीसे भी आज्ञा ले लो।'

तब सावित्रीने अपने सास-ससुरको प्रणाम करके कहा, 'मेरे स्वामी फलादि लानेके लिये वनमें जा रहे हैं। यदि सासजी और ससुरजी आज्ञा दें तो आज मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूँ।' इसपर द्युमत्सेनने कहा, 'जबसे पिताके कन्यादान करनेपर सावित्री बहू बनकर हमारे आश्रममें रही है, तबसे मुझे इसके किसी भी बातके लिये याचना करनेका स्मरण नहीं है। अतः आज इसकी इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिये। अच्छा, बेटी! तू जा, मार्गमें सत्यवान्‌की सँभाल रखना।'

इस प्रकार सास-ससुरकी आज्ञा पाकर यशस्विनी सावित्री अपने पतिदेवके साथ चल दी। वह ऊपरसे तो हँसती-सी जान पड़ती थी, किन्तु उसके हृदयमें दुःखकी ज्वाला धधक रही थी। वीर सत्यवान्‌ने पहले तो अपनी पत्नीके सहित

फल बीनकर एक टोकरी भर ली और फिर वह लकड़ियाँ काटने लगा। लकड़ी काटते-काटते परिश्रमके कारण उसे पसीना आ गया और इसीसे उसके सिरमें दर्द होने लगा। इस प्रकार श्रमसे पीडित होकर उसने सावित्रीके पास जाकर कहा, 'प्रिये! आज लकड़ी काटनेके परिश्रमसे मेरे सिरमें दर्द होने लगा है तथा सारे अङ्गोंमें और हृदयमें भी दाह-सा होता है; मुझे शरीर कुछ अस्वस्थ-सा जान पड़ता है, और ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरे सिरमें कोई बर्छी छेद रहा है। कल्याणी! अब मैं सोना चाहता हूँ, बैठनेकी मुझमें शक्ति नहीं है।'

यह सुनकर सावित्री अपने पतिके पास आयी और उसका सिर गोदीमें रखकर पृथ्वीपर बैठ गयी। फिर वह नारदजीकी बात याद करके उस मुहूर्त्त, क्षण और दिनका विचार करने लगी। इतनेहीमें उसे वहाँ एक पुरुष दिखायी

दिया। वह लाल वस्त्र पहने था, उसके सिरपर मुकुट था और अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण वह मूर्तिमान् सूर्यके

समान जान पड़ता था। उसका शरीर श्याम और सुन्दर था, नेत्र लाल-लाल थे, हाथमें पाश था और देखनेमें वह बड़ा भयानक जान पड़ता था। वह सत्यवान्के पास खड़ा हुआ उसीकी ओर देख रहा था। उसे देखते ही सावित्रीने धीरेसे पतिका सिर भूमिपर रख दिया और सहसा खड़ी हो गयी। उसका हृदय धड़कने लगा और उसने अत्यन्त आर्त होकर उससे हाथ जोड़कर कहा, 'मैं समझती हूँ आप कोई देवता हैं, क्योंकि आपका यह शरीर मनुष्यका-सा नहीं है। यदि आपकी इच्छा हो तो बताइये आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं।'

यमराजने कहा—सावित्री! तू पतिव्रता और तपस्विनी है, इसलिये मैं तुझसे सम्भाषण कर लूँगा। तू मुझे यमराज जान। तेरे पति इस राजकुमार सत्यवान्की आयु समाप्त हो चुकी है, अब मैं इसे पाशमें बाँधकर ले जाऊँगा। यही मैं करना चाहता हूँ।

सावित्रीने कहा—भगवन्! मैंने तो ऐसा सुना है कि मनुष्योंको लेनेके लिये आपके दूत आया करते हैं। यहाँ स्वयं आप ही कैसे पधारे?

यमराज बोले—सत्यवान् धर्मात्मा, रूपवान् और गुणोंका समुद्र है। यह मेरे दूतोंद्वारा ले जाये जाने योग्य नहीं है। इसीसे मैं स्वयं आया हूँ।

इसके बाद यमराजने बलात्कारसे सत्यवान्के शरीरमेंसे पाशमें बँधा हुआ अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला जीव निकाला। उसे लेकर वे दक्षिणकी ओर चल दिये। तब दुःखातुरा सावित्री भी यमराजके पीछे ही चल दी। यह देखकर यमराजने कहा, 'सावित्री! तू लौट जा और इसका और्ध्वदैहिक संस्कार कर। तू पतिसेवाके ऋणसे मुक्त हो गयी है। पतिके पीछे भी तुझे जहाँतक आना था, वहाँतक आ चुकी है।'

सावित्री बोली—मेरे पतिदेवको जहाँ भी ले जाया जायगा अथवा जहाँ वे स्वयं जायँगे, वहीं मुझे भी जाना चाहिये। यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रताचरण और आपकी कृपासे मेरी गति कहीं भी रुक नहीं सकती।

यमराज बोले—सावित्री! तेरी स्वर, अक्षर, व्यञ्जन एवं युक्तियोंसे युक्त बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू सत्यवान्के जीवनके सिवा और कोई भी वर माँग ले। मैं तुझे सब प्रकारका वर देनेको तैयार हूँ।

सावित्रीने कहा—मेरे ससुर राज्यभ्रष्ट होकर वनमें रहने लगे हैं और उनकी आँखें भी जाती रही हैं। सो वे आपकी कृपासे नेत्र प्राप्त करें, बलवान् हो जायँ और अग्नि तथा सूर्यके समान तेजस्वी हो जायँ।

यमराज बोले—साध्वी सावित्री! मैं तुझे यह वर देता हूँ। तूने जैसा कहा है, वैसा ही होगा। तू मार्ग चलनेसे शिथिल-सी जान पड़ती है। अब तू लौट जा, जिससे तुझे विशेष थकान न हो।

सावित्रीने कहा—पतिदेवके समीप रहते हुए मुझे श्रम कैसे हो सकता है। जहाँ मेरे प्राणनाथ रहेंगे, वहीं मेरा निश्चल आश्रम होगा। देवेश्वर! जहाँ आप पतिदेवको ले जा रहे हैं, वहाँ मेरी भी गति होनी चाहिये। इसके सिवा मेरी एक बात और सुनिये। सत्पुरुषोंका तो एक बारका समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उससे भी बढ़कर उनके साथ प्रेम हो जाना है। संतसमागम निष्फल कभी नहीं होता, अतः सर्वदा सत्पुरुषोंके ही साथ रहना चाहिये।

यमराजपर सती सावित्रीका प्रभाव

यमराज बोले—सावित्री ! तूने जो हितकी बात कही है, वह मेरे मनको बड़ी ही प्रिय जान पड़ी है । उससे विद्वानोंकी भी बुद्धिका विकास होगा ! अतः इस सत्यवान्‌के जीवनके सिवा तू कोई भी दूसरा वर माँग ले ।

सावित्रीने कहा—पहले मेरे मतिमान् ससुरजीका जो राज्य छीन लिया गया है, वह उन्हें स्वयं ही प्राप्त हो जाय और वे अपने धर्मका त्याग न करें—यह मैं आपसे दूसरा वर माँगती हूँ ।

यमराज बोले—राजा द्युमत्सेन शीघ्र ही अपने-आप राज्य प्राप्त करेंगे और वे अपने धर्मका भी त्याग नहीं करेंगे । अब तेरी इच्छा पूरी हो गयी; तू लौट जा, जिससे तुझे व्यर्थ श्रम न हो ।

सावित्रीने कहा—देव ! इस सारी प्रजाका आप नियमसे संयम करते हैं और उसका नियमन करके उसे अभीष्ट फल भी देते हैं; इसीसे आप 'यम' नामसे विख्यात हैं । अतः मैं जो बात कहती हूँ, उसे सुनिये । मन, वचन और कर्मसे समस्त प्राणियोंके प्रति अद्रोह, सबपर कृपा करना और दान देना—यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है । और इस प्रकारका तो प्रायः यह सभी लोक है—सभी मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार कोमलताका बर्ताव करते हैं । किन्तु जो सत्पुरुष हैं, वे तो अपने पास आये शत्रुओंपर भी दया करते हैं ।

यमराज बोले—कल्याणी ! प्यासे आदमीको जैसे जल पाकर आनन्द होता है, तेरी यह बात वैसी ही प्रिय लगनेवाली है । इस सत्यवान्‌के जीवनके सिवा तू फिर कोई अभीष्ट वर माँग ले ।

सावित्रीने कहा—मेरे पिता राजा अश्वपति पुत्रहीन हैं; उनके अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले सौ औरस पुत्र हों—यह मैं तीसरा वर माँगती हूँ ।

यमराज बोले—राजपुत्री ! तेरे पिताके कुलकी वृद्धि करनेवाले सौ तेजस्वी पुत्र होंगे । अब तेरी इच्छा पूर्ण हो गयी, तू लौट जा; अब बहुत दूर आ गयी है ।

सावित्रीने कहा—पतिदेवकी सन्निधिके कारण यह कुछ दूरी नहीं जान पड़ती । मेरा मन तो बहुत दूर-दूरकी दौड़ लगाता है । अतः अब मैं जो बात कहती हूँ, उसे भी सुननेकी कृपा करें । आप विवस्वान् (सूर्य) के प्रतापी पुत्र हैं, इसलिये पण्डितजन आपको 'वैवस्वत' कहते हैं । आप शत्रु-मित्रादिके भेदभावको छोड़कर सबका समानरूपसे न्याय करते हैं, इसीसे सब प्रजा धर्मका आचरण करती है और आप 'धर्मराज' कहलाते हैं । इसके सिवा मनुष्य सत्पुरुषोंका जैसा विश्वास करता है, वैसा अपना भी नहीं करता । इसलिये वह सबसे ज्यादा सत्पुरुषोंमें ही प्रेम करना चाहता है । और विश्वास सभी जीवोंको सुहृदताके कारण हुआ करता है; अतः सुहृदताकी अधिकताके कारण ही सब लोग संतोंमें विशेषरूपसे विश्वास किया करते हैं ।

यमराज बोले—सुन्दरी ! तूने जैसी बात कही है, वैसी मैंने तेरे सिवा और किसीके मुँहसे नहीं सुनी । इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । तू इस सत्यवान्‌के जीवनके सिवा कोई भी चौथा वर माँग ले और यहाँसे लौट जा ।

सावित्रीने कहा—मेरे सत्यवान्‌के द्वारा कुलकी वृद्धि करनेवाले बड़े बलवान् और पराक्रमी सौ औरस पुत्र हों—यह मैं चौथा वर माँगती हूँ ।

यमराज बोले—अबले ! तेरे बल और पराक्रमसे सम्पन्न सौ पुत्र होंगे, जिनसे तुझे बड़ा आनन्द प्राप्त होगा । राजपुत्री ! अब तू लौट जा, जिससे तुझे थकान न हो । तू बहुत दूर आ गयी है ।

सावित्रीने कहा—सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही रहा करती है, वे कभी दुःखित या व्यथित नहीं होते । सत्पुरुषोंके साथ जो सत्पुरुषोंका समागम होता है, वह कभी निष्फल नहीं होता और संतोंसे संतोंको कभी भय भी नहीं होता । सत्पुरुष सत्यके बलसे सूर्यको भी अपने समीप बुला लेते हैं, वे अपने तपके प्रभावसे पृथ्वीको धारण किये हुए हैं । संत ही भूत और भविष्यत्‌के आधार हैं, उनके बीचमें रहकर सत्पुरुषोंको कभी खेद नहीं होता । यह सनातन सदाचार सत्पुरुषोंद्वारा सेवित है—ऐसा जानकर सत्पुरुष परोपकार करते हैं और प्रत्युपकारकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालते ।

यमराज बोले—पतिव्रते ! जैसे-जैसे तू मुझे गम्भीर

अर्थसे युक्त एवं चित्तको प्रिय लगनेवाली धर्मानुकूल बातें सुनाती जाती है, वैसे-वैसे ही तेरे प्रति मेरी अधिकाधिक श्रद्धा होती जाती है। अब तू मुझसे कोई अनुपम वर माँग ले।

सावित्रीने कहा—हे मानद! आपने जो मुझे पुत्र-प्राप्तिका वर दिया है, वह बिना दाम्पत्यधर्मके पूर्ण नहीं हो सकता। अतः अब मैं यही वर माँगती हूँ कि ये सत्यवान् जीवित हो जायँ। इससे आपहीका वचन सत्य होगा, क्योंकि पतिके बिना तो मैं मौतके मुखमें ही पड़ी हुई हूँ। पतिके बिना मुझे कैसा ही सुख मिले, मुझे उसकी इच्छा नहीं है; पतिके बिना मुझे स्वर्गकी भी कामना नहीं है; पतिके बिना यदि लक्ष्मी आवे तो मुझे उसकी भी आवश्यकता नहीं है तथा पतिके बिना तो मैं जीवित रहना भी नहीं चाहती। आपहीने मुझे सौ पुत्र होनेका वर दिया है, और फिर भी आप मेरे पतिदेवको लिये जा रहे हैं! अतः मैं जो यह वर माँग रही हूँ कि यह सत्यवान् जीवित हो जाय, इससे भी आपका ही वचन सत्य होगा।

यह सुनकर सूर्यपुत्र यम बड़े प्रसन्न हुए और 'ऐसा ही

हो' कहते हुए सत्यवान्‌का बन्धन खोल दिया। इसके बाद वे सावित्रीसे कहने लगे, 'हे कुलनन्दिनी कल्याणी! ले, मैं तेरे पतिको छोड़ता हूँ। अब यह सर्वथा नीरोग हो जायगा तू इसे घर ले आ, इसके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। यह तेरे सहित चार सौ वर्षतक जीवित रहेगा तथा धर्मपूर्वक यज्ञानुष्ठान करके लोकमें कीर्ति प्राप्त करेगा। इससे तेरे गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे।' इस प्रकार सावित्रीको वर देकर और उसे लौटाकर प्रतापी धर्मराज अपने लोकको चले गये।

यमराजके चले जानेपर सावित्री अपने पतिको पाकर उस स्थानपर आयी, जहाँ सत्यवान्‌का शव पड़ा था। पतिको पृथ्वीपर पड़ा देखकर वह उसके पास बैठ गयी और उसका सिर उठाकर गोदमें रख लिया। थोड़ी ही देरमें सत्यवान्‌के शरीरमें चेतना आ गयी और वह सावित्रीकी ओर बार-बार प्रेमपूर्वक देखता हुआ इस प्रकार बातें करने लगा मानो बहुत दिनोंके प्रवासके बाद लौटा हो। वह बोला, 'मैं बड़ी देरतक सोता रहा, तुमने जगाया क्यों नहीं? और वह काले रंगका मनुष्य कौन था, जो मुझे खींचे लिये जाता था?' सावित्रीने कहा, 'पुरुषश्रेष्ठ! आप बड़ी देरसे मेरी गोदमें सोये पड़े हैं। वे श्याम वर्णके पुरुष प्रजाका नियन्त्रण करनेवाले देवश्रेष्ठ भगवान् यम थे। अब वे अपने लोकको चले गये हैं। देखिये सूर्य अस्त हो चुका है और रात्रि गाढ़ी होती जा रही है; इसलिये ये सब बातें तो जैसे-जैसे हुई हैं, कल सुनाऊँगी। इस समय तो आप उठकर माता-पिताके दर्शन कीजिये।'

सत्यवान्‌ने कहा—ठीक है, चलो। देखो, अब मेरे सिरमें दर्द नहीं है। और न मेरे किसी और अंगमें पीड़ा ही है। मेरा सारा शरीर स्वस्थ प्रतीत होता है। मैं चाहता हूँ तुम्हारी कृपासे मैं शीघ्र ही अपने वृद्ध माता-पिताके दर्शन करूँ। प्रिये! मैं किसी दिन भी देर करके आश्रममें नहीं जाता था। सन्ध्या होनेसे पहले ही मेरी माता मुझे बाहर जानेसे रोक देती थी। दिनमें भी, जब मैं आश्रमसे बाहर जाता तो मेरे माता-पिता मेरे लिये चिन्तामें डूब जाते थे और वे अधीर होकर आश्रमवासियोंको साथ ले मुझे ढूँढ़नेको चल देते थे। अतएव कल्याणी! मुझे इस समय अपने अन्ध पिताकी और उनकी सेवामें लगी हुई दुर्बलशरीर अपनी माताकी जितनी चिन्ता हो रही है, उतनी अपने शरीरकी भी नहीं है। मेरे

परम पूज्य पवित्रतम माता-पिता मेरे लिये आज कितना सन्ताप सह रहे होंगे ! जबतक मेरे माता-पिता जीवित हैं, तभीतक मैं भी जीवन धारण किये हूँ ।'

पतिकी बात सुनकर सावित्री खड़ी हो गयी । उसने सत्यवान्को उठाया, अपने बायें कन्धेपर उसका हाथ रक्खा और दायाँ हाथ उसकी कमरमें डालकर उसे ले चली। तब सत्यवान्ने कहा, 'भीरु ! इस रास्तेमें आने-जानेका अभ्यास होनेके कारण मैं इससे अच्छी तरह परिचित हूँ, और अब वृक्षोंके बीचमें होकर चन्द्रमाकी चाँदनी भी फैलने लगी है । हम कल जिस रास्तेपर फल बीन रहे थे, वही आ गया है; इसलिये अब सीधे इसी मार्गसे चली चलो, कुछ और सोच-विचार मत करो । मैं भी अब स्वस्थ और सबल हो गया हूँ और माता-पिताको देखनेकी भी मुझे जल्दी है ।' ऐसा कहकर वह जल्दी-जल्दी आश्रम-की ओर चलने लगा ।

द्युमत्सेन और शैब्याकी चिन्ता, सत्यवान् और सावित्रीका आश्रममें पहुँचना तथा द्युमत्सेनका राज्य पाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन् ! इसी बीचमें द्युमत्सेनको दृष्टि प्राप्त हो गयी और उन्हें सब वस्तुएँ दिखायी देने लगीं । पुत्रके न आनेसे उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और रानी शैब्याके सहित वे उसे सब आश्रमोंमें घूमकर देखने लगे । फिर उनके पास समस्त आश्रमवासी ब्राह्मण आये और उन्हें धीरज बँधाकर उनके आश्रममें ले गये । वहाँ बूढ़े-बूढ़े ब्राह्मण उन्हें प्राचीन राजाओंकी तरह-तरहकी कथाएँ सुनाकर धैर्य बँधाने लगे । उनमें एक सुवर्ण नामका ब्राह्मण था । वह बड़ा सत्यवादी था । उसने कहा, 'सत्यवान्की स्त्री सावित्री तप, इन्द्रियसंयम और सदाचारका सेवन करनेवाली है; इसलिये वह अवश्य जीवित होगा ।' एक दूसरे ब्राह्मण गोतमने कहा, 'मैंने अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन किया है और बहुत तपस्या भी की है तथा कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्यपालन और गुरु तथा अग्निको तृप्त भी किया है । इस तपस्याके प्रभावसे मुझे दूसरोंके मनकी बात मालूम हो जाती है । अतः मेरी बात सच मानो, सत्यवान् अवश्य जीवित है ।' फिर सभी ऋषि कहने लगे, 'सत्यवान्की स्त्री सावित्रीमें अवैधव्यके सूचक सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं, अतः सत्यवान् जीवित ही है ।' दाल्भ्यने कहा, 'देखिये, आपको दृष्टि मिली है और सावित्री व्रतका पारण किये बिना ही सत्यवान्के साथ गयी है; अतः वह अवश्य जीवित होना चाहिये ।'

जब सत्यवक्ता ऋषियोंने द्युमत्सेनको इस प्रकार समझाया तो उन सबकी बात मानकर वे स्थिर हो गये । इसके कुछ ही देर बाद सत्यवान्के सहित सावित्री आ गयी और वे दोनों प्रसन्न होते हुए आश्रममें घुस गये । उन्हें देखकर ब्राह्मणोंने कहा, 'लो राजन् ! तुम्हें पुत्र मिल गया और नेत्र भी प्राप्त हो गये ।' फिर सत्यवान्से पूछा, 'सत्यवान् ! तुम स्त्रीके साथ गये थे, सो पहले ही क्यों नहीं लौट आये ? इतनी रात बीतनेपर कैसे लौटे हो ? ऐसी क्या अड़चन आ गयी थी ? राजकुमार ! आज तो तुमने अपने माता-पिता और हम सबको भी बड़ी चिन्तामें डाल दिया, सो हम नहीं जानते क्या कारण हुआ । जरा सब बातें बताओ तो ।'

सत्यवान्‌ने कहा—मैं पिताजीसे आज्ञा लेकर सावित्री-के सहित गया था। वहाँ जंगलमें लकड़ी काटते-काटते मेरे सिरमें दर्द होने लगा। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि उस वेदनाके कारण ही मैं बहुत देरतक सोता रहा। इतनी देर तो मैं पहले कभी नहीं सोया। आप सब लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इसी निमित्तसे हमें आनेमें देरी हो गयी, और कोई कारण नहीं है।

गोतम बोले—सत्यवान्! तुम्हारे पिता द्युमत्सेनको आज अकस्मात् दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तुम्हें वास्तविक कारणका पता नहीं है, ये सब बातें तो सावित्री बता सकती है। सावित्री! तुझे हम प्रभावमें साक्षात् सावित्री (ब्रह्माणी) के समान ही समझते हैं, तुझे भूत-भविष्यत्‌की बातोंका भी ज्ञान है। तू इसका कारण अवश्य जानती है। हमें उसे सुननेकी इच्छा है, सो यदि गोपनीय न हो तो हमें भी कुछ सुना दे।

सावित्रीने कहा—आप जैसा समझ रहे हैं, वैसी ही बात है; आपका विचार मिथ्या नहीं हो सकता। मेरी बात भी आपसे छिपी नहीं है। अतः जो सत्य है, वही सुनाती हूँ; श्रवण कीजिये। नारदजीने मुझे यह बता दिया था कि अमुक दिन तेरे पतिकी मृत्यु होगी। वह दिन आज आया था, इसीसे मैंने इन्हें वनमें अकेले नहीं जाने दिया! जब ये सोये हुए थे तो साक्षात् यमराज आये और इन्हें बाँधकर दक्षिण दिशाको ले चले। मैंने सत्य वचनोंद्वारा उन देवश्रेष्ठकी स्तुति की। इसपर उन्होंने मुझे पाँच वर दिये, सो सुनिये। ससुरजीको नेत्र और राज्य प्राप्त हों—दो वर तो ये थे; मेरे पिताजीको सौ पुत्र मिलें और सौ पुत्र मुझे प्राप्त हों—दो ये थे; तथा पाँचवें वरके अनुसार मेरे पतिदेव सत्यवान्‌को चार सौ वर्षकी आयु प्राप्त हुई है। पतिदेवकी जीवन-प्राप्तिके लिये ही मैंने यह व्रत किया था। इस प्रकार विस्तारसे मैंने आपको सब कारण बता दिया।

ऋषियोंने कहा—साध्वी! तू सुशीला, व्रतशीला और पवित्र आचरणवाली है। तूने उत्तम कुलमें जन्म लिया है। राजा द्युमत्सेनका दुःखाक्रान्त परिवार आज अन्धकारमय गड्ढेमें डूबा जाता था, सो तूने उसे बचा लिया।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! वहाँ एकत्रित हुए ऋषियोंने इस प्रकार प्रशंसा करके स्त्रीरत्नभूता सावित्रीका सत्कार किया तथा राजा और राजकुमारकी अनुमति लेकर प्रसन्न चित्तसे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। दूसरे दिन शाल्वदेशके समस्त राजकर्मचारियोंने आकर द्युमत्सेनसे कहा कि 'वहाँ जो राजा था उसे उसीके मन्त्रीने मार डाला है, तथा उसके किसी सहायक और स्वजनको भी जीवित नहीं

छोड़ा है। शत्रुकी सारी सेना भाग गयी है और सारी प्रजाने आपके विषयमें एकमत होकर यह निश्चय किया है कि उन्हें दीखता हो अथवा न दीखता हो, वे ही हमारे राजा होंगे। राजन्! ऐसा निश्चय करके ही हमें यहाँ भेजा गया है। हम आपके लिये ये सवारियाँ और आपकी चतुरङ्गिणी सेना लाये हैं। आपका मङ्गल हो, अब प्रस्थान करनेकी कृपा कीजिये। नगरमें आपकी जय घोषित कर दी गयी है। आप अपने बाप-दादोंके राज्यपर चिरकालतक प्रतिष्ठित रहें।'

फिर राजा द्युमत्सेनको नेत्रयुक्त और स्वस्थ शरीरवाला देखकर उन सभीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और उन्होंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। राजाने आश्रममें रहनेवाले वृद्ध ब्राह्मणोंका अभिवादन किया और उनसे सत्कृत हो अपनी राजधानीको चल दिये। वहाँ पहुँचनेपर पुरोहितोंने बड़ी प्रसन्नतासे द्युमत्सेनका राज्याभिषेक किया और उनके

पुत्र महात्मा सत्यवान्‌को युवराज बनाया। इसके बहुत समय बाद सावित्रीके सौ पुत्र हुए, जो संग्राममें पीठ न दिखानेवाले और यशकी वृद्धि करनेवाले शूरवीर थे। इसी प्रकार मद्रराज अश्वपतिकी रानी मालवीके गर्भसे उसके वैसे ही सौ भाई हुए। इस प्रकार सावित्रीने अपनेको तथा माता-पिता, सास-ससुर और पतिके कुल—इन सभीको सङ्कटसे उबार लिया। इसी प्रकार यह सावित्रीके समान शीलवती, कुल-कामिनी, कल्याणी द्रौपदी भी आप सबका उद्धार कर देगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मार्कण्डेय-जीके समझानेसे शोक और सन्तापसे मुक्त होकर महाराज युधिष्ठिर काम्यकवनमें रहने लगे। जो पुरुष इस परम-पवित्र सावित्री-चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनेगा, वह समस्त मनोरथोंके सिद्ध होनेसे सुखी होगा और कभी दुःखमें नहीं पड़ेगा।

स्वप्नमें ब्राह्मणवेषधारी सूर्यदेवकी कर्णको चेतावनी

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! लोमशजीने इन्द्रके वचना-नुसार पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे जो यह महत्त्वपूर्ण वाक्य कहा था कि 'तुम्हें जो बड़ा भारी भय लगा रहता है और जिसकी तुम किसीके सामने चर्चा भी नहीं करते, उसे भी अर्जुनके स्वर्गमें आनेपर मैं दूर कर दूँगा'; सो वैशम्पायनजी! धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिरको कर्णसे वह कौन-सा भारी भय था, जिसकी वह किसीके आगे बात भी नहीं चलाते थे?

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ राजा जनमेजय! तुम पूछ रहे हो, अतः मैं तुम्हें वह कथा सुनाता हूँ; सावधानीसे मेरी बात सुनो। जब पाण्डवोंके वनवासके बारह वर्ष बीत गये और तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ तो पाण्डवों-के हितैषी इन्द्र कर्णसे उनके कवच और कुण्डल माँगनेको तैयार हुए। जब सूर्यदेवको इन्द्रका ऐसा विचार मालूम हुआ तो वे कर्णके पास आये। ब्राह्मणसेवी और सत्यवादी वीरवर कर्ण अत्यन्त निश्चिन्त होकर एक सुन्दर बिछौनेवाली बहुमूल्य सेजपर सोये हुए थे। सूर्यदेव पुत्रस्नेहवश अत्यन्त दयार्द्र होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणके रूपमें स्वप्नावस्थामें उनके सामने आये और उनके हितके लिये समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण! मैं स्नेहवश तुम्हारे परम हितकी बात कहता हूँ, उसपर ध्यान दो। देखो, पाण्डवोंका हित करनेकी इच्छासे देवराज इन्द्र
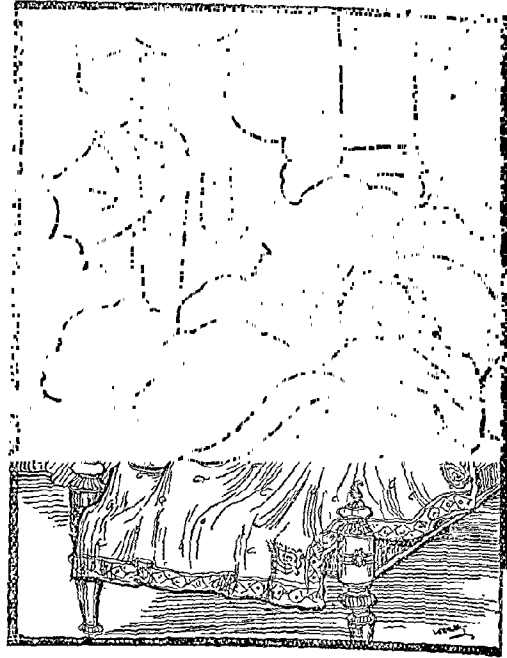
ब्राह्मणके रूपमें तुम्हारे पास कवच और कुण्डल माँगनेके लिये आयेंगे। वे तुम्हारे स्वभावको जानते हैं तथा सा संसारको भी तुम्हारे इस नियमका पता है कि किसी सत्पुरुष के माँगनेपर तुम उसकी अभीष्ट वस्तु दे देते हो और स्वयं कभी किसीसे कुछ नहीं माँगते। किन्तु यदि तुम अप जन्मके साथ ही उत्पन्न हुए इन कवच और कुण्डलोंव दे दोगे तो तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम्हारे

ऊपर मृत्युका अधिकार हो जायगा। तुम सच मानो, जबतक तुम्हारे पास ये कवच और कुण्डल रहेंगे, तुम्हें युद्धमें कोई भी शत्रु नहीं मार सकता। ये रत्नमय कवच-कुण्डल अमृतसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये यदि तुम्हें प्राण प्यारे हैं तो इनकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।'

कर्णने पूछा—भगवन्! आप मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह दिखाते हुए मुझे उपदेश कर रहे हैं। यदि इच्छा हो तो बताइये इस ब्राह्मणवेषमें आप कौन हैं?

ब्राह्मणने कहा—हे तात! मैं सूर्य हूँ; मैं स्नेहवश ही तुम्हें ऐसी सम्मति दे रहा हूँ। तुम मेरी बात मानकर ऐसा ही करो। इसीमें तुम्हारा विशेष कल्याण है।

कर्ण बोले—अब स्वयं भगवान् भास्कर ही मुझे मेरे हितकी इच्छासे उपदेश कर रहे हैं तो मेरा परम कल्याण तो निश्चित ही है; किन्तु आप मेरी यह प्रार्थना सुननेकी कृपा करें। आप वरदायक देव हैं, आपको प्रसन्न रखते हुए मैं प्रेमपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि आप मुझे प्यार करते हैं तो इस व्रतसे मुझे विचलित न करें। सूर्यदेव! संसारमें मेरे इस व्रतको सभी लोग जानते हैं कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको माँगनेपर अपने प्राण भी अवश्य दान कर सकता हूँ। यदि देवश्रेष्ठ इन्द्र पाण्डवोंके हितके लिये ब्राह्मणका वेष धारण करके मेरे पास भिक्षा माँगनेके लिये आयेंगे तो मैं उन्हें अपने ये दिव्य कवच और कुण्डल अवश्य दे दूँगा। इससे तीनों लोकोंमें जो मेरा नाम हो रहा है, उसे बट्टा नहीं लगेगा। मेरे-जैसे लोगोंको यशकी ही रक्षा करनी चाहिये, प्राणोंकी नहीं। संसारमें यशस्वी होकर ही मरना चाहिये।

सूर्यने कहा—कर्ण! तुम देवताओंकी गुप्त बातें नहीं जान सकते। इसलिये इसमें जो रहस्य है, वह मैं तुम्हें नहीं बताना चाहता; समय आनेपर तुम्हें वह स्वयं ही मालूम हो जायगा। किन्तु मैं तुमसे फिर भी कहता हूँ कि तुम माँगनेपर भी इन्द्रको अपने कुण्डल मत देना, क्योंकि इन कुण्डलोंसे युक्त रहनेपर तो अर्जुन और उसका सखा स्वयं इन्द्र भी तुम्हें युद्धमें परास्त करनेमें समर्थ नहीं हैं। इसलिये यदि तुम अर्जुनको जीतना चाहते हो तो ये दिव्य कुण्डल इन्द्रको कदापि मत देना।

कर्णने कहा—सूर्यदेव! आपके प्रति मेरी जैसी भक्ति है, वह आप जानते ही हैं; तथा यह बात भी आपसे छिपी नहीं है कि मेरे लिये अदेय कुछ भी नहीं है। भगवन्! आपके प्रति मेरा जैसा अनुराग है वैसा प्रेम तो स्त्री, पुत्र, शरीर और सुहृदोंके प्रति भी नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं कि महानुभावोंका अपने भक्तोंपर अनुराग रहा ही करता है। अतः इस नातेसे आप जो मेरे हितकी बात कह रहे हैं, उसके लिये मैं आपको सिर झुकाता हूँ और आपको प्रसन्न रखते हुए बार-बार यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरा अपराध क्षमा करें तथा मेरे इस व्रतका अनुमोदन करें, जिससे कि याचना करनेपर मैं इन्द्रको अपने प्राण भी दान कर सकूँ।

सूर्य बोले—अच्छा, यदि तुम अपने ये दिव्य कवच और कुण्डल दो ही तो अपनी विजयके लिये उनसे यह प्रार्थना करना कि 'देवराज! आप मुझे अपनी शत्रुओंका संहार करनेवाली अमोघ शक्ति दीजिये, तब मैं आपको कवच और कुण्डल दूँगा।' महाबाहो! इन्द्रकी वह शक्ति बड़ी प्रबल है। जबतक वह सैकड़ों-हजारों शत्रुओंका संहार नहीं कर लेती तबतक छोड़नेवालेके हाथमें लौटकर नहीं आती।

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन जप समाप्त करनेके अनन्तर कर्णने वे सब बातें सूर्यनारायणसे कहीं। उन्हें सुनकर भगवान् भास्करने मुसकराकर कहा, 'यह कोरा स्वप्न ही नहीं है, सब सच्ची घटना है।' तब कर्ण भी उन बातोंको ठीक समझकर शक्ति पानेकी इच्छासे इन्द्रकी प्रतीक्षा करने लगे।

कर्णकी जन्मकथा—कुन्तीकी ब्राह्मणसेवा और वरप्राप्ति

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! सूर्यदेवने जो गुह्य बात कर्णको नहीं बतायी, वह क्या थी? तथा कर्णके पास जो कवच और कुण्डल थे, वे कैसे थे और उसे कहाँसे प्राप्त हुए थे? तपोधन! ये सब बातें मैं सुनना चाहता हूँ, कृपया वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! मैं तुम्हें वह सूर्यदेवकी

गुह्य बात बताता हूँ और यह भी सुनाता हूँ कि वे कवच और कुण्डल कैसे थे। पुरानी बात है, एक बार राजा
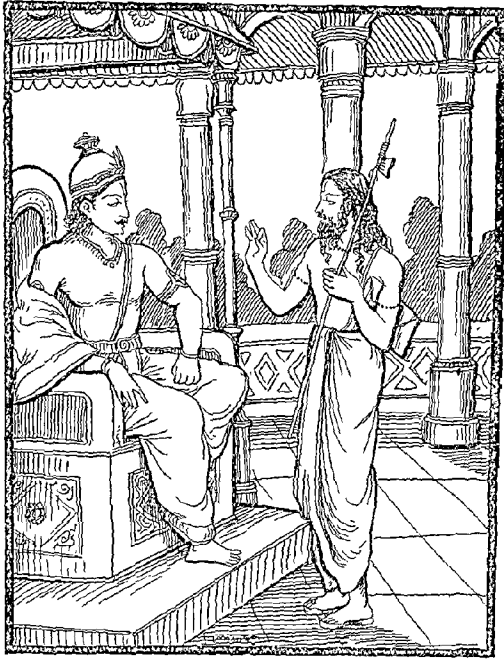
कुन्तिभोजके पास एक महान् तेजस्वी ब्राह्मण आया। उसका शरीर बहुत ऊँचा था तथा मूँछ-दाढ़ी और सिरके बाल बढ़े हुए थे। वह बड़ा ही दर्शनीय और भव्यमूर्ति था तथा हाथमें दण्ड लिये हुए था। उसका शरीर तेजसे दमक रहा था और मधुके समान पिङ्गलवर्ण था, वाणी मधुर थी तथा तप और स्वाध्याय ही उसके आभूषण थे। उन ब्राह्मण-देवताने राजासे कहा, 'राजन्! मैं आपके घर भिक्षा माँगनेके लिये आया हूँ। किन्तु आपको या आपके सेवकोंको मेरा कोई अपराध नहीं करना होगा। यदि आपकी रुचि हो तो इस प्रकार मैं आपके यहाँ रहूँगा और इच्छानुसार आता-जाता रहूँगा।'

तब राजा कुन्तिभोजने प्रेमपूर्वक उनसे कहा, 'महामते! मेरी पृथा नामकी एक कन्या है। वह बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशीला और भक्तिमती है। वही पूजा और सत्कारपूर्वक आपकी सेवा किया करेगी। उसके शील-सदाचारसे आपको अवश्य सन्तोष होगा।' ऐसा कहकर राजाने विधिवत् ब्राह्मणदेवताका सत्कार किया और विशालनयना पृथाके पास जाकर कहा, 'बेटी! ये महाभाग ब्राह्मणदेवता हमारे यहाँ ठहरना चाहते हैं और मैंने तुझपर पूरा भरोसा रखकर इनकी बात स्वीकार कर ली है। अतः किसी भी प्रकार मेरी बातको झूठी मत होने देना। ये जो कुछ माँगें, वही चीज बिना अनखाये देती रहना। ब्राह्मण परम तेजोरूप और परमतपःस्वरूप होता है। ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ही सूर्यदेव आकाशमें प्रकाशित होते हैं। बेटी! उन ब्राह्मणदेवताकी परिचर्याका भार ही इस समय तुझे सौंपा जा रहा है। तू नियमपूर्वक नित्यप्रति इनकी सेवा करती रहना। पुत्री! मैं जानता हूँ कि तेरा बचपनसे ही ब्राह्मणोंके, गुरुजनोंके, बन्धुओंके, सेवकोंके, मित्र-सम्बन्धी और माताओंके तथा मेरे प्रति सब प्रकार आदर-युक्त बर्ताव रहा है। इस नगरमें अथवा अन्तःपुरमें ऐसा कोई पुरुष नहीं जान पड़ता, जो तुझसे असन्तुष्ट हो। तू वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुई शूरसेनकी लाडिली कन्या है। तुझे बचपनमें ही प्रीतिपूर्वक राजा शूरसेनने मुझे दत्तकरूपसे दे दिया था। तू वसुदेवजीकी बहिन है और मेरी सन्तानोंमें सर्वश्रेष्ठ है। राजा शूरसेनने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि 'अपनी प्रथम सन्तान मैं आपको दूँगा।' उस प्रतिज्ञाके अनुसार ही उनके देनेसे तू मेरी पुत्री हुई। सो बेटी! यदि तू दर्प, दम्भ और अभिमानको छोड़कर इन वरदायक ब्राह्मण-देवताकी सेवा करेगी तो अवश्य कल्याण प्राप्त करेगी।'

इसपर कुन्तीने कहा—'राजन्! आपकी प्रतिज्ञाके अनुसार मैं बहुत सावधान रहकर इन ब्राह्मणदेवताकी सेवा करूँगी। ब्राह्मणोंकी पूजा करना तो मेरा स्वभाव ही है। इससे आपका प्रिय और मेरा परम कल्याण होगा। ये चाहे सायंकालमें आवें, चाहे सबेरे आवें, चाहे रातमें आवें और चाहे आधीरातके समय आवें, इन्हें मैं किसी प्रकार कुपित होनेका अवसर नहीं दूँगी। राजन्! इसमें तो मेरा बड़ा लाभ है कि आपकी आज्ञामें रहकर ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए अपना कल्याण करूँ।'

कुन्तीके ऐसा कहनेपर राजा कुन्तिभोजने उसे बार-बार हृदयसे लगाया और उसे उत्साहित करते हुए उसका सारा कर्तव्य समझा दिया। राजाने कहा, 'ठीक है, कल्याणी! तुझे निःशंक होकर ऐसा ही करना चाहिये।' उससे ऐसा कहकर परम यशस्वी कुन्तिभोजने उन ब्राह्मणदेवताको वह कन्या सौंप दी और उनसे कहा, 'ब्रह्मन्! मेरी यह कन्या छोटी आयुकी है और बहुत सुखमें पली है। यदि इससे कोई अपराध हो जाय तो आप उसपर ध्यान न दें। महाभाग

ब्राह्मणलोग वृद्ध, बालक और तपस्वियोंके तो अपराध करने-पर भी प्रायः क्रोध नहीं करते।' यह सुनकर ब्राह्मणने कहा, 'ठीक है।' इसके पश्चात् राजाने उन्हें प्रसन्न होकर हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत प्रासादमें ले जाकर रक्खा। वहाँ अग्निशालामें उनके लिये एक तेजस्वी आसन बिछाया गया तथा उसी प्रकार पूरी-पूरी उदारतासे उन्हें भोजनादिकी समस्त वस्तुएँ भी समर्पित की गयीं। राजपुत्री पृथा भी आलस्य और अभिमानको एक ओर रखकर उनकी परिचर्यामें दत्तचित्त होकर लग गयी। उसका आचरण बड़ा सराहनीय था। उसने शुद्ध मनसे सेवा करके उन तपस्वी ब्राह्मणको पूर्णतया प्रसन्न कर लिया। उनके झिड़कने, बुरा-भला कहने तथा अप्रिय भाषण करनेपर भी पृथा उनको अप्रिय लगने-वाला काम नहीं करती थी। उनका व्यवहार बड़ा अटपटा था। कभी वे अनियत समयपर आते, कभी आते ही नहीं और कभी ऐसा भोजन माँगते, जिसका मिलना अत्यन्त कठिन होता। किन्तु पृथा उनके सब काम इस प्रकार कर देती मानो उसने पहलेसे ही उनकी तैयारी कर रक्खी हो। वह शिष्य, पुत्र और बहिनके समान उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। उसके शील-स्वभाव और संयमसे ब्राह्मणको बड़ा सन्तोष हुआ और वे उसके कल्याणके लिये पूरा प्रयत्न करने लगे।

राजन्! कुन्तिभोज सायंकाल और सबेरे दोनों समय पृथासे पूछा करते थे कि 'बेटी! ब्राह्मणदेवता तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हैं न?' यशस्विनी पृथा उन्हें यही उत्तर देती थी कि वे खूब प्रसन्न हैं। इससे उदारचित्त कुन्तिभोजको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इस प्रकार एक वर्ष पूरा हो जानेपर भी जब उन विप्रवरको पृथाका कोई दोष दिखायी नहीं दिया तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उससे कहे, 'कल्याणी! तेरी सेवासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू मुझसे ऐसे वर माँग ले, जो इस लोकमें मनुष्योंके लिये दुर्लभ हैं।' तब कुन्तीने कहा, 'विप्रवर! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे सब काम तो इसीसे सफल हो गये। अब मुझे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

ब्राह्मणने कहा—भद्रे! यदि तू कोई वर नहीं माँगत तो देवताओंका आवाहन करनेके लिये मुझसे यह मन्त्र ग्रहण कर ले। इस मन्त्रसे तू जिस देवताका आवाहन करेगी, वह
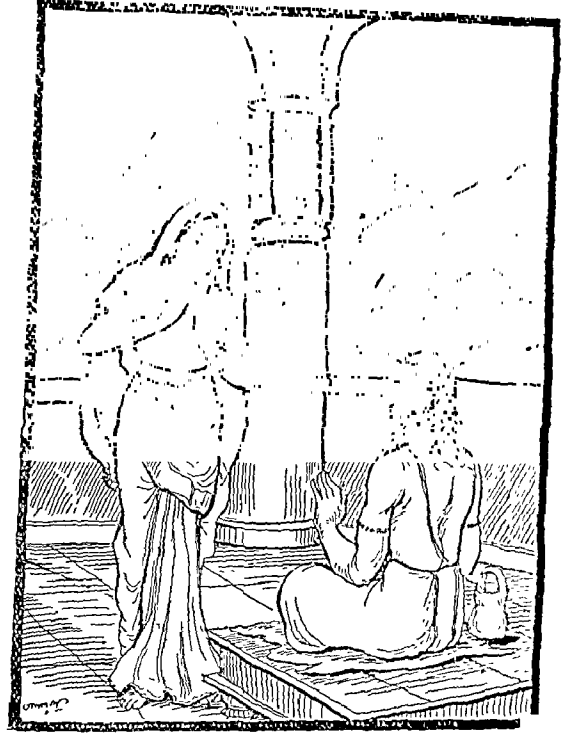
तेरे अधीन हो जायगा। उसकी इच्छा हो अथवा न इस मन्त्रके प्रभावसे वह शान्त होकर सेवकके समान तेरे अ विनीत हो जायगा।

ब्राह्मणदेवताके ऐसा कहनेपर अनिन्दिता पृथा शा भयसे दूसरी बार उनसे मना नहीं कर सकी। तब उन्हं उसे अथर्ववेद-शिरोभागमें आये हुए मन्त्रोंका उपदेश किय पृथाको मन्त्रदान करके उन्होंने कुन्तिभोजसे कहा, 'राजन मैं तुम्हारे यहाँ बड़े सुखसे रहा। तुम्हारी कन्याने मुझे स प्रकार सन्तुष्ट रक्खा। अब मैं जाऊँगा।' ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

सूर्यद्वारा कुन्तीके गर्भसे कर्णका जन्म और अधिरथके यहाँ उसका पालन तथा विद्याध्ययन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उन ब्राह्मणदेवता-के चले जानेपर वह कन्या मन्त्रोंके बलाबलके विषयमें विचार करने लगी। उसने सोचा, 'उन महात्माजीने मुझे ये कैसे मन्त्र दिये हैं, मैं शीघ्र ही इनकी शक्तिकी परीक्षा करूँगी।' एक दिन वह महलपर खड़ी हुई उदय होते हुए सूर्यकी ओ देख रही थी। उस समय उसकी दृष्टि दिव्य हो गया और

उसे दिव्यरूप कवच-कुण्डलधारी सूर्यनारायणके दर्शन होने लगे। उसी समय उसके मनमें ब्राह्मणके दिये हुए मन्त्रोंकी परीक्षाका कौतूहल हुआ। उसने विधिवत् आचमन और प्राणायाम करके सूर्यदेवका आवाहन किया। इससे तुरंत ही वे उसके पास आ गये। उनका शरीर मधुके समान पिङ्गलवर्ण था, भुजाएँ विशाल थीं, ग्रीवा शङ्खके समान थी, मुखपर मुसकानकी रेखा थी, भुजाओंपर बाजूबंद और सिरपर मुकुट था तथा तेजसे सारा शरीर देदीप्यमान था। वे अपनी योगशक्तिसे दो रूप धारण कर एकसे संसारको प्रकाशित करते रहे और दूसरेसे पृथाके पास आ गये। उन्होंने बड़ी मधुर वाणीसे कुन्तीसे कहा, 'भद्रे! तेरे मन्त्रकी शक्तिसे मैं बलात्कारसे तेरे अधीन हो गया हूँ; बता, मैं क्या करूँ? अब तू जो चाहेगी, वही मैं करूँगा।'

कुन्तीने कहा—भगवन्! आप जहाँसे आये हैं, वहीं पधार जाइये; मैंने तो कौतूहलसे ही आपका आवाहन किया था, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।
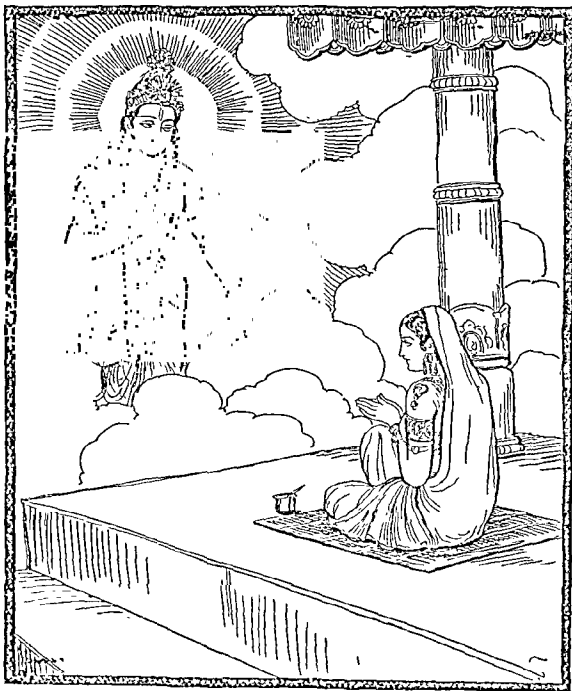
सूर्य बोले—तन्वि! तू मुझसे जानेको कहती है तो मैं चला तो जाऊँगा, परन्तु देवताका आवाहन करके उसे बिना कोई प्रयोजन सिद्ध किये लौटा देना न्यायानुकूल नहीं है। सुन्दरी! तेरी ऐसी इच्छा थी कि 'सूर्यसे मेरे पुत्र हो, वह लोकमें अतुलित पराक्रमी हो और कवच तथा कुण्डल धारण किये हो।' अतः तू मुझे अपना शरीर समर्पित कर दे; इससे तेरे, जैसा तेरा संकल्प था, वैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा।

कुन्ती बोली—रश्मिमालिन्! आप अपने विमानपर बैठकर पधारिये। अभी मैं कन्या हूँ, इसलिये ऐसा अपराध करना मेरे लिये बड़े दुःखकी बात होगी। मेरे माता-पिता और जो दूसरे गुरुजन हैं, उन्हें ही इस शरीरको दान करनेका अधिकार है। मैं धर्मका लोप नहीं करूँगी। लोकमें स्त्रियोंके सदाचारकी ही पूजा होती है और वह सदाचार अपने शरीरको अनाचारसे सुरक्षित रखना ही है। मैंने मूर्खतासे मन्त्रके बलकी परीक्षा करनेके लिये ही आपका आवाहन किया था, सो भगवन्! मुझे बालिका जानकर यह अपराध क्षमा करें।

सूर्यने कहा—भीरु! तू बालिका है, इसीलिये मैं तेरी खुशामद कर रहा हूँ; किसी दूसरी स्त्रीकी मैं विनय नहीं करता। कुन्ती! तू मुझे अपना शरीर दान कर दे, इससे तुझे शान्ति मिलेगी।

कुन्ती बोली—देव! मेरे माता, पिता तथा अन्य सम्बन्धी अभी जीवित हैं। उनके रहते हुए तो यह सनातन विधिका लोप नहीं होना चाहिये। यदि आपके साथ मेरा यह शास्त्रविधिसे विपरीत समागम हुआ तो मेरे कारण संसारमें इस कुलकी कीर्ति नष्ट हो जायगी। और यदि आप इसे धर्म मानते हैं तो अपने बन्धुजनोंके दान न करनेपर भी मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर सकती हूँ। किन्तु आपको दुष्कर आत्मदान करनेपर भी मैं सती ही रहूँ; क्योंकि संसारमें प्राणियोंके धर्म, यश, कीर्ति और आयु आपहीके ऊपर अवलम्बित हैं।

सूर्यने कहा—सुन्दरी! ऐसा करनेसे तेरा आचरण अधर्ममय नहीं माना जायगा। भला, लोकोंके हितकी दृष्टिसे मैं भी अधर्मका आचरण कैसे कर सकता हूँ?

कुन्ती बोली—भगवन्! यदि ऐसी बात है और मुझसे आप जो पुत्र उत्पन्न करें वह जन्मसे ही उत्तम कवच और कुण्डल पहने हुए हो तो मेरे साथ आपका समागम हो सकता है। किन्तु वह बालक पराक्रम, रूप, सत्त्व, ओज और धर्मसे सम्पन्न होना चाहिये।

सूर्यने कहा—राजकन्ये! मेरी माता अदितिसे मुझे जो कुण्डल और उत्तम कवच मिले हैं, वे ही मैं उस बालकको दूँगा।

कुन्ती बोली—रश्मिमालिन् ! आप जैसा कह रहे हैं, यदि वैसा ही पुत्र मुझसे हो तो मैं बड़े प्रेमसे आपके साथ सहवास करूँगी ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—तब भगवान् भास्करने अपने तेजसे उसे मोहित कर दिया और योगशक्तिसे उसके भीतर प्रवेश करके गर्भ स्थापित किया, उसके कन्यात्वको दूषित नहीं किया । गर्भाधान हो जानेपर वह फिर सचेत हो गयी । इस प्रकार आकाशमें जैसे चन्द्रमा उदित होता है, वैसे ही माघ शुक्ला प्रतिपदाके दिन पृथाके गर्भ स्थापित हुआ । उसके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक धायके सिवा और किसी स्त्रीको इसका पता नहीं चला । सुन्दरी पृथाने यथासमय एक देवताके समान कान्तिमान् बालक उत्पन्न किया तथा सूर्यदेवकी कृपासे वह कन्या ही बनी रही । वह बालक अपने पिताके समान ही शरीरपर कवच और कानोंमें सुवर्णके उज्ज्वल कुण्डल पहने हुए था तथा उसके नेत्र सिंहके समान और कन्धे बैलके-से थे । पृथाने धात्रीसे सलाह करके एक पिटारी मँगायी । उसमें अच्छी तरहसे कपड़े बिछाये और ऊपर चारों ओर मोम चुपड़ दिया । फिर उसीमें उस नवजात

शिशुको लिटाकर ऊपरसे ढक्कन लगाकर अश्वनदीमें छोड़ दिया । उस पिटारीको जलमें छोड़ते समय कुन्तीने रो-रोकर जो शब्द कहे थे, वे सुनो-'बेटा ! नभचर, स्थलचर और जलचर जीव तथा दिव्य प्राणी तेरा मङ्गल करें । तेरा मार्ग मङ्गलमय हो । शत्रुसे तुझे कोई विघ्न न हो । जलमें जलके स्वामी वरुण तेरी रक्षा करें, आकाशमें सर्वगामी पवन तेरा रक्षक हो तथा तेरे पिता सूर्यदेव तेरी सर्वत्र रक्षा करें । तू कभी विदेशमें भी मिलेगा तो इन कवच और कुण्डलोंसे मैं तुझे पहचान लूँगी ।' पृथाने इसी प्रकार करुणापूर्वक बहुत विलाप किया और फिर अत्यन्त व्याकुल होकर धात्रीके साथ राजमहलमें लौट आयी ।

वह पिटारी तैरती-तैरती अश्वनदीसे चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें गयी और उससे यमुनामें पहुँच गयी । फिर यमुनामें बहती-बहती वह गङ्गाजीमें चली गयी और जहाँ अधिरथ सूत रहता था, उस चम्पापुरीमें आ गयी । इसी समय राजा धृतराष्ट्रका मित्र अधिरथ अपनी स्त्रीके साथ गङ्गातटपर आया । राजन् ! उसकी स्त्री राधा संसारमें अनुपम रूपवती थी, किन्तु उसके कोई पुत्र नहीं हुआ था । इसलिये वह पुत्रप्राप्तिके लिये विशेषरूपसे यत्न करती रहती थी । दैवयोगसे उसकी दृष्टि गङ्गाजीमें बहती हुई पिटारीपर पड़ी । जब वह गङ्गाजीकी तरङ्गोंसे टकराकर किनारेपर लग गयी तो उसने कुतूहलवश अधिरथसे कहकर उसे जलसे बाहर निकलवाया । जब उसे औजारोंसे खुलवाया तो उसमें एक तरुण सूर्यके समान तेजस्वी बालक दिखायी दिया । वह सोनेका कवच पहने हुए था तथा उसका मुख उज्ज्वल कुण्डलोंकी कान्तिसे दिप रहा था ।

उस बालकको देखकर अधिरथ और उसकी स्त्रीके नेत्र विस्मयसे खिल उठे। अधिरथने उसे गोदमें लेकर अपनी स्त्रीसे कहा, 'प्रिये! मैंने जबसे जन्म लिया है, तबसे आज ही ऐसा विचित्र बालक देखा है। मैं तो ऐसा समझता हूँ यह कोई देवताओंका बालक हमारे पास आया है। मैं पुत्रहीन था, इसलिये अवश्य देवताओंने ही मुझे यह पुत्र दिया है।' ऐसा कहकर उसने वह बालक राधाको दे दिया। तथा राधाने उस दिव्यरूप देवशिशुको, जो कमलकोशके समान शोभासम्पन्न था, विधिवत् ग्रहण कर लिया और उसका नियमानुसार पालन करने लगी। इस प्रकार वह पराक्रमी बालक बड़ा होने लगा। तबसे अधिरथके औरस पुत्र भी होने लगे। उस बालकको वसुवर्म (सोनेका कवच) और सुवर्णमय कुण्डल पहने देखकर ब्राह्मणोंने उसका नाम वसुषेण रक्खा। इस तरह वह अतुलित पराक्रमी बालक सूतपुत्र कहलाया और 'वसुषेण' या 'वृष' नामसे विख्यात हुआ। दिव्यकवचधारी होनेसे पृथाने भी दूतोंद्वारा मालूम करा लिया कि उसका श्रेष्ठ पुत्र अङ्गदेशमें एक सूतके घर पल रहा है। अधिरथने जब देखा कि अब यह बड़ा हो गया है तो उसे विद्योपार्जनके लिये हस्तिनापुर भेज दिया। वहाँ वह द्रोणाचार्यके पास रहकर अस्त्रविद्या सीखने लगा। इस प्रकार दुर्योधनके साथ उसकी मित्रता हो गयी। उसने द्रोण, कृप और परशुरामजीसे चारों प्रकारके अस्त्रोंका सञ्चालन सीखा और इस प्रकार महान् धनुर्धर होकर सम्पूर्ण लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया। वह दुर्योधनसे मेल करके सर्वदा पाण्डवोंका अप्रिय करनेमें तत्पर रहता था और सदा ही अर्जुनसे युद्ध करनेकी टोहमें रहता था।

राजन्! निःसन्देह यही सूर्यदेवकी गुप्त बात थी कि कर्णका जन्म सूर्यद्वारा कुन्तीके उदरसे हुआ था और पालन सूतपरिवारमें। कर्णको कवच-कुण्डलयुक्त देखकर महाराज युधिष्ठिर उसे युद्धमें अवध्य (अजेय) समझते थे, और इसीसे उन्हें चिन्ता रहती थी। महाराज! कर्ण मध्याह्नके समय जलमें खड़े होकर हाथ जोड़कर सूर्यकी स्तुति किया करते थे। उस समय ब्राह्मणलोग धन पानेकी इच्छासे उनके आस-पास लगे रहते थे; क्योंकि उनके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जिसे वे ब्राह्मणोंको न दे सकें।

इन्द्रको कवच-कुण्डल देकर कर्णका अमोघ शक्ति प्राप्त करना

श्रीवैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! एक दिन देवराज इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण करके कर्णके पास आये और 'भिक्षां देहि' ऐसा कहा। इसपर कर्णने कहा, 'पधारिये, आपका स्वागत है। कहिये, मैं आपको सुवर्णविभूषिता स्त्रियाँ दूँ या बहुत-सी गौओंवाले गाँव अर्पण करूँ! आपकी क्या सेवा करूँ!'

ब्राह्मणने कहा—इनकी मुझे इच्छा नहीं है; यदि आप वास्तवमें सत्यप्रतिज्ञ हैं तो आपके जो ये जन्मके साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डल हैं, ये ही उतारकर हमें दे दीजिये। आपसे मुझे इन्हींको लेनेकी बहुत उतावली है, मेरे लिये यह सबसे बढ़कर लाभकी बात होगी।

कर्णने कहा—विप्रवर! मेरे साथ उत्पन्न हुए ये कवच और कुण्डल अमृतमय हैं। इनके कारण तीनों लोकोंमें मुझे कोई नहीं मार सकता। इसलिये इन्हें मैं अपनेसे विलग करना नहीं चाहता। इसलिये आप मुझसे विस्तृत और शत्रुहीन पृथ्वीका राज्य ले लीजिये, इन कवच और कुण्डलोंको देकर तो मैं शत्रुओंका शिकार बन जाऊँगा।

जब ऐसा कहनेपर भी इन्द्रने दूसरा वर नहीं माँगा तो कर्णने हँसकर कहा, 'देवराज! मैं आपको पहले ही पहचान गया हूँ। मैं आपको कोई वस्तु दूँ और उसके बदलेमें मुझे कुछ भी न मिले, यह उचित नहीं है। आप साक्षात् देवराज हैं; आपको भी मुझे कोई वर देना चाहिये। आप अनेकों अन्य जीवोंके स्वामी और उनकी रचना करनेवाले हैं। देवेश्वर! यदि मैं आपको कवच और कुण्डल दे दूँगा तो शत्रुओंका वध्य हो जाऊँगा और आपकी भी हँसी होगी। इसलिये कोई बदला देकर आप भले ही ये दिव्य कवच-कुण्डल ले जाइये; और किसी प्रकार मैं इन्हें दे नहीं सकता।

इन्द्रने कहा—मैं तुम्हारे पास आनेवाला हूँ, यह बात सूर्यको मालूम हो गयी थी; निःसन्देह उन्होंने तुम्हें भी सब बातें बता दी होंगी। सो, कोई बात नहीं; तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही सही। तुम एक वज्रको छोड़कर मुझसे कोई भी चीज माँग सकते हो।

कर्ण बोले—इन्द्रदेव! आप इन कवच और कुण्डलोंके

बदलेमें मुझे अपनी अमोघ शक्ति दे दीजिये, जो संग्राममें अनेकों शत्रुओंका संहार कर देनेवाली है।

तब शक्तिके विषयमें थोड़ी देर विचार करके इन्द्रने कहा, 'तुम मुझे अपने शरीरके साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डल दे दो और मुझसे मेरी शक्ति ले लो। किन्तु इसके साथ एक शर्त है। वह यह कि मेरे हाथसे छूटनेपर यह शक्ति अवश्य ही सैकड़ों शत्रुओंका संहार करती है और फिर मेरे ही हाथमें लौट आती है; सो यह जब तुम्हारे हाथसे छूटेगी तो जो गरज-गरजकर तुम्हें अत्यन्त सन्तप्त कर रहा होगा, ऐसे एक ही प्रबल शत्रुको मारकर फिर मेरे ही हाथमें आ जायगी।'

कर्णने कहा—देवराज! मैं भी केवल एक ही ऐसे शत्रुको मारना चाहता हूँ, जो घनघोर युद्धमें गरज-गरजकर मुझे सन्तप्त कर रहा हो और जिससे मुझे भय उत्पन्न हो गया हो।

इन्द्र बोले—तुम युद्धमें गरजते हुए एक प्रबल शत्रुको मारोगे तो सही; किन्तु जिसे तुम मारना चाहते हो उसकी रक्षा तो भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं, जिन्हें वेदज्ञ पुरुष अजित, वराह और अचिन्त्य नारायण कहते हैं।

कर्णने कहा—भगवन्! भले ही ऐसी बात हो; तथापि आप मुझे एक वीरका नाश करनेवाली अमोघ शक्ति दीजिये, जिससे कि मैं अपनेको सन्तप्त करनेवाले शत्रुका संहार कर सकूँ।

इन्द्र बोले—एक बात और है। यदि दूसरे शस्त्रोंके रहते हुए और प्राणान्त सङ्कट उपस्थित होनेसे पहले ही तुम प्रमादवश इस अमोघ शक्तिको छोड़ दोगे तो यह तुम्हारे ही ऊपर पड़ेगी।

कर्णने कहा—इन्द्र! आपके कथनानुसार मैं आपकी इस शक्तिको बड़े भारी सङ्कटमें पड़नेपर ही छोड़ूँगा, यह मैं सच-सच कहता हूँ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तब उस प्रज्वलित शक्तिको लेकर कर्ण एक पैने शस्त्रसे अपने समस्त अंगोंको छीलकर कवच उतारने लगे। उन्हें शस्त्रसे अपना शरीर काटते और बार-बार मुसकराते हुए देखकर देवतालोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे और दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार अपने शरीरसे उधेड़कर उन्होंने वह खूनसे भीगा

हुआ दिव्य कवच इन्द्रको दे दिया तथा दोनों कुण्डलोंको भी कानसे काटकर उन्हें सौंप दिया। इस दुष्कर कर्मके कारण ही वे 'कर्ण' कहलाये।

इस प्रकार कर्णको ठगकर और उन्हें संसारमें यशस्वी बनाकर इन्द्रने निश्चय किया कि अब पाण्डवोंका काम सिद्ध हो गया। इसके पश्चात् वे हँसते-हँसते देवलोकको चले गये। जब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कर्णके ठगे जानेका समाचार मालूम हुआ तो वे बड़े ही दुखी हुए और उनका सारा गर्व ढीला पड़ गया तथा वनवासी पाण्डवोंने कर्णको ऐसी परिस्थितिमें पड़ा सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए।

ब्राह्मणकी अरणी लानेके लिये पाण्डवोंका मृगके पीछे जाना तथा भीमसेनादि चारों भाइयोंका एक सरोवरपर निर्जीव होकर गिरना

राजा जनमेजयने पूछा—मुनिवर! इस प्रकार द्रौपदीके जयद्रथद्वारा हरे जानेसे तो पाण्डवोंको बड़ा भारी कष्ट हुआ था। अतः उन्होंने उसे फिर पाकर क्या किया?

वैशम्पायनजी बोले—इस प्रकार द्रौपदीके हरे जानेसे

अत्यन्त दुखी होकर राजा युधिष्ठिर काम्यकवनको छोड़कर भाइयोंसहित पुनः द्वैतवनमें ही आ गये। वहाँ सुस्वादु फल-मूलादिकी प्रचुरता थी तथा तरह-तरहके वृक्षोंके कारण वह बड़ा रमणीय जान पड़ता था। वहाँ वे मिताहारी होकर फलाहार करते हुए द्रौपदीके सहित रहने लगे।

उस वनमें एक ब्राह्मणके अरणीसहित मन्थनकाष्ठसे एक हरिन सींग खुजलाने लगा। दैवयोगसे वह काष्ठ उसके सींगमें फँस गया। मृग कुछ बड़े डीलडौलका था। वह उसे लिये हुए उछलता-कूदता दूसरे आश्रममें पहुँच गया। यह देखकर वह ब्राह्मण अग्निहोत्रकी रक्षाके लिये घबराकर जल्दी-से पाण्डवोंके पास आया। उसने भाइयोंके साथ बैठे हुए महाराज युधिष्ठिरके पास आकर कहा, 'राजन्! मैंने अरणीके
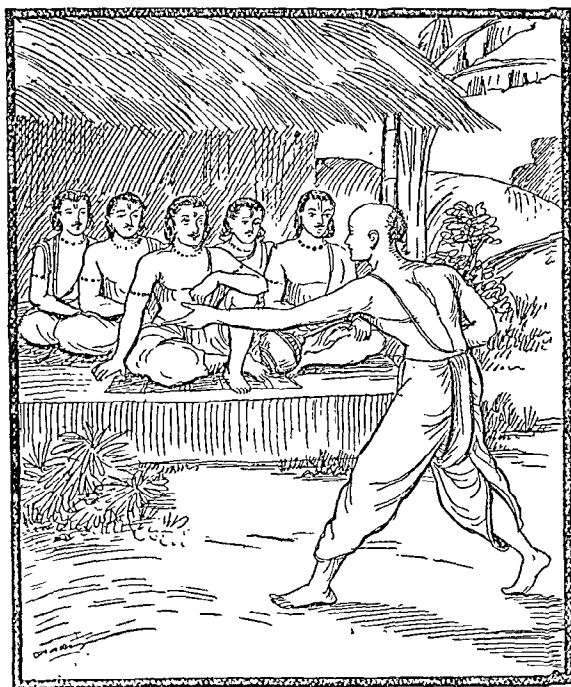
सहित अपना मन्थनकाष्ठ पेड़पर टाँग दिया था। उसमें एक मृग अपना सींग खुजाने लगा, इससे वह उसके सींगमें फँस गया। वह विशाल मृग चौकड़ी भरता हुआ उसे लेकर भाग गया। सो आप उसके खुरोंके चिह्न देखते हुए उसे पकड़िये और वह मन्थनकाष्ठ ला दीजिये, जिससे मेरे अग्निहोत्रका लोप न हो।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरको बहुत दुःख हुआ, और वे भाइयोंसहित धनुष लेकर मृगके पीछे चले। सब भाइयोंने उसे बींधनेका बहुत प्रयत्न किया। किन्तु वे सफल न हुए तथा देखते-देखते वह उनकी आँखोंसे ओझल हो गया। उसे न देखकर वे हतोत्साह हो गये और उन्हें बहुत दुःख हुआ। घूमते-घूमते वे गहन वनमें एक वटवृक्षके पास पहुँचे और भूख-प्याससे शिथिल होकर उसकी शीतल छायामें बैठ गये। तब धर्मराजने नकुलसे कहा, 'भैया! तुम्हारे ये सब भाई प्यासे और थके हुए हैं। यहाँ पास ही कहीं जल या जलाशयके पास उत्पन्न होनेवाले वृक्ष हों तो देखो।' नकुल 'जो आज्ञा' कहकर वृक्षपर चढ़ गये और इधर-उधर देखकर कहने लगे—'राजन्! मुझे जलके पास लगनेवाले बहुत-से वृक्ष दिखायी दे रहे हैं तथा सारसोंका शब्द भी सुनायी देता है। इसलिये यहाँ अवश्य पानी होगा।' तब सत्यनिष्ठ युधिष्ठिरने कहा, 'तो सौम्य! तुम शीघ्र ही जाओ और तरकसोंमें पानी भर लाओ।'

बड़े भाईकी आज्ञा होनेपर नकुल 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर बड़ी तेजीसे चले और जल्दी ही जलाशयके पास पहुँच गये। वहाँ सारसोंसे घिरा हुआ बड़ा निर्मल जल देखकर वे ज्यों ही पीनेके लिये झुके कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी, 'तात नकुल! साहस न करो, पहलेहीसे मेरा एक नियम है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो। उसके बाद जल पीना और ले जाना।' किन्तु नकुलको बड़ी प्यास लगी हुई थी। उन्होंने उस वाणीकी कोई परवा नहीं की। किन्तु ज्यों ही वह शीतल जल पीया कि उसे पीते ही वे भूमिपर गिर गये।

नकुलको देर हुई देख कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने वीर सहदेवसे कहा, 'सहदेव! तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता भाई नकुलको गये बहुत देर हो गयी है। अतः तुम जाकर उन्हें लिवा लाओ और जल भी लेते आओ।' सहदेव भी 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर उसी दिशामें चले। वहाँ उन्होंने भाई नकुलको मृत अवस्था-में पृथ्वीपर पड़े देखा। उन्हें भाईके लिये बड़ा शोक हुआ, किन्तु इधर प्यास भी पीडित कर रही थी। वे पानीकी ओर चले। इसी समय आकाशवाणीने कहा, 'तात सहदेव! साहस न करो। पहलेहीसे मेरा एक नियम है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो। उसके बाद जल पीना और ले जाना।' सहदेवको बड़े जोरकी प्यास लगी हुई थी। उन्होंने उस वाणीकी कोई परवा नहीं की। किन्तु ज्यों ही उन्होंने वह शीतल जल पीया कि उसे पीते ही वे भूमिपर गिर गये।

अब धर्मराजने अर्जुनसे कहा, 'शत्रुदमन अर्जुन ! तुम्हारे भाई नकुल-सहदेव गये हुए हैं। तुम उन्हें लिवा लाओ और जल भी ले आओ। भैया ! हम सब दुखियोंके तुम ही सहारे हो।' तब अर्जुनने धनुष-बाण उठाया और तलवार म्यानसे बाहर निकाली। इस प्रकार वे सरोवरपर पहुँचे। किन्तु वहाँ उन्होंने देखा कि जल लेनेके लिये आये हुए उनके दोनों भाई मरे पड़े हैं। इससे पुरुषसिंह पार्थको बड़ा दुःख हुआ और वे धनुष चढ़ाकर उस वनमें सब ओर देखने लगे। परन्तु उन्हें वहाँ कोई भी प्राणी दिखायी नहीं दिया। तब प्याससे शिथिल होनेके कारण वे जलकी ओर चले। इसी समय उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी—'कुन्तीनन्दन ! तुम पानीकी ओर क्यों जाते हो ? तुम जबर्दस्ती यह पानी नहीं पी सकोगे। यदि तुम मेरे पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर दे दोगे तो ही जल पी सकोगे और ले जा भी सकोगे।' इस प्रकार रोके जानेपर अर्जुनने कहा, 'जरा प्रकट होकर रोको। फिर तो मेरे बाणोंसे विद्ध होकर ऐसा कहनेका साहस ही नहीं कर सकोगे।' ऐसा कहकर अर्जुनने शब्दवेधका कौशल दिखाते हुए सारी दिशाओंको अभिमन्त्रित बाणोंसे व्याप्त कर दिया। तब यक्षने कहा, 'अर्जुन ! इस वृथा उद्योगसे क्या होना है ? तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर जल पी सकते हो। यदि बिना उत्तर दिये पीओगे तो पीते ही मर जाओगे।' यक्षके ऐसा कहनेपर सव्यसाची धनञ्जयने उसकी कोई परवा नहीं की और वे जल पीते ही गिर गये।

अब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, 'भरतनन्दन ! नकुल, सहदेव और अर्जुन जल लानेके लिये बड़ी देरके गये हुए हैं, अभीतक नहीं लौटे। तुम उन्हें लिवा लाओ और जल भी ले आओ।' भीमसेन 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उस स्थानपर आये, जहाँ कि उनके सब भाई मारे गये थे। उन्हें देखकर भीमको बड़ा दुःख हुआ। इधर प्यास भी उन्हें बेतरह सता रही थी। उन्होंने समझा 'यह काम यक्ष-राक्षसोंका है और आज मुझे उनसे अवश्य युद्ध करना पड़ेगा, इसलिये पहले पानी पी लूँ।' यह सोचकर वे प्याससे व्याकुल होकर जलकी ओर चले। इतनेहीमें यक्ष बोल उठा, 'भैया भीमसेन ! साहस न करो। पहलेहीसे मेरा एक नियम है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर तुम जल पी सकते हो और ले जा भी सकते हो।' अतुलित तेजस्वी यक्षके ऐसा कहनेपर भी भीमने उसके प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही जल पीया और पीते ही वे भूमिपर गिर गये।

यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर महाराज युधिष्ठिर भीमको बहुत विलम्ब हुआ देखकर बड़े चिन्तित हुए। उनका चित्त शोकानलसे सन्तप्त हो उठा और वे स्वयं ही जानेको खड़े हो गये। जलाशयके तटपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनके चारों भाई मरे हुए पड़े हैं। उन्हें निश्चेष्ट पड़े देखकर महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त खिन्न हो गये। शोक-समुद्रमें डूबकर वे सोचने लगे—'इन वीरोंको किसने मारा है ? इनके अङ्गोंमें कोई शस्त्रप्रहारका चिह्न भी नहीं है और यहाँ किसीके चरणचिह्न भी दिखायी नहीं देते। जिसने मेरे भाइयोंको मारा है, मैं समझता हूँ, वह कोई महान् प्राणी होगा। अच्छा, पहले मैं एकाग्रतापूर्वक इसके कारणका विचार करूँ अथवा जल पीनेपर मुझे स्वयं ही इसका पता लग जायगा। ऐसा न हो कि हमलोगोंसे छिपे-छिपे कूट-बुद्धि शकुनिके द्वारा दुर्योधनने यह विषैला सरोवर बनवा दिया हो। किन्तु इसका जल विषैला भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि मर जानेपर भी मेरे इन भाइयोंके शरीरोंमें कोई विकार नहीं जान पड़ता तथा इनके चेहरेका रंग भी खिला हुआ है। इनमेंसे प्रत्येक जलके प्रबल प्रवाहके समान महा-बली है। इन पुरुषश्रेष्ठोंका सामना भी साक्षात् यमराजके सिवा और कौन कर सकता है ?'

यह सब सोचकर वे जलमें उतरनेको तैयार हुए। इसी समय उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी। उसने कहा, 'मैं बगुला हूँ। मैंने ही तुम्हारे भाइयोंको मारा है। यदि तुम मेरे प्रश्नों-का उत्तर नहीं दोगे तो पाँचवें तुम भी इन्हींके साथ सोओगे। हे तात ! साहस न करो। मेरा पहलेहीसे यह नियम है। तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे दो। फिर जल पीना और ले भी जाना।'

युधिष्ठिरने कहा—यह काम पक्षीका तो हो नहीं सकता। अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि आप रुद्र, वसु अथवा मरुत् आदि प्रधान देवताओंमेंसे कौन हैं।

यक्षने कहा—मैं कोरा जलचर पक्षी ही नहीं हूँ, मैं यक्ष हूँ। तुम्हारे ये महान् तेजस्वी भाई मैंने ही मारे हैं।

यक्षकी यह अमङ्गलमयी और कठोर वाणी सुनकर राजा युधिष्ठिर उसके पास जाकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि एक विकट नेत्रोंवाला विशालकाय यक्ष वृक्षके ऊपर बैठा है। वह बड़ा ही दुर्धर्ष, तालके समान लंबा, अग्निके समान

तेजस्वी और पर्वतके समान विशाल है; वही अपनी गम्भीर नादमयी वाणीसे उन्हें ललकार रहा है। फिर वह युधिष्ठिरसे कहने लगा, 'राजन्! तुम्हारे इन भाइयोंको मैंने बार-बार रोका था, फिर भी इन्होंने मूर्खतासे जल ले जाना ही चाहा; इसीसे मैंने इन्हें मार डाला। यदि तुम्हें अपने प्राण बचाने हों तो यहाँ जल नहीं पीना चाहिये। यह स्थान पहलेहीसे मेरा है। मेरा यह नियम है कि पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो, उसके बाद जल पीना और ले भी जाना।'

युधिष्ठिरने कहा—मैं आपके अधिकारकी चीजको ले जाना नहीं चाहता। आप मुझसे प्रश्न कीजिये। कोई पुरुष स्वयं ही अपनी प्रशंसा करे, इस बातकी सत्पुरुष बड़ाई नहीं करते। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनके उत्तर दूँगा।

यक्षने पूछा—सूर्यको कौन उदित करता है? उसके चारों ओर कौन चलते हैं? उसे अस्त कौन करता है? और वह किसमें प्रतिष्ठित है?

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्म सूर्यको उदित करता है, देवता उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्यमें प्रतिष्ठित है।

यक्षने पूछा—मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है? महत् पदको किसके द्वारा प्राप्त करता है? किसके द्वारा वह द्वितीयवान् होता है? और किससे बुद्धिमान् होता है?

युधिष्ठिरने कहा—श्रुतिके द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है। तपसे महत्पद प्राप्त करता है। धृतिसे द्वितीयवान् (ब्रह्मरूप) होता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवासे बुद्धिमान् होता है।

यक्षने पूछा—ब्राह्मणोंमें देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषोंका-सा धर्म क्या है? मनुष्यता क्या है? और असत्पुरुषोंका-सा आचरण क्या है?

युधिष्ठिर बोले—वेदोंका स्वाध्याय ही ब्राह्मणोंमें देवत्व है, तप सत्पुरुषोंका-सा धर्म है, मरना मानुषी भाव है और निन्दा करना असत्पुरुषोंका-सा आचरण है।

यक्षने पूछा—क्षत्रियोंमें देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषोंका-सा धर्म क्या है? मनुष्यता क्या है? और उनमें असत्पुरुषोंका-सा आचरण क्या है?

युधिष्ठिर बोले—बाणविद्या क्षत्रियोंका देवत्व है, यज्ञ उनका सत्पुरुषोंका-सा धर्म है, भय मानवी भाव है और दीनोंकी रक्षा न करना असत्पुरुषोंका-सा आचरण है।

यक्षने पूछा—कौन एक वस्तु यज्ञीय साम है? कौन एक यज्ञीय यजुः है? कौन एक वस्तु यज्ञका वरण करती है? और किस एकका यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता?

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—प्राण ही यज्ञीय साम है, मन ही यज्ञीय यजुः है, एकमात्र ऋक् ही यज्ञका वरण करती है और एकमात्र ऋक्का ही यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।

यक्षने पूछा—आवपन (देवतर्पण) करनेवालोंके लिये कौन वस्तु श्रेष्ठ है? निवपन (पितरोंका तर्पण) करनेवालोंके लिये क्या श्रेष्ठ है? प्रतिष्ठा चाहनेवालोंके लिये कौन वस्तु श्रेष्ठ है? तथा सन्तान चाहनेवालोंके लिये क्या श्रेष्ठ है?

युधिष्ठिर बोले—आवपन करनेवालोंके लिये वर्षा श्रेष्ठ फल है, निवपन करनेवालोंके लिये बीज (धन-धान्यादि

सम्पत्ति) श्रेष्ठ है, प्रतिष्ठा चाहनेवालोंके लिये गौ श्रेष्ठ है और सन्तान चाहनेवालोंके लिये पुत्र श्रेष्ठ है।

यक्षने पूछा—ऐसा कौन पुरुष है जो इन्द्रियोंके विषयोंको अनुभव करते हुए, श्वास लेते हुए तथा बुद्धिमान्, लोकमें सम्मानित और सब प्राणियोंका माननीय होकर भी वास्तवमें जीवित नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—जो देवता, अतिथि, सेवक, माता-पिता और आत्मा—इन पाँचोंका पोषण नहीं करता, वह श्वास लेनेपर भी जीवित नहीं है।

यक्षने पूछा—पृथ्वीसे भी भारी क्या है? आकाशसे भी ऊँचा क्या है? वायुसे भी तेज चलनेवाला क्या है? और तिनकोंसे भी अधिक संख्यामें क्या है?

युधिष्ठिर बोले—माता भूमिसे भी भारी (बढ़कर) है, पिता आकाशसे भी ऊँचा है, मन वायुसे भी तेज चलनेवाला है और चिन्ता तिनकोंसे भी बढ़कर है।

यक्षने पूछा—सो जानेपर पलक कौन नहीं मूँदता? उत्पन्न होनेपर चेष्टा कौन नहीं करता? हृदय किसमें नहीं है? और वेगसे कौन बढ़ता है?

युधिष्ठिरने कहा—मछली सोनेपर भी पलक नहीं मूँदती, अण्डा उत्पन्न होनेपर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थरमें हृदय नहीं है और नदी वेगसे बढ़ती है।

यक्षने पूछा—विदेशमें जानेवालेका मित्र कौन है? घरमें रहनेवालेका मित्र कौन है? रोगीका मित्र कौन है? और मृत्युके समीप पहुँचे हुए पुरुषका मित्र कौन है?

युधिष्ठिर बोले—साथके यात्री विदेशमें जानेवालेके मित्र हैं। स्त्री घरमें रहनेवालेकी मित्र है। वैद्य रोगीका मित्र है और दान मुमूर्षु (मरनेवाले) पुरुषका मित्र है।

यक्षने पूछा—समस्त प्राणियोंका अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? और यह सारा जगत् क्या है?

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—अग्नि समस्त प्राणियोंका अतिथि है, गौका दूध अमृत है, अविनाशी नित्यधर्म ही सनातन धर्म है और वायु यह सारा जगत् है।

यक्षने पूछा—अकेला कौन विचरता है? एक बार उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है? शीतकी ओषधि क्या है? और महान् आवपन (क्षेत्र) क्या है?

युधिष्ठिर बोले—सूर्य अकेला विचरता है, चन्द्रमा एक बार जन्म लेकर पुनः जन्म लेता है, अग्नि शीतकी ओषधि है और पृथ्वी बड़ा भारी आवपन है।

यक्षने पूछा—धर्मका मुख्य स्थान क्या है? यशका मुख्य स्थान क्या है? स्वर्गका मुख्य स्थान क्या है? और सुखका मुख्य स्थान क्या है?

युधिष्ठिरने कहा—धर्मका मुख्य स्थान दक्षता है, यशका मुख्य स्थान दान है, स्वर्गका मुख्य स्थान सत्य है और सुखका मुख्य स्थान शील है।

यक्षने पूछा—मनुष्यका आत्मा क्या है? उसका दैवकृत सखा कौन है? उपजीवन (जीवनका सहारा) क्या है? और उसका परम आश्रय क्या है?

युधिष्ठिर बोले—पुत्र मनुष्यका आत्मा है, स्त्री उसका दैवकृत सखा है, मेघ उपजीवन है और दान परम आश्रय है।

यक्षने पूछा—धन्यवादके योग्य पुरुषोंमें उत्तम गुण क्या है? धनोंमें उत्तम धन क्या है? लाभोंमें प्रधान लाभ क्या है? और सुखोंमें श्रेष्ठ सुख क्या है?

युधिष्ठिर बोले—धन्य पुरुषोंमें दक्षता ही उत्तम गुण है, धनोंमें शास्त्रज्ञान प्रधान है, लाभोंमें आरोग्य प्रधान है और सुखोंमें सन्तोष श्रेष्ठ सुख है।

यक्षने पूछा—लोकमें श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फलवाला धर्म क्या है? किसको वशमें रखनेसे शोक नहीं होता? और किनके साथ की हुई सन्धि नष्ट नहीं होती?

युधिष्ठिर बोले—लोकमें दया श्रेष्ठ धर्म है, वेदोक्त धर्म नित्य फलवाला है, मनको वशमें रखनेसे शोक नहीं होता और सत्पुरुषोंके साथ की हुई सन्धि नष्ट नहीं होती।

यक्षने पूछा—किस वस्तुके त्यागनेसे मनुष्य प्रिय होता है? किसे त्यागनेपर शोक नहीं करता? किसे त्यागनेपर वह अर्थवान् होता है? और किसे त्यागकर सुखी होता है?

युधिष्ठिर बोले—मानको त्यागनेसे मनुष्य प्रिय होता है, क्रोधको त्यागनेपर शोक नहीं करता, कामको त्यागनेपर वह अर्थवान् होता है और लोभको त्यागकर सुखी होता है।

यक्षने पूछा—ब्राह्मणको किसलिये दान दिया जाता

है ? नट और नर्त्तकोंको क्यों दान देते हैं ? सेवकोंको दान देनेका क्या प्रयोजन है ? और राजाको क्यों दान दिया जाता है ?

युधिष्ठिरने कहा—ब्राह्मणको धर्मके लिये दान दिया जाता है, नट-नर्त्तकोंको यशके लिये दान (इनाम) देते हैं, सेवकोंको उनके भरण-पोषणके लिये दान (वेतन) दिया जाता है और राजाको भयके कारण दान (कर) देते हैं।

यक्षने पूछा—जगत् किस वस्तुसे ढका हुआ है ? किसके कारण वह प्रकाशित नहीं होता ? मनुष्य मित्रोंको किसलिये त्याग देता है ? और स्वर्गमें किस कारणसे नहीं जाता ?

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—जगत् अज्ञानसे ढका हुआ है, तमोगुणके कारण वह प्रकाशित नहीं होता, लोभके कारण मनुष्य मित्रोंको त्याग देता है और आसक्तिके कारण स्वर्गमें नहीं जाता।

यक्षने पूछा—पुरुष किस प्रकार मरा हुआ कहा जाता है ? राष्ट्र किस प्रकार मरा हुआ कहलाता है ? श्राद्ध किस प्रकार मृत हो जाता है ? और यज्ञ कैसे मृत हो जाता है ?

युधिष्ठिर बोले—दरिद्र पुरुष मरा हुआ है, बिना राजाका राज्य मरा हुआ है, श्रोत्रिय ब्राह्मणके बिना श्राद्ध मृत हो जाता है और बिना दक्षिणाका यज्ञ मरा हुआ है।

यक्षने पूछा—दिशा क्या है ? जल क्या है ? अन्न क्या है ? विष क्या है ? और श्राद्धका समय क्या है ? यह बताओ।

युधिष्ठिरने कहा—सत्पुरुष दिशा हैं,* आकाश जल है, गौ अन्न है,† प्रार्थना (कामना) विष है और ब्राह्मण ही श्राद्धका समय है।‡

यक्षने पूछा—उत्तम क्षमा क्या है ? लज्जा किसे कहते हैं ? तपका लक्षण क्या है ? और दम क्या कहलाता है ?

युधिष्ठिरने कहा—द्वन्द्वोंको सहना क्षमा है, न करने योग्य कामसे दूर रहना लज्जा है, अपने धर्ममें रहना तप है और मनका दमन दम है।

यक्षने पूछा—राजन् ! ज्ञान किसे कहते हैं ? शम क्या कहलाता है ? दया किसका नाम है ? और आर्जव (सरलता) किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर बोले—वास्तविक वस्तुको ठीक-ठीक जानना ज्ञान है, चित्तकी शान्ति शम है, सबके सुखकी इच्छा रखना दया है और समचित्त होना आर्जव (सरलता) है।

यक्षने पूछा—मनुष्योंका दुर्जय शत्रु कौन है ? अनन्त व्याधि क्या है ? साधु कौन माना जाता है ? और असाधु किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिरने कहा—क्रोध दुर्जय शत्रु है; लोभ अनन्त व्याधि है; जो समस्त प्राणियोंका हित करनेवाला हो, वह साधु है और निर्दय पुरुष असाधु है।

यक्षने पूछा—राजन् ! मोह किसे कहते हैं ? मान क्या कहलाता है ? आलस्य किसे जानना चाहिये ? और शोक किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर बोले—धर्ममूढता ही मोह है, आत्माभिमान ही मान है, धर्म न करना आलस्य है और अज्ञान शोक है।

यक्षने पूछा—ऋषियोंने स्थिरता किसे कहा है ? धैर्य क्या कहलाता है ? स्नान किसे कहते हैं ? और दान किसका नाम है ?

युधिष्ठिरने कहा—अपने धर्ममें स्थिर रहना ही स्थिरता है, इन्द्रियनिग्रह धैर्य है, मानसिक मलोंको छोड़ना स्नान है और प्राणियोंकी रक्षा करना दान है।

यक्षने पूछा—किस पुरुषको पण्डित समझना चाहिये ? नास्तिक कौन कहलाता है ? मूर्ख कौन है ? काम क्या है ? तथा मत्सर किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिरने कहा—धर्मज्ञको पण्डित समझना चाहिये; मूर्ख नास्तिक कहलाता है और नास्तिक मूर्ख है; जो जन्म-मरणरूप संसारकी कारण है, वह वासना काम है और हृदयका ताप मत्सर है।

यक्षने पूछा—अहङ्कार किसे कहते हैं ? दम्भ क्या कहलाता है ? जिसे परमदैव कहते हैं, वह क्या है ? और पैशुन्य किसका नाम है ?

युधिष्ठिर बोले—महान् अज्ञान अहङ्कार है, अपनेको झूठमूठ बड़ा धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दम्भ है, दानका फल दैव कहलाता है और दूसरोंको दोष लगाना पैशुन्य (चुगली) है।

---

* क्योंकि वे भगवत्प्राप्तिका मार्ग बताते हैं।

† क्योंकि गौसे दूध-घी आदि हव्य होता है, उससे हवनद्वारा वर्षा होती है और वर्षासे अन्न होता है।

‡ अर्थात् जब उत्तम ब्राह्मण मिलें, उसी समय श्राद्ध करना चाहिये।

यक्षने पूछा—धर्म, अर्थ और काम—ये परस्परविरोधी हैं । इन नित्य विरुद्धोंका एक स्थानपर कैसे संयोग हो सकता है ?

युधिष्ठिरने कहा—जब धर्म और भार्या परस्पर वशवर्ती हों तो धर्म, अर्थ और काम—तीनोंका संयोग हो सकता है ।*

यक्षने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! अक्षय नरक किस पुरुषको प्राप्त होता है ?

युधिष्ठिर बोले—जो पुरुष भिक्षा माँगनेवाले किसी अकिञ्चन ब्राह्मणको स्वयं बुलाकर फिर उसे नहीं देता, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है । जो पुरुष वेद, धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्मोंमें मिथ्याबुद्धि रखता है, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है । तथा धन पास रहते हुए भी जो लोभवश ... और भोगसे रहित है तथा पीछेसे यह कह देता है कि ...स है ही नहीं, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है ।

यक्षने पूछा—राजन् ! कुल, आचार, स्वाध्याय और ...वण—इनमेंसे किसके द्वारा ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है, ...त निश्चय करके बताओ ।

युधिष्ठिरने कहा—प्रिय यक्ष ! सुनो । कुल, स्वाध्याय ...शास्त्रश्रवण—इनमेंसे कोई भी ब्राह्मणत्वमें कारण नहीं है; ...देह आचार ही ब्राह्मणत्वमें कारण है । अतः प्रयत्नपूर्वक ...रकी रक्षा करनी चाहिये । ब्राह्मणको तो इसपर ...रूपसे दृष्टि रखनी आवश्यक है; क्योंकि जिसका सदाचार ...ा है, उसका ब्राह्मणत्व भी बना हुआ है और जिसका ...र नष्ट हो गया, वह तो स्वयं भी नष्ट हो गया । पढ़ने-पढ़ानेवाले तथा शास्त्रका विचार करनेवाले—ये सब तो ...ि और मूर्ख ही हैं; पण्डित तो वही है, जो अपने कर्तव्य-...उन करता है । चारों वेद पढ़ा होनेपर भी यदि कोई ...आचारवाला है तो वह किसी भी प्रकार शूद्रसे बढ़कर ...; वस्तुतः जो अग्निहोत्रमें तत्पर और जितेन्द्रिय है, वही 'ब्राह्मण' कहा जाता है ।

यक्षने पूछा—बताओ, मधुर वचन बोलनेवालेको क्य... मिलता है ? सोच-विचारकर काम करनेवाला क्या पा ले... है ? जो बहुत-से मित्र बना लेता है, उसे क्या लाभ होता है और जो धर्मनिष्ठ है, उसे क्या मिलता है ?

युधिष्ठिरने कहा—मधुर वचन बोलनेवाला सबक... प्रिय होता है; सोच-विचारकर काम करनेवालेको अधिकत... सफलता मिलती है; जो बहुत-से मित्र बना लेता है, वह सुखसे रहता है और जो धर्मनिष्ठ है, उसे सद्गति मिलती है ।

यक्षने पूछा—सुखी कौन है ? आश्चर्य क्या है ? मार्ग क्या है ? और वार्ता क्या है ? मेरे इन चार प्रश्नोंका उत्तर दो ।

युधिष्ठिरने कहा—जिस पुरुषपर ऋण नहीं है और जो परदेशमें नहीं है, वह दिनके पाँचवें या छठे भागमें भी अपने घरके भीतर चाहे साग-पात ही पकाकर खा ले तो वही सुखी है । रोज-रोज प्राणी यमराजके घर जा रहे हैं; किन्तु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीते रहनेकी इच्छा करते हैं—इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा । तर्ककी कहीं स्थिति नहीं है, श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, एक ही ऋषि नहीं है जिसका वचन प्रमाण माना जाय तथा धर्मका तत्त्व गुहामें निहित है अर्थात् अत्यन्त गूढ है; अतः जिससे महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है । इस महामोहरूप कड़ाहमें कालभगवान् समस्त प्राणियोंको मास और ऋतुरूप करछीसे उलट-पलट-कर सूर्यरूप अग्नि और रात-दिनरूप ईंधनके द्वारा राँध रहे हैं—यही वार्ता है ।

यक्षने पूछा—तुमने मेरे सब प्रश्नोंके उत्तर ठीक-ठीक दे दिये, अब तुम पुरुषकी भी व्याख्या कर दो और यह बताओ कि सबसे बड़ा धनी कौन है ?

युधिष्ठिर बोले—जिस व्यक्तिके पुण्यकर्मोंकी कीर्तिका शब्द जहाँतक स्वर्ग और भूमिको स्पर्श करता है, वहाँतक वह पुरुष भी है । जिसकी दृष्टिमें प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और भूत-भविष्यत्—ये जोड़े समान हैं, वही सबसे धनी पुरुष है ।

यक्षने कहा—राजन् ! जो सबसे धनी पुरुष है, उसकी तुमने ठीक-ठीक व्याख्या कर दी; इसलिये अपने भाइयोंमेंसे जिस एकको तुम चाहो, वही जीवित हो सकता है ।

युधिष्ठिर बोले—यक्ष ! यह जो श्यामवर्ण, अरुणनयन, सुविशाल शालवृक्षके समान ऊँचा और चौड़ी छातीवाला महाबाहु नकुल है, वही जीवित हो जाय ।

---

* अर्थात् जब भार्या धर्मानुवर्तिनी हो तो इन तीनोंका संयोग हो सकता है; क्योंकि भार्या कामका साधन है, वह यदि अग्निहोत्र एवं दानादि धर्मका विरोध नहीं करेगी तो उनका यथावत् अनुष्ठान होनेसे वे अर्थके भी साधक हो जायँगे । इस प्रकार काम, धर्म और अर्थ—तीनोंका साथ-साथ सम्पादन हो सकेगा ।

यक्षने कहा—राजन् ! जिसमें दस हजार हाथियोंके समान बल है, उस भीमको छोड़कर तुम नकुलको क्यों जिलाना चाहते हो ? तथा जिसके बाहुबलका सभी पाण्डवोंको पूरा भरोसा है, उस अर्जुनको भी छोड़कर तुम्हें नकुलको जिला देनेकी इच्छा क्यों है ?

युधिष्ठिरने कहा—यदि धर्मका नाश किया जाय तो वह नष्ट हुआ धर्म ही कर्ताको भी नष्ट कर देता है और यदि उसकी रक्षा की जाय तो वही कर्ताकी भी रक्षा कर लेता है। इसीसे मैं धर्मका त्याग नहीं करता, जिससे कि नष्ट होकर धर्म ही मेरा नाश न कर दे। मेरा ऐसा विचार है कि वस्तुतः सबके प्रति समान भाव रखना परम धर्म है। लोग मेरे विषयमें ऐसा ही समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। मेरे पिताकी कुन्ती और माद्री—दो भार्याएँ थीं, वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहें—ऐसा मेरा विचार है। मेरे लिये जैसी कुन्ती है, वैसी ही माद्री है; उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों माताओंके प्रति समान भाव ही रखना चाहता हूँ, इसलिये नकुल ही जीवित हो।

यक्षने कहा—भरतश्रेष्ठ ! तुमने अर्थ और कामसे भी समताका विशेष आदर किया है, इसलिये तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायँ।

सब पाण्डवोंका जीवित होना, महाराज युधिष्ठिरका वर पाना तथा पाण्डवोंका अज्ञातवासके लिये सब ब्राह्मणोंसे विदा होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तब यक्षके कहते ही सब पाण्डव खड़े हो गये तथा एक क्षणमें ही उनकी सब भूख-प्यास जाती रही।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप कौन देवश्रेष्ठ हैं ! आप यक्ष ही हैं, ऐसा तो मुझे मालूम नहीं होता। आप वसुओंमेंसे, रुद्रोंमेंसे अथवा मरुतोंमेंसे तो कोई नहीं हैं ? अथवा स्वयं देवराज इन्द्र ही हैं ? मेरे ये भाई तो सौ-सौ, हजार-हजार वीरोंसे युद्ध करनेवाले हैं। ऐसा तो मैंने कोई योद्धा नहीं देखा, जिसने इन सभीको रणभूमिमें गिरा दिया हो। अब जीवित होनेपर भी इनकी इन्द्रियाँ सुखकी नींद सोकर उठे हुओंके समान स्वस्थ दिखायी देती हैं; सो आप हमारे कोई सुहृद् हैं अथवा पिता हैं ?

यक्षने कहा—भरतश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारा पिता धर्मराज हूँ। तुम्हें देखनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। यश, सत्य, दम, शौच, मृदुता, लज्जा, अचञ्चलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य—ये सब मेरे शरीर हैं। तथा अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच और अमत्सर—इन्हें तुम मेरा मार्ग समझो। तुम मुझे सदा ही प्रिय हो। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि तुम्हारी शम, दम, उपरति, तितिक्षा और समाधान—इन पाँच साधनोंपर प्रीति है तथा तुमने भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—इन छः दोषोंको जीत लिया है। इनमें पहले दो दोष आरम्भसे ही रहते हैं, बीचके दो तरुणावस्था आनेपर होते हैं तथा अन्तिम दो दोष अन्तसमयपर आते हैं। तुम्हारा मंगल हो, मैं धर्म हूँ और तुम्हारा व्यवहार जाननेकी इच्छासे ही यहाँ आया हूँ। निष्पाप राजन्! तुम्हारी समदृष्टिके कारण मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अभीष्ट वर माँग लो; जो मेरे भक्त हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! पहला वर तो मैं यही माँगता हूँ कि जिस ब्राह्मणके अरणीसहित मन्थनकाष्ठको मृग लेकर भाग गया है, उसके अग्निहोत्रका लोप न हो।

यक्षने कहा—राजन् ! उस ब्राह्मणके अरणीसहित मन्थनकाष्ठको तो तुम्हारी परीक्षाके लिये मैं ही मृगरूपसे लेकर भाग गया था। वह मैं तुम्हें देता हूँ। तुम कोई दूसरा वर और माँग लो।

युधिष्ठिर बोले—हम बारह वर्षतक वनमें रहे, अब तेरहवाँ वर्ष आ लगा है; अतः ऐसा वर दीजिये कि इसमें हमें कोई पहचान न सके।

यह सुनकर भगवान् धर्मने कहा—'मैंने तुम्हें यह वर दिया। यद्यपि तुम पृथ्वीपर अपने इसी रूपसे विचरोगे, तो भी तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। तथा तुममेंसे जो-जो जैसा-जैसा चाहेगा, वह वैसा-वैसा ही रूप धारण कर सकेगा। इसके सिवा तुम एक तीसरा वर भी माँग लो। राजन्! तुम मेरे पुत्र हो और विदुरने भी मेरे ही अंशसे जन्म लिया है; अतः मेरी दृष्टिमें तुम दोनों ही समान हो।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आप सनातन देवाधिदेव

हैं। आज साक्षात् आपके ही दर्शन हुए, इससे अब मेरे लिये क्या दुर्लभ है ? तो भी आप मुझे जो वर देंगे, वह मैं सिर-आँखोंपर लूँगा। मुझे ऐसा वर दीजिये कि मैं लोभ, मोह और क्रोधको जीत सकूँ तथा दान, तप और सत्यमें सर्वदा मेरे मनकी प्रवृत्ति रहे।

धर्मराजने कहा—पाण्डुपुत्र ! इन गुणोंसे तो तुम स्वभावसे ही सम्पन्न हो, आगे भी तुम्हारे कथनानुसार तुममें ये सब धर्म बने रहेंगे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् धर्म अन्तर्धान हो गये तथा सब पाण्डव साथ-साथ आश्रममें लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने उस तपस्वी ब्राह्मणको उसकी अरणी दे दी।

जो लोग इस श्रेष्ठ आख्यानको ध्यानमें रक्खेंगे उनके मनकी अधर्ममें, सुहृद्द्रोहमें, दूसरोंका धन हरनेमें, परस्त्री-गमनमें अथवा कृपणतामें कभी प्रवृत्ति नहीं होगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! धर्मराजकी आज्ञा पाकर सत्यपराक्रमी पाण्डवलोग अज्ञात रहनेके लिये तेरहवें वर्षमें गुप्तरूपसे रहे थे। वे सब बड़े नियम-व्रतादिका पालन करनेवाले थे। एक दिन वे अपने प्रेमी वनवासी तपस्वियोंके साथ बैठे थे। उस समय अज्ञातवासके लिये आज्ञा लेनेके लिये उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, 'मुनिगण ! हम बारह वर्षतक तरह-तरहकी कठिनाइयाँ सहते हुए वनमें निवास करते रहे हैं। अब हमारे अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष शेष है। इसमें हम छिपकर रहेंगे। आप हमें इसके लिये आज्ञा देनेकी कृपा करें। दुरात्मा दुर्योधन, कर्ण और शकुनिने हमारे पीछे गुप्तचर लगा दिये हैं तथा पुरवासी और स्वजनोंको सचेत कर दिया है कि यदि हमें कोई आश्रय देगा तो उसके साथ कड़ाईका व्यवहार किया जायगा। अतः अब हमको किसी दूसरे राष्ट्रमें जाना होगा। अतः आप हमें प्रसन्नतासे अन्यत्र जानेकी आज्ञा प्रदान करें।'
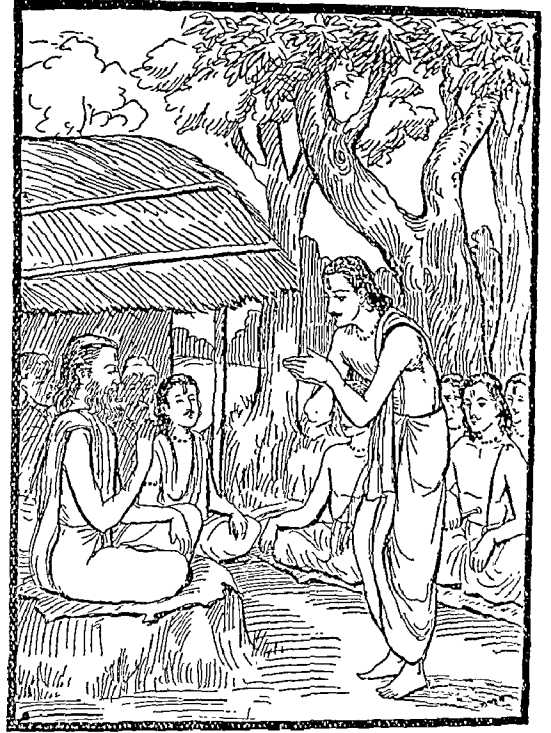
तब समस्त वेदवेत्ता मुनि और यतियोंने उन्हें आशीर्वाद दिये और उनसे फिर भी भेंट होनेकी आशा रखकर वे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। फिर धौम्यके साथ पाँचों पाण्डव खड़े हुए और द्रौपदीके सहित वहाँसे चल दिये। एक कोस आकर वे दूसरे ही दिनसे अज्ञातवास आरम्भ करनेके लिये आपसमें सलाह करनेके लिये बैठ गये।

वनपर्व समाप्त
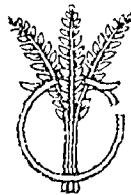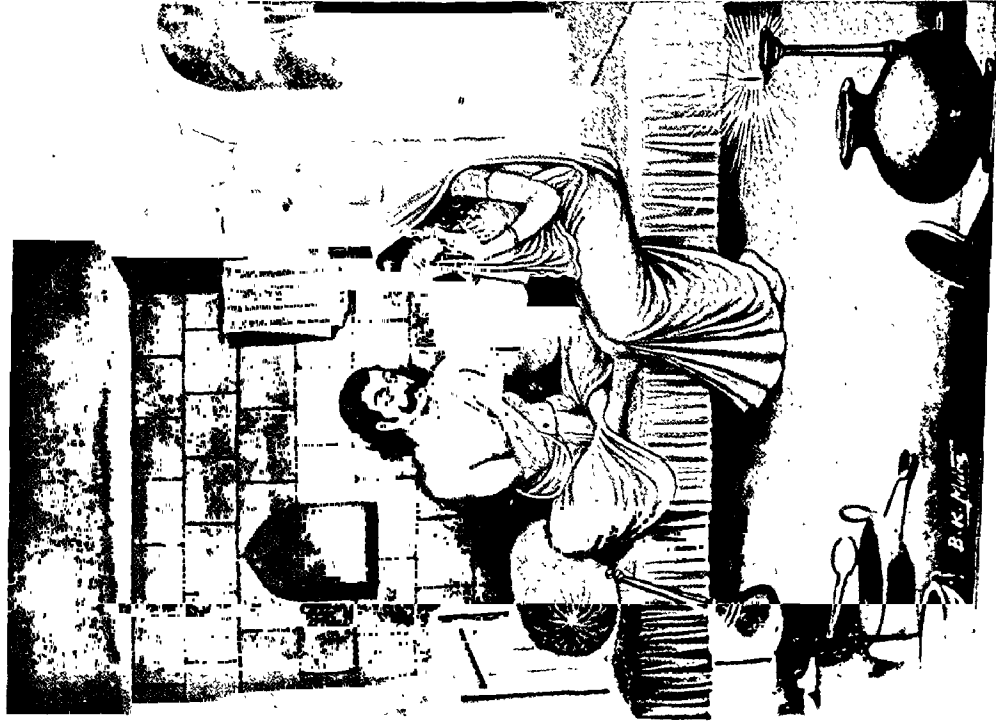
भीमसेन और द्रौपदी

कीचक-वध

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

विराटपर्व

विराटनगरमें कौन क्या कार्य करे, इसके विषयमें पाण्डवोंका विचार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायणरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तः-करणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! मेरे प्रपितामहोंने दुर्योधन-के भयसे कष्ट उठाते हुए विराटनगरमें अपने अज्ञातवासका समय किस प्रकार पूरा किया ? तथा दुःख-पर-दुःख उठाने-वाली पतिव्रता द्रौपदी भी वहाँ कैसे छिपकर रह सकीं ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! तुम्हारे प्रपितामहोंने वहाँ जिस प्रकार अज्ञातवास किया था, सो बताता हूँ; सुनो । यक्षसे वरदान पानेके अनन्तर एक दिन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको पास बुलाकर इस प्रकार कहा—'राज्यसे बाहर होकर वनमें रहते हुए हमलोगोंके बारह वर्ष बीत गये; अब यह तेरहवाँ लग रहा है, इसमें बड़े कष्टसे कठिनाइयोंका सामना करते हुए गुप्तरूपसे रहना होगा । अर्जुन ! तुम अपनी रुचिके अनुसार कोई अच्छा-सा निवासस्थान बताओ, जहाँ हम सब लोग चलकर एक वर्ष रहें और शत्रुओंको इसकी कानोंकान खबर न हो ।'

अर्जुन बोले—महाराज ! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि धर्मराजके दिये हुए वरके प्रभावसे हमें कोई भी मनुष्य पहचान नहीं सकता; अतः हमलोग स्वच्छन्दतापूर्वक इस पृथ्वीपर विचरते रहेंगे । तो भी मैं आपसे निवास करने योग्य कुछ रमणीय एवं गुप्त राष्ट्रोंके नाम बताता हूँ । कुरुदेशके आस-पास बहुत-से सुरम्य प्रदेश हैं, जहाँ बहुत अन्न होता है । उनके नाम ये हैं—पञ्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, कुन्तिराष्ट्र, सुराष्ट्र और अवन्ती । इनमेंसे किसी भी देशको आप निवासके लिये पसंद कर लें, उसीमें हम सब लोग इस वर्ष रहेंगे ।

युधिष्ठिरने कहा—तुम्हारे बताये हुए देशोंमेंसे मत्स्य-देशका राजा विराट बहुत बलवान् है और पाण्डुवंशपर प्रेम भी रखता है; साथ ही वह उदार, धर्मात्मा और वृद्ध भी है । इसलिये विराटनगरमें ही हम एक वर्षतक निवास करें और राजाका कुछ काम करते रहें । किन्तु अब तुमलोग यह बताओ कि मत्स्यदेशमें रहते हुए हम राजा विराटके किन-किन कामोंको कर सकते हैं ।

अर्जुनने पूछा—नरदेव ! आप उनके राष्ट्रमें कैसे रह सकेंगे ? अथवा कौन-सा काम करनेसे विराटनगरमें आपका मन लगेगा ?

युधिष्ठिर बोले—मैं पासा खेलनेकी विद्या जानता हूँ और वह खेल मुझे पसंद भी है; इसलिये कंक नामक ब्राह्मण बनकर राजाके पास जाऊँगा और उनकी राजसभाका एक सभासद् बना रहूँगा । मेरा काम होगा—राजा, मन्त्री तथा राजाके सम्बन्धियोंको पासा खेलाकर प्रसन्न रखना । भीमसेन ! अब तुम बताओ, कौन-सा काम करनेसे विराटके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रह सकोगे ?

भीमने कहा—मैं रसोई बनानेके काममें चतुर हूँ, अतः बल्लव नामक रसोइया बनकर राजाके दरबारमें उपस्थित होऊँगा ।

युधिष्ठिर—अच्छा, अर्जुन क्या काम करेगा ?

अर्जुन—मैं हाथोंमें शङ्ख तथा हाथीदाँतकी चूड़ियाँ पहनकर सिरपर चोटी गूँथ लूँगा और अपनेको नपुंसक घोषित कर 'बृहन्नला' नाम बताऊँगा। मेरा काम होगा—राजा विराटके अन्तःपुरकी स्त्रियोंको संगीत और नृत्यकलाकी शिक्षा देना। साथ ही उन्हें कई प्रकारके बाजे बजाना भी सिखाऊँगा। इस तरह नर्तकीके रूपमें मैं अपनेको छिपाये रहूँगा।

युधिष्ठिर—भैया नकुल! अब तुम अपनी बात बताओ, राजा विराटके यहाँ तुम्हारे द्वारा कौन-सा कार्य सम्पन्न हो सकेगा?

नकुल—मुझे अश्वविद्याकी विशेष जानकारी है, घोड़ोंको चाल सिखलाना, उनकी रक्षा और पालन करना तथा उनके रोगोंकी चिकित्सा करना—इन सब कार्योंमें मैं विशेष कुशल हूँ; अतः राजाके यहाँ जाकर मैं अपना नाम ग्रन्थिक बताऊँगा और उनका अश्वपाल बनकर रहूँगा।

अब युधिष्ठिरने सहदेवसे पूछा—भैया! राजाके पास जाकर तुम किस प्रकार अपना परिचय दोगे और कौन-सा काम करके अपने स्वरूपको गुप्त रख सकोगे?

सहदेव—मैं राजा विराटकी गौओंकी सँभाल रक्खूँगा। कितनी ही उद्धत गौ क्यों न हो, मैं उसे काबूमें कर लेता हूँ। गौओंके दुहने और परीक्षा करनेमें भी मैं कुशल हूँ। गौओंके जो लक्षण या चरित्र मङ्गलमय होते हैं, उनका भी मुझे अच्छा ज्ञान है। मैं उन शुभ लक्षणोंवाले बैलोंको भी जानता हूँ, जिनके मूत्रको सूँघ लेनेमात्रसे बाँझ स्त्री भी गर्भ धारण कर सकती है। इसलिये मैं गौओंकी सेवा करूँगा। मेरा नाम होगा 'तन्तिपाल'। मुझे कोई पहचान नहीं सकता; मैं अपने कार्यसे राजाको प्रसन्न कर लूँगा।

अब युधिष्ठिर द्रौपदीकी ओर देखकर कहने लगे—यह द्रुपदकुमारी तो हमलोगोंको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है; भला, यह वहाँ जाकर कौन-सा कार्य करेगी?

द्रौपदी बोली—महाराज! आप मेरे लिये चिन्ता न करें। जो स्त्रियाँ दूसरोंके घर सेवाके कार्य करती हैं, उन्हें सैरन्ध्री कहते हैं; अतः मैं 'सैरन्ध्री' कहकर अपना परिचय दूँगी। केशोंके शृङ्गारका कार्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। पूछनेपर बताऊँगी कि मैं द्रौपदीकी दासी थी। मैं स्वतः अपनेको छिपाकर रक्खूँगी; इसके अलावा, विराटकी रानी सुदेष्णा भी मेरी रक्षा करेंगी। अतः आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें।

धौम्यका युधिष्ठिरको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—द्रौपदीसहित सब भाइयोंकी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा—"विधाताके निश्चयके अनुसार जो-जो कार्य तुमलोग करनेवाले हो, सो सब तुमने सुना दिये; मुझे भी अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ उचित जान पड़ा, वह अपना कर्तव्य बताया। अब पुरोहित धौम्य मुनि सेवकों और रसोइयोंके साथ राजा द्रुपदके घरपर जाकर रहें और हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें। इन्द्रसेन आदि सारथि और सेवकगण खाली रथ लेकर द्वारका चले जायँ। तथा ये सब स्त्रियाँ और द्रौपदीकी दासियाँ रसोइयों और नौकरोंसहित पञ्चालको लौट जायँ। किसीके पूछनेपर सबको यही बताना चाहिये कि 'हमें पाण्डवोंका पता नहीं है, वे हमको द्वैतवनमें ही छोड़कर न जाने कहाँ चले गये।'"

इस प्रकार परस्पर निश्चय करके पाण्डवोंने धौम्य मुनिसे सलाह ली। धौम्यने उनके समक्ष अपना विचार इस प्रकार रक्खा—'पाण्डवो! तुमने ब्राह्मण, सुहृद्, सेवक, वाहन, अस्त्र-शस्त्र और अग्नि आदिके सम्बन्धमें जैसी व्यवस्था की है, सब ठीक है। अब मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि राजाके घरमें रहकर कैसा बर्ताव करना चाहिये। राजासे

[मि]लना हो तो पहले द्वारपालसे मिलकर उनकी आज्ञा मँगा [ले]नी चाहिये; राजाओंपर पूर्ण विश्वास कभी नहीं करना [चा]हिये। अपने लिये वही आसन पसंद करे, जिसपर दूसरा [को]ई बैठनेवाला न हो। समझदार मनुष्यको कभी राजाकी [रा]नियोंसे मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार जो [अ]न्तःपुरमें जाने-आनेवाले हों, उन लोगोंसे तथा राजा [जि]नसे द्वेष रखते हों या जो लोग राजासे शत्रुता करते हों, उनसे भी मित्रता नहीं करनी चाहिये। छोटे-से-छोटा कार्य भी राजाको जताकर ही करे, ऐसा करनेसे कभी हानि नहीं उठानी पड़ती। अग्नि और देवताके समान मानकर प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक राजाकी परिचर्या करनी चाहिये। जो उनके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करता है, वह निस्सन्देह मारा जाता है। राजा जिस-जिस कार्यके लिये आज्ञा दे, उसका ही पालन करे; लापरवाही, घमंड और क्रोधको सर्वथा त्याग दे। प्रिय और हितकारी बात कहे; प्रियसे भी हितकर वचनका महत्त्व विशेष है। सभी विषयों और सब बातोंमें राजाके अनुकूल रहे। जो चीज राजाको पसंद न हो, उसका कदापि सेवन न करे; उसके शत्रुओंसे बातचीत करना छोड़ दे और कभी भी अपने स्थानसे विचलित न हो। ऐसा बर्ताव करने-वाला मनुष्य ही राजाके यहाँ रह सकता है। विद्वान् पुरुष राजाके दाहिने या बायें भागमें बैठे; जो शस्त्र लेकर पहरा देनेवाले हों, उन्हें राजाके पिछले भागमें रहना चाहिये। यदि राजा कोई अप्रिय बात कह दे, तो उसे दूसरोंके सामने प्रकाशित न करे। 'मैं शूरवीर हूँ, बड़ा बुद्धिमान् हूँ' ऐसा घमंड न दिखावे, सदा राजाको प्रिय लगनेवाला कार्य करता रहे। अपने दोनों हाथ, ओठ और घुटनोंको व्यर्थ न हिलावे; बहुत बातें न बनावे। किसीकी हँसी हो रही हो तो बहुत हर्ष न प्रकट करे। पागलोंकी तरह ठहाका मारकर भी न हँसे। जो किसी वस्तुके मिलनेपर खुशीके मारे फूल नहीं उठता, अपमान हो जानेपर बहुत दुखी नहीं होता और अपने काममें सदा सावधान रहता है, वही राजाके यहाँ टिक सकता है। यदि कोई मन्त्री पहले राजाका कृपापात्र रहा हो और पीछे अकारण उसे दण्ड भोगना पड़े, तो भी यदि वह उसकी निन्दा नहीं करता तो फिर उसे सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। सदा अपना ही लाभ सोचकर राजाकी दूसरोंके साथ अधिक बातचीत नहीं करानी चाहिये; युद्ध आदि योग्य अवसरोंपर राजा-को सब प्रकारकी राजोचित शक्तियोंसे विशिष्ट बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो सदा उत्साह दिखानेवाला, बुद्धि-बलसे युक्त, शूरवीर, सत्यवादी, दयालु, जितेन्द्रिय और छायाकी भाँति राजाके पीछे चलनेवाला हो, वही राजाके घरमें गुजारा कर सकता है। जब दूसरेको किसी कामके लिये भेजा जा रहा हो, उस समय जो स्वयं ही उठकर आगे आ जाय और पूछे—'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' वही राजभवन-में टिक सकता है। राजाके समान अपनी वेष-भूषा न बनावे, उनके अत्यन्त निकट न रहे तथा अनेकों प्रकारकी विरुद्ध सलाह न दिया करे। ऐसा करनेसे ही मनुष्य राजाका प्रिय हो सकता है। यदि राजाने किसी कामपर नियुक्त कर दिया हो, तो उसमें दूसरोंसे घूसके रूपमें थोड़ा भी धन न लेवे; क्योंकि जो चोरीका धन लेता है, उसे किसी-न-किसी दिन बन्धन अथवा वधका दण्ड भोगना पड़ता है। पाण्डवो! इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक अपने मनको वशमें रखकर अच्छा बर्ताव करते हुए तेरहवाँ वर्ष पूर्ण करो; इसके बाद अपने देशमें आकर स्वच्छन्द विचरना।'

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! आपने हमलोगोंको बहुत अच्छी सीख दी। हमारी माता कुन्ती और महाबुद्धिमान् विदुरजीको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है, जो ऐसी बात बता सके। अब हमें इस दुःखसे छुटकारा दिलाने, यहाँसे प्रस्थान करने और विजयी होनेके लिये जो कर्तव्य आवश्यक हो, उसे आप पूरा करें।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ धौम्यजीने यात्राके समय जो कुछ भी शास्त्रविहित कर्तव्य है, उसका विधिवत् सम्पादन किया। पाण्डवोंकी अग्निहोत्रसम्बन्धी अग्निको प्रज्वलित करके उन्होंने उनकी समृद्धि और विजयके लिये वेदमन्त्र पढ़कर हवन किया। इसके बाद पाण्डवोंने अग्नि, ब्राह्मण और तपस्वियों-की प्रदक्षिणा की और द्रौपदीको आगे करके वे अज्ञातवासके लिये चल दिये। उनके चले जानेपर धौम्यजी उस आहवनीय अग्निको लेकर पञ्चाल देशमें चले गये। तथा इन्द्रसेन आदि सेवक द्वारका जाकर रथ और घोड़ोंकी रक्षा करते हुए आनन्दपूर्वक रहने लगे।

पाण्डवोंका मत्स्यदेशमें जाना, शमीवृक्षपर अस्त्र रखना और युधिष्ठिर, भीम तथा द्रौपदीका क्रमशः राजमहलमें पहुँचना

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर महापराक्रमी पाण्डव यमुनाके निकट पहुँचकर उसके दक्षिण किनारेसे चलने लगे। उनकी यात्रा पैदल ही हो रही थी। वे कभी पर्वतकी गुफाओंमें और कभी जंगलोंमें ठहरते जाते थे। आगे जाकर वे दशार्णसे उत्तर और पञ्चालसे दक्षिण यकृल्लोम और शूरसेन देशोंके बीचसे होकर यात्रा करने लगे। उनके हाथमें धनुष और कमरमें तलवार थी। शरीरका रंग फीका हो गया था, दाढ़ी-मूछें बढ़ गयी थीं। धीरे-धीरे वनका मार्ग तै करके वे मत्स्यदेशमें जा पहुँचे और क्रमशः आगे बढ़ते हुए विराटकी राजधानीके निकट पहुँच गये। तब युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'भैया! नगरमें प्रवेश करनेके पहले यह निश्चय हो जाना चाहिये कि हमलोग अपने अस्त्र-शस्त्र कहाँ रक्खें। तुम्हारा यह गाण्डीव धनुष बहुत बड़ा है, संसारके सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि है; अतः यदि हमलोग अस्त्रोंको साथ लेकर नगरमें प्रवेश करेंगे, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब लोग हमें पहचान लेंगे। ऐसी दशामें हमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार फिर बारह वर्षके लिये वनवास करना पड़ेगा।'

अर्जुनने कहा—राजन्! श्मशानभूमिके निकट एक टीलेपर यह शमीका बहुत बड़ा सघन वृक्ष दिखायी दे रहा है; इसकी शाखाएँ बड़ी भयानक हैं, अतः इसके ऊपर किसीका चढ़ना कठिन है। इसके सिवा इस समय यहाँ ऐसा कोई मनुष्य भी नहीं है, जो हमलोगोंको इसपर शस्त्र रखते देख सके। यह वृक्ष रास्तेसे बहुत दूर जंगलमें है, इसके आस-पास हिंसक जीव और सर्प आदि रहते हैं। इसलिये इसीपर हम अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर नगरमें प्रवेश करें; और वहाँ जैसा सुयोग हो, उसके अनुसार समय व्यतीत करें।

वैशम्पायनजी कहते हैं—धर्मराजसे यों कहकर अर्जुन अस्त्र-शस्त्रोंको वहाँ रखनेका उद्योग करने लगे। पहले सबने अपने-अपने धनुषकी डोरी उतार ली; फिर चमकती हुई तलवारों, तरकसों और छूरेके समान तीखी धारवाले बाणोंको धनुषके साथ बाँधा। तब युधिष्ठिरने नकुलसे कहा—'वीर! तुम शमीपर चढ़कर ये धनुष रख दो।' आज्ञा पाते ही नकुल उस वृक्षपर चढ़ गये और उसके खोड़रेमें, जहाँ वर्षाका पानी पड़नेकी सम्भावना नहीं थी, सबके धनुष रखकर उन्होंने एक मजबूत रस्सीसे शाखाके साथ बाँध दिया। इसके

बाद पाण्डवोंने एक मुर्देकी लाश लाकर उसे उस वृक्षपर लटका दिया, जिससे उसकी दुर्गन्धके कारण कोई मनुष्य वृक्षके निकट न आ सके। यह सब प्रबन्ध करके युधिष्ठिरने पाँचों भाइयोंका एक-एक गुप्त नाम रक्खा, जो क्रमशः इस प्रकार है—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल। फिर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अज्ञातवास करनेके लिये उन्होंने विराटके बहुत बड़े नगरमें प्रवेश किया।

नगरमें प्रवेश करते समय महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ मिलकर त्रिभुवनेश्वरी दुर्गाका स्तवन किया। देवी प्रसन्न

हो गयीं। और उन्होंने प्रकट होकर विजय तथा राज्यप्राप्तिका वरदान दिया और यह भी कहा कि 'विराटनगरमें तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा।'

तदनन्तर वे राजा विराटकी सभामें गये। राजा विराट राजसभामें बैठे थे। सबसे पहले युधिष्ठिर उनके दरबारमें पहुँचे, वे एक वस्त्रमें पासे बाँधकर लेते गये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजासे निवेदन किया कि 'सम्राट! मैं एक ब्राह्मण हूँ; मेरा सर्वस्व लुट गया है, इसलिये मैं आपके यहाँ जीविकाके लिये आया हूँ। आपकी इच्छाके अनुसार सब कार्य करते हुए आपहीके निकट रहनेकी मैं इच्छा करता हूँ।'

राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्वागत किया और उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर प्रेमपूर्वक पूछा—ब्राह्मण देवता! मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने किस राजाके राज्यसे यहाँ पधारनेका कष्ट किया है, तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है, तथा तुम कौन-सी कला जानते हो।

युधिष्ठिर बोले—राजन्! मैं व्याघ्रपाद गोत्रमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम है कंक। पहले मैं राजा युधिष्ठिरके साथ रहता था। जूआ खेलनेवालोंमें पासा फेंकनेकी कलाका मुझे विशेष ज्ञान है।

विराटने कहा—कंक! मैंने तुम्हें अपना मित्र बनाया; जैसी सवारीमें मैं चलता हूँ, वैसी ही तुम्हें भी मिलेगी। पहननेके वस्त्र और भोजन-पान आदिका प्रबन्ध भी पर्याप्त मात्रामें रहेगा। बाहरके राज्य, कोष और सेना आदि तथा भीतरके धन-दारा आदिकी देख-भाल तुमपर छोड़ता हूँ। तुम्हारे लिये राजमहलका फाटक सदा खुला रहेगा, तुमसे कोई परदा नहीं रक्खा जायगा। जो लोग जीविकाके बिना कष्ट पाते हों और तुम्हारे पास आकर याचना करें, उनकी प्रार्थना तुम हर समय मुझको सुना सकते हो; तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उन याचकोंकी सभी कामनाएँ मैं

पूर्ण करूँगा। तुम मुझसे कुछ भी कहते समय भय या सङ्कोच न करना।

राजासे इस प्रकार बातचीत करके युधिष्ठिर बड़े सम्मानके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। उनका गुप्त रहस्य किसीपर प्रकट न हुआ।

तदनन्तर सिंहकी-सी मस्त चालसे चलते हुए भीमसेन राजाके दरबारमें उपस्थित हुए। उनके हाथमें चमचा, करछी और साग काटनेके लिये एक लोहेका काला छुरा था। वेष तो रसोइयेका था, पर उनके शरीरसे तेज निकल रहा था। उन्होंने आते ही कहा—'राजन्! मेरा नाम बल्लव है। मैं रसोईका काम जानता हूँ, मुझे बहुत अच्छा भोजन बनाना आता है। आप इस कामके लिये मुझे रख लें।'

विराटने कहा—बल्लव! मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम रसोइये हो; तुम तो इन्द्रके समान तेजस्वी और पराक्रमी दिखायी देते हो!

भीमसेन बोले—महाराज! विश्वास कीजिये, मैं रसोइया हूँ और आपकी सेवा करने आया हूँ। युधिष्ठिरने भी मेरे बनाये हुए भोजनका स्वाद लि इसके सिवा, जैसा कि आपने कहा है, मैं पराक्रमी भ बलमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। पहलवानीमें मे बराबरी कोई नहीं कर सकता। मैं सिंहों और हाथियों करके आपको प्रसन्न किया करूँगा।

विराटने कहा—अच्छा, भैया! तुम अपनेको र बनानेके काममें कुशल बताते हो तो यही काम करो। मैं यह काम तुम्हारे योग्य नहीं समझता, तथापि तु इच्छा देखकर स्वीकार कर रहा हूँ। तुम मेरी पाकशा प्रधान अधिकारी रहो। जो लोग पहलेसे उसमें काम कर हैं, मैं तुम्हें उन सबका स्वामी बना रहा हूँ।

इस प्रकार भीमसेन राजा विराटकी पाकशालाके प्र रसोइये हुए। उन्हें कोई पहचान न सका। राजाके वे ही प्रिय हो गये। इसके बाद द्रौपदी सैरन्ध्रीका-सा वेष बन दुखियाकी तरह नगरमें भटकने लगी। उस समय रा विराटकी रानी सुदेष्णा अपने महलसे नगरकी शोभा दे रही थीं; उनकी दृष्टि द्रौपदीपर पड़ी। वह एक वस्त्र धार किये अनाथा-सी जान पड़ती थी। रूप तो उसका अद्भुत थ ही। रानीने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—'कल्याणी तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?' द्रौपदीने कहा—'महारानी! मैं सैरन्ध्री हूँ और अपने योग्य काम चाहती हूँ; जो मुझे नियुक्त करेगा, मैं उसका कार्य करूँगी।' सुदेष्णा बोली—'भामिनि! तुम्हारी-जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री नहीं हुआ करतीं। तुम तो बहुत-से दास और दासियोंकी स्वामिनी जान पड़ती हो। बड़ी-बड़ी आँखें, लाल-लाल ओठ, शङ्खके समान गला, नस और नाड़ियाँ मांससे ढकी हुई और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखमण्डल! यह है तुम्हारा सुन्दर रूप, जिससे लक्ष्मी-सी जान पड़ती हो। अतः सच-सच बताओ, तुम कौन हो? यक्ष या देवता तो नहीं हो? अथवा तुम कोई
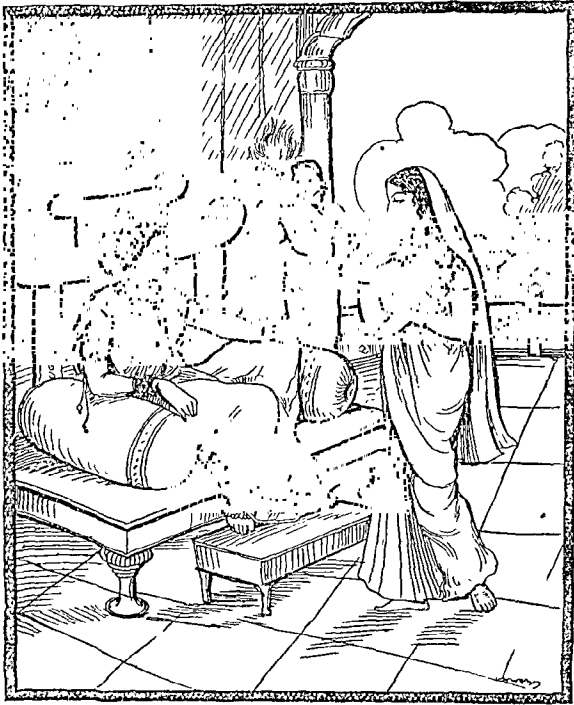
अप्सरा, देवकन्या, नागकन्या या चन्द्रपत्नी रोहिणी या इन्द्राणी तो नहीं हो ? अथवा ब्रह्मा या प्रजापतिकी देवियोंमेंसे कोई हो ?

द्रौपदी बोली—रानी ! मैं सच कहती हूँ—देवता या गन्धर्वी नहीं हूँ, सेवाका काम करनेवाली सैरन्ध्री हूँ। बालोंको सुन्दर बनाना और गूँथना जानती हूँ, चन्दन या अङ्गराग भी बहुत अच्छा तैयार करती हूँ। मल्लिका, उत्पल, कमल और चम्पा आदि फूलोंके बहुत सुन्दर एवं विचित्र-विचित्र हार गूँथ सकती हूँ। आजसे पहले मैं महारानी द्रौपदीकी सेवामें रह चुकी हूँ। जहाँ-तहाँ घूम-फिर-कर सेवा करती रहती हूँ, और भोजन तथा वस्त्रके सिवा और कुछ नहीं लेती। वह भी जितना मिल जाय, उतनेसे ही सन्तोष कर लेती हूँ।

सुदेष्णाने कहा—यदि राजा तुमपर मोहित न हों तो मैं तुम्हें अपने सिरपर रख सकती हूँ। किन्तु मुझे सन्देह है कि राजा तुम्हें देखते ही सम्पूर्ण चित्तसे तुम्हें चाहने लगेंगे।

द्रौपदी बोली—महारानी ! राजा विराट अथवा कोई भी परपुरुष मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। पाँच तरुण गन्धर्व मेरे पति हैं, जो सदा मेरी रक्षा करते रहते हैं। जो मुझे अपनी जूठन नहीं देता, मुझसे पैर नहीं धुलवाता, उसके ऊपर मेरे पति गन्धर्वलोग प्रसन्न रहते हैं; परन्तु जो मुझे अन्य साधारण स्त्रियोंके समान समझकर मेरे ऊपर बलात्कार करना चाहता है, उसको उसी रातमें शरीरत्याग करना पड़ता है; मेरे पति उसे मार डालते हैं। अतः कोई भी पुरुष मुझे सदाचारसे विचलित नहीं कर सकता।

सुदेष्णाने कहा—नन्दिनि ! यदि ऐसी बात है, तो मैं तुम्हें अपने महलमें रक्खूँगी। तुम्हें पैर या जूठन नहीं छूने पड़ेंगे।

विराटकी रानीने जब इस प्रकार आश्वासन दिया, तब पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली सती द्रौपदी वहाँ रहने लगी; उसे भी कोई पहचान न सका।

सहदेव, अर्जुन और नकुलका विराटके भवनमें प्रवेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर सहदेव भी ग्वालेका वेष बनाकर वैसी ही भाषा बोलता हुआ राजा विराटकी गोशालाके निकट आया। उस तेजस्वी पुरुषको बुलाकर राजा स्वयं उसके समीप गये और पूछने लगे—'तुम किसके आदमी हो, कहाँसे आये हो ? कौन-सा काम करना चाहते हो ? ठीक-ठीक बताओ।' सहदेवने कहा—'मैं जातिका वैश्य हूँ, मेरा नाम अरिष्टनेमि है; पहले मैं पाण्डवोंके यहाँ गौओंकी सँभालके लिये रहता था, पर अब तो वे पता नहीं
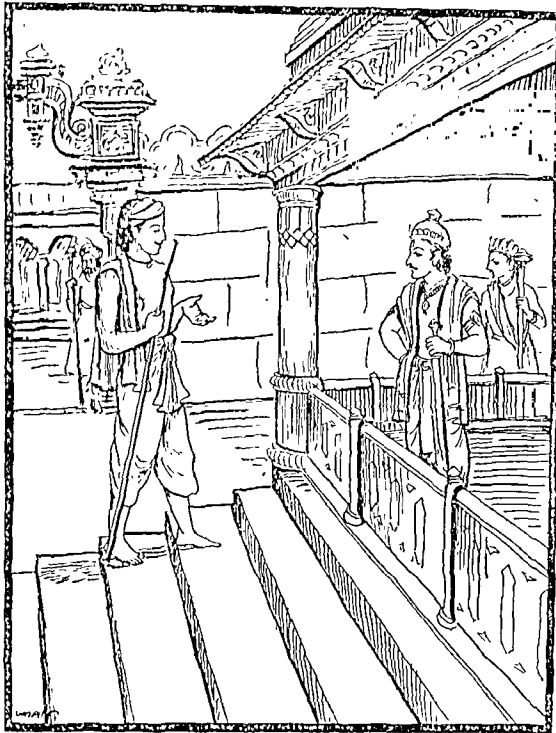
कहाँ चले गये। बिना काम किये जीविका नहीं चल सकती और पाण्डवोंके बाद आपके सिवा दूसरा कोई राजा मुझे पसंद नहीं है, जिसके यहाँ नौकरी करूँ।'

राजा विराटने कहा—तुम्हें किस कामका अनुभव है? किस शर्तपर यहाँ रहना चाहते हो? और इसके लिये तुम्हें क्या वेतन देना पड़ेगा?

सहदेव बोले—मैं यह बता चुका हूँ कि पाण्डवोंकी गौओंको सँभालनेका काम करता था। वहाँ लोग मुझे 'तन्तिपाल' कहते थे। चालीस कोसके अंदर जितनी गौएँ रहती हैं उनकी भूत, भविष्य और वर्तमान कालकी संख्या मुझे सदा मालूम रहती है; कितनी गौएँ थीं, कितनी हैं और कितनी होंगी—इसका मुझे ठीक-ठीक ज्ञान रहता है। जिन उपायोंसे गौओंकी बढ़ती होती रहे, उन्हें कोई रोग-व्याधि न सतावे—उन सबको मैं जानता हूँ। इसके सिवा मैं उत्तम लक्षणोंवाले ऐसे बैलोंकी भी पहचान रखता हूँ, जिनका मूत्र सूँघने मात्रसे वन्ध्या स्त्रीको भी गर्भ रह जाता है।

विराटने कहा—मेरे पास एक ही रंगके एक लाख पशु हैं, उनमें सभी उत्तम गुणोंका सम्मिश्रण है। आजसे उन पशुओं और उनके रक्षकोंको मैं तुम्हारे अधिकारमें सौंपता हूँ। मेरे पशु अब तुम्हारे ही अधीन रहेंगे। इस प्रकार राजासे परिचय करके सहदेव वहाँ सुखसे रहने लगे; उन्हें भी कोई पहचान न सका। राजाने उनके भरण-पोषणका उचित प्रबन्ध कर दिया।

तदनन्तर वहाँ एक बहुत सुन्दर पुरुष दीख पड़ा, जो स्त्रियोंके समान आभूषण पहने हुए था, उसके कानोंमें कुण्डल और हाथोंमें शंख तथा सोनेकी चूड़ियाँ थीं। उसके लंबे-लंबे
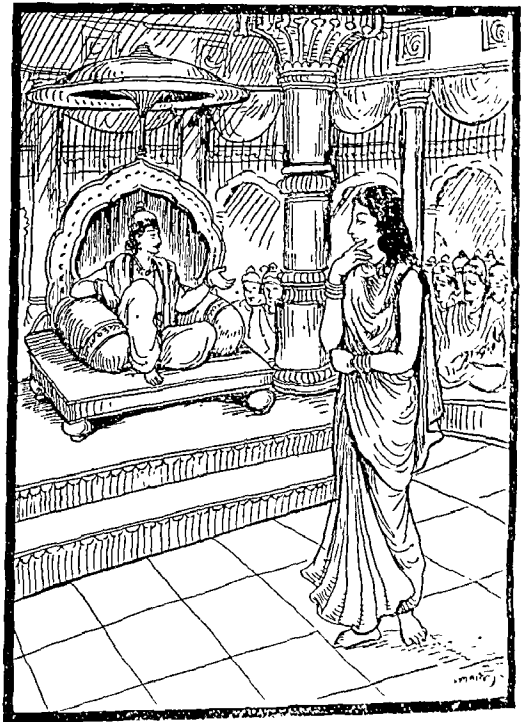
केश खुले हुए थे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और हाथीके समान मस्तानी चाल थी। मानो वह अपने एक-एक पगसे पृथ्वीको कँपाता चलता था। वह वीरवर अर्जुन था। राजा विराटकी सभामें पहुँचकर उसने अपना इस प्रकार परिचय दिया—महाराज! मैं नपुंसक हूँ, मेरा नाम बृहन्नला है। मैं नाचता-गाता और बाजे बजाता हूँ। नृत्य और संगीतकी कलामें बहुत प्रवीण हूँ। आप मुझे उत्तराको इस कलाकी शिक्षा देनेके लिये रख लें। मैं महारानीके यहाँ नाचनेका काम करूँगा।

विराटने कहा—बृहन्नले! तुम्हारे-जैसे पुरुषसे तो यह काम लेना मुझे उचित नहीं जान पड़ता; तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ, तुम मेरी बेटी उत्तरा तथा राजपरिवारकी अन्य कन्याओंको नृत्यकलाकी शिक्षा दिया करो।

यह कहकर मत्स्यनरेशने बृहन्नलाकी संगीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलाओंमें परीक्षा की। इसके बाद अपने मन्त्रियोंसे यह सलाह ली कि इसे अन्तःपुरमें रखना चाहिये या नहीं। फिर तरुणी स्त्रियाँ भेजकर उसके नपुंसकपनेकी जाँच करायी। जब सब तरहसे उसका नपुंसक होना प्रमाणित हो गया, तब उसे कन्याके अन्तःपुरमें रहनेकी आज्ञा मिली। वहाँ रहकर अर्जुन उत्तरा और उसकी सखियोंको तथा अन्य दासियोंको भी गाने, बजाने और नाचनेकी शिक्षा देने लगे; इससे वे उन सबके प्रिय हो गये। कपटवेषमें कन्याओंके साथ रहते हुए भी अर्जुन सदा अपने मनको पूर्णरूपसे वशमें रखते थे। इससे बाहर या भीतरका कोई भी उन्हें पहचान न सका।

इसके बाद नकुल अश्वपालका वेष धारण किये राजा

विराटके यहाँ उपस्थित हुआ और राजभवनके पास इधर-उधर घूम-फिरकर घोड़े देखने लगा। फिर राजाके दरबारमें आकर उसने कहा—'महाराज! आपका कल्याण हो। मैं अश्वोंको शिक्षा देनेमें निपुण हूँ, बड़े-बड़े राजाओंके यहाँ आदर पा चुका हूँ। मेरी इच्छा है कि आपके यहाँ घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम करूँ।'

विराटने कहा—मैं तुम्हें रहनेके लिये घर, सवारी और बहुत-सा धन दूँगा। तुम हमारे यहाँ घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम कर सकते हो। किन्तु पहले यह तो बताओ तुम्हें अश्वसम्बन्धी किस कलाका विशेष ज्ञान है। साथ ही अपना परिचय भी दो।

नकुलने कहा—महाराज! मैं घोड़ोंकी जाति और स्वभाव पहचानता हूँ, उन्हें शिक्षा देकर सीधा कर सकता हूँ। दुष्ट घोड़ोंको ठीक करनेका भी उपाय जानता हूँ। इसके सिवा घोड़ोंकी चिकित्साका भी मुझे पूरा ज्ञान है। मेरी सिखायी हुई घोड़ी भी नहीं बिगड़ती, फिर घोड़ोंकी तो बात ही क्या है? मैं पहले राजा युधिष्ठिरके यहाँ काम करता था, वहाँ वे तथा दूसरे लोग भी मुझे ग्रन्थिक नामसे पुकारते थे।

विराट बोले—मेरे यहाँ जितने घोड़े और वाहन हैं, उन सबको मैं आजसे तुम्हारे अधीन करता हूँ। घोड़े जोतनेवाले पुराने सारथिलोग भी तुम्हारे अधिकारमें रहेंगे। तुमसे मिलकर आज मुझे उतनी ही प्रसन्नता हुई है, जितनी राजा युधिष्ठिरके दर्शनसे होती थी।

इस प्रकार राजा विराटसे सम्मानित होकर नकुल वहाँ रहने लगे। नगरमें घूमते समय भी उस सुन्दर युवकको कोई पहचान नहीं पाता था। जिनके दर्शनमात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता था, वे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी पाण्डवलोग इस तरह अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अज्ञातवासकी अवधि पूरी करने लगे।

भीमसेनके हाथसे जीमूत नामक मल्लका वध

राजा जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार जब पाण्डवगण विराटनगरमें छिपकर रहने लगे, उसके बाद उन्होंने क्या किया?

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! पाण्डवोंने वहाँ छिपे रहकर राजा विराटको प्रसन्न रखते हुए जो कुछ कार्य किया, उसे सुनो। पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे सदा शङ्का बनी रहती थी; इसलिये वे द्रौपदीकी देख-रेख रखते हुए बहुत छिपकर रहते थे, मानो पुनः माताके गर्भमें निवास कर रहे

हों । इस प्रकार जब तीन महीने बीत गये और चौथे महीनेका आरम्भ हुआ, उस समय मत्स्यदेशमें ब्रह्ममहोत्सवका बहुत बड़ा समारोह हुआ । उसमें सभी दिशाओंसे हजारों पहलवान जुटे थे । वे सब-के-सब बड़े बलवान् थे और राजा उनका विशेष सम्मान किया करते थे । उनके कन्धे, कमर और ग्रीवा सिंहके समान थे; शरीरका रंग गोरा था । राजाके निकट उन्होंने अनेकों बार अखाड़ेमें विजय पायी थी ।

उन सब पहलवानोंमें भी एक सबसे बड़ा था । उसका नाम था—जीमूत । उसने अखाड़ेमें उतरकर एक-एक करके सबको लड़नेके लिये बुलाया; परन्तु उसे कूदते और पैंतरे बदलते देख किसीको भी उसके पास जानेकी हिम्मत नहीं होती थी । जब सभी पहलवान उत्साहहीन और उदास हो गये, तब मत्स्यनरेशने अपने रसोइयेको उसके साथ भिड़नेकी आज्ञा दी । राजाका सम्मान रखनेके लिये भीमसेनने सिंहके समान धीमी चालसे चलकर रंगभूमिमें प्रवेश किया; फिर उन्हें लँगोटा कसते देख वहाँकी जनताने हर्षध्वनि की । भीमसेनने युद्धके लिये तैयार होकर वृत्रासुरके समान विख्यात पराक्रमी जीमूतको ललकारा । दोनोंमें ही लड़नेका उत्साह था, दोनों ही भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे और दोनोंके ही शरीर साठ वर्षके मतवाले हाथीके समान ऊँचे तथा हृष्ट-पुष्ट थे । पहले उन दोनोंने एक-दूसरेसे बाँहें मिलायीं, फिर वे परस्पर जयकी इच्छासे खूब उत्साहसे युद्ध करने लगे । जैसे पर्वत और वज्रके टकरानेसे घोर शब्द होता है, उसी प्रकार उनके पारस्परिक आघातसे भयानक चट-चट शब्द होता था । एक दूसरेका कोई अंग जोरसे दबाता तो दूसरा उसे छुड़ा लेता । दोनों अपने हाथोंसे मुट्ठी बाँध परस्पर प्रहार करते । दोनों दोनोंके शरीरसे गुथ जाते और फिर धक्के देकर एक दूसरेको दूर हटा देते । कभी एक दूसरेको पटककर जमीनपर रगड़ता तो दूसरा नीचेसे ही कुलाँचकर ऊपरवालेको दूर फेंक देता । दोनों दोनोंको बलपूर्वक पीछे हटाते और मुक्कोंसे छातीपर चोट करते । कभी एकको दूसरा अपने कन्धेपर उठा लेता और उसका मुँह नीचे करके घुमाकर पटक देता, जिससे बड़े जोरका शब्द होता । कभी परस्पर वज्रपातके समान शब्द करनेवाले चाँटोंकी मार होती । कभी हाथकी अँगुलियाँ फैलाकर एक दूसरेको थप्पड़ मारते । कभी नखोंसे बकोटते । कभी पैरोंमें उलझाकर एक दूसरेको गिरा देते, कभी घुटने और सिरसे टक्कर मारते, जिससे बिजली गिरनेके समान शब्द होता । कभी प्रतिपक्षीको गोदमें घसीट लाते, कभी खेलमें ही उसे सामने खींच लेते, कभी दायें-बायें पैंतरे बदलते और कभी एकबारगी पीछे ढकेलकर पटक देते थे । इस प्रकार दोनों दोनोंको अपनी ओर खींचते और घुटनोंसे प्रहार करते थे । केवल बाहुबल, शरीर-बल और प्राणबलसे ही उन वीरोंका भयंकर युद्ध होता रहा । किसीने भी शस्त्रका उपयोग नहीं किया ।

तदनन्तर जैसे सिंह हाथीको पकड़ लेता है, उसी प्रकार भीमसेनने उछलकर जीमूतको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और ऊपर उठाकर उसे घुमाना आरम्भ किया । उनका यह

पराक्रम देखकर सभी पहलवानों और मत्स्यदेशके दर्शक-लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । भीमने उसे सौ बार घुमाया, जिससे वह शिथिल और बेहोश हो गया; इसके बाद उन्होंने पृथ्वीपर पटककर उसका कचूमर निकाल डाला । इस प्रकार भीमके हाथसे उस जगत्प्रसिद्ध पहलवानके मारे जानेसे राजा विराटको बड़ी खुशी हुई ।

इस तरह अखाड़ेमें बहुत-से पहलवानोंको मार-मारकर भीमसेन राजा विराटके स्नेहभाजन बन गये थे । जब उन्हें युद्ध करनेके लिये अपने समान कोई पुरुष नहीं मिलता, तो हाथियों और सिंहोंसे लड़ा करते थे । अर्जुन भी अपने नाचने

और गानेकी कलासे राजा तथा उनके अन्तःपुरकी स्त्रियोंको प्रसन्न रखते थे। इसी प्रकार नकुल भी अपने द्वारा सिखलाये हुए वेगसे चलनेवाले घोड़ोंकी तरह-तरहकी चालें दिखाकर मत्स्यनरेशको सन्तुष्ट करते थे। सहदेवके सिखाये हुए बैलोंको देखकर भी राजा बड़े प्रसन्न रहते थे। इस प्रकार सभी पाण्डव वहाँ छिपे रहकर राजा विराटका कार्य करते थे।

द्रौपदीपर कीचककी आसक्ति और उसके द्वारा द्रौपदीका अपमान

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पाण्डवोंके मत्स्यनरेशकी राजधानीमें रहते हुए दस महीने बीत गये। यज्ञसेनकुमारी द्रौपदी, जो स्वयं स्वामिनीकी भाँति सेवाके योग्य थी, रानी सुदेष्णाकी शुश्रूषा करती हुई बड़े कष्टसे समय व्यतीत करती थी। जब वर्ष पूरा होनेमें कुछ ही समय बाकी रह गया, तबकी बात है। एक दिन राजा विराटके सेनापति महाबली कीचककी दृष्टि उस द्रौपदीपर पड़ी, जो राजमहलमें देवकन्याके समान विचर रही थी। यह कीचक राजा विराटका साला था, वह सैरन्ध्रीको देखते ही कामबाणसे पीडित होकर उसे चाहने लगा। कामनाकी आगमें जलता हुआ कीचक अपनी बहिन रानी सुदेष्णाके पास गया और हँस-हँसकर कहने लगा—'सुदेष्णे! यह सुन्दरी, जो मुझे अपने रूपसे उन्मत्त बना रही है, पहले तो कभी इस महलमें नहीं देखी गयी थी।

देवाङ्गनाके समान यह मनको मोहे लेती है। बताओ, यह कौन है? किसकी स्त्री है? और कहाँसे आयी है? मेरा चित्त इसके अधीन हो चुका है; अब इसकी प्राप्तिके सिवा दूसरी कोई ओषधि नहीं है, जो मेरे हृदयको शान्ति दे सके। अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह तुम्हारे यहाँ दासीका काम कर रही है; यह कार्य कदापि इसके योग्य नहीं है। मैं तो इसे अपनी तथा अपने सर्वस्वकी स्वामिनी बनाना चाहता हूँ।'

इस प्रकार रानी सुदेष्णासे कहकर कीचक राजकुमारी द्रौपदीके पास आकर बोला—'कल्याणी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो और कहाँसे आयी हो? ये सब बातें मुझे बताओ। तुम्हारा यह सुन्दर रूप, यह दिव्य छबि और यह सुकुमारता संसारमें सबसे बढ़कर है। और यह उज्ज्वल मुख तो अपनी कमनीय कान्तिसे चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है। तुम-जैसी मनोहारिणी स्त्री इस पृथ्वीपर मैंने आजसे पहले कभी नहीं देखी थी। सुमुखी! बताओ तो तुम कमलोंमें वास करनेवाली लक्ष्मी हो या साकार विभूति? लज्जा, श्री, कीर्ति और कान्ति—इन देवियोंमेंसे तुम कौन हो? यह स्थान तुम्हारे रहनेके लायक नहीं है। तुम सुख भोगनेके योग्य हो और यहाँ कष्ट उठा रही हो! मैं तुम्हें सर्वोत्तम सुख-भोग समर्पण करना चाहता हूँ, स्वीकार करो। इसके बिना तुम्हारा यह रूप और सौन्दर्य व्यर्थ जा रहा है। सुन्दरी! यदि तुम आज्ञा दो तो मैं अपनी पहली स्त्रियोंको त्याग दूँ अथवा उन्हें तुम्हारी दासी बनाकर रक्खूँ। मैं स्वयं भी सेवकके समान तुम्हारे अधीन रहूँगा।'

द्रौपदीने कहा—मैं परायी स्त्री हूँ, मुझसे ऐसा कहना उचित नहीं है। जगत्के सभी प्राणी अपनी स्त्रीसे प्रेम करते हैं, तुम भी धर्मका विचार करके ऐसा ही करो। दूसरेकी स्त्रीकी ओर कभी किसी प्रकार भी मन नहीं चलाना चाहिये। सत्पुरुषोंका यह नियम होता है कि वे अनुचित कर्मोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं।

सैरन्ध्रीकी यह बात सुनकर कीचक बोला—'सुन्दरी! तुम मेरी प्रार्थनाको इस तरह मत ठुकराओ। मैं तुम्हारे लिये बड़ा कष्ट पा रहा हूँ; मुझे अस्वीकार करके तुम्हें बड़ा पछतावा

इस राजसभामें शोभा नहीं देता। तुम्हारे निकट आकर भी कीचकके द्वारा मेरे प्रति जो व्यवहार हुआ है, वह कभी उचित नहीं कहा जा सकता। सभासद् लोग भी सूतपुत्रके इस अत्याचारपर विचार करें। वह स्वयं तो पापी है ही, इस मत्स्यनरेशको भी धर्मका ज्ञान नहीं है। साथ ही ये सभासद् भी धर्मको नहीं जानते, तभी तो धर्मको न जाननेवाले इस राजाकी सेवा करते हैं।'

इस प्रकार आँखोंमें आँसू भरे द्रौपदीने बहुत-सी बातें कहकर राजा विराटको उलाहना दिया। फिर सभासदोंके पूछनेपर उसने कलहका कारण बताया। इस रहस्यको जानकर सभी सदस्योंने द्रौपदीके सत्साहसकी प्रशंसा की और कीचकको बारंबार धिक्कारते हुए कहा—'यह साध्वी जिस पुरुषकी धर्मपत्नी है, उसे जीवनमें बहुत बड़ा लाभ मिला है। मनुष्य-जातिमें तो ऐसी स्त्रीका मिलना कठिन ही है। हम तो इसे मानवी नहीं, देवी मानते हैं।'

इस प्रकार जब सभासद्लोग द्रौपदीकी प्रशंसा कर रहे थे, युधिष्ठिरने उससे कहा—'सैरन्ध्री! अब यहाँ खड़ी न हो, रानी सुदेष्णाके महलमें चली जा। तेरे पति गन्धर्व अभी अवसर नहीं देखते, इसलिये नहीं आ रहे हैं। वे अवश्य ही तेरा प्रिय कार्य करेंगे और जिसने तुम्हें कष्ट दिया है, उसे नष्ट कर डालेंगे।'

द्रौपदी चली गयी; उसके बाल खुले थे और आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। रानी सुदेष्णाने उसे रोते और आँसू बहाते देखकर पूछा—'कल्याणी! तुम्हें किसने मारा है? क्यों रो रही हो? किसके भाग्यसे आज सुख उठ गया जिसने तुम्हारा अप्रिय किया है?' द्रौपदीने कहा—'आज दरबारमें राजाके सामने ही कीचकने मुझे मारा है।' सुदेष्णा बोली—'सुन्दरी! कीचक कामसे मतवाला होकर बारंबार तुम्हारा अपमान कर रहा है; तुम्हारी राय हो तो मैं आज ही उसे मरवा डालूँ।' द्रौपदीने कहा—'वह जिनका अपराध कर रहा है, वे ही लोग उसका वध करेंगे। अब अवश्य ही वह यमलोककी यात्रा करेगा।'

द्रौपदी और भीमसेनकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—सेनापति कीचकने जबसे लात मारी थी, तभीसे यशस्विनी राजकुमारी द्रौपदी उसके वधकी बात सोचा करती थी। इस कार्यकी सिद्धिके लिये उसने भीमसेनका स्मरण किया और रात्रिके समय अपनी शय्यासे उठकर उनके भवनमें गयी। उस समय उसके मनमें अपमानका बहुत बड़ा दुःख था। पाकशालामें प्रवेश करते ही उसने कहा—'भीमसेन! उठो, उठो; मेरा वह शत्रु महापापी सेनापति मुझे लात मारकर अभी जीवित है, तो भी तुम यहाँ निश्चिन्त होकर कैसे सो रहे हो?'

द्रौपदीने कहा—मेरा दुःख क्या तुमसे छिपा

द्रौपदीके जगानेपर भीमसेन अपने पलंगपर उठ बैठे और उससे बोले—'प्रिये! ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी कि तुम उतावली-सी होकर मेरे पास चली आयीं? देखता हूँ, तुम्हारे शरीरका रंग अस्वाभाविक हो गया है, तुम दुर्बल और उदास हो रही हो। क्या कारण है? पूरी बात बताओ, जिससे मैं सब कुछ जान सकूँ।'

है ? सब कुछ जानकर भी क्यों पूछते हो ? क्या उस दिनकी बात भूल गये हो, जब कि प्रातिकामी मुझे 'दासी' कहकर भरी सभामें घसीट ले गया था ? उस अपमानकी आगमें मैं सदा ही जलती रहती हूँ। संसारमें मेरे सिवा दूसरी कौन राजकन्या है, जो ऐसा दुःख भोगकर भी जीवित हो ? वनवासके समय दुरात्मा जयद्रथने जो मेरा स्पर्श किया, वह मेरे लिये दूसरा अपमान था; पर उसे भी सहना ही पड़ा। अबकी बार पुनः यहाँके धूर्त राजा विराटकी आँखोंके सामने उस दिन कीचकके द्वारा अपमानित हुई। इस प्रकार बारंबार अपमानका दुःख भोगनेवाली मेरी-जैसी कौन स्त्री अपने प्राण धारण कर सकती है ? ऐसे अनेकों कष्ट सहती रहती हूँ, पर तुम भी मेरी सुध नहीं लेते; अब मेरे जीनेसे क्या लाभ है ? यहाँ कीचक नामका एक सेनापति है, जो नातेमें राजा विराटका साला होता है। वह बड़ा ही दुष्ट है। प्रतिदिन सैरन्ध्रीके वेषमें मुझे राजमहलमें देखकर कहता है—'तुम मेरी स्त्री हो जाओ।' रोज-रोज उसके पापपूर्ण प्रस्ताव सुनते-सुनते मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। इधर, धर्मात्मा युधिष्ठिरको जब अपनी जीविकाके लिये दूसरे राजाकी उपासना करते देखती हूँ तो बड़ा दुःख होता है। जब पाकशालामें भोजन तैयार होनेपर तुम विराटकी सेवामें उपस्थित होते और अपनेको बल्लव-नामधारी रसोइया बताते हो, उस समय मेरे मनमें बड़ी वेदना होती है। यह तरुण वीर अर्जुन, जो अकेले ही रथमें बैठकर देवताओं और मनुष्योंपर विजय पा चुका है, आज विराटकी कन्याओंको नाचना सिखा रहा है! धर्ममें, शूरतामें और सत्यभाषणमें जो सम्पूर्ण जगत्‌के लिये एक आदर्श था, उसी अर्जुनको स्त्रीके वेषमें देखकर आज मेरे हृदयमें कितनी व्यथा हो रही है! तुम्हारे छोटे भाई सहदेवको जब मैं गौओंके साथ ग्वालोंके वेषमें आते देखती हूँ तो मेरे शरीरका रक्त सूख जाता है। मुझे याद है, जब वनको आने लगी उस समय माता कुन्तीने रोकर कहा था—'पाञ्चाली! सहदेव मुझे बड़ा प्यारा है; यह मधुरभाषी, धर्मात्मा तथा अपने सब भाइयोंका आदर करनेवाला है। किन्तु है बड़ा सङ्कोची; तुम; इसे अपने हाथसे भोजन कराना, इसे कष्ट न होने पाये।' यह कहते-कहते उन्होंने सहदेवको छातीसे लगा लिया था। आज उसी सहदेवको देखती हूँ—रात-दिन गौओंकी सेवामें जुटा रहता है और रातको बछड़ोंके चमड़े बिछाकर सोता है। यह सब दुःख देखकर भी मैं किसलिये जीवित रहूँ ? समयका फेर तो देखो—जो सुन्दर रूप, अस्त्रविद्या और मेधा-शक्ति—इन तीनोंसे सदा सम्पन्न रहता है, वह नकुल आज विराटके घर घोड़ोंकी सेवा करता है। उनकी सेवामें उपस्थित होकर घोड़ोंकी चालें दिखाता है! क्या यह सब देखकर भी मैं सुखसे रह सकती हूँ ? राजा युधिष्ठिरको जूएका व्यसन है और उसीके कारण मुझे इस राजभवनमें सैरन्ध्रीके रूपमें रहकर रानी सुदेष्णाकी सेवा करनी पड़ती है। पाण्डवोंकी महारानी और द्रुपदनरेशकी पुत्री होकर भी आज मेरी यह दशा है! इस अवस्थामें मेरे सिवा कौन स्त्री जीवित रहना चाहेगी ? मेरे इस क्लेशसे कौरव, पाण्डव तथा पञ्चालवंशका भी अपमान हो रहा है। तुम सब लोग जीवित हो और मैं इस अयोग्य अवस्थामें पड़ी हूँ। एक दिन समुद्रके पासतककी सारी पृथ्वी जिसके अधीन थी, आज वही द्रौपदी सुदेष्णाके अधीन हो उसके भयसे डरी रहती है। कुन्तीनन्दन! इसके सिवा एक और असह्य दुःख, जो मुझपर आ पड़ा है, सुनो! पहले मैं माता कुन्तीको छोड़कर और किसीके लिये, स्वयं अपने लिये भी कभी उबटन नहीं पीसती थी; परन्तु अब राजाके लिये चन्दन घिसना पड़ता है; देखो! मेरे हाथोंमें घट्ठे पड़ गये हैं, पहले ऐसे नहीं थे।

ऐसा कहकर द्रौपदीने भीमसेनको अपने हाथ दिखाये। फिर वह सिसकती हुई बोली—'न जाने देवताओंका मैंने कौन-सा अपराध किया है, जो मेरे लिये मौत भी नहीं आती।' भीमने उसके पतले-पतले हाथोंको पकड़कर देखा, सचमुच काले-काले दाग पड़ गये थे। उन हाथोंको अपने मुखपर लगाकर वे रो पड़े। आँसुओंकी झड़ी लग गयी। फिर आन्तरिक क्लेशसे पीड़ित होकर भीमसेन कहने लगे—'कृष्णे! मेरे बाहुबलको धिक्कार है! अर्जुनके गाण्डीव धनुषको भी धिक्कार है, जो तुम्हारे लाल-लाल कोमल हाथ आज काले पड़ गये! उस दिन सभामें मैं विराटका सर्वनाश कर डालता अथवा ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हुए कीचकका मस्तक पैरोंसे कुचल डालता; किन्तु धर्मराजने रुकावट डाल दी, उन्होंने कनखियोंसे देखकर मुझे मना कर दिया। इसी प्रकार राज्यसे च्युत होनेपर भी जो कौरवोंका वध नहीं किया गया, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनका सिर नहीं काट लिया गया—इसके कारण आज भी मेरा शरीर क्रोधसे जलता रहता है; वह भूल अब भी हृदयमें काँटेकी तरह कसकती रहती है। सुन्दरी! तुम अपना धर्म न छोड़ो। बुद्धिमती हो, क्रोधका दमन करो। पूर्वकालमें भी बहुत-सी स्त्रियोंने पतिके साथ कष्ट उठाया है। भृगुवंशी च्यवन मुनि जब तपस्या कर रहे थे, उस समय उनके

शरीरपर दीमकोंकी बाँबी जम गयी थी। उनकी स्त्री हुई राजकुमारी सुकन्या। उसने उनकी बड़ी सेवा की। राजा जनककी पुत्री सीताका नाम तो तुमने सुना ही होगा; वह घोर वनमें पतिदेव श्रीरामचन्द्रकी सेवामें रहती थी। एक दिन उसे राक्षस हरकर लंकामें ले गया और तरह-तरहके कष्ट देने लगा; तो भी उसका मन श्रीरामचंन्द्रजीमें ही लगा रहा और अन्तमें वह उनकी सेवामें पहुँच भी गयी। इसी प्रकार लोपामुद्राने सांसारिक सुखोंका त्याग करके अगस्त्य मुनिका अनुगमन किया था। सावित्री तो अपने पति सत्यवान्‌के पीछे यमलोक-तक चली गयी थी। इन रूपवती पतिव्रता स्त्रियोंका जैसा महत्त्व बताया गया है, वैसी ही तुम भी हो; तुममें भी वे सभी सद्गुण मौजूद हैं। कल्याणी! अब तुम्हें अधिक दिनोंतक प्रतीक्षा नहीं करनी है। वर्ष पूरा होनेमें सिर्फ डेढ़ महीना रह गया है। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही तुम राजरानी बनोगी।'

द्रौपदी बोली—नाथ! इधर बहुत कष्ट सहना पड़ा है; इसलिये आर्त होकर मैंने आँसू बहाये हैं, उलाहना नहीं दे रही हूँ। अब इस समय जो कार्य उपस्थित है, उसके लिये उद्यत हो जाओ। पापी कीचक सदा मेरे आगे प्रार्थना किया करता है। एक दिन मैंने उससे कहा—'कीचक! तू कामसे मोहित होकर मृत्युके मुखमें जाना चाहता है, अपनी रक्षा कर। मैं पाँच गन्धर्वोंकी रानी हूँ, वे बड़े वीर और साहसके काम करनेवाले हैं। तुझे अवश्य मार डालेंगे।' मेरी बात सुनकर उस दुष्टने कहा—'सैरन्ध्री! मैं गन्धर्वोंसे तनिक भी नहीं डरता। संग्राममें यदि लाख गन्धर्व भी आवें तो मैं उनका संहार कर डालूँगा। तुम मुझे स्वीकार करो।'

इसके बाद उसने रानी सुदेष्णासे मिलकर उसे कुछ सिखाया। सुदेष्णा अपने भाईके प्रेमवश मुझसे कहने लगी—'कल्याणी! तुम कीचकके घर जाकर मेरे लिये मदिरा लाओ।' मैं गयी; पहले तो उसने अपनी बात मान लेनेके लिये समझाया। किन्तु जब मैंने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी, तो उसने कुपित होकर बलात्कार करना चाहा। उस दुष्टका मनोभाव मुझसे छिपा न रहा; इसलिये बड़े वेगसे भागकर मैं राजाकी शरणमें गयी। वहाँ भी पहुँचकर उसने राजाके सामने ही मेरा स्पर्श किया और पृथ्वीपर गिराकर लात मारी। कीचक राजाका सारथि है, राजा और रानी दोनों ही उसे बहुत मानते हैं। परन्तु है वह बड़ा ही पापी और क्रूर। प्रजा रोती-चिल्लाती रह जाती है और वह उसका धन लूट लाता है। सदाचार और धर्मके मार्गपर तो वह कभी चलता ही नहीं। उसका भाव मेरे प्रति खराब हो चुका है; जब मुझे देखेगा, कुत्सित प्रस्ताव करेगा और ठुकरानेपर मुझे मारेगा। इसलिये अब मैं अपने प्राण दे दूँगी। वनवासका समय पूरा होनेतक यदि चुप रहोगे तो इस बीचमें पत्नीसे हाथ धोना पड़ेगा। क्षत्रिय-का सबसे मुख्य धर्म है शत्रुका नाश करना। परन्तु धर्मराज-के और तुम्हारे देखते-देखते कीचकने मुझे लात मारी और तुमलोगोंने कुछ भी नहीं किया। तुमने जटासुरसे मेरी रक्षा की है, मुझे हरकर ले जानेवाले जयद्रथको भी पराजित किया है। अब इस पापीको भी मार डालो। यह बराबर मेरा अपमान कर रहा है। यदि यह सूर्योदयतक जीवित रह गया, तो मैं विष घोलकर पी जाऊँगी। भीमसेन! इस कीचकके अधीन होनेकी अपेक्षा तुम्हारे सामने प्राण त्याग देना मैं अच्छा समझती हूँ।

यह कहकर द्रौपदी भीमसेनके वक्षःस्थलपर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। भीमने उसे हृदयसे लगाकर आश्वासन दिया, उसके आँसुओंसे भीगे हुए मुखको अपने हाथसे पोंछा और कीचकके प्रति कुपित होकर कहा—'कल्याणी! तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा; आज कीचकको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा। तुम अपना दुःख और शोक दूर कर आज सायंकालमें उसके साथ मिलनेका संकेत कर दो। राजा विराटने जो नयी नृत्यशाला बनवायी है, उसमें दिनमें तो कन्याएँ नाचना सीखती हैं, परन्तु रातमें अपने घर चली जाती हैं। वहाँ एक बहुत सुन्दर मजबूत पलँग भी बिछा रहता है। तुम ऐसी बात करो, जिससे कीचक वहाँ आ जाय। वहीं मैं उसे यमपुरी भेज दूँगा।'

इस प्रकार बातचीत करके दोनोंने शेष रात्रि बड़ी विकलतासे व्यतीत की और अपने उग्र संकल्पको मनमें ही छिपा रक्खा। सबेरा होनेपर कीचक पुनः राजमहलमें गया और द्रौपदीसे कहने लगा—'सैरन्ध्री! सभामें राजाके सामने ही तुम्हें गिराकर मैंने लात लगा दी! देखा मेरा प्रभाव! अब तुम मुझ-जैसे बलवान् वीरके हाथोंमें पड़ चुकी हो। कोई तुम्हें बचा नहीं सकता। विराट तो कहनेमात्रके लिये मत्स्य-देशका राजा है; वास्तवमें तो मैं ही यहाँका सेनापति और स्वामी हूँ। इसलिये भलाई इसीमें है कि तुम खुशी-खुशी मुझे स्वीकार कर लो। फिर तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा।'

द्रौपदी बोली—कीचक! यदि ऐसी बात है, तो मेरी

एक शर्त स्वीकार करो। हम दोनोंके मिलनकी बात तुम्हारे भाई और मित्र भी न जानने पावें।

कीचकने कहा—सुन्दरी! तुम जैसा कह रही हो; वही करूँगा।

द्रौपदी बोली—राजाने जो नृत्यशाला बनवायी है, वह रातमें सूनी रहती है; अतः अँधेरा हो जानेपर तुम वहीं आ जाना।

इस प्रकार कीचकके साथ बात करते समय द्रौपदीको आधा दिन भी एक महीनेके समान भारी मालूम हुआ। तत्पश्चात् वह दर्पमें भरा हुआ अपने घर गया। उस मूर्खको यह पता न था कि सैरन्ध्रीके रूपमें मेरी मृत्यु आ गयी है।

इधर द्रौपदी पाकशालामें जाकर अपने पति भीमसेनसे मिली और बोली—'परन्तप! तुम्हारे कथनानुसार मैंने कीचकसे नृत्यशालामें मिलनेका संकेत कर दिया है। वह रात्रिके समय उस सूने घरमें अकेले आवेगा, अतः आज अवश्य उसे मार डालो।' भीमने कहा—'मैं धर्म, सत्य तथा भाइयोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुरको मार डाला था, उसी प्रकार मैं भी कीचकका प्राण ले लूँगा। यदि मत्स्यदेशके लोग उसकी सहायतामें आयेंगे तो उन्हें भी मार डालूँगा; इसके बाद दुर्योधनको मारकर पृथ्वीका राज्य प्राप्त करूँगा।'

द्रौपदी बोली—नाथ! तुम मेरे लिये सत्यका त्याग न करना। अपनेको छिपाये हुए ही कीचकको मार डालना।

भीमसेनने कहा—भीरु! तुम जो कुछ कहती हो, वही करूँगा; आज कीचकको मैं उसके बन्धुओंसहित नष्ट कर दूँगा।

कीचक और उसके भाइयोंका वध और राजाका सैरन्ध्रीको सन्देश

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद भीमसेन रात्रिके समय नृत्यशालामें जाकर छिपकर बैठ गये और इस प्रकार कीचककी प्रतीक्षा करने लगे, जैसे सिंह मृगकी घातमें बैठा रहता है। इस समय पाञ्चालीके साथ समागम होनेकी आशासे कीचक भी मनमानी तरहसे सज-धजकर नृत्यशालामें आया। वह संकेतस्थान समझकर नृत्यशालाके भीतर चला गया। उस समय वह भवन सब ओर अन्धकारसे व्याप्त था। अतुलित पराक्रमी भीमसेन तो वहाँ पहलेहीसे मौजूद थे और एकान्तमें एक शय्यापर लेटे हुए थे। दुर्मति कीचक भी वहीं पहुँच गया और उन्हें हाथसे टटोलने लगा। द्रौपदीके अपमानके कारण भीम इस समय क्रोधसे जल रहे थे। काममोहित कीचकने उनके पास पहुँचकर हर्षसे उन्मत्तचित्त हो मुसकराकर कहा, 'सुभ्रू! मैंने अनेक प्रकारका जो अनन्त धन सञ्चित किया है, वह सब मैं तुम्हें भेंट करता हूँ। तथा मेरा जो धन-रत्नादिसे सम्पन्न, सैकड़ों दासियोंसे सेवित, रूप-लावण्यमयी रमणीरत्नोंसे विभूषित
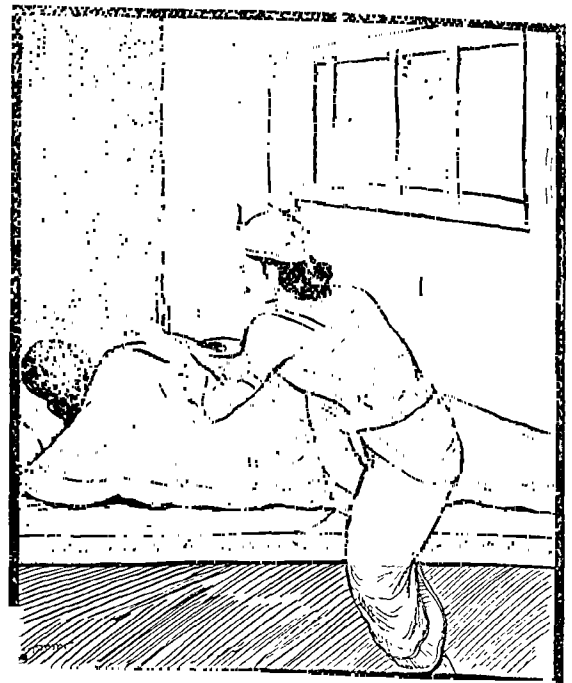
और क्रीडा एवं रतिकी सामग्रियोंसे सुशोभित भवन है, वह

तुम्हारे लिये ही निछावर करके मैं तुम्हारे पास आया मेरे अन्तःपुरकी नारियाँ अकस्मात् मेरी प्रशंसा करने ती हैं कि आपके समान सुन्दर वेष-भूषासे सुसज्जित और नीय कोई दूसरा पुरुष नहीं है।'

भीमसेनने कहा—आप दर्शनीय हैं—यह बड़ी न्नताकी बात है, किन्तु आपने ऐसा स्पर्श पहले कभी नहीं या होगा।

ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेन सहसा उछलकर खड़े गये और उससे हँसकर कहने लगे, 'रे पापी! तू पर्वतके ान बड़े डीलडौलवाला है; किन्तु सिंह जैसे विशाल राजको घसीटता है, उसी प्रकार आज मैं तुझे पृथ्वीपर लूँगा और तेरी बहिन यह सब देखेगी। इस प्रकार जब मर जायगा तो सैरन्ध्री बेखटके विचरेगी तथा उसके ते भी आनन्दसे अपने दिन बितावेंगे।' तब महाबली ीमने उसके पुष्पगुम्फित केश पकड़ लिये। कीचक भी बड़ा लवान् था। उसने अपने केश छुड़ा लिये और बड़ी फुर्तीसे नों हाथोंसे भीमसेनको पकड़ लिया। फिर उन क्रोधित रुषसिंहोंमें परस्पर बाहुयुद्ध होने लगा। दोनों ही बड़े वीर । उनकी भुजाओंकी रगड़से बाँस फटनेकी कड़कके समान ड़ा भारी शब्द होने लगा। फिर जिस प्रकार प्रचण्ड ाँधी वृक्षको झझोड़ डालती है, उसी प्रकार भीमसेन कीचक- ो धक्के देकर सारी नृत्यशालामें घुमाने लगे। महाबली ीचकने भी अपने घुटनोंकी चोटसे भीमसेनको भूमिपर गिरा दिया। तब भीमसेन दण्डपाणि यमराजके समान बड़े वेगसे उछलकर खड़े हो गये। भीम और कीचक दोनों ही बड़े बलवान् थे। इस समय स्पर्धाके कारण वे और भी उन्मत्त हो गये तथा आधी रातके समय उस निर्जन नाट्यशालामें एक दूसरेको रगड़ने लगे। वे क्रोधमें भरकर भीषण गर्जना कर रहे थे, इससे वह भवन बार-बार गूँज उठता था। अन्तमें भीमसेनने क्रोधमें भरकर उसके बाल पकड़ लिये और उसे थका देखकर इस प्रकार अपनी भुजाओंमें कस लिया, जैसे रस्सीसे पशुको बाँध देते हैं। अब कीचक फूटे हुए नगारेके समान जोर-जोरसे डकराने और उनकी भुजाओंसे छूटनेके लिये छटपटाने लगा। किन्तु भीमसेनने उसे कई बार पृथ्वीपर घुमाकर उसका गला पकड़ लिया और कृष्णाके कोपको शान्त करनेके लिये उसे घोंटने लगे। इस प्रकार जब उसके सब अंग चकनाचूर हो गये और आँखोंकी पुतलियाँ बाहर निकल आयीं तो उन्होंने उसकी पीठपर अपने दोनों घुटने टेक दिये और उसे अपनी भुजाओंसे मरोड़कर पशुकी मौत मार डाला।

कीचकको मारकर भीमसेनने उसके हाथ, पैर, सिर और गरदन आदि अंगोंको पिण्डके भीतर ही घुसा दिया। इस प्रकार उसके सब अंगोंको तोड़-मरोड़कर उसे मांसका लौंदा बना दिया और द्रौपदीको दिखाकर कहा, 'पाञ्चाली! जरा यहाँ आकर देखो तो इस कामके कीड़ेकी क्या गति बनायी है।' ऐसा कहकर उन्होंने दुरात्मा कीचकके पिण्डको पैरोंसे ठुकराया और द्रौपदीसे कहा, 'भीरु! जो कोई तुम्हारे ऊपर कुदृष्टि डालेगा, वह मारा जायगा और उसकी यही गति होगी।' इस प्रकार कृष्णाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने यह दुष्कर कर्म किया। फिर जब उनका क्रोध ठंडा पड़ गया तो वे द्रौपदीसे पूछकर पाकशालामें चले आये।

कीचकका वध कराकर द्रौपदी बड़ी प्रसन्न हुई, उसका सारा सन्ताप शान्त हो गया। फिर उसने उस नृत्यशालाकी रखवाली करनेवालोंसे कहा, 'देखो, वह कीचक पड़ा हुआ है; मेरे पति गन्धर्वोंने उसकी यह गति की है। तुमलोग वहाँ जाकर देखो तो सही। द्रौपदीकी यह बात सुनकर नाट्यशाला- के सहस्रों चौकीदार मशालें लेकर वहाँ आये। फिर उन्होंने उसे खूनसे लथपथ और प्राणहीन अवस्थामें पृथ्वीपर पड़े देखा। उसे बिना हाथ-पाँवका देखकर उन सबको बड़ी

व्यथा हुई। उसे उस स्थितिमें देखकर सभीको बड़ा विस्मय हुआ।

उसी समय कीचकके सब बन्धु-बान्धव वहाँ एकत्रित हो गये और उसे चारों ओरसे घेरकर विलाप करने लगे।

उसकी ऐसी दुर्गति देखकर सभीके रोंगटे खड़े हो गये। उसके सारे अवयव शरीरमें घुस जानेके कारण वह पृथ्वीपर निकालकर रक्खे हुए कछुएके समान जान पड़ता था। फिर उसके सगे-सम्बन्धी उसका दाह-संस्कार करनेके लिये नगरसे बाहर ले जानेकी तैयारी करने लगे। उनकी दृष्टि लाशसे थोड़ी ही दूरीपर एक खंभेका सहारा लिये खड़ी हुई द्रौपदीपर पड़ी। जब सब लोग इकट्ठे हो गये तो उन उपकीचकों (कीचकके भाइयों) ने कहा, 'इस दुष्टाको अभी मार डालना चाहिये, इसीके कारण कीचककी हत्या हुई है। अथवा मारनेकी भी क्या आवश्यकता है, कामासक्त कीचकके साथ ही इसे भी जला दो; ऐसा करनेसे मर जानेपर भी सूतपुत्रका प्रिय ही होगा।' यह सोचकर उन्होंने राजा विराटसे कहा, 'कीचककी मृत्यु सैरन्ध्रीके ही कारण हुई है, अतः हम इसे कीचकके ही साथ जला देना चाहते हैं; आप इसके लिये आज्ञा दे दीजिये।' राजाने सूतपुत्रोंके पराक्रमकी ओर देखकर सैरन्ध्रीको कीचकके साथ जला डालनेकी सम्मति दे दी।

बस, उपकीचकोंने भयसे अचेत हुई कमलनयनी कृष्णाको पकड़ लिया और उसे कीचककी रथीपर डालकर बाँध दिया। इस प्रकार वे रथी उठाकर मरघटकी ओर चले। कृष्णा सनाथा होनेपर भी सूतपुत्रोंके चंगुलमें पड़कर अनाथाकी तरह विलाप करने लगी और सहायताके लिये चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी, 'जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्वल मेरी टेर सुनें। ये सूतपुत्र मुझे लिये जा रहे हैं। जिन वेगवान् गन्धर्वोंके धनुषकी प्रत्यञ्चाका भीषण शब्द संग्रामभूमिमें वज्राघातके समान सुनायी देता है और जिनके रथोंका घोष बड़ा ही प्रबल है, वे मेरी पुकार सुनें; हाय! ये सूतपुत्र मुझे लिये जा रहे हैं।'

कृष्णाकी वह दीन वाणी और विलाप सुनकर भीमसेन बिना कोई विचार किये अपनी शय्यासे खड़े हो गये और कहने लगे, 'सैरन्ध्री! तू जो कुछ कह रही है, वह मैं सुन रहा हूँ; इसलिये अब इन सूतपुत्रोंसे तेरे लिये कोई भयकी बात नहीं है।' ऐसा कहकर वे नगरका परकोटा लाँघकर बाहर आये और बड़ी तेजीसे श्मशानकी ओर चले। वे इतने वेगसे गये कि सूतपुत्रोंसे पहले ही मरघटमें पहुँच गये। चिताके समीप उन्हें ताड़के समान एक दस व्याम[1] लंबा वृक्ष दिखायी दिया। उसकी शाखाएँ मोटी-मोटी थीं तथा ऊपरसे वह सूखा हुआ था। उसे भीमसेनने भुजाओंमें भरकर हाथीके समान जोर लगाकर उखाड़ लिया और उसे कन्धेपर रखकर दण्डपाणि यमराजके समान सूतपुत्रोंकी ओर चले। इस समय उनकी जंघाओंसे टकराकर वहाँ अनेकों बड़, पीपल और ढाकके वृक्ष गिर गये।

भीमसेनको सिंहके समान क्रोधपूर्वक अपनी ओर आते देखकर सब सूतपुत्र डर गये और भय एवं विषादसे काँपते हुए कहने लगे, 'अरे! देखो, यह बलवान् गन्धर्व वृक्ष उठाये बड़े क्रोधसे हमारी ओर आ रहा है; जल्दी ही इस सैरन्ध्रीको छोड़ो, इसीके कारण हमें यह भय उपस्थित हुआ है।' अब तो भीमसेनको वृक्ष उठाये देखकर वे सब-के-सब सैरन्ध्रीको छोड़कर नगरकी ओर भागने लगे। उन्हें भागते देखकर पवननन्दन भीमसेनने, इन्द्र जैसे दानवोंका वध करते हैं उसी प्रकार, उस वृक्षसे एक सौ पाँच उपकीचकोंको यमराजके घर भेज दिया। उसके पश्चात् उन्होंने द्रौपदीको बन्धनसे छुड़ा-

१. दोनों हाथोंको फैलानेपर जितनी लंबाई होती है, उसे एक व्याम कहते हैं।

कर ढाढ़स दिया। इस समय पाञ्चालीके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा बह रही थी और वह अत्यन्त दीन हो रही थी। उससे दुर्जय वीर भीमसेनने कहा, 'कृष्णे! तेरा कोई अपराध न होनेपर भी जो लोग तुझे तंग करेंगे, वे इसी प्रकार मारे जायँगे। अब तू नगरको चली जा, तेरे लिये कोई भयकी बात नहीं है। मैं दूसरे रास्तेसे राजा विराटके रसोईघरकी ओर जाऊँगा।'

जब नगरनिवासियोंने यह सारा काण्ड देखा तो उन्होंने राजा विराटके पास जाकर निवेदन किया कि गन्धर्वोंने महाबली सूतपुत्रोंको मार डाला है और सैरन्ध्री उनके हाथसे छूटकर राजभवनकी ओर जा रही है। उनकी यह बात सुनकर महाराज विराटने कहा, 'आपलोग सूतपुत्रोंकी अन्त्येष्टि क्रिया करें। बहुत-से सुगन्धित पदार्थ और रत्नोंके साथ सब कीचकोंको एक ही प्रज्वलित चितामें जला दो।' फिर कीचकोंके वधसे भयभीत हो जानेके कारण उन्होंने महारानी सुदेष्णाके पास जाकर कहा, "जब सैरन्ध्री यहाँ आवे तो तुम मेरी ओरसे उससे यह कह देना कि 'सुमुखि! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ; महाराज गन्धर्वोंके तिरस्कारसे डर गये हैं।'"

राजन्! जब मनस्विनी द्रौपदी सिंहसे डरी हुई मृगीके समान अपने शरीर और वस्त्रोंको धोकर नगरमें आयी तो उसे देखकर पुरवासी लोग गन्धर्वोंसे भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे तथा किन्हीं-किन्हींने नेत्र ही मूँद लिये। रास्तेमें द्रौपदी नृत्यशालामें अर्जुनसे मिली, जो उन दिनों राजा विराटकी कन्याको नाचना सिखाते थे। उन्होंने कहा, 'सैरन्ध्री! तू उन पापियोंके हाथसे कैसे छूटी और वे कैसे मारे गये? मैं सब बातें तेरे मुखसे ज्यों-की-त्यों सुनना चाहती हूँ।' सैरन्ध्रीने कहा, 'बृहन्नले! अब तुम्हें सैरन्ध्रीसे क्या काम है? क्योंकि तुम तो मौजमें इन कन्याओंके अन्तः-

पुरमें रहती हो। आजकल सैरन्ध्रीपर जो-जो दुःख पड़ रहे हैं, उनसे तुम्हें क्या मतलब है। इसीसे मेरी हँसी करनेके लिये तुम इस प्रकार पूछ रही हो।' बृहन्नलाने कहा, 'कल्याणी! इस नपुंसक योनिमें पड़कर बृहन्नला भी जो महान् दुःख पा रही है, उसे क्या तू नहीं समझती? मैं तेरे साथ रही हूँ और तू भी हम सबके साथ रहती रही है। भला, तेरे ऊपर दुःख पड़नेपर किसको दुःख न होगा?'

इसके पश्चात् कन्याओंके साथ ही द्रौपदी राजभवनमें गयी और रानी सुदेष्णाके पास जाकर खड़ी हो गयी। तब सुदेष्णाने राजा विराटके कथनानुसार उससे कहा, 'भद्रे!

महाराजको गन्धर्वोंसे तिरस्कृत होनेका भय है। तू भी तरुणी है और संसारमें तेरे समान कोई रूपवती भी दिखायी नहीं देती। पुरुषोंको विषय तो स्वभावसे ही प्रिय होता है और तेरे गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं। अतः जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ चली जा।' सैरन्ध्रीने कहा, 'महारानीजी! तेरह दिनके लिये महाराज मुझे और क्षमा करें। इसके पश्चात् गन्धर्वगण मुझे स्वयं ही ले जायँगे और आपका भी हित करेंगे। उनके द्वारा महाराज और उनके बन्धु-बान्धवोंका भी अवश्य ही बड़ा हित होगा।'

कौरवसभामें पाण्डवोंकी खोजके विषयमें बातचीत तथा विराटनगरपर चढ़ाई करनेका निश्चय

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भाइयोंके सहित कीचकको अकस्मात् मारा गया देखकर सभी लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ तथा उस नगर और राष्ट्रमें जहाँ-तहाँ वे आपसमें मिलकर ऐसी चर्चा करने लगे—'महाबली कीचक अपनी शूरवीरताके कारण राजा विराटको बहुत प्यारा था, उसने अनेकों सेनाओंका संहार किया था; किन्तु साथ ही वह दुष्ट परस्त्रीगामी था, इसीसे उस पापीको गन्धर्वोंने मार डाला।' महाराज! शत्रुसेनाका संहार करनेवाले दुर्जय वीर कीचकके विषयमें देश-देशमें ऐसी ही चर्चा होने लगी।

इस समय अज्ञातवासकी अवस्थामें पाण्डवोंका पता लगानेके लिये दुर्योधनने जो गुप्तचर भेजे थे वे अनेकों ग्राम, राष्ट्र और नगरोंमें उन्हें ढूँढकर हस्तिनापुरमें लौट आये। वहाँ वे राजसभामें बैठे हुए कुरुराज दुर्योधनके पास गये। उस समय वहाँ महात्मा भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, त्रिगर्तदेशके राजा और दुर्योधनके भाई भी मौजूद थे। उन सबके सामने उन्होंने कहा, 'राजन्! पाण्डवोंका पता लगानेके लिये हम सदा ही बड़ा प्रयत्न करते रहे; किन्तु वे किधरसे निकल गये, यह हम जान ही न सके। हमने पर्वतोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंपर, भिन्न-भिन्न देशोंमें, जनताकी भीड़में तथा गाँव और नगरोंमें भी उनकी बहुत खोज की; परन्तु कहीं भी उनका पता नहीं लगा। मालूम होता है वे बिल्कुल नष्ट हो गये; इसलिये अब तो आपके लिये मङ्गल ही है। हमें इतना पता अवश्य लगा है कि इन्द्रसेन आदि सारथि पाण्डवोंके बिना ही द्वारकापुरीमें पहुँचे हैं; वहाँ न तो द्रौपदी है और न पाण्डव ही हैं। हाँ, एक बड़े आनन्दका समाचार है। वह यह कि राजा विराटका जो महाबली सेनापति कीचक था, जिसने कि अपने महान् पराक्रमसे त्रिगर्त्तदेशको दलित कर दिया था, उस पापात्माको उसके भाइयोंसहित रात्रिमें गुप्तरूपसे गन्धर्वोंने मार डाला है।'

दूतोंकी यह बात सुनकर दुर्योधन बहुत देरतक विचार करता रहा, उसके बाद उसने सभासदोंसे कहा—'पाण्डवोंके

अज्ञातवासके इस तेरहवें वर्षमें थोड़े ही दिन शेष हैं। यदि यह समाप्त हो गया तो सत्यवादी पाण्डव मदमाते हाथी और विषधर सर्पोंके समान क्रोधातुर होकर कौरवोंके लिये दुःखदायी हो जायँगे। वे सभी समयका हिसाब रखनेवाले हैं, इसलिये कहीं दुर्विज्ञेयरूपमें छिपे होंगे। इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि वे अपने क्रोधको पीकर फिर वनमें ही चले जायँ। इसलिये शीघ्र ही उनका पता लगाओ, जिससे कि हमारा यह राज्य सब प्रकारकी विघ्न-बाधा और विरोधियोंसे मुक्त होकर चिरकालतक अक्षुण्ण बना रहे।' यह सुनकर कर्णने कहा, 'भरतनन्दन! तो शीघ्र ही दूसरे कार्यकुशल जासूस भेजे जायँ। वे गुप्तरूपसे धन-धान्यपूर्ण और जनाकीर्ण

देशोंमें जायँ तथा सुरम्य सभाओंमें, सिद्ध महात्माओंके आश्रमोंमें, राजनगरोंमें, तीर्थोंमें और गुफाओंमें वहाँके निवासियोंसे बड़े विनीत शब्दोंमें युक्तिपूर्वक पूछकर उनका पता लगावें।' दुःशासनने कहा, 'राजन्! जिन दूतोंपर आपको विशेष भरोसा हो, वे मार्गव्यय लेकर फिर पाण्डवोंकी खोज करनेके लिये जायँ। कर्णने जो कुछ कहा है, वह हमें बहुत ठीक जान पड़ता है।'

तब तत्त्वार्थदर्शी परमपराक्रमी द्रोणाचार्यने कहा, 'पाण्डवलोग शूरवीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराजकी आज्ञामें चलनेवाले हैं। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट होते हैं और न किसीसे तिरस्कृत ही होते हैं। उनमें धर्मराज तो बड़े ही शुद्धचित्त, गुणवान्, सत्यवान्, नीतिमान्, पवित्रात्मा और तेजस्वी हैं। उन्हें तो आँखोंसे देख लेनेपर भी कोई नहीं पहचान सकेगा। अतः इस बातपर ध्यान रखकर ही हमें ब्राह्मण, सेवक, सिद्धपुरुष अथवा उन अन्य लोगोंसे, जो कि उन्हें पहचानते हैं, ढुँढवाना चाहिये।'

इसके पश्चात् भरतवंशियोंके पितामह, देश-कालके ज्ञाता और समस्त धर्मोंको जाननेवाले भीष्मजीने कौरवोंके हितके लिये कहा, 'भरतनन्दन! पाण्डवोंके विषयमें जैसा मेरा विचार है, वह कहता हूँ। जो नीतिमान् पुरुष होते हैं, उनकी नीतिको अनीतिपरायण लोग नहीं ताड़ सकते। उन पाण्डवोंके विषयमें विचार करके हम इस सम्बन्धमें जो कुछ कर सकते हैं, वही मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ; द्वेषवश कोई बात नहीं कहता। युधिष्ठिरकी जो नीति है, उसकी मेरे-जैसे पुरुषको कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। उसे अच्छी नीति ही कहना चाहिये, अनीति कहना किसी प्रकार ठीक नहीं है। राजा युधिष्ठिर जिस नगर या राष्ट्रमें होंगे वहाँकी जनता भी दानशील, प्रियवादिनी, जितेन्द्रिय और लज्जाशील होगी। जहाँ वे रहते होंगे वहाँके लोग प्रियवादी, संयमी, सत्यपरायण, हृष्टपुष्ट, पवित्र और कार्यकुशल होंगे। जहाँ उनकी स्थिति होगी, वहाँके मनुष्य स्वयं ही धर्ममें तत्पर होंगे तथा वे गुणोंमें दोषका आरोप करनेवाले, ईर्ष्यालु, अभिमानी और मत्सरी नहीं होंगे। वहाँ हर समय वेदध्वनि होती होगी, यज्ञोंमें पूर्णाहुतियाँ दी जाती होंगी तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले बहुत-से यज्ञ होते होंगे। वहाँ मेघ निश्चय ही ठीक-ठीक वर्षा करता होगा तथा वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण और सब प्रकारके आतङ्कोंसे शून्य होगी। वहाँ आनन्ददायी पवन चलता होगा, धर्मका स्वरूप पाखण्ड-शून्य होगा और किसी प्रकारका भय नहीं होगा। उस स्थानपर गौओंकी अधिकता होगी और वे कृश या दुर्बल न होकर खूब हृष्टपुष्ट होंगी। उनके दूध, दही और घी भी बड़े सरस और गुणकारक होंगे। राजा युधिष्ठिर अत्यन्त धर्मनिष्ठ हैं। उनमें सत्य, धैर्य, दान, शान्ति, क्षमा, लज्जा, श्री, कीर्ति, तेज, दयालुता और सरलता निरन्तर निवास करते हैं। अतः अन्य साधारण पुरुष तो क्या, ब्राह्मणलोग भी उन्हें नहीं पहचान सकते। अतः जहाँ ऐसे लक्षण पाये जायँ, वहीं मतिमान् पाण्डवलोग गुप्त रीतिसे रहते होंगे। तुम वहीं जाकर उन्हें ढूँढो, इसके सिवा उनके विषयमें मैं दूसरी बात नहीं कह सकता। यदि तुम्हें मेरे कथनमें विश्वास है तो इसपर विचार करके जो उचित समझो, वह शीघ्र ही करो।'

इसके पश्चात् महर्षि शरद्वान्के पुत्र कृपने कहा, 'वयोवृद्ध भीष्मजीका पाण्डवोंके विषयमें जो कथन है, वह युक्तियुक्त और समयानुसार है। उसमें धर्म और अर्थ दोनों ही निहित हैं, साथ ही वह बड़ा मधुर और हेतुगर्भित भी है। उन्हींके अनुरूप इस विषयमें मेरा भी जो कथन है, वह सुनो। तुमलोग गुप्तचरोंसे पाण्डवोंकी गति और स्थितिका पता लगवाओ और उसी नीतिका आश्रय लो, जो इस समय हितकारिणी हो। यह याद रक्खो कि अज्ञातवासकी अवधि समाप्त होते ही महाबली पाण्डवोंका उत्साह बहुत बढ़ जायगा। उनका तेज तो अतुलित है ही। अतः इस समय तुम्हें अपनी सेना, कोश और नीतिकी सँभाल रखनी चाहिये, जिससे कि समय आनेपर हम उनके साथ यथावत् सन्धि कर सकें। बुद्धिसे भी तुम्हें अपनी शक्तिकी जाँच रहनी चाहिये और इस बातका भी पता रहना चाहिये कि तुम्हारे बलवान् और निर्बल मित्रोंमें निश्चित शक्ति कितनी है। तुम्हें अपनी श्रेष्ठ, निकृष्ट और मध्यम कोटिकी सेनाका रुख देखकर यह निश्चय करना चाहिये कि वह तुमसे सन्तुष्ट है या नहीं। उसके अनुसार ही हमें शत्रुओंसे सन्धि या विग्रह करने होंगे—यदि सेना सन्तुष्ट होगी तो हम शत्रुओंके प्रति अपने धनुष सँभालेंगे और यदि वह असन्तुष्ट होगी तो उनसे सन्धि कर लेंगे। साम (समझाना), दान (धन आदि देना), भेद (फोड़ लेना), दण्ड और कर लेना—यह नीति है। इससे शत्रुको आक्रमणद्वारा, दुर्बलोंको बलसे दबाकर, मित्रोंको हेलमेल करके और सेनाको मिष्टभाषण और वेतनादि देकर अपने काबूमें कर लेना

चाहिये। इस प्रकार यदि तुम अपने कोश और सेनाको बढ़ा लोगे तो ठीक-ठीक सफलता प्राप्त कर सकोगे।'

इसके पश्चात् त्रिगर्त्तदेशके राजा महाबली सुशर्माने कर्णकी ओर देखते हुए दुर्योधनसे कहा, 'राजन्! मत्स्यदेशके शाल्व-वंशीय राजा बार-बार हमारे ऊपर आक्रमण करते रहे हैं। मत्स्यराजके सेनापति महाबली सूतपुत्र कीचकने ही मुझे और मेरे बन्धु-बान्धवोंको बहुत तंग किया था। कीचक बड़ा ही बलवान्, क्रूर, असहनशील और दुष्ट प्रकृतिका पुरुष था। उसका पराक्रम जगद्विख्यात था। इसलिये उस समय हमारी दाल नहीं गली। अब उस पापकर्मा और नृशंस सूतपुत्रको गन्धर्वोंने मार डाला है। उसके मारे जानेसे राजा विराट आश्रयहीन और निरुत्साह हो गया होगा। इसलिये यदि आपको, समस्त कौरवोंको और महामना कर्णको ठीक जान पड़े तो मेरा तो उस देशपर चढ़ाई करनेका मन होता है। उस देशको जीतकर जो विविध प्रकारके रत्न, धन, ग्राम और राष्ट्र हाथ लगेंगे, उन्हें हम आपसमें बाँट लेंगे।'

त्रिगर्त्तराजकी बात सुनकर कर्णने राजा दुर्योधनसे कहा, 'राजा सुशर्माने बड़ी अच्छी बात कही है। यह समयके अनुसार और हमारे बड़े कामकी है। अतः हम सेना सजाकर, उसे छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें बाँटकर अथवा जैसी आपकी सलाह हो, वैसे ही तुरंत उस देशपर चढ़ाई कर दें।'

त्रिगर्त्तराज और कर्णकी बात सुनकर राजा दुर्योधनने दुःशासनको आज्ञा दी, 'भाई! तुम बड़े-बूढ़ोंसे सलाह करके चढ़ाईकी तैयारी करो। हमलोग सब कौरवोंके सहित एक नाकेपर जायँगे और महारथी सुशर्मा त्रिगर्त्तदेशीय वीर और सारी सेनाके सहित दूसरे मोर्चेपर। पहले सुशर्मा चढ़ाई करेंगे। उसके एक दिन बाद हमारा कूच होगा। ये ग्वालियोंपर आक्रमण करके विराटका गोधन छीन लेंगे। उसके बाद हम भी अपनी सेनाको दो भागोंमें विभक्त करके राजा विराटकी एक लाख गौएँ हरेंगे।'

विराट और सुशर्माका युद्ध तथा भीमसेनद्वारा सुशर्माका पराभव

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! सुशर्माने अपने पूर्व वैरका बदला लेनेके लिये त्रिगर्त्तदेशके सभी रथी और पदाति वीरोंको लेकर कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिके दिन विराट-की गौएँ छीननेके लिये अग्निकोणसे आक्रमण किया। उसके दूसरे दिन समस्त कौरवोंने मिलकर दूसरी ओरसे जाकर विराटकी हजारों गौएँ पकड़ लीं। अब छद्मवेषमें छिपे हुए अतुलित तेजस्वी पाण्डवोंका तेरहवाँ वर्ष भलीभाँति समाप्त हो चुका था। इसी समय सुशर्माने चढ़ाई करके राजा विराटकी बहुत-सी गौएँ कैद कर लीं। यह देखकर राजाका प्रधान गोप बड़ी तेजीसे नगरमें आया और फिर रथसे कूदकर राजसभामें पहुँचकर राजाको प्रणाम करके कहने लगा, 'महाराज! त्रिगर्त्तदेशके योद्धा हमें युद्धमें परास्त करके आपकी एक लाख गौएँ लिये जा रहे हैं। आप उन्हें छुड़ानेका प्रबन्ध कीजिये। ऐसा न हो आपका गोधन बहुत दूर निकल जाय।' यह सुनते ही राजाने मत्स्यदेशके वीरोंकी सेना एकत्रित की। उसमें रथ, हाथी, घोड़े और पदाति—सभी प्रकारके योद्धा थे; अनेकों ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं तथा अनेकों राजा और राजपुत्र कवच पहनकर युद्धके लिये तैयार हो गये थे। इस प्रकार सैकड़ों देवतुल्य महारथियोंने स्वेच्छासे कवच धारण कर लिये और युद्धसामग्रीसे सम्पन्न सफेद रथोंमें सोनेके साजसे सजे हुए घोड़े जुतवाकर उनपर बैठ-बैठकर नगरसे बाहर निकले।

इस प्रकार जब सारी सेना तैयार हो गयी तो राजा विराटने अपने छोटे भाई शतानीकसे कहा, 'मेरा ऐसा विचार है कि कंक, बल्लव, तन्तिपाल और ग्रन्थिक भी बड़े वीर हैं और निःसन्देह युद्ध कर सकते हैं। इन्हें भी ध्वजा-पताकासे सुशोभित रथ और जो ऊपरसे दृढ़ किन्तु भीतरसे कोमल हों, ऐसे कवच दो।' राजा विराटकी यह बात सुनकर शतानीकने पाण्डवोंके लिये भी रथ तैयार करनेकी आज्ञा दी। और महारथी पाण्डवगण सुवर्णजटित रथोंपर चढ़कर एक साथ ही राजा विराटके पीछे चले। वे चारों ही भाई बड़े शूरवीर और सच्चे पराक्रमी थे। उनके सिवा आठ हजार रथी, एक हजार गजारोही और साठ हजार घुड़सवार भी राजा विराटके साथ चले। भरतश्रेष्ठ! विराटकी वह सेना बड़ी ही भली जान पड़ती थी। वह गौओंके खुरोंके चिह्न देखती आगे बढ़ने लगी। मत्स्यदेशीय वीर नगरसे निकलकर व्यूहरचनाकी विधिसे चले और उन्होंने सूर्य ढलते-ढलते त्रिगर्त्तोंको पकड़ लिया। बस, दोनों ओरके वीर परस्पर शस्त्र-सञ्चालन करने लगे और उनमें देवासुर-संग्रामकी तरह बड़ा ही भयङ्कर और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। उस समय इतनी धूल उड़ी कि पक्षी भी अन्धे-से होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और दोनों

ओरसे छोड़े गये बाणोंकी ओटमें सूर्यनारायण भी दीखने बंद हो गये। रथी रथियोंसे, पदाति पदातियोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे और गजारोही गजारोहियोंसे भिड़ गये। वे क्रोधमें भरकर एक-दूसरेपर तलवार, पट्टिश, प्रास, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु परिघके समान प्रचण्ड भुजदण्डोंसे प्रहार करनेपर भी वे अपना सामना करनेवाले वीरको पीछे नहीं हटा पाते थे। बात-की-बातमें सारी रणभूमि कटे हुए मस्तक और छिदे हुए देहोंसे पटी-सी दिखायी देने लगी।

इस प्रकार युद्ध करते-करते शतानीकने सौ और विशालाक्षने चार सौ त्रिगर्त्त वीरोंको धराशायी कर दिया। फिर वे दोनों महारथी शत्रुओंकी सेनाके भीतर घुस गये और विपक्षी वीरोंके केश पकड़-पकड़कर पटकने लगे तथा उन्होंने बहुतोंके रथोंको चकनाचूर कर दिया। राजा विराटने पाँच सौ रथी, आठ सौ घुड़सवार और पाँच महारथी मार डाले। फिर तरह-तरहसे रथयुद्धका कौशल दिखाते वे सोनेके रथपर चढ़े हुए सुशर्मासे आकर भिड़ गये। उन्होंने दस बाणोंसे सुशर्माको और पाँच-पाँच बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको बींध डाला। तथा रणोन्मत्त सुशर्माने उन्हें पचास बाणोंसे बींध दिया। सुशर्मा बड़ा बाँकुरा वीर था, उसने मत्स्यराजकी सारी सेनाको अपने प्रबल पराक्रमसे रौंद डाला और फिर राजा विराटकी ओर दौड़ा। उसने विराटके रथके दोनों घोड़ोंको तथा अङ्गरक्षक और सारथिको मारकर उन्हें जीवित ही पकड़ लिया और अपने रथमें डालकर चल दिया।

यह देखकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, 'महाबाहो! त्रिगर्त्तराज सुशर्मा महाराज विराटको लिये जा रहा है, तुम उन्हें झटपट छुड़ा लो; ऐसा न हो वे शत्रुओंके पंजेमें फँस जायँ।' तब भीमसेनने कहा, 'महाराज! आपकी आज्ञासे मैं इन्हें अभी छुड़ाता हूँ। इस सामनेवाले वृक्षकी शाखाएँ बहुत अच्छी हैं, यह तो गदारूप ही जान पड़ता है; इसको उखाड़कर इसीके द्वारा मैं शत्रुओंको चौपट कर दूँगा।' युधिष्ठिर बोले, 'भीमसेन! ऐसा साहसका काम मत करना। इस वृक्षको तो खड़ा रहने दो। यदि तुम ऐसा अतिमानुष कर्म करोगे तो लोग पहचान जायँगे कि यह तो भीम है। इसलिये तुम कोई दूसरा ही मनुष्योचित शस्त्र लो।'

धर्मराजके ऐसा कहनेपर भीमसेनने बड़ी फुर्तीसे अपना श्रेष्ठ धनुष उठाया और मेघ जैसे जल बरसाता है, वैसे ही सुशर्मापर बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देखकर भाइयोंके सहित सुशर्मा धनुष चढ़ाकर लौट पड़ा और एक निमेषमें ही वे रथी भीमसेनसे भिड़ गये। भीमसेनने गदा लेकर विराटके सामने ही सैकड़ों-हजारों रथी, गजारोही, अश्वारोही और प्रचण्ड धनुषधारी शूरवीरोंको मारकर गिरा दिया तथा अनेकों पैदलोंको भी कुचल डाला। ऐसा विकट युद्ध देखकर रणोन्मत्त सुशर्माका सारा मद उतर गया, वह इस सेनाके सत्यानाशके लिये चिन्तित हो उठा और कहने लगा—'हाय! जो हर समय कानतक धनुष चढ़ाये दिखायी देता था, वह मेरा भाई तो पहले ही मर गया।' फिर वह भीमसेनपर बार-बार तीखे बाण छोड़ने लगा। यह देखकर सभी पाण्डव क्रोधमें भर गये। और घोड़ोंको त्रिगर्त्तोंकी ओर मोड़कर उनपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। राजा युधिष्ठिरने बात-की-बातमें एक हजार योद्धाओंको मार डाला, भीमसेनने सात हजार त्रिगर्त्तोंको धराशायी कर दिया तथा नकुलने सात सौ और सहदेवने तीन सौ वीरोंको नष्ट कर डाला।

अन्तमें भीमसेन सुशर्माके पास आये और अपने पैने बाणोंसे उसके घोड़ोंको तथा अङ्गरक्षकोंको मार डाला। फिर उसके सारथिको रथके जुएपरसे गिरा दिया। सुशर्माके रथका

चक्ररक्षक मदिराक्ष भीमपर प्रहार करने चला। इतनेहीमें

वृद्ध होनेपर भी राजा विराट रथसे कूद पड़े और गदा लेकर बड़े जोरसे उसपर झपटे। रथहीन हो जानेसे सुशर्मा प्राण लेकर भागने लगा। तब भीमसेनने कहा, 'राजकुमार! लौटो, तुम्हें युद्धसे पीठ दिखाना उचित नहीं है। क्या इसी पराक्रमसे तुम जबरदस्ती गौओंको ले जाना चाहते थे?' ऐसा कहकर वे झट अपने रथसे कूद पड़े और सुशर्माके प्राणोंके ग्राहक होकर उसके पीछे दौड़े। उन्होंने लपककर सुशर्माके बाल पकड़ लिये और उसे उठाकर पृथ्वीपर पटककर रगड़ने लगे। सुशर्मा रोने-चिल्लाने लगा, तब भीमसेनने उसके सिरपर लात मारी और उसकी छातीपर घुटने टेककर उसके ऐसा घूँसा मारा कि वह अचेत हो गया। महारथी सुशर्माके पकड़ लिये जानेपर त्रिगर्त्तोंकी सारी सेना भयभीत होकर भागने लगी। तब महारथी पाण्डवोंने समस्त गौओंको फेर लिया तथा सुशर्माको परास्त करके उसका सारा धन छीन लिया।

भीमसेनके नीचे पड़ा हुआ सुशर्मा अपने प्राण बचानेके
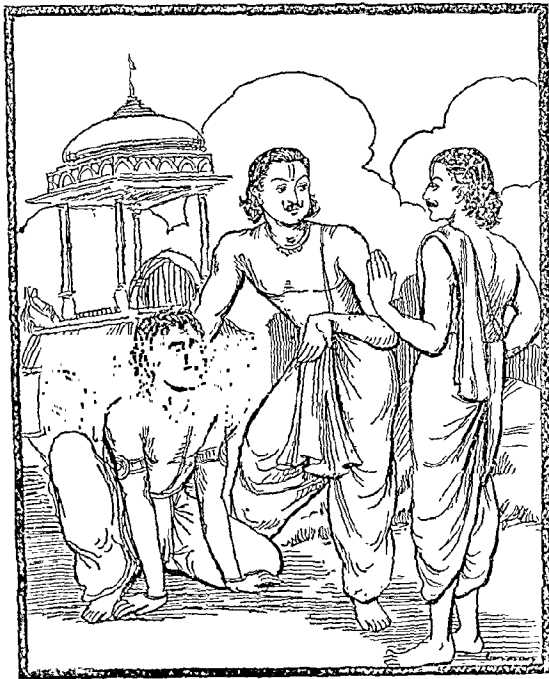
लिये छटपटा रहा था। उसका सारा अंग धूलसे भर गया था और चेतना लुप्त-सी हो गयी थी। भीमसेनने उसे बाँधकर अपने रथपर रख लिया और महाराज युधिष्ठिरके पास ले जाकर उन्हें दिखाया। युधिष्ठिर उसे देखकर हँसे और भीमसेनसे बोले, 'भैया! इस नराधमको छोड़ दो।' भीमसेनने सुशर्मासे कहा, 'रे मूढ! यदि तू जीवित रहना चाहता है तो तुझे विद्वानों और राजाओंकी सभामें यह कहना पड़ेगा कि मैं दास हूँ। तभी तुझे जीवनदान कर सकता हूँ।' इसपर धर्मराजने प्रेमपूर्वक कहा, 'भैया! यदि तुम मेरी बात मानते हो तो इस पापकर्मा सुशर्माको छोड़ दो। यह महाराज विराट-का दास तो हो ही चुका है।' फिर त्रिगर्त्तराजसे कहा, 'जाओ, अब तुम दास नहीं हो; फिर कभी ऐसा साहस मत करना।'

युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर सुशर्माने लज्जासे मुख नीचा कर लिया और जब भीमसेनने उसे छोड़ दिया तो उसने राजा विराटके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात् वह अपने देशको चला गया। फिर मत्स्यराज विराटने प्रसन्न होकर युधिष्ठिरसे कहा, 'आइये, इस सिंहासनपर मैं आपका अभिषेक कर दूँ, अब आप ही हमारे मत्स्यदेशके स्वामी हों। इसके सिवा आपके मनमें यदि कोई ऐसी चीज पानेकी इच्छा हो, जो संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हो, तो वह भी मैं देनेको तैयार हूँ; क्योंकि आप तो सभी पदार्थ पानेयोग्य हैं।'

तब युधिष्ठिरने मत्स्यराजसे कहा, 'महाराज! आपका कथन बड़ा ही मनोहर है, मैं उसकी हृदयसे सराहना करता हूँ। आप बड़े दयालु हैं, भगवान् आपको सर्वदा सब प्रकार आनन्दमें रक्खें। राजन्! अब शीघ्र ही दूतोंको नगरमें भिजवाइये। वे आपके सम्बन्धियोंको इस शुभ समाचारकी सूचना दें और नगरमें आपकी विजयकी घोषणा करा दें।' तब राजाने दूतोंको आज्ञा दी कि 'तुम नगरमें जाकर मेरी विजयकी सूचना दो।' मत्स्यराजकी आज्ञाको सिरपर चढ़ाकर दूत बड़े हर्षसे नगरकी ओर चले और रात-रातमें रास्ता तय करके सबेरे ही नगरके समीप पहुँचकर विजयकी घोषणा कर दी।

कौरवोंकी चढ़ाई, उत्तरका बृहन्नलाको सारथि बनाकर युद्धमें जाना और कौरव-सेनाको देखकर डरसे भागना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! जब मत्स्यराज विराट गौओंको छुड़ानेके लिये त्रिगर्त्तसेनाकी ओर गये तो दुर्योधन भी मौका देखकर अपने मन्त्रियोंके सहित विराट-नगरपर चढ़ आया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दुःशल तथा और भी अनेकों महारथी दुर्योधनके साथ थे। ये सब कौरव वीर विराटकी साठ हजार गौओंको सब ओरसे रथोंकी पंक्तिसे रोककर ले चले। उन्हें रोकनेपर जब मार-पीट होने लगी तो ग्वालिये उन महारथियोंके सामने न ठहर सके और उनकी मार खाकर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। तब ग्वालियोंका सरदार रथपर चढ़कर अत्यन्त दीनकी तरह रोता-बिलखता नगरमें आया। वह सीधा राजमहलके दरवाजेपर पहुँचा और रथसे उतरकर भीतर चला गया। वहाँ उसे
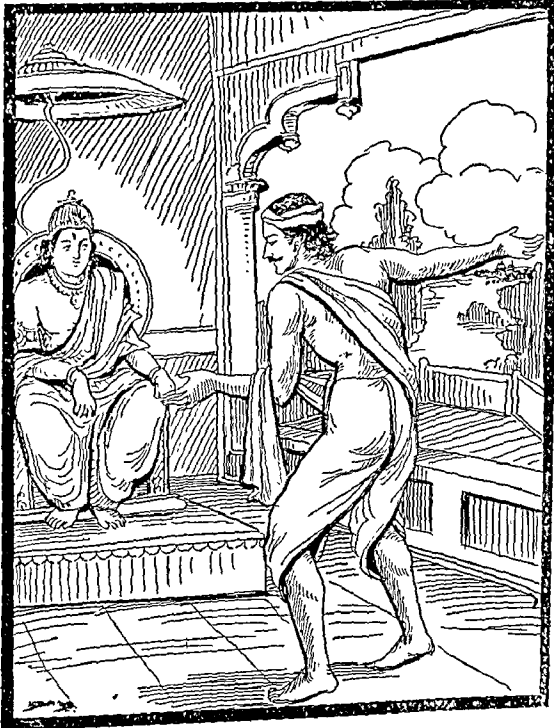
विराटका पुत्र भूमिञ्जय (उत्तर) मिला। गोपराजने उसीको सारा समाचार सुना दिया और कहा, ''राजकुमार! आपकी साठ हजार गौओंको कौरव लिये जा रहे हैं। आप राज्यके बड़े हितचिन्तक हैं; इस समय अपनी अनुपस्थितिमें महाराज आपको ही यहाँका प्रबन्ध सौंप गये हैं और सभामें वे आपकी प्रशंसा करते हुए यह कहा भी करते हैं कि 'मेरा यह कुल-दीपक पुत्र ही मेरे अनुरूप और बड़ा शूरवीर है।' अतः इस समय आप तुरंत ही गौओंको छुड़ानेके लिये जाइये और महाराजके कथनको सत्य करके दिखाइये।''

राजकुमार अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीचमें बैठा था। जब उससे ग्वालियेने ये बातें कहीं तो वह अपनी बड़ाई करता हुआ कहने लगा, 'भाई! आज मैं जिस ओर गौएँ गयी हैं उधर अवश्य जाऊँगा। मेरा धनुष तो काफी मजबूत है किन्तु किसी ऐसे सारथिकी आवश्यकता है, जो घोड़े चलानेमें बहुत निपुण हो। इस समय मेरी निगाहमें कोई ऐसा आदमी नहीं है, जो मेरा सारथि बन सके। अतः तुम शीघ्र ही मेरे लिये कोई कुशल सारथि तलाश करो। फिर तो, इन्द्र जैसे दानवोंको भयभीत कर देते हैं उसी प्रकार मैं दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामा—इन सभी महान् धनुर्धरोंके छक्के छुड़ाकर एक क्षणमें ही अपनी गौओं-को लौटा लाऊँगा। जिस समय वे युद्धमें मेरा पराक्रम देखेंगे, उस समय उन्हें यही कहना पड़ेगा कि यह साक्षात् पृथापुत्र अर्जुन ही तो हमें तंग नहीं कर रहा है।'

जब राजपुत्रने स्त्रियोंके बीचमें बार-बार अर्जुनका नाम लिया तो द्रौपदीसे न रहा गया। वह स्त्रियोंमेंसे उठकर उत्तरके पास आयी और उससे कहने लगी, 'यह जो हाथीके समान विशालकाय और दर्शनीय युवक बृहन्नला नामसे विख्यात है, पहले अर्जुनका सारथि ही था। यदि यह आपका सारथि हो जाय तो आप निश्चय ही सब कौरवोंको जीतकर अपनी गौएँ लौटा लायेंगे।' सैरन्ध्रीके ऐसा कहनेपर उसने अपनी बहिन उत्तरासे कहा, 'बहिन! तू शीघ्र ही जाकर बृहन्नलाको लिवा ला।' भाईके कहनेसे उत्तरा तुरंत ही

नृत्यशालामें पहुँची। बृहन्नलाने अपनी सखी राजकुमारी उत्तराको देखकर पूछा, 'कहो, राजकन्ये! कैसे आना हुआ?' तब राजकन्याने बड़ी विनय दिखाते हुए कहा,

'बृहन्नले! कौरवलोग हमारे राष्ट्रकी गौओंको लिये जा रहे हैं, उन्हें जीतनेके लिये मेरा भाई धनुष धारण करके जा रहा है। तुम मेरे भाईके सारथि बन जाओ और कौरवलोग गौओंको दूर लेकर जायँ, उससे पहले ही रथ उनके पास पहुँचा दो।' कुमारी उत्तराके इस प्रकार कहनेपर अर्जुन उठे और राजकुमार उत्तरके पास आये। बृहन्नलाको दूर-हीसे आते देखकर राजकुमारने कहा, 'बृहन्नले! जिस समय मैं गौओंको बचानेके लिये कौरवोंके साथ युद्ध करूँ, उस समय तुम मेरे घोड़ोंको उसी प्रकार अपने काबूमें रखना जिस प्रकार पहलेसे रखते आये हो। मैंने सुना है पहले तुम अर्जुनके प्रिय सारथि थे और तुम्हारी सहायतासे ही पाण्डवप्रवर अर्जुनने सारी पृथ्वीको जीता था।' इसके पश्चात् उत्तरने सूर्यके समान चमचमाता हुआ बढ़िया कवच धारण किया तथा अपने रथपर सिंहकी ध्वजा लगाकर बृहन्नलाको सारथि बनाया। फिर बहुमूल्य धनुष और बहुत-से उत्तम-उत्तम बाण लेकर उसने युद्धके लिये कूच किया। इस समय बृहन्नलाकी सखी उत्तरा और दूसरी कन्याओंने कहा, 'बृहन्नले! तुम संग्रामभूमिमें आये हुए भीष्म, द्रोण आदि कौरवोंको जीतकर हमारी गुड़ियोंके लिये रंग-बिरंगे महीन और कोमल वस्त्र लाना।' इसपर अर्जुनने हँसकर कहा, 'यदि ये राजकुमार उत्तर रणभूमिमें उन महारथियोंको परास्त कर देंगे तो मैं अवश्य उनके दिव्य और सुन्दर वस्त्र लाऊँगी।'

अब राजकुमार उत्तर राजधानीसे निकलकर बाहर आया और अपने सारथिसे बोला, 'तुम जिधर कौरवलोग
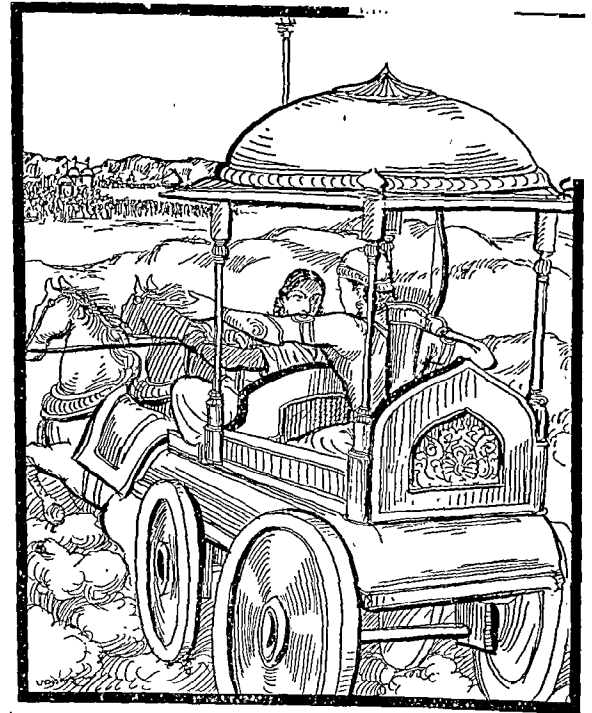
गये हैं, उधर ही रथ ले चलो। यहाँ जो कौरवलोग विजयकी आशासे आकर इकट्ठे हुए हैं, उन सबको जीतकर और उनसे गौएँ लेकर मैं बहुत जल्द लौट आऊँगा।' तब पाण्डु-नन्दन अर्जुनने उत्तरके उत्तम जातिके घोड़ोंकी लगाम ढीली कर दी। अर्जुनके हाँकनेसे वे हवासे बात करने लगे और ऐसे दिखायी देने लगे मानो आकाशमें उड़ रहे हों। थोड़ी ही दूर जानेपर उत्तर और अर्जुनको महाबली कौरवोंकी सेना दिखायी दी। वह विशाल वाहिनी हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई थी। कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, भीष्म और अश्वत्थामाके सहित महान् धनुर्धर द्रोण उसकी रक्षा कर रहे थे। उसे देखकर उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये और उसने भयसे व्याकुल होकर अर्जुनसे कहा, 'मेरी ताब नहीं है कि मैं कौरवोंके साथ लोहा ले सकूँ; देखते नहीं हो, मेरे सारे

रोंगटे खड़े हो गये हैं ? इस सेनामें तो अगणित वीर दिखायी दे रहे हैं। यह तो बड़ी ही विकट है, देवतालोग भी इसका सामना नहीं कर सकते । मैं तो अभी बालक ही हूँ, शस्त्रास्त्रका भी विशेष अभ्यास नहीं किया है; फिर मैं अकेला ही इन शस्त्रविद्याके पारगामी महावीरोंसे कैसे लड़ूँगा। इसलिये बृहन्नले ! तुम लौट चलो ।'

बृहन्नलाने कहा—राजकुमार ! तुमने स्त्री-पुरुषोंके सामने अपने पुरुषार्थकी बड़ी प्रशंसा की थी और तुम शत्रुसे लड़नेके लिये ही घरसे निकले हो, फिर अब युद्ध क्यों नहीं करते ? यदि तुम इन्हें परास्त किये बिना घर लौट चलोगे तो सब स्त्री-पुरुष आपसमें मिलकर तुम्हारी हँसी करेंगे। मुझसे भी सैरन्ध्रीने तुम्हारा सारथ्य करनेको कहा था, इसलिये अब बिना गौएँ लिये नगरकी ओर जाना मेरा काम नहीं है ।

उत्तर बोला—बृहन्नले ! कौरवलोग मत्स्यराजकी बहुत-सी गौएँ लिये जाते हैं तो ले जायँ और स्त्री-पुरुष मेरी हँसी करें तो करते रहें, किन्तु अब युद्ध करना मेरे वशकी बात नहीं है ।

ऐसा कहकर राजकुमार उत्तर रथसे कूद पड़ा और सारी मान-मर्यादाको तिलाञ्जलि देकर धनुष-बाण फेंककर भागा । यह देखकर बृहन्नलाने कहा, 'शूरवीरोंकी दृष्टिमें युद्धस्थलसे भागना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है । क्षत्रियके लिये तो युद्धमें मरना ही अच्छा है, डरकर पीठ दिखाना अच्छा नहीं है ।' ऐसा कहकर कुन्तीनन्दन अर्जुन भी रथसे कूद पड़े और भागते हुए राजकुमारके पीछे दौड़े और बड़ी तेजीसे सौ ही कदमपर उसके बाल पकड़ लिये । अर्जुनद्वारा पकड़ लिये जानेपर उत्तर कायरोंकी तरह दीन होकर रोने लगा और बोला, 'कल्याणी बृहन्नले ! सुनो, तुम जल्दी ही

रथ लौटा ले चलो । देखो, जिंदगी रहेगी तो अच्छे दिन भी देखनेको मिल ही जायँगे ।'

उत्तर इसी प्रकार घबराकर बहुत अनुनय-विनय करता रहा, किन्तु अर्जुन हँसते-हँसते उसे रथके पास ले आये और कहने लगे, 'राजकुमार ! यदि शत्रुओंसे युद्ध करनेकी तुम्हारी हिम्मत नहीं है तो लो, तुम घोड़ोंकी रास सँभालो; मैं युद्ध करता हूँ । तुम इस रथियोंकी सेनामें चले चलो; डरना मत, मैं अपने बाहुबलसे तुम्हारी रक्षा करूँगा। और तुम डरते क्यों हो, आखिर हो तो क्षत्रियके ही बालक । फिर शत्रुओंके सामने आकर घबराना कैसा ? देखो, मैं इस दुर्जय सेनामें घुसकर कौरवोंसे लड़ूँगा और तुम्हारी गौएँ छुड़ाकर लाऊँगा । तुम जरा मेरे सारथिका काम कर दो ।' इस प्रकार महावीर अर्जुनने युद्धसे डरकर भागते हुए उत्तरको समझाया और उसे फिर रथपर चढ़ा लिया ।

अर्जुनका शमीवृक्षके पास जाकर अपने शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होना और उत्तरको अपना परिचय देकर कौरवसेनाकी ओर जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! जब भीष्म, द्रोण आदि प्रधान-प्रधान कौरव महारथियोंने उस नपुंसकवेषधारी पुरुषको उत्तरको रथमें चढ़ाकर शमीवृक्षकी ओर जाते देखा तो वे अर्जुनकी आशंका करके मन-ही-मन बहुत डरे। तब शस्त्रविद्याविशारद द्रोणाचार्यजीने पितामह भीष्मसे कहा, 'गङ्गापुत्र ! यह जो स्त्रीवेषधारी दिखायी देता है, वह इन्द्रका पुत्र कपिध्वज अर्जुन जान पड़ता है। यह अवश्य ही हमें युद्धमें जीतकर गौएँ ले जायगा। इस सेनामें मुझे तो इसका सामना करनेवाला कोई भी योद्धा दिखायी नहीं देता। सुनते हैं कि हिमालयपर तपस्या करते समय अर्जुनने किरात-वेषधारी भगवान् शंकरको भी युद्ध करके प्रसन्न कर लिया था।' इसपर कर्ण बोला, 'आचार्य ! आप सदा ही अर्जुनके गुण गाकर हमारी निन्दा किया करते हैं, किन्तु वह मेरे और दुर्योधनके तो सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है।' दुर्योधनने कहा, 'और कर्ण ! यदि यह अर्जुन है, तब तो मेरा काम ही बन गया; क्योंकि पहचान लिये जानेके कारण अब पाण्डवों-को फिर बारह वर्षतक वनमें विचरना पड़ेगा। और यदि कोई दूसरा पुरुष नपुंसकके रूपमें आया है तो मैं इसे अपने पैने बाणोंसे धराशायी कर ही दूँगा।'

राजन् ! इधर अर्जुन रथको शमीवृक्षके पास ले गये और उत्तरसे बोले, 'राजकुमार ! मेरी आज्ञा मानकर तुम शीघ्र ही इस वृक्षपरसे धनुष उतारो, ये तुम्हारे धनुष मेरे बाहुबलको सहन नहीं कर सकेंगे। इस वृक्षपर पाण्डवोंके शस्त्र रक्खे हुए हैं।' यह सुनकर राजकुमार उत्तर रथसे उतर पड़ा और उसे विवश होकर उस वृक्षपर चढ़ना पड़ा। अर्जुनने रथपर बैठे-बैठे ही फिर आज्ञा दी, 'इन्हें झटपट उतार लाओ, देरी मत करो और जल्दी ही इनके ऊपर जो

वस्त्रादि लिपटे हुए हैं, उन्हें खोल दो।' उत्तर पाण्डवोंके उन अत्युत्तम धनुषोंको लेकर नीचे उतरा और उनपर लिपटे हुए पत्तोंको हटाकर उन्हें अर्जुनके आगे रक्खा। उत्तरको गाण्डीवके सिवा वहाँ चार धनुष और दिखायी दिये। उन सूर्यके समान तेजस्वी धनुषोंको खोलते ही सब ओर उनकी दिव्य कान्ति फैल गयी। तब उत्तरने उन प्रभावपूर्ण और विशाल धनुषोंको हाथसे छूकर पूछा कि 'ये किसके हैं ?'

अर्जुनने कहा—राजकुमार ! इनमें यह तो अर्जुनका सुप्रसिद्ध गाण्डीव धनुष है। यह संग्रामभूमिसे शत्रुओंकी सेनाको क्षणभरमें नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है, तीनों लोकोंमें इसकी सुप्रसिद्धि है और यह सभी शस्त्रोंसे बढ़ा-चढ़ा है। यह अकेला ही एक लाख शस्त्रोंकी बराबरी करनेवाला है। अर्जुनने इसीके द्वारा संग्राममें देवता और मनुष्योंको परास्त

किया था । देखो, यह चित्र-विचित्र रंगोंसे सुशोभित, लचकीला और गाँठ आदिसे रहित है। आरम्भमें एक हजार वर्षतक तो इसे ब्रह्माजीने धारण किया था। फिर पाँच सौ तीन वर्षतक यह प्रजापतिके पास रहा। उसके बाद पचासी वर्ष इसे इन्द्रने धारण किया और पाँच सौ वर्षतक चन्द्रमाने तथा सौ वर्षतक वरुणने अपने पास रक्खा। अब पैंसठ वर्षकाल अर्थात् साढ़े बत्तीस सालसे यह परम दिव्य धनुष अर्जुनके पास है; उसे यह वरुणसे ही प्राप्त हुआ है। दूसरा जो सोनेसे मँढा हुआ देवता और मनुष्योंसे पूजित सुन्दर पीठवाला धनुष है, वह भीमसेनका है। शत्रुदमन भीमने इसीसे सारी पूर्व दिशा जीती थी। तीसरा यह इन्द्रगोपके चिह्नोंवाला मनोहर धनुष महाराज युधिष्ठिरका है। चौथा धनुष, जिसमें सोनेके बने हुए सूर्य चमचमा रहे हैं, नकुलका है तथा जिसमें सुवर्णके फतिंगे चित्रित हैं, वह पाँचवाँ धनुष माद्रीनन्दन सहदेवका है।

उत्तरने कहा—बृहन्नले! जिन शीघ्रपराक्रमी महात्माओंके ये सुन्दर और सुनहले आयुध इस प्रकार चमचमा रहे हैं वे पृथापुत्र अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेन कहाँ हैं? वे तो सभी बड़े महानुभाव और शत्रुओंका संहार करनेवाले थे। जबसे उन्होंने जूएमें अपना राज्य हारा है, तबसे उनके विषयमें कुछ सुननेमें नहीं आया। तथा स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा पाञ्चालकुमारी द्रौपदी भी कहाँ है?

अर्जुनने कहा—मैं ही पृथापुत्र अर्जुन हूँ, मुख्य सभासद् कंक युधिष्ठिर हैं, तुम्हारे पिताके रसोई पकानेवाले बल्लव भीमसेन हैं, अश्वशिक्षक ग्रन्थिक नकुल हैं, गोपाल तन्तिपाल सहदेव हैं और जिसके लिये कीचक मारा गया है, वह सैरन्ध्री द्रौपदी है।

उत्तर बोला—मैंने अर्जुनके दस नाम सुने हैं। यदि तुम मुझे उन नामोंके कारण सुना दो तो मुझे तुम्हारी बातमें विश्वास हो सकता है।

अर्जुनने कहा—मैं सारे देशोंको जीतकर उनसे धन लाकर धनहीके बीचमें स्थित था, इसलिये 'धनञ्जय' हुआ। मैं जब संग्राममें जाता हूँ तो वहाँसे युद्धोन्मत्त शत्रुओंके जीते बिना कभी नहीं लौटता, इसलिये 'विजय' हूँ। संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय मेरे रथमें सुनहले साजवाले श्वेत अश्व जोते जाते हैं, इसलिये मैं 'श्वेतवाहन' हूँ। मैंने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें दिनके समय हिमालयपर जन्म लिया था, इसलिये लोग मुझे 'फाल्गुन' कहने लगे। पहले बड़े-बड़े दानवोंके साथ युद्ध करते समय इन्द्रने मेरे सिरपर सूर्यके समान तेजस्वी किरीट पहनाया था, इसलिये मैं 'किरीटी' हूँ। मैं युद्ध करते समय कोई बीभत्स (भयानक) कर्म नहीं करता, इसीसे मैं देवता और मनुष्योंमें 'बीभत्सु' नामसे प्रसिद्ध हूँ। गाण्डीवको खींचनेमें मेरे दोनों हाथ कुशल हैं, इसलिये देवता और मनुष्य मुझे 'सव्यसाची' नामसे पुकारते हैं। चारों समुद्रपर्यन्त पृथ्वीमें मेरे-जैसा शुद्ध वर्ण दुर्लभ है और मैं शुद्ध ही कर्म करता हूँ, इसलिये लोग मुझे 'अर्जुन' नामसे जानते हैं। मैं दुर्लभ, दुर्जय, दमन करनेवाला और इन्द्रका पुत्र हूँ; इसलिये देवता और मनुष्योंमें 'जिष्णु' नामसे विख्यात हूँ। मेरा दसवाँ नाम 'कृष्ण' पिताजीका रक्खा हुआ है, क्योंकि मैं उज्ज्वल कृष्णवर्ण तथा लाड़ला बालक होनेके कारण चित्तको आकर्षित करनेवाला था।

यह सुनकर विराटपुत्रने अर्जुनको प्रणाम किया और कहा, 'मैं भूमिञ्जय नामका राजकुमार हूँ और मेरा नाम उत्तर भी है। आज मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मैं पृथापुत्र अर्जुनका दर्शन कर रहा हूँ। मैंने आपको न पहचाननेके कारण जो अनुचित शब्द कहे हैं, उनके लिये आप मुझे क्षमा करें। आप इस सुन्दर रथमें सवार होइये। मैं आपका सारथि बनूँगा और जिस सेनामें आप चलनेको कहेंगे, उसीमें मैं आपको ले चलूँगा।'

अर्जुनने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारे लिये कोई खटकेकी बात नहीं है, मैं संग्राममें तुम्हारे सब शत्रुओंके पैर उखाड़ दूँगा। तुम शान्त रहो और इस संग्राममें शत्रुओंके साथ लड़ते हुए मैं जो भीषण कर्म करूँ, वह देखते रहो। जिस समय मैं गाण्डीव धनुष लेकर रणभूमिमें रथपर सवार होऊँगा, उस समय शत्रुओंकी सेना मुझे जीत नहीं सकेगी। अब तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये।

उत्तरने कहा—अब मैं इनसे नहीं डरता; क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप संग्रामभूमिमें भगवान् श्रीकृष्ण और साक्षात् इन्द्रके सामने भी डट सकते हैं। अब तो मुझे आपकी सहायता मिल गयी है, इसलिये मैं युद्धक्षेत्रमें देवताओंसे भी मुकाबला कर सकता हूँ। मेरा सारा भय भाग चुका है; बताइये, मैं क्या करूँ? पुरुषश्रेष्ठ! मैंने अपने पिताजीसे सारथिका काम सीखा था। इसलिये मैं आपके रथके घोड़ोंको अच्छी तरह सँभाल लूँगा।

इसके पश्चात् अर्जुनने शुद्धतापूर्वक रथपर पूर्वाभिमुख बैठकर एकाग्र चित्तसे समस्त अस्त्रोंका स्मरण किया। उन्होंने

प्रकट होकर हाथ जोड़कर कहा, 'पाण्डुकुमार! आपके दास हम सब उपस्थित हैं।' अर्जुनने कहा, 'तुम सब मेरे मनमें निवास करो।' इस प्रकार अस्त्रोंको ग्रहण करके अर्जुनका चेहरा प्रसन्नतासे खिल गया और उन्होंने गाण्डीव धनुषपर डोरी चढ़ाकर उसकी टङ्कार की। तब उत्तरने कहा, 'पाण्डव-श्रेष्ठ! आप तो अकेले ही हैं, इन शस्त्रास्त्रके पारगामी अनेकों महारथियोंको संग्राममें कैसे जीत सकेंगे—यह सोचकर तो आपके सामने भी मैं बहुत भयभीत हो रहा हूँ।' यह सुनकर अर्जुन खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, 'वीर! डरो मत। बताओ, कौरवोंकी घोषयात्राके समय जब मैंने महाबली गन्धर्वोंसे युद्ध किया था उस समय मेरा सहायक कौन था? देवराजके लिये निवातकवच और पौलोम दैत्योंके साथ युद्ध करते समय मेरा कौन साथी था? द्रौपदीके स्वयंवरमें जब मुझे अनेकों राजाओंका सामना करना पड़ा था, उस समय किसने मेरी सहायता की थी? मैं गुरुवर द्रोणाचार्य, इन्द्र, कुबेर, यमराज, वरुण, अग्निदेव, कृपाचार्य, लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण और भगवान् शङ्कर—इन सबका आश्रय पा चुका हूँ। फिर भला, इनसे युद्ध क्यों नहीं कर सकूँगा। तुम इन मानसिक भयोंको छोड़कर जल्दीसे रथ हाँको।'

इस प्रकार उत्तरको अपना सारथि बनाकर पाण्डवप्रवर अर्जुनने शमीवृक्षकी परिक्रमा की और फिर अपने सब अस्त्र-शस्त्र लेकर अग्निदेवके दिये हुए रथका ध्यान किया। ध्यान करते ही आकाशसे एक ध्वजा-पताकासे सुशोभित दिव्य रथ उतरा। अर्जुनने उसकी प्रदक्षिणा की और इस वानरकी ध्वजावाले रथमें बैठकर धनुष-बाण धारण किये उत्तरकी ओर प्रस्थान किया। फिर उन्होंने अपना महान् शङ्ख बजाया, जिसका भीषण घोष सुनकर शत्रुओंके रोंगटे खड़े हो गये। राजकुमार उत्तरको भी बड़ा भय मालूम हुआ और वह रथके भीतरी भागमें घुसकर बैठ गया। तब अर्जुनने रासें खींचकर घोड़ोंको खड़ा किया और उत्तरको हृदयसे लगाकर आश्वासन देते हुए कहा, 'राजपुत्र! डरो मत। आखिर, तुम क्षत्रिय

ही हो; फिर शत्रुओंके बीचमें आकर घबराते क्यों हो?'

उत्तरने कहा—मैंने शङ्ख और भेरियोंके शब्द तो बहुत सुने हैं, तथा सेनाकी मोर्चेबन्दीसे खड़े हुए हाथियोंकी चिग्घाड़ सुननेका भी मुझे कई बार अवसर मिला है; किन्तु ऐसा शङ्खका शब्द तो मैंने पहले कभी नहीं सुना। इसीसे इस शङ्खके शब्द, धनुषकी टङ्कार, ध्वजामें रहनेवाले अमानुषी भूतोंकी हुङ्कार और रथकी घरघराहटसे मेरा मन बहुत ही घबरा रहा है।

इस प्रकार बात करते-करते एक मुहूर्त्ततक आगे चलते रहनेपर अर्जुनने उत्तरसे कहा, 'अब तुम रथपर अच्छी तरहसे बैठकर अपनी टाँगोंसे बैठनेके स्थानको जकड़ लो तथा रासोंको सावधानीसे सँभाल लो, मैं फिर शङ्ख बजाता हूँ।' तब अर्जुनने ऐसे जोरसे शङ्खध्वनि की मानो वे पर्वत, गुफा, दिशा और चट्टानोंको विदीर्ण कर देंगे। उससे भयभीत होकर उत्तर फिर रथके भीतर घुसकर बैठ गया। उस शङ्खध्वनि, गाण्डीवकी टङ्कार और रथकी घरघराहटसे धरती दहल उठी। अर्जुनने उत्तरको फिर धैर्य बँधाया।

अर्जुनसे युद्ध करनेके विषयमें कौरव महारथियोंमें विवाद

इस भीषण शब्दको सुनकर कौरवसेनामें द्रोणाचार्यने कहा—यह मेघगर्जनके समान जो रथकी भीषण

घरघराहट सुनायी दे रही है, जिससे पृथ्वीमें भी कम्प होने लगा है—इससे जान पड़ता है कि यह अर्जुनके सिवा कोई और नहीं है। देखो, हमारे शस्त्रोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है, घोड़े भी प्रसन्न नहीं जान पड़ते और अग्निहोत्रोंकी अग्नियाँ भी प्रकाशहीन-सी हो रही हैं; इससे जान पड़ता है कि कोई अच्छा परिणाम नहीं होगा। सभी योद्धाओंके मुख निस्तेज और मन उदास दिखायी देते हैं। अतः हम गौओंको हस्तिनापुरकी ओर भेजकर व्यूहरचना करके खड़े हो जायँ।

अब राजा दुर्योधनने भीष्म, द्रोण और महारथी कृपाचार्यसे कहा—मैंने और कर्णने आचार्यचरणसे यह बात कई बार कही है और फिर भी कहता हूँ, पाण्डवोंसे हमारी यह बात ठहरी थी कि जूएमें हारनेपर उन्हें बारह वर्षतक वनमें रहना पड़ेगा तथा एक वर्षतक किसी नगर या वनमें अज्ञातवास करना पड़ेगा। अभी इनका तेरहवाँ वर्ष पूरा नहीं हुआ है, और यदि उसके पूरे होनेसे पहले ही अर्जुन हमारे सामने आ गया है तो पाण्डवोंको बारह वर्षतक फिर वनमें रहना पड़ेगा। इस बातका निर्णय पितामह भीष्म कर सकते हैं। इसके सिवा एक बात यह भी है कि इस रथमें बैठकर चाहे मत्स्यराज विराट आया हो, चाहे अर्जुन, हमें तो सबसे लड़ना ही है। ऐसी ही हमारी प्रतिज्ञा भी है। फिर ये भीष्म, द्रोण, कृप, विकर्ण और अश्वत्थामा आदि महारथी इस प्रकार निरुत्साह होकर क्यों बैठे हैं? इस समय सभी महारथी घबराये-से दिखायी देते हैं। किन्तु युद्धके सिवा और कोई बात हमारे लिये हितकर नहीं है, इसलिये आप सब अपने मनको उत्साहित रक्खें। यदि देवराज इन्द्र और स्वयं यमराज भी संग्राम करके हमसे गोधन छीन लें तो ऐसा कौन है जो हस्तिनापुर लौटकर जाना चाहेगा?

दुर्योधनकी बात सुनकर कर्णने कहा—आपलोग आचार्य द्रोणको सेनाके पीछे रखकर युद्धकी नीतिका विधान करें। देखिये न, अर्जुनको आते देखकर ये उसकी प्रशंसा करने लगे हैं। इससे हमारी सेनापर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसलिये ऐसी नीतिसे काम लेना चाहिये, जिससे हमारी सेनामें फूट न पड़े। जिस समय ये अर्जुनके घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनेंगे, उसी समय इनके घबरानेसे सारी सेना अव्यवस्थित हो जायगी। इस समय हम विदेशमें हैं और बड़े भारी जङ्गलमें पड़े हुए हैं, गर्मीकी ऋतु है तथा शत्रु हमारे सिरपर आ बोला है; इसलिये ऐसी नीतिका आश्रय लेना चाहिये, जिससे हमारी सेना घबराहटमें न पड़े। आचार्य तो दयालु, बुद्धिमान् और हिंसासे विरुद्ध विचारवाले हुआ करते हैं। जब कोई बड़ा सङ्कट आ पड़े तो इनसे किसी प्रकारकी सलाह नहीं लेनी चाहिये। पण्डितोंकी शोभा तो मनोरम महलोंमें, सभाओंमें और बगीचोंमें चित्र-विचित्र कथाएँ सुनानेमें ही है। अथवा बलिवैश्वदेवादिके द्वारा अन्नका संस्कार करनेमें तथा कीटादि गिर जानेसे उसके दूषित हो जानेपर भी पण्डितोंकी सम्मति काम दे सकती है। अतः शत्रुकी प्रशंसा करनेवाले इन पण्डितलोगोंको पीछे और रखकर ऐसी नीतिका आश्रय लो, जिससे शत्रुका न हो। सब गौओंको बीचमें खड़ी कर लो। उनके चारों ओर व्यूहरचना कर दो तथा रक्षकोंको नियुक्त करके रणक्षेत्र सँभाल रक्खो, जहाँसे कि हम शत्रुओंसे युद्ध कर सकें। पहले प्रतिज्ञा कर ही चुका हूँ। उसके अनुसार आज संग्रामभूमिमें अर्जुनको मारकर दुर्योधनका अक्षय ऋण चुका दूँगा

यह सुनकर कृपाचार्यने कहा—कर्ण! युद्धके विषयमें तुम्हारी बुद्धि सदा ही बड़ी कड़ी रहती है। तुम न तो कार्यके स्वरूपपर ध्यान देते हो और न उसके परिणामका ही विचार करते हो। विचार करनेपर तो यही समझमें आता है कि हमलोग अर्जुनसे लोहा लेनेमें समर्थ नहीं हैं। देखो, उसने अकेले ही चित्रसेन गन्धर्वके सेवकोंसे युद्ध करके समस्त कौरवोंकी रक्षा की थी तथा अकेले ही अग्निदेवको तृप्त किया था। जब किरातवेषमें भगवान् शङ्कर उसके सामने आये तो उनसे भी उसने अकेले ही युद्ध किया था। निवातकवच और कालकेय दानवोंको तो देवता भी नहीं दबा सके थे। उन्हें भी उसने युद्धमें अकेले ही मारा था। अर्जुनने तो अकेले ही अनेकों राजाओंको अपने अधीन कर लिया था; तुम्हीं बताओ, तुमने भी अकेले रहकर कभी कोई ऐसी करतूत करके दिखायी है? अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य तो इन्द्रमें भी नहीं है; तुम जो उसके साथ भिड़नेकी बात कह रहे हो, इससे मालूम होता है तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। इसकी तुम्हें दवा करानी चाहिये। हाँ, द्रोण, दुर्योधन, भीष्म, तुम, अश्वत्थामा और हम—सब मिलकर अर्जुनका सामना करेंगे; तुम अकेले ही उससे भिड़नेका साहस मत करो।

इसके बाद अश्वत्थामाने कहा—अभी तो हमने गौओंको जीता भी नहीं है और न हम मत्स्यराज्यकी सीमापर ही पहुँचे हैं, हस्तिनापुर भी अभी बहुत दूर है; फिर तुम ऐसे बढ़-बढ़कर बातें क्यों बनाते हो? दुर्योधन तो बड़ा ही क्रूर और निर्लज्ज है; नहीं तो जूएमें राज्य जीतकर भला, किस क्षत्रियको सन्तोष होगा? अतः जिस प्रकार तुमने जूआ खेला था, इन्द्रप्रस्थको जीता था और द्रौपदीको बलात्कारसे सभामें बुलाया था, उसी प्रकार अब अर्जुनके साथ संग्राम करना। अरे! काल, पवन, मृत्यु और बड़वानल जब कोप करते हैं तो कुछ-न-कुछ शेष छोड़ देते हैं; किन्तु अर्जुन तो कुपित होनेपर कुछ भी बाकी नहीं छोड़ता। अतः जिस प्रकार तुमने द्यूतसभामें शकुनिकी सलाहसे जूआ खेला था, उसी प्रकार तुम मामाजीकी देख-रेखमें ही अर्जुनसे लड़ लो। भाई! और कोई भी वीर युद्ध करे, मैं तो अर्जुनसे लड़ूँगा नहीं। यदि गौएँ लेनेके लिये मत्स्यराज विराट आया तो उससे मैं अवश्य युद्ध करूँगा।

फिर भीष्मपितामह बोले—अश्वत्थामा और कृपाचार्यका विचार बहुत ठीक है। कर्ण तो क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेपर ही तुला हुआ है। किसी भी समझदार आदमीको आचार्य द्रोणपर दोष नहीं लगाना चाहिये। और जब अर्जुन हमारे सामने आ गया है तो आपसमें विरोध करनेका अवसर तो यह है ही नहीं। आचार्य कृप, द्रोण और अश्वत्थामाको भी इस समय क्षमा ही करना चाहिये। बुद्धिमानोंने सेनासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दोष बताये हैं, उनमें आपसकी फूट सबसे बढ़कर है।

दुर्योधनने कहा—आचार्यचरण! इस समय क्षमा करें और शान्ति रक्खें। यदि इस समय गुरुदेवके चित्तमें कोई अन्तर न आया, तभी हमारा आगेका काम बनना सम्भव है।

तब कर्ण, भीष्म और कृपाचार्यके सहित दुर्योधनने आचार्य द्रोणसे क्षमा करनेकी प्रार्थना की। इससे शान्त होकर द्रोणाचार्यने कहा, 'शान्तनुनन्दन भीष्मने जो बात कही है, मैं तो उसे सुनकर ही प्रसन्न हो गया था। अच्छा, अब युद्धकी नीतिका विधान करो। दुर्योधनको पाण्डवोंके तेरहवें वर्षके पूरे होनेमें सन्देह है, किन्तु ऐसा हुए बिना अर्जुन कभी हमारे सामने नहीं आता। दुर्योधनने इस विषयमें कई बार शङ्का की है। अतः भीष्मजी इस विषयमें ठीक निर्णय करके बतानेकी कृपा करें।'

इसपर पितामह भीष्मने कहा—कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु और संवत्सर—ये सब मिलकर एक कालचक्र बने हुए हैं। वह कालचक्र कला-काष्ठादिके विभागपूर्वक घूमता रहता है। उनमें सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रोंको लाँघ जाते हैं तो कालकी कुछ वृद्धि हो जाती है। इसीसे हर पाँचवें वर्ष दो महीने बढ़ जाते हैं। इसलिये मेरा ऐसा विचार है कि पाण्डवोंको अब तेरह वर्षसे पाँच महीने और बारह दिनका समय अधिक हो गया है। पाण्डवोंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका ठीक-ठीक पालन किया है। इस समय इस अवधिका भी अच्छी तरह निश्चय करके ही अर्जुन हमारे सामने आया है। ये सभी बड़े महात्मा तथा धर्म और अर्थके मर्मज्ञ हैं। भला, युधिष्ठिर जिनके नेता हैं वे धर्मके विषयमें कोई चूक कैसे कर सकते हैं? पाण्डवलोग निर्लोभ हैं, उन्होंने बड़ा दुष्कर कर्म किया है; इसलिये वे राज्यको भी किसी नीतिविरुद्ध उपायसे लेना नहीं चाहेंगे। पराक्रमपूर्वक राज्य लेनेमें तो वे वनवासके समय भी समर्थ थे, किन्तु धर्मपाशमें बँधे होनेके कारण वे क्षात्रधर्मसे विचलित नहीं हुए। इसलिये जो ऐसा कहेगा कि अर्जुन मिथ्याचारी है, उसे मुँहकी खानी पड़ेगी। पाण्डवलोग मौतको गले लगा लेंगे किन्तु

असत्यको कभी नहीं अपनावेंगे। साथ ही उनमें ऐसी वीरता भी है कि समय आनेपर उनका जो हक होगा, उसे वे वज्रधर इन्द्रसे सुरक्षित होनेपर भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिये राजन्! युद्धोचित अथवा धर्मोचित कोई भी काम शीघ्र ही करो, क्योंकि अब अर्जुन समीप ही आ गया है।

दुर्योधनने कहा—पितामह! पाण्डवोंको राज्य तो मैं दूँगा नहीं; अतः अब जो युद्धके लिये तैयारी करनी हो, वही शीघ्र करो।

भीष्म बोले—इस विषयमें मेरा जैसा विचार है, वह सुनो। तुम तो चौथाई सेना लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले जाओ। दूसरा चौथाई भाग गौओंको लेकर चला जाय। शेष आधी सेनाके साथ हम अर्जुनका मुकाबला करेंगे। अर्जुन युद्धके लिये आ रहा है; अतः मैं, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य उससे युद्ध करेंगे। पीछे यदि राजा विराट या स्वयं इन्द्र भी आवेगा तो, जैसे तट समुद्रको रोके रहता है उसी प्रकार, मैं उसे रोक लूँगा।

महात्मा भीष्मकी यह बात सभीको अच्छी लगी। फिर कौरवराज दुर्योधनने भी वैसा ही किया। भीष्मने पहले तो दुर्योधन और गौओंको विदा किया। उसके बाद मुख्य-मुख्य सेनानियोंकी व्यवस्था करके व्यूहरचना आरम्भ की। उन्होंने कहा, 'द्रोणजी! आप तो बीचमें खड़े होइये, अश्वत्थामा बायीं ओर रहें, मतिमान् कृपाचार्य सेनाके दाहिने पार्श्वकी रक्षा करें, कर्ण कवच धारण करके सेनाके आगे खड़े हों और मैं सारी सेनाके पीछे रहकर उसकी रक्षा करूँगा।

अर्जुनका दुर्योधनके सामने आना, विकर्ण और कर्णको पराजित करना तथा उत्तरको कौरव वीरोंका परिचय देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार जब कौरवसेनाकी व्यूहरचना हो गयी तो तुरंत ही अर्जुन अपने रथकी घरघराहटसे आकाशको गुंजायमान करते हुए आ गये। यह सब देखकर द्रोणाचार्यने कहा, 'वीरो! देखो, दूरसे ही वह अर्जुनकी ध्वजाका अग्रभाग दीख रहा है। यह उसीके रथकी घरघराहट है और उसकी ध्वजापर बैठा हुआ वानर ही किलकारी मार रहा है। इस उत्तम रथपर बैठा हुआ यह महारथी अर्जुन ही वज्रके समान कठोर टङ्कार करनेवाले गाण्डीव धनुषको खींच रहा है। देखो, एक साथ ही ये दो बाण मेरे पैरोंपर आकर गिरे हैं और दो मेरे कानोंको स्पर्श करते हुए निकल गये हैं। इस समय वह अनेकों अतिमानुष कर्म करके वनवाससे लौटा है, इसलिये इनके द्वारा वह मुझे प्रणाम करता है और मुझसे कुशल-समाचार पूछता है। अपने बन्धु-बान्धवोंके अत्यन्त प्रिय अर्जुनको आज हमने बहुत दिनोंपर देखा है।'

इधर अर्जुनने कहा—सारथे! तुम रथको कौरव-सेनासे इतनी दूरीपर ले चलो, जितनी दूर कि एक बाण जाता है। वहाँसे मैं देखूँगा कि कुरुकुलाधम दुर्योधन कहाँ है।

इसके बाद अर्जुनने सारी सेनापर दृष्टि डालकर देखा, किन्तु उन्हें दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया। तब वे कहने लगे, 'मुझे दुर्योधन तो यहाँ दिखायी नहीं देता। मालूम होता है वह दक्षिणी मार्गसे गौएँ लेकर अपने प्राण बचानेके लिये हस्तिनापुरकी ओर भाग गया है। अच्छा, इस रथसेनाको तो छोड़ दो; उस ओर चलो, जिधर दुर्योधन गया है।' अर्जुनकी आज्ञा पाकर उत्तरने उसी ओरको रथ हाँक दिया, जिधर दुर्योधन गया था। दुर्योधनके पास पहुँचकर अर्जुन अपना नाम सुनाकर उसकी सेनापर टिड्डियोंके समान बाण बरसाने लगे। उनके छोड़े हुए बाणोंसे ढक जानेके कारण पृथ्वी और आकाश दिखायी देने बंद हो गये। अर्जुनके शङ्खकी ध्वनि, रथके पहियोंकी घरघराहट, गाण्डीवकी टङ्कार और उनकी ध्वजामें रहनेवाले दिव्य प्राणियोंके शब्दसे पृथ्वी काँप उठी तथा गौएँ पूँछ उठाकर रँभाती हुई सब ओरसे लौटकर दक्षिणकी ओर भागने लगीं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—अर्जुन धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ था, उसने शत्रुसेनाको बड़े वेगसे दबाकर गौओंको जीत लिया। इसके बाद युद्धकी इच्छासे वह दुर्योधनकी ओर चला। कौरव वीरोंने देखा गौएँ तो तीव्र गतिसे विराटनगरकी ओर भाग गयीं और अर्जुन सफल होकर दुर्योधनकी ओर बढ़ा आ रहा है, तो वे बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आ पहुँचे। कौरवोंकी उस सेनाको देखकर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे कहा—'राजपुत्र! आजकल दुर्योधनका सहारा पाकर कर्ण बड़ा अभिमानी हो रहा है, वह मुझसे युद्ध करना चाहता है; अतः पहले उसीके पास मुझे ले चलो।'

उत्तरने अर्जुनका रथ युद्धभूमिके मध्यभागमें ले जाकर खड़ा किया। इतनेमें चित्रसेन, संग्रामजित्, शत्रुसह और

जय आदि महारथी वीर उसके मुकाबलेमें आ डटे। युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने इनके रथोंको उसी प्रकार भस्म कर दिया, जैसे आग वनको जला डालती है। जब यह भयानक संग्राम हो रहा था, उसी समय कुरुवंशका श्रेष्ठ योद्धा विकर्ण रथपर बैठकर अर्जुनके ऊपर चढ़ आया। आते ही वह विपाठ नामक बाणोंकी वर्षा करने लगा। अर्जुनने उसका धनुष काटकर रथकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। विकर्ण तो भाग गया, किन्तु 'शत्रुन्तप' नामक राजा सामने आकर अर्जुनके हाथसे मारा गया। फिर तो जैसे प्रचण्ड आँधीके वेगसे बड़े-बड़े जङ्गलोंके वृक्ष हिल उठते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकी मार खाकर कौरवसेनाके वीर काँपने लगे। कितने ही आहत हो प्राण त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी वीर भी अर्जुनके द्वारा परास्त हुए। वह शत्रुओंका संहार करता हुआ युद्धभूमिमें विचर रहा था, इतनेमें कर्णके भाई संग्रामजित्से उसकी मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने उसके रथमें जुते हुए लाल-लाल घोड़ोंको मारकर एक ही बाणसे उसका सिर काट लिया। भाईके मारे जानेपर कर्ण अपने पराक्रमके जोशमें आकर अर्जुनकी ओर दौड़ा और बारह बाण मारकर उसने अर्जुनको बींध डाला, उसके घोड़ोंको छेद दिया और राजकुमार उत्तरके हाथमें भी चोट पहुँचायी। यह देख अर्जुन भी, जैसे गरुड़ नागकी ओर दौड़े उसी प्रकार, कर्णपर टूट पड़ा। ये दोनों वीर सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, महाबली और सब शत्रुओंका प्रहार सहनेवाले थे। इनका युद्ध देखनेके लिये सभी कौरव वीर ज्यों-के-त्यों खड़े हो गये।

अपने अपराधी कर्णको सामने पाकर अर्जुन क्रोध और उत्साहसे भर गया और एक ही क्षणमें उसने इतनी बाण-वृष्टि की कि रथ, सारथि और घोड़ोंसहित वह छिप गया। इसके बाद कौरवोंके अन्यान्य योद्धाओंको भी अर्जुनने रथ और हाथियोंसहित बेध डाला। भीष्म आदि भी अपने रथ-सहित अर्जुनके बाणोंसे ढक गये। इससे उनकी सेनामें हाहाकार मच गया। इतनेमें कर्णने अर्जुनके तमाम बाणोंको काट दिया और अमर्षमें भरकर उसके चारों घोड़ों तथा सारथिको बींध दिया। साथ ही रथकी ध्वजाको भी काट डाला। इसके बाद उसने अर्जुनको भी घायल किया। कर्णके बाणोंसे आहत होकर अर्जुन सोते हुए सिंहके समान जाग उठा और उसके ऊपर पुनः बाणोंकी वर्षा करने लगा। अपने वज्रके समान
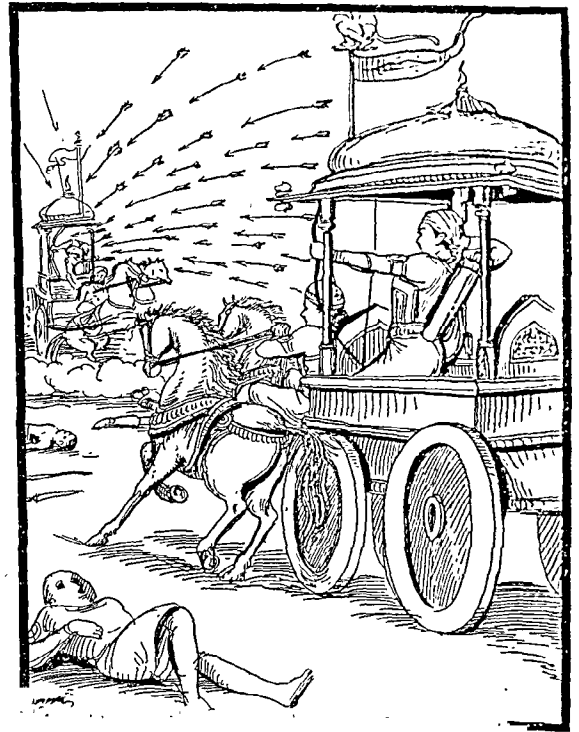
तेजस्वी बाणोंसे उसने कर्णके बाँह, जङ्घा, मस्तक, ललाट और कण्ठ आदि अङ्गोंको बींध डाला। कर्णका शरीर क्षत-विक्षत हो गया, उसे बड़ी पीडा होने लगी। फिर तो, जैसे एक हाथीसे हारकर दूसरा हाथी भाग जाता है, उसी प्रकार वह युद्धके मैदानसे भाग खड़ा हुआ।

कर्णके भाग जानेपर दुर्योधन आदि वीर अपनी-अपनी सेनाके साथ धीरे-धीरे अर्जुनकी ओर बढ़ आये। तब अर्जुनने हँसकर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए कौरवसेनापर प्रत्याक्रमण किया। उस समय उस सेनाके रथ, घोड़े, हाथी और कवच आदिमेंसे कोई भी ऐसा नहीं बचा था जिसमें दो-दो अंगुलपर अर्जुनके तीखे बाणोंका घाव न हुआ हो। अर्जुनके दिव्यास्त्रका प्रयोग, घोड़ोंकी शिक्षा, उत्तरकी रथ हाँकनेकी कला, पार्थके अस्त्रसञ्चालनका क्रम और पराक्रम देखकर शत्रु भी बड़ाई करने लगे। अर्जुन प्रलयकालीन अग्निके समान शत्रुओंको भस्म कर रहा था; उस समय उसके तेजस्वी स्वरूपकी ओर शत्रु आँख उठाकर देख भी न सके। उसके दौड़ते हुए रथको समीप आनेपर एक ही बार कोई भी शत्रु पहचान पाता था, दुबारा उसे इसका अवसर नहीं मिलता; क्योंकि अर्जुन तुरंत ही उस शत्रुको रथसे गिराकर परलोक भेज देता था। समस्त कौरव सैनिकोंके शरीर उसके द्वारा

छिन्न-भिन्न होकर कष्ट पा रहे थे; वह अर्जुनका ही काम था, दूसरेसे उसकी तुलना नहीं हो सकती थी। उसने द्रोणाचार्यको तिहत्तर, दुस्सहको दस, अश्वत्थामाको आठ, दुःशासनको बारह, कृपाचार्यको तीन, भीष्मको साठ और दुर्योधनको सौ बाणोंसे घायल किया। फिर कर्णिनामक बाण मारकर कर्णका कान बींध डाला; साथ ही उसके घोड़े, सारथि तथा रथको भी नष्ट कर दिया। यह देखकर सारी सेना तितर-बितर हो गयी।

तब विराटकुमार उत्तरने अर्जुनसे कहा—'विजय! अब आप किस सेनामें चलना चाहते हैं? आज्ञा दीजिये, मैं वहीं रथ ले चलूँ।' अर्जुनने कहा—उत्तर! जिस रथके लाल-लाल घोड़े हैं, जिसपर नीली पताका फहरा रही है, उस रथपर बैठे हुए जो अत्यन्त कल्याणकारी वेषमें व्याघ्रचर्मधारी महापुरुष दिखायी पड़ते हैं, वे हैं कृपाचार्य और वही है उनकी सेना। तुम मुझे उसी सेनाके निकट ले चलो। और देखो! जिनकी ध्वजामें सुवर्णमय कमण्डलुका चिह्न है, वे ही ये सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण हैं। तुम मेरे रथसे इनकी प्रदक्षिणा करो। जब ये मुझपर प्रहार करेंगे, तभी मैं भी इनपर शस्त्र छोड़ूँगा; ऐसा करनेसे ये मुझपर कोप नहीं करेंगे। इनसे थोड़ी ही दूरपर, जिसके रथकी ध्वजामें 'धनुष' का चिह्न दिखायी देता है, यह आचार्य द्रोणका पुत्र महारथी अश्वत्थामा है। तथा जो रथोंकी सेनाओंमें तीसरी सेनाके साथ खड़ा है, सुवर्णका कवच पहने है, जिसकी ध्वजाके ऊपर सुवर्णमय हाथीका चिह्न बना है, वही यह धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन है। जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें हाथीकी सुन्दर शृङ्खलाका चिह्न दिखायी दे रहा है, यह कर्ण है; इसे तो तुम पहले ही जान चुके हो। तथा जिनके सुन्दर रथपर सुवर्णमय पाँच मण्डलवाली नीले रंगकी पताका फहराती है, जो हस्तत्राण पहने हुए हैं, जिनका धनुष बहुत बड़ा और पराक्रम महान् है, जिनके उत्तम रथपर सूर्य और ताराओंके चिह्नवाली अनेकों ध्वजाएँ हैं, मस्तकपर सोनेका टोप और उसके ऊपर श्वेत छत्र शोभा पा रहा है, जो मेरे मनमें भी उद्वेग पैदा करते रहते हैं—ये हैं हम सब लोगोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी। इनके पास सबसे पीछे चलना चाहिये; क्योंकि ये मेरे कार्यमें विघ्न नहीं डालेंगे।'

अर्जुनकी बातें सुनकर उत्तर सावधान हो गया और जहाँ कृपाचार्यका रथ खड़ा था, वहीं अर्जुनका रथ भी ले गया।

आचार्य कृप और द्रोणकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—विराटकुमारने रथ बढ़ाकर कृपाचार्यकी प्रदक्षिणा की और फिर उनके सामने उसे ले जाकर खड़ा कर दिया। तदनन्तर, अर्जुनने अपना नाम बताकर परिचय दिया और देवदत्त नामक बड़े भारी शङ्खको जोरसे बजाया। उससे इतनी ऊँची आवाज़ हुई, मानो पर्वत फट रहा हो। वह शङ्खनाद आकाशमें गूँज उठा और उससे जो प्रतिध्वनि हुई, वह वज्रपातके समान जान पड़ी। युद्धार्थी महारथी कृपाचार्यने भी अर्जुनपर कुपित हो अपना शङ्ख जोरसे बजाया। उसका शब्द तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया। फिर उन्होंने अपना महान् धनुष हाथमें ले उसकी टङ्कार की और अर्जुनके ऊपर दस हजार बाणोंकी वर्षा करके विकट गर्जना की। तब अर्जुनने भल्ल नामक तीखा बाण मारकर कृपाचार्यका धनुष और हस्तत्राण काट दिया और कवचके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। किन्तु उनके शरीरको तनिक भी क्लेश नहीं पहुँचाया। कृपाचार्यने दूसरा धनुष उठाया, पर अर्जुनने उसे भी काट दिया। इस प्रकार जब कृपाचार्यके कई धनुष काट डाले तो उन्होंने प्रज्वलित वज्रके समान दमकती हुई एक शक्ति अर्जुनके ऊपर फेंकी। आकाशसे उल्काके समान
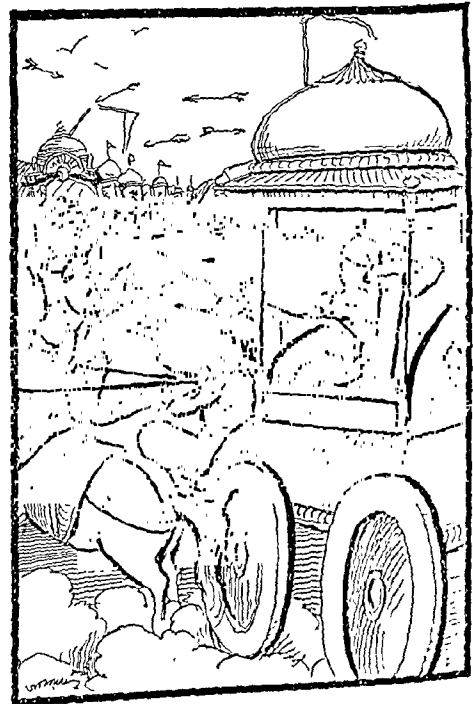
अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको अर्जुनने दस बाण मारकर काट डाला। फिर एक बाणसे कृपाचार्यके रथका जुआ काट दिया, चार बाणोंसे चारों घोड़े मार दिये और छठे बाणसे सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया। धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर कृपाचार्य हाथमें गदा लेकर कूद पड़े और उसे अर्जुनके ऊपर फेंका। यद्यपि कृपाचार्यने उस गदाको बहुत सँभलकर चलाया था, तो भी अर्जुनने बाण मारकर उसे उलटे लौटा दिया। तब कृपाचार्यकी सहायता करनेवाले योद्धा कुन्तीनन्दनको चारों ओरसे घेरकर बाण बरसाने लगे। यह देख विराटकुमार उत्तरने घोड़ोंको वामावर्त घुमाया और 'यमक' नामक मण्डल बनाकर शत्रुओंकी गति रोक दी। तब वे रथहीन कृपाचार्यको साथ ले अर्जुनके निकटसे भाग गये।

जब कृपाचार्य रणभूमिसे हटा लिये गये तो लाल घोड़ोंवाले रथपर बैठे हुए आचार्य द्रोण धनुष-बाणसे सुसज्जित हो अर्जुनके ऊपर चढ़ आये। दोनों ही अस्त्रविद्याके पूर्ण ज्ञाता, धैर्यवान् और महान् बलवान् थे; दोनों ही युद्धमें पराजित होनेवाले नहीं थे। इन दोनों गुरु-शिष्योंकी आपसमें मुठभेड़ होते देख भरतवंशियोंकी वह विशाल सेना बारंबार काँपने लगी। महारथी अर्जुन अपना रथ द्रोणाचार्यके पास ले गया और अत्यन्त हर्षमें भरकर मुसकराते हुए उसने गुरुको प्रणाम करके कहा—'युद्धमें सदा ही विजय पानेवाले गुरुदेव! हमलोग आजतक तो वनमें भटकते रहे हैं, अब शत्रुओंसे बदला लेना चाहते हैं; आपको हमलोगोंपर क्रोध नहीं करना चाहिये। जबतक आप मुझपर प्रहार नहीं करेंगे, मैं भी आपपर अस्त्र नहीं छोड़ूँगा—ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है; इसलिये पहले आप ही मुझपर प्रहार करें।'

तब आचार्य द्रोणने अर्जुनको लक्ष्य करके इक्कीस बाण मारे; वे बाण अभी पहुँचने भी नहीं पाये थे कि अर्जुनने बीचमें ही काट डाले। इसके बाद उन्होंने अर्जुनके रथपर हजार बाणोंकी वर्षा करते हुए अपना अद्भुत हस्तलाघव दिखलाया, तथा उनके श्वेतवर्णवाले घोड़ोंको भी घायल किया। इस प्रकार दोनों ही दोनोंपर समान भावसे बाण-वर्षा करने लगे। दोनों ही विख्यात पराक्रमी और अत्यन्त तेजस्वी थे। दोनोंका वेग वायुके समान तीव्र था और दोनों ही दिव्यास्त्रोंका प्रयोग जानते थे। अतः बाणोंकी झड़ी लगाते हुए वे वहाँ खड़े हुए राजाओंको मोहित करने लगे। युद्धके मुहानेपर खड़े हुए वीर विस्मयके साथ कहते थे, 'भला, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन है जो युद्धमें द्रोणाचार्यका सामना कर सके। क्षत्रियका धर्म भी कितना कठोर है, जिसके कारण अर्जुनको गुरुके साथ लड़ना पड़ रहा है!' द्रोणाचार्य ऐन्द्र, वायव्य और आग्नेय आदि जो-जो अस्त्र अर्जुनपर छोड़ते थे, उन सबको वह दिव्यास्त्रोंके द्वारा नष्ट कर देता था। आकाशचारी देवता आचार्य द्रोणकी प्रशंसा करते हुए कहते, 'सब दैत्यों और देवताओंपर विजय पानेवाले प्रबल प्रतापी अर्जुनके साथ जो द्रोणाचार्यने युद्ध किया, यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है।'

अर्जुनको युद्ध-कलाकी अच्छी शिक्षा मिली थी; वह निशाना मारनेमें कभी चूकता नहीं था, उसके हाथोंमें बड़ी फुर्ती थी और वह दूरतक अपने बाण फेंकता था। यह सब देखकर आचार्य द्रोणको भी बड़ा विस्मय होता। गाण्डीव धनुषको ऊपर उठाकर अमर्षमें भरा हुआ अर्जुन जब दोनों हाथोंसे खींचता, उस समय टिड्डियोंके समान बाणोंकी वर्षासे आकाश छा जाता और देखनेवाले आश्चर्यमें पड़कर धन्य-धन्य कहकर उसकी सराहना करने लगते थे। जब आचार्यके रथके पास लाखों बाणोंकी वर्षा होने लगी और वे रथसहित ढक गये, तब उस सेनामें बड़ा हाहाकार मच गया। द्रोणाचार्यके रथकी ध्वजा कट गयी थी, कवचके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे और उनका शरीर भी बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था; अतः वे जरा-सा मौका मिलते ही अपने शीघ्रगामी घोड़ोंको हाँककर तुरंत रणभूमिसे बाहर हो गये।

अर्जुनके साथ अश्वत्थामा और कर्णका युद्ध तथा उनकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर धावा किया। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार उसके धनुषसे बाणोंकी वृष्टि होने लगी। उसका वेग वायुके समान प्रचण्ड था, तो भी अर्जुनने सामना करके उसे रोक दिया और उसके घोड़ोंको अपने बाणोंसे मारकर अधमरा कर दिया। घायल हो जानेके कारण उन्हें दिशाका भान न रहा। महाबली अश्वत्थामाने भी अर्जुनकी जरा-सी असावधानी देख एक बाण मारा और उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी।

उसके इस अलौकिक कर्मको देखकर देवताओंने प्रशंसा की और द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा कृपाचार्यने भी साधुवाद दिया। तत्पश्चात् अश्वत्थामाने अपना श्रेष्ठ धनुष तानकर अर्जुनकी छातीमें कई बाण मारे। अर्जुन खिलखिलाकर हँस पड़ा और उसने गाण्डीवको बलपूर्वक झुकाकर तुरंत ही उसपर नयी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। फिर उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों ही शूरवीर थे; इसलिये अपने सर्पाकार प्रज्वलित बाणोंसे वे एक-दूसरेपर चोट करने लगे। महात्मा अर्जुनके पास दो दिव्य तरकस थे, जिसमें कभी बाणोंकी कमी नहीं होती थी; इसलिये वह युद्धमें पर्वतके समान अचल था। इधर अश्वत्थामा जल्दी-जल्दी प्रहार कर रहा था, इसलिये उसके बाण समाप्त हो गये; अतः उसकी अपेक्षा अर्जुनका जोर अधिक रहा। यह देखकर कर्णने अपने धनुषकी टङ्कार की; उसकी आवाज़ सुनकर अर्जुनने जब उधर देखा तो कर्णपर उसकी दृष्टि पड़ी। देखते ही अर्जुन क्रोधमें भर गया और कर्णको मार डालनेकी इच्छासे आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगा। फिर अश्वत्थामाको छोड़कर उसने सहसा कर्णपर धावा किया और निकट जाकर कहा—'कर्ण! तू सभामें जो बहुत डींग हाँकता था कि युद्धमें मेरे समान कोई है ही नहीं, उसे सत्य करके दिखानेका आज यह अवसर प्राप्त हुआ है। मुझसे मुकाबला हुए बिना ही जो तू बड़ी-बड़ी बातें बना चुका है, आज इन कौरवोंके बीच मेरे साथ युद्ध करके उसको सत्य सिद्ध कर। याद है, सभाके बीचमें दुष्ट-लोग द्रौपदीको कष्ट पहुँचा रहे थे और तू तमाशा देख रहा था? आज उस अन्यायका फल भोग। उन दिनों धर्मके बन्धनमें बँधे रहनेके कारण मैंने सब कुछ सहन कर लिया था, किन्तु आज उस क्रोधका फल इस युद्धमें मेरी विजयके रूपमें तू देख।'

कर्णने कहा—अर्जुन! तू जो कहता है, उसे करके दिखा। बातें बहुत बढ़-बढ़कर बनाता है; पर काम जो तूने किया है, वह किसीसे छिपा नहीं है। पहले जो कुछ तूने सहन किया है, उसमें तेरी असमर्थता ही कारण थी। हाँ, आजसे यदि देखूँगा, तो तेरा पराक्रम भी मान लूँगा। और मुझसे लड़नेकी जो तेरी इच्छा है, यह तो अभी-अभी हुई है; पुरानी नहीं जान पड़ती। अच्छा, आज तू मेरे साथ युद्ध कर और मेरा बल भी देख।

अर्जुनने कहा—राधापुत्र! अभी थोड़ी ही देर हुई, तू मेरे सामने युद्धसे भाग गया था; इसीलिये तेरी जान बच गयी, केवल तेरा छोटा भाई ही मारा गया। भला, तेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य होगा, जो अपने भाईको मरवाकर युद्ध छोड़कर भाग भी जाय और सत्पुरुषोंके बीच खड़ा होकर ऐसी बातें भी बनावे।

ऐसा कहकर अर्जुन कर्णके ऊपर कवचको भी छिन्न-भिन्न कर देनेवाले बाणोंका प्रहार करने लगा। कर्ण भी बाणोंकी वृष्टि करता हुआ मुकाबलेमें डट गया। अर्जुनने पृथक्-पृथक् बाण मारकर कर्णके घोड़ोंको बींध डाला, उसका हस्तत्राण काट दिया और भाथे लटकानेकी रस्सी भी काट डाली। तब कर्णने भी तरकससे तीर निकाले और अर्जुनके हाथोंको बींध दिया, इससे उसकी बँधी हुई मुट्ठी खुल गयी। तत्पश्चात् महाबाहु अर्जुनने कर्णके धनुषको काट दिया। धनुष कट जानेपर उसने शक्तिका प्रहार किया; किन्तु अर्जुनने बाणोंसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देख कर्णके अनुगामी योद्धाओंने एक साथ अर्जुनपर आक्रमण किया; परन्तु गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंद्वारा वे सब-के-सब यमलोकके अतिथि हो गये। इसके बाद अर्जुनने कानतक धनुष खींचकर कई तीखे बाणोंसे कर्णके घोड़ोंको बींध डाला। घायल हुए घोड़े पृथ्वीपर

गिरकर मर गये। फिर अर्जुनने एक तेजस्वी बाण कर्णकी छातीमें मारा। वह बाण कवचको भेदकर उसके शरीरमें घुस गया। कर्ण बेहोश हो गया, उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। भीतर-ही-भीतर पीड़ा सहता हुआ वह युद्ध छोड़कर उत्तर दिशाकी ओर भाग गया। महारथी अर्जुन तथा उत्तर उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे।

अर्जुन और भीष्मका युद्ध तथा भीष्मका मूर्च्छित होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—कर्णपर विजय पानेके अनन्तर अर्जुनने उत्तरसे कहा—'जहाँ रथकी ध्वजामें सुवर्णमय ताड़का चिह्न दिखायी दे रहा है, उसी सेनाके पास मुझे ले चलो। वहाँ मेरे पितामह भीष्मजी, जो देखनेमें देवताके समान जान पड़ते हैं, रथमें विराजमान हैं और मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं।' उत्तरका शरीर बाणोंसे बहुत घायल हो चुका था। अतः उसने अर्जुनसे कहा—'वीरवर! अब मैं आपके घोड़ोंको काबूमें नहीं रख सकता। मेरे प्राण संतप्त हैं, मन घबरा रहा है। आजतक किसी भी युद्धमें मैंने इतने शूरवीरोंका समागम नहीं देखा था। आपके साथ जब इन लोगोंका युद्ध देखता हूँ, तो मेरा मन डाँवाडोल हो जाता है। गदाओंके टकरानेका शब्द, शङ्खोंकी ऊँची ध्वनि, वीरोंका सिंहनाद, हाथियोंकी चिग्घाड़ तथा बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान गाण्डीवकी टङ्कार सुनते-सुनते मेरे कान बहरे हो रहे हैं, स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी है। अब मुझमें चाबुक और बागडोर सँभालनेकी शक्ति नहीं रह गयी है।'

अर्जुनने कहा—नरश्रेष्ठ! डरो मत, धैर्य रक्खो; तुमने भी युद्धमें बड़े अद्भुत पराक्रम दिखाये हैं। तुम राजाके पुत्र हो। शत्रुओंका दमन करनेवाले मत्स्यनरेशके विख्यात वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। इसलिये इस अवसरपर तुम्हें उत्साहहीन नहीं होना चाहिये। राजपुत्र! भलीभाँति धीरज रखकर रथपर बैठो और युद्धके समय घोड़ोंपर नियन्त्रण रक्खो। अच्छा, अब तुम मुझे भीष्मजीकी सेनाके सामने ले चलो और देखो कि मैं किस प्रकार दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करता हूँ। आज सारी सेनाको तुम चक्रकी भाँति घूमते हुए देखोगे। इस समय मैं तुम्हें बाण चलानेकी तथा अन्य शस्त्रोंके सञ्चालनकी भी अपनी योग्यता दिखाऊँगा। मैंने मुट्ठीको दृढ़ रखना इन्द्रसे, हाथोंकी फुर्ती ब्रह्माजीसे तथा संकटके अवसरपर विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेकी कला प्रजापतिसे सीखी है। इसी प्रकार रुद्रसे रौद्रास्त्रकी, वरुणसे वारुणास्त्रकी, अग्निसे आग्नेयास्त्रकी और वायु देवतासे वायव्यास्त्रकी शिक्षा प्राप्त की है। अतः तुम भय मत करो, मैं अकेले ही कौरवरूपी वनको उजाड़ डालूँगा।

इस प्रकार अर्जुनने जब धीरज बँधाया, तब उत्तर उसके रथको भीष्मजीके द्वारा सुरक्षित रथसेनाके पास ले गया। कौरवोंपर विजय पानेकी इच्छासे अर्जुनको अपनी ओर आते देख निष्ठुर पराक्रम दिखानेवाले गङ्गानन्दन भीष्मने धीरतापूर्वक उसकी गति रोक दी। तब अर्जुनने बाण मारकर भीष्मजीके रथकी ध्वजा जड़से काटकर गिरा दी। इसी समय महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति—इन चार वीरोंने आकर धनञ्जयको चारों ओरसे घेर लिया। दुःशासनने एक बाणसे विराटनन्दन उत्तरको बींधा और दूसरेसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचायी। अर्जुनने भी तीखी धारवाले बाणसे दुःशासनका सुवर्णजटित धनुष काट दिया और उसकी छातीमें पाँच बाण मारे। उन बाणोंसे उसको बड़ी पीड़ा हुई और वह युद्ध छोड़कर भाग गया। इसके बाद विकर्ण अपने तीखे बाणोंसे अर्जुनको घायल करने लगा। तब अर्जुनने उसके ललाटमें एक बाण मारा। उसके लगते ही घायल होकर वह रथसे गिर पड़ा। तदनन्तर दुःसह और विविंशति दोनों एक साथ आकर अपने भाईका बदला लेनेके लिये अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुन तनिक भी विचलित नहीं हुआ, उसने दो तीखे बाण छोड़कर उन दोनों भाइयोंको एक ही साथ बींध दिया और उनके घोड़ोंको भी मार डाला।

जब सेवकोंने देखा कि दोनोंके घोड़े मर गये और शरीर घायल होकर लोहू-लुहान हो रहे हैं, तो वे उन्हें दूसरे रथपर बिठाकर युद्धभूमिसे हटा ले गये। और जिसका निशाना कभी खाली नहीं जाता था, वह महाबली अर्जुन रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगा।

जनमेजय! धनञ्जयके ऐसे पराक्रम देखकर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा महा-

रथी कृपाचार्य अमर्षसे भर गये और उसे मार डालनेकी इच्छासे अपने दृढ धनुषोंकी टङ्कार करते हुए पुनः चढ़ आये। वहाँ आकर सब एक साथ अर्जुनपर बाण बरसाने लगे। उनके दिव्यास्त्रोंसे सब ओरसे आच्छन्न हो जानेके कारण उसके शरीरका दो अंगुल भाग भी ऐसा नहीं बचा था, जिसपर बाण न लगे हों। ऐसी अवस्थामें अर्जुनने तनिक हँसकर अपने गाण्डीव धनुषपर ऐन्द्र अस्त्रका सन्धान किया और बाणोंकी झड़ी लगाकर समस्त कौरवोंको ढक दिया। वर्षा होते समय जैसे बिजली आकाशमें चमककर सम्पूर्ण दिशाओं और भूमण्डल को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार गाण्डीव धनुषसे छूटे हु बाणोंद्वारा दसों दिशाएँ आच्छन्न हो गयीं। रणभूमिमें ख हुए हाथीसवार और रथी सब मूर्छित हो गये। सबका उत्सा ठंडा पड़ गया, किसीको होश न रहा। सारी सेना तितर-बित हो गयी; सभी योद्धा जीवनसे निराश होकर चारों ओ भागने लगे।

यह देखकर शान्तनुनन्दन भीष्मजीने सुवर्णजटित धनुष और मर्मभेदी बाण लेकर अर्जुनके ऊपर धावा किया। उन्होंने अर्जुनकी ध्वजापर फुफकारते हुए सर्पोंके समान आठ बाण मारे। उनसे ध्वजापर स्थित हुए वानरको बड़ी चोट पहुँची और उसके अग्रभागमें रहनेवाले भूत भी घायल हुए। तब अर्जुनने एक बहुत बड़े भालेसे भीष्मजीका छत्र काट डाला; कटते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। साथ ही उसने उनकी ध्वजापर भी बाणोंसे आघात किया और शीघ्रतापूर्वक उनके घोड़ोंको, पार्श्वरक्षकको तथा सारथिको भी घायल कर दिया। भीष्मपितामह इस बातको सहन नहीं कर सके। वे अर्जुनपर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे। जवाबमें अर्जुनने भी दिव्यास्त्रोंका प्रहार किया। उस समय इन दोनों वीरोंमें बलि और इन्द्रके समान रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा। कौरव प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'भीष्मजीने अर्जुनके साथ जो युद्ध ठाना है, यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान् है, तरुण है, रणकुशल और फुर्ती करनेवाला है; भला, युद्धमें भीष्म और द्रोणके सिवा दूसरा कौन इसके वेग-को सह सकता है? अर्जुन और भीष्म दोनों ही महापुरुष उस युद्धमें प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते हुए विचर रहे थे।

अर्जुन और भीष्म सभी अस्त्रोंके ज्ञाता थे। पहले तो इनमें दिव्यास्त्रोंका युद्ध हुआ, इसके बाद बाणोंका संग्राम छिड़ा। अर्जुनने भीष्मका सुवर्णमय धनुष काट दिया। तब महारथी भीष्मने एक ही क्षणमें दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन्होंने अपने बाणोंसे अर्जुनकी बायीं पसली बींध डाली। तब उसने भी हँसकर, तीखी धारवाला एक बाण मारा और भीष्मका धनुष काट दिया। उसके बाद दस बाणोंसे उनकी छाती बींध डाली। इससे भीष्मजीको बड़ी पीड़ा हुई और वे रथका कूबर थामकर देरतक बैठे रह गये। भीष्मजीको अचेत जानकर सारथिको अपने कर्तव्यका स्मरण हुआ और वह उनकी रक्षाके लिये उन्हें युद्धभूमिसे बाहर ले गया।

दुर्योधनकी पराजय, कौरव-सेनाका मोहित होना और कुरुदेशको लौटना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब भीष्मजी संग्रामका मुहाना छोड़कर रणसे बाहर हो गये, उस समय दुर्योधन अपने रथकी पताका फहराता तथा गर्जता हुआ हाथमें धनुष ले धनञ्जयके ऊपर चढ़ आया। उसने कानतक धनुष खींच-कर अर्जुनके ललाटमें बाण मारा; वह बाण ललाटमें धँस गया और उससे गरम-गरम रक्तकी धारा बहने लगी। इससे अर्जुनका क्रोध बढ़ गया और वह विषाग्निके समान तीखे बाणोंसे दुर्योधनको बींधने लगा। इस प्रकार अर्जुन दुर्योधनको और दुर्योधन अर्जुनको बींधते हुए आपसमें युद्ध करने लगे। तत्पश्चात् अर्जुनने एक बाण मारकर दुर्योधनकी छाती छेद दी और उसे घायल कर दिया। फिर उन्होंने कौरवोंके मुख्य-मुख्य योद्धाओंको मार भगाया। योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने भी अपना रथ पीछे लौटाया और युद्धसे भागने लगा। अर्जुनने देखा दुर्योधनका शरीर घायल हो गया है और वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ बड़ी तेजीके साथ
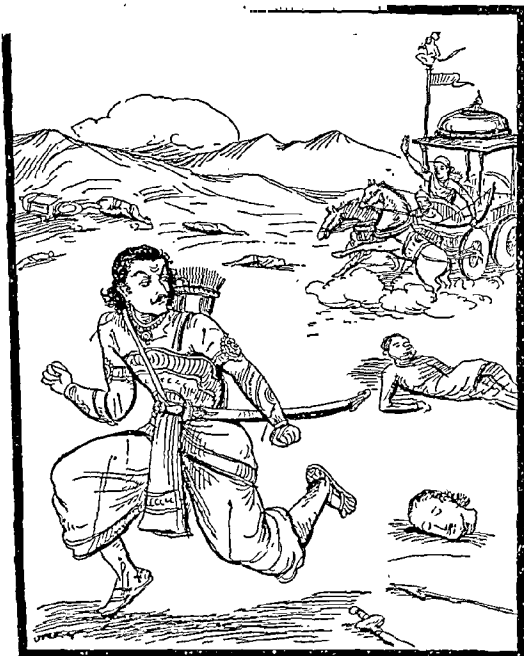
भागा जा रहा है; तब उसने युद्धकी इच्छासे अपनी भुजाएँ ठोंककर दुर्योधनको ललकारते हुए कहा—'धृतराष्ट्रनन्दन ! युद्धमें पीठ दिखाकर क्यों भागा जा रहा है, अरे ! इससे तेरी विशाल कीर्ति नष्ट हो रही है ! तेरे विजयके बाजे जैसे पहले बजते थे, वैसे अब नहीं बज रहे हैं ! तूने जिन्हें राज्यसे उतार दिया है, उन्हीं धर्मराज युधिष्ठिरका आज्ञाकारी यह मध्यम पाण्डव अर्जुन युद्धके लिये खड़ा है, जरा पीछे फिरकर मुँह तो दिखा । राजाके कर्तव्यका तो स्मरण कर । वीर पुरुष दुर्योधन ! अब आगे-पीछे तेरा कोई रक्षक नहीं दिखायी देता, इसलिये भाग जा और इस पाण्डवके हाथसे अपने प्यारे प्राणोंको बचा ले ।'

इस प्रकार युद्धमें महात्मा अर्जुनके ललकारनेपर अंकुशकी चोट खाये हुए मत्त गजराजके समान दुर्योधन लौट पड़ा । अपने क्षत-विक्षत शरीरको किसी तरह सँभालकर उसे पुनः युद्धमें आते देख कर्ण उत्तर ओरसे उसकी रक्षा करता हुआ अर्जुनके मुकाबलेमें आ गया । पश्चिमसे उसकी रक्षा करनेके लिये भीष्मजी धनुष चढ़ाये लौट आये । द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन भी अपने बड़े-बड़े धनुष लिये शीघ्र ही आये । दिव्य अस्त्र धारण किये हुए उन योद्धाओंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया और जैसे बादल पहाड़के ऊपर सब ओरसे पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । अर्जुनने अपने अस्त्र छोड़कर शत्रुओंके अस्त्रोंका निवारण कर दिया और कौरवोंको लक्ष्य करके सम्मोहन नामक अस्त्र प्रकट किया, जिसका निवारण होना कठिन था । इसके बाद उसने भयङ्कर आवाज करनेवाले अपने शङ्खको दोनों हाथोंसे थामकर उच्च स्वरसे बजाया । उसकी गम्भीर ध्वनिसे दिशा-विदिशा, भूलोक तथा आकाश गूँज उठे । अर्जुनके बजाये हुए उस शङ्खकी आवाज़ सुनकर कौरव वीर बेहोश हो गये, उनके हाथोंसे धनुष और बाण गिर पड़े तथा वे सभी परम शान्त—निश्चेष्ट हो गये ।

उन्हें अचेत हुए देख अर्जुनको उत्तराकी बातका स्मरण हो आया; अतः उसने उत्तरसे कहा—'राजकुमार ! जबतक इन कौरवोंको होश नहीं होता, तबतक ही तुम सेनाके बीचसे निकल जाओ और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके श्वेत, कर्णके पीले तथा अश्वत्थामा एवं दुर्योधनके नीले वस्त्र लेकर लौट आओ । मैं समझता हूँ पितामह भीष्मजी सचेत हैं, क्योंकि वे इस सम्मोहनास्त्रको निवारण करना जानते हैं । इसलिये उनके घोड़ोंको अपनी बायीं ओर छोड़कर जाना; क्योंकि जो होशमें हैं, उनसे इसी प्रकार सावधान होकर चलना चाहिये ।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर विराटकुमार उत्तर घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर रथसे कूद पड़ा और महारथियोंके वस्त्र ले

पुनः शीघ्र ही उसपर आ बैठा । तदनन्तर वह रथ हाँककर अर्जुनको युद्धके घेरेसे बाहर ले चला । इस प्रकार अर्जुनको जाते देख भीष्मजी उसे बाणोंसे मारने लगे । तब अर्जुनने भी उनके घोड़ोंको मारकर उन्हें भी दस बाणोंसे बींध दिया; इसके बाद सारथिके भी प्राण ले लिये । फिर उन्हें युद्धभूमिमें छोड़कर वह रथियोंके समूहसे बाहर आ गया । उस समय बादलोंसे प्रकट हुए सूर्यकी भाँति उसकी शोभा हुई ।

इसके बाद सभी कौरव वीर धीरे-धीरे होशमें आ गये । दुर्योधनने जब देखा कि अर्जुन युद्धके घेरेसे बाहर होकर अकेले खड़ा है, तो वह भीष्मजीसे घबराहटके साथ बोला—'पितामह ! यह आपके हाथसे कैसे बच गया ? अब भी इसका मान-मर्दन कीजिये, जिससे छूटने न पावे ।' भीष्मने हँसकर कहा—'कुरुराज ! जब तू अपने विचित्र धनुष और बाणोंको त्यागकर यहाँ अचेत पड़ा हुआ था, उस

समय तेरी बुद्धि कहाँ थी, पराक्रम कहाँ चला गया था ? अर्जुन कभी निर्दयताका व्यवहार नहीं कर सकता, उसका मन कभी पापाचारमें प्रवृत्त नहीं होता; वह त्रिलोकीके राज्यके लिये भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यही कारण है कि उसने इस युद्धमें हम सब लोगोंके प्राण नहीं लिये। अब तू शीघ्र ही कुरुदेशको लौट चल, अर्जुन भी गौओंको जीतकर लौट जायगा। मोहवश अब अपने स्वार्थका भी नाश न कर; सबको अपने लिये हितकर कार्य ही करना चाहिये।'

पितामहके ये हितकारी वचन सुनकर दुर्योधनको अब इस युद्धमें किसी लाभकी आशा न रही। वह भीतर-ही-भीतर अत्यन्त अमर्षका भार लिये लंबी साँसें भरता हुआ चुप हो गया। अन्य योद्धाओंको भी भीष्मका वह कथन हितकर प्रतीत हुआ। युद्ध करनेसे तो अर्जुनरूपी अग्नि उत्तरोत्तर प्रज्वलित ही होती जाती थी, इसलिये दुर्योधनकी रक्षा करते हुए सबने लौट जानेकी ही राय पसंद की।

कौरव वीरोंको लौटते देख अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म और आचार्य द्रोणके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया तथा अश्वत्थामा, कृपाचार्य और अन्यान्य माननीय कुरुवंशियोंको बाणोंकी विचित्र रीतिसे नमस्कार किया। फिर एक बाण मारकर दुर्योधनके रत्नजटित मुकुटको काट डाला। इस प्रकार माननीय वीरोंका सत्कार कर उसने गाण्डीव धनुषकी टङ्कारसे जगत्को गुंजायमान कर दिया। इसके बाद सहसा देवदत्त नामक शङ्ख बजाया, जिसे सुनकर शत्रुओंका दिल दहल गया। उस समय अपने रथकी सुवर्णमालामण्डित ध्वजासे समस्त शत्रुओंका तिरस्कार करके अर्जुन विजयोल्लाससे सुशोभित हो रहा था। जब कौरव चले गये तो अर्जुनने प्रसन्न होकर उत्तरसे कहा—'राजकुमार ! अब घोड़ोंको लौटाओ; तुम्हारी गौओंको हमने जीत लिया और शत्रु भाग गये; इसलिये अब आनन्दपूर्वक अपने नगरकी ओर चलो।'

कौरवोंका अर्जुनके साथ होनेवाला यह अद्भुत युद्ध देखकर देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए और अर्जुनके पराक्रमका स्मरण करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये।

उत्तरका अपने नगरमें प्रवेश, स्वागत तथा विराटके द्वारा युधिष्ठिरका तिरस्कार एवं क्षमाप्रार्थना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार उत्तम दृष्टि रखनेवाला अर्जुन संग्राममें कौरवोंको जीतकर विराटका वह महान् गोधन लौटाकर ले आया। जब धृतराष्ट्रके पुत्र इधर-उधर सब दिशाओंमें भाग गये, उसी समय बहुत-से कौरवोंके सैनिक, जो घने जङ्गलमें छिपे हुए थे, निकलकर डरते-डरते अर्जुनके पास आये। वे भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे; परदेशमें होनेके कारण उनकी विकलता और भी बढ़ गयी थी। उन्होंने प्रणाम करके अर्जुनसे कहा—'कुन्तीनन्दन ! हमलोग आपकी किस आज्ञाका पालन करें ?'

अर्जुनने कहा—तुमलोगोंका कल्याण हो। डरो मत, अपने देशको लौट जाओ। मैं सङ्कटमें पड़े हुएको नहीं मारना चाहता। इस बातके लिये तुमलोगोंको पूरा विश्वास दिलाता हूँ।

वह अभयदानयुक्त वाणी सुनकर वहाँ आये हुए सभी योद्धाओंने आयु, कीर्ति तथा यश देनेवाले आशीर्वादोंसे अर्जुनको प्रसन्न किया। उसके बाद अर्जुनने उत्तरको हृदयसे लगाकर कहा—'तात ! यह तो तुम्हें मालूम ही हो गया है कि तुम्हारे पिताके पास पाण्डव निवास करते हैं; परन्तु अपने नगरमें प्रवेश करके तुम पाण्डवोंकी प्रशंसा न करना, नहीं तो तुम्हारे पिता डरकर प्राण त्याग देंगे।' उत्तर बोला—'सव्यसाचिन् ! जबतक आप इस बातको प्रकाशित करनेके लिये स्वयं मुझसे नहीं कहेंगे, तबतक पिताजीके निकट आपके विषयमें मैं कुछ भी नहीं कहूँगा।'

तदनन्तर, अर्जुन पुनः श्मशानभूमिमें आया और उसी शमीवृक्षके पास आकर खड़ा हुआ। उसी समय उसके रथकी ध्वजापर बैठा हुआ अग्निके समान तेजस्वी विशालकाय वानर भूतोंके साथ ही आकाशमें उड़ गया। इसी प्रकार जो माया थी, वह भी विलीन हो गयी। फिर रथपर सिंहके चिह्नवाली राजा विराटकी ध्वजा चढ़ा दी गयी और अर्जुनके सब शस्त्र, गाण्डीव धनुष तथा तरकस पुनः शमीवृक्षमें बाँध

दिये गये। तत्पश्चात् महात्मा अर्जुन सारथि बनकर बैठा और उत्तर रथी बनकर आनन्दपूर्वक नगरकी ओर चला। अर्जुनने पुनः चोटी गूँथकर धारण कर ली और बृहन्नलाके वेषमें होकर घोड़ोंकी बागडोर सँभाली। रास्तेमें जाकर उसने उत्तरसे कहा—'राजकुमार! अब इन ग्वालोंको आज्ञा दो कि
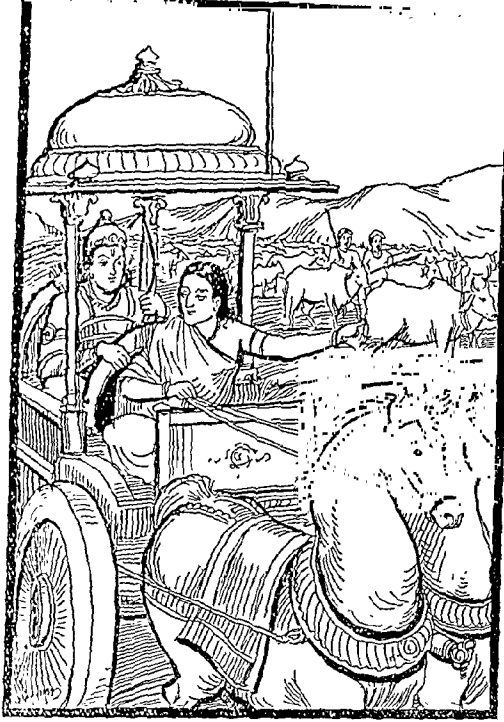
वे शीघ्र ही नगरमें जाकर प्रिय समाचार सुनावें और तुम्हारी विजयकी घोषणा करें।'

अर्जुनकी बात मानकर उत्तरने तुरंत ही दूतोंको आज्ञा दी—'तुमलोग नगरमें पहुँचकर खबर दो कि शत्रु हारकर भाग गये, अपनी विजय हुई और गौएँ जीतकर वापस लायी गयी हैं।'

जनमेजय! सेनापति राजा विराटने भी दक्षिण दिशासे गौओंको जीतकर चारों पाण्डवोंको साथ लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश किया। उसने संग्राममें त्रिगर्तोंपर विजय पायी थी। जिस समय अपनी सब गौएँ साथ लेकर पाण्डवों-सहित वहाँ पदार्पण किया, उस समय उसकी विजयश्रीसे अपूर्व शोभा हो रही थी। राजसभामें पहुँचकर उसने सिंहासनको सुशोभित किया; उसे देखकर सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़ा हर्ष हुआ। सब लोग पाण्डवोंके साथ मिलकर राजाकी सेवा करने लगे। इसके बाद राजा विराटने पूछा—'कुमार उत्तर कहाँ गया है?' इसके उत्तरमें रनिवासमें रहनेवाली स्त्रियों और कन्याओंने निवेदन किया—'महाराज! आपके युद्धमें चले जानेपर कौरव यहाँ आये और गौओंको हरकर ले जाने लगे। तब कुमार उत्तर क्रोधमें भर गया और अत्यन्त साहसके कारण अकेले ही उन्हें जीतनेके लिये चल दिया। साथमें सारथिके रूपमें बृहन्नला है। कौरवोंकी सेनामें भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा—ये छः महारथी आये हैं।'

विराटने जब सुना कि 'मेरा पुत्र अकेले बृहन्नलाको सारथि बनाकर केवल एक रथ साथमें ले कौरवोंसे युद्ध करने गया है' तो उसे बड़ा दुःख हुआ और अपने प्रधान मन्त्रियोंसे बोला—'मेरे जो योद्धा त्रिगर्तोंके साथ युद्धमें घायल न हुए हों, वे बहुत-सी सेना साथ लेकर उत्तरकी रक्षाके लिये जायँ।' सेनाको जानेकी आज्ञा देकर उसने पुनः मन्त्रियोंसे कहा—'पहले शीघ्र इस बातका पता लगाओ कि कुमार जीवित है या नहीं। जिसका सारथि एक हिजड़ा है, उसके अबतक जीवित रहनेकी तो सम्भावना ही नहीं है।'

राजा विराटको दुखी देखकर धर्मराज युधिष्ठिरने हँसकर कहा—राजन्! यदि बृहन्नला सारथि है तो विश्वास कीजिये, आपका पुत्र समस्त राजाओं, कौरवों तथा देवता, असुर, सिद्ध और यक्षोंको भी युद्धमें जीत सकता है।' इतनेमें उत्तरके भेजे हुए दूत विराटनगरमें आ पहुँचे और उन्होंने उत्तर-कुमारकी विजयका समाचार सुनाया। उसे सुनकर मन्त्रीने राजाके पास आकर कहा—'महाराज! उत्तरने सब गौओंको जीत लिया, कौरव हार गये और कुमार अपने सारथिके साथ कुशलपूर्वक आ रहे हैं।' युधिष्ठिर बोले—'यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि गौएँ जीतकर वापस लायी गयीं और कौरव हारकर भाग गये। किन्तु इसमें आश्चर्य करनेकी आवश्यकता नहीं है; जिसका सारथि बृहन्नला हो, उसकी विजय तो निश्चित ही है।'

पुत्रकी विजयका समाचार सुनकर राजा विराटके हर्षका ठिकाना न रहा। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। दूतोंको इनाम देकर उन्होंने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'सड़कोंके किनारे विजयपताका फहरानी चाहिये। फूलों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा होनी चाहिये। कुमार और प्रधान-प्रधान योद्धा गाजे-बाजेके साथ मेरे पुत्र

अगवानीमें जायँ। तथा एक आदमी हाथीपर बैठकर घंटा बजाते हुए सारे नगरमें मेरी विजयका समाचार सुनावे।'

राजाकी इस आज्ञाको सुनकर समस्त नगरनिवासी, सौभाग्यवती तरुणी स्त्रियाँ तथा सूत-मागध आदि माङ्गलिक वस्तुएँ हाथमें ले गाजे-बाजेके साथ विराटकुमार उत्तरको लेनेके लिये आगे गये। इन सबको भेजनेके पश्चात् राजा विराट बड़े प्रसन्न होकर बोले—'सैरन्ध्री! जा, पासे ले आ; कंकजी! अब जूआ आरम्भ करना चाहिये।' यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'मैंने सुना है, अत्यन्त हर्षसे भरे हुए चालाक खिलाड़ीके साथ जूआ नहीं खेलना चाहिये। आप भी आज आनन्दमग्न हो रहे हैं, अतः आपके साथ खेलनेका साहस नहीं होता। भला, आप जूआ क्यों खेलते हैं? इसमें तो बहुत-से दोष हैं। जहाँतक सम्भव हो, इसका त्याग ही कर देना उचित है। आपने युधिष्ठिरको देखा होगा, अथवा उनका नाम तो सुना ही होगा; वे अपना विशाल साम्राज्य तथा भाइयोंको भी जूएमें हार गये थे। इसीलिये मैं जूएको पसंद नहीं करता। तो भी यदि आपकी विशेष इच्छा हो तो खेलेंगे ही।'

जूआका खेल आरम्भ हो गया। खेलते-खेलते विराटने कहा—'देखो, आज मेरे बेटेने उन प्रसिद्ध कौरवोंपर विजय पायी है!' युधिष्ठिरने कहा—'बृहन्नला जिसका सारथि हो वह भला, युद्धमें क्यों नहीं जीतेगा?' यह उत्तर सुनते ही राजा कोपमें भरकर बोले—'अधम ब्राह्मण! तू मेरे बेटेकी प्रशंसा एक हिजड़ेके साथ कर रहा है! मित्र होनेके कारण मैं तेरे इस अपराधको तो क्षमा करता हूँ; किन्तु यदि जीवित रहना चाहता है, तो फिर कभी ऐसी बात न कहना।' राजा युधिष्ठिरने कहा—'राजन्! जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि महारथी युद्ध करनेको आये हों, वहाँ बृहन्नलाके सिवा दूसरा कौन है जो उनका मुकाबला कर सके। जिसके समान किसी मनुष्यका बाहुबल न हुआ है न आगे होनेकी आशा है, जो देवता, असुर और मनुष्योंपर भी विजय पा चुका है, ऐसे वीरको सहायक पाकर उत्तर क्यों न विजयी होगा?' विराटने कहा—'अनेकों बार मना किया, किन्तु तेरी ज़बान बंद न हुई! सच है, यदि कोई दण्ड देनेवाला न रहे तो मनुष्य धर्मका आचरण नहीं कर सकता!' यह कहते-कहते राजा कोपसे अधीर हो गया और पासा उठाकर उसने युधिष्ठिरके मुँहपर दे मारा। फिर डाँटते हुए कहा—'अब फिर कभी ऐसा न करना।'

पासा जोरसे लगा। युधिष्ठिरकी नाकसे रक्त निकलने लगा। उसकी बूँद पृथ्वीपर पड़नेके पहले ही युधिष्ठिरने

अपने दोनों हाथोंमें उसे रोक लिया और पास ही खड़ी हुई

द्रौपदीकी ओर देखा। द्रौपदी अपने पतिका अभिप्राय समझ गयी। वह जलसे भरा हुआ एक सोनेका कटोरा ले आयी और उसमें वह सब रक्त उसने ले लिया।

तदनन्तर राजकुमार उत्तरने नगरमें बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रवेश किया। विराटनगरके स्त्री-पुरुष तथा आस-पासके प्रान्तके लोग भी उसकी अगवानीमें आये थे; सबने कुमारका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद राजभवनके द्वारपर पहुँचकर उसने पिताके पास समाचार भेजा। द्वारपालने दरबारमें जाकर विराटसे कहा—'महाराज! बृहन्नलाके साथ राजकुमार उत्तर ड्योढ़ीपर खड़े हैं।' इस शुभ संवादसे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने द्वारपालसे कहा—'दोनोंको शीघ्र ही भीतर लिवा लाओ, मैं उनसे मिलनेको उत्सुक हूँ।' इसी समय युधिष्ठिरने द्वारपालके कानमें धीरेसे जाकर कहा—''पहले सिर्फ उत्तरको यहाँ ले आना, बृहन्नलाको नहीं; क्योंकि उसने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि 'जो संग्रामके सिवा कहीं अन्यत्र मेरे शरीरमें घाव कर देगा या रक्त निकाल देगा, उसका प्राण ले लूँगा।' मेरे बदनमें रक्त देखकर वह क्रोधमें भर जायगा और उस दशामें वह विराटको उनकी सेना, सवारी तथा मन्त्रियोंसहित मार डालेगा।''

तत्पश्चात् पहले उत्तरने ही सभाभवनमें प्रवेश किया। आते ही पिताके चरणोंमें सिर झुकाया, फिर कंकको भी प्रणाम किया। उसने देखा, 'कंकजीकी नासिकासे रक्त बह रहा है और वे एकान्तमें भूमिपर बैठे हुए हैं, साथ ही सैरन्ध्री उनकी सेवामें उपस्थित है।' तब उसने बड़ी उतावलीके साथ अपने पितासे पूछा—'राजन्! इन्हें किसने मार दिया? किसने यह पाप कर डाला?' विराटने कहा—'मैंने ही इसे मारा है, यह बड़ा कुटिल है; इसका जितना आदर किया जाता है, उतनेके योग्य यह कदापि नहीं है। देखो न, जब तुम्हारे शौर्यकी प्रशंसा की जाती है उस समय यह उस हिजड़ेकी तारीफ करने लगता है!' उत्तर बोला—'महाराज! आपने बहुत बुरा काम किया; इन्हें जल्दी प्रसन्न कीजिये, नहीं तो ब्राह्मणका क्रोध आपको समूल नष्ट कर देगा।'

बेटेकी बात सुनकर राजा विराटने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे क्षमायाचना की। राजाको क्षमा माँगते देख युधिष्ठिर बोले—'राजन्! क्षमाका व्रत तो मैंने चिरकालसे ले रक्खा है, मुझे क्रोध आता ही नहीं। मेरी नाकसे निकला हुआ यह रक्त यदि पृथ्वीपर गिर पड़ता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्यके साथ ही तुम्हारा विनाश हो जाता; इसीलिये रक्तको मैंने गिरने नहीं दिया था।'

जब युधिष्ठिरका लोहू निकलना बंद हो गया, तब बृहन्नलाने भी भीतर पहुँचकर विराट और कंकको प्रणाम किया। विराटने अर्जुनके सामने ही उत्तरकी प्रशंसा शुरू की—'कैकेयीनन्दन! तुम्हें पाकर आज मैं वास्तवमें पुत्रवान् हूँ। तुम्हारे-जैसा पुत्र न तो मेरे हुआ और न होनेकी सम्भावना है। बेटा! जो एक साथ एक हजार निशाना मारनेमें भी कभी नहीं चूकता उस कर्णके साथ, इस जगत्में जिनकी बराबरी करनेवाला कोई है ही नहीं उन भीष्मजीके साथ तथा कौरवोंके आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और योद्धाओंको कँपा देनेवाले कृपाचार्यके साथ तुमने कैसे मुकाबला किया? तथा दुर्योधनके साथ भी तुम्हारा किस प्रकार युद्ध हुआ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ।'

उत्तरने कहा—महाराज! यह मेरी विजय नहीं है। यह सब काम एक देवकुमारने किया है। मैं तो डरकर भागा आ रहा था, किन्तु उस देवपुत्रने मुझे लौटाया और स्वयं ही उसने रथपर बैठकर गौओंको जीता और कौरवोंको हराया है। उसीने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भीष्म,

अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन—इन छः महारथियोंको बाण मारकर रणभूमिसे भगाया है। उसीने उनकी सारी सेनाको हराकर हँसते-हँसते उनके वस्त्र भी छीन लिये।

विराट बोले—'वह महाबाहु वीर देवपुत्र कहाँ है? मैं उसे देखना चाहता हूँ।' उत्तरने कहा—'वह तो वहीं अन्तर्धान हो गया, कल-परसोंतक यहाँ प्रकट होकर दर्शन देगा।'

उत्तरका यह संकेत अर्जुनके ही विषयमें था, पर नपुंसक-वेषमें छिपे होनेके कारण विराट उसे पहचान न सका। उनकी आज्ञासे बृहन्नलाने वे सब कपड़े, जो युद्धसे लाये गये थे, राजकुमारी उत्तराको दे दिये। उन बहुमूल्य एवं रंग-बिरंगे वस्त्रोंको पाकर उत्तरा बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद अर्जुनने राजा युधिष्ठिरके प्रकट होनेके विषय-

में उत्तरसे सलाह करके उसके अनुसार कार्य किया।

पाण्डवोंकी पहचान और अर्जुनके साथ उत्तराके विवाहका प्रस्ताव

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर इसके तीसरे दिन पाँचों महारथी पाण्डवोंने स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किये और राजोचित आभूषणोंसे भूषित हो युधिष्ठिरको आगे करके सभाभवनमें प्रवेश किया। सभामें पहुँचकर वे राजाओंके योग्य आसनपर विराजमान हो गये। इसके बाद राजकार्य देखनेके लिये स्वयं राजा विराट वहाँ पधारे। अग्निके समान तेजस्वी पाण्डवोंको राजासनपर बैठे देख राजाको बड़ा क्रोध हुआ। फिर थोड़ी देरतक मन-ही-मन विचार करके उसने कंकसे कहा—'तुम तो पासा खेलनेवाले हो। सभामें पासा बिछानेके लिये मैंने तुम्हें नियुक्त किया था। आज इस प्रकार बन-ठनकर सिंहासनपर कैसे बैठ गये?'

राजाने यह वाक्य परिहासके भावसे कहा था। उसे सुनकर अर्जुनने मुसकराते हुए कहा—'राजन्! तुम्हारे सिंहासनकी तो बात ही क्या है, ये तो इन्द्रके भी आधे आसनपर बैठनेके अधिकारी हैं। ये ब्राह्मणोंके रक्षक, शास्त्रोंके विद्वान्, त्यागी, यज्ञकर्ता और दृढ़ताके साथ अपने व्रतका पालन करनेवाले हैं। ये मूर्तिमान् धर्म हैं, पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं; इस जगत्‌में सबसे अधिक बुद्धिमान् और तपस्याके आश्रय हैं। जिन अस्त्रोंको देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, सर्प और बड़े-बड़े नाग भी नहीं जानते, उन सबका इन्हें ज्ञान है। ये दीर्घदर्शी, महातेजस्वी और अपने देशवासियोंके प्रेमपात्र हैं। ये महर्षियोंके समान हैं, राजर्षि हैं और समस्त लोकोंमें विख्यात हैं। महारथी, बलवान्, धर्मपरायण, धीर, चतुर, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। ऐश्वर्य और धनमें ये इन्द्र और कुबेरके समान हैं। इनका नाम है—धर्मराज युधिष्ठिर! ये कौरवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। उदयकालीन सूर्यकी शान्त प्रभाके समान इनकी सुखदायिनी कीर्ति समस्त संसारमें फैली हुई है। ये धर्मराज जब कुरुदेशमें रहते थे, उस समय इनके पीछे दस हजार वेगवान् हाथी तथा अच्छे घोड़ोंसे जुते हुए

सुवर्णमालामण्डित तीस हजार रथ चलते थे। जैसे देवता कुबेरकी उपासना करते हैं, वैसे ही सब राजा और कौरवलोग इनकी उपासना किया करते थे। इन्होंने इस देशके सब राजाओंको वशमें कर लिया है। इनके यहाँ प्रतिदिन अट्ठासी हजार स्नातक ब्राह्मणोंकी जीविका चलती थी। ये बूढ़े, अनाथ, लँगड़े-लूले और अन्धे मनुष्योंकी रक्षा करते थे। प्रजाको तो ये सदा पुत्रके समान मानते थे। इनके सद्गुणोंको गिनाया नहीं जा सकता। ये नित्य धर्मपरायण और दयालु हैं। राजन्! ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त होकर भी ये आपके राजासनपर बैठनेके अधिकारी क्यों नहीं हैं ?'

विराटने कहा—यदि ये कुरुवंशी कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर हैं, तो इनमें इनका भाई अर्जुन और महाबली भीमसेन कौन हैं ? नकुल, सहदेव अथवा यशस्विनी द्रौपदी कौन है ? जबसे पाण्डवलोग जुएमें हार गये, तबसे कहीं भी उनका पता नहीं लगा।

अर्जुनने कहा—राजन्! ये जो बल्लव-नामधारी आपके रसोइया हैं, ये ही भयङ्कर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन हैं। कीचकको मारनेवाले गन्धर्व भी ये ही हैं। यह नकुल है, जो अबतक आपके यहाँ घोड़ोंका प्रबन्ध कर रहा है और यह है सहदेव, जो गौओंकी सँभाल रखता रहा है। ये ही दोनों महारथी माता माद्रीके पुत्र हैं। तथा यह सुन्दरी, जो आपके यहाँ सैरन्ध्रीके रूपमें रही है, द्रौपदी है; इसके ही लिये कीचकका विनाश किया गया है। मेरा नाम है अर्जुन! अवश्य ही आपके कानोंमें कभी मेरा नाम भी पड़ा होगा।

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर कुमार उत्तरने भी पाण्डवोंकी पहचान करायी। इसके बाद अर्जुनका पराक्रम बताना आरम्भ किया। 'पिताजी! ये ही युद्धमें गौओंको जीतकर ले आये हैं; इन्होंने ही कौरवोंको हराया है। इन्हींके शङ्खकी गम्भीर ध्वनि सुनकर मेरे कान बहरे हो गये थे।'

यह सुनकर राजा विराटने कहा—'उत्तर! हमें पाण्डवोंको प्रसन्न करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। तुम्हारी राय हो तो मैं अर्जुनसे कुमारी उत्तराका ब्याह कर दूँ।' उत्तर बोला—'पाण्डवलोग सर्वथा श्रेष्ठ, पूजनीय और सम्मानके योग्य हैं; तथा इसके लिये हमें मौका भी मिल गया है। इसलिये आप इनका सत्कार अवश्य करें।' विराटने कहा—'युद्धमें मैं भी शत्रुओंके फंदेमें फँस गया था; उस समय भीमसेनने ही मुझे छुड़ाया और गौओंको भी जीता है। मैंने अनजानमें राजा युधिष्ठिरको जो कुछ अनुचित वचन कहे हैं, उनके लिये धर्मात्मा पाण्डुनन्दन मुझे क्षमा करें।'

इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करके राजा विराटको बड़ा सन्तोष हुआ और उसने पुत्रके साथ सलाह करके अपना सारा राज-पाट और खजाना युधिष्ठिरकी सेवामें सौंप दिया। फिर पाण्डवों और विशेषतः अर्जुनके दर्शनसे अपने सौभाग्यकी सराहना की। सबका मस्तक सूँघकर प्यारसे गले लगाया। इसके बाद वह अतृप्त नेत्रोंसे उन्हें एकटक देखने लगा और अत्यन्त प्रसन्न होकर युधिष्ठिरसे बोला—'बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आपलोग कुशलपूर्वक वनसे लौट आये। और यह भी अच्छा हुआ कि इस कष्टदायक अज्ञातवासकी अवधिको आपने पूरा कर लिया। मेरा सर्वस्व आपका है, इसे निःसंकोच स्वीकार करें। अर्जुन मेरी पुत्री उत्तराका पाणिग्रहण करें, ये सर्वथा उसके स्वामी होने योग्य हैं।'

विराटके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखा। तब अर्जुनने मत्स्यराजको इस प्रकार उत्तर दिया—'राजन्! मैं आपकी कन्याको अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करता हूँ। मत्स्य और भरतवंशका यह सम्बन्ध उचित ही है।'

अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—अर्जुनकी बात सुनकर राजा विराटने कहा—'पाण्डवश्रेष्ठ! मैं स्वयं तुम्हें अपनी कन्या दे रहा हूँ, फिर तुम उसे अपनी पत्नीके रूपमें क्यों नहीं स्वीकार करते ?' अर्जुनने कहा—'राजन्! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने पुत्रीभावसे ही देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं नाचता था और सङ्गीतका जानकार भी हूँ; इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है, परन्तु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्क हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। इस कारण तुम्हें या और किसीको हमपर कोई अनुचित सन्देह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करके ही मैं शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा मनको वशमें रखनेवाला हो सकूँगा और इससे आपकी कन्याका चरित्र भी शुद्ध समझा जायगा। मैं निन्दा और मिथ्या कलङ्कसे डरता हूँ, इसलिये उत्तराको पुत्रवधूके ही रूप-

में ग्रहण करूँगा। मेरा पुत्र भी देवकुमारके समान है, वह भगवान् श्रीकृष्णका भानजा है। वे उसपर बहुत प्रेम रखते हैं। उसका नाम है अभिमन्यु। वह सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें निपुण है और तुम्हारी कन्याका पति होनेके सर्वथा योग्य है।'

विराटने कहा--पार्थ ! तुम कौरवोंमें श्रेष्ठ और कुन्तीके पुत्र हो। तुममें धर्माधर्मका इतना विचार होना उचित ही है। तुम सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले और ज्ञानी हो। अब इसके बादका जो कुछ कर्तव्य हो, उसे पूर्ण करो। जब अर्जुन मेरा सम्बन्धी हो रहा है, तो मेरी कौन-सी कामना अपूर्ण रह गयी ?

विराटके ऐसा कहनेपर अवसर देखकर राजा युधिष्ठिरने भी इन दोनोंकी बातोंका अनुमोदन किया। फिर विराट और युधिष्ठिरने अपने-अपने मित्रोंके यहाँ तथा भगवान् श्रीकृष्णके पास दूत भेजा। अब तेरहवाँ वर्ष बीत चुका था, इसलिये पाण्डव विराटके उपप्लव्य नामक स्थानमें जाकर रहने लगे। अभिमन्यु, श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य दाशार्ह-वंशियोंको बुलवाया गया। काशिराज और शैब्य--ये एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिरके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक पधारे। राजा द्रुपद भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये। उनके साथ शिखण्डी और धृष्टद्युम्न भी थे। इनके सिवा और भी बहुत-से नरेश अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पधारे। राजा विराटने यथोचित सत्कार किया और सबको उत्तम स्थानोंपर ठहराया।

भगवान् श्रीकृष्ण, बलदेव, कृतवर्मा, सात्यकि, अक्रूर और साम्ब आदि क्षत्रिय अभिमन्यु और सुभद्राको साथ लेकर आये। जिन्होंने द्वारकामें एक वर्षतक वास किया था, वे इन्द्रसेन आदि सारथि भी रथोंसहित वहाँ आ गये। भगवान् श्रीकृष्णके साथ दस हजार हाथी, दस हजार घोड़े, एक अरब रथ और एक निखर्व (दस खरब) पैदल सेना थी। वृष्णि, अन्धक और भोजवंशके भी बलवान् राजकुमार आये थे। श्रीकृष्णने निमन्त्रणमें बहुत-सी दासियाँ, नाना प्रकारके रत्न और बहुत-से वस्त्र युधिष्ठिरको भेंट किये।

राजा विराटके घर शङ्ख, भेरी और गोमुख आदि भाँति-भाँतिके बाजे बजने लगे। अन्तःपुरकी सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकारके आभूषण और वस्त्रोंसे सज-धजकर कानोंमें मणिमय कुण्डल पहने रानी सुदेष्णाको आगे करके महारानी द्रौपदीके यहाँ चलीं। वे राजकुमारी उत्तराका सुन्दर शृङ्गार करके उसे सब ओरसे घेरे हुए चल रही थीं। द्रौपदीके पास पहुँचकर उसके रूप, सम्पत्ति और शोभाके सामने सब फीकी पड़ गयीं। अर्जुनने सुभद्रानन्दन अभिमन्युके लिये सुन्दरी विराटकुमारीको स्वीकार किया। उस समय वहाँ इन्द्रके समान वेष-भूषा धारण किये राजा युधिष्ठिर भी खड़े थे, उन्होंने भी

उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें अङ्गीकार किया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णके सामने अभिमन्यु और उत्तराका विवाह हुआ। विवाह-कालमें विराटने प्रज्वलित अग्निमें विधिवत् हवन करके ब्राह्मणोंका सत्कार किया और दहेजमें वरपक्षको वायुके समान वेगवाले सात हजार घोड़े, दो सौ हाथी तथा बहुत-सा धन दिया। साथ ही राज-पाट, सेना और खजानेसहित अपनेको भी सेवामें समर्पण किया।

विवाह सम्पन्न हो जानेपर युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे भेंटमें मिले हुए धनमेंसे ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान किया। हजारों गौएँ, रत्न, वस्त्र, भूषण, वाहन, बिछौने तथा खाने-पीनेकी उत्तम वस्तुएँ अर्पण कीं। उस महोत्सवके समय हजारों-लाखों हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे भरा हुआ मत्स्यनरेशका वह नगर बहुत ही शोभायमान हो रहा था।

विराटपर्व समाप्त

श्रीकृष्णसे याचना

यस्य प्रभावमतुलं न विदुः शिवाद्या
यस्यावतारचरितानि समर्चितानि ।
वेदान्तवेद्यमखिलज्ञमुदारकीर्तिं
श्रीकृष्णमेव सततं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

शरण्यं भीतानां जनिमृतिभयाद्दारुणभवा-
न्निदानं मोक्षादेर्निखिलपुरुषार्थस्य परमम् ।
विधानं भाग्यानां श्रुतिमतिदमीशानममृतं
मुकुन्दं वन्देऽहं हरिपदसरोजैकरतये ॥ २ ॥

याचेऽहमीश्वर हरे तव पादपद्मे
नित्यानुरागमखिलस्य सुखस्य भूमिम् ।
नान्यत् कृपां कुरु मयीह भवे यथा स्यां
त्वत्पादपद्ममधुलिट् त्वियतास्मि धन्यः ॥ ३ ॥

जिनके अतुलनीय प्रभावको श्रीशङ्कर प्रभृति देवगण भी नहीं जानते, जिनके अवतार-चरित्र जगत्के लिये पूजा एवं आदरकी वस्तु हैं, जो उपनिषदोंके एकमात्र ज्ञेय तत्त्व हैं, उन सर्वज्ञ, उदारकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको ही हम आश्रयरूपमें स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

जो जन्म-मरणरूप घोर संसारसे भयभीत हुए जीवोंको अभय देनेवाले हैं, जो मोक्षादि समस्त पुरुषार्थोंके मूलकारण हैं, जो सम्पूर्ण जगत्के भाग्यविधाता हैं तथा श्रुतियोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, उन अमृतस्वरूप सर्वेश्वर मोक्षदाता श्रीकृष्णकी हम वन्दना करते हैं और उनसे उन्हींके चरणकमलोंका अनुराग माँगते हैं ॥ २ ॥

हे ईश्वर ! हे हरे ! आपसे हम यही माँगते हैं कि आपके चरणकमलोंमें हमारा अविचल अनुराग हो जाय, जो समस्त सुखोंकी खान है । इसके अतिरिक्त हम कुछ भी नहीं चाहते । आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें कि जिससे हम इसी जन्ममें आपके चरणकमलोंके मधुकर बन जायँ । इतनेसे ही हम कृतार्थ हो जायँगे ॥ ३ ॥

(महाभारत-तात्पर्य-प्रकाश)

विराटकी राजसभामें श्रीकृष्णका भाषण

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

उद्योगपर्व

विराटनगरमें पाण्डवपक्षके नेताओंका परामर्श, सैन्यसंग्रहका उद्योग तथा राजा द्रुपदका धृतराष्ट्रके पास दूत भेजना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! कुरुप्रवीर पाण्डवगण अभिमन्युका विवाह करके अपने सुहृद् यादवोंके सहित बड़े प्रसन्न हुए और रात्रिमें विश्राम करके दूसरे दिन सबेरे ही विराटकी सभामें पहुँच गये। सबसे पहले समस्त राजाओंके माननीय और वृद्ध विराट एवं द्रुपद आसनोंपर बैठे। फिर पिता वसुदेवजीके सहित बलराम और श्रीकृष्ण विराजमान हुए। सात्यकि और बलरामजी तो पञ्चालराज द्रुपदके पास बैठे तथा श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर राजा विराटके समीप विराजमान हुए। इनके पश्चात् द्रुपदराजके सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, विराटपुत्रोंके सहित अभिमन्यु और द्रौपदीके सब कुमार—ये सभी सुवर्णजटित मनोहर सिंहासनोंपर जा बैठे।

जब सब लोग आ गये तो वे पुरुषश्रेष्ठ आपसमें मिलकर तरह-तरहकी बातचीत करने लगे। फिर श्रीकृष्णकी सम्मति जाननेके लिये एक मुहूर्त्ततक उनकी ओर देखते हुए आसनोंपर बैठे रहे। तब श्रीकृष्णने कहा, 'सुबलपुत्र शकुनिने जिस प्रकार कपटद्यूतमें हराकर महाराज युधिष्ठिरका राज्य छीन लिया और उन्हें वनवासके नियममें बाँध दिया था, वह सब तो आपलोगोंको मालूम ही है। पाण्डवलोग उस समय भी अपना राज्य लेनेमें समर्थ थे; परन्तु वे सत्यनिष्ठ थे, इसलिये उन्होंने तेरह वर्षतक उस कठोर नियमका पालन किया। अब आपलोग ऐसा उपाय सोचें, जो कौरव और पाण्डवोंके लिये धर्मानुकूल और कीर्तिकर हो; क्योंकि अधर्मके द्वारा तो धर्मराज युधिष्ठिर देवताओंका राज्य भी नहीं लेना चाहेंगे। हाँ, धर्म और अर्थसे युक्त हो तो इन्हें एक गाँवका आधिपत्य स्वीकार करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं होगी। यद्यपि धृतराष्ट्रके पुत्रोंके कारण इन्हें असह्य कष्ट भोगने पड़े हैं, तथापि अपने सुहृदोंके सहित ये सर्वदा उनका मङ्गल ही चाहते रहे हैं। अब ये पुरुषप्रवर अपना वही राज्य चाहते हैं, जिसे इन्होंने अपने बाहुबलसे राजाओंको परास्त करके प्राप्त किया था। यह बात भी आपलोगोंसे छिपी नहीं है कि जब ये बालक थे, तभीसे क्रूरस्वभाव कौरव इनके पीछे पड़े हुए हैं और इनका राज्य हड़पनेके लिये तरह-तरहके षड्यन्त्र रचते रहे हैं। अब उनके बढ़े-चढ़े लोभ, राजा युधिष्ठिरकी धर्मज्ञता और इनके पारस्परिक सम्बन्धका विचार करके आप सब मिलकर और अलग-अलग कोई बात तय करें। ये लोग तो सदा सत्यपर

डटे रहे हैं और इन्होंने अपनी प्रतिज्ञाका भी ठीक-ठीक पालन किया है। इसलिये यदि अब धृतराष्ट्रके पुत्र अन्याय करेंगे तो ये उन्हें मार डालेंगे। और इस काममें उनका अन्याय देखकर इनके सुहृद्गण भी उनका मुकाबला करेंगे। किन्तु अभीतक हमें ठीक-ठीक दुर्योधनके विचारका भी पता नहीं है कि वह क्या करना चाहता है और दूसरी ओरका विचार जाने बिना आप किसी कर्त्तव्यका निश्चय भी कैसे कर सकते हैं? इसलिये उन लोगोंको समझाने और महाराज युधिष्ठिरको आधा राज्य दिलानेके लिये इधरसे कोई धर्मात्मा, पवित्रचित्त, कुलीन, सावधान और सामर्थ्यवान् पुरुष दूत बनकर जाना चाहिये।'

राजन्! श्रीकृष्णका भाषण धर्मार्थयुक्त, मधुर और पक्षपातशून्य था। बलरामजीने उसकी बड़ी प्रशंसा की और फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया, 'आपने श्रीकृष्णका धर्म और अर्थके अनुकूल भाषण सुना। वह जैसा धर्मराजके लिये हितकर है, वैसा ही कुरुराज दुर्योधनके लिये भी है। वीर कुन्तीपुत्र आधा राज्य कौरवोंके लिये छोड़कर शेष आधेके लिये ही प्रयत्न करना चाहते हैं। अतः यदि दुर्योधन आधा राज्य दे दे तो वह बड़े आनन्दसे रह सकता है। अतः यदि दुर्योधनका विचार जानने और उसे युधिष्ठिरका सन्देश सुनानेके लिये कोई दूत भेजा जाय और इस प्रकार कौरव-पाण्डवोंका निपटारा हो जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वहाँ जो दूत जाय, उसे जिस समय सभामें कुरुश्रेष्ठ भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि, कर्ण तथा शस्त्र और शास्त्रोंमें पारङ्गत दूसरे धृतराष्ट्र-पुत्र उपस्थित हों और जब सब वयोवृद्ध एवं विद्यावृद्ध पुरवासी भी वहाँ आ जायँ, तब उन्हें प्रणाम करके राजा युधिष्ठिरका कार्य सिद्ध करनेवाला वचन कहना चाहिये। किसी भी अवस्थामें कौरवोंको कुपित नहीं करना चाहिये। उन्होंने सबल होकर ही इनका धन छीना था। युधिष्ठिरकी जूएमें आसक्ति थी और अपने प्रिय द्यूतका आश्रय लेनेपर ही उन्होंने इनका राज्य हरण किया था। यदि शकुनिने इन्हें जूएमें हरा दिया तो इसमें उसका कोई अपराध नहीं कहा जा सकता।'

बलरामजीकी यह बात सुनकर सात्यकि एक साथ तड़ककर खड़ा हो गया और उनके भाषणकी बहुत निन्दा करते हुए इस प्रकार कहने लगा, 'पुरुषका जैसा चित्त होता है, वैसी ही वह बात भी कहता है। आपका भी जैसा हृदय है,

वैसी ही बात कह रहे हैं। संसारमें शूरवीर भी होते हैं और कायर भी। लोगोंमें ये दोनों पक्ष पूरी तरहसे देखे जाते हैं। यह ठीक है कि धर्मराज जूआ खेलना नहीं जानते थे और शकुनि इस क्रियामें पारङ्गत था। किन्तु इनकी उसमें श्रद्धा नहीं थी। ऐसी स्थितिमें यदि उसने इन्हें जूएके लिये निमन्त्रित करके जीत लिया तो उसकी इस जीतको धर्मानुकूल कैसे कह सकते हैं? अजी! कौरवोंने तो इन्हें बुलाकर कपटपूर्वक हराया था; फिर उनका भला कैसे हो सकता है? महाराज युधिष्ठिर वनवासकी अवधि पूरी करके अब स्वतन्त्र हैं और अपने पैतृक राज्यके अधिकारी हैं। ऐसी स्थितिमें ये उनसे भीख माँगें—यह कैसे हो सकता है? भीष्म, द्रोण और विदुरने तो कौरवोंको बहुतेरा समझाया है; किन्तु पाण्डवोंको उनकी पैतृक सम्पत्ति देनेके लिये उनका मन ही नहीं होता। अब मैं रणभूमिमें अपने पैने बाणोंसे उन्हें सीधा कर दूँगा और महात्मा युधिष्ठिरके चरणोंपर उनका सिर रगड़वाऊँगा। यदि वे इनके आगे झुकनेको तैयार न हुए तो अपने मन्त्रियों-सहित यमराजके घर जायँगे। भला, ऐसा कौन है जो संग्राम-भूमिमें गाण्डीवधारी अर्जुन, चक्रपाणि श्रीकृष्ण, दुर्धर्ष भीम, धनुर्धर नकुल, सहदेव, वीरवर विराट और द्रुपद तथा मेरा वेग सहन कर सके। धृष्टद्युम्न, पाण्डवोंके पाँच पुत्र, धनुर्धर अभिमन्यु तथा काल और सूर्यके समान पराक्रमी गद, प्रद्युम्न

और साम्बादिके प्रहारोंको सहन करनेकी भी कौन ताब रखता है ? हमलोग शकुनिके सहित दुर्योधन और कर्णको मारकर महाराज युधिष्ठिरका राज्याभिषेक करेंगे । आततायी शत्रुओंको मारनेमें तो कभी कोई दोष नहीं है । शत्रुओंके आगे भीख माँगना तो अधर्म और अपयशका ही कारण होता है । अतः आपलोग सावधानीसे महाराज युधिष्ठिरके हृदयकी यह अभिलाषा पूरी करें कि वे धृतराष्ट्रके देनेसे ही अपना राज्य प्राप्त कर लें । इस प्रकार उन्हें या तो अभी राज्य मिल जाना चाहिये, नहीं तो सारे कौरव युद्धमें मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करेंगे ।'

इसपर राजा द्रुपदने कहा—महाबाहो ! दुर्योधन शान्तिसे राज्य नहीं देगा । पुत्रके मोहवश धृतराष्ट्र भी उसीका अनुवर्तन करेंगे । तथा भीष्म और द्रोण दीनताके कारण और कर्ण एवं शकुनि मूर्खतासे उसीकी-सी कहेंगे । मेरी बुद्धिमें भी श्रीबलदेवजीका प्रस्ताव नहीं जँचा, फिर भी शान्तिकी इच्छावाले पुरुषको ऐसा करना ही चाहिये । दुर्योधनके सामने मीठे वचन तो किसी प्रकार नहीं बोलने चाहिये; मेरा ऐसा विचार है कि वह दुष्ट मीठी बातोंसे काबूमें आनेवाला नहीं है । दुष्टलोग मृदुभाषीको शक्तिहीन समझते हैं । वे जहाँ नर्मी देखते हैं, वहीं अपना मतलब सधा हुआ समझ लेते हैं । हम यह भी करेंगे, पर साथ ही दूसरा उद्योग भी आरम्भ करें । हमें अपने मित्रोंके पास दूत भेजने चाहिये, जिससे वे हमारे लिये अपनी सेना तैयार रक्खें । शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और केकयराज—इन सभीके पास शीघ्रगामी दूत भेजने चाहिये । दुर्योधन भी निश्चय ही सब राजाओंके पास दूत भेजेगा और वे जिसके द्वारा पहले आमन्त्रित होंगे, पहले उसीको सहायताके लिये वचन दे देंगे । इसलिये राजाओंके पास पहले हमारा निमन्त्रण पहुँचे—इसके लिये शीघ्रता करनी चाहिये । मैं तो समझता हूँ हमें बहुत बड़े कामका भार उठाना है । ये मेरे पुरोहितजी बड़े विद्वान् ब्राह्मण हैं, इन्हें अपना सन्देश देकर राजा धृतराष्ट्रके पास भेजिये । दुर्योधन, भीष्म, धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य—इनसे अलग-अलग जो कुछ कहलाना हो, वह इन्हें समझा दीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—महाराज द्रुपदने बहुत ठीक बात कही है । इनकी सम्मति अतुलित तेजस्वी महाराज युधिष्ठिरके कार्यको सिद्ध करनेवाली है । हमलोग सुनीतिसे काम लेना चाहते हैं । अतः पहले हमें ऐसा ही करना चाहिये । जो पुरुष विपरीत आचरण करता है, वह तो महामूर्ख है । आयु और शास्त्रज्ञानकी दृष्टिसे आप ही हम सबमें बड़े हैं, हम सब तो आपके शिष्यवत् हैं । अतः राजा धृतराष्ट्रके पास आप ही ऐसा सन्देश भिजवाइये, जो पाण्डवोंकी कार्यसिद्धि करनेवाला हो । आप उन्हें जो सन्देश भिजवायेंगे, वह हम सबको भी अवश्य मान्य होगा । यदि कुरुराज धृतराष्ट्रने न्यायपूर्वक सन्धि कर ली तो फिर कौरव-पाण्डवोंका भीषण संहार नहीं होगा । और यदि मोहवश अभिमानके कारण दुर्योधनने सन्धि करना स्वीकार न किया तो वह गाण्डीवधनुर्धर अर्जुनके कुपित होनेपर अपने सलाहकार और सगे-सम्बन्धियोंके सहित नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा ।

इसके पश्चात् राजा विराटने श्रीकृष्णका सत्कार करके उन्हें बन्धु-बान्धवोंसहित विदा किया । भगवान्के द्वारका चले जानेपर युधिष्ठिरादि पाँचों भाई और राजा विराट युद्धकी सब तैयारियाँ करने लगे । राजा विराट, द्रुपद और उनके सम्बन्धियोंने सब राजाओंके पास पाण्डवोंको सहायता देनेके लिये सन्देश भेजे और वे सभी नृपतिगण कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंका तथा विराट और द्रुपदका निमन्त्रण पाकर बड़ी प्रसन्नतासे आने लगे । पाण्डवोंके यहाँ सेना इकट्ठी हो रही है—यह समाचार पाकर धृतराष्ट्रके पुत्र भी राजाओंको एकत्रित करने लगे । उस समय कौरव और पाण्डवोंकी सहायताके लिये आनेवाले राजाओंसे सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी ।

राजा द्रुपदने अपने पुरोहितसे कहा—पुरोहितजी !
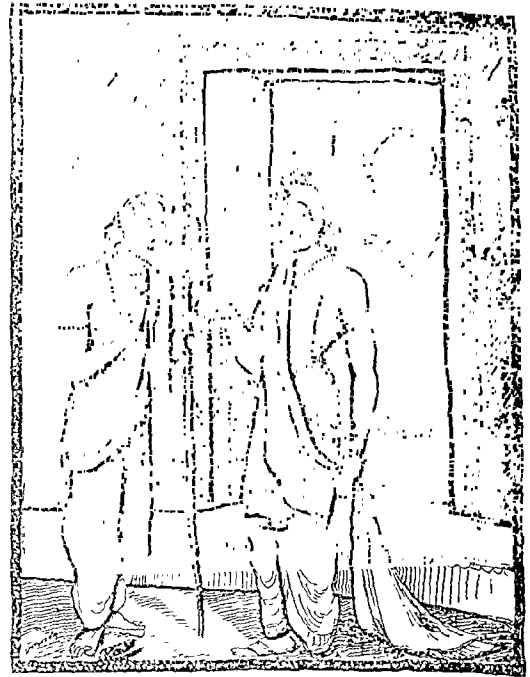
भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं, प्राणियोंमें बुद्धिसे काम लेनेवाले

जीव श्रेष्ठ हैं, बुद्धियुक्त जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्योंमें द्विज श्रेष्ठ हैं, द्विजोंमें विद्वानोंका दर्जा ऊँचा है, विद्वानोंमें सिद्धान्तके ज्ञाता उत्कृष्ट हैं और सिद्धान्तज्ञोंमें ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं। मेरे विचारसे आप सिद्धान्तवेत्ताओंमें प्रमुख हैं; आपका कुल भी बहुत श्रेष्ठ है तथा आयु और शास्त्रज्ञानकी दृष्टिसे भी आप ज्येष्ठ ही हैं। आपकी बुद्धि शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीके समान है। यह बात तो आपको मालूम ही है कि कौरवोंने पाण्डवोंको ठगा था—शकुनिने कपटद्यूतके द्वारा युधिष्ठिरको धोखा दिया था, इसलिये अब वे स्वयं तो किसी भी प्रकार राज्य नहीं देंगे। किन्तु आप धृतराष्ट्रको धर्मयुक्त बातें सुनाकर उनके वीरोंका चित्त अवश्य बदल दे सकते हैं। विदुरजी भी आपके वचनोंका समर्थन करेंगे। आप भीष्म, द्रोण और कृप आदिमें मतभेद पैदा कर सकेंगे। इस प्रकार जब उनके मन्त्रियोंमें मतभेद हो जायगा और योद्धालोग उनके विरुद्ध हो जायँगे तो कौरवलोग तो उन्हें एकमत करनेमें लग जायँगे और पाण्डवलोग इस बीचमें सुभीतेसे सैन्य-स और धनसञ्चय कर लेंगे। आप अधिक समय लगानेका करें, क्योंकि आपके रहते हुए वे सैन्य एकत्रित करनेका नहीं कर सकेंगे। ऐसा भी सम्भव है कि आपकी सं धृतराष्ट्र आपकी धर्मानुकूल बात मान लें। आप धर्मनि अतः मेरा ऐसा विश्वास है कि उनके साथ धर्मानु आचरण करके, कृपालु पुरुषोंके आगे पाण्डवोंके क्लेश बात कहकर और बड़े-बूढ़ोंके आगे पूर्वपुरुषोंके बरते कुलधर्मकी चर्चा चलाकर आप उनके चित्तोंको बदल दें अतः आप युधिष्ठिरकी कार्यसिद्धिके लिये पुष्य नक्षत्र उ विजय मुहूर्त्तमें प्रस्थान करें।

द्रुपदके इस प्रकार समझानेपर उनके सदाचारसम्प और अर्थनीतिविशारद पुरोहित पाण्डवोंका हित करने उद्देश्यसे अपने शिष्योंसहित हस्तिनापुरको चल दिये।

श्रीकृष्णको अर्जुन और दुर्योधनका निमन्त्रण तथा उनके द्वारा दोनों पक्षोंकी सहायता

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! हस्तिनापुरकी ओर पुरोहितको भेजकर फिर पाण्डवोंने जहाँ-तहाँ राजाओंके पास दूत भेजे। इसके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रको निमन्त्रित करनेके लिये स्वयं कुन्तीनन्दन अर्जुन द्वारकाको गये। दुर्योधनको भी अपने गुप्तचरोंद्वारा पाण्डवोंकी सब चेष्टाओंका पता लग गया। उसे जब मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण विराटनगरसे द्वारका जा रहे हैं तो थोड़ी-सी सेनाके साथ वहाँ पहुँच गया। उसी दिन पाण्डुकुमार अर्जुन भी पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर उन दोनों वीरोंने श्रीकृष्णको सोते पाया। तब दुर्योधन शयनागारमें जाकर उनके सिरहानेकी ओर एक उत्तम सिंहासनपर बैठ गया। उसके पीछे अर्जुनने प्रवेश किया। वे बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़े हुए श्रीकृष्णके चरणोंकी ओर खड़े रहे। जागनेपर भगवान्‌की दृष्टि पहले अर्जुनपर ही पड़ी। फिर उन्होंने उन दोनोंहीका स्वागत-सत्कार कर उनसे आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने हँसते हुए कहा, 'पाण्डवोंके साथ हमारा जो युद्ध होनेवाला है, उसमें आपको हमारी सहायता करनी होगी। आपकी तो जैसी अर्जुनसे मित्रता है, वैसी ही मुझसे भी है तथा हम दोनोंसे एक-सा ही सम्बन्ध भी है; और आज आया भी पहले मैं ही हूँ। सत्पुरुष उसीका साथ दिया करते हैं, जो पहले आता है; अतः आप भी सत्पुरुषोंके आचरणका ही अनुसरण करें।'

श्रीकृष्णने कहा—आप पहले आये हैं—इसमें तो सन्देह

नहीं, किन्तु मैंने पहले देखा अर्जुनको है; अतः आप पहले आ

इसके बाद राजा शल्यने जिस प्रकार दुर्योधनके साथ उनका समागम हुआ था, वह सब और उसकी सेवा-शुश्रूषा तथा अपने वर देनेकी बात भी युधिष्ठिरको सुना दी। यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, 'महाराज! आपने प्रसन्न होकर दुर्योधनको सहायता देनेका वचन दे दिया, यह बहुत अच्छा किया। किन्तु एक काम मैं भी आपसे कराना चाहता हूँ। राजन्! आप युद्धमें साक्षात् श्रीकृष्णके समान पराक्रमी हैं। जिस समय कर्ण और अर्जुन रथोंपर चढ़कर आपसमें युद्ध करेंगे, उस समय आपको कर्णका सारथि बनना होगा—इसमें सन्देह नहीं है। यदि आप मेरा भला चाहते हैं तो उस समय अर्जुनकी रक्षा करें और मेरी विजयके लिये कर्णका उत्साह भङ्ग करते रहें।'

शल्यने कहा—युधिष्ठिर! सुनो, तुम्हारा मङ्गल हो। मैं संग्रामभूमिमें कर्णका सारथि अवश्य बनूँगा, क्योंकि वह मुझे

सर्वदा श्रीकृष्णके समान ही समझता है। उस समय मैं अवश्य उससे टेढ़े और अप्रिय वचन कहूँगा। इससे उसका गर्व और तेज नष्ट हो जायगा और फिर उसको मारना सहज हो जायगा। राजन्! तुमने और द्रौपदीने जूएके समय बड़ा दुःख

अब आपके ही अधीन हैं; हमारे वरदानकी बात याद रक्खें।' फिर शल्य और दुर्योधन परस्पर गले मिले। दुर्योधन शल्यकी आज्ञा लेकर अपने नगरमें चला आया और शल्य दुर्योधनकी यह सब बात सुनानेके लिये युधिष्ठिरके पास आये। विराटनगरके उपप्लव्य प्रदेशमें पहुँचकर वे पाण्डवोंकी छावनीमें आये। वहाँ उन्होंने सभी पाण्डवोंको देखा और उनके दिये हुए अर्घ्य-पाद्यादिको ग्रहण किया। फिर मद्रराजने कुशल-प्रश्नके पश्चात् युधिष्ठिरका आलिङ्गन किया तथा भीम, अर्जुन और अपने भानजे नकुल-सहदेवको हृदयसे लगाकर जब वे आसनपर बैठ गये तो उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे कहा, 'कुरुश्रेष्ठ! तुम कुशलसे तो हो? यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि तुम वनवासके बन्धनसे छूट गये। तुमने द्रौपदी और भाइयोंके सहित निर्जन वनमें रहकर सचमुच बड़ा दुष्कर कार्य किया है। उससे भी कठिन अज्ञातवासको भी तुमने अच्छा निभा दिया। सच है, राज्यच्युत होनेपर तो दुःख ही भोगना पड़ता है; फिर सुख कहाँ? राजन्! क्षमा, दम, सत्य, अहिंसा और अद्भुत सद्वृत्ति—ये तुममें स्वभावतः विद्यमान हैं। तुम बड़े ही मृदुलस्वभाव, उदार, ब्राह्मणसेवी, दानी और धर्मनिष्ठ हो। तुम्हें इस महान् दुःखसे मुक्त हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।'

सहन किया था। सूतपुत्र कर्णने तुम्हें बड़े कटु वचन सुनाये थे। सो तुम इसके लिये अपने चित्तमें क्षोभ मत करो। दुःख तो बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी उठाने पड़ते हैं। देखो इन्द्राणीके सहित स्वयं इन्द्रको भी महान् दुःख उठाना पड़ा था।

त्रिशिरा और वृत्रासुरके वधका वृत्तान्त तथा इन्द्रका तिरस्कृत होकर जलमें छिप जाना

युधिष्ठिरने पूछा—राजन्! इन्द्र और इन्द्राणीको किस प्रकार अत्यन्त घोर दुःख उठाना पड़ा था, यह जाननेकी मुझे इच्छा है।

शल्यने कहा—भरतश्रेष्ठ! सुनो, मैं तुम्हें वह प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। देवश्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे। इन्द्रसे द्वेष हो जानेके कारण उन्होंने एक तीन सिरवाला पुत्र उत्पन्न किया। वह बालक अपने एक मुखसे वेदपाठ करता था, दूसरेसे सुधापान करता था और तीसरेसे मानो सब दिशाओंको निगल जायगा, इस प्रकार देखता था। वह बड़ा ही तपस्वी, मृदु, जितेन्द्रिय तथा धर्म और तपमें तत्पर था। उसका तप बड़ा ही तीव्र और दुष्कर था। उस अतुलित तेजस्वी बालकका तपोबल और सत्य देखकर देवराज इन्द्रको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने सोचा कि 'यह इस तपस्याके प्रभावसे इन्द्र न हो जाय। अतः यह किस प्रकार इस भीषण तपस्याको छोड़कर भोगोंमें आसक्त हो?' इसी प्रकार बहुत सोच-विचारकर उन्होंने उसे फँसानेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी।

इन्द्रकी आज्ञा पाकर अप्सराएँ त्रिशिराके पास आयीं और उसे तरह-तरहके भावोंसे लुभाने लगीं। किन्तु त्रिशिरा अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके पूर्वसमुद्र (प्रशान्त महासागर) के समान अविचल रहे। अन्तमें बहुत प्रयत्न करके अप्सराएँ इन्द्रके पास लौट गयीं और उनसे हाथ जोड़कर कहने लगीं, 'महाराज! त्रिशिरा बड़ा ही दुर्धर्ष है, उसे धैर्यसे डिगाना सम्भव नहीं है। अब और जो कुछ करना चाहें, वह करें।' इन्द्रने अप्सराओंको तो सत्कारपूर्वक विदा कर दिया और स्वयं यह विचार किया कि 'आज मैं उसपर वज्र छोड़ूँगा, जिससे वह तुरंत ही नष्ट हो जायगा।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने क्रोधमें भरकर त्रिशिरापर अपने भीषण वज्रका प्रहार किया। उसके लगते ही वह विशाल पर्वतशिखरके समान मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इससे इन्द्र प्रसन्न और निर्भय होकर स्वर्ग-लोकको चले गये।

प्रजापति त्वष्टाको जब मालूम हुआ कि इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है तो उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने कहा, 'मेरा पुत्र सदा ही क्षमाशील और शम-दमसम्पन्न था। वह तपस्या कर रहा था। इन्द्रने उसे बिना किसी

अपराधके ही मार डाला है । इसलिये अब मैं इन्द्रका नाश करनेके लिये वृत्रासुरको उत्पन्न करूँगा । लोग मेरे पराक्रम और तपोबलको देखें ।' ऐसा विचारकर महान् यशस्वी और तपस्वी त्वष्टाने क्रुद्ध होकर जलका आचमन किया और अग्निमें आहुति डालकर वृत्रासुरको उत्पन्न कर उससे कहा, 'इन्द्र-शत्रो ! मेरे तपके प्रभावसे तुम बढ़ जाओ ।' बस, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी वृत्रासुर उसी समय बढ़कर आकाशको छूने लगा और बोला, 'कहिये, मैं क्या करूँ ?' त्वष्टाने कहा, 'इन्द्रको मार डालो ।' तब वह स्वर्गमें गया । वहाँ इन्द्र और वृत्रका बड़ा भीषण संग्राम हुआ । अन्तमें वीरवर वृत्रासुरने देवराज इन्द्रको पकड़ लिया और उन्हें साबित ही निगल गया । तब देवताओंने वृत्रका नाश करनेके लिये जँभाईकी रचना की और ज्यों ही वृत्रने जँभाई ली कि देवराज अपने अंग सिकोड़कर उसके खुले हुए मुखसे बाहर आ गये । इन्द्रको बाहर आया देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए । इसके पश्चात् फिर इन्द्र और वृत्रका युद्ध होने लगा । जब त्वष्टाका तेज और बल पाकर वीर वृत्रासुर संग्राममें अत्यन्त प्रबल हो गया तो इन्द्र मैदान छोड़कर भाग गये ।

इन्द्रके भाग जानेसे देवताओंको बड़ा ही खेद हुआ और वे त्वष्टाके तेजसे घबराकर इन्द्र और मुनियोंके साथ मिलकर सलाह करने लगे कि अब क्या करना चाहिये । इन्द्रने कहा, 'देवताओ ! वृत्रने तो इस सारे संसारको घेर लिया है । मेरे पास ऐसा कोई शस्त्र नहीं है, जो इसका नाश कर सके । अतः मेरा तो ऐसा विचार है कि हमलोग मिलकर विष्णुभगवान्‌के धामको चलें और उनसे सलाह करके इस दुष्टके नाशका उपाय मालूम करें ।'

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर सब देवता और ऋषिगण शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और उनसे कहने लगे, 'पूर्वकालमें आपने अपने तीन डगोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था । आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं । यह सारा संसार आपसे व्याप्त है । आप देवदेवेश्वर हैं । सब लोक आपको नमस्कार करते हैं । इस समय यह सारा जगत् वृत्रासुरसे व्याप्त है; अतः हे असुरनिकन्दन ! आप इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय दीजिये ।' विष्णुभगवान्‌ने कहा, 'मुझे तुमलोगोंका हित अवश्य करना है; इसलिये मैं ऐसा उपाय बताता हूँ, जिससे इसका अन्त हो जायगा । तुम सब देवता, ऋषि और गन्धर्व विश्वरूपधारी वृत्रासुरके पास जाओ और उसके प्रति सामनीतिका प्रयोग करो । इससे तुम उसे जीत लोगे । देवताओ ! इस प्रकार मेरे और इन्द्रके प्रभावसे तुम्हारी जीत होगी । मैं अदृश्यरूपसे देवराजके आयुध वज्रमें प्रवेश करूँगा ।'

विष्णुभगवान्‌के ऐसा कहनेपर सब देवता और ऋषि इन्द्रको आगे करके वृत्रासुरके पास चले और उससे बोले, 'दुर्जय वीर ! यह सारा जगत् तुम्हारे तेजसे व्याप्त है, तो भी तुम इन्द्रको जीत नहीं सके हो । तुम दोनोंको लड़ते हुए बहुत समय बीत गया है; इससे देवता, असुर और मनुष्य—सभी प्रजाको बड़ा कष्ट हो रहा है । अतः अब सदाके लिये तुम इन्द्रसे मित्रता कर लो ।' महर्षियोंकी यह बात सुनकर परम तेजस्वी वृत्रने कहा, 'आप तपस्वीलोग अवश्य ही

मेरे माननीय हैं। किन्तु जो बात मैं कहता हूँ, वह यदि पूरी की जायगी तो आपलोग जैसा कह रहे हैं, वह सब मैं करनेको तैयार हूँ। मुझे इन्द्र और देवतालोग किसी भी सूखी या गीली वस्तुसे, पत्थर या लकड़ीसे, शस्त्र या अस्त्रसे अथवा दिन या रातमें न मार सकें—इस शर्तपर तो मैं सदाके लिये इन्द्रके साथ सन्धि करना स्वीकार कर सकता हूँ।' तब ऋषियोंने उससे कहा, 'ठीक है, ऐसा ही होगा।' इस प्रकार सन्धि हो जानेसे वृत्रासुर बड़ा प्रसन्न हुआ। देवराज भी मनमें प्रसन्न तो हुए, किन्तु वे सदा वृत्रासुरको मारनेका अवसर ढूँढ़ते रहते थे।

एक दिन इन्द्रने सन्ध्याकालमें वृत्रासुरको समुद्रके तटपर

विचरते देखा। उस समय वे वृत्रको दिये हुए वरपर विचार करने लगे—'यह सन्ध्याकाल है, इस समय न दिन है न रात; और मुझे अपने शत्रु वृत्रका वध अवश्य करना है। यदि आज मैं इस महान् असुरको धोखेसे नहीं मारता हूँ तो मेरा हित नहीं हो सकता।' ऐसा विचारकर इन्द्रने ज्यों ही विष्णु-भगवान्का स्मरण किया कि उन्हें समुद्रपर पर्वतके समान फेन उठता दिखायी दिया। वे सोचने लगे—'यह न सूखा है न गीला, और न कोई शस्त्र ही है। अतः यदि मैं इसे वृत्रासुर-पर फेंकूँ तो वह एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगा।' यह सोचकर उन्होंने तुरंत ही अपने वज्रके सहित वह फेन वृत्रासुरपर फेंका और भगवान् विष्णुने उस फेनमें प्रवेश करके उसी समय वृत्रासुरको मार डाला। वृत्रके मरते ही सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग और ऋषि—ये सब इन्द्रकी स्तुति करने लगे।

इन्द्रने देवताओंके लिये भयका कारण बने हुए महाबली वृत्रासुरका वध तो किया, किन्तु पहले त्रिशिराको मारनेसे लगी हुई ब्रह्महत्याके कारण और अब असत्य व्यवहारके कारण तिरस्कृत होनेसे वे मन-ही-मन बहुत दुखी रहने लगे। इन पापोंके कारण वे संज्ञाशून्य और अचेतन-से हो गये तथा सम्पूर्ण लोकोंकी सीमापर जाकर जलमें छिपकर रहने लगे। जब देवराज ब्रह्महत्यासे पीडित होकर स्वर्ग छोड़कर चले गये तो सारी पृथ्वी वृक्षोंके मारे जाने और वनोंके सूख जानेपर ऊजड़-सी हो गयी। नदियोंकी धाराएँ टूट गयीं और सरोवर जलहीन हो गये। अनावृष्टिके कारण सभी जीवोंमें खलबली मच गयी तथा देवता और महर्षियोंको भी बड़ा त्रास होने लगा। कोई राजा न रहनेसे सारा जगत् उपद्रवोंसे पीडित रहने लगा। तब देवताओंको भी भय हुआ कि अब हमारा राजा कौन हो; क्योंकि देवताओंमेंसे तो किसीका भी मन राज्यका भार सँभालनेके लिये होता नहीं था।

नहुषकी इन्द्रपदप्राप्ति, उसका इन्द्राणीपर आसक्त होना और इन्द्राणीका अवधि माँगकर अश्वमेध यज्ञद्वारा इन्द्रको शुद्ध करना

राजा शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! तब सब देवता और ऋषियोंने कहा कि 'इस समय राजा नहुष बड़ा प्रतापी है, उसीको देवताओंके राजपदपर अभिषिक्त करो। वह बड़ा ही तेजस्वी, यशस्वी और धार्मिक है।' यह सलाह करके उन सबने नहुषके पास जाकर कहा कि 'आप हमारे राजा हो जाइये।' तब नहुषने कहा, 'मैं तो बहुत दुर्बल हूँ। आप-लोगोंकी रक्षा करने योग्य मुझमें शक्ति नहीं है।' ऋषि और देवताओंने कहा, 'राजन्! देवता, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितृगण, गन्धर्व और भूत—ये सब आपकी दृष्टिके सामने खड़े रहेंगे। आप इन्हें देखकर ही इनका तेज लेकर

अपराधके ही मार डाला है। इसलिये अब मैं इन्द्रका नाश करनेके लिये वृत्रासुरको उत्पन्न करूँगा। लोग मेरे पराक्रम और तपोबलको देखें।' ऐसा विचारकर महान् यशस्वी और तपस्वी त्वष्टाने क्रुद्ध होकर जलका आचमन किया और अग्निमें आहुति डालकर वृत्रासुरको उत्पन्न कर उससे कहा, 'इन्द्र-शत्रो! मेरे तपके प्रभावसे तुम बढ़ जाओ।' बस, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी वृत्रासुर उसी समय बढ़कर आकाशको छूने लगा और बोला, 'कहिये, मैं क्या करूँ?' त्वष्टाने कहा, 'इन्द्रको मार डालो।' तब वह स्वर्गमें गया। वहाँ इन्द्र और वृत्रका बड़ा भीषण संग्राम हुआ। अन्तमें वीरवर वृत्रासुरने देवराज इन्द्रको पकड़ लिया और उन्हें साबित ही निगल गया। तब देवताओंने वृत्रका नाश करनेके लिये जँभाईकी रचना की और ज्यों ही वृत्रने जँभाई ली कि देवराज अपने अंग सिकोड़कर उसके खुले हुए मुखसे बाहर आ गये। इन्द्रको बाहर आया देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् फिर इन्द्र और वृत्रका युद्ध होने लगा। जब त्वष्टाका तेज और बल पाकर वीर वृत्रासुर संग्राममें अत्यन्त प्रबल हो गया तो इन्द्र मैदान छोड़कर भाग गये।

इन्द्रके भाग जानेसे देवताओंको बड़ा ही खेद हुआ और वे त्वष्टाके तेजसे घबराकर इन्द्र और मुनियोंके साथ मिलकर सलाह करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। इन्द्रने कहा, 'देवताओ! वृत्रने तो इस सारे संसारको घेर लिया है। मेरे पास ऐसा कोई शस्त्र नहीं है, जो इसका नाश कर सके। अतः मेरा तो ऐसा विचार है कि हमलोग मिलकर विष्णुभगवान्के धामको चलें और उनसे सलाह करके इस दुष्टके नाशका उपाय मालूम करें।'

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर सब देवता और ऋषिगण शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और उनसे कहने लगे, 'पूर्वकालमें आपने अपने तीन डगोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था। आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं। यह सारा संसार आपसे व्याप्त है। आप देवदेवेश्वर हैं। सब लोक आपको नमस्कार करते हैं। इस समय यह सारा जगत् वृत्रासुरसे

व्याप्त है; अतः हे असुरनिकन्दन! आप इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय दीजिये।' विष्णुभगवान्ने कहा, 'मुझे तुमलोगोंका हित अवश्य करना है; इसलिये मैं ऐसा उपाय बताता हूँ, जिससे इसका अन्त हो जायगा। तुम सब देवता, ऋषि और गन्धर्व विश्वरूपधारी वृत्रासुरके पास जाओ और उसके प्रति सामनीतिका प्रयोग करो। इससे तुम उसे जीत लोगे। देवताओ! इस प्रकार मेरे और इन्द्रके प्रभावसे तुम्हारी जीत होगी। मैं अदृश्यरूपसे देवराजके आयुध वज्रमें प्रवेश करूँगा।'

विष्णुभगवान्के ऐसा कहनेपर सब देवता और ऋषि इन्द्रको आगे करके वृत्रासुरके पास चले और उससे बोले, 'दुर्जय वीर! यह सारा जगत् तुम्हारे तेजसे व्याप्त है, तो भी तुम इन्द्रको जीत नहीं सके हो। तुम दोनोंको लड़ते हुए बहुत समय बीत गया है; इससे देवता, असुर और मनुष्य— सभी प्रजाको बड़ा कष्ट हो रहा है। अतः अब सदाके लिये तुम इन्द्रसे मित्रता कर लो।' महर्षियोंकी यह बात सुनकर परम तेजस्वी वृत्रने कहा, 'आप तपस्वीलोग अवश्य ही

मेरे माननीय हैं। किन्तु जो बात मैं कहता हूँ, वह यदि पूरी की जायगी तो आपलोग जैसा कह रहे हैं, वह सब मैं करनेको तैयार हूँ। मुझे इन्द्र और देवतालोग किसी भी सूखी या गीली वस्तुसे, पत्थर या लकड़ीसे, शस्त्र या अस्त्रसे अथवा दिन या रातमें न मार सकें—इस शर्तपर तो मैं सदाके लिये इन्द्रके साथ सन्धि करना स्वीकार कर सकता हूँ।' तब ऋषियोंने उससे कहा, 'ठीक है, ऐसा ही होगा।' इस प्रकार सन्धि हो जानेसे वृत्रासुर बड़ा प्रसन्न हुआ। देवराज भी मनमें प्रसन्न तो हुए, किन्तु वे सदा वृत्रासुरको मारनेका अवसर ढूँढ़ते रहते थे।

एक दिन इन्द्रने सन्ध्याकालमें वृत्रासुरको समुद्रके तटपर

विचरते देखा। उस समय वे वृत्रको दिये हुए वरपर विचार करने लगे—'यह सन्ध्याकाल है, इस समय न दिन है न रात; और मुझे अपने शत्रु वृत्रका वध अवश्य करना है। यदि आज मैं इस महान् असुरको धोखेसे नहीं मारता हूँ तो मेरा हित नहीं हो सकता।' ऐसा विचारकर इन्द्रने ज्यों ही विष्णुभगवान्‌का स्मरण किया कि उन्हें समुद्रपर पर्वतके समान फेन उठता दिखायी दिया। वे सोचने लगे—'यह न सूखा है न गीला, और न कोई शस्त्र ही है। अतः यदि मैं इसे वृत्रासुरपर फेंकूँ तो वह एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगा।' यह सोचकर उन्होंने तुरंत ही अपने वज्रके सहित वह फेन वृत्रासुरपर फेंका और भगवान् विष्णुने उस फेनमें प्रवेश करके उसी समय वृत्रासुरको मार डाला। वृत्रके मरते ही सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग और ऋषि—ये सब इन्द्रकी स्तुति करने लगे।

इन्द्रने देवताओंके लिये भयका कारण बने हुए महाबली वृत्रासुरका वध तो किया, किन्तु पहले त्रिशिराको मारनेसे लगी हुई ब्रह्महत्याके कारण और अब असत्य व्यवहारके कारण तिरस्कृत होनेसे वे मन-ही-मन बहुत दुखी रहने लगे। इन पापोंके कारण वे संज्ञाशून्य और अचेतन-से हो गये तथा सम्पूर्ण लोकोंकी सीमापर जाकर जलमें छिपकर रहने लगे। जब देवराज ब्रह्महत्यासे पीडित होकर स्वर्ग छोड़कर चले गये तो सारी पृथ्वी वृक्षोंके मारे जाने और वनोंके सूख जानेपर ऊजड़-सी हो गयी। नदियोंकी धाराएँ टूट गयीं और सरोवर जलहीन हो गये। अनावृष्टिके कारण सभी जीवोंमें खलबली मच गयी तथा देवता और महर्षियोंको भी बड़ा त्रास होने लगा। कोई राजा न रहनेसे सारा जगत् उपद्रवोंसे पीडित रहने लगा। तब देवताओंको भी भय हुआ कि अब हमारा राजा कौन हो; क्योंकि देवताओंमेंसे तो किसीका भी मन राज्यका भार सँभालनेके लिये होता नहीं था।

नहुषकी इन्द्रपदप्राप्ति, उसका इन्द्राणीपर आसक्त होना और इन्द्राणीका अवधि माँगकर अश्वमेध यज्ञद्वारा इन्द्रको शुद्ध करना

राजा शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर ! तब सब देवता और ऋषियोंने कहा कि 'इस समय राजा नहुष बड़ा प्रतापी है, उसीको देवताओंके राजपदपर अभिषिक्त करो। वह बड़ा ही तेजस्वी, यशस्वी और धार्मिक है।' यह सलाह करके उन सबने नहुषके पास जाकर कहा कि 'आप हमारे राजा हो जाइये।' तब नहुषने कहा, 'मैं तो बहुत दुर्बल हूँ। आपलोगोंकी रक्षा करने योग्य मुझमें शक्ति नहीं है।' ऋषि और देवताओंने कहा, 'राजन् ! देवता, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितृगण, गन्धर्व और भूत—ये सब आपकी दृष्टिके सामने खड़े रहेंगे। आप इन्हें देखकर ही इनका तेज लेकर

बलवान् हो जायँगे । आप धर्मको आगे रखते हुए सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी बन जाइये तथा स्वर्गलोकमें रहकर ब्रह्मर्षि और देवताओंकी रक्षा कीजिये ।' ऐसा कहकर उन्होंने स्वर्गलोकमें नहुपका राज्याभिषेक कर दिया । इस प्रकार वह सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी हो गया ।

किन्तु इस दुर्लभ वर और स्वर्गके राज्यको पाकर पहले निरन्तर धर्मपरायण रहनेपर भी वह भोगी हो गया । वह समस्त देवोद्यानोंमें, नन्दनवनमें तथा कैलास और हिमालय आदि पर्वतोंके शिखरोंपर तरह-तरहकी क्रीडाएँ करने लगा । इससे उसका मन दूषित हो गया । एक दिन वह क्रीडा कर रहा था, उसी समय उसकी दृष्टि देवराजकी भार्या साध्वी इन्द्राणीपर पड़ी । उसे देखकर वह दुष्ट अपने सभासदोंसे कहने लगा, 'मैं देवताओंका राजा और सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी हूँ । फिर इन्द्रकी महिषी देवी इन्द्राणी मेरी सेवाके लिये क्यों नहीं आतीं ? आज तुरंत ही शचीको मेरे महलमें आना चाहिये ।'

नहुषकी यह बात सुनकर देवी इन्द्राणीके चित्तमें बड़ी चोट लगी और उसने बृहस्पतिजीसे कहा, 'ब्रह्मन् ! मैं आपकी शरण हूँ, आप नहुषसे मेरी रक्षा करें । आपने मुझे कई बार अखण्ड सौभाग्यवती, एककी पत्नी और पतिव्रताका
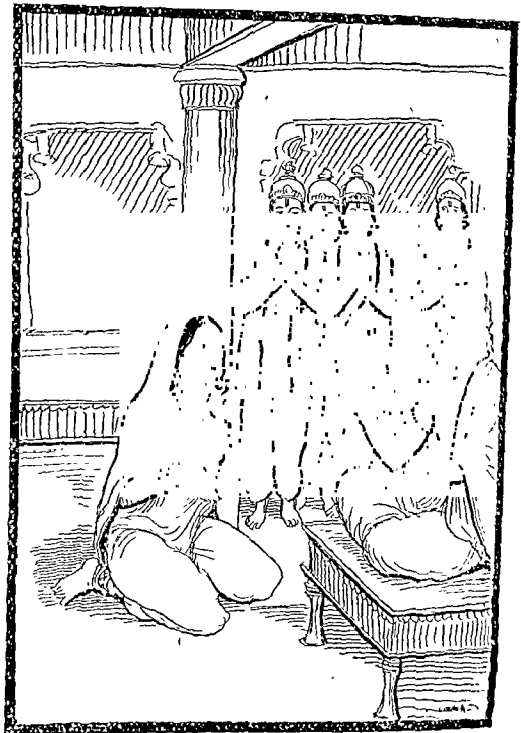
वचन दिया है; अतः आप अपनी वह वाणी सत्य करें ।' तब बृहस्पतिजीने भयसे व्याकुल हुई इन्द्राणीसे कहा, 'देवी ! मैंने जो-जो कहा है, वह अवश्य ही सत्य होगा । तुम नहुषसे मत डरो । मैं सच कहता हूँ, तुम्हें शीघ्र ही इन्द्रसे मिला दूँगा ।' इधर जब नहुषको मालूम हुआ कि इन्द्राणी बृहस्पतिजीकी शरणमें गयी है तो उसे बड़ा क्रोध हुआ । उसे क्रोधमें भरा देखकर देवता और ऋषियोंने कहा, 'देवराज ! क्रोधको त्यागिये, आप-जैसे सत्पुरुष क्रोध नहीं किया करते । इन्द्राणी परस्त्री है, अतः आप उसे क्षमा करें । आप अपने मनको परस्त्रीगमन-जैसे पापसे दूर रक्खें; आखिर आप देवराज हैं, अतः अपनी प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करें । भगवान् आपका मङ्गल करें ।'

ऋषियोंने इसी प्रकार नहुषको बहुत समझाया, किन्तु कामासक्त होनेके कारण उसने उनकी एक न सुनी । तब वे बृहस्पतिजीके पास गये और उनसे बोले, 'देवर्षिश्रेष्ठ ! हमने सुना है कि इन्द्राणी आपकी शरणमें आयी है और आपहीके भवनमें है तथा आपने उसे अभयदान दिया है । परन्तु हम देवता और ऋषिलोग आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप उसे नहुषको दे दीजिये ।' देवता और ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर देवी इन्द्राणीके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वह

दीनतापूर्वक रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी, 'ब्रह्मन्! मैं नहुषको पतिरूपसे स्वीकार नहीं करना चाहती; मैं आपकी शरणमें हूँ, आप इस महान् भयसे मेरी रक्षा करें।' बृहस्पतिजीने कहा, 'इन्द्राणी! मेरा यह निश्चय है कि मैं शरणागतका त्याग नहीं कर सकता। अनिन्दिते! तू धर्मको जाननेवाली और सत्यशीला है, इसलिये मैं तुझे नहीं त्यागूँगा।' फिर देवताओंसे कहा, "मैं धर्मविधिको जानता हूँ, मैंने धर्मशास्त्रका श्रवण किया है और सत्यमें मेरी निष्ठा है; इसके सिवा मैं हूँ भी ब्राह्मण जातिका, इसलिये मैं कोई न करने योग्य काम नहीं कर सकता। आपलोग जाइये, मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा। इस विषयमें पूर्वकालमें ब्रह्माजीने कुछ वचन कहे हैं, उन्हें सुनिये—

'जो पुरुष भयभीत होकर शरणमें आये हुए व्यक्तिको शत्रुके हाथमें दे देता है, उसका बोया हुआ बीज समयपर नहीं उगता, उसके खेतमें समयपर वर्षा नहीं होती तथा रक्षाकी आवश्यकता होनेपर उसे कोई रक्षक नहीं मिलता। ऐसा दुर्बलचित्त पुरुष जो अन्न (भोग) प्राप्त करता है, वह व्यर्थ हो जाता है। उसकी चेतनाशक्ति नष्ट हो जाती है, वह स्वर्गसे गिर जाता है और देवतालोग उसके समर्पित हव्यको ग्रहण नहीं करते। उसकी सन्तान अकालमें ही नष्ट हो जाती है, उसके पितर सदा नरकोंमें निवास करते हैं और इन्द्रके सहित देवतालोग उसपर वज्राघात करते हैं।'*

इस प्रकार ब्रह्माजीके कथनानुसार शरणागतके त्यागसे होनेवाले अधर्मको जानते हुए मैं इन्द्राणीको नहुषके हाथमें नहीं दे सकता। आपलोग कोई ऐसा उपाय करें, जिससे इसका और मेरा दोनोंहीका हित हो।"

तब देवताओंने इन्द्राणीसे कहा—'देवी! यह स्थावर-जंगम सारा जगत् एक तुम्हारे ही आधारसे टिका हुआ है। तुम पतिव्रता और सत्यनिष्ठा हो। एक बार नहुषके पास चलो। तुम्हारी कामना करनेसे वह पापी शीघ्र ही नष्ट हो जायगा और देवराज शक्र फिर अपना ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे।' अपनी कार्यसिद्धिके लिये देवताओंसे ऐसा निश्चय करके इन्द्राणी अत्यन्त संकोचपूर्वक नहुषके पास गयी। उसे देखकर देवराज नहुषने कहा, 'शुचिस्मिते! मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। इसलिये सुन्दरी! तुम मुझे पतिरूपसे वर लो।' नहुषके ऐसा कहनेपर पतिव्रता इन्द्राणी भयसे व्याकुल होकर काँपने लगी। उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीको नमस्कार किया और देवराज नहुषसे कहा, 'सुरेश्वर! मैं आपसे कुछ अवधि माँगती हूँ। अभी यह मालूम नहीं है कि देवराज शक्र कहाँ गये हैं और वे फिर लौटकर आवेंगे या नहीं। इसकी ठीक-ठीक खोज करनेपर यदि उनका पता न लगा तो मैं आपकी सेवा करने लगूँगी।' नहुषने कहा, 'सुन्दरी! तुम जैसा कहती हो, वैसा ही सही। अच्छा, शक्रका पता लगा लो। किन्तु देखो, अपने इन सत्य वचनोंको याद रखना।'

इसके पश्चात् नहुषसे विदा होकर इन्द्राणी बृहस्पतिजीके घर आयी। इन्द्राणीकी बात सुनकर अग्नि आदि देवता इकट्ठे होकर इन्द्रके विषयमें विचार करने लगे। फिर वे देवाधिदेव

भगवान् विष्णुसे मिले और उनसे व्याकुल होकर कहा, 'देवेश्वर! आप जगत्के स्वामी तथा हमारे आश्रय और पूर्वज हैं। आप समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये ही विष्णुरूपमें स्थित हुए हैं। भगवन्! आपके तेजसे वृत्रासुरका विनाश हो जानेपर इन्द्रको ब्रह्महत्याने घेर लिया है। आप उससे छूटनेका उपाय बताइये।' देवताओंकी यह बात सुनकर विष्णुभगवान्‌ने कहा, 'इन्द्र अश्वमेध यज्ञद्वारा मेरा ही पूजन करें, मैं उसे ब्रह्महत्यासे मुक्त कर दूँगा। इससे वह सब प्रकारके भयसे छूटकर फिर देवताओंका राजा हो जायगा और दुष्टबुद्धि नहुष अपने कुकर्मसे नष्ट हो जायगा।'

* न तस्य बीजं रोहति रोहकाले न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन्॥
मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः स्वर्गाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्टः।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः॥
प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम्॥

भगवान् विष्णुकी वह सत्य, शुभ और अमृतमयी वाणी सुनकर देवतालोग ऋषि और उपाध्यायोंके सहित उस स्थानपर गये, जहाँ भयसे व्याकुल इन्द्र छिपे हुए थे। वहाँ इन्द्रकी शुद्धिके लिये ब्रह्महत्याकी निवृत्ति करनेवाला अश्वमेध महायज्ञ आरम्भ हुआ। उन्होंने ब्रह्महत्याको विभक्त करके उसे वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी और स्त्रियोंमें बाँट दिया। इससे इन्द्र निष्पाप और निःशोक हो गये। किन्तु जब वे अपना स्थान ग्रहण करनेके लिये आये तो उन्होंने देखा कि नहुष देवताओंके वरके प्रभावसे दुःसह हो रहा है तथा अपनी दृष्टिसे ही वह समस्त प्राणियोंके तेजको नष्ट कर देता है। यह देखकर वे भयसे काँप उठे और वहाँसे फिर चले गये, तथा अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए सब जीवोंसे अदृश्य रहकर विचरने लगे।

इन्द्रकी बतायी हुई युक्तिसे नहुषका पतन तथा इन्द्रका पुनः देवराज्यपर प्रतिष्ठित होना

युधिष्ठिर! इन्द्रके चले जानेसे इन्द्राणीपर फिर शोकके बादल मँडराने लगे। वह अत्यन्त दुखी होकर 'हा इन्द्र!' ऐसा कहकर विलाप करने लगी और कहने लगी—'यदि मैंने दान किया हो, हवन किया हो और गुरुजनोंको अपनी सेवासे सन्तुष्ट रक्खा हो तथा मुझमें सत्य हो तो मेरा पातिव्रत्य अविचल रहे, मैं कभी किसी अन्य पुरुषकी ओर न देखूँ। मैं उत्तरायणकी अधिष्ठात्री रात्रिदेवीको प्रणाम करती हूँ। वे मेरा मनोरथ सफल करें।' फिर उसने एकाग्रचित्त होकर रात्रिदेवी उपश्रुतिकी उपासना की और यह प्रार्थना की कि 'जहाँपर देवराज हों, वह स्थान मुझे दिखाइये।'

इन्द्राणीकी यह प्रार्थना सुनकर उपश्रुति देवी मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयीं। उन्हें देखकर इन्द्राणीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनका पूजन करके कहा, 'देवी! आप कौन हैं? आपका परिचय पानेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।' उपश्रुतिने कहा, 'देवी! मैं उपश्रुति हूँ। तुम्हारे सत्यके प्रभावसे ही मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिये आयी हूँ। तुम पतिव्रता और यम-नियमसे युक्त हो, मैं तुम्हें देवराज इन्द्रके पास ले चलूँगी। तुम जल्दीसे मेरे पीछे-पीछे चली आओ, तुम्हें देवराजके दर्शन हो जायँगे।' फिर उपश्रुतिके चलनेपर इन्द्राणी उनके पीछे हो ली तथा देवताओंके वन, अनेकों पर्वत तथा हिमालयको लाँघकर एक दिव्य सरोवरपर पहुँची। उस सरोवरमें एक अति सुन्दर विशाल कमलिनी थी। उसे एक ऊँची नालवाले गौरवर्ण महाकमलने घेर रक्खा था। उपश्रुतिने उस कमलके नालको फाड़कर उसमें इन्द्राणीके सहित प्रवेश किया और वहाँ एक तन्तुमें इन्द्रको छिपे हुए पाया। तब इन्द्राणीने पूर्वकर्मोंका उल्लेख करते हुए इन्द्रकी स्तुति की। इसपर इन्द्रने कहा, 'देवी! तुम यहाँ कैसे आयी हो और तुम्हें मेरा पता कैसे लगा?' तब इन्द्राणीने उन्हें नहुषकी सब बातें सुनायीं और अपने साथ चलकर उसका नाश करनेकी प्रार्थना की।

इन्द्राणीके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रने कहा, "देवी! इस समय नहुषका बल बढ़ा हुआ है, ऋषियोंने हव्य-कव्य देकर उसे बहुत बढ़ा दिया है। इसलिये यह पराक्रम प्रकट करनेका समय नहीं है। मैं तुम्हें एक युक्ति बताता हूँ, उसके अनुसार काम करो। तुम एकान्तमें जाकर नहुषसे कहो कि 'तुम ऋषियोंसे अपनी पालकी उठवाकर मेरे पास आओ तो मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे अधीन हो जाऊँगी।'" देवराजके ऐसा कहनेपर शची 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर नहुषके पास गयी। उसे देखकर नहुषने मुसकराकर कहा, 'कल्याणी!

तुम खूब आयीं। कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? तुम विश्वास करो, मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं तुम्हारी बात अवश्य मानूँगा।' इन्द्राणीने कहा, 'जगत्पते ! मैंने आपसे जो अवधि माँगी है, मैं उसके बीतनेकी ही प्रतीक्षामें हूँ। परन्तु मेरे मनमें एक बात है, आप उसपर विचार कर लें। यदि आप मेरी वह प्रेमभरी बात पूरी कर देंगे तो मैं अवश्य आपके अधीन हो जाऊँगी। राजन् ! मेरी ऐसी इच्छा है कि ऋषिलोग आपसमें मिलकर आपको पालकीमें बैठाकर मेरे पास लावें।'

नहुषने कहा—'सुन्दरी ! तुमने तो मेरे लिये यह बड़ी ही अनूठी सवारी बतायी है, ऐसे वाहनपर तो कोई नहीं चढ़ा होगा। यह मुझे बहुत पसंद आया है। मुझे तो तुम अपने अधीन ही समझो। अब सप्तर्षि और ब्रह्मर्षिलोग मेरी पालकी लेकर चलेंगे।' ऐसा कहकर राजा नहुषने इन्द्राणीको विदा कर दिया और अत्यन्त कामासक्त होनेके कारण ऋषियों-से पालकी उठवाने लगा।

इधर शचीने बृहस्पतिजीके पास जाकर कहा, 'नहुषने मुझे जो अवधि दी थी, वह थोड़ी ही शेष रह गयी है। अब आप शीघ्र ही शक्रकी खोज कराइये। मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करें।' तब बृहस्पतिजीने कहा, 'ठीक है, तुम दुष्टचित्त नहुषसे किसी प्रकार भय मत मानो। यह नराधम महर्षियोंसे अपनी पालकी उठवाता है ! इसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं है ! इसलिये अब इसे गया ही समझो। यह बहुत दिन इस स्थानमें नहीं टिक सकता। तुम तनिक भी मत डरो, भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे।' इसके पश्चात् महातेजस्वी बृहस्पतिजीने अग्नि प्रज्वलित करके शास्त्रानुसार उत्तम हविसे हवन किया और अग्निदेवसे इन्द्रकी खोज करनेके लिये कहा। उनकी आज्ञा पाकर अग्निदेवने ताल-तलैया, सरोवर और समुद्रमें इन्द्रकी खोज की। ढूँढते-ढूँढते वे उस सरोवरपर पहुँच गये, जहाँ इन्द्र छिपे हुए थे। वहाँ उन्हें देवराज एक कमलनालके

तन्तुमें छिपे दिखायी दिये। तब उन्होंने बृहस्पतिजीको सूचना दी कि इन्द्र अणुमात्र रूप धारण करके एक कमलनालके तन्तुमें छिपे हुए हैं। यह सुनकर बृहस्पतिजी देवर्षियों और गन्धर्वोंके सहित उस सरोवरके तटपर आये और इन्द्रके प्राचीन कर्मोंका उल्लेख करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। इससे धीरे-धीरे इन्द्रका तेज बढ़ने लगा और वे अपना पूर्वरूप धारण करके शक्तिसम्पन्न हो गये। उन्होंने बृहस्पति-जीसे कहा, 'कहिये, अब आपका कौन कार्य शेष है ? महादैत्य विश्वरूप तो मारा ही गया और विशालकाय वृत्रासुरका भी अन्त हो गया।' बृहस्पतिजीने कहा, 'देवराज ! नहुष नामका एक मानव राजा देवता और ऋषियोंके तेजसे बढ़कर उनका अधिपति हो गया है। वह हमें बहुत ही तंग करता है। तुम उसका नाश करो।'

राजन् ! जिस समय बृहस्पतिजी इन्द्रसे ऐसा कह रहे थे उसी समय वहाँ कुबेर, यम, चन्द्रमा और वरुण भी आ गये और सब देवता देवराज इन्द्रके साथ मिलकर नहुषके नाशका उपाय सोचने लगे। इतनेहीमें वहाँ परम तपस्वी

अगस्त्यजी दिखायी दिये। उन्होंने इन्द्रका अभिनन्दन करके कहा, 'बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि विश्वरूप और वृत्रासुरका वध हो जानेसे आपका अभ्युदय हो रहा है। आज नहुष भी देवराजपदसे भ्रष्ट हो गया। इससे भी मुझे बड़ी प्रसन्नता है।' तब इन्द्रने अगस्त्यमुनिका स्वागत-सत्कार किया और जब वे आसनपर विराज गये तो उनसे पूछा, 'भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि पापबुद्धि नहुषका पतन किस प्रकार हुआ।' अगस्त्यजीने कहा, "देवराज! दुष्टचित्त नहुष जिस प्रकार स्वर्गसे गिरा है, वह प्रसङ्ग मैं सुनाता हूँ; सुनिये। महाभाग देवर्षि और ब्रह्मर्षि पापात्मा नहुषकी पालकी उठाये चल रहे थे। उस समय ऋषियोंके साथ उसका विवाद होने लगा और अधर्मसे बुद्धि बिगड़ जानेके कारण उसने मेरे मस्तकपर लात मारी। इससे उसका तेज और कान्ति नष्ट हो गयी। तब मैंने उससे कहा, 'राजन्! तुम प्राचीन महर्षियोंके चलाये और आचरण किये हुए कर्मपर दोषारोपण करते हो, तुमने ब्रह्माके समान तेजस्वी ऋषियोंसे अपनी पालकी उठवायी है और मेरे सिरपर लात मारी है; इसलिये तुम पुण्यहीन होकर पृथ्वीपर गिरो। अब तुम दस हजार वर्षतक अजगरका रूप धारण करके भटकोगे और इस अवधिके समाप्त होनेपर फिर स्वर्ग प्राप्त करोगे।' इस प्रकार मेरे शापसे वह दुष्ट इन्द्रपदसे च्युत हो गया है, अब आप स्वर्गलोकमें चलकर सब लोकोंका पालन कीजिये।"

तब देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर अग्निदेव, बृहस्पति, यम, वरुण, कुबेर, समस्त देवगण तथा गन्धर्व और अप्सराओंके सहित देवलोकको गये। वहाँ इन्द्राणीसे मिलकर वे अत्यन्त आनन्दपूर्वक सब लोकोंका पालन करने लगे। इसी समय वहाँ भगवान् अङ्गिरा पधारे। उन्होंने अथर्ववेदके मन्त्रोंसे देवराजका पूजन किया। इससे इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें यह वर दिया कि 'आपने अथर्ववेदका गान किया है, इसलिये इस वेदमें आप अथर्वाङ्गिर नामसे विख्यात होंगे और यज्ञका भाग भी प्राप्त करेंगे।' इस प्रकार अथर्वाङ्गिरा ऋषिका सत्कार कर उन्हें इन्द्रने विदा किया। फिर वे समस्त देवता और तपोधन ऋषियोंका सत्कार कर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

शल्यकी बिदाई तथा कौरव और पाण्डवोंके सैन्यसंग्रहका वर्णन

महाराज शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार इन्द्रको अपनी भार्याके सहित कष्ट भोगना पड़ा था और अपने शत्रुओंका वध करनेकी इच्छासे अज्ञातवास भी करना पड़ा था। अतः यदि तुम्हें द्रौपदी और अपने भाइयोंसहित वनमें रहकर कष्ट भोगने पड़े हैं तो उनके लिये तुम रोष न करो। जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर राज्य प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम्हें भी अपना राज्य मिलेगा। तथा जैसे अगस्त्यजीके शापसे नहुषका पतन हुआ था, वैसे ही

तुम्हारे शत्रु कर्ण और दुर्योधनादिका भी नाश हो जायगा ।

राजा शल्यके इस प्रकार ढाढ़स बँधानेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनका विधिवत् सत्कार किया । इसके पश्चात् मद्रराज उनसे अनुमति लेकर अपनी सेनाके सहित दुर्योधनके पास चले आये ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इसके पश्चात् यादव महारथी सात्यकि बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना लेकर राजा युधिष्ठिरके पास आये । उनकी सेनाको भिन्न-भिन्न देशोंसे आये हुए अनेकों वीर सुशोभित कर रहे थे । फरसा, भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिघ, यष्टि (लाठी), पाश, तलवार, धनुष और तरह-तरहके चमचमाते हुए बाणोंसे उनकी सेना एकदम दिप उठी थी । यह सेना राजा युधिष्ठिरकी छावनीमें पहुँची । इसी तरह एक अक्षौहिणी सेना लेकर चेदिराज धृष्टकेतु आया, एक अक्षौहिणी सेनाके साथ जरासन्धका पुत्र मगधराज जयत्सेन आया तथा समुद्रतीरवर्ती तरह-तरहके योद्धाओंके साथ पाण्ड्यराज भी युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुआ । इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशोंकी सेनाका समागम होनेसे पाण्डवपक्षका सैन्यसमुदाय बड़ा ही दर्शनीय, भव्य और शक्तिसम्पन्न जान पड़ता था । महाराज द्रुपदकी सेना भी उनके महारथी पुत्रों और देश-देशसे आये हुए शूरवीरोंके कारण बड़ी भली जान पड़ती थी । मत्स्यदेशीय राजा विराटकी सेनामें अनेकों पर्वतीय राजा सम्मिलित थे । वह भी पाण्डवोंके शिविरमें पहुँच गयी । इस प्रकार जहाँ-तहाँसे आकर सात अक्षौहिणी सेना महात्मा पाण्डवोंके पक्षमें एकत्रित हो गयी । कौरवोंके साथ युद्ध करनेके लिये उत्सुक इस विशाल वाहिनीको देखकर पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए ।
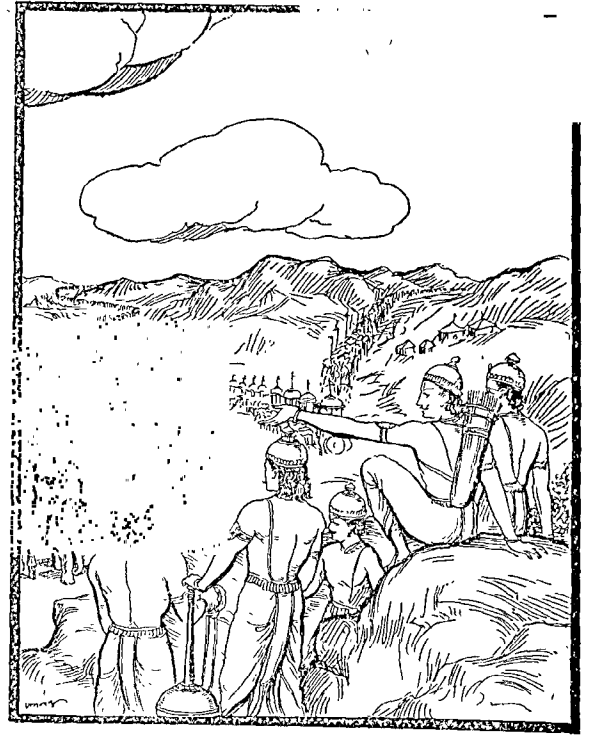
दूसरी ओर राजा भगदत्तने एक अक्षौहिणी सेना देकर कौरवोंका हर्ष बढ़ाया । उनकी सेनामें चीन और किरात देशोंके वीर थे । इसी प्रकार दुर्योधनके पक्षमें और भी कई राजा एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये । हृदीकके पुत्र कृतवर्मा भोज, अन्धक और कुकुरवंशीय यादव वीरोंके सहित एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास उपस्थित हुए । सिन्धु-सौवीर देशके जयद्रथ आदि राजाओंके साथ भी कई अक्षौहिणी सेना आयी । काम्बोजनरेश सुदक्षिण शक और यवन वीरोंके सहित आया । उसके साथ भी एक अक्षौहिणी सेना थी । इसी प्रकार माहिष्मती पुरीका राजा नील दक्षिण देशके महाबली वीरोंके सहित आया । अवन्ति देशके राजा विन्द और अनुविन्द भी एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनकी सेवामें उपस्थित हुए । केकय देशके राजा पाँच सहोदर भाई थे । उन्होंने भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ उपस्थित होकर कुरुराजको प्रसन्न किया । इसके सिवा जहाँ-तहाँसे आये हुए अन्य राजाओंकी तीन अक्षौहिणी सेना और भी

हो गयी। इस प्रकार दुर्योधनके पक्षमें कुल ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई। वह तरह-तरहकी ध्वजाओंसे सुशोभित और पाण्डवोंसे भिड़नेके लिये उत्सुक थी। पञ्चनद, कुरुजाङ्गल, रोहितवन, मारवाड़, अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गातट, वारण, वटधान और यमुनातटका पर्वतीय प्रदेश—यह सारा धन धान्यपूर्ण विस्तृत क्षेत्र कौरवोंकी सेनासे भरा हुआ था। महाराज द्रुपदने अपने जिस पुरोहितको दूत बनाकर भेजा था, उसने इस प्रकार एकत्रित हुई वह कौरव-सेना देखी।

द्रुपदके पुरोहितके साथ भीष्म और धृतराष्ट्रकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर वह द्रुपदका पुरोहित राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचा। धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुरने उसका बड़ा सत्कार किया। पुरोहितने पहले अपने पक्षका कुशल-समाचार कह सुनाया, पीछे उनकी कुशल पूछी। इसके बाद उसने समस्त सेनापतियोंके बीच इस प्रकार कहा—'यह बात प्रसिद्ध है कि धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों एक ही पिताके पुत्र हैं; अतः पिताके धनपर दोनोंका समान अधिकार है। परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंको तो उनका पैतृक धन प्राप्त हुआ और पाण्डुके पुत्रोंको नहीं मिला—इसका क्या कारण है? कौरवोंने अनेकों बार कई उपाय करके पाण्डवोंके प्राण लेनेका उद्योग किया; परन्तु उनकी आयु शेष थी, इसलिये ये उन्हें यमलोक न भेज सके। इतने कष्ट सहनेके बाद भी महात्मा पाण्डवोंने अपने बलसे राज्य बढ़ाया; किन्तु क्षुद्र विचार रखनेवाले धृतराष्ट्रपुत्रोंने शकुनिके साथ मिलकर छलसे वह सारा राज्य छीन लिया। राजा धृतराष्ट्रने भी इस कर्मका अनुमोदन किया और पाण्डव तेरह वर्षतक वनमें रहनेको विवश किये गये। इन सब अपराधोंको भूलकर वे अब भी कौरवोंके साथ समझौता ही करना चाहते हैं। अतः पाण्डवों और दुर्योधनके बर्तावपर ध्यान देकर मित्रों तथा हितैषियोंका यह कर्तव्य है कि वे दुर्योधनको समझावें। पाण्डव वीर हैं, तो भी वे कौरवोंके साथ युद्ध करना नहीं चाहते। उनकी तो यही इच्छा है कि 'संग्राममें जनसंहार किये बिना ही हमें हमारा भाग मिल जाय।' दुर्योधन जिस लाभको सामने रखकर युद्ध करना चाहता है, वह सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि पाण्डव कम बलवान् नहीं हैं। युधिष्ठिरके पास भी सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गयी है और वह युद्धके लिये उत्सुक होकर उनकी आज्ञाकी बाट जोहती है। इसके सिवा पुरुषसिंह सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेव—ये अकेले ही हजारों अक्षौहिणी सेनाके बराबर हैं। एक ओरसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना आवे और दूसरी ओर अकेला अर्जुन हो, तो अर्जुन ही उससे बढ़कर सिद्ध होगा। ऐसे ही महाबाहु श्रीकृष्ण भी हैं। पाण्डवोंकी सेनाकी प्रबलता, अर्जुनका पराक्रम और श्रीकृष्णकी बुद्धिमत्ता देखकर भी कौन मनुष्य उनसे युद्ध करनेको तैयार होगा? अतः धर्म और समयका विचार करके आपलोग पाण्डवोंको जो देने योग्य भाग है, उसे शीघ्र प्रदान करें। यह उपयुक्त अवसर आपके हाथसे चला न जाय, इसका ध्यान रखना चाहिये।'

पुरोहितके वचन सुनकर महाबुद्धिमान् भीष्मजीने उसकी बड़ी प्रशंसा की और यह समयोचित वचन कहा—'ब्रह्मन्! बड़े सौभाग्यकी बात है कि सभी पाण्डव भगवान् श्रीकृष्णके साथ कुशलपूर्वक हैं। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्हें राजाओंकी सहायता प्राप्त है; साथ ही यह भी आनन्दका विषय है कि वे धर्ममें तत्पर हैं। वे पाँचों भाई पाण्डव युद्धका विचार त्यागकर अपने बन्धुओंसे सन्धि करना चाहते हैं, यह तो और भी आनन्दकी बात है। वास्तवमें किरीटधारी अर्जुन बलवान्, अस्त्रविद्यामें निपुण और महारथी है; भला, युद्धमें उसका मुकाबला कौन कर सकता है? साक्षात् इन्द्रमें भी इतनी ताक़त नहीं है; फिर दूसरे धनुषधारियोंकी तो बात ही क्या है? मेरा तो विश्वास है कि वह तीनों लोकोंमें एकमात्र समर्थ वीर है।'

जब भीष्मजी इस प्रकार कह रहे थे, उस समय कर्ण क्रोधमें भर गया और धृष्टतापूर्वक उनकी बात काटकर कहने लगा—'ब्रह्मन्! अर्जुनके पराक्रमकी बात किसीसे छिपी नहीं है, फिर बारंबार उसे कहनेसे क्या लाभ? पहलेकी बात है। शकुनिने दुर्योधनके लिये जूएमें

युधिष्ठिरको हराया था, उस समय वे एक शर्त मानकर वनमें गये थे। उस शर्तको पूरा किये बिना ही वे मत्स्य तथा
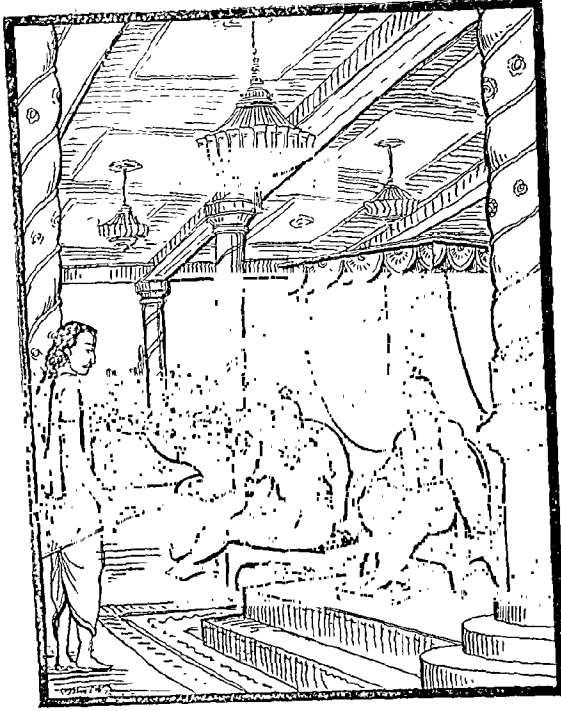
पञ्चाल देशवालोंके भरोसे मूर्खकी भाँति पैतृक सम्पत्ति लेना चाहते हैं ! परन्तु दुर्योधन उनके डरसे राज्यका चौथाई भाग भी नहीं दे सकते। यदि वे अपने बाप-दादोंका राज्य लेना चाहते हैं, तो प्रतिज्ञाके अनुसार नियत समयतक पुनः वनमें रहें। यदि धर्म छोड़कर लड़नेपर ही उतारू हैं, तो इन कौरव वीरोंके पास आनेपर वे मेरे वचनोंको भी भलीभाँति याद करेंगे।'

भीष्मजी बोले—राधापुत्र ! मुँहसे कहनेकी क्या आवश्यकता है; एक बार अर्जुनके उस पराक्रमको तो याद कर लो, जब कि विराटनगरके संग्राममें उसने अकेले ही छः महारथियोंको जीत लिया था। तुम्हारा पराक्रम तो उसी समय देखा गया, जब कि अनेकों बार उसके सामने जाकर तुम्हें परास्त होना पड़ा। यदि हमलोग इस ब्राह्मणके कथनानुसार कार्य नहीं करेंगे, तो अवश्य ही युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे मरकर हमें धूल फाँकनी पड़ेगी।

भीष्मके ये वचन सुनकर धृतराष्ट्रने उनका सम्मान किया और उन्हें प्रसन्न करते हुए कर्णको डाँटकर कहा—'भीष्मजीने जो कहा है, इसीमें हमारा और पाण्डवोंका हित है। इसीसे जगत्का भी कल्याण है। ब्राह्मणदेवता ! मैं सबके साथ सलाह करके सञ्जयको पाण्डवोंके पास भेजूँगा। अब आप शीघ्र ही लौट जाइये।' ऐसा कहकर धृतराष्ट्रने पुरोहितका सत्कार किया और उन्हें पाण्डवोंके पास भेज दिया।

धृतराष्ट्र और सञ्जयकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर धृतराष्ट्रने सञ्जयको सभामें बुलाकर कहा—"सञ्जय ! लोग कहते हैं पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें आकर रह रहे हैं। तुम भी वहाँ जाकर उनकी सुध लो। अजातशत्रु युधिष्ठिरसे आदरपूर्वक मिलकर कहना—'बड़े आनन्दकी बात है कि आपलोग अब अपने स्थानपर आ गये हैं।' उन सब लोगोंसे हमारी कुशल कहना और उनकी पूछना। वे वनवासके योग्य कदापि नहीं थे, फिर भी वह कष्ट उन्हें भोगना ही पड़ा। इतनेपर भी उनका हमलोगोंपर क्रोध नहीं है। वास्तवमें वे बड़े निष्कपट और सज्जनोंका उपकार करनेवाले हैं। सञ्जय ! मैंने पाण्डवोंको कभी बेईमानी करते नहीं देखा। इन्होंने अपने पराक्रमसे लक्ष्मी प्राप्त करके भी सब मेरे ही अधीन कर दी थी। मैं सदा इनमें दोष ढूँढ़ा करता था; पर कभी कोई भी दोष न पा सका, जिससे इनकी निन्दा करूँ। ये समय पड़नेपर धन देकर मित्रोंकी सहायता करते हैं। प्रवाससे भी इनकी मित्रतामें कमी नहीं आयी। ये सबका यथोचित आदर-सत्कार करते हैं। आजमीढवंशी क्षत्रियोंके पक्षमें दुर्योधन और कर्णके सिवा दूसरा कोई भी इनका शत्रु नहीं है। सुख और प्रियजनोंसे बिछुड़े हुए इन पाण्डवोंके क्रोधको ये ही दोनों बढ़ाते रहते हैं। मूर्ख दुर्योधन पाण्डवोंके जीते-जी उनका भाग अपहरण कर लेना सरल समझता है। जिस युधिष्ठिरके पीछे अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, सात्यकि, नकुल, सहदेव और सम्पूर्ण सृञ्जयवंशी वीर हैं, उनका राज्यभाग युद्धके पहले ही दे देनेमें कल्याण है। गाण्डीवधारी अर्जुन अकेले ही रथमें बैठकर सारी पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर सकता है; इसी प्रकार विजयी एवं दुर्धर्ष वीर महात्मा श्रीकृष्ण भी तीनों लोकोंके स्वामी हो सकते हैं। भीमके समान गदाधारी और हाथीकी सवारी करनेवाला तो कोई है ही नहीं। उसके साथ यदि वैर हुआ तो वह मेरे पुत्रोंको जलाकर भस्म कर डालेगा। साक्षात् इन्द्र भी उसे युद्धमें हरा नहीं सकते। माद्रीनन्दन नकुल और

सहदेव भी शुद्धचित्त एवं बलवान् हैं। जैसे दो बाज पक्षियोंके समूहको नष्ट करें, उसी प्रकार वे दोनों भाई शत्रुओंको जीवित नहीं छोड़ सकते। पाण्डवपक्षमें जो धृष्टद्युम्न नामक एक योद्धा

है, वह बड़े वेगसे युद्ध करता है। मत्स्यदेशका राजा विराट भी अपने पुत्रोंसहित पाण्डवोंका सहायक है; सुना है वह युधिष्ठिरका बड़ा भक्त है। पाण्ड्यदेशका राजा भी बहुत-से वीरोंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आया है। सात्यकि तो उनकी अभीष्टसिद्धिमें लगा ही हुआ है।

"कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा, लज्जाशील और बलवान् हैं। शत्रुभाव तो उन्होंने किसीके प्रति किया ही नहीं किन्तु दुर्योधनने उनके साथ भी छल किया है। मुझे तो भय है कहीं वे क्रोध करके मेरे पुत्रोंको जलाकर भस्म न कर डालें। मैं राजा युधिष्ठिरके कोपसे जितना डरता हूँ उतना भय मुझे श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे भी नहीं है; क्योंकि युधिष्ठिर बड़े तपस्वी हैं, उन्होंने नियमानुसार ब्रह्मचर्यका पालन किया है। अतः वे अपने मनमें जो भी संकल्प करेंगे, वह पूरा होकर ही रहेगा। पाण्डव श्रीकृष्णसे बहुत प्रेम रखते हैं। उन्हें अपने आत्माके समान मानते हैं। कृष्ण भी बड़े विद्वान् हैं और सदा पाण्डवोंके हितसाधनमें लगे रहते हैं। वे यदि सन्धिके लिये कुछ भी कहेंगे तो युधिष्ठिर मान लेंगे; वे उनकी बात नहीं टाल सकते। सञ्जय! तुम वहाँ मेरी ओरसे पाण्डवों और सृञ्जयवंशी वीरोंकी तथा श्रीकृष्ण, सात्यकि, विराट एवं द्रौपदीके पाँच पुत्रोंकी भी कुशल पूछना। फिर राजाओंके मध्यमें समयानुसार जो भी उचित हो, बातचीत करना। जिससे भरतवंशियोंका हित हो, परस्पर क्रोध या मनमुटाव न बढ़े और युद्धका कारण भी उपस्थित न होने पावे—ऐसी बात करनी चाहिये।"

उपप्लव्यमें सञ्जय और युधिष्ठिरका संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा धृतराष्ट्रके वचन सुनकर सञ्जय पाण्डवोंसे मिलनेके लिये उपप्लव्यमें गया। वहाँ पहुँचकर उसने पहले कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया, इसके बाद प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज अपने सहायकोंके साथ आप सकुशल दिखायी दे रहे हैं। अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने आपकी कुशल पूछी है। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तो कुशलपूर्वक हैं न? सत्यव्रतका आचरण करनेवाली वीरपत्नी राजकुमारी द्रौपदी तो प्रसन्न है न?'

राजा युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय! तुम्हारा स्वागत है, तुमसे मिलकर आज हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। हम अपने भाइयोंके साथ यहाँ कुशलपूर्वक हैं। हमारे पितामह भीष्मजीकी कुशल कहो, क्या उनका हमलोगोंपर पूर्ववत् स्नेहभाव है? अपने पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र तथा महाराज बाह्लीक तो कुशलसे हैं न? सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजा शल्य, पुत्रसहित द्रोणाचार्य और कृपाचार्य—ये प्रधान धनुर्धर भी स्वस्थ हैं न? भरतवंशकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों, माताओं तथा बहुओंको तो कोई कष्ट नहीं है? रसोई बनानेवाली स्त्रियाँ, दासियाँ, पुत्र, भानजे, बहिनें और धेवते निष्कपटभावसे रहते हैं न? राजा दुर्योधन पहलेहीकी भाँति ब्राह्मणोंके साथ यथोचित बर्ताव करता है या नहीं? मैंने जो ब्राह्मणोंको वृत्ति दी थी, उसको छीनता तो नहीं है? क्या कभी सब कौरव इकट्ठे होकर धृतराष्ट्र और दुर्योधनसे मुझे राज्यभाग देनेके लिये कहते हैं? राज्यमें लुटेरोंके दलको देखकर कभी उन्हें वीराग्रणी अर्जुनकी भी याद आती है? क्योंकि अर्जुन एक ही साथ इकसठ बाण चला सकता है। भीमसेन भी जब गदा हाथमें लेता है, तो उसे देखकर शत्रुसमूह काँप उठता है। ऐसे पराक्रमी भीमका भी कभी वे स्मरण करते हैं? महाबली एवं अतुल पराक्रमी नकुल-सहदेवको वे भूल तो नहीं गये हैं? मन्दबुद्धि दुर्योधन आदि जब खोटे विचारसे घोषयात्राके

लिये वनमें गये और युद्धमें पराजित हो शत्रुओंकी कैदमें जा पड़े, उस समय भीमसेन और अर्जुनने ही उनकी रक्षा की थी—यह बात उन्हें याद आती है या नहीं ? सञ्जय ! यदि हमलोग दुर्योधनको सर्वथा पराजित न कर सकें तो केवल एक बार उसकी भलाई कर देनेसे उसको वशमें करना कठिन ही जान पड़ता है ।

सञ्जय बोला—पाण्डुनन्दन ! आपने जो कुछ कहा है, बिल्कुल ठीक है । जिनकी कुशल आपने पूछी है, वे सभी कुरुश्रेष्ठ सानन्द हैं । दुर्योधन तो शत्रुओंको भी दान करता है, फिर ब्राह्मणोंको दी हुई वृत्ति कैसे छीन सकता है ? धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंको आपसे द्वेष करनेकी आज्ञा नहीं देते । वे तो उन्हें द्रोह करते सुनकर मन-ही-मन बहुत संतप्त होते हैं । कारण कि वे अपने यहाँ आये हुए ब्राह्मणोंके मुखसे बराबर सुनते हैं कि 'मित्रद्रोह सब पातकोंसे भारी पाप है ।' युद्धकी चर्चा चलनेपर राजा धृतराष्ट्र वीराग्रणी अर्जुन, गदाधारी भीम तथा रणधीर नकुल-सहदेवका सदा ही स्मरण करते हैं । अजातशत्रो ! अब आप ही अपनी बुद्धिसे विचार करके कोई ऐसा मार्ग निकालिये जिससे कौरव, पाण्डव तथा सृञ्जय-वंशियोंको सुख मिले । यहाँ जो राजा उपस्थित हैं, उन्हें बुला लीजिये । अपने मन्त्रियों और पुत्रोंको भी साथ रखिये । फिर

आपके चाचा धृतराष्ट्रने जो सन्देश भेजा है, उसे सुनिये ।

युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय ! यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा राजा विराट मौजूद हैं; पाण्डव और सृञ्जय—सब एकत्रित हैं । अब धृतराष्ट्रका सन्देश सुनाओ ।

सञ्जय बोला—राजा धृतराष्ट्र युद्ध नहीं, शान्ति चाहते हैं । उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ रथ तैयार कराकर मुझे यहाँ भेजा है । मैं समझता हूँ भाई, पुत्र और कुटुम्बीजनोंके साथ राजा युधिष्ठिर इस बातको पसंद करेंगे । इससे पाण्डवोंका हित होगा । कुन्तीके पुत्रो ! आप अपने दिव्य शरीर, नम्रता और सरलता आदिके कारण सब धर्मों एवं उत्तम गुणोंसे युक्त हैं । उत्तम कुलमें आपलोगोंका जन्म हुआ है । आप बड़े ही दयालु और दानी हैं । स्वभावतः संकोची, शीलवान् और कर्मोंके परिणामको जाननेवाले हैं । आपका हृदय सत्त्व-गुणसे परिपूर्ण है, अतः आपसे किसी खोटे कर्मका होना सम्भव नहीं है । यदि आपलोगोंमें कोई दोष होता तो वह प्रकट हो जाता; क्या सफेद वस्त्रमें काला दाग छिप सकता है ? जिसके करनेमें सबका विनाश दिखायी दे, सब प्रकारसे पापका उदय होता हो और अन्तमें नरकका द्वार देखना पड़े, उस युद्ध-जैसे कठोर कर्ममें कौन समझदार पुरुष प्रवृत्त हो सकता है ? वहाँ तो जय और पराजय दोनों समान हैं । भला, कुन्तीके पुत्र अन्य अधम पुरुषोंके समान ऐसा कर्म करनेके लिये कैसे तैयार हो गये जो न धर्मका साधक है, न अर्थका । यहाँ भगवान् वासुदेव हैं, सबमें वृद्ध पञ्चालराज द्रुपद हैं; इन सबको प्रणाम करके मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ । हाथ जोड़कर आपलोगोंकी शरणमें आया हूँ; मेरी प्रार्थनापर ध्यान देकर वही कार्य करें, जिससे कौरव और सृञ्जयवंशका कल्याण हो । मुझे विश्वास है भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरी प्रार्थना ठुकरा नहीं सकते; और तो क्या, मेरे माँगनेपर अर्जुन अपने प्राणतक दे सकते हैं । ऐसा समझकर ही मैं सन्धिके लिये प्रस्ताव करता हूँ । सन्धि ही शान्तिका सर्वोत्तम उपाय है । भीष्मपितामह और राजा धृतराष्ट्रकी भी यही सम्मति है ।

युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय ! तुमने ऐसी कौन-सी बात सुनी है, जिससे मेरी युद्धकी इच्छा जानकर भयभीत हो रहे हो ? युद्ध करनेकी अपेक्षा उसे न करना ही अच्छा है । सन्धिका अवसर पाकर भी कौन युद्ध करना चाहेगा ? इस बातको मैं भी समझता हूँ कि बिना युद्ध किये यदि थोड़ा भी लाभ हो तो उसे बहुत मानना चाहिये । सञ्जय ! तुम जानते हो हमने वनमें कितना क्लेश उठाया है । फिर भी तुम्हारी बातका खयाल करके हम कौरवोंके अपराध क्षमा कर सकते हैं । कौरवोंने पहले हमारे साथ जो बर्ताव किया और उस समय हमलोगोंका उनके साथ जैसा व्यवहार था, यह भी तुमसे छिपा नहीं है । अब भी सब कुछ वैसा ही हो सकता है । तुम्हारे कथनानुसार

हम शान्ति धारण कर लेंगे। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में मेरा ही राज्य रहे और दुर्योधन इस बातको स्वीकार करके वहाँका राज्य हमें वापस कर दे।

सञ्जय बोला—पाण्डुनन्दन ! आपकी प्रत्येक चेष्टा धर्मके अनुसार होती है, यह बात लोकमें प्रसिद्ध है और देखी भी जा रही है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है, तथापि इससे महान् सुयशकी प्राप्ति हो सकती है—इस बातको सोचकर आप अपनी कीर्तिका नाश न करें। अजातशत्रो ! यदि कौरव युद्ध किये बिना तुम्हें अपना राज्यभाग न दे सकें तो भी मैं अन्धक और वृष्णिवंशी राजाओंके राज्यमें भीख माँगकर निर्वाह कर लेना अच्छा समझता हूँ; परन्तु युद्ध करके सारा राज्य पा लेना भी अच्छा नहीं है। मनुष्यका जीवन बहुत थोड़े समयतक रहनेवाला है; वह सदा क्षीण होनेवाला, दुःखमय और चञ्चल है। अतः पाण्डव ! यह नरसंहार तुम्हारे यशके अनुकूल नहीं है; तुम युद्धरूपी पापमें प्रवृत्त मत होओ। इस जगत्‌के भीतर धनकी तृष्णा बन्धनमें डालनेवाली है, उसमें फँसनेपर धर्ममें बाधा आती है। जो धर्मको अङ्गीकार करता है, वही ज्ञानी है। भोगोंकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अर्थसिद्धिसे भ्रष्ट हो जाता है। जो ब्रह्मचर्य और धर्माचरणका त्याग करके अधर्ममें प्रवृत्त होता है तथा जो मूर्खताके कारण परलोकपर अविश्वास करता है, वह अज्ञानी मृत्युके पश्चात् बड़ा कष्ट भोगता है। परलोकमें जानेपर भी अपने पहलेके किये हुए पुण्य-पापरूपी कर्मोंका नाश नहीं होता। पहले तो पाप-पुण्य ही मनुष्यके पीछे चलते हैं, फिर मनुष्यको इनके पीछे चलना पड़ता है। इस शरीरके रहते हुए ही कोई भी सत्कर्म किया जा सकता है, मरनेके बाद कुछ भी नहीं हो सकता। आपने तो परलोकमें सुख देनेवाले अनेकों पुण्य कर्म किये हैं, जिनकी सत्पुरुषोंने बड़ी प्रशंसा की है। इतनेपर भी यदि आपलोगोंको वह युद्धरूपी पापकर्म ही करना है, तब तो चिरकालके लिये आप बनमें जाकर रहें—यही अच्छा है। वनवासमें दुःख तो होगा, पर है वह धर्म। कुन्तीनन्दन ! आपकी बुद्धि कभी भी अधर्ममें नहीं लगती; आपने क्रोधवश कभी पापकर्म किया हो, ऐसी बात भी नहीं है। फिर बताइये, क्या कारण है जिसके लिये आप अपने विचारके विपरीत कार्य करना चाहते हैं !

युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय ! तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक है कि सब प्रकारके कर्मोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है। परन्तु मैं जो कार्य करने जा रहा हूँ, वह धर्म है या अधर्म—इसकी पहले खूब जाँच कर लो; फिर मेरी निन्दा करना। कहीं तो अधर्म ही धर्मका चोला पहन लेता है, कहीं पूरा-का-पूरा धर्म अधर्मके रूपमें दिखायी देता है और कहीं धर्म अपने स्वरूपमें ही रहता है। विद्वान्‌लोग अपनी बुद्धिसे इसकी परीक्षा कर लेते हैं। एक वर्णके लिये जो धर्म है, वही दूसरेके लिये अधर्म है। इस प्रकार यद्यपि धर्म और अधर्म नित्य रहनेवाले हैं, तथापि आपत्तिकालमें इनका अदल-बदल भी होता है। जो धर्म जिसके लिये मुख्य बताया गया है, वह उसीके लिये प्रमाणभूत है। दूसरोंके द्वारा उसका व्यवहार तो आपत्तिकालमें ही हो सकता है। आजीविकाका साधन सर्वथा नष्ट हो जानेपर जिस वृत्तिका आश्रय लेनेसे जीवनकी रक्षा एवं सत्कर्मोंका अनुष्ठान हो सके, उसका आश्रय लेना चाहिये। जो आपत्तिकाल न होनेपर भी उस समयके धर्मका पालन करता है, तथा जो वास्तवमें आपत्तिग्रस्त होकर भी तदनुसार जीविका नहीं चलाता—वे दोनों ही निन्दाके पात्र हैं। जीविकाका मुख्य साधन न होनेपर ब्राह्मणोंका नाश न हो जाय, इसके लिये विधाताने अन्य वर्णोंकी वृत्तिसे जीविका चलाकर उसके लिये प्रायश्चित्त करनेका विधान किया है। इस व्यवस्थाके अनुसार यदि तुम मुझे विपरीत आचरण करते देखो तो अवश्य निन्दा करो। मनीषी पुरुषोंको सत्त्वादिके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये संन्यास लेनेके पश्चात् सत्पुरुषोंके यहाँसे भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करना चाहिये; उनके लिये शास्त्रका ऐसा विधान है। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हैं, तथा जिनकी ब्रह्मविद्यामें निष्ठा नहीं है, उन सबके लिये अपने-अपने धर्मोंका पालन ही उत्तम माना गया है। मेरे पिता-पितामह तथा उनके भी पूर्वज जिस मार्गको मानते रहे, तथा यशकी इच्छासे वे जो-जो कर्म करते रहे, मैं भी उन्हीं मार्गों और कर्मोंको मानता हूँ, उनसे अतिरिक्त नहीं। अतः मैं नास्तिक नहीं हूँ। सञ्जय ! इस पृथ्वीपर जो कुछ भी धन है, देवताओं, प्रजापतियों तथा ब्रह्माजीके लोकमें भी जो वैभव हैं, वे सभी मुझे प्राप्त होते हों तो भी मैं उन्हें अधर्मसे लेना नहीं चाहूँगा। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं; ये समस्त धर्मोंके ज्ञाता, कुशल, नीतिमान्, ब्राह्मणभक्त और मनीषी हैं। बड़े-बड़े बलवान् राजाओं तथा भोजवंशका शासन करते हैं। यदि मैं सन्धिका परित्याग अथवा युद्ध करके अपने धर्मसे भ्रष्ट हो निन्दाका पात्र बन रहा हूँ, तो ये भगवान् वासुदेव इस विषयमें अपने विचार प्रकट करें; क्योंकि इन्हें दोनों पक्षोंका हित-साधन अभीष्ट है। ये प्रत्येक कर्मका अन्तिम परिणाम जानते हैं, विद्वान् हैं; इनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। ये हमारे सबसे बढ़कर प्रिय हैं, मैं इनकी बात कभी नहीं टाल सकता।

सञ्जयके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके वचन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सञ्जय ! जिस प्रकार मैं पाण्डवोंको विनाशसे बचाना चाहता हूँ, उनको ऐश्वर्य दिलाना तथा उनका प्रिय करना चाहता हूँ, उसी प्रकार अनेकों पुत्रोंसे युक्त राजा धृतराष्ट्रके अभ्युदयकी भी शुभ कामना करता हूँ। मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि दोनों पक्ष शान्त रहें। राजा युधिष्ठिरको भी शान्ति ही प्रिय है, यह बात

सुनता हूँ और पाण्डवोंके समक्ष इसे स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु सञ्जय ! शान्तिका होना कठिन ही जान पड़ता है; जब धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंसहित लोभवश इनका राज्य भी हड़प लेना चाहता है, तो कलह कैसे नहीं बढ़ेगा ? तुम यह जानते हो कि मुझसे या युधिष्ठिरसे धर्मका लोप नहीं हो सकता; तो भी उत्साहके साथ अपने धर्मका पालन करनेवाले युधिष्ठिरके धर्मलोपकी शङ्का तुम्हें क्यों हुई ? ये तो पहलेसे ही शास्त्रीय विधिके अनुसार कुटुम्बमें रह रहे हैं; अपने राज्यभागको प्राप्त करनेका जो ये प्रयास करते हैं, इसे तुम धर्मका लोप क्यों बता रहे हो ? इस प्रकारके गार्हस्थ्यजीवनका भी विधान तो है ही; इसे छोड़कर वनवासी होनेका विचार तो ब्राह्मणोंमें होना चाहिये। कोई तो गृहस्थधर्ममें रहकर कर्मयोगके द्वारा पारलौकिक सिद्धिका होना मानते हैं, कुछ लोग कर्मको त्याग-कर ज्ञानके द्वारा ही सिद्धिका प्रतिपादन करते हैं; परन्तु खाये-पिये बिना किसीकी भी भूख नहीं मिट सकती। इसीसे ब्रह्मवेत्ता ज्ञानीके लिये भी गृहस्थोंके घर भिक्षाका विधान है। इस ज्ञानयोगकी विधिका भी कर्मके साथ ही विधान है; ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म उच्छिन्न हो जाता है, बन्धनकारक नहीं होता। इनमें कर्मको त्यागकर केवल संन्यास आदिको ही जो लोग उत्तम मानते हैं, वे दुर्बल हैं; उनके कथनका कोई मूल्य नहीं है। सञ्जय ! तुम तो सम्पूर्ण लोकोंका धर्म जानते हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका धर्म भी तुम्हें अज्ञात नहीं है। ऐसे ज्ञानवान् होकर भी कौरवोंके लिये तुम हठ क्यों कर रहे हो ? राजा युधिष्ठिर शास्त्रोंका सदा स्वाध्याय करते हैं, अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान भी इन्होंने किया है। इसके सिवा धनुष, कवच, हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्र आदिसे भी भलीभाँति सम्पन्न हैं। पाण्डव स्वधर्मानुसार कर्तव्यका पालन करते रहें और क्षत्रियोचित युद्धकर्ममें प्रवृत्त होकर यदि दैववश मृत्युको भी प्राप्त हो जायँ तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायगी। यदि तुम सब कुछ छोड़कर शान्ति धारण करनेको ही धर्म मानते हो तो यह बताओ कि युद्ध करनेसे राजाओंके धर्मका ठीक-ठीक पालन होता है या युद्ध छोड़कर भाग जानेसे ? इस विषयमें मैं तुम्हारा कथन सुनना चाहता हूँ। पाण्डवोंका जो राज्यभाग धर्मके अनुसार उन्हें प्राप्त होना चाहिये, उसे धृतराष्ट्र सहसा हड़प लेना चाहता है। उसके पुत्र समस्त कौरव भी उसीका साथ दे रहे हैं। कोई भी प्राचीन राजधर्मकी ओर दृष्टि नहीं डालता। लुटेरा छिपे रहकर धन चुरा ले जाय अथवा सामने आकर बलपूर्वक डाका डाले—दोनों **ही** दशामें वह निन्दाका पात्र है। सञ्जय ! तुम्हीं बताओ, दुर्योधन और उन चोर-डाकुओंमें क्या अन्तर है ? दुर्योधन तो क्रोधके वशीभूत हो रहा है; इसने जो छलसे राज्यका अपहरण किया है, उसे लोभके कारण धर्म मानता है और राज्यको हथियाना चाहता है। किन्तु पाण्डवोंका राज्य तो धरोहरके रूपमें रक्खा गया था, उसे कौरवलोग कैसे पा सकते हैं ? दुर्योधनने जिन्हें युद्धके लिये एकत्रित किया है, वे मूर्ख राजालोग घमंडके कारण मौतके फंदेमें आ फँसे हैं। सञ्जय ! भरी सभामें कौरवोंने जो बर्ताव किया था, उस महान् पापकर्मपर भी दृष्टि डालो। पाण्डवोंकी प्यारी पत्नी सुशीला द्रौपदी रजस्वलाकी अवस्थामें सभामें लायी गयी; पर भीष्म आदि प्रधान कौरवोंने भी उसकी ओरसे उपेक्षा दिखायी। उस समय यदि बालकसे लेकर बूढ़ेतक सभी कौरव दुःशासनको रोक देते तो मेरा

प्रिय कार्य होता और धृतराष्ट्रके पुत्रोंका भी हित होता। सभामें बहुत-से राजा एकत्रित थे, परन्तु दीनतावश किसीसे भी उस अन्यायका विरोध नहीं किया जा सका। केवल विदुरजीने अपना धर्म समझकर मूर्ख दुर्योधनको मना किया था। सञ्जय! वास्तवमें धर्मको बिना समझे ही तुम इस सभामें पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको ही धर्मका उपदेश करना चाहते हो? द्रौपदीने उस दिन उस सभामें जाकर बड़ा दुष्कर कार्य किया, जो कि उसने अपने पतियोंको संकटसे बचा लिया। उसे वहाँ कितना अपमान सहना पड़ा! सभामें वह अपने श्वशुरोंके पास खड़ी थी, तो भी उसे लक्ष्य करके सूतपुत्र कर्णने कहा—'याज्ञसेनी! अब तेरे लिये दूसरी गति नहीं है, दासी बनकर दुर्योधनके महलमें चली जा। तेरे पति तो दाँवमें हार चुके हैं; अब किसी दूसरे पतिको वर ले।' जब पाण्डव वनमें जानेके लिये काला मृगचर्म धारण कर रहे थे, उस समय दुःशासनने यह कितनी कड़वी बात कही—'ये सब-के-सब नपुंसक अब नष्ट हो गये, चिरकालके लिये नरक गर्तमें गिर गये।' सञ्जय! कहाँतक कहें, जूएके समय जि निन्दित वचन कहे गये थे, वे सब तुम्हें ज्ञात हैं; तो भी बिगड़े हुए कार्यको बनानेके लिये मैं स्वयं हस्तिनापुर चल चाहता हूँ। यदि पाण्डवोंका स्वार्थ नष्ट किये बिना कौरवोंके साथ सन्धि करानेमें सफल हो सका, तो मैं अपने इ कार्यको बहुत ही पुनीत और अभ्युदयकारी समझूँगा औ कौरव भी मौतके फंदेसे छूट जायँगे। कौरव लताओंके समा हैं और पाण्डव वृक्षकी शाखाके समान। इन शाखाओंक सहारा लिये बिना लताएँ बढ़ नहीं सकतीं। पाण्डव धृतराष्ट्र की सेवाके लिये भी तैयार हैं और युद्धके लिये भी। अ राजाको जो अच्छा लगे, उसे स्वीकार करें। पाण्डव धर्मक आचरण करनेवाले हैं; यद्यपि ये शक्तिशाली योद्धा हैं, तो भ सन्धि करनेको उद्यत हैं। तुम ये सब बातें धृतराष्ट्रको अच्छी तरह समझा देना!

सञ्जयकी विदाई, युधिष्ठिरका सन्देश

सञ्जयने कहा—पाण्डुनन्दन! आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ और इसके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ। मैंने मानसिक आवेशके कारण वाणीसे जो कुछ कह दिया, इससे आपको कष्ट तो नहीं हुआ?

युधिष्ठिर बोले—सञ्जय! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम तो कभी हमें कष्ट देनेकी बात सोचते भी नहीं। समस्त कौरव तथा हम पाण्डवलोग जानते हैं तुम्हारा हृदय शुद्ध है और तुम किसीके पक्षपाती न होकर मध्यस्थ हो। तुम विश्वसनीय हो, तुम्हारी बातें कल्याणकारिणी होती हैं। तुम शीलवान् और सन्तोषी हो, इसलिये मुझे प्रिय लगते हो। तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती; कटु वचन कहनेपर भी तुम्हें कभी क्रोध नहीं होता। सञ्जय! तुम हमारे प्रिय हो और विदुरके समान दूत बनकर आये हो, तथा अर्जुनके प्रिय सखा हो। वहाँ जाकर स्वाध्यायशील ब्राह्मणों, संन्यासियों तथा वनवासी तपस्वियोंसे और बड़े-बूढ़े लोगोंसे मेरा प्रणाम कहना। बाकी जो लोग हों, उनसे कुशल-समाचार कहना। जो प्रजाका पालन करते हुए राज्यमें निवास करते हों, उन क्षत्रियों और जो राष्ट्रके भीतर व्यापार करके जीविका चला रहे हों, उन वैश्योंसे भी मेरी कुशल कहकर उनकी भी कुशल पूछना। आचार्य द्रोणसे प्रणाम कहना, अश्वत्थामाकी कुशल पूछना और कृपाचार्यके घर जाकर मेरी ओरसे उनका चरणस्पर्श करना। जिनमें शूरता, नृशंसताका अभाव, तपस्या, बुद्धि, शील, शास्त्रज्ञान, सत्त्व और धैर्य आदि सद्गुण विद्यमान हैं, उन भीष्मजीके चरणोंमें मेरा नाम लेकर प्रणाम कहना। राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम करके मेरी कुशल कहना और दुर्योधन, दुःशासन तथा कर्ण आदिसे भी कुशल पूछना। दुर्योधनने पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये जिन वशाति, शाल्वक, केकय, अम्बष्ठ, त्रिगर्त तथा पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण एवं पर्वतीय प्रान्तोंके राजाओंको एकत्रित किया है, उनमें जो लोग क्रूरतासे रहित, सुशील और सदाचारी हों, उन सबसे भी कुशल पूछना।

तात सञ्जय! गम्भीर बुद्धिवाले दीर्घदर्शी विदुरजी हमलोगोंके प्रेमी, गुरु, स्वामी, पिता, माता, मित्र और मन्त्री हैं; उनकी भी मेरी ओरसे कुशल पूछना। कुरुकुलकी जो सर्वगुणसम्पन्ना, बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ हमारी माताएँ हैं, उन सबसे मिलकर हमारा प्रणाम कहना तथा वहाँ जो हमारे भाइयोंकी स्त्रियाँ हैं, उन सबकी कुशल पूछना। वे सुन्दर कीर्तियुक्त और प्रशंसनीय आचरणवाली स्त्रियाँ सुरक्षित रहकर सावधानतापूर्वक गृहस्थधर्मका पालन तो कर रही हैं न? उनसे यह भी पूछना—'देवियो! तुम अपने श्वशुरोंके साथ

कल्याणमय तथा कोमल बर्ताव तो करती हो न ? तुमलोगोंपर तुम्हारे पति जिस प्रकार प्रसन्न रहें, वैसा ही व्यवहार तो करती रहती हो न ?'

सेवकोंसे पूछना—'धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन प्राचीन सदाचारका पालन तो करता है न ? तुम्हें सब प्रकारके भोग तो देता है न ?' काने-कुबड़े, लँगड़े-लूले, दरिद्र तथा बौने मनुष्योंसे भी, जिनका दुर्योधन पालन करता है, कुशल पूछना । दुर्योधनसे कहना—'मैंने कुछ ब्राह्मणोंके लिये वृत्तियाँ नियत कर रक्खी थीं, किन्तु खेद है तुम्हारे कर्मचारी उनके साथ ठीक व्यवहार नहीं करते । मैं उनको पुनः पूर्ववत् उन्हीं वृत्तियोंसे युक्त देखना चाहता हूँ ।' इसी प्रकार राजाके यहाँ जितने अभ्यागत-अतिथि पधारे हों तथा सब दिशाओंसे जो-जो दूत आये हों, उन सबकी कुशल पूछना और मेरी कुशल भी उन्हें सुना देना । यद्यपि दुर्योधनने जैसे योद्धाओंका संग्रह किया है वैसे इस पृथ्वीपर दूसरे नहीं हैं, तथापि धर्म ही नित्य है । मेरे पास तो शत्रुका नाश करनेके लिये एक धर्म ही महाबलवान् है । सञ्जय ! दुर्योधनको तुम यह बात भी सुना देना—'तुम्हारे हृदयको जो यह कामना पीड़ा देती रहती है कि मैं कौरवोंका निष्कण्टक राज्य करूँ, सो इसकी सिद्धिका कोई उपाय नहीं है । हम ऐसे नहीं हैं, जो चुपचाप तुम्हारा यह प्रिय कार्य होने दें । भारत वीर ! या तो तुम इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) का राज्य मुझे दे दो अथवा युद्ध करो ।'

सञ्जय ! सज्जन-असज्जन, बालक-वृद्ध, निर्बल तथा बलवान्—सब विधाताके वशमें हैं। मेरे सैनिक-बलकी जिज्ञासा करनेपर तुम सबको मेरी ठीक स्थिति बता देना । फिर राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके मेरी ओरसे कुशल पूछना और कहना 'आपके ही पराक्रमसे पाण्डव सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं । जब वे बालक थे, तब आपकी ही कृपासे उन्हें राज्य मिला था । एक बार पहले राज्यपर बिठाकर अब उन्हें नष्ट होते देख उपेक्षा न कीजिये ।' सञ्जय ! यह भी बताना कि 'तात ! यह राज्य एकहीके लिये पर्याप्त नहीं है, हम सब लोग मिलकर साथ रहकर जीवन व्यतीत करें; ऐसा होनेपर आप कभी शत्रुओंके वशमें नहीं होंगे ।'

इसी तरह पितामह भीष्मको भी मेरा नाम ले, सिर झुकाकर प्रणाम करना और उनसे कहना—'पितामह ! यह शान्तनुका वंश एक बार डूब चुका था, आपहीने इसका पुनः उद्धार किया है । अब आप अपनी बुद्धिसे विचारकर ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे आपके सभी पौत्र परस्पर प्रेमपूर्वक जीवन धारण कर सकें ।' इसी प्रकार मन्त्री विदुर-जीसे भी कहना—'सौम्य ! आप युद्ध न होनेकी ही सलाह दें; क्योंकि आप तो सदा युधिष्ठिरका हित चाहनेवाले हैं ।'

इसके बाद दुर्योधनसे भी बार-बार अनुनय-विनय करके कहना—'तुम कौरवोंके नाशका कारण न बनो । पाण्डव अत्यन्त बलवान् होनेपर भी पहले बड़े-बड़े क्लेश सह चुके हैं, यह बात सभी कौरव जानते हैं । तुम्हारी अनुमतिसे दुःशासनने जो द्रौपदीके केश पकड़कर उसका तिरस्कार किया, इस अपराधका भी हमने कोई खयाल नहीं किया । किन्तु अब हम अपना उचित भाग लेंगे । तुम दूसरेके धनसे अपनी लोभ-युक्त बुद्धि हटा लो । ऐसा करनेसे ही शान्ति होगी और परस्पर प्रेम भी बना रहेगा । हम शान्ति चाहते हैं, तुम हम-लोगोंको राज्यका एक ही हिस्सा दे दो । सुयोधन ! अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और पाँचवाँ कोई भी एक गाँव दे दो, जिससे हम लोगोंके युद्धकी समाप्ति हो जाय । हम पाँच भाइयोंको पाँच ही गाँव दे दो, जिससे शान्ति बनी रहे ।' सञ्जय ! मैं शान्ति रखनेमें भी समर्थ हूँ और युद्ध करनेमें भी । धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रका भी मुझे पूर्ण ज्ञान है । मैं समयानुसार कोमल भी हो सकता हूँ और कठोर भी ।

सञ्जयकी धृतराष्ट्रसे भेंट

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा ले सञ्जय वहाँसे चल दिया । हस्तिनापुरमें पहुँचकर वह शीघ्र ही अन्तःपुरमें गया और द्वारपालसे बोला—'प्रहरी ! तुम राजा धृतराष्ट्रको मेरे आनेकी सूचना दे दो, मुझे उनसे अत्यन्त आवश्यक काम है ।' द्वारपालने जाकर कहा—'राजन् ! प्रणाम । सञ्जय आपसे मिलनेके लिये द्वारपर आये खड़े हैं, पाण्डवोंके पाससे उनका आना हुआ है; कहिये, उनके लिये क्या आज्ञा है ?'

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जयको स्वागतपूर्वक भीतर ले आओ; मुझे तो कभी भी उससे मिलनेमें रुकावट नहीं है, फिर वह दरवाजेपर क्यों खड़ा है ?

तत्पश्चात् राजाकी आज्ञा पाकर सञ्जयने उनके महलमें प्रवेश किया और सिंहासनपर बैठे हुए राजाके पास जा हाथ जोड़कर कहा—'राजन् ! मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूँ । पाण्डवोंसे मिलकर यहाँ आया हूँ । पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने आपको प्रणाम कहा है और कुशल पूछी है । उन्होंने बड़ी

प्रसन्नताके साथ आपके पुत्रोंका समाचार पूछा है—आप अपने पुत्र, नाती, मित्र, मन्त्री तथा आश्रितोंके साथ आनन्दपूर्वक हैं न ?'

धृतराष्ट्रने कहा—तात सञ्जय ! धर्मराज अपने मन्त्री, पुत्र और भाइयोंके साथ कुशलसे तो हैं ?

सञ्जय बोला—राजन् ! युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंके साथ कुशलपूर्वक हैं । अब वे अपना राज्यभाग लेना चाहते हैं । वे विशुद्ध भावसे धर्म और अर्थका सेवन करनेवाले, मनस्वी, विद्वान् तथा शीलवान् हैं । किन्तु तुम जरा अपने कर्मोंकी ओर तो दृष्टि डालो । धर्म और अर्थसे युक्त जो श्रेष्ठ पुरुषोंका व्यवहार है, उससे बिलकुल विपरीत तुम्हारा बर्ताव है । इसके कारण इस लोकमें तो तुम्हारी खूब निन्दा हो ही चुकी, यह पाप परलोकमें भी तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ेगा । तुम अपने पुत्रोंके वशमें होकर पाण्डवोंके बिना ही सारा राज्य अपने अधीन कर लेना चाहते हो ! राजन् ! तुम्हारे द्वारा पृथ्वीपर बड़ा अधर्म फैलेगा; यह कर्म तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है । बुद्धिहीन, दुराचारी कुलमें उत्पन्न, क्रूर, दीर्घकालतक वैर रखनेवाले, क्षत्रविद्यामें अनिपुण, पराक्रमहीन और अशिष्ट पुरुषोंपर आपत्तियाँ टूट पड़ती हैं । जो सदाचारी कुलमें उत्पन्न, बलवान्, यशस्वी, विद्वान् और जितेन्द्रिय है, वह प्रारब्धके अनुसार सम्पत्तिको प्राप्त करता है ।

तुम्हारे ये मन्त्रीलोग सदा कर्मोंमें लगे रहकर नित्य एकत्रित हो बैठक किया करते हैं; इन्होंने पाण्डवोंको राज्य न देनेका जो प्रबल निश्चय कर लिया है, यह कौरवोंके नाशका ही कारण है । यदि अपने पापके कारण कौरवोंका असमयमें ही विनाश होनेवाला होगा तो इसका सारा अपराध युधिष्ठिर तुम्हारे ही सिरपर रखकर इनका विनाश भी करना चाहेंगे । इसलिये संसारमें तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी । राजन् ! इस जगत्में प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा—ये मनुष्यको प्राप्त होते ही रहते हैं । परन्तु निन्दा उसीकी होती है, जो अपराध करता है तथा प्रशंसा भी उसीकी की जाती है, जिसका व्यवहार बहुत उत्तम होता है । भरतवंशमें विरोध फैलानेके कारण मैं तुम्हारी ही निन्दा करता हूँ । इस विरोधके कारण निश्चय ही प्रजाजनोंका सत्यानाश होगा । सारे संसारमें इस प्रकार पुत्रके अधीन होते तो मैंने तुमको ही देखा है । तुमने ऐसे लोगोंका संग्रह किया है जो विश्वासके योग्य नहीं हैं; तथा अपने विश्वासपात्रोंको दण्ड दिया है । इस दुर्बलताके कारण अब तुम पृथ्वीकी रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते । इस समय रथके वेगसे बहुत हिलने-डुलनेके कारण मैं थक गया हूँ; यदि आज्ञा दो तो बिछौनेपर सोनेके लिये जाऊँ । प्रातःकाल सभी कौरव जब सभामें एकत्र होंगे, उस समय अजातशत्रुके वचन सुनना ।

धृतराष्ट्रने कहा—सूतपुत्र ! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम घरपर जाकर शयन करो । सबेरे सभामें ही तुम्हारे कहे हुए युधिष्ठिरके सन्देशको सभी कौरव सुनेंगे ।

विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्रको नीतिका उपदेश (विदुरनीति)

(पहला अध्याय)

वैशम्पायनजी कहते हैं—सञ्जयके चले जानेपर महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने द्वारपालसे कहा—'मैं विदुरसे मिलना चाहता हूँ । उन्हें यहाँ शीघ्र बुला लाओ ।' धृतराष्ट्रका भेजा हुआ वह दूत जाकर विदुरसे बोला—'महामते ! हमारे स्वामी महाराज धृतराष्ट्र आपसे मिलना चाहते हैं ।' उसके ऐसा कहनेपर विदुरजी राजमहलके पास जाकर बोले—'द्वारपाल ! धृतराष्ट्रको मेरे आनेकी सूचना दे दो ।' द्वारपालने जाकर कहा—'महाराज ! आपकी आज्ञासे विदुरजी यहाँ आ पहुँचे हैं, वे आपके चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं । मुझे आज्ञा दीजिये, उन्हें क्या कार्य बताया जाय ?' धृतराष्ट्रने कहा—'महाबुद्धिमान् दूरदर्शी विदुरको यहाँ ले आओ, मुझे इस विदुरसे मिलनेमें कभी भी अड़चन नहीं है ।' द्वारपाल विदुरके पास आकर बोला—''विदुरजी ! आप बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्रके अन्तःपुरमें प्रवेश कीजिये । महाराजने मुझसे कहा है कि 'मुझे विदुरसे मिलनेमें कभी अड़चन नहीं है'' ॥१-६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर विदुर धृतराष्ट्रके महलके भीतर जाकर विचारमें पड़े हुए राजासे हाथ जोड़कर बोले—'महाप्राज्ञ ! मैं विदुर हूँ, आपकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ । यदि मेरे करने योग्य कुछ काम हो तो मैं उपस्थित हूँ, मुझे आज्ञा कीजिये ।' ॥७-८॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! सञ्जय आया था, मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है । कल सभामें वह अजातशत्रु युधिष्ठिरके वचन सुनावेगा । आज मैं उस कुरुवीर

युधिष्ठिरकी बात न जान सका—यही मेरे अङ्गोंको जला रहा है और इसीने मुझे अबतक जगा रक्खा है। तात ! मैं चिन्तासे जलता हुआ अभीतक जग रहा हूँ। मेरे लिये जो कल्याणकी बात समझो, वह कहो; क्योंकि तुम धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो। सञ्जय जबसे पाण्डवोंके यहाँसे लौटकर आया है, तबसे मेरे मनको पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। सभी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं। कल वह क्या कहेगा, इसी बातकी मुझे इस समय बड़ी भारी चिन्ता हो रही है ॥९–१२॥

विदुरजी बोले—जिसका बलवान्‌के साथ विरोध हो गया है उस साधनहीन दुर्बल मनुष्यको, जिसका सब कुछ हर लिया गया है उसको, कामीको तथा चोरको रातमें जागनेका रोग लग जाता है। नरेन्द्र ! कहीं आपका भी इन महान् दोषोंसे सम्पर्क तो नहीं हो गया है ? कहीं पराये धनके लोभसे तो आप कष्ट नहीं पा रहे हैं ? ॥१३-१४॥

धृतराष्ट्रने कहा—मैं तुम्हारे धर्मयुक्त तथा कल्याण करनेवाले सुन्दर वचन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस राजर्षिवंशमें केवल तुम्हीं विद्वानोंके भी माननीय हो ॥१५॥

विदुरजी बोले—महाराज धृतराष्ट्र ! श्रेष्ठ लक्षणोंसे

सम्पन्न राजा युधिष्ठिर तीनों लोकोंके स्वामी हो सकते हैं। वे आपके आज्ञाकारी थे, पर आपने उन्हें वनमें भेज दिया। आप धर्मात्मा और धर्मके जानकार होते हुए भी आँखोंसे अंधे होनेके कारण उन्हें पहचान न सके, इसीसे उनके विपरीत हो गये और उन्हें राज्यका भाग देनेमें आपकी सम्मति नहीं हुई। युधिष्ठिरमें क्रूरताका अभाव, दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम है; वे आपमें पूज्यबुद्धि रखते हैं। इन्हीं सद्गुणोंके कारण वे सोच-विचारकर चुपचाप बहुत-से क्लेश सह रहे हैं। आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दुःशासन-जैसे अयोग्य व्यक्तियोंपर राज्यका भार रखकर कैसे ऐश्वर्य-वृद्धि चाहते हैं ? अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान, उद्योग, दुःख सहनेकी शक्ति और धर्ममें स्थिरता—ये गुण जिस मनुष्यको पुरुषार्थसे च्युत नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है। जो अच्छे कर्मोंका सेवन करता और बुरे कामोंसे दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके ये सद्गुण पण्डित होनेके लक्षण हैं। क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपनेको पूज्य समझना—ये भाव जिसको पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है। दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहलेसे किये हुए विचारको नहीं जानते, बल्कि काम पूरा होनेपर ही जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है। सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता—ये जिसके कार्यमें विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है। जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म और अर्थका ही अनुसरण करती है और जो भोगको छोड़कर पुरुषार्थका ही वरण करता है, वही पण्डित कहलाता है। विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष शक्तिके अनुसार काम करनेकी इच्छा रखते हैं और करते भी हैं, तथा किसी वस्तुको तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते। किसी विषयको देरतक सुनता है किन्तु शीघ्र ही समझ लेना, समझकर कर्तव्यबुद्धिसे पुरुषार्थमें प्रवृत्त होना—कामनासे नहीं, बिना पूछे दूसरेके विषयमें व्यर्थ कोई बात नहीं कहना—यह पण्डितका मुख्य लक्षण है। पण्डितोंकी-सी बुद्धि रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ वस्तुकी कामना नहीं करते, खोयी हुई वस्तुके विषयमें शोक करना नहीं चाहते और विपत्तिमें पड़कर घबराते नहीं। जो पहले निश्चय करके फिर कार्यका आरम्भ करता है, कार्यके बीचमें नहीं रुकता, समयको व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्तको वशमें रखता है, वही पण्डित कहलाता है। भरतकुल-भूषण ! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मोंमें रुचि रखते हैं, उन्नतिके कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालोंमें दोष नहीं निकालते। जो अपना आदर होनेपर हर्षके मारे फूल नहीं उठता, अनादरसे संतप्त नहीं होता तथा गङ्गाजीके कुण्डके समान जिसके चित्तको क्षोभ नहीं होता, वह पण्डित कहलाता है। जो सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंकी असलियतका ज्ञान रखने-

वाला, सब कार्योंके करनेका ढंग जाननेवाला तथा मनुष्योंमें सबसे बढ़कर उपायका जानकार है, वह मनुष्य पण्डित कहलाता है। जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं, जो विचित्र ढंगसे बातचीत करता है, तर्कमें निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रन्थके तात्पर्यको शीघ्र बता सकता है, वह पण्डित कहलाता है। जिसकी विद्या बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विद्याका, तथा जो शिष्ट पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, वही 'पण्डित' की पदवी पा सकता है। बिना पढ़े ही गर्व करनेवाले, दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े मनसूबे बाँधनेवाले और बिना काम किये ही धन पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको पण्डितलोग मूर्ख कहते हैं। जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरेके कर्तव्यका पालन करता है, तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है। जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंको त्याग देता है, तथा जो अपनेसे बलवान्‌के साथ वैर बाँधता है, उसे 'मूढ विचारका मनुष्य' कहते हैं। जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है, तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे 'मूढ चित्तवाला' कहते हैं। भरतश्रेष्ठ! जो अपने कामोंको व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र सन्देह करता है, तथा शीघ्र होनेवाले काममें भी देर लगाता है, वह मूढ है। जो पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे सुहृद् मित्र नहीं मिलता, उसे 'मूढ चित्त-वाला' कहते हैं। मूढ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है, तथा अविश्वसनीय मनुष्योंपर भी विश्वास करता है। अपना व्यवहार दोषयुक्त होते हुए भी जो दूसरेपर उसके दोष बताकर आक्षेप करता है तथा जो असमर्थ होते हुए भी व्यर्थका क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है। जो अपने बलको न समझकर बिना काम किये ही धर्म और अर्थसे विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तुकी इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसारमें 'मूढबुद्धि' कहलाता है। राजन्! जो अनधिकारीको उपदेश देता और शून्यकी उपासना करता है तथा जो कृपणका आश्रय लेता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं। जो बहुत धन, विद्या तथा ऐश्वर्यको पाकर इठलाता नहीं, वह पण्डित कहलाता है। जो अपनेद्वारा भरण-पोषणके योग्य व्यक्तियोंको बाँटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता और अच्छा वस्त्र पहनता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा? मनुष्य अकेला पाप करता है और बहुत-से लोग उससे मौज उड़ाते हैं। मौज उड़ानेवाले तो छूट जाते हैं, पर उसका कर्ता ही दोषका भागी होता है। किसी धनुर्धर वीरके द्वारा छोड़ा हुआ बाण सम्भव है एकको भी मारे या न मारे। मगर बुद्धिमान्‌द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजासमेत सम्पूर्ण राष्ट्रका विनाश कर सकती है। एक (बुद्धि) से दो (कर्तव्य और अकर्तव्य) का निश्चय करके चार (साम, दान, भेद, दण्ड)-से तीन (शत्रु, मित्र तथा उदासीन) को वशमें कीजिये। पाँच (इन्द्रियों) को जीतकर छः (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रयरूप) गुणोंको जानकर तथा सात (स्त्री, जूआ, मृगया, मद्य, कठोर वचन, दण्डकी कठोरता और अन्यायसे धनका उपार्जन)-को छोड़कर सुखी हो जाइये। विषका रस एक (पीनेवाले) को ही मारता है, शस्त्रसे एकका ही वध होता है; किन्तु मन्त्रका फूटना राष्ट्र और प्रजाके साथ ही राजाका भी विनाश कर डालता है। अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला किसी विषयका निश्चय न करे, अकेला रास्ता न चले और बहुत-से लोग सोये हों तो उनमें अकेला न जागता रहे ॥१६-५१॥

राजन्! जैसे समुद्रके पार जानेके लिये नाव ही एक-मात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्गके लिये सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं; किन्तु आप इसे नहीं समझ रहे हैं। क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं। किन्तु क्षमाशील पुरुषका वह दोष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है। इस जगत्‌में क्षमा वशीकरणरूप है। भला, क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? तृणरहित स्थानमें गिरी हुई आग अपने-आप बुझ जाती है। क्षमाहीन पुरुष अपनेको तथा दूसरेको भी दोषका भागी बना लेता है। केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देने-वाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है। बिलमें रहनेवाले मेढक आदि जीवोंको जैसे साँप खा जाता है, उसी प्रकार यह पृथ्वी शत्रुसे विरोध न करनेवाले राजा और परदेश सेवन न करनेवाले ब्राह्मण—इन दोनोंको खा जाती है। जरा भी कठोर न बोलना और दुष्ट पुरुषोंका आदर न करना—इन दो कर्मोंको करनेवाला मनुष्य इस

लोकमें विशेष शोभा पाता है। दूसरी स्त्रीद्वारा चाहे गये पुरुषकी कामना करनेवाली स्त्रियाँ तथा दूसरोंके द्वारा पूजित मनुष्यका आदर करनेवाले पुरुष—ये दो प्रकारके लोग दूसरोंपर विश्वास करके चलनेवाले होते हैं। जो निर्धन होकर भी बहुमूल्य वस्तुकी इच्छा रखता और असमर्थ होकर भी क्रोध करता है—ये दोनों ही अपने शरीरको सुखा देनेवाले काँटोंके समान हैं। दो ही अपने विपरीत कर्मके कारण शोभा नहीं पाते—अकर्मण्य गृहस्थ और प्रपञ्चमें लगा हुआ संन्यासी। राजन्! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—शक्तिशाली होनेपर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन होनेपर भी दान देनेवाला। न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धनके दो ही दुरुपयोग समझने चाहिये—अपात्रको देना और सत्पात्रको न देना। जो धनी होनेपर भी दान न दे और दरिद्र होनेपर भी कष्ट सहन न कर सके—इन दो प्रकारके मनुष्योंको गलेमें पत्थर बाँधकर पानीमें डुबा देना चाहिये। पुरुषश्रेष्ठ! ये दो प्रकारके पुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं—योगयुक्त संन्यासी और संग्राममें लोहा लेते हुए मारा गया योद्धा। भरतश्रेष्ठ! मनुष्योंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकारके उपाय सुने जाते हैं, ऐसा वेदवेत्ता विद्वान् जानते हैं। राजन्! उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकारके पुरुष होते हैं; इनको यथायोग्य तीन ही प्रकारके कर्मोंमें लगाना चाहिये। राजन्! तीन ही धनके अधिकारी नहीं माने जाते—स्त्री, पुत्र तथा दास। ये जो कुछ कमाते हैं, वह धन उसीका होता है जिसके अधीन ये रहते हैं। दूसरेके धनका हरण, दूसरेकी स्त्रीका संसर्ग तथा सुहृद् मित्रका परित्याग—ये तीनों ही दोष नाश करनेवाले होते हैं। काम, क्रोध और लोभ—ये आत्माका नाश करनेवाले नरकके तीन दरवाजे हैं; अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। भारत! वरदान पाना, राज्यकी प्राप्ति और पुत्रका जन्म—ये तीन एक ओर और शत्रुके कष्टसे छूटना—यह एक तरफ; वे तीन और यह एक बराबर ही हैं। भक्त, सेवक तथा मैं आपका ही हूँ, ऐसा कहनेवाले—इन तीन प्रकारके शरणागत मनुष्योंको संकट पड़नेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये। थोड़ी बुद्धिवाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज और स्तुति करनेवाले लोगोंके साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिये। ये चारों महाबली राजाके लिये त्यागने योग्य बताये गये हैं; विद्वान् पुरुष ऐसे लोगोंको पहचान ले। तात! गृहस्थधर्ममें स्थित लक्ष्मीवान् आपके घरमें चार प्रकारके मनुष्योंको सदा रहना चाहिये—अपने कुटुम्बका बूढ़ा, संकटमें पड़ा हुआ उच्च कुलका मनुष्य, धनहीन मित्र और बिना सन्तानकी बहिन। महाराज! इन्द्रके पूछनेपर उनसे बृहस्पतिजीने जिन चारोंको तत्काल फल देनेवाला बताया था, उन्हें आप मुझसे सुनिये—देवताओंका संकल्प, बुद्धिमानोंका प्रभाव, विद्वानोंकी नम्रता और पापियोंका विनाश। चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं; किन्तु वे ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों तो भय प्रदान करते हैं। वे कर्म हैं—आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान। भरतश्रेष्ठ! पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु—मनुष्यको इन पाँच अग्नियोंकी बड़े यत्नसे सेवा करनी चाहिये। देवता, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि—इन पाँचोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य शुद्ध यश प्राप्त करता है। राजन्! आप जहाँ-जहाँ जायँगे वहाँ-वहाँ मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देनेवाले तथा आश्रय पानेवाले—ये पाँच आपके पीछे लगे रहेंगे। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुषकी यदि एक भी इन्द्रिय छिद्र (दोष) युक्त हो जाय तो उससे उसकी बुद्धि इस प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशकके छेदसे पानी ॥५२—८२॥

उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (जल्दी हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)—इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये। उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाले होता, रक्षा करनेमें असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, ग्राममें रहनेकी इच्छावाले ग्वाले तथा वनमें रहनेकी इच्छावाले नाई—इन छःको उसी भाँति छोड़ दे, जैसे समुद्रकी सैर करनेवाला मनुष्य फटी हुई नावका परित्याग कर देता है। मनुष्यको कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया (गुणोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्तिका अभाव), क्षमा तथा धैर्य—इन छः गुणोंका त्याग नहीं करना चाहिये। धनकी आय, नित्य नीरोग रहना, स्त्रीका अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना; पुत्रका आज्ञाके अंदर रहना तथा धन पैदा करनेवाली विद्याका ज्ञान—ये छः बातें इस मनुष्यलोकमें सुखदायिनी होती हैं। मनमें नित्य रहनेवाले छः शत्रु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्यको जो वशमें कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापोंसे ही लिप्त नहीं होता; फिर उनसे उत्पन्न

होनेवाले अनर्थोंकी तो बात ही क्या है। निम्नाङ्कित छः प्रकारके मनुष्य छः प्रकारके लोगोंसे अपनी जीविका चलाते हैं, सातवेंकी उपलब्धि नहीं होती। चोर असावधान पुरुषसे, वैद्य रोगीसे, मतवाली स्त्रियाँ कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे, राजा झगड़नेवालोंसे तथा विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे अपनी जीविका चलाते हैं। क्षणभर भी देख-रेख न करनेसे गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा शूद्रोंसे मेल—ये छः चीजें नष्ट हो जाती हैं। ये छः सदा अपने पूर्व उपकारीका अनादर करते हैं—शिक्षा समाप्त हो जानेपर शिष्य आचार्यका, विवाहित बेटे माताका, कामवासनाकी शान्ति हो जानेपर मनुष्य स्त्रीका, कृतकार्य पुरुष सहायकका, नदीकी दुर्गम धारा पार कर लेनेवाले पुरुष नावका तथा रोगी पुरुष रोग छूटनेके बाद वैद्यका तिरस्कार कर देते हैं। नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगोंके साथ मेल होना, अपनी वृत्तिसे जीविका चलाना और निडर होकर रहना—राजन्! ये छः मनुष्यलोकके सुख हैं। ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शङ्कित रहनेवाला और दूसरेके भाग्यपर जीवन-निर्वाह करनेवाला—ये छः सदा दुखी रहते हैं। स्त्रीविषयक आसक्ति, जूआ, शिकार, मद्यपान, वचनकी कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धनका दुरुपयोग करना—ये सात दुःखदायी दोष राजाको सदा त्याग देने चाहिये। इनसे दृढमूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं ॥८३—९७॥

विनाशके मुखमें पड़नेवाले मनुष्यके आठ पूर्वचिह्न हैं—प्रथम तो वह ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, फिर उनके विरोधका पात्र बनता है, ब्राह्मणोंका धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-यागादिमें उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ माँगनेपर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषोंको बुद्धिमान् मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे। भारत! मित्रोंसे समागम, अधिक धनकी प्राप्ति, पुत्रका आलिङ्गन, मैथुनमें प्रवृत्ति, समयपर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्गके लोगोंमें उन्नति, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति और जनसमाजमें सम्मान—ये आठ हर्षके सार दिखायी देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुखके भी साधन होते हैं। बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्तिके अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुषकी ख्याति बढ़ा देते हैं। जो विद्वान् पुरुष [आँख, कान आदि] नौ दरवाजेवाले, तीन (वात, पित्त तथा कफरूपी) खंभोंवाले, पाँच (ज्ञानेन्द्रियरूप) साक्षीवाले, आत्माके निवासस्थान इस शरीररूपी गृहको जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है ॥९८—१०५॥

महाराज धृतराष्ट्र! दस प्रकारके लोग धर्मको नहीं जानते, उनके नाम सुनो। नशेमें मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज़, लोभी, भयभीत और कामी—ये दस हैं। अतः इन सब लोगोंमें विद्वान् पुरुष आसक्ति न बढ़ावे। इसी विषयमें असुरोंके राजा प्रह्लादने सुधन्वाके साथ अपने पुत्रके प्रति कुछ उपदेश दिया था। नीतिज्ञ लोग उस पुराने इतिहासका उदाहरण देते हैं। जो राजा काम और क्रोधका त्याग करता है और सुपात्रको धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रोंका ज्ञाता और कर्तव्यको शीघ्र पूरा करनेवाला है, उसे सब लोग प्रमाण मानते हैं। जो मनुष्योंमें विश्वास उत्पन्न करना जानता है, जिनका अपराध प्रमाणित हो गया है उन्हींको दण्ड देता है, जो दण्ड देनेकी न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमाका उपयोग जानता है, उस राजाकी सेवामें सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है। जो किसी दुर्बलका अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रुके साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानोंके साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आनेपर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है। जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पड़नेपर कभी दुखी नहीं होता, बल्कि सावधानीके साथ उद्योगका आश्रय लेता है, तथा समयपर दुःख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं। जो निरर्थक विदेशवास, पापियोंसे मेल, परस्त्रीगमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है। जो क्रोध या उतावलीके साथ धर्म, अर्थ तथा कामका आरम्भ नहीं करता, पूछनेपर यथार्थ बात ही बतलाता है, मित्रके लिये झगड़ा नहीं पसंद करता, आदर न पानेपर क्रुद्ध नहीं होता, विवेक नहीं खो बैठता, दूसरोंके दोष नहीं देखता, सबपर दया करता है, दुर्बल होते हुए किसीकी जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवादको सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है। जो कभी उद्दण्डका-सा वेष नहीं बनाता, दूसरोंके सामने अपने पराक्रमकी भी डींग नहीं हाँकता, क्रोधसे व्याकुल होनेपर भी कटु वचन नहीं बोलता, उस मनुष्यको लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं। जो शान्त हुई वैरकी आगको फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं

दिखाता तथा 'मैं विपत्तिमें पड़ा हूँ' ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुषको आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। जो अपने सुखमें प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखके समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनोंमें सदाचारी कहलाता है। जो मनुष्य देशके व्यवहार, लोकाचार तथा जातियोंके धर्मोंको जाननेकी इच्छा करता है, उसे उत्तम-अधमका विवेक हो जाता है। वह जहाँ जाता है, वहीं महान् जनसमूहपर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है। जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूहसे वैर, मतवाले, पागल तथा दुर्जनोंसे विवाद छोड़ देता है, वह श्रेष्ठ है। जो दान, होम, देवपूजन, माङ्गलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकारके लौकिक आचार—इन नित्य किये जानेयोग्य कर्मोंको करता है, देवतालोग उसके अभ्युदयकी सिद्धि करते हैं। जो अपने बराबरवालोंके साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन पुरुषोंके साथ नहीं, और गुणोंमें बढ़े-चढ़े पुरुषोंको सदा आगे रखता है, उस विद्वान्‌की नीति श्रेष्ठ है। जो अपने आश्रित जनोंको बाँटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा माँगनेपर जो मित्र नहीं हैं उन्हें भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुषको सारे अनर्थ दूरसे ही छोड़ देते हैं। जिसके अपनी इच्छाके अनुकूल और दूसरोंकी इच्छाके विरुद्ध कार्यको दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्यका ठीक-ठीक सम्पादन होनेके कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता। जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति प्रदान करनेमें तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरोंको आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खानसे निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्नकी भाँति अपनी जातिवालोंमें अधिक प्रसिद्धि पाता है। जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रतासे युक्त होनेके कारण कान्तिमें सूर्यके समान शोभा पाता है। अम्बिकानन्दन! शापसे दग्ध राजा पाण्डुके जो पाँच पुत्र वनमें उत्पन्न हुए, वे पाँच इन्द्रके समान शक्तिशाली हैं, उन्हें आपहीने बचपनसे पाला और शिक्षा दी है; वे भी सदा आपकी आज्ञाका पालन करते रहते हैं। तात! उन्हें उनका न्यायोचित राज्यभाग देकर आप अपने पुत्रोंके साथ आनन्द भोगिये। नरेन्द्र! ऐसा करनेपर आप देवता तथा मनुष्योंकी टीका-टिप्पणीके विषय नहीं रह जायँगे॥ १०६—१२८॥

विदुरनीति
(दूसरा अध्याय)

धृतराष्ट्र बोला—तात! मैं चिन्तासे जलता हुआ अभीतक जाग रहा हूँ; तुम मेरे करने योग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ; क्योंकि तुम धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो। उदारचित्त विदुर! तुम अपनी बुद्धिसे विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो। जो बात युधिष्ठिरके लिये हितकर और कौरवोंके लिये कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ। विद्वन्! मेरे मनमें अनिष्टकी आशङ्का बनी रहती है, इसलिये मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूँ; अतः व्याकुल हृदयसे मैं तुमसे पूछ रहा हूँ—अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं, सो सब ठीक-ठीक बताओ॥ १—३॥

विदुरजीने कहा—मनुष्यको चाहिये कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट करनेवाली, अच्छी अथवा बुरी—जो भी बात हो, बता दे। इसलिये राजन्! जिससे समस्त कौरवोंका हित हो, वही बात आपसे कहूँगा। मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूँ, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें—भारत! असत् उपायों (जूआ आदि) का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइये। इसी प्रकार अच्छे उपायोंका उपयोग करके सावधानीके साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसके लिये मनमें ग्लानि नहीं करनी चाहिये। किसी प्रयोजनसे किये गये कर्मोंमें पहले प्रयोजनको समझ लेना चाहिये। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये, जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये। धीर मनुष्यको उचित है कि पहले कर्मोंके प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नतिका विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे। जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, देश तथा दण्ड आदिकी मात्राको नहीं जानता, वह राज्यपर स्थिर नहीं रह सकता। जो इनके प्रमाणोंको ठीक-ठीक जानता है, तथा धर्म और अर्थके ज्ञानमें दत्तचित्त रहता है, वह राज्यको प्राप्त करता है। 'अब तो राज्य प्राप्त ही हो गया'—ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। उद्दण्डता सम्पत्तिको उसी प्रकार नष्ट

कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढ़ापा। मछली बढ़िया चारेसे ढकी हुई लोहेकी काँटीको लोभमें पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणामपर विचार नहीं करती। अतः अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिये जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने)-पर पच सके और पच जानेपर हितकारी हो। जो पेड़से कच्चे फलोंको तोड़ता है, वह उन फलोंसे रस तो पाता नहीं, उल्टे उस वृक्षके बीजका नाश होता है। परन्तु जो समयपर पके हुए फलको ग्रहण करता है, वह फलसे रस पाता है और उस बीजसे पुनः फल प्राप्त करता है। जैसे भौंरा फूलोंकी रक्षा करता हुआ ही उनके मधुका आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनों-को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले। जैसे माली बगीचे-में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजाकी रक्षापूर्वक उनसे कर ले। कोयला बनानेवालेकी तरह जड़ नहीं काटनी चाहिये। इसे करनेसे मेरा क्या लाभ होगा और न करनेसे क्या हानि होगी—इस प्रकार कर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे। कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य अप्राप्त होनेके कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते; क्योंकि उनके लिये किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है। जिसकी प्रसन्नताका कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती—जैसे स्त्री नपुंसकको पति नहीं बनाना चाहती। जिनका मूल (साधन) छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है; वैसे कामोंमें वह विघ्न नहीं आने देता। जो राजा, मानो आँखोंसे पी जायगा—इस प्रकार प्रेमके साथ कोमल दृष्टिसे देखता है, वह चुपचाप बैठा भी रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है। राजा वृक्षकी भाँति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने)पर भी फलसे खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो)। यदि फलसे युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिस-पर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुँचके बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होनेपर पके (शक्तिसम्पन्न) की भाँति अपनेको प्रकट करे। ऐसा करनेसे वह नष्ट नहीं होता। जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म—इन चारोंसे प्रजाको प्रसन्न करता है, उसीसे प्रजा प्रसन्न रहती है। जैसे व्याधसे हरिन भयभीत होता है उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी-का राज्य पाकर भी प्रजाजनोंके द्वारा त्याग दिया जाता है। अन्यायमें स्थित हुआ राजा बाप-दादोंका राज्य पाकर भी अपने ही कर्मोंसे उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है, जैसे हवा बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है। परम्परासे सज्जन पुरुषोंद्वारा किये हुए धर्मका आचरण करनेवाले राजाके राज्यकी पृथ्वी धन-धान्यसे पूर्ण होकर उन्नतिको प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्यको बढ़ाती है। जो राजा धर्म छोड़कर अधर्मका अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आगपर रक्खे हुए चमड़ेकी भाँति संकुचित हो जाती है। जो यत्न दूसरे राष्ट्रका नाश करनेके लिये किया जाता है, वही अपने राज्यकी रक्षाके लिये करना उचित है। धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही उसकी रक्षा करे; क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मीको पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजाको छोड़ती है। निरर्थक बोलने-वाले, पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चेसे भी सब ओरसे उसी भाँति तत्त्वकी बात ग्रहण करनी चाहिये, जैसे पत्थरोंमेंसे सोना ले लिया जाता है। जैसे उञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाला एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुषको जहाँ-तहाँसे भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मोंका संग्रह करते रहना चाहिये। गौएँ गन्धसे, ब्राह्मणलोग वेदोंसे, राजा जासूसोंसे और सर्व-साधारण आँखोंसे देखा करते हैं। राजन्! जो गाय बड़ी कठिनाईसे दुहने देती है, वह बहुत क्लेश उठाती है; किन्तु जो आसानीसे दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते। जो धातु बिना गरम किये मुड़ जाते हैं, उन्हें आगमें नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकाने-का प्रयत्न नहीं करते। इस दृष्टान्तके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषको अधिक बलवान्‌के सामने झुक जाना चाहिये; जो अधिक बलवान्‌के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्रदेवताको प्रणाम करता है। पशुओंके रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओंके सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियोंके बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणोंके बान्धव हैं वेद। सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है, योगसे विद्या सुरक्षित होती है, सफाईसे सुन्दर रूपकी रक्षा होती है और सदाचारसे कुलकी रक्षा होती है। तोलनेसे नाजकी रक्षा होती है, फेरनेसे घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारंबार देखभाल करनेसे गौओंकी तथा मैले वस्त्रसे स्त्रियोंकी रक्षा होती है। मेरा ऐसा विचार है कि सदाचारसे हीन मनुष्यका केवल ऊँचा कुल मान्य

नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुलमें उत्पन्न मनुष्योंका भी सदाचार ही श्रेष्ठ माना जाता है। जो दूसरोंके धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मानपर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है। न करने योग्य काम करनेसे, करने योग्य काममें प्रमाद करनेसे तथा कार्य सिद्ध होनेके पहले ही मन्त्र प्रकट हो जानेसे डरना चाहिये और जिससे नशा चढ़े, ऐसा पेय नहीं पीना चाहिये। विद्याका मद, धनका मद और तीसरा ऊँचे कुलका मद है। ये घमंडी पुरुषोंके लिये तो मद हैं, परन्तु सज्जन पुरुषोंके लिये दमके साधन हैं। कभी किसी कार्यमें सज्जनोंद्वारा प्रार्थित होनेपर दुष्टलोग अपनेको प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं। मनस्वी पुरुषोंको सहारा देनेवाले संत हैं, संतोंके भी सहारे संत ही हैं; दुष्टोंको भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्टलोग संतोंको सहारा नहीं देते। अच्छे वस्त्र-वाला सभाको जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है; जिसके पास गौ है, वह मीठे स्वादकी आकांक्षाको जीत लेता है; सवारीसे चलनेवाला मार्गको जीत लेता (तय कर लेता) है और शीलवान् पुरुष सबपर विजय पा लेता है। पुरुषमें शील ही प्रधान है; जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसारमें उसका जीवन, धन और बन्धुओंसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। भरतश्रेष्ठ ! धनोन्मत्त पुरुषोंके भोजनमें मांसकी, मध्यम श्रेणीवालोंके भोजनमें गोरसकी तथा दरिद्रोंके भोजनमें तेलकी प्रधानता होती है। दरिद्र पुरुष सदा ही स्वादिष्ट भोजन करते हैं; क्योंकि भूख ही स्वादकी जननी है और वह धनियोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। राजन् ! संसारमें धनियोंको प्रायः भोजन करनेकी शक्ति नहीं होती, किन्तु दरिद्रोंके पेटमें काठ भी पच जाते हैं। अधम पुरुषोंको जीविका न होनेसे भय लगता है, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मृत्युसे भय होता है; परन्तु उत्तम पुरुषोंको अपमानसे ही महान् भय होता है। यों तो पीनेका नशा आदि भी नशा ही है, किन्तु ऐश्वर्यका नशा तो बहुत ही बुरा है; क्योंकि ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होशमें नहीं आता। वशमें न होनेके कारण विषयोंमें रमनेवाली इन्द्रियोंसे यह संसार उसी भाँति कष्ट पाता है जैसे सूर्य आदि ग्रहोंसे नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं ॥४—५४॥

जो जीवोंको वशमें करनेवाली सहज पाँच इन्द्रियोंसे जीत लिया गया, उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ती हैं। इन्द्रियोंसहित मनको जीते बिना ही जो मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है या मन्त्रियोंको अपने अधीन किये बिना शत्रुको जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुषको सब लोग त्याग देते हैं। जो पहले इन्द्रियोंसहित मनको ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है। इन्द्रियों तथा मनको जीतनेवाले, अपराधियोंको दण्ड देनेवाले और जाँच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती हैं। राजन् ! मनुष्यका शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वशमें करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं बुद्धिमान् पुरुष काबूमें किये हुए घोड़ोंसे रथी-की भाँति सुखपूर्वक यात्रा करता है। शिक्षा न पाये हुए तथा काबूमें न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथिको मार्गमें मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वशमें न रहनेपर पुरुषको मार डालनेमें भी समर्थ होती हैं। इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःखको भी सुख मान बैठता है जो धर्म और अर्थका परित्याग करके इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्रीसे भी हाथ धो बैठता है। जो अधिक धनका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको अपने अधीन कर अपनेसे ही अपने आत्माको जाननेकी इच्छा करे; क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है। जिसने स्वयं अपने आत्माको ही जीत लिया है, उसका आत्मा ही उसका बन्धु है। वही सच्चा बन्धु और वही नियत शत्रु है। राजन् ! जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जालमें फँसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ मिलकर जालको काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध—दोनों विशिष्ट ज्ञानको लुप्त कर देते हैं। जो इस जगत्‌में धर्म तथा अर्थका विचार कर विजय-साधन-सामग्रीका संग्रह करता है, वही उस सामग्रीसे युक्त होनेके कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है। जो चित्तके विकारभूत पाँच इन्द्रिय-रूपी भीतरी शत्रुओंको जीते बिना ही दूसरे शत्रुओंको जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं। इन्द्रियोंपर अधिकार न होनेके कारण बड़े-बड़े साधु भी कर्मोंसे तथा राजा-लोग राज्यके भोग-विलासोंसे बँधे रहते हैं। दुष्टोंका

त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जन भी समान ही दण्ड पाते हैं, जैसे सूखी लकड़ीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है; इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे। जो पाँच विषयोंकी ओर दौड़नेवाले अपने पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओंको मोहके कारण वशमें नहीं करता, उस मनुष्यको विपत्ति ग्रस लेती है। गुणोंमें दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रियदमन, सत्यभाषण तथा अचञ्चलता—ये गुण दुरात्मा पुरुषोंमें नहीं होते। भारत! आत्मज्ञान, खिन्नताका अभाव, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचनकी रक्षा तथा दान—ये गुण अधम पुरुषोंमें नहीं होते। मूर्ख मनुष्य विद्वानोंको गाली और निन्दासे कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देनेवाला पापका भागी होता है और क्षमा करनेवाला पापसे मुक्त हो जाता है। दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा। राजन्! वाणीका पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है; परन्तु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती। राजन्! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे कल्याण करती है; किन्तु वही यदि कटु शब्दोंमें कही जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है। बाणोंसे बींधा हुआ तथा फरसेसे काटा हुआ वन भी पनप जाता है; किन्तु कटु वचन कहकर वाणीसे किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता। कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणोंको शरीरसे निकाल सकते हैं; परन्तु कटु वचनरूपी काँटा नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि वह हृदयके भीतर धँस जाता है। वचनरूपी बाण मुखसे निकलकर दूसरोंके मर्मपर चोट करते हैं; उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंपर उनका प्रयोग न करे। देवतालोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धिको पहले ही हर लेते हैं; इससे वह नीच कर्मोंपर ही अधिक दृष्टि रखता है। विनाशकाल उपस्थित होनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है; फिर तो न्यायके समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदयसे बाहर नहीं निकलता। भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रोंकी वह बुद्धि नष्ट हो गयी है; आप पाण्डवोंके साथ विरोधके कारण इन अपने पुत्रोंको पहचान नहीं रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र! जो राजलक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनका भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वीका शासक होने योग्य है। वह धर्म तथा अर्थके तत्त्वको जाननेवाला, तेज और बुद्धिसे युक्त, पूर्ण सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रोंसे बढ़-चढ़कर है। राजेन्द्र! धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्यभाव तथा आपके लिहाजके कारण अनेकों कष्ट सह रहा है॥५५-८६॥

विदुरनीति

(तीसरा अध्याय)

धृतराष्ट्रने कहा—महाबुद्धे! तुम पुनः धर्म और अर्थसे युक्त बातें कहो, इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषयमें तुम अद्भुत भाषण कर रहे हो॥१॥

विदुरजी बोले—सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्राणियोंके साथ कोमलताका बर्ताव—ये दोनों एक समान हैं; अथवा कोमलताके बर्तावका विशेष महत्त्व है। विभो! आप अपने पुत्र कौरव, पाण्डव दोनोंके साथ समानरूपसे कोमलताका बर्ताव कीजिये। ऐसा करनेसे इस लोकमें महान् सुयश प्राप्त करके मरनेके पश्चात् आप स्वर्गलोकमें जायँगे। पुरुषश्रेष्ठ! इस लोकमें जबतक मनुष्यकी पावन कीर्तिका गान किया जाता है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस विषयमें उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें 'केशिनी' के लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन है। राजन्! एक समयकी बात है, केशिनी नामवाली एक अनुपम सुन्दरी कन्या सर्वश्रेष्ठ पतिको वरण करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें उपस्थित हुई। उसी समय दैत्यकुमार विरोचन उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ आया। तब केशिनीने वहाँ दैत्यराजसे इस प्रकार बातचीत की॥२-७॥

केशिनी बोली—विरोचन! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूँ?॥८॥

विरोचनने कहा—केशिनी! हम प्रजापतिकी श्रेष्ठ सन्तानें हैं, अतः सबसे उत्तम हैं। यह सारा संसार हमलोगोंका ही है। हमारे सामने देवता या ब्राह्मण कौन चीज़ हैं?॥९॥

केशिनी बोली—विरोचन ! इसी जगह हम दोनों

प्रतीक्षा करें; कल प्रातःकाल सुधन्वा यहाँ आवेगा, फिर मैं तुम दोनोंको एकत्र उपस्थित देखूँगी ॥१०॥

विरोचन बोला—कल्याणी ! तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा। भीरु ! प्रातःकाल तुम मुझे और सुधन्वाको एक साथ उपस्थित देखोगी ॥११॥

विदुरजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद जब रात बीती और सूर्यमण्डलका उदय हुआ, उस समय सुधन्वा उस स्थानपर आया जहाँ विरोचन केशिनीके साथ मौजूद था । भरतश्रेष्ठ ! सुधन्वा प्रह्लादकुमार विरोचन और केशिनीके पास आया । ब्राह्मणको आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसे आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया ॥१२-१३॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लादनन्दन ! मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासनको केवल छू लेता हूँ, तुम्हारे साथ इसपर बैठ नहीं सकता; क्योंकि ऐसा होनेसे हम दोनों एक समान हो जायँगे ॥१४॥

विरोचनने कहा—सुधन्वन् ! तुम्हारे लिये तो पीढ़ा, चटाई या कुशका आसन उचित है; तुम मेरे साथ बराबरके आसनपर बैठने योग्य हो ही नहीं ॥१५॥

सुधन्वाने कहा—पिता और पुत्र एक साथ एक आसनपर बैठ सकते हैं; दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं। किन्तु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते। तुम्हारे पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर ही मेरी सेवा किया करते हैं। तुम अभी बालक हो, घरमें सुखसे पले हो; अतः तुम्हें इन बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥१६-१७॥

विरोचन बोला—सुधन्वन् ! हम असुरोंके पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगाता हूँ; हम-तुम दोनों चलकर जो इस विषयके जानकार हों, उनसे पूछें कि हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ॥१८॥

सुधन्वा बोला—विरोचन ! सुवर्ण, गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहें। हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाकर जो जानकार हों, उनसे पूछें ॥१९॥

विरोचनने कहा—अच्छा, प्राणोंकी बाजी लगानेके पश्चात् हम दोनों कहाँ चलेंगे ? मैं तो न देवताओंके पास जा सकता हूँ और न कभी मनुष्योंसे ही निर्णय करा सकता हूँ ॥२०॥

सुधन्वा बोला—प्राणोंकी बाजी लग जानेपर हम दोनों तुम्हारे पिताके पास चलेंगे। [मुझे विश्वास है कि] प्रह्लाद अपने बेटेके लिये भी झूठ नहीं बोल सकते ॥२१॥

विदुरजी कहते हैं—इस तरह बाजी लगाकर परस्पर क्रुद्ध हो विरोचन और सुधन्वा दोनों उस समय वहाँ गये, जहाँ प्रह्लादजी थे ॥२२॥

प्रह्लादने (मन-ही-मन) कहा—जो कभी भी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दोनों ये सुधन्वा और विरोचन आज साँपकी तरह क्रुद्ध होकर एक ही राहसे आते दिखायी देते हैं। [फिर विरोचनसे कहा—] विरोचन ! मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या सुधन्वाके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है ? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो ? पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे ॥२३-२४॥

विरोचन बोला—पिताजी ! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है। हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाये आ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूँ। मेरे प्रश्नका झूठा उत्तर न दीजियेगा ॥२५॥

प्रह्लादने कहा—सेवको ! सुधन्वाके लिये जल और मधुपर्क लाओ। [फिर सुधन्वासे कहा—] ब्रह्मन् ! तुम मेरे पूजनीय अतिथि हो, मैंने तुम्हारे लिये सफेद गौ खूब मोटी-ताजी कर रक्खी है ॥२६॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद ! जल और मधुपर्क तो मुझे मार्गमें ही मिल गया है। तुम तो जो मैं पूछ रहा हूँ, उस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दो—क्या ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा विरोचन ? ॥२७॥

प्रह्लाद बोले—ब्रह्मन्! मेरे एक ही पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो; भला, तुम दोनोंके विवादमें मेरे-जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है ? ॥२८॥

सुधन्वा बोला—मतिमन्! तुम्हारे पास गौ तथा दूसरा जो कुछ भी प्रिय धन हो, वह सब अपने औरस पुत्र विरोचनको दे दो; परन्तु हम दोनोंके विवादमें तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना ही चाहिये ॥२९॥

प्रह्लादने कहा—सुधन्वन्! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ—जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ताकी क्या स्थिति होती है ? ॥३०॥

सुधन्वा बोला—सौतवाली स्त्री, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रातमें जो स्थिति होती है, वही स्थिति उलटा न्याय देनेवाले वक्ताकी भी होती है। जो झूठा निर्णय देता है, वह राजा नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओंको देखता है। झूठ बोलनेसे यदि पशु मरता हो तो पाँच पीढ़ियाँ, गौ मरती हो तो दस पीढ़ियाँ, घोड़ा मरता हो तो सौ पीढ़ियाँ और मनुष्य मरता हो तो एक हजार पीढ़ियाँ नरकमें पड़ती हैं। सोनेके लिये झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियोंको नरकमें गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्रीके लिये झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है; इसलिये तुम स्त्रीके लिये कभी झूठ न बोलना ॥३१-३४॥

प्रह्लादने कहा—विरोचन! सुधन्वाके पिता अङ्गिरा

मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माता भी तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ है; अतः तुम आज सुधन्वासे हार गये। विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंका मालिक है। सुधन्वन्! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचनको पाना चाहता हूँ ॥३५-३६॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! तुमने धर्मको ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है; इसलिये अब इस दुर्लभ पुत्रको फिर तुम्हें दे रहा हूँ। प्रह्लाद! तुम्हारे इस पुत्र विरोचनको मैंने पुनः तुम्हें दे दिया। किन्तु अब यह कुमारी केशिनीके निकट चलकर मेरा पैर धोवे ॥३७-३८॥

विदुरजी कहते हैं—इसलिये राजेन्द्र! आप पृथ्वीके लिये झूठ न बोलें। बेटेके स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियोंके साथ विनाशके मुखमें न जायँ। देवतालोग चरवाहोंकी तरह डंडा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धिसे युक्त कर देते हैं। मनुष्य जैसे-जैसे कल्याणमें मन लगाता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावीको वेद पापोंसे मुक्त नहीं करते। किन्तु जैसे पंख निकल आनेपर चिड़ियोंके बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकालमें उसे त्याग देते हैं। शराब पीना, कलह, समूहके साथ वैर, पति-पत्नीमें भेद पैदा करना, कुटुम्बवालोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजाके साथ द्वेष, स्त्री और पुरुषमें विवाद और बुरे रास्ते—ये सब त्याग देनेयोग्य बताये गये हैं। हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और चारण—इन सातोंको कभी भी गवाह न बनावे। आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान—ये चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं; किन्तु वे ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं। घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतानकी कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भकी हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौएकी तरह काँव-काँव करनेवाला, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, घूसखोर, पतित, क्रूर तथा शक्ति रहते हुए रक्षाके लिये प्रार्थना करनेपर भी जो हिंसा करता है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारेके समान हैं। जलती हुई आगसे सोनेकी पहचान होती है,

सदाचारसे सत्पुरुषकी, व्यवहारसे साधुकी, भय आनेपर शूर-की, आर्थिक कठिनाईमें धीरकी और कठिन आपत्तिमें शत्रु एवं मित्रकी परीक्षा होती है। बुढ़ापा सुन्दर रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको, दोष देखनेकी आदत धर्माचरणको, क्रोध लक्ष्मीको, नीच पुरुषोंकी सेवा सत्स्वभावको, काम लज्जा-को और अभिमान सर्वस्वको नष्ट कर देता है। शुभ कर्मोंसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति होती है, प्रगल्भतासे बढ़ती है, चतुरतासे जड़ जमा लेती है और संयमसे सुरक्षित रहती है। आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता। तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय वह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है। राजन्! मनुष्यलोकमें ये आठ गुण स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाले हैं; इनमेंसे चार तो सज्जनोंका अनुसरण करते हैं और चारका स्वयं सज्जन ही अनुसरण करते हैं। यज्ञ, दान, अध्ययन और तप—ये चार सज्जनोंके पीछे चलते हैं; और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता—इन चारोंका संतलोग स्वयं अनुसरण करते हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ—ये धर्मके आठ प्रकारके मार्ग बताये गये हैं। इनमेंसे पहले चारोंका तो दम्भके लिये भी सेवन किया जा सकता है; परन्तु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह ही नहीं सकते। जिस सभामें बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं; जो धर्मकी बात न कहें, वे बूढ़े नहीं; जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपटसे पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है। सत्य, विनयका भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बातें कहना—ये दस स्वर्गके साधन हैं। पापकीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फलको ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफलका ही उपभोग करता है। इसलिये प्रशंसित व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको पाप नहीं करना चाहिये; क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट कर देता है। जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढ़ाता है। जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोकको ही जाता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह सदा एकाग्र चित्त होकर पुण्यका ही सेवन करे। गुणोंमें दोष देखनेवाला, मर्मपर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पापका आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्टको प्राप्त होता है। दोषदृष्टिसे रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ महान् सुखको प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है। जो बुद्धि-मान् पुरुषोंसे सद्बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म और अर्थको प्राप्त कर अनायास ही अपनी उन्नति करनेमें समर्थ होता है। दिनभरमें वह कार्य करे, जिससे रातमें सुखसे रहे और आठ महीने वह कार्य करे, जिससे वर्षाके चार महीने सुखसे व्यतीत कर सके। पहली अवस्थामें वह काम करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके और जीवनभर वह कार्य करे, जिससे मरनेके बाद भी सुखसे रह सके। सज्जन पुरुष पच जानेपर अन्नकी, निष्कलंक जवानी बीत जानेपर स्त्रीकी, संग्राम जीत लेनेपर शूरकी और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर तपस्वीकी प्रशंसा करते हैं। अधर्मसे प्राप्त हुए धनके द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं; उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है। अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले शिष्योंके शासक गुरु हैं, दुष्टोंके शासक राजा हैं और छिपे-छिपे पाप करनेवालोंके शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं। ऋषि, नदी, महात्माओंके कुल तथा स्त्रियोंके दुश्चरित्रका मूल नहीं जाना जा सकता। राजन्! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला, दाता, कुटुम्बी-जनोंके प्रति कोमलताका बर्ताव करनेवाला और शीलवान् राजा चिरकालतक पृथ्वीका पालन करता है। शूर, विद्वान् और सेवाधर्मको जाननेवाले—ये तीन प्रकारके मनुष्य पृथ्वीसे सुवर्णरूपी पुष्पका सञ्चय करते हैं। भारत! बुद्धिसे विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबलसे किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणीके हैं, जङ्घासे होनेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोनेका काम महा अधम है। राजन्! अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्णपर राज्यका भार रखकर उन्नति कैसे चाहते हैं? भरत-श्रेष्ठ! पाण्डव तो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं और आपमें पिताका-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं; आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिये ॥ ३९—७७ ॥

विदुरनीति

(चौथा अध्याय)

विदुरजी कहते हैं—इस विषयमें दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं; यह मेरा भी सुना हुआ है। प्राचीन कालकी बात है, उत्तम व्रतवाले महाबुद्धिमान् महर्षि दत्तात्रेय-

जी हंस (परमहंस) रूपसे विचर रहे थे; उस समय साध्य देवताओंने उनसे पूछा—॥१-२॥

साध्य बोले—महर्षे! हम सब लोग साध्य देवता हैं, आपको केवल देखकर हम आपके विषयमें कुछ अनुमान नहीं कर सकते। हमें तो आप शास्त्रज्ञानसे युक्त, धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं; अतः हमलोगोंको विद्वत्तापूर्ण अपनी उदार वाणी सुनानेकी कृपा करें॥३॥

हंसने कहा—देवताओ! मैंने सुना है कि धैर्य-धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य-धर्मोंका पालन ही कर्तव्य है; इसके द्वारा पुरुषको चाहिये कि हृदयकी सारी गाँठ खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने आत्माके समान समझे। दूसरोंसे गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। क्षमा करनेवालेका रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको जला डालता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है। दूसरेको न तो गाली दे और न उसका अपमान करे, मित्रोंसे द्रोह तथा नीच पुरुषोंकी सेवा न करे, सदाचारसे हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणीका परित्याग करे। इस जगत्में रूखी बातें मनुष्यों-के मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणोंको दग्ध करती रहती हैं; इसलिये धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातोंका सदाके लिये परित्याग कर दे। जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्मपर आघात करता और वाग्बाणोंसे मनुष्योंको पीड़ा पहुँचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह मनुष्योंमें महादरिद्र है और अपनी वाणीमें दरिद्रताको बाँधे हुए ढो रहा है। यदि दूसरा कोई इस मनुष्यको अग्नि और सूर्यके समान दग्ध करनेवाले तीखे वाग्बाणोंसे बहुत चोट पहुँचावे तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्योंको पुष्ट कर रहा है। जैसे वस्त्र जिस रंगमें रँगा जाय वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरकी सेवा करता है तो उसपर उसीका रंग चढ़ जाता है। जो स्वयं किसीके प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरोंसे भी नहीं कहलाता, मार खाकर भी बदलेमें न तो स्वयं मारता है और न दूसरोंसे ही मरवाता है, अपराधीको भी जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमनकी बाट जोहते रहते हैं। बोलनेसे न बोलना अच्छा बताया गया है; किन्तु सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है, *यानी मौनकी अपेक्षा* भी दूना लाभप्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचनकी चौथी विशेषता है। मनुष्य जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे लोगोंकी सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है। जिन-जिन विषयोंसे मनको हटाया जाता है, उन-उनसे मुक्ति होती जाती है; इस प्रकार यदि सब ओरसे निवृत्ति हो जाय तो मनुष्यको लेशमात्र दुःखका भी कभी अनुभव न हो। जो न तो स्वयं *किसीसे जीता जाता*, न दूसरोंको जीतनेकी इच्छा करता है, न किसीके साथ वैर करता और न दूसरोंको चोट पहुँचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसामें समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोकसे परे हो जाता है। जो सबका कल्याण चाहता है, किसीके अकल्याणकी बात मनमें भी नहीं *लाता*, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है। जो झूठी सान्त्वना

नहीं देता, देनेकी प्रतिज्ञा करके दे ही डालता है, दूसरोंके दोषोंको जानता है, वह मध्यम श्रेणीका पुरुष है। देखिये, दुःशासन गन्धर्वोंद्वारा पीटा गया, अस्त्र-शस्त्रोंसे विदीर्ण किया गया, [उस समय पाण्डवोंने उसकी रक्षा की;] तो भी वह कृतघ्न क्रोधके वशीभूत हो पाण्डवोंकी बुराईसे मुँह नहीं मोड़ता। वह दुरात्मा किसीका भी मित्र नहीं है। ऐसी चित्तवृत्ति अधम पुरुषोंकी ही हुआ करती है। जो अपने विषयमें सन्देह होनेके कारण दूसरोंसे भी कल्याण होनेका विश्वास नहीं करता, मित्रोंको भी दूर रखता है, अवश्य ही वह अधम पुरुष है। जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषोंकी ही सेवा करे, समय आ पड़नेपर मध्यम पुरुषोंकी भी सेवा कर ले, परन्तु अधम पुरुषोंकी सेवा कदापि न करे। मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे, निरन्तरके उद्योगसे, बुद्धिसे तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले; परन्तु इससे उत्तम कुलीन पुरुषोंके सम्मान और सदाचारको वह कदापि नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ४—२१ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! धर्म और अर्थके नित्यज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषोंकी इच्छा करते हैं। इसलिये मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि उत्तम कुल कौन हैं ॥ २२ ॥

विदुरजी बोले—जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें उत्तम कुल कहते हैं। जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, उन्हींका कुल उत्तम है। यज्ञ न होनेसे, निन्दित कुलमें विवाह करनेसे, वेदका त्याग और धर्मका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। देवताओंके धनका नाश, ब्राह्मणके धनका अपहरण और ब्राह्मणोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। भारत ! ब्राह्मणोंके अनादर और निन्दासे तथा धरोहर रक्खी हुई वस्तुको छिपा लेनेसे अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं। गौओं, मनुष्यों और धनसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते। थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचारसे सम्पन्न हैं, तो वे अच्छे कुलोंकी गणनामें आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं। सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये; धन तो आता-जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किन्तु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये। जो कुल सदाचारसे हीन हैं वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेतीसे सम्पन्न होनेपर भी उन्नति नहीं कर पाते। हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरोंके धनका अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता-पिता, देवता एवं अतिथियोंको भोजन करानेसे पहले भोजन करनेवाला भी न हो। हमलोगोंमेंसे जो ब्राह्मणोंकी हत्या करे, ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करे तथा पितरोंको पिण्डदान एवं तर्पण न करे, वह हमारी सभामें न जाय। तृणका आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी—सज्जनोंके घरमें इन चार चीजोंकी कमी कभी नहीं होती। राजन् ! पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंके यहाँ ये तृण आदि वस्तुएँ बड़ी श्रद्धाके साथ सत्कारके लिये उपस्थित की जाती हैं। नृपवर ! छोटा-सा भी रथ भार ढो सकता है, किन्तु दूसरे काठ बड़े-बड़े होनेपर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते। जिसके कोपसे भयभीत होना पड़े तथा शङ्कित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिसपर पिताकी भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो संगी मात्र हैं। पहलेसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्रताका बर्ताव करे वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है। जिसका चित्त चञ्चल है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रोंका संग्रह स्थायी नहीं होता। जैसे हंस सूखे सरोवरके आस-पास ही मँड़राकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चञ्चल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियोंका गुलाम है, उसे अर्थकी प्राप्ति नहीं होती। दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव मेघके समान चञ्चल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं। जो मित्रोंसे सत्कार पाकर और उनकी सहायतासे कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नोंके मरनेपर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते। धन हो या न हो, मित्रोंका तो सत्कार करे ही। मित्रोंसे कुछ भी न माँगते हुए उनके सार-असारकी परीक्षा न करे।

सन्तापसे रूप नष्ट होता है, सन्तापसे बल नष्ट होता है, सन्तापसे ज्ञान नष्ट होता है और सन्तापसे मनुष्य रोगको प्राप्त होता है। अभीष्ट वस्तु शोक करनेसे नहीं मिलती; उससे तो केवल शरीरको कष्ट होता है, और शत्रु प्रसन्न होते हैं। इसलिये आप मनमें शोक न करें। मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि उठाता और बढ़ता है, बार-बार स्वयं दूसरेसे याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं, तथा बारंबार वह दूसरोंके लिये शोक करता है और दूसरे उसके लिये शोक करते हैं। सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये बारी-बारीसे प्राप्त होते रहते हैं; इसलिये धीर पुरुषको इनके लिये हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये। ये छः इन्द्रियाँ बहुत ही चञ्चल हैं; इनमेंसे जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषयकी ओर बढ़ती है, उससे बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है जैसे फूटे घड़ेसे पानी सदा चू जाता है ॥ २३—४८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—काठमें छिपी हुई आगके समान सूक्ष्म धर्मसे बँधे हुए राजा युधिष्ठिरके साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है; अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका नाश कर डालेंगे। महामते! यह सब कुछ सदा ही भयसे उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भयसे उद्विग्न है; इसलिये जो उद्वेगशून्य और शान्त पद हो, वही मुझे बताओ ॥ ४९—५० ॥

विदुरजी बोले—पापशून्य नरेश! विद्या, तप, इन्द्रिय-निग्रह और लोभत्यागके सिवा और कोई आपके लिये शान्ति-का उपाय मैं नहीं देखता। बुद्धिसे मनुष्य अपने भयको दूर करता है, तपस्यासे महत् पदको प्राप्त होता है, गुरुशुश्रूषा-से ज्ञान और योगसे शान्ति पाता है। मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य दानके पुण्यका आश्रय नहीं लेते, वेदके पुण्यका भी आश्रय नहीं लेते; किन्तु निष्कामभावसे राग-द्वेषसे रहित हो इस लोकमें विचरते रहते हैं। सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्याके अन्तमें सुखकी वृद्धि होती है। राजन्! आपसमें फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनोंसे युक्त पलंग पाकर भी कभी सुखकी नींद नहीं सोने पाते; उन्हें स्त्रियोंके पास रहकर तथा वंदीजनोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती। जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्मका आचरण नहीं करते। सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता, तथा शान्तिकी वार्ता भी नहीं सुहाती। हितकी बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती, उनके योग-क्षेमकी भी सिद्धि नहीं हो पाती; राजन्! भेदभाववाले पुरुषोंकी विनाशके सिवा और कोई गति नहीं है। जैसे गौओंमें दूध, ब्राह्मणमें तप और युवती स्त्रियोंमें चञ्चलताका होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जाति-बन्धुओंसे भय होना भी सम्भव ही है। नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएँ बहुत होनेके कारण बहुत वर्षोंतक नाना प्रकारके झोंके सहती हैं; यही बात सत्पुरुषोंके विषयमें भी समझनी चाहिये। वे दुर्बल होनेपर भी सामूहिक शक्तिसे बलवान् हो जाते हैं। भरतश्रेष्ठ! जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होनेपर धूआँ फेंकती हैं, और एक साथ होनेपर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जाति-बन्धु भी फूट होनेपर दुःख उठाते और एकता होनेपर सुखी रहते हैं। धृतराष्ट्र! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओंपर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठलसे पके हुए फलोंकी भाँति नीचे गिरते हैं। यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढमूल तथा बहुत बड़ा होने-पर भी एक ही क्षणमें आँधीके द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है। किन्तु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूहके रूपमें खड़े हैं, वे एक-दूसरेके सहारे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भी सह सकते हैं। इसी प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न मनुष्यको भी अकेले होनेपर शत्रु अपनी ताकतके अंदर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्षको वायु। किन्तु परस्पर मेल होनेसे और एकसे दूसरेको सहारा मिलनेसे जातिवाले लोग इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे तालाबमें कमल। ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं। राजन्! आपका कल्याण हो, मनुष्यमें धन और आरोग्यको छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है; क्योंकि रोगी तो मुर्देके समान है। महाराज! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़वा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करनेयोग्य है, और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये। रोगसे पीडित मनुष्य मधुर फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंमें भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुखी रहते हैं; वे न तो धन-सम्बन्धी भोगोंका और न सुखका ही अनुभव करते हैं। राजन्! पहले जूएमें द्रौपदीको जीती गयी देखकर मैंने कहा था, 'आप द्यूतक्रीडामें आसक्त दुर्योधनको रोकिये, विद्वान् लोग इस प्रवञ्चनाके लिये मना करते हैं;' किन्तु आपने मेरा

करे। पहलेके समयमें जूआ खेलना मनुष्योंमें वैर डालनेका कारण देखा गया है; अतः बुद्धिमान् मनुष्य हँसीमें भी जूआ न खेले। राजन्! मैंने जूएका खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है; किन्तु रोगीको जैसे दवा और पथ्य नहीं भाते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी। नरेन्द्र! आप कौओंके समान अपने पुत्रोंके द्वारा विचित्र पंखवाले मोरोंके सदृश पाण्डवोंको पराजित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, सिंहोंको छोड़कर सियारोंकी रक्षा कर रहे हैं; समय आनेपर आपको इसके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा। तात! जो स्वामी सदा हितसाधनमें लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवकपर कभी क्रोध नहीं करता, उसपर भृत्यगण विश्वास करते हैं और उसे आपत्तिके समय भी नहीं छोड़ते। सेवकोंकी जीविका बंद करके दूसरोंके राज्य और धनके अपहरणका प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी जीविका छिन जानेसे भोगोंसे वञ्चित होकर पहलेके प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजाका परित्याग कर देते हैं। पहले कर्तव्य, आय-व्यय और उचित वेतन आदिका निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकोंका संग्रह करे; क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकोंद्वारा साध्य होते हैं। जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामिभक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिये। जो सेवक स्वामीके आज्ञा देनेपर उनकी बातका आदर नहीं करता, किसी काममें लगाये जानेपर इनकार कर जाता है, अपनी बुद्धिपर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्यको शीघ्र ही त्याग देना चाहिये। अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला—इन आठ गुणोंसे युक्त मनुष्यको 'दूत' बनाने योग्य बताया गया है। सावधान मनुष्य विश्वास होनेपर भी सायंकालमें कभी शत्रुके घर न जाय, रातमें छिपकर चौराहेपर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्रीको ग्रहण करना चाहता हो, उसे प्राप्त करनेका यत्न न करे। दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगोंके साथ मन्त्रणा-समितिमें बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बातका खण्डन न करे; 'मैं तुमपर विश्वास नहीं करता' ऐसा भी न कहे। अपि तु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहाँसे हट जाय। अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया हो, वह पुरुष—इन सबके साथ लेन-देनका व्यवहार न करे। ये आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलनेका स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता। तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार कर लेता है। राजा जिस समय किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह गुण (राजसम्मान) उपर्युक्त सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है। नित्य स्नान करनेवाले मनुष्यको बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियाँ—ये दस लाभ प्राप्त होते हैं। थोड़ा भोजन करनेवालेको निम्नाङ्कित छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं; उसकी सन्तान सुन्दर होती है, तथा 'यह बहुत खानेवाला है' ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते। अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगोंसे वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्यको कभी अपने घरमें न ठहरने दे। बहुत दुखी होनेपर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगलमें रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बाँधनेवाले और कृतघ्नसे कभी सहायताकी याचना नहीं करनी चाहिये। क्लेशप्रद कर्म करनेवाला, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्यभाषण करनेवाला, अस्थिर भक्तिवाला, स्नेहसे रहित, अपनेको चतुर माननेवाला—इन छः प्रकारके अधम पुरुषोंकी सेवा न करे। धनकी प्राप्ति सहायककी अपेक्षा रखती है, और सहायक धनकी अपेक्षा रखते हैं; ये दोनों एक-दूसरेके आश्रित हैं, परस्परके सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती। पुत्रोंको उत्पन्न कर उन्हें ऋणके भारसे मुक्त करके उनके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध कर दे; फिर कन्याओंका योग्य वरके साथ विवाह कर देनेके पश्चात् वनमें मुनिवृत्तिसे रहनेकी इच्छा करे। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये हितकर और अपने लिये भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पणबुद्धिसे करे; सम्पूर्ण सिद्धियोंका यही मूलमन्त्र है। जिसमें बढ़नेकी शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और निश्चय है, उसे अपनी जीविकाके नाशका भय कैसे हो सकता है? पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेमें जो दोष हैं, उनपर दृष्टि डालिये; उनसे संग्राम छिड़ जानेपर इन्द्र आदि देवताओंको भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा। इसके सिवा पुत्रोंके साथ वैर, नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन,

कीर्तिका नाश और शत्रुओंको आनन्द होगा। आकाशमें तिरछे उदित हुए धूमकेतुसे जैसे सारे संसारमें अशान्ति और उपद्रव खड़ा हो जाता है, उसी तरह भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिरका बढ़ा हुआ कोप इस संसारका संहार कर सकता है। आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव—ये सब मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन कर सकते हैं। राजन्! आपके पुत्र वनके समान हैं और पाण्डव उसमें रहनेवाले व्याघ्र हैं। आप व्याघ्रोंसहित समस्त वनको नष्ट न कीजिये तथा वनसे उन व्याघ्रोंको दूर न भगाइये। व्याघ्रोंके बिना वनकी रक्षा नहीं हो सकती तथा वनके बिना व्याघ्र नहीं रह सकते; क्योंकि व्याघ्र वनकी रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रोंकी। जिनका मन पापोंमें लगा रहता है, वे लोग दूसरोंके कल्याणमय गुणोंको जाननेकी वैसी इच्छा नहीं रखते जैसी कि उनके अवगुणोंको जाननेकी रखते हैं। जो अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये। जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्मसे अर्थ अलग नहीं होता। जिसकी बुद्धि पापसे हटाकर कल्याणमें लगा दी गयी है, उसने संसार-में जो भी प्रकृति और विकृति है—उस सबको जान लिया है। जो समयानुसार धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करता है। राजन्! जो क्रोध और हर्षके उठे हुए वेगको रोक लेता है और आपत्तिमें भी धैर्यको खो नहीं बैठता, वही राजलक्ष्मीका अधिकारी होता है। राजन्! आपका कल्याण हो, मनुष्योंमें सदा पाँच प्रकारका बल होता है; उसे सुनिये। जो बाहुबल है, वह कनिष्ठ बल कहलाता है; मन्त्री-का मिलना दूसरा बल है; मनीषीलोग धनके लाभको तीसरा बल बताते हैं; और राजन्! जो बाप-दादोंसे प्राप्त हुआ स्वाभाविक बल (कुटुम्बका बल) है, वह 'अभिजात' नामक चौथा बल है। भारत! जिससे इन सभी बलोंका संग्रह हो जाता है, वह बलोंमें श्रेष्ठ 'बुद्धिका बल' कहलाता है। जो मनुष्यका बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुषके साथ वैर ठानकर इस विश्वासपर निश्चिन्त न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ (वह मेरा कुछ नहीं कर सकता)। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो स्त्री, राजा, साँप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्य-शाली व्यक्ति, शत्रु, भोग और आयुष्यपर पूर्ण विश्वास कर सकता है? जिसको 'बुद्धिके बाणसे मारा गया है, उस जीवके लिये न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई माङ्गलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभाँति सिद्ध बूटी ही है। भारत! मनुष्यको चाहिये कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुलमें उत्पन्न व्यक्तिका अनादर न करे; क्योंकि ये सभी बड़े तेजस्वी होते हैं। संसारमें अग्नि एक महान् तेज है, वह काठमें छिपी रहती है; किन्तु जबतक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें, तबतक वह उस काठको नहीं जलाती। वही अग्नि यदि काष्ठसे मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है, तो वह अपने तेजसे उस काठको तथा दूसरे जङ्गलको भी जल्दी ही जला डालती है। इसी प्रकार अपने कुलमें उत्पन्न वे अग्निके समान तेजस्वी पाण्डव क्षमा-भावसे युक्त और विकारशून्य हो काष्ठमें छिपी अग्निकी तरह शान्तभावसे स्थित हैं। अपने पुत्रोंसहित आप लताके समान हैं और पाण्डव महान् शालवृक्षके सदृश हैं; महान् वृक्षका आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती। राजन्! अम्बिकानन्दन! आपके पुत्र एक वन हैं और पाण्डवोंको उसके भीतर रहनेवाले सिंह समझिये। तात! सिंहसे सूना हो जानेपर वन नष्ट हो जाता है और वनके बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं ॥१०—६४॥

विदुरनीति

(छठा अध्याय)

विदुरजी कहते हैं—जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्तिके प्राण ऊपर-को उठने लगते हैं; फिर जब वह वृद्धके स्वागतमें उठकर खड़ा होता और प्रणाम करता है, तो पुनः प्राणोंको वास्तविक स्थितिमें प्राप्त करता है। धीर पुरुषको चाहिये, जब कोई साधु पुरुष अतिथिके रूपमें घरपर आवे तो पहले आसन देकर, जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन करावे। वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसके घर दाताके लोभ, भय या कंजूसीके कारण जल, मधुपर्क और गौको नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषोंने उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ बताया है। वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्राह), ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भहत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता—ये यद्यपि पैर धोनेके योग्य नहीं हैं, तथापि यदि अतिथि होकर आवें तो विशेष प्रिय यानी आदरके योग्य होते हैं। नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस,

फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकारकी गन्ध और गुड़—इतनी वस्तुएँ बेचने योग्य नहीं हैं। जो क्रोध न करनेवाला, ढेला, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रहसे रहित, निन्दा-प्रशंसासे शून्य, प्रिय-अप्रियका त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है। जो नीवार (जंगली चावल), कन्द-मूल, इंगुद (लिसौड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है, मनको वशमें रखता है, अग्निहोत्र करता है, वनमें रहकर भी अतिथिसेवामें सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है। बुद्धिमान् पुरुषकी बुराई करके इस विश्वासपर निश्चिन्त न रहे कि 'मैं दूर हूँ।' बुद्धिमान्‌की बाँहें बड़ी लंबी होती हैं, सताया जानेपर वह उन्हीं बाँहोंसे बदला लेता है। जो विश्वासका पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं; किन्तु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वासी पुरुषसे उत्पन्न हुआ भय मूलोच्छेद कर डालता है। मनुष्यको चाहिये कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियोंका रक्षक, सम्पत्तिका न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियोंके निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परन्तु उनके वशमें कभी न हो। स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी कही गयी हैं; ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, पूजाके योग्य, पवित्र तथा घरकी शोभा हैं। अतः इनकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। अन्तःपुरकी रक्षाका कार्य पिताको सौंप दे, रसोई-घरका प्रबन्ध माताके हाथमें दे दे, गौओंकी सेवामें अपने समान व्यक्तिको नियुक्त करे और कृषिका कार्य स्वयं करे। सेवकोंद्वारा वाणिज्य—व्यापार करे और पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा करे। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होने-पर भी अपने उत्पत्तिस्थानमें शान्त हो जाता है। अच्छे कुलमें उत्पन्न, अग्निके समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठमें अग्निकी भाँति शान्तभावसे स्थित रहते हैं। जिस राजाकी मन्त्रणाको उसके बहिरंग एवं अन्तरंग सभासद्‌तक नहीं जानते, सब ओर दृष्टि रखनेवाला वह राजा चिरकालतक ऐश्वर्यका उपभोग करता है। धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्योंको करनेसे पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करनेसे अपनी मन्त्रणा दूसरोंपर प्रकट नहीं होती। पर्वतकी चोटीपर चढ़कर अथवा राजमहलके एकान्त स्थानमें जाकर या जंगलमें निर्जन स्थानपर मन्त्रणा करनी चाहिये। हे भारत! जो मित्र न हो, मित्र होनेपर भी पण्डित न हो, पण्डित होनेपर भी जिसका मन वशमें न हो, वह अपना गुप्त मन्त्र जाननेके योग्य नहीं है। राजा अच्छी तरह परीक्षा किये बिना किसीको अपना मन्त्री न बनावे। क्योंकि धनकी प्राप्ति और मन्त्रकी रक्षाका भार मन्त्रीपर ही रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और काम-विषयक सभी कार्योंको पूर्ण होनेके बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ है। अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाले उस राजाको निःसन्देह सिद्धि प्राप्त होती है। जो मोहवश बुरे कर्म करता है, वह उन कार्योंका विपरीत परिणाम होनेसे अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठता है। उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किन्तु उनका न किया जाना पश्चात्तापका कारण माना गया है। जैसे वेदोंको पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्धका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय नामक छः गुणों-को जाने बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुननेका अधिकारी नहीं होता। राजन्! जो सन्धि-विग्रह आदि छः गुणों-की जानकारीके कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और ह्रासको जानता है तथा जिसके स्वभावकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजाके अधीन पृथ्वी रहती है। जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो आवश्यक कार्योंकी स्वयं देख-भाल करता है और खजानेकी भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है। भूपतिको चाहिये कि अपने 'राजा' नामसे और राजोचित 'छत्र' -धारणसे सन्तुष्ट रहे। सेवकोंको पर्याप्त धन दे, सब अकेले ही न हड़प ले। ब्राह्मणको ब्राह्मण जानता है, स्त्रीको उसका पति जानता है, मन्त्रीको राजा जानता है और राजा-को भी राजा ही जानता है। वशमें आये हुए वधयोग्य शत्रुको कभी छोड़ना नहीं चाहिये। यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिये, और बल होनेपर उसे मार ही डालना चाहिये; क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है। देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगीपर होनेवाले क्रोधको प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये। निरर्थक कलह करना मूर्खोंका काम है, बुद्धिमान् पुरुषको इसका त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे लोकमें यश मिलता है और अनर्थका सामना नहीं करना पड़ता। जिसके प्रसन्न होनेका कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजाको प्रजा उसी भाँति नहीं चाहती

जैसे स्त्री नपुंसक पतिको । बुद्धिसे धन प्राप्त होता है, और मूर्खता दरिद्रताका कारण है—ऐसा कोई नियम नहीं है। संसारचक्रके वृत्तान्तको केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं । भारत ! मूर्ख मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुलमें बड़े माननीय पुरुषोंका सदा अनादर किया करता है। जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणोंमें दोष देखनेवाला, अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ (सङ्कट) टूट पड़ते हैं । ठगई न करना, दान देना, बातपर कायम रहना और अच्छी तरह कही हुई हितकी बात—ये सब सम्पूर्ण भूतोंको अपना बना लेते हैं । किसीको भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और सरल राजा खजाना खतम हो जानेपर भी सहायकोंको पा जाता है, अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं । धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्रसे द्रोह न करना—ये सात बातें लक्ष्मीको बढ़ानेवाली हैं । राजन् ! जो अपने आश्रितोंमें धनका ठीक-ठीक बँटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोकमें त्याग देने योग्य है। जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्तिको कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घरमें रहनेवाले मनुष्यकी भाँति रातमें सुखसे नहीं सो सकता । भारत ! जिनके ऊपर दोषारोपण करनेसे योग और क्षेममें बाधा आती हो, उन लोगोंको देवताकी भाँति सदा प्रसन्न रखना चाहिये । जो धन आदि पदार्थ स्त्री, प्रमादी, पतित और नीच पुरुषोंके हाथमें सौंप दिये जाते हैं, वे संशयमें पड़ जाते हैं । राजन् ! जहाँका शासन स्त्री, जुआरी और बालकके हाथमें है, वहाँके लोग नदीमें पत्थरकी नावपर बैठनेवालोंकी भाँति विपत्तिके समुद्रमें डूब जाते हैं जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काममें लगे रहते हैं, अधिकमें हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ; क्योंकि अधिकमें हाथ डालना सङ्घर्षका कारण होता है । जुआरी जिसकी तारीफ करते हैं, चारण जिसकी प्रशंसाका गान करते हैं और वेश्याएँ जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्देके समान है। भारत ! आपने उन महान् धनुर्धर और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवोंको छोड़कर जो यह महान् ऐश्वर्यका भार दुर्योधनके ऊपर रख दिया है; इसलिये आप शीघ्र ही उस ऐश्वर्यमदसे मूढ़ दुर्योधनको त्रिभुवनके साम्राज्यसे गिरे हुए बलिकी भाँति इस राज्यसे भ्रष्ट होते देखियेगा ॥१–४७॥

विदुरनीति

(सातवाँ अध्याय)

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! यह पुरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति और नाशमें स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्माने धागेसे बँधी हुई कठपुतलीकी भाँति इसे प्रारब्धके अधीन कर रक्खा है; इसलिये तुम कहते चलो, मैं सुननेके लिये धैर्य धारण किये बैठा हूँ ॥१॥

विदुरजी बोले—भारत ! समयके विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें, तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धिकी भी अवज्ञा ही होगी । संसारमें कोई मनुष्य दान देनेसे प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलनेसे प्रिय होता है और तीसरा मन्त्र तथा औषधके बलसे प्रिय होता है; किन्तु जो वास्तवमें प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है । जिससे द्वेष हो जाता है वह न साधु, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पड़ता है। प्रियतमके तो सभी कर्म शुभ ही होते हैं और दुश्मनके सभी काम पापमय । राजन् ! दुर्योधनके जन्म लेते ही मैंने कहा था कि 'केवल इसी एक पुत्रको तुम त्याग दो। इसके त्यागसे सौ पुत्रोंकी वृद्धि होगी और इसका त्याग न करनेसे सौ पुत्रोंका नाश होगा' । जो वृद्धि भविष्यमें नाशका कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। और उस क्षयका भी बहुत आदर करना चाहिये, जो आगे चलकर अभ्युदयका कारण हो। महाराज ! वास्तवमें जो क्षय वृद्धिका कारण होता है, वह क्षय ही नहीं है। किन्तु उस लाभको भी क्षय ही मानना चाहिये, जिसे पानेसे बहुतोंका नाश हो जाय। धृतराष्ट्र ! कुछ लोग गुणके धनी होते हैं और कुछ लोग धनके धनी । जो धनके धनी होते हुए भी गुणोंके कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिये ॥२–८॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! तुम जो कुछ कह रहे हो, परिणाममें हितकर है; बुद्धिमान् लोग इसका अनुमोदन करते हैं। यह भी ठीक है कि जिस ओर धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है तो भी मैं अपने बेटेका त्याग नहीं कर सकता॥९॥

विदुरजी बोले—जो अधिक गुणोंसे सम्पन्न और विनयी

है, वह प्राणियोंका तनिक भी संहार होते देख उसकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। जो दूसरोंकी निन्दामें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको दुःख देने और आपसमें फूट डालनेके लिये सदा उत्साहके साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोषसे भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहनेमें भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगोंसे धन लेनेमें महान् दोष है और उन्हें देनेमें बहुत बड़ा भय है। दूसरोंमें फूट डालनेका जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखनेके अयोग्य—निन्दित माने गये हैं। उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्योंका त्याग कर देना चाहिये। सौहार्दभाव निवृत्त हो जानेपर नीच पुरुषोंका प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्दसे होनेवाले फलकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है। फिर वह नीच पुरुष निन्दा करनेके लिये यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जानेपर मोहवश विनाशके लिये उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। उस प्रकारके नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे होनेवाले संगपर अपनी बुद्धिसे पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूरसे ही त्याग दे। जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगीपर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओंसे समृद्ध होता और अनन्त कल्याणका अनुभव करता है। राजेन्द्र ! जो लोग अपने भलेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जातिभाइयोंको उन्नतिशील बनाना चाहिये; इसलिये आप भलीभाँति अपने कुलकी वृद्धि करें। राजन् ! जो अपने कुटुम्बीजनोंका सत्कार करता है, वह कल्याणका भागी होता है। भरतश्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बके लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है ? राजन् ! आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवोंपर कृपा कीजिये और उनकी जीविकाके लिये कुछ गाँव दे दीजिये। नरेश्वर ! ऐसा करनेसे आपको इस संसारमें यश प्राप्त होगा। तात ! आप वृद्ध हैं, इसलिये आपको अपने पुत्रोंपर शासन करना चाहिये। भरतश्रेष्ठ ! मुझे भी आपके हितकी ही बात कहनी चाहिये। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात ! शुभ चाहनेवालेको अपने जातिभाइयोंके साथ कलह नहीं करना चाहिये; बल्कि उनके साथ मिलकर सुखका उपभोग करना चाहिये। जातिभाइयोंके साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है; उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये। इस जगत्‌में जातिभाई तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं। राजेन्द्र ! आप पाण्डवोंके प्रति सद्व्यवहार करें। मानद ! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओंके आक्रमणसे बचे रहेंगे। विषैले बाण हाथमें लिये हुए व्याधके पास पहुँचकर जैसे मृगको कष्ट भोगना पड़ता है उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धुके पास पहुँचकर दुःख पाता है, उसके पापका भागी वह धनी होता है। नरश्रेष्ठ ! आप पाण्डवोंको अथवा अपने पुत्रोंको मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे; अतः इस बातका पहले ही विचार कर लीजिये। [इस जीवनका कोई ठिकाना नहीं है।] जिस कर्मके करनेसे अन्तमें खाटपर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये। शुक्राचार्यके सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीतिका उल्लङ्घन नहीं करता; अतः जो बीत गया सो बीत गया, अब शेष कर्तव्यका विचार आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंपर ही निर्भर है। नरेश्वर ! दुर्योधनने पहले यदि पाण्डवोंके प्रति यह अपराध किया है, तो आप इस कुलमें बड़े-बूढ़े हैं; आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिये। नरश्रेष्ठ ! यदि आप उनको राजपदपर स्थापित कर देंगे तो संसारमें आपका कलंक धुल जायगा और आप बुद्धिमान् पुरुषोंके माननीय हो जायँगे। जो धीर पुरुषोंके वचनोंके परिणामपर विचार करके उन्हें कार्यरूपमें परिणत करता है, वह चिरकालतक यशका भागी बना रहता है। कुशल विद्वानोंके द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ ही है, यदि उससे कर्तव्यका ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होनेपर भी उसका अनुष्ठान न हुआ। जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है। किन्तु जो पूर्वमें किये हुए पापोंका विचार न करके उन्हींका अनुसरण करता है, वह बुद्धिहीन मनुष्य अगाध कीचड़से भरे हुए नरकमें गिराया जाता है। बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रभेदके इन छः द्वारोंको जाने, और धनको रक्षित रखनेकी इच्छासे इन्हें सदा बंद रक्खे—नशेका सेवन, निद्रा, आवश्यक बातोंकी जानकारी न रखना, अपने नेत्र मुख आदिका विकार, दुष्ट मन्त्रियोंमें विश्वास और मूर्ख दूतपर भी भरोसा रखना। राजन् ! जो इन द्वारोंको जानकर सदा बंद किये रहता है वह अर्थ, धर्म और कामके सेवनमें लगा रहकर शत्रुओंको भी वशमें कर लेता है। बृहस्पतिके समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धोंकी सेवा किये विना धर्म और अर्थका ज्ञान नहीं प्राप्त कर

। समुद्रमें गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है; जो ा नहीं, उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है; अ- न्द्रिय पुरुषका शास्त्रज्ञान और राखमें किया हुआ हवन भी ही है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिसे जाँचकर अपने अनुभव- ारंबार उनकी योग्यताका निश्चय करे; फिर दूसरोंसे कर और स्वयं देखकर भलीभाँति विचार करके विद्वानोंके मित्रता करे। विनयभाव अपयशका नाश करता पराक्रम अनर्थको दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोधका करती है और सदाचार कुलक्षणका अन्त करता है। द्र! नाना प्रकारकी भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत- रके ढंग और भोजन तथा वस्त्रके द्वारा कुलकी ा करे। देहाभिमानसे रहित पुरुषके पास भी न्याययुक्त पदार्थ स्वतः उपस्थित हो तो वह उसका ध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्यके लिये तो कहना क्या है? जो विद्वानोंकी सेवामें रहनेवाला, वैद्य, र्मिक, देखनेमें सुन्दर, मित्रोंसे युक्त तथा मधुरभाषी हो, सुहृद्की सर्वथा रक्षा करनी चाहिये। अधम में उत्पन्न हुआ हो या उत्तम कुलमें—जो मर्यादाका ल्लङ्घन नहीं करता, धर्मकी अपेक्षा रखता है, कोमल भाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनोंसे बढ़कर । जिन दो मनुष्योंका चित्तसे चित्त, गुप्त रहस्यसे रहस्य और बुद्धिसे बुद्धि मिल जाती है, उनकी त्रता कभी नष्ट नहीं होती। मेधावी पुरुषको चाहिये दुर्बुद्धि एवं विचारशक्तिसे हीन पुरुषका तृणसे ढके हुए ँकी भाँति परित्याग कर दे; क्योंकि उसके साथ की हुई त्रता नष्ट हो जाती है। विद्वान् पुरुषको उचित है अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषोंके थ मित्रता न करे। मित्र तो ऐसा होना चाहिये जो ज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखने- ला, जितेन्द्रिय, मर्यादाके भीतर रहनेवाला और मैत्रीका ग न करनेवाला हो। इन्द्रियोंको सर्वथा रोक रखना मृत्युसे भी बढ़कर कठिन है; और उन्हें बिल्कुल ली छोड़ देनेसे देवताओंका भी नाश हो जाता है। पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न ना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये ः गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान्‌लोग कहते । जो अन्यायसे नष्ट हुए धनको स्थिरबुद्धिका आश्रय अच्छी नीतिसे पुनः लौटा लानेकी इच्छा करता है, वीर पुरुषोंका-सा आचरण करता है। जो आनेवाले दुःखको रोकनेका उपाय जानता है, वर्तमानकालिक कर्तव्यके पालनमें दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीतकालमें जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थसे हीन नहीं होता। मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कार्योंको ही करे। माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श, चित्तवृत्तियोंका निरोध, शास्त्रका अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषोंका बारंबार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं। उद्योगमें लगे रहना धन, लाभ और कल्याणका मूल है। इसलिये उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुखका उपभोग करता है। तात! समर्थ पुरुषके लिये सब जगह और सब समयमें क्षमाके समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है। जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे। तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है। जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किन्तु मूढव्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक विषयसेवन) न करे। जो दुःखसे पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता। दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति ही शूरवीर, अधिक व्रत-नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमंडमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती। राजलक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानोंके पास रहती है और न बहुत निर्गुणोंके पास। यह न तो बहुत-से गुणोंको चाहती है और न गुणहीनके प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौकी भाँति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है। वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रति-सुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग। जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोक-साधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे रास्तेसे आया होता है। घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गमें,

है, वह प्राणियोंका तनिक भी संहार होते देख उसकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। जो दूसरोंकी निन्दामें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको दुःख देने और आपसमें फूट डालनेके लिये सदा उत्साहके साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोषसे भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहनेमें भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगोंसे धन लेनेमें महान् दोष है और उन्हें देनेमें बहुत बड़ा भय है। दूसरोंमें फूट डालनेका जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखनेके अयोग्य—निन्दित माने गये हैं। उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्योंका त्याग कर देना चाहिये। सौहार्दभाव निवृत्त हो जानेपर नीच पुरुषोंका प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्दसे होनेवाले फलकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है। फिर वह नीच पुरुष निन्दा करनेके लिये यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जानेपर मोहवश विनाशके लिये उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। उस प्रकारके नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे होनेवाले संगपर अपनी बुद्धिसे पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूरसे ही त्याग दे। जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगीपर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओंसे समृद्ध होता और अनन्त कल्याणका अनुभव करता है। राजेन्द्र ! जो लोग अपने भलेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जातिभाइयोंको उन्नतिशील बनाना चाहिये; इसलिये आप भलीभाँति अपने कुलकी वृद्धि करें। राजन् ! जो अपने कुटुम्बीजनोंका सत्कार करता है, वह कल्याणका भागी होता है। भरतश्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बके लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है ? राजन् ! आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवोंपर कृपा कीजिये और उनकी जीविकाके लिये कुछ गाँव दे दीजिये। नरेश्वर ! ऐसा करनेसे आपको इस संसारमें यश प्राप्त होगा। तात ! आप वृद्ध हैं, इसलिये आपको अपने पुत्रोंपर शासन करना चाहिये। भरतश्रेष्ठ ! मुझे भी आपके हितकी ही बात कहनी चाहिये। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात ! शुभ चाहनेवालेको अपने जातिभाइयोंके साथ कलह नहीं करना चाहिये; बल्कि उनके साथ मिलकर सुखका उपभोग करना चाहिये। जातिभाइयोंके साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है; उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये। इस जगत्‌में जातिभाई तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं। राजेन्द्र ! आप पाण्डवोंके प्रति सद्व्यवहार करें। मानद ! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओंके आक्रमणसे बचे रहेंगे। विषैले बाण हाथमें लिये हुए व्याधके पास पहुँचकर जैसे मृगको कष्ट भोगना पड़ता है उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धुके पास पहुँचकर दुःख पाता है, उसके पापका भागी वह धनी होता है। नरश्रेष्ठ ! आप पाण्डवोंको अथवा अपने पुत्रोंको मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे; अतः इस बातका पहले ही विचार कर लीजिये। [इस जीवनका कोई ठिकाना नहीं है।] जिस कर्मके करनेसे अन्तमें खाटपर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये। शुक्राचार्यके सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीतिका उल्लङ्घन नहीं करता; अतः जो बीत गया सो बीत गया, अब शेष कर्तव्यका विचार आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंपर ही निर्भर है। नरेश्वर ! दुर्योधनने पहले यदि पाण्डवोंके प्रति यह अपराध किया है, तो आप इस कुलमें बड़े-बूढ़े हैं; आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिये। नरश्रेष्ठ ! यदि आप उनको राजपदपर स्थापित कर देंगे तो संसारमें आपका कलंक धुल जायगा और आप बुद्धिमान् पुरुषोंके माननीय हो जायँगे। जो धीर पुरुषोंके वचनोंके परिणामपर विचार करके उन्हें कार्यरूपमें परिणत करता है, वह चिरकालतक यशका भागी बना रहता है। कुशल विद्वानोंके द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ ही है, यदि उससे कर्तव्यका ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होनेपर भी उसका अनुष्ठान न हुआ। जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है। किन्तु जो पूर्वमें किये हुए पापोंका विचार न करके उन्हींका अनुसरण करता है, वह बुद्धिहीन मनुष्य अगाध कीचड़से भरे हुए नरकमें गिराया जाता है। बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रभेदके इन छः द्वारोंको जाने, और धनको रक्षित रखनेकी इच्छासे इन्हें सदा बंद रक्खे—नशेका सेवन, निद्रा, आवश्यक बातोंकी जानकारी न रखना, अपने नेत्र मुख आदिका विकार, दुष्ट मन्त्रियोंमें विश्वास और मूर्ख दूतपर भी भरोसा रखना। राजन् ! जो इन द्वारोंको जानकर सदा बंद किये रहता है वह अर्थ, धर्म और कामके सेवनमें लगा रहकर शत्रुओंको भी वशमें कर लेता है। बृहस्पतिके समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धोंकी सेवा किये विना धर्म और अर्थका ज्ञान नहीं प्राप्त कर

सकते। समुद्रमें गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है; जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है; अजितेन्द्रिय पुरुषका शास्त्रज्ञान और राखमें किया हुआ हवन भी नष्ट ही है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिसे जाँचकर अपने अनुभवसे बारंबार उनकी योग्यताका निश्चय करे; फिर दूसरोंसे सुनकर और स्वयं देखकर भलीभाँति विचार करके विद्वानोंके साथ मित्रता करे। विनयभाव अपयशका नाश करता है, पराक्रम अनर्थको दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोधका नाश करती है और सदाचार कुलक्षणका अन्त करता है। राजन्! नाना प्रकारकी भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत-सत्कारके ढंग और भोजन तथा वस्त्रके द्वारा कुलकी परीक्षा करे। देहाभिमानसे रहित पुरुषके पास भी यदि न्याययुक्त पदार्थ स्वतः उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्यके लिये तो कहना ही क्या है? जो विद्वानोंकी सेवामें रहनेवाला, वैद्य, धार्मिक, देखनेमें सुन्दर, मित्रोंसे युक्त तथा मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद्की सर्वथा रक्षा करनी चाहिये। अधम कुलमें उत्पन्न हुआ हो या उत्तम कुलमें—जो मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, धर्मकी अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनोंसे बढ़कर है। जिन दो मनुष्योंका चित्तसे चित्त, गुप्त रहस्यसे गुप्त रहस्य और बुद्धिसे बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती। मेधावी पुरुषको चाहिये कि दुर्बुद्धि एवं विचारशक्तिसे हीन पुरुषका तृणसे ढके हुए कुएँकी भाँति परित्याग कर दे; क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है। विद्वान् पुरुषको उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषोंके साथ मित्रता न करे। मित्र तो ऐसा होना चाहिये जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादाके भीतर रहनेवाला और मैत्रीका त्याग न करनेवाला हो। इन्द्रियोंको सर्वथा रोक रखना तो मृत्युसे भी बढ़कर कठिन है; और उन्हें बिल्कुल खुली छोड़ देनेसें देवताओंका भी नाश हो जाता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान्‌लोग कहते हैं। जो अन्यायसे नष्ट हुए धनको स्थिरबुद्धिका आश्रय ले अच्छी नीतिसे पुनः लौटा लानेकी इच्छा करता है, वह वीर पुरुषोंका-सा आचरण करता है। जो आनेवाले दुःखको रोकनेका उपाय जानता है, वर्तमानकालिक कर्तव्यके पालनमें दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीतकालमें जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थसे हीन नहीं होता। मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कार्योंको ही करे। माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श, चित्तवृत्तियोंका निरोध, शास्त्रका अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषोंका बारंबार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं। उद्योगमें लगे रहना धन, लाभ और कल्याणका मूल है। इसलिये उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुखका उपभोग करता है। तात! समर्थ पुरुषके लिये सब जगह और सब समयमें क्षमाके समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है। जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे। तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है। जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किन्तु मूढव्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक विषयसेवन) न करे। जो दुःखसे पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता। दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति ही शूरवीर, अधिक व्रत-नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमंडमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती। राजलक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानोंके पास रहती है और न बहुत निर्गुणोंके पास। यह न तो बहुत-से गुणोंको चाहती है और न गुणहीनके प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौकी भाँति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है। वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रति-सुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग। जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोक-साधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे रास्तेसे आया होता है। घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गमें,

कठिन आपत्तिके समय, घबराहटमें और प्रहारके लिये शस्त्र उठे रहनेपर भी मनोबलसम्पन्न पुरुषोंको भय नहीं होता। उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना—इन्हें उन्नतिका मूलमन्त्र समझिये। तपस्वियोंका बल है तप, वेदवेत्ताओंका बल है वेद, असाधुओंका बल है हिंसा और गुणवानोंका बल है क्षमा। जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन और औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं होते। जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके प्रति भी न करे। थोड़ेमें धर्मका यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामनासे प्रवृत्ति होती है—वह तो अधर्म है। अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको सद्व्यवहारसे वशमें करे, कृपणको दानसे जीते और झूठपर सत्यसे विजय प्राप्त करे। स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये। जो नित्य गुरुजनोंको प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं। जो धन अत्यन्त क्लेश उठानेसे, धर्मका उल्लङ्घन करनेसे अथवा शत्रुके सामने सिर झुकानेसे प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाइये। विद्याहीन पुरुष, सन्तानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसङ्ग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजाके राष्ट्रके लिये शोक करना चाहिये। अधिक राह चलना देहधारियोंके लिये दुःखरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतोंका बुढ़ापा है, सम्भोगसे वञ्चित रहना स्त्रियोंके लिये बुढ़ापा है और वचनरूप बाणोंका आघात मनके लिये बुढ़ापा है। अभ्यास न करना वेदोंका मल है, ब्राह्मणोचित नियमोंका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वीका मल है तथा झूठ बोलना पुरुषका मल है, क्रीडा एवं हास-परिहासकी उत्सुकता पतिव्रता स्त्रीका मल है और पतिके बिना परदेशमें रहना स्त्रीमात्रका मल है। सोनेका मल है चाँदी, चाँदीका मल है राँगा, राँगेका मल है सीसा और सीसेका मल है मल। सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे। कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे। लकड़ी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रक्खे और अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे। जिसका मित्र धन-दानके द्वारा वशमें आ चुका है, शत्रु युद्धमें जीत लिये गये हैं, और स्त्रियाँ खान-पानके द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है। जिनके पास हजार हैं, वे भी जीवित हैं, तथा जिनके पास सौ हैं, वे भी जीवित हैं; अतः महाराज धृतराष्ट्र! आप अधिकका लोभ छोड़ दीजिये, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही। इस पृथ्वीपर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब-के-सब एक पुरुषके लिये भी पूरे नहीं हैं—ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता। राजन्! मैं फिर कहता हूँ, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें समान भाव है तो उन सभी पुत्रोंके साथ एक-सा बर्ताव कीजिये ॥१०—८५॥

विदुरनीति

(आठवाँ अध्याय)

विदुरजी कहते हैं—जो सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्तिके अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयशकी प्राप्ति होती है; क्योंकि संत जिसपर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है। जो अधर्मसे उपार्जित महान् धनराशिको भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है वह, जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ता है उसी प्रकार, दुःखोंसे मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है। झूठ बोलकर उन्नति करना, राजाके पासतक चुगली करना, गुरुसे भी मिथ्या आग्रह करना—ये तीन कार्य ब्रह्महत्याके समान हैं। गुणोंमें दोष देखना एकदम मृत्युके समान है, कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मीका वध है। सुननेकी इच्छाका अभाव या सेवाका अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्याके शत्रु हैं। आलस्य, मद, मोह, चञ्चलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान और लोभ—ये सात विद्यार्थियोंके लिये सदा ही दोष माने गये हैं। सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँसे मिले? विद्या चाहनेवालेके लिये सुख नहीं है। सुखकी चाह हो तो विद्याको छोड़े और विद्या चाहे तो सुखका त्याग करे। ईंधनसे आगकी, नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंसे मृत्युकी और पुरुषोंसे कुलटा स्त्रीकी कभी तृप्ति नहीं होती। आशा धैर्यको, यमराज समृद्धिको, क्रोध लक्ष्मीको, कृपणता यशको और सार-सँभालका अभाव पशुओंको नष्ट कर देता है। इधर एक ही ब्राह्मण यदि क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्रका नाश कर देता है। बकरियाँ, काँसेका पात्र, चाँदी, मधु, अर्क खींचनेका यन्त्र, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढ़ा कुटुम्बी

और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष—ये सब आपके घरमें सदा मौजूद रहें। भारत! मनुजीने कहा है कि देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियोंकी पूजाके लिये बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, लोहा, ताँबेके बर्तन, शङ्ख, शालग्राम और गोरोचन—ये सब वस्तुएँ घरपर रखनी चाहिये। तात! अब मैं तुम्हें यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूँ—कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है, किन्तु सुख-दुःख अनित्य हैं; जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है। आप अनित्यको छोड़कर नित्यमें स्थित होइये और सन्तोष धारण कीजिये; क्योंकि सन्तोष ही सबसे बड़ा लाभ है। धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोड़कर यमराजके वशमें गये हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये। राजन्! जिसको बड़े कष्टसे पाला-पोसा था, वही पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरंत घरसे बाहर कर देते हैं। पहले तो उसके लिये बाल छितराये करुण स्वरोंमें विलाप करते हैं, फिर साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं। मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पापसे बँधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है। तात! बिना फल-फूलके वृक्षको जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेतको उसके जातिवाले, सुहृद् और पुत्र चितामें छोड़कर लौट आते हैं। अग्निमें डाले हुए उस पुरुषके पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्मका ही संग्रह करे। इस लोक और परलोकसे ऊपर और नीचेतक सर्वत्र अज्ञानरूप महान् अन्धकार फैला हुआ है; वह इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है। राजन्! आप इसको जान लीजिये, जिससे यह आपका स्पर्श न कर सके। मेरी इस बातको सुनकर यदि आप सब ठीक-ठीक समझ सकेंगे तो इस मनुष्यलोकमें आपको महान् यश प्राप्त होगा और इहलोक तथा परलोकमें आपके लिये भय नहीं रहेगा। भारत! यह जीवात्मा एक नदी है। इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मासे इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दयाकी लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है; क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है। काम-क्रोधादिरूप ग्राहसे भरी, पाँच इन्द्रियोंके जलसे पूर्ण इस संसारनदीके जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाहको धैर्यकी नौका बनाकर पार कीजिये। जो बुद्धि, धन, विद्या और अवस्थामें बड़े अपने बन्धुको आदर-सत्कारसे प्रसन्न करके उससे कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें प्रश्न करता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता। शिश्न और उदरकी धैर्यसे रक्षा करे, अर्थात् कामवेग और भूखकी ज्वालाको धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैरकी नेत्रोंसे, नेत्र और कानोंकी मनसे तथा मन और वाणीकी सत्कर्मोंसे रक्षा करे। जो प्रतिदिन जलसे स्नान-सन्ध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितोंका अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता और गुरुकी सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता। वेदोंको पढ़कर, अग्निहोत्रके लिये अग्निके चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन कर और प्रजाजनोंका पालन करके गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये संग्राममें मृत्युको प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्रसे अन्तःकरण पवित्र हो जानेके कारण ऊर्ध्व-लोकको जाता है। वैश्य यदि वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनोंको समय-समयपर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञोंद्वारा तीनों अग्नियोंके पवित्र धूमकी सुगन्ध लेता रहे तो वह मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें दिव्य सुख भोगता है। शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी क्रमसे न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें सन्तुष्ट करता है तो वह व्यथासे रहित हो, पापोंसे मुक्त होकर देह-त्यागके पश्चात् स्वर्गसुखका उपभोग करता है। महाराज! आपसे यह मैंने चारों वर्णोंका धर्म बताया है; इसे बतानेका कारण भी सुनिये। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे च्युत हो रहे हैं, अतः आप उन्हें पुनः राजधर्ममें नियुक्त कीजिये ॥ १—२९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह बहुत ठीक है। सौम्य! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है। यद्यपि मैं पाण्डवोंके प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बुद्धि पलट जाती है। प्रारब्धका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति किसी भी प्राणीमें नहीं है। मैं तो प्रारब्धको ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है ॥ ३०—३२ ॥

सनत्सुजात ऋषिका आगमन

सनत्सुजातीय—पहला अध्याय

धृतराष्ट्र बोले—विदुर ! यदि तुम्हारी वाणीसे कुछ और कहना शेष रह गया हो तो कहो; मुझे उसे सुननेकी बड़ी इच्छा है। क्योंकि तुम्हारे कहनेका ढंग बड़ा अनूठा है ॥१॥

विदुरने कहा—भरतवंशी धृतराष्ट्र ! 'सनत्सुजात' नामसे विख्यात जो ब्रह्माजीके पुत्र परम प्राचीन सनातन ऋषि हैं, उन्होंने एक बार कहा था—'मृत्यु है ही नहीं'। महाराज ! वे समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, वे ही आपके हृदयमें स्थित व्यक्त और अव्यक्त—सभी प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देंगे ॥ २-३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! क्या तुम उस तत्त्वको नहीं जानते, जिसे अब पुनः सनातन ऋषि मुझे बतावेंगे ? यदि तुम्हारी बुद्धि कुछ भी काम देती हो तो तुम्हीं मुझे उपदेश करो ॥४॥

विदुर बोले—राजन् ! मेरा जन्म शूद्रा स्त्रीके गर्भसे हुआ है, अतः इसके अतिरिक्त और कोई उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है। किन्तु कुमार सनत्सुजातकी बुद्धि सनातन ब्रह्मको विषय करनेवाली है, मैं उसे जानता हूँ। ब्राह्मण-योनिमें जिसका जन्म हुआ है, वह यदि गोपनीय तत्त्वका भी प्रतिपादन कर दे तो भी देवताओंकी निन्दाका पात्र नहीं बनता। यही कारण है कि मैं स्वयं उपदेश न करके आपको सनत्सुजातका नाम बतलाता हूँ ॥ ५-६ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! उन परम प्राचीन सनातन ऋषिका पता मुझे बताओ। भला, इसी देहसे यहाँ ही उनका समागम कैसे हो सकता है ? ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर विदुर-जीने उत्तम व्रतवाले उन सनातन ऋषिका स्मरण किया। उन्होंने भी यह जानकर कि विदुर मेरा चिन्तन कर रहे हैं, प्रत्यक्ष दर्शन दिया। धृतराष्ट्रने भी शास्त्रोक्त विधिसे पाद्य-अर्घ्य, मधुपर्क आदि अर्पण करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे तो विदुरने उनसे कहा—'भगवन् ! धृतराष्ट्रके हृदयमें कुछ संशय खड़ा हुआ है, जिसका समाधान मेरे द्वारा कराना उचित नहीं है। आप ही इस विषयका निरूपण करनेके योग्य हैं। जिसे सुनकर ये नरेश सब दुःखोंसे पार हो जायँ और लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, भय-अमर्ष, भूख-प्यास, मद-ऐश्वर्य, चिन्ता-आलस्य, काम-क्रोध तथा उन्नति-अवनति—ये द्वन्द्व इन्हें कष्ट न पहुँचा सकें ॥ ८-१२ ॥

सनत्सुजातजीके द्वारा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर

सनत्सुजातीय—दूसरा अध्याय

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर बुद्धिमान् एवं महामना राजा धृतराष्ट्रने विदुरके कहे हुए उस वचनका अनुमोदन करके अपनी बुद्धिको परमात्माके विषयमें लगानेके लिये एकान्तमें सनत्सुजात मुनिसे प्रश्न किया ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी ! मैं यह सुना करता हूँ कि 'मृत्यु है ही नहीं' ऐसा आपका सिद्धान्त है। साथ ही यह भी सुना है कि देवता और असुरोंने मृत्युसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया था। इन दोनोंमें कौन-सी बात ठीक है ? ॥२॥

सनत्सुजातने कहा—राजन् ! तुमने जो प्रश्न किया है, उसमें दो पक्ष हैं। मृत्यु है और वह कर्मसे दूर होती है—एक पक्ष; और 'मृत्यु है ही नहीं'—यह दूसरा पक्ष। परन्तु वास्तवमें यह बात जैसी है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ; ध्यानसे सुनो और मेरे कथनमें सन्देह न करना। क्षत्रिय ! इस प्रश्नके उक्त दोनों ही पहलुओंको सत्य समझो। कुछ विद्वानोंने मोह-वश इस मृत्युकी सत्ता स्वीकार की है। किन्तु मेरा कहना तो

यह है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद अमृत है।
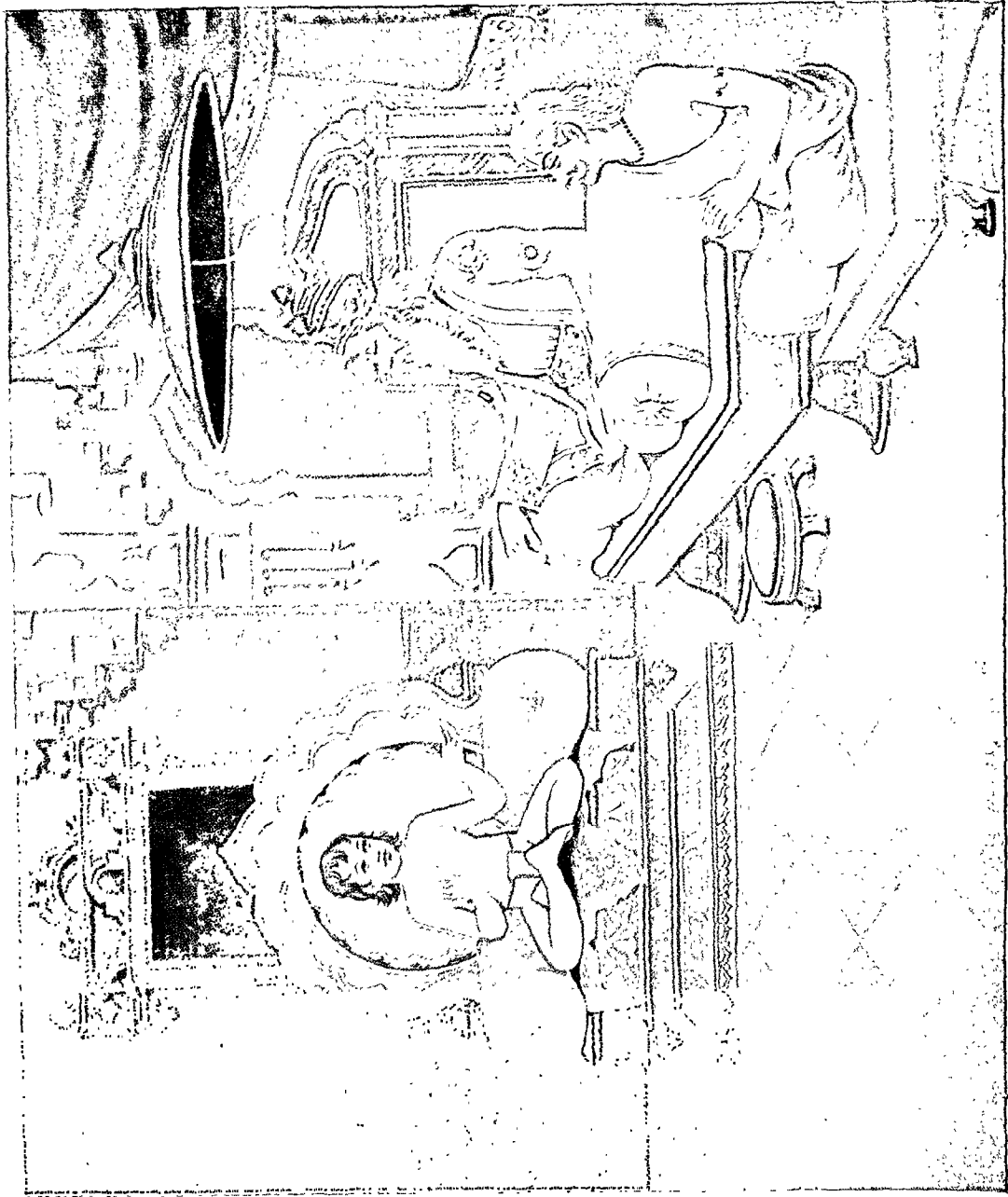
श्रीसनत्सुजात और महाराज धृतराष्ट्र

प्रमादके ही कारण आसुरी सम्पत्तिवाले मनुष्य मृत्युसे पराजित हुए और अप्रमादसे ही दैवी सम्पत्तिवाले महात्मा पुरुष ब्रह्म-स्वरूप हो जाते हैं। यह निश्चय है कि मृत्यु व्याघ्रके समान प्राणियोंका भक्षण नहीं करती; क्योंकि उसका कोई रूप देखनेमें नहीं आता। कुछ लोग मेरे बताये हुए प्रमादसे भिन्न 'यम' को मृत्यु कहते हैं और हृदयसे दृढ़तापूर्वक पालन किये हुए ब्रह्मचर्यको ही अमृत मानते हैं। यम देवता पितृलोकमें राज्य-शासन करते हैं। वे पुण्यकर्म करनेवालोंके लिये सुख-दायक और पापियोंके लिये भयंकर हैं। इन यमकी आज्ञासे ही क्रोध, प्रमाद और लोभरूपी मृत्यु मनुष्योंके विनाशमें प्रवृत्त होती है। अहंकारके वशीभूत होकर विपरीत मार्गपर चलता हुआ कोई भी मनुष्य आत्माका साक्षात्कार नहीं कर पाता। मनुष्य मोहवश अहंकारके अधीन हो इस लोकसे जाकर पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करमें पड़ते हैं। मरनेके बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। शरीरसे प्राणरूपी इन्द्रियोंका वियोग होनेके कारण मृत्यु 'मरण' संज्ञाको प्राप्त होती है। प्रारब्धकर्मका उदय होनेपर कर्मके फलमें आसक्ति रखनेवाले लोग स्वर्गादि लोकोंका अनुगमन करते हैं; इसीलिये वे मृत्युको पार नहीं कर पाते। देहाभिमानी जीव परमात्मसाक्षात्कारके उपायको न जाननेके कारण भोगकी वासनासे सब ओर नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकता रहता है। इस प्रकार जो विषयोंकी ओर झुकाव है, वह अवश्य ही इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है; और इन झूठे विषयोंमें राग रखनेवाले मनुष्यकी उनकी ओर प्रवृत्ति होनी स्वाभाविक है। मिथ्या भोगोंमें आसक्ति होनेसे जिसके अन्तःकरणकी ज्ञानशक्ति नष्ट हो गयी है, वह सब ओर विषयोंका ही चिन्तन करता हुआ मन-ही-मन उनका आस्वादन करता है। पहले तो विषयोंका चिन्तन ही लोगोंको मारे डालता है, इसके बाद वह काम और क्रोधको साथ लेकर पुनः जल्दी ही प्रहार करता है। इस प्रकार ये विषय-चिन्तन, काम और क्रोध ही विवेकहीन मनुष्योंको मृत्युके निकट पहुँचाते हैं। परन्तु जो स्थिरबुद्धि-वाले पुरुष हैं, वे धैर्यसे मृत्युके पार हो जाते हैं। अतः जो मृत्युको जीतनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि विषयोंके स्वरूपका विचार करके उन्हें तुच्छ मानकर कुछ भी न गिनते हुए उनकी कामनाओंको उत्पन्न होते ही नष्ट कर डाले। इस प्रकार जो विद्वान् विषयोंकी इच्छाको मिटा देता है, उसको [साधारण प्राणियोंकी] मृत्युकी भाँति मृत्यु नहीं मारती, अर्थात् वह जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है। कामनाओंके पीछे चलनेवाला मनुष्य कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है और कामनाओंका त्याग कर देनेपर जो कुछ भी दुःखरूप रजोगुण है, उस सबको वह नष्ट कर देता है। यह काम ही समस्त प्राणियोंके लिये मोहक होनेके कारण तमोगुण और अज्ञानरूप है तथा नरकके समान दुःखदायी देखा जाता है। जैसे मतवाले पुरुष चलते-चलते गड्ढेकी ओर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही कामी पुरुष भोगोंमें सुख मानकर उनकी ओर दौड़ते हैं। जिसके चित्तकी वृत्तियाँ कामनाओंसे मोहित नहीं हुई हैं, उस ज्ञानी पुरुषका इस लोकमें तिनकोंके बनाये हुए व्याघ्रके समान मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है ? इसलिये राजन् ! इस कामकी आयु (सत्ता) नष्ट करनेकी इच्छासे दूसरे किसी भी विषयभोगको कुछ भी न गिनकर उसका चिन्तन त्याग देना चाहिये। राजन् ! यह जो तुम्हारे शरीरके भीतर अन्तरात्मा है, मोहके वशीभूत होकर यही क्रोध, लोभ और मृत्यरूप हो जाता है। इस प्रकार मोहसे होनेवाले मृत्युको जानकर जो ज्ञाननिष्ठ हो जाता है, वह इस लोकमें मृत्युसे कभी नहीं डरता। उसके सामने आकर मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युके अधिकारमें आया हुआ मरणधर्मा मनुष्य ॥३—१६॥

धृतराष्ट्र बोले—द्विजातियोंके लिये यज्ञोंद्वारा जिन पवित्रतम, सनातन एवं श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, यहाँ वेद उन्हींको परम पुरुषार्थ कहते हैं; इस बातको जानने-वाला विद्वान् उत्तम कर्मोंका ही आश्रय क्यों न ले ? ॥१७॥

सनत्सुजातने कहा—राजन् ! अज्ञानी पुरुष ही इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोकोंमें गमन करता है तथा वेद कर्मके बहुत-से प्रयोजन भी बताते हैं। परन्तु जो निष्काम पुरुष है, वह ज्ञानमार्गके द्वारा अन्य सभी मार्गोंका बाध करके परमात्म-स्वरूप होता हुआ ही परमात्माको प्राप्त होता है ॥१८॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन् ! यदि वह परमात्मा ही क्रमशः इस सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें प्रकट होता है, तो उस अजन्मा और पुरातन पुरुषपर कौन शासन करता है ? अथवा उसे इस रूपमें आनेकी क्या आवश्यकता है और क्या सुख मिलता है—यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥१९॥

सनत्सुजातने कहा—तुम्हारे प्रश्नमें जो अनेकों विकल्प किये गये हैं, उनके अनुसार भेदकी प्राप्ति होती है और उसे स्वीकार कर लेनेसे महान् दोष आता है; क्योंकि अनादि मायाके सम्बन्धसे जीवोंका नित्य प्रवाह चलता रहता है —ऐसा माननेसे इस परमात्माकी महत्ता नष्ट नहीं होती और उसकी मायाके सम्बन्धसे जीव भी पुनः-पुनः उत्पन्न होते रहते

हैं। यह जो दृश्यमान जगत् है, वह परमात्माका स्वरूप है और परमात्मा नित्य है। वह विकार यानी मायाके योगसे इस विश्वको उत्पन्न करता है, तथा माया उस परमात्माकी शक्ति है—ऐसा माना जाता है। और ऐसे अर्थके प्रतिपादनमें वेद प्रमाण हैं ॥२०–२१॥

धृतराष्ट्र बोले—इस जगत्में कुछ लोग ऐसे हैं, जो धर्मका आचरण नहीं करते तथा कुछ लोग उसका आचरण करते हैं। अतः मैं पूछता हूँ कि धर्म पापके द्वारा नष्ट होता है या धर्म ही पापको नष्ट कर देता है? ॥२२॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! धर्म और पाप दोनोंके दो प्रकारके फल होते हैं और उन दोनोंका ही उपभोग करना पड़ता है। परमात्मामें स्थिति होनेपर विद्वान् पुरुष उस नित्य वस्तुके ज्ञानद्वारा अपने पूर्वकृत पाप और पुण्य दोनोंका सदाके लिये नाश कर देता है। यदि ऐसी स्थिति नहीं हुई तो देहाभिमानी मनुष्य कभी पुण्यफलको प्राप्त करता है और कभी क्रमशः प्राप्त हुए पूर्वोपार्जित पापके फलका अनुभव करता है। इस प्रकार पुण्य और पापके जो स्वर्ग-नरक-रूप दो अस्थिर फल हैं, उनका भोग करके वह इस जगत्में जन्म ले पुनः तदनुसार कर्मोंमें लग जाता है। किन्तु कर्मोंके तत्त्वको जाननेवाला निष्काम पुरुष धर्मरूप कर्मके द्वारा अपने पूर्वपापका यहाँ ही नाश कर देता है। इस प्रकार धर्म ही अत्यन्त बलवान् है; इसलिये धर्माचरण करनेवालोंको समयानुसार अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥२३–२५॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! पुण्यकर्म करनेवाले द्विजातियोंको अपने-अपने धर्मके फलस्वरूप जिन सनातन लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, उनका क्रम बतलाइये; तथा उससे भिन्न जो अत्यन्त उत्कृष्ट मोक्षसुख है, उसका भी निरूपण कीजिये। अब मैं सकाम कर्मकी बात नहीं जानना चाहता ॥२६॥

सनत्सुजातने कहा—जैसे बलवान् पहलवानोंमें अपना बल बढ़ानेके निमित्त एक-दूसरेसे लाग-डाँट रहती है, उसी प्रकार जो निष्कामभावसे यम-नियमादिके पालनमें दूसरोंसे बढ़नेका प्रयास करते हैं, वे ब्राह्मण यहाँसे मरकर जानेके बाद ब्रह्मलोकमें अपने तेजका प्रकाश फैलाते हैं। जिनकी वर्णाश्रमधर्ममें स्पर्धा है, उनके लिये वह ज्ञानका साधन है; किन्तु वे ब्राह्मण यदि सकामभावसे उसका अनुष्ठान करें तो मृत्युके पश्चात् यहाँसे देवताओंके निवासस्थान स्वर्गमें जाते हैं। ब्राह्मणके सम्यक् आचारकी वेदवेत्ता पुरुष प्रशंसा करते हैं। किन्तु अपनेमें वर्णाश्रमका अभिमान रख[ने] कारण जो बहिर्मुख है, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहि[ये।] जो निष्कामभावसे श्रौतधर्मका पालन करनेसे अन्त[र्मुख] हो गया है, ऐसे पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये। [जैसे] वर्षा ऋतुमें तृण-घास आदिकी बहुतायत होती है, उसी प्रका[र] जहाँ ब्रह्मवेत्ता संन्यासीके योग्य अन्न-पान आदिकी अधिकत[ा] मालूम पड़े उसी देशमें रहकर जीवन-निर्वाह करे। भूख-प्याससे अपनेको कष्ट न पहुँचावे। किन्तु जहाँ अपना माहात्म्य प्रकाशित न करनेपर भय और अमंगल प्राप्त होता हो, वहाँ रहकर भी जो अपनी विशेषता प्रकट नहीं करता वही श्रेष्ठ पुरुष है, दूसरा नहीं। जो किसीको आत्म-प्रशंसा करते देख जलता नहीं, तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करके उपभोग नहीं करता, उसके अन्नको स्वीकार करनेमें सत्पुरुषोंकी सम्मति है। जैसे कुत्ता अपना वमन किया हुआ भी खा लेता है, उसी प्रकार जो अपने पराक्रम या पाण्डित्य-का प्रदर्शन करके जीविका चलाते हैं वे संन्यासी वमन-भोजन करनेवाले हैं, और इससे उनकी सदा ही अवनति होती है। जो कुटुम्बीजनोंके बीचमें रहकर भी अपनी साधनाको उनसे सदा गुप्त रखनेका प्रयत्न करता है, ऐसे ब्राह्मणको ही विद्वान् पुरुष ब्राह्मण मानते हैं। इसलिये उपर्युक्त रूपसे जीवन बितानेवाले क्षत्रियको भी ब्रह्मका प्रकाश प्राप्त होता है, वह भी अपने ब्रह्मभावको देखता है। इस प्रकार जो भेदशून्य, चिह्नरहित, अविचल, शुद्ध एवं सब प्रकारके द्वैतसे रहित आत्मा है, उसके स्वरूपको जाननेवाला कौन ब्रह्मवेत्ता पुरुष उसका हनन (अधःपतन) करना चाहेगा? जो उक्त प्रकारसे वर्तमान आत्माको उसके विपरीतरूपसे समझता है, आत्माका अपहरण करनेवाले उस चोरने कौन-सा पाप नहीं किया? जो कर्तव्यपालनमें कभी थकता नहीं, दान नहीं लेता, सत्पुरुषोंमें सम्मानित और शान्त है, तथा शिष्ट होकर भी शिष्टताका विज्ञापन नहीं करता, वही ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता एवं विद्वान् है। जो लौकिक धनकी दृष्टिसे निर्धन होकर भी दैवी-सम्पत्ति तथा यज्ञ-उपासना आदिसे सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष और निर्भय हैं; उन्हें ब्रह्मकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये। यदि कोई इस लोकमें अभीष्ट सिद्ध करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको जान ले, तो भी वह ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं होता। क्योंकि वह तो अभीष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न कर रहा है। जो दूसरोंसे सम्मान पाकर भी अभिमान न करे और सम्मानर्नीय

पुरुषको देखकर जले नहीं, तथा प्रयत्न न करनेपर भी विद्वान्‌लोग जिसे आदर दें, वही वास्तवमें सम्मानित है। जगत्‌में जब विद्वान् पुरुष आदर दें तो सम्मानित व्यक्तिको ऐसा मानना चाहिये कि आँखोंके खोलने-मीचनेके समान अच्छे लोगोंकी यह स्वाभाविक वृत्ति है, जो आदर देते हैं। किन्तु इस संसारमें जो अधर्ममें निपुण, छल-कपटमें चतुर और माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाले मूढ मनुष्य हैं, वे आदरणीय व्यक्तियोंका कभी आदर नहीं करेंगे। यह निश्चित है कि मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते; क्योंकि मानसे इस लोकमें सुख मिलता है और मौनसे परलोकमें। ज्ञानीजन इस बातको जानते हैं। राजन्! लोकमें ऐश्वर्यरूपा लक्ष्मी सुखका घर मानी गयी है, किन्तु वह भी कल्याणमार्गमें लुटेरोंकी भाँति विघ्न डालनेवाली है। प्रज्ञाहीन मनुष्यके लिये तो ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी सर्वथा दुर्लभ है। संत पुरुष यहाँ उस ब्रह्मसुखके अनेकों द्वार बतलाते हैं, जो कि मोहको जगानेवाले नहीं हैं तथा जिनको कठिनतासे धारण किया जाता है। उनके नाम हैं—सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या ॥२७–४६॥

ब्रह्मज्ञानमें उपयोगी मौन, तप आदिके लक्षण तथा गुण-दोषका निरूपण

सनत्सुजातीय—तीसरा अध्याय

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यह मौन किसका नाम है? [वाणीका संयम और परमात्माका स्वरूप—] इन दोमेंसे कौन-सा मौन है? यहाँ मौन-भावका वर्णन कीजिये। क्या विद्वान् पुरुष मौनके द्वारा मौनरूप परमात्माको प्राप्त होता है? मुने! संसारमें लोग मौनका आचरण किस प्रकार करते हैं? ॥१॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! जहाँ मनके सहित वाणीरूप वेद नहीं पहुँच पाते, उस परमात्माका ही नाम मौन है; इसलिये वही मौनस्वरूप है। वैदिक तथा लौकिक शब्दोंका जहाँसे प्रादुर्भाव हुआ है, वे परमेश्वर तन्मयतापूर्वक ध्यान करनेसे प्रकाशमें आते हैं ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदको जानता है तथा पाप करता है, वह उस पापसे लिप्त होता है या नहीं? ॥३॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! मैं तुमसे असत्य नहीं कहता; ऋक्, साम अथवा यजुर्वेद—कोई भी पाप करनेवाले अज्ञानीकी उसके पापकर्मसे रक्षा नहीं करते। जो कपटपूर्वक धर्मका आचरण करता है, उस मिथ्याचारीका वेद पापोंसे उद्धार नहीं करते। जैसे पंख निकल आनेपर पंछी अपना घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्तकालमें वेद भी उसका परित्याग कर देते हैं ॥४-५॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यदि धर्मके बिना वेद रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पवित्र होनेका प्रलाप* चिरकालसे क्यों चला आता है? ॥६॥

सनत्सुजातने कहा—महानुभाव! परमात्माके ही नाम आदि विशेषरूपोंसे इस जगत्‌की प्रतीति होती है। यह बात वेद ['द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे' इत्यादि मन्त्रोंद्वारा] अच्छी तरह निर्देश करके कहते हैं। किन्तु वास्तवमें उसका स्वरूप इस विश्वसे विलक्षण बताया जाता है। उसीकी प्राप्तिके लिये वेदमें [कृच्छ्र-चान्द्रायणादि] तप और [ज्योतिष्टोमादि] यज्ञका प्रतिपादन किया गया है। इन तप और यज्ञोंके द्वारा उस श्रोत्रिय विद्वान् पुरुषको पुण्यकी प्राप्ति होती है। फिर उस पुण्यसे पापको नष्ट कर देनेके पश्चात् ज्ञानके प्रकाशसे वह अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका साक्षात्कार करता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष ज्ञानसे आत्माको प्राप्त होता है। अन्यथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग-फलकी इच्छा रखनेके कारण वह इस लोकमें किये हुए सभी कर्मोंको साथ लेकर उन्हें परलोकमें भोगता है तथा भोग समाप्त होनेपर पुनः इस संसारमार्गमें लौट आता है। इस लोकमें तपस्या की जाती है और परलोकमें उसका फल भोगा जाता है [—यह सबके लिये साधारण नियम है]। परन्तु अवश्य पालन करने योग्य तपमें स्थिर रहनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके लिये तो यही लोक है—उन्हें यहीं (जीवनकालमें ही) ज्ञानरूप फल प्राप्त हो जाता है ॥७–१०॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी! एक ही तपकी कभी वृद्धि और कभी हानि कैसे होती है? आप इसे इस प्रकार बताइये, जिससे हम भलीभाँति समझ सकें ॥११॥

सनत्सुजातने कहा—जो किसी कामना या पापरूप दोषसे युक्त नहीं होता, उसे विशुद्ध तप कहते हैं। केवल वही तप ऋद्ध और समृद्ध होता है। [किन्तु जब उस तपमें कामना या पापरूप दोषका संसर्ग होता है, तो उसकी हानि होने

---

* 'ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते।' (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदसे पवित्र होकर ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है) इत्यादि वचन वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पवित्र एवं निष्पाप होनेकी बात कहते हैं।

लगती है] । राजन् ! तुम जो कुछ मुझसे पूछ रहे हो, यह सब तपस्यामूलक—तपसे ही प्राप्त होनेवाला है; वेदवेत्ता विद्वान् इस तपसे ही परम अमृत (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ १२-१३ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी ! मैंने दोषरहित तपस्याका महत्त्व सुना; अब तपस्याके जो दोष हैं उन्हें बताइये, जिससे मैं इस सनातन गोपनीय तत्त्वको जान सकूँ ॥१४॥

सनत्सुजातने कहा—राजन् ! तपस्याके क्रोध आदि बारह दोष हैं । तथा तेरह प्रकारके क्रूर मनुष्य होते हैं । पितरों और ब्राह्मणोंके धर्म आदि बारह गुण शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, असन्तोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा—मनुष्योंमें रहनेवाले ये बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य हैं। नरश्रेष्ठ ! जैसे व्याधा मृगोंको मारनेका अवसर देखता हुआ उनकी टोहमें लगा रहता है, उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है । अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले, लोलुप, अहंकारी, निरन्तर क्रोधी, चञ्चल और आश्रितोंकी रक्षा नहीं करनेवाले—ये छः प्रकारके मनुष्य पापी हैं । महान् संकटमें पड़नेपर भी ये निडर होकर इन पापकर्मोंका आचरण करते हैं। संभोगमें ही मन लगानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाले, अत्यन्त कृपण, अर्थ और कामकी प्रशंसा करनेवाले तथा स्त्रियोंके द्वेषी—ये सात और पहलेके छः, कुल तेरह प्रकारके मनुष्य नृशंस-वर्ग (क्रूर-समुदाय) कहे गये हैं। धर्म, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, तप, मत्सरताका अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसीके दोष न देखना, यज्ञ करना, दान देना, धैर्य और शास्त्रज्ञान—ये ब्राह्मणके बारह व्रत हैं । जो इन बारह व्रतों (गुणों) पर अपना प्रभुत्व रखता है, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीके मनुष्योंको अपने अधीन कर सकता है । इनमेंसे तीन, दो या एक गुणसे भी जो युक्त है, उसके पास सभी तरहका धन है—ऐसा समझना चाहिये । दम, त्याग और आत्मकल्याणमें प्रमाद न करना—इन तीन गुणोंमें अमृतका वास है। जो मनीषी (बुद्धिमान्) ब्राह्मण हैं, वे कहते हैं कि इन गुणोंका मुख सत्यस्वरूप परमात्माकी ओर है अर्थात् ये परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं । दम अठारह गुणोंवाला है । [निम्नाङ्कित अठारह दोषोंके त्यागको ही अठारह गुण समझना चाहिये—] कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें विपरीत धारणा, असत्यभाषण, गुणोंमें दोषदृष्टि, स्त्रीविषयक कामना, सदा धनोपार्जनमें ही लगे रहना, भोगेच्छा, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगली करनेकी आदत, डाह, हिंसा, सन्ताप, चिन्ता, कर्तव्यकी विस्मृति, अधिक बकवाद और अपनेको बड़ा समझना— इन दोषोंसे जो मुक्त है, उसीको सत्पुरुष दान्त (जितेन्द्रिय) कहते हैं ॥१५-२५॥

मदमें अठारह दोष हैं; ऊपर जो दमके विपर्यय सूचित किये गये हैं, वे ही मदके दोष बताये गये हैं । [आगे मदके स्वतन्त्र दोष भी कहे जायँगे ।] त्याग छः प्रकारका होता है, वह छहों प्रकारका त्याग अत्यन्त उत्तम है; किन्तु इनमें तीसरा अर्थात् कामत्याग बहुत ही कठिन है, उसके द्वारा मनुष्य नाना प्रकारके दुःखोंको निश्चय ही पार कर जाता है । कामका त्याग कर देनेपर सब कुछ जीत लिया जाता है । राजेन्द्र ! छः प्रकारका जो सर्वश्रेष्ठ त्याग है, उसे बताते हैं । लक्ष्मीको पाकर हर्षित न होना—यह प्रथम त्याग है; यज्ञ-होमादिमें तथा कुएँ, तालाब और बगीचे बनाने आदिमें धन खर्च करना दूसरा त्याग है और सदा वैराग्यसे युक्त रहकर कामका त्याग करना—यह तीसरा त्याग कहा गया है । तथा ऐसे त्यागीको सच्चिदानन्दस्वरूप कहते हैं । अतः यह तीसरा त्याग विशेष गुण माना गया है। पदार्थोंके त्यागसे जो निष्कामता आती है, वह स्वेच्छापूर्वक उनका उपभोग करनेसे नहीं आती । अधिक धन-सम्पत्तिके संग्रहसे भी निष्कामता नहीं सिद्ध होती, तथा उसका कामनापूर्तिके लिये उपभोग करनेसे भी कामका त्याग नहीं होता । किये हुए कर्म सिद्ध न हों तो उनके लिये दुःख न करे, उस दुःखसे ग्लानि नहीं उठावे । इन सब गुणोंसे युक्त मनुष्य यदि द्रव्यवान् हो, तो भी वह त्यागी है । कोई अप्रिय घटना हो जाय तो भी कभी व्यथाको न प्राप्त हो [यह चौथा त्याग है] । अपने अभीष्ट पदार्थ—स्त्री-पुत्रादिकी कभी याचना न करे [यह पाँचवाँ त्याग है]। सुयोग्य याचकके आ जानेपर उसे दान करे [यह छठा त्याग है] । इन सबसे कल्याण होता है । इन त्यागमय गुणोंसे मनुष्य अप्रमादी होता है । उस अप्रमादके भी आठ गुण माने गये हैं—सत्य, ध्यान, समाधि, तर्क, वैराग्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । ये आठ गुण त्याग और अप्रमाद दोनोंके ही समझने चाहिये । इसी प्रकार जो मदके अठारह दोष पहले बताये गये हैं, उनका सर्वथा त्याग करना चाहिये । प्रमादके आठ दोष हैं, उन्हें भी त्याग देना चाहिये । भारत ! पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन—इनही

अपने-अपने विषयोंमें जो भोगबुद्धिसे प्रवृत्ति होती है—छः तो ये ही प्रमादविषयक दोष हैं और भूतकालकी चिन्ता तथा भविष्यकी आशा—दो दोष ये हैं। इन आठ दोषोंसे मुक्त पुरुष सुखी होता है। राजेन्द्र ! तुम सत्यस्वरूप हो जाओ, सत्यमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। वे दम, त्याग और अप्रमाद आदि गुण भी सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं; सत्यमें ही अमृतकी प्रतिष्ठा है। दोषोंको निवृत्त करके ही यहाँ तप और व्रतका आचरण करना चाहिये—यह विधाताका बनाया हुआ नियम है। सत्य ही श्रेष्ठ पुरुषोंका व्रत है। मनुष्यको उपर्युक्त दोषोंसे रहित और गुणोंसे युक्त होना चाहिये। ऐसे पुरुषका ही विशुद्ध तप अत्यन्त समृद्ध होता है। राजन्! तुमने जो मुझसे पूछा है, वह मैंने संक्षेपमें बता दिया। यह तप जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थाके कष्टको दूर करनेवाला, पापहारी तथा परम पवित्र है॥ २६—४०॥

धृतराष्ट्रने कहा—मुने! इतिहास-पुराण जिनमें पाँचवाँ है, उन सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा कुछ लोगोंका विशेषरूपसे नाम लिया जाता है (अर्थात् वे पञ्चवेदी कहलाते हैं)। दूसरे लोग चतुर्वेदी और त्रिवेदी कहे जाते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग द्विवेदी, एकवेदी तथा अनृच[1] कहलाते हैं। इनमेंसे कौन-से ऐसे हैं, जिन्हें मैं निश्चितरूपसे ब्राह्मण समझूँ? ॥ ४१-४२॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! एक ही वेदको न जाननेके कारण बहुत-से वेद कर दिये गये हैं। उस सत्यस्वरूप एक वेदके सारतत्त्व परमात्मामें तो कोई विरला ही स्थित होता है [वही ब्राह्मण मानने योग्य है]। इस प्रकार वेदके तत्त्वको न जानकर भी कुछ लोग 'मैं विद्वान् हूँ' ऐसा मानने लगते हैं; फिर उनकी दान, अध्ययन और यज्ञादि कर्मोंमें लौकिक एवं पारलौकिक फलके लोभसे प्रवृत्ति होती है। वास्तवमें जो सत्यस्वरूप परमात्मासे च्युत हो गये हैं, उन्हींका वैसा सङ्कल्प होता है। फिर सत्यरूप वेदके प्रामाण्यका निश्चय करके ही उनके द्वारा यज्ञोंका विस्तार (अनुष्ठान) किया जाता है। किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे तथा किसीका क्रियाके द्वारा सम्पादित होता है। पुरुष सङ्कल्पमय है और वह अपने सङ्कल्पके अनुसार प्राप्त हुए लोकोंका अधिष्ठाता होता है। किन्तु जबतक सङ्कल्प शान्त न हो, तबतक दीक्षित-व्रतका आचरण अर्थात् यज्ञादि कर्म करते रहना चाहिये। यह 'दीक्षित' नाम 'दीक्ष व्रतादेशे' इस धातुसे बना है। सत्पुरुषोंके लिये सत्यस्वरूप परमात्मा ही सबसे बढ़कर है। क्योंकि [परमात्माके] ज्ञानका फल प्रत्यक्ष है और तपका फल परोक्ष है [इसलिये ज्ञानका ही आश्रय लेना चाहिये]। बहुत पढ़नेवाले ब्राह्मणको केवल बहुपाठी (बहुज्ञ) समझना चाहिये। इसलिये क्षत्रिय ! केवल बातें बनानेसे ही किसीको ब्राह्मण न मान लेना। जो सत्यस्वरूप परमात्मासे कभी पृथक् नहीं होता, उसीको तुम ब्राह्मण समझो। राजन् ! अथर्वा मुनि एवं महर्षि-समुदायने पूर्वकालमें जिनका गान किया है, वे ही छन्द (वेद) हैं। किन्तु सम्पूर्ण वेद पढ़ लेनेपर भी जो वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते, वे वास्तवमें वेदके विद्वान् नहीं हैं। नरश्रेष्ठ ! छन्द (वेद) उस परमात्मामें स्वच्छन्द सम्बन्धसे स्थित हैं (अर्थात् स्वतःप्रमाण हैं)। इसलिये उनका अध्ययन करके ही वेदवेत्ता आर्यजन वेद्यरूप परमात्माके तत्त्वको प्राप्त हुए हैं। राजन् ! वास्तवमें वेदोंके तत्त्वको जाननेवाला कोई नहीं है, अथवा यों समझो कि कोई विरला ही उनका रहस्य जान पाता है। जो केवल वेदके वाक्योंको जानता है, वह वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माको नहीं जानता। किन्तु जो सत्यमें स्थित है, वह वेदवेद्य परमात्माको जानता है। जो ज्ञेय मन आदि अचेतन हैं, उनमेंसे कोई ज्ञाता नहीं है। इसीलिये मनुष्य मन आदिके द्वारा न तो आत्माको जानते हैं और न अनात्माको। जो आत्माको जान लेता है, वही अनात्माको भी जानता है। जो केवल अनात्माको जानता है, वह सत्य आत्माको नहीं जानता। जो पुरुष (ज्ञाता) वेदोंको जानता है, वही वेद्य (जगत् आदि) को भी जानता है; परन्तु उस ज्ञाताको न वेदपाठी जानते हैं और न वेद ही। तथापि जो वेदवेत्ता ब्राह्मण हैं, वे उस आत्मतत्त्वको वेदके द्वारा ही जानते हैं। द्वितीयाके चन्द्रमाकी सूक्ष्म कलाको बतानेके लिये जैसे वृक्षकी शाखाकी ओर सङ्केत किया जाता है, उसी प्रकार उस सत्यस्वरूप परमात्माका ज्ञान करानेके लिये ही वेदोंका भी उपयोग किया जाता है—ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। मैं तो उसीको ब्राह्मण समझता हूँ, जो परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला और वेदोंकी यथार्थ व्याख्या करनेवाला हो, जिसके अपने सन्देह मिट गये हों और दूसरोंके भी सम्पूर्ण संशयोंको मिटा सके। इस आत्माकी खोज करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तरकी ओर जानेकी आवश्यकता नहीं है; फिर आग्नेय आदि कोणोंकी तो बात ही

१. जिन्होंने ऋगादि वेदोंका अध्ययन नहीं किया है, वे अनृच कहलाते हैं।

क्या है ? इसी प्रकार दिग्विभागसे रहित प्रदेशमें भी उसे नहीं ढूँढ़ना चाहिये । आत्माका अनुसन्धान अनात्म-पदार्थोंमें तो किसी तरह करे ही नहीं, वेदके वाक्योंमें भी न ढूँढ़कर केवल तपके द्वारा उस प्रभुका साक्षात्कार करे । सब प्रकारकी चेष्टासे रहित होकर परमात्माकी उपासना करे, मनसे भी कोई चेष्टा न करे । राजन् ! तुम भी अपने हृदयाकाशमें स्थित उस विख्यात परमेश्वरकी उपासना करो । मौन रहने अथवा जङ्गलमें निवास करनेमात्रसे कोई मुनि नहीं होता । जो अपने आत्माके स्वरूपको जानता है, वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है । सम्पूर्ण अर्थोंको व्याकृत (प्रकट) करनेके कारण ज्ञानी पुरुष वैयाकरण कहलाता है । यह समस्त अर्थोंका प्रकटीकरण मूलभूत ब्रह्मसे ही होता है अतः वही मुख्य वैयाकरण है; विद्वान् पुरुष भी ब्रह्मभू होनेके कारण इसी प्रकार अर्थोंको व्याकृत (व्यक्त) करत है, इसलिये वह भी वैयाकरण है । जो सम्पूर्ण लोकोंक प्रत्यक्ष देख लेता है, वह मनुष्य उन सब लोकोंका द्रष्टामा कहलाता है [सर्वज्ञ नहीं होता] । किन्तु जो एकमा सत्यस्वरूप ब्रह्ममें ही स्थित है, वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्वज्ञ ह जाता है । राजन् ! पूर्वोक्त धर्म आदिमें स्थित होनेसे तथ वेदोंका विधिवत् अध्ययन करनेसे भी मनुष्य इसी प्रका परमात्माका साक्षात्कार करता है । यह बात अपनी बुद्धिद्वार निश्चय करके मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥४३–६३॥

ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मका निरूपण

सनत्सुजातीय—चौथा अध्याय

धृतराष्ट्रने कहा—सनत्सुजातजी ! आप जिस सर्वोत्तम और सर्वरूपा ब्रह्मसम्बन्धिनी विद्याका उपदेश कर रहे हैं, उसमें विषयभोगोंकी चर्चा बिल्कुल नहीं है । कुमार ! मेरा तो यह कहना है कि आप इस परम दुर्लभ विषयका पुनः प्रतिपादन करें ॥ १ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन् ! तुम जो मुझसे प्रश्न करते समय अत्यन्त हर्षसे फूल उठते हो, सो इस प्रकार जल्दबाज़ी करनेसे ब्रह्मकी उपलब्धि नहीं होती । बुद्धिमें मनके लय हो जानेपर सब वृत्तियोंका निरोध करनेवाली जो स्थिति है, उसका नाम है ब्रह्मविद्या और वह ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही उपलब्ध होती है ॥२॥

धृतराष्ट्रने कहा—जो कर्मोंद्वारा आरम्भ होने योग्य नहीं है, तथा कार्यके समय भी जो इस आत्मामें ही रहती है, उस अनन्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली इस सनातन विद्याको यदि आप ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त होने योग्य बता रहे हैं, तो मेरे-जैसे लोग ब्रह्मसम्बन्धी अमृतत्व (मोक्ष) को कैसे पा सकते हैं ? ॥३॥

सनत्सुजातजी बोले—अब मैं अव्यक्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली उस पुरातन विद्याका वर्णन करूँगा, जो मनुष्योंको बुद्धि और ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होती है, जिसे पाकर विद्वान् पुरुष इस मरणधर्मा शरीरको सदाके लिये त्याग देते हैं तथा जो वृद्ध गुरुजनोंमें नित्य विद्यमान रहती है ॥४॥

धृतराष्ट्रने कहा—ब्रह्मन् ! यदि वह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्य-के द्वारा ही सुगमतासे जानी जा सकती है, तो पहले मुझे यही बताइये कि ब्रह्मचर्यका पालन कैसे होता है ॥५॥

सनत्सुजातजी बोले—जो लोग आचार्यके आश्रममें प्रवेश कर अपनी सेवासे उनके अन्तरङ्ग भक्त हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे यहाँ ही शास्त्रकार हो जाते हैं और देह-त्यागके पश्चात् परम योगरूप परमात्माको प्राप्त होते हैं । इस संसारमें रहकर जो सम्पूर्ण कामनाओंको जीत लेते हैं और ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेके लिये ही नाना प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, वे सत्त्वगुणमें स्थित हो यहाँ ही मूँजसे सींककी भाँति इस देहसे आत्माको [विवेकके द्वारा] पृथक् कर लेते हैं । भारत ! यद्यपि माता और पिता—ये ही दोनों इस शरीरको जन्म देते हैं, तथापि आचार्यके उपदेशसे जो जन्म प्राप्त होता है वह परम पवित्र और अजर-अमर है । जो परमार्थ-तत्त्वके उपदेशसे सत्यको प्रकट करके अमरत्व प्रदान करते हुए ब्राह्मणादि वर्णोंकी रक्षा करते हैं, उन आचार्यको पिता-माता ही समझना चाहिये । तथा उनके किये हुए उपकार-का स्मरण करके कभी उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये । ब्रह्मचारी शिष्यको चाहिये कि वह नित्य गुरुको प्रणाम करे । बाहर-भीतरसे पवित्र हो प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमें मन लगावे, अभिमान न करे, मनमें क्रोधको स्थान न दे । ब्रह्मचर्यका पहला चरण है । जो शिष्यकी वृत्तिके ही जीवन-निर्वाह करता हुआ पवित्र हो विद्या प्राप्त करता उसका यह नियम भी ब्रह्मचर्यव्रतका पहला ही पाद कहल है । अपने प्राण और धन लगाकर भी मन, वाणी कर्मसे आचार्यका प्रिय करे—यह द्वितीय पाद कहा ज है । गुरुके प्रति शिष्यका जैसा श्रद्धा और सम्मान बर्ताव हो, वैसा ही गुरुकी पत्नी और पुत्रके साथ भी हो

चाहिये। यह भी ब्रह्मचर्यका द्वितीय पाद ही कहलाता है। आचार्यने जो अपना उपकार किया, उसे ध्यानमें रखकर तथा उससे जो प्रयोजन सिद्ध हुआ, उसका भी विचार करके मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर शिष्य आचार्यके प्रति जो ऐसा भाव रखता है कि 'इन्होंने मुझे बड़ी उन्नत अवस्थामें पहुँचा दिया'—यह ब्रह्मचर्यका तीसरा पाद है। आचार्यके उपकारका बदला चुकाये बिना अर्थात् गुरुदक्षिणा आदिके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किये बिना विद्वान् शिष्य वहाँसे अन्यत्र न जाय। [दक्षिणा देकर या सेवा करके] कभी मनमें ऐसा विचार न लावे कि 'मैं गुरुका उपकार कर रहा हूँ,' तथा मुँहसे भी कभी ऐसी बात न निकाले। यह ब्रह्मचर्यका चौथा पाद है। ब्रह्मचारी शिष्य पहले गुरुके निकट शिक्षा और सदाचारका एक चरण प्राप्त करता है, फिर उत्साहपूर्वक तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा उसे दूसरे पादका ज्ञान होता है। तत्पश्चात् अधिक कालतक मनन करनेसे वह तीसरे पादका ज्ञान प्राप्त करता है, फिर शास्त्रके द्वारा सहपाठियोंके साथ विचार करनेसे वह चौथे पादको जानता है। पूर्वोक्त बारह धर्म आदि जिसके स्वरूप हैं, तथा दूसरे-दूसरे यम-नियमादि जिसके अङ्ग एवं उत्साह-शक्ति बल है, वह ब्रह्मचर्य आचार्यके सम्पर्कमें रहकर वेदके अर्थका तत्त्व जाननेसे ही सफल होता है—ऐसा विद्वानोंका कथन है। इस तरह ब्रह्मचर्य-पालनमें प्रवृत्त होकर जो कुछ भी धन प्राप्त हो सके, उसे आचार्यको अर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह शिष्य सत्पुरुषोंकी अनेक गुणोंवाली वृत्तिको प्राप्त होता है। गुरु-पुत्रके प्रति भी उसकी यही वृत्ति होती है। ऐसी वृत्तिसे रहनेवाले शिष्यकी इस संसारमें सब प्रकारसे उन्नति होती है। वह बहुत-से पुत्र और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ उसके लिये सुखकी वर्षा करती हैं तथा उसके निकट बहुत-से दूसरे लोग ब्रह्मचर्य-पालनके लिये निवास करते हैं। इस ब्रह्मचर्यके पालनसे ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली मनीषी ऋषियोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। इसीके प्रभावसे गन्धर्वों और अप्सराओंको दिव्य रूप प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मचर्यके ही प्रतापसे सूर्यदेव समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होते हैं। रस-भेदरूप चिन्तामणिसे याचना करनेवालोंको जैसे उनके अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य भी मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाला है—ऐसा समझकर ये ऋषि-देवता आदि ब्रह्मचर्यके पालनसे वैसे भावको प्राप्त हुए। राजन्! जो इस ब्रह्मचर्यका आश्रय लेता है, वह ब्रह्मचारी यम-नियमादि तपका आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीरको भी पवित्र बना लेता है। तथा इससे विद्वान् पुरुष निश्चय ही आत्मबलको प्राप्त होता है और अन्त-समयमें वह मृत्युको भी जीत लेता है। राजन्! सकाम पुरुष अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त करते हैं; किन्तु जो ब्रह्मको जाननेवाला विद्वान् है, वही उस ज्ञानके द्वारा सर्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है। मोक्षके लिये ज्ञानके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है ॥६–२४॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वान् पुरुष यहाँ सत्यस्वरूप परमात्माके जिस अमृत एवं अविनाशी परमपदका साक्षात्कार करते हैं, उसका रूप कैसा है? क्या वह सफेद-सा, लाल-सा अथवा काजल-सा काला या सुवर्ण-जैसे पीले रंगका प्रतीत होता है? ॥२५॥

सनत्सुजातने कहा—यद्यपि श्वेत, लाल, काले, लोहेके सदृश अथवा सूर्यके समान प्रकाशमान—अनेकों प्रकारके रूप प्रतीत होते हैं, तथापि ब्रह्मका वास्तविक रूप न पृथ्वीमें है, न आकाशमें। समुद्रका जल भी उस रूपको नहीं धारण करता। ब्रह्मका वह रूप न तारोंमें है, न बिजलीके आश्रित है और न बादलोंमें ही दिखायी देता है। इसी प्रकार वायु, देवगण, चन्द्रमा और सूर्यमें भी वह नहीं देखा जाता। राजन्! ऋग्वेदकी ऋचाओंमें, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें, अथर्ववेदके सूक्तोंमें तथा विशुद्ध सामवेदमें भी वह नहीं दृष्टिगोचर होता। रथन्तर और बार्हद्रथ नामक साममें तथा महान् व्रतमें भी उसका दर्शन नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्म नित्य है। ब्रह्मके उस स्वरूपका कोई पार नहीं पा सकता, वह अज्ञानरूप अन्धकारसे परे है। महा-प्रलयमें सबका अन्त करनेवाला काल भी उसीमें लीन हो जाता है। वह रूप उस्तरेकी धारके समान अत्यन्त सूक्ष्म और पर्वतोंसे भी महान् है (अर्थात् वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर और महान्से भी महान् है)। वही सबका आधार है, वही अमृत है, वही लोक, वही यश तथा वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण भूत

उसीसे प्रकट हुए और उसीमें लीन होते हैं। विद्वान् कहते हैं—कार्यरूप जगत् वाणीका विकारमात्र है। किन्तु जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है, उस नित्य कारणस्वरूप ब्रह्मको जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं। वह ब्रह्म शोक और पापसे रहित है और उसका महान् यश सर्वत्र हुआ है ॥२६-३१॥

योगप्रधान ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन

सनत्सुजातीय-पाँचवाँ अध्याय

सनत्सुजातजी कहते हैं—राजन्! शोक, क्रोध, लोभ, काम, मान, अत्यन्त निद्रा, ईर्ष्या, मोह, तृष्णा, कायरता, गुणोंमें दोष देखना और निन्दा करना—ये बारह महान् दोष मनुष्योंके प्राणनाशक हैं। राजेन्द्र! एक-एक करके ये सभी दोष मनुष्यको प्राप्त होते हैं, जिनसे आवेशमें आकर मूढबुद्धि मानव पापकर्म करने लगता है। लोलुप, क्रूर, कठोरभाषी, कृपण, मन-ही-मन क्रोध करनेवाले और अधिक आत्मप्रशंसा करनेवाले—ये छः प्रकारके मनुष्य निश्चय ही क्रूर कर्म करनेवाले होते हैं। ये धन पाकर भी अच्छा बर्ताव नहीं करते। सम्भोगमें मन लगानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त अभिमानी, थोड़ा देकर बहुत डींग हाँकनेवाले, कृपण, दुर्बल होकर भी अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले और स्त्रियोंसे सदा द्वेष रखनेवाले—ये सात प्रकारके मनुष्य ही पापी और क्रूर कहे गये हैं। धर्म, सत्य, तप, इन्द्रियसंयम, डाह न करना, लज्जा, सहनशीलता, किसीके दोष न देखना, दान, शास्त्रज्ञान, धैर्य और क्षमा—ये ब्राह्मणके बारह महान् व्रत हैं। जो इन बारह व्रतोंसे कभी च्युत नहीं होता, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर शासन कर सकता है। इनमेंसे तीन, दो या एक गुणसे भी जो युक्त है, उसका अपना कुछ भी नहीं होता—ऐसा समझना चाहिये (अर्थात् उसकी किसी भी वस्तुमें ममता नहीं होती)। इन्द्रियनिग्रह, त्याग और अप्रमाद—इनमें अमृतकी स्थिति है। ब्रह्म ही जिनका प्रधान लक्ष्य है, उन बुद्धिमान् ब्राह्मणोंके ये ही मुख्य साधन हैं। सच्ची हो या झूठी, दूसरोंकी निन्दा करना ब्राह्मणको शोभा नहीं देता। जो लोग दूसरोंकी निन्दा करते हैं, वे अवश्य ही नरकमें पड़ते हैं। मदके अठारह दोष हैं, जो पहले सूचित करके भी स्पष्ट रूपसे नहीं बताये गये थे—लोकविरोधी कार्य करना, शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करना, गुणियोंपर दोषारोपण, असत्यभाषण, काम, क्रोध, पराधीनता, दूसरोंके दोष बताना, चुगली करना, धनका दुरुपयोग, कलह, डाह, प्राणियोंको कष्ट पहुँचाना, ईर्ष्या, हर्ष, बहुत बकवाद, विवेकशून्यता तथा गुणोंमें दोष देखनेका स्वभाव। इसलिये विद्वान् पुरुषको मदके वशीभूत नहीं होना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंने इसकी सदा ही निन्दा की है। सौहार्द (मित्रता) के छः गुण हैं, जो अवश्य ही जानने योग्य हैं। सुहृद्के प्रिय होनेपर हर्षित होना और अप्रिय होनेपर मनमें कष्टका अनुभव करना—ये दो गुण हैं। तीसरा गुण यह है कि अपना जो कुछ चिरसञ्चित धन है, उसे मित्रके माँगनेपर दे डाले। मित्रके लिये अयाच्य वस्तु भी अवश्य देने योग्य हो जाती है; और तो क्या, सुहृद्के माँगनेपर वह शुद्ध भावसे अपने प्रिय पुत्र, वैभव तथा पत्नीको भी उसके हितके लिये निछावर कर देता है। मित्रको धन देकर उसके यहाँ प्रत्युपकार पानेकी कामनासे निवास न करे—यह चौथा गुण है। अपने परिश्रमसे उपार्जित धनका उपभोग करे (मित्रकी कमाईपर अवलम्बित न रहे)—यह पाँचवाँ गुण है। तथा मित्रकी भलाईके लिये अपने भलेकी परवा न करे—यह छठा गुण है। जो धनी गृहस्थ इस प्रकार गुणवान्, त्यागी और सात्त्विक होता है, वह अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोंको हटा लेता है। जो वैराग्यकी कमीके कारण सत्त्वसे भ्रष्ट हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके दिव्य लोकोंकी प्राप्तिके संकल्पसे सञ्चित किया हुआ यह इन्द्रियनिग्रहरूप तप समृद्ध होनेपर भी केवल ऊर्ध्वलोकोंकी प्राप्तिका कारण होता है [मुक्तिका नहीं]। क्योंकि सत्यस्वरूप ब्रह्मका बोध न होनेसे ही इन सकाम यज्ञोंकी वृद्धि होती है। किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे और किसीका क्रियाके द्वारा सम्पन्न होता है। संकल्पसिद्ध अर्थात् सकाम पुरुषसे संकल्परहित यानी निष्काम पुरुषकी स्थिति ऊँची होती है। किन्तु ब्रह्मवेत्ताकी स्थिति उससे भी विशिष्ट है। इसके सिवा एक बात और बताता हूँ, सुनो। यह महत्त्वपूर्ण शास्त्र परम यशरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है, इसे शिष्योंको अवश्य पढ़ाना चाहिये। परमात्मासे भिन्न यह सारा दृश्य-प्रपञ्च वाणीका विकारमात्र है—ऐसा विद्वान्‌लोग कहते हैं। इस योगशास्त्रमें यह परमात्मविषयक सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है; इसे जो जान लेते हैं, वे अमर हो जाते

हैं। राजन् ! केवल सकाम पुण्यकर्मके द्वारा सत्यस्वरूप ब्रह्मको नहीं जीता जा सकता। अथवा जो हवन या यज्ञ किया जाता है, उससे भी अज्ञानी पुरुष अमरत्वको नहीं पा सकता। तथा अन्तकालमें उसे शान्ति भी नहीं मिलती। सब प्रकारकी चेष्टासे रहित होकर एकान्तमें उपासना करे, मनसे भी कोई चेष्टा न होने दे। तथा स्तुतिसे प्रेम और निन्दासे क्रोध न करे। राजन् ! उपर्युक्त साधन करनेसे मनुष्य यहाँ ही ब्रह्मका साक्षात्कार करके उसमें स्थित हो जाता है। विद्वन् ! वेदोंमें क्रमशः विचार करके जो मैंने जाना है, वही तुम्हें बता रहा हूँ॥ १—२१॥

परमात्माका स्वरूप और उनका योगीजनोंके द्वारा साक्षात्कार

सनत्सुजातीय—छठा अध्याय

सनत्सुजातजी कहते हैं—जो प्रसिद्ध ब्रह्म है वह शुद्ध, महान् ज्योतिर्मय, देदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है; सब देवता उसीकी उपासना करते हैं। उसीके प्रकाशसे सूर्य प्रकाशित होते हैं, उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है, तथा उसीसे वह वृद्धिको प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्य आदि सम्पूर्ण ज्योतियोंके भीतर स्थित होकर प्रकाश कर रहा है; वह दूसरोंसे प्रकाशित न होकर स्वयं ही सबका प्रकाशक है, उसी सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। परमात्मासे आप् अर्थात् प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रकृतिसे सलिल यानी महत्तत्त्व प्रकट हुआ, उसके भीतर आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा—ये दो देवता आश्रित हैं। जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मका जो स्वयंप्रकाश स्वरूप है, वही सदा सावधान रहकर इन दोनों देवताओं तथा पृथ्वी और आकाशको धारण करता है। उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। उक्त दोनों देवताओंको, पृथ्वी और आकाशको, सम्पूर्ण दिशाओंको तथा इस विश्वको वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है। उसीसे दिशाएँ प्रकट हुई हैं, उसीसे सरिताएँ प्रवाहित होती हैं और उसीसे बड़े-बड़े समुद्र प्रकट हुए हैं। उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। स्वयं विनाशशील होनेपर भी जिसका कर्म [भोगे बिना] नष्ट नहीं होता, उस देहरूपी रथके मनरूपी चक्रमें जुते हुए इन्द्रियरूपी घोड़े बुद्धिमान्, दिव्य एवं अजर (नित्य नवीन) जीवात्माको जिस परमात्माकी ओर ले जाते हैं, उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। उस परमात्माका स्वरूप किसी दूसरेकी तुलनामें नहीं आ सकता, उसे कोई चर्म-चक्षुओंसे नहीं देख सकता। जो निश्चयात्मिका बुद्धिसे, मनसे और हृदयसे उसे जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं; उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन बारहका समुदाय जिसके भीतर मौजूद है तथा जो परमात्मासे सुरक्षित है, उस अविद्यानामक नदीके विषयरूप मधुर जलको देखने और पीनेवाले लोग संसारमें भयङ्कर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं; इससे मुक्त करनेवाले उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। जैसे शहदकी मक्खी आधे मासतक मधुका संग्रह करके फिर आधे मासतक उसे पीती रहती है, उसी प्रकार यह भ्रमणशील संसारी जीव पूर्वजन्मके सञ्चित कर्मको इस जन्ममें भोगता है। परमात्माने समस्त प्राणियोंके लिये उनके कर्मानुसार अन्नकी व्यवस्था कर रक्खी है; उस सनातन भगवान्का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं जिसके विषयरूपी पत्ते सुवर्णके समान मनोरम दिखायी पड़ते हैं, उस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षपर आरूढ होकर पंखहीन जीव कर्मरूपी पंख धारणकर अपनी वासनाके अनुसार विभिन्न योनियोंमें पड़ते हैं; किन्तु जिसके ज्ञानसे जीवोंकी मुक्ति होती है, उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। पूर्ण परमेश्वरसे पूर्ण—चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, पूर्णसे ही वे पूर्ण प्राणी चेष्टा करते हैं, फिर पूर्णसे ही पूर्ण ब्रह्ममें उनका उपसंहार होता है तथा अन्तमें एकमात्र पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है; उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। उस पूर्ण ब्रह्मसे ही वायुका आविर्भाव हुआ है और उसीमें उसकी स्थिति है। उसीसे अग्नि और सोमकी उत्पत्ति हुई है, तथा उसीमें इस प्राणका विस्तार हुआ है। कहाँतक गिनावें, हम अलग-अलग वस्तुओंका नाम बतानेमें असमर्थ हैं; तुम इतना ही समझो कि सब कुछ उस परमात्मासे ही प्रकट हुआ है। उस सनातन भगवान्का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। अपानको प्राण अपनेमें लीन कर लेता है, प्राणको चन्द्रमा, चन्द्रमाको सूर्य और सूर्यको परमात्मा अपनेमें लीन कर लेता है; उस सनातन परमेश्वरका

योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। इस संसार-सलिलसे ऊपर उठा हुआ हंसरूप परमात्मा अपने एक अंशको ऊपर नहीं उठा रहा है; यदि उसे भी वह ऊपर उठा ले तो सबका बन्ध और मोक्ष सदाके लिये मिट जाय। उस सनातन परमेश्वरका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। हृदयदेशमें स्थित वह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी परमात्मा लिङ्गशरीरके सम्बन्धसे जीवात्माके रूपमें सदा जन्म-मरणको प्राप्त होता है। उस सबके शासक, स्तुतिके योग्य, सर्वसमर्थ, सबके आदिकारण एवं सर्वत्र विराजमान परमात्माको मूढ पुरुष नहीं देख पाते; किन्तु योगीजन उस सनातन परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। कोई साधनसम्पन्न हों या साधनहीन, सब मनुष्योंमें समानरूपसे यह ब्रह्म दृष्टिगोचर होता है। यह बद्ध और मुक्तमें भी समभावसे स्थित है; अन्तर इतना ही है कि इन दोनोंमेंसे जो मुक्त पुरुष हैं, वे आनन्दके मूल स्रोत परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं। उसी सनातन भगवान्‌का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। विद्वान् पुरुष ब्रह्मविद्याके द्वारा इस लोक और परलोक दोनोंको व्याप्त करके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। उस समय उसके द्वारा यदि अग्निहोत्र आदि कर्म न भी हुए हों, तो भी वे पूर्ण हुए समझे जाते हैं। राजन्! यह ब्रह्मविद्या तुममें लघुता न आने दे; तथा इसके द्वारा तुम्हें वह प्रज्ञा प्राप्त हो, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उसी प्रज्ञाके द्वारा योगीलोग उस सनातन परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार परमात्मभावको प्राप्त हुआ महात्मा पुरुष अग्निको अपनेमें धारण कर लेता है। जो उस पूर्ण परमेश्वरको जान लेता है, उसका प्रयोजन नष्ट नहीं होता [अर्थात् वह कृतकृत्य हो जाता है]। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। कोई मनके समान वेगवाला क्यों न हो, और दस लाख भी पंख लगाकर क्यों न उड़े; अन्तमें उसे हृदयस्थित परमात्मामें ही आना पड़ेगा। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। इस परमात्माका स्वरूप देखनेमें नहीं आता; जिनका अन्तःकरण अत्यन्त विशुद्ध है, वे ही उसे देख पाते हैं। जो सबके हितैषी और मनको वशमें करनेवाले हैं, तथा जिनके मनमें कभी दुःख नहीं होता—ऐसे होकर जो संन्यास लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। जैसे साँप बिलोंका आश्रय ले अपनेको छिपाये रहते हैं, उसी प्रकार कुछ दम्भी मनुष्य अपनी शिक्षा और व्यवहारकी आड़में अपने गूढ़ पापोंको छिपाये रखते हैं। मूर्ख मनुष्य उनपर विश्वास करके अ मोहमें पड़ जाते हैं और जो यथार्थ मार्ग यानी परमा मार्गमें चलनेवाले हैं, उन्हें भी वे भयमें डालनेके मोहित करनेकी चेष्टा करते हैं; किन्तु योगीजन भगवत्‌ उनके फंदेमें न आकर उस सनातन परमात्‌ ही साक्षात्कार करते हैं। राजन्! मैं कभी वि असत्कारका पात्र नहीं होता। न मेरी मृत्यु होती जन्म, फिर मोक्ष तो हो ही कहाँसे सकता है! [क्यों नित्यमुक्त ब्रह्म हूँ।] सत्य और असत्य सब कुछ सनातन सम ब्रह्ममें स्थित है। एकमात्र मैं ही सत् असत्‌की उत्पत्तिका स्थान हूँ। मेरे स्वरूपभूत उस सन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। परमा का न तो साधु कर्मसे सम्बन्ध है और न असाधु कर्म यह विषमता तो देहाभिमानी मनुष्योंमें ही देखी जाती ब्रह्मका स्वरूप सर्वत्र समान ही समझना चाहिये। इस प्र ज्ञानयोगसे युक्त होकर उस आनन्दमय ब्रह्मको ही पा इच्छा करे। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात् करते हैं। इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके हृदयको निन्द वाक्य संतप्त नहीं करते। 'मैंने स्वाध्याय नहीं कि अग्निहोत्र नहीं किया' इत्यादि बातें भी उसके मनको क नहीं पहुँचातीं। ब्रह्मविद्या शीघ्र ही उसे वह स्थिर बु प्रदान करती है, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते है उस बुद्धिके द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, उस सना परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ १–२४ ॥

इस प्रकार जो समस्त भूतोंमें परमात्माको निरन्त देखता है, वह ऐसी दृष्टि प्राप्त होनेके अनन्तर अन्या विषय-भोगोंमें आसक्त मनुष्योंके लिये क्या शोक करे जैसे सब ओर जलसे लबालब भरे बड़े जलाशय प्राप्त होनेपर जलके लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता न होती, उसी प्रकार आत्मज्ञानीके लिये सम्पूर्ण वेदों ज़रूरत नहीं रह जाती। यह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी परमात्म सबके हृदयके भीतर स्थित है, किन्तु किसीको दिखा नहीं देता। वह अजन्मा, चराचरस्वरूप और दिन-रा सावधान रहनेवाला है। जो उसे जान लेता है, वह विद्वा परमानन्दमें निमग्न हो जाता है ॥ २५–२७ ॥

धृतराष्ट्र! मैं ही सबकी माता और पिता हूँ, मैं ही पुत्र हूँ और सबका आत्मा भी मैं ही हूँ। जो है, वह भी औ जो नहीं है, वह भी मैं ही हूँ। भारत! मैं ही तुम्हारा बूढ़ा पितामह, पिता और पुत्र भी हूँ। तुम सब लोग मे

ही आत्मामें स्थित हो; फिर भी न तुम हमारे हो और न हम तुम्हारे हैं [क्योंकि आत्मा एक ही है]। आत्मा ही मेरा स्थान है और आत्मा ही मेरा जन्म (उद्गम) है। मैं सबमें ओतप्रोत और अपनी अजर (नित्य नूतन) महिमामें स्थित हूँ। मैं अजन्मा, चराचरस्वरूप तथा दिन-रात सावधान रहनेवाला हूँ। मुझे जानकर विद्वान् पुरुष परम प्रसन्न हो जाता है। परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा विशुद्ध मनवाला है, वही सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित उस परम पिताको विद्वान् पुरुष ही जानते हैं ॥२८–३१॥

सञ्जयका कौरवोंकी सभामें आकर दुर्योधनको अर्जुनका सन्देश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भगवान् सनत्सुजात और बुद्धिमान् विदुरजीके साथ बातचीत करते राजा धृतराष्ट्रको सारी रात बीत गयी। प्रातःकाल होते ही देश-देशान्तरोंसे आये हुए सब राजालोग तथा भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, विदुर और युयुत्सुने महाराज धृतराष्ट्रके साथ तथा दुःशासन, चित्रसेन, शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक और विविंशतिने कुरुराज दुर्योधनके साथ सभामें प्रवेश किया। वे सभी सञ्जयके मुखसे पाण्डवोंकी धर्मार्थयुक्त बातें सुननेके लिये उत्सुक थे। सभामें पहुँचकर वे सब अपनी-अपनी मर्यादाके अनुसार आसनोंपर बैठ गये।

इतनेहीमें द्वारपालने सूचना दी कि सञ्जय सभाके द्वारपर आ गये हैं। सञ्जय तुरंत ही रथसे उतरकर सभामें आये और कहने लगे, 'कौरवगण! मैं पाण्डवोंके पाससे आ रहा हूँ। उन्होंने आयुके अनुसार सभी कौरवोंको यथायोग्य कहा है।'

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! मैं यह पूछता हूँ कि वहाँ सब राजाओंके बीचमें दुरात्माओंको प्राणदण्ड देनेवाले अर्जुनने क्या कहा था।
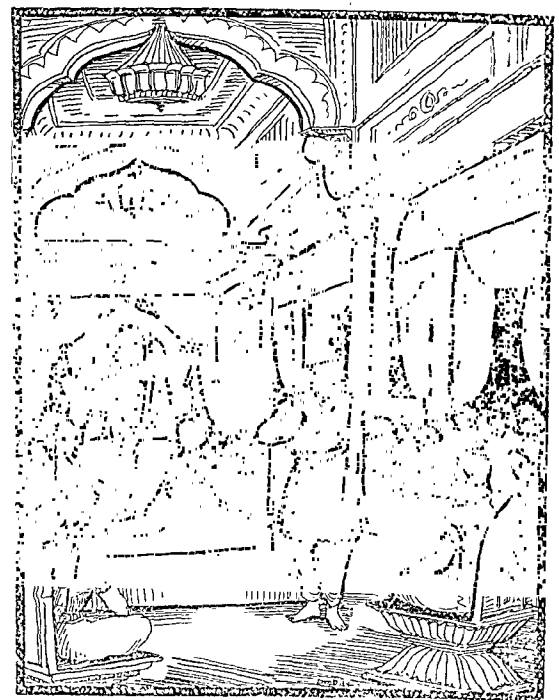
सञ्जयने कहा—राजन्! वहाँ श्रीकृष्णके सामने महाराज युधिष्ठिरकी सम्मतिसे महात्मा अर्जुनने जो शब्द कहे हैं, उन्हें कुरुराज दुर्योधन सुन लें। उन्होंने कहा है कि 'जो कालके गालमें जानेवाला, मन्दबुद्धि महामूढ़ सूतपुत्र सदा ही मुझसे युद्ध करनेकी डींग हाँकता रहता है, उस कटुभाषी दुरात्मा कर्ण-

को सुनाकर तथा जो राजालोग पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके

लिये बुलाये गये हैं, उन्हें सुनाते हुए तुम मेरा सन्देश इस प्रकार कहना जिससे मन्त्रियोंके सहित राजा दुर्योधन उसे पूरा-पूरा सुन सके।' गाण्डीवधारी अर्जुन युद्धके लिये उत्सुक जान पड़ता था। उसने आँखें लाल करके कहा है—"यदि दुर्योधन महाराज युधिष्ठिरका राज्य छोड़नेके लिये तैयार नहीं है तो अवश्य ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंका कोई ऐसा पापकर्म है, जिसका फल उन्हें भोगना बाकी है। यदि दुर्योधन चाहता है कि कौरवोंका भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और अपने सङ्कल्पमात्रसे पृथ्वी एवं आकाशको भस्म कर सकनेवाले महाराज युधिष्ठिरके साथ युद्ध हो तो ठीक है; इससे तो पाण्डवोंका सारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा। पाण्डवोंके हितकी दृष्टिसे आपको सन्धि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, फिर तो युद्ध ही होने दें। महाराज युधिष्ठिर तो नम्रता, सरलता, तप, दम, धर्मरक्षा और बल—इन सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। वे बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके कष्ट उठाते रहनेपर भी सत्य ही बोलते हैं तथा आप-लोगोंके कपट-व्यवहारोंको सहन करते रहते हैं। किन्तु जिस समय वे अनेकों वर्षोंसे इकट्ठे हुए अपने क्रोधको कौरवोंपर छोड़ेंगे, उस समय दुर्योधनको पछताना पड़ेगा। जिस समय दुर्योधन रथमें बैठे हुए गदाधारी भीमसेनको बड़े वेगसे क्रोधरूप विष उगलते हुए देखेगा, उस समय उसे युद्ध करनेके लिये अवश्य पश्चात्ताप होगा। जिस प्रकार फूसकी झोंपड़ियोंका गाँव आगसे जलकर खाक हो जाता है, वैसी ही दशा कौरवोंकी देखकर, बिजली मारे हुए खेतके समान अपनी विशाल वाहिनीको नष्ट-भ्रष्ट देखकर तथा भीमसेनकी शस्त्राग्निसे झुलसकर कितने ही वीरोंको धराशायी और कितनोंहीको भयसे भागते देखकर दुर्योधनको युद्ध छेड़नेके लिये जरूर पछताना पड़ेगा। जब विचित्र योद्धा नकुल युद्धस्थलमें शत्रुओंके सिरोंकी ढेरी लगा देगा, जब लज्जाशील सत्यवादी और समस्त धर्मोंका आचरण करनेवाला फुर्तीला वीर सहदेव

शत्रुओंका संहार करता हुआ शकुनिपर आक्रमण करेगा और जब दुर्योधन द्रौपदीके महान् धनुर्धर शूरवीर और रथयुद्ध-विशारद पुत्रोंको कौरवोंपर झपटते देखेगा तो उसे युद्ध ठाननेके लिये अवश्य अनुताप होगा। अभिमन्यु तो साक्षात् श्रीकृष्णके समान ही बली है; जिस समय वह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर मेघोंके समान बाणवर्षा करके शत्रुओंको सन्तप्त करेगा, उस समय दुर्योधनको रण रोपनेके लिये अवश्य पछतावा होगा। जिस समय वृद्ध महारथी विराट और द्रुपद अपनी-अपनी सेनाओंके सहित सुसज्जित होकर सेनासहित धृतराष्ट्रपुत्रोंपर दृष्टि डालेंगे, उस समय दुर्योधनको पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा। जब कौरवोंमें अग्रगण्य संतशिरोमणि महात्मा भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे जायँगे तो मैं सच कहता हूँ मेरे शत्रु बच नहीं सकेंगे। इसमें तुम तनिक भी सन्देह न करना। जब अतुलित तेजस्वी सेनानायक धृष्टद्युम्न अपने बाणोंसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पीडित करते हुए द्रोणाचार्य-पर आक्रमण करेंगे तो दुर्योधनको युद्ध छेड़नेके लिये पछताना

पड़ेगा । सोमकवंशमें श्रेष्ठ महाबली सात्यकि जिस सेनाका नेता है, उसके वेगको शत्रु कभी सह नहीं सकेंगे। तुम दुर्योधनसे कहना कि 'अब तुम राज्यकी आशा छोड़ दो ।' क्योंकि हमने शिनिके पौत्र, युद्धमें अद्वितीय रथी, महाबली सात्यकिको अपना सहायक बना लिया है । वह सर्वथा निर्भय और अस्त्र-शस्त्र-सञ्चालनमें पारङ्गत है । जिस समय दुर्योधन रथमें गाण्डीव धनुष, श्रीकृष्ण और उनके दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख, घोड़े, दो अक्षय तूणीर, देवदत्त शङ्ख और मुझको देखेगा उस समय उसे युद्धके लिये पछतावा ही होगा । जिस समय युद्ध करनेके लिये इकट्ठे हुए उन लुटेरोंको नष्ट करके नवीन युगको प्रवृत्त करनेके लिये मैं आगके समान प्रज्वलित होकर कौरवोंको भस्म करने लगूँगा, उस समय पुत्रोंके सहित महाराज धृतराष्ट्रको भी बड़ा कष्ट होगा । दुर्योधनका सारा गर्व गलित हो जायगा और अपने भाई, सेना तथा सेवकोंके सहित राज्यसे भ्रष्ट होकर वह मन्दमति वैरियोंके हाथसे मार खाकर काँपने लगेगा तथा उसे बड़ा पश्चात्ताप होगा । मैंने वज्रधर इन्द्रसे यह वर माँगा था कि इस युद्धमें श्रीकृष्ण मेरे सहायक हों ।

''एक दिन पूर्वाह्नमें मैं जप करके बैठा था कि एक

ब्राह्मणने आकर मुझसे कहा—'अर्जुन ! तुम्हें दुष्कर कर्म करना है, अपने शत्रुओंके साथ युद्ध करना है । तुम क्या चाहते हो ? उच्चैःश्रवा घोड़ेपर बैठकर वज्र हाथमें लिये इन्द्र तुम्हारे शत्रुओंका नाश करते आगे-आगे चलें, अथवा सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त दिव्य रथपर बैठे भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करते हुए पीछे चलें ?' उस समय मैंने वज्रपाणि इन्द्रको छोड़कर इस युद्धमें सहायकरूपसे श्रीकृष्णका ही वरण किया । इस प्रकार इन डाकुओंके वधके लिये मुझे श्रीकृष्ण मिल गये हैं । मालूम होता है यह देवताओंका ही किया हुआ विधान है । श्रीकृष्ण भले ही युद्ध न करें, फिर भी यदि ये मनसे ही किसीकी जयका अभिनन्दन करने लगें तो वह अपने शत्रुओंको अवश्य परास्त कर देगा; भले ही देवता और इन्द्र ही उसके शत्रु हों, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? इन श्रीकृष्णने आकाशचारी सौभयानके स्वामी महाभयङ्कर और मायावी राजा शाल्वसे युद्ध किया था और सौभके दरवाजेपर ही शाल्वकी छोड़ी हुई शतघ्नीको हाथोंसे पकड़ लिया था । भला, इनके वेगको कौन मनुष्य सहन कर सकता है ? मैं राज्यप्राप्तिकी इच्छासे पितामह भीष्म, पुत्रसहित आचार्य द्रोण और अनुपम वीर कृपाचार्यको प्रणाम करके युद्ध करूँगा । मेरे विचारसे तो जो कोई पापात्मा इस युद्धमें पाण्डवोंसे लड़ेगा, उसका निधन धर्मतः निश्चित है । कौरवो ! मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ, धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जीवन यदि बच सकता है तो युद्धसे दूर रहनेपर ही ऐसा सम्भव है; युद्ध करनेपर तो कोई भी नहीं बचेगा । यह बात निश्चित है कि मैं संग्रामभूमिमें कर्ण और धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारकर कौरवोंका सारा राज्य जीत लूँगा । जिस प्रकार अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर शत्रुओंके संहारमें हमें सफलमनोरथ मान रहे हैं, वैसे ही अदृष्टके ज्ञाता श्रीकृष्णको भी इसमें कोई सन्देह नहीं है । मैं स्वयं भी सावधान होकर अपनी बुद्धिसे देखता हूँ तो मुझे इस युद्धका भावी रूप ऐसा ही दिखायी देता है । मेरी योगदृष्टि भी भविष्यदर्शनमें भूल करनेवाली नहीं है । मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि युद्ध करनेपर धृतराष्ट्रके पुत्र जीवित नहीं रहेंगे । जिस प्रकार ग्रीष्मऋतुमें अग्नि प्रज्वलित होकर गहन वनको जला डालता है, मैं अस्त्रविद्याकी विभिन्न रीतियोंसे स्थूणाकर्ण, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र और इन्द्रास्त्रादि महान् अस्त्रोंका प्रयोग करके किसीको बाकी नहीं छोड़ूँगा । सञ्जय ! तुम उनसे स्पष्ट कह देना कि मेरा यह दृढ़ और उत्तम निश्चय है कि मुझे ऐसा करनेपर ही शान्ति मिलेगी । अतः उन्हें वही करना चाहिये जो वृद्ध भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुरजी कहें । वैसा करनेपर ही कौरवलोग जीवित रह सकेंगे ।''

कर्ण, भीष्म और द्रोणकी सम्मति तथा सञ्जयद्वारा पाण्डवपक्षके वीरोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन ! उस समय कौरवोंकी सभामें सभी राजालोग एकत्रित थे । सञ्जयका भाषण समाप्त होनेपर शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनसे कहा, "एक समय बृहस्पति, शुक्राचार्य तथा इन्द्रादि देवगण ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें घेरकर बैठ गये । उसी समय दो प्राचीन ऋषि अपने तेजसे सबके चित्त एवं तेजको हरते हुए सबको नाँघकर चले गये । बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे

पूछा कि 'ये दोनों कौन हैं, जो आपकी उपासना किये बिना ही चले जा रहे हैं ?' तब ब्रह्माजीने बतलाया कि 'ये प्रबल पराक्रमी महाबली नर-नारायण ऋषि हैं, जो अपने तेजसे पृथ्वी एवं स्वर्गको प्रकाशित कर रहे हैं । इन्होंने अपने कर्मसे सम्पूर्ण लोकोंके आनन्दको बढ़ाया है । इन्होंने परस्पर अभिन्न होते हुए भी असुरोंका विनाश करनेके लिये दो शरीर धारण किये हैं । ये अत्यन्त बुद्धिमान् तथा शत्रुओंको संतप्त करनेवाले हैं । समस्त देवता और गन्धर्व इनकी पूजा करते हैं ।' सुनते हैं—इस युद्धमें जो अर्जुन और श्रीकृष्ण एकत्र हैं, ये दोनों नर-नारायण नामके प्राचीन देवता ही हैं । इन्हें इस संसारमें इन्द्रके सहित देवता और असुर भी नहीं जीत सकते । इनमें श्रीकृष्ण नारायण हैं और अर्जुन नर हैं । वस्तुतः नारायण और नर—ये दो रूपोंमें एक ही वस्तु हैं। दुर्योधन ! जिस समय तुम शंख, चक्र और गदा धारी श्रीकृष्णको और अनेकों अस्त्र-शस्त्र एवं भयङ्कर गाण्डीव लिये अर्जुनको एक ही रथमें बैठे देखोगे, उस समय मेरी बात याद आवेगी । यदि तुम मेरी बातपर ध्यान दोगे तो समझ लेना कि कौरवोंका अन्त आ गया है। तुम्हारी बुद्धि अर्थ और धर्मसे भ्रष्ट हो गयी है । तु[म] तीनहीकी सलाह ठीक जान पड़ती है—एक तो अधम सूतपुत्र कर्णकी, दूसरे सुबलपुत्र शकुनिकी और तीसरे क्षुद्रबुद्धि पापात्मा भाई दुःशासनकी ।"

इसपर कर्ण बोल उठा—पितामह ! आप जैसी कह रहे हैं, वह आप-जैसे वयोवृद्धोंके मुखसे अच्छी [नहीं] लगती । मैं क्षात्रधर्ममें स्थित रहता हूँ और कभी [अपने] धर्मका परित्याग नहीं करता । मेरा ऐसा कौन-सा दुराचार [है] जिसके कारण आप मेरी निन्दा कर रहे हैं ? मैंने दुर्योधन[का] कभी कोई अनिष्ट नहीं किया और अकेला मैं ही युद्धमें सा[मने] आनेपर समस्त पाण्डवोंको मार डालूँगा ।

कर्णकी बात सुनकर पितामह भीष्मने राजा धृतराष्ट्र[को] सम्बोधन करके कहा—"कर्ण जो सदा ही यह कहता रह[ता]

है कि 'मैं पाण्डवोंको मार डालूँगा,' सो यह पाण्डवोंके

सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है। तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंको जो अनिष्ट फल मिलनेवाला है, वह सब इस दुष्टबुद्धि सूतपुत्रकी ही करतूत है। तुम्हारे पुत्र मन्दमति दुर्योधनने भी इसीका बल पाकर उनका तिरस्कार किया है। पाण्डवोंने मिलकर और अलग-अलग जैसे दुष्कर कर्म किये हैं, वैसा इस सूतपुत्रने कौन-सा पराक्रम किया है? जब विराटनगरमें अर्जुनने इसके सामने ही इसके प्यारे भाईको मार डाला था तो इसने उसका क्या कर लिया था? जिस समय अर्जुनने अकेले ही समस्त कौरवोंपर आक्रमण किया और इन्हें परास्त करके इनके वस्त्र छीन लिये, उस समय क्या यह कहीं बाहर चला गया था? घोषयात्राके समय जब गन्धर्वलोग तुम्हारे पुत्रको कैद करके ले गये थे, उस समय यह कहाँ था? अब तो बड़ा बैलकी तरह गरज रहा है! वहाँ भी भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेवने मिलकर ही गन्धर्वोंको परास्त किया था। भरतश्रेष्ठ! यह बड़ा ही बकवादी है। इसकी सब बातें इसी तरह झूठी हैं। यह तो धर्म और अर्थ दोनोंहीको चौपट कर देनेवाला है।"

भीष्मकी बात सुनकर महामना आचार्य द्रोणने उनकी प्रशंसा की और फिर राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन्! भरतश्रेष्ठ भीष्म जैसा कहते हैं, वैसा ही करो; जो लोग अर्थ और कामके ही गुलाम हैं, उनकी बात नहीं माननी चाहिये। मैं तो युद्धसे पहले पाण्डवोंके साथ सन्धि करना ही अच्छा समझता हूँ। अर्जुनने जो बात कही है और सञ्जयने उसका जो सन्देश आपको सुनाया है, मैं उस सबको समझता हूँ। अर्जुन अवश्य वैसा ही करेगा। उसके समान तीनों लोकोंमें कोई धनुर्धर नहीं है।'

राजा धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणके कथनपर कोई ध्यान नहीं दिया और वे सञ्जयसे पाण्डवोंका समाचार पूछने लगे। उन्होंने पूछा—'सञ्जय! हमारी विशाल सेनाका समाचार पाकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्या कहा था? युद्धके लिये वे क्या-क्या तैयारियाँ कर रहे हैं तथा उनके भाई और पुत्रोंमेंसे कौन-कौन आज्ञा पानेके लिये उनके मुखकी ओर ताकते रहते हैं?'

सञ्जयने कहा—महाराज! राजा युधिष्ठिरके मुखकी ओर तो पाण्डव और पाञ्चाल दोनों ही कुटुम्बोंके लोग देखते रहते हैं और वे सभीको आज्ञा भी देते हैं। ग्वालिये और गडरियोंसे लेकर पञ्चाल, केकय और मत्स्य देशोंके राजवंशतक सभी युधिष्ठिरका सम्मान करते हैं।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! यह तो बताओ, पाण्डवलोग किसकी सहायता पाकर हमारे ऊपर चढ़ाई कर रहे हैं?

सञ्जयने कहा—राजन्! पाण्डवोंके पक्षमें जो-जो योद्धा सम्मिलित हुए हैं, उनके नाम सुनिये। आपके साथ युद्ध करनेके लिये वीर धृष्टद्युम्न उनसे मिल गया है। हिडिम्ब राक्षस भी उनके पक्षमें है। भीमसेन तो अपने बलके लिये प्रसिद्ध हैं ही। वारणावत नगरमें उन्हींने पाण्डवोंको भस्म होनेसे बचाया था। उन्हींने गन्धमादन पर्वतपर क्रोधवश नामके राक्षसोंका नाश किया था। उनकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल है। उन्हीं महाबली भीमके साथ पाण्डवलोग आपपर आक्रमण कर रहे हैं। अर्जुनके पराक्रमके विषयमें तो कहना ही क्या है? श्रीकृष्णके साथ अकेले अर्जुनने ही अग्निकी तृप्तिके लिये युद्धमें इन्द्रको परास्त कर दिया था। इन्हींने युद्ध करके साक्षात् देवाधिदेव त्रिशूलपाणि भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था। यही नहीं, धनुर्धर अर्जुनने ही समस्त लोकपालोंको जीत लिया था। उन्हीं अर्जुनको साथ लेकर पाण्डव आपपर चढ़ाई कर रहे हैं। जिन्होंने म्लेच्छोंसे भरी हुई पश्चिम दिशाको अपने अधीन कर लिया था, वे तरह-तरहसे युद्ध करनेवाले वीर नकुल भी उनके साथ हैं तथा जिन्होंने काशी, अंग, मगध और कलिंग देशोंको युद्धमें जीत लिया था, वे सहदेव भी आपपर आक्रमण करनेमें उनके सहायक हैं। पितामह भीष्मके वधके लिये जिसे यक्षने पुरुष कर दिया है, वह शिखण्डी भी बड़ा भारी धनुष धारण किये पाण्डवोंके साथ है। केकयदेशके पाँच सहोदर राजकुमार बड़े धनुर्धर हैं। वे भी कवच धारण करके आपपर चढ़ाई कर रहे हैं। सात्यकि कितनी फुर्तीसे शस्त्र चलानेवाला है। उसके साथ भी आपको संग्राम करना पड़ेगा। जो अज्ञातवासके समय पाण्डवोंके आश्रय बने थे, उन राजा विराटसे भी युद्धस्थलमें आपलोगोंकी मुठभेड़ होगी। महारथी काशिराज भी उनकी सेनाका योद्धा है; आपके ऊपर चढ़ाई करते समय वह भी उनके साथ रहेगा। जो वीरतामें श्रीकृष्णके समान और संयममें महाराज युधिष्ठिरके समान है, उस अभिमन्युके सहित पाण्डवलोग आपपर आक्रमण करेंगे। शिशुपालका पुत्र एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पक्षमें सम्मिलित हुआ है। जरासन्धके पुत्र सहदेव और जयत्सेन—ये रथयुद्धमें बड़े ही पराक्रमी हैं, वे भी पाण्डवोंकी ओरसे ही युद्ध करनेको तैयार हैं। महातेजस्वी द्रुपद बड़ी भारी सेनाके सहित पाण्डवोंके लिये प्राणान्त युद्ध करनेके लिये तैयार हैं। इसी प्रकार पूर्व और उत्तर दिशाओंके और भी सैकड़ों राजा पाण्डवोंके पक्षमें हैं, जिनकी सहायतासे धर्मराज युधिष्ठिर युद्धकी तैयारी कर रहे हैं।

धृतराष्ट्रका पाण्डवपक्षके वीरोंकी प्रशंसा करते हुए युद्धके लिये अनिच्छा प्रकट करना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! यों तो तुमने जिन-जिनका उल्लेख किया है, वे सभी राजा बड़े उत्साही हैं। फिर भी एक ओर उन सबको मिलाकर समझो और दूसरी ओर अकेले भीमको। जैसे अन्य जीव सिंहसे डरते रहते हैं, वैसे ही मैं भी भीमसे डरकर रातभर गर्म-गर्म साँसें लेता हुआ जागता रहता हूँ। कुन्तीपुत्र भीम बड़ा ही असहनशील, कट्टर शत्रुता माननेवाला, सच्ची हँसी करनेवाला, उन्मत्त, टेढ़ी निगाहसे देखनेवाला, भारी गर्जना करनेवाला, महान् वेगवान्, बड़ा ही उत्साही, विशालबाहु और बड़ा ही बली है। वह अवश्य युद्ध करके मेरे अल्पवीर्य पुत्रोंको मार डालेगा। उसकी याद आनेपर मेरा दिल धड़कने लगता है। बाल्यावस्थामें भी जब मेरे पुत्र उसके साथ खेलमें युद्ध करते थे तो वह उन्हें हाथीकी तरह मसल डालता था। जिस समय

वह रणभूमिमें क्रोधित होगा उस समय अपनी गदासे रथ, हाथी, मनुष्य और घोड़े—सभीको कुचल डालेगा। वह मेरी सेनाके बीचमें होकर रास्ता निकाल लेगा, उसे इधर-उधर भगा देगा और जिस समय हाथमें गदा लेकर रणाङ्गणमें नृत्य-सा करने लगेगा उस समय प्रलय-सी मचा देगा।

देखो, मगधदेशके राजा महाबली जरासन्धने यह सारी पृ[थ्वी] अपने वशमें करके सन्तप्त कर रक्खी थी; किन्तु भीमसे[न] श्रीकृष्णके साथ उसके अन्तःपुरमें जाकर उसे भी मार डाल[ा।] भीमसेनके बलको मैं ही नहीं—ये भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य अच्छी तरह जानते हैं। शोक तो मुझे उन लोगोंके लिये [है] जो पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेपर ही तुले हुए हैं। विदु[रने] आरम्भमें ही जो रोना रोया था, आज वही सामने आ गया। इस समय कौरवोंपर जो महान् विपत्ति आनेवाली है, उसका प्रधान कारण जूआ ही जान पड़ता है। मैं बड़ा मन्दमति हूँ। हाय ! ऐश्वर्यके लोभसे ही मैंने यह महापाप कर डाला था। सञ्जय ! मैं क्या करूँ ? कैसे करूँ ? और कहाँ जाऊँ ? ये मन्दमति कौरव तो कालके अधीन होकर विनाशकी ओर ही जा रहे हैं। हाय ! सौ पुत्रोंके मरनेपर जब मुझे विवश होकर उनकी स्त्रियोंका करुणक्रन्दन सुनना पड़ेगा तो मौत भी मुझे कैसे स्पर्श करेगी ? जिस प्रकार वायुसे प्रज्वलित हुआ अग्नि घास-फूसकी ढेरीको भस्म कर देता है, वैसे ही अर्जुनकी सहायतासे गदाधारी भीम मेरे सब पुत्रोंको मार डालेगा।

देखो, आजतक युधिष्ठिरकी मैंने एक भी झूठ बात नहीं सुनी; और अर्जुन-जैसा वीर उसके पक्षमें है, इसलिये वह तो त्रिलोकीका राज्य भी पा सकता है। रात-दिन विचार करनेपर भी मुझे ऐसा कोई योद्धा दिखायी नहीं देता, जो रथयुद्धमें अर्जुनका सामना कर सके। यदि किसी प्रकार वीरवर द्रोणाचार्य और कर्ण उसका मुकाबला करनेके लिये आगे बढ़ें भी, तो भी अर्जुनको जीतनेके विषयमें तो मुझे बड़ा भारी सन्देह ही है। इसलिये मेरी विजय होनेकी कोई सूरत नहीं है। अर्जुन तो सारे देवताओंको भी जीत चुका है। वह कहीं हारा हो—यह मैंने आजतक नहीं सुना; क्योंकि जो स्वभाव और आचरणमें उसीके समान हैं, वे श्रीकृष्ण उसके सारथि हैं। जिस समय वह रणभूमिमें रोषपूर्वक पैने-पैने बाणोंकी वर्षा करेगा, उस समय विधाताके रचे हुए सर्वसंहारक कालके समान उसे काबूमें करना असम्भव हो जायगा। उस समय महलोंमें बैठा हुआ मैं भी निरन्तर कौरवोंके संहार और फूट आदिकी बातें ही सुनूँगा। वस्तुतः इस युद्धमें सब ओरसे भरतवंशपर विनाशका ही आक्रमण होगा।

सञ्जय ! जैसे पाण्डवलोग विजयके लिये उत्सुक हैं, वैसे ही उनके सब साथी भी विजयके लिये कटिबद्ध और पाण्डवोंके

लिये अपने प्राण निछावर करनेको तैयार हैं । तुमने मेरे सामने शत्रुपक्षके पञ्चाल, केकय, मत्स्य और मगधदेशीय राजाओंके नाम लिये हैं। किन्तु जगत्स्रष्टा श्रीकृष्ण तो इच्छामात्रसे इन्द्रके सहित इन सभी लोकोंको अपने वशमें कर सकते हैं ! वे भी पाण्डवोंकी विजयका निश्चय किये हुए हैं । सात्यकिने भी अर्जुनसे सारी शस्त्रविद्या सीख ली है; वह बीजोंके समान बाणोंकी वर्षा करता हुआ युद्धक्षेत्रमें डटा रहेगा । महारथी धृष्टद्युम्न भी बड़ा भारी शस्त्रज्ञ है, वह भी मेरे पक्षके वीरोंसे युद्ध करेगा ही । भैया ! मुझे तो हर समय युधिष्ठिरके कोप और अर्जुनके पराक्रमका तथा नकुल-सहदेव और भीमसेनका भय लगा रहता है । युधिष्ठिर सर्वगुणसम्पन्न है और प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी है । ऐसा कौन मूढ है, जो पतंगेकी तरह उसमें गिरना चाहेगा । इसलिये कौरवो ! मेरी बात सुनो । मैं तो उनके साथ युद्ध न करना ही अच्छा समझता हूँ । युद्ध करनेपर तो निश्चय ही इस सारे कुलका नाश हो जायगा । मेरा तो यही निश्चित विचार है और ऐसा करनेसे ही मेरे मनको शान्ति मिल सकती है । यदि तुम सबको भी युद्ध न करना ही ठीक मालूम हो तो हम सन्धिके लिये प्रयत्न करें ।

सञ्जयने कहा—महाराज ! आप जैसा कह रहे हैं, वैसी ही बात है । मुझे भी गाण्डीव धनुषसे समस्त क्षत्रियोंका नाश दिखायी दे रहा है । देखिये, यह कुरुजाङ्गल देश तो पैतृक राज्य है और शेष सब भूमि आपको पाण्डवोंकी ही जीती हुई मिली है । पाण्डवोंने अपने बाहुबलसे जीतकर यह भूमि आपको भेंट कर दी है; परन्तु आप इसे अपनी ही विजय की हुई मानते हैं । जब गन्धर्वराज चित्रसेनने आपके पुत्रोंको कैद कर लिया था, उस समय उन्हें भी अर्जुन ही छुड़ाकर लाया था । बाण छोड़नेवालोंमें अर्जुन श्रेष्ठ है, धनुषोंमें गाण्डीव श्रेष्ठ है, समस्त प्राणियोंमें श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं और ध्वजाओंमें वानरके चिह्नवाली ध्वजा सबसे श्रेष्ठ है । ये सब वस्तुएँ अर्जुनके ही पास हैं । अतः अर्जुन कालचक्रके समान हम सभीका नाश कर डालेगा । भरतश्रेष्ठ ! निश्चय मानिये—जिसके सहायक भीम और अर्जुन हैं, यह सारी पृथ्वी आज उसीकी है ।

दुर्योधनका वक्तव्य और सञ्जयद्वारा अर्जुनके रथका वर्णन

यह सब सुनकर दुर्योधनने कहा—महाराज ! आप डरें नहीं । हमारे विषयमें कोई चिन्ता करनेकी भी आवश्यकता नहीं है । हम काफी शक्तिमान् हैं और शत्रुओंको संग्राममें परास्त कर सकते हैं । जिस समय इन्द्रप्रस्थसे थोड़ी ही दूरीपर वनवासी पाण्डवोंके पास बड़ी भारी सेनाके साथ श्रीकृष्ण आये थे तथा केकयराज, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न और पाण्डवोंके साथी अन्यान्य महारथी एकत्रित हुए थे तो इन सभीने आपकी और सब कौरवोंकी बड़ी निन्दा की थी । वे लोग कुटुम्बसहित आपका नाश करनेपर तुले हुए थे तथा पाण्डवोंको अपना राज्य लौटा लेनेकी ही सम्मति देते थे । जब यह बात मेरे कानोंमें पड़ी तो बन्धुओंके विनाशकी आशङ्कासे मैंने भीष्म, द्रोण और कृपको भी इसकी सूचना दी । उस समय मुझे यही दीखता था कि अब पाण्डवलोग ही राजसिंहासन-पर बैठेंगे । मैंने उनसे कहा कि 'श्रीकृष्ण तो हम सबका सर्वथा उच्छेद करके युधिष्ठिरको ही कौरवोंका एकच्छत्र राजा बनाना चाहते हैं । ऐसी स्थितिमें बतलाइये, हम क्या करें—उनके आगे सिर झुका दें ? डरकर भाग जायँ ? अथवा प्राणोंका मोह छोड़कर युद्धमें जूझें ? युधिष्ठिरके साथ युद्ध करनेमें तो निश्चितरूपसे हमारी ही पराजय होगी; क्योंकि सब राजा

उन्हींके पक्षमें हैं । हमलोगोंसे तो देश भी प्रसन्न नहीं है,

मित्रलोग भी रूठे हुए हैं तथा सब राजा और घरके लोग भी हमें खरी-खोटी सुनाते हैं।'

मेरी यह बात सुनकर द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने कहा था—'राजन्! तुम डरो मत। जिस समय हमलोग युद्धमें खड़े होंगे, शत्रु हमें जीत नहीं सकेंगे। हममेंसे प्रत्येक अकेला ही सारे राजाओंको जीत सकता है। आवें तो सही, हम अपने पैने बाणोंसे उनका सारा गर्व ठंडा कर देंगे।' उस समय महातेजस्वी द्रोणाचार्य आदिका ऐसा ही निश्चय हुआ था। पहले तो सारी पृथ्वी हमारे शत्रुओंके ही अधीन थी, किन्तु अब वह सब-की-सब हमारे हाथमें है। इसके सिवा यहाँ जो राजालोग इकट्ठे हुए हैं, वे भी हमारे सुख-दुःखको अपना ही समझते हैं। समय पड़नेपर ये मेरे लिये आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं और समुद्रमें भी कूद सकते हैं—यह आप निश्चय मानें। आप शत्रुओंके विषयमें बढ़-बढ़कर बातें सुननेसे विलाप करने लगे और दुखी होकर पागल-से हो गये—यह देखकर ये सब राजा आपकी हँसी कर रहे हैं। इनमेंसे प्रत्येक राजा अपनेको पाण्डवोंका सामना करनेमें समर्थ समझता है। इसलिये आपको जिस भयने दबा लिया है, उसे दूर कर दीजिये।

महाराज! अब युधिष्ठिर भी मेरे प्रभावसे ऐसे डर गये हैं कि नगर न माँगकर केवल पाँच गाँव माँगने लगे हैं। आप जो कुन्तीपुत्र भीमको बड़ा बली समझते हैं, यह भी आपका भ्रम ही है। आपको अभी मेरे प्रभावका पूरा-पूरा पता नहीं है। इस पृथ्वीपर गदायुद्धमें मेरे समान कोई भी नहीं है, न कोई पहले था और न आगे ही होगा। जिस समय रणभूमिमें भीमके ऊपर मेरी गदा गिरेगी, उस समय उसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो जायँगे और वह मरकर धरतीपर जा पड़ेगा। इसलिये इस महान् युद्धमें आप भीमसेनका भय न करें। आप उदास न हों, उसे तो मैं अवश्य मार डालूँगा। इसके सिवा भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्ज्योतिषनगरके राजा, शल्य और जयद्रथ—इनमेंसे प्रत्येक वीर पाण्डवोंको मारनेमें समर्थ है। फिर जिस समय सब मिलकर उनपर आक्रमण करेंगे, तब तो एक क्षणमें उन्हें यमराजके घर भेज देंगे। गङ्गादेवीके गर्भसे उत्पन्न हु[ए] ब्रह्मर्षिकल्प पितामह भीष्मके पराक्रमको तो देवता भी न सह सकते। इसके सिवा उन्हें मारनेवाला भी संसा[र में] कोई नहीं है; क्योंकि उनके पिता शान्तनुने उन्हें प्रस[न्न] होकर यह वर दिया था, 'अपनी इच्छा बिना तु[म] नहीं मरोगे।' दूसरे वीर भरद्वाजपुत्र द्रोण हैं। उनके पु[त्र] अश्वत्थामा भी शस्त्रास्त्रमें पारङ्गत हैं। आचार्य कृपको [भी] कोई मार नहीं सकता। ये सब महारथी देवताओंके समा[न] बलवान् हैं। अर्जुन तो इनमेंसे किसीकी ओर आँख भी नह[ीं] उठा सकता। मैं तो कर्णको भी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यके समान ही समझता हूँ। संशप्तक क्षत्रियोंका दल भी ऐसा ही पराक्रमी है। वे तो अर्जुनको मारनेमें अपनेको ही पर्याप्त समझते हैं। अतः उसके वधके लिये मैंने उन्हें ही नियुक्त कर दिया है। राजन्! आप व्यर्थ ही पाण्डवोंसे इतना क्यों डरते हैं? बताइये तो, भीमसेनके मारे जानेपर फिर हमसे युद्ध करनेवाला उनमें कौन है? यदि आपको कोई दीखता हो तो मुझे बताइये। शत्रुओंकी सेनाके तो पाँचों भाई पाण्डव तथा धृष्टद्युम्न और सात्यकि—ये सात ही वीर प्रधान बल हैं। किन्तु हमारी ओर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, प्राग्ज्योतिष-प्रदेशके राजा, शल्य, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा और विकर्ण—ये बड़े-बड़े वीर हैं तथा ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई है। शत्रुओंके पास तो हमसे कम केवल सात अक्षौहिणी सेना है। फिर हमारी हार कैसे होगी? अतः इन सब बातोंसे आप मेरी सेनाकी सबलता और पाण्डवोंकी सेनाकी दुर्बलता समझकर घबरावें नहीं।

ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने समयपर प्राप्त हुए कार्यको जाननेकी इच्छासे सञ्जयसे फिर पूछा—सञ्जय! तुम पाण्डवोंकी बड़ी प्रशंसा कर रहे हो। भला,

यह तो बताओ कि अर्जुनके रथमें कैसे घोड़े और कैसी ध्वजाएँ हैं ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! उस रथकी ध्वजामें देवताओं-ने मायासे अनेक प्रकारकी छोटी-बड़ी दिव्य और बहुमूल्य मूर्तियाँ बनायी हैं । पवननन्दन हनुमान्‌जीने उसपर अपनी मूर्ति स्थापित की है और वह ध्वजा सब ओर एक योजनतक फैली हुई है । विधाताकी ऐसी माया है कि वृक्षादिके कारण भी इसकी गतिमें कोई बाधा नहीं आती । अर्जुनके रथमें चित्ररथ गन्धर्वके दिये हुए वायुके समान वेगवाले सफेद रंगके उत्तम जातिके घोड़े जुते हुए हैं । उनकी गति पृथ्वी, आकाश और स्वर्गादि किसी भी स्थानमें नहीं रुकती तथा उनमेंसे यदि कोई मर जाता है तो वरके प्रभावसे उसकी जगह नया घोड़ा उत्पन्न होकर उनकी सौ संख्यामें कभी कमी नहीं आती ।

सञ्जयसे पाण्डवपक्षके वीरोंका विवरण सुनकर धृतराष्ट्रका युद्ध न करनेकी सम्मति देना, दुर्योधनका उससे असहमत होना तथा सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णका सन्देश सुनाना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जो पाण्डवोंके लिये मेरे पुत्रकी सेनासे युद्ध करेंगे, ऐसे किन-किन वीरोंको तुमने युधिष्ठिर-की प्रसन्नताके लिये वहाँ आये हुए देखा था ?

सञ्जयने कहा—मैंने अन्धक और वृष्णिवंशीय यादवों-में प्रधान श्रीकृष्णको तथा चेकितान और सात्यकिको वहाँ मौजूद देखा था । ये दोनों सुप्रसिद्ध महारथी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर और पञ्चालनरेश द्रुपद अपने दस पुत्र सत्यजित् और धृष्टद्युम्नादिके सहित एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये हैं । महाराज विराट भी शङ्ख और उत्तर नामक अपने पुत्र तथा सूर्यदत्त और मदिराक्ष इत्यादि वीरोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिरसे मिले हैं । इनके सिवा केकय देशके पाँच सहोदर राजा भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंके पास आये हैं । मैंने वहाँ आये हुए केवल इतने ही राजा देखे हैं, जो पाण्डवोंके लिये दुर्योधनकी सेनाका सामना करेंगे ।

राजन् ! संग्रामके लिये भीष्म शिखण्डीके हिस्सेमें रक्खे गये हैं । उसके पृष्ठपोषकरूपसे मत्स्यदेशीय वीरोंके साथ राजा विराट रहेंगे । मद्रराज शल्य बड़े भाई युधिष्ठिरके जिम्मे हैं । अपने सौ भाई और पुत्रोंके सहित दुर्योधन तथा पूर्व और दक्षिण दिशाओंके राजा भीमसेनके भाग हैं । कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिन्धुराज जयद्रथसे लड़नेका काम अर्जुनको सौंपा गया है । इनके सिवा और भी जिन राजाओंके साथ दूसरोंका युद्ध करना सम्भव नहीं है, उन्हें भी अर्जुनने अपने ही हिस्सेमें रक्खा है । केकय देशके जो महान् धनुर्धर पाँच

सहोदर राजपुत्र हैं, वे हमारे पक्षके केकयवीरोंके साथ ही युद्ध करेंगे। दुर्योधन और दुःशासनके सब पुत्र और राजा बृहद्बल सुभद्रानन्दन अभिमन्युके भागमें रक्खे गये हैं। धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें द्रौपदीके पुत्र आचार्य द्रोणका सामना करेंगे। सोमदत्तके साथ चेकितानका रथयुद्ध होगा और भोजवंशीय कृतवर्माके साथ सात्यकि लड़ना चाहता है। माद्रीके पुत्र महावीर सहदेवने स्वयं ही आपके साले शकुनिको अपने हिस्सेमें रक्खा है तथा माद्रीनन्दन नकुलने उलूक, कैतव्य और सारस्वतोंके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया है। इनके सिवा इस महायुद्धमें और भी जो-जो राजा आपकी ओरसे युद्ध करेंगे, उनके नाम ले-लेकर युद्ध करनेके लिये पाण्डवोंने योद्धाओंको नियुक्त कर दिया है।

राजन्! मैं निश्चिन्त बैठा हुआ था। उस समय धृष्टद्युम्नने मुझसे कहा कि 'तुम शीघ्र ही यहाँसे जाओ और तनिक भी देरी न करते हुए वहाँ जो दुर्योधनके पक्षके वीर हैं उनसे, बाह्लीक, कुरु और प्रतीपके वंशधरोंसे, तथा कृपाचार्य, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण, राजा दुर्योधन और भीष्मसे जाकर कहो कि तुम्हें महाराज युधिष्ठिरके साथ भलेपनसे ही व्यवहार करना चाहिये। ऐसा न हो देवताओंसे सुरक्षित अर्जुन तुम्हें मार डालें। तुम जल्दी ही धर्मराजको उनका राज्य सौंप दो; वे लोकमें सुप्रसिद्ध वीर हैं, तुम उनसे क्षमा-प्रार्थना करो। सव्यसाची अर्जुन जैसे पराक्रमी हैं, वैसा योद्धा इस पृथ्वीतलपर कोई दूसरा नहीं है। गाण्डीवधारी अर्जुनके रथकी रक्षा देवतालोग करते हैं, कोई भी मनुष्य उन्हें नहीं जीत सकता; इसलिये तुम युद्धके लिये मन मत चलाओ।'

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा—दुर्योधन! तुम युद्धका विचार छोड़ दो। महापुरुष युद्धको तो किसी भी अवस्थामें अच्छा नहीं बताते। इसलिये बेटा! तुम पाण्डवोंको उनका यथोचित भाग दे दो, तुम्हारे और तुम्हारे मन्त्रियोंके निर्वाहके लिये तो आधा राज्य भी बहुत है। देखो, न तो मैं युद्ध करना चाहता हूँ, न बाह्लीक उसके पक्षमें हैं और न भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, सञ्जय, सोमदत्त, शल या कृपाचार्य ही युद्ध करना चाहते हैं। इनके सिवा सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय और भूरिश्रवा भी युद्धके पक्षमें नहीं हैं। मैं समझता हूँ तुम भी अपनी इच्छासे यह युद्ध नहीं कर रहे हो; बल्कि पापात्मा दुःशासन, कर्ण और शकुनि ही तुमसे यह काम करा रहे हैं।

इसपर दुर्योधनने कहा—पिताजी! मैंने आप, द्रोण, अश्वत्थामा, सञ्जय, भीष्म, काम्बोजनरेश, कृप, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा अथवा आपके अन्यान्य योद्धाओंके भरोसे पाण्डवोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं किया है। इस युद्धमें पाण्डवोंका संहार तो मैं, कर्ण और भाई दुःशासन—हम तीन ही कर लेंगे। या तो पाण्डवोंको मारकर मैं ही इस पृथ्वीका शासन करूँगा या पाण्डवलोग ही मुझे मारकर इसे भोगेंगे। मैं जीवन, राज्य और धन—ये सब तो छोड़ सकता हूँ; किन्तु पाण्डवोंके साथ रहना मेरे वशकी बात नहीं है। सूईकी बारीक नोकसे जितनी भूमि छिद सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवोंको नहीं दे सकता।

धृतराष्ट्रने कहा—बन्धुओ! मुझे तुम सभी कौरवोंके लिये बड़ा शोक है। दुर्योधनको तो मैंने त्याग दिया; किन्तु जो लोग इस मूर्खका अनुसरण करेंगे, वे भी अवश्य यमलोकमें जायँगे। जब पाण्डवोंकी मारसे कौरवसेना व्याकुल हो जायगी, तब तुम्हें मेरी बातका स्मरण होगा। फिर सञ्जयसे कहा,
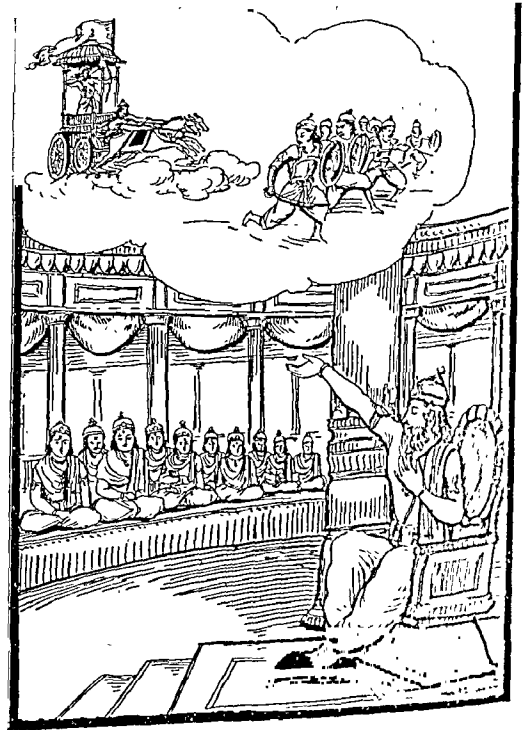
'सञ्जय! महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने तुमसे जो-जो बातें कही हैं, वे सब मुझे सुनाओ; उन्हें सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा है।'

सञ्जयने कहा—राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुनको मैंने जिस स्थितिमें देखा था, वह सुनिये तथा उन वीरोंने जो कुछ कहा है, वह भी मैं आपको सुनाता हूँ। महाराज! आपका सन्देश सुनानेके लिये मैं अपने पैरोंकी अँगुलियोंकी ओर दृष्टि रखकर बड़ी सावधानीसे हाथ जोड़े उनके अन्तःपुरमें गया। उस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए बैठे हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं। अर्जुनने बैठनेके लिये मुझे एक सोनेका पादपीठ (पैर रखनेकी चौकी) दिया। मैं उसे हाथसे स्पर्श करके पृथ्वीपर बैठ गया। उन दोनों महापुरुषोंको एक आसनपर बैठे देखकर मुझे बड़ा भय मालूम हुआ और मैं सोचने लगा कि मन्दबुद्धि दुर्योधन कर्णकी बकवादमें आकर इन विष्णु और इन्द्रके समान वीरोंके स्वरूपको कुछ नहीं समझता। उस समय मुझे तो यही निश्चय हुआ कि ये दोनों जिनकी आज्ञामें रहते हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिरके मनका सङ्कल्प ही पूरा होगा। वहाँ अन्न-पानादिसे मेरा सत्कार किया गया। फिर आरामसे बैठ जानेपर मैंने हाथ जोड़कर उन्हें आपका सन्देश सुनाया। इसपर अर्जुनने श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम करके उसका उत्तर देनेके लिये प्रार्थना की। तब भगवान् बैठ गये और आरम्भमें मधुर किन्तु परिणाममें कठोर शब्दोंमें मुझसे कहने लगे—"सञ्जय! बुद्धिमान् धृतराष्ट्र, कुरुवृद्ध भीष्म और आचार्य द्रोणसे तुम हमारी ओरसे यह सन्देश कहना। तुम बड़ोंको हमारा प्रणाम कहना और छोटोंसे कुशल पूछकर उन्हें यह कहना कि 'तुम्हारे सिरपर बड़ा संकट आ गया है; इसलिये तुम अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो, ब्राह्मणोंको दान दो और स्त्री-पुत्रोंके साथ कुछ दिन आनन्द भोग लो।' देखो, अपना चीर खींचे जाते समय द्रौपदीने जो 'हे गोविन्द' ऐसा कहकर मुझ द्वारकावासीको पुकारा था, उसका ऋण मेरे ऊपर बहुत बढ़ गया है; वह एक क्षणको भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होता। भला, जिसके साथ मैं हूँ उस अर्जुनसे युद्ध करनेकी प्रार्थना ऐसा कौन मनुष्य कर सकता है, जिसके सिरपर काल न नाच रहा हो? मुझे तो देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व और नागोंमें ऐसा कोई भी दिखायी नहीं देता जो रणभूमिमें अर्जुनका सामना कर सके। विराटनगरमें तो उसने अकेले ही सारे कौरवोंमें भगदड़ मचा दी थी और वे इधर-उधर चंपत हो गये थे—यही इसका पर्याप्त प्रमाण है। बल, वीर्य, तेज, फुर्ती, कामकी सफाई, अविषाद और धैर्य—ये सारे गुण अर्जुनके सिवा और किसी एक व्यक्तिमें नहीं मिलते।" इस प्रकार अर्जुनको उत्साहित करते हुए श्रीकृष्णने मेघके समान गरजकर ये शब्द कहे थे।

कर्णका वक्तव्य, भीष्मद्वारा उसकी अवज्ञा, कर्णकी प्रतिज्ञा, विदुरका वक्तव्य तथा धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब दुर्योधनका हर्ष बढ़ाते हुए कर्णने कहा, 'गुरुवर परशुरामजीसे मैंने जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था, वह अभीतक मेरे पास है। अतः अर्जुनको जीतनेमें तो मैं अच्छी तरह समर्थ हूँ, उसे परास्त करनेका भार मेरे ऊपर रहा। यही नहीं, मैं पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और बेटे-पोतोंके सहित अन्य सब पाण्डवोंको भी एक क्षणमें मारकर शस्त्रास्त्रके द्वारा प्राप्त होनेवाले लोकोंको प्राप्त करूँगा। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य तथा अन्य सब राजालोग भी आपके ही पास रहें; पाण्डवोंको तो अपनी प्रधान सेनाके सहित जाकर मैं ही मार दूँगा। यह काम मेरे जिम्मे रहा।'

जब कर्ण इस प्रकार कह रहा था तो भीष्मजी कहने लगे—'कर्ण! तुम्हारी बुद्धि तो कालवश नष्ट हो गयी है। तुम क्या बढ़-बढ़कर बातें बना रहे हो! याद रक्खो, इन कौरवोंकी मृत्यु तो पहले तुम-जैसे प्रधान वीरके मारे जानेपर ही होगी। इसलिये तुम अपनी रक्षाका प्रबन्ध करो। अजी! खाण्डववनका दाह कराते समय श्रीकृष्णके सहित अर्जुनने जो काम किया था, उसे सुनकर ही तुम्हें अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित होशमें आ जाना चाहिये। देखो, बाणासुर और भौमासुरका वध करनेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं! इस घोर संग्राममें वे तुम-जैसे चुने-चुने वीरोंका ही नाश करेंगे।'

यह सुनकर कर्ण बोला—पितामह जैसा कहते हैं, श्रीकृष्ण तो निःसन्देह वैसे ही हैं—बल्कि उससे भी बढ़कर हैं। परन्तु इन्होंने मेरे लिये जो कुछ कड़ी बातें कही हैं, उनका

परिणाम भी ये कान खोलकर सुन लें। अब मैं अपने शस्त्र रक्खे देता हूँ। आजसे मुझे पितामह रणभूमि या राजसभामें नहीं देखेंगे। बस, जब आपका अन्त हो जायगा तभी पृथ्वीके सब राजालोग मेरा प्रभाव देखेंगे। ऐसा कहकर महान् धनुर्धर कर्ण सभासे उठकर अपने घर चला गया।

अब भीष्मजी सब राजाओंके सामने हँसते हुए राजा दुर्योधनसे कहने लगे—"राजन्! कर्ण तो सत्यप्रतिज्ञ है। फिर उसने जो राजाओंके सामने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं नित्यप्रति सहस्रों वीरोंका संहार करूँगा', उसे वह कैसे पूरी करेगा? इसका धर्म और तप तो तभी नष्ट हो गया था, जब इसने भगवान् परशुरामके पास जाकर अपनेको ब्राह्मण बताते हुए उनसे शस्त्रविद्या सीखी थी।"

जब भीष्मने इस प्रकार कहा और कर्ण शस्त्र छोड़कर सभासे चला गया तो मन्दमति दुर्योधन कहने लगा—पितामह! पाण्डवलोग और हम अस्त्रविद्या, योद्धाओंके संग्रह तथा शस्त्र-सञ्चालनकी फुर्ती और सफाईमें समान ही हैं और हैं भी दोनों मनुष्यजातिके ही; फिर आप ऐसा कैसे समझते हैं कि पाण्डवोंकी ही विजय होगी? मैं आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक अथवा अन्य राजाओंके बलपर यह युद्ध नह ठान रहा हूँ। पाँचों पाण्डवोंको तो मैं, कर्ण और भा दुःशासन—हम तीन ही अपने पैने बाणोंसे मार डालेंगे

इसपर विदुरजीने कहा—वृद्ध पुरुष इस लोक दमको ही कल्याणका साधन बताते हैं। जो पुरुष दम, दान, त ज्ञान और स्वाध्यायका अनुसरण करता रहता है, उसी दान, क्षमा और मोक्ष यथावत्‌रूपसे प्राप्त होते हैं। दम तेज वृद्धि करता है, दम पवित्र और सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रक जिसका पाप निवृत्त होकर तेज बढ़ गया है, वह पुरुष परमप प्राप्त कर लेता है। राजन्! जिस पुरुषमें क्षमा, धृति, अहिंस समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, मृदुलता, लज्ज अचञ्चलता, अदीनता, अक्रोध, सन्तोष और श्रद्धा-इतने गु हों, वह दान्त (दमयुक्त) कहा जाता है। दमनशील पुर काम, लोभ, दर्प, क्रोध, निद्रा, बढ़-बढ़कर बातें बनान मान, ईर्ष्या और शोक—इन्हें तो अपने पास नहीं फटक देता। कुटिलता और शठतासे रहित होना तथा शुद्धता रहना—यह दमशील पुरुषका लक्षण है। जो पुरुष लोलुपत रहित, भोगोंके चिन्तनसे विमुख और समुद्रके समा गम्भीर होता है, वह दमशील कहा गया है। अच्छे आचरण

वाला, शीलवान्, प्रसन्नचित्त, आत्मवेत्ता और बुद्धिमान् पुरुष इस लोकमें सम्मान पाकर मरनेपर सद्गति प्राप्त करता है।

तात! हमने पूर्वपुरुषोंके मुखसे सुना था कि किसी समय एक चिड़ीमारने चिड़ियोंको फँसानेके लिये पृथ्वीपर जाल फैलाया। उस जालमें साथ-साथ रहनेवाले दो पक्षी फँस गये। तब वे दोनों उस जालको लेकर उड़ चले। चिड़ीमार उन्हें आकाशमें चढ़े देखकर उदास हो गया और जिधर-जिधर वे जाते, उधर-उधर ही उनके पीछे दौड़ रहा था। इतनेमें ही एक मुनिकी उसपर दृष्टि पड़ी। उस व्याधसे उन मुनिवरने पूछा, 'अरे व्याध! मुझे यह बात बड़ी विचित्र जान पड़ती है कि तू उड़ते हुए पक्षियोंके पीछे पृथ्वीपर भटक रहा है!' व्याधने कहा, 'ये दोनों पक्षी आपसमें मिल गये हैं, इसलिये मेरे जालको लिये जा रहे हैं। अब जहाँ इनमें झगड़ा होने लगेगा, वहीं ये मेरे वशमें आ जायँगे।' थोड़ी ही देरमें कालके वशीभूत हुए उन पक्षियोंमें झगड़ा होने लगा और वे लड़ते-लड़ते पृथ्वीपर गिर पड़े। बस, चिड़ीमारने

चुपचाप उनके पास जाकर उन दोनोंको पकड़ लिया। इसी प्रकार जब दो कुटुम्बियोंमें सम्पत्तिके लिये परस्पर झगड़ा होने लगता है तो वे शत्रुओंके चंगुलमें फँस जाते हैं। आपस-दारीके काम तो साथ बैठकर भोजन करना, आपसमें प्रेमसे बात-चीत करना, एक-दूसरेके सुख-दुःखको पूछना और आपसमें मिलते-जुलते रहना हैं, विरोध करना नहीं। जो शुद्धहृदय पुरुष समय आनेपर गुरुजनोंका आश्रय लेते हैं, वे सिंहसे सुरक्षित वनके समान किसीके भी दबावमें नहीं आ सकते।

एक बार कई भील और ब्राह्मणोंके साथ हम गन्धमादन पर्वतपर गये थे। वहाँ हमने एक शहदसे भरा हुआ छत्ता देखा। अनेकों विषधर सर्प उसकी रक्षा कर रहे थे। वह ऐसा गुणयुक्त था कि यदि कोई पुरुष उसे पा ले तो अमर हो जाय, अन्धा सेवन करे तो सूझता हो जाय और बूढ़ा युवा हो जाय। यह बात हमने रासायनिक ब्राह्मणोंसे सुनी थी। भीललोग उसे प्राप्त करनेका लोभ न रोक सके और उस सर्पोंवाली गुफामें जाकर नष्ट हो गये। इसी प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन अकेला ही सारी पृथ्वीको भोगना चाहता है। इसे मोहवश शहद तो दीख रहा है किन्तु अपने नाशका सामान दिखायी नहीं देता। याद रखिये, जिस प्रकार अग्नि सब वस्तुओंको जला डालता है वैसे ही द्रुपद, विराट और क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन—ये संग्राममें किसीको भी जीता नहीं छोड़ेंगे। इसलिये राजन्! आप महाराज युधिष्ठिरको भी अपनी गोदमें स्थान दीजिये, नहीं तो इन दोनोंका युद्ध होने-पर किसकी जीत होगी—यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता।

विदुरजीका वक्तव्य समाप्त होनेपर राजा धृतराष्ट्रने कहा—बेटा दुर्योधन! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो। तुम अनजान बटोहीके समान इस समय कुमार्गको ही सुमार्ग समझ रहे हो। इसीसे तुम पाँचों पाण्डवोंके तेजको दबानेका विचार कर रहे हो। परन्तु याद रक्खो, उन्हें जीतनेका विचार करना अपने प्राणोंको संकटमें डालना ही है। श्रीकृष्ण अपने देह, गेह, स्त्री, कुटुम्बी और राज्यको एक ओर तथा अर्जुनको दूसरी ओर समझते हैं। उसके लिये वे इन सभीको त्याग सकते हैं। जहाँ अर्जुन रहता है, वहीं श्रीकृष्ण रहते हैं; और जिस सेनामें स्वयं श्रीकृष्ण रहते हैं, उसका वेग तो पृथ्वीके लिये भी असह्य हो जाता है। देखो, तुम सत्पुरुषों और तुम्हारे हितकी कहनेवाले सुहृदोंके कथनानुसार आचरण करो और इन वयोवृद्ध पितामह भीष्मकी बातपर ध्यान दो। मैं भी कौरवोंके ही हितकी बात सोचता हूँ, तुम्हें मेरी बात भी सुननी चाहिये और द्रोण, कृप, विकर्ण एवं महाराज बाह्लीकके कथनपर भी ध्यान देना चाहिये। भरतश्रेष्ठ! ये सब धर्मके मर्मज्ञ और कौरव एवं पाण्डवोंपर समान स्नेह रखनेवाले हैं। अतः तुम पाण्डवोंको अपने सगे भाई समझकर उन्हें आधा राज्य दे दो।

श्रीव्यासजी और गान्धारीके सामने सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनसे ऐसा कह राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे फिर कहा, 'सञ्जय ! अब जो बात सुनानी रह गयी है, वह भी कह दो । श्रीकृष्णके बाद अर्जुनने तुमसे क्या कहा था ? उसे सुननेके लिये मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ।'

सञ्जयने कहा—श्रीकृष्णकी बात सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने उनके सामने ही कहा—'सञ्जय ! तुम पितामह भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, राजा बाह्लीक, अश्वत्थामा, सोमदत्त, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण और वहाँ इकट्ठे हुए समस्त राजाओंसे मेरा यथायोग्य अभिवादन कहना और मेरी ओरसे उनकी कुशल पूछना तथा पापात्मा दुर्योधन, उसके मन्त्री और वहाँ आये हुए सब राजाओंको श्रीकृष्णचन्द्रका समाधानयुक्त सन्देश सुनाकर मेरी ओरसे भी इतना कहना कि शत्रुदमन महाराज युधिष्ठिर जो अपना भाग लेना चाहते हैं, वह यदि तुम नहीं दोगे तो मैं अपने तीखे तीरोंसे तुम्हारे घोड़े, हाथी और पैदल सेनाके सहित तुम्हें यमपुरी भेज दूँगा।' महाराज ! इसके बाद मैं अर्जुनसे विदा होकर और श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनका गौरवपूर्ण सन्देश आपको सुनानेके लिये तुरंत ही यहाँ चला आया ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी इन बातोंका दुर्योधनने कुछ भी आदर नहीं किया। सब लोग चुप ही रहे। फिर वहाँ जो देश-देशान्तरके नरेश बैठे थे, वे सब उठकर अपने-अपने डेरोंमें चले गये । इस एकान्तके समय धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा, 'सञ्जय ! तुम्हें तो दोनों पक्षोंके बलाबलका ज्ञान है, यों भी तुम धर्म और अर्थका रहस्य अच्छी तरह जानते हो और किसी भी बातका परिणाम तुमसे छिपा नहीं है । इसलिये तुम ठीक-ठीक बताओ कि इन दोनों पक्षोंमें कौन सबल है और कौन निर्बल ।'

सञ्जयने कहा—राजन् ! एकान्तमें तो मैं आपसे कोई भी बात नहीं कहना चाहता, क्योंकि इससे आपके हृदयमें डाह होगी । इसलिये आप महान् तपस्वी भगवान् व्यास और महारानी गान्धारीको भी बुला लीजिये । उन दोनोंके सामने मैं आपको श्रीकृष्ण और अर्जुनका पूरा-पूरा विचार सुना दूँगा ।

सञ्जयके इस प्रकार कहनेपर गान्धारी और श्रीव्यासजीको बुलाया गया और विदुरजी तुरंत ही उन्हें सभामें ले आये ।

तब महामुनि व्यासजी राजा धृतराष्ट्र और सञ्जयका विचार जानकर उनके मतपर दृष्टि रखते हुए कहने लगे, 'सञ्जय ! धृतराष्ट्र तुमसे प्रश्न कर रहे हैं; अतः इनकी आज्ञाके अनुसार तुम श्रीकृष्ण और अर्जुनके विषयमें जो कुछ जानते हो, वह सब ज्यों-का-त्यों सुना दो ।'

सञ्जयने कहा—अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों ही बड़े सम्मानित धनुर्धर हैं। श्रीकृष्णके चक्रका भीतरका भाग पाँच हाथ चौड़ा है और वे उसका इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं । नरकासुर, शम्बर, कंस और शिशुपाल—ये बड़े भयङ्कर वीर थे । किन्तु भगवान् कृष्णने इन्हें खेलहीमें परास्त कर दिया था । यदि एक ओर सारे संसारको और दूसरी ओर श्रीकृष्णको रक्खा जाय तो श्रीकृष्ण ही बलमें अधिक निकलेंगे । वे सङ्कल्पमात्रसे सारे संसारको भस्म कर सकते हैं। श्रीकृष्ण तो वहीं रहते हैं जहाँ सत्य, धर्म, लज्जा और सरलताका निवास होता है और जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं विजय रहती है। वे सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम जनार्दन क्रीडासे ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोकको प्रेरित कर रहे हैं । इस समय सबको अपनी मायासे मोहित करके वे पाण्डवों-

को ही निमित्त बनाकर आपके अधर्मनिष्ठ मूढ पुत्रोंको भस्म करना चाहते हैं । ये श्रीकेशव ही अपनी चिच्छक्तिसे अहर्निश कालचक्र, जगच्चक्र और युगचक्रको घुमाते रहते हैं । मैं सच कहता हूँ—एकमात्र वे ही काल, मृत्यु और सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत्के स्वामी हैं तथा अपनी मायाके द्वारा लोकोंको मोहमें डाले रहते हैं । जो लोग केवल उन्हींकी शरण ले लेते हैं, वे ही मोहमें नहीं पड़ते ।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! श्रीकृष्ण समस्त लोकोंके अधीश्वर हैं—इस बातको तुम कैसे जानते हो और मैं क्यों नहीं जान सका ? इसका रहस्य मुझे बताओ ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! आपको ज्ञान नहीं है और मेरी ज्ञानदृष्टि कभी मन्द नहीं पड़ती । जो पुरुष ज्ञानहीन है, वह श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता । मैं ज्ञानदृष्टिसे प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश करनेवाले अनादि मधुसूदन भगवान्को जानता हूँ ।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! भगवान् कृष्णमें सर्वदा तुम्हारी जो भक्ति रहती है, उसका स्वरूप क्या है ?

सञ्जयने कहा—महाराज ! आपका कल्याण हो, सुनिये । मैं कभी भी कपटका आश्रय नहीं लेता, किसी व्यर्थ धर्मका आचरण नहीं करता, ध्यानयोगके द्वारा मेरा भाव शुद्ध हो गया है; अतः शास्त्रके वाक्योंद्वारा मुझे श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया है ।

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा—भैया दुर्योधन ! सञ्जय हमारे हितकारी और विश्वासपात्र हैं; अतः तुम भी हृषीकेश, जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लो ।

दुर्योधनने कहा—देवकीनन्दन भगवान् कृष्ण भले ही तीनों लोकोंका संहार कर डालें; किन्तु जब वे अपनेको अर्जुनका सखा घोषित कर चुके हैं तो मैं उनकी शरणमें नहीं जा सकता ।

तब धृतराष्ट्रने गान्धारीसे कहा—गान्धारी ! तुम्हारा यह दुर्बुद्धि और अभिमानी पुत्र ईर्ष्यावश सत्पुरुषोंकी बात न मानकर अधोगतिकी ओर जा रहा है ।

गान्धारीने कहा—दुर्योधन ! तू बड़ा ही दुष्टबुद्धि और मूर्ख है । अरे ! तू ऐश्वर्यके लोभमें फँसकर अपने बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है ! मालूम होता है अब तू अपने ऐश्वर्य, जीवन, पिता और माता—सभीसे हाथ धो चुका है । देख ! जब भीमसेन तेरे प्राण लेनेको तैयार होगा, उस समय तुझे अपने पिताजीकी बातें याद आयेंगी ।

फिर व्यासजीने कहा—धृतराष्ट्र ! तुम मेरी बात सुनो । तुम श्रीकृष्णके प्यारे हो । अहो ! तुम्हारा सञ्जय-जैसा दूत है, जो तुम्हें कल्याणके मार्गमें ही ले जायगा । इसे पुराण-पुरुष श्रीहृषीकेशके स्वरूपका पूरा ज्ञान है; अतः यदि तुम इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त कर देगा । जो लोग कामनाओंसे अन्धे हो रहे हैं, वे अन्धेके पीछे लगे हुए अन्धेके समान अपने कर्मोंके अनुसार बार-बार मृत्युके मुखमें जाते हैं । मुक्तिका मार्ग तो सबसे निराला है, उसे बुद्धिमान् पुरुष ही पकड़ते हैं । उसे पकड़कर वे महापुरुष मृत्युसे पार हो जाते हैं और उनकी कहीं भी आसक्ति नहीं रहती ।

तब धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा—भैया सञ्जय ! तुम मुझे कोई ऐसा निर्भय मार्ग बताओ, जिससे चलकर मैं श्रीकृष्णको पा सकूँ और मुझे परमपद प्राप्त हो जाय ।

सञ्जयने कहा—कोई अजितेन्द्रिय पुरुष श्रीहृषीकेश भगवान्को प्राप्त नहीं कर सकता । इसके सिवा उन्हें पानेका कोई और मार्ग नहीं है । इन्द्रियाँ बड़ी उन्मत्त हैं, इन्हें जीतनेका साधन सावधानीसे भोगोंको त्याग देना है । प्रमाद और हिंसासे दूर रहना—निःसन्देह ये ही ज्ञानके मुख्य कारण हैं । इन्द्रियोंको निश्चलरूपसे अपने काबूमें रखना—इसीको विद्वान्लोग ज्ञान कहते हैं । वास्तवमें यही ज्ञान है और यही मार्ग है, जिससे कि बुद्धिमान्लोग उस परमपदकी ओर बढ़ते हैं ।

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! तुम एक बार फिर श्रीकृष्ण-

न्द्रके स्वरूपका वर्णन करो, जिससे कि उनके नाम और र्मोंका रहस्य जानकर मैं उन्हें प्राप्त कर सकूँ।

सञ्जयने कहा—मैंने श्रीकृष्णके कुछ नामोंकी व्युत्पत्ति (तात्पर्य) सुनी है। उसमेंसे जितना मुझे स्मरण है, वह सुनाता हूँ। श्रीकृष्ण तो वास्तवमें किसी प्रमाणके विषय नहीं हैं। समस्त प्राणियोंको अपनी मायासे आवृत किये रहने तथा देवताओंके जन्मस्थान होनेके कारण वे 'वासुदेव' हैं; व्यापक तथा महान् होनेके कारण 'विष्णु' हैं; मौन, ध्यान और योगसे प्राप्त होनेके कारण 'माधव' हैं तथा मधु दैत्यका वध करनेवाले और सर्वतत्त्वमय होनेसे वे 'मधुसूदन' हैं। 'कृष्' धातुका अर्थ सत्ता है और 'ण' आनन्दका वाचक है; इन दोनों भावोंसे युक्त होनेके कारण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए श्रीविष्णु 'कृष्ण' कहे जाते हैं। हृदयरूप पुण्डरीक (श्वेत कमल) ही आपका नित्य आलय और अविनाशी परमस्थान है, इसलिये 'पुण्डरीकाक्ष' कहे जाते हैं तथा दुष्टोंका दमन करनेके कारण 'जनार्दन' हैं; क्योंकि आप सत्त्वगुणसे कभी च्युत नहीं होते और न कभी सत्त्वकी आपमें कमी ही होती है, इसलिये आप सात्वत हैं। आर्ष अर्थात् उपनिषदोंसे प्रकाशित होनेके कारण आप 'आर्षभ' हैं। तथा वेद ही आपके नेत्र हैं, इसलिये आप 'वृषभेक्षण' हैं। आप किसी भी उत्पन्न होनेवाले प्राणीसे उत्पन्न नहीं होते, इसलिये 'अज' हैं। 'उदर'—इन्द्रियोंके स्वयं प्रकाशक और 'दाम'—उनका दमन करनेवाले होनेसे आप 'दामोदर' हैं। 'हृषीक' वृत्तिसुख और स्वरूपसुखको कहते हैं, उसके ईश होनेसे आप 'हृषीकेश' कहलाते हैं। अपनी भुजाओंसे पृथ्वी और आकाशको धारण करनेवाले होनेसे आप 'महाबाहु' हैं। आप कभी अधः (नीचेकी ओर) क्षीण नहीं होते, इसलिये 'अधोक्षज' हैं तथा नरों (जीवों) के अयन (आश्रय) होनेसे 'नारायण' कहे जाते हैं। जो सबमें पूर्ण और सबका आश्रय हो, उसे 'पुरुष' कहते हैं; उनमें श्रेष्ठ होनेसे आप 'पुरुषोत्तम' हैं। आप सत् और असत्—सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा सर्वदा उन सबको जानते हैं, इसलिये 'सर्व' हैं। श्रीकृष्ण सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और सत्य उनमें प्रतिष्ठित है तथा वे सत्यसे भी सत्य हैं; इसलिये 'सत्य' भी उनका नाम है। वे विक्रमण (वामनावतारमें अपने क्रम-डगोंसे विश्वको व्याप्त) करनेके कारण 'विष्णु' हैं, जय करनेके कारण 'जिष्णु' हैं, नित्य होनेके कारण 'अनन्त' हैं और गो अर्थात् इन्द्रियोंके ज्ञाता होनेसे 'गोविन्द' हैं। वे अपनी सत्ता-स्फूर्तिसे असत्यको सत्य-सा दिखाकर सारी प्रजाको मोहमें डाल देते हैं। निरन्तर धर्ममें स्थित रहनेवाले भगवान् मधुसूदनका स्वरूप ऐसा है। वे श्रीअच्युत भगवान् कौरवोंको नाशसे बचानेके लिये यहाँ पधारनेवाले हैं।

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय! जो लोग अपने नेत्रोंसे भगवान्‌के तेजोमय दिव्य विग्रहका दर्शन करते हैं, उन नेत्रवान् पुरुषोंके भाग्यकी मुझे भी लालसा होती है। मैं आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अनन्तकीर्ति तथा ब्रह्मादिसे भी श्रेष्ठ पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी शरण लेता हूँ। जिन्होंने तीनों लोकोंकी रचना की है, जो देवता, असुर, नाग और राक्षस-सभीकी उत्पत्ति करनेवाले हैं तथा राजाओं और विद्वानोंमें प्रधान हैं, उन इन्द्रके अनुज श्रीकृष्णकी मैं शरण हूँ।

कौरवोंकी सभामें दूत बनकर जानेके लिये श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरका संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर सञ्जयके चले जानेपर राजा युधिष्ठिरने यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्णसे कहा, 'मित्रवत्सल श्रीकृष्ण! मुझे आपके सिवा और कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो हमें आपत्तिसे पार करे। आपके भरोसे ही हम बिल्कुल

निर्भय हैं और दुर्योधनसे अपना भाग माँगना चाहते हैं।'

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! मैं तो आपकी सेवामें उपस्थित ही हूँ; आप जो कुछ कहना चाहें, वह कहिये। आप जो-जो आज्ञा करेंगे, वह सब मैं पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र जो कुछ करना चाहते हैं, वह तो आपने सुन ही लिया। सञ्जयने हमसे जो कुछ कहा है, वह सब उन्हींका मत है। क्योंकि दूत तो स्वामीके कथनानुसार ही कहा करता है; यदि वह कोई दूसरी बात कहता है तो प्राणदण्डका अधिकारी समझा जाता है। राजा धृतराष्ट्रको राज्यका बड़ा लोभ है, इसीसे वे हमारे और कौरवोंके प्रति समानभाव न रखकर हमें राज्य दिये बिना ही सन्धि करना चाहते हैं। हम तो यही समझकर कि महाराज धृतराष्ट्र अपने वचनका पालन करेंगे, उनकी आज्ञासे बारह वर्ष वनमें रहे और एक वर्ष अज्ञातवास किया। किन्तु इन्हें तो बड़ा लोभ जान पड़ता है। ये धर्मका कुछ भी विचार नहीं कर रहे हैं तथा अपने मूर्ख पुत्रके मोहपाशमें फँसे होनेके कारण उसीकी आज्ञा बजाना चाहते हैं। हमारे साथ तो इनका बिल्कुल बनावटी बर्ताव है। जनार्दन! जरा सोचिये तो, इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी कि मैं न तो माताजीकी ही सेवा कर सकता हूँ और न अपने सम्बन्धियोंका भरण-पोषण ही। यद्यपि काशिराज, चेदिराज, पञ्चालनरेश, मत्स्यराज और आप मेरे सहायक हैं, तो भी मैं केवल पाँच गाँव ही माँग रहा हूँ। मैंने तो यही कहा है कि अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और पाँचवाँ जो वे चाहें—ऐसे पाँच गाँव या नगर हमें दे दें, जिससे हम पाँचों भाई मिलकर रह सकें और हमारे कारण भरतवंशका नाश न हो। परन्तु दुष्ट दुर्योधन इतना भी करनेको तैयार नहीं है। वह सबपर अपना ही दखल रखना चाहता है। लोभसे बुद्धि मारी जाती है, बुद्धि नष्ट होनेसे लज्जा नहीं रहती, लाजके साथ ही धर्म चला जाता है और धर्म गया कि श्री भी विदा हो जाती है। श्रीहीन पुरुषसे स्वजन, सुहृद् और ब्राह्मणलोग दूर रहने लगते हैं, जैसे पुष्प-फलहीन वृक्षको छोड़कर पक्षी उड़ जाते हैं। निर्धन अवस्था बड़ी ही दुःखमयी है। कोई-कोई तो इस अवस्थामें पहुँचकर मौत ही माँगने लगते हैं। कोई किसी दूसरे गाँव या वनमें जा बसते हैं और कोई मौतके मुखमें ही चले जाते हैं। जो लोग जन्मसे ही निर्धन हैं, उन्हें इसका उतना कष्ट नहीं जान पड़ता जितना कि लक्ष्मी पाकर सुखमें पले हुए लोगोंको धनका नाश होनेपर होता है।

माधव! इस विषयमें हमारा पहला विचार तो यही है कि हम और कौरवलोग आपसमें सन्धि करके शान्तिपूर्वक समानरूपसे उस राज्यलक्ष्मीको भोगें; और यदि ऐसा न हुआ तो अन्तमें हमें यही करना होगा कि कौरवोंको मारकर यह सारा राज्य हम अपने अधीन कर लें। युद्धमें तो सर्वदा कलह ही रहता है और प्राण भी सङ्कटग्रस्त रहते हैं। मैं तो नीतिका आश्रय लेकर ही युद्ध करूँगा; क्योंकि मैं न तो राज्य छोड़ना चाहता हूँ और न कुलका नाश हो, यही मेरी इच्छा है। यों तो हम साम, दान, दण्ड, भेद—सभी उपायोंसे अपना काम कर लेना चाहते हैं; किन्तु यदि थोड़ी नम्रता दिखानेसे सन्धि हो जाय तो वही सबसे बढ़कर बात होगी। और यदि सन्धि न हुई तो युद्ध होगा ही, फिर पराक्रम न करना अनुचित ही होगा। जब शान्तिसे काम नहीं चलता तो स्वतः ही कटुता आ जाती है। पण्डितोंने इसकी उपमा कुत्तोंके कलहसे दी है। कुत्ते पहले पूँछ हिलाते हैं, इसके बाद एक दूसरेका दोष देखने लगते हैं, फिर गुर्राना आरम्भ करते हैं, इसके पश्चात् दाँत दिखाना और भूकना शुरू होता है और फिर युद्ध होने लगता है। उनमें जो बलवान् होता है, वही दूसरेका मांस खाता है। मनुष्योंमें भी इससे कोई विशेषता नहीं है।

श्रीकृष्ण! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि ऐसा समय

उपस्थित होनेपर आप क्या करना उचित समझते हैं। ऐसा कौन उपाय है, जिससे हम अर्थ और धर्मसे वञ्चित न हों। पुरुषोत्तम! इस सङ्कटके समय हम आपको छोड़कर और किससे सलाह लें? भला, आपके समान हमारा प्रिय और हितैषी तथा समस्त कर्मोंके परिणामको जाननेवाला सम्बन्धी कौन है?

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महाराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने कहा, 'मैं दोनों पक्षोंके हितके लिये कौरवोंकी सभामें जाऊँगा और यदि वहाँ आपके लाभमें किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचाते हुए सन्धि करा सकूँगा तो समझूँगा मुझसे बड़ा भारी पुण्यकार्य बन गया।'

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! आप कौरवोंके पास जायँ—इसमें मेरी सम्मति तो है नहीं; क्योंकि आपके बहुत युक्तियुक्त बात कहनेपर भी दुर्योधन उसे मानेगा नहीं। इस समय वहाँ दुर्योधनके वशवर्ती सब राजालोग भी इकट्ठे हो रहे हैं, इसलिये उन लोगोंके बीचमें आपका जाना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता। माधव! आपको कष्ट होनेपर तो हमें धन, सुख, देवत्व और समस्त देवताओंपर आधिपत्य भी प्रसन्न नहीं कर सकेगा।

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! दुर्योधन कैसा पापी है—यह मैं जानता हूँ। किन्तु यदि हम अपनी ओरसे सब बातें स्पष्ट कह देंगे तो संसारमें कोई भी राजा हमें दोषी नहीं कह सकेगा। रही मेरे लिये भयकी बात; सो जिस तरह सिंहके सामने दूसरे जंगली जानवर नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार मैं क्रोध करूँ तो संसारके सारे राजा मिलकर भी मेरा मुकाबला नहीं कर सकते। अतः मेरा वहाँ जाना निरर्थक तो किसी भी तरह नहीं हो सकता। सम्भव है, काम भी बन जाय और यदि काम न भी बना तो निन्दासे तो बच ही जायँगे।

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! यदि आपको ऐसा ही उचित जान पड़ता है तो आप प्रसन्नतासे कौरवोंके पास जाइये। आशा है, मैं आपको अपने कार्यमें सफल होकर यहाँ सकुशल लौटा हुआ देखूँगा। आप वहाँ पधारकर कौरवोंको शान्त करें, जिससे कि हम आपसमें मिलकर शान्तिपूर्वक रह सकें। आप हमें जानते हैं और कौरवोंको भी पहचानते हैं तथा हम दोनोंका हित भी आपसे छिपा नहीं है; इसके सिवा बातचीत करनेमें भी आप खूब कुशल हैं। अतः जिस-जिसमें हमारा हित हो, वे सब बातें आप दुर्योधनसे कह दें।

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने सञ्जय और आप दोनोंहीकी बातें सुनी हैं तथा मुझे कौरव और आप दोनोंहीका अभिप्राय भी मालूम है। आपकी बुद्धि धर्मका आश्रय लिये हुए है और उनकी शत्रुतामें डूबी हुई है। आप तो उसीको अच्छा समझेंगे, जो बिना युद्ध किये मिल जायगा। परन्तु महाराज! यह क्षत्रियका नैष्ठिक (स्वाभाविक) कर्म नहीं है। सभी आश्रमवालोंका कहना है कि क्षत्रियको भीख नहीं माँगनी चाहिये। उसके लिये तो विधाताने यही सनातन धर्म बताया है कि या तो संग्राममें विजय प्राप्त करे या मर जाय। यही क्षत्रियका स्वधर्म है, दीनता उसके लिये प्रशंसाकी चीज नहीं है। राजन्! दीनताका आश्रय लेकर क्षत्रियकी जीविका नहीं चल सकती। अतः आप भी पराक्रमपूर्वक शत्रुओंका दमन कीजिये। धृतराष्ट्रके पुत्र बड़े लोभी हैं। इधर बहुत दिनोंसे साथ रहकर उन्होंने स्नेहका बर्ताव करके अनेकों राजाओंको अपना मित्र बना लिया है। इससे उनकी शक्ति भी बहुत बढ़ गयी है। इसलिये वे आपसे सन्धि कर लें—ऐसी तो कोई सूरत दिखायी नहीं देती। इसके सिवा भीष्म और कृपाचार्य आदिके कारण वे अपनेको बलवान् भी समझते ही हैं। अतः जबतक आप इनके साथ नर्मीका बर्ताव करेंगे, तबतक ये आपके राज्यको हड़पनेका ही प्रयत्न करेंगे। राजन्! ऐसे कुटिल स्वभाव और आचरणवालोंके साथ आप मेल-मिलाप करनेका प्रयत्न न करें; आपहीके नहीं, वे तो सभी लोगोंके वध्य हैं।

जिस समय जूएका खेल हुआ था और पापी दुःशासन असहायके समान रोती हुई द्रौपदीको उसके केश पकड़कर राजसभामें खींच लाया था, उस समय दुर्योधनने भीष्म और द्रोणके सामने भी उसे बार-बार गौ कहकर पुकारा था। उस अवसरपर अपने महापराक्रमी भाइयोंको आपने रोक दिया था। इसीसे धर्मपाशमें बँध जानेके कारण इन्होंने उसका कुछ भी प्रतीकार नहीं किया। किन्तु दुष्ट और अधम पुरुषको तो मार ही डालना चाहिये। अतः आप किसी प्रकारका विचार न करके इसे मार डालिये। हाँ, आप जो पितृतुल्य धृतराष्ट्र और पितामह भीष्मके प्रति नम्रताका भाव दिखा रहे हैं, यह तो आपके योग्य ही है। अब मैं कौरवोंकी सभामें जाकर सब राजाओंके सामने आपके सर्वाङ्गीण गुणोंको प्रकट करूँगा और दुर्योधनके दोष बताऊँगा। मैं वे ही बातें कहूँगा, जो धर्म और अर्थके अनुकूल होंगी। शान्तिके लिये प्रार्थना करनेपर भी आपकी निन्दा नहीं होगी। सब राजा धृतराष्ट्र

और कौरवोंकी ही निन्दा करेंगे। मैं कौरवोंके पास जाकर इस प्रकार सन्धिके लिये प्रयत्न करूँगा, जिससे आपके स्वार्थ-साधनमें भी कोई त्रुटि न आवे तथा उनकी गति-विधिको भी मालूम कर लूँगा। मुझे तो पूरा-पूरा यही भान होता है कि शत्रुओंके साथ हमारा संग्राम ही होगा; क्योंकि मुझे ऐसे ही शकुन हो रहे हैं। अतः आप सभी वीरगण एक निश्चय करके शस्त्र, यन्त्र, कवच, रथ, हाथी और घोड़े तैयार कर लें। इनके सिवा जो और भी युद्धोपयोगी सामग्रियाँ हों, वे सब जुटा लें। यह निश्चय मानें कि जबतक दुर्योधन जीवित है, तबतक वह तो किसी भी प्रकार आपको कुछ देगा नहीं।

श्रीकृष्णके साथ भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकिकी बातचीत

भीमसेनने कहा—मधुसूदन! आप कौरवोंसे ऐसी ही बातें कहें, जिनसे वे सन्धि करनेको तैयार हो जायँ; उन्हें युद्धकी बात सुनाकर भयभीत न करें। दुर्योधन बड़ा ही असहन-शील, क्रोधी, अदूरदर्शी, निठुर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला और हिंसाप्रिय है। वह मर जायगा किन्तु अपनी टेक नहीं छोड़ेगा। जिस प्रकार शरद् ऋतुके बाद ग्रीष्मकाल आनेपर वन दावाग्निसे जल जाते हैं, वैसे ही दुर्योधनके क्रोधसे एक दिन सभी भरतवंशी भस्म हो जायँगे। केशव! कलि, मुदावर्त्त, जनमेजय, बहुल, वसु, अजबिन्दु, रुषर्द्धिक, अर्कज, धौतमूलक, हयग्रीव, वरयु, बाहु, पुरूरवा, सहज, वृषध्वज, धारण, विगाहन और शम—ये अठारह राजा ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने ही सजातीय, सुहृद् और बन्धु-बान्धवोंका संहार कर डाला था। इस समय हम कुरुवंशियोंके संहारका समय आया है, इसीसे कालगतिसे यह कुलाङ्गार पापात्मा दुर्योधन उत्पन्न हुआ है। अतः आप जो कुछ कहें, मधुर और कोमल वाणीमें धर्म और अर्थसे युक्त उनके हितकी ही बात कहें। साथ ही यह भी ध्यान रक्खें कि वह बात अधिकतर उसके मनके अनुकूल ही हो। हम सब तो दुर्योधनके नीचे रहकर बड़ी नम्रतापूर्वक उसका अनुसरण करनेको भी तैयार हैं, हमारे कारणसे भरतवंशका नाश न हो। आप कौरवोंकी सभामें जाकर हमारे वृद्ध पितामह और अन्यान्य सभासदोंसे ऐसा करनेके लिये ही कहें, जिससे भाई-भाइयोंमें मेल बना रहे और दुर्योधन भी शान्त हो जाय।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भीमसेनके मुखसे कभी किसीने नम्रताकी बातें नहीं सुनी थीं। अतः उनके ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण हँस पड़े और फिर भीमसेनको उत्तेजित करते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'भीमसेन! तुम अन्यान्य
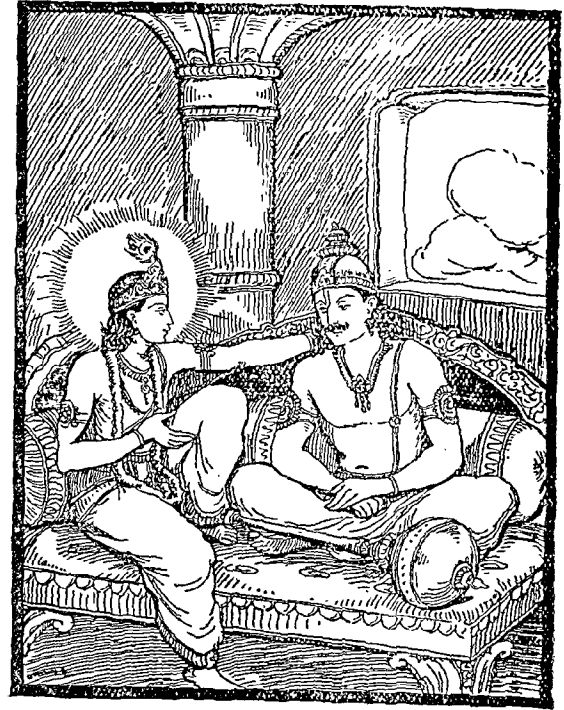
समय तो इन क्रूर धृतराष्ट्रपुत्रोंको कुचलनेकी इच्छासे युद्धकी ही प्रशंसा किया करते थे। तथा तुमने अपने भाइयोंके बीचमें गदा उठाकर यह प्रतिज्ञा भी की थी कि 'मैं यह बात सच-सच कह रहा हूँ, इसमें तनिक भी अन्तर नहीं आ सकता कि संग्रामभूमिमें सामने आनेपर इस गदासे ही मैं द्वेषदूषित दुर्योधनका वध कर डालूँगा।' किन्तु इस समय देखते हैं कि जिस तरह युद्धकाल उपस्थित होनेपर युद्धके लिये उतावले अनेकों अन्य वीरोंका उत्साह ढीला पड़ जाता है, उसी प्रकार तुम भी युद्धसे भय मानने लगे हो। यह तो बड़े ही दुःखकी बात है। इस समय तो नपुंसकोंके समान तुम्हें भी अपनेमें कोई पुरुषार्थ दिखायी नहीं देता। सो हे भरतनन्दन! तुम

अपने कुल, जन्म और कर्मोंपर दृष्टि डालकर खड़े हो जाओ। व्यर्थ ही किसी प्रकारका विषाद मत करो और अपने क्षत्रियोचित कर्मपर डटे रहो। तुम्हारे चित्तमें जो इस समय बन्धुवधके कारण युद्धसे ग्लानिका भाव उत्पन्न हुआ है, वह तुम्हारे योग्य नहीं है; क्योंकि क्षत्रिय जिसे पुरुषार्थद्वारा प्राप्त नहीं करता, उस चीजको वह अपने काममें भी नहीं लाता।

भीमसेनने कहा—वासुदेव ! मैं तो कुछ और ही करना चाहता हूँ, किन्तु आप दूसरी ही बात समझ गये। मेरा बल और पुरुषार्थ अन्य पुरुषोंके पराक्रमसे कुछ भी समता नहीं रखता। अपने मुँह अपनी बड़ाई करना—यह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अच्छी बात नहीं है। परन्तु आपने मेरे पुरुषार्थकी निन्दा की है, इसलिये मुझे अपने बलका वर्णन करना ही पड़ेगा। लोहेके मोटे डंडोंके समान आप मेरे इन भुजदंडोंको तो देखिये। इनके बीचमें पड़कर भी जीवित निकल जाय—ऐसा मुझे कोई दिखायी नहीं देता। जिसपर मैं आक्रमण करूँ, उसकी रक्षा तो इन्द्र भी नहीं कर सकता। पाण्डवोंपर अत्याचार करनेको उद्यत इन समस्त युद्धोत्सुक क्षत्रियोंको मैं पृथ्वीपर गिराकर उनपर लात जमाकर जम जाऊँगा। मैंने जिस प्रकार राजाओंको जीत-जीतकर अपने अधीन किया था, वह क्या आप भूल गये हैं ? यदि सारा संसार मुझपर कुपित होकर टूट पड़े तो भी मुझे भय नहीं होगा। मैंने जो शान्तिकी बातें कही हैं, वे तो केवल मेरा सौहार्द ही है; मैं दयावश ही सब प्रकारके कष्ट सह लेता हूँ और इसीसे चाहता हूँ कि भरतवंशियोंका नाश न हो।

श्रीकृष्णने कहा—भीमसेन ! मैंने भी तुम्हारा भाव जाननेके लिये प्रेमसे ही ये बातें कही हैं, अपनी बुद्धिमानी दिखाने या क्रोधके कारण ऐसा नहीं कहा। मैं तुम्हारे प्रभाव और पराक्रमोंको अच्छी तरह जानता हूँ, इसलिये तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर सकता। अब कल मैं धृतराष्ट्रके पास जाकर आपलोगोंके स्वार्थकी रक्षा करते हुए सन्धिका प्रयत्न करूँगा। यदि उन्होंने सन्धि कर ली तो मुझे तो चिरस्थायी सुयश मिलेगा, आपलोगोंका काम हो जायगा और उनका बड़ा भारी उपकार होगा। और यदि उन्होंने अभिमानवश मेरी बात न मानी तो फिर युद्ध-जैसा भयङ्कर कर्म करना ही होगा। भीमसेन ! इस युद्धका सारा भार तुम्हारे ही ऊपर रहेगा या अर्जुनको इसकी धुरी धारण करनी पड़ेगी तथा और सब लोग तुम्हारी आज्ञामें रहेंगे। युद्ध हुआ तो मैं अर्जुन-का सारथि बनूँगा। अर्जुनकी भी ऐसी ही इच्छा है। इससे तुम यह न समझना कि मैं युद्ध करना नहीं चाहता। इ[illegible] तुमने कायरताकी-सी बातें कीं तो मुझे तुम्हारे [illegible] सन्देह हो गया और मैंने ऐसी बातें कहकर तुम्हारे [illegible] उभाड़ दिया।

अर्जुन कहने लगे—श्रीकृष्ण ! जो कुछ कह[illegible] वह तो महाराज युधिष्ठिर ही कह चुके हैं। किन्तु [illegible] बातें सुनकर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि धृतराष्ट्र[illegible] और मोहके कारण आप सन्धि होनी सहज नहीं सम[illegible] किन्तु यदि कोई काम ठीक रीतिसे किया जाता है [illegible] सफल भी हो ही जाता है। इसलिये आप ऐसा करें, [illegible] शत्रुओंके साथ सन्धि हो ही जाय। अथवा आपकी इच्छा हो, वैसा करें; आपने जो कुछ सोच रक्खा हो, [illegible] वही मान्य है। किन्तु जो धर्मराजके पास लक्ष्मी देखकर सहन न कर सका और कपटद्यूत-जैसे कुटिल उपायसे उ[illegible] राजलक्ष्मी हर ली, वह दुष्टात्मा दुर्योधन क्या अपने पुत्र[illegible] और बान्धवोंके सहित मृत्युके मुखमें भेजे जाने योग्य है ? उस पापीने जिस प्रकार सभाके बीचमें द्रौपदी[illegible] अपमानित करके क्लेश पहुँचाया था, वह तो आपको मालूम है। हमने तो उसे भी सहन कर लिया। किन्तु यह बात [illegible] समझमें बिल्कुल नहीं बैठती कि वही दुर्योधन अब पाण्डव[illegible] साथ अच्छा बर्ताव कर सकेगा। ऊसर भूमिमें बोये [illegible] बीजके अंकुरित होनेकी भी क्या आशा की जा सकती है[illegible] अतः आप जो उचित समझें और जिसमें पाण्डवोंका हित [illegible] वही काम जल्दी आरम्भ कर दें। तथा हमें आगे जो कु[illegible] करना हो, वह भी बता दें।

श्रीकृष्णने कहा—महाबाहु अर्जुन ! तुम जो कु[illegible] कहते हो, ठीक ही है। मैं भी वही काम करूँगा, जिसमें कौर[illegible] और पाण्डवोंका हित होगा। किन्तु प्रारब्धको बदलना त[illegible] मेरे वशकी बात भी नहीं है। दुरात्मा दुर्योधन तो धर्म[illegible] और लोक दोनोंहीको तिलाञ्जलि देकर स्वेच्छाचारी हो[illegible] गया है। ऐसे कर्मोंसे उसे पश्चात्ताप भी नहीं होता। बल्कि[illegible] उसके सलाहकार शकुनि, कर्ण और दुःशासन भी उसकी [illegible] पापमयी कुमतिको ही बढ़ावा देते रहते हैं। इस[illegible] आधा राज्य देकर उसे चैन नहीं पड़ेगा। उसका तो परिवा[illegible] सहित नाश होनेपर ही शान्ति होगी। और अर्जुन ! तुम्हें [illegible] दुर्योधनके मन और मेरे विचारका भी पता है ही। फि[illegible] अनजानकी तरह मुझसे शंका क्यों कर रहे हो ? पृथ्वी[illegible] भार उतारनेके लिये देवतालोग पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं-

इस दिव्य विधानको भी तुम जानते ही हो। फिर बताओ तो उनसे सन्धि कैसे हो सकती है? फिर भी मुझे सब प्रकार धर्मराजकी आज्ञाका पालन तो करना है ही।

अब नकुलने कहा—माधव ! धर्मराजने आपसे कई प्रकारकी बातें कही हैं; वे सब आपने सुन ही ली हैं। भीमसेनने भी सन्धिके लिये ही कहकर फिर आपको अपना बाहुबल भी सुना दिया है। इसी प्रकार अर्जुनने जो कुछ कहा है, वह भी आप सुन ही चुके हैं तथा अपना विचार भी कई बार सुना चुके हैं। सो पुरुषोत्तम! इन सब बातोंको छोड़कर आप शत्रुका विचार जानकर जैसा करना उचित समझें, वही करें। श्रीकृष्ण! हम देखते हैं कि वनवास और अज्ञातवासके समय हमारा विचार दूसरा था और अब दूसरा ही है। वनमें रहते समय हमारा राज्य पानेमें इतना अनुराग नहीं था, जैसा अब है। आप कौरवोंकी सभामें जाकर पहले तो सन्धिकी ही बातें करें, पीछे युद्धकी धमकी दें और इस प्रकार बात करें जिससे मन्दबुद्धि दुर्योधनको व्यथा न हो। भला, विचारिये तो ऐसा कौन पुरुष है जो संग्रामभूमिमें महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव, आप, बलराम-जी, सात्यकि, विराट, उत्तर, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, काशिराज, चेदिराज धृष्टकेतु और मेरे सामने टिक सके। आपके कहनेपर विदुर, भीष्म, द्रोण और बाह्लीक यह बात समझ सकेंगे कि कौरवोंका हित किसमें है। और फिर वे राजा धृतराष्ट्र और सलाहकारोंके सहित पापी दुर्योधनको समझा देंगे।

इसके पश्चात् सहदेवने कहा—महाराजने जो बात कही है, वह तो सनातन धर्म ही है; किन्तु आप तो ऐसा प्रयत्न करें, जिससे युद्ध ही हो। यदि कौरवलोग सन्धि करना चाहें, तो भी आप उनके साथ युद्ध होनेका ही रास्ता निकालें। श्रीकृष्ण! सभामें की हुई द्रौपदीकी दुर्गति देखकर मुझे दुर्योधनपर जो क्रोध हुआ था, वह उसके प्राण लिये बिना कैसे शान्त होगा?

सात्यकिने कहा—महाबाहो ! महामति सहदेवने बहुत ठीक कहा है। इनका और मेरा कोप तो दुर्योधनका वध होनेपर ही शान्त होगा। वीरवर सहदेवने जो बात कही है, वास्तवमें वही सब योद्धाओंका मत है।

सात्यकिके ऐसा कहते ही वहाँ बैठे हुए सब योद्धा भयङ्कर सिंहनाद करने लगे। उन युद्धोत्सुक वीरोंने 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहकर सात्यकिको हर्षित करते हुए सब प्रकार उन्हींके मतका समर्थन किया।

भगवान् कृष्णसे द्रौपदीकी बातचीत तथा उनका हस्तिनापुरके लिये प्रस्थान

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तब महाराज युधिष्ठिरके धर्म और अर्थयुक्त वचन सुनकर तथा भीमसेनको शान्त देखकर द्रुपदनन्दिनी कृष्णा सहदेव और सात्यकिकी प्रशंसा करती हुई रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी, 'धर्मज्ञ मधुसूदन ! दुर्योधनने जिस प्रकार क्रूरताका आश्रय लेकर पाण्डवोंको राजसुखसे वञ्चित किया था, वह तो आपको मालूम ही है तथा सञ्जयको राजा धृतराष्ट्रने एकान्तमें अपना जो विचार सुनाया है, वह भी आपसे छिपा नहीं है। इसलिये यदि दुर्योधन हमारा राज्यका भाग दिये बिना ही सन्धि करना चाहे तो आप उसे किसी प्रकार स्वीकार न करें। इन सृञ्जय वीरोंके साथ पाण्डवलोग दुर्योधनकी रणोन्मत्त सेनासे अच्छी तरह मुकाबला कर सकते हैं। साम या दानके द्वारा कौरवोंसे अपना प्रयोजन सिद्ध होनेकी कोई आशा नहीं है, इसलिये आप भी उनके प्रति कोई ढील-ढाल न करें; क्योंकि जिसे अपनी जीविकाको बचानेकी इच्छा हो, उसे साम या दानसे काबूमें न आनेवाले शत्रुके प्रति दण्डका ही प्रयोग करना चाहिये। अतः अच्युत! आपको भी पाण्डव और सृञ्जय वीरोंको साथ लेकर उन्हें शीघ्र ही बड़ा दण्ड देना चाहिये।

'जनार्दन ! शास्त्रका मत है कि जो दोष अवध्यका वध करनेमें है, वही वध्यका वध न करनेमें भी है। अतः आप भी पाण्डव, यादव और सृञ्जय वीरोंके सहित ऐसा काम करें, जिससे यह दोष आपको स्पर्श न कर सके। भला, बताइये तो मेरे समान पृथ्वीपर कौन स्त्री है! मैं महाराज द्रुपदकी वेदीसे प्रकट हुई अयोनिजा पुत्री हूँ, धृष्टद्युम्नकी बहिन हूँ, आपकी प्रिय सखी हूँ, महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू हूँ और पाँच इन्द्रोंके समान तेजस्वी पाण्डवोंकी पटरानी हूँ। इतनी सम्मानिता होनेपर भी मुझे केश पकड़कर सभामें लाया गया और फिर वहीं पाण्डवोंके सामने और आपके जीवित रहते मुझे अपमानित किया गया! हाय! पाण्डव, यादव और पाञ्चाल वीरोंके दम-में-दम रहते मैं इन पापियोंकी सभामें दासीकी दशामें पहुँच गयी। किन्तु

मुझे ऐसी स्थितिमें देखकर भी पाण्डवोंको न तो क्रोध ही आया और न इन्होंने कोई चेष्टा ही की । इसलिये मैं तो यही कहती हूँ कि यदि दुर्योधन एक मुहूर्त्त भी जीवित रहता है तो अर्जुनकी धनुर्धरता और भीमसेनकी बलवत्ताको धिक्कार है । अतः यदि आप मुझे अपनी कृपापात्री समझते हैं और वास्तवमें मेरे प्रति आपकी दयादृष्टि है तो आप धृतराष्ट्रके पुत्रोंपर पूरा-पूरा कोप कीजिये ।'

इसके पश्चात् द्रौपदी अपने काले-काले लंबे केशोंको बायें हाथमें लिये श्रीकृष्णके पास आयी और नेत्रोंमें जल भरकर

उनसे कहने लगी—'कमलनयन श्रीकृष्ण ! शत्रुओंसे सन्धि करनेकी तो आपकी इच्छा है; किन्तु अपने इस सारे प्रयत्नमें आप दुःशासनके हाथोंसे खींचे हुए इस केशपाशको याद रक्खें । यदि भीम और अर्जुन कायर होकर आज सन्धिके लिये ही उत्सुक हैं तो अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवोंसे संग्राम करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँच महाबली पुत्र उनके साथ जूझेंगे । यदि मैंने दुःशासनकी साँवली भुजाको कटकर धूलिधूसरित होते न देखा तो मेरी छाती कैसे ठंडी होगी ? इस प्रज्वलित अग्निके समान प्रचण्ड क्रोधको हृदयमें रखकर प्रतीक्षा करते मुझे तेरह वर्ष बीत गये हैं । आज भीमसेनके वाग्बाणसे बिंधकर मेरा कलेजा फटा जाता है । हाय ! अभी ये धर्मके ही देखना चाहते हैं !' इतना कहकर विशालाक्षी द्रौपदीक कण्ठ भर आया, आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी, ओठ काँपने लगे और वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

तब विशालबाहु श्रीकृष्णने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—'कृष्णे ! तुम शीघ्र ही कौरवोंकी स्त्रियोंको रुदन करते देखोगी । आज जिनपर तुम्हारा कोप है उन शत्रुओंके स्वजन, सुहृद् और सेनादिके नष्ट हो जानेपर उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोवेंगी । महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेवके सहित मैं भी ऐसा ही काम करूँगा । यदि कालके वशमें पड़े हुए धृतराष्ट्रपुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो युद्धमें मारे जाकर कुत्ते और गीदड़ोंके भोजन बनेंगे । तुम निश्चय मानो—हिमालय भले ही अपने स्थानसे टल जाय, पृथ्वीके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ, तारोंसे भरा हुआ आकाश टूट पड़े, किन्तु मेरी बात झूठी नहीं हो सकती । कृष्णे ! अपने आँसुओंको रोको, मैं सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तुम शीघ्र ही शत्रुओंके मारे जानेसे अपने पतियोंको श्रीसम्पन्न देखोगी ।'

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! इस समय सभी कुरुवंशियोंके आप ही सबसे बड़े सुहृद् हैं । आप दोनों ही पक्षोंके सम्बन्धी और प्रिय हैं । इसलिये पाण्डवोंके साथ कौरवोंका मेल कराकर आपसमें दोनोंकी सन्धि भी करा सकते हैं ।

श्रीकृष्ण बोले—वहाँ जाकर मैं ऐसी ही बातें कहूँगा, जो धर्मके अनुकूल होंगी तथा जिनसे हमारा और कौरवोंका हित होगा । अच्छा, अब मैं राजा धृतराष्ट्रसे मिलनेके लिये जाता हूँ ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रने शरद् ऋतुका अन्त होनेपर हेमन्तका आरम्भ होनेके समय कार्तिक मासमें रेवती नक्षत्र और मैत्र मुहूर्तमें यात्रा आरम्भ की । उस समय उन्होंने अपने पास बैठे हुए सात्यकिसे कहा कि 'तुम मेरे रथमें शङ्ख, चक्र, गदा, तरकस, शक्ति आदि सभी शस्त्र रख दो । इस प्रकार उनका विचार जानकर सेवकलोग रथ तैयार करनेके लिये दौड़ पड़े । उन्होंने नहला-धुलाकर शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके घोड़ोंको रथमें जोता तथा उसकी ध्वजापर पक्षिराज गरुड़ विराजमान हुए । इसके पश्चात् श्रीकृष्ण उसपर चढ़ गये तथा सात्यकिको भी अपने साथ बैठा लिया । फिर जब ग

चला तो उसकी घरघराहटसे पृथ्वी और आकाश गूँज उठे। इस प्रकार उन्होंने हस्तिनापुरको प्रस्थान किया।

भगवान्‌के चलनेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, चेकितान, चेदिराज, धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, पुत्रोंके सहित राजा विराट और केकयराज भी उन्हें पहुँचानेको चले। इस

समय महाराज युधिष्ठिरने सर्वगुणसम्पन्न श्रीश्यामसुन्दरको हृदयसे लगाकर कहा, 'गोविन्द ! हमारी जिस अबला माताने हमें बालकपनसे ही पाल-पोसकर बड़ा किया है, जो निरन्तर उपवास और तपमें लगी रहकर हमारे कुशल-क्षेमका ही प्रयत्न करती रहती है तथा जिसका देवता और अतिथियोंके सत्कार और गुरुजनोंकी सेवामें बड़ा अनुराग है, उससे आप कुशल पूछें। उसे हर समय हमारा शोक सालता रहता है। आप हमारे नाम लेकर हमारी ओरसे उसे प्रणाम कहें। शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! क्या कभी वह समय आवेगा, जब इस दुःखसे छूटकर हम अपनी दुःखिनी माताको कुछ सुख पहुँचा सकेंगे। इसके सिवा राजा धृतराष्ट्र और हमसे वयोवृद्ध राजाओंसे तथा भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सोमदत्त और अन्यान्य भरतवंशियोंसे हमारा यथायोग्य अभिवादन कहें एवं कौरवोंके प्रधान मन्त्री अगाधबुद्धि धर्मज्ञ विदुरजीको मेरी ओरसे आलिङ्गन करें।'

इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी परिक्रमा की और उनसे आज्ञा लेकर लौट आये।

फिर रास्तेमें चलते-चलते अर्जुनने कहा—'गोविन्द ! पहले मन्त्रणाके समय हमलोगोंको आधा राज्य देनेकी बात हुई थी—उसे सब राजालोग जानते हैं। अब दुर्योधन ऐसा करनेके लिये तैयार हो, तब तो बड़ी अच्छी बात है; उसे भी बहुत बड़ी आपत्तिसे छुट्टी मिल जायगी। और यदि ऐसा न किया तो मैं अवश्य ही उसके पक्षके समस्त क्षत्रियवीरोंका नाश कर दूँगा।' अर्जुनकी यह बात सुनकर भीमसेन भी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उससे भयभीत होकर बड़े-बड़े धनुर्धर भी काँपने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्णको अपना निश्चय सुनाकर, उनका आलिङ्गन कर अर्जुन भी लौट आये। इस तरह सभी राजाओंके लौट जानेपर श्रीकृष्ण बड़ी तेजीसे हस्तिनापुरकी ओर चल दिये।

मार्गमें श्रीकृष्णने रास्तेके दोनों ओर खड़े हुए अनेकों महर्षि देखे। वे सब ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान थे। उन्हें देखते ही
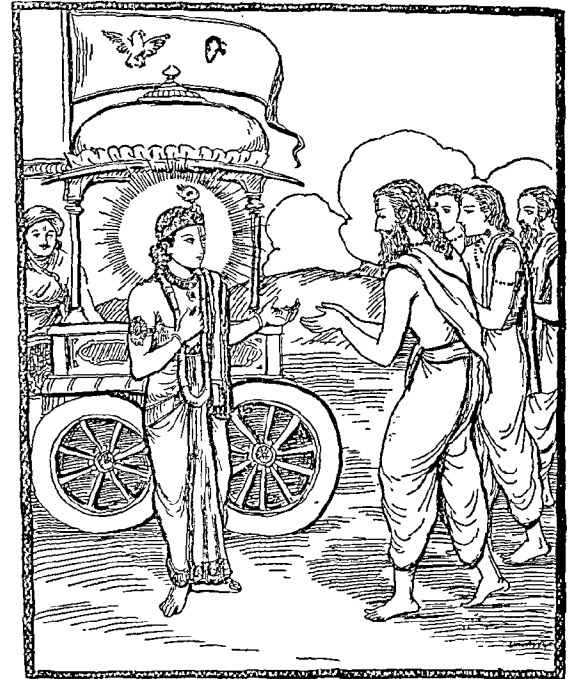
वे तुरंत रथसे उतर पड़े और उन्हें प्रणाम कर बड़े आदरभावसे कहने लगे, 'कहिये, सब लोकोंमें कुशल है ? धर्मका ठीक-ठीक पालन हो रहा है ? आपलोग इस समय किधर जा रहे हैं ? आपका क्या कार्य है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप सब पृथ्वीतलपर किस निमित्तसे पधारे हैं ?'

तब श्रीपरशुरामजीने श्रीकृष्णको गले लगाकर कहा—'यदुपते ! ये सब देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षिलोग प्राचीन कालके अनेकों देवता और असुरोंको देख चुके हैं। इस समय ये हस्तिनापुरमें एकत्रित हुए क्षत्रिय राजाओंको, सभासदोंको और आपको देखनेके लिये जा रहे हैं। यह सब समारोह अवश्य ही बड़ा दर्शनीय होगा। वहाँ कौरवोंकी राजसभामें आप जो धर्म और अर्थके अनुकूल भाषण करेंगे, उसे सुननेकी हमारी इच्छा है। उस सभामें भीष्म, द्रोण और महामति विदुर-जैसे महापुरुष तथा आप भी मौजूद होंगे। उस समय हम आपके और उनके दिव्य वचन सुनना चाहते हैं। वे वचन अवश्य ही बड़े हितकर और यथार्थ होंगे। वीरवर ! आप पधारिये, हम सभामें ही आपके दर्शन करेंगे।'

राजन् ! देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्तिनापुर जाते समय दस महारथी, एक हजार पैदल, एक हजार घुड़सवार, बहुत-सी भोजनसामग्री और सैकड़ों सेवक भी उनके साथ थे। उनके चलते समय जो शकुन और अपशकुन हुए, उन्हें मैं सुनाता हूँ। उस समय बिना ही बादलोंके बड़ी भीषण गर्जना और बिजलीकी कड़क हुई तथा वर्षा होने लगी। पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली छः नदियाँ और समुद्र—ये उलटे बहने लगे। सब दिशाएँ ऐसी अनिश्चित हो गयीं
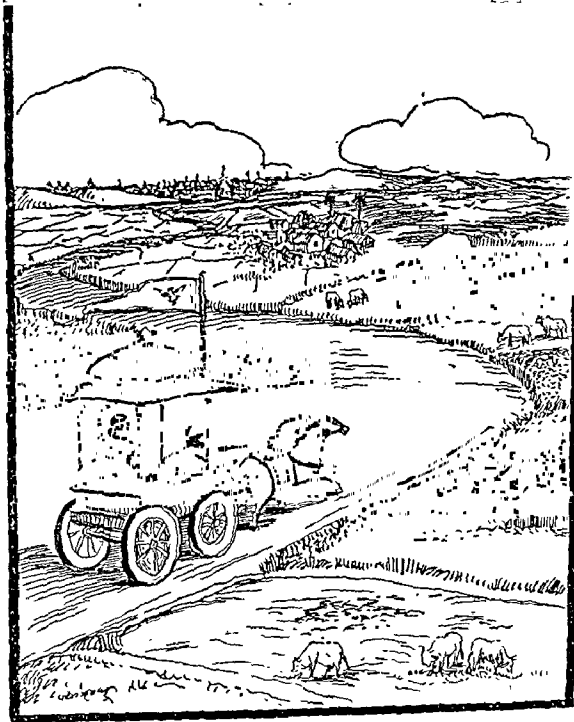
कि कुछ पता ही न लगता था। किन्तु मार्गमें जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण चलते थे, वहाँ बड़ा सुखप्रद वायु चलता था औ शकुन भी अच्छे ही होते थे। जहाँ-तहाँ सहस्रों ब्राह्म उनकी स्तुति करते तथा मधुपर्क और अनेकों माङ्गलि द्रव्योंसे सत्कार करते थे। इस प्रकार मार्गमें अनेकों प और ग्रामोंको देखते तथा अनेकों नगर और राष्ट्रोंको लाँघ वे परम रमणीय शालियवन नामक स्थानमें पहुँचे। वहाँ निवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया इसके पश्चात् सायंकालमें, जब अस्त होते हुए सूर्यक किरणें सब ओर फैल रही थीं, वे वृकस्थल नामके गाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने रथसे उतरकर नियमानुसार शौचादि नित्यकर्म किया और रथ छोड़नेकी आज्ञा देकर सन्ध्यावन्द किया। दारुकने घोड़े छोड़ दिये। फिर भगवान्ने वहाँके निवासियोंसे कहा कि 'हम राजा युधिष्ठिरके कामसे जा रहे हैं और आज रातको यहीं ठहरेंगे।' उनका ऐसा विचार जानकर ग्रामवासियोंने ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया और एक क्षणमें ही खान-पानकी उत्तम सामग्री जुटा दी। फिर उस गाँवमें जो प्रधान-प्रधान ब्राह्मण थे, उन्होंने आकर आशीर्वाद और माङ्गलिक वचन कहते हुए उनका विधिवत

सत्कार किया। इसके पश्चात् भगवान्ने ब्राह्मणोंको सुस्वादु भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया और सब लोगों साथ बड़े आनन्दसे उस रातको वहीं रहे।

हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णके स्वागतकी तैयारियाँ और कौरवोंकी सभामें परामर्श

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर जब दूतोंके द्वारा राजा धृतराष्ट्रको पता लगा कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं तो उन्हें हर्षसे रोमाञ्च हो आया और उन्होंने बड़े आदरसे भीष्म, द्रोण, सञ्जय, विदुर, दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंसे कहा, 'सुना है, पाण्डवोंके कामसे हमसे मिलनेके लिये श्रीकृष्ण आ रहे हैं। वे सब प्रकार हमारे माननीय और पूज्य हैं। सारे लोकव्यवहार उन्हींमें अधिष्ठित हैं, क्योंकि वे समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं; उनमें धैर्य, वीर्य, प्रज्ञा और ओज—सभी गुण हैं। वे सनातन धर्मरूप हैं, इसलिये सब प्रकार सम्मानके योग्य हैं। उनका सत्कार करनेमें ही सुख है, असत्कृत होनेपर वे दुःखके निमित्त बन जाते हैं। यदि हमारे सत्कारसे वे सन्तुष्ट हो गये तो समस्त राजाओंके समान हमारे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जायँगे। दुर्योधन! तुम उनके स्वागत-सत्कारकी आजहीसे तैयारी करो और रास्तेमें सब प्रकारकी आवश्यक सामग्रीसे सम्पन्न विश्रामस्थान बनवाओ। तुम ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीकृष्ण तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो जायँ। भीष्मजी! इस विषयमें आपकी क्या सम्मति है?'

तब भीष्मादि सभी सभासदोंने राजा धृतराष्ट्रके कथनकी प्रशंसा की और कहा कि 'आपका विचार बहुत ठीक है।' उन सबकी अनुमति जानकर दुर्योधनने जहाँ-तहाँ सुन्दर विश्रामस्थान बनवाने आरम्भ कर दिये। जब उसने देवताओंके स्वागतके योग्य सब प्रकारकी तैयारी करा ली तो राजा धृतराष्ट्रको इसकी सूचना दे दी। किन्तु श्रीकृष्णने उन विश्रामस्थान और तरह-तरहके रत्नोंकी ओर दृष्टि भी नहीं डाली।

दुर्योधनसे सब तैयारीकी सूचना पाकर राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीसे कहा—विदुर! श्रीकृष्ण उपप्लव्यसे इस ओर आ रहे हैं। आज उन्होंने वृकस्थलमें विश्राम किया है। कल प्रातःकाल वे यहाँ आ जायँगे। वे बड़े ही उदारचित्त, पराक्रमी और महाबली हैं। यादवोंका जो विस्तृत राज्य है, उसका पालन और रक्षण करनेवाले वे ही हैं। अधिक क्या, वे तो तीनों लोकोंके पितामह ब्रह्माजीके भी पिता हैं। इसलिये हमारी स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध—जितनी प्रजा है, उसे साक्षात् सूर्यके समान श्रीकृष्णके दर्शन करने चाहिये। सब ओर बड़ी-बड़ी ध्वजा और पताकाएँ लगवा दो तथा उनके आनेके मार्गको झड़वा-बुहरवाकर उसपर जल छिड़कवा दो। देखो, दुःशासनका भवन दुर्योधनके महलसे भी अच्छा है। उसे शीघ्र ही साफ कराकर अच्छी तरह सुसज्जित करा दो। उस भवनमें बड़े सुन्दर-सुन्दर कमरे और अट्टालिकाएँ हैं, उसमें सब प्रकारका आराम है और एक ही समय सब ऋतुओंका आनन्द मिल सकता है। मेरे और दुर्योधनके महलोंमें भी जो-जो बढ़िया चीजें हैं, वे सब उसीमें सजा दो तथा उनमेंसे जो-जो पदार्थ श्रीकृष्णके योग्य हों, वे अवश्य उनकी भेंट कर दो।

विदुरजीने कहा—राजन्! आप तीनों लोकोंमें बड़े सम्मानित हैं और इस लोकमें बड़े प्रतिष्ठित तथा माननीय माने जाते हैं। इस समय आप जो बातें कह रहे हैं, वे शास्त्र या उत्तम युक्तिके आधारपर ही कही जान पड़ती हैं। इससे मालूम होता है आपकी बुद्धि स्थिर है। वयोवृद्ध तो आप हैं ही। किन्तु मैं आपको वास्तविक बात बताये देता हूँ। आप धन देकर अथवा किसी दूसरे प्रयत्नद्वारा श्रीकृष्णको अर्जुनसे अलग नहीं कर सकेंगे। मैं श्रीकृष्णकी महिमा जानता हूँ और पाण्डवोंपर उनका जैसा सुदृढ अनुराग है, वह भी मुझसे छिपा नहीं है। अर्जुन तो उन्हें प्राणोंके समान प्रिय है, उसे तो वे छोड़ ही नहीं सकते। वे जलसे भरे हुए घड़े, पैर धोनेके जल और कुशल-प्रश्नके सिवा आपकी और किसी चीजकी ओर तो आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। हाँ, उन्हें अतिथि-सत्कार प्रिय अवश्य है और वे सम्मानके योग्य हैं भी। इसलिये उनका सत्कार तो अवश्य कीजिये। इस समय श्रीकृष्ण दोनों पक्षोंके हितकी कामनासे जिस कामके लिये आ रहे हैं, उसे आप पूरा करें। वे तो पाण्डवोंके साथ आपकी और दुर्योधनकी सन्धि कराना चाहते हैं। उनकी इस बातको आप मान लीजिये। महाराज! आप पाण्डवोंके पिता हैं, वे आपके पुत्र हैं; आप वृद्ध हैं, वे आपके सामने बालक हैं। वे आपके साथ पुत्रोंकी तरह ही बर्ताव कर रहे हैं, आप भी उनके साथ पिताके समान बर्ताव करें।

दुर्योधन बोला—पिताजी! विदुरजीने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। श्रीकृष्णका पाण्डवोंके प्रति बड़ा प्रेम है। उन्हें उधरसे कोई तोड़ नहीं सकता। अतः आप उनके सत्कारके लिये जो तरह-तरहकी वस्तुएँ देना चाहते हैं, वे उन्हें कभी नहीं देनी चाहिये।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर पितामह भीष्मने कहा—

'श्रीकृष्णने अपने मनमें जो कुछ करनेका निश्चय कर लिया होगा, उसे किसी भी प्रकार कोई बदल नहीं सकेगा। इसलिये वे जो कुछ कहें, वही बात निःसंशय होकर करनी चाहिये। तुम श्रीकृष्णरूप सचिवके द्वारा पाण्डवोंसे शीघ्र ही सन्धि कर लो। धर्मप्राण श्रीकृष्ण अवश्य ऐसी ही बातें कहेंगे, जो धर्म और अर्थके अनुकूल होंगी। अतः तुम्हें और तुम्हारे सम्बन्धियोंको उनके साथ प्रियभाषण करना चाहिये।'

दुर्योधनने कहा— पितामह! मुझे यह बात मंजूर नहीं है कि जबतक मेरे शरीरमें प्राण है, तबतक मैं इस राजलक्ष्मीको पाण्डवोंके साथ बाँटकर भोगूँ। जिस महत्कार्यको करनेका मैंने विचार किया है, वह तो यह है कि मैं पाण्डवोंके पक्षपाती कृष्णको कैद कर लूँ। उन्हें कैद करते ही समस्त यादव, सारी पृथ्वी और पाण्डवलोग मेरे अधीन हो जायँगे और वे कल प्रातःकाल यहाँ आ ही रहे हैं। अब आपलोग मुझे ऐसी सलाह दीजिये, जिससे इस बातका कृष्णको पता न लगे और किसी प्रकारकी हानि भी न हो।

श्रीकृष्णके विषयमें दुर्योधनकी यह भयङ्कर बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र और उनके मन्त्रियोंको बड़ी चोट लगी और वे व्याकुल हो गये। फिर उन्होंने दुर्योधनसे कहा—'बेटा! तू अपने मुँहसे ऐसी बात न निकाल। यह सनातन धर्मके विरुद्ध है। श्रीकृष्ण तो दूत बनकर आ रहे हैं। यों भी वे हमारे सम्बन्धी और सुहृद् हैं। उन्होंने कौरवोंका कुछ बिगाड़ा भी नहीं है। फिर वे कैद किये जानेयोग्य कैसे हो सकते हैं?'

भीष्मने कहा—धृतराष्ट्र! मालूम होता है तुम्हारे इस मन्दमति पुत्रको मौतने घेर लिया है। इसके सुहृद् और सम्बन्धी कोई हितकी बात बताते हैं, तो भी यह अनर्थको ही गले लगाना चाहता है। यह पापी तो कुमार्गमें चलता ही है, इसके साथ तुम भी अपने हितैषियोंकी बातपर ध्यान न देकर इसीकी लीकपर चलना चाहते हो। तुम नहीं जानते,
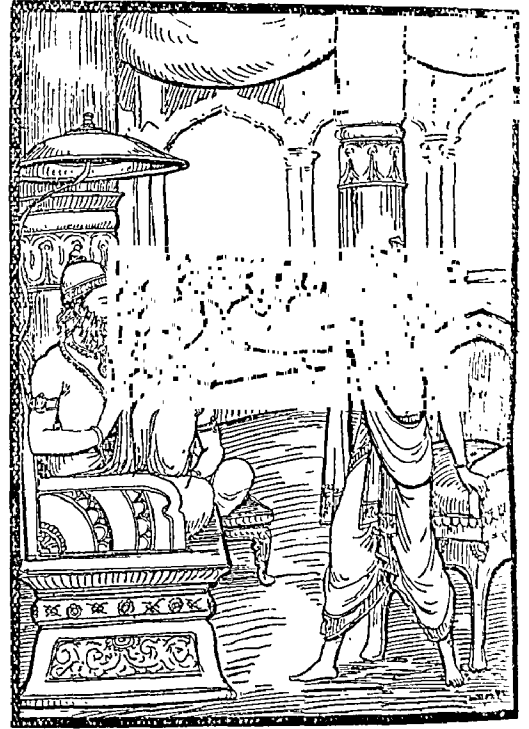
यह दुर्बुद्धि यदि श्रीकृष्णके मुकाबलेमें खड़ा हो गया तो एक क्षणमें ही अपने सब सलाहकारोंके सहित नष्ट हो जायगा। इस पापीने धर्मको तो एकदम तिलाञ्जलि दे दी है, इसका हृदय बड़ा ही कठोर है। मैं इसकी ये अनर्थपूर्ण बातें बिल्कुल नहीं सुन सकता।

ऐसा कहकर पितामह भीष्म अत्यन्त क्रोधमें भरकर उस समय सभासे उठकर चले गये।

श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें प्रवेश तथा राजा धृतराष्ट्र, विदुर और कुन्तीके यहाँ जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर वृकस्थलमें श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हुए और फिर ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। उनके चलनेपर जो ग्रामवासी उन्हें पहुँचाने गये थे, वे उनकी आज्ञा पाकर लौट आये। नगरके समीप पहुँचनेपर दुर्योधनके सिवा और सब धृतराष्ट्रपुत्र तथा भीष्म, द्रोण और कृप आदि खूब बन-ठनकर उनकी अगवानीके लिये आये। उनके सिवा अनेकों नगरनिवासी भी कृष्णदर्शनकी लालसासे पैदल और तरह-तरहकी सवारियोंमें बैठकर चले। रास्तेमें ही भीष्म, द्रोण और सब धृतराष्ट्रपुत्रोंसे भगवान्‌का समागम हो गया और उनसे घिरकर उन्होंने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णके सम्मानके लिये सारा नगर खूब सजाया गया था। राजमार्गमें तो अनेकों बहुमूल्य और दर्शनीय वस्तुएँ बड़े ढंगसे सजायी गयी थीं। श्रीकृष्णको देखनेकी उत्कण्ठाके कारण उस दिन कोई भी स्त्री, बूढ़ा या बालक घरमें नहीं टिका। सभीलोग राजमार्गमें आकर पृथ्वीपर झुक-झुककर श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे।

श्रीकृष्णचन्द्रने इस सारी भीड़को पार करके महाराज राष्ट्रके राजभवनमें प्रवेश किया। यह महल आस-पासके कों भवनोंसे सुशोभित था। इसमें तीन ड्योढ़ियाँ थीं। ँ लाँघकर श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँच गये।
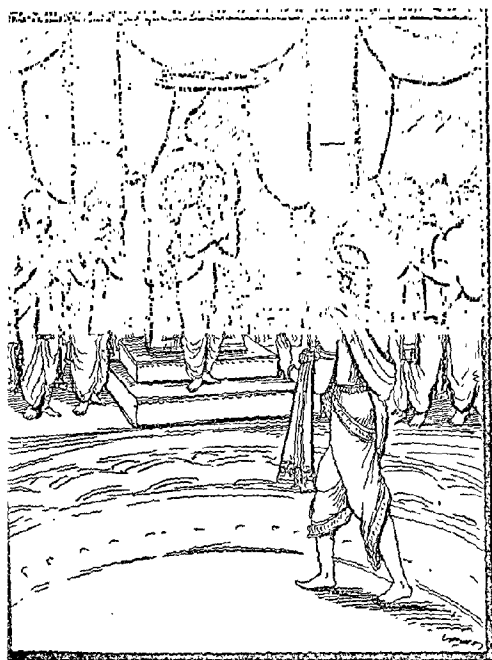
ीयदुनाथके पहुँचते ही कुरुराज धृतराष्ट्र भीष्म, द्रोण आदि ़भी सभासदोंके सहित खड़े हो गये। उस समय कृपाचार्य, ोमदत्त और बाह्लीकने भी अपने आसनोंसे उठकर श्रीकृष्ण-ा सत्कार किया। श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र और पितामह ीष्मके पास जाकर वाणीद्वारा उनका सत्कार किया। इस प्रकार उनकी धर्मानुसार पूजा कर वे क्रमशः सभी राजाओंसे मिले और आयुके अनुसार उनका यथायोग्य सम्मान किया। श्रीकृष्णके लिये वहाँ एक सुन्दर सुवर्णका सिंहासन रक्खा हुआ था। राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वे उसपर विराज गये। महाराज धृतराष्ट्रने भी उनका विधिवत् पूजन करके सत्कार किया।

इसके पश्चात् कुरुराजसे आज्ञा लेकर वे विदुरजीके भव्य भवनमें आये। विदुरजीने सब प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर उनकी अगवानी की और अपने घर लाकर पूजन किया। फिर वे कहने लगे—'कमलनयन! आज आपके दर्शन

करके मुझे जैसा आनन्द हो रहा है, वह मैं आपसे किस प्रकार कहूँ; आप तो समस्त देहधारियोंके अन्तरात्मा ही हैं।' अतिथिसत्कार हो जानेपर धर्मज्ञ विदुरजीने भगवान्‌से पाण्डवोंकी कुशल पूछी। विदुरजी पाण्डवोंके प्रेमी तथा धर्म और अर्थमें तत्पर रहनेवाले थे, क्रोध तो उन्हें स्पर्श भी नहीं करता था। अतः श्रीकृष्णने, पाण्डवलोग जो कुछ करना चाहते थे, वे सब बातें उन्हें विस्तारसे सुना दीं।

इसके बाद दोपहरी बीतनेपर भगवान् कृष्ण अपनी बूआ कुन्तीके पास गये। श्रीकृष्णको आये देख वह उनके गलेसे चिपट गयी और अपने पुत्रोंको याद करके रोने लगी। आज पाण्डवोंके सहचर श्रीकृष्णको भी उसने बहुत दिनोंपर देखा था। इसलिये उन्हें देखकर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। अब अतिथि-सत्कार हो जानेपर श्रीश्यामसुन्दर बैठ गये तो कुन्तीने गद्‌गदकण्ठ होकर कहा, "माधव! मेरे पुत्र बचपनसे ही गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले थे। उनका आपसमें बड़ा स्नेह था, दूसरे लोग उनका आदर करते थे और वे भी सबके प्रति समानभाव रखते थे। किन्तु इन कौरवोंने छल-पूर्वक उन्हें राज्यच्युत कर दिया और अनेकों मनुष्योंके बीचमें

रहनेयोग्य होनेपर भी वे निर्जन वनमें भटकते रहे। वे हर्ष-शोकको वशमें कर चुके थे, ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे और सर्वदा सत्यभाषण करते थे। इसलिये उन्होंने उसी समय राज्य और भोगोंसे मुँह मोड़ लिया और मुझे रोती छोड़कर वनको चल दिये। भैया! जब वे वनको गये थे, मेरे हृदयको तो उसी समय अपने साथ ले गये थे। मैं तो अब बिल्कुल हृदयहीना हूँ। जो बड़ा ही लज्जावान्, सत्यका भरोसा रखनेवाला, जितेन्द्रिय, प्राणियोंपर दया करनेवाला, शील और सदाचारसे सम्पन्न, धर्मज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न और तीनों लोकोंका राजा बनने योग्य है, समस्त कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वह अजातशत्रु युधिष्ठिर इस समय कैसा है? जिसमें दस हजार हाथियोंका बल है, जो वायुके समान वेगवान् है, अपने भाइयोंका नित्य प्रिय करनेके कारण जो उन्हें बहुत प्यारा है, जिसने भाइयोंके सहित कीचक तथा क्रोधवश, हिडिम्ब और बक आदि असुरोंको बात-की-बातमें मार डाला था, अतः जो पराक्रममें इन्द्र और क्रोधमें साक्षात् शङ्करके समान है, उस महाबली भीमका इस समय क्या हाल है? जो तेजमें सूर्य, मनके संयममें महर्षि, क्षमामें पृथ्वी और पराक्रममें इन्द्रके समान है तथा समस्त प्राणियोंको जीतनेवाला और स्वयं किसीके काबूमें आनेवाला नहीं है, वह तुम्हारा भाई और सखा अर्जुन इस समय कैसे है? सहदेव भी बड़ा ही दयालु, लज्जालु, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, मृदुलस्वभाव, धर्मज्ञ और मुझे अत्यन्त प्रिय है। वह धर्म और अर्थमें कुशल तथा अपने भाइयोंकी सेवा करनेमें तत्पर रहता है। उसके शुभ आचरणकी सब भाई बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। इस समय उसकी क्या दशा है? नकुल भी बड़ा सुकुमार, शूरवीर और दर्शनीय युवा है। अपने भाइयोंका तो वह बाह्य प्राण ही है। वह अनेक प्रकारके युद्ध करनेमें कुशल है तथा बड़ा ही धनुर्धर और पराक्रमी है। कृष्ण! इस समय वह कुशलसे है न? पुत्रवधू द्रौपदी तो सभी गुणोंसे सम्पन्न, परम रूपवती और अच्छे कुलकी बेटी है। मुझे वह अपने सब पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय है। वह सत्यवादिनी अपने प्यारे पुत्रोंको भी छोड़कर वनवासी पतियोंकी सेवा कर रही है। इस समय उसका क्या हाल है?

"कृष्ण! मेरी दृष्टिमें कौरव और पाण्डवोंमें कभी कोई भेदभाव नहीं रहा। उसी सत्यके प्रभावसे अब मैं शत्रुओंका नाश होनेपर पाण्डवोंके सहित तुमको राज्यसुख भोगते देखूँगी। परन्तप! जिस समय अर्जुनका जन्म होनेपर मैं सौरीमें थी, उस रात्रिमें मुझे जो आकाशवाणी हुई थी कि 'तेरा यह पुत्र सारी पृथ्वीको जीतेगा, इसका यश स्वर्गतक फैल जायगा, यह महायुद्धमें कौरवोंको मारकर उनका राज्य प्राप्त करेगा और फिर अपने भाइयोंके सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा' उसे मैं दोष नहीं देती; मैं तो सबसे महान् नारायणस्वरूप धर्मको ही नमस्कार करती हूँ। वही सम्पूर्ण जगत्‌का विधाता है और वही सम्पूर्ण प्रजाको धारण करनेवाला है। यदि धर्म सच्चा है तो तुम भी वह सब काम पूरा कर लोगे, जो उस समय देववाणीने कहा था।

"माधव! तुम धर्मप्राण युधिष्ठिरसे कहना कि 'तुम्हारे धर्मकी बड़ी हानि हो रही है; बेटा! तुम उसे इस प्रकार व्यर्थ बरबाद मत होने दो।' कृष्ण! जो स्त्री दूसरोंकी आश्रिता होकर जीवननिर्वाह करे, उसे तो धिक्कार ही है। दीनतासे प्राप्त हुई जीविकाकी अपेक्षा तो मर जाना ही अच्छा है। तुम अर्जुन और नित्य उद्योगशील भीमसेनसे कहना कि 'क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसे करनेका समय आ गया है। ऐसा अवसर आनेपर भी यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो इसे व्यर्थ ही खो दोगे। तुम सब लोकोंमें सम्मानित हो; ऐसे होकर भी यदि तुमने कोई निन्दनीय कर्म कर डाला तो मैं फिर कभी तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी। अरे! समय आ पड़े तो अपने प्राणोंका भी लोभ मत करना।' माद्रीके पुत्र नकुल-सहदेव सर्वदा क्षात्रधर्मपर डटे रहनेवाले हैं। उनसे कहना कि 'प्राणोंकी बाजी लगाकर भी अपने पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंकी ही इच्छा करना; क्योंकि जो मनुष्य क्षात्रधर्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, उसके मनको पराक्रमसे प्राप्त किये हुए भोग ही सुख पहुँचा सकते हैं।'

"शत्रुओंने राज्य छीन लिया—यह कोई दुःखकी बात नहीं है; जूएमें हारना भी दुःखका कारण नहीं है। मेरे पुत्रोंको वनमें रहना पड़ा—इसका भी मुझे दुःख नहीं है। किन्तु इससे बढ़कर दुःखकी और कौन बात हो सकती है कि मेरी युवती पुत्रवधूको, जो केवल एक ही वस्त्र पहने हुए थी, घसीटकर सभामें लाया गया और उसे उन पापियोंके कठोर वचन सुनने पड़े। हाय! उस समय वह मासिक धर्ममें थी। किन्तु अपने वीर पतियोंकी उपस्थितिमें भी वह क्षत्राणी अनाथा-सी हो गयी। पुरुषोत्तम! मैं पुत्रवती हूँ; इसके सिवा मुझे तुम्हारा, बलरामका और प्रद्युम्नका भी पूरा-पूरा आश्रय है। फिर भी मैं ऐसे दुःख भोग रही हूँ। हाय! दुर्धर्ष भीम और युद्धसे पीठ न फेरनेवाले अर्जुनके रहते मेरी यह दशा!"

कुन्ती पुत्रोंके दुःखसे अत्यन्त व्याकुल थी। उसकी ऐसी बातें सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे—'बूआजी ! तुम्हारे समान सौभाग्यवती और कौन स्त्री होगी। तुम राजा शूरसेनकी पुत्री हो और महाराज अजमीढके वंशमें विवाही गयी हो ! तुम सब प्रकारके शुभगुणोंसे सम्पन्न हो और अपने पतिदेवसे भी तुमने बड़ा सम्मान पाया है। तुम वीरमाता और वीरपत्नी हो। तुम-जैसी महिलाएँ ही सब प्रकारके सुख-दुःखोंको सह सकती हैं। पाण्डवलोग निद्रा-तन्द्रा, क्रोध-हर्ष, क्षुधा-पिपासा, शीत-घाम—इन सबको जीतकर वीरोचित आनन्दका भोग करते हैं। उन्होंने और द्रौपदीने आपको प्रणाम कहलाया है और अपनी कुशल कहकर तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है। तुम शीघ्र ही पाण्डवोंको नीरोग और सफलमनोरथ देखोगी। उनके सारे शत्रु मारे जायँगे और वे सम्पूर्ण लोकोंका आधिपत्य पाकर राजलक्ष्मीसे सुशोभित होंगे।'

श्रीकृष्णके इस प्रकार ढाढ़स बँधानेपर कुन्तीने अपने अज्ञानजनित मोहको दूर करके कहा—कृष्ण ! पाण्डवोंके लिये जो-जो हितकी बात हो और उसे जिस-जिस प्रकार तुम करना चाहो उसी-उसी प्रकार करना, जिससे कि धर्मका लोप न हो और कपटका आश्रय न लेना पड़े। मैं तुम्हारे सत्य और कुलके प्रभावको अच्छी तरह जानती हूँ। अपने मित्रोंका काम करनेमें तुम जिस बुद्धि और पराक्रमसे काम लेते हो, वे भी मुझसे छिपे नहीं हैं। हमारे कुलमें तुम मूर्तिमान् धर्म, सत्य और तप ही हो। तुम सबकी रक्षा करनेवाले हो, तुम्हीं परब्रह्म हो और तुममें ही यह सारा प्रपञ्च अधिष्ठित है। तुम जैसा कह रहे हो, तुम्हारे द्वारा वह बात उसी प्रकार सत्य होकर रहेगी।

इसके पश्चात् महाबाहु श्रीकृष्ण कुन्तीसे आज्ञा ले, उसकी प्रदक्षिणा करके दुर्योधनके महलकी ओर गये।

राजा दुर्योधनका निमन्त्रण छोड़कर भगवान्‌का विदुरजीके यहाँ भोजन तथा उनसे बातचीत करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णके पहुँचते

ही दुर्योधन अपने मन्त्रियोंसहित आसनसे खड़ा हो गया। भगवान् दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंसे मिलकर फिर वहाँ एकत्रित हुए सब राजाओंसे उनकी आयुके अनुसार मिले। इसके पश्चात् वे एक अत्यन्त विशद सुवर्णके पलंगपर बैठ गये। स्वागत-सत्कारके अनन्तर राजा दुर्योधनने भोजनके लिये प्रार्थना की, किन्तु श्रीकृष्णने उसे स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधनने श्रीकृष्णसे आरम्भमें मधुर किन्तु परिणाममें शठतासे भरे हुए शब्दोंमें कहा, 'जनार्दन ! हम आपको जो अच्छे-अच्छे खाद्य और पेय पदार्थ तथा वस्त्र और शय्याएँ भेंट कर रहे हैं, उन्हें आप स्वीकार क्यों नहीं करते ! आपने तो दोनों ही पक्षोंको सहायता दी है और आप हित भी दोनोंहीका करना चाहते हैं। इसके सिवा आप महाराज धृतराष्ट्रके सम्बन्धी और प्रिय भी हैं ! धर्म और अर्थका रहस्य भी आप अच्छी तरह जानते ही हैं। अतः इसका क्या कारण है, यह मैं सुनना चाहता हूँ।'

दुर्योधनके इस प्रकार पूछनेपर महामना मधुसूदनने अपनी विशाल भुजा उठाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा—'राजन् ! ऐसा नियम है कि दूत अपना उद्देश्य पूर्ण होनेपर ही भोजनादि ग्रहण करते हैं। अतः जब मेरा काम पूरा हो जाय, तब तुम भी मेरा और मेरे मन्त्रियोंका सत्कार करना। मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, कपट अथवा लोभमें पड़कर

धर्मको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता। भोजन या तो प्रेमवश किया जाता है या आपत्तिमें पड़कर किया जाता है। सो तुम्हारा तो मेरे प्रति प्रेम नहीं है और मैं किसी आपत्तिमें ग्रस्त नहीं हूँ। देखो, पाण्डव तो तुम्हारे भाई ही हैं; वे सदा अपने स्नेहियोंके अनुकूल रहते हैं और उनमें सभी सद्गुण विद्यमान हैं। फिर भी तुम बिना कारण जन्मसे ही उनसे द्वेष करते हो। उनके साथ द्वेष करना ठीक नहीं है। वे तो सर्वदा अपने धर्ममें स्थित रहते हैं। उनसे जो द्वेष करता है, वह तो मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ तो तुम मुझे एकरूप हुआ ही समझो। जो पुरुष काम और क्रोधका गुलाम है तथा मूर्खतावश गुणवानोंसे विरोध और द्वेष करता है, उसीको अधम कहते हैं। तुम्हारे इस सारे अन्नका सम्बन्ध दुष्ट पुरुषोंसे है, इसलिये यह खानेयोग्य नहीं है। मेरा तो यही विचार है कि मुझे केवल विदुरजीका अन्न खाना चाहिये।'

दुर्योधनसे ऐसा कहकर श्रीकृष्ण उसके महलसे निकलकर विदुरजीके घर आ गये। विदुरजीके घरपर ही उनसे मिलनेके लिये भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक तथा कुछ अन्य कुरु-

वंशी आये। उन्होंने कहा—'वार्ष्णेय! हम आपको उत्तम-उत्तम पदार्थोंसे पूर्ण अनेकों भवन समर्पित करते हैं, वहाँ चलकर आप विश्राम कीजिये।' उनसे श्रीमधुसूदनने कहा—'आप सब लोग पधारें, आप मेरा सब प्रकार सत्कार कर चुके।' कौरवोंके चले जानेपर विदुरजीने बड़े उत्साहसे श्रीकृष्णका पूजन किया। फिर उन्होंने उन्हें अनेक प्रकारके उत्तम और गुणयुक्त भोज्य और पेय पदार्थ दिये। उन पदार्थोंसे श्रीकृष्णने पहले ब्राह्मणोंको तृप्त किया और फिर अपने अनुयायियोंके सहित बैठकर स्वयं भोजन किया।

जब भोजनके पश्चात् भगवान् विश्राम करने लगे तो रात्रिके समय विदुरजीने उनसे कहा—"केशव! आप यहाँ आये, यह विचार आपने ठीक नहीं किया। मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनोंहीको छोड़ बैठा है। वह क्रोधी और गुरुजनों-की आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला है; धर्मशास्त्रको तो वह कुछ समझता ही नहीं, अपनी ही हठ रखता है। उसे किसी सन्मार्गमें ले जाना असम्भव ही है। वह विषयोंका कीड़ा, अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाला, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला, सभीको शंकाकी दृष्टिसे देखनेवाला, कृतघ्न और बुद्धिहीन है। इनके सिवा उसमें और भी अनेकों दोष हैं। आप उससे हितकी बात कहेंगे, तो भी वह क्रोधवश कुछ सुनेगा नहीं। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथके कारण उसे इस राज्यको स्वयं ही हड़प जानेका पूरा भरोसा है। इसलिये उसे सन्धि करनेका विचार ही नहीं होता। उसे तो पूरा विश्वास है कि अकेला कर्ण ही मेरे सारे शत्रुओंको जीत लेगा। इसलिये वह सन्धि नहीं करेगा। आप तो सन्धिका प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु धृतराष्ट्रके पु तो यह प्रतिज्ञा कर ली है कि 'पाण्डवोंको उनका भाग नहीं देंगे।' जब उनका ऐसा विचार है तो उनसे कुछ कहना व्यर्थ ही होगा। मधुसूदन! जहाँ अच्छी और दोनों तरहकी बातको एक ही तरह सुना जाय, वहाँ बुद्धि पुरुषको कुछ नहीं कहना चाहिये। वहाँ कोई बात क तो बहरोंके आगे राग अलापनेके समान व्यर्थ ही है।

"श्रीकृष्ण! पहले जिन राजाओंने आपके साथ वैर था, उन सबने अब आपके भयसे दुर्योधनका आश्रय लिया वे सब योद्धा दुर्योधनके साथ मेल करके अपने प्राण निछावर करके पाण्डवोंसे लड़नेको तैयार हैं। अतः उन सबके बीचमें जायँ—यह बात मुझे अच्छी नहीं लगः यद्यपि देवतालोग भी आपके सामने नहीं टिक सकते औ आपके प्रभाव, बल और बुद्धिको अच्छी तरह जानता

तथापि आपके प्रति प्रेम और सौहार्दका भाव होनेके कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। कमलनयन ! आपका दर्शन करके आज मुझे जैसी प्रसन्नता हो रही है, वह मैं आपसे क्या कहूँ ! आप तो सभी देहधारियोंके अन्तरात्मा हैं, आपसे छिपा ही क्या है ?''

श्रीकृष्णने कहा—विदुरजी ! एक महान् बुद्धिमान्को जैसी बात कहनी चाहिये और मुझ-जैसे प्रेमपात्रसे आपको जो कुछ कहना चाहिये तथा आपके मुखसे जैसा धर्म और अर्थसे युक्त सत्य वचन निकलना चाहिये, वैसी ही बात आपने माता-पिताके समान स्नेहवश कही है। मैं दुर्योधनकी दुष्टता और क्षत्रिय वीरोंके वैरभाव आदि सब बातोंको जानकर ही आज कौरवोंके पास आया हूँ। मनुष्यका कर्तव्य है कि वह धर्मतः प्राप्त कार्यको करे। यथाशक्ति प्रयत्न करनेपर भी यदि वह उसे पूरा न कर सके, तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही मिल जायगा—इसमें मुझे सन्देह नहीं है। दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको भी मेरी शुभ, हितकारी और धर्म एवं अर्थके अनुकूल बात माननी ही चाहिये। मैं तो निष्कपटभावसे कौरव, पाण्डव और पृथ्वीतलके समस्त क्षत्रियोंके हितका ही प्रयत्न करूँगा। इस प्रकार हितका प्रयत्न करनेपर भी यदि दुर्योधन मेरी बातमें शंका करे, तो भी मेरा चित्त तो प्रसन्न ही होगा और मैं अपने कर्तव्यसे उऋण भी हो जाऊँगा। 'श्रीकृष्ण सन्धि करा सकते थे, तो भी उन्होंने क्रोधके आवेशमें आये हुए कौरव-पाण्डवोंको रोका नहीं'—यह बात मूढ़ अधर्मी न कहें, इसलिये मैं यहाँ सन्धि करानेके लिये आया हूँ। दुर्योधनने यदि मेरी धर्म और अर्थके अनुकूल हितकी बात सुनकर भी उसपर ध्यान न दिया तो वह अपने कियेका फल भोगेगा।

इसके पश्चात् यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण पलंगपर लेट गये। वह सारी रात महात्मा विदुर और श्रीकृष्णके इसी प्रकार बात करते-करते बीत गयी।

श्रीकृष्णका कौरवोंकी सभामें आना तथा सबको पाण्डवोंका सन्देश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—प्रातःकाल उठकर श्रीकृष्णने स्नान, जप और अग्निहोत्रसे निवृत्त हो उदित होते हुए सूर्यका उपस्थान किया और फिर वस्त्र एवं आभूषणादि धारण किये। इसी समय राजा दुर्योधन और सुबलके पुत्र शकुनिने उनके पास आकर कहा—'महाराज धृतराष्ट्र तथा भीष्मादि सब कौरव महानुभाव सभामें आ गये हैं और आपकी बाट देख रहे हैं।' तब श्रीकृष्णचन्द्रने बड़ी मधुर वाणीमें उन दोनोंका अभिनन्दन किया। इसके पश्चात् सारथिने आकर श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ शुभ्र रथ लाकर खड़ा कर दिया। श्रीयदुनाथ उस रथपर सवार हुए। उस समय कौरव वीर उन्हें सब ओरसे घेरकर चले। भगवान्‌के पीछे उन्हींके रथमें समस्त धर्मोंको जाननेवाले विदुरजी भी सवार हो गये। तथा दुर्योधन और शकुनि एक दूसरे रथमें बैठकर उनके पीछे-पीछे चले। धीरे-धीरे भगवान्का रथ राजसभाके द्वारपर आ गया और वे उससे उतरकर भीतर सभामें गये। जिस समय श्रीकृष्ण विदुर और सात्यकिका

हाथ पकड़कर सभाभवनमें पधारे, उस समय उनकी कान्तिने

समस्त कौरवोंको निस्तेज-सा कर दिया। उनके आगे-आगे दुर्योधन और कर्ण तथा पीछे कृतवर्मा और वृष्णिवंशी वीर चल रहे थे। सभामें पहुँचनेपर उनका मान करनेके लिये राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्म, द्रोण आदि सभी लोग अपने-अपने

आसनोंसे खड़े हो गये। श्रीकृष्णके लिये राजसभामें महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे सर्वतोभद्र नामका सुवर्णमय सिंहासन रक्खा गया था। उसपर बैठकर श्रीश्यामसुन्दर मुसकराते हुए राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण तथा दूसरे राजाओंसे बातचीत करने लगे तथा समस्त कौरव और राजाओंने सभामें पधारे हुए श्रीकृष्णका पूजन किया।

इस समय श्रीकृष्णने सभाके भीतर ही अन्तरिक्षमें नारदादि ऋषियोंको खड़े देखा। तब उन्होंने धीरेसे शान्तनुनन्दन भीष्मजीसे कहा, 'इस राजसभाको देखनेके लिये ऋषि-लोग आये हुए हैं। उनका आसनादि देकर बड़े सत्कारसे आवाहन कीजिये। उनके बिना बैठे यहाँ कोई भी बैठ नहीं सकेगा। इन शुद्धचित्त मुनियोंकी शीघ्र ही पूजा कीजिये।' इतनेहीमें मुनियोंको सभाके द्वारपर आया देख भीष्मजीने बड़ी शीघ्रतासे सेवकोंको आसन लानेकी आज्ञा दी। वे तुरंत ही बहुत-से आसन ले आये। जब ऋषियोंने आसनोंपर बैठकर अर्घ्यादि ग्रहण कर लिया तो श्रीकृष्ण तथा अन्य सब राजा भी अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। महा विदुरजी श्रीकृष्णके सिंहासनसे लगे हुए एक मणि आसनपर, जिसपर श्वेत मृगचर्म बिछा हुआ था, बैठे राजाओंको श्रीकृष्णका बहुत दिनोंपर दर्शन हुआ था; अ जैसे अमृत पीते-पीते कभी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार उन्हें देखते-देखते अघाते नहीं थे। उस सभामें सब मन श्रीकृष्णमें लगा हुआ था, इसलिये किसीके मु कोई भी बात नहीं निकलती थी।

जब सभामें सब राजा मौन होकर बैठ गये श्रीकृष्णने महाराज धृतराष्ट्रकी ओर देखते हुए बड़ी गम्भ वाणीमें कहा—राजन्! मेरा यहाँ आनेका उद्देश्य यह
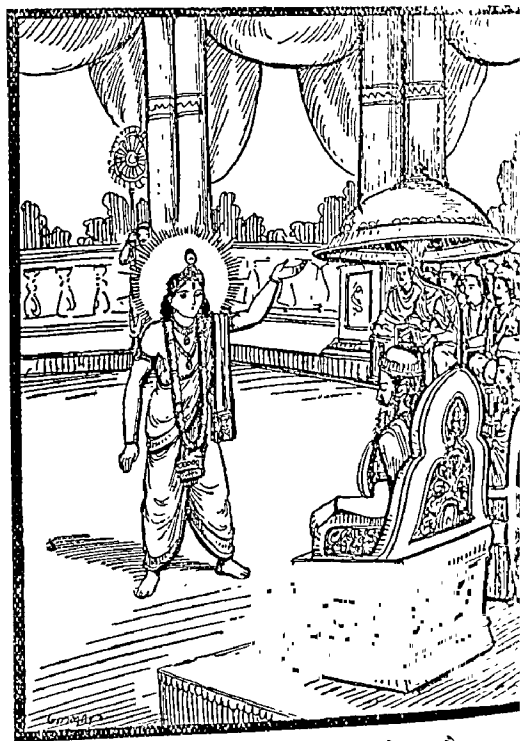
कि क्षत्रिय वीरोंका संहार हुए बिना ही कौरव और पाण्ड में सन्धि हो जाय। इस समय राजाओंमें कुरुवंश ही सबसे माना जाता है। इसमें शास्त्र और सदाचारका सम्यक् आदर है तथा और भी अनेकों शुभ गुण हैं। अन्य राजवंशोंकी अपेक्षा कुरुवंशियोंमें कृपा, दया, करुणा, मृदुता, सरलता, क्षमा और सत्य—ये विशेषरूपसे पाये जाते हैं। इस प्रकारके गुणोंसे गौरवान्वित इस वंशमें आपके कारण यदि कोई अनुचित बात हो तो यह उचित नहीं है। यदि कौरवोंमें गुप्त या प्रकटरूपसे कोई असद्व्यवहार होता है तो उसे रोकना तो आपहीका काम है। दुर्योधनादि आपके पुत्र धर्म और अर्थ

ारसे मुँह फेरकर क्रूर पुरुषोंके-से आचरण करते हैं। अपने स भाइयोंके साथ इनका अशिष्ट पुरुषोंका-सा आचरण तथा चित्तपर लोभका भूत सवार हो जानेसे इन्होंने धर्मकी र्यादाको एकदम छोड़ दिया है। ये सब बातें आपको ालूम ही हैं। यह भयङ्कर आपत्ति इस समय कौरवोंपर ही ायी है और यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह सारी ृथ्वीको चौपट कर देगी। यदि आप अपने कुलको नाशसे चाना चाहें तो अब भी इसका निवारण किया जा सकता है। रे विचारसे इन दोनों पक्षोंमें सन्धि होनी बहुत कठिन हीं है। इस समय शान्ति कराना आपके और मेरे ही हाथमें है। आप अपने पुत्रोंको मर्यादामें रखिये और मैं पाण्डवोंको नियममें रक्खूँगा। आपके पुत्रोंको अपने बाल-बच्चोंसहित आपकी आज्ञामें रहना ही चाहिये। यदि ये आपकी आज्ञामें रहेंगे तो इनका बड़ा भारी हित हो सकता है। महाराज! आप पाण्डवोंकी रक्षामें रहकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये। आपको ऐसे रक्षक प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिल सकते। भरतश्रेष्ठ! जिनके अंदर भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और युयुत्सु-जैसे वीर हों, उनसे युद्ध करनेकी किस बुद्धिहीनकी हिम्मत हो सकती है। कौरव और पाण्डवोंके मिल जानेसे आप समस्त लोकोंका आधिपत्य प्राप्त करेंगे तथा शत्रु आपका कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे; तथा जो राजा आपके समकक्ष या आपसे बड़े हैं, वे भी आपके साथ सन्धि कर लेंगे। ऐसा होनेसे आप अपने पुत्र, पौत्र, पिता, भाई और सुहृदोंसे सब प्रकार सुरक्षित रहकर सुखसे जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि आप पाण्डवोंको ही आगे रखकर इनका पूर्ववत् आदर करेंगे तो इस सारी पृथ्वीका आनन्दसे भोग कर सकेंगे। महाराज! युद्ध करनेमें तो मुझे बड़ा भारी संहार दिखायी दे रहा है। इस प्रकार दोनों पक्षोंका नाश करानेमें आपको क्या धर्म दिखायी देता है। अतः आप इस लोककी रक्षा कीजिये और ऐसा कीजिये, जिसमें आपकी प्रजाका नाश न हो। यदि आप सत्त्वगुणको धारण कर लेंगे तो सबकी रक्षा ठीक हो जायगी।

महाराज! पाण्डवोंने आपको प्रणाम कहा है और आपकी प्रसन्नता चाहते हुए यह प्रार्थना की है कि 'हमने अपने साथियोंके सहित आपकी आज्ञासे ही इतने दिनोंतक दुःख भोगा है। हम बारह वर्षतक वनमें रहे हैं और फिर तेरहवाँ वर्ष जनसमूहमें अज्ञातरूपसे रहकर बिताया है। वनवासकी शर्त होनेके समय हमारा यही निश्चय था कि जब हम लौटेंगे तो आप हमारे ऊपर पिताकी तरह रहेंगे। हमने उस शर्तका पूरी तरह पालन किया है; इसलिये अब आप भी जैसा ठहरा था, वैसा ही बर्ताव कीजिये। हमें अब अपने राज्यका भाग मिल जाना चाहिये। आप धर्म और अर्थका स्वरूप जानते हैं, इसलिये आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। गुरुके प्रति शिष्यका जैसा गौरवयुक्त व्यवहार होना चाहिये, आपके साथ हमारा वैसा ही बर्ताव है। इसलिये आप भी हमारे प्रति गुरुका-सा आचरण कीजिये। हमलोग यदि मार्गभ्रष्ट हो रहे हैं तो आप हमें ठीक रास्तेपर लाइये और स्वयं भी सन्मार्गपर स्थित होइये।' इसके सिवा आपके उन पुत्रोंने इन सभासदोंसे भी कहलाया है कि जहाँ धर्मज्ञ सभासद् हों, वहाँ कोई अनुचित बात नहीं होनी चाहिये। यदि सभासदोंके देखते हुए अधर्मसे धर्मका और असत्यसे सत्यका नाश हो तो उनका भी नाश हो जाता है। इस समय पाण्डवलोग धर्मपर दृष्टि लगाये चुपचाप बैठे हैं। उन्होंने धर्मके अनुसार सत्य और न्याययुक्त बात ही कही है। राजन्! आप पाण्डवोंको राज्य दे दीजिये—इसके सिवा आपसे और क्या कहा जा सकता है? इस सभामें जो राजालोग बैठे हैं, उन्हें कोई और बात कहनी हो तो कहें। यदि धर्म और अर्थका विचार करके मैं सच्ची बात कहूँ तो यही कहना होगा कि इन क्षत्रियोंको आप मृत्युके फंदेसे छुड़ा दीजिये। भरतश्रेष्ठ! शान्ति धारण कीजिये, क्रोधके वश मत होइये और पाण्डवोंको उनका यथोचित पैतृक राज्य दे दीजिये। ऐसा करके आप अपने पुत्रोंके सहित आनन्दसे भोग भोगिये। राजन्! इस समय आपने अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ मान रक्खा है। आपके पुत्रोंपर लोभने अधिकार जमा रक्खा है, आप उन्हें जरा काबूमें रखिये। पाण्डव तो आपकी सेवाके लिये भी तैयार हैं और युद्ध करनेके लिये भी तैयार हैं। इन दोनोंमें आपको जो बात अधिक हितकर जान पड़े, उसीपर डट जाइये।

परशुरामजी और महर्षि कण्वका सन्धिके लिये अनुरोध तथा दुर्योधनकी उपेक्षा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब भगवान् कृष्णने ये सब बातें कहीं तो सभी सभासदोंको रोमाञ्च हो आया और वे चकित-से हो गये। वे मन-ही-मन तरह-तरहसे विचार करने लगे। उनके मुखसे कोई भी उत्तर नहीं निकला। स

राजाओंको इस प्रकार मौन हुआ देख उस सभामें बैठे हुए महर्षि परशुरामजी कहने लगे, "राजन्! तुम सब प्रकारका

सन्देह छोड़कर मेरी एक सत्य बात सुनो। वह तुम्हें अच्छी लगे तो उसके अनुसार आचरण करो। पहले दम्भोद्भव नामका एक सार्वभौम राजा हो गया है। वह महारथी सम्राट् नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे पूछा करता था कि 'क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें कोई ऐसा शस्त्रधारी है, जो युद्धमें मेरे समान अथवा मुझसे बढ़कर हो?' इस प्रकार कहते हुए वह राजा अत्यन्त गर्वोन्मत्त होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरता था। राजाका ऐसा घमंड देखकर कुछ तपस्वी ब्राह्मणोंने उससे कहा, 'इस पृथ्वीपर ऐसे दो सत्पुरुष हैं, जिन्होंने संग्राममें अनेकोंको परास्त किया है। उनकी बराबरी तुम कभी नहीं कर सकोगे।' इसपर उस राजाने पूछा, 'वे वीर पुरुष कहाँ हैं? उन्होंने कहाँ जन्म लिया है? वे क्या काम करते हैं? और वे कौन हैं?' ब्राह्मणोंने कहा, 'वे नर और नारायण नामके दो तपस्वी हैं, इस समय वे मनुष्यलोकमें ही आये हुए हैं; तुम उनके साथ युद्ध करो। वे गन्धमादन पर्वतपर बड़ा ही घोर और अवर्णनीय तप कर रहे हैं।'

"राजाको यह बात सहन नहीं हुई। वह उसी समय बड़ी भारी सेना सजाकर उनके पास चल दिया और गन्धमादनपर जाकर उनकी खोज करने लगा। थोड़ी ही देरमें उ दोनों मुनि दिखायी दिये। उनके शरीरकी शिराएँ दीखने लगी थीं। शीत, घाम और वायुको सहन कर कारण वे बहुत ही कृश हो गये थे। राजा उनके पास ग और चरणस्पर्श कर उनसे कुशल पूछी। मुनियोंने भी फ मूल, आसन और जलसे राजाका सत्कार करके पूछा, 'कहि हम आपका क्या काम करें?' राजाने उन्हें आरम्भसे ही स

बातें सुनाकर कहा कि 'इस समय मैं आपसे युद्ध क लिये आया हूँ। यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिला इसलिये इसे स्वीकार करके ही आप मेरा आतिथ्य कीजि नर-नारायणने कहा, 'राजन्! इस आश्रममें क्रोध-लोभ दोष नहीं रह सकते; यहाँ युद्धकी तो कोई बात ही नहं फिर अस्त्र-शस्त्र या कुटिल प्रकृतिके लोग कैसे रह सकते पृथ्वीपर बहुत-से क्षत्रिय हैं, तुम किसी दूसरी जगह ज युद्धके लिये प्रार्थना करो।' नर-नारायणके इसी प्र बार-बार समझानेपर भी दम्भोद्भवकी युद्धलिप्सा शान्त हुई और इसके लिये उनसे आग्रह करता ही रहा।

"तब भगवान् नरने एक मुट्ठी सींकें लेकर कहा, 'अच्छ तुम्हें युद्धकी बड़ी लालसा है तो अपने हथियार उठा और अपनी सेनाको तैयार करो।' यह सुनकर दम्भोद्भ और उसके सैनिकोंने उनपर बड़े पैने बाणोंकी वर्षा कर

आरम्भ कर दिया। भगवान् नरने एक सींकको अमोघ अस्त्रके रूपमें परिणत करके छोड़ा। इससे यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि मुनिवर नरने उन सब वीरोंके आँख, नाक और कानोंको सींकोंसे भर दिया। इसी प्रकार सारे आकाशको सफेद सींकोंसे भरा देखकर राजा दम्भोद्भव उनके चरणोंमें गिर पड़ा और 'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' इस प्रकार चिल्लाने लगा। तब शरणागतवत्सल नरने शरणापन्न राजासे कहा, 'राजन्! तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो और धर्मका आचरण करो; ऐसा काम फिर कभी मत करना। तुम बुद्धिका आश्रय लो और लोभको छोड़ दो तथा अहंकार-शून्य, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, मृदु और शान्त होकर प्रजाका पालन करो। अब भविष्यमें तुम किसीका अपमान मत करना।'

"इसके बाद राजा दम्भोद्भव उन मुनीश्वरोंके चरणोंमें प्रणाम कर अपने नगरमें लौट आया और अच्छी तरह धर्मानुकूल व्यवहार करने लगा। इस प्रकार उस समय नरने यह बड़ा भारी काम किया था। इस समय नर ही अर्जुन हैं। अतः जबतक वे अपने श्रेष्ठ धनुष गाण्डीवपर बाण न चढ़ावें, तभीतक तुम मान छोड़कर अर्जुनकी शरण ले लो। जो सम्पूर्ण जगत्के निर्माता, सबके स्वामी और समस्त कर्मोंके साक्षी हैं, वे नारायण अर्जुनके सखा हैं। इसलिये युद्धमें उनके पराक्रमको सहना तुम्हारे लिये कठिन होगा। अर्जुनमें अगणित गुण हैं और श्रीकृष्ण तो उससे भी बढ़कर हैं। कुन्तीपुत्र अर्जुनके गुणोंका तो तुम्हें भी कई बार परिचय मिल चुका है। जो पहले नर और नारायण थे, वे ही इस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। इन दोनोंको तुम समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ और बड़े वीर समझो। यदि तुम्हें मेरी बात ठीक जान पड़ती हो और मेरे प्रति किसी प्रकारका सन्देह न हो तो तुम सद्बुद्धिका आश्रय लेकर पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो।"

परशुरामजीका भाषण सुनकर महर्षि कण्व भी दुर्योधनसे कहने लगे—लोकपितामह ब्रह्मा और नर-नारायण—ये अक्षय और अविनाशी हैं। अदितिके पुत्रोंमें केवल विष्णु ही सनातन, अजेय, अविनाशी, नित्य और सबके ईश्वर हैं। उनके सिवा चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह और तारे—ये सभी विनाशका कारण उपस्थित होनेपर नष्ट हो जाते हैं। जब संसारका प्रलय होता है तो ये सभी पदार्थ तीनों लोकोंको त्यागकर नष्ट हो जाते हैं और सृष्टिका आरम्भ होनेपर बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं। इन सब बातोंपर विचार करके तुम्हें धर्मराज युधिष्ठिरके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये, जिससे कौरव और पाण्डव मिलकर पृथ्वीका पालन करें। दुर्योधन! तुम ऐसा मत समझो कि मैं बड़ा बली हूँ। संसारमें बलवानोंकी अपेक्षा भी दूसरे बली पुरुष दिखायी देते हैं। सच्चे शूरवीरोंके सामने सेनाकी शक्ति कुछ काम नहीं करती। पाण्डवलोग तो सभी देवताओंके समान शूरवीर और पराक्रमी हैं। ये स्वयं वायु, इन्द्र, धर्म और दोनों अश्विनीकुमार ही हैं। इन देवताओंकी ओर तो तुम देख भी नहीं सकते। इसलिये इनसे विरोध छोड़कर सन्धि कर लो। तुम्हें इन तीर्थस्वरूप श्रीकृष्णके द्वारा अपने कुलकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ महातपस्वी देवर्षि नारदजी विराजमान हैं। ये श्रीविष्णु-भगवान्के माहात्म्यको प्रत्यक्ष जानते हैं और वे चक्र-गदाधर श्रीविष्णु ही यहाँ श्रीकृष्णरूपमें विद्यमान हैं।

महर्षि कण्वकी यह बात सुनकर दुर्योधन लंबी-लंबी साँस लेने लगा, उसकी त्यौरी चढ़ गयी और वह कर्णकी ओर देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। उस दुष्टने कण्वके कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और ताल ठोककर इस प्रकार कहने लगा, 'महर्षे! जो कुछ होनेवाला है और जैसी मेरी गति होनी है, उसीके अनुसार ईश्वरने मुझे रचा है और वैसा ही मेरा आचरण है। उसमें आपके कथनसे क्या होना है?'

श्रीकृष्णका दुर्योधनको समझाना तथा भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रद्वारा उनका समर्थन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान् वेद-व्यास, भीष्म और नारदजीने भी दुर्योधनको अनेक प्रकारसे समझाया। उस समय नारदजीने जो बातें कही थीं, वे सुनिये। उन्होंने कहा, 'संसारमें सहृदय श्रोता मिलना कठिन है और हितकी बात कहनेवाला सुहृद् भी दुर्लभ है; क्योंकि जिस संकटमें अपने सगे-सम्बन्धी भी साथ छोड़ देते हैं, वहाँ भी सच्चा मित्र संग बना रहता है। अतः कुरुनन्दन! तुम्हें अपने हितैषियोंकी बातपर अवश्य ध्यान देना चाहिये; इस तरह हठ करना ठीक नहीं है, क्योंकि हठका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है।'

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन्! आप जैसा कह रहे हैं, ठीक ही है। मैं भी यही चाहता हूँ, परन्तु ऐसा कर नहीं पाता।

इसके बाद वे श्रीकृष्णसे कहने लगे—'केशव ! आपने जो कुछ कहा है वह सब प्रकार सुखप्रद, सद्गति देनेवाला, धर्मानुकूल और न्यायसंगत है; किन्तु मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मन्दमति दुर्योधन मेरे मनके अनुकूल आचरण नहीं करता और न शास्त्रका ही अनुसरण करता है। आप किसी प्रकार उसे समझानेका प्रयत्न करें। वह गान्धारी, बुद्धिमान् विदुरजी तथा भीष्मादि जो हमारे अन्य हितैषी हैं, उनकी शुभ शिक्षापर भी कुछ ध्यान नहीं देता। अब स्वयं आप ही इस पापबुद्धि, क्रूर और दुरात्मा दुर्योधनको समझाइये। यदि इसने आपकी बात मान ली तो आपके हाथसे अपने सुहृदोंका यह बड़ा भारी काम हो जायगा।'

तब सब प्रकारके धर्म और अर्थके रहस्यको जाननेवाले श्रीकृष्ण मधुर वाणीमें दुर्योधनसे कहने लगे—'कुरुनन्दन ! मेरी बात सुनो। इससे तुम्हें और तुम्हारे परिवारको बड़ा सुख मिलेगा। तुमने बड़े बुद्धिमानोंके कुलमें जन्म लिया है, इसलिये तुम्हें यह शुभ काम कर डालना चाहिये। तुम जो कुछ करना चाहते हो, वैसा काम तो वे लोग करते हैं जो नीच कुलमें पैदा हुए हैं तथा दुष्टचित्त, क्रूर और निर्लज्ज हैं। इस विषयमें तुम्हारी जो हठ है वह बड़ी भयङ्कर, अधर्मरूप और प्राणोंकी प्यासी है। उससे अनिष्ट ही होगा। उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है और न वह सफल ही हो सकती है। इस अनर्थको त्याग देनेपर ही तुम अपना तथा अपने भाई, सेवक और मित्रोंका हित कर सकोगे तथा तुम जो अधर्म और अयशकी प्राप्ति करानेवाला काम करना चाहते हो, उससे छूट जाओगे। देखो, पाण्डवलोग बड़े बुद्धिमान्, शूरवीर, उत्साही, आत्मज्ञ और बहुश्रुत हैं; तुम उनके साथ सन्धि कर लो। इसीमें तुम्हारा हित है और यही महाराज धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति तथा तुम्हारे अधिकांश बन्धु-बान्धवों और मित्रोंको प्रिय भी है। भाई ! सन्धि करनेमें ही सारे संसारकी शान्ति है। तुममें लज्जा, शास्त्रज्ञान और अक्रूरता आदि गुण भी हैं। अतः तुम्हें अपने माता-पिताकी आज्ञामें ही रहना चाहिये। पिता जो कुछ शिक्षा देते हैं, उसे सब लोग हितकारी मानते हैं। जब मनुष्य बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाता है, तब उसे अपने पिताकी सीख ही याद आती है। तुम्हारे पिताजीको तो पाण्डवोंसे सन्धि करना अच्छा मालूम होता है। अतः तुम्हें और तुम्हारे मन्त्रियोंको भी यह प्रस्ताव अच्छा लगना चाहिये। जो पुरुष मोहवश हितकी बात नहीं मानता, दीर्घसूत्रीका कोई काम पूरा नहीं होता और कोरा पश्चा[illegible] ही उसके पल्ले पड़ता है। किन्तु जो हितकी बात सुन[illegible] अपने मतको छोड़ पहले उसीका आचरण करता है, [illegible] संसारमें सुख और समृद्धि प्राप्त करता है। जो पुरुष अ[illegible] मुख्य सलाहकारोंको छोड़कर नीच प्रकृतिके पुरुषोंका [illegible] करता है, वह बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाता है और [illegible] उसे उससे निकलनेका रास्ता नहीं मिलता।

'तात ! तुमने जन्मसे ही अपने भाइयोंके स[illegible] कपटका व्यवहार किया है; तो भी यशस्वी पाण्डव[illegible] तुम्हारे प्रति सद्भाव ही रक्खा है। तुम्हें भी उनके प्रति वै[illegible] ही बर्ताव करना चाहिये। वे तुम्हारे खास भाई ही [illegible] उनपर तुम्हें रोष नहीं रखना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष ऐ[illegible] काम करते हैं जो अर्थ, धर्म और कामकी प्राप्ति करानेवा[illegible] हो; और यदि उससे इन तीनोंकी सिद्धि होनेकी सम्भाव[illegible] नहीं होती तो वे धर्म और अर्थको ही सिद्ध करनेका प्रय[illegible] करते हैं। अर्थ, धर्म और काम—ये तीनों अलग-अलग हैं [illegible] बुद्धिमान् पुरुष इनमेंसे धर्मके अनुकूल रहते हैं, मध्य[illegible] पुरुष अर्थको प्रधान मानते हैं और मूर्ख कलहके हेतुभू[illegible] कामके गुलाम बने रहते हैं। किन्तु जो पुरुष इन्द्रियोंके वशीभू[illegible] होकर लोभवश धर्मको छोड़ देता है, वह दूषित उपायों[illegible] अर्थ और कामप्राप्तिकी वासनामें फँसकर नष्ट हो जाता है। अतः जो मनुष्य अर्थ और कामके लिये उत्सुक हो, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये। विद्वान्लोग धर्मको ही त्रिवर्गकी प्राप्तिका एकमात्र कारण बताते हैं। जो पुरुष अपने साथ सद्व्यवहार करनेवाले लोगोंसे दुर्व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ीसे वनके समान आप ही अपनी जड़ काटता है। मनुष्यको चाहिये कि जिसे नीचा दिखानेकी इच्छा न हो, उसकी बुद्धिको लोभसे भ्रष्ट न करे। इस प्रकार जिसकी बुद्धि लोभसे दूषित नहीं है, उसीका मन कल्याणसाधनमें लग सकता है। ऐसा शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष, पाण्डवोंका तो क्या, संसारमें किन्हीं साधारण मनुष्योंका भी अनादर नहीं करता। किन्तु क्रोधके चंगुलमें फँसा हुआ मनुष्य अपना हिताहित कुछ नहीं समझता। लोक और वेदमें जो बड़े-बड़े प्रमाण प्रसिद्ध हैं, उनसे भी वह गिर जाता है। अतः दुर्जनोंकी अपेक्षा यदि तुम पाण्डवोंका सङ्ग करोगे तो तुम्हारा कल्याण ही होगा। तुम जो पाण्डवोंकी ओरसे मुँह मोड़कर किसी दूसरेके भरोसे अपनी रक्षा करना चाहते हो तथा दुःशासन, कर्ण और

शकुनिके हाथमें अपना ऐश्वर्य सौंपकर पृथ्वीको जीतनेकी आशा रखते हो; सो याद रक्खो—ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थकी प्राप्ति नहीं करा सकते। पाण्डवोंके सामने इनका कुछ भी पराक्रम नहीं चल सकता। तुम्हें साथ रखकर भी ये सब राजा पाण्डवोंकी टक्कर नहीं झेल सकते। तुम्हारे पास यह जितनी सेना इकट्ठी हुई है, यह क्रोधित भीमसेनके मुखकी ओर तो आँख भी नहीं उठा सकती। ये भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा और जयद्रथ मिलकर भी अर्जुनका मुकाबला नहीं कर सकते। अर्जुनको युद्धमें परास्त करना तो समस्त देवता, असुर, गन्धर्व और मनुष्योंके भी वशकी बात नहीं है। इसलिये तुम युद्धमें अपना मन मत लगाओ। अच्छा! भला, तुम ही इन सब राजाओंमें कोई ऐसा वीर दिखाओ जो रणभूमिमें अर्जुनका सामना करके फिर सकुशल घर लौट सकता हो। इसके लिये विराटनगरमें अकेले अर्जुनकी अनेकों महारथियोंसे युद्ध करनेकी जो अद्भुत बात सुनी जाती है, वही पर्याप्त प्रमाण है। अजी! जिसने संग्राममें साक्षात् श्रीशंकरको भी सन्तुष्ट कर दिया, उस अजेय और विजयी वीर अर्जुनको तुम जीतनेकी आशा रखते हो? फिर जब मैं भी उसके साथ हूँ तब तो, साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, ऐसा कौन है जो अपने मुकाबलेमें आये हुए अर्जुनको युद्धके लिये ललकार सके। जो पुरुष युद्धमें अर्जुनको जीतनेकी शक्ति रखता है वह तो अपने हाथोंसे पृथ्वीको उठा सकता है, क्रोधसे सारी प्रजाको भस्म कर सकता है और देवताओंको भी स्वर्गसे गिरा सकता है। तुम तनिक अपने पुत्र, भाई, बन्धु-बान्धव और सम्बन्धियोंकी ओर तो देखो। ये तुम्हारे लिये नष्ट न हों। देखो! कौरवोंका बीज बना रहने दो, इस वंशका पराभव मत करो; अपनेको 'कुलघाती' मत कहलाओ और अपनी कीर्तिको कलङ्कित मत करो। महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज बनायेंगे और इस साम्राज्यपर तुम्हारे पिता धृतराष्ट्रको ही स्थापित करेंगे। देखो, बड़े उत्साहसे अपने पास आती हुई राजलक्ष्मीका तिरस्कार मत करो और पाण्डवोंको आधा राज्य देकर यह महान् ऐश्वर्य प्राप्त कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लोगे और अपने हितैषियोंकी बात मानोगे तो चिरकालतक अपने मित्रोंके साथ आनन्दपूर्वक सुख भोगोगे।'

भरतश्रेष्ठ जनमेजय! श्रीकृष्णका यह भाषण सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनसे कहा—'तात! अपने सुहृदोंका हित चाहनेवाले श्रीकृष्णने जो तुम्हें समझाया है, इसका यही आशय है कि तुम अब भी मान जाओ और व्यर्थ असहिष्णुता छोड़ दो। यदि तुम महामना श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा कभी हित नहीं हो सकता और न तुम सुख ही पा सकोगे। श्रीकेशवने जो कुछ कहा है, वह धर्म और अर्थके अनुकूल है। तुम उसे स्वीकार कर लो, व्यर्थ प्रजाका संहार मत कराओ। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें तथा तुम्हारे मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंको अपने प्राणोंसे भी हाथ धोने पड़ेंगे। भरतनन्दन! श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और विदुरके नीतियुक्त वचनोंका उल्लङ्घन करके तुम अपनेको कुलघ्न, कुपुरुष, कुमति और कुमार्गगामी मत कहलाओ तथा अपने माता-पिताको शोकसागरमें मत डुबाओ।'

इसके बाद द्रोणाचार्यने कहा—'राजन्! श्रीकृष्ण और भीष्मजी बड़े बुद्धिमान्, मेधावी, जितेन्द्रिय, अर्थनिष्ठ और बहुश्रुत हैं। उन्होंने तुम्हारे हितकी ही बात कही है, तुम उसे मान लो और मोहवश श्रीकृष्णका तिरस्कार मत करो। जो लोग तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित कर रहे हैं, उनसे तुम्हारा कुछ भी काम नहीं बन सकेगा; ये तो संग्राममें शत्रुओंके प्रति वैर-विरोधका घण्टा दूसरोंके ही गलेमें बाँधेंगे। तुम अपनी प्रजा और पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंके प्राणोंको संकटमें मत डालो। यह बात निश्चय मानो कि जिस पक्षमें श्रीकृष्ण और अर्जुन होंगे, उसे कोई भी जीत नहीं सकेगा। यदि तुम अपने हितैषियोंकी बात नहीं मानोगे तो पीछे तुम्हें पछतावा ही हाथ लगेगा। परशुरामजीने अर्जुनके विषयमें जो कुछ कहा है, वास्तवमें वह उससे भी बढ़कर है, तथा देवकीनन्दन श्रीकृष्ण तो देवताओंके लिये भी दुःसह हैं। किन्तु राजन्! तुम्हारे सुख और हितकी बात कहनेसे बनता क्या है? अस्तु, तुमसे सब बातें समझाकर कह दी गयीं; अब जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो। मैं तुमसे और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।'

इसी बीचमें विदुरजी भी बोल उठे—'दुर्योधन! तुम्हारे लिये तो मुझे कोई चिन्ता नहीं है; मुझे तो तुम्हारे इन बूढ़े माँ-बापकी ओर देखकर ही शोक होता है, जो तुम्हारे-जैसे दुष्टहृदय पुरुषके संरक्षणमें होनेसे एक दिन अपने सब सलाहकार और सुहृदोंके मारे जानेपर पर कटे हुए पक्षियोंके समान असहाय होकर भटकेंगे।'

अन्तमें राजा धृतराष्ट्र कहने लगे—'दुर्योधन! महात्मा कृष्णने जो बात कही है, वह सब प्रकार कल्याण करनेवाली है। तुम उसपर ध्यान दो और उसीके अनुसार

आचरण करो। देखो, पुण्यकर्मा श्रीकृष्णकी सहायतासे हम सब राजाओंसे अपने अभीष्ट पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं। तुम इनके साथ राजा युधिष्ठिरके पास जाओ और वह काम करो, जिससे सब भरतवंशियोंका मङ्गल हो। मेरी समझमें तो यह सन्धि करनेका ही समय है, तुम इसे हाथसे मत जाने दो। देखो, श्रीकृष्ण सन्धिके लिये प्रार्थना कर रहे हैं और तुम्हारे हितकी बात कह रहे हैं। इस समय यदि तुम इनकी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा पतन किसी प्रकार नहीं रुक सकेगा।'

दुर्योधन और श्रीकृष्णका विवाद, दुर्योधनका सभा-त्याग, धृतराष्ट्रका गान्धारीको बुलाना और उसका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ये अप्रिय बातें सुनकर राजा दुर्योधनने श्रीकृष्णसे कहा, 'केशव! आपको अच्छी तरह सोच-समझकर बोलना चाहिये। आप तो पाण्डवोंके प्रेमकी दुहाई देकर उल्टी-सीधी बातें कहते हुए विशेषरूपसे मुझे ही दोषी ठहरा रहे हैं। सो क्या आप बलाबलका विचार करके ही सर्वदा मेरी निन्दा किया करते हैं? मैं देखता हूँ आप, विदुरजी, पिताजी, आचार्यजी और दादाजी अकेले मेरे ही ऊपर सारे दोष लाद रहे हैं। मैंने तो खूब विचारकर देख लिया, मुझे अपना कोई भी बड़े-से-बड़ा या छोटे-से-छोटा दोष दिखायी नहीं देता। पाण्डवलोग अपने ही शौकसे जूआ खेलनेमें प्रवृत्त हुए थे; उसमें मामा शकुनिने उनका राज्य जीत लिया, इसीसे उन्हें वनमें जाना पड़ा। बताइये, इसमें मेरा क्या अपराध था, जो हमारे साथ वैर ठानकर वे विरोध कर रहे हैं? हम जानते हैं पाण्डवोंमें हमारा सामना करनेकी शक्ति नहीं है, फिर भी बड़े उत्साहके साथ वे हमारे प्रति शत्रुओंका-सा बर्ताव क्यों कर रहे हैं? हम उनके भयानक कर्मोको देखकर या आपलोगोंकी भीषण बातोंको सुनकर डरनेवाले नहीं हैं। इस प्रकार तो हम इन्द्रके सामने भी नहीं झुक सकते। कृष्ण! हमें तो ऐसा कोई भी क्षत्रिय दिखायी नहीं देता, जो युद्धमें हमें जीतनेकी हिम्मत रखता हो। भीष्म, द्रोण, कृप और कर्णको तो देवतालोग भी युद्धमें नहीं जीत सकते; पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? फिर स्वधर्मका पालन करते हुए हम यदि युद्धमें काम ही आ गये तो स्वर्ग प्राप्त करेंगे। यह तो क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है। इस प्रकार यदि हमें युद्धमें वीरगति प्राप्त हुई तो कोई पछतावा नहीं होगा; क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषका धर्म है। ऐसा करते हुए मनुष्य चाहे नष्ट भले ही हो जाय, किन्तु उसे झुकना नहीं चाहिये। मुझ-जैसा वीर पुरुष तो धर्मरक्षाके लिये केवल ब्राह्मणोंको नमस्कार करता है, और किसीको तो कुछ नहीं समझता। यही क्षत्रियका धर्म है और यही मेरा मत है। पिताजी मुझे पहले जो राज्यका भाग दे चुके हैं, उसे मेरे जीवित रहते कोई ले नहीं सकता। मेरी बाल्यावस्थामें अज्ञान या भयके कारण ही पाण्डवोंको राज्य मिल गया था। अब वह उन्हें फिर नहीं मिल सकता। केशव! जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक तो पाण्डवोंको इतनी भूमि भी नहीं दे सकता जितनी कि एक बारीक सूईकी नोकसे छिद सकती है।'

दुर्योधनकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्णकी त्यौरी चढ़ गयी। फिर उन्होंने कुछ देर विचारकर कहा—'दुर्योधन! यदि तुम्हें वीरशय्याकी इच्छा है तो कुछ दिन अपने मन्त्रियोंके सहित धैर्य धारण करो। तुम्हें अवश्य वही मिलेगी और तुम्हारी यह कामना पूर्ण होगी। पर याद रक्खो, बड़ा भारी जन-संहार होगा। और तुम जो ऐसा मानते हो कि पाण्डवोंके साथ मेरा कोई दुर्व्यवहार नहीं हुआ, सो इस विषयमें यहाँ जो राजालोग उपस्थित हैं वे ही विचार करें। देखो, पाण्डवोंके वैभवसे जल-भुनकर तुमने और शकुनिने ही तो जूआ खेलनेकी खोटी सलाह की थी। जूआ तो भले आदमियोंकी बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाला है ही। जो दुष्ट पुरुष इसमें प्रवृत्त होते हैं, उनमें कलह और क्लेशकी ही वृद्धि होती है। और तुमने द्रौपदीको सभामें बुलाकर खुल्लमखुल्ला जैसी-जैसी अनुचित बातें कही थीं, अपनी भाभीके साथ ऐसी कुचाल क्या कोई भी कर सकता है? अपने सदाचारी, अलोलुप और सर्वदा धर्मका आचरण करनेवाले भाइयोंके साथ कौन भला आदमी ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है? उस समय कर्ण, दुःशासन और तुमने क्रूर और नीच पुरुषोंके समान अनेकों कटु शब्द कहे थे। तुमने वारणावतमें बालक पाण्डवोंको उनकी माताके सहित फूँक डालनेका बड़ा भारी यत्न किया था। उस समय पाण्डवोंको बहुत-सा समय अपनी माताके सहित छिपे-छिपे एकचक्रा नगरीमें रहकर बिताना पड़ा था। इसके सिवा विष देने आदि अनेकों उपायोंसे तुम पाण्डवोंको मारनेका यत्न करते रहे हो; परन्तु तुम्हारा कोई उद्योग सफल नहीं हुआ। इस प्रकार पाण्डवोंके प्रति तुम्हारी सर्वदा खोटी बुद्धि

और कपटमय आचरण रहा है । फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि महात्मा पाण्डवोंके प्रति तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यदि तुम पाण्डवोंको उनका पैतृक भाग नहीं दोगे तो पापात्मन् ! याद रक्खो, तुम्हें ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर और उनके हाथसे मरकर वह देना पड़ेगा । तुमने कुटिल पुरुषोंके समान पाण्डवोंके साथ अनेकों न करनेयोग्य काम किये हैं और आज भी तुम्हारी उल्टी चाल ही दिखायी दे रही है । तुम्हारे माता, पिता, पितामह, आचार्य और विदुरजी बार-बार कह रहे हैं कि तुम सन्धि कर लो; फिर भी तुम सन्धि करनेको तैयार नहीं हो ! अपने इन हितैषियोंकी बातको न मानकर तुम कभी सुख नहीं पा सकते । तुम जो काम करना चाहते हो, वह तो अधर्म और अपयशका ही कारण है ।'

जिस समय भगवान् कृष्ण ये सब बातें कह रहे थे, उस समय बीचहीमें दुःशासन दुर्योधनसे इस प्रकार कहने लगा, 'राजन् ! आप यदि अपनी इच्छासे पाण्डवोंके साथ सन्धि नहीं करेंगे तो मालूम होता है ये भीष्म, द्रोण और हमारे पिताजी आपको, मुझे और कर्णको बाँधकर पाण्डवोंके हाथमें सौंप देंगे ।' भाईकी यह बात सुनकर दुर्योधनका क्रोध और भी बढ़ गया और वह साँपकी तरह फुफकार मारता हुआ विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, कृप, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण और श्रीकृष्ण—इन सभीका तिरस्कार कर वहाँसे चलनेको तैयार हो गया । उसे जाते देख उसके भाई, मन्त्री और सब राजालोग भी सभा छोड़कर चल दिये । तब पितामह भीष्मने कहा, 'राजकुमार दुर्योधन बड़ा दुष्टचित्त है । यह दूषित उपायोंका ही आश्रय लेता है । इसे राज्यका झूठा अभिमान है तथा क्रोध और लोभने इसे दबा रक्खा है। श्रीकृष्ण! मैं तो समझता हूँ इन सब क्षत्रियोंका काल आ गया है । इसीसे अपने मन्त्रियोंके सहित ये सब दुर्योधनका अनुसरण कर रहे हैं ।'

भीष्मकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'कौरवोंमें जो वयोवृद्ध हैं, उन सभीकी यह बड़ी भूल है कि वे ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त दुर्योधनको बलात्कारसे कैद नहीं कर लेते । इस विषयमें मुझे जो बात स्पष्टतया हितकी जान पड़ती है, वह मैं आपसे साफ़-साफ़ कहे देता हूँ । आपको यदि वह अनुकूल और रुचिकर जान पड़े तो कीजियेगा । देखिये, भोजराज उग्रसेनका पुत्र कंस बड़ा दुराचारी और दुर्बुद्धि था । उसने पिताके जीवित रहते उनका राज्य छीन लिया था । अन्तमें उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा । अतः आपलोग भी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन—इन चारोंको बाँधकर पाण्डवोंको सौंप दीजिये । कुलकी रक्षाके लिये एक पुरुषको, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलको, देशकी रक्षाके लिये ग्रामको और अपनी रक्षाके लिये सारी पृथ्वीको त्याग देना चाहिये । इसलिये आपलोग भी दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे सन्धि कर लीजिये । इससे आपके कारण इन सब क्षत्रियोंका नाश तो न होगा ।'

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा—'भैया ! तुम परम बुद्धिमती गान्धारीके पास जाओ और उसे यहाँ लिवा लाओ । मैं उसके साथ दुरात्मा दुर्योधनको समझाऊँगा ।' तब विदुरजी दीर्घदर्शिनी गान्धारीको सभामें ले आये। उससे धृतराष्ट्रने कहा, 'गान्धारी !

तुम्हारा यह दुष्ट पुत्र मेरी बात नहीं मानता । इसने अशिष्ट पुरुषोंके समान सब मर्यादा छोड़ दी है। देखो, वह हितैषियों-की बात न मानकर इस समय अपने पापी और दुष्ट साथियोंके सहित सभासे चला गया है ।'

पतिकी यह बात सुनकर यशस्विनी गान्धारीने कहा—राजन् ! आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें तो आप ही अधिक दोषी हैं । आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं । दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें

भी धूलमें मिला दिया था। इनके सिवा ये जरासन्ध, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, बाणासुर तथा और भी अनेकों राजाओंको नीचा दिखा चुके हैं। साक्षात् वरुण, अग्नि और इन्द्र भी इनसे हार मान चुके हैं। अपने अन्य अवतारोंमें ये मधु-कैटभ और हयग्रीवादि अनेकों दैत्योंको पछाड़ चुके हैं। ये सम्पूर्ण प्रवृत्तियोंके प्रेरक हैं, किन्तु स्वयं किसीकी भी प्रेरणासे कोई काम नहीं करते। ये ही सकल पुरुषार्थोंके कारण हैं। ये जो कुछ करना चाहें, वही काम अनायास कर सकते हैं। तुम्हें इनके प्रभावका पता नहीं है। देखो, यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार तुम्हारा नाम-निशान मिट जायगा, जैसे अग्निमें गिरकर पतंगा नष्ट हो जाता है।

विदुरजीका वक्तव्य समाप्त होनेपर भगवान् कृष्णने कहा—'दुर्योधन! तुम जो अज्ञानवश यह समझते हो कि मैं अकेला हूँ और मुझे दबाकर कैद करना चाहते हो, सो याद रक्खो, समस्त पाण्डव और वृष्णि तथा अन्धकवंशीय यादव भी यहीं हैं। वे ही नहीं, आदित्य, रुद्र, वसु और समस्त महर्षिगण भी यहीं मौजूद हैं।' ऐसा कहकर शत्रुदमन श्रीकृष्णने अट्टहास किया। बस, तुरंत ही उनके सब अङ्गोंमें बिजलीकी-सी कान्तिवाले अङ्गुष्ठाकार सब देवता

दिखायी देने लगे। उनके ललाटदेशमें ब्रह्मा, वक्षःस्थलमें रुद्र, भुजाओंमें लोकपाल और मुखमें अग्निदेव थे। आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रके सहित मरुद्गण, विश्वेदेव तथा यक्ष, गन्धर्व और राक्षस—ये सब उनके शरीरसे अभिन्न जान पड़ते थे। उनकी दोनों भुजाओंसे बलभद्र और अर्जुन प्रकट हुए। उनमें धनुर्धर अर्जुन दाहिनी ओर और हलधर बलराम बायीं ओर थे। भीम, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव उनके पृष्ठभागमें थे तथा प्रद्युम्नादि अन्धक और वृष्णिवंशी यादव अस्त्र-शस्त्र लिये उनके आगे दीख रहे थे। उस समय श्रीकृष्णके अनेकों भुजाएँ दिखायी देती थीं। उनमें वे शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग धनुष, हल और नन्दक खड्ग लिये हुए थे। उनके नेत्र, नासिका और कर्णरन्ध्रोंसे बड़ी भीषण आगकी लपटें तथा रोमकूपोंमेंसे सूर्यकी-सी किरणें निकल रही थीं।

श्रीकृष्णके इस भयङ्कर रूपको देखकर सब राजाओंने भयभीत होकर नेत्र मूँद लिये। केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और ऋषिलोग ही उसका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्‌ने उन्हें दिव्य दृष्टि दे दी थी। सभाभवनमें भगवान्‌का यह अद्भुत कृत्य देखकर देवताओंकी दुन्दुभियोंका शब्द होने लगा तथा आकाशसे पुष्पोंकी झड़ी लग गयी। तब राजा धृतराष्ट्रने कहा, 'कमलनयन! सारे संसारके हितकर्ता आप ही हैं, अतः आप हमपर कृपा कीजिये। मेरी प्रार्थना है कि इस समय मुझे दिव्य नेत्र प्राप्त हों; मैं केवल आपहीके दर्शन करना चाहता हूँ, फिर किसी दूसरेको देखनेकी मेरी इच्छा नहीं है।' इसपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा, 'कुरुनन्दन! तुम्हारे अदृश्यरूपसे दो नेत्र हो जायँ।' जब सभामें बैठे हुए राजा और ऋषियोंने देखा कि महाराज धृतराष्ट्रको नेत्र प्राप्त हो गये हैं तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। उस समय पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्रमें खलबली पड़ गयी और सब राजा भौंचक्के-से रह गये। फिर भगवान्‌ने उस स्वरूपको तथा अपनी दिव्य, अद्भुत और चित्र-विचित्र मायाको समेट लिया। इसके पश्चात् वे ऋषियोंसे आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकड़े सभाभवनसे चल दिये। उनके चलते ही नारदादि ऋषि भी अन्तर्धान हो गये।

श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंके सहित सब कौरव भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। किन्तु श्रीकृष्णने उन राजाओंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इतनेहीमें दारुक उनका दिव्य रथ सजाकर ले आया। भगवान् रथपर सवार हुए।

उनके साथ ही महारथी कृतवर्मा भी चढ़ता दिखायी दिया। इस प्रकार जब वे जाने लगे तो महाराज धृतराष्ट्रने कहा, 'जनार्दन! पुत्रोंपर मेरा बल कितना काम करता है—यह आपने प्रत्यक्ष ही देख लिया। मैं तो चाहता हूँ कि किसी प्रकार कौरव-पाण्डवोंमें मेल हो जाय और इसके लिये प्रयत्न भी करता हूँ। किन्तु अब मेरी दशा देखकर आप मुझपर सन्देह न करें।'

इसपर भगवान् कृष्णने राजा धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, कृपाचार्य और बाह्लीकसे कहा—'इस समय कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ है, वह आपने प्रत्यक्ष देख लिया तथा यह बात भी आप सबके सामनेहीकी है कि मन्दबुद्धि दुर्योधन किस प्रकार फुनककर सभासे चला गया था। महाराज धृतराष्ट्र भी इस विषयमें अपनेको असमर्थ बता रहे हैं। अतः अब मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ और राजा युधिष्ठिरके पास जाता हूँ।' इस प्रकार आज्ञा लेकर जब भगवान् रथमें चढ़कर चलने लगे तो भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और युयुत्सु आदि कौरव वीर कुछ दूर उनके पीछे गये। इसके बाद उन सबके देखते-देखते भगवान् अपनी बूआ कुन्तीसे मिलने गये।

कुन्तीका विदुलाकी कथा सुनाकर पाण्डवोंके लिये सन्देश देना तथा श्रीकृष्णका उससे विदा होकर पाण्डवोंके पास जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान्ने कुन्तीके घर जाकर उसका चरणस्पर्श किया तथा कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था, वह सङ्क्षेपमें सुना दिया। उन्होंने कहा, 'बूआजी! मैंने और ऋषियोंने तरह-तरहकी युक्तियोंसे अनेकों मानने योग्य बातें कहीं; किन्तु दुर्योधनने किसीपर ध्यान नहीं दिया। दुर्योधनके अनुयायी इन सब वीरोंके सिरपर काल मँडरा रहा है। अब मैं तुमसे आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि मुझे शीघ्र ही पाण्डवोंके पास जाना है। बताओ, तुम्हारी ओरसे मैं पाण्डवोंसे क्या कह दूँ?'

कुन्तीने कहा—केशव! मेरी ओरसे तुम राजा युधिष्ठिरसे कहना कि पृथ्वीका पालन करना तुम्हारा धर्म है। उसकी बड़ी हानि हो रही है। सो अब तुम इसे वृथा मत खोना। बेटा! क्षत्रियोंको प्रजापति ब्रह्माने अपनी भुजाओंसे उत्पन्न किया है, अतः उन्हें अपने बाहुबलसे ही आजीविका करनी चाहिये। पूर्वकालमें कुबेरने राजा मुचुकुन्दको यह सारी पृथ्वी दे दी थी, परन्तु मुचुकुन्दने इसे स्वीकार नहीं किया। जब उसने अपने बाहुबलसे इसे प्राप्त किया, तभी क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर उसने इसका यथावत् शासन भी किया। राजासे सुरक्षित रहकर प्रजा जो कुछ धर्म करती है, उसका चतुर्थांश राजाको मिलता है। यदि राजा धर्मका आचरण करता है तो देवलोक प्राप्त करता है और अधर्म करता है तो नरकमें पड़ता है। यदि वह दण्ड-नीतिका भी ठीक-ठीक प्रयोग करे तो उससे चारों वर्णोंके लोग अधर्म करनेसे रुककर धर्ममार्गमें प्रवृत्त होते हैं। वास्तवमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंका कारण राजा ही है। इस समय अपनी बुद्धिसे तुम जिस सन्तोषको लिये बैठे हो, उसे तो तुम्हारे पिता पाण्डुने, मैंने अथवा तुम्हारे पितामहने भी कभी नहीं चाहा। मैं सर्वदा तुम्हारे यज्ञ, दान, तप, शौर्य, प्रज्ञा, सन्तानोत्पत्ति, महत्ता, बल और ओजकी ही कामना करती रही हूँ। धर्मात्मा पुरुषको चाहिये कि वह राज्य प्राप्त करके किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मिष्टभाषणसे अपने अधीन करे। ब्राह्मण भिक्षा-वृत्तिसे रहे, क्षत्रिय प्रजापालन करे, वैश्य धनसंग्रह करे और शूद्र इन सबकी सेवा करे। तुम्हारे लिये भिक्षावृत्ति निषिद्ध है और कृषि करना भी उचित नहीं है। तुम क्षत्रिय हो, प्रजाको भयसे बचानेवाले हो; बाहुबल ही तुम्हारी आजीविका-का साधन है। महाबाहो! तुम्हारे जिस पैतृक अंशको शत्रुओंने हड़प लिया है तुम्हें साम, दान, दण्ड, भेद या नीति आदि किसी भी उपायसे उसका उद्धार करना चाहिये। इससे बढ़-कर दुःखकी बात क्या होगी कि तुम-सा पुत्र पाकर भी मैं दूसरोंके टुकड़ोंपर दृष्टि लगाये रहती हूँ। अतः क्षात्रधर्मके अनुसार तुम युद्ध करो।

कृष्ण! इस प्रसङ्गमें मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाती हूँ। उसमें विदुला और उसके पुत्रका संवाद है। विदुला क्षत्राणी थी। वह बड़ी यशस्विनी, तेज स्वभाववाली, कुलीना, संयमशीला और दीर्घदर्शिनी थी। राजसभाओंमें उसकी अच्छी ख्याति थी और शास्त्रका भी उसे अच्छा ज्ञान था। एक बार उसका औरस पुत्र सिन्धुराजसे परास्त होकर बड़ी दीन दशामें पड़ा हुआ था। उस समय उसने उसे फटकारते हुए कहा, "अरे अप्रियदर्शी! तू मेरा पुत्र नहीं है और न तूने अपने पिताके

वीर्यसे ही जन्म लिया है। तू तो शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला है। तुझमें जरा भी आत्माभिमान नहीं है, इसलिये क्षत्रियोंमें तो तू गिना ही नहीं जा सकता। तेरे अवयव और बुद्धि आदि भी नपुंसकोंके-से हैं। अरे! प्राण रहते तू निराश हो गया! यदि तू कल्याण चाहता है तो युद्धका भार उठा। तू अपने आत्माका निरादर न कर और अपने मनको स्वस्थ करके भयको त्याग दे। कायर! खड़ा हो जा। हार खाकर पड़ा मत रह। इस प्रकार तो तू अपना मान खोकर शत्रुओंको आनन्दित कर रहा है। इससे तेरे सुहृदोंका तो शोक बढ़ रहा है। देख, प्राण जानेकी नौबत आ जाय तो भी पराक्रम नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे बाज निःशङ्क होकर आकाशमें उड़ता रहता है, वैसे ही तू भी रणभूमिमें निर्भय विचर। इस समय तो तू इस प्रकार पड़ा है, जैसे कोई बिजलीका मारा हुआ मुर्दा हो। बस, तू खड़ा हो जा; शत्रुओंसे हार खाकर पड़ा मत रह। तू साम, दान और भेदरूप मध्यम, अधम और नीच उपायोंका आश्रय मत ले। दण्ड ही सर्वश्रेष्ठ है। उसीका आश्रय लेकर शत्रुके सामने डटकर गर्जना कर। वीर पुरुष रणभूमिमें जाकर उच्च कोटिका मानवोचित पराक्रम दिखाकर अपने धर्मसे उऋण होता है। वह अपनी निन्दा नहीं करता। विद्वान् पुरुष, फल मिले या न मिले, इसके लिये चिन्ता नहीं करता। वह तो निरन्तर पुरुषार्थसाध्य कर्म करता रहता है। उसे अपने लिये धनकी भी इच्छा नहीं होती। तू या तो अपना पुरुषार्थ बढ़ाकर जय लाभ कर, नहीं तो वीरगतिको प्राप्त हो। इस प्रकार धर्मको पीठ दिखाकर किसलिये जी रहा है? अरे नपुंसक! इस तरह तो तेरे इष्ट-पूर्त आदि कर्म और सुयश—सभी मिट्टीमें मिल गये हैं तथा तेरे भोगका साधन जो राज्य था, वह भी नष्ट हो गया है; फिर तू किसलिये जी रहा है?

"दान, तप, सत्य, विद्या और धनसंग्रहका प्रसङ्ग चलनेपर जिस पुरुषका सुयश नहीं गाया जाता, वह तो अपनी माताकी विष्ठा ही है। सच्चा मर्द तो वही है जो अपनी विद्या, तप, ऐश्वर्य और पराक्रमसे दूसरे लोगोंको दंग कर देता है। तुझे भिक्षावृत्तिकी ओर नहीं ताकना चाहिये। वह तो अकीर्तिकारिणी, दुःखदायिनी और कायरोंके कामकी है। अरे सञ्जय! मालूम होता है, पुत्ररूपसे मैंने कलियुगको ही जन्म दिया है। तुझमें जरा भी स्वाभिमान, उत्साह या पुरुषार्थ नहीं है। तुझे देखकर शत्रुओंको ही सुख होता है। कोई भी कामिनी ऐसे कुपुत्रको उत्पन्न न करे। जो अपने हृदयको लोहेके समान करके राज्य और धनादिकी खोज करता है और शत्रुओंके सामने डटा रहता है, वही पुरुष है। जो स्त्रियोंकी तरह किसी प्रकार अपना पेट पाल लेता है, उसे 'पुरुष' कहना व्यर्थ ही है। यदि शूरवीर, तेजस्वी, बली और सिंहके समान पराक्रम करनेवाला राजा वीरगति पा जाता है, तो भी उसके राज्यमें प्रजाको प्रसन्नता ही होती है। जिस प्रकार सभी प्राणियोंकी जीविका मेघके अधीन है, उसी प्रकार ब्राह्मणलोग तथा तेरे सुहृदोंकी जीविका तुझपर ही निर्भर होनी चाहिये।

"जा, किसी पर्वतीय किलेमें जाकर रह और शत्रुके ऊपर आपत्काल आनेकी प्रतीक्षा कर। वह अजर-अमर तो है ही नहीं। बेटा! तेरा नाम तो सञ्जय है, किन्तु मुझे तुझमें ऐसा कोई गुण दिखायी नहीं देता! तू संग्राममें जय प्राप्त करके अपने नामको सार्थक कर। जब तू बालक था, उस समय एक भूत-भविष्यको जाननेवाले बुद्धिमान् ब्राह्मणने तुझे देखकर कहा था कि 'यह एक बार बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर फिर उन्नति करेगा।' उस बातको याद करके मुझे तेरी विजयकी पूर्ण आशा है, इसीसे मैं तुझसे कह रही हूँ और फिर भी बराबर कहती रहूँगी। शम्बर मुनिका कथन है कि जहाँ 'आज भोजन नहीं है, न कलके लिये ही कोई प्रबन्ध है'—ऐसी चिन्ता रहती है, उससे बढ़कर बुरी कोई दशा नहीं है; सञ्जय!

जब तू देखेगा कि आजीविका न रहनेसे तेरे काम-काज करनेवाले दास, सेवक, आचार्य, ऋत्विज् और पुरोहित तुझे छोड़कर चले गये हैं तो तेरा वह जीवन किस कामका होगा ? पहले मैंने या मेरे पतिने कभी किसी ब्राह्मणसे 'नहीं' नहीं कहा। अब यदि मुझे 'नहीं' कहना पड़ा तो मेरा हृदय फट जायगा। हम सदा दूसरोंको आश्रय देते रहे हैं। दूसरेकी आज्ञा सुननेकी हमें आदत नहीं है। यदि मुझे किसी दूसरेके आसरे जीवन काटना पड़ा तो मैं प्राण त्याग दूँगी। देख, यदि तूने जीवनका लोभ न किया तो तेरे सभी शत्रु परास्त किये जा सकते हैं। तू युवा है तथा विद्या, कुल और रूपसे सम्पन्न है। यदि तुझ-जैसा यशस्वी और जगद्विख्यात पुरुष ऐसा विपरीत आचरण करे और अपने कर्त्तव्य-भारको न उठावे तो मैं इसे मृत्यु ही समझती हूँ। यदि मैं तुझे शत्रुके साथ चिकनी-चुपड़ी बातें बनाते या उसके पीछे-पीछे चलते देखूँगी तो मेरे हृदयको कैसे शान्ति होगी ? इस कुलमें ऐसा कोई पुरुष नहीं जन्मा, जो अपने शत्रुका पिछलग्गू होकर रहा हो। भैया ! तुझे शत्रुका सेवक होकर जीना किसी प्रकार उचित नहीं है। जिस पुरुषने क्षत्रियकुलमें जन्म लिया है और जिसे क्षात्रधर्मका ज्ञान है, वह भयसे अथवा आजीविकाके लिये कभी किसीके सामने नहीं झुक सकता। वह महामना वीर तो मतवाले हाथीके समान रणभूमिमें विचरता है और केवल धर्मरक्षाके लिये सर्वदा ब्राह्मणके सामने ही झुकता है।'

पुत्र कहने लगा—माँ ! तुम वीरोंकी-सी बुद्धिवाली, किन्तु बड़ी ही निठुर और क्रोध करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय तो मानो लोहेका ही गढ़कर बनाया गया है। अहो ! क्षत्रियोंका धर्म बड़ा ही कठिन है, जिसके कारण स्वयं तुम्हीं दूसरेकी माताके समान अथवा जैसे किसी दूसरेसे कह रही हो, इस प्रकार मुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हो। मैं तो तुम्हारा इकलौता पुत्र हूँ। फिर भी तुम मुझसे ऐसी बात कह रही हो ! जब तुम मुझीको नहीं देखोगी तो इस पृथ्वी, गहने, भोग और जीवनसे भी तुम्हें क्या सुख होगा ? फिर तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पुत्र मैं तो संग्राममें काम आ जाऊँगा।

माताने कहा—सञ्जय ! समझदारोंकी सब अवस्थाएँ धर्म या अर्थके लिये ही होती हैं। उनपर दृष्टि रखकर ही मैं तुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हूँ। यह तेरे लिये कोई दर्शनीय कर्म करके दिखानेका समय आया है। इस अवसरपर यदि तूने कुछ पराक्रम न दिखाया तथा अपने शरीर या शत्रुके प्रति कड़ाईसे काम न लिया तो तेरा बड़ा तिरस्कार होगा। इस तरह जब तेरे अपयशका अवसर सिरपर नाच रहा है, उस समय यदि मैं तुझसे कुछ न कहूँ तो लोग मेरे प्रेमको गधीका-सा कहेंगे तथा उसे सामर्थ्यहीन और निष्कारण बतावेंगे। अतः तू सत्पुरुषोंसे निन्दित तथा मूर्खोंसे सेवित मार्गको छोड़ दे। जिसका आश्रय प्रजाने ले रक्खा है, वह तो बड़ी भारी अविद्या ही है। मुझे तो तू तभी प्रिय लगेगा, जब तेरा आचरण सत्पुरुषोंके योग्य होगा। जो पुरुष विनयहीन, शत्रुपर चढ़ाई न करनेवाले, दुष्ट और दुर्बुद्धि पुत्र या पौत्रको पाकर भी सुख मानता है, उसका सन्तान पाना व्यर्थ है। जो अपना कर्तव्यकर्म नहीं करते बल्कि निन्दनीय कर्मका आचरण करते हैं, उन अधम पुरुषोंको तो न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। प्रजापतिने क्षत्रियोंको तो युद्ध करने और विजय प्राप्त करनेके लिये ही रचा है। युद्धमें जय या मृत्यु प्राप्त करनेसे क्षत्रिय इन्द्रलोक प्राप्त कर लेता है। शत्रुओंको वशमें करके क्षत्रिय जिस सुखका अनुभव करता है, वह तो इन्द्रभवन या स्वर्गमें भी नहीं है।

पुत्र बोला—माताजी ! यह ठीक है, किन्तु तुम्हें अपने पुत्रके प्रति तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये। उसपर जड और मूकवत् होकर तुम्हें दयादृष्टि ही रखनी चाहिये।

माताने कहा—बेटा ! जिस प्रकार तू मुझे मेरा कर्तव्य बता रहा है, उसी प्रकार मैं तुझे तेरा कर्त्तव्य सुझा रही हूँ। जब तू सिन्धुदेशके सब योद्धाओंका संहार कर डालेगा, तभी मैं तेरी प्रशंसा करूँगी। मैं तो तेरी कठिनतासे प्राप्त होनेवाली विजय ही देखना चाहती हूँ।

पुत्रने कहा—माताजी ! मेरे पास न तो खजाना है और न कोई सहायक ही है; फिर मेरी जय कैसे होगी ? इस विकट परिस्थितिका विचार करके मैं तो स्वयं ही राज्यकी आशा छोड़ बैठा हूँ, ठीक वैसे ही जैसे पापी पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा नहीं रखता। यदि इस स्थितिमें भी तुम्हें कोई उपाय दिखायी देता हो तो मुझे बताओ; मैं, जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगा।

माता बोली—बेटा ! यदि आरम्भसे ही अपने पास वैभव न हो तो इसके लिये अपना तिरस्कार न करे। ये धन-सम्पत्ति पहले न होकर पीछे हो जाते हैं तथा होकर नष्ट हो जाते हैं। अतः डाहवश किसी भी प्रकार अर्थसंग्रहकी ही नादानी नहीं करनी चाहिये। उसके लिये तो बुद्धिमान् पुरुषको धर्मानुसार ही प्रयत्न करना चाहिये। कर्मोंके फलके साथ तो सदा ही अनित्यता लगी हुई है।

कभी उनका फल मिलता है और कभी नहीं मिलता, तो भी मतिमान् पुरुष कर्म किया ही करते हैं। जो कर्म ही नहीं करते, उन्हें तो कभी फल नहीं मिल सकता। अतः प्रत्येक मनुष्यको यह निश्चय रखकर कि 'मेरा अभीष्ट कर्म सिद्ध होगा ही' उसे करनेके लिये खड़ा हो जाना चाहिये, सावधान रहना चाहिये और ऐश्वर्यप्राप्तिके कामोंमें जुटे रहना चाहिये। कर्ममें प्रवृत्त होते समय पुरुषको माङ्गलिक कर्म करने चाहिये तथा ब्राह्मण और देवताओंका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजाकी उन्नति होती है। जो लोग लोभी, शत्रुके द्वारा दलित और अपमानित तथा उससे डाह करनेवाले हैं, उन्हें तू अपने पक्षमें कर ले। ऐसा करनेसे तू अपने बहुत-से शत्रुओंका नाश कर सकेगा। उन्हें पहलेहीसे वेतन दे, रोज सबेरे ही उठ और सबके साथ प्रियभाषण कर। ऐसा करनेसे वे अवश्य तेरा प्रिय करेंगे। जब शत्रुको यह मालूम हो जाता है कि मेरा प्रतिपक्षी प्राणपणसे युद्ध करेगा तो उसका उत्साह ढीला पड़ जाता है।

कैसी भी आपत्ति आनेपर राजाको घबराना नहीं चाहिये। यदि घबराहट हो भी तो घबराये हुएके समान आचरण नहीं करना चाहिये। राजाको भयभीत देखकर प्रजा, सेना और मन्त्री भी डरकर अपना विचार बदल लेते हैं। उनमेंसे कोई तो शत्रुओंसे मिल जाते हैं, कोई छोड़कर चले जाते हैं और कोई, जिनका पहले अपमान किया होता है, राज्य छीननेको तैयार हो जाते हैं। उस समय केवल वे ही लोग साथ देते हैं, जो उसके गहरे मित्र होते हैं; किन्तु हितैषी होनेपर भी शक्तिहीन होनेके कारण वे कुछ कर नहीं पाते।

मैं तेरे पुरुषार्थ और बुद्धिबलको जानना चाहती थी, इसीसे तेरा उत्साह बढ़ानेके लिये तुझसे ये आश्वासनकी बातें कही हैं। यदि तुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं ठीक कह रही हूँ तो विजय प्राप्त करनेके लिये कमर कसकर खड़ा हो जा। हमारे पास अभी बड़ा भारी खजाना है। उसे मैं ही जानती हूँ, और किसीको उसका पता नहीं है। वह मैं तुझे सौंपती हूँ। सञ्जय! अभी तो तेरे सैकड़ों सुहृद् हैं। वे सभी सुख-दुःखको सहन करनेवाले और संग्राममें पीठ न दिखानेवाले हैं।

राजा सञ्जय छोटे मनका आदमी था। किन्तु माताके ऐसे वचन सुनकर उसका मोह नष्ट हो गया। उसने कहा—'मेरा यह राज्य शत्रुरूप जलमें डूब गया है; अब मुझे इसका उद्धार करना है, नहीं तो मैं रणभूमिमें प्राण दे दूँगा। अहा! मुझे भावी वैभवका दर्शन करानेवाली तुम-जैसी पथप्रदर्शिका माता मिली है! फिर मुझे क्या चिन्ता है? मैं तो तुम्हारी बातें सुनना चाहता था, इसीसे बीच-बीचमें कुछ कहकर फिर मौन हो जाता था। तुम्हारे अमृतके समान वचन बड़ी कठिनतासे सुननेको मिले थे। उनसे मुझे तृप्ति नहीं होती थी। अब मैं शत्रुओंका दमन करने और जय प्राप्त करनेके लिये अपने बन्धुओंके सहित चढ़ाई करता हूँ।'

कुन्ती कहती है—श्रीकृष्ण! माताके वाग्बाणोंसे बिंधकर चाबुक खाये हुए घोड़ेके समान उसने माताके आज्ञानुसार सब काम किये। यह आख्यान बड़ा उत्साहवर्धक और तेजकी वृद्धि करनेवाला है। जब कोई राजा शत्रुसे पीड़ित होकर कष्ट पा रहा हो, उस समय मन्त्री उसे यह प्रसंग सुनावे। इस इतिहासको सुननेसे गर्भवती स्त्री निश्चय ही वीर पुत्र उत्पन्न करती है। यदि क्षत्राणी इसे सुनती है तो उसकी कोखसे विद्याशूर, तपःशूर, दानशूर, तेजस्वी, बलवान्, धैर्यवान्, अजेय, विजयी, दुष्टोंका दमन करनेवाला, साधुओंका रक्षक, धर्मात्मा और सच्चा शूरवीर पुत्र उत्पन्न होता है।

केशव! तुम अर्जुनसे कहना कि "तेरा जन्म होनेके समय मुझे यह आकाशवाणी हुई थी कि 'कुन्ती! तेरा यह पुत्र इन्द्रके समान होगा। यह भीमसेनके साथ रहकर युद्धस्थलमें आये हुए सभी कौरवोंको जीत लेगा और अपने शत्रुओंको व्याकुल कर देगा। यह सारी पृथ्वीको अपने अधीन कर लेगा और इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायगा। श्रीकृष्णकी सहायतासे यह सारे कौरवोंको संग्राममें मारकर अपने खोये हुए पैतृक अंशको प्राप्त करेगा और फिर अपने भाइयोंके सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा।'" कृष्ण! मेरी भी ऐसी ही इच्छा है कि आकाशवाणीने जैसा कहा था, वैसा ही हो; और यदि धर्म सत्य है तो ऐसा ही होगा भी। तुम अर्जुन और भीमसेनसे यही कहना कि 'क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसे करनेका समय आ गया है।' द्रौपदीसे कहना कि 'बेटी! तू अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई है। तूने मेरे सभी पुत्रोंके साथ धर्मानुसार बर्ताव किया है—यह तेरे योग्य ही है।' तथा नकुल और सहदेवसे कहना कि 'तुम अपने प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगनेकी इच्छा करो।'

कृष्ण! मुझे राज्य जाने, जूएमें हारने या पुत्रोंके वनवास होनेका दुःख नहीं है; किन्तु मेरी युवती पुत्रवधूने सभामें रुदन करते हुए जो दुर्योधनके कुवचन सुने थे, वे ही मुझे बड़ा दुःख दे रहे हैं। वे भीम और अर्जुनके लिये तो

बड़े ही अपमानजनक थे। तुम उन्हें उनकी याद दिला देना। फिर द्रौपदी, पाण्डव तथा उनके पुत्रोंसे मेरी ओरसे कुशल पूछना और उन्हें बार-बार मेरी कुशल सुना देना। अब तुम जाओ, मेरे पुत्रोंकी रक्षा करते रहना। तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न हो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—तब भगवान् कृष्णने कुन्तीको प्रणाम किया और उसकी प्रदक्षिणा करके बाहर आये। वहाँ आकर उन्होंने भीष्म आदि प्रधान-प्रधान कौरवोंको विदा किया तथा कर्णको रथमें बैठाकर सात्यकिके साथ चल दिये। भगवान्‌के जानेपर कौरवलोग आपसमें मिलकर उनके विषयमें अनेकों अद्भुत और आश्चर्यजनक बातें करने लगे। नगरसे बाहर आकर श्रीकृष्णने कर्णके साथ कुछ गुप्त बातें कीं और फिर उसे विदा करके घोड़े हाँक दिये। वे इतनी तेजीसे चले कि उस लंबे मार्गको बात-की-बातमें तय करके उपप्लव्यमें पहुँच गये।

दुर्योधनके साथ भीष्म और द्रोणाचार्यकी बातचीत तथा श्रीकृष्ण और कर्णका गुप्त परामर्श

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुन्तीने श्रीकृष्णको जो सन्देश दिया था, उसे सुनकर महारथी भीष्म और द्रोणने राजा दुर्योधनसे कहा—'राजन्! कुन्तीने श्रीकृष्णसे जो अर्थ और धर्मके अनुकूल बड़े ही उग्र और मार्मिक वचन कहे हैं, वे तुमने सुने? अब पाण्डवलोग श्रीकृष्णकी सम्मतिसे वैसा ही करेंगे। वे आधा राज्य लिये बिना शान्तिसे नहीं बैठेंगे। इसलिये तुम अपने माँ-बाप और हितैषियोंकी बात मान लो। अब सन्धि या युद्ध करना तुम्हारे ही हाथ है। यदि इस समय तुम्हें हमारी बात नहीं रुचती तो रणाङ्गणमें भीमसेनका भीषण सिंहनाद और गाण्डीवकी टंकार सुनकर अवश्य याद आवेगी।'

यह सुनकर राजा दुर्योधन उदास हो गया। उसने मुँह नीचा कर लिया तथा भौंहें सिकोड़कर टेढ़ी निगाहसे देखने लगा। उसे उदास देखकर भीष्म और द्रोण आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखकर बात करने लगे। भीष्मने कहा—'युधिष्ठिर सदा ही हमारी सेवा करनेको तत्पर रहता है, वह कभी किसीसे ईर्ष्या नहीं करता तथा ब्राह्मणोंका भक्त और सत्यवादी है। उससे हमें युद्ध करना पड़ेगा—इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी।' द्रोणाचार्य बोले—'पुत्र अश्वत्थामाकी अपेक्षा भी अर्जुनमें मेरा अधिक प्रेम है। वह भी बड़ा विनीत है और मेरा बड़ा मान करता है। अब क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर पुत्रसे भी बढ़कर प्रिय उस धनञ्जयसे ही मुझे युद्ध करना पड़ेगा। इस क्षात्रवृत्तिको धिक्कार है। दुर्योधन! तुम्हें कुरुवृद्ध भीष्म, मैं, विदुर और कृष्ण सभी समझाकर हार गये। परन्तु तुम्हें अपने हितकी बात सुहाती ही नहीं। देखो! हम तो बहुत दान, हवन और स्वाध्याय कर चुके हैं; हमने धनादि देकर ब्राह्मणोंको भी खूब तृप्त किया है और हमारी आयु भी अब बीत चुकी है। इसलिये हमने तो जो करना था, सो कर लिया। किन्तु पाण्डवोंसे वैर ठानकर तुम्हें बड़ी विपत्ति भोगनी पड़ेगी। तुम्हारे सुख, राज्य, मित्र और धन—सभीका सफाया हो जायगा। अतः उन वीरोंके साथ युद्ध करनेका विचार छोड़कर तुम सन्धि कर लो। इसीमें कुरुकुलकी भलाई है। अपने पुत्र, मन्त्री और सेनाका पराभव न कराओ।'

इधर श्रीकृष्ण जब कर्णको रथमें बैठाकर हस्तिनापुरसे बाहर आये तो उन्होंने उससे तीक्ष्ण, मृदु और धर्मयुक्त वाक्योंमें कहा—कर्ण! तुमने वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी

बड़ी सेवा की है और उनसे परमार्थतत्त्वसम्बन्धी प्रश्न किये हैं; पर मैं तुम्हें एक गुप्त बात बताता हूँ। तुमने कुन्तीकी कन्यावस्थामें उसीके गर्भसे ही जन्म लिया है। इसलिये धर्मानुसार तुम

पाण्डुके ही पुत्र हो। अतः शास्त्रदृष्टिसे तुम्हीं राज्यके अधिकारी हो। तुम्हारे पितृपक्षमें पाण्डव हैं और मातृपक्षमें यादव। तुम मेरे साथ चलो, पाण्डवोंको भी यह मालूम हो जाय कि तुम युधिष्ठिरसे भी पहले उत्पन्न हुए कुन्तीके पुत्र हो। फिर तो पाँचों पाण्डव, पाँचों द्रौपदीके पुत्र और अभिमन्यु तुम्हारे चरण छूएँगे। तथा पाण्डवोंका पक्ष लेनेके लिये एकत्रित हुए राजा, राजपुत्र और वृष्णि तथा अन्धकवंशके सब यादव भी तुम्हारा चरणवन्दन करेंगे। मेरी इच्छा है कि धौम्यमुनि आज ही तुम्हारे लिये होम करें और चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मणलोग तुम्हारा अभिषेक करें। हम सब लोग भी मिलकर तुम्हारा ही राज्याभिषेक करेंगे। धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज होंगे और हाथमें श्वेत चँवर लेकर तुम्हारे पीछे रथपर बैठेंगे। तुम्हारे मस्तकपर भीमसेन बड़ा भारी श्वेत छत्र लगायेंगे। अर्जुन तुम्हारा रथ हाँकेंगे। अभिमन्यु सर्वदा तुम्हारे पास रहेगा तथा नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँच पुत्र, पञ्चालराजकुमार और महारथी शिखण्डी तुम्हारे पीछे चलेंगे। मैं भी तुम्हारे पीछे ही चला करूँगा। इस प्रकार अपने भाई पाण्डवोंके साथ तुम राज्य भोगो तथा जप, होम और तरह-तरहके मङ्गलकृत्योंका अनुष्ठान करो।

कर्णने कहा—केशव! आपने सुहृदता, स्नेह तथा मित्रताके नाते और मेरे हितकी इच्छासे जो कुछ कहा है, वह ठीक है। इन सब बातोंका मुझे भी पता है और, जैसा आप समझते हैं, धर्मानुसार मैं पाण्डुका ही पुत्र हूँ। कुन्तीने कन्यावस्थामें सूर्यदेवके द्वारा मुझे गर्भमें धारण किया था और फिर उन्हींके कहनेसे त्याग दिया था। उसके बाद अधिरथ सूत मुझे देखकर घर ले गये और उन्होंने बड़े स्नेहसे मुझे अपनी स्त्री राधाकी गोदमें दे दिया। उस समय मेरे स्नेहके कारण राधाके स्तनोंमें दूध उतर आया और उसीने उस अवस्थामें मेरा मल-मूत्र उठाया। अतः धर्मशास्त्रको जाननेवाला मुझ-जैसा कोई भी पुरुष राधाके पिण्डका लोप कैसे कर सकता है? इसी प्रकार अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र ही समझते हैं और मैं भी स्नेहवश उन्हें सदासे अपना पिता ही समझता रहा हूँ। उन्हींने मेरे जातकर्मादि संस्कार भी कराये थे तथा ब्राह्मणोंके द्वारा वसुषेण नाम रखवाया था। युवावस्था होनेपर उन्हींने सूत जातिकी कई स्त्रियोंसे मेरा विवाह कराया था। अब उनसे मेरे बेटे-पोते भी पैदा हो चुके हैं। उन स्त्रियोंमें मेरा हृदय प्रेमवश काफी फँस चुका है। अब मैं सम्पूर्ण पृथ्वी या सोनेकी ढेरियाँ मिलनेसे अथवा किसी प्रकारके हर्ष या भयसे भी इन सम्बन्धियोंको छोड़ नहीं सकता। दुर्योधनने भी मेरे ही भरोसे शस्त्र उठानेका साहस किया है और इसीसे इस संग्राममें मुझे अर्जुनके साथ द्विरथ-युद्धके लिये नियत किया गया है। मैं मृत्यु, बन्धन, भय और लोभके कारण दुर्योधनको धोखा नहीं दे सकता। अब यदि मैंने अर्जुनके साथ द्विरथयुद्ध न किया तो इससे अर्जुन और मेरी दोनोंहीकी अपकीर्ति होगी।

किन्तु मधुसूदन! आप एक नियम इस समय कर लें। वह यह कि हमारी जो गुप्त बात हुई है, वह यहींतक रहे! यदि धर्मात्मा और जितेन्द्रिय युधिष्ठिरको इस बातका पता लग गया कि कुन्तीका प्रथम पुत्र मैं हूँ तो वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे और मुझे वह विशाल साम्राज्य मिला तो मैं उसे दुर्योधनको ही दे दूँगा। परन्तु मेरी तो यही इच्छा है कि जिनके नेता श्रीकृष्ण और योद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सर्वदा राज्यशासन करें। मैंने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये पाण्डवोंके विषयमें जो कटुवाक्य कहे हैं, अपने उस कुकर्मके लिये मुझे बड़ा पश्चात्ताप है। श्रीकृष्ण! जिस समय आप मुझे अर्जुनके हाथसे मरा हुआ देखेंगे, जब भीषण गर्जना करते हुए भीमसेन दुःशासनका रक्त पीयेंगे, जिस समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मका वध करेंगे तथा महाबली भीमसेन दुर्योधनको मार देंगे, उसी समय राजा दुर्योधनका यह रणयज्ञ समाप्त होगा। केशव! कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र है। वहाँ यह सारा वैभवशाली क्षत्रियसमाज शस्त्राग्निमें स्वाहा हो जायगा। आप इस सम्बन्धमें ऐसा करें, जिससे ये सब क्षत्रिय स्वर्ग प्राप्त कर लें। क्षत्रियका धन तो संग्राममें जय पाना या पराक्रम दिखाते हुए मर जाना ही है। अतः आप हमारे इस विचारको गुप्त रखते हुए ही अर्जुनको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये ले आइयेगा।

कर्णकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हँसे और फिर मुसकराते हुए इस प्रकार कहने लगे—कर्ण! तो क्या तुम्हें यह राज्यप्राप्तिका उपाय भी मंजूर नहीं है? तुम मेरी दी हुई पृथ्वीका भी शासन नहीं करना चाहते? इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि जय पाण्डवोंकी ही होगी। अच्छा, अब तुम यहाँसे जाकर द्रोणाचार्य, भीष्म और कृपाचार्यसे कहना कि यह महीना अच्छा है। इस समय फलोंकी अधिकता है, मक्खियाँ कम हैं, कीच सूख गयी है, जलमें स्वाद आ गया है तथा विशेष गर्मी या ठंड भी नहीं है। अच्छा सुखमय समय है।

आजसे सातवें दिन अमावास्या होगी। उसी दिन युद्ध आरम्भ करो। वहाँ और भी जो-जो राजालोग आवें, उन सबको यह समाचार सुना देना। तुम्हारी इच्छा युद्ध करनेकी है तो मैं उसीका प्रबन्ध किये देता हूँ। दुर्योधनके अधीन जो भी राजा और राजपुत्र हैं, वे शस्त्रोंसे मरकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे।

तब कर्णने श्रीकृष्णका सत्कार करते हुए कहा—महाबाहो! आप सब कुछ जान-बूझकर भी मुझे क्यों मोहमें डालना चाहते हैं। यह तो पृथ्वीके सर्वथा संहारका समय ही आ गया है। इसमें शकुनि, मैं, दुःशासन और धृतराष्ट्रकुमार दुर्योधन तो निमित्तमात्र हैं। दुर्योधनके अधीन जो राजा और राजपुत्र हैं, वे सब शस्त्राग्निमें भस्म होकर यमराजके घर जायँगे। इस समय बड़े भयानक स्वप्न और भयङ्कर शकुन तथा उत्पात भी दिखायी दे रहे हैं। इन्हें देखकर शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ये स्पष्ट ही दुर्योधनकी हार और युधिष्ठिरकी विजय सूचित करते हैं। पाण्डवोंके हाथी-घोड़े आदि वाहन प्रसन्न दिखायी देते हैं तथा मृग उनके दायें होकर निकल जाते हैं—यह उनकी विजयका लक्षण है। कौरवोंकी बायीं ओर होकर मृग निकलते हैं—इससे उनकी पराजय सूचित होती है।

श्रीकृष्णने कहा—कर्ण! निस्सन्देह अब यह पृथ्वी विनाशके समीप पहुँच चुकी है, इसीसे तो मेरी बात तुम्हारे हृदयको स्पर्श नहीं करती। जब विनाशकाल समीप आ जाता है तो अन्याय भी न्याय-सा दीखने लगता है।

कर्णने कहा—श्रीकृष्ण! अब तो यदि इस महायुद्धसे बच गये तभी आपके दर्शन होंगे। नहीं तो स्वर्गमें तो हमारा आपसे समागम होगा ही। अच्छा, अब तो फिर युद्धमें ही मिलना होगा।

ऐसा कहकर कर्णने श्रीकृष्णका गाढ आलिङ्गन किया। फिर श्रीकृष्णसे विदा होकर वह उनके रथसे उतरकर अपने सुवर्णजटित रथपर सवार हुआ और हस्तिनापुरको लौट गया। तथा सात्यकिके सहित श्रीकृष्ण सारथिसे बार-बार 'चलो-चलो' ऐसा कहते हुए बड़ी तेजीसे पाण्डवोंके पास चल दिये।

कुन्तीका कर्णके पास जाना और कर्णका उसके चार पुत्रोंको न मारनेका वचन देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पास चले गये तो विदुरजीने कुन्तीके पास जाकर कुछ खिन्न-से होकर कहा, 'देवी! तुम जानती हो मेरा मन तो सर्वदा युद्धके विरुद्ध ही रहता है। मैं चिल्ला-चिल्लाकर थक गया, किन्तु दुर्योधन मेरी बातको सुनता ही नहीं। अब श्रीकृष्ण सन्धिके प्रयत्नमें असफल होकर गये हैं। वे पाण्डवोंको युद्धके लिये तैयार करेंगे। यह कौरवोंकी अनीति सब वीरोंका नाश कर डालेगी। इस बातको सोचकर मुझे न दिनमें नींद आती है और न रातमें ही।'

विदुरजीकी यह बात सुनकर कुन्ती दुःखसे व्याकुल हो गयी और लंबी-लंबी साँस लेकर मन-ही-मन विचारने लगी—'इस धनको धिक्कार है। हाय! इसीके लिये यह बन्धु-बान्धवोंका भीषण संहार होगा। इस युद्धमें अपने सुहृदोंका ही पराभव होनेवाला है, यह सब सोचकर मेरे चित्तमें बड़ा ही दुःख होता है। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण दुर्योधनके पक्षमें रहेंगे। इससे मेरा भय और भी बढ़ जाता है। आचार्य द्रोण तो अपने शिष्योंके साथ कदाचित् मन लगाकर युद्ध न भी करें। पितामह भी पाण्डवोंपर स्नेह न करें—यह नहीं हो सकता। किन्तु यह कर्ण बड़ी खोटी दृष्टिवाला है। यह मोहवश दुर्बुद्धि दुर्योधनका ही अनुवर्तन करके निरन्तर पाण्डवोंसे द्वेष किया करता है। इसने बड़ा भारी अनर्थ करनेका हठ पकड़ रक्खा है। अच्छा, आज मैं कर्णके मनको पाण्डवोंके प्रति अनुकूल करनेका प्रयत्न करूँ और उसे उसके जन्मका वृत्तान्त सुना दूँ।'

ऐसा सोचकर कुन्ती गङ्गातटपर कर्णके पास गयी। वहाँ पहुँचकर कुन्तीने अपने उस सत्यनिष्ठ पुत्रके वेदपाठकी ध्वनि सुनी। वह पूर्वाभिमुख होकर भुजाएँ ऊपर उठाये मन्त्रपाठ कर रहा था। तपस्विनी कुन्ती जप समाप्त होनेकी प्रतीक्षामें उसके पीछे खड़ी रही। जब सूर्यका ताप पीठपर आने लगा, तबतक जप करके कर्ण ज्यों ही पीछेको फिरा कि उसे कुन्ती दिखायी दी। उसे देखते ही उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा, 'मैं अधिरथका पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। मेरी माताका नाम राधा है। कहिये, आप कैसे पधारीं? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'
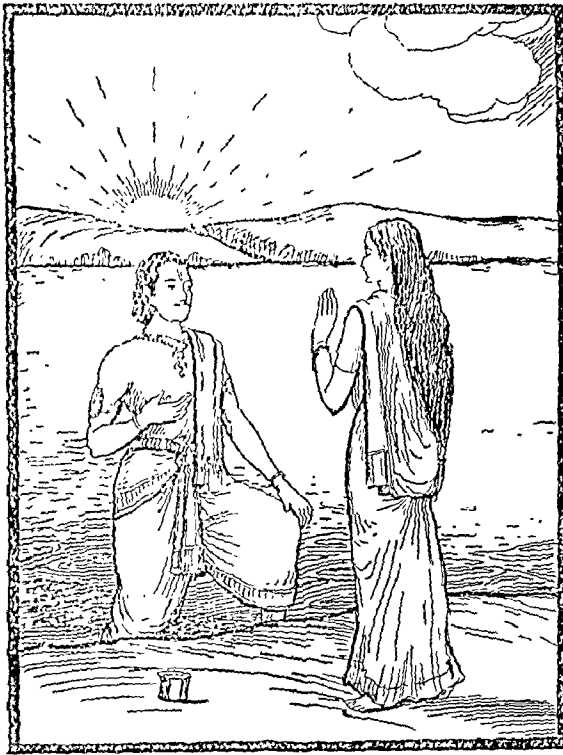
कुन्तीने कहा—कर्ण ! तुम राधाके पुत्र नहीं हो, कुन्तीके लाल हो । अधिरथ भी तुम्हारे पिता नहीं हैं । तुमने सूतकुलमें जन्म नहीं लिया । इस विषयमें मैं जो कुछ कहती हूँ, वह सुनो । बेटा ! जिस समय मैं राजा कुन्तिभोजके ही भवनमें थी, उस समय मैंने तुम्हें गर्भमें धारण किया था । तुम मेरी कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए मेरे सबसे बड़े पुत्र हो । स्वयं सूर्यनारायणने ही तुम्हें मेरे उदरसे उत्पन्न किया है । जन्मके समय तुम कुण्डल और कवच धारण किये थे तथा तुम्हारा शरीर बड़ा ही दिव्य और तेजस्वी था । बेटा ! अपने भाइयोंको न पहचाननेके कारण तुम जो मोहवश धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ रहते हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है । मनुष्योंके धर्मका विचार करनेपर यही निश्चय किया गया है कि जिससे पिता और माता प्रसन्न रहें, वही धर्मका फल है । पहले अर्जुनने जो राज्यलक्ष्मी सञ्चित की थी, उसे पापी कौरवोंने लोभवश छीन लिया । अब तुम उसे उनसे छीनकर भोगो । तुम्हें पाण्डवोंके साथ भ्रातृभावसे मिला देखकर ये पापी तुम्हें सिर झुकाने लगेंगे । जैसी कृष्ण और बलरामकी जोड़ी है, वैसी ही कर्ण और अर्जुनकी जोड़ी बन जाय । इस प्रकार जब तुम दोनों मिल जाओगे तो तुम्हारे लिये संसारमें कौन बात असाध्य रहेगी । तुम सब गुणोंसे सम्पन्न हो और अपने भाइयोंमें सबसे बड़े हो; तुम अपनेको 'सूतपुत्र' मत कहो, तुम तो कुन्तीके पराक्रमी पुत्र हो ।

इसी समय कर्णको सूर्यमण्डलसे आती हुई एक आवाज सुनायी दी । वह पिताकी वाणीके समान स्नेहपूर्ण थी । उसने सुना—कर्ण ! कुन्तीने सच कहा है, तुम माताकी बात मान लो । यदि तुम वैसा करोगे तो तुम्हारा सब प्रकार हित होगा ।

किन्तु कर्णका धैर्य सच्चा था । माता कुन्ती और पिता सूर्यके स्वयं इस प्रकार कहनेपर भी उसकी बुद्धि विचलित नहीं हुई । उसने कहा, 'क्षत्रिये ! तुम्हारी इस आज्ञाको मानना तो अपने धर्मनाशके द्वारको ही खोल देना है । माँ ! तुमने मुझे त्यागकर तो मेरे प्रति बड़ा ही अनुचित व्यवहार किया है । इसने तो मेरे सारे यश और कीर्तिका नाश कर दिया । मैंने क्षत्रियजातिमें जन्म तो लिया, किन्तु तुम्हारे ही कारण मेरा क्षत्रियोंका-सा संस्कार तो नहीं हो पाया । इससे बढ़कर मेरा अहित कोई शत्रु भी क्या करेगा । तुमने पहले तो माताके समान मेरे हितका प्रयत्न किया नहीं, अब केवल अपने हितसाधनकी इच्छासे मुझे समझा रही हो । पहले-से तो मैं पाण्डवोंके भाईरूपसे प्रसिद्ध हूँ नहीं, युद्धके समय यह बात खुली है । अब यदि मैं पाण्डवोंके पक्षमें हो जाता हूँ तो क्षत्रियलोग मुझे क्या कहेंगे ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ही मुझे सब प्रकारका ऐश्वर्य दिया है । अब मैं उनके उन उपकारोंको व्यर्थ कैसे कर दूँ ? अब यह दुर्योधनके आश्रितोंके मरनेका समय आया है । इसलिये इस समय मुझे भी अपने प्राणोंका लोभ न करके अपना ऋण चुका देना चाहिये । जिन लोगोंका पालन-पोषण किया जाता है, वे समय आनेपर अपना काम करनेसे ही कृतार्थ होते हैं; केवल चञ्चलचित्त पापीलोग ही उपकारको भूलकर कर्त्तव्य छोड़ बैठते हैं । वे राजाके अपराधी और पापी हैं । उनका न यह लोक बनता है, न परलोक । मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये अपना पूरा बल और पराक्रम लगाकर तुम्हारे पुत्रोंसे युद्ध करूँगा । तुम्हारे सामने मैं झूठी बात नहीं कहूँगा । मुझे सत्पुरुषोंके समान दया और सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये । इसलिये अपने कामकी होनेपर भी मैं तुम्हारी बात स्वीकार नहीं कर सकता । किन्तु माताजी ! तुम्हारा यह उद्योग निष्फल नहीं होगा । यद्यपि तुम्हारे सभी पुत्रोंको मैं मार सकता हूँ, तो भी एक अर्जुनको छोड़कर मैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव—इनमेंसे किसीको नहीं मारूँगा । युधिष्ठिरकी सेनामें केवल अर्जुनसे ही मुझे

युद्ध करना है। उसे मारनेसे ही मुझे संग्राम करनेका फल और सुयश प्राप्त होगा। इस प्रकार हर हालतमें तुम्हारे पाँच पुत्र बचे रहेंगे। अर्जुन न रहा तो वे कर्णके सहित पाँच रहेंगे और मैं मारा गया तो अर्जुनके सहित पाँच रहेंगे।'

फिर कुन्तीने अपने अविचल धैर्यवान् पुत्र कर्णको गले लगाकर कहा, 'कर्ण! विधाता बड़ा बलवान् है। मालूम होता है तुम जैसा कहते हो, वैसा ही होना है। अब कौरव नष्ट हो जायँगे। किन्तु बेटा! तुमने जो अपने चार भाइयोंको अभयदान दिया है, इस प्रतिज्ञाका तुम ध्यान रखना।' इसके बाद कुन्तीने उसे सकुशल रहनेका आशीर्वाद दिया और कर्णने 'तथास्तु' कहा। फिर वे दोनों अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

श्रीकृष्णका राजा युधिष्ठिरको कौरवसभाके समाचार सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! हस्तिनापुरसे उपप्लव्य-पड़ावमें आकर भगवान् कृष्णने कौरवोंके साथ जो-जो बातें हुई थीं, वे सब पाण्डवोंको सुना दीं। उन्होंने

कहा, 'हस्तिनापुरमें जाकर मैंने कौरवोंकी सभामें दुर्योधनसे बिल्कुल सच्ची, हितकारी और दोनों पक्षोंका कल्याण करनेवाली बातें कहीं। परन्तु उस दुष्टने कुछ नहीं माना।'

राजा युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! जब दुर्योधनने अपना कुमार्ग नहीं छोड़ा तो कुरुवृद्ध पितामह भीष्मने उससे क्या कहा? तथा आचार्य द्रोण, महाराज धृतराष्ट्र, माता गान्धारी, धर्मज्ञ विदुर और सभामें बैठे हुए सब राजाओंने उसे क्या सलाह दी? यह सब मुझे सुनाइये।

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! कौरवोंकी सभामें राजा दुर्योधनसे जो बातें कही गयी थीं, वे सुनिये। जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो दुर्योधन हँसा। इसपर भीष्मजीने क्रोधित होकर कहा, 'दुर्योधन! इस कुलके कल्याणके लिये मैं जो बात कहता हूँ, उसपर ध्यान दे। उसे सुनकर तू अपने कुटुम्बका भला कर। भैया! तू कलह मत कर। आधा राज्य पाण्डवोंको दे दे। भला, मेरे जीवित रहते यहाँ कौन राज्य कर सकता है? तू मेरी बातको मत टाल। मैं तो सर्वदा तुम सबका हित चाहता हूँ। बेटा! मेरी दृष्टिमें पाण्डवोंमें और तुझमें कोई अन्तर नहीं है। और यही सलाह तेरे पिता, माता और विदुरकी भी है। तुझे बड़े-बूढ़ोंकी बातपर ध्यान देना चाहिये। मेरे कथनमें सन्देह नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे तू अपनेको और सारी पृथ्वीको नष्ट होनेसे बचा लेगा।'

भीष्मजीके ऐसा कहनेपर फिर आचार्य द्रोणने उससे कहा, 'दुर्योधन! जिस प्रकार महाराज शान्तनु और भीष्म इस कुलकी रक्षा करते रहे हैं, वैसे ही महात्मा पाण्डु भी अपने कुलकी रक्षामें तत्पर रहते थे। यद्यपि धृतराष्ट्र और विदुर राज्यके अधिकारी नहीं थे, तो भी उन्होंने इन्हींको राज्य सौंप रक्खा था। वे धृतराष्ट्रको सिंहासनपर बैठाकर स्वयं अपनी दोनों भार्याओंके सहित वनमें जाकर रहने लगे थे। विदुरजी भी नीचे बैठकर दासकी तरह अपने बड़े भाईकी सेवा करते रहे हैं और उनपर चँवर डुलाते रहे हैं। विदुरजीको कोशकी सँभाल करने, दान देने, सेवकोंकी देख-भाल करने और सबका पालन-पोषण करनेके कामपर नियुक्त किया गया था तथा महातेजस्वी भीष्म राजाओंके साथ सन्धि-विग्रह करने और उनके साथ लेन-देन करनेका काम करते थे। उन्हींके कुलमें उत्पन्न होकर तुम कुलमें भेद डालनेका प्रयत्न क्यों कर रहे हो। अपने भाइयोंके साथ

मेल करके तुम इन भोगोंको भोगो। मैं किसी प्रकारके भय या स्वार्थके कारण यह बात नहीं कह रहा हूँ! मैं तो भीष्मजीकी दी हुई चीज ही लेना चाहता हूँ, तुमसे मुझे कुछ भी लेना नहीं है। यह तुम निश्चय मानो कि जहाँ भीष्मजी हैं, वहीं द्रोण भी है। अतः तुम पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो। मैं तो जैसा तुम्हारा गुरु हूँ, वैसा ही पाण्डवोंका भी हूँ। मेरे लिये दोनोंमें कोई भेद नहीं है। परन्तु जय तो उसी पक्षकी होती है, जिधर धर्म रहता है।'

इसके बाद विदुरजीने पितामह भीष्मकी ओर देखते हुए कहा—भीष्मजी! मैं जो निवेदन करता हूँ, वह सुनिये। यह कुरुवंश तो एक प्रकारसे नष्ट ही हो चुका था। आपहीने इसका पुनरुद्धार किया है। अब आप इस दुर्योधनकी बुद्धिका अनुसरण करने लगे हैं। किन्तु इसपर तो लोभ सवार है! यह बड़ा ही अनार्य और कृतघ्न है। देखिये न, यह अपने धर्म और अर्थका विचार करनेवाले पिताजीकी आज्ञाका भी उल्लङ्घन कर रहा है। इस दुर्योधनके कारण ही इन सब कौरवोंका नाश होगा। महाराज! आप कृपा करके ऐसा कीजिये, जिससे इनका नाश न हो। कुलका नाश होता देखकर आप उपेक्षा न करें। मालूम होता है कुरुवंश-का नाश समीप आ जानेसे ही आज आपकी बुद्धि ऐसी हो गयी है। आप या तो मुझे और राजा धृतराष्ट्रको साथ लेकर वनको चलिये, नहीं तो इस क्रूरबुद्धि दुष्ट दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे सुरक्षित इस राज्यकी व्यवस्था कीजिये।' ऐसा कहकर बार-बार साँस लेते हुए विदुरजी मौन हो गये।

इसके पश्चात् कुटुम्बके नाशसे भयभीत गान्धारीने क्रोधमें भरकर ये धर्म और अर्थयुक्त बातें कहीं, 'दुर्योधन! तू बड़ा ही पापबुद्धि और क्रूरकर्म करनेवाला है। अरे! इस राज्यको तो कुरुवंशी महानुभाव क्रमशः भोगते आये हैं। यही हमारा कुलधर्म है। किन्तु अब अन्यायसे तू इस कौरवोंके राज्यको नष्ट कर देगा। इस समय इस राज्यपर महाराज धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई विदुरजी विराजमान हैं, फिर मोहवश तू इसे कैसे लेना चाहता है? भीष्मजीके सामने तो ये दोनों भी पराधीन ही हैं। महात्मा भीष्म धर्मज्ञ हैं, इसलिये अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये राज्य स्वीकार नहीं करते। वास्तवमें तो यह राज्य महाराज पाण्डुका ही है; अतः इसे लेनेका अधिकार उनके पुत्रोंको ही है, किसी दूसरेको नहीं। इसलिये कुरुश्रेष्ठ महात्मा भीष्मजी जो कुछ कहते हैं, वह हमें बिना किसी आनाकानीके मान लेना चाहिये। अब महाराज धृतराष्ट्र और पितामह भीष्मकी आज्ञासे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ही इस कुरुवंशके पैतृक राज्यका पालन करें।'

गान्धारीके इस प्रकार कहनेपर फिर महाराज धृतराष्ट्रने कहा, 'बेटा! यदि तुम्हारी दृष्टिमें पिताका कुछ गौरव है तो मैं तुमसे जो बात कहता हूँ, उसपर ध्यान दो और उसीके अनुसार आचरण करो। पहले कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले नहुषके पुत्र ययाति नामके राजा थे। उनके पाँच पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े यदु थे और सबसे छोटे पुरु। पुरु राजा ययातिकी आज्ञा माननेवाले थे और उन्होंने उनका एक विशेष कार्य भी किया था। इसलिये छोटे होनेपर भी ययातिने उन्हें ही राजसिंहासनपर बैठाया। इस प्रकार यदि बड़ा पुत्र अहङ्कारी हो तो उसे राज्य नहीं मिलता, और छोटा पुत्र गुरुजनोंकी सेवा करनेसे राज्य प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रपितामह महाराज प्रतीप भी इसी प्रकार समस्त धर्मोंके जाननेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनके देवताओंके समान यशस्वी तीन पुत्र हुए। उनमें बड़े देवापि थे, उनसे छोटे बाह्लीक हैं और इनसे छोटे हमारे पितामह शान्तनु थे। देवापि यद्यपि उदार, धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ और प्रजाके प्रेमपात्र थे, तो भी चर्मरोगके कारण वे राजसिंहासनके योग्य नहीं माने गये। बाह्लीक पैतृक राज्यको छोड़कर अपने मामाके यहाँ रहने लगे थे। इसलिये पिताकी मृत्यु होनेपर बाह्लीककी आज्ञासे जगद्विख्यात शान्तनु ही राज्यपर अभिषिक्त हुए। इसी प्रकार पाण्डुने भी मुझे यह राज्य सौंप दिया था। मैं उनसे बड़ा था, तो भी नेत्रहीन होनेके कारण राज्यके अधिकारसे वञ्चित रहा और छोटे होनेपर भी पाण्डुको राज्य मिला। अब पाण्डुके मरनेपर तो यह राज्य उन्हींके पुत्रोंका है। मैं तो राज्यका भागी हूँ नहीं, तुम भी न राजपुत्र हो और न राज्यके स्वामी हो; फिर दूसरेका अधिकार कैसे छीनना चाहते हो? महात्मा युधिष्ठिर राजपुत्र है, अतः न्यायतः यह राज्य उसीका है। युधिष्ठिरमें राजाओंके योग्य क्षमा, तितिक्षा, दम, सरलता, सत्यनिष्ठा, शास्त्रज्ञान, अप्रमाद, जीवदया और सदुपदेश करनेकी क्षमता—ये सभी गुण हैं। इसलिये तुम मोह छोड़कर आधा राज्य युधिष्ठिरको दे दो और आधा अपने भाइयोंके सहित अपनी जीविकाके लिये रख लो।'

इस प्रकार भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा

तराष्ट्रके समझानेपर भी मन्दमति दुर्योधनने कुछ ध्यान हीं दिया। बल्कि उनके कथनका तिरस्कार कर क्रोधसे आँखें लाल किये वहाँसे चल दिया। उसके पीछे ही, जिन्हें उसने घेर रखा है वे राजालोग भी चले गये। उन राजाओंको दुर्योधनने यह आज्ञा दी कि 'आज पुष्य नक्षत्र है, इसलिये आज ही सब लोग कुरुक्षेत्रको कूच कर दो।' तब वे भीष्मको सेनापति बनाकर बड़ी उमंगसे कुरुक्षेत्रको चल दिये। अब आप भी जो कुछ उचित जान पड़े, वह करें। मैंने भाइयोंमें प्रेम बना रहे—इस दृष्टिसे पहले तो सामका ही प्रयोग किया था। किन्तु जब वे सामनीतिसे नहीं माने तो भेदका भी प्रयोग किया। मैंने सब राजाओंको ललकारा, दुर्योधनका मुँह बंद कर दिया तथा शकुनि और कर्णको भय दिखाया। फिर कुरुवंशमें फूट न पड़े, इस विचारसे सामके साथ दानकी भी बातें कहीं। मैंने दुर्योधनसे कहा कि 'सारा राज्य तुम्हारा ही रहा, तुम केवल पाँच गाँव दे दो; क्योंकि तुम्हारे पिताको पाण्डवोंका पालन भी अवश्य करना चाहिये।' ऐसा कहनेपर भी उस दुष्टने आपको भाग देना स्वीकार नहीं किया। अब, उन पापियोंके लिये मुझे तो दण्डनीतिका आश्रय लेना ही उचित जान पड़ता है; और किसी प्रकार वे समझनेवाले नहीं हैं। वे सब विनाशके कारण बन चुके हैं और मौत उनके सिरपर नाच रही है।

पाण्डवसेनाके सेनापतिका चुनाव तथा उसका कुरुक्षेत्रमें जाकर पड़ाव डालना

वैशम्पायनजी कहते हैं—श्रीकृष्णका कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनके सामने ही अपने भाइयोंसे कहा, 'कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ, वह सब तो तुमने सुन लिया और श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह भी समझ ही ली होगी। अतः अब मेरी इस सेनाका विभाग करो। हमारी विजयके लिये यह सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई है। इसके ये सात सेनाध्यक्ष हैं—द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन। ये सभी वीर प्राणान्त युद्ध करनेवाले हैं तथा लज्जाशील, नीतिमान् और युद्धकुशल हैं। किन्तु सहदेव! यह तो बताओ—इन सातोंका भी नेता कौन हो, जो कि रणभूमिमें भीष्मरूप अग्निका सामना कर सके?'

सहदेवने कहा—'मेरे विचारसे तो महाराज विराट इस पदके योग्य हैं।' फिर नकुलने कहा, 'मैं तो आयु, शास्त्रज्ञान, कुलीनता और धैर्यकी दृष्टिसे महाराज द्रुपदको इस पदके योग्य समझता हूँ।' इस प्रकार माद्रीकुमारोंके कह चुकनेपर अर्जुनने कहा, 'मैं धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति होनेयोग्य समझता हूँ। ये धनुष, कवच और तलवार धारण किये रथपर चढ़े हुए ही अग्निकुण्डसे प्रकट हुए हैं। इनके सिवा मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता, जो महाव्रती भीष्मजीके सामने डट सके।' भीमसेन बोले, 'द्रुपदपुत्र शिखण्डीका जन्म भीष्मजीके वधके लिये ही हुआ है। अतः मेरे विचारसे ये ही प्रधान सेनापति होने चाहिये।'

यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा—भाइयो! धर्ममूर्ति श्रीकृष्ण सारे संसारके सारासार और बलाबलको जानते हैं। अतः जिसके लिये ये सम्मति दें, उसीको सेनापति बनाया जाय। भले ही वह शस्त्रसञ्चालनमें कुशल हो अथवा न हो, तथा वृद्ध हो या युवा हो। हमारी जय या पराजयके कारण एकमात्र ये ही हैं। हमारे प्राण, राज्य, भाव-अभाव और सुख-दुःख इन्हींपर अवलम्बित हैं। ये ही सबके कर्ता-धर्ता हैं और इन्हींके अधीन सब कामोंकी सिद्धि है।

धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर कमल-

नयन भगवान् कृष्णने अर्जुनकी ओर देखते हुए कहा—महाराज ! आपकी सेनाके नेतृत्वके लिये जिन-जिन वीरोंके नाम लिये गये हैं, इन सभीको मैं इस पदके योग्य मानता हूँ। ये सभी बड़े पराक्रमी योद्धा हैं और आपके शत्रुओंको परास्त कर सकते हैं। किन्तु फिर भी मेरे विचारसे धृष्टद्युम्नको ही प्रधान सेनापति बनाना उचित होगा।

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर सभी पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी हर्षध्वनि की। सब सैनिक चलनेके लिये दौड़-धूप करने लगे। सब ओर 'युद्धके लिये तैयार हो जाओ' यह शब्द गूँजने लगा। हाथी, घोड़े और रथोंका घोष होने लगा तथा सभी ओर शङ्ख और दुन्दुभिकी भीषण ध्वनि फैल गयी। सेनाके आगे-आगे भीमसेन, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न तथा अन्यान्य पाञ्चालवीर चले। राजा युधिष्ठिर मालकी गाड़ियों, बाजारके सामानों, डेरे-तंबू और पालकी आदि सवारियों, कोशों, मशीनों, वैद्यों एवं अस्त्रचिकित्सकोंको लेकर चले। धर्मराजको विदा करके पाञ्चालकुमारी द्रौपदी अन्य राजमहिलाओं और दास-दासियोंके सहित उपप्लव्य-शिविरमें ही लौट आयी। इस प्रकार पाण्डवलोग परकोटों और पहरेदारोंसे अपने धन और स्त्री आदिकी रक्षाका प्रबन्ध कर गौ और सुवर्णादि दान करके बड़ी विशाल वाहिनीके साथ मणिजटित रथोंमें बैठकर कुरुक्षेत्रकी ओर चले। उस समय ब्राह्मणलोग स्तुति करते हुए उन्हें घेरकर चल रहे थे। केकय देशके पाँच राजकुमार, धृष्टकेतु, काशिराजका पुत्र अभिभू, श्रेणिमान्, वसुदान और शिखण्डी—ये सब वीर भी बड़े उत्साहसे अस्त्र-शस्त्र, कवच और आभूषणादिसे सुसज्जित हो उनके साथ चले। सेनाके पिछले भागमें राजा विराट, धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज और धृष्टद्युम्नके पुत्र थे। अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु और सात्यकि—ये सब श्रीकृष्ण और अर्जुनके आसपास रहकर चले। इस प्रकार व्यूहरचनाकी रीतिसे चलकर यह पाण्डवदल कुरुक्षेत्रमें पहुँचा। वहाँ पहुँचनेपर एक ओरसे सब पाण्डवलोग और दूसरी ओरसे श्रीकृष्ण और अर्जुन शङ्खध्वनि करने लगे। श्रीकृष्णके शङ्ख पाञ्चजन्य-की वज्राघातके समान भीषण ध्वनि सुनकर सारी सेनाके रोंगटे खड़े हो गये। इस शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्दके साथ छरेरे वीरोंके सिंहनादने मिलकर पृथ्वी, आकाश और समुद्रोंको गुञ्जायमान कर दिया।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने एक चौरस मैदानमें, जहाँ घास और ईंधनकी अधिकता थी, अपनी सेनाका पड़ाव डाला। श्मशान, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ और देवमन्दिरोंसे दूर रहकर उन्होंने पवित्र और रमणीय भूमिमें अपनी सेनाको ठहराया। वहाँ पाण्डवोंके लिये जिस प्रकारका शिविर बनवाया गया था, ठीक वैसे ही डेरे श्रीकृष्णने दूसरे राजाओंके लिये तैयार कराये। उन सभी डेरोंमें सैकड़ों प्रकारकी भक्ष्य, भोज्य और पेय सामग्रियाँ थीं तथा ईंधन आदिकी भी अधिकता थी। वे राजाओंके बहुमूल्य डेरे पृथ्वीपर रक्खे हुए विमानोंके समान जान पड़ते थे। उनमें सैकड़ों शिल्पी और वैद्यलोग वेतन देकर नियुक्त किये गये थे। महाराज युधिष्ठिरने प्रत्येक शिविरमें प्रत्यञ्चा, धनुष, कवच, शस्त्र, शहद, घी, लाखका चूरा, जल, घास, फूस, अग्नि, बड़े-बड़े यन्त्र, बाण, तोमर, फरसे, ऋष्टि और तरकस—ये सभी चीजें प्रचुरतासे रखवा दी थीं। उनमें काँटेदार कवच धारण किये, हजारों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेवाले अनेकों हाथी पर्वतोंकी तरह खड़े दिखायी देते थे। पाण्डवों-को कुरुक्षेत्रमें आया सुनकर उनसे मित्रताका भाव रखनेवाले अनेकों राजा सेना और सवारियोंके साथ उनके पास आने लगे।

कौरवपक्षका सैन्य-संगठन तथा दुर्योधनका पितामह भीष्मको प्रधान सेनापति बनाना

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! जब दुर्योधनको मालूम हुआ कि महाराज युधिष्ठिर युद्ध करनेके लिये सेनासहित कुरुक्षेत्रमें आ गये हैं तो उसने क्या किया ? कुरुक्षेत्रमें कौरव और पाण्डवोंने जो-जो कर्म किये थे, उन्हें मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! श्रीकृष्णके चले जानेपर राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे कहा, 'कृष्ण अपने उद्देश्यमें असफल होकर ही पाण्डवोंके पास गये हैं। इसलिये वे क्रोधमें भरकर निश्चय ही उन्हें युद्धके लिये उत्तेजित करेंगे। वास्तवमें श्रीकृष्णको पाण्डवोंके साथ मेरा युद्ध होना ही अभीष्ट है। तथा भीम और अर्जुन तो उन्हींके मतमें रहनेवाले हैं। युधिष्ठिर भी अधिकतर भीमसेन-के वशमें रहते हैं। इसके सिवा पहले मैंने उनका और उनके भाइयोंका तिरस्कार भी किया ही है। विराट और द्रुपदसे भी

मेरा वैर है ही। वे दोनों सेनाके सञ्चालक और श्रीकृष्णके इशारेपर चलनेवाले हैं। इस प्रकार यह युद्ध बड़ा ही भयङ्कर और रोमाञ्चकारी होगा। अतः अब सावधानीसे युद्धकी सब सामग्री तैयार करानी चाहिये। कुरुक्षेत्रमें बहुत-से डेरे डलवाओ, जिनमें काफी अवकाश रहे और शत्रु अधिकार न कर सकें। उनके पास जल और काठका भी सुभीता रहना चाहिये। उनमें ऐसे रास्ते रहने चाहिये, जिनसे जानेवाली वस्तुओंको शत्रु रोक न सकें तथा उनके आसपास ऊँची बाड़ बना देनी चाहिये। उनमें तरह-तरहके हथियार रखवा दो तथा अनेकों ध्वजा-पताकाएँ लगवा दो और अब देरी न करके आज ही घोषणा करा दो कि कल सेनाका कूच होगा।' तब उन तीनोंने 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बड़े उत्साहसे दूसरे ही दिन समस्त राजाओंके ठहरनेके लिये शिविर तैयार करा दिये।

वह रात निकल जानेपर जब प्रातःकाल हुआ तो राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका विभाग किया। उसने पैदल, हाथी, रथ और घुड़सवार सेनामेंसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणियोंको अलग-अलग करके उन्हें यथास्थान नियुक्त कर दिया। वे सब वीर अनुकर्ष (रथकी मरम्मतके लिये उसके नीचे बँधा हुआ काष्ठ), तरकस, वरूथ (रथको ढकनेका बाघ आदिका चमड़ा), उपासङ्ग (जिन्हें हाथी या घोड़े उठा सकें, ऐसे तरकस), शक्ति, निषङ्ग (पैदलोंद्वारा ले जाये जानेवाले तरकस), ऋष्टि (एक प्रकारकी लोहेकी लाठी), ध्वजा, पताका, धनुष-बाण, तरह-तरहकी रस्सियाँ, पाश, बिस्तर, कचग्रह-विक्षेप (बाल पकड़कर गिरानेका यन्त्र), तेल, गुड़, बालू, विषधर सर्पोंके घड़े, रालका चूरा, घण्टफलक (घुँघरुओंवाली ढाल), खड्गादि लोहेके शस्त्र, औटा हुआ गुड़का पानी, ढेले, साल, भिन्दिपाल (गोफियाँ), मोम चुपड़े हुए मुगदर, काँटोंवाली लाठियाँ, हल, विष लगे हुए बाण, सूप तथा टोकरियाँ, दराँत, अङ्कुश, तोमर, काँटेदार कवच, वृक्षादन (लोहेके काँटे या कील आदि), बाघ और गैंडेके चमड़ेसे मढ़े हुए रथ, सींग, प्रास, कुठार, कुदाल, तेलमें भीगे हुए रेशमी वस्त्र, घी तथा युद्धकी अन्यान्य सामग्रियाँ लिये हुए थे। सब रथोंमें चार-चार घोड़े जुते हुए थे और सौ-सौ बाण रक्खे गये थे। उनपर एक-एक सारथि और दो-दो चक्ररक्षक थे। वे दोनों ही उत्तम रथी और अश्वविद्यामें कुशल थे। जिस प्रकार रथ सजाये गये थे, वैसे ही हाथियोंको भी सुसज्जित किया गया था। उनपर सात-सात पुरुष बैठते थे। इससे वे रत्नजटित पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनमेंसे दो पुरुष अङ्कुश लेकर महावतका काम करते थे। दो धनुर्धर योद्धा थे, दो खड्गधारी थे तथा एक शक्ति और त्रिशूलधारी था। इसी प्रकार अच्छी तरहसे सजाये हुए लाखों घोड़े और सहस्रों पैदल भी उस सेनामें चल रहे थे।

फिर राजा दुर्योधनने अच्छी तरहसे जाँचकर विशेष बुद्धिमान् और शूरवीर पुरुषोंको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया। उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाह्लीक—इन ग्यारह वीरोंको एक-एक अक्षौहिणी सेनाका नायक बनाया। वह प्रतिदिन उनका बार-बार सत्कार करता रहता था। फिर सब राजाओंको साथ ले उसने हाथ जोड़कर पितामह भीष्मसे कहा, "दादाजी! कितनी ही बड़ी सेना हो, यदि उसका कोई अध्यक्ष नहीं होता तो वह युद्धके मैदानमें आकर चींटियोंके समान तितर-बितर हो जाती है। सुना जाता है, एक बार हैहय वीरोंपर ब्राह्मणोंने चढ़ाई की थी। उस समय वैश्य और शूद्रोंने भी ब्राह्मणोंका साथ दिया था। इस प्रकार एक ओर तीनों वर्णोंके पुरुष थे और दूसरी ओर हैहय क्षत्रिय थे। जब युद्ध आरम्भ हुआ तो तीनों वर्णोंमें फूट पड़ गयी और उनकी सेना बहुत बड़ी होनेपर भी क्षत्रियोंने उसे जीत लिया। तब ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे ही अपनी हारका कारण पूछा। धर्मज्ञ क्षत्रियोंने उसका कारण बताते हुए कहा, 'हम युद्ध करते समय एक ही परम बुद्धिमान् पुरुषकी आज्ञा मानकर लड़ते थे और तुम सब-के-सब अलग-

अलग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार काम करते थे।' तब ब्राह्मणोंने अपनेमेंसे एक युद्धनीतिमें कुशल शूरवीरको अपना सेनापति बनाया और क्षत्रियोंको परास्त कर दिया। इसी प्रकार जो युद्ध-सञ्चालनमें कुशल, हितकारी, निष्कपट शूरवीरको अपना सेनापति बनाते हैं, वे ही संग्राममें शत्रुओंको जीतते हैं। आप शुक्राचार्यके समान नीतिकुशल और मेरे हितैषी हैं, काल भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकता तथा धर्ममें आपकी अविचल स्थिति है। अतः आप ही हमारे सेनाध्यक्ष बनें। जिस प्रकार स्वामिकार्तिकेय देवताओंके आगे रहते हैं, उसी प्रकार आप हमारे आगे चलें।''

भीष्मजीने कहा—महाबाहो! तुम जैसा कहते हो, ठीक ही है। मेरे लिये जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव भी हैं। अतः मुझे पाण्डवोंसे उनके हितकी बात कहनी चाहिये और तुम्हारे लिये, जैसा कि पहले मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, युद्ध करना भी मुझे है ही। मैं अपनी शस्त्रशक्तिसे एक क्षणमें ही देवता और असुरोंसे युक्त इस सारे संसारको मनुष्यहीन कर सकता हूँ! किन्तु पाण्डुके पुत्रोंको मैं नहीं मार सकता। तो भी मैं नित्यप्रति उनके पक्षके दस हजार योद्धाओंका संहार कर दिया करूँगा। तुम्हारे सेनापतित्वको मैं एक शर्तके साथ स्वीकार कर सकता हूँ। इस युद्धमें या तो पहले कर्ण लड़ ले या मैं लड़ लूँ; क्योंकि संग्राममें यह सूतपुत्र सदा ही मुझसे बड़ी लाग-डाँट रखता है।

कर्णने कहा—राजन्! गङ्गापुत्र भीष्मके जीवित रहते मैं युद्ध नहीं करूँगा। इनके मरनेपर ही अर्जुनके साथ मेरा युद्ध होगा।

इस प्रकार निश्चय हो जानेपर दुर्योधनने विधिपूर्वक भीष्मजीको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। उस सा

राजाज्ञासे बाजे बजानेवाले शान्तभावसे सैकड़ों-हजारों भेरियाँ और शंख बजाने लगे। अभिषेकके समय अनेकों भीषण अपशकुन भी हुए। भीष्मको सेनापति बनाकर दुर्योधनने बहुत-सी गाय और मुहरें दक्षिणामें देकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। फिर उनके जययुक्त आशीर्वादोंसे उत्साहित हो वह भीष्मजीको आगे कर अन्य सब सेनानायक और भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रको चला। वहाँ पहुँचकर उसने कर्णके साथ सब ओर घूम-फिरकर एक समतल भूमिमें, जहाँ घास और ईंधनकी अधिकता थी, सेनाकी छावनी डाली। वह छावनी दूसरे हस्तिनापुरके समान ही जान पड़ती थी।

श्रीबलरामजीका पाण्डवोंसे मिलकर तीर्थयात्राके लिये जाना

राजा जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी! गङ्गानन्दन भीष्मको सेनापति-पदपर अभिषिक्त हुआ सुनकर महाबाहु युधिष्ठिरने क्या कहा? तथा भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णने उसका क्या उत्तर दिया?

वैशम्पायनजी कहने लगे—आपद्धर्ममें कुशल महाराज युधिष्ठिरने सब भाइयोंको तथा श्रीकृष्णको बुलाकर कहा, 'तुमलोग खूब सावधान रहो। सबसे पहले तुम्हारा युद्ध पितामह भीष्मके साथ ही होगा।

अब तुम मेरी सेनाके सात नायक नियुक्त करो।'

श्री . ष्णने कहा—राजन्! ऐसा समय आनेपर आपको जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही आप कह रहे हैं। मुझे आपका कथन बड़ा प्रिय जान पड़ता है। अवश्य अब पहले आप अपनी सेनाके नायक ही नियुक्त कीजिये।

तब महाराज युधिष्ठिरने द्रुपद, विराट, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी और मगधराज सहदेवको बुलाकर उन्हें विधिपूर्वक सेनानायकके पदोंपर अभिषिक्त किया
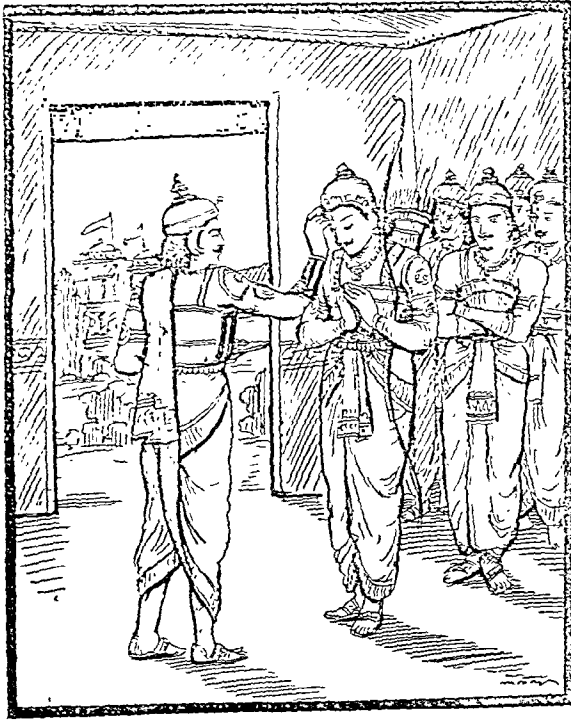
और इनका अध्यक्ष धृष्टद्युम्नको बनाया। सेनाध्यक्षके भी अध्यक्ष अर्जुन बनाये गये और अर्जुनके भी नेता भगवान् कृष्ण थे। इसी समय इस घोर संहारकारी युद्धको समीप आया जान भगवान् बलरामजी अक्रूर, गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदि मुख्य-मुख्य यदुवंशियोंको साथ लिये पाण्डवोंके शिविरमें आये! उन्हें देखकर धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन और उस स्थानपर जो दूसरे राजा थे, वे सब खड़े हो गये। उन सबने समागत बलभद्र-जीका सत्कार किया। राजा युधिष्ठिरने उनसे प्रेमपूर्वक हाथ मिलाया, श्रीकृष्णादिने उन्हें प्रणाम किया और बूढ़े राजा विराट एवं द्रुपदको उन्होंने प्रणाम किया। फिर वे राजा युधिष्ठिरके साथ सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके बैठनेपर जब और सब लोग भी बैठ गये तो उन्होंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा, "अब यह महाभयङ्कर नरसंहार होगा ही। इस दैवी
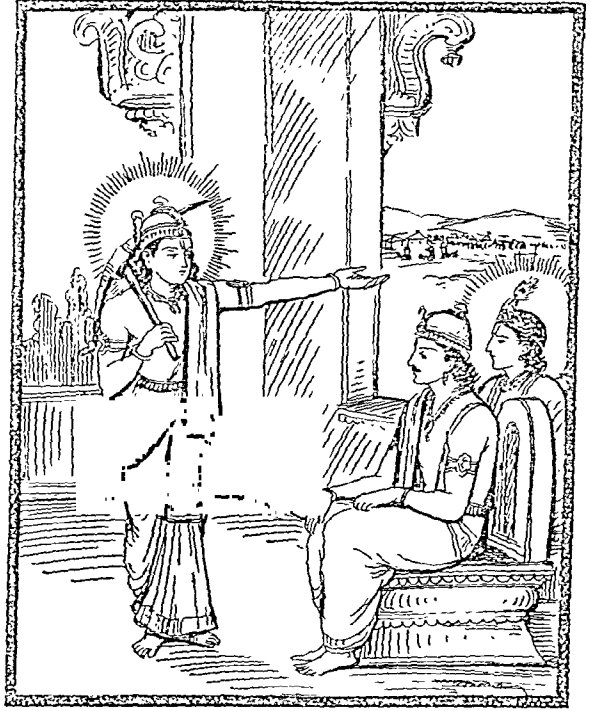
लीलाको मैं अनिवार्य ही समझता हूँ, अब इसे हटाया नहीं जा सकता। मेरी इच्छा है कि अपने सुहृद् आप सब लोगोंको इस युद्धकी समाप्तिपर भी मैं नीरोग देख सकूँ। इसमें सन्देह नहीं, यहाँ जो राजा एकत्रित हुए हैं उनका तो काल ही आ गया है। कृष्णसे तो मैंने बार-बार कहा था कि 'भैया! अपने सम्बन्धियोंके प्रति एक-सा बर्ताव करो; क्योंकि हमारे लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही राजा दुर्योधन है।' किन्तु ये तो अर्जुनको देखकर सब प्रकार उसीपर मुग्ध हैं। राजन्! मेरा निश्चित विचार है कि जीत पाण्डवोंकी ही होगी और ऐसा ही सङ्कल्प श्रीकृष्णका भी है। मैं तो श्रीकृष्णके बिना इस लोकपर दृष्टि भी नहीं डाल सकता; अतः ये जो कुछ करना चाहते हैं, उसीका अनुवर्तन किया करता हूँ। भीम और दुर्योधन—ये दोनों वीर मेरे शिष्य हैं और गदायुद्धमें कुशल हैं। अतः इनपर मेरा समान स्नेह है। इसलिये मैं तो अब सरस्वतीतटके तीर्थोंका सेवन करनेके लिये जाऊँगा, क्योंकि नष्ट होते हुए कुरुवंशियोंको मैं उदासीन दृष्टिसे नहीं देख सकूँगा।" ऐसा कहकर महाबाहु बलरामजी पाण्डवोंसे विदा होकर तीर्थयात्राके लिये चले गये।

रुक्मीका सहायताके लिये आना, किन्तु पाण्डव और कौरव दोनोंहीका उसकी सहायता स्वीकार न करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी समय राजा भीष्मकका पुत्र रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास आया। उसने श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये सूर्यके-समान तेजस्विनी ध्वजा लिये पाण्डवोंके शिबिरमें प्रवेश किया। पाण्डव उससे परिचित तो थे ही। राजा युधिष्ठिरने उसका आगे बढ़कर स्वागत किया। रुक्मीने भी उन सबका यथा-

योग्य आदर किया और फिर कुछ देर ठहरकर सब वीरोंके सामने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! यदि तुम्हें किसी प्रकारका भय हो तो मैं तुमलोगोंकी सहायताके लिये आ गया हूँ। मैं युद्धमें तुम्हारी ऐसी सहायता करूँगा कि शत्रु उसे सह नहीं सकेंगे। संसारमें मेरे समान पराक्रमी कोई दूसरा मनुष्य नहीं है। तुम युद्धमें मुझे जिस सेनासे मोर्चा लेनेका भार सौंपोगे, उसीको मैं तहस-नहस कर दूँगा। द्रोण, कृप, भीष्म, कर्ण—कोई भी वीर क्यों न हो, अथवा ये सभी राजा इकट्ठे होकर मेरे सामने आवें, मैं इन शत्रुओंको मारकर तुम्हें ही पृथ्वीका राज्य सौंप दूँगा।'

तब अर्जुन श्रीकृष्ण और धर्मराजकी ओर देखकर हँसे और शान्तभावसे कहने लगे, 'मैंने कुरुवंशमें जन्म लिया है; तिसपर भी मैं महाराज पाण्डुका पुत्र और द्रोणाचार्यका शिष्य कहलाता हूँ; श्रीकृष्ण मेरे सहायक हैं और गाण्डीव धनुष मेरे पास है। फिर मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैं डर गया हूँ। वीरवर! जिस समय कौरवोंकी घोषयात्राके अवसरपर मैंने गन्धर्वोंके साथ युद्ध किया था, उस समय मेरी सहायता करने कौन आया था? तथा विराटनगरमें बहुत-से कौरवोंके साथ अकेले ही युद्ध करते समय मुझे किसने सहायता दी थी? मैंने युद्धके लिये ही भगवान् शंकर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और श्रीकृष्णकी उपासना की है। अतः 'मैं युद्धसे डरता हूँ' ऐसी यशका नाश करनेवाली बात तो मुझ-जैसा पुरुष साक्षात् इन्द्रके सामने भी नहीं कह सकता। इसलिये महाबाहो! मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है और न किसीकी सहायताकी ही आवश्यकता है। तुम अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, वहाँ जा सकते हो और रहना चाहो तो आनन्दसे रहो।'

इसके बाद रुक्मी अपनी समुद्रके समान विशाल वाहिनीको लौटाकर दुर्योधनके पास आया और वहाँ भी उसने वैसी ही बातें कीं। दुर्योधनको भी अपने वीरत्वका अभिमान था, इसलिये उसने भी उससे सहायता लेना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार बलरामजी और रुक्मी—ये दो वीर उस युद्धसे निकलकर चले गये।

जब दोनों सेनाओंका संगठन हो गया और उनकी व्यूहरचनाका भी निश्चय हो गया तो राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा, 'सञ्जय! अब तुम मुझे यह बताओ कि कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका पड़ाव पड़ जानेपर फिर वहाँ क्या हुआ। मैं तो समझता हूँ होनहार ही बलवान् है, पुरुषार्थसे कुछ नहीं होता। मेरी बुद्धि दोषोंको अच्छी तरह समझ लेती है, किन्तु दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बदल जाती है। अतः अब जो कुछ होना है, वह होकर ही रहेगा।'

दुर्योधनका पाण्डवोंसे कहनेके लिये उलूकको अपना कटु सन्देश सुनाना

सञ्जयने कहा—महाराज ! महात्मा पाण्डवोंने तो हिरण्यवती नदीके तीरपर पड़ाव किया और कौरवोंने एक दूसरे स्थानपर शास्त्रोक्त विधिसे अपनी छावनी डाली । वहाँ राजा दुर्योधनने बड़े उत्साहसे अपनी सेना ठहरायी और भिन्न-भिन्न टुकड़ियोंके लिये अलग-अलग स्थान नियुक्त करके सब राजाओंका बड़ा सम्मान किया । फिर उन्होंने कर्ण, शकुनि और दुःशासनके साथ कुछ गुप्त परामर्श करके उलूकको बुलाकर कहा, ''उलूक ! तुम पाण्डवोंके पास जाओ

और श्रीकृष्णके सामने ही पाण्डवोंसे यह सन्देश कहो । जिसके लिये वर्षोंसे विचार हो रहा था, वह कौरव और पाण्डवोंका भयङ्कर युद्ध अब होनेवाला है । अर्जुन ! तुमने कृष्ण और अपने भाइयोंके सहित सञ्जयसे जो गर्ज-गर्जकर बड़ी शेखीकी बातें कही थीं, वे उसने कौरवोंकी सभामें सुनायी थीं । अब उन्हें कर दिखानेका समय आ गया है । राजन् ! तुम तो बड़े धार्मिक कहे जाते हो । अब तुमने अधर्ममें मन क्यों लगाया है ? इसीको तो विडालव्रत कहते हैं । एक बार नारदजीने मेरे पिताजीसे इस प्रसङ्गमें एक आख्यान कहा था । वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ । एक बार एक बिलाव शक्तिहीन हो जानेके कारण गङ्गाजीके तटपर ऊर्ध्वबाहु होकर खड़ा हो गया और सब प्राणियोंको अपना विश्वास दिलानेके लिये 'मैं धर्माचरण कर रहा हूँ' ऐसी घोषणा करने लगा । इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर पक्षियोंको उसपर विश्वास हो गया और वे उसका सम्मान करने लगे । उसने भी समझा कि मेरी तपस्या सफल तो हो गयी । फिर बहुत दिनों बाद वहाँ चूहे भी आये और उस तपस्वीको देखकर सोचने लगे कि 'हमारे शत्रु बहुत हैं; इसलिये हमारा मामा बनकर यह बिलाव हममेंसे जो बूढ़े और बालक हैं, उनकी रक्षा किया करे ।' तब उन सबने उस विडालके पास जाकर कहा, 'आप हमारे उत्तम आश्रय और परम सुहृद् हैं । अतः हम सब आपकी शरणमें आये हैं । आप सर्वदा धर्ममें तत्पर रहते हैं । अतः वज्रधर इन्द्र जैसे देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें ।'

''चूहोंके इस प्रकार कहनेपर उन्हें भक्षण करनेवाले विडालने कहा—'मैं तप भी करूँ और तुम सबकी रक्षा भी करूँ—ये दोनों काम होनेका तो मुझे कोई ढंग नहीं दिखायी देता । फिर भी तुम्हारा हित करनेके लिये मुझे तुम्हारी बात भी अवश्य माननी चाहिये । तुम्हें भी नित्यप्रति मेरा एक काम करना होगा । मैं कठोर नियमोंका पालन करते-करते बहुत थक गया हूँ । मुझे अपनेमें चलने-फिरनेकी तनिक भी शक्ति दिखायी नहीं देती । अतः आजसे मुझे तुम नित्यप्रति नदीके तीरतक पहुँचा दिया करो ।' चूहोंने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी बात स्वीकार कर ली और सब बूढ़े-बालक उसीको सौंप दिये ।

''फिर तो वह पापी बिलाव उन चूहोंको खा-खाकर मोटा हो गया । इधर चूहोंकी संख्या दिनोंदिन कम होने लगी । तब उन सबने आपसमें मिलकर कहा, 'क्यों जी ! मामा तो रोज-रोज फूलता जा रहा है और हम बहुत घट गये हैं । इसका क्या कारण है ?' तब उनमें कोलिक नामका जो सबसे

बूढ़ा चूहा था, उसने कहा—'मामाको धर्मकी परवा थोड़े ही
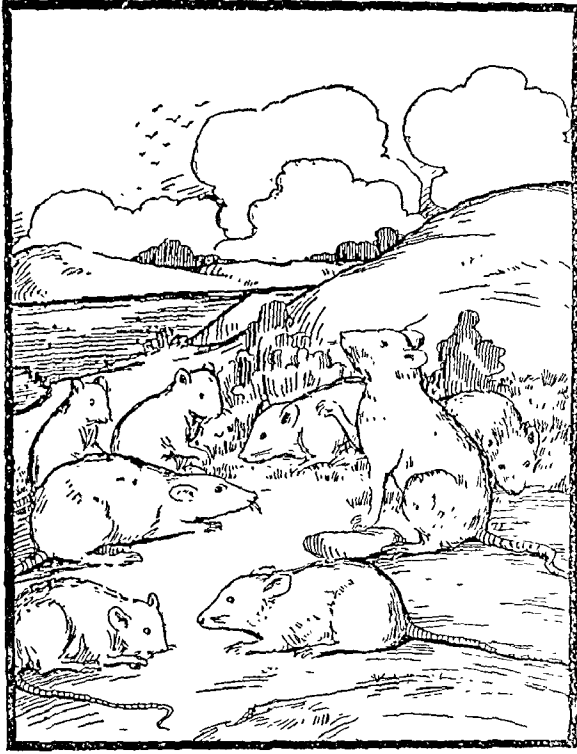
है। उसने तो ढोंग रचकर ही हमसे मेल-जोल बढ़ा लिया है। जो प्राणी केवल फल-मूलादि ही खाता है, उसकी विष्ठामें बाल नहीं होते। इसके अङ्ग बराबर पुष्ट होते जा रहे हैं और हमलोग घट रहे हैं। आठ-सात दिनसे डिंडिक चूहा भी दिखायी नहीं दे रहा है।' कोलिककी यह बात सुनकर सब चूहे भाग गये और वह दुष्ट बिलाव भी अपना-सा मुँह लेकर चला गया।

''दुष्टात्मन्! इस प्रकार तुमने भी विडालव्रत धारण कर रक्खा है। जैसे चूहोंमें विडालने धर्माचरणका ढोंग रच रक्खा था, उसी प्रकार तुम अपने सगे-सम्बन्धियोंमें धर्माचारी बने हुए हो। तुम्हारी बातें तो और प्रकारकी हैं और कर्म दूसरे ढंगका है। तुमने दुनियाको ठगनेके लिये ही वेदाभ्यास और शान्तिका स्वाँग बना रक्खा है। तुम यह पाखण्ड छोड़कर क्षात्रधर्मका आश्रय लो। तुम्हारी माता वर्षोंसे दुःख भोग रही है। उसके आँसू पोंछो और संग्राममें शत्रुओंको परास्त करके सम्मान प्राप्त करो। तुमने हमसे पाँच गाँव माँगे थे। किन्तु यह सोचकर कि किसी प्रकार पाण्डवोंको कुपित करके उनसे संग्रामभूमिमें दो-दो हाथ करें, हमने तुम्हारी माँग मंजूर नहीं की। तुम्हारे लिये ही मैंने दुष्टचित्त विदुरको त्यागा था। मैंने तुम्हें लाक्षाभवनमें जलानेका प्रयत्न किया था—इस बातको याद करके तो एक बार मर्द बन जाओ। तुम जाति और बलमें मेरे समान ही हो। फिर भी कृष्णका आश्रय लिये क्यों बैठे हो!

''उलूक! फिर पाण्डवोंके पास ही कृष्णसे कहना कि तुम अपनी और पाण्डवोंकी रक्षा करनेके लिये अब तैयार होकर हमारे साथ युद्ध करो। तुमने मायासे सभामें जो भयङ्कर रूप धारण किया था, वैसा ही फिर धारण करके अर्जुनके सहित हमपर चढ़ाई करो। इन्द्रजाल, माया अथवा कपट भयजनक तो होते हैं; किन्तु जो रणाङ्गणमें शस्त्र धारण किये हुए हैं, उनका वे कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वे तो उनके कारण रोषमें भरकर गरजने लगते हैं। हम भी यदि चाहें तो आकाशमें चढ़ सकते हैं, रसातलमें घुस सकते हैं और इन्द्रलोकमें जा सकते हैं। किन्तु इससे न तो अपना स्वार्थ सिद्ध हो सकता है और न अपने प्रतिपक्षीको डराया ही जा सकता है। और तुमने जो कहा था कि 'रणभूमिमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मरवाकर पाण्डवोंको उनका राज्य दिलाऊँगा,' सो तुम्हारा यह सन्देश भी सञ्जयने मुझे सुना दिया था। अब तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर पाण्डवोंके लिये पराक्रमपूर्वक कमर कसके युद्ध करो। हम भी तुम्हारा पौरुष देखें। संसारमें अकस्मात् ही तुम्हारा बड़ा यश फैल गया है। किन्तु आज मुझे मालूम हुआ कि जिन लोगोंने तुम्हें सिरपर चढ़ा रक्खा है, वे वास्तवमें पुरुष-चिह्न धारण करनेवाले हिजड़े ही हैं। तुम कंसके एक सेवक ही तो हो। मेरे-जैसे राजा-महाराजोंको तो तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये संग्रामभूमिमें आना भी उचित नहीं है।

''उस बिना मूँछोंके मर्द, बहुभोजी, अज्ञानकी मूर्ति, मूर्ख भीमसेनसे तुम बार-बार कहना कि तुम कौरवोंकी सभामें पहले जो प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसे मिथ्या मत कर देना। और यदि शक्ति रखते हो तो दुःशासनका खून पीना। और तुमने जो कहा था कि 'मैं रणभूमिमें एक साथ सब धृतराष्ट्र-पुत्रोंको मार डालूँगा', सो उसका समय भी अब आ गया है। फिर तुम मेरी ओरसे नकुलसे कहना कि अब डटकर युद्ध करो। हम तो तुम्हारा पुरुषार्थ देखें। अब तुम युधिष्ठिरके अनुराग, मेरे प्रति द्वेष और द्रौपदीके क्लेशको अच्छी तरह याद कर लो। इसी तरह सब राजाओंके बीच सहदेवसे भी कहना कि तुम्हें जो दुःख सहने पड़े हैं, उन्हें याद करके अब सावधानीसे युद्ध करो।

"विराट और द्रुपदसे मेरी ओरसे कहना कि तुम सब इकट्ठे होकर मुझे मारनेके लिये आओ और अपने तथा पाण्डवोंके लिये मेरे साथ संग्राम करो। धृष्टद्युम्नसे कहना कि जब तुम द्रोणाचार्यके सामने आओगे, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा हित किस बातमें है। अब तुम अपने सुहृदोंके सहित मैदानमें आ जाओ। फिर शिखण्डीसे कहना कि महाबाहु भीष्म तुम्हें स्त्री समझकर नहीं मारेंगे। इसलिये तुम निर्भय होकर युद्ध करना।"

इसके बाद राजा दुर्योधन खूब हँसा और उलूकसे कहने लगा—'तुम कृष्णके सामने ही अर्जुनसे एक बार फिर कहना कि तुम या तो हमें परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो, नहीं तो हमारे हाथसे हारकर तुम्हें पृथ्वीपर शयन करना होगा। जिस कामके लिये क्षत्राणी पुत्र प्रसव करती है, उसका समय आ गया है। अब तुम संग्रामभूमिमें बल, वीर्य, शौर्य, अस्त्रलाघव और पुरुषार्थ दिखाकर अपने क्रोधको ठंडा कर लो। हमने तुम्हें जूएमें हराया था; तुम्हारे सामने ही हम द्रौपदीको सभामें घसीट लाये थे, फिर हमींने बारह वर्षके लिये घरसे निकालकर तुम्हें वनमें रक्खा और एक वर्षतक विराटके घरमें रहकर उनकी गुलामी करनेके लिये मजबूर किया। इन देशनिकाले, वनवास और द्रौपदीके क्लेशोंको याद करके जरा मर्द बन जाओ और कृष्णको साथ लेकर युद्धके मैदानमें आ जाओ। तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनाया करते हो, सो यह व्यर्थ बकवाद छोड़कर जरा पुरुषार्थ दिखाओ। भला, तुम पितामह भीष्म, दुर्धर्ष कर्ण, महाबली शल्य और आचार्य द्रोणको युद्धमें परास्त किये बिना कैसे राज्य पाना चाहते हो? अजी! पृथ्वीपर पैर रखनेवाला ऐसा कौन जीव है, जिसे मारनेका भीष्म और द्रोण संकल्प करें तथा जिसे इनके दारुण शस्त्रोंका स्पर्श भी हो जाय और फिर भी वह जीता रहे। यह मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हैं और तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष भी है। तथा तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है—यह बात भी मुझसे छिपी नहीं है। किन्तु लो, यह सब जानकर भी मैं तुम्हारा राज्य छीन रहा हूँ। पिछले तेरह वर्षतक तुमने तो विलाप किया है और मैंने राज्य भोगा है। अब आगे भी बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें मारकर मैं ही राज्यशासन करूँगा। अर्जुन! जिस समय दासत्वके दाँवपर मैंने तुम्हें जूएमें जीता था, उस समय तुम्हारा गाण्डीव कहाँ था और भीमसेनका बल कहाँ चला गया था? उस समय तो अनिन्दिता कृष्णाकी कृपाके बिना गदाधारी भीमसेन और गाण्डीवधारी अर्जुन भी उस दासत्वसे मुक्त नहीं हो सके थे। देखो, यह भी मेरा ही पुरुषार्थ था कि विराटनगरमें भीमसेनको तो रसोई पकाते-पकाते चैन नहीं थी और तुम्हें सिरपर वेणी लटकाकर हिजड़ेका रूप बनाकर राजकन्याको नचाना पड़ता था। मैं तुम्हारे या कृष्णके भयसे राज्य नहीं दूँगा। अब तुम और कृष्ण दोनों मिलकर युद्ध करो। जिस समय मेरे अमोघ बाण छूटेंगे, उस समय हजारों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन दसों दिशाओंमें भागते फिरेंगे। फिर तुम्हारे सभी सगे-सम्बन्धी युद्धमें मारे जायँगे। उस समय तुम्हें बड़ा सन्ताप होगा और जिस प्रकार पुण्यहीन पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा छोड़ बैठता है, उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वीका राज्य पानेकी आशा टूट जायगी। इसलिये तुम शान्त हो जाओ।'

उलूकका पाण्डवोंको दुर्योधनका सन्देश सुनाना और फिर पाण्डवोंका सन्देश लेकर दुर्योधनके पास आना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! इस प्रकार दुर्योधनका सन्देश लेकर उलूक पाण्डवोंकी छावनीमें आया और पाण्डवोंसे मिलकर राजा युधिष्ठिरसे कहने लगा, 'आप दूतके वचनोंसे परिचित ही हैं। इसलिये जिस प्रकार मुझसे कह

गया है, उसी प्रकार दुर्योधनका सन्देश सुनानेपर आप क्रोध न करें।'

युधिष्ठिरने कहा—उलूक ! तुम्हारे लिये कोई भयकी बात नहीं है। तुम बेखटके अदूरदर्शी दुर्योधनका विचार सुनाओ।

उलूकने कहा—राजन् ! महामना राजा दुर्योधनने सब कौरवोंके सामने आपके लिये जो सन्देश कहा है, वह सुनिये। उन्होंने कहा है—"पाण्डव ! तुम राज्यहरण, वनवास और द्रौपदीके उत्पीडनकी बात याद करके जरा मर्द बन जाओ। भीमसेनने सामर्थ्य न होनेपर भी जो ऐसी शर्त की थी कि 'मैं दुःशासनका रक्त पीऊँगा,' सो यदि इनकी ताब हो तो पी लें। अस्त्र-शस्त्रोंमें मन्त्रोंद्वारा देवताओंका आवाहन हो चुका है, कुरुक्षेत्रकी कीचड़ सूख गयी है और मार्ग चौरस हो गये हैं; इसलिये अब कृष्णके साथ संग्रामभूमिमें आ जाओ। तुम पीतामह भीष्म, दुर्धर्ष कर्ण, महाबली शल्य और आचार्य द्रोणको युद्धमें परास्त किये बिना किस प्रकार राज्य लेना चाहते हो ? भला, पृथ्वीपर पैर रखनेवाला ऐसा कौन प्राणी है, जिसे मारनेका भीष्म और द्रोण संकल्प कर लें तथा जिसे उनके दारुण शस्त्रोंका स्पर्श भी हो जाय और फिर भी वह जीता रहे।''

महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कह उलूकने अर्जुनकी ओर मुख करके कहा—'अर्जुन ! आपसे महाराज दुर्योधन कहते हैं कि तुम बहुत बकवाद क्यों करते हो ? ये व्यर्थ बातें बनाना छोड़कर युद्धमें सामने आ जाओ। अब तो युद्ध करनेसे ही कोई काम बन सकता है, बातें बनानेसे कुछ नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि कृष्ण तुम्हारे सहायक हैं और तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष भी है। तथा तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है—यह बात भी मुझसे छिपी नहीं है। किन्तु लो, यह सब जानकर भी मैं तुम्हारा राज्य छीन रहा हूँ। पिछले तेरह वर्षतक तुमने तो विलाप किया और मैंने राज्य भोगा है। अब आगे भी तुम्हें और तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंको मारकर मैं ही राज्यशासन करूँगा। द्यूतक्रीडाके समय जब तुम दासत्वमें बँध गये थे तो उस समय अनिन्दिता द्रौपदीकी कृपाके बिना गदाधारी भीम और गाण्डीवधारी अर्जुन तो उस दासत्वसे अपना छुटकारा भी नहीं करा सके थे। विराटनगरमें मेरे ही कारण तुम्हें सिरपर वेणी लटकाकर हिजड़ेका रूप बनाकर राजकन्याको नचाना पड़ा था। मैं तुम्हारे या कृष्णके भयसे राज्य नहीं दूँगा। अब तुम और कृष्ण दोनों मिलकर हमारे साथ युद्ध करो। जिस समय मेरे अमोघ बाण छूटेंगे, उस समय हजारों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन दसों दिशाओंमें भागते फिरेंगे। इस प्रकार जब तुम्हारे सभी सगे-सम्बन्धी युद्धमें मारे जायँगे तो तुम्हें बड़ा सन्ताप होगा और जिस प्रकार पुण्यहीन पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा छोड़ बैठता है, उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वीका राज्य पानेकी आशा टूट जायगी। इसलिये तुम शान्त हो जाओ।'

पाण्डवलोग तो पहलेहीसे क्रोधमें भरे बैठे थे। उलूककी ये बातें सुनकर वे और भी गर्म हो गये और विषधर सर्पोंके समान एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। तब श्रीकृष्णने कुछ मुसकराकर उलूकसे कहा, 'उलूक ! तुम जल्दी ही दुर्योधनके पास जाओ और उससे कहो कि हमने तुम्हारी बातें सुन ली हैं। तुम्हारा जैसा विचार है, वैसा ही होगा।'

भीमसेन कौरवोंके संकेत और भावको समझकर क्रोधसे आगबबूला हो गये और दाँत पीसकर उलूकसे कहने लगे, "मूर्ख ! दुर्योधनने तुमसे जो-जो बातें कही हैं, वे सब हमने सुन लीं। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनो। तुम सब क्षत्रियोंके सामने सूतपुत्र कर्ण और अपने पिता दुरात्मा शकुनिके सुनते हुए दुर्योधनसे यह कहना कि 'रे दुरात्मन् ! हम जो अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये सदासे तेरे अपराधोंको सहते रहे हैं, मालूम होता है

हमारे उन उपकारोंका तेरे हृदयमें कुछ भी आदर नहीं है। धर्मराज अपने कुलके कल्याणके लिये ही आपसमें मेल कराना चाहते थे। इसीसे उन्होंने श्रीकृष्णको कौरवोंके पास भेजा था। किन्तु अवश्य ही तेरे सिरपर काल नाच रहा है, इसीसे तू यमराजके घर जाना चाहता है। अच्छा तो, अब निश्चय कल हमारे साथ तेरा संग्राम होगा। मैंने भी तुझे और तेरे भाइयोंको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और ऐसा ही होगा भी। समुद्र भले ही अपनी मर्यादाको तोड़ दे और पहाड़ोंके भले ही टुकड़े-टुकड़े उड़ जायँ, किन्तु मेरा कथन झूठा नहीं होगा। अरे दुर्बुद्धे! साक्षात् यम, कुबेर और रुद्र भी तेरी सहायता करें तो भी पाण्डवलोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। मैं खूब जी भरकर दुःशासनका खून पीऊँगा। इस युद्धमें स्वयं भीष्मजीको आगे रखकर भी कोई क्षत्रिय मेरे सामने आवेगा तो उसे तुरंत यमराजके घर भेज दूँगा।' इस क्षत्रियोंकी सभामें मैंने ये जितनी बातें कही हैं, वे सभी सत्य होंगी—यह मैं अपने आत्माकी शपथ करके कहता हूँ।''

भीमसेनकी बातें सुनकर सहदेव भी क्रोधमें भर गये और इस प्रकार कहने लगे, ''पापी उलूक! मेरी बात सुनो। तुम अपने पितासे जाकर कहना कि 'यदि राजा धृतराष्ट्रसे तुम्हारा सम्बन्ध न होता तो हममें यह फूट ही न पड़ती।' तुमने तो धृतराष्ट्रके वंश और सब लोगोंका नाश करानेके लिये ही जन्म लिया है। तुम साक्षात् शत्रुताकी मूर्ति, अपने कुलका उच्छेद करानेवाले और बड़े पापी हो।' उलूक! याद रक्खो, इस संग्राममें मैं पहले तुम्हें मारूँगा और फिर तुम्हारे पिताके प्राण लूँगा।'

भीम और सहदेवकी बात सुनकर अर्जुनने मुसकराकर भीमसेनसे कहा—'भाईजी! आपके साथ जिन लोगोंका वैर है, उनके सम्बन्धमें तो आप यही समझिये कि वे संसारमें हैं ही नहीं। किन्तु उलूकसे आपको कोई कड़ी बात नहीं कहनी चाहिये। दूत बेचारे क्या अपराध करते हैं; उनसे तो जैसा कहनेको कहा जाता है, वैसा ही वे सुना देते हैं।' भीमसेनसे ऐसा कहकर फिर उन्होंने धृष्टद्युम्नादि अपने सम्बन्धियोंसे कहा, 'आपलोगोंने पापी दुर्योधनकी बातें सुन लीं? इनमें विशेषरूपसे मेरी और श्रीकृष्णकी ही निन्दा की गयी है। इन बातोंको सुनकर आप हमारे ही हितकी दृष्टिसे रोषमें भर गये हैं। किन्तु आपलोगोंकी सहायता और श्रीकृष्णके प्रतापसे मैं सम्पूर्ण क्षत्रिय राजाओंको भी कुछ नहीं समझता। अतः आप सब आज्ञा दें तो मैं उलूकको इन बातोंका उत्तर दे दूँ। नहीं तो कल अपनी सेनाके मुहानेपर गाण्डीव धनुषसे ही इस बकवादका जवाब दूँगा। बातोंमें तो नपुंसकलोग ही जवाब दिया करते हैं।' अर्जुनकी यह बात सुनकर राजालोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

फिर महाराज युधिष्ठिरने उन सबका उनके सम्मान और आयुके अनुसार सत्कार किया और दुर्योधनको सन्देशरूपसे सुनानेके लिये उलूकसे कहा—'उलूक! तुम जाओ और शत्रुताकी मूर्ति कुलकलङ्क दुर्योधनसे कहो कि भाई! तुम्हारी बड़ी पापबुद्धि है। अब तुमने हमें युद्धके लिये आमन्त्रित तो कर ही लिया है। किन्तु तुम क्षत्रिय हो, इसलिये हमारे माननीय भीष्मादिको और स्नेहास्पद लक्ष्मणादिको आगे रखकर हमसे युद्ध मत करना। बल्कि अपने और अपने सेवकोंके पराक्रमके भरोसे ही पाण्डवोंको युद्धमें बुलाना। देखो, पूरा-पूरा क्षत्रियत्व निभाना। जो पुरुष दूसरोंके पराक्रमका आश्रय लेकर शत्रुओंको संग्रामके लिये बुलाता है और स्वयं उससे लोहा लेनेकी शक्ति नहीं रखता, उसीको नपुंसक कहते हैं।'

श्रीकृष्णने कहा—उलूक! इसके बाद तुम दुर्योधनसे मेरा सन्देश कहना कि 'अब कल ही तुम रणभूमिमें आ जाओ और अपनी मर्दानगी दिखाओ। तुम जो ऐसा समझते हो कि कृष्ण युद्ध नहीं करेगा; क्योंकि पाण्डवोंने इससे अर्जुनका सारथि बननेके लिये कहा है—क्या इसीसे तुम्हें मेरा डर नहीं है? सो याद रक्खो, युद्धके अन्तमें कोई भी नहीं बचेगा; आग जैसे घास-फूसको जला देती है, उसी प्रकार अपने क्रोधसे मैं सबको भस्म कर दूँगा। इस समय तो महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे मैं युद्ध करते हुए अर्जुनका सारथ्य ही करूँगा। अब कल तो तुम तीनों लोकोंमें यदि कहीं उड़कर जाना चाहोगे अथवा भूमिके भीतर घुसनेका प्रयत्न करोगे, तो भी वहीं तुम्हें अर्जुनका रथ दिखायी देगा। और तुम जो भीमसेनकी प्रतिज्ञाको मिथ्या समझते हो, सो तुम समझ लो कि दुःशासनका खून तो उन्होंने आज ही पी लिया। तुम व्यर्थ ऐसी उल्टी-उल्टी बातें बनाते हो; महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव तो तुम्हें कुछ भी नहीं समझते।'

इसके बाद महायशस्वी अर्जुन श्रीकृष्णकी ओर देखकर उलूकसे कहने लगे—'जो पुरुष अपने पराक्रमके भरोसे शत्रुओंको संग्रामके लिये ललकारता है और फिर डटकर उनका मुकाबला करता है, मर्द तो वही है। जाओ, तुम

दुर्योधनसे कहना कि सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर ली है, अब आजकी रात बीतते ही युद्ध आरम्भ हो जायगा। मैं तुम्हारे सामने सबसे पहले कुरुवृद्ध पितामह भीष्मका ही संहार करूँगा। तुम्हारे अधर्मी भाई दुःशासनसे भीमसेनने क्रोधमें भरकर सभामें जो बात कही थी, उसे भी तुम थोड़े ही दिनोंमें सत्य हुई देखोगे। दुर्योधन! अभिमान, दर्प, क्रोध, कटुता, निष्ठुरता, अहंकार, क्रूरता, तीक्ष्णता, धर्मविद्वेष, गुरुजनोंकी बात न मानने और अधर्मपर तुले रहनेका दुष्परिणाम बहुत जल्द तुम्हारे सामने आ जायगा। भीष्म, द्रोण और कर्णके युद्धस्थलमें काम आते ही तुम अपने जीवन, राज्य और पुत्रोंकी आशा छोड़ बैठोगे। जब तुम अपने भाई और पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुनोगे और भीमसेन तुम्हें मारने लगेंगे, तभी तुम्हें अपने कुकर्मोंकी याद आवेगी। मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ, ये सभी बातें सत्य होकर रहेंगी।'

तदनन्तर युधिष्ठिरने फिर कहा—'भैया उलूक! तुम दुर्योधनसे जाकर मेरी यह बात कहना कि मैं तो कीड़े-मकोड़ों-को भी कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता, फिर अपने सगे-सम्बन्धियों-के नाशकी इच्छा कैसे कर सकता हूँ? इसीसे मैंने पहले ही केवल पाँच गाँव माँगे थे। किन्तु तुम्हारा मन तृष्णामें डूबा हुआ है और तुम मूर्खतासे ही व्यर्थ बकवाद किया करते हो। देखो, तुमने श्रीकृष्णकी भी हितकारिणी शिक्षा ग्रहण नहीं की। अब अधिक कहने-सुननेमें क्या रक्खा है, तुम अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित मैदानमें आ जाओ।'

इसके बाद भीमसेनने कहा—'उलूक! दुर्योधन बड़ा ही दुर्बुद्धि, पापी, शठ, क्रूर, कुटिल और दुराचारी है। तुम मेरी ओरसे उससे कहना कि मैंने सभाके बीचमें जो प्रतिज्ञा की थी उसे, मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ, अवश्य सत्य करूँगा। मैं रणभूमिमें दुःशासनको पछाड़कर उसका लोहू पीऊँगा तथा तेरी जंघाको तोड़ूँगा और तेरे भाइयों-को नष्ट कर डालूँगा। सच मान, मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका काल हूँ। एक बात और भी सुन—मैं भाइयोंके सहित तुझे मारकर धर्मराजके सामने ही तेरे सिरपर पैर रक्खूँगा।'

फिर नकुलने कहा—'उलूक! तुम धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे कहना कि मैंने तुम्हारी सब बातें अच्छी तरह सुन ली हैं। तुम मुझे जैसा करनेके लिये कह रहे हो, मैं वैसा ही करूँगा।' सहदेव बोले, 'दुर्योधन! तुम्हारा जो विचार है, वह सब वृथा हो जायगा और महाराज धृतराष्ट्रको तुम्हारे लिये शोक करना पड़ेगा।' इसके पश्चात् शिखण्डीने कहा, 'निःसन्देह विधाताने मुझे पितामह भीष्मके वधके लिये ही उत्पन्न किया है। इसलिये मैं सब धनुर्धरोंके देखते-देखते उन्हें धराशायी कर दूँगा।' फिर धृष्टद्युम्नने भी कहा, 'मेरी ओरसे तुम दुर्योधनसे कहना कि मैं द्रोणाचार्यको उनके साथी और सम्बन्धियोंके सहित मार डालूँगा।' अन्तमें महाराज युधिष्ठिरने करुणावश फिर कहा, 'मैं तो किसी भी प्रकार अपने कुटुम्बियोंका वध नहीं कराना चाहता। यह सब नौबत तो तुम्हारे ही दोषसे आयी है। और उलूक! अब तुम या तो जाओ या रहनेकी इच्छा हो तो यहीं रहो। हम भी तुम्हारे सम्बन्धी ही हैं।'

तब उलूक महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा पा राजा दुर्योधन-के पास आया और उसे अर्जुनका सन्देश ज्यों-का-त्यों सुना दिया। तथा श्रीकृष्ण, भीमसेन और धर्मराज युधिष्ठिरके पुरुषार्थका वर्णन कर नकुल, विराट, द्रुपद, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने जो-जो बातें कही थीं, वे
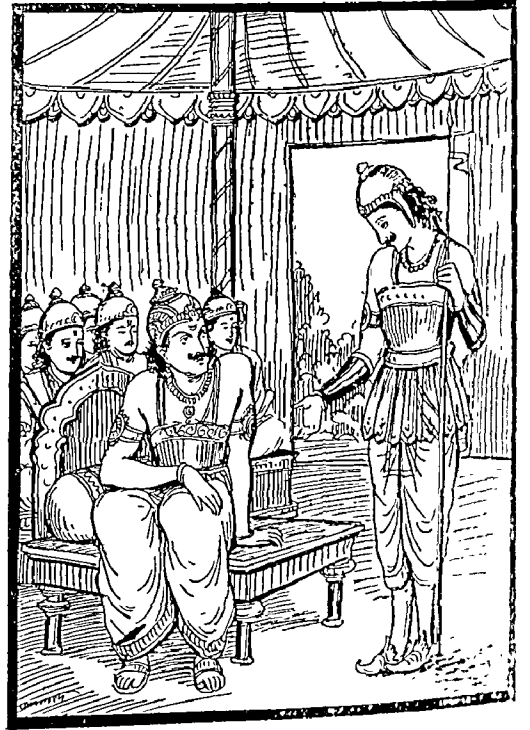
सब उसी प्रकार सुना दीं। उलूककी बातें सुनकर राजा दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण और शकुनिसे कहा कि 'सब राजाओं-को तथा अपनी और अपने मित्रोंकी सेनाको आज्ञा दे दो कि कल सूर्योदय होनेसे पहले ही सब सेनापति तैयार हो जायँ।' तब कर्णकी आज्ञासे दूतोंने सम्पूर्ण सेना और राजाओं-को दुर्योधनका यह आदेश सुना दिया।

इधर उलूककी बातें सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें अपनी चतुरङ्गिणी सेनाका कूच करा दिया। महारथी भीम और अर्जुन आदि सब ओरसे उसकी देखभाल करते चलते थे। उसके आगे महान् धनुर्धर धृष्टद्युम्न थे। उन्होंने जिस वीरका जैसा बल और जैसा उत्साह था, उसे उसी कोटिके प्रतिपक्षीसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। अर्जुनको कर्णके साथ, भीमसेनको दुर्योधनके साथ, धृष्टकेतुको शल्यके साथ, उत्तमौजाको कृपाचार्यके साथ, नकुलको अश्वत्थामाके साथ, शैब्यको कृतवर्माके साथ, सात्यकिको जयद्रथके साथ और शिखण्डीको भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्त किया। इसी प्रकार सहदेवको शकुनिसे, चेकितानको शलसे, द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको त्रिगर्त-वीरोंसे और अभिमन्युको वृषसेन तथा अन्यान्य राजाओंसे भिड़नेका आदेश दिया; क्योंकि वे उसे संग्रामभूमिमें अर्जुनकी अपेक्षा भी अधिक शक्तिशाली समझते थे। इस प्रकार सब योद्धाओंका विभाग कर उन्होंने अपने भागमें द्रोणाचार्यको रक्खा और फिर पाण्डवोंकी विजयके लिये रणाङ्गणमें सुसज्जित होकर खड़े हो गये।

दुर्योधनका भीष्मजीके मुखसे अपनी सेनाके रथी और अतिरथियोंका विवरण सुनना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुनने रणभूमिमें भीष्मका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की तो मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनादिने क्या किया? मुझे तो अब ऐसा जान पड़ता है मानो श्रीकृष्णके साथी अर्जुनने संग्राममें हमारे काका भीष्मजीको मार ही डाला हो। इसके सिवा यह भी सुनाओ कि महापराक्रमी भीष्मजीने प्रधान सेनापतिका पद पाकर फिर क्या किया।

सञ्जय कहने लगे—महाराज! सेनाध्यक्षका पद पाकर शान्तनुनन्दन भीष्मजीने दुर्योधनकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए कहा, 'मैं शक्तिपाणि भगवान् स्वामिकार्तिकेयको नमस्कार कर आज तुम्हारा सेनापति बनता हूँ। अब इसमें तुम किसी प्रकारका सन्देह न करना। मैं सेनासम्बन्धी कार्यों और तरह-तरहकी व्यूहरचनाओंमें कुशल हूँ। मुझे देवता, गन्धर्व और मनुष्य—तीनोंहीकी व्यूहरचनाका ज्ञान है; अब तुम सब प्रकारकी मानसिक चिन्ता छोड़ दो। मैं शास्त्रानुसार तुम्हारी सेनाकी यथोचित रक्षा करते हुए निष्कपटभावसे पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा।'

दुर्योधनने कहा—पितामह! भय तो मुझे देवता और असुरोंसे युद्ध करनेमें भी नहीं लगता। फिर जब आप सेनापति हों और पुरुषसिंह आचार्य द्रोण हमारी रक्षाके लिये खड़े हों, तब तो कहना ही क्या है? आप अपने और विपक्षियोंके सभी रथी और अतिरथियोंको अच्छी तरह जानते हैं। अतः मैं और ये सब राजालोग आपके मुखसे उनकी संख्या सुनना चाहते हैं।

भीष्मजीने कहा—राजन्! तुम्हारी सेनामें जितने रथी और महारथी हैं, उनका विवरण सुनो। तुम्हारे पक्षमें करोड़ों और अरबों रथी हैं। उनमें जो प्रधान-प्रधान हैं, उनके नाम सुनो। सबसे पहले तो दुःशासन आदि अपने सौ भाइयोंके सहित तुम ही बहुत बड़े रथी हो। तुम सभी छेदन-भेदनमें कुशल और गदा, प्रास तथा ढाल-तलवारके युद्धमें पारङ्गत हो। मैं तुम्हारा प्रधान सेनापति हूँ। मेरी कोई बात तुमसे छिपी नहीं है; अपने मुँहसे मैं अपने गुणोंका वर्णन करूँ, यह उचित नहीं समझता। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा भी तुम्हारी सेनामें एक अतिरथी है। महान् धनुर्धर मद्रराज शल्यको भी मैं अतिरथी मानता हूँ। ये अपने भानजे नकुल और सहदेवको छोड़कर शेष सब पाण्डवोंसे युद्ध करेंगे। रथयूथपतियोंके अधिपति भूरिश्रवा भी शत्रुओंकी सेनाका बड़ा भीषण संहार करेंगे। सिन्धुराज जयद्रथको मैं दो रथियोंके बराबर समझता हूँ। ये अपने दुस्त्यज प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पाण्डवोंके साथ संग्राम करेंगे। काम्बोजनरेश सुदक्षिण एक रथीके बराबर हैं। माहिष्मतीपुरीका राजा नील भी रथी कहा जा सकता है। इसका पहलेसे ही सहदेवसे वैर बँधा हुआ है। इसलिये यह तुम्हारे लिये पाण्डवोंके साथ बराबर युद्ध करता रहेगा। अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द बड़े अच्छे रथी माने जाते हैं। ये दोनों युद्धके बड़े प्रेमी हैं, इसलिये ये शत्रु-सेनामें खेल-सा करते हुए कालके समान विचरेंगे। मेरे विचारसे त्रिगर्तदेशके पाँच भाई भी बहुत अच्छे रथी हैं। उनमें भी सत्यरथ प्रधान है। तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासनका लड़का—ये दोनों यद्यपि तरुण अवस्थाके और सुकुमार हैं, तो भी मैं इन्हें अच्छा रथी समझता हूँ। राजा दण्डधार भी एक रथी है, अपनी सेनाके साथ वह भी संग्राममें अच्छा हाथ दिखावेगा। मेरे विचारसे बृहद्बल और कौसल्य भी अच्छे रथी हैं। कृपाचार्य तो रथयूथपतियोंके अध्यक्ष ही हैं।

वे अपने प्यारे प्राणोंकी भी बाजी लगाकर तुम्हारे शत्रुओंका संहार करेंगे। ये साक्षात् स्वामिकार्तिकेयके समान अजेय हैं।

तुम्हारे मामा शकुनि भी एक रथी हैं। इन्होंने पाण्डवोंसे वैर ठाना है, इसलिये निःसन्देह ये उनसे घोर युद्ध करेंगे। द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा तो बहुत बड़े महारथी हैं। किन्तु इन्हें अपने प्राण बहुत प्यारे हैं। यदि इनमें यह दोष न होता तो इनके समान योद्धा दोनों पक्षकी सेनाओंमें कोई नहीं था। इनके पिता द्रोणाचार्य तो बूढ़े होनेपर भी जवानोंसे अच्छे हैं। वे संग्राममें बहुत बड़ा काम करेंगे—इसमें मुझे सन्देह नहीं है। किन्तु अर्जुनपर इनका बड़ा स्नेह है। इसलिये अपने आचार्यत्वकी ओर देखकर ये उसे कभी नहीं मारेंगे; क्योंकि उसे तो ये अपने पुत्रसे भी बढ़कर समझते हैं। यों तो सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और मनुष्य मिलकर भी इनके सामने आवें तो ये अकेले ही रथपर सवार होकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे उन्हें तहस-नहस कर सकते हैं। इनके सिवा महाराज पौरवको भी मैं महारथी समझता हूँ। ये पाञ्चाल वीरोंका संहार करेंगे। राजपुत्र बृहद्बल भी एक सच्चा रथी है। वह कालके समान तुम्हारे शत्रुओंकी सेनामें घूसेगा। मेरे विचारसे मधुवंशी राजा जलसन्ध भी रथी है। अपनी सेनाके सहित वह भी प्राणोंका मोह त्यागकर युद्ध करेगा। महाराज बाह्लीक तो अतिरथी हैं, उन्हें मैं संग्राममें साक्षात् यमराजके समान समझता हूँ। वे एक बार युद्धमें आकर फिर पीछे कदम नहीं रखते। सेनापति सत्यवान् भी एक महारथी है। उसके हाथसे बड़े अद्भुत कर्म होंगे। राक्षसराज अलम्बुष तो महारथी है ही। यह सारी राक्षससेनामें सर्वोत्तम रथी और मायावी है तथा पाण्डवोंसे इसकी बड़ी कट्टर शत्रुता है। प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त बड़े ही वीर और प्रतापी हैं। वे हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और रथयुद्धमें भी कुशल हैं। इनके सिवा गान्धारोंमें श्रेष्ठ अचल और वृषक—ये दो भाई भी अच्छे रथी हैं। ये दोनों मिलकर शत्रुओंका संहार करेंगे।

यह कर्ण, जो तुम्हारा प्यारा मित्र, सलाहकार और नेता है तथा तुम्हें सर्वदा ही पाण्डवोंसे झगड़ा करनेके लिये उभारा करता है, बड़ा ही अभिमानी, बकवादी और नीच प्रकृतिका है। यह न तो रथी है और न अतिरथी ही है। मैं इसे अर्धरथी समझता हूँ। यह यदि एक बार अर्जुनके सामने चला गया तो उसके हाथसे जीता बचकर नहीं लौटेगा।

इसी समय द्रोणाचार्य भी कहने लगे—'भीष्मजी! ठीक है; आप जैसा कह रहे हैं, वैसी ही बात है। आपका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हमने भी प्रत्येक युद्ध इसे शेखी बघारते और फिर वहाँसे भागते ही देखा है यह प्रमादी है, इसलिये मैं भी इसे अर्धरथी ही मानता हूँ

भीष्म और द्रोणकी ये बातें सुनकर कर्णकी त्यौरी चढ़ गयी और वह गुस्सेमें भरकर कहने लगा, 'पितामह! मेरा कोई अपराध न होनेपर भी आप द्वेषवश इसी प्रकार बात-बातमें मुझे वाग्बाणोंसे बींधा करते हैं। मैं केवल राजा दुर्योधनके कारण ही आपकी ये सारी बातें सह लेता हूँ। आप यदि मुझे अर्धरथी मानेंगे तो सारा संसार भी यह समझकर कि भीष्म झूठ नहीं बोलते मुझे अर्धरथी ही समझेगा। किन्तु कुरुनन्दन! अधिक आयु होनेसे, बाल पक जानेसे अथवा धन या बहुत-सा कुटुम्ब होनेसे किसी क्षत्रियको महारथी नहीं कहा जाता। क्षत्रिय तो बलके कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके ज्ञानसे, वैश्य अधिक धनसे और शूद्र अधिक आयु होनेसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं। आप राग-द्वेषसे भरे हैं, इसलिये मोहवश मनमाने रूपसे रथी-अतिरथियोंका विभाग किया करते हैं। महाराज दुर्योधन! आप जरा अच्छी तरह ठीक-ठीक विचार कीजिये। भीष्मजीका भाव बड़ा दूषित है और ये आपका अहित करनेवाले हैं, इसलिये आप इन्हें त्याग दीजिये। कहाँ तो रथी और अतिरथियोंका विचार और कहाँ ये अल्पबुद्धिवाले भीष्म! इन्हें भला, इसका क्या विवेक हो सकता है। मैं तो अकेला ही सारी पाण्डवसेनाके मुँह फेर दूँगा। भीष्मकी आयु बीत चुकी है। इसलिये कालकी प्रेरणासे इनकी बुद्धि भी मोटी हो गयी है। ये भला युद्ध, मार-काट और सत्परामर्शकी बातें क्या समझें! शास्त्रने केवल वृद्धोंकी बातपर ध्यान देनेको ही कहा है, अतिवृद्धोंकी बातपर नहीं; क्योंकि वे तो फिर बालकोंके समान ही माने जाते हैं। यद्यपि मैं अकेला ही पाण्डवोंकी इस सेनाको नष्ट कर दूँगा, किन्तु सेनापति होनेके कारण उसका यश तो भीष्मको ही मिलेगा। इसलिये जबतक ये जीते हैं, तबतक तो मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं कर सकता। इनके मरनेपर तो मैं सभी महारथियोंके साथ लड़कर दिखा दूँगा।'

भीष्मने कहा—सूतपुत्र! मैं आपसमें फूट डलवाना नहीं चाहता, इसीसे अबतक तू जीवित है। मैं बूढ़ा हूँ तो क्या हुआ, तू तो अभी बच्चा ही है। फिर भी मैं तेरी युद्धकी लालसा और जीवनकी आशाको नहीं काट रहा हूँ। जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र बरसाकर

मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सके तो तू भला, क्या कर लेगा? अरे कुलकलङ्क! यद्यपि भले आदमी अपने बलकी अपने ही मुँहसे बड़ाई नहीं किया करते, तो भी तेरी करतूतोंसे कुढ़कर मुझे ये बातें कहनी ही पड़ती हैं। देख, जब काशिराजके यहाँ स्वयंवर हुआ था तो मैंने वहाँ इकट्ठे हुए सब राजाओंको जीतकर काशिराजकी कन्याओंको हर लिया था। उस समय ऐसे-ऐसे हजारों राजाओंको मैंने अकेले ही युद्धभूमिमें परास्त कर दिया था।

यह विवाद होता देखकर राजा दुर्योधनने भीष्मजीसे कहा, 'पितामह! आप मेरी ओर देखिये। आपके सिरपर बड़ा भारी काम आ पड़ा है। अब आप एकमात्र मेरे हितपर ही दृष्टि रक्खें। मेरे विचारसे तो आप दोनोंहीसे मेरा बड़ा भारी उपकार होगा। अब मैं शत्रुओंकी सेनामें भी जो रथी और अतिरथी हैं, उनका विवरण सुनना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं शत्रुओंके बलाबलके विषयमें जानकारी प्राप्त कर लूँ; क्योंकि आजकी रात बीतते ही उनसे हमारा युद्ध छिड़ जायगा।'

पाण्डवपक्षके रथी और अतिरथियोंकी गणना

भीष्मजीने कहा—राजन्! मैंने तुम्हारे पक्षके रथी, अतिरथी और अर्धरथी तो सुना दिये; अब यदि तुम्हें पाण्डवपक्षके रथी आदि सुननेकी उत्सुकता है, तो वह भी सुनो। प्रथम तो राजा युधिष्ठिर ही बहुत अच्छे रथी हैं। भीमसेन तो आठ रथियोंके बराबर है। बाण और गदाके युद्धमें उसके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है। उसमें दस हजार हाथियोंका बल है तथा वह बड़ा ही मानी और तेजस्वी है। माद्रीके पुत्र नकुल-सहदेव भी अच्छे रथी हैं। ये सब पाण्डव बाल्यावस्थामें ही तुमलोगोंकी अपेक्षा तेजीसे दौड़ने, लक्ष्य बेधने, मर्मस्थानोंको पीडित करने और पृथ्वीपर डालकर घसीटनेमें बढ़े-चढ़े थे। ये लोग रणभूमिमें हमारी सेनाको नष्ट कर डालेंगे, तुम इनसे युद्ध मत ठानो। अर्जुनको तो साक्षात् श्रीनारायणकी सहायता प्राप्त है। दोनों पक्षकी सेनाओंमें अर्जुन-जैसा रथी कोई भी नहीं है। इस समय ही नहीं, मैंने तो भूतकालमें भी ऐसा कोई रथी नहीं सुना। वह यदि क्रोध करेगा तो तुम्हारी सारी सेनाको विध्वंस कर डालेगा। अर्जुनका सामना या तो मैं कर सकता हूँ या आचार्य द्रोण। हमारे सिवा दोनों सेनाओंमें तीसरा कोई भी वीर उसके आगे नहीं टिक सकता। किन्तु हम दोनों भी अब बूढ़े हो गये हैं, अर्जुन तो युवा और सब प्रकार कार्यकुशल है।

इनके सिवा द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराटके पुत्र उत्तरको भी मैं अच्छा रथी मानता हूँ। महाबाहु अभिमन्यु तो रथयूथपोंके यूथोंका भी अध्यक्ष है। वह युद्ध करनेमें स्वयं अर्जुन और श्रीकृष्णके समान है। वृष्णिवंशी वीरोंमें परम शूरवीर सात्यकि भी रथयूथपोंका यूथप है। वह बड़ा ही असहनशील और निर्भय है। उत्तमौजाको भी मैं अच्छा रथी मानता हूँ तथा मेरे विचारसे युधामन्यु भी उत्तम रथी है। विराट और द्रुपद बूढ़े होनेपर भी युद्धमें अजेय हैं; मैं इन्हें बड़ा पराक्रमी और महारथी समझता हूँ। द्रुपदका पुत्र शिखण्डी भी उस सेनामें एक प्रधान रथी है। द्रोणाचार्यका शिष्य धृष्टद्युम्न तो उस सारी सेनाका अध्यक्ष है। उसे भी मैं महारथी और अतिरथी मानता हूँ। धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा अर्धरथी है; क्योंकि बालक होनेके कारण अभी उसने विशेष परिश्रम नहीं किया। शिशुपालका पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु बड़ा ही वीर और धनुर्धर है। वह पाण्डवोंका सम्बन्धी और महारथी है। इनके सिवा क्षत्रदेव, जयन्त, अमितौजा, सत्यजित्, अज, और भोज भी पाण्डवोंके पक्षमें महान् पराक्रमी और महारथी हैं।

केकय देशके पाँच सहोदर राजकुमार बड़े ही दृढपराक्रमी, तरह-तरहके शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले और उच्च कोटिके रथी हैं। कौशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व—ये सभी बड़े अच्छे रथी और युद्धकलामें निष्णात हैं। महाराज वार्द्धक्षेमिको भी मैं महारथी मानता हूँ। राजा चित्रायुध भी रथियोंमें श्रेष्ठ और अर्जुनका भक्त है। चेकितान, सत्यधृति, व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन—ये पाण्डवसेनामें बड़े अच्छे रथी हैं। सेनाबिन्दु या क्रोधहन्ता नामका जो वीर है, वह तो श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान ही बलवान् है। उसे भी एक उत्तम रथी मानना चाहिये। काशिराज शस्त्र चलानेमें बड़ा फुर्तीला और शत्रुओंका संहार करनेवाला है। वह भी एक रथीके बराबर है। द्रुपदका युवा पुत्र सत्यजित् तो आठ रथियोंके बराबर है। उसे धृष्टद्युम्नके समान अतिरथी कहा जा सकता है। राजा पाण्ड्य भी पाण्डवसेनामें एक महारथी है। वह बड़ा ही पराक्रमी और महान् धनुर्धर है। इनके सिवा श्रेणिमान् और राजा वसुदानको भी मैं अतिरथी मानता हूँ।

पाण्डवोंकी ओर रोचमान भी एक महारथी है। पुरुजित् कुन्तिभोज बड़ा ही धनुर्धर और महाबली है। वह भीमसेनका

मामा है। मेरे विचारसे वह अतिरथी है। भीमसेनका पुत्र राक्षसराज घटोत्कच बड़ा ही मायावी है। उसे मैं रथयूथ-पतियोंका भी अधिपति समझता हूँ। राजन्! मैंने तुम्हें ये पाण्डवसेनाके प्रधान-प्रधान रथी, अतिरथी और अर्धरथी सुनाये। मुझे श्रीकृष्ण, अर्जुन या दूसरे राजाओंमेंसे जो कोई जहाँ भी मिलेगा, उसे मैं वहीं रोकनेका प्रयत्न करूँगा। परन्तु यदि द्रुपदपुत्र शिखण्डी मेरे सामने आकर युद्ध करेगा तो उसे मैं नहीं मारूँगा; क्योंकि मैंने सब राजाओंके सामने अ ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा की है। अतः किसी स्त्रीको अथवा जो स्त्री रहा हो, उस पुरुषको मैं कभी नहीं मार सकता। त तुमने सुना हो, यह शिखण्डी पहले स्त्री था। यह कन्या उत्पन्न होकर पीछे पुरुष हो गया है। इसलिये इससे मैं नहीं करूँगा। इसके सिवा रणभूमिमें और जो-जो राजा मेरे स आवेंगे उन सबको मारूँगा, किन्तु कुन्तीपुत्रोंके प्राण नहीं लूँ

भीष्मजीका शिखण्डीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाना, अम्बाका भीष्मद्वारा हरण और शाल्वद्वारा तिरस्

दुर्योधनने पूछा—दादाजी! आततायी शिखण्डी यदि रणक्षेत्रमें बाण चढ़ाकर आपके सामने आवेगा, तो भी आप उसका वध क्यों नहीं करेंगे?

भीष्मजी बोले—दुर्योधन! शिखण्डीको रणभूमिमें अपने सामने देखकर भी जो मैं नहीं मारूँगा, उसका कारण सुनो। जब मेरे जगद्विख्यात पिता शान्तनुजी स्वर्गवासी हुए तो मैंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए चित्राङ्गदको राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। जब उसकी भी मृत्यु हो गयी तो माता सत्यवतीकी सलाहसे मैंने विचित्रवीर्यको राजा बनाया। विचित्रवीर्यकी आयु बहुत छोटी थी, इसलिये राजकार्यमें उसे मेरी सहायताकी अपेक्षा रहती थी। फिर मुझे किसी अनुरूप कुलकी कन्याके साथ उसका विवाह करनेकी चिन्ता हुई। इसी समय मैंने सुना कि काशिराजकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामकी तीन अनुपम रूपवती कन्याओंका स्वयंवर होनेवाला है। उसमें पृथ्वीके सभी राजाओंको बुलाया गया था। मैं भी अकेला ही रथमें चढ़कर काशिराजकी राजधानीमें पहुँचा। वहाँ यह नियम किया गया था कि जो सबसे पराक्रमी होगा, उसे ये कन्याएँ विवाही जायँगी। मुझे जब यह मालूम हुआ तो मैंने तीनों कन्याओंको अपने रथमें बैठा दिया और वहाँ इकट्ठे हुए सब राजाओंको बार-बार सुना दिया कि 'महाराज शान्तनुका पुत्र भीष्म इन कन्याओंको लिये जाता है, आपलोग पूरा-पूरा बल लगाकर इन्हें छुड़ानेका प्रयत्न करें।'

तब वे सब राजा अस्त्र-शस्त्र लेकर मेरे ऊपर टूट पड़े और अपने सारथियोंको रथ तैयार करनेका आदेश देने लगे। उन्होंने रथोंपर चढ़कर मुझे चारों ओरसे घेर लिया और मैंने भी बाण बरसाकर उन्हें सब ओरसे ढक दिया। मैंने एक-एक बाण मारकर उनके हाथी, घोड़े और सारथियोंको धराशायी कर दिया। मेरी बाण चलानेकी ऐसी फुर्ती देखकर उनके मुँह पीछेको फिर गये और वे मैदान छोड़कर गये। इस प्रकार उन सब राजाओंको जीतकर मैं हस्तिनापु चला आया और भाई विचित्रवीर्यके लिये वे तीनों कन्य माता सत्यवतीको सौंप दीं। मेरी बात सुनकर सत्यवतीको ब आनन्द हुआ और उसने कहा, 'बेटा! बड़े आनन्दकी बात तुमने सब राजाओंपर विजय प्राप्त की।' फिर जब सत्यवती सलाहसे विवाहकी तैयारी होने लगी तो काशिराजकी सबसे ब पुत्री अम्बाने बड़े संकोचसे कहा, 'भीष्मजी! आप सम्पूर्ण शास्त्रों पारङ्गत और धर्मके रहस्यको जाननेवाले हैं। अतः मेरी धर्मानुकू बात सुनकर फिर आप जैसा करना उचित समझें, वैसा करें पहले मैं मन-ही-मन राजा शाल्वको वर चुकी हूँ और उन्होंने भी पिताजीको प्रकट न करते हुए एकान्तमें मुझे पत्नीरूपसे स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार मेरा मन तो दूसरी जगह फँस चुका है, फिर कुरुवंशी होकर भी आप राजधर्मको तिलाञ्जलि देकर मुझे अपने घरमें क्यों रखना चाहते हैं? यह बात मालूम करके आप अपने मनमें विचार करें और फिर जैसा करना उचित समझें, वैसा करें।'

तब मैंने सत्यवती, मन्त्रिगण, ऋत्विक् और पुरोहितोंकी अनुमति लेकर अम्बाको जानेकी आज्ञा दे दी। अम्बा वृद्ध ब्राह्मण और धात्रियोंको साथ लेकर राजा शाल्वके नगरमें गयी। उसने शाल्वके पास जाकर कहा, 'महाबाहो! मैं आपकी सेवामें उपस्थित हूँ।' यह सुनकर शाल्वने कुछ मुसकराकर कहा—'सुन्दरि! पहले तुम्हारा सम्बन्ध दूसरे पुरुषसे हो चुका है, इसलिये अब मैं तुम्हें पत्नीरूपसे स्वीकार नहीं कर सकता। अब तुम भीष्मके ही पास चली जाओ। भीष्म तुम्हें बलात्कारसे हरकर ले गया था, इसलिये मैं तुम्हें ग्रहण करना नहीं चाहता। मैं तो दूसरोंको धर्मका उपदेश करता हूँ और मुझे सब बातोंका पता भी है। फिर पहले दूसरेके साथ सम्बन्ध हो जानेपर भी मैं तुम्हें कैसे रख सकता हूँ। अतः अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ।'

अम्बाने कहा—'शत्रुदमन ! भीष्मजी मेरी प्रसन्नतासे मुझे नहीं ले गये थे । मैं तो उस समय विलाप कर रही थी । वे बलात्कारसे सब राजाओंको हराकर मुझे ले गये । शाल्वराज ! मैं तो निरपराध और आपकी दासी हूँ । आप मुझे स्वीकार कीजिये । अपनी सेविकाको त्यागना धर्मशास्त्रोंमें अच्छा नहीं कहा गया है । मैं भीष्मजीसे आज्ञा लेकर तुरंत ही यहाँ आ गयी हूँ । भीष्मजीको भी मेरी अभिलाषा नहीं थी । उन्होंने तो अपने भाईके लिये ही यह काम किया था । मेरी छोटी बहिन अम्बिका और अम्बालिकाका विवाह उन्होंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यसे ही किया है । मैं तो आपके सिवा और किसी भी वरका अपने मनमें चिन्तन भी नहीं करती । न मैं पहले किसीकी पत्नी होकर ही आपके पास आयी हूँ । मैं अभी कन्या ही हूँ, इस समय स्वयं ही आपके पास उपस्थित हुई हूँ और आपकी कृपा चाहती हूँ ।'

इस प्रकार तरह-तरहसे अम्बाने प्रार्थना की, किन्तु शाल्वको उसकी बातमें विश्वास नहीं हुआ । तब उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और उसने गद्गद कण्ठसे कहा, 'राजन् ! आप मुझे त्याग रहे हैं, अच्छी बात है ! किन्तु यदि सत्य अटल है तो मैं जहाँ-जहाँ भी जाऊँगी, वहाँ संतजन मेरी रक्षा करेंगे ।' इस प्रकार उसने करुणापूर्वक बहुत विलाप किया, फिर भी शाल्वने उसे त्याग ही दिया । जब वह नगरसे बाहर आयी तो उसने विचार किया कि 'इस पृथ्वीपर मेरे समान दुःखिनी कोई भी युवती न होगी । अपने कुटुम्बियोंसे मेरा सम्बन्ध टूट ही गया, शाल्वने भी मेरा तिरस्कार कर दिया और अब हस्तिनापुर भी जा नहीं सकती । इसमें दोष तो मेरा ही है । मुझे उचित था कि जब भीष्मजीसे युद्ध हो रहा था, उस समय मैं राजा शाल्वके लिये रथसे उतर जाती । आज मुझे यह उसीका फल मिल रहा है । किन्तु यह सारी आपत्ति भीष्मके ही कारण आयी है । अतः अब तपस्या या युद्धके द्वारा मुझे उनसे इसका बदला लेना चाहिये ।'

अम्बाका तपस्वियोंके आश्रममें आना, परशुरामजीका भीष्मको समझाना और उनके स्वीकार न करनेपर दोनोंका युद्ध करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आना

भीष्मजीने कहा—ऐसा निश्चय कर वह नगरसे निकलकर तपस्वियोंके आश्रमपर आयी । वह रात उसने वहीं व्यतीत की और उन ऋषियोंको अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया । ऋषिलोग आपसमें यह विचार करने लगे कि अब इस कन्याके लिये क्या करना चाहिये । उनमेंसे किन्हींने तो कहा कि इसे इसके पिताके यहाँ पहुँचा दो, कोई मेरे पास आकर समझानेका विचार प्रकट करने लगे और कोई बोले कि राजा शाल्वके पास जाकर उन्हें ही इससे विवाह करनेकी आज्ञा दी जाय । किन्तु किन्हींने उसके विरुद्ध अपनी सम्मति प्रकट की । फिर उन सब तपस्वियोंने कहा, 'तेरे लिये तो पिताके आश्रयमें रहना ही सबसे अच्छा होगा । इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती । स्त्रीके तो पति या पिता—दो ही आश्रय हैं ।'

अम्बाने कहा—मुनिगण ! अब मैं काशीपुरीमें अपने पिताके घर लौटकर नहीं जा सकती । इससे अवश्य ही मुझे बन्धु-बान्धवोंका तिरस्कार सहना पड़ेगा । अब तो मैं तपस्या ही करूँगी, जिससे अगले जन्ममें मुझे ऐसा दुर्भाग्य प्राप्त न हो ।

भीष्मजी कहते हैं—वे ब्राह्मणलोग इस प्रकार उस कन्याके विषयमें विचार कर ही रहे थे कि इतनेहीमें वहाँ परम तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन आये । तपस्वियोंने स्वागत, आसन और जल आदिसे उनका सत्कार किया । जब वे आरामसे बैठ गये तो उनके सामने ही मुनिगण फिर उस कन्याकी बातें करने लगे । अम्बा और काशिराजके विषयमें वे सब बातें सुनकर राजर्षि होत्रवाहनको बड़ा खेद हुआ । होत्रवाहन अम्बाके नाना थे । उन्होंने उसे गोदमें बैठाकर ढाढस बँधाया और आरम्भसे ही इस आपत्तिका पूरा-पूरा वृत्तान्त पूछा । अम्बाने जैसा-जैसा हुआ था, सब विस्तारसे सुना दिया । इससे राजर्षिको बड़ा दुःख और शोक हुआ और उन्होंने मन-ही-मन उस विषयमें जो कर्त्तव्य था, उसका निश्चय कर उससे कहा—'बेटी ! मैं तेरा नाना हूँ । तू अपने पिताके घर मत जा । मेरे कहनेसे तू जमदग्निनन्दन परशुरामजीके पास जा । वे तेरे इस महान् शोक और सन्तापको अवश्य दूर कर देंगे । वे सर्वदा महेन्द्र पर्वतपर रहा करते हैं । वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम करके तू मेरी ओरसे सब बातें कह देना । मेरा नाम लेनेसे वे तेरा जो भी अभीष्ट होगा, उसे पूरा कर देंगे । वत्से ! वे मेरे बड़े ही प्रीतिपात्र और स्नेही सखा हैं ।'

जिस समय राजर्षि होत्रवाहन अम्बासे इस प्रकार कह

रहे थे, उसी समय वहाँ परशुरामजीके प्रिय सेवक अकृतव्रण आ गये । सब मुनियोंने उनका सत्कार किया और अकृतव्रण-जीने भी मुनियोंका यथायोग्य अभिवादन किया । जब सब लोग उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये तो महात्मा होत्रवाहनने उनसे मुनिवर परशुरामजीका समाचार पूछा । अकृतव्रणजीने कहा कि 'श्रीपरशुरामजी आपसे मिलनेके लिये कल प्रातःकाल ही यहाँ आ रहे हैं ।' वह दिन उन मुनियोंको आपसमें तरह-तरहकी बातें करते हुए निकल गया । दूसरे दिन सबेरे ही शिष्योंसे घिरे हुए भगवान् परशुरामजी पधारे । वे ब्रह्मतेजसे दमक रहे थे । उनके सिरपर जटा और शरीरमें चीरवस्त्र सुशोभित थे । हाथोंमें धनुष, खड्ग और परशु थे । उन्हें देखते ही सब तपस्वी, राजा होत्रवाहन और अम्बा हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उन्होंने परशुरामजीकी यथायोग्य पूजा की और फिर वे उन्हींके साथ बैठ गये । राजा होत्रवाहन और परशुरामजीमें अनेकों बीती हुई बातोंकी चर्चा होने लगी । बात-ही-बातमें राजाने कहा, 'परशुरामजी! यह काशिराजकी कन्या मेरी धेवती है । इसका एक विशेष कार्य है, वह आप सुन लीजिये ।'

तब परशुरामजीने उससे कहा—'बेटी! तेरा क्या काम है, बता तो ।' इसपर अम्बाने जैसा-जैसा हुआ था, वह सब सुना दिया। तब उन्होंने कहा, 'मैं तुझे फिर भीष्मके पास भेज दूँगा । वह मैं जैसा कहूँगा, वैसा ही करेगा । यदि उसने मेरी बात न मानी तो मैं उसके मन्त्रियोंसहित उसे भस्म कर दूँगा ।' अम्बाने कहा, 'आप जैसा उचित समझें, वैसा करें । मेरे इस संकटके मूल कारण तो ब्रह्मचारी भीष्मजी ही हैं । उन्होंने मुझे बलात्कारसे अपने अधीन कर लिया था । अतः आप उन्हें नष्ट कर डालिये ।'

अम्बाके ऐसा कहनेपर श्रीपरशुरामजी उसे तथा उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंको साथ ले कुरुक्षेत्रमें आये । वहाँ वे सरस्वती नदीके तीरपर ठहर गये । तीसरे दिन उन्होंने मेरे पास यह सन्देश भेजा कि 'मैं तुम्हारे पास एक विशेष कार्यसे आया हूँ, तुम मेरा वह प्रिय कार्य कर दो ।' अपने देशमें श्रीपरशुरामजीके पधारनेका समाचार सुनकर मैं तुरंत ही बड़े प्रेमसे उनसे मिलने गया । मेरे साथ अनेकों ब्राह्मण, ऋत्विज् और पुरोहित भी थे तथा उनके सत्कारके लिये मैं एक गौ भी ले गया था । प्रतापी परशुरामजीने मेरी पूजा स्वीकार की और मुझसे कहा, 'भीष्म ! जब तुम्हें स्वयं विवाह करनेकी इच्छा नहीं थी तो तुम इस काशिराजकी पुत्रीको क्यों हर ले गये थे और फिर इसे त्याग क्यों दिया ? तुम्हारा स्पर्श होनेसे अब यह स्त्रीधर्मसे भ्रष्ट हो गय इसीसे राजा शाल्वने इसे स्वीकार नहीं किया । अतः अग्निको साक्षी बनाकर तुम ही इसे ग्रहण करो ।'

तब मैंने उनसे कहा, "भगवन् ! अब मैं अपने भ साथ इसका विवाह किसी प्रकार नहीं कर सकता; क्योंकि स्वयं ही पहले मुझसे कहा था कि 'मैं तो शाल्वकी हो चुकी तब मेरी आज्ञा लेकर ही यह शाल्वके नगरमें गयी थी भय, निन्दा, अर्थलोभ या किसी कामनासे अपने क्षात्र विचलित नहीं हो सकता ।" मेरी बात सुनकर परशुराम आँखें क्रोधसे चञ्चल हो उठीं और वे बार-बार कहने 'यदि तुम मेरी यह आज्ञा पालन नहीं करोगे तो मैं तु मन्त्रियोंके सहित तुम्हें नष्ट कर दूँगा ।' मैंने भी बार- मीठी वाणीमें उनसे प्रार्थना की, किन्तु वे शान्त न हुए तब मैंने उनके चरणोंपर सिर रखकर पूछा, 'भगवन् ! आ जो मुझसे युद्ध करना चाहते हैं, इसका कारण क्या है बाल्यावस्थामें मुझे आपहीने चार प्रकारकी धनुर्विद्या सिखा थी । अतः मैं तो आपका शिष्य हूँ ।' परशुरामजीने क्रो आँखें लाल करके कहा, 'भीष्म ! तुम मुझे गुरु समझते हो फिर भी मेरी प्रसन्नताके लिये इस काशिराजकी कन्या स्वीकार नहीं करते ! देखो, ऐसा किये बिना तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती ।'

तब मैंने कहा, "ब्रह्मर्षे! आप व्यर्थ श्रम क्यों करते हैं ऐसा तो अब हो ही नहीं सकता । मैं पहले इसे त्याग चुका हूँ । भला, जिसका दूसरे पुरुषपर प्रेम है उस स्त्रीको कोई किस प्रकार अपने घरमें रख सकता है ? मैं इन्द्रके भयसे भी धर्मका त्याग नहीं करूँगा । आप प्रसन्न हों अथवा न हों और आपको जो करना हो, वह करें । आप मेरे गुरु हैं, इसलिये मैंने प्रेमपूर्वक आपका सत्कार किया है । किन्तु मालूम होता है आप गुरुओंका-सा बर्ताव करना नहीं जानते । इसलिये मैं आपके साथ युद्ध करनेके लिये भी तैयार हूँ । मैं युद्धमें गुरुका, विशेषतः ब्राह्मणका और उसमें भी तपोवृद्धका वध नहीं करता । इसीसे मैं आपकी बातोंको सह रहा हूँ । किन्तु धर्मशास्त्रोंने ऐसा निश्चय किया है कि जो क्षत्रिय क्षत्रियके समान ही हथियार उठाकर सामने आये हुए ब्राह्मणको—जब कि वह डटकर युद्ध कर रहा हो, मैदान छोड़कर भाग न रहा हो—मार डालता है, उसे ब्रह्महत्या नहीं लगती । मैं भी क्षत्रिय हूँ और क्षात्रधर्ममें ही स्थित हूँ ।

इसलिये आप प्रसन्नतासे मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये तैयार हो जाइये। आप जो बहुत दिनोंसे डींग हाँका करते हैं कि 'मैंने अकेले ही पृथ्वीके सारे क्षत्रिय जीत लिये हैं' सो सुनिये, उस समय भीष्म या भीष्मके समान कोई क्षत्रिय उत्पन्न नहीं हुआ होगा। तेजस्वी वीर तो पीछे उत्पन्न हुए हैं। आप तो घास-फूसमें ही प्रज्वलित होते रहे हैं। जो आपके युद्धाभिमान और युद्धलिप्साको अच्छी तरह नष्ट कर सकता है, उस भीष्मका जन्म तो अब हुआ है।''

तब परशुरामजीने हँसकर मुझसे कहा—'भीष्म! तुम संग्रामभूमिमें मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो—यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। अच्छा, लो मैं कुरुक्षेत्रको चलता हूँ; तुम भी वहीं आ जाना। वहाँ सैकड़ों बाणोंसे बींधकर मैं तुम्हें धराशायी कर दूँगा। उस दीन दशामें तुम्हें तुम्हारी माता गङ्गादेवी भी देखेगी। चलो, रथ आदि युद्धकी सब सामग्री ले चलो।' तब मैंने परशुरामजीको प्रणाम करके कहा, 'जो आज्ञा।'

इसके बाद परशुरामजी तो कुरुक्षेत्र चले गये और मैंने हस्तिनापुरमें आकर सब बातें माता सत्यवतीसे कहीं। माताने मुझे आशीर्वाद दिया और मैं ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन एवं स्वस्तिवाचन करा हस्तिनापुरसे निकलकर कुरुक्षेत्रकी ओर चल दिया। उस समय ब्राह्मणलोग 'जय हो, जय हो' इस प्रकार आशीर्वाद देते हुए मेरी स्तुति कर रहे थे। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर हम दोनों युद्धके लिये पराक्रम करने लगे। मैंने परशुरामजीके सामने खड़े होकर अपना श्रेष्ठ शंख बजाया। उस समय ब्राह्मण, वनवासी, तपस्वी और इन्द्रके सहित सब देवता वहाँ आकर वह दिव्य युद्ध देखने लगे। बीच-बीचमें दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, जहाँ-तहाँ दिव्य बाजे बजने लगे और मेघोंका शब्द होने लगा। परशुरामजीके साथ जो तपस्वी आये थे, वे भी युद्धभूमिको घेरकर उसके दर्शक बन गये। इसी समय समस्त भूतोंका हित चाहनेवाली माता गङ्गा मूर्त्तिमती होकर मेरे पास आयी और कहने लगी, ''बेटा! यह तुमने क्या करनेका विचार किया है। मैं अभी परशुरामजीके पास जाकर प्रार्थना करती हूँ कि 'भीष्म तो आपका शिष्य है, उसके साथ आप युद्ध न करें।' तुम परशुरामजीके साथ युद्ध करनेका हठ मत करो। क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है कि वे क्षत्रियोंका नाश करनेवाले और साक्षात् श्रीमहादेवजीके समान शक्तिशाली हैं, जो इस प्रकार उनसे लोहा लेनेके लिये तैयार हो गये हो?' तब मैंने दोनों हाथ जोड़कर माताको प्रणाम किया और परशुरामजीसे मैंने जो कुछ कहा था, वह सब सुना दिया। साथ ही अम्बाकी जो करतूत थी, वह भी सुना दी।

तब माता गङ्गाजी परशुरामजीके पास गयीं और उनसे क्षमा माँगती हुई कहने लगीं, 'मुने! आप अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध न करें।' परशुरामजीने कहा, 'तुम भीष्मको ही रोको। वह मेरी एक बात नहीं मानता, इसीसे मैं युद्ध करनेके लिये आया हूँ।' तब गङ्गाजी पुत्रस्नेहके कारण फिर मेरे पास आयीं, किन्तु मैंने उनकी बात स्वीकार नहीं की। इतनेहीमें महातपस्वी परशुरामजी रणभूमिमें दिखायी दिये और उन्होंने युद्धके लिये मुझे ललकारा।

भीष्म और परशुरामजीका युद्ध और उसकी समाप्ति

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! तब मैंने रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीसे कहा, 'मुने! आप पृथ्वीपर खड़े हैं, इसलिये मैं रथमें चढ़कर आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता। यदि आप मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं तो रथपर चढ़ जाइये और कवच धारण कर लीजिये।' परशुरामजीने मुसकराकर कहा, 'भीष्म! पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद घोड़े हैं। वायु सारथि है और वेदमाता गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती कवच हैं। उनके द्वारा अपने शरीरको सुरक्षित करके ही मैं युद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर परशुरामजीने भीषण बाणवर्षा करके मुझे सब ओरसे ढक दिया। इसी समय मैंने देखा कि वे रथपर चढ़े हुए हैं। उसे उन्होंने मनसे ही प्रकट किया था। वह बड़ा ही विचित्र और नगरके समान विशाल था। उसमें सब प्रकारके उत्तम-उत्तम अस्त्र-शस्त्र रक्खे थे और दिव्य घोड़े जुते हुए थे। उनके शरीरपर सूर्य और चन्द्रमाके चिह्नोंसे सुशोभित कवच था, हाथमें धनुष सुशोभित था और पीठपर तरकस बँधा हुआ था। उनके सारथिका काम उनका प्रियसखा अकृतव्रण कर रहा था। वे मुझे हर्षित करते हुए युद्धके लिये पुकार रहे थे। इतनेहीमें उन्होंने मेरे ऊपर तीन बाण छोड़े। मैंने उसी समय घोड़ोंको रुकवा दिया और धनुषको नीचे रख रथसे उतरकर पैदल ही उनके पास गया तथा उनका सत्कार करनेके लिये विधिवत् प्रणाम करके कहा, 'मुनिवर! आप मेरे गुरु हैं, अब मुझे आपके साथ

युद्ध करना होगा; अतः आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी विजय हो।' तब परशुरामजीने कहा, 'कुरुश्रेष्ठ! सफलता चाहनेवाले पुरुषोंको ऐसा ही करना चाहिये। अपनेसे बड़ोंके साथ युद्ध करनेवालोंका यही धर्म है। यदि तुम इस प्रकार न आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। अब तुम सावधानीसे युद्ध करो। मैं तुम्हें जयका आशीर्वाद तो नहीं दूँगा, क्योंकि यहाँ तुम्हें जीतनेके लिये ही आया हूँ। जाओ, अब युद्ध करो; मैं तुम्हारे बर्तावसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

तब मैंने उन्हें पुनः प्रणाम किया और तुरंत ही रथपर चढ़कर शंख बजाया। इसके बाद हम दोनोंमें एक-दूसरेको परास्त करनेकी इच्छासे बहुत दिनोंतक युद्ध होता रहा। इस युद्धमें परशुरामजीने मेरे ऊपर एक सौ उनहत्तर बाण छोड़े। तब मैंने भालेकी जातिका एक तीक्ष्ण बाण छोड़कर उनके धनुषका किनारा काटकर गिरा दिया और सौ बाण छोड़कर उनके शरीरको बींध दिया। उनसे पीड़ित होकर वे अचेत-से हो गये। इससे मुझे बड़ी दया आयी और धैर्य धारण करके कहा, 'युद्ध और क्षात्रधर्मको धिक्कार है।' इसके बाद मैंने उनपर और बाण नहीं छोड़े। इतनेहीमें दिन ढलनेपर सूर्यदेव पृथ्वीको सन्तप्त करके अस्ताचलकी ओर चले गये और हमारा युद्ध बंद हो गया।

दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर फिर युद्ध आरम्भ हुआ। प्रतापी परशुरामजी मेरे ऊपर दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे। किन्तु मैंने अपने साधारण अस्त्रोंसे ही उन्हें रोक दिया। फिर मैंने परशुरामजीपर वायव्यास्त्र छोड़ा, पर उन्होंने उसे गुह्यकास्त्रसे काट दिया। इसके बाद मैंने अभिमन्त्रित करके आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, उसे भगवान् परशुरामजीने वारुणास्त्रसे रोक दिया। इस प्रकार मैं परशुरामजीके दिव्य अस्त्रोंको रोकता रहा और शत्रुदमन परशुरामजी मेरे दिव्य अस्त्रोंको विफल करते रहे। तब उन्होंने क्रोधमें भरकर मेरी छातीमें बाण मारे। इससे मैं रथपर गिर गया। उस समय मुझे अचेत देखकर तुरंत ही सारथि रणभूमिसे अलग ले गया। चेत होनेपर जब मुझे सब बातोंका पता लगा तो मैंने सारथिसे कहा, 'सारथे! अब मैं तैयार हूँ, तू मुझे परशुरामजीके पास ले चल।' बस, सारथि तुरंत ही मुझे लेकर चल दिया और कुछ ही देरमें मैं परशुरामजीके सामने पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही मैंने उनका अन्त करनेके विचारसे एक चमचमाता हुआ कालके समान कराल बाण छोड़ा। उसकी गहरी चोट खाकर परशुरामजी अचेत होकर रणभूमिमें गिर गये। इससे सब लोग घबराकर हाहा करने लगे।

मूर्छा टूटनेपर वे खड़े हो गये और अपने धनुषपर ब[illegible] चढ़ा बड़ी विह्वलतासे कहने लगे, 'भीष्म! खड़ा तो र[illegible] अब मैं तुझे नष्ट किये देता हूँ।' धनुषसे छूटनेपर वह ब[illegible] मेरे दायें कन्धेमें लगा। उसके प्रहारसे मैं झोंके खाते हु[illegible] वृक्षके समान बड़ा ही विकल हो गया। फिर मैं भी ब[illegible] फुर्तीसे बाण बरसाने लगा। किन्तु वे बाण अन्तरिक्षमें ही र[illegible] गये। इस प्रकार मेरे और परशुरामजीके बाणोंने आकाशक[illegible] ऐसा ढाँप लिया कि पृथ्वीपर सूर्यका ताप पड़ना बंद हो गया और वायुकी गति रुक गयी। इस प्रकार असंख्य बाण पृथ्वीपर गिरने लगे। परशुरामजीने क्रोधमें भरकर मुझपर असंख्य बाण छोड़े और मैंने अपने सर्पके समान बाणोंसे उन्हें काट-काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इसी तरह अगले दिन भी हमारा घोर संग्राम होता रहा। परशुरामजी बड़े शूरवीर और दिव्य अस्त्रोंके पारदर्शी थे। वे रोज-रोज मेरे ऊपर दिव्य अस्त्रोंका ही प्रयोग करते, किन्तु मैं उन्हें अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उनके विरोधी अस्त्रोंसे नष्ट कर देता था। इस प्रकार जब मैंने अस्त्रोंसे ही उनके अनेकों दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया तो वे बड़े ही कुपित हुए और प्राणपणसे मेरे साथ युद्ध करने लगे। दिनभर बड़ा ही भीषण युद्ध हुआ। आकाशमें धूल छायी हुई थी, उसीकी ओटमें भगवान् भास्कर अस्त हो गये। संसारमें निशादेवीका राज्य हो गया। सुखप्रद शीतल पवन चलने लगा। बस, हमारा युद्ध भी रुक गया। इसी तरह तेईस दिनतक हमारा संग्राम होता रहा। रोज सबेरे युद्ध आरम्भ होता और सायंकाल होनेपर रुक जाता।

उस रात मैं ब्राह्मण, पितर और देवता आदिको नमस्कार कर एकान्तमें शय्यापर पड़ा-पड़ा विचारने लगा कि 'परशुरामजीसे मेरा भीषण युद्ध होते आज बहुत दिन बीत गये। परशुरामजी बड़े ही पराक्रमी हैं, सम्भवतः उन्हें मैं युद्धमें जीत नहीं सकता। यदि उन्हें जीतना मेरे लिये सम्भव हो तो आज रात्रिमें देवतालोग प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दें।' इस प्रकार प्रार्थना कर मैं दायीं करवटसे सो गया। स्वप्नमें मुझे आठ ब्राह्मणोंने दर्शन दिया और चारों ओर घेरकर कहा, 'भीष्म! तुम खड़े हो जाओ, डरो मत; तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं है। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, क्योंकि तुम हमारे अपने ही शरीर हो। परशुराम तुम्हें युद्धमें [illegible]

प्रकार नहीं जीत सकते । देखो, यह प्रस्वाप नामका अस्त्र है; इसके देवता प्रजापति हैं । इसका प्रयोग तुम स्वयं ही जान जाओगे, क्योंकि अपनी पूर्वदेहमें तुम्हें इसका ज्ञान था । इसे परशुरामजी अथवा पृथ्वीपर कोई दूसरा मनुष्य नहीं जानता । तुम इसे स्मरण करो और इसीका प्रयोग करो । यह स्मरण करते ही तुम्हारे पास आ जायगा । इससे परशुरामजीकी मृत्यु भी नहीं होगी । इसलिये तुम्हें कोई पाप भी नहीं लगेगा । इस अस्त्रकी पीडासे वे अचेत होकर सो जायँगे । इस प्रकार उन्हें परास्त करके तुम सम्बोधनास्त्रसे फिर जगा देना । बस, अब सबेरे उठकर तुम ऐसा ही करो । मरे और सोये हुए पुरुषको तो हम समान ही समझते हैं । परशुरामजीकी मृत्यु तो कभी हो ही नहीं सकती । अतः उनका सो जाना ही मृत्युके समान है ।' ऐसा कहकर वे आठों ब्राह्मण अन्तर्धान हो गये । उन आठोंके समान रूप थे और सभी बड़े तेजस्वी थे ।

रात बीतनेपर मैं जगा । उस समय इस स्वप्नकी याद आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । थोड़ी देरमें हमारा तुमुल युद्ध छिड़ गया । उसे देखकर सबके रोंगटे खड़े हो जाते थे । परशुरामजी मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे और मैं अपने बाणसमूहसे उसे रोकता रहा । इतनेहीमें उन्होंने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे ऊपर एक कालके समान कराल बाण छोड़ा । वह सर्पके समान सनसनाता हुआ बाण मेरी छातीमें लगा । इससे मैं लोहूलुहान होकर पृथ्वीपर गिर ड़ा । चेत होनेपर मैंने एक वज्रके समान प्रज्वलित शक्ति ड़ी । वह उन विप्रवरकी छातीमें जाकर लगी । इससे वे लमिला उठे और कष्टसे काँपने लगे । सावधान होनेपर न्होंने मेरे ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा । उसे नष्ट करनेके लिये मैंने ी ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया । उसने प्रज्वलित होकर प्रलय-ल्का-सा दृश्य उपस्थित कर दिया । वे दोनों ब्रह्मास्त्र बीच-में टकरा गये । इससे आकाशमें बड़ा भारी तेज प्रकट हो या । उसकी ज्वालासे सभी प्राणी विकल हो गये । तथा नके तेजसे सन्तप्त होकर ऋषि-मुनि, गन्धर्व और देवताओं-ो भी बड़ी पीड़ा होने लगी, पृथ्वी डगमगाने लगी और भी प्राणियोंको बड़ा कष्ट हुआ । आकाशमें आग लग गयी, सों दिशाओंमें धूआँ भर गया तथा देवता, असुर और ाक्षस हाहाकार करने लगे । इसी समय मेरा विचार स्वापास्त्र छोड़नेका हुआ और संकल्प करते ही वह मेरे नमें प्रकट हो गया ।

उसे छोड़नेके लिये उठाते ही आकाशमें बड़ा कोलाहल होने लगा और नारदजीने मुझसे कहा, 'कुरुनन्दन ! देखो, आकाशमें खड़े ये देवतालोग तुम्हें रोकते हुए कह रहे हैं कि तुम प्रस्वापास्त्रका प्रयोग मत करो । परशुरामजी तपस्वी, ब्रह्मज्ञ, ब्राह्मण और तुम्हारे गुरु हैं; तुम्हें किसी भी प्रकार उनका अपमान नहीं करना चाहिये ।' इसी समय मुझे आकाशमें वे आठों ब्रह्मवादी ब्राह्मण दिखायी दिये । उन्होंने मुसकराते हुए मुझसे धीरेसे कहा, 'भरतश्रेष्ठ ! जैसा नारदजी कहते हैं, वैसा ही करो । इनका कथन लोकोंके लिये बड़ा कल्याणकारी है । तब मैंने उस महान् अस्त्रको धनुषसे उतार लिया और विधिवत् ब्रह्मास्त्रको ही प्रकट किया ।

मैंने प्रस्वापास्त्रको उतार लिया है—यह देखकर परशुरामजी बड़े प्रसन्न हुए और सहसा कह उठे कि 'मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, भीष्मने मुझे परास्त कर दिया है ।' इतनेहीमें उन्हें अपने पिता जमदग्निजी और माननीय पितामह दिखायी दिये । वे कहने लगे, 'भाई ! अब ऐसा साहस फिर कभी मत करना । युद्ध करना क्षत्रियोंका तो कुल-धर्म है । ब्राह्मणोंका परम धन तो स्वाध्याय और व्रतचर्या ही है । भीष्मके साथ इतना युद्ध करना ही बहुत है । अधिक हठ करनेसे तुम्हें नीचा देखना पड़ेगा । इसलिये अब तुम रणभूमिसे हट जाओ । इस धनुषको त्याग कर घोर तपस्या करो । देखो, इस समय भीष्मको भी देवताओंने ही रोक दिया है ।' फिर उन्होंने बार-बार मुझसे भी कहा, 'परशुराम तुम्हारे गुरु हैं, तुम उनके साथ युद्ध मत करो । संग्राममें परशुरामको परास्त करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ।'

पितरोंकी बात सुनकर परशुरामजीने कहा—'मेरा यह नियम है, मैं युद्धसे पीछे पैर नहीं रख सकता । पहले भी मैंने कभी संग्राममें पीठ नहीं दिखायी । हाँ, यदि भीष्मकी इच्छा हो तो वह भले ही युद्धका मैदान छोड़ दे ।' दुर्योधन ! तब वे ऋचीकादि मुनिगण नारदजीके साथ मेरे पास आये और कहने लगे, 'तात ! तुम ब्राह्मण परशुरामका मान रक्खो और युद्ध बंद कर दो ।' तब मैंने क्षात्रधर्मका विचार करके उनसे कहा, 'मुनिगण ! मेरा यह नियम है कि पीठपर बाणोंकी बौछार सहते हुए युद्धसे कभी मुख नहीं मोड़ सकता । मेरा यह निश्चित विचार है कि लोभसे, कृपणतासे, भयसे या धनके लोभसे मैं अपने सनातनधर्मका त्याग नहीं करूँगा ।'

इस समय नारदादि मुनिगण और मेरी माता भागीरथी भी रणभूमिमें विद्यमान थी। मैं उसी प्रकार धनुष चढ़ाये युद्धका दृढ निश्चय किये खड़ा रहा। तब उन सबने परशुरामजीसे कहा, 'भृगुनन्दन! ब्राह्मणोंका हृदय ऐसा विनयशून्य नहीं होना चाहिये। इसलिये अब तुम शान्त हो जाओ। युद्ध करना बंद करो। न तो भीष्मका तुम्हारे हाथसे मारा जाना उचित है और न भीष्मको ही तुम्हारा वध करना चाहिये।' ऐसा कहकर उन्होंने परशुरामजीसे शस्त्र रखवा दिये। इतनेहीमें मुझे वे आठ ब्रह्मवादी फिर दिखायी दिये। उन्होंने मुझसे प्रेमपूर्वक कहा, 'महाबाहो! तुम परशुरामजीके पास जाओ और लोकका मंगल करो।' मैंने देखा कि परशुरामजी युद्धसे हट गये हैं तो मैंने लोकोंके कल्याणके लिये पितृगणकी बात मान ली। परशुरामजी बहुत घायल हो गये थे। मैंने उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उन्होंने मुसकराकर बड़े प्रेमपूर्वक मुझसे कहा, 'भीष्म! इस लोकमें तुम्हारे समान कोई दूसरा क्षत्रिय नहीं है। इस युद्धमें तुमने मुझे बहुत प्रसन्न किया है, अब तुम जाओ।'

भीष्मजीका वध करनेके लिये अम्बाकी तपस्या

भीष्मजी कहते हैं—दुर्योधन! इसके बाद मेरे सामने ही परशुरामजीने उस कन्याको बुलाकर उन सब महात्माओंके बीचमें बड़ी दीन वाणीमें कहा, 'भद्रे! इन सब लोगोंके सामने मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया है। मेरी अधिक-से-अधिक शक्ति इतनी ही है, सो तूने देख ही ली। अब तेरी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जा। इसके सिवा बता, मैं तेरा और क्या कार्य करूँ? मेरे विचारसे तो अब तू भीष्मकी ही शरण ले। इसके सिवा तेरे लिये कोई और उपाय तो दिखायी नहीं देता। मुझे तो भीष्मने बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग करके युद्धमें परास्त कर दिया है।'

तब उस कन्याने कहा—'भगवन्! आपने जैसा कहा है, ठीक ही है। आपने अपने बल और उत्साहके अनुसार मेरा काम करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी। परन्तु अन्तमें आप युद्धमें भीष्मसे बढ़ नहीं सके। तथापि अब मैं फिर किसी प्रकार भीष्मके पास नहीं जाऊँगी। अब मैं ऐसी जगह जाऊँगी, जहाँ रहनेसे मैं स्वयं ही भीष्मका युद्धमें संहार कर सकूँ।'

ऐसा कहकर वह कन्या मेरे नाशके लिये तप करनेका विचार करके वहाँसे चली गयी। परशुरामजी मुझसे कहकर सब मुनियोंके साथ महेन्द्रपर्वतपर चले गये और मैं रथपर सवार हो हस्तिनापुरमें चला आया। वहाँ मैंने सारा वृत्तान्त माता सत्यवतीको सुना दिया। माताने मेरा अभिनन्दन किया। मैंने उस कन्याके समाचार लानेके लिये कई बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त कर दिया। वे मेरे हितके लिये बड़ी सावधानीसे मुझे नित्यप्रति उसके आचरण, भाषण और व्यवहारादिका समाचार सुनाते रहे।

कुरुक्षेत्रसे चलकर वह कन्या यमुनातटपर एक आश्रममें गयी और वहाँ बड़ा अलौकिक तप करने लगी। वह छः महीनेतक केवल वायुभक्षण करती हुई काठके समान खड़ी रही। इसके बाद वह एक सालतक निराहार रहकर यमुना-जलमें रही। फिर एक वर्षतक अपने-आप झड़कर गिरा हुआ पत्ता खाकर पैरके अँगूठेपर खड़ी रही। इस प्रकार बारह वर्ष तपस्या करके उसने आकाश और पृथ्वीको सन्तप्त कर दिया। इसके पश्चात् वह आठवें या दसवें महीने जल पीकर निर्वाह करने लगी। फिर तीर्थसेवनके लोभसे इधर-उधर घूमती वह वत्सदेशमें पहुँची। वहाँ अपने तपके प्रभावसे वह आधे शरीरसे तो अम्बा नामकी नदी हो गयी और आधे अंगसे वत्सदेशके राजाकी कन्या होकर उत्पन्न हुई।

इस जन्ममें भी उसे तपका आग्रह करते देख समस्त तपस्वियोंने उसे रोका और कहा 'कि तुझे क्या करना है!' तब उस कन्याने उन तपोवृद्ध ऋषियोंसे कहा, 'भीष्मने मेरा निरादर किया है और मुझे पतिधर्मसे भ्रष्ट कर दिया है। अतः मैंने कोई दिव्य लोक पानेके लिये नहीं, प्रत्युत भीष्मका वध करनेके लिये तपका संकल्प किया है। मेरा यह निश्चय है कि भीष्मके मारे जानेपर मुझे शान्ति मिल जायगी। मैं तो भीष्मसे बदला लेनेके लिये ही तप कर रही हूँ, अतः आप-लोग मुझे इससे रोकें नहीं। तब उन सब महर्षियोंके बीचमें उमापति भगवान् शंकरने उस तपस्विनीको दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। उस कन्याने मेरी पराजय करनेका वर माँगा। इसपर श्रीमहादेवजीने कहा, 'तू भीष्मका नाश कर सकेगी।' तब उसने फिर कहा, 'भगवन्! मैं तो स्त्री हूँ, इसलिये मेरा हृदय भी अत्यन्त शौर्यहीन है; फिर मैं युद्धमें भीष्मको कैसे जीत सकूँगी? आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं संग्राममें शान्तनुनन्दन भीष्मको मार सकूँ।' भगवान्

शङ्कर बोले, 'मेरी बात असत्य नहीं हो सकती; इसलिये तू अवश्य ही भीष्मका वध करेगी, पुरुषत्व प्राप्त करेगी और दूसरी देह धारण करनेपर भी इन सब बातोंको याद रक्खेगी। तू द्रुपदके यहाँ जन्म लेकर एक चित्रयोधी, वीरसम्मत महारथी बनेगी। मैंने जो कुछ कहा है, वह सब वैसे ही होगा। तू कन्यारूपसे जन्म लेकर भी कुछ समय बीतनेपर पुरुष हो जायगी।' ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये। उस कन्याने एक बड़ी चिता बनाकर अग्नि प्रज्वलित की और 'मैं भीष्मका वध करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करती हूँ' ऐसा कहकर उसमें प्रवेश कर गयी।

शिखण्डीकी पुरुषत्वप्राप्तिका वृत्तान्त

दुर्योधनने पूछा—पितामह! कृपया यह बताइये कि शिखण्डी कन्या होनेपर भी फिर पुरुष कैसे हो गया।

भीष्मजी बोले—राजन्! महाराज द्रुपदकी रानीके पहले कोई पुत्र नहीं था। तब द्रुपदने सन्तानप्राप्तिके लिये तपस्या करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया। तब महादेवजीने कहा, 'तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो पहले स्त्री होनेपर भी पीछे पुरुष हो जायगा। अब तुम तप करना बंद करो; मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी अन्यथा नहीं होगा।' तब राजाने नगरमें जाकर रानीको अपनी तपस्या और श्रीमहादेवजीके वरकी बात सुना दी। ऋतुकाल आनेपर रानीने गर्भ धारण किया। और यथासमय एक रूपवती कन्याको जन्म दिया। किन्तु लोगोंमें प्रसिद्ध यह किया कि रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। राजाने उसे छिपी रखकर पुत्रके समान ही सब संस्कार किये। उस नगरमें द्रुपदके सिवा इस रहस्यको और कोई नहीं जानता था। उन्हें महादेवजीकी बातमें पूर्ण विश्वास था, इसलिये उस कन्याको छिपी रखकर वे उसे पुत्र ही बताते थे। लोगोंमें वह शिखण्डी नामसे विख्यात हुई। अकेले मुझे ही नारदजीके कथन, देवताओंके वाक्य और अम्बाकी तपस्याके कारण यह रहस्य मालूम हो गया था।

राजन्! फिर राजा द्रुपद अपनी कन्याको लिखना-पढ़ना तथा शिल्पकला आदि सब विद्याएँ सिखानेका प्रयत्न करने लगे। बाणविद्याके लिये वह द्रोणाचार्यजीके शिष्यत्वमें रही। एक बार रानीने कहा, 'महाराज! महादेवजीकी बात किसी भी प्रकार मिथ्या तो हो नहीं सकती। इसलिये मैं जो बात कहती हूँ, आपको भी यदि वह उचित जान पड़े तो कीजिये। आप विधिपूर्वक इसका किसी कन्यासे विवाह कर दीजिये। महादेवजीकी बात सत्य होकर तो रहेगी ही, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।' उन दोनोंने वैसा ही निश्चय कर दशार्ण देशके राजाकी कन्याको वरण किया। तब दशार्णराज हिरण्यवर्माने शिखण्डीके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। विवाहके बाद शिखण्डी काम्पिल्यनगरमें आकर रहा। वहाँ हिरण्यवर्माकी कन्याको मालूम हुआ कि यह तो स्त्री है। तब उसने अपनी धाइयों और सखियोंके सामने बड़े संकोचसे यह बात खोल दी। यह सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने राजाको यह समाचार सुनानेके लिये अपनी दूतियाँ भेजीं। उन्होंने यह सब वृत्तान्त दशार्णराजको सुनाया। सुनते ही राजा बड़े क्रोधमें भर गया और उसने द्रुपदके पास अपना दूत भेजा।

दूतने राजा द्रुपदके पास आ उन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा—'राजन्! आपने दशार्णराजको धोखा दिया है, इसलिये उन्होंने बड़े क्रोधमें भरकर कहा है कि तुमने मोहवश अपनी कन्याके साथ मेरी कन्याका विवाह कराकर मेरा बड़ा अपमान किया है। तुम्हारा यह विचार बड़ा ही खोटा था। इसलिये अब तुम इस धोखेका फल भोगनेको तैयार हो जाओ। अब तुम्हारे कुटुम्ब और मन्त्रियोंके सहित तुम्हें नष्ट कर दूँगा।'

राजन्! दूतकी यह बात सुनकर पकड़े हुए चोरके समान द्रुपदका मुँह बंद हो गया। उन्होंने 'ऐसी बात नहीं है' यह कहकर उस दूतके द्वारा अपने समधीको मनानेके लिये बड़ा प्रयत्न किया। किन्तु हिरण्यवर्माने फिर भी पक्का पता लगा लिया कि वह पञ्चालराजकी पुत्री ही है। इसलिये वह तुरंत ही पञ्चालदेशपर चढ़ाई करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़ा। उस समय उसके साथी राजाओंने यही निश्चय किया कि 'यदि शिखण्डी कन्या हो तो हमलोग पञ्चालराजको कैद करके अपने नगरमें ले आयेंगे तथा पञ्चालदेशमें दूसरे राजाको गद्दीपर बैठा देंगे। फिर द्रुपद और शिखण्डीको मार डालेंगे।'

दशार्णराजके पास दूत भेजकर शोकाकुल द्रुपदने एकान्तमें ले जाकर अपनी स्त्रीसे कहा—''इस कन्याके विषयमें तो हमसे बड़ी मूर्खता हो गयी। अब हम क्या करेंगे? शिखण्डीके विषयमें अब सबको शंका हो रही है कि यह कन्या है। यही सोचकर दशार्णराजने भी ऐसा समझा है कि

'मुझे धोखा दिया गया।' इसलिये अब वह अपने मित्र और सेनाके साथ मेरा नाश करनेके लिये आ रहा है। अब तुम्हें जिसमें हित दिखायी देता हो, वह बात बताओ; मैं वैसा ही करूँगा।''

तब रानीने कहा—'सत्पुरुषोंने देवताओंका पूजन करना सम्पत्तिशालियोंके लिये भी श्रेयस्कर माना है। फिर जो दुःखके समुद्रमें गोते खा रहा हो, उसकी तो बात ही क्या है! इसलिये आप देवाराधनके लिये ही ब्राह्मणोंका पूजन करें और मनमें ऐसा सङ्कल्प करें कि दशार्णराज युद्ध किये बिना ही लौट जाय। फिर देवताओंके अनुग्रहसे यह सब काम ठीक हो जायगा। देवताओंकी कृपा और मनुष्यका उद्योग—ये दोनों जब मिल जाते हैं तो कार्य पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और यदि इनमें आपसमें विरोध रहता है तो सफलता नहीं मिलती। अतः आप मन्त्रियोंके द्वारा नगरके शासनका सुप्रबन्ध कर देवताओंका यथेष्ट पूजन कीजिये।'

अपने माता-पिताको इस प्रकार बात करते और शोकाकुल होते देखकर शिखण्डिनी भी लज्जित-सी होकर सोचने लगी कि 'ये दोनों मेरे ही कारण दुखी हैं।' इसलिये उसने अपने प्राण त्यागनेका निश्चय किया। यह सोचकर वह घरसे निकलकर एक निर्जन वनमें चली गयी। इस वनकी रक्षा स्थूणाकर्ण नामका एक समृद्धिशाली यक्ष करता था। वहाँ उसका एक भवन भी बना हुआ था। शिखण्डिनी उसी वनमें चली गयी। उसने बहुत समयतक निराहार रहकर अपने शरीरको सुखा डाला। एक दिन स्थूणाकर्णने उसे दर्शन देकर पूछा, 'कन्ये! तेरा यह अनुष्ठान किस उद्देश्यसे है? तू मुझे अभी बता, मैं तेरा काम कर दूँगा।' शिखण्डिनीने बार-बार कहा कि 'तुमसे मेरा काम नहीं हो सकेगा,' किन्तु यक्षने यही कहा कि 'मैं उसे बहुत जल्द कर दूँगा। मैं कुबेरका अनुचर हूँ और वर देनेके लिये ही आया हूँ। तुझे जो कहना हो, वह कह दे; मैं तुझे न देने योग्य वस्तु भी दे दूँगा।' तब शिखण्डिनीने अपना सारा वृत्तान्त स्थूणाकर्णसे कह दिया और कहा कि 'तुमने मेरा दुःख दूर करनेकी प्रतिज्ञा की है, अतः ऐसा करो कि मैं तुम्हारी कृपासे एक सुन्दर पुरुष बन जाऊँ। जबतक दशार्णराज मेरे नगरतक पहुँचे, उससे पहले ही तुम मुझपर यह कृपा कर दो।'

यक्षने कहा—'तुम्हारा यह काम तो हो जायगा। किन्तु इसमें एक शर्त है। मैं कुछ समयके लिये तुम्हें अपना पुरुषत्व दे दूँगा। किन्तु यह सत्य प्रतिज्ञा कर जाओ कि फिर उसे लौटानेके लिये तुम यहाँ आ जाओगी। इत दिनतक मैं तुम्हारे स्त्रीत्वको धारण करूँगा।'

शिखण्डीने कहा—ठीक है, मैं तुम्हारा पुरुष लौटा दूँगी; थोड़े दिनोंके लिये ही तुम मेरा स्त्रीत्व ग्रह कर लो। जिस समय राजा हिरण्यवर्मा दशार्णदेशको लौ जायगा, उस समय मैं फिर कन्या हो जाऊँगी और तुम पुरु हो जाना।

इस प्रकार जब उन दोनोंने प्रतिज्ञा कर ली तो उन्हों आपसमें शरीर बदल लिया। स्थूणाकर्ण यक्षने स्त्रीत्व धार कर लिया और शिखण्डीको यक्षका देदीप्यमान रूप प्रा हो गया। इस प्रकार पुरुषत्व पाकर शिखण्डी बड़ा प्रस हुआ और पञ्चालनगरमें अपने पिताके पास चला आया यह घटना जैसे-जैसे हुई थी, वह सब वृत्तान्त उसने द्रुपदक सुना दिया। इससे द्रुपदको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन् और उनकी स्त्रीको भगवान् शंकरकी बात याद हो आयी। तब उन्होंने दशार्णराजके पास दूत भेजकर कहलाया, 'आप स्वयं मेरे यहाँ आइये और देख लीजिये कि मेरा पुत्र पुरु ही है। किसी व्यक्तिने आपसे जो झूठी बात कही है, वह माननेयोग्य नहीं है।' राजा द्रुपदका सन्देश पाकर दशार्णराजने शिखण्डीकी परीक्षाके लिये कुछ युवतियोंको भेजा। उन्होंने उसके वास्तविक स्वरूपको जानकर बड़ी प्रसन्नतासे सब बातें हिरण्यवर्माको सुना दीं और कह दिया कि राजकुमार शिखण्डी पुरुष ही है। तब राजा हिरण्यवर्मा बड़ी प्रसन्नतासे द्रुपदके नगरमें आया और समधीसे मिलकर बड़े हर्षसे कुछ दिन वहाँ रहा। उसने शिखण्डीको हाथी, घोड़े, गौ और बहुत-सी दासियाँ भेट कीं। द्रुपदने भी उसका अच्छा सत्कार किया। इस प्रकार सन्देह दूर हो जानेसे वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्रीको झिड़ककर अपनी राजधानीको चला गया।

इसी बीचमें किसी दिन यक्षराज कुबेर घूमते-घूमते स्थूणाकर्णके स्थानपर पहुँच गये। स्थूणाकर्णका घर रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सजा हुआ था। उसे देखकर यक्षराजने अपने अनुचरोंसे कहा, 'यह सजा हुआ भवन स्थूणाकर्णका ही है; किन्तु यह मन्दमति मेरे पास उपस्थित होनेके लिये क्यों नहीं निकला?' यक्षोंने कहा, 'महाराज! राजा द्रुपदकी शिखण्डिनी नामकी एक कन्या है, उसे किसी कारणसे स्थूणाकर्णने अपना पुरुषत्व दे दिया है और उसका स्त्रीत्व ग्रहण कर लिया है। अब वह स्त्रीरूपमें ही घरमें रहता

है। अतः सङ्कोचके कारण ही वह आपकी सेवामें उपस्थित नहीं हुआ। यह सुनकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।' तब कुबेरने कहा, 'अच्छा, तुम स्थूणको मेरे सामने हाजिर करो, मैं उसे दण्ड दूँगा।' इस प्रकार बुलाये जानेपर स्थूणाकर्ण स्त्रीरूपमें ही बड़े सङ्कोचसे कुबेरके पास आकर खड़ा हो गया। उसपर क्रुद्ध होकर कुबेरने शाप दिया कि 'अब यह पापी यक्ष इसी प्रकार स्त्रीरूपमें ही रहेगा।' तब दूसरे यक्षोंने स्थूणाकर्णकी ओरसे प्रार्थना की कि 'महाराज! आप इस शापकी कोई अवधि निश्चित कर दें।' इसपर कुबेरने कहा—'अच्छा, जब शिखण्डी युद्धमें मारा जायगा तो इसे फिर अपना स्वरूप प्राप्त हो जायगा।' ऐसा कहकर भगवान् कुबेर सब यक्षोंके साथ अलकापुरीको चले गये।

इधर, प्रतिज्ञाका समय पूरा होनेपर शिखण्डी स्थूणाकर्णके पास पहुँचा और कहा कि 'भगवन्! मैं आ गया हूँ।' स्थूणाकर्णने शिखण्डीको अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार समयपर उपस्थित हुआ देख बार-बार अपनी प्रसन्नता प्रकट की और उसे सारा वृत्तान्त सुना दिया। उसकी बात सुनकर शिखण्डीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अपने नगरको लौट आया। शिखण्डीका इस प्रकार काम बना देख राजा द्रुपद और सब बन्धु-बान्धवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद द्रुपदने उसे धनुर्विद्या सीखनेके लिये द्रोणाचार्यजीको सौंप दिया। फिर शिखण्डी और धृष्टद्युम्नने तुम्हारे साथ ही ग्रहण, धारण, प्रयोग और प्रतीकार—इन चार अङ्गोंके सहित धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की। मैंने मूर्ख, बहरे और अंधे-से दीख पड़नेवाले जो गुप्तचर इन द्रुपदके पास नियुक्त कर रक्खे थे, उन्होंने ही मुझे ये सब बातें बतायी हैं।

राजन्! इस प्रकार यह द्रुपदका पुत्र महारथी शिखण्डी पहले स्त्री था और पीछे पुरुष हो गया है। यह यदि हाथमें धनुष लेकर मेरे सामने युद्ध करनेके लिये आवेगा तो न तो एक क्षण भी इसकी ओर देखूँगा और न इसपर शस्त्र ही छोड़ूँगा। यदि भीष्म स्त्रीकी हत्या करेगा तो साधुजन उसकी निन्दा करेंगे। इसलिये इसे रणमें उपस्थित देखकर भी मैं इसपर हाथ नहीं छोड़ूँगा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीष्मकी यह बात सुनकर कुरुराज दुर्योधन कुछ देरतक विचार करता रहा। फिर उसे भीष्मकी बात उचित ही जान पड़ी।

दुर्योधनके प्रति भीष्मादिका और युधिष्ठिरके प्रति अर्जुनका बल-वर्णन

सञ्जयने कहा—महाराज! वह रात बीतनेपर जब प्रातःकाल हुआ तो आपके पुत्र दुर्योधनने पितामह भीष्मसे पूछा—'दादाजी! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी जो यह असंख्य पैदल, हाथी, घोड़े और महारथियोंसे पूर्ण प्रबल वाहिनी हमलोगोंसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो रही है, इसे आप कितने दिनोंमें नष्ट कर सकते हैं? तथा आचार्य द्रोण, कृप, कर्ण और अश्वत्थामाको इसका नाश करनेमें कितना समय लगेगा? मुझे बहुत दिनोंसे यह बात जाननेकी इच्छा है। कृपया बतलाइये।'

भीष्मने कहा—राजन्! तुम जो शत्रुओंके बलाबलके विषयमें पूछ रहे हो, सो उचित ही है। युद्धमें मेरा जो अधिक-से-अधिक पराक्रम, शस्त्रबल और भुजाओंका सामर्थ्य है, वह सुनो। धर्मयुद्धके लिये ऐसा निश्चय है सरल योद्धाके साथ सरलतापूर्वक और मायायुद्ध करनेवालेके साथ मायापूर्वक युद्ध करना चाहिये। इस प्रकार युद्ध करके मैं प्रतिदिन पाण्डवसेनाके दस हजार योद्धा और एक हजार रथियोंका संहार कर सकता हूँ। अतः यदि मैं अपने महान् अस्त्रोंका प्रयोग करूँ तो एक महीनेमें समस्त पाण्डवसेनाका संहार हो सकता है।

द्रोणाचार्यने कहा—'राजन्! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, तो भी भीष्मजीके समान मैं भी एक महीनेमें ही अपनी शस्त्राग्निसे पाण्डवसेनाको भस्म कर सकता हूँ। मेरी बड़ी-से-बड़ी शक्ति इतनी ही है।'

कृपाचार्यजीने दो महीनेमें और अश्वत्थामाने दस दिनमें सम्पूर्ण पाण्डवदलका संहार करनेकी अपनी शक्ति बतायी। किन्तु कर्णने कहा, 'मैं पाँच दिनमें ही सारी सेनाका सफाया कर दूँगा।' कर्णकी यह बात सुनकर भीष्मजी खिलखिलाकर हँस पड़े और कहा, 'राधापुत्र! जबतक रणभूमिमें तेरे सामने श्रीकृष्णके सहित अर्जुन रथमें बैठकर नहीं आता, तभीतक तू इस प्रकार अभिमानमें भरा हुआ है; उसका सामना होनेपर क्या तू इस प्रकार मनमाना बकवाद कर सकेगा?'

जब कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिरने यह समाचार सुना तो उन्होंने भी अपने भाइयोंको बुलाकर कहा—

भाइयो! आज कौरवोंकी सेनामें मेरे जो गुप्तचर हैं, उन्होंने वहाँका सबेरेका ही यह समाचार भेजा है। दुर्योधनने भीष्मजीसे पूछा था कि 'आप पाण्डवोंकी सेनाका कितने दिनोंमें संहार कर सकते हैं?' इसपर उन्होंने कहा, 'एक महीनेमें।' द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें नाश करनेकी अपनी शक्ति बतायी। कृपाचार्यने अपने लिये इससे दूना समय बताया। अश्वत्थामाने कहा, 'मैं दस दिनमें यह काम कर सकता हूँ।' तथा जब कर्णसे पूछा गया तो उसने पाँच दिनमें सारी सेनाका संहार कर सकनेकी बात कही। अतः अर्जुन! अब मैं भी इस विषयमें तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ। तुम कितने समयमें सब शत्रुओंका संहार कर सकते हो?

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'मेरा तो ऐसा विचार है कि श्रीकृष्णकी सहायतासे मैं अकेला ही केवल एक रथपर चढ़कर क्षणभरमें देवताओंके सहित तीनों लोक और भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी जीवोंका प्रलय कर सकता हूँ। पहले किरातवेषधारी भगवान् शंकरके साथ युद्ध होते समय उन्होंने मुझे जो अत्यन्त प्रचण्ड पाशुपतास्त्र दिया था, वह मेरे [पास] है। भगवान् शंकर प्रलयकालमें सम्पूर्ण जीवोंका संहा[र] करनेके लिये इसी अस्त्रका प्रयोग करते हैं। इसे मेरे सिवा [न] तो भीष्म जानते हैं और न द्रोण, कृप या अश्वत्थामाको ही इसका ज्ञान है; फिर कर्णकी तो बात ही क्या है! तथा[पि] इन दिव्यास्त्रोंसे संग्रामभूमिमें मनुष्योंको मारना उचित नहीं है; हम तो सीधे-सीधे युद्धसे ही शत्रुओंको जीत लेंगे। इसी प्रकार आपके सहायक ये अन्यान्य वीर भी पुरुषोंमें सिंहके समान हैं। ये सभी दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता और युद्धके लिये उत्सुक हैं। इन्हें कोई जीत नहीं सकता। ये रणाङ्गणमें देवताओंकी सेनाका भी संहार कर सकते हैं। शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा, विराट, द्रुपद, शंख, घटोत्कच, उसका पुत्र अञ्जनपर्वा, अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँच पुत्र तथा स्वयं आप भी तीनों लोकोंको नष्ट करनेमें समर्थ हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि आप क्रोधपूर्वक किसीकी ओर देख भी देंगे तो वह तत्काल नष्ट हो जायगा।'

कौरव और पाण्डव-सेनाओंका युद्धभूमिके लिये प्रस्थान

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! थोड़ी ही देरमें स्वच्छ प्रभात हुआ। तब दुर्योधनकी आज्ञासे उसके पक्षके राजालोग पाण्डवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने स्नान करके श्वेत वस्त्र और हार धारण किये, हवन किया और फिर अस्त्र-शस्त्र धारण कर स्वस्तिवाचन कराते हुए युद्ध करनेके लिये चले। आरम्भमें अवन्तिदेशके राजा विन्द और अनुविन्द, केकयदेशके राजा और बाह्लीक—ये सब द्रोणाचार्यजीके नेतृत्वमें चले। उनके बाद अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ, गान्धारराज शकुनि, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तरकी ओरके राजा, पर्वतीय नृपतिगण तथा शक, किरात, यवन, शिबि और वसाति जातिके राजालोग अपनी-अपनी सेनाके सहित दूसरा दल बनाकर चल दिये। उनके पीछे सेनाके सहित कृतवर्मा, त्रिगर्त्तराज, भाइयोंसे घिरा हुआ दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल्य और कोसलराज बृहद्रथ—इन सबने कूच किया। महाबली धृतराष्ट्रपुत्र कवच धारण कर कुरुक्षेत्रके पिछले आधे भागमें ठीक-ठीक व्यवस्थापूर्वक खड़े हो गये। दुर्योधनने अपने शिबिरको इस प्रकार सुसज्जित कराया था कि वह दूसरे हस्तिनापुरके समान ही जान पड़ता था। इसलिये बहुत चतुर नागरिकोंको भी उसमें और नगरमें कोई भेद नहीं जान पड़ता था। और सब राजाओंके लिये भी उसने वैसे ही सैकड़ों, हजारों डेरे डलवाये थे। उस पाँच योजन घेरेके रणाङ्गणमें उसने सैकड़ों छावनियाँ डाली थीं। उन छावनियोंमें राजालोग अपने-अपने बल और उत्साहके अनुसार ठहरे हुए थे। राजा दुर्योधनने उन आये हुए राजाओंको उनकी सेनाके सहित सब प्रकारकी उत्तम-उत्तम भक्ष्य और भोज्य सामग्री देनेका प्रबन्ध किया था। वहाँ जो व्यापारी और दर्शकलोग आये थे, उन सबकी भी वह विधिवत् देखभाल करता था।

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरों-को रणभूमिमें चलनेकी आज्ञा दी। उन्होंने राजाओंके हाथी, घोड़े, पैदल और वाहनोंके सेवक तथा शिल्पियोंके लिये अच्छी-से-अच्छी भोजनसामग्री देनेका आदेश दिया। फिर धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें अभिमन्यु, बृहत् और द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको रणाङ्गणमें भेजा। इसके बाद भीमसेन, सात्यकि और अर्जुनको दूसरे सैन्यसमुदायके साथ चलनेको कहा। इन उत्साही वीरों-का हर्षनाद आकाशमें गूँजने लगा। इन सबके पीछे विराट,

द्रुपद तथा दूसरे राजाओंके साथ वे स्वयं चले। उस समय धृष्टद्युम्नकी अध्यक्षतामें चलती हुई वह पाण्डवसेना भरी हुई गङ्गाजीके समान मन्दगतिसे चलती दिखायी देती थी।

थोड़ी दूर जाकर राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भ्रममें डालनेके लिये अपनी सेनाका दुबारा सङ्गठन किया। उन्होंने द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और समस्त प्रभद्रक वीरोंको दस हजार घुड़सवार, दो हजार गजारोही, दस हजार पैदल और पाँच सौ रथियोंके साथ भीमसेनके नेतृत्वमें पहला दल बनाकर चलनेकी आज्ञा दी। बीचके दलमें विराट, जयत्सेन तथा पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजाको रक्खा। इसके पीछे मध्यभागमें ही श्रीकृष्ण और अर्जुन चले। उनके आगे-पीछे सब ओर बीस हजार घुड़सवार, पाँच हजार गजारोही तथा अनेकों रथी और पैदल धनुष, खड्ग, गदा एवं तरह-तरहके अस्त्र लिये चल रहे थे। जिस सैन्यसमुद्रके बीचमें स्वयं राजा युधिष्ठिर थे, उसमें अनेकों राजालोग उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे। महाबली सात्यकि भी लाखों रथियोंके साथ सेनाको आगे बढ़ाये ले जा रहा था। पुरुषश्रेष्ठ क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव सेनाके जघनस्थानकी रक्षा करते हुए पिछले भागमें चल रहे थे। इनके सिवा और भी बहुत-से छकड़े, दूकानें, सवारियाँ तथा हाथी-घोड़े आदि सेनाके साथ थे। उस समय उस रणक्षेत्रमें लाखों वीर बड़ी उमंगसे भेरी और शङ्खोंकी ध्वनि कर रहे थे।

उद्योगपर्व समाप्त
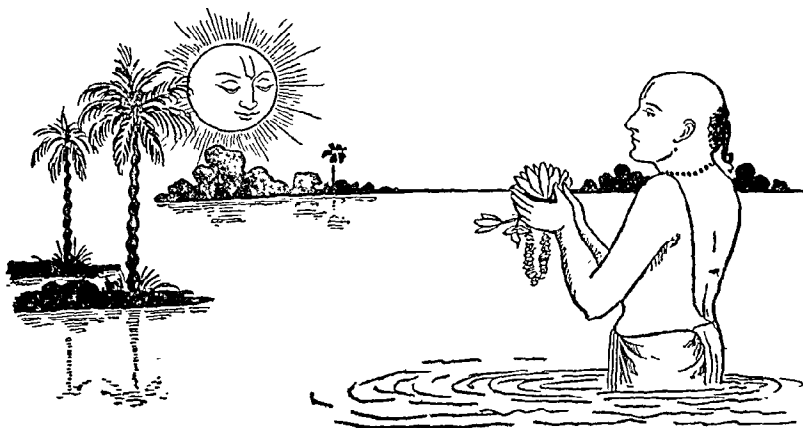
भक्तिकी महिमा

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं
स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम् ।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं
श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण सारे अमङ्गलोंका नाश करनेवाले हैं, वे अपने विशुद्ध आनन्दमय स्वरूपमें ही सदा रमण करते रहते हैं । वे शान्तिके एकमात्र आश्रय हैं, भक्तिका दान करनेवाले हैं, तथा स्मरणमात्रसे केवल मोक्षसुखको ही नहीं अपि तु अपने स्वरूपभूत आनन्द—प्रेमानन्दको भी दे डालते हैं । वे ही सनातन प्रेमास्पद हैं । वे अपने परम कमनीय मेघश्याम शरीरपर पीताम्बर धारण किये अपने नित्यधाम गोलोकमें विराजमान रहते हैं । हम शरीर, वाणी एवं बुद्धिसे उन्हींकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

अहो कार्ष्णी भक्तिर्निगमगणनीयाद्भुतरसा
वरीवर्त्यानन्दामृतपदविधात्री स्वरसतः ।
प्रवेशे यस्यां स्यान्निखिलसुरवन्द्यत्वमभितो
नृणामप्येनां यः श्रयति स भवेत् सर्वसुखभाक् ॥ २ ॥

अहा ! श्रीकृष्णभक्ति कैसी अनुपम वस्तु है । वेदोंने भी मुक्तकण्ठसे उसकी महिमा गायी है । उसमें कैसा अलौकिक रस है ! उससे मोक्षसुख और प्रेमानन्द दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं । इसमें प्रवेश हो जानेसे ही मनुष्य समस्त देवताओंका भी पूज्य बन जाता है । और जो सब ओरसे इसीका आश्रय ले लेता है, उसे तो सम्पूर्ण सुख करामलकवत् प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

वदन्त्येके कर्म श्रुतिविहितमेवास्ति सुखदं
तथा योगं केचिद् यमनियममुख्यं सुगतिदम् ।
परे ब्रह्मज्ञानं परमपददं तत्र तु वयं
हरौ भक्तिं विद्मः सकलपुरुषार्थैकधरणीम् ॥ ३ ॥

कुछ लोग कहते हैं कि वेदविहित कर्मोंका अनुष्ठान ही सुखका एकमात्र साधन है । कुछ लोग अष्टाङ्गयोगको ही मोक्षका साधन बतलाते हैं, तथा दूसरे लोग ब्रह्मज्ञानको ही परमपद-प्राप्तिका हेतु सिद्ध करते हैं । परन्तु हम तो यह जानते हैं कि श्रीहरिकी भक्ति ही समस्त पुरुषार्थोंकी एकमात्र जननी है ॥ ३ ॥

(महाभारत-तात्पर्य-प्रकाश)

जगन्नाथ
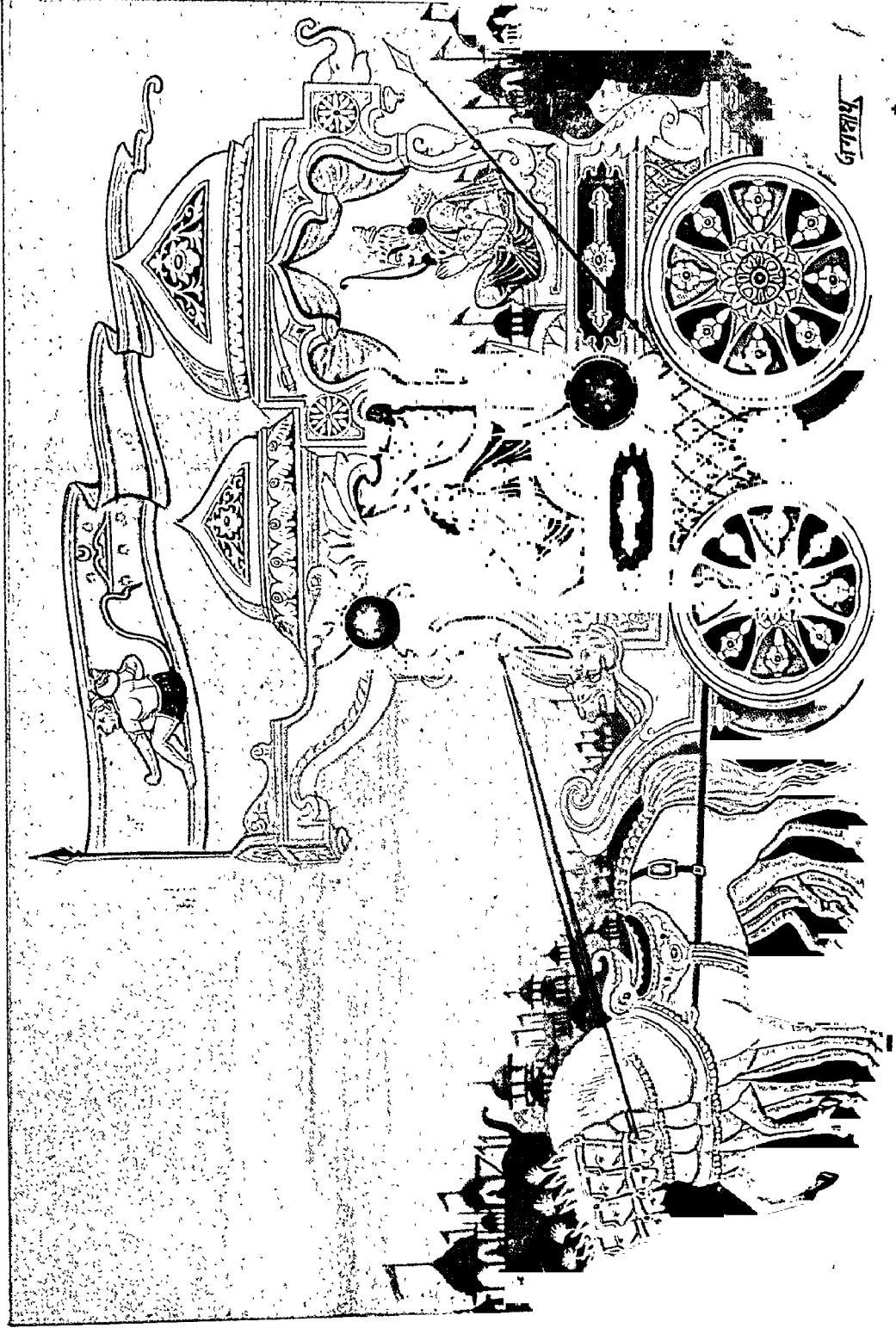
युद्ध करे। जिसका जैसा उत्साह और जैसा बल हो, उसके अनुसार ही वह लड़े। विपक्षीको पुकारकर सावधान करके प्रहार किया जाय। जो प्रहार न होनेका विश्वास करके बेखबर हो, अथवा भयभीत हो, उसपर आघात न किया जाय। जो किसी एकके साथ युद्ध कर रहा हो, उसपर दूसरा कोई शस्त्र न छोड़े। जो शरणमें आया हो या युद्ध छोड़कर भाग रहा हो, अथवा जिसके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हों—ऐसे निहत्थोंका वध न किया जाय। सूत, भार वाले, शस्त्र पहुँचानेवाले तथा भेरी और शंख बजा पर भी किसी तरह प्रहार न किया जाय।' इस नियम बनाकर वे सभी राजालोग अपने सैनिकोंके बहुत प्रसन्न हुए।

व्यासजीद्वारा सञ्जयकी नियुक्ति तथा अनिष्टसूचक उत्पातोंका वर्णन

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तदनन्तर पूर्व और पश्चिम दिशामें आमने-सामने खड़ी हुई दोनों ओरकी सेनाओंको देखकर भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञान रखनेवाले भगवान् व्यासने एकान्तमें बैठे हुए राजा धृतराष्ट्रके पास आकर कहा, 'राजन्! तुम्हारे पुत्रों तथा अन्य
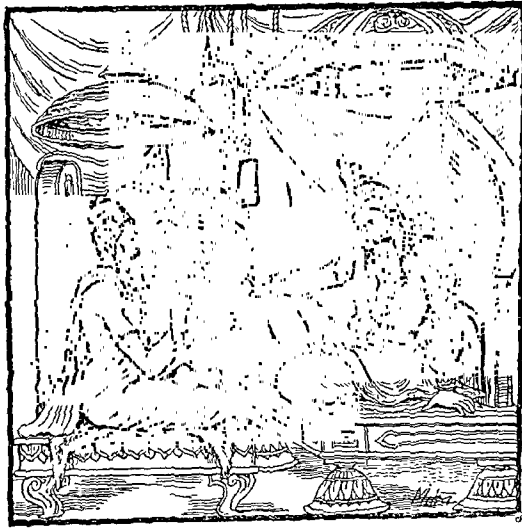
राजाओंका काल आ पहुँचा है; वे युद्धमें एक दूसरेका संहार करनेको तैयार हैं। बेटा! यदि तुम इन्हें संग्राममें देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि प्रदान करूँ। इससे तुम वहाँका युद्ध भलीभाँति देख सकोगे।'

धृतराष्ट्रने कहा—ब्रह्मर्षिवर! युद्धमें मैं अपने ही कुटुम्बका वध नहीं देखना चाहता; किन्तु आपके प्रभावसे युद्धका पूरा समाचार सुन सकूँ, ऐसी कृपा अवश्य कीजिये।

धृतराष्ट्र युद्धका समाचार सुनना चाहता है—यह जानकर व्यासजीने सञ्जयको दिव्यदृष्टिका वरदान दिया। वे धृतराष्ट्रसे बोले—'राजन्! यह सञ्जय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा। सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी बात ऐसी न होगी, जो इससे छिपी रहे। यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जाय सामने हो या परोक्षमें, दिनमें हो या रातमें, उ मनमें सोची हुई ही क्यों न हो, वह बात भी सञ्ज मालूम हो जायगी। इसे शस्त्र नहीं काट स परिश्रम कष्ट नहीं पहुँचा सकेगा तथा यह इस यु जीता-जागता निकल आयेगा। मैं इन कौरवों और पाण्डव कीर्तिका विस्तार करूँगा, तुम इनके लिये शोक न करन यह दैवका विधान है, इसे टाला नहीं जा सकता। यु जिस ओर धर्म होगा, उसी पक्षकी जीत होगी। महाराज इस संग्राममें बड़ा भारी संहार होगा; क्योंकि ऐसे ही भयसूच अपशकुन दिखायी देते हैं। दोनों सन्ध्याओंकी वेला बिजली चमकती है और सूर्यको तिरंगे बादल ढक दे हैं, ये ऊपर-नीचे सफेद और लाल तथा बीचमें काले होते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और तारे जलते हुए-से दीखते हैं दिन-रातमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता; यह लक्षण भय उत्पन्न करनेवाला है। कार्तिककी पूर्णिमाको नीलकमलके समान रंगवाले आकाशमें चन्द्रमा प्रभाहीन होनेके कारण कम दीखता था, उसका रंग अग्निके समान था। इससे यह सूचित होता है कि अनेकों शूरवीर राजा और राजकुमार युद्धमें प्राणत्याग कर पृथ्वीपर शयन करेंगे। प्रतिदिन सूअर और बिलाव लड़ते हैं और उनका भयङ्कर नाद सुनायी पड़ता है। देवमूर्तियाँ काँपती, हँसती और रक्त वमन करती हैं तथा अकस्मात् पसीनेसे तर हो जाती और गिर पड़ती हैं। जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, उस परम साध्वी अरुन्धतीने इस समय वसिष्ठको आगेसे पीछे कर लिया है। शनैश्चर रोहिणीको पीडा दे रहा है, चन्द्रमाका मृगचिह्न मिट-सा गया है इससे बड़ा भारी भय होनेवाला है। आजकल गौओंके पेटसे गधे उत्पन्न होते हैं। घोड़ीसे गौके बछड़ेकी उत्पत्ति होती है और कुत्ते गीदड़ पैदा कर रहे हैं। चारों ओर बड़े जोरकी आँधी चलती है, धूलका उड़ना बंद ही नहीं होता। बारंबार

सञ्जयको दिव्यदृष्टि

भूकम्प होता है। राहु सूर्यपर आक्रमण करता है, केतु चित्रापर स्थित है, धूमकेतु पुष्य-नक्षत्रमें स्थित है, यह महान् ग्रह दोनों सेनाओंका घोर अमङ्गल करेगा। मङ्गल वक्री होकर मघा-नक्षत्रपर स्थित है। बृहस्पति श्रवण-नक्षत्रपर है और शुक्र पूर्वाभाद्रपदापर स्थित है। पहले चौदह, पंद्रह और सोलह दिनोंपर अमावस्या हो चुकी है; किन्तु कभी पक्षके तेरहवें दिन ही अमावस्या हुई हो—यह मुझे स्मरण नहीं है। इस बार तो एक ही महीनेके दोनों पक्षोंमें त्रयोदशीको ही सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण हो गये हैं। इस प्रकार बिना पर्वका ग्रहण होनेसे ये दोनों ग्रह अवश्य ही प्रजाका संहार करेंगे। पृथ्वी हजारों राजाओंका रक्तपान करेगी। कैलास, मन्दराचल और हिमालय-जैसे पर्वतोंसे हजारों बार घोर शब्द होते हैं, उनके शिखर टूट-टूटकर गिर रहे हैं और चारों महासागर अलग-अलग उफनाते तथा पृथ्वीपर हलचल पैदा करते हुए बढ़कर मानो अपनी सीमाका उल्लङ्घन कर रहे हैं।

व्यास-धृतराष्ट्र-संवाद और सञ्जयद्वारा भूमिके गुणोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर मुनिवर व्यासजी क्षणभरके लिये ध्यानमग्न हो गये; इसके बाद फिर कहने लगे, 'राजन्! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि काल सारे जगत्का संहार करता रहता है। यहाँ सदा रहनेवाला कुछ भी नहीं है। इसलिये तुम अपने कुटुम्बी कौरवों, सम्बन्धियों और हितैषी मित्रोंको इस क्रूर कर्मसे रोको, उन्हें धर्मयुक्त मार्गका उपदेश करो; अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करना बड़ा नीच काम है, इसे न होने दो। चुप रहकर मेरा अप्रिय न करो। किसीके वधको वेदमें अच्छा नहीं कहा गया है, इससे अपना भला भी नहीं होता। कुलधर्म अपने शरीरके समान है; जो उसका नाश करता है, वह कुलधर्म भी उस मनुष्यका नाश कर देता है। इस कुलधर्मकी रक्षा तुम कर सकते हो, तो भी कालसे प्रेरित होकर आपत्तिकालके समान अधर्म-पथमें प्रवृत्त हो रहे हो! तुम्हें राज्यके रूपमें बहुत बड़ा अनर्थ प्राप्त हुआ है; क्योंकि यह समस्त कुलके तथा अनेकों राजाओंके विनाशका कारण बन गया है। यद्यपि तुम धर्मका बहुत लोप कर चुके हो, तो भी मेरे कहनेसे अपने पुत्रोंको धर्मका मार्ग दिखाओ। ऐसे राज्यसे तुम्हें क्या लेना है, जिससे पापका भागी होना पड़ा। धर्मकी रक्षा करनेसे तुम्हें यश, कीर्ति और स्वर्ग मिलेगा। अब ऐसा करो, जिससे पाण्डव अपना राज्य पा सकें और कौरव भी सुख-शान्तिका अनुभव करें।

धृतराष्ट्रने कहा—तात! सारा संसार स्वार्थसे मोहित हो रहा है, मुझे भी सर्वसाधारणकी ही भाँति समझिये। मेरी बुद्धि भी अधर्म करना नहीं चाहती, परन्तु क्या करूँ? मेरे पुत्र मेरे वशमें नहीं हैं।

व्यासजीने कहा—अच्छा, तुम्हारे मनमें यदि मुझसे कुछ पूछनेकी बात हो तो कहो; मैं तुम्हारे सभी सन्देहोंको दूर कर दूँगा।

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन्! संग्राममें विजय पानेवालोंको जो शुभ शकुन दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबको मैं सुनना चाहता हूँ।

व्यासजीने कहा—हवनीय अग्निकी प्रभा निर्मल हो, उसकी लपटें ऊपर उठती हों अथवा प्रदक्षिणक्रमसे घूमती हों, उनसे धूआँ न निकले, आहुति डालनेपर उसमेंसे पवित्र गन्ध फैलने लगे, तो इसे भावी विजयका चिह्न बताया गया है। भारत! जिस पक्षमें योद्धाओंके मुखसे हर्षभरे वचन निकलते हों, उनका धैर्य बना रहता हो, पहनी हुई मालाएँ कुम्हलाती न हों, वे ही युद्धरूपी महासागरको पार करते हैं। सेना थोड़ी हो या बहुत, योद्धाओंका उत्साहपूर्ण हर्ष ही विजयका प्रधान लक्षण माना गया है। एक-दूसरेको अच्छी तरह जाननेवाले, उत्साही, स्त्री आदिमें अनासक्त तथा दृढ़निश्चयी पचास वीर भी बहुत बड़ी सेनाको रौंद डालते हैं। यदि युद्धसे पीछे पैर न हटानेवाले पाँच-ही-सात योद्धा हों, तो वे भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। अतः सदा सेना अधिक होनेसे ही विजय होती हो, ऐसी बात नहीं है।

इस प्रकार कहकर भगवान् वेदव्यास चले गये और यह सब सुनकर राजा धृतराष्ट्र विचारमें पड़ गये। थोड़ी

देरतक सोचकर उन्होंने सञ्जयसे पूछा, 'सञ्जय ! ये युद्धप्रेमी
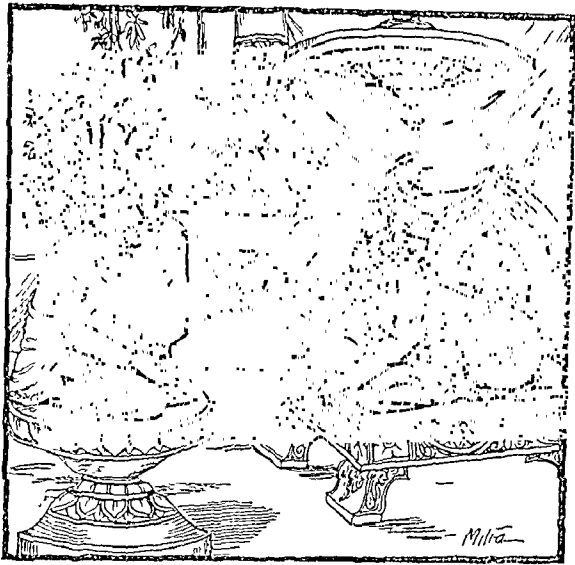
राजालोग पृथ्वीके लोभसे जीवनका मोह छोड़कर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा जो एक दूसरेकी हत्या करते हैं, पृथ्वीके ऐश्वर्यकी इच्छासे परस्पर प्रहार करते हुए यमलोककी जन-संख्या बढ़ाते हैं और शान्त नहीं होते, इससे मैं समझता हूँ कि पृथ्वीमें बहुत-से गुण हैं। तभी तो इसके लिये यह नर-संहार होता है। अतः तुम मुझसे इस पृथ्वीका वर्णन करो।

सञ्जय बोला—भरतश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है। आपकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीके गुणोंका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनिये। इस पृथ्वीपर दो प्रकारके प्राणी हैं—चर और अचर। चरोंके तीन भेद हैं—अण्डज, स्वेदज और जरायुज। इन तीनोंमें जरायुज श्रेष्ठ हैं तथा जरायुजोंमें मनुष्य और पशु प्रधान हैं। इनमेंसे कुछ ग्रामवासी और कुछ वनवासी होते हैं। ग्रामवासियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और वनवासियोंमें सिंह। अचर या स्थावरोंको उद्भिज्ज भी कहते हैं। इनकी पाँच जातियाँ हैं—वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार (बाँस आदि)। ये तृण जातिके अन्तर्गत हैं।

यह सम्पूर्ण जगत् इस पृथ्वीपर ही उत्पन्न होता और इसीमें नष्ट हो जाता है। भूमि ही सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा है, भूमि ही अधिक कालतक स्थिर रहनेवाली है। जिसका भूमिपर अधिकार है, उसीके वशमें सम्पूर्ण चराचर जगत् है। इसीलिये इस भूमिमें अत्यन्त लोभ रखकर सब राजा एक दूसरेका प्राणघात करते हैं।

युद्धमें भीष्मजीका पतन सुनकर धृतराष्ट्रका विषाद तथा सञ्जयद्वारा कौरव-सेनाके सङ्गठनका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! एक दिनकी बात है, राजा धृतराष्ट्र चिन्तामें निमग्न होकर बैठे थे। इसी समय सहसा संग्रामभूमिसे लौटकर सञ्जय उनके पास आया और बहुत दुखी होकर बोला, 'महाराज ! मैं सञ्जय हूँ, आपको प्रणाम करता हूँ। शान्तनुनन्दन भीष्मजी युद्धमें मारे गये। जो समस्त योद्धाओंके शिरोमणि और धनुर्धारियोंके सहारे थे, वे कौरवोंके पितामह आज बाण-शय्यापर सो रहे हैं। जिन महारथीने काशीपुरीमें अकेले ही एकमात्र रथकी सहायतासे वहाँ जुटे हुए समस्त राजाओंको युद्धमें परास्त कर दिया था, जो निडर होकर युद्धके लिये परशुरामजीके साथ भी भिड़ गये थे और साक्षात् परशुरामजी भी जिन्हें मार नहीं सके थे, वे ही आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये। जो शूरतामें इन्द्रके समान, स्थिरतामें हिमालयके सदृश, गम्भीरतामें समुद्रके समान और सहनशीलतामें पृथ्वीके तुल्य थे, जिन्होंने हजारों बाणोंकी वर्षा करते हुए दस दिनोंमें एक अरब सेनाका संहार किया था, वे ही इस समय आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर पड़े हैं। राजन् ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है; भीष्मजी कदापि ऐसी दशाके योग्य नहीं थे।'

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय ! कौरवोंमें श्रेष्ठ और इन्द्रके समान पराक्रमी पितृवर भीष्मजी शिखण्डीके हाथसे कैसे मारे गये ? उनकी मृत्युका समाचार सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है। जिस समय वे युद्धके लिये अग्रसर हुए थे, उस समय उनके पीछे कौन गये थे, तथा आगे कौन थे ? उनके धनुष और बाण तो बड़े ही उग्र थे, रथ भी बहुत उत्तम था, वे अपने बाणोंसे प्रतिदिन शत्रुओंके मस्तक काटते थे तथा कालाग्निके समान दुर्धर्ष थे। उन्हें युद्धके लिये उद्यत देखकर पाण्डवोंकी बहुत बड़ी सेना काँप उठती थी। वे दस दिनसे लगातार पाण्डव-सेनाका संहार कर रहे थे। हाय ! ऐसा दुष्कर कार्य करके वे आज सूर्यके समान अस्त हो गये ! कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी उनके पास ही थे, तो भी उनकी मृत्यु कैसे हो गयी ? जिन्हें देवता भी नहीं दबा सकते थे और जो अतिरथी वीर थे, उन्हें पाञ्चालदेशीय शिखण्डीने कैसे मार गिराया ? मेरे पक्षके किन-किन वीरोंने

अन्ततक उनका साथ नहीं छोड़ा ? दुर्योधनकी आज्ञासे कौन-कौन वीर उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे ?

सञ्जय ! सचमुच ही मेरा हृदय पत्थरका बना है, बड़ा ही कठोर है; तभी तो भीष्मजीकी मृत्युका समाचार सुनकर भी यह नहीं फटता। भीष्मजीके सत्य, बुद्धि तथा नीति आदि सद्गुणोंकी तो थाह ही नहीं थी; वे युद्धमें कैसे मारे गये ? सञ्जय ! बताओ, उस समय पाण्डवोंके साथ भीष्मजीका कैसा युद्ध हुआ ? हाय ! उनके मरनेसे मेरे पुत्रोंकी सेना पति और पुत्रसे हीन स्त्रीके समान असहाय हो गयी। हमारे पिता भीष्म संसारमें प्रसिद्ध धर्मात्मा और महापराक्रमी थे, उन्हें मरवाकर अब हमारे जीनेके लिये भी कौन-सा सहारा रह गया है ? मैं समझता हूँ नदीके पार जानेकी इच्छावाले मनुष्य नावको पानीमें डूबी देखकर जैसे व्याकुल हो जाते हैं, उसी प्रकार भीष्मजीकी मृत्युसे मेरे पुत्र भी शोकमें डूब गये होंगे। जान पड़ता है धैर्य अथवा त्यागके बलसे किसीका मृत्युसे छुटकारा नहीं हो सकता। अवश्य ही काल बड़ा बलवान् है, सम्पूर्ण जगत्में कोई भी इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। मुझे तो भीष्मजीसे ही अपनी रक्षाकी बड़ी आशा थी। उनको रणभूमिमें गिरा देख दुर्योधनने क्या विचार किया ? तथा कर्ण, शकुनि और दुःशासनने क्या कहा ? भीष्मजीके अतिरिक्त और किन-किन राजाओंकी हार-जीत हुई ? तथा कौन-कौन बाणोंके निशाने बनाकर मार गिराये गये ? सञ्जय ! मैं दुर्योधनके किये हुए दुःखदायी कर्मोंको सुनना चाहता हूँ। उस घोर संग्राममें जो-जो घटनाएँ हुई हों, वे सब सुनाओ। मन्दबुद्धि दुर्योधनकी मूर्खताके कारण जो भी अन्याय अथवा न्यायपूर्ण घटनाएँ हुई हों तथा विजयकी इच्छासे भीष्मजीने जो-जो तेजस्वितापूर्ण कार्य किये हों, वे सब मुझे सुनाओ। साथ ही यह भी बताओ कि कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंमें किस तरह युद्ध हुआ ? तथा किस क्रमसे किस समय कौन-कौन-सा कार्य किस प्रकार घटित हुआ ?

सञ्जयने कहा—महाराज ! आपका यह प्रश्न आपके योग्य ही है; परन्तु यह सारा दोष आप दुर्योधनके ही माथे नहीं मढ़ सकते। जो मनुष्य अपने ही दुष्कर्मोंके कारण अशुभ फल भोग रहा है, उसे उस पापका बोझा दूसरेपर नहीं डालना चाहिये। बुद्धिमान् पाण्डव अपने साथ किये गये कपट एवं अपमानको अच्छी तरह समझते थे, तो भी उन्होंने केवल आपकी ओर देखकर अपने मन्त्रियोंसहित चिरकालतक वनमें रहकर सब कुछ सहन किया। अब जिनकी कृपासे मुझे भूत-भविष्यत्-वर्तमानका ज्ञान तथा आकाशमें विचरना और दिव्यदृष्टि आदि प्राप्त हुए हैं, उन पराशर-नन्दन भगवान् व्यासको प्रणाम करके भरतवंशियोंके रोमाञ्च-कारी और अद्भुत संग्रामका विस्तारसे वर्णन करता हूँ; सुनिये।

जब दोनों ओरकी सेनाएँ तैयार होकर व्यूहके आकारमें खड़ी हो गयीं, तब दुर्योधनने दुःशासनसे कहा—"दुःशासन ! भीष्मजीकी रक्षाके लिये जो रथ नियत हैं, उन्हें तैयार कराओ। इस युद्धमें भीष्मजीकी रक्षासे बढ़कर हमलोगोंके लिये दूसरा कोई काम नहीं है। शुद्ध हृदयवाले पितामहने पहलेसे ही कह रक्खा है कि 'शिखण्डीको नहीं मारूँगा, क्योंकि वह पहले स्त्रीरूपमें उत्पन्न हुआ था।' अतः मेरा विचार है कि शिखण्डीके हाथसे भीष्मजीको बचानेका विशेष प्रयत्न होना चाहिये। मेरे सभी सैनिक शिखण्डीका वध करनेके लिये तैयार रहें। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणके जो वीर सब प्रकारके अस्त्रसञ्चालनमें कुशल हों, वे पितामहकी रक्षामें रहें। देखो, अर्जुनके रथके बायें चक्रकी युधामन्यु रक्षा कर रहा है और दाहिने चक्रकी उत्तमौजा। अर्जुनको ये दो रक्षक प्राप्त हैं और अर्जुन स्वयं शिखण्डीकी रक्षा करता है। अतः तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे अर्जुनके द्वारा सुरक्षित और भीष्मसे उपेक्षित शिखण्डी पितामहका वध न कर सके।"

तदनन्तर, जब रात बीती और सूर्योदय हुआ तो आपके पुत्रों और पाण्डवोंकी सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित दिखायी देने लगीं। खड़े हुए योद्धाओंके हाथमें धनुष, ऋष्टि, तलवार, गदा, शक्ति, तोमर तथा और भी बहुत-से चमकीले शस्त्र शोभा पा रहे थे। सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें हाथी, पैदल, रथी और घोड़े शत्रुओंको फंदेमें फँसानेके लिये व्यूहबद्ध होकर खड़े थे। शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, केकयनरेश, कम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्गनरेश श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, बृहद्बल और कृतवर्मा—ये दस वीर एक-एक अक्षौहिणी सेनाके नायक थे। इनके सिवा और भी बहुत-से महारथी राजा और राजकुमार दुर्योधनके अधीन हो युद्धमें अपनी-अपनी सेनाओंके साथ खड़े दिखायी देते थे। इनके अतिरिक्त ग्यारहवीं महासेना दुर्योधनकी थी। यह सब सेनाओंके आगे थी, इसके अधिनायक थे शान्तनुनन्दन भीष्मजी। महाराज! उनके सिरपर सफेद पगड़ी थी, शरीरपर सफेद कवच था

और रथके घोड़े भी सफेद थे। उस समय अपनी श्वेत कान्तिसे वे चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। उन्हें देखकर बड़े-बड़े धनुष धारण करनेवाले सृञ्जयवंशके वीर तथा धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल वीर भी भयभीत हो उठे। इस प्रकार ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आपकी ओरसे खड़ी थीं। राजन्! कौरवोंकी इतनी बड़ी सेनाका ऐसा सङ्गठन न मैंने कभी देखा था, न सुना था।

भीष्मजी और द्रोणाचार्य प्रतिदिन सबेरे उठकर यही मनाया करते थे कि 'पाण्डवोंकी जय हो'; तो भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वे युद्ध आपके ही लिये करते थे। उस दिन भीष्मजीने सब राजाओंको अपने पास बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'क्षत्रियो! आपलोगोंके लिये स्वर्गमें जानेका यह युद्धरूपी महान् दरवाजा खुल गया है, इसके द्वारा आप इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें जा सकते हैं। यही आपका सनातन मार्ग है, इसीका आपके पूर्वपुरुषोंने भी अनुसरण किया है। रोगसे घरमें पड़े-पड़े प्राण त्यागना क्षत्रियके लिये अधर्म माना गया है। युद्धमें जो इसकी मृत्यु होती है—वही इसका सनातन धर्म है।'

भीष्मजीकी यह बात सुनकर सभी राजा बढ़िया-बढ़िया रथोंसे अपनी सेनाकी शोभा बढ़ाते हुए युद्धके लिये आगे बढ़े। केवल कर्ण अपने मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंके सहित रह गया; भीष्मजीने उसके अस्त्र-शस्त्र रखवा दिये थे। समस्त कौरवसेनाके सेनापति भीष्मजी रथपर बैठे हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे, उनके रथकी ध्वजापर विशाल ताड़ और पाँच तारोंके चिह्न बने हुए थे। आपके पक्षमें जितने महान् धनुर्धर राजा थे, वे सब शान्तनुनन्दन भीष्मजीकी आज्ञाके अनुसार युद्धके लिये तैयार हो गये। आचार्य द्रोणकी जो ध्वजा फहरा रही थी, उसमें सोनेकी वेदी, कमण्डलु और धनुषके चिह्न थे। कृपाचार्य अपने बहुमूल्य रथपर बैठकर वृषभके चिह्नवाली ध्वजा फहराते चल रहे थे। राजन्! इस प्रकार आपके पुत्रोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुनामें मिली हुई गङ्गाके समान दिखायी देती थी।

दोनों सेनाओंकी व्यूह-रचना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! भीष्मजी तो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और असुरोंद्वारा की जानेवाली व्यूहरचना भी जानते थे। जब उन्होंने मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाकी व्यूहरचना की, तब पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपनी थोड़ी-सी सेनासे किस प्रकारका व्यूह बनाया?

सञ्जयने कहा—महाराज! आपकी सेनाको व्यूह-रचनापूर्वक सुसज्जित देख धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'तात! महर्षि बृहस्पतिके वचनसे यह बात ज्ञात होती है कि यदि शत्रुकी अपेक्षा अपनी सेना थोड़ी हो तो उसे समेटकर थोड़ी ही दूरमें रखकर युद्ध करना चाहिये और यदि अपनी सेना अधिक हो तो उसे इच्छानुसार फैलाकर लड़ना चाहिये। जब थोड़ी सेनाको अधिक सेनाके साथ युद्ध करना पड़े तो उसे सूचीमुख नामक व्यूहकी रचना करनी चाहिये। हमलोगोंकी यह सेना शत्रुओंके मुकाबलेमें बहुत थोड़ी है, इसलिये तुम व्यूहरचना करो।'

यह सुनकर अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! मैं आपके लिये वज्रनामक दुर्भेद्य व्यूहकी रचना करता हूँ; यह इन्द्रका बताया हुआ दुर्जय व्यूह है। जिनका वेग वायुके समान प्रबल और शत्रुओंके लिये दुःसह है, वे योद्धाओंमें अग्रगण्य भीमसेन इस व्यूहमें हमलोगोंके आगे रहकर युद्ध करेंगे। उन्हें देखते ही दुर्योधन आदि कौरव भयभीत होकर इस तरह भागेंगे, जैसे सिंहको देखकर क्षुद्र मृग भाग जाते हैं।'

ऐसा कहकर धनञ्जयने वज्रव्यूहकी रचना की। सेनाको व्यूहाकारमें खड़ी करके अर्जुन शीघ्र ही शत्रुओंकी ओर बढ़ा। कौरवोंको अपनी ओर आते देख पाण्डवसेना भी जलसे भरी हुई गङ्गाके समान धीरे-धीरे आगे बढ़ती दिखायी देने लगी। भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धृष्टकेतु—ये उस सेनाके आगे चल रहे थे। इनके पीछे रहकर राजा विराट अपने भाई, पुत्र और एक अक्षौहिणी सेनाके साथ रक्षा कर रहे थे। नकुल और सहदेव भीमसेनके दायें-बायें रहकर उनके रथके पहियोंकी रक्षा करते थे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और अभिमन्यु उनके पृष्ठभागके रक्षक थे। इन सबके पीछे शिखण्डी चलता था, जो अर्जुनकी रक्षामें रहकर भीष्मजीका विनाश करनेके लिये तैयार था। अर्जुनके पीछे महाबली सात्यकि था तथा युधामन्यु और उत्तमौजा उनके चक्रोंकी रक्षा करते थे। कैकेय धृष्टकेतु और बलवान् चेकितान भी अर्जुनकी ही रक्षामें थे।

र्जुनने जिसकी रचना की थी, वह वज्रव्यूह भयकी ते शून्य था। उसके सब ओर मुख थे, देखनेमें बड़ा ा था। वीरोंके धनुष इसमें बिजलीके समान चमक और स्वयं अर्जुन गाण्डीव धनुष हाथमें लेकर उसकी र रहे थे। उसीका आश्रय लेकर पाण्डवलोग तुम्हारी मुकाबलेमें डटे हुए थे। पाण्डवोंसे सुरक्षित वह व्यूह जगत्के लिये सर्वथा अजेय था।

तनेमें सूर्योदय होते देख समस्त सैनिक सन्ध्या-वन्दन गे। उस समय यद्यपि आकाशमें बादल नहीं थे, तो की-सी गर्जना हुई और हवाके साथ बूँदें पड़ने लगीं। ारों ओरसे प्रचण्ड आँधी उठी और नीचेकी ओर बरसाने लगी। इतनी धूल उड़ी कि सारे जगत्में ला छा गया। पूर्व दिशाकी ओर बड़ा भारी उल्कापात वह उल्का उदय होते हुए सूर्यसे टकराकर गिरी ड़े जोरकी आवाज़ करती हुई पृथ्वीमें विलीन ा।

न्ध्या-वन्दनके पश्चात् जब सब सैनिक तैयार होने लगे तो प्रभा फीकी पड़ गयी तथा पृथ्वी भयानक शब्द करती पने और फटने लगी। सब दिशाओंमें बारंबार वज्रपात गे। इस प्रकार युद्धका अभिनन्दन करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनकी सेनाका सामना करनेके लिये चना करके भीमसेनको आगे किये खड़े थे। उस ादाधारी भीमको सामने देखकर हमारे योद्धाओंकी ूख रही थी।

ृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! सूर्योदय होनेपर भीष्मकी अधिनायकतामें रहनेवाले मेरे पक्षके वीरों और भीमसेनके सेनापतित्वमें उपस्थित हुए पाण्डवपक्षके सैनिकोंमें पहले किन्होंने युद्धकी इच्छासे हर्ष प्रकट किया था?

सञ्जयने कहा—नरेन्द्र! दोनों ही सेनाओंकी समान अवस्था थी। जब दोनों एक दूसरेके पास आ गयीं तो दोनों ही प्रसन्न दिखायी पड़ीं। हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई दोनों ही सेनाओंकी विचित्र शोभा हो रही थी। कौरवसेना-का मुख पश्चिमकी ओर था और पाण्डव पूर्वाभिमुख होकर खड़े थे। कौरवोंकी सेना दैत्यराजकी सेनाके समान जान पड़ती थी और पाण्डवोंकी सेना देवराज इन्द्रकी सेनाके समान शोभा पा रही थी। पाण्डवोंके पीछे हवा चलने लगी और कौरवोंके पृष्ठभागमें मांसाहारी पशु कोलाहल करने लगे।

भारत! आपकी सेनाके व्यूहमें एक लाखसे अधिक हाथी थे, प्रत्येक हाथीके साथ सौ-सौ रथ खड़े थे, एक-एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े थे, प्रत्येक घोड़ेके साथ दस-दस धनुर्धर सैनिक थे और एक-एक धनुर्धरके साथ दस-दस ढालवाले थे। इस प्रकार भीष्मजीने आपकी सेनाका व्यूह बनाया था। वे प्रतिदिन व्यूह बदलते रहते थे। किसी दिन मानव-व्यूह रचते थे तो किसी दिन दैव-व्यूह तथा किसी दिन गान्धर्व-व्यूह बनाते थे तो किसी दिन आसुर-व्यूह। आप-की सेनाके व्यूहमें महारथी सैनिकोंकी भरमार थी। वह समुद्रके समान गर्जना करता था। राजन्! कौरव-सेना यद्यपि असंख्य और भयङ्कर है तथा पाण्डवोंकी सेना ऐसी नहीं है, तो भी मेरा यह विश्वास है कि वास्तवमें वही सेना दुर्द्धर्ष और बड़ी है जिसके नेता भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं।

युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा दुर्गाका स्तवन और वर-प्राप्ति

सञ्जय कहते हैं—कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने जब भीष्म-रचे हुए अभेद्य व्यूहको देखा तो उदास होकर अर्जुनसे लगे, 'धनञ्जय! जिनके सेनापति पितामह भीष्मजी हैं, उन के साथ हमलोग कैसे युद्ध कर सकते हैं? महातेजस्वी ने शास्त्रोक्त विधिसे जिस व्यूहका निर्माण किया है, भेदन करना असम्भव है। इसने तो हमें और हमारी ो संशयमें डाल दिया है, इस महाव्यूहसे हमारी रक्षा ो सकेगी?'

तब शत्रुदमन अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा—''राजन्! जिस े थोड़े-से मनुष्य भी बुद्धि, गुण और संख्यामें अपनेसे अधिक वीरोंको जीत लेते हैं, वह मुझसे सुनिये। पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर ब्रह्माजीने इन्द्रादि देवताओंसे कहा था—'देवताओ! विजयकी इच्छा रखनेवाले वीर बल और पराक्रमसे भी वैसी विजय नहीं पा सकते जैसी कि सत्य, दया, धर्म और उद्यमके द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिये धर्म, अधर्म और लोभको अच्छी तरह जानकर अभिमान-शून्य हो उत्साहके साथ युद्ध करो। जहाँ धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है।' राजन्! इसी प्रकार आप भी जान लें कि इस युद्धमें हमारी विजय निश्चित है। नारदजीका कहना है—'जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ विजय है।' विजय श्रीकृष्णका

एक गुण है, वह सदा इनके पीछे-पीछे चलता है। गोविन्दका
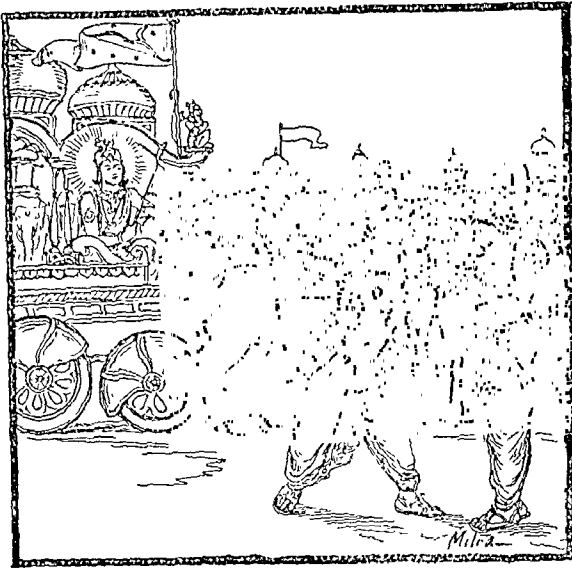
तेज अनन्त है, ये साक्षात् सनातन पुरुष हैं; इसलिये ये श्रीकृष्ण जहाँ हैं, उसी पक्षकी विजय है। राजन्! मुझे तो आपके विषादका कोई कारण दिखायी नहीं देता; क्योंकि ये विश्वम्भर श्रीकृष्ण भी आपके विजयकी शुभ कामना करते हैं।''

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने भीष्मका मुकाबला करनेके लिये व्यूहाकारमें खड़ी हुई अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। उनका रथ इन्द्रके रथके समान सुन्दर था तथा उसपर युद्धकी सामग्री रक्खी हुई थी। जब वे उसपर सवार हुए तो उनके पुरोहित 'शत्रुओंका नाश हो'—ऐसा कहकर आशीर्वाद देने लगे तथा ब्रह्मर्षि और श्रोत्रिय विद्वान् जप, मन्त्र एवं ओषधियोंके द्वारा सब ओरसे स्वस्तिवाचन करने लगे। राजा युधिष्ठिरने भी वस्त्र, गौ, फल, फूल और स्वर्णमुद्राएँ ब्राह्मणोंको दान करके फिर युद्धके लिये यात्रा की। भीमसेनने आपके पुत्रोंका संहार करनेके लिये बड़ा भयानक रूप धारण किया था, उन्हें देखकर आपके योद्धा घबरा उठे और भयके मारे उनका साहस जाता रहा।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—नरश्रेष्ठ! ये जो अपनी सेनाके मध्यभागमें खड़े हो सिंहके समान हमारे सैनिकोंकी ओर देख रहे हैं, ये ही कुरुकुलकी ध्वजा फहरानेवाले भीष्मजी हैं। जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है, उसी प्रकार ये सेनाएँ इन महानुभावको घेरे खड़ी हैं। तुम पहले इन सेनाओंको मारकर फिर भीष्मजीके साथ युद्धकी इच्छा करना।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने कौरव-सेनाकी ओर दृष्टिपात किया और युद्धका समय उपस्थित देख अर्जुनके हितके लिये इस प्रकार कहा—'महाबाहो! युद्धके आरम्भमें शत्रुओंको पराजित करनेके लिये पवित्र होकर तुम दुर्गा-देवीकी स्तुति करो।' भगवान् वासुदेवके ऐसी आज्ञा देनेपर अर्जुन रथसे नीचे उतर पड़े और हाथ जोड़कर दुर्गाका स्तवन करने लगे—'मन्दराचलपर निवास करनेवाली सिद्धोंकी सेना-नेत्री आर्ये! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। तुम्हीं कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो; तुम्हें बारंबार प्रणाम है। दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण तुम चण्डी कहलाती हो, भक्तोंको सङ्कटसे तारनेके कारण तारिणी हो, तुम्हारे शरीरका दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है; मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। महाभागे! तुम्हीं सौम्य और सुन्दर रूपवाली कात्यायनी हो और तुम्हीं विकराल रूपधारिणी काली हो। तुम्हीं विजया और जयाके नामसे विख्यात हो। मोरपंखकी तुम्हारी ध्वजा है, नाना प्रकारके आभूषण तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। त्रिशूल, खड्ग और खेटक आदि आयुधोंको धारण करती हो। नन्द-गोपके वंशमें तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; गुण और प्रभावोंमें सर्वश्रेष्ठ हो। महिषासुरका रक्त बहाकर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। तुम कुशिक-गोत्रमें अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो, पीताम्बर धारण करती हो। जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्रके समान उद्दीप्त हो उठता है। युद्ध तुम्हें बहुत ही प्रिय है; मैं तुम्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ। उमा, शाकंभरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी आदि नाम धारण करनेवाली देवि! तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है। तुम वेदोंकी श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है; वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं जातवेदा अग्निकी शक्ति हो; जम्बू, कटक और मन्दिरोंमें तुम्हारा नित्य निवास है। तुम समस्त विद्याओंमें ब्रह्मविद्या और देहधारियोंकी महानिद्रा हो। भगवति! तुम कार्तिकेयकी माता हो, दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो। स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेदमाता सावित्री तथा वेदान्त—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। महादेवि! मैंने विशुद्ध हृदयसे तुम्हारा स्तवन किया है, तुम्हारी कृपासे इस रणाङ्गणमें मेरी सदा ही जय हो। माँ! तुम घोर जङ्गलमें, भयपूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भक्तोंके घरमें तथा पातालमें भी नित्य

निवास करती हो। युद्धमें दानवोंको हराती हो। तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, सन्ध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो। तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमाको बढ़ानेवाली दीप्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ऐश्वर्यवानोंकी विभूति हो। युद्धभूमिमें सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन करते हैं।'

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अर्जुनकी भक्ति देख मनुष्योंपर दया करनेवाली देवी भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकाशमें प्रकट हुई और बोलीं, 'पाण्डुनन्दन! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। तुम साक्षात् नर हो, नारायण तुम्हारे सहायक हैं; तुम्हें कोई दबा नहीं सकता। शत्रुओंकी तो बात ही क्या है, तुम युद्धमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी अजेय हो।'

वह वरदायिनी देवी इस प्रकार कहकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयी। वरदान पाकर अर्जुनको अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने रथपर आ बैठे। कृष्ण और अर्जुन एक ही रथपर बैठे हुए अपने दिव्य शङ्ख बजाने लगे। राजन्! जहाँ धर्म है, वहाँ ही द्युति और कान्ति है; जहाँ लज्जा है, वहाँ ही लक्ष्मी और सुबुद्धि है। इसी प्रकार जहाँ धर्म है, वहाँ ही श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ ही जय है।

श्रीमद्भगवद्गीता

अर्जुनविषादयोग

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमें एकत्रित, युद्धकी इच्छावाले मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया?॥ १॥
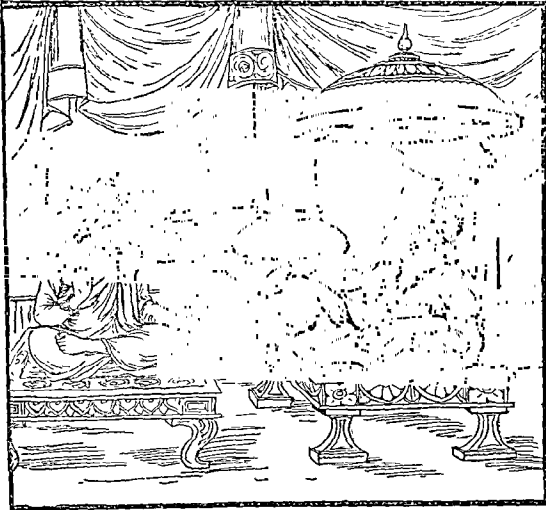
सञ्जय बोले—उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा—'आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखिये। इस सेनामें बड़े-बड़े धनुषोंवाले तथा युद्धमें भीम और अर्जुनके समान शूरवीर
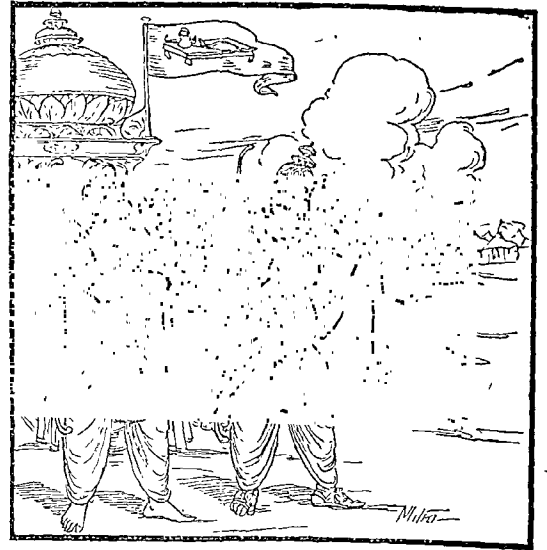
सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये सभी महारथी हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपने पक्षमें भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारीके लिये मेरी सेनाके जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ। आप—द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म

तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा; और भी मेरे लिये जीवनकी आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं । भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकारसे अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है। इसलिये सब मोरचोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सभी निःसन्देह भीष्मपितामहकी ही सब ओरसे रक्षा
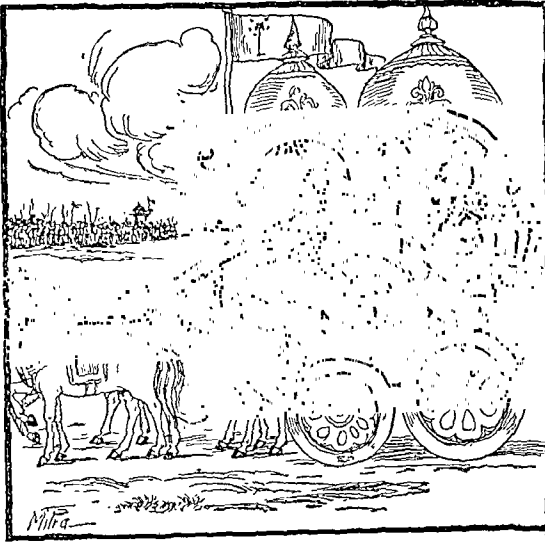
करें' ॥ २–११ ॥

कौरवोंमें वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्मने उस दुर्योधनके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वरसे सिंहकी दहाड़के समान गरजकर शङ्ख बजाया। इसके पश्चात् शङ्ख और नगारे तथा ढोल-मृदङ्ग और नरसिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयङ्कर हुआ। इसके अनन्तर सफेद घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुनने भी अलौकिक शङ्ख बजाये। श्रीकृष्ण महाराजने पाञ्चजन्य नामक, अर्जुनने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये। श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु—इन सभीने, राजन्! अलग-अलग बजाये। और उस भयानक शब्दने आकाश पृथ्वीको भी गुँजाते हुए धृतराष्ट्रपुत्रों—आपके पु हृदय विदीर्ण कर दिये। राजन्! इसके कपिध्वज अर्जुनने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-पु देखकर, शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे यह वचन कहा—'अच्यु मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजि और जबतक कि मैं युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिल इन विपक्षी योद्धाओंको भली प्रकार देख लूँ कि इस युद्ध व्यापारमें मुझे किन-किनके साथ युद्ध करना योग्य है, तब उसे खड़ा रखिये। युद्धमें दुर्बुद्धि दुर्योधनका कल्या चाहनेवाले जो-जो राजालोग इस सेनामें आये हैं, उन यु करनेवालोंको मैं देखूँगा ॥ १२–२३ ॥

सञ्जय बोले—धृतराष्ट्र! अर्जुनद्वारा इस प्रकार क हुए महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों सेनाओंके बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने तथा सम्पूर्ण राजाओंके सामने उत्तम रथको खड़ा करके इस प्रकार कहा कि 'पार्थ! युद्धके लिये

जुटे हुए इन कौरवोंको देख। इसके बाद पृथापुत्र अर्जुनने उन दोनों ही सेनाओंमें स्थित ताऊ-चाचोंको, दादों-परदादोंको, गुरुओंको, मामाओंको, भाइयोंको, पुत्रोंको, पौत्रोंको तथा मित्रोंको, ससुरोंको और सुहृदोंको भी देखा। उन उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओंको देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणासे युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन बोले ॥ २४–२७ ॥

अर्जुन बोले—कृष्ण ! युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इस स्वजनसमुदायको देखकर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है, तथा मेरे शरीरमें कम्प एवं रोमाञ्च हो रहा है । हाथसे गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है । तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहनेको भी समर्थ नहीं हूँ । केशव ! मैं लक्षणोंको भी विपरीत ही देख रहा हूँ । तथा युद्धमें स्वजन-समुदायको मारकर कल्याण भी नहीं देखता । कृष्ण ! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखोंको ही । गोविन्द ! हमें ऐसे राज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगोंसे और जीवनसे भी क्या लाभ है ? हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवनकी आशाको त्यागकर युद्धमें खड़े हैं । गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, नाती, साले तथा और भी सम्बन्धीलोग हैं । मधुसूदन ! मुझे मारनेपर भी अथवा तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथ्वीके लिये तो कहना ही क्या है ? जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी ? इन आततायियोंको मारकर तो हमें पाप ही लगेगा । अतएव माधव ! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि अपने ही कुटुम्बको मारकर हम कैसे सुखी होंगे ? ॥ २८—३७ ॥

यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको और मित्रोंसे विरोध करनेमें पापको नहीं देखते, तो भी जनार्दन ! कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको जाननेवाले हमलोगोंको इस पापसे हटनेके लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये ? कुलके नाशसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्मके नाश हो जानेपर सम्पूर्ण कुलको पाप भी बहुत दबा लेता है । कृष्ण ! पापके अधिक बढ़ जानेसे कुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके अत्यन्त दूषित हो जानेपर वर्णसंकर उत्पन्न होता है । वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है । लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पणसे वञ्चित इनके पितरलोग भी अधोगतिको प्राप्त होते हैं । इन वर्णसङ्करकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं । जनार्दन ! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्योंका अनिश्चित कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं । हा शोक ! हमलोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुखके लोभसे अपने स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हैं । इससे तो, यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करनेवालेको शस्त्र हाथमें लिये हुए धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा ॥ ३८—४६ ॥

सञ्जय बोले—रणभूमिमें शोकसे उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुषको त्यागकर रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ ४७ ॥
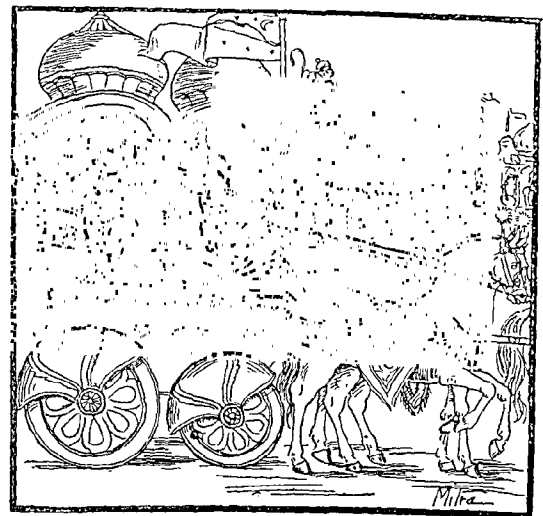
श्रीमद्भगवद्गीता—सांख्ययोग

सञ्जय बोले—उस प्रकार करुणासे व्याप्त और आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उन अर्जुनके प्रति भगवान् मधुसूदनने यह वचन कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्तिको करनेवाला ही है । इसलिये अर्जुन ! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती । परन्तप ! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा ॥ २-३ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन ! मैं रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके विरुद्ध लड़ूँगा ? क्योंकि अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं । इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर मैं इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ। क्योंकि गुरुजनोंको मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगोंहीको तो भोगूँगा । हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना—इन दोनोंमेंसे कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे । और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे मुकाबलेमें खड़े हैं । इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो
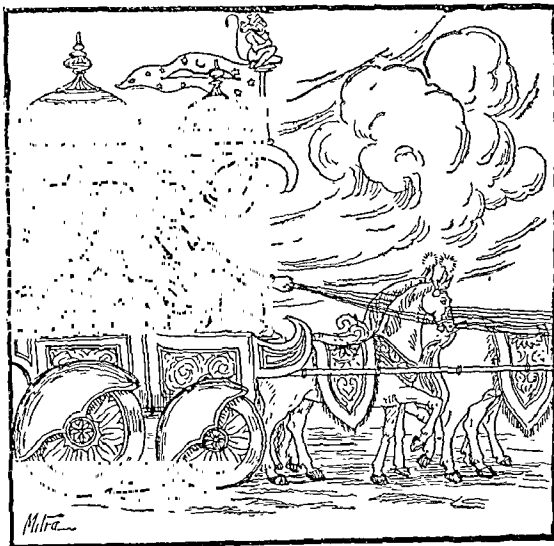
साधन निश्चय ही कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये । क्योंकि भूमिमें निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके स्वामीपनेको प्राप्त होकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर कर सके ॥ ४-८ ॥

सञ्जय बोले—राजन् ! निद्राको जीतनेवाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्दभगवान्‌से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये । भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें शोक करते हुए उन अर्जुनको हँसते हुए-से यह वचन बोले ॥ ९-१० ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचन कहता है । परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते । न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे । और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे । जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती हैं, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता । कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये हे भारत ! उनको तू सहन कर । क्योंकि पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है । असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है । इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है । नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्—दृश्यवर्ग व्याप्त है । इस अविनाशीका विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है । इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं । इसलिये भरतवंशी अर्जुन ! तू युद्ध कर । जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तवमें न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है । यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता । पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है ? जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है । इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता । क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है; यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह

अशोष्य है। तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेको योग्य नहीं है। और यदि तू इस आत्माको सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता हो, तो भी महाबाहो! तू इस प्रकार शोक करनेको योग्य नहीं है। क्योंकि इस मान्यताके अनुसार जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुएका जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शोक करनेको योग्य नहीं है। अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है? कोई एक महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्वका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्यकी भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता। अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीरोंमें सदा ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये तू शोक करनेको योग्य नहीं है॥ ११-३०॥

तथा अपने धर्मको देखकर भी तू भय करनेयोग्य नहीं है; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। पार्थ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं। और यदि तू इस धर्मयुक्त युद्धको नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होगा। तथा सब लोग तेरी बहुत कालतक रहनेवाली अपकीर्तिका भी कथन करेंगे। और माननीय पुरुषके लिये अपकीर्ति मरणसे भी बढ़कर है। और जिनकी दृष्टिमें तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुताको प्राप्त होगा, वे महारथीलोग तुझे भयके कारण युद्धसे विरत हुआ मानेंगे।

और तेरे वैरीलोग तेरे सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए तुझे बहुत-से न कहनेयोग्य वचन कहेंगे; उससे अधिक दुःख और क्या होगा? या तो तू युद्धमें मारा जाकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इस कारण अर्जुन! तू युद्धके लिये निश्चय करके खड़ा हो जा। जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा॥ ३१-३८॥

पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोगके विषयमें सुन—जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धनको भलीभाँति त्याग देगा। इस कर्मयोगमें आरम्भका—बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उबार लेता है। अर्जुन! इस कर्मयोगमें निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है; किन्तु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं। अर्जुन! जो भोगोंमें तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफलके प्रशंसक वेदवाक्योंमें ही प्रीति रखनेवाले हैं, जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है—ऐसा कहनेवाले हैं, वे अविवेकीजन भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारकी बहुत-सी क्रियाओंका वर्णन करनेवाली और जन्मरूप कर्मफल देनेवाली

इस प्रकारकी जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणीको कहा करते हैं, उस वाणीद्वारा हरे हुए चित्तवाले जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी परमात्माके स्वरूपमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती । अर्जुन ! सब वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्षशोकादि द्वन्द्वोंसे रहित, नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित, योगक्षेमको न चाहनेवाला और जीते हुए मनवाला हो। सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्मको तत्त्वसे जाननेवाले ब्राह्मणका समस्त वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रह जाता है । तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं । इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो । धनञ्जय ! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकर्मोंको कर; समत्व ही योग कहलाता है । इस समत्वरूप बुद्धियोगसे सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणीका है । इसलिये धनञ्जय ! तू समत्वबुद्धिमें ही रक्षाका उपाय ढूँढ़; क्योंकि फलके हेतु बननेवाले अत्यन्त दीन हैं । समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है । इससे तू समत्वरूप योगके लिये ही चेष्टा कर; यह समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है । क्योंकि समत्वबुद्धिसे युक्त ज्ञानीजन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलको त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो निर्विकार परमपदको प्राप्त हो जाते हैं । जिस कालमें तेरी बुद्धि मोहरूप दलदलको भलीभाँति पार कर जायगी, उस समय तू सुनी हुई और सुननेमें आनेवाली इस लोक और परलोकसम्बन्धी सभी बातोंसे वैराग्यको प्राप्त हो जायगा । भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्माके स्वरूपमें अचल और स्थिर होकर ठहर जायगी, तब तू भगवत्प्राप्तिरूप योगको प्राप्त हो जायगा ॥३९-५३॥

अर्जुन बोले—केशव ! समाधिमें स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका क्या लक्षण है ? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है ? ॥५४॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको भलीभाँति त्याग है और आत्मासे आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उस क वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है । दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जि मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा नि: है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है । जो पुरुष सर्वत्र स्नेहर हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्र होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है । ः कछुआ सब ओरसे अपने अङ्गोंको जैसे समेट लेता है, ही जब यह पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रका हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है । इन्द्रियें द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विष तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहनेवाली आस निवृत्त नहीं होती । इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है । अर्जुन क्योंकि आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथनस्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात्कारसे हर लेती हैं, इसलिये साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है । विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है । तथा क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है । परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तः करणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है । अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है । न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती; तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है ! क्योंकि वायु जलमें चलनेवाली नावको जैसे हर लेती है,

वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रिय-के साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है। इसलिये महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें स्थितप्रज्ञ योगी जागता है; और जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है। जैसे नाना नदियोंके जल सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वही पुरुष परम शान्ति-को प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं। जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुषकी स्थिति है; इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है॥ ५५-७२॥

श्रीमद्भगवद्गीता—कर्मयोग

अर्जुन बोले—जनार्दन! यदि आपको कर्मोंकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर केशव! मुझे भयङ्कर कर्ममें क्यों लगाते हैं? आप मिले हुए-से वचनोंसे मानो मेरी बुद्धिको मोहित कर रहे हैं। इसलिये उस एक बातको निश्चित करके कहिये, जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ॥ १-२॥

श्रीभगवान् बोले—निष्पाप! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरेद्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे होती है और योगियों-की निष्ठा कर्मयोगसे होती है। मनुष्य न तो कर्मोंका आरम्भ किये बिना निष्कर्मताको—योगनिष्ठाको प्राप्त होता है और न केवल कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेसे सिद्धिको—सांख्यनिष्ठाको ही प्राप्त होता है। निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय प्रकृतिजनित गुणोंद्वारा परवश हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है। जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है। किन्तु अर्जुन! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ दसों इन्द्रियोंद्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा। यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्मोंसे अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ ही यह मनुष्यसमुदाय कर्मोंसे बँधता है। इसलिये अर्जुन! तू आसक्तिसे रहित होकर उस यज्ञके निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्यकर्म कर॥३-९॥

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि 'तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओं-

को उन्नत करो और वे देवता तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे। यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुमलोगोंको बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे।' इस प्रकार उन देवताओंके द्वारा दिये हुए भोगोंको जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं

भोगता है, वह चोर ही है। यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। और जो

पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं। सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है और यज्ञ विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। कर्मसमुदायको तू वेदसे उत्पन्न और वेदको अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञमें प्रतिष्ठित है। पार्थ! जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार परम्परासे प्रचलित सृष्टिचक्रके अनुकूल नहीं बरतता—अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है। परन्तु जो मनुष्य आत्मामें ही रमण करनेवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही सन्तुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है। उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है। तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिये तू आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्य-कर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥१०-१९॥

जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे। इसलिये तथा लोकसंग्रहको देखते हुए भी तू कर्म करनेको ही योग्य है। श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है। अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही

बरतता हूँ। क्योंकि पार्थ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मोंमें न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्यमात्र सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। इसलिये यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और मैं सङ्करताके करनेवाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजाको नष्ट करनेवाला बनूँ। भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे। परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम—कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किन्तु स्वयं शास्त्र-विहित समस्त कर्म भलीभाँति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करवावे। वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं। तो भी जिसका अन्तःकरण अहङ्कारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है। परन्तु

महाबाहो ! गुणविभाग और कर्मविभागके तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता। प्रकृतिके गुणोंसे अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणोंमें और कर्मोंमें आसक्त रहते हैं, उन पूर्णतया न समझनेवाले मन्दबुद्धि अज्ञानियोंको पूर्णतया जाननेवाला ज्ञानयोगी विचलित न करे। मुझ अन्तर्यामी परमात्मामें लगे हुए चित्तद्वारा सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर। जो कोई मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मतका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं। परन्तु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस मतके अनुसार नहीं चलते, उन मूर्खोंको तू सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और नष्ट हुआ ही समझ। सभी प्राणी अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा। प्रत्येक इन्द्रियके भोगमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है ॥२०—३५॥

अर्जुन बोले— कृष्ण ! यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है ? ॥३६॥

श्रीभगवान् बोले—रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है; यह बहुत खानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान। जिस प्रकार धूएँसे अग्नि और मैलसे दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेरसे गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है। और अर्जुन !

इस अग्निके समान कभी न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियोंके नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका ज्ञान ढका हुआ है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये सब इसके वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञानको आच्छादित करके जीवात्माको मोहित करता है। इसलिये अर्जुन ! तू पहले इन्द्रियोंको वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान् पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल। इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे पर—श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं; इन इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे भी पर बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त पर है वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिसे पर—सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके महाबाहो ! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल ॥३७—४३॥

श्रीमद्भगवद्गीता—ज्ञान-कर्मसंन्यासयोग

श्रीभगवान् बोले—मैंने इस अविनाशी योगको सूर्य-

से कहा था, सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा। परन्तप अर्जुन! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह योग बड़ा ही उत्तम रहस्य है ॥ १-३ ॥

अर्जुन बोले—आपका जन्म तो अर्वाचीन—अभी हालका है और सूर्यका जन्म कल्पके आदिमें हो चुका था; तब मैं इस बातको कैसे समझूँ कि आपहीने कल्पके आदिमें सूर्यसे यह योग कहा था? ॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले—परन्तप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी, तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ, साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थाप करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ। अर्जुन! जन्म और कर्म दिव्य हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे ज लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्म ग्रहण नहीं कर किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है। पहले भी, जिनके राग, भय क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्व स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भ उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्रा हो चुके हैं। अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भज हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनु सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। इ मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहनेवाले लोग देवताओंक पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मोंसे उत्प

होनेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मों विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि रचनादि कर्मका कर्त्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तवमें अकर्त्ता ही जान। कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—१

प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता। पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वजोंद्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मोंको ही कर ॥५–१५॥

कर्म क्या है? और अकर्म क्या है?—इस प्रकार इसका निर्णय करनेमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भली-भाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभसे—कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा। कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये, तथा विकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्मकी गति गहन है। जो मनुष्य कर्ममें अकर्म देखता है और जो अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है और वह योगी समस्त कर्मोंको करनेवाला है। जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और सङ्कल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं। जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता। जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीर जीता हुआ है और जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीरसम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको नहीं प्राप्त होता। जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—ऐसा सिद्धि और असिद्धिमें सम रहनेवाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता। जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो देहाभिमान और ममतासे रहित हो गया है, जिसका चित्त निरन्तर परमात्माके ज्ञानमें स्थित रहता है, ऐसे केवल यज्ञसम्पादनके लिये कर्म करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन हो जाते हैं ॥१६–२३॥

जिस यज्ञमें अर्पण—स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्त्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है, उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले पुरुषद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है। दूसरे योगीजन देवताओंके पूजनरूप यज्ञका ही भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें अभेददर्शनरूप यज्ञके द्वारा ही आत्मारूप यज्ञका हवन किया करते हैं। अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियोंको संयमरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादि समस्त विषयोंको इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं। दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं। कई पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करने-

वाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं और कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं। दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करनेवाले प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और यज्ञोंको जाननेवाले हैं। कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञसे बचे हुए प्रसादरूप अमृतको खानेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं। और यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है? इसी प्रकार और भी बहुत तरहके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तारसे कहे गये हैं।

उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाद्वारा सम्पन्न होनेवाले जान; इस प्रकार तत्त्वसे जानकर उनके अनुष्ठानद्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जायगा ॥२४–३२॥

परन्तप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है; क्योंकि यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं। उस ज्ञानको तू समझ; श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके पास जाकर उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा अर्जुन ! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा। यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पापोंको भलीभाँति लाँघ जायगा। क्योंकि अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्समय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्समय कर देता है। इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है। जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है। तया ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। विवेकहीन तथा श्रद्धारहित और संशययुक्त पुरुष परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। उनमें भी संशययुक्त पुरुषके लिये तो न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। धनञ्जय ! जिसने कर्मयोगकी विधिसे समस्त कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है और जिसने विवेकद्वारा समस्त संशयोंका नाश कर दिया है, ऐसे स्वाधीन अन्तःकरणवाले पुरुषको कर्म नहीं बाँधते। इसलिये भरतवंशी अर्जुन ! तू हृदयमें स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशयका विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोगमें स्थित हो जा और युद्धके लिये खड़ा हो जा ॥ ३३–४२ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—कर्मसंन्यासयोग

अर्जुन बोले—कृष्ण ! आप कर्मोंके संन्यासकी और फिर कर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे एक जो निश्चित किया हुआ कल्याणकारक हो, उसको मेरे लिये कहिये ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—कर्मसंन्यास और कर्मयोग—ये दोनों ही परम कल्याणके करनेवाले हैं, परन्तु उन दोनोंमें भी कर्मसंन्याससे कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है। अर्जुन ! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक्-पृथक् फल देनेवाले कहते हैं, न कि पण्डितजन; क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्माको प्राप्त होता है। ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। परन्तु अर्जुन ! कर्मयोगके बिना संन्यास—मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। जिसका मन अपने वशमें है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरणवाला है और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता। तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखोंको खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थोंमें बरत रही हैं—इस प्रकार समझकर निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता। जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता। कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं। कर्मयोगी कर्मोंके फलको परमेश्वरके अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकाम पुरुष
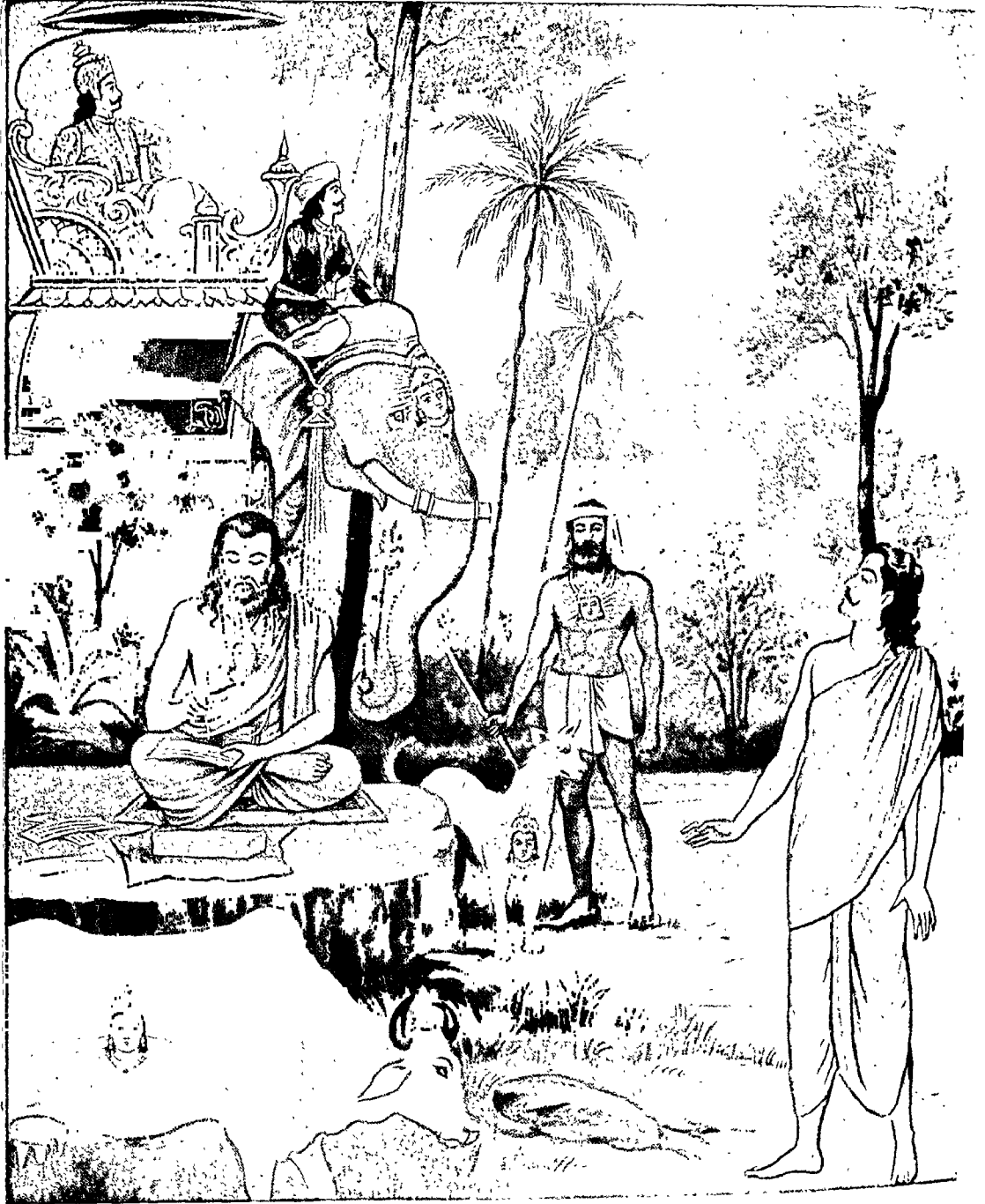
समदर्शिता (गीता ५ । १८)

कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है ॥ २–१२ ॥

अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है। परमेश्वर भी न तो भूतप्राणियोंके कर्तापनको, न कर्मोंको और न कर्मोंके फलके संयोगको ही वास्तवमें रचता है; किन्तु परमात्माके सकाशसे प्रकृति ही बरतती है। सर्वव्यापी परमात्मा न किसीके पापकर्मको और न किसीके शुभकर्मको ही ग्रहण करता है; अज्ञानके द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब जीव मोहित हो रहे हैं। परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्माके ज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशित कर देता है। जिनका मन तद्रूप है, जिनकी बुद्धि तद्रूप है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं। वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त

ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं। जिनका मन समत्वभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं। जो पुरुष प्रियको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रियको प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें एकीभावसे नित्य स्थित है ॥ १३–२० ॥

बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले हैं। इसलिये अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। जो साधक इस मनुष्यशरीरमें, शरीरका नाश होनेसे पहले-पहले ही काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है। जो पुरुष निश्चयपूर्वक अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञानके

द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं

और जिनका मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। बाहरके विषयभोगोंको न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटीके बीचमें स्थित करके तथा नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपान वायुको सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं—ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है। मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद्—स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी—ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २१–२९ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—आत्मसंयमयोग

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है; और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है। अर्जुन! जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसीको तू योग जान; क्योंकि संकल्पोंका त्याग न करनेवाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता। समत्वबुद्धिरूप कर्मयोगमें आरूढ होनेकी इच्छावाले मननशील पुरुषके लिये योगकी प्राप्तिमें निष्कामभावसे कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ हो जानेपर उस योगारूढ पुरुषके लिये सर्वसङ्कल्पोंका अभाव ही कल्याणमें हेतु कहा जाता है। जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ कहा जाता है। अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्माका तो वह आप ही मित्र है; और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है। सरदी-गरमी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक्प्रकारसे स्थित हैं—उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त—

भगवत्-प्राप्त है, ऐसे कहा जाता है । सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समानभाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १–९ ॥

मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थानमें स्थित होकर आत्माको निरन्तर परमेश्वरके ध्यानमें लगावे । शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं—ऐसे अपने आसनको, न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा, स्थिर स्थापन करके—उस आसनपर बैठकर, चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें करके, तथा मनको एकाग्र करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे । काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ—ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको वशमें करके मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे । वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खानेवालेका, न बिल्कुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेका और न बहुत जागनेवालेका ही सिद्ध होता है । दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है । अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त जिस कालमें परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस कालमें सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है । जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए योगीके जीते हुए चित्तकी कही गयी है । योगके अभ्याससे निरुद्ध चित्त जिस अवस्थामें उपराम हो जाता है, और जिस अवस्थामें परमात्माके ध्यानसे शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्माको साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही सन्तुष्ट रहता है; इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं; परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता; जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये । वह योग न उकताये हुए—धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है । संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण

कामनाओंको निःशेषरूपसे त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर—क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त

बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे। यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे रोककर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करे; क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दको अनुभव करता है। सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और

सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है। अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना है ॥१०—३२॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन! जो यह योग आ समत्वभावसे कहा है, मनके चञ्चल होनेसे मैं इसकी स्थितिको नहीं देखता हूँ; क्योंकि श्रीकृष्ण! यह मन चञ्चल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान् इसलिये उसका वशमें करना मैं वायुके रोकनेकी भ अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ ॥ ३३-३४ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो! निःसन्देह चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है; परन्तु कु पुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा दुष्प्राप्य है और वशमें किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुष साधन करनेसे उसका प्राप्त होना सहज है—यह मत है ॥ ३५-३६ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण! जो योगमें श्रद्धा रखनेव है, किन्तु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अ कालमें योगसे विचलित हो गया है—ऐसा सा योगकी सिद्धिको न प्राप्त होकर किस गतिको प्राप्त हो है? महाबाहो! क्या वह भगवत्प्राप्तिके मार्गमें मो और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादलकी भाँति दो ओरसे भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता? श्रीकृष्ण मेरे इस संशयको सम्पूर्णरूपसे छेदन करनेके लिये आप योग्य हैं; क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशयका छे करनेवाला मिलना सम्भव नहीं है ॥ ३७—३९ ॥

श्रीभगवान् बोले—पार्थ! उस पुरुषका न तो इ लोकमें नाश होता है और न परलोकमें ही; क्यों प्यारे! आत्मोद्धारके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनु दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षोंतक निवास करके फि शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर ज्ञानवा योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है। परन्तु इस प्रकारका यह जन्म है, सो संसारमें निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ है। ग

उस पहले शरीरमें संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोगको—

समत्वबुद्धियोगके संस्कारोंको अनायास ही प्राप्त हो जाता है और कुरुनन्दन ! उसके प्रभावसे वह फिर परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है। वह श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहलेके अभ्याससे ही निस्सन्देह भगवान्‌की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समत्वबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें कहे हुए सकामकर्मोंके फलको उल्लङ्घन कर जाता है। परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी तो पिछले अनेक जन्मोंके संस्कारबलसे इसी जन्ममें संसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो तत्काल ही परमगतिको प्राप्त हो जाता है। योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकामकर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इससे अर्जुन ! तू योगी हो। सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ॥ ४०—४७ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—ज्ञान-विज्ञानयोग

श्रीभगवान् बोले—पार्थ ! अनन्यप्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त तथा अनन्यभावसे मेरे परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति-बल-ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन। मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता। हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे जानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी—इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा—मेरी जड प्रकृति है और महाबाहो ! इससे दूसरीको, जिससे कि यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा—चेतन प्रकृति जान। अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत्‌का प्रभव तथा प्रलय हूँ। धनञ्जय ! मेरे सिवा दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है। अर्जुन ! मैं जलमें रस हूँ,
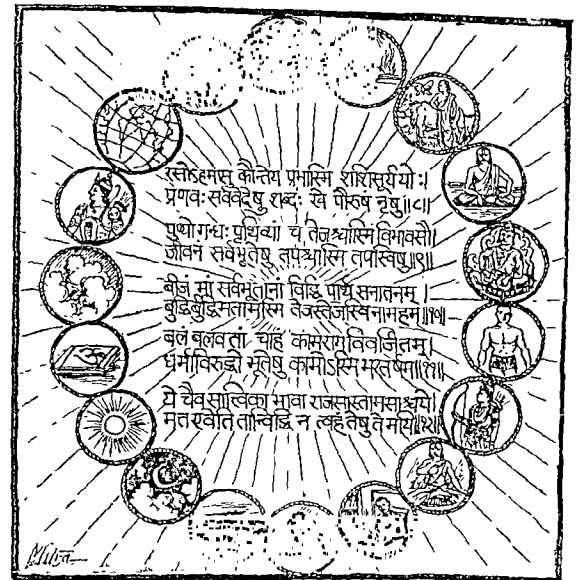
चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें ओङ्कार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ। मैं पृथ्वीमें पवित्र गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ। अर्जुन ! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ। भरतश्रेष्ठ ! मैं

बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल काम हूँ । और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं, उन सबको तू 'मुझसे ही होनेवाले हैं' ऐसा जान । परन्तु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं ॥१-१२॥

गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीनों प्रकारके भावोंसे यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता; क्योंकि यह अलौकिक त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं। मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है—ऐसे आसुर-स्वभावको धारण किये हुए, मनुष्योंमें नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़लोग मुझको नहीं भजते । भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं । उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है; क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है । ये सभी उदार हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है । बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है; वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है । अपने स्वभावसे प्रेरित और उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजते हैं । जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी मैं उसी देवताके प्रति श्रद्धाको स्थिर करता हूँ । वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस
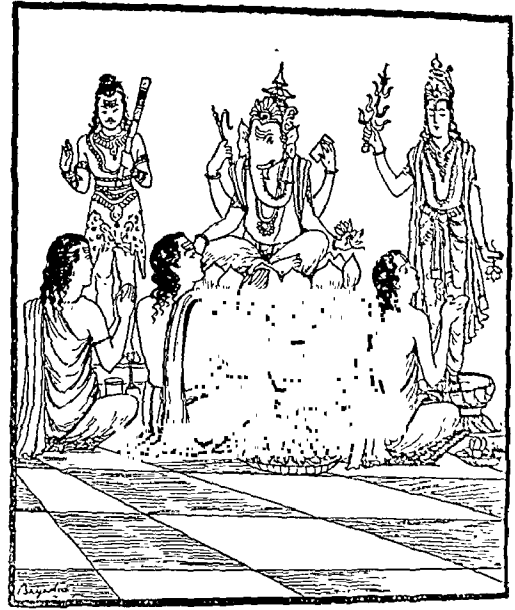
देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मेरेद्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको निःसन्देह प्राप्त करता है । परन्तु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं । बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको न जानते हुए मन-इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी भाँति जन्मकर व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं ॥१३-२४॥

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझे जन्मरहित अविनाशी परमात्मा नहीं जानता । अर्जुन ! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता । भरतवंशी अर्जुन ! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञताको प्राप्त हो रहे हैं । परन्तु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन

पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढनिश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं। जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको, सम्पूर्ण कर्मको और अधिभूत-अधिदैवके सहित एवं अधियज्ञके सहित मुझ समग्रको जानते हैं; और जो युक्तचित्तवाले पुरुष इस प्रकार अन्तकालमें भी जानते हैं, वे भी मुझको ही जानते हैं ॥ २५—३० ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—अक्षरब्रह्मयोग

अर्जुनने कहा— पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नामसे क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं? मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीरमें कैसे है? तथा युक्त चित्तवाले पुरुषोंद्वारा अन्तसमयमें आप किस प्रकार जाननेमें आते हैं? ॥१-२॥

श्रीभगवान्ने कहा—परम अक्षर 'ब्रह्म' है, जीवात्मा 'अध्यात्म' नामसे कहा जाता है तथा भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला जो त्याग है, वह 'कर्म' नामसे कहा गया है। उत्पत्ति-विनाशधर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्मय पुरुष अधिदैव है और देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीरमें मैं वासुदेव ही अन्तर्यामीरूपसे अधियज्ञ हूँ। जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है। यह नियम है कि मनुष्य अपने जीवनमें सदा जिस भावका अधिक चिन्तन करता है, अन्तकालमें उसे प्रायः उसीका स्मरण होता है और अन्तकालके स्मरणके अनुसार ही उसकी गति होती है। इसलिये अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा ॥ ३—७ ॥

पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाशस्वरूप परमेश्वरको ही प्राप्त होता है। जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्य-स्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परम पुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है। वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्ति-रहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा। सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर तथा मनको हृद्देशमें स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मनके द्वारा प्राणको मस्तकमें स्थापित करके, परमात्मसम्बन्धी योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता
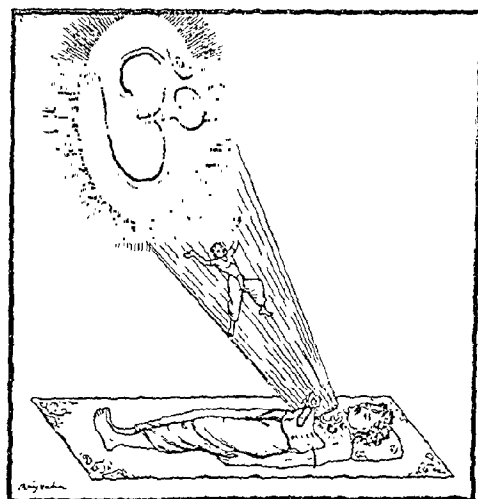
हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ८—१३ ॥

अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर

सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।

परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते। अर्जुन! ब्रह्म-लोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं। ब्रह्माका जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते हैं, वे योगीजन कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं। सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त-नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लीन हो जाते हैं। पार्थ! वही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृतिके वशमें हुआ रात्रिके प्रवेशकालमें लीन होता है और दिनके प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है। उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा—विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता। जो अव्यक्त 'अक्षर' इस नामसे कहा गया है, उसी अक्षर-नामक अव्यक्तभावको परम गति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर पुरुष वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है। पार्थ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्यभक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है ॥ १४-२२ ॥

और अर्जुन! जिस कालमें शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन वापस न लौटनेवाली गतिको और जिस कालमें गये हुए वापस लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं, उस कालको—उन दोनों मार्गोंको कहूँगा। उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है और दक्षिणायनके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकाम-कर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभ-कर्मोंका फल भोगकर वापस आता है; क्योंकि जगत्के ये दो प्रकारके—शुक्ल और कृष्ण मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ—जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परम गतिको प्राप्त होता है और दूसरेके द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है। पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गोंको तत्त्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण अर्जुन! तू सब कालमें समत्वबुद्धिरूप योगसे युक्त हो। योगी पुरुष इस रहस्यको तत्त्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उस सबको निःसन्देह उल्लङ्घन कर जाता है और सनातन परम पदको प्राप्त होता है ॥ २३—२८ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता-राजविद्या-राजगुह्ययोग

श्रीभगवान् बोले—तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा। यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलरूप, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है। परन्तप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बरफके सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, इसलिये वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ। और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं; किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है। जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं—ऐसा जान। अर्जुन ! कल्पोंके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और कल्पोंके आदिमें उनको मैं फिर रचता हूँ। अपनी प्रकृतिको अङ्गीकार करके स्वभावके बलसे परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदायको बार-बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ। अर्जुन ! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते। अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे प्रकृति चराचरसहित सर्वजगत्को रचती है और इस हेतुसे ही यह संसार-चक्र घूम रहा है ॥ १-१० ॥

मेरे परम भावको न जाननेवाले मूढ़ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं। वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये हुए हैं। परन्तु कुन्तीपुत्र ! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्यमनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं। वे दृढ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर

मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए

सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं। दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्मका ज्ञानयज्ञके द्वारा अभिन्नभावसे पूजन करते हुए मेरी उपासना

करते हैं, और दूसरे मनुष्य भी देवताओंके रूपमें स्थित मुझको भिन्न-भिन्न समझकर नाना प्रकारसे मुझ विराट्-स्वरूप परमेश्वरकी उपासना करते हैं। क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, ओषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत्का धारण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला, पिता, माता, पितामह, जाननेयोग्य, पवित्र, 'ओङ्कार' तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबकी स्थितिका कारण, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ, वर्षाको आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ। अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ। तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकामकर्मोंको करनेवाले, सोमरसको पीनेवाले, पापोंके नाशसे पवित्र हुए पुरुष मुझको यज्ञोंके द्वारा पूजकर स्वर्गकी प्राप्ति चाहते हैं; वे पुरुष अपने पुण्योंके फलरूप स्वर्गलोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकामकर्मका आश्रय लेनेवाले और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बार-बार आवागमनको प्राप्त होते हैं ॥११-२१॥

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। अर्जुन! यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं; किन्तु उनका वह पूजन अज्ञानपूर्वक है। क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी

भी मैं ही हूँ; परन्तु वे मुझ अधियज्ञस्वरूप परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते, इसीसे गिरते हैं। देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता। जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल,

जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं

णारूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ । अर्जुन ! जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो । देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ।

प्रकार, जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते —ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप बन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको प्राप्त होगा । मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ । यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है । वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता । अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गतिको ही प्राप्त होते हैं । फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन परम गतिको प्राप्त होते हैं ! इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर । मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर । इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा ॥२२-३४॥

श्रीमद्भगवद्गीता-विभूतियोग

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य र प्रभावयुक्त वचनको सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम नेवालेके लिये हितकी इच्छासे कहूँगा । मेरी उत्पत्तिको देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, ोंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी दिकारण हूँ । जो मुझको अजन्मा, अनादि और लोकोंका ान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । निश्चय करनेकी शक्ति, ार्थ ज्ञान, असम्मूढता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियोंका वशमें ना, मनका निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और य-अभय तथा अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, कीर्ति और अकीर्ति—ऐसे ये प्राणियोंके नाना प्रकारके भाव मुझसे होते हैं । सात महर्षिजन, चार उनसे भी पूर्वमें होनेवाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु—ये मुझमें भाववाले सब-के-सब मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसारमें यह सम्पूर्ण प्रजा है । जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्य-रूप विभूतिको और योगशक्तिको तत्त्वसे जानता है, वह निश्चल भक्तियोगके द्वारा मुझमें ही स्थित होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है—इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं । निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं ।
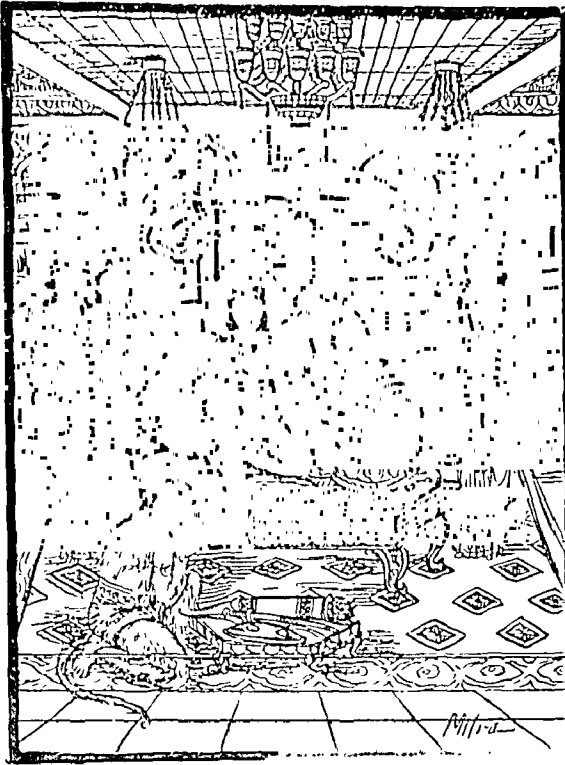
सृष्टियोंका आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ । मैं विद्याओंमें अध्यात्मविद्या और परस्पर विवाद करनेवालोंका तत्त्वनिर्णयके लिये किया जानेवाला वाद हूँ । मैं अक्षरोंमें अकार हूँ और समासोंमें द्वन्द्व नामक समास हूँ । अक्षय काल—कालका भी महाकाल तथा सब ओर मुखवाला—विराटस्वरूप सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ । मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और भविष्यमें होनेवालोंका उत्पत्तिस्थान हूँ; तथा स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ । तथा गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें मैं बृहत्साम और छन्दोंमें गायत्री छन्द हूँ । तथा महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ । मैं छल करनेवालोंमें जूआ और प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव हूँ । मैं जीतनेवालोंका विजय हूँ, निश्चय करनेवालोंका निश्चय और सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक भाव हूँ । वृष्णिवंशियोंमें मैं स्वयं तेरा सखा, पाण्डवोंमें तू, मुनियोंमें वेदव्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूँ । मैं दमन करनेवालोंका दण्ड हूँ, जीतनेकी इच्छावालोंकी नीति हूँ, गुप्त रखनेयोग्य भावोंका रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानोंका तत्त्वज्ञान मैं ही हूँ । और अर्जुन ! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो । परन्तप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, मैंने अपनी विभूतियोंका यह विस्तार तो तेरे लिये संक्षेपसे कहा है । जो-जो भी विभूति-युक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान । अथवा अर्जुन ! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है । मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ ॥१९—४२॥

श्रीमद्भगवद्गीता—विश्वरूपदर्शनयोग

अर्जुन बोले—मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है; क्योंकि कमलनेत्र ! मैंने आपसे भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है । परमेश्वर ! आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है; परन्तु पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ऐश्वर-रूपको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ । प्रभो ! यदि मेरेद्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है—ऐसा आप मानते हैं, तो योगेश्वर ! उस अविनाशी स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये ॥ १—४ ॥

श्रीभगवान् बोले—पार्थ ! अब तू मेरे सैकड़ों-हजारों नाना प्रकारके और नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले अलौकिक रूपोंको देख । भरतवंशी अर्जुन ! मुझमें अदितिके द्वादश पुत्रोंको, आठ वसुओंको, एकादश रुद्रोंको, दोनों अश्विनीकुमारोंको और उन्चास मरुद्गणोंको देख । तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपोंको देख । अर्जुन ! अब इस मेरे शरीरमें एक जगह स्थित चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता हो, सो देख । परन्तु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेमें निःसन्देह समर्थ नहीं है; इसीसे मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ; उससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख ॥ ५—८ ॥

सञ्जय बोले—राजन् ! महायोगेश्वर और सब पापोंके

विराट्-रूप

नाश करनेवाले भगवान्‌ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुनको परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया। अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले, बहुत-से दिव्य भूषणोंसे युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए और दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए, सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वरको अर्जुनने देखा। आकाशमें हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश कदाचित् ही हो। पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस समय अनेक प्रकारसे विभक्त सम्पूर्ण जगत्‌को देवोंके देव श्रीकृष्णभगवान्‌के उस शरीरमें एक जगह स्थित देखा। उसके अनन्तर वह आश्चर्यसे चकित और पुलकितशरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्माको श्रद्धा-भक्तिसहित सिरसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोला—॥ ९—१४ ॥

अर्जुन बोले—हे देव! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक भूतोंके समुदायोंको, कमलके आसनपर विराजित ब्रह्माको, महादेवको और सम्पूर्ण ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ। सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा सब ओरसे अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। विश्वरूप! मैं आपके न अन्तको देखता हूँ न मध्यको, और न आदिको ही। आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओरसे प्रकाशमान तेजके पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त, कठिनतासे देखे जानेयोग्य और सब ओरसे अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ। आप ही जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत्‌के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है। आपको आदि, अन्त और मध्यसे रहित, अनन्त सामर्थ्यसे युक्त, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाले, प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेजसे इस जगत्‌को सन्तप्त करते हुए देखता हूँ। महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं; तथा आपके इस अलौकिक और भयङ्कर रूपको देखकर तीनों लोक अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं। वे ही सब देवताओंके समूह आपमें प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणोंका उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धोंके समुदाय 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं। जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरोंका समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समुदाय हैं—वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं। महाबाहो! आपके बहुत मुख और नेत्रोंवाले, बहुत हाथ, जङ्घा और पैरोंवाले, बहुत उदरोंवाले और बहुत-सी दाढ़ोंवाले, अतएव विकराल महान् रूपको देखकर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। क्योंकि विष्णो! आकाशको स्पर्श करनेवाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णोंसे युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ। आपके दाढ़ोंके कारण विकराल और प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित मुखोंको देखकर मैं दिशाओंको नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों। वे सभी धृतराष्ट्रके पुत्र राजाओंके समुदायसहित आपमें प्रवेश कर रहे हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्षके भी प्रधान योद्धाओंके सहित सब-के-सब बड़े वेगसे दौड़ते हुए आपके विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरोंसहित आपके दाँतोंके बीचमें लगे हुए दीख रहे हैं। जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्रके ही सम्मुख दौड़ते हैं, वैसे ही वे नरलोकके वीर भी आपके प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं। जैसे पतंग मोहवश नष्ट होनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। आप उन सम्पूर्ण लोकोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा ग्रास करते हुए सब ओरसे चाट रहे हैं। विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत्‌को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है। मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूपवाले कौन हैं? देवोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइये। आदिपुरुष आपको मैं विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ; क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्तिको नहीं जानता॥ १५—३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये

प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। अतएव तू उठ। यश प्राप्त कर और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग। ये सब शूरवीर पहलेहीसे मेरेहीद्वारा मारे हुए हैं। सव्यसाचिन्! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरेद्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओंको तू मार। भय मत कर। निःसन्देह तू युद्धमें वैरियोंको जीतेगा। इसलिये युद्ध कर ॥ ३२–३४ ॥

सञ्जय बोले—केशवभगवान्‌के इस वचनको सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणीसे बोला—॥३५॥

अर्जुन बोले—अन्तर्यामिन्! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है, तथा भयभीत राक्षसलोग दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगणोंके समुदाय नमस्कार कर रहे हैं। महात्मन्! ब्रह्माके भी आदिकर्त्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार न करें; क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं। आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्‌के परम आश्रय और जाननेवाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। अनन्तरूप! आपसे यह सब जगत् व्याप्त है। आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजाके स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्माके भी पिता हैं। आपके लिये हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो! आपके लिये फिर भी बार-बार नमस्कार! नमस्कार!! हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार। सर्वात्मन्! आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार हो। क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं। आपके इस प्रभावको न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं—ऐसा मानकर प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी मैंने 'कृष्ण!' 'यादव!' 'सखे!' इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा है, और अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोदके लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादिमें अकेले अथवा उन सखाओंके सामने भी अपमानित किये गये हैं—वह सब अपराध अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ। आप इस चराचर जगत्‌के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है। अतएव प्रभो! मैं शरीरको भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वरको प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। देव! पिता जैसे पुत्रके, सखा जैसे सखाके और पति जैसे प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्य हैं। मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भयसे अति व्याकुल भी हो रहा है; इसलिये आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूपको ही मुझे दिखलाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये। मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ। इसलिये हे विश्वस्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूपसे प्रकट होइये ॥ ३६—४६ ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट् रूप तुझको दिखलाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने पहले नहीं देखा था। अर्जुन! मनुष्यलोकमें इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, न दानसे, न क्रियाओंसे और न उग्र तपोंसे ही तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा देखा जा सकता हूँ। मेरे इस प्रकारके इस विकराल रूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढभाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला उसी मेरे इस शङ्ख-चक्र-गदापद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको फिर देख॥४७—४९॥

सञ्जय बोले—वासुदेव भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूपको

दिखलाया और फिर महात्मा श्रीकृष्णने सौम्यमूर्ति होकर
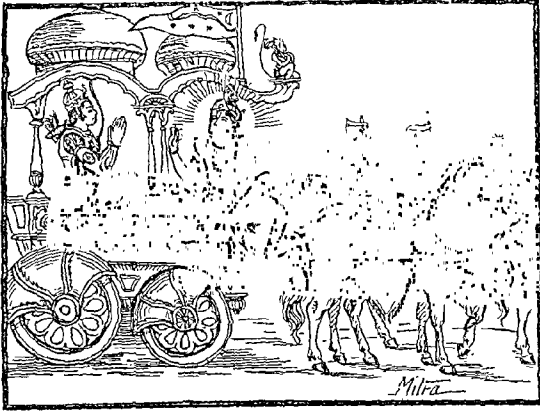
इस भयभीत अर्जुनको धीरज दिया ॥ ५० ॥

अर्जुन बोले—जनार्दन ! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूपको देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ ॥ ५१ ॥

श्रीभगवान् बोले—मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है, इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं। जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है, इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। परन्तु परन्तप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये—एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है—वह अनन्य-भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है ॥ ५२—५५ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता-भक्तियोग

अर्जुन बोले—जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकारसे निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वरको, और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मको ही अति श्रेष्ठ भावसे भजते हैं, उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं ? ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं। परन्तु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समानभाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं। उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है। परन्तु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं; अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

मुझमें मनको लगा, और मुझमें ही बुद्धिको लगा; इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि तू मनको मुझमें अचल स्थापन करनेके लिये समर्थ नहीं है तो अर्जुन! अभ्यासरूप योगके द्वारा मुझको

प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर। यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा। यदि मेरी प्राप्तिरूप योगके आश्रित होकर उपर्युक्त साधनको करनेमें भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मोंके फलका त्याग कर। मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है ॥२-१२॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान्—अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको नहीं प्राप्त होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको नहीं प्राप्त होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है, वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है, वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है; वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है। जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है, वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है। परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतको निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं ॥१३-२०॥

श्रीमद्भगवद्गीता—क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नामसे कहा जाता है; और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नामसे उनको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं। अर्जुन! तू सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ—जीवात्मा भी मुझे ही जान। और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका—विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका जो तत्त्वसे जानना है, वह ज्ञान है—ऐसा मेरा मत है। वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारोंवाला है, और जिस कारणसे जो हुआ है; तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाववाला है—वह सब संक्षेपमें मुझसे सुन। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ऋषियोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है और विविध वेदमन्त्रोंद्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है, तथा भलीभाँति निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा भी कहा गया है। पाँच महाभूत, अहङ्कार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी; तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियोंके विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देहका पिण्ड, चेतना और धृति—इस प्रकार विकारोंके सहित यह क्षेत्र संक्षेपमें कहा गया। श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदिकी सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता और मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह, इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहङ्कारका भी

अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख-दोषोंका

-बार विचार करना; पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें अक्तिका अभाव, ममताका न होना तथा प्रिय और प्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना, मुझ पेश्वरमें अनन्य योगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा कान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त नुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना, अध्यात्मज्ञानमें नित्य मति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—ह सब ज्ञान है; और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है—सा कहा है। जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर नुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह आदिरहित परम ब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला और सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है; तथा आसक्तिरहित और निर्गुण होनेपर भी अपनी योगमायासे सबका धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है। वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है, और चर-अचररूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है। और वह विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है। वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूपसे संहार करनेवाला तथा ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह ब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है। इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जाननेयोग्य परमात्माका स्वरूप संक्षेपसे कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्वसे जानकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है॥ १–१८॥

प्रकृति और पुरुष, इन दोनोंको ही तू अनादि जान। और राग-द्वेषादि विकारोंको तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न जान। कार्य और करणकी उत्पत्तिमें हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखोंके भोगनेमें हेतु कहा जाता है। प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। यह पुरुष इस देहमें स्थित होनेपर भी पर ही है। केवल साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता, सबको धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता, ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो मनुष्य तत्त्वसे जानता है, वह सब प्रकारसे कर्तव्यकर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं। परन्तु इनसे दूसरे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं। अर्जुन! जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न जान। जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है; क्योंकि वह पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गतिको प्राप्त होता है। और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्माको अकर्त्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको

एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है । अर्जुन ! अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होनेके कारण देहके गुणोंसे लिप्त नहीं होता । अर्जुन ! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है । इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिके अभावको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे

जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्म होते हैं ॥ १९–३४ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—गुणत्रयविभागयोग

श्रीभगवान् बोले—ज्ञानोंमें भी अति उत्तम उस परम ज्ञानको मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसारसे मुक्त होकर परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं । इस ज्ञानको आश्रय करके मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए पुरुष सृष्टिके आदिमें पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकालमें भी व्याकुल नहीं होते । अर्जुन ! मेरी महत्-ब्रह्मरूप प्रकृति—अव्याकृत माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है और मैं उस योनिमें चेतनसमुदायरूप गर्भको स्थापन करता हूँ । उस जड-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है । अर्जुन ! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितने शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, अव्याकृत माया तो उन सबकी गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ ॥ १–४ ॥

अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं । हे निष्पाप ! उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकारर वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके अभिमानसे है । अर्जुन ! रागरूप रजोगुणको कामना और उ उत्पन्न जान । वह इस जीवात्माको कर्मोंके उनके फलके सम्बन्धसे बाँधता है । और अर्जु देहाभिमानियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको उत्पन्न जान । वह इस जीवात्माको प्रमाद, आल निद्राके द्वारा बाँधता है । अर्जुन ! सत्त्वगुण सुखमें है और रजोगुण कर्ममें । तथा तमोगुण तो ज्ञानको प्रमादमें भी लगाता है । अर्जुन ! रजोगुण और त को दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको ... रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुणको दबाकर तमोगुण स्थित होता है । जिस समय इस देहमें तथा अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनता और विवेकशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है। अर्जुन ! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ, प्रवृत्ति, सब प्रकारके कर्मोंका सकामभावसे आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगोंकी

लालसा—ये सब उत्पन्न होते हैं । अर्जुन ! तमोगुणके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश, कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद तथा निद्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियाँ—ये सब ही उत्पन्न होते हैं । जब यह जीवात्मा सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करनेवालोंके निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है । रजोगुणके बढ़नेपर मृत्युको प्राप्त होकर मनुष्य कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है; तथा तमोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ पुरुष कीट, पशु आदि मूढयोनियोंमें उत्पन्न होता है । सात्त्विक कर्मका तो सात्त्विक —सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है; राजस कर्मका फल दुःख एवं तामस कर्मका फल अज्ञान कहा है । सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे निस्सन्देह लोभ; तथा तमोगुणसे प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है । सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें—मनुष्यलोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित तामस पुरुष अधोगतिको —कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकादिको प्राप्त होते हैं । जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्त्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है । यह पुरुष स्थूल-शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर परमानन्दको प्राप्त होता है ॥५–२०॥

अर्जुन बोले—इन तीनों गुणोंसे अतीत पुरुष किन-किन लक्षणोंसे युक्त होता है और किस प्रकारके आचरणोंवाला होता है; तथा प्रभो ! मनुष्य किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है ? ॥२१॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा
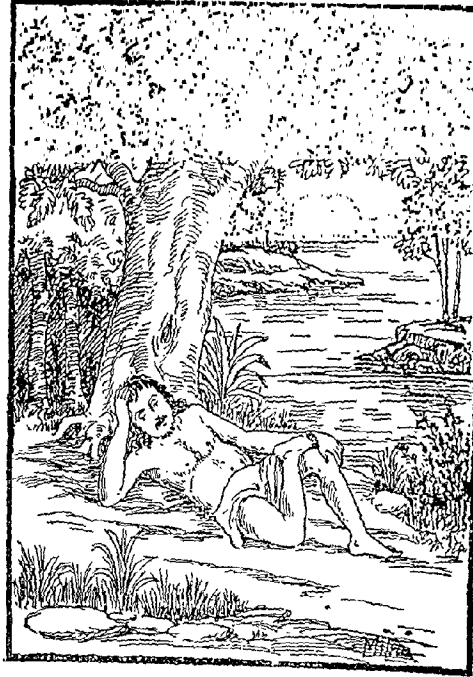
तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर बुरा समझता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकाङ्क्षा करता है; जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता; और जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है; जो मान और अपमानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्त्तापनके अभिमानसे रहित वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है । और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगके द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणोंको भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है; क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ ॥२२–२७॥

श्रीमद्भगवद्गीता—पुरुषोत्तमयोग

श्रीभगवान् बोले—आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलके वृक्षको अविनाशी कहते हैं, तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं—उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है। उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषयभोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं। इस संसार-वृक्षका स्वरूप जैसा कहा है, वैसा यहाँ विचारकालमें नहीं पाया जाता; क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर, उसके पश्चात् उस परम पदरूप परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसारमें नहीं आते; और जिस परमेश्वरसे इस पुरातन संसार-वृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायणके मैं शरण हूँ—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—वे सुख-दुःखनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जिस परम पदको प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसारमें नहीं आते—उस स्वयंप्रकाश परम पदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही; वही मेरा परम धाम है॥ १–६॥

इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी मायामें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षण करता है। वायु गन्धके स्थानसे गन्धको जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीरको त्याग करता है उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है उसमें जाता है। यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके विषयोंको सेवन करता है। शरीरको छोड़कर जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको और विषयोंको भोगते हुएको अथवा तीनों गुणोंसे युक्त हुएको भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही तत्त्वसे जानते हैं। यत्न करनेवाले योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित इस आत्माको तत्त्वसे जानते हैं। किन्तु जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहनेपर भी इस आत्माको नहीं जानते॥ ७–११॥

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है, उसको तू मेरा ही तेज जान। और मैं ही पृथ्वीमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे सब भूतोंको धारण करता हूँ और रसस्वरूप—अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण ओषधियोंको—वनस्पतियोंको पुष्ट करता हूँ। मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपानसे संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूँ। और मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्त्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ। इस संसारमें नाशवान् और अविनाशी भी, ये दो प्रकारके पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है। इन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा—इस प्रकार कहा गया है। क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ। भारत! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है। निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरेद्वारा कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है॥ ७—२०॥

संसार-वृक्ष (गीता १५ । १)

श्रीमद्भगवद्गीता—दैवासुरसम्पद्विभागयोग

श्रीभगवान् बोले—भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्त्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो अर्जुन ! दैवी सम्पदाको प्राप्त पुरुषके लक्षण हैं। पार्थ ! दम्भ, घमंड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। दैवी सम्पदा मुक्तिके लिये और आसुरी सम्पदा बाँधनेके लिये मानी गयी है। इसलिये अर्जुन ! तू शोक मत कर; क्योंकि तू दैवी-सम्पदाको प्राप्त है ॥ १—५ ॥

अर्जुन ! इस लोकमें मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकारका है, एक तो दैवी प्रकृतिवाला और दूसरा आसुरी प्रकृतिवाला। उनमेंसे दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदायको भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन। आसुर-स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनोंको ही नहीं जानते। इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है। वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वरके, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, अतएव केवल भोगोंके लिये ही है। इसके सिवा और क्या है ? इस मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन करके—जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत्के नाशके लिये ही उत्पन्न होते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेकर, अज्ञानसे मिथ्या सिद्धान्तोंको ग्रहण कर और भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके संसारमें विचरते हैं। तथा वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंका आश्रय लेनेवाले, विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले और 'इतना ही आनन्द है' इस प्रकार माननेवाले होते हैं। वे आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोधके परायण होकर विषयभोगोंके लिये अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त

कर लिया है और अब इस मनोरथको प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायगा। वह शत्रु मेरेद्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओंको भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और बलवान् तथा सुखी हूँ। मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जालसे समावृत और विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त आसुरलोग महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं। वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त होकर केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा पाखण्डसे शास्त्रविधिसे रहित यजन करते हैं। वे अहङ्कार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादिके परायण और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले होते हैं। उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ। अर्जुन! जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं—घोर नरकोंमें पड़ते हैं। काम,
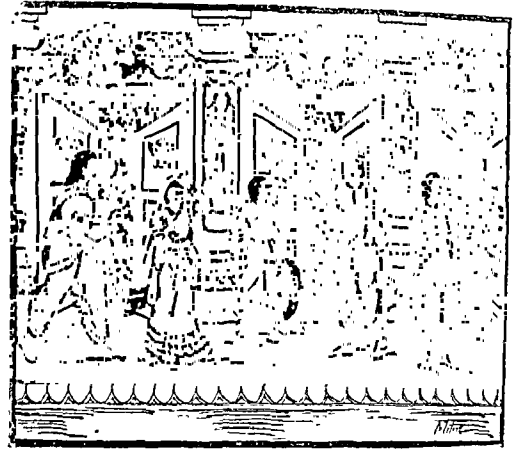
क्रोध तथा लोभ—ये आत्माका नाश करनेवाले—उसको अधोगतिमें ले जानेवाले तीन प्रकारके नरकके द्वार हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। अर्जुन! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परमगतिको जाता है—मुझको प्राप्त हो जाता है। जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगतिको और न सुखको ही। इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधिसे नियत कर्म ही करनेयोग्य है ॥६—२४॥

श्रीमद्भगवद्गीता—श्रद्धात्रयविभागयोग

अर्जुन बोले—कृष्ण! जो श्रद्धायुक्त पुरुष शास्त्र-विधिको त्यागकर देवादिका पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी? ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—मनुष्योंकी वह शास्त्रीय संस्कारोंसे रहित केवल स्वभावसे उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी—ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उसको तू मुझसे सुन। भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है; इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है। सात्त्विक पुरुष देवोंको पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और
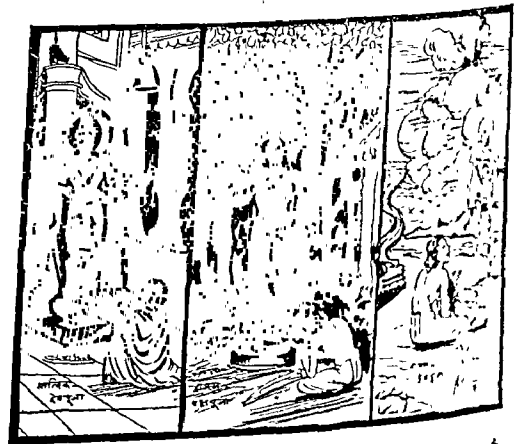
राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और

भूतगणोंको पूजते हैं । जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मनःकल्पित घोर तपको तपते हैं तथा दम्भ और अहङ्कारसे युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी

युक्त हैं, जो शरीररूपसे स्थित भूतसमुदायको और अन्तः-करणमें स्थित मुझ अन्तर्यामीको भी कृश करनेवाले हैं, उन अज्ञानियोंको तू आसुर-स्वभाववाले जान । भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है । और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं । उनके इस पृथक्-पृथक् भेदको तू मुझसे सुन ॥ २–७ ॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार सात्त्विक पुरुष-को प्रिय होते हैं । कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको

प्रिय होते हैं । जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्ध-युक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है । जो शास्त्र-विधिसे नियत यज्ञ, करना ही कर्त्तव्य है—इस प्रकार मनको समाधान करके, फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है । परन्तु अर्जुन ! जो यज्ञ
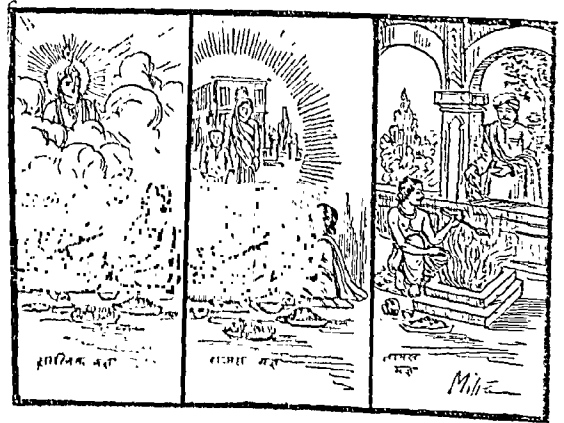
केवल दम्भाचरणके लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर किया जाता है, उस यज्ञको तू राजस जान । शास्त्रविधिसे हीन, अन्नदानसे रहित, बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धाके किये जानेवाले यज्ञको तामस यज्ञ कहते

हैं । देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है । जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है । मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणकी पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है । फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं । जो तप सत्कार, मान और पूजाके लिये अथवा केवल पाखण्डसे ही किया जाता है, वह अनिश्चित एवं क्षणिक फलवाला तप यहाँ राजस कहा गया है । जो तप मूढतापूर्वक हठसे, मन, वाणी और शरीरकी पीड़ाके सहित अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है । दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे जो दान देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है । किन्तु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके प्रयोजनसे अथवा

फलको दृष्टिमें रखकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है । जो दान बिना सत्कारके अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें और कुपात्रके प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है ॥८–२२॥

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये । इसलिये वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं । 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है—इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ-तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं । 'सत्' यह परमात्माका नाम सत्यभावमें और श्रेष्ठभावमें प्रयोग किया जाता है तथा पार्थ ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है । तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक 'सत्'—ऐसे कहा जाता है । अर्जुन ! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही ॥ २३–२८ ॥
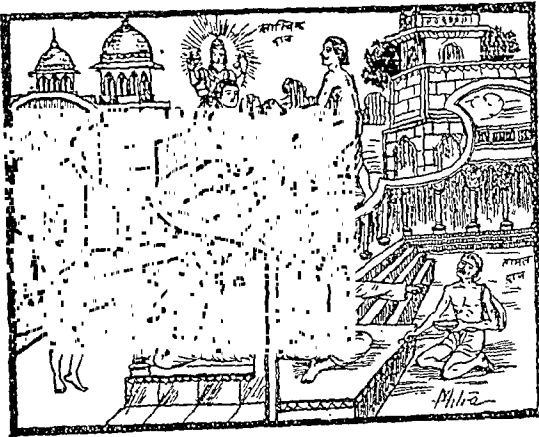
श्रीमद्भगवद्गीता—मोक्षसंन्यासयोग

अर्जुन बोले—हे महाबाहो ! हे अन्तर्यामिन् ! हे वासुदेव ! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—कितने ही पण्डितजन तो काम्य-कर्मोंके त्यागको संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारकुशल पुरुष सब कर्मोंके फलके त्यागको त्याग कहते हैं । कई एक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि कर्ममात्र दोषयुक्त हैं, इसलिये त्यागनेके योग्य हैं और दूसरे विद्वान् यह कहते हैं कि यज्ञ,

दान और तपरूप कर्म त्यागनेयोग्य नहीं है । पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! संन्यास और त्याग, इन दोनोंमेंसे पहले त्यागके विषयमें तू मेरा निश्चय सुन; क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे तीन प्रकारका कहा गया है । यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्यकर्तव्य है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंके यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही कर्म अन्तःकरणको पवित्र करनेवाले हैं । इसलिये पार्थ ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको तथा और भी सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको आसक्ति और फलोंका त्याग करके अवश्य करना चाहिये—यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है । निषिद्ध और काम्य कर्मोंका तो स्वरूपसे त्याग करना उचित ही है, परन्तु नियत कर्मका स्वरूपसे त्याग उचित नहीं है । इसलिये मोहके कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है । जो कुछ कर्म है, वह सब दुःखरूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेशके भयसे कर्तव्यकर्मोंका त्याग कर दे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्यागके फलको किसी प्रकार भी नहीं पाता । अर्जुन ! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है । जो मनुष्य अकुशल कर्मसे तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता, वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष संशयरहित, ज्ञानवान् और सच्चा त्यागी है; क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा सम्पूर्णतासे सब कर्मोंको त्याग देना शक्य नहीं है; इसलिये जो कर्मफलका त्यागी है, वही त्यागी है—यह कहा जाता है । कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ—ऐसे तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् अवश्य होता है; किन्तु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता ॥२–१२॥

महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके ये पाँच हेतु कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले सांख्य-शास्त्रमें कहे गये हैं, उनको तू मुझसे भलीभाँति जान । कर्मोंकी सिद्धिमें अधिष्ठान और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके कारण एवं नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव है । मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पाँचों कारण हैं । परन्तु ऐसा होनेपर भी जो मनुष्य अशुद्धबुद्धि होनेके कारण कर्मोंके होनेमें केवल—शुद्धस्वरूप आत्माको कर्ता समझता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता । जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बँधता है । ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—यह तीन प्रकारकी कर्म-प्रेरणा है और कर्ता, करण तथा क्रिया—यह तीन प्रकारका कर्म-संग्रह है ॥१३–१८॥

गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारके कहे गये हैं, उनको भी तू मुझसे भलीभाँति सुन । जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान । और जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नाना भावोंको अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान । और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णके सदृश आसक्त है; तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थसे रहित और तुच्छ है—वह तामस कहा गया है । जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा बिना राग-द्वेषके किया गया हो, वह सात्त्विक कहा जाता है । और जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त होता है तथा भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा या अहङ्कार-युक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है । जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है । जो कर्ता आसक्तिसे रहित, अहङ्कारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है, वह सात्त्विक कहा जाता है । जो कर्ता आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोकसे लिपायमान है, वह राजस कहा गया है । जो कर्ता अयुक्त, शिक्षासे रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह तामस कहा जाता है । धनञ्जय ! अब तू बुद्धिका और

धृतिका भी गुणोंके अनुसार तीन प्रकारका भेद मेरेद्वारा सम्पूर्णतासे विभागपूर्वक कहा जानेवाला सुन। पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको, कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है। पार्थ ! मनुष्य जिस बुद्धिके द्वारा धर्म और अधर्मको तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। अर्जुन ! जो तमोगुणसे घिरी हुई बुद्धि अधर्मको भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थोंको भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है। पार्थ ! जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्तिसे मनुष्य ध्यानयोगके द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है। और पृथापुत्र अर्जुन ! फलकी इच्छावाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा अत्यन्त आसक्तिसे धर्म, अर्थ और कामोंको धारण किये रहता है, वह धारणशक्ति राजसी है। पार्थ ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दुःखको तथा उन्मत्तताको भी नहीं छोड़ता वह धारणशक्ति तामसी है। भरतश्रेष्ठ ! अब तीन प्रकारके सुखको भी तू मुझसे सुन। जिस सुखमें साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है और जिससे दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है—जो ऐसा सुख है, वह प्रथम यद्यपि विषके तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाममें अमृतके तुल्य है; इसलिये वह परमात्म-विषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है। जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले—भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है; इसलिये वह सुख राजस कहा गया है। जो भोगकालमें तथा परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है। पृथ्वीमें या आकाशमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो ॥१९-४०॥

परन्तप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं। अन्तः-करणका निग्रह करना; इन्द्रियोंका दमन करना; धर्मपालनके लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना; दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना; मन, इन्द्रिय और शरीरको [illegible] रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रख[illegible] वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्माके तत्त्व[illegible] अनुभव करना—ये सब-के-सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक [illegible] हैं। शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भाग[illegible] दान देना और स्वामिभाव—ये सब-के-सब ही क्षत्रि[illegible] स्वाभाविक कर्म हैं। खेती, गोपालन और क्रय-विक्रय[illegible] सत्य व्यवहार—ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं। तथा [illegible] वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है। अपने-अ[illegible] स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्रा[illegible] रूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभावि[illegible] कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके पर[illegible] सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तू सुन। जिस परमेश्वर[illegible] सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वार[illegible] पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अच्छे प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है; क्योंकि स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्मको करता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता। अतएव कुन्तीपुत्र ! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको नहीं त्यागना चाहिये; क्योंकि धूएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे ढके हुए हैं ॥४१-४८॥

सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष सांख्ययोगके द्वारा भी परम नैष्कर्म्यसिद्धिको प्राप्त होता है। कुन्तीपुत्र ! अन्तःकरण-की शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो ज्ञानयोगकी परा निष्ठा है, उसको तू मुझसे संक्षेपमें ही जान। विशुद्ध बुद्धिसे युक्त तथा हल्का, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयोंका त्याग करके एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला, सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियोंका संयम करके मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहङ्कार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवाला, ममतारहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है। फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित,

प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है । ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्तिको प्राप्त हो जाता है । उस परा भक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है; तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है ॥४९—५५॥

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है । सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समत्वबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो । उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त सङ्कटोंको अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहङ्कारके कारण मेरे वचनोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा । जो तू अहङ्कारका आश्रय लेकर यह मान रहा है कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबर्दस्ती युद्धमें लगा देगा । कुन्तीपुत्र ! जिस कर्मको तू मोहके कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा हुआ परवश होकर करेगा । अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है । भारत ! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा । उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा । इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया । अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञानको पूर्णतया भलीभाँति विचारकर, जैसे चाहता है वैसे ही कर । सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्य-युक्त वचनको तू फिर भी सुन । तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा । अर्जुन ! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर । ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है । सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर ॥५६—६६॥

तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यसे कहना चाहिये, न भक्ति-रहितसे और न बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिये; तथा जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है, उससे भी कभी नहीं कहना चाहिये । जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है । मेरा उससे बढ़कर प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा मेरा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं । तथा जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा—ऐसा मेरा मत है । जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका श्रवण भी करेगा, वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होगा । पार्थ ! क्या मेरे-द्वारा कहे हुए इस उपदेशको तूने एकाग्र चित्तसे श्रवण किया ? और धनञ्जय ! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया ? ॥६७—७२॥

अर्जुन बोले—अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है; अब मैं संशयरहित

होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥७३॥

सञ्जय बोले—इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेवके और महात्मा अर्जुनके इस अद्भुत रहस्ययुक्त, रोमाञ्चकारक संवादको सुना। श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है। राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्भुत संवादको पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारंबा[र हर्षित] हो रहा हूँ। राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त [अद्भुत] रूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् [आश्चर्य] होता है और मैं बारंबार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्[! जहाँ] योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव-ध[नुषधारी] अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नी[ति है,] ऐसा मेरा मत है ॥७४-७८॥

राजा युधिष्ठिरका भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके युद्ध करनेके लिये आज्ञा और आशीर्वाद माँगना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! गीता स्वयं भगवान् कमलनाभके मुखकमलसे निकली है, इसलिये इसीका अच्छी तरह स्वाध्याय करना चाहिये। अन्य बहुत-से शास्त्रोंका संग्रह करनेसे क्या लाभ है? गीतामें सब शास्त्रोंका समावेश हो जाता है, भगवान् सर्वदेवमय हैं, गङ्गामें सब तीर्थोंका वास है तथा मनुजी सकलवेदस्वरूप हैं। गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द—इन गकारयुक्त चार नामोंके हृदयमें स्थित होनेपर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। श्रीकृष्णने भारतामृतके सारभूत गीताको बिलोकर उसे अर्जुनके मुखमें होमा है।

सञ्जयने कहा—तब अर्जुनको बाण और गाण्डीव धनुष धारण किये देखकर महारथियोंने फिर सिंहनाद किया। उस समय पाण्डव, सोमक और उनके अनुयायी दूसरे राजालोग प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे। तथा भेरी, पेशी, क्रकच और नरसिंगोंके अकस्मात् बज उठनेसे वहाँ बड़ा शब्द होने लगा।

इस प्रकार दोनों ओरकी सेनाको युद्धके लिये तैयार देख महाराज युधिष्ठिर अपने कवच और शस्त्रोंको छोड़कर रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़े हुए बड़ी तेजीसे पूर्वकी ओर, जहाँ शत्रुकी सेना खड़ी थी, पितामह भीष्मकी ओर देखते पैदल ही चल दिये। उन्हें इस प्रकार जाते देख अर्जुन रथसे कूद पड़े और सब भाइयोंके साथ उनके पीछे-पीछे [चल] दिये। भगवान् श्रीकृष्ण तथा दूसरे मुख्य-मुख्य राजा भी उत्सुकतासे उनके पीछे हो लिये। तब अर्जुनने कहा, 'राज[न्!] आपका क्या विचार है? आप हमें छोड़कर पैदल ही श[त्रु]सेनामें क्यों जा रहे हैं?' भीमसेन बोले, 'राजन्! शत्रुप[क्षके] सैनिक कवच धारण किये युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। ऐ[सी] स्थितिमें आप भाइयोंको छोड़कर तथा कवच और श[स्त्र] डालकर कहाँ जाना चाहते हैं?' नकुलने कहा, 'महाराज आप हमारे बड़े भाई हैं, आपके इस प्रकार जानेसे हम[ारे] हृदयमें बड़ा भय हो रहा है। बताइये तो सही, आप क[हाँ] जायँगे?' सहदेवने पूछा, 'राजन्! इस महाभयावनी र[ण]स्थलीमें आ जानेपर अब आप हमें छोड़कर इन शत्रुओं[की] ओर कहाँ जा रहे हैं?'

भाइयोंके इस प्रकार पूछनेपर भी महाराज युधिष्ठिरने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप चलते ही गये। तब चतुरचूडामणि श्रीकृष्णने हँसकर कहा, 'मैं इनका अभिप्राय समझ गया हूँ। ये भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य आदि सब गुरुजनोंसे आज्ञा लेकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे। मेरा ऐसा मत है कि जो पुरुष अपने गुरुजनोंकी आज्ञा लिये बिना ही उनसे युद्ध करने लगता है, उसे वे स्पष्ट ही शाप दे देते हैं। और जो शास्त्रानुसार उनका अभिवादन करके और उनसे आज्ञा लेकर संग्राम करता है, उसकी अवश्य विजय होती है।'

इधर जब श्रीकृष्ण ऐसा कह रहे थे तो कौरवोंकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा और कुछ लोग ढंग-से रहकर चुपचाप खड़े रहे। दुर्योधनके सैनिकोंने राजा युधिष्ठिरको आते
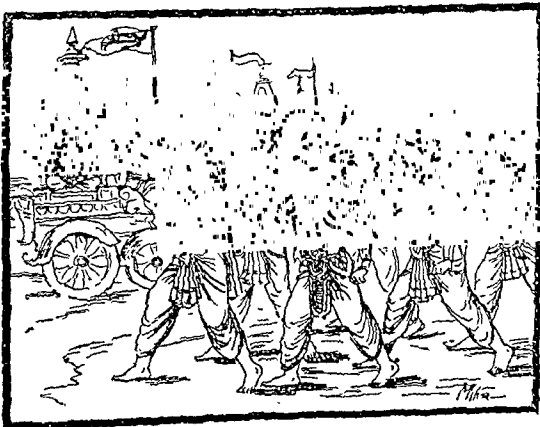
देखा तो वे आपसमें कहने लगे, 'ओहो! यही कुलकलङ्क युधिष्ठिर है। देखो, अब यह डरकर अपने भाइयोंके सहित शरण पानेकी इच्छासे भीष्मजीके पास आ रहा है। अरे! इसकी पीठपर तो अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव-जैसे वीर हैं; फिर भी इसे भयने कैसे दबा लिया।' ऐसा कहकर फिर वे सैनिक कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे और प्रसन्न होकर अपनी ध्वजाएँ फहराने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिरको धिक्कार कर वे सब वीर यह सुननेके लिये कि देखें, यह भीष्मजीसे क्या कहता है और रणबाँकुरे भीमसेन तथा कृष्ण और अर्जुन इस मामलेमें क्या बोलते हैं—चुप हो गये। इस समय महाराज युधिष्ठिरकी इस चेष्टासे दोनों ही पक्षोंकी सेनाएँ बड़े सन्देहमें पड़ गयीं।

महाराज युधिष्ठिर शत्रुओंकी सेनाके बीचमें होकर भीष्मजीके पास पहुँचे और दोनों हाथोंसे उनके चरण पकड़कर कहने लगे, 'अजेय पितामह! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझे आपसे युद्ध करना होगा। आप मुझे आज्ञा

दीजिये और साथ ही आशीर्वाद देनेकी कृपा भी कीजिये।'

भीष्मने कहा—युधिष्ठिर! यदि इस समय तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी पराजयके लिये तुम्हें शाप दे देता। किन्तु अब मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो, तुम्हारी जय होगी और इस युद्धमें तुम्हारी और सब इच्छाएँ भी पूरी होंगी। इसके सिवा तुम्हें कोई वर माँगनेकी इच्छा हो तो माँग लो; क्योंकि ऐसा होनेपर फिर तुम्हारी पराजय नहीं हो सकेगी। राजन्! यह पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं है—यही सत्य है और इस अर्थसे ही कौरवोंने मुझे बाँध रखा है। इसीसे मैं तुम्हारे सामने नपुंसकोंकी-सी बातें कर रहा हूँ। बेटा! युद्ध तो मुझे कौरवोंकी ओरसे ही करना पड़ेगा। हाँ, इसके सिवा तुम और जो कुछ कहना चाहो, वह कहो।

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी! आपको तो कोई जीत नहीं सकता। इसलिये यदि आप हमारा हित चाहते हैं तो बतलाइये, हम आपको युद्धमें कैसे जीत सकेंगे?

भीष्म बोले—कुन्तीनन्दन! संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय मुझे जीत सके—ऐसा तो मुझे कोई दिखायी नहीं देता। अन्य पुरुष तो क्या, स्वयं इन्द्रकी भी ऐसी शक्ति नहीं है। इसके सिवा मेरी मृत्युका भी कोई निश्चित समय नहीं है। इसलिये तुम किसी दूसरे समय मुझसे मिलना।

तब महाबाहु युधिष्ठिरने भीष्मजीकी यह बात सिरपर धारण की और उन्हें फिर प्रणाम कर वे आचार्य द्रोणके रथकी ओर चले। उन्होंने आचार्यको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की और फिर अपने कल्याणके लिये कहा, 'भगवन्!

मुझे आपसे युद्ध करना होगा; मैं इसके लिये आपकी आज्ञा

चाहता हूँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे। आप यह भी बतानेकी कृपा करें कि मैं शत्रुओंको किस प्रकार जीत सकूँगा।'

द्रोणाचार्यने कहा—राजन्! यदि तुम युद्धका निश्चय करके फिर मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी पराजयके लिये शाप दे देता। किन्तु तुम्हारे इस सम्मानसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो, तुम्हारी जय होगी। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। बताओ, तुम क्या चाहते हो? इस स्थितिमें अपनी ओरसे युद्ध करनेके सिवा तुम्हारी और जो भी इच्छा हो, वह कहो; क्योंकि पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है—यही सत्य है और इस अर्थसे ही कौरवोंने मुझे बाँध लिया है। इसीसे मैं नपुंसककी तरह तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपनी ओरसे युद्ध करनेके सिवा और क्या चाहते हो। मैं युद्ध तो कौरवोंकी ओरसे करूँगा, तो भी विजय तुम्हारी ही चाहता हूँ।

युधिष्ठिरने कहा—ब्रह्मन्! आप कौरवोंकी ओरसे ही युद्ध करें। किन्तु मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरी विजय चाहें और मुझे उपयोगी परामर्श दें।

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! तुम्हारे सलाहकार स्वयं श्रीकृष्ण हैं, इसलिये तुम्हारी विजय तो निश्चित है। मैं तुम्हें युद्धके लिये आज्ञा देता हूँ। तुम रणाङ्गणमें शत्रुओंका संहार करोगे। जहाँ धर्म रहता है, वहीं श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं जय रहती है। कुन्तीनन्दन! अब तुम जाओ, युद्ध करो और तुम्हें जो पूछना हो, पूछो; मैं तुम्हें क्या सलाह दूँ?

युधिष्ठिरने पूछा—आचार्य! आपको प्रणाम करके मैं यही पूछता हूँ कि आपके वधका क्या उपाय है।

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! संग्रामभूमिमें रथपर आरूढ़ हो जब मैं क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करूँगा, उस समय मुझे मार सके—ऐसा तो कोई शत्रु दिखायी नहीं देता। हाँ, जब मैं शस्त्र छोड़कर अचेत-सा खड़ा रहूँ उस समय कोई योद्धा मुझे मार सकता है—यह मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ। एक सच्ची बात तुम्हें बताता हूँ—जब किसी विश्वासपात्र व्यक्तिके मुखसे मुझे कोई अत्यन्त अप्रिय बात सुनायी देती है तो मैं संग्रामभूमिमें अस्त्र त्याग देता हूँ।

द्रोणाचार्यजीकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर उनकी आज्ञा ले आचार्य कृपके पास आये और उन्हें प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करके कहने लगे, 'गुरुजी! मुझे आपसे युद्ध करना
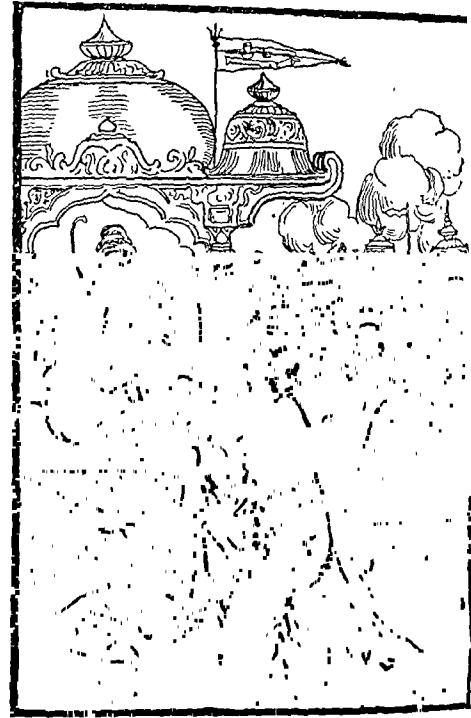
होगा; इसके लिये मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे। इसके सिवा आपकी आज्ञा होनेपर मैं शत्रुओंको भी जीत सकूँगा।'

कृपाचार्यने कहा—राजन्! युद्धका निश्चय होनेपर यदि तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है—यही सत्य है और इस अर्थसे ही कौरवोंने मुझे बाँध रक्खा है; सो युद्ध तो मुझे उन्हींकी ओरसे करना पड़ेगा—ऐसा मेरा निश्चय है। इसीसे नपुंसककी तरह मुझे यह कहना पड़ता है कि अपनी ओरसे युद्ध करनेके लिये कहनेके सिवा और तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँग लो।

युधिष्ठिरने कहा—आचार्य! सुनिये, इसीसे मैं आपसे पूछता हूँ.............।

इतना कहकर धर्मराज व्यथित होकर अचेत-से हो गये और कोई शब्द न बोल सके। तब उनका अभिप्राय समझकर कृपाचार्यजीने कहा, 'राजन्! मुझे कोई भी मार नहीं सकता। किन्तु कोई चिन्ता नहीं; तुम युद्ध करो, जीत तुम्हारी ही होगी। तुम्हारे इस समय यहाँ आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं नित्यप्रति उठकर तुम्हारी विजयकामना करूँगा—यह मैं तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ।'

कृपाचार्यजीकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर उनकी आज्ञा लेकर मद्रराज शल्यके पास गये तथा उन्हें प्रणाम और प्रदक्षिणा करके अपने हितके लिये उनसे कहा, 'राजन्! मुझे आपके साथ युद्ध करना है। इसके लिये मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे। तथा आपकी आज्ञा होनेपर मैं शत्रुओंको भी जीत सकूँगा।'

शल्यने कहा—राजन्! युद्धका निश्चय कर लेनेपर यदि तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी पराजयके लिये तुम्हें शाप दे देता। इस समय आकर तुमने मेरा सम्मान किया है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ; तुम युद्ध करो, जय तुम्हारी ही होगी। तुम्हारी कोई और अभिलाषा हो तो मुझसे कहो। पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है—यही बात सत्य है और इस अर्थसे ही कौरवोंने मुझे बाँध लिया है। इसीसे मुझे नपुंसककी तरह पूछना पड़ता है कि अपनी ओरसे युद्ध करानेके सिवा तुम और क्या चाहते हो। तुम मेरे भानजे हो। तुम्हारी जो इच्छा होगी, वह मैं पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—मामाजी! मैंने सैन्यसंग्रहका उद्योग करते समय आपसे जो प्रार्थना की थी, वही मेरा वर है। कर्ण-से हमारा युद्ध होते समय आप उसके तेजका नाश करते रहें।

शल्य बोले—कुन्तीनन्दन! तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। जाओ, निश्चिन्त होकर युद्ध करो। मैं तुम्हारी बात पूरी करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

सञ्जय कहते हैं—राजन्! मद्रराज शल्यसे आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित उस विशाल वाहिनीसे बाहर आ गये। इस बीचमें श्रीकृष्ण कर्णके पास गये और उससे कहा कि 'मैंने सुना है, भीष्मजीसे द्वेष होनेके कारण तुम युद्ध नहीं करोगे। यदि ऐसा है तो जबतक भीष्म नहीं मारे जाते, तबतक तुम हमारी ओर आ जाओ। उनके मारे जानेपर फिर तुम्हें दुर्योधनकी सहायता करनी ही उचित जान पड़े तो फिर हमारे मुकाबलेमें आकर युद्ध करना।'

कर्णने कहा—केशव! मैं दुर्योधनका अप्रिय कभी नहीं करूँगा। आप मुझे प्राणपणसे दुर्योधनका हितैषी समझें।

कर्णकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वहाँसे लौट आये और पाण्डवोंमें आ मिले। इसके बाद महाराज युधिष्ठिरने सेनाके बीचमें खड़े होकर उच्च स्वरसे कहा—'जो वीर हमारा साथ देना चाहे, अपनी सहायताके लिये मैं उसका स्वागत करनेको तैयार हूँ।' यह सुनकर युयुत्सु बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पाण्डवोंकी ओर देखकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, 'महाराज! यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करें तो मैं इस महायुद्धमें आपकी ओरसे कौरवोंके साथ युद्ध करूँगा।'

युधिष्ठिरने कहा—युयुत्सो! आओ, आओ, हम सब मिलकर तुम्हारे मूर्ख भाइयोंसे युद्ध करेंगे। महाबाहो! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम हमारी ओरसे संग्राम करो। मालूम होता है महाराज धृतराष्ट्रका वंश भी तुमसे ही चलेगा और तुमसे ही उन्हें पिण्ड मिलेगा।

राजन्! फिर युयुत्सु दुन्दुभिघोषके साथ तुम्हारे पुत्रोंको छोड़कर पाण्डवोंकी सेनामें चला गया। तब धर्मराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक पुनः कवच धारण किया। सब लोग अपने-अपने रथोंपर चढ़ गये और फिर सैकड़ों दुन्दुभियोंका घोष होने लगा, और योद्धालोग तरह-तरहसे सिंहनाद करने लगे। पाण्डवोंको रथमें बैठे देखकर धृष्टद्युम्नादि सब राजाओंको बड़ा हर्ष हुआ। पाण्डवोंने माननीयोंका मान करनेका गौरव प्राप्त किया है—यह देखकर राजाओंने उनका बड़ा सत्कार किया तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति उनकी सुहृदता, कृपा और दयाकी बड़ी चर्चा करने लगे।

युद्धका आरम्भ—दोनों पक्षोंके वीरोंका परस्पर भिड़ना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! इस प्रकार जब मेरे पुत्र और पाण्डवोंकी सेनाओंकी व्यूहरचना हो गयी तो उन दोनोंमेंसे पहले किसने प्रहार किया ?

सञ्जयने कहा—राजन् ! तब भाइयोंके सहित आपका पुत्र दुर्योधन भीष्मजीको आगे रखकर सेनासहित बढ़ा। इसी प्रकार भीमसेनके नेतृत्वमें सब पाण्डवलोग भी भीष्मसे युद्ध करनेके लिये प्रसन्नतासे आगे आये। इस प्रकार दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा। पाण्डवोंने हमारी सेनापर आक्रमण किया और हमने उनपर धावा बोल दिया। दोनों ओरसे ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस समय महाबाहु भीमसेन तो साँड़की तरह गरज रहे थे। उनकी दहाड़से आपकी सेनाका हृदय हिल उठा तथा सिंहकी दहाड़ सुनकर जैसे दूसरे जङ्गली जानवरोंका मल-मूत्र निकल जाता है, उसी प्रकार आपकी सेनाके हाथी-घोड़े आदि वाहन भी मल-मूत्र त्यागने लगे। भीमसेन विकट रूप धारण करके आगे बढ़ने लगे। यह देखकर आपके पुत्रोंने उन्हें बाणोंसे इस प्रकार ढक दिया, जैसे मेघ सूर्यको छिपा लेते हैं। इस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, शल, दुःशासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा—ये सभी बड़े-बड़े धनुष चढ़ाकर विषधर सर्पोंके समान बाण छोड़ रहे थे। दूसरी ओरसे द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने बाणोंसे आपके पुत्रोंको पीडित करते हुए बढ़ रहे थे। इस प्रकार प्रत्यञ्चाओंकी भीषण टङ्कारके साथ यह पहला संग्राम हुआ। इसमें दोनों पक्षोंके वीरोंमेंसे किसीने पीछे पैर नहीं रक्खा।

इसके बाद शान्तनुनन्दन भीष्म अपना कालदण्डके समान भीषण धनुष लेकर अर्जुनके ऊपर झपटे और परम तेजस्वी अर्जुन भी अपना जगद्विख्यात गाण्डीव धनुष चढ़ाकर भीष्मपर टूट पड़े। वे दोनों कुरुवीर एक-दूसरेको
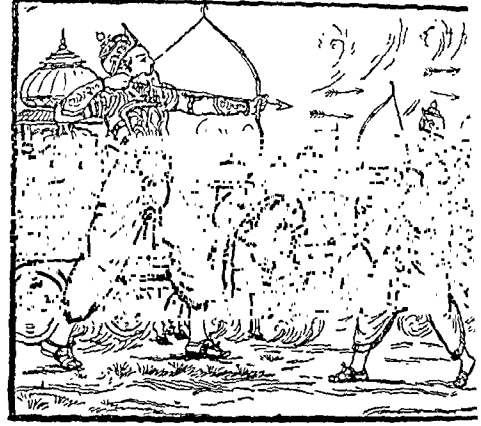
मारनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे। भीष्मने अर्जुनको बींध डाला, फिर भी वे टस-से-मस न हुए। इसी प्रकार अर्जुन भी भीष्मजीको संग्रामसे विचलित नहीं कर सके। इसी समय सात्यकिने कृतवर्मापर आक्रमण किया। उनका भी बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। महान् धनुर्धर कोसलराज बृहद्बलसे अभिमन्यु भिड़ा हुआ था। उसने अभिमन्युके रथकी ध्वजाको काट दिया और सारथिको भी मार डाला। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ। उसने नौ बाण छोड़कर बृहद्बलको बींध दिया तथा दो तीखे बाण छोड़कर एकसे उसकी ध्वजा काट दी और दूसरेसे सारथि और चक्ररक्षकको मार गिराया। भीमसेनका आपके पुत्र दुर्योधनसे संग्राम हो रहा था। ये दोनों महाबली योद्धा रणाङ्गणमें एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उन चित्रयोधी वीरोंको देखकर सभीको बड़ा विस्मय होता था। इसी समय दुःशासन महाबली नकुलसे भिड़ गया और दुर्मुख सहदेवपर चढ़ आया और बाणोंकी वर्षा करके उसे व्यथित करने लगा। तब सहदेवने एक बहुत ही तीखा बाण छोड़कर उसके सारथिको मार डाला। फिर वे दोनों वीर आपसमें बदला लेनेके विचारसे एक दूसरेको भयङ्कर बाणोंसे पीडित करने लगे।

स्वयं महाराज युधिष्ठिर शल्यके सामने आये। मद्रराज

[ग्र]म करने लगे। अनुविन्दने कुन्तिभोजपर गदा चलायी [औ]र कुन्तिभोजने तुरंत ही उसे अपने बाणोंसे ढक दिया। [कु]न्तिभोजके पुत्रने बाण बरसाकर विन्दको व्यथित कर दिया [औ]र विन्दने उसे अपने बाणोंसे विदीर्ण कर दिया। इस [प्रका]र उनमें बड़ा अद्भुत युद्ध होने लगा। केकयदेशके पाँच [सु]न्दर राजपुत्र गन्धारदेशके पाँच राजकुमारोंसे युद्ध करने [लगे]। साथ ही उन दोनों देशोंकी सेनाएँ भी भिड़ गयीं। [राजा वैरा]टका पुत्र वीरबाहु राजा विराटके पुत्र उत्तरसे लड़ने लगा [औ]र उसे अपने पैने बाणोंसे बींध दिया। इसी प्रकार उत्तरने [भी] तीखे-तीखे तीर छोड़कर उस वीरको व्यथित कर दिया। [चे]देराजने उलूकपर धावा किया और बाणोंकी वर्षा करके [उ]से पीडित करने लगा। तथा उलूकने भी उसे तीखे-तीखे [बा]णोंसे बींधना आरम्भ किया। इस प्रकार एक-दूसरेको [वि]दीर्ण करते हुए उनका बड़ा भीषण युद्ध होने लगा।

उस समय सब वीर ऐसे उन्मत्त हो रहे थे कि कोई किसीको पहचान नहीं पाता था। हाथी हाथीके साथ, रथी रथीके साथ, घुड़सवार घुड़सवारके साथ और पैदल पैदलके साथ भिड़े हुए थे। इस प्रकार एक दूसरेसे भिड़कर उन योद्धाओंका बड़ा दुर्धर्ष और घमासान युद्ध होने लगा। उस समय देवता, ऋषि, सिद्ध और चारण भी वहाँ आकर उस देवासुरसंग्रामके समान घोर युद्धको देखने लगे। राजन्! उस संग्रामभूमिमें लाखों पदाति मर्यादा छोड़कर युद्ध कर रहे थे। वहाँ पिता पुत्रकी ओर नहीं देखता था और पुत्र पिताको नहीं गिनता था। इसी प्रकार भाई भाईकी, भानजा मामाकी, मामा भानजे-की और मित्र मित्रकी परवा नहीं करता था। ऐसा जान पड़ता था मानो वे भूतोंसे आविष्ट होकर युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार जब वह संग्राम मर्यादाहीन और अत्यन्त भयानक हो गया तो भीष्मके सामने पड़ते ही पाण्डवोंकी सेना थर्रा उठी।

अभिमन्यु, उत्तर और श्वेतका संग्राम तथा उत्तर और श्वेतका वध

सञ्जयने कहा—राजन्! इस दारुण दिवसका पहला [भा]ग बीतते-बीतते जब अनेकों बाँकुरे वीरोंका भीषण संहार [हो] गया, तब आपके पुत्र दुर्योधनकी प्रेरणासे दुर्मुख, कृतवर्मा, [कृ]प, शल्य और विविंशति पितामह भीष्मके पास चले आये। [इ]न पाँच अतिरथियोंसे सुरक्षित होकर वे पाण्डवोंकी सेनामें [घु]सने लगे। यह देखकर क्रोधातुर अभिमन्यु अपने रथपर [च]ढ़ा हुआ भीष्मजी और उन पाँचों महारथियोंके सामने [आ]कर डट गया। उसने एक पैने बाणसे भीष्मजीकी ताड़के [चि]ह्नवाली ध्वजा काट दी और फिर उन सबके साथ संग्राम [छे]ड़ दिया। उसने कृतवर्माको एक, शल्यको पाँच और [पि]तामहको नौ बाणोंसे बींध दिया। फिर एक झुकी हुई [न]ोकवाले बाणसे दुर्मुखके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया और एक बाणसे कृपाचार्यका धनुष काट डाला। इस प्रकार [र]णभूमिमें नृत्य-सा करते हुए उसने बड़े तीखे बाणोंसे सभी वीरोंपर वार किया। उसका ऐसा हस्तलाघव देखकर देवतालोग भी प्रसन्न हो गये तथा भीष्मादि महारथियोंने भी उसे साक्षात् अर्जुनके समान ही समझा। फिर कृतवर्मा, कृप और शल्यने भी अभिमन्युको बाणोंसे बींध दिया। परन्तु वह मैनाक पर्वतके समान रणभूमिसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ तथा कौरव वीरोंसे घिरे होनेपर भी उस वीर महारथीने उन पाँचों अतिरथियोंपर बाणोंकी झड़ी लगा दी और उनके हजारों बाणोंको रोककर भीष्मजीपर बाण छोड़ते हुए वह भीषण सिंहनाद करने लगा।

राजन्! फिर महाबली भीष्मजीने बड़े ही अद्भुत और भयानक दिव्यास्त्र प्रकट किये और अभिमन्युपर हजारों बाण छोड़कर उसे बिल्कुल ढक दिया। यह उनका बड़ा ही अद्भुत व्यापार हुआ। तब विराट, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, भीम, सात्यकि और पाँच केकयदेशीय राजकुमार—ये पाण्डवपक्षके दस महारथी बड़ी तेजीसे अभिमन्युकी रक्षाके लिये दौड़े। उन्होंने जैसे ही धावा किया कि शान्तनुनन्दन भीष्मने पाञ्चालराज द्रुपदके तीन और सात्यकिके नौ बाण मारे तथा एक बाणसे भीमसेनकी ध्वजा काट डाली। तब भीमसेनने तीन बाणोंसे भीष्मको, एकसे कृपाचार्यको और आठ बाणोंसे कृतवर्माको बींध दिया। राजा विराटके पुत्र उत्तरने हाथीपर चढ़कर बड़े वेगसे शल्यपर धावा किया। हाथीको अपने रथकी ओर बड़ी तेजीसे आता देखकर मद्रराज शल्यने बाणों-द्वारा उसका वेग रोक दिया। इससे वह हाथी चिढ़ गया और उसने रथके जुएपर पैर रखकर उसके चारों घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मरे जानेपर खाली रथमें ही बैठे हुए शल्यने उत्तरके ऊपर एक भीषण शक्ति छोड़ी। उससे उत्तरका कवच फट गया, उसके हाथसे अङ्कुश और तोमर आदि गिर गये और वह अचेत होकर हाथीसे नीचे गिर गया। फिर शल्य तलवार लिये रथसे कूद पड़े और उस हाथीकी सूँड काट दी। इससे वह भयङ्कर चीत्कार करता मर गया। यह पराक्रम करके राजा शल्य कृतवर्माके रथपर चढ़ गये।

जब विराटपुत्र श्वेतने अपने भाई उत्तरको मरा हुआ

मरे जायँ। यह बात मैं तुमसे खोलकर कह रहा हूँ।' राजाका आदेश सुनकर सब महारथी बड़ी फुर्तीसे चतुरङ्गिणी सेनाको साथ लेकर भीष्मजीकी रक्षा करने लगे। बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन और विविंशति—ये सब महारथी बड़ी शीघ्रतासे भीष्मजीको चारों ओरसे घेरकर श्वेतके ऊपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगे। किन्तु महामना श्वेतने अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उन सब बाणोंको रोक दिया। फिर सिंह जैसे हाथियोंको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन सब वीरोंको रोककर उसने अपने बाणोंसे भीष्मजीका धनुष काट दिया। तब भीष्मजीने दूसरा धनुष लेकर उसे बड़े तीखे बाणोंसे बींध डाला। इससे सेनापति श्वेतने क्रोधमें भरकर सबके देखते-देखते अनेकों लोहेके बाणोंसे बींधकर भीष्मजीको व्याकुल कर दिया। इससे राजा दुर्योधनको बड़ी व्यथा हुई और आपकी सेनामें हाहाकार होने लगा। श्वेतके बाणोंसे घायल होकर भीष्मजीको पीछे हटे देखकर बहुत लोग तो यही समझने लगे कि अब श्वेतके हाथमें पड़कर भीष्मजी मारे ही जायँगे। भीष्मजीने जब देखा कि मेरे रथकी ध्वजा काट दी गयी है और सेनाके भी पैर उखड़ गये हैं तो उन्होंने क्रोधमें भरकर चार बाणोंसे श्वेतके चारों घोड़ोंको मार डाला, दो बाणोंसे उसकी ध्वजा काट डाली और एकसे सारथिका सिर काट दिया। सूत और घोड़ोंके मारे जानेपर श्वेत रथसे कूद पड़ा और वह क्रोधसे तिलमिला उठा। श्वेतको रथहीन देखकर भीष्मजीने उसपर सब ओरसे पैने बाणोंकी बौछार की। तब उसने धनुषको अपने रथमें फेंककर एक कालदण्डके समान प्रचण्ड शक्ति ली और 'जरा पुरुषत्व धारण करके खड़े रहो; मेरा पराक्रम देखो' ऐसा कहकर उसे भीष्मजीपर छोड़ दिया। उस भीषण शक्तिको आती देख आपके पुत्र हाहाकार करने लगे। किन्तु भीष्मजी तनिक भी नहीं घबराये। उन्होंने आठ-नौ बाण मारकर उसे बीचहीमें काट

दिया। यह देखकर आपकी ओरके सब लोग जय-जयकार करने लगे।

तब विराटपुत्र श्वेतने क्रोधकी हँसी हँसते हुए भीष्मजीका प्राणान्त करनेके लिये गदा उठायी और बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। भीष्मजीने देखा कि उसके वेगको रोका नहीं जा सकता, अतः वे उसका वार बचानेके लिये पृथ्वीपर कूद पड़े। श्वेतने उसे घुमाकर भीष्मजीके रथपर छोड़ा और उसके लगते ही उनका रथ सारथि, ध्वजा और घोड़ोंके सहित चूर-चूर हो गया। भीष्मजीको रथहीन देखकर शल्य आदि दूसरे रथी अपने-अपने रथ लेकर दौड़े। तब वे दूसरे रथपर चढ़कर हँसते हुए श्वेतकी ओर बढ़े। इसी समय भीष्मको आकाशवाणी हुई—'महाबाहु भीष्म! शीघ्र ही इसे मारनेका उपाय करो। विश्वकर्ता विधाताने यही इसके वधका समय निश्चित किया है।' यह आकाशवाणी सुनकर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और उसे मार डालनेका निश्चय किया। इस समय श्वेतको रथहीन देखकर सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रुपद,

रहा हूँ। अब इन राजाओंको मैं भीष्मरूपी कालके मुखमें नहीं डालना चाहता। भीष्मजी बड़े भारी अस्त्रवेत्ता हैं; उनके पास जाकर मेरे सैनिक उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे, जैसे प्रज्वलित अग्निमें गिरकर पतंगे। केशव! अब मेरे जीवनके जितने दिन शेष हैं, उनमें वनमें रहकर कठोर तपस्या करूँगा; किन्तु इन मित्रोंको युद्धमें मरने न दूँगा। भीष्मजी प्रतिदिन मेरे हजारों महारथियों और श्रेष्ठ योद्धाओंका संहार कर रहे हैं। माधव! तुम्हीं बताओ, अब क्या करनेसे हमारा हित होगा?'

यह कहकर युधिष्ठिर शोकसे बेसुध हो बहुत देरतक आँखें बंद किये मन-ही-मन कुछ सोचते रहे। तब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें शोकसे पीडित जान समस्त पाण्डवोंको आनन्दित करते हुए बोले—'भारत! तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। देखो तो, तुम्हारे भाई कैसे शूरवीर और विश्वविख्यात धनुर्धर हैं। मैं और महान् यशस्वी सात्यकि तुम्हारा प्रिय कार्य करनेमें लगे हैं। ये विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा अन्यान्य महाबली राजालोग तुम्हारे कृपाकांक्षी और भक्त हैं। महाबली धृष्टद्युम्न तो सदा ही तुम्हारा हित-चिन्तक और प्रिय कार्य करनेवाला है, इसने सेनापतित्वका भार लिया है। और यह शिखण्डी तो निश्चय ही भीष्मका काल है।'

श्रीकृष्णकी ये बातें सुनकर युधिष्ठिरने महारथी धृष्टद्युम्नसे कहा, 'धृष्टद्युम्न! मैं जो कुछ कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। आशा है, तुम मेरी बात टालोगे नहीं। तुम हमारे सेनापति हो। भगवान् वासुदेवने तुम्हें यह सम्मान दिया है। पूर्वकालमें जैसे कार्तिकेयजी देवताओंके सेनापति हुए थे, उसी प्रकार तुम भी पाण्डवोंके सेनानायक हो। पुरुषसिंह! अब अपना पराक्रम दिखाओ और कौरवोंका संहार करो। मैं, भीमसेन, अर्जुन, नकुल-सहदेव और द्रौपदीके सभी पुत्र तथा और भी जो प्रधान-प्रधान राजा हैं, सब तुम्हारे पीछे चलेंगे।'

यह सुनकर धृष्टद्युम्नने वहाँ उपस्थित सभी लोगोंको प्रसन्न करते हुए कहा, 'कुन्तीनन्दन! भगवान् श[ं] मुझे पहलेसे ही द्रोणाचार्यका काल बनाया है। आ[ज] भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और जयद्रथ—सभी अभिमानी वीरोंका मुकाबला करूँगा।' शत्रु[] धृष्टद्युम्न जब इस प्रकार युद्धके लिये तैयार हुआ तो रणो[] पाण्डव वीर जय-जयकार करने लगे। तत्पश्चात् युधि[ष्ठिर] सेनापति धृष्टद्युम्नसे कहा, 'देवासुर-संग्राममें बृहस्पति[] इन्द्रके लिये जिस क्रौञ्चारुण नामक व्यूहका उपदेश[] था, उसीकी रचना हमलोग करें।'

दूसरे दिन युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार धृष्टद्युम्नने अ[] को सम्पूर्ण सेनाके आगे रक्खा। रथपर बैठे हुए अर्जुन अ[] रत्नजटित ध्वजा और गाण्डीव धनुषसे ऐसी शोभा पा र[हे थे] जैसे सूर्यकी किरणोंसे सुमेरुपर्वत। राजा द्रुपद बहुत बड़ी [सेना] को साथ लिये उस क्रौञ्चव्यूहके शिरोभागमें स्थित [हुए।] कुन्तिभोज और चेदिराज—ये दोनों नेत्रोंके स्थानपर [खड़े] गये। दाशार्णक, प्रभद्रक, अनूपक और किरातोंका समूह ग्री[वाके] स्थानपर था। पटच्चर, पौण्ड्र, पौरवक और निषादोंके [साथ] राजा युधिष्ठिर उसके पृष्ठभागमें खड़े हुए। उसके पंखोंके स्थानमें भीमसेन और धृष्टद्युम्न थे। द्रौपदीके [पुत्र,] अभिमन्यु, महारथी सात्यकि तथा पिशाच, दरद, [] कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण, बाह्लिक, ति[त्तिर,] चोल और पाण्ड्य देशोंके वीर दक्षिण पक्षमें स्थित हुए[।] अग्निवेश्य, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्भस, वत्[स] नाकुलदेशीय वीरोंके साथ नकुल और सहदेव वाम [पक्षमें] स्थित हुए। इस व्यूहके दोनों पक्षोंमें दस हजार, शिरो[भागमें] एक लाख, पृष्ठभागमें एक अरब बीस हजार और [] एक लाख सत्तर हजार रथ खड़े किये गये थे। दोनों [] आगे, पीछे और सब किनारोंपर पर्वतके समान ऊँचे ग[ज]ों की कतारें थीं। विराट, केकय, काशिराज और शै[ब्य] उसके जंघास्थानकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उस मह[ा] की रचना करके पाण्डव अस्त्र-शस्त्र और कवच [] सुसज्जित हो युद्धके लिये सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगे[।]
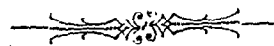
दूसरा दिन-कौरवोंकी व्यूहरचना और अर्जुन तथा भीष्मका युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन्! दुर्योधनने जब उस दुर्भेद्य क्रौञ्चव्यूहकी रचना देखी और अत्यन्त तेजस्वी अर्जुनको उसकी रक्षा करते पाया तो द्रोणाचार्यके पास जाकर वहाँ उपस्थित सभी शूरवीरोंसे कहा—'वीरो! आप सब लोग

नाना प्रकारके अस्त्रसञ्चालनकी विद्या जानते हैं और युद्धकी कलामें प्रवीण हैं। आपमेंसे एक-एक वीर भी युद्धमें पाण्डवोंको मारनेकी शक्ति रखता है; फिर यदि सभी महारथी एक साथ मिलकर उद्योग करें, तब तो कहना ही क्या है!'

उसके इस प्रकार कहनेसे भीष्म, द्रोण और आपके सभी पुत्र मिलकर पाण्डवोंके मुकाबलेमें एक महान् व्यूहकी रचना करने लगे। भीष्मजी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर सबसे आगे चले। उनके पीछे कुन्तल, दशार्ण, मगध, विदर्भ, मेकल तथा कर्णप्रावरण आदि देशोंके वीरोंको साथ लेकर महाप्रतापी द्रोणाचार्य चले। गान्धार, सिन्धुसौवीर, शिबि और वसाति वीरोंके साथ शकुनि द्रोणाचार्यकी रक्षामें नियुक्त हुआ। इनके पीछे अपने सभी भाइयोंके साथ दुर्योधन था। उसके साथ अश्वातक, विकर्ण, अम्बष्ठ, कोसल, दरद, शक, क्षुद्रक और मालव देशके योद्धा थे। इन सबके साथ वह शकुनिकी सेनाकी रक्षा कर रहा था। भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और विन्द-अनुविन्द—ये व्यूहके वाम भागकी रक्षा करने लगे। सोमदत्तका पुत्र, सुशर्मा, कम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु—ये दक्षिण भागके रक्षक हुए। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये बहुत बड़ी सेनाके साथ व्यूहके पृष्ठभागमें खड़े हुए। इनके पृष्ठपोषक थे केतुमान, वसुदान, काशिराजके पुत्र तथा और दूसरे-दूसरे देशोंके राजालोग।

राजन्! तदनन्तर, आपके पक्षके सब योद्धा युद्धके लिये तैयार हो गये और बड़े आनन्दके साथ शंख बजाने एवं सिंहनाद करने लगे। हर्षमें भरे हुए सैनिकोंके सिंहनाद सुनकर कौरवोंके पितामह भीष्मने भी सिंहके समान दहाड़कर उच्च स्वरसे शङ्ख बजाया। तदनन्तर शत्रुओंने भी अनेकों प्रकारके शङ्ख, भेरी, पेशी और आनक आदि बाजे बजाये; उनकी तुमुल ध्वनि सब ओर गूँजने लगी। श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवने भी अपने-अपने शङ्ख बजाये। तथा काशिराज, शैब्य, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, पञ्चालदेशीय वीर और द्रौपदीके पुत्र भी बड़े-बड़े शङ्ख बजाकर सिंहोंके समान दहाड़ने लगे। उनके शङ्खनादकी ऊँची आवाज पृथ्वीसे लेकर आकाशतक गूँज उठी। इस प्रकार कौरव और पाण्डव एक दूसरेको पीडा पहुँचाते हुए युद्धके लिये आमने-सामने खड़े हो गये।

धृतराष्ट्रने पूछा—जब दोनों ओरकी सेना व्यूहरचनापूर्वक खड़ी हो गयी तो योद्धाओंने किस प्रकार एक-दूसरेपर प्रहार करना शुरू किया?

सञ्जयने कहा—जब दोनों ओर समानरूपसे सेनाओंकी व्यूह-रचना हो गयी और सब ओर सुन्दर ध्वजाएँ फहराने लगीं, तब दुर्योधनने अपने योद्धाओंको युद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी। कौरव वीरोंने जीवनका मोह छोड़कर पाण्डवोंपर आक्रमण किया। फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये। हाथी और घोड़ोंके शरीरोंमें असंख्य बाण घुसने लगे। इस प्रकार घमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर पितामह भीष्म अपना धनुष उठाकर अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, कैकेय, विराट और धृष्टद्युम्न आदि वीरोंपर तथा चेदि और मत्स्य देशके राजाओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनकी मारसे पाण्डवोंका व्यूह टूट गया, सारी सेना तितर-बितर हो गयी। कितने ही सवार और घोड़े मारे गये, रथियोंके झुंड-के-झुंड भाग चले।

अर्जुन महारथी भीष्मके ऐसे पराक्रमको देखकर क्रोधमें भर गये और भगवान् श्रीकृष्णसे बोले, 'जनार्दन! अब

पितामह भीष्मके पास रथ ले चलिये, नहीं तो ये हमारी सेनाका अवश्य ही संहार कर डालेंगे । सेनाको बचानेके लिये आज मैं भीष्मका वध करूँगा ।' श्रीकृष्णने कहा—'अच्छा, धनञ्जय ! अब सावधान हो जाओ । यह देखो, मैं अभी तुम्हें पितामहके रथके पास पहुँचाये देता हूँ ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अर्जुनके रथको भीष्मके पास ले चले । भीष्मने जब देखा अर्जुन अपने बाणोंसे शूरवीरोंका मर्दन करते हुए बड़े वेगसे आ रहे हैं, तो आगे बढ़कर उनका सामना किया । उस समय अर्जुनके ऊपर भीष्मने सतहत्तर, द्रोणने पचीस, कृपाचार्यने पचास, दुर्योधनने चौसठ, शल्य और जयद्रथने नौ-नौ, शकुनिने पाँच और विकर्णने दस बाण मारे । इस प्रकार चारों ओरसे तीखे बाणोंसे बिंध जानेपर भी महाबाहु अर्जुन तनिक भी व्यथित या विचलित नहीं हुए । उन्होंने भीष्मको पच्चीस, कृपाचार्यको नौ, द्रोणाचार्यको साठ, विकर्णको तीन, शल्यको तीन और दुर्योधनको पाँच बाणोंसे बींधकर तुरंत बदला चुकाया । इतनेहीमें सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँच पुत्र और अभिमन्यु अर्जुनकी सहायताके लिये आ पहुँचे और उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ।

तब भीष्मने अस्सी बाण मारकर अर्जुनको बींध दिया । यह देख कौरवपक्षके योद्धा हर्षके मारे कोलाहल मचाने लगे । उन महारथी वीरोंका हर्षनाद सुनकर प्रतापी अर्जुन उनके बीचमें घुस गया और महारथियोंको निशाना बनाकर अपने धनुषके खेल दिखाने लगा । अपनी सेनाको अर्जुनसे पीडित देख दुर्योधन भीष्मके पास जाकर बोला, 'तात ! श्रीकृष्णके साथ यह बलवान् अर्जुन हमारी सेनाकी जड़ काट रहा है । आप और आचार्य द्रोणके जीते-जी यह दशा हो रही है ! कर्ण हमारा सदा हित चाहनेवाला है, मगर वह भी अ हीके कारण अपने हथियार छोड़ चुका है; इसीलिये अर्जुनसे लड़ने नहीं आता । पितामह ! कृपया ऐसा उ कीजिये, जिससे अर्जुन मारा जाय ।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर भीष्मजी 'क्षत्रियधर्म धिक्कार है' यह कहकर अर्जुनके रथकी ओर बढ़े । अश्वत्थाम दुर्योधन और विकर्णने भीष्मका साथ दिया । उधर, पाण्ड भी अर्जुनको घेरकर खड़े थे । फिर संग्राम छिड़ा । अर्जुन बाणोंका जाल फैलाकर भीष्मको सब ओरसे ढक दिया भीष्मने भी बाण मारकर उस जालको तोड़ डाला । इ प्रकार दोनों एक दूसरेके प्रहारको विफल करते हुए बड़े उत्साहसे लड़ने लगे । भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूह अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होते दिखायी देते थे । इसी प्रकार अर्जुनके छोड़े हुए बाण भी भीष्मके सायकोंसे कटकर पृथ्वीपर गिर जाते थे । दोनों ही बलवान् थे, दोनों ही अजेय । दोनों एक दूसरेके योग्य प्रतिद्वन्द्वी थे । उस समय कौरव भीष्मको और पाण्डव अर्जुनको उनके ध्वजा आदि चिह्नोंसे ही पहचान पाते थे । उन दोनों वीरोंके पराक्रमको देखकर सभी प्राणी आश्चर्य करते थे । जैसे धर्ममें स्थित रहकर बर्ताव करनेवाले पुरुषमें कोई दोष नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार उनकी रणकुशलतामें कोई भूल नहीं दीखती थी । उस समय कौरव और पाण्डवपक्षोंके योद्धा तीखी धारवाली तलवारों, फरसों, बाणों तथा नाना प्रकारके दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंसे आपसमें मार-काट मचा रहे थे । इस प्रकार जब वह दारुण संग्राम चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यमें गहरी मुठभेड़ हो रही थी ।

धृष्टद्युम्न और द्रोणका तथा भीमसेन और कलिङ्गोंका युद्ध

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! महान् धनुर्धर द्रोणाचार्य और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नमें किस प्रकार युद्ध हुआ, सो मुझे बताओ ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! इस भयानक संग्रामका वर्णन सुस्थिर होकर सुनिये । पहले द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको तीखे बाणोंसे बींध दिया । तब धृष्टद्युम्नने भी हँसकर द्रोणको नब्बे बाणोंसे बींध डाला । यह देख द्रोणने पुनः बाणोंकी वर्षा करके द्रुपदकुमारको ढक दिया और उसका प्राणान्त करनेके लिये द्वितीय कालदण्डके समान एक भयंकर बाण हाथमें लिया । उसे धनुषपर चढ़ाते देख सारी सेनामें हाहाकार मच गया । महाराज ! उस समय वहाँपर धृष्टद्युम्नका अद्भुत पुरुषार्थ मैंने अपनी आँखों देखा । उसने मृत्युके समान भयंकर उस बाणको आते ही काट दिया । फिर द्रोणके प्राण लेनेकी इच्छासे उसने बड़े वेगसे शक्तिका प्रहार किया । उस शक्तिको द्रोणाचार्यने हँसते-हँसते काट दिया और उसके तीन टुकड़े कर डाले । यह देख उसने पुनः पाँच बाणोंसे द्रोणको घायल किया । तब द्रोणने द्रुपदकुमारका धनुष काट दिया, फिर सारथिको रथसे मार गिराया और उसके चारों घोड़ोंको

भी मार डाला। सारथि और घोड़ोंके मर जानेसे जब वह रथहीन हो गया तो हाथमें गदा लेकर रणमें कूद पड़ा और अपना पौरुष दिखाने लगा। इसी समय द्रोणने एक अद्भुत काम किया; धृष्टद्युम्न अभी रथसे उतरा भी नहीं था कि उन्होंने अनेकों बाण मारकर उसके हाथसे गदा गिरा दी। तब वह ढाल और तलवार लेकर बड़े वेगसे द्रोणके ऊपर झपटा, किन्तु आचार्यने बाणोंकी झड़ी लगाकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। यद्यपि उसकी गति रुक गयी, तो भी वह बड़ी फुर्तीके साथ द्रोणके छोड़े हुए बाणोंको ढालसे पीछे हटाने लगा। इतनेमें महाबली भीमसेन सहसा उसकी सहायताके लिये आ पहुँचे। भीमने आते ही सात तीखे बाण मारकर द्रोणाचार्यको बींध डाला और धृष्टद्युम्नको तुरंत अपने रथपर बिठा लिया। तब दुर्योधनने भी द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कलिङ्गराज भानुमान्‌को बहुत बड़ी सेनाके साथ भेजा। महाराज! आपके पुत्रकी आज्ञाके अनुसार कलिङ्गोंकी वह महती सेना भीमसेनके ऊपर चढ़ आयी। द्रोणाचार्य तो विराट और द्रुपदके सामने जा डटे और धृष्टद्युम्न राजा युधिष्ठिरकी सहायताके लिये चला गया। तदनन्तर, भीमसेन और कलिङ्गोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया।

भीमसेन अपने ही बाहुबलके भरोसे धनुष टङ्कारते हुए कलिङ्गराजके साथ युद्ध करने लगे। कलिङ्गराजका एक पुत्र था, उसका नाम था शक्रदेव। उसने अनेकों बाणोंका प्रहार कर भीमसेनके घोड़ोंको मार डाला। भीमसेन बिना रथके हो गये—यह देखकर उसने जोरदार हमला किया और उनपर वर्षाकालके मेघकी भाँति बाणोंकी झड़ी लगा दी। तब भीमने उसके ऊपर एक लोहेकी गदा फेंकी। उस गदाकी चोट खाकर वह सारथिके साथ ही जमीनपर लुढ़क गया। अपने पुत्रको मरते देख कलिङ्गराजने हजारों रथियोंकी सेना लेकर भीमको चारों ओरसे घेर लिया। भीमसेनने वह गदा फेंककर हाथोंमें ढाल और तलवार ले ली। यह देख कलिङ्गराज क्रोधमें भर गया और उसने भीमसेनके प्राण लेनेकी इच्छासे उनपर एक सर्पके समान विषैला बाण छोड़ा। भीमसेनने अपनी तलवारसे उस तीखे बाणके दो टुकड़े कर दिये और उसकी सेनाको भयभीत करते हुए बड़े जोरसे हर्षनाद किया। अब तो कलिङ्गराजके क्रोधकी सीमा न रही। उसने पत्थरपर रगड़कर तीखे किये हुए चौदह तोमर भीमसेनके ऊपर फेंके। भीमसेनने तुरंत तलवारसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और फिर भानुमान्‌पर धावा किया। भानुमान्‌ने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको ढक दिया और उच्चस्वरसे सिंहनाद किया। भीमसेन भी बड़े जोरसे सिंहके समान दहाड़ने लगे। उनका विकट नाद सुनकर कलिङ्गसेना बहुत डर गयी। उसने समझ लिया कि भीमसेन कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं। इतनेमें भीमसेन पुनः भयंकर सिंहनाद करके हाथमें तलवार ले अपने रथसे कूद पड़े और भानुमान्‌के हाथीके दोनों दाँत पकड़कर उसके मस्तकपर चढ़ गये। उन्हें चढ़ते देख भानुमान्‌ने शक्तिका प्रहार किया; पर भीमसेनने अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर दिये और भानुमान्‌की कमरमें तलवारका एक ऐसा हाथ मारा कि

उसके दो टुकड़े हो गये। फिर भीमसेनने उसी तलवारसे उस हाथीके भी कन्धेपर प्रहार किया। कन्धा कट जानेसे हाथी चिग्घाड़ता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। साथ ही भीमसेन भी कूदकर तलवार लिये पृथ्वीपर खड़े हो गये। अब वे बड़े-बड़े हाथियोंको मारते-गिराते चारों ओर घूमने लगे। वे हाथी-सवारोंकी सेनामें घुस जाते और तीखी धारवाली तलवारसे उनके शरीर तथा मस्तक काट डालते थे। भीमसेन उस समय पैदल और अकेले थे, तो भी क्रोधमें भरे हुए प्रलय-कालीन यमराजके समान वे शत्रुओंका भय बढ़ा रहे थे। युद्धभूमिमें विचरते समय वे नाना प्रकारके पैंतरे दिखाते थे—कभी मण्डलाकार चक्कर लगाते, कभी धक्के सहते हुए सब ओर घूमते, कभी ऊँचाईसे चलते, कभी कूद-कर आगे बढ़ते, कभी सब दिशाओंमें समान गतिसे अग्रसर होते, कभी एक ही दिशामें बढ़ते जाते, कभी किसीपर बड़े वेगसे धावा करते और कभी सबके ऊपर एक साथ ही चढ़ाई कर देते थे। वे कूदकर रथोंपर पहुँच जाते और कितने ही रथियोंके मस्तक तलवारसे काटकर रथकी ध्वजाके

साथ ही जमीनपर गिरा देते थे। उन्होंने कितने ही योद्धाओंको पैरोंतले कुचलकर मार डाला, कितनोंको ऊपर उछालकर पटक दिया, कितनोंको तलवारके घाट उतारा, कितनोंको अपनी गर्जनासे डराकर भगाया और कितने ही वीरोंको अपने असह्य वेगसे धराशायी कर दिया। कितनोंहीने तो इन्हें देखते ही भयके मारे प्राण त्याग दिये।

यह सब होनेपर भी कलिङ्गोंकी बहुत बड़ी सेना भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर चढ़ आयी। उसके मुहानेपर श्रुतायुको खड़े देख भीमसेन उसका सामना करनेको बढ़े। उन्हें आते देख श्रुतायुने भीमकी छातीमें नौ बाण मारे। भीमसेन क्रोधसे जल उठे। इतनेहीमें अशोक भीमसेनके लिये एक सुन्दर रथ ले आया। उसपर आरूढ होकर उन्होंने तुरंत कलिङ्गवीर श्रुतायुपर धावा किया। श्रुतायुने पुनः भीमसेनपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। उसके छोड़े हुए नौ तीखे बाणोंसे घायल होकर भीम चोट खाये हुए साँपकी भाँति फुफकारने लगे। महाबली भीमने भी धनुष चढ़ाया और लोहेके सात बाणोंसे श्रुतायुको बींध डाला। साथ ही दो बाणोंसे उसके पहियोंकी रक्षा करनेवाले सत्य और सत्यदेवको यमलोक भेज दिया। फिर तीन बाणोंसे केतुमान्‌के प्राण ले लिये। यह देखकर कलिङ्गवीर श्रुतायुको बड़ा क्रोध हुआ और उसकी सेनाके कई हजार क्षत्रियोंने भीमको घेर लिया। फिर तो चारों ओरसे भीमसेनपर शक्ति, गदा, तलवार, तोमर, ऋष्टि और फरसोंकी वर्षा होने लगी। भीमसेन अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाका निवारण करके हाथमें गदा ले बड़े वेगसे कलिङ्गसेनामें पिल पड़े और सात सौ योद्धाओंको यमराजके घर भेज दिया। इसके बाद पुनः दो हजार कलिङ्ग वीरोंको उन्होंने मौतके घाट उतार दि[illegible] भीमसेनका यह पराक्रम अद्भुत था। इसी प्रकार वे बार[illegible] कलिङ्गोंका संहार करने लगे। महाराज! उस समय [illegible] देखकर आपके पक्षके योद्धा बारंबार यही कहते थे साक्षात् काल ही भीमसेनका रूप धारण कर कलिङ्गोंके [illegible] युद्ध कर रहा है।

तदनन्तर, भीष्मजीने अपने बाणोंसे भीमसेनके घोड़[illegible] मार डाला। तब भीम गदा हाथमें लेकर रथसे कूद प[illegible] इधर, सात्यकिने भीमसेनका प्रिय करनेके लिये भीष्म[illegible] सारथिको मार गिराया। सारथिके गिरते ही घोड़े ह[illegible] बातें करते हुए भीष्मको रणभूमिसे बाहर भगा ले गये भीमसेन कलिङ्गोंका संहार करके अकेले ही सेनाके बीच खड़े थे, तो भी कौरवपक्षके किसी भी वीरकी उनके प[illegible] जानेकी हिम्मत नहीं हुई। इतनेमें धृष्टद्युम्न वहाँ आया [illegible] उन्हें अपने रथपर बिठाकर सबके देखते-देखते अपने दलमें [illegible] गया। भीमसेन पाञ्चाल और मत्स्यदेशीय वीरोंसे मिले सात्यकिने भीमसेनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'ब[illegible] सौभाग्यकी बात है जो आपने कलिङ्गराज भानुमान[illegible] राजकुमार केतुमान्, शक्रदेव तथा अन्य बहुत-से कलि[illegible] वीरोंका संहार किया। कलिङ्गसेनाका व्यूह बहुत बड़ा थ[illegible] इसमें असंख्य हाथी, घोड़े और रथ थे और बड़े-बड़े धीर व[illegible] उसकी रक्षा करते थे। परन्तु आपने अकेले ही अपने बाहुबल[illegible] उसका नाश कर दिया!' इतना कहकर सात्यकिने भीमसेनक[illegible] छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने रथमें बैठाकर उनक[illegible] साहस बढ़ाता हुआ वह पुनः कौरव वीरोंका संहा[illegible] करने लगा।

धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और अर्जुनका पराक्रम

सञ्जयने कहा—उस दिन जब पूर्वाह्णका अधिक भाग व्यतीत हो गया और बहुत-से रथ, हाथी, घोड़े, पैदल और सवार मारे जा चुके तो पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अकेला ही अश्वत्थामा, शल्य और कृपाचार्य—इन तीन महारथियोंके साथ युद्ध करने लगा। उसने अश्वत्थामाके विश्वविख्यात घोड़ोंको दस बाणोंसे मार डाला। वाहनोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा शल्यके रथपर चढ़ गया और वहींसे धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके साथ भिड़े हुए देख सुभद्रानन्दन अभिमन्यु भी तीखे बाणोंकी वर्षा करता हुआ शीघ्र ही आ पहुँचा। उसने शल्यको पचीस, कृपाचार्यको नौ और अश्वत्थामाके आठ बाणोंसे बींध डाला। तब अश्वत्थामाने एक, शल्यने दस और कृपाचार्यने तीन तीखे बाणोंसे अभिमन्युको बींध दिया।

महाराज! इतनेहीमें आपका पोता कुमार लक्ष्मण अभिमन्युको युद्ध करते देख उसका सामना करनेको आ गया। फिर इन दोनोंमें युद्ध होने लगा। क्रोधमें भरे हुए लक्ष्मणने अभिमन्युको अनेकों बाणोंसे बींधकर अद्भुत पराक्रम दिखाया। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए पचास बाणोंसे लक्ष्मणको

बींध डाला। लक्ष्मणने एक बाण मारकर अभिमन्युके धनुषको काट दिया; यह देख कौरवपक्षके वीरोंने बड़ा हर्षनाद किया। अभिमन्युने एक दूसरा अत्यन्त सुदृढ धनुष हाथमें लिया। फिर वे दोनों एक दूसरेका वार बचाते और मारते हुए परस्पर तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करने लगे।

तदनन्तर, अपने महारथी पुत्रको अभिमन्युके बाणोंसे पीडित देख दुर्योधन उसकी सहायताके लिये आ पहुँचा। यह देख अर्जुन भी पुत्रकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे दौड़े। तब भीष्म और द्रोणाचार्य आदि भी अर्जुनका सामना करनेको बढ़ आये। उस समय सभी प्राणी कोलाहल करने लगे। अर्जुनने इतने बाण बरसाये कि अन्तरिक्ष, दिशाएँ, पृथ्वी और सूर्य भी ढक गये, कुछ भी नहीं सूझता था। इस घमासान युद्धमें कितने ही रथ, हाथी और घोड़े मारे गये। रथीलोग रथ छोड़-छोड़कर भागने लगे। महाराज! उस समय आपकी सेनामें एक भी योद्धा ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो शूरवीर अर्जुनका सामना कर सके। जो-जो सामने जाता, वही-वही उनके तीखे बाणोंका निशाना होकर परलोकका अतिथि बन जाता था।

जब आपकी सेनाके वीर चारों ओर भागने लगे, तो श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने-अपने उत्तम शङ्ख बजाये। उस समय भीष्मजीने द्रोणाचार्यसे मुसकराते हुए कहा, 'भगवान् श्रीकृष्णके साथ यह महाबली अर्जुन अकेले ही सारी सेनाका संहार कर रहा है। युद्धमें किसी तरह भी इसे जीतना असम्भव है। इस समय तो इसका रूप प्रलयकालीन यमराजके समान भयङ्कर दिखायी दे रहा है। देखते हैं न, हमारी यह बहुत बड़ी सेना किस तरह एक-दूसरेकी देखादेखी तेजीके साथ भागी जा रही है; अब इसे लौटा लाना बड़ा मुश्किल है। इधर, सूर्य भी अस्ताचलको जा रहा है; अतः इस समय तो सेनाको समेटकर युद्ध बंद करना ही मुझे ठीक जान पड़ता है। हमारे योद्धा थके और डरे हुए हैं, अतः अब उत्साहके साथ युद्ध नहीं कर सकेंगे।' महाराज! आचार्य द्रोणसे यह कहकर भीष्मजीने आपकी सेनाको युद्धभूमिसे लौटा लिया। इस प्रकार सूर्यास्तके समय आपकी और पाण्डवोंकी भी सेनाएँ लौट आयीं।

तीसरा दिन—दोनों सेनाओंकी व्यूह-रचना और घमासान युद्ध

सञ्जयने कहा—जब रात बीती और सबेरा हुआ तो भीष्मने अपनी सेनाको रणभूमिमें चलनेकी आज्ञा दी। वहाँ जाकर उन्होंने सेनाका गरुड-व्यूह रचा और उस व्यूहके अग्रभागमें चोंचके स्थानपर वे स्वयं ही खड़े हुए। दोनों नेत्रोंकी जगह द्रोणाचार्य और कृतवर्मा थे। शिरोभागमें अश्वत्थामा और कृपाचार्य खड़े हुए। इनके साथ त्रैगर्त, कैकेय और वाटधान भी थे। मद्रक, सिन्धुसौवीर और पञ्चनददेशीय वीरोंके साथ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और जयद्रथ—ये कण्ठकी जगह खड़े किये गये थे। अपने भाइयों और अनुचरोंके साथ दुर्योधन पृष्ठभागमें स्थित हुआ। कम्बोज, शक और शूरसेनदेशीय योद्धाओंको साथ लेकर विन्द तथा अनुविन्द उस व्यूहके पुच्छभागमें स्थित हुए। मगध और कलिङ्गदेशकी सेना तथा दासेरकगण उसके दायें पंखकी जगह खड़े हुए तथा कारूष, विकुञ्ज, मुण्ड, कुण्डीवृष आदि योद्धा बृहद्बलके साथ बायें पंखके स्थानपर स्थित हुए।

अर्जुनने कौरवसेनाकी वह व्यूह-रचना देखी तो धृष्टद्युम्नको साथ लेकर उन्होंने अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया। उसके दक्षिण शिखरपर भीमसेन सुशोभित हुए, उनके साथ अनेकों अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न भिन्न-भिन्न देशोंके राजा थे। भीमसेनके पीछे महारथी विराट और द्रुपद खड़े हुए। उनके बाद नील और नीलके बाद धृष्टकेतु थे। धृष्टकेतुके साथ चेदि, काशि और करूष आदि देशोंके सैनिक थे। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी पञ्चाल एवं प्रभद्रकदेशीय योद्धाओंके साथ सेनाके मध्यभागमें स्थित हुए। हाथियोंकी सेनाके साथ धर्मराज युधिष्ठिर भी वहाँ ही थे। उनके बाद सात्यकि और द्रौपदीके पाँच पुत्र थे। फिर अभिमन्यु और इरावान् थे। इनके पश्चात् कैकयवीरोंके साथ घटोत्कच था। अन्तमें व्यूहके वाम शिखरपर अर्जुन स्थित हुए, जिनके रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण थे। इस प्रकार पाण्डवोंने इस महाव्यूहकी रचना की।

तदनन्तर युद्ध आरम्भ हो गया। रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये। रथोंकी घरघराहटके साथ मिला हुआ दुन्दुभियोंका स्वर आकाशमें गूँज रहा था। उभयपक्षके नरवीरोंमें घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। इसी समय अर्जुन कौरव-पक्षके रथियोंकी सेनाका संहार करने लगे। कौरव वीर भी प्राणोंकी परवा न करके पाण्डवोंके मुकाबलेमें डटे रहे। उन्होंने एकाग्र चित्तसे इतना घोर युद्ध किया कि पाण्डवसेनाके पैर उखड़ गये, उसमें भगदड़ मच गयी। तब भीमसेन,

ोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी ापके पुत्रोंकी सेनाको इस प्रकार भगाने लगे, जैसे देवता ानवोंको । इस प्रकार आपसमें मार-काट करते हुए वे खूनसे थपथ क्षत्रिय वीर बड़े भयङ्कर दिखायी देते थे ।

महाराज ! इसी समय दुर्योधन एक हजार रथियोंकी ना लेकर घटोत्कचके सामने आया । इसी प्रकार पाण्डव ी बहुत बड़ी सेनाके साथ भीष्म और द्रोणाचार्यके मुकाबलेमें ा डटे । अर्जुन भी क्रोधमें भरकर समस्त राजाओंपर चढ़ ाये । उन्हें आते देख राजाओंने हजारों रथोंके द्वारा चारों ोरसे घेर लिया और वे उनके रथपर शक्ति, गदा, परिघ, ास, फरसा एवं मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । कन्तु अर्जुनने टिड्डियोंकी कतारके समान आती हुई शस्त्रोंकी उस वृष्टिको अपने बाणोंसे बीचमें ही रोक दिया । उनके इस अलौकिक हस्तलाघवको देखकर देव, दानव, गन्धर्व, पेशाच, सर्प और राक्षस—सभी धन्य-धन्य कहने लगे ।

अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कौरव-सेना विषाद और भयसे काँपती हुई भागने लगी । उसे भागती देख क्रोधमें भरे हुए भीष्म और द्रोणाचार्यने रोका । दुर्योधनको देखकर

कुछ योद्धा लौटने लगे । उन्हें लौटते देख दूसरे भी संकोच-वश लौट आये । सबके लौट आनेपर दुर्योधनने भीष्मजीके पास जाकर कहा, ''पितामह ! मैं जो निवेदन करता हूँ, उसपर ध्यान दीजिये । जबतक आप और आचार्य द्रोण जीवित हैं, अश्वत्थामा, सुहृद्वर्ग तथा कृपाचार्य जबतक मौजूद हैं, तबतक हमारी सेनाका इस तरह भागना आपलोगोंके लिये गौरवकी बात नहीं है । मैं यह कभी नहीं मान सकता कि पाण्डव आपलोगोंके समान योद्धा हैं । अवश्य ही आप उनपर कृपादृष्टि रखते हैं, तभी तो हमारी सेना मारी जा रही है और आप क्षमा किये बैठे हैं । यदि यही बात थी, तो मुझे पहले ही बता देना उचित था कि 'मैं पाण्डवोंसे, धृष्टद्युम्नसे और सात्यकिसे युद्ध नहीं करूँगा ।' उस समय आपकी, आचार्यकी तथा कृप महाराजकी बात सुनकर मैं कर्णके साथ अपने कर्तव्यपर विचार कर लेता । और यदि वास्तवमें आप इस युद्धरूप सङ्कटके समय मुझे त्यागनेयोग्य न समझते हों तो आपलोगोंको अपने पराक्रमके अनुरूप युद्ध करना चाहिये।''

दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीष्म बारंबार हँसते हुए क्रोधसे आँखें फिराकर बोले—'राजन् ! एक-दो बार नहीं, अनेकों बार मैंने तुमसे यह सत्य और हितकर बात बतायी है कि इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी पाण्डवोंको युद्धमें नहीं जीत सकते । अब मैं बूढ़ा हो गया; इस अवस्थामें जो कुछ कर सकता हूँ, उसके लिये अपनी शक्तिभर उठा न रक्खूँगा । तुम अपने भाइयोंके साथ देखो, आज मैं अकेला ही सबके सामने पाण्डवोंको सेनासहित पीछे हटा दूँगा ।'

जब भीष्मने इस प्रकार कहा तो आपके पुत्र प्रसन्न होकर भेरी और शङ्ख आदि बाजे बजाने लगे । उनकी आवाज़ सुनकर पाण्डव भी शङ्ख, भेरी और ढोलका तुमुल नाद करने लगे ।

भीष्मका पराक्रम, श्रीकृष्णका भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना और अर्जुनका पुरुषार्थ

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जब मेरे दुखी पुत्रने उकसाकर भीष्मको क्रोध दिलाया और उन्होंने भयङ्कर युद्धकी प्रतिज्ञा कर ली, तब भीष्मजीने पाण्डवोंके साथ और पाञ्चाल-वीरोंने भीष्मजीके साथ किस प्रकार युद्ध किया ?

सञ्जय कहने लगे—उस दिन जब दिनका प्रथम भाग बीत गया और सूर्यनारायण पश्चिम दिशाकी ओर जाने लगे, तथा विजयी पाण्डव अपनी विजयकी खुशी मना रहे थे, उसी समय पितामह भीष्मजी तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर पाण्डव-सेनाकी ओर बढ़े । उनके साथमें बहुत बड़ी सेना थी और आपके पुत्र सब ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे । उस समय हमलोगोंमें और पाण्डवोंमें रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया । थोड़ी ही देरमें योद्धाओंके हजारों मस्तक और हाथ कट-कटकर जमीनपर गिरने और तड़पने लगे । कितनोंहीके सिर तो कटकर गिर गये, मगर

धड़ धनुष-बाण लिये खड़े ही रह गये। खूनकी नदी बह चली। उस समय कौरव और पाण्डवोंमें जैसा भयानक युद्ध हुआ, वैसा न कभी देखा गया और न सुना ही गया है। उस समय भीष्मजी अपने धनुषको मण्डलाकार करके विषधर साँपोंके समान बाण बरसा रहे थे। रणभूमिमें वे इतनी शीघ्रतासे सब ओर विचर रहे थे कि पाण्डव उन्हें हजारों रूपोंमें देखने लगे। मानो भीष्मने मायासे अपने अनेकों रूप बना लिये हों। जिन लोगोंने उन्हें पूर्वमें देखा, उन्होंने ही उसी समय आँख फेरते ही पश्चिममें भी देखा। एक ही क्षणमें वे उत्तर और दक्षिण-में भी दिखायी पड़े। इस प्रकार उस युद्धमें सर्वत्र वे-ही-वे दिखायी देने लगे। पाण्डवोंमेंसे कोई भीष्मजीको नहीं देख पाता था, उनके धनुषसे छूटे हुए असंख्य बाण ही दिखायी पड़ते थे। लोगोंमें हाहाकार मच गया। भीष्मजी वहाँ अमानवरूपसे विचर रहे थे; उनके पास हजारों राजा अपने विनाशके लिये उसी प्रकार आते थे, जैसे आगके पास पतिंगे। उनका एक भी वार खाली नहीं जाता था।

इस प्रकार अतुल पराक्रमी भीष्मजीकी मार खाकर युधिष्ठिरकी सेना हजारों टुकड़ोंमें बँट गयी। उनकी बाणवर्षासे पीडित होकर वह काँप उठी और इस तरह उसमें भगदड़ मची कि दो आदमी भी एक साथ नहीं भाग सके। इस युद्धमें दैववश पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला तथा मित्र मित्रके हाथसे मारा गया। पाण्डवोंके सैनिक अपने कवच उतारकर बाल खोले हुए रणभूमिसे भागते दिखायी देने लगे। पाण्डवसेनाको इस प्रकार बिखरी देख भगवान् श्रीकृष्णने रथको रोककर अर्जुनसे कहा, ''पार्थ! जिसके लिये तुम्हारी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी, वह समय अब आ गया है। अब जोरदार प्रहार करो, नहीं तो मोहवश प्राणोंसे हाथ धो बैठोगे। पहले तुमने जो राजाओंके समाजमें कहा था कि 'दुर्योधनकी सेनाके भीष्म-द्रोण आदि जो कोई भी वीर मुझसे युद्ध करने आयेंगे, उन सबको मार डालूँगा,' अब उस प्रतिज्ञाको सच्ची करके दिखाओ। अर्जुन! देखो तो अपनी सेना किस तरह तितर-बितर हो गयी है और ये राजा-लोग कालके समान भीष्मजीको देखकर ऐसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहके डरसे छोटे-छोटे जंगली जीव भागते हों।''

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन बोले, 'अच्छा, अब आप घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसागरके बीचसे होकर भीष्मजीके पास रथ ले चलिये, मैं अभी उन्हें युद्धमें मार गिराता हूँ।' तब माधवने घोड़ोंको हाँक दिया और जहाँ भीष्मजीका रथ खड़ा था, उधर ही बढ़ने लगे। अर्जुनको भीष्मजीके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार देख युधिष्ठिरकी भागी हुई सेना लौट आयी। अर्जुनको आते देख भीष्मजीने सिंहनाद किया और उनके रथपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ घोड़ों और सारथिके साथ बाणोंसे छिप गया, दिखायी नहीं देता था। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो बड़े धैर्यवान् थे; वे जरा भी विचलित नहीं हुए, घोड़ोंको बराबर आगे बढ़ाये ही चले गये। इसी समय अर्जुनने अपना दिव्य धनुष उठाया और तीन बाणोंसे भीष्मजीका धनुष काटकर गिरा दिया। भीष्मजीने पलक मारते ही दूसरा महान् धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। किन्तु उसे भी उन्होंने ज्यों ही खींचा अर्जुनने काट दिया। अर्जुनकी यह फुर्ती देखकर भीष्मने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'महाबाहो! तुमने खूब किया, यह महान् पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। बेटा! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; करो मेरे साथ युद्ध।' इस प्रकार पार्थकी बड़ाई करके दूसरा महान् धनुष हाथमें ले वे उनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अश्व-सञ्चालनकी पूरी प्रवीणता दिखायी। वे रथको शीघ्रतापूर्वक मण्डलाकार चलाते हुए भीष्मके बाणोंको प्रायः विफल कर देते थे। यह देख भीष्मने तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको खूब घायल किया। फिर उनकी आज्ञासे द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द और सुदक्षिण आदि वीर तथा प्राच्य, सौवीर, बसाति, क्षुद्रक और मालवदेशीय योद्धा तुरंत ही अर्जुनपर चढ़ आये। वे हजारों घोड़े, पैदल, रथ और हाथियोंके झुंडसे घिर गये। उन्हें उस अवस्थामें देख वीर सात्यकि सहसा उस स्थानपर आ पहुँचा और अर्जुनकी सहायतामें जुट गया। उसने युधिष्ठिरकी सेनाको पुनः भागती देखकर कहा, 'क्षत्रियो! तुम कहाँ चले? यह सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। वीरो! अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ो, वीरधर्मका पालन करो।'

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि पाण्डवसेनाके प्रधान-प्रधान राजा भाग रहे हैं, अर्जुन युद्धमें ठंडे पड़ रहे हैं और भीष्मजी प्रचण्ड होते जाते हैं। यह बात उनसे सही नहीं गयी। उन्होंने सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए कहा—'शिनिवंशके वीर! जो भाग रहे हैं, उनको भागने दो; जो खड़े हैं, वे भी चले जायँ। मैं इन लोगोंका भरोसा नहीं करता। तुम देखो, मैं अभी भीष्म और द्रोणाचार्यको रथसे मार गिराता

हूँ । कौरवसेनाका एक भी रथी मेरे हाथसे बचने नहीं पायेगा । अब मैं स्वयं अपना उग्र चक्र उठाकर महाव्रती भीष्म और द्रोणके प्राण लूँगा तथा धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मारकर पाण्डवोंको प्रसन्न करूँगा । कौरवपक्षके सभी राजाओंका वध करके आज मैं अजातशत्रु युधिष्ठिरको राजा बनाऊँगा ।'

इतना कहकर श्रीकृष्णने घोड़ोंकी लगाम छोड़ दी और हाथमें सुदर्शन चक्र लेकर रथसे कूद पड़े । उस चक्रका

प्रकाश सूर्यके समान और प्रभाव वज्रके सदृश अमोघ था । उसके किनारेका भाग छूरेके समान तीक्ष्ण था । भगवान् कृष्ण बड़े वेगसे भीष्मकी ओर झपटे, उनके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँपने लगी । जैसे सिंह मदान्ध गजराजकी ओर दौड़े, उसी प्रकार वे भीष्मकी ओर बढ़े । उनके श्याम विग्रहपर हवाके वेगसे फहराता हुआ पीताम्बरका छोर ऐसा शोभित होता था, मानो मेघकी काली घटामें बिजली चमक रही हो । हाथमें चक्र उठाये वे बड़े जोरसे गरज रहे थे । उन्हें क्रोधमें भरा देख कौरवोंके संहारका विचार कर सभी प्राणी हाहाकार करने लगे । चक्रके साथ उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो प्रलयकालीन संवर्तक नामक अग्नि सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेको उद्यत हो ।

उन्हें चक्र लिये अपनी ओर आते देख भीष्मजीको तनिक भी भय नहीं हुआ । वे दोनों हाथोंसे अपने महान् धनुषका टंकार करते हुए भगवान्से बोले, 'आइये, आइये, देवेश्वर ! आइये जगदाधार ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । चक्रधारी माधव ! आज बलपूर्वक मुझे इस रथसे मार गिराइये । आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, सबको शरण देनेवाले हैं; आपके हाथसे आज यदि मैं मारा जाऊँगा, तो इहलोक और परलोकमें भी मेरा कल्याण होगा । भगव स्वयं मुझे मारने आकर आपने तीनों लोकोंमें मेरा गं बढ़ा दिया !'

भगवान्को आगे बढ़ते देख अर्जुन भी रथसे उत उनके पीछे दौड़े और पास जाकर उन्होंने उनकी द बाँहें पकड़ लीं । भगवान् रोषमें भरे हुए थे, अर्जु पकड़नेपर भी वे रुक न सके । जैसे आँधी किसी वृक्ष खींचे लिये चली जाय, उसी प्रकार वे अर्जुनको घसी हुए आगे बढ़ने लगे । तब अर्जुन उनकी बाँहें छोड़कर पै पड़ गये । उन्होंने खूब बल लगाकर उनके चरण प लिये और दसवें क़दमपर पहुँचते-पहुँचते किसी प्रकार उ रोका । जब वे खड़े हो गये तो अर्जुनने प्रसन्न होकर उ प्रणाम किया और कहा, 'केशव ! अपना क्रोध शान्त कीजि आप ही पाण्डवोंके सहारे हैं । अब मैं भाइयों और पुत्रों शपथ खाकर कहता हूँ, अपने काममें ढिलाई नहीं करूँग प्रतिज्ञाके अनुसार युद्ध करूँगा ।' अर्जुनकी यह प्रति सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और उनका प्रिय करने लिये पुनः चक्रसहित रथपर जा बैठे । उन्होंने अ पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनिसे दिशाओंको निनादित कर दिया उस समय कौरवोंकी सेनामें कोलाहल मच गया और अर्जुन गाण्डीव धनुषसे सब दिशाओंमें तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा हो लगी ।

तब भूरिश्रवाने अर्जुनपर सात बाण, दुर्योधनने तोमर शल्यने गदा और भीष्मने शक्तिका प्रहार किया । अर्जुन भी सात बाण मारकर भूरिश्रवाके बाणोंको काट दिया क्षुरसे दुर्योधनका तोमर काट डाला तथा एक-एक बाण छोड़कर शल्यकी गदा और भीष्मकी शक्तिको भी टूक-टूक कर दिया । इसके बाद उन्होंने दोनों हाथोंसे गाण्डीव धनुषको खींचकर आकाशमें माहेन्द्र नामक अस्त्र प्रकट किया, देखनेमें वह बड़ा ही अद्भुत और भयानक था । उस दिव्य अस्त्रके प्रभावसे अर्जुनने सम्पूर्ण कौरव-सेनाकी गति रोक दी । उस अस्त्रसे अग्निके समान प्रज्वलित बाणोंकी वृष्टि हो रही थी और शत्रुओंके रथ, ध्वजा, धनुष तथा बाहुओंको काटकर वे बाण राजाओं, हाथियों और घोड़ोंके शरीरोंमें घुस जाते थे । इस प्रकार तेज धारवाले बाणोंका जाल बिछाकर अर्जुनने सम्पूर्ण दिशाओं और उपदिशाओंको आच्छन्न कर दिया और गाण्डीव धनुषकी टंकारसे शत्रुओंके मनमें अत्यन्त पीडा भर दी । रथी

भीष्मपितामहपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा

नदी बहने लगी। कौरव-सेनाके प्रमुख वीरोंका नाश हुआ देखकर चेदि, पञ्चाल, करूष और मत्स्यदेशीय योद्धा तथा समस्त पाण्डव हर्षनाद करने लगे। अर्जुन और श्रीकृष्णने भी हर्ष प्रकट किया।

तदनन्तर, सूर्यदेव अपनी किरणोंको समेटने लगे। इधर कौरव-वीरोंके शरीर अस्त्र-शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे, युगान्तकालके समान सब ओर फैला हुआ अर्जुनका ऐन्द्र अस्त्र भी अब सबके लिये असह्य हो चुका था—इन सब बातोंका विचार करके सन्ध्याकाल उपस्थित देख भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और बाह्लीक आदि कौरव वीर सेनासहित शिविरको लौट गये। अर्जुन भी शत्रुओंपर विजय और यश पाकर भाइयों और राजाओंके साथ छावनीमें चले गये। कौरवोंके सैनिक शिविरमें लौटते समय एक-दूसरेसे कहने लगे—'अहो! आज अर्जुनने बहुत बड़ा पराक्रम दिखाया है, दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। अपने ही बाहुबलसे उन्होंने अम्बष्ठपति, श्रुतायु, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृप, जयद्रथ, बाह्लीक, भूरिश्रवा, शल, शल्य और भीष्मसहित अनेकों योद्धाओंपर विजय पायी है।'

सांयमनिपुत्र और कुछ धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध तथा घटोत्कच और भगदत्तका युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन्! रात बीतनेपर चौथे दिन प्रातःकाल ही भीष्मजी बड़े क्रोधमें भरकर सारी सेनाके सहित शत्रुओंके सामने आये। उस समय द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाह्लीक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, जयद्रथ तथा अनेकों दूसरे राजालोग उनके साथ-साथ चल रहे थे। भीष्मजीने सीधे अर्जुनपर ही धावा किया तथा उनके साथ द्रोणाचार्यादि सभी वीर एवं कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन और भूरिश्रवा भी उन्हींपर टूट पड़े। यह देखते ही सर्वशस्त्रज्ञ अभिमन्यु उनके सामने आया। उसने उन महारथियोंके सब अस्त्र-शस्त्र काट डाले और रणाङ्गणमें शत्रुओंके खूनकी नदी बहा दी। भीष्मजीने अभिमन्युको छोड़कर अर्जुनपर आक्रमण किया। किन्तु किरीटीने मुसकराकर अपने गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे उनके शस्त्रसमूहको नष्ट कर दिया और उनपर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाना आरम्भ किया। तब भीष्मजीने अपने बाणोंसे अर्जुनके शस्त्रसमूहको नष्ट कर दिया। इस प्रकार कुरु और सृञ्जय वीरोंने भीष्म और अर्जुनका वह अद्भुत द्वन्द्वयुद्ध देखा।

इधर अभिमन्युको द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनिके पुत्रने घेर लिया। उन पाँच पुरुषसिंहोंके साथ अकेला युद्ध करता हुआ अभिमन्यु ऐसा जान पड़ता था मानो कोई शेरका बच्चा पाँच हाथियोंसे लड़ रहा हो। निशाना लगानेकी सफाई, शूरवीरता, पराक्रम और फुर्तीमें कोई भी वीर अभिमन्युकी बराबरी नहीं कर सकता था। राजन्! जब आपके पुत्रोंने देखा कि सेना बड़ी तंग आ गयी है तो उन्होंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया। परन्तु अपने तेज और बलके कारण अभिमन्युने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी। वह निर्भय होकर कौरवोंकी सेनाके सामने आकर डट गया। उसने एक बाणसे अश्वत्थामाको और पाँचसे शल्यको घायल कर आठ बाणोंद्वारा सांयमनिके पुत्रकी ध्वजा काट दी। फिर भूरिश्रवाकी छोड़ी हुई एक सर्पके समान प्रचण्ड शक्तिको अपनी ओर आती देख उसे भी एक पैने बाणसे काट डाला। इस समय शल्य बड़े वेगसे बाण-वर्षा कर रहे थे। अभिमन्युने उसे रोककर उनके चारों घोड़े मार डाले। इस प्रकार भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, सांयमनि और शल—इनमेंसे कोई भी अभिमन्युके बाहुबलके आगे नहीं टिक सका।

अब दुर्योधनकी आज्ञासे त्रिगर्त्त, मद्र और केकय देशके पचीस हजार वीरोंने अर्जुन और अभिमन्यु दोनोंको घेर लिया। यह देखकर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सेना लेकर बड़े क्रोधसे मद्र और केकय देशके वीरोंपर टूट पड़ा। उसने दस बाणोंसे दस मद्रदेशीय वीरोंको, एकसे कृतवर्माके पृष्ठरक्षकको और एकसे पौरवके पुत्र दमनको मार डाला। इतनेहीमें सांयमनिके पुत्रने तीस बाणोंसे धृष्टद्युम्नको और दससे उसके सारथिको बींध दिया। तब धृष्टद्युम्नने अत्यन्त पीडित होकर एक पैने बाणसे सांयमनिपुत्रका धनुष काट डाला। तथा पचीस बाण छोड़कर उसके घोड़ोंको और रथके इधर-उधर रहनेवाले सारथियोंको मार गिराया। सांयमनिपुत्र तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और बड़ी तेजीसे पैदल ही रथमें बैठे हुए अपने शत्रुके पास पहुँचा। यह देखकर धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर गदाके प्रहारसे उसका सिर फोड़ दिया। गदाकी चोटसे ज्यों ही वह पृथ्वीमें गिरा कि उसके हाथसे वह तलवार और ढाल भी छूटकर दूर जा पड़ीं।

इस प्रकार उस महारथी राजकुमारके मारे जानेसे आपकी सेनामें बड़ा हाहाकार होने लगा। जब सांयमनिने अपने

पुत्रको मरा हुआ देखा तो वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नकी ओर चला । वे दोनों वीर आमने-सामने आकर रणाङ्गणमें भिड़ गये तथा कौरव, पाण्डव और समस्त राजालोग उनका युद्ध देखने लगे । सांयमनिने क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नके तीन बाण मारे तथा दूसरी ओरसे शल्यने भी उसपर प्रहार किया । शल्यके नौ बाण लगनेसे धृष्टद्युम्नको बड़ी व्यथा हुई, तब उसने क्रोधमें भरकर फौलादके बाणोंसे मद्रराजका नाकमें दम कर दिया । कुछ देरतक उन दोनों महारथियोंका युद्ध समानरूपमें चलता रहा; उनमें किसीकी भी न्यूनाधिकता मालूम नहीं हुई । इतनेहीमें महाराज शल्यने एक पैने बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट डाला तथा उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया ।

यह देखकर अभिमन्यु बड़े क्रोधमें भरकर मद्रराजके रथकी ओर दौड़ा और बड़े तीखे बाणोंसे उन्हें बींधने लगा । तब दुर्योधन, विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र—ये सब योद्धा मद्रराजकी रक्षा करने लगे । किन्तु भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँच पुत्र, अभिमन्यु और नकुल-सहदेवने इन्हें रोक दिया । ये सब वीर बड़े उत्साहसे आपसमें युद्ध करने लगे । इन दोनों पक्षोंके दस-दस रथियोंका भयङ्कर युद्ध आरम्भ होनेपर उसे आपके और पाण्डवोंके पक्षके दूसरे रथी दर्शकोंकी तरह देखने लगे । दुर्योधनने अत्यन्त क्रोधमें भरकर चार तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बींध दिया तथा दुर्मर्षणने बीस, चित्रसेनने पाँच, दुर्मुखने नौ, दुःसहने सात, विविंशतिने पाँच और दुःशासनने तीन बाण छोड़कर उसे घायल किया । तब धृष्टद्युम्नने भी अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उनमेंसे प्रत्येकको पचीस-पचीस बाण मारे । तथा अभिमन्युने दस-दस बाणोंसे सत्यव्रत और पुरुमित्रको बींध दिया । नकुल और सहदेवने अचरज-सा दिखाते हुए अपने मामा शल्यपर तीखे-तीखे बाण चलाये । तब शल्यने भी अपने भानजोंपर अनेकों बाण छोड़े । किन्तु माद्रीकुमार नकुल और सहदेव बाणोंसे बिल्कुल ढक जानेपर भी अपने स्थानसे तिलभर नहीं डिगे ।

भीमसेनने जब दुर्योधनको अपने सामने देखा तो सारे झगड़ेका अन्त कर देनेके लिये एक गदा उठायी । भीमसेनको गदा धारण किये देख आपके सब पुत्र डरकर भाग गये । तब दुर्योधनने क्रोधमें भरकर मगधराजको उसकी दस हजार गजारोही सेनाके सहित आगे करके भीमसेनपर धावा किया । बस, भीमसेन रथसे कूदकर अपनी गदासे हाथियोंको कुचलते हुए रणक्षेत्रमें विचरने लगे । उस समय भीमसेनकी दिलको दहलानेवाली दहाड़ सुनकर सब हाथी सुन्न-से हो गये । तब द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न—ये पाण्डवपक्षके वीर भीमसेनकी पीछेसे रक्षा करते हुए अपने पैने बाणोंसे मागधीसेनाके गजारोही वीरोंके सिर काटने लगे । यह देखकर मगधराजने अपने ऐरावतके समान विशालकाय हाथीको अभिमन्युके रथकी ओर पेल दिया । किन्तु वीर अभिमन्युने एक ही बाणमें उस हाथीका काम तमाम कर दिया और एक ही बाणसे वाहनहीन मगधराजका सिर उड़ा दिया । भीमसेन भी उस गजारोही सेनामें घूम-घूमकर हाथियोंको मारने लगे । उस समय हमने भीमसेनके
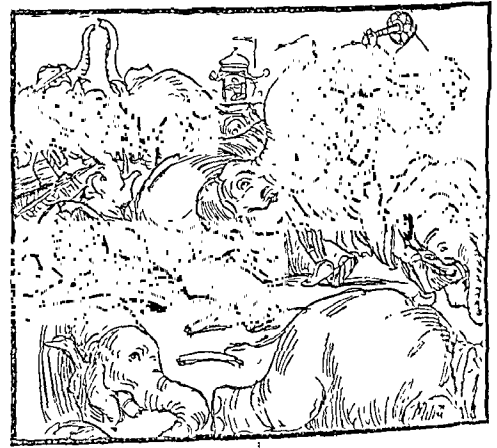
एक-एक प्रहारसे ही हाथियोंको लोट-पोट होते देखा था । क्रोधातुर भीमसेनकी चोट खाकर वे हाथी भयसे इधर-उधर भागकर आपकी ही सेनाको रौंदे डालते थे । उस समय अपनी गदाको सब ओर घुमाते हुए भीमसेन ऐसे जान पड़ते थे, मानो साक्षात् शङ्कर ही रणाङ्गणमें नृत्य कर रहे हों ।

इसी समय हजारों रथियोंके सहित आपके पुत्र नन्दकने अत्यन्त कुपित होकर भीमसेनपर आक्रमण किया । उसने भीमसेनपर छः बाण छोड़े तथा दूसरी ओरसे दुर्योधनने नौ बाणोंसे उनके वक्षःस्थलपर वार किया । तब महाबाहु भीम अपने रथपर चढ़ गये और अपने सारथि विशोकसे बोले, 'देखो, ये महारथी धृतराष्ट्रपुत्र मेरे प्राणोंके ग्राहक होकर आये हैं, सो मैं तुम्हारे सामने ही इनका सफाया कर दूँगा । इसलिये तुम सावधानीसे मेरे घोड़ोंको इनके सामने ले चलो ।' सारथिसे ऐसा कहकर उन्होंने तीन बाण नन्दककी छातीमें मारे । इधर दुर्योधनने भी साठ बाणोंसे भीमसेनको और

तीनसे उनके सारथिको घायल कर दिया। फिर तीन पैने बाण छोड़कर उसने हँसते-हँसते उनका धनुष भी काट डाला। तब भीमसेनने एक दूसरा दिव्य धनुष लिया और उसपर एक तीखा बाण चढ़ाकर उससे दुर्योधनका धनुष काट डाला। दुर्योधनने भी तुरंत ही एक दूसरा धनुष लिया और उससे एक भयङ्कर बाण छोड़कर भीमसेनकी छातीपर चोट की। उस बाणसे व्यथित होकर भीमसेन रथके पिछले भागमें बैठ गये और उन्हें मूर्च्छा हो गयी।

भीमसेनको मूर्च्छित देखकर अभिमन्यु आदि पाण्डवपक्षके महारथी असहिष्णु हो उठे और दुर्योधनके सिरपर पैने-पैने शस्त्रोंकी भीषण वर्षा करने लगे। इतनेहीमें भीमसेनको चेत हो गया। उन्होंने दुर्योधनपर पहले तीन और फिर पाँच बाण छोड़े। इसके बाद पचीस बाण राजा शल्यके मारे। उनसे घायल होकर मद्रराज मैदान छोड़कर चले गये। तब आपके चौदह पुत्र सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम भीमसेनके ऊपर चढ़ आये। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। उन्होंने एक साथ ही बहुत-से बाण छोड़कर भीमसेनको घायल कर दिया। आपके पुत्रोंको अपने सामने देखकर महाबली भीमसेन उनपर इस प्रकार टूट पड़े, जैसे भेड़िया पशुओंपर टूटता है। फिर उन्होंने गरुड़के समान लपककर एक पैने बाणसे सेनापतिका सिर काट डाला, तीन बाणोंसे जलसन्धको घायल करके [य]मपुर भेज दिया, सुषेणको मारकर मृत्युके हवाले कर दिया, [उ]ग्रका मुकुट और कुण्डलोंसे विभूषित सिर काटकर पृथ्वीपर [गि]रा दिया तथा सत्तर बाणोंसे वीरबाहुको उसके घोड़े, ध्वजा [औ]र सारथिके सहित धराशायी कर दिया। इसी तरह उन्होंने [भी]म, भीमरथ और सुलोचनको भी सब सेनानियोंके देखते-[दे]खते यमराजके घर भेज दिया। भीमसेनका ऐसा प्रबल [प]राक्रम देखकर आपके शेष पुत्र डरके मारे इधर-उधर [भा]ग गये।

तब भीष्मजीने सब महारथियोंसे कहा, 'देखो, यह [भ]ीमसेन धृतराष्ट्रके महारथी पुत्रोंको मारे डालता है। अरे! [इ]से फौरन पकड़ लो, देरी मत करो।' भीष्मजीका ऐसा आदेश पाकर कौरवपक्षके सभी सैनिक क्रोधमें भरकर महाबली भीमसेनके ऊपर टूट पड़े। उनमेंसे भगदत्त अपने मदोन्मत्त हाथीपर चढ़े हुए सहसा भीमसेनके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको बिल्कुल ढक दिया। अभिमन्यु आदि वीर यह सब नहीं देख सके। उन्होंने भी बाण बरसाकर भगदत्तको चारों ओरसे आच्छादित कर दिया और उनके हाथीको घायल कर डाला। किन्तु भगदत्तके हाँकनेपर वह हाथी उन महारथियोंके ऊपर ऐसे वेगसे दौड़ा, मानो कालसे प्रेरित यमराज ही हो। उसके उस भीषण रूपको देखकर सब महारथियोंका साहस ठंडा पड़ गया और उन्हें वह असह्य-सा जान पड़ा। इसी समय भगदत्तने क्रोधमें भरकर एक बाण भीमसेनकी छातीमें मारा। उससे घायल होकर भीमसेन अचेत-से हो गये और अपने रथकी ध्वजाके डंडेका सहारा लेकर बैठ गये। यह देखकर महाप्रतापी भगदत्त बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे।

भीमसेनको ऐसी स्थितिमें देखकर घटोत्कचको बड़ा क्रोध हुआ और वह वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर उसने ऐसी भीषण माया फैलायी, जिसे देखकर कच्चे-पक्के लोगोंका तो हृदय बैठ गया। आधे ही क्षणमें वह बड़ा भयंकर रूप धारण किये अपनी ही मायासे रचे हुए ऐरावत हाथीपर चढ़कर प्रकट हुआ। उसने भगदत्तको उनके हाथीसहित मार डालनेके विचारसे उनपर अपना हाथी छोड़ दिया। वह चतुर्दन्त गजराज भगदत्तके हाथीको बहुत पीड़ित करने लगा, जिससे कि वह अत्यन्त आतुर होकर वज्रपातके समान बड़े जोरसे चिग्घाड़ने लगा। उसका वह भीषण नाद सुनकर भीष्मजीने आचार्य द्रोण और राजा दुर्योधनसे कहा, 'इस समय महान् धनुर्धर राजा भगदत्त हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचसे युद्ध करते-करते बड़ी आपत्तिमें फँस गये हैं। इसीसे पाण्डवोंकी हर्षध्वनि और अत्यन्त डरे हुए हाथीका रोदनशब्द सुनायी दे रहा है। इसलिये चलो, हम सब राजा भगदत्तकी रक्षा करनेके लिये चलें। यदि उनकी रक्षा न की गयी तो वे बहुत जल्द प्राण त्याग देंगे। देखो, वहाँ बड़ा ही भीषण और रोमाञ्चकारी संग्राम हो रहा है। अतः वीरो! शीघ्रता करो, देरी मत करो। आओ, अभी वहाँ चलें।'

भीष्मजीकी बात सुनकर सभी वीर भगदत्तकी रक्षाके

लिये भीष्म और द्रोणके नेतृत्वमें चले। उस सेनाको देखकर प्रतापी घटोत्कच बिजलीकी कड़कके समान बड़े जोरसे गरजा। उसकी वह गर्जना सुनकर भीष्मजीने द्रोणाचार्यसे कहा, 'मुझे इस समय दुरात्मा घटोत्कचके साथ संग्राम करना अच्छा नहीं जान पड़ता, क्योंकि यह बड़ा बल-वीर्यसम्पन्न है और इसे अन्य वीरोंसे सहायता भी मिल रही है। इस समय तो वज्रधर इन्द्र भी इसे नहीं जीत सकेगा। अतः अब पाण्डवोंके साथ युद्ध करना ठीक नहीं होगा; बस, आज यहीं युद्ध बंद करनेकी घोषणा कर दी जाय। अब शत्रुओंके साथ हमारा कल संग्राम होगा।'

कौरवलोग घटोत्कचके आतङ्कसे घबराये हुए थे ही। इसलिये भीष्मजीकी बात सुनकर उन्होंने युक्तिपूर्वक युद्ध बंद करनेकी घोषणा कर दी। सायंकाल हो रहा था। आज कौरवलोग पाण्डवोंसे पराजित होनेके कारण लज्जित होकर अपने डेरेपर लौटे। पाण्डवलोग तो भीमसेन और घटोत्कचको आगे करके प्रसन्नतासे शंखध्वनिके साथ सिंहनाद करते हुए अपने शिविरपर आये; किन्तु भाइयोंका वध होनेके कारण

राजा दुर्योधन बहुत ही चिन्तित और शोकाकुल हो रहा था।

सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको भीष्मजीके मुखसे कही हुई श्रीकृष्णकी महिमा सुनाना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवोंका ऐसा पराक्रम सुनकर मुझे बड़ा ही भय और विस्मय हो रहा है। सब ओरसे मेरे पुत्रोंका ही पराभव हो रहा है—यह सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता होती है कि अब मेरे पक्षकी जीत कैसे होगी। निश्चय ही, विदुरके वाक्य मेरे हृदयको भस्म कर डालेंगे! भीम अवश्य ही मेरे सब पुत्रोंको मार डालेगा। मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता, जो संग्रामभूमिमें उनकी रक्षा कर सके। सूत! मैं एक बात पूछता हूँ; ठीक-ठीक बताओ, पाण्डवोंमें ऐसी शक्ति कहाँसे आ गयी?

सञ्जयने कहा—राजन्! आप सावधानीसे सुनिये और सुनकर वैसा ही निश्चय कीजिये। इस समय जो कुछ हो रहा है, वह किसी भी मन्त्र या मायाके कारण नहीं है। बात यह है कि महाबली पाण्डवलोग सर्वदा धर्ममें तत्पर रहते हैं और जहाँ धर्म होता है, वहीं जय हुआ करती है। इसीसे युद्धमें वे अवध्य हो रहे हैं और उन्हींकी जीत भी हो रही है। आपके पुत्र दुष्टचित्त, पापपरायण, निष्ठुर और कुकर्मी हैं; इसलिये वे युद्धमें नष्ट हो रहे हैं। इन्होंने नीच पुरुषोंके समान पाण्डवोंके प्रति अनेकों क्रूरताएँ की हैं। अब उन्हें उन निरन्तर किये हुए पापकर्मोंका भयंकर फल प्राप्त होनेका समय आया है। इसलिये पुत्रोंके साथ अब आप भी उसे भोगिये। आपके सुहृद् विदुर, भीष्म, द्रोण और मैंने भी आपको बार-बार रोका; किन्तु आपने हमारी बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। जिस प्रकार मरणासन्न पुरुषको औषध और पथ्य अच्छे नहीं लगते, वैसे ही आपको अपने हितकी बात अच्छी नहीं मालूम हुई। अब आप जो मुझसे पाण्डवोंकी विजयका कारण पूछते हैं, सो इस विषयमें मैंने जैसा सुना है वह बताता हूँ। उस दिन अपने भाइयोंको युद्धमें पराजित हुआ देखकर राजा दुर्योधनने रात्रिके समय पितामह भीष्मजीसे पूछा, 'दादाजी! मैं समझता हूँ कि आप, द्रोणाचार्य, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण और भगदत्त आदि महारथी तीनों लोकोंके साथ संग्राम करनेमें समर्थ हैं। किन्तु आप सब मिलकर भी

पाण्डवोंके पराक्रमके सामने नहीं टिक पाते। यह देखकर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। कृपया बताइये, पाण्डवोंमें ऐसी क्या बात है जिसके कारण वे हमें क्षण-क्षणमें जीत रहे हैं?

भीष्मजीने कहा—राजन्! इन उदारकर्मा पाण्डवोंकी अवध्यताका एक कारण है; वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी पुरुष न तो है, न हुआ है और न होगा ही जो श्रीकृष्णसे सुरक्षित इन पाण्डवोंको परास्त कर सके। इस विषयमें पवित्रात्मा मुनियोंने मुझे एक इतिहास सुनाया है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर समस्त देवता और मुनिगण पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। उस समय उन सबके बीचमें बैठे हुए ब्रह्माजीने आकाशमें एक तेजोमय विमान देखा। तब उन्होंने ध्यानद्वारा सब रहस्य जानकर प्रसन्न चित्तसे परमपुरुष परमेश्वरको प्रणाम किया। ब्रह्माजीको खड़े होते देख सब देवता और ऋषि भी हाथ जोड़े खड़े हो गये और वह अद्भुत प्रसङ्ग देखने लगे। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने बड़े विधि-विधानसे भगवान्का पूजन किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित करनेवाले, विश्वस्वरूप और विश्वके स्वामी हैं। विश्वमें सब ओर आपकी सेना है। यह विश्व आपका कार्य है। आप सबको अपने वशमें रखनेवाले हैं। इसीलिये आपको विश्वेश्वर और वासुदेव कहते हैं। आप योगस्वरूप देवता हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। विश्वरूप महादेव! आपकी जय हो; लोकहितमें लगे रहनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले योगीश्वर! आपकी जय हो। योगके आदि और अन्त! आपकी जय हो। आपकी नाभिसे लोककमलकी उत्पत्ति हुई है, आपके नेत्र विशाल हैं, आप लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं; आपकी जय हो। भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी आपकी जय हो। आपका स्वरूप सौम्य है, मैं स्वयम्भू ब्रह्मा आपका पुत्र हूँ। आप असंख्य गुणोंके आधार और सबको शरण देनेवाले हैं, आपकी जय हो। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नारायण! आपकी महिमाका पार पाना बहुत ही कठिन है, आपकी जय हो। आप समस्त कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न, विश्वमूर्ति और निरामय हैं; आपकी जय हो। जगत्का अभीष्टसाधन करनेवाले महाबाहु विश्वेश्वर! आपकी जय हो। आप महान् शेषनाग और महावराह-रूप धारण करनेवाले हैं, सबके आदि कारण हैं, किरणें ही आपके केश हैं। प्रभो! आपकी जय हो, जय हो। आप किरणोंके धाम, दिशाओंके स्वामी, विश्वके आधार, अप्रमेय और अविनाशी हैं। व्यक्त और अव्यक्त—सब आपहीका स्वरूप है, आपके रहनेका स्थान असीम—अनन्त है। आप इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, आपके सभी कर्म शुभ-ही-शुभ हैं। आपकी कोई इयत्ता नहीं है, आप स्वभावतः गम्भीर और भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हैं; आपकी जय हो। ब्रह्मन्! आप अनन्त बोधस्वरूप हैं, नित्य हैं और सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। आपको कुछ करना बाकी नहीं है, आपकी बुद्धि पवित्र है, आप धर्मका तत्त्व जाननेवाले और विजयप्रदाता हैं। पूर्णयोगस्वरूप परमात्मन्! आपका स्वरूप गूढ़ होता हुआ भी स्पष्ट है। अबतक जो हो चुका है और जो हो रहा है, सब आपका ही रूप है। आप सम्पूर्ण भूतोंके आदि कारण और लोकतत्त्वके स्वामी हैं। भूतभावन! आपकी जय हो। आप स्वयंभू हैं, आपका सौभाग्य महान् है। आप इस कल्पका संहार करनेवाले एवं विशुद्ध परब्रह्म हैं। ध्यान करनेसे अन्तःकरणमें आपका आविर्भाव होता है, आप जीवमात्रके प्रियतम परब्रह्म हैं; आपकी जय हो। आप स्वभावतः संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त रहते हैं, आप ही सम्पूर्ण कामनाओंके स्वामी परमेश्वर हैं। अमृतकी उत्पत्तिके स्थान, सत्स्वरूप, मुक्तात्मा और विजय देनेवाले आप ही हैं। देव! आप ही प्रजापतियोंके भी पति, पद्मनाभ और महाबली हैं। आत्मा और महाभूत भी आप ही हैं। सत्त्वस्वरूप परमेश्वर! आपकी जय हो। पृथ्वीदेवी आपके चरण हैं, दिशाएँ बाहु हैं और द्युलोक मस्तक है। अहङ्कार आपकी मूर्ति, देवता शरीर और चन्द्रमा तथा सूर्य नेत्र हैं। तप और सत्य आपका बल है तथा धर्म और कर्म आपका स्वरूप है। अग्नि आपका तेज, वायु साँस और जल पसीना है। अश्विनीकुमार आपके कान और सरस्वतीदेवी आपकी जिह्वा हैं। वेद आपकी संस्कारनिष्ठा हैं। यह जगत् आपहीके आधारपर टिका हुआ है। योग-योगीश्वर! हम न तो आपकी संख्या जानते हैं, न परिमाण। आपके तेज, पराक्रम और बलका भी हमें पता नहीं है। देव! हम तो आपके भजनमें लगे रहते हैं। आपके नियमोंका पालन करते हुए आपकी ही शरणमें पड़े रहते हैं। विष्णो! सदा आप परमेश्वर एवं महेश्वरका पूजन ही हमारा काम है। आपहीकी कृपासे हमने पृथ्वीपर ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े आदिकी सृष्टि की है। पद्मनाभ! विशाललोचन! दुःखहारी श्रीकृष्ण! तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रय और नेता हो, तुम्हीं संसारके गुरु हो।

आपकी कृपादृष्टि होनेसे ही सब देवता सदा सुखी रहते हैं। देव! आपके ही प्रसादसे पृथ्वी सदा निर्भय रही है, इसलिये विशाललोचन! आप पुनः पृथ्वीपर यदुवंशमें अवतार लेकर उसकी कीर्ति बढ़ाइये। प्रभो! धर्मकी स्थापना, दैत्योंके वध और जगत्की रक्षाके लिये हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये। भगवन् वासुदेव! आपका जो परम गुह्य स्वरूप है, उसका इस समय आपकी ही कृपासे हमने कीर्तन किया है।'

तब दिव्यरूप श्रीभगवान्ने अत्यन्त मधुर और गम्भीर वाणीमें कहा, 'तात! तुम्हारी जो इच्छा है, वह मुझे योगबलसे मालूम हो गयी है; वह पूर्ण होगी।' ऐसा कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। यह देखकर देवता, गन्धर्व और ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने बड़े कौतूहलसे ब्रह्माजीसे पूछा, 'भगवन्! आपने जिनकी ऐसे श्रेष्ठ

शब्दोंमें स्तुति की, वे कौन थे? उनके विषयमें हम कुछ सुनना चाहते हैं।' तब भगवान् ब्रह्माने मधुर वाणीमें कहा, "ये स्वयं परब्रह्म थे, जो समस्त भूतोंके आत्मा, प्रभु और परमपदस्वरूप हैं। मैंने संसारके कल्याणके लिये उनसे प्रार्थना की है कि 'आपने जिन दैत्य, दानव और राक्षसोंका संग्राममें वध किया था, वे इस समय मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हु[ए हैं।] अतः आप उनके वधके लिये नरके सहित मनुष्[ययोनिमें] उत्पन्न होइये।' सो अब वे नर-नारायण दोनों ही मनुष्य[रूपमें] जन्म लेंगे, किन्तु मूढ पुरुष इन्हें पहचान नहीं स[केंगे।] ये शंख-चक्र-गदाधारी वासुदेव सम्पूर्ण लोकोंके महेश्व[र हैं।] ये मनुष्य हैं—ऐसा समझकर इनका तिरस्कार नहीं [करना] चाहिये। ये ही परम गुह्य हैं, ये ही परमपद हैं, ये ही प[रब्रह्म] हैं, ये ही परम यश हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त [और] सनातन तेज हैं। ये ही पुरुष नामसे प्रसिद्ध हैं तथा [ये ही] परम सुख और परम सत्य हैं। अतः अपने सुहृदोंको अ[भय] करनेवाले इन किरीट-कौस्तुभधारी श्रीहरिका जो तिरस्[कार] करेगा, वह भयङ्कर अन्धकारमें पड़ेगा।"

भीष्मजी कहते हैं—देवता और ऋषियोंसे ऐसा क[ह]कर श्रीब्रह्माजी उन्हें विदा करके अपने लोकको चले गये और वे सब स्वर्गमें चले आये। एक बार कुछ पवित्रात्मा मुनिगण श्रीकृष्णके विषयमें चर्चा कर रहे थे; उन्हींके मुख[से] मैंने यह प्राचीन प्रसङ्ग सुना था। यही बात मैंने जमदग्नि-नन्दन परशुराम, मतिमान् मार्कण्डेय और व्यास तथा नारदजीसे भी सुनी है। यह सब जानकर भी हमारे लि[ये] श्रीकृष्ण वन्दनीय और पूजनीय क्यों नहीं हैं। हमें तो अवश्[य] ही इनका पूजन करना चाहिये। मैंने और अनेकों वेदवेत्ता मुनियोंने तो तुम्हें बार-बार श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके साथ युद्ध ठाननेसे रोका था; किन्तु मोहवश तुमने इसका कोई तत्त्व ही नहीं समझा। मैं तुम्हें कोई क्रूरकर्मा राक्षस ही समझता हूँ; क्योंकि तुम श्रीकृष्ण और अर्जुनसे द्वेष करते हो। भला, इन साक्षात् नर और नारायणसे कोई दूसरा मनुष्य कैसे द्वेष कर सकता है? मैं तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ—ये सनातन, अविनाशी, सर्वलोकमय, नित्य, जगदीश्वर, जगद्धर्ता और अविकारी हैं। ये ही युद्ध करनेवाले हैं, ये ही जय हैं और ये ही जीतनेवाले हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं जय है। श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं, इसलिये उन्हींकी जय भी होगी।

दुर्योधनने पूछा—दादाजी! इन वसुदेवपुत्रको सम्पूर्ण लोकोंमें महान् बताया जाता है। अतः मैं इनकी

उत्पत्ति और स्थितिके विषयमें जानना चाहता हूँ।
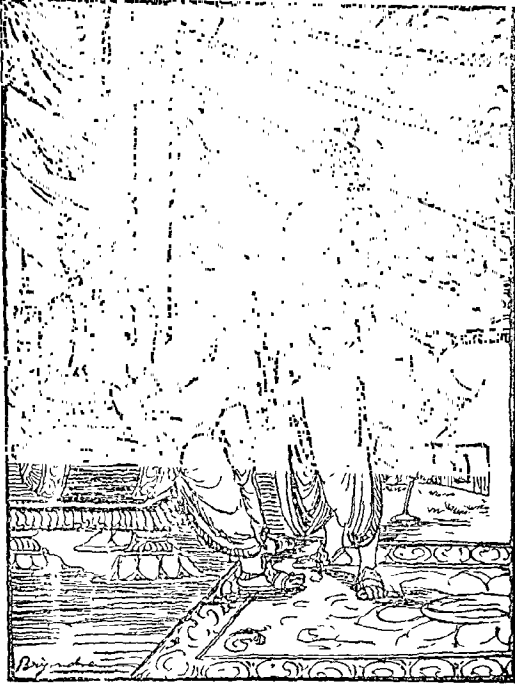
भीष्मजी बोले—भरतश्रेष्ठ! वसुदेवनन्दन निःसन्देह महान् हैं। ये सब देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन श्रीकृष्णसे बड़ा और कोई भी नहीं है। मार्कण्डेयजी इनके विषयमें बड़ी अद्भुत बातें कहते हैं। ये सर्वभूतमय और पुरुषोत्तम हैं। सर्गके आरम्भमें इन्हींने सम्पूर्ण देवता और ऋषियोंको रचा था, तथा ये ही सबके उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। ये स्वयं धर्मस्वरूप तथा धर्मज्ञ, वरदायक और सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव और स्वयंप्रभु हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमानकी भी इन्हींने कल्पना की है तथा इन्हींने दोनों सन्ध्याओं, दिशाओं, आकाश और नियमोंको रचा है। अधिक क्या, ये अविनाशी प्रभु ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले हैं। इन परम तेजस्वी प्रभुको केवल ध्यानयोगसे ही जाना जा सकता है। ये श्रीहरि ही वराह, नृसिंह और भगवान् त्रिविक्रम हैं। ये ही समस्त प्राणियोंके माता-पिता हैं। इन श्रीकमलनयन भगवान्से बढ़कर कोई दूसरा तत्त्व न कभी था, न होगा ही। इन्हींने अपने मुखसे ब्राह्मणोंको, भुजाओंसे क्षत्रियोंको, जङ्घाओंसे वैश्योंको और पैरोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया है। ये ही सम्पूर्ण भूतोंके आश्रय हैं। जो पुरुष पूर्णिमा और अमावास्याके दिन इनका पूजन करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। ये परम तेजःस्वरूप और समस्त लोकोंके नियन्ता हैं। मुनिजन इन्हें हृषीकेश कहते हैं। ये ही सबके सच्चे आचार्य, पिता और गुरु हैं। जिसपर ये प्रसन्न हैं, उसने मानो सभी अक्षयलोक जीत लिये हैं। जो पुरुष भयके समय श्रीकृष्णकी शरण लेता है और सर्वदा इस स्तुतिका पाठ करता है, वह कुशलसे रहता है और सुख पाता है। उसे कभी मोह नहीं होता। उन्हें यथावत्रूपसे सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और समस्त योगोंके प्रभु जानकर ही राजा युधिष्ठिरने इनकी शरण ली है।

राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्मर्षि और देवताओंने इनका जो ब्रह्ममय स्तोत्र कहा है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ; सुनो—'नारदजीने कहा है—आप साध्यगण और देवताओंके भी देवाधिदेव हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले और उनके अन्तःकरणके साक्षी हैं। मार्कण्डेयजीने कहा है—आप ही भूत, भविष्यत् और वर्तमान हैं तथा आप यज्ञोंके यज्ञ और तपोंके तप हैं। भृगुजी कहते हैं—आप देवोंके देव हैं तथा भगवान् विष्णुका जो पुरातन परमरूप है, वह भी आप ही हैं। महर्षि द्वैपायनका कथन है-आप वसुओंमें वासुदेव, इन्द्रको भी स्थापित करनेवाले और देवताओंके परमदेव हैं। अङ्गिराजी कहते हैं—आप पहले प्रजापतिसर्गमें दक्ष थे तथा आप ही समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले हैं। देवल मुनि कहते हैं—अव्यक्त आपके शरीरसे हुआ है, व्यक्त आपके मनमें स्थित है तथा सब देवता भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। असित मुनिका कथन है—आपके सिरसे स्वर्गलोक व्याप्त है और भुजाओंसे पृथ्वी तथा आपके उदरमें तीनों लोक हैं। आप सनातन पुरुष हैं। तपःशुद्ध महात्मालोग आपको ऐसे ही समझते हैं तथा आत्मतृप्त ऋषियोंकी दृष्टिमें भी आप सर्वोत्कृष्ट सत्य हैं। मधुसूदन! जो सम्पूर्ण धर्मोंमें अग्रगण्य और संग्रामसे पीछे हटनेवाले नहीं हैं, उन उदार-हृदय राजर्षियोंके परमाश्रय भी आप ही हैं।' योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारादि इसी प्रकार श्रीपुरुषोत्तम भगवान्का सर्वदा पूजन और स्तवन करते हैं। राजन्! इस तरह विस्तार और संक्षेपसे मैंने तुम्हें श्रीकृष्णका स्वरूप सुना दिया। अब तुम प्रसन्न चित्तसे उनका भजन करो।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! भीष्मजीके मुखसे यह पवित्र आख्यान सुनकर तुम्हारे पुत्रके हृदयमें श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके प्रति बड़ा आदरभाव हो गया। फिर उससे पितामह

कहने लगे, 'राजन्! तुमने महात्मा श्रीकृष्णकी महिमा सुनी तथा नररूप अर्जुनका वास्तविक स्वरूप भी जान लिया। तुम्हें यह भी मालूम हो ही गया कि इन नर-नारायण ऋषियोंने किस उद्देश्यसे अवतार लिया है। ये युद्धमें अजेय और अवध्य हैं तथा पाण्डवलोग भी युद्धमें किसीके द्वारा मारे नहीं जा सकते; क्योंकि श्रीकृष्णका इनपर बड़ा सुदृढ़ अनुराग है। इसलिये मेरा तो यही कहना है कि तुम्हें पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। ऐसा करके आनन्दसे अपने भाइयोंके सहित राज्य भोगो। नहीं तो इन नारायण भगवान्‌की अवज्ञा करके तुम जीवित नहीं रह सकोगे'

राजन्! ऐसा कहकर आपके पितृव्य भीष्मजी मौन [illegible] गये और दुर्योधनको विदा करके शय्यापर लेट ग[illegible] दुर्योधन भी उन्हें प्रणाम करके अपने शिविरमें चला आ[illegible] और अपनी शुभ्र शय्यापर सो गया।

भीमसेन, अभिमन्यु और सात्यकिकी वीरता तथा भूरिश्रवाद्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध

सञ्जयने कहा—महाराज! वह रात बीतनेपर जब सूर्योदय हुआ तो दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये आमने-सामने आकर डट गयीं। पाण्डव और कौरव दोनों ही अपनी-अपनी सेनाओंकी व्यूहरचना कर परस्पर प्रहार करने लगे। भीष्मजीने मकरव्यूहकी रचना की और उसकी सब ओरसे स्वयं ही रक्षा करने लगे। फिर वे बहुत बड़ी सेना लेकर आगे बढ़े। उनकी सेनाके रथी, पैदल, गजारोही और अश्वारोही अपने-अपने स्थानपर रहकर एक-दूसरेके पीछे चलने लगे। पाण्डवोंने उन्हें इस प्रकार युद्धके लिये तैयार देख अपनी सेनाको श्येनव्यूहके क्रमसे खड़ा किया। उसकी चोंचके स्थानपर भीमसेन, नेत्रोंकी जगह धृष्टद्युम्न और शिखण्डी, शिरोभागमें सात्यकि, गरदनकी जगह अर्जुन, वामपक्षमें अक्षौहिणी सेनाके सहित द्रुपद, दक्षिण-पक्षमें अक्षौहिणीनायक केकयराज तथा पृष्ठभागमें द्रौपदीके पाँच पुत्र, अभिमन्यु, राजा युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव खड़े हुए। तब भीमसेनने मुख-स्थानसे मकरव्यूहमें घुसकर भीष्मजीके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भीष्मजी भी भीषण बाणवर्षा करके पाण्डवोंकी व्यूहबद्ध सेनाको चक्करमें डालने लगे। अपनी सेनाको घबराहटमें पड़ी देख अर्जुन झटपट आगे आ गये और हजारों बाण बरसाकर भीष्मजीको बींधने लगे। उन्होंने भीष्मजीके बाणोंको रोक दिया और इससे प्रसन्न हुई अपनी सेनाके सहित युद्ध करनेके लिये आगे आ गये।

तब राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंके भयङ्कर संहारकी बात याद करके आचार्य द्रोणसे कहा, 'आचार्य! आप सदा ही मेरा हित चाहते हैं और इसमें सन्देह नहीं, हम भी आपका और पितामह भीष्मका आश्रय लेकर संग्राममें परास्त करनेके लिये देवताओंतकको ललकारनेका साहस रखते हैं; फिर इन हीनपराक्रम पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है! अतः आप ऐसा कीजिये, जिससे ये पाण्डवलोग शीघ्र ही मारे जायँ।' दुर्योधन ऐसा कहनेपर आचार्य द्रोण सात्यकिके देखते-देखते पाण्डव[illegible] का व्यूह तोड़ने लगे। तब सात्यकिने उन्हें रोका और फिर उ[illegible] दोनोंका बड़ा ही भीषण घोर युद्ध होने लगा। आचार्यने क्रोधमें भरकर पैने-पैने बाणोंसे सात्यकिकी हँसलीकी हड्डीपर प्रहार किया। इससे भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ और वे सात्यकिकी रक्षा करते हुए आचार्यको बींधने लगे। तब द्रोण, भीष्म और शल्यने भीषण बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया। यह देखकर अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रोंने उन सब[illegible] पर वार करना आरम्भ किया।

दिन चढ़ते-चढ़ते युद्धने बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया। उसमें कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्षोंके अनेकों प्रधान-प्रधान वीर काम आये। इस घमासान भीषण युद्धमें बड़ा ही घोर गगनभेदी शब्द होने लगा। इस समय अपने भाइयोंको तथा दूसरे राजाओंको भी भीष्मजीसे ही उलझा हुआ देखकर अर्जुन बाण चढ़ाकर उनकी ओर दौड़े। उनके पाञ्चजन्य शङ्ख और गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर तथा वानरी ध्वजा-को देखकर हमारी ओरके सब सैनिकोंके छक्के छूट गये। जिस समय अर्जुनने अपना भयानक अस्त्र लेकर भीष्मजीपर आक्रमण किया, उस समय हमारे सैनिकोंको पूर्व-पश्चिमका भी होश नहीं रहा। आपके पुत्रोंके सहित वे सब घबराकर भीष्मजीकी ही शरणमें जाने लगे। उस समय एकमात्र वे ही उनके आश्रय थे। सभी लोग ऐसे भयभीत हो गये कि रथी रथोंसे और घुड़सवार घोड़ोंकी पीठसे गिरने लगे तथा पैदल भी पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये।

भीष्मजीने तोमर, प्रास और नाराच आदि धारण करनेवाले योद्धाओंकी विशाल वाहिनीके सहित अर्जुनका सामना किया। इसी प्रकार अवन्तिनरेश काशिराजके साथ, भीमसेन जयद्रथके साथ, युधिष्ठिर शल्यके साथ, विकर्ण सहदेवके साथ,

चित्रसेन शिखण्डीके साथ, मत्स्यराज विराट और उनके साथी दुर्योधन और शकुनिके साथ, द्रुपद, चेकितान और सात्यकि आचार्य द्रोण एवं अश्वत्थामाके साथ तथा कृपाचार्य और कृतवर्मा धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार घोड़ोंको आगे बढ़ाकर तथा हाथी और रथोंको घुमाकर सब योद्धा आपसमें भिड़ गये। युद्ध होते-होते मध्याह्न हो गया। सूर्यके तापसे आकाश जलने लगा। उस समय कौरव और पाण्डवोंमें आपसमें बड़ी भीषण मार-काट होने लगी। भीष्मजीने सब सेनाके देखते-देखते भीमसेनका आगे बढ़ना रोक दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंने भीमसेनको घायल कर दिया। तब महाबली भीमसेनने उनके ऊपर एक अत्यन्त वेगवती शक्ति छोड़ी। उसे आती देखकर भीष्मजीने अपने बाणोंसे काट डाला तथा एक और बाण छोड़कर भीमसेनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। इतनेहीमें सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे सामने आकर भीष्मजीके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। तब भीष्मजी-ने एक भीषण बाण चढ़ाकर सात्यकिके सारथिको रथसे गिरा दिया। उसके मारे जानेसे सात्यकिके घोड़े इधर-उधर भागने लगे। इससे सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा।

अब भीष्मजीने पाण्डवसेनाका विध्वंस आरम्भ किया। यह देखकर धृष्टद्युम्नादि पाण्डवपक्षके वीर आपके पुत्रोंकी सेनापर टूट पड़े। इस प्रकार दोनों ओरसे बड़ा घोर युद्ध होने लगा। महारथी विराटने भीष्मजीपर तीन बाण छोड़े और तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको घायल कर दिया। तब भीष्मजीने दस बाणोंसे विराटको बींध दिया। इसी समय अश्वत्थामाने छः बाणोंसे अर्जुनकी छातीपर वार किया और अर्जुनने अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला। तब अश्वत्थामाने दूसरा धनुष लेकर नब्बे बाणोंसे अर्जुनको और सत्तर बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया। अर्जुनने बड़े भयङ्कर बाण चढ़ाये और बड़ी फुर्तीसे अश्वत्थामाको बींध दिया। वे बाण अश्वत्थामाका कवच भेदकर उनका रक्त पीने लगे। किन्तु इस प्रकार घायल होनेपर भी उनमें व्यथाका कोई चिह्न दिखायी नहीं दिया। वे पूर्ववत् भीष्मजीकी रक्षाके लिये डटे रहे।

इसी बीचमें दुर्योधनने दस बाणोंसे भीमसेनको बींध दिया। तब भीमसेनने बड़े तीखे बाण छोड़कर कुरुराजकी छातीको बींध दिया। अभिमन्युने दस बाणोंसे चित्र-सेनपर और सातसे पुरुमित्रपर चोट की। तथा सत्यव्रत भीष्म-जीको सत्तर बाणोंसे घायल करके वह रणाङ्गणमें नृत्य-सा करने लगा। यह देखकर उसपर चित्रसेनने दस बाणोंसे, पुरुमित्रने सातसे और भीष्मजीने नौ बाणोंसे वार किया। वीर अभिमन्युने इस प्रकार घायल होकर चित्रसेनके धनुषको काट डाला तथा उसके कवचको काटकर छातीपर बाण छोड़ा। अभिमन्युका ऐसा पराक्रम देखकर आपका पौत्र लक्ष्मण उसके सामने आया और बड़े तीखे-तीखे बाण छोड़कर उसे घायल करने लगा। तब सुभद्रानन्दनने उसके चारों घोड़ों और सारथिको मारकर अपने पैने बाणोंसे उसपर आक्रमण किया। इससे लक्ष्मणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अभिमन्युके रथपर एक शक्ति छोड़ी। उसे आती देखकर अभिमन्युने अपने पैने बाणोंसे उसके टूक-टूक कर दिये। तब कृपाचार्य लक्ष्मणको अपने रथमें बैठाकर रणक्षेत्रसे बाहर ले गये।

इस प्रकार जब संग्राम बहुत भयङ्कर हो गया तो आपके पुत्र और पाण्डवलोग अपने प्राणोंको संकटमें डालकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। महाबली भीष्मजीने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे पाण्डवोंकी सेनाका सफाया करना आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर रणोन्मत्त सात्यकि अपना हस्त-लाघव दिखलाते हुए शत्रुओंपर बाणवर्षा करने लगा। उसे बढ़ते देखकर दुर्योधनने उसके मुकाबलेमें दस हजार रथोंको भेजा। परन्तु सत्यपराक्रमी सात्यकिने उन सभी धनुर्धर वीरों-को दिव्य अस्त्रोंसे मार डाला। इस प्रकार दारुण पराक्रम करके वह वीर हाथमें धनुष लिये भूरिश्रवाके सामने आया। भूरिश्रवाने देखा कि सात्यकिने हमारी सेनाको मार गिराया, तो वह क्रोधमें भरकर दौड़ा और अपने महान् धनुषसे वज्रके समान बाणोंकी वृष्टि करने लगा। वे बाण क्या थे, साक्षात् मृत्यु थे। सात्यकिके पीछे चलनेवाले योद्धा उन बाणोंकी मार न सह सके; अतएव उसका साथ छोड़कर इधर-उधर भाग गये। सात्यकिके दस महारथी पुत्रोंने भूरिश्रवाका यह पराक्रम देखा तो वे क्रोधमें भरे हुए उसके सामने आये और उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनके छोड़े हुए बाण यम-दण्ड और वज्रके समान भयङ्कर थे। किन्तु महारथी भूरिश्रवा-को उनसे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अपने पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें काटकर गिरा दिया। उस समय हमने उसका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वह अकेला ही निर्भय होकर दस महारथियोंके साथ युद्ध कर रहा था। उन दसों महारथियोंने बाणवृष्टि करते हुए भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेर लिया और वे उसे मार डालनेका उपक्रम करने लगे। यह

देख भूरिश्रवा भी क्रोधमें भर गया और उनके साथ युद्ध करते-करते ही उसने उन सबके धनुष काट दिये। इस प्रकार धनुष कट जानेपर उसने अपने तीखे बाणोंसे उनके मस्तक भी काट डाले।

अपने महाबली पुत्रोंको मरा देख सात्यकि गरजता हुआ भूरिश्रवासे आकर भिड़ गया। दोनों महाबली एक दूसरेके रथपर प्रहार करने लगे। दोनोंने दोनोंके रथके घोड़ोंको मार डाला और रथहीन होकर हाथोंमें तलवार एवं ढाल ले उछलते-कूदते आमने-सामने आ युद्धके लिये खड़े हो गये। इतनेमें भीमसेनने आकर सात्यकिको अपने रथपर चढ़ा लिया। तब दुर्योधनने भी सबके देखते-देखते भूरिश्रवाको रथपर बिठा लिया।

इस प्रकार इधर यह युद्ध चल रहा था और दूसरी ओर पाण्डवलोग क्रुद्ध होकर महारथी भीष्मजीसे भिड़े हुए थे। सन्ध्याकाल आते-आते अर्जुनने बड़ी तेजीके साथ पचीस हजार महारथियोंको मार डाला। वे महारथी दुर्योधनकी आज्ञासे पार्थके प्राण लेनेको गये थे; परन्तु जैसे अग्निके पास जाकर पतिंगे जल जाते हैं, उसी प्रकार वे अर्जुनके पास जाकर नष्ट हो गये।

इसी समय सूर्य अस्त होने लगा, सारी सेना व्याकुल हो रही थी, भीष्मजीके रथके घोड़े भी थक गये थे; इसलिये उन्होंने सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। अत्यन्त घबरायी हुई दोनों सेनाएँ अपनी-अपनी छावनीमें चली गयीं। सृञ्जयोंके साथ पाण्डव और कौरव भी अपने-अपने शिविरमें जाकर विश्राम करने लगे।

मकर और क्रौञ्च-व्यूहका निर्माण, भीम और धृष्टद्युम्नका पराक्रम

सञ्जयने कहा—राजन्! जब कौरव-पाण्डव विश्राम कर चुके और रात्रि व्यतीत हो गयी तो पुनः सब-के-सब युद्धके लिये निकले। तब राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नसे कहा—'महाबाहो! आज तुम शत्रुओंका नाश करनेके लिये मकर-व्यूहकी रचना करो।' उनकी आज्ञा पाकर महारथी धृष्टद्युम्नने समस्त रथियोंको व्यूहाकार खड़े होनेकी आज्ञा दी। राजा द्रुपद और अर्जुन व्यूहके शिरोभागमें स्थित हुए। नकुल और सहदेव दोनों नेत्रोंके स्थानपर खड़े हुए। महाबली भीमसेन मुखस्थानमें थे। अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँच पुत्र, घटोत्कच, सात्यकि और धर्मराज युधिष्ठिर—ये व्यूहके कण्ठ-भागमें स्थित हुए। बहुत बड़ी सेनाके साथ सेनापति विराट और धृष्टद्युम्न उसके पृष्ठभागमें खड़े हुए। केकयदेशीय पाँच राजकुमार व्यूहके वामभागमें तथा धृष्टकेतु और चेकितान दक्षिणभागमें स्थित होकर व्यूहकी रक्षा कर रहे थे। कुन्तिभोज और शतानीक पैरोंके स्थानमें थे। सोमकोंके साथ शिखण्डी और इरावान् उस मकरके पुच्छभागमें खड़े हुए। इस प्रकार व्यूह-रचना करके पाण्डवलोग सूर्योदयके समय कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये तैयार हो गये और हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल योद्धाओंके साथ कौरवोंके सामने आ डटे।

राजन्! पाण्डव-सेनाकी व्यूह-रचना देखकर भीष्मने उसके मुकाबलेमें बहुत बड़े क्रौञ्चव्यूहका निर्माण किया। उसकी चोंचके स्थानपर महान् धनुर्धर द्रोणाचार्य सुशोभित हुए। अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्रस्थानमें थे। कम्बोज और बाह्लिकोंके साथ कृतवर्मा व्यूहके शिरोभागमें स्थित हुआ। शूरसेन और अनेकों राजाओंके साथ दुर्योधन कण्ठस्थानमें थे। मद्र, सौवीर तथा केकयोंके साथ प्राग्ज्योतिषपुरका राजा छातीके स्थानपर खड़ा हुआ। अपनी सेनासहित सुशर्मा व्यूहके वाम भागमें और तुषार, यवन तथा शकदेशीय योद्धा चूचुपोंको साथ लेकर दक्षिण भागमें खड़े हुए। श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा—ये उस व्यूहकी जङ्घाओंके स्थानमें थे।

इस प्रकार व्यूह-निर्माण हो जानेपर सूर्योदयके पश्चात दोनों सेनाओंमें युद्ध आरम्भ हो गया। कुन्तीनन्दन भीमसेनने द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया। द्रोणाचार्य उन्हें देखते ही क्रोधमें भर गये और लोहेके बने हुए नौ बाणोंसे उन्होंने भीमसेनके मर्मस्थलमें आघात किया। उनकी करारी चोट खाकर भीमसेनने आचार्यके सारथिको यमलोक भेज दिया। सारथिके मरनेपर द्रोणाचार्यने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और जैसे आग रूईकी ढेरीको जलाती है, उसी प्रकार वे पाण्डव सेनाका विध्वंस करने लगे। एक ओरसे भीष्मने भी मारना शुरू किया। उन दोनोंकी मार पड़नेसे सृञ्जय और कैकय वीर भाग चले। इसी प्रकार भीमसेन तथा अर्जुनने भी आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया, उनके प्रहारसे घायल विक्षत हो कौरवपक्षीय योद्धा मूर्च्छित होने लगे। दोनों दलों के व्यूह टूट गये और उभय-पक्षके योद्धाओंका परस्पर मेल-सा हो गया।

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! हमारी सेनामें अनेकों गुण हैं, अनेकों प्रकारके योद्धा हैं और शास्त्रीय रीतिसे उसके व्यूहका निर्माण भी हुआ है। हमारे सैनिक अत्यन्त प्रसन्न

और हमारे इच्छानुसार चलनेवाले हैं; वे नम्र हैं, उनमें किसी भी प्रकारका दुर्व्यसन नहीं है। साथ ही हमारी सेनामें न अत्यन्त बूढ़े लोग हैं और न बालक ही। बहुत मोटे और बहुत दुर्बल लोग भी नहीं हैं। सभी काम करनेमें फुर्तीले और नीरोग हैं। वे कवच और अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, शस्त्रोंका संग्रह भी उनके पास पर्याप्त है। प्रायः सभी तलवार चलाने, कुश्ती लड़ने और गदायुद्ध करनेमें प्रवीण हैं। प्रास, ऋष्टि, तोमर, परिघ, भिन्दिपाल, शक्ति और मूसल आदि शस्त्रोंका सञ्चालन भी अच्छी तरह जानते हैं। इनकी रक्षाका भार उन क्षत्रियोंके हाथमें है, जो संसारभरमें सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। वे स्वेच्छासे ही अपने सेवकों-सहित हमारी सहायता करने आये हैं। द्रोणाचार्य, भीष्म, कृतवर्मा, कृपाचार्य, दुःशासन, जयद्रथ, भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि और बाह्लीक आदि महान् वीरोंसे हमारी सेना सुरक्षित है; तो भी यदि वह मारी जा रही है, तो इसमें हमलोगोंका पुरातन प्रारब्ध ही कारण है। पहलेके मनुष्यों अथवा प्राचीन ऋषियोंने भी युद्धका इतना बड़ा उद्योग कभी नहीं देखा होगा। विदुरजी मुझसे नित्य ही हितकी और लाभकी बातें कहा करते थे, किन्तु मूर्ख दुर्योधनने उन्हें नहीं माना। वे सर्वज्ञ हैं, उनकी बुद्धिमें आजका यह परिणाम अवश्य आया होगा; तभी तो उन्होंने मना किया था। अथवा किसीका दोष नहीं, ऐसी ही होनहार थी। विधाताने पहलेसे जैसा लिख दिया है, वैसा ही होगा; उसे कोई टाल नहीं सकता।

सञ्जय बोले—राजन्! अपने ही अपराधसे आपको यह सङ्कटका सामना करना पड़ता है। पहले जो जूएका खेल हुआ था और आज जो पाण्डवोंके साथ युद्ध छेड़ा गया है—इन दोनोंमें आपका ही दोष है। इस लोकमें या परलोकमें मनुष्यको अपना किया हुआ कर्म स्वयं ही भोगना पड़ता है। आपको भी यह कर्मानुसार उचित ही फल मिला है। इस महान् सङ्कटको धैर्यपूर्वक सहन कीजिये और युद्धका शेष वृत्तान्त सावधान होकर सुनिये।

भीमसेन तीखे बाणोंसे आपकी महासेनाका व्यूह तोड़कर दुर्योधनके भाइयोंके पास जा पहुँचे। यद्यपि भीष्मजी उस सेनाकी सब ओरसे रक्षा कर रहे थे, तो भी दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण और कर्ण आदि आपके महारथी पुत्रोंको वहाँ पास ही देखकर वे उस महासेनाके भीतर घुस गये। तथा हाथी, घोड़े और रथोंपर चढ़े हुए कौरव-सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला। कौरव उन्हें पकड़ना चाहते थे। उनका यह निश्चय भीमसेनको मालूम हो गया। तब उन्होंने वहाँ उपस्थित हुए आपके पुत्रोंको मार डालनेका विचार किया। बस, उन्होंने गदा उठायी और अपना रथ छोड़ उस महासागरके समान सेनामें कूदकर उसका संहार करने लगे।

उसी समय धृष्टद्युम्न भीमसेनके रथके पास आ पहुँचा। उसने देखा रथ खाली है और केवल भीमका सारथि विशोक वहाँ मौजूद है। धृष्टद्युम्न मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ, उसकी चेतना लुप्त होने लगी, आँखोंसे आँसू छलक पड़े और उच्छ्वास लेते हुए उसने गद्गद कण्ठसे पूछा—'विशोक! मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भीमसेन कहाँ हैं?'

विशोकने हाथ जोड़कर कहा—'मुझे यहाँ ही खड़ा करके वे इस सैन्य-सागरमें घुसे हैं। जाते समय इतना ही कहा था 'सूत! तुम थोड़ी देरतक घोड़ोंको रोककर यहाँ ही मेरी प्रतीक्षा करो। ये लोग जो मेरा वध करनेको तैयार हैं, इन्हें मैं अभी मारे डालता हूँ।'

तदनन्तर, भीमसेनको सम्पूर्ण सेनाके भीतर गदा लिये दौड़ते देख धृष्टद्युम्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने विशोकसे कहा—'महाबली भीमसेन मेरे सखा और सम्बन्धी हैं। मेरा उनपर प्रेम है और उनका मुझपर। इसलिये जहाँ वे गये हैं, वहाँ ही मैं भी जाता हूँ।' यह कहकर धृष्टद्युम्न चल दिया और भीमसेनने गदासे हाथियोंको कुचलकर जो मार्ग बना दिया था, उसीसे वह भी सेनाके भीतर जा घुसा। धृष्टद्युम्नने देखा—जैसे आँधी वृक्षोंको तोड़ डालती है, उसी प्रकार भीम भी शत्रु-सेनाका संहार कर रहे हैं। तथा उनकी गदाकी चोटसे आहत होकर रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार आर्तनाद कर रहे हैं। तत्पश्चात् उनके पास पहुँचकर धृष्टद्युम्नने उन्हें अपने रथपर बिठा लिया और छातीसे लगाकर आश्वासन दिया।

तब आपके पुत्र धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। धृष्टद्युम्न अद्भुत प्रकारसे युद्ध करनेवाला था, शत्रुओंकी बाण-वर्षासे उसे तनिक भी व्यथा नहीं हुई; उसने सब योद्धाओंको अपने बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद भी आपके पुत्रोंको बढ़ते देख महारथी द्रुपदकुमारने 'प्रमोहनास्त्र'का प्रयोग किया। उसके प्रभावसे वे सभी नरवीर मूर्छित हो गये। द्रोणाचार्यने जब यह समाचार सुना तो शीघ्र ही उस स्थानपर
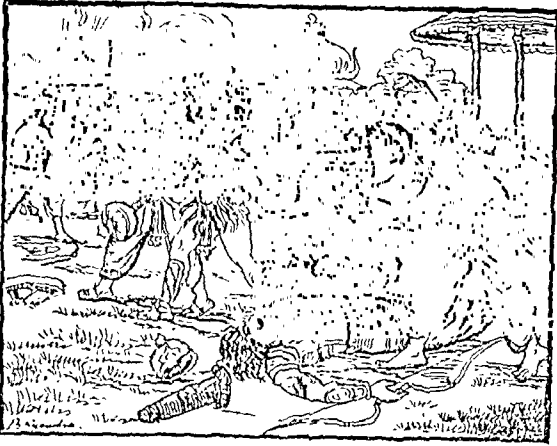
आये। देखा तो भीमसेन और धृष्टद्युम्न रणमें विचर रहे हैं, और आपके सभी पुत्र अचेत पड़े हुए हैं। तब आचार्यने प्रज्ञास्त्रका प्रयोग करके मोहनास्त्रका निवारण किया। इससे उनमें पुनः प्राण-शक्ति आ गयी और वे महारथी उठकर भीम और धृष्टद्युम्नके सामने पुनः युद्धके लिये जा डटे।

इधर राजा युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंको बुलाकर कहा, 'अभिमन्यु आदि बारह महारथी वीर कवच आदिसे सुसज्जित होकर अपनी शक्तिभर प्रयत्न करके भीम और धृष्टद्युम्नके पास जायँ और उनका समाचार जानें, मेरा मन उनके लिये सन्देहमें पड़ा हुआ है।'

युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनकर सभी पराक्रमी योद्धा 'बहुत अच्छा' कहकर चल दिये। उस समय दोपहर हो चुका था। धृष्टकेतु, द्रौपदीके पुत्र तथा केकयदेशीय वीर अभिमन्युको आगे करके बड़ी भारी सेनाके साथ चले। उन्होंने सूची-मुख नामक व्यूह बनाकर कौरव सेनाका भेदन किया और भीतर चले गये। कौरव-योद्धाओंको भीमसेन और धृष्टद्युम्नने पहलेसे ही भयभीत तथा मूर्छित कर रक्खा था, इसीलिये वे इन लोगोंको रोकनेमें समर्थ न हुए।

भीमसेन और धृष्टद्युम्नने जब अभिमन्यु आदि वीरोंको अपने पास आया देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और बड़े उत्साहसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। इतनेमें द्रुपदकुमारने अपने गुरु द्रोणाचार्यको सहसा वहाँ आते देखा। तब उसने आपके पुत्रोंको मारनेका विचार त्याग दिया और भीमसेनको केकयके रथमें बिठाकर अस्त्रोंके पारगामी द्रोणाचार्यपर धावा किया। उसे अपनी ओर आते देख आचार्यने एक बाण मारकर उसका धनुष काट दिया और चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर सारथिको भी यमराजके घर भेज दिया। तब महाबाहु धृष्टद्युम्न उस रथसे कूदकर अभिमन्युके रथपर जा बैठा। उस समय पाण्डवसेना काँप उठी, आचार्य द्रोणने अपने तीखे बाणोंसे मारकर उसे क्षुब्ध कर दिया। दूसरी ओरसे महाबली भीष्मजी भी पाण्डवसेनाका संहार करने लगे।

भीम और दुर्योधनका युद्ध, अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पुत्रोंका पराक्रम

सञ्जयने कहा—तदनन्तर जब सूर्यदेवपर सन्ध्याकी लाली छाने लगी, तो दुर्योधनने भीमसेनका वध करनेकी इच्छासे उनपर धावा किया। अपने पक्के वैरीको आते देख भीमसेनके क्रोधकी सीमा न रही। वे दुर्योधनसे कहने लगे, 'आज मुझे वह अवसर मिला है, जिसकी बहुत वर्षोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं गया, तो अवश्य ही इस समय तेरा वध कर डालूँगा। माता कुन्तीको जो कष्ट उठाने पड़े हैं, हमलोगोंने जो वनवास भोगा है तथा द्रौपदीको जो अपमानका दुःख सहना पड़ा है, उन सबका बदला आज तुझे मारकर चुका लूँगा।' यह कहकर भीमसेनने धनुष चढ़ाया और दुर्योधनपर जलती हुई अग्निकी शिखाके समान छब्बीस बाण छोड़े। फिर दो बाणोंसे उसका धनुष काट दिया, दोसे उसके सारथिको मार डाला, चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया और दो बाणोंसे छत्र तथा छःसे ध्वजाको काट डाला।
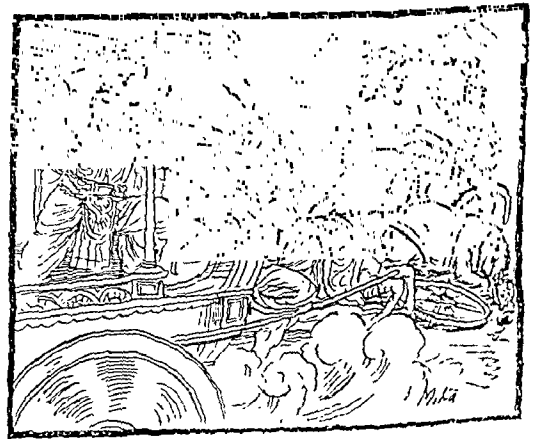
इसके बाद उसके सामने ही उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे।

इतनेमें कृपाचार्यने आकर दुर्योधनको अपने रथपर चढ़ा लिया। भीमसेनने उसे बहुत ही घायल और व्यथित

कर दिया था, इसलिये वह रथके पिछले भागमें बैठकर विश्राम करने लगा। तत्पश्चात् भीमको जीतनेके लिये कई हजार रथोंके साथ जयद्रथने आ घेरा। धृष्टकेतु, अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और केकयदेशीय राजकुमार आपके पुत्रोंसे युद्ध करने लगे। इसी समय चित्रसेन, सुचित्र, चित्राङ्गद, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्दक और उपनन्दक—इन आठ यशस्वी वीरोंने अभिमन्युके रथको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अभिमन्युने प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारे। अभिमन्युके इस पराक्रमको वे नहीं सह सके, अतः उसपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। फिर तो अभिमन्युने वह पराक्रम दिखाया, जिससे आपके सैनिक काँप उठे। मानो देवासुर-संग्राममें वज्रपाणि इन्द्र असुरोंको भयभीत कर रहे हों। इसके बाद उसने विकर्णपर चौदह बाणोंका प्रहार करके उनके रथसे ध्वजा काट गिरायी और सारथि तथा घोड़ोंको मार डाला। फिर सानपर चढ़ाये हुए कई तीखे बाण विकर्णको लक्ष्य करके छोड़े और वे उसके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर जा गिरे। विकर्णको घायल देखकर उसके दूसरे-दूसरे भाई अभिमन्यु आदि महारथियोंपर टूट पड़े।

दुर्मुखने सात बाण मारकर श्रुतकर्माको बींध डाला, एक बाणसे उसकी ध्वजा काट दी, फिर सातसे सारथिको और छःसे घोड़ोंको मार गिराया। इससे श्रुतकर्माको बड़ा क्रोध हुआ और बिना घोड़ेके रथपर ही खड़े होकर उसने दुर्मुखके ऊपर प्रज्वलित उल्काके समान शक्ति छोड़ी। वह दुर्मुखका कवच भेदकर शरीरको छेदती हुई पृथ्वीमें समा गयी। इधर श्रुतकर्माको रथहीन देखकर महारथी सुतसोमने उसे अपने रथपर बिठा लिया। राजन्! इसके बाद आपके यशस्वी पुत्र जयत्सेनको मार डालनेकी इच्छासे श्रुतकीर्ति उसके सामने आया। जयत्सेनने तनिक मुसकराकर श्रुतकीर्तिके धनुषको काट दिया। अपने भाईका धनुष कटा देखकर शतानीक बारंबार सिंहनाद करता हुआ वहाँ पहुँचा। उसने अपने सुदृढ़ धनुषको तानकर दस बाणोंसे जयत्सेनको घायल किया। जयत्सेनके पास उसका भाई दुष्कर्ण भी मौजूद था, उसने नकुलपुत्र शतानीकके धनुषको काट दिया। शतानीकने दूसरा धनुष लेकर उसपर बाणोंका सन्धान किया और उन्हें दुष्कर्णको लक्ष्य करके छोड़ दिया। इसके बाद एक बाणसे उसके धनुषको काटकर, दोसे सारथि और बारहसे घोड़ोंको मार डाला। साथ ही उसे भी सात बाणोंसे घायल किया। इसके पश्चात् एक भल्ल नामक बाणसे दुष्कर्णकी छातीमें प्रहार किया, उसकी चोट खाकर वह बिजलीके आघातसे टूटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। दुष्कर्णको व्यथित देखकर पाँच महारथियोंने शतानीकको चारों ओरसे घेर लिया और उसे बाणोंके समूहसे आच्छादित करने लगे। यह देख पाँचों केकयराजकुमार क्रोधमें भरे हुए शतानीककी सहायताके लिये दौड़े। उन्हें आक्रमण करते देख दुर्मुख, दुर्जय, दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह आदि आपके महारथी पुत्र उनके मुकाबलेमें आ डटे। एक-दूसरेको अपना दुश्मन माननेवाले इन राजाओंने सूर्यास्तके बाद दो घड़ीतक अपना भयंकर संग्राम जारी रक्खा। हजारों रथियों और घुड़सवारोंकी लाशें बिछ गयीं। तब शान्तनुनन्दन भीष्मजी भी महात्मा पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सेनाको यमलोक पठाने लगे। इस प्रकार पाण्डवसेनाका संहार करके भीष्मजीने अपने योद्धाओंको पीछे लौटाया और स्वयं अपने शिविरमें चले गये। इधर धर्मराज युधिष्ठिर भी भीमसेन और धृष्टद्युम्नको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन दोनोंका मस्तक सूँघने लगे। फिर बड़े हर्षसे अपनी छावनीमें गये।

छठे दिनका दोपहरतकका युद्ध

सञ्जयने कहा—महाराज! तब सब योद्धा अपने-अपने शिविरोंमें चले आये। रात्रिमें सबने विश्राम किया और एक-दूसरेका यथायोग्य सत्कार किया तथा दूसरे दिन फिर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। इस समय आपके पुत्र दुर्योधनने अत्यन्त चिन्ताग्रस्त होकर पितामह भीष्मसे पूछा, 'दादाजी! आपकी सेना बड़ी भयानक है। इसकी व्यूहरचना भी बड़ी सावधानीसे की जाती है। फिर भी पाण्डवपक्षके महारथी उसे तोड़कर हमारे वीरोंको मारे डालते हैं। वे हमारे वीरोंको चक्करमें डालकर बड़ी कीर्ति पा रहे हैं। उन्होंने वज्रके समान सुदृढ़ मकरव्यूहको भी तोड़ डाला और उसके भीतर घुसकर भीमसेनने अपने मृत्युदण्डके समान प्रचण्ड बाणोंसे मुझे घायल कर दिया। भीमकी रोषपूर्ण मूर्तिको देखकर तो मेरे सारे होश-हवास उड़ गये थे। अभीतक मेरा चित्त शान्त नहीं हो पाया है। महात्मन्! आपकी सहायतासे मैं तो युद्धमें जय प्राप्त करके पाण्डवोंका काम तमाम कर देना चाहता हूँ।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर महात्मा भीष्म मुसकराये और उससे इस प्रकार कहने लगे, 'राजकुमार! मैं तो अधिक-से-अधिक प्रयत्न करके पाण्डवोंकी सेनामें घुसता हूँ। आगे भी मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर सारी शक्तिसे पाण्डवसेनाके साथ संग्राम करूँगा। तुम्हारे लिये मैं, यह
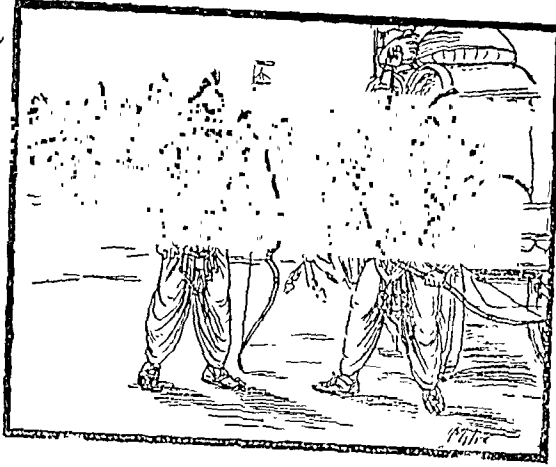
शत्रुसेना तो क्या, सारे देवता और दैत्योंको मारनेमें भी नहीं चूकूँगा। मैं पूरी शक्तिसे पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारा सब प्रकार प्रिय करूँगा।'

पितामहकी यह बात सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। प्रातःकाल होते ही भीष्मजीने स्वयं ही व्यूहरचना की। उन्होंने तरह-तरहके शस्त्रोंसे सुसज्जित कौरव-सेनाको मण्डल-व्यूहकी विधिसे खड़ा किया। उसमें प्रधान-प्रधान वीर, गजारोही, पदाति और रथियोंको यथास्थान नियुक्त किया। इस प्रकार भीष्मजीकी अध्यक्षतामें मोर्चेबंदीसे खड़ी होकर आपकी सेना युद्धके लिये तैयार हो गयी। वे युद्धोत्सुक राजालोग ऐसे जान पड़ते थे, मानो सब-के-सब भीष्मजीकी ही रक्षा कर रहे हैं और भीष्मजी उनकी रक्षामें तत्पर हैं। यह मण्डलव्यूह बड़ा ही दुर्भेद्य था और इसका मुख पश्चिमकी ओर रक्खा गया था।

इस परम दुर्जय मण्डलव्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाका वज्रव्यूह बनाया। इस प्रकार जब व्यूहबद्ध होकर दोनों सेनाएँ अपने-अपने स्थानोंपर खड़ी हो गयीं तो समस्त रथी और अश्वारोही सिंहनाद करने लगे और युद्धके लिये उतावले होकर व्यूह तोड़नेके लिये आगे बढ़े। द्रोणाचार्यजी विराटके सामने, अश्वत्थामा शिखण्डीके आगे और स्वयं राजा दुर्योधन धृष्टद्युम्नके सामने आये। नकुल और सहदेवने मद्रराज शल्यपर और अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्दने इरावान्‌पर धावा किया। और सब राजा अर्जुनसे युद्ध करने लगे। भीमसेनने युद्धके लिये बढ़ते हुए कृतवर्माको तथा चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणको रोका। अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु आपके पुत्रोंसे भिड़ गया, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तने घटोत्कचपर आक्रमण किया, राक्षस अलम्बुष रणोन्मत्त सात्यकि और उसकी सेनापर टूट पड़ा तथा भूरिश्रवा धृष्टकेतुके साथ युद्ध करने लगा। धर्मपुत्र युधिष्ठिर राजा श्रुतायुसे, चेकितान कृपाचार्यसे तथा अन्य सब वीर भीष्मजीसे ही लड़ने लगे।

आपके पक्षके कई राजाओंने तरह-तरहके शस्त्र लेकर चारों ओरसे अर्जुनको घेर लिया। तब अर्जुनने उनपर बाण बरसाना आरम्भ किया। दूसरी ओरसे राजालोग भी अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ऐसी स्थिति देखकर देवता, देवर्षि, गन्धर्व और नागोंको बड़ा विस्मय हुआ। तब अर्जुनने क्रोधमें भरकर ऐन्द्रास्त्र छोड़ा और अपने बाणोंसे शत्रुओंकी सारी बाणवर्षाको रोक दिया। अर्जुनके इस पराक्रमने सभीको चकित कर दिया। उनके सामने जितने राजा, घुड़सवार और गजारोही आये उनमेंसे कोई भी घायल हुए बिना न रहा। तब उन सबने भीष्मजीकी शरण ली। उस समय अर्जुनके बलरूपी अगाध जलमें डूबते हुए उन वीरोंके भीष्मजी ही जहाज हुए। उनके इस प्रकार भाग आनेसे आपकी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और आँधी चलनेसे जैसे समुद्रमें क्षोभ होने लगता है, उसी प्रकार उसमें खलबली पड़ गयी।

अब भीष्मजी बड़ी फुर्तीसे अर्जुनके सामने आये और उनसे युद्ध करने लगे। इधर द्रोणाचार्यने बाण मारकर मत्स्यराज विराटको घायल कर दिया तथा एक बाणसे उनकी ध्वजाको और दूसरेसे धनुषको काट डाला। सेनानायक विराटने तुरंत ही दूसरा धनुष ले लिया और कई चमचमाते हुए बाण लिये। फिर उन्होंने तीन बाणोंसे आचार्यको बींध दिया, चारसे उनके घोड़ोंको मार डाला, एकसे ध्वजा काट डाली, पाँचसे सारथिको मार गिराया और एकसे धनुष काट डाला। इससे द्रोणाचार्यजी बड़े कुपित हुए। उन्होंने आठ बाणोंसे विराटके घोड़ोंको नष्ट कर दिया और एकसे उनके सारथिको मार डाला। विराट रथसे कूद पड़े और अपने पुत्रके रथपर चढ़ गये। तब वे पिता-पुत्र दोनों ही भीषण बाणवर्षा करके बलात्कारसे आचार्यको रोकनेका प्रयत्न करने लगे। इससे चिढ़कर आचार्यने राजकुमार शंखपर एक सर्पके

समान विषैला बाण छोड़ा। वह बाण शंखके हृदयको बेधकर उसके खूनमें लथपथ होकर पृथ्वीपर जा पड़ा। शंखके हाथका धनुष उसके पिताके ही पास गिर गया और वह स्वयं रणभूमिमें लोट गया। पुत्रको मरा हुआ देखकर राजा विराट डर गये और द्रोणाचार्यको छोड़कर युद्धक्षेत्रसे चले गये। तब द्रोणाचार्यजीने पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीको सैकड़ों-हजारों भागोंमें विभक्त कर दिया।

शिखण्डीने अश्वत्थामाके सामने आकर तीन बाणोंसे उनकी भ्रुकुटिके बीचमें चोट की। इससे क्रोधमें भरकर अश्वत्थामाने बहुत-से बाण बरसाकर आधे निमेषमें ही शिखण्डीकी ध्वजा, सारथि, घोड़ों और हथियारोंको काट कर गिरा दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर वह रथसे कूद पड़ा और हाथमें ढाल-तलवार लेकर बाजके समान बड़े क्रोधसे झपटा।
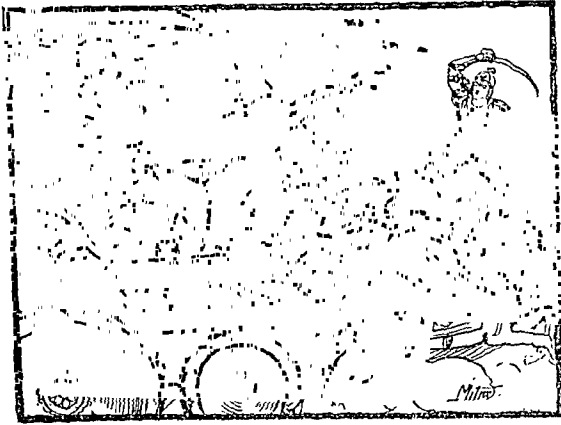
रणाङ्गणमें तलवार लेकर घूमते हुए शिखण्डीपर वार करनेका अश्वत्थामाको अवसरतक नहीं मिला। फिर उन्होंने उसपर सहस्रों बाण छोड़े। शिखण्डीने उस सारी बाणवर्षाको अपनी तलवारसे ही काट दिया। तब तो अश्वत्थामाने उसकी ढाल और तलवारको ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया और अनेकों फौलादी बाणोंसे शिखण्डीको भी बींध दिया। अब शिखण्डी जल्दीसे सात्यकिके रथपर चढ़ गया।

इधर वीरवर सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको घायल कर दिया। इसपर अलम्बुषने भी अर्धचन्द्राकार बाण छोड़कर सात्यकिका धनुष काट दिया और उसे भी अनेकों बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उसने राक्षसी माया करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस समय सात्यकिका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखनेमें आया; क्योंकि ऐसे तीखे-तीखे बाणोंकी चोट खानेपर भी उसे रणभूमिमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने अर्जुनसे मिला हुआ ऐन्द्रास्त्र चढ़ाया, उससे वह राक्षसी माया तत्काल भस्म हो गयी। फिर उसने अनेकों बाण बरसाकर अलम्बुषको ढक दिया। इस प्रकार सात्यकिके द्वारा पीडित होनेपर वह राक्षस उसका सामना छोड़कर रणभूमिसे भग गया। सत्यपराक्रमी सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे आपके पुत्रोंपर भी प्रहार किया और वे भी भयभीत होकर भाग गये।

इसी समय द्रुपदके पुत्र महाबली धृष्टद्युम्नने अपने तीखे तीरोंसे आपके पुत्र राजा दुर्योधनको ढक दिया। किन्तु इससे दुर्योधनको कोई घबराहट नहीं हुई और बड़ी फुर्तीसे उसने नब्बे बाण छोड़कर धृष्टद्युम्नको बींध दिया। तब धृष्टद्युम्नने कुपित होकर उसका धनुष काट डाला, चारों घोड़ोंको मार गिराया और सात तीखे बाणोंसे स्वयं उसे भी घायल कर दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर दुर्योधन रथसे कूद पड़ा और तलवार लेकर पैदल ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा। इतनेहीमें शकुनिने आकर उसे अपने रथमें बैठा लिया।

इस प्रकार दुर्योधनको परास्त कर धृष्टद्युम्नने आपकी सेनाका संहार करना आरम्भ किया। इसी समय महारथी कृतवर्माने भीमसेनको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब भीमसेनने भी हँसकर कृतवर्मापर बाणोंकी झड़ी लगा दी। उन्होंने उसके चारों घोड़ोंको मारकर ध्वजा और सारथिको भी गिरा दिया तथा कृतवर्माको भी बहुत-से बाणोंसे घायल कर दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर कृतवर्मा बड़ी फुर्तीसे आपके साले वृषकके रथपर चढ़ गया। फिर भीमसेन अत्यन्त क्रोधमें भरकर दण्डपाणि यमराजके समान आपकी सेनाका संहार करने लगे।

महाराज! अभी दोपहर नहीं हुआ था कि अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द इरावान्‌को आते देखकर उसके सामने आ गये। बस, उनका बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। इरावान्‌ने क्रोधमें भरकर उन दोनों भाइयोंको अपने तीखे बाणोंसे बींध दिया। बदलेमें उन्होंने भी इरावान्‌को अपने बाणोंसे घायल कर दिया। फिर इरावान्‌ने चार बाणोंसे अनुविन्दके चारों घोड़ोंको धराशायी कर दिया तथा दो तीक्ष्ण बाणोंसे उसके धनुष और ध्वजाको काट गिराया। तब अनुविन्द अपने रथसे उतरकर विन्दके रथपर चढ़ गया। फिर उन दोनों वीरोंने एक ही रथपर बैठकर इरावान्‌पर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाना आरम्भ किया। इसी प्रकार इरावान्‌ने

भी क्रोधमें भरकर उन दोनों भाइयोंपर बाणोंकी झड़ी लगा दी तथा उनके सारथिको मारकर गिरा दिया। तब उनके घोड़े भयसे चौंककर उनके रथको लेकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार उन दोनों वीरोंको जीतकर इरावान् अपना पुरुषार्थ दिखाते हुए बड़ी तेजीसे आपकी सेनाको ध्वंस करने लगा।

इस समय राक्षसराज घटोत्कच रथपर चढ़कर भगदत्तके साथ युद्ध कर रहा था। उसने बाणोंकी झड़ी लगाकर भगदत्तको बिल्कुल ढक दिया। तब उन्होंने उन सब बाणोंको काटकर बड़ी फुर्तीसे घटोत्कचके मर्मस्थानोंपर वार किया। किन्तु अनेकों बाणोंसे घायल होनेपर भी वह घबराया नहीं। इससे कुपित होकर प्राग्ज्योतिषनरेशने चौदह तोमर छोड़े, किन्तु घटोत्कचने उन्हें तत्काल काट डाला और सत्तर बाणोंसे भगदत्तपर वार किया। तब भगदत्तने उसके चारों घोड़ोंको मार डाला। घटोत्कचने अश्वहीन रथमेंसे ही उनपर बड़े वेगसे शक्ति छोड़ी। किन्तु भगदत्तने उसके तीन टुकड़े कर दिये और वह बीचहीमें पृथ्वीपर गिर गयी। शक्तिको व्यर्थ हुई देखकर घटोत्कच भयभीत होकर रणाङ्गणसे भाग गया। घटोत्कचका बल-पराक्रम सर्वत्र विख्यात था, उसे संग्राम-भूमिमें सहसा यमराज और वरुण भी नहीं जीत सकते थे। उसीको इस प्रकार परास्त करके राजा भगदत्त अपने हाथीपर चढ़े पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे।

इधर मद्रराज शल्य अपनी बहिनके युगल पुत्र नकुल और सहदेवसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने उन दोनोंको अपने बाणोंसे एकदम ढक दिया। तब सहदेवने भी बाण बरसाकर उनकी प्रगतिको रोक दिया। सहदेवके बाणोंसे आच्छादित होनेपर शल्य उसके पराक्रमसे बड़े प्रसन्न हुए तथा अपनी माताके सम्बन्धसे उन दोनों भाइयोंको भी अपने मामाके जौहर देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इतनेहीमें महारथी शल्यने चार बाण छोड़कर नकुलके चारों घोड़ोंको यमराजके घर भेज दिया। नकुल तुरंत ही रथसे कूदकर अपने भाईके रथपर चढ़ गया। इस प्रकार उन दोनों भाइयोंने एक ही रथमें बैठकर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाकर मद्रराजको ढक दिया। इसी समय सहदेवने कुपित होकर मद्रराजपर एक बाण छोड़ा। वह उनके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर जा पड़ा। उसकी चोटसे मद्रराज व्याकुल होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये और उसकी वेदनासे अचेत हो गये। उन्हें संज्ञाशून्य देखकर
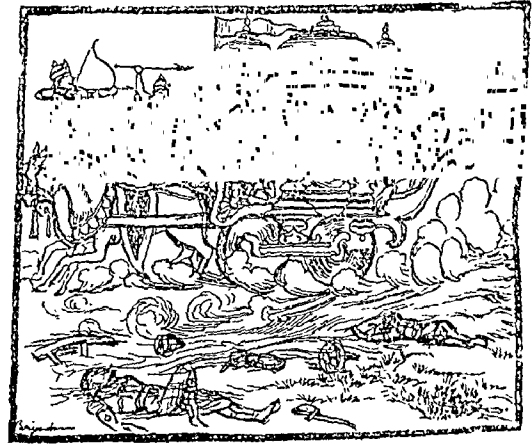
सारथि रथको रणक्षेत्रसे बाहर ले गया। यह देखकर आपकी सेनाके सब वीर उदास हो गये तथा महारथी नकुल और सहदेव अपने मामाको परास्त करके हर्षध्वनि और शंखनाद करने लगे।

छठे दिनका दोपहरसे पीछेका युद्ध

सञ्जयने कहा—महाराज! जब सूर्यदेव आकाशके बीचोंबीच आ गये तो राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुको देखकर उसकी ओर अपने घोड़े बढ़ा दिये तथा नौ बाण छोड़कर उसे घायल कर दिया। श्रुतायुने उन बाणोंको हटाकर युधिष्ठिरपर सात बाण छोड़े। वे उनके कवचको फोड़कर उनका रक्त पीने लगे। इससे राजा युधिष्ठिर बहुत बिगड़े। उस समय उनका क्रोध देखकर सब जीवोंको ऐसा जान पड़ने लगा मानो ये तीनों लोकोंको भस्म कर देंगे। यह देखकर देवता और ऋषिलोग सब लोकोंकी शान्तिके लिये स्वस्तिवाचन करने लगे। आपकी सेनाने तो अपने जीवनकी आशा ही छोड़ दी। किन्तु यशस्वी युधिष्ठिरने धैर्य धारण कर अपने क्रोधको दबा दिया और श्रुतायुके धनुषको काटकर उसकी छातीको बींध दिया। फिर शीघ्र ही उसके सारथि और घोड़ोंको भी मार डाला। राजा युधिष्ठिरका ऐसा पुरुषार्थ देखकर श्रुतायु अपना अश्वहीन रथ छोड़कर भाग गया। इस प्रकार जब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने श्रुतायुको परास्त कर दिया तो राजा दुर्योधनकी सारी सेना पीठ दिखाकर भागने लगी।

दूसरी ओर चेकितान महारथी कृपाचार्यको बाणोंसे आच्छादित करने लगा। तब कृपाचार्यने उन सब बाणोंको

उसका क्रोध बढ़ गया और उसने अपनी गदा कृपाचार्यजीपर छोड़ी। आचार्यने उसे आती देखकर अपने सहस्रों बाणोंसे रोक दिया। तब चेकितान हाथमें तलवार लेकर उनके सामने आया। इधर आचार्यने भी तलवार लेकर उसपर बड़े वेगसे धावा किया। अब वे दोनों वीर एक दूसरेपर तीखी तलवारों-के वार करते हुए पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये। युद्धमें अत्यन्त परिश्रम पड़नेके कारण उन दोनोंहीको मूर्च्छा आ गयी। इतनेहीमें सौहार्दवश वहाँ करकर्ष दौड़ आया और चेकितानकी ऐसी दशा देखकर उसे अपने रथमें चढ़ा लिया। इसी प्रकार शकुनिने बड़ी फुर्तीसे कृपाचार्यको अपने रथमें बैठा लिया।

धृष्टकेतुने नब्बे बाणोंसे भूरिश्रवाको घायल कर दिया। इसपर भूरिश्रवाने अपने चोखे-चोखे बाणोंसे महारथी धृष्टकेतुके सारथि और घोड़ोंको मार डाला। तब महामना धृष्टकेतु उस रथको छोड़कर शतानीकके रथपर चढ़ गया। इसी समय चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणने अभिमन्युपर धावा किया। अभिमन्युने आपके इन सब पुत्रोंको रथहीन तो कर दिया, किन्तु भीमसेन-की प्रतिज्ञा याद करके उनका वध नहीं किया। फिर सेनाके सहित पितामह भीष्मको अकेले बालक अभिमन्युकी ओर जाते देख अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'हृषीकेश! जिधर ये बहुत-से रथ दिखायी दे रहे हैं, उधर ही आप अपने घोड़ोंको भी बढ़ाइये।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने, जहाँ संग्राम हो रहा था, उस ओर रथ हाँका। अर्जुनको आपके वीरोंकी ओर बढ़ते देखकर आपकी सेना बहुत घबरा गयी। अर्जुनने भीष्मजीकी रक्षा करनेवाले राजाओंके पास पहुँचकर उनमेंसे सुशर्मासे कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम बड़े उत्तम योद्धा हो और हमारे पुराने शत्रु हो। किन्तु देखो, आज तुम्हें तुम्हारी अनीतिका कठोर फल मिलनेवाला है। आज मैं तुम्हारे परलोकवासी पितामहोंका दर्शन करा दूँगा।' सुशर्माने अर्जुनके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी भला-बुरा कुछ नहीं कहा। बल्कि बहुत-से राजाओंके सहित अर्जुनके आगे आकर उन्हें सब ओरसे घेर-

अपने साथी राजाओंको इस प्रकार मारा गया देखकर त्रिगर्त्तराज सुशर्मा बड़ी फुर्तीसे बचे हुए राजाओंको साथ लेकर आगे आया। जब शिखण्डी आदि वीरोंने देखा कि अर्जुनपर शत्रुओंने धावा किया है तो वे उनके रथकी रक्षाके लिये तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनकी ओर चले। अर्जुनने भी त्रिगर्त्तराजके साथ अनेकों राजाओंको आते देख अपने गाण्डीव धनुषसे अनेकों तीखे बाण छोड़कर उन सभीका सफाया कर दिया। फिर दुर्योधन और जयद्रथ आदि राजाओंको भी खदेड़कर वे भीष्मजीके पास पहुँच गये। महाराज युधिष्ठिर भी मद्रराजको छोड़कर भीमसेन तथा नकुल-सहदेवके सहित भीष्मजीसे ही युद्ध करनेके लिये आ गये। किन्तु भीष्मजी समस्त पाण्डुपुत्रोंके सामने आ जानेपर भी घबराये नहीं। इस समय शिखण्डी तो पितामहका वध करनेपर ही उतारू हो गया। उसे इस प्रकार बड़े वेगसे धावा करते देख राजा शल्य अपने भीषण शस्त्रोंसे रोकने लगे। किन्तु इससे शिखण्डीकी गतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। उसने वारुणास्त्र लेकर शल्यके सब अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न कर दिया।

भीमसेन गदा लेकर पैदल ही जयद्रथकी ओर दौड़े। उन्हें अपनी ओर बड़े वेगसे आते देख जयद्रथने पाँच सौ तीखे बाण छोड़कर सब ओरसे घायल कर दिया। किन्तु भीमसेनने उनकी कुछ भी परवा नहीं की। वे और भी क्रोधमें भर गये और उन्होंने सिन्धुराजके घोड़ोंको मार डाला। यह देखकर आपका पुत्र चित्रसेन भीमसेनको काबूमें करनेके लिये झपटा और इधरसे भीमसेन भी गरजकर गदा घुमाते हुए उसपर टूटे। भीमकी वह यमदण्डके समान प्रचण्ड गदा देखकर सब कौरव उसके प्रहारसे बचनेके लिये आपके पुत्रको छोड़कर भाग गये। गदाको अपनी ओर आती देखकर भी चित्रसेन घबराया नहीं। वह ढाल-तलवार लेकर अपने रथसे कूद पड़ा और एक दूसरे स्थानपर चला गया। उस गदाने चित्रसेनके रथपर गिरकर उसे सारथि और घोड़ोंके सहित

चूर-चूर कर दिया । इतनेहीमें चित्रसेनको रथहीन देखकर विकर्णने उसे अपने रथपर चढ़ा लिया ।

इस प्रकार जब संग्राम बहुत घोर होने लगा तो भीष्मजी राजा युधिष्ठिरके सामने आये । उस समय पाण्डवपक्षके सब वीर काँपने लगे और उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो अब युधिष्ठिर मृत्युके मुँहमें पड़ना ही चाहते हैं । इधर महाराज युधिष्ठिर भी नकुल-सहदेवके सहित भीष्मजीपर टूट पड़े । उन्होंने भीष्मजीपर सहस्रों बाण छोड़कर उन्हें बिल्कुल ढक दिया । किन्तु भीष्मजीने उन सबको सहकर आधे निमेषमें ही अपने बाणसमुदायसे युधिष्ठिरको अदृश्य कर दिया । राजा युधिष्ठिरने क्रोधमें भरकर भीष्मजीपर नाराच बाण छोड़ा, पर पितामहने बीचहीमें उसे काटकर युधिष्ठिरके घोड़े भी मार डाले । धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही नकुलके रथपर चढ़ गये । भीष्मजीने सामने आनेपर नकुल और सहदेवको भी बाणोंसे आच्छादित कर दिया । तब राजा युधिष्ठिर भीष्मजीका वध करनेके लिये बहुत विचार करने लगे । उन्होंने अपने पक्षके सब राजाओं और सुहृदोंसे कहा कि सब लोग मिलकर भीष्मजीको मारो । यह सुनकर सब राजाओंने भीष्मजीको घेर लिया । किन्तु भीष्मजी सब ओरसे घिर जानेपर भी अपने धनुषसे अनेकों महारथियोंको धराशायी करते हुए क्रीडा करने लगे ।

जब यह घनघोर युद्ध बहुत ही भयानक हो गया तो दोनों ही ओरकी सेनाओंमें बड़ी खलबली मची । दोनों ओरकी व्यूहरचना टूट गयी । इस समय शिखण्डी बड़े वेगसे पितामहके सामने आया । किन्तु भीष्मजी उसके पूर्व स्त्रीत्वका विचार करके उसकी ओर कुछ भी ध्यान न दे सृञ्जय वीरोंकी ओर चले गये । भीष्मको अपने सामने देखकर वे सब बड़े हर्षसे सिंहनाद और शंखध्वनि करने लगे । अब भगवान् भास्कर पश्चिमकी ओर ढुलक चुके थे । इस समय युद्धने ऐसा घमासान रूप धारण किया कि दोनों ओरके रथी और गजारोही एक-दूसरेमें मिल गये । पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति और तोमरादिकी वर्षा करके कौरवोंकी सेनाको पीडित करने लगे । इससे आपके योद्धाओंमें बड़ा हाहाकार होने लगा । उनका आर्त्तनाद सुनकर अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द धृष्टद्युम्नके सामने आये । उन दोनोंने उसके घोड़ोंको मारकर उसे बाणोंकी वर्षासे बिल्कुल ढक दिया । पाञ्चालकुमार तुरंत ही अपने रथसे कूदकर सात्यकिके रथपर चढ़ गया । तब महाराज युधिष्ठिर बड़ी भारी सेना लेकर उन दोनों राजकुमारोंपर टूट पड़े । इसी प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन भी पूरी तैयारीके साथ विन्द और अनुविन्दको घेरकर खड़ा हो गया ।

अब सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरपर पहुँचकर प्रभाहीन हो रहे थे । इधर युद्धभूमिमें रक्तकी भीषण नदी बहने लगी थी तथा सब ओर राक्षस, पिशाच एवं अन्य मांसाहारी जीव दीखने लगे थे । इसी समय अर्जुनने सुशर्मा आदि राजाओंको परास्त कर अपने शिबिरको कूच किया । धीरे-धीरे रात्रि होने लगी । महाराज युधिष्ठिर और भीमसेन भी सेनाके सहित अपने शिबिरको लौटे । इधर दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और कृतवर्मा आदि कौरव वीर भी अपनी-अपनी सेनाके सहित अपने-अपने डेरोंपर चले गये । इस प्रकार रात होनेपर कौरव और पाण्डव दोनों ही अपनी-अपनी छावनियोंमें चले आये । वहाँ दोनों पक्षोंके वीर एक-दूसरेकी वीरताकी बड़ाई करने लगे । उन्होंने अपने शरीरोंमेंसे बाण निकालकर तरह-तरहके जलोंसे स्नान किया तथा पहरा देनेके लिये विधिवत् चौकीदारोंको नियुक्त किया ।

सातवें दिनका युद्ध और धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध

सञ्जयने कहा—रात्रिमें सुखपूर्वक विश्राम करके सबेरा होनेपर कौरव और पाण्डवपक्षके राजालोग पुनः युद्धके लिये छावनोंसे बाहर निकले । जब दोनों सेनाएँ युद्धभूमिकी ओर चलीं, उस समय महासागरकी गम्भीर गर्जनाके समान महान् कोलाहल होने लगा । तदनन्तर दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, भीष्म और द्रोणाचार्यने एकत्र होकर बड़े यत्नसे कौरवसेनाका व्यूह निर्माण किया । यह महाव्यूह सागरके समान था, हाथी-घोड़े आदि वाहन ही उसकी तरङ्गमालाएँ थे । समस्त सेनाके आगे-आगे भीष्मजी चले; उनके साथ मालवा, दक्षिणभारत तथा उज्जैनके योद्धा थे । इनके पीछे कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा मालवदेशीय वीरोंके साथ आचार्य द्रोण थे । द्रोणके पीछे मगध और कलिङ्ग आदि देशोंके योद्धाओंको साथ लेकर राजा भगदत्त चले । उनके बाद राजा बृहद्बल था, उसके साथ मेकल तथा कुरुविन्द आदि देशोंके योद्धा थे । बृहद्बलके पीछे त्रिगर्तराज चल रहा था । उसके पीछे अश्वत्थामा था और

उसके बाद शेष सेनाओंके साथ भाइयोंसहित दुर्योधन था। और सबके पीछे कृपाचार्यजी चल रहे थे।

महाराज! आपके योद्धाओंका वह महाव्यूह देखकर धृष्टद्युम्नने श्रृङ्गाटक नामके व्यूहकी रचना की। वह देखनेमें अत्यन्त भयानक और शत्रुके व्यूहको नष्ट करनेवाला था। उसके दोनों श्रृङ्गोंके स्थानपर भीमसेन तथा सात्यकि स्थित हुए। उनके साथ कई हजार रथ, घोड़े और पैदलोंकी सेना थी। उन दोनोंके मध्यमें अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव थे। इनके बाद दूसरे-दूसरे महान् धनुर्धर राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ उस व्यूहको पूर्ण किया। उनके पीछे अभिमन्यु, महारथी विराट, द्रौपदीके पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह-निर्माण कर पाण्डव भी विजयकी अभिलाषासे युद्ध करनेके लिये डट गये। रणभेरी बज उठी, शङ्खनाद होने लगा। ललकारने, ताल ठोंकने और जोर-जोरसे पुकारनेकी आवाज़ आने लगी। इस तुमुल नादसे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। कौरव और पाण्डव दोनों दलोंके योद्धा परस्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार कर एक-दूसरेको यमलोक भेजने लगे। इतनेहीमें अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको गुँजाते और धनुषकी टङ्कारसे लोगोंको मूर्च्छित करते हुए भीष्मजी आ पहुँचे। यह देख धृष्टद्युम्न आदि महारथी भी भैरवनाद करते हुए उनका सामना करनेको दौड़े। फिर तो दोनों सेनाओंमें भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। पैदलसे पैदल, घोड़ेसे घोड़े, रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये।

जैसे तपते हुए सूर्यकी ओर देखना मुश्किल होता है, उसी प्रकार जब उस समरमें भीष्मजी क्रुद्ध होकर अपना प्रताप प्रकट करने लगे तो पाण्डवोंका उनकी ओर देखना कठिन हो गया। भीष्मजी सोमक, सृञ्जय और पाञ्चाल राजाओंको बाणोंसे रणभूमिमें गिराने लगे। वे भी मृत्युका भय छोड़कर भीष्मपर ही टूट पड़े। भीष्मने बड़ी शीघ्रतासे उन महारथी वीरोंकी भुजाएँ काट डालीं, सिर उड़ा दिये और रथियोंको रथसे गिरा दिया। घोड़ोंपरसे घुड़सवारोंके मस्तक कटकर गिरने लगे। पर्वतके समान ऊँचे-ऊँचे गजराज रणभूमिमें मरकर पड़े दिखायी देने लगे। उस समय महाबली भीमसेनके सिवा पाण्डवपक्षका कोई भी वीर भीष्मके सामने नहीं ठहर सका। केवल भीमसेन ही उनपर लगातार प्रहार कर रहे थे। भीष्म और भीमसेनमें युद्ध होते समय सम्पूर्ण सेनाओंमें भयङ्कर कोलाहल मच गया। पाण्डव भी प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करने लगे।

जिस समय वह नर-संहार मचा हुआ था, दुर्योधन अपने भाइयोंके साथ भीष्मजीकी रक्षाके लिये आ पहुँचा। इतनेमें महारथी भीमने भीष्मजीके सारथिको मार डाला। सारथिके गिरते ही घोड़े रथ लेकर भाग गये। भीमसेन रणभूमिमें सब ओर विचरने लगे। उन्होंने एक तीक्ष्ण बाणसे आपके पुत्र सुनाभका सिर काट दिया। इसपर उसके भाइयोंमेंसे सात, जो वहाँ उपस्थित थे, अमर्षमें भर गये और भीमसेनके ऊपर टूट पड़े। महोदरने नौ, आदित्यकेतुने सत्तर, बह्वाशीने पाँच, कुण्डधारने नब्बे, विशालाक्षने पाँच, पण्डितकने तीन और अपराजितने अनेकों बाण मारकर महाबली भीमको घायल कर दिया। शत्रुओंकी यह चोट भीमसेन नहीं सह सके। उन्होंने बायें हाथसे धनुषको दबाकर एक तीखे बाणसे अपराजितका सुन्दर मस्तक काट डाला। दूसरे बाणसे कुण्डधारको यमलोक भेज दिया। एक बाण पण्डितकके ऊपर छोड़ा, जो उसका प्राण लेकर पृथ्वीमें समा गया। फिर तीन बाणोंसे विशालाक्षका मस्तक काट गिराया। एक बाण महोदरकी छातीमें मारा। छाती फट गयी और वह प्राणशून्य होकर जमीनपर गिर पड़ा। इसके बाद एक बाणसे आदित्यकेतुकी ध्वजा काटकर दूसरेसे उसका सिर भी उड़ा दिया। फिर क्रोधमें भरे हुए भीमने बह्वाशीको भी यमलोकका अतिथि बनाया।

तदनन्तर आपके अन्य पुत्र रणभूमिसे भाग चले। उनके मनमें यह भय समा गया कि भीमसेनने जो सभामें कौरवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे आज ही पूर्ण कर डालेगा। भाइयोंके मरनेसे दुर्योधनको बड़ा क्लेश हुआ। उसने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी कि 'सब लोग मिलकर इस भीमको मार डालो।' इस प्रकार अपने बन्धुओंकी मृत्यु देखकर आपके पुत्रोंको विदुरजीकी कही बात याद आ गयी। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'विदुरजी बड़े बुद्धिमान् और दिव्यदर्शी हैं; उन्होंने हमारे हितकी दृष्टिसे जो कुछ कहा था, वह इस समय सत्य हो रहा है।'

इसके बाद दुर्योधन भीष्मपितामहके पास आया और बड़े दुःखके साथ फूट-फूटकर रोने लगा। बोला—'मेरे भाई बड़ी तत्परताके साथ लड़ रहे थे, उन्हें भीमसेनने मार डाला तथा दूसरे योद्धाओंका भी वह संहार कर रहा है। आप तो मध्यस्थ बने बैठे हैं और हमलोगोंकी बराबर उपेक्षा करते जा रहे हैं। देखिये, मेरा प्रारब्ध कितना खोटा है! सचमुच मैं बड़े बुरे रास्तेपर आ गया।' यद्यपि दुर्योधनकी

बातें कठोर थीं, तो भी उन्हें सुनकर भीष्मजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे कहने लगे—"बेटा! मैंने, आचार्य द्रोणने, विदुरने तथा तुम्हारी माता यशस्विनी गान्धारीने भी यह परिणाम सुझाया था; किन्तु उस समय तुम नहीं समझे। मैंने यह भी कहा था कि 'मुझे और आचार्य द्रोणको युद्धमें न लगाना,' पर तुमने ध्यान नहीं दिया। अब मैं तुमसे यह सच्ची बात बता रहा हूँ। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे जिस-जिसको भीमसेन अपने सम्मुख देखेगा, अवश्य मार डालेगा। इस संग्रामका चरम फल स्वर्गकी प्राप्ति ही मानकर स्थिर भावसे युद्ध करो। पाण्डवोंको तो इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं जीत सकते।"

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! अकेले भीमसेनने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मार डाला—यह देखकर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यने क्या किया? तात! मैंने, भीष्मने तथा विदुरने भी दुर्योधनको बहुत मना किया; गान्धारीने भी बहुत समझाया; मगर उस मूर्खने मोहवश एक न मानी। उसीका फल आज भोगना पड़ रहा है।

सञ्जयने कहा—महाराज! आपने भी उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी थी। हितैषियोंने बारंबार कहा—'अपने पुत्रोंको जूआ खेलनेसे रोकिये, पाण्डवोंसे द्रोह न कीजिये।' किन्तु आप कुछ भी सुनना नहीं चाहते थे। जैसे मरनेवाले मनुष्यको दवा लेना बुरा लगता है, वैसे ही आपको वे बातें अच्छी नहीं लगीं। यही कारण है कि आज कौरवोंका विनाश हो रहा है। अच्छा, अब सावधान होकर युद्धका समाचार सुनिये। उस दिन दोपहरके समय भयङ्कर संग्राम छिड़ा। बड़ा भारी जन-संहार हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर-की आज्ञासे उनकी सारी सेना क्रोधमें भरकर भीष्मके उ आयी। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, समस्त सोमक ये साथ राजा द्रुपद और विराट, केकयराजकुमार, धृष्टके कुन्तिभोजने एक साथ भीष्मपर ही चढ़ायी कर दी। द्रौपदीके पाँच पुत्र तथा चेकितान—ये दुर्योधनके भे राजाओंका सामना करने लगे। तथा अभिमन्यु, घ और भीमसेनने कौरवोंपर धावा किया। इस प्रका भागोंमें विभक्त होकर पाण्डवलोग कौरव-सेनाका संहा लगे। इसी प्रकार कौरवोंने भी अपने शत्रुओंका विनाश कर दिया।

द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर सोमक और सृञ्जयोंपर अ किया और उन्हें यमलोक भेजने लगे। उस समय सृ हाहाकार मच गया। दूसरी ओर महाबली भीमसेनने क का संहार आरम्भ किया। दोनों ओरके सैनिक एक द मारने और मरने लगे। खूनकी नदी बह चली। वह संग्राम यमलोककी वृद्धि कर रहा था। भीमसेन हाथीसव सेनामें पहुँचकर उन्हें मृत्युकी भेंट कर रहे थे। नकुल सहदेव आपके घुड़सवारोंपर टूट पड़े थे। उनके मारे सैकड़ों-हजारों घोड़ोंकी लाशोंसे रणभूमि पट गयी। अ भी बहुत-से राजाओंको मार गिराया था, उनके कारण र भूमि बड़ी भयङ्कर दीख पड़ती थी। जिस समय भीष्म, कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा आदि क्रोधमें भरकर युद्ध लगते थे तो पाण्डवी सेनाका संहार होने लगता था पाण्डवोंके कुपित होनेपर आपके पक्षवाले वीरोंका वि आरम्भ हो जाता था। इस प्रकार दोनों सेनाओंका जारी था।

शकुनिके भाइयोंका तथा इरावान्‌का वध

सञ्जयने कहा—जिस समय बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भयङ्कर संग्राम चल रहा था, शकुनिने पाण्डवोंपर धावा किया। उसके साथ ही बहुत बड़ी सेनाके साथ कृतवर्मा भी था। इनका मुकाबला करनेके लिये अर्जुन-का पुत्र इरावान् आया। इरावान्‌का जन्म नागकन्याके गर्भसे हुआ था। वह बहुत ही बलवान् था। जब शकुनि तथा गन्धार देशके अन्यान्य वीर पाण्डवसेनाका व्यूह तोड़कर उसके भीतर घुस गये तो इरावान्‌ने अपने योद्धाओंसे कहा—'वीरो! ऐसी युक्तिसे काम लो, जिससे ये कौरव योद्धा आज अपने सहायक और वाहनोंसहित मार डाले जायँ।' इरावान्‌के सैनिक 'बहुत अच्छा' कहकर कौरवोंकी दुर्जय सेनापर पड़े और उसके योद्धाओंको मार-मारकर गिराने लगे। उ सेनाका यह विध्वंस सुबलके पुत्रोंसे नहीं सहा गया। उ दौड़कर इरावान्‌को चारों ओरसे घेर लिया। और उ तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। इरावान्‌के शरीरपर अ पीछे अनेकों घाव हो गये, सारा बदन लोहूसे भीग ग वह अकेला था और उसके ऊपर चारों ओरसे बहुतोंकी पड़ रही थी, तो भी न तो वह अधीर हुआ और न व्य व्याकुल ही। उसने अपने तीखे बाणोंसे सबको बींधकर मूर्छि कर दिया। फिर अपने शरीरमें धँसे हुए प्रासोंको खींच

निकाला और उन्हींसे सुबल-पुत्रोंपर बड़े वेगसे प्रहार किया। इसके बाद उसने अपने हाथमें चमकती हुई तलवार और ढाल ली तथा सुबलके पुत्रोंको मार डालनेकी इच्छासे वह पैदल ही आगे बढ़ा। इतनेमें उनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और वे क्रोधमें भरकर इरावान्‌पर टूट पड़े। साथ ही वे उसे कैद करनेका उद्योग करने लगे। परन्तु ज्यों ही वे निकट आये, इरावान्‌ने तलवारका ऐसा हाथ मारा कि उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये। अस्त्र-शस्त्र, बाहु तथा अन्य अङ्गोंके कट जानेसे वे प्राणहीन होकर गिर पड़े। उनमेंसे केवल वृषभ नामक राजकुमार ही जीवित बचा।

उन सबको गिरा देख दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ और वह अलम्बुष नामक राक्षसके पास पहुँचा। वह राक्षस देखनेमें बड़ा भयानक और मायावी था तथा बकासुरका वध करनेके कारण भीमसेनसे वैर मानता था। उससे दुर्योधनने कहा—'वीरवर! देखो, यह अर्जुनका पुत्र इरावान् बहुत बलवान् तथा मायावी है; ऐसा कोई उपाय करो, जिससे यह मेरी सेनाका संहार न कर सके। तुम इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकते हो, मायास्त्रमें भी प्रवीण हो; अतः जैसे बने, इस इरावान्‌को तुम युद्धमें मार डालो।'

वह भयङ्कर राक्षस 'बहुत अच्छा' कहकर सिंहके समान गरजता हुआ इरावान्‌के पास आया और उसे मारनेके लिये आगे बढ़ा। इरावान्‌ने भी वध करनेकी इच्छासे आगे बढ़कर उसे रोका। उसे अपनी ओर आते देख राक्षसने मायाका प्रयोग आरम्भ किया। उसने मायासे दो हजार घोड़े उत्पन्न किये तथा उनपर मायाके ही सवार बिठाये। वे सवार भी राक्षस थे और हाथोंमें शूल तथा पट्टिश लिये हुए थे। उन मायामय राक्षसोंका इरावान्‌की सेनाके साथ युद्ध होने लगा और दोनों ओरके योद्धा परस्पर प्रहार कर एक दूसरेको यमलोक भेजने लगे।

सेनाके मारे जानेपर दोनों रणोन्मत्त वीर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। राक्षस इरावान्‌पर आक्रमण करता था और वह उसका वार बचा जाता था। एक बार जब राक्षस बहुत निकट आ गया तो इरावान्‌ने उसके धनुष और भाथेको काट डाला। तब वह इरावान्‌को अपनी मायासे मोहित-सा करता हुआ आकाशमें उड़ गया। यह देख इरावान् भी अन्तरिक्षमें उड़ा और राक्षसको अपनी मायासे मोहित कर उसके अङ्गोंको बाणोंसे बींधने लगा। महाराज! बाणोंसे बारंबार काटनेपर भी वह राक्षस नवीनरूपमें प्रकट हो जाता और नौजवान ही बना रहता था; क्योंकि राक्षसोंमें माया स्वाभाविक ही होती है और उनका रूप भी उनके इच्छानुसार हुआ करता है। इस प्रकार उसका जो-जो अङ्ग कटता था, वही पुनः उत्पन्न हो जाता था। इरावान् भी क्रोधमें भरा हुआ था, अतः वह उसपर फरसेसे बारंबार प्रहार कर रहा था। उससे छिदनेके कारण अलम्बुषके शरीरसे बहुत रक्त बहने लगा और वह घोर चीत्कार करने लगा। शत्रुको इस प्रकार प्रबल होते देख अलम्बुषके क्रोधकी सीमा न रही। उसने महाभयानक रूप बनाकर इरावान्‌को पकड़नेका प्रयत्न किया। उस राक्षसी मायाको देखकर इरावान्‌ने भी मायाका प्रयोग किया। इतनेमें इरावान्‌की माताके कुलका एक नाग बहुत-से नागोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा और इरावान्‌को सब ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करने लगा। इरावान्‌ने शेषनागके समान विराट्‌रूप धारण करके अनेकों नागोंसे उस राक्षसको ढक दिया। तब अलम्बुष गरुडका रूप धारण करके उन नागोंको खाने लगा। उसने इरावान्‌के मातृकुलके सब नागोंको भक्षण कर लिया और उसे अपनी मायासे मोहित करके तलवारका वार किया। इरावान्‌का चन्द्रमाके समान सुन्दर मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा। इस प्रकार जब अलम्बुषने उस वीर अर्जुनकुमारको मार डाला तो समस्त राजाओंके साथ कौरवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

अर्जुनको अपने पुत्र इरावान्‌के मरनेकी खबर नहीं थी, वे भीष्मकी रक्षा करनेवाले राजाओंका संहार कर रहे थे। तथा भीष्मजी भी मर्मभेदी बाणोंसे पाण्डवोंके महारथियोंको कम्पित करते हुए उनके प्राण ले रहे थे। इसी प्रकार भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकिने भी बड़ा भयानक युद्ध किया था। द्रोणाचार्यका पराक्रम देखकर तो पाण्डवोंके मनमें बहुत भय समा गया। वे कहने लगे, 'अकेले द्रोणाचार्य ही सम्पूर्ण सैनिकोंको मार डालनेकी शक्ति रखते हैं; फिर जब इनके साथ पृथ्वीके प्रसिद्ध शूरवीर भी हैं, तो इनकी विजयके लिये क्या कहना है!' उस दारुण संग्राममें दोनों ओरके सैनिक एक-दूसरेका उत्कर्ष नहीं सह सके और आविष्ट-से होकर बड़ी कठोरताके साथ लड़ने लगे।

घटोत्कचका युद्ध

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! इरावान्‌को मरा हुआ देखकर महारथी पाण्डवोंने उस युद्धमें क्या किया ?

सञ्जयने कहा—राजन् ! इरावान् मारा गया, यह देख भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने बड़ी विकट गर्जना की। उसकी आवाज़से समुद्र, पर्वत और वनोंके साथ सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। उस भयङ्कर नादको सुनकर आपके सैनिकोंके पैरोंमें काठ मार गया, वे थर-थर काँपने लगे और उनके अङ्गोंसे पसीना छूटने लगा। सभीकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। घटोत्कच क्रोधके मारे प्रलयकालीन यमराजके समान हो उठा। उसकी आकृति बड़ी भयङ्कर हो गयी। उसके हाथमें जलता हुआ त्रिशूल था तथा साथमें तरह-तरहके हथियारोंसे लैस राक्षसोंकी सेना चल रही थी। दुर्योधनने देखा भयङ्कर राक्षस आ रहा है, और मेरी सेना उसके डरसे पीठ दिखाकर भाग रही है, तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। बस, हाथमें एक विशाल धनुष ले बारंबार सिंहनाद करते हुए उसने घटोत्कच-पर धावा किया। उसके पीछे दस हजार हाथियोंकी सेना लेकर बंगालका राजा सहायताके लिये चला। आपके पुत्रको हाथियोंकी सेनाके साथ आते देख घटोत्कच भी बहुत कुपित हुआ। फिर तो राक्षसोंकी और दुर्योधनकी सेनाओंमें रोमाञ्च-कारी युद्ध होने लगा। राक्षस बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि-से योद्धाओंका संहार करने लगे।

तब दुर्योधन भी अपने प्राणोंका भय छोड़कर राक्षसों-पर टूट पड़ा और उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके हाथसे प्रधान-प्रधान राक्षस मारे जाने लगे। उसने चार बाणोंसे महावेग, महारौद्र, विद्युज्जिह्व और प्रमाथी—इन चार राक्षसोंको मार डाला। तत्पश्चात् वह पुनः राक्षस-सेनापर बाण बरसाने लगा। आपके पुत्रका यह पराक्रम देख-कर घटोत्कच क्रोधसे जल उठा और बड़े वेगसे दुर्योधनके पास पहुँचकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये कहने लगा—'अरे नृशंस ! जिन्हें तुमने दीर्घकालतक वनोंमें भटकाया है, उन माता-पिताके ऋणसे आज तुझे मारकर उऋण होऊँगा।' ऐसा कहकर घटोत्कचने दाँतोंसे ओठ दबाकर
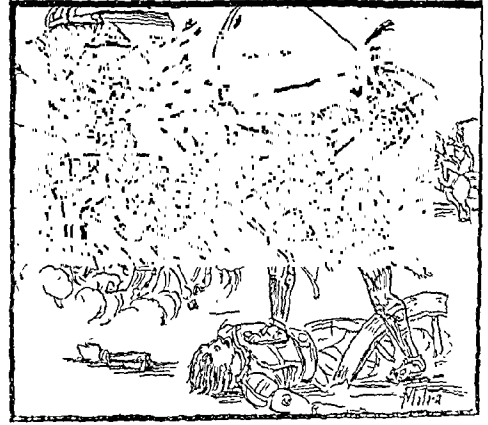
अपने विशाल धनुषसे बाणोंकी वर्षा करके दुर्योधनको ढक दिया। तब दुर्योधनने भी पचीस बाण मारकर उस राक्षस-को घायल किया। राक्षसने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली एक महाशक्ति हाथमें लेकर आपके पुत्रको मार डालनेका विचार किया। यह देख बंगालके राजाने बड़ी उतावलीके साथ अपना हाथी उसके आगे बढ़ा दिया। दुर्योधनका रथ हाथी-के ओटमें हो गया और प्रहारका मार्ग रुक गया। इससे अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचने हाथीपर ही शक्तिका प्रहार किया। उसके लगते ही हाथी भूमिपर गिरा और मर गया, तथा बंगालका राजा उसपरसे कूदकर पृथ्वीपर आ गया।
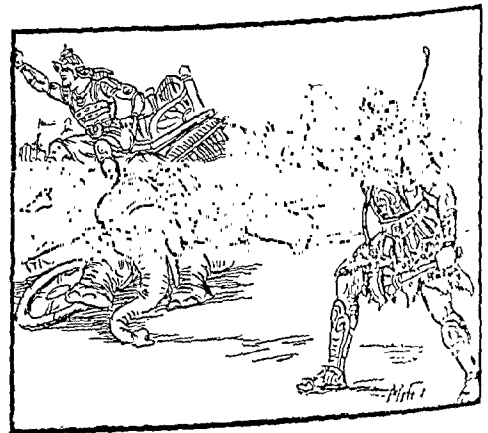
हाथी मरा और सेना भाग चली—यह देख दुर्योधनको बड़ा कष्ट हुआ; किन्तु क्षत्रियधर्मका खयाल करके वह पीछे नहीं हटा, अपनी जगहपर पर्वतके समान स्थिरभावसे खड़ा

रहा। फिर उसने राक्षसपर कालाग्निके समान तीक्ष्ण बाणका प्रहार किया। किन्तु वह उसे बचा गया और पुनः बड़ी भयङ्कर गर्जना करके सम्पूर्ण सेनाको डराने लगा। उसका भैरवनाद सुनकर भीष्मपितामहने अन्य महारथियोंको दुर्योधनकी सहायताके लिये भेजा। द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक, जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, उज्जैनके राजकुमार, बृहद्बल, अश्वत्थामा, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति और इनके पीछे चलनेवाले कई हजार रथी—ये सब दुर्योधनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे। घटोत्कच भी मैनाक पर्वतकी भाँति निर्भीक खड़ा रहा, उसके भाई-बन्धु उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर दोनों दलोंमें रोमाञ्चकारी संग्राम शुरू हुआ। घटोत्कचने अर्धचन्द्राकार बाण छोड़कर द्रोणाचार्यका धनुष काट दिया, एक बाणसे सोमदत्तकी ध्वजा खण्डित कर दी और तीन बाणोंसे बाह्लीककी छाती छेद डाली। फिर कृपाचार्यको एक और चित्रसेनको तीन बाणोंसे घायल किया। एक बाण विकर्णके कन्धेकी हँसलीपर मारा, विकर्ण खूनसे लथपथ होकर रथके पिछले भागमें जा बैठा। फिर भूरिश्रवाको पंद्रह बाण मारे; वे बाण उसका कवच भेदन कर जमीनमें घुस गये। इसके बाद उसने अश्वत्थामा और विविंशतिके सारथियोंपर प्रहार किया। वे दोनों अपने-अपने घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर रथकी बैठकमें जा गिरे। फिर जयद्रथकी ध्वजा और धनुष काट डाले। अवन्तिराजके चारों घोड़े मार दिये। एक तीखे बाणसे राजकुमार बृहद्बलको घायल किया और कई बाण मारकर राजा शल्यको भी बींध डाला।

इस प्रकार कौरवपक्षके सभी वीरोंको विमुख करके वह दुर्योधनकी ओर बढ़ा। यह देख कौरव वीर भी उसको मारनेकी इच्छासे आगे बढ़े। घटोत्कचपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा होने लगी। जब वह बहुत ही घायल और पीडित हो गया तो गरुडकी भाँति आकाशमें उड़ गया तथा अपनी भैरवगर्जनासे अन्तरिक्ष और दिशाओंको गुँजाने लगा। उसकी आवाज सुनकर युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, 'घटोत्कचके प्राण सङ्कटमें हैं, जाकर उसकी रक्षा करो।' भाईकी आज्ञा मानकर भीमसेन अपने सिंहनादसे राजाओंको भयभीत करते हुए बड़े वेगसे चले। उनके पीछे सत्यधृति, सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजका पुत्र अभिभू, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँच पुत्र, क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा तथा अपनी सेनाओंसहित अनूपदेशका राजा नील आदि महारथी भी चल दिये। ये सभी वीर वहाँ पहुँचकर घटोत्कचकी रक्षा करने लगे।

इनके आनेका कोलाहल सुनकर भीमसेनके भयसे कौरव सैनिकोंका मुख उदास हो गया। वे घटोत्कचको छोड़कर पीछे लौट पड़े। फिर दोनों ओरकी सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा और कुछ ही देरमें कौरवोंकी बहुत बड़ी सेना प्रायः भाग खड़ी हुई। यह देख दुर्योधन बहुत कुपित हुआ और भीमसेनके सम्मुख जाकर उसने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उनका धनुष काट दिया। फिर बड़ी फुर्तीके साथ उनकी छातीमें बाण मारा। उससे भीमसेनको बड़ी पीडा हुई और अचेत होनेके कारण उन्हें अपनी ध्वजाका सहारा लेना पड़ा। उनकी यह दशा देख घटोत्कच क्रोधसे जल उठा और अभिमन्यु आदि महारथियोंके साथ वह दुर्योधनपर टूट पड़ा। तब द्रोणाचार्यने कौरव-पक्षके महारथियोंसे कहा—'वीरो! राजा दुर्योधन सङ्कटके समुद्रमें डूब रहा है, शीघ्र जाकर उसकी रक्षा करो।'

आचार्यकी बात सुनकर कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ, बृहद्बल तथा अवन्तिके राजकुमार—ये सभी दुर्योधनको घेरकर खड़े हो गये। द्रोणाचार्यने अपना महान् धनुष चढ़ाकर भीमसेनको छब्बीस बाण मारे, फिर बाणोंकी झड़ी लगाकर उन्हें आच्छादित कर दिया। तब भीमसेनने भी आचार्यकी बायीं पसलीपर दस बाण मारे। इनकी करारी चोट पड़नेसे वयोवृद्ध आचार्य सहसा बेहोश होकर रथके पिछले भागमें लुढ़क गये। यह देख दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों क्रोधमें भरकर भीमकी ओर दौड़े। उन्हें आते देख भीमसेन भी हाथमें कालदण्डके समान गदा लेकर रथसे कूद पड़े और उन दोनोंका सामना करनेको खड़े हो गये। तदनन्तर, कौरव महारथी भीमको मार डालनेकी इच्छासे उनकी छातीपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब अभिमन्यु आदि पाण्डव महारथी भी भीमकी रक्षाके लिये जीवनका मोह छोड़कर दौड़े। अनूपदेशका राजा नील भीमसेनका प्रिय मित्र था, उसने अश्वत्थामापर एक बाण छोड़ा। वह बाण उसके शरीरमें धँस गया, उससे खून बहने लगा और उसे बड़ी पीडा हुई। तब अश्वत्थामाने भी क्रुद्ध होकर नीलके चारों घोड़ोंको मार डाला, ध्वजा काटकर गिरा दी और एक भल्ल नामक बाणसे उसकी छाती छेद डाली। उसकी वेदनासे मूर्छित होकर नील अपने रथके पिछले भागमें जा बैठा। उसकी यह दशा देखकर घटोत्कचने अपने भाई-बन्धुओंके साथ अश्वत्थामापर धावा किया।

उसे आते देख अश्वत्थामा भी शीघ्रतासे आगे बढ़ा। बहुत-से राक्षस घटोत्कचके आगे-आगे आ रहे थे, अश्वत्थामाने उन सबको मार डाला। द्रोणकुमारके बाणोंसे राक्षसोंको मरते देख घटोत्कचने भयङ्कर माया प्रकट की। उससे अश्वत्थामा भी मोहित हो गया। कौरवपक्षके सभी योद्धा मायाके प्रभावसे युद्ध छोड़कर भागने लगे। उन्हें ऐसा दीखता था कि 'मेरे सिवा सभी सैनिक शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनमें डूबे हुए पृथ्वीपर छटपटा रहे हैं। द्रोणाचार्य, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि महान् धनुर्धर, प्रधान-प्रधान कौरव तथा अन्य राजालोग भी मारे जा चुके हैं तथा हजारों घोड़े और घुड़सवार धराशायी हो रहे हैं।' यह सब देखकर आपकी सेना छावनीकी ओर भागने लगी। यद्यपि उस समय हम और भीष्मजी भी पुकार-पुकारकर कह रहे थे 'वीरो! युद्ध करो, भागो मत; यह तो राक्षसी माया है, इसपर विश्वास न करो' तो भी वे हमलोगोंकी बातपर विश्वास न कर सके। शत्रुकी सेनाको भागती देख विजयी पाण्डव घटोत्कचके साथ सिंहनाद करने लगे। चारों ओर शंखध्वनि होने लगी। दुन्दुभि बजी। इन सबकी तुमुल ध्वनिसे रणभूमि गूँज उठी। इस प्रकार सूर्यास्त होते-होते दुरात्मा घटोत्कचने आपकी सेनाको चारों ओर भगा दिया।

दुर्योधन और भीष्मकी बातचीत तथा भगदत्तका पाण्डवोंसे युद्ध

सञ्जयने कहा—उस महासंग्राममें राजा दुर्योधन भीष्मजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ उन्हें प्रणाम करके उसने घटोत्कचकी विजय और अपनी पराजयका समाचार सुनाया। फिर कहा 'पितामह! पाण्डवोंने जैसे श्रीकृष्णका सहारा लिया है, उसी प्रकार हमलोगोंने आपका आश्रय लेकर शत्रुओंके साथ घोर युद्ध ठाना है। मेरे साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ सदा आपकी आज्ञाका पालन करने-के लिये तैयार रहती हैं। तो भी आज घटोत्कचकी सहायता पाकर पाण्डवोंने मुझे युद्धमें हरा दिया। इस अपमानकी आगमें मैं जल रहा हूँ और चाहता हूँ आपकी सहायता लेकर उस अधम राक्षसका स्वयं ही वध करूँ। अतः आप कृपा करके मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये।'

तब भीष्मजीने कहा—'राजन्! तुम्हें राजधर्मका खयाल करके सदा युधिष्ठिरके अथवा भीम, अर्जुन या नकुल-सहदेवके साथ ही युद्ध करना चाहिये; क्योंकि राजाको राजाके साथ ही युद्ध करना उचित है। और लोगोंसे लड़नेके लिये तो हमलोग हैं ही। मैं द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा तथा विकर्ण-दुःशासन आदि तुम्हारे भाई—ये सब तुम्हारे लिये उस महाबली राक्षससे युद्ध करेंगे। अथवा उस दुष्टके साथ लड़नेके लिये ये इन्द्रके समान पराक्रमी राजा भगदत्त चले जायँ।' यह कहकर भीष्म-जी राजा भगदत्तसे बोले—'महाराज! आप ही जाकर घटोत्कचका मुकाबला कीजिये।'

सेनापतिकी आज्ञा पाकर राजा भगदत्त सिंहनाद करते हुए बड़े वेगसे शत्रुओंकी ओर चले। उन्हें आते देख पाण्डवोंके महारथी भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदीके पुत्र, सत्यधृति, सहदेव, चेदिराज, वसुदान और दशार्णराज क्रोधमें भरकर उनके सामने आ गये। भगदत्तने भी सुप्रतीक हाथीपर आरूढ हो उन सब महारथियोंपर धावा किया। तदनन्तर, पाण्डवोंका भगदत्तके साथ भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। महान् धनुर्धर भगदत्तने भीमसेनपर धावा किया और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भीमसेनने भी क्रोधमें भरकर भगदत्तके हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेवाले सौसे भी अधिक वीरोंको मार डाला। तब भगदत्तने अपने उस गजराजको भीमसेनके रथकी ओर बढ़ाया। यह देख पाण्डवोंके कई महारथियोंने बाणोंकी वर्षा करते हुए उस हाथीको चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु भगदत्तको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अमर्षपूर्वक अपने हाथीको पुनः आगेकी ओर चलाया। अङ्कुश और अँगूठेका इशारा पाकर वह मत्त गजराज उस समय प्रलयकालीन अग्निके समान भयानक हो उठा। उसने क्रोधमें भरकर अनेकों रथों, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारोंसहित रौंद डाला। सैकड़ों-हजारों पैदलोंको कुचल दिया। यह देख राक्षस घटोत्कचने कुपित होकर उस हाथीको मार डालनेके लिये एक चमचमाता हुआ त्रिशूल चलाया; किन्तु भगदत्तने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसे काट दिया और अग्निशिखाके समान प्रज्वलित एक महाशक्ति घटोत्कचके ऊपर फेंकी। अभी वह शक्ति आकाशमें ही थी कि घटोत्कचने उछलकर उसे हाथमें पकड़ लिया और दोनों घुटनोंके बीचमें दबा-कर तोड़ डाला। यह एक अद्भुत बात हुई। आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और मुनियोंको भी यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पाण्डवलोग उसे शाबाशी देते हुए रणभूमिमें अपनी हर्षध्वनि फैलाने लगे। भगदत्तसे यह नहीं सहा गया।

उसने अपना धनुष खींचकर पाण्डव महारथियोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया तथा भीमसेनको एक, घटोत्कचको नौ, अभिमन्युको तीन और केकयराजकुमारोंको पाँच बाणोंसे बींध डाला। फिर दूसरे बाणसे क्षत्रदेवकी दाहिनी बाँह काट डाली, पाँच बाणोंसे द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको घायल किया तथा भीमसेनके घोड़ोंको मार गिराया, ध्वजा काट दी और सारथिको भी यमलोक भेज दिया। इसके बाद भीमसेनको भी बींध डाला। इससे पीडित होकर वे कुछ देरतक रथके पिछले भागमें बैठे रह गये। फिर हाथमें गदा लेकर वेगपूर्वक रथसे कूद पड़े। उन्हें गदा लिये आते देख कौरव सैनिकोंको बड़ा भय हुआ। इतनेहीमें अर्जुन भी शत्रुओंका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे और कौरवोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसी समय भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको इरावान्‌के वधका समाचार सुनाया।

इरावान्‌की मृत्युपर अर्जुनका शोक तथा भीमसेनद्वारा कुछ धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध

सञ्जयने कहा—राजन्! अपने पुत्र इरावान्‌के मारे जानेका समाचार पाकर अर्जुनको बड़ा खेद हुआ और वे ठंडी-ठंडी साँसें भरने लगे। तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'महामति विदुरजीको तो यह कौरव और पाण्डवोंके भीषण संहारकी बात पहले ही मालूम हो गयी थी। इसीसे उन्होंने राजा धृतराष्ट्रको रोका भी था। मधुसूदन! इस युद्धमें कौरवोंके हाथसे हमारे और भी बहुत-से वीर मारे जा चुके हैं तथा हमने भी कौरवोंके कई वीरोंको नष्ट कर दिया है। यह सब कुकर्म हम धनके लिये ही तो कर रहे हैं। धिक्कार है ऐसे धनको, जिसके लिये इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंका विनाश किया जा रहा है! भला, यहाँ एकत्रित हुए अपने भाइयोंको मारकर हमें मिलेगा भी क्या? हाय! आज दुर्योधनके अपराध और शकुनि तथा कर्णके कुमन्त्रसे ही यह क्षत्रियोंका विध्वंस हो रहा है। मधुसूदन! मुझे तो अपने सम्बन्धियोंके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लगता, परन्तु ये क्षत्रियलोग मुझे युद्धमें असमर्थ समझेंगे। इसलिये शीघ्र ही अपने घोड़े कौरवोंकी सेनाकी ओर बढ़ाइये, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है।'

अर्जुनके ऐसा कहते ही श्रीकृष्णने वे हवासे बात करनेवाले घोड़े आगे बढ़ाये। यह देखकर आपकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। तुरंत ही भीष्म, कृप, भगदत्त और सुशर्मा अर्जुनके सामने आ गये। कृतवर्मा और बाह्लीकने सात्यकिका सामना किया तथा राजा अम्बष्ठ अभिमन्युके आगे आकर डट गया। इनके सिवा अन्य महारथी दूसरे योद्धाओंसे भिड़ गये। बस, अब अत्यन्त भीषण युद्ध छिड़ गया। भीमसेनने युद्धक्षेत्रमें आपके पुत्रोंको देखा तो क्रोधसे उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग जलने लगा। इधर आपके पुत्रोंने भी बाणोंकी वर्षा करके उन्हें बिल्कुल ढक दिया। इससे उनका रोष और भी भड़क उठा और वे सिंहके समान अपने ओठ चबाने लगे। तुरंत ही एक तीखे बाणसे उन्होंने व्यूढोरस्कपर वार किया और वह तत्काल निष्प्राण होकर गिर गया। एक दूसरे तीखे तीरसे उन्होंने कुण्डलीको धराशायी कर दिया। फिर उन्होंने अनेकों पैने बाण लिये और उन्हें बड़ी तेजीसे आपके पुत्रोंपर छोड़ने लगे। भीमसेनके दुर्दण्ड धनुषसे छूटे हुए वे बाण आपके महारथी पुत्रोंको रथसे नीचे गिराने लगे। अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज—ये आपके वीर पुत्र पृथ्वीपर गिरकर ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्तऋतुमें अनेकों पुष्पित आम्रवृक्ष

कटकर गिर गये हों। आपके शेष पुत्र भीमसेनको कालके समान समझकर रणक्षेत्रसे भाग गये।

जिस समय भीमसेन आपके पुत्रोंका नाश करनेमें लगे हुए थे, उसी समय द्रोणाचार्य उनपर सब ओरसे बाण बरसा रहे थे। इस अवसरपर भीमसेनने यह बड़ा ही अद्भुत कार्य किया कि एक ओर द्रोणाचार्यजीके बाणोंको रोकते हुए भी उन्होंने आपके उक्त पुत्रोंको मार डाला। इसी समय भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्यने अर्जुनको रोका। किन्तु अतिरथी अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे उन सबके अस्त्रोंको व्यर्थ करके आपके सेनाके कई प्रधान वीरोंको मृत्युके हवाले कर दिया। अभिमन्युने राजा अम्बष्ठको रथहीन कर दिया। तब उसने रथसे कूदकर अभिमन्युपर तलवारका वार किया और फुर्तीसे कृतवर्माके रथपर चढ़ गया। युद्धकुशल अभिमन्युने तलवारको आती देख बड़ी फुर्तीसे उसका वार बचा दिया। यह देखकर सारी सेनामें 'वाह! वाह!' का शब्द होने लगा। इसी प्रकार धृष्टद्युम्नादि दूसरे महारथी भी आपकी सेनासे संग्राम कर रहे थे तथा आपके सेनानी पाण्डवोंकी सेनासे भिड़े हुए थे। उस समय आपसमें मार-काट करते हुए दोनों ही पक्षोंके वीरोंका बड़ा कोलाहल हो रहा था। दोनों ओरके गर्वीले वीर आपसमें केश पकड़कर, नख और दाँतोंसे काटकर तथा लात और घूँसोंसे प्रहार करके युद्ध कर रहे थे। अवसर मिलनेपर वे थप्पड़, तलवार और कोहनियोंकी चोटसे भी अपने प्रतिपक्षियोंको यमराजके घर भेज देते थे। पिता पुत्रपर और पुत्र पितापर वार कर रहा था, वीरोंके अङ्ग-अङ्गमें उत्तेजना भरी हुई थी। इस प्रकार बड़ा ही घमासान युद्ध हो रहा था। आपसके घोर संघर्षके कारण दोनों ओरके वीर थक गये। उनमेंसे अनेकों भाग गये और अनेकों

धराशायी हो गये। इतनेहीमें रात्रि होने लगी। तब कौरव-पाण्डव दोनोंहीने अपनी-अपनी सेनाओंको लौटाया और यथासमय अपने-अपने डेरोंमें जाकर विश्राम किया।

दुर्योधनकी प्रार्थनासे भीष्मजीका पाण्डवोंकी सेनाके संहारके लिये प्रतिज्ञा करना

सञ्जयने कहा—महाराज! शिबिरमें पहुँचकर राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्ण आपसमें मिलकर
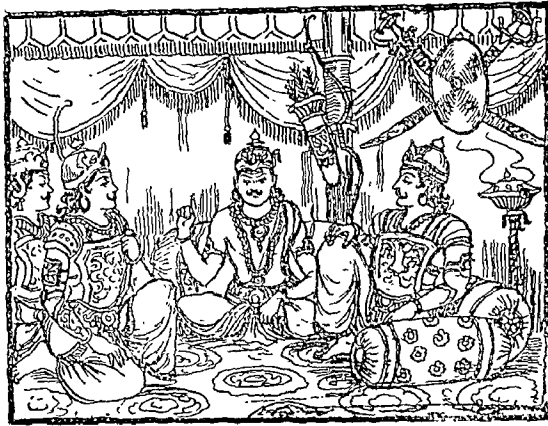
विचार करने लगे कि पाण्डवोंको उनके साथियोंके सहित किस प्रकार जीता जाय। राजा दुर्योधनने कहा, 'द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा पाण्डवोंकी प्रगतिको रोक नहीं रहे हैं। इसका क्या कारण है, कुछ समझमें नहीं आता। इस प्रकार पाण्डवोंका तो वध हो नहीं पाता, किन्तु वे मेरी सेनाको तहस-नहस किये देते हैं। कर्ण! इसीसे मेरी सेना और शस्त्रोंमें बहुत कमी हो गयी है। इस समय पाण्डव-वीर तो देवताओंके लिये भी अवध्य हो गये हैं। इनसे तंग आकर मुझे तो बड़ा सन्देह होने लगा है कि मैं किस प्रकार इनसे युद्ध करूँ।'

कर्णने कहा—भरतश्रेष्ठ! चिन्ता न कीजिये, मैं आपका काम करूँगा; अब भीष्मजीको जल्दी ही इस संग्रामसे हट जाना चाहिये। यदि ये युद्धसे हट जायँ और अपने शस्त्र रख दें तो मैं भीष्मजीके सामने ही पाण्डवोंको समस्त सोमक वीरोंके सहित नष्ट कर दूँगा—यह सत्यकी शपथ करके कहता हूँ। भीष्मजी तो पाण्डवोंपर सदासे ही दया करते हैं और उनमें इन महारथियोंको संग्राममें जीतनेकी शक्ति भी नहीं है। अतः अब आप शीघ्र ही भीष्मजीके डेरेपर जाइये और उनसे अस्त्र-शस्त्र रखवा दीजिये।

दुर्योधन बोला—शत्रुदमन ! मैं अभी भीष्मजीसे प्रार्थना करके तुम्हारे पास आता हूँ । भीष्मजीके हट जानेपर फिर तुम ही युद्ध करना ।

इसके बाद दुर्योधन अपने भाइयोंके सहित भीष्मजीके पास चला । दुःशासनने उसे एक घोड़ेपर चढ़ाया। भीष्मजीके डेरेपर पहुँचकर वह घोड़ेसे उतर पड़ा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर सब प्रकारसे सुन्दर एक सोनेके सिंहासनपर बैठ गया । फिर उसने नेत्रोंमें आँसू भर हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे कहा, 'दादाजी ! आपका आश्रय पाकर तो हम इन्द्रके सहित समस्त देवताओंको जीतनेका भी साहस रखते हैं, फिर अपने मित्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित इन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? इसलिये अब आपको मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये । आप पाण्डवोंको और सोमक वीरोंको मारकर अपने वचनोंको सत्य कीजिये । और यदि पाण्डवोंपर दया एवं मेरे प्रति द्वेष होनेसे अथवा मेरे मन्दभाग्यसे आप पाण्डवोंकी रक्षा कर रहे हों तो अपने स्थानपर कर्णको युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये । वह अवश्य ही पाण्डवोंको उनके सुहृद् और बन्धु-बान्धवोंके सहित परास्त कर देगा ।' भीष्मजीसे इतना कहकर दुर्योधन मौन हो गया ।

महामना भीष्मजी आपके पुत्रके वाग्बाणोंसे विद्ध होकर बहुत ही व्यथित हुए, किन्तु उन्होंने उससे कोई कड़वी बात नहीं कही । वे बड़ी देरतक लंबे-लंबे श्वास लेते रहे । उसके बाद उन्होंने क्रोधसे त्यौरी बदलकर दुर्योधनको समझाते हुए कहा, 'बेटा दुर्योधन ! ऐसे वाग्बाणोंसे तुम मेरे हृदयको क्यों छेदते हो ? मैं तो अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहा हूँ और तुम्हारा हित करना चाहता हूँ । तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं अपने प्राणतक होमनेको तैयार हूँ । देखो, इस वीर अर्जुनने इन्द्रको भी परास्त करके खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया था—यही इसकी अजेयताका पूरा प्रमाण है । जिस समय गन्धर्वलोग तुम्हें बलात्कारसे पकड़कर ले गये थे, उस समय भी तो इसीने तुम्हें छुड़ाया था । तब तुम्हारे ये शूरवीर भाई और कर्ण तो मैदान छोड़कर भाग गये थे । यह क्या उसकी अद्भुत शक्तिका परिचायक नहीं है । विराटनगरमें इस अकेलेने ही हम सबके छक्के छुड़ा दिये थे तथा मुझे और द्रोणाचार्यको भी परास्त करके योद्धाओंके वस्त्र छीन लिये थे । इसी प्रकार अश्वत्थामा, कृपाचार्य और अपने पुरुषार्थकी डींग हाँकनेवाले कर्णको भी नीचा दिखाकर उत्तराको उनके वस्त्र दिये थे । यह भी उसकी वीरताका पूरा प्रमाण है । भला, जिसके रक्षक जगत्‌की रक्षा करनेवाले शंख-चक्र-गदाधारी श्रीकृष्णचन्द्र हैं उस अर्जुनको संग्राममें कौन जीत सकता है । ये श्रीवसुदेवनन्दन अनन्तशक्ति हैं; संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले हैं; सबके ईश्वर हैं, देवताओंके भी पूज्य हैं और स्वयं सनातन परमात्मा हैं । यह बात नारदादि महर्षि कई बार तुमसे कह चुके हैं । किन्तु तुम मोहवश कुछ समझते ही नहीं हो । देखो, एक शिखण्डीको छोड़कर मैं और सब सोमक तथा पाञ्चाल वीरोंको मारूँगा । अब या तो मैं ही उनके हाथसे मारा जाऊँगा या उन्हें ही संग्राममें मारकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा । यह शिखण्डी राजा द्रुपदके घरमें पहले स्त्री-रूपसे ही उत्पन्न हुआ था, पीछे वरके प्रभावसे यह पुरुष हो गया है । इसलिये मेरी दृष्टिमें तो यह शिखण्डिनी स्त्री ही है । अतः इसपर तो मेरे प्राणोंपर आ बनेगी तो भी मैं हाथ नहीं उठाऊँगा । अब तुम आनन्दसे जाकर शयन करो । कल मेरा बड़ा भीषण संग्राम होगा । उस युद्धकी लोग तबतक चर्चा करेंगे, जबतक कि यह पृथ्वी रहेगी ।'

राजन् ! भीष्मजीके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधनने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया । फिर वह अपने डेरेपर चला आया और सो गया । दूसरे दिन सबेरे उठते ही उसने सब राजाओंको आज्ञा दी कि 'आपलोग अपनी-अपनी सेना तैयार करें, आज भीष्मजी कुपित होकर सोमक वीरोंका संहार करेंगे। फिर दुःशासनसे कहा, 'तुम शीघ्र ही भीष्मजीकी रक्षाके लिये कई रथ तैयार करो । आज अपनी बाईसों सेनाओंको इनकी रक्षाके लिये आदेश दे दो । जिस प्रकार अरक्षित सिंहको कोई भेड़िया मार जाय, उस तरह भेड़ियेके समान इस शिखण्डीके हाथसे हम भीष्मजीका वध नहीं होने देंगे । आज शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और विविंशति खूब सावधानीसे भीष्मजीकी रक्षा करें; क्योंकि उनके सुरक्षित रहनेपर हमारी अवश्य जय होगी ।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब योद्धाओंने अनेकों रथोंसे भीष्मजीको सब ओरसे घेर लिया । भीष्मजीको अनेकों रथोंसे घिरा देखकर अर्जुनने धृष्टद्युम्नसे कहा, 'आज तुम भीष्मजीके सामने पुरुषसिंह शिखण्डीको रक्खो । उसकी रक्षा मैं करूँगा ।'

भीष्मजीका पाण्डव वीरोंके साथ घोर युद्ध तथा श्रीकृष्णका चाबुक लेकर भीष्मजीपर दौड़ना

सञ्जयने कहा—राजन् ! अब भीष्मजी अपनी विशाल वाहिनी लेकर चले और उन्होंने उसका सर्वतोभद्र नामक व्यूह बनाया। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैब्य, शकुनि, जयद्रथ, सुदक्षिण और आपके सभी पुत्र भीष्मजीके साथ सारी सेनाके आगे खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त व्यूहके दाहिनी ओर रहे। अश्वत्थामा, सोमदत्त और दोनों अवन्तिराजकुमार अपनी विशाल सेनाके सहित बायीं ओर खड़े हुए। त्रिगर्तवीरोंसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन व्यूहके मध्यभागमें रहा तथा महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी व्यूहबद्ध सेनाके पीछे खड़े हुए। इस प्रकार आपकी सेनाके सभी वीर व्यूहरचनाकी रीतिसे खड़े होकर युद्धके लिये तैयार हो गये।

दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव—ये सारी सेनाके व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए। तथा धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, घटोत्कच, चेकितान, कुन्तिभोज, अभिमन्यु, द्रुपद, युधामन्यु और केकयराजकुमार—ये सब वीर भी कौरवोंके मुकाबलेपर अपनी सेनाका व्यूह बनाकर खड़े हो गये। अब आपके पक्षके वीर भीष्मजीको आगे करके पाण्डवोंकी ओर बढ़े। इसी प्रकार भीमसेन आदि पाण्डव योद्धा भी संग्राममें विजय पानेकी लालसासे भीष्मजीके साथ युद्ध करनेके लिये आगे आये। बस, दोनों ओरसे घोर युद्ध होने लगा। दोनों ओरके वीर एक-दूसरेकी ओर दौड़कर प्रहार करने लगे। उस भीषण शब्दसे पृथ्वी डगमगाने लगी। धूलके कारण देदीप्यमान सूर्य भी प्रभाहीन मालूम पड़ने लगा। उस समय भारी भयकी सूचना देता हुआ बड़ा प्रचण्ड पवन चलने लगा। गीदड़ियें बड़ा भयङ्कर चीत्कार करने लगीं। इससे ऐसा जान पड़ता था मानो बड़ा भारी संहारकाल समीप आ गया है। कुत्ते तरह-तरहके शब्द करके रोने लगे। आकाशसे जलती हुई उल्काएँ पृथ्वीकी ओर गिरने लगीं। इस अशुभ मुहूर्तमें आकर खड़ी हुई हाथी, घोड़ों और राजाओंसे युक्त उन दोनों सेनाओंका शब्द बड़ा ही भयङ्कर हो उठा।

सबसे पहले महारथी अभिमन्युने दुर्योधनकी सेनापर आक्रमण किया। जिस समय वह उस अनन्त सैन्यसमुद्रमें घुसने लगा, आपके बड़े-बड़े वीर भी उसे रोक न सके। उसके छोड़े हुए बाणोंने अनेकों क्षत्रिय वीरोंको यमलोक भेज दिया। वह क्रोधपूर्वक यमदण्डके समान भयङ्कर बाण बरसाकर अनेकों रथ, रथी, घोड़े, घुड़सवार तथा हाथी और गजारोहियोंको विदीर्ण करने लगा। अभिमन्युका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर राजालोग प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। इस समय वह कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा

बृहद्बल और जयद्रथ आदि वीरोंको भी चक्करमें डालता हुआ बड़ी ही सफाई और शीघ्रताके साथ रणभूमिमें विचर रहा था। उसे अपने प्रतापसे शत्रुओंको सन्तप्त करते देखकर क्षत्रिय वीरोंको ऐसा जान पड़ता था मानो इस लोकमें दो अर्जुन प्रकट हो गये हैं। इस प्रकार अभिमन्युने आपकी विशाल वाहिनीके पैर उखाड़ दिये और बड़े-बड़े महारथियोंको कम्पित कर दिया। इससे उसके सुहृदोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अभिमन्युके द्वारा भगायी हुई आपकी सेना अत्यन्त आतुर होकर डकराने लगी।

अपनी सेनाका वह घोर आर्त्तनाद सुनकर राजा दुर्योधनने राक्षस अलम्बुषसे कहा, 'महाबाहो! वृत्रासुरने जैसे देवताओंकी सेनाको तितर-बितर कर दिया था, उसी प्रकार यह अर्जुनका पुत्र हमारी सेनाको भगा रहा है। संग्राममें इसे रोकनेवाला मुझे तुम्हारे सिवा और कोई दिखायी नहीं देता; क्योंकि तुम सब विद्याओंमें पारङ्गत हो। इसलिये अब तुम शीघ्र ही जाकर इसका काम तमाम कर दो। इस समय हम भीष्म-द्रोणादि योद्धा अर्जुनका वध करेंगे।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वह महाबली राक्षसराज वर्षाकालीन मेघके समान महान् गर्जना करता हुआ अभिमन्युकी ओर चला। उसका भीषण शब्द सुनकर पाण्डवोंकी सारी सेनामें खलबली पड़ गयी। उस समय कई योद्धा तो डरके

मारे अपने प्यारे प्राणोंसे हाथ धो बैठे। अभिमन्यु तुरंत ही धनुष-बाण लेकर उसके सामने आ गया। उस राक्षसने अभिमन्युके पास पहुँचकर उससे थोड़ी ही दूरीपर खड़ी हुई उसकी सेनाको भगा दिया। वह एक साथ पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीपर टूट पड़ा और उस राक्षसके प्रहारसे उस सेनामें बड़ा भीषण संहार होने लगा। फिर वह राक्षस पाँचों द्रौपदीपुत्रोंके सामने आया। उन पाँचोंने भी क्रोधमें भरकर उसपर बड़े वेगसे धावा किया। प्रतिविन्ध्यने तीखे-तीखे तीर छोड़कर उसे घायल कर दिया। बाणोंकी बौछारसे उसके कवचके भी टुकड़े उड़ गये। अब उन पाँचों भाइयोंने उसे बींधना आरम्भ किया। इस प्रकार अत्यन्त बाणविद्ध होनेसे उसे मूर्च्छा हो गयी। किन्तु थोड़ी ही देरमें चेत होनेपर क्रोधके कारण उसमें दूना बल आ गया। उसने तुरंत ही उनके धनुष, बाण और ध्वजाओंको काट डाला। फिर उसने मुसकराते हुए एक-एकके पाँच-पाँच बाण मारे तथा उनके सारथि और घोड़ोंको भी मार डाला। इस प्रकार रथहीन करके उस राक्षसने मार डालनेकी इच्छासे उनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। उन्हें कष्टमें पड़ा देखकर तुरंत ही अभिमन्यु उसकी ओर दौड़ा। उन दोनोंका इन्द्र और वृत्रासुरके समान बड़ा भीषण संग्राम हुआ। दोनों ही क्रोधसे तमतमाकर आपसमें भिड़ गये और एक-दूसरेकी ओर प्रलयाग्निके समान घूरने लगे।

अभिमन्युने पहले तीन और फिर पाँच बाणोंसे अलम्बुषको बींध दिया। इससे क्रोधमें भरकर अलम्बुषने अभिमन्युकी छातीमें नौ बाण मारे। इसके बाद उसने हजारों बाण छोड़कर अभिमन्युको तंग कर दिया। तब अभिमन्युने कुपित होकर नौ बाणोंसे उसकी छातीको छेद दिया। वे उसके शरीरको भेदकर मर्मस्थानोंमें घुस गये। इस प्रकार अपने शत्रुसे मार खाकर उस राक्षसने रणक्षेत्रमें बड़ी तामसी माया फैलायी। उससे सब योद्धाओंके आगे अन्धकार छा गया। उन्हें न तो अभिमन्यु ही दिखायी देता था और न अपने या शत्रुके पक्षके वीर ही दीखते थे। उस भीषण अन्धकारको देखकर अभिमन्युने भास्कर नामका प्रचण्ड अस्त्र छोड़ा! उससे सब ओर उजाला हो गया। इसी प्रकार उसने और भी कई प्रकारकी मायाओंका प्रयोग किया, किन्तु अभिमन्युने उन सभीको नष्ट कर दिया। मायाका नाश होनेपर जब वह अभिमन्युके बाणोंसे बहुत व्यथित होने लगा तो भयके मारे अपने रथको रणक्षेत्रमें ही छोड़कर भाग गया। उस माया-युद्ध करनेवाले राक्षसको इस प्रकार परास्त करके अभिमन्यु आपकी सेनाको कुचलने लगा।

तब अपनी सेनाको भागते देखकर भीष्मजी और अनेकों कौरव महारथी उस अकेले बालकको चारों ओरसे घेरकर बाणोंसे बींधने लगे। किन्तु वीर अभिमन्यु बल और पराक्रममें अपने पिता अर्जुन और मामा श्रीकृष्णके समान था और उसने रणभूमिमें उन दोनोंके ही समान पराक्रम दिखलाया। इतनेहीमें वीरवर अर्जुन अपने पुत्रकी रक्षाके लिये आपके सैनिकोंका संहार करते भीष्मजीके पास पहुँच गये। इसी तरह आपके पिता भीष्मजी भी रणभूमिमें अर्जुनके सामने आकर डट गये। तब आपके पुत्र रथ, हाथी और घोड़ोंके द्वारा सब ओरसे घेरकर भीष्मजीकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकार पाण्डवलोग भी अर्जुनके आस-पास रहकर भीषण संग्रामके लिये तैयार हो गये। अब सबसे पहले कृपाचार्यजीने अर्जुनपर पचीस बाण छोड़े। इसके उत्तरमें सात्यकिने आगे बढ़कर अपने पैने बाणोंसे कृपाचार्यको घायल कर दिया। फिर उसने उन्हें छोड़कर अश्वत्थामापर आक्रमण किया। इसपर अश्वत्थामाने सात्यकिके धनुषके दो टुकड़े कर दिये और फिर उसे भी बाणोंसे बींध दिया। सात्यकिने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर अश्वत्थामाकी छाती और भुजाओंमें साठ बाण मारे। उनसे अत्यन्त घायल और व्यथित होनेसे उन्हें मूर्च्छा आ गयी और वे अपनी ध्वजाके डंडेका सहारा लेकर रथके पिछले भागमें बैठ गये। कुछ देरमें चेत होनेपर प्रतापी अश्वत्थामाने कुपित होकर सात्यकिपर एक नाराच छोड़ा। वह उसे घायल करके पृथ्वीमें घुस गया। फिर एक दूसरे बाणसे उन्होंने उसकी ध्वजा काट डाली और बड़ी गर्जना करने लगे। इसके बाद वे उसपर बड़े प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा करने लगे। सात्यकिने भी उस सारे शरसमूहको काट डाला और तुरंत ही अनेक प्रकारके बाण बरसाकर अश्वत्थामाको आच्छादित कर दिया।

तब महाप्रतापी द्रोणाचार्य पुत्रकी रक्षाके लिये सात्यकिके सामने आये और अपने तीखे बाणोंसे उसे छलनी कर दिया। सात्यकिने भी अश्वत्थामाको छोड़कर बीस बाणोंसे आचार्यको बींध दिया। इसी समय परम साहसी अर्जुनने क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यजीपर धावा किया। उन्होंने तीन बाण छोड़कर द्रोणाचार्यजीको घायल किया और फिर बाणोंकी वर्षा करके उन्हें ढक दिया। इससे आचार्यकी क्रोधाग्नि एकदम भड़क उठी और उन्होंने बात-की-बातमें अर्जुनको बाणोंसे छा दिया।

फुर्तीसे उसका वार बचा दिया, इसलिये वह शक्ति सात्यकि-तक न पहुँचकर पृथ्वीपर गिर गयी। अब सात्यकिने अपनी शक्ति भीष्मजीपर छोड़ी। भीष्मजीने भी दो पैने बाणोंसे उसके दो टुकड़े कर दिये और वह भी पृथ्वीपर जा पड़ी। इस प्रकार शक्तिको काटकर भीष्मजीने नौ बाणोंसे सात्यकिकी छातीपर प्रहार किया। तब रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनाके सहित सब पाण्डवोंने सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये भीष्मजी-को चारों ओरसे घेर लिया। बस, अब कौरव और पाण्डवोंमें बड़ा ही घमासान और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा।

यह देखकर राजा दुर्योधनने दुःशासनसे कहा, 'वीरवर! इस समय पाण्डवोंने पितामहको चारों ओरसे घेर लिया है, इसलिये तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिये।' दुर्योधनका ऐसा आदेश पाकर आपका पुत्र दुःशासन अपनी विशाल वाहिनीसे भीष्मजीको घेरकर खड़ा हो गया। शकुनि एक लाख सुशिक्षित घुड़सवारोंको लेकर नकुल, सहदेव और राजा युधिष्ठिरको रोकने लगा तथा दुर्योधनने भी पाण्डवोंको रोकने-के लिये दस हजार घुड़सवारोंकी एक कुमुक भेजी। तब राजा युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव बड़ी फुर्तीसे घुड़सवारोंका वेग रोकने लगे तथा अपने तीखे बाणोंसे उनके सिर उड़ाने लगे। उनके धड़ाधड़ गिरते हुए सिर ऐसे जान पड़ते थे मानो वृक्षोंसे फल गिर रहे हों। इस प्रकार उस महासमरमें अपने शत्रुओंको परास्त कर पाण्डवलोग शंख और भेरियोंके शब्द करने लगे।

अपनी सेनाको पराजित देखकर दुर्योधन बहुत उदास हुआ। तब उसने मद्रराजसे कहा, 'राजन्! देखिये, नकुल-सहदेवके सहित ये ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र आपकी सेनाको भगाये देते हैं; आप इन्हें रोकनेकी कृपा करें। आपके बल और पराक्रमको हर कोई सहन नहीं कर सकता।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर मद्रराज शल्य रथसेना लेकर राजा युधिष्ठिरके सामने आये। उनकी सारी विशाल वाहिनी एक साथ युधिष्ठिरके ऊपर टूट पड़ी। किन्तु धर्मराजने उस सैन्यप्रवाह-को तुरंत रोक दिया और दस बाण राजा शल्यकी छातीमें मारे। इसी प्रकार नकुल और सहदेवने भी उनके सात-सात बाण मारे। मद्रराजने भी उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन बाण मारे। फिर साठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको घायल किया और दो दो बाण माद्रीपुत्रोंपर भी छोड़े। बस, दोनों ओरसे बड़ा ही घोर और कठोर युद्ध होने लगा।

अब सूर्यदेव पश्चिमकी ओर ढलने लगे थे। अतः आपके पिता भीष्मजीने अत्यन्त कुपित होकर बड़े तीखे बाणोंसे पाण्डव और उनकी सेनापर वार किया। उन्होंने बारह बाणोंसे भीमको, नौसे सात्यकिको, तीनसे नकुलको, सातसे सहदेवको और बारहसे राजा युधिष्ठिरके वक्षःस्थलको बींधकर बड़ा सिंहनाद किया। तब उन्हें बदलेमें नकुलने बारह, सात्यकिने तीन, धृष्टद्युम्नने सत्तर, भीमसेनने सात और युधिष्ठिरने बारह बाणोंसे घायल किया। इसी समय द्रोणाचार्य-ने पाँच-पाँच बाणोंसे सात्यकि और भीमसेनपर चोट की तथा भीम और सात्यकिने भी उनपर तीन-तीन बाण छोड़े।

इसके बाद पाण्डवोंने फिर पितामहको ही घेर लिया। किन्तु उनसे घिरकर भी अजेय भीष्म वनमें लगी हुई आग-के समान अपने तेजसे शत्रुओंको जलाते रहे। उन्होंने अनेकों रथ, हाथी और घोड़ोंको मनुष्यहीन कर दिया। उनकी प्रत्यञ्चाकी बिजलीकी कड़कके समान टङ्कार सुनकर सब प्राणी काँप उठे और उनके अमोघ बाण चलने लगे। भीष्म-जीके धनुषसे छूटे हुए बाण योद्धाओंके कवचोंमें नहीं लगते थे, वे सीधे उनके शरीरको फोड़कर निकल जाते थे। चेदि, काशी और करूष देशके चौदह हजार महारथी, जो संग्राममें प्राण देनेको तैयार और कभी पीछे पैर नहीं रखनेवाले थे, भीष्मजीके सामने आकर अपने हाथी, घोड़े और रथोंके सहित नष्ट होकर परलोकमें चले गये।

अब पाण्डवोंकी सेना इस भीषण मार-काटसे आर्तनाद करती भागने लगी। यह देखकर श्रीकृष्णने अपना रथ रोक-कर अर्जुनसे कहा, "कुन्तीनन्दन! तुम जिसकी प्रतीक्षामें थे, वह समय अब आ गया है। इस समय यदि तुम मोहग्रस्त नहीं हो तो भीष्मजीपर वार करो। तुमने विराटनगरमें राजाओंके एकत्रित होनेपर सञ्जयके सामने जो कहा था कि 'मुझसे संग्रामभूमिमें भीष्म-द्रोणादि जो भी धृतराष्ट्रके सैनिक युद्ध करेंगे, उन सभीको मैं उनके अनुयायियोंसहित मार डालूँगा', उस बातको अब सच करके दिखा दो। तुम क्षात्र-धर्मका विचार करके बेखटके युद्ध करो।" इसपर अर्जुनने कुछ बेमनसे कहा, 'अच्छा, जिधर भीष्मजी हैं, उधर घोड़ोंको हाँक दीजिये; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा और अजेय भीष्मजीको पृथ्वीपर गिरा दूँगा।' तब श्रीकृष्णने अर्जुनके सफेद घोड़ोंको भीष्मजीकी ओर हाँका। अर्जुनको युद्धके लिये भीष्मके सामने आते देख युधिष्ठिरकी विशाल वाहिनी फिर लौट आयी।

भीष्मजीने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके रथको

थे, तो उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी। भीष्मजी भी सृञ्जय और पाण्डवोंको जीतकर कौरवोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए शिविरमें चले गये।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें पाण्डव, वृष्णि और सृञ्जयोंकी एक बैठक हुई। उसमें सब लोग शान्त भावसे इस बातका विचार करने लगे कि अब क्या करनेसे अपना भला होगा। बहुत देरतक सोचने-विचारनेके बाद राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'श्रीकृष्ण! आप

महात्मा भीष्मजीका भयङ्कर पराक्रम देखते हैं न? जैसे हाथी नरकुलके वनको रौंद डालता है, उसी प्रकार ये हमारी सेनाको कुचल रहे हैं। धधकती हुई आगके समान इन भीष्मजीकी ओर हमें आँख उठाकर देखनेतकका साहस नहीं होता। क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण और गदाधारी कुबेरको भी युद्धमें जीता जा सकता है; परन्तु कुपित हुए भीष्मपर विजय पाना असम्भव जान पड़ता है। ऐसी स्थितिमें अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारण भीष्मजीके साथ युद्ध ठानकर मैं शोकके समुद्रमें डूब रहा हूँ। कृष्ण! अब मेरा विचार है, वनमें चला जाऊँ। वहाँ जानेमें ही अपना कल्याण दिखायी देता है। युद्धकी तो बिल्कुल इच्छा नहीं है; क्योंकि भीष्म निरन्तर हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं। जैसे जलती हुई आगकी ओर दौड़नेवाला पतंग मृत्युके ही मुखमें जाता है, उसी प्रकार भीष्मके पास जानेपर हमलोगोंकी दशा होती है। वासुदेव! हमारा पक्ष क्षीण हो चला है, हमारे भाई बाणोंकी चोटसे बेहद कष्ट पा रहे हैं; भ्रातृस्नेहके ही कारण हमारे साथ ये भी राज्यसे भ्रष्ट हुए, इन्हें भी वन-वन भटकना पड़ा तथा हमारे ही कारण द्रौपदीने भी कष्ट भोगा। मधुसूदन! मैं जीवनको बहुत मूल्यवान् मानता हूँ और वही इस समय दुर्लभ हो रहा है। इसलिये चाहता हूँ, अब जिंदगीके जितने दिन बाकी हैं उनमें उत्तम धर्मका आचरण करूँ। केशव! यदि आप हमलोगोंको अपना कृपापात्र समझते हों तो ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे अपना हित हो और धर्ममें भी बाधा न आवे।'

युधिष्ठिरकी यह करुणाभरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "धर्मराज! आप विषाद न करें। आपके भाई बड़े ही शूरवीर, दुर्जय और शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अर्जुन और भीम तो वायु तथा अग्निके समान तेजस्वी हैं। नकुल-सहदेव भी बड़े पराक्रमी हैं। आप चाहें तो मुझे भी युद्धमें लगा दें, आपके स्नेहसे मैं भी भीष्मसे युद्ध कर सकता हूँ। भला, आपके कहनेसे मैं युद्धमें क्या नहीं कर सकता? यदि अर्जुनकी इच्छा नहीं है, तो मैं स्वयं भीष्मको ललकारकर कौरवोंके देखते-देखते मार डालूँगा। भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको अपनी विजय दिखायी देती है, तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जो पाण्डवोंका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु ही है। जो आपके हैं, वे मेरे हैं और जो मेरे हैं, वे आपके भी हैं। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीरका मांस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं। हमलोगोंने प्रतिज्ञा की है कि 'एक-दूसरेको सङ्कटसे बचावेंगे।' अतः, आप आज्ञा दीजिये, आजसे मैं भी युद्ध करूँगा। अर्जुनने उपप्लव्यमें जो सब लोगोंके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं भीष्मका वध करूँगा', उसका मुझे हर तरहसे पालन करना है। जिस कामके लिये अर्जुनकी आज्ञा हो, वह मुझे अवश्य पूर्ण करना चाहिये। अथवा भीष्मको मारना कौन बड़ी बात है? अर्जुनके लिये तो यह बहुत हल्का काम है। राजन्! यदि अर्जुन तैयार हो जायँ तो असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। दैत्य और दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायँ तो अर्जुन उन्हें भी मार सकते हैं; फिर भीष्मकी तो बिसात ही क्या है?"

युधिष्ठिरने कहा—माधव! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। कौरवपक्षके सभी योद्धा मिलकर भी आपका वेग नहीं सह सकते। जिसके पक्षमें आप-जैसे सहायक मौजूद हैं, उसके मनोरथ पूर्ण होनेमें क्या सन्देह है? गोविन्द!

युद्ध तो नहीं करूँगा, पर तुम्हें हितकी सलाह दिया करूँगा।' वे मुझे राज्य भी देनेवाले हैं और अच्छी सम्मति भी। इसलिये हम सब लोग आपके साथ भीष्मजीके पास चलें और उन्हींसे उनके वधका उपाय पूछें। वे अवश्य ही हमारे हितकी बात बतावेंगे। जैसा कहेंगे, उसीके अनुसार कार्य किया जायगा; क्योंकि जब हमारे पिता मर गये और हम लोग निरे बालक थे, उस समय उन्होंने ही हमें पाल-पोसकर बड़ा किया था। माधव! वे हमारे पिताके पिता हैं, वृद्ध हैं; तो भी हम उन्हें मारना चाहते हैं। धिक्कार है क्षत्रियोंकी ऐसी वृत्तिको!

तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! आपकी राय मुझे पसंद है। आपके पितामह देवव्रत बड़े ही पुण्यात्मा हैं। वे केवल दृष्टिमात्रसे सबको भस्म कर सकते हैं। अतः उनके पास वधका उपाय पूछनेके लिये अवश्य चलना चाहिये। विशेषतः आपके पूछनेपर वे सच्ची ही बात बतायेंगे। उनकी जैसी सम्मति होगी, उसीके अनुसार हमलोग युद्ध करेंगे।'

इस प्रकार सलाह करके पाण्डव और भगवान् श्रीकृष्ण भीष्मके शिबिरमें गये। उस समय उन लोगोंने अपने अस्त्र-शस्त्र और कवच उतार दिये थे। वहाँ पहुँचकर पाण्डवोंने भीष्मजीके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और कहा कि 'हम आपकी शरण हैं।' तब भीष्मजीने उन सबको देखकर कहा 'वासुदेव! मैं आपका स्वागत करता हूँ। धर्मराज, धनञ्जय, भीम, नकुल और सहदेवका भी स्वागत है। मैं तुमलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ, जिससे तुम्हें प्रसन्नता हो? यदि कोई कठिन-से-कठिन काम हो तो भी बताओ, मैं उसे सर्वथा पूर्ण करनेका यत्न करूँगा।'

भीष्मजी प्रसन्नताके साथ जब बारंबार इस प्रकार कहने लगे, तो राजा युधिष्ठिरने दीनतापूर्वक कहा—'प्रभो! जिस उपायसे यह प्रजाका संहार बंद हो जाय, वह बताइये। आप स्वयं ही हमें अपने वधका उपाय बता दीजिये। वीरवर! इस युद्धमें आपका वेग हमलोग कैसे सह सकते हैं? हमें तो आप-

तब भीष्मजीने कहा—कुन्तीनन्दन! मैं सच्ची बात कहता हूँ; जबतक मैं जीवित हूँ, तुम्हारी विजय किसी तरह नहीं हो सकती। मेरे परास्त होनेपर ही तुमलोग विजयी होगे। अतः यदि वास्तवमें जीतनेकी इच्छा है, तो जितनी जल्दी हो सके मुझे मार डालो। मैं अपने ऊपर प्रहार करनेकी आज्ञा देता हूँ। इससे तुम्हें पुण्य होगा। मेरे मर जानेपर सबको मरा हुआ ही समझो; इसलिये पहले मुझे ही मारनेका उद्योग करो।

युधिष्ठिर बोले—दादाजी! तब आप ही वह उपाय बतलाइये, जिससे आपको हमलोग जीत सकें। युद्धमें जब आप क्रोध करते हैं, तो दण्डधारी यमराजके समान जान पड़ते हैं। इन्द्र, वरुण और यमको भी जीता जा सकता है; पर आपको तो इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी नहीं जीत सकते।

भीष्मने कहा—पाण्डुनन्दन! तुम्हारा कहना सत्य है; पर जब मैं हथियार रख दूँ, उस समय तुम्हारे महारथी मुझे मार सकते हैं। जो हथियार डाल दे, गिर जाय, कवच उतार दे, ध्वजा नीची कर दे, भाग जाय, डरा हो, 'मैं आपका हूँ' यह कहकर शरणमें आ जाय, स्त्री हो या स्त्रीके समान जिसका नाम हो, जो व्याकुल हो, जिसको एक ही पुत्र हो और जो लोकमें निन्दित हो—ऐसे लोगोंके साथ मैं युद्ध नहीं करना चाहता। तुम्हारी सेनामें जो शिखण्डी है, वह पहले स्त्रीके रूपमें उत्पन्न हुआ था, पीछे पुरुष हुआ है—इस बातको तुमलोग भी जानते हो। वीर अर्जुन शिखण्डीको आगे करके मुझपर बाणोंका प्रहार करें; वह जब मेरे सामने रहेगा तो मैं धनुष लिये रहनेपर भी प्रहार नहीं करूँगा। मुझे मारनेके लिये यही एक छिद्र है। इस मौकेसे लाभ उठाकर अर्जुन शीघ्रतापूर्वक मुझे बाणोंसे घायल कर दें। संसारमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो मुझे सावधान रहते मार सके। इसलिये शिखण्डी-जैसे किसी पुरुषको आगे करके अर्जुन मुझे मार गिरावें; ऐसा करनेसे निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी।

भीष्मपितामहकी सेवामें पाण्डव
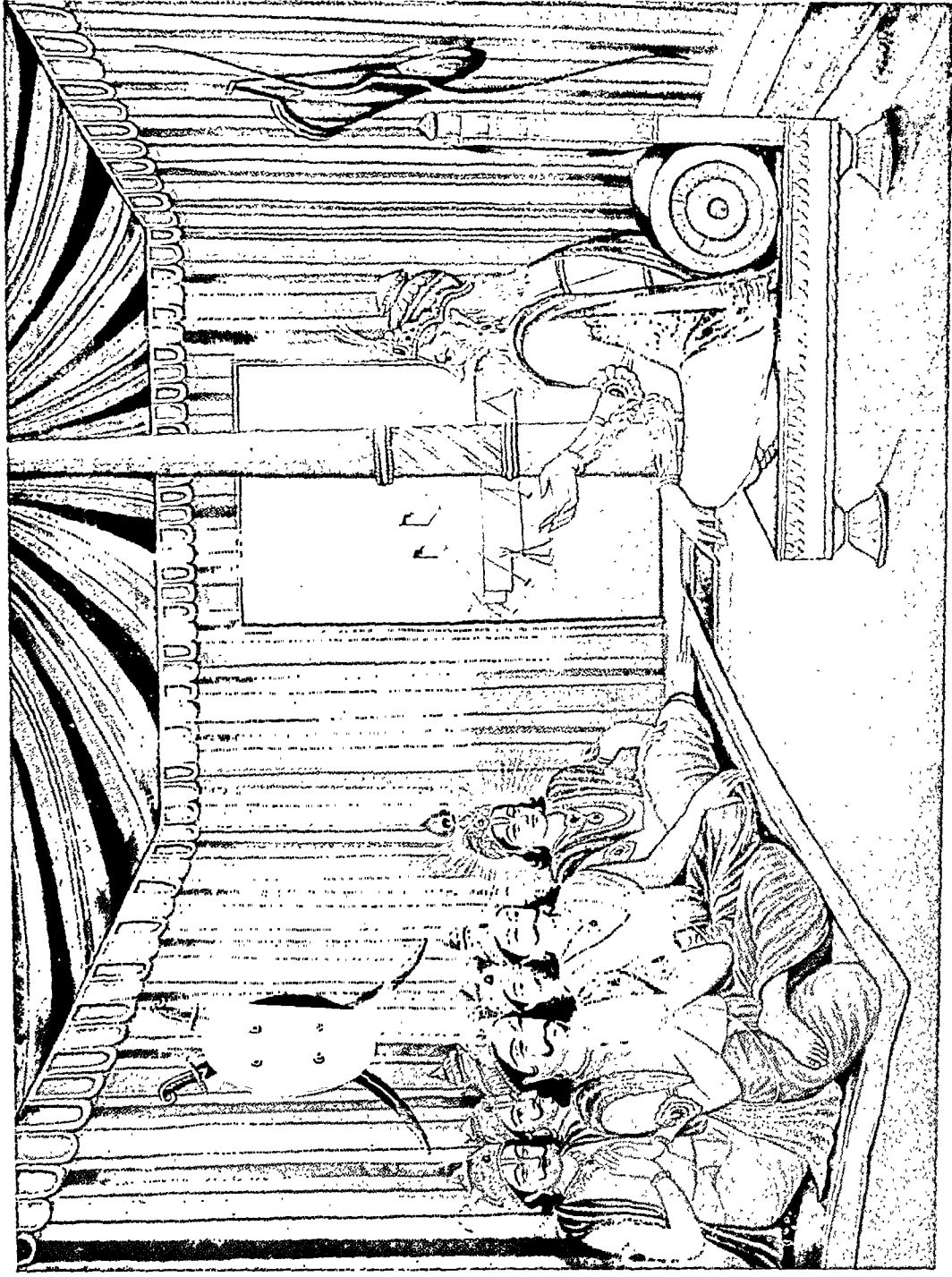
जैसा मैंने बताया है वैसा ही करो, तभी धृतराष्ट्रके समस्त पुत्रोंको मार सकोगे ।

इस प्रकार भीष्मजीके मुखसे उनके मरणका उपाय जानकर पाण्डवोंने उन्हें प्रणाम किया और अपने शिबिरको लौट गये । भीष्मजीकी बात याद करके अर्जुन बहुत दुखी हुए और सङ्कोचके साथ भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—"माधव ! भीष्मजी कुरुवंशके वृद्ध पुरुष हैं, गुरु हैं और हमारे दादा हैं; इनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा । बचपनमें मैं इनकी गोदमें खेला था । अपने धूलधूसरित शरीरसे न जाने कितनी बार इनके शरीरको मैला कर चुका हूँ । यद्यपि ये हमारे पिताके पिता हैं, तो भी इनके अङ्कमें बैठकर मैं इन्हींको 'पिता' कहकर पुकारता था । उस समय ये समझाते 'बेटा ! मैं तुम्हारा नहीं, तुम्हारे पिताका पिता हूँ ।' जिन्होंने इतने ममत्वसे पाला, उन्हींका वध मैं कैसे कर सकता हूँ ? ये भले ही मेरी सेनाका नाश कर डालें, मेरी विजय हो या विनाश; किन्तु मैं तो इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा । अच्छा, कृष्ण ! इसमें आपका क्या विचार है ?"

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! पहले तुम भीष्मके वधकी प्रतिज्ञा कर चुके हो, फिर क्षत्रियधर्ममें स्थित रहते हुए अब उन्हें नहीं मारनेकी बात कैसे कह रहे हो ? मेरी तो यही सम्मति है, उन्हें रथसे मार गिराओ; ऐसा किये बिना तुम्हारी विजय असम्भव है । देवताओंकी दृष्टिमें यह बात पहलेसे ही आ चुकी है, भीष्मजीके परलोक-गमनका समय निकट है । नियतिका विधान पूरा होकर ही रहेगा, इसमें उलट-फेर नहीं हो सकता । मेरी एक बात सुनो—कोई अपनेसे बड़ा हो, बूढ़ा हो और अनेकों गुणोंसे सम्पन्न हो; तो भी यदि वह आततायी बनकर मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे अवश्य मार डालना चाहिये । युद्ध, प्रजाका पालन और यज्ञका अनुष्ठान—यह क्षत्रियोंका सनातन धर्म है ।

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! यह निश्चय जान पड़ता है कि शिखण्डी भीष्मकी मृत्युका कारण होगा; क्योंकि उसे देखते ही भीष्मजी दूसरी ओर लौट जाते हैं । अतः शिखण्डीको उनके सामने करके ही हमलोग उन्हें रणभूमिमें गिरा सकेंगे । मैं दूसरे धनुर्धारियोंको बाणोंसे मारकर रोक रक्खूँगा । भीष्मकी सहायताके लिये किसीको आने न दूँगा और शिखण्डी उनसे युद्ध करेगा ।' ऐसा निश्चय करके पाण्डवलोग भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने शिबिरमें गये ।

दसवें दिनके युद्धका आरम्भ

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! शिखण्डीने किस प्रकार भीष्मजीका सामना किया तथा भीष्मजीने किस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया ?

सञ्जयने कहा—जब सूर्योदय हुआ, भेरी, मृदङ्ग और नगारे बजने लगे, चारों ओर शङ्खध्वनि होने लगी, उस समय समस्त पाण्डव शिखण्डीको आगे करके युद्धके लिये निकले । सेनाका व्यूह निर्माण करके शिखण्डी सबके आगे स्थित हुआ । भीमसेन और अर्जुन उसके रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे । उसके पिछले भागकी रक्षाके लिये द्रौपदीके पुत्र और अभिमन्यु खड़े हुए । इनके पीछे सात्यकि और चेकितान थे । इन दोनोंके पीछे पञ्चालदेशीय योद्धाओंके साथ धृष्टद्युम्न था । उसके पीछे नकुल-सहदेवसहित राजा युधिष्ठिर खड़े हुए । इनके पीछे अपनी सेनाके साथ राजा विराट थे । इनके बाद द्रुपद, केकय-राजकुमार और धृष्टकेतु थे । ये लोग पाण्डवसेनाके मध्यभागकी रक्षा करते थे । इस प्रकार सेनाकी व्यूहरचना करके पाण्डवोंने अपने जीवनका मोह छोड़कर आपकी सेनापर आक्रमण किया ।

इसी प्रकार कौरव भी महारथी भीष्मको आगे करके पाण्डवोंकी ओर बढ़े । पीछेसे आपके पुत्र उनकी रक्षा करते थे । इनके पीछे द्रोण और अश्वत्थामा थे । इन दोनोंके पीछे हाथियोंकी सेनाके साथ राजा भगदत्त चलता था । कृपाचार्य और कृतवर्मा भगदत्तके पीछे चल रहे थे । इनके अनन्तर कम्बोजराज सुदक्षिण, मगधराज जयत्सेन, बृहद्बल तथा सुशर्मा आदि धनुर्धर थे । ये आपकी सेनाके मध्यभागकी रक्षा करते थे । भीष्मजी प्रत्येक दिन अपना व्यूह बदलते रहते थे; वे कभी असुरोंकी और कभी पिशाचोंकी रीतिसे व्यूहका निर्माण करते थे ।

राजन् ! तदनन्तर आपकी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया । दोनों पक्षके योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे । अर्जुन आदि पाण्डव शिखण्डीको आगे करके बाणोंकी वर्षा करते हुए भीष्मके सामने आ डटे । महाराज ! उस समय आपके सैनिक भीमसेनके बाणोंसे आहत हो रक्तकी धारामें नहाकर परलोककी यात्रा करने लगे । नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी अपने पराक्रमसे आपकी सेनाको

कष्ट पहुँचाने लगे। आपके योद्धा बराबर मार पड़नेके कारण पाण्डवोंकी विशाल सेनाको रोक न सके। इस प्रकार जब पाण्डव महारथी आपकी सेनाको कालका ग्रास बनाने लगे, तो वह सब दिशाओंकी ओर भाग चली। उसे कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिला।

शत्रुओंके द्वारा अपनी सेनाका यह संहार भीष्मजीसे नहीं सहा गया। वे प्राणोंका लोभ छोड़कर पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयोंपर बाणवर्षा करने लगे। उन्होंने पाण्डवोंके पाँच प्रधान महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया और हजारों हाथी तथा घोड़ोंको मार डाला। युद्धका दसवाँ दिन चल रहा था। जैसे दावानल सम्पूर्ण वनको जला डालता है, उसी प्रकार भीष्मजी शिखण्डीकी सेनाको भस्मसात् करने लगे। तब शिखण्डीने भीष्मकी छातीमें तीन बाण मारे। भीष्मजीको उन बाणोंसे अधिक चोट पहुँची, तो भी शिखण्डीके साथ युद्ध करनेकी इच्छा न होनेके कारण वे उससे हँसते हुए

बोले—'तेरी जैसी इच्छा हो, मुझपर बाणोंका प्रहार कर या न कर; परन्तु मैं तुझसे किसी तरह युद्ध नहीं करूँगा। विधाताने तुझे जिस स्त्री-शरीरमें पैदा किया है, आज भी वही तेरा शरीर है; इसलिये मैं तुझे शिखण्डिनी ही मानता हूँ।'

उनकी यह बात सुनकर शिखण्डी क्रोधसे मूर्छित होकर बोला—'महाबाहो! मैं तुम्हारा प्रभाव जानता हूँ, तो भी पाण्डवोंका प्रिय करनेके लिये आज तुमसे युद्ध करूँगा। मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, निश्चय ही तुम्हारा वध करूँगा। मेरी यह बात सुनकर तुम जो उचित समझो, करो। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, बाणोंका प्रहार करो या न करो; पर मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ सकता। जीवनकी अन्तिम घड़ीमें एक बार इस संसारको अच्छी तरह देख लो।'

ऐसा कहकर शिखण्डीने भीष्मजीको पाँच बाणोंसे बींध डाला। अर्जुनने भी शिखण्डीकी बातें सुनीं और यही अवसर है, ऐसा सोचकर उन्होंने उसे उत्तेजित किया। वे बोले, 'वीरवर! तुम भीष्मजीके साथ युद्ध करो। मैं भी शत्रुओंको दबाता हुआ बराबर तुम्हारे साथ रहकर लड़ूँगा। यदि भीष्मका वध किये बिना ही लौटोगे, तो लोग तुम्हारी और मेरी भी हँसी करेंगे। अतः पूरा प्रयत्न करके पितामहको मार डालो, जिससे हमलोगोंकी हँसी न होने पावे।'

धृतराष्ट्रने पूछा—*शिखण्डीने भीष्मजीपर कैसे धावा किया? पाण्डवसेनाके कौन-कौन महारथी उसकी रक्षा करते थे? तथा दसवें दिनके युद्धमें भीष्मजीने पाण्डवों और सृञ्जयोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया था?*

सञ्जयने कहा—राजन्! भीष्मजी प्रतिदिनकी भाँति उस दिन भी युद्धमें शत्रुओंका संहार कर रहे थे। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाका विध्वंस आरम्भ किया। उस समय पाण्डव और पाञ्चाल मिलकर भी उनका वेग नहीं रोक सके। सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वर्षा करके उन्होंने शत्रु-सेनाको तहस-नहस कर डाला। इतनेमें वहाँ अर्जुन आ पहुँचे, उन्हें देखते ही कौरवसेनाके रथी भयसे थर्रा उठे। अर्जुन जोर-जोरसे धनुष टङ्कारते हुए बारंबार सिंहनाद कर रहे थे और बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें कालके समान विचरते थे। जैसे सिंहकी आवाज सुनकर हिरन भागते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकी सिंहगर्जनासे भयभीत हो आपकी सेनाके योद्धा भाग चले। यह देख दुर्योधनने भयसे व्याकुल होकर भीष्मजीसे कहा—'दादाजी! यह पाण्डुनन्दन अर्जुन मेरी सेनाको भस्म कर रहा है। देखिये न, सभी योद्धा इधर-उधर भाग रहे हैं। भीमके कारण भी सेनामें भगदड़ मची हुई है। सात्यकि, चेकितान, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न और घटोत्कच—ये सभी मेरे सैनिकोंको खदेड़ रहे हैं। अब आपके सिवा कोई इन्हें सहारा देनेवाला नहीं है। आप ही इन पीडितोंकी प्राणरक्षा कीजिये।'

आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर भीष्मजीने थोड़ी देरतक सोचकर मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। इसके बाद उसे आश्वासन देते हुए कहा—"दुर्योधन! मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की है कि 'दस हजार महाबली क्षत्रियोंका संहार करके ही रणसे लौटूँगा। यह मेरा प्रतिदिनका काम होगा।' इसको अबतक

निभाता आया हूँ और आज भी वह महान् कार्य पूर्ण करूँगा। आज या तो मैं ही मरकर रणभूमिमें शयन करूँगा या पाण्डवोंको ही मार डालूँगा।"

यह कहकर भीष्मजी पाण्डव-सेनाके पास पहुँचे और अपने बाणोंसे क्षत्रियोंको गिराने लगे। उस दिन पाण्डव-लोग रोकते ही रह गये, परन्तु भीष्मजीने अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय देते हुए एक लाख योद्धाओंका संहार कर डाला। पाञ्चालोंमें जो श्रेष्ठ महारथी थे, उन सबका तेज हर लिया। कुल दस हजार हाथी और सवारोंसहित दस हजार घोड़ों तथा पूरे दो लाख पैदल सैनिकोंका विनाश करके वे धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। उस दिन भीष्मजी उत्तरायणके सूर्यकी भाँति तप रहे थे, पाण्डव उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सके।

तदनन्तर पितामहके उस पराक्रमको देखकर अर्जुनने शिखण्डीसे कहा—'अब तुम भीष्मजीका सामना करो, उनसे तनिक भी डरनेकी जरूरत नहीं है; मैं साथ हूँ, बाणोंसे मारकर उन्हें रथसे नीचे गिरा दूँगा।' अर्जुनकी बात सुनकर शिखण्डीने भीष्मजीपर धावा किया। साथ ही धृष्टद्युम्न और अभिमन्युने भी उनपर चढ़ाई की। फिर विराट, द्रुपद, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर तथा उनकी सेनाके समस्त योद्धाओंने भीष्मजीपर आक्रमण किया। तब आपके सैनिक भी इन महारथियोंका मुकाबला करनेको आगे बढ़े। जिनकी जैसी शक्ति और उत्साह था, उसके अनुसार उन्होंने अपना प्रतिद्वन्द्वी चुन लिया। चित्रसेन चेकितानसे जा भिड़ा। धृष्टद्युम्नको कृतवर्माने रोक लिया। भीमसेनको भूरिश्रवाने अटकाया। विकर्णने नकुलका मुकाबला किया। सहदेवको कृपाचार्यने रोका। इसी प्रकार घटोत्कचको दुर्मुखने, सात्यकिको दुर्योधनने, अभिमन्युको सुदक्षिणने, द्रुपदको अश्वत्थामाने, युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यने तथा शिखण्डी और अर्जुनको दुःशासनने रोक लिया। इनके अतिरिक्त आपके अन्य योद्धाओंने भी भीष्मकी ओर बढ़नेवाले पाण्डव-महारथियोंको रोका।

इनमेंसे केवल महारथी धृष्टद्युम्न ही अपने विपक्षीको दबाकर आगे बढ़ा और सैनिकोंसे पुकार-पुकार कर कहने लगा—'वीरो! क्या देखते हो; ये पाण्डुनन्दन अर्जुन भीष्म-पर धावा कर रहे हैं, तुमलोग भी इनके साथ बढ़ो। डरो मत, भीष्म तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इन्द्र भी अर्जुन-का मुकाबला नहीं कर सकते, फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है?' सेनापतिके ये वचन सुनकर पाण्डवोंके महारथी बड़े उल्लासके साथ भीष्मके रथकी ओर बढ़े। यह देख पितामह-के जीवनकी रक्षाके लिये दुःशासनने अपने प्राणोंका भय छोड़कर अर्जुनपर धावा किया और उन्हें तीन बाणोंसे घायल करके श्रीकृष्णके ऊपर बीस बाणोंका प्रहार किया। तब अर्जुनने दुःशासनपर सौ बाण छोड़े, वे उसका कवच भेदकर शरीरका रक्त पीने लगे। इससे दुःशासनको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अर्जुनके ललाटमें तीन बाण मारे। अर्जुनने उसका धनुष काटकर तीन बाणोंसे रथ तोड़ दिया और फिर तीखे बाणोंसे उसे भी बींध डाला। दुःशासनने दूसरा धनुष लेकर पचीस बाणोंसे अर्जुनकी भुजाओं और छातीपर प्रहार किया। तब अर्जुन क्रोधमें भर गये और दुःशासनके ऊपर यमदण्डके समान भयङ्कर बाणोंका प्रहार करने लगे। उस समय दुःशासनने अद्भुत पराक्रम दिखाया। अर्जुनके बाण उसके पास पहुँचने भी नहीं पाते कि वह उन्हें काटकर गिरा देता था। इतना ही नहीं, उसने तीक्ष्ण बाण छोड़कर अर्जुन-को भी घायल कर दिया। तब अर्जुनने सानपर रगड़कर तीखे किये हुए अनेकों बाण चलाये, वे दुःशासनके शरीरमें धँस गये। इससे उसको बड़ी पीड़ा हुई और वह अर्जुनका सामना छोड़कर भीष्मके रथके पीछे छिप गया। दुःशासन अर्जुनरूपी अगाध महासागरमें डूब रहा था, भीष्मजी उसके लिये द्वीपके समान आश्रयदाता हुए।

दसवें दिनके युद्धका वृत्तान्त

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर, सात्यकिको भीष्मजीकी ओर जाते देख अलम्बुष राक्षसने रोका। यह देख सात्यकिने क्रुद्ध होकर उसे नौ बाण मारे। तब राक्षस भी क्रोधमें भर गया और नौ बाण मारकर उसने उन्हें बड़ी पीड़ा पहुँचायी। फिर तो सात्यकिके क्रोधकी भी सीमा न रही, उसने उस राक्षसपर बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब राक्षस भी सिंहनाद करता हुआ तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकि-को बींधने लगा। साथ ही राजा भगदत्तने भी उसपर तीखे बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। इसपर सात्यकिने अलम्बुष-को छोड़कर भगदत्तको ही अपने बाणोंका निशाना बनाया। भगदत्तने सात्यकिका धनुष काट दिया, किन्तु वह पुनः दूसरा धनुष लेकर उन्हें तीखे बाणोंसे बींधने लगा। यह

देखकर भगदत्तने सात्यकिपर एक भयंकर शक्तिका प्रहार किया, किन्तु सात्यकिने बाण मारकर उस शक्तिके दो टुकड़े कर दिये ।

इतनेमें महारथी राजा विराट और द्रुपद कौरव-सैनिकोंको पीछे हटाते हुए भीष्मजीके ऊपर चढ़ आये । इधरसे अश्वत्थामा आगे बढ़कर उन दोनोंसे युद्ध करने लगा । विराटने दस और द्रुपदने तीन बाण मारकर द्रोणकुमारको घायल कर दिया । अश्वत्थामाने भी इन दोनोंपर बहुत-से बाण बरसाये, परन्तु वहाँ इन दोनों बूढ़ोंने अद्भुत पराक्रम दिखाया । अश्वत्थामाके भयङ्कर बाणोंको इन्होंने प्रत्येक बार पीछे लौटा दिया । एक ओर सहदेवके साथ कृपाचार्य भिड़े हुए थे । उन्होंने सहदेवको सत्तर बाण मारे । तब सहदेवने उनका धनुष काट दिया और नौ बाणोंसे उन्हें बींध डाला । कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर सहदेवकी छातीमें दस बाण मारे । सहदेवने भी कृपाचार्यकी छातीमें बाणोंका प्रहार किया । इस प्रकार इन दोनोंमें भयङ्कर संग्राम हो रहा था ।

इसके अनन्तर, द्रोणाचार्य महान् धनुष लिये पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर उसे चारों ओर भगाने लगे । उन्होंने कुछ अशुभसूचक निमित्त देखकर अपने पुत्रसे कहा, 'बेटा ! आज ही वह दिन है, जब कि अर्जुन भीष्मको मार डालनेके लिये अपनी पूरी शक्ति लगा देगा; क्योंकि मेरे बाण उछल रहे हैं, धनुष फड़क उठता है, अस्त्र अपने-आप धनुषसे संयुक्त हो जाते हैं और मेरे मनमें क्रूर कर्म करनेका सङ्कल्प हो रहा है । चन्द्रमा और सूर्यके चारों ओर घेरा पड़ने लगा है । यह क्षत्रियोंके भयङ्कर विनाशकी सूचना देनेवाला है । इसके सिवा दोनों ही सेनाओंमें पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि और गाण्डीव धनुषकी टङ्कार सुनायी पड़ती है । इससे यह निश्चय जान पड़ता है कि आज अर्जुन समस्त योद्धाओंको पीछे हटाकर भीष्मतक पहुँच जायगा । भीष्म और अर्जुनके संग्रामका विचार आते ही मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं और हृदयका उत्साह जाता रहता है । देखता हूँ, शिखण्डीको आगे करके अर्जुन भीष्मके साथ युद्ध करनेको बढ़ता चला जा रहा है । युधिष्ठिरका क्रोध, भीष्म और अर्जुनका संघर्ष तथा मेरा शस्त्र छोड़नेका उद्योग—ये तीनों बातें प्रजाके लिये अमंगलकी सूचना देनेवाली हैं । अर्जुन मनस्वी, बलवान्, शूर, अस्त्रविद्यामें प्रवीण, शीघ्रतासे पराक्रम दिखानेवाला, दूरतकका निशाना बेधनेवाला तथा शुभाशुभ निमित्तोंको जाननेवाला है । इन्द्र-तुम अर्जुनका रास्ता छोड़कर शीघ्र ही भीष्मजीकी रक्षाके लिये जाओ । देखते हो न, इस भयानक संग्राममें कैसा महान् संहार मचा हुआ है । अर्जुनके तीखे बाणोंसे राजाओंके कवच छिन्न-भिन्न हो रहे हैं । ध्वजा, पताका, तोमर, धनुष और शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं । हमलोग भीष्मजीके आश्रयमें रहकर जीविका चलाते हैं; उनपर सङ्कट आया है, अतः तुम विजय और यशकी प्राप्तिके लिये जाओ । ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति, इन्द्रियसंयम, तप और सदाचार आदि सद्गुण केवल युधिष्ठिरमें ही दिखायी देते हैं; तभी तो इन्हें अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव-जैसे भाई मिले हैं । भगवान् वासुदेवने अपनी सहायतासे इन्हें सनाथ किया है । दुर्बुद्धि दुर्योधनपर जो युधिष्ठिरका कोप हुआ है, वही समस्त भारतकी प्रजाको दग्ध कर रहा है । देखो, भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें रहनेवाला अर्जुन कौरवोंकी सेनाको चीरता हुआ इधर ही आ रहा है । मैं युधिष्ठिरके सामने जा रहा हूँ, यद्यपि उनके व्यूहके भीतर घुसना समुद्रके अंदर प्रवेश करनेके समान कठिन है; क्योंकि युधिष्ठिरके चारों ओर अतिरथी योद्धा खड़े हैं । सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन और नकुल-सहदेव उनकी रक्षा कर रहे हैं । यह देखो, अभिमन्यु दूसरे अर्जुनके समान सेनाके आगे-आगे चल रहा है । तुम अपने उत्तम अस्त्रोंको धारण करो और धृष्टद्युम्न तथा भीमसेनसे युद्ध करने जाओ । अपने प्यारे पुत्रका सदा ही जीवित रहना कौन नहीं चाहता, तो भी इस समय क्षत्रियधर्मका खयाल करके तुम्हें अपनेसे अलग करता हूँ ।'

सञ्जयने कहा—इस समय भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, दुर्मर्षण और विकर्ण—ये दस योद्धा भीमसेनके साथ युद्ध कर रहे थे । भीमसेनपर शल्यने नौ, कृतवर्माने तीन, कृपाचार्यने नौ तथा चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्तने दस-दस बाणोंका प्रहार किया । साथ ही जयद्रथने तीन, विन्द-अनुविन्दने पाँच-पाँच तथा दुर्मर्षणने बीस बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया । भीमसेनने भी इन सब महारथियोंको अलग-अलग अपने बाणोंसे बींध डाला । उन्होंने शल्यको सात और कृतवर्माको आठ बाणोंसे बींधकर कृपाचार्यके धनुषको बीचसे काट दिया; इसके बाद उन्हें सात बाणोंसे घायल किया । फिर विन्द और अनुविन्दको तीन-तीन, दुर्मर्षणको बीस, चित्रसेनको पाँच, विकर्णको दस तथा जयद्रथको पाँच

रा धनुप लेकर भीमसेनपर

दस बाणोंसे चोट की। तब भीमसेनने क्रोधमें भरकर उन-पर बहुत-से बाणोंकी वर्षा कर डाली। फिर जयद्रथके सारथि और घोड़ोंको तीन बाणोंसे यमलोक भेज दिया। इसके बाद दो बाणोंसे उसका धनुष काट दिया। तब वह अपने रथसे कूदकर चित्रसेनके रथपर जा बैठा।

तदनन्तर, महारथी भगदत्तने भीमसेनपर एक शक्तिका प्रहार किया, जयद्रथने पट्टिश और तोमर चलाये, कृपाचार्यने शतघ्नीका प्रयोग किया तथा शल्यने एक बाण मारा। इनके सिवा दूसरे धनुर्धर वीरोंने भी भीमसेनको पाँच-पाँच बाण मारे। तब भीमने एक तेज बाणसे तोमरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, तीन बाणोंसे पट्टिशको तिलके डंठलके समान काट डाला, नौ बाण मारकर शतघ्नी तोड़ डाली तथा शल्यके बाण और भगदत्तकी शक्तिको भी काट दिया। साथ ही दूसरे योद्धाओंके बाणोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उन सबको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया। इतनेहीमें वहाँ अर्जुन भी आ पहुँचे। भीम और अर्जुन दोनोंको वहाँ एकत्रित देख आपके योद्धाओंको विजयकी आशा नहीं रही। तब दुर्योधनने सुशर्मासे कहा, 'तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र जाकर भीमसेन और अर्जुनका वध करो।' यह सुनकर सुशर्माने हजारों रथियोंको साथ ले उन दोनों पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अर्जुनने पहले राजा शल्यको अपने बाणोंसे ढक दिया। इसके बाद सुशर्मा और कृपाचार्यको तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया। फिर भगदत्त, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण, विन्द और अनुविन्द—इन महारथियोंमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाण मारे। जयद्रथ चित्रसेनके रथपर स्थित था, उसने अपने बाणोंसे अर्जुन और भीम दोनोंको घायल किया। शल्य और कृपाचार्यने भी अर्जुनपर मर्मवेधी बाणोंका प्रहार किया तथा चित्रसेन आदि कौरवोंने भी दोनों पाण्डवोंको पाँच-पाँच बाण मारे। इस प्रकार आहत होनेपर भी वे दोनों पाण्डव त्रिगर्तोंकी सेनाका संहार करने लगे। तब सुशर्माने नौ बाणोंसे अर्जुनको पीडित कर बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी सेनाके दूसरे रथी भी इन दोनों भाइयोंको बींधने लगे। उस समय भीम और अर्जुन दोनोंने सैकड़ों वीरोंके धनुष और मस्तक काटकर उन्हें रणभूमिमें सुला दिया। अर्जुन अपने बाणोंसे योद्धाओंकी गति रोककर मार डालते थे। उनका यह पराक्रम अद्भुत था। यद्यपि कृपाचार्य, कृतवर्मा, जयद्रथ तथा विन्द-अनुविन्द आदि वीर भीम और अर्जुन-का डटकर मुकाबला कर रहे थे, तो भी इन दोनोंने कौरवोंकी महासेनामें भगदड़ मचा दी। तब कौरवसेनाके राजाओंने अर्जुनपर असंख्य बाणोंकी वर्षा आरम्भ की, किन्तु अर्जुनने उन सबको अपने बाणोंसे रोककर मृत्युके मुखमें पहुँचा दिया।

भीष्मजीका वध

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! शान्तनुकुमार भीष्म और कौरवोंने दसवें दिन पाण्डवोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया? उस महायुद्धका सब विवरण मुझे सुनाओ।

सञ्जयने कहा—राजन्! जब कौरवोंके सहित भीष्म और पाञ्चाल-वीरोंके सहित अर्जुन आपसमें युद्ध करने लगे तो कोई भी यह निश्चय नहीं कर सकता था कि उनमें कौन जीतेगा। उस दसवें दिन तो इन दोनोंका समागम होनेपर बहुत ही सैन्य-संहार हुआ। भीष्मजीने उस संग्राममें हजारों वीरोंको धराशायी कर दिया। धर्मात्मा भीष्म दस दिनतक पाण्डवोंकी सेनाको सन्तप्त कर अब अपने जीवन-से उदासीन हो गये। उन्होंने युद्ध करते हुए प्राणत्याग करनेकी इच्छासे यह विचार किया कि अब मैं बहुत वीरोंको नहीं मारूँगा और पास ही खड़े हुए राजा युधिष्ठिरसे कहा, 'बेटा युधिष्ठिर! मैं तुमसे एक धर्मानुकूल बात कहता हूँ, सुनो। भैया! इस शरीरसे मैं बहुत उदासीन हो गया हूँ। इस संग्राममें बहुत-से प्राणियोंका संहार करते-करते मेरा समय बीता है। इसलिये यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अर्जुन और पाञ्चाल तथा सृञ्जय-वीरोंको आगे करके मेरे वधका प्रयत्न करो।'

भीष्मजीका ऐसा आशय समझकर सत्यदर्शी युधिष्ठिरने सृञ्जयवीरोंको साथ लेकर उनपर आक्रमण किया और अपनी सेनाको आज्ञा दी 'आगे बढ़ो, युद्धमें डट जाओ; आज शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाले वीर अर्जुनसे सुरक्षित होकर भीष्मजीको परास्त कर दो। महान् धनुर्धर सेनापति धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे। सृञ्जयवीरो! आज तुम भीष्मजीसे तनिक भी मत घबराना, हम शिखण्डीको आगे करके उन्हें अवश्य परास्त कर देंगे।'

बस, अब सब योद्धा क्रोधातुर होकर रणक्षेत्रमें कदम बढ़ाने लगे और शिखण्डी तथा अर्जुनको आगे रखकर

भीष्मजीको धराशायी करनेका पूरा प्रयत्न करने लगे। इधर आपके पुत्रकी आज्ञासे देश-देशके राजा, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा अपने सब भाइयोंके सहित दुःशासन बहुत-सी सेना लेकर भीष्मजीकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार भीष्मजीको आगे रखकर आपके अनेकों वीर शिखण्डी आदि पाण्डवोंके योद्धाओंसे लड़ने लगे। चेदि और पाञ्चाल-वीरोंके सहित अर्जुन शिखण्डीको आगे रखकर भीष्मजीके सामने आये। इसी प्रकार सात्यकि अश्वत्थामासे, धृष्टकेतु पौरवसे, अभिमन्यु दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंसे, सेनाके सहित विराट जयद्रथसे, राजा युधिष्ठिर राजा शल्यसे और भीमसेन आपकी गजारोही सेनासे संग्राम करने लगे। आपके पुत्र और अनेकों राजा अर्जुन और शिखण्डीको मारनेके लिये टूट पड़े। इस भयानक मुठभेड़में दोनों सेनाओंके इधर-उधर दौड़नेसे पृथ्वी डगमगाने लगी और उनका भीषण शब्द सब ओर गूँजने लगा। रथी रथियोंसे लड़ने लगे, घुड़सवार घुड़सवारोंपर टूट पड़े, गजारोही गजारोहियोंसे भिड़ गये और पैदल पैदलोंसे लोहा लेने लगे। दोनों ही पक्ष विजयके लिये उतावले हो रहे थे, अतः एक-दूसरेको तहस-नहस करनेके लिये उनकी बड़ी करारी मुठभेड़ हुई।

राजन्! अब महापराक्रमी अभिमन्यु सेनाके सहित आपके पुत्र दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगा। दुर्योधनने क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे अभिमन्युकी छातीपर वार किया और फिर उसपर तीन बाण छोड़े। तब अभिमन्युने बड़े रोषसे उसपर एक भयङ्कर शक्तिका वार किया। उसे आती देखकर आपके पुत्रने एक तेज बाणसे उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर अभिमन्युने उसकी छाती और भुजाओंमें तीन बाण मारे। इसके बाद उसने दस बाणोंसे फिर उसकी छातीपर वार किया। यह दुर्योधन और अभिमन्युका युद्ध बड़ा ही भयङ्कर और विचित्र हुआ। उसे देखकर सब राजा उनकी बड़ाई करने लगे।

अश्वत्थामाने सात्यकिपर नौ बाण छोड़कर फिर तीस बाणोंसे उसकी छाती और भुजाओंको घायल कर दिया। इस तरह अत्यन्त बाणविद्ध होकर यशस्वी सात्यकिने अश्वत्थामापर तीन तीर छोड़े। महारथी पौरवने धनुर्धर धृष्टकेतुको बाणोंसे आच्छादित कर बहुत ही घायल कर दिया तथा धृष्टकेतुने तीस तीखे तीरोंसे पौरवको बींध दिया। फिर दोनोंने दोनोंके धनुष काट डाले और एक-दूसरेके घोड़ोंको मारकर दोनों ही रथहीन होकर तलवारोंसे युद्ध करने लगे। दोनोंने गेंडेके चमड़ेकी ढाल और चमचमाती हुई तलवारें ले लीं तथा एक-दूसरेके सामने आकर तरह-तरहसे पैंतरे बदलते हुए युद्धके लिये ललकारने लगे। पौरवने बड़े रोषसे धृष्टकेतुके ललाटपर प्रहार किया तथा धृष्टकेतुने अपनी तीखी तलवारसे पौरवकी हँसलीपर चोट की। इस प्रकार एक-दूसरेके वेगसे अभिहत होकर वे पृथ्वीपर लोटने लगे। इसी समय आपका पुत्र जयत्सेन पौरवको और माद्रीनन्दन सहदेव धृष्टकेतुको रथमें डालकर युद्धक्षेत्रसे बाहर ले गये।

दूसरी ओर द्रोणाचार्यजीने धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर उसे पचास बाणोंसे बींध दिया। तब शत्रुदमन धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर आचार्यके देखते-देखते बाणोंकी झड़ी लगा दी। किन्तु महारथी द्रोणने अपने बाणोंकी बौछारसे उन्हें काटकर धृष्टद्युम्नपर पाँच तीर छोड़े। तब धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर आचार्यपर एक गदा छोड़ी। उसे आचार्यने पचास बाण छोड़कर बीचहीमें गिरा दिया। यह देखकर धृष्टद्युम्नने एक शक्ति फेंकी। उसे द्रोणाचार्यने नौ बाणोंसे काट डाला और फिर संग्रामभूमिमें धृष्टद्युम्नके दाँत खट्टे कर दिये। इस प्रकार यह द्रोण और धृष्टद्युम्नका बड़ा ही भीषण और घमासान युद्ध हुआ।

इधर अर्जुन भीष्मजीके सामने आकर उन्हें अपने तीखे बाणोंसे व्यथित करने लगे। यह देखकर राजा भगदत्त अपने मतवाले हाथीपर बैठकर उनके सामने आ गये। उन्होंने अपनी बाणवर्षासे अर्जुनकी गति रोक दी। तब अर्जुनने अपने तीखे तीरोंसे भगदत्तके हाथीको घायल कर दिया और शिखण्डीको आदेश दिया कि 'आगे बढ़ो, आगे बढ़ो; भीष्मजीके पास पहुँचकर उनका अन्त कर दो।' ऐसा कहकर अर्जुन शिखण्डीको आगे रखकर बड़े वेगसे भीष्मजीकी ओर चले। बस, दोनों ओरसे बड़ा घोर युद्ध होने लगा। आपके शूरवीर कोलाहल करते हुए बड़ी तेजीसे अर्जुनकी ओर दौड़े। किन्तु अर्जुनने आपकी उस विचित्र वाहिनीको बात-की-बातमें कुचल डाला। शिखण्डी झटपट भीष्मपितामहके सामने आया और बड़े उत्साहसे उनपर बाण बरसाने लगा। भीष्मजीने भी अनेकों दिव्य अस्त्र छोड़कर शत्रुओंको भस्म करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अर्जुनके अनुयायी अनेकों सोमक वीरोंको मार डाला और पाण्डवोंकी उस सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। बात-की-बातमें अनेकों रथ, हाथी और घोड़े बिना सवारोंके हो गये। इस समय भीष्मजीका एक भी बाण खाली नहीं जाता था। वे विश्वभरकी

कालके समान हो रहे थे। अतः उनकी चपेटमें आकर चेदि, काशी और करूष देशके चौदह हजार वीर अपने हाथी, घोड़े और रथोंके सहित रणक्षेत्रमें धराशायी हो गये। सोमकोंमेंसे ऐसा एक भी महारथी नहीं था, जो उस समय संग्रामभूमिमें भीष्मजीके सामने आकर अपने जीवनकी आशा रखता हो। इसलिये उनके मुकाबलेपर जानेकी किसीकी भी हिम्मत नहीं होती थी। बस, केवल वीराग्रणी अर्जुन और अतुलित तेजस्वी शिखण्डी ही उनके आगे टिकनेका साहस रखते थे।

शिखण्डीने भीष्मजीके सामने आकर उनकी छातीमें दस बाण मारे। किन्तु भीष्मजीने उसके स्त्रीत्वका विचार करके उसपर वार नहीं किया। पर शिखण्डी इस बातको नहीं समझ सका। तब उससे अर्जुनने कहा, 'वीर! झटपट आगे बढ़कर भीष्मजीका वध करो। बार-बार मुझसे कहलानेकी क्या आवश्यकता है? तुम महारथी भीष्मको फौरन मार डालो। मैं सच कहता हूँ, युधिष्ठिरकी सेनामें मुझे तुम्हारे सिवा और ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता जो संग्राममें भीष्मजीके आगे ठहर सके।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर शिखण्डी-ने तुरंत ही तरह-तरहके तीरोंसे पितामहको बींध दिया। परन्तु उन्होंने उन बाणोंकी कुछ भी परवा न कर अपने बाणोंसे अर्जुनको रोक दिया। इसी प्रकार उन्होंने बाणोंकी बौछारसे बहुत-सी पाण्डवसेनाको भी परलोक भेज दिया। दूसरी ओरसे पाण्डवोंने भी अपने तीरोंसे पितामहको बिल्कुल ढक दिया।

इस समय हमने आपके पुत्र दुःशासनका बड़ा अद्भुत पराक्रम देखा। वह एक ओर तो अर्जुनके साथ युद्ध कर रहा था और दूसरी ओर पितामहकी रक्षा करनेमें भी तत्पर था। इस संग्राममें उसने अनेकों रथियोंको रथहीन कर दिया तथा अनेकों अश्वारोही और गजारोही उसके पैने बाणोंसे कटकर पृथ्वीपर लोटने लगे। यही नहीं, बहुतसे हाथी भी उसके बाणोंसे व्यथित होकर इधर-उधर भाग निकले! इस समय दुःशासनको जीतने या उसके सामने जानेका किसी भी महारथीको साहस नहीं हुआ। केवल अर्जुन ही उसके सामने आ सके। उन्होंने उसे परास्त करके फिर भीष्मजीपर ही धावा किया। इधर शिखण्डी तो अपने वज्रतुल्य बाणोंसे पितामह-पर प्रहार कर ही रहा था। किन्तु उनसे आपके पिताजीको कुछ भी कष्ट नहीं जान पड़ता था। वे उन्हें हँसते हुए झेल रहे थे। तब आपके पुत्रने अपने समस्त योद्धाओंसे कहा—'वीरो! तुमलोग अर्जुनपर चारों ओरसे धावा करो। डरो मत, धर्मात्मा भीष्मजी तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे। यदि सम्पूर्ण देवता भी एकत्र होकर आवें तो वे भीष्मके सामने नहीं टिक सकते, फिर पाण्डवोंकी तो बिसात ही क्या है? इसलिये अर्जुनको सामने आते देख पीछे न भागो, मैं स्वयं प्रयत्नपूर्वक इसका सामना करूँगा। आपलोग भी सावधानतापूर्वक मेरी सहायता करें।'

आपके पुत्रकी जोशभरी बातें सुनकर सभी योद्धा आवेशमें भर गये। इनमें विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद, सौवीर, बाह्लिक, दरद, प्रतीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, बसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय आदि देशोंके राजा थे। ये सब-के-सब एक साथ ही अर्जुन-पर टूट पड़े। तब अर्जुनने दिव्य बाणोंका स्मरण करके धनुषपर उनका सन्धान किया और जैसे अग्नि पतंगोंको जला डालती है, उसी प्रकार वे इन राजाओंको भस्म करने लगे। महाराज! उस समय अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर रथकी ध्वजाके साथ रथी, घुड़सवारोंके साथ घोड़े और हाथी-सवारोंके साथ हाथी गिरने लगे। सारी पृथ्वी बाणोंसे ढक गयी। आपकी सेना चारों ओर भागने लगी। इस प्रकार सेनाको भगाकर अर्जुनने दुःशासनके ऊपर प्रहार करना शुरू किया, उनके बाण दुःशासनके शरीरको छेदकर पृथ्वीमें समा जाते थे। थोड़ी देरमें उन्होंने उसके घोड़ों और सारथिको मार गिराया। फिर बीस बाण मारकर विविंशतिके रथको तोड़ डाला और पाँच बाणोंसे उसे भी घायल किया। तत्पश्चात् कृपाचार्य, विकर्ण और शल्यको भी बींधकर उन्हें रथहीन कर दिया। तब तो वे सभी महारथी पराजित होकर भाग चले। दोपहरके पहले-पहले इन सब योद्धाओंको हराकर अर्जुन धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान होने लगे। प्रखर किरणोंसे जगत्‌को तपानेवाले सूर्यकी भाँति वे अपने बाणोंसे अन्यान्य राजाओंको भी ताप देने लगे। सायकोंकी वर्षासे समस्त महारथियोंको भगाकर उन्होंने संग्राममें कौरव-पाण्डवोंके बीच रक्तकी एक बहुत बड़ी नदी बहा दी। इतनेहीमें अपने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए भीष्मजी अर्जुनके ऊपर चढ़ आये। यह देखकर शिखण्डीने उनपर धावा किया। उसे देखते ही भीष्मने अपने अग्निके समान तेजस्वी अस्त्रोंको समेट लिया। तब अर्जुन पितामहको मूर्छित करके आपकी सेनाका संहार करने लगे।

तदनन्तर शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण देदीप्यमान रथोंपर बैठकर पाण्डवोंपर चढ़ आये

और उनकी सेनाको कँपाने लगे । इन शूरवीरोंके हाथसे मारी जाती हुई वह सेना सब ओर भागने लगी। इधर, पितामह भीष्म भी सजग होकर पाण्डवोंके मर्मपर आघात करने लगे । इसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाके बहुत-से हाथियोंको मार गिराया। उनके बाणोंकी मारसे हजारों मनुष्योंकी लाशें गिरती दिखायी देती थीं, योद्धाओंके कुण्डलोंसहित मस्तकसे रणभूमि आच्छादित हो गयी थी। उस वीरविनाशक संग्राममें भीष्म और अर्जुन दोनों ही अपना पराक्रम दिखा रहे थे। इसी बीचमें पाण्डवोंका सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न वहाँ आकर अपने सैनिकोंसे बोला, 'सोमको ! तुमलोग सृञ्जयोंको साथ लेकर भीष्मपर धावा करो ।' सेनापतिकी आज्ञा सुनकर सोमक और सृञ्जयवंशी क्षत्रिय बाणवर्षासे पीडित होनेपर भी भीष्मजीपर चढ़ आये। राजन् ! जब आपके पिता उनके बाणोंसे बहुत घायल हो गये तो बड़े अमर्षमें भरकर सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे। पूर्वकालमें परशुरामजीने जो उन्हें शत्रुसंहारिणी अस्त्रविद्या सिखायी थी, उसका उपयोग करके भीष्मजीने शत्रुसेनाका संहार आरम्भ किया। वे प्रतिदिन पाण्डवोंके दस हजार योद्धाओंका संहार करते थे। उस दसवें दिन भी भीष्मजीने अकेले ही मत्स्य और पञ्चाल देशके असंख्य हाथी-घोड़े मार डाले तथा उनके सात महारथियोंको यमलोक भेज दिया। इसके बाद उन्होंने पाँच हजार रथियोंका संहार किया; फिर चौदह हजार पैदल, एक हजार हाथी और दस हजार घोड़े मार डाले। इस प्रकार समस्त राजाओंकी सेनाका संहार करके भीष्मजीने विराटके भाई शतानीकको मार गिराया। इसके बाद एक हजार और राजाओंको मृत्युका ग्रास बनाया। पाण्डवसेनाके जो-जो वीर अर्जुनके पीछे गये थे, वे सभी भीष्मके सामने जाते ही यमलोकके अतिथि बन गये। भीष्मजी यह महान् पराक्रम करके हाथमें धनुष लिये दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हो गये। उस समय कोई राजा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस न कर सका।

भीष्मजीके उस पराक्रमको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने धनञ्जयसे कहा—'अर्जुन ! देखो, ये शान्तनुनन्दन भीष्मजी दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हैं; अब तुम जोर लगाकर इनका वध करो, तभी तुम्हारी विजय होगी। जहाँ ये सेनाका संहार कर रहे हैं, वहाँ पहुँचकर जबर्दस्ती इनकी गति रोक दो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई वीर ऐसा नहीं है, जो भीष्मके बाणोंका आघात सह सके।' भगवान्की प्रेरणासे अर्जुनने उस समय इतनी बाणवर्षा की कि भीष्मजी रथ, ध्वजा और घोड़ोंके साथ उससे आच्छादित हो गये। परन्तु पितामहने अपने बाण छोड़कर अर्जुनके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब शिखण्डी अपने उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर बड़े वेगसे भीष्मकी ओर दौड़ा, उस समय अर्जुन उसकी रक्षा कर रहे थे। भीष्मके पीछे चलनेवाले जितने योद्धा थे, उन सबको अर्जुनने मार गिराया और स्वयं भी भीष्मपर धावा किया। इनके साथ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँच पुत्र भी थे। ये सब लोग एक साथ भीष्मजीपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु इससे उन्हें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उपर्युक्त योद्धाओंके बाणोंको पीछे लौटाकर वे पाण्डव-सेनामें घुस गये और मानो खेल कर रहे हों, इस प्रकार उनके अस्त्र-शस्त्रोंका उच्छेद करने लगे। शिखण्डीके स्त्री-भावका स्मरण करके वे बारंबार मुसकराकर रह जाते, उसपर बाण नहीं मारते थे। जब उन्होंने द्रुपदकी सेनाके सात महारथियोंको मार डाला, तब रणभूमिमें महान् कोलाहल होने लगा। इसी समय अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके निकट पहुँच गये।

इस प्रकार शिखण्डीको आगे रखकर सभी पाण्डवोंने भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया और उन्हें बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया। शतघ्नी, परिघ, फरसा, मुगदर, मूसल, प्रास, बाण, शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदन्त और भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार होने लगा। उस समय भीष्म तो अकेले थे और उन्हें मारनेवालोंकी संख्या बहुत थी। इससे उनका कवच छिन्न-भिन्न हो गया। उन्हें विशेष कष्ट पहुँचा तथा उनके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट लगी; तो भी वे विचलित नहीं हुए। वे एक ही क्षणमें रथकी पंक्ति तोड़कर बाहर निकल आते और पुनः सेनाके मध्यमें प्रवेश कर जाते थे। द्रुपद और धृष्टकेतुकी कुछ भी परवा न करके वे पाण्डवसेनामें घुस आये और अपने पैने बाणोंसे भीमसेन, सात्यकि, अर्जुन, द्रुपद, विराट और धृष्टद्युम्न—इन छः महारथियोंको बींधने लगे। इन महारथियोंने भी उनके बाणोंका निवारण करके पृथक्-पृथक दस-दस बाणोंसे भीष्मजीको बींध दिया। महारथी शिखण्डीने बाणोंका प्रबल प्रहार किया, किन्तु उससे उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। तब अर्जुनने कुपित होकर भीष्मजीके धनुषको काट दिया। उनके धनुषका काटना कौरव महारथियोंसे नहीं सहा गया।

उस समय आचार्य द्रोण, कृतवर्मा, जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भगदत्त—ये सात वीर क्रोधमें भरकर धनञ्जयपर टूट पड़े और अपने दिव्य अस्त्रोंका कौशल दिखाते हुए उन्हें बाणोंसे आच्छादित करने लगे। अर्जुनपर धावा करनेवाले इन कौरव वीरोंने महान् कोलाहल मचाया। उस समय उनके रथके पास 'मारो, यहाँ लाओ, पकड़ो, छेद डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो' आदिकी आवाज़ सुनायी देने लगी।

वह आवाज़ सुनकर पाण्डवोंके महारथी भी अर्जुनकी रक्षाके लिये दौड़े। सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, घटोत्कच और अभिमन्यु—ये सात वीर अपने-अपने विचित्र धनुष लिये क्रोधमें भरे हुए कौरवोंके सामने आ डटे। फिर तो दोनों दलोंमें रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध छिड़ गया। मानो देवता और दानव लड़ रहे हों। भीष्मजीका धनुष कट गया था, उसी अवस्थामें शिखण्डीने उन्हें दस बाणोंसे बींध दिया। फिर दस बाणोंसे उनके सारथिको मारकर एकसे रथकी ध्वजा काट डाली। तब भीष्मजीने दूसरा धनुष हाथमें लिया, किन्तु अर्जुनने उसे भी काट दिया। इस प्रकार भीष्मने अनेकों धनुष लिये, पर अर्जुन सबको काटते गये। बारंबार धनुष कटनेसे भीष्मजीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली एक बहुत बड़ी शक्ति अर्जुनके रथपर फेंकी। यह देख अर्जुनने पाँच बाण मारकर उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

शक्तिको कटी हुई देख भीष्मजी मन-ही-मन विचारने लगे—"यदि भगवान् श्रीकृष्ण रक्षा न करते होते, तो मैं एक ही धनुषसे सम्पूर्ण पाण्डवोंका वध कर सकता था। इस समय मेरे सामने पाण्डवोंके साथ युद्ध न करनेके दो कारण उपस्थित हैं—एक तो ये पाण्डुकी सन्तान होनेके कारण मेरे लिये अवध्य हैं; दूसरे मेरे समक्ष शिखण्डी आ गया है, जो पहले स्त्री था। जिस समय मेरे पिताने माता सत्यवतीसे विवाह किया, उस समय उन्होंने सन्तुष्ट होकर मुझे दो वर दिये थे—'जब तुम्हारी इच्छा होगी, तभी मरोगे तथा युद्धमें कोई भी तुम्हें मार न सकेगा।' जब ऐसी बात है, तो मैं इस समय अपनी स्वच्छन्द मृत्यु ही क्यों न स्वीकार कर लूँ; क्योंकि अब उसका भी अवसर आ गया है।"

भीष्मजीके इस निश्चयको आकाशमें स्थित ऋषिगण और वसु देवता जान गये। उन्होंने भीष्मजीको सम्बोधित करके कहा—'तात! तुमने जो विचार किया है, वह हमलोगोंको भी बहुत प्रिय है। बस, अब वही करो; युद्धकी ओरसे चित्तवृत्ति हटा लो।' उनकी बात पूरी होते ही शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगी, जलकी फुहारें पड़ने लगीं, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और भीष्मजीपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। ऋषियोंकी वह बात दूसरे किसीको नहीं सुनायी पड़ी, केवल भीष्मजी सुन सके और व्यासमुनिके प्रभावसे मैंने भी सुन लिया। वसुओंकी उपर्युक्त बात सुनकर पितामहने अपने ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होती रहनेपर भी अर्जुनपर हाथ नहीं उठाया। उस समय शिखण्डीने कुपित होकर भीष्मकी छातीमें नौ बाण मारे, किन्तु वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। तब अर्जुनने मुसकराकर पितामहके ऊपर पहले पचीस बाण मारे, फिर शीघ्रतापूर्वक सौ बाणोंसे उनके सारे अङ्गों तथा मर्मस्थानोंको बींध डाला। इसी प्रकार दूसरे राजा भी भीष्मपर सहस्रों बाणोंका प्रहार करने लगे। भीष्मजी भी अपने बाणोंसे उन राजाओंके अस्त्रोंका निवारण कर उन्हें बींधने लगे। तत्पश्चात् अर्जुनने पुनः भीष्मजीके धनुषको काट दिया और नौ बाणोंसे उन्हें बींधकर एकसे उनके रथकी ध्वजा काट दी, फिर दस बाण मारकर उनके सारथिको पीडित किया। जब भीष्मजीने दूसरा धनुष लिया तो अर्जुनने उसे भी काट दिया। एक-एक क्षणमें वे धनुष उठाते और अर्जुन उसे काट देते थे। इस प्रकार जब बहुत-से धनुष कट गये तो भीष्मजीने अर्जुनके साथ युद्ध बंद कर दिया। तब अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके पितामहको पुनः पचीस बाण मारे। उनसे अत्यन्त आहत होकर पितामहने दुःशासनसे कहा—'देखो, यह महारथी अर्जुन आज क्रोधमें भरकर मुझे हजारों बाणोंसे बींध चुका है। इसके बाण मेरे कवचको छेदकर शरीरमें घुस जाते हैं और मूसलके समान चोट करते हैं। ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं। वज्रके समान इन बाणोंका स्पर्श होते ही शरीरमें बिजली-सी दौड़ जाती है। ये ब्रह्मदण्डके समान भयङ्कर और वज्रके समान दुर्दम्य हैं तथा मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये डालते हैं। अर्जुनके सिवा और किसीके बाण मुझे इतनी पीडा नहीं दे सकते।'

ऐसा कहकर भीष्मजी, मानो पाण्डवोंको भस्म कर डालेंगे, इस प्रकार क्रोधमें भर गये और अर्जुनके ऊपर उन्होंने पुनः एक शक्ति छोड़ी; किन्तु अर्जुनने उसके तीन टुकड़े कर दिये। तब भीष्मजी ढाल और तलवार हाथमें लेकर रथसे उतरने लगे, अभी ऊपर ही थे कि अर्जुनने बाण मारकर उनकी ढालके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। यह देखकर सबको बड़ा

विस्मय हुआ। अर्जुनने पैने बाणोंसे भीष्मजीका रोम-रोम बींध डाला था। उनके शरीरमें दो अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था, जहाँ बाण न लगा हो। इस प्रकार कौरवोंके देखते-देखते बाणोंसे छलनी होकर आपके पिताजी सूर्यास्तके समय रथसे गिर पड़े। उस समय उनका मस्तक पूर्व दिशाकी ओर था। उनके गिरते ही देवताओं और राजाओंमें हाहाकार मच गया। महाराज! महात्मा भीष्मको उस अवस्थामें देख हमलोगोंका दिल बैठ गया। पृथ्वीपर वज्रपातके समान शब्द हुआ। उनके शरीरमें सब ओर बाण बिंधे हुए थे; इसलिये वे उनपर ही टँगे रह गये, धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। बाण-शय्यापर सोये हुए भीष्मके शरीरमें दिव्यभावका आवेश हुआ। गिरते-गिरते उन्होंने देखा कि सूर्य तो अभी दक्षिणायनमें हैं, यह मरणका उत्तम काल नहीं है; इसलिये अपने प्राणोंका त्याग नहीं किया, होश-हवास ठीक रक्खा। उसी समय उन्हें आकाशमें यह दिव्य वाणी सुनायी दी 'महात्मा भीष्मजी तो सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, उन्होंने इस दक्षिणायनमें अपनी मृत्यु क्यों स्वीकार की?' यह सुनकर पितामहने उत्तर दिया—'मैं अभी जीवित हूँ।'

हिमालयकी पुत्री श्रीगङ्गाजीको जब यह मालूम हुआ कि कौरवोंके पितामह भीष्म पृथ्वीपर गिरकर भी अभी प्राणोंको बचाये हुए उत्तरायणकी बाट जोहते हैं, तो उन्होंने महर्षियोंको हंसके रूपमें उनके पास भेजा। उन्होंने आकर शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीका दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर परस्पर कहने लगे 'भीष्मजी तो बड़े महात्मा हैं। ये दक्षिणायनमें भला, अपना शरीर क्यों छोड़ेंगे?' यों कहकर जब वे जाने लगे तो भीष्मजीने उनसे कहा, 'हंसगण! आपसे सत्य कहता हूँ, मैं दक्षिणायनमें देह-त्याग नहीं करूँगा। उत्तरायण होनेपर ही अपने धामकी यात्रा करूँगा—यह मेरे मनमें पहलेसे ही निश्चित है। पिताके वरदानसे मृत्यु मेरे अधीन है; इसलिये नियत समयतक प्राण धारण करनेमें मुझे विशेष कठिनाई नहीं होगी।'

यह कहकर वे पूर्ववत् शर-शय्यापर सोये रहे और हंसगण चले गये। उस समय कौरव शोकसे मूर्च्छित हो रहे थे। कृपाचार्य और दुर्योधन आदि आह भर-भरकर रो रहे थे। कितनोंको विषादके मारे बेहोशी छा गयी थी, उनकी इन्द्रियाँ जडवत् हो गयी थीं। कुछ लोग गहरी चिन्तामें डूबे हुए थे। युद्धमें किसीका भी मन नहीं लगता था। कोई भी पाण्डवोंपर धावा न कर सका, मानो किसी महान् ग्राहने उनके पैर पकड़ लिये हों। उस समय सब लोग यही अनुमान लगाते थे, अब कौरवोंके विनाश होनेमें अधिक देर नहीं है।

पाण्डव विजयी हुए थे, अतः उनके दलमें शंखनाद होने लगा। सृञ्जय और सोमक खुशीके मारे फूल उठे। भीमसेन ताल ठोंकते हुए सिंहके समान दहाड़ने लगे। कौरव-सेनामें कुछ लोग बेहोश थे और कुछ फूट-फूटकर रो रहे थे। कितने ही पछाड़ खा-खाकर गिर रहे थे। कुछ लोग क्षत्रियधर्मकी निन्दा करते थे और कुछ भीष्मजीकी प्रशंसा। भीष्मजी उपनिषदोंमें बतायी हुई योगधारणाका आश्रय ले प्रणवका जप करते हुए उत्तरायणकालकी प्रतीक्षा करने लगे।

भीष्मजीके पास जाकर सब राजाओंका तथा कर्णका मिलना

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! भीष्मजी महाबली और देवताके समान थे, उन्होंने अपने पिताके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया था। उस समय रणभूमिमें उनके गिर जानेसे हमारे योद्धाओंकी क्या गति हुई होगी? भीष्मजीने अपनी दयालुताके कारण जब शिखण्डीपर बाणोंका प्रहार नहीं करनेका निश्चय किया, तभी मैं समझ गया था कि अब पाण्डवोंके हाथसे कौरव अवश्य मारे जायँगे। हाय! मेरे लिये इससे बढ़कर दुःखकी बात क्या होगी, जो आज अपने पिताके मरणका समाचार सुन रहा हूँ! वास्तवमें मेरा हृदय वज्रका बना हुआ है, तभी तो आज भीष्मजीकी मृत्युकी बात सुनकर भी इसके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते। सञ्जय! कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी जिस समय मारे गये, उसके बाद यदि उन्होंने कुछ किया हो तो वह भी मुझे बताओ।

सञ्जय बोला—सायङ्कालमें जब भीष्मजी रणभूमिमें गिरे, उस समय कौरवोंको बड़ा दुःख हुआ और पाञ्चालदेशीय योद्धा आनन्द मनाने लगे। भीष्मजी बाणोंकी शय्यापर सोये हुए थे। उस समय आपका पुत्र दुःशासन बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनामें गया। उसे आते देख कौरव-सैनिक मन-ही-मन यह सोचकर कि 'देखें, यह क्या कहता है!' उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। दुःशासनने द्रोणाचार्यको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाया। यह अप्रिय संवाद सुनते ही आचार्य मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देरमें जब सचेत

हुए तो उन्होंने अपनी सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। कौरवोंको लौटते देख पाण्डवोंने भी घुड़सवार दूतोंके द्वारा सब ओर फैली हुई अपनी सेनाको युद्धसे रोक दिया। क्रमशः सब सेनाके लौट जानेपर राजा अपने-अपने कवच और अस्त्र-शस्त्र उतारकर भीष्मजीके पास पहुँचे। कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्षके लोग भीष्मजीको प्रणाम करके वहाँ खड़े हो

गये। उस समय धर्मात्मा भीष्मजीने अपने सामने खड़े हुए राजाओंको सम्बोधित करके कहा—'महान् सौभाग्यशाली महारथियो! मैं आपलोगोंका स्वागत करता हूँ। देवोपम वीरो! इस समय आपके दर्शनसे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है।' इस तरह सबका अभिनन्दन करके भीष्मजीने पुनः कहा—'मेरा मस्तक नीचे लटक रहा है, आपलोग इसके लिये कोई तकिया ला दीजिये।' यह सुनकर राजालोग बहुत कोमल और उत्तम-उत्तम तकिये ले आये, परन्तु पितामहको वे पसंद नहीं आये। उन्होंने हँसकर कहा—'राजाओ! ये तकिये वीरशय्याके योग्य नहीं हैं।' इसके बाद उन्होंने अर्जुनकी ओर देखकर कहा—'बेटा धनञ्जय! मेरा मस्तक लटक रहा है, इसके लिये शीघ्र ही इस बिछौनेके अनुरूप एक तकिया ला दो। तुम सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और शक्तिशाली हो। तुम्हें क्षत्रियधर्मका ज्ञान है और तुम्हारी बुद्धि निर्मल है, अतः तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो।'

अर्जुनने भी 'बहुत अच्छा' कहकर इस आज्ञाको स्वीका किया और भीष्मजीकी अनुमति ले अपना गाण्डीव धनु उठाया। उसपर तीन अभिमन्त्रित बाणोंको रखकर उन्होंने उन्हें मारकर भीष्मजीका मस्तक ऊँचा कर दिया 'मेरा अभिप्राय अर्जुनकी समझमें आ गया'—यह जान कर भीष्मजी बड़े प्रसन्न हुए। उनके दिये हुए इस वीरोचित तकियेको पाकर भीष्मजीने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन! तुमने इस शय्याके योग्य तकिया ला दिया। यदि ऐसा न करते तो मैं क्रोधमें आकर तुम्हें शाप दे देता। महाबाहो! अपने धर्ममें स्थित रहनेवाले क्षत्रियको संग्रामभूमिमें इसी प्रकार शर-शय्यापर शयन करना चाहिये।' अर्जुनसे यों कहकर भीष्मजीने अन्य राजा और राजकुमारोंसे कहा—'देखिये आपलोग, अर्जुनने कैसा बढ़िया तकिया लगा दिया। अब मैं, जबतक सूर्य उत्तरायणमें नहीं आते तबतक इस शय्यापर पड़ा रहूँगा। उस समय जो लोग मेरे पास आयेंगे, वे मेरी परलोक-यात्रा देख सकेंगे। मेरे आस पासकी भूमिमें खाई खुदवा देनी चाहिये। इन सैकड़ों बाणोंसे बिंधा हुआ ही मैं सूर्यदेवकी उपासना करूँगा। राजाओ! अन्तमें मेरी प्रार्थना यह है कि आपलोग अब आपसका वैर छोड़कर युद्ध बंद कर दीजिये।'

तदनन्तर, शरीरसे बाण निकालनेमें कुशल सुशिक्षित वैद्य अपने साज-सामानके साथ भीष्मजीकी चिकित्साके लिये वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें देखकर भीष्मजीने आपके पुत्रसे कहा—'दुर्योधन! इन चिकित्सकोंको धन देकर सम्मानके साथ विदा कर दो। इस अवस्थाको पहुँच जानेपर अब मुझे वैद्योंसे क्या काम है? क्षत्रियधर्ममें जो सर्वोत्तम गति है, वह मुझे प्राप्त हुई है; बाणशय्यापर शयन करनेके पश्चात् अब चिकित्सा कराना मेरा धर्म नहीं है। इन बाणोंके साथ ही मेरा दाह-संस्कार होना चाहिये।'

पितामहकी बात सुनकर दुर्योधनने वैद्योंको धन आदिसे सम्मानित करके विदा कर दिया। नाना देशोंके राजा वहाँ जुटे हुए थे, वे भीष्मजीकी यह धर्म-निष्ठा और साहस देखकर बहुत विस्मित हुए। इसके बाद कौरव और पाण्डवोंने बाण-शय्यापर सोये हुए भीष्मजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया और उनकी रक्षाका प्रबन्ध करके वे सब लोग अपने-अपने शिबिरमें लौट आये।

महारथी पाण्डव अपनी छावनीमें प्रसन्न होकर बैठे थे, इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने आकर युधिष्ठिरसे कहा—

'राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आपकी जीत हो रही है। धन्य भाग, जो भीष्मजी मारे गये। ये महारथी सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी थे। मनुष्योंसे तो ये अवध्य थे ही, देवता भी इन्हें नहीं जीत सकते थे। किन्तु आपके तेजसे ये दग्ध हो गये।'

युधिष्ठिरने कहा—'कृष्ण ! विजय तो आपकी कृपाका फल है। आप भक्तोंका भय दूर करनेवाले हैं और हमलोग आपकी ही शरणमें पड़े हैं। जिनकी रक्षा आप करते हैं, उनकी यदि विजय हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरा तो ऐसा विश्वास है, जिसने सर्वथा आपका आश्रय लिया है उसके लिये कोई भी बात आश्चर्यजनक नहीं है।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् मुसकराते हुए बोले—'महाराज ! यह कथन आपके ही अनुरूप है।'

सञ्जयने कहा—राजन् ! जब रात बीती और सबेरा हुआ, तो कौरव और पाण्डव पितामह भीष्मके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने वीर-शय्यापर सोये हुए पितामहको प्रणाम किया और सभी उनके पास खड़े हो गये। हजारों कन्याओंने वहाँ आकर भीष्मके शरीरपर चन्दन, रोली, खील, और फूलकी मालाएँ चढ़ाकर उनकी पूजा की। दर्शकोंमें स्त्री, बूढ़े, बालक, ढोल पीटनेवाले, नट, नर्तक और शिल्पी आदि सभी श्रेणीके लोग थे। सभी बड़ी श्रद्धासे उनका दर्शन करने आये थे। कौरव और पाण्डव भी युद्ध बंद करके कवच तथा हथियार अलग रखकर परस्पर प्रेमके साथ अपनी-अपनी अवस्थाके क्रमसे पितामहके पास बैठे थे।

बाणोंके घावसे भीष्मजीका शरीर जल रहा था, पीडासे उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी; उन्होंने बड़ी कठिनाईसे राजाओंकी ओर देखकर कहा 'पानी चाहिये।' सुनते ही क्षत्रियलोग उठे और चारों ओरसे उत्तमोत्तम भोजनकी सामग्री तथा ठंडे जलसे भरे हुए घड़े लाकर उन्होंने भीष्मजीको अर्पण किये। यह देख भीष्मजी बोले—'अब मैं पहले भोगे हुए किसी मानवीय भोगको स्वीकार नहीं करूँगा; क्योंकि अब मैं मानवलोकसे अलग होकर बाण-शय्यापर शयन कर रहा हूँ।' यह कहकर वे राजाओंकी बुद्धिकी निन्दा करते हुए बोले—'इस समय अर्जुनको देखना चाहता हूँ।'

यह सुनकर अर्जुन तुरंत उनके निकट पहुँचे और प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े हुए विनीत भावसे खड़े होकर बोले—'दादाजी ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?' अर्जुनको सामने खड़े देख धर्मात्मा भीष्मने प्रसन्न होकर कहा—'बेटा ! तुम्हारे बाणोंसे मेरा शरीर जल रहा है। मर्मस्थानोंमें बड़ी पीडा हो रही है। मुँह सूखा जाता है। मुझे पानी दो। तुम समर्थ हो, तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो।'

अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर पितामहकी आज्ञा स्वीकार की और अपने रथपर बैठकर उन्होंने गाण्डीव धनुष चढ़ाया। उस धनुषकी टङ्कार सुनकर सभी प्राणी थर्रा उठे और राजाओंको भी बड़ा भय हुआ। अर्जुनने रथके द्वारा ही पितामहकी परिक्रमा की और एक दमकता हुआ बाण निकाला, फिर मन्त्र पढ़कर उसे पार्जन्य-अस्त्रसे संयोजित किया। इसके बाद सबके देखते-देखते उन्होंने भीष्मके बगलवाली ज़मीनपर वह बाण मारा। उसके लगते ही पृथ्वीसे अमृतके समान मधुर तथा दिव्य गन्ध और दिव्य रससे युक्त शीतल

जलकी निर्मल धारा निकलने लगी। उससे अर्जुनने दिव्य कर्म करनेवाले पितामह भीष्मको तृप्त किया। अर्जुनका यह अलौकिक कर्म देखकर वहाँ बैठे हुए राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सब-के-सब भयसे काँपने लगे। उस समय चारों ओर शंख और दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनि गूँज उठी। भीष्मजीने तृप्त होकर सबके सामने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'महाबाहो ! तुममें ऐसा पराक्रम होना आश्चर्यकी बात नहीं है। मुझे नारदजीने पहलेसे ही बता दिया है कि तुम पुरातन ऋषि नर हो और इन भगवान् नारायणकी सहायतासे बड़े-बड़े कार्य करोगे, जिन्हें इन्द्र आदि देवता भी करनेका साहस नहीं कर सकते। तुम इस भूमण्डलमें एकमात्र सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो। इस युद्धको रोकनेके लिये मैंने तथा विदुर, द्रोणाचार्य, परशुराम, भगवान् श्रीकृष्ण और सञ्जयने भी

बार-बार कहा; किन्तु दुर्योधनने किसीकी नहीं सुनी। उसकी बुद्धि विपरीत हो गयी है; वह बेहोश-सा रहता है, किसीकी बातपर विश्वास ही नहीं करता। सदा शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करता है। खैर, इसका फल इसे मिलेगा; भीमसेनके बलसे अपमानित होकर यह मारा जायगा और सदाके लिये रणभूमिमें सो रहेगा।'

भीष्मजीकी यह बात सुनकर दुर्योधनका मन बहुत दुखी हो गया। उसे देखकर पितामहने कहा—'राजन्! क्रोध छोड़ दो और मेरी बातपर ध्यान दो। यह तो तुमने देखा न, अर्जुनने किस तरह शीतल, मधुर एवं सुगन्धित जलकी धारा प्रकट की है! ऐसा पराक्रम करनेवाला इस जगत्में दूसरा कोई नहीं है। आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, प्राजापत्य, धात्र, त्वाष्ट्र, सावित्र और वैवस्वत इत्यादि अस्त्रोंको इस संसारमें अर्जुन या भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं। तीसरा कोई भी इनका ज्ञाता नहीं है। अतः अर्जुनको किसी प्रकार भी युद्धमें जीतना असम्भव है, इनके सभी कर्म अलौकिक हैं। इसलिये मेरी राय यही है कि तुम इनके साथ शीघ्र ही सन्धि कर लो। जबतक भगवान् श्रीकृष्ण कोप नहीं करते, जबतक भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तुम्हारी सेनाका सर्वनाश नहीं कर डालते, उसके पहले ही तुम्हारा पाण्डवोंके साथ मित्रभाव हो जाना मैं अच्छा समझता हूँ। तात! मेरे मरनेके साथ ही इस युद्धकी समाप्ति कर दो, शान्त हो जाओ। मेरा कहा मानो, इसीमें तुम्हारा और तुम्हारे कुलका कल्याण है। अर्जुनने जो पराक्रम दिखाया है, यह तुम्हें सचेत करनेके लिये काफी है। अब तुमलोगोंमें परस्पर प्रेम-भाव बढ़े और बचे-खुचे राजाओंके जीवनकी रक्षा हो। पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो और युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को चले जायँ। सभी राजा प्रेमपूर्वक एक-दूसरेसे मिलें। पिता पुत्रसे, मामा भानजेसे और भाई भाईके साथ मिलकर रहें। यदि मोहवश या मूर्खताके कारण तुम मेरी इस समयोचित बातपर ध्यान न दोगे तो अन्तमें पछताना पड़ेगा, सबका नाश हो जायगा—यह तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ।'

भीष्मजी सुहृद्भावसे यह बात कहकर चुप हो गये। फिर उन्होंने अपना मन परमात्मामें लगाया। दुर्योधनको वह बात ठीक उसी तरह पसंद नहीं आयी, जैसे मरनेवाले मनुष्यको दवा पीना अच्छा नहीं लगता।

तदनन्तर, भीष्मजीके मौन हो जानेपर सभी राजा अपने-अपने शिबिरमें चले आये। इसी समय कर्ण भीष्मजीके मारे जानेका समाचार सुनकर कुछ भयभीत हो जल्दीसे उनके पास आया। उन्हें शर-शय्यापर पड़े देख उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने गद्गद कण्ठसे कहा, 'महाबाहु भीष्मजी! जिसे आप सदा द्वेषभरी दृष्टिसे देखते थे, वही मैं राधाका पुत्र कर्ण आपकी सेवामें उपस्थित हूँ।' यह सुनकर भीष्मजीने पलक उघाड़कर धीरेसे कर्णकी ओर देखा। इसके बाद उस स्थानको सूना देख पहरेदारोंको भी वहाँसे हटा दिया। फिर जैसे पिता पुत्रको गले लगाता है, उसी प्रकार एक हाथसे कर्णको खींचकर हृदयसे लगाते हुए स्नेहपूर्वक कहा—

'आओ, मेरे प्रतिस्पर्धी! तुम सदा मुझसे लाग-डाँट रखते आये हो। यदि मेरे पास नहीं आते तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण नहीं होता। महाबाहो! तुम राधाके नहीं, कुन्तीके पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं, सूर्य हैं—यह बात मुझे व्यासजी और नारदजीसे ज्ञात हुई है। यह बिल्कुल सच्ची बात है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तात! मैं सच कहता हूँ, तुमसे मेरा तनिक भी द्वेष नहीं है; तुम अकारण ही पाण्डवों-पर आक्षेप करते थे, अतः तुम्हारा दुःसाहस दूर करनेके लिये ही मैं कठोर वचन कहता था। नीच पुरुषोंका संग करनेसे तुम्हारी बुद्धि गुणवानोंसे भी द्वेष करने लगी है। इस कारणसे ही कौरवोंकी सभामें मैंने तुम्हें अनेकों बार कटुवचन सुनाये हैं। मैं जानता हूँ, युद्धमें तुम्हारा पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य है। तुम ब्राह्मणोंके भक्त हो, शूरवीर हो और दानमें तुम्हारी बड़ी निष्ठा है। मनुष्योंमें तुम्हारे समान गुणवान् कोई नहीं है। बाण मारनेमें, अस्त्रोंका सन्धान करनेमें, हाथकी फुर्तीमें और अस्त्रबलमें तुम अर्जुन और श्रीकृष्णके समान हो। तुम धैर्यके साथ युद्ध करते हो, तेज और बलमें देवताके तुल्य

हो। युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मनुष्योंसे अधिक है। पूर्वकालमें तुम्हारे प्रति जो मेरा क्रोध था, उसे मैंने दूर कर दिया है। अब मुझे निश्चय हो गया है कि पुरुषार्थसे दैवके विधानको नहीं पलटा जा सकता। पाण्डव तुम्हारे सहोदर भाई हैं; यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहो, तो उनके साथ मेल कर लो। मेरे ही साथ इस वैरका अन्त हो जाय और भूमण्डलके सभी राजा आजसे सुखी हों।'

कर्णने कहा—महाबाहो! आपने जो कहा कि मैं सूतपुत्र नहीं, कुन्तीका पुत्र हूँ—यह मुझे भी मालूम है। किन्तु कुन्तीने तो मुझे त्याग दिया और सूतने मेरा पालन-पोषण किया है। आजतक दुर्योधनका ऐश्वर्य भोगता रहा हूँ, अब उसे हराम करनेका साहस मुझमें नहीं है। जैसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायतामें दृढ हैं, उसी प्रकार मैंने भी दुर्योधनके लिये अपने शरीर, धन, स्त्री, पुत्र और यशको निछावर कर दिया है। जो बात अवश्य होनेवाली है, उसको पलटा नहीं जा सकता। पुरुषार्थसे दैवके विधानको कौन मेट सकता है? आपको भी तो पृथ्वीके नाशकी सूचना देनेवाले अपशकुन ज्ञात हुए थे, जिन्हें आपने सभामें बताया था। मैं भी पाण्डवों और भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव जानता हूँ, ये मनुष्योंके लिये अजेय हैं। तो भी मेरे मनमें यह विश्वास है कि मैं पाण्डवोंको रणमें जीत लूँगा। यह वैर बहुत बढ़ गया है, अब इसका छूटना कठिन है; इसलिये मैं अपने धर्ममें स्थित रहकर प्रसन्नतापूर्वक अर्जुनसे युद्ध करूँगा। युद्ध करनेके लिये मैंने निश्चय कर लिया है, अब आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा लेकर ही युद्ध करनेका मेरा विचार है। आजतक अपनी चपलताके कारण मैंने जो कुछ कटुवचन कहा हो या प्रतिकूल आचरण किया हो, उसे आप क्षमा करें।

भीष्मजी बोले—कर्ण! यदि यह दारुण वैर मिट नहीं सकता तो मैं तुम्हें युद्धके लिये आज्ञा देता हूँ। तुम स्वर्गकी कामनासे ही युद्ध करो। क्रोध और डाह छोड़कर अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार रणमें पराक्रम दिखाओ। सदा सत्पुरुषोंके आचरणका पालन करो। अर्जुनसे युद्ध करके तुम क्षत्रियधर्मसे प्राप्त होनेवाले लोकोंमें जाओगे। अहंकार त्यागकर अपने बल और पराक्रमका भरोसा रखकर युद्ध करो। क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणका साधन नहीं है। कर्ण! मैंने शान्तिके लिये महान् प्रयत्न किया है, किन्तु इसमें सफल न हो सका। यह तुमसे सच कह रहा हूँ।

राजन्! भीष्मजीने जब ऐसा कहा तो कर्णने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले रथपर बैठकर आपके पुत्र दुर्योधनके पास चला गया।

भीष्मपर्व समाप्त

|| श्रीगणेशाय नमः ||
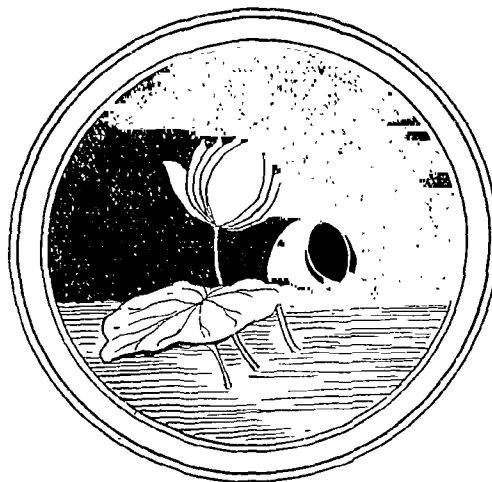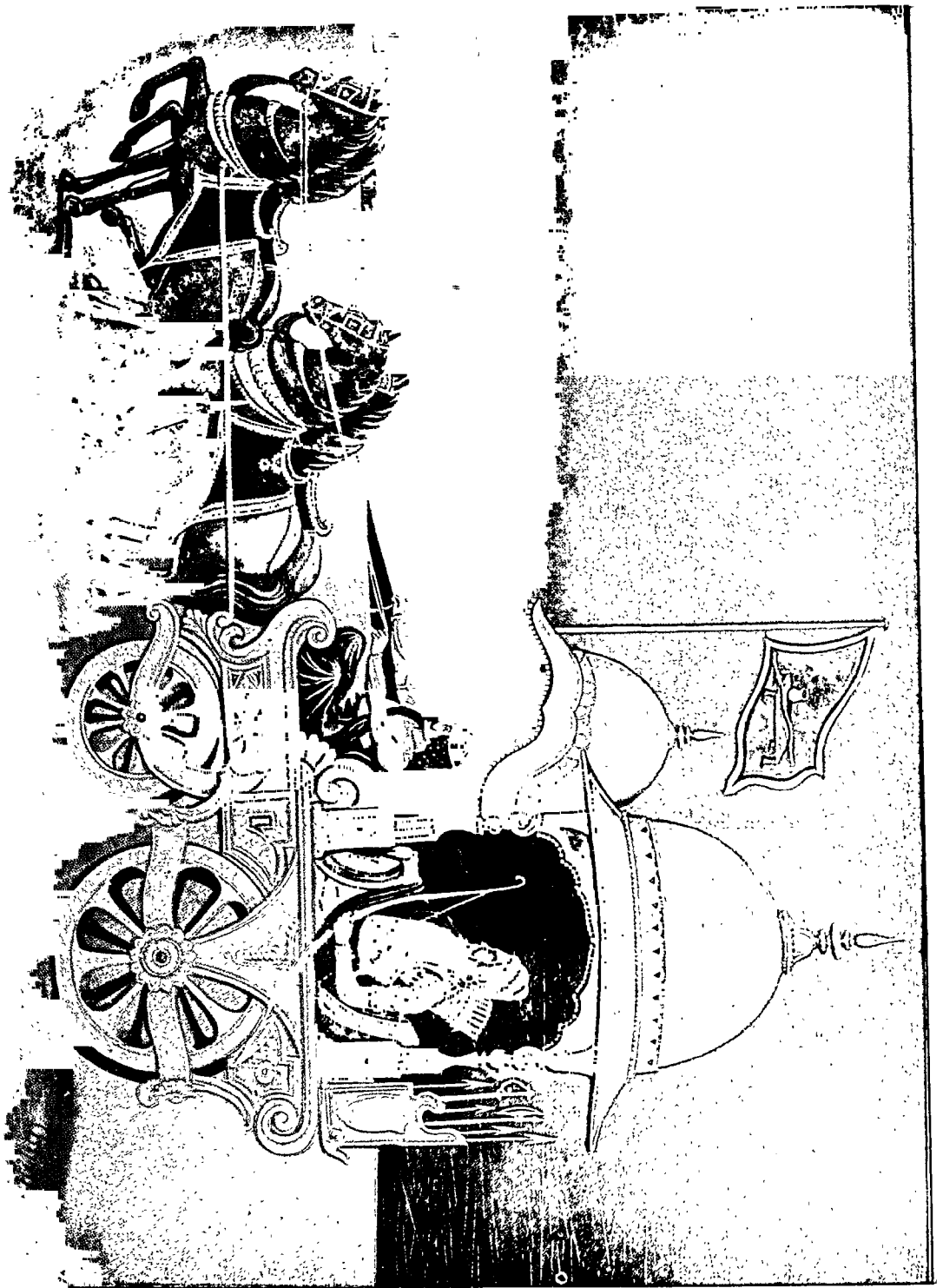
संक्षिप्त महाभारत

द्रोणपर्व

कर्णका युद्धके लिये तैयार होना तथा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

राजा जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! पितामह भीष्मको पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके हाथसे मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र दुर्योधनने क्या किया? वह सब प्रसंग आप मुझे सुनाइये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! भीष्मजीकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र एकदम चिन्ता और शोकमें डूब गये। उनकी सारी शान्ति नष्ट हो गयी। रात-दिन उन्हें दुःखहीका विचार रहने लगा। इतनेहीमें उनके पास विशुद्ध-हृदय सञ्जय आया। वह कौरवोंकी छावनीसे रातहीमें हस्तिनापुर पहुँचा था। उससे भीष्मजीकी मृत्युका विवरण सुनकर राजा धृतराष्ट्रको बड़ा ही खेद हुआ। वे आतुर होकर रोने लगे और फिर पूछा, 'तात! महात्मा भीष्मजीके लिये अत्यन्त शोकातुर होकर फिर कौरवोंने क्या किया? वीर पाण्डवोंकी विशाल और विजयिनी वाहिनी तो तीनों लोकोंमें अत्यन्त भय उत्पन्न कर सकती है। अब भला, दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी है, जिसकी उपस्थितिमें ऐसा महान् भय सामने आनेपर भी वीरोंका धैर्य बना रहे।'

सञ्जयने कहा—राजन्! भीष्मजीके मारे जानेपर आपके पुत्रोंने क्या-क्या किया, यह आप ध्यान देकर सुनिये। उनका निधन होनेपर कौरव और पाण्डव दोनों ही अलग विचार करने लगे। उन्होंने क्षात्रधर्मकी निन्दा करते हुए महात्मा भीष्मजीको प्रणाम किया, फिर उनकी रक्षाका

प्रबन्ध कर आपसमें उन्हींकी चर्चा करते रहे। तदनन्तर पितामहकी आज्ञा होनेपर उनकी प्रदक्षिणा करके वे फिर आपसमें युद्ध करनेके लिये कमर कसकर चल दिये। थोड़ी ही देरमें तुरही और भेरियोंकी ध्वनिके साथ आपके पुत्रोंकी और पाण्डवोंकी सेनाएँ युद्ध करनेके लिये निकल पड़ीं।

राजन्! आपके पुत्र और आपकी नासमझीके कारण तथा भीष्मजीका वध हो जानेसे अब कौरव और उनके पक्षके सब राजा मृत्युके समीप आ पहुँचे हैं। भीष्मजीको खोकर उन सभीको बड़ा शोक हुआ है। उनके न रहनेसे कौरवोंकी सेना भी अनाथ-सी हो गयी है। जिस प्रकार कोई आपत्ति आ पड़नेपर अपने बन्धुकी याद आने लगती है, उसी प्रकार अब कौरव वीरोंका ध्यान कर्णकी ओर गया; क्योंकि वह भीष्मजीके समान ही गुणवान् था तथा समस्त शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ और अग्निके समान तेजस्वी था। कर्ण दो रथियोंके बराबर था, किन्तु भीष्मजीने बलवान् और पराक्रमी रथियोंकी गणना करते समय उसे अर्धरथी ठहराया था। इसलिये दस दिनतक, जबतक कि पितामहने युद्ध किया, महायशस्वी कर्णने संग्रामभूमिमें पैर नहीं रक्खा था। अब सत्यप्रतिज्ञ भीष्मजीके धराशायी होनेपर आपके पुत्रोंने कर्णको याद किया और वे 'अब तुम्हारे लड़नेका समय आ गया है' ऐसा कहकर 'कर्ण! कर्ण!' पुकारने लगे।

अब महारथी कर्ण समुद्रमें डूबती हुई नौकाके समान आपके पुत्रकी सेनाको इस आपत्तिसे पार करनेके लिये तुरंत ही कौरवोंके पास आया और उनसे कहने लगा, 'भीष्मजीमें धैर्य, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति आदि सभी वीरोचित गुण थे। उनके पास अनेकों दिव्य अस्त्र भी थे। साथ ही नम्रता, लज्जा, मधुर भाषण और सरलताकी भी उनमें कमी नहीं थी। वे दूसरोंके उपकारोंको याद रखनेवाले और विप्रविद्वेषियोंके विरोधी थे। उनके शान्त हो जानेसे तो मुझे सब वीरोंका अन्त हुआ-सा ही दिखायी देता है।' ऐसा कहकर तथा महाप्रतापी भीष्मजीके निधन और कौरवोंकी पराजयका विचार करके कर्णको बड़ा ही खेद हुआ और वह आँखोंमें आँसू भरकर लंबे-लंबे साँस लेने लगा। कर्णके ये वचन सुनकर आपके पुत्र और सैनिकलोग भी आपसमें शोक प्रकट करने लगे और अत्यन्त आतुर होकर आँखोंसे

आँसू बहाते हुए ढाढ़ मारकर रोने लगे। तब रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने अन्य महारथियोंका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, 'भीष्मजी-के गिर जानेसे कोई सेनापति न रहनेके कारण कौरवोंकी सेना बहुत घबरायी हुई है, शत्रुओंने इसे निरुत्साह और अनाथ कर दिया है। किन्तु अब मैं भीष्मजीकी तरह ही इसकी रक्षा करूँगा। मैं अनुभव करता हूँ कि अब यह सारा भार मेरे ऊपर ही है। मैं रणभूमिमें घूम-घूमकर अपने बाणोंसे पाण्डवोंको यमराजके घर भेज दूँगा और सारे संसारमें अपना महान् यश प्रकट करके रहूँगा अथवा शत्रुओंके हाथसे मरकर पृथ्वीपर शयन करूँगा।' फिर अपने सारथिसे कहा, 'सूत! तू मुझे कवच और शीर्षत्राण पहना तथा शीघ्र ही मेरे रथको सोलह तरकस, दिव्य धनुष, तलवार, शक्ति, गदा और शंख आदि सभी सामग्रियोंसे सजाकर घोड़े जोतकर ले आ।'

सञ्जय कहता है—राजन्! ऐसा कहकर कर्ण युद्धकी सामग्रीसे भरे हुए, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एक सुन्दर रथपर चढ़कर विजय प्राप्त करनेके लिये चला और सबसे पहले शरशय्यापर पौढ़े हुए अतुलित तेजस्वी महात्मा भीष्मजीके पास पहुँचा। उन्हें देखकर कर्ण व्याकुल हो गया। उसने रथसे उतरकर हाथ जोड़कर भीष्मजीको प्रणाम

किया और फिर नेत्रोंमें जल भरकर लड़खड़ाती जबानसे कहा, 'भरतश्रेष्ठ ! मैं कर्ण हूँ । आपका कल्याण हो, आप अपनी पवित्र दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये और अपने मङ्गलमय शब्दोंसे मुझे अनुगृहीत कीजिये । मुझे धनसंग्रह, मन्त्रणा, व्यूहरचना और शस्त्रसञ्चालनमें आपके समान कौरवोंमें और कोई दिखायी नहीं देता । आपके सिवा ऐसा और कौन है, जो अर्जुनके साथ लोहा ले सके । बड़े-बड़े बुद्धिमानोंका यही कथन है कि अर्जुनके पास अनेकों दिव्य अस्त्र हैं और वह निवातकवचादि अमानवोंसे तथा स्वयं महादेवजीसे भी युद्ध कर चुका है । साथ ही उसने भगवान् शंकरसे अजितेन्द्रिय पुरुषों-के लिये दुर्लभ वर भी प्राप्त किया है । तो भी आपकी आज्ञा होने-पर तो मैं आज ही अपने पराक्रमसे उसे नष्ट कर सकता हूँ ।'

राजन् ! कर्णके इस प्रकार कहनेपर कुरुवृद्ध पितामहने प्रसन्न होकर देश और कालके अनुसार कहा, 'कर्ण ! तुम शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले होओ । भगवान् विष्णु जैसे देवताओंके आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम कौरवोंके आधार बनो । दुर्योधनकी जयकी इच्छासे ही तुमने अपने बाहुबलसे उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, अन्ध्र, निषाद, त्रिगर्त्त और बाह्लीक आदि देशोंके राजाओंको परास्त किया था । इनके सिवा जगह-जगह और भी अनेकों वीरोंको तुमने नीचा दिखाया था । भैया ! देखो, जैसे दुर्योधन सब कौरवोंका कर्णधार है, उसी प्रकार तुम भी उन्हें पूरा आश्रय देना । जाओ, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ; तुम शत्रुओंके साथ संग्राम करो, युद्धमें कौरवोंके पथप्रदर्शक बनो और दुर्योधनको जय प्राप्त कराओ । दुर्योधनकी तरह तुम भी मेरे पौत्रके समान ही हो । धर्मतः जैसे मैं उसका हितैषी हूँ, वैसे ही तुम्हारा भी हूँ ।'

भीष्मजीकी यह बात सुनकर कर्णने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वह सेनाकी ओर चला गया और उसे उत्साहित किया । कर्णको सब सेनाके आगे आता देख-कर दुर्योधनादि समस्त कौरवोंको भी बड़ा हर्ष हुआ । वे ताल ठोंककर, उछल-उछलकर, सिंहनाद करके और तरह-तरहसे धनुषोंकी टंकार करके कर्णका स्वागत करने लगे । फिर उससे दुर्योधनने कहा, 'कर्ण ! अब तुम हमारी सेनाके रक्षक हो, इसलिये मैं इसे सनाथ समझता हूँ । तुम इस बातका निर्णय करो कि क्या करनेसे हमारा हित हो सकता है ।'

कर्णने कहा—राजन् ! आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, आप अपना विचार कहिये; क्योंकि स्वयं राजा कर्त्तव्यका जैसा ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हैं, वैसा कोई दूसरा पुरुष नहीं कर सकता । इसलिये हम आपकी ही बात सुनना चाहते हैं ।

दुर्योधनने कहा—पहले आयु, बल और विद्यामें बढ़े-चढ़े पितामह भीष्म हमारे सेनापति थे । उन्होंने सब योद्धाओंको साथ रखते हुए शत्रुओं-

का संहार किया और भीषण युद्ध करते हुए दस दिनतक हमारी रक्षा की। अब वे तो स्वर्गवासकी तैयारीमें हैं, अतः उनके स्थानपर तुम्हारे विचारसे किसे सेनापति बनाना उचित होगा? नायकके बिना तो सेना एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकती। जिस प्रकार बिना मल्लाहकी नौका और बिना सारथिका रथ चाहे जिधर चलने लगते हैं, उसी प्रकार बिना सेनापतिकी सेना बेकाबू हो जाती है। इसलिये मेरे पक्षके सब वीरोंपर दृष्टि डालकर तुम यह निश्चय करो कि भीष्मजीके बाद कौन उपयुक्त सेनापति होगा। इस पदके लिये तुम जिसे कहोगे, उसीको हम सहर्ष अपना सेनापति बनायेंगे।

कर्ण बोला—यहाँ जितने राजालोग उपस्थित हैं, वे सभी बड़े महानुभाव हैं और निःसन्देह इस पदके योग्य हैं। ये सभी कुलीन, गठीले शरीरवाले, युद्धकलामें कुशल तथा बल, पराक्रम और बुद्धिसे सम्पन्न हैं; सभी शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान् और युद्धमें पीठ न दिखानेवाले हैं। किन्तु एक साथ सभीको तो सेनानायक बनाया नहीं जा सकता। इसलिये जिस एकमें सबसे अधिक गुण हों, उसीको इस पदपर नियुक्त करना चाहिये। मेरे विचारसे तो समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोणको ही सेनापति बनाना उचित है; क्योंकि ये सभी योद्धाओंके आचार्य और गुरु हैं तथा बयोवृद्ध भी हैं। ये साक्षात् शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीके समान हैं तथा इन्हें कोई परास्त भी नहीं कर सकता। अतः इनके रहते और कौन हमारा सेनापति हो सकता है? आपके ये गुरुदेव सभी सेनानायकोंमें, सभी शस्त्रधारियोंमें और सभी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये जिस प्रकार देवताओंने स्वामिकार्तिकजीको अपना सेनाध्यक्ष बनाया था, उसी प्रकार आप इन्हें अपना सेनापति बनाइये।

कर्णकी यह बात सुनकर दुर्योधनने सेनाके बीचमें खड़े हुए आचार्य द्रोणके पास जाकर कहा, 'भगवन्! वर्ण, कुल,

उत्पत्ति, विद्या, आयु, बुद्धि, पराक्रम, युद्धकौशल, अजेयता, अर्थज्ञान, नीति, विजय, तपस्या और कृतज्ञता आदि सभी गुणोंमें आप सबसे बढ़े-चढ़े हैं। आपके समान राजाओंमें भी हमारा कोई रक्षक नहीं है। अतः इन्द्र जिस प्रकार देवताओं-की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा कीजिये। हम आपके नेतृत्वमें ही शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। अतः आप हमारे सेनापति बननेकी कृपा करें। यदि आप हमारे सेनापति हो जायँगे, तो हम अवश्य ही राजा युधिष्ठिरको उनके अनुयायी और बन्धु-बान्धवोंसहित जीत लेंगे।'

दुर्योधनके इस प्रकार कहनेपर उसे हर्षित करते हुए सब राजाओंने द्रोणाचार्यका जय-जयकार किया। वे सब द्रोणाचार्यका उत्साह बढ़ाने लगे। तब आचार्यने दुर्योधनसे कहा, 'राजन्! मैं छहों अंगयुक्त वेद, मनुजीका कहा हुआ अर्थशास्त्र, भगवान् शङ्करकी दी हुई बाणविद्या और कई प्रकारके अस्त्र-शस्त्र जानता हूँ। तुमने विजयकी अभिलाषासे

मुझमें जो-जो गुण बताये हैं, उन सभीको निभाता हुआ मैं पाण्डवोंके साथ संग्राम करूँगा। किन्तु मैं द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नका वध किसी प्रकार नहीं कर सकूँगा; क्योंकि उसकी उत्पत्ति तो मेरे ही वधके लिये हुई है।'

राजन्! इस प्रकार आचार्यकी अनुमति मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनने उन्हें विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। उस समय बाजोंके घोष और शंखोंकी ध्वनिसे सब लोगोंने हर्ष प्रकट किया तथा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, सूत और मागधोंके स्तुतिगान और ब्राह्मणोंके जय-जयकारसे आचार्यका सम्मान किया गया। द्रोणके सेनापति होनेसे सब लोग यही समझने लगे कि अब हमने पाण्डवोंको जीत लिया।

द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा तथा उनका पहले दिनका युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन्! सेनापतिका अधिकार प्राप्त करके महारथी द्रोण अपनी सेनाकी व्यूहरचना कर आपके पुत्रोंके सहित युद्धक्षेत्रको चले। उनकी दाहिनी ओर सिन्धुराज जयद्रथ, कलिंगनरेश और आपका पुत्र विकर्ण चल रहे थे। उनकी रक्षाके लिये गन्धारदेशकी घुड़सवार सेनाके सहित शकुनि उनके पीछे था। बायीं ओर कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दुःशासन आदि वीर थे। उनकी रक्षाका भार सुदक्षिण आदि काम्बोज वीरोंपर था। उन्हींके साथ शक और यवन-सेना भी चल रही थी। मद्र, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, मालव, शिबि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव तथा पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी देशोंके सभी योद्धा आपके पुत्रोंके सहित दुर्योधन और कर्णके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे सब अपनी-अपनी सेनाओंके बल और उत्साहको बढ़ाते जाते थे। समस्त योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्ण सेनामें शक्तिका सञ्चार करता हुआ सबके आगे चल रहा था। आज कर्णको देखकर किसीको भीष्मजीका अभाव भी नहीं खलता था। सबके मुँहपर यही बात थी कि 'आज कर्णको सामने देखकर पाण्डवलोग रणक्षेत्रमें नहीं ठहर सकेंगे। अजी! कर्ण तो देवताओंके सहित स्वयं इन्द्रको भी जीत सकते हैं, फिर इन बल-पराक्रमहीन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? भीष्मजी भी थे तो बहुत पराक्रमी, परन्तु वे पाण्डवोंको बचाते रहते थे। सो अब कर्ण उन्हें अपने तीखे बाणोंसे तहस-नहस कर देंगे।'

राजन्! इस प्रकार वे सब सैनिक कर्णकी प्रशंसा करते और मन-ही-मन उसे आदर देते चल रहे थे। रणक्षेत्रमें पहुँचकर आचार्यने अपनी सेनाका शकटव्यूह बनाया। इधर धर्मराजने पाण्डवसेनाका क्रौञ्चव्यूह बना रक्खा था। उस व्यूहके मुखस्थानपर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन खड़े हुए अपनी

वानरके चिह्नवाली ध्वजा फहरा रहे थे । इधर आपकी सेनाके मुहानेपर कर्ण था । कर्ण और अर्जुन दोनों ही एक-दूसरेपर विजय पानेके लिये उतावले हो रहे थे और दोनों ही एक-दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे । इसलिये दोनोंहीकी एक-दूसरेपर टकटकी लगी हुई थी । इसी समय यकायक महारथी द्रोण आगे बढ़े और सारी सेनाके बीचमें आपके पुत्रसे कहने लगे, 'राजन् ! तुमने भीष्मजीके बाद मुझे सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया है, सो मैं तुम्हें उसके अनुरूप फल देना चाहता हूँ । बताओ, मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ? तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वही वर माँग लो ।'

इसपर राजा दुर्योधनने कर्ण और दुःशासनादिसे सलाह करके आचार्यसे कहा, 'यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो महारथी युधिष्ठिरको जीता हुआ पकड़कर मेरे पास ले आइये ।' यह सुनकर आचार्यने कहा, 'तुम कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको कैद करना ही चाहते हो, उनका वध करानेके लिये तुमने वर नहीं माँगा; इसलिये वे धन्य हैं । किन्तु दुर्योधन ! तुम्हें उनको मरवा डालनेकी इच्छा क्यों नहीं है ? पाण्डवोंको जीतनेके पश्चात् फिर युधिष्ठिरको ही राज्य सौंपकर तुम अपना सौहार्द तो दिखाना नहीं चाहते ? धर्मराजपर तुम्हारा स्नेह है, इसलिये वे अवश्य बड़े भाग्यवान् हैं; उनका जन्म सफल है तथा उनकी अजातशत्रुता भी सच्ची है ।'

राजन् ! आचार्यके ऐसा कहते ही आपके पुत्रके हृदयमें जो भाव सदा बना रहता था, वह सहसा बाहर प्रकट हो गया । वह प्रसन्न होकर कह उठा, 'आचार्यपाद ! युधिष्ठिरके मारे जानेसे मेरी विजय नहीं हो सकती; क्योंकि यदि हमने उन्हें मार भी डाला तो शेष पाण्डव अवश्य ही हमें नष्ट कर देंगे । सब पाण्डवोंको तो देवता भी नहीं मार सकते; इसलिये उनमेंसे जो भी बच रहेगा, वही हमारा अन्त कर देगा । यदि सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिर मेरे काबूमें आ गये तो मैं उन्हें फिर जूएमें जीत लूँगा और तब उनके अनुयायी पाण्डवलोग भी फिर वनमें चले जायँगे । इस तरह स्पष्ट ही बहुत दिनोंके लिये मेरी जीत हो जायगी । इसीसे मैं धर्मराजका वध किसी भी अवस्थामें नहीं करना चाहता ।'

द्रोणाचार्य बड़े व्यवहारकुशल थे । वे दुर्योधनका कूट अभिप्राय ताड़ गये, इसलिये उन्होंने उसे एक शर्तके साथ वर देते हुए कहा—'यदि वीर अर्जुनने युधिष्ठिरकी रक्षा न की, तो तुम युधिष्ठिरको अपने काबूमें आया हुआ ही समझो । अर्जुनके ऊपर आक्रमण करनेका साहस तो इन्द्रके सहित देवता और असुर भी नहीं कर सकते । इसलिये यह काम मेरे वशका भी नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि वह मेरा शिष्य है और उसने मुझहीसे अस्त्रविद्या सीखी है, तथापि वह युवा है और पुण्यशील भी है । मेरे बाद वह इन्द्र और रुद्रसे भी अस्त्र प्राप्त कर चुका है और तुम्हारे ऊपर उसका कोप भी है ही । इसलिये उसकी उपस्थितिमें मैं यह काम नहीं कर सकूँगा । अतः जैसे बने, वैसे ही तुम उसे युद्धक्षेत्रसे दूर ले जाना । बस, अर्जुनके जानेपर तो धर्मराज तुम्हारे हाथहीमें हैं । अर्जुनके दूर चले जानेपर यदि धर्मराज एक मुहूर्त्त भी मेरे सामने डटे रहे तो मैं निःसन्देह उन्हें अपने वशमें कर लूँगा ।'

राजन् ! द्रोणाचार्यके इस प्रकार शर्तके साथ प्रतिज्ञा करनेपर भी आपके मूर्ख पुत्रोंने युधिष्ठिरको कैद किया हुआ ही समझा । दुर्योधन यह जानता था कि द्रोणाचार्य पाण्डवोंपर प्रेम रखते हैं, इसलिये उनकी प्रतिज्ञाको स्थायी बनानेके लिये उसने वह बात सेनाके सभी पड़ावोंमें घोषित करा दी । सैनिकोंने जब सुना कि आचार्यने राजा युधिष्ठिरको कैद करनेकी प्रतिज्ञा की है तो वे सिंहनाद करते हुए ताल ठोंकने लगे । अपने विश्वासपात्र गुप्तचरोंसे द्रोणकी इस प्रतिज्ञाका समाचार पाकर धर्मराज युधिष्ठिरने सब भाइयोंको और दूसरे राजाओंको भी बुलाया । फिर अर्जुनसे कहा, 'पुरुषसिंह ! आचार्य जो कुछ करना चाहते हैं, वह तुमने सुना ? अब किसी ऐसी नीतिसे काम लो, जिसमें उनका विचार सफल न हो । उन्होंने एक शर्तके साथ प्रतिज्ञा की है और उस शर्तका सम्बन्ध तुम्हींसे है । अतः तुम मेरे पास रहकर ही युद्ध करो, जिससे कि द्रोणके द्वारा दुर्योधनकी इच्छा पूरी न हो सके ।'

अर्जुनने कहा—राजन् ! जिस प्रकार मैं आचार्यका वध नहीं करना चाहता, उसी प्रकार आपसे दूर होनेकी भी मेरी इच्छा नहीं है । ऐसा करनेमें भले ही मुझे युद्धस्थलमें अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़े । भले ही नक्षत्रसहित आकाश गिर पड़े और पृथ्वीके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, तथापि मेरे जीवित रहते स्वयं इन्द्रकी सहायता पाकर भी आचार्य आपको कैद नहीं कर सकते । इसलिये जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक आप द्रोणसे तनिक भी न डरें । मैं दावेके साथ कहता हूँ, मेरी यह प्रतिज्ञा टल नहीं सकती । जहाँतक मुझे स्मरण है मैंने कभी झूठ नहीं बोला, कहीं पराजय प्राप्त नहीं की और न कभी कोई प्रतिज्ञा करके उसे तोड़ा ही है ।

महाराज ! फिर पाण्डवोंके शिविरमें शंख, भेरी, मृदङ्ग और नगारोंका शब्द होने लगा; पाण्डवलोग सिंहनाद करने लगे तथा उनकी प्रत्यञ्चाओंका टङ्कार और तालियोंका शब्द आकाशमें गूँजने लगा। यह देखकर आपकी सेनामें भी बाजे बजने लगे। फिर व्यूहरचनासे खड़ी हुई दोनों सेनाएँ धीरे-धीरे आगे बढ़कर आपसमें युद्ध करने लगीं। सृञ्जय वीरोंने आचार्यकी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट करनेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनसे रक्षित होनेके कारण वे वैसा कर न सके। इसी प्रकार दुर्योधनके महारथी योद्धा भी अर्जुनसे सुरक्षित पाण्डवी सेनापर काबू न पा सके। द्रोणाचार्यके छोड़े हुए भयङ्कर बाण पाण्डवोंकी सेनाको सन्तप्त करते हुए सब ओर सनसना रहे थे। इस समय उनमेंसे किसी भी वीरकी दृष्टि आचार्यपर ठहर नहीं पाती थी। इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाको मूर्छित-सी करके वे अपने पैने बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी सेनाको कुचलने लगे। उनके छोड़े हुए बाण अनेकों रथियों, घुड़सवारों, गजारोहियों और पैदलोंका सफाया कर रहे थे। इससे शत्रुओंको बहुत भय होने लगा। आचार्यने घूम-घूमकर सेनाको घबराहटमें डाल दिया और उनके भयको चौगुना कर दिया। इस समय युद्धभूमिमें रक्तकी भीषण नदी बहने लगी, जो सैकड़ों वीरोंको यमराजके घर ले जा रही थी और जिसे देखकर कायरोंके दिल दहल जाते थे।

अब आचार्य द्रोणपर सब ओरसे युधिष्ठिरादि महारथी टूट पड़े। परन्तु आपके पराक्रमी वीरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। बस, बड़ा ही रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। महामायावी शकुनिने सहदेवपर धावा किया और अपने पैने बाणोंसे उसके सारथि, ध्वजा और रथको बींध दिया। इसपर सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर शकुनिके रथकी ध्वजा और धनुषको काट डाला तथा उसके सारथि और घोड़ोंको नष्ट करके साठ बाणोंसे उसे बींध दिया। तब शकुनि गदा लेकर अपने रथसे कूद पड़ा और उसीसे सहदेवके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया। इस प्रकार रथहीन हो जानेपर वे दोनों वीर हाथमें गदाएँ लेकर युद्धके मैदानमें क्रीडा-सी करने लगे।

द्रोणने राजा द्रुपदको दस बाण मारे। उनका जवाब उन्होंने अनेकों बाणोंसे दिया। इसपर आचार्यने उनपर उससे भी अधिक बाण छोड़े। भीमसेनने विविंशतिपर बीस बाणोंका वार किया, किन्तु इससे वह वीर टससे मस भी न हुआ। यह देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उसने यकायक भीमसेनके घोड़े मार डाले तथा उनके रथकी ध्वजा और धनुषको भी काट दिया। इससे सभी सेना 'वाह-वाह' करने लगी। भीमसेन शत्रुका ऐसा पराक्रम सहन न कर सके। इसलिये उन्होंने अपनी गदासे उसके सब घोड़े मार डाले। दूसरी ओर शल्यने हँसते हुए अपने प्यारे भानजे नकुलको बींधना आरम्भ किया। प्रतापी नकुलने बात-की-बातमें शल्यके घोड़े, छत्र, ध्वजा, सूत और धनुषको नष्ट कर डाला और फिर अपना शंख बजाया। धृष्टकेतुने कृपाचार्यके छोड़े हुए तरह-तरहके बाणोंको काटकर सत्तर बाणोंसे उन्हें बींध दिया और तीन तीरोंसे उनकी ध्वजा काट डाली। तब कृपाचार्यने बड़ी बाणवर्षा करके धृष्टकेतुको रोका और उसे अत्यन्त घायल कर दिया। सात्यकिने अपने तीखे तीरोंसे कृतवर्माकी छातीपर वार किया और फिर हँसते-हँसते सत्तर बाणोंसे उसे घायल कर दिया। इसपर कृतवर्माने बड़ी फुर्तीसे सतहत्तर बाण छोड़े। किन्तु उनसे घायल होकर भी सात्यकि पर्वतके समान अचल बना रहा।

राजा द्रुपद भगदत्तसे भिड़ गये। उनका बड़ा ही अद्भुत युद्ध हुआ। भगदत्तने राजा द्रुपदको उनके सारथिके सहित बींध डाला तथा उनके रथ और उसकी ध्वजामें भी बाण मारे। इसपर द्रुपदने कुपित होकर भगदत्तकी छातीमें बाण मारा। दूसरी ओर भूरिश्रवा और शिखण्डी बड़ा भीषण युद्ध कर रहे थे। महाबली भूरिश्रवाने बाणोंकी भारी बौछारोंसे

महारथी शिखण्डीको आच्छादित कर दिया। इसपर शिखण्डीने कुपित होकर नब्बे बाणोंसे भूरिश्रवाको अपने स्थानसे डिगा दिया। क्रूरकर्मा राक्षस घटोत्कच और अलम्बुष दोनों ही सैकड़ों प्रकारकी मायाएँ जाननेवाले थे और अभिमानी होनेके कारण एक-दूसरेको नीचा दिखानेपर तुले हुए थे। वे सबको आश्चर्यचकित करते अन्तर्धान होकर युद्ध करने लगे। इसी प्रकार चेकितान और अनुविन्दका तथा क्षत्रदेव और लक्ष्मणका भी संग्राम होने लगा।

इसी समय पौरव गर्जना करता हुआ अभिमन्युकी ओर दौड़ा। दोनोंका बड़ा घोर युद्ध छिड़ गया। पौरवने बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको बिल्कुल ढक दिया। तब अभिमन्युने उसके ध्वजा, छत्र और धनुष काटकर पृथ्वीपर गिरा दिये। फिर सात बाणोंसे उसने पौरवको और पाँचसे उसके सारथि तथा घोड़ोंको घायल कर दिया। इसके बाद वह ढाल-तलवार लेकर पौरवके रथके जुएपर कूद पड़ा और वहींसे उसके बाल पकड़ लिये; फिर एक लातसे सारथिको रथसे गिरा दिया और तलवारसे ध्वजा उड़ा दी तथा पौरवको बाल पकड़कर झकोरने लगा। जयद्रथसे पौरवकी यह दुर्दशा नहीं देखी गयी। इसलिये वह ढाल-तलवार लेकर अपने रथसे कूद पड़ा। जयद्रथको आते देखकर अभिमन्युने पौरवको छोड़ दिया और बाजकी तरह तुरंत ही रथसे उछलकर उसके सामने आ गया। जयद्रथने उसपर प्रास, पट्टिश और तलवार आदि कई प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा की; किन्तु अभिमन्युने उन सबको तलवारसे ही काट डाला और ढालसे रोक दिया। उन दोनों वीरोंकी फुर्ती देखनेलायक थी। उनकी तलवारोंके चलाने, टकराने, रोकने तथा बाहर या भीतरकी ओर घुमानेमें कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ता था। दोनों ही वीर भीतर और बाहरकी ओर घूमते हुए युद्धके अद्भुत पैंतरे दिखा रहे थे। इतनेहीमें अभिमन्युकी ढालसे लगकर जयद्रथकी तलवार टूट गयी। इसलिये वह तुरंत ही अपने रथपर चढ़ गया। इसी समय अवकाश पाकर अभिमन्यु भी अपने रथपर जा बैठा।

अभिमन्युको रथपर चढ़ा देखकर कौरवपक्षके सब राजाओंने मिलकर उसे घेर लिया। अतः उसने जयद्रथको छोड़कर अब सभी सेनाको सन्तप्त करना आरम्भ किया। इसी समय शल्यने उसपर एक अग्निशिखाके समान देदीप्यमान भयङ्कर शक्ति छोड़ी। अभिमन्युने उछलकर उसे बीचहीमें पकड़ लिया और उसी शक्तिको अपने पूरे बाहुबलसे शल्यकी ओर छोड़ा। उसने राजा शल्यके सारथिको मारकर रथसे नीचे गिरा दिया। यह देखकर राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकयराजकुमार, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल-सहदेव और द्रौपदीके पुत्रोंने वाह-वाहकी ध्वनिसे आकाशको गुँजा दिया। तथा अभिमन्युका हर्ष बढ़ाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे।

सारथिको मरा हुआ देखकर राजा शल्यने लोहेकी ठोस गदा उठायी और क्रोधसे गर्जना करते हुए वे रथसे कूद पड़े। उन्हें दण्डधर यमराजके समान अभिमन्युकी ओर झपटते देख तुरंत ही भीमसेन अपनी भारी गदा लिये उनके सामने आ गये। संग्राममें भीमसेनकी गदाका प्रहार मद्रराजको छोड़कर और कोई सहन नहीं कर सकता था तथा मद्रराजकी गदाके वेगको सहनेवाला भी भीमसेनके सिवा और कोई नहीं था। वे दोनों ही वीर गदा घुमाते हुए मण्डलाकार चक्कर काटने लगे। दोनोंका समानरूपसे युद्ध हो रहा था, कोई भी घट-बढ़कर नहीं जान पड़ता था। आखिर, भीमसेनकी चोटोंसे शल्यकी भारी गदाके टुकड़े-टुकड़े हो गये तथा शल्यके प्रहारोंसे आगकी चिनगारियाँ उगलती हुई भीमसेनकी गदा वर्षाकालमें पटबीजनोंसे घिरे हुए वृक्षके समान दिखायी देने लगी। इस प्रकार वे दोनों ही गदाएँ आपसमें टकराकर बार-बार आग प्रकट कर देती थीं। दोनों वीरोंपर गदाओंके अनेकों प्रहार हुए, किन्तु दोनों ही टससे मस न हुए। अन्तमें बहुत घायल हो जानेके कारण वे दोनों ही युद्धभूमिमें गिर गये। शल्य अत्यन्त व्याकुल होकर लंबी-लंबी साँसें ले रहे थे। उन्हें तुरंत ही महारथी कृतवर्मा अपने रथमें डालकर ले गया। महाबाहु भीमसेनको भी थोड़ी देरमें चेत

हो गया और वे खड़े होकर फिर हाथमें गदा लिये युद्धके मैदानमें दिखायी देने लगे।

मद्रराजको युद्धके मैदानसे बाहर गया देखकर आपके पुत्र अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके सहित थर्रा उठे तथा विजयी पाण्डवोंसे पीडित होकर भयसे इधर-उधर भाग गये। इस प्रकार कौरवोंको जीतकर पाण्डवलोग हर्षमें भरकर बार-बार सिंहनाद और हर्षध्वनि करने लगे तथा नरसिंगे, मृदंग और नगारे आदि बजाने लगे। जब द्रोणाचार्यने देखा कि शत्रुओंके हाथसे अत्यन्त पीडित होनेके कारण कौरवोंकी विशाल वाहिनीके पैर उखड़ गये हैं, तो उन्होंने पुकारकर कहा—'शूर-वीरो! मैदानसे भागो मत।' फिर वे क्रोधमें भरकर पाण्डवोंकी सेनामें जा घुसे और राजा युधिष्ठिरके सामने आये। युधिष्ठिरने अपने तीखे बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। इसपर आचार्यने उनके धनुषको काटकर बड़ी तेजीसे आक्रमण किया। आज वे धर्मराजको पकड़ना चाहते थे; इसलिये उन्हें रोकनेके लिये जो-जो योद्धा सामने आये, उन्हींको उन्होंने प्रहार करके क्षुब्ध कर दिया। उन्होंने बारह बाणोंसे शिखण्डीको, बीससे उत्तमौजाको, पाँचसे नकुलको, सातसे सहदेवको, बारहसे युधिष्ठिरको, तीन-तीनसे द्रौपदीके पुत्रोंको, पाँचसे सात्यकिको और दससे मत्स्यराज विराटको घायल कर दिया। इतनेहीमें युगन्धरने उनकी गति रोक दी। तब आचार्यने राजा युधिष्ठिर-को और भी घायल करके एक भालेसे युगन्धरको रथसे नीचे गिरा दिया। इसी समय धर्मराजको बचानेके लिये राजा विराट, द्रुपद, केकयराजकुमार, सात्यकि, शिबि, व्याघ्रदत्त और सिंहसेन—इन सब वीरोंने बहुत-से बाण बरसाकर आचार्य-का रास्ता रोक दिया। पञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्तने पचास बाण मारकर द्रोणको घायल कर दिया। इससे लोगोंमें बड़ा कोलाहल होने लगा। सिंहसेनने भी आचार्यको बाणोंसे बींध दिया और वह सब महारथियोंको भयभीत करके स्वयं हर्षसे अट्टहास करने लगा। किन्तु द्रोणाचार्यने क्रोधमें भरकर दो बाणोंसे इन दोनों वीरोंके सिर उड़ा दिये तथा अन्य महारथियोंको बाणजालसे आच्छादित कर मृत्युके समान युधिष्ठिरके सामने जाकर डट गये। आचार्यका ऐसा पराक्रम देखकर सब सैनिक यही कहने लगे कि 'ये इसी समय युधिष्ठिरको पकड़कर हमारे महाराजको सौंप देंगे।'

जिस समय आपके सैनिक इस प्रकार चर्चा कर रहे थे, उसी समय अर्जुन बड़ी तेजीसे अपने रथके शब्दद्वारा सब दिशाओंको गुँजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने युद्धके

मैदानमें खूनकी नदी बहा दी, जिसमें रथ भँवरके समान जान पड़ते थे तथा जो शूरवीरोंकी हड्डियोंसे भरी हुई, शवरूप किनारोंको बहा ले जानेवाली, बाणसमूहरूप फेनसे व्याप्त तथा प्रासरूप मछलियोंसे भरी हुई थी। उस नदीको पार कर उन्होंने कौरव वीरोंको युद्धके मैदानसे भगा दिया और फिर अपनी घनघोर बाणवर्षासे शत्रुओंको अचेत करते हुए वे सहसा द्रोणा-चार्यकी सेनाके सामने आ गये। धनञ्जयकी बाणवर्षाके कारण दिशाएँ, अन्तरिक्ष, आकाश और पृथ्वी—कुछ भी दिखायी नहीं देता था; सब बाणमय-से जान पड़ते थे।

इतनेहीमें सूर्य अस्त हो गया और अन्धकार फैलने लगा। इसलिये शत्रु, मित्र—किसीका भी पता लगना कठिन हो गया। यह देखकर द्रोणाचार्य और दुर्योधनने अपनी सेनाको युद्ध

बंद करनेकी आज्ञा दी तथा अर्जुनने भी अपनी सेनाको शिबिरकी ओर मोड़ा । इस प्रकार शत्रुओंके दाँत खट्टे कर वे श्रीकृष्णके साथ बड़े आनन्दसे सारी सेनाके पीछे अपनी छावनीकी ओर चले । इस समय पाञ्चाल और सृञ्जय वीर उनकी उसी प्रकार प्रशंसा कर रहे थे, जैसे ऋषिलोग सूर्यकी स्तुति करते हैं ।

अर्जुनके वधके लिये संशप्तक वीरोंकी प्रतिज्ञा और अर्जुनका उनके साथ युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन् ! उन दोनों पक्षोंकी सेनाओंने अपने-अपने शिबिरमें जा अपनी-अपनी योग्यता और सेना-विभागके अनुसार आराम किया । सेनाको लौटानेके पश्चात् आचार्य द्रोणने अत्यन्त खिन्न होकर बड़े संकोचसे दुर्योधनकी ओर देखते हुए कहा, 'मैंने यह पहले ही कहा था कि अर्जुन-की उपस्थितिमें युधिष्ठिरको देवतालोग भी कैद नहीं कर सकते । आज युद्धमें तुमलोगोंके प्रयत्न करनेपर भी अर्जुनने यह बात करके दिखा दी । मैं जो कुछ कहता हूँ, उसमें शंका मत करना । ये कृष्ण और अर्जुन तो अजेय हैं । यदि तुम किसी उपायसे अर्जुनको दूर ले जा सको, तो महाराज युधिष्ठिर तुम्हारे काबूमें आ सकते हैं । कोई वीर उसे युद्धके लिये ललकारकर दूसरी ओर ले जाय तो वह उसे परास्त किये बिना कभी नहीं लौटेगा । इस बीचमें अर्जुनके न रहनेपर तो मैं धृष्टद्युम्नके सामने ही सारी सेनाको हटाकर युधिष्ठिरको पकड़ लूँगा । अर्जुनके न रहनेपर यदि युधिष्ठिर मुझे अपनी ओर आते देखकर युद्धका मैदान छोड़कर भाग न गये तो उन्हें पकड़ा ही समझो ।'

आचार्यकी यह बात सुनकर त्रिगर्त्तराज और उसके भाइयोंने कहा, 'राजन् ! अर्जुन हमें हमेशा नीचा दिखाता रहा है । उन बातोंको याद करके हम रात-दिन क्रोधकी ज्वालामें जला करते हैं । हमें रातमें नींदतक नहीं आती । इसलिये यदि सौभाग्यवश वह हमारे सामने आ गया, तो हम उसे अलग ले जाकर मार डालेंगे । हम आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि 'अब पृथ्वीमें या तो अर्जुन ही नहीं रहेगा या त्रिगर्त ही नहीं होंगे । हमारे इस कथनमें कोई फेर-फार नहीं हो सकता ।' राजन् ! सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और *सत्यकर्मा*—ये पाँचों भाई ऐसी प्रतिज्ञा कर दस हजार रथी सैनिकोंको लेकर वहाँसे चल दिये । इसी तरह तीस हजार रथोंके सहित मालव और तुण्डिकेर वीर तथा दस हजार रथी और मावेल्लक, ललित्थ एवं मद्रक वीरोंको लेकर अपने भाइयों-के सहित त्रिगर्त्तदेशीय प्रस्थलेश्वर सुशर्मा भी रणक्षेत्रको चला । इसके बाद भिन्न-भिन्न देशोंके दस हजार चुने हुए रथी भी शपथ करनेके लिये आगे आये । उन्होंने अग्नि प्रज्वलित कर युद्ध करनेका नियम लिया और फिर उस अग्निको साक्षी करके दृढ़ निश्चयपूर्वक प्रतिज्ञा की । उन्होंने सब लोगोंको सुनाते हुए उच्च स्वरसे कहा, 'यदि हम संग्रामभूमिमें अर्जुनको न मारकर उसके हाथसे पीडित होनेपर पीठ दिखाकर लौट आवें तो व्रतहीन, ब्रह्मघाती, मद्यप, गुरुपत्नीसे संसर्ग करनेवाले, ब्राह्मणका धन चुरानेवाले, राजाका अन्न हरनेवाले, शरणा-गतकी उपेक्षा करनेवाले, याचकपर प्रहार करनेवाले, घरमें आग लगानेवाले, गोहत्यारे, अपकारी, ब्राह्मणद्रोही, श्राद्धके दिन भी मैथुन करनेवाले, आत्मवञ्चक, धरोहरको हड़प जाने-वाले, प्रतिज्ञा भंग करनेवाले, नपुंसकसे युद्ध करनेवाले, नीच पुरुषोंका अनुसरण करनेवाले, नास्तिक, माता-पिता और अग्नियोंको त्याग देनेवाले तथा अनेक प्रकारके पाप करनेवाले पुरुषोंको जो लोक मिलते हैं, वे ही हमें भी प्राप्त हों । और यदि हम संग्रामभूमिमें अर्जुनका वधरूप दुष्कर कर्म कर लें तो निःसन्देह इष्टलोक प्राप्त करें ।' राजन् ! ऐसा कहकर वे युद्ध-के लिये अर्जुनको ललकारते हुए दक्षिणकी ओर चल दिये ।

उन वीरोंके पुकारनेपर अर्जुनने उसी समय धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, 'महाराज ! मेरा यह नियम है कि पुकारे जानेपर मैं पीछे कदम नहीं रखता और इस समय संशप्तक योद्धा मुझे युद्धके लिये ललकार रहे हैं । देखिये, अपने भाइयोंके सहित यह सुशर्मा मुझे युद्धके लिये चुनौती दे रहा है । इसलिये आप मुझे सेनाके सहित इसका संहार करनेका आदेश दीजिये । मैं इनकी इस चुनौतीको सह नहीं सकता । आप सच मानिये, ये सब मरनेहीवाले हैं ।'

युधिष्ठिरने कहा—भैया ! द्रोणने जो प्रतिज्ञा की है, वह तुम सुन ही चुके हो । अब तुम वही उपाय करो, जिससे वह पूरी न होने पावे । द्रोणाचार्य बलवान् और शूरवीर हैं, वे शस्त्रविद्यामें भी पारङ्गत हैं तथा युद्धमें परिश्रमको तो वे कुछ भी नहीं समझते । उन्होंने मुझे पकड़नेकी प्रतिज्ञा की है ।

इसपर अर्जुनने कहा—राजन् ! आज यह सत्यजित् संग्राममें आपकी रक्षा करेगा । इस पाञ्चालराजकुमारके रहते आचार्य अपना मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकेंगे । यह पुरुष-

सिंह युद्धमें काम आ जाय, तो और सब वीरोंके आसपास रहनेपर भी आप संग्रामभूमिमें किसी प्रकार न टिकें।

तब महाराज युधिष्ठिरने अर्जुनको जानेकी आज्ञा दी, उन्हें गले लगाया और प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर आशीर्वाद दिया। इस प्रकार उनसे विदा होकर अर्जुन त्रिगर्त्तोंकी ओर चले। अर्जुनके चले जानेसे दुर्योधनकी सेनाको बड़ा हर्ष हुआ और वह बड़े उत्साहसे महाराज युधिष्ठिरको पकड़नेका उद्योग करने लगी। फिर वे दोनों सेनाएँ वर्षाकालमें उमड़ी हुई गङ्गा-यमुनाके समान बड़े वेगसे आपसमें भिड़ गयीं।

संशप्तकोंने एक चौरस मैदानमें अपने रथोंको चन्द्राकार खड़ा करके मोर्चा जमाया। जब उन्होंने अर्जुनको अपनी ओर आते देखा, तो वे हर्षमें भरकर बड़े ऊँचे स्वरसे कोलाहल करने लगे। वह शब्द सम्पूर्ण दिशा-विदिशा और आकाशमें फैल गया। उन्हें अत्यन्त आह्लादित देखकर अर्जुनने कुछ मुसकराकर श्रीकृष्णसे कहा, 'देवकीनन्दन! आज इन मरणासन्न त्रिगर्त्तबन्धुओंको तो देखिये, ये रोनेके समय खुशी मनाने चले हैं।' श्रीकृष्णसे इतना कहकर महाबाहु अर्जुन त्रिगर्त्तोंकी व्यूहबद्ध सेनाके समीप पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना देवदत्त शङ्ख बजाकर उसके गम्भीर शब्दसे सारी दिशाओंको गुँजा दिया। उस शब्दसे भयभीत होकर संशप्तकोंकी सेना पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो गयी। उनके घोड़ोंकी आँखें फट गयीं, कान और केश खड़े हो गये, पैर सुन्न हो गये तथा वे बहुत-सा खून उगलने और मूत्र त्यागने लगे। थोड़ी देरमें उन्हें चेत हुआ तो उन्होंने सेनाको सँभालकर एक साथ ही अर्जुनपर बहुत-से बाण छोड़े। किन्तु अर्जुनने अपने दस-पाँच बाणोंसे ही उन हजारों बाणोंको बीचहीमें काट डाला। फिर उन्होंने अर्जुनपर दस-दस बाण छोड़े और अर्जुनने उनमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया। इसके पश्चात् उन्होंने अर्जुनको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधा और पराक्रमी अर्जुनने उन्हें दो-दो बाणोंसे बींधकर जवाब दिया।

अब सुबाहुने तीस बाणोंसे अर्जुनके मुकुटपर वार किया। इसपर अर्जुनने एक बाणसे सुबाहुके दस्तानेको काट दिया और फिर बाणोंकी वर्षा करके उसे मानो बिल्कुल ढक दिया। तब सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहुने उनपर दस-दस बाणोंसे चोट की। उन बाणोंको अर्जुनने अलग-अलग काट डाला तथा इनकी ध्वजाओंको भी काटकर गिरा दिया। फिर उन्होंने सुधन्वाके धनुषको काटकर उसके घोड़ोंको भी मार गिराया तथा उसका शीर्षत्राण-सुशोभित सिर भी काटकर धड़से अलग कर दिया। वीर सुधन्वाके मारे जानेसे उसके सब अनुयायी डर गये और अत्यन्त भयभीत होकर दुर्योधनकी सेनाकी ओर भागने लगे। अर्जुन अपने पैने बाणोंसे

त्रिगर्त्तोंको नष्ट कर रहे थे। इसलिये वे मृगोंकी तरह डरकर जहाँ-के-तहाँ अचेत हो जाते थे। तब त्रिगर्त्तराजने क्रोधमें भरकर अपने महारथियोंसे कहा, 'शूरवीरो! बस, भागना बंद करो; डरो मत। तुमने सारी सेनाके सामने कठोर प्रतिज्ञा की है। अब भला, दुर्योधनकी सेनाके पास जाकर इसी मुखसे क्या कहोगे? संग्राममें ऐसी करतूत करनेपर भला, संसारमें तुम्हारी हँसी क्यों न होगी? इसलिये लौटो, हम सब मिलकर अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम करें।' राजाके ऐसा कहनेपर वे वीर परस्पर हर्ष प्रकट करते हुए शंखध्वनि और कोलाहल करने लगे। फिर वे संशप्तक और नारायणसंज्ञक गोप मरनेपर भी पीछे न हटनेका निश्चय करके मैदानमें आ गये।

संशप्तकोंको फिर लौटा हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् कृष्णसे कहा, 'हृषीकेश ! घोड़ोंको फिर संशप्तकोंकी ओर ले चलिये । मालूम होता है, ये शरीरमें प्राण रहते युद्धका मैदान नहीं छोड़ेंगे । आज आप मेरा अस्त्रबल और धनुष तथा भुजाओंका पराक्रम देखिये । भगवान् शङ्कर जैसे प्राणियों-का संहार करते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन्हें धराशायी कर दूँगा ।'

अब नारायणी सेनाके वीरोंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुन-को चारों ओरसे बाणजालसे घेर दिया और एक क्षणमें ही श्रीकृष्णके सहित अर्जुनको अदृश्य-सा कर दिया । इससे अर्जुनकी क्रोधाग्नि भड़क गयी । उन्होंने गाण्डीव धनुष सँभालकर शङ्खध्वनि की और फिर उनपर विश्वकर्मास्त्र छोड़ा । उससे अर्जुन और श्रीकृष्णके अलग-अलग हजारों रूप प्रकट हो गये । अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके उन अनेकों रूपोंको देखकर नारायणी सेनाके वीर बड़े चक्करमें पड़े और एक-दूसरेको अर्जुन समझकर 'यह अर्जुन है, यह कृष्ण है' ऐसा कहकर आपसमें ही मार-धाड़ करने लगे । इस प्रकार इस दिव्य अस्त्रकी मायामें फँसकर वे आपसमें ही लड़कर मर गये । उनके छोड़े हुए हजारों बाणोंको भस्म करके वह अस्त्र उन सभीको यमलोकमें ले गया ।

अब अर्जुनने हँसकर अपने बाणोंसे ललित्थ, मालव, मावेल्लक और त्रिगर्त्त वीरोंको पीडित करना आरम्भ किया । तब कालकी प्रेरणासे उन क्षत्रिय वीरोंने भी अर्जुनपर अनेक प्रकारके बाण छोड़े । उनकी भीषण बाणवर्षासे बिल्कुल ढक जानेके कारण वहाँ न अर्जुन दिखायी देते थे और न रथ या श्रीकृष्ण ही दीख रहे थे । इस प्रकार अपना लक्ष्य सिद्ध हुआ समझकर वे वीर बड़े हर्षसे कहने लगे कि कृष्ण और अर्जुन मारे गये । तथा हजारों भेरी, मृदंग और शङ्ख बजाकर भीषण सिंहनाद भी करने लगे । इसी समय श्रीकृष्णने पुकारकर कहा, 'अर्जुन ! तुम कहाँ हो ? मुझे दिखायी नहीं दे रहे हो ।' श्रीकृष्णका यह वाक्य सुनकर अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे वायव्यास्त्र छोड़ा । उससे उनकी बाणवर्षा छिन्न-भिन्न हो गयी तथा वायुदेव संशप्तक वीरोंको भी उनके घोड़े, हाथी और रथोंके सहित सूखे पत्तोंके समान उड़ा ले
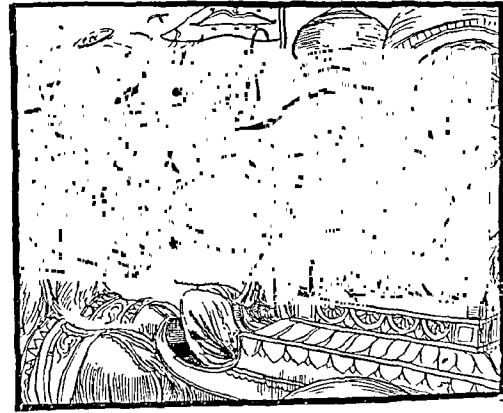
गये । इस प्रकार व्याकुल करके उन्होंने हजारों संशप्तकोंको अपने पैने बाणोंसे मार डाला । प्रलयकालमें जैसे भगवान् रुद्रकी संहारलीला होती है, उसी प्रकार इस समय संग्राम-भूमिमें अर्जुन बड़ा ही बीभत्स और भीषण काण्ड कर रहे थे । अर्जुनकी मारसे व्याकुल होकर त्रिगर्त्तोंके हाथी, घोड़े और रथ उन्हींकी ओर दौड़ते थे और फिर संग्रामभूमिमें गिरकर इन्द्रके अतिथि हो जाते थे । इस प्रकार वह सारी भूमि मरे हुए महारथियोंके कारण सब ओर लोथोंसे भर गयी ।

द्रोणाचार्यद्वारा पाण्डवोंका पराभव तथा वृक, सत्यजित्, शतानीक, वसुदान और क्षत्रदेव आदिका वध

सञ्जयने कहा—राजन् ! इस प्रकार संशप्तकोंके साथ लड़नेके लिये अर्जुनके चले जानेपर आचार्य द्रोण अपनी सेनाकी व्यूहरचना कर युधिष्ठिरको पकड़नेके विचारसे युद्धक्षेत्रकी ओर चले । महाराज युधिष्ठिरने आचार्यकी सेनाका गरुडव्यूह देखकर उसके मुकाबलेमें मण्डलार्धव्यूह बनाया । कौरवोंके गरुडव्यूहके मुखस्थानपर महारथी द्रोण थे । शिरःस्थानमें भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन था, नेत्रस्थानमें कृतवर्मा और कृपाचार्य थे । ग्रीवास्थानमें भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, करकाक्ष तथा कलिंग, सिंहल, पूर्वदेश, शूर, आभीर, दशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन, दरद, मद्र और केकय आदि देशोंके वीर हथियारोंसे लैस होकर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति-सेनाके रूपमें खड़े थे । दायीं ओर अक्षौहिणी सेनाके सहित भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त और बाह्लीक थे । बायीं ओर अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द एवं कम्बोजनरेश सुदक्षिण थे । इनके पीछे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा डटे हुए थे । पृष्ठस्थानमें कलिंग, अम्बष्ठ, मगध, पौण्ड्र, मद्र, गन्धार, शकुन, पूर्वदेश, पर्वतीय प्रदेश और वसाति आदि देशोंके वीर थे ।

ाँच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेवने सात, सात्यकिने सौ, युधामन्युने आठ, युधिष्ठिरने बारह, धृष्टद्युम्नने दस और चेकितानने तीन बाणोंसे उनपर चोट की। तब द्रोणने सबसे पहले दृढसेनको धराशायी किया। फिर नौ बाणोंसे राजा क्षेमको घायल किया। इससे वह मरकर रथसे नीचे गिर गया। इसके पश्चात् उन्होंने बारह बाणोंसे शिखण्डीको और बीससे उत्तमौजाको घायल किया तथा एक भल्ल-बाणसे वसुदानको यमराजके घर भेज दिया। फिर अस्सी बाणोंसे क्षत्रवर्मापर और छब्बीससे सुदक्षिणपर वार किया तथा एक भल्लसे क्षत्रदेवको रथसे नीचे गिरा दिया। तदनन्तर चौसठ बाणोंसे युधामन्युको और तीससे सात्यकिको बींधकर वे फुर्तीसे धर्मराज युधिष्ठिरके सामने आ गये। यह देखकर युधिष्ठिर अपने घोड़ोंको तेजीसे हँकवाकर युद्धक्षेत्रसे भाग गये और अब आचार्यके सामने एक पाञ्चाल राजकुमार आकर डट गया। आचार्यने फौरन ही उसका धनुष काट दिया तथा सारथि और घोड़ोंके सहित उसका भी काम तमाम कर दिया। उस राजकुमारके मारे जानेपर सेनामें चारों ओरसे 'द्रोणको मारो, द्रोणको मारो' ऐसा कोलाहल होने लगा। किन्तु उन अत्यन्त क्रोधातुर पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डव वीरोंको द्रोणाचार्यने घबराहटमें डाल दिया। उन्होंने कौरवोंसे सुरक्षित होकर सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम और चित्रसेनके पुत्र, सेनाविन्दु और सुवर्चा—इन सभी वीर और दूसरे राजाओंको युद्धमें परास्त कर दिया। तथा आपके पक्षके दूसरे योद्धा भी उस महासमरमें विजय पाकर सब ओर पाण्डवपक्षके वीरोंको कुचलने लगे।

द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कौरव और पाण्डव वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध

सञ्जयने कहा—महाराज! फिर थोड़ी ही देरमें पाण्डवों-की सेनाने लौटकर द्रोणको घेर लिया और उनके पैरोंसे उठी हुई धूलने आपकी सेनाको आच्छादित कर दिया। इस प्रकार आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण हमने समझा कि आचार्य मारे गये। तब दुर्योधनने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि 'जैसे बने, वैसे पाण्डवोंकी सेनाको रोको।' यह सुनकर आपका पुत्र दुर्मर्षण भीमसेनको देखकर उनके प्राणोंका प्यासा होकर बाण बरसाता हुआ उनके आगे आया। उसने अपने बाणोंसे भीमसेनको ढक दिया और भीमसेनने उसे बाणोंसे घायल कर दिया। इस प्रकार दोनोंका भीषण युद्ध होने लगा। स्वामीकी आज्ञा पाकर कौरवपक्षके सभी बुद्धिमान् और शूरवीर योद्धा अपने राज्य और प्राण जानेका भय छोड़कर शत्रुओंके सामने आकर डट गये। इस समय शूरवीर सात्यकि द्रोणाचार्यजीको पकड़नेके लिये आ रहा था; उसे कृतवर्माने रोका। क्षत्रवर्मा भी आचार्यकी ओर ही बढ़ रहा था; उसे जयद्रथने अपने तीखे बाणोंसे रोक दिया। इसपर क्षत्रवर्माने कुपित होकर जयद्रथके धनुष और ध्वजाको काट डाला और दस नाराचोंसे उसके मर्मस्थानोंपर आघात किया। इसपर जयद्रथने दूसरा धनुष लेकर क्षत्रवर्मापर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी।

महारथी युयुत्सु भी द्रोणाचार्यजीके पास पहुँचनेके ही प्रयत्नमें था। उसे सुबाहुने रोका। किन्तु युयुत्सुने दो क्षुरप्र बाणोंसे सुबाहुकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। धर्मप्राण युधिष्ठिरकी गति मद्रराज शल्यने रोक दी। धर्मराजने शल्यपर अनेकों मर्मभेदी बाण छोड़े तथा मद्रनरेशने भी उन्हें चौसठ बाणोंसे घायल करके बड़ी गर्जना की। तब युधिष्ठिरने दो बाणोंसे उनके धनुष और ध्वजाको काट डाला। इसी प्रकार अपनी सेनाके सहित राजा द्रुपद भी द्रोणकी ओर ही बढ़ रहे थे। उन्हें राजा बाह्लीक और उनकी सेनाने बाण बरसा-कर रोक दिया। उन दोनों वृद्ध राजाओंका और उनकी सेनाओंका बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्दने अपनी सेना लेकर मत्स्यराज विराट और उनकी सेनापर धावा किया। उनका भी देवासुर-संग्रामके समान बड़ा घोर युद्ध हुआ। इसी प्रकार मत्स्य वीरोंकी केकय वीरोंके साथ भी करारी मुठभेड़ हुई, जिसमें अश्वारोही, गजारोही और रथी—सभी निर्भयतासे लड़ रहे थे।

एक ओर नकुलका पुत्र शतानीक भी बाणोंकी वर्षा करता हुआ आचार्यकी ओर बढ़ रहा था। उसे भूतकर्माने रोका। तब शतानीकने अच्छी तरह सानपर चढ़ाये हुए तीन बाणोंसे भूतकर्माके सिर और बाहुओंको काट डाला। भीमसेनका पुत्र सुतसोम बाणोंकी झड़ी लगाता द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण करना चाहता था। उसे विविंशतिने रोका। किन्तु सुतसोमने सीधे निशानेपर लगनेवाले बाणोंसे अपने चाचाको बींध डाला और स्वयं निश्चल खड़ा रहा। इसी समय भीमरथने छः पैने बाणोंसे शाल्वको उसके सारथि और घोड़ोंसहित यमराजके घर भेज दिया। श्रुतकर्मा भी
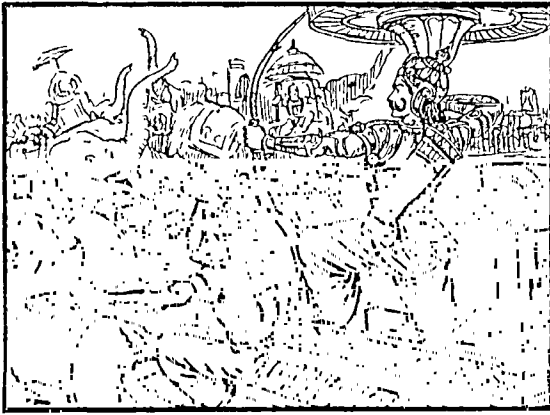
वे मुँह फेरकर भागने लगे। इसी तरह भीमसेनने उस सारी सेनाको कुचल डाला। यह देखकर दुर्योधनका क्रोध भड़क उठा और वह भीमसेनके सामने आकर उन्हें अपने पैने बाणोंसे बींधने लगा। किन्तु एक क्षणमें ही भीमसेनने बाण बरसाकर उसे घायल कर दिया तथा दो बाण छोड़कर उसकी ध्वजामें चित्रित मणिमय हाथी और धनुषको काट डाला। इस प्रकार दुर्योधनको पीडित होते देख अंगदेशका राजा हाथीपर सवार हुआ भीमसेनके सामने आया। उसके हाथीको अपनी ओर आते देखकर भीमसेनने बाणोंकी वर्षा करके उसके मस्तकको बहुत घायल कर दिया। इससे वह घबराकर पृथ्वीपर गिर गया। हाथीके गिरनेके साथ अंगराज भी जमीनपर गिर गया। इसी समय फुर्तीले भीमसेनने एक बाणसे उसका सिर उड़ा दिया। यह देखते ही उसकी सेना घबराकर भाग गयी।

इसके बाद ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए एक विशालकाय गजराजपर चढ़कर प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तने भीमसेनपर आक्रमण किया। उनके हाथीने क्रोधमें भरकर अपने आगेके दो पैर और सूँड़से भीमसेनके रथ और घोड़ोंको एकदम कुचल डाला। भीमसेन अञ्जलिकावेध[1] जानते थे। इसलिये वे भगे नहीं, बल्कि दौड़कर हाथीके पेटके नीचे छिप गये और बार-बार उसे थपथपाने लगे। उस गजराजमें दस हजार हाथियोंके समान बल था और वह भीमसेनको मार डालनेपर तुला हुआ था, इसलिये बड़ी तेजीसे कुम्हारके चाकके समान चक्कर लगाने लगा। तब भीमसेन नीचेसे निकलकर उसके सामने आ गये। हाथीने उन्हें सूँड़से गिराकर घुटनोंसे मसलना आरम्भ किया। तब भीमसेनने अपने शरीरको घुमाकर उसकी सूँड़से निकाल लिया और वे फिर उसके शरीरके नीचे छिप गये। कुछ देरमें वे उससे बाहर आकर बड़े वेगसे भाग गये। यह देखकर सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। पाण्डवोंकी सेना उस हाथीसे बहुत डर गयी और जहाँ भीमसेन खड़े थे, वहीं पहुँच गयी।
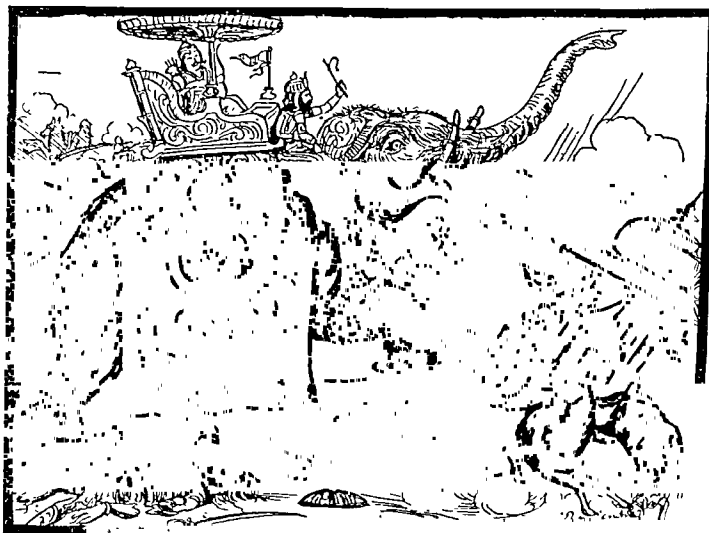
तब महाराज युधिष्ठिरने पाञ्चाल वीरोंको साथ लेकर राजा भगदत्तको सब ओरसे घेर लिया और उनपर सैकड़ों-हजारों बाणोंसे वार किया। किन्तु भगदत्तने पाञ्चाल वीरोंके उस प्रहारको अपने अंकुशसे ही व्यर्थ कर दिया और फिर अपने हाथीसे ही पाञ्चाल और पाण्डव वीरोंको रौंदने लगे। संग्राम-भूमिमें भगदत्तका यह बड़ा ही अद्भुत पराक्रम था। इसके बाद दशार्णदेशका राजा हाथीपर चढ़कर भगदत्तके सामने आया। अब दोनों हाथियोंका बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। भगदत्तके हाथीने पीछे हटकर फिर एक साथ ऐसी टक्कर मारी कि दशार्णराजके हाथीकी पसलियाँ टूट गयीं। वह तुरंत पृथ्वीपर गिर गया। इसी समय भगदत्तने सात चमचमाते हुए तोमरोंसे हाथीपर बैठे हुए दशार्णराजको मार डाला।

अब युधिष्ठिरने बड़ी भारी रथसेना लेकर भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया।

१. हाथीके पेटपर एक स्थानविशेषको हाथसे थपथपाना 'अञ्जलिवेध' कहलाता है। यह हाथीको अच्छा लगता है और फिर महावतके हाँकनेपर भी वह आगे नहीं बढ़ता। ऐसा करके भीमसेनने अपने ऊपर बिगड़े हुए भगदत्तके हाथीको अपने काबूमें कर लिया।

चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु आदि योद्धा भगदत्तके हाथी-को तंग करने लगे। उसका काम तमाम करनेके लिये उन्होंने उसपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु जब महावतने उसे एड़ी, अंकुश और अँगूठेसे गुदगुदाकर बढ़ाया तो वह सूँड़ फैलाकर तथा कान और नेत्रोंको स्थिर करके शत्रुओंकी ओर चला। उसने युयुत्सुके घोड़ोंको पैरसे दबाकर उसके सारथिको मार डाला। तब युयुत्सु तुरंत ही रथसे कूदकर भाग गया।

अब अभिमन्युने बारह, युयुत्सुने दस तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र और धृष्टकेतुने तीन-तीन बाण मारकर उसे घायल कर दिया। शत्रुओंकी बाणवर्षाने उसे बहुत ही पीड़ा पहुँचायी। महावतने उसे फिर युक्तिपूर्वक बढ़ाया। इससे कुपित होकर वह शत्रुओंको उठा-उठाकर अपने दायें-बायें फेंकने लगा। इससे सभी वीरोंको भयने दबा लिया। गजा-रोही, अश्वारोही, रथी और राजा सभी डरकर भागने लगे। उस समय उनके कोलाहलसे बड़ा भीषण शब्द होने लगा। वायु बड़े वेगसे बह रहा था, इसलिये आकाश और समस्त सैनिक धूलसे ढक गये।

इस प्रकार भगदत्तके अनेकों पराक्रम दिखानेपर जब अर्जुनने आकाशमें धूल उठती देखी और हाथीकी चिग्घार सुनी तो उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'मधुसूदन! मालूम होता है, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त आज हाथीपर चढ़कर हमारी सेनापर टूट पड़े हैं। निःसन्देह यह चिग्घार उन्हींके हाथीकी है। मेरा तो ऐसा विचार है कि ये युद्धमें इन्द्रसे कम नहीं हैं। इन्हें गजारोहियोंमें पृथ्वीभरमें सबसे श्रेष्ठ कहा जा सकता है। आज ये अकेले ही पाण्डवोंकी सारी सेनाको नष्ट कर देंगे। हम दोनोंके सिवा इनकी गतिको रोकनेमें और कोई समर्थ नहीं है। इसलिये अब जल्दी ही उनकी ओर चलिये।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् कृष्ण उनके रथको उसी ओर ले चले, जिधर भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर

संशप्तक महारथियोंने एक साथ हजारों बाण अर्जुनपर छोड़े। उनसे बिल्कुल ढक जानेके कारण अर्जुन, कृष्ण तथा उनके घोड़े और रथ सभी दीखने बंद हो गये। तब अर्जुनने बात-की-बातमें उन्हें ब्रह्मास्त्रसे नष्ट कर दिया। फिर उनके बाणोंसे संग्रामभूमिमें अनेकों ध्वजाएँ, घोड़े, सारथि, हाथी और महावत कट-कटकर गिर गये; अनेकों वीरोंकी भुजाएँ, जिनमें ऋष्टि, प्रास, तलवार, बघनख, मुद्गर और फरसे आदि लगे हुए थे, कटकर इधर-उधर फैल गयीं तथा उनके सिर जहाँ-तहाँ लुढ़कने लगे। अर्जुनका यह अद्भुत पराक्रम देखकर श्रीकृष्णको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे, 'पार्थ! आज तुमने जो काम किया है, मेरे विचारसे वह इन्द्र, यम और कुबेरसे भी होना कठिन है। मैंने युद्धमें प्रत्यक्ष ही सैकड़ों-हजारों संशप्तक महारथियोंको एक साथ गिरते देखा है।'

इस प्रकार वहाँ जो संशप्तक वीर मौजूद थे, उनमेंसे अधिकांशको मारकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'अब भगदत्तकी ओर चलिये।' तब श्रीमाधवने बड़ी फुर्तीसे घोड़ोंको द्रोणाचार्य-की सेनाकी ओर मोड़ दिया। यह देखकर सुशर्माने अपने भाइयोंको साथ लेकर उनका पीछा किया। तब अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा, 'अच्युत! देखिये, इधर तो अपने भाइयोंके सहित सुशर्मा मुझे युद्धके लिये ललकार रहा है और उधर उत्तर दिशामें हमारी सेनाका संहार हो रहा है। बताइये, इनमेंसे कौन काम करना हमारे लिये अधिक हितकर होगा?' यह सुनकर श्रीकृष्णने त्रिगर्त्तराज सुशर्माकी ओर रथ मोड़ दिया। अर्जुनने तुरंत ही सात बाणोंसे सुशर्माको बींधकर दो बाणोंसे उसके धनुष और ध्वजाको काट डाला। फिर छः बाणोंसे उसके भाईको सारथि और घोड़ोंसहित यमराजके पास भेज दिया। तब सुशर्माने तककर अर्जुनपर एक लोहेकी शक्ति और श्रीकृष्णपर एक तोमर छोड़ा। अर्जुनने तीन-तीन बाणोंसे शक्ति और तोमर दोनोंहीको काट डाला और

फिर बाणोंकी वर्षासे सुशर्माको मूर्च्छित कर द्रोणकी ओर लौट पड़े।

उन्होंने अपनी बाणवर्षासे कौरवोंकी सेनाको छा दिया, और फिर वे भगदत्तके सामने आकर डट गये। भगदत्त मेघके समान श्यामवर्ण हाथीपर चढ़े हुए थे। उन्होंने अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ कर दी। किन्तु अर्जुनने बीचहीमें उन सब बाणोंको काट डाला। इसपर भगदत्तने भी अर्जुनके बाणोंको रोककर श्रीकृष्ण और उनपर बाणोंकी चोट आरम्भ की। तब अर्जुनने उनके धनुषको काट डाला, अङ्गरक्षकोंको मारकर गिरा दिया और भगदत्तके साथ खेल-सा करते हुए युद्ध करने लगे। भगदत्तने उनपर चौदह तोमर छोड़े, किन्तु उन्होंने प्रत्येकके दो-दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने भगदत्तके हाथीका कवच काट डाला। तब भगदत्तने श्रीकृष्णपर एक लोहेकी शक्ति छोड़ी, किन्तु अर्जुनने उसके दो टुकड़े कर डाले तथा भगदत्तके छत्र और ध्वजाको काटकर उन्हें दस बाणोंसे बींध डाला। इससे भगदत्तको बड़ा विस्मय हुआ।

इस प्रकार अर्जुनके बाणोंसे विंधे हुए भगदत्तने भी क्रोधमें भरकर उनके मस्तकपर कई बाण मारे। इससे उनका मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया। मुकुटको सीधा करते हुए अर्जुनने भगदत्तसे कहा—'राजन्! अब तुम इस संसारको जी भरकर देख लो।' यह सुनकर भगदत्त क्रोधमें भर गये और अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देख अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे उनके धनुष और तरकसोंको काट डाला तथा बहत्तर बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंको बींध दिया। इससे अत्यन्त व्यथित होकर भगदत्तने वैष्णवास्त्रका आवाहन किया और उससे अङ्कुशको अभिमन्त्रित करके उसे अर्जुनकी छातीपर चलाया। भगदत्तका वह अस्त्र सबका नाश करनेवाला था,
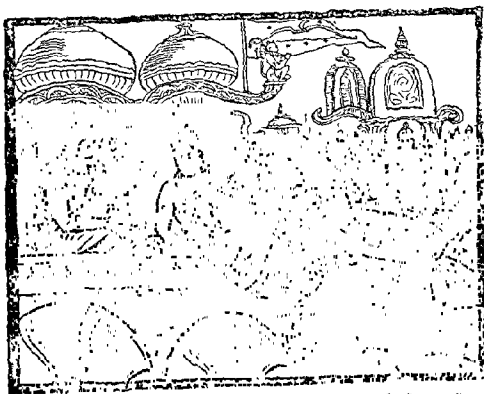
अतः श्रीकृष्णने अर्जुनको ओटमें करके उसे अपनी ही छातीपर झेल लिया। इससे अर्जुनके चित्तको बड़ा क्लेश पहुँचा और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, "भगवन्! आपने तो प्रतिज्ञा की है कि 'मैं युद्ध न करके केवल सारथिका काम करूँगा;' किन्तु अब आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं संकटमें पड़ जाता या अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता, उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। आपको तो यह भी मालूम है कि यदि मेरे हाथमें धनुष और बाण हो तो मैं देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण लोकोंको जीतनेमें समर्थ हूँ।"

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपूर्ण वचन कहे, "कुन्तीनन्दन! सुनो; मैं तुम्हें एक गुप्त बात बतलाता हूँ, जो पूर्वकालमें घटित हो चुकी है। मैं चार स्वरूप धारण कर सदा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षामें तत्पर रहता हूँ। अपनेको ही अनेकों रूपोंमें विभक्त करके संसारका हित करता हूँ। ['नारायण' नामसे प्रसिद्ध] मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डलपर रहकर तपस्या करती है। दूसरी मूर्ति जगत्के शुभाशुभ कर्मोंपर दृष्टि रखती है। तीसरी मनुष्यलोकमें आकर नाना प्रकारके कर्म करती है और चौथी वह है, जो हजार वर्षोंतक जलमें शयन करती है। वह मेरा चौथा विग्रह जब हजार वर्षके पश्चात् शयनसे उठता है, उस समय वर पानेयोग्य भक्तों तथा ऋषि-महर्षियोंको उत्तम वरदान देता है। एक बार, जब कि वही समय प्राप्त था, पृथ्वीदेवीने आकर मुझसे यह वरदान माँगा कि 'मेरा पुत्र (नरकासुर) देवता तथा असुरोंसे अवध्य हो और उसके पास वैष्णवास्त्र रहे।' पृथ्वीकी यह याचना सुनकर मैंने उसके पुत्रको अमोघ वैष्णवास्त्र दिया और उससे कहा—'पृथ्वी! यह अमोघ वैष्णवास्त्र नरकासुरकी रक्षाके लिये उसके पास रहेगा, अब इसे कोई नहीं मार सकेगा।' पृथ्वीकी मनःकामना पूरी हुई और वह 'ऐसा ही हो' कहकर चली गयी। तब वह नरकासुर भी दुर्द्धर्ष होकर शत्रुओंको सन्ताप देने लगा। अर्जुन! वही मेरा वैष्णवास्त्र नरकासुरसे भगदत्तको प्राप्त हुआ था। इन्द्र और रुद्र आदि देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस अस्त्रसे मारा न जा सके। अतः तुम्हारी प्राणरक्षाके लिये ही मैंने इस अस्त्रकी चोट स्वयं सह ली और इसे व्यर्थ कर दिया है। अब भगदत्तके पास यह दिव्य अस्त्र नहीं रहा, अतः इस महान् असुरको तुम मार डालो।"

महात्मा श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने सहसा तीक्ष्ण

बाणोंकी वर्षा करके भगदत्तको ढक दिया और उनके हाथीके दोनों कुम्भस्थलोंके बीचमें बाण मारा। वह बाण पूँछसहित उसके मस्तकमें धँस गया। फिर तो राजा भगदत्तके बार-बार हाँकनेपर भी हाथी आगे न बढ़ सका और आर्तस्वरसे चिग्घारते हुए उसने प्राण त्याग दिये। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! यह भगदत्त बहुत बड़ी उम्रका है, इसके सिरके बाल सफेद हो गये हैं। पलकें ऊपर न उठनेके कारण इसकी आँखें प्रायः बंद रहती हैं; इस समय इसने आँखोंको खुली रखनेके लिये कपड़ेकी पट्टीसे पलकोंको ललाटमें बाँध रक्खा है।'

भगवान्‌के कहनेसे अर्जुनने बाण मारकर भगदत्तके सिरकी पट्टी काट दी, उसके कटते ही भगदत्तकी आँखें बंद हो गयीं। तत्पश्चात् एक अर्धचन्द्राकार बाण मारकर अर्जुनने राजा भगदत्तकी छाती छेद दी। उनका हृदय फट गया, प्राणपखेरू उड़ गये और हाथसे धनुष-बाण छूटकर गिर पड़े। पहले उनके मस्तकसे खिसककर पगड़ी गिरी, फिर वे स्वयं भी पृथ्वीपर गिर गये। इस प्रकार अर्जुनने उस युद्धमें
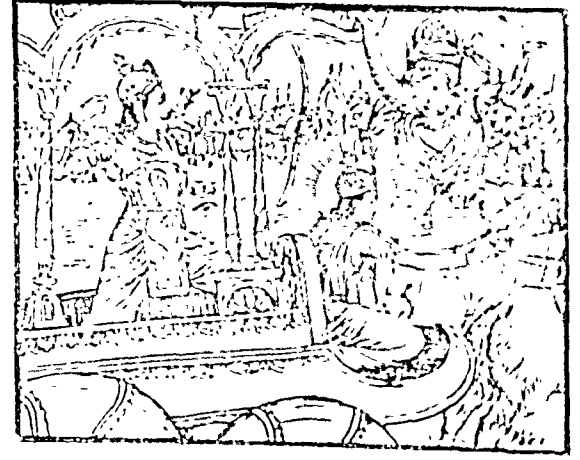
इन्द्रके सखा राजा भगदत्तका वध किया और कौरवपक्षके अन्यान्य योद्धाओंका भी संहार कर डाला।

वृषक, अचल और नील आदिका वध; शकुनि और कर्णकी पराजय

सञ्जयने कहा—भगदत्तको मारकर अर्जुन दक्षिण दिशाकी ओर घूमे। उधरसे गन्धारराज सुबलके दो पुत्र वृषक और अचल आ पहुँचे तथा दोनों भाई युद्धमें अर्जुनको पीडित करने लगे। एक तो अर्जुनके सामने खड़ा हो गया और दूसरा पीछे; फिर दोनों एक साथ तीखे बाणोंसे उन्हें बींधने लगे। तब अर्जुनने अपने पैने बाणोंसे वृषकके सारथि, धनुष, छत्र, ध्वजा, रथ और घोड़ोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं तथा नाना प्रकारके अस्त्रों और बाणसमूहोंसे बींधकर गन्धारदेशीय योद्धाओंको व्याकुल कर डाला। साथ ही, क्रोधमें भरकर उन्होंने पाँच सौ गान्धारवीरोंको यमलोक भेज दिया।

वृषकके रथके घोड़े मारे जा चुके थे, इसलिये उससे कूदकर वह अपने भाई अचलके रथपर जा बैठा और उसने दूसरा धनुष हाथमें ले लिया। अब तो वे वृषक और अचल दोनों भाई बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको बींधने लगे। वे दोनों रथपर एक दूसरेसे सटकर बैठे थे, उसी अवस्थामें अर्जुनने एक ही बाणसे दोनोंको मार डाला। दोनों एक साथ ही रथसे नीचे गिर पड़े। राजन्! अपने दोनों मामाओंको मरा देख आपके पुत्र आँसू बहाने लगे। भाइयोंको मृत्युके मुखमें पड़ा देख सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाले शकुनिने श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहमें डालनेके लिये मायाकी रचना की। उस समय समस्त दिशाओं और उपदिशाओंसे अर्जुनपर लोहेके गोले, पत्थर, शतघ्नी, शक्ति, गदा, परिघ, तलवार,

शूल, मुद्गर, पट्टिश, ऋष्टि, नख, मूसल, फरसा, छुरा, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्थिसन्धि, चक्र, बाण और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। गदहे, ऊँट, भैंसे, सिंह, व्याघ्र, चीते, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, बंदर, साँप तथा नाना प्रकारके राक्षस और पंछी भूखे तथा क्रोधमें भरे हुए सब ओरसे अर्जुनकी ओर टूट पड़े।

अर्जुन तो दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता थे ही, सहसा बाणोंकी वृष्टि करते हुए उन जीवोंको मारने लगे। अर्जुनके सुदृढ़ सायकोंकी मार पड़नेसे वे सभी प्राणी जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए नष्ट हो गये। इतनेहीमें अर्जुनके रथपर अँधेरा छा गया। उसमेंसे बड़ी क्रूर वाणी सुनायी देने लगी। परन्तु उन्होंने 'ज्योतिष' नामक अत्यन्त उत्तम अस्त्रका प्रयोग करके उस भयङ्कर अन्धकारका नाश कर दिया। अँधेरा दूर होते ही वहाँ भयानक जलधाराएँ गिरने लगीं। तब अर्जुनने 'आदित्यास्त्र' का प्रयोग करके वह सारा जल सुखा दिया। इस प्रकार शकुनिने अनेकों प्रकारकी मायाएँ रचीं, किन्तु अर्जुनने हँसते-हँसते अपने अस्त्रबलसे उन सबका नाश कर दिया। जब सम्पूर्ण मायाका नाश हो गया और शकुनि अर्जुनके बाणोंसे विशेष आहत हो गया, तब वह भयभीत होकर रणभूमिसे भाग गया।

तदनन्तर अर्जुन कौरव-सेनाका विध्वंस करने लगे। वे बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे, किन्तु कोई भी धनुर्धर वीर उन्हें रोक न सका। अर्जुनकी मारसे पीड़ित हो आपकी सेना इधर-उधर भागने लगी। उस समय घबराहटके कारण आपके बहुत-से सैनिकोंने अपने ही पक्षके योद्धाओंका संहार कर डाला। अर्जुन हाथी, घोड़े और मनुष्योंपर उस समय दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे, एक ही बाणसे आहत होकर वे प्राणहीन हो धराशायी हो जाते थे। मारे गये मनुष्य, हाथी और घोड़ोंकी लाशोंसे भरी हुई उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी। सभी योद्धा बाणोंकी मारसे व्याकुल हो रहे थे, उस समय बाप बेटेको और बेटा बापको छोड़कर चल देता था। मित्र मित्रकी बात नहीं पूछता था। लोग अपनी सवारी भी छोड़कर भाग चले थे।

इधर, द्रोणाचार्य अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवसेनाको छिन्न-भिन्न करने लगे। अद्भुत पराक्रमी द्रोण जिस समय उन योद्धाओंको कुचल रहे थे, सेनापति धृष्टद्युम्नने स्वयं आकर द्रोणके चारों ओर घेरा डाल दिया। फिर तो द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अद्भुत युद्ध होने लगा। दूसरी ओर अग्निके समान तेजस्वी राजा नील अपने बाणोंसे कौरव-सेनाको भस्म करने लगा। उसे इस प्रकार संहार करते देख अश्वत्थामाने हँसकर कहा—'नील! तुम अपनी बाणाग्निसे इन अनेक योद्धाओंको क्यों भस्म कर रहे हो, साहस हो तो केवल मेरे साथ लड़ो।' यह ललकार सुनकर नीलने बाणोंसे अश्वत्थामाको बींध दिया। तब उसने भी तीन बाण मारकर नीलके धनुष, ध्वजा और छत्रको काट डाला। यह देख नील हाथमें ढाल-तलवार ले रथसे कूद पड़ा और अश्वत्थामाके सिरको काटना ही चाहता था कि उसीने भाला मारकर नीलके कुण्डलसहित मस्तकको काट गिराया। नील पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी मृत्युसे पाण्डवसेनाको बड़ा दुःख हुआ।

इतनेहीमें अर्जुन बहुत-से संशप्तकोंको जीतकर, जहाँ द्रोणाचार्य पाण्डवसेनाका संहार कर रहे थे, वहाँ आ पहुँचे और कौरव योद्धाओंको अपने शस्त्रोंकी आगमें जलाने लगे। उनके सहस्रों बाणोंसे पीड़ित होकर कितने ही हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल सैनिक भूमिपर गिरने लगे। कितने ही आर्तस्वरसे कराहने लगे। कितनोंने गिरते ही प्राण त्याग दिये। उनमेंसे जो उठते-गिरते भागने लगे, उन योद्धाओंको अर्जुनने युद्धसम्बन्धी नियमका स्मरण करके नहीं मारा। भागते हुए कौरव 'हा कर्ण! हा कर्ण!' ऐसे पुकारने लगे। शरणार्थियोंका वह करुण क्रन्दन सुनकर—'वीरो! डरो मत' ऐसा कहकर कर्ण अर्जुनका सामना करने चला। कर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ था, उसने उस समय आग्नेयास्त्र प्रकट किया; परन्तु अर्जुनने उसे शान्त कर दिया। इसी प्रकार कर्णने भी अर्जुनके तेजस्वी बाणोंका अपने अस्त्रसे निवारण कर दिया और बाणोंकी वर्षा करते हुए सिंहनाद किया। तब धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि भी वहाँ पहुँचकर कर्णको अपने बाणोंसे बींधने लगे। कर्णने भी तीन बाणोंसे उन तीनों वीरोंके धनुष काट डाले। तब उन्होंने कर्णपर शक्तियोंका प्रहार करके सिंहोंके समान गर्जना की। कर्ण भी तीन-तीन बाणोंसे उन शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े करके अर्जुनपर बाण बरसाता हुआ गर्जने लगा। यह देख अर्जुनने सात बाणोंसे कर्णको बींधकर उसके छोटे भाईको मार डाला, फिर उसके दूसरे भाई शत्रुञ्जयको भी छः बाणोंसे मौतके घाट उतारा। उसके बाद एक भाला मारकर विपाटके भी मस्तकको काटकर उसे रथसे गिरा दिया। इस प्रकार कौरवोंके देखते-देखते कर्णके सामने ही उसके तीनों भाइयोंको अर्जुनने अकेले ही मार डाला।

तदनन्तर, भीमसेन भी अपने रथसे कूद पड़े और

पाञ्चाल और सृञ्जय क्षत्रिय एक सा मिलकर भी उनका सामना न कर सके द्रोणाचार्यको क्रोधमें भरकर आगे बढ़ देख युधिष्ठिरने उन्हें रोकनेके विषय बहुत विचार किया । द्रोणका सामना कर दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन समझक उन्होंने इस गुरुतर कार्यका भार अभि मन्युपर रक्खा । अभिमन्यु अपने माम श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनसे कम पराक्रम नहीं था, वह अत्यन्त तेजस्वी तथा शत्रुपक्ष वीरोंका संहार करनेवाला था। युधिष्ठिर उससे कहा—'बेटा अभिमन्यु ! चक्रव्यूह के भेदनका उपाय हमलोग बिल्कुल नहीं जानते इसे तो तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न ही तोड़ सकते हैं। पाँचवाँ कोई भी इस कामको नहीं कर सकता । अतः तुम अस्त्र लेकर शीघ्र ही द्रोणके इस व्यूहको तोड़ डालो, नहीं तो युद्धसे लौटनेपर अर्जुन हमलोगोंको ताना देंगे ।'

सम्मिलित किया और उस व्यूहके अरोंके स्थानपर सूर्यके तुल्य तेजस्वी राजकुमारोंको खड़ा किया । राजा दुर्योधन इसके मध्यभागमें खड़ा हुआ; उसके साथ महारथी कर्ण, कृपाचार्य और दुःशासन थे । व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य और जयद्रथ खड़े हुए; जयद्रथके बगलमें अश्वत्थामाके साथ आपके तीस पुत्र, शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा खड़े थे । तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंमें मृत्युको ही विश्राम मानकर रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध छिड़ गया ।

द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित उस दुर्द्धर्ष व्यूहपर भीमसेनको आगे करके पाण्डवोंने आक्रमण किया । सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तिभोज, द्रुपद, अभिमन्यु, क्षत्रवर्मा, बृहत्क्षत्र, चेदिराज, धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, युधामन्यु, शिखण्डी, उत्तमौजा, विराट, द्रौपदीके पुत्र, शिशुपालका पुत्र, केकय-राजकुमार और हजारों सृञ्जयवंशी क्षत्रिय—ये तथा और भी बहुत-से रणोन्मत्त योद्धा युद्धकी इच्छासे सहसा द्रोणाचार्यके ऊपर टूट पड़े । उन्हें अपने निकट पहुँचा देखकर भी आचार्य द्रोण विचलित नहीं हुए, उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके उन सब वीरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया । उस समय हमलोगोंने द्रोणकी भुजाओंका अद्भुत पराक्रम देखा कि

अभिमन्युने कहा—आचार्य द्रोणकी यह सेना यद्यपि अत्यन्त सुदृढ और भयङ्कर है, तथापि मैं अपने पितृवर्गकी विजयके लिये इस व्यूहमें अभी प्रवेश करता हूँ । पिताजीने व्यूहको तोड़नेका उपाय तो मुझे बता दिया है, पर निकलना नहीं बताया है । यदि मैं वहाँ किसी विपत्तिमें फँस गया तो निकल नहीं सकूँगा ।

युधिष्ठिर बोले—वीरवर ! तुम इस सेनाको भेदकर हमलोगोंके लिये द्वार तो बनाओ । फिर जिस मार्गसे तुम जाओगे, तुम्हारे पीछे-पीछे हमलोग भी चलेंगे और सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करेंगे ।

भीमने कहा—मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा पञ्चाल, मत्स्य, प्रभद्रक और केकय देशके योद्धा—ये सब तुम्हारे साथ चलेंगे । एक बार जहाँ तुमने व्यूह भंग किया, वहाँके बड़े-बड़े वीरोंको मारकर हमलोग व्यूहका विध्वंस कर डालेंगे ।

अभिमन्युने कहा—अच्छा, तो अब मैं द्रोणकी इस दुर्द्धर्ष सेनामें प्रवेश करता हूँ । आज वह पराक्रम कर दिखाऊँगा, जिससे मेरे मामा और पिता दोनोंके कुलोंका हित होगा । उससे मामा भी प्रसन्न होंगे और पिताजी भी । यद्यपि मैं बालक हूँ, तो भी सम्पूर्ण प्राणी देखेंगे कि मैं किस तरह आज अकेले ही शत्रुसेनाको कालका ग्रास बनाता हूँ । यदि जीते-जी युद्धमें मेरे सामने आकर कोई जीवित बच जाय तो मैं अर्जुनका पुत्र नहीं और माता सुभद्राके गर्भसे मेरा जन्म नहीं हुआ ।

युधिष्ठिरने कहा—सुभद्रानन्दन ! तुम द्रोणकी दुर्द्धर्ष सेनाको तोड़नेका उत्साह दिखा रहे हो, इसलिये ऐसी वीरताभरी बातें करते हुए तुम्हारा बल सदा बढ़ता रहे ।

अभिमन्युका व्यूहमें प्रवेश और पराक्रम

सञ्जय कहते हैं—धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर अभिमन्युने सारथिको द्रोणकी सेनाके पास रथ ले चलनेको कहा । जब बारंबार चलनेकी आज्ञा दी तो सारथिने उससे कहा—'आयुष्मन् ! पाण्डवोंने आपपर यह बहुत बड़ा भार रख दिया है; आप थोड़ी देर इसपर विचार कर लीजिये, फिर युद्ध कीजियेगा । आचार्य द्रोण बड़े विद्वान् हैं, उन्होंने उत्तम अस्त्रविद्यामें बड़ा परिश्रम किया है । इधर आप बड़े सुख और आराममें पले हैं तथा युद्धविद्यामें उनके समान निपुण भी नहीं हैं ।'

सारथिकी बात सुनकर अभिमन्युने उससे हँसकर कहा, 'सूत ! यह द्रोण अथवा क्षत्रिय-समुदाय क्या है ? यदि साक्षात् इन्द्र देवताओंके साथ आ जायँ अथवा भूतगणोंको साथ लेकर शङ्कर उतर आवें, तो मैं उनसे भी युद्ध कर सकता हूँ । इस क्षत्रियसमूहको देखकर आज मुझे आश्चर्य नहीं हो रहा है । यह सम्पूर्ण शत्रुसेना मेरी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है । और तो क्या, विश्वविजयी मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनको भी अपने विपक्षमें पाकर मुझे भय नहीं होगा ।' इस प्रकार सारथिकी बातकी अवहेलना करके अभिमन्युने उसे शीघ्र ही द्रोणकी सेनाके पास चलनेकी आज्ञा दी । यह सुनकर सारथि मनमें बहुत प्रसन्न तो नहीं हुआ, परन्तु घोड़ोंको उसने द्रोणकी ओर बढ़ाया । पाण्डव भी अभिमन्युके पीछे-पीछे चले । उसको आते देख कौरवपक्षके सभी योद्धा द्रोणको आगे करके उसका सामना करनेके लिये डट गये ।

अर्जुनका पुत्र अर्जुनसे भी बढ़कर पराक्रमी था । वह युद्धकी इच्छासे द्रोण आदि महारथियोंके सामने इस प्रकार जा डटा, जैसे हाथियोंके आगे सिंहका बच्चा हो । अभिमन्यु अभी व्यूहकी ओर बीस ही कदम बढ़ा था कि कौरव योद्धा उसके ऊपर प्रहार करने लगे । फिर तो एक-दूसरेका संहार करनेवाले उभय पक्षके योद्धाओंमें घोर संग्राम होने लगा । उस भयङ्कर युद्धमें द्रोणके देखते-देखते व्यूह भेदकर अभिमन्यु उसके भीतर घुस गया । वहाँ जानेपर उसके ऊपर बहुत-से योद्धा टूट पड़े । परन्तु वीर अभिमन्यु अस्त्र चलानेमें फुर्तीला था । जो-जो वीर उसके सामने आये, सबको अपने मर्मभेदी बाणोंसे मारने लगा । उसके पैने बाणोंकी मार पड़नेसे घायल हो बहुत-से योद्धा धराशायी हो गये । मरे हुए वीरों-

की लाशों और उसके टुकड़ोंसे वहाँकी भूमि ढक गयी। धनुष, बाण, ढाल, तलवार, अंकुश, तोमर आदि बहुत-से शस्त्रों और आभूषणोंसे युक्त हजारों वीरोंकी भुजाओंको

अभिमन्युने काट डाला तथा रथोंको तोड़ डाला। उसने अकेले ही भगवान् विष्णुके समान अचिन्तनीय पराक्रम कर दिखाया। राजन्! उस समय आपके पुत्र और आपके पक्षके योद्धा दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए भागनेकी राह ढूँढ़ने लगे। उनके मुँह सूख गये थे, नेत्र चञ्चल हो रहे थे, बदनसे पसीना बह रहा था, रोएँ खड़े हो गये थे। वे शत्रुको जीतनेका साहस खो बैठे थे; अगर कुछ उत्साह था तो वहाँसे निकल भागनेका। मरे हुए पुत्र, पिता, भाई, बन्धु तथा सम्बन्धियोंको छोड़कर अपना प्राण बचानेकी इच्छासे घोड़े और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए सब लोग भाग चले।

अमित तेजस्वी अभिमन्युके द्वारा अपनी सेनाको इस प्रकार तितर-बितर होते देख दुर्योधन अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ उसके सामने आया। द्रोणाचार्यकी आज्ञासे और भी बहुत-से योद्धा वहाँ आ पहुँचे और दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करने लगे। इसी समय द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, शल्य, भूरि, भूरिश्रवा, शल, पौरव और वृषसेनने सुभद्राकुमारपर तीखे बाणोंकी वर्षा करके उसे आच्छादित कर दिया। इस प्रकार अभिमन्युको मोहित करके उन्होंने दुर्योधनको बचा लिया।

जैसे मुँहका ग्रास छिन जाय, उसी प्रकार दुर्योधनका निकल जाना अभिमन्युसे नहीं सहा गया। उसने बड़ी भारी बाणवर्षा करके घोड़े और सारथियोंसहित उन सभी महारथियोंको मार भगाया तथा सिंहके समान गर्जना की। द्रोण आदि महारथी उसका सिंहनाद नहीं सह सके। वे रथोंसे उसको घेरकर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, किन्तु अभिमन्यु उन सब बाणोंको आकाशमें ही काट गिराता और तुरंत तीखे बाण मारकर सबको बींध डालता था। उसका यह पराक्रम अद्भुत था। उस समय अभिमन्यु और कौरव योद्धा एक-दूसरेपर लगातार प्रहार कर रहे थे। कोई भी युद्धसे विमुख नहीं होता था। उस घोर संग्राममें दुःसहने नौ बाण मारकर अभिमन्युको बींध दिया। फिर दुःशासनने बारह, कृपाचार्यने तीन, द्रोणने सत्रह, विविंशतिने सत्तर, कृतवर्माने सात, बृहद्बलने आठ, अश्वत्थामाने सात, भूरिश्रवाने तीन, शल्यने छः, शकुनिने दो और राजा दुर्योधनने तीन बाण मारे।

महाराज! उस समय प्रतापी अभिमन्यु जैसे नाच रहा हो, इस प्रकार सब ओर घूम-घूमकर सब महारथियोंको तीन-तीन बाणोंसे बेधता जाता था। फिर, आपके पुत्रोंने मिलकर जब उसे भय दिखाना आरम्भ किया तो अभिमन्यु क्रोधसे जल उठा और अपनी अस्त्रशिक्षाका महान् बल दिखाने लगा। इतनेमें अश्मकनरेशके पुत्रने बड़ी तेजीसे वहाँ आकर अभिमन्युको रोका और दस बाण मारकर उसको बींध डाला। तब अभिमन्युने मुसकराते हुए उसे दस बाण मारे और उनसे उसके घोड़ों, सारथि, ध्वजा, धनुष, भुजाओं तथा मस्तकको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया।

अभिमन्युके हाथसे अश्मकराजकुमारके मारे जानेपर सारी सेना विचलित होकर भागने लगी। तब कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन—इन सबने क्रोधमें भरकर अभिमन्युपर बाणवर्षा आरम्भ की। इन बड़े-बड़े धनुर्धारियोंके बाणोंसे जब अभिमन्यु बहुत घायल हो गया, तो उसने कवच और शरीरको छेद डालनेवाला एक तीखा बाण कर्णके ऊपर चलाया। वह बाण कर्णका कवच

छेदकर बड़े वेगसे उसके शरीरमें घुसा और उसे भी वेधकर पृथ्वीमें समा गया। उस दुःसह प्रहारसे कर्णको बड़ी व्यथा हुई और वह व्याकुल होकर उस रणभूमिमें काँप उठा। इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने तीन बाणोंसे सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डभेदीको भी मारा।

तब कर्णने पचीस, अश्वत्थामाने बीस और कृतवर्माने सात बाण मारकर अभिमन्युको घायल किया। उसके सम्पूर्ण शरीरमें बाण छिदे हुए थे, फिर भी वह पाशधारी यमराजके समान रणभूमिमें विचर रहा था। शल्यको अपने पास ही खड़ा देख अभिमन्युने बाणोंकी वर्षासे उन्हें ढक दिया और आपकी सेनाको डराते हुए उसने भीषण गर्जना की। उसके मर्मभेदी बाणोंसे घायल हुए राजा शल्य रथके पिछले भागमें जा बैठे और मूर्च्छित हो गये। शल्यकी यह अवस्था देख सम्पूर्ण सेना आचार्य द्रोणके देखते-देखते भाग चली। उस
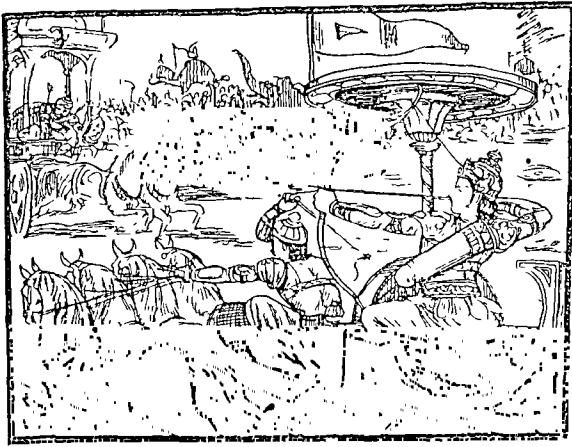
समय देवता, पितर, चारण, सिद्ध, यक्ष तथा मनुष्य अभिमन्युका यशोगान करते हुए उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

शल्यका एक छोटा भाई था। उसने सुना कि अभिमन्युने मेरे भाई मद्रराजको रणभूमिमें मूर्च्छित कर दिया है, तो क्रोधमें भरकर बाणवर्षा करता हुआ वह उनके पास आया। आते ही दस बाण मारकर उसने अभिमन्युको घोड़े और सारथिसहित घायल कर दिया, फिर बड़े जोरसे गर्जना की। तब अर्जुनकुमारने बाणोंसे उसके घोड़े, छत्र, ध्वजा, सारथि, जुआ, बैठक, पहिया, धुरी, भाथा, धनुष, प्रत्यञ्चा, पताका, पहियोंके रक्षक एवं रथकी सब सामग्रीको खण्ड-खण्ड करके उसके हाथ, पैर, गला और मस्तक भी काट गिराये। तब तो उसके अनुचर अत्यन्त भयभीत हो सब दिशाओंमें भाग गये। अभिमन्युके उस अद्भुत पराक्रमको देखकर सब लोग उसे शाबाशी देने लगे। उस समय वह दिव्य अस्त्रोंसे शत्रु-सेनाका संहार करता हुआ चारों दिशाओंमें दिखायी दे रहा था। उसके इस अलौकिक कर्मको देख आपके सैनिक काँपने लगे। इसी समय आपका पुत्र दुःशासन बड़े जोरसे गरजा और क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ सुभद्राकुमारपर चढ़ आया। आते ही उसको अभिमन्युने छब्बीस बाण मारे। अभिमन्यु और दुःशासन दोनों ही रथ-शिक्षामें कुशल थे। वे दायें-बायें विचित्र मण्डलाकार गतिसे चलते हुए युद्ध करने लगे।

दुःशासन और कर्णकी पराजय तथा जयद्रथका पराक्रम

सञ्जय कहते हैं—राजन्! उस समय अभिमन्युने दुःशासनसे हँसकर कहा—'दुर्मते! तूने मेरे पितृवर्गका राज्य हर लिया है, उसके कारण तथा तेरे लोभ, अज्ञान, द्रोह और दुःसाहसके कारण महात्मा पाण्डव तुझपर अत्यन्त कुपित हैं; इसीसे आज तुझे यह दिन देखना पड़ा है। आज उस पापका भयंकर फल तू भोग। क्रोधमें भरी हुई माता द्रौपदीकी तथा बदला लेनेवाले पिता भीमसेनकी इच्छा पूर्ण करके आज मैं उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं गया तो मेरे हाथसे जीता नहीं बच सकता।' यह कहकर अभिमन्युने दुःशासनकी छातीमें कालाग्निके समान तेजस्वी बाण मारा। वह बाण उसकी छातीमें लगा और गलेकी हँसली छेदकर निकल गया। इसके बाद धनुषको कानतक खींचकर पुनः उसने दुःशासनको पच्चीस बाण मारे। इससे अच्छी तरह घायल होकर वह व्यथाके मारे रथके पिछले भागमें जा बैठा और बेहोश हो गया। यह देख सारथि तुरंत उसे रणसे बाहर ले गया। उस

समय युधिष्ठिर आदि पाण्डव, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय, धृष्टकेतु तथा मत्स्य, पाञ्चाल और सृञ्जय वीर बड़ी प्रसन्नताके साथ द्रोणकी सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे आगे बढ़े। फिर तो कौरवों और पाण्डवोंकी सेनामें महान् युद्ध होने लगा। इधर कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर अभिमन्युके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा और उसका तिरस्कार करते हुए उसके अनुचरोंको भी बाणोंसे बींधने लगा। अभिमन्युने भी तुरंत ही उसे तिहत्तर बाणोंसे बींध डाला। उस समय उसकी गति कोई नहीं रोक सका। तदनन्तर, कर्णने अपनी उत्तम अस्त्र-विद्याका प्रदर्शन करते हुए सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युको बींध डाला। कर्णके द्वारा पीडित होकर भी सुभद्राकुमार शिथिल नहीं हुआ; उसने तेज बाणोंसे शूरवीरोंके धनुष काटकर कर्णको भी खूब घायल किया। साथ ही उसके छत्र, ध्वजा, सारथि और घोड़ोंको भी हँसते-हँसते बींध डाला। फिर कर्णने भी उसे कई बाण मारे, किन्तु अभिमन्युने अविचल भावसे सबको झेल लिया और मुहूर्तभरमें एक ही बाणसे कर्णके धनुष और ध्वजाको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार कर्णको संकटमें फँसा देखकर उसका छोटा भाई सुदृढ धनुष ले अभिमन्युका सामना करनेको आ गया। उसने आते ही दस बाण मारकर अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथि और घोड़ोंसहित बींध डाला। यह देख आपके पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। तब अभिमन्युने मुसकराकर एक ही बाणसे उसका मस्तक काट गिराया।

राजन्! भाईको मरा देख कर्ण बहुत दुखी हुआ। इधर सुभद्राकुमारने कर्णको विमुख करके दूसरे धनुर्धरोंपर धावा किया। क्रोधमें भरकर वह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस विशाल सेनाका संहार करने लगा। कर्ण तो उसके बाणोंसे बहुत पीडित हो चुका था, इसलिये अपने शीघ्रगामी घोड़ोंको हाँककर रणभूमिसे भाग गया। इससे व्यूह टूट गया। उस समय टिड्डियों या जलकी धाराओंके समान अभिमन्युके बाणोंसे आकाश आच्छादित हो जानेके कारण कुछ सूझ नहीं पड़ता था। सिन्धुराज जयद्रथके सिवा दूसरा कोई रथी वहाँ टिक न सका। अभिमन्यु अपने बाणोंसे शत्रुसेनाको दग्ध करता हुआ व्यूहमें विचरने लगा। रथ, घोड़े, हाथी और मनुष्योंका संहार होने लगा। पृथ्वीपर बिना मस्तककी लाशें बिछ गयीं। कौरव-योद्धा अभिमन्युके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो प्राण बचानेके लिये भागने लगे। उस समय वे सामने खड़े हुए अपने ही दलके लोगोंको मारकर आगे बढ़ रहे थे और अभिमन्यु उस सेनाको खदेड़-खदेड़कर मार रहा था। व्यूहके बीच तेजस्वी अभिमन्यु ऐसा दीख पड़ता था, जैसे तिनकोंके ढेरमें प्रज्वलित अग्नि।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! अभिमन्युने जिस समय व्यूहमें प्रवेश किया, उसके साथ युधिष्ठिरकी सेनाका कोई और भी वीर गया था या नहीं?

सञ्जयने कहा—महाराज! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, धृष्टकेतु और मत्स्य आदि योद्धा व्यूहाकारमें संगठित होकर अभिमन्युकी रक्षाके लिये उसके साथ-साथ चले। उन्हें धावा करते देख आपके सैनिक भागने लगे। तब आपके जामाता जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करके पाण्डवोंको सेनासहित रोक दिया।

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! मैं तो समझता हूँ जयद्रथके ऊपर यह बहुत बड़ा भार आ पड़ा, जो अकेले होनेपर भी उसने क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोका। भला, जयद्रथने कौन-सा ऐसा महान् तप किया था जिससे पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हो सका?

सञ्जयने कहा—जयद्रथने वनमें द्रौपदीका अपहरण किया था, उस समय भीमसेनसे उसे परास्त होना पड़ा। इस अपमानसे दुखी होकर उसने भगवान् शङ्करकी आराधना करते हुए बड़ी कठोर तपस्या की। भक्तवत्सल भगवान्ने उसपर दया की और स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'जयद्रथ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, इच्छानुसार वर माँग ले।' वह प्रणाम करके बोला—'मैं चाहता हूँ, अकेले ही समस्त पाण्डवोंको

युद्धमें जीत सकूँ ।' भगवान्‌ने कहा—'सौम्य ! तुम अर्जुनको छोड़ शेष चार पाण्डवोंको युद्धमें जीत सकोगे ।' 'अच्छा, ऐसा ही हो'—यह कहते-कहते उसकी नींद टूट गयी । उस वरदानसे और दिव्यास्त्रके बलसे ही जयद्रथने अकेले होनेपर भी पाण्डवसेनाको आगे नहीं बढ़ने दिया । उसकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कार होते ही शत्रुवीरोंपर भय छा गया और आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ । उस समय सारा भार जयद्रथके ही ऊपर पड़ा देख आपके क्षत्रिय वीर कोलाहल करते हुए युधिष्ठिरकी सेनापर टूट पड़े । अभिमन्युने व्यूहके जिस भागको तोड़ डाला था, उसे जयद्रथने पुनः योद्धाओंसे भर दिया । फिर उसने सात्यकिको तीन, भीमसेनको आठ, धृष्टद्युम्नको साठ और विराटको दस बाण मारे । इसी प्रकार द्रुपदको पाँच, शिखण्डी-को सात, केकयराजकुमारोंको पचीस, द्रौपदी-के प्रत्येक पुत्रको तीन-तीन और युधिष्ठिरको सत्तर बाणोंसे बींध डाला । साथ ही दूसरे योद्धाओंको भी बाणों-की भारी वर्षासे पीछे हटा दिया । उसका यह काम अद्भुत ही हुआ । तब राजा युधिष्ठिरने हँसते-हँसते एक तीक्ष्ण बाणसे जयद्रथका धनुष काट डाला । जयद्रथने पलक मारते ही दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको दस और अन्य योद्धाओंको

तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया। उसके हाथकी फुर्ती देखकर भीमसेनने तीन बाणोंसे उसके धनुष, ध्वजा और छत्रको काट गिराया। जयद्रथने पुनः दूसरा धनुष उठाया और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर भीमके धनुष, ध्वजा और घोड़ोंका संहार कर डाला। घोड़ोंके मर जानेपर भीमसेन उस रथसे कूदकर सात्यकिके रथपर जा बैठे। जयद्रथका यह पराक्रम देख आपके सैनिक प्रसन्न होकर उसे शाबाशी देने लगे। इतनेमें अभिमन्युने उत्तर दिशाकी ओर युद्ध करनेवाले हाथीसवारोंको मारकर पाण्डवोंके लिये मार्ग दिखाया, किन्तु जयद्रथने उसे भी रोक लिया। मत्स्य, पाञ्चाल, केकय और पाण्डव वीरोंने बहुत कोशिश की, पर वे जयद्रथको हटा न सके। आपके शत्रुओंमेंसे जो भी द्रोण-सेनाका व्यूह तोड़नेका प्रयत्न करता, उसे जयद्रथ वरदानके प्रभावसे रोक देता था।

अभिमन्युके द्वारा कौरव-सेनाके कई प्रमुख वीरोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युने उस सेनाके भीतर घुसकर इस प्रकार तहलका मचाया, जैसे बड़ा भारी मगर समुद्रमें हलचल पैदा कर देता है। आपकी सेनाके प्रधान वीरोंने रथोंसे अभिमन्युको घेर रक्खा था, तो भी उसने वृषसेनके सारथिको मारकर उसके धनुषको भी काट डाला। बलवान् वृषसेन भी अपने बाणोंसे अभिमन्युके घोड़ोंको बींधने लगा। घोड़े रथ लिये हुए वहाँसे हवा हो गये। यह विघ्न आ पड़नेसे सारथि रथको दूर हटा ले गया। थोड़ी ही देरमें शत्रुओंको रौंदते हुए अभिमन्युको पुनः आते देख वसातीयने तुरंत उसका सामना किया। उसने अभिमन्युको साठ बाणोंसे घायल कर डाला। तब अभिमन्युने वसातीयकी छातीमें एक ही बाण मारा, जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख आपकी सेनाके बड़े-बड़े क्षत्रियोंने क्रोधमें भरकर अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे घेर लिया। उसके साथ उनका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अभिमन्युने कुपित हो उनके धनुष और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े करके कुण्डल और मालाओंसे मण्डित मस्तक भी काट डाले।

तत्पश्चात् मद्रराजका बलवान् पुत्र रुक्मरथ आया और डरी हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ बोला—'वीरो! डरो मत। मेरे रहते इस अभिमन्युकी कोई हस्ती नहीं है। सन्देह न करो, मैं इसे जीते-जी पकड़ लूँगा।' यह कहकर वह अभिमन्युकी ओर दौड़ा और उसकी छाती तथा दायीं-बायीं भुजाओंमें तीन-तीन बाण मारकर गर्जने लगा। तब अभिमन्युने उसका धनुष काट दिया और शीघ्र ही उसकी दोनों भुजाओं तथा मस्तकको भी काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया।

राजकुमार रुक्मरथके कई मित्र थे, वे भी रणमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। उन्होंने अपने महान् धनुष चढ़ाकर बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको ढक दिया। यह देख दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ; उसने यही समझा कि बस, अब तो अभिमन्यु यमलोकमें पहुँच गया। किन्तु अभिमन्युने उस समय गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया। वह अस्त्र बाणोंकी वृष्टि करता हुआ युद्धमें कभी एक, कभी सौ और कभी हजारकी संख्यामें दिखायी देता था। अभिमन्युने रथसञ्चालनकी कला और गन्धर्वास्त्रकी मायासे उन राजकुमारोंको मोहित करके उनके शरीरोंके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। कितनोंके धनुष, ध्वजा, घोड़े, सारथि, भुजाएँ तथा मस्तक काट डाले। एक अभिमन्युके द्वारा इतने राजपुत्रोंको मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो गया। रथी, हाथी, घोड़ों और पैदलोंको रणभूमिमें गिरते देख वह क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्युके

पास आया। उन दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अभी क्षणभर भी पूरा नहीं होने पाया कि सैकड़ों बाणोंसे आहत होकर दुर्योधन भाग गया।

धृतराष्ट्रने कहा—सूत! जैसा कि तुम बता रहे हो, अकेले अभिमन्युका बहुत-से योद्धाओंके साथ संग्राम हुआ तथा उसमें विजय भी उसीकी हुई—सहसा इस बातपर विश्वास नहीं होता। वास्तवमें सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है। किन्तु जिन लोगोंका धर्मपर भरोसा है, उनके लिये यह कोई अद्भुत बात नहीं है। सञ्जय! जब दुर्योधन भाग गया और सैकड़ों राजकुमार मारे गये, उस समय मेरे पुत्रोंने अभिमन्युके लिये क्या उपाय किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! उस समय आपके योद्धाओंके मुँह सूख गये थे, आँखें कातर हो रही थीं, शरीरमें रोमाञ्च हो आया था और पसीने चू रहे थे। शत्रुको जीतनेका उत्साह नहीं रह गया था, सब भागनेकी तैयारीमें थे। मरे हुए भाई, पिता, पुत्र, सुहृद्, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपने हाथी-घोड़ोंको जल्दी-जल्दी हाँकते हुए रणभूमिसे दूर निकल गये। उन्हें इस प्रकार हतोत्साह होकर भागते देख द्रोण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि—ये सब क्रोधमें भरे हुए समर-

विजयी अभिमन्युकी ओर दौड़े। किन्तु अभिमन्युने इन्हें फिर अनेकों बार रणसे विमुख किया। केवल लक्ष्मण ही सामने डटा रहा। पुत्रके स्नेहसे उसके पीछे दुर्योधन भी लौट आया; फिर दुर्योधनके पीछे अन्य महारथी भी लौट पड़े। अब सबने मिलकर अभिमन्युपर बाण बरसाना आरम्भ किया। परन्तु अभिमन्युने अकेले ही उन सब महारथियोंको परास्त कर दिया और लक्ष्मणके सामने जाकर उसकी छाती और भुजाओंमें तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार किया। फिर लक्ष्मणसे कहा—'भाई! एक बार इस संसारको अच्छी तरह देख लो; क्योंकि अभी तुम्हें परलोककी यात्रा करनी है। आज तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंके देखते-देखते तुम्हें यमलोक भेज रहा हूँ।' यह कहकर महाबाहु सुभद्राकुमारने लक्ष्मणकी ओर एक भल्ल चलाकर उसके सुन्दर नासिका, मनोहर भ्रुकुटि तथा घुँघराले बालोंवाले कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर दिया।
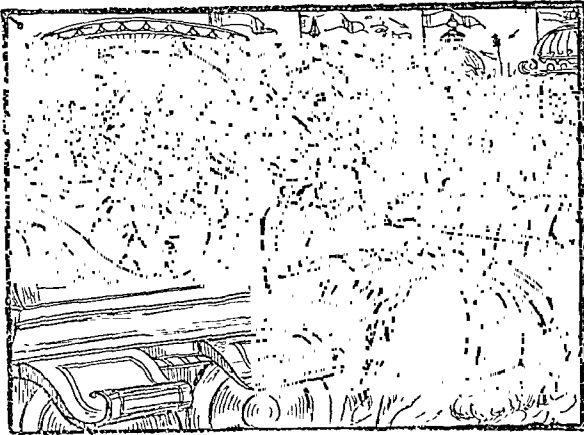
कुमार लक्ष्मणको मरा देख लोगोंमें हाहाकार मच गया। अपने प्यारे पुत्रके गिरते ही दुर्योधनके क्रोधकी सीमा नहीं रही। उसने समस्त क्षत्रियोंसे पुकारकर कहा—'मार डालो इसे।' तब द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल तथा कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंसे घायल करके उन सबको पुनः भगा दिया और बड़े वेगसे जयद्रथकी सेनाकी ओर धावा किया। यह देख कलिङ्ग और निषाद वीरोंके साथ क्राथपुत्रने आकर हाथियोंकी सेनासे अभिमन्युका मार्ग रोक दिया। फिर तो उनके साथ बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अभिमन्युने उस गज-सेनाका संहार कर दिया। तदनन्तर, क्राथ अर्जुनकुमारपर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगा। इतनेमें भागे हुए द्रोण आदि महारथी भी लौटे और अपने धनुषकी टङ्कार करते हुए अभिमन्युपर चढ़ आये। किन्तु उसने अपने बाणोंसे उन सब महारथियोंको रोककर क्राथपुत्रको भलीभाँति पीडित किया। फिर असंख्य बाणोंकी वर्षा करके उसके धनुष, बाण, केयूर, बाहु, मुकुट तथा मस्तकको भी काट डाला। साथ ही उसके छत्र, ध्वजा,
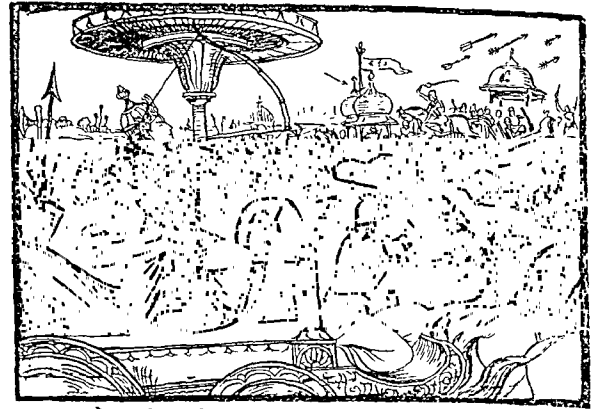
सारथि और घोड़ोंको भी रणभूमिमें गिरा दिया। क्राथके गिरते ही सेनाके अधिकांश योद्धा विमुख होकर भागने लगे।

तब द्रोण आदि छः महारथियोंने पुनः अभिमन्युको घेरा। यह देख अभिमन्युने द्रोणको पचास, बृहद्बलको बीस,

कृतवर्माको अस्सी, कृपाचार्यको साठ और अश्वत्थामाको दस बाणोंसे बींध डाला। तदनन्तर, उसने कौरवोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको आपके पुत्रोंके देखते-देखते मार डाला। तब अभिमन्युके ऊपर द्रोणने सौ, अश्वत्थामाने आठ, कर्णने बाईस, कृतवर्माने बीस, बृहद्बलने पचास और कृपाचार्यने दस बाण मारे। इस प्रकार उनके द्वारा सब ओरसे पीडित होते हुए भी सुभद्राकुमारने उन सबको दस-दस बाणोंसे मारकर घायल कर दिया। इसके बाद कोसलनरेशने अभिमन्युकी छातीमें एक बाण मारा। अभिमन्युने भी उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष और सारथिको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। रथसे हीन होकर कोसल-नरेशने ढाल-तलवार हाथमें ले ली और अभिमन्युके कुण्डलयुक्त मस्तकको काट लेनेका विचार किया; इतनेहीमें अभिमन्युने उसकी छातीमें बाण मारा। उसके लगते ही कोसलराजका हृदय फट गया और वे उस रणभूमिमें गिर गये। साथ ही अभिमन्युने वहाँ उन दस हजार महाबली राजाओंका भी वध कर दिया, जो खड़े-खड़े अमङ्गलसूचक बातें निकाल रहे थे। इस प्रकार सुभद्रानन्दन बाणोंकी वर्षासे आपके योद्धाओंकी गति रोककर रणभूमिमें विचरने लगा।

अभिमन्युके द्वारा कौरव वीरोंका संहार और छः महारथियोंके प्रयत्नसे उसका वध

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर, कर्ण और अभिमन्यु दोनों परस्पर युद्ध करते हुए लोहूलुहान हो गये। इसके बाद कर्णके छः मन्त्री सामने आये। वे सभी विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले थे। किन्तु अभिमन्युने उन्हें घोड़े और सारथियोंसहित नष्ट कर दिया। तथा दूसरे धनुर्धारियोंको भी दस-दस बाण मारकर बींध डाला। उसका यह कार्य अद्भुत-सा हुआ। इसके बाद उसने मगधराजके पुत्रको छः बाणोंसे मृत्युके मुखमें भेजकर घोड़े और सारथिसहित अश्वकेतुको भी मार गिराया। फिर मर्तिकावतक देशके राजा भोजको क्षुरप्र नामक बाणसे मौतके घाट उतारकर बाणवर्षा करते हुए सिंहनाद किया। इतनेमें दुःशासनके पुत्रने आकर चार बाणोंसे चार घोड़ोंको, एकसे सारथिको और दससे अभिमन्युको भी बींध दिया। तब अभिमन्युने भी सात बाणोंसे दुःशासनके पुत्रको घायल करके कहा—'अरे! तेरा पिता तो कायरकी भाँति युद्ध छोड़कर भाग गया, अब तू लड़ने चला है? सौभाग्यकी बात है कि तू भी लड़ना जानता है, किन्तु आज तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।' यह कहकर उसने दुःशासनके पुत्रपर एक तीखा बाण चलाया, किन्तु अश्वत्थामाने अपने तीन बाणोंसे उसे काट दिया। तब अभिमन्युने अश्वत्थामाकी ध्वजा काटकर तीन बाणोंसे शल्यको पीडित किया। शल्यने भी उसकी छातीमें नौ बाण मारे। अभिमन्युने शल्यकी ध्वजा काटकर उनके पार्श्वरक्षक और सारथिको भी मार डाला, फिर छः बाणोंसे शल्यको भी बींधा। शल्य उस रथसे भागकर दूसरे रथपर जा बैठे। इसके बाद सुभद्राकुमारने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास—इन पाँच राजाओंका वध करके शकुनिको भी बाणोंसे घायल किया। शकुनिने भी तीन बाणोंसे अभिमन्युको बींधकर दुर्योधनसे कहा—'देखो, यह पहलेसे एक-एक करके हमलोगोंको मार रहा है, अब हम सब लोग मिलकर इसको मार डालें।'

तदनन्तर, कर्णने द्रोणाचार्यसे कहा—'अभिमन्यु पहलेसे ही हम सब लोगोंको कुचल रहा है; अब इसके वधका कोई उपाय हमें शीघ्र बताइये।' तब महान् धनुर्धर द्रोणने सब लोगोंसे कहा—'इस पाण्डवनन्दनकी फुर्ती तो देखो, बाणोंको चढ़ाते और छोड़ते समय इस रथमार्गमें केवल इसका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी पड़ता है; वह स्वयं कहाँ है, इसका पता नहीं चलता! सुभद्रानन्दन अपने बाणोंसे मुझे क्षत-विक्षत कर रहा है, मेरे प्राण मूर्च्छित हो रहे हैं; तो भी इसका पराक्रम देखकर मुझे हर्ष ही होता है। अपने हाथोंकी फुर्तीके कारण यह समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा कर रहा है। इस समय अर्जुनमें तथा इसमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता।' यह सुनकर कर्णने अभिमन्युके बाणोंसे आहत होकर पुनः द्रोणसे कहा, 'आचार्य! अभिमन्यु मुझे बड़ा कष्ट दे रहा है! मुझे साहसपूर्वक खड़ा रहना चाहिये—यही सोचकर अभीतक खड़ा हूँ। इस तेजस्वी कुमारके तीखे बाण मेरे हृदयको चीरे डालते हैं।'

कर्णकी बात सुनकर आचार्य द्रोण हँस पड़े और धीरेसे बोले—'एक तो यह तरुण राजकुमार स्वयं ही शीघ्र पराक्रम दिखानेवाला है, दूसरे इसका कवच अभेद्य है। इसके पिता अर्जुनको जो मैंने कवच-धारणकी विद्या सिखायी थी, निश्चय ही उस सम्पूर्ण विद्याको यह भी जानता है। अतः यदि इसका धनुष और प्रत्यञ्चा काटी जा सकें, बागडोर काटकर घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथि मार दिये जा सकें, तो काम बन सकता है। राधानन्दन! तुम बड़े धनुर्धर हो; यदि

कर सको तो यही करो। सब प्रकारसे असहाय करके इसे रणसे भगाओ और पीछेसे प्रहार करो। यदि इसके हाथमें धनुष रहा तो देवता और असुर भी इसे नहीं जीत सकते।'

आचार्यकी बात सुनकर कर्णने बाणोंसे अभिमन्युके धनुषको काट डाला। कृतवर्माने उसके घोड़ोंको और कृपाचार्यने पार्श्वरक्षक तथा सारथिको मार डाला। उसे धनुष और रथसे हीन देख बाकी महारथीलोग बड़ी शीघ्रतासे उसपर बाण बरसाने लगे। एक ओर छः महारथी थे, दूसरी ओर असहाय अभिमन्यु; तो भी ये निर्दयी उस अकेले बालकपर बाणवर्षा कर रहे थे। धनुष कट गया, रथसे हाथ धोना पड़ा; तो भी उसने अपने धर्मका पालन किया। हाथमें ढाल-तलवार लेकर वह तेजस्वी बालक आकाशमें उछल पड़ा। अपनी लघिमा-शक्तिसे अभी वह गरुडकी भाँति ऊपर मड़रा ही रहा था, तबतक द्रोणाचार्यने 'क्षुरप्र' नामक बाणसे उसकी तलवारके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और कर्णने ढाल छिन्न-भिन्न कर दी।

अब उसके हाथमें तलवार भी न रही, सारे अंगोंमें बाण धँसे हुए थे; उसी दशामें वह आकाशसे उतरा और क्रोधमें भरकर चक्र हाथमें लिये द्रोणाचार्यपर झपटा। उस समय वह चक्रधारी भगवान् विष्णुकी भाँति शोभायमान हो रहा था। उसे देखकर राजालोग बहुत डर गये और सबने मिलकर उसके चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब महारथी अभिमन्युने बहुत बड़ी गदा हाथमें ली और

अश्वत्थामापर चलायी। जलते हुए वज्रके समान उस गदा-को आते देख अश्वत्थामा रथसे उतरकर तीन कदम पीछे हट गया। गदाकी चोटसे उसके घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथि मारे गये। इसके बाद अभिमन्युने सुबलके पुत्र
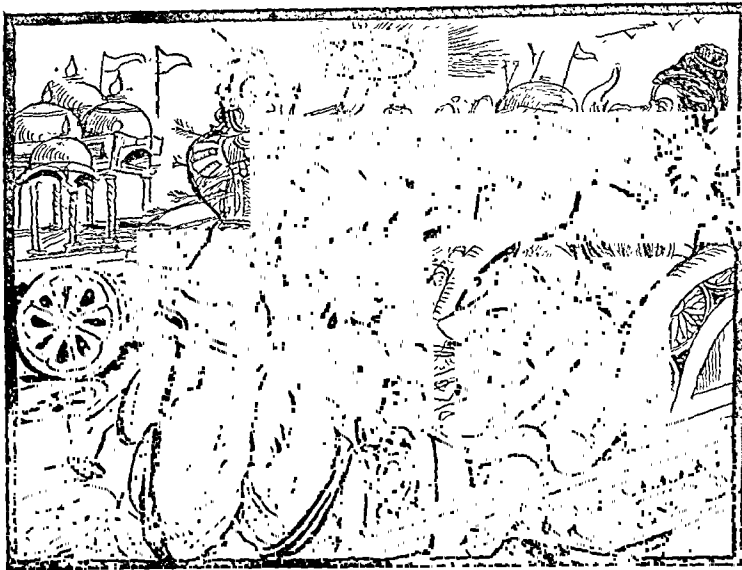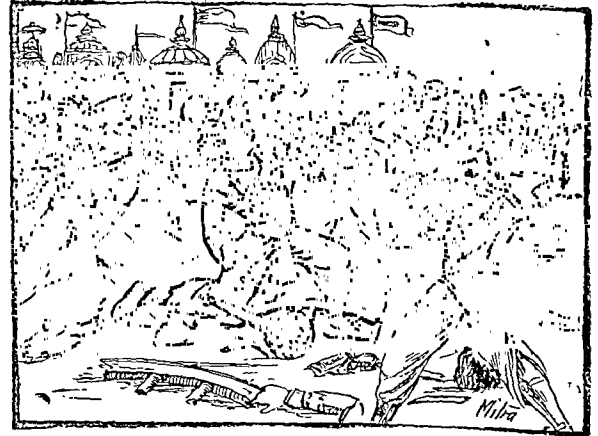
कालिकेयको तथा उसके अनुचर सतहत्तर गान्धारोंको मौतके घाट उतारा। फिर दस बसातीय महारथियोंको तथा सात केकय महारथियोंका संहार कर दस हाथियोंको मार डाला। तत्पश्चात् दुःशासनकुमारके रथ और घोड़ोंको गदासे चूर्ण कर डाला। इससे दुःशासनके पुत्रको बड़ा क्रोध हुआ और वह भी गदा उठाकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा। फिर तो दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे परस्पर प्रहार करने लगे। दोनोंपर गदाके अग्रभागकी चोट पड़ी और दोनों साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े। दुःशासन-कुमार पहले उठा और अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि उसने उसके मस्तकपर गदा मारी। उसके प्रचण्ड आघातसे बेचारा अभिमन्यु पुनः बेहोश होकर गिर पड़ा। महाराज! इस

प्रकार उस एक बालकको बहुत लोगोंने मिलकर मारा।

आकाशसे टूटकर गिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति उस शूरवीरको रणभूमिमें गिरा देख अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी भी हाहाकार करने लगे। सबने एक स्वरसे कहा, 'द्रोण और कर्ण-जैसे छः प्रधान महारथियोंने मिलकर इस अकेले बालकका वध किया है, इसे हमलोग धर्म नहीं मानते।' चन्द्रमा और सूर्यके तुल्य कान्तिमान् अभिमन्युको इस प्रकार पड़ा देख आपके योद्धाओंको बड़ा हर्ष हुआ और पाण्डवोंके हृदयमें बड़ी पीडा हुई। राजन्! अभिमन्यु अभी बालक था, युवावस्थामें उसका पदार्पण नहीं हुआ था। उस वीरके मरते ही युधिष्ठिरके देखते-देखते सम्पूर्ण पाण्डवसेना भाग चली। यह देख युधिष्ठिरने उन वीरोंसे कहा—'वीरो! युद्धमें मृत्युका अवसर आनेपर भी अभिमन्युने पीठ नहीं दिखायी है। तुम भी उसीकी भाँति धीरता रक्खो, डरो मत। हमलोग निश्चय ही शत्रुओंपर विजय पायेंगे।' ऐसा कहकर धर्मराजने अपने दुखी सैनिकोंका शोक दूर किया। राजन्! अभिमन्यु श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी था, वह दस हजार राजकुमारों और महारथी कौसल्यको मारकर मरा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह पुण्यवानोंके अक्षय लोकोंमें गया है; अतः वह शोक करने योग्य नहीं है।

महाराज! इस प्रकार हमलोग पाण्डवोंके उस श्रेष्ठ वीरको मारकर और उनके बाणोंसे पीडित एवं लोहूलुहान हो सायंकाल अपनी छावनीमें चले आये। आते समय देखा, शत्रु भी बहुत दुखी और उदास हो अपने शिबिरको जा रहे हैं। उस समय श्रेष्ठ योद्धाओंने रक्तकी नदी बहा दी थी, जो वैतरणीके समान भयङ्कर और दुस्तर थी। रणभूमिके मध्यमें बहती हुई वह नदी जीवित और मृतक सबको अपने प्रवाहमें बहाये जा रही थी। अनेकों धड़ वहाँ नाच रहे थे; रणस्थलको देखनेमें डर मालूम होता था।

युधिष्ठिरका विलाप तथा व्यासजीके द्वारा मृत्युकी उत्पत्तिका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज! महावीर अभिमन्युके मारे जानेके पश्चात् सभी पाण्डव-योद्धा रथ छोड़, कवच उतार और धनुष फेंककर राजा युधिष्ठिरके चारों ओर बैठ गये तथा अभिमन्युको मन-ही-मन याद करते हुए उसके युद्धका स्मरण करने लगे। भाईका पुत्र अभिमन्यु-जैसा वीर मारा गया, यह सोचकर राजा युधिष्ठिर बहुत दुखी हो गये और विलाप करने लगे—'जैसे गौओंके झुंडमें सिंहका बच्चा प्रवेश कर जाय उसी प्रकार जो केवल मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे द्रोणके दुर्भेद्य व्यूहमें जा घुसा, युद्धमें जिसके सामने आकर बड़े-बड़े धनुर्धर और अस्त्रविद्यामें कुशल वीर भी भाग गये, जिसने हमारे कट्टर शत्रु दुःशासनको अपने बाणोंसे शीघ्र ही मार भगाया था, वह वीर अभिमन्यु द्रोणसेनारूपी महासागरके पार होकर भी दुःशासन-कुमारके पास जा मृत्युको प्राप्त हुआ! सुभद्राकुमारके मारे जानेके बाद अब मैं अर्जुन अथवा सुभद्राको कैसे मुँह दिखाऊँगा? हाय! वह बेचारी अब अपने प्यारे बेटेको नहीं देख सकेगी। श्रीकृष्ण और अर्जुनको यह दुःखद समाचार कैसे सुनाऊँगा? आह! मैं कितना निर्दयी हूँ; जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण-वस्त्र पहननेमें आगे रखना चाहिये था, उसे मैंने युद्धमें आगे कर दिया! अभी तो वह तरुण कुमार युद्धकी कलामें पूरा प्रवीण भी नहीं हुआ था, फिर कैसे कुशलसे लौटता? अर्जुन बुद्धिमान्, निर्लोभ, संकोचशील, क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्, बड़ोंको मान देनेवाले, वीर और सत्यपराक्रमी हैं, जिनके कर्मोंकी देवतालोग भी प्रशंसा करते हैं, जो अभय चाहनेवाले शत्रुको भी अभय दान देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रकी भी हमलोग रक्षा न कर सके। बल और पुरुषार्थमें जो अपना सानी नहीं रखता था, उस अर्जुनकुमारको मारा गया देखकर अब विजयसे भी मुझे प्रसन्नता न होगी; उसके बिना पृथ्वीका राज्य, अमरत्व अथवा देवताओंके

लोकका अधिकार भी मेरे लिये किसी कामका नहीं है।'

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर जब इस प्रकार विलाप कर रहे थे, उसी समय महर्षि वेदव्यासजी वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिरने उनका यथोचित सत्कार किया और जब वे आसनपर विराजमान हुए तो अभिमन्युकी मृत्युके शोकसे सन्तप्त होकर
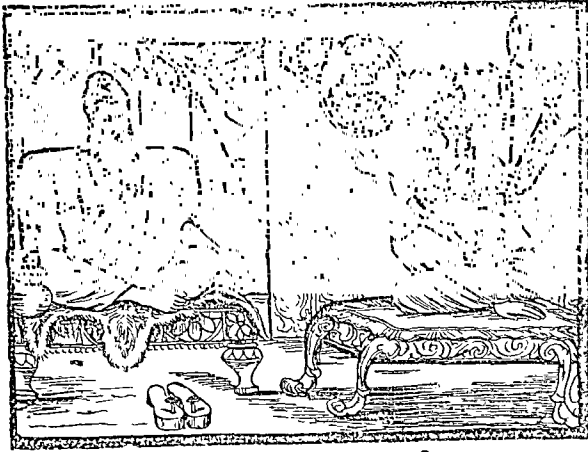
उनसे कहा—"मुनिवर! सुभद्रानन्दन अभिमन्यु युद्ध कर रहा था, उस समय उसे अनेकों अधर्मी महारथियोंने घेरकर मार डाला है। मैंने उससे कहा था, 'हमलोगोंके लिये व्यूहमें घुसनेका दरवाजा बना दो।' उसने वैसा ही किया। जब स्वयं भीतर घुस गया, तब उसके पीछे हमलोग भी घुसने लगे; किन्तु जयद्रथने हमें रोक दिया। योद्धाओंको अपने समान वीरसे युद्ध करना चाहिये; किन्तु शत्रुओंने जो उसके साथ व्यवहार किया है, वह नितान्त अनुचित है। इसी कारण मेरे हृदयमें बड़ा सन्ताप हो रहा है। बार-बार उसीकी चिन्ता होने लगती है, तनिक भी शान्ति नहीं मिलती।"

व्यासजीने कहा—युधिष्ठिर! तुम तो महान् बुद्धिमान् और समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हो। तुम्हारे-जैसे पुरुष सङ्कट पड़नेपर मोहित नहीं होते। अभिमन्यु युद्धमें बहुत-से वीरोंको मारकर प्रौढ़ योद्धाओंके समान पराक्रम दिखाकर स्वर्गलोकमें गया है। भारत! विधाताके विधानको कोई टाल नहीं सकता। मृत्यु तो देवता, गन्धर्व और दानवोंके भी प्राण ले लेती है; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?

युधिष्ठिरने कहा—मुने! ये शूरवीर राजकुमार शत्रुओंके वशमें पड़कर विनाशके मुखमें चले गये। कहते हैं, ये मर गये; किन्तु मुझे सन्देह होता है कि इन्हें 'मर गये' ऐसा क्यों कहा जाता है। मृत्यु किसकी होती है? क्यों होती है? और वह किस प्रकार प्रजाका संहार करती है? तथा कैसे यह जीवको परलोकमें ले जाती है? पितामह! ये सब बातें मुझे बताइये।

व्यासजीने कहा—राजन्! जानकारलोग इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया करते हैं। इसको सुनकर तुम स्नेहबन्धनके कारण होनेवाले दुःखसे छूट जाओगे। यह उपाख्यान समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, शोकनाशक, अत्यन्त मङ्गलकारी तथा वेदाध्ययनके समान पवित्र है। आयुष्मान् पुत्र, राज्य और लक्ष्मी चाहनेवाले द्विजोंको प्रतिदिन प्रातःकाल इस आख्यानका श्रवण करना चाहिये।

प्राचीन कालकी बात है। सत्ययुगमें एक अकम्पन नामके राजा थे। उनपर शत्रुओंने आक्रमण किया। राजाके एक पुत्र था, जिसका नाम था हरि। वह बलमें नारायणके समान था और युद्धमें इन्द्रके समान। उस युद्धमें दुष्कर पराक्रम दिखाकर अन्तमें वह शत्रुओंके हाथसे मारा गया। इससे राजाको बड़ा शोक हुआ। उसके पुत्रशोकका समाचार जानकर देवर्षि नारदजी आये। राजाने उनका यथोचित पूजन करके बैठनेके पश्चात् उनसे कहा—"भगवन्! मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुके समान कान्तिमान् एवं महाबली था। उसको बहुत-से शत्रुओंने मिलकर युद्धमें मार डाला है। अब मैं यह ठीक-ठीक जानना और सुनना चाहता हूँ कि 'यह मृत्यु क्या है? इसका वीर्य, बल और पौरुष कैसा है?"

राजाकी यह बात सुनकर नारदजीने कहा—राजन्! आदिमें सृष्टिके समय पितामह ब्रह्माजीने जब सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की, तो उसका संहार होता न देख उसके लिये वे विचार करने लगे। सोचते-सोचते जब कुछ समझमें न आया तो उन्हें क्रोध आ गया। उनके उस क्रोधके कारण आकाशसे अग्नि प्रकट हुई और वह सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी। भगवान् ब्रह्माने उसी अग्निसे पृथ्वी, आकाश एवं सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को जलाना आरम्भ किया। यह देख रुद्रदेवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। शङ्करजीके आनेपर प्रजाके हितके लिये ब्रह्माजीने कहा—'बेटा! तुम अपनी इच्छासे

उत्पन्न हुए हो और मुझसे अभीष्ट वस्तु पाने योग्य हो। बताओ, तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? तुम्हें जो भी अभीष्ट होगा, उसे पूर्ण करूँगा।'

रुद्रने कहा—प्रभो! आपने नाना प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि की है, किन्तु वे सभी आज आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुझे दया आती है। भगवन्! अब तो उनपर प्रसन्न होइये।

ब्रह्माजीने कहा—पृथ्वीदेवी जगत्के भारसे पीडित हो रही थी, इसीने मुझे संहारके लिये प्रेरित किया। इस विषयमें बहुत विचार करनेपर भी जब कोई उपाय न सूझा, तो मुझे बहुत क्रोध चढ़ आया।

रुद्रने कहा—भगवन्! संहारके लिये आप क्रोध न करें। प्रजापर प्रसन्न हों। आपके क्रोधसे प्रकट हुई आग पर्वत, वृक्ष, नदी, जलाशय, तृण, घास आदि सम्पूर्ण स्थावर-जंगमरूप जगत्को जला रही है। अब आपका क्रोध शान्त हो जाय—यही वरदान मुझे दीजिये। प्रजाके हितके लिये कोई ऐसा उपाय सोचिये, जिससे इन प्राणियोंकी जान बचे।

नारदजी कहते हैं—शङ्करजीकी बात सुनकर ब्रह्माजीने प्रजाका कल्याण करनेके लिये उस अग्निको पुनः अपनेमें लीन कर लिया। उसे लीन करते समय उनकी सब इन्द्रियोंसे एक स्त्री प्रकट हुई। उसका रंग था काला, लाल और पीला। उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र भी लाल थे। ब्रह्माजीने उसे 'मृत्यु' कहकर पुकारा और बताया कि 'मैंने लोकोंका संहार करनेकी इच्छासे क्रोध किया था, उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम मेरी आज्ञासे इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का नाश करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।'

ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा सुनकर वह स्त्री अत्यन्त सोचमें पड़ गयी, फिर फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी आँखोंसे जो आँसू झर रहे थे, उसे ब्रह्माजीने हाथोंमें ले लिया और उसे भी सान्त्वना दी। तब मृत्युने कहा—'भगवन्! आपने मुझे ऐसी स्त्री क्यों बनाया? क्या मैं जान-बूझकर यह अहितकारक कठोर कर्म करूँ? मैं भी पापसे डरती हूँ। मेरे सताये हुए लोग रोयेंगे; उन दुखियोंके आँसुओंसे मुझे बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। मुझे वर दीजिये, मैं आजसे धेनुकाश्रममें जाकर आपकी ही आराधनामें संलग्न हो तीव्र तपस्या करूँगी। रोते-बिलखते लोगोंके प्राण लेनेका काम मुझसे नहीं हो सकेगा। मुझे इस पापसे बचाइये।'

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो! प्रजाका संहार करनेके लिये ही तुम्हारी सृष्टि हुई है। जाओ, सब प्रजाका नाश करती रहो। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा

ही होगा, इसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। इससे तुम्हारी निन्दा नहीं होगी।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह कन्या प्रजाके संहारकी प्रतिज्ञा किये बिना ही तप करनेकी इच्छासे धेनुकाश्रममें चली गयी। वहाँसे पुष्कर, गोकर्ण, नैमिष और मलयाचल आदि तीर्थोंमें जा-जाकर अपनी रुचिके अनुकूल कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीर सुखाने लगी। वह अनन्यभावसे केवल ब्रह्माजीमें ही सुदृढ भक्ति रखती थी। उसने अपने धर्माचरणसे पितामहको प्रसन्न कर लिया।

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न मनसे उससे कहा—'मृत्यो! बताओ तो सही, किसलिये यह अत्यन्त कठोर तप कर रही हो?' मृत्यु बोली—'प्रभो! मैं आपसे यही वर चाहती हूँ कि प्रजाका नाश न करूँ। मुझे अधर्मसे बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये तपमें लगी हूँ। भगवन्! मुझ भयभीत अबलाको आप अभयदान दें। मैं एक निरपराध स्त्री हूँ, बहुत दुःख पा रही हूँ; आपसे कृपाकी भीख माँगती हूँ, मुझे शरण दीजिये।' ब्रह्माजीने कहा, 'कल्याणी! इस प्रजावर्गका संहार करनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा। मेरी बात किसी तरह मिथ्या नहीं हो सकती। इसलिये तुम चार प्रकारकी प्रजाका नाश करो, सनातनधर्म तुम्हें पवित्र बनाये रक्खेगा। लोकपाल, यम तथा तरह-तरहकी व्याधियाँ तुम्हारी सहायिका होंगी। फिर देवतालोग तथा मैं—सभी तुम्हें वरदान देंगे।'

यह सुनकर मृत्युने ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभो! यदि यह कार्य मेरे बिना नहीं हो सकता, तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब एक बात कहती हूँ, उसे सुनिये। लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता तथा परस्पर कटुवचन बोलना—ये नाना प्रकारके दोष ही प्राणियोंकी देहका नाश करें।' ब्रह्माजीने कहा—'मृत्यो! ऐसा ही होगा। तुम्हारे आँसुओं-की बूँदें, जिन्हें मैंने हाथमें ले लिया था, व्याधि बनकर गतायु प्राणियोंका नाश करेंगी। तुम्हें पाप नहीं लगेगा। अतः डरो मत! तुम कामना और क्रोधका त्याग करके सम्पूर्ण जीवोंके प्राणोंका अपहरण करो। ऐसा करनेसे तुम्हें अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। जो मिथ्याके आवरणसे ढके हुए हैं, उन जीवोंको अधर्म ही मारेगा। असत्यसे ही प्राणी अपनेको पापपङ्कमें डुबाते हैं।'

नारदजी कहते हैं—उस मृत्युनामधारिणी स्त्रीने ब्रह्माजीके उपदेशसे तथा विशेषतः उनके शापके भयसे 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। तबसे वह काम और क्रोधको त्यागकर अनासक्तभावसे प्राणियोंका अन्तकाल उपस्थित होनेपर उनके प्राणोंको हर लेती है। यही प्राणियोंकी मृत्यु है, इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। व्याधि कहते हैं रोगको, जिससे जीव रुग्ण हो जाता है। अन्तकाल आनेपर सभी प्राणियोंकी मृत्यु होती है, इसलिये राजन्! तुम व्यर्थ शोक न करो। मरणके पश्चात् सभी प्राणी परलोकमें जाते हैं और वहाँसे इन्द्रियों तथा वृत्तियोंके साथ ही यहाँ लौट आते हैं। देवता भी परलोकमें अपने कर्मभोग पूर्ण करके फिर इस मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। इसलिये तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये। वह वीरोंको प्राप्त होने योग्य रमणीय लोकोंमें पहुँचकर वहाँ स्वर्गीय आनन्दका उपभोग करता है। ब्रह्माजीने मृत्युको प्रजाका संहार करनेके लिये स्वयं ही उत्पन्न किया है; अतः वह समय आनेपर सबका संहार करती ही है। यह जानकर धीर पुरुष मरे हुए प्राणियोंके लिये शोक नहीं करते। यह सारी सृष्टि विधाताकी बनायी हुई है, वे स्वेच्छानुसार इसका उपसंहार करते हैं; इसलिये तुम अपने मरे हुए पुत्रका शोक शीघ्र ही त्याग दो।

व्यासजी कहते हैं—नारदजीकी यह अर्थभरी बात सुनकर राजा अकम्पनने उनसे कहा—'भगवन्! मेरा शोक दूर हुआ, अब मैं प्रसन्न हूँ। आपके मुखसे यह इतिहास सुनकर मैं कृतार्थ हो गया, आपको प्रणाम है।' राजाकी ऐसी सन्तोषपूर्ण वाणी सुनकर देवर्षि नारदजी तुरंत नन्दन-वनको चले गये। राजा युधिष्ठिर! इस उपाख्यानको सुनने-सुनानेसे पुण्य, यश, आयु, धन तथा स्वर्गकी प्राप्ति होती है। महारथी अभिमन्यु युद्धमें धनुष, तलवार, गदा तथा शक्तिसे प्रहार करता हुआ मृत्युको प्राप्त हुआ है। वह चन्द्रमाका निर्मल पुत्र था और पुनः चन्द्रमामें ही लीन हुआ है। इसलिये तुम धैर्य धारण करो और प्रमाद त्यागकर भाइयों-को साथ ले शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

व्यासजीके द्वारा सृञ्जय-पुत्र, मरुत्त, सुहोत्र, शिबि और रामके परलोकगमनका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—मुनिवर! प्राचीन कालके पुण्यात्मा, सत्यवादी एवं गौरवशाली राजर्षियोंके कर्मोंका वर्णन करते हुए पुनः अपने यथार्थ वचनोंसे मुझे सान्त्वना दीजिये।

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें एक शैब्य नामक राजा थे, उनके पुत्रका नाम था सृञ्जय। जब सृञ्जय राजा हुआ तो उसकी देवर्षि नारद और पर्वत—दो ऋषियोंसे मित्रता हो गयी। एक समयकी बात है, वे दोनों ऋषि राजा सृञ्जयसे मिलनेके लिये उसके घर आये। राजाने उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया और वे भी बड़ी प्रसन्नताके साथ सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

सृञ्जयको पुत्रकी अभिलाषा थी, उसने अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंकी बड़ी सेवा की। वे ब्राह्मण वेद-वेदाङ्गके ज्ञाता एवं तप और स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले थे। राजाकी शुश्रूषासे प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणोंने नारदजीसे कहा—'भगवन्! आप राजा सृञ्जयको उनकी इच्छाके अनुसार पुत्र प्रदान करें।' नारदजीने 'तथास्तु' कहकर सृञ्जयसे कहा—'राजर्षे! ब्राह्मणलोग आपपर प्रसन्न हैं और आपको पुत्र देना चाहते हैं। अतः आपका कल्याण हो, आप जैसा पुत्र चाहते हों, उसके लिये वर माँग लें।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन्! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो यशस्वी, तेजस्वी और शत्रुओंको दबानेवाला हो तथा जिसके मल, मूत्र, थूक और पसीने भी सुवर्णमय हों।' राजाको ऐसा ही पुत्र हुआ। उसका नाम पड़ा सुवर्णष्ठीवी। उक्त वरदानसे राजाके घर निरन्तर धन बढ़ने लगा। उन्होंने अपने महल, चहारदिवारी, किले, ब्राह्मणोंके घर, पलंग, बिछौने, रथ और भोजनपात्र आदि सभी आवश्यक सामग्रियोंको सोनेका ही बनवा लिया। कुछ कालके पश्चात् राजाके महलमें लुटेरे घुसे और राजकुमार सुवर्णष्ठीवीको बलपूर्वक पकड़कर जंगलमें ले गये। सुवर्ण पानेका उपाय तो उन्हें ज्ञात नहीं था, इसलिये उन मूर्खोंने राजकुमारको मार डाला। फिर उसका शरीर फाड़कर देखा, किन्तु कुछ भी धन नहीं मिला। जब उसके प्राण निकल गये, तो वह धन प्राप्त करानेवाला वरदान भी नष्ट हो गया। बेवकूफ डाकू उस अद्भुत राजकुमारको मारकर स्वयं भी आपसमें लड़-भिड़कर नष्ट हो गये। अन्तमें वे पापी असंभाव्य नामक नरकमें पड़े।

राजा अपने मरे हुए पुत्रको देखकर बहुत दुखी हुआ और बड़ी करुणाके साथ विलाप करने लगा। यह समाचार पाकर देवर्षि नारदजीने वहाँ दर्शन दिया और कहा—'सृञ्जय! अपनी अपूर्ण कामनाएँ लिये तुम भी तो एक दिन मरोगे, फिर दूसरेके लिये इतना शोक क्यों? औरोंकी तो बात ही क्या है, अविक्षित्के पुत्र राजा मरुत्त भी जीवित नहीं रह सके। बृहस्पतिसे लाग-डाँट होनेके कारण संवर्तने राजा मरुत्तसे यज्ञ कराया था। भगवान् शङ्करने राजर्षि मरुत्तको सुवर्णका एक गिरि-शिखर प्रदान किया था। इनकी यज्ञशालामें इन्द्र आदि देवता, बृहस्पति तथा समस्त प्रजापतिगण विराजमान थे। यज्ञका सारा सामान सोनेका बना हुआ था। इनके यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको दूध, दही, घी, मधु, रुचिकर भक्ष्य-भोज्य तथा इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी दिये जाते थे। मरुत्तके घरमें मरुत् (पवन) देवता रसोई परोसनेका काम करते थे और विश्वेदेव सभासद् थे। उन्होंने देवता, ऋषि और पितरोंको हविष्य, श्राद्ध तथा स्वाध्यायके द्वारा तृप्त किया था। शय्या, आसन, जलपात्र तथा सुवर्णराशि—यह अपार धन उन्होंने ब्राह्मणोंको स्वेच्छासे दान कर दिया था। इन्द्र भी उनका भला चाहते थे, उनके राज्यमें प्रजाको रोग-व्याधि नहीं सताती थी। वे बड़े श्रद्धालु थे और शुभकर्मोंसे जीते हुए अक्षय पुण्यलोकोंको प्राप्त हुए थे। राजा मरुत्तने तरुणावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्मपत्नी, पुत्र और भाइयोंके साथ एक हजार वर्षतक राज्यशासन किया था। सृञ्जय! ऐसे प्रतापी राजा भी, जो तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बहुत बढ़-चढ़कर थे, यदि मृत्युसे नहीं बच सके तो तुम्हें भी अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

नारदजीने पुनः कहा—राजा सुहोत्रकी भी मृत्यु सुनी गयी है। वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे, देवता भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते थे। वे प्रजाका पालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंपर विजय पाना—इन सबको कल्याणकारी समझते थे। धर्मसे देवताओंकी आराधना करते, बाणोंसे शत्रुओंपर विजय पाते और अपने गुणोंसे समस्त प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने म्लेच्छ और लुटेरोंका नाश करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य किया था। उनकी प्रसन्नताके लिये बादलोंने अनेकों वर्षोंतक उनके राज्यमें सुवर्णकी वर्षा की थी। वहाँ सुवर्णरसकी नदियाँ

बहती थीं। उनमें सोनेके मगर और मछलियाँ रहती थीं। मेघ अभीष्ट वस्तुओंकी वर्षा करते थे। राज्यमें एक-एक कोसकी लंबी-चौड़ी बावलियाँ थीं, उनमें भी सुवर्णमय मगर और कछुए थे। उन सबको देखकर राजाको आश्चर्य होता था। उन्होंने कुरुजांगल देशमें यज्ञ किया और वह अपार

सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको बाँट दी। राजा सुहोत्र-ने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा बहुत-सी दक्षिणावाले अनेकों क्षत्रिययज्ञों और नित्य-नैमित्तिक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। सृञ्जय! वे सुहोत्र भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा श्रेष्ठ थे, किन्तु मृत्युने उन्हें भी नहीं छोड़ा। ऐसा सोचकर तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

नारदजी फिर कहने लगे—राजन्! जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी भाँति लपेट लिया था, वे उशीनरपुत्र राजा शिवि भी मरे थे। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये थे। उन्होंने दस अरब अशर्फियाँ दान की थीं। साथ ही हाथी, घोड़े, पशु, धान्य, मृग, गौ, बकरे, भेड़ आदिके सहित अनेकों भूखण्ड ब्राह्मणोंके अधीन किये थे। बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखायी देते हैं, गङ्गाके किनारे जितने बालूके कण हैं, मेरुपर्वतपर जितने शिलाओंके टुकड़े हैं और समुद्रमें जितने रत्न एवं जलचर जीव हैं, उतनी गौएँ शिबिने ब्राह्मणोंको दानमें दी थीं। प्रजापतिने भी शिबिके समान महान् कार्यभारको वहन करनेवाला कोई दूसरा महापुरुष भूत, भविष्य और वर्तमानमें भी नहीं देखा। उन्होंने कई यज्ञ किये, जिनमें प्रार्थियोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं। उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, गृह, चहारदिवारी और बाहरी दरवाजा—ये सब वस्तुएँ सुवर्णकी बनी थीं। यज्ञके बाड़ेमें दूध-दहीके बड़े-बड़े कुण्ड भरे रहते थे तथा

नदियाँ बहती रहती थीं। शुद्ध अन्नके पर्वतोंके समान ढेर लगे

रहते थे। वहाँ सबके लिये घोषणा की जाती थी कि 'सज्जनो! स्नान करो और जिसकी जैसी रुचि हो, उसके अनुसार अन्न-पान लेकर खाओ, पीओ।' भगवान् शिवने राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर यह वर दिया था—'राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा। इसी प्रकार तुम्हारी श्रद्धा, सुयश और पुण्यकर्म अक्षय होंगे। तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सभी प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होगी।'

इन उत्तम वरोंको प्राप्त करके राजा शिबि समय आनेपर दिव्य लोकको चले गये। वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे भी बढ़कर पुण्यात्मा थे। जब वे भी मृत्युसे नहीं बच सके, तो तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

सृञ्जय! जो प्रजापर पुत्रके समान प्रेम रखते थे, वे दशरथनन्दन राम भी परमधामको चले गये। वे अत्यन्त तेजस्वी थे और उनमें असंख्य गुण थे। अपने पिताकी आज्ञासे उन्होंने धर्मपत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ चौदह वर्षतक वनवास किया था। जनस्थानमें रहकर तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंका वध किया। वहाँ रहते समय ही लक्ष्मणसहित रामको मोहमें डालकर रावण नामक राक्षसने उनकी पत्नी सीताको हर लिया। यद्यपि रावण देवता और दैत्योंसे भी अवध्य था, फिर भी साथ ही ब्राह्मण और देवताओंके लिये कण्टकरूप था, किन्तु रामने उसे उसके साथियोंसहित मार डाला। देवताओंने उनकी स्तुति की, सारे संसारमें उनकी कीर्ति फैल गयी, देवता और ऋषि उनकी सेवामें रहने लगे। उन्होंने विशाल साम्राज्य पाकर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया की। धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया।

श्रीरामचन्द्रजीने भूख और प्यासको जीत लिया था। सम्पूर्ण देहधारियोंके रोगोंको नष्ट कर दिया था। वे कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न थे और सदा अपने तेजसे प्रकाशमान रहते थे। सब प्राणियोंसे अधिक तेजस्वी थे। रामके शासन-कालमें इस पृथ्वीपर देवता, ऋषि और मनुष्य एक साथ रहते थे। उनके राज्यमें प्राणियोंके प्राण, अपान और समान आदि प्राण क्षीण नहीं होते थे। उस समय सबकी आयु बड़ी होती थी। कोई नौजवान नहीं मरता था। देवता और पितर वेदोंकी विधियोंसे प्रसन्न होकर हव्य-कव्यको ग्रहण करते थे। रामके राज्यमें डाँस-मच्छरोंका नाम नहीं था। जहरीले साँप नष्ट हो चुके थे। न कोई पानीमें डूबकर मरता था और न असमयमें आग ही किसीको जलाती थी। उस समयके लोग अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे। सभी वर्णोंके लोग शिष्ट, बुद्धिमान् और अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले थे।

जनस्थानमें राक्षसोंने जो पितरों और देवताओंकी पूजा नष्ट कर दी थी, उसे भगवान् रामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया। उस समय एक-एक मनुष्यके हजार-हजार सन्तानें होती थीं और उनकी आयु भी एक-एक सहस्र वर्षकी हुआ करती थी। बड़ोंको अपनेसे छोटोंका श्राद्ध नहीं करना पड़ता था। भगवान् रामकी श्यामसुन्दर छवि, तरुण अवस्था और कुछ अरुणाई लिये विशाल आँखें थीं। भुजाएँ सुन्दर तथा घुटनोंतक लंबी थीं। सिंहके समान कंधे थे। उनकी झाँकी सभी जीवोंका मन मोहनेवाली थी। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया था। उस समयके लोगोंकी जबानपर केवल रामका ही नाम था। अन्तमें अपने और भाइयोंके अंशरूप दो-दो पुत्रोंके द्वारा आठ प्रकारके राजवंशकी स्थापना करके उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको साथ ले सदेह परमधामको गमन किया। सृञ्जय!

तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा श्रेष्ठ वे राम भी यदि यहाँ नहीं रह सके, तो तुम अपने पुत्रके लिये क्यों शोक करते हो?

भगीरथ, दिलीप, मान्धाता, ययाति, अम्बरीष और शशबिन्दुकी मृत्युका दृष्टान्त

नारदजीने पुनः कहा—सृञ्जय ! राजा भगीरथकी भी मृत्यु होनेकी बात सुनी गयी है। उन्होंने यज्ञ करते समय गङ्गाके दोनों किनारोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनवाये थे तथा सोनेके आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ ब्राह्मणोंको दान की थीं । सभी कन्याएँ रथोंमें बैठी थीं, सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते थे । प्रत्येक रथके पीछे सौ-सौ हाथी सुवर्णकी मालाएँ पहने चलते थे । एक-एक हाथीके पीछे हजार-हजार घोड़े, प्रत्येक घोड़ेके साथ सौ-सौ गौएँ और गौओंके पीछे बकरी और भेड़ोंके झुंड थे। इस प्रकार उन्होंने बहुत-सी दक्षिणा दी थी। गङ्गाजी भीड़-भाड़से घबराकर 'मेरी रक्षा करो' कहती हुई भगीरथकी गोदमें जा बैठीं। इससे वे उनकी पुत्री हुईं और उनका नाम भागीरथी पड़ा । गङ्गादेवीने भी उन्हें पिता कहकर पुकारा था । जिस ब्राह्मणने जब-जब जिस-जिस अभीष्ट वस्तुकी इच्छा की, जितेन्द्रिय राजाने प्रसन्नतापूर्वक वह-वह वस्तु उसे तत्काल अर्पण की। राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए । सृञ्जय ! वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा बढ़े-चढ़े थे । जब वे भी यहाँ नहीं रह सके तो औरोंकी तो बात ही क्या है ? इसलिये तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये ।
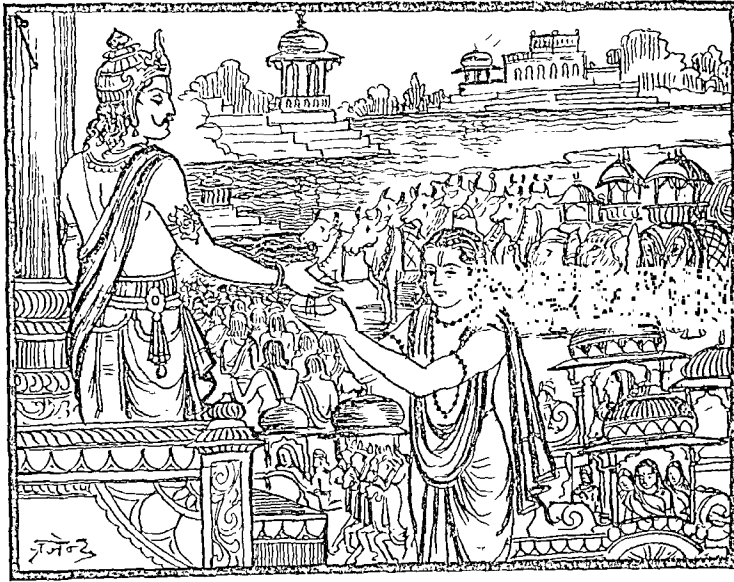
इलविलाके पुत्र राजा दिलीप भी मरे थे, जिनके सौ यज्ञोंमें लाखों तत्त्वज्ञानी एवं याज्ञिक ब्राह्मण नियुक्त हुए थे । उन्होंने यज्ञ करते समय धन-धान्यसे सम्पन्न यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। राजा दिलीपके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं । इन्द्र आदि देवता उन्हें धर्मके समान मानकर उनके यज्ञमें पधारे थे। उनका सुवर्णमय सभाभवन सदा देदीप्यमान रहता था । वहाँ रसकी नदियाँ बहती थीं, अन्नके

पहाड़ लगे हुए थे। सोनेके बने हुए हजारों यूप थे। वहाँ गन्धर्वराज विश्वावसु बड़ी प्रसन्नताके साथ वीणा बजाते थे। सभी प्राणी उन सत्यवादी राजाका सम्मान करते थे। एक बात उनके यहाँ सबसे अद्भुत थी, जो अन्य राजाओंके यहाँ नहीं है—राजा दिलीप युद्ध करते समय जलमें भी जाते तो उनके रथके पहिये नहीं डूबते थे। उन सत्यवादी तथा उदार नरेशका जो दर्शन कर लेते थे, वे भी स्वर्गलोकके अधिकारी हो जाते थे। खट्वांग (दिलीप) के घर ये पाँच प्रकारके शब्द कभी बंद नहीं होते थे—स्वाध्याय-की आवाज़, धनुषकी टङ्कार और अतिथियोंके लिये 'खाओ, पीओ तथा भिक्षा ग्रहण करो'—इन तीन वाक्योंकी घोषणा। सृञ्जय! वे राजा तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बहुत बढ़-चढ़कर थे, किन्तु वे भी जीवित नहीं रह सके। फिर तुम अपने पुत्रके लिये क्यों शोक करते हो?

युवनाश्वके पुत्र मान्धाताकी भी मृत्यु सुनी गयी है। वे देवता, असुर और मनुष्य—तीनों लोकोंमें विजयी थे। एक समयकी बात है, राजा युवनाश्व वनमें शिकार खेलने गये। वहाँ उनका घोड़ा थक गया और उन्हें भी बहुत प्यास लगी। इतनेमें उन्हें दूरसे धूआँ दिखायी पड़ा, उसीको लक्ष्य करके वे यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे। वहाँ एक पात्रमें घृतमिश्रित जल रक्खा हुआ था; राजाने उसे पी लिया। पेटमें जाते ही वह मन्त्रपूत जल बालकके रूपमें परिणत हो गया। इसके लिये वैद्यशिरोमणि अश्विनीकुमार बुलाये गये। उन्होंने उस गर्भसे बालकको निकाला। वह देवताके समान तेजस्वी था। उसे अपने पिताकी गोदमें शयन करते देख देवताओंने आपसमें कहा—'यह किसका दूध पियेगा?' यह सुनकर इन्द्रने सबसे पहले कहा—'मां धाता—मेरा दूध पियेगा।'

उसी समय इन्द्रकी अँगुलियोंसे घी और दूधकी धारा बहने लगी। चूँकि इन्द्रने दयावशीभूत होकर 'मां धाता' कहा था, इसलिये उसका नाम मान्धाता पड़ गया। इन्द्रके हाथसे घी और दूधको पीकर वह प्रतिदिन बढ़ने लगा। बारह दिनोंमें ही वह बालक बारह वर्षका-सा हो गया। राजा होनेपर मान्धाताने सम्पूर्ण पृथ्वीको एक ही दिनमें जीत लिया था। वे धर्मात्मा, धैर्यवान्, वीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। उन्होंने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया था। सूर्य जहाँसे उदय होते थे और जहाँ जाकर अस्त होते थे, वह सब-का-सब क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका राज्य कहलाता था।

मान्धाताने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे। उन्होंने सौ योजनोंके विस्तारका मत्स्यदेश ब्राह्मणोंको दे दिया था। उनके यज्ञमें मधु तथा दूध बहानेवाली नदियाँ अन्नके पर्वतोंको चारों ओरसे घेरकर बहती थीं। उन नदियोंके भीतर घीके कई कुण्ड थे। दही उनके फेन-सा दिखायी देता था। गुड़का रस ही उनका जल था। उस राजाके यज्ञमें देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, पक्षी, ऋषि तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण पधारे थे। मूर्ख तो वहाँ एक भी नहीं था। उन्होंने धन-धान्यसे सम्पन्न समुद्रतककी पृथ्वी ब्राह्मणोंके अधीन कर दी थी और फिर समय आनेपर वे स्वयं भी इस लोकसे अस्त हो गये थे। सम्पूर्ण दिशाओंमें अपना सुयश फैलाकर वे पुण्यवानोंके लोकमें पहुँच गये। सृञ्जय! वे भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा श्रेष्ठ थे। जब वे भी मृत्युसे नहीं बच सके तो दूसरोंकी क्या बात है! अतः तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

नहुषनन्दन ययातिकी भी मृत्यु सुनी गयी है। उन्होंने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजपेय यज्ञ, हजार अतिरात्र याग तथा चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये थे और इनमें ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी थी। परमपवित्र सरस्वती नदीने, समुद्रोंने तथा पर्वतोंसहित अन्यान्य सरिताओंने यज्ञ करनेवाले ययातिको घी और दूध प्रदान किया था। नाना प्रकारके यज्ञोंसे परमात्माका पूजन करके उन्होंने पृथ्वीके चार भाग किये और उन्हें ऋत्विज्, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता—इन चारोंको बाँट दिया। फिर देवयानी और शर्मिष्ठासे उत्तम सन्तानें उत्पन्न कीं। जब भोगोंसे उन्हें शान्ति नहीं मिली तो निम्नाङ्कित गाथाका गान कर उन्होंने अपनी धर्मपत्नीके साथ वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश किया। वह गाथा इस प्रकार है—'इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक मनुष्यको भी सन्तोष करानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा विचारकर मनको शान्त करना चाहिये।'

इस प्रकार राजा ययातिने धैर्यके साथ कामनाओंका त्याग किया और अपने पुत्र पूरुको राजसिंहासनपर बिठाकर वे वनमें चले गये। सृञ्जय! वे भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बढ़े-चढ़े थे। जब वे भी मर गये, तो तुम्हें भी अपने मरे हुए पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

सुना है, नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्युको प्राप्त हुए थे। उन्होंने अकेले ही दस लाख योद्धाओंसे युद्ध किया था। एक समयकी बात है, राजाके शत्रुओंने उन्हें

युद्धमें जीतनेकी इच्छासे आकर चारों ओरसे घेर लिया। वे सब-के-सब अस्त्रयुद्धके ज्ञाता थे और राजाके प्रति अशुभ वचनोंका प्रयोग कर रहे थे। तब अम्बरीषने अपने शरीर-बल, अस्त्रबल, हस्तलाघव और युद्धसम्बन्धी शिक्षाके द्वारा शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा और रथोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर तो वे अपने प्राण बचानेके लिये प्रार्थना करने लगे और 'हम आपकी शरणमें हैं' ऐसा कहते हुए उनके शरणागत हो गये। इस प्रकार उन शत्रुओंको वशीभूत करके सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उन यज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा दूसरे लोग भी सब प्रकारसे सम्पन्न उत्तम अन्न भोजन करके अत्यन्त तृप्त हुए थे तथा राजाने भी सबका बहुत सत्कार किया था। साथ ही उन्होंने बहुत अधिक मात्रामें दक्षिणा दी थी। अनेकों मूर्धाभिषिक्त राजाओं और सैकड़ों राजकुमारोंको दण्ड तथा कोषसहित उन्होंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया था। महर्षिलोग उनपर प्रसन्न होकर कहते थे कि 'असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ करते हैं, वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे कोई करेंगे।' सृञ्जय! वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बहुत बढ़-चढ़कर थे; जब वे भी मृत्युके वशमें पड़ गये, तो तुम्हें अपने मरे हुए पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

सुना है, जिन्होंने नाना प्रकारके यज्ञ किये थे, वे राजा शशबिन्दु भी मर गये। उनके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। सभी राजकुमार पराक्रमी, वेदोंके विद्वान् और उत्तम धनुष धारण करनेवाले थे। सबने अश्वमेध यज्ञ किये थे। राजा शशबिन्दुने अपने उन कुमारोंको अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणोंको दे दिया था। प्रत्येक राजपुत्रके पीछे सुवर्णभूषित सौ-सौ कन्याएँ थीं, एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी, प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ, हर एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े, प्रत्येक घोड़ेके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा प्रत्येक गौके पीछे पचास-पचास भेड़ें थीं। यह अपार धन राजा शशबिन्दुने अपने महायज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था। उस यज्ञमें कोसोंतक पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे थे। राजाका अश्वमेध यज्ञ पूरा हो जानेपर अन्नके तेरह पर्वत बच गये थे। उनके राज्यकालमें इस पृथ्वीपर हृष्ट-पुष्ट मनुष्य रहते थे, यहाँ कोई विघ्न नहीं था, कोई रोग नहीं था। बहुत समयतक राज्यका उपभोग करके अन्तमें वे दिव्यलोकको प्राप्त हुए। सृञ्जय! वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बहुत बढ़-चढ़कर थे; जब वे भी नहीं रह सके, तो तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।
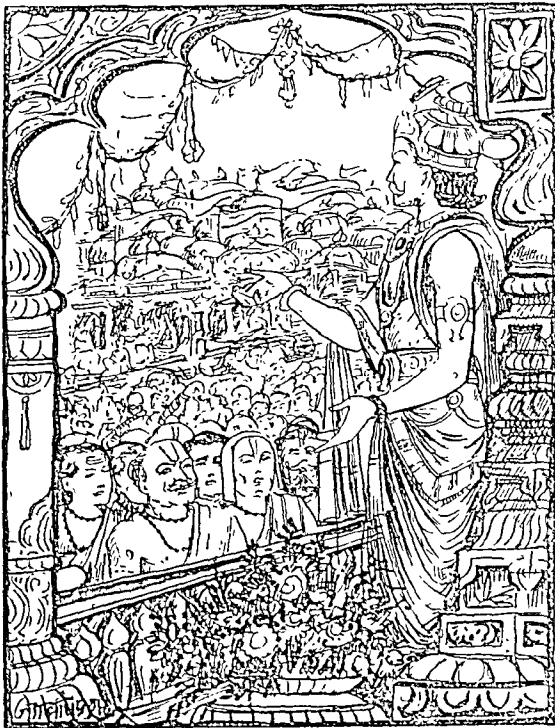
राजा गय, रन्तिदेव, भरत और पृथुकी कथा और युधिष्ठिरकी शोक-निवृत्ति

नारदजी कहते हैं—राजा अमूर्तरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गयी है। उन्होंने सौ वर्षतक अग्निहोत्र किया था और प्रतिदिन होमावशिष्ट अन्नका ही वे भोजन किया करते थे। इससे अग्निदेवने प्रसन्न होकर राजाको वर माँगनेके लिये कहा। तब गयने यह वरदान माँगा—'मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजनोंकी कृपासे वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना अपने धर्मके अनुसार चलकर अक्षय धन पाना चाहता हूँ। प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान दूँ और इस कार्यमें मेरी अधिकाधिक श्रद्धा बढ़े। अपने वर्णकी कन्यासे मेरा विवाह हो, वह पतिव्रता रहे और उसीके गर्भसे मेरे पुत्र उत्पन्न हों। अन्नदानमें मेरी श्रद्धा बढ़े तथा धर्ममें ही मन लगा रहे। मेरे धर्म-कार्यमें कभी कोई विघ्न न आवे।'

'ऐसा ही होगा' यह कहकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। राजा गयको उनकी सभी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हुईं और उन्होंने धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पायी। सौ वर्ष-तक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास, आग्रयण तथा चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये और उनमें प्रचुर दक्षिणा दी। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार घोड़े तथा एक लाख अशर्फियाँ दान करते थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञमें मणिमय रेतवाली सोनेकी पृथ्वी बनाकर ब्राह्मणोंको दान की थी। समुद्र, नदी, नद, वन, द्वीप, नगर, राष्ट्र, आकाश तथा स्वर्गमें जो नाना प्रकारके प्राणी रहते हैं, वे सब उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहते थे—'राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है।' उन्होंने छत्तीस योजन लंबी और तीस योजन चौड़ी चौबीस सुवर्णमयी वेदियाँ बनवायी थीं। ये पूर्वसे पश्चिमके क्रमसे बनी थीं। वेदियोंपर मोती और हीरे बिछे हुए थे। ये सब वस्त्र और आभूषणोंके साथ ब्राह्मणोंको दान की गयीं। यज्ञके अन्तमें भोजनसे बचे हुए अन्नके पचीस पर्वत शेष रह गये थे। यज्ञमें रसकी नदियाँ बहती थीं। कहीं वस्त्रोंके ढेर लगे थे तो कहीं आभूषणोंके। सुगन्धित पदार्थों-की राशि भी देखी जाती थी। उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गये। साथ ही पुण्यको अक्षय करनेवाला अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मसर भी उनके कारण विख्यात हो गये। सृञ्जय! वे राजा गय तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा बढ़-चढ़कर थे; जब वे भी जीवित नहीं रह सके, तो तुम भी पुत्रके लिये शोक न करो।

सुना है, संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रहे। उनके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घरपर आये हुए अतिथि ब्राह्मणोंको सुधाके समान मीठी, कच्ची और पक्की रसोई तैयार करके जिमाते थे। राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें सुवर्णके साथ हजारों बैल दान करते थे। एक-एक बैलके साथ सौ-सौ गौएँ होती थीं। साथ ही, आठ-आठ सौ स्वर्णमुद्राएँ दी जाती थीं। इनके साथ यज्ञ और अग्नि-होत्रके सामान भी होते थे। यह नियम उन्होंने सौ वर्षतक चलाया था। वे ऋषियोंको कमण्डलु, घड़े, बटलोई, पिठर, शय्या, आसन, सवारी, महल, मकान, वृक्ष तथा अन्न-धन दिया करते थे। वे सब वस्तुएँ सोनेकी ही होती थीं। रन्तिदेवकी वह अलौकिक समृद्धि देखकर पुराणवेत्ताओंने इस प्रकार उनका यशोगान किया है—'हमने कुबेरके घरोंमें भी रन्तिदेवके समान धनका भरा-पूरा भंडार नहीं देखा, फिर मनुष्योंके यहाँ तो हो ही कैसे सकता है!' उनके यहाँ जो कुछ था, सब सोनेका ही था। उसे भी उन्होंने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दान कर दिया। उनके दिये हुए हव्य और कव्यको देवता तथा पितर प्रत्यक्ष ग्रहण करते

थे। ब्राह्मणोंकी सब कामनाएँ उनके यहाँ पूर्ण होती थीं। सृञ्जय! वे भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ थे; जब उनकी भी मृत्यु हो गयी, तो तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।
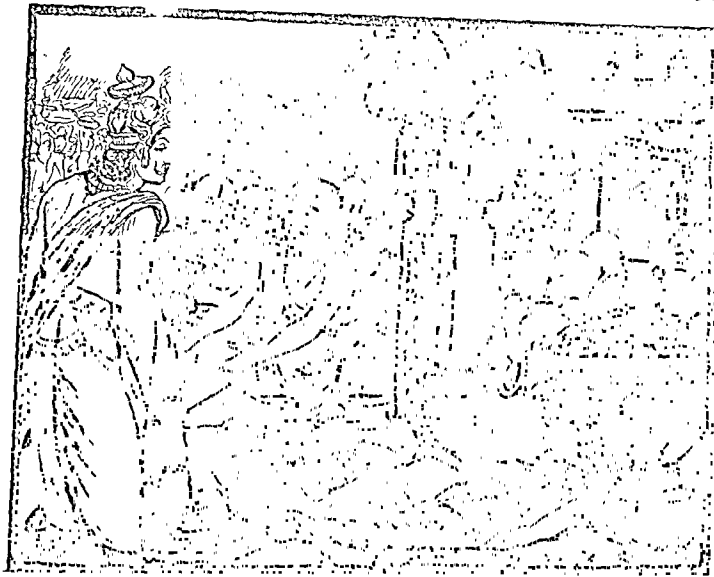
सुना है, दुष्यन्तके पुत्र भरत भी मृत्युको प्राप्त हुए थे। भरतने वनमें रहकर बचपनमें ही ऐसा पराक्रम दिखाया था, जो दूसरोंके लिये कठिन है। वे जब बच्चे थे, बड़े-बड़े सिंहोंको वेगसे दबाकर बाँध लेते और उन्हें घसीटते रहते थे। अजगरोंके दाँत तोड़ लेते और भागते हुए हाथियोंके दाँत पकड़कर उन्हें अपने वशमें कर लेते थे। सौ-सौ सिंहोंको एक साथ पकड़कर घसीटते थे। उन्हें सब जीवोंका इस प्रकार दमन करते देख ब्राह्मणोंने इनका नाम 'सर्वदमन' रख दिया।

राजा भरतने यमुना-तटपर सौ, सरस्वतीके कूलपर तीन सौ और गङ्गाके किनारे चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। तदनन्तर उन्होंने पुनः एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये, जिनमें उत्तम दक्षिणा दी गयी थी। फिर अग्निष्टोम, अतिरात्र और विश्वजित् याग करके दस लाख वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया। शकुन्तलानन्दनने इन सब यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर सन्तुष्ट किया। सृञ्जय! भरत भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा श्रेष्ठ थे; जब वे भी मर गये, तो तुम्हें अपने पुत्रके लिये सन्ताप नहीं करना चाहिये।

महर्षियोंने राजसूय यज्ञमें जिन्हें 'सम्राट्' पदपर अभिषिक्त किया था, वे महाराज पृथु भी मृत्युको प्राप्त हुए। उन्होंने बड़े यत्नसे इस पृथ्वीको खेतीके योग्य बनाकर प्रथित (प्रसिद्ध) किया, इसलिये उनका नाम 'पृथु' हो गया। पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु बन गयी थी, इसपर बिना जोते ही खेती होती थी। उस समय सभी गौएँ कामधेनुके समान थीं। पत्ते-पत्तेसे मधुकी वर्षा होती थी। कुश सुवर्णमय होते थे, साथ ही सुखद और कोमल भी। इसलिये प्रजा उनके ही वस्त्र बुनकर पहनती और उन्हींपर शयन भी करती थी। वृक्षोंके फल अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट होते थे। प्रजा इनका ही आहार करती। कोई भी भूखा नहीं रहता था। सभी नीरोग थे, सबकी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और किसीको कहींसे भी भय नहीं था। इसलिये लोग अपनी रुचिके अनुसार पेड़ोंके नीचे या गुफाओंमें निवास करते थे। उस समय राष्ट्रों और नगरोंका विभाग नहीं था। सभी मनुष्य सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न थे।

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते, तो पानी थम जाता

था और पर्वत उन्हें मार्ग देते थे। उनके रथकी ध्वजा कभी नहीं टूटी। एक बार उनके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सप्तर्षि, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा तथा पितरोंने आकर कहा—'महाराज! आप ही हमारे सम्राट् हैं, आप ही हमें कष्टसे बचानेवाले हैं तथा आप ही हमारे राजा, रक्षक और पिता हैं। आप हमें अभीष्ट वरदान दें, जिससे हमलोग अनन्त कालतक तृप्ति और सुखका अनुभव करें।' यह सुनकर राजाने कहा—'ऐसा ही होगा।'

तदनन्तर राजा पृथुने नाना प्रकारके यज्ञ किये और मनोवाञ्छित भोगोंके द्वारा समस्त प्राणियोंकी कामनाएँ पूर्णकर उन्हें तृप्त किया। पृथ्वीपर जो कुछ भी पदार्थ हैं, उनके ही आकारके सुवर्णके पदार्थ बनवाकर राजाने अश्वमेध यज्ञमें उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया। उन्होंने छाछठ हजार सोनेके हाथी बनवाकर ब्राह्मणोंको दान किये थे। सोनेकी पृथ्वी भी बनवायी

और उसे मणियोंसे विभूषित करके दान कर दिया। सृञ्जय! वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ थे; किन्तु जब वे भी मृत्युसे नहीं बच सके, तो तुम्हें भी अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इन राजाओंका उपाख्यान सुनकर सृञ्जय कुछ भी नहीं बोला, मौन रह गया। उसे इस प्रकार चुपचाप बैठे देख नारदजीने कहा, 'राजन्! मैंने जो कुछ कहा, उसे सुना न? कुछ समझमें आया या नहीं? जैसे शूद्र जातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको कराया हुआ श्राद्ध-भोजन नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह सारा कहना व्यर्थ तो नहीं हो गया?' उनके ऐसा कहनेपर सृञ्जयने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! प्राचीन राजर्षियोंका यह उत्तम उपाख्यान सुनकर मेरा सम्पूर्ण शोक दूर हो गया। अब मेरे हृदयमें तनिक भी व्यथा नहीं है। बताइये, अब मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'

नारदजीने कहा—बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया; अब तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।

सृञ्जयने कहा—आप मुझपर प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मुझे पूरा सन्तोष है। जिसपर आप प्रसन्न हों, उसके लिये इस जगत्‌में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है।

नारदजीने कहा—लुटेरोंने तुम्हारे पुत्रको पशुकी भाँति व्यर्थ ही मार डाला है, वह नरकमें पड़ा कष्ट पा रहा है; अतः मैं उसे नरकसे निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ।

व्यासजीने कहा—इतना कहते ही, वह अद्भुत कान्तिवाला सृञ्जयका पुत्र वहाँ प्रकट हो गया। उससे मिलकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। सृञ्जयका पुत्र अपने धर्मके पालनद्वारा कृतार्थ नहीं हुआ था, उसने डरते-डरते प्राण-त्याग किया था; इसलिये नारदजीने उसे पुनः जीवित कर दिया। परन्तु अभिमन्यु तो शूरवीर और कृतार्थ था; उसने रणाङ्गणमें हजारों शत्रुओंको मौतके घाट उतारकर सामना करते हुए प्राण-त्याग किया है। योगी, निष्काम भावसे यज्ञ करनेवाले और तपस्वी पुरुष जिस उत्तम गतिको पाते हैं, तुम्हारे पुत्रने भी वही अक्षय गति प्राप्त की है। अभिमन्यु चन्द्रमाके स्वरूपको प्राप्त हुआ है, वह वीर अपनी अमृतमयी किरणोंसे प्रकाशमान हो रहा है; उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार सोच-समझकर तुम धैर्य धारण करो। शोक करनेसे तो दुःख ही बढ़ता है; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शोकका परित्याग करके अपने कल्याणके लिये प्रयत्न करे। तुमने मृत्युकी उत्पत्ति और उसकी अनुपम तपस्याकी बात सुनी ही है। मृत्युके लिये सब प्राणी एक-से हैं। ऐश्वर्य चञ्चल है। यह बात सृञ्जयके पुत्रके मरण और पुनरुज्जीवनकी कथासे स्पष्ट हो

जाती है । इसलिये राजा युधिष्ठिर ! अब तुम शोक न करो ।

यह कहकर भगवान् व्यास वहाँसे अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने प्राचीन राजाओंकी यज्ञसम्पत्ति सुनकर मन-ही-मन उनकी प्रशंसा की और शोक त्याग दिया । फिर यह सोचकर कि 'अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा ?' चिन्तामें पड़ गये ।

अर्जुनका विषाद और जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उस दिन जब सूर्य-नारायण अस्त हो गये, प्राणियोंका घोर संहार बंद हुआ तथा सभी सैनिक अपनी-अपनी छावनीको जाने लगे, उसी समय अर्जुन भी अपने दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तकोंका वध करके रथपर बैठ शिविरकी ओर चले । चलते-चलते ही वे भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'केशव ! न जाने क्यों आज मेरा हृदय

धड़क रहा है, सारा शरीर शिथिल हो रहा है । कोई अनिष्ट अवश्य हुआ है, यह बात हृदयसे निकलती ही नहीं । पृथ्वीपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले भयङ्कर उत्पात मुझे डरा रहे हैं । कहिये, मेरे पूज्य भ्राता राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल तो होंगे ?'

श्रीकृष्णने कहा—शोक न करो, मन्त्रियोंसहित तुम्हारे भाईका तो कल्याण ही होगा । इस अपशकुनके अनुसार कोई दूसरा ही अनिष्ट हुआ होगा ।

तदनन्तर दोनों वीरोंने सन्ध्योपासना की और फिर रथपर बैठकर युद्धसम्बन्धी बातें करते हुए आगे बढ़े । जब छावनीके पास पहुँचे, तो उसे आनन्दरहित और श्रीहीन देखा । तब वे चिन्तित होकर श्रीकृष्णसे कहने लगे—'जनार्दन ! आज इस शिविरमें माङ्गलिक बाजे नहीं बज रहे हैं । न दुन्दुभिका निनाद है, न शङ्खकी ध्वनि । आज वीणा भी नहीं बजती, मङ्गलगीत नहीं गाये जाते । वंदीजन न स्तुति करते हैं न पाठ । मेरे सैनिक मुझे देखकर नीचे मुँह किये चल देते हैं । इन स्वजनोंको व्याकुल देखकर मेरे हृदयका खटका नहीं मिटता । आज प्रतिदिनकी भाँति सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हँसता हुआ मेरी अगवानी करने नहीं आ रहा है ।'

इस प्रकार बातें करते हुए दोनोंने शिविरमें पहुँचकर देखा कि पाण्डव अत्यन्त व्याकुल और हतोत्साह हो रहे हैं । भाइयों तथा पुत्रोंको इस अवस्थामें देख और सुभद्रानन्दन अभिमन्युको वहाँ न पाकर अर्जुन बहुत दुखी होकर बोले, 'आज आप सब लोगोंके मुखपर अप्रसन्नता दिखायी दे रही है । इधर, मैं अभिमन्यु-को नहीं देखता और आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोलते नहीं; इसका क्या कारण है ? मैंने सुना था, आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहकी रचना की थी, आपलोगोंमेंसे बालक अभिमन्युके सिवा दूसरा कोई उस व्यूहका भेदन नहीं कर सकता था । अभिमन्युको भी मैंने उस व्यूहसे निकलनेका ढंग अभी नहीं बताया था । कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आपलोगोंने उस बालकको शत्रुके व्यूहमें भेज दिया हो ? सुभद्रानन्दन उस व्यूहको अनेकों बार तोड़-कर युद्धमें मारा तो नहीं गया ? वह सुभद्रा और द्रौपदीका प्यारा तथा माता कुन्ती और श्रीकृष्णका दुलारा था; बताइये तो कालके वशमें पड़ा हुआ ऐसा कौन है, जिसने उसका वध किया है । हा ! वह कैसे हँस-हँसकर बातें करता था और सदा बड़ोंकी आज्ञामें रहता था । बचपनमें भी उसके पराक्रम-की कहीं तुलना नहीं थी । कितनी प्यारी-प्यारी बातें करता था । ईर्ष्या-द्वेष तो उसे छू नहीं गया था । वह महान् उत्साही

तभी तो शोकके समय भी पाण्डव हर्ष मना रहे हैं। यदि ऐसी बात है तो अर्जुनकी प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते; फिर नरेशोंकी तो बात ही क्या है ? अतः आपलोगोंका भला हो, मुझे यहाँसे जानेकी आज्ञा दीजिये। मैं जाकर ऐसी जगह छिप जाऊँगा, जहाँ पाण्डव मुझे देख नहीं सकेंगे।'

जयद्रथको इस प्रकार भयसे व्याकुल हो विलाप करते देख राजा दुर्योधनने कहा—'पुरुषश्रेष्ठ ! तुम इतने भयभीत न होओ। युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रिय वीरोंके बीचमें रहनेपर

तुम्हें कौन पा सकता है ? मैं, कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, कलिङ्गराज, विन्द, अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि—ये तथा और भी बहुत-से राजालोग अपनी-अपनी सेनाके साथ तुम्हारी रक्षाके लिये चलेंगे। तुम अपने मनकी चिन्ता दूर कर दो। सिन्धुराज ! तुम स्वयं भी तो श्रेष्ठ महारथी हो, शूरवीर हो; फिर पाण्डवोंसे डरते क्यों हो ? मेरी सारी सेना तुम्हारी रक्षाके लिये सावधान रहेगी, तुम अपना भय निकाल दो।'

राजन् ! आपके पुत्रने जब इस प्रकार आश्वासन दिया, तब जयद्रथ उसको साथ लेकर रात्रिमें द्रोणाचार्यके पास गया। आचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके उसने पूछा—'भगवन् ! दूरका लक्ष्य बेधनेमें, हाथकी फुर्तीमें तथा दृढ निशाना मारनेमें कौन बड़ा है—मैं या अर्जुन ?'

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! यद्यपि तुम्हारे और अर्जुनके हम एक ही आचार्य हैं, तथापि अभ्यास और क्लेश सहनेके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं। तो भी तुम्हें उनसे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। मेरी भुजाएँ जिसकी रक्षा करती हों, उसपर देवताओंका भी जोर नहीं चल सकता। मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसमें अर्जुन पहुँच ही नहीं सकेंगे। इसलिये डरो मत, खूब उत्साहसे युद्ध करो। तुम्हारे-जैसे वीरको तो मृत्युका डर होना ही नहीं चाहिये; क्योंकि तपस्वीलोग तप करनेपर जिन लोकोंको पाते हैं, क्षत्रियधर्मका आश्रय लेनेवाले वीर पुरुष उन्हें अनायास पा जाते हैं।

इस प्रकार आश्वासन मिलनेपर जयद्रथका भय दूर हुआ और उसने युद्ध करनेका विचार किया। उस समय आपकी सेनामें भी हर्ष-ध्वनि होने लगी।

अर्जुनने जब जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञा कर ली, उसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—"धनञ्जय ! तुमने न तो भाइयोंकी सम्मति ली और न मुझसे ही सलाह पूछी, फिर भी लोगोंको सुनाकर जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर डाली—यह तुम्हारा दुःसाहस है ! क्या इससे सब लोग हमारी हँसी नहीं उड़ावेंगे ? मैंने कौरवोंकी छावनीमें अपने गुप्तचर भेजे थे, वे अभी आकर वहाँका समाचार बता गये हैं। जब तुमने सिन्धुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यहाँ रणभेरी बजी थी और सिंहनाद किया गया था। उसकी आवाज कौरवोंने सुनी, उन्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा मालूम हो गयी। इससे दुर्योधनके मन्त्री उदास और भयभीत हो गये। जयद्रथ भी बहुत दुखी हुआ और राजसभामें जाकर दुर्योधनसे बोला—'राजन् ! अर्जुन मुझे ही अपने पुत्रका घातक मानता है, इसलिये उसने अपनी सेनाके बीच खड़े होकर मुझे मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है। यह सव्यसाचीकी प्रतिज्ञा है; इसे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते। तुम्हारी सेनामें मुझे ऐसा कोई धनुर्धर नहीं दिखायी देता, जो महायुद्धमें अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंका

वारण कर सके। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि श्रीकृष्णकी ़ायता पाकर अर्जुन देवताओंसहित तीनों लोकोंको नष्ट कर ़ता है। इसलिये मैं यहाँसे चले जानेकी आज्ञा चाहता हूँ। थवा यदि तुम ठीक समझो तो अश्वत्थामा और द्रोणाचार्यसे ी रक्षाका आश्वासन दिलाओ।' तब दुर्योधनने स्वयं कर द्रोणाचार्यसे बहुत प्रार्थना की है। जयद्रथकी रक्षाका ा प्रबन्ध कर लिया गया है, रथ भी सजा दिये गये हैं। ़के युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य ़र शल्य—ये छः महारथी आगे रहेंगे। द्रोणाचार्यने ऐसा ़ूह बनाया है, जिसका अगला आधा भाग शकटके आकार- ़ है और पिछला कमलके समान। कमल-व्यूहके मध्यकी र्णिकाके बीच सूची-व्यूहके पास जयद्रथ खड़ा होगा और की सभी वीर चारों ओरसे उसकी रक्षामें रहेंगे। ये ऊपर ़ाये हुए छः महारथी धनुष, बाण, पराक्रम और शारीरिक ़में दुःसह हैं। इनमेंसे एक-एकके पराक्रमका विचार करो। ़ ये छः एक साथ होंगे, उस समय इनका जीतना सहज ़हीं होगा। अब अपने हितका ख्याल रखकर कार्य सिद्ध ़रनेके लिये मैं राजनीतिज्ञ मन्त्रियों और हितैषियोंसे चलकर ़लाह करूँगा।''

अर्जुनने कहा—मधुसूदन! कौरवोंके जिन महारथियों- ़ो आप बलमें अधिक मानते हैं, उनका पराक्रम मैं अपनेसे ़ाधा भी नहीं समझता। यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनी- ़ुमार, इन्द्र, वायु, विश्वेदेव, गन्धर्व, पितर, गरुड़, समुद्र, ़ह पृथ्वी, दिशाएँ, दिक्पाल, गाँवोंके लोग, जङ्गली जीव ़था सम्पूर्ण चराचर प्राणी सिन्धुराजकी रक्षाके लिये आ ़ायँ, तो भी मैं सत्य और आयुधोंकी शपथ खाकर कहता ़ूँ कल आप जयद्रथको मेरे बाणोंसे मरा हुआ देखेंगे। ़ैंने यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और रुद्रसे जो भयङ्कर अस्त्र ़ाप्त किये हैं, उन्हें कलके युद्धमें लोग देखेंगे। जयद्रथके रक्षक जो-जो अस्त्र छोड़ेंगे, उन्हें मैं ब्रह्मास्त्रसे काट गिराऊँगा। केशव! कल इस पृथ्वीपर मेरे बाणोंसे कटे हुए राजाओंके मस्तक बिछ जायँगे, सो आप देखेंगे ही। हृषीकेश! गाण्डीव-जैसा दिव्य धनुष है, मैं योद्धा हूँ और आप सारथि हैं; यह सब होते हुए मैं किसे नहीं जीत सकता? भगवन्! आपकी कृपासे इस युद्धमें मुझे क्या दुर्लभ है? आप तो जानते ही हैं कि शत्रु मेरा वेग नहीं सह सकते, तो भी क्यों मुझे लज्जित कर रहे हैं? ब्राह्मणमें सत्य, साधुओंमें नम्रता और यज्ञोंमें लक्ष्मीका होना जैसे निश्चित है, उसी प्रकार जहाँ नारायण हों वहाँ विजय भी निश्चित है। कल सबेरा होते ही मेरा रथ तैयार हो जाय, ऐसा प्रबन्ध कर लीजिये; क्योंकि हम-लोगोंपर बहुत भारी काम आ पड़ा है।

श्रीकृष्णका आश्वासन, सुभद्राका विलाप तथा दारुकसे श्रीकृष्णका वार्तालाप

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, भगवन्! अब आप सुभद्रा और उत्तराको जाकर समझाइये; जैसे भी हो, उनका शोक दूर कीजिये।' तब श्रीकृष्ण बहुत उदास होकर अर्जुनके शिविरमें गये और पुत्रशोकसे पीडित अपनी दुःखिनी बहिनको समझाने लगे। उन्होंने कहा— 'बहिन! तुम और बहू उत्तरा—दोनों ही शोक न करो। कालके द्वारा सब प्राणियोंकी एक दिन यही स्थिति होती है। तुम्हारा पुत्र उच्च वंशमें उत्पन्न, धीर, वीर और क्षत्रिय था; यह मृत्यु उसके योग्य ही हुई है, इसलिये शोक त्याग दो। देखो! बड़े-बड़े संत पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और

सद्बुद्धिके द्वारा जिस गतिको प्राप्त करना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी मिली है। तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या तथा वीरकी बहिन हो; कल्याणी ! तुम्हारे पुत्रको बहुत उत्तम गति प्राप्त हुई है, तुम उसके लिये शोक न करो। बालककी हत्या करानेवाला पापी जयद्रथ यदि अमरावतीमें जाकर छिपे तो भी अब अर्जुनके हाथसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता। कल ही तुम सुनोगी कि जयद्रथका मस्तक कटकर समन्तपञ्चकसे बाहर जा गिरा है। शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रियधर्मका पालन करके सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग तथा दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं। रानी बहिन ! चिन्ता छोड़ो और बहूको धीरज बँधाओ। अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है, वह ठीक ही होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह निष्फल नहीं होता। यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी युद्धमें जयद्रथकी सहायता करें, तो भी वह कल जीवित नहीं रह सकता।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सुभद्राका पुत्रशोक उमड़ पड़ा और वह बहुत दुखी होकर विलाप करने लगी—'हा पुत्र ! तुम्हारे बिना आज मैं मन्दभागिनी हो गयी। बेटा ! तुम तो अपने पिताके समान पराक्रमी थे, फिर युद्धमें जाकर मारे कैसे गये ? पाण्डव, वृष्णिवंशी तथा पाञ्चाल वीरोंके जीते-जी तुम्हें किसने अनाथकी भाँति मार डाला। हाय ! तुम्हें देखनेके लिये तरसती ही रह गयी। आज भीमसेनके बलको धिक्कार है ! अर्जुनके धनुष-धारणको और वृष्णि तथा पाञ्चाल वीरोंके पराक्रमको भी धिक्कार है ! केकय, चेदि, मत्स्य और सृञ्जयोंको भी बारंबार धिक्कार है, जो ये युद्धमें जानेपर तुम्हारी रक्षा न कर सके। आज सारी पृथ्वी सूनी और श्रीहीन दिखायी देती है। मेरी शोकाकुल आँखें अभिमन्युको ढूँढ़ती हैं, पर देख नहीं पातीं। हाय ! श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके अतिरथी पुत्र होकर भी तुम रणभूमिमें पड़े हो, मैं कैसे तुम्हें देख सकूँगी ? बेटा ! कहाँ हो ? आओ, मेरी गोदमें बैठो; तुम्हारी अभागिनी माता तुम्हें देखनेको तरस रही है। हा वीर ! तुम सपनेकी सम्पत्तिके समान दर्शन देकर कहाँ छिप गये ? अहो ! यह मनुष्य-जीवन पानीके बुलबुलेके समान कितना चञ्चल है। बेटा ! तुम असमयमें ही चले गये; तुम्हारी यह तरुणी पत्नी शोकमें डूबी हुई है, इसे कैसे धीरज बँधाऊँगी ? निश्चय ही, कालकी गतिको जानना विद्वानोंके लिये भी कठिन है; तभी तो श्रीकृष्ण-जैसे सहायकके जीते-जी तुम अनाथकी भाँति मारे गये। वत्स ! यज्ञ और दान करनेवाले आत्मज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्यतीर्थोंमें स्नान करनेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवक तथा सहस्रों गोदान करनेवाले जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वही तुम्हें भी मिले। पतिव्रता स्त्री, सदाचारी राजा, दीनोंपर दया करनेवाले, चुगलीसे अलग रहनेवाले, धर्मशील, व्रती और अतिथि-सत्कार करनेवाले लोगोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। बेटा ! आपत्ति और संकटके समय भी जो धैर्यपूर्वक अपनेको सँभाले रहते हैं, सदा माता-पिताकी सेवा करते हैं और अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहते हैं, उनकी जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो। जो मात्सर्यसे रहित हो सब प्राणियोंको सान्त्वनापूर्ण दृष्टिसे देखते हैं, क्षमा-भाव रखते हैं, किसीको चोट पहुँचानेवाली बात नहीं कहते, जो मद्य, मांस, मद, दम्भ और मिथ्यासे दूर रहते हैं, दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचाते, जिनका स्वभाव संकोची है, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण और जितेन्द्रिय हैं, उन साधु पुरुषोंकी जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो।'

इस प्रकार शोकसे दुर्बल एवं दीनभावसे विलाप करती

हुई सुभद्राके पास द्रौपदी और उत्तरा भी आ पहुँचीं। अब तो उनके दुःखकी सीमा न रही। सब फूट-फूटकर रोने लगीं और उन्मत्तकी तरह पृथ्वीपर गिरकर बेहोश हो गयीं। उनकी यह दशा देख भगवान् श्रीकृष्ण बहुत दुखी हुए और उन्हें होशमें लानेकी तरकीब करने लगे। उन्होंने जल छिड़ककर उन्हें सचेत किया और कहा—'सुभद्रे ! अब पुत्रके लिये शोक न करो। द्रौपदी ! तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। अभिमन्युको बड़ी उत्तम गति प्राप्त हुई है। हम तो यह चाहते हैं कि हमारे वंशमें जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे सब यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें। तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले जो काम कर दिखाया है, वही हम और हमारे सब सुहृद् भी करें।'

सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको इस प्रकार आश्वासन देकर भगवान् कृष्ण पुनः अर्जुनके पास गये और मुसकराते हुए बोले—'अर्जुन ! तुम्हारा कल्याण हो, अब जाकर सो रहो। मैं भी जाता हूँ।' यह कहकर उन्होंने अर्जुनके शिविर-

पर द्वारपालोंको खड़ा किया और कई शस्त्रधारी रक्षक तैनात कर दिये। फिर वे दारुकको साथ ले अपनी छावनीमें गये और बहुत-से कार्योंके विषयमें विचार करते हुए शय्यापर लेट गये। आधी रातके समय ही उनकी नींद टूट गयी; तब वे अर्जुनकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके दारुकसे बोले—"पुत्र-शोकसे व्यथित होनेके कारण अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर डाली है कि 'मैं कल जयद्रथका वध करूँगा।' किन्तु द्रोणकी रक्षामें रहनेवाले पुरुषको इन्द्र भी नहीं मार सकते। इसलिये कल मैं ऐसी व्यवस्था करूँगा, जिससे अर्जुन सूर्य अस्त होनेके पहले ही जयद्रथको मार डालें। दारुक ! मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु—कोई भी कुन्तीनन्दन अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता। अर्जुनके लिये मैं कर्ण, दुर्योधन आदि सभी महारथियोंको उनके घोड़े और हाथियोंसहित मार डालूँगा। कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायगी कि मैं अर्जुनका मित्र हूँ। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है। सबेरा होते ही मेरा रथ सजाकर तैयार कर देना। उसमें सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति और शार्ङ्ग धनुषके साथ ही सभी आवश्यक सामग्री रख लेना। घोड़े जोतकर प्रतीक्षा करना; ज्यों ही मेरे पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो, बड़े वेगसे मेरे पास रथ ले आना। मैं आशा करता हूँ—अर्जुन जिस-जिस वीरके वधका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ उनकी अवश्य विजय होगी।"

दारुकने कहा—पुरुषोत्तम ! आप जिसके सारथि हैं उसकी विजय तो निश्चित है, पराजय हो ही कैसे सकती है ? अर्जुनकी विजयके लिये आप मुझे जो कुछ करनेकी आज्ञा दे रहे हैं, उसे सबेरा होते ही मैं पूर्ण करूँगा।

अर्जुनका स्वप्न, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन तथा सबका युद्धके लिये प्रस्थान

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके विषयमें विचार करते हुए सो गये। उन्हें चिन्ता करते जान स्वप्नमें ही भगवान् श्रीकृष्णने दर्शन दिया। भगवान्‌को देखते ही अर्जुन उठे और उन्हें बैठनेको आसन दे स्वयं चुपचाप खड़े रहे। श्रीकृष्णने उनका निश्चय जान-

कर कहा—'धनञ्जय! तुम्हें खेद किसलिये हो रहा है? बुद्धिमान् पुरुषको सोच नहीं करना चाहिये, इससे काम बिगड़ जाता है। जो करने योग्य कार्य आ पड़े, उसे पूर्ण करो। उद्योगहीन मनुष्यका शोक तो उसके लिये शत्रुका काम देता है।'
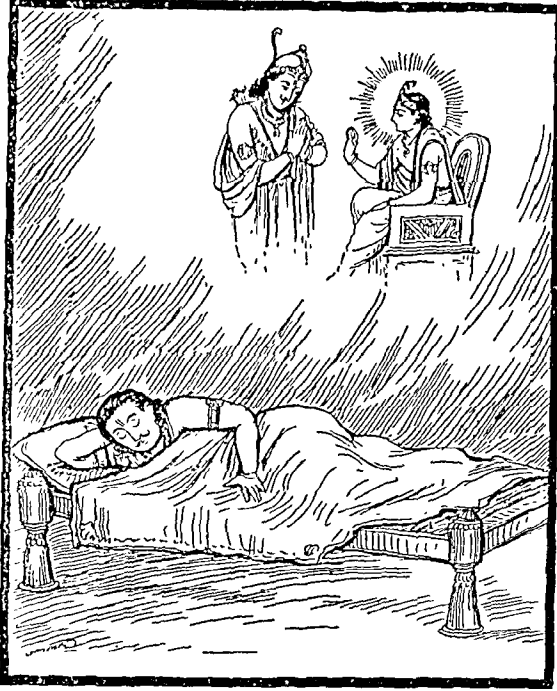
भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुनने कहा—'केशव! मैंने कल अपने पुत्रके घातक जयद्रथको मार डालनेकी भारी प्रतिज्ञा कर डाली है; किन्तु सोचता हूँ कि मेरी प्रतिज्ञा तोड़नेके लिये कौरव निश्चय ही जयद्रथको सबके पीछे खड़ा करेंगे। सभी महारथी उसकी रक्षा करेंगे। ग्यारह अक्षौहिणी सेनामेंसे जो लोग मरनेसे बच गये हैं, उन सबसे घिरा हुआ जयद्रथ कैसे मुझे दिखायी देगा? यदि नहीं दीखा तो प्रतिज्ञाका पालन नहीं हो सकेगा, और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर मुझ-जैसा मनुष्य कैसे जीवन-धारण कर सकता है? अब तो सारा उपाय केवल दुःख देनेवाला है, इसलिये मेरी आशा निराशाके रूपमें परिणत हो रही है। इसके सिवा आजकल सूर्य जल्दी ही अस्त होता है। इन्हीं सब कारणोंसे मैं ऐसा कहता हूँ।'

अर्जुनके शोकका कारण सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! शङ्करजीके पास 'पाशुपत' नामक एक दिव्य सनातन अस्त्र है, जिससे उन्होंने पूर्वकालमें सम्पूर्ण दैत्योंका संहार किया था। यदि तुम्हें उस अस्त्रका ज्ञान हो तो अवश्य ही कल जयद्रथका वध कर सकोगे। यदि उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन भगवान् शंकरका ध्यान करो। ऐसा करनेपर उनकी कृपासे तुम उस महान् अस्त्रको पा जाओगे।'

भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुन आचमन करके भूमिपर आसन बिछाकर बैठ गये और एकाग्र चित्तसे शङ्करजीका ध्यान करने लगे। तदनन्तर ध्यानावस्थामें शुभ ब्राह्ममुहूर्तके समय अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ ही अपनेको आकाशमें उड़ते देखा। उस समय उनकी वायुके समान गति थी। भगवान् कृष्ण उनकी दाहिनी बाँह पकड़े चल रहे थे। उत्तर दिशामें आगे बढ़कर उन्होंने हिमालयके पावन प्रदेश और मणिमान् पर्वत देखा, जहाँ दिव्य ज्योति छिटक रही थी और सिद्ध तथा चारणगण विचर रहे थे। मार्गमें अद्भुत भावोंको देखते हुए जब वे आगे बढ़े, तो श्वेतपर्वत दिखायी दिया। पास ही कुबेरका विहारवन था, उसके सरोवरोंमें कमल खिले हुए थे। थोड़ी ही दूरपर अगाध जलसे भरी हुई गङ्गा लहरा रही थी; उसके तटपर ऋषियोंके पवित्र आश्रम थे। उसके आगे मन्दराचलके रमणीय प्रदेश दृष्टिगोचर हुए, जहाँ किन्नरोंके संगीतकी स्वर-लहरी सुनायी देती थी। इस प्रकार अनेकों दिव्य स्थानोंको पार करनेके बाद उन्होंने एक परम प्रकाशमान पर्वत देखा; उसके शिखर-पर भगवान् शङ्कर विराजमान थे, जो हजारों सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहे थे। उनके हाथमें त्रिशूल था, मस्तकपर जटाजूट शोभा पा रहा था। गौर शरीरपर वल्कल और मृगचर्मका वस्त्र लपेटे भगवान् भूतनाथ पार्वतीदेवीके साथ बैठे थे। तेजस्वी भूतगण उनकी सेवामें उपस्थित थे। ब्रह्मवादी ऋषि दिव्य स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति कर रहे थे।

उनके पास पहुँचकर भगवान् कृष्ण और अर्जुनने

पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया। उन दोनों नर और नारायणको आया देख भगवान् शिव बड़े प्रसन्न हुए और हँसते हुए बोले—'वीरवरो! तुम दोनोंका स्वागत है; उठो, विश्राम करो और शीघ्र बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है। तुम जिस कामके लिये आये हो, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।'

भगवान् शिवकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़े खड़े हो गये और उनकी स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप ही भव, शर्व, रुद्र, वरद, पशुपति, उग्र, कपर्दी, महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्ति और ईशान आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। आप भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, प्रभो! हमारा मनोरथ सिद्ध कीजिये।'

तदनन्तर अर्जुनने मन-ही-मन भगवान् शिव और श्रीकृष्णका पूजन किया तथा शङ्करजीसे कहा—'भगवन्! मैं दिव्य अस्त्र चाहता हूँ।' यह सुनकर भगवान् शंकर मुसकराये और कहने लगे—'श्रेष्ठ पुरुषो! मैं तुम दोनोंका स्वागत करता हूँ। तुम्हारी अभिलाषा मालूम हुई; तुम

जिसके लिये आये हो, वह वस्तु अभी देता हूँ। यहाँसे निकट ही एक अमृतमय दिव्य सरोवर है, उसीमें मैंने अपने दिव्य धनुष और बाण रख दिये हैं; वहाँ जाकर बाणसहित धनुष ले आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर दोनों वीर शिवजीके पार्षदोंके साथ उस सरोवरपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने दो नाग देखे; एक सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान था और दूसरा हजार मस्तकवाला था, उसके मुखसे आगकी लपटें निकल रही थीं। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उस सरोवरके जलका आचमन करके उन नागोंके पास उपस्थित हुए और हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणाम करते हुए शतरुद्रियका पाठ करने लगे। तब भगवान् शङ्करके प्रभावसे वे दोनों महानाग अपना स्वरूप छोड़कर धनुष-बाण हो गये। इससे वे दोनों बड़े प्रसन्न हुए और उन देदीप्यमान धनुष-बाणको लेकर शङ्करजीके पास आये। वहाँ आकर उन्होंने वे अस्त्र शङ्करजीको अर्पण कर दिये। तब भगवान् शङ्करकी पसलीमेंसे एक ब्रह्मचारी निकला। उसने वीरासनसे बैठकर उस धनुषको उठा लिया और उसपर विधिवत् बाण चढ़ाकर उसे खींचा। अर्जुन यह

सब ध्यानपूर्वक देखता रहा और उस समय शिवजीने जो मन्त्र पढ़ा, उसे भी उसने याद कर लिया। तब उस ब्रह्मचारीने उन धनुष-बाणको पुनः सरोवरमें फेंक दिया। तत्पश्चात् शंकरजीने प्रसन्न होकर अपना पाशुपत नामक घोर

अस्त्र अर्जुनको दे दिया । उसे पाकर अर्जुनके हर्षकी सीमा न रही, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । अब वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे । फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंने भगवान् शिवको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वे अपने शिविरमें चले आये । [यह सब कुछ अर्जुनने स्वप्नमें ही देखा था ।]

सञ्जय कहते हैं—इधर श्रीकृष्ण और दारुक बातें करते ही रहे, इतनेमें रात बीत गयी । दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर भी जग गये । वे उठकर स्नान-गृहकी ओर गये । वहाँ स्नान करके श्वेत वस्त्र पहने एक सौ आठ युवा स्नातक जलसे भरे हुए सोनेके घड़े लिये खड़े थे । युधिष्ठिर एक महीन वस्त्र पहनकर श्रेष्ठ आसनपर बैठ गये और उस मन्त्रपूत जलसे
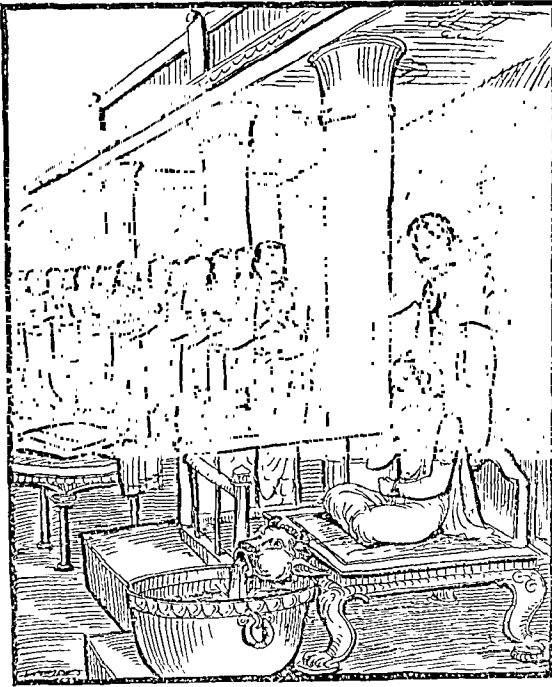
स्नान करने लगे । वे स्नान-पूजन आदिसे निवृत्त होकर बैठे ही थे कि द्वारपालने आकर खबर दी—'महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं ।' राजाने कहा—'उन्हें स्वागतपूर्वक ले आओ ।' तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको एक सुन्दर आसनपर विराजमान कर राजा युधिष्ठिरने उनका विधिवत् पूजन किया । इसके बाद अन्य दरबारी लोगोंके

आनेकी सूचना मिली । राजाकी आज्ञासे द्वारपाल उन्हें भी भीतर ले आया । विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजकुमार, युयुत्सु, उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये तथा अन्य बहुत-से क्षत्रिय महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हो उत्तम आसनोंपर विराजमान हुए । श्रीकृष्ण और सात्यकि एक ही आसनपर बैठे थे । तब राजा युधिष्ठिरने उन सबके सुनते हुए श्रीकृष्णसे कहा—'भक्तवत्सल ! जैसे देवता इन्द्रके आश्रयमें रहते हैं, उसी प्रकार हमलोग आपकी ही शरणमें रहकर युद्धमें विजय और स्थायी सुख चाहते हैं । सर्वेश्वर ! हमारा सुख और हमारे प्राणोंकी रक्षा—सब आपके ही अधीन है; आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारा मन आपमें लगा रहे और अर्जुनकी की हुई प्रतिज्ञा सत्य हो । इस दुःखरूपी महासागरसे आप ही हमारा उद्धार करें । पुरुषोत्तम ! आपको हमारा बारंबार प्रणाम है । देवर्षि नारदजीने आपको पुरातन ऋषि नारायण बतलाया है, आप ही वरदायक विष्णु हैं; इस बातको आज सत्य करके दिखाइये ।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन बलवान्, अस्त्र-

विद्याके ज्ञाता, पराक्रमी, युद्धमें चतुर और तेजस्वी हैं; वे अवश्य ही आपके शत्रुओंका संहार करेंगे। मैं भी ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे अर्जुन धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाको उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधनको। अभिमन्युकी हत्या करानेवाले पापी जयद्रथको अर्जुन अपने बाणोंसे मारकर आज ऐसी जगह भेज देंगे, जहाँ जानेपर मनुष्यका पुनः यहाँ दर्शन नहीं होता। यदि इन्द्रके साथ सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षाके लिये उतर आवें, तो भी आज युद्धमें प्राण त्याग कर उसे यमकी राजधानीमें जाना पड़ेगा। राजन्! अर्जुन आज जयद्रथको मारकर ही आपके निकट उपस्थित होंगे, इसलिये शोक और चिन्ता दूर कीजिये।

इन लोगोंमें इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि अर्जुन अपने मित्रोंके साथ राजाका दर्शन करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। भीतर आकर युधिष्ठिरको प्रणाम करके वे सामने खड़े हो गये। उन्हें देखते ही युधिष्ठिरने उठकर बड़े प्रेमसे गले लगाया। फिर उनका मस्तक सूँघकर मुसकराते हुए कहा—'अर्जुन! आज तुम्हारे मुखकी जैसी प्रसन्न कान्ति है तथा भगवान् श्रीकृष्ण जैसे प्रसन्न हैं, उससे ज्ञात होता है युद्धमें तुम्हारी विजय निश्चित है।' अर्जुनने कहा, 'भैया! रातमें मैंने केशवकी कृपासे एक महान् आश्चर्यजनक स्वप्न देखा था।' यह कहकर अर्जुनने अपने हितैषियोंके आश्वासनके लिये वह सब वृत्तान्त कह सुनाया, जिस प्रकार स्वप्नमें शङ्करजीका दर्शन हुआ था। यह सुनकर सभी लोगोंने विस्मित हो शङ्करजीको प्रणाम किया और कहने लगे—'यह तो बहुत ही अच्छा हुआ।'

तदनन्तर सब लोग धर्मराजकी आज्ञा ले, कवच आदिसे सुसज्जित हो बड़ी शीघ्रताके साथ युद्धके लिये निकल पड़े। सबके मनमें हर्ष था, उत्साह था। सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी युधिष्ठिरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये उनके शिबिरसे बाहर निकले। सात्यकि और श्रीकृष्ण एक ही रथपर बैठकर अर्जुनकी छावनीमें गये। वहाँ जाकर श्रीकृष्णने सारथिकी भाँति अर्जुनके रथको सब सामग्रियोंसे सजाकर तैयार किया। इतनेमें अर्जुन भी अपना दैनिक कर्म पूरा करके धनुष-बाण लिये बाहर निकले और रथकी परिक्रमा करके उसपर सवार हो गये। फिर सात्यकि और श्रीकृष्ण अर्जुनके आगे जा बैठे। श्रीकृष्णने घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ले ली। अर्जुन उन दोनोंके साथ युद्धको चल दिये। उस समय विजयकी सूचना देनेवाले नाना प्रकारके शुभ शकुन होने लगे। कौरवोंकी सेनामें अपशकुन हुए। शुभ शकुनोंको देखकर अर्जुन सात्यकिसे बोले—'युयुधान! जैसे ये निमित्त दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है आज युद्धमें निश्चय ही मेरी विजय होगी। अतः अब मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ जयद्रथ मेरे पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस समय राजा युधिष्ठिरकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर है। इस संसारमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हें युद्धमें हरा सके; तुम साक्षात् श्रीकृष्णके समान हो। तुमपर या प्रद्युम्नपर ही मेरा अधिक भरोसा रहता है। मेरी चिन्ता छोड़कर सब तरहसे राजाकी ही रक्षामें रहना। जहाँ भगवान् वासुदेव हैं और मैं हूँ, वहाँ किसी विपत्तिकी सम्भावना नहीं है।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर सात्यकि 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चला गया।

धृतराष्ट्रका विषाद तथा सञ्जयका उपालम्भ

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! अभिमन्युके मारे जानेसे दुःख-शोकमें डूबे हुए पाण्डवोंने सबेरा होनेपर क्या किया? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंमेंसे किस-किसने युद्ध किया? अर्जुनके पराक्रमको जानते हुए भी उन्होंने उनका अपराध किया, ऐसी दशामें वे निर्भय कैसे रह सके? जब भगवान् श्रीकृष्ण सब प्राणियोंपर दया करनेके लिये कौरव-पाण्डवोंमें सन्धि करानेकी इच्छासे यहाँ आये थे, उस समय मैंने मूर्ख दुर्योधनसे कहा था कि 'बेटा! वासुदेवके कथनानुसार अवश्य सन्धि कर लो। यह अच्छा मौका हाथ आया है, दुर्योधन! इसे टालो मत। श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी बात कहते हैं, स्वयं ही सन्धिके लिये प्रार्थना करते हैं; यदि इनकी बात न मानोगे, तो युद्धमें तुम्हारी विजय असम्भव है।'

श्रीकृष्णने स्वयं भी अनुनयपूर्ण बातें कहीं, परन्तु उसने अस्वीकार कर दीं। अन्यायका आश्रय लेनेके कारण हमारी बातें उसे ठीक नहीं जँचीं। वह दुर्बुद्धि कालके वशीभूत था, इसीलिये उसने मेरी अवहेलना करके केवल कर्ण और दुःशासनके ही मतका अनुसरण किया। जो जूआ खेला गया था, उसके लिये भी मेरी इच्छा नहीं थी। विदुर, भीष्मजी, शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृप और द्रोण—ये लोग भी जूआ होने देना

नहीं चाहते थे। यदि मेरा पुत्र इन सबकी राय लेकर चलता तो अपने जाति-भाई, मित्र-सुहृद्—सबके साथ चिरकालतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता। मैंने यह भी कहा था—'पाण्डव सरलस्वभाव, मधुरभाषी, भाई-बन्धुका प्रिय करनेवाले, कुलीन, आदरणीय और बुद्धिमान् हैं; इसलिये उन्हें अवश्य सुख मिलेगा। धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य सदा और सर्वत्र सुख पाता है। मरनेपर उसे कल्याण एवं आनन्दकी प्राप्ति होती है। पाण्डव पृथ्वीका राज्य भोगनेके योग्य हैं, उसे प्राप्त करनेकी शक्ति भी रखते हैं। पाण्डवोंसे जैसा कहा जायगा, वैसा ही करेंगे। वे सदा धर्ममार्गपर स्थित रहेंगे। शल्य, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण, विकर्ण, बाह्लीक, कृप तथा अन्य बड़े-बूढ़े लोग जो तुम्हारे हितकी बात कहेंगे, उसे पाण्डव अवश्य मान लेंगे। श्रीकृष्ण कभी धर्मको छोड़ नहीं सकते और पाण्डव श्रीकृष्णके ही अनुयायी हैं। मैं भी यदि धर्मयुक्त वचन कहूँगा तो वे टाल नहीं सकेंगे, क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं।'

सञ्जय! इस प्रकार पुत्रके सामने गिड़गिड़ाकर मैंने बहुत कुछ कहा, किन्तु उस मूर्खने मेरी एक न सुनी। जिस पक्षमें श्रीकृष्ण-जैसे सारथि और अर्जुन-सरीखे योद्धा हैं, उसकी पराजय हो ही नहीं सकती। पर क्या करूँ, दुर्योधन मेरे रोने-बिलखनेकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। अच्छा, अब आगेकी बात सुनाओ। दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि—इन सबने मिलकर क्या सलाह की? मूर्ख दुर्योधनके अन्यायके संग्राममें एकत्र हुए मेरे सभी पुत्रोंने कौन-सा कार्य किया? लोभी, मन्दबुद्धि, क्रोधी, राज्य हड़पनेकी इच्छावाले और रागान्ध दुर्योधनने अन्याय अथवा न्याय जो कुछ भी किया हो, सब बताओ।

सञ्जयने कहा—महाराज! मैंने सब कुछ प्रत्यक्ष देखा है; आपको ब्योरेवार बताऊँगा, स्थिर होकर सुनिये। इस विषयमें आपका भी अन्याय कम नहीं है। नदीका पानी सूख जानेपर पुल बाँधनेके समान अब आपका यह रोना-धोना व्यर्थ है। इसलिये शोक न कीजिये। जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आपने अपने पुत्रोंको रोक दिया होता अथवा कौरवोंको यह आज्ञा दी होती कि 'इस उद्दण्ड दुर्योधनको कैद कर लो,' या स्वयं पिताके कर्तव्यका पालन करते हुए पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित किया होता, तो आज आपपर यह सङ्कट कदापि नहीं आता। आप इस जगत्में बड़े बुद्धिमान् समझे जाते हैं; तो भी सनातनधर्मको तिलाञ्जलि देकर आपने दुर्योधन, कर्ण और शकुनिकी हाँ-में-हाँ मिला दी। इस समय जो आपने यह विलाप-कलाप सुनाया है, यह सब स्वार्थ और लोभके वशमें होनेके कारण है। विष मिलाये हुए शहदकी भाँति यह ऊपरसे मीठा होनेपर भी इसके भीतर घातक कटुता है। भगवान् श्रीकृष्णने जबसे जान लिया कि आप राजधर्मसे भ्रष्ट हो गये हैं, तबसे वे आपके प्रति आदर-बुद्धि नहीं रखते। आपके पुत्रोंने पाण्डवोंको गालियाँ सुनायीं और आपने उन्हें रोका नहीं। पुत्रोंको राज्य दिलानेका लोभ आपको ही सबसे अधिक था; उसीका तो अब फल मिल रहा है! पहले आपने उनके बाप-दादोंका राज्य छीन लिया; अब पाण्डव स्वयं सम्पूर्ण पृथ्वी जीत लेते हैं, तो आप उसका उपभोग कीजियेगा। इस समय जब युद्ध सिरपर गरज रहा है, तो आप पुत्रोंके अनेकों दोष बताकर उनकी निन्दा करने बैठे हैं; अब ये बातें शोभा नहीं देतीं। खैर, जाने दीजिये इन बातोंको; पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जो घमासान युद्ध हुआ, उसका ठीक-ठीक वृत्तान्त सुनिये।

द्रोणाचार्यजीका शकटव्यूह और कई वीरोंका संहार करते हुए अर्जुनका उसमें प्रवेश

सञ्जयने कहा—वह रात बीतनेपर आचार्य द्रोणने अपनी सब सेनाको शकटव्यूहमें खड़ा किया। उस समय वे शङ्ख बजाते हुए बड़ी तेजीसे इधर-उधर घूम रहे थे। जब वह सारी सेना युद्धके लिये उत्साहित होकर खड़ी हो गयी तो आचार्यने जयद्रथसे कहा, 'तुम, भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथी, चौदह हजार गजारोही और इक्कीस हजार पैदल सेना लेकर हमारे छः कोस पीछे रहो। वहाँ इन्द्रादि देवता भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? वहाँ तुम बेखटके रहना।'

द्रोणाचार्यके इस प्रकार ढाढस बँधानेपर सिन्धुराज जयद्रथ गान्धार महारथियों और घुड़सवारोंके साथ चला। ये दस हजार सिन्धुदेशीय घोड़े बड़े सधे हुए और धीमी चालसे चलनेवाले थे। इसके बाद आपके पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराजकी कार्यसिद्धिके लिये सेनाके अग्रभागमें आकर डट गये। द्रोणाचार्यजीका बनाया हुआ यह

चक्र-शकटव्यूह चौबीस कोस लंबा और पीछेकी ओर दस कोसतक फैला हुआ था। उसके पीछे पद्मगर्भ नामका अभेद्य व्यूह था और उस पद्मगर्भव्यूहमें सूचीमुख नामका एक गुप्त व्यूह बनाया गया था। इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके आचार्य उसके आगे खड़े हुए। सूचीव्यूहके मुखभागपर महान् धनुर्धर कृतवर्माको नियुक्त किया गया। उसके पीछे काम्बोजनरेश और जलसन्ध, तथा उनके पीछे दुर्योधन और कर्ण खड़े थे। शकटव्यूहके अग्रभागकी रक्षाके लिये एक लाख योद्धा तैनात किये गये थे। इन सबके पीछे सूचीव्यूहके पार्श्वभागमें बड़ी भारी सेनाके सहित राजा जयद्रथ खड़ा था। द्रोणाचार्यजीके बनाये हुए इस शकट-व्यूहको देखकर राजा दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार जब कौरव-सेनाकी व्यूहरचना हो गयी तथा भेरी और मृदङ्गोंका शब्द एवं वीरोंका कोलाहल होने लगा, तो रौद्रमुहूर्तमें रणाङ्गणमें वीरवर अर्जुन दिखायी दिये। इधर नकुलके पुत्र शतानीक तथा धृष्टद्युम्नने पाण्डवसेनाकी व्यूहरचना की थी। इसी समय कुपित काल और वज्रधर इन्द्रके समान तेजस्वी, सत्यनिष्ठ और अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेवाले, नारायणानुयायी नरमूर्ति वीरवर अर्जुनने अपने दिव्य रथपर चढ़कर गाण्डीव धनुषकी टङ्कार करते हुए युद्धभूमिमें पदार्पण किया। उन्होंने अपनी सेनाके अग्रभागमें

खड़े होकर शङ्खध्वनि की। उनके साथ ही श्रीकृष्णचन्द्रने भी अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उन दोनोंके शङ्खनादसे आपके सैनिकोंके रोंगटे खड़े हो गये, शरीर काँपने लगे और वे अचेत-से हो गये; तथा उनके जो हाथी-घोड़े आदि वाहन थे, वे मल-मूत्र छोड़ने लगे। इस प्रकार आपकी सारी सेना व्याकुल हो गयी। तब उसका उत्साह बढ़ानेके लिये फिर शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग और नगारे आदि बजने लगे।

अब अर्जुनने अत्यन्त हर्षित होकर श्रीकृष्णसे कहा, 'हृषीकेश! आप घोड़ोंको दुर्मर्षणकी ओर बढ़ाइये। मैं उसकी हस्तिसेनाको भेदकर शत्रुके दलमें प्रवेश करूँगा।' यह सुनकर श्रीकृष्णने दुर्मर्षणकी ओर रथ हाँका। बस, अब दोनों ओरसे बड़ा तुमुल संग्राम छिड़ गया। आपकी ओरके सभी रथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब महाबाहु अर्जुनने भी क्रोधमें भरकर अपने बाणोंसे उनके सिर उड़ाने आरम्भ कर दिये। बात-की-बातमें सारी रणभूमि वीरोंके मस्तकोंसे छा गयी। यही नहीं, घोड़ोंके सिर और हाथियोंकी सूँड़ें भी सर्वत्र पड़ी दिखायी देने लगीं। आपके सैनिकोंको सब ओर अर्जुन ही दिखायी देता था। वे बार-बार 'अर्जुन यह है!' 'अर्जुन कहाँ है?' 'अर्जुन वह खड़ा हुआ है!' इस प्रकार चिल्ला उठते थे। इस भ्रममें पड़कर उनमेंसे कोई-कोई तो आपसमें और कोई अपनेपर ही प्रहार कर बैठते थे। उस समय कालके वशीभूत होकर वे सारे संसारको अर्जुनमय ही देखने लगे थे। कोई लोहूलुहान होकर मरणासन्न हो गये थे, कोई गहरी वेदनाके कारण बेहोश हो रहे थे और कोई पड़े-पड़े अपने भाई-बन्धुओंको पुकार रहे थे।

इस प्रकार अर्जुनने अपने बाणोंसे दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार कर डाला। इससे आपके पुत्रकी बची हुई सेना भयभीत होकर भागने लगी। अर्जुनकी मारके कारण वह उनकी ओर मुँह फेरकर देख भी नहीं सकती थी। इस प्रकार सभी वीर मैदान छोड़कर भाग गये। उन सभीका उत्साह नष्ट हो गया। तब अपनी सेनाको इस प्रकार छिन्न-भिन्न होते देखकर आपका पुत्र दुःशासन बड़ी भारी गजसेना लेकर अर्जुनके सामने आया और उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। इस समय एक क्षणके लिये दुःशासनने बड़ा ही उग्ररूप धारण कर लिया। इधर पुरुषसिंह अर्जुनने बड़ा भीषण सिंहनाद किया और वे अपने बाणोंसे शत्रुओंकी हस्तिसेनाको कुचलने लगे। वे हाथी गाण्डीव-धनुषसे छूटे हुए हजारों तीखे बाणोंसे घायल होकर भयङ्कर चीत्कार करते पट-पट पृथ्वीपर गिरने लगे।

उनके कंधोंपर जो पुरुष बैठे थे, उनके मस्तक भी अर्जुनने

अपने बाणोंसे उड़ा दिये। उस समय अर्जुनकी फुर्ती देखने योग्य थी। वे कब बाण चढ़ाते हैं, कब धनुषकी डोरी खींचते हैं, कब बाण छोड़ते हैं और कब तरकसमेंसे नया बाण निकालते हैं—यह जान ही नहीं पड़ता था। वे मण्डलाकार धनुषके सहित नृत्य-सा करते जान पड़ते थे। इस प्रकार अर्जुनके हाथसे व्यथित होकर दुःशासनकी सेना अपने नायकके सहित भाग उठी और बड़ी तेजीसे द्रोणाचार्यसे सुरक्षित होनेकी आकांक्षासे शकटव्यूहमें घुस गयी।

अब महारथी अर्जुन दुःशासनकी सेनाका संहार कर जयद्रथके समीप पहुँचनेके विचारसे द्रोणाचार्यकी सेनापर टूट पड़े। आचार्य व्यूहके द्वारपर खड़े थे। अर्जुनने उनके सामने पहुँचकर श्रीकृष्णकी सम्मतिसे हाथ जोड़कर कहा, 'ब्रह्मन्! आप मेरे लिये कल्याणकामना कीजिये। मेरे लिये आप पिताके समान हैं। जिस तरह अश्वत्थामाकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है, उसी प्रकार आपको मेरी भी रक्षा करनी चाहिये। आज आपकी कृपासे मैं सिन्धुराज जयद्रथको मारना चाहता हूँ। आप मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा करें।'

अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर आचार्यने मुसकराकर कहा, 'अर्जुन! मुझे परास्त किये बिना तुम जयद्रथको नहीं जीत सकोगे।' इतना कहकर उन्होंने हँसते-हँसते अर्जुनको उनके रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथिके सहित पैने बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब तो अर्जुनने भी द्रोणाचार्यके बाणोंको रोककर अपने अत्यन्त भीषण बाणोंसे उनपर आक्रमण किया। द्रोणने तुरंत उनके बाण काट डाले और अपने विषाग्निके समान धधकते हुए बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंहीपर चोट की। इसपर धनञ्जय लाखों बाण छोड़कर आचार्यकी सेनाका संहार करने लगे। उनके बाणोंसे कट-कटकर अनेकों योद्धा, घोड़े और हाथी धराशायी होने लगे। अब द्रोणने पाँच बाणोंसे श्रीकृष्णको और तिहत्तरसे अर्जुनको घायल कर डाला तथा तीन बाणोंसे उनकी ध्वजाको बींध दिया। फिर एक क्षणमें ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको अदृश्य कर दिया।

द्रोण और अर्जुनके युद्धको इस प्रकार बढ़ता देख श्रीकृष्णने उस दिनके प्रधान कार्यका विचार किया और अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! अर्जुन! देखो, हमें यहाँ समय नष्ट नहीं करना चाहिये। आज हमें बहुत बड़ा काम करना है। इसलिये द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़ना चाहिये।' अर्जुनने कहा, 'आपकी जैसी इच्छा हो, वही कीजिये।' तब अर्जुन आचार्यकी प्रदक्षिणा कर बाण छोड़ते हुए आगे बढ़ने लगे। इसपर द्रोणने कहा, 'पार्थ! तुम कहाँ जा रहे हो? संग्राममें शत्रुको परास्त किये बिना तो तुम कभी नहीं हटते थे।' अर्जुनने कहा, 'आप मेरे शत्रु नहीं, गुरु हैं। मैं भी आपका शिष्य और पुत्रके समान हूँ। संसारमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो युद्धमें आपको परास्त कर सके।' इस प्रकार कहते-कहते अर्जुन जयद्रथके वधके लिये उत्सुक होकर बड़ी तेजीसे कौरवोंकी सेनामें घुस गये। उनके पीछे-पीछे उनके चक्ररक्षक पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा भी चले गये।

अब जय, कृतवर्मा, काम्बोजनरेश और श्रुतायुने उन्हें आगे बढ़नेसे रोका। उन विजयाभिलाषी वीरोंके साथ अर्जुनका घोर संग्राम होने लगा। कृतवर्माने अर्जुनको दस बाण मारे। अर्जुनने उसके एक सौ तीन बाण मारकर उसे अचेत-सा कर दिया। तब उसने हँसकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंहीपर पच्चीस-पच्चीस बाण छोड़े। इसपर अर्जुनने उसका धनुष काटकर उसे तिहत्तर बाणोंसे घायल कर दिया। कृतवर्माने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर पाँच बाणोंसे अर्जुनकी छातीपर वार किया। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'पार्थ! तुम कृतवर्मापर दया मत करो। इस समय सम्बन्धका विचार छोड़कर

बलात्कारसे इसे मार डालो।' इसपर अर्जुन अपने बाणोंसे कृतवर्माको अचेत कर काम्बोजवीरोंकी सेनाकी ओर चले।

अर्जुनको इस प्रकार बढ़ते देखकर महापराक्रमी राजा श्रुतायुध अपना विशाल धनुष चढ़ाता बड़े क्रोधसे उनके सामने आया। उसने अर्जुनके तीन और श्रीकृष्णके सत्तर बाण मारे तथा एक तेज बाणसे उनकी ध्वजापर वार किया। अर्जुनने तुरंत ही उसका धनुष काटकर तरकसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब उसने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनकी छाती और भुजाओंमें नौ बाण मारे। इसपर अर्जुनने हजारों बाण छोड़कर श्रुतायुधको तंग कर डाला और उसके सारथि एवं घोड़ोंको भी मार डाला। तब महाबली श्रुतायुध रथसे उतरकर हाथमें गदा ले अर्जुनकी ओर दौड़ा। यह वरुणका पुत्र था। महानदी पर्णाशा इसकी माता थी। उसने अपने पुत्रके स्नेहवश वरुणसे कहा था कि 'मेरा पुत्र संसारमें शत्रुओंके लिये अवध्य हो।' इसपर वरुणने प्रसन्न होकर कहा था, 'मैं तुझे यह वर देता हूँ और साथ ही यह दिव्य अस्त्र भी देता हूँ। इसके कारण तेरा पुत्र अवध्य हो जायगा। परन्तु संसारमें मनुष्यका अमर होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। जो उत्पन्न हुआ है, उसे अवश्य मरना होगा।' ऐसा कहकर वरुणने श्रुतायुधको एक अभिमन्त्रित गदा दी और कहा, 'यह गदा तुम्हें किसी ऐसे व्यक्तिपर नहीं छोड़नी चाहिये, जो युद्ध न कर रहा हो। ऐसा करनेपर यह तुमपर ही गिरेगी।' किन्तु इस समय श्रुतायुधके मस्तकपर काल मँडरा रहा था। इसलिये उसने वरुणकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया और उससे श्रीकृष्णपर वार किया। भगवान्‌ने उसे अपने विशाल वक्षःस्थलपर लिया। और उसने वहाँसे लौटकर श्रुतायुधका काम तमाम कर दिया। श्रुतायुधने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्ण-पर गदाका वार किया था। इसलिये उसने लौटकर उसीको नष्ट कर दिया। इस प्रकार वरुणके कथनानुसार ही श्रुतायुध-का अन्त हुआ और वह सब योद्धाओंके देखते-देखते प्राण-हीन होकर पृथ्वीपर गिर गया।

श्रुतायुधको मरा देखकर कौरवोंकी सारी सेना और उसके नायकोंके भी पैर उखड़ गये। इसी समय काम्बोज-नरेशका शूरवीर पुत्र सुदक्षिण अर्जुनके सामने आया। अर्जुनने उसके ऊपर सात बाण छोड़े। वे उस वीरको घायल करके पृथ्वीमें घुस गये। तब सुदक्षिणने तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको बींधकर पाँच बाण अर्जुनपर छोड़े। अर्जुनने उसका धनुष काटकर ध्वजा भी काट डाली और दो अत्यन्त पैने बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। अब सुदक्षिणने अत्यन्त कुपित होकर धनञ्जयके ऊपर एक भयङ्कर शक्ति छोड़ी। वह उन्हें घायल करके चिनगारियोंकी वर्षा करती पृथ्वीपर गिर गयी। शक्तिकी चोटसे अर्जुनको गहरी मूर्च्छा आ गयी। चेत होने-पर उन्होंने कङ्कपत्रवाले चौदह बाणोंसे सुदक्षिणको तथा उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष और सारथिको भी घायल कर दिया। फिर और भी बहुत-से बाण छोड़कर उसके रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इसके पश्चात् एक तीखी धारवाले बाणसे उन्होंने सुदक्षिणकी छाती फाड़ डाली। इससे उसका कवच टूट गया, अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और मुकुट तथा अङ्गदादि आभूषण इधर-उधर बिखर गये। फिर एक कर्णी नामके बाणसे उन्होंने उसे भी धराशायी कर दिया।

राजन्! इस प्रकार वीर श्रुतायुध और सुदक्षिणके मारे जानेपर आपके सैनिक क्रोधमें भरकर अर्जुनपर टूट पड़े तथा अभीषाह, शूरसेन, शिबि और बसाति जातिके वीर उनपर बाणों-की वर्षा करने लगे। अर्जुनने अपने बाणोंसे उनमेंसे छः हजार योद्धाओंका सफाया कर दिया। तब उन्होंने चारों ओरसे अर्जुनको घेर लिया। किन्तु वे जैसे-जैसे धनञ्जयकी ओर गये, वैसे ही उन्होंने अपने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उनके सिर और भुजाओंको उड़ा दिया। उनके कटे हुए सिरोंसे सारी रणभूमि पट गयी। जिस समय वीर धनञ्जय उनका इस प्रकार संहार कर रहे थे, महाबली श्रुतायु और अच्युतायु उनके सामने आकर युद्ध करने लगे। उन दोनों वीरोंने उनकी दायीं और बायीं ओरसे बाण बरसाना आरम्भ किया और हजारों बाण छोड़कर उन्हें बिल्कुल ढक दिया।

इसी समय श्रुतायुने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अर्जुनपर बड़े जोरसे तोमरका वार किया। उससे घायल होकर वे एक-दम अचेत हो गये। इतनेहीमें अच्युतायुने उनके ऊपर एक अत्यन्त तीक्ष्ण त्रिशूल फेंका। उसकी चोटने अर्जुनके घावपर नमकका काम किया और वे बहुत घायल हो जानेके कारण अपने रथकी ध्वजाके डंडेका सहारा लेकर बैठे रह गये। तब अर्जुनको मरा हुआ समझकर आपकी सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। अर्जुनको अचेत देखकर श्रीकृष्ण बड़े चिन्तित हुए और अपनी मधुर वाणीसे उन्हें सचेत करने लगे। उससे बल पाकर वे धीरे-धीरे होशमें आने लगे। इस प्रकार मानो उनका यह नया जन्म ही हुआ। उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण और उनका रथ बाणोंसे ढके हुए हैं तथा दोनों शत्रु सामने डटे हुए हैं। बस, उन्होंने तुरंत ही ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया।

से हजारों बाण निकलने लगे। उन्होंने उन दोनों वीरों- वार किया और उनके छोड़े हुए बाण भी अर्जुनके बाणोंसे तीर्ण होकर आकाशमें उड़ने लगे। बात-की-बातमें उनके ोंसे मस्तक और भुजाएँ कट जानेके कारण वे दोनों महा- ो धराशायी हो गये। इस प्रकार श्रुतायु और अच्युतायुका हुआ देखकर सभी लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके ात् अर्जुन उनके अनुयायी पचास रथियोंको मारकर और भी च्छे-अच्छे वीरोंका संहार करते कौरवोंकी सेनाकी ओर बढ़े।

श्रुतायु और अच्युतायुका वध हुआ देखकर उनके पुत्र यतायु और दीर्घायु क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते र्जुनके सामने आये। किन्तु अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर पने बाणोंसे एक मुहूर्तमें ही उन्हें यमराजके पास भेज दिया। थी जिस प्रकार कमलवनको खूँद डालता है, उसी प्रकार ाावीर अर्जुन कौरवोंकी सेनाको कुचल रहे थे। उस समय ई भी क्षत्रियवीर उन्हें रोक नहीं पाता था। इतनेहीमें जसेनाके सहित अङ्गदेशीय, पूर्वीय, दाक्षिणात्य और कलिङ्ग- शीय राजाओंने दुर्योधनकी आज्ञासे उनपर आक्रमण किया।

किन्तु अर्जुनने गाण्डीवसे छोड़े हुए बाणोंसे तत्काल ही उनके सिर और भुजाओंको उड़ा दिया। इस युद्धमें अनेकों गजा- रोही म्लेच्छ धनञ्जयके बाणोंसे बिंधकर धराशायी हो गये। अर्जुनने अपने बाणजालसे सारी सेनाको आच्छादित कर दिया और मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटाधारी एवं दाढ़ीवाले आचार- हीन म्लेच्छोंको अपने शस्त्रकौशलसे काट-कूट डाला। उनके बाणोंसे बिंधकर वे सैकड़ों पर्वतीय योद्धा भयभीत होकर संग्रामभूमिसे भाग उठे। इस प्रकार घोड़े, हाथी और रथोंके सहित अनेकों वीरोंका संहार करते हुए वीर धनञ्जय रणभूमिमें विचर रहे थे।

अब राजा अम्बष्ठने उनकी गतिको रोका। अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे अपने तीखे बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार डाला और धनुषको भी काट गिराया। अम्बष्ठ एक भारी गदा लेकर बार-बार अर्जुन और श्रीकृष्णपर चोट करने लगा। तब अर्जुनने दो बाणोंसे गदाके सहित उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं और एक बाणसे उसका मस्तक भी उड़ा दिया। इस प्रकार वह मरकर धमाकेसे पृथ्वीपर जा पड़ा।

दुर्योधनके उलाहना देनेपर द्रोणाचार्यका उसे अभेद्य कवच पहनाकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजना

सञ्जयने कहा—राजन्! इस प्रकार जब अर्जुन सिन्धु- ाज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्मा- ी सेनाओंको चीरकर व्यूहमें घुस गये तथा उनके हाथसे ुदक्षिण और श्रुतायुका वध हो गया, तो अपनी सेनाको ागती देखकर आपका पुत्र दुर्योधन अकेला ही अपने रथ- ार चढ़ा हुआ बड़ी फुर्तीसे द्रोणाचार्यके पास आया और हने लगा, 'आचार्य! पुरुषसिंह अर्जुन हमारी इस विशाल ाहिनीको कुचलकर भीतर घुस गया है। अब आप विचार रें कि हमें उसके नाशके लिये क्या करना चाहिये। हमें तो आपहीका सबसे बढ़कर भरोसा है। आग जिस प्रकार घास- फूसको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन हमारी सेनाका संहार कर रहा है। इस समय जयद्रथकी रक्षा करनेवाले बड़े सन्देहमें पड़ गये हैं। हमारे पक्षके राजाओंको पूरा विश्वास था कि अर्जुन जीते-जी आपको लाँघकर सेनामें नहीं घुस सकेगा। परन्तु मैं देखता हूँ वह आपके सामने ही व्यूहमें घुस गया है। आज मुझे अपनी सारी सेना विकल और विनष्ट-सी जान पड़ती है। सिन्धुराज तो अपने घरको जा रहे थे। यदि आप मुझे यह वर न देते कि मैं अर्जुनको रोक लूँगा तो मैं उन्हें कभी न रोकता। मैंने मूर्खतासे आपकी रक्षामें विश्वास करके सिन्धुराजको भी समझा-बुझा दिया। मेरा विश्वास है कि मनुष्य यमराजकी दाढ़ोंमें पड़कर भले ही बच जाय, किन्तु रणभूमिमें अर्जुनके हाथमें आकर जयद्रथके प्राण किसी प्रकार नहीं बच सकते। अतः अब आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सिन्धुराजकी रक्षा हो सके। मैंने घबराहटमें कुछ अनुचित कह दिया हो, तो उससे कुपित न होकर आप किसी प्रकार इन्हें बचाइये।'

द्रोणाचार्यने कहा—राजन्! मैं तुम्हारी बातका बुरा नहीं मानता। मेरे लिये तुम अश्वत्थामाके समान हो। किन्तु जो सच्ची बात है, वह मैं तुमसे कहता हूँ; ध्यान देकर सुनो। अर्जुनके सारथि श्रीकृष्ण हैं और उनके घोड़े भी बड़े तेज हैं। इसलिये थोड़ा-सा रास्ता मिलनेपर भी वे तत्काल घुस जाते हैं। मैंने सभी धनुर्धरोंके सामने युधिष्ठिरको पकड़ने- की प्रतिज्ञा की थी। इस समय अर्जुन उनके पास नहीं है और वे अपनी सेनाके आगे खड़े हुए हैं। इसलिये अब मैं व्यूहके द्वारको छोड़कर अर्जुनसे लड़नेके लिये नहीं जाऊँगा। तुम कुल और पराक्रममें अर्जुनके समान ही हो और इस पृथ्वीके

स्वामी हो। इसलिये अपने सहायकोंको लेकर तुम्हीं अकेले अर्जुनसे युद्ध करो, किसी बातका भय मत मानो।

दुर्योधनने कहा—आचार्यचरण! जो आपको भी लाँघ गया, उस अर्जुनको मैं कैसे रोक सकूँगा। वह तो सभी शस्त्रधारियोंमें बढ़ा-चढ़ा है। मेरे विचारसे संग्राममें वज्रधर इन्द्रको जीत लेना तो आसान है, किन्तु अर्जुनसे पार पाना सहज नहीं है। जिसने कृतवर्मा और आपको भी परास्त कर दिया, श्रुतायुध, सुदक्षिण, अम्बष्ठ, श्रुतायु और अच्युतायुको नष्ट कर डाला और सहस्रों म्लेच्छोंका संहार कर दिया, उस शस्त्रकुशल दुर्जय वीर अर्जुनके मुकाबलेमें मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा?

द्रोणाचार्य बोले—कुरुराज! तुम ठीक कहते हो, अर्जुन अवश्य दुर्जय है; किन्तु मैं एक ऐसा उपाय किये देता हूँ, जिससे तुम उसकी टक्कर झेल सकोगे। आज श्रीकृष्णके सामने ही तुम अर्जुनसे युद्ध करोगे। इस अद्भुत प्रसङ्गको आज सभी वीर देखेंगे। मैं तुम्हारे इस सुवर्णके कवचको इस प्रकार बाँध दूँगा कि जिससे बाण या दूसरे प्रकारके अस्त्रोंका तुम्हारे ऊपर कोई असर नहीं होगा। यदि मनुष्योंके सहित देवता, असुर, यक्ष, नाग, राक्षस और तीनों लोक भी तुमसे युद्ध करनेके लिये सामने आयेंगे, तो भी तुम्हें कोई भय नहीं होगा। इसलिये इस कवचको धारण करके तुम स्वयं ही क्रोधातुर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये जाओ।

ऐसा कहकर आचार्यने तुरंत ही आचमन कर शास्त्र-विधिसे मन्त्रोच्चारण करते हुए दुर्योधनको वह चमचमाता हुआ कवच पहना दिया और कहा, 'परमात्मा, ब्रह्मा और ब्राह्मण तुम्हारा कल्याण करें।' इसके बाद वे फिर कहने लगे, 'भगवान् शङ्करने यह मन्त्र और कवच इन्द्रको दिया था, इसीसे उन्होंने संग्राममें वृत्रासुरका वध किया था। फिर इन्द्रने यह मन्त्रमय कवच अङ्गिराजीको दिया। अङ्गिराने इसे अपने पुत्र बृहस्पतिको और बृहस्पतिजीने अग्निवेश्यको बताया। अग्निवेश्यजीने यह कवच मुझे दिया था, सो आज मैं तुम्हारे शरीरकी रक्षाके लिये मन्त्रोच्चारणपूर्वक तुम्हें पहनाता हूँ।'

आचार्य द्रोणके हाथसे इस प्रकार युद्धके लिये तैयार हो राजा दुर्योधन त्रिगर्त्तदेशके सहस्रों रथी और अनेकों अन्य महारथियोंको साथ ले बाजे-गाजेके साथ अर्जुनकी ओर चला।

द्रोणाचार्यके साथ धृष्टद्युम्न और सात्यकिका घोर युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन्! जब अर्जुन और श्रीकृष्ण कौरवोंकी सेनामें घुस गये और उनके पीछे दुर्योधन भी चला गया, तो पाण्डवोंने सोमक वीरोंको साथ ले बड़ा कोलाहल करते हुए द्रोणाचार्यपर धावा बोल दिया। बस, दोनों ओरसे बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ गयी। उस समय जैसा युद्ध हुआ, वैसा हमने न तो कभी देखा है और न सुना ही है। पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न और पाण्डवलोग बार-बार आचार्य-पर प्रहार कर रहे थे; और जिस प्रकार आचार्य उनपर बाणोंकी वर्षा करते थे, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नने भी बाणोंकी झड़ी लगा दी थी। द्रोण पाण्डवोंकी जिस-जिस रथ-सेनापर बाण छोड़ते थे, उसी-उसीकी ओरसे बाण बरसाकर धृष्टद्युम्न उन्हें हटा देता था। इस प्रकार बहुत प्रयत्न करनेपर भी धृष्टद्युम्नसे सामना होनेपर उनकी सेनाके तीन भाग हो गये। पाण्डवोंकी मारसे घबराकर कुछ योद्धा तो कृतवर्माकी सेनामें जा मिले, कुछ जलसन्धकी ओर चले गये और कुछ द्रोणाचार्यजीके पास ही रहे। महारथी द्रोण तो अपनी सेनाको संघटित करनेका प्रयत्न करते थे, किन्तु धृष्टद्युम्न उसे बराबर कुचल रहा था। अन्तमें आपकी सेना उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गयी जैसे दुष्ट राजाका देश दुर्भिक्ष, महामारी और लुटेरोंके कारण उजड़ जाता है।

इस प्रकार जब पाण्डवोंकी मारसे सेनाके तीन भाग हो गये तो आचार्य क्रोधमें भरकर अपने बाणोंसे पाञ्चालोंको घायल करने लगे। इस समय उनका स्वरूप प्रज्वलित प्रलयाग्निके समान भयानक हो गया। आचार्यके बाणोंसे सन्तप्त होकर धृष्टद्युम्नकी सेना घामसे तपी हुई-सी होकर इधर-उधर भटकने लगी। इस प्रकार द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे व्यथित होनेके कारण दोनों ओरके वीर प्राणोंकी आशा छोड़कर सब ओर पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करने लगे।

इसी समय कुन्तीनन्दन भीमसेनको विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण—इन तीनों भाइयोंने घेर लिया। शिबिके पुत्र राजा गोवाशनने एक हजार योद्धाओंको साथमें लेकर काशिराज अभिभूके पुत्र पराक्रान्तको रोक दिया। मद्रराज राजा शल्यने महाराज युधिष्ठिरका सामना किया। दुःशासन क्रोधमें भरकर सात्यकिपर टूट पड़ा। मैंने अपनी चार सौ वीरोंकी सेना

लेकर चेकितानकी प्रगति रोक दी । शकुनिने सात सौ गन्धारदेशीय योद्धाओंके साथ नकुलका मुकाबला किया । अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द मत्स्यराज विराटके सामने आकर डट गये । महाराज बाह्लीकने शिखण्डीको रोका । अवन्तिनरेशने प्रभद्रक और सौ वीरोंको साथ लेकर धृष्टद्युम्नका सामना किया । तथा क्रूरकर्मा राक्षस घटोत्कचपर अलायुधने चढ़ाई कर दी ।

महाराज ! इस समय सिन्धुराज जयद्रथ सारी सेनाके पीछे था और कृपाचार्य आदि महान् धनुर्धर उसकी रक्षाके लिये तैनात थे । उसकी दाहिनी ओर अश्वत्थामा और बायीं ओर कर्ण थे, तथा भूरिश्रवा आदि उसके पृष्ठरक्षक थे । इनके सिवा कृपाचार्य, वृषसेन, शल और शल्य आदि अनेकों रणबाँकुरे वीर भी उसीकी रक्षाके लिये युद्ध कर रहे थे ।

व्यूहके मुहानेपर उक्त वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध होने लगा । माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने बाणोंकी वर्षा करके अपने प्रति वैरभाव रखनेवाले शकुनिका नाकमें दम कर दिया । उस समय उसे कुछ भी उपाय न सूझ पड़ता था, वह सारा पराक्रम खो बैठा था । जब बाणोंकी चोटसे वह बहुत ही तंग आ गया तो बड़ी तेजीसे अपने घोड़ोंको बढ़ाकर द्रोणाचार्यजीकी सेनामें जा मिला । इस समय धृष्टद्युम्नके साथ लड़ते हुए महाबली द्रोणाचार्यजीने जैसी बाणवर्षा की, वह बड़ी ही अचंभेमें डालनेवाली थी । द्रोण और धृष्टद्युम्न दोनोंहीने अनेकों वीरोंके सिर उड़ा दिये । जब धृष्टद्युम्नने देखा कि आचार्य बहुत समीप आ गये हैं, तो उसने धनुष रखकर हाथमें ढाल-तलवार ले लिये और उनका वध करनेके लिये वह अपने रथके जुएसे उनके रथपर कूद गया । आचार्यने सौ बाण मारकर उसकी ढालको और दस बाणोंसे उसकी तलवारको काट-कूट डाला । फिर चौसठ बाणोंसे उसके घोड़ोंका काम तमाम कर दिया तथा दो बाणोंसे ध्वजा और छत्र काटकर उसके पार्श्वरक्षकोंको भी धराशायी कर दिया । इसके पश्चात् उन्होंने धनुषको कानतक खींचकर धृष्टद्युम्नपर एक प्राणान्तक बाण छोड़ा । किन्तु सात्यकिने चौदह तीखे बाणोंसे उसे बीचहीमें काट डाला और आचार्यके चंगुलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया । इस प्रकार जब द्रोणके मुकाबलेपर सात्यकि आ गया तो पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्नको रथमें चढ़ाकर तुरंत ही दूर ले गये ।

अब आचार्यने सात्यकिके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया । सात्यकिके घोड़े भी बड़ी फुर्तीसे द्रोणके सामने आकर डट गये । तब वे दोनों वीर परस्पर हजारों बाण छोड़ते हुए घोर युद्ध करने लगे । उन दोनोंने आकाशमें बाणोंका जाल-सा फैला दिया और दसों दिशाओंको बाणोंसे व्याप्त कर दिया । बाणोंका जाल फैल जानेसे सब ओर घोर अन्धकार छा गया तथा सूर्यका प्रकाश और वायुका चलना भी बंद हो गया । दोनोंके शरीर खूनमें लथपथ हो गये । उनके छत्र और ध्वजाएँ कटकर गिर गयीं । वे दोनों ही प्राणान्तक बाणोंका प्रयोग कर रहे थे । उस समय हमारे और राजा युधिष्ठिरके पक्षके वीर खड़े-खड़े द्रोण और सात्यकिका संग्राम देख रहे थे । विमानोंपर चढ़े हुए ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि देवता तथा सिद्ध, चारण, विद्याधर और नागगण भी उन पुरुषसिंहोंके आगे बढ़ने, पीछे हटने तथा तरह-तरहके शस्त्रसञ्चालनके कौशलको देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़े हुए थे । इस प्रकार वे दोनों वीर अपने-अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए एक-दूसरेको बाणोंसे बींध रहे थे । इतनेहीमें सात्यकिने अपने सुदृढ बाणोंसे आचार्यके धनुष-बाण काट डाले । क्षणभरहीमें द्रोणने दूसरा धनुष चढ़ाया । किन्तु सात्यकिने उसे भी काट डाला । इसी प्रकार द्रोण जो-जो धनुष चढ़ाते गये, सात्यकि उसीको काटता गया । इस तरह उसने उनके सौ धनुष काट डाले । यह काम इतनी सफाईसे हुआ कि आचार्य कब धनुष चढ़ाते हैं तथा सात्यकि कब उसे काट डालता है—यह किसीको जान ही नहीं पड़ता था । सात्यकिका यह अतिमानुष कर्म देखकर द्रोणने मन-ही-मन विचार किया कि जो अस्त्रबल परशुराम, कार्तवीर्य, अर्जुन और भीष्ममें है वही सात्यकिमें भी है ।

इसके बाद द्रोणाचार्यने एक नया धनुष लिया और उसपर कई अस्त्र चढ़ाये । किन्तु सात्यकिने अपने अस्त्र-कौशलसे उन सब अस्त्रोंको काट डाला और आचार्यपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इससे सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ । अन्तमें आचार्यने अत्यन्त कुपित होकर सात्यकिका संहार करनेके लिये दिव्य आग्नेयास्त्र छोड़ा । यह देखकर सात्यकिने दिव्य वारुणास्त्रका प्रयोग किया । उस समय दोनों वीरोंको दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते देखकर बड़ा हाहाकार होने लगा । यहाँतक कि आकाशमें पक्षियोंका उड़ना भी बंद हो गया । तब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव सब ओरसे सात्यकिकी रक्षा करने लगे तथा धृष्टद्युम्नादिके साथ राजा विराट और केकयनरेश मत्स्य और शाल्वदेशीय सेनाओंको लेकर द्रोणके सामने आकर डट गये । दूसरी ओर

दुःशासनके नेतृत्वमें हजारों राजकुमार द्रोणको शत्रुओंसे घिरा देखकर उनकी सहायताके लिये आ गये। बस, दोनों ओरके वीरोंमें बड़ा तुमुल युद्ध छिड़ गया। उस समय धूलि और बाणोंकी वर्षाके कारण कुछ भी दिखायी नहीं देता था; इसलिये वह युद्ध मर्यादाहीन हो गया—उसमें अपने या पराये पक्षका भी ज्ञान नहीं रहा।

विन्द, अनुविन्दका वध तथा कौरवसेनाके बीचमें श्रीकृष्णकी अश्वचर्या

सञ्जयने कहा—राजन्! अब सूर्यनारायण ढल चुके थे। कौरवपक्षके योद्धाओंमेंसे कोई तो युद्धके मैदानमें डटे हुए थे, कोई लौट आये थे और कोई पीठ दिखाकर भाग रहे थे। इस प्रकार धीरे-धीरे वह दिन बीत रहा था। किन्तु अर्जुन और श्रीकृष्ण बराबर जयद्रथकी ओर ही बढ़ रहे थे। अर्जुन अपने बाणोंसे रथके जानेयोग्य रास्ता बना लेते थे और श्रीकृष्ण उसीसे बढ़ते चले जा रहे थे। राजन्! अर्जुनका रथ जिस-जिस ओर जाता था, उसी-उसी ओर आपकी सेनामें दरार पड़ जाती थी। उनके बाँस और लोहेके बाण अनेकों शत्रुओंका संहार करते हुए उनका रक्तपान कर रहे थे। वे रथसे एक कोसतकके शत्रुओंका सफाया कर देते थे। अर्जुनका रथ बड़ी तेजीसे चल रहा था। उस समय उसने सूर्य, इन्द्र, रुद्र और कुबेरके रथोंको भी मात कर दिया था।

जिस समय वह रथ रथियोंकी सेनाके बीचमें पहुँचा, उसके घोड़े भूख-प्याससे व्याकुल हो उठे और बड़ी कठिनतासे रथ खींचने लगे। उन्हें पर्वतके समान सहस्रों मरे हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथोंके ऊपर होकर अपना मार्ग निकालना पड़ता था। इसी समय अवन्तिदेशके दोनों राजकुमार अपनी सेनाके सहित अर्जुनके सामने आ डटे। उन्होंने बड़े उल्लासमें भरकर अर्जुनको चौसठ, श्रीकृष्णको सत्तर और घोड़ोंको सौ बाणोंसे घायल कर दिया। तब अर्जुनने कुपित होकर नौ बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंको बींध दिया तथा दो बाणोंसे उनके धनुष और ध्वजाओंको भी काट डाला। वे दूसरे धनुष लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक अर्जुनपर बाण बरसाने लगे। अर्जुनने तुरंत ही फिर उनके धनुष काट डाले तथा और बाण छोड़कर उनके घोड़े, सारथि, पार्श्वरक्षक और कई साथियोंको मार डाला। फिर उन्होंने एक क्षुरप्र बाणसे बड़े भाई विन्दका सिर काट डाला और वह मरकर पृथ्वीपर जा पड़ा। विन्दको मरा देखकर महाबली अनुविन्द हाथमें गदा लेकर रथसे कूद पड़ा और अपने भाईकी मृत्युका स्मरण करते हुए उससे श्रीकृष्णके ललाटपर चोट की। किन्तु श्रीकृष्ण उससे तनिक भी विचलित न हुए। अर्जुनने तुरंत ही छः बाणोंसे उसके हाथ, पैर, सिर और गरदन काट डाले और वह पर्वतशिखरके समान पृथ्वीपर गिर गया।

विन्द और अनुविन्दको मरा देखकर उनके साथी अत्यन्त कुपित होकर सहस्रों बाण बरसाते अर्जुनकी ओर दौड़े। अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे अपने बाणोंद्वारा उनका सफाया कर दिया और वे आगे बढ़े। फिर उन्होंने धीरे-धीरे श्रीकृष्णसे कहा, 'घोड़े बाणोंसे बहुत व्यथित हो रहे हैं और बहुत थक गये हैं। जयद्रथ भी अभी दूर है। ऐसी स्थितिमें इस समय आपको क्या करना उचित जान पड़ता है? मेरे विचारसे जो बात ठीक जान पड़ती है, वह मैं कहता हूँ; सुनिये। आप मजेसे घोड़ोंको छोड़ दीजिये और इनके बाण निकाल दीजिये।' अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर श्रीकृष्णने कहा, 'पार्थ! तुम जैसा कहते हो, मेरा भी यही विचार है।' अर्जुनने कहा, 'केशव! मैं कौरवोंकी सारी सेनाको रोके रहूँगा। इस बीचमें आप यथावत् सब काम कर लें।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे
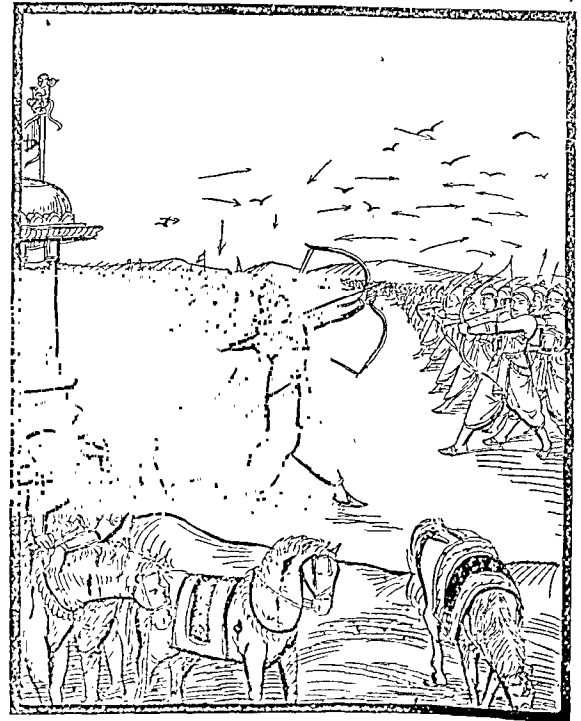
उतर पड़े और बड़ी सावधानीसे धनुष लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये। इस समय विजयाभिलाषी क्षत्रिय उन्हें पृथ्वीपर खड़ा देखकर 'अब अच्छा मौका है' इस प्रकार चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े। उन्होंने बड़ी भारी रथसेनाके द्वारा अकेले अर्जुनको घेर लिया और अपने धनुष चढ़ाकर तरह-तरहके शस्त्र और बाणोंसे उन्हें ढक दिया। किन्तु वीर अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंको सब ओरसे रोककर उन सभीको अनेकों बाणोंसे आच्छादित कर दिया। कौरवोंकी असंख्य सेना अपार समुद्रके समान थी। उसमें बाणरूप तरङ्गें और ध्वजारूप भँवरें पड़ रही थीं, हाथीरूप नाक तैर रहे थे, पदातिरूप मछलियाँ कल्लोल कर रही थीं तथा शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि उसकी गर्जना थी। अगणित रथावलि उसकी अनन्त तरङ्गमाला थी, पगड़ियाँ कछुए थे, छत्र और पताकाएँ फेन थे और हाथियोंके शरीर मानो शिलाएँ थीं। अर्जुनने तटरूप होकर उसे अपने बाणोंसे रोक रक्खा था।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुन और श्रीकृष्ण पृथ्वीपर खड़े हुए थे, तो ऐसा अवसर पाकर भी कौरवलोग अर्जुनको क्यों नहीं मार सके?

सञ्जयने कहा—राजन्! जिस प्रकार लोभ अकेला ही सारे गुणोंको रोक देता है, उसी प्रकार अर्जुनने पृथ्वीपर खड़े होनेपर भी रथोंपर चढ़े हुए समस्त राजाओंको रोक रक्खा था। इसी समय श्रीकृष्णने घबराकर अपने प्रियसखा अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! यहाँ रणभूमिमें कोई अच्छा जलाशय नहीं है। तुम्हारे घोड़े पानी पीना चाहते हैं।' इसपर अर्जुनने तुरंत ही अस्त्रद्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीनेयोग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। यह सरोवर बहुत विस्तृत और स्वच्छ जलसे भरा हुआ था। एक क्षणमें ही तैयार किये

हुए उस सरोवरको देखनेके लिये वहाँ नारद मुनि भी पधारे। इसमें अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने एक बाणोंका घर बना दिया, जिसके खंभे, बाँस और छत बाणोंहीके थे। उसे देखकर श्रीकृष्ण हँसे और बोले 'खूब बनाया!' इसके बाद वे तुरंत ही रथसे कूद पड़े और उन्होंने बाणोंसे बिंधे हुए घोड़ोंको खोल दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग 'वाह! वाह!' की ध्वनि करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनसे युद्ध करनेपर भी उन्हें पीछे न हटा सके। कमलनयन श्रीकृष्ण, मानो स्त्रियोंके बीचमें खड़े हों, इस प्रकार मुसकराते हुए घोड़ोंको अर्जुनके बनाये हुए बाणोंके घरमें ले गये और आपके सब सैनिकोंके सामने ही निर्भय होकर उन्हें लिटाने लगे। वे अश्वचर्यामें उस्ताद तो हैं ही। थोड़ी ही देरमें उन्होंने घोड़ोंके श्रम, ग्लानि, कम्प और घावोंको दूर कर दिया तथा अपने करकमलोंसे उनके बाण निकालकर, मालिश करके और पृथ्वीपर लिटाकर उन्हें जल

पिलाया। इस प्रकार जब वे नहाकर, जल पीकर और घास खाकर ताजे हो गये तो उन्हें फिर रथमें जोत दिया। इसके बाद वे अर्जुनके साथ फिर उस रथपर चढ़कर बड़ी तेजीसे चले।

इस समय आपके पक्षके योद्धा कहने लगे, 'अहो! श्रीकृष्ण और अर्जुन हमारे रहते निकल गये और हम उनका कुछ भी न बिगाड़ सके। हमें धिक्कार है! धिक्कार है! बालक जैसे खिलौनेकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वे एक ही रथमें चढ़कर हमारी सेनाको कुछ भी न समझकर आगे बढ़ गये।' उनका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर उनमेंसे कोई-कोई राजा कहने लगे, 'अकेले दुर्योधनके अपराधसे ही सारी सेना, राजा धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण भूमण्डल नाशकी ओर बढ़ रहे हैं। किन्तु राजा धृतराष्ट्रकी समझमें यह बात अभीतक नहीं बैठती।'

कौरवपक्षके वीर जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, सूर्य-नारायण अस्ताचलकी ओर ढल चुके थे। इसलिये अर्जुन बड़ी तेजीसे जयद्रथकी ओर बढ़ रहे थे। कोई भी योद्धा उन्हें रोक नहीं पाता था। उन्होंने सारी सेनाके पैर उखाड़ दिये थे। श्रीकृष्ण सेनाको रौंदते हुए बड़ी तेजीसे घोड़ोंको हाँक रहे थे और अपने पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि करते जाते थे। यह देखकर शत्रुपक्षके रथी बहुत उदास हो गये। धूलके कारण इस समय सूर्यदेव भी बहुत ढक गये थे तथा बाणोंसे व्यथित होनेके कारण सैनिकलोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर देख भी नहीं पाते थे।

अर्जुनका दुर्योधन तथा अश्वत्थामा आदि आठ महारथियोंसे संग्राम

सञ्जयने कहा—राजन्! अब श्रीकृष्ण और अर्जुन निर्भय होकर आपसमें जयद्रथका वध करनेकी बात करने लगे। उन्हें सुनकर शत्रु बहुत भयभीत हो गये। वे दोनों आपसमें कह रहे थे, 'जयद्रथको छः महारथी कौरवोंने अपने बीचमें कर लिया है; किन्तु एक बार उसपर दृष्टि पड़ गयी, तो वह हमारे हाथसे छूटकर नहीं जा सकेगा। यदि देवताओं-के सहित स्वयं इन्द्र भी उसकी रक्षा करेंगे, तो भी हम उसे मारकर ही छोड़ेंगे।' उस समय उन दोनोंके मुखकी कान्ति देखकर आपके पक्षके वीर यही समझने लगे कि ये अवश्य जयद्रथका वध कर देंगे।

इसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुनने सिन्धुराजको देखकर हर्षसे बड़ी गर्जना की। उन्हें बढ़ते देखकर आपका पुत्र दुर्योधन जयद्रथकी रक्षाके लिये उनके आगे होकर निकल गया। आचार्य द्रोण उसके कवच बाँध चुके थे। अतः वह अकेला ही रथपर चढ़कर संग्रामभूमिमें आ कूदा। जिस समय आपका पुत्र अर्जुनको लाँघकर आगे बढ़ा, आपकी सारी सेनामें खुशीसे बाजे बजने लगे। तब श्रीकृष्णने कहा, 'अर्जुन! देखो, आज दुर्योधन हमसे भी आगे बढ़ गया है। मुझे यह बड़ी अद्भुत बात जान पड़ती है। मालूम होता है इसके समान कोई दूसरा रथी नहीं है। अब समयानुसार उसके साथ युद्ध करना मैं उचित ही समझता हूँ। आज यह तुम्हारा लक्ष्य बना है—इसे तुम अपनी सफलता ही समझो; नहीं तो यह राज्यका लोभी तुम्हारे साथ संग्राम करके मरनेके लिये क्यों आता? आज सौभाग्यसे ही यह तुम्हारे बाणोंका विषय बना है; इसलिये तुम ऐसा करो, जिससे यह शीघ्र ही अपने प्राण त्याग दे। पार्थ! तुम्हारा सामना तो देवता, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोक भी नहीं कर सकते; फिर इस अकेले दुर्योधनकी तो बात ही क्या है?' यह सुनकर अर्जुनने कहा, 'ठीक है; यदि इस समय मुझे यह काम करना ही चाहिये, तो आप और सब काम छोड़कर दुर्योधनकी ओर ही चलिये।'

इस प्रकार आपसमें बातें करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रसन्न होकर राजा दुर्योधनके पास पहुँचनेके लिये अपने सफेद घोड़े बढ़ाये। इस महासङ्कटके समय भी दुर्योधन डरा नहीं, उसने उन्हें अपने सामने आनेपर रोक दिया। यह देखकर उसके पक्षके सभी क्षत्रिय उसकी बड़ाई करने लगे। राजाको संग्राम-भूमिमें लड़ते देखकर आपकी सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। इससे अर्जुनका क्रोध बहुत बढ़ गया। तब दुर्योधनने हँसते हुए उन्हें युद्धके लिये ललकारा। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उल्लासमें भरकर गरजने और अपने शङ्ख बजाने लगे। उन्हें प्रसन्न देखकर सभी कौरव दुर्योधनके जीवनके विषयमें निराश हो गये और अत्यन्त भयभीत होकर कहने लगे, 'हाय! महाराज मौतके पंजेमें जा पड़े, हाय! महाराज मौतके पंजेमें जा पड़े।' उनका कोलाहल सुनकर दुर्योधनने कहा, 'डरो मत, मैं अभी कृष्ण और अर्जुनको मृत्युके पास भेजे देता हूँ।'

ऐसा कहकर उसने तीन तीखे तीरोंसे अर्जुनपर वार किया और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको बींध दिया। फिर दस बाण श्रीकृष्णकी छातीमें मारे और एक भल्लसे उनके कोड़ेको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इसपर अर्जुनने बड़ी सावधानीसे उसपर चौदह बाण छोड़े; किन्तु वे उसके कवचसे टकराकर पृथ्वीपर गिर गये। उन्हें निष्फल हुआ देखकर उन्होंने चौदह बाण फिर छोड़े, किन्तु वे भी दुर्योधनके कवचसे लगकर जमीनपर जा पड़े। यह देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'आज तो मैं यह अनोखी बात देख रहा हूँ। देखो, तुम्हारे बाण शिलापर छोड़े हुए तीरोंके समान कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं। पार्थ! तुम्हारे बाण तो वज्रपातके समान भयङ्कर और शत्रुके शरीरमें घुस जानेवाले होते हैं; परन्तु यह कैसी विडम्बना है, आज इनसे कुछ भी काम नहीं हो रहा है।' अर्जुनने कहा, 'श्रीकृष्ण! मालूम होता है, दुर्योधनको ऐसी शक्ति आचार्य द्रोणने दी है। इसके कवच धारण करनेकी जो शैली है, वह मेरे अस्त्रोंके लिये भी अभेद्य है। इसके कवचमें तीनों लोकोंकी शक्ति समायी हुई है। इसे एकमात्र आचार्य ही जानते हैं या उनकी कृपासे मुझे इसका ज्ञान है। इस कवचको बाणोंद्वारा किसी प्रकार नहीं भेदा जा सकता। यही नहीं, अपने वज्रद्वारा स्वयं इन्द्र भी इसे नहीं काट सकते। कृष्ण! यह सब रहस्य जानते तो आप भी हैं, फिर इस प्रकार प्रश्न करके मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? तीनों लोकोंमें जो कुछ हो चुका है, जो होता है और जो होगा—वह सभी आपको विदित है। आपके समान इन सब बातोंको जाननेवाला कोई नहीं है। यह ठीक है, दुर्योधन आचार्यके पहनाये हुए कवचको धारण करके इस समय निर्भय हुआ खड़ा है; किन्तु अब आप मेरे धनुष और भुजाओंके पराक्रमको भी देखें। मैं कवचसे सुरक्षित होनेपर भी आज इसे परास्त कर दूँगा।'

ऐसा कहकर अर्जुनने कवचको तोड़नेवाले मानवास्त्रसे अभिमन्त्रित करके अनेकों बाण चढ़ाये। किन्तु अश्वत्थामाने सब प्रकारके अस्त्रोंको काट देनेवाले बाणोंसे उन्हें धनुषके ऊपर ही काट दिया। यह देख अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'जनार्दन! इस अस्त्रका मैं दुबारा प्रयोग नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा करनेपर यह अस्त्र मेरा और मेरी सेनाका ही संहार कर डालेगा।' इतनेहीमें दुर्योधनने नौ-नौ बाणोंसे अर्जुन और श्रीकृष्णको घायल कर दिया तथा उनपर और भी अनेकों बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसकी भीषण बाणवर्षा देखकर आपके पक्षके वीर बड़े प्रसन्न हुए और बाजोंकी ध्वनि करते हुए सिंहनाद करने लगे। तब अर्जुनने अपने कालके समान कराल और तीखे बाणोंसे दुर्योधनके घोड़े और दोनों पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। फिर उसके धनुष और दस्तानोंको भी काट दिया। इस प्रकार उसे रथहीन करके दो बाणोंसे उसकी हथेलियोंको बींधा तथा उसके नखोंके भीतरी मांसको छेदकर उसे ऐसा व्याकुल कर दिया कि वह भागनेकी चेष्टा करने लगा। दुर्योधनको इस प्रकार आपत्तिमें पड़ा देखकर अनेकों धनुर्धर वीर उसकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े। उन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया। जनसमूहसे घिर जाने और भीषण बाणवर्षाके कारण उस समय न तो अर्जुन ही दिखायी देते थे और न श्रीकृष्ण ही। यहाँतक कि उनका रथ भी आँखोंसे ओझल हो गया था।

तब अर्जुनने गाण्डीव धनुष खींचकर भीषण टंकार की और भारी बाणवर्षा करके शत्रुओंका संहार करना आरम्भ कर दिया। श्रीकृष्ण उच्च स्वरसे पाञ्चजन्य शङ्ख बजाने लगे। उस शङ्खके नाद और गाण्डीवकी टङ्कारसे भयभीत होकर बलवान् और दुर्बल सभी पृथ्वीपर लोटने लगे तथा पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालके सहित सारी पृथ्वी गूँज उठी। आपकी ओरके अनेकों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारनेके लिये बड़ी फुर्तीसे दौड़ आये। भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा—इन आठ वीरोंने एक साथ ही उनपर आक्रमण किया। उन सबके साथ राजा दुर्योधनने

जयद्रथकी रक्षाके उद्देश्यसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। अश्वत्थामाने तिहत्तर बाणोंसे श्रीकृष्णपर और तीनसे अर्जुनपर वार किया तथा पाँच बाणोंसे उनकी ध्वजा और घोड़ोंपर भी चोट की। इसपर अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामापर छः सौ बाण छोड़े तथा दस बाणोंसे कर्ण और तीनसे वृषसेनको बींधकर राजा शल्यके बाणसहित धनुषको काट डाला। शल्यने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर अर्जुनको घायल कर दिया। फिर उन्हें भूरिश्रवाने तीन, कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दस और मद्रराजने दस बाणोंसे बींध डाला। इसपर अर्जुन हँसे और अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उन्होंने कर्णपर बारह और वृषसेनपर तीन बाण छोड़कर शल्यके बाणसहित धनुषको काट डाला। फिर आठ बाणोंसे अश्वत्थामाको, पचीससे कृपाचार्यको और सौसे जयद्रथको घायल कर दिया। इसके बाद उन्होंने अश्वत्थामापर सत्तर बाण और भी छोड़े। तब भूरिश्रवाने कुपित होकर श्रीकृष्णका कोड़ा काट डाला और अर्जुनपर तिहत्तर बाणोंसे वार किया। इसपर अर्जुनने सौ बाणोंसे उन सब शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

शकटव्यूहके मुहानेपर कौरव और पाण्डवपक्षके वीरोंका संग्राम तथा कौरवपक्षके कई वीरोंका वध

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुन जयद्रथकी ओर चला गया, तो आचार्य द्रोणद्वारा रोके हुए पाञ्चाल वीरोंने कौरवोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! उस दिन दोपहरके बाद कौरव और पाञ्चालोंमें जो रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, उसके प्रधान लक्ष्य आचार्य द्रोण ही थे। सभी पाञ्चाल और पाण्डव वीर द्रोणके रथके पास पहुँचकर उनकी सेनाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये बड़े-बड़े शस्त्र चलाने लगे। सबसे पहले केकय महारथी बृहत्क्षत्र पैने-पैने बाण बरसाता हुआ आचार्यके सामने आया। उसका मुकाबला सैकड़ों बाण बरसाते हुए क्षेमधूर्त्तिने किया। फिर चेदिराज धृष्टकेतु आचार्यपर टूट पड़ा। उसका सामना वीरधन्वाने किया। इसी प्रकार सहदेवको दुर्मुखने, सात्यकिको व्याघ्रदत्तने, द्रौपदीके पुत्रोंको सोमदत्तके पुत्रने और भीमसेनको राक्षस अलम्बुषने रोका।

इसी समय राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यपर नब्बे बाण छोड़े। तब आचार्यने सारथि और घोड़ोंके सहित उनपर पच्चीस बाणोंसे वार किया। परन्तु धर्मराजने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उन सब बाणोंको अपनी बाणवर्षासे रोक दिया। इससे द्रोणका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने महात्मा युधिष्ठिरका धनुष काट डाला और बड़ी फुर्तीसे हजारों बाण बरसाकर उन्हें सब ओरसे ढक दिया। इससे अत्यन्त खिन्न होकर धर्मराजने वह टूटा हुआ धनुष फेंक दिया तथा एक दूसरा प्रचण्ड धनुष लेकर आचार्यके छोड़े हुए सहस्रों बाणोंको काट डाला। फिर उन्होंने द्रोणके ऊपर एक अत्यन्त भयानक गदा छोड़ी और उल्लासमें भरकर गर्जना करने लगे। गदाको अपनी ओर आते देख आचार्यने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। वह गदाको भस्म करके राजा युधिष्ठिरके रथकी ओर चला। तब धर्मराजने ब्रह्मास्त्रसे ही उसे शान्त कर दिया तथा पाँच बाणोंसे आचार्यको बींधकर उनका धनुष काट डाला। तब द्रोणने वह टूटा हुआ धनुष फेंककर धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर गदा फेंकी। उसे अपनी ओर आते देख धर्मराजने भी एक गदा उठाकर चलायी। वे गदाएँ आपसमें टकरा उठीं, उनसे चिनगारियाँ

निकलने लगीं और फिर वे पृथ्वीपर जा पड़ीं। अब द्रोणाचार्यका क्रोध बहुत ही बढ़ गया। उन्होंने चार पैने बाणोंसे युधिष्ठिरके घोड़े मार डाले। एक भल्लसे उनका धनुष काट

दिया, एकसे ध्वजा काट डाली और तीन बाणोंसे स्वयं उन्हें भी बहुत पीड़ित कर दिया। घोड़ोंके मारे जानेसे महाराज युधिष्ठिर बड़ी फुर्तीसे रथसे कूद पड़े और सहदेवके रथपर चढ़कर घोड़ोंको तेजीसे बढ़ाकर युद्धके मैदानसे चले गये।

दूसरी ओर महापराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको आते देख क्षेमधूर्त्तिने बाणोंद्वारा उसकी छातीपर चोट की। तब बृहत्क्षत्रने बड़ी फुर्तीसे क्षेमधूर्त्तिके नब्बे बाण मारे। इसपर क्षेमधूर्त्तिने एक पैने भल्लसे केकयराजका धनुष काट डाला और स्वयं उसे भी एक बाणसे घायल कर दिया। केकयराजने एक दूसरा धनुष लेकर हँसते-हँसते महारथी क्षेमधूर्त्तिके घोड़े, सारथि और रथको नष्ट कर डाला तथा एक पैने भल्लसे उसके कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर दिया। इसके बाद वह पाण्डवोंके हितके लिये अकस्मात् आपकी सेनापर टूट पड़ा।

चेदिराज धृष्टकेतुको वीरधन्वाने रोका था। वे दोनों वीर आपसमें भिड़कर सहस्रों बाणोंसे एक-दूसरेको घायल कर रहे थे। तब वीरधन्वाने कुपित होकर एक भल्लसे धृष्टकेतुके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। चेदिराजने उसे फेंककर एक लोहेकी शक्ति उठायी और उसे दोनों हाथोंसे वीरधन्वापर फेंका। उसकी भयङ्कर चोटसे वीरधन्वाकी छाती फट गयी और वह रथसे पृथ्वीपर गिर गया।

दूसरी ओर दुर्मुखने सहदेवपर साठ बाण छोड़े और बड़ी भारी गर्जना की। इसपर सहदेवने हँसते-हँसते उसको अनेकों तीखे बाणोंसे बींध डाला। दुर्मुखने उसके नौ बाण मारे। तब सहदेवने एक भल्लसे दुर्मुखकी ध्वजा काट डाली, चार पैने बाणोंसे चारों घोड़े मार दिये और एक अत्यन्त तीखे तीरसे उसका धनुष काट डाला। इसके बाद उसने उसके सारथिका सिर भी उड़ा दिया तथा पाँच बाणोंसे स्वयं उसको घायल कर दिया। तब दुर्मुख अपने अश्वहीन रथको छोड़कर निरमित्रके रथपर चढ़ गया। इसपर सहदेवने कुपित होकर एक भल्लसे निरमित्रपर प्रहार किया। इसपर त्रिगर्तराजका पुत्र निरमित्र रथकी बैठकसे नीचे गिर गया। राजपुत्र निरमित्रको मरा देखकर त्रिगर्त्तदेशकी सेनामें बड़ा हाहाकार होने लगा। इसी समय दूसरी आश्चर्यकी बात यह हुई कि नकुलने एक क्षणमें ही आपके पुत्र विकर्णको परास्त कर दिया।

सेनाके दूसरे भागमें व्याघ्रदत्त अपने तीखे बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित कर रहा था। सात्यकिने अपने हाथकी सफाईसे उन सबको रोक दिया तथा अपने बाणोंद्वारा ध्वजा, सारथि और घोड़ोंके सहित व्याघ्रदत्तको भी धराशायी कर दिया। उस मगधराजकुमारका वध होनेपर मगधदेशके अनेकों वीर सहस्रों बाण, तोमर, भिन्दिपाल, प्रास, मुद्गर और मूसल आदि शस्त्रोंका वार करते हुए सात्यकिके साथ युद्ध करने लगे। किन्तु सात्यकिने हँसते-हँसते अनायास ही उन सबको परास्त कर दिया। महाबाहु सात्यकिकी मारसे भयभीत होकर भागी हुई आपकी सेनामेंसे किसीका भी साहस उसके सामने ठहरनेका नहीं हुआ। यह देखकर द्रोणाचार्यजीको बड़ा क्रोध हुआ और वे स्वयं ही उसपर टूट पड़े।

इधर शलने द्रौपदीके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको पहले पाँच-पाँच और फिर सात-सात बाणोंसे बींध दिया। इससे उन्हें बड़ी ही पीडा हुई, वे चक्करमें पड़ गये और अपने कर्त्तव्यके विषयमें कुछ निश्चय नहीं कर सके। इतनेहीमें नकुलके पुत्र शतानीकने दो बाणोंसे शलको बींधकर बड़ी भारी गर्जना की। इसी प्रकार अन्य द्रौपदीकुमारोंने भी तीन-तीन बाणोंसे उसे घायल किया। तब शलने उनमेंसे प्रत्येकपर पाँच-पाँच बाण छोड़े और एक-एक बाणसे प्रत्येककी छातीपर चोट की। इसपर अर्जुनके पुत्रने चार बाणोंसे उसके घोड़े मार डाले, भीमसेनके पुत्रने उसका धनुष काटकर बड़े जोरसे गर्जना की। युधिष्ठिरकुमारने उसकी ध्वजा काटकर गिरा दी, नकुलके पुत्रने सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया तथा सहदेवकुमारने एक पैने बाणसे उसके सिरको धड़से अलग कर दिया। उसका सिर कटते देखकर आपके सैनिक भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे।

एक ओर महाबली भीमसेनके साथ अलम्बुषका युद्ध हो रहा था। भीमसेनने नौ बाणोंसे उस राक्षसको घायल कर डाला। तब वह भयानक राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भीमसेनकी ओर दौड़ा। उसने उन्हें पाँच बाणोंसे बींधकर उनकी सेनाके तीन सौ रथियोंका संहार कर दिया। फिर चार सौ वीरोंको और भी मारकर एक बाणसे भीमसेनको घायल कर दिया। उस बाणसे महाबली भीमके गहरी चोट लगी और वे अचेत होकर रथके भीतर ही गिर गये। कुछ देर बाद उन्हें चेत हुआ तो वे अपना भयङ्कर धनुष चढ़ाकर चारों ओरसे अलम्बुषको बाणोंसे बींधने लगे। इस समय उसे याद आया कि भीमसेनने ही उसके भाई बकको मारा था। अतः उसने भयानक रूप धारण करके उनसे कहा, 'दुष्ट भीम! तूने जिस समय मेरे महाबली भाई बकको मारा था, उस समय मैं वहाँ

उपस्थित नहीं था; आज तू उसका फल चख ले।' ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया। तथा भीमसेनके ऊपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगा। भीमसेनने भी सारे आकाशको बाणोंसे व्याप्त कर दिया। उनसे पीडित होकर वह राक्षस अपने रथपर आ बैठा, फिर पृथ्वीपर उतरा और छोटा-सा रूप धारण करके आकाशमें उड़ गया। वह क्षण-क्षणमें ऊँचे-नीचे, अणु-बृहत् तथा स्थूल-सूक्ष्म विभिन्न प्रकारके रूप धारण कर लेता था तथा मेघके समान गरजने लगता था। उसने आकाशमें चढ़कर शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, परशु, शिला, खड्ग, गुड, ऋष्टि और वज्र आदि अनेकों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की। उससे भीमसेनके अनेकों सैनिक नष्ट हो गये। इसपर भीमसेनने कुपित होकर विश्वकर्मास्त्र छोड़ा। उससे सब ओर अनेकों बाण प्रकट हो गये। उनसे पीडित होकर आपके सैनिकोंमें बड़ी भगदड़ पड़ गयी। उस अस्त्रने राक्षसकी सारी मायाको नष्ट करके उसे भी बहुत पीडा पहुँचायी। इस प्रकार भीमसेनद्वारा बहुत पीडित होनेपर वह उन्हें छोड़कर द्रोणाचार्यजीकी सेनामें चला आया। उस महाबली राक्षसको जीतकर पाण्डवलोग सिंहनाद करके सब दिशाओंको गुँजाने लगे।

अब हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचने अलम्बुषके सामने आकर उसे तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। इससे अलम्बुषका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने घटोत्कचपर भारी चोट की। इस प्रकार उन दोनों राक्षसोंका बड़ा भीषण संग्राम छिड़ गया। घटोत्कचने अलम्बुषकी छातीमें बीस बाण मारकर बार-बार सिंहके समान गर्जना की तथा अलम्बुषने रणकर्कश घटोत्कचको घायल करके अपने भारी सिंहनादसे आकाशको गुँजा दिया। दोनों ही सैकड़ों प्रकारकी मायाएँ रचकर एक-दूसरेको मोहमें डाल रहे थे। मायायुद्धमें कुशल होनेके कारण अब उन्होंने उसीका आश्रय लिया। उस युद्धमें घटोत्कचने जो-जो माया दिखायी, उसीको अलम्बुषने नष्ट कर दिया। इससे भीमसेन आदि कई महारथियोंका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे भी अलम्बुषपर टूट पड़े।

अलम्बुषने अपना वज्रके समान प्रचण्ड धनुष चढ़ाकर भीमसेनपर पचीस, घटोत्कचपर पाँच, युधिष्ठिरपर तीन, सहदेवपर सात, नकुलपर तिहत्तर और द्रौपदीपुत्रोंपर पाँच-पाँच बाण छोड़े तथा बड़ा भीषण सिंहनाद किया। इसपर उसे भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच, युधिष्ठिरने सौ, नकुलने चौसठ और द्रौपदीके पुत्रोंने पाँच-पाँच बाणोंसे बींध दिया। तथा घटोत्कचने उसपर पचास बाण छोड़कर फिर सत्तर बाणोंका वार करते हुए बड़ी गर्जना की। उस भीषण सिंहनादसे पर्वत, वन, वृक्ष और जलाशयोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। तब अलम्बुषने उनमेंसे प्रत्येक वीरपर पाँच-पाँच बाणोंसे चोट की। इसपर घटोत्कच और पाण्डवोंने अत्यन्त उत्तेजित होकर उसपर चारों ओरसे तीखे-तीखे तीरोंकी वर्षा की। विजयी पाण्डवोंकी मारसे अधमरा हो जानेसे वह एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। उसकी ऐसी स्थिति देखकर युद्धदुर्मद घटोत्कचने उसका वध करनेका विचार किया। वह अपने रथसे अलम्बुषके रथपर कूद गया, और उसे दबोच लिया। फिर उसे हाथोंसे ऊपर उठाकर बार-बार घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया।

यह देखकर उसकी सारी सेना भयभीत हो गयी। वीर घटोत्कचके प्रहारसे अलम्बुषके सब अङ्ग फट गये और उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। इस प्रकार महाबली अलम्बुषको मरा देखकर पाण्डवलोग हर्षसे सिंहनाद करने लगे तथा आपकी सेनामें हाहाकार होने लगा।

सात्यकि और द्रोणका युद्ध तथा राजा युधिष्ठिरका सात्यकिको अर्जुनके पास भेजना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! अब तुम मुझे यह वृत्तान्त ठीक-ठीक सुनाओ कि संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यजीको सात्यकिने कैसे रोका था ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! जब आचार्यने देखा कि महापराक्रमी सात्यकि हमारी सेनाको कुचल रहा है, तो वे स्वयं ही उसके सामने आकर डट गये । उन्हें सहसा अपने सामने आया देखकर सात्यकिने उनपर पचीस बाण छोड़े । तब आचार्यने बड़ी फुर्तीसे उसे पाँच तीखे बाणोंसे बींध दिया । वे उसके कवचको फोड़कर फिर पृथ्वीपर जा पड़े । इससे सात्यकिने कुपित होकर द्रोणको पचास बाणोंसे घायल कर दिया तथा आचार्यने भी अनेकों बाणोंसे उसे बींध डाला । इस समय आचार्यकी चोटोंसे वह ऐसा व्याकुल हो गया कि उसे अपना कर्त्तव्य भी नहीं सूझता था । उसका चेहरा उतर गया । यह देखकर आपके पुत्र और सैनिक प्रसन्न होकर बार-बार सिंहनाद करने लगे । उनका भीषण नाद सुनकर और सात्यकिको सङ्कटमें देखकर राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नसे कहा, 'द्रुपदपुत्र ! तुम भीमसेन आदि सभी वीरोंको साथ लेकर सात्यकिके रथकी ओर जाओ । तुम्हारे पीछे मैं भी सब सैनिकोंको लेकर आता हूँ । इस समय सात्यकिकी उपेक्षा मत करो, वह कालके गालमें पहुँच चुका है ।'

ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर सात्यकिकी रक्षाके लिये सारी सेना लेकर द्रोणाचार्यपर चढ़ आये । किन्तु आचार्य अपनी बाणवर्षासे उन सभी महारथियोंको पीडित करने लगे । उस समय पाण्डव और सृञ्जय वीरोंको अपना कोई भी रक्षक दिखायी नहीं देता था । द्रोणाचार्य पाञ्चाल और पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंका संहार कर रहे थे । उन्होंने सैकड़ों-हजारों पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और कैकेय वीरोंको परास्त कर दिया । उनके बाणोंसे बिंधे हुए योद्धाओंका बड़ा आर्त्तनाद हो रहा था । उस समय देवता, गन्धर्व और पितरोंके मुखसे भी ये ही शब्द निकल रहे थे कि 'देखो, ये पाञ्चाल और पाण्डव महारथी अपने सैनिकोंके सहित भागे जा रहे हैं ।'

जिस समय यह वीरोंका भीषण संहार हो रहा था, उसी समय राजा युधिष्ठिरके कानोंमें पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि पड़ी । इससे वे उदास होकर विचारने लगे, 'जिस प्रकार यह पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो रही है और कौरवलोग हर्षमें भरकर बार-बार कोलाहल करते हैं, उससे मालूम होता है कि अर्जुनपर कोई आपत्ति आ पड़ी है ।' इस विचारके उठनेसे उनका हृदय व्याकुल हो उठा और उन्होंने गद्गदकण्ठ होकर सात्यकिसे कहा, "शिनिपुत्र ! पूर्वकालमें सत्पुरुषोंने सङ्कटके समय मित्रका जो धर्म निश्चय किया है, इस समय उसे दिखानेका अवसर आ गया है । मैं सब योद्धाओंकी ओर देखकर विचार करता हूँ, तो तुमसे बढ़कर मुझे अपना कोई हितू दिखायी नहीं देता । और मेरा ऐसा विचार है कि सङ्कटके समय उसीसे काम लेना चाहिये, जो अपनेसे प्रीति रखता हो और सर्वदा अपने अनुकूल भी रहता हो । तुम श्रीकृष्णके समान पराक्रमी हो और उन्हींकी तरह पाण्डवोंके आश्रय भी हो । अतः मैं तुम्हारे ऊपर एक भार रखना चाहता हूँ, उसे तुम ग्रहण करो । इस समय तुम्हारे बन्धु, सखा और गुरु अर्जुनपर सङ्कट है; तुम संग्रामभूमिमें उनके पास जाकर सहायता करो । जो पुरुष अपने मित्रके लिये जूझता हुआ प्राण त्याग देता है और जो ब्राह्मणोंको पृथ्वीदान करता है, वे दोनों समान ही हैं । मेरी दृष्टिमें मित्रोंको अभय देनेवाले एक तो श्रीकृष्ण हैं और दूसरे तुम हो । वे भी मित्रोंके लिये अपने प्राण समर्पण कर सकते हैं ! देखो, जब एक पराक्रमी वीर विजयश्रीकी लालसासे संग्राममें जूझने लगता है तो वीर पुरुष ही उसकी सहायता कर सकता है, अन्य साधारण पुरुषोंका यह काम नहीं है । अतः ऐसे भीषण युद्धमें अर्जुनकी रक्षा करनेवाला तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है । अर्जुनने भी तुम्हारे सैकड़ों कर्मोंकी प्रशंसा करते हुए मुझसे कई बार कहा था कि 'सात्यकि मेरा मित्र और शिष्य है । मैं उसे प्रिय हूँ और वह मुझे प्यारा है । मेरे साथ रहकर वही कौरवोंका संहार करेगा । उसके समान मेरा सहायक कोई दूसरा नहीं हो सकता ।' जिस समय मैं तीर्थाटन करता हुआ द्वारका पहुँचा था, उस समय भी मैंने अर्जुनके प्रति तुम्हारा अद्भुत भक्तिभाव देखा था । इस समय द्रोणसे कवच बँधवाकर दुर्योधन अर्जुनकी ओर गया है । दूसरे कई महारथी तो वहाँ पहले ही पहुँचे हुए हैं । इसलिये तुम्हें बहुत जल्द जाना चाहिये । भीमसेन और हम सब लोग सैनिकोंके सहित तैयार खड़े हैं । यदि द्रोणाचार्यने तुम्हारा पीछा किया, तो हम उन्हें यहीं रोक लेंगे । देखो, हमारी सेना संग्रामभूमिसे भागने लगी है । रथी, घुड़सवार और पैदल सेनाके इधर-उधर भागनेसे सब

ओर धूल उड़ रही है। मालूम होता है अर्जुनको सिन्धुसौवीर देशके वीरोंने घेर लिया है। ये सब जयद्रथके लिये अपने प्राण देनेको तैयार हैं, इसलिये इन्हें परास्त किये बिना जयद्रथको भी नहीं जीता जा सकेगा। आज महाबाहु अर्जुनने सूर्योदयके समय कौरवोंकी सेनामें प्रवेश किया था। अब दिन ढल रहा है। पता नहीं, अबतक वह जीवित भी है या नहीं। कौरवोंकी सेना समुद्रके समान अपार है, संग्राममें एकाएकी देवतालोग भी इसके सामने नहीं टिक सकते। इसमें अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है। उसकी चिन्ताके कारण आज युद्ध करनेमें मेरी बुद्धि कुछ भी काम नहीं कर रही है। जगत्पति श्रीकृष्ण तो दूसरोंकी भी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिये उनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, यदि तीनों लोक मिलकर भी श्रीकृष्णसे लड़ने आयें तो उन्हें भी वे संग्राममें जीत सकते हैं; फिर इस धृतराष्ट्रपुत्रकी अत्यन्त बलहीन सेनाकी तो बात ही क्या है ? किन्तु अर्जुनमें यह बात नहीं है। उसे यदि बहुत-से योद्धाओंने मिलकर पीड़ा पहुँचायी तो वह तो प्राण छोड़ देगा। अतः जिस मार्गसे अर्जुन गया है, उसीसे तुम भी बहुत जल्द उसके पास जाओ। आजकल वृष्णिवंशी वीरोंमें तुम और महाबाहु प्रद्युम्न—दो ही अतिरथी समझे जाते हो। तुम अस्त्रसञ्चालनमें साक्षात् नारायणके समान, बलमें श्रीबलरामजीके समान और पराक्रममें स्वयं अर्जुनके समान हो। अतः मैं तुम्हें जो काम सौंप रहा हूँ, उसे पूरा करो। इस समय प्राणोंकी परवा छोड़कर संग्रामभूमिमें निर्भय होकर विचरो। भैया ! देखो, अर्जुन तुम्हारा गुरु है और श्रीकृष्ण तुम्हारे और अर्जुन दोनोंहीके गुरु हैं। इस कारणसे भी मैं तुम्हें जानेका आदेश दे रहा हूँ। तुम मेरे कथनको टाल मत देना; क्योंकि मैं भी तुम्हारे गुरुका गुरु हूँ, और इसमें श्रीकृष्णका, अर्जुनका और मेरा एक ही मत है। इसलिये तुम मेरी आज्ञा मानकर अर्जुनके पास जाओ।''

धर्मराजके इस प्रेमयुक्त, मधुर, समयोचित और युक्तियुक्त कथनको सुनकर सात्यकिने कहा, 'राजन् ! आपने अर्जुनकी सहायताके लिये मुझसे जो न्याययुक्त बात कही है, वह मैंने सुनी। वैसा करनेसे मेरा यश ही बढ़ेगा। अर्जुनके लिये मुझे अपने प्राणोंको बचानेका तनिक भी लोभ नहीं है; और आपकी आज्ञा होनेपर तो इस संग्रामभूमिमें ऐसा कौन काम है, जो मैं न करूँ। इस दुर्बल सेनाकी तो बात ही क्या; आपके कहनेपर तो मैं देवता, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंसे संग्राम कर सकता हूँ। मैं आपसे सच कहता हूँ, आज इस दुर्योधनकी सेनासे मैं सभी ओर युद्ध करूँगा और इसे परास्त कर दूँगा। मैं कुशलपूर्वक अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा और जयद्रथका वध होनेपर फिर आपके पास लौट आऊँगा। किन्तु मतिमान् अर्जुन और श्रीकृष्णने मुझसे जो बात कह रक्खी है, वह भी मैं आपकी सेवामें अवश्य निवेदन कर देना चाहता हूँ। अर्जुनने सारी सेनाके बीचमें श्रीकृष्णके सामने ही मुझसे बहुत जोर देकर कहा था कि 'जबतक मैं जयद्रथको मारकर आऊँ, तबतक तुम बड़ी सावधानीसे महाराजकी रक्षा करना। मैं तुमपर या महारथी प्रद्युम्नपर ही महाराजकी रक्षाका भार सौंपकर निश्चिन्ततासे जयद्रथके पास जा सकता हूँ। तुम द्रोणको जानते ही हो। वे कौरवपक्षके सभी वीरोंमें श्रेष्ठ हैं। उन्होंने धर्मराजको पकड़नेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी है; अतः वे इसी ताकमें हैं और इन्हें पकड़नेकी उनमें शक्ति भी है। परन्तु याद रखना, यदि किसी प्रकार सत्यवादी युधिष्ठिर उनके हाथमें पड़ गये तो हम सबको अवश्य ही पुनः वनमें जाना पड़ेगा। इसलिये आज तुम विजय, कीर्ति और मेरी प्रसन्नताके लिये संग्रामभूमिमें महाराजकी रक्षा करते रहना।' राजन् ! इस प्रकार सव्यसाची पार्थने द्रोणाचार्यसे सर्वदा सशङ्क रहनेके कारण आज आपकी रक्षाका भार मुझे सौंपा था। मुझे भी संग्रामभूमिमें उनका सामना करनेवाला प्रद्युम्नके सिवा और कोई दिखायी नहीं देता। यदि आज यहाँ कृष्णकुमार प्रद्युम्नजी होते, तो मैं उन्हें आपकी रक्षाका भार सौंप देता और वे अर्जुनके समान ही आपकी रक्षा कर लेते; किन्तु अब यदि मैं चला जाऊँगा तो आपकी रक्षा कौन करेगा ? और अर्जुनकी ओरसे तो आप कोई चिन्ता न करें। वे कोई भी भार अपने ऊपर लेकर फिर उससे कभी नहीं घबराते। आपने जिन सौवीर, सिन्धुदेशीय, उत्तरीय और दाक्षिणात्य योद्धाओंकी बात कही है तथा जिन कर्ण आदि रथियोंका नाम लिया है, वे सब तो रणाङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं। यदि पृथ्वीभरके देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर और नाग आदि चराचर जीव पार्थसे युद्ध करनेको तैयार हो जायँ, तो वे सब भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। इन सब बातोंपर विचार करके आपको अर्जुनके विषयमें कोई आशङ्का नहीं करनी चाहिये। जहाँ महापराक्रमी वीरवर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ काममें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ सकती। आप अपने भाईकी दैवी शक्ति, शस्त्रकुशलता, योग, सहनशीलता, कृतज्ञता और दयापर ध्यान दीजिये। और जब मैं उनके पास चला जाऊँगा, तो उस समय

द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, उनके विषयमें भी विचार कर लीजिये । राजन् ! अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये आचार्य आपको पकड़नेको बहुत उत्सुक हैं । अतः आप अपने बचावका उपाय कर लीजिये । यह सोच लीजिये कि मेरे जानेपर आपकी रक्षा कौन करेगा । यदि इस बातका मुझे पूरा भरोसा हो जाय, तो मैं अर्जुनके पास जा सकता हूँ ।'

युधिष्ठिर बोले—सात्यकि ! तुम जैसा कहते हो, ठीक ही है; किन्तु जब मैं अपनी रक्षाके लिये तुम्हें रखने और अर्जुनकी सहायताके लिये भेजनेके विषयमें विचार करता हूँ, तो मुझे तुम्हारा जाना ही अधिक अच्छा मालूम होता है । अतः अब तुम अर्जुनके पास पहुँचनेका प्रयत्न करो । मेरी रक्षा तो भीमसेन कर लेंगे । इनके सिवा भाइयोंके सहित धृष्टद्युम्न, अनेकों महाबली राजालोग, द्रौपदीके पुत्र, पाँच केकयराजकुमार, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखण्डी, महाबली धृष्टकेतु, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव तथा पाञ्चाल और सृञ्जय वीर भी सावधानीसे मेरी रक्षा करेंगे । इनके कारण अपनी सेनाके सहित द्रोण और कृतवर्मा मेरे पासतक पहुँचने या मुझे कैद करनेमें समर्थ नहीं होंगे । किनारा जैसे समुद्रको रोके रहता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न आचार्यको रोक देगा । इसने कवच, बाण, खड्ग, धनुष और आभूषण धारण किये द्रोणका नाश करनेके लिये ही जन्म लिया है । इसलिये तुम इसके ऊपर पूरा भरोसा रखकर चले जाओ, किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो ।

सात्यकिने कहा—यदि आपके विचारसे आपकी रक्षाका प्रबन्ध हो गया है तो मैं अर्जुनके पास अवश्य जाऊँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा । मैं सच कहता हूँ—तीनों लोकोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो मुझे अर्जुनसे अधिक प्रिय हो । तथा मेरे लिये जितना उनका वचन मान्य है, उससे भी अधिक आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । श्रीकृष्ण और अर्जुन—ये दोनों भाई आपके हितमें तत्पर रहते हैं और मुझे आप उनके प्रियसाधनमें तत्पर समझिये । मैं अभी इस दुर्भेद्य सेनाको चीरकर पुरुषसिंह पार्थके पास जाऊँगा । जिस स्थानपर उनसे भयभीत होकर जयद्रथ अपनी सेनाके सहित अश्वत्थामा, कृप और कर्णकी रक्षामें खड़ा है तथा पार्थ उसके वध करनेके लिये गये हुए हैं, उसे मैं यहाँसे तीन योजन दूर समझता हूँ । तो भी मुझे पूरा भरोसा है कि मैं जयद्रथका वध होनेसे पहले ही उनके पास पहुँच जाऊँगा । जब आप आज्ञा दे रहे हैं तो मुझ-सरीखा कौन पुरुष है, जो युद्ध न करेगा । राजन् ! जिस स्थानपर मुझे जाना है, उसका मुझे अच्छी तरह पता है । मैं हल, शक्ति, गदा, प्रास, ढाल, तलवार, ऋष्टि, तोमर, बाण तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रसे भरे हुए इस सैन्यसमुद्रको झकोर डालूँगा ।

इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे सात्यकि अर्जुनसे मिलनेके लिये आपकी सेनामें घुस गया ।

सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश

सञ्जयने कहा—राजन् ! जब सात्यकि युद्ध करनेके लिये आपकी सेनामें घुसा तो अपनी सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरने सात्यकिका पीछा करते हुए द्रोणाचार्यजीको रोकनेके लिये उनके रथपर आक्रमण किया । उस समय रणोन्मत्त धृष्टद्युम्न और राजा वसुदानने पाण्डवोंकी सेनाको पुकारकर कहा, 'अरे ! आओ, आओ, जल्दी दौड़ो । शत्रुओंपर चोट करो, जिससे कि सात्यकि सहजहीमें आगे बढ़ जायँ । देखो, अनेकों महारथी इन्हें परास्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं ।' ऐसा कहते हुए अनेकों महारथी बड़े वेगसे हमारे ऊपर टूट पड़े तथा उन्हें पीछे हटानेके विचारसे हमने भी उनपर आक्रमण किया ।

इसी समय सात्यकिके रथकी ओर बड़ा कोलाहल होने लगा। उस महारथीके बाणोंकी बौछारोंसे आपके पुत्रकी सेनाके सैकड़ों टुकड़े हो गये और वह तितर-बितर होकर इधर-उधर भागने लगी। उसके छिन्न-भिन्न होते ही सात्यकिने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए सात वीरोंको मार डाला। इसके बाद और भी अनेकों राजाओंको अपने अग्निसदृश बाणोंसे यमराजके घर भेज दिया। वह एक बाणसे सैकड़ों वीरोंको और सैकड़ों बाणोंसे एक-एक वीरको बींध देता था। जिस प्रकार पशुपति पशुओंका संहार करते हैं, उसी प्रकार वह हाथीसवार और हाथियोंको, घुड़सवार और घोड़ोंको तथा सारथि और घोड़ोंके सहित रथोंको चौपट कर रहा था। इस प्रकार फुर्तीले सात्यकिने बाणोंकी झड़ी लगा दी थी, उस समय आपके सैनिकोंमेंसे किसीको भी उसके सामने जानेका साहस नहीं होता था। उसकी बाणवर्षासे घायल होकर वे ऐसे डर गये कि उसे देखते ही मैदान छोड़कर भागने लगे। सात्यकिके तेजसे वे ऐसे चक्करमें पड़ गये कि उस अकेलेको ही अनेक रूपोंमें देखने लगे। वे जिधर जाते थे, उधर ही उन्हें सात्यकि दिखायी देता था।

इस प्रकार आपके बहुत-से सैनिकोंको मारकर और सेनाको अत्यन्त छिन्न-भिन्न करके वह उसमें घुस गया। फिर जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीसे उसने भी जानेका विचार किया। किन्तु इतनेहीमें द्रोणने उसे आगे बढ़नेसे रोका और पाँच मर्मभेदी बाणोंसे घायल कर दिया। इसपर सात्यकिने भी आचार्यपर सात तीखे बाणोंसे चोट की। तब द्रोणने सारथि और घोड़ोंके सहित सात्यकिपर छः बाण छोड़े। आचार्यका यह पराक्रम सात्यकि सह न सका। उसने भीषण सिंहनाद करते हुए उन्हें क्रमशः दस, छः और आठ बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद दस बाण और छोड़े तथा एकसे उनके सारथिको, चारसे चारों घोड़ोंको और एकसे उनकी ध्वजाको बींध दिया। इसपर द्रोणने बड़ी फुर्तीसे टिड्डीदलके समान बाणोंकी वर्षा करके उसे सारथि, रथ, ध्वजा और घोड़ोंके सहित एकदम ढक दिया। तब आचार्यने कहा, 'अरे! तेरा गुरु तो कायरोंकी तरह मेरे सामनेसे युद्ध करना छोड़कर भाग गया था। मैं तो युद्धमें लगा हुआ था, इतनेहीमें वह मेरी प्रदक्षिणा करने लगा। अब तू यदि मेरे साथ युद्ध करता रहा, तो जीता बचकर नहीं जा सकेगा।' सात्यकिने कहा, 'ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। मैं तो धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनके पास ही जा रहा हूँ। इसलिये यहाँ मेरा समय नष्ट नहीं होना चाहिये। शिष्यलोग तो सर्वदा अपने गुरुओंके मार्गका ही अनुसरण करते आये हैं। अतः जिस प्रकार मेरे गुरुजी गये हैं, उसी प्रकार मैं भी अभी जाता हूँ।'

राजन्! ऐसा कहकर सात्यकि द्रोणाचार्यजीको छोड़कर तुरंत ही वहाँसे चल दिया। उसे बढ़ते देख आचार्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे अनेकों बाण छोड़ते हुए उसके पीछे दौड़े। किन्तु सात्यकि पीछे न लौटा। वह अपने पैने बाणोंसे कर्णकी विशाल वाहिनीको बींधकर कौरवोंकी अपार सेनामें घुस गया। जब सेना इधर-उधर भागने लगी और सात्यकि उसके भीतर घुस गया तो कृतवर्माने उसे घेरा। उसे सामने आया देख सात्यकिने चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया और फिर सोलह बाणोंसे उसकी छातीपर वार किया। इसपर कृतवर्माने कुपित होकर सात्यकिकी छातीमें वत्सदन्त नामका एक बाण मारा। वह उसके कवच और शरीरको छेदकर खूनसे लथपथ हो पृथ्वीमें घुस गया। फिर उसने अनेकों बाणोंसे सात्यकिके धनुष और बाण भी काट डाले। सात्यकिने तुरंत ही दूसरा धनुष चढ़ाया और उससे सहस्रों बाण छोड़कर कृतवर्मा और उसके रथको बिल्कुल ढक दिया। फिर एक भल्लसे उसके सारथिका सिर भी उड़ा दिया। सारथि न रहनेसे घोड़े भाग उठे। इससे कृतवर्मा भी घबराहटमें पड़ गया। किन्तु थोड़ी ही देरमें सावधान होकर उसने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर सँभाल ली और निर्भयतापूर्वक शत्रुओंको सन्तप्त करने लगा। इतनेहीमें सात्यकि कृतवर्माकी सेनासे निकलकर काम्बोज-सेनाकी ओर बढ़ गया। वहाँ भी अनेकों वीरोंने उसे आगे बढ़नेसे रोका।

कौरवसेनाके पराभवके विषयमें राजा धृतराष्ट्र और सञ्जयका संवाद तथा कृतवर्माके पराक्रमका वर्णन

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! हमारी सेना अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न और सुव्यवस्थित है। उसकी व्यूह-रचना भी विधिवत् की जाती है। हम सर्वदा उसका अच्छी तरह सत्कार करते रहते हैं, तथा उसका भी हमारे प्रति बड़ा अच्छा भाव है। उसमें कोई अधिक बूढ़ा या बालक, अधिक दुबला या मोटा अथवा बौना पुरुष भी नहीं है। सभी सबल और स्वस्थ शरीरवाले हैं। हमने किसीको भी फुसलाकर, उपकार करके अथवा सम्बन्धके कारण भर्ती

नहीं किया । इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जो बिना बुलाये अथवा बेगारमें पकड़कर लाया गया हो । हमने अनेकों महारथी योद्धाओंको चुन-चुनकर ही भर्ती किया है तथा उनमेंसे किन्हींको यथायोग्य वेतन देकर और किन्हींको प्रिय भाषण करके सन्तुष्ट किया है । हमारी सेनामें ऐसा योद्धा एक भी नहीं है, जिसे थोड़ा वेतन मिलता हो अथवा वेतन मिलता ही न हो । मैंने, मेरे पुत्रोंने तथा हमारे बन्धु-बान्धवोंने सभीका दान, मान और आसनादिसे सत्कार किया है । किन्तु फिर भी श्रीकृष्ण और अर्जुन सही-सलामत हमारी सेनामें घुस गये, कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सका । यहाँतक कि सात्यकिने भी उन्हें कुचल डाला । इसमें भाग्यके सिवा और किसे दोष दिया जाय ?

अच्छा, जब दुर्योधनने अर्जुनको जयद्रथके सामने खड़ा देखा और सात्यकिको निर्भयतासे अपनी सेनामें घुसते पाया, तो उसने उस समयपर अपना क्या कर्तव्य निश्चय किया ? मैं तो यही समझता हूँ कि अर्जुन और सात्यकिको अपनी सेना लाँघते और कौरव-योद्धाओंको युद्धस्थलसे भागते देखकर मेरे पुत्र बड़ी चिन्तामें पड़ गये होंगे । इस समय सात्यकिके सहित श्रीकृष्ण और अर्जुनके अपनी सेनामें प्रवेशकी बात सुनकर मैं भी बड़ी घबराहटमें पड़ गया हूँ । अच्छा, जब द्रोणाचार्यने पाण्डवोंको व्यूहके द्वारपर रोक लिया तो वहाँ उनके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ—यह मुझे सुनाओ । और यह भी बताओ कि अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेके लिये क्या उपाय किया ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! यह सारी विपत्ति आपके अपराधसे ही आयी है; इसलिये अन्य साधारण पुरुषोंके समान आप इसके लिये चिन्ता न करें । पहले जब आपके बुद्धिमान् सुहृद् विदुर आदिने कहा था कि आप पाण्डवोंको राज्यसे च्युत न करें, तो आपने उनकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया । जो पुरुष अपने हितैषी सुहृदोंकी बातपर ध्यान नहीं देता, वह भारी आपत्तिमें पड़कर आपहीकी तरह चिन्ता किया करता है । श्रीकृष्णने भी सन्धिके लिये आपसे बहुत प्रार्थना की थी; किन्तु आपसे उनका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ । इससे आपकी गुणहीनता, पुत्रोंके प्रति पक्षपात, धर्मपर अविश्वास, पाण्डवोंके प्रति मत्सर और कुटिल भाव जानकर तथा आपके मुखसे बहुत-सी बेबसीकी-सी बातें सुनकर ही सर्वलोकेश्वर श्रीकृष्णने कौरव-पाण्डवोंमें यह भारी युद्ध खड़ा किया है । यह भीषण संहार आपके ही अपराधसे हो रहा है । मुझे तो आगे-पीछे या मध्यमें भी आपका कोई पुण्यकृत्य दिखायी नहीं देता । मेरे विचारसे तो इस पराजयकी जड़ आप ही हैं । अतः अब सावधान होकर जिस प्रकार यह भीषण संग्राम हुआ था, वह सुनिये ।

जब सत्यपराक्रमी सात्यकि आपकी सेनामें घुस गया, तो भीमसेन आदि पाण्डव वीर भी आपके सैनिकोंपर टूट पड़े । उन्हें बड़े क्रोधसे धावा करते देख महारथी कृतवर्माने अकेले ही आगे बढ़नेसे रोक दिया । इस समय हमने कृतवर्माका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा । सारे पाण्डव मिलकर भी युद्धमें उसे नीचा न दिखा सके । तब महाबाहु भीमने तीन, सहदेवने बीस, धर्मराजने पाँच, नकुलने सौ, धृष्टद्युम्नने तीन और द्रौपदीके पुत्रोंने सात-सात बाणोंसे उसे घायल किया । तथा विराट, द्रुपद और शिखण्डीने पाँच-पाँच बाण मारकर फिर बीस बाणोंसे उसपर और भी वार किया । कृतवर्माने इन सभी वीरोंको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधकर भीमसेनपर सात बाण छोड़े तथा उनके धनुष और ध्वजाको काटकर रथसे नीचे गिरा दिया । इसके बाद उसने क्रोधमें भरकर बड़ी तेजीसे सत्तर बाणोंद्वारा उनकी छातीपर फिर चोट की । कृतवर्माके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेसे वे काँपने लगे तथा अचेत-से हो गये; थोड़ी देर बाद जब होश हुआ तो भीमसेनने उसकी छातीमें पाँच बाण मारे । इससे कृतवर्माके सब अङ्ग लोहूलुहान हो गये । तब उसने क्रोधमें भरकर तीन बाणोंसे भीमसेनपर वार किया तथा अन्य सब महारथियोंको भी तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया । इसपर उन सबने भी उसपर सात-सात बाण छोड़े । कृतवर्माने एक क्षुरप्र बाणसे शिखण्डीका धनुष काट दिया । इससे कुपित होकर शिखण्डीने ढाल-तलवार उठा लीं तथा तलवारको घुमाकर कृतवर्माके रथपर फेंका । वह उसके धनुष और बाणको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ी । कृतवर्माने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर प्रत्येक पाण्डवको तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया तथा शिखण्डीको आठ बाणोंसे घायल कर डाला । शिखण्डीने भी दूसरा धनुष लेकर अपने तीखे बाणोंसे कृतवर्माको रोक दिया । इससे क्रोधमें भरकर वह शिखण्डीके ऊपर टूट पड़ा । इस समय अपने पैने बाणोंसे एक-दूसरेको व्यथित करते हुए वे महारथी प्रलयकालीन सूर्योंके समान जान पड़ते थे । कृतवर्माने महारथी शिखण्डीपर तिहत्तर बाणोंसे वार करके फिर उसे सात बाणोंद्वारा घायल कर डाला । इससे वह मूर्च्छित हो गया और उसके हाथसे धनुष-बाण

गिर गये। यह देखकर उसका सारथि बड़ी फुर्तीसे रथको रणाङ्गणके बाहर ले गया।

शिखण्डीको रथके पिछले भागमें अचेत पड़ा देखकर अन्य पाण्डव वीरोंने कृतवर्माको अपने रथोंसे घेर लिया; किन्तु इस समय कृतवर्माने बड़ा ही अद्भुत पराक्रम दिखाया। उसने अकेले ही उन सब वीरोंको उनकी सेनाके सहित परास्त कर दिया। पाण्डवोंको जीतकर उसने पाञ्चाल, सृञ्जय और केकय वीरोंके भी दाँत खट्टे कर दिये। अन्तमें कृतवर्माकी बाणवर्षासे व्यथित होकर वे सभी महारथी युद्धका मैदान छोड़कर भाग गये।

सात्यकिका कृतवर्माके साथ युद्ध, जलसन्धका वध तथा द्रोण और दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंसे घोर संग्राम

सञ्जयने कहा—राजन्! अब आपने जो बात पूछी थी वह सुनिये। जब कृतवर्माने पाण्डवोंकी सेनाको भगा दिया, तो सात्यकि बड़ी फुर्तीसे उसके सामने आ गया। कृतवर्माने उसपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। इसपर सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे उसपर एक भल्ल और चार बाण छोड़े। बाणोंसे उसके घोड़े नष्ट हो गये तथा भल्लसे धनुष कट गया। फिर उसने अनेकों पैने बाणोंसे कृतवर्माके पृष्ठरक्षक और सारथिको भी घायल कर दिया। इस प्रकार उसे रथहीन करके महावीर सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे उसकी सेनाका नाकमें दम कर दिया। उस बाणवर्षासे पीडित होकर कृतवर्माकी सेना तितर-बितर हो गयी। तब सात्यकि आगे बढ़ा और बाणोंकी वर्षा करता हुआ गजसेनाके साथ युद्ध करने लगा।

वीरवर सात्यकिके छोड़े हुए वज्रतुल्य बाणोंसे व्यथित होकर लड़ाके हाथी युद्धका मैदान छोड़कर भागने लगे। उनके दाँत टूट गये, शरीर लोहूलुहान हो गया, मस्तक और गण्डस्थल फट गये तथा कान, मुँह और सूँड छिन्न-भिन्न हो गये। उनके महावत नष्ट हो गये, पताकाएँ कटकर गिर गयीं, मर्मस्थल बिंध गये, घंटे टूटकर गिर गये, ध्वजाएँ टूट गयीं, सवार युद्धमें काम आ गये तथा अंबारियाँ गिर गयीं। सात्यकिने नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र और अर्धचन्द्र नामक बाणोंसे उन्हें बहुत ही घायल कर दिया।

इससे वे चिग्घारते, खून उगलते और मल-मूत्र छोड़ते इधर-उधर भागने लगे।

इसी समय एक हाथीपर सवार हुआ महाबली जलसन्ध अपना धनुष घुमाता सात्यकिपर चढ़ आया। सात्यकिने उसके हाथीको अकस्मात् आक्रमण करते देख अपने बाणोंसे रोक दिया। इसपर जलसन्धने बाणोंद्वारा सात्यकिकी छातीपर वार किया। सात्यकि बाण छोड़ना ही चाहता था कि जलसन्धने एक नाराचसे उसका धनुष काट डाला तथा पाँच बाणोंसे

उसे भी घायल कर दिया । परन्तु महाबाहु सात्यकि बहुत-से बाणोंसे घायल हो जानेपर भी टस-से-मस न हुआ । उसने तुरंत ही दूसरा धनुष लिया और साठ बाणोंसे जलसन्धके विशाल वक्षःस्थलपर वार किया । अब जलसन्धने ढाल और तलवार उठायीं तथा तलवारको घुमाकर सात्यकिके ऊपर फेंका । वह उसके धनुषको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ी । तब सात्यकिने दूसरा धनुष उठाया और उसकी टङ्कार करके एक पैने बाणसे जलसन्धको बींध दिया । फिर दो क्षुरप्र बाणों-से उसने जलसन्धकी भुजाएँ काट डालीं तथा तीसरे क्षुरप्रसे उसका मस्तक उड़ा दिया ।

जलसन्धको मरा देखकर आपकी सेनामें बड़ा हाहाकार मच गया । आपके योद्धा पीठ दिखाकर जहाँ-तहाँ भागनेका प्रयत्न करने लगे । इतनेहीमें शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण अपने घोड़ोंको दौड़ाकर सात्यकिके सामने आ गये । यह देखकर प्रधान-प्रधान कौरव भी आचार्यके साथ ही उसपर टूट पड़े । अब सात्यकिपर द्रोणने सतहत्तर, दुर्मर्षणने बारह, दुःसहने दस, विकर्णने तीस, दुर्मुखने दस, दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाण छोड़े । राजा दुर्योधन तथा अन्य महारथियोंने भी भीषण बाणवर्षा करके उसे पीडित करना आरम्भ किया; किन्तु सात्यकिने अलग-अलग उन सभीके बाणोंका जवाब दिया । उसने द्रोणके तीन, दुःसहके नौ, विकर्णके पचीस, चित्रसेनके सात, दुर्मर्षणके बारह, विविंशति-के आठ, सत्यव्रतके नौ और विजयके दस बाण मारे । फिर वह दुर्योधनपर टूट पड़ा और उसपर बाणोंकी बड़ी गहरी चोट करने लगा । दोनोंमें तुमुल युद्ध छिड़ गया और दोनों-हीने अपने-अपने धनुष सँभालकर बाणोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको अदृश्य कर दिया । दुर्योधनके बाणोंने सात्यकि-को बहुत ही घायल कर दिया तथा सात्यकिने भी अपने बाणों-से आपके पुत्रको बींध डाला । आपके दूसरे पुत्रोंने भी आवेशमें भरकर सात्यकिपर बाणोंकी झड़ी लगा दी । किन्तु उसने प्रत्येकपर पहले पाँच-पाँच बाण छोड़कर फिर सात-सात बाणोंसे वार किया और फिर बड़ी फुर्तीसे आठ बाणोंद्वारा दुर्योधनपर चोट की । इसके पश्चात् उसने उसके धनुष और ध्वजाको भी काटकर गिरा दिया । फिर चार तीखे बाणोंसे चारों घोड़ोंको मारकर एक बाणसे सारथिका भी काम तमाम कर दिया । अब दुर्योधनके पैर उखड़ गये । वह भागकर चित्रसेनके रथपर चढ़ गया । इस प्रकार अपने राजाको सात्यकिद्वारा पीडित होते देख सब ओर हाहाकार होने लगा ।

उस कोलाहलको सुनकर बड़ी फुर्तीसे महारथी कृतवर्मा सात्यकिके सामने आया । उसने छब्बीस बाणोंसे सात्यकिको, पाँचसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर डाला । इसपर सात्यकिने बड़ी तेजीसे उसपर अस्सी बाण छोड़े । उनकी चोटसे अत्यन्त घायल होकर कृतवर्मा काँप उठा । इसके बाद सात्यकिने तिरसठ बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और सातसे सारथिको बींध डाला । फिर एक अत्यन्त तेजस्वी बाण कृतवर्मापर छोड़ा । वह उसके कवचको फोड़कर खूनमें लथपथ हुआ पृथ्वीपर गिर गया । उसकी चोटसे कृतवर्माका शरीर लोहूलुहान हो गया, उसके हाथसे धनुष-बाण गिर गये और वह अत्यन्त पीडित होकर घुटनोंके बल रथकी बैठकमें गिर गया ।

इस प्रकार कृतवर्माको परास्त करके सात्यकि आगे बढ़ा । अब द्रोणाचार्य उसके सामने आकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन्होंने तीन बाणोंसे सात्यकिके ललाटपर चोट की तथा और भी अनेकों बाणोंसे उसपर वार किया । परन्तु सात्यकिने दो-दो बाण मारकर उन सभीको काट दिया । इसपर आचार्यने हँसकर पहले तीस और फिर पचास बाण छोड़े । इससे सात्यकिका क्रोध भड़क उठा । उसने नौ पैने बाणोंसे द्रोणपर वार किया तथा उनके सामने ही सौ बाणोंसे उनके सारथि और ध्वजाको भी बींध डाला । सात्यकिकी ऐसी फुर्ती देखकर आचार्यने सत्तर बाणोंसे उसके सारथिको बींधकर तीनसे उसके घोड़ोंपर चोट की । फिर एक बाणसे रथकी ध्वजा काटकर दूसरेसे उसका धनुष काट डाला । इस-पर सात्यकिने एक भारी गदा उठाकर द्रोणके ऊपर छोड़ी । उसे सहसा अपने ऊपर आते देख आचार्यने बीचहीमें अनेकों बाणोंसे काटकर गिरा दिया । फिर उसने दूसरा धनुष ले उससे बहुत-से बाण बरसाकर द्रोणकी दाहिनी भुजाको घायल कर दिया । इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने एक अर्ध-चन्द्र बाणसे सात्यकिका धनुष काटकर एक शक्तिसे उसके सारथिको मूर्च्छित कर दिया । इस समय सात्यकिने बड़ा ही अतिमानुष कर्म किया । वह द्रोणाचार्यसे युद्ध करता रहा और साथ ही घोड़ोंकी लगामें भी सँभाले रहा । फिर उसने एक बाणसे द्रोणके सारथिको पृथ्वीपर गिराकर उनके घोड़ों-को बाणोंद्वारा इधर-उधर भगाना आरम्भ किया । वे उनके रथको लेकर रणाङ्गणमें हजारों चक्कर काटने लगे । उस समय सभी राजा और राजकुमार कोलाहल मचाने लगे । किन्तु सात्यकिके बाणोंसे व्यथित होकर वे सब भी मैदान छोड़कर भाग गये । इससे आपकी सेना फिर अव्यवस्थित और तितर-

बितर होने लगी। सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर आचार्यके घोड़े हवा हो गये और उन्होंने फिर उन्हें व्यूहके द्वारपर ही लाकर खड़ा कर दिया। आचार्यने पाण्डव और पाञ्चालोंके प्रयत्नसे अपने व्यूहको टूटा हुआ देखकर फिर सात्यकिकी ओर जानेका विचार छोड़ दिया और वे पाण्डव और पाञ्चालोंको आगे बढ़नेसे रोककर व्यूहकी ही रक्षा करने लगे।

सात्यकिके द्वारा राजकुमार सुदर्शनका वध, काम्बोज और यवन आदि अनार्य योद्धाओंसे घोर संग्राम तथा धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी पराजय

सञ्जयने कहा—राजन्! इस प्रकार द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके वीरोंको परास्त कर सात्यकिने अपने सारथिसे कहा, 'सूत! हमारे शत्रुओंको तो श्रीकृष्ण और अर्जुन पहले ही भस्म कर चुके हैं। हम तो इनकी पराजयमें केवल निमित्तमात्र हैं और पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके मारे हुए योद्धाओंको ही मार रहे हैं।' सारथिसे ऐसा कहकर वह शिनिकुलभूषण सब ओर बाणोंकी वर्षा करता अपने शत्रुओंपर टूट पड़ा। उसे बढ़ता देख राजकुमार सुदर्शन क्रोधमें भरकर सामने आया और बलात्कारसे उसे रोकने लगा। उसने सात्यकिपर सैकड़ों बाण छोड़े। परन्तु उसने उन्हें अपने पास पहुँचनेसे पहले ही काट डाला। इसी प्रकार सात्यकिने सुदर्शनपर जो बाण छोड़े उनके उसने भी दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर दिये। फिर उसने धनुषको कानतक तानकर तीन बाण छोड़े, वे सात्यकिके कवचको फोड़कर उसके शरीरमें घुस गये। साथ ही चार बाणोंसे उसने सात्यकिके घोड़ोंपर भी वार किया। तब सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे अपने तीखे तीरोंद्वारा सुदर्शनके चारों घोड़ोंको मारकर बड़ा सिंहनाद किया। फिर एक भल्लसे सुदर्शनके सारथिका सिर काटकर एक क्षुरप्रद्वारा उसका कुण्डलमण्डित मस्तक भी धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार राजा दुर्योधनके पौत्र सुदर्शनका संहार करके सात्यकिको बड़ा हर्ष हुआ। फिर वह आपकी सेनाको अपने बाणोंकी बौछारोंसे हटाकर सबको विस्मयमें डालता हुआ अर्जुनकी ओर चला। मार्गमें उसके सामने जो शत्रु आता था, उसीको वह अग्निके समान अपने बाणोंमें होम देता था। उसके इस अद्भुत पराक्रमकी अनेकों अच्छे-अच्छे वीर प्रशंसा कर रहे थे।

अब उसने अपने सारथिसे कहा, 'मालूम होता है महावीर अर्जुन यहाँ कहीं पास ही हैं; क्योंकि उनके गाण्डीव धनुषका शब्द सुनायी दे रहा है। मुझे जैसे-जैसे शकुन हो रहे हैं, उनसे यही निश्चय होता है कि ये सूर्यास्तसे पहले ही जयद्रथका वध कर देंगे। अब तुम थोड़ी देर घोड़ोंको आराम कर लेने दो। फिर जिस ओर शत्रुओंकी सेना है तथा जिधर दुर्योधनादि राजा एवं काम्बोज, यवन, शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा अनेकों म्लेच्छ खड़े हुए हैं, उधर ही रथ ले चलना। ये सब मेरे साथ ही युद्ध करनेकी तैयारीमें हैं। जब रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित इन सबका संहार हो जाय, तभी तुम समझना कि हमने इस दुस्तर व्यूहको पार किया है।'

सारथिने कहा—वार्ष्णेय! यदि क्रोधमें भरे हुए साक्षात् परशुरामजी भी आपके सामने आ जायँ, तो मुझे कोई घबराहट नहीं होगी; इस गौके खुरके समान तुच्छ संग्रामकी तो बात ही क्या है। कहिये, अब किस रास्तेसे मैं आपको अर्जुनके पास ले चलूँ?'

सात्यकिने कहा—आज मुझे इन मुण्डलोगोंका संहार करना है। इसलिये तुम मुझे काम्बोजोंकी ओर ही ले चलो। गुरुवर अर्जुनसे मैंने जो शस्त्रविद्या सीखी है, आज मैं उसका कौशल दिखाऊँगा। जब मैं क्रोधमें भरकर चुने-चुने योद्धाओंका वध करूँगा, तो दुर्योधनको यही भ्रम होगा कि इस जगत्में दो अर्जुन हैं। महात्मा पाण्डवोंके प्रति मेरी जैसी प्रीति और भक्ति है, उसे इन राजाओंके सामने सहस्रों वीरोंका संहार करके मैं प्रकट करूँगा। आज कौरवोंको मेरे बल-वीर्य और कृतज्ञताका पता लग जायगा।

सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथिने बड़ी तेजीसे घोड़ोंको हाँका और तुरंत ही उसे यवनोंके पास पहुँचा दिया। जब उन्होंने सात्यकिको अपनी सेनाके समीप आया देखा तो वे बड़ी सफाईसे बाणोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उनके बाण एवं अन्यान्य अस्त्रोंको बीचहीमें काट दिया और वे उसके पासतक फटक भी न सके। इसके बाद वह बाणोंकी वर्षा करके उनके सिर और भुजाओंको काटने लगा। वे बाण उनके लोहे और काँसेके कवचोंको फोड़कर शरीरोंको छेदते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे। इस प्रकार वीर सात्यकिके मारे हुए सैकड़ों म्लेच्छ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गये। वह धनुषको कानतक खींचकर जो बाण छोड़ता था, उनसे एक-एक वारमें ही पाँच-पाँच,

छः-छः, सात-सात और आठ-आठ यवनोंका काम तमाम कर देता था। इस प्रकार उसने हजारों काम्बोज, शक, शबर, किरात और बर्बरोंको धराशायी करके रणभूमिको मांस और रक्तसे लथपथ तथा अगम्य-सी कर दिया। सात्यकिके बाणोंसे मरे हुए उन वीरोंसे सारी पृथ्वी भर गयी। उनमेंसे जो थोड़े-से योद्धा बचे, वे प्राणसंकटसे भयभीत होकर रणाङ्गणसे भाग गये।

राजन्! इस प्रकार काम्बोज, यवन और शकोंकी दुर्जय सेनाको भगाकर सात्यकि आपके पुत्रोंकी सेनामें घुस गया और उन्हें भी परास्त करके सारथिको रथ बढ़ानेका आदेश दिया। उसे अर्जुनके समीप पहुँचा देखकर आपके सैनिक और चारणलोग बड़ी प्रशंसा करने लगे। इतनेहीमें आपके पुत्र दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, दुर्धर्षण और क्रथने उसे पीछेसे जाकर घेर लिया। पुरुषसिंह सात्यकिको इससे तनिक भी भय न हुआ और वह अर्जुनसे भी बढ़कर कुशलता दिखाता हुआ उनके साथ युद्ध करने लगा। अब राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे उसके सूत और चारसे चारों घोड़ोंको बींधकर सात्यकिपर पहले तीन और फिर आठ बाणोंसे वार किया। तथा दुःशासनने सोलह, शकुनिने पचीस, चित्रसेनने पाँच और दुःसहने पंद्रह बाणोंसे उसपर चोट की। इसपर सात्यकिने मुसकराते हुए उन सभीको तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया। फिर शकुनिके धनुषको काटकर तीन बाणोंसे दुर्योधनकी छातीपर वार किया; तथा चित्रसेनको सौ, दुःसहको दस और दुःशासनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद उसने प्रत्येक वीरके पाँच-पाँच बाण और भी मारे तथा एक भल्लसे दुर्योधनके सारथिपर प्रहार किया। इससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गया। सारथिके मारे जानेपर घोड़े हवासे बातें करने लगे और उसके रथको संग्रामभूमिसे बाहर ले गये। यह देखकर आपके अन्य पुत्र और दूसरे सैनिक भी मैदान छोड़कर भाग गये। इस प्रकार आपकी सब सेनाको तितर-बितर करके वह फिर अर्जुनके रथकी ओर ही चला।

किन्तु वह कुछ ही आगे बढ़ा था कि दुर्योधनकी आज्ञासे संशप्तकोंके सहित वे सब योद्धा फिर लौट आये। स्वयं दुर्योधन उनके आगे था। उसके साथ तीन हजार घुड़सवार तथा शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर और पर्वतीय योद्धा हाथोंमें पत्थर लेकर बड़े क्रोधसे सात्यकिकी ओर दौड़े। दुःशासनने 'इसे मार डालो' ऐसा कहकर सबको उत्साहित किया और सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। इस समय हमने सात्यकिका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। वह अकेला ही बेखटके उन सबके साथ संग्राम कर रहा था तथा रथसेना, गजसेना और घुड़सवारोंके सहित उन सभी अनार्योंका संहार करता जाता था। जब वे मार खाकर भागने लगे, तो उनसे दुःशासनने कहा—'अरे! भागते क्यों हो? तुमलोग तो पत्थरोंकी मार मारनेमें बड़े कुशल हो, सात्यकि तो इससे सर्वथा अनभिज्ञ है। इसलिये तुम पत्थर बरसाकर इसे मार डालो।' यह सुनकर वे फिर सात्यकिपर टूट पड़े और हाथीके सिरके समान बड़ी-बड़ी शिलाएँ लिये उसके सामने आये। कोई उसे मार डालनेके लिये गोफनियाँ लेकर सब ओरसे मार्ग रोककर खड़े हो गये। उन्हें शिलायुद्ध करनेकी इच्छासे आया देख सात्यकिने बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। फिर उन्होंने जो भयङ्कर पाषाणवर्षा की, उसे सात्यकिने अपने बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। उन पत्थरोंके रोड़ोंसे आपहीकी सेना मरने लगी और उसमें बड़ा हाहाकार होने लगा। बात-की-बातमें पाँच सौ शिलाधारी वीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गये।

अब अनेकों व्यात्तमुख, अयोहस्त, शूलहस्त, दरद, तङ्गण, खस, लम्पाक और कुलिन्द योद्धा सात्यकिपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु युद्धकुशल सात्यकिने बाणोंकी बौछारसे उनके पत्थरोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उनकी बजरीकी चोट भौंरोंके डंकके समान जान पड़ती थी। उससे पीडित होकर मनुष्य, हाथी और घोड़े संग्रामभूमिमें टिक न सके। जो हाथी मरनेसे बचे थे, वे खूनसे लथपथ हो गये तथा उनके मस्तकोंकी हड्डियाँ टूट गयीं। इसलिये वे भी अकेले सात्यकिके रथको छोड़कर संग्रामभूमिसे भाग गये। आपके जो पुत्र सात्यकिसे लड़ने आये थे, वे भी उसकी मारसे घबराकर द्रोणाचार्यजीकी सेनामें जा मिले तथा जिन रथियोंको लेकर दुःशासनने धावा किया था, वे सब भी भयभीत होकर द्रोणके रथकी ओर दौड़ गये।

आचार्यके द्वारा दुःशासनका तिरस्कार, वीरकेतु आदि पाञ्चाल कुमारोंका वध, तथा उनका धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंके एवं सात्यकिका दुःशासन और त्रिगर्तोंके साथ घोर संग्राम

सञ्जय कहते हैं—राजन्! जब आचार्यने दुःशासनके रथको अपने पास खड़ा देखा तो वे उससे कहने लगे, 'दुःशासन! ये सब रथी क्यों भाग रहे हैं? राजा दुर्योधन तो कुशलसे है? तथा जयद्रथ अभी जीवित है न? तुम तो राजकुमार हो, स्वयं राजाके भाई हो और तुम्हींको युवराजपद प्राप्त हुआ है। फिर तुम युद्धसे कैसे भाग रहे हो? तुमने तो पहले द्रौपदीसे कहा था कि 'तू हमारी जूएमें जीती हुई दासी है। अब तू स्वेच्छाचारिणी होकर हमारे ज्येष्ठ भ्राता महाराज दुर्योधनके वस्त्र लाकर दिया कर। अब तेरा कोई पति नहीं है, ये सब तो तैलहीन तिलके समान सारहीन हो गये हैं।' ऐसी-ऐसी बातें बनाकर अब तुम युद्धमें पीठ क्यों दिखा रहे हो? तुमने पाञ्चाल और पाण्डवोंके साथ स्वयं ही वैर बाँधा, फिर आज एक सात्यकिके सामने आकर ही तुम कैसे डर गये? पहले कपटद्यूतमें पासे पकड़ते समय तुमने यह नहीं समझा था कि एक दिन ये पासे ही कराल बाण हो जायँगे? शत्रुदमन! तुम सेनाके नायक और अवलम्ब हो; यदि तुम्हीं डरकर भागने लगोगे, तो संग्रामभूमिमें और कौन ठहरेगा। आज यदि अकेले ही जूझते हुए सात्यकिके सामनेसे तुम भागना चाहते हो तो रणस्थलमें अर्जुन, भीम या नकुल-सहदेवको देखनेपर क्या करोगे? हो तो तुम बड़े मर्द! जाओ, उत्तर नहीं दिया। वह सब बातोंको सुनी-अनसुनी-सी करके युद्धसे पीठ न फेरनेवाले यवनोंकी भारी सेना लेकर सात्यकिकी ओर चला गया और बड़ी सावधानीसे उसके साथ संग्राम करने लगा। रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर मध्यम गतिसे पाञ्चाल और पाण्डवोंकी सेनापर टूट पड़े और सैकड़ों-हजारों योद्धाओंको समरभूमिसे भगाने लगे। उस समय आचार्य अपना नाम सुना-सुनाकर पाण्डव, पाञ्चाल और मत्स्य वीरोंका घोर संहार कर रहे थे। जिस समय वे इस प्रकार सेनाओंको परास्त कर रहे थे, उनके सामने परमतेजस्वी पाञ्चालराजकुमार वीरकेतु आया। उसने पाँच तीखे बाणोंसे द्रोणको, एकसे ध्वजाको और सातसे उनके सारथिको बींध दिया। इस समय यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि आचार्य उस वेगवान् पाञ्चालराजकुमारको काबूमें नहीं कर सके। संग्राममें द्रोणकी गति रुकी देखकर महाराज युधिष्ठिरकी विजय चाहनेवाले पाञ्चाल वीरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। सब-के-सब मिलकर उनपर बाण, तोमर तथा तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब आचार्यने वीरकेतुके रथकी ओर एक बड़ा ही भयङ्कर बाण छोड़ा। वह उसे घायल करके पृथ्वीपर जा पड़ा और उसकी चोटसे प्राणहीन होकर वह पाञ्चालकुलतिलक रथसे नीचे

नेत्रोंसे जल गिरने लगा और वह अत्यन्त कुपित होकर द्रोणके रथपर टूट पड़ा। तब धृष्टद्युम्नके बाणोंसे द्रोणकी गति रुकी देखकर संग्रामभूमिमें बड़ा हाहाकार होने लगा। उसने क्रोधसे तिलमिलाकर आचार्यकी छातीपर नब्बे बाणोंसे चोट की। इससे वे रथकी गद्दीपर बैठकर मूर्च्छित हो गये। धृष्टद्युम्नने धनुष रखकर एक तेज तलवार उठायी और अपने रथसे कूदकर फौरन ही आचार्यके रथपर चढ़ गया। वह उनका सिर काटनेहीवाला था कि द्रोणकी मूर्च्छा टूट गयी। जब उन्होंने देखा कि धृष्टद्युम्न उनका काम तमाम करनेके लिये निकट आ गया है, तो वे पाससे ही चोट करनेवाले वितस्त नामके बाण छोड़ने लगे। उन बाणोंसे धृष्टद्युम्नका उत्साह भंग हो गया और वह तुरंत ही उनके रथसे कूदकर अपने रथपर जा चढ़ा। अब वे दोनों ही एक-दूसरेको बाणोंसे बींधने लगे। दोनोंहीने सम्पूर्ण आकाश, दिशा और पृथ्वीको बाणोंसे छा दिया। उनके उस अद्भुत युद्धकी सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे। अब द्रोणने बड़ी फुर्तीसे धृष्टद्युम्नके सारथिके सिरको काटकर गिरा दिया। इससे उसके घोड़े रणभूमिसे भाग गये। तब आचार्य पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंके साथ युद्ध करने लगे तथा उन्हें परास्त करके फिर अपने व्यूहमें आकर खड़े हो गये।

इधर दुःशासन बरसते हुए बादलके समान बाणोंकी वर्षा करता सात्यकिके सामने आया। उसे आता देख सात्यकि उसकी ओर दौड़ा और उसे अपने बाणोंसे एकदम ढक दिया। जब दुःशासन और उसके साथी बाणोंसे बिल्कुल ढक गये, तो वे सब सैनिकोंके सामने ही भयभीत होकर युद्धस्थलसे भाग गये। दुःशासनको सैकड़ों बाणोंसे बिंधा देखकर राजा दुर्योधनने त्रिगर्त्त वीरोंको सात्यकिके रथकी ओर भेजा। उन तीन सहस्र रथी योद्धाओंने युद्धका पक्का निश्चय कर सात्यकिको चारों ओरसे रथोंकी बाड़से घेर दिया। किन्तु सात्यकिने अपने बाणोंकी बौछारसे उस सेनाके पाँच सौ अग्रगामी योद्धाओंको बात-की-बातमें धराशायी कर दिया। तब रहे-सहे वीर अपने प्राणोंके भयसे द्रोणाचार्यजीके रथकी ओर लौट गये।

इस प्रकार त्रिगर्त्त वीरोंका संहार करके वीर सात्यकि धीरे-धीरे अर्जुनके रथकी ओर बढ़ने लगा। इस समय आपके पुत्र दुःशासनने उसपर फिर नौ बाणोंसे वार किया। तब सात्यकिने उसपर पाँच बाण छोड़े और उसके धनुषको भी काट डाला। इस प्रकार सबको विस्मयमें डालकर वह फिर अर्जुनके रथकी ओर बढ़ने लगा। इससे दुःशासनका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने सात्यकिका वध करनेके विचारसे उसपर एक लोहेकी शक्ति छोड़ी। किन्तु सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। तब दुःशासनने दूसरा धनुष लेकर उसे बाणोंसे बींध डाला और सिंहके समान गर्जना की। इससे सात्यकिका क्रोध भड़क उठा और उसने दुःशासनकी छातीको तीन बाणोंसे घायल कर एक भल्लसे उसके धनुषको और दोसे उसके रथकी ध्वजा तथा शक्तिको काट डाला। फिर कई तीखे बाण छोड़कर उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। तब त्रिगर्त्तसेनापति उसे अपने रथपर चढ़ाकर ले चला। सात्यकिने कुछ देरतक उसका भी पीछा किया। किन्तु फिर उसे भीमसेनकी प्रतिज्ञा याद आ गयी, इसलिये उसने दुःशासनका वध नहीं किया। राजन्! भीमसेनने आपकी सभामें ही आपके सब पुत्रोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये सात्यकिने दुःशासनको मारा नहीं। वह उसे संग्रामभूमिमें परास्त कर बड़े वेगसे अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा।

द्रोणाचार्यद्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु और क्षेत्रधर्माका वध तथा चेकितान आदि अनेकों वीरोंकी पराजय

सञ्जयने कहा—राजन्! इधर दोपहरके बाद आचार्य द्रोणका सोमकोंके साथ फिर घोर संग्राम होने लगा। उस समय सब योद्धा गरज रहे थे, उनका मेघके समान गम्भीर शब्द हो रहा था। पुरुषसिंह द्रोणने अपने लाल रंगके घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर मध्यम गतिसे पाण्डवोंपर धावा किया और अपने तीखे बाणोंसे मानो चुने-चुने वीरोंपर बाण बरसा रहे हों, इस प्रकार युद्धमें खेल-सा करने लगे। इतनेहीमें पाँच कैकेय राजकुमारोंमेंसे रण-दुर्मद महारथी बृहत्क्षत्र उनके सामने आया और पैने-पैने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें पीडित करने लगा। द्रोणने कुपित होकर उसपर पंद्रह बाण छोड़े; किन्तु उसने उन्हें अपने पाँच बाणोंसे ही काट डाला। उसकी ऐसी फुर्ती देखकर आचार्य हँसे और फिर उसपर आठ बाणोंसे वार किया। यह देखकर बृहत्क्षत्रने उन्हें उतने ही पैने बाण छोड़कर नष्ट कर दिया। बृहत्क्षत्रका ऐसा दुष्कर कर्म देखकर आपकी सेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब द्रोणने अत्यन्त दुर्जय ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। उसे कैकेय राजकुमारने ब्रह्मास्त्रसे ही नष्ट कर दिया तथा आचार्यपर साठ बाणोंसे चोट की। इसपर विप्रवर द्रोणने उसपर एक नाराच छोड़ा।

वह उसके कवचको फोड़कर पृथ्वीमें घुस गया। इससे बृहत्क्षत्रका क्रोध बहुत बढ़ गया तथा उसने सत्तर बाणोंसे द्रोणको और एकसे उनके सारथिको घायल कर डाला। तब आचार्यने अपनी बाणवर्षासे महारथी बृहत्क्षत्रका नाकमें दम कर दिया और उसके चारों घोड़ोंका भी काम तमाम कर डाला। फिर एक बाणसे सूतको और दोसे ध्वजा एवं छत्रको काटकर रथसे नीचे गिरा दिया। इसके बाद एक बाण तानकर बृहत्क्षत्रकी छातीमें मारा। इससे उसकी छाती फट गयी और वह पृथ्वीपर जा गिरा।

इस प्रकार केकय-महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालका पुत्र महाबली धृष्टकेतु द्रोणाचार्यके ऊपर टूट पड़ा। उसने आचार्य तथा उनके रथ, ध्वजा और घोड़ोंपर साठ बाणोंसे वार किया। तब द्रोणने एक क्षुरप्र बाणसे उसका धनुष काट डाला। वह महारथी दूसरा धनुष लेकर उन्हें बाणोंसे बींधने लगा। द्रोणने चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला और फिर हँसते-हँसते उसके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया। इसके बाद पचीस बाण धृष्टकेतुपर छोड़े। तब उसने रथसे कूदकर आचार्यपर एक गदा छोड़ी। उसे आते देख उन्होंने हजारों बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इससे खीझकर धृष्टकेतुने द्रोणपर एक तोमर और शक्तिसे वार किया। आचार्यने पाँच-पाँच बाणोंसे उन दोनोंको नष्ट कर दिया। फिर उन्होंने उसका वध करनेके लिये एक तेज बाण छोड़ा। वह उसके कवच और हृदयको फाड़कर पृथ्वीमें घुस गया।

इस प्रकार चेदिराजके मारे जानेपर उसके अस्त्रविद्या-विशारद पुत्रको बड़ा रोष हुआ और वह उसके स्थानपर आकर डट गया। किन्तु द्रोणने हँसते-हँसते उसे भी यमराजके हवाले कर दिया। तब जरासन्धका महाबली पुत्र उनके सामने आया। उसने अपने बाणोंकी बौछारोंसे रणाङ्गणमें द्रोणको अदृश्य कर दिया। उसकी ऐसी फुर्ती देखकर आचार्यने भी सैकड़ों-हजारों बाण बरसाने आरम्भ किये। इस प्रकार उस महारथीको रथमें ही बाणोंसे आच्छादित कर उन्होंने समस्त धनुर्धरोंके सामने मार डाला।

अब पञ्चाल, चेदि, सृञ्जय, काशी और कोसल—इन सभी देशोंके महारथी बड़े उत्साहसे युद्ध करनेके लिये द्रोणके ऊपर टूट पड़े। उन्होंने आचार्यको यमराजके पास भेजनेके लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी। परन्तु आचार्यने अपने तीखे बाणोंसे उन्हींको यमराजके हवाले कर दिया। द्रोणके ऐसे कर्म देखकर महाबली क्षेत्रधर्मा उनके सामने आया और एक अर्धचन्द्र बाणसे उनका धनुष काट डाला। तब आचार्यने एक दूसरा धनुष लेकर उसपर एक तीखा बाण चढ़ा उसे कानतक खींचकर छोड़ा। उससे क्षेत्रधर्माका हृदय फट गया और वह अपने रथसे पृथ्वीपर जा पड़ा। इस प्रकार उस धृष्टद्युम्नकुमारके मारे जानेपर सब सेनाएँ काँप उठीं। अब आचार्यपर महाबली चेकितानने आक्रमण किया। उसने द्रोणको दस बाणोंसे घायल करके उनकी छातीपर चोट की तथा चार बाणोंसे उनके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला। तब आचार्यने तीन बाणोंसे उसकी छाती और भुजाओंपर वार किया। फिर सात बाणोंसे ध्वजा काटकर तीनसे सारथिको मार डाला। सारथिके मारे जानेसे घोड़े रथको लेकर भाग गये।

इस प्रकार चेकितानके रथको सारथिहीन देखकर द्रोण वहाँ एकत्रित हुए चेदि, पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंको तितर-बितर करने लगे। इस समय वे बड़े ही शोभायमान जान पड़ते थे। उनके केश कानोंतक पक चुके थे और आयु पचासी वर्षके लगभग हो चुकी थी। इतने वयोवृद्ध होनेपर भी वे संग्रामभूमिमें सोलह वर्षके बालकके समान विचर रहे थे।

महाराज युधिष्ठिरका घबराकर भीमसेनको अर्जुनके पास भेजना तथा भीमका अनेकों धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारकर अर्जुनके पास पहुँचना

सञ्जयने कहा—राजन्! जब आचार्य पाण्डवोंके व्यूहको इस प्रकार जहाँ-तहाँसे रौंदने लगे तो पाञ्चाल, सोमक और पाण्डव वीर वहाँसे दूर भाग गये। अब धर्मराज युधिष्ठिरको अपना कोई सहायक दिखायी नहीं देता था। उन्होंने अर्जुनको देखनेके लिये सब ओर निगाह दौड़ायी, किन्तु उन्हें न तो अर्जुन दिखायी दिये और न सात्यकि ही। इस प्रकार बहुत देखनेपर भी जब उन्हें नरश्रेष्ठ अर्जुन दिखायी न दिये और न उनके गाण्डीव धनुषकी टङ्कार ही सुनायी पड़ी, तो उनकी इन्द्रियाँ एकदम व्याकुल हो उठीं। वे एकदम शोकमें डूब गये और भीमसेनको बुलाकर उनसे कहने लगे, 'भैया भीम! जिसने रथपर चढ़कर अकेले ही देवता, गन्धर्व और असुरोंको परास्त कर दिया था, आज

तुम्हारे उस छोटे भाई अर्जुनका मुझे कोई चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है।' धर्मराजको इस प्रकार घबराते देखकर भीमसेनने कहा, 'राजन्! आपकी ऐसी घबराहट तो मैंने पहले कभी न देखी है और न सुनी ही है। पहले जब कभी हमलोग दुःखसे अधीर हो उठते थे, तो आप ही हमें दिलासा दिया करते थे। महाराज! इस संसारमें ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे मैं न कर सकूँ अथवा असाध्य मानकर छोड़ दूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये और मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिये।' तब युधिष्ठिरने नेत्रोंमें जल भरकर दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, 'भैया! देखो, श्रीकृष्णद्वारा रोषपूर्वक बजाये जाते हुए पाञ्चजन्य शंखका शब्द सुनायी दे रहा है। इससे मुझे निश्चय होता है कि तुम्हारा भाई अर्जुन आज मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ है और उसके मारे जानेपर श्रीकृष्ण संग्राम कर रहे हैं। यही मेरे शोकका कारण है। अर्जुन और सात्यकिकी चिन्ता मेरी शोकाग्निको बार-बार भड़का देती है। देखो, उनका मुझे कोई भी चिह्न नहीं दीख रहा है। इससे यही अनुमान होता है कि उन दोनोंके मारे जानेपर ही श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं। भैया! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ; यदि तुम मेरा कहा मानो तो जिधर अर्जुन और सात्यकि गये हैं, उधर ही तुम भी जाओ। तुम सात्यकिका ध्यान अर्जुनसे भी बढ़कर रखना। वह मेरा प्रिय करनेके लिये दुर्गम और भयङ्कर भारतीय सेनाको लाँघकर अर्जुनकी ओर गया है। कच्चे-पक्के योद्धा तो इस विशाल वाहिनीके पास भी नहीं फटक सकते। यदि तुम्हें श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्यकि सकुशल मिल जायँ तो सिंहनाद करके मुझे सूचित कर देना।' भीमसेनने कहा, 'महाराज! जिस रथपर पहले ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र और वरुण सवारी कर चुके हैं, उसीपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन गये हैं। इसलिये यद्यपि उनके विषयमें कोई खटकेकी बात नहीं है, तो भी मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके जा रहा हूँ। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। मैं उन पुरुषसिंहोंसे मिलकर आपको सूचना दूँगा।'

धर्मराजसे ऐसा कहकर वहाँसे चलते समय महाबली भीमसेनने धृष्टद्युम्नसे कहा, 'महाबाहो! महारथी द्रोण जिस प्रकार सारी युक्तियाँ लगाकर धर्मराजको पकड़नेपर तुले हुए हैं, वह तुम्हें मालूम ही है। इसलिये मेरे लिये जितना आवश्यक यहाँ रहकर महाराजकी रक्षा करना है, उतना अर्जुनके पास जाना नहीं है। यही बात अर्जुनने भी मुझसे कही थी। किन्तु अब मैं महाराजकी आज्ञाके सामने कुछ नहीं कह सकता। जहाँ मरणासन्न जयद्रथ है, वहीं मुझे जाना होगा। धर्मराजकी आज्ञा मुझे बिना किसी प्रकारकी आपत्ति किये माननी होगी। मैं भी अर्जुन और सात्यकि जिस रास्तेसे गये हैं, उसीसे जाऊँगा। सो अब तुम खूब सावधान रहकर धर्मराजकी रक्षा करना।'

तब धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा, 'पार्थ! आप निश्चिन्त होकर जाइये। मैं आपके इच्छानुसार ही सब काम करूँगा। द्रोणाचार्य संग्राममें धृष्टद्युम्नका वध किये बिना किसी प्रकार धर्मराजको कैद नहीं कर सकेंगे।'

यह सुनकर महाबली भीमसेन अपने बड़े भाईको प्रणाम कर और उन्हें धृष्टद्युम्नकी देख-रेखमें छोड़कर अर्जुनकी ओर चल दिये। चलती बार राजा युधिष्ठिरने उन्हें हृदयसे लगाया और उनका सिर सूँघा। भीमसेनके चलते समय फिर पाञ्चजन्यकी घोर ध्वनि हुई। त्रिलोकीको भयभीत करनेवाले उस भयङ्कर शब्दको सुनकर धर्मराजने फिर कहा, 'देखो! श्रीकृष्णका बजाया हुआ यह शङ्ख पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा है। निश्चय ही, अर्जुनपर भारी सङ्कट पड़नेपर श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंके साथ युद्ध कर रहे हैं। इसलिये भैया भीम! तुम जल्दी ही अर्जुनके पास जाओ।'

अब भीमसेन शत्रुओंपर अपनी भयङ्करता प्रकट करते हुए चल दिये। वे अपने धनुषकी डोरी खींचकर बाणोंकी वर्षा करते हुए कौरवसेनाके अग्रभागको कुचलने लगे। उनके पीछे-पीछे दूसरे पाञ्चाल और सोमक वीर भी बढ़ने लगे। तब उनके सामने दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन आदि आपके पुत्र अनेकों सैनिक और पदातियोंको लेकर आये और उन्हें चारों ओरसे घेरने लगे। किन्तु भीमसेन बड़ी तेजीसे उन्हें पीछे छोड़कर द्रोणकी सेनापर टूट पड़े तथा उसके आगे जो गजसेना थी, उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। पवनकुमार भीमने बात-की-बातमें उस सारी सेनाको नष्ट कर डाला। जिस प्रकार वनमें शरभके गर्जनेपर मृग घबराकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार वे सब हाथी भयङ्कर चिग्घार करते हुए इधर-उधर भागने लगे।

इसके बाद उन्होंने फिर बड़े जोरसे द्रोणाचार्यकी सेना-पर धावा किया। आचार्यने उन्हें आगे बढ़नेसे रोका, तथा

मुसकराते हुए एक बाणद्वारा उनके ललाटपर चोट की । फिर वे बोले, 'भीमसेन ! मुझे जीते बिना अपनी शक्तिद्वारा तुम शत्रुकी सेनामें प्रवेश नहीं कर सकोगे । तुम्हारा भाई अर्जुन तो मेरी अनुमतिसे ही घुस गया था; किन्तु तुम मुझसे पार होकर इसमें नहीं घुस सकोगे ।' गुरुकी यह बात सुनकर भीमसेनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने निर्भय होकर कहा, 'ब्रह्मबन्धो ! अर्जुनने आपकी अनुमतिसे रणाङ्गणमें प्रवेश किया हो—ऐसी बात नहीं है; वह तो ऐसा दुर्धर्ष है कि इन्द्रकी सेनामें भी घुस सकता है । वह आपका बड़ा आदर करता है, ऐसा करके उसने आपका मान ही बढ़ाया है । मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ, मैं तो आपका शत्रु भीम हूँ ।' ऐसा कहकर भीमसेनने अपनी कालदण्डके समान भयङ्कर गदा उठायी और उसे घुमाकर द्रोणाचार्यपर फेंका । द्रोण तुरंत ही अपने रथसे कूद पड़े और उस गदाने घोड़े, सारथि और ध्वजाके सहित उस रथको चूर-चूर कर डाला तथा और भी कई वीरोंका काम तमाम कर दिया ।

अब आचार्य दूसरे रथपर चढ़कर व्यूहके द्वारपर आ गये और युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये । महापराक्रमी भीमसेन क्रोधमें भरकर अपने सामने खड़ी हुई रथसेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे । इस सेनामें जो आपके महारथी पुत्र थे, वे भीमसेनके बाणोंसे नष्ट होते हुए भी उनपर विजय प्राप्त करनेकी लालसासे बराबर युद्ध करते रहे । अब दुःशासनने क्रोधमें भरकर भीमसेनका काम तमाम कर देनेके विचारसे उनपर एक अत्यन्त तीक्ष्ण लोहमयी रथशक्ति फेंकी । किन्तु भीमसेनने बीचहीमें उस महाशक्तिके दो टुकड़े कर दिये । फिर उन्होंने तीन तीखे बाणोंसे कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन—इन तीन भाइयोंको मार डाला । आपके वीर पुत्र इसपर भी लड़ते ही रहे । इतनेहीमें उन्होंने महाबली वृन्दारक तथा अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचनका भी काम तमाम कर दिया । तब आपके पुत्रोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनपर बाणोंकी झड़ी लगा दी । भीमसेनने हँसते-हँसते आपके पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्माको यमराजके घर भेज दिया । फिर उन्होंने आपके शूरवीर पुत्र सुदर्शनको घायल किया । वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया । इस प्रकार भीमसेनने सब ओर ताक-ताककर थोड़ी ही देरमें अपने तेज बाणोंसे उस रथसेनाको नष्ट कर डाला । फिर तो सिंहकी दहाड़ सुनकर जैसे मृग भागने लगते हैं, उसी प्रकार उनके रथकी घरघराहट सुनकर आपके पुत्र सब ओर भागने लगे । भीमसेनने आपके पुत्रोंकी भागती हुई सेनाका भी पीछा किया और वे सब ओर कौरवोंका संहार करने लगे । इस तरह बहुत मार पड़नेपर वे भीमसेनको छोड़कर अपने घोड़ोंको दौड़ाते हुए रणभूमिसे भाग गये । महाबली भीम संग्राममें उन सबको परास्त करके बड़े जोरसे गरजने लगे ।

अब वे रथसेनाको लाँघकर आगे बढ़े । यह देखकर द्रोणाचार्यने उन्हें रोकनेके लिये बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी तथा आपके पुत्रोंकी प्रेरणासे कई धनुर्धर राजाओंने भी उन्हें चारों ओरसे घेर लिया । तब भीमसेनने सिंहके समान गर्जना करते हुए एक भयङ्कर गदा उठाकर बड़े वेगसे उनपर फेंकी । उसने आपके कई सैनिकोंका काम तमाम कर दिया । भीमसेनने गदासे ही आपके अन्य सैनिकोंपर भी प्रहार किया । इससे वे भयभीत होकर इस प्रकार भागने लगे, जैसे सिंहकी गन्ध पाकर मृग भाग जाते हैं ।

जब महारथी भीमसेन इस प्रकार कौरवोंका संहार करने लगे, तो द्रोणाचार्य उनके सामने आये । उन्होंने अपने बाणोंकी बौछारोंसे भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया । अब इन दोनों वीरोंका बड़ा घोर युद्ध होने लगा । भीमसेन अपने रथसे कूदकर द्रोणके बाणोंकी मार सहते हुए उनके रथके पास पहुँच गये और उसका जुआ पकड़कर उसे दूर फेंक दिया । द्रोण एक दूसरे रथपर चढ़कर फिर व्यूहके द्वारपर आ गये । अपने निरुत्साहित गुरुको इस प्रकार फिर अपने सामने आया देख भीमसेन फिर बड़े वेगसे उनके पास गये और धुरेको पकड़कर उस रथको भी दूर पटक दिया । इसी तरह भीमसेनने अनायास ही द्रोणाचार्यके आठ रथ फेंक-फेंककर नष्ट कर दिये । आपके योद्धा यह सब कौतुक बड़े विस्मयभरे नेत्रोंसे देखते रहे ।

अब, आँधी जैसे वृक्षोंको नष्ट कर देती है, उसी प्रकार संग्राममें क्षत्रियोंका नाश करते हुए भीमसेन आगे बढ़े । कुछ दूर जानेपर उन्हें कृतवर्मासे सुरक्षित भोजसेना मिली, किन्तु वे उसे भी तरह-तरहसे नष्ट-भ्रष्ट करके आगे बढ़ गये । फिर काम्बोजसेना तथा अनेकों और युद्धकुशल म्लेच्छोंको पार करनेपर उन्हें युद्ध करता हुआ सात्यकि दिखायी दिया । तब तो वे अर्जुनको देखनेकी इच्छासे अपने रथद्वारा बड़ी सावधानीसे तेजीके साथ आगे बढ़ने लगे । आपके अनेकों योद्धाओंको लाँघकर वे ज्यों ही कुछ आगे गये कि उन्होंने जयद्रथका वध करनेके लिये अर्जुनको युद्ध करते देखा । यह देखकर वे वर्षाकालीन मेघके समान बड़े जोरसे दहाड़ने लगे । भीमसेनका वह सिंहनाद श्रीकृष्ण और अर्जुनके कानोंमें भी

पड़ा। तब वे दोनों उन्हें देखनेके लिये गर्जना करते हुए उनसे आ मिले। महाराज! इधर भीमसेन और अर्जुनका सिंहनाद सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका सारा शोक दूर हो गया और उन्हें अर्जुनके विजयकी भी पूरी आशा हो गयी। भीमसेनके सिंहनाद करनेपर वे मुसकराकर मन-ही-मन कहने लगे, 'भीम! तुमने खूब सूचना दी, तुमने अपने बड़े भाईका कहना करके दिखा दिया। भैया! जिनसे तुम द्वेष करते हो, संग्राममें उनकी विजय कभी नहीं हो सकती। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिंहनादका शब्द भी सुनायी दे रहा है। अहो! जिसने इन्द्रको जीतकर खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया, एक ही धनुषसे निवातकवचोंको जीत लिया, विराट-नगरमें गोहरणके लिये मिलकर आये हुए सब कौरवोंको परास्त किया और दुर्योधनको छुड़ानेके लिये गन्धर्वराज चित्ररथको नीचा दिखाया, तथा श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं और जो मुझे सदा ही परम प्रिय है, वह अर्जुन अभी जीवित है—यह कैसे आनन्दकी बात है! क्या श्रीकृष्णकी रक्षामें सूर्यास्तसे पहले ही अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करके लौटे हुए अर्जुनसे मेरी भेंट हो सकेगी? अर्जुनके हाथसे जयद्रथको और भीमके हाथसे अपने भाइयोंको मरा हुआ देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधन बचे-खुचे वीरोंकी रक्षाके लिये हमसे वैर छोड़कर सन्धि करना चाहेगा?' इस प्रकार एक ओर तो महाराज युधिष्ठिर करुणार्द्र होकर तरह-तरहकी उधेड़-बुनमें लगे हुए थे और दूसरी ओर तुमुल संग्राम हो रहा था।

भीमसेनके हाथसे कर्णकी पराजय, द्रोणके साथ दुर्योधनकी सलाह तथा युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ उसका युद्ध

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! मुझे तीनों लोकोंमें ऐसा तो कोई भी वीर दिखायी नहीं देता, जो रणाङ्गणमें क्रोधसे भरे हुए भीमके सामने टिक सके। भला, जो रथपर रथ उठाकर पटक देता है और हाथीपर हाथीको उठाकर दे मारता है उसके आगे और तो कौन, साक्षात् इन्द्र भी कैसे खड़ा रह सकता है? मुझे भीमसे जैसा भय है वैसा न अर्जुनसे है, न श्रीकृष्णसे, न सात्यकिसे और न धृष्टद्युम्नसे ही है। सञ्जय! यह तो बताओ, जब भीमरूप प्रचण्ड पावक मेरे पुत्रोंको भस्म करने लगा तो किन-किन वीरोंने उसे रोका?

सञ्जय कहने लगे—राजन्! जिस समय भीमसेन इस प्रकार गरज रहे थे, उस समय महाबली कर्ण भी बड़ा भीषण सिंहनाद करता हुआ युद्ध करनेके लिये उनके सामने आया। जब भीमसेनने उसे अपने सामने खड़ा देखा, तो वे एकदम क्रोधसे तमतमा उठे और उसपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे। कर्णने भी बदलेमें बाण बरसाते हुए उन्हें दृढ़तासे सहन कर लिया। उस समय भीमसेनका भीषण सिंहनाद सुनकर अनेकों योद्धाओंके धनुष पृथ्वीपर गिर गये, बहुतोंके हाथोंसे हथियार छूट गये, किन्हीं-किन्हींके प्राण भी निकल गये तथा उनके जो हाथी-घोड़े आदि वाहन थे, वे भयभीत और निरुत्साह होकर मल-मूत्र त्यागने लगे। यह देखकर कर्णने भीमसेनपर बीस बाण छोड़े तथा पाँच बाणोंसे उनके सारथिको बींध दिया। इसपर भीमसेनने उसका धनुष काट डाला और दस बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। फिर उन्होंने बड़े वेगसे तीन बाण उसकी छातीमें मारे। इस भारी चोटने कर्णको कुछ विचलित कर दिया। किन्तु फिर वह धनुषको कानतक खींचकर भीमसेनपर बाण बरसाने लगा। तब भीमसेनने एक क्षुरप्र बाणसे उसके धनुषकी डोरी काट दी तथा एक भल्लसे सारथिको रथसे नीचे गिराकर उसके चारों घोड़ोंको धराशायी कर दिया। इससे भयभीत होकर कर्ण तुरंत ही अपने रथसे कूदकर वृषसेनके रथपर चढ़ गया।

इस प्रकार संग्राममें कर्णको परास्त करके भीमसेन मेघके समान बड़े जोरसे गरजने लगे। उस सिंहनादको सुनकर धर्मराज समझ गये कि भीमसेनने कर्णको परास्त कर दिया है। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। इधर जब आपके पुत्र दुर्योधनने देखा कि हमारी सेना तितर-बितर हो रही है तथा अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन जयद्रथके पास पहुँच चुके हैं तो वह बड़ी तेजीसे द्रोणाचार्यके पास आया और उनसे कहने लगा, 'आचार्यचरण! अर्जुन, भीमसेन और सात्यकि—ये तीन महारथी हमारी इस विशाल वाहिनीको परास्त करके बेरोक-टोक सिन्धुराजके समीप पहुँच गये हैं। ये तीनों ही किसीके काबूमें नहीं आये हैं और वहाँ भी हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं। गुरुजी! सात्यकि और भीम किस प्रकार आपको परास्त करके निकल गये? यह बात तो समुद्रको सुखा डालनेके समान संसारको आश्चर्यमें डालनेवाली है। जब ये तीनों महारथी आपको लाँघकर निकल गये, तो मुझे निश्चय होता है कि इस संग्राममें अभागे दुर्योधनका नाश अवश्यम्भावी है। खैर, जो

होना था सो तो हो गया; अब आगेके लिये विचारिये और सिन्धुराजकी रक्षाके लिये हमें जो कुछ करना चाहिये, उसका निश्चय करके वैसा ही प्रबन्ध कीजिये ।'

द्रोणने कहा—तात ! इस समय हमारा जो कर्तव्य है, वह सुनो । देखो, पाण्डवोंके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर भीतर घुस गये हैं । इस समय जयद्रथ क्रोधमें भरे हुए अर्जुनसे बहुत डरा हुआ है । उसकी रक्षा करना हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य है । इसलिये हमें प्राणोंकी भी परवा न करके उसकी रक्षा करनी चाहिये । इस युद्धद्यूतमें हमारी जीत-हार उसीके ऊपर अवलम्बित हैं । अतः जहाँ बड़े-बड़े धनुर्धर जयद्रथकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं, वहाँ तुम शीघ्र ही जाओ और उन रक्षकोंकी रक्षा करो । मैं यहीं रहकर तुम्हारे पास दूसरे योद्धाओंको भी भेजूँगा और स्वयं पाञ्चाल, पाण्डव तथा सृञ्जय वीरोंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा ।

आचार्यकी यह आज्ञा सुनकर दुर्योधन अपने ऊपर यह भारी भार लेकर अपने अनुयायियोंके सहित तुरंत ही वहाँसे चल दिया । जिस समय अर्जुनने कौरवसेनामें प्रवेश किया था, उस समय कृतवर्माने उनके चक्ररक्षक उत्तमौजा और युधामन्युको भीतर नहीं जाने दिया था । अब वे बाहर-ही-बाहर जाकर बीचमेंसे सेनामें घुसकर अर्जुनके पास पहुँच गये । यह देखकर कुरुराज दुर्योधन बड़ी तेजीसे उनके पास गया और दोनों भाइयोंके साथ डटकर युद्ध करने लगा । तब युधामन्युने तीस बाणोंसे दुर्योधनपर, बीससे उसके सारथिपर और चारसे चारों घोड़ोंपर चोट की । दुर्योधनने एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा और एकसे उसका धनुष काट डाला । फिर एक बाणसे उसके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला । इसपर युधामन्युने क्रोधमें भरकर तीस बाणोंसे दुर्योधनके वक्षःस्थलपर वार किया तथा उत्तमौजाने उसके सारथिको बाणोंसे बींधकर यमराजके घर भेज दिया । तब दुर्योधनने पाञ्चालराजकुमार उत्तमौजाके चारों घोड़ोंको और दोनों अगल-बगलके सारथियोंको मार डाला । घोड़े और सारथियोंके मारे जानेपर उत्तमौजा बड़ी फुर्तीसे अपने भाई युधामन्युके रथपर चढ़ गया । वहाँसे उसने दुर्योधनके घोड़ोंपर बहुत-से बाण बरसाये । उनसे वे मरकर पृथ्वीपर गिर गये । फिर उसने बड़ी फुर्तीसे दुर्योधनके धनुष और तरकस भी काट डाले । तब दुर्योधन रथसे कूद पड़ा और हाथमें गदा लेकर दोनों भाइयोंकी ओर दौड़ा । उसे आते देखकर युधामन्यु और उत्तमौजा भी रथसे कूद पड़े । दुर्योधनने क्रोधमें भरकर अपनी गदासे सारथि, ध्वजा और घोड़ोंके सहित उनके रथको चूर-चूर कर दिया । इसके बाद वह तुरंत ही राजा शल्यके रथपर चढ़ गया । इधर दोनों पाञ्चालराजकुमार भी दूसरे रथोंपर चढ़कर अर्जुनके पास पहुँच गये ।

राजन् ! इस समय भीमसेन भी कर्णसे अपना पिण्ड छुड़ाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास जानेके लिये ही उत्सुक थे । किन्तु जब वे उस ओर चलने लगे तो कर्णने पीछेसे जाकर उनपर बाण बरसाने आरम्भ कर दिये और उन्हें ललकारकर कहा, 'भीम ! आज अर्जुनको देखनेके लिये उतावले होकर तुम मुझे पीठ दिखाकर कैसे जाते हो ? तुम्हारा यह काम कुन्तीके पुत्रोंके योग्य तो नहीं है । जरा मेरे सामने डटकर मुझपर बाणवर्षा करो ।' भीमसेन कर्णकी इस चुनौतीको संग्रामभूमिमें सह न सके और अपना रथ लौटाकर उसके साथ युद्ध करने लगे । उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके पहले तो कर्णके अनुयायियोंको समाप्त किया और फिर स्वयं उसका भी अन्त करनेके लिये क्रोधमें भरकर तरह-तरहके बाण बरसाने लगे । उन्होंने इक्कीस बाण छोड़कर कर्णके शरीरको बींध दिया । कर्णने भी पाँच-पाँच बाण मारकर उनके घोड़ोंको घायल कर दिया । फिर थोड़ी ही देरमें कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे भीमसेन तथा उनके रथ, ध्वजा और सारथि—सभी आच्छादित हो गये । उसने चौंसठ बाणोंसे भीमसेनका सुदृढ कवच काट डाला तथा उनपर अनेकों मर्मभेदी नाराचोंसे चोट की । उस समय कर्णने बाणोंकी ऐसी झड़ी लगायी कि उसके बाणोंसे बिंधा हुआ भीमसेनका शरीर सेहकी कण्टकाकीर्ण देहके समान प्रतीत होने लगा ।

भीमसेन कर्णके इस बर्तावको सह न सके । उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने कर्णपर पचीस नाराच छोड़े । इसके बाद उन्होंने उसपर चौदह बाणोंसे और भी चोट की । फिर एक बाणसे उसका धनुष काट डाला और बड़ी फुर्तीसे सारथि एवं चारों घोड़ोंका सफाया कर अनेकों चमचमाते हुए बाण उसकी छातीमें मारे । वे उसे घायल करके पृथ्वीपर जा पड़े । कर्णको अपने पुरुषार्थका बड़ा अभिमान था । किन्तु इस समय उसका धनुष कट चुका था, इसलिये वह बड़े असमञ्जसमें पड़ गया । अन्तमें वह एक दूसरे रथपर चढ़नेके लिये दौड़ गया ।

भीमसेनके हाथसे कर्णकी पराजय तथा धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! कर्णने तो साक्षात् महादेवके शिष्य परशुरामजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी और उसमें ष्यके सभी गुण विद्यमान थे । फिर उसे भीमसेनने इस गर खेलहीमें कैसे जीत लिया ? मेरे पुत्र तो सबसे अधिक का ही भरोसा रखते थे । इस समय उसे भीमके सामनेसे गता देखकर दुर्योधनने क्या कहा ? और महाबली भीमने के बाद किस प्रकार युद्ध किया तथा कर्णने उसे संग्राममें अग्निके समान प्रज्वलित होते देखकर क्या किया ?

सञ्जयने कहा—राजन् ! अब दूसरे रथपर चढ़कर कर्ण मसेनकी ओर चला । उस समय कर्णको कुपित देखकर पके पुत्र तो यही समझने लगे कि अब भीमसेन आगकी टोंमें गिरनेहीवाला है । कर्णने धनुषकी भयङ्कर टङ्कार र तालियोंका शब्द करते हुए भीमसेनपर धावा किया । , दोनों वीर दो कुपित सिंहोंके समान, झपटते हुए दो जोंके समान तथा क्रोधमें भरे हुए दो शरभोंके समान परस्पर द्ध करने लगे । राजन् ! जूआ खेलने, वनमें रहने और राटनगरमें अज्ञातवास करनेके समय पाण्डवोंको अनेकों श उठाने पड़े हैं; आपके पुत्रोंने उनका विस्तृत राज्य तथा ादि हर लिये हैं; अपने पुत्रोंकी सलाहसे आप भी उन्हें रन्तर तरह-तरहके क्लेश देते रहे हैं; आपने पुत्रोंके सहित रपराधिनी कुन्तीको लाक्षाभवनमें भस्म करनेका विचार या था; आपके दुष्ट पुत्रोंने सभाके बीचमें द्रौपदीको तरहहसे तंग किया था; दुःशासनने उसके केश पकड़कर खींचे र कर्णने उससे यह कठोर बात कही कि 'अब ये लोग तेरे ते नहीं हैं, तू कोई दूसरा पति चुन ले ।' इन सभी बातोंका स समय भीमसेनको स्मरण हो आया । इसलिये वे अपने णोंका मोह छोड़कर धनुषकी टङ्कार करते कर्णपर टूट पड़े । न्होंने अपने बाणोंके जालसे कर्णके रथपर सूर्यकी किरणोंका ड़ना बंद कर दिया । तब कर्णने अपने तीखे बाणोंसे उस लको काटा और नौ बाणोंसे भीमसेनपर भी चोट की । के जवाबमें भीमसेनने फिर कर्णको बाणोंसे आच्छादित कर या । उन दोनोंका रणक्षेत्र उस समय यमलोकके समान यङ्कर और दुर्दर्श हो रहा था । दूसरे महारथी तो उस ग्रामको बड़े विस्मयके साथ देख रहे थे । दोनों ही वीरोंने क-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करते-करते सारे आकाशको बाणमय र दिया था । उन बाणोंकी चमकसे उसमें चमचमाहट-सी होने लगी थी ! दोनों ही वीरोंके बाणोंकी भारी मारसे घोड़े, हाथी और मनुष्य मर-मरकर धरतीपर लोट-पोट हो रहे थे । राजन् ! उस समय आपके पुत्रोंके अनेकों योद्धा मारे गये; उनमेंसे कोई तो प्राणहीन होकर गिर रहे थे और कोई गिर चुके थे । इस प्रकार बात-की-बातमें वह सारी रणभूमि हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी लोथोंसे पट गयी ।

राजन् ! अब क्रोधमें भरे हुए कर्णने भीमपर तीस बाणोंसे चोट की । भीमने तीन बाणोंसे उसका धनुष काट डाला और एक भल्लसे उसके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया । तब इन्द्र जैसे वज्रका प्रहार करते हैं, उसी प्रकार कर्णने एक महाशक्ति घुमाकर भीमसेनपर छोड़ी । किन्तु भीमने सात बाणोंसे उसे बीचहीमें काट डाला तथा कर्णपर यमदण्डके समान तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । कर्णने अपना विशाल धनुष खींचकर नौ बाण छोड़े । उन्हें भीमसेनने नौ बाणोंसे ही काट डाला । फिर उन्होंने कर्णके धनुषको भी काट दिया तथा अपने बाणोंकी बौछारसे उसके घोड़ोंको मारकर सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया ।

कर्णको इस प्रकार आपत्तिमें पड़ा देखकर राजा दुर्योधनने अपने भाई दुर्जयसे कहा, 'अरे ! तू शीघ्र ही इस निमूछिया भीमको मारकर कर्णकी सहायता कर ।' तब दुर्जय 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ भीमसेनकी ओर चला । उसने नौ बाण भीमसेनपर और आठ उनके घोड़ोंपर छोड़े तथा छःसे उनके सारथिको, तीनसे ध्वजाको और सातसे स्वयं उनको बींध दिया । इससे भीमसेनका क्रोध बहुत भड़क उठा और उन्होंने अपने तेज बाणोंसे उसके मर्मस्थानोंको बेधकर उसे सारथि और घोड़ोंके सहित यमराजके हवाले कर दिया । दुर्जयकी ऐसी दुर्दशा देखकर कर्णका हृदय भर आया । उसने रोते-रोते उसकी प्रदक्षिणा की । इस बीचमें भीमसेनने कर्णके रथको तोड़-फोड़ डाला ।

इस प्रकार रथहीन और पुनः पराजित होनेपर भी कर्ण एक दूसरे रथपर चढ़कर फिर भीमसेनके सामने आ गया और उन्हें बाणोंसे बींधने लगा । भीमसेनने उसपर दस बाण छोड़कर फिर सत्तर बाणोंसे चोट की । तब कर्णने नौ बाणोंसे भीमसेनकी छाती छेदकर एकसे उनकी ध्वजा काट डाली । फिर उसने सारे शरीरको फोड़कर निकल जानेवाला अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़ा । वह भीमसेनको घायल करके पृथ्वीको

चीरता हुआ भीतर घुस गया। तब भीमसेनने एक वज्रके समान कठोर, चार हाथ लंबी, छःकोनी, भारी गदा उठायी और उसे फेंककर कर्णके घोड़ोंको मार डाला। फिर दो बाणोंसे उसकी ध्वजा काटकर सारथिको भी मार डाला। अब कर्ण अश्वहीन रथको छोड़कर अपना धनुष तानकर खड़ा हो गया। इस समय हमने कर्णका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। वह रथहीन होनेपर भी भीमसेनको रोके ही रहा। तब दुर्योधनने दुर्मुखसे कहा, 'भैया दुर्मुख! देखो, भीमसेनने कर्णको रथहीन कर दिया है, इसलिये तुम उसके पास रथ पहुँचा दो।' यह सुनकर दुर्मुख भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करता बड़ी तेजीसे कर्णकी ओर चला। दुर्मुखको संग्रामभूमिमें कर्णकी सहायता करते देख भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए और कर्णको अपने बाणोंसे रोककर उसीकी ओर अपना रथ ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसी क्षण नौ बाणोंसे उसे यमराजके घर भेज दिया।

अब कर्णने कुछ भी आगा-पीछा न करके चौदह बाणोंसे भीमसेनपर वार किया। वे बाण उनकी दायीं भुजाको घायल करके पृथ्वीमें घुस गये। तब भीमसेनने तीन बाणोंसे कर्णको और सातसे उसके सारथिको बींध डाला। उन बाणोंकी चोटसे कर्ण बहुत व्याकुल हो गया और अपने घोड़ोंको तेजीसे हाँककर युद्धक्षेत्रसे चला गया। किन्तु अतिरथी भीमसेन अब भी अपना धनुष ताने वहीं खड़े रहे।
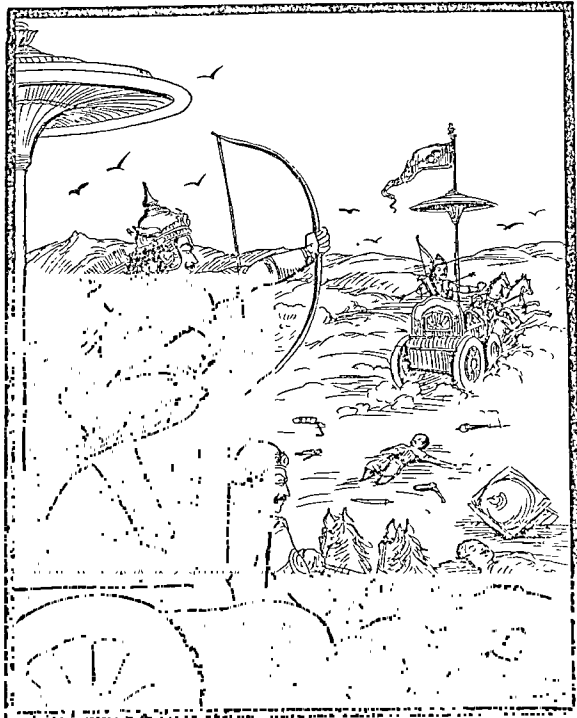
धृतराष्ट्र कहने लगे—सञ्जय! पुरुषार्थको धिक्कार है; यह तो व्यर्थ ही है; मैं तो दैवको ही मुख्य समझता हूँ! देखो, कर्ण ऐसी सावधानीसे युद्ध कर रहा था, फिर भी भीमको काबूमें नहीं कर सका। दुर्योधनके मुँहसे मैंने कई बार सुना था कि कर्ण बलवान् है, शूरवीर है, बड़ा धनुर्धर है और परिश्रमको कुछ भी नहीं समझता है। इसकी सहायता रहनेपर तो देवता भी मुझे संग्राममें नहीं जीत सकेंगे, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? जब उसीको दुर्योधनने भीमके हाथसे परास्त होकर युद्धसे भागते देखा तो क्या कहा? सञ्जय! भला, भीमके सामने टिकनेका साहस कौन कर सकता है? यह तो सम्भव है कि कोई पुरुष यमराजके घरसे लौट आवे, किन्तु भीमसेनके सामने जाकर कोई पीछे नहीं फिर सकता। जो मूर्ख मोहके वशीभूत होकर क्रोधमें भरे हुए भीमके सामने गये, वे तो मानो पतिंगोंके समान आगमें ही जा पड़े। भीमसेनने हमारी सभामें सारे कौरवोंके सामने मेरे पुत्रोंके वधकी प्रतिज्ञा की थी। उसे याद करके कर्णको पराजित देखनेपर दुर्योधन और दुःशासन तो डरके मारे उसके आगेसे भाग गये होंगे। कर्णको रथहीन और भीमके हाथसे पराजित देखकर अवश्य ही दुर्योधनको श्रीकृष्णका अपमान करनेके लिये पश्चात्ताप हुआ होगा। युद्धमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंका वध होता देखकर उसे अपने अपराधके लिये अवश्य ही बड़ा सन्ताप हुआ होगा। भला, अपने जीवनकी रक्षा चाहनेवाला ऐसा कौन प्राणी होगा जो साक्षात् कालके समान खड़े हुए भीमसेनके आगे जायगा। मेरा तो यह निश्चय है कि बड़वानलकी ज्वालाओंमें पड़कर भले ही कोई बच जाय, किन्तु भीमसेनके सामने जानेपर कोई जीवित नहीं बच सकता। इसलिये भैया! अब तो मेरे पुत्रोंका जीवन सङ्कटमें ही है!

सञ्जयने कहा—कुरुराज! इस महाभयके उपस्थित होनेपर आप चिन्ता करने चले हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसारके इस भीषण संहारकी जड़ आप ही हैं। अपने पुत्रोंकी बातोंमें आकर आपहीने यह महान् वैर बाँधा है। आपसे बहुत कुछ कहा भी गया; किन्तु मरणासन्न पुरुष जैसे हितकारक औषध ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार आपने भी किसीकी एक न सुनी। राजन्! आपने स्वयं ही यह दुर्जर कालकूट विष पिया है, इसलिये अब आप ही इसका सारा फल भोगिये।

अस्तु, अब जैसे-जैसे आगे युद्ध हुआ वह मैं सुनाता हूँ। कर्णको भीमसेनके हाथसे परास्त हुआ देखकर आपके

पाँच पुत्र दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जय सहन न कर सके और वे एक साथ भीमसेनपर टूट पड़े। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंसे टिड्डीदलके समान सारी दिशाओंको व्याप्त करने लगे। भीमसेनने उन्हें अकस्मात् आते देख हँसते-हँसते अगवानी की। जब कर्णने आपके पुत्रोंको भीमसेनके सामने जाते देखा तो कर्ण भी वहीं लौट आया। अब कौरवलोग उन्हें सब ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु भीमसेनने पचीस ही बाणोंमें सारथि और घोड़ोंके सहित उन पाँचों भाइयोंको यमराजके हवाले कर दिया। उस समय हमने भीमसेनका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। वे एक ओर तो अपने बाणोंसे कर्णको रोक रहे थे और दूसरी ओर आपके पुत्रोंका संहार कर रहे थे।

भीमसेन और कर्णका भीषण संग्राम, चौदह धृतराष्ट्र-पुत्रोंका संहार तथा कर्णके द्वारा भीमका पराभव

सञ्जयने कहा—राजन्! प्रतापी कर्ण आपके पुत्रोंको मरते देख बड़ा ही कुपित हुआ; उसे अपना जीवन भी भारी-सा मालूम होने लगा। उसके देखते-देखते भीमसेनने आपके पुत्रोंको मार डाला, इससे वह अपनेको अपराधी-सा समझने लगा। इतनेहीमें भीमसेन कुपित होकर कर्णपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब कर्णने मुसकराकर भीमसेनको पहले पाँच और फिर सत्तर बाणोंसे घायल कर दिया। इसके जवाबमें भीमसेनने अत्यन्त तीक्ष्ण पाँच बाणोंसे कर्णके मर्मस्थानोंको बींधकर एक भल्लसे उसका धनुष काट डाला। इससे कर्ण अत्यन्त खिन्नचित्त हो दूसरा धनुष लेकर भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। इतनेहीमें भीमने उसके सारथि और घोड़ोंका भी काम तमाम कर दिया तथा धनुषके दो टुकड़े कर डाले। अब महारथी कर्ण उस रथसे कूद पड़ा और एक गदा उठाकर उसे बड़े क्रोधमें भरकर भीमसेनके ऊपर फेंका। किन्तु भीमसेनने सारी सेनाके सामने उसे बीचहीमें बाणोंसे रोक दिया।

अब कर्णने भीमसेनपर पचीस बाण छोड़े और भीमने नौ बाणोंसे उनका जवाब दिया। वे बाण कर्णके कवचको फोड़कर उसकी दायीं भुजामें लगे और फिर पृथ्वीपर जा पड़े। इस प्रकार भीमसेनके बाणोंसे निरन्तर आच्छादित होकर कर्ण फिर युद्धसे पीछे हटने लगा। यह देखकर राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंसे कहा, 'अरे! सब ओरसे सावधान रहकर तुरंत ही कर्णकी ओर बढ़ो।' भाईकी यह बात सुनकर आपके पुत्र चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा बाणोंकी वर्षा करते भीमसेनपर टूट पड़े। किन्तु भीमसेनने उन्हें आते देख एक-एक बाणमें ही धराशायी कर दिया। आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारे जाते देखकर कर्णके नेत्रोंमें जल भर आया और उसे विदुरजीके वचन याद आने लगे। परन्तु थोड़ी ही देरमें वह दूसरे रथपर चढ़कर फिर भीमसेनके सामने आ गया और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे वे एकदम ढक गये और उनसे उनका शरीर घायल हो गया। इस समय कर्ण इतने वेगसे बाण छोड़ रहा था कि उसके धनुष, ध्वजा, उपस्कर, छत्र, ईषादण्ड और जुएसे भी बाणोंकी वर्षा-सी होती जान पड़ती थी। उसके इस प्रबल वेगसे सारा आकाश बाणोंसे छा गया। किन्तु जिस प्रकार कर्णने भीमसेनको बाणोंसे आच्छादित किया, उसी प्रकार भीमने भी उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस समय संग्राममें भीमसेनका अद्भुत पराक्रम देखकर आपके योद्धा भी उनकी प्रशंसा करने लगे। भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन—ये कौरव और पाण्डवपक्षके दस महारथी साधु-साधु कहकर बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे।

तब आपके पुत्र राजा दुर्योधनने अपने पक्षके राजा, राजकुमार और विशेषतः अपने भाइयोंसे कहा, 'धनुर्धरो! देखो, भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णको नष्ट करें, उससे पहले ही तुम उसे बचानेका प्रयत्न करो।' दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके सात भाई क्रोधमें भरकर भीमसेनपर टूट पड़े और उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। वे भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करके उन्हें बहुत पीडित करने लगे। तब महाबली भीमने उनपर सूर्यकी किरणोंके समान चमचमाते हुए सात बाण छोड़े। वे उनके हृदयको चीरकर उनका रक्त पीकर पार निकल गये। इस प्रकार उनसे मर्मस्थल बिंध जानेके कारण वे सातों भाई अपने रथोंसे पृथ्वीपर गिर गये। राजन्! इस तरह भीमसेनके हाथसे आपके सात पुत्र शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण मारे गये। आपके इन मरे हुए पुत्रोंमेंसे पाण्डुनन्दन भीम अपने प्यारे भाई विकर्णके लिये तो बहुत ही शोक करने लगे। वे बोले, 'भैया विकर्ण! मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं धृतराष्ट्रके सारे पुत्रोंको मारूँगा, इसीसे तुम भी मारे गये।

ऐसा करके मैंने अपनी प्रतिज्ञाकी ही रक्षा की है। भैया! तुम तो विशेषतः राजा युधिष्ठिर और हमारे ही हितमें तत्पर रहते थे। हाय! युद्ध बड़ा ही कठोर धर्म है।'

इसके बाद वे बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे। भीमसेनका वह भीषण शब्द सुनकर धर्मराजको बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर आपके इकतीस पुत्रोंको खेत रहे देखकर दुर्योधनको विदुरजीके वचन याद आने लगे। वह मन-ही-मन कहने लगा, 'विदुरजीने जो हमारे हितके लिये कहा था, वह सब सामने आ गया।' बहुत विचार करनेपर भी उसे इस समस्याका कोई समाधान न मिला। राजन्! द्यूतक्रीडाके समय द्रौपदीको सभामें बुलाकर आपके दुर्बुद्धि पुत्र और कर्णने जो कहा था कि 'कृष्णे! पाण्डवलोग तो अब नष्ट होकर सदाके लिये दुर्गतिमें पड़ गये हैं, तू कोई दूसरा पति चुन ले', यह उसीका फल सामने आ रहा है। विदुरजीने बहुत गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की, परन्तु फिर भी उन्हें आपसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। अब आप और दुर्योधन उस कुबुद्धिका फल भोगिये। वस्तुतः यह भारी अपराध आपका ही है।
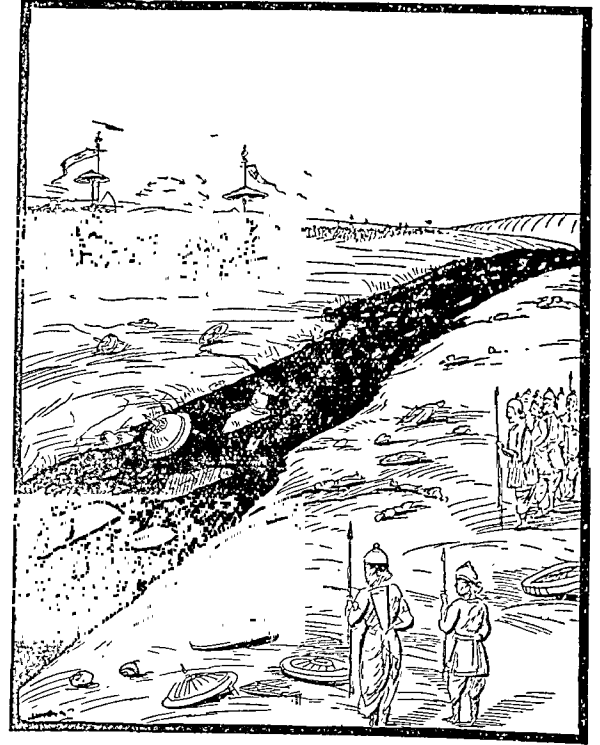
धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! इसमें विशेषतः मेरा ही अपराध अधिक है, सो आज उसका फल मेरे सामने आ रहा है—यह बात मुझे शोकके साथ स्वीकार करनी पड़ती है। किन्तु जो होना था, सो तो हो गया; अब इस विषयमें क्या किया जाय? अच्छा, मेरे अन्यायसे इसके आगे वीरोंका संहार किस प्रकार हुआ, सो मुझे सुनाओ।

सञ्जयने कहा—महाराज! महाबली कर्ण और भीम, मेघ जैसे जल बरसाते हैं उसी प्रकार, बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। भीमके नामसे अङ्कित अनेकों बाण कर्णका प्राणान्त-सा करते उसके शरीरमें घुस जाते थे। इसी प्रकार कर्णके छोड़े हुए सैकड़ों-हजारों बाण भी वीरवर भीमसेनको आच्छादित कर रहे थे। भीमके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे आपकी सेनाका संहार हो रहा था। युद्धमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंके कारण सारी रणभूमि आँधीसे उखड़े हुए वृक्षोंसे पटी-सी जान पड़ती थी। आपके योद्धा भीमसेनके बाणोंकी मारसे व्याकुल होकर मैदान छोड़कर भागने लगे। तब कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे व्यथित होकर सिन्धु-सौवीर और कौरवोंकी सेना युद्धस्थलसे दूर जा खड़ी हुई। इस समय रणमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंके रुधिरसे उत्पन्न हुई भयङ्कर नदी बह निकली; उसमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य तैरने लगे।

राजन्! अब कर्णने भीमसेनपर तीन बाणोंसे वार करके अनेकों चित्र-विचित्र बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब भीमसेनने एक अत्यन्त तीक्ष्ण कर्णी नामक बाणसे कर्णके कानपर प्रहार किया। इससे उसका कुण्डलमण्डित कान कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके बाद भीमसेनने एक बाणसे उसकी छातीपर वार करके दस बाण और भी छोड़े। वे उसके ललाटको फोड़कर घुस गये। इस प्रकार अत्यन्त घायल हो जानेसे कर्णको मूर्च्छा आ गयी और उसने रथके कूबरका सहारा लेकर नेत्र मूँद लिये। थोड़ी देरमें जब चेत हुआ तो वह क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे भीमसेनके रथकी ओर दौड़ा और उनपर सौ बाण छोड़े। तब भीमसेनने एक क्षुरप्र बाणसे उसके धनुषको काटकर बड़ी गर्जना की। कर्णने दूसरा धनुष लिया, किन्तु भीमसेनने उसे भी काट डाला। इसी प्रकार उन्होंने एक-एक करके कर्णके अठारह धनुष काट डाले। कर्णने देखा कि भीमसेनने सिन्धु-सौवीर और कौरवोंके अनेकों योद्धा मार डाले हैं तथा उनके मारे हुए हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे सारी रणभूमि पटी हुई है, तो उसे बड़ा ही क्रोध हुआ और वह भीमपर बड़े तीखे-तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा; किन्तु भीमसेनने उनमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाण मारकर काट डाला और उसपर भीषण बाणवर्षा आरम्भ कर दी।

अब कर्णने अपने अस्त्रकौशलसे अनेकों बाण छोड़कर भीमसेनके तरकस, धनुष, प्रत्यञ्चा एवं घोड़ोंकी रास और जोतोंको काट डाला तथा उनके घोड़ोंको मारकर पाँच बाणोंसे सारथिको भी घायल कर दिया। वह सारथि तुरंत ही कूदकर युधामन्युके रथपर जा बैठा। कर्णने हँसते-हँसते भीमसेनके रथकी ध्वजा और पताकाएँ भी उड़ा दीं। इस प्रकार धनुष न रहनेपर महाबाहु भीमने एक शक्ति उठायी और उसे क्रोधमें भरकर कर्णके रथपर छोड़ा। कर्णने दस बाण छोड़कर उसे बीचहीमें काट डाला। अब भीमसेनने हाथमें ढाल-तलवार ले ली और तलवारको घुमाकर कर्णके रथपर फेंका। वह प्रत्यञ्चासहित कर्णके धनुषको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ी। तब कर्ण दूसरा धनुष लेकर भीमको मार डालनेके विचारसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। कर्णके बाणोंसे व्यथित होकर भीमसेन आकाशमें उछले। उनका यह अद्भुत कर्म देखकर कर्ण बहुत घबराया और उसने रथमें छिपकर अपनेको भीमसेनके वारसे बचा लिया। भीमने जब देखा कि कर्ण घबराकर रथके पिछले भागमें छिपा हुआ है, तो वे

उसकी ध्वजा पकड़कर खड़े हो गये। और गरुड़ जैसे सर्पको खींचे, उसी प्रकार कर्णको रथसे बाहर खींचनेका प्रयत्न करने लगे। तब कर्णने उनपर बड़े वेगसे धावा किया। भीमसेनके शस्त्र समाप्त हो चुके थे; इसलिये वे कर्णके रथके रास्तेसे बचनेके लिये अर्जुनके मारे हुए हाथियोंकी लोथोंमें छिप गये। फिर उसपर प्रहार करनेके लिये उन्होंने एक हाथीकी लोथ उठा ली। किन्तु कर्णने अपने बाणोंसे उसके
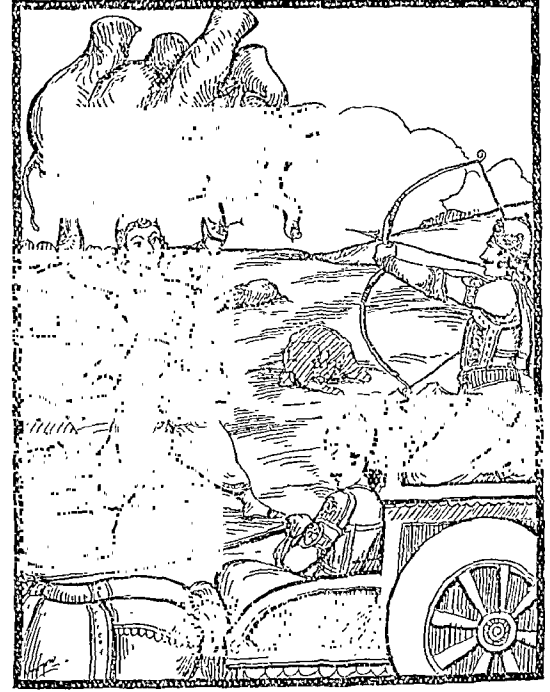
टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब भीमसेनने उन टुकड़ोंको ही फेंकना शुरू किया तथा और भी रथके पहिये या घोड़े—जो चीज दिखायी दी, उसीको उठाकर कर्णपर फेंकने लगे। परन्तु वे जो चीज फेंकते थे, कर्ण उसीको काट डालता था।

अब भीमसेनने घूँसा तानकर उसीसे कर्णका काम तमाम करना चाहा। परन्तु फिर अर्जुनकी प्रतिज्ञा याद आ जानेसे उन्होंने, समर्थ होनेपर भी, उसे मार डालनेका विचार छोड़ दिया। इस समय कर्णने बार-बार अपने पैने बाणोंकी मारसे भीमको मूर्च्छित-सा कर दिया। किन्तु कुन्तीकी बात याद करके इस शस्त्रहीन अवस्थामें उसने भी उनका वध नहीं किया। फिर उसने पास जाकर उनके शरीरमें अपने धनुषकी नोक लगायी। उसका स्पर्श होते ही भीमसेनका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वह धनुष छीनकर कर्णके मस्तकपर दे मारा। भीमसेनकी चोट खाकर कर्णकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वह उनसे कहने लगा, 'अरे निमूछिये! अरे

मूर्ख ! अरे पेटू ! तुझे अस्त्र-शस्त्र सँभालनेका शऊर तो है नहीं, परन्तु युद्ध करनेकी उत्सुकता इतनी है कि मेरे साथ भिड़नेकी चञ्चलता कर बैठता है । अरे दुर्बुद्धि ! जहाँ तरह-तरहकी बहुत-सी खाने-पीनेकी चीजें हों, तुझे तो वहीं रहना चाहिये; युद्धमें तुझे कभी मुँह नहीं दिखाना चाहिये । तू फल, फूल और मूल आदि खाने तथा व्रत-नियम आदिका पालन करनेमें अवश्य कुशल है; किन्तु युद्ध करना तू नहीं जानता । भला, कहाँ मुनिवृत्ति और कहाँ युद्ध ! भैया ! तुझे युद्ध करनेका शऊर नहीं है, तू तो वनमें रहकर ही प्रसन्न रह सकता है । इसलिये तू वनमें ही चला जा । और तुझे लड़ना ही हो तो दूसरे लोगोंसे भिड़ना चाहिये, मेरे-जैसे वीरोंके सामने आना तुझे शोभा नहीं देता । मेरे-जैसोंसे भिड़नेपर तो ऐसी या इससे भी बढ़कर दुर्गति होती है । अब तू या तो कृष्ण और अर्जुनके पास चला जा, वे तेरी रक्षा कर लेंगे, या अपने घर चला जा । बच्चा ! युद्ध करके क्या लेगा ?'

कर्णके ऐसे कठोर वचन सुनकर भीमसेनने सब योद्धाओंके सामने हँसकर कहा, 'रे दुष्ट ! मैंने तुझे कई बार परास्त किया है, तू अपने मुँहसे क्यों इतनी शेखी बघार रहा है ? हमारे प्राचीन पुरुष भी जय-पराजय तो इन्द्रकी भी देखते आये हैं । रे अकुलीन ! अब भी तू मेरे साथ मल्लयुद्ध करके देख ले । जैसे मैंने महाबली और महाभोगी कीचकको पछाड़ा था, उसी प्रकार इन सब राजाओंके सामने तुझे भी-कालके हवाले कर दूँगा ।'

बुद्धिमान् कर्ण भीमसेनके इन शब्दोंसे उनका अभिप्राय ताड़ गया और सब धनुर्धरोंके सामने ही युद्धसे हट गया । भीमसेनको रथहीन करके जब कर्णने श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने ही ऐसी न कहने योग्य बातें कहीं, तो श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उसपर कई बाण छोड़े । वे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णके शरीरमें घुस गये । उनसे पीडित होकर वह तुरंत ही बड़ी तेजीसे भीमसेनके सामनेसे भग गया । तब भीमसेन सात्यकिके रथपर सवार होकर अपने भाई अर्जुनके पास आये । इसी समय अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे कर्णको लक्ष्य करके एक कालके समान कराल बाण छोड़ा । किन्तु उसे अश्वत्थामाने बीचहीमें काट डाला । इसपर अर्जुनने कुपित होकर अश्वत्थामाको चौसठ बाणोंसे घायल कर दिया और चिल्लाकर कहा, 'जरा खड़े रहो, भागो मत ।' किन्तु अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर अश्वत्थामा रथोंसे भरी हुई मतवाले हाथियोंकी सेनामें घुस गया । अर्जुनने अपने बाणोंसे उस सेनाको व्यथित करते हुए कुछ दूर उसका पीछा भी किया । इसके बाद वे अनेकों हाथी, घोड़ों और मनुष्योंको विदीर्ण करते हुए उस सेनाका संहार करने लगे ।

सात्यकिका राजा अलम्बुष तथा त्रिगर्त्त और शूरसेन देशके वीरोंको परास्त करके अर्जुनके पास पहुँचना तथा अर्जुनका धर्मराजके लिये चिन्तित होना

राजा धृतराष्ट्र कहने लगे—सञ्जय ! मेरा देदीप्यमान यश दिनोंदिन मन्द पड़ता जा रहा है, मेरे अनेकों योद्धा मारे गये हैं । इसे मैं अपने समयका फेर ही समझता हूँ । अब मुझे यही अनुमान होता है कि जयद्रथ जीवित नहीं है । अच्छा, वह युद्ध जैसे-जैसे हुआ उसका यथावत् वर्णन करो । जो उस विशाल वाहिनीको अकेला ही मथित करके भीतर घुस गया था, उस सात्यकिके युद्धका तुम यथावत् वर्णन करो ।

सञ्जयने कहा—राजन् ! सात्यकि अपने श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर बड़ी गर्जना करता हुआ जा रहा था । आपके सब महारथी मिलकर भी उसे रोकनेमें सफल न हुए । इस समय राजा अलम्बुष उसके सामने आया और उसे रोकनेका प्रयत्न करने लगा । महाराज ! उन दोनों वीरोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा तो कोई भी नहीं हुआ । उस समय दोनों ओरके योद्धा उन्हींका युद्ध देखने लगे । अलम्बुषने सात्यकिपर बड़े जोरसे दस बाणोंद्वारा प्रहार किया, किन्तु सात्यकिने उन्हें बीचहीमें काट डाला । फिर उसने धनुषको कानतक खींचकर सात्यकिपर तीन तीखे बाण छोड़े, वे उसका कवच फाड़कर शरीरमें घुस गये । फिर चार बाणोंसे अलम्बुषने उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया । तब सात्यकिने चार तेज बाणोंसे अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला तथा एक भल्लसे उसके सारथिका सिर काटकर अलम्बुषके कुण्डलमण्डित मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ।
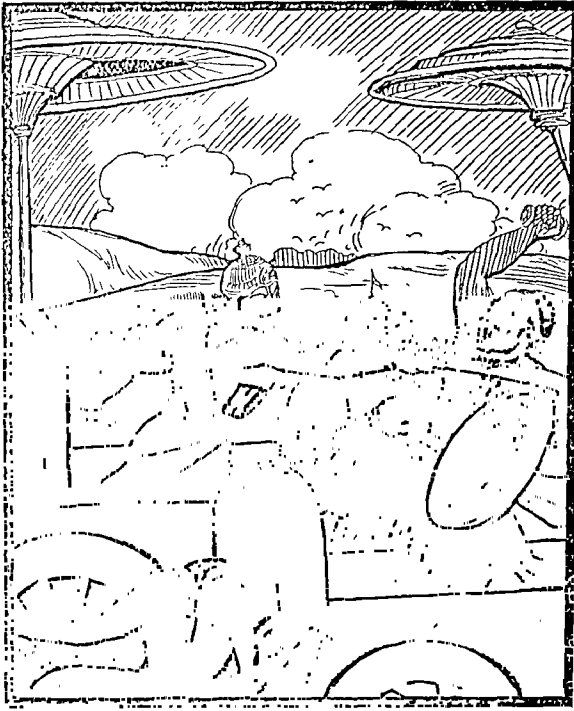
इस प्रकार अलम्बुषका काम तमाम कर वह आपकी सेनाओंको चीरता हुआ अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा । उसने जैसे ही उस अपार सैन्यसमुद्रमें प्रवेश किया कि अनेकों त्रिगर्त्त वीर उसपर टूट पड़े और उसे चारों ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । किन्तु सात्यकिने भारती सेनामें घुसकर अकेले ही पचास राजकुमारोंको परास्त कर दिया । उस समय वह महान् शूरवीर नृत्य-सा कर रहा था और अकेला होनेपर भी सौ रथियोंके समान कभी पूर्व, कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण दिशामें दिखायी देने लगता था । उसका यह अद्भुत पराक्रम देखकर त्रिगर्त्त वीर तो घबराकर भाग गये । अब शूरसेन देशके योद्धा बाणोंकी वर्षा करके उसे आगे बढ़नेसे रोकने लगे । उनसे कुछ देर मुकाबला करके फिर वह कलिङ्गदेशीय वीरोंसे भिड़ गया । फिर उस दुस्तर कलिङ्गसेनाको पार करके वह अर्जुनके पास पहुँचा । जिस प्रकार जलमें तैरनेवाला मनुष्य स्थलपर पहुँचकर सुस्ताने लगता है, उसी प्रकार अर्जुनको देखकर पुरुषसिंह सात्यकिको बड़ी शान्ति मिली ।

उसे आते देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन ! देखो, तुम्हारे पीछे सात्यकि आ रहा है । यह महापराक्रमी वीर तुम्हारा शिष्य और सखा है । इसने सब योद्धाओंको तिनकेके समान समझकर परास्त कर दिया है । यह तुम्हें प्राणोंसे भी प्यारा है; इस समय यह कौरव योद्धाओंका भयङ्कर संहार करके यहाँ पहुँचा है । इसने अपने बाणोंसे द्रोणाचार्य और भोजवंशी कृतवर्माको भी नीचा दिखा दिया है, तथा तुम्हें देखनेके लिये यह अनेकों अच्छे-अच्छे योद्धाओंको मारकर यहाँ आया है । इसे धर्मराजने तुम्हारी सुध लेनेको भेजा है । इसीसे यह अपने बाहुबलसे शत्रुकी सेनाको विदीर्ण करके यहाँ पहुँचा है ।'

तब अर्जुनने कुछ उदास होकर कहा, 'महाबाहो ! सात्यकि मेरे पास आ रहा है—इससे मुझे प्रसन्नता नहीं है । अब मुझे यह निश्चय नहीं है कि इसके यहाँ चले आनेपर धर्मराज जीवित भी होंगे या नहीं । इसे तो उन्हींकी रक्षा करनी चाहिये थी । इस समय यह उन्हें छोड़कर यहाँ क्यों आ रहा है ? अब धर्मराज द्रोणके लिये खुली स्थितिमें हैं और इधर जयद्रथका भी वध नहीं हुआ है । इसपर भी यह भूरिश्रवा सात्यकिकी ओर जा रहा है । अब सूर्य ढल चुका है और मुझे जयद्रथका वध अवश्य करना है । इधर सात्यकि थका हुआ है तथा इसके सारथि और घोड़े भी शिथिल हो चुके हैं । किन्तु भूरिश्रवाको अभी कोई थकान नहीं है और इसके अनेकों सहायक भी मौजूद हैं । ऐसी स्थितिमें क्या यह भूरिश्रवाके साथ भिड़कर कुशलसे रह सकेगा ? धर्मराजने

द्रोणकी ओरसे निर्भय होकर इसे मेरे पास भेज दिया—यह मैं उनकी भूल ही समझता हूँ। वे निरन्तर उन्हें पकड़नेकी ताकमें रहते हैं, सो क्या इस समय महाराज कुशलसे होंगे ?'

सात्यकि और भूरिश्रवाका भीषण युद्ध तथा सात्यकिद्वारा भूरिश्रवाका वध

सञ्जय कहते हैं—राजन् ! रणदुर्मद सात्यकिको आते देख भूरिश्रवा क्रोधमें भरकर उसकी ओर दौड़ा तथा उससे कहने लगा, 'अहा ! आज इस संग्रामभूमिमें मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूरी हुई। अब यदि तुम मैदान छोड़कर न भागे तो जीवित नहीं बच सकोगे।' इसपर सात्यकिने हँसकर कहा, 'कुरुपुत्र ! मुझे युद्धमें तुमसे तनिक भी भय नहीं है। केवल बातें बनाकर मुझको कोई नहीं डरा सकता। इसलिये व्यर्थ बकवादसे क्या लाभ है ? जरा काम करके दिखाओ। वीरवर ! तुम्हारी गर्जना सुनकर तो मुझे हँसी आती है। मेरा मन तो तुम्हारे साथ दो हाथ करनेको बहुत ही उतावला हो रहा है। आज तुम्हें मारे बिना मैं युद्धके मैदानसे पीछे नहीं हटूँगा।'

इस प्रकार एक-दूसरेको खरी-खोटी सुनाकर वे दोनों वीर क्रोधमें भरकर युद्ध करने लगे। भूरिश्रवाने सात्यकिको अपने बाणोंसे आच्छादित करके उसका काम तमाम करनेके विचारसे पहले उसे दस बाणोंसे घायल किया और फिर अनेकों तीखे तीरोंकी झड़ी लगा दी। किन्तु सात्यकिने अपने अस्त्रकौशलसे उन्हें बीचहीमें काट डाला। इसके बाद वे आपसमें तरह-तरहके शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। दोनोंहीने दोनोंके घोड़ोंको मार डाला और धनुषोंको काट दिया। इस प्रकार दोनों ही रथहीन हो गये तथा ढाल-तलवार लेकर आपसमें पैंतरे बदलने लगे। वे यशस्वी वीर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि अनेकों प्रकारकी गतियाँ दिखाते मौका पाकर एक-दूसरेपर तलवारोंके वार करने लगे। दोनों ही अपनी शिक्षा, फुर्ती, सफाई और कुशलताका परिचय देकर एक-दूसरेको नीचा दिखाना चाहते थे। अन्तमें दोनोंहीने तलवारोंकी चोटोंसे एक-दूसरेकी ढालें काट डालीं और फिर आपसमें बाहुयुद्ध करने लगे। दोनों ही मल्लयुद्धमें निष्णात थे, उनकी छातियाँ चौड़ी और भुजाएँ लंबी थीं। अतः वे अपनी लोहदण्डके समान सुदृढ भुजाओंसे आपसमें गुथ गये। मल्लयुद्धमें दोनों-हीकी शिक्षा ऊँचे दर्जेकी थी और दोनों ही खूब बल-सम्पन्न थे। इसलिये उनके खम ठोंकने, लपेट लगाने और हाथ पकड़नेके कौशलको देखकर योद्धाओंको बड़ी प्रसन्नता होती थी। उस समय संग्रामभूमिमें भिड़े हुए उन दोनों वीरोंका वज्र और पर्वतकी टकराहटके समान बड़ा घोर शब्द हो रहा था। उन्होंने भुजाओंको लपेटकर, सिरसे सिर अड़ाकर, पैर खींचकर, तोमर, अङ्कुश और लासन नामके पेंच दिखाकर पेटमें घुटना टेककर, पृथ्वीपर घुमाकर, आगे-पीछे हटकर, धक्का देकर, गिराकर और ऊपर उछलकर खूब ही युद्ध किया। मल्लयुद्धके जो बत्तीस दाँव हैं, उन सभीको दिखाते हुए उन्होंने डटकर कुश्ती की।

अन्तमें सिंह जैसे हाथीको खदेड़ता है, उसी प्रकार कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाने सात्यकिको पृथ्वीपर घसीटते हुए एकदम उठाकर पटक दिया। फिर छातीमें लात मारकर उसके बाल पकड़ लिये और म्यानमेंसे तलवार निकाली। अब वह सात्यकिके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटनेकी तैयारीहीमें था तथा सात्यकि भी उसके पंजेसे छूटनेके लिये कुम्हार जैसे डंडेसे चाक घुमाता है उसी प्रकार केशोंको पकड़नेवाले भूरिश्रवाके हाथोंके सहित अपने मस्तकको घुमा रहा था, कि इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'महाबाहो ! देखो,

तुम्हारा शिष्य सात्यकि इस समय भूरिश्रवाके चंगुलमें फँस
या है। वह धनुर्विद्यामें तुमसे कम नहीं है। आज यदि
रिश्रवा सत्यपराक्रमी सात्यकिसे बढ़ जाता है, तो उसका
क्रम अयथार्थ माना जायगा।' श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर
हाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन भूरिश्रवाके पराक्रमकी प्रशंसा की
ौर फिर श्रीवसुदेवनन्दनसे कहा, 'माधव! इस समय मेरी
ष्टि जयद्रथपर लगी हुई है, इसलिये मैं सात्यकिको नहीं देख
हा हूँ। तो भी इस यदुश्रेष्ठकी रक्षाके लिये मैं एक दुष्कर
र्म करता हूँ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णकी बात मानते हुए
न्होंने गाण्डीव धनुषपर एक पैना बाण चढ़ाया और उससे
रिश्रवाकी उस भुजाको काट डाला, जिसमें वह तलवार
ये हुए था।

यह देखकर सभी प्राणियोंको बड़ा दुःख हुआ।
रिश्रवा सात्यकिको छोड़कर अलग खड़ा हो गया और
र्जुनकी निन्दा करने लगा। उसने कहा, "अर्जुन! मैं
सरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ था, तुम्हारी ओर तो मेरी
ष्टि ही नहीं थी। ऐसी स्थितिमें मेरा हाथ काटकर तुमने
ड़ा ही क्रूर कर्म किया है। जब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर
छेंगे, तो क्या तुम उनसे यही कहोगे कि 'मैंने संग्रामभूमिमें
ात्यकिके साथ युद्ध करनेमें लगे हुए भूरिश्रवाको मार
ाला है'? तुम्हें यह अस्त्रनीति साक्षात् इन्द्रने सिखायी है
ा महादेवजी अथवा द्रोणाचार्यने? तुम तो संसारमें
ास्त्रधर्मके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हो। फिर भला,
सरेके साथ युद्ध करते समय तुमने मुझपर क्यों प्रहार
िया? मनस्वीलोग मतवाले, डरे हुए, रथहीन, प्राणोंकी
िक्षा माँगनेवाले या दुःखमें पड़े हुए पुरुषपर कभी वार
हीं करते। फिर तुमने यह नीच पुरुषोंके योग्य अत्यन्त
ुष्कर पापकर्म क्यों किया? सत्पुरुष तो ऐसा कभी नहीं
रते। सत्पुरुषोंके लिये तो उन्हीं कामोंका करना आसान
ताया गया है, जिन्हें भले आदमी किया करते हैं; उनसे
ुष्टोंद्वारा किये जानेवाले काम होने तो कठिन ही हैं। मनुष्य
हाँ-जहाँ जिन-जिन लोगोंकी संगतिमें बैठता है, उसपर
न्हींका रंग बहुत जल्द चढ़ जाता है। यही बात तुममें भी
ेखी जाती है। तुम राजवंशमें और विशेषतः कुरुकुलमें
त्पन्न हुए हो, साथ ही सदाचारी भी हो; फिर भी इस
मय क्षात्रधर्मसे कैसे डिग गये? अवश्य ही तुमने यह काम
ीकृष्णकी सम्मतिसे किया होगा; सो तुम्हें ऐसा करना
चित नहीं था।"

अर्जुनने कहा—राजन्! सचमुच बूढ़े होनेके साथ मनुष्यकी बुद्धि भी बुढ़िया जाती है। इसीसे आपने ये सब बिना सिर-पैरकी बातें कही हैं। आप श्रीकृष्णको अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी उनकी और मेरी निन्दा कर रहे हैं। आप युद्धधर्मको जाननेवाले और समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, तथा मैं भी कोई अधर्म नहीं कर सकता—यह बात जानकर भी आप ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हैं? क्षत्रिय-लोग अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी एवं बन्धु-बान्धवोंके सहित ही शत्रुओंके साथ संग्राम किया करते हैं। ऐसी स्थितिमें मैं अपने शिष्य और सम्बन्धी सात्यकि-की रक्षा क्यों न करता? यह तो मेरे दायें हाथके समान है और अपने प्राणोंकी भी परवा न करके हमारे लिये जूझ रहा है। संग्रामभूमिमें केवल अपनी ही रक्षा नहीं करनी चाहिये; बल्कि जिसके लिये जो लड़ रहा है, उसे उसकी रक्षाका ध्यान भी अवश्य रखना चाहिये। उसकी रक्षा होनेसे संग्राममें राजाकी ही रक्षा होती है। यदि मैं संग्रामभूमिमें सात्यकिको अपने सामने मरते देखता तो मुझे पाप लगता; इसीसे मैंने उसकी रक्षा की है। आप जो यह कहकर मेरी निन्दा करते हैं कि दूसरेके साथ युद्धमें लगे होनेपर मैंने आपको धोखा दिया है, सो यह आपका बुद्धिभ्रम ही है। जिस समय अपने और पराये पक्षके सब योद्धा लड़ रहे थे और आप सात्यकिसे भिड़ गये थे, उसी समय तो मैंने यह काम किया है। भला, इस सैन्यसमुद्रमें एक योद्धाका एकही-के साथ संग्राम होना कैसे सम्भव है? आपको तो अपनी ही निन्दा करनी चाहिये; क्योंकि जब आप अपनी ही रक्षा नहीं कर सकते तो अपने आश्रितोंकी कैसे करेंगे?

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भूरिश्रवाने सात्यकिको छोड़कर मरणपर्यन्त उपवास करनेका नियम ले लिया। उसने बायें हाथसे बाण बिछाकर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे प्राणोंको वायुमें, नेत्रोंको सूर्यमें और मनको स्वच्छ जलमें होम दिया तथा महोपनिषद्संज्ञक ब्रह्मका ध्यान करते हुए योगयुक्त होकर उन्होंने मुनिव्रत धारण कर लिया। इस समय सेनाके सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा करने लगे, किन्तु उन्होंने बदलेमें कोई कड़वी बात नहीं कही। तथापि अर्जुन-को उनकी और भूरिश्रवाकी बातें सहन न हुईं। उन्होंने किसी प्रकारका क्रोध प्रकट न करते हुए कहा, 'मेरे इस व्रतको यहाँ सभी राजालोग जानते हैं कि यदि कोई हमारे पक्षका मनुष्य मेरे बाणकी पहुँचके अंदर होगा, तो कोई

पुरुष उसे मार नहीं सकेगा । भूरिश्रवाजी ! मेरे इस नियमपर विचार करके आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये । धर्मका मर्म बिना समझे किसी दूसरेकी निन्दा करना अच्छी बात नहीं है । मैंने आपकी सशस्त्र भुजाको काटकर कोई अधर्म नहीं किया है । बालक अभिमन्युके पास तो कोई भी हथियार नहीं था और उसके रथ और कवच भी टूट चुके थे; फिर भी आपलोगोंने उसे मिलकर मार डाला ! इस कर्मको कौन धर्मात्मा पुरुष अच्छा कहेगा ?' अर्जुनकी यह बात सुनकर भूरिश्रवाने अपना सिर पृथ्वीसे लगाया और मुख नीचा किये चुपचाप बैठा रहा ।

तब अर्जुनने कहा—मेरा जो प्रेम धर्मराज, महाबली भीमसेन और नकुल-सहदेवके प्रति है, वही आपमें भी है । मैं और महात्मा कृष्ण आपको आज्ञा देते हैं कि आप उशीनरके पुत्र शिबिके समान पुण्यलोकोंको प्राप्त हों ।

श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! तुम निरन्तर अग्निहोत्र करनेवाले हो । जो लोक सर्वदा प्रकाशमान हैं तथा ब्रह्मादि देवगण भी जिनके लिये लालायित रहते हैं, उनमें तुम मेरे ही समान गरुडपर चढ़कर जाओ ।

इसी समय सात्यकि उठा और उसने निर्दोष भूरिश्रवाका सिर काटनेके लिये तलवार उठायी । उसे श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, युधामन्यु, उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथ—सभीने रोका । किन्तु सबके चिल्लाते रहनेपर भी उसने अनशन-व्रतधारी भूरिश्रवाका मस्तक काट डाला । फिर उसने अपनी निन्दा करनेवाले कौरवोंको ललकारकर कहा, 'अरे धर्मिष्ठताका ढोंग रचनेवाले पापियो ! तुम जो धर्मकी दुहाई देकर मुझसे कह रहे हो कि
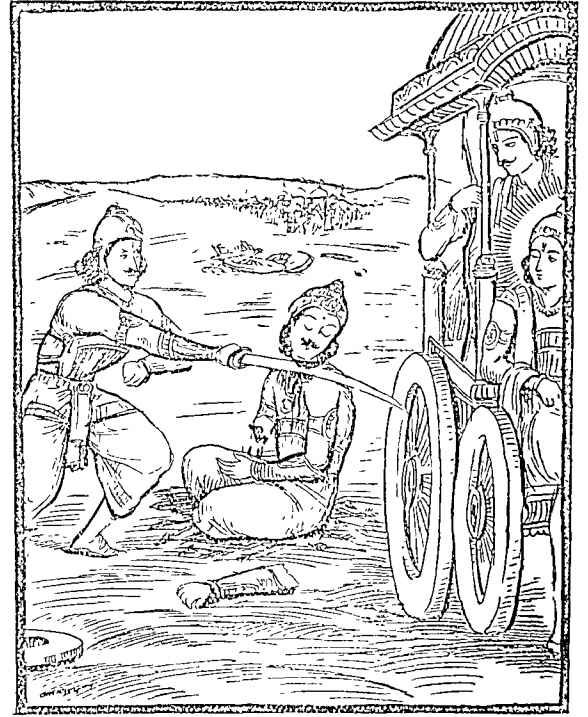
मुझे भूरिश्रवाको नहीं मारना चाहिये था, सो जिस समय तुमलोगोंने सुभद्राके पुत्र शस्त्रहीन बालक अभिमन्युकी हत्या की थी उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था । मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि यदि कोई पुरुष संग्राममें मेरा तिरस्कार करके मुझे जमीनपर घसीटकर जीवित अवस्थामें ही लात मारेगा वह फिर मुनिव्रत धारण करके ही क्यों न बैठ जाय, उसे मैं अवश्य मार डालूँगा ।'

राजन् ! सात्यकिके ऐसा कहनेपर फिर कौरवोंमेंसे किसीने कुछ नहीं कहा । परन्तु मुनियोंके समान वनवासी यशस्वी भूरिश्रवाका इस प्रकार वध करना किसीको अच्छा नहीं लगा । भूरिश्रवाने अपने जीवनमें सहस्रोंका दान किया था और उसका कई बार मन्त्रपूत जलसे अभिषेक हुआ था । अतः वह देह त्यागकर अपने परम पुण्यके तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाशको आलोकित करता ऊर्ध्वलोकोंमें चला गया ।

अर्जुनका अनेकों महारथियोंसे भीषण संग्राम तथा जयद्रथका सिर काटना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! भूरिश्रवाके मारे जानेपर फिर जिस प्रकार आगे युद्ध हुआ, वह मुझे सुनाओ ।

सञ्जयने कहा—महाराज ! भूरिश्रवाके परलोकको प्रस्थान करनेपर महाबाहु अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'माधव ! अब जिधर राजा जयद्रथ है, उधर ही घोड़ोंको बढ़ाइये । आज जयद्रथके आगे तीन गतियाँ हैं—यदि वह युद्धमें

व्यर्थ करके एक ही साथ दो बाण मारकर उसके सारथिके सिर और ध्वजाको काट डाला। इसी समय सूर्यको बड़ी तेजीसे अस्ताचलके समीप जाते देख श्रीकृष्णने कहा, 'पार्थ ! इस समय जयद्रथको छः महारथियोंने अपने बीचमें कर रक्खा है। अतः संग्राममें इन छहोंको परास्त किये बिना जयद्रथको मारना सम्भव नहीं है। इसलिये इस समय मैं सूर्यको छिपानेके लिये एक ऐसा उपाय करूँगा, जिससे जयद्रथको साफ-साफ यही मालूम होगा कि सूर्य अस्त हो गया। इससे वह हर्षित होकर तुम्हें मारनेके लिये बाहर निकल आवेगा और अपनी रक्षाके लिये किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करेगा। उस अवसरपर तुम उसपर प्रहार करना, सूर्य अस्त हो गया है—यह समझकर उपेक्षा मत करना।' इसपर अर्जुनने कहा, 'आप जैसा कहते हैं, वही किया जायगा।'

तब योगीश्वर श्रीकृष्णने योगयुक्त होकर सूर्यको ढकनेके लिये अन्धकार उत्पन्न कर दिया। अन्धकार फैलते ही आपके योद्धा यह समझकर कि सूर्य अस्त हो गया है अर्जुनके नाशकी सम्भावनासे बड़ी खुशीमें भर गये। खुशीके मारे उन्हें
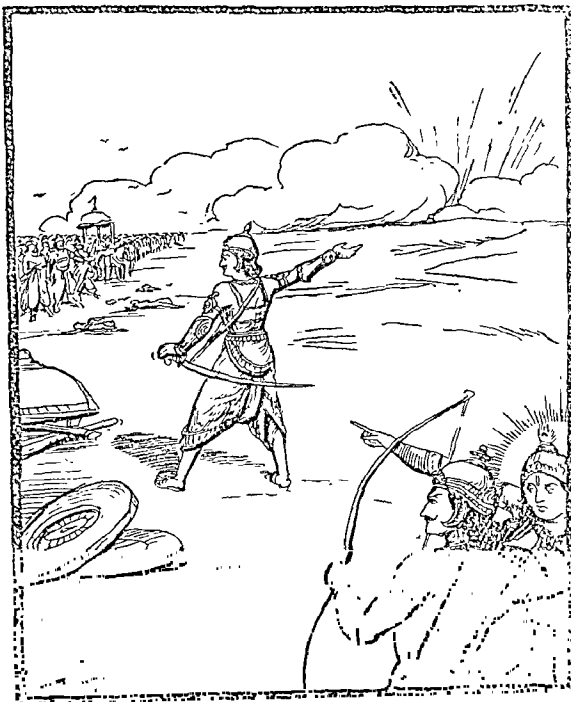
सूर्यकी ओर देखनेका भी ध्यान नहीं रहा। इसी समय राजा जयद्रथ सिर ऊँचा करके सूर्यकी ओर देखने लगा। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे फिर कहा, 'वीर ! देखो, सिन्धुराज तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यकी ओर देख रहा है; इस दुष्टको मारनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। फौरन ही इसका सिर उड़ाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर प्रतापी पाण्डुनन्दन अपने प्रचण्ड बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। उन्होंने कर्ण और वृषसेनके धनुष काटकर एक भल्लसे शल्यके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया तथा कृप और अश्वत्थामा दोनों ही मामा-भानजोंको बहुत घायल कर डाला। इस प्रकार आपके सब महारथियोंको अत्यन्त व्याकुल कर उन्होंने एक दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित तथा गन्ध और पुष्पादिसे पूजित इन्द्रके वज्रके समान प्रचण्ड बाण निकाला। उसे विधिवत् वज्रास्त्रसे अभिमन्त्रित कर बड़ी फुर्तीसे गाण्डीवपर चढ़ाया। इस समय श्रीकृष्णने जल्दी करनेका संकेत करते हुए फिर कहा, "धनञ्जय ! सूर्य अस्ताचलपर पहुँचनेहीवाला है, दुष्ट जयद्रथका सिर फौरन काट डालो। देखो, इसके वधके विषयमें मैं तुम्हें एक बात सुनाता हूँ। इसका पिता जगत्प्रसिद्ध राजा वृद्धक्षत्र था। उसे आयुका बहुत अधिक भाग बीत जानेपर यह पुत्र प्राप्त हुआ था। इसके विषयमें राजा वृद्धक्षत्रको यह आकाशवाणी हुई कि 'राजन् ! आपका यह पुत्र कुल, शील और दम आदि गुणोंमें सूर्य और चन्द्रवंशियोंके समान होगा। इस क्षत्रिय-प्रवरका लोकमें शूरवीरलोग सर्वदा सत्कार करेंगे। किन्तु संग्राममें युद्ध करते समय एक क्षत्रियश्रेष्ठ अचानक इसका सिर काट डालेगा।' यह सुनकर सिन्धुराज वृद्धक्षत्र बहुत देरतक सोचता रहा, फिर उसने पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर अपने जातिबन्धुओंसे कहा—'जो पुरुष मेरे पुत्रका सिर पृथ्वी-पर गिरावेगा, उसके मस्तकके भी अवश्य ही सौ टुकड़े हो जायँगे।' ऐसा कहकर वह जयद्रथका राज्याभिषेक कर वनको

चला गया और बड़ी उग्र तपस्या करने लगा। इस समय वह समन्तपञ्चक क्षेत्रके बाहर बड़ी घोर तपस्या कर रहा है। इसलिये तुम दिव्यास्त्रसे इसका सिर काटकर वृद्धक्षत्र-की गोदमें गिरा दो। यदि तुमने इसे पृथ्वीपर गिराया तो निःसन्देह तुम्हारे सिरके भी सौ टुकड़े हो जायँगे।''

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुनने वह वज्रतुल्य बाण छोड़ दिया। वह सिन्धुराजके मस्तकको काटकर उसे बाजकी तरह लेकर आकाशमें उड़ा और समन्तपञ्चक क्षेत्रके बाहर ले

गया। इस समय आपके समधी राजा वृद्धक्षत्र सन्ध्योपासन कर रहे थे। उस बाणने वह सिर उनकी गोदमें डाल दिया और उन्हें इसका पतातक न चला। जब वृद्धक्षत्र जप करके उठे, तो वह सिर उनकी गोदसे पृथ्वीपर गिर गया और उसके गिरते ही उनके सिरके भी सौ टुकड़े हो गये।

राजन्! इस प्रकार जब अर्जुनने जयद्रथको मार डाला, तो श्रीकृष्णने वह अन्धकार दूर कर दिया। अब आपके पुत्रोंको मालूम हुआ कि यह सब तो श्रीकृष्णकी रची हुई माया ही थी। इस प्रकार अर्जुनने आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार करके आपके दामाद जयद्रथका वध किया। जयद्रथको मरा देखकर आपके पुत्र दुःखसे आँसू बहाने लगे और अपनी विजयके विषयमें निराश हो गये। इधर जयद्रथका वध होनेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु और उत्तमौजाने अपने-अपने शङ्ख बजाये। उस महान् शङ्खनादको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको निश्चय हो गया कि अर्जुनने सिन्धुराजको मार डाला है। तब उन्होंने बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंको हर्षित किया तथा संग्राममें द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेके लिये उनपर आक्रमण किया। अब सूर्यास्तके बाद सोमकोंके साथ आचार्यका बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। वे सब द्रोणके प्राणोंके ग्राहक होकर उनके साथ लड़ने लगे। इधर वीरवर अर्जुन भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके सब ओरसे आपके योद्धाओंका संहार करने लगे।

कृपाचार्यकी मूर्च्छा और सात्यकि तथा कर्णका युद्ध

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुनने जयद्रथको मार डाला, उस समय मेरे पक्षवाले योद्धाओंने क्या किया!

सञ्जयने कहा—भारत! सिन्धुराजको युद्धमें अर्जुनके हाथसे मारा गया देख कृपाचार्यने क्रोधमें भरकर उनपर बड़ी

भारी बाणवर्षा आरम्भ की। दूसरी ओरसे अश्वत्थामाने भी आक्रमण किया। फिर दोनों दो ओरसे अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। इससे अर्जुनको बड़ी व्यथा हुई। कृपाचार्य गुरु थे और अश्वत्थामा गुरुपुत्र, अतः अर्जुन उन दोनोंके प्राण नहीं लेना चाहते थे; इसीलिये वे धीरे-धीरे उनपर बाण छोड़ रहे थे, तो भी इनके छोड़े हुए बाण उन्हें विशेष चोट पहुँचाते थे। अधिक बाण लगनेके कारण उन दोनोंको बड़ी वेदना हुई। कृपाचार्य तो रथके पिछले भागमें बैठ गये और उन्हें मूर्च्छा आ गयी। यह देख सारथि उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया। उनके हटते ही अश्वत्थामा भी वहाँसे भाग गया। कृपाचार्यको अपने बाणों-की पीडासे मूर्छित देख अर्जुनको बड़ी दया आयी; उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी, वे बहुत दीन होकर रथपर बैठे-ही-बैठे इस प्रकार विलाप करने लगे—"पापी दुर्योधनके जन्म लेते ही महाबुद्धिमान् विदुरजीने राजा धृतराष्ट्रसे कहा था कि 'यह बालक अपने वंशका नाश करनेवाला है; इसे मृत्युके हवाले कर दिया जाय, तभी कुशल है! इससे कुरुवंशके प्रमुख महारथियोंको महान् भय प्राप्त होगा।' उन सत्यवादी महात्माकी कही हुई बात आज प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने गुरुको बाणशय्यापर सोते देख रहा हूँ। क्षत्रियोंके ऐसे आचार और बल-पौरुषको धिक्कार है। मेरे-जैसा कौन मनुष्य ब्राह्मण-आचार्यसे द्रोह करेगा? हाय! शरद्वान् ऋषिके पुत्र, मेरे आचार्य और द्रोणके परम सखा ये कृप आज मेरे ही बाणोंसे पीडित होकर रथकी बैठकमें पड़े हैं। इच्छा न रहते हुए भी मैंने इन्हें बाणोंसे बहुत घायल कर दिया। अब इन्हें दुःख पाते देख मेरे प्राणोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। पहलेकी बात है, एक दिन अस्त्रविद्याकी शिक्षा देते हुए आचार्य कृपने मुझसे कहा था—'कुरुनन्दन! शिष्यको गुरुपर किसी तरह प्रहार नहीं करना चाहिये।' उन साधु, महात्मा एवं आचार्यके इस आदेशका मैंने आज युद्धमें पालन नहीं किया। गोविन्द! मुझे धिक्कार है कि इनपर भी बारंबार हाथ उठाता हूँ।"

अर्जुन इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि राधानन्दन कर्ण सिन्धुराजको मारा गया देख उनपर चढ़ आया। यह देख पञ्चालराजके दोनों पुत्रों और सात्यकिने सहसा कर्णपर धावा किया। महारथी अर्जुनने जब कर्णको आते देखा तो हँसकर भगवान् देवकीनन्दनसे कहा—'जनार्दन! यह देखिये, कर्ण सात्यकिके रथकी ओर बढ़ा जा रहा है। युद्धमें सात्यकिने जो भूरिश्रवाको मार डाला है, यह उससे नहीं सहा जाता। अतः जहाँ कर्ण जा रहा है, वहीं आप भी घोड़ोंको हाँककर ले चलिये।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने यह समयोचित बात कही—'पाण्डुनन्दन! कर्णके लिये सात्यकि अकेला ही काफी है; फिर जब पञ्चालराजके दो पुत्र भी उसके साथ हैं, तब तो कहना ही क्या है? इस समय कर्णके साथ तुम्हारा युद्ध होना ठीक नहीं है, क्योंकि उसके पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति मौजूद है; तुम्हें मारनेके लिये ही वह बड़े यत्नसे उसे रखता है और बराबर उसकी पूजा करता है। अतः कर्णको जैसे-तैसे सात्यकिके ही पास जाने दो। मैं उस दुरात्माके अन्तकालको जानता हूँ, समय आनेपर बताऊँगा; फिर तुम अपने बाणोंसे उसे इस भूतलपर मार गिराओगे।'

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! भूरिश्रवा और जयद्रथके मारे जानेपर जब कर्णके साथ सात्यकिका युद्ध हुआ, उस समय सात्यकिके पास तो कोई रथ था ही नहीं; फिर वह किसके रथपर सवार हुआ?

सञ्जयने कहा—महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण भूत और भविष्यको भी जानते हैं; उनके मनमें यह बात पहलेसे ही आ गयी थी कि भूरिश्रवा सात्यकिको हरा देगा। अतः उन्होंने अपने सारथि दारुकको आज्ञा दे दी थी कि 'तुम सबेरे ही मेरा रथ जोतकर तैयार रखना।' राजन्! देवता, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस अथवा मनुष्य—कोई भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको नहीं जीत सकते। ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध पुरुष इन दोनोंके अनुपम प्रभावको जानते हैं। अब युद्धका समाचार सुनिये। सात्यकिको रथहीन और कर्णको उसपर धावा करते देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने महान् शङ्ख पाञ्चजन्यको ऋषभ-स्वरसे बजाया। शङ्खनाद सुनते ही दारुक भगवान्का सन्देश समझ गया और रथ उनके पास ले आया। फिर सात्यकि भगवान्की आज्ञासे उसपर जा बैठा। वह रथ विमानके समान देदीप्यमान था, सात्यकि उसपर सवार हो बाणोंकी झड़ी लगाता हुआ कर्णकी ओर दौड़ा। उस समय अर्जुनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी कर्णपर टूट पड़े। कर्णने भी बाणवर्षा करते हुए क्रोधमें भरकर सात्यकिके ऊपर धावा किया। इन दोनोंमें जैसा युद्ध हुआ था, वैसा इस पृथ्वीपर या देवलोकमें देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षसोंका भी युद्ध नहीं सुना

गया। महाराज! उन दोनोंके अद्भुत पराक्रमको देख सभी योद्धा युद्ध बंद कर उन्हीं दोनोंके अलौकिक संग्रामको मुग्ध होकर देखने लगे। दारुकका सारथि-कर्म भी अद्भुत था; वह कभी रथको आगे बढ़ाता, कभी पीछे हटाता, कभी मण्डलाकारमें चारों ओर घुमाने लगता और कभी बहुत आगे बढ़कर सहसा लौट आता था। उसके रथसञ्चालनकी कला देख आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और दानव भी विस्मय-विमुग्ध हो रहे थे; सभी बड़ी सावधानीसे कर्ण और सात्यकिका युद्ध देख रहे थे। वे दोनों वीर एक दूसरेपर बाणोंकी झड़ी लगा रहे थे। सात्यकिने अपने सायकोंकी चोटसे कर्णको खूब घायल किया। कर्ण भी भूरिश्रवा और जलसन्धकी मृत्युसे खीझा हुआ था, वह सात्यकिको अपनी दृष्टिसे दग्ध-सा करता हुआ बारंबार बड़े वेगसे धावा करता था; किन्तु सात्यकि उसे कुपित देख अपनी बाणवर्षाके द्वारा बराबर बींधता ही रहा। रणमें उन दोनोंके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी, दोनों ही दोनोंके अंग-प्रत्यंग छेद रहे थे। थोड़ी ही देरमें सात्यकिने कर्णके सम्पूर्ण शरीरमें घाव कर दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, अपने तीखे तीरोंसे उसने कर्णके चारों श्वेत घोड़े भी मार डाले। फिर ध्वजा काटकर उसके रथके भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इस प्रकार सात्यकिने आपके पुत्रके देखते-देखते कर्णको रथहीन कर दिया।

तब कर्णपुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य और द्रोणनन्दन अश्वत्थामाने आकर सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया। उधर कर्णके रथहीन हो जानेसे सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार मच गया। कर्ण शोकोच्छ्वास खींचता हुआ तुरंत ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा। सात्यकि कर्ण तथा आपके पुत्रोंको मारनेमें समर्थ था, तो भी उसने अर्जुन और भीमसेनकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये उनके प्राण नहीं लिये। केवल उन्हें घायल और व्याकुल करके ही छोड़ दिया। जिस समय पिछली बार जूआ खेला गया था, उसी समय भीमसेनने आपके पुत्रोंको और अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की थी। कर्ण आदि प्रधान-प्रधान वीरोंने सात्यकिको मार डालनेका पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल न हो सके। अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा अन्य सैकड़ों क्षत्रिय महारथियोंको सात्यकिने एक ही धनुषसे परास्त कर दिया। वह श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी था, उसने आपकी सम्पूर्ण सेनाको हँसते-हँसते जीत लिया। तत्पश्चात् दारुकका छोटा भाई एक सुन्दर रथ सजाकर सात्यकिके पास ले आया। उसीपर सवार हो सात्यकिने पुनः आपकी सेनापर धावा किया। फिर दारुक इच्छानुसार श्रीकृष्णके पास चला गया। इधर कौरव भी कर्णके लिये एक सुन्दर रथ ले आये, जिसमें बड़े वेगवान् उत्तम घोड़े जुते हुए थे। उस रथपर यन्त्र रक्खा था, पताका फहराती थी, नाना प्रकारके शस्त्र रक्खे हुए थे और उसका सारथि सुयोग्य था। उस रथपर बैठकर कर्णने भी शत्रुओंपर आक्रमण किया। राजन्! उस युद्धमें भीमसेनने आपके इकतीस पुत्रोंको मार डाला। इस प्रकार आपकी अनीतिके कारण ही यह भयङ्कर संहार हुआ।

अर्जुनका कर्णको फटकारना, युधिष्ठिरका अर्जुन आदिसे मिलना और भगवान्‌का स्तवन करना

सञ्जयने कहा—महाराज! एक तो भीमसेनका रथ टूट गया था, दूसरे कर्णने उन्हें अपने वाग्बाणोंसे खूब पीडित किया; इससे वे क्रोधके वशीभूत होकर अर्जुनसे बोले—"धनञ्जय! सुनते हो न? तुम्हारे सामने ही कर्ण मुझसे कहता है कि 'अरे नपुंसक, मूढ, पेटू, गँवार, बालक और कायर! तू लड़ना छोड़ दे।' मेरे विषयमें ऐसी बात मुँहसे निकालनेवाला मनुष्य मेरा वध्य है; इसलिये तुम इसका वध करनेके लिये मेरी बात याद रक्खो और ऐसा उद्योग करो, जिससे मेरा वचन मिथ्या न हो।"

भीमसेनकी बात सुनकर अर्जुन आगे बढ़े और कर्णके निकट जाकर बोले—'पापी कर्ण! तू आप ही अपनी तारीफ किया करता है। संग्रामभूमिमें डटे हुए शूरवीरोंको दो ही परिणाम प्राप्त होते हैं—जीत या हार। आज युद्धमें सात्यकिने तुझे रथहीन कर दिया था; तेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही थीं, तू मौतके निकट पहुँच चुका था; तो भी तेरी मृत्यु मेरे हाथसे होनेवाली है—यह सोचकर ही सात्यकिने तुझे जीवित छोड़ दिया है। दैवयोगसे तूने भी महाबली भीमसेनको किसी तरह रथहीन किया है; किन्तु ऐसा करके जो तूने उनके प्रति कड़वी बातें कही हैं, वह महान् पाप है। यह काम नीच पुरुषोंका है। आखिर तू सूतका ही तो पुत्र ठहरा, तेरी समझ गँवारोंकी-सी क्यों न हो? महापराक्रमी भीमसेनके प्रति तूने जो अप्रिय बातें सुनायी हैं, वे सहन करने योग्य नहीं हैं। सारी सेना देख रही थी, हमारी और श्रीकृष्णकी भी उधर ही दृष्टि थी, जब कि आर्य भीमने

तुझे अनेकों बार रथहीन किया था। परन्तु उन्होंने तेरे लिये एक बार भी कड़ी जबान नहीं निकाली। इतनेपर भी जो तूने उन्हें बहुत-से कटु वचन सुनाये हैं तथा मेरी अनुपस्थितिमें तुम सबने मिलकर जो सुभद्रानन्दन अभिमन्युका वध किया है, उस अन्यायका अब तुझे शीघ्र ही फल मिलेगा। अब मैं तुझे तेरे सेवक, पुत्र और बन्धुओंसहित मार डालूँगा। युद्धमें तेरे देखते-देखते तेरे पुत्र वृषसेनका वध करूँगा। उस समय मोहवश यदि दूसरे राजा भी मेरे पास आ जायँगे, तो उनका भी संहार कर डालूँगा—यह बात मैं अपने शस्त्रोंकी शपथ खाकर कहता हूँ।'
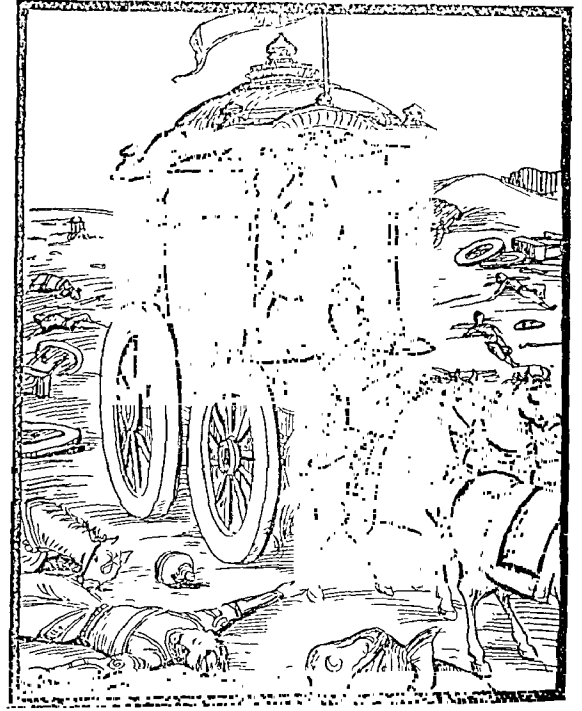
इस प्रकार जब अर्जुनने कर्णके पुत्रका वध करनेकी प्रतिज्ञा की, उस समय रथियोंने महान् तुमुलनाद किया। वह अत्यन्त भयङ्कर संग्राम अभी चल ही रहा था, इतनेमें सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गये। अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, अतः भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें छातीसे लगाकर कहा—'विजय! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी बहुत बड़ी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली। यह भी बहुत अच्छा हुआ कि पापी वृद्धक्षत्र अपने पुत्रके साथ मारा गया। भारत! कौरव-सेनाके मुकाबलेमें आकर देवताओंका दल भी परास्त हो सकता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अर्जुन! मैं तो तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा किसी दूसरे पुरुषको ऐसा नहीं देखता, जो इस सेनाके साथ लोहा ले सके। तुम्हारा बल और पराक्रम रुद्र, इन्द्र और यमराजके समान है। आज अकेले तुमने जैसा पुरुषार्थ किया है, ऐसा कोई भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब तुम बन्धु-बान्धवोंसहित कर्णको मार डालोगे, तो पुनः तुम्हें बधाई दूँगा।'

अर्जुनने कहा—'माधव! यह तो तुम्हारी ही कृपा है, जिससे मैंने प्रतिज्ञा पूरी की। तुम जिनके स्वामी हो—रक्षक हो, उनकी विजय होनेमें आश्चर्य ही क्या है?' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् धीरे-धीरे घोड़ोंको हाँकते हुए चले और युद्धका वह दारुण दृश्य अर्जुनको दिखाने लगे। वे बोले—'अर्जुन! जो लोग युद्धमें विजय और

महान् सुयश पानेकी इच्छा कर रहे थे, वे ही ये शूरवीर नरेश आज तुम्हारे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं। इनके शरीरका मर्मस्थान छिन्न-भिन्न हो गया है। ये बड़ी विकलताके साथ मृत्युको प्राप्त हुए हैं। यद्यपि इनकी देहमें प्राण नहीं हैं, तो भी वदनपर दमकती हुई दीप्तिके कारण ये जीवित-से दिखायी दे रहे हैं। साथ ही इनके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा वाहन यहाँ पड़े हुए हैं, जिनसे यह रणभूमि भर गयी है।'

इस प्रकार संग्रामभूमिका दर्शन कराते हुए भगवान् कृष्णने स्वजनोंके साथ अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। फिर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'महाराज! सौभाग्यकी बात है कि आपका शत्रु मारा गया; इसके लिये आपको बधाई है। आपके छोटे भाईने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की—यह बड़े हर्षका विषय है।' यह सुनकर राजा युधिष्ठिर रथसे कूद पड़े और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको गले लगाकर मिले। उस समय वे आनन्दके उमड़ते हुए आँसुओंसे भींग रहे थे। वे बोले—'कमलनयन श्रीकृष्ण!
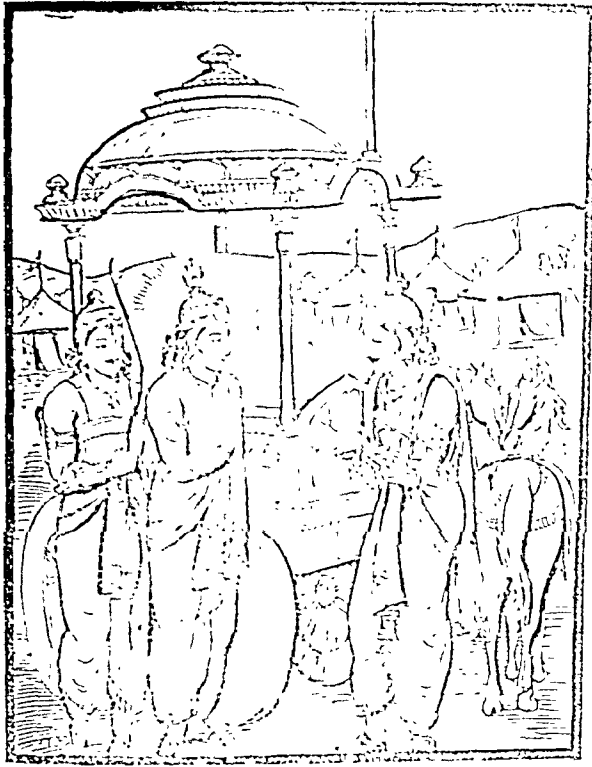
आपके मुखसे यह प्रिय समाचार सुनकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। वास्तवमें अर्जुनने यह अद्भुत काम किया है। सौभाग्यकी बात है कि आज मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त देख रहा हूँ। यह बहुत अच्छा हुआ कि पापी जयद्रथ मारा गया। कृष्ण! आपके द्वारा सुरक्षित होकर पार्थने जो जयद्रथका वध किया है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आप तो सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय और हितके साधनमें ही लगे रहते हैं। जनार्दन! जो काम देवताओंसे भी नहीं हो सकता था, उसे अर्जुनने आपके ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे सम्पन्न किया है। यह चराचर जगत् आपकी ही कृपासे अपने-अपने वर्णाश्रमोचित मार्गमें स्थित हो जप-होमादि कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। पहले यह सारा दृश्य-प्रपञ्च एकार्णवमें निमग्न—अन्धकारमय था, आपके अनुग्रहसे यह पुनः जगत्‌के रूपमें प्रकट हुआ है। आप सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अविनाशी परमेश्वर हैं, आप ही इन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं; जो आपका दर्शन पा जाते हैं, उन्हें कभी मोह नहीं होता। आप पुराण-पुरुष हैं, परम देव हैं; देवताओंके भी देवता, गुरु एवं सनातन हैं; जो लोग आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। हृषीकेश! आप आदि-अन्तसे रहित, विश्वविधाता और अविकारी देवता हैं; जो आपके भक्त हैं; वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं। आप परम पुरातन पुरुष हैं; परसे भी पर हैं, आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले भक्तको मुक्ति प्राप्त होती है। चारों वेद जिनका यश गान करते हैं; जो सभी वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं अनुपम कल्याण प्राप्त करूँगा। पुरुषोत्तम! आप परमेश्वर हैं, ईश्वरोंके ईश्वर हैं; पशु-पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं। अधिक क्या कहें—जो सबके ईश्वर हैं; उनके भी आप ही ईश्वर हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। माधव! आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं; सबके आत्मा हैं। आपका अभ्युदय हो। आप धनञ्जयके मित्र, हितू और रक्षक हैं; आपकी शरणमें जानेसे मनुष्यकी सुखपूर्वक उन्नति होती है। भगवन्! प्राचीन महर्षि मार्कण्डेयजी आपके चरित्रोंको जाननेवाले हैं; उन्होंने कुछ दिन पहले आपके माहात्म्य और प्रभावका वर्णन किया था। असित, देवल, महातपस्वी नारद और मेरे पितामह व्यासजीने भी आपकी महिमाका गायन किया है। आप तेजःस्वरूप, परब्रह्म, सत्य, महान् तप, कल्याणमय तथा जगत्‌के आदि कारण हैं। आपहीने इस स्थावर-जङ्गमरूप जगत्‌की सृष्टि की है। जगदीश्वर! जब प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय यह आदि-अन्तसे रहित आप परमेश्वरमें ही लीन हो जाता है। वेदोंके विद्वान् आपको धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त तथा विश्वतोमुख[1] आदि नामोंसे पुकारते हैं। आपका रहस्य गूढ है, आप सबके आदि कारण और इस जगत्‌के स्वामी हैं। आप ही परम देव नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि और मुमुक्षुओंके आश्रयभूत भगवान् विष्णु भी आप ही हैं। आपके तत्त्वको देवता भी नहीं जानते। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न आप परमात्माको हमने अपना सखा बनाया है।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! आपकी उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुता तथा सरलतासे ही पापी जयद्रथ मारा गया है। संसारमें शस्त्रज्ञान, बाहुबल, धैर्य, शीघ्रता तथा अमोघ बुद्धिमें कहीं कोई भी अर्जुनके समान नहीं है। इसीसे आपके छोटे भाईने रणभूमिमें शत्रुसेनाका संहार करके सिन्धुराजका मस्तक काट डाला है।'

यह सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुनको गले लगाया और

१. जिसके सब ओर मुख हों, उसे 'विश्वतोमुख' कहते हैं।

उनके वदनपर हाथ फेरकर शाबाशी देते हुए कहा—'अर्जुन ! जिसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं कर सकते थे, वह काम आज तूने कर दिखाया है। सौभाग्यका विषय है कि इस समय तुम्हारे सिरका भार उतर गया, जयद्रथको मारकर तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।' तदनन्तर, शूरवीर भीमसेन और सात्यकिने भी धर्मराजको प्रणाम किया, उनके साथ पञ्चालदेशीय राजकुमार भी थे। उन दोनों वीरोंको हाथ जोड़कर खड़े हुए देख युधिष्ठिरने उनका अभिनन्दन किया। वे बोले—'आज बड़े आनन्दकी बात है कि तुम दोनोंको मैं इस सैन्यरूपी सागरसे मुक्त देख रहा हूँ। तुम दोनों युद्धमें विजयी हुए। तुम्हारे मुकाबलेमें आकर द्रोणाचार्य और कृतवर्मा परास्त हो गये। अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे तुमने कर्णको हराया और राजा शल्यको भी मार भगाया। अब तुम्हें सकुशल देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। तुमलोग मेरी आज्ञाका पालन करते और मेरे प्रति गौरवके बन्धनमें बँधे रहते हो। संग्राममें तुम्हारी कभी हार नहीं होती, तुम दोनों बिल्कुल मेरे कहनेके अनुरूप हो। सौभाग्यसे ही आज तुम्हें जीते-जागते देख रहा हूँ।'

भीमसेन और सात्यकिसे ऐसा कहकर धर्मराजने उन्हें फिर गले लगाया और आनन्दके आँसू बहाने लगे। राजन् ! उस समय पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना आनन्दमग्न हो गयी, फिर उसने बड़े उत्साहके साथ युद्धमें मन लगाया।

दुर्योधन और द्रोणाचार्यकी अमर्षपूर्ण बातचीत तथा कर्ण-दुर्योधन-संवाद

सञ्जय कहते हैं—राजन् ! जयद्रथके मारे जानेपर आपका पुत्र दुर्योधन आँसू बहाने लगा, उसकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी; अब शत्रुओंपर विजय पानेका उसका सारा उत्साह जाता रहा। अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिने कौरव-सेनाका बड़ा भारी संहार कर डाला है—यह देखकर उसका चेहरा उदास हो गया, आँखें भर आयीं। वह सोचने लगा—'इस पृथ्वीपर अर्जुनके समान कोई योद्धा नहीं है। जब अर्जुनको क्रोध चढ़ आता है, उस समय उनके सामने द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी नहीं ठहर पाते। आजके युद्धमें उन्होंने हमारे सभी महारथियोंको हराकर सिन्धुराजका वध किया, किन्तु कोई भी उन्हें रोक न सका। हाय ! हमारी इतनी बड़ी सेनाको पाण्डवोंने हर तरहसे नष्ट कर डाला। जिसके भरोसे हमने युद्धके लिये अस्त्र-शस्त्रोंकी तैयारी की, जिसके पराक्रमका आश्रय ले सन्धिका प्रस्ताव करनेवाले श्रीकृष्णको तिनकेके समान समझा, उस कर्णको भी अर्जुनने युद्धमें परास्त कर दिया।'

महाराज ! सारे जगत्का अपराध करनेवाला आपका पुत्र दुर्योधन जब इस प्रकार सोचते-सोचते मन-ही-मन बहुत व्याकुल हो गया तो आचार्य द्रोणका दर्शन करनेके लिये उनके पास गया और उनसे कौरवसेनाके महान् संहारका सारा समाचार सुनाया। उसने यह भी बताया कि शत्रु विजयी हो रहे हैं और कौरव आपत्तिके समुद्रमें डूब रहे हैं। फिर कहने लगा—'आचार्य ! अर्जुनने हमारी सात अक्षौहिणी सेनाका नाश करके आपके शिष्य जयद्रथका भी वध कर डाला। ओह ! जिन्होंने हमें विजय दिलानेकी इच्छासे अपने प्राण त्यागकर यमलोककी राह ली, उन उपकारी सुहृदोंका ऋण हम कैसे चुका सकेंगे ? जो भूपाल हमारे लिये इस भूमिको जीतना चाहते थे, वे स्वयं भूमण्डलका ऐश्वर्य त्यागकर भूमिपर सो रहे हैं। इस प्रकार स्वार्थके लिये मित्रोंका संहार करके अब मैं हजार बार अश्वमेध यज्ञ करूँ तो भी अपनेको पवित्र नहीं कर सकता। मैं आचारभ्रष्ट एवं पतित हूँ, अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मैंने द्रोह किया है ! अहो ! राजाओंके समाजमें मेरे लिये पृथ्वी फट क्यों नहीं गयी, जिससे मैं उसीमें समा जाता। मेरे पितामह लोहूलुहान होकर बाणशय्यापर पड़े हैं; वे युद्धमें मारे गये, पर मैं उनकी रक्षा न कर सका। काम्बोजराज, अलम्बुष तथा अन्यान्य सुहृदोंको मरा देखकर भी अब जीवित रहनेसे मुझे क्या लाभ है ! शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य ! मैं अपने यज्ञ-यागादि तथा कुआँ-बावली बनवाने आदि शुभकर्मोंकी, पराक्रमकी तथा पुत्रोंकी शपथ खाकर आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं पाण्डवोंके साथ सम्पूर्ण पाञ्चाल राजाओंको मारकर ही शान्ति पाऊँगा, अथवा जो लोग मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे अपने प्राण खो चुके हैं, उनके ही लोकमें चला जाऊँगा। इस समय मेरे सहायक भी मेरी मदद करना नहीं चाहते। औरोंकी तो बात जाने दीजिये, स्वयं आप हमलोगोंकी उपेक्षा करते हैं। अर्जुन आपका प्यारा शिष्य है न, इसीलिये ऐसा हुआ है। इस समय तो मैं केवल कर्णको ही ऐसा देखता हूँ, जो सच्चे दिलसे मेरी विजय चाहता है। जो मूर्ख मित्रको ठीक-ठीक पहचाने बिना ही उसे मित्रके कामपर लगा देता है, उसका वह

काम चौपट ही होता है । जयद्रथ, भूरिश्रवा, अभीषाह, शिबि और वसाति आदि नरेश मेरे लिये युद्धमें मारे गये । उनके बिना अब मुझे इस जीवनसे कोई लाभ नहीं है; अतः मैं भी वहीं जाता हूँ, जहाँ वे पुरुषश्रेष्ठ पधारे हैं । आप तो केवल पाण्डवोंके आचार्य हैं, अब हमें जानेकी आज्ञा दीजिये ।

राजन् ! आपके पुत्रकी कही हुई बातें सुनकर आचार्य द्रोण मन-ही-मन बहुत दुखी हुए । वे थोड़ी देरतक चुपचाप कुछ सोचते रहे, फिर अत्यन्त व्यथित होकर बोले—"दुर्योधन ! तू क्यों इस प्रकार अपने वाग्बाणोंसे मुझे छेद रहा है । मैं तो सदा ही तुझसे कहता आया हूँ कि अर्जुनको युद्धमें जीतना असम्भव है । जिन भीष्मपितामहको हमलोग त्रिभुवनका सर्वश्रेष्ठ वीर समझते थे, वे भी जब मारे गये तो औरोंसे क्या आशा रक्खें ? तूने जब जूआ खेलना आरम्भ किया था, उस समय विदुरने कहा था—'बेटा दुर्योधन ! इस कौरव-सभामें शकुनि जो ये पासे फेंक रहा है, इन्हें पासा न समझो; ये एक दिन तीखे बाण बन जायँगे ।' वे ही पासे अब अर्जुनके हाथसे बाण बनकर हमें मार रहे हैं । उस दिन विदुरकी बात तेरी समझमें नहीं आयी ! विदुरजी धीर हैं, महात्मा पुरुष हैं; उन्होंने तेरे कल्याणके लिये अच्छी बातें कही थीं, किन्तु तूने विजयके उल्लासमें अनसुनी कर दीं । आज जो यह भयंकर संहार मचा हुआ है, वह उनके वचनोंके अनादरका ही फल है । जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रोंके हितकर वचनकी अवहेलना करके मनमाना वर्ताव करता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है । यही नहीं, तूने एक और बड़ा भारी अन्याय किया कि हमलोगोंके सामने द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया । वह उच्च कुलमें उत्पन्न हुई है, सब प्रकारके धर्मोंका पालन करती है; वह इस अपमानके योग्य नहीं थी । गान्धारीनन्दन ! उस पापका ही यह महान् फल प्राप्त हुआ है । यदि यहाँ यह फल नहीं मिलता, तो परलोकमें तुझे इससे भी अधिक दण्ड भोगना पड़ता । पाण्डव मेरे पुत्रके समान हैं, वे सदा धर्मका आचरण करते रहते हैं; मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह करे ? दुर्योधन ! तू तो नहीं मर गया था; कर्ण, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा—ये सब तो जीवित थे; फिर सिन्धुराजकी मृत्यु क्यों हुई ? तुम सबने मिलकर उसे क्यों नहीं बचा लिया ? राजा जयद्रथ विशेषतः मुझपर और तुझपर ही अपनी जीवन-रक्षाका भरोसा किये बैठा था; तो भी जब अर्जुनके हाथसे उसकी रक्षा न की जा सकी, तो मुझे अब अपने जीवनकी रक्षाका भी कोई स्थान नहीं दिखायी देता । जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके बीच सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, वहाँ तू किसके बचनेकी आशा करता है ? जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं मार सकते थे उन भीष्मजीको जबसे मृत्युके मुखमें पड़ा देखा है, तबसे यही सोचता हूँ कि अब यह पृथ्वी तेरी नहीं रह सकती । यह देखो, पाण्डवों और सृञ्जयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर मुझपर चढ़ी आ रही हैं । दुर्योधन ! अब मैं पाञ्चाल राजाओंको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा । आज युद्धमें वही कर्म करूँगा, जिससे तेरा हित हो । मेरे पुत्र अश्वत्थामासे जाकर कहना कि वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए जैसे भी हो सोमकोंका संहार करे, उन्हें जीवित न छोड़े । दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणोंमें स्थित रहे; धर्मप्रधान कर्मोंका ही बारंबार अनुष्ठान करे । ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट रक्खे । अपनी शक्तिके अनुसार उनका सत्कार करे, अपमान कभी न करे; क्योंकि वे अग्निकी लपटके समान तेजस्वी होते हैं । राजन् ! अब मैं महासंग्रामके लिये शत्रुसेनामें प्रवेश करता हूँ । तुझमें शक्ति हो तो सेनाकी रक्षा करना; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए कौरव तथा सृञ्जयोंका आज रात्रिमें भी युद्ध होगा ।" ऐसा कहकर आचार्य द्रोण पाण्डव तथा सृञ्जयोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिये ।

आचार्यकी प्रेरणा पाकर दुर्योधनने भी युद्ध करनेका

ही निश्चय किया । उसने कर्णसे कहा—'देखो, श्रीकृष्णकी सहायतासे अर्जुनने द्रोणाचार्यका व्यूह भेदकर सब योद्धाओंके सामने ही सिन्धुराजका वध किया है । मेरी अधिकांश सेना अर्जुनके हाथों नष्ट हो गयी, अब थोड़ी-सी ही बची है । यदि इस युद्धमें आचार्य द्रोण अर्जुनको रोकनेकी पूरी कोशिश करते, तो वे लाख प्रयत्न करनेपर भी उस दुर्भेद्य व्यूहको नहीं तोड़ सकते थे । किन्तु वे तो द्रोणके परम प्रिय हैं, तभी तो आचार्यने जयद्रथको अभयदान देकर भी अर्जुनको व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया । यदि उन्होंने पहले ही सिन्धुराजको घर जानेकी आज्ञा दे दी होती, तो अवश्य ही मनुष्योंका इतना बड़ा संहार नहीं होने पाता । मित्र ! जयद्रथ अपनी जीवन-रक्षाके लिये घर जानेको तैयार था; किन्तु मुझ अधमने ही द्रोणसे अभय पाकर उसे रोक लिया । आजके युद्धमें चित्रसेन आदि मेरे भाई भी हमलोगोंके देखते-देखते भीमसेनके हाथसे मारे गये ।'

कर्णने कहा—भाई ! तुम आचार्यकी निन्दा न करो; वे तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंकी भी परवा न करके युद्ध करते ही हैं । अर्जुन द्रोणका उल्लङ्घन करके सेनामें घुस गये थे, इसलिये इसमें उनका कोई दोष मैं नहीं देखता । मैंने भी उस रणाङ्गणमें तुम्हारे साथ रहकर बहुत प्रयत्न किया, तथापि सिन्धुराज मारा गया; इसलिये इसमें प्रारब्धको ही प्रधान समझो । मनुष्यको उद्योगशील होकर सदा निःशङ्कभावसे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, सिद्धि तो दैवके ही अधीन है । हमलोगोंने कपट करके पाण्डवोंको छला, उन्हें मारनेको विष दिया, लाक्षागृहमें जलाया, जूएमें हराया और राजनीतिका सहारा लेकर उन्हें वनमें भी भेजा । इस प्रकार प्रयत्न करके हमने उनके प्रतिकूल जो कुछ किया, उसे प्रारब्धने व्यर्थ कर दिया । फिर भी दैवको निरर्थक समझकर तुम प्रयत्नपूर्वक युद्ध ही करते रहो ।

राजन् ! इस प्रकार कर्ण और दुर्योधन बहुत-सी बातें कर रहे थे, इतनेहीमें रणभूमिमें उन्हें पाण्डवोंकी सेना दिखायी दी । फिर तो आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया ।

युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय, द्रोणके हाथसे शिबिका वध तथा भीमके द्वारा कलिङ्ग, ध्रुव, जयरात, दुर्मद और दुष्कर्णका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! पाञ्चाल और कौरव वीरोंमें परस्पर युद्ध होने लगा । सभी योद्धा एक-दूसरेको बाण, तोमर और शक्तियोंसे बींधकर यमलोक भेजने लगे । थोड़ी ही देरमें युद्धका रूप बड़ा भयङ्कर हो गया, रक्तकी नदी बह चली । उस समय आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनके तीखे बाणोंकी मार खाकर पाञ्चाल वीर इधर-उधर भागने लगे । उसके सायकोंसे पीडित हो पाण्डवसैनिक धराशायी होने लगे । उस समय आपके पुत्रने जैसा पराक्रम किया, वैसा कौरव-पक्षके किसी भी दूसरे वीरने नहीं किया । दुर्योधनके द्वारा पाण्डव-सेनाको नष्ट होते देख पाञ्चाल वीर भीमसेनको आगे करके उसपर टूट पड़े । उसने भीमसेनको दस, नकुल-सहदेवको तीन-तीन, विराट और द्रुपदको छः-छः, शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदि-देशके योद्धाओंको अनेकों तीखे बाणोंसे बींध डाला । फिर, सात्यकिको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको तीन-तीन और घटोत्कचको बहुत-से बाणोंद्वारा बींधकर सिंहनाद किया । इसके अलावे भी सैकड़ों योद्धाओं और उनके हाथियोंको काट गिराया । तब पाण्डवोंकी सेना रणभूमिसे भागने लगी । यह देख राजा युधिष्ठिर क्रोधमें भरकर आपके पुत्रको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर बढ़े । दुर्योधनने तीन बाणोंसे धर्मराजके सारथि-को घायल करके एक बाणसे उनके धनुषको काट दिया । तब युधिष्ठिरने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर दो भल्लोंसे दुर्योधनके भी धनुषके तीन टुकड़े कर दिये । फिर दस तीखे सायकोंसे उसे बींध डाला । युधिष्ठिरके छोड़े हुए बाण दुर्योधनके मर्मस्थानों-को छेदकर पृथ्वीमें समा गये । तदनन्तर धर्मराजने दुर्योधन-पर एक और भयङ्कर बाण चलाया; उसकी चोटसे दुर्योधनको मूर्च्छा आ गयी और वह रथकी बैठकपर लुढ़क गया । थोड़ी देरमें जब होश हुआ तो उसने पुनः सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया । इतनेमें विजयाभिलाषी पाञ्चाल वीर तुरंत दुर्योधनके पास आ पहुँचे । उन्हें आते देख आचार्य द्रोणने दुर्योधनकी रक्षाके लिये बीचमें ही रोक लिया । फिर तो आपकी और शत्रुओंकी सेनाओंमें महान् संग्राम होने लगा ।

उस समय अर्जुन, सात्यकि, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकय, मत्स्य, शाल्व तथा राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यपर धावा किया । द्रौपदीके पाँचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेना साथ ले उन्हींकी ओर बढ़े । प्रहार करनेमें कुशल छः हजार पाञ्चालों तथा प्रभद्रकोंने भी शिखण्डीको आगे रखकर द्रोण-

घर जानेकी आज्ञा दे दी होती, तो अवश्य ही मनुष्योंका इतना बड़ा संहार नहीं होने पाता। मित्र! जयद्रथ अपनी जीवन-रक्षाके लिये घर जानेको तैयार था; किन्तु मुझ अधमने ही द्रोणसे अभय पाकर उसे रोक लिया। आजके युद्धमें चित्रसेन आदि मेरे भाई भी हमलोगोंके देखते-देखते भीमसेनके हाथसे मारे गये।'

कर्णने कहा—भाई! तुम आचार्यकी निन्दा न करो; वे तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंकी भी वनमें भी भेजा। इस प्रकार प्रयत्न करके हमने उनके प्रतिकूल जो कुछ किया, उसे प्रारब्धने व्यर्थ कर दिया। फिर भी दैवको निरर्थक समझकर तुम प्रयत्नपूर्वक युद्ध ही करते रहो।

राजन्! इस प्रकार कर्ण और दुर्योधन बहुत-सी बातें कर रहे थे, इतनेहीमें रणभूमिमें उन्हें पाण्डवोंकी सेना दिखायी दी। फिर तो आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया।

युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय, द्रोणके हाथसे शिबिका वध तथा भीमके द्वारा कलिङ्ग, ध्रुव, जयरात, दुर्मद और दुष्कर्णका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! पाञ्चाल और कौरव वीरोंमें परस्पर युद्ध होने लगा। सभी योद्धा एक-दूसरेको बाण, तोमर और शक्तियोंसे बींधकर यमलोक भेजने लगे। थोड़ी ही देरमें युद्धका रूप बड़ा भयङ्कर हो गया, रक्तकी नदी बह चली। उस समय आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनके तीखे बाणोंकी मार खाकर पाञ्चाल वीर इधर-उधर भागने लगे। उसके सायकोंसे पीडित हो पाण्डवसैनिक धराशायी होने लगे। उस समय आपके पुत्रने जैसा पराक्रम किया, वैसा कौरव-पक्षके किसी भी दूसरे वीरने नहीं किया। दुर्योधनके द्वारा पाण्डव-सेनाको नष्ट होते देख पाञ्चाल वीर भीमसेनको आगे करके उसपर टूट पड़े। उसने भीमसेनको दस, नकुल-सहदेवको तीन-तीन, विराट और द्रुपदको छः-छः, शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदि-देशके योद्धाओंको अनेकों तीखे बाणोंसे बींध डाला। फिर, सात्यकिको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको तीन-तीन और घटोत्कचको बहुत-से बाणोंद्वारा बींधकर सिंहनाद किया। इसके अलावे भी सैकड़ों योद्धाओं और उनके हाथियोंको काट गिराया। तब पाण्डवोंकी सेना रणभूमिसे भागने लगी। यह देख राजा युधिष्ठिर क्रोधमें भरकर आपके पुत्रको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर बढ़े। दुर्योधनने तीन बाणोंसे धर्मराजके सारथि-को घायल करके एक बाणसे उनके धनुषको काट दिया। तब युधिष्ठिरने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर दो भल्लोंसे दुर्योधनके भी धनुषके तीन टुकड़े कर दिये। फिर दस तीखे सायकोंसे उसे बींध डाला। युधिष्ठिरके छोड़े हुए बाण दुर्योधनके मर्मस्थानों-को छेदकर पृथ्वीमें समा गये। तदनन्तर धर्मराजने दुर्योधन-पर एक और भयङ्कर बाण चलाया; उसकी चोटसे दुर्योधनको मूर्च्छा आ गयी और वह रथकी बैठकपर लुढ़क गया। थोड़ी देरमें जब होश हुआ तो उसने पुनः सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया। इतनेमें विजयाभिलाषी पाञ्चाल वीर तुरंत दुर्योधनके पास आ पहुँचे। उन्हें आते देख आचार्य द्रोणने दुर्योधनकी रक्षाके लिये बीचमें ही रोक लिया। फिर तो आपकी और शत्रुओंकी सेनाओंमें महान् संग्राम होने लगा।

उस समय अर्जुन, सात्यकि, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकय, मत्स्य, शाल्व तथा राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यपर धावा किया। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेना साथ ले उन्हींकी ओर बढ़े। प्रहार करनेमें कुशल छः हजार पाञ्चालों तथा प्रभद्रकोंने भी शिखण्डीको आगे रखकर द्रोण-

खूब मज़बूत था; अतः उसकी मारसे सोमदत्त बेतरह घायल हो गये और रथकी बैठकमें मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देख उनका सारथि उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। तब सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे आचार्य द्रोण उसकी ओर झपटे। उन्हें आते देख युधिष्ठिर आदि वीर सात्यकिकी रक्षाके लिये उसे घेरकर खड़े हो गये। तदनन्तर, द्रोणका पाण्डवोंके साथ युद्ध आरम्भ हुआ। द्रोणने पाण्डव-सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर दिया और युधिष्ठिरको भी खूब घायल किया। फिर सात्यकिको दस, धृष्टद्युम्नको बीस, भीमसेनको नौ, नकुलको पाँच, सहदेवको आठ, शिखण्डीको सौ, द्रौपदीके प्रत्येक पुत्रको पाँच, विराटको आठ, द्रुपदको दस, युधामन्यु-को तीन और उत्तमौजाको छः बाण मारकर बींध दिया। इसके बाद अन्य योद्धाओंको भी घायल करके वे युधिष्ठिरकी ओर बढ़े। उनके बाणोंकी चोटसे आर्तनाद करते हुए पाण्डवसैनिक सब दिशाओंमें भागने लगे। जो-जो वीर आचार्यके सामने आ जाता, उसका मस्तक काटकर उनके बाण पृथ्वीमें समा जाते थे। इस प्रकार द्रोणके बाणोंसे आहत हुई पाण्डव-सेना अर्जुनके देखते-देखते भयभीत होकर भाग चली।

यह देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'गोविन्द! अब आप आचार्यके रथकी ओर चलिये।' तब भगवान्‌ने घोड़ोंको द्रोणके रथकी ओर हाँका। भीमसेनने भी अपने सारथि विशोक-को आज्ञा दी कि 'मुझे द्रोणके रथके पास ले चलो।' उनकी आज्ञा पाकर विशोकने भी अर्जुनके पीछे अपना रथ बढ़ाया। उन दोनों भाइयोंको तैयार होकर द्रोण-सेनाकी ओर आते देख पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल और केकय महारथियोंने भी उनका साथ दिया। महाराज! तदनन्तर वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर संग्राम छिड़ गया। अर्जुन और भीमने अपने साथ रथियोंके भारी समूहको लेकर आपकी सेनाके दक्षिण और उत्तर भागमें घेरा डाल बहुत बड़ा और भयङ्कर था। उसीमें बैठकर वह अश्वत्थामा-की ओर चला। एक अक्षौहिणी राक्षसी सेना उसे चारों ओर-से घेरे हुए थी। किसीके हाथमें त्रिशूल था तो किसीके हाथमें मुगदर; कोई पत्थरकी चट्टान हाथमें लिये था और कोई वृक्ष। घटोत्कच प्रलयकालके दण्डधारी यमराजकी भाँति जान पड़ता था। उसके हाथमें उठाये हुए महान् धनुषको देखकर राजालोग भयसे व्याकुल हो उठे थे। वह भीमकाय राक्षस पर्वतके समान ऊँचा था, बड़ी-बड़ी डाढ़ोंके कारण उसका मुख विकराल तथा भयङ्कर दिखायी पड़ता था। कान खूँटेके समान, ठोढ़ी बहुत बड़ी, बाल ऊपरकी ओर उठे हुए, आँखें भयावनी, मुँहपर चमक, पेट धँसा हुआ—यही उसकी हुलिया थी। गलेका छेद ऐसा था, मानो कोई बहुत बड़ा गड्ढा हो। सिरके बाल मुकुटसे ढके हुए थे। वह मुँह बाकर खड़े हुए यमराजके समान सम्पूर्ण प्राणियोंको त्रास पहुँचा रहा था; शत्रु उसे देखते ही व्याकुल हो जाते थे। राक्षस-राज घटोत्कचको हाथमें धनुष लिये आते देख दुर्योधनकी सेनामें हलचल मच गयी, सब-के-सब भयसे व्याकुल हो उठे। उस राक्षसके सिंहनादसे अत्यन्त भयभीत हो हाथी मूत्र-त्याग करने लगे। मनुष्योंको व्यथा होने लगी। फिर तो वहाँ चारों ओरसे पत्थरोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। रात्रि होनेसे उस समय राक्षसोंका बल बहुत बढ़ा हुआ था। उनके चलाये हुए लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्र वहाँ बरस रहे थे; बड़ा ही भयङ्कर संग्राम छिड़ा था। उसे देखकर कौरव-पक्षके राजाओं, आपके पुत्रों तथा कर्णको भी बहुत कष्ट हुआ और वे सब दिशाओंकी ओर भागने लगे। उस समय एकमात्र अभिमानी वीर अश्वत्थामा ही विचलित न होकर अपनी जगहपर डटा रहा। उसने घटोत्कचकी रची हुई माया अपने बाणोंसे नष्ट कर दी।

मायाका नाश होनेपर घटोत्कचके क्रोधकी सीमा न रही,

नहीं हो सकता था । उसने राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते अपने प्रज्वलित बाणोंसे उसकी सेनाको भस्मसात् कर दिया । तब क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने दाँतोंसे अपना ओठ चबाकर ताली बजायी और सिंहनाद करके आठ घंटियोंवाली एक भयानक अशनि अश्वत्थामाके ऊपर छोड़ी । किन्तु उसने कूदकर वह अशनि हाथमें पकड़ ली और पुनः उसे घटोत्कचपर ही चला दी । घटोत्कच कूदकर रथसे अलग हो गया और वह भयङ्कर अशनि उसके घोड़े, सारथि, ध्वजा तथा रथको भस्म करके पृथ्वीमें समा गयी ।
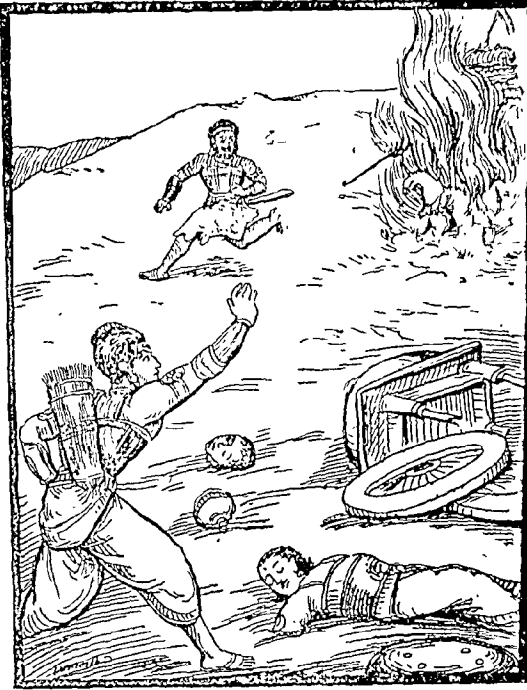
अश्वत्थामाका वह पराक्रम देख सब योद्धा उसकी प्रशंसा करने लगे । अपना रथ नष्ट हो जानेसे घटोत्कच धृष्टद्युम्नके रथपर जा बैठा और एक भयानक धनुष हाथमें ले अश्वत्थामाकी छातीपर तीखे बाणोंसे प्रहार करने लगा । इसी प्रकार धृष्टद्युम्न भी निर्भीक होकर द्रोणपुत्रके हृदयमें तीखे बाणोंसे चोट पहुँचाने लगा । इधरसे अश्वत्थामा भी उनपर हजारों बाणोंकी वर्षा करने लगा । और वे दोनों अपने अस्त्रोंसे उसके बाणोंको काटने लगे । इस प्रकार उनमें बड़ी तेजीके साथ अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ा हुआ था । उस समय अश्वत्थामाने वहाँ अत्यन्त अद्भुत पराक्रम प्रकट किया, जो दूसरोंके लिये सर्वथा असम्भव था । उसने पलक मारते ही घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनाका सफाया कर डाला । भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण भी देखते ही रह गये । उसके बाणोंकी चोट खाकर हाथी शृङ्गहीन पर्वतके समान पृथ्वीपर भहरा पड़ते थे । उसने अपने नाराचोंसे पाण्डवोंको बींधकर द्रुपदकुमार सुरथको मार डाला । फिर द्रुपदके छोटे भाई शत्रुञ्जयका काम तमाम किया । इसके बाद बलानीक, जयानीक और जयाश्वके प्राण लिये; फिर श्रुताह्वयको यमलोक भेज दिया । तदनन्तर तीन बाणोंसे हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका वध किया । तत्पश्चात् कुन्तिभोजके दस पुत्रोंको भी दस बाणोंसे यमलोकका अतिथि बनाया । इसके बाद उसने यमदण्डके समान घोर बाण धनुषपर चढ़ाया और घटोत्कचकी छातीमें प्रहार किया । वह महान् बाण उसकी छाती छेदकर पृथ्वीमें समा गया, घटोत्कच मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा । उसे मरकर गिरा हुआ समझकर धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके पाससे अपना रथ दूर हटा ले गया । युधिष्ठिरकी सेनाके राजालोग भाग चले । वीरवर अश्वत्थामा पाण्डव-सेनाको परास्त कर सिंहके समान गर्जना करने लगा । उस समय अन्य सब लोगोंने तथा आपके पुत्रोंने भी द्रोणकुमारका विशेष सम्मान किया । सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, सुपर्ण, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत, अप्सरा तथा देवतालोग भी अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे ।

बाह्लीक और धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, युधिष्ठिरका पराक्रम, कर्ण तथा कृपमें विवाद और अश्वत्थामाका कोप

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! अश्वत्थामाने राजा कुन्तिभोजके दस पुत्रों तथा हजारों राक्षसोंका संहार कर दिया—यह देखकर युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकिने पुनः युद्धमें ही मन लगाया । संग्राममें सात्यकिपर दृष्टि पड़ते ही सोमदत्त पुनः आगबबूला हो गये । उन्होंने बड़ी भारी बाणवर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया । फिर दोनों पक्षोंमें बड़ा भयङ्कर युद्ध होने लगा । सोमदत्तको निकट आया देख सात्यकिकी रक्षाके लिये भीमसेनने उन्हें दस बाण मारकर घायल कर दिया । सोमदत्तने भी उन्हें सौ बाणोंसे बींध डाला । यह देख सात्यकि क्रोधमें भर गया और

वज्रके समान तीक्ष्ण दस बाणोंसे सोमदत्तको घायल किया। तदनन्तर भीमसेनने सात्यकिका पक्ष लेकर सोमदत्तके मस्तकपर एक भयङ्कर परिघका प्रहार किया, साथ ही सात्यकिने भी अग्निके समान तेजस्वी बाण उनकी छातीपर मारा। परिघ और बाण दोनों एक ही साथ सोमदत्तको लगे, इससे वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

पुत्रके मूर्च्छित होनेपर बाह्लीकने धावा किया, वे वर्षाकालीन मेघके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे। भीमने पुनः सात्यकिका पक्ष ग्रहण किया और नौ बाणोंसे बाह्लीकको बींध डाला। तब प्रतीपनन्दनने कुपित होकर भीमकी छातीमें शक्तिका प्रहार किया। उसकी चोटसे भीमसेन काँप उठे और बेहोश हो गये। फिर थोड़ी ही देरमें चेत होनेपर पाण्डुनन्दन भीमने उनपर गदा छोड़ी। उसके आघातसे बाह्लीकका सिर धड़से अलग हो गया। वे वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े।

बाह्लीकके मारे जानेपर आपके नागदत्त, दृढरथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ, सुहस्त, विरज, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी—ये दस पुत्र अपने बाणोंसे भीमसेनको पीड़ित करने लगे। उन्हें देखते ही भीमसेन क्रोधसे जल उठे और एक-एकके मर्मस्थानमें बाण मारने लगे। उनकी करारी चोटसे आपके पुत्रोंके प्राण-पखेरू उड़ गये और वे तेजहीन होकर रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े। इसके बाद वीरवर भीमने आपके सालोंके सात महारथियोंको मार डाला और नाराचोंसे महारथी शतचन्द्रको भी मौतके घाट उतारा। उन्हें मारा गया देख शकुनिके भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त—ये पाँच महारथी दौड़े आये और भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनसे पीड़ित होकर भीमसेनने पाँच बाण चलाये और उन पाँचोंको मार डाला। उन वीरोंको मृत्युके मुखमें पड़ा देख कौरवपक्षके राजा विचलित हो गये। इधर युधिष्ठिरने भी आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया। उन्होंने कुपित होकर अम्बष्ठ, मालव, त्रिगर्त और शिबिदेशके योद्धाओंको यमलोक भेज दिया। इतना ही नहीं, राजा युधिष्ठिरने अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक तथा वसाति वीरोंका भी वध करके इस पृथ्वीको खूनकी धारासे पङ्किल बना दिया। उन्होंने अपने बाणोंसे मद्रदेशीय योद्धाओंको भी प्रेतलोकका अतिथि बनाया।

तब आपके पुत्रने आचार्य द्रोणको युधिष्ठिरकी ओर प्रेरित किया। आचार्यने अत्यन्त क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, किन्तु धर्मराजने उसे वैसे ही दिव्य अस्त्रसे काट दिया। तब तो द्रोणके कोपकी सीमा न रही। उन्होंने युधिष्ठिरपर वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र आदि अस्त्रोंका प्रयोग किया; किन्तु वे इससे तनिक भयभीत नहीं हुए। उन्होंने भी दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग कर उन सभी अस्त्रोंको निष्फल कर दिया। तब द्रोणने ऐन्द्र और प्राजापत्य अस्त्रोंको प्रकट किया। यह देख युधिष्ठिरने माहेन्द्र-अस्त्र प्रकट करके उन अस्त्रोंका नाश कर दिया।

इस प्रकार जब द्रोणाचार्यके अस्त्र लगातार नष्ट होने लगे, तो उन्होंने कुपित होकर युधिष्ठिरका वध करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अन्धकार छा गया था। ब्रह्मास्त्रके भयसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे थे। उस ब्रह्मास्त्रको प्रकट हुआ देख युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रसे ही उसे शान्त कर दिया। तब द्रोणाचार्य धर्मराजको छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये चले गये और वायव्यास्त्रसे द्रुपदकी सेनाका संहार करने लगे। उनके भयसे पञ्चालदेशीय वीर भाग चले। इसी समय अर्जुन और भीमसेन रथियोंकी बड़ी भारी सेना लेकर द्रोणके पास आये। अर्जुनने दक्षिणकी ओरसे और भीमने उत्तरकी ओरसे द्रोणकी सेनापर घेरा डाल दिया; फिर वे दोनों भाई उनपर बाणोंकी बौछार करने लगे। फिर तो वहाँ केकय, सृञ्जय, पाञ्चाल, मत्स्य और सात्वत वीर भी आ पहुँचे। अर्जुनने कौरव-सेनाका संहार आरम्भ किया। एक तो घोर अन्धकारमें कुछ सूझता नहीं था, दूसरे सबको नींद सता रही थी; इसलिये आपकी वाहिनीका बेतरह विध्वंस होने लगा। उस समय आचार्य द्रोण और आपके पुत्रने पाण्डव योद्धाओंको रोकनेकी बहुत कोशिश की, किन्तु वे सफल न हो सके।

तब दुर्योधनने कर्णसे कहा—'मित्र! अब तुम्हीं इस युद्धमें समस्त महारथी योद्धाओंकी रक्षा करो। ये पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और पाण्डव महारथियोंसे घिर गये हैं।' कर्ण बोला—'भारत! धैर्य धारण करो। मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज युद्धमें यदि इन्द्र भी रक्षा करनेके लिये आयेंगे, तो मैं उन्हें भी हराकर अर्जुनको मार डालूँगा। अकेला ही मैं पाण्डवों और पाञ्चालोंका नाश करूँगा। पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान् हैं अर्जुन; अतः उनपर ही आज इन्द्रकी दी हुई शक्तिका प्रहार करूँगा। उनके मारे जानेपर बाकी चारों भाई तुम्हारे अधीन हो जायँगे अथवा वनमें भाग जायँगे। कुरुराज! मैं जबतक जी रहा हूँ, तुम तनिक भी

विषाद न करो। यहाँ एकत्रित हुए पाञ्चाल, कैकय तथा वृष्णिवंशियोंसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको अकेले जीत लूँगा और अपने बाणोंसे उनकी धज्जियाँ उड़ाकर यह सारी पृथ्वी तुम्हारे अधीन कर दूँगा।

जब कर्ण इस प्रकार कह रहा था, उसी समय कृपाचार्य हँसकर बोले—'खूब! खूब! कर्ण! तुम बड़े बहादुर हो! यदि बात बनानेसे ही काम हो जाय, तब तो तुम्हें पाकर कुरुराज सनाथ हो गये। तुम इनके पास बहुत बढ़-बढ़कर बातें किया करते हो; किन्तु न कभी तुम्हारा पराक्रम ही देखा जाता है और न उसका कोई फल ही सामने आता है। संग्राममें पाण्डवोंसे तुम्हारी अनेकों बार मुठभेड़ हुई है, किन्तु सर्वत्र तुमने हार ही खायी है। कर्ण! याद है कि नहीं? जब गन्धर्व दुर्योधनको पकड़कर लिये जा रहे थे, उस समय सारी सेना तो युद्ध कर रही थी और अकेले तुम ही सबसे पहले भागे थे। विराटनगरमें भी सम्पूर्ण कौरव इकट्ठे हुए थे, वहाँ अर्जुनने अकेले ही सबको हराया था। तुम भी अपने भाइयोंके साथ परास्त हुए थे। अकेले अर्जुनका सामना करनेकी तो तुममें शक्ति ही नहीं है, फिर श्रीकृष्णसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीतनेका साहस कैसे करते हो? भाई! चुपचाप युद्ध करो, तुम डींग बहुत हाँकते हो। बिना कहे ही पराक्रम दिखाया जाय—यही सत्पुरुषोंका व्रत है। जबतक अर्जुनके बाण तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ रहे हैं, तभीतक गरज रहे हो; जब उनके बाणोंसे घायल होओगे तो सारी गर्जना भूल जायगी। क्षत्रिय बाहुबलमें शूर होते हैं; ब्राह्मण वाणीमें शूर होते हैं, अर्जुन धनुष चलानेमें शूर हैं, किन्तु कर्ण तो मनसूबे बाँधनेमें ही शूर है। जिन्होंने अपने पराक्रमसे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट किया है उन अर्जुनको भला, कौन मार सकता है?'

कृपाचार्यकी यह बात सुनकर कर्णने रुष्ट होकर कहा—'वर्षाकालके मेघके समान शूरवीर सदा ही गर्जना करते रहते हैं और पृथ्वीमें बोये हुए बीजकी भाँति वे शीघ्र ही फल भी देते हैं। बाबाजी! यदि मैं गरजता हूँ तो आपका क्या नुकसान होता है? देखियेगा मेरी गर्जनाका फल, जब कि मैं कृष्ण और सात्यकिके साथ सम्पूर्ण पाण्डवोंका वध करके पृथ्वीका अकण्टक राज्य दुर्योधनको दे डालूँगा।'

कृपाचार्य बोले—सूतपुत्र! मुझे तुम्हारे इस मनसूबे बाँधने और प्रलाप करनेपर विश्वास नहीं है। तुम तो श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिरको सदा ही कोसते रहते हो। परन्तु विजय उसी पक्षकी निश्चित है, जहाँ युद्ध-कुशल श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्प और राक्षस भी कवच धारण करके युद्ध करने आवें तो उन दोनोंको नहीं जीत सकते। धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंका सम्मान करनेवाले, सदा धर्मपरायण, अस्त्रविद्यामें विशेष कुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं। इनके भाई भी बलवान् हैं और अस्त्रविद्यामें परिश्रम किये हुए हैं। वे सभी बुद्धिमान्, धर्मात्मा और यशस्वी हैं तथा उनके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी और उनके प्रति प्रेम रखनेवाले हैं। अतः पाण्डवोंका कभी नाश नहीं हो सकता। भीमसेन तथा अर्जुन यदि चाहें तो अपने अस्त्रबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत और नागगणोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत्का विनाश कर सकते हैं। युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डलको भस्म कर सकते हैं। जिनके बलकी कोई सीमा नहीं है वे भगवान्

श्रीकृष्ण भी जिनके लिये कवच धारण करके तैयार हैं, उन शत्रुओंको जीतनेका साहस तुम कैसे कर रहे हो ?

यह सुनकर कर्णने हँसकर कहा—बाबा ! तुमने पाण्डवोंके विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सच है । इतने ही नहीं, और भी बहुत-से गुण पाण्डवोंमें हैं । यह भी ठीक है कि उन्हें इन्द्र आदि देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस भी नहीं जीत सकते, तो भी मैं उनपर विजय पाऊँगा । मुझे इन्द्रने एक अमोघ शक्ति दे रक्खी है, उसके द्वारा मैं युद्धमें अर्जुनको मार डालूँगा । उनके मरनेपर उनके सहोदर भाई किसी तरह पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते । उन सबका नाश हो जानेपर समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी अनायास ही कुरुराजके वशमें हो जायगी । तुम तो स्वयं बूढ़े होनेके कारण युद्ध करनेमें असमर्थ हो, साथ ही पाण्डवोंपर तुम्हारा स्नेह है; इसीलिये मोहवश मेरा अपमान कर रहे हो । किन्तु याद रक्खो, यदि मेरे विषयमें फिर कोई अप्रिय बात मुँहसे निकालोगे तो तलवारसे तुम्हारी जीभ काट लूँगा । दुर्बुद्धि ब्राह्मण ! तुम कौरवोंको डरानेके लिये पाण्डवोंकी स्तुति करना चाहते हो ? मैं तो पाण्डवोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं देखता; दोनों ही पक्ष-की सेनाओंका समान रूपसे संहार हो रहा है । द्विजाधम ! जिन्हें तुम विशेष बलवान् समझते हो, उनके साथ मैं पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करूँगा । विजय तो प्रारब्धके अधीन है ।

सूतपुत्र कर्णको अपने मामाके प्रति कठोर भाषण करते देख अश्वत्थामा हाथमें तलवार ले बड़े वेगसे कर्णकी ओर झपटा । दुर्योधनके देखते-देखते वह कर्णके पास आ पहुँचा और अत्यन्त क्रोधमें भरकर बोला—'अरे नीच ! मेरे मामा शूरवीर हैं और ये अर्जुनके सच्चे गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं; तो भी तू अर्जुनसे द्वेष होनेके कारण इनका तिरस्कार कर रहा है ! तू अपनी ही शूरताकी डींग हाँका करता है; किन्तु जब तुझे हराकर अर्जुनने तेरे देखते-देखते जयद्रथ-का वध किया, उस समय कहाँ था तेरा पराक्रम ? और कहाँ गये थे तेरे अस्त्र-शस्त्र ? जिन्होंने युद्धमें साक्षात् महादेवजी-को सन्तुष्ट किया है, उन्हें जीतनेको तू व्यर्थ ही मनसूबे बाँधा करता है । श्रीकृष्णके साथ रहते अर्जुनको इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं हरा सकते, फिर तू कैसे जीत सकता है ? नराधम ! खड़ा रह, अभी तेरा सिर धड़से अलग करता हूँ ।'

यह कहकर वह बड़े वेगसे कर्णकी ओर बढ़ा; किन्तु स्वयं राजा दुर्योधन और कृपाचार्यने उसे पकड़कर रोक लिया । कर्ण कहने लगा—'यह दुर्बुद्धि नीच ब्राह्मण अपनेको बड़ा शूर और लड़ाका समझता है । कुरुराज ! तुम रोको मत, छोड़ दो; जरा इसे अपने पराक्रमका भी मजा चखा दूँ ।'

अश्वत्थामाने कहा—मूर्ख सूतपुत्र ! तेरा यह अपराध हम तो सह लेते हैं, किन्तु अर्जुन तेरे इस बढ़े हुए घमंडका अवश्य नाश करेगा ।

दुर्योधन बोला—भाई अश्वत्थामा ! शान्त हो जाओ । तुम तो दूसरोंको सम्मान देनेवाले हो, इस अपराधको क्षमा करो । तुम्हें कर्णपर किसी तरह क्रोध नहीं करना चाहिये । विप्रवर ! मैंने तो तुमपर और कर्ण, कृप, द्रोण, शल्य तथा शकुनिपर ही इस महान् कार्यका भार दे रक्खा है ।

इस प्रकार राजाके मनानेसे अश्वत्थामाका क्रोध शान्त हो गया । कृपाचार्यका स्वभाव भी बड़ा कोमल था, वे शीघ्र ही सदय होकर बोले—'सूतपुत्र ! हम तो तेरे अपराध-को क्षमा कर देते हैं, परन्तु तेरे बढ़े हुए घमंडका अर्जुन अवश्य नाश करेगा ।'

अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय और अश्वत्थामाका दुर्योधनके साथ संवाद तथा पाञ्चालोंके साथ घोर युद्ध

तदनन्तर पाण्डव और पाञ्चाल वीर कर्णकी निन्दा करते हुए चारों ओरसे एक साथ वहाँ आ पहुँचे । जब कर्णपर उनकी दृष्टि पड़ी, तो वे उच्च स्वरसे गर्जना करते हुए बोले—'यह पाण्डवोंका कट्टर दुश्मन है, सदाका पापी है । यही सारे अनर्थोंकी जड़ है, क्योंकि यह दुर्योधनकी हाँ-में-हाँ मिलाया करता है । मार डालो इसे ।' ऐसा कहते हुए सभी क्षत्रिय वीर कर्णका वध करनेके लिये उसके ऊपर टूट पड़े और बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उसे आच्छादित करने लगे । उन सब महारथियोंको अपने ऊपर धावा करते देख महाबली कर्णने सायकोंकी मारसे पाण्डव-सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया । उस समय हम सब लोगोंने कर्णकी अद्भुत फुर्ती देखी । महारथी कर्णने राजाओंके बाणसमूहों-

का निवारण करके उनके रथों और घोड़ोंपर अपने नामवाले बाणोंका प्रहार किया। उससे व्याकुल होकर वे इधर-उधर भागने लगे। कर्णके सायकोंसे आहत होकर झुंड-के-झुंड घोड़े, हाथी और रथी मरते दिखायी देते थे।

कर्णकी उस फुर्तीको महाबली अर्जुन नहीं सह सके। उन्होंने उसके ऊपर तीन सौ तीखे बाण मारे। फिर उसके बायें हाथको एक बाणसे बींध डाला। इससे उसके हाथका धनुष छूटकर गिर गया। किन्तु आधे ही निमेषमें उसने पुनः वह धनुष उठा लिया और अर्जुनको बाणसमूहोंसे ढक दिया। किन्तु अर्जुनने हँसते-हँसते उस बाणवर्षाका संहार कर डाला। वे दोनों एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर सायकोंकी वृष्टि करने लगे। इतनेहीमें अर्जुनने कर्णका पराक्रम देखकर बड़ी शीघ्रतासे उसके धनुषको बीचहीमें काट डाला। फिर चार भल्ल मारकर उसके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। इसके बाद सारथिका भी सिर उतार लिया। तत्पश्चात् चार बाणोंसे उसके शरीरको बींध डाला। उन बाणोंसे कर्णको बड़ी पीडा हुई और वह अपने अश्वहीन रथसे कूदकर कृपाचार्यके रथपर चढ़ गया। उस समय उसके सब अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे, इससे वह कण्टकोंसे भरी हुई साहीके समान जान पड़ता था। कर्णको परास्त हुआ देख आपके योद्धा धनञ्जयके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो सब दिशाओंमें भाग चले।

उन्हें भागते देख दुर्योधन सान्त्वना देते हुए लौटाने लगा। उसने कहा—'शूरवीरो! तुमलोग श्रेष्ठ क्षत्रिय हो, तुम्हारे लिये भागना शोभाकी बात नहीं है। यह देखो, मैं स्वयं अर्जुनका वध करनेके लिये चल रहा हूँ। पाञ्चालों और सोमकोंके साथ अर्जुनको मैं स्वयं ही मारूँगा।' ऐसा कहकर क्रोधमें भरा हुआ दुर्योधन बहुत बड़ी सेनाके साथ अर्जुनकी ओर बढ़ा। यह देख कृपाचार्यने अश्वत्थामाके पास आकर कहा—'आज यह राजा दुर्योधन अमर्षमें भरा हुआ है, क्रोधसे अपनी विचारशक्ति खो बैठा है। जैसे पतंगे जलनेके लिये ही दीपकके पास जाते हैं, उसी प्रकार अपना सर्वनाश करनेके लिये यह अर्जुनसे लड़ना चाहता है। हमलोगोंके सामने ही पार्थसे भिड़कर यह अपना प्राण खो बैठे, इसके पहले ही तुम जाकर इसे रोक लो।'

अपने मामाके इस प्रकार कहनेपर अश्वत्थामा दुर्योधनके पास जाकर बोला—'गान्धारीनन्दन! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, मेरे जीते-जी मेरी अवहेलना करके तुम्हें अकेले युद्ध नहीं करना चाहिये। तुम अर्जुनको जीतनेके विषयमें सन्देह न करो। चुपचाप खड़े रहो, मैं जाकर अर्जुनको रोकता हूँ।'

दुर्योधन बोला—विप्रवर! आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं। और तुम भी सदा उनकी ओरसे लापरवाही दिखाते हो। मैं नहीं जानता तुम्हारा पराक्रम क्यों मन्द हो गया है, शायद मेरा दुर्भाग्य हो अथवा तुम धर्मराज या द्रौपदीका प्रिय करना चाहते होगे। अश्वत्थामा! मुझपर प्रसन्न हो जाओ और मेरे दुश्मनोंका नाश करो। तुम पाञ्चालों और सोमकोंको उनके अनुचरों-सहित मार डालो। इनके बाद जो बाकी रह जायँगे, उन्हें तुम्हारे संरक्षणमें रहकर मैं स्वयं मौतके घाट उतारूँगा। पहले पाञ्चालों, सोमकों और केकयोंको जाकर रोको; क्योंकि ये लोग अर्जुनसे सुरक्षित होकर मेरी सेनाका सफाया किये डालते हैं। पहले करो या पीछे, यह काम तुम्हारे किये ही हो सकता है। अतः पाञ्चालोंको तुम उनके सेवकोंसहित मार डालो। तुम इस जगत्को पाञ्चालरहित कर दोगे—ऐसा सिद्ध पुरुषोंने कहा है। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। इन्द्रसहित देवता भी तुम्हारे बाणोंका प्रहार नहीं सह सकते; फिर पाण्डवों और पाञ्चालोंकी तो बात ही क्या है? वीरवर! देखो, यह मेरी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भाग रही है; अतः शीघ्र ही जाओ, जाओ! देर नहीं होनी चाहिये।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने इस प्रकार उत्तर दिया—'महाबाहो! तुमने जो कुछ कहा है, सब ठीक है; मुझे और मेरे पिताजीको पाण्डव बड़े प्यारे हैं, तथा वे भी हम दोनोंपर प्रेम रखते हैं। किन्तु यह बात युद्धके समय लागू नहीं होती। उस समय तो हमलोग प्राणोंका मोह छोड़ निडर होकर पूरी शक्तिसे युद्ध करते हैं। किन्तु तुम तो महान् लोभी और कपटी हो, सबपर सन्देह करनेका तुम्हारा स्वभाव हो गया है। अपने ही घमंडमें फूले रहते हो; यही कारण है कि हमलोगोंपर तुम्हारा विश्वास नहीं होता। खैर, मैं तो अब जाता हूँ; तुम्हारे हितके लिये जीवनका लोभ छोड़कर प्रयत्नपूर्वक शत्रुओंसे युद्ध करता रहूँगा और उनके मुख्य-मुख्य वीरोंको चुन-चुनकर मारूँगा। पाञ्चालों और सोमकोंका वध तो करूँगा ही, उन्हें मरा देख जो लोग मेरे साथ लड़ने आवेंगे, उन्हें भी यमलोक भेज दूँगा। मेरी भुजाओंकी पहुँचके भीतर जो आ जायँगे, वे छूटकर नहीं जा सकते।'

इस प्रकार आपके पुत्रसे कहकर अश्वत्थामा समस्त धनुर्धारियोंको भगाता हुआ युद्ध करनेके लिये शत्रुओंके सामने जा डटा। उसने केकय और पाञ्चाल राजाओंसे पुकारकर कहा—'महारथियो! तुम सब लोग एक साथ मुझपर प्रहार करो।' यह सुनकर वे सभी वीर अश्वत्थामापर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। अश्वत्थामाने उनके अस्त्रोंका निवारण करके पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके सामने ही उनमेंसे दस वीरोंको मार गिराया। अश्वत्थामाकी मार पड़नेसे पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय वहाँसे हटकर इधर-उधर सब दिशाओंमें भागने लगे। तब धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामापर धावा किया और उसे मर्मभेदी सायकोंसे बींध डाला। अधिक घायल होनेसे अश्वत्थामा क्रोधमें भर गया और हाथमें बाण लेकर बोला—'धृष्टद्युम्न! स्थिर होकर क्षणभर और प्रतीक्षा कर लो, अभी थोड़ी देरमें तुम्हें तीखे भल्लोंसे मारकर यमलोक पठाता हूँ।' यह कहकर उसने धृष्टद्युम्नको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब पाञ्चाल-राजकुमारने अश्वत्थामाको डाँटकर कहा—'अरे ब्राह्मण! क्या तू मेरी प्रतिज्ञा तथा मेरे उत्पन्न होनेका प्रयोजन नहीं जानता? आज रातमें सवेरा होनेसे पहले ही तेरे पिताको मारकर फिर तेरा वध करूँगा। जो ब्राह्मण ब्राह्मणोचित वृत्तिका त्याग करके क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहता है, वह सब लोगोंका वध्य है।'

धृष्टद्युम्नके कहे हुए इस कठोर वचनको सुनकर अश्वत्थामा प्रचण्ड कोपसे जल उठा और 'खड़ा रह! खड़ा रह!' ऐसा कहते हुए उसने बाणोंकी वर्षासे उसे ढक दिया। उधरसे धृष्टद्युम्न भी अश्वत्थामापर नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार करने लगा। उन दोनोंकी बाणवर्षासे आकाश और दिशाएँ भर गयीं, घोर अन्धकार छा गया; अतः वे एक-दूसरेकी दृष्टिसे ओझल होकर ही लड़ने लगे। दोनोंके ही युद्धका ढंग बड़ा अद्भुत तथा सुन्दर था, दोनोंकी फुर्ती देखने ही योग्य थी। उस समय रणभूमिमें खड़े हुए हजारों योद्धा उन दोनोंकी प्रशंसा कर रहे थे। उस युद्धमें अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नके धनुष, ध्वजा तथा छत्र काट डाले और पार्श्वरक्षक, सारथि तथा चारों घोड़ोंको भी मार गिराया। इसके बाद अपने तीखे बाणोंसे मारकर उसने सैकड़ों और हजारों पाञ्चालोंको भगा दिया। उसके इस पराक्रमको देखकर पाण्डव-सेना व्यथित हो उठी। उसने सौ बाणोंसे सौ पाञ्चालोंका नाश करके तीन तीखे बाण छोड़कर तीन श्रेष्ठ महारथियोंके प्राण ले लिये। फिर धृष्टद्युम्न और अर्जुनके देखते-देखते वहाँ खड़े हुए बहुसंख्यक पाञ्चालोंका संहार कर डाला। उनके रथ और ध्वजाएँ चूर-चूर हो गयीं। अब तो सृञ्जय और पाञ्चालोंमें भगदड़ पड़ गयी। इस प्रकार महारथी अश्वत्थामा संग्राममें शत्रुओंको जीतकर बड़े जोरसे गर्जना करने लगा। उस समय कौरवोंने उसकी खूब प्रशंसा की।

कौरव-सेनाका संहार, सोमदत्तका वध, युधिष्ठिरका पराक्रम और दोनों सेनाओंमें दीपकका प्रकाश

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर और भीमसेनने अश्वत्थामाको घेर लिया। इतनेहीमें राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यके साथ पाण्डवोंपर चढ़ आया, फिर उनमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। उस समय भीमसेनने कुपित होकर अम्बष्ठ, मालवा, बंगाल, शिबि तथा त्रिगर्त देशके वीरोंको यमलोक भेज दिया। फिर अभीषाह, शूरसेन तथा अन्यान्य रणोन्मत्त क्षत्रियोंका वध करके उनके खूनसे पृथ्वीको भिगोकर कीचड़मयी कर दिया। दूसरी ओरसे अर्जुनने भी मद्र, मालवा तथा पर्वतीय प्रदेशके योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मौतके घाट उतारा; इधर द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रसे पाण्डव-योद्धाओंका संहार करने लगे। उनकी मारसे पीडित होकर पाञ्चाल वीर अर्जुन और भीमके सामने ही भागने लगे। यह देख वे दोनों भाई सहसा द्रोणपर चढ़ आये। अर्जुन दक्षिण बगलमें थे और भीमसेन उत्तरमें। दोनों ही आचार्य द्रोणपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगे। यह देखकर सृञ्जय, पाञ्चाल, मत्स्य और सोमक क्षत्रिय उन दोनोंकी सहायतामें आ पहुँचे। इसी प्रकार आपके पुत्रके महारथी योद्धा भी बहुत बड़ी सेनाके साथ

द्रोणाचार्यके रथके पास आ गये । कौरव-सेनापर पुनः अर्जुनकी मार पड़ने लगी । एक तो अँधेरेके कारण कुछ सूझता नहीं था, दूसरे नींदसे सब लोग व्याकुल थे; इस कारण आपकी सेनाका भयङ्कर संहार हो रहा था । बहुत-से राजालोग अपने वाहनोंको वहीं छोड़ भयभीत होकर चारों ओर भाग गये ।

दूसरी ओर जब सात्यकिने देखा कि सोमदत्त अपना महान् धनुष टंकार रहे हैं, तो उसने सारथिसे कहा—'सूत! मुझे सोमदत्तके पास ले चल । अपने बलवान् शत्रु सोमदत्तको मारे बिना अब मैं युद्धसे नहीं लौटूँगा ।' यह सुनकर सारथिने घोड़े बढ़ाये और सात्यकिको सोमदत्तके पास पहुँचा दिया । उसे आते देख सोमदत्त भी उसका सामना करनेको आगे बढ़े । उन्होंने सात्यकिकी छातीमें साठ बाण मारकर उसे घायल कर दिया; फिर सात्यकिने भी तीक्ष्ण सायकोंसे सोमदत्तको बींध डाला । दोनों ही दोनोंके बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं लोहूलुहान हो खिले हुए टेसूके वृक्षके समान शोभा पाने लगे । इतनेहीमें महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाण मारकर सात्यकिके महान् धनुषको काट दिया । फिर उसे पच्चीस बाणोंसे घायल करके शीघ्रतापूर्वक दस बाण और मारे । तबतक सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर तुरंत ही सोमदत्तको पाँच बाणोंसे बींध डाला । फिर उसने मुसकराते हुए एक भल्ल मारकर उनकी सोनेकी ध्वजा काट दी । तब सोमदत्तने पुनः सात्यकिको पच्चीस बाण मारे । इससे सात्यकि कुपित हो उठा और उसने एक तीखे क्षुरप्रसे सोमदत्तका धनुष काट डाला । महारथी सोमदत्तने भी दूसरा धनुष लेकर सायकोंकी वर्षासे सात्यकिको आच्छादित कर दिया । तब सात्यकिकी ओरसे भीमसेनने भी सोमदत्तपर दस बाणोंका प्रहार किया और सोमदत्तने भी भीमको तीखे बाणोंसे घायल किया । इसके बाद भीमसेनने सोमदत्तकी छातीमें एक परिघका वार किया; किन्तु सोमदत्तने हँसते हुए उसके दो टुकड़े कर डाले । तदनन्तर सात्यकिने चार बाण मारकर उनके चारों घोड़ोंको प्रेतराजके समीप भेज दिया । फिर एक भल्लसे सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया । इसके पश्चात् सात्यकिने प्रज्वलित अग्निके समान एक भयङ्कर बाण छोड़ा; वह सोमदत्तकी छातीमें धँस गया और वे रथसे गिरकर मर गये ।

सोमदत्तको मारा गया देख कौरव महारथी बाणोंकी बौछार करते हुए सात्यकिपर टूट पड़े । यह देखकर राजा युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव प्रभद्रक वीरोंके साथ बहुत बड़ी सेना लिये द्रोणाचार्यके सैन्यकी ओर बढ़ आये । उन्होंने आचार्यके देखते-देखते सायकोंकी मारसे आपकी सेनाको भगा दिया । यह देख आचार्य क्रोधसे लाल आँखें किये युधिष्ठिरपर टूट पड़े और उनकी छातीपर उन्होंने सात बाण मारे । तब युधिष्ठिरने भी पाँच बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींध डाला । इसके बाद आचार्यने युधिष्ठिरकी ध्वजा और धनुषको काट दिया । युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लिया और घोड़े, सारथि, ध्वजा एवं रथसहित आचार्य द्रोणपर लगातार एक हजार बाणोंकी वर्षा की । यह एक अद्भुत बात हुई । उनके बाणोंके आघातसे पीडित एवं व्यथित होकर आचार्य दो घड़ीतक रथकी बैठकमें मूर्छित भावसे पड़े रहे; फिर जब होश हुआ तो बड़े क्रोधमें आकर उन्होंने युधिष्ठिरपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । किन्तु युधिष्ठिर इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने अपने अस्त्रसे आचार्यके अस्त्रको शान्त कर दिया और उनके धनुषको भी काट डाला । द्रोणने दूसरा धनुष उठाया, किन्तु युधिष्ठिरने एक तीक्ष्ण भल्ल मारकर उसे भी काट दिया ।

इसी बीचमें भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा—'महाबाहो! मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनिये । द्रोणाचार्यसे युद्ध न कीजिये । वे युद्धमें सदा आपको पकड़नेका उद्योग

करते हैं, अतः उनके साथ आपका युद्ध होना मैं उचित नहीं समझता। जो इनका नाश करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है, वह धृष्टद्युम्न ही इनका वध करेगा। आप गुरुसे युद्ध करना छोड़ जहाँ राजा दुर्योधन है, वहाँ जाइये। राजाको राजाके साथ ही लड़ाई करनी चाहिये। अतः आप हाथी, घोड़े और रथकी सेना लेकर वहाँ ही जाइये, जहाँ मेरी सहायतासे भीमसेन और अर्जुन कौरवोंसे युद्ध कर रहे हैं।' भगवान्‌की बात सुनकर धर्मराजने थोड़ी देरतक मन-ही-मन विचार किया; फिर तुरंत ही वे जहाँ भीमसेन थे, उधरको चल दिये। इधर द्रोण भी उस रातमें पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सेनाका संहार करने लगे।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवोंने जब हमारी सेनाका मन्थन कर डाला, सभी सैनिकोंके तेज क्षीण कर दिये और सब लोग उस घोर अन्धकारमें डूब रहे थे, उस समय तुमलोगोंने क्या सोचा? दोनों सेनाओंको प्रकाश कैसे मिला?

सञ्जयने कहा—महाराज! दुर्योधनने सेनापतियोंको आज्ञा देकर जो सेना मरनेसे बच गयी थी, उसे व्यूहाकारमें खड़ी करवाया। उसमें सबसे आगे थे द्रोण और पीछे थे शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा शकुनि। और स्वयं राजा दुर्योधन चारों ओर घूमकर उस रात्रिमें सेनाकी रक्षा कर रहा था। उसने पैदल सैनिकोंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग हथियार रख दो और अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें उठा लो। सैनिकोंने प्रसन्नतापूर्वक इस आज्ञाका पालन किया। कौरवोंने प्रत्येक रथके पास पाँच, हर एक हाथीके पास तीन और एक-एक घोड़ेके पास एक-एक प्रदीप रक्खा। पैदल सिपाही हाथमें तेल और मशाल लेकर दीपकोंको जलाया करते थे। इस प्रकार क्षणभरमें ही आपकी सारी सेनामें उजाला हो गया।

हमारी सेनाको इस प्रकार दीपकोंके प्रकाशसे जगमगाते देख पाण्डवोंने भी अपने पैदल सैनिकोंको तुरंत ही दीप जलानेकी आज्ञा दी। उन्होंने प्रत्येक रथके आगे दस-दस और प्रत्येक हाथीके सामने सात-सात दीपकोंका प्रबन्ध किया। दो दीपक घोड़ोंकी पीठपर, दो बगलमें, एक रथकी ध्वजापर और दो रथके पिछले भागमें जलाये गये थे। इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाके आगे-पीछे और अगल-बगलमें तथा बीच-बीचमें भी पैदल सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर घूमते रहते थे। यह प्रबन्ध दोनों ही सेनाओंमें था। दोनों ओरके दीपकोंका प्रकाश पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गया। स्वर्गतक फैले हुए उस महान् आलोकसे युद्धकी सूचना पाकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध और अप्सराएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। इधर युद्धमें मरे हुए वीर सीधे स्वर्गकी ओर चढ़ रहे थे। इस प्रकार स्वर्गवासियोंके आने-जानेसे वह रणभूमि देवलोकके समान जान पड़ती थी।

दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन, कृतवर्माका पराक्रम, सात्यकिद्वारा भूरिका वध और घटोत्कचके साथ अश्वत्थामाका युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! जो स्थान पहले धूल और अन्धकारसे आच्छन्न हो रहा था, वह दीपकोंके प्रकाशसे आलोकित हो उठा। रत्नजटित सोनेकी दीवटोंपर सुगन्धित तेलसे भरे हुए हजारों दीपक जगमगा रहे थे। जैसे असंख्य नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है, उसी प्रकार उन दीपमालाओंसे उस रणभूमिकी शोभा हो रही थी। उस समय हाथीसवार हाथीसवारोंसे और घुड़सवार घुड़सवारोंसे भिड़ गये। रथियोंका रथियोंके साथ मुकाबला होने लगा। सेनाका भयङ्कर संहार आरम्भ हो गया। अर्जुन बड़ी फुर्तीके साथ राजाओंका वध करते हुए कौरव-सेनाका विनाश करने लगे।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुन क्रोधमें भरकर दुर्योधनकी सेनामें घुसे, उस समय उसने क्या करनेका विचार किया? कौन-कौन वीर अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े? आचार्य द्रोण जब युद्ध कर रहे थे, उस समय कौन-कौन उनके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे? कौन उनके आगे थे? और कौन दायें-बायें पहियोंकी रक्षामें नियुक्त थे? ये सब बातें मुझे बताओ।

सञ्जयने कहा—महाराज! उस रात्रिमें दुर्योधनने आचार्य द्रोणकी सलाह लेकर अपने भाइयों तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्द्धर्ष, दीर्घबाहु तथा उन सबके अनुचरोंसे कहा—'तुम सब लोग पूर्ण सावधान रहकर पराक्रम करते हुए पीछे रहकर आचार्य द्रोणकी रक्षा करो। कृतवर्मा दक्षिण पहियेकी और शल्य उत्तरवाले पहियेकी रक्षा करें।' इसके बाद त्रिगर्तदेशके महारथी वीरोंमेंसे जो मरनेसे बचे हुए थे, उन सबको आपके पुत्रने आचार्यके आगे रहनेकी आज्ञा दी और कहा—'वीरो! आचार्य द्रोण बड़ी सावधान

साथ युद्ध कर रहे हैं; पाण्डव भी बड़ी तत्परताके साथ उनका सामना करते हैं। अतः अब तुमलोग सावधान रहकर आचार्यकी महारथी धृष्टद्युम्नसे रक्षा करो। पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्नके सिवा और कोई योद्धा मुझे ऐसा नहीं दिखायी देता, जो द्रोणसे लोहा ले सके। अतः इस समय आचार्यकी रक्षा ही हमारे लिये सबसे बढ़कर काम है। सुरक्षित रहनेपर आचार्य अवश्य ही पाण्डवों, सृञ्जयों और सोमकोंका नाश कर डालेंगे; फिर अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न-को नष्ट कर देगा, कर्ण अर्जुनको परास्त करेगा और युद्धकी दीक्षा लेकर मैं भीमसेनपर विजय पाऊँगा। इनके मरनेपर बाकी पाण्डव तेजहीन हो जायँगे, फिर तो उन्हें मेरे सभी योद्धा नष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार सुदीर्घ कालतकके लिये मेरी विजयकी सम्भावना स्पष्ट ही दिखायी दे रही है।'

यह कहकर दुर्योधनने सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी। फिर तो परस्पर विजय पानेकी इच्छासे दोनों सेनाओंमें घोर संग्राम होने लगा। उस समय अर्जुन कौरव-सेनाको और कौरव अर्जुनको भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंसे पीडा देने लगे। रात्रिका वह युद्ध इतना भयानक था कि वैसा उसके पहले न कभी देखा गया और न सुना ही गया था। उधर राजा युधिष्ठिरने पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंको आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग द्रोणका वध करनेके लिये उनपर एकबारगी टूट पड़ो।' राजाकी आज्ञा पाकर वे पाञ्चाल और सृञ्जय आदि क्षत्रिय भैरव-नाद करते हुए द्रोणपर चढ़ आये। उस समय कृतवर्माने युधिष्ठिरको और भूरिने सात्यकि-को रोका। सहदेवका कर्णने और भीमसेनका दुर्योधनने सामना किया। शकुनिने नकुलको आगे बढ़नेसे रोका। शिखण्डीका कृपाचार्यने और प्रतिविन्ध्यका दुःशासनने मुकाबला किया। सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाले राक्षस घटोत्कचको अश्वत्थामाने रोका। इसी प्रकार द्रोणको पकड़ने-के लिये आते हुए महारथी द्रुपदका वृषसेनने सामना किया। मद्रराज शल्यने विराटका वारण किया। नकुलनन्दन शता-नीक भी द्रोणकी ओर बढ़ा आ रहा था, उसे चित्रसेनने बाण मारकर रोक दिया। महारथी अर्जुनका राक्षसराज अलम्बुषने मुकाबला किया।

तदनन्तर आचार्य द्रोणने शत्रुसेनाका संहार आरम्भ किया, किन्तु पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने वहाँ पहुँचकर बाधा उपस्थित की। तथा पाण्डवोंकी ओरसे जो दूसरे-दूसरे महारथी लड़नेको आये, उन्हें आपके महारथियोंने अपने पराक्रमसे रोक दिया। कृतवर्माने जब युधिष्ठिरको रोका तो उन्होंने उसे पहले पाँच, फिर बीस बाणोंसे मारकर बींध दिया। इससे कृतवर्मा क्रोधमें भर गया और एक भल्ल मारकर उसने धर्मराजका धनुष काट दिया, फिर सात बाणोंसे उन्हें घायल किया। युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कृतवर्माकी भुजाओं तथा छातीमें दस बाण मारे। उनकी चोटसे वह काँप उठा और रोषमें भरकर उसने सात बाणोंसे उन्हें खूब घायल किया। तब युधिष्ठिरने उसके धनुष और दस्ताने काट गिराये, फिर उसके ऊपर पाँच तीखे भल्लोंसे प्रहार किया। वे भल्ल उसका बहुमूल्य कवच छेदकर पृथ्वीमें समा गये। कृतवर्माने पलक मारते ही दूसरा धनुष हाथमें लिया और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको साठ तथा उनके सारथिको नौ बाणों-से बींध डाला। यह देख युधिष्ठिरने उसके ऊपर शक्ति छोड़ी। वह शक्ति कृतवर्माकी दाहिनी बाँह छेदकर धरतीमें समा गयी। तब कृतवर्माने आधे ही निमेषमें युधिष्ठिरके घोड़ों और सारथिको मारकर उन्हें रथहीन कर दिया। अब उन्होंने ढाल और तलवार हाथमें ली, किन्तु कृतवर्माने उन्हें भी काट गिराया। फिर उसने सौ बाण मारकर उनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार जब धनुष कटा, रथ बेकार हो गया, कवच भी छिन्न-भिन्न हुआ, तो उसके बाणोंके प्रहारसे पीडित होकर युधिष्ठिर वहाँसे भाग गये। तब कृतवर्मा द्रोणाचार्यके रथके पहियेकी रक्षा करने लगा।

महाराज! भूरिने महारथी सात्यकिका सामना किया। इससे सात्यकिने क्रोधमें भरकर पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे उसकी छातीमें घाव कर दिया, उससे रक्तकी धारा बहने लगी। तब भूरिने भी सात्यकिकी दोनों भुजाओंके बीच दस बाण मारे। यह देख सात्यकिने हँसते-हँसते ही भूरिके धनुषको काट दिया, फिर उसकी छातीमें नौ बाण मारकर उसे घायल कर डाला। भूरिने भी दूसरा धनुष लेकर तुरंत बदला लिया, उसने तीन बाणोंसे सात्यकिको घायल करके एक भल्ल मारकर उसका धनुष भी काट दिया। अब तो सात्यकिके क्रोधकी सीमा न रही, उसने एक प्रचण्ड वेगवाली शक्तिसे पुनः भूरिकी छातीपर प्रहार किया। उस शक्तिने उसके अङ्गोंको चीर डाला और वह प्राणहीन होकर रथसे नीचे गिर पड़ा।

उसे मारा गया देख महारथी अश्वत्थामाने बड़े वेगसे सात्यकिपर धावा किया और उसके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। यह देख महारथी घटोत्कच घोर गर्जना करता

मद्रराज शल्यने बाणवर्षासे ढक दिया। उन्होंने बड़ी फुर्तीके साथ राजा विराटको सौ बाण मारे। यह देख विराटने भी तुरंत बदला लिया; उन्होंने पहले नौ, फिर तिहत्तर, इसके बाद सौ बाण मारकर शल्यको घायल कर दिया। फिर मद्रराजने उनके रथके चारों घोड़ोंको मारकर दो बाणोंसे सारथि और ध्वजाको भी काट गिराया। तब राजा विराट रथसे कूद पड़े और धनुष चढ़ाकर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। अपने भाईको रथहीन देख शतानीक रथ लेकर उनकी सहायतामें आ पहुँचा। उसे आते देख मद्रराजने बहुत-से बाण मारकर यमलोकमें पहुँचा दिया।

अपने वीर बन्धुके मारे जानेपर महारथी विराट तुरंत ही उसके रथमें बैठ गये और क्रोधसे आँखें फाड़कर ऐसी बाणवर्षा करने लगे, जिससे शल्यका रथ आच्छादित हो गया। तब मद्रराजने सेनापति विराटकी छातीमें बड़े जोरसे बाण मारा। वे उसकी चोट नहीं सँभाल सके, मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़े। यह देख उनका सारथि उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। इधर शल्य सैकड़ों बाण बरसाकर विराटकी सेनाका संहार करने लगे, इससे वह वाहिनी उस रात्रिकालमें भागने लगी। उसे भागते देख भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन, जहाँ राजा शल्य थे, उधर ही चल पड़े; किन्तु राक्षस अलम्बुषने वहाँ पहुँचकर उन्हें बीचमें ही रोक लिया। यह देख अर्जुनने चार तीखे बाण मारकर उसे बींध डाला। तब अलम्बुष भयभीत होकर भाग गया। उसे परास्त कर अर्जुन तुरंत द्रोणके निकट पहुँचे और पैदल, हाथीसवार तथा घुड़सवारोंपर बाणसमूहोंकी वृष्टि करने लगे। उनकी मारसे कौरव सैनिक आँधीमें उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति धराशायी होने लगे। महाराज! अर्जुनने जब इस प्रकार संहार आरम्भ किया, तो आपके पुत्रकी सम्पूर्ण सेनामें भगदड़ मच गयी।

एक ओरसे नकुलपुत्र शतानीक अपनी शराग्निसे कौरव-सेनाको भस्म करता हुआ आ रहा था, उसे आपके पुत्र चित्रसेनने रोका। शतानीकने चित्रसेनको पाँच बाण मारे। चित्रसेनने भी शतानीकको दस बाण मारकर बदला चुकाया। तब नकुलपुत्रने चित्रसेनकी छातीमें अत्यन्त तीखे नौ बाण मारकर उसके शरीरका कवच काट गिराया। फिर अनेकों तीक्ष्ण सायकोंसे उसके रथकी ध्वजा और धनुषको भी काट डाला। चित्रसेनने दूसरा धनुष हाथमें लेकर शतानीकको नौ बाण मारे। महाबली शतानीकने भी उसके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला। फिर एक अर्धचन्द्राकार बाण मार उसके रत्नमण्डित धनुषको भी काट दिया। धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मारे गये—इससे रथहीन हुआ चित्रसेन तुरंत भागकर कृतवर्माके रथपर जा चढ़ा।

द्रुपद-वृषसेन, प्रतिविन्ध्य-दुःशासन, नकुल-शकुनि और शिखण्डी-कृपाचार्यका युद्ध तथा धृष्टद्युम्न, सात्यकि एवं अर्जुनका पराक्रम

सञ्जय कहते हैं—द्रोणाचार्यका मुकाबला करनेके लिये राजा द्रुपद अपनी सेनाके साथ बढ़े आ रहे थे। उस समय वृषसेन सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके सामने आया। यह देख द्रुपदने कर्णनन्दनकी भुजाओं और छातीमें साठ बाण मारे। वृषसेन क्रोधमें भर गया और उसने रथपर बैठे हुए राजा द्रुपदकी छातीमें अनेकों तीखे बाण मारे। इस प्रकार दोनोंने दोनोंके शरीरमें घाव कर दिये थे, दोनोंके ही अङ्गोंमें बाण धँसे दिखायी देते थे। दोनों खूनसे लथपथ हो रहे थे। इसी बीचमें राजा द्रुपदने एक भल्ल मारकर वृषसेनके धनुषको काट दिया। वृषसेनने दूसरा सुदृढ धनुष हाथमें लिया और उसपर सन्धान करके द्रुपदकी ओरको लक्ष्य कर एक भल्ल छोड़ा। वह भल्ल द्रुपदकी छाती छेदकर पृथ्वीमें समा गया और उससे आहत हुए राजाको मूर्छा आ गयी। यह देख सारथि अपने कर्तव्यका विचार करके उन्हें वहाँसे दूर हटा ले गया। फिर तो उस भयङ्कर रात्रिमें द्रुपदकी सेना रणभूमिसे भाग चली। वृषसेनके डरसे सोमक क्षत्रिय भी वहाँ नहीं ठहर सके। प्रतापी वृषसेन सोमकोंके अनेकों शूरवीर महारथियोंको परास्त करके तुरंत ही राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचा।

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्य क्रोधमें भरकर कौरव-सेनाको दग्ध कर रहा था, उसका सामना करनेको आपका पुत्र महारथी दुःशासन पहुँचा। उसने प्रतिविन्ध्यके ललाटमें तीन बाण मारकर उसे अच्छी तरह घायल किया। प्रतिविन्ध्यने भी पहले नौ बाण मारकर फिर सात बाणोंसे दुःशासनको बींध डाला। तब दुःशासनने अपने उग्र सायकोंसे प्रतिविन्ध्यके घोड़ोंको मारकर एक भल्लसे उसके सारथिको भी यमलोक पहुँचाया। इसके बाद उसके रथके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर एक क्षुरप्रसे उसका धनुष भी काट डाला।

उसने अपने अस्त्रोंसे सबके बाणोंका निवारण करके एक बाणसे वृषसेनकी छाती छेद डाली । उस चोटसे मूर्छित होकर वृषसेन धनुष छोड़ रथपर गिर पड़ा । फिर तो कर्ण सात्यकिको अपने सायकोंसे पीडित करने लगा । इसी प्रकार सात्यकि भी बारंबार कर्णको बींधने लगा । इधर आपके योद्धा सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे उसपर तीखे बाणोंकी वृष्टि करने लगे । यह देख उसने उग्र बाणोंसे शत्रुओंके शीश काटने आरम्भ किये । जब वह आपके वीरोंका वध करने लगा, उस समय उनका करुण-क्रन्दन प्रेतोंकी चीत्कारके समान सुनायी पड़ता था। उस आर्त कोलाहलसे सारी रणभूमि गूँज रही थी, जिससे वह रात बड़ी डरावनी मालूम होती थी । दुर्योधनने देखा सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर मेरी सम्पूर्ण सेना इधर-उधर भाग रही है । उसने बड़े जोरसे आर्तनाद भी सुना । तब सारथिसे कहा—'जहाँ यह कोलाहल हो रहा है, वहीं मेरा रथ ले चल ।' उसकी आज्ञा पाते ही सारथिने घोड़ोंको सात्यकिके रथकी ओर हाँक दिया । ज्यों ही दुर्योधन निकट पहुँचा, सात्यकिने बारह बाणोंसे उसे बींध डाला । दुर्योधनने भी कुपित होकर सात्यकिको दस बाणोंसे घायल किया । तब सात्यकिने आपके पुत्रकी छातीमें अस्सी बाण मारे, फिर उसके घोड़ोंको यमलोक पठाया। तत्पश्चात् तुरंत ही सारथिको भी मार गिराया। इसके बाद एक भल्ल मारकर उसके धनुषको भी काट डाला। रथ और धनुषसे हीन हो जानेपर दुर्योधन शीघ्र ही कृतवर्माके रथपर चढ़ गया। इस प्रकार जब दुर्योधनने परास्त होकर पीठ दिखा दी, तो सात्यकि आधी रातमें अपने बाणोंसे पुनः आपकी सेनाको खदेड़ने लगा ।

दूसरी ओर शकुनिने हजारों रथी, हाथीसवार और घुड़सवारोंकी सेनासे अर्जुनके चारों ओर घेरा डाल दिया और उनपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । वे सभी क्षत्रिय योद्धा कालकी प्रेरणासे महान् अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करते हुए अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे । अर्जुनने महान् संहार मचाते हुए उन हजारों रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया । तब शकुनिने हँसते-हँसते अर्जुनको तीखे बाणोंसे बींध डाला और सौ बाणोंसे उनके महान् रथकी प्रगति भी रोक दी । अर्जुनने भी शकुनिको बीस तथा अन्य महारथियोंको तीन-तीन बाण मारे । फिर शकुनिका धनुष काटकर उसके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। तब वह उस रथसे उतरकर उलूकके रथपर जा चढ़ा । एक ही रथपर बैठे हुए वे दोनों महारथी पिता-पुत्र अर्जुनपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे । अर्जुन भी उन दोनोंको तीखे बाणोंसे घायल कर सैकड़ों और हजारों सायकोंकी मारसे आपकी सेनाको खदेड़ने लगे । उस समय सब सेना तितर-बितर होकर चारों दिशाओंमें भागने लगी । इस प्रकार उस युद्धमें आपकी सेनापर विजय पाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन बहुत प्रसन्न हो शंख बजाने लगे ।

उधर धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे आचार्य द्रोणको बींध डाला और उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी । द्रोणने उस धनुषको रख दिया और दूसरा हाथमें लेकर धृष्टद्युम्नको सात तथा उसके सारथिको पाँच बाण मारे । किन्तु धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंसे उन सब अस्त्रोंका निवारण कर दिया और कौरव-सेनाका संहार करने लगा । देखते-देखते रणभूमिमें रुधिरकी नदी बहने लगी । इस प्रकार आपकी सेनाका पराजय करके धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीने अपने-अपने शंख बजाये ।
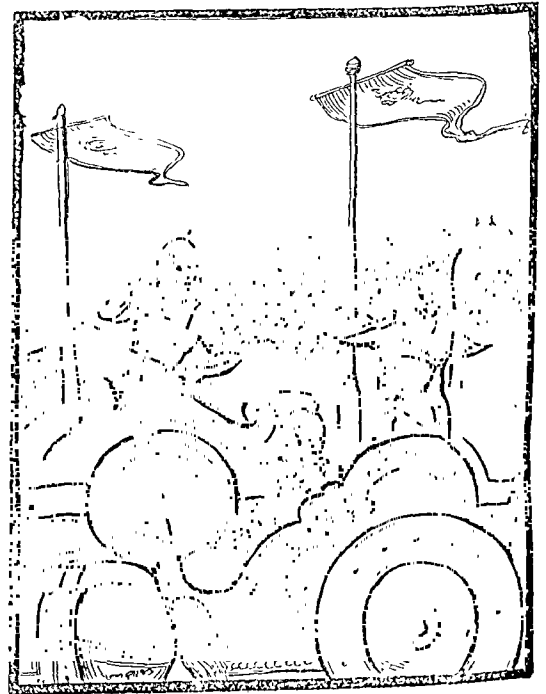
अपने बाणोंसे पीडित करने लगा। अतः वह सेना भयभीत होकर रणसे भाग चली। उस समय पाञ्चाल और सृञ्जय इतने डर गये थे कि पत्ता खड़कनेपर भी उन्हें कर्णके आ जानेका सन्देह हो जाता था। कर्ण उस भागती हुई सेनाको भी पीछेसे बाण मारकर खदेड़ रहा था।

अपनी सेनाको भागते देख राजा युधिष्ठिर भी पलायन करनेका विचार करके अर्जुनसे बोले—'धनञ्जय! तुम्हीं जिनके बन्धु एवं सहायक हो, उन हमारे सैनिकोंका यह आर्तनाद निरन्तर सुनायी दे रहा है; ये कर्णके बाणोंसे पीडित हो रहे हैं। अब इस समय कर्णका वध करनेके सम्बन्धमें जो कुछ भी कर्तव्य हो, उसे करो।' यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन! आज राजा युधिष्ठिर कर्णका पराक्रम देखकर भयभीत हो गये हैं। एक ओर द्रोणाचार्य हमारे सैनिकोंको आहत कर रहे हैं, दूसरी ओर कर्णका त्रास छाया हुआ है; इसलिये वे भाग रहे हैं, उन्हें कहीं ठहरनेको स्थान नहीं मिलता। मैं देखता हूँ, कर्ण भागते हुए योद्धाओंको भी मार रहा है। अतः अब आप जहाँ कर्ण है, वहीं चलिये; आज दोमेंसे एक बात हो जाय, चाहे मैं उसे मार डालूँ या वह मुझे।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! तुमको और राक्षस घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो कर्णसे लोहा ले सके। किन्तु उसके साथ तुम्हारा युद्ध हो, इसके लिये अभी समय नहीं आया है। कारण, उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक देदीप्यमान शक्ति है, जो उसने केवल तुम्हारे लिये ही रख छोड़ी है। मेरे विचारसे इस समय महाबली घटोत्कच ही कर्णका सामना करने जाय। उसके पास दिव्य, राक्षस और आसुर—तीनों प्रकारके अस्त्र हैं। अतः वह अवश्य ही संग्राममें कर्णपर विजयी होगा।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने घटोत्कचको बुलवाया। वह कवच, धनुष, बाण और तलवार आदिसे सुसज्जित होकर उनके सामने उपस्थित हुआ और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको प्रणाम करके श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए बोला—'मैं सेवामें उपस्थित हूँ; आज्ञा कीजिये, कौन-सा काम करूँ?' भगवान्ने हँसकर कहा—'बेटा घटोत्कच! मैं जो कहता हूँ, सुनो—आज तुम्हारे पराक्रम दिखानेका समय आया है। यह काम

दूसरेके किये नहीं हो सकता; क्योंकि तुम्हारे पास कई प्रकारके अस्त्र हैं, राक्षसी माया तो है ही। हिडिम्बानन्दन! देखते हो न, जैसे चरवाहा गौओंको हाँकता है उसी प्रकार कर्ण आज पाण्डवसेनाको खदेड़ रहा है। वह इस दलके प्रधान-प्रधान क्षत्रियोंको मारे डालता है। उसके बाणोंसे पीडित होकर हमारे सैनिक कहीं ठहर नहीं पाते। मैदानसे भागे जाते हैं। इस प्रकार कर्ण संहारमें प्रवृत्त हुआ है। इसे रोकनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। इस समय तुम्हारा बल असीम है और तुम्हारी माया दुस्तर; क्योंकि रात्रिके समय राक्षसोंका बल बहुत बढ़ जाता है, उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं रहती। शत्रु उन्हें दबा नहीं सकते। इस आधी रातमें तुम अपनी माया फैलाकर महान् धनुर्धर कर्णको मार डालो, फिर धृष्टद्युम्न आदि वीर द्रोणका भी वध कर डालेंगे।'

भगवान्की बात समाप्त होनेपर अर्जुनने भी घटोत्कचसे कहा—'बेटा! मैं तुमको, सात्यकिको तथा भैया भीमसेनको ही अपनी सेनाके प्रधान वीर मानता हूँ। इस रातमें तुम कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करो। महारथी सात्यकि पीछेसे तुम्हारी रक्षा करेंगे। सात्यकिकी सहायता लेकर तुम शूरवीर कर्णको मार डालो।

फेंककर बोला—'यह है तेरा सहायक बन्धु, इसे मैंने मार डाला। देख लिया न इसका पराक्रम ! अब तू अपनी तथा कर्णकी भी यही दशा देखेगा।' यह कहकर घटोत्कच तीखे बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्णकी ओर चला। उस समय मनुष्य और राक्षसमें अत्यन्त भयंकर और आश्चर्यजनक युद्ध होने लगा।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! आधी रातके समय जब कर्ण और घटोत्कचका सामना हुआ, उस समय उन दोनोंमें किस प्रकार युद्ध हुआ ! उस राक्षसका रूप कैसा था ? उसके रथ, घोड़े और अस्त्र-शस्त्र कैसे थे ?

सञ्जयने कहा—घटोत्कचका शरीर बहुत बड़ा था, उसका मुँह ताँबे-जैसा और आँखें सुर्ख रंगकी थीं। पेट धँसा हुआ, सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए, दाढ़ी-मूँछ काली, कान खूँटी-जैसे, ठोढ़ी बड़ी और मुँहका छेद कानतक फैला हुआ था। दाढ़ें तीखी और विकराल थीं। जीभ और ओठ ताँबे-जैसे लाल-लाल और लंबे थे। भौंहें बड़ी-बड़ी, नाक मोटी, शरीरका रंग काला, कण्ठ लाल और देह पहाड़-जैसी भयंकर थी। भुजाएँ विशाल थीं, मस्तकका घेरा बड़ा था। उसकी आकृति बेडौल थी, शरीरका चमड़ा कड़ा था। सिरका ऊपरी भाग केवल बढ़ा हुआ मांसका पिण्ड था, उसपर बाल नहीं उगे थे। उसकी नाभि छिपी हुई और नितम्बका भाग मोटा था। भुजाओंमें

भुजबंद आदि आभूषण शोभा पाते थे। मस्तकपर सोनेका चमचमाता हुआ मुकुट, कानोंमें कुण्डल और गलेमें सुवर्णमयी माला थी। उसने काँसेका बना चमकता हुआ कवच पहन रक्खा था। उसका रथ भी बहुत बड़ा था, उसपर चारों ओरसे रीछका चमड़ा मढ़ा हुआ था, उसकी लंबाई और चौड़ाई चार सौ हाथ थी। सभी प्रकारके श्रेष्ठ आयुध उसपर रक्खे हुए थे। उसके ऊपर ध्वजा फहराती थी। आठ पहियोंसे वह रथ चलता था, उसकी घरघराहट मेघकी गम्भीर गर्जनाको भी मात करती थी। उस रथमें सौ घोड़े जुते हुए थे, जो बड़े ही भयंकर, इच्छानुसार रूप बनानेवाले तथा मनचाहे वेगसे चलनेवाले थे। विरूपाक्ष नामक राक्षस उसका सारथि था, जिसके मुख और कुण्डलोंसे दीप्ति बरस रही थी। वह घोड़ोंकी बागडोर पकड़कर उन्हें काबूमें रखता था।

ऊपर आकर अन्यत्र दिखायी पड़ता था । इसके बाद आकाशसे उतरकर वह पुनः अपने सुवर्णमण्डित रथपर जा बैठा । फिर मायाके ही प्रभावसे पृथ्वी, आकाश और दिशाओं-में घूमकर कवचसे सुसज्जित हो कर्णके रथके पास आकर बोला—'सूतपुत्र ! खड़ा रहना, अब तू मुझसे जीवित बच-कर कहाँ जायगा ? आज मैं इस समराङ्गणमें तेरा युद्धका शौक पूरा कर दूँगा ।'

ऐसा कहकर वह राक्षस पुनः आकाशमें उड़ गया और कर्णके ऊपर रथके धुरेके समान स्थूल बाणोंकी वर्षा करने लगा । उसकी बाणवर्षाको दूरसे ही कर्णने काट गिराया । इस प्रकार अपनी मायाको नष्ट हुई देख घटोत्कच पुनः अदृश्य होकर नूतन मायाकी सृष्टि करने लगा । एक ही क्षण-में वह एक बहुत ऊँचा पर्वत बन गया और उससे पानीके झरनेकी भाँति शूल, प्रास, तलवार और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि होने लगी । किन्तु कर्णको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ । उसने मुसकराते हुए दिव्य अस्त्र प्रकट किया । उस अस्त्रका स्पर्श होते ही उस पर्वतराजका नाम-निशान भी नहीं रह गया । इतनेहीमें वह राक्षस इन्द्रधनुषसहित मेघ बनकर उमड़ आया और सूतपुत्रपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा; किन्तु कर्णने वायव्यास्त्रका सन्धान करके उस काले मेघको फौरन उड़ा दिया । इतना ही नहीं, उसने सायकसमूहोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित करके घटोत्कचके चलाये हुए सम्पूर्ण अस्त्रोंका नाश कर डाला ।

तब भीमसेनके पुत्रने कर्णके सामने महामाया प्रकट की । कर्णने देखा, घटोत्कच रथपर बैठा आ रहा है । उसके साथ राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना है । राक्षसोंमें कुछ हाथीपर हैं, कुछ रथपर हैं और कुछ घोड़ोंपर सवार हैं । उनके पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और कवच दिखायी देते हैं । घटोत्कचने निकट आते ही कर्णको पाँच बाण मारकर बींध डाला और सब राजाओंको भयभीत करता हुआ भैरव स्वरसे गर्जना करने लगा । फिर उसने अञ्जलिक नामक बाणके प्रहारसे कर्णके हाथका धनुष काट डाला । तब कर्ण दूसरा धनुष हाथमें ले आकाशचारी राक्षसोंकी ओर बाण मारने लगा । इससे उन्हें बड़ी पीडा हुई । घोड़े, सारथि तथा हाथी-के सहित सम्पूर्ण राक्षस कर्णके हाथसे मारे गये । उस समय पाण्डवपक्षके हजारों क्षत्रिय योद्धाओंमें राक्षस घटोत्कचको छोड़ दूसरा कोई कर्णकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था ।

घटोत्कच क्रोधसे जल उठा, उसकी आँखोंसे चिनगारि[याँ] छूटने लगीं । उसने हाथ-से-हाथ मलकर ओठको दाँतों तले दबा[या] और पुनः मायाके बलसे दूसरे रथका निर्माण किया । उस[में] हाथीके समान मोटे-ताजे तथा पिशाचों-जैसे मुखवाले गद[हे] जोते गये । उस रथपर बैठकर वह कर्णके सामने गया औ[र] उसके ऊपर उसने एक भयङ्कर अशनिका प्रहार किया । क[र्ण]

ने अपना धनुष रथपर रख दिया और कूदकर उस अशनि-को हाथसे पकड़ लिया । फिर उसने उसे घटोत्कचपर ही चला दिया । घटोत्कच तो रथसे कूदकर दूर जा खड़ा हुआ किन्तु उस अशनिके तेजसे गदहे, सारथि तथा ध्वजासहित उसका रथ जलकर भस्म हो गया । फिर वह अशनि पृथ्वीमें समा गयी । कर्णका यह पराक्रम देखकर देवता भी आश्चर्य करने लगे । सम्पूर्ण प्राणियोंने उसकी प्रशंसा की । पूर्वोक्त पराक्रम करके कर्ण अपने रथपर जा बैठा और पुनः राक्षस-सेनापर बाण बरसाने लगा । अब घटोत्कच गन्धर्वनगरके समान पुनः अदृश्य हो गया और मायासे कर्णके दिव्यास्त्रोंका नाश करने लगा, तो भी कर्णने अपना धैर्य नहीं खोया । उस राक्षसके साथ युद्ध जारी ही रक्खा ।

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने अपने अनेकों स्वरूप बनाये और कौरव महारथियोंको भयभीत

बाण बरसाये, किन्तु उसने अपने तीखे सायकोंसे मारकर उन्हें भी पुनः व्यर्थ कर डाला । फिर उसने भीमके धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये, घोड़ों और सारथिका भी काम तमाम कर दिया ।

घोड़ों और सारथिके मर जानेपर भीमसेनने रथसे उतरकर भयङ्कर गर्जना की और उस राक्षसपर बड़ी भारी गदाका प्रहार किया । अलायुधने भी गदासे ही उस गदाको

मार गिराया । तब भीमने दूसरी गदा हाथमें ली और उस राक्षसके साथ उनका तुमुल युद्ध होने लगा । उस समय एक-दूसरेपर गदाके आघातसे जो भयङ्कर शब्द होता था, उससे पृथ्वी काँप उठती थी । थोड़ी ही देरमें गदा फेंककर दोनों मुक्के मारते हुए लड़ने लगे । उनके मुक्कोंके आघात-से बिजलीके कड़कनेकी-सी आवाज़ होती थी । इस तरह युद्ध करते-करते दोनों अत्यन्त क्रोधमें भर गये और रथके पहिये, जुए, धुरे तथा अन्य उपकरणोंमेंसे जो भी निकट दिखायी देता था, उसे ही उठा-उठाकर एक दूसरेको मारने लगे । दोनोंके शरीरसे रक्तकी धारा बह रही थी ।

भगवान् श्रीकृष्णने जब यह अवस्था देखी, तो उन्होंने भीमसेनकी रक्षाके लिये घटोत्कचसे कहा—'महाबाहो ! देखो, तुम्हारे सामने ही सब सेनाके देखते-देखते अलायुधने भीम अपने चंगुलमें फँसा लिया है । इसलिये पहले राक्षसर अलायुधका ही वध करो, फिर कर्णको मारना ।' श्रीकृष्ण बात सुनकर घटोत्कच कर्णको छोड़ अलायुधसे ही भिड़ा । फिर तो उस रात्रिके समय उन दोनों राक्षसं तुमुल युद्ध होने लगा । अलायुध क्रोधमें भरा हुआ श उसने एक बहुत बड़ा परिघ लेकर घटोत्कचके मस्तकपर मारा । उससे घटोत्कचको तनिक मूर्छा-सी आ गयी, कि उस बलवान्ने अपनेको सँभाल लिया और अलायुधके ऊ एक बहुत बड़ी गदा चलायी । वेगसे फेंकी हुई उस गदा अलायुधके घोड़े, सारथि और रथका चूरन बना डाला ।

अलायुध राक्षसी मायाका आश्रय ले उछलकर आकाश उड़ गया । उसके ऊपर जाते ही खूनकी वर्षा होने लगी आकाशमें मेघोंकी काली घटा छा गयी, बिजली चमक लगी, कड़ाकेकी आवाज़के साथ वज्रपात होने लगा । उ महासमरमें बड़े जोरकी कड़कड़ाहट फैल गयी । उसकी मा देखकर घटोत्कच भी आकाशमें उड़ गया और दूसरी मा रचकर उसने अलायुधकी मायाका नाश कर दिया । य देख अलायुध घटोत्कचके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा किन्तु घटोत्कचने अपने बाणोंकी बौछारसे उन पत्थरोंको न कर डाला । फिर दोनों ही दोनोंपर नाना प्रकारके आयुधोंव वर्षा करने लगे । लोहेके परिघ, शूल, गदा, मूसल, मुगदर पिनाक, तरवार, तोमर, प्राश, कम्पन, नाराच, भाला, बाण चक्र, फरसा, लोहेकी गोलियाँ, भिन्दिपाल, गोशीर्ष औ उलूखल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा पृथ्वीसे उखाड़े हुए शमी बरगद, पाकर, पीपल और सेमर आदि बड़े-बड़े वृक्षोंसे परस्पर प्रहार करने लगे । नाना प्रकारके पर्वतोंके शिखर लेक भी वे एक-दूसरेको मारते थे । उन दोनों राक्षसोंका युद्ध पूर्वकालीन वानरराज वाली और सुग्रीवके युद्धको मात क रहा था । दोनोंने दौड़कर एक दूसरेकी चोटी पकड़ ली फिर भुजाओंसे लड़ते हुए गुत्थमगुत्थ हो गये । इसी समय घटोत्कचने अलायुधको बलपूर्वक पकड़ लिया और बड़े वेगसे घुमाकर जमीनपर दे मारा । फिर उसके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटकर उसने भयङ्कर गर्जना की और उसे दुर्योधनके सामने फेंक दिया ।

अलायुधको मारा गया देख दुर्योधन अपनी सेनाके सा ही अत्यन्त व्याकुल हो उठा ।

अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे ? इस समय आधी रातमें इस राक्षसका प्रताप बहुत बढ़ा हुआ है, अतः इसका ही नाश करो। हमलोगोंमेंसे जो इस भयंकर संग्रामसे छुटकारा पा जायगा, वही सेनासहित पाण्डवोंसे युद्ध करेगा। इसलिये तुम इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे इस भयङ्कर राक्षसका संहार कर डालो। कर्ण ! सभी कौरव इन्द्रके समान बलवान् हैं; कहीं ऐसा न हो कि इस रात्रियुद्धमें ये सब-के-सब अपने सैनिकों-सहित मारे जायँ।'

निशीथका समय था, राक्षस कर्णपर निरन्तर प्रहार कर रहा था, सारी सेनापर उसका आतङ्क छाया हुआ था; इधर कौरव वेदनासे कराह रहे थे। यह सब देख-सुनकर कर्णने राक्षसके ऊपर शक्ति छोड़नेका विचार किया। अब उससे संग्राममें शत्रुका आघात नहीं सहा गया, उसके वधकी इच्छासे कर्णने वह 'वैजयन्ती' नामवाली असह्य शक्ति हाथमें ली। महाराज ! यह वही शक्ति थी, जिसे न जाने कितने वर्षोंसे कर्णने अर्जुनको मारनेके लिये सुरक्षित रक्खा था। वह सदा उसकी पूजा किया करता था। मृत्युकी सगी बहिन अथवा लपलपाती हुई कालकी जिह्वाके समान वह शक्ति

कर्णने घटोत्कचके ऊपर चला दी। उसे देखते ही राक्षस भयभीत हो गया और विन्ध्याचलके समान विशाल शरीर धारण कर वहाँसे भागा। रात्रिमें प्रज्वलित होती हुई उस शक्तिने राक्षसकी सारी माया भस्म करके उसकी छातीमें गहरी चोट की और उसे विदीर्ण करके ऊपर नक्षत्र-मण्डलमें समा गयी। घटोत्कच भैरव-नाद करता हुआ अपने प्यारे प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उस समय शक्तिके प्रहारसे उसके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये थे तो भी शत्रुओंका नाश करनेके लिये उसने आश्चर्यजनक रूप धारण किया। अपना शरीर पर्वतके समान बना लिया। इसके बाद वह नीचे गिरा। यद्यपि मर गया था, तो भी उसने अपने पर्वताकार शरीरसे कौरव-सेनाके एक भागका संहार कर डाला। उसकी देहके नीचे एक अक्षौहिणी सेना दबकर मर

गयी। इस प्रकार मरते-मरते भी उसने पाण्डवोंका हित-साधन किया। माया नष्ट हुई और राक्षस मारा गया—यह देखकर कौरव योद्धा हर्षनाद करने लगे; साथ ही शङ्ख, भेरी, ढोल और नगारे भी बज उठे। कर्णकी प्रशंसा होने लगी और दुर्योधनके रथमें बैठकर उसने अपनी सेनामें प्रवेश किया।

घटोत्कचकी मृत्युसे भगवान्‌की प्रसन्नता तथा पाण्डव-हितैषी भगवान्‌के द्वारा कर्णका बुद्धिमोह

सञ्जय कहते हैं—घटोत्कचके मारे जानेसे समस्त व शोकमग्न हो गये। सबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा लगी। किन्तु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको बड़ी खुशी थी, नन्दमें डूब रहे थे। उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया हर्षसे झूमकर नाचने लगे। फिर अर्जुनको गले लगाकर पीठ ठोंकी और बारंबार गर्जना की। भगवान्‌को प्रसन्न जान अर्जुन बोले—'मधुसूदन! आज आपको इतनी खुशी क्यों हो रही है? घटोत्कचके मारे जानेसे लिये शोकका अवसर उपस्थित हुआ है, सारी सेना होकर भागी जा रही है। हमलोग भी बहुत घबरा हैं, तो भी आप प्रसन्न हैं! इसका कोई छोटा-मोटा नहीं हो सकता। जनार्दन! बताइये, क्या वजह है प्रसन्नताकी? यदि बहुत छिपानेकी बात न हो, तो बता दीजिये। मेरा धैर्य छूटा जा रहा है।'
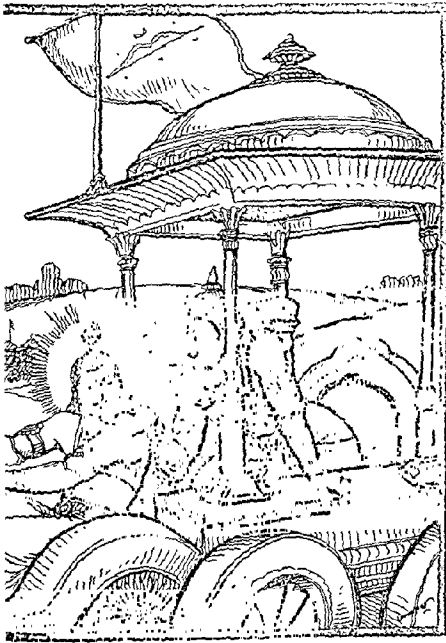
भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धनञ्जय! मेरे लिये सचमुच आनन्दका अवसर आया है। कारण सुनना चाहते सुनो। तुम जानते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर हता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके [एक प्रकारसे] घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है। अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। संसारमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहनेपर उसके सामने ठहर सकता। और यदि उसके पास कवच तथा कुण्डल भी होते, तब तो वह देवताओंसहित तीनों लोकोंको भी जीत सकता था। उस अवस्थामें इन्द्र, कुबेर, वरुण अथवा यमराज भी युद्धमें उसका सामना नहीं कर सकते थे। हम और तुम सुदर्शन-चक्र और गाण्डीव लेकर भी उसे जीतनेमें असमर्थ हो जाते। तुम्हारा ही हित करनेके लिये इन्द्रने छलसे उसे कुण्डल और कवचसे हीन कर दिया। उनके बदलेमें जबसे इन्द्रने उसे अमोघ शक्ति दे दी थी, तबसे वह सदा तुमको मरा हुआ ही मानता था। आज यद्यपि उसकी ये सारी चीजें नहीं रहीं, तो भी तुम्हारे सिवा दूसरे किसीसे वह नहीं मारा जा सकता। कर्ण ब्राह्मणोंका भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतधारी और शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है; इसीलिये वह वृष (धर्म) कहलाता है। सम्पूर्ण देवता चारों ओरसे कर्णपर बाणोंकी वर्षा करें और दैत्य उसपर मांस और रक्त उछालें, तो भी वे उसे जीत नहीं सकते। कवच, कुण्डल तथा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे वञ्चित हो जानेके कारण आज कर्ण साधारण मनुष्य-सा हो गया है; तो भी उसे मारनेका एक ही उपाय है। जब उसकी कोई कमज़ोरी दिखायी दे, वह असावधान हो और रथका पहिया फँस जानेसे संकटमें पड़ा हो, ऐसे समयमें मेरे संकेतपर ध्यान देकर सावधानीके साथ इसे मार डालना। तुम्हारे हितके लिये ही मैंने जरासन्ध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला है। तथा हिडिम्ब, किर्मीर, बक, अलायुध आदि राक्षसोंको भी मैंने ही मरवाया है। जरासन्ध और शिशुपाल आदि यदि पहले ही नहीं मारे गये होते, तो इस समय बड़े भयङ्कर सिद्ध होते। दुर्योधन अपनी सहायताके लिये उनसे अवश्य ही प्रार्थना करता और वे हमसे सर्वदा द्वेष रखनेके कारण कौरवोंका पक्ष लेते ही। दुर्योधनका सहारा लेकर वे सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लेते। जिन उपायोंसे मैंने उन्हें नष्ट किया है, उनको सुनो। एक समयकी बात है—युद्धमें रोहिणी-नन्दन बलदेवजीने जरासन्धका तिरस्कार किया। इससे क्रोधमें भरकर उसने हमलोगोंको मारनेके लिये सर्वसंहारिणी गदाका प्रहार किया। उस गदाको अपने ऊपर आते देख भैया बल-

रामने उसका नाश करनेके लिये स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके वेगसे प्रतिहत होकर वह गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी, गिरते ही धरतीमें दरार पड़ गये और पर्वत हिल उठे। जिस स्थानपर गदा गिरी, वहाँ जरा नामक एक भयङ्कर राक्षसी रहती थी। गदाके आघातसे वह अपने पुत्र और बान्धवोंसहित मारी गयी।

जरासन्ध अलग-अलग दो टुकड़ोंके रूपमें पैदा हुआ था; उन टुकड़ोंको इसी जरा नामवाली राक्षसीने जोड़कर जीवित किया था, इसीसे उसका नाम जरासन्ध हुआ। उसके दो ही प्रधान सहारे थे—गदा और जरा। इन दोनोंसे वह हीन हो गया था, इसीसे भीमसेन तुम्हारे सामने उसका वध कर सके। इसी प्रकार तुम्हारा हित करनेके लिये ही एकलव्यका अँगूठा अलग करवा दिया। चेदिराज शिशुपालको तुम्हारे सामने ही मार डाला। उसे भी देवता तथा असुर संग्राममें नहीं जीत सकते थे। उसका तथा अन्य देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है। हिडिम्बासुर, बक और किर्मीर—ये रावणके समान बली तथा ब्राह्मणों और यज्ञसे द्वेष रखनेवाले थे। लोक-कल्याणके लिये ही इन्हें भीमसेनसे मरवा डाला। इसी प्रकार घटोत्कचके हाथसे अलायुधका नाश कराया और कर्णके द्वारा शक्ति प्रहार कराकर घटोत्कचका भी काम तमाम किया। यदि इस महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिके द्वारा घटोत्कचको नहीं मार डालता, तो मुझे इसका वध करना पड़ता। इसके द्वारा तुमलोगोंका प्रिय कार्य कराना था, इसीलिये मैंने पहले ही इसका वध नहीं किया। घटोत्कच ब्राह्मणोंका द्वेषी और यज्ञोंका नाश करनेवाला था। यह पापात्मा धर्मका लोप कर रहा था, इसीसे इस प्रकार इसका विनाश करवाया है। जो धर्मका लोप करनेवाले हैं, वे सभी मेरे वध्य हैं। मैंने धर्म-स्थापनाके लिये प्रतिज्ञा कर ली है। जहाँ वेद, सत्य, दम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमाका वास है, वहाँ मैं सदा ही क्रीडा किया करता हूँ। यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ। अब तुम्हें कर्णका नाश करनेके विषयमें विषाद नहीं करना चाहिये। मैं वह उपाय बताऊँगा, जिससे तुम कर्णको और भीमसेन दुर्योधनको मार सकेंगे। इस समय तो दूसरी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। तुम्हारी सेना चारों ओर भाग रही है और कौरव-सैनिक तक-तककर मार रहे हैं।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! यदि कर्णकी शक्ति एक ही वीरका वध करके निष्फल हो जानेवाली थी, तो उसने सबको छोड़कर अर्जुनपर ही उसका प्रहार क्यों नहीं किया? अर्जुनके मारे जानेपर समस्त पाण्डव और सृञ्जय अपने-आप नष्ट हो जाते। यदि कहो अर्जुन सूतपुत्रसे लड़ने नहीं आये, तो उसे स्वयं ही उनकी तलाश करनी चाहिये थी। अर्जुनकी तो यह प्रतिज्ञा है कि 'युद्धके लिये ललकारनेपर पीछे पैर नहीं हटा सकता।'

सञ्जयने कहा—महाराज! भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धि हमलोगोंसे बड़ी है। वे जानते थे कि कर्ण अपनी शक्तिसे अर्जुनको मारना चाहता है। इसीलिये उन्होंने कर्णके साथ द्वैरथ-युद्धमें राक्षसराज घटोत्कचको नियुक्त किया। ऐसे-ऐसे अनेकों उपायोंसे भगवान् अर्जुनकी रक्षा करते आ रहे हैं। विशेषतः कर्णकी अमोघ शक्तिसे उन्होंने ही अर्जुनकी रक्षा की है, नहीं तो वह अवश्य ही उनका नाश कर डालती।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! कर्ण भी तो बड़ा बुद्धिमान् है, उसने स्वयं ही अर्जुनपर अबतक उस शक्तिका प्रहार क्यों नहीं किया? तुम भी तो बड़े समझदार हो, तुमने ही कर्णको यह बात क्यों नहीं सुझा दी?

सञ्जयने कहा—महाराज! प्रतिदिन रात्रिमें दुर्योधन, शकुनि, मैं और दुःशासन—ये सब लोग कर्णसे प्रार्थना करते थे कि 'भाई! कलके युद्धमें तुम सारी सेनाको छोड़कर पहले अर्जुनको ही मार डालना। फिर तो हमलोग पाण्डवों और पाञ्चालोंपर दासकी भाँति शासन करेंगे। यदि ऐसा न हो तो तुम श्रीकृष्णको ही मार डालो; क्योंकि वे ही पाण्डवोंके बल हैं, वे ही रक्षक हैं और वे ही उनके सहारे हैं।'

राजन्! यदि कर्ण श्रीकृष्णको मार डालता, तो निस्सन्देह आज सारी पृथ्वी उसके वशमें हो जाती। उसने भी उनपर शक्ति-प्रहारका विचार किया था; पर युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णके निकट जाते ही उसपर ऐसा मोह छा जाता कि यह बात भूल जाती थी। उधरसे भगवान् सदा ही बड़े-बड़े महारथियोंको कर्णसे लड़नेके लिये भेजा करते थे, वे निरन्तर इसी फिक्रमें रहते कि कैसे कर्णकी शक्तिको व्यर्थ कर दूँ। महाराज! जो कर्णसे अर्जुनकी इस प्रकार रक्षा करते थे, वे अपनी रक्षा क्यों नहीं करते? तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो जनार्दनपर विजय पा सके।

घटोत्कचके मारे जानेपर सात्यकिने भी भगवान् कृष्णसे यही प्रश्न किया था कि 'भगवन्! जब कर्णने वह अमोघ शक्ति

के देखते-देखते उसकी मृत्यु हुई है । वीरवर ! अब मैं स्वयं ही कर्णको मारनेके लिये जाऊँगा ।' यों कहकर अपना महान् धनुष टंकारते हुए वे बड़ी उतावलीके साथ चल दिये ।

यह देखकर भगवान् कृष्णने अर्जुनसे कहा—'ये राजा युधिष्ठिर कर्णको मारनेके लिये चले जा रहे हैं । इस समय

इन्हें अकेले छोड़ देना ठीक नहीं होगा ।' यह कहकर उन्होंने बड़ी शीघ्रताके साथ घोड़ोंको हाँका और दूर पहुँचे हुए राजाको पकड़ लिया । इतनेहीमें भगवान् व्यासजी उनके समीप प्रकट होकर बोले—'कुन्तीनन्दन ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि कर्णके साथ कई बार मुठभेड़ होनेपर भी अर्जुन जीवित बच गये हैं । उसने अर्जुनको ही मारनेकी इच्छासे इन्द्रकी दी हुई शक्ति बचा रक्खी थी । द्वैरथ-युद्धमें उसका सामना करनेके लिये अर्जुन नहीं गये—यह बहुत अच्छा हुआ । यदि जाते तो आज कर्ण इनपर ही उस शक्तिका प्रहार करता, ऐसी दशामें तुम और भयंकर विपत्तिमें फँस जाते । सूतपुत्रके हाथसे घटोत्कचका ही मारा जाना अच्छा हुआ । कालने ही इन्द्रकी शक्तिसे उसका नाश किया है—ऐसा समझकर तुम्हें क्रोध और शोक नहीं करना चाहिये । युधिष्ठिर ! सभी प्राणियोंकी एक दिन यही गति होती है । इसलिये तुम चिन्ता छोड़कर अपने सभी भाइयोंको साथ ले कौरवोंका सामना करो । आजके पाँचवें दिन इस पृथ्वीपर तुम्हारा अधिकार हो जायगा । सदा धर्मका ही चिन्तन करते रहो । दया, तप, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणोंका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो । जिधर धर्म होता है, उसी पक्षकी विजय होती है ।' यह कहकर व्यासजी वहींपर अन्तर्धान हो गये ।

अर्जुनकी आज्ञासे दोनों सेनाओंका रणभूमिमें शयन तथा दुर्योधन और द्रोणकी रोषपूर्ण बातचीत

सञ्जय कहते हैं—व्यासजीके इस प्रकार समझानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं तो कर्णको मारनेका विचार छोड़ दिया, किन्तु धृष्टद्युम्नसे कहा—'वीरवर ! तुम द्रोणाचार्यका सामना करो; क्योंकि उनका ही विनाश करनेके लिये तुम धनुष-बाण, कवच और तलवारके साथ अग्निसे प्रकट हुए हो । पूर्ण उत्साहके साथ द्रोणपर धावा करो । तुम्हें तो उनसे किसी प्रकार भय होना ही नहीं चाहिये । जनमेजय, शिखण्डी, यशोधर, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकगण, द्रुपद, विराट, सात्यकि, केकयराजकुमार और अर्जुन—ये सब-के-सब द्रोणको मार डालनेके लिये चारों ओरसे आक्रमण करें । इसी प्रकार हमारे रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल योद्धा भी महारथी द्रोणको रणमें मार गिरानेका प्रयत्न करें ।'

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी ऐसी आज्ञा होनेपर सभी सैनिक आचार्य द्रोणका वध करनेके लिये उनपर टूट पड़े । उन्हें सहसा आते देख द्रोणाचार्यने अपनी पूरी शक्ति लगाकर आगे बढ़नेसे रोक दिया । तब राजा दुर्योधनने भी आचार्यकी जीवन-रक्षाके लिये पाण्डवोंपर धावा किया । फिर तो दोनों ओरके योद्धाओंमें युद्ध छिड़ गया । उस समय बड़े-बड़े महारथी भी नींदसे अंधे हो रहे थे । थकावटसे उनका बदन चूर-चूर हो रहा था । उनकी समझमें कुछ भी नहीं आता था कि क्या करना चाहिये । वह भयानक अर्धरात्रि निद्रान्ध

सैनिकोंके लिये हजार पहरकी-सी जान पड़ती थीं। किसीमें भी लड़नेका उत्साह नहीं रह गया था, सब शिथिल एवं दीन हो रहे थे। आपके तथा शत्रुओंके भी सैनिकोंके पास न कोई अस्त्र रह गया था, न बाण। तो भी क्षत्रियधर्मका खयाल करके वे सेनाका परित्याग नहीं कर सके थे। कुछ तो नींदसे इतने अंधे हो गये कि हथियार फेंककर सो रहे। कुछ लोग हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ लोग घोड़ोंपर ही झपकियाँ लेने लगे। घोर अन्धकारमें नींदसे नेत्र बंद हो जाते थे, तो भी शूरवीर अपने शत्रुपक्षके वीरोंका संहार कर रहे थे। कुछ तो नींदमें इतने बेसुध हो रहे थे कि शत्रु उन्हें मार रहे थे और उनको पता नहीं चलता था।

सैनिकोंकी यह अवस्था देख अर्जुन समस्त दिशाओंको निनादित करते हुए ऊँची आवाजमें बोले—'योद्धाओ! इस समय तुम्हारे वाहन थक गये हैं, तुमलोग भी नींदसे अंधे हो रहे हो। इसलिये यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो थोड़ी देरके लिये लड़ाई बंद कर दो और यहीं सो जाओ। फिर चन्द्रोदय होनेपर जब नींदका वेग कम हो और थकावट दूर हो जाय, तो दोनों दलोंके लोग पुनः युद्ध छेड़ेंगे।'

धर्मात्मा अर्जुनकी बात सबने मान ली और दोनों पक्षकी सेनाएँ युद्ध बंद कर विश्राम लेने लगीं। अर्जुनके उस प्रस्तावकी देवता और ऋषियोंने भी सराहना की। विश्राम मिल जानेसे आपके सैनिकोंको भी बड़ा सुख हुआ। वे अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महाबाहु अर्जुन! तुममें वेद, अस्त्र, बुद्धि, पराक्रम और धर्म—सब कुछ है। तुम जीवोंपर दया करना जानते हो। तुमने हमें जो आराम दिया है, इसके बदले हम भी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारा कल्याण हो। वीरवर! तुम्हारे सभी मनोरथ शीघ्र ही पूरे हों।'

इस प्रकार पार्थकी प्रशंसा करते-करते वे नींदके वशीभूत हो सो गये। कोई घोड़ोंकी पीठपर लेटे थे तो कोई रथकी बैठकमें ही लुढ़क गये थे। कुछ लोग हाथीके कंधोंपर सोते थे और कुछ जमीनपर ही पड़ गये थे। नाना प्रकारके आयुध, गदा, तलवार, फरसा, प्रास और कवच धारण किये हुए ही लोग अलग-अलग पड़े हुए थे। राजन्! उस समय अत्यन्त थके हुए हाथी, घोड़े और सैनिक—सभी युद्धसे विश्राम पाकर गाढ़ी नींदमें सो गये थे।

तदनन्तर दो घड़ीके बाद पूर्व दिशामें ताराओंके तेजको क्षीण करते हुए भगवान् चन्द्रदेवका उदय हुआ।

क्षणभरमें ही सारा जगत् प्रकाशमान हो गया। अन्धकारका नाम-निशान भी न रहा। चन्द्रकिरणोंके सुकोमल स्पर्शसे सारी सेना जाग उठी। फिर उत्तम लोकोंको पानेकी इच्छा रखनेवाले दोनों दलके योद्धाओंमें लोकसंहारकारी संग्राम आरम्भ हो गया।

उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास गया और उनके उत्साह तथा तेजको उत्तेजना देनेके लिये क्रोधमें भरकर

बोला—'आचार्य! इस समय शत्रु थककर विश्राम ले रहे हैं, उत्साह खो बैठे हैं और विशेषतः हमारे दाँवमें फँस गये हैं; ऐसी दशामें भी युद्धमें उनपर किसी तरहकी रियायत नहीं होनी चाहिये। आजतक हम ऐसे मौकोंपर आपको प्रसन्न रखनेके लिये सब तरहसे क्षमा करते आये हैं; उसका फल यह हुआ है कि पाण्डव थके होनेपर भी अधिक बलवान् होते गये हैं। ब्रह्मास्त्र आदि जितने भी दिव्य अस्त्र हैं, वे सब-के-सब यदि किसी एकके पास हैं तो वे आप ही हैं। संसारमें पाण्डव या हमलोग—कोई भी धनुर्धर युद्धमें आपकी समानता नहीं कर सकते। द्विजवर! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आप अपने दिव्य अस्त्रोंसे देवता, असुर और गन्धर्वोंसहित तीनों लोकोंका संहार कर सकते हैं। इतने शक्तिशाली होकर भी आप पाण्डवोंको अपना शिष्य

समझकर अथवा मेरे दुर्भाग्यके कारण उनको क्षमा ही करते जाते हैं।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण कुपित होकर बोले—'दुर्योधन! मैं बूढ़ा हो गया, तो भी संग्राममें अपनी शक्तिभर लड़नेकी चेष्टा करता हूँ। परन्तु जान पड़ता है, तुम्हें विजय दिलानेके लिये अब मुझे नीच कर्म भी करना पड़ेगा। ये सब लोग उन अस्त्रोंको नहीं जानते और मैं जानता हूँ, इसलिये मैं उन्हीं अस्त्रोंका प्रयोग करके इन्हें मार डालूँ—इससे बढ़कर खोटा काम और क्या हो सकता है? बुरा या भला जो भी काम तुम कराना चाहो, तुम्हारे कहनेसे ही वह सब कुछ करूँगा; अन्यथा अपनी इच्छासे तो अशुभ कर्म मुझसे नहीं होगा। समस्त पाञ्चाल राजाओंका संहार करके युद्धमें पराक्रम दिखानेके बाद ही अब कवच उतारूँगा। इसके लिये मैं अपने हथियार छूकर सत्यकी शपथ खाता हूँ। परन्तु तुम जो यह समझते हो कि अर्जुन युद्धमें थक गये हैं, यह तुम्हारी भूल है। अर्जुनका सच्चा पराक्रम मैं सुनाता हूँ, सुनो। सव्यसाचीके कुपित होनेपर देवता, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस भी उन्हें नहीं जीत सकते। खाण्डव-वनमें उन्होंने इन्द्रका सामना किया और अपने बाणोंसे उनकी वर्षा रोक दी। तथा बलके घमंडमें फूले हुए यक्ष, नाग और दैत्योंको परास्त किया। याद है कि नहीं, घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम्हें बाँधकर लिये जाते थे, उस समय अर्जुनने ही छुटकारा दिलाया था! देवताओंके शत्रु निवातकवच नामक दैत्योंको, जिन्हें स्वयं देवता भी नहीं मार सके थे, अर्जुनने ही परास्त किया। हिरण्यपुरमें रहनेवाले हजारों दानवोंको जिन्होंने जीत लिया था, उन पुरुषसिंह अर्जुनको मनुष्य कैसे हरा सकता है! हर तरहसे चेष्टा करनेपर भी उन्होंने तुम्हारी सेनाका सत्यानाश कर डाला, यह सब तो तुम रोज अपनी आँखों देखते हो।'

महाराज! इस प्रकार जब द्रोणाचार्य अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, तो आपके पुत्रने कुपित होकर कहा—'आज मैं, दुःशासन, कर्ण और मामा शकुनि सब मिलकर कौरव-सेनाको दो भागोंमें बाँटकर दो जगह मोर्चाबंदी करेंगे और युद्धमें अर्जुनको मार डालेंगे।' यह सुनकर आचार्य मुसकराते हुए बोले—"अच्छा जाओ, परमात्मा ही कुशल करें। भला, कौन ऐसा क्षत्रिय है जो गाण्डीवधारी अर्जुनका नाश कर सके? दुर्योधन! मनुष्यकी तो बात ही क्या है—इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर तथा असुर, नाग और राक्षस भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकते। तुम जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बातें मूर्ख किया करते हैं। भला, संग्राममें अर्जुनसे लोहा लेकर कौन कुशलपूर्वक घर लौट सकता है! तुम तो निर्दयी हो और पापमें ही तुम्हारा मन बसता है; इसीलिये तुम्हारा सबपर सन्देह रहता है तथा जो लोग तुम्हारे हित-साधनमें लगे हैं, उनके प्रति भी तुम अंट-संट बातें बक दिया करते हो। तुम भी तो खानदानी क्षत्रिय हो; जाओ न, अपने लिये खुद ही अर्जुनसे लड़ो और उन्हें मार डालो। इन सब निरपराध सिपाहियोंकी जान क्यों मरवाना चाहते हो? तुम्हीं इस वैर-विरोधके मूल कारण हो; इसलिये स्वयं ही जाकर अर्जुनका सामना करो और साथमें जाय तुम्हारा यह मामा, जो कपटसे जूआ खेलनेमें बड़ा बहादुर है। यह धूर्त जुआरी, जिसने दूसरोंको धोखा देनेमें ही अपनी बुद्धिका परिचय दिया है, तुम्हें पाण्डवोंसे विजय दिलायेगा? तुम भी धृतराष्ट्रको सुना-सुनाकर कर्णके साथ बड़ी उमंगसे कहा करते थे, 'पिताजी! मैं, कर्ण और दुःशासन—तीनों मिलकर पाण्डवोंको जीत लेंगे।' तुम्हारा यह डींग मारना मैंने सभामें कई बार सुना है। आज उन्हें साथ लेकर प्रतिज्ञा पूरी करो, कही हुई बात सत्य करके दिखाओ। वह देखो, तुम्हारा शत्रु अर्जुन निर्भीक होकर सामने ही खड़ा है; क्षत्रियधर्मका खयाल करके युद्ध करो। अर्जुनके हाथसे तुम्हारा मारा जाना जीत होनेसे कहीं अच्छा है। जाओ, निडर होकर लड़ो।"

यह कहकर आचार्य द्रोण जिधर शत्रु खड़े थे, उधर ही चल दिये। फिर सेनाको दो भागोंमें बाँटकर युद्ध आरम्भ हुआ।

भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । वहाँ सात्यकिको ही प्रबल होते देख कर्ण आपके पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही आ पहुँचा । महाबली भीमसेनसे यह नहीं सहा गया । वे भी बाणोंकी वृष्टि करते हुए तुरंत वहाँ आ धमके । कर्णने हँसते-हँसते तीखे बाण मारकर भीमसेनका धनुष तथा बाण काट दिये और उनके सारथिको भी मार डाला । तब भीमसेनके क्रोधकी सीमा न रही; उन्होंने गदा लेकर शत्रुके धनुष, ध्वजा, सारथि और रथके पहियेका नाश कर डाला । कर्ण इस बातको नहीं सह सका, वह तरह-तरहके अस्त्रों और बाणोंका प्रयोग करके भीमके साथ लड़ने लगा । इसी तरह भीमसेन भी कुपित होकर कर्णसे युद्ध करने लगे । दूसरी ओर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंको पीडा देने लगे । यह आचार्यके सेनापतित्वका पाँचवाँ दिन था । वे क्रोधमें भरे हुए थे और पाञ्चाल वीरोंका महान् संहार कर रहे थे । शत्रु भी बड़े धैर्यवान् थे । वे उनसे युद्ध करते हुए तनिक भी भयभीत नहीं होते थे । पाञ्चाल वीरोंको मरते और द्रोणाचार्यको प्रबल होते देख पाण्डवोंको बड़ा भय हुआ । उन्होंने विजयकी आशा छोड़ दी । उन्हें सन्देह होने लगा—ये महान् अस्त्रवेत्ता आचार्य कहीं हम सब लोगोंका नाश तो नहीं कर डालेंगे ?

कुन्तीके पुत्रोंको भयभीत देख भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे—'पाण्डवो ! द्रोणाचार्य धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इनके हाथमें धनुष रहनेपर इन्द्र आदि देवता भी इन्हें नहीं जीत सकते । जब ये हथियार डाल दें, तभी कोई मनुष्य इनका वध कर सकता है । मैं समझता हूँ, अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं करेंगे; अतः कोई जाकर इन्हें अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार सुनावे ।'

महाराज ! अर्जुनको यह बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी, किन्तु और सब लोगोंको जँच गयी । केवल राजा युधिष्ठिरने बड़ी कठिनाईसे यह बात स्वीकार की । मालवाके राजा इन्द्रवर्माके पास एक हाथी था, जिसका नाम था अश्वत्थामा । अपनी ही सेनाके उस हाथीको भीमसेनने गदासे मार डाला और लजाते-लजाते द्रोणाचार्यके सामने जाकर जोर-जोरसे हल्ला करने लगे—'अश्वत्थामा मारा गया ।' मनमें उस

हाथीका खयाल करके भीमने यह मिथ्या बात उड़ा दी

उस अप्रिय वचनको सुनकर आचार्य द्रोण सहसा सूख गये । उनका सारा शरीर शिथिल हो गया । परन्तु वे अपने पुत्रके बलको जानते थे, अतः सन्देह हुआ कि यह बात झूठी है । फिर तो धैर्यसे विचलित न होकर उन्होंने धृष्टद्युम्नपर धावा किया और उसके ऊपर एक हजार बाणोंकी वर्षा की । यह देख बीस हजार पाञ्चाल महारथियोंने चारों ओरसे बाणोंकी झड़ी लगाकर द्रोणाचार्यको ढक दिया । द्रोणने उनके बाणोंका नाश करके उनका भी संहार करनेके लिये ब्रह्मास्त्र प्रकट किया । वह अस्त्र पाञ्चालोंके मस्तक और भुजाएँ काट-काटकर गिराने लगा । पृथ्वीपर मरे हुए वीरोंकी लाशें बिछ गयीं । आचार्यने उन बीसों हजार पाञ्चाल महारथियोंका सफाया कर डाला । फिर वसुदानका सिर धड़से अलग कर दिया । इसके बाद पाँच सौ मत्स्यों, छः हजार सृञ्जयों, दस हजार हाथियों तथा दस हजार घोड़ोंका संहार कर डाला ।

इस प्रकार द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये खड़ा देख अग्निदेवको आगे करके विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि ऋषि उन्हें ब्रह्मलोकमें ले जानेके लिये वहाँ पधारे । साथ ही सिकत, पृश्नि,

दुर्योधनने भीमसेनको जलमें फेंक दिया

गर्ग, वालखिल्य, भृगु और अङ्गिरा आदि भी थे। ये सभी सूक्ष्मरूप धारण किये हुए थे। महर्षियोंने द्रोणाचार्यसे कहा—'द्रोण! हथियार रख दो और यहाँ खड़े हुए हमलोगोंकी ओर देखो। अबतक तुमने अधर्मसे युद्ध किया है। अब तुम्हारी मृत्युका समय आया है। अबसे भी इस अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मका त्याग करो। तुम वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् हो। सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले हो। सबसे बड़ी बात यह है कि तुम ब्राह्मण हो। तुम्हारे लिये यह काम शोभा नहीं देता। अपने सनातन धर्ममें स्थित हो जाओ। तुम्हारा इस मनुष्य-लोकमें रहनेका समय पूरा हो चुका है। जो लोग ब्रह्मास्त्र नहीं जानते थे, उन्हें भी तुमने ब्रह्मास्त्रसे दग्ध किया है; तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। फेंक दो ये अस्त्र-शस्त्र, अब फिर ऐसा पापकर्म न करो।'

आचार्यने ऋषियोंकी यह बात सुनी, भीमसेनके कथनपर भी विचार किया और धृष्टद्युम्नको सामने देखा; इन सब कारणोंसे वे बहुत उदास हो गये। अब उन्हें अश्वत्थामाके मरनेका सन्देह हुआ। वे व्यथित होकर युधिष्ठिरसे पूछने लगे—'वास्तवमें मेरा पुत्र मारा गया या नहीं?' द्रोणके मनमें यह निश्चय था कि युधिष्ठिर तीनों लोकोंका राज्य पानेके लिये भी किसी तरह झूठ नहीं बोलेंगे। बचपनसे ही उनकी सचाईमें आचार्यका विश्वास था।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचा कि आचार्य द्रोण अब पृथ्वीपर पाण्डवोंका नाम-निशान भी नहीं रहने देंगे, तो उन्होंने धर्मराजसे कहा—'यदि द्रोण क्रोधमें भरकर आधे दिन और युद्ध करते रहे, तो मैं सच कहता हूँ तुम्हारी सेनाका सर्वनाश हो जायगा। अतः तुम द्रोणसे हम-लोगोंको बचाओ। दूसरोंकी प्राण-रक्षाके लिये यदि कदाचित् असत्य बोलना पड़े, तो उससे बोलनेवालेको पातक नहीं लगता।'

वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि भीमसेन बोल उठे—'महाराज! द्रोणके वधका उपाय सुनकर मैंने आपकी सेनामें विचरनेवाले मालवनरेश इन्द्रवर्माके अश्वत्थामा नामक हाथीको मार डाला है। उसके बाद द्रोणसे जाकर कहा है—'अश्वत्थामा मारा गया।' उन्होंने मेरी बातपर विश्वास नहीं किया, इसीलिये आपसे पूछते हैं। अतः आप श्रीकृष्णकी बात मानकर द्रोणसे कह दीजिये कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' आपके कहनेसे फिर वे युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि आप सत्यवादी हैं—यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है।'

महाराज! भीमकी बात सुनकर और श्रीकृष्णकी प्रेरणा-से युधिष्ठिर वैसा कहनेको तैयार हो गये। वे असत्यके भयमें डूबे हुए थे, तो भी विजयमें आसक्ति होनेके कारण द्रोणाचार्य-से 'अश्वत्थामा मारा गया' यह वाक्य उच्च स्वरसे कहकर धीरेसे बोले 'किन्तु हाथी।' इसके पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचा रहा करता था, उस दिन वह असत्य मुँहसे निकालते ही रथ जमीनसे सट गया। महारथी द्रोण युधिष्ठिरके मुखसे वह बात सुनकर पुत्रशोकसे पीडित हो जीवनसे निराश हो गये, तथा ऋषियोंके कथनानुसार अपनेको पाण्डवोंका अपराधी मानने लगे।

आचार्य द्रोणका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! राजा द्रुपदने बहुत बड़ा यज्ञ करके प्रज्वलित अग्निसे जिसको द्रोणका नाश करनेके लिये प्राप्त किया था उस धृष्टद्युम्नने जब देखा कि आचार्य द्रोण बड़े ही उद्विग्न हैं और उनका चित्त शोकाकुल हो रहा है, तो उसने उस अवसरसे लाभ उठानेके लिये उनपर धावा कर दिया। धृष्टद्युम्नने एक विजय दिलानेवाला

सुदृढ धनुष हाथमें ले उसपर अग्निके समान तेजस्वी बाण रक्खा। यह देख द्रोणने उसे रोकनेके लिये आङ्गिरस नामक धनुष और ब्रह्मदण्डके समान अनेकों बाण हाथमें लिये। फिर उन बाणोंकी वर्षासे उन्होंने धृष्टद्युम्नको ढक दिया, उसे घायल भी कर डाला तथा उसके बाण, धनुष और ध्वजाको काटकर सारथिको भी मार गिराया। तब धृष्टद्युम्नने हँसकर दूसरा धनुष उठाया और आचार्यकी छातीमें एक तेज किया हुआ बाण मारा। उसकी करारी चोटसे उन्हें चक्कर आ गया। अब उन्होंने एक तीखी धारवाला भाला लिया और उससे उसके धनुषको पुनः काट डाला। इतना ही नहीं, इसके अलावे भी उसके पास जितने धनुष थे, उन सबको काट दिया। केवल गदा और तलवारको रहने दिया। इसके बाद उन्होंने धृष्टद्युम्नको नौ बाणोंसे बींध डाला। तब उस महारथीने अपने घोड़ोंको द्रोणके रथके घोड़ोंके साथ मिला दिया और ब्रह्मास्त्र छोड़नेका विचार किया। इतनेहीमें द्रोणने उसके ईषा, चक्र और रथका बन्धन काट दिया। धनुष, ध्वजा और सारथिका नाश तो पहले ही हो चुका था। इस भारी विपत्तिमें फँसकर धृष्टद्युम्नने गदा उठायी, किन्तु आचार्यने तीखे सायकोंसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब उसने चमकती हुई तलवार हाथमें ली और अपने रथसे द्रोणाचार्यके रथपर पहुँचकर उनकी छातीमें वह कटार भोंक देनेका विचार किया। यह देख द्रोणने शक्ति उठायी और उसके द्वारा एक-एक करके धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मार डाला। यद्यपि दोनोंके घोड़े एक साथ मिल गये थे, तो भी उन्होंने अपने लाल रंगके घोड़ोंको बचा लिया। उनकी यह करतूत धृष्टद्युम्नसे नहीं सही गयी। वह द्रोणकी ओर झपटकर तलवारके अनेकों हाथ दिखाने लगा। इसी बीचमें एक हजार 'वैतस्तिक' नामक बाण मारकर आचार्यने उसकी ढाल-तलवारके खण्ड-खण्ड कर डाले। उपर्युक्त बाण निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी होते हैं तथा बित्तेभरके होनेके कारण ही वैतस्तिक कहलाते हैं। द्रोण, कृप, अर्जुन, कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि तथा

अभिमन्युके सिवा और किसीके पास वैसे बाण नहीं थे।

तलवार काट देनेके बाद आचार्यने अपने शिष्य धृष्टद्युम्नका वध करनेकी इच्छासे एक उत्तम बाण धनुषपर रक्खा। सात्यकि यह देख रहा था। उसने दस तीखे बाण मारकर कर्ण और दुर्योधनके सामने ही द्रोणका वह अस्त्र काट दिया तथा धृष्टद्युम्नको द्रोणके चंगुलसे बचा लिया। उस समय सात्यकि द्रोण, कर्ण और कृपाचार्यके बीच बेखटके घूम रहा था। उसकी हिम्मत देख श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रशंसा करते हुए शाबाशी देने लगे। अर्जुन श्रीकृष्णसे कहने लगे—'जनार्दन ! देखिये तो सही, आचार्यके पास खड़े हुए मुख्य महारथियोंके बीच सात्यकि खेल-सा करता हुआ विचर रहा है, उसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। दोनों ओरके सैनिक आज उसके पराक्रमकी मुक्तकण्ठसे सराहना कर रहे हैं।'

जब सात्यकिने द्रोणाचार्यका वह बाण काट डाला, तो दुर्योधन आदि महारथियोंको बड़ा क्रोध हुआ। कृपाचार्य, कर्ण तथा आपके पुत्र उसके निकट पहुँचकर बड़ी फुर्तीके साथ तेज किये हुए बाण मारने लगे। यह देख राजा

युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव और भीमसेन वहाँ आ गये तथा सात्यकिके चारों ओर खड़े हो उसकी रक्षा करने लगे। अपने ऊपर सहसा होनेवाली उस बाणवर्षाको सात्यकिने रोक दिया और दिव्यास्त्रोंसे शत्रुओंके सभी अस्त्रोंका नाश कर डाला।

उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अपने पक्षके क्षत्रिय योद्धाओंसे कहा—'महारथियो! क्या देखते हो, पूरी शक्ति लगाकर द्रोणाचार्यपर धावा करो। वीरवर धृष्टद्युम्न अकेला ही द्रोणसे लोहा ले रहा है और अपनी शक्तिभर उनके नाशकी चेष्टामें लगा है। आशा है, वह आज उन्हें मार गिरायेगा। अब तुमलोग भी एक साथ ही उनपर टूट पड़ो।' युधिष्ठिरकी आज्ञा पाते ही सृञ्जय महारथी द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े। उन्हें आते देख द्रोणाचार्य यह निश्चय करके कि 'आज तो मरना ही है' बड़े वेगसे उनकी ओर झपटे। उस समय पृथ्वी काँप उठी। उल्कापात होने लगा। द्रोणकी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़कने लगी। इतनेहीमें द्रुपदकुमारकी सेनाने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। अब उन्होंने क्षत्रियोंका संहार करनेके लिये पुनः ब्रह्मास्त्र उठाया। उस समय धृष्टद्युम्न बिना रथके ही खड़ा था, उसके आयुध भी नष्ट हो चुके थे। उसे इस अवस्थामें देख भीमसेन शीघ्र ही उसके पास गये और अपने रथमें बिठाकर बोले—'वीरवर! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई योद्धा ऐसा नहीं है, जो आचार्यसे लोहा लेनेका साहस करे। इनके मारनेका भार तुम्हारे ही ऊपर है।'

भीमसेनकी बात सुनकर धृष्टद्युम्नने एक सुदृढ धनुष हाथमें लिया और द्रोणको पीछे हटानेकी इच्छासे उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। फिर दोनों ही क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य अस्त्रोंका प्रहार करने लगे। धृष्टद्युम्नने बड़े-बड़े अस्त्रोंसे द्रोणाचार्यको आच्छादित कर दिया और उनके छोड़े हुए सभी अस्त्रोंको काटकर उनकी रक्षा करनेवाले वसाति, शिबि, बाह्लीक और कौरव योद्धाओंको भी घायल कर दिया। तब द्रोणने उसका धनुष काट डाला और सायकोंसे उसके मर्मस्थानोंको भी बींध दिया। इससे धृष्टद्युम्नको बड़ी वेदना हुई।

अब भीमसेनसे नहीं रहा गया। वे आचार्यके रथके पास जा उससे सटकर धीरे-धीरे बोले—'यदि ब्राह्मण अपना कर्म छोड़कर युद्ध न करते, तो क्षत्रियोंका भीषण संहार न होता। प्राणियोंकी हिंसा न करना—यह सब धर्मोंमें श्रेष्ठ बताया गया है, उसकी जड़ है ब्राह्मण। और आप तो उन ब्राह्मणोंमें भी सबसे उत्तम वेदवेत्ता हैं। ब्राह्मण होकर भी स्त्री, पुत्र और धनके लोभसे आपने चाण्डालकी भाँति म्लेच्छों तथा अन्य राजाओंका संहार कर डाला है। जिसके लिये आपने हथियार उठाया, जिसका मुँह देखकर जी रहे हैं, वह अश्वत्थामा तो आपकी नज़रोंसे दूर मरा पड़ा है। इसकी आपको खबरतक नहीं दी गयी है। क्या युधिष्ठिरके कहनेपर भी आपको विश्वास नहीं हुआ? उनकी बातपर तो सन्देह नहीं करना चाहिये।'

भीमका कथन सुनकर द्रोणाचार्यने धनुष नीचे डाल दिया और अपने पक्षके योद्धाओंसे पुकारकर कहा—'कर्ण! कृपाचार्य और दुर्योधन! अब तुमलोग स्वयं ही युद्धके लिये प्रयत्न करो—यही तुमसे मेरा बारंबार कहना है। अब मैं अस्त्रोंका त्याग करता हूँ।' यह कहकर उन्होंने 'अश्वत्थामा' का नाम ले-लेकर पुकारा। फिर सारे अस्त्र-शस्त्रोंको फेंककर वे रथके पिछले भागमें बैठ गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देकर ध्यानमग्न हो गये।

धृष्टद्युम्नको यह एक मौका हाथ लगा। उसने धनुष और बाण तो रख दिया और तलवार हाथमें ले ली। फिर कूदकर वह सहसा द्रोणके निकट पहुँच गया। द्रोणाचार्य तो योग-

निष्ठ थे और धृष्टद्युम्न उन्हें मारना चाहता था—यह देखकर

सब लोग हाहाकार करने लगे। सबने एक स्वरसे उसे धिक्कारा।

इधर आचार्य शस्त्र त्यागकर परमज्ञानस्वरूपमें स्थित हो गये और योगधारणाके द्वारा मन-ही-मन पुराणपुरुष विष्णुका ध्यान करने लगे। उन्होंने मुँहको कुछ ऊपर उठाया और सीनेको आगेकी ओर तानकर स्थिर किया, फिर विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो हृदयकमलमें एकाक्षर ब्रह्म—प्रणवकी धारणा करके देवदेवेश्वर अविनाशी परमात्माका चिन्तन किया। इसके बाद शरीर त्यागकर वे उस उत्तम गतिको प्राप्त हुए, जो बड़े-बड़े संतोंके लिये भी दुर्लभ है। जब वे सूर्यके समान तेजस्वी स्वरूपसे ऊर्ध्वलोकको जा रहे थे, उस समय सारा आकाशमण्डल दिव्य ज्योतिसे आलोकित हो उठा था। इस प्रकार आचार्य ब्रह्मलोक चले गये और धृष्टद्युम्न मोहग्रस्त होकर वहाँ चुपचाप खड़ा था। महाराज! योगयुक्त महात्मा द्रोणाचार्य जिस समय परमधामको जा रहे थे, उस समय मनुष्योंमेंसे केवल मैं, कृपाचार्य, श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर—ये ही पाँच उनका दर्शन कर सके थे। और किसीको उनकी महिमाका ज्ञान न हो सका।

इसके बाद धृष्टद्युम्नने द्रोणके शरीरमें हाथ लगाया। उस समय सब प्राणी उसे धिक्कार रहे थे। द्रोणके शरीरमें चेतना नहीं थी, वे कुछ बोल नहीं रहे थे। इस अवस्थामें धृष्टद्युम्नने तलवारसे उनका मस्तक काट लिया और बड़ी उमंगमें भरकर उस कटारको घुमाता हुआ सिंहनाद करने लगा। आचार्यके शरीरका रंग साँवला था, उनकी आयु पचासी वर्षकी हो चुकी थी, ऊपरसे लेकर कानतकके बाल सफेद हो गये थे; तो भी आपके हितके लिये वे संग्राममें सोलह वर्षकी उम्रवाले तरुणकी भाँति विचरते थे।

कुन्तीनन्दन अर्जुन पुकारकर कहते ही रह गये कि 'द्रुपदकुमार! आचार्यका वध न करो, उन्हें जीते-जी ही उठा ले आओ।' पर उसने नहीं सुना। आपके सैनिक भी 'न मारो, न मारो' की रट लगाते ही रह गये। अर्जुन तो करुणामें भरकर धृष्टद्युम्नके पीछे-पीछे दौड़े भी, पर कुछ फल न हुआ। सब लोग पुकारते ही रह गये, किन्तु उसने उनका वध कर ही डाला। खूनसे भीगी हुई आचार्यकी लाश तो रथसे नीचे गिर पड़ी और उनके मस्तकको धृष्टद्युम्नने आपके पुत्रोंके सामने फेंक दिया। उस युद्धमें आपके बहुत योद्धा मारे गये थे। अधमरे मनुष्योंकी संख्या भी कम नहीं थी। द्रोणके मरते ही सबकी हालत मुर्देकी-सी हो गयी। हमारे पक्षके राजाओंने द्रोणके मृतक शरीरको बहुत खोजा; पर वहाँ इतनी लाशें बिछी थीं कि वे उसे प्राप्त न कर सके।

तदनन्तर भीमसेन और धृष्टद्युम्न एक दूसरेसे गले मिलकर सेनाके बीचमें खुशीके मारे नाचने लगे। भीमने कहा—'पाञ्चालराजकुमार! जब कर्ण और दुष्ट दुर्योधन मारे जायँगे, उस समय फिर तुम्हें इसी प्रकार छातीसे लगाऊँगा।'

कौरवोंका भयभीत होकर भागना, पिताकी मृत्यु सुनकर अश्वत्थामाका कोप और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग

सञ्जय कहते हैं—महाराज! आचार्य द्रोणके मारे जानेके बाद कौरवोंको बड़ा शोक हुआ। उनकी आँखोंसे आँसू बह चले। लड़नेका सारा उत्साह जाता रहा। वे आर्तस्वरसे विलाप करते हुए आपके पुत्रको घेरकर बैठ गये। दुर्योधनसे अब वहाँ खड़ा नहीं रहा गया, वह भागकर अन्यत्र चला गया। आपके सैनिक भूख-प्याससे विकल थे। वे ऐसे उदास दिखायी देते थे, मानो लूकी लपटमें झुलस गये हों। द्रोणकी मृत्युसे सबपर भय छा गया था, इसलिये सब भाग गये। गन्धारराज शकुनि, सूतपुत्र कर्ण, मद्रराज शल्य, आचार्य कृप और कृतवर्मा भी अपनी-अपनी सेनाके साथ भाग चले। दुःशासन भी आचार्यकी मृत्यु सुनकर घबरा गया था, अतः वह भी हाथियोंकी सेना लेकर भाग निकला। बचे हुए संशप्तकोंको साथ ले सुशर्मा भी पलायन कर गया। कोई हाथीपर चढ़कर भागा, कोई रथपर। कुछ लोग घोड़ोंको रणभूमिमें ही छोड़कर भाग खड़े हुए। कोई पितासे जल्दी भागनेको कहते थे, कोई भाइयोंसे। कोई मामा और मित्रोंको उत्तेजित करते हुए भाग रहे थे।

इस प्रकार जब आपकी सेना भयभीत एवं अशक्त होकर भागी जा रही थी, उस समय अश्वत्थामाने दुर्योधनके पास जाकर पूछा—'भारत! तुम्हारी यह सेना त्रस्त होकर भाग क्यों रही है? तुम इसे रोकनेका प्रयत्न क्यों नहीं करते? पहलेकी भाँति तुम्हारा मन आज स्वस्थ नहीं दिखायी देता। कर्ण आदि भी यहाँ नहीं ठहर पाते। और दिन भी भयानक युद्ध हुए हैं, पर सेनाकी ऐसी दशा कभी नहीं

। बताओ तो, किस महारथीकी मृत्यु हुई है जिससे ारी सेना इस अवस्थाको पहुँच गयी ?'

द्रोणपुत्रका यह प्रश्न सुनकर भी दुर्योधन उस घोर य समाचारको मुँहसे नहीं निकाल सका। केवल उसकी : देखकर आँसू बहाता रहा। इसके बाद उसने कृपाचार्य- कहा—'आप ही सेनाके भागनेका कारण बता दीजिये।'

तब कृपाचार्य बारंबार विषादमग्न होकर अश्वत्थामासे के मारे जानेका समाचार सुनाने लगे। उन्होंने कहा— त ! हमलोग आचार्य द्रोणको आगे रखकर पाञ्चाल ओंसे संग्राम कर रहे थे। उस युद्धमें जब बहुत-से व-योद्धा मार डाले गये, तो तुम्हारे पिताने कुपित होकर स्त्र प्रकट किया और भल्ल नामक बाणोंसे हजारों ओंका सफाया कर डाला। उस समय कालकी प्रेरणासे डव, केकय, मत्स्य और विशेषतः पाञ्चाल वीरोंमेंसे जो द्रोणके रथके सामने आये, वे सब नष्ट हो गये। फिर तो ञ्चाल योद्धा भाग खड़े हुए। उनका बल और पराक्रम में मिल गया। वे उत्साह खो बैठे और अचेत-से हो गये।

उन्हें द्रोणके बाणोंसे पीडित देख पाण्डवोंकी विजय हनेवाले श्रीकृष्णने कहा—'ये आचार्य द्रोण मनुष्योंसे ी नहीं जीते जा सकते; औरोंकी तो बात ही क्या है, इन्द्र इन्हें नहीं परास्त कर सकते। मेरा ऐसा विश्वास है कि श्वत्थामाके मारे जानेपर ये लड़ाई नहीं कर सकते; इस ये कोई जाकर इन्हें अश्वत्थामाकी मृत्युकी झूठी खबर ा दे।' यह बात और सबने तो मान ली, केवल अर्जुनको द नहीं आयी। युधिष्ठिरने भी बड़ी कठिनाईसे इसे कार किया। भीमसेनने लजाते-लजाते तुम्हारे पिताके मने जाकर कहा—'अश्वत्थामा मारा गया;' पर उन्होंने स्पर विश्वास नहीं किया। इसी बीचमें भीमसेनने मालवके जा इन्द्रवर्माके अश्वत्थामा नामक हाथीको मार डाला। इसे धिष्ठिरने भी देखा। द्रोणने सच्ची बातका पता लगानेके लिये जा युधिष्ठिरसे पूछा—'अश्वत्थामा मारा गया या नहीं ?' थ्या भाषणमें कितना दोष है, यह जानते हुए भी धिष्ठिरने कह दिया 'अश्वत्थामा मारा गया।' 'परन्तु थी।' अन्तिम वाक्य उन्होंने धीरेसे कहा, जिसे तुम्हारे ता सुन नहीं सके। अब उन्हें तुम्हारे मरनेका श्वास हो गया। वे सन्तापसे पीडित हो गये। अब युद्धमें हल्का-सा उत्साह न रहा। उन्होंने दिव्यास्त्रोंका परित्याग र दिया और समाधि लगाकर बैठ गये। उस समय धृष्टद्युम्नने पास जाकर बायें हाथसे उनके केश पकड़ लिये और उनका सिर धड़से अलग कर दिया। सब योद्धा पुकार-पुकारकर कह रहे थे—'न मारो, न मारो।' अर्जुन तो रथसे उतरकर उसके पीछे दौड़ पड़े और बाँह उठाकर बारंबार कहने लगे—'आचार्यको जीवित ही उठा लाओ, मारो मत।' इस प्रकार सब लोग मना करते ही रह गये, परन्तु उस नृशंसने तुम्हारे पिताको मार ही डाला। उनके मारे जानेपर हमारा उत्साह भी जाता रहा, इसीलिये भाग रहे हैं।''

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! आचार्य द्रोणको मानव, वारुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायण अस्त्रका भी ज्ञान था; वे धर्ममें स्थित रहनेवाले थे; तो भी धृष्टद्युम्नने उन्हें अधर्मपूर्वक मार डाला। वे शस्त्र-विद्यामें परशुरामकी और युद्धमें इन्द्रकी समानता रखते थे। उनका पराक्रम कार्तवीर्यके समान और बुद्धि बृहस्पतिके तुल्य थी। वे पर्वतके समान स्थिर और अग्निके समान तेजस्वी थे। गम्भीरतामें समुद्रको भी मात करते थे। ऐसे धर्मिष्ठ पिताको धृष्टद्युम्नके द्वारा अधर्मपूर्वक मारा गया सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा ?

सञ्जय कहते हैं—पापी धृष्टद्युम्नने मेरे पिताको छलसे मार डाला है—यह सुनकर अश्वत्थामा पहले तो रो पड़ा, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे; मगर फिर वह रोषसे भर गया, उसका सारा शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। बारंबार आँखोंसे आँसू पोंछता हुआ वह दुर्योधनसे बोला—''राजन् ! मेरे पिताने हथियार डाल दिया था, तो भी उन नीचोंने उन्हें मरवा डाला। इन धर्मध्वजियोंका किया हुआ पाप आज मुझे मालूम हो गया। युधिष्ठिरने भी जो नीचतापूर्ण क्रूर कर्म किया है, उसे भी सुन लिया। मेरे पिता रणमें मृत्युको प्राप्त होकर अवश्य ही वीरोंके लोकमें गये हैं, अतः उनके लिये मुझे शोक नहीं है। किन्तु धर्ममें प्रवृत्त रहनेपर भी जो उनका केश पकड़ा गया, सब सैनिकोंके सामने उनका अपमान किया गया—यही मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालता है। मुझ-जैसे पुत्रके जीवित रहते भी उन्हें यह दिन देखना पड़ा। दुरात्मा धृष्टद्युम्नने मेरा अपमान करके जो यह महान् पाप किया है, इसका भयंकर परिणाम उसे जल्दी ही भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिर भी कितना झूठा है ! उसने बहुत बड़ा अन्याय करके छलसे मेरे पिताका हथियार डलवा दिया है। अतः आज यह पृथ्वी उस धर्मराज कहलानेवालेका रक्तपान करेगी। आज मैं अपने सत्य तथा इष्टापूर्त्त कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि सम्पूर्ण पाञ्चालोंका संहार किये बिना मैं

कदापि जीवित नहीं रहूँगा। हर तरहके उपायोंसे पाञ्चालोंके नाशका प्रयत्न करूँगा। कोमल या कठोर कर्म करके भी पापी धृष्टद्युम्नका नाश कर डालूँगा। पाञ्चालोंका सर्वनाश किये बिना मैं शान्ति नहीं पा सकूँगा। संसारके लोग पुत्रकी चाह इसीलिये करते हैं कि वह इहलोक तथा परलोकमें महान् भयसे पिताकी रक्षा करेगा। परन्तु मैं जीवित ही हूँ और मेरे पिताकी पुत्रहीनकी-सी दुर्दशा हुई है। धिक्कार है मेरे दिव्य अस्त्रोंको, धिक्कार है मेरी इन भुजाओं और पराक्रमको, जो कि मेरे-जैसे पुत्रको पाकर भी मेरे पिताका केश खींचा गया। अब मैं ऐसा काम करूँगा, जिससे परलोक-वासी पिताके ऋणसे उऋण हो जाऊँ। श्रेष्ठ पुरुषको अपनी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिये; तथापि अपने पिताका वध मुझसे सहा नहीं जाता, इसलिये अपना पौरुष कहकर सुनाता हूँ। आज श्रीकृष्ण और पाण्डव मेरा पराक्रम देखें, उनकी सम्पूर्ण सेनाको मिट्टीमें मिलाकर प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दूँगा। रथमें बैठकर संग्रामभूमिमें पहुँचनेपर आज मुझे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी नहीं जीत सकते। संसारमें मुझसे या अर्जुनसे बढ़कर दूसरा कोई अस्त्रवेत्ता नहीं है। मैं एक ऐसा अस्त्र जानता हूँ जिसे न श्रीकृष्ण जानते हैं, न अर्जुन। भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकिको भी उसका ज्ञान नहीं है। पूर्वकालकी बात है, मेरे पिताने भगवान् नारायण-को नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा की थी। भगवान्‌ने उनका पूजन स्वीकार किया और वर माँगनेको कहा। पिताने उनसे सर्वोत्तम नारायणास्त्रकी याचना की। तब भगवान् बोले—'मैं यह अस्त्र तुम्हें देता हूँ, अब युद्धमें तुम्हारा मुकाबला करनेवाला कोई नहीं रह जायगा। किन्तु ब्रह्मन्! इसका सहसा प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह अस्त्र शत्रुका नाश किये बिना नहीं लौटता। अवध्यका भी वध कर डालता है। इसको शान्त करनेके उपाय ये हैं—शत्रु अपना रथ छोड़कर उतर जाय, हथियार नीचे डाल दे और हाथ जोड़कर इसकी शरणमें चला जाय। और किसी उपायसे इसका निवारण नहीं होता।' यह कहकर उन्होंने अस्त्र दिया और मेरे पिताने उसे ग्रहण करके मुझे भी सिखा दिया था। भगवान्‌ने अस्त्र देते समय यह भी कहा था कि 'तुम इस अस्त्रसे अनेकों प्रकारके दिव्यास्त्रोंका नाश कर सकोगे और संग्राममें बड़े तेजस्वी दिखायी दोगे।' ऐसा कहकर भगवान् अपने परम धामको चले गये। यह नारायणास्त्र मुझे अपने पितासे मिला है। इसके द्वारा मैं युद्धमें पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकयोंको मार भगाऊँगा। पाण्डवोंको अपमानित करके अपने सम्पूर्ण शत्रुओंका

विध्वंस कर डालूँगा। ब्राह्मण और गुरुसे द्रोह करनेवाले पाञ्चालकुलकलंक धृष्टद्युम्नको भी आज जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

अश्वत्थामाकी बात सुनकर कौरवोंकी भागती हुई सेना लौट पड़ी। सभी महारथियोंने बड़े-बड़े शंख बजाने शुरू किये। भेरी बज उठी, हजारों नगारे पीटे जाने लगे। उन बाजोंकी तुमुल ध्वनिसे आकाश और पृथ्वी गूँज उठी। मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान उस तुमुल नादको सुनकर पाण्डव महारथी एकत्र हो परामर्श करने लगे। इसी बीचमें अश्वत्थामाने आचमन करके दिव्य नारायणास्त्रको प्रकट किया।

अर्जुनके द्वारा युधिष्ठिरको उलाहना, भीमका क्रोध, धृष्टद्युम्नका द्रोणके विषयमें आक्षेप और सात्यकिके साथ उसका विवाद

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! नारायणास्त्रके प्रकट होते ही मेघसहित पवनके झकोरे उठने लगे। बिना बादलोंके ही गर्जना होने लगी, पृथ्वी डोल उठी, समुद्रमें तूफान आ गया और बड़ी-बड़ी नदियोंकी धारा उल्टी दिशाकी ओर बहने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। उस घोर अस्त्रको देखकर देवता, दानव और गन्धर्वोंपर भारी आतङ्क छा गया; समस्त राजालोग भयसे थर्रा उठे।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! उस समय पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये क्या विचार किया ?

सञ्जयने कहा—कौरव-सेनाका तुमुल नाद सुनकर युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले—'धनञ्जय ! धृष्टद्युम्नके द्वारा आचार्य द्रोणके मारे जानेपर कौरव बहुत उदास हो विजयकी आशा छोड़ चुके थे और अपनी-अपनी जान बचानेके लिये भागे जा रहे थे। अब देखते हैं तो पुनः उनकी सेना लौटी आ रही है; किसने उसे लौटाया है, इसके विषयमें तुम्हें कुछ पता हो तो बताओ। ऐसा जान पड़ता है, द्रोणके मारे जानेसे कौरवोंका पक्ष लेकर साक्षात् इन्द्र युद्ध करने आ रहे हैं। उनका भैरव-नाद सुनकर हमारे रथी घबराये हुए हैं, सबके रोंगटे खड़े हो गये हैं। यह कौन महारथी है, जो सेनाको युद्धके लिये लौटा रहा है ?'

अर्जुन बोले—जिस वीरने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवाके समान हींसना आरम्भ किया था, जिसे सुनकर यह पृथ्वी हिल उठी और तीनों लोक थर्राने लगे थे, उस आवाज़को सुनकर किसी अदृश्य रहनेवाले प्राणीने जिसका नाम 'अश्वत्थामा' रख दिया था, यह वही शूरवीर अश्वत्थामा है; वही सिंहनाद कर रहा है। धृष्टद्युम्नने उस समय अनाथके समान जिनके केश पकड़कर मार डाला था, यह उन्हींका पक्ष लेकर उसके क्रूर कर्मका बदला लेनेके लिये आया है। आपने भी राज्यके लोभसे झूठ बोलकर गुरुको धोखा दिया। धर्मको जानते हुए भी यह महान् पाप किया ! अतः अन्यायपूर्वक वालीका वध करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीको जैसे अपयश मिला, उसी प्रकार आपके विषयमें भी झूठ बोलकर गुरुको मरवा डालनेका स्थायी कलङ्क तीनों लोकोंमें फैल जायगा। आचार्यने यह समझा था कि 'पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, मेरे शिष्य हैं; ये कभी झूठ नहीं बोलेंगे।' इसी भरोसे उन्होंने आपका विश्वास क[र] लिया। परन्तु आपने सत्यकी आड़ लेकर सरासर झू[ठ] कहा। 'हाथी मरा था' इसलिये अश्वत्थामाका मरना ब[ता] दिया। फिर वे हथियार डालकर अचेत हो गये; उस सम[य] उन्हें जितनी व्याकुलता हुई थी, सो आपने भी देखी ह[ी] थी। पुत्रके स्नेहसे शोकमग्न होकर जो रणसे विमुख ह[ो] चुके थे, ऐसे गुरुको आपने सनातन धर्मकी अवहेलना करके शस्त्रसे मरवा डाला। अश्वत्थामा पिताकी मृत्युसे कुपित है; धृष्टद्युम्नको आज वह कालका ग्रास बनाना चाहता है। निहत्थे गुरुको अधर्मपूर्वक मरवाकर अब आप अपने मन्त्रियों-के साथ अश्वत्थामाका सामना करने जाइये, शक्ति हो तो धृष्टद्युम्नकी रक्षा कीजिये। मैं तो समझता हूँ, हम सब लोग मिलकर भी धृष्टद्युम्नको नहीं बचा सकते। मैं बार-बार मना करता रहा, तो भी शिष्य होकर इसने गुरुकी हत्या कर डाली। इसकी वजह यह है कि अब हमलोगोंकी आयुका अधिक अंश बीत गया, थोड़ा ही शेष रह गया है; इसी-से हमारा मस्तिष्क खराब हो गया, हमने यह महान् पाप कर डाला। जो सदा पिताकी भाँति हमलोगोंपर स्नेह रखते थे, धर्मदृष्टिसे भी जो हमारे पिता ही थे, उन गुरुदेवको इस क्षणभङ्गुर राज्यके कारण हमने मरवा दिया। धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणको पुत्रोंके साथ ही सारा राज्य सौंप दिया था। वे सदा उनकी सेवामें लगे रहते थे। निरन्तर सत्कार किया करते थे। तो भी आचार्य मुझे ही अपने पुत्रसे भी बढ़कर मानते थे। ओह ! मैंने बहुत बड़ा और भयङ्कर पाप किया, जो राज्य-सुखके लोभमें पड़कर गुरुकी हत्या करायी। मेरे गुरुदेवको यह विश्वास था कि अर्जुन मेरे लिये पिता, भाई, स्त्री, पुत्र और प्राणोंका भी त्याग कर सकता है। किन्तु मैं कितना राज्यका लोभी निकला ! वे मारे जा रहे थे और मैं चुपचाप देखता रहा। एक तो वे ब्राह्मण, दूसरे वृद्ध और तीसरे आचार्य थे; इसपर भी उन्होंने अपना शस्त्र नीचे डाल दिया था और महान् मुनिवृत्तिसे बैठे हुए थे। इस अवस्थामें राज्यके लिये उनकी हत्या कराकर अब मैं जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ।

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनकी बात सुनकर वहाँ जितने महारथी बैठे थे, सब चुप रह गये; किसीने बुरा

या भला कुछ भी नहीं कहा। तब महाबाहु भीमसेन क्रोधमें भरकर बोले—'पार्थ! वनवासी मुनि अथवा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मणकी भाँति तुम भी धर्मोपदेश करने बैठे हो? जो संकटसे अपनी तथा दूसरोंकी रक्षा करता है, संग्राममें शत्रुओंको क्षति पहुँचाना जिसकी जीविका है, जो स्त्रियों और सत्पुरुषोंपर क्षमाभाव रखता है, वह क्षत्रिय शीघ्र ही धर्म, यश तथा लक्ष्मीको प्राप्त करता है। क्षत्रियके सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त होते हुए आज मूर्खोंकी-सी बातें करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तात! तुम्हारा मन धर्ममें लगा हुआ है, तुम्हारे भीतर दया है—यह बहुत अच्छी बात है। किन्तु धर्ममें प्रवृत्त रहनेपर भी तुम्हारा राज्य अधर्मपूर्वक छीन लिया गया, शत्रुओंने द्रौपदीको सभामें लाकर उसका केश खींचा और हम सब लोग वल्कल धारण कर तेरह वर्षके लिये वनमें निकाल दिये गये। क्या हमारे साथ यही बर्ताव उचित था? ये सब बातें सहन करने योग्य नहीं थीं, फिर भी हमने सह लीं। हमने जो कुछ किया है, वह क्षत्रियधर्ममें स्थित रहकर ही किया है। शत्रुओंके उस अधर्मको याद कर आज मैं तुम्हारी सहायतासे उन्हें उनके सहायकोंसहित मार डालूँगा। मैं क्रोधमें भरकर इस पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ। पर्वतोंको तोड़-फोड़कर बिखेर सकता हूँ। अपनी भारी गदाकी चोटसे बड़े-बड़े पर्वतीय वृक्षोंको तोड़ डालूँगा। इन्द्र आदि देवता, राक्षस, असुर, नाग और मनुष्य भी यदि एक ही साथ लड़ने आ जायँ, तो उन्हें बाणोंसे मारकर भगा दूँगा। अपने भाईके ऐसे पराक्रमको जानते हुए भी तुम्हें अश्वत्थामासे भय नहीं करना चाहिये। अथवा तुम सब भाइयोंके साथ यहीं खड़े रहो, मैं अकेला ही गदा हाथमें लेकर शत्रुओंको परास्त करूँगा।'

भीमसेनके ऐसा कहनेपर धृष्टद्युम्न बोला—'अर्जुन! वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना—ये ही छः कर्म ब्राह्मणोंके लिये प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे किस कर्मका पालन द्रोणाचार्य करते थे? अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर उन्होंने क्षत्रिय-धर्म स्वीकार किया था। ऐसी अवस्थामें यदि मैंने उनका वध किया, तो तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? जो ब्राह्मण कहलाकर भी दूसरोंके प्रति मायाका प्रयोग करता है उसे यदि कोई मायासे ही मार डाले, तो इसमें अनुचित क्या है? तुम जानते हो, मेरी उत्पत्ति इसी कामके लिये हुई थी; फिर भी मुझे गुरुहत्यारा क्यों कहते हो? जो क्रोधके वशीभूत हो ब्रह्मास्त्र न जाननेवालोंको भी ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करता है, उसे सभी तरहके उपायोंसे क्यों न मार डाला जाय? उन्होंने दूसरेके नहीं, मेरे ही भाइयोंका संहार किया था; अतः उसके बदले उनका मस्तक काट लेनेपर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है। राजा भगदत्त तुम्हारे पिताके मित्र थे; उन्हें मारकर जैसे तुमने अधर्म नहीं किया, उसी प्रकार मैंने भी धर्मसे ही शत्रुका वध किया है। जब तुम अपने पितामहको भी युद्धमें मारकर धर्मका पालन समझते हो तो मैंने जो पापी शत्रुका संहार किया, उसे अधर्म क्यों मानते हो? बहिन द्रौपदी और उसके पुत्रोंका खयाल करके ही मैं तुम्हारी कठोर बातें सहे लेता हूँ; इसमें और कोई कारण नहीं है। अर्जुन! न तो तुम्हारे बड़े भाई असत्यवादी हैं और न मैं पापी। द्रोणाचार्य अपने ही अपराधके कारण मारे गये हैं; अतः चलकर युद्ध करो।'

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय! जिन महात्माने अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था, जिनमें साक्षात् धनुर्वेद प्रतिष्ठित था, उन आचार्य द्रोणकी वह नीच, नृशंस एवं गुरुघाती धृष्टद्युम्न निन्दा करता रहा और किसी क्षत्रियने उसपर क्रोध नहीं किया? धिक्कार है इस क्षत्रियपनको! बताओ, वह अनुचित बात सुनकर पाण्डव तथा दूसरे धनुर्धर राजाओंने धृष्टद्युम्नसे क्या कहा?

सञ्जयने कहा—महाराज! उस समय अर्जुनने द्रुपद-कुमारकी ओर तिरछी नज़रसे देखा और आँसू बहाते हुए उच्छ्वास लेकर कहा—'धिक्कार है! धिक्कार है!!' उस समय युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल-सहदेव तथा श्रीकृष्ण आदि सब लोग संकोचवश चुप हो गये। केवल सात्यकिसे नहीं रहा गया, वह बोल उठा—'अरे! क्या यहाँ ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जो अमंगलमयी बात बकनेवाले इस पापी नराधमको शीघ्र ही मार डाले? ओ नीच! श्रेष्ठ पुरुषोंकी मण्डलीमें बैठकर ऐसी ओछी बातें करते तुझे लज्जा नहीं आती? तेरी जीभके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? तेरा मस्तक क्यों नहीं फट जाता? गुरुकी निन्दा करते समय तू रसातलमें क्यों नहीं चला जाता? स्वयं ऐसा नीच कर्म करके उल्टे गुरुपर ही दोषारोपण करता है? तुझे तो मार ही डालना चाहिये। क्षणभर भी तेरे जीवित रहनेसे संसारका कोई लाभ नहीं है! नराधम! तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य है, जो धर्मात्मा गुरुका केश पकड़कर उसका वध करनेको तैयार होगा? तूने बीती तथा आगे होनेवाली अपनी

था। उससे हजारों बाण निकलकर आकाशमें छा गये, उन सबके अग्रभाग प्रज्वलित हो रहे थे। उनसे अन्तरिक्ष और दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। फिर लोहेके गोले, चतुश्चक्र, द्विचक्र, शतघ्नी, गदा और जिसके चारों ओर छुरे लगे हुए थे, ऐसे सूर्यमण्डलाकार चक्र प्रकट हुए। इस प्रकार नाना प्रकारके शस्त्रोंसे आकाशको व्याप्त देख पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय घबरा उठे। पाण्डव महारथी ज्यों-ज्यों युद्ध करते, त्यों-त्यों उस अस्त्रका जोर बढ़ता जाता था। उससे पाण्डव-

सेना भस्म होने लगी। यह संहार देख धर्मराजको बड़ा भय हुआ। उन्होंने देखा—मेरी सेना अचेत-सी होकर भाग रही है और अर्जुन उदासीन भावसे चुपचाप खड़े हैं, तो सब योद्धाओंसे कहा—'धृष्टद्युम्न! पाञ्चालोंकी सेनाके साथ तुम भाग जाओ। सात्यके! तुम भी वृष्णि और अन्धकोंके साथ चल दो। अब धर्मात्मा श्रीकृष्णसे जो कुछ हो सकेगा, करेंगे। ये सारे जगत्‌के कल्याणका उपदेश देते हैं, तो अपना क्यों नहीं करेंगे ? मैं सम्पूर्ण सैनिकोंसे कह रहा हूँ, कोई भी युद्ध न करो। भाइयोंको साथ लेकर मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। अर्जुनकी मेरे प्रति जो शुभ कामना है, वह शीघ्र ही पूरी हो जानी चाहिये; क्योंकि सदा ही अपना कल्याण करनेवाले आचार्यका मैंने वध करवाया है! अतः उनके लिये मैं भी बन्धुओंसहित मर जाऊँगा।'
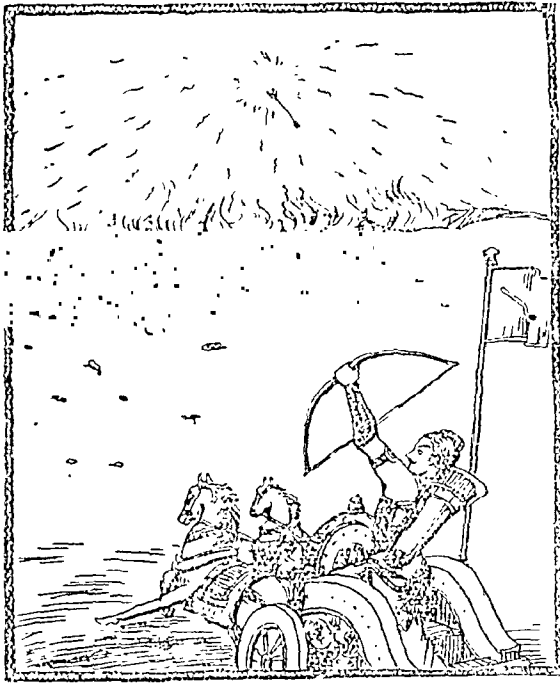
जब युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने दोनों भुजाएँ उठाकर सबको रोका और इस प्रकार कहा—'योद्धाओ! अपने हथियार शीघ्र ही नीचे डाल दो और सवारियोंसे उतर जाओ; नारायणास्त्रकी शान्तिका यही उपाय बताया गया है। भूमिपर खड़े हुए निहत्थे लोगोंको यह अस्त्र नहीं मारेगा। इसके विपरीत, ज्यों-ही-ज्यों योद्धा इस अस्त्रके सामने युद्ध करेंगे, त्यों-ही-त्यों कौरव अधिक बलवान् होते जायँगे। जो इस अस्त्रका सामना करनेके लिये मनमें विचार भी करेंगे, वे रसातलमें चले जायँ तो भी यह अस्त्र उन्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा।'

भगवान् कृष्णकी बातें सुनकर सब योद्धाओंने हाथसे और मनसे भी शस्त्र त्याग देनेका विचार कर लिया। सबको अस्त्र त्यागनेके लिये उद्यत देख भीमसेनने कहा—वीरो! कोई भी अस्त्र न फेंकना। मैं अपने बाणोंसे अश्वत्थामाके अस्त्रोंका वारण करूँगा। इस भारी गदासे उसके अस्त्रोंका नाश करके मैं उसके ऊपर भी कालकी भाँति प्रहार करूँगा। यदि इस नारायणास्त्रका मुकाबला करनेके लिये अबतक कोई योद्धा समर्थ नहीं हुआ, तो आज कौरव-पाण्डवोंके देखते-देखते मैं इसका सामना करूँगा। अर्जुन! अर्जुन! तुम अपने गाण्डीवको नीचे न डाल देना; नहीं तो चन्द्रमाकी भाँति तुममें भी कलङ्क लग जायगा, जो तुम्हारी निर्मलताको नष्ट कर देगा।'

अर्जुन बोले—भैया! नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणोंके सामने अपने अस्त्रको नीचे डाल देनेका मेरा व्रत है।

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भीमसेन अकेले ही मेघके समान गर्जना करते हुए अश्वत्थामाके सामने गये और उसपर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगे। अश्वत्थामाने भी उनसे हँसकर बात की और उनपर नारायणास्त्रसे अभिमन्त्रित बाणोंकी झड़ी लगा दी। महाराज! भीमसेन जब उस अस्त्रके सामने बाण मारने लगे, उस समय जैसे हवाका सहारा पाकर आग प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार उस अस्त्रका वेग बढ़ने लगा। उसे बढ़ते देख भीमके सिवा पाण्डवसेनाके सभी सैनिक भयभीत हो गये। सब लोग अपने दिव्य अस्त्रोंको नीचे डालकर रथ, हाथी और घोड़े आदि वाहनोंसे उतर गये। अब वह महाबली अस्त्र सब ओरसे हटकर भीमके मस्तकपर आ पड़ा। उसके तेजसे आच्छादित होकर भीमसेन अदृश्य हो गये। इससे सभी प्राणी और विशेषतः पाण्डव-लोग हाहाकार मचाने लगे। भीमसेनके साथ ही उनके रथ,

घोड़े और सारथि भी अश्वत्थामाके अस्त्रसे आच्छादित हो आगके भीतर आ पड़े। जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को भस्म करके परमात्माके मुखमें प्रवेश कर जाती है, उसी प्रकार उस अस्त्रने भीमसेनको दग्ध करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। उसका तेज भीमसेनके भीतर प्रविष्ट हो गया। यह देख अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों वीर तुरंत ही रथसे कूद पड़े और भीमकी ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर दोनों उस अस्त्रकी आगमें घुस गये, किन्तु अस्त्र त्याग देनेके कारण वह आग इन्हें जला न सकी। नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये दोनों ही भीमसेनको तथा उनके सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको जोर लगाकर खींचने लगे। उनके खींचनेपर भीमसेन और जोरसे गर्जना करने लगे; इससे वह भयङ्कर अस्त्र और भी उग्ररूप धारण करने लगा।

तब भगवान् श्रीकृष्णने भीमसे कहा—'पाण्डुनन्दन! यह क्या बात है? मना करनेपर भी तुम युद्ध बंद क्यों नहीं करते? यदि इस समय युद्धसे ही कौरव जीते जा सकते तो हम तथा ये सभी राजा युद्ध ही करते। यहाँ हठसे काम नहीं चलेगा। तुम्हारे पक्षके सभी योद्धा रथसे उतर चुके हैं, तुम भी शीघ्र उतर जाओ।' यह कहकर श्रीकृष्णने उन्हें रथसे

नीचे खींच लिया। नीचे उतरकर भीमसेनने ज्यों ही अपना अस्त्र धरतीपर डाला, त्यों ही नारायणास्त्र शान्त हो गया।

इस प्रकार उस दुःसह तेजके शान्त हो जानेपर सम्पूर्ण दिशाएँ साफ हो गयीं, ठंडी हवा चलने लगी तथा पशु-पक्षियोंका कोलाहल बंद हो गया। हाथी और घोड़े आदि वाहन भी सुखी हो गये। पाण्डवोंकी जो सेना मरनेसे बच गयी थी, वह अब आपके पुत्रोंका नाश करनेके लिये पुनः हर्षसे भर गयी। उस समय दुर्योधनने द्रोणपुत्रसे कहा—'अश्वत्थामन्! एक बार फिर इस अस्त्रका प्रयोग करो; देखो, यह पाञ्चालोंकी सेना विजयकी इच्छासे पुनः संग्रामभूमिमें आकर डट गयी है।' आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा दीनतापूर्ण उच्छ्वास लेकर बोला—'राजन्! इस अस्त्रका दुबारा प्रयोग नहीं हो सकता। दुबारा प्रयोग करनेपर यह अपने ही ऊपर आकर पड़ता है। श्रीकृष्णने इसे शान्त करनेका उपाय बता दिया, नहीं तो आज सम्पूर्ण शत्रुओंका वध हो ही जाता।' दुर्योधनने कहा—'भाई! तुम तो सम्पूर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो; यदि इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं हो सकता तो अन्य अस्त्रोंसे ही इनका संहार करो। क्योंकि ये सभी गुरुदेव द्रोणके हत्यारे हैं। तुम्हारे पास बहुत-से दिव्यास्त्र हैं; यदि मारना चाहो तो क्रोधमें भरे हुए इन्द्र भी तुमसे बचकर नहीं जा सकते।'

पिताकी मृत्यु याद आ जानेसे अश्वत्थामा पुनः क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा। निकट पहुँचकर उसने पहले बीस और फिर पाँच बाणोंसे उसे घायल किया। धृष्टद्युम्नने भी चौसठ बाण मारकर अश्वत्थामाको बींध डाला तथा बीस बाणोंसे सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाको बारंबार बींधकर पृथ्वीको कम्पायमान-सा करता हुआ गर्जने लगा। अश्वत्थामाने भी कुपित हो धृष्टद्युम्नको दस बाण मारे, फिर दो क्षुरोंसे उसकी ध्वजा और धनुष काट दिये। इसके बाद अन्य बहुत-से सायकोंद्वारा धृष्टद्युम्नको पीड़ित किया और घोड़ों तथा सारथि-को मारकर उसे रथहीन कर दिया। तत्पश्चात् उसके सैनिकों-को भी मार भगाया। यह देखकर सात्यकि अपने रथको अश्वत्थामाके पास ले गया। वहाँ पहुँचकर उसने अश्वत्थामा-को पहले आठ, फिर बीस बाणोंसे बींध दिया; इसके बाद सारथि तथा घोड़ोंको घायल किया। फिर उसके धनुष और ध्वजाको काटकर रथको भी तोड़ डाला। तदनन्तर उसकी छातीमें तीस बाण मारे।

उस समय दुर्योधनने बीस, कृपाचार्यने तीन, कृतवर्माने

दस, कर्णने पचास, दुःशासनने सौ तथा वृषसेनने सात बाण मारकर सात्यकिको घायल किया। तब सात्यकिने एक ही क्षणमें उन सभी महारथियोंको रथहीन करके रणभूमिसे भगा दिया। इतनेमें अश्वत्थामा दूसरे रथपर सवार होकर आया और सैकड़ों सायकोंकी वृष्टि करता हुआ सात्यकिको रोकने लगा। सात्यकिने जब उसे आते देखा, तो पुनः उसके रथके टुकड़े करके उसे मार भगाया। सात्यकिका वह पराक्रम देख पाण्डव बारंबार शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे। इस प्रकार द्रोणपुत्रको रथहीन करके सात्यकिने वृषसेनके तीन हजार महारथियोंका, कृपाचार्यके पंद्रह हजार हाथियोंका तथा शकुनिके पचास हजार घोड़ोंका संहार कर डाला। इसी बीचमें अश्वत्थामा पुनः दूसरे रथपर आरूढ़ हो सात्यकिका वध करनेके लिये क्रोधमें भरा हुआ आया। सात्यकि पुनः उसे तीखे बाणोंसे बींधने लगा। इससे पीडित होकर अश्वत्थामाने हँसते-हँसते कहा—'सात्यके! तुम आचार्यको मारनेवालेकी सहायता करते हो; परन्तु यह धृष्टद्युम्न और तुम—दोनों ही मेरे ग्रास बन चुके हो, किसी तरह अब बचकर नहीं जा सकते। युयुधान! मैं अपने सत्य और तपस्याकी शपथ खाकर कहता हूँ, समस्त पाञ्चालोंका नाश किये बिना चैन नहीं लूँगा। तुम पाण्डवों और वृष्णियोंकी जितनी भी सेना हो, सबको एकत्रित कर लो; तो भी मैं सोमकोंका संहार कर ही डालूँगा।'

यह कहकर अश्वत्थामाने सात्यकिपर एक बहुत तीखा बाण मारा। उसने सात्यकिका कवच छेदकर उसे अत्यन्त चोट पहुँचायी। कवच छिन्न-भिन्न हो गया, उसके हाथसे धनुष और बाण गिर गये, खूनसे लथपथ हो वह रथके पिछले भागमें जा बैठा। यह देख सारथि उसे अश्वत्थामाके सामनेसे अन्यत्र हटा ले गया। तदनन्तर अर्जुन, भीमसेन, बृहत्क्षत्र, चेदिराजकुमार, सुदर्शन—ये पाँच महारथी आ पहुँचे और सबने चारों ओरसे अश्वत्थामाको घेर लिया। उन्होंने बीस पग दूर रहकर अश्वत्थामाको पाँच-पाँच बाण मारे। अश्वत्थामाने भी एक ही साथ पच्चीस बाण मारकर उनके सब बाणोंको काट दिया। इसके बाद उसने बृहत्क्षत्रको सात, सुदर्शनको तीन, अर्जुनको एक और भीमसेनको छः बाणोंसे बींध डाला। तब चेदिदेशके युवराजने बीस, अर्जुनने आठ और अन्य सब लोगोंने तीन-तीन बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया। इसके बाद अश्वत्थामाने अर्जुनको छः, श्रीकृष्णको दस, भीमसेनको पाँच, चेदियुवराजको चार और सुदर्शन तथा बृहत्क्षत्रको दो-दो बाण फिर भीमसेनके सारथिको छः बाणोंसे घायल कर दो उनकी ध्वजा और धनुष काट डाले। तत्पश्चात् सायकोंकी वर्षासे अर्जुनको भी बींधकर उसने सिंहके गर्जना की। फिर तीन बाणोंसे उसने अपने रथके पास हुए सुदर्शनकी दोनों भुजाएँ और मस्तक उड़ा दिये, शक्तिसे पौरव बृहत्क्षत्रको मार डाला तथा अग्निके तेजस्वी बाणोंसे चेदिदेशके युवराजको सारथि और घोड़ों यमलोक भेज दिया।

यह देखकर भीमसेनके क्रोधकी सीमा न रही; उ सैकड़ों तीखे बाणोंसे अश्वत्थामाको ढक दिया। अश्वत्थामाने अपने सायकोंसे उनकी बाणवर्षाका नाश दिया और क्रोधमें भरकर उन्हें भी घायल किया। भीमसेनने यमदण्डके समान भयङ्कर दस नाराच चल वे अश्वत्थामाके गलेकी हँसली छेदकर भीतर घुस ग इस चोटसे अत्यन्त पीडित हो उसने आँखें बंद कर और ध्वजाका सहारा लेकर बैठ गया। थोड़ी देरमें जब हुआ, तो उसने भीमसेनको सौ बाण मारे। इस प्रकार दे ही वर्षाकालके मेघके समान एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा क लगे। महाराज! उस युद्धमें हमलोगोंको भीमसेनके अ पराक्रम, अद्भुत बल, अद्भुत वीरता, अद्भुत प्रभाव त अद्भुत व्यवसायका परिचय मिला। उन्होंने द्रोणपुत्रका करनेकी इच्छासे बाणोंकी बड़ी भयङ्कर वृष्टि की। इ अश्वत्थामा भी बड़ा भारी अस्त्रवेत्ता था, उसने अस्त्रों मायासे उनकी बाणवर्षा रोक दी और उनका धनुष का डाला; फिर क्रोधमें भरकर अनेकों बाणोंसे उन्हें घाय किया। धनुष कट जानेपर भीमने भयङ्कर रथशक्ति हाथ ली और उसे बड़े वेगसे घुमाकर अश्वत्थामाके रथपर चलाया किन्तु उसने तेज बाण मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले इसी बीचमें भीमसेनने एक सुदृढ धनुष हाथमें लिया और बहुत-से बाणोंका प्रहार कर अश्वत्थामाको बींध डाला। तब अश्वत्थामाने एक बाण मारकर भीमसेनके सारथिका ललाट चीर दिया, उस प्रहारसे सारथि मूर्छित हो गया। उसके हाथसे घोड़ोंकी बागडोर छूट गयी। सारथिके बेहोश होते ही भीमसेनके घोड़े सब धनुर्धारियोंके देखते-देखते भाग चले। विजयी अश्वत्थामा हर्षमें भरकर शङ्ख बजाने लगा और पाञ्चाल योद्धा तथा भीमसेन भयभीत होकर इधर-उधर भाग निकले।

अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रका प्रयोग और व्यासजीका उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा सुनाना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनने देखा कि मेरी सेना भाग रही है, तो द्रोणपुत्रको जीतनेकी इच्छासे स्वयं आगे बढ़कर उसे रोका । फिर वे सोमक तथा मत्स्य राजाओंके साथ कौरवोंकी ओर लौटे । अर्जुनने अश्वत्थामाके पास पहुँचकर कहा—'तुम्हारे अंदर जितनी शक्ति, जितना विज्ञान, जितनी वीरता और जितना पराक्रम हो, कौरवोंपर जितना प्रेम और हमलोगोंसे जितना द्वेष हो, वह सब आज हमारेपर ही दिखा लो । धृष्टद्युम्नका या श्रीकृष्णसहित मेरा सामना करने आ जाओ; तुम आजकल बहुत उद्दंड हो गये हो, आज मैं तुम्हारा सारा घमंड दूर कर दूँगा ।'

राजन् ! अश्वत्थामाने चेदिदेशके युवराज, पुरुवंशी बृहत्क्षत्र और सुदर्शनको मार डाला तथा धृष्टद्युम्न, सात्यकि एवं भीमसेनको भी पराजित कर दिया था—इन कई कारणोंसे विवश होकर अर्जुनने आचार्यपुत्रसे ये अप्रिय वचन कहे थे । उनके तीखे एवं मर्मभेदी वचनोंको सुनकर अश्वत्थामा श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर कुपित हो उठा; वह सावधान होकर रथपर बैठा और आचमन करके उसने आग्नेय-अस्त्र उठाया । फिर उसे मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जितने भी शत्रु थे, उन सबको नष्ट करनेके उद्देश्यसे छोड़ा । वह बाण धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था । उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी घनघोर वृष्टि होने लगी । चारों ओर फैली हुई आगकी लपट अर्जुनपर ही आ पड़ी । उस समय राक्षस और पिशाच एकत्रित होकर गर्जना करने लगे । हवा गरम हो गयी । सूर्यका तेज फीका पड़ गया और बादलोंसे रक्तकी वर्षा होने लगी । तीनों लोक सन्तप्त हो उठे । उस अस्त्रके तेजसे जलाशयोंके गरम हो जानेके कारण उनके भीतर रहनेवाले जीव जलने तथा छटपटाने लगे । दिशाओं, विदिशाओं, आकाश और पृथ्वी—सब ओरसे बाणवर्षा हो रही थी । वज्रके समान वेगवाले उन बाणोंके प्रहारसे शत्रु दग्ध होकर आगके जलाये हुए वृक्षोंकी भाँति गिर रहे थे । बड़े-बड़े हाथी चारों ओर चिग्घारते हुए झुलस-झुलसकर धराशायी हो रहे थे । कुछ भयभीत होकर भाग रहे थे । महाप्रलयके समय संवर्तक नामवाली आग जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंको जलाकर खाक कर डालती है, उसी प्रकार पाण्डवोंकी सेना उस आग्नेय अस्त्र-

से दग्ध हो रही थी । यह देख आपके पुत्र विजयकी उमंग-से उल्लसित हो सिंहनाद करने लगे । हजारों प्रकारके बाजे बजाये जाने लगे ।
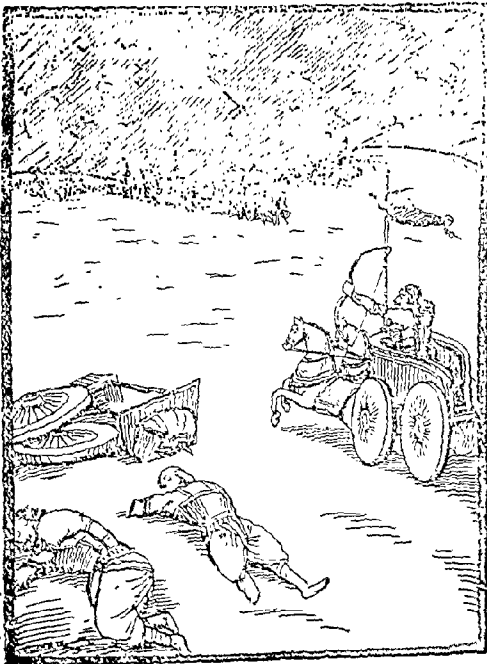
उस समय इतना घोर अन्धकार छा रहा था कि अर्जुन और उनकी एक अक्षौहिणी सेनाको कोई देख नहीं पाता था । अश्वत्थामाने अमर्षमें भरकर उस समय जैसे अस्त्रका प्रहार किया था, वैसा हमने पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था । तदनन्तर अर्जुनने अश्वत्थामाके सम्पूर्ण अस्त्रोंका नाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । फिर तो क्षणभरमें ही सारा अन्धकार नष्ट हो गया । ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी, समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं । उजेला होनेपर वहाँ एक अद्भुत बात दिखायी दी । पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना उस अस्त्रके तेजसे इस प्रकार दग्ध हो गयी थी कि उसका नाम-निशानतक मिट गया था, परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरपर आँचतक नहीं आयी थी । ज्वालासे मुक्त होकर पताका, ध्वजा, घोड़े तथा आयुधोंसे सुशोभित अर्जुनका रथ वहाँ शोभा पाने लगा । उसे देख

आपके पुत्रोंको बड़ा भय हुआ, परन्तु पाण्डवोंके हर्षकी सीमा न रही । वे शंख और भेरी बजाने लगे । श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी शंख-नाद किया ।

उन दोनों महापुरुषोंको आग्नेय अस्त्रसे मुक्त देख अश्वत्थामा दुखी और हक्का-बक्का-सा होकर थोड़ी सोचता रहा कि 'यह क्या बात हुई !' फिर अपने धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है है !! यह सब कुछ झूठा है !' ऐसा कहता हुआ वह भाग चला । इतनेहीमें उसे व्यासजी खड़े दिखायी उन्हें सामने पाकर उसने प्रणाम किया और अत्यन्त

भाँति गद्गद कण्ठसे कहा—'भगवन् ! इसे माया क दैवकी इच्छा ? मेरी समझमें नहीं आता—यह सब क रहा है । यह अस्त्र झूठा कैसे हुआ ? मुझसे कौन-सी ग हो गयी है ? अथवा यह संसारके किसी उलट-फेरकी सू है, जिससे श्रीकृष्ण और अर्जुन जीवित बच गये हैं ? चलाये हुए इस अस्त्रको असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्ष सर्प, यक्ष तथा मनुष्य किसी प्रकार अन्यथा नहीं कर स थे; तो भी यह केवल एक अक्षौहिणी सेनाको ही जल शान्त हो गया । श्रीकृष्ण और अर्जुन भी तो मरण मनुष्य ही हैं, इन दोनोंका वध क्यों नहीं हुआ ? आप प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दीजिये, मैं यह सब सुनना चाहता हूँ

व्यासजी बोले—तू जिसके सम्बन्धमें आश्चर्यके प्रश्न कर रहा है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है । अपने मन एकाग्र करके सुन । एक समयकी बात है, हमारे पूर्वज

भी पूर्वज विश्व-विधाता भगवान् नारायणने विशेष कार्यवश धर्मके पुत्ररूपमें अवतार लिया था। उन्होंने हिमालय पर्वत-पर रहकर बड़ी कठिन तपस्या की। छाछठ हजार वर्षतक केवल वायुका आहार करके अपने शरीरको सुखा डाला। इसके बाद भी उन्होंने इससे दूने वर्षोंतक पुनः बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उन्हें दर्शन दिया। विश्वेश्वरकी झाँकी करके नारायण ऋषि आनन्दमग्न हो गये, उनको प्रणाम करके वे बड़े भक्ति-भावसे भगवान्की स्तुति करने लगे—'आदिदेव! जिन्होंने इस पृथ्वीमें समाकर आपके पुरातन सर्गकी रक्षा की थी तथा जो इस विश्वकी भी रक्षा करते हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति भी आपसे ही प्रकट हुए हैं। देवता, असुर, नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पक्षी, गन्धर्व तथा यक्ष आदि विभिन्न प्राणियोंके जो समुदाय हैं, इन सबकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है। इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पद, पितरोंका लोक तथा विश्वकर्माकी सुन्दर शिल्पकला आदिका आविर्भाव भी आपसे ही हुआ है। शब्द और आकाश, स्पर्श और वायु, रूप और तेज, रस और जल तथा गन्ध और पृथ्वीकी आपहीसे उत्पत्ति हुई है। काल, ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है। जैसे जलसे उत्पन्न होनेवाले जीव उससे भिन्न दिखायी देते हैं परन्तु नष्ट होनेपर उस जलके ही साथ एकीभूत हो जाते हैं, उसी प्रकार यह समस्त विश्व आपसे ही प्रकट होकर आपमें ही लीन होता है। इस तरह जो आपको सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयका अधिष्ठान जानते हैं, वे विद्वान् पुरुष आपके सायुज्यको प्राप्त होते हैं।'

जिनका स्वरूप मन-बुद्धिके चिन्तनका विषय नहीं होता, वे पिनाकधारी भगवान् नीलकण्ठ नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करनेपर उन्हें वरदान देते हुए बोले—'नारायण! मेरी कृपासे किसी प्रकारके शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले या सूखे पदार्थ और स्थावर या जङ्गम प्राणीके द्वारा भी कोई तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता। समरभूमिमें पहुँचनेपर तुम मुझसे भी अधिक बलिष्ठ हो जाओगे।' इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही भगवान् शङ्करसे अनेकों वरदान पा लिये हैं। वे ही भगवान् नारायण मायासे इस संसारको मोहित करते हुए इनके रूपमें विचर रहे हैं। नारायणके ही तपसे महामुनि नर प्रकट हुए, अर्जुनको उन्हींका अवतार समझ। इनका प्रभाव भी नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्ममर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं। अश्वत्थामा! तूने भी पूर्वजन्ममें भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके लिये कठोर नियमोंका पालन करते हुए अपने शरीरको दुर्बल कर डाला था, इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने तुम्हें बहुत-से मनोवाञ्छित वरदान दिये थे। जो मनुष्य भगवान् शङ्करके सर्वमय स्वरूपको जानकर लिङ्गरूपमें उनकी पूजा करता है, उसे सनातन शास्त्रज्ञान तथा आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो शिवलिङ्गको सर्वभूत-मय जानकर उसका अर्चन करता है, उसपर भगवान् शङ्करकी बड़ी कृपा होती है।

वेदव्यासकी ये बातें सुनकर अश्वत्थामाने मन-ही-मन शङ्करजीको प्रणाम किया और श्रीकृष्णमें उसकी महत्त्व-बुद्धि हो गयी। उसने रोमाञ्चित शरीरसे महर्षि व्यासको प्रणाम किया और सेनाकी ओर देखकर उसे छावनीमें लौटनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर कौरव और पाण्डव दोनों पक्षकी सेनाएँ अपने-अपने शिविरको चल दीं। इस प्रकार वेदोंके पारगामी आचार्य द्रोण पाँच दिनोंतक पाण्डवसेनाका संहार करके ब्रह्मलोकमें चले गये।

व्यासजीके द्वारा अर्जुनके प्रति भगवान् शङ्करकी महिमाका वर्णन

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! धृष्टद्युम्नके द्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे पुत्रों तथा पाण्डवोंने आगे कौन-सा कार्य किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! उस दिनका युद्ध समाप्त हो जानेपर महर्षि वेदव्यासजी स्वेच्छासे घूमते हुए अकस्मात् अर्जुनके पास आ गये। उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—'महर्षे! जब मैं अपने बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय देखा कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष मेरे आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही मेरे शत्रुओंका नाश करते थे, किन्तु लोग समझते थे मैं कर रहा हूँ। मैं तो केवल उनके पीछे-पीछे चलता था। भगवन्! बताइये, वे महापुरुष कौन थे? उनके हाथमें त्रिशूल था, वे सूर्यके समान तेजस्वी थे, अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते थे। त्रिशूलका प्रहार करते हुए भी वे उसे हाथसे कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिशूलसे हजारों नये-नये त्रिशूल प्रकट हो जाते थे।'

व्यासजी बोले—अर्जुन ! तुमने भगवान् शङ्करका दर्शन किया है। वे तेजोमय अन्तर्यामी प्रभु सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं। सबके शासक तथा वरदाता हैं। तुम उन भगवान् भुवनेश्वरकी शरण जाओ। वे महान् देव हैं, उनका हृदय विशाल है। सर्वत्र व्यापक होते हुए भी वे जटाधारी त्रिनेत्ररूप धारण करते हैं। उनकी 'रुद्र' संज्ञा है। उनकी भुजाएँ बड़ी हैं। उनके मस्तकपर शिखा तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। वे सबके संहारक होकर भी निर्विकार हैं। किसीसे पराजित न होनेवाले और सबको सुख देनेवाले हैं। सबके साक्षी, जगत्की उत्पत्तिके कारण, जगत्के सहारे, विश्वके आत्मा, विश्वविधाता और विश्वरूप हैं। वे ही प्रभु कर्मोंके अधिष्ठाता—कर्मोंका फल देनेवाले हैं। सबका कल्याण करनेवाले और स्वयम्भू हैं। सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी तथा भूत, भविष्य और वर्तमानके कारण भी वे ही हैं। वे ही योग हैं, वे ही योगेश्वर। वे ही सर्व हैं और वे ही सर्वलोकेश्वर। सबसे श्रेष्ठ, सारे जगत्से श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम परमेष्ठी भी वे ही हैं। वे ही तीनों लोकोंके स्रष्टा और त्रिभुवनके अधिष्ठानभूत विशुद्ध परमात्मा हैं। भगवान् भव भयानक होकर भी चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करते हैं। वे सनातन परमेश्वर सम्पूर्ण वागीश्वरोंके भी ईश्वर हैं। वे अजेय हैं; जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकार उन्हें छू भी नहीं सकते। वे ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा ज्ञानमें सबसे श्रेष्ठ हैं। भक्तोंपर कृपा करके उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया करते हैं। भगवान् शङ्करके दिव्य पार्षद नाना प्रकारके रूपोंमें दिखायी देते हैं। वे सब महादेवजीकी सदा ही पूजा किया करते हैं। तात ! वे साक्षात् भगवान् शङ्कर ही वह तेजस्वी पुरुष हैं, जो कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चला करते हैं। उस घोर रोमाञ्चकारी संग्राममें अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कर्ण-जैसे महान् धनुर्धर जिस सेनाकी रक्षा करते हैं, उसे नानारूपधारी भगवान् महेश्वरके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है ? और जब वे ही आगे आकर खड़े हो जायँ, तो उनके सामने ठहरनेका भी कौन साहस कर सकता है ? तीनों लोकोंमें कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो उनकी बराबरी कर सके। संग्राममें भगवान् शङ्करके कुपित होनेपर उनकी गन्धसे भी शत्रु बेहोश होकर काँपने लगते हैं और अधमरे होकर गिर जाते हैं। जो भक्त मनुष्य सदा अनन्यभावसे उमानाथ भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे इस लोकमें सुख पाकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होते हैं। इसलिये कुन्तीनन्दन ! तुम भी नीचे लिखे अनुसार उन शान्तस्वरूप भगवान् शङ्करको सदा नमस्कार किया करो। 'जो नीलकण्ठ, सूक्ष्मस्वरूप और अत्यन्त तेजस्वी हैं। संसार-समुद्रसे तारनेवाले सुन्दर तीर्थ हैं, सूर्यस्वरूप हैं। देवताओंके भी देवता, अनन्त रूपधारी, हजारों नेत्रोंवाले और कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, परमशान्त और सबके पालक हैं, उन भगवान् भूतनाथको सदा प्रणाम है।' उनके हजारों मस्तक, हजारों नेत्र, हजारों भुजाएँ और हजारों चरण हैं। कुन्तीनन्दन ! तुम उन वरदायक भुवनेश्वर भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। वे निर्विकार भावसे प्रजाका पालन करते हैं, उनके मस्तकपर जटाजूट सुशोभित होता है। वे धर्मस्वरूप और धर्मके स्वामी हैं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेके कारण उनका उदर और शरीर विशाल है। वे व्याघ्रचर्म ओढ़ा करते हैं। ब्राह्मणोंपर कृपा रखनेवाले और ब्राह्मणोंके प्रिय हैं। 'जिनके हाथमें त्रिशूल, ढाल, तलवार और पिनाक आदि शस्त्र शोभा पाते हैं, उन शरणागतवत्सल भगवान् शिवकी शरणमें जाता हूँ।' इस प्रकार उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। जो देवताओंके स्वामी और कुबेरके सखा हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। जो सुन्दर व्रतका पालन करते और सुन्दर धनुष धारण करते हैं, जो धनुर्वेदके आचार्य हैं, उन उग्र आयुधवाले देवश्रेष्ठ भगवान् रुद्रको नमस्कार है। जिनके अनेकों रूप हैं, अनेकों धनुष हैं, जो स्थाणु एवं तपस्वी हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। जो गणपति, वाक्पति, यज्ञपति तथा जल और देवताओंके पति हैं, जिनका वर्ण पीत और मस्तकके बाल सुवर्णके समान कान्तिमान् हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है।

अब मैं महादेवजीके दिव्य कर्मोंको अपने ज्ञान और

करते रहते हैं। वे एक, अनेक, सौ, हजार और लाख हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर बताते हैं—शिव और घोर। ये दोनों अलग-अलग हैं। इन दोनोंके भी कई भेद हो जाते हैं। उनका घोर शरीर अग्नि और सूर्य आदिके रूपमें प्रकट है तथा सौम्य शरीर जल, नक्षत्र एवं चन्द्रमाके रूपमें। वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं। अर्जुन! यह है महादेवजीकी महिमा। इतनी ही नहीं, वह अत्यन्त महान् तथा अनन्त है। मैं एक हजार वर्षतक कहता रहूँ, तो भी उनके गुणोंका पार नहीं पा सकता।

जो लोग सब प्रकारकी ग्रह-बाधाओंसे पीडित हैं, और सब प्रकारके पापोंमें डूबे हुए हैं, वे भी यदि उनकी शरणमें आ जायँ तो वे प्रसन्न होकर उन्हें पाप-तापसे मुक्त कर देते हैं तथा आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुर भोग-सामग्री प्रदान करते हैं। कुपित होनेपर वे सबका संहार कर डालते हैं। महाभूतोंके ईश्वर होनेके कारण उन्हें महेश्वर कहते हैं। वेदोंमें भी इनकी शतरुद्रिय और अनन्तरुद्रिय नामकी उपासना बतायी गयी है। भगवान् शङ्कर दिव्य और मानव सभी भोगोंके स्वामी हैं। सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करनेके कारण वे ही विभु और प्रभु हैं। शिव-लिङ्गकी पूजा करनेसे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। यद्यपि उनके सब ओर नेत्र हैं, तथापि एक विलक्षण अग्निमय नेत्र अलग भी है, जो सदा प्रज्वलित रहता है। वे सब लोकोंमें व्याप्त होनेके कारण सर्व कहलाते हैं। वे सबके कर्मोंमें सब प्रकारके अर्थ सिद्ध करते हैं तथा सम्पूर्ण मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। महान् विश्वका पालन करनेसे महादेव, स्थितिके हेतु होनेसे स्थाणु और सबके उद्भव होनेके कारण भव कहलाते हैं। कपि नाम है श्रेष्ठका और वृष धर्मका वाचक है; वे धर्म और श्रेष्ठ दोनों हैं, इसलिये उन्हें वृषाकपि कहते हैं। उन्होंने अपने दो नेत्रोंको बंद कर बलात्कारसे ललाटमें तीसरा नेत्र उत्पन्न किया, इसलिये वे त्रिनेत्र कहे जाते हैं।

अर्जुन! जो तुम्हारे शत्रुओंका संहार करते हुए देखे गये थे, वे पिनाकधारी महादेवजी ही हैं। जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा करनेपर श्रीकृष्णने स्वप्नमें गिरिराज हिमालयके शिखर-पर तुम्हें जिनका दर्शन कराया था, वे ही भगवान् शङ्कर यहाँ तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं। उन्होंने ही वे अस्त्र दिये, जिनसे तुमने दानवोंका संहार किया है। यह भगवान् शिवका शतरुद्रिय उपाख्यान तुम्हें सुनाया गया है। यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है, परम पवित्र तथा वेदके समान है। भगवान् शङ्करका यह चरित्र संग्राममें विजय दिलानेवाला है। इस शतरुद्रिय उपाख्यानको जो सदा पढ़ता और सुनता है तथा जो भगवान् शङ्करका भक्त है, वह मनुष्य सभी उत्तम कामनाओंको प्राप्त करता है। अर्जुन! जाओ, युद्ध करो; तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती। क्योंकि तुम्हारे मन्त्री, रक्षक और पार्श्ववर्ती भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! पराशरनन्दन व्यासजी अर्जुनसे यह कहकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये।

वेदोंके स्वाध्यायसे जो फल मिलता है, वही इस पर्वके पाठ और श्रवणसे भी मिलता है। इसमें वीर क्षत्रियोंके महान् यशका वर्णन किया गया है। जो नित्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके पाठसे ब्राह्मणको यज्ञका फल मिलता है, क्षत्रियको संग्राममें सुयशकी प्राप्ति होती है तथा शेष दो वर्णोंको भी पुत्र-पौत्र आदि अभीष्ट वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।

॥ द्रोणपर्व समाप्त ॥

भारत और महाभारत

(लेखक—श्रीयुत एस० एन० ताडपत्रीकर, एम्० ए०)

महाभारतका प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें अद्वितीय स्थान उक्त ग्रन्थमें ही कुछ ऐसे वचन हैं, जिनके आधारपर विशाल ग्रन्थकी रचनाके सम्बन्धमें कुछ अनुमान किया सकता है। परन्तु बहुधा लोग एक बाह्य प्रमाण भी ृत करते हैं, जिसे सामान्यतः एक पर्याप्त आधारके रूपमें कार किया जाता है। वह आश्वलायन-गृह्यसूत्रका एक वाक्य । दैनिक तर्पणके लिये जहाँ उसमें ऋषियोंकी एक सूची गयी है, वहाँ भारत और महाभारतका भी उल्लेख ता है; और उससे यह अनुमान किया जाता है कि उक्त ग्रसूत्रके निर्माणके समय भारत और महाभारत नामके दो य विद्यमान थे अथवा कम-से-कम उस समयके लोगोंमें क नामके दो ग्रन्थोंकी प्रसिद्धि थी।

हमने अबतक कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं देखा है, जिसमें ह्यसूत्रके उक्त वाक्यकी भलीभाँति समीक्षा की गयी हो; और ालूम होता है प्रायः लोगोंने उक्त परिणामको आँख मूँदकर ीकार कर लिया है। गृह्यसूत्रका वह वाक्य इस प्रकार है—

सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारत- र्माचार्याः।

यह स्पष्ट है कि ऊपरका वाक्य एक ही लंबा समस्त द है। और समासके अन्य पदोंका खयाल न करके 'भारत' और 'महाभारत' इन दो शब्दोंको स्वतन्त्र मानकर व्यवहार करना सरासर व्याकरणके नियमोंकी अवहेलना करना होगा। निःसन्देह सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैलका महर्षि व्यासके शिष्यरूपमें उल्लेख आता है; और महर्षि व्यास भारत-संहिताके रचयिता थे। और वर्तमान महाभारतके आलोचनात्मक संस्करण*में भी—जिसके सम्बन्धमें लोगोंकी यह मान्यता है कि उसमें प्राचीनतम और आलोचनाकी दृष्टिसे सबसे अधिक प्रामाणिक पाठ संगृहीत है—यह उल्लेख मिलता है कि व्यासजीने अपना यह ग्रन्थ उपर्युक्त चार शिष्योंको तथा अपने पुत्र शुकमुनिको पढ़ाया था। परन्तु कठिनाई यह है कि उपर्युक्त समासका विग्रह किस प्रकार किया जाय, जिससे कि उसमेंसे खास तौरपर यह अर्थ निकल सके। पहले चार व्यक्तियोंका तो नामतः निर्देश किया गया है; अब प्रश्न यह होता है कि क्या इन चार नामोंका समासके अवशिष्ट अंशके साथ सामानाधिकरण्य माना जाय। ऐसा माननेपर यह अर्थ होगा कि उक्त चारों व्यक्ति ही धर्माचार्य हैं। परन्तु तब भी 'सूत्रभाष्यभारत महाभारत'—मध्यका इतना अंश बच रहता है, और समासकी संगति बैठानेके लिये इस अंशका पहले और अन्तिम दोनों अंशोंके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा। समासका विग्रह करनेकी जो प्रचलित परिपाटी है, उसके अनुसार यही अर्थ करना स्वाभाविक होगा कि सुमन्तु आदि ऋषि ही धर्माचार्य हैं; और जिन धर्मोंके वे आचार्य हैं, वे धर्म वही हैं जो सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारतमें वर्णित हैं। विग्रहका दूसरा ढंग यह होगा कि समासके प्रत्येक अवयवको स्वतन्त्र मानकर अन्तिम शब्द 'आचार्य'के साथ जोड़ लिया जाय। इस प्रकार विग्रह करनेपर यह अर्थ होगा कि सुमन्तु आदि चार ऋषि एवं उनके साथ-साथ सूत्राचार्य, भाष्याचार्य, भारताचार्य, महाभारताचार्य एवं अन्य धर्माचार्य भी [तर्पणके अधिकारी हैं]।

परन्तु मुझे पहला विग्रह अधिक युक्तियुक्त, अतएव ठीक मालूम होता है; और इस विग्रहको मानकर ही मैं अपना समाधान प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुख्य प्रश्न यह है कि सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत—इन चारों ग्रन्थोंके कोई अलग-अलग विशेष धर्म हैं क्या। और फिर जिन चार ऋषियोंका ऊपर उल्लेख हुआ है, वे क्या उन चार धर्मोंके अलग-अलग अथवा सम्मिलितरूपमें विशेष प्रचारक माने गये हैं? सूत्रग्रन्थोंका तो एक समूचा विस्तृत साहित्य ही है और भिन्न-भिन्न शाखाओंके अलग-अलग सूत्र हैं, जिनमें उन-उन शाखाओंके कर्मकाण्डकी विधि बतायी गयी है। जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारी दृष्टि कुण्ठित होने लगती है; क्योंकि हम निश्चितरूपसे नहीं कह सकते कि सूत्रधर्मोंकी भाँति कोई भाष्यधर्म भी हैं। हाँ, हम अनुमानके तौरपर यह कह सकते हैं कि सम्भवतः सूत्रग्रन्थ, प्राचीन होनेके कारण, आगे चलकर दुरूह हो गये हों, जिसके कारण विभिन्न विद्वानोंको उनकी टीका करनी पड़ी हो और वे

---

* यह संस्करण पूनाके 'भंडारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट'के द्वारा

आदेश भाष्यधर्म कहे जा सकते हैं। आगे हमारी गति और भी कुण्ठित हो जाती है। अब भारत और महाभारतके धर्मोंकी बारी आती है—ये क्या हैं? यहाँ हम अनुमानके तौरपर एक सुझाव और पेश करते हैं—किन्तु है यह निरा अनुमान ही; और इसी रूपमें इसपर विचार भी होना चाहिये—वह यह कि भारतधर्म और महाभारतधर्म देशविशेषके धर्मोंके वाचक हैं। भारतसे भारतवर्ष मात्रका ग्रहण होना चाहिये, और महाभारतसे विशाल भारत—बृहत्तर भारतका। सुदूर पूर्वमें किये गये ऐतिहासिक अनुसन्धानोंसे अब यह पता चला है कि प्रशान्त महासागरके द्वीपोंमें भारतीय उपनिवेश बहुत समय पहले स्थापित हो गये थे। और जावा, बोर्नियो, बाली आदिमें हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृतिके ध्वंसावशेष अब भी पाये जाते हैं। और हमारा यह अनुमान अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि उपनिवेशोंमें धार्मिक आचारोंका उतनी कड़ाईके साथ पालन नहीं होता रहा होगा, जितना कि भारतवर्षमें। समुद्रके द्वारा यातायात करने तथा सुदूर देशोंमें रहनेसे भारतीय रहते हुए भी लोगोंके आचार-व्यवहारमें स्वाभाविक ही कुछ आवश्यक परिवर्तन हुए ही होंगे; और इस प्रकार बृहत्तर भारतके एक नये आचार—महाभारतधर्मकी सृष्टि अवश्य हुई होगी।

इस अर्थको स्वीकार करनेमें कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं; इसीलिये इन पंक्तियोंके लेखकने इसे निरे सुझावके रूपमें पेश किया है। कोई सज्जन इस जटिल समासका यदि किसी और युक्तियुक्त ढंगसे विग्रह करेंगे तो उसे स्वीकार करनेमें उसे तनिक भी रुकावट नहीं होगी। क्योंकि इस विग्रहमें एक और कठिनाई है, जिसका हमने अभीतक उल्लेख नहीं किया है किन्तु जो पहली कठिनाईसे भी अधिक गम्भीर है; वह है उपर्युक्त चारों ऋषियोंका सूत्र-धर्म, भाष्यधर्म, भारतधर्म और महाभारतधर्म—इनमेंसे किसी एक धर्मके साथ सम्बन्ध स्थापित करना। वाक्यमें दिये हुए क्रमके अनुसार विचार करनेपर यह पता नहीं चलता कि सुमन्तुका सूत्र-ग्रन्थोंसे कोई खास सम्बन्ध था और न यही पता चलता है कि जैमिनि उक्त सूत्रोंके भाष्य-साहित्यके रचयिता थे। देशविशेषके धर्मोंकी बातको अलग रखकर हम केवल इतनी बात जानते हैं, और महाभारतमें इस बातका पर्याप्त प्रमाण भी है, कि वैशम्पायनका अवश्य भारतके साथ, और परोक्षरूपसे महाभारतके साथ भी खास सम्बन्ध था। पैलके सम्बन्धमें हम कोई निश्चित बात नहीं कह सकते। वैशम्पायनके सम्बन्धमें भी यह नहीं मालूम है कि उनका भारतके धर्मके साथ क्या सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त यदि भारत और महाभारतसे महाभारत ग्रन्थके ही दो क्रमिक रूपोंका ग्रहण किया जाय, तो यह बात अभी जाननेकी है कि भारतमें किसी विशेष धर्मका वर्णन हुआ है और महाभारतमें किसी और ही धर्मका।

*अतः आश्वलायन-गृह्यसूत्र*के इस वाक्यको एक बार हमें अलग रख देना होगा; क्योंकि उसके अन्तर्गत कई ऐसे प्रश्न उठ जाते हैं, जिनका सन्तोषजनक समाधान नहीं मिलता। *कम-से-कम इस समय भी हम इतनी बात कह सकते हैं कि गृह्यसूत्रके इस प्रमाणसे यह बात सिद्ध नहीं होती कि सूत्रकारके ध्यानमें भारत और महाभारत नामके दो अलग-अलग ग्रन्थ थे, जैसा कि अबतक लोग कल्पना करते आये हैं।*

× × × ×

अब हमलोग स्वयं महाभारतके साक्ष्यपर विचार करें, क्योंकि इस ग्रन्थमें उसकी रचनाके सम्बन्धमें कुछ निश्चित बातें कही गयी हैं। हम उपर्युक्त आलोचनात्मक संस्करणके ही उद्धरण देंगे, क्योंकि उसका पाठ अनेकों प्राचीन एवं मूल्यवान् हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर तैयार किया गया है, जो भिन्न-भिन्न पाठोंके प्रतीक हैं तथा भारतके सभी प्रान्तोंसे संगृहीत हुई हैं।

आरम्भमें ही यह बात आती है कि व्यासजीने भारतको उस समय प्रकाशित किया था जिस समय धृतराष्ट्र, विदुर एवं पाण्डव वृद्ध हो-होकर इस संसारसे कूच कर गये थे—

तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः॥

(आदि० ७। ५६)

इस ग्रन्थको रचनेमें व्यासजीको तीन वर्ष लगे थे—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्॥

(आदि० ५६। ३२)

यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि उपर्युक्त श्लोकमें 'महाभारत' शब्द वर्तमान महाभारतका, जो 'शतसाहस्री-संहिता' के नामसे प्रसिद्ध है, वाचक नहीं है; समासका पूर्वपद